Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112891

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1939

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

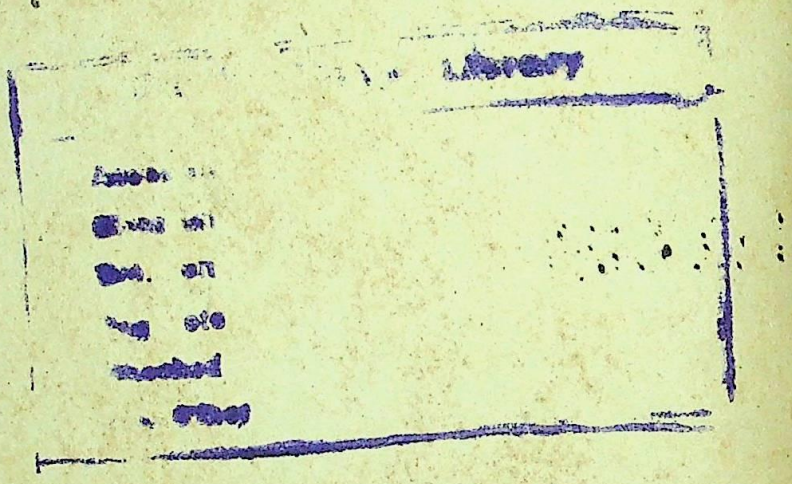

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112841

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल उमेशचन्द्र देव

जनवरी १९३९ | भाग ४०, खंड १ संख्या १, पूर्ण संख्या ४६९ | पौष १९९५

जीवन-सागर

लेखक, ठाकुर गोपालशरणसिंह

कब से नौका पड़ी भँवर में ?
होती है किस भाँति अकरुणा
करुणामय करुणा के घर में ?
सूझ नहीं पड़ता है कुछ भी
अन्धकार है रत्नाकर में,
है आलोक-लोक भी आवृत
बादल के दल से अम्बर में।
नाश नाचता है गा-गा कर
लोल-लोल लहरों के स्वर में,
देव ! बचाओ डूब न जाऊँ,
मैं अपने जीवन-सागर में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माननीय पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त

लेखक, श्रीयुत क-ख-ग

मान् पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त जी का जन्म संवत् १९४४ शाके १९०९ भाद्रपद मास शुक्ल पक्ष त्रयोदशी के दिन हुआ था। आप अलमोड़ा-ज़िला के एक उच्च ब्राह्मण-परिवार के वंशज हैं, यद्यपि आपका परिवार कुछ दिनों से नैनीताल-ज़िला के सिलौटी गाँव में बस गया है, और यही वस्तुतः पंडित जी का घर कहला सकता है। कुछ साल हुए आपने नौकुचिया ताल के पास एक जायदाद ख़रीदी जो सिलौटी के बिलकुल पास है। अलमोड़ा ज़िले के ब्राह्मण अधिकतः उस ज़िले के मूल-निवासी नहीं हैं। उनके पूर्वज समतल स्थानों में रहते थे। कई शताब्दी पहले जब चन्द राजे कुमायूँ में जाकर अलमोड़ा और नैनीताल के शासक बने तब बहुत-से ब्राह्मण-परिवार उनके साथ गये। अलमोड़ा और नैनीताल के ब्राह्मण अधिकतः कान्यकुब्ज हैं, परन्तु पन्त ब्राह्मण महाराष्ट्री हैं। उनके पूर्वज महाराष्ट्र देश से पहाड़ों पर आये। कुमायूँ में पन्त ब्राह्मणों का सदैव ही बड़ा आदर किया गया है। चन्द राजाओं के समय में उन्होंने कुमायूँ के इतिहास में सदैव प्रमुख भाग लिया है। वे अपनी बुद्धिमत्ता, साहस और शासन-शक्ति के लिए सदैव प्रसिद्ध रहे हैं।

पन्त जी का जन्म अलमोड़ा में हुआ था। आपका पालन-पोषण आपके परलोकगत नाना दन्या के रायबहादुर पंडित बदरीदत्त जोशी के घर में हुआ, जो आधुनिक कुमायूँ के सर्वप्रसिद्ध व्यक्तियों में से हैं। जोशी जी के पूर्वज बहुत दिनों तक कुमायूँ के चन्द राजाओं के दीवान रहे और श्रीमान् जोशी जी में वे सभी योग्यतायें थीं जो लोगों को राज्य के सफल मंत्री के योग्य बनाती हैं। माननीय पन्त जी में अपने पितृ और मातृ दोनों वंशों आत्म-विश्वास, राजनैतिक बुद्धि, दूरदर्शिता और सार्व- सेवा की भावना आई है।

जी ने अलमोड़ा के 'रेम्ज़े कालेजियट स्कूल' में आपने बचपन से ही अद्भुत बुद्धि का परिचय दिया। आपमें वैज्ञानिक अथवा दार्शनिक मनोवृत्ति अधिक मात्रा में थी।

खेल या खुली हवा के व्यायाम पन्त जी को कम पसंद थे या यों कहिए कि इनके लिए उनको समय ही नहीं था। स्कूली जीवन में आप कभी-कभी खेल खेलते थे, परन्तु आपको उनमें कभी ख्याति नहीं मिली; और जहाँ तक इस लेख के लेखक को ज्ञात है, पन्त जी ने कालेज में कभी कोई खेल नहीं खेला। इसका आपके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा। जिस बीमारी को आप बहुत दिनों तक भोगते रहे, और जिसके कारण आपके मित्रों को एक बार निराशा हो गई थी कि आप कभी स्वस्थ नहीं होंगे, वह बचपन में नियमित रूप से व्यायाम न करने के कारण ही हुई थी। वकालत शुरू करने के बाद आप संध्या-समय कुछ टहला करते थे, परन्तु कुछ दिनों के बाद सार्वजनिक सेवाओं और वकालत के कामों के बढ़ जाने से आपने टहलना बिलकुल छोड़ दिया। आप कभी किताब के कीड़े नहीं बने, बल्कि आपने साधारण छात्रों की अपेक्षा स्कूल और कालेज की किताबों पर बहुत कम ध्यान दिया। आप अधिकतर अख़बारों और बाहर की किताबों के पढ़ने में ही लगे रहते थे। आपने सदैव गम्भीर साहित्य को पढ़ने की चेष्टा की। रेम्ज़े कालेज में आपने एफ़० ए० तक शिक्षा पाई। कालेज में एक डिबेटिंग क्लब था जो अनियमित रूप से चलता था, लेकिन युवक गोविन्दवल्लभ पन्त ने इससे पूर्ण लाभ उठाया। सार्वजनिक भाषण की प्रारम्भिक शिक्षा आपको इसी क्लब में मिली थी, आप वहाँ के सबसे अच्छे वक्ता थे।

पन्त जी ने बी० ए० की परीक्षा अँगरेज़ी भाषा और साहित्य, गणित और अर्थशास्त्र के विषयों को लेकर पास की। आप गणित में ख़ास तौर से होशियार थे और मिस्टर होमरशेम काक्स के एक प्रिय छात्र थे। मिस्टर काक्स के सरल और निष्कपट स्वभाव, उनकी ज़िन्दगी की सादगी और उनकी उदार भावनाओं ने पन्त जी पर गहरा असर डाला। आप उनका स्मरण बराबर श्रद्धा और प्रेम से करते रहे हैं। जिस समय आप बी० ए० में पढ़ रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे, वंग-भंग के कारण स्वदेशी आन्दोलन पूरे ज़ोरों पर छिड़ा था। इसका आप पर गहरा प्रभाव पड़ा और आपने और आपके समकक्षी और मित्र पंडित हरगोविन्द पन्त एम० एल० ए० ने प्रयाग के माघ-मेला में स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार करने के लिए व्याख्यान दिये। इसका यह फल हुआ कि म्योर सेन्ट्रल कालेज के अधिकारी आपसे रुष्ट हो गये। प्रिन्सपल मिस्टर जेनिंग्स की राय थी कि उस साल आप दोनों बी० ए० की परीक्षा न देने पायें। लेकिन मिस्टर काक्स और प्रयाग के कुछ प्रसिद्ध नागरिकों के बीच में पड़ने से यह बला टल गई। म्योर सेन्ट्रल कालेज में पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त को अपनी कक्षा तथा डिबेटिंग-यूनियन दोनों में विशेषता प्राप्त थी। अपने सहपाठियों तथा अपने शिक्षकों, दोनों में आप बहुत लोकप्रिय थे। बी० ए० पास करने के बाद आप प्रयाग के 'यूनिवर्सिटी स्कूल आफ़ ला' में एल-एल० बी० के लिए पढ़ते रहे और परीक्षा में सब छात्रों में प्रथम आये।

एल-एल० बी० पास करने के बाद पन्त जी ने पहले-पहल अलमोड़ा-ज़िला के सदर में वकालत शुरू की। लेकिन थोड़े ही दिनों के बाद आप नैनीताल चले गये और जाड़ों में काशीपुर में वकालत किया करते थे। आपकी वकालत ख़ूब चमकी। आप में असली बात को तुरन्त समझ जाने का माद्दा होने के कारण काम में बड़ी सहायता मिलती थी और इससे आपको उतनी मेहनत भी नहीं करनी पड़ती थी। एक बार एक आई० सी० एस० अफ़सर ने, जो नैनीताल के डिप्टी कमिश्नर थे और ख़ुद भी बड़े काबिल अफ़सर थे, कहा था कि जब पन्तजी उनकी कचहरी में वकालत करने आते थे तब अपनी वाक्पटुता और तर्क-चातुर्य्य से अदालत का फ़ैसला अपने मुवक्किल के अनुकूल करा लेते थे। अफ़सर कितना ही चाहता हो कि फ़ैसला आपके अनुकूल न हो, परन्तु आपकी तर्कपूर्ण बहस से क़ायल होकर उसको आपके अनुकूल फ़ैसला करना पड़ता था। आपको मुक़दमों के समझने में अधिक समय नहीं लगता था। प्रायः देखा जाता था कि अपनी कोठी से कचहरी जाते समय आप मुक़दमे के काग़ज़-पत्र पढ़ लिया करते थे। आपका दिमाग़ इतना अच्छा और तेज़ था कि मुक़दमे के काग़ज़-पत्रों को केवल

[माननीय पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त]

थोड़ा ही पढ़कर कुछ मिनटों में ही आप असली बात समझ जाते थे और मुक़दमा जीत लेते थे।

वकालत शुरू करते ही पन्तजी ने सार्वजनिक प्रश्नों में गहरी दिलचस्पी लेनी आरंभ कर दी। जब सन् १९१४ में लड़ाई छिड़ी तब आप अपने कुछ मित्रों के साथ 'सेन्ट जान्स एम्बूलेन्स क्लास' में सम्मिलित हुए। लेखक को स्मरण है कि लड़ाई छिड़ने के कुछ दिन बाद सन् १९१४ में उससे और पन्त जी से बहुत देर तक बड़े गम्भीर भाव से बातें होती रहीं। उस समय पन्त जी ने अपने विचार बड़े विस्तार से प्रकट किये और बताया कि उनको और उनके साथियों को किस प्रकार अपना संध्या का समय व्यतीत करना चाहिए। आपने कहा था कि हम लोगों को अपना समय तुच्छ बातों में नष्ट नहीं करना चाहिए, बल्कि कोई [illegible] गम्भीर और ठोस काम करना चाहिए जिससे जन[illegible] उसके किसी भाग का लाभ हो। पन्त जी दलि[illegible] के बीच के लड़कों के लिए पाठशाला खोलने के विष[illegible] परन्तु यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़ोर देते रहे और आपने नैनीताल में एक ऐसी पाठशाला कुछ दिन तक चलाई भी। आपकी सदैव यही इच्छा रही है कि सार्वजनिक हित की संस्थाओं का स्थापन किया जाय। यह बहुत कुछ आपके उद्योग का ही फल था जो 'उदयराजसिंह हाई स्कूल' काशीपुर में स्थापित हुआ।

कुमाऊँ में पहले एक परिषद् थी, जिसके वार्षिक अधिवेशन हुआ करते थे और जो कुमाऊँ-सम्बन्धी सार्वजनिक प्रश्नों पर विचार किया करती थी। इसका इतिहास कुछ कुछ इंडियन नेशनल कांग्रेस के इतिहास से मिलता-जुलता है। कुमाऊँ के वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ ने बहुत समय तक इसका सञ्चालन किया। वे उग्र उपायों को काम में लाने के पक्ष में न थे। जिस प्रकार सूरत-कांग्रेस में मतभेद हुआ उसी प्रकार १९२० में कुमाऊँ-परिषद् पर भी वहाँ के युवक राजनीतिज्ञों का अधिकार हो गया। पंडित गोविन्द-वल्लभ पन्त और पंडित बदरीदत्त पांडे जी के नेतृत्व में उन्होंने कुली-बेगार के विरुद्ध सार्वजनिक आन्दोलन करने का निश्चय किया और थोड़े ही समय में उनके नेतृत्व में हज़ारों किसान अलमोड़ा-ज़िले के बागेश्वर में सरयू के तट पर एकत्र हुए और शपथ ली कि हम अब कभी कुली-बेगार न देंगे। गवर्नमेंट ने मान लिया कि लोगों की शिकायत सच्ची है और तत्काल इस प्रथा को तोड़ दिया। इस सत्याग्रह की सफलता पर महात्मा गांधी जी भी बहुत प्रसन्न हुए और उसको उन्होंने 'रक्तहीन क्रान्ति' कहा। पन्त जी कुमाऊँ-परिषद् के अल्मोड़ा-अधिवेशन के सभापति हुए और आपके भाषण को सबने एक बहुत उच्च कक्षा का भाषण माना।

जब सन् १९२१ के सुधार हुए तब पंत जी स्वराज्य-टिकट पर युक्तप्रांत की व्यवस्थापिका सभा के लिए खड़े हुए, पर एक ऐसे उम्मेदवार से हार गये जो अँगरेज़ी नहीं जानता था और जिसको सार्वजनिक बातों का कोई अनुभव नहीं था। पंत जी दूसरे निर्वाचन में फिर खड़े हुए और बहुत अधिक वोटों से जीत गये। शीघ्र ही आप कौंसिल में विरोधी दल के नेता हो गये। इस काम में आप बहुत [illegible] हुए। अथक शक्ति, शासन के प्रत्येक विभाग की [illegible] जानकारी, प्रभावशाली और धाराप्रवाह भाषण, [illegible] शिष्टता और सज्जनोचित शील के कारण आप [illegible] की प्रतिष्ठा के भी पात्र बन गये। कमिटियों में विशेष रूप से आपने नाम पैदा किया। एक बार मालगुज़ारी के क़ानून में कुछ संशोधन करने के लिए एक कमिटी बनी। उस समय के सरकारी अर्थ-सचिव उस कमिटी के चेयरमैन थे और पन्त जी उसके एक सदस्य थे। कमिटी की बैठक ११ बजे से होनेवाली थी। पन्त जी को देर हो गई और आप एक घंटे के बाद पहुँचे। तब तक बहुत से मेम्बरों ने अर्थ-सचिव से कार्य को आरम्भ करने के लिए कहा। उन्होंने कहा, इससे क्या फ़ायदा होगा। जब पन्त जी आयेंगे तब वे अपनी अनुपस्थिति में किये हुए कामों को रद कर देंगे और हमें फिर से काम शुरू करना पड़ेगा। आगरा टेनेन्सी ऐक्ट के सम्बन्ध में पन्त जी ने बहुत ही ठोस काम किया।

जब कांग्रेस ने सन् १९३० में अपना सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन प्रारम्भ किया तब नैनीताल में पन्त जी ने नमक-क़ानून को तोड़ा और इसके लिए आपको जेल जाना पड़ा। सन् १९३२ में आपको दूसरी बार जेल-यात्रा करनी पड़ी। साइमन-कमीशन के बहिष्कार में आपने बड़े ही उत्साह के साथ भाग लिया और लखनऊ में आपने पंडित जवाहरलाल नेहरू के साथ पुलिस की लाठियाँ भी खाईं। इसके कारण और स्वास्थ्य अच्छा न होने की वजह से आप बहुत बीमार पड़े और कई महीनों तक आप चारपाई से न उठ सके। पहले ओषधि से कुछ लाभ न हुआ, परन्तु आख़िरकार एक प्रसिद्ध डाक्टर आपको उस रोग से मुक्त करने में सफल हुए।

इलाहाबाद की सन् १९३२ की यूनिटी-कान्फ़रेन्स में भाग लेने के कारण पन्त जी को अखिल भारतीय नेतृत्व का पद प्राप्त हुआ। बातों को शीघ्र ही समझने, साम्प्रदायिक पक्षपात से पूर्णतः दूर रहने तथा अपने प्रभावपूर्ण तथा ओजस्वी भाषण के कारण आपको सबकी सुसम्मतियाँ ही नहीं मिलीं, बल्कि ऐसे निर्णयों पर पहुँचने में भी सहायता मिली जिन्हें कान्फ़रेन्स के सभी वर्गों के प्रतिनिधियों ने स्वीकृत किया।

संयुक्त-प्रान्त की लेजिस्लेटिव कौन्सिल छोड़ने के बाद आप केन्द्रीय एसेम्बली के लिए निर्विरोध चुने गये और वहाँ आपने शीघ्र ही प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। आप एक प्रभावपूर्ण और ओजस्वी वक्ता ही नहीं थे, बल्कि आपने ब्योरे की बातों और आँकड़ों इत्यादि पर भी अपनी चौकस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानकारी का परिचय दिया। जब आप बोलने के लिए उठते थे तब सरकारी सदस्य बहुत ही बेचैन हो उठते थे और बहुत ही जल्द लोगों ने आपको एक प्रथम श्रेणी का पार्लियामेन्टियन मान लिया। आपने सर जेम्स ग्रिग जैसे व्यक्ति का आदर और प्रशंसा प्राप्त की है।

अपनी योग्यता, बलिदान और कठिन परिश्रम की क्षमता के कारण आप कांग्रेसी गवर्नमेंट में संयुक्त-प्रान्त के प्रधान मंत्री के पद के लिए पहले से ही मनोनीत थे। फलतः समय आने पर संयुक्त-प्रान्त के 'पार्लियामेण्टरी बोर्ड' ने आपको सर्व-सम्मति से अपना नेता चुना और जब कांग्रेस ने मंत्रिपद ग्रहण करने का निश्चय किया तब आपको गवर्नर साहब ने मंत्रिमंडल बनाने के लिए निमंत्रित किया।

पन्त जी का पारिवारिक जीवन बहुत सुखी नहीं रहा है। वकालत शुरू करने के थोड़े दिनों के बाद आपके पिता श्रीमान् पंडित मनोरथ पन्त जी की, जो कुमायूँ में नायब तहसीलदार थे, मृत्यु हो गई और कुछ वर्षों के बाद आपकी माता जी का भी स्वर्गवास हो गया। युवावस्था में ही आपके एक पुत्र और प्रथम स्त्री का देहान्त हो गया। आपने पुनः विवाह किया और आपकी दूसरी पत्नी का भी स्वर्गवास हो गया। पुनः आपकी विवाह करने की इच्छा नहीं थी, परन्तु अपने मित्रों के अनुरोध और आग्रह से विवश होकर आपने फिर विवाह किया। परमात्मा की कृपा से इस विवाह से आपको गृहस्थी का सुख मिला है आपकी सहधर्मिणी धर्मपरायणा और बहुत उच्च विचार की महिला हैं। पन्त जी के इस समय एक सात वर्ष का पुत्र और १० तथा ३ वर्ष की दो लड़कियाँ हैं। आप उन्हें बहुत ही प्यार करते हैं।

पन्तजी एक सर्वप्रिय व्यक्ति हैं। आप सबसे हँसकर बोलते हैं। आपके घोर राजनैतिक विरोधी भी आपके सौजन्य के क़ायल हैं और आपसे प्रेम करते हैं। आप बहुत दयालु प्रकृति के हैं और दलितों तथा निर्धनों के दुःखों से आपके हृदय में बहुत चोट लगती है। आप मानवीय स्वभाव की दुर्बलताओं को समझते हैं और उन लोगों को भी क्षमा करने को सदा तैयार रहते हैं जिन्होंने आपके साथ विश्वासघात किया है। सामाजिक सुधार में आपको बहुत दिलचस्पी है और हिन्दू-समाज को जाति-प्रथा तथा अन्य कुप्रथाओं से छुड़ाने के लिए आपने सदैव अपनी आवाज़ उठाई है और अपना प्रभाव डाला है। आपके विचार कट्टरपन्थी नहीं हैं। निर्बल स्वास्थ्य के होते हुए भी आपमें लगातार कठोर परिश्रम करने की अद्भुत शक्ति है। प्रधान मन्त्री का पद ग्रहण करने के बाद ही आपको एक फोड़ा निकल आया, जिसका दो बार आपरेशन कराना पड़ा और जिसके कारण आपको बहुत कष्ट हुआ तथा आपको बहुत दिनों तक चारपाई पर पड़ा रहना पड़ा, लेकिन उससे आपने अपने काम में हर्ज नहीं होने दिया।

ऐसे ही कर्तव्य-निष्ठ महापुरुष आज संयुक्त-प्रान्त की कांग्रेसी सरकार के प्रधान मंत्री का गौरवपूर्ण पद सुशोभित कर रहे हैं। अपने कुछ ही दिनों के शासन-काल में उन्होंने जिस तत्परता के साथ अपने कर्तव्यों का पालन किया है, तथा सदियों से पददलित प्रान्त की जनता के समुद्धार के लिए जो महत्त्वपूर्ण आयोजन कर रहे हैं वह सर्वविदित है। आशा है, अपने कार्यकाल में ही वे ऐसे महत्त्व के काम कर डालने में पूर्णरूप से सफलमनोरथ होंगे जिनसे उनका नाम तो अमर ही हो जायगा, साथ ही भारत के इस महत्त्वपूर्ण भूखण्ड के निवासी भी सच्चे नागरिक बन जायँगे। भगवान् करे कि ऐसा ही हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वदेश-रक्षा

लेखक, श्रीयुत कुँवर राजेन्द्रसिंह

ह बात विवाद-रहित है कि किसी देश की रक्षा का भार उसी देश के रहनेवालों पर होता है और यह ठीक भी है। कोई क्यों किसी दूसरे के लिए जान देने आये? जान सबको प्यारी होती है। हाँ, कुछ अवसर ऐसे भी होते हैं जब जान को भी लोग तुच्छ समझते हैं। देश पर संकट पड़ने से कायर भी वीर हो जाते हैं। परिस्थिति परम बलवान् है। देश पर जब आफ़त आती है तब यह ख़याल आता है कि वह सब चीज़ें जिनकी हम प्रतिष्ठा करते हैं, जिनका मान करते हैं, जिनका आदर करते हैं, जिनको पवित्र समझते हैं, जिनसे प्रेम करते हैं, सब नष्ट-भ्रष्ट हो जायँगी और यही ख़याल देशवासियों को चंडी का ऐसा प्रचंड रूप धारण करने के लिए बाध्य कर देता है। उनको उनके पूर्व-पुरुषों की वीरता याद आ जाती है। उनके लिए इन पवित्र और पुनीत भावों का हृदय में उत्पन्न होना नितान्त असम्भव है, जिनके हृदय में केवल वेतन का प्रलोभन है।

उन देशों में विदेशी फ़ौज के समर्थन में एक शब्द भी नहीं कहा जा सकता है जहाँ देश की आय के औसत से जन-संख्या इतनी बढ़ी हुई है कि संतान-निग्रह के उपाय सोचे जाते हैं। प्रकृत्या इन बातों पर ध्यान देने के समय अपने देश की रक्षा का प्रश्न हम लोगों के सामने आ जाता है और हम यह सोचने लगते हैं कि क्या हम अपने देश की रक्षा करने के योग्य नहीं हैं, क्या हमारे पूर्वजों की अद्वितीय वीरता की ऐतिहासिक कथायें केवल कपोलकल्पित कहानियाँ हैं, क्या ये सब क़िस्से हैं कि हमारे पूर्वज युद्ध में नंगी तलवार लेकर, ढाल को जलाकर और कफ़न को कमर में बाँध कर लड़ने जाते थे, क्या यह साहित्यिक अत्युक्ति है कि हम लोग 'साठ पुश्तों के सिपाही कोई और नहीं', क्या यह निरर्थक प्रथा थी जो अब त-से ख़ानदानों में है कि लड़के की छठी के दिन क़ब्जे पर उसका हाथ रखवाया जाता है। यदि इतिहास लिखनेवालों की बात न मानी जाय तो क्या 'राजस्थान' के रचयिता टाड ने भी झूठ लिखा है कि मेवाड़ का एक एक गाँव 'थर्मापोली-पास' बना हुआ है। थर्मापोली यूनान के स्पार्टा का एक दर्रा है। उस देश पर जब आफ़त आई थी तब वहाँ के लोगों ने उस दर्रे पर ऐसी वीरता से युद्ध किया था कि संसार चकित हो गया था। क्या यह केवल गड़न्त है कि अपने देश में महिलाओं का विशेषण 'वीरजाया' और 'वीरगर्भा' इत्यादि था। इन नामों की लाज हमेशा उन्होंने रक्खी, वे ऐसी वीरता से लड़ीं कि आज-कल के खाई और ख़न्दकों में छिपकर लड़नेवाले सिपाही शर्मा जायँ।

विदेशी चाहे यह मान लें कि डार्विन के मतानुसार उनके पूर्वज बन्दर थे, परन्तु हम लोग तो यही मानते हैं कि हम उन महापुरुषों की सन्तान हैं जिन्होंने कहा था 'जो रन हमैं प्रचारहि कोऊ, लरहिं सुखेन काल किन होऊ।' बहुत दिनों की बात है, जब स्वर्गीय श्रीसुरेन्द्रनाथ बनर्जी इँग्लैंड में एक जगह व्याख्यान दे रहे थे और उस समय के भारतवर्ष की प्रशंसा कर रहे थे जब वह सब देशों में अग्रगण्य था। सभासदों में से एक ने आपसे उपहास करने के भाव से यह प्रश्न किया कि "आपका देश कब बड़ा था?" आपने तुरन्त उत्तर दिया कि "जब आपके पूर्वज दरख़्तों पर कूद-फाँद किया करते थे।" यदि कोई और जाति इस तरह से निःशस्त्र कर दी जाती जिस तरह हम लोग कर दिये गये हैं तो इतनी कायर और भीरु हो जाती कि स्वप्न में बिल्ली को भी देखने से चिल्ला उठती, परन्तु ईश्वर की कृपा से अब भी जब मौक़ा पड़ता है तब हम मौत का मुक़ाबिला इस तरह से करते हैं कि लोग दाँतों के नीचे उँगली दबाकर रह जाते हैं। जब यह सब है तब फिर हम यह कैसे मानने के लिए तैयार हो जायँ कि हम अपने देश की रक्षा करने में असमर्थ हैं। यह हमारी आत्म-प्रशंसा नहीं है। यही उनकी भी राय है जो हिन्दुस्तानियों की प्रशंसा करने में बहुत मितव्ययता से काम लेते हैं। मेरेडिथ टाउन शेन्ड ने, जिन्होंने ख़ास तौर से इस प्रश्न का अध्ययन किया था, अपनी पुस्तक 'एशिया एन्ड योरप' में लिखा है कि "हिन्दुस्तान में लड़नेवाले आदमी बारह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करोड़ हैं। वे वैसे ही लम्बे-चौड़े हैं, जैसे हम लोग हैं पर उन्हें मौत का भय हम लोगों की अपेक्षा कम है। थोड़ा आगे बढ़कर फिर उन्होंने लिखा है कि जिस तरह जर्मनी में क़ानून के द्वारा लोग फ़ौज में भर्ती होने को मजबूर हैं वही यदि हिन्दुस्तान में किया जाय तो वह फ़ौज तैयार हो जाय जो केवल एशिया पर क्या, सारे संसार पर विजय प्राप्त कर सकती है।" यही बहुतों ने कहा है। यहाँ के प्रत्येक वायसराय और प्रत्येक प्रधान सेनापति ने हिन्दुस्तानी फ़ौज की प्रशंसा की है। इँग्लेंड की कामन्स सभा के सदस्य कमान्डर जे० सी० वेजउड ने १९१७ में 'मेसेपोटामिया कमीशन' की रिपोर्ट में अपना जो अलग मन्तव्य लिखा था उसमें लिखा था कि—"हिन्दुस्तानी फ़ौज पूरे साज़ व सामान से न होने और न पूरे तौर से अभ्यस्त होने पर भी इस तरह से लड़ी जिससे यह विदित होता है कि यदि ये सब त्रुटियाँ न होतीं तो शायद ही कोई फ़ौज या कोई भी नहीं, इससे अच्छी होती।" इसका तो प्रत्यक्ष प्रमाण है। विगत योरपीय महा-युद्ध के समय चार महीनों में जल्दी जल्दी रँगरूटों को काम सिखला बाहर लड़ने को भेज दिया था और उनकी भी मुक्तकंठ से प्रशंसा हुई थी। हमारी हिन्दुस्तानी फ़ौज की बदौलत बेलजियम की रक्षा हुई थी। हमारी हिन्दुस्तानी फ़ौज पर फ्रांस में फूलों की वर्षा हुई थी और हमारी हिन्दुस्तानी फ़ौज के सिपाहियों को ऊँचे-से-ऊँचे फ़ौजी सम्मान प्राप्त हुए थे—बारह सिपाहियों को 'विक्टोरिया क्रास' पदक मिला था। पहले इस पदक के योग्य हिन्दुस्तानी नहीं समझे जाते थे। १९११ के दिल्ली-दरबार में यह घोषणा की गई थी कि अब यह पदक उनको भी मिला करेगा। यह फ़ौज का सबसे ऊँचा पदक है। जब हिन्दुस्तानी फ़ौज बाहर लड़ने जा रही थी तब एक ने एक पद्य लिखा था—"आज बेलजियम लखत है तिहारो मुख, बेग ही बचाओ रारि जर्मनी मचाई है। राना परताप भोज विक्रम के बंशज हौ, राखो कीर्ति तिनकी जो सब जग छाई है। रक्त के बहाय नद खोद कर नींव ही ते मेटो जाय बर्लिन गर्व गरुआई है। शत्रु और मित्र मुक्तकंठ यह भाखै लगैं धन्य बीर भारत अवश्य या चढ़ाई है।" यही हुआ। हिन्दुस्तानी फ़ौज ने वह धाक जमाई कि तारीफ़ करने में दुश्मन दोस्तों से आगे बढ़ गये।

कप्तान जी० बी० मोडक ने अपनी पुस्तक 'इंडियन डिफ़ेंस प्रोब्लेम' में लिखा है—"१८५६-५७ और १८६२ की संख्याओं की तुलना करने से मालूम होता है कि अँगरेज़ी फ़ौज की संख्या बढ़कर ३०,००० से ७८,००० कर दी गई और हिन्दुस्तानी-सेना की संख्या २,५६,६१३ से घटा कर १,४९,७६२ कर दी गई। इस अधिकता और न्यूनता का कारण केवल अविश्वास था। लोगों ने कह ही डाला कि हम केवल बलात् भारतवर्ष को अपने अधीन रख सकते हैं।" विश्वास से विश्वास उत्पन्न होता है। मुग़ल-साम्राज्य का उदाहरण लीजिए। अकबर का हिन्दुओं पर कितना विश्वास था। सभी बड़े बड़े पदों पर हिन्दू थे और उसी का यह परिणाम था कि साम्राज्य के लिए वे लोग जान निछावर करने को तैयार रहते थे। यह हम हिन्दुओं का क्षमायोग्य अभिमान है कि 'धोखा किसी को नहीं दिया है, विश्वास का घात नहीं किया है'। ख़ैर, अँगरेज़ी फ़ौज बढ़ाई और हिन्दुस्तानी कम की जाने लगी। अँगरेज़ी फ़ौज के बढ़ते ही ख़र्च भी बढ़ने लगा। १९३८ की अगस्त मास की जो केन्द्रीय असेम्बली की बैठक शिमले में हुई थी उसमें एक प्रस्ताव के अनुमोदन करने में मि० आसफ़अली ने कहा था कि "एक हिन्दुस्तानी सिपाही के ऊपर ६००) या ६५०) रुपया साल ख़र्च होता है और एक अँगरेज़ सिपाही पर २५००)।" जब फ़ौज का ख़र्च बढ़ने लगा तब अपने देश के नेता गवर्नमेंट का ध्यान इस ओर आकर्षित करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि उन लोगों की तरफ़ से सन्देह उत्पन्न होने लगा। गवर्नमेंट का यह कहना है कि राजनीति से सेना का क्षेत्र पृथक् है। प्रत्येक देश में जहाँ प्रजासत्तात्मक शासन है, वहाँ अनेक राजनैतिक दलों का होना स्वाभाविक है और यह भी स्वाभाविक है कि हुकूमत कभी किसी दल के हाथ में हो और कभी किसी के। किसी एक दल के विचारों और मतों का प्रभाव सेना पर नहीं पड़ना चाहिए, क्योंकि सेना के दो ही मुख्य काम हैं—(१) देश में शान्ति स्थापित रखना और (२) बाहर के आक्रमणों से देश की रक्षा करना। परन्तु प्रत्येक देश में पार्लियामेंट के निर्वाचित सभासदों की राय अवश्य ली जाती है। सेना के भेद गुप्त ज़रूर रक्खे जाते हैं, परन्तु किसी विदेशी गवर्नमेंट की हिम्मत नहीं है कि वह अपने देशवासियों से कह दे कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाइए, अपना काम कीजिए, आपको इन बातों से कोई मतलब नहीं है। जो चाहें सो करें, इसका पूर्ण अधिकार इस देश में वायसराय को है। वास्तव में उनको भी वही करना पड़ता है जो लंदन से हुक्म मिलता है। अगर कभी किसी ने कोई असुखकर प्रश्न पूछ लिया या कोई प्रस्ताव उपस्थित कर दिया तो उस पर कड़ी आलोचनायें होने लगती हैं। सेना-सम्बन्धी छः लाख के ख़र्च का बजट केन्द्रीय असेम्बली के सामने आता था और लोगों को कुछ कहने सुनने का मौक़ा मिल जाता था, परन्तु इस साल से वह भी प्रथा मिटा दी गई है। जब कुछ कहा जाता है तब जवाब मिलता है कि देश की रक्षा का प्रश्न साम्राज्य से सम्बन्ध रखता है जिसमें सिवा सेना-विभाग के और किसी को बोलने का अधिकार नहीं है। यह ख़ूब रही! हमारे भी तो देश की रक्षा का प्रश्न है?

यह किसी के भी कहने का अभिप्राय नहीं है कि भारत की रक्षा का उचित प्रबन्ध न किया जाय। सभी देशवाले यही चाहते हैं कि देश में शान्ति स्थापित रहे और देश बाहर के आक्रमणों से सुरक्षित रहे, परन्तु उसी के साथ यह भी सब चाहते हैं कि योग्यता के साथ मितव्ययता पर भी दृष्टि रहे। हमारे देश का फ़ौजी ख़र्च बहुत बढ़ गया है और देश ग़रीब है। १९१२-१३ में फ़ौज का ख़र्च २९ करोड़ ३३ लाख था। १९१९-२० में बढ़कर ८६ करोड़ ९७ लाख पहुँच गया, और अब भी ४५ करोड़ १८ लाख है। जिन लोगों ने इस विषय का अध्ययन किया है उन सबका यही कहना है कि सिवा इसके और कोई ख़र्च कम करने की तरकीब नहीं है कि सेना में हिन्दुस्तानियों की संख्या बढ़ाई जाय और अँगरेज़ों की घटाई जाय। यह हिन्दुस्तानी और अँगरेज़ का सवाल नहीं है—सवाल है ख़र्चे की कमी का। अँगरेज़ी सिपाहियों के अनुकूल यहाँ का जलवायु भी नहीं है। यह हम ही हैं जिनको सब जगह की आबहवा मुवाफ़िक हो जाती है। हमारी हिन्दुस्तानी फ़ौज सूडान, अबीसीनिया, ईजिप्ट, जावा, डार्डनेलीज़, मिसोपोटैमिया, इराक़, दक्षिणी अफ़्रीका या और जहाँ कहीं भी लड़ी, कभी यह शिकायत नहीं हुई कि सिपाही जलवायु के कारण बीमार पड़ गये। अँगरेज़ सिपाहियों के सम्बन्ध में स्वयं अँगरेज़ अफ़सरों की राय है कि उनके अनुकूल यहाँ का जलवायु नहीं है। यद्यपि उनको आराम पहुँचाने के लिए सब कुछ किया जाता है, दिल खोल कर रुपया ख़र्च होता है, तो भी वही बीमार ज़्यादा पड़ते हैं। एक दफा सार्जन जनरल गार्डन ने (ये मदरास में अँगरेज़ी फ़ौज के डाक्टर थे) कहा था कि अँगरेज़ी फ़ौज के छोकरे उस काम के करने के अयोग्य होते हैं जिसके लिए वे तनख़्वाह पाते हैं। हिन्दुस्तानी शायद फ़ौज में होते ही नहीं, अगर सब काम अँगरेज़ सिपाही कर लेते। लार्ड क्लाइव ने कहा था कि फ़ौज में हिन्दुस्तानी ज़रूरी हैं, क्योंकि वे बहुत-से कामों के करने में मदद देते हैं जो इस देश के जलवायु में अँगरेज़ नहीं कर सकते।

अँगरेज़ी और हिन्दुस्तानी फ़ौज के सिपाहियों की तनख़्वाह में बहुत बड़ा अन्तर है। हिन्दुस्तानी सिपाही से पाँच गुना अधिक अँगरेज़ी सिपाही की तनख़्वाह पड़ती है। उन अफ़सरों की तनख़्वाह में आठ से दस गुना तक अन्तर है जिनके पास कमीशन नहीं है। ये अँगरेज़ी में नान कमीशन्ड अफ़सर कहलाते हैं। भत्ते कुछ ऐसे हैं जो अँगरेज़ ही पाते हैं। उदाहरण के लिए तीन रुपया चार आने माहवार उन अँगरेज़ी सिपाहियों को दिया जाता है जो विवाह कर लेते हैं। यह गृहस्थी के सामान का भत्ता कहलाता है। विवाहित अँगरेज़ सिपाहियों को तीस रुपया माहवार और मिलता है। उनके चार बच्चों तक हर एक बच्चे को दस रुपया माहवार दिया जाता है। तीन रुपया प्रतिमास बाल कटवाने के लिए दिये जाते हैं और सात आने नाई के लिए और ऐसे ही कुछ धोबी के लिए। हिन्दुस्तानी सिपाही की तनख़्वाह से काट लिये जाते हैं। सात लाख रुपया साल अँगरेज़ सिपाहियों को फ़ौजी तालीम देने में ख़र्च होता है। कुछ भत्ते ऐसे हैं जो हिन्दुस्तानी और अँगरेज़ दोनों सिपाहियों को मिलते हैं, लेकिन उनमें भी ज़मीन और आसमान का अंतर होता है, यहाँ तक कि आठ गैलन पानी प्रत्येक हिन्दुस्तानी सिपाही को मिलता है और बीस गैलन अँगरेज़ सिपाही को। प्रत्येक अँगरेज़ी सिपाही को भोजन के अलावा छः रुपया साढ़े तेरह आने प्रतिमास मिलते हैं और हिन्दुस्तानी सिपाही को सिर्फ़ दस आने। यह 'मसाले' का भत्ता कहलाता है। कहा जाता है कि अँगरेज़ सिपाहियों को अगर वही तनख़्वाह और भत्ते दिये जायँ जो हिन्दुस्तानियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को मिलते हैं तो अट्ठाइस से तीस करोड़ तक की बचत होगी।

अपने फ़ौजी काम को योग्यता से करने के लिए प्रत्येक अँगरेज़ सिपाही को तीन रुपया प्रतिमास दिया जाता है। यह भत्ता ज़रा भी समझ में नहीं आता है। यदि इस भत्ते की आवश्यकता मान ही ली जाय तो उसकी ज़रूरत हिन्दुस्तानी सिपाहियों को भी तो है। यदि यह भत्ता देना बन्द कर दिया जाय तो साढ़े बीस लाख रुपया की बचत होगी। साढ़े सात लाख रुपया साल अँगरेज़ सिपाहियों के धर्म्मार्थ ख़र्च किया जाता है और हिन्दुस्तानी सिपाहियों की संख्या उनसे क़रीब क़रीब तिगुनी है, तो भी उनके धर्म्म के लिए एक लाख से कम ही ख़र्च किया जाता है। औसत १८ और १ का है। अँगरेज़ सिपाहियों के लड़कों के भी पढ़ाने में रुपया ख़र्च किया जाता है। हिन्दुस्तानी सिपाहियों के लड़कों की तालीम पर एक पैसा भी नहीं ख़र्च होता है। इस तरह के बहुत-से ख़र्च और बहुत-से भत्ते हैं जो हिन्दुस्तानी सिपाहियों को नहीं मिलते हैं और जो भत्ते दोनों को मिलते हैं उनमें जो फ़र्क़ है वह मालूम ही हो चुका है।

अँगरेज़ सिपाहियों की फ़ौज जहाँ होती है, वहाँ बाग़ीचे का भी इन्तिज़ाम होता है। इसका ख़र्च गवर्नमेंट उठाती है। इसमें जो पैदा होता है वह बहुत सस्ते दामों पर ख़रीद कर उन्हीं लोगों की रसोई के काम में लाया जाता है। इनमें से कुछ लोगों को खेती-बारी का काम सीखने के लिए गवर्नमेंट अपने ख़र्च से इँग्लेंड भेजती है। जब फ़ौज से पेंशन मिल जाती है तब कमा करके खाने का एक और सहारा उन लोगों को हो जाता है। यह सब ख़र्च भी भारत की रक्षा की मद में पड़ता है। अँगरेज़ सिपाहियों के मनोरंजन के लिए बाजे की भी ज़रूरत होती है। इस काम के लिए २,७५० विदेशी नौकर होते हैं। उनका सिर्फ़ यही काम होता है—उनको फ़ौज के काम से कोई वास्ता नहीं रहता। क़रीब पचास हज़ार साल इन पर ख़र्च होता है। इक्कीस हिन्दुस्तानी घुड़सवारों के रेज़ीमेंट हैं। उन सबके लिए सौ रुपया माहवार दिया जाता है और अँगरेज़ों के पाँच घुड़सवारों के रेज़ीमेंटों को दो सौ रुपया माहवार मिलता है। हिन्दुस्तानी घुड़सवारों की फ़ौज को चार-छः बरस से यह भत्ता मिलने लगा है। लेफ़्टिनेंट कर्नल आर्थर आस्बर्न ने (यह अँगरेज़ों की फ़ौज के डाक्टर थे) एक किताब लिखी है, जिसमें अपनी इक्कीस साल की नौकरी का अनुभव लिखा है। वे लिखते हैं—"पहले तीन साल में पूरी तनख़्वाह पर वे दो दफ़े ११ महीने की छुट्टी में इँग्लेंड गये थे।" उन्होंने यह भी लिखा है कि—"जो तनख़्वाह उनको मिलती थी—जब वे ऊँचे दरजे के अफ़सर भी नहीं थे—उससे उनकी बड़े आराम से गुज़र होती थी। उनके पास सात नौकर थे और कभी एक और कभी दो घोड़े रखते थे। नौकरी के पहले जो क़र्ज़ हो गया था वह सब चुका दिया था। उनका ख़याल था कि अगर अब भी वे फ़ौज में होते तो अब उनकी तनख़्वाह दो हज़ार माहवार होती और वे सब भत्ते भी उनको मिलते होते जो ग़रीब हिन्दुस्तानी अँगरेज़ अफ़सरों को देने में असमर्थ हैं"। लाखों रुपया अँगरेज़ों के दाँत के डाक्टरों और अस्पतालों पर ख़र्च होता है, और उनके दाँत जैसे साफ़ रहते हैं वह हर एक देखनेवाला बतला सकता है। इँग्लेंड में एक लाख चवालीस हज़ार फ़ौज है और उसका औषध-सम्बन्धी ख़र्च ८० लाख है। अपने देश में अँगरेज़ों की फ़ौज सिर्फ़ ६०,००० है और उसका इस मद का ख़र्च ७३ लाख है। औसत में कितना बड़ा अन्तर है। अँगरेज़ सिपाही पर फ़ौज का काम सिखलाने में सात रुपया और आठ आने ख़र्च होता है और हिन्दुस्तानी सिपाही पर दो रुपया और आठ आने। हर साल इँग्लेंड से १०,००० नये सिपाही यहाँ आते हैं, क्योंकि कोई अँगरेज़ सिपाही यहाँ छः साल से ज़्यादा नहीं रहने पाता। इतना ख़र्च करके हिन्दुस्तान अँगरेज़ सिपाहियों को काम सिखलाता है और वह सब बेकार हो जाता है। इस आने-जाने में लाखों रुपया उठ जाता है।

१९३१-३८ ईसवी के बजट के अनुसार ५७·०७ करोड़ रुपया फ़ौज का ख़र्च था। उसमें से ४३·८४ करोड़ हिन्दुस्तान में ख़र्च होता है और १३·२२ इँग्लेंड में ख़र्च किया जाता है। यह अँगरेज़ी में 'कैपीटेशन' कहलाता है। 'कैपीटेशन' का अर्थ फ़ीस या टैक्स है, जो प्रत्येक व्यक्ति के औसत से लिया जाता है। इसका इतिहास यह है कि सन् १८५७ के बाद जब हिन्दुस्तान की फ़ौज (ख़ास कर अँगरेज़ों की फ़ौज) का प्रबन्ध इँग्लेंड के बीच सेना-विभाग के हाथ में आया तब से हिन्दुस्तान परन्तु यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अँगरेज़ सिपाहियों का किराया देना पड़ता है, जो यहाँ की फ़ौज के लिए इँग्लेंड में भर्ती किये जाते हैं। हिन्दुस्तान की तरह कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलेंड और दक्षिणी अफ़्रीका ब्रिटिश साम्राज्य के सहभागी समझे जाते हैं। परन्तु जो अधिकार औरों को प्राप्त है उसका शतांश भी तो हम लोगों को प्राप्त नहीं है। १९०५ तक ब्रिटिश फ़ौज कनाडा में रही और उसके ख़र्च का एक एक पैसा इँग्लेंड देता था। जनरल स्मट्स ने एक दफ़ा अपने भाषण में कहा था कि "दक्षिणी अफ़्रीका को न तो बोअरों की और न अँगरेज़ों की फ़ौज रखनी चाहिए। उसे इसी देश के आदमियों की फ़ौज रखनी चाहिए।" यहाँ भी कहनेवाले यही कह डालते हैं, लेकिन सुनता कौन है? १८६१ से लेकर १९३२ तक हिन्दुस्तान ने अँगरेज़ों की फ़ौज और अन्य काम करनेवालों पर इँग्लेंड में ५२५ से लेकर ६०० करोड़ तक ख़र्च किया है।

कनाडा की आबादी सत्तानबे लाख है। उसमें से ग्यारह लाख और सत्तानबे हज़ार को फ़ौज का काम सिखलाया जाता है, अर्थात् १२ प्रतिशत से कुछ अधिक औसत पड़ता है। इसमें से यदि औरतें और १५ साल की उम्र के नीचेवालें लड़के निकाल दिये जायँ (जिनका औसत ७० प्रतिशत के क़रीब होगा) तो वहाँ की आबादी का कुल ३० प्रतिशत फ़ौजी तालीम पाता है। इस तरह उस देश की कुल आमदनी पर फ़ौजी ख़र्च का सिर्फ़ ४·७५ प्रतिशत औसत आता है। यदि भारतवर्ष का पुरुष जातीय आसन्न औसत लिया जाय तो १८ करोड़ होगा और उसमें से केवल ५०,००० आदमियों को फ़ौजी काम सिखलाया जाता है, अर्थात् आबादी का $\frac{१}{१८००}$ हिस्सा हुआ। तब भी अपनी रक्षा के लिए उसे अपनी आमदनी का ४५ प्रतिशत ख़र्च करना पड़ता है। यदि उन विभागों का भी ख़र्च इसमें जोड़ दिया जाय जिनसे सेना-विभाग को सहायता मिलती है तो औसत और भी ऊँचा होगा। इँग्लेंड अपनी आमदनी का १४·७५ प्रतिशत अपनी रक्षा के लिए ख़र्च करता है, फ़्रांस १८·७५ प्रतिशत, न्यूज़ीलेंड ५ प्रतिशत, आस्ट्रेलिया ६ प्रतिशत, कनाडा ४·७५ प्रतिशत और हिन्दुस्तान ४५·२९ प्रतिशत। अन्य देशों में वहीं के रहनेवाले फ़ौज में नौकर होते हैं इस वजह से ख़र्च कम है [illegible] अपने देश की फ़ौज में विदेशी सिपाही होने की [illegible] र्च ज़्यादा है।

हिन्दुस्तानी और अँगरेज़ सिपाहियों की तनख़्वाह और भत्तों में जो अन्तर है वह मालूम ही हो गया है। अब जहाँ सबसे बड़ा अन्तर है, वहाँ निगाह डालना है। ऊँचे दर्जे के अफ़सर हिन्दुस्तानी फ़ौज में भी अँगरेज़ ही होते हैं—नायक, हवलदार और जमादार इत्यादि के पदों तक हिन्दुस्तानी पहुँच पाते हैं। औसत दर्जे के अफ़सर वे कहलाते हैं जिनके पास वायसराय का कमीशन होता है। यहाँ इस शब्द का यह अर्थ है कि औसत दर्जे के अफ़सरों की जगह पर जो हिन्दुस्तानी हैं वे वायसराय के हुक्म से नियुक्त हुए हैं। और १,५४,५८० हिन्दुस्तानी फ़ौज में वायसराय के कमीशनवाले अफ़सर कुल ४,२२५ हैं। बादशाह का कमीशन पानेवाले ऊँचे दर्जे के अफ़सर होते हैं। उनमें केवल १९१ हिन्दुस्तानी हैं और ६,५७० अँगरेज़ हैं, यद्यपि अँगरेज़ों की फ़ौज की संख्या सिर्फ़ ५९,८२७ है। जो सख्यायें इस लेख में दी गई हैं उनमें सम्भव है, कुछ अन्तर हो, परन्तु किसी संख्या में इतना बड़ा अन्तर नहीं होगा कि औसत में बड़ा फ़र्क़ पड़े। हम लोगों से कहा जाता है कि सेना के सम्बन्ध में राजनैतिक बातें नहीं करनी चाहिए, परन्तु यह सलाह बतलानेवाले ख़ुद ही अपना मुँह बन्द नहीं रखते हैं। नौकरी ख़त्म करके यहाँ से गये हुए एक प्रधान सेनापति ने अभी थोड़े ही दिन हुए इँग्लेंड में कहा था कि जो हिन्दुस्तानी बादशाह का कमीशन पाते हैं वे उसके योग्य नहीं होते। जब आँखों पर जातीय पक्षपात के पर्दे पड़े हुए हैं तब हिन्दुस्तानियों की योग्यता कैसे समझ में आये!

बहुत-सी बातों में 'भारत-सरकार' भी मजबूर है। उसे वही करना पड़ता है जो लंदन का सेना-विभाग का हुक्म होता है, क्योंकि यहाँ की फ़ौज केवल यहीं की फ़ौज नहीं समझी जाती है—वह ब्रिटिश साम्राज्य की फ़ौज समझी जाती है। अर्थात् उसे वहाँ लड़ने जाना पड़ेगा जहाँ साम्राज्य भर में आवश्यकता होगी। जो देश पहले ब्रिटेन के अधीन थे और अब स्वतन्त्र हो गये हैं, उनसे ऐसी संधि है कि जब इँग्लेंड को आवश्यकता होगी तब सेना से सहायता करेंगे, परन्तु इसके साथ उनको यह भी अधिकार प्राप्त है कि अगर किसी युद्ध में वे ब्रिटेन का सम्मिलित होना न पसन्द करें तो वे फ़ौज से सहायता नहीं करेंगे। इस वजह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ये सब झगड़े वहाँ नहीं हैं जो यहाँ हैं। स्वतन्त्रता प्रत्येक झगड़े को सुलझा देती है।

कहा जाता है कि देश में शान्ति स्थापित रखने के लिए अँगरेज़ों की फ़ौज की आवश्यकता है। यह भी कहा जाता है कि हिन्दुस्तानी फ़ौज अपने देशवासियों का लिहाज़ करेगी। ये स्वप्न की-सी बातें हैं। हिन्दुस्तानी फ़ौज के ख़िलाफ़ अभी तक कभी कुछ नहीं सुना गया है। जब मोपला लोगों (मदरास) ने क्रान्ति की थी तब ज़्यादा-तर हिन्दुस्तानी ही फ़ौज ने शान्ति स्थापित की थी। हाँ, काम हो जाने पर अँगरेज़ों की फ़ौज वहाँ भेज दी गई थी कि इँग्लेंड को उसके वहाँ होने की ख़बरें भेजी जा सकें। विगत योरपीय महायुद्ध में शान्ति स्थापित रखने का भार हिन्दुस्तानियों पर नहीं था तो क्या उन अँगरेज़ छोकरों पर था जो बेचारे बड़े दिन में अँगरेज़ी मिठाई खाने के लिए लोगों से पैसे माँगा करते थे? एक बात और भी तो है। अन्य देशों में क्या शान्ति स्थापित रखने के लिए अँगरेज़ सिपाहियों की ही ज़रूरत होती है? स्वयं इँग्लेंड का क्या हाल है? क्या वहाँ शान्ति स्थापित रखने के लिए जर्मनी के सिपाही काम करते हैं? देश में शान्ति की रक्षा के लिए सभी देशों में वहीं की फ़ौज से काम लिया जाता है। १९१४ में जब योरपीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ तब हिन्दुस्तानी फ़ौज की कुल संख्या (उनको भी मिला-कर जिनसे ज़रूरत पड़ने पर काम लिया जाता है) १,९४,००० थी। लड़ाई के बीच में ७,९१,००० आदमी भरती हुए। दोनों का जोड़ ९,८५,००० पहुँचता है। इसमें से ५,५२,००० बाहर गये थे। लड़ाई के पहले उनकी संख्या ४५,००० थी जो फ़ौज में लड़ाई का काम छोड़कर और सब काम करते हैं। लड़ाई के बीच में इस काम के लिए ४,२७,००० आदमी भर्ती हुए थे, जिसमें से ३,९१,००० बाहर गये थे। हिन्दुस्तान ने १४,५७,००० आदमियों से मदद की थी, जिसमें से ६,४३,००० आदमी बाहर भेजे गये थे। आर्थिक सहायता इतनी बड़ी थी कि वायसराय लार्ड हार्डिंज ने कहा था कि इस देश का इतना 'रुधिर' निकाल लिया गया है कि वह सफ़ेद हो गया है।

इसी में इस देश का कल्याण है और उनका भी इसी में कल्याण है जो इसके शासक हैं कि हिन्दुस्तान की फ़ौज का प्रत्येक अफ़सर और सिपाही हिन्दुस्तानी हो। दोनों तरफ़ से विश्वास बढ़ेगा, ख़र्च घटेगा और देश सम्पन्न होगा। निर्धनता, अशान्ति और क्रान्ति की जननी होती है।*

---

* इस लेख के लिखने में मुझे कप्तान जी० बी० मोडक की पुस्तक 'इंडियन डिफ़ेंस प्रोब्लेम' से जो सहायता मिली है वह धन्यवादपूर्वक स्वीकार की जाती है। 'इंडियन इयर बुक' १९३८-३९ से भी बहुत सहायता मिली है।—लेखक।

नाविक से!

लेखिका, कुमारी प्रतिभा त्रिपाठी

मुझसे मत पूछो हे नाविक!
मेरी यात्रा का उद्देश्य।
सागर की उस सीमा पर ही,
मेरा है कुछ लक्ष्य विशेष॥

तुम हो मैं हूँ, नील-गगन है,
है यह जल की विस्तृत धार।
कितने ही झोंके खा-खा कर,
जलधि कर रहा है चीत्कार॥

कठिन शिलाओं से यदि तरणी,
टकरा जावे बारम्बार।
तुम विचलित होना मत माँझी,
पहुँचा ही देना उस पार॥

उसी छोर पर हम दोनों ही
शाश्वत सुख पा जावेंगे।
इस जीवन की कठिन समस्या
क्षण भर में सुलझावेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बटनवाली

लेखक, श्रीयुत कान्तिचन्द्र सौरिक्सा

"तो क्या बेटा आज एक पैसे के भी बटन न लेगा ?"

धीरे-धीरे वह मुझसे दो तीन बार कह चुकी थी, पर मैं बुन्दा नीबूवाले से सौदा कर रहा था। मैंने सुना अनसुना कर दिया। बुन्दा दो पैसे के तीन नीबू से ज़्यादा देना नहीं चाहता था, पर मैं भी आज अड़ गया था कि चार ही लेकर हटूँगा। एक तो उसका रोज़ का बँधा हुआ गाहक, दूसरे इधर दो दिन से बाज़ार में नीबू आने भी खूब लगे थे, और अन्य दुकानों पर पैसे के दो बिक भी रहे थे। ख़ैर, उसने अपना पुराना गाहक टलता देखकर कहा—"अच्छा साव, नाराज़ न हों, आप मेरे पुराने गाहक हैं, बोलिए कै पैसे के दूँ ?"

मैंने दो पैसे निकालकर उसे दिये और उससे चार नीबू लेकर तरकारी के थैले में डाल लिये। मुड़कर चलने को हुआ तो देखा कि 'बटनवाली' अब भी मेरे आगे हाथ बढ़ाये खड़ी है; उन लाल-सफ़ेद खुरखुरे हाथों में कपड़े के आठ बटनों की एक पिंडी थी। वह कहने लगी—"बेटा कितनी देर से खड़ी हूँ, आज क्या एक पिंडी भी न लेगा ?"

उसकी आवाज़ भारी थी। मालूम होता था कि इधर कई दिन से यकायक सर्दी बढ़ जाने की वजह से उसको कुछ ज़ुकाम था। और फिर बुढ़ापे में तो सभी मौसम दुख देते हैं, जाड़ा हो, गरमी या बरसात। मैं सोच ही रहा था कि इससे बटन मोल लूँ या न लूँ। एक तरह से मैं इसका भी रोज़ का गाहक होता जा रहा था। पर बटन तो कोई खाने-पीने की चीज़ नहीं जिसे मैं नियमित रूप से प्रतिदिन ख़रीद सकता। मैं इसी उधेड़-बुन में था कि बुन्दा मुझे चुप देखकर बोला, "हाँ साव, बेचारी को खड़े खड़े बड़ी बेर हो गई है। अब तो एक पैसे के ले ही लो, बी ग़रीबिन है। बाबू एक पैसे में क्या बनता-बिगड़ता है लेना मोहताज को ही दे दिया।"

मोहताज का नाम सुनकर बुढ़िया कुछ चौंकी—"न न बेटा, तो मत ले ! मोहताज बनकर पैसा लेना होता तो भीख न माँगती, इन मिटे बटनों को बनाने में क्यों रात रात भर दीदे फोड़ती ?" यह कहकर वह चल दी। मैं भी आगे बढ़ा—"नहीं नहीं, आज सचमुच बटनों की ज़रूरत भी थी। मेरे नौकर ने चलते वक़्त कह भी दिया था। कई दिन से उसके कुर्ते में बटन नहीं हैं। मुझे भी जाड़े में उसका सीना खुला देखकर तरस आ गया, ला तो फिर दो पिंडियाँ दे दे"—कहकर मैंने उसे दो पैसे निकाल कर दिये।

उसने एक फटी-मैली छोटी-सी पोटली खोलकर एक पिंडी बटन और निकाले—"देखा, ये मुए कोंजड़े मुझे भिखमंगिन कहते हैं। बेटा, मेरी सारी ज़िन्दगानी बीत गई, पर कभी किसी के आगे एक धेले के लिए हाथ नहीं फैलाया।"

मेरी नज़र उसकी फूली, सुर्ख़, कीचड़ से भरी आँखों की तरफ़ बरबस उठ गई। मैंने देखा, उसमें आत्माभिमान की ज्योति थी, जो मेहनत और ईमानदारी से पैसा पैदा करनेवालों की ही आँखों में देखने को मिलती है। वह अपनी बात कहे जा रही थी :—

"जब हसन के बाप ज़िन्दा थे.....", वह कुछ रुकी, जैसे गले में कुछ अटक-सा गया हो। मैं बीच में ही बोल पड़ा—"हसन कौन ?" पहले तो कभी उसने मेरे सामने यह नाम लिया नहीं था; पर वह बोली—"मेरा बेटा, और कौन हसन ! मैं तुझसे कै बार कह चुकी हूँ कि हसन मेरा बेटा था, वही एक बेटा था, बड़ा भला बेटा.....

कहते कहते उसका गला भर आया और आँखों में आँसू आ गये, जिन्हें उसने अपनी कलाइयों से चिपटी, फटी, मैली-चीकट कुर्ती की बाहों से पोंछ डाला। "तो उनके ज़माने में बेटा मुझे किस बात की कमी थी। मैं रानी थी।" उसने गर्व के साथ कहा, पर फ़ौरन ही वह उदास हो गई। "लेकिन जब अल्लाह ने उन्हें बुला लिया, तो बेटा हम मज़दूर पेशा आदमी ठहरे, घर में कोई थाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो गड़ी रक्खी नहीं थी, खाने के भी लाले पड़ने लगे। तब मेरा हसन बारह बरस का रहा होगा। मजबूरन उसे पल्लेदारी करने भेज दिया....." कहकर उसने एक गहरी साँस ली, जो उसके मोटे नथनों से बाहर निकलती-सी दिखाई दी। फिर उसने ऐसी मुद्रा बनाई जैसे किसी कठिन बात को कहने के लिए साहस बटोर रही हो। "बेटा उतनी छोटी उमर और डेढ़-डेढ़ मन का पल्ला उठाना पड़ता था.. हाय मेरे लाल का सिर और गर्दन दर्द के मारे फट फट पड़ते थे—ख़ैर, अल्लाह की मर्ज़ी से सब आदत पड़ गई और फिर वह बड़ा भी हो गया था। माँ-बेटे की रूखी-सूखी गुज़र लायक़ चार-छः आने रोज़ की मज़दूरी हो जाती थी...इधर चार बरस से वह भी न रहा...उस साल का हैज़ा उसे भी निगल गया....." —इस बार तो उसके आँसू बाढ़ की तरह आ गये। वह ज़मीन की तरफ़ देख रही थी जो उसके लाल को हज़म किये बैठी थी। टपटप आँसुओं की झड़ी लग गई।

इस वक़्त हम लोग कलुआ आलूवाले की दुकान के सामने खड़े थे। और खड़े-खड़े शायद पाँच मिनट से कुछ ही ज़्यादा हुए हों तो हों, वरना कुछ ऐसी देर भी नहीं हुई थी। पर कलुआ को मैं बहुत दिनों से जानता था। वह बड़ा हेकड़ आदमी था, रस्ता चलते लोगों से छेड़ख़ानी किया करता। वह भौंहें चढ़ाकर बोला, "चल चल आगे! बाबू तुम भी किस हरामज़ादी की बातों में आ गये। यह ऐसे ही जिसे देखो उसके सामने नुनुआ ढरकाया करती है। बड़ी बहानेबाज़ है! गाहक को बहकाती है, चल-चल! इतनी देर से दुकान के आगे रास्ता घेर रक्खा है!"

उसके इस टर्राने पर मुझे बड़ा ग़ुस्सा आया, लेकिन मैं करता तो क्या करता। इन लोगों के मुँह लगना भी तो अपनी ही बेइज़्ज़ती कराना है। इधर मुझे उस बेचारी की बातों से और उसके फटे हालों से उस पर बड़ा तरस आ रहा था। सोचा कि इसकी कुछ और मदद करूँ। पर वैसे ही तो वह पैसे लेगी भी नहीं। मुझे बटनों की भी क़तई ज़रूरत नहीं थी। अभी अभी दो पैसे के बटन नौकर के नाम से झूठ मूठ ही ख़रीद लिये थे। मैं कुछ निश्चय न कर सका। इतने में वह किसी और गाहक से बात करने लगी, और फिर चली गई। मुझे दो एक चीज़ें और ख़रीदनी थीं, सो जल्दी जल्दी लेकर मैं घर चला आया, क्योंकि मेरा जी एकदम उचट सा गया था।

× × × ×

(२)

जाड़ों में दस बजे स्कूल जाकर, फिर कहीं खेल खालकर शाम को चिराग़ जलते जलते ही लौट पाता था। मुझे हमेशा से ही ख़ुद तरकारी ख़रीदने का शौक़ रहा है। नौकर के रहते हुए भी अम्मा मेरा यह शौक़ पूरा होने देती थीं। इसलिए मैं रोज़ सुबह को तरकारी लेने सब्ज़ीमंडी जाया करता था। तब वह मुझे कहीं न कहीं ज़रूर ही मिल जाती थी। क्योंकि मेरे वहाँ पहुँचने का वक़्त कुछ बँधा हुआ सा था ही, इसलिए वह आज बुंदा नीबूवाले की दुकान पर, तो कल ज़रा दूर हटकर ज़मीन पर रखी हुई कलुआ आलूवाले की दुकान पर किसी-न-किसी गाहक को अपने कपड़े के बटन बेचते हुए मिल ही जाती थी। शायद वह पौ फटते ही सब्ज़ीमंडी पहुँच जाती थी, क्योंकि दो एक बार मैं तड़के ही तरकारी लेने गया, तब भी उसे वहाँ पाया। हाँ, तो जब मैं पहुँचता था तो वह और गाहकों की तरह ही मेरे आगे भी हाथ बढ़ाकर बटन दिखाती और थोड़ी देर चुपचाप रहकर ही उन्हें मोल लेने को कहती। लेकिन उसकी इस 'चुप' में ही एक निहायत बेकस और बेबसी की आह थी जिसे मैं तरकारी-वालों से भाव-तोल, ताज़ी-बासी के झगड़े में भी न भूल पाता था। कुछ क्षणों की चुप के बाद फिर वह धीमी आवाज़ में कहती, "ले ले भैया, एक पैसे में आठ बटन हैं। धोबी के यहाँ कभी न टूटेंगे। ये चीनी के नक़ली बटन थोड़े ही हैं जो घाट से साबित न लौटें,"—और फिर वह गाहक की तरफ़ अपनी दो बड़ी बड़ी फूली आँखें उठाकर देखने लगती, तो ऐसा लगता था जैसे उनमें जीवन का बड़ा अनुभव, आत्म-विश्वास और विवेक भरा हो। एक बार उसकी आँखें देख लेने पर अनजाने ही उसे आपाद-मस्तक देखने की जिज्ञासा होती। मैंने उसे कई बार सिर से पैर तक देखा था। वह क़द की कुछ ठिगनी और बदन में भारी थी। ताँबे का सा रंग था और सारे बदन में झुर्रियाँ पड़ी थीं। सारे चेहरे पर हलके हलके चेचक के दाग़ और अनगिनती रेखायें थीं। रोएँ और सर के बाल पककर बर्फ़ की तरह सफ़ेद हो गये थे, परन्तु यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफ़ेदी उसकी सत्तर वर्ष की ज़िन्दगी की धूप में नहीं आई थी।

ग़रीब के दुखों का अंदाज़ा न लगा सकनेवाले अकसर डाँटकर उसे दुतकार देते थे, जैसे उनसे वह एक पैसे की भीख माँगने आई हो!

"कपड़े के आठ बटन देकर एक पैसा ठगने चली है! इनका होगा क्या, सीप के बटनों के आगे इन्हें कौन ख़रीदता है?"

और वह चुप-चाप सुनकर आगे बढ़ जाती। शहर में आनेवाले गाँव के लोगों और ग़रीब नीच जाति के हाथों उसकी कुछ अच्छी बिक्री हो जाती थी, परन्तु ऐसे लोग सब्ज़ीमंडी और बिसातख़ानों में आते ही कितने हैं? दूसरे उन ग़रीबों को ज़रूरत ही कितनी पड़ती है? बहुत हुआ तो कुछ सफ़ेदपोश खद्दरधारी सज्जन उससे कभी-कभी बटन ख़रीद लेते थे। वरना वह बेचारी सब्ज़ीमंडी के एक कोने से दूसरे कोने तक सुबह से दोपहर तक यों ही चक्कर काटा करती थी। साँझ को वह शायद पैंठ चली जाती थी, जहाँ मैं समझता हूँ कि उसकी अच्छी बिक्री हो जाती होगी, क्योंकि वहाँ शहर के आसपास के गाँवों के लोग कपड़ा और जिंस ख़रीदने आया करते हैं। एक बार वह कह भी रही थी।

"बेटा पैंठ न होय तो मैं भूखी मर जाऊँ। सब्ज़ीमंडी की बिक्री में दो चार पैसे से ज़्यादा नहीं मिल पाते। यहाँ तो बाबू लोग बिलायती कपड़े पहननेवाले आते हैं।"

हाँ, तो जब वह मेरी तरफ़ देखती तो मुझे चुपचाप पैसा निकालकर उसकी हथेली पर रख देना पड़ता था। ऐसा करने के लिए मुझे कोई मेरे अंतर से मजबूर करता। इस प्रकार मुझे उससे कम से कम एक पैसे रोज़ के बटन ख़रीदने की आदत पड़ गई, यह मेरा सब्ज़ीमंडी जाने की तरह ही एक स्वाभाविक कर्म हो गया था। वह मुझे बहुत अच्छी तरह पहचान गई थी। एक भलाई करनेवाले के रूप में अथवा एक रोज़मर्रा के गाहक की शक्ल में—यह तो मैं नहीं कह सकता। पर इतना ज़रूर जानता हूँ कि जब वह यह मेरी ओर देखती, तो उसकी आँखों में दीनता से अधिक स्नेह रहता था। अधिकतर वह मुझसे "बेटा" करके ही बोलती थी।

आठ-दस दिन तक तो मैं घर आकर अम्मा को अपने बटन ख़रीदने की बात बताता रहा, पर अब वह मेरी रोज़ रोज़ की इस दानशीलता की कहाँ तक तारीफ़ कर सकती थीं,—"घर-गृहस्थी का मामला ठहरा, सौ तरह के ख़र्च हैं। और फिर न जाने कौन सा भारी ख़र्च सर पर आ टूटे..... तुम्हारे इस रोज़ के दान के लिए मैं कहाँ से लाऊँगी.....एक पैसा आपकी बटनवाली को चाहिए, दो-चार पैसे स्कूल के रास्ते में बैठे अंधे-लूलों के लिए चाहिए.....और एक डेढ़ आना आपकी चाट के लिए, क्यों न?" एक दिन वे कह ही तो बैठीं।

मुझे बहुत बुरा लगा। "तो आप नौकर से तरकारी मँगा लिया करें", मैंने कह दिया और उस दिन से फिर मैं सब्ज़ीमंडी नहीं गया। इत्तफ़ाक़ से अगर भूले-भटके उधर निकल भी गया तो मैंने अपनी चाट के सबके सब पैसों के बटनवाली से बटन ख़रीद लिये। लेकिन फिर छमाही इम्तहान आ जाने की वजह से मेरा बाज़ार जाना ही बिलकुल बंद हो गया।

इम्तहान ख़त्म होने के बाद एक दिन शाम को मैं अपने स्वेटर के लिए ऊन ख़रीदने बिसातख़ाने गया। दिसम्बर का महीना था, जाड़ा कड़ाके का पड़ रहा था। मैं अपना चैस्टर पहने था। जगन्नाथ बिसाती की दुकान पर बैठा मैं ऊन देख रहा था, मैंने देखा कि एक खुरखुरा, भद्दा-सा हाथ कुछ सफ़ेद सी चीज़ थामे मेरे मुँह की तरफ़ बढ़ा चला आ रहा है।

इतने में ही जगन्नाथ चिल्लाया, "हटती क्यों नहीं है पीछे! क्या मुँह में ही हाथ घुसेड़ देगी!"

मैंने हड़बड़ा कर मुँह फेरा। सामने बटनवाली खड़ी थी। जगन्नाथ मुझसे कह रहा था, बाबूजी यह लोग बड़ा परेशान करती हैं.. ...सुबह से शाम तक ऐसे ही ताँता बँधा रहता है—जब तक वह अपनी बात करे बटनवाली बोल उठी, "अरे बेटा तू है, इतने दिन से क्या परदेस चला गया था? मैं तुझे रोज़ ढूँढ़ती थी, कई दफ़े उस बुंदा और कलुआ कोंजड़े से भी पूछा था, पर वे निगोड़े कब सीधे जवाब देते....." कहते कहते उसकी आँखों से ख़ुशी फूट पड़ी। मानों उसे अपना ही बेटा मिल गया हो। मैं दुकान के तख़्ते पर बैठा था। वहाँ से उठकर खड़ा हो गया—"अच्छा बोल, अच्छी तो है। मुझे बटन चाहिए, ला कहाँ है!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बेटा अब तो कुल आठ पिंडी बच्ची हैं, और तू तो जाने है बेटा, जब से गांधी मात्मा ने सबको खद्दर पहनाया है, मेरे बटनों की बिक्री भी बढ़ गई है। सबेरे से साँझ तक ५० पिंडी बेच लेती हूँ, कोई चार आने बच रहते हैं".....कहकर उसने बची हुई आठ पिंडियाँ मुझे दे दीं। मैंने उसे एक दुअन्नी दी जिसे उसने अपने तमाखू-छाली के बटुए में डाल दिया। आज वह बहुत ख़ुश थी। इतने पैसों के बटन एक साथ मैंने उससे कभी न लिये थे। बड़ी कृतज्ञताभरी दृष्टि से वह मुझे ऊपर से नीचे तक देखने लगी। उसकी नज़र मेरे ओवरकोट के बड़े बड़े, काले, चमकते हुए आयवरी के बटनों पर पड़ी। उनमें से एक को पकड़ कर वह बड़ी उत्सुकता से पूछने लगी—

"बेटा जे तो बड़े खूबसूरत बटन हैं, काहे के बने हैं? क्या टीन के हैं?"

"नहीं, यह बटन आलू शकरक़ंदी के गूदे से बनाये जाते हैं।"

"हाँ, सचमुच। सो कैसे? इन्हें कौन बनाता है?"

"यह मशीनों से बनते हैं, हाथ से नहीं; और बड़ी दूर समुद्र पार विलायत से बनकर आते हैं, समझी?"

"हाँ, तब तो कभी न टूटते होंगे!"

"सो तो नहीं, देखने के ही ख़ूबसूरत हैं। दो धोव में ही टूट-फूट जाते हैं।"

"तब क्या फ़ायदा मिटे ऐसे बटनों का?"—उसकी उत्सुकता कुछ उदासीनता में बदल गई। फिर कुछ सोचकर पूछने लगी—"लेकिन होंगे तो क़ीमती?"

मैंने कहा—"हाँ, दो पैसे का एक मिलता है, आठ सोलह पैसों के।" "तो देख बेटा, इससे अच्छे और सस्ते तो मेरे बटन हैं। एक पैसे में आठ और सौ बार के धोने में भी न टूटें,"—उसने अपने माल की वकालत की और फिर कुछ सुस्त हो गई। तत्पश्चात् वह कुछ देर तक लालच और रोषभरी नज़र से मेरे बटनों को देखती रही। फिर चलने लगी तो बोली—"बेटा कल से तो मैं बाज़ार में नहीं आऊँगी। आगरे में मेरी हमशीरा बिस्सो के नवासे का ब्याह है, वहीं जा रही हूँ। पन्द्रह-बीस दिन में लौट पाऊँगी।"

रात हो गई थी। सर्दी भी बढ़ रही थी। मुझे कुछ कँपकँपी सी आई, मैंने बटनवाली से पूछा—"क्यों तुझे सर्दी नहीं लगती। ख़ाली एक ठंडी दोहर ओढ़े है, कोई रुई का कपड़ा भी तो नहीं पहने है।" यह कहकर मैंने उसकी ओर देखा तो वह वास्तव में सर्दी के मारे सिकुड़ी जा रही थी। अपनी उस फटी-मैली दोहर को देह से सटा कर ठंड से बचना चाहती थी,—"हाँ बेटा अब तो जाड़ा बढ़ गया है, घर जाकर रुई की फ़तुई पहन लूँगी। अच्छा तो मैं जाती हूँ, ख़ुश रहना बेटा,"—कहकर वह धीरे धीरे आगे बढ़ कर कोहरे में छिप गई। मैं उसकी आत्मीयता और स्नेह की बात सोचता खड़ा रह गया। मैंने निश्चय किया कि अब मैं उससे स्नेह करूँगा, दया नहीं दिखाऊँगा, ऊन की ख़रीद कल के लिए स्थगित कर दी गई।

× × ×

(३)

जब इटली अबीसीनिया को हड़प कर गई और जापान चीन को चट कर जाने की कोशिश करने लगा तब मुझे भी कुछ लोगों की देखादेखी और अख़बारों में बड़ी बड़ी वक्तृतायें पढ़कर गुस्सा आया। फलस्वरूप मैंने भी विरोध किया, मैंने जापान के सीप और चीनी के बटन, तथा इटली के आयवरी के बटन ख़रीदना बन्द कर दिया। यह तो दिखावट के लिए एक बहाना भर था, और ज़माने की बहती हुई हवा में उड़ने का एक फ़ैशन मात्र। पर असली बात यह थी कि बढ़ती उम्र के साथ अक्ल के संग में किफ़ायतसारी भी मेरे जीवन में स्थायी मेहमान की भाँति आ गई थी। दूसरे उस बुढ़िया बटनवाली से स्नेहवश बटन ख़रीदने की भी एक अच्छी ख़ासी सुविधा प्राप्त हो जाने का अवसर था। इटली और जापान के प्रति विरोध का बहाना अम्मा को समझाने के लिए भी काफ़ी था। मैं अम्मा को ज़रा फुसलाने की गरज़ से कहा करता—"तुम भी इतनी बड़ी होकर फ़ैशन के टंटों में पड़ी रहती हो। आयवरी के बटनों ही में क्या रखा है, तीन धोवों में ही सूरत बुरी हो जाती है, और एक हैं आपके सीपी के बटन, जो धोबी के पाट के डर से ही चकनाचूर हो जाते हैं।" अब तो मेरे सभी कपड़ों में कपड़े के बटन लगने लगे, और मेरी देखादेखी मेरे भाई भी यही बटन लगवाने लगे। जब इन बटनों की इतनी माँग बढ़ी, तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बटनवाली से ख़रीदे हुए सबके सब बटन एकबारगी काम आ गये। मुझे और बटनों की ज़रूरत पड़ी। बटनवाली की तलाश में तीन-चार बार सब्ज़ीमंडी गया पर वह नहीं मिली। एक दिन मैंने बुंदा से पूछा, उसने कहा—

"हाँ साब, देखा तो मैंने भी चार-पाँच दिन से नहीं है। वैसे वह आगरे से लौट आई थी।"

"लेकिन वह रहती कहाँ है? तुम्हें उसका पता मालूम है?"

"हाँ, एक बार मैंने उसका घर देखा तो था..... लेकिन कहाँ सो याद नहीं....." कह कर वह अपनी याद पर ज़ोर देने लगा—"हाँ ठीक याद आ गया,"—वह कुछ रुक कर बोला,—"वह 'सय्यदों की सराय' में रहती है। आपने सुन्नीपाड़ा तो देखा ही होगा, बस उससे सौ क़दम पर 'सय्यदों की सराय' ही शुरू हो जाती है।"

× × × ×

दूसरे दिन सुबह जब मैं घूमने निकला तो सोचा चलो उसका ही पता लगाऊँ। टहलना भी हो जायगा और काम भी। पूछता पाछता, कई छोटी तंग गलियाँ पार करता, मैं 'सय्यदों की सराय' पहुँचा। वहाँ मैं कच्चे टूटे-फूटे मकान के पास जाकर रुक गया। यहाँ दरवाज़े पर एक टेढ़ी-बकुची झँगोला चारपाई पर एक बूढ़ा बैठा सबेरे की धूप खा रहा था। मैंने उससे पूछा—"बड़े मियाँ, यहाँ कोई बटन बनानेवाली भी रहती है क्या?"

मेरा सवाल सुनकर वह जवाब देनेवाला ही था कि उसे बड़े ज़ोर की खाँसी ने आ दबोचा। वह वहीं थूकने लगा। कुछ देर तक उसकी खाँसी नहीं रुकी, और जब रुकी भी तो उसमें जवाब देने लायक़ दम नहीं आया। इतने में अन्दर से एक अधेड़ स्त्री निकलकर दरवाज़े पर आई और बोली—"किसे पूछते हो?"

"कोई बटन बनानेवाली यहाँ रहती है, उसी को"—मैंने कहा।

"क्या सकीना को? इस महल्ले में तो वही बटन बनाया करती थी।"

"थी" सुनकर मैं कुछ घबड़ा गया, मैंने कहा—"हाँ, वह क्या यहीं रहती है?"

"हाँ, यहीं बराबरवाले मकान में रहती थी। आज पाँच दिन हुए मर गई।"

"मर गई। कैसे?" और मेरी नज़र बराबरवाले मकान की ओर उठ गई जिसमें मकान के नाम पर केवल एक मिट्टी का आदमी की ऊँचाई के बराबर ऊँचा घरौंदा था। टूटी-फूटी चार दीवारों के एक चौथाई भाग पर किसी छप्पर का कंकाल जैसा पड़ा था। शेष भाग खुला हुआ था।

बूढ़े की स्त्री ने जवाब देना शुरू कर दिया था—"इधर कुछ खाने पीने भर को पैसा अच्छा पैदा करने लगी थी। फिर आगरे चली गई। जो कुछ पैसा था वह वहाँ ब्याह में उठा आई और रोज़ी मारी गई सो अलग। जब लौटकर आई तो खाने को भी नहीं था, जाड़ों के पहनने-ओढ़ने के कपड़ों की बात तो रही अलग।

"तब क्या वह भूखों मर गई?"

"नहीं, सो तो हम लोग उसे रोटी खिला देते थे लेकिन आप समझते हैं कि माघ पूस के चिल्ला जाड़े, उस पर खुली कोठरी और ओढ़ने को कुछ नहीं। अच्छे खाते पहनते जवान इन्सान की तो बोटी बोटी थरथराती है, तब उस बिचारी की क्या बिसात थी! उस दिन रात को दिया जलाकर ज़्यादा रात तक बटन बनाती रही। सर्दी से ठिठुर कर रह गई। सबेरे मैं रोटी देने के लिए गई तो बेजान बर्फ़ की तरह ठंढी पड़ी थी....."

इसके आगे उसने क्या कहा, मुझे नहीं मालूम। मेरी नसों में ख़ून बरफ़ की तरह जम गया था। मैं चुपचाप सुन्न खड़ा था। उस सबेरे की सहमी हुई धूप ने मेरे जमे हुए भावों को पिघला दिया और वे द्रवित भाव से बाहर निकलना ही चाहते थे कि मैं उन्हें आँखों में ही पी जाने की कोशिश करता हुआ लौटकर चल दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मसूरी का आदर्श सेवा-दल

लेखक, श्रीयुत प्रोफ़ेसर धर्मदेव शास्त्री

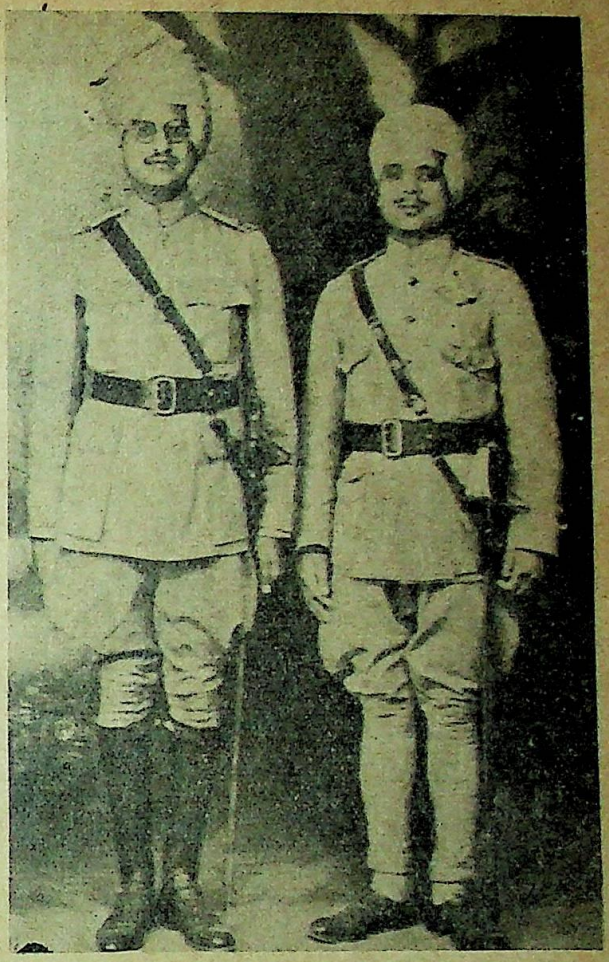

[१—श्रीयुत आनन्दप्रकाश जी प्रधान सेना-नायक। २—डा० बालकृष्ण जी प्रधान, सेवकमण्डल (मसूरी)।]

प्राचीन ऋषियों ने जिस सेवा-धर्म को परम गहन कहा है, सेगाँव के वर्तमान ऋषि ने उसी सेवा-धर्म के द्वारा देश को क्रमशः सोते से चलता कर दिया है। देश में बढ़ती हुई सेवा-समितियें और सेवा-दलों की संख्या इसका प्रमाण है। भारत के अधःपात के कारणों में से अनुशासन का अभाव भी एक है। सेवा-समितियाँ इसका क्रियात्मक प्रतिकार हैं। राजनीतिक जागृति के साथ-साथ इन सेवा-दलों में भी वृद्धि हुई है।

हिन्दुओं में इस प्रकार के संगठन अनेक हैं। प्रायः सभी छोटे-बड़े शहरों और क़स्बों में तथा अब तो बहुधा ग्रामों में भी इस प्रकार की संस्थायें स्थापित हो गई हैं। इनमें प्रायः युवक-युवतियाँ और बालक-बालिकायें सेवा-भावना से प्रविष्ट होती हैं। मुसलमानों में अभी तक इस दिशा में विशेष कार्य नहीं हुआ है। सीमा-प्रान्त का ख़ुदाई-ख़िदमतगारों का संगठन इसका अपवाद है। देश की सर्वतोमुखी उन्नति के, तथा जागृति को सबसे निचले स्तर तक पहुँचाने के, ये दल मुख्य साधन हैं। यद्यपि इस प्रकार के दलों का जाल-सा सारे देश में बिछ जाना चाहिए, तथापि बिना किसी प्रयास-विशेष के इस प्रकार के दलों का बनना व्यापक जागृति का सूचक है। यदि इन सब दलों का राष्ट्रीय एकीकरण किया जाय तो समय पर ये दल राष्ट्रीय सेना और गांधी जी की अहिंसा-सेना का काम दे सकते हैं, तथा देश को संकट में सहायता देने का कार्य कर सकते हैं। किसी विशेष केन्द्रित संगठन के न होने से ये सब दल अधिक उपयोगी नहीं हो सके। इसी कारण इनका कार्य-क्षेत्र रामलीला-मेला आदि जैसों तक ही सीमित रह गया है। वस्तुतः पता लगाने पर मालूम होगा कि मूल में कुछ मनचले नवयुवकों ने सेवा और जातीय रक्षा की पुनीत भावना से प्रेरित होकर ही इनको जन्म दिया था। कुछ समय पूर्व ऐसा लगता था कि इन दलों का नेतृत्व साम्प्रदायिक नेताओं के हाथ में जाने लगा है, परन्तु इधर स्पष्ट हो गया है कि ये सब दल राष्ट्रीयता की ओर आ रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इन सबको एक सूत्र में बाँधने का आन्दोलन चलाया जाय।

सेवा-कार्य इतना महत्त्वपूर्ण और लोक-प्रिय है कि इसके लिए आर्थिक कठिनाई भी नहीं हो सकती। केन्द्रीकरण में निम्न तीन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है—

(१) सेवा-दल ग्रामों में व्यापक बनाये जायँ। नियम, उद्देश्य और वेश आदि का निश्चय ग्रामीण जनता की सुविधा और आवश्यकता को सामने रख कर किया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

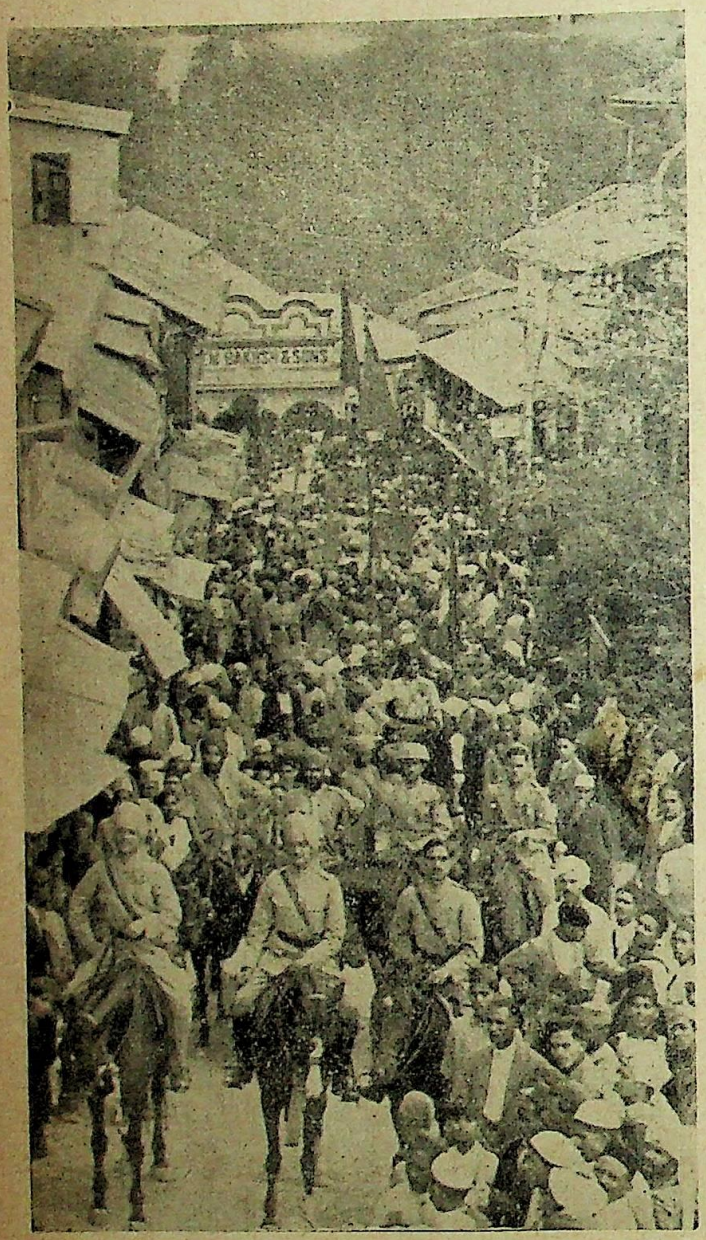

[महावीरजयन्ती पर सेवकमण्डल का प्रदर्शन। आगे घोड़े पर सवार क्रमशः डा० बालकृष्ण, श्री आनन्दप्रकाश, श्री दयाप्रकाश (मन्त्री)।]

(२) वेश-शिक्षा आदि के द्वारा राष्ट्रीयता को अधिक से अधिक पोषण मिले।

(३) दल-विशेषों का क्षेत्र जाति-वर्ग-सम्प्रदाय विशेष होते हुए भी उन्हें केन्द्रित किया जाय। संगठन को नया दल-विशेष होने से बचाया जाय।

इस बात की नितान्त आवश्यकता है और इसके लिए समय भी अनुकूल है कि इन लोक-सेवक संस्थाओं का संगठन किया जाय। इनका केन्द्रीकरण न होने से इन सेवा-दलों के क्षेत्र के दिन प्रतिदिन संकीर्ण होने का अंदेशा है और ये दल हिन्दुओं की जाति-पाँति को सुरक्षित करने की सेना बन जायँ, यह भी हो सकता है। इसका एक प्रमाण दल-विशेषों के नाम ही हैं। क्षत्रिय, अग्रवाल, भूमिहार, धीमान् आदि के नाम दलों से सम्बन्धित रहते हैं। मेरा अभिप्राय इनका नाम बदलने से नहीं है। केन्द्रीकरण हो जाने पर इन नामों से भी कार्य वही होगा जो होना चाहिए। यदि समूचे देश अथवा प्रान्त में इस प्रकार का संगठन करने में दिक़्क़त हो तो स्थानीय सब दलों के तो संगठित करने में कोई अड़चन नहीं। मसूरी के ५ दलों ने इस प्रकार संगठित होकर द्रोणाचल के अन्य स्थानीय विविध दलों के समक्ष संगठित होने का आदर्श उपस्थित किया है। मसूरी के उक्त दलसंगठन का नाम है 'सेवक-मण्डल'। इस मण्डल ने थोड़े ही समय में आशातीत सफलता प्राप्त की है।

× × × ×

मसूरी हिमालय की रानी समझी जाती है। भारत के प्रायः सभी प्रान्तों से प्रतिवर्ष अनेक नर-नारी यहाँ स्वास्थ्य-लाभ और भ्रमण के लिए आते हैं। उच्च सरकारी अधिकारियों की कृपा-दृष्टि न होने से सर्व-साधारण को—राजा-रंक सभी को—स्वच्छन्द विहार का जितना अवसर यहाँ मिलता है, उतना अन्यत्र किसी पर्वतीय स्थान में नहीं मिल सकता। नीचे मैदानों के स्वतन्त्रता के अनभ्यस्त स्त्री-पुरुष यहाँ एकदम स्वतन्त्र वायु में विहार करने के कारण कुछ आविष्ट से हो जाते हैं। इसी लिए यहाँ स्त्री-जाति के साथ कुछ गुंडों-द्वारा अनभिलषित चेष्टाओं की वारदातें भी कभी-कभी हो जाती हैं। इस बुराई को दूर करने के लिए २ सितम्बर १९३८ को मसूरी के २५ विशिष्ट व्यक्तियों ने एकत्र होकर विचार-विनिमय किया। इसके संयोजकों में पण्डित मेहरचन्द्र शर्मा, बाबू विशनस्वरूप और डाक्टर बालकृष्ण जी मुख्य थे। विचार-विनिमय के अनन्तर एक 'सेवा-दल' की स्थापना का निश्चय किया गया। प्राथमिक अधिकारियों का निर्वाचन भी उसी समय हो गया। दल के दो प्रकार के सदस्य बनाने का निश्चय किया गया—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) सहायक सदस्य—जो दल के उद्देश्यों से सहमत हों, तथा कम-से-कम चार आने मासिक सहायता दें।

(२) स्वयं-सेवक-सदस्य—जो स्वयं-सेवक का कार्य करें और यथाशक्ति दो आने मासिक सहायता दें।

प्रारम्भ से ही मसूरी-बोर्ड के प्रायः सब क्लर्क आदि इसमें सम्मिलित हैं। सेवा दल ने जन्म के साथ ही जनता के हृदय पर अधिकार कर लिया है। इसका मुख्य कारण है इसके कार्य-कर्ताओं का सदाचार। इनमें से पण्डित मेहरचन्द्र जी बहुत ऊँचे आध्यात्मिक पुरुष हैं। इस प्रकार के नेक और सदाचारी व्यक्ति कम मिलेंगे।

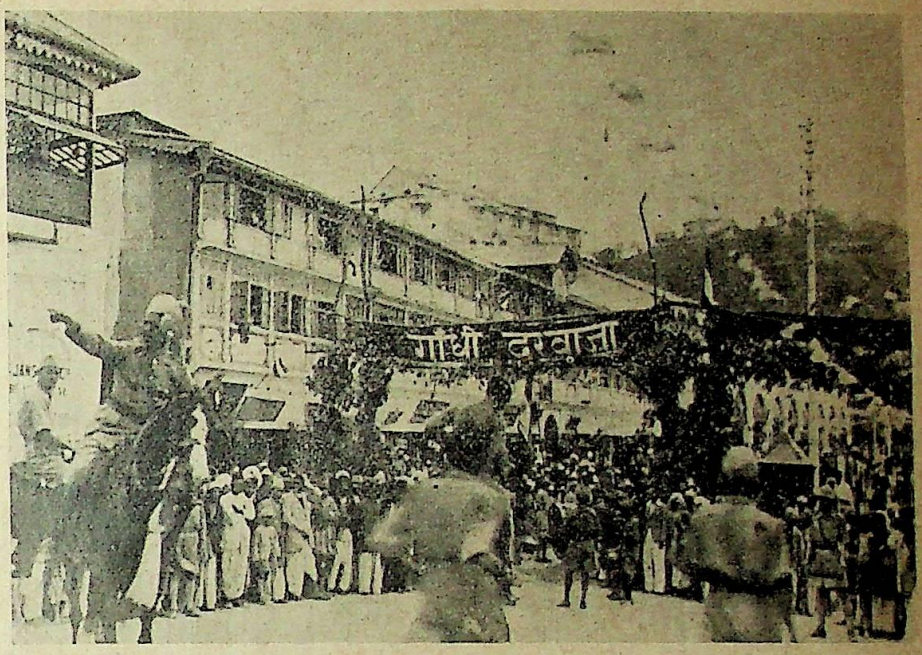

[पोलीटिकल कान्फ़रेन्स के अवसर पर सेवकमण्डल-द्वारा जनता का नियन्त्रण।]

डाक्टर बालकृष्ण ने तो सेवा-दल के जन्म से भी पूर्व मसूरी के युवकों और युवतियों को नवीन पद्धति से ट्रेनिङ्ग देने का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। यही कारण था कि सेवा-दल के जन्म से १५ दिन बाद ही श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित जब मसूरी गईं और सेवा-दल ने उन्हें 'सनीव्यू' में 'गॉर्ड ऑफ़ ऑनर' दिया तब श्रीमती विजय-लक्ष्मी पंडित उससे बहुत प्रभावित हुईं।

सेवा दल की इस आशातीत सफलता का मसूरी की जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। १९३८ के साल में ही मसूरी में सेवा-दल के अतिरिक्त पाँच और दल बन गये और वे सब अपना अपना कार्य भले प्रकार चला रहे हैं। उन दलों के नाम से ही प्रतीत हो सकता है कि सेवा-भाव की भावना हिन्दुओं के प्रत्येक वर्ग में बढ़ी है। सेवा-दल के अतिरिक्त अन्य पाँच दलों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) गढ़वाली-दल (गढ़वालियों का),
(२) सिक्ख-यूथ एसोसियेशन (सिक्ख-सरदारों का),
(३) व्यापारी-कर्मचारी-संघ (व्यापारी-मज़दूर आदि का),
(४) वाल्मीकि-दल (हरिजनों का),
(५) महावीर-दल (सनातनियों का)।

इनमें से महावीर-दल का जन्म तो यद्यपि सेवा-दल से पूर्व ही हुआ था, तो भी इसका विकसित रूप जनता के समक्ष 'सेवा-दल' के यौवनानन्तर ही हुआ।

× × ×

"भगवान् का साक्षात्कार कैसे हो?"—एक दिन पंडित मेहरचन्द्र जी ने लेखक से पूछा। मैंने उत्तर में कहा—"मेरा तो इस सम्बन्ध में दृढ़ मत है। ऋग्वेद से भगवद्-गीता तक सभी शास्त्रों का यही कहना है कि भगवान् का दर्शन करनेवाले को दरिद्रनारायण की शरण में जाना चाहिए, उसकी पूजा करनी चाहिए। प्रभु का दर्शन बड़े बड़े महलों में नहीं, बल्कि ग़रीब, पतित और बीमार के घर में होगा। और होगा—उनकी अनन्य हृदय से सेवा करते हुए। दरिद्रनारायण की सेवा का अर्थ दरिद्रता का—अशिक्षा—पतन—का पोषण करना नहीं, इन बुराइयों के दूर करने में अनन्य मनस्क होकर जुट जाना है। आपका सेवा-दल यदि दरिद्र की सम्पत्ति नहीं बन सकता तो उसका लाभ अधिक नहीं। आज के युग-निर्माता पूज्य महात्मा गांधी के भाव को ही मैंने अपने शब्दों में कहा है।"

"तब मैं क्या करूँ?"—इस पर पंडित मेहरचन्द्र जी बोले। "यदि आपके पास अधिक समय नहीं है तो भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[श्रीयुत आनन्दप्रकाश जी कमांडर इन-चीफ़ सेवक-मण्डल। जनता को शान्त रहने के लिए समझा रहे हैं।]

प्रतिदिन एक-दो घंटे ही ग़रीबों की सेवा में व्यतीत कीजिए, इन दो घंटों में आप भगवान की पूजा कर रहे हैं, ऐसा दृढ़ निश्चय रखिए। ग़रीबों की सेवा आप उनमें औषध वितरण करके, उनके तथा उनके बच्चों के वस्त्र और घरों को साफ़ करके कर सकते हैं। यही भक्ति का राजमार्ग है।"

कुछ दिनों के बाद जब मैं मसूरी गया तब पंडित मेहरचन्द्र जी से मिला। उन्होंने होमियोपैथी की अनेक पुस्तकें पढ़कर उसका ज्ञान प्राप्त किया था और सेवा-दल का एक धर्मार्थ होमियोपैथिक औषधालय चला रहे थे। वे प्रतिदिन नियमपूर्वक प्रातःकाल दो घंटे इसके लिए देते थे। औषधालय के द्वारा सैकड़ों ग़रीबों को जीवन मिला, यह जानकर मुझे बहुत हर्ष हुआ, साथ ही इससे सेवा-दल को अमरत्व प्राप्त हुआ। औषधालय में जो व्यय हुआ वह बिना माँगे ही पैसेवालों के द्वारा मिला जब कि उसका लाभ ग़रीबों को हुआ। अर्थ-विभाजन का यही अहिंसात्मक साधन है, जो गांधीवाद का आधार है। सेवा करने में अलौकिक आनन्द मिलता है, यह बात वही जान सकता है जिसको सेवा का हक़ीक़ी चस्का लग गया है। पंडित मेहरचन्द्र जी इसके साक्षी हैं।

× × ×

श्री एम० एन० राय ने हज़रत मुहम्मद के जीवन पर आक्षेप-रूप पुस्तक लिखी है, इस समाचार से मुसलमान बहुत नाराज़ हुए। अन्य स्थानों की भाँति मसूरी में भी मुस्लिम लीग के तत्त्वावधान में एक सार्वजनिक सभा श्री राय के विरोध में हुई। इस सभा से मसूरी का वातावरण साम्प्रदायिक हो गया। सभा के थोड़े ही दिनों के बाद सितम्बर के अन्तिम सप्ताह में मसूरी-आर्यसमाज का वार्षिक उत्सव था। १८ साल बाद आर्यसमाज को नगर-कीर्तन करने की आज्ञा मिली थी। बस, साम्प्रदायिक झगड़े की आशंका बढ़ गई। २७ सितम्बर की रात को मसूरी के सभी दल एकत्र किये गये और उत्सव में आई हुई सभी देवियाँ उनके पहरे में उनके घरों को सुरक्षित पहुँचा दी गईं। उस दिन उत्सव के समाप्त होने पर सब दलों के कमाण्डरों और नेताओं की सभा हुई, जिसमें यह निश्चय किया गया कि सब दलों की कार्य-कारिणी आदि सभी बातें तो पृथक् रहें, परन्तु सभी दलों के स्वयंसेवक एक सूत्र में बँध जायँ और वे 'कमाण्डर-इन-चीफ़' के आदेश का पालन किया करें। दलों का संगठन किया गया और संगठन का नाम 'सेवक-मण्डल' रक्खा गया। यह सब २७ आक्टोबर १९३८ को रात्रि के १२ बजे की बात है। दूसरे दिन आर्यसमाज का नगर-कीर्तन था। उसमें पृथक्-पृथक् दलों का नाम नहीं था। सबके बैज आदि 'सेवक-मण्डल' के नाम से लिखे देखकर जनता आश्चर्य में रह गई। 'सेवक-मण्डल' के प्रधान डाक्टर बालकृष्ण जी, मंत्री बाबू दयाप्रकाश जी और प्रधान सेनानायक (कमाण्डर-इन-चीफ़) श्री आनन्दप्रकाश जी जैन निर्वाचित हुए। इसके बाद महावीर-जयन्ती पर भी सेवक-मण्डल के निश्चयानुसार कुछ कट्टर-पन्थियों के विरोध करने पर भी मन्दिर में तथा बाहर सर्वत्र और दलों के साथ 'वाल्मीकि-दल' भी सम्मिलित रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवक-मण्डल के अधीन इस समय २५० स्वयंसेवक हैं, जिनमें आर्यसमाजी, सिक्ख, जैन, हरिजन आदि सभी सम्मिलित हैं। सब स्वयंसेवक सुशिक्षित और सदाचारी हैं। सेवक-मण्डल शीघ्र ही महिलाओं का भी पृथक् दल बनाने जा रहा है।

मसूरी में वर्ष भर रहनेवालों की संख्या नहीं के बराबर है। तिस पर भी इतने अधिक और सुशिक्षित स्वयंसेवकों की फ़ौज को देखकर कोई भी सेवक-मण्डल की गति-विधि की प्रशंसा किये बिना न रहेगा।

द्रोणाचल से सेवक-मण्डल ने विविध दलों के संगठन और सुशिक्षा तथा सेवा का जो आदर्श उपस्थित किया है, वह अनुकरणीय है।

मानव की नश्वरता

लेखक, श्यामविहारी शुक्ल 'तरल'

(१)

आया भविष्य की भाँति था जो कल हो वही आज अतीत चला गया।
जीवन में था प्रधान जो आज वही सुख कल्पनातीत चला गया॥
रोक सका अपने को न कोई अरे गया हार या जीत चला गया।
और की कौन कहे खुद मानव गाता विनाश के गीत चला गया॥

(२)

कोई गया हँस के इस विश्व से कोई अशान्त हो रोके चला गया।
कोई गया फँस तीव्र प्रवाह में खा कोई मृत्यु के झोंके चला गया॥
जाना अवश्य था धीरता से गया कोई अधीर-सा हो के चला गया।
पा के महानता कोई गया तथा कोई महानता खो के चला गया॥

(३)

मोद भी पा सकेगा कभी ये अथवा पछताता हुआ चला जायगा।
क्रान्ति को देश में लाके कि क्रान्ति के गीत ही गाता हुआ चला जायगा॥
प्राप्त करेगा कभी भला शान्ति या भ्रान्ति ही पाता हुआ चला जायगा।
हो अपमानित या सदा विश्व की ठोकरें खाता हुआ चला जायगा॥

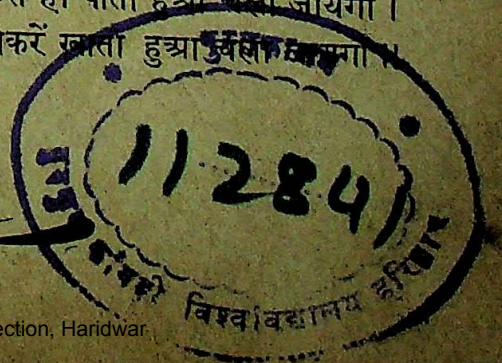

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत का उद्योगीकरण

लेखक, श्रीयुत अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

भारत की बहुसंख्यक आबादी की दरिद्रता दूर करने के लिए उद्योगी-करण अनिवार्य है। इस लेख में लेखक ने एतत्संबंधी समस्याओं पर युक्तिपूर्वक प्रकाश डाला है।

"कृषिमूलं धनं तत्तु चीयते शिल्पकर्मणा।
शिल्पजीवी स तुष्टश्चेद्राष्ट्रं स्यात् सुखभाक्तदा॥"

आधुनिक भारत के इतिहास में २ आक्टोबर १९३८ का दिन विशेषरूप से महत्त्वपूर्ण है। इस दिन जहाँ समस्त भारत विश्व-विभूति महात्मा गांधी के चरणों में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रहा था, वहाँ दूसरी ओर राष्ट्रपति श्री सुभाषचन्द्र बोस की अध्यक्षता में कांग्रेसी उद्योग-मन्त्रियों की कान्फ़रेन्स ने भारत का उद्योगीकरण करने का निश्चय किया और इसके लिए योजना बनाने के लिए आर्थिक-नियोजक-मण्डल (आल इंडिया प्लानिंग कमीशन) और श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में 'योजना-समिति' (प्लानिंग कमिटी) का निर्माण किया।

आश्चर्यजनक परिवर्तन—सचमुच यह एक आश्चर्य की बात मालूम होती है कि महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस यांत्रिक औद्योगिक प्रगति के पथ पर देश को ले जाने का उपक्रम कर रही है। बहुत-से लोगों को यह बात एक स्वप्न मालूम होती है, क्योंकि 'हिन्द-स्वराज्य' के ये शब्द आज भी उनके कानों में गूँज रहे हैं—"यदि सारी मैशीनरी बंगाल की खाड़ी में डुबो दी जाय, तो भी वे एक भी दुःख का आँसू न बहायेंगे।" मगर यह सच है, क्योंकि हम राष्ट्रपति के समर्थन से उद्योग-मन्त्रियों की कान्फ़रेन्स को यह प्रस्ताव पास करते हुए देखते हैं—"उद्योग-विभाग के मन्त्रियों की यह राय है कि देश की ग़रीबी, बेकारी, राष्ट्रीय संरक्षा और आर्थिक पुनर्घटना की समस्याओं का हल उद्योगीकरण के बिना नहीं हो सकता।" कान्फ़रेन्स-द्वारा इस बात का स्वीकार किया जाना कि देश की ग़रीबी, बेकारी, राष्ट्रीय संरक्षा व आर्थिक पुनःसंघटन यांत्रिक उद्योगीकरण के बिना सम्भव नहीं है, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इसके साथ भारत की औद्योगिक क्रांति में नवीन अध्याय का आरम्भ होता है।

आत्म-निर्भरता—'योजना-समिति' के पंडित जवाहरलाल नेहरू जी के अध्यक्ष होने से यह अनुमान करना सहज है कि भारत का औद्योगिक विकास वर्गवाद के अनुसार होगा। इसका अर्थ है कि भारत के लिए स्वतन्त्र आर्थिक नीति के निर्माण करने की आवश्यकता नहीं है, मगर इस आशंका का निरसन राष्ट्रपति ने स्वतः कर दिया है। श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस का कहना है कि—"यद्यपि औद्योगिक दृष्टि से संसार एक यूनिट (एकाई) है, मगर हमें भारत में अपनी महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए स्वयं पूर्ण राष्ट्रीय नीति स्वीकार करनी चाहिए। इससे स्पष्ट है कि कांग्रेस की औद्योगिक नीति राष्ट्रीय होगी, वर्गवाद के सिद्धान्तों और तत्त्वों के अनुसार न होगी।

नैसर्गिक सम्पत्ति—राष्ट्रीय सम्पत्ति के निर्माण का प्रधान साधन निसर्ग है। 'निसर्ग' में खेती की प्रधानता से गणना की जाती है, मगर इसमें इतर व्यवसायों का भी समावेश होता है। निसर्ग-योजना में खान, जल-भण्डार, खेती, जंगल इत्यादि से जो वस्तुएँ बनती हैं, और उनसे जिन वस्तुओं को मनुष्यवर्ग अपने राष्ट्र के उपयोग के लिए संगृहीत करता है, वे वस्तुएँ राष्ट्रीय सम्पत्ति की मूलाधार होती हैं। निसर्ग से प्राप्त वस्तुओं का समाज सहसा उपयोग नहीं कर सकता। निसर्ग से निकाली वस्तुओं का संस्कार करने की ज़रूरत होती है और यह कार्य अत्यन्त परिश्रम और कौशल का काम है। अर्थशास्त्र की परिभाषा में संस्कार से पहले की वस्तुओं को कच्चा माल और संस्कार करके उपयोगावस्था तक पहुँची वस्तुओं को पक्का माल कहते हैं। मगर निसर्ग से खोज कर वस्तु का निकालना और उस वस्तु के अनेक संस्कार करके उसका मूल्य अनेक गुणा बढ़ाना बहुत श्रम-साध्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार श्रम करनेवाले कारीगर-वर्ग यदि समाज में होते हैं तो उनके श्रम के फलस्वरूप निसर्गोत्पन्न वस्तु हस्तगत होती है और हस्तगत वस्तु पर संस्कार करने से उसकी क़ीमत बढ़ती है, इसलिए शिल्पजीवी-वर्ग का समाज में बहुत महत्त्व है। इसलिए कहा जाता है कि यदि शिल्पजीवी-वर्ग सन्तुष्ट हो तो राष्ट्र की शाश्वत सम्पत्ति बढ़ती है और राष्ट्र सुखी होता है। प्रश्न यह है कि भारत सुखी है क्या? इसका उत्तर यही है कि वह दुःखी है। तब प्रश्न होता है, वह दुःखी क्यों है और उसके निवारण का क्या उपाय है?

किसान क़र्ज़दार क्यों है?—भारत पर प्रकृति प्रसन्न है, उदार है। रत्नाकर तीन दिशाओं से इस देश को आलिंगन कर रहा है। हिमालय, विन्ध्याचल, सतपुड़ा, सह्याद्रि, मलयाद्रि के सदृश नैसर्गिक समृद्धि के अपार संचयवाले पर्वत इस देश में हैं। गंगा, यमुना, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, महानदी, नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, कृष्णा, तुंगभद्रा, कावेरी के सदृश नदियों के कारण यह देश जल-समृद्ध है। ज़मीन एक प्रकार की फ़सलों के लिए उपयुक्त है। समशीतोष्ण जलवायु होने के कारण सब प्रकार के धान्य यहाँ हो सकते हैं। यहाँ के लोग परिश्रमी हैं। जन-शक्ति की भी इस देश में कमी नहीं है। इस अवस्था में भी इस देश के किसान क़र्ज़दार हैं, यह क्या आश्चर्य की बात नहीं है? राष्ट्रीय सम्पत्ति का मूलाधार कृषिकर्म है और उसकी यह दैन्य अवस्था क्या परिताप की बात नहीं है?

ब्रिटिश नीति—पिछले डेढ़ सौ वर्षों में इस देश में खेती की उन्नति के लिए वैज्ञानिक रीति से कोई यत्न नहीं किया गया है। यद्यपि इस काल में देश में आन्तरिक शक्ति थी और इसके फलस्वरूप देश को समृद्ध होना चाहिए था, तो भी हुआ इसके विपरीत ही। ब्रिटिश सरकार की यह नीति रही कि भारत कृषि-प्रधान देश है और इसको कृषि-प्रधान ही बना रहना चाहिए, जिससे इँगलैंड को सदा कच्चा माल सस्ते भाव से मिलता रहे और ब्रिटेन के कल-कारख़ाने बराबर चलते रहें। इस नीति के कारण प्राचीन काल से चले आ रहे, पौराणिक काल में उन्नतावस्था में पहुँचे हुए, मध्ययुग कालीन अशान्ति की आँधी में जीवित रहे कला-कौशल के अनेक उद्योग-धन्धे अर्वाचीन काल में मृत्यु-पथ के राही बने! इमारत का ऊपरी भाग गिरने से जिस प्रकार धीरे धीरे सारा मकान गिर जाता है, उसी प्रकार उद्योग-मन्दिरों का एक-एक दालान के गिरने के साथ-साथ उसकी आधार-भूत खेती पर भी उसका अनिष्ट परिणाम होने लगा। जहाँ खेती का पर्यवसान उद्योगीकरण में नहीं होता, वहाँ खेती भी पराधीन हो जाती है। आज हालत यह है कि यदि कृषिजन्य पदार्थों व कच्चे माल की विदेशों को रफ़्तनी अधिक मात्रा में हुई और उसकी क़ीमत भरपूर मिली तो देश की हालत कुछ अच्छी रहती है, अन्यथा आज के समान अवस्था ख़राब ही रहती है।

ज़मीन पर भार—पुराने उद्योग-धन्धों के नष्ट हो जाने और नवीन उद्योग-धन्धों के जारी न होने से ज़मीन पर भार बढ़ता जाता है। १९३१ में २३ करोड़ व्यक्ति ज़मीन के सहारे अपनी जीविका चला रहे थे। ज़मीन पर भार निरन्तर बढ़ता जा रहा है, यह निम्न तालिका से मालूम होगा—

१८९१	६१ प्रतिशत
१९०१	६६
१९११	७२
१९२१	७३
१९३१	८०

आर्थिक मन्दी की वजह से यह संख्या और बढ़ गई है। हमारे देश में कितने व्यक्ति किस किस रोज़गार में लगे हुए हैं और ज़मीन पर कितना भार है, इसका अन्दाज़ा निम्नसारिणी से लग सकेगा—

खेती	२३ करोड़	८० प्रतिशत
व्यापार	२ करोड़	११ प्रतिशत
वकील, बैरिस्टर, नौकर	८०,००,०००	४ ”
ज़मीन्दार व ताल्लुक़ेदार	८५,००,०००	
राजा-महाराजा	१६,२२८	
मज़दूर	७,००,००,०००	

साधु, फ़क़ीर, अपंग, अंधे, भिखारी १,६२,८३,७७२

हमारे देश की दयनीय अवस्था पर उपर्युक्त आँकड़े भले प्रकार प्रकाश डाल रहे हैं। प्रश्न यह है कि यह दुरवस्था किस प्रकार दूर हो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ही उपाय—इसका एक ही उपाय है कि देश का उद्योगीकरण किया जाय और खेती को स्वावलम्बी बनाया जाय। हमारे देश में श्रीमान् विश्वेश्वर रैयाजी के कथनानुसार चार करोड़ बेकार हैं, जब कि अन्य देशों में इसके मुक़ाबले में उनकी संख्या नगण्य है। इस विषय के तुलनात्मक आँकड़े हम नीचे देते हैं—

	१६२९ (हज़ार)	१९३२ (हज़ार)
कनाडा	१२	४१
बेल्जियम	२७	३३३
जापान	२६९	४७१
फ्रांस	३३७	८०६
ग्रेट ब्रिटेन	१,२३४	२,८०९
जमनी	२.४८४	६,१२८
भारत	.....	४ करोड़

इस बेकारी को दूर करने में खेती असमर्थ है, यह कहने की ज़रूरत नहीं है। इसलिए बेकारी को दूर करने के विचार से भी उद्योगीकरण आवश्यक है। देश की समृद्धि के लिए भी यह आवश्यक है। आज जो देश समृद्ध दिखाई देते हैं उनकी सम्पत्ति का आधार उद्योग-धन्धे हैं, यह बात निर्विवाद है। इस प्रसंग में निम्न-सारिणी उपयोगी सिद्ध होगी—

	आमदनी	
	उद्योग-धन्धे (प्रतिव्यक्ति)	खेती से (प्रतिव्यक्ति)
	रु०	रु०
संयुक्तराज्य	७२१	१७५
कनाडा	४७०	२१३
ग्रेट ब्रिटेन	४१२	६२
स्वीडन	३८४	१२९
जापान	१५८	५७
भारत	१२	५६

यही कारण है कि यहाँ की मिट्टी 'सुजला, सुफला और शस्यश्यामला' होने पर भी इस देश की वार्षिक सम्पत्ति अन्यों के मुक़ाबले में कम है। यथा—

	वार्षिक सम्पत्ति (रुपयों में)
संयुक्तराज्य	९,३६५
कनाडा	८,०२३
ग्रेट ब्रिटेन	६,३७१
जापान	२,३८०
भारत	३४१

इससे स्पष्ट है कि भारत की समृद्धि को बढ़ाने के विचार से भी इस देश का भी यान्त्रिक उद्योगीकरण आवश्यक है। इसके पक्ष में खाण्ड-व्यवसाय का एक ज्वलन्त उदाहरण भी पेश किया जा सकता है। १९३२ में खाण्ड-व्यवसाय को संरक्षण दिया गया। आज उस धन्धे में दो हज़ार शास्त्रज्ञ तरुण, और दस हज़ार इतर तरुणों को काम मिला हुआ है। यदि एक धन्धे से भारत के इतने शिक्षितों और खेतिहरों को मदद मिल सकती है, यदि देश के यान्त्रिक उद्योगीकरण के विषय में राष्ट्र-नेताओं और सरकार की दृष्टि बदल गई, तो कितना कार्य किया जा सकता है, यह वर्णन की वस्तु नहीं है। इन सब बातों से सिद्ध है कि भारत की ग़रीबी बेकारी को दूर करने और उसकी समृद्धि का एक-मात्र उपाय देश का उद्योगीकरण है। हमारे प्राचीन नीतिकारों ने भी कहा है—

"वाणिज्ये वसते लक्ष्मीस्तदर्धं कृषिकर्मणि।
तदर्धं राजसेवायां भिक्षायां नैव नैव सा॥"

आर्थिक नियोजन—यह निश्चित कर लेने के बाद कि देश का उद्योगीकरण आवश्यक है, स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि यह किस प्रकार किया जाय। अव्यवस्थित रूप से या व्यवस्थित रीति और पूर्ण पद्धति से? भारत जैसे स्वाधीन देश के लिए यह ज़रूरी है कि श्रम और पूँजी का सर्वोत्तम सदुपयोग हो। इस देश में पूँजी की भी कमी है इसलिए यह और भी ज़रूरी है कि हम योजना बनाकर काम करें। इसलिए उद्योगीकरण के लिए आर्थिक नियोजन ज़रूरी है। हमें बड़े, मध्यम और गृह-उद्योग-धंधे इन तीन भागों में सब उद्योग-धंधों को बाँट लेना चाहिए और इस प्रकार काम करना चाहिए कि ये तीनों एक दूसरे के पूरक हों, सहायक हों, प्रतियोगी न हों। इसके साथ ही माल की ज़रूरत से ज़्यादा उपज नहीं होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देनी चाहिए और न एक ही जाति का माल दो विभिन्न धंधों में निर्माण करने की ज़रूरत है। हमारे सामने सोवियट रूस की पंचवार्षिक और जर्मनी और इटली की सप्तवार्षिक योजनायें हैं। इनके अनुभवों से हम पूरा-पूरा लाभ उठा सकते हैं।

एकसूत्रता चाहिए—आर्थिक पुनःसंगठन के लिए योजना की ज़रूरत है और योजना बनाने के लिए सामग्री चाहिए, और सामग्री इकट्ठी करने के लिए जाँच व परीक्षा की ज़रूरत है। संशोधन, संकलन और संघटन अन्य शास्त्रों के अभ्यास के लिए जिस प्रकार आवश्यक हैं, उसी प्रकार इसके लिए भी ज़रूरी हैं। विभिन्न प्रान्तों में आर्थिक संशोधन और आर्थिक जाँच का काम हुआ है और इस विषय में कुछ साहित्य भी प्रकाशित हुआ है। मगर यह कार्य या तो व्यक्तियों ने किया है या एक-आध संस्था ने अपनी इच्छा से किया है। एक प्रान्त में ही काम करनेवाले व्यक्तियों और संस्थाओं ने अभी तक मिलकर इस कार्य को नहीं किया है। ज़रूरत इस बात की है कि विभिन्न प्रान्तों में हो रही आर्थिक जाँच एक केन्द्रीय बोर्ड के निरीक्षण में हो। किसी व्यक्ति या संस्था के मन की लहर पर जाँच को न छोड़ना चाहिए। आर्थिक जाँच के काम को एक सूत्र में करना चाहिए।

कालेज की छुट्टी का उपयोग—आर्थिक जाँच का काम कालेजों के छात्र और उनके प्रोफ़ेसर छुट्टी का समय देकर भले प्रकार कर सकते हैं। इस देश में कम से कम १६ यूनिवर्सिटियाँ, २४२ आर्ट्स कालेज और ७१ औद्योगिक कालेज हैं। संयुक्त-प्रान्त का कोई ऐसा ज़िला नहीं है—नैनीताल और अलमोड़ा को छोड़कर—जहाँ कोई कालेज न हो। इसके अतिरिक्त 'गोखले स्कूल आफ़ इकनामिक्स' सरीखी संस्थायें और चेम्बर्स ऑफ़ कामर्स हैं। इन सबकी सम्मिलित शक्ति का उपयोग हर एक ज़िले की बारीकी से आर्थिक जाँच कराने में किया जा सकता है। प्रान्तीय सरकार के और इनके द्वारा की गई जाँचों की रिपोर्टों के आधार पर हर एक प्रान्त की आर्थिक जाँच की रिपोर्ट तैयार करनी चाहिए। जिस प्रकार साक्षरता के प्रसार में कालेज के छात्र राष्ट्र-सैनिक बन रहे हैं, उसी प्रकार इस कार्य के लिए भी उन्हें अपनी सेवायें देने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

गज़ेटियर की पुनरावृत्ति—आर्थिक जाँच के अलावा गज़ेटियरों की पुनरावृत्ति की भी आवश्यकता है। इनको तैयार हुए ६० साल हो गये हैं। इसमें ख़र्च बहुत होगा। मगर स्थानीय संस्थाओं को ग्रांट देकर यह कार्य आसानी और कम ख़र्च में किया जा सकता है।

१९४१ में मर्दुमशुमारी—आर्थिक जाँच के काम के वास्ते एक साल अल्प है। इसके बाद १९४१ में मर्दुमशुमारी होनेवाली है। उस वक्त आर्थिक जाँच आवश्यक होते हुए भी, उस विषय की सामग्री सर्वत्र बारीकी से इकट्ठी नहीं की जा सकती। मगर नियोजक-मण्डल अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए इस अवसर का उपयोग कर सकता है। यह ठीक है कि मर्दुमशुमारी का काम प्रान्तीय सरकारों के क्षेत्र से बाहर है और यह केन्द्रीय सरकार के अधीन है, मगर इसका सारा काम प्रान्तीय सरकार करती है। इसलिए नियोजक-मण्डल सरलता से उनकी सहायता से आवश्यक सामग्री संग्रह करवा सकता है। इस प्रकार विस्तार से की गई जाँच के आधार पर बनाया गया कार्यक्रम व योजनायें ठीक होंगी, अन्यथा जल्दी में तैयार की गई रिपोर्टों के आधार पर तैयार की गई योजनाओं से लाभ की अपेक्षा नुक़सान होने की ज़्यादा सम्भावना है।

विशेषज्ञों की कमिटी—नियोजक-मण्डल का काम निर्दोष हो, इसके लिए ज़रूरी है कि उसे विशेषज्ञों की सहायता प्राप्त हो। इसके लिए आवश्यक है कि प्रत्येक प्रान्त में विशेषज्ञों की एक कमिटी बनाई जाय, जो इस आर्थिक योजना के बनाने और उनको पूरा करने में सहायता और सलाह दे। दूसरी बात यह चाहिए कि राष्ट्रीय नियोजक-मण्डल इस देश के विशेषज्ञों को जापान, रूस, अमरीका, जर्मनी और इँग्लेंड भेजे, जिससे वे कांग्रेस की ओर से उन देशों के आर्थिक पुनरुज्जीवन को देखें। इससे अन्य राष्ट्रों के अनुभवों का लाभ हमको प्राप्त होगा। तीसरी बात यह है कि विदेशी विशेषज्ञों की सहायता ली जाय। पहले निज़ाम ने रेमंड, सिंधिया ने डिबाइन और रणजीतसिंह ने अलर्ड सरीखे सेनापतियों को रखकर अपनी सेना का संघटन किया था। मगर ये विदेशी सलाहकार न रहकर मालिक बन बैठे थे। यह ग़लती फिर न होनी चाहिए। अन्य देशों से वेतन पर विशेषज्ञ बुलाये जायँ, मगर वे नौकर के ही रूप में रक्खे जायँ, मालिक न बनाये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायँ। इसके लिए सब देशों से निकाले जा रहे यहूदियों का हम अच्छा उपयोग कर सकते हैं।

छात्रवृत्ति—विशेषज्ञों के अभाव की पूर्ति योग्य छात्रों को छात्रवृत्ति देकर शिक्षा के लिए विदेश भेजकर की जा सकती है। शिक्षा केवल पुस्तकी न हो, बल्कि व्यावहारिक और क्रियात्मक भी हो, इसके लिए पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए। कोशिश हमारी यह होनी चाहिए कि औद्योगिक व यान्त्रिक शिक्षण की संस्था हम अपने देश में ही खोलें जिससे छात्रों को विदेशों में जाकर धक्के न खाने पड़ें।

चुंगी की नीति—भारत का आर्थिक विकास भारत सरकार की क्रियात्मक सहानुभूति के अभाव में सम्भव नहीं है। देश के आर्थिक विकास और आर्थिक नियोजन की सफलता चुंगी, विनिमय-दर और रेलवे-किराये की दर आदि पर निर्भर है।

संरक्षण की वर्तमान नीति—इस समय सरकार की संरक्षण-नीति भेदभाव की है, इसका अन्त होना चाहिए। संरक्षणात्मक चुंगी की नीति का सूत्र इस समय यह है कि जिस उद्योग-धन्धे को संरक्षण मिलता है उसमें लगनेवाला कच्चा माल भारत से ख़रीदा जाना चाहिए और उससे तैयार होनेवाले पक्के माल के लिए बाज़ार भारत में होना चाहिए। इसके सिवा धन्धा इस प्रकार होना चाहिए। जो संरक्षण के अभाव में अस्तित्व में नहीं आ सकता या अस्तित्व में आने पर टिक नहीं सकता। इसके अतिरिक्त वह एक विवक्षित व निर्दिष्ट काल-मर्यादा के अन्दर उस उद्योग को संरक्षण के अभाव में अपने पैरों पर खड़ा होने योग्य होना चाहिए। यदि उपर्युक्त तीन बातें किसी धन्धे पर लागू होती हैं और टैरिफ़-बोर्ड इस विषय में सन्तुष्ट हो जाता है तो वह उस धन्धे को संरक्षण देने की सिफ़ारिश करता है और उसको मानना या न मानना भारत-सरकार पर निर्भर है। मगर अर्थशास्त्र की दृष्टि से ये तीनों बातें कोई महत्त्व नहीं रखतीं। लंकाशायर और जापान का वस्त्र-व्यवसाय इस आधार पर नहीं चल सकता।

एक और पेंच—यह कहना कि संरक्षण देने से पहले यह सिद्ध होना चाहिए कि वह धन्धा इसके सिवा जी नहीं सकता, हास्यास्पद है। इसका अर्थ है कि पहले एक पूँजीपति को अपनी पूँजी लगानी चाहिए, घाटा सहना चाहिए, और टैरिफ़-बोर्ड को यह विश्वास होना चाहिए कि यह धन्धा संरक्षण के बिना टिक नहीं सकता। मगर इस तरह का साहस करनेवाले पूँजीपति थोड़े ही होंगे। फलतः आर्थिक विकास की प्रगति अत्यन्त मन्दगति से होगी। बुद्धिमानी का तकाज़ा है कि तट-कर व चुङ्गी की दीवार हम ऊँची खड़ी कर दें। दियासलाई का धन्धा चुङ्गी की दर ऊँची होने पर ही अस्तित्व में आया है। इससे स्पष्ट है कि यदि चुङ्गी की दर ऊँची हो और तट-कर की दीवार अलंघ्य हो तो और भी अनेक धन्धे इस देश में अस्तित्व में आ सकते हैं। कच्चा माल छोड़कर सब आयात-माल पर २५ प्रतिशत चुङ्गी लगाने में सरकार को संकोच न करना चाहिए। विदेश से आनेवाला तैयार माल यदि इस देश में बन सकता है तो उस पर ५० से ७५ प्रतिशत चुङ्गी लगानी चाहिए। विशेषज्ञों के द्वारा दस वर्ष बाद इसकी जाँच कराई जा सकती है। जिस विदेशी माल की हमें ग़रज़ हो और वह यहाँ न बन सकता हो या कोई आयात-माल हमारे देश के धन्धे के लिए आवश्यक है तो उस पर ज़रूरत के मुताबिक़ चुङ्गी कम की जा सकती है या उठाई जा सकती है। बढ़ाने की ज़रूरत होने पर बढ़ाई भी जा सकती है। इस प्रकार की संरक्षणात्मक नीति स्वीकार करने से औद्योगिक विकास का विस्तार द्रुत गति से होगा।

विनिमय-दर—औद्योगिक विकास और विनिमय-दर का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। मगर यह विषय गवर्नर-जनरल के वैयक्तिक उत्तरदायित्व का है, अतः विनिमय-दर राष्ट्रीय लाभ की दृष्टि से नियत किया जायगा, यह आज तक का अनुभव कहने के लिए उत्साहित नहीं करता। इसलिए राष्ट्रीय नियोजक-मण्डल और प्रान्तीय सरकारों को विनिमय-दर बदलवाने के लिए भारत-सरकार पर दबाव डालना चाहिए। लोकमत भी इसके अनुकूल बनाना चाहिए और इसके लिए प्रबल आन्दोलन भी होना चाहिए। जब से उन्नत राष्ट्रों ने स्वर्ण-मान का त्याग किया है तब से नियन्त्रित विनिमय-दर-पद्धति चालू है। इस पद्धति के अन्दर विनिमय-दर पर उद्योग-धन्धों और आर्थिक व्यवस्था का भवितव्य बहुत अधिक अवलम्बित है। मुद्रा एक समय केवल आर्थिक व्यवहार का माध्यम व साधन समझी जाती थी, मगर १९३१ के बाद की आर्थिक मन्दी ने बता दिया है कि यह केवल माध्यममात्र नहीं है। उस समय से मुद्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और विनिमय-दर आयात-निर्यात-प्रवाह को नियमित करने के साधन बन गये हैं।

विनिमय-दर घटाओ—भारत के अन्दर क़ीमतों और रुपये के लेन-देन का १८ पें० के भाव से मेल जमता है या नहीं, इस विवाद में यहाँ पड़ना अनावश्यक है। मगर इतना सत्य है कि यदि विनिमय-दर में कमी कर दी जाय तो किसानों की माली हालत सुधर जायगी और प्रान्तीय सरकारों-द्वारा क़ानूनों के ज़रिये किसानों को पहुँचाई जा रही सहायता द्विगुणित हो जायगी। विनिमय-दर घटाने से हमारे आयात-माल की रुपये में क़ीमत अपने आप बढ़ जायगी और उसकी प्रतिक्रिया राष्ट्र में होने पर, भारतीय खेतों के माल की क़ीमत बढ़ेगी और इस प्रकार किसानों के हाथ में अधिक पैसा आयेगा।

परोक्ष रूप से इसके द्वारा छोटे-छोटे उद्योग-धन्धों को भी थोड़ी बहुत सहायता मिलेगी। क्योंकि इनके प्रमुखरूप से ग्राहक किसान हैं और उनकी आमदनी में चढ़ाव-उतराव आने का इन पर सबसे पहले असर होता है। विनिमय-दर घटाने से तट-कर की दीवार और मज़बूत होगी और अनेक असंघटित और उपेक्षित धन्धों में इससे नया जीवन आयेगा। जापानी येन के भावों के उतरने का एकमात्र उत्तर यही है कि रुपये की क़ीमत भी गिरा दी जाय। इससे जापानी माल की प्रतिस्पर्द्धा में न टिक सकनेवाले अनेक उद्योग-धन्धों के खड़े होने में कुछ सहायता मिलेगी।

रेलवे—रेलवे केवल एक व्यापारिक संस्था है, इस भ्रम को हमें दूर कर देना चाहिए और इस धारणा को तिलांजलि दे देनी चाहिए। रेलवे राष्ट्र की सम्पत्ति है, अतः देश की आर्थिक व्यवस्था में इसका क्या स्थान हो, इसका निश्चय जनता को करना चाहिए। चुङ्गी और विनिमय-दर के समान रेलवे का भाड़ा भी इस प्रकार रखना चाहिए, जिससे देशी उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन मिले। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि रेलवे के भाड़े की दर का भारत की परिवर्तित औद्योगिक स्थिति और योजना के अनुसार निर्णय किया जाय।

सरकार माल यहाँ से ख़रीदे—भारत-सरकार व प्रान्तीय सरकारों की यह नीति तो है कि अपने लिए आवश्यक माल व सामग्री ख़रीदते समय देशी माल को तरजीह दें। मगर ज़रूरत इस बात की है कि सरकार अपने सब विभागों के लिए आवश्यक माल यहाँ ही तैयार कराने का प्रबन्ध करे और उस मार्ग में यदि कोई अड़चन व बाधा हो तो उसे दूर करे।

व्यापार-कमिश्नर—भारत का माल जिन देशों को जाता है और जिन देशों का माल भारत में आता है उनमें व्यापार-कमिश्नर नियुक्त करना लाभदायक होगा। जो देश सस्ता माल इस देश में भेजते हैं, वहाँ भी वकील नियुक्त करना फ़ायदेमन्द रहेगा। इनको भी व्यापार-कमिश्नर के समान भारत के प्रतिस्पर्द्धी व्यायसायिक देशों की आर्थिक व इतर परिस्थितियों का अध्ययन कर अपनी रिपोर्ट देनी चाहिए, जिससे इस देश के व्यवसायी और व्यापारी उनका आसानी से मुक़ाबला कर सकें।

परस्पर

लेखक, श्रीयुत 'चातक' कविरत्न

फूलों के कम्पित अधर खुले,
गाने को प्रिय का प्रेम-गान।
भावों की घनता से न शब्द निकले-
भ्रमरों ने लिया जान।
भन भन कर गाने लगे भ्रमर-
फूलों का वांच्छित प्रेम-राग।
जी खोल लुटाया फूलों ने-
भ्रमरों को अपना भी पराग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताजमहल

लेखक, श्रीयुत कालीचरण चटर्जी

वह उसको प्यार करता था—अपने प्राणों से अधिक। वह जिस प्रकार प्यार करता था, कदाचित् किसी पति ने अपनी स्त्री को उतना प्यार न किया होगा।

उसका नाम था क़ासिम, और उसकी बीबी का नाम था पेशमन। बहराम थवई का एकलौता बेटा क़ासिम अपने पिता की इच्छा से मुहल्ले के मकतंब में कुछ दिन तक उर्दू पढ़कर पिता के काम में सहायता देने लगा। धीरे-धीरे वह इस काम में पारदर्शी हो गया। २२ वर्ष की अवस्था में उसकी शादी हो गई। परन्तु दुर्भाग्यवश उसी साल उस नगर में प्लेग चला और उसी बीमारी में उसके माता-पिता का देहान्त हो गया। अनुपम कान्ति से लदी हुई तथा नवीन यौवन की अभिनव उमंगों से उद्वेलित युवती भार्या को ससुराल से लाकर उसने नवीन जीवन आरम्भ किया।

थवईगीरी के काम से जो कुछ मिलता उससे उनका न केवल निर्वाह ही सुख से होता, अपितु कुछ बच भी जाता। दिन भर की कठिन मेहनत के बाद जब क़ासिम मकान वापस आता तब वह देखता कि पेशमन सेवा-यत्न-परायण दोनों हाथों को बढ़ाकर उसी का स्वागत करने के लिए व्याकुल उत्कंठा से बाट जोह रही है। सन्ध्या-समय भोजन आदि से निवृत्त होकर क़ासिम अपने परिश्रान्त शरीर को चारपाई पर ढीला कर कहानी कहता। उसके वर्णन में भावुकता तथा विनोद का ऐसा सामंजस्य रहता कि पेशमन अवाक्-विस्मय से उन कहानियों को उसके पास लेटकर सुना करती। यह नित्यप्रति का नियमपूर्वक काम था। बाल्यकाल में पढ़ी हुई गुलबकावली, अलिफ़ लैला, शेख़चिल्ली आदि पुस्तकों की कहानियाँ उसकी सहायक थीं। मुग़ल-सम्राट् शाहजहाँ तथा उसकी मानसी प्रिया मुमताज़ और आगरे में नील यमुना के तट पर अगाध प्रेम की निछावर का निदर्शन, संगमरमर का भव्य भवन ताजमहल भी उन कहानियों के अन्तर्गत थे। इसके बाद न जाने रजनी के किस समय, निद्रा के राज्य से, नींद की परियाँ आकर अपनी चम्पक फूल के सदृश उँगलियाँ उनकी आँखों पर फेर देतीं और वे सो जाते। इस प्रकार दोनों को दो-तीन वर्ष दाम्पत्य सुख भोगते हुए बीत गये।

× × ×

एक दिन क़ासिम की तबीयत कुछ ख़राब थी, तथापि भोजन आदि से छुटकारा पाते ही पेशमन क़ासिम के गले में बाहें डालते हुए ज़िद कर बैठी, 'कहानी सुनाओ।'

क़ासिम ने ज़रा हलके-हलके मुस्कराकर जवाब दिया—"मेरी सब कहानियाँ तो तुम सुन चुकी हो, रानी! मुझे नई कहानियाँ तो और मालूम नहीं हैं।"

पेशमन ने प्रबल आग्रह से कहा—"क्यों, वही शहंशाह शाहजहाँ और उसकी मलका मुमताज़!"

"अरे वही ताजमहल की कहानी? उसे भी तुमको न मालूम कितने मर्तबा सुना चुका हूँ पेशमन! वह कहानी भी तो तुम्हारे लिए नई नहीं है न!"

"न हो, न सही। उसी क़िस्से को तुम फिर कहो।"

आख़िर क़ासिम ने निरुपाय होकर सैकड़ों प्रकार से सैकड़ोंबार कही हुई ताजमहल की पुरानी कहानी फिर एक बार दुहराई।

दिन कटने लगे, परन्तु इस नियम का व्यतिक्रम नहीं हुआ।

× × ×

और एक दिन की घटना—उस दिन थी पूर्णिमा। किसी सुयोग्य जादूगर ने चाँद की नाव को नीले आसमान-समुद्र की छाती पर छोड़ दिया था, और वह रुपहली नौका पवन के सहारे लहरों की ताल में ताल मिलाकर सुनील आकाश के वक्षःस्थल को चीरती हुई चली जा रही थी—अज्ञात—अनन्त की ओर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन उस रात को पेशमन ने अपने नियमानुसार कहानी सुनने की उत्सुकता प्रकट नहीं की। क़ासिम ने बहुत प्यार से मुस्कराते हुए पूछा—"आज तुम कहानी सुनने के लिए उत्सुक क्यों नहीं हो?" उत्तर में पेशमन के नयनों से केवल दो तप्त अश्रु क़ासिम के शरीर पर गिर पड़े। क़ासिम ने अवाक् होकर पूछा—"यह क्या? पेशमन तुम रो रही हो? तुम्हारी आँखों में आँसू! भला तुम्हें ऐसा क्या दुःख है?" और उसके गुलाबी कपोलों से ढलकते हुए आँसू पोंछ दिये।

स्नेह के स्पर्श से कोई बाधा न मानकर उसके नयनों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी और उसका कंठ अवरुद्ध हो गया। कुछ देर के बाद अपने को संयत कर पेशमन बोली—"एक बात का वादा करोगे?"

"मैं तुम्हारी बात नहीं मानूँगा, रानी! आज तुमको हुआ क्या है? तुम्हारी आँखों में तो कभी आँसू नहीं देखे थे!"

पेशमन गद्गद स्वर से बोली—"अगर मैं मर जाऊँ—?"

अपनी पत्नी को हृदय के पास खींचते हुए क़ासिम ने उसके कपोल चूम लिये और व्याकुलता के साथ कहा—"ऐसी मनहूस बात कहनी नहीं चाहिए, पगली, तुमको इतना हैरान और परेशान कभी नहीं देखा, पेशमन—"

पेशमन इस बात को सुनकर भी, उस पर ध्यान न देकर बोलती गई—"अगर मैं मर जाऊँ तो तुम मेरी क़ब्र पर वैसा ही एक ताजमहल बनवा दोगे?"

"ओहो, यह बात है?" यह कहकर क़ासिम खिल-खिला कर हँस पड़ा।

पेशमन गम्भीरता से बोली—"नहीं-नहीं, मज़ाक नहीं। सच-सच कहो, तुम मेरा पक्का मज़ार बनवा दोगे?"

"ज़रूर बनवा दूँगा, पगली कहीं की!"—ऐसा कहते हुए उसने एक बार फिर पेशमन का चुम्बन लिया।

दूर से एक उल्लू की कर्कश आवाज़ आई। उस दिन यहीं उनका वार्तालाप समाप्त हुआ।

× × ×

एक दिन उस अज्ञात देश का संदेश पहुँच ही गया। पेशमन के जीवन-अभिनय के बीच में ही किसी अदृश्य शिल्पी ने काला पर्दा गिरा दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि पेशमन अकस्मात् बीमार पड़ी; क़ासिम ने जी-जान एक कर उसकी परिचर्या की, किन्तु सब प्रयत्न निरर्थक हुए; क़ासिम के निष्कपट प्रेम तथा उसकी समस्त सेवाओं को ठुकराकर एक दिन पेशमन ने इस संसार से सर्वदा के लिए मुँह मोड़ लिया। क़ासिम कुछ क्षण तक बेबसी का घूँट पीकर सोचता रहा कि निर्दयी अदृष्ट-देवता किस प्रकार उसकी सारी अभिलाषाओं को कुचल कर हँसता हुआ चला गया। तदुपरान्त पेशमन की लाश दोनों बाहों से हृदय में चिपटाकर वह वायुमंडल को कँपाता हुआ विकट आर्तनाद करने लगा। व्यथित-हृदय के समाधान का यही एक तो साधन है।

× × ×

क़ासिम ने गृहस्थी का कुल सामान बेच-बाँचकर पेशमन की समाधि पर एक छोटा-सा मगर मनोरम मक़बरा बनवाया और उसकी कुर्सी पर बड़े-बड़े ज्वलन्त सुनहरे अक्षरों में लिखवा दिया—'ताजमहल'।

खेद की बात है कि ज्योत्स्ना-प्लावित रजनी में इस रौज़े के रूप से मुग्ध होकर न किसी कवि ने हृदय के कोमल उद्गारों को कविता में व्यक्त किया, न यहाँ आकर इस वियोग-विधुर प्रेमिका की व्यथा से व्यथित होकर किसी ने दो बूँद अश्रु ही बहाये; न संसार के सात महान् आश्चर्यों में कभी भूल से भी किसी दिन किसी ने इस स्मारक की गणना की।

× × ×

पेशमन की मृत्यु के बाद क़ासिम में घोर परिवर्तन हुआ। उसका खाना-पीना एकदम छूट गया। अगर कोई कृपया उसे बुला कर कुछ दे देता तो वह खा लेता; नहीं तो निराहार रह जाता। काम पर जाना तो उसने पहले से ही बन्द कर दिया था। अब वह केवल उस नगर के एक प्रान्त में मैदान के बीच पेशमन की क़ब्र के पास उन्मत्त-सा, अकेला, लक्ष्यहीन, उदास, सारा समय व्यतीत करता; कभी दौड़ता, कभी ज़मीन पर लेट कर गिड़गिड़ाता, कभी हँसता, कभी आकाश की ओर दृष्टि निबद्ध कर प्रेम-मुग्ध हृदय से मानो अपनी प्रेमिका से बातें करता। क्लान्त व अवसन्न हो जाने पर वह क़ब्र के पास बैठ कर पेशमन की स्मृति में अश्रु बहाता। पुनः जब मैदान के पास की सड़क पर चलते हुए राहियों को देख लेता तब उनके पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दौड़ता हुआ जाता और कातर भाव से पूछता—"अरे भाई, तुम लोगों में से किसी ने आगरे का ताजमहल देखा है ?"

राही उसकी बातों पर कर्णपात न कर अवज्ञा के साथ चले जाते। कोई-कोई तिरस्कार के भाव से कह बैठता—"पागल, क्या बक रहा है ?" कोई-कोई सहानुभूति दिखलाते हुए दयाभरे स्वर में दुःख प्रकाश करता—"बेचारे की दीन दशा पर तरस आता है !" कोई-कोई कौतूहली पथिक तमाशा देखने की इच्छा से परिहास करता—"अरे सिड़ी, मैंने ताजमहल देखा है। क्या बात है ?" ताजमहल का नाम सुनते ही एक आनन्द का हिलोरा उसके मुख पर दौड़ जाता और उसकी आँखें चमकने लगतीं। वह आतुरता के साथ पूछता—"हाँ, देखा है ? सच कह रहे हो भाई, देखा है ? अच्छा बता सकते हो कि वह ताजमहल मेरे इस ताजमहल से क्या ज़्यादा खूबसूरत है ?"

पथिक के उच्च हास्य में उसकी बातें डूब जातीं और पथिक अपना रास्ता पकड़ता। क़ासिम वहीं खड़ा-का-खड़ा रह जाता और शून्य दृष्टि से पथिक की ओर आँखें फैला कर देखता रहता। तदनन्तर उसके अन्तःस्थल से एक दबा हुआ उच्छ्वास निकल पड़ता।

एक दिन प्रातःकाल कुछ नगरवालों ने देखा क़ासिम उसी क़ब्र के पास मरा पड़ा है। तुरंत नगर भर में यह ख़बर फैल गई; सैकड़ों व्यक्ति देखने को दौड़ पड़े। अन्त में नगरवालों ने पेशमन की क़ब्र के पास ही उसकी लाश को भी दफ़न करवा दिया।

× × ×

लगभग सौ वर्ष पहले की बात है। अब वहाँ पर दो चार टूटी-फूटी ईंटें पड़ी हुई हैं। स्थान-स्थान पर अनेक प्रकार के जंगली छोटे-छोटे पेड़ों की घनी काँटेदार झाड़ियाँ लग गई हैं। एक क़ब्र से एक पीपल और दूसरे से एक बरगद का वृक्ष उगकर थोड़ी दूर बढ़कर आपस में ऐसे मिल गये हैं मानो ये दोनों एक ही हों—यथार्थ प्रेमियों के जीवन-मरण में चिर-मिलन का उज्ज्वल निदर्शन है। ये दोनों वृक्ष मानव-समाज के बाहर रह कर अपनी निर्बाध स्वतन्त्रता से बढ़कर परिवर्तनशील संसार की लीला पर्यवेक्षण कर रहे हैं। अब केवल रात्रि को अगणित पक्षी उन पर रैन-बसेरा करते हैं। आज भी जब मृदु मन्द वायु हिल्लोल से वृक्षों के ललित पल्लव-पत्र सिहर कर मर्मर ध्वनि करते हैं तब मालूम होता है कि मानो वे पथिक के कानों में गूँजते हैं 'पेशमन-क़ासिम', 'क़ासिम-पेशमन'—मानो दोनों एक ही हैं और एक ही आत्मा दोनों में विराजमान है, एवम् परस्पर अन्तःकरण के अन्तःस्थल में बातचीत कर रहे हैं।

× × ×

परदेशी

लेखक, श्रीयुत श्रीचन्द्रप्रकाश वर्मा 'चन्द्र'

मैं परदेशी चला, भला जग से मेरा क्या नाता ?
होनी थी, जो यहाँ रुक गया था मैं जाता जाता;
दो दिन जग के साथ गा लिये मैंने ऐसे गाने—
जिन गीतों की प्रतिध्वनियाँ सुन अब मैं हूँ पछताता।
चुन-चुन कंकड़ महल बनाया, करने रैन-बसेरा,
भूल गया मैं—मेरा तो है चार घड़ी का डेरा;
मैं था, रजनी थी, सपने थे, था अज्ञान-अँधेरा—
चपल लालसा का नर्तन था, पागल था मन मेरा।
क्रीड़ाएँ थीं, कोलाहल था, थे सब सङ्गी प्यारे
कंठ कंठ से फूट रहे थे गाने न्यारे न्यारे
वह मधु-रात अनन्त समझता था मैं भ्रम के मारे
किसे ज्ञात था एक-एक कर डूब रहे थे तारे
और सबेरा हुआ तभी मैंने रहस्य सब जाना
स्वप्न-राग धो, निशि विस्मृत कर, निज पथ फिर पहचाना
दूर देश है मेरा, भाई ! यह तो देश बिराना
मैं परदेशी चला, देखना है, कब होता आना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपेक्षिकतावाद

लेखक, श्रीयुत नलिनीमोहन सान्याल, एम० ए०, भाषातत्त्वरत्न

सान्याल महोदय हिन्दी के प्रेमी लेखक हैं। इस वृद्धावस्था में भी वे लिखते रहते हैं। आपेक्षिकतावाद जैसे गूढ़ विषय पर इस लेख में उन्होंने बहुत सरल ढंग से प्रकाश डाला है।

कुछ वर्ष पहले तक वैज्ञानिकगण देश तथा काल को स्वतन्त्र पदार्थ मानते थे। आकाश में तारे, मेघ इत्यादि कोई वस्तु नहीं हैं, अर्थात् आकाश सम्पूर्ण ख़ाली है, ऐसी कल्पना करने पर भी, आकाश की धारणा में कोई बाधा नहीं पड़ती थी। काल की स्वतन्त्र धारणा भी असम्भव न थी। किन्तु अब वैज्ञानिक सम्प्रदाय का विश्वास है कि द्रव्य, देश तथा काल की पृथक् पृथक् स्थिति नहीं है—वे अविच्छिन्न रूप में परस्पर जड़े हुए हैं। एक के परिवर्तन से अपर दोनों का परिवर्तन अवश्यम्भावी है। द्रव्य, देश तथा काल के समवाय-सम्बन्ध को आपेक्षिकता कहते हैं, और इस मतवाद का नाम है आपेक्षिकतावाद (रिलेटिविटी)। इस आपेक्षिकतावाद के प्रवर्त्तक हैं 'आइन्स्टाइन'। इस मतवाद के प्रचार से वैज्ञानिक चिन्ता-धारा में युगान्तर उपस्थित हो गया है। प्रकृति की किसी वस्तु की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है—कोई भी कार्य निरपेक्ष नहीं है।

अब तक हमारा विश्वास था कि केवल देश व आकाश ही हमें वेष्टन किये हुए है, अर्थात् हम देश में निमज्जित हैं और समय हमारे अगल-बग़ल से निकल रहा है—देश तथा काल में कोई सम्बन्ध नहीं—वे सम्पूर्ण विभिन्न प्रकृति की वस्तुएँ हैं। देश में हम जैसे आगे बढ़ सकते हैं, वैसे पीछे भी हट सकते हैं। किन्तु काल में पश्चादपसरण असम्भव है। हम द्रुत वा मन्थर गति से चल सकते हैं, अथवा गतिशून्य भी हो सकते हैं, किन्तु समय के हिसाब से पिछड़ नहीं सकते। देश हमारा वशवर्ती है, किन्तु समय हमारे वश में नहीं। वह सबके लिए समान रूप में बहा जा रहा है। समय किसी की ख़ातिर नहीं करता। समय को कोई पिछड़ा नहीं सकता। घड़ी के काँटों को पीछे हटा देने पर भी समय पीछे नहीं हटता। आपेक्षिकतावाद का मत यह है कि कोई भी कार्य देश तथा काल की पृथक्-पृथक् सत्ता के अनुसार सङ्घटित नहीं होता—सब व्यापार समवाय-सम्बन्ध से जड़ित देश-काल में सम्पन्न हो रहे हैं।

कोई विन्दु जितना स्थान घेरता है वह उपेक्षणीय है। किन्तु उस विन्दु को यदि किसी समतल क्षेत्र पर ठेलते हुए ले जाया जाय तो उस विन्दु के द्वारा एक रेखा बनेगी। उस रेखा का केवल एक ही ओर विस्तार है। अर्थात् दैर्घ्य है, इस कारण उसका मान व मात्रा (डायमेंसंस) एक है, ऐसा कहा जाता है, और वैज्ञानिक भाषा में वह रेखा एक मात्रिक मानी जाती है। यदि उक्त रेखा समतल क्षेत्र पर कुछ दूर तक ठेल दी जाय तो उसके द्वारा एक चतुष्कोण क्षेत्र निर्मित होगा। उस चतुष्कोण की लम्बाई तथा चौड़ाई दोनों हैं, इस कारण उसके मान व मात्रायें दो हैं, ऐसा कहा जाता है, और वैज्ञानिक भाषा में वह क्षेत्र द्वैमात्रिक माना जाता है। फिर वह चतुष्कोण क्षेत्र यदि क्रमशः ऊपर व नीचे की ओर ठेल दिया जाय तो एक घनक्षेत्र निर्मित होगा। उस घनक्षेत्र में लम्बाई, चौड़ाई तथा मोटाई हैं, इसलिए उसके मान व मात्रायें तीन हैं, ऐसा कहा जाता है, और वह घनक्षेत्र त्रैमात्रिक माना जाता है।

प्रकृति में जितनी वस्तुएँ हैं—सूर्य, तारे, पृथ्वी—सब सचल हैं। यदि कोई वस्तु अचल मालूम होती हो तो वह आपेक्षिक रूप में अचल है—अन्य किसी सचल वस्तु की तुलना में अचल है। सचल वस्तु अचल वस्तु की तुलना में सचल है। यदि दो वस्तुएँ एक स्थान से समान वेग से धावित होती हों—चलते चलते उनके वेग का सामान्य मात्र भी ह्रासवृद्धि न हो—तो कुछ दूर जाने के बाद, परस्पर की तुलना में, वे अचल प्रतीत होंगी, कारण परस्पर के बीच कोई व्यवधान उत्पन्न न होगा। रेलवे-ट्रेन से जाने के समय कभी-कभी रेलवे के बग़ल के मकान, वृक्ष इत्यादि सचल मालूम होते हैं। उसका कारण यह है कि हम जिस गाड़ी में बैठे हैं, अनवधानता के कारण उसे हम अचल ख़याल करते हैं। पृथ्वी अपने मेरुदण्ड को वेष्टन कर २४ घंटे में एक बार घूमती है, किन्तु हम पृथ्वी को अचल मानकर ख़याल करते हैं कि उतने समय में सूर्य ही पृथ्वी के चारों ओर घूम आता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान लो कि तुम पंजाब-मेल में सवार होकर इलाहाबाद से कानपुर जा रहे हो। पंजाब-मेल इलाहाबाद से १०½ बजे छूटती है और १ बजे कानपुर पहुँचती है। इलाहाबाद से कानपुर की दूरी है १२० मील, और फ़तेहपुर की दूरी ७२ मील। पंजाब-मेल फ़तेहपुर १२ बजे पहुँचती है।

इलाहाबाद और कानपुर का १२० मील का व्यवधान अतिक्रम करने में २½ घंटे लगते हैं। ये दैशिक तथा कालिक एक मात्रिक परिमाण कैसे संयुक्त किये जा सकते हैं? इस संयोग की धारणा करने के लिए एक चतुष्कोण क्षेत्र का मानसिक चित्र अङ्कित करना चाहिए। इस चित्र को देखो। इसमें १२० मील दीर्घता को एक भूमि-लग्न सरल रेखा के द्वारा, और २½ घंटे समय को पूर्वोक्त रेखा के साथ लम्ब रूप में अवस्थित दूसरी एक सरल रेखा के द्वारा व्यक्त किया गया है। भूमि-लग्न-रेखा में स्थानों का निर्देश है, और लम्ब-रेखा में समयों का।

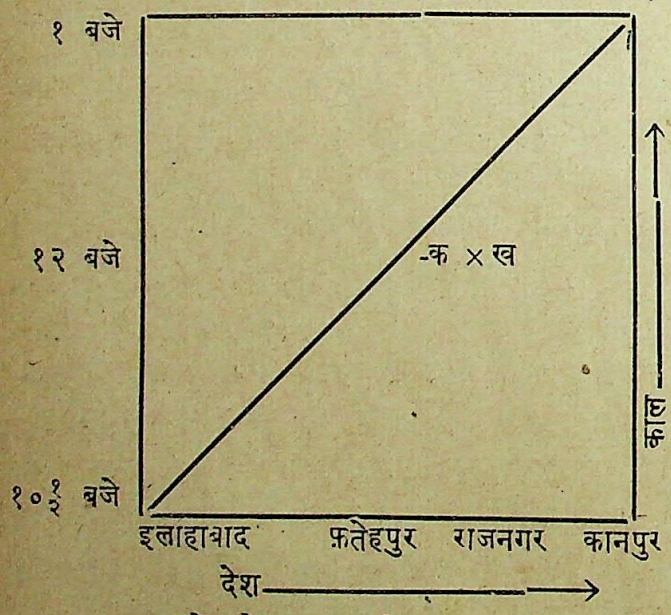

इलाहाबाद से फ़तेहपुर ७२ मील,
फ़तेहपुर से कानपुर ४८ मील,
इलाहाबाद से कानपुर १२० मील।

मोटी कर्ण-रेखा ट्रेन की गति व्यक्त करती है। मान लो 'क' बिन्दु लम्ब-रेखास्थ १२ बजे सूचक स्थान के ठीक सामने और धरातलस्थ रेखा के फ़तेहपुर के ठीक ऊपर रहने के कारण समझा जाता है कि ट्रेन ने १२ बजे के समय फ़तेहपुर तक दूरत्व अतिक्रम किया है। दूसरा एक बिन्दु 'ख' उस समय राजनगर के आस-पास का कोई स्थान सूचित करता है। 'ख' बिन्दु स्थूल रेखा के अन्तर्गत नहीं है, क्योंकि तब तक ट्रेन राजनगर नहीं पहुँची है। चित्र का समग्र क्षेत्र २½ घंटे के भीतर इलाहाबाद से कानपुर तक जितने स्थान हैं, उनका निर्देश करता है। इस प्रकार से १२० मील परिमित दैर्घ्य-वाचक एक रेखा के साथ २½ घंटे परिमित एक प्रस्थ-वाचक रेखा के संयोग से एक द्वैमात्रिक क्षेत्र मिला, जिसका एक मान देशवाचक है और एक मान कालवाचक।

इस प्रकार देशवाचक तीन मान विशिष्ट एक घनायतन के साथ यदि कालवाचक एक मान संयुक्त किया जाय तो एक चातुर्मात्रिक घनायतन मिलेगा, जिसे वैज्ञानिक भाषा में कंटिन्युयम् कहते हैं।

पाठकगण कह सकते हैं कि ऊपर के चित्र के द्वारा 'कंटिन्युयम्' समझने में कोई सहायता नहीं मिलती। वह चित्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं, क्योंकि वह यथार्थ देश तथा काल के संयोग को प्रदर्शित नहीं करता। हमारा कहना है कि देश तथा काल का यथार्थ संयोग इन्द्रिय-निरपेक्ष (सब्जेक्टिव) है, अर्थात् मन के भीतर हो सकता है—वह वस्तु की सहायता से व्यक्त वा हृदयङ्गम नहीं किया जा सकता। साङ्केतिक उपाय के अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से वह सम्यक् व्यक्त नहीं हो सकता।

पाठकगण यदि निविष्ट चित्त से चिन्ता कर देखें तो समझ सकेंगे कि घटनाओं का पारम्पर्य ही काल है। पेंडुलम के डोलने के कारण घड़ी के काँटे थोड़ा-थोड़ा हटते रहते हैं, और काँटों की गति से समय जाना जाता है। पृथ्वी अपने मेरुदंड की २४ घण्टों में एक बार प्रदक्षिणा करती है, और सूर्य की ३६५ दिनों में प्रदक्षिणा कर आती है। पृथ्वी की इन दोनों गतियों से हमें दिवा, रात्रि, मास, वत्सर का ज्ञान होता है। सब गतियाँ (वा घटनायें) ही त्रैमात्रिक देश को अवलम्बन करके होती हैं, और कार्यावली की परम्परा से काल अनुभूत होता है। अतएव देश के साथ काल का घनिष्ट सम्बन्ध है।

फिर वस्तुओं के बिना कोई कार्य नहीं होता। अतएव देखा जाता है कि वस्तु, देश तथा काल परस्पर अविच्छिन्न सम्बन्ध से ग्रथित हैं। यही आपेक्षिकतावाद का मूल-सूत्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जावा और बाली की एक झलक

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

एक कहावत है—'जो एक बार बाली द्वीप हो आता है, उसे दुबारा फिर वहाँ जाना पड़ता है।' बाली की भूमि में सचमुच ऐसा ही आकर्षण है। पूर्वी द्वीप-समूह के ऐसे ही दो रमणीय द्वीपों की एक झलक इस लेख में देखिए।

भारत के इतिहास में लगभग छः-सात सौ वर्ष का एक ऐसा समय रह चुका है जब भगवान् बुद्ध की शिक्षा के प्रचार से हिन्दू-जाति वर्ण-भेद के रोग से मुक्त हो गई थी। उस समय भारतीय विद्वानों ने पर्वतों और सागरों को पार कर विदेशों में जाकर वहाँ भारतीय धर्म, सभ्यता और संस्कृति का प्रचार किया था। उसी समय चीन और जापान के साथ-साथ भारतीय द्वीप-पुञ्ज के जावा, सुमात्रा, बाली आदि द्वीप भी हिन्दू-धर्मानुयायी बन गये थे। 'महाभारत' का निर्माण उसी काल में हुआ था। पीछे से जब नये हिन्दू-धर्म के प्रचार से वर्ण-भेद का रोग पुनः हिन्दुओं में लौट आया और समुद्र-यात्रा धर्म-विरुद्ध ठहरा दी गई तब भारत के हिन्दुओं का उस 'महाभारत' से संपर्क टूट गया। भारतीय प्रचारकों के वहाँ न पहुँचने से वहाँ के लोग विधर्मों के शिकार हो गये। फलतः आज वहाँ हिन्दू-मन्दिरों एवं देवी-देवताओं की मूर्त्तियों के सिवा हिन्दू-धर्म का और कुछ बाक़ी नहीं रह गया है। भारतीय द्वीप-पुञ्ज के वे द्वीप कैसे सुन्दर हैं और वहाँ के अधिवासियों का आकार-प्रकार और रहन-सहन कैसा है, इसका कुछ वर्णन एच० जे० कॅलीहर नाम के एक सज्जन ने आस्ट्रेलिया के एक पत्र में लिखा है। उसकी कुछ मोटी-मोटी बातें इस लेख में पाठकों की भेंट की जाती हैं।

जावा संसार का एक अतीव सुन्दर और मनोरञ्जक द्वीप है। वह इस समय हालेण्ड के अधीन है। डच लोगों ने उसे एक आदर्श उपनिवेश बना दिया है। वहाँ साफ़-सुथरी सड़कें हैं, सुन्दर जल-मार्ग हैं, उद्योग-धंधे बढ़ रहे हैं, पानी से बिजली उत्पन्न की जा रही है और आधुनिक ढंग के पुल हैं। नवीन सभ्यता की इन चीज़ों के साथ साथ उन्होंने वहाँ के मनोमुग्धकारी लोगों की विशेषताओं और स्वाभाविक चारुता को भी अक्षुण्ण रक्खा है। इस अपेक्षाकृत छोटे-से टापू में इतना स्वाभाविक सौन्दर्य और इतना उद्योग-धंधा है कि उसका वर्णन अतिशयोक्ति प्रतीत होगा।

जावा-द्वीप भूमध्य-रेखा के दक्षिण में, एशिया और आस्ट्रेलिया के बीच स्थित है। यह उस मलय-द्वीपसमूह का एक महत्त्वपूर्ण अंश है जिसके अन्तर्गत बोर्नियो, सुमात्रा, सेलीबस, न्यू गायना और सबसे छोटा परन्तु सबसे सुन्दर बाली द्वीप हैं। जावा की लंबाई ६०० मील से कुछ ऊपर और चौड़ाई लगभग १३० मील है। इसकी जन-संख्या इँग्लैंड से ५० लाख अधिक है। यह टापू बहुत सघन बसा है।

जावा में वैज्ञानिक, कलाकार तथा अर्थशास्त्री के लिए और प्रकृति एवं समाज-शास्त्र के विद्यार्थी के लिए बहुत अच्छे अवसर हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि यहाँ के लोग बहुत ही मिश्रित हैं। यहाँ सांस्कृतिक प्रथायें और विशेषतायें इतने विभिन्न प्रकार की हैं कि आसानी से इस पर विश्वास नहीं होता। वे मौलिक रूप से एक-दूसरे के सदृश होते हुए भी एक दूसरे से बहुत विभिन्न हैं। जावा में भी, जहाँ जावानी, सुन्दानी और मादुरी नाम की पूल जातियाँ ही बसती हैं, भाषा, प्रथा और जीवन के तत्त्वज्ञान में इतना अन्तर है, जितना किसी भी दूसरे भूभाग में नहीं मिलता।

विदेशियों के इन जावानी लोगों की अनेक प्रथायें विचित्र और परस्पर विरोधी जान पड़ती हैं। उदाहरणार्थ, जावा की स्त्रियाँ सिर नंगा रखती हैं। उनके भौंरे से काले साफ़-सुथरे केश गर्दन के पीछे जूड़े के रूप में बँधे होते हैं। परन्तु जावा के ग्रामीण लोग कभी सिर नङ्गा नहीं रखते। सिर को नंगा रखना वे धर्म-विरुद्ध समझते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। यह बात उनके रक्त में मिल चुकी है। जीवन-पर्यन्त वे अपने सिर पर 'कैन कपाल' पहनते हैं। यह छोटी-सी पगड़ी होती है और सिर पर बड़ी मनोहर देख पड़ती है।

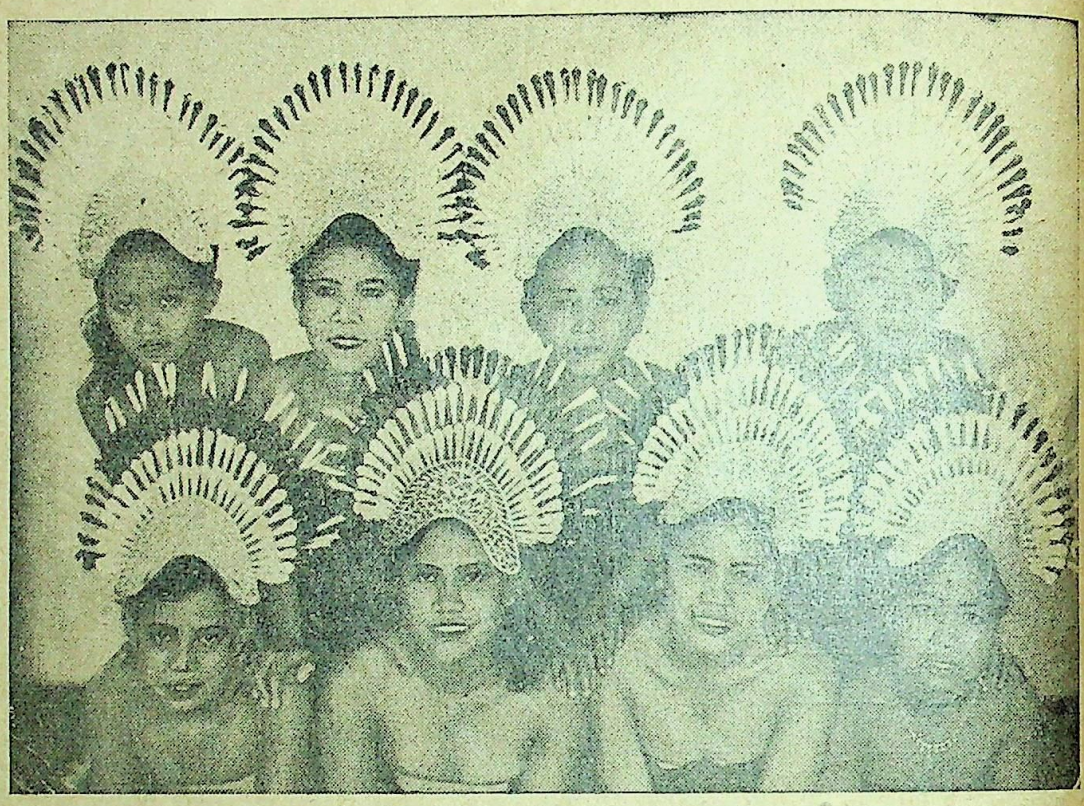

[देव-दासियाँ]

जावा-निवासियों ने पश्चिमी वेश को बहुत थोड़ा अपनाया है। क्या स्त्रियाँ और क्या पुरुष दोनों सारोङ्ग या तहमद पहनते हैं और धोती की तरह उसे कमर पर लपेट लेते हैं। यह उनका राष्ट्रीय वेश है। स्त्रियाँ सफ़ेद बेल-बूटे के कामवाली अँगिया के ऊपर भड़कीले रंग की मलमल का बना चुस्त कोट पहनती हैं। यह मलमल जितनी भड़कीली हो उतनी ही अच्छी समझी जाती है। खेतों आदि में काम करते समय वे ऊपर के वस्त्र उतार कर रख देती हैं। तब चमकीले रंग का तहमद (सारोंग) पहने उनकी पूर्ण त्वचा और साफ़ एवं सुडौल भुजाएँ कंधे और भुजाएँ बड़ी मनोहर देख पड़ती हैं।

[देवदासियों का एक नृत्य, बाली]

जावा के अधिकांश लोगों की गुज़र खेती पर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप नगर से बाहर किसी ओर भी निकल जाइए, आप को सब कहीं धान के खेत देख पड़ेंगे। आज से कुछ वर्ष पहले तक यहाँ केवल धान की ही खेती होती थी। परन्तु अब वह अवस्था नहीं रही। आज किसान लोग टट्टू पर या बैलगाड़ी में या बाँस के बड़े बड़े टोकरे बहँगी में लटकाये, सब प्रकार की तरकारी और दूसरी खेत की उपज लेकर, जुलूस का जुलूस, मण्डी को जाते हैं। उनको देखकर द्वीप की उर्वरता की याद प्रतिक्षण होती रहती है। जावा को परमेश्वर ने बड़ा उपजाऊ बनाया है। विभिन्न प्रकार का जल-वायु होने और विभिन्न ऊँचाई-वाले स्थानों में खेती करने के कारण इस भाग्यवान् देश में प्रायः सब प्रकार के फल, तरकारियाँ और अन्न उत्पन्न किये जा सकते हैं। वर्ष में दो फ़सलों का होना एक नियम-सा है।

जावा की मण्डियाँ, जहाँ जाकर ये फल और तरकारियाँ बिकती हैं, शोख़ रंगों से ख़ूब दमक रही हैं। नाना प्रकार के योरपीय फलों और तरकारियों के अतिरिक्त यहाँ अनन्नास, सेब, केला, आम, शकरकंद, मेङ्गोस्टीन, तारो, चमकीली लाल मिर्च आदि और भी अनेक फल होते हैं। यहाँ मांस और सब प्रकार की मछली, जीती और सुखाई हुई, मिलती है। पहनने की चीज़ें, कमीज़ें, जूते, बिजली का सामान, लोहे की चीज़ें, और जो भी आधुनिक फ़ैशन की वस्तुएँ आप चाहें यहाँ मिल जाती हैं। यहाँ के वस्तु-विक्रेता सुन्दर सारोङ्ग, दूध-सी सफ़ेद कमीज़, और बढ़िया पगड़ी पहने भगवान् बुद्ध की भाँति बैठे दीखते हैं।

यद्यपि इस छोटे-से द्वीप की जन-संख्या चार करोड़ से भी कुछ अधिक है तो भी आश्चर्य है कि यहाँ लोगों की भीड़ से पर्यटक का मन नहीं दुखता। कारण यह कि यहाँ बहुत भीड़वाले बड़े-बड़े नगर नहीं। इसके विपरीत लोग उपजाऊ खेतों और घाटियों में भलीभाँति बँटे हुए हैं। हमारे इस कोलाहलमय अशान्तकारी जगत् में जावा ही एक बड़ा शान्तिपूर्ण स्थान बचा हुआ है। यहाँ का जीवन ऐसे अच्छे ढंग से पूर्णता को प्राप्त है कि देखकर आश्चर्य होता है।

जावा की सड़कें संसार की सर्वोत्तम और सुखदायक सड़कों में से हैं। द्वीप के मध्य में से होकर, पश्चिम

[मन्दिर की राह पर—]

से सेएरबाया तक, मोटर से दो सहस्र मील की यात्रा बड़ी ही आनन्ददायक प्रतीत होती है। सड़कें इतनी साफ़ और समतल हैं कि पहाड़ों पर चढ़ते और नीचे उतरते समय उँचाई-निचाई का कुछ पता ही नहीं लगता। चलते-चलते जब कभी गरमी और कभी सरदी लगने लगती है तभी जान पड़ता है कि हम नीचे उतर आये हैं या ऊपर चढ़े हुए हैं। चतुर्दिक् विस्तृत दृश्य इतना सुन्दर है कि उस जैसा संसार के किसी दूसरे भाग में बहुत कम मिलेगा। ऐसे प्रदेश में से, जहाँ चप्पा भर भूमि भी बिना बोये नहीं छोड़ी गई, मोटर पर शीघ्रता से निकल जाइए। आपको धान के सहस्रों खेत मिलेंगे, परन्तु आनन्द की बात यह है कि उनमें से कोई दो भी, एक दूसरे के सदृश नहीं; मीलों गन्ने के खेत, छायादार रबड़ के बाग़ीचे, कापोक के पेड़, टीक के वन, मधुर सुगन्धिवाले जंबीरी नीबू, तम्बाकू, मकई और ऊपर जाकर पर्वतों में चाय और बहुमूल्य सिनकोना जिसमें से कुनीन निकलती है! संसार में जितनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुनीन उत्पन्न होती है उसका ९० प्रतिसैकड़ा से भी अधिक भाग डच ईस्ट इण्डीज़ ही में उत्पन्न होता है।

इस देश में जिधर भी चले जाइए, चाहे पर्वत हों और चाहे मैदान, सर्वत्र छोटे-छोटे मटियाले रङ्ग के सुखद घर वृक्षों के बीच बने मिलते हैं। उनमें बाँस के दरवाज़े और जँगले लगे हैं।

[बाली की स्त्रियाँ धान कूट रही हैं]

प्रायः प्रत्येक घर की अपनी एक छोटी-सी वाटिका है, जिसमें रंग-बिरंगे फूल खिले रहते हैं।

घर चीरे हुए बाँस के बनाये जाते हैं। वे बड़े साफ़-सुथरे और सजे-सजाये होते हैं। जावावालों को नहाने-धोने का बड़ा शौक़ है। सफ़ाई को वे अपना परमधर्म समझते हैं। वे दिन में दो बार स्नान करते हैं और अपने सोरङ्गों एवं अन्य वस्त्रों को ख़ूब साबुन लगा कर धोते हैं। उन्होंने बाड़े लगा कर नहाने-धोने के लिए छोटे-छोटे स्नानागार बना रक्खे हैं। उनमें वे अपने भूरे रंग के मोटे-ताज़े बच्चों को मल मल कर नहलाते हैं।

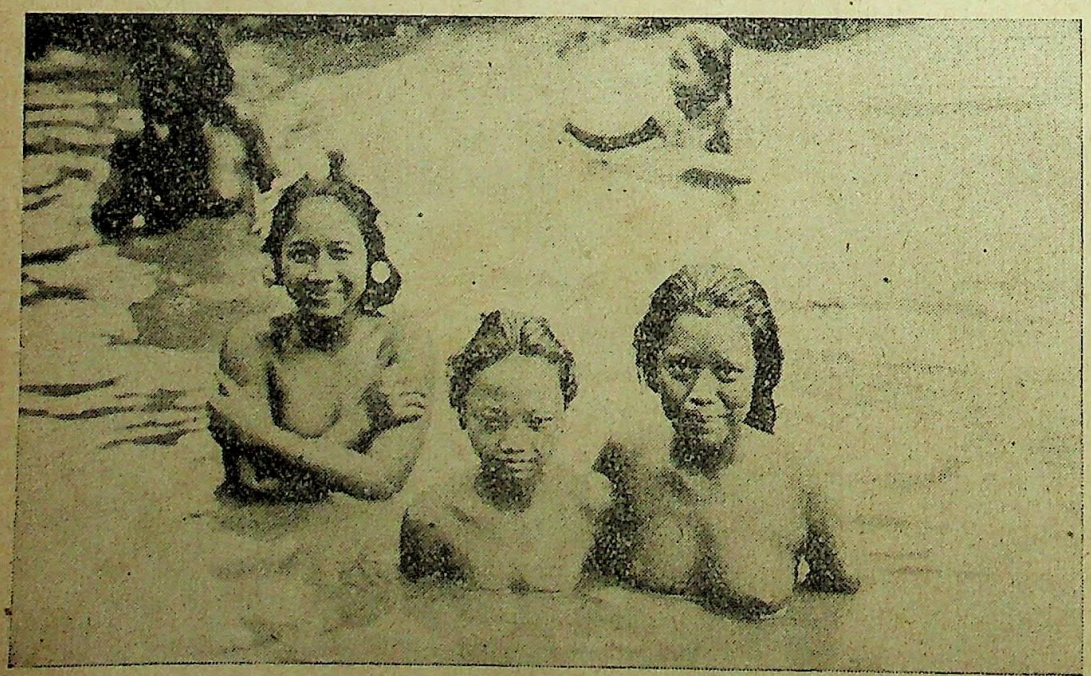

[नहाती हुई सुन्दरियाँ, बाली]

जावा के बाद बाली द्वीप का हाल सुनिए। यह पूर्व का रत्न कहलाता है। यह भूमध्य-रेखा से केवल आठ अंश दक्षिण के है। इसके और जावा के बीच केवल दो मील चौड़ी एक खाड़ी है। इसका क्षेत्रफल दो सहस्र वर्ग मील

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। भूमि असाधारण रूप से उपजाऊ है। इसमें ज्वाला-मुखियों का एक गुच्छा है, जिसकी ढलानें हरी-भरी हैं। इन पर से नदियाँ तीव्र गति से दौड़ती हुई स्थिरता के साथ सागर में गिर रही हैं।

इस प्रबुद्धकाल में, जब कि प्रचार और प्रसिद्धि के इतने अधिक सुसंगठित साधन विद्यमान हैं, जब कि जहाज़ों ने चप्पा-चप्पा समुद्रों को छान डाला है, कौन ऐसा है जिसने बाली का नाम न सुना हो। यह द्वीप कुछ देर पहले मृत्युलोक में एक स्वर्ग था। इसको देखे बिना ईस्ट इण्डीज़ की यात्रा अधूरी रहती है। लेखकों ने इस अद्भुत द्वीप की अनेक सुन्दरताओं का वर्णन शब्दों-द्वारा और चित्रकारों ने चित्रों-द्वारा करने का यत्न किया है, परन्तु जब तक अपनी आँखों न देखा जाय इस देश की और इसके लोगों की चारुता एवं अद्भुतता का सम्यक् ज्ञान होना कठिन है।

जावा के इतना निकट होने के कारण स्वभावतः ही मनुष्य की धारणा होती है कि दोनों टापुओं की अवस्था और लोगों का जीवन एक-दूसरे के सदृश ही होगा। परन्तु ऐसी बात बिलकुल नहीं। इस द्वीप का जगत् जावा से बिलकुल भिन्न है, लोग भिन्न हैं, उनकी भाषा भिन्न है और रीति-रवाज भिन्न हैं। बालीवालों का संगीत बड़ा ही तीव्र, रुचिकर और हृदय-स्पर्शी है। इनके नाच और मन्दिरों के पर्व देखकर मन में रह-रह कर प्रेरणा होती है कि कुछ दिन यहाँ ठहर कर इन मनोहर लोगों की संस्कृति एवं कला-सम्बन्धी परम्परागत रीति-रवाजों और सामान्य विशेषताओं का अध्ययन किया जाय।

बाली के अधिवासी कोई जंगली मनुष्य नहीं और न अनेक दूसरी जंगली जातियों की भाँति कोई मरणोन्मुख जाति हैं। यहाँ की जन-संख्या लगभग बारह लाख, अथवा ५०० मनुष्य प्रतिवर्ग मील है। गत दस वर्ष में उत्पत्ति का परिमाण निरन्तर बढ़ता रहा है। गत एक सहस्र वर्ष से भी अधिक का इस द्वीप का इतिहास युद्धों, आक्रमणों और जीवों का एक अनुक्रम है। तीस वर्ष से थोड़ा अधिक समय हुआ जब बाली-निवासियों ने उनके देश में बलात् घुसनेवाली पाश्चात्य सभ्यता का अन्तिम मुक़ाबला किया परन्तु उन्हें डच शासन के आगे नत-मस्तक होना पड़ा।

यहाँ के लोग प्रकृति के साथ जितना निकट सम्पर्क

[बाज़ार की राह में]

रखते हैं, अथवा जनता और उसकी परिस्थितियों के बीच सामञ्जस्य का जितना पूर्ण भाव इन लोगों में है उतना शायद ही किसी दूसरी जाति में हो। एक लेखक के शब्दों में, बाली-निवासियों के पतले शरीर उस देश के प्राकृतिक दृश्य का वैसा ही अंश हैं जैसे कि वहाँ के ताड़ और रोटी-फल के पेड़ और उनकी चिकनी चमड़ियाँ वैसी ही झलक देती हैं जैसी कि वहाँ की भूमि और मटियाली नदियाँ, जिनमें वे नहाते हैं। हरे, भूरे और गेरुवें रंग की दृश्यावली में यत्र तत्र चमकीले रङ्ग की चौखटें और नाना वर्णों के सुन्दर पुष्प बहुत भले देख पड़ते हैं।

बाली-द्वीप की स्त्रियों का सौन्दर्य अपना विशेष है। ये बहुत थोड़े वस्त्र पहनती हैं। इनके शरीर छोटे परन्तु सुसंगठित, बाँहें पतली और हाथ कोमल, मिस्री संस्कृति का स्मरण कराते हैं। बचपन से ही स्त्रियाँ सिर पर बोझ लेकर मीलों चलती हैं। इससे उनमें सुन्दर सन्तुलन और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालयुक्त गति उत्पन्न हो जाती है, जो आयु-पर्यन्त बनी रहती है।

बाली-निवासी चिकनी और साफ़ त्वचा और सुनहरी रंगत को बहुत पसन्द करते हैं। वहाँ की सुन्दर लड़कियाँ धूप में शरीर को जलाना बहुत बुरा समझती हैं। त्वचा को ठीक रखने के लिए वे नहाते समय शरीर को खूब मलती और स्नान के उपरान्त नारियल के तेल की मालिश करती हैं।

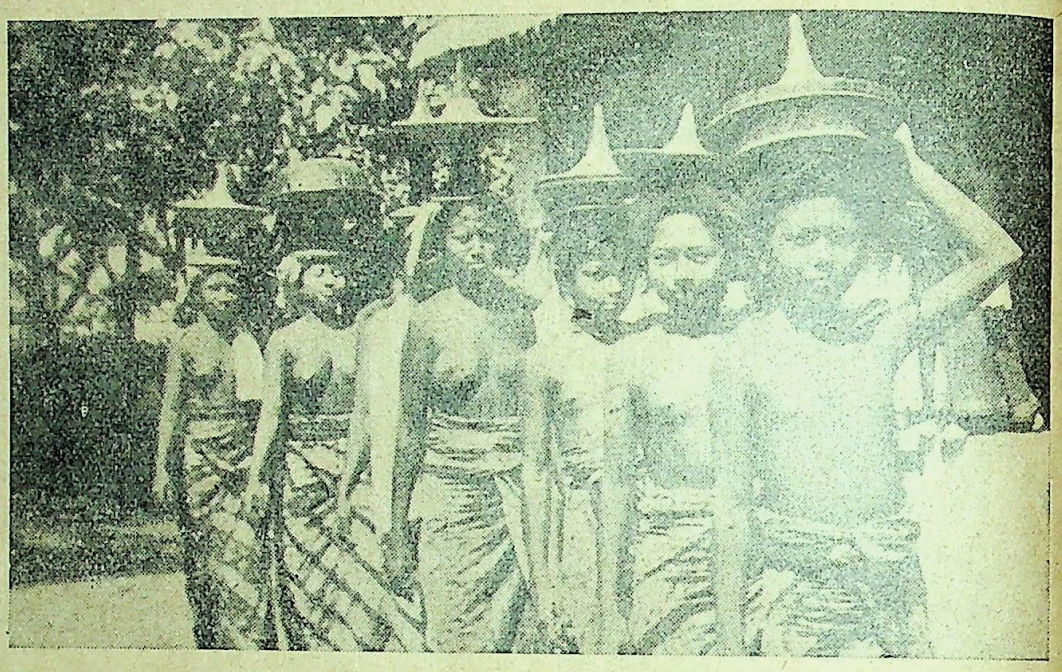

[पूजा के सामान के साथ]

एक बड़ी उल्लेखनीय बात यह है कि सामान्य बाली-निवासी एक अच्छा कलाकार है। प्रत्येक व्यक्ति, राव से रङ्क तक, क्या स्त्री और क्या पुरुष, नाचना जानता है। कोई न कोई वाद्य बजा सकता है, बुनना, चित्रकारी या लकड़ी और पत्थर पर खोदना जानता है। निर्धन से निर्धन और छोटे से छोटे गाँव में भी आपको बहुधा एक बड़ी कारीगरी से बनाया हुआ मन्दिर या अभिनेता-मण्डली या आश्चर्यजनक रूप से उत्तम गायक-वादक मण्डली मिलेगी। पुरुष चित्रकारी करते, लकड़ी और पत्थर को खोद कर मूर्तियाँ गढ़ते या खेलते हैं। स्त्रियाँ नाच सकती हैं और रंग और बुनावट की दृष्टि से बुनकर अतीव सुन्दर चीज़ें बना सकती हैं। परन्तु स्त्री-कलाकार का कमाल देवताओं को भेंट करने की चीज़ें बनाने में देखा जाता है—जैसा कि सुन्दरता के साथ काटे हुए ताड़ के पत्ते या फलों, फूलों वरन केकों और दूसरे खाद्य-पदार्थों के भी सूची-स्तम्भ—इनकी रचना बड़ी जटिल होती है। ये बड़े क़रीने के साथ बनाये जाते हैं। कभी-कभी तो इनकी उँचाई पाँच-छः फ़ुट तक भी पहुँच जाती है।

इन लोगों में कला का इतना उन्नत ज्ञान केवल परम्परा के कारण ही नहीं हो सकता, वरन इसके अतिरिक्त इनमें आत्माभिव्यक्ति के लिए स्वाभाविक तथा अनिवार्य प्रेरणा होती है, साथ ही जीवन की आवश्यक वस्तुओं की प्रचुरता के कारण इनको कलाकौशल की उन्नति के लिए अवकाश भी मिल जाता है। इस देश की यह विशेषता बनी रहेगी या आधुनिक सभ्यता का प्रचण्ड आक्रमण अन्त को इसका गला घोंट देगा, इस प्रश्न का उत्तर आनेवाली पीढ़ियाँ ही देंगी। इस बीच में बाली की स्त्रियाँ और पुरुष आदिम सरलता और परिष्कृत कला-सम्बन्धी संस्कृति का मिश्रण बने हुए हैं। एक ओर तो वे सीधे-सादे कच्चे मकानों में रहते और प्रायः नंगे फिरते हैं, और दूसरी ओर वे खुदे हुए पत्थर के बड़े श्रम से बनाये हुए मन्दिरों में पर्वों पर इकट्ठे होते हैं, अपने शरीर को रेशम और स्वर्ण से सजाते हैं, प्रकृति की पूजा करते हैं, और पुष्प, भोजन, संगीत, नृत्य और कला की ऐसे वस्तुओं के द्वारा देवताओं का पूजन करते हैं जो बहुत उन्नत और निपुण कलाकार ही बना सकता है।

बाली-द्वीप में मनुष्य-जाति का एक ऐसा वंश रहता है जिसमें शताब्दियों से सहयोग-सामाजिक व्यवस्था है, जिससे वे आर्थिक दृष्टि से किसी दूसरे के मोहताज नहीं। उनके सब काम आपस में ही पूरे हो जाते हैं। खाद्य-पदार्थों की प्रचुरता और निश्चिन्तता, आश्चर्यजनक रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उपजाऊ भूमि और बहुत उत्तम जल-वायु के कारण इन लोगों ने अपने अवकाश के समय को कला एवं संस्कृति की उन्नति में लगाया है और धन-दौलत की अपेक्षा यह उन्नति कहीं अधिक मूल्यवान है। इस आर्थिक निश्चिन्तता और सांस्कृतिक सिद्धियों का आधार वह अति योग्य व्यवस्था थी जिसमें विनिमय के माध्यम के रूप में रुपया अपना सच्चा काम देता था और प्रत्येक मनुष्य को जीवन की आवश्यक वस्तुएँ प्रचुर परिमाण में प्राप्त रहती थीं।

दुर्भाग्य से ऐसे लक्षण प्रकट हो रहे हैं जिनसे पता लगता है कि यह अवस्था शीघ्रता से बदल रही है। यद्यपि आधुनिक व्यापारवाद का यहाँ प्रविष्ट हुए तीस वर्ष से अधिक काल नहीं हुआ है, फिर भी आज इस बात के निश्चित चिह्न दीख पड़ते हैं कि आर्थिक और साम्पत्तिक व्यवस्था के कार्य ने राष्ट्रीय सम्पत्ति के बहुत बड़े परिमाण में देश से बाहर निकलते रहने और टैक्सों के लगने के कारण, उस सहयोग-सामाजिक अवस्था को तोड़ डाला है जो शताब्दियों तक इतना अच्छा काम देती रही थी, और इस साभिमान और सुसंस्कृत जाति का क्रमशः शारीरिक और नैतिक ह्रास हो रहा है।

टैक्स लगाना वर्तमान शासन-पद्धति का एक आवश्यक अंग है। इससे बाली-निवासियों को अपना सर्वोत्तम चावल बहुत बड़े परिमाण में विदेश भेजना पड़ता है, और साथ ही सूअर और गाय-भस भी। केवल चार वर्ष हुए जब बाली-निवासियों ने इतिहास में पहली बार दरिद्रता और अभाव-जनित कष्टों का अनुभव किया। उनकी उपज का मूल्य विदेश में बहुत अधिक गिर जाने के कारण उनके लिए रुपये का प्राप्त करना अधिक और अधिक कठिन होता गया। अनेक दशाओं में तो क्लेश इतना बढ़ गया कि कर का ऋणशेष चुकाने के लिए उनकी भूमि नीलाम कर दी गई। यह सब उस काल में हुआ जिसमें डच इण्डीज़ का निर्यात आयात से बहुत अधिक था, अर्थात् आयात ३०,०००,००० पौंड था तो निर्यात १००,०००,००० पौंड। जो देश अपने खाद्य-पदार्थ इतने बड़े परिमाण में बाहर भेजेगा उसके लिए अकाल और क्षुधा का दारुण दुःख सहना अवश्यम्भावी है।

डच लोगों ने अब इन लोगों को कुलियों की जाति बना दिया है। अब आर्थिक सन्तुलन को क़ायम करने के लिए उपाय हो रहे हैं। देश में आर्थिक प्रलय उपस्थित हो रहा है। फलतः आधुनिक व्यापारवाद और नाम-मात्र सभ्यता के निर्दय आक्रमण से इन साभिमान लोगों का उच्च नैतिक आदर्श अवश्य नष्ट हो जायगा।

समीर की चाह

लेखक, कुँवर हरिश्चन्द्रदेव वर्मा 'चातक' कविरत्न

चाह नहीं है सुमनों का
सौरभ पाकरके इठलाऊँ।
चाह नहीं है प्यारी का
सन्देशा प्रिय तक पहुँचाऊँ।

चाह नहीं है अलिबाला से—
गान सीख करके गाऊँ।
चाह यही है, वीर-ध्वजा से—
क्रीड़ाकर मैं सुख पाऊँ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिस्त्री

लेखक, श्रीयुत इलाचन्द्र जोशी

श्रीमती जी की सिंगर मशीन बिगड़ गई थी और उसके बिना उन्हें दिन काटना दूभर हो रहा था। वे रोज़ मुझसे इस बात के लिए जवाब तलब करके परेशान कर रही थीं कि मैं जल्दी उसे किसी मिस्त्री के हवाले करके ठीक क्यों नहीं करा लेता। इधर मैं यह सोच रहा था कि नियमित रूप से चलनेवाली मशीन की खटर-खटर से कुछ समय के लिए छुट्टी पाने का जो मौक़ा दैवयोग से आ पड़ा है उसे जल्दी हाथ से क्यों जाने दिया जाय! पर श्रीमती जी के 'रिमाइण्डरों' के मारे भी तो नाकोंदम था। मैं फिर भी कुछ समय के लिए और टालता, पर अन्त में जब नौबत यहाँ तक पहुँच गई कि श्रीमती जी ने मुझसे खुट्टी कर लेने का निश्चय कर लिया और यह कहकर धमकी दी कि नन्हे को लेकर वह शीघ्र ही मायके चली जायँगी और वहीं उसके लिए 'फ्राक' सीएँगी तो मुझे अपना विचार बदलना पड़ा और मैंने मशीन को किसी मिस्त्री के पास ले जाने का इरादा कर लिया। पर मिस्त्री कहाँ मिलेगा, इस बात की मुझे कुछ भी जानकारी नहीं थी। मैंने अपने जीवन में यह मशीन प्रथम बार, अपनी नवोढ़ा पत्नी के अनुरोध से कुछ ही मास पूर्व ख़रीदी थी। अतएव मुझे इस बात का कुछ भी पता नहीं था कि उसका कौन पुर्ज़ा कैसे ख़राब होता है और उसे ठीक कराने के लिए किस मिस्त्री के पास जाना होगा। अपने एक तजुर्बेकार मित्र के आगे मैंने जब अपनी दिक़्क़त पेश की तो उन्होंने कहा कि वह एक मिस्त्री को जानते हैं जो काम में होशियार तो अवश्य है, पर है बड़ा आलसी। जब तक उसे अपने पास बुलाकर अपने सामने ही काम न करवाया जाय तब तक वह कुछ करता नहीं। उन्होंने दो-एक दिन के भीतर ही उसे मेरे पास भेजने का वचन दिया।

उस दिन रविवार था। मुझे आफ़िस जाना नहीं था। इसलिए यद्यपि दस बज चुके थे, मैंने अभी तक नहाया-धोया तक न था और बड़ी फ़ुर्सत से, आराम के साथ बाहर के कमरे में बैठा हुआ अख़बार पढ़ रहा था। इतने में किसी ने बाहर से 'बाबू साहब! बाबू साहब'! कहकर पुकारा। मैंने बरामदे में जाकर देखना चाहा कि कौन है। बाहर एक अनोखी शक्ल सूरत का आदमी खड़ा था। ग़ौर से देखने से मालूम होता था कि उसकी आयु चालीस से कम ही होगी, अधिक नहीं। पर सरसरी निगाह से उसे देखने पर कोई उसे ६० वर्ष से कम का न बताता। उसका मुँह एकदम सूखा हुआ था। उसमें स्थान-स्थान पर इतनी झुर्रियाँ पड़ गई थीं कि उन्हें गिनना असम्भव था। सर के बाल आधे पक गये थे। आँखों में वह चश्मा लगाये हुए था। एक फटी और वर्षों से मैली पड़ी हुई धोती और उसी तरह के कुर्ते के साथ ऐनक लगाने से वह व्यक्ति विचित्र स्वाँग का-सा दृश्य आँखों के आगे खड़ा कर रहा था। हाथ में वह कुछ औज़ार लिये था।

मैंने पूछा—"किसे खोजते हो?"

"आपकी कोई मशीन ठीक करनी है क्या?"

"हाँ, चले आओ।"

उसे बाहर के कमरे में बिठाकर मैंने अपने नौकर से मशीन ले आने के लिए कहा।

मशीन जब उसके पास लाकर रख दी गई तो उसने एक बार परीक्षा की दृष्टि से सरसरी तौर पर उसे देखा और देखकर कहा—"मशीन तो आपकी नई है। पर, साहब, सिंगर कम्पनी अब वह माल नहीं देती जो पहले दिया करती थी। क्या ज़माना आया है, बाबू साहब! छोटे-मोटे तिजारती तो बेईमानी करते ही थे, पर अब बड़ी-बड़ी कम्पनियों की नीयत भी बदलने लगी है। कम्पनियाँ ही नहीं, बड़े-बड़े वकील-बैरिस्टर, जज, कमिश्नर सभी के सुभाव बदल गये हैं और जो दरिया-दिल लोग पहले दिखाई देते थे वे अब क़तई नहीं दिखाई देते। और बड़े आदमियों की औरतें तो ऐसी कम-नीयत और कञ्जूस होती जाती हैं कि उनसे मिलने पर ग़ुस्सा आये बिना नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता। बात असल में यह होती है कि वे होती हैं छोटे घरों की और ब्याही जाती हैं बड़े घरों में। न उनके बाप ने कभी पैसा देखा न उनके बाबा ने, इसलिए जब ससुराल जाती हैं तो नीयत वैसी की वैसी ही बनी रहती है। अभी मैं एक एडवोकेट साहब के यहाँ से आ रहा हूँ। बड़ा भारी उनका बँगला है, बड़ा भारी कारोबार है, ख़ूब कमाते हैं, पैसे की कोई कमी नहीं है। उनकी मेहरारू की सिंगर मशीन बिगड़ गई थी। मैंने उसे घर ले जाकर ठीक किया और कुछ पुराने पुर्ज़ों को निकालकर उनकी जगह में नये पुर्ज़े जोड़कर उसे दुरुस्त कर दिया। उनकी नई मशीन भी शायद इतनी अच्छी तरह से न चलती होगी जैसी कि अब चलने लगी है। पर जब मैंने मजूरी माँगी तो कहने लगीं कि जो पुराने पुर्ज़े तुमने इसमें से निकाले हैं उन्हें जब तुम इसमें वापस करोगे तब मजूरी मिलेगी। यह है बड़े घरानों की औरतों की नीयत का हाल! सच बात तो यह है बाबू साहब, कि औरत ज़ात ही ऐसी तंगदिल होती है....."

मैंने देखा कि आदमी बड़ा बातूनी है। बातों के चक्कर में डालकर वह व्यर्थ ही मेरा और अपना भी काफ़ी समय नष्ट कर डालेगा। इसलिए बीच ही में बात काटकर मैंने कहा—"अच्छा यह तो देखो कि इस मशीन में ख़राबी कहाँ पर आ गई है।"

"वह तो मैं पहले देख चुका हूँ, बाबू साहब! किसी मशीन को देखते और छूते ही मैं बता सकता हूँ कि उसका कौन पुर्ज़ा ख़राब हुआ है। यह तो आपकी कपड़ा सीने की एक छोटी-सी मशीन है। किसी फ़ैक्टरी की बड़ी से बड़ी मशीन की जाँच सिर्फ़ दो मिनट के लिए करने पर मैं बता सकता हूँ कि कौन पुर्ज़ा ढीला या टेढ़ा हुआ है। मुझे तो ऐसा लगता है कि मैं पेट से ही मशीनरी का काम सीखकर आया था। पर दिल्लगी देखिए कि मैं पैदा हुआ एक जौहरी के घर! अपने कुल में मिस्त्री का पेशा करनेवाला मैं ही पहला आदमी हूँ।"

इस विचित्र व्यक्ति के जीवन के सम्बन्ध में मेरी दिलचस्पी अवश्य बढ़ रही थी, पर साथ ही इस बात से भी मैं घबरा रहा था कि काम में व्यर्थ की देर हुई जाती है। मैंने काम की ओर उसका ध्यान आकर्षित करने के इरादे से कहा—"तो तुम्हें मालूम हो गया है कि मशीन कहाँ पर बिगड़ी है?"

"जी हाँ।" कहकर उसने एक औज़ार से मशीन के जुड़े हुए टुकड़ों को खोलना शुरू कर दिया और खोलते हुए कहा—"एक बर्तन में मिट्टी का तेल मँगाइए।" मैंने नौकर से कह दिया। वह एक शिलफ़ची में तेल ले आया। पुर्ज़ों को खोलकर शिलफ़ची में डालते हुए उसने कहा—"मेरी तो यह इच्छा थी बाबू साहब, कि विलायत जाकर हवाई जहाज़ का काम सीख आऊँ। पर क्या बताया जाय, सिर्फ़ एक बात की वजह से वहाँ जा नहीं पाता। मैंने सुना है कि वहाँ अफ़ीम नहीं मिलती और अफ़ीम के बिना मैं एक दिन भी नहीं जी सकता।"

मैंने कहा—"कौन कहता है कि विलायत में अफ़ीम नहीं मिलती? अफ़ीम तो वहाँ ज़रूर मिलनी चाहिए।"

उसने अधिकार के साथ कहा—आप नहीं जानते। एक मेम साहब के यहाँ मैंने काम किया था। उससे मैंने जब विलायत जाने की बात चलाई तो उसने कहा—"मिस्त्री, तुम विलायत में बिना अफ़ीम के मर जाओगे। वहाँ अफ़ीम नहीं मिलती।"

"अफ़ीम की आदत तुम्हें कब से और कैसे पड़ गई?"

उसने कहा—"पन्द्रह बरस से मैं बराबर अफ़ीम खाता आया हूँ। कैसे इसकी लत मुझे पड़ गई, यह मैं आपसे क्या बताऊँ! पर हाँ, इतना मैं आपसे ज़रूर कहूँगा कि इस लत ने मुझे तबाह कर दिया। पर इसे भी दोष देना ठीक नहीं है। सच बात यह है कि मेरे पिछले जनम के करम ही ऐसे रहे हैं कि इस जनम में एक दिन के लिए भी यह नहीं जाना कि सुख किसे कहते हैं। यह ज़रूर है कि अफ़ीम के नशे में मैं अपने दुखों को भूला रहता हूँ। आपको मालूम होना चाहिए कि यह शाही नशा है और नशे की हालत में अफ़ीमची लाट की भी परवा नहीं करता। पर नशा आख़िर नशा ही है। वह कुछ समय के लिए आदमी की मति बदल देता है, बस। इसके अलावा दुख के जो काँटे मेरे कलेजे को छेदते रहे हैं वह नशे से कहाँ तक दबाये जा सकते हैं।"

मैंने देखा कि वह बातूनी अफ़ीमची तब तक शान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होगा जब तक वह अपने मर्मोद्गार पूरी तरह से निकाल न ले। उसकी जीवन-कथा जानने की भी कुछ उत्सुकता मेरे मन में उत्पन्न हो गई थी। मैंने उसके जीवन के सम्बन्ध में उससे दो-एक प्रश्न और किये। अपने सम्बन्ध में मेरा जिज्ञासु-भाव देखकर वह ऐसा उत्साहित हो उठा कि आवेश में आकर हाथ का 'रिञ्च' ज़मीन पर रखकर मुझे अपनी राम-कहानी सुना चला।

× × ×

"अपने कुल में मैं ही पहला आदमी हूँ जिसने मिस्त्री का पेशा अख़्तियार किया है। मेरे बाप-दादा जौहरी थे। पिता जी साल में छः महीने रियासतों में चक्कर लगाकर जवाहरात बेचते थे और बाक़ी छः महीने घर बैठकर राग-रंग में कमाये हुए रुपयों को उड़ाते थे। उनके पास कितनी पूँजी रही है, इसका ठीक अन्दाज़ कभी कोई न लगा सका। इस बारे में तरह-तरह के लोग तरह-तरह की बातें किया करते थे। कोई कहता था कि उनके पास पन्द्रह लाख रुपये हैं और कोई कहता था पन्द्रह हज़ार। मेरा तो इस समय यह ख़याल है कि दोनों ही बातें सच थीं। पर उस समय इस बात की कोई चिन्ता ही पैदा न हुई कि मेरे बाप के पास कितना धन है। हम दो भाई थे और दोनों ही बड़े मौज से और ठाठ से रहते थे।

"बाबू जी ने बहुत कोशिश की कि मैं लिखना-पढ़ना सीखूँ। पर मैं कभी एक दिन के लिए भी किताबों में जी न लगा सका। तीन मास्टर मुझे पढ़ाने आया करते थे, पर मैं उन्हें इस बात का भरोसा देकर कि मेरे न पढ़ने पर भी उन लोगों की नौकरी बरक़रार रहेगी और यह जताकर कि मेरी पढ़ाई पर ज़ोर देने से ही उनके बरख़ास्त होने का डर है, उन्हें धता बताकर आवारा फिरता रहा। मेरा छोटा भाई बलदेव मुझसे पाँच साल छोटा था। वह पढ़ने-लिखने में बड़ा तेज़ था। मेरी हरकतों से बाबू जी और मास्टर सभी तंग आ गये थे, पर बलदेव का झुकाव किताबों की ओर देखकर सबकी जान में जान आई।

"मैं छुटपन से ही गँजेड़ियों और भँगेड़ियों के संग में रहकर मौजों में बहा करता था। बाबू जी मेरे चाल-चलन और रंग-ढंग से कैसे ही नाराज़ क्यों न रहे हों, पर उन्होंने कभी मेरे लिए किसी बात की कमी न होने दी। वह ख़ुद ऐयाश-तबीयत आदमी थे, इसलिए उन्होंने रुपये-पैसे की परवा कभी न की और जब मैं जो चीज़ उनसे चाहता, वह मुझे ज़रूर मिल जाती। मेरी माँ मेरे बचपन में ही मर चुकी थीं, इसलिए बाबू जी मेरे माँ-बाप दोनों ही थे।

"पिता जी की पूँजी भीतर ही भीतर किस क़दर खोखली होती चली जाती है इस बात की मुझे कुछ भी ख़बर नहीं थी। अचानक एक दिन जब दिल की बीमारी से वह इस संसार से चल बसे तो मेरे ऊपर वज्र का पहाड़ टूट पड़ा। मुझे जब मालूम हुआ कि बाबू जी के ऊपर कई हज़ार का क़र्ज़ा चढ़ा हुआ है और अपना कहने को उनके पास कई महीनों से कुछ भी नहीं रह गया था। उनकी दिल की बीमारी का कारण क्या था, यह बात समझने में मुझे देर न लगी। पर अपने जीते-जी उन्होंने हम लोगों को ज़रा-सी भी ख़बर इस बात की न होने दी कि उन पर कैसी बीत रही है। शायद वह इस आशा में थे कि किसी मौक़े से वह अपनी हालत सँभाल लेंगे।

"कुछ भी हो, अब सारे घर का भार पड़ा मेरे ऊपर। कुछ समय तक तो मैं सब रंग-ढंग देखकर ऐसा हक्का-बक्का रह गया कि मुझे ऐसा विश्वास होने लगा कि मैं पागल हो जाऊँगा। पर बलदेव को मैं जी-जान से चाहता था और मैं नहीं चाहता था कि वह उस कच्ची उम्र में ही पढ़ना-लिखना छोड़ कर नोन-तेल-लकड़ी की चिन्ता में लग जाय। मैंने कमर कसी और प्रण कर लिया कि जिस किसी भी उपाय से उसे बी० ए० तक पढ़ाऊँगा, बल्कि वकील बनाकर छोड़ूँगा। कल-पुर्ज़े के काम में मुझे पहले से ही दिलचस्पी थी। मिस्त्रियों के साथ गाँजा पीकर मैंने मोटर से लेकर छोटी से छोटी सभी कलों का काम थोड़ा-बहुत सीख लिया था। अब अच्छी तरह से सीखना शुरू कर दिया और निश्चय कर लिया कि इस पेशे में सबसे बाज़ी मारूँगा। भगवान की कृपा से हुआ भी यही। जिसने एक बार मेरा काम देखा उसने फिर कभी दूसरे मिस्त्री को न पूछा। शहर के सभी बड़े-बड़े साहबों और रईसों की मोटरें मुझी को ठीक करने के लिए मिलती थीं। मैं ख़ुद आधा पेट खाकर बलदेव को अच्छा खाना खिलाता (उसके मन के मुताबिक़ खाना न मिलने से वह फेंक दिया करता था), भरसक बढ़िया कपड़े उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए ख़रीदता; किताबों और फ़ीस वग़ैरह का ख़र्चा तो लगा ही था।

"जब वह इण्ट्रेन्स पास करने के बाद इण्टरमीडिएट की भी पढ़ाई ख़तम कर चुका तो उसने लखनऊ जाकर बी० ए० पढ़ने का विचार किया। मैंने कई जोड़े बढ़िया-बढ़िया सूट सिलवाकर चमड़े का एक 'फ़र्स्ट किलास' सूटकेस, दो जोड़े फ़ैशनदार जूते, एक होलडाल, बिस्तर का सब नया सामान ख़रीद कर और किताबों और पहले महीने की फ़ीस के लिए क़रीब डेढ़ सौ रुपया उसके हवाले करके किसी भले आदमी के लड़के के साथ उसे लखनऊ भेज दिया। तब से हर माह मुझे साठ या सत्तर रुपए उसके लिए भेजने पड़ते थे। मोटरों के अलावा मैं और भी तरह-तरह की मशीनों का काम अपने हाथ में लेने लगा और किसी तरह मर-तरकर ज़्यादा से ज़्यादा रुपया कमाने की कोशिश करता हुआ बलदेव की पढ़ाई का ख़र्चा जुटाने में लगा रहता। बीच-बीच में उसे इन साठ-सत्तर रुपयों के अलावा सौ-पचास रुपया और भी भेजना पड़ता। कभी वह लिखता कि उसके कुछ रुपये चोरी हो गये हैं, कभी लिखता कि किसी लड़के ने उधार माँग लिये, फिर नहीं दिये, कभी लिखता कि इस महीने एक ख़ास चीज़ की पढ़ाई के लिए कुछ फ़ीस और देनी पड़ेगी। पर मेरे पहचानवालों में से जो लखनऊ आते-जाते थे उनसे पूछने पर वे कहते कि वह बड़े ठाठ से रहता है और सैर सपाटे में अपने साथियों के साथ रुपये उड़ाता रहता है। मैं सोचता कि बुरा क्या है, यही तो बेचारे के मौज के दिन हैं। मैंने नशा-पानी एकदम कम कर दिया था, क्योंकि उसमें एक तो काम कम हो पाता था, दूसरे बेकार का ख़र्चा बढ़ जाता था। मैं चाहता था कि अपने खाने-पीने और किराये के ख़र्चे में से जितना भी बचा पाऊँ वह सब बलदेव के लिए भेज दूँ।

"कुछ भी हो, किसी तरह करते-कराते बलदेव ने बी० ए० पास कर लिया और इसके बाद वकालत के इम्तहान में भी वह पास हो गया। जब वह लखनऊ की पढ़ाई ख़तम करके घर वापस आया तो मैं मारे ख़ुशी के फूला न समाया। इच्छा होती थी कि उसे प्यार से जी भरकर गले लगा लूँ, पर उसका ठाठ-बाट और अपने को फटे हाल देखकर हिम्मत नहीं पड़ती थी।

"मैंने फ़ौरन उसके लिए एक योग्य लड़की खोजने का काम शुरू कर दिया। बड़ी दौड़-धूप के बाद बनारस में एक ऐसी लड़की का पता चला जिसका रूप-रङ्ग देखकर उसी दम मेरे मन में यह बात समा गई कि दोनों की जोड़ी बहुत सुन्दर रहेगी। बड़ी धूमधाम से मैंने ब्याह किया। बहू जब घर आई तो मुझे ऐसा मालूम होने लगा जैसे बरसों से उजड़ा हुआ मेरा घर बस गया। बलदेव सचमुच बहू को देखकर निहाल हो गया था और उसे सुखी देखकर मेरा मन मारे आनन्द के उछल पड़ता था। बहू जब मुझे देखकर घूँघट काढ़ कर सर नीचा करके खड़ी रहती तो मेरा जी चाहता कि उसके दोनों पैरों पर गिड़गिड़ा पड़ूँ और उस साक्षात् लक्ष्मी माता से वरदान माँगूँ कि मेरा यह सुख जनम-जनम तक इसी तरह बना रहे। पर पैरों पर पड़ने की हिम्मत न पड़ती।

"हमारा शहर छोटा होने पर भी वहाँ वकीलों की तादाद इतनी बढ़ी हुई थी कि वकालत का पेशा एकदम चौपट हो गया था। बलदेव की तो यह हालत थी कि वह महीने में ३०-४० रुपये भी नहीं कमा पाता था। इतने से उसके पान-सिगरेट का ख़र्चा भी नहीं चलता था। पर मुझे इस बात का कोई दुःख नहीं था और मैं अपने प्यारे भाई और बहूरानी को भरसक सुखी रखने की पूरी कोशिश करता। मैं दिन-रात खटता था और इतना कमा लेता था जितने से सारा कुटुम्ब बिना किसी चिन्ता के सुख से रह सके।

"ब्याह होने के डेढ़ साल बाद ही बहूरानी ने एक लड़के को जनम दिया। बड़ा प्यारा बच्चा था, बाबू साहब! उसका नाम रखा सुखदेव। पैदा होने के कुछ ही महीने बाद ही वह मुझसे ऐसा हिल-मिल गया कि क्या बताऊँ। मुझे देखते ही पालने पर उछल पड़ता था और मेरे चुमकारने पर अपने दोनों होठों को खोलकर तानता और मुसकराकर खिलखिलाने की कोशिश करता और मुँह में ऊँगली डालकर अपनी तुतली बोली में न जाने प्यार की कौन सी बात मुझसे करता। उसने मुझे अपने माया-जाल में ऐसा जकड़ लिया बाबू साहब, कि काम से मेरा जी हटने लगा और चौबीसों घण्टे उसी को गोद में लेकर रहने को जी चाहता था। पर काम न करूँ तो घरवाले खायँ क्या? लेकिन, विश्वास कीजिए, काम में मेरा जी अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिलकुल नहीं लगता था और मैं चाहे किसी से बातें करता होऊँ, चाहे कोई काम करता होऊँ, उसी का मुसकराना, खिलखिलाना और तुतलाना मेरे मन को अनमना-सा बनाये रहता। क्या बताऊँ भूत की तरह उसकी याद हर घड़ी मेरे मन को घेरे रहती। न जाने पूर्व जन्म का कौन बैर साधने वह मेरे घर आया था।

'जब काम में मेरा जी ही नहीं लगता था तो यह बात मानी हुई समझ लीजिए कि मेरी आमदनी भी पहले से बहुत घट गई। अब मैं इस बात की चिन्ता में लगा कि बलदेव को कहीं नौकरी मिल जाय। मैंने सोचा कि मैंने इतने दिनों तक कमाया-धमाया है और उसे पाल-पोस कर पढ़ा-लिखा कर इस लायक़ बना दिया है कि वह कहीं नौकरी करके मेरी परवरिश करे। मैं अब बुड्ढा हुआ जाता हूँ, इतने दिनों तक जी-तोड़ कर मेहनत की, एड़ी-चोटी का पसीना एक किया है, अब कब तक! अब मैं सिर्फ़ अपने प्यारे भैया के, सुक्खू को लेकर उसे गोद में खेला कर आराम से रहना चाहता हूँ।

"पर बलदेव में इतना बूता नहीं था कि वह अपने लिए ख़ुद नौकरी ढूँढ़ता। हमारे शहर में एक पादड़ी साहब थे। उनकी मोटर अक्सर ख़राब हो जाया करती थी और मैं अक्सर बिना कुछ मजूरी लिये उसे ठीक कर देता था। वह मुझसे ख़ुश थे। मैंने सुन रखा था कि बहुत से बड़े-बड़े अँगरेज़ अफ़सर उन्हें बहुत मानते हैं। मैंने एक दिन जाकर उनके पाँव पकड़ लिये और कहा कि—मैं तब तक नहीं छोड़ूँगा जब तक आप मेरा उद्धार न करेंगे। उन्होंने मेरी प्रार्थना सुनी और उनकी सिफ़ारिश से लखनऊ में किसी सरकारी दफ़्तर में बलदेव को नौकरी मिल गई। मैंने एक लम्बी साँस ली और एक दिन हम लोग बोरिया-बँधना लेकर लखनऊ को चल पड़े। मक़बूलगञ्ज के पास एक गली में एक छोटा-सा मकान १५) किराये में मिल गया।

"मैंने पहले सोचा था कि लखनऊ जाकर अपना कारोबार नये सिरे से जमाकर खूब ज़ोरों में उसे चलाऊँगा। पर बलदेव की नौकरी और सुक्खू के माया-मोह ने मुझे ऐसा निकम्मा और आलसी बना दिया कि मुझसे अब सिवा सुक्खू को खेलाने और गाँजा और चरस की दम लगाने के और कोई काम होता ही न था। बलदेव कुछ महीनों तक मुझे ५) माहवार देता रहा। बाक़ी सब रुपए वह बहू के हाथ में रख देता था और बहू हिसाब से ख़र्च करती थी। उतनी रक़म से मेरे नशे पानी का ख़र्च नहीं चलता था। पर मैं घर से आते समय दो-तीन सौ रुपया एक पोटली में बाँधकर छिपाकर ले आया था। उसमें से भी ज़रूरत पड़ने पर निकाल लेता था।

सुक्खू ज्यों-ज्यों महीने-महीने बड़ा होता गया त्यों-त्यों वह मुझे अपने प्यार के माया-जाल में उलझाता गया। जब वह अपनी माँ के पास होता तो वहीं से 'दाऊ! दाऊ!' कहकर मुझे आवाज़ देता और मेरे चुमकारने पर बात-बात में उसका वह खिलखिलाना! अभी तक उसके खिलखिलाने की प्यारी आवाज़ मेरे कानों में गूँजती रहती है, बाबू साहब, आप सच मानिए!

"जब वह रोता तो उसकी माँ उसे मेरे पास लाकर छोड़ जाती। मेरे पास आते ही वह शान्त हो जाता और सिसकते हुए अपनी माँ की शिकायत करता—'अम्माँ बली तलाब है, दाऊ! उससे मत बोलना!' मैं उसका मुँह चूमते हुए उसे दिलासा देता, उसे बाहर ले जाकर घुमा लाता और एक-आध सस्ता खिलौना ख़रीदकर उसके हाथ में दे देता। उसे गोद में लेते ही मुझे ऐसा मालूम होने लगता जैसे मैंने यशोदा के हाथ से बालगोपाल को छीन लिया है और मैं अपने को एकदम सातवें स्वर्ग में पहुँचा हुआ पाता। कृष्ण की बाल-लीला का एक फ़िल्म मैंने देखा था। उसी की याद मुझे आ जाती—ख़ासकर जिस वक्त मैं चरस के नशे में या अफीम की पीनक में होता।

"एक दिन मैंने चरस ज़रा ज़्यादा पी लिया था। सुक्खू को मैं बाहर टहलाने के लिए ले गया था। एक खिलौना ख़रीदकर उसके हाथ में देकर जब मैं उसे घर लाया तो उसे गोद में लेकर ज़ीने के ऊपर चढ़ने के समय मेरा सिर कुछ चकराने-सा लगा और हाथ-पाँव कुछ काँपने-से लगे। पल भर के लिए मैं कुछ अनमना-सा हुआ होऊँगा। मेरा हाथ कुछ ढीला पड़ा और एकाएक मैंने देखा कि सुक्खू मेरे हाथ से गिरकर ऊपर की सीढ़ी से नीचे की सीढ़ी पर पड़ा। मैं हड़बड़ाकर ज्योंही उसे पकड़ने लगा तो मेरे भी पाँव लड़खड़ाये और मैं उसे पकड़ दो सीढ़ी और नीचे गिरा। उसके नीचे सीढ़ी नहीं थी। उसकी माँ ऊपर से दौड़ी चली आई। सुक्खू की नाक से बुरी तरह से ख़ून

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बह रहा था और उसके घुटनों में भी चोट आई थी। वह बिलख-बिलखकर रो रहा था। उसका हाल देखकर मेरा कलेजा फटा जा रहा था। पर उसकी माँ ने आते ही मुझे ऐसी बेभाव की गालियाँ देनी शुरू कीं कि मैं मिट्टी में गड़ा जाता था। कहने लगी—'इस कलमुँहे अफ़ीमची का सत्यानाश हो जिसे न अपनी सुध है न बच्चे की। निखट्टू के करने को न कोई काम है न काज, साँड़ों की तरह अलमस्त बना फिरता है। मैं आज ही उनसे कह दूँगी कि मैं इसके साथ नहीं रह सकती, मैं मायके चली जाऊँगी।' उस दिन तक उसने मेरे सामने कभी एक बात भी मुँह से नहीं निकाली थी और हमेशा मुझसे पर्दा करती रही। पर उस दिन मौक़ा ही ऐसा आ पड़ा कि जो बात इतने दिनों तक उसने मन में छिपा रखी थी वह भी निकल पड़ी।

"उस दिन मुझ पर दिन-भर कैसी बीती यह भगवान् ही जानते हैं। शाम को जब बलदेव घर आया तो सुक्खू की माँ ने उससे सब बातें कह दीं। वह मुझ पर बुरी तरह बिगड़ा और डाट बताते हुए उसने कहा—'तुम आज ही मेरे घर से चले जाओ। मैं तुम्हें अब एक दिन के लिए भी अपने यहाँ नहीं रख सकता। सुक्खू की माँ ने मुझसे पहले ही कह दिया था, पर मैंने उसकी बात नहीं सुनी और उसका यह नतीजा हुआ! तुम जहाँ चाहो रह सकते हो, पर मेरे यहाँ तुम्हारे लिए जगह नहीं है। जहाँ कहीं रहोगे वहाँ ५) माहवार भेज दिया करूँगा।'

"मुझे जैसे काठ मार गया हो। बहुत देर तक घुटनों के नीचे मुँह छिपाकर बैठा रहा। इसके बाद एकाएक उठ खड़ा हुआ और बाहर चला आया। सुक्खू ने ऊपर से पुकारकर कहा—'दाऊ, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।' उसे कोई गहरी चोट नहीं आई थी और वह चङ्गा हो गया था। मैंने एक बार उसकी ओर देखा। मुझे रुलाई आ रही थी। आँखें पोछकर बिना किसी से कुछ कहे मैं वहाँ से चला गया।

दो-चार दिन एक धर्मशाले में पड़ा रहा। उसके बाद गँजेड़ियों का एक अड्डा ढूँढ़कर उनके पास चला आया। गँजेड़ियों में यह बात होती है कि उनमें आपस में बहुत जल्दी प्रेम हो जाता है, वे एक दूसरे के सुख-दुख के साझी बन जाते हैं। उन लोगों ने एक कच्चे मकान में मेरे पड़े रहने का उपाय कर दिया। मेरे पास जो रुपये बचे थे उन्हीं को सहेज-सहेजकर ख़र्च करने लगा। अगर गाँजे तक ही बात रह जाती तो कोई हर्ज नहीं था, पर अफ़ीम की लत ने ऐसा ज़ोर मारा कि मैं चौबीसों घण्टे पीनक में रहने लगा। खाना बाज़ार से ही लेकर खाता था। कभी अध-पेट खाता, कभी बिना खाये ही पड़ा रहता। सुक्खू सब समय ख़याल में मेरी आँखों के आगे खड़ा मुसकराता रहता। एक पल के लिए भी मैं उसे भूल नहीं पाता था। बीच-बीच में हिम्मत बाँधकर उस गली से होकर जाता था जहाँ बलदेव रहता था—सुक्खू को एक बार देखने की इच्छा से। सिर्फ़ एक दिन वह कोठे पर अपनी माँ के साथ दिखाई दिया। मुझे देखते ही उसने चिल्लाना शुरू किया—'दाऊ! दाऊ!' मैंने एक बार ललककर उसकी ओर देखा और फिर बिना कुछ बोले भागकर चला गया।

"एक दिन इसी तरह मैं उसी गली से होकर जा रहा था—इसी आशा से कि सुक्खू को एक बार देख लूँ। जब उस मकान के पास पहुँचा तो मैंने देखा कि बलदेव कोठे पर खड़ा है। वह बहुत उदास दिखाई देता था। उसे देखकर मैंने तेज़ी से क़दम बढ़ाये। मैं आगे निकल जाना चाहता था। पर उसने ऊपर से पुकारा—'भैया! भैया!' पहले मैंने सोचा कि मेरे कानों को धोखा हुआ है। पर जब मैंने उसकी ओर देखा तो वह सचमुच हाथ के इशारे से मुझे बुला रहा था। मैं घबराया हुआ-सा उसके मकान की ओर लौटा। मेरे मन में शंका हो गई थी कि मामला ज़रूर कुछ गड़बड़ है। भीतर जाकर मैंने पूछा—'कहो, कुशल तो है? आज क्या दफ़्तर में छुट्टी है?'

"उसने बड़ी उदासी से धीमी आवाज़ में कहा—'अब पूरी छुट्टी मिल गई है। जगह की कमी के कारण हमारे दफ़्तर से आठ-दस आदमी अलग कर दिये गये हैं। मैं भी अलग हो गया हूँ।'

"मैं कुछ देर तक उसके मुँह की ओर ताकता रहा। मेरे सिर पर गाज-सी गिर पड़ी। उसने कहा—'इधर दो दिन से सुक्खू को भी बुख़ार आया हुआ है। वह सब समय "दाऊ! दाऊ!" चिल्लाया करता है, ज़रा उसके पास हो आओ!' मुझे चक्कर आने लगा—ठीक उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन की तरह जिस दिन सुक्खू को चोट आई थी। किसी तरह मैं अपने को सँभालकर बलदेव के साथ सुक्खू के पास गया। वह पलँग पर लेटा हुआ बुख़ार से छटपटा रहा था। उसकी माँ नीचे फ़र्श पर सर नीचा किये बैठी थी। मैंने सुक्खू के पास जाकर कहा—'मेरे भैया! मेरे राजाबाबू!'

"वह कुछ देर तक मेरी ओर देखता रहा और फिर उसके तमतमाए हुए चेहरे में हँसी झलकने लगी। उसने उसी पहले की-सी प्यारी और तुतली आवाज़ में कहा—'दाऊ! मुझे बुखाल आ लहा है!' मैं रह न सका और मेरी आँखों से टपाटप आँसू गिरने लगे। उसने अपने दोनों हाथ मेरी ओर बढ़ाये। मैंने उसे चट से गोद में ले लिया और उसके मुँह से मुँह मिलाकर अपने आँसुओं से उसके गालों को भिगो दिया।

"बलदेव ने कहा—'इसका कोई इलाज नहीं किया जा रहा है। क्या करूँ, किसी डाक्टर को बुलाने के लिए पैसे कहाँ से लाऊँ!'

"मैंने उसी दम सुक्खू को पलँग पर लिटा दिया और डाक्टर को बुलाने चला गया। मेरे पास के भी रुपए सब ख़र्च हो चले थे, पर डाक्टर की एक बार की फ़ीस के लिए अभी कुछ रुपये बचे थे। डाक्टर ने आकर देखा और एक काग़ज़ के टुकड़े में दवा लिख दी। दवा लाकर मैंने बलदेव को दी। मैंने सोचा—'इस वक्त के लिए डाक्टर का और दवा का इन्तज़ाम तो हो गया, पर आगे क्या होगा!' सोचते-सोचते मेरे मन में और तन में एक भूत-सा सवार हुआ और वही पुरानी ताक़त और फ़ुर्ती मुझमें लौट आई, जब मैं रात-दिन खटकर मशीनरी का काम करके बलदेव को कालेज में पढ़ाने का ख़र्चा जुटाया करता था। यह कहकर कि मैं रात को फिर आऊँगा, मैं बाहर चला गया। उसी दम कोई काम मुझे नहीं मिल सकता था। पर भगवान् की दया से मेरे मन में एक सूझ पैदा हुई। अपनी गठरी से दो-एक औज़ार निकालकर मैं एक्कों और ताँगों के एक अड्डे पर चला गया, और वहाँ सस्ते रेट पर मैंने घोड़ों की नाल बाँधने का काम शुरू कर दिया। मैं देख चुका था कि बलदेव के पास अपने खाने को भी पैसा नहीं रह गया था। सुक्खू की माँ ने ज़रूर ही कुछ पैसे बचाये होंगे, पर यह जानी हुई बात थी कि उससे उस संकट की हालत में भी पैसा निकलना मुश्किल था। औरत की ज़ात का यह ख़ास गुण है, बाबू साहब! ख़ैर, नौ बजे रात तक काम करके मैंने दो-ढाई रुपए कमा लिये। इस तरह तीन-चार दिन तक मैं घोड़ों की नाल बाँध कर दवा का ख़र्च निकालता रहा। जो पैसे बचा पाता उनसे सुक्खू के लिए बढ़िया-बढ़िया खिलौने लेकर उसके पलँग पर सजाकर रख देता। वह बुख़ार से छटपटाने पर भी मेरे हाथ में खिलौने देखकर मुसकरा देता और मुझे प्यार करने के लिए उतावला हो उठता।

"मेरा एक चरसिया साथी भी मिस्त्री का काम करता था। उसकी कोशिश से मुझे कपड़े की मशीनों को ठीक करने का काम भी मिलने लगा। मैं वह काम भी करता और ख़ाली होने पर घोड़ों की नाल भी बाँधता। अफ़ीम मैंने बहुत कम कर दी और दिन-रात काम की धुन में रहने लगा।

"पर सुक्खू की तबीयत अच्छी नहीं हो रही थी। वह छटपटाते हुए कहता—'दाऊ, सिर में बड़ा दर्द हो गया है, अच्छा कर दो!' उफ़! क्या कहूँ बाबू साहब, अपना सिर फोड़ कर भी उसका दर्द अच्छा कर सकता तो मैं ज़रूर वैसा ही करता। उपाय किये, पर सब व्यर्थ गये।

× × × ×

मिस्त्री की आँखों से टपाटप आँसू गिर रहे थे। मैं स्तब्ध होकर यह करुण-कहानी सुन रहा था। मैंने पूछा—"तुम्हारे भाई का अब क्या हाल है?"

उसने कहा—"मैंने फिर उन्हीं पादड़ी साहब के पैरों पर गिड़गिड़ाकर उन्हें अपना सारा हाल कह सुनाया। उनकी कोशिश से बलदेव को फिर दफ़्तर में नौकरी मिल गई है, पर मैं अब उन लोगों के साथ नहीं रहता। पर मुझे यह सोचकर हँसी आती है कि एक दिन मैंने मशीन वशीन का सब काम छोड़कर आराम से रहने का विचार कर लिया था। तब मैं क्या जानता था कि ज़िन्दगी भर मशीनों के चक्कर से मेरा पिण्ड छूटने का नहीं!" कहकर वह फिर सिर पकड़कर मेरी सिंगर मशीन के रहे-सहे पुर्ज़ों को अत्यन्त निर्ममता से उखाड़-उखाड़ कर मिट्टी-तेलवाली शिलफ़ची में डालता गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदारी के खेल

लेखक, भाई परमानन्दजी, एम० ए०, एम० एल० ए०

श्रीमान् भाई परमानन्द का कांग्रेस से प्रकट विरोध है। उनके तथा उनके साथियों का ऐसा विरोध होते हुए भी आज कांग्रेस की क्या वक़त है तथा उसने कैसा विराट् रूप ग्रहण कर लिया है, इसका यहाँ वर्णन करने की ज़रूरत नहीं है। वह भी सर्व-विदित है। अपने इस लेख में श्रीमान् भाई जी ने अपने दृष्टि-कोण से विचार किया है। आशा है, 'सरस्वती' के पाठक इस लेख को ध्यान के साथ पढ़ेंगे।

कोई ही ऐसा होगा जिसने मदारी का खेल न देखा हो। दुनिया में सैकड़ों क़िस्म के खेल होते हैं। एक तरह से यह संसार ही माया का बड़ा खेल-सा है। इसी खेल का तमाशा है कि हम अपनी सारी उम्र उस छाया के पीछे-पीछे दौड़ने में लगा देते हैं और अब हम समझने लगते हैं कि हमने उस छाया को पकड़ लिया है, तब हाथ खोल कर देखने पर कुछ भी नहीं मिलता, हाथ ख़ाली होते हैं। तमाशा यह है कि जितने मनुष्य हो गुज़रे हैं उन सबने यह अनुभव किया है कि उन्होंने कैसी भूल की। जिस बात को उन्होंने बड़ी वास्तविकता समझी वह तो स्वप्न-मात्र था। परन्तु फिर भी हममें से किसी को विश्वास नहीं होता यह सभी हर प्रकार का स्वप्न है। मदारी का खेल भी इसी प्रकार का एक और तमाशा है। हम सब खड़े या बैठे देख रहे हैं कि क्या विचित्र करतब किये जा रहे हैं। अभी मदारी हमारे सामने रस्सी का एक टुकड़ा फेंकता है। वह कहता है—"इसे अच्छी तरह से देख लो, ग़ौर से देख लो। यह कुछ और तो नहीं है?" हम सबने बड़े ध्यान और सावधानी से देखा, यह रस्सी का ही तो टुकड़ा है। अब मदारी कुछ बातें सुनाता है, अपनी बाँसुरी बजाता है। उस रस्सी पर चादर डाल देता है। एक तरफ़ खड़े होकर कहता है—"देखो, वह चादर हिलने लगी।" थोड़ी देर और बाँसुरी की आवाज़ सुनाता है। अब जब चादर उठाता है तब उसके नीचे रस्सी का टुकड़ा नहीं होता, बल्कि उसकी जगह एक बड़ा साँप दिखलाई देता है। हम सभी हैरान हो जाते हैं कि यह कैसे हुआ। लेकिन वह तो साफ़ तौर पर साँप दिखलाई देता है। जब आँखों से देख लिया तब इससे बढ़कर गवाही या सबूत और क्या है? हममें से बहुत-से कहने लगे हैं—"मदारी के मंत्र में बड़ी ताक़त है। तभी तो उसने रस्सी को साँप बना दिया।" इस प्रकार के कई विचित्र करतब वह दिखा सकता है। एक बड़ा गोला और लंबा छुरा लेकर वह उन्हें मुँह में डालकर निगल जाता है। फिर थोड़ी देर में वह उन्हें मुँह से बाहर निकाल लेता है। इन करतबों के बारे में कई किताबों में ज़िक्र आया है। कहते हैं, एक मदारी ने एक बच्चे को लेकर उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। देखनेवाले चकित रह गये। दर्शकों में से कई तो बहुत दुखी दिखाई देने लगे। इतने में क्या हुआ! ऊपर हवा में उस बच्चे की आवाज़ आने लगी। मदारी ने कहा—"उतर आओ! उतर आओ!" बच्चा सबके सामने नीचे आ गया। वह बिलकुल भला-चंगा था।

अगर मदारी अचेतन चीज़ों को जानदार बना दे, अगर आदमी को पहले मार डाले और फिर उसे भला-चंगा कर दे तो वह मदारी नहीं, बल्कि ख़ुदा हो गया। फिर भी लोगों ने यह सब कुछ अपनी आँखों से देखा, इसलिए बतानेवाले बताते हैं कि बात वास्तव में और है। मदारी को 'हिप्नॉटिज़्म' आता है। इसके द्वारा वह सभी दर्शकों की नज़रें बाँध लेता है। उस दशा में वह जो कुछ कहता है वही उन्हें नज़र आने लगता है। मैं यह तो नहीं कह सकता कि मदारी हिप्नॉटिज़्म जानता है या उसके करतबों में कोई और भेद है, परन्तु इतना ज़रूर कह सकता हूँ कि साधारण मनुष्यों पर हिप्नॉटिज़्म की क्रिया की जा सकती है। उन पर लेखों और भाषणों के द्वारा भी ऐसा असर डाला जा सकता है कि आँखें वही कुछ देखें जो उन्हें बताया जाय और दिमाग़ वही कुछ सोचें जो उनके अंदर डाला जाय। नेताओं के भाषण और समाचारपत्रों की ख़बरें जनसाधारण की नज़रों को बाँध लेती हैं। क्या मजाल कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे अपनी आँखों पर से जादू का असर हटा कर देखें। हिप्नॉटिज़्म में सचमुच बड़ी ताक़त है।

अँगरेज़ों का राज्य है। अँगरेज़ी भाषा में लेक्चरों और लेखों में अपना जादू है। अँगरेज़ी शब्द 'कांग्रेस' में बड़ी भारी हिप्नॉटिक शक्ति पाई जाती है। कांग्रेस जो कुछ करे सब ठीक है; वह कभी ग़लती नहीं कर सकती। जो आदमी यह कहे कि उसने ग़लतियाँ की हैं, वह क़ाफ़िर है, उसे पत्थर मार मार कर ख़त्म कर देना चाहिए। इलेकशन में कांग्रेस एक कुत्ते को खड़ा कर दे। हमारा वोट उसी को जायगा। अगर कोई समझदार आदमी कांग्रेस के 'युटोपिया' के विषय में लेख लिखता है तो उसे पढ़ना ही क्या? वह तो फ़िज़ूल ही होगा, क्योंकि उसके साथ 'कांग्रेस' शब्द नहीं है।

कांग्रेस ने निर्णय किया, सभी स्त्री-पुरुष चरख़ा कातें, क्योंकि इससे स्वराज्य मिल जायगा। मैंने घरों में लड़कों को भी चरख़े चलाते देखा। मैं हैरान था। चरख़े का स्वराज्य से क्या सम्बन्ध? इससे पहले भी देश में लाखों स्त्रियाँ चरख़े चलाती थीं। लेकिन डंडे चलानेवालों ने हिन्दुओं से राज्य छीन लिया। दो साल बाद चरख़ा तो चला गया और स्वराज्य न मिला। लेकिन कांग्रेस ठीक है, ठीक।

कांग्रेस ने कहा, अँगरेज़ी चीज़ों का बायकाट करो—स्कूल, कालेज, कचहरी, कपड़े, पुलिस, फ़ौज, नौकरियाँ, सब कुछ। कौंसिलों में जाना देश के साथ द्रोह होगा। लेकिन कुछ ही दिन बाद सभी बायकाट ख़त्म हो गये। कौंसिलों में वही कांग्रेसी गये। गये क्यों? कौंसिलों को तोड़ने के लिए। उन्होंने फिर कहा—कौंसिलें तो हमसे टूटी नहीं; हमने बड़ी ग़लती की और स्वराज्य पीछे हटा दिया। लेकिन कांग्रेस फिर भी ठीक की ठीक ही रही।

कांग्रेस ने फ़ैसला किया—अहिंसा को धर्म के तौर पर ग्रहण करो; इससे स्वराज्य मिलेगा। हिन्दुओं पर हमले पर हमले हुए। उनके नेता क़त्ल किये गये। लेकिन अगर किसी ने हिन्दुओं को बचाने की कोशिश की तो वह काम्युनलिस्ट अर्थात् संप्रदायवादी ठहराया गया और इसलिए घृणास्पद! अब भी कोशिश तो हो रही है कि पठानों को अहिंसा का पाठ पढ़ाया जाय। वे हिन्दू-महिलाओं का बेशक अपहरण करते जायँ, लेकिन यह बात कभी न भूलें कि जब कोई कांग्रेसी लीडर सीमाप्रांत में जाय तो उसका स्वागत ज़ोर-शोर से करें। बस, कभी-न-कभी अहिंसा की फ़तह ज़रूर होगी। क्या हुआ अगर उस समय हिन्दू रहे या न रहे! अहिंसा तो रहेगी। फिर भी कांग्रेस हर हालत में ठीक है।

कांग्रेस ने कहा—हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य से स्वराज्य प्राप्त होगा। इसी लिए कांग्रेस ने सांप्रदायिक मुआहिदे या पैक्ट किये, हिन्दू-अधिकारों की बलि दी, एकता-सम्मेलन या यूनिटी कानफ़रेंसें कीं, कोरे चेक पेश किये, मिलाप के लिए मुस्लिम लीग को प्रार्थना-पत्र दिये लेकिन यह ऐक्य कोसों दूर चला गया। ज्यों-ज्यों दवा की, मरज़ बढ़ता गया। फिर भी कांग्रेस कभी ग़लती नहीं कर सकती। वह तो ठीक ही हो सकती है।

कांग्रेस ने फ़ैसला किया—हम क़ानून-भंग करके साइमन-कमीशन की रिपोर्ट रद्दी में फिंकवा देंगे। हम नये शासन-विधान के टुकड़े-टुकड़े कर देंगे। क़ानून-भंग का आन्दोलन हुआ। हज़ारों लोग जेलों में गये। जब विधान जारी हुआ तब वह वही था जिसके बारे में घोषणा अगस्त सन् १९१७ में और जिसका निर्णय गोलमेज़ कानफ़रेंस ने किया। अब दावा किया जाता है कि यह विधान तो हमारी क़ुर्बानियों के कारण मिला है। इससे बढ़कर कोई ग़लत-बयानी नहीं हो सकती। लेकिन कांग्रेस हमेशा ठीक होती है।

हाँ, एक बात ज़रूर है। अख़बारों की बाँसुरी की बदौलत कांग्रेस के नाम में हिप्नॉटिज़्म का असर है। इलेकशन के समय हिन्दुओं ने कांग्रेस को वोट देकर उसे बहुमत दिलाया। अब वे कहते हैं, हमने मन्त्रि-मंडल स्वीकार किये हैं, लेकिन उन्हें तोड़ कर हम देश को स्वतन्त्रता दिलायँगे। पर हो क्या रहा है? इनके द्वारा वे कांग्रेस को ही मज़बूत करना चाहते हैं, हिन्दू समझते हैं कि देश में जितनी उन्नति होती है वह सब कांग्रेस की बदौलत होती है, इसलिए हम तो उसी के पीछे चलेंगे।

यह मदारी कौन है—गांधी जी। यह कांग्रेस क्या है—मदारी का थैला है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम सौ वर्ष कैसे जीवें

लेखक, श्रीयुत केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

दुनिया के सब कामों में सफलता पाने के लिए अच्छी तन्दुरुस्ती की बड़ी ज़रूरत है। एक विद्यार्थी उसी समय इम्तिहान पास कर सकता है जब वह तन्दुरुस्त रहकर मेहनत करे। उसी प्रकार एक सौदागर उसी हालत में रुपया कमा सकता है जब वह तन्दुरुस्त रह कर सुस्तैदी से सौदागरी करे। बिना तन्दुरुस्त हुए न तो विद्यार्थी इम्तिहान में पास हो सकता है और न सौदागर रुपया पैदा कर सकता है।

हमारे बुज़ुर्ग तन्दुरुस्ती के मूल्य को अच्छी तरह समझते थे। वे रोज़ पूजा करने के समय ईश्वर से प्रार्थना करते थे—"हे ईश्वर हम सौ वर्ष तक देखें, हम सौ वर्ष तक ज़िन्दा रहें।" हर एक हिन्दुस्तानी की आयु कम से कम १०० वर्ष होती भी थी। ऐसी ऐसी मिसालें मौजूद हैं जिनसे साबित होता है कि यहाँ के लोग हज़ार हज़ार वर्ष भी ज़िन्दा रहते थे।

किन्तु अब तो हिन्दुस्तानियों को २५ वर्ष भी ज़िन्दा रहना कठिन हो गया है। योरप के रहनेवालों और अमरीका के रहनेवालों की औसत आयु ५० वर्ष से भी अधिक है, लेकिन हिन्दुस्तान की औसत आयु केवल २५ वर्ष है, इसे विचार करके दिल को बड़ा दुःख होता है। यदि हमारी उम्र इसी तरह घटती गई तो एक ज़माना ऐसा आयेगा जब हम किसी काम के न रह जायँगे।

इसलिए हमें अब गम्भीरता से विचार करना चाहिए कि हम अपनी उम्र किस तरह दुनिया के और लोगों के मुक़ाबिले में बढ़ा सकते हैं। इसके पहले कि मैं आपको यह बताऊँ कि किस तरह चलने से आप तन्दुरुस्त होकर कम-से-कम सौ वर्ष तक जीवित रह सकते हैं, आप यह बात अच्छी तरह समझ लें कि वास्तव में तन्दुरुस्त आदमी की क्या पहचान है?

आज-कल तन्दुरुस्त आदमी के बारे में बड़ी नासमझी हो रही है। जो आदमी देखने में खूब मोटा-ताज़ा होता है, जिसकी गर्दन मोटी होती है और जिसकी तोंद निकली रहती है, लोग उसी को तन्दुरुस्त समझते हैं। इस ग़लत विचार से लोग शरीर को मोटा करने के लिए तरह तरह के क़ब्ज़ पैदा करनेवाले भोजन करते हैं, जिससे अन्त में उनकी तन्दुरुस्ती बजाय अच्छी होने के ख़राब हो जाती है।

क्या आपने कभी पहलवानों का साथ किया है? यदि किया है तो आप खुद जानते होंगे कि ये पहलवान कहाँ तक तन्दुरुस्त होते हैं। मैं अपने अनुभव से बतला सकता हूँ कि १०० में ९५ पहलवान ऐसे हैं जो बवासीर रोग से व्याकुल रहते हैं।

२० वर्ष की बात है, मुझे भी कुश्ती का शौक़ हुआ। इलाहाबाद के एक बड़े मोटे पहलवान से मैं शाम को कुश्ती लड़ने के लिए जाया करता था। एक हफ़्ते के बाद पहलवान ने कहा—"मास्टर साहब, मुझे बवासीर का रोग है, क़रीब आध सेर ख़ून रोज़ पाख़ाने के साथ जाता है, नहीं तो हम लोग और न जाने कितने तन्दुरुस्त हो जायँ! मैं २०० बादाम रोज़ खाता हूँ और आध सेर घी पीता हूँ। नहीं तो मेरा शरीर इस समय न मालूम कहाँ होता।

पहलवान की यह हालत सुनकर मैं दङ्ग रह गया। मुझे आश्चर्य हुआ कि ऐसा हट्टा-कट्टा आदमी किस तरह बवासीर रोग से दुखी हो सकता है। मैंने खोज की और अन्त में इस निश्चय पर पहुँचा कि १०० में ९५ पहलवान बवासीर या दूसरे रोगों से परेशान रहते हैं।

इसलिए मोटा होना तन्दुरुस्ती का चिह्न नहीं है। तन्दुरुस्त आदमी वह है जिसकी सब इन्द्रियाँ अपना अपना काम करती हों। नाक अपना काम करती हो, आँखें अपना काम करती हों, दिमाग़ अपना काम करता हो, शरीर फ़ुर्तीला मालूम होता हो, शरीर सुगठित हो। ये गुण जब किसी आदमी में पाये जायँ तो हम उसे तन्दुरुस्त आदमी समझेंगे।

इस पैमाने से जब हम किसी आदमी की तन्दुरुस्ती पर विचार करते हैं तो हमें बहुत कम आदमी तन्दुरुस्त दिखलाई पड़ते हैं। किसी की गर्दन मोटी है तो किसी का पेट निकला हुआ है। किसी को ज़ुकाम है तो किसी को पाख़ाना साफ़ नहीं होता। किसी की आँखें अच्छी हैं तो कान से अच्छी तरह सुनाई नहीं पड़ता। कहने का मतलब यह है कि सच्चे तन्दुरुस्त आदमी बहुत कम दिखलाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ते हैं। अब मैं आपको बतलाता हूँ कि किन किन नियमों का पालन करके हम १०० वर्ष ज़िन्दा रह सकते हैं।

(१) पहला नियम भोजन का है। आदमी के ख़ून में 'खारापन' और 'खटाई' दो गुण हैं। यदि खारापन ८० फ़ी सदी और खटाई केवल २० फ़ी सदी है तो तन्दुरुस्ती ठीक है, नहीं तो तरह तरह की बीमारियाँ एक के बाद एक पैदा होती रहती हैं। अब यह देखना है कि 'खारापन' और 'खटाई' का घटाव-बढ़ाव किस तरह हो सकता है। मुश्किल बात तो यह है कि जो खाना हम पसन्द करते हैं उनमें से अधिक पदार्थ 'खटाई' पैदा करनेवाले होते हैं। मिल का पिसा हुआ बारीक आटा, मैदा, सफ़ेद चीनी, बिना छिलके की दाल, मिठाई, अंडा, मांस, चाय, कहवा, अचार, चटनी वग़ैरह सभी खटाई पैदा करनेवाले पदार्थ हैं।

चोकरदार आटा, चावल, छिलकेदार दाल, सब प्रकार की हरी हरी तरकारियाँ, सब प्रकार के मीठे फल, अच्छा ताज़ा दूध, दही, मट्ठा, घी, मक्खन आदि 'खारापन' पैदा करनेवाले पदार्थ हैं।

ऊपर बतलाई हुई चीज़ों में से आप खाने में ऐसी ऐसी चीज़ों का चुनाव कीजिए जिनमें 'खारापन' वाले पदार्थ यदि १०० फ़ी सदी हों तो और भी अच्छा है, नहीं तो ८० फ़ी सदी तो ज़रूर हों।

दूसरा ख़याल भोजन में यह रहे कि भोजन के सब तत्त्व ज़रूरत के अनुसार हमारे भोजन में पाये जायँ। ये तत्त्व हैं—(१) कर्बोज (२) प्रोटीन (३) वसा (४) लवण (५) विटेमिन और जल। सब तरह के अन्न में कर्बोज अधिक मिलता है। दूध और दाल में प्रोटीन अधिक मिलता है। घी, मक्खन और तेल में वसा अधिक मिलती है। सब प्रकार के फलों व तरकारियों में विटेमिन काफ़ी रहता है।

इन सब बातों को सामने रखते हुए हमारे गुरुजनों ने भोजन का जो क्रम बाँध दिया है वह हमारे लिए बहुत लाभदायक है। सुबह दूध पीजिए, १० बजे रोटी, छिलकेदार दाल, भात और तरकारी खाइए। दाल में थोड़ा सा घी या मक्खन डालिए। टमाटर, मूली आदि एक तश्तरी कच्ची तरकारी भी रखिए। ४ बजे फलों का जलपान कीजिए। ७ बजे रात रोटी-तरकारी खाइए।

चटनी, अचार, चाय, कहवा, भाँग, मांस, मदिरा, तम्बाकू, बीड़ी का सेवन न कीजिए। भोजन ठूस ठूस कर न कीजिए। हमेशा थोड़ी सी भूख रखकर खाइए। भोजन कुचल कुचलकर खाइए। पानी भोजन के साथ न पीजिए। भोजन के आध घंटे बाद या और जब आपका जी चाहे आप ख़ूब पानी पीजिए।

(२) दूसरा नियम है व्यायाम या कसरत—जो मनुष्य भोजन करता है उसे कसरत करना ज़रूरी है। कसरत हम हम दो उद्देशों को पूरा करने के लिए करते हैं। भोजन को पचाने व उसमें से रस खींचने के लिए—शरीर में गर्मी की ज़रूरत है और वह गर्मी हमें कसरत के ज़रिये से मिलती है। कसरत-द्वारा गर्मी पहुँचने से शरीर की नस-नाड़ियाँ भोजन के रस को इस प्रकार खींचती हैं जिस प्रकार पानी को स्पञ्ज। शरीर में इस सोखनेवाली ताक़त को पैदा करना है। असल में कसरत का यही मुख्य उद्देश्य है।

कसरत का दूसरा उद्देश्य मल को शरीर के बाहर निकाल फेंकने की ताक़त को बढ़ाना है। हमारे शरीर में जिस तरह ताक़त पैदा करनेवाली चीज़ों को हज़म कर लेने के रास्ते हैं, उसी तरह मल को शरीर के भीतर से निकाल फेंकने के भी बहुत से रास्ते हैं। मल को निकालने के लिए गर्मी की ज़रूरत है और वह गर्मी कसरत से मिलती है।

इस प्रकार भोजन को पचाना और मल को शरीर से बाहर दूर फेंकने में मदद करना कसरत के दो ख़ास उद्देश्य हैं। जिसका भोजन ठीक तरह से पचेगा और जिसका मल ठीक तरह से बाहर निकलेगा वही आदमी तन्दुरुस्त रह कर नीरोग बनेगा।

१० वर्ष की उम्र तक बालक को किसी प्रकार के व्यायाम करने की ज़रूरत नहीं है। वह ख़ुद सुबह से शाम तक इतना दौड़ता और खेलता है कि थक जाता है और उसी दौड़ और खेल में उसकी कसरत हो जाती है।

१० से १६ वर्ष तक के लड़कों को कसरत शुरू कराना चाहिए। इस उम्र में देह की नस, नाड़ियाँ और हड्डियाँ इतनी मुलायम होती हैं कि एक पेड़ के अंकुर के समान बड़ी आसानी से वे बढ़ सकती हैं। इस उम्र में लड़के को बाहर खुली साफ़ हवा में ख़ूब दौड़ना चाहिए और अँगरेज़ी खेल खेलने के लिए भेजना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६ वर्ष के बाद जवानी में कठिन कसरत करने की ज़रूरत है। डंड-बैठक करना, मुद्गर हिलाना, डम्बल और जमनास्टिक करना चाहिए। बुढ़ापे में कठिन कसरत नहीं करनी चाहिए। इस उम्र में सुबह और शाम खुली हवा में टहलना चाहिए।

आज-कल खुली हवा में खेलना, घूमना और दौड़ना सबसे अच्छी कसरत ख़याल की जाती है। अँगरेज़ी में एक कहावत है, इस्तेमाल की जाती हुई ताली हमेशा चमकती है। यही हाल शरीर का है। कसरत-द्वारा यह शरीर हमेशा चमकता रहेगा और इसमें मुर्चा नहीं लगेगा।

(३) तीसरा नियम ब्रह्मचर्य का पालन—जिस प्रकार समुद्र को पार करने के लिए नाव की ज़रूरत है, उसी प्रकार जीवन को पार करने के लिए 'ब्रह्मचर्य' की ज़रूरत है। सारी दुनिया में जो जीवनकला दिखलाई पड़ती है वह सब ब्रह्मचर्य का प्रताप है। यदि किसी की आँखों में रोशनी दिखलाई पड़ती है तो वह किसका असर है? चेहरे पर गुलाबी, छाती में अकड़, चाल में फ़ुर्ती आदि किसके असर से हैं? पढ़ाई में प्रथम रहना, हाथ में लिये हुए कामों को पूरा करना, एक शब्द से दूसरों को वश में कर लेना, सभा में खड़े होकर अपनी आवाज़ से लोगों को मोह लेना, यह किस तपस्या के फल हैं? अपने दिल से पूछिए। वहाँ से आवाज़ निकलेगी—यह सारा खेल ब्रह्मचर्य्य का है।

ब्रह्मचर्य्य के माने हैं वीर्य की रक्षा करना। यह वीर्य शरीर की रग रग में भरा है। बादाम या तिल में जैसे तेल, दूध में जैसे मक्खन, काठ में जैसे अग्नि, फूल या चन्दन में जैसे सुगन्ध मौजूद है, उसी तरह शरीर की एक एक रग में सब जगह वीर्य मौजूद है।

वीर्य एक बड़ी क़ीमती चीज़ है। यह शरीर की चमक है। किन्तु इसकी रक्षा की ओर लोगों का कम ध्यान है। ऐसी हालत में हमारी दुर्दशा होनी ही चाहिए। ईश्वर की मर्ज़ी है कि हम इतने वर्ष भी ज़िन्दा रहते हैं। इसलिए शरीर को पुष्ट बनाने के लिए वीर्य की रक्षा हर तरह से करनी चाहिए।

(४) चौथा नियम है अपना डाक्टर ख़ुद बनना—जब कभी आप बीमार पड़ें तब आप कोई दवा न करें, आप अपना इलाज ख़ुद करें। दवाओं से बड़ी हानियाँ हुई हैं और दवाओं से कोई यह नहीं कह सकता कि वह रोगी अच्छा ही हो जायगा।

आप जब बीमार पड़ें तब अपने को प्रकृति की गोद में छोड़ दें। आप उपवास करना शुरू करें। तीन-चार रोज़ उपवास करें और बीच बीच में शहद मिलाकर नींबू का जल थोड़ा थोड़ा पीते रहें। तीन रोज़ के बाद एक सप्ताह तक फल और दूध का सेवन करें। एक सप्ताह के बाद फिर आप रोज़ भोजन शुरू करें। आप ज़रूर अच्छे हो जायँगे।

१५ रोज़ में अगर हम एक उपवास कर लिया करें तो हम बीमार बहुत कम पड़ेंगे। हम जब किसी दफ़्तर में काम करते हैं तब इतवार की छुट्टी हमें मिलती है। बीच बीच में हमें दूसरी छुट्टियाँ भी मिलती रहती हैं। इन छुट्टियों का मतलब यह है कि हमें आराम मिले। लेकिन बेचारे पेट को हम कभी भी आराम देना पसन्द नहीं करते। वह भी तो एक शरीर का ज़िन्दा टुकड़ा है। उसे भी तो आराम की ज़रूरत है। यदि आप उसे आराम न देंगे तो उसमें ख़राबी पैदा हो जायगी और आपको फिर आराम लेने के लिए मजबूर होना पड़ेगा।

इस प्रकार आप देखेंगे कि यदि आप उचित भोजन करें, रोज़ कसरत करें, ब्रह्मचर्य्य का उचित पालन करें और अपना इलाज आप स्वयम् करें तो आपको अपने जीवन का आनंद मिलेगा और आपकी उम्र कम से कम १०० वर्ष की ज़रूर होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोब-दाब

लेखक, श्रीयुत उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

मेरी ही एक बहुमूल्य नसीहत के कारण शादी करने के बाद भी पंडित तेजभान विधुर का-सा जीवन बिताने को विवश होंगे, यह मैंने स्वप्न में भी न सोचा था। बात यों हुई कि एक दिन तेजभान ने बड़े ही विनीत स्वर में मेरे पास आकर कहा कि लाला जी परसों तो अब बरात रवाना हो ही जायगी। अगर अब भी आपने मुझे कोई नसीहत न की, तो हो सकता है कि बहुत लोगों की भाँति मेरा वैवाहिक जीवन भी असफल ही रहे।

तेजभान आदमी बुरा हो, यह बात नहीं। आदमी भला है। लोग उसके कारण कुछ हँस हँसा लेते हैं और उनकी हँसी पर वह गुस्सा भी नहीं होता। वह अपने आपको बुद्धिमान् भी समझता है और इस बात का निश्चय उसे दूसरों ने भी दिलाया है कि उसके मस्तिष्क में आते समय अक़्ल ने कृपणता से काम नहीं लिया; पर इसे मेरा दुर्भाग्य ही कहिए कि मुझे अपना एकान्त अधिक पसन्द है और तेजभान तथा उसके मित्रों की हा-हू मुझे ज़रा भी अच्छी नहीं लगती। एक यह भी कारण है कि अपने विभाग का इञ्चार्ज होने से मैं अपने क्लर्कों से इतना भी नहीं खुल जाना चाहता कि कल वे मेरी बात की ही अवहेलना करने को तैयार हो जायँ। पर जितना भी मैं इन लोगों से दूर भागता हूँ उतना ही वे लोग मुझसे चिपकते हैं। उस समय भी गोकुलचन्द तथा दूसरे लोग मुझे घेरे बैठे थे।

"साईं बुल्देशाह* कह गये हैं, लाला जी"—गोकुलचन्द ने इस तरह कहा जैसे बुल्देशाह उनके ही पूर्वज थे—"कि वैवाहिक जीवन तो फिसलते आँगन की तरह है। बड़ों की नसीहत का सहारा लेकर न चलो तो फिसल जाना तो पड़ता ही है और एक बार फिसला तो फिसला।"

झंडालाल समर्थन करते हुए बोले—"भाई यह तो नई दुनिया है। नई दुनिया में—मेरा मतलब यह है कि नये देश में बिना किसी (पथ-प्रदर्शक) के जायँ तो कष्ट उठायेंगे, वही हाल वैवाहिक जीवन का भी है, उपदेशक-रूपी पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता इसमें तो और भी अधिक है।"

"और फिर वे वक़्त लद गये"—अनन्तराम ने रदा जमाते हुए कहा—"जब पति कैसा भी अंधा, काना, लूला लँगड़ा क्यों न हो पत्नी उसकी मुहब्बत का दम भरती थी। अब तो भाई पुरुष को भी पूर्ण रूप से सशस्त्र रहना चाहिए।"

मैंने कहा—"भाई अब तो कोई बात लुकी छिपी रही नहीं, वैवाहिक जीवन पर और वैवाहिक जीवन की दूसरी समस्याओं पर बीसियों पुस्तकें मिल जाती हैं। मेरी स्टोप्स . . . .।"

बात काट कर गोकुलचन्द ने कहा—"वैसे तो रोज़ बीसियों कोकशास्त्र के ग्रन्थ निकलते हैं और वैवाहिक जीवन को सुखी बनाने के बदले दुःखी बना देते हैं, पर उन सब की बनिस्बत अनुभवी के मुँह से निकला हुआ एक वाक्य ही काफ़ी है। इन्हें कोई ऐसा गुर बताइए कि पत्नी बस इनका ही नाम जपे।" और फिर पंडित तेजभान की ओर देखकर बोले—"क्यों भाई तेजभान, मैंने तुम्हारे दिल की बात कह दी है या नहीं?"

तेजभान, जैसे कृतज्ञता के बोझ तले दब कर उनकी और मेरी ओर देखकर रह गये।

तब विवश होकर मैंने कहा—"देखो भाई तेजभान तब भी, जब देश में इतनी आज़ादी न थी और स्त्रियाँ पति को ही सर्वस्व समझती थीं, और अब भी, जब उनकी आज़ाद-ख़्याली ने पुराने बंधन काट दिये हैं, एक सिद्धान्त समानरूप से काम कर रहा है। हमारे बुज़ुर्ग एक ही मिसाल दिया करते थे—"गुर्बा कुश्तन रोज़े अव्वल" मतलब यह कि बिल्ली पहले रोज़ ही मारी जाती है। यदि पहले-पहल पति का पत्नी पर रोब जम गया तो सारी उम्र वह उसकी ग़ुलाम बनी रही। और यदि पत्नी ने अपना

---

* पंजाब के एक सूफ़ी फ़क़ीर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोब पति पर ग़ालिब कर लिया तो पति महाशय आयु पर्यन्त उसका पानी भरते रहे।"

तेजभान दत्तचित्त होकर सुन रहे थे। मैं कहता गया—"फ़ार्सी ज़बान में, जिसकी यह मिसाल है, इसके साथ एक दृष्टान्त भी दिया गया है। आप सब जानते तो होंगे पर फिर भी संक्षिप्त में उसका ज़िक्र कर देता हूँ।"

तेजभान की कृतज्ञताभरी आँखों ने प्रार्थना की कि वह महत्त्वपूर्ण दृष्टान्त मैं अवश्य बतलाऊँ। मैंने कहा—"हमारे दादा सुनाते थे कि बुख़ारा में दो अविवाहित मनुष्य रहा करते थे। एक ज़रा चालाक था और दूसरा कुछ सीधा-सादा। चालाक का नाम था अब्बूबकर, और सीधे-सादे का नाम था अब्बूबेग। दोनों अपने कुँवारपने के जीवन से इतने तंग आगये कि उन्होंने निश्चय कर लिया कि चाहे जो हो कहीं से बीवी अवश्य लायँगे। यह सोचकर वे बीवी की खोज में चल खड़े हुए। बहुत खोज के बाद उन्हें दो ऐसी स्त्रियाँ मिल गईं जो शादी कराने को तो तैयार थीं पर शर्त यह थी कि वे रोज़ सुबह उठकर अपने पति के सिर पर पचास जूते लगाएँगी। इस शर्त को सुनते ही अब्बूबेग का तो पित्ता पानी हो गया। पर अब्बूबकर ने कहा कि—"भाई ज़रा ख़याल करो, अगर यह मौक़ा छोड़ दिया तो सारी उम्र कुँवारे ही बिता देनी पड़ेगी। ज़रा उस असीम सूनेपन की कल्पना करो जो दिन-प्रतिदिन तुम्हारे गिर्द और भी गहरा होता जायगा। तुम बूढ़े हो जाओगे, तुम्हारे अंग शिथिल हो जायँगे। अपना कहने के लिए तुम्हारे पास कोई न होगा। तुम बीमार पड़ जाओगे. हिलना-जुलना तुम्हारे लिए दुष्कर हो जायगा। पर तुम्हारे मुँह में पानी डालनेवाला तक कोई न होगा। शादी तो अब भाई कर ही लेनी चाहिए। बाद में राम-राम कर लेंगे, न निभेगा छोड़ देंगे।"

अब्बूबकर ने वृद्धावस्था का चित्र कुछ ऐसे ढंग से खींचा कि अब्बूबेग ने भी फ़ैसला दे दिया कि चाहे चंदिया रहे या जाय, पर विवाह तो अब कर ही लेना चाहिए। तब दोनों ने निकाह किया और बीवियों को लेकर अपने घर आये। अब्बूबकर ने आते ही डाँटकर ग़ुलाम से कहा कि खाना जल्दी बनाओ, इतने में मैं बाज़ार से ज़रूरी सामान ले आता हूँ! यह कहकर वह चला गया। ग़ुलाम ने शीघ्र खाना तैयार किया और जब वह आया तो दोनों के लिए खाना परोस दिया। अभी पहला कौर भी अब्बूबकर ने न तोड़ा था कि क़िस्मत की मारी बिल्ली पास से निकल गई। क्रोध से अब्बूबकर की आँखें लाल हो गईं। पास पड़ा हुआ बेलन उठाकर उसने इस ज़ोर से बिल्ली को दे मारा कि बेचारी वहीं चित हो गई।—"हरामज़ादी असगुन कर गई" यह कहकर अब्बूबकर ने पाँव से थाली को ठेल दिया और कड़ककर ग़ुलाम से कहा कि खाना और बना। बस साहब, दूसरे दिन ही बीबी साहबा जूतोंवाली बात ऐसी भूलीं कि फिर वह उन्हें याद ही न आई। उधर बेचारे अब्बूबेग को चाँद पिटते पिटते गंजी हो गई। एक दिन दोनों मित्र मिले तो बेग ने बकर से वह गुर पूछा जिससे उसने अपनी पत्नी को बस में किया था। जब बकर ने अपनी तरकीब बताई तो सुनकर अब्बूबेग ऐसा ख़ुश हुआ जैसे उसे कोई निधि मिल गई हो। ओह! यह तो इतना आसान है कि बस! बिल्ली उसकी पत्नी ने एक पाल ही रखी थी, और वह खाना खाते समय उसके पास भी आ जाती थी। बेलन रास्ते में उसने ख़रीद लिया और घर जाते ही उसने डाँटकर नौकर से कहा कि खाना पका। नौकर उस वक्त श्रीमती जी का कोई काम कर रहा था, चुप रहा। उन्होंने फिर डाँटा तब चीख़कर श्रीमती जी ने कहा—"क्या शोर मचा रहे हो? पका देगा खाना, ज़रा दाँतों तले ज़बान दो!"

तब अब्बूबेग ने बेलन को अपनी मुट्ठी में भींच लिया और दाँत भी कटकटाये पर बिल्ली सामने थी, न पत्नी, जाकर चुपचाप अन्दर बैठ गया, और सोचा कि कोई बात नहीं—खाना खाते समय सही। दो घंटे के बाद नौकर ने सूचित किया कि खाना तैयार है, तो बेलन लिये हुए अब्बूबेग खाना खाने जा बैठा। बिल्ली भी तब तक म्याऊँ-म्याऊँ करती आ गई। अब्बूबेग ने बेलन उठाया और ज़ोर से खींच मारा। पर फेंकते समय उसकी निगाह श्रीमती जी से चार हो गई। बेलन का निशाना चूक गया। बिल्ली तो भाग गई पर बेलन श्रीमती जी ने उठा लिया और उस दिन जूतों का काम बेलन से ही लिया गया।

उधर अब्बूबकर अभी खाना खाकर बैठे थे और उनकी पत्नी उनके पाँव दबा रही थी कि हाँपते-काँपते और कराहते अब्बूबेग भी जा पहुँचे। उन्होंने अपनी दुर्दशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की दास्तान सुनाई और कहा कि उनके मर्ज़ में यह नुस्ख़ा ठीक नहीं बैठा। अब्बूबकर यह सुनकर हँसा और बोला कि भाई—'गुर्बा कुश्तन रोज़े अव्वल' (बिल्ली तो पहले रोज़ ही मारी जाती है।)

× × ×

तेजभान ने यह कहानी बड़े ग़ौर से सुनी और कृतज्ञता से सिर झुकाकर कहा—"आपने जो बहुमूल्य मशवरा मुझे दिया है, उसे मैंने गिरह से बाँध लिया। मैं इसके लिए आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। परमात्मा ने चाहा तो मेरा वैवाहिक जीवन लोगों के लिए आदर्श होगा।" मैंने कहा—"वैवाहिक जीवन को सुखी बनाने के लिए और भी कई नुस्ख़े हैं, पर सबसे ज़रूरी तो यह है कि पत्नी पति के कहने में रहे। जब इतना कर लो तो फिर आना मैं तुम्हें कुछ और ज़रूरी बातें बताऊँगा।"

तेजभान सिर झुकाकर नमस्ते करके चला गया इसके बाद मुझे शिमला जाना था। अक्टूबर में वापस आया तो तेजभान भी मिला। मैंने पूछा—"सुनाओ भई शादी हो गई? पत्नी तो अच्छी मिली है न? कुछ अपना रोब-दाब डाला तुमने?"

"रोब!"—गर्व से फिर उठकर तेजभान ने कहा—"ऐसा रोब डाला कि वह तो क्या उसके घरवाले तक मान गये और अच्छी तो वह ऐसी है कि मेरे सामने उसकी जिह्वा तक मूक हो जाती है।"

गोकुलचन्द भी पास ही बैठे थे। बोले—"वाह भाई तेजभान, तुम्हारा ही हौसला है। हम तो भाई ऐसे मौक़ों पर सकुचाकर ही रह जाते।" उत्साह पाकर पंडित तेजभान अपनी बहादुरी का क़िस्सा आगे सुनाने लगे—

"मेरी शादी तो, लाला जी आपको मालूम ही है कीट-बादल ख़ाँ में हुई, जो हमारे क़स्बे नकोदर से दस-बारह मील दूर है। पर लड़की जालन्धर के कन्या-महाविद्यालय की पढ़ी हुई है। आपकी नसीहत के अनुसार मैंने मन में निश्चय कर लिया था कि बिल्ली बस पहले ही रोज़ मारी जाय।"

गोकुलचन्द ने संशोधन किया—"नहीं बल्कि इस पट्ठे ने फ़ैसला किया कि बिल्ली पहले रोज़ से पहले यानी उसके घर में ही मारी जाय। वहीं से ऐसा रोब पड़े कि अपने घर पर आकर मारने की आवश्यकता ही न पड़े।"

इस तारीफ़ से फूलकर तेजभान ने फिर कहना शुरू किया—"बस लाला जी, मैंने दिल ही दिल में सारी स्कीम बना ली। वास्तव में ये लड़कियाँ जो आठ-दस जमातें पढ़ जाती हैं, अपने सामने किसी को गिनती ही नहीं। मैंने भी फ़ैसला कर लिया था कि उसे मालूम हो जाय कि वह किसी भिखमंगे ब्राह्मण के घर नहीं जा रही है बल्कि सिविल सेक्रेटेरिएट लाहौर के एक प्रतिष्ठित क्लर्क के घर जा रही है।"

"आम तौर पर लाला जी आप जानते हैं"—तेजभान ने खाँसकर कहा—"हमारे यहाँ दूल्हा को ऐसी पोशाक पहना देते हैं कि वह निरा कारटून बन जाता है। लट्ठे की श्वेत कमीज़, तंग ऊँचा पाजामा और उस पर लट्ठे का ही सफ़ेद ढीला ढाला कोट, सिर पर ढिलढिल पगड़ी! अब मैंने पगड़ी—आप जानते हैं—कभी पहनी ही नहीं। कम से कम उस वक्त मैंने यही सोचा कि पगड़ी से रोब क्या ख़ाक जमेगा! यह ढीले-ढीले कपड़े मैं तो न पहनूँगा। इसीलिए मैंने एक नफ़ीस 'मक्खन-ज़ीन' का सूट तैयार कराया। श्वेत कपड़े की टाई ली और हार्ड कालर डाटा। जब सेहरे के वक्त उन्होंने मुझे पगड़ी बाँधने को कहा तो मैंने इनकार कर दिया और कह दिया कि मैं तो श्वेत हैट पहनूँगा।

"पुरोहित भौचक्का होकर मेरे मुँह की ओर देखने लगा। उसने कहा—"यजमान ऐसा कभी हुआ है?" मैंने तुनक कर कहा—"नहीं हुआ तो अब होगा।" वह बोला—"लोग क्या कहेंगे? आज तक कभी हैट पर सेहरा बँधा?" मैंने कहा—"नहीं बँधा तो अब बँधेगा। तुमसे कोई पूछे तो कह देना कि बाबू साहब ने कभी पगड़ी बाँधी ही नहीं।"

"ख़ैर लाला जी पुरोहित ने बहुतेरा समझाया पर मैं न माना। हैट पर चाँदी का सेहरा कसा गया—कसा गया इसलिए कि जब उसे बाँधा तो हैट आगे को झुक गया इसलिए उसे पिछली तरफ़ कस दिया गया। हैट पर सेहरा बाँधे और मक्खन-ज़ीन का श्वेत सूट डाँटे जब मैं घोड़े पर चढ़ा तो हैरानी से लोग बस मुँह ताकते ही रह गये।"

"—और लड़कियाँ आँखें फाड़े देखती रह गईं"—गोकुलचन्द ने कहा—"बाद में जब ये एक दिन ससुराल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये तो उन्होंने कहा—"क्यों जीजा जी, अब उस तरह सूट पहन कर न जाओगे ? ग़ज़ब का सजता है तुम्हें वह सूट।"

ख़ुशी से फूलकर पण्डित तेजभान ने कहा—"लोग हमारे पुरोहित से हैरान हो-हो पूछते, पर जब पुरोहित एक ही जवाब देते कि बाबू साहब के बुज़ुर्गों तक ने पगड़ी नहीं बाँधी हैट ही लगाते आये हैं, तो गाँववाले झुककर सलाम करते।"

"शुरू में ही यों रोब गाँठ कर"—पण्डित तेजभान फिर खाँस कर बोले—"हम विवाह-मंडप में गये। वहाँ हवन-कुंड के आगे दो सरकंडों के खारे वर-वधू के लिए रखे थे। मुझे एक खारे पर बैठने को कहा गया। मैं इस ज़ोर से बैठा कि खारा ही टूट गया। सब ओर मेरा रोब छा गया। कुछ लड़कियाँ अवश्य हँसीं पर जब मैंने ऊपर निगाह की तो जैसे सबको साँप सूँघ गया। ख़ैर, दूसरा खारा लाया गया और विवाह की कार्य्यवाही शुरू हुई। ससुराल-वालों पर तो इतने ही से रोब जम गया, पर मेरी हार्दिक इच्छा यह रही कि किसी प्रकार वधू को भी पता लग जाय कि उसका पति कोई मरियल डरपोक ब्राह्मण नहीं है। उसके शरीर में भी जान है। जब मन्त्र पढ़ते-पढ़ते पुरोहित ने लड़की के पिता से कहा कि वह उसका हाथ वर के हाथ में दे। उसके पिता ने ज्यों ही उसका हाथ मेरे हाथ में दिया, मैंने इस ज़ोर से दबाया कि घूँघट के अन्दर से एक हलकी सी चीख़ निकल गई। तब मेरे ससुर ने मेरी तरफ़ क्रोध भरी निगाहों से देखा पर मैं बेपरवाही से अकड़ा बैठा रहा। हाँ, दुल्हन सिमट कर बैठ गई और उसकी सहेलियाँ भी, जो मेरे हैट पहनने पर हँस रही थीं, ऐसी ठंडी हो गईं मानों पाला मार गया हो।

"बरात वहाँ दो दिन रही। लेकिन मेरा आतंक ऐसा छाया कि आम तौर पर गाली-गलौज, जो विवाह में हुआ करता है, बिलकुल नहीं हुआ। विवाह के गीत भी जो गाये गये वे विशुद्ध आर्यसमाजी थे। किसी ने एक बार भी मज़ाक़ नहीं किया। जब लड़की को बिदा करने लगे तो सास ने हाथ जोड़ कर कहा—"बेटा लड़की बड़ी भोली है, क़सूर भी यदि उससे बन जाय तो उसे माफ़ कर देना। और उस पर दया की दृष्टि रखना।"

"इसके बाद, लाला जी, आते समय मैं तो घोड़े पर आया, पर मेरी पत्नी पालकी में बैठी हुई थी। गर्मियों के दिन, लम्बी मंज़िल और तेज़ धूप। घोड़े की पीठ पर कभी बैठा न था। दो ही मील चलने पर थक गया, पर अकड़ कर बैठा ही रहा। मैंने कमर नहीं झुकाई। जब कभी मेरी पत्नी पालकी के पर्दे को ज़रा हटाकर मेरी ओर देखती तो मैं और भी तन कर बैठ जाता। एक कहार के पाँव को मोच आ गई। वह ग़रीब वहीं वृक्ष के किनारे बैठ गया। तब यह फ़ैसला किया गया कि महरी और दूसरे लोग तो पैदल आएँ या बारी-बारी बहलियों पर बैठ लिया करें और बहू को मेरे पीछे बिठा दिया जाय। मैं भी ख़ुश हुआ कि चलो अच्छा अवसर मिला।

"जब वह पीछे बैठ गई तो मैंने भी घोड़े को ऐंड़ लगाई और ऐसा सरपट दौड़ाया कि उसके होश उड़ गये। साथ ही जब मैं घोड़े के हंटर लगाता तो कुहनी से उसे भी ठेका दे देता। बस लाला जी पन्द्रह मिनट भी न चला था कि उसने सूखे गले से कहा—"मुझे उतार दीजिए, मेरा दम घुट रहा है।" मैंने उसे उतार दिया। मैं भी पसीना-पसीना हो रहा था, पर मैं उतरा नहीं। घोड़े को कभी इधर कभी उधर सरपट दौड़ाता रहा। इतने में महरी और दूसरे लोग भी आ गये। तब मैंने महरी से कहा कि वह उसे घोड़े पर चढ़ने के लिए कहे। क्योंकि इस तरह ठहरते चलने से तो देर हो जायगी। पर उसने इनकार कर दिया। महरी ने विनीत स्वर से कहा—"बाबू जी इसका दिल घबरा रहा है। आप चलिए, यह धीरे धीरे पैदल ही आयेगी।"

"बस लाला जी"—तेजभान ने गर्व से तन कर कहा—"वह उस बार जो उतरी तो फिर घोड़े पर नहीं चढ़ी। आठ मील पैदल चलना उसने स्वीकार कर लिया।

"घर पहुँचे तो माँ ने दहलीज पर तेल चुवाया। पानी का गडुवा लेकर महरी खड़ी हुई। और हमें अन्दर ले जाया गया। उसके बैठने के लिए आँगन में माँ ने पीढ़ा डाल दिया। मैंने कहा—"पीढ़ा सीढ़ियों के पास रक्खो!" माँ ने हैरानी से कहा—"वहाँ क्यों बेटा ?" गर्ज कर मैंने कहा—"मैं जो कहता हूँ, वहाँ रक्खो।"

"सहम कर माँ ने पीढ़ा सीढ़ियों के पास रख दिया और सिमटी सिमटाई-सी दुल्हन उस पर बैठ गई। कंगना आदि खोल कर तत्काल मैं ऊपर गया। वे सब कपड़े उतार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाले। तौलिए से बदन पोंछा। एक नई खुले गले की कमीज़ पहनी। बिरजस कसी और उस पर ख़ाकी शिकारी कोट डाँटा, नये बूट पहने, बाल सँवारे और वह छोटा-सा डंडा जो मैंने लाहौर-नुमाइश में ख़रीदा था हाथ में लिया। फिर धमधमाता हुआ इस ज़ोर से सीढ़ियाँ उतरा कि मकान तक काँप गया। इससे उस पर कितना रोब पड़ा होगा इसका अनुमान आप लगा सकते हैं।"

लाला गोकुलचन्द ने इस तरह सिर हिलाया जैसे वास्तव में उन्होंने इसका अनुमान लगा लिया हो। पंडित जी फिर बोले—"नीचे आकर मैंने माँ से कहा—"मैं ज़रा घोड़े की सवारी को जा रहा हूँ।"

माँ ने कहा—"बेटा अभी तो तू....."

मैंने कहा—"बस, बस, मैं एक चक्कर काट कर आ जाऊँगा। सैर करने की जो मेरी आदत है"। और यह कह कर मैं धमधम करता बाहर निकल आया।

"बस, इस तरह लाला जी, घर आते ही आते मैंने उस पर अपना रोब डाल दिया।" यह कह कर तेजभान चुप होने ही लगे थे कि गोकुलचन्द ने कहा—"अरे यार वह बात तो सुनाओ—वही बुआ के घरवाली।"

तब फिर उत्साह पाकर पण्डित तेजभान कहने लगे—"लाला जी वह मुझ से ऐसी डर गई कि जाते ही बीमार पड़ गई। कुछ देर बाद मुझे ख़बर मिली कि वह अपनी बुआ के यहाँ नूरमहल आई हुई है। बुआ से हमारा अच्छा परिचय था। वास्तव में यह रिश्ता उसके द्वारा ही हुआ था। पता लगते ही मैं भी वहाँ जा पहुँचा। मुझे बुआ ने एक अलग कमरे में ठहराया। बुआ के लड़के-लड़कियाँ दूसरे रिश्ते नातेदार तो सब मुझे मिलने आये पर वह नमस्कार तक करने न आई। सारा दिन बीत गया, रात भी धीरे-धीरे अपना आँचल फैलाये खेतों, मैदानों और मकानों को अपनी छाया से छिपाने लगी; दिये जले; बच्चे खेलते-खेलते थक कर सो गये, पर वह न आई। आना तो क्या मेरे कमरे में उसकी परछाईं तक न दिखाई दी। वैसे बाहर वह फिरती रही। मेरे दिल में क्रोध का बवंडर उठ खड़ा हुआ। बुआ से मैंने पूछा—"विमला की तबीयत कुछ ख़राब है?"

बुआ ने मुस्कराकर कहा—"नहीं, ख़राब तो कुछ नहीं। मैं तो कह कर हार गई हूँ। वह तुम से डरती है। पर आ जायगी, अभी काम कर रही है। देखो तुम्हारा स्वभाव तो गर्म है पर उसे कुछ सख़्त सुस्त न कहना।"

"बुआ चली गई। गर्व से मेरा सीना फूल उठा। तो यह मेरा ही डर है जिसके कारण वह नहीं आई। ख़ैर, चुपचाप मैं लेट कर उसकी प्रतीक्षा करने लगा। आठ के बाद नौ, नौ के बाद दस, दस के बाद ग्यारह, और फिर बारह यहाँ तक कि एक बजने को आया पर उसकी छाया भी दिखाई न दी। मेरा क्रोध जो बुआ की बात के बाद ठंडा हो चला था फिर भभक उठने को हो गया। माना उसे शर्म आती है, माना वह मेरे पास बहुत देर तक नहीं बैठ सकती, पर कुशल-क्षेम तो आकर उसे पूछना चाहिए था। तभी लजाती सकुचाती वह दाख़िल हुई। तड़प कर मैंने कहा—"तेरे बाप के नौकर हैं क्या, जो यहाँ बैठे तेरा इन्तज़ार करें? क्यों नहीं आई पहले?"

वह बेचारी सहमी खड़ी रही।

मैंने फिर डाँटा—"चली जा यहाँ से।"

वह चुपचाप निकल गई।

"सारी रात मुझे नींद न आई। करवटें बदलता रहा, पर सन्तोष मुझे इतना था कि वह मेरे सामने बोल न सकी। इस बात का भी मुझे यक़ीन हो गया कि दूसरे दिन वह जल्दी आ जायगी।

"नींद न आने के कारण दूसरे दिन मैं प्रायः सोता ही रहा। शाम को नूरमहल की प्रसिद्ध सराय की ओर निकल गया। पर पहले दिन की अपेक्षा ज़रा जल्दी लौट आया। ख़याल मुझे यह था कि वह मेरी प्रतीक्षा ही करती होगी। पर जब खाना भी बुआ लाई और खाना खाने के बाद फिर कल की भाँति समय बीतने लगा तो मैं दो छोटे बच्चों के साथ ताश खेलने लगा। उन्हें नींद आने लगी, फिर भी मैं उन्हें खिलाता रहा। यहाँ तक कि उनमें से एक वहीं सो गया। तब बुआ आई और उन्हें ले गई। मैं खेल तो उनके साथ रहा था, पर कान मेरे बराबर रसोई की ओर लगे हुए थे। वहाँ वह काम कर रही थी, पर काम जैसे उसका निबटने में ही न आता था। बुआ, उनके पति, बाल-बच्चे सब सो गये। पर वह अभी बरतन ही मल रही थी। शायद एक बार धो साफ़ करके वह फिर उन्हें मलने लगी थी। प्रतीक्षा करते-करते मेरी आँखें पक गईं। मैं समझ गया कि वह मुझसे बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डर गई है। इसलिए जब वह पहले दिन से भी देर के बाद आई तो पहले तो मैंने उसे डाँटा और कहा कि 'चली जा।' पर जब वह सहम कर जाने लगी तो मुझे दया आ गई। मैंने उसका आँचल पकड़ लिया और कहा—"बैठ जा, चल, हमने तुझे माफ़ किया। आगे को ऐसा न करना।"

गोकुलचन्द बोले—"और लाला जी तब से इस मर्द का ऐसा रोब उस पर ग़ालिब हुआ है कि वह फिर आई ही नहीं।"

गर्व से सिर उठा कर पण्डित तेजभान ने कहा—"चाहे देर से आये पर सारी उम्र के लिए आराम तो रहेगा न। क्यों लाला जी?"

मैंने कहा—"हाँ इसमें क्या शक है।"

× × × ×

लेकिन आज जब पण्डित जी के विवाद को चार वर्ष हो गये हैं, वह अभी तक अपने मैके बैठी है। ऐसा मालूम होता है कि उसकी ओर से पण्डित जी को सारी उम्र का आराम हो गया है। कुछ लोगों से सुना कि उसने अपने माँ बाप से कहा है कि लड़के के दिमाग़ में कुछ ख़लल है। पर पण्डित जी को इस बात का पूर्ण विश्वास है कि उसके न आने का कारण उनका रोब-दाब ही है।

हंस-गीत

लेखक, प्रोफ़ेसर मनोरञ्जन, एम० ए०

अन्त समय है रोना कैसा, गाते गाते मर जाना है।
आज सफ़र का अन्त बटोही, अब तो अपने घर जाना है॥

दुनिया एक मुसाफ़िरख़ाना,
लगा रहे नित आना जाना,
जब तक रहना मोद मनाना,
आख़िर सब तज कर जाना है,
आज सफ़र का अन्त बटोही, अब तो अपने घर जाना है॥

यह जो मानस-सर लहराता,
हंस जहाँ नित मोती खाता,
कूज कूज मस्ती से गाता,
कूच यहाँ से कर जाना है,
आज सफ़र का अन्त बटोही, अब तो अपने घर जाना है॥

जीवन मेरा था लासानी,
कौन स्वच्छ मुझ-सा विज्ञानी,
दूध दूध औ पानी पानी
मैंने हरदम पहचाना है,
आज सफ़र का अन्त बटोही, अब तो अपने घर जाना है॥

फिर भी आज बुलाहट आई,
परम हंस ध्वनि पड़ी सुनाई,
कौन टाल सकता है भाई,
अब तो ब्रह्म नगर जाना है,
आज सफ़र का अन्त बटोही, अब तो अपने घर जाना है॥

आज भाग धन मेरे जागे,
दिली मुराद मिली बिन माँगे,
हम तो आज चले प्रिय, आगे,
तुम को भी पीछे आना है।
आज सफ़र का अन्त बटोही, अब तो अपने घर जाना है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दंडी-प्रयाण

लेखक, श्रीयुत अनूपशर्मा, एम० ए०, एल-टी०

टूटा शीस-फूल वारुणी का चरमाचल पै
रजनी-प्रकाश की शिरायें खिलने लगीं।
प्रथमा दिशा से यामिनी की रसनायें बढ़ीं
ग्रास पश्चिमीय सभ्यता का गिलने लगीं।
देखो अस्तमान भानुमान की निहारिकायें
होकर विचूर्ण वीचियों में मिलने लगीं।
पिंगल प्रभा से भासे अचल अंगों के शीस
शंकरीय जटिल जटायें हिलने लगीं ॥१॥

नीर नदियों का साँझ देख कुछ धीमा पड़ा
किन्तु देख पड़ता तडाग सिहरा हुआ।
व्योम से सघन घन-मंडल बनाता हुआ
ऊपर नगर के धुएँ का कुहरा हुआ।
ढलक रहा है चरमाचल शिला पै रवि
अंतर में जिसके तमिस्र बिखरा हुआ।
जान पड़ता है कि गिरीश की भुजा पै धरा
पूषण के प्याले में हलाहल भरा हुआ ॥२॥

मुदित बनाता हुआ सकल निशाचरों को
घोर अंधकार-धूम भीति-भूति राँचेगा।
बिखरे हुए जो अस्थि-पंजर समान तारे
उनमें स्वभाग्य के सुभाग्य अंक बाँचेगा।
सूर हुआ चिता के अँगार के समान मंद
देखके निधन कौन अमृत न जाँचेगा?
ज्ञात हो रहा है पश्चिमात्य प्रेत-देहली पै
उग्र प्राच्य काल का कपाली आज नाचेगा ॥३॥

चाट गई लोहू जो लपक हत-वासर का
अंधकार-रसना अतीव बृहती हुई।
धोने लगी प्रकृति कपोल ओस-आँसुओं से
रोने लगी आशा भी ललाट धुनती हुई।
चटक रही है चटकाली दारु-मेद-तुल्य
क्षितिज विराजमान लाल युवती हुई।
एक बार और चरमाचल-चिता पै आज
दग्ध हुआ सूर्य, संध्या-सुन्दरी सती हुई ॥४॥

× × ×

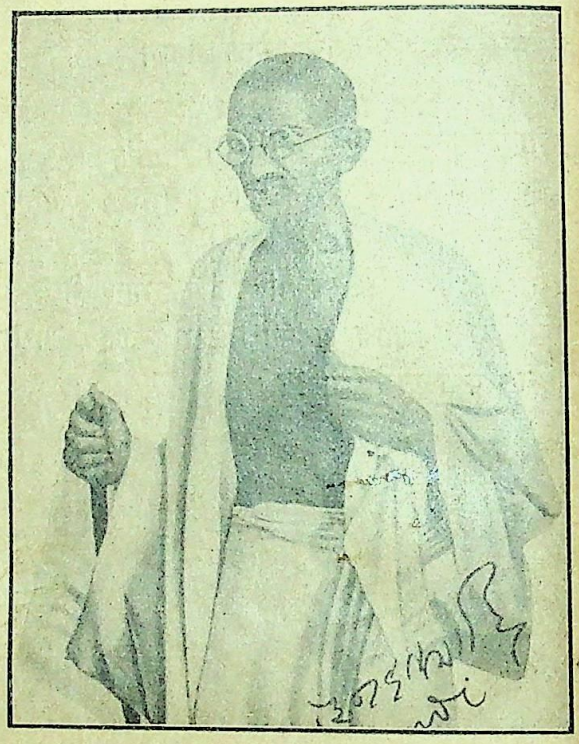

किन्तु यहाँ धीर-नीर साबरमती के तीर
गांधी कर्मवीर ईश-ध्यान में समाया है।
चारों ओर आश्रम-निवासी सरदार शूर
साधु सुविचार ने सचिव-पद पाया है।
आज कुछ और ही उमंग अंग अंग में है
ईश को स्वकीय ईशता का ध्यान आया है।
भाल भगवान् की कृपा का है किरीट मंजु
शीस क्षमापति की क्षमा का छत्र छाया है ॥५॥

रहती सदैव देश-चिन्ता चाकरी में सदा
सेवा करने को साथ दीनता अरुद्रा है।
घोर यम-नियम कठोर द्वार-पाल सम
शक्ति वीर-बाहुओं में साहस-समुद्रा है।
भ्राजमान दुर्ग में अहिंसा के विराजमान
राजने को मंजु आसनी ही एक क्षुद्रा है।
मीलित सुनेत्र, ध्यान-कीलित कलेवर है
वलित ललाट और मौन मुख-मुद्रा है ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन है चरित्र, पास धरणी पवित्रता की
मन में मुदाम राम-नाम का सहारा है।
तोष-निधि-अचल अटूट हृदयस्थल में
सत्य मोद-दायी चित्त-सेवक दुलारा है।
वीर है असहयोग-संगर का तू ही एक
तू ही शान्ति-व्योम का उदीयमान तारा है।
आरत मही का मोद मोहन महान् तू ही
भारत-मही का तू सपूत पूत प्यारा है ॥७॥

संध्या हो गई है किन्तु संध्या-से त्रिरंग नेत्र
ईश-वन्दना का ध्यान भंग कर प्रकटे।
भारतीय भू की भारतीयता की भावना से
देश-हित-चिन्ता-अनुषंग कर प्रकटे।
मानो समता से अंतरंग-रंगभूमि-मध्य
ममता हरा के अभी जंग कर प्रकटे।
मानस-समुद्र से स्वतंत्रता का रत्न खोज
दोनों रत्न-पारखी उमंग कर प्रकटे ॥८॥

सामने खड़े जो वीर भट अनुशासन को
धीर शान्ति-सैनिक लगे यों हाथ जोड़ने।
देख युग पूषण उदित उदयाचल पै
सिद्ध लगे अंजलि-निबद्ध नीर छोड़ने।
कानन-कदंब हुई देह लख लोचनों को
देख दृश्य नारियाँ तृणों को लगीं तोड़ने।
पुण्य-प्रभा उज्ज्वल प्रकट हुई आनन पै
पाप-पारतन्त्र्य का मलीन मुख मोड़ने ॥९॥

दीन-हीन दुखित तृणों से झुलसे थे घोर
दुःसह कुसभ्यता के ताप की थी तर्जना।
मुदित पड़े थे मन-मोर क्लेश-कानन में
व्यथित वराक थे विलोक वारि-वर्जना।
दावा से दमन के अवनि हुई आवासम
करने लगे यों जीव जीवन विसर्जना।
देख दशा पावस के प्रथम पयोद-सम
करने लगे यों कर्मवीर धीर गर्जना ॥१०॥

× × ×

"अब न सहेगा न सहेगा यातनायें घोर
अब न रहेगी न रहेगी परतन्त्रता।
अब न बचेंगे पुण्य-भूमि के दुराव भाव
अब न चलेगी पिशुनों की षड्यन्त्रता।
अंतिम यही है दिन, अंतिम यही है निशा
प्रात में अवश्य ही मरेगी निज तंत्रता।
श्रेयस यही है हो स्वराज्य अवनीतल पै
प्रेयस यही है भोगें भारत स्वतंत्रता ॥११॥

"पथ भारतीयों का निपट अवरुद्ध आज
कंटक उखाड़ना है, सुमन बिछाना है।
डालना है जीवन की नाव भीति-भौंर-मध्य
काल के भी गाल से निकाल ध्येय लाना है।
जब लौं न मिलती स्वतंत्रता अनूप हमें
तब लौं कुमंडल-खमंडल मिलाना है।
कूदे जो समुद्र में तो रत्न ही निकालना है
उछले गगन में तो तारे तोड़ लाना है ॥१२॥

"अब न रुकेंगे न रुकेंगे न रुकेंगे हम
टूट गिरें ऋक्ष अंतरिक्ष चाहे फट जाय।
प्राप्त करना है सिद्ध-साबर-स्वतंत्र-मंत्र
मेरु हो सचल चाहे मंदर उलट जाय।
व्यापी आज दीनों की पुकार चारों ओर घोर
क्रोश हुआ क्रूर नींद अब तो उलट जाय।
करनी चढ़ाई है भयंकर असभ्यता पै
हो जो भयभीत शीघ्र सामने से हट जाय ॥१३॥

"होवे क्रांति ऐसी कि समूह देश-शोषकों के
डर जायँ हूह में, बिडर जायँ धावा में।
दीनों की कराल आह-ज्वाल में विदग्ध हों वे
दग्ध हों द्विषद स्वीय पाप के पजावा में।
फट जाय तिमिर प्रभात में उषा से यथा
कट जाय कलुष तुम्हारे एक कावा में।
नारकीय नीति को अनल सत्याग्रह का दो
जल तो रहा है देश क्लेश-दुख दावा में ॥१४॥

"आश्रम-निवासिनी सकल ललनायें माँयें
बहनें, हमें है पशुता से युद्ध ठानना।
लड़ना तुम्हें भी सत्याग्रह की लड़ाई घोर
अवसर आते निज धर्म पहचानना।
हम सब रण में मरेंगे या विजय लेंगे
तुमसे कहे जो कि भगे तो मत मानना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे पैर देंगे न स्वराज्य बिना पाये हुए
आश्रम में लौटे जो पिशाच उसे मानना ॥१५॥

"या तो हम सकल स्वतंत्र होंगे भारत में
या कि आमरण कारागार में ही बास है।
होता मुंड मंडित विजय वैजयन्तिका से
या तो रुंड सड़ता समुद्र के ही पास है।
बहनो! सुताओ! वीर माँओ! अंगनाओ! जाओ,
भिड़ना हमें, तो तुम्हें लड़ना स-हास है।
या तो हम लौटेंगे अहिंसा-युद्ध जीत के ही
या कि जन्म-भर का हमारा बन-बास है ॥१६॥

अखिल दिशायें व्यनुनादित बनाती हुई
निकली अनूप उक्त व्याहृति विलम्बमान।
जिसका महान् पवमान-यान-वेग देख
दिल्ली हुई वेपमान, शिमला प्रकम्पमान।
सागर में जाते देश-द्रव्य-अपहारी पोत
उच्छल तरंगों में झटिति हुए झम्पमान।
शंकित विदेश सुनते ही महावीर-हाँक
जैसे यातुधानी राजधानी हुई कम्पमान ॥१७॥

× × ×

आश्रम-निवासी गये, आश्रम-निवासिनी भी,
सूर्य गये, संध्या गई अपने निवेश में।
आया अन्धकार आई रजनी निशीथ-संग
तारों साथ आया चन्द्र अम्बर-प्रदेश में।
ऐसा आवागमन विलोक कौन ज्ञानी कभी
चूकेगा समाधि-सिद्धि-सागर-प्रवेश में।
कौन यह निपट निलीन ध्यान-धारणा में
अम्बर-पलंग के पड़ा है एक देश में? ॥१८॥

तारापति सहित स्वकीय तारा-मंडल के
उदित हुआ है आज क्षितिज प्रतीची में।
सेवकों-समेत कर्मवीर है शयान यहाँ
व्यापा शैत्य रोदसी अनूप ओस-सींची में।
मचल गया है मन, अचल हुआ है ध्यान,
सचल हुआ है कवि कल्पना की वीची में।
गांधी चढ़ा व्योम में प्रकाश करने को, या कि
चन्द्र ही पड़ा है इस आश्रम-बगीची में ॥१९॥

भावी घटनाओं का हिये में प्रतिबिम्ब छाया
चित्त में सकल चल-चित्र चलने लगे।
हो गये त्वरित आशा-अंकुर विशाल वृक्ष
सकृत स्वराज्य के सुफल फलने लगे।
व्यापी एक क्रान्ति हुई पृथ्वी अशान्तिमयी
भ्रान्तिमयी झंझा के झकोर झलने लगे।
भारत मही में सत्याग्रह की लड़ाई छिड़ी
वसन विदेशी होलिका-से जलने लगे ॥२०॥

धारासभा छोड़ धाराबाही बादलों वृन्द
देश में अबाध गति से यों बहने लगे।
उगल विचार के अँगार ग्राम-ग्राम मध्य
आग जो लगाई सभी प्रान्त दहने लगे।
काठ से कठिन क्रूर हृदय विपक्षियों के
ऐसे घोर वचन-कुठार सहने लगे।
"आ रहा स्वराज्य जागो, आ रहा स्वराज्य चेतो,
आ रहा स्वराज्य उठो," लोग कहने लगे ॥२१॥

स्वार्थ-परता ही अत्याचार की प्रसूतिनी है
भूतिनी है घोर हो गई है बात साँची आज।
एक साथ एक-सौ-चवालिस चलाये अस्त्र
प्रकट हुई यों पाप-पालित पिशाची आज।
निपट निहत्थे मत्थे उन्नत किये ही चले
धन्य, धीरता ने वीरता की रेख खाँची आज।
राजनीति भोंड़ी यह, निपट निगोड़ी यह,
घामड़ों की घोड़ी यह नंग नाच नाची आज ॥२२॥

चलने लगा है सारे देश में दमन-चक्र
ढलने लगा है ग्राम-ग्राम कारागार में।
फलने लगा है पाप-वृक्ष अत्याचार-फल
जलने लगा है सत्य न्याय कुविचार में।
बन्दी बने इतने कि टूटी जेल की भी भीति,
छूटी जेल की भी भीति प्रबल प्रचार में।
देश मुक्त होके निज ओर दौड़ आता देख
जागे कर्मवीर जनता के हाहाकार में ॥२३॥

× × ×

आँख खोल देखा पूर्व ओर तो उषा की प्रभा
छाई गौर-रूपिणी प्रसन्न हो गगन में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानों सती-संध्या वही, जन्म ले समोद फिर,
प्रकट हुई हो शैलराज के सदन में।
ब्रह्म-काल परम विशाल सिद्धि-मूल जान
अंग भरे पुलक, उमंग भरे मन में।
उद्यत प्रयाण को अनूप कर्मवीर हुए
जागो सभी सैनिक, सवेग चलो रन में ॥२४॥

प्राची की ललाम छवि-धाम लालिमा के व्याज
मानों बाल सूर्य से सिंदूर माँग लाई है।
बिखरा पड़ा जो इस आश्रम-थली की थाल
ओस का ही अक्षत-समूह सुखदाई है।
देख पड़ती है जो उषा की मंजु पौ भी यह,
लौ भी यह ललित कपूर की लगाई है।
पुण्य के प्रभात, कर्मवीर की विदा के हेतु
मातृ-भूमि ने ही आज आरती सजाई है ॥२५॥

चहक रही है चटकाली गीत गाती हुई
मंगल-संगीत पादपों के पात-पात में।
सुखद समीर सानुकूल बहने से मंजु
छाई है प्रफुल्लता दृगों-से जल-जात में।
आगई सजगता अनूप रोम-रोम पर
चक्रवाक चंचल चपल चले प्रात में।
मानों मातृ-भूमि ही सदेह देश-नायक के
आई साज रण के सजाने गात-गात में ॥२६॥

तीन बल बलित ललित मंजु भाल-मध्य
रोचन बँधूक - मान - मोचन लगा हुआ।
फूल उठा तरल तरंगित सरोवर में
रक्त वारि-जात उषा रंग में रँगा हुआ।
असुर-अशान्ति, सुर-शान्ति का प्रसार कर
बैठा सोम-अंक मानों मंगल जगा हुआ।
किंवा कर्मवीर के ललाट उदयाचल पै
शोभित स्वतंत्रता का पूषण उगा हुआ ॥२७॥

हाथ में लकुट, शीस पाग का मुकुट मंजु
अस्त्र है न शस्त्र, किन्तु हिम्मत सवाई है।
रक्त-रंग-माला लम्बमान जो उरःस्थल पै
सिद्धि ने विजय-वैजयन्ती पहनाई है।
घोर परतंत्रता पै, पाप पै, पिशुनता पै
आज मातृ-भूमि-हेतु कर दी चढ़ाई है।
भारत रणस्थल, अहिंसा-सत्य साधन हैं,
नेता कर्मवीर, सत्याग्रह की लड़ाई है ॥२८॥

सजल विलोचनों का लेकर पुनीत नीर
पुलकित रोम-कुश लेके मोद-मय हो।
बोली मातृ-भूमि कंठ आश्रम-सरस्वती के
"आज यही देती हूँ असीस मैं सदय हो।
ए रे बीर बाँकुड़े लड़ैते धीर साहसी तू
धर्म-वर्म-धारी कर्म-चारी तू अभय हो।
मंगल हो पथ में, अमंगल न आवें पास,
साधन हों सफल, रण-स्थल में जय हो" ॥२९॥

दौड़े पूर्व-पुरुष प्रयाण-दृश्य देखने को
बोले प्रहलाद "सत्याग्रह की विजय हो"।
व्योम से दिलीप-अम्बरीष-हरिश्चन्द्र बोले
"गो-पच, अभक्त अत्याचारियों की क्षय हो।"
शून्य से अशून्य ने पधार भगवान् बुद्ध
बोले, "भाव हिंसा का अहिंसा-मध्य लय हो।"
"शत्रु-पराजय हो," पुकार गोखले ने कहा,
केसरी से किलक तिलक बोले, "जय हो" ॥३०॥

जयजयकार-ध्वनि मध्य कर्मवीर चले,
धीर चले अंतरिक्ष सुमन-प्रपात में।
शक्ति-युक्त सज के समूह संग-संग चले
मंगल मरद - भट - भृंग चले प्रात में।
झोंके चले वायु के अनोखे गंध-भार युक्त
देश-हित-खोजी चंचरीक चले व्रात में।
भारत से भभर अभागियों के भाग चले
भागे भेद-भाव भूरि नरक-निखात में ॥३१॥

ज्यों ही पड़ा प्रथित प्रथम पद भूतल पै
डगमग डोली भूमि, तल लचने लगा।
डोले सप्त-सिन्धु-मध्य द्वीप के समूह सारे
देश-द्रोहियों को प्रलै-काल जँचने लगा।
खलभल - सहित स-संभ्रम विपक्ष - व्यूह
व्यर्थ बचने का उपचार रचने लगा।
अग्नि सी लगी है, वाडवाग्नि सी लगी है
क्यों दवाग्निसी लगी है, हाहाकार मचने लगा ॥३२॥

साहस की धारा निराधारा बहती है यहाँ
और वहाँ अश्रुधारा-धावन अपार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश-दुख-दावा यहाँ धधक रहा है घोर
आपदा का आवा वहाँ कालानलाकार है।
हो रही यहाँ है 'पाहि, पाहि' दीन-दुखियों में
वहाँ मुखियों में "त्राहि, त्राहि" की पुकार है।
देश हाहाकार है, विदेश हाहाकार है,
यहाँ भी हाहाकार है, वहाँ भी हाहाकार है॥३३॥

गांधी चढ़ा दंडी पै उदंडी वृत्ति धारे, या कि
आँधी चली प्रबल प्रचंड आसमान को।
या कि दावानल ही गहन में बवंडर-सा
ऊँचा उठा व्योम में छिपाते भासमान को।
अथवा विपत्तियों का सुयश-समुद्र देख
दौड़ा वाडवानल अधीर नीर-पान को।
चक्र चक्र-पाणि का चला कुचक्रियों पै, या कि
पवन-कुमार चला लंका के प्रयान को॥३४॥

× × ×

होते ही प्रभात बढ़े पश्चिम दिशा की ओर
छाया लम्बमान पड़ी जाकर विदेश पर।
पीछे दिनकर के अपार कर संग चले
जीत को अनीति-अंधकार अवशेष पर।
सिन्धु तीर दमके लवण कण आतप में
चमके यथैव भाग्य-अंक भाल-देश पर।
ऐसे पुण्य-प्रात में सकल नर-नारी चले
होने न्यवछावर भटों के वीरवेश पर॥३५॥

भीति त्याग मृत्यु की अशीति सैनिकों का वृन्द
मत्त-करि-निकर-विलास व्यस्त करता।
आगे बढ़ा ज्यों ही शक्ति-साहस-समेत वह
भारतीय भू की भीरुता को ग्रस्त करता।
आकर सवेग मिला जनता-समूह उसे
दौड़ा अभिनन्दन निबद्ध-हस्त करता।
आतुर विलोक कर्मवीर एक बार और
बोला धर्मधीर कूट-नीति त्रस्त करता॥३६॥

"बाद में तुम्हें भी सजना है यही साज वीर!
और इसी भाँति सज करना चढ़ाई है।
लूटना है हमको नमक-कर तोड़-तोड़
देश-दाहकों की नीति-रहित कमाई है।
दृष्टि बँध जाय दृष्टि-बंधन किया है वह
कान हों बधिर ऐसी दुंदुभी बजाई है।
अस्त्र है अहिंसा, सत्य शस्त्र, क्षेत्र भारत है,
सैनिक हैं आप सत्याग्रह की लड़ाई है॥३७॥

"शीघ्र लग जाओ कार्य-क्रम-रचना में सभी
काम करो अपना खलों से कहो तानें दो।
आते ही समय आपसे ही ग्रस्त-व्यस्त होगा
देश में दमन-चक्र उनको चलाने दो।
दब सकती ही नहीं भावना स्वतन्त्रता की
भारत-मही को कारागार बन जाने दो।
सबल स्वराज का समीरण चला है आज
प्रबल प्रचंड पाप-पादप गिराने दो॥३८॥

"वदन-वदन से स्वराज्य की ही माँग कढ़े
सदन-सदन से निरुद्यम निगोड़ा जाय।
होवे घर घर घर घर चरखे की ध्वनि
हृदय-हृदय से ज्वरा का भय छोड़ा जाय।
देखके तुम्हारी मानवोचित महानता को
पड़ पशुता की पीठ पर एक कोड़ा जाय।
डगर-डगर में बहु वसन विदेशी जलें
डगर-डगर में नमक-कर तोड़ा जाय॥३९॥

अब न चलेगी कोई चाल परतन्त्रता की
भारतीय भूमि पै स्वतन्त्र-मन्त्र छावेगा।
देश-रक्त-शोषण अशेष बन्द होगा अब
सत्य ही लड़े तो शीघ्र सत्ययुग आवेगा।
अंतिम सँदेश देश-वासी नर-नारी सुनो
संगठन सबका गजब जब ढावेगा।
हेल कर देने से खलों का खेल होगा भंग
जेल भर देने से स्वराज्य मिल जावेगा॥४०॥

देखकर देश की भयंकर दरिद्रता मैं
लकप रहा हूँ रात-दिन दुःख पाता हूँ।
शीला माँगने से शिला मिलती जहाँ है आज
ऐसे अधमों को काल-चक्र पै चढ़ाता हूँ।
अब न सहेगा देश-दुख परतन्त्रता का
विजित न होवे ऐसा व्यूह रचवाता हूँ।
आ रहा स्वराज्य आज भारत-वसुन्धरा में
स्वागत के हेतु अग्रगामी बना जाता हूँ॥४१॥"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा तू वीर बाँकुड़े अहिंसा-धर्म-धारी धीर
सफल असहयोग-संगर-विजेता जा ।
लेता जा सकल मनुजों की कामना का फल
उत्तम-चरित्र उपदेश हमें देता जा ।
बहने न पायेगी पवन प्रतिकूल अब
शासन-समुद्र में स्वदेश-नाव खेता जा ।
नेता जा अखिल भारतीय जनता का आज
साज राजनीति-रंगमंच-अभिनेता जा ॥४२॥
शंकर दें सुफल सकल सिद्धि-कामना का
शासन त्रिलोक का सुरेश अविचल दें ।
विधि दें महान् वरदान वीर्य-विक्रम का
शक्ति के निधान बजरंग बली बल दें ।
राम रमणीयता दें, कृष्ण कमनीयता दें
अम्बिका-भवानी शत्रु-सैन्य सारी मल दें ।
तेरे भुज-दंड पै घमंड वीरता को वीर
युद्ध-श्रीगणेश श्रीगणेश चारों फल दें ॥४३॥

× × ×

ए हो आसमान में सतत धावमान मेघ
अपथ तुम्हारा पथ विपथ चढ़ाई है ।
ए हो तुंग तरल तरंग-राशि अंबुधि की
अगति तुम्हारी गति प्रगति सवाई है ।
ए हो उच्च अचल सघन बन आदि सारे
शीघ्र हो सजग अभी छिड़ती लड़ाई है ।
भारत को सकल स्वतन्त्र साधना दो आज
भारत ने सबको स्वतन्त्रता दिलाई है ॥४४॥

धन्य देवि ! जयति स्वतंत्रते ! अनूप अम्ब !
तू ही अवलम्ब रही देती अवसर से ।
आज तक तेरी ही कृपा से सत्य जीवित है
मिलते न सुफल स्वराज्य के अपर से ।
तू ही निज सेवक समाज को बता के पथ
भूमि पै सम्हालती रही है व्योम पर से ।
भारत-धरा को निज हास का प्रकाश देती
हँसती रही है तू हिमालय-शिखर से ॥४५॥

उद्भावन

लेखिका, कुमारी 'कुमुद'

पथिक,—कहाँ जा रहे हो ? क्या चाहते हो ? किसे खोजते हो ? क्या कहा—अनन्त की ओर, मनहर को ढूँढने ? वही मनहर तो नहीं जिसने अनेक व्रज-बालाओं को पीड़ित किया था ! भोली राधा को रुलाया था ! क्या वही ?

बावरे, उसे न ढूँढो, उसके चक्कर में न पड़ो, वह न मिलेगा; तुम्हें भी रुलायगा, तरसायगा, तड़फायगा, कहते हो बाँसुरी की सुरीली तान सुनाई देती है, बड़ी मनमोहक है, उथल-पुथल मच जाती है, क्या आपा भूल जाते हो !

भोले प्राणी,—यह मृगतृष्णा है, इसके फेर में न पड़ो, कुछ न मिल सकेगा, लुट जाओगे, एक हृदय नाम की वस्तु है उसे भी खो बैठोगे । और फिर क्या रह जायगा, निराशा ! हाँ केवल निराशा ही !! हाँ, हाँ, वही निराशा, जिसने अनेकों को धूल में मिला दिया, कितनी ही भोली बालाओं के अरमानों को मसल डाला और फिर जी खोल कर उसने अट्टहास किया !

अरे, नहीं मानते हो, चले ही जाते हो, हूँ ! कहते हो कि दया का सागर है ! नहीं, नहीं, भूलते हो, वह बड़ा निष्ठुर है, प्राणी-मात्र के दुखों पर अट्टहास तथा किलकारी मारनेवाला है, गोपियों के हाहाकार में ही तो उसको आनन्द है, सुख है, यही तो उसके रास का राज़ है !

मान जाओ, अब भी समय है लौट आओ, उस निष्ठुर छलिया के फेर में न पड़ो, जाने दो उसे और उसकी बाँसुरी को, उस निर्मोही को दिखा दो कि तुम्हें उसकी परवाह नहीं, तुम भी तो मान कर सकते हो, उससे क्या कम हो !

अरे, यह क्या ? मेरे इतना कहने पर भी तुम चले ही जा रहे हो ? नहीं मानते ! फिरकर देखते भी नहीं ! आह !!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता में पाठ-भेद

लेखक, श्रीयुत महेशप्रसाद, मौलवी आलिम फ़ाज़िल

सन् १९२९ ईसवी की बात है। मैंने 'अरबी-फ़ारसी में 'गीता' के शीर्षक से 'कल्याण' के गीता-अंक में एक लेख लिखा था। उसमें गीता के एक फ़ारसी-अनुवाद के आधार पर मैंने यह लिखा था कि इस अनुवाद में ७४५ श्लोकों का अनुवाद है, जिनका ब्योरा इस प्रकार है—

श्रीकृष्ण	के	६०५ श्लोक
अर्जुन	,,	५७ ,,
सञ्जय	,,	६७ ,,
धृतराष्ट्र	,,	१६ ,,
		७४५

सच तो यह है कि जिस समय श्लोकों की संख्या की बाबत लिखा था, न तो उस समय और न उसके बाद काफ़ी समय तक मुझे यह पता था कि गीता में कितने श्लोक हैं या यह कि श्लोकों की संख्या का प्रश्न कुछ महत्त्व का है। मेरे उक्त लेख के बाद कील-यूनीवर्सिटी (जर्मनी) के श्री एफ़० ओटो शरेडर* से पहले और उनके बाद श्री एस० एन० ताडपतरिकर एम० ए०† ने गीता की श्लोक-संख्या की चर्चा की।

बाद को कई सज्जनों ने मुझे इस सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा और कई सज्जनों ने मुझसे बात-चीत भी की और मुझे 'महाभारत' का यह श्लोक बतलाया—

षट्शतानि सविंशानि श्लोकानां प्राह केशवः।
अर्जुनः सप्तपञ्चाशत् सप्तषष्टिं च सञ्जयः॥
धृतराष्ट्रः श्लोकमेकं गीताया मानमुच्यते॥‡

इसके अनुसार श्लोक-संख्या इस प्रकार ठहरती है—

श्रीकृष्ण	के	६२० श्लोक
अर्जुन	,,	५७ ,,
सञ्जय	,,	६७ ,,
धृतराष्ट्र	,,	१ ,,
		७४५*

किन्तु गीता की जो प्रतियाँ प्रायः प्रचलित हैं उनके अनुसार संख्या का लेखा इस प्रकार है—

श्रीकृष्ण	के	५७५ श्लोक
अर्जुन	,,	८४ ,,
सञ्जय	,,	४० ,,
धृतराष्ट्र	,,	१ ,,
		७००†

अब यह स्पष्ट है कि महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण के ४५ और संजय के १७ श्लोक प्रचलित पुस्तकों में कम हैं और अर्जुन के २७ अधिक हैं।

अब मैं यहाँ गीता की कुछ उन प्रतियों का उल्लेख करना चाहता हूँ जो प्रचलित प्रति से पाठ व क्रम आदि में कुछ-न-कुछ भिन्न हैं।

शुद्ध धर्ममण्डल मदरास—इस मण्डल-द्वारा प्रकाशित 'भगवद् गीता' का दूसरा संस्करण (सन् १९१७ ई० का) मैंने देखा है। इसमें अठारह के स्थान पर २६ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय के नाम के साथ 'गीता' शब्द जोड़ा गया है। जैसे पहले अध्याय का नाम है—'गीतावतारनिरूपणं नाम' दूसरे अध्याय का नाम है—'नरनारायण धर्म गीता नाम'—इत्यादि।

---

* The Kashmir Recension of the Bhagwadgita, पृष्ठ २० (भूमिका) सन् १९३० ई०।

† 'श्रीमद्भगवद् गीता' पूना सन् १९३४ ई० पृष्ठ ३ (भूमिका)।

‡ महाभारत, भीष्म-पर्व, ४३ अ०, ७ श्लोक।

* फ़ारसी-गीता की तीन हस्तलिखित प्रतियों में ७४५ श्लोकों का लेखा ऐसा ही मिलता है जैसा कि महाभारत का है।

† जिन लोगों के विचार से अध्याय १३ में श्लोकों की संख्या ३५ है उनकी दृष्टि से कुल संख्या ७०१ माननी की आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस गीता में समस्त श्लोकों की संख्या ७४५ है। किन्तु यह ज्ञात रहे कि प्रचलित गीता के ३५ से कुछ अधिक श्लोक ऐसे हैं जो इसमें नहीं मिलते और उनकी व कुछ अधिक अर्थात् कुल ८२ श्लोकों की पूर्ति महाभारत के उद्योग, अनुशासन, शान्ति और भीष्म पर्वों से हुई है। उदाहरणार्थ प्रचलित गीता के अध्याय १३ में यह श्लोक है—

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते॥

यह श्लोक उक्त मण्डल की गीता के अध्याय २० में नवाँ श्लोक है। इसके पश्चात् महाभारत के उद्योग-पर्व के अध्याय ४६ के श्लोक १ व २ ये हैं—

यत्तच्छुक्रं महज्ज्योतिर्दीप्यमानं महद्यशः।
तद्वै देवा उपासते तस्मात्सूर्यो विराजते॥
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥१॥
शुक्राद्ब्रह्म प्रभवति ब्रह्म शुक्रेण वर्धते।
तच्छुक्रं ज्योतिषां मध्येऽतप्तं तपति तापनम्॥
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥२॥*

सारांश यह कि प्रचलित गीता में जिस क्रम से श्लोक हैं उस क्रम से मण्डल की गीता में नहीं हैं। उदाहरणार्थ मण्डल की गीता के अध्याय २० में प्रचलित गीता के अध्याय १०, १८, २, १३ आदि के श्लोक रक्खे गये हैं। इस प्रकार प्रचलित गीता से यह गीता बहुत कुछ भिन्न है और इसके अनुसार भिन्न भिन्न व्यक्तियों के श्लोकों का ब्योरा इस प्रकार है—

श्रीकृष्ण	के	६०८ श्लोक
अर्जुन	,,	६९ ,,
सञ्जय	,,	६७ ,,
धृतराष्ट्र	,,	१ ,,
		७४५

* मण्डल की गीता में ये दोनों श्लोक संख्या में तीन दिखाये गये हैं, किन्तु महाभारत की जो प्रति बम्बई के निर्णयसागर ने सन् १९०७ ईसवी में प्रकाशित की है और टी० आर० कृष्णाचार्य और टी० आर० व्यासाचार्य ने जिसका सम्पादन किया है उसमें उक्त श्लोकों को दो ही माना है। हाँ, मण्डल की गीता में एक पंक्ति आगे-पीछे दिखलाई गई है।

काश्मीरी गीता—यह गीता 'काश्मीर रिसेनशन् आफ़ दी भगवद् गीता' के नाम से सन् १९३० ईसवी में जर्मनी से प्रकाशित हुई है। इसके सम्पादक प्रोफ़ेसर एफ़० ओटो शरेडर ने इसमें गीता के अठारह अध्यायों का ही वर्णन किया है। किन्तु पाठ-भेद काफ़ी अधिक बतलाया है।

उदाहरणार्थ इस गीता के अनुसार पहले श्लोक का पाठ इस प्रकार है—

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे सर्वक्षत्रसमागमे।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय॥

और आठवें श्लोक का पाठ इस प्रकार है—

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपः शल्यो जयद्रथः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिश्च वीर्यवान्।

प्रचलित गीता के अध्याय २ के श्लोक १० के पश्चात् अर्थात् १० व ११ के बीच में भगवान् कृष्ण का यह श्लोक आता है—

त्वं मानुष्येणोपहतान्तरात्मा विषादमोहाभिभवाद्विसंज्ञः।
कृपाग्रहीतः समवेक्ष्य बन्धूनभिप्रपन्नान्मुखमन्तकस्य॥

इसी प्रकार यह जानना चाहिए कि तीसरे अध्याय के श्लोक ३६ के पश्चात् अर्जुन का एक श्लोक और कृष्ण के ये चार श्लोक अधिक हैं—

भवत्येष कथं कृष्ण कथं चैव विवर्धते।
किमात्मा कः किमाचारस्तन्ममाऽऽचक्ष्व पृच्छतः॥
× × ×
एष सूक्ष्मः परः शत्रुर्देहिनामिन्द्रियैः सह॥
सुखतंत्र इवासीनो मोहयन्पार्थ तिष्ठति।
कामक्रोधमयो घोरः स्तम्भहर्षसमुद्भवः॥
अहंकारोऽभिमानात्मा दुस्तरः पापकर्मभिः।
हर्षमस्य निवर्त्यैष शोकमस्य ददाति च॥
भयं चास्य करोत्येष मोहयंस्तु मुहुर्मुहुः।
स एष कलुषः क्षुद्रश्छिद्रप्रेक्षी धनञ्जय॥
रजः प्रवृत्तो मोहात्मा मनुष्याणामुपद्रवः।

इन श्लोकों के पश्चात् प्रचलित गीता का श्लोक ३७ है। काश्मीरी गीता में पूरे १४ श्लोक और चार आधे श्लोक ऐसे हैं जो प्रचलित गीता में नहीं हैं। किन्तु यह भी ज्ञात रहे कि अध्याय २ के श्लोक ६६ व ६७ इसमें नहीं हैं। पाठ-भेद व अधिक श्लोक सबके सब रोमन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षरों में हैं और केवल वही श्लोक इसमें दिये गये हैं जो पाठ-भेद से सम्बन्ध रखते हैं अथवा जो अधिक हैं।

श्रीमद् भगवद् गीता पूना—इस गीता का सम्पादन श्री एस० एन० ताडपत्रिकर, एम० ए० ने किया है। इसमें प्रचलित गीता के समान १८ अध्याय व ७०० श्लोक हैं। समस्त अध्यायों का नाम प्रचलित गीता के नामों के अनुसार है और श्लोकों का मूल पाठ भी कहीं-कहीं मुक़ाबिला करने से मुझे वही मिला है जो प्रचलित गीता का है, किन्तु यह पुस्तक इस दृष्टि से उत्तम है कि इसमें पाठ-भेद बहुत अच्छी तरह दिखलाये गये हैं। इसके पाठ-भेद के अनुसार पहले अध्याय का पहला श्लोक काश्मीरी गीता के अनुसार है।

इसी प्रकार पाठ-भेद के विचार से पहले अध्याय का आठवाँ श्लोक भी उसी रूप में पढ़ा जा सकता है जिस प्रकार कि काश्मीरी गीता में है।

गीता की यह पुस्तक 'भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना' से सन् १९३४ में प्रकाशित हुई है। इसकी अँगरेज़ी भूमिका से गीता के विषय में अनेक बातें मालूम होती हैं।

श्री भगवद् गीता—इसका संपादन गोण्डल (काठियावाड़) के राजवैद्य श्री जीवाराम कालिदास ने किया है। जून १९३७ में इसका जो संस्करण निकला है उसमें प्रचलित गीता से २१ श्लोक अधिक हैं और अनेक स्थलों का पाठ प्रचलित गीता से भिन्न है। श्लोकों की अधिकता सवत् १२३५ की एक हस्तलिखित प्रति व काश्मीरी गीता के अनुसार है। प्रचलित गीता के समान इसमें अठारह ही अध्याय हैं, किन्तु प्रचलित गीता के कुछ श्लोकों के अन्तर्गत अनेक नये श्लोक कहीं कहीं बढ़ाये गये हैं और काश्मीरी गीता में जो पूरे या अधूरे श्लोक हैं वे सब-के-सब इनमें आ गये हैं। संभव है, बहुत छान-बीन करने पर बहुत थोड़ी संख्या ऐसे श्लोकों की निकले जो काश्मीरी-संस्करण में न हों।

इसके २५० स्थलों में पाठ-भेद दिखाया गया। अस्तु, यहाँ पहले अध्याय के श्लोक ३, ८, ६ और ११ ऐसे दिये जा रहे हैं जिनका पाठ* प्रचलित गीता से कुछ न कुछ भिन्न है :—

पश्य तां पांडुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥३॥
भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपः शल्यो जयद्रथः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिश्च वीर्यवान् ॥८॥
अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणा नानायुद्धविशारदाः ॥९॥
अयनेषु तु सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥११॥

अन्त में यह कहना है कि प्रचलित गीता की कोई पुस्तक अपने सामने रखकर दो बातों का निर्णय करना चाहिए—

(१) बढ़े हुए श्लोक अगले-पिछले श्लोकों के साथ कहाँ तक संगत अथवा असंगत हैं।

(२) पाठ-भेद कहाँ तक उचित तथा अनुचित है।

हाँ, इसी सिलसिले में यह बता देना भी आवश्यक है कि फ़ारसी-गीता की कई प्रतियों में मैंने जो कुछ लिखा हुआ देखा है उससे यह सिद्ध होता है कि उसमें गीता के ७४५ श्लोकों का अनुवाद हुआ है। पिछले दिनों लंदन की 'इंडिया आफ़िस लायब्रेरी' से फ़ारसी-गीता की दो हस्त-लिखित प्रतियाँ मँगाई गई थीं। उनमें से एक में ७४५ श्लोकों का उल्लेख है। काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय ने अपने पुस्तकालय के लिए लंदन के 'ब्रिटिश म्युज़ियम' और कैम्ब्रिज की 'किंग्स् कालेज लायब्रेरी' से फ़ारसी की दो हस्तलिखित गीताओं का जो फोटो मँगाया है उनमें से एक में ७४५ श्लोकों का उल्लेख है।

गीता के समस्त फ़ारसी-अनुवाद का मुक़ाबिला यदि संस्कृत-पाठ के साथ भली भाँति किया जाय तो संभव है, कुछ अच्छा ही फल निकले और इस बात पर भी प्रकाश पड़े कि विवादास्पद स्थलों का अर्थ अनुवादक की दृष्टि में क्या था।

*रेखांकित शब्द प्रचलित पाठ से भिन्न हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैयद इंशा की 'हिन्दवी छुट'

लेखक, श्रीयुत चन्द्रबली पांडे

विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी में सैयद इंशा अल्ला खाँ ने अपनी कुछ रचनाओं-द्वारा 'हिन्दवी छुट' का रूप उपस्थित किया था। विदेशी प्रभाव के कारण अनेक हिन्दी के इतिहासकार उसे तत्कालीन हिन्दुओं की भाषा समझते हैं, और मुसलमानों से उसका नाता नहीं जोड़ते। पर बात वस्तुतः दूसरी है। वह भाषा हिन्दू और मुसलमान दोनों की भाषाओं की मध्यवर्ती भाषा है, या यों समझिए कि वह ऐसी ही भाषा है जैसी आज-कल की "हिन्दुस्तानी" है। पाँडे जी ने इस लेख में तत्सम्बन्धी अपने विचार युक्तिपूर्वक उपस्थित किये हैं।

सैयद इंशा (मृ० सं० १८७५ वि०) की 'रानी केतकी की कहानी' अथवा 'उदयभान-चरित' की चर्चा तो बराबर चलती रहती है, पर कभी उनकी 'हिन्दवी छुट' की छान-बीन नहीं होती। परिणाम यह होता है कि हम 'हिन्दवी' के वास्तविक अर्थ से अपरिचित रह जाते हैं और अपने विलायती प्रभुओं की देखा-देखी उसे केवल हिन्दुओं की शुद्ध भाषा समझ बैठते हैं। गले में गुलामी का तौक़ और मस्तिष्क पर दासता की छाप होने के कारण हमें इतना भी साहस नहीं होता कि हम अपने पूर्वजों के ग्रंथों का अध्ययन शुद्ध अपनी दृष्टि से करें और उनके विचारों का प्रकाशन दिलेरी पर सचाई के साथ करें। कभी इस व्यामोह में न पड़ें कि हमारे विदेशी प्रभु हमारे विचारों से सहमत न होंगे और हमें कट्टर या हठधर्मी समझ लेंगे। नहीं, कदापि नहीं। उनमें जो सत्यनिष्ठ हैं वे हमारी सचाई की दाद देंगे और हमारे प्रकाश से अपने धुँधले ज्ञान को और भी प्रकाशित बना लेंगे। यदि अपने देश और साहित्य की परंपरा में भी हमारी पूछ नहीं हुई और हम उन्हीं के कल्पित इशारे पर चलते रहे तो संसार में जीवित रह कर साँस लेने का हमें हक़ क्या? विश्व के विधान में हमारी सत्ता की उपयोगिता क्या? क्या हम मानव नहीं हैं? केवल मनुष्य के हाथ की कठपुतली हैं? यदि नहीं तो आइए सैयद इंशा की 'हिन्दवी छुट' पर विचार करें और उन दिवांधों को भी सुझा दें कि 'हिन्दवी'[1] हिन्दुओं की ही नहीं, बल्कि समूचे हिन्द की भाषा है।[2] 'उर्दू' के शिष्ट समुदाय अथवा शरीफ़ मुसलमानों की ज़बान भी 'हिन्दवी' है। उसी 'हिन्दवी' की एक शैली विशेष का नाम 'हिन्दवी छुट' अथवा 'खड़ी हिन्दवी' है, जिसको हम खड़ी हिन्दी भी कह सकते हैं।

सैयद इंशा का कथन है—

"एक दिन बैठे बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो।" (डौल डाल एक अनोखी बात का)

सैयद इंशा का यह व्रत कितना कठिन था, इसका कुछ पता अभी चल जाता है। उनके 'मिलनेवालों में से

---

(१) हिन्दवी, हिन्दी तथा हिन्दुस्तानी का ठेठ या वास्तविक अर्थ एक ही है। प्रमाद अथवा साहबों की नादानी के कारण उनके संकेत में भेद उत्पन्न कर दिया गया और हिन्दवी को केवल हिन्दुओं की भाषा कहा गया।

(२) उर्दू से तात्पर्य 'उर्दू-ए-मुअल्ला' के देश से है, जो आज भी उर्दू ज़बान का घर समझा जाता है। शाहजहानाबाद अथवा दिल्ली के भाग विशेष का नाम उर्दू-ए-मुअल्ला था। जिसमें लाल क़िला, उर्दू बाज़ार और जामा मसजिद की गणना होती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक कोई बड़े पढ़े लिखे···लगे कहने—"यह बात होते दिखाई नहीं देती। हिन्दवीपन भी न निकले और भाषापन भी न हो। बस जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते चालते हैं ज्यों का त्यों वही सब डौल रहे और छाँह किसी की न हो, यह नहीं होने का।" क्यों नहीं होने का, इसके कारण प्रत्यक्ष दिखाये गये हैं—

(१) हिन्दवीपन की कड़ी पाबन्दी,

(२) भाषापन का बहिष्कार,

(३) भले लोग अच्छों से अच्छे के व्यवहार में होना, और (४) किसी भी अन्य भाषा की छाँह का न होना।

हिन्दवीपन के विषय में तो हम अभी कुछ भी कह नहीं सकते, पर भाषापन, अच्छों से अच्छे और छाँह के संबंध में कुछ विचार अवश्य करेंगे।

सैयद इंशा के मित्र ने अपनी ओर से कुछ न कह केवल उनके कथन की व्याख्या भर की है। सैयद इंशा का कहना था कि उनकी कहानी में (१) हिन्दवी छुट और (२) किसी बोली का पुट न होगा। तथा उसमें (३) बाहर की बोली या (४) गँवारी का मेल न होगा। उनके मित्र ने समझा कि 'हिन्दवी छुट' तो 'हिन्दवीपन' है और 'और किसी बोली का पुट' 'भाषापन'। रही 'बाहर की बोली' और 'गँवारी' सो उनके मित्र ने उनका भी हिसाब लगा लिया। गँवारी का मामला तो यों दुरुस्त हो गया कि वह गँवारों की बोली न होकर 'अच्छों से अच्छे भले लोगों' की बोल-चाल हो और 'बाहर की बोली' का हिसाब इस तरह लगा कि 'छाँह किसी की न हो।'

'बाहर की बोली' को लेकर विवाद करना व्यर्थ है। प्रत्यक्ष ही उसका अर्थ है हिन्द के बाहर की बोली, यानी अरबी, फ़ारसी, तुर्की आदि। सैयद इंशा इन्हें 'बाहर की बोली' क्यों कहते हैं, इसका कारण गुह्य नहीं, बिलकुल प्रकट है। इन्हें कभी हिन्द में बोल-चाल का रूप नहीं मिला। ये कभी हिन्दी यानी हिन्द की न बन सकीं। जिन विदेशियों के साथ देश में आईं उनके साथ देश की न हो सकीं। उनके शासन के साथ ही उनका भी विनाश हो गया। निदान सैयद इंशा तथा उनके मित्र को उन्हें 'बाहरी बोली'[१] कहना पड़ा।

सच पूछिए तो सैयद इंशा के व्रत के दो पक्ष हैं। प्रथम में 'हिन्दवीपन' और 'भाषापन' हैं तो द्वितीय में 'अच्छों से अच्छे' लोग तथा 'बाहरी बोली'। इनमें 'बाहरी बोली' के बारे में हमने अच्छी तरह देख लिया कि उसका संकेत अरबी-फ़ारसी आदि विदेशी बोलियों से है। अतएव अब थोड़ा 'भले लोग अच्छों से अच्छे' पर ग़ौर करना चाहिए।

इसमें तो तनिक भी संदेह नहीं कि सैयद इंशा के 'भले लोग' वही हो सकते हैं जिनकी भाषा प्रमाण समझी जाती हो और समय पड़ने पर सनद के रूप में पेश की जाती हो। इसी सनदी ज़बान के लिहाज़ से सैयद इंशा को 'भले लोग' के साथ ही साथ 'अच्छों से अच्छे' का भी विधान करना पड़ा है। इसलिए अब यह आवश्यक हो गया है कि कुछ इसकी भी मीमांसा की जाय कि आख़िर सैयद इंशा के 'भले लोग अच्छों से अच्छे' हैं कौन से जीव! उनका निवास कहाँ है? उनकी ज़बान क्यों 'मुस्तनद' है?

सौभाग्य से सैयद इंशा ने 'दरिया-ए-लताफ़त' में (सं० १८६४ वि०) इसका पूरा विवरण दिया है कि कहाँ की ज़बान मुस्तनद है और किन लोगों की ज़बान को सनद के रूप में पेश कर सकते हैं। 'मसहफ़ी' से उनका जो मजलिसी[१] दंगल हुआ था उसमें 'उर्दू की ज़बान' प्रमाण स्वरूप मानी गई थी और उसी के आधार पर उस समय लखनऊ भी चल रहा था। निदान मानना पड़ता है कि सैयद इंशा के 'भले लोग' 'उर्दू' यानी उर्दू-ए-मुअल्ला के निवासी हैं; कुछ इधर-उधर के बाशिन्दे नहीं।

---

(१) खेद है कि आज नीति और प्रमाद के कारण सैयद इंशा तथा उनके मित्र का यह भाव छिपाया जा रहा है और फ़ारसी तथा अरबी यहाँ की भाषा का भांडार मानी जा रही हैं। संस्कृत के साथ फ़ारसी-अरबी आदि बाहरी भाषाओं का उल्लेख करना अनुचित है।

(१) प्रोफ़ेसर आज़ाद ने 'आबे हयात' में इसकी ख़ूब चर्चा की है। इसके लिए मसहफ़ी और सैयद इंशा का उक्त प्रसंग वहीं देखना चाहिए। साफ़ नज़र आयगा कि उर्दू ज़बान क्या सचमुच आईन है, उससे ज़रा भी इधर-उधर हो जाना भारी अपराध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़बान के बारे में सैयद साहब बाहरी लोगों को किस निगाह से देखते थे, ज़रा इस पर भी नज़र करें और साफ़ साफ़ नोट कर लें कि उनके 'भले लोग' कौन हो सकते हैं। उनका कहना है—

"हम चुनीं सक्नः महल्लात दीगर कि बाज़े अज़ सुहबत वालिदैन ज़बान याद दाश्तः व बाज़े ज़बान फ़रीदाबाद व बाज़े ज़बान रुहतक व बाज़े ज़बान सोनीपत व बाज़े ज़बान मीरठ याद गिरिफ़्तः बा रोज़मर्रये उर्दू ज़म नमूदः अन्द। व ख़ुदा कि गुफ़्तगूय शां शबीह बजानवरे अस्त कि चेहरा अश चेहरा अस्त व बाक़ी तमामश ब सूरत ख़र बाशद या निस्फ़श आहू व निस्फ़श सग।" (दरिया-ए-लताफ़त)

देखा आपने, सैयद साहब फ़रमाते हैं कि अन्य स्थानों के लोगों में जो उर्दू की ज़बान बोलते हैं, कुछ तो ऐसे हैं कि अपने माता-पिता से ज़बान सीख ली है और कुछ ऐसे हैं जिन्होंने फ़रीदाबाद, रुहतक, सोनीपत, मेरठ आदि की ज़बान सीखकर उनके बोलों को उर्दू के बोलचाल में मिला दिया है। अब सैयद साहब की निगाह में उनकी बातचीत ठीक उस जानवर की तरह है जिसके मुँह तो हो लेकिन बाक़ी तमाम हिस्सा गदहे का हो अथवा यह कि आधा भाग हिरन का हो और आधा कुत्ते का।

कहना न होगा कि सैयद साहब के 'गदहे' और 'कुत्ते' के वेश के लोग 'अच्छों से अच्छे' नहीं हो सकते। यह उपाधि तो उन्हीं को नसीब हो सकती है जो ख़ास दिल्ली के निवासी हों।

दिल्ली में बस जाने से ही किसी की ज़बान मुस्तनद नहीं हो सकती। कारण, सैयद साहब स्वयं फ़रमाते हैं—

"देहली में भी हर किसी के हिस्से में फ़साहत नहीं है। चन्द चुने हुए आदमियों को ही नसीब हुई है।" (हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी पृ० १२ पर अवतरित)

मतलब यह कि सैयद इंशा जिस 'हिन्दवी छुट' में कहानी लिखने का संकल्प करते हैं उसके बोलनेवाले चन्द दिल्ली के चुने हुए आदमी हैं। इन आदमियों में हिन्दुओं की गणना हो नहीं सकती। कारण, स्वयं सैयद साहब उन्हें इसके योग्य नहीं समझते। चुनांचः फ़र्माते हैं—

"बुद्धिमानों से यह बात छिपी नहीं है कि हिन्दुओं ने बोल-चाल, चाल-ढाल, खाना और पहनना इन सब बातों का सलीक़ा मुसलमानों से सीखा है।" (वही पृ० ४५)

अच्छा, यही सही। शिष्य-रूप में तो उनका उल्लेख हो गया। पर नहीं, यह भी शुद्ध भ्रम निकला। क्योंकि सैयद साहब का साफ़ साफ़ फ़तवा है—

"किसी भी बात में इनका क़ौल-फ़ेल ऐतबार के क़ाबिल नहीं है।" (वही पृ० ४५) किनका? उन्हीं हिन्दुओं का जिनकी भाषा 'हिन्दवी' कही जाती है और जिसे सैयद इंशा अपनी कहानी में अपनाने जा रहे हैं। नहीं, हर्गिज़ नहीं। कौन कह सकता है कि सैयद इंशा की 'हिन्दवी छुट' हिन्दुओं की भाषा है? ज़रा सामने तो आये और अपने दिमाग़ के ख़लल की तनिक जाँच तो कराये। हाँ, हमारा कहना है कि सैयद इंशा की 'हिन्दवी छुट' हिन्दुओं की नहीं, बल्कि इन नजीबों और फ़सीहों की बोल-चाल की ज़बान है जिन्हें सैयद इंशा ने स्वयं प्रमाण माना है और जिनका उल्लेख अपनी 'दरिया-ए-लताफ़त' में किस लुत्फ़ के साथ कर दिया है।

सचमुच 'हिन्दवी छुट' उर्दू के फ़सीहों और नजीबों की बातचीत की भाषा है, कुछ हिन्दुओं की अपनी भाषा नहीं। यदि वह हिन्दुओं की भाषा होती तो उसमें 'भाषापन' अवश्य होता। परन्तु सैयद साहब का दावा है कि उसमें 'भाषापन' भी न रहेगा। उर्दू की ज़बान में कितना 'भाषापन' था, इसे समझने के लिए मीर अमन 'देहलवी' की किताब[1] 'बाग़ोबहार' (सं० १८५८ वि०) का अध्ययन करना चाहिए। मीर अमन ने उसे 'ठेठ उर्दू की ज़बान' में लिखा है और सैयद इंशा ने इसे शिष्ट 'हिन्दवी छुट' में। यही इन दोनों पुस्तकों में प्रधान भेद है। सैयद इंशा मीर अमन की तरह—"हिन्दू मुसलमान, औरत मर्द, लड़के बाले, ख़ास वो आम" सबको नहीं लेते, प्रत्युत "भले लोग अच्छों से अच्छे" को ही चुनते हैं। फलतः उनकी भाषा भी अधिक व्यवस्थित और परिमार्जित है। सलीस और

(१) बाग़ोबहार की रचना फोर्ट विलियम कालेज के 'हिन्दी मुदर्रिस' डाक्टर गिलक्रिस्ट के कहने से कम्पनी-सरकार के साहबों के पढ़ने के लिए की गई थी। अनेक बातों का पता जो 'रानी केतकी की कहानी' में अजीब सी लगती हैं, वहीं से चल जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़सीह है। पर वास्तव में हैं दोनों ही जिन्हें उर्दू के लोग "आपस में बोलते-चालते हैं।"

'बाहर की बोली' और 'भले लोग अच्छों से अच्छे' की मीमांसा हो चुकी। अब थोड़ा 'हिन्दवीपन' और 'भाषापन' का भी विचार होना चाहिए। सैयद साहब की दृष्टि में उनका भेद क्या था, यह हम ठीक नहीं कह सकते, पर इतना अनुमान अवश्य कर सकते हैं कि उनका तथा उनके मित्र का मत उनके विषय में प्रायः एक ही था। सैयद साहब ने जिस 'गँवारी' का संकेत किया है उसमें 'भाषा' का भी निर्देश है। भाषापन का सीधा-सादा संकेत है संस्कृत शब्दों से भरी हुई हिन्दुओं की सामान्य भाषा—उस भाषा से जिसमें एक ओर तो संस्कृत के तत्सम शब्द आते थे और दूसरी ओर ग्रामीण शब्दों का भी व्यवहार होता था। संक्षेप में जो सैयद इंशा के 'भले लोग अच्छों से अच्छे' की भाषा न होकर केवल लोक-भाषा थी—जन सामान्य में जिसका बोल बाला था।

सैयद इंशा के मित्र ने देखा कि 'हिन्दवी' के साहित्य-गत दो रूप हैं। एक का प्रयोग तो 'भले लोग अच्छों से अच्छे' यानी उर्दू के नजीब और फ़सीह करते हैं तथा दूसरे का सामान्य लोग। साहित्य में ज़ाकर पहला दल अरबी-फ़ारसी का हिमायती हो जाता है और दूसरा भाषा अथवा संस्कृत का। सैयद इंशा अरबी-फ़ारसी का पल्ला छोड़ रहे हैं। निदान उनको 'भाषा' अथवा संस्कृत का स्वागत करना पड़ेगा। पर ऐसा करने से उनकी 'हिन्दवी' में गँवारी का भी मेल हो जायगा और वह 'हिन्दवी छुट' भी न रह जायगी। इसलिए सैयद इंशा को 'भाषापन' से भी अलग रहना पड़ेगा। सैयद साहब अजब आदमी हैं। न तो इस ढंग पर चलना चाहते हैं और न उस ढंग पर। बल्कि अपनी कहानी के लिए एक बिलकुल नया ढब निकालना चाहते हैं। 'ठेठ हिन्दवी' में साहित्य-निर्माण करना चाहते हैं।

सैयद साहब ताड़ गये। उन्होंने देख लिया कि हज़रत इस बात के क़ायल हैं कि काव्य के लिए अरबी-फ़ारसी अथवा भाषा का पल्ला पकड़ना अनिवार्य है। उनकी सहायता के बिना कोरी हिन्दवी में काव्य-रचना हो नहीं सकती। आख़िर मौजी जीव ठहरे। ताव में आ गये और किस तपाक से बोल पड़े—

"जो मेरे दाता ने चाहा तो वह ताव-भाव और राव-चाव और कूद-फाँद लपट-झपट दिखाऊँ जो देखते ही आपके ध्यान का घोड़ा जो बिजली से भी बहुत चंचल अचपलाहट में है हिरन के रूप में अपनी चौकड़ी भूल जाय।" (डौल डाल एक अनोखी बात का)

सैयद साहब का व्रत पूरा हुआ। 'रानी केतकी की कहानी' करामत के रूप में सामने आई। उसमें 'हिन्दवी छुट' और 'किसी बोली का पुट' नहीं है। पर क्या वस्तुतः उसमें काव्य है। क्या 'ताव-भाव' 'राव-चाव', 'कूद-फाँद' और 'लपट-झपट' को ही काव्य[1] कहते हैं? जो हो, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि सैयद इंशा ने अपने व्रत को पूरा किया और अपनी 'हिन्दवी छुट' की एक कहानी छोड़ गये।

सैयद इंशा के मित्र का आशय था कि 'हिन्दवीपन' का 'भाषापन' से सहज संबंध है। उसके बिना उसका उत्कर्ष हो नहीं सकता। इसी तरह भले लोग 'अच्छों से अच्छे' का बाहरी बोली से बड़ा लगाव है। उसके बिना उनका काम चल नहीं सकता। इसलिए उन्होंने सैयद साहब से कहा कि 'यह नहीं होने का'।

मित्र महोदय की यह पकड़ कितनी पक्की है। 'हिन्दवी' का 'भाषा' और 'अच्छों से अच्छे' का 'बाहर की बोली' से गहरा संबंध है। 'हिन्दुस्तानी' के प्रेमियों को चाहिए कि इसे अच्छी तरह नोट कर लें और साफ़ साफ़ समझ लें कि सच्ची हिन्दुस्तानी का संबंध भाषा यानी गँवारी तथा संस्कृत से ही है न कि अरबी-फ़ारसी आदि बाहर की बोली से।

---

(१) अभी अभी एक उर्दू के नामी अँगरेज़ी प्रोफ़ेसर ने उर्दू के इसी 'ताव-भाव', 'राव-चाव', 'कूद-फाँद' और 'लपट-झपट' को लेकर हिन्दीवालों को ललकारा है और यह प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया है कि रुचि और दिमाग़ी ग़ुलामी भी कोई चीज़ होती है। बेचारे को इतना भी पता या ख़याल नहीं है कि उर्दू की ज़बान की सफ़ाई किसमें और कितनी मानी जाती है। हाँ, एक बात पते की उनकी ज़बान से टपक पड़ी है। वह यह कि उर्दू के अच्छे या चोटी के शेर वही बन पड़े हैं जो ठेठ हिन्दी या हिन्दवी छुट में हैं। फिर फ़ारसी-अरबी की ग़ुलामी क्यों? कुछ इसका भी रहस्य है? 'ताकहँ पच्छि उगेउ दिनेसा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बाहर की बोली' से वास्ता तो उन लोगों का है जो 'अच्छों से अच्छे' यानी उर्दू के फ़सीह और नजीब हैं। देश की कौन कहे, 'उर्दू-ए-मुअल्ला' के भी किसी कोने में बसते हैं। समूचे देश से उनका कोई संबंध नहीं। और यदि है भी तो शाही लगाव न कि 'भाई-बंधु' का संबंध या भाई-चारे का कोई रिश्ता।

कहा जा सकता है कि अब वह ज़माना लद गया जब 'उर्दू' के कुछ नजीब और फ़सीह लोग ही 'अच्छे' और 'भले' समझे जाते थे। अब तो मनुष्य-मात्र को यह अधिकार मिल रहा है और उर्दू के आचार्य भी उस समय को 'अहदे जाहिलियत' या 'तारीक ज़मानः' कहते हैं। ठीक है। पर कृपया यह तो बताइए कि आज 'बाहर की बोली' का इतना सत्कार क्यों हो रहा है? क्योंकर आज वह घर की बोली बन गई है? क्या इसका भी कुछ रहस्य है?

जो हो, यहाँ हम उसके उद्घाटन में लीन नहीं हो सकते, पर इतना दिखा देना अनुचित भी नहीं समझते कि सैयद इंशा किस तरह अल्लाह और रसूल को याद कर अपनी 'हिन्दवी छुट' को पाक बनाते और विद्वानों को पेच में डाल देते हैं। 'हम्द' व 'नात' के रूप में उनका कथन है—

"सिर झुका कर नाक रगड़ता हूँ उस अपने बनाने-वाले के सामने जिसने हम सबको बनाया और बात की बात में वह कर दिखाया कि जिसका भेद किसी ने न पाया।"

यह तो हुई अल्लाह की बन्दना। अब ज़रा रसूल का स्मरण भी सुन लीजिए—

"इस सिर झुकाने के साथ ही दिनरात जपता हूँ उस अपने दाता के भेजे हुए प्यारे को, जिसके लिए यों कहा है 'जो तू न होता तो मैं कुछ न बनाता।"

तात्पर्य यह कि इस 'हिन्दवी छुट' में भी सैयद इंशा ने अपने दीन की दुहाई दी है और अपने मज़हब का पालन किया है। याद रहे इसका डौल भी अभी मज़हबी है। इसमें 'बाहर की छाँह'[१] साफ़ नज़र आती है। सैयद इंशा इसे छिपाते भी नहीं और अपने नाम का पता किस दुराव से दे जाते हैं—

"इस कहानी का कहनेवाला यहाँ आपको जताता है और जैसा कुछ उसे लोग पुकारते हैं कह सुनाता है।" (डौल डाल एक अनोखी बात का)

लोग उसे कैसा पुकारते हैं, इसे हम-आप अच्छी तरह जानते हैं। इंशा अल्लाह को कौन नहीं जानता? पर क्या आप यह भी जानते हैं कि यहाँ 'इंशा अल्लाह' किस भग-वद्भक्ति को पुष्ट कर रहा है? क्या कभी आपने किसी सच्चे मुसलिम के मुँह से 'इंशा अल्लाह' नहीं सुना है? यदि हाँ, तो सैयद इंशा की इस चातुरी, इस लगन और इस मज़हब की पाबन्दी की दाद दीजिए और इस भावना को दिल से निकाल दीजिए कि 'हिन्दवी' इस्लाम के प्रतिकूल है। सैयद इंशा ने तो 'हिन्दवी छुट' में भी इस्लाम को मिला दिया है, उसकी एक झलक दिखा दी है।

अभी तक 'हिन्दवी छुट' का जो रूप सामने आया है वह कहानी नहीं, कहानी की भूमिका है। उसमें कुछ न कुछ 'बाहरी बोली' की 'छाँह' है। कदाचित् यही कारण है कि सैयद इंशा आगे चलकर 'बोलचाल की दूल्हन का सिंगार' का संकेत करने के उपरान्त अपनी 'हिन्दवी छुट' की कहानी का श्रीगणेश करते हैं। उनकी 'हिन्दवी छुट' का सच्चा नमूना यह है—

"किसी देश में किसी राजा के घर एक बेटा था। उसे उसके माँ-बाप और सब घर के लोग कुँवर उदयभान कहके पुकारते थे। सचमुच उसके जोबन की जोत में सूरज की एक सोत आ मिली थी। उसका अच्छापन और भला लगना कुछ ऐसा न था जो किसी के लिखने और कहने में आ सके।" (कहानी के जोबन का उभार और बोलचाल की दूल्हन का सिंगार)

सैयद इंशा के 'भले लोग अच्छों से अच्छे' में केवल पुरुष ही न थे। महिलाओं की भी उनमें गणना थी। अस्तु उनकी भी बोलचाल को देख लीजिए—

"चूल्हे और भाड़ में जाय यह चाहत जिसके लिए आपको माँ-बाप का राज-पाट, सुख, नींद, लाज छोड़कर नदियों के कछारों में फिरना पड़े।.....इस बात पर पानी डाल दो नहीं तो पछतावोगी और अपना किया पावोगी। मुझसे कुछ न हो सकेगा। तुम्हारी जो कुछ अच्छी

---

(१) 'रानी केतकी की कहानी' के सभी निर्देश अथवा शीर्षक बाहर की बोली के ढङ्ग पर ही हैं। सैयद इंशा की पद-योजना या तरकीब का यह ढंग विचारणीय है, उर्दू और हिन्दी का ढर्रा अलग अलग दिखाई दे रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात होती तो मेरे मुँह से जीतेजी न निकलती, पर यह बात मेरे पेट नहीं पच सकती। तुम अभी अल्हड़ हो। तुमने अभी कुछ देखा नहीं। जो ऐसी बात पर सचमुच ढलाव देखूँगी तो तुम्हारे बाप से कहकर वह भभूत जो वह मुवा निगोड़ा भूत मुछन्दर का पूत अवधूत दे गया है, हाथ मुरकवा कर छिनवा लूँगी।" (मदनबान का साथ देने से नहीं करना)

सैयद इंशा की 'हिन्दवी छुट' बोलचाल की भाषा है। बोलचाल के अनेक रंग होते हैं। एक ढर्रे के लोग एक ढंग की भाषा बोलते हैं तो दूसरे ढंग के बिलकुल दूसरे ढर्रे की। इस प्रकार एक ही काल और एक ही देश में एक ही भाषा के भिन्न भिन्न रूप दिखाई दे जाते हैं। इस लेख का ध्येय यद्यपि सैयद इंशा की 'हिन्दवी छुट' का पूरा पूरा परिचय प्राप्त कराना नहीं है, तथापि इसका कुछ निर्देश यहाँ इस दृष्टि से कर दिया जाता है कि इसके आधार पर उनकी 'हिन्दवी छुट' का कुछ मर्म समझा जा सके और हिन्दी-हिन्दुस्तानी का व्यर्थ का मन-मुटाव मिट सके।

सैयद इंशा के 'भले लोग अच्छों से अच्छे' यह भली भाँति जानते थे कि उसी उर्दू में दूसरे ढंग की भाषा का भी व्यवहार होता है जिसे उर्दू के लोग टकसाल से बाहर की भाषा नहीं समझते। निदान सैयद इंशा अपनी कहानी में उस ढंग की भाषा का भी विधान कर जाते हैं। उदाहरण के लिए दो-एक अवतरण देख लीजिए। रानी केतकी के लिए गोसाईं महेन्द्रगिरि के जाने के प्रसङ्ग में सैयद साहब किस भाव से लिखते हैं—

"गुरू जी गोसाईं जिनको दंडवत है सो तो वह सिधारते हैं। आगे जो होगी सो कहने में आवेगी।" यह तो हुई 'अच्छों से अच्छे' की पंडिताऊ 'हिन्दवी छुट'। अब तनिक पंजाबी रंग भी देख लीजिए। उदयभान सिंहासन पर बैठ गये हैं और—

"दोनों महारानियाँ समधिन बन के आपस में मिलियाँ चलियाँ और देखने-दाखने को कोठों पर चन्दन के किवाड़ों की आड़ तले आ बैठियाँ।" (दूल्हा का सिंहासन पर बैठना)

सारांश यह कि सैयद इंशा अल्लाह ख़ाँ ने अपनी 'हिन्दवी छुट' की पैज को निभाने में किसी बात की कमी नहीं की, बल्कि उस समय की शिष्ट बोलचाल में ऐसी कहानी रच डाली जो आज भी बड़े काम की साबित हो सकती है। हम यह नहीं चाहते कि देश के केवल 'हिन्दवी छुट' का प्रचार हो, पर इतना अवश्य कहते हैं कि राष्ट्र के कल्याण और लोक के मंगल के लिए यह अनिवार्य है कि हम 'हिन्दवी' का स्वागत करें और विदेशियों के इस बहकावे में कभी भी न आवें कि 'हिन्दवी' हिन्दुओं की भाषा का नाम है, मुसलमानों का उससे कोई सम्बन्ध नहीं। मुसलमानों ने 'हिन्दवी' को किस तरह बढ़ाया है, इसकी चर्चा हम अन्यत्र करेंगे। यहाँ तो हमारी आँख खोलने के लिए सैयद इंशा की 'हिन्दवी छुट' ही पर्याप्त है।

अनुरोध

लेखक, श्रीयुत साहित्यरत्न ईशदत्त शास्त्री, 'श्रीश'

देख नभचुम्बन तुम्हारा
देख अवगुण्ठन तुम्हारा
नयन परिचय चाहते हैं
आज कादम्बिनि! तुम्हारा।

नृत्य करतीं कल्पने तुम
आज बन आशा नयन में
दो बुझा अब तो तृषा वह
एक हूँ प्यासा भुवन में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाग्रत नारियाँ

स्वास्थ्य और नृत्य

लेखिका, श्रीमती विद्वत्तमा मिश्र

नारी को सौन्दर्य का प्रतीक माना गया है। पुरुष की कल्पनायें, कलायें और भावनायें इसी को मध्यबिन्दु मान कर, इसी के चारों ओर घूमा करती हैं, इसमें रंचक भर सन्देह का स्थान नहीं है। नारी अपने इसी गुण के कारण संसार के हृदय की रानी बनी हुई है, और जब देखते हैं कि उद्दंड और आतंकवादी व्यक्तित्व भी क्षणिक विश्राम के लिए नारी-सौन्दर्य का आश्रय ग्रहण करता है तो नारी-रूप की विश्व-विजयिनी शक्ति पर आश्चर्य होता है।

अपने इसी प्रभाव को बढ़ाने और स्थायी रखने के लिए सृष्टि के आदि से लेकर अब तक नारी बराबर प्रयत्न करती रही है। यह प्रयत्न एक देशीय न होकर सार्वभौम के रूप में दिखाई देता है। भाँति-भाँति के शृंगार और वस्त्राभूषण, केश और वेश-विन्यास के नये-नये ढंग, भाँति-भाँति के कृत्रिम उपाय, कभी प्रकृति से दूरातिदूर भाग कर अधिक से अधिक वैज्ञानिक साधनों की ओर झुकाव, तो कभी विज्ञान को एकदम अनावश्यक ठहरा कर यहाँ तक प्रकृति के समीप आ जाना कि साधारण कपड़े भी उतार कर धूप, शीत, वारिश सहन करना, ये सब बातें केवल सौन्दर्य-साधना के लिए हैं। सौन्दर्य स्त्री-जाति की स्थायी सम्पत्ति है और उस पर उन्हें प्रकृति-प्रदत्त

[श्रीमती योगमाया देवी]

(आपने सर्वप्रथम वर्त्तमान संस्कृत-शिक्षा-प्रणाली के विरुद्ध, पटना-संस्कृत-छात्रा-सभा की सभानेत्री के पद से, आवाज़ उठाई थी। आपके आन्दोलन का यू० पी० व बिहार-सरकार पर काफ़ी असर पड़ा है। युक्त-प्रान्त-सरकार ने संस्कृत-शिक्षासुधार-कमेटी क़ायम की है और बिहार-असेम्बली में भी यह प्रश्न विचारार्थ पेश है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[स्वर्गीय सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की नातिन कुमारी आशा बनर्जी प्रदर्शित 'मीरा-नृत्य'।]

अधिकार प्राप्त है। परन्तु सौन्दर्य की कल्पना स्वास्थ्य के बिना नहीं हो सकती है। स्वस्थ शरीर में ही सौन्दर्य का निवास रहता है। जो स्त्री अस्वस्थ है उसकी ओर किसी का आकर्षण होना असंभव है। साथ ही अधिक रूपवती न होने पर भी जो स्त्री स्वस्थ है उसमें एक प्रकार का अद्भुत आकर्षण रहता है।

हर्ष की बात है कि हमारी जाति अब इस सत्य का अनुभव करने लगी है। सौन्दर्य की होड़ में अब तक तो वह आँख मूँद कर अप्राकृतिक साधनों की ओर दौड़ती रही, पर अब उसने अनुभव कर लिया है कि बिना स्वास्थ्य-साधना के सौन्दर्य की कामना असंभव है और स्वास्थ्य के लिए प्रकृति का अनुसरण अधिक श्रेयस्कर है।

इसी आधार पर योरप और अमेरिका में स्त्रियों ने स्वास्थ्य-साधना के लिए भाँति-भाँति के व्यायाम निकाले हैं। इन व्यायामों में दिन-दिन दिलचस्पी बढ़ती जाती है। पर हमारे भारतवर्ष में जहाँ कि अभी पेट की चिन्ता ही हल नहीं हो पाती, इस प्रकार के व्यायामों के प्रचार की कल्पना ही स्वप्न की बात है। इस समय जो कुछ

[कुमारी नमिता राय (आयु १२ वर्ष) द्वारा लाहौर-विश्व-विद्यालय में प्रदर्शित पौरस्त्य-नृत्य।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

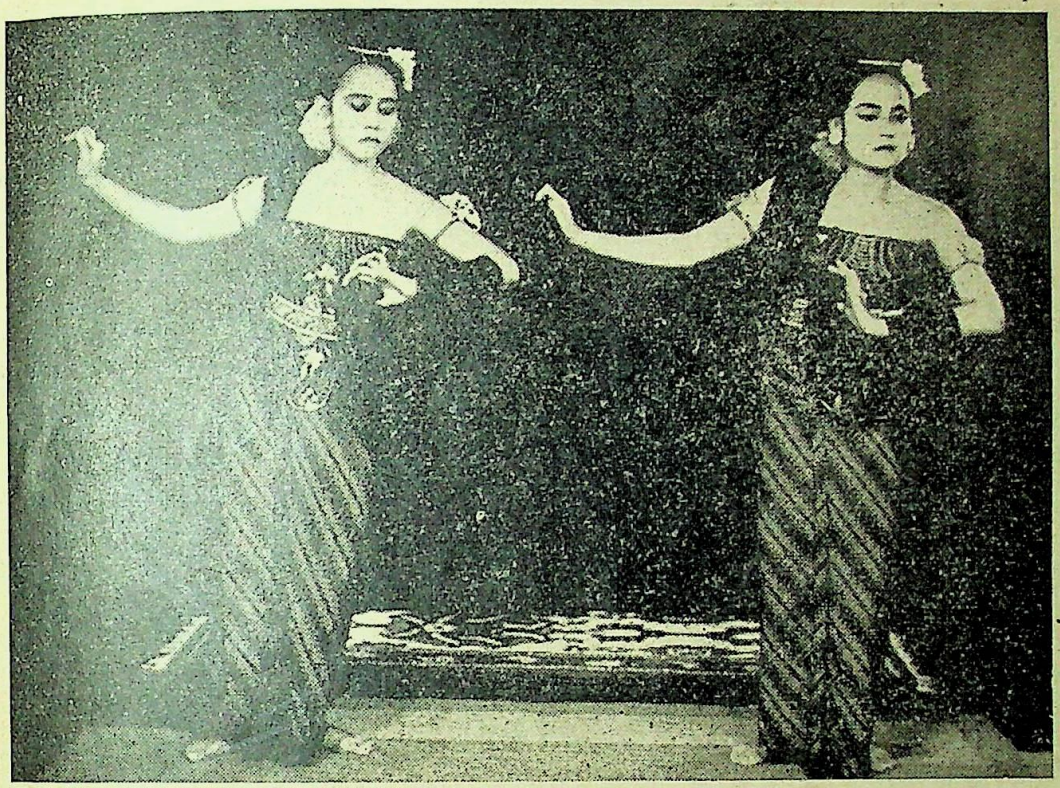

[स्वास्थ्य और सौन्दर्य - प्रदायक श्रृम्पी-नृत्य।]

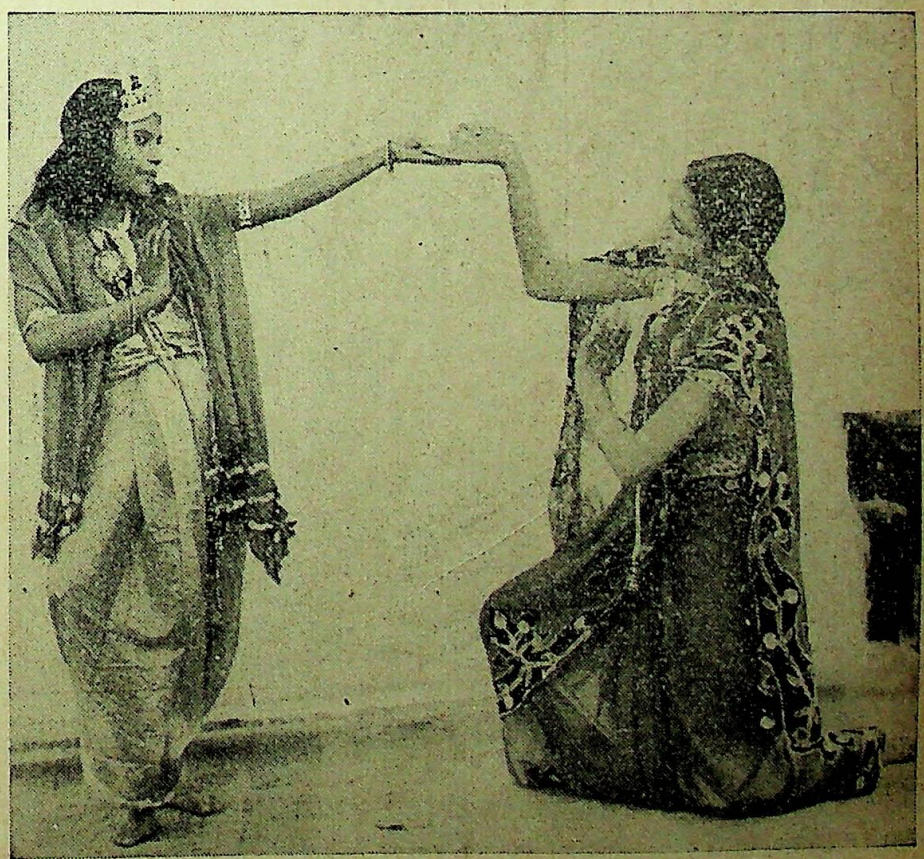

[इन्द्रप्रस्थ-कन्या-कालेज देहली में छात्राओं द्वारा प्रदर्शित 'उषा-नृत्य'।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़े-बहुत व्यायाम यहाँ प्रचलित हैं वे भी सम्पन्न परिवारों में ही हैं। साधारण गृहस्थों का ध्यान इस ओर नहीं है; न उनके पास इस के लिए अवकाश ही है। हाँ, लड़कियों के स्कूलों में अवश्य इस ओर थोड़ा-बहुत ध्यान दिया जाता है, वह भी जहाँ तक मुझे मालूम है केवल मॉडल या हाई-स्कूलों में ही। साधारण मिडिल और प्रायमरी कन्या-स्कूलों में अभी तक इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं है, बात यह है कि स्त्रियों के शरीर के लिए जिन व्यायामों की उपयोगिता मानी गई है वे व्यय-साध्य हैं और साधारण संस्थायें उनका बोझ बरदाश्त नहीं कर सकतीं।

यदि स्कूलों और शिक्षा-संस्थाओं की बात छोड़ दें तो गृहस्थों में तो व्यायाम के नाम पर शून्य ही दिखाई देता है। कुछ संपन्न महिलायें अवश्य टेनिस या बालीबाल आदि खेल शौक़िया खेलती हैं, पर अधिकांश तो सुबह-शाम मोटर-ताँगे में बैठकर घूमने को ही काफ़ी व्यायाम समझ लेती हैं। क्योंकि उनका अब तक शायद यही विश्वास है कि जब तक कारसेट, पाउडर व लिपस्टिक आदि से सौन्दर्य पाया जा सकता है, तब तक शरीर को क्यों कष्ट दिया जाय? इस प्रवृत्ति का फल उलटा हो रहा है। मेरे अनुभव में आया है कि धनिक परिवारों की तथा विश्व-विद्यालयों में पढ़नेवाली लड़कियाँ भी अधिकांश

[राजकुमारी भादा द्वारा सिडनी में प्रदर्शित 'नीलदेव' नृत्य।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

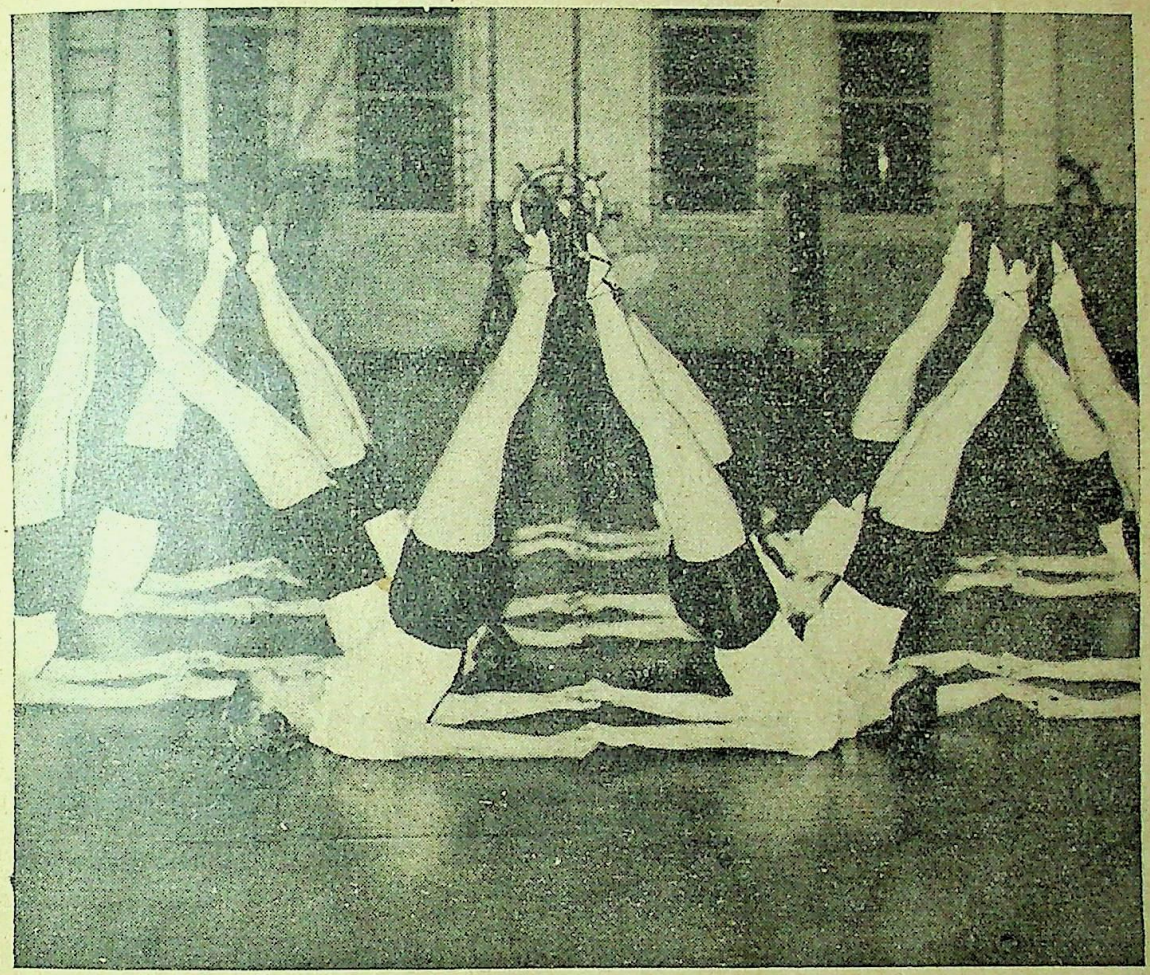

[मिस प्रुनेला स्टेक के द्वारा आविष्कृत स्त्रियों का एक रोचक व्यायाम, इँग्लैंड में इसका अच्छा प्रचार हो रहा है।]

प्रदर, क्षय आदि रोगों से पीड़ित होती हैं। बात यह है कि सौन्दर्य-साधना के कृत्रिम उपायों की ओर झुकी रहने के कारण उन्हें शारीरिक परिश्रम से अरुचि रहती है। अतः अपने शरीर की वास्तविक क्षमता का उन्हें ठीक ज्ञान नहीं होता। व्यायाम करने का उन्हें अवकाश भी नहीं मिलता। यह दशा तो रही शहरों और सम्पन्न घरों की—

देहातों की दशा तो और भी दयनीय है। वहाँ दारिद्र्य का इतना व्यापक प्रभाव है कि खुली हवा, साफ़ पानी और यथेष्ट शारीरिक परिश्रम के मिलने पर भी भोजनाच्छादन के अभाव के कारण स्वास्थ्य और सौन्दर्य का दर्शन नहीं होता। जब तक कोई व्यापक योजना देहातियों के रहन-सहन के पैमाने को ऊँचा न उठा दे, उन्हें स्वास्थ्य और सौन्दर्य की शिक्षा देना उनकी ग़रीबी का उपहास करना है। हाँ, मध्यमवर्ग की स्त्रियाँ यदि चाहें तो बहुत-कुछ कर सकती हैं और प्राकृतिक तथा अपेक्षाकृत सस्ते साधनों से सच्चा स्वास्थ्य लाभ करके डाक्टरों के बिलों में बड़ी कमी कर सकती हैं।

स्त्रियों के व्यायाम की कई प्रणालियाँ हैं। श्रीमती वैगट स्टेक की आविष्कृत प्रणाली भी एक आदर्श प्रणाली है। उसका आज-कल योरप के देशों में ख़ूब प्रचार बढ़ रहा है। श्रीमती वैगट का दावा है कि व्यायाम की इस प्रणाली द्वारा न केवल स्त्रियों का स्वास्थ्य ठीक रहता है प्रत्युत उनको चपल, सफल, सजीव, सुगठित और फ़ुर्तीला बनाया जा सकता है। यह संगीत की ताल पर व्यायाम करने की रीति है जो मनोरंजक भी काफ़ी है।

हमारे देश में, जैसा कि आम ख़याल है, टहलना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक आदर्श व्यायाम है। सुबह-शाम, शान का ख़याल छोड़ कर, मील-आधमील खुली हवा में टहलना स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभदायक है। पर धीरे-धीरे कछुए या हंस की चाल से टहलना बेकार है; न ख़रगोश या मृग की तरह दौड़ना ही आवश्यक है। लम्बे-लम्बे डग रखते हुए निश्चित गति से चलना अंगों को सुडौल बनाता है और रगों में चुस्ती लाता है। दूसरा व्यायाम जिसे सीखने की सिफ़ारिश मैं स्त्रीमात्र से करूँगी, संगीत है। संगीत से प्राणायाम की अपेक्षा फुस्फुसों को अधिक लाभ होता है। जो स्त्री प्रतिदिन आध घंटा प्रातःकाल प्रसन्नता और तल्लीनता से मध्यम स्वर में गाया करे उसे श्वास, यक्ष्मा आदि फेफड़ों के रोग कभी हो ही नहीं सकते। तीसरा व्यायाम 'सूर्य-नमस्कार' है। स्त्रियों के लिए यह सस्ता और उपयोगी है। इस पर पूरा प्रकाश मैं आगामी लेख में डालूँगी। परन्तु इन सबसे उपयोगी, अच्छा और सस्ता एक व्यायाम और भी है, जो जितना सरल है उतना ही मनोरंजक भी है। यह नारी-शरीर को ऐसा सुगठित कर देता है, कि ससार का कोई व्यायाम इस गुण में उसकी बराबरी नहीं कर सकता। यह 'नृत्य' है। पाश्चात्य देशों की स्त्रियों में इसका काफ़ी प्रचार है। पर वहाँ भी इसे मनोरंजन के लिए उपयोग करते हैं, व्यायाम के लिए नहीं। हाँ श्रीमती वैगट की प्रणाली जिसका उल्लेख मैं ऊपर कर चुकी हूँ, इसी से मिलती-जुलती है। पर भारतीय नृत्य की प्रणाली अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक तथा सरल है। अफ़्रीका और भारतवर्ष की पुरानी जातियों में नृत्य का अब भी काफ़ी रिवाज है, उनके अनेक प्रकार के नृत्यों के चित्र समाचार-पत्रों में प्रकाशित भी होते रहते हैं। पर वह सभी कुछ उत्सवों और विशेष अवसरों पर किया जाता है। प्राचीन संहिताओं से पता चलता है कि हमारे देश में इस कला का प्रयोग व्यायाम की भाँति भी किया जाता था। आयुर्वेद में स्त्री के लिए यह अत्यन्त लाभदायक बतलाया गया है। वेद तथा कर्मकांड-ग्रन्थों में भी इसका प्रशंसापूर्वक उल्लेख मिलता है। देव-मन्दिरों और विवाहादि उत्सवों पर अब भी हमारे यहाँ घर की स्त्रियाँ नृत्य करती हैं। इस समय भारत के प्रतिष्ठित घरों की अनेक लड़कियों ने इस कला में अपनी पारदर्शिता दिखला कर देश-विदेशों में बड़ा सम्मान प्राप्त किया है। मैं चाहती हूँ कि मेरी शिक्षिता बहनें भी इस कला को अपनायें और इसे घरेलू व्यायाम का स्थान दे दें। क्योंकि धनिक और निर्धन सब इससे समान रूप से लाभ उठा सकती हैं। जब से 'मेनका' और अन्यान्य लड़कियों की इस दिशा में ख्याति हुई है, अनेक सम्भ्रान्त-परिवारों की महिलायें लुक-छिपकर इसमें दिलचस्पी लेने लगी हैं। पर अभी, कम प्रचार होने के कारण, इसे अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता। हमारे देश की कुछ महिलाओं ने इसका व्यायाम की भाँति भी उपयोग किया है। उनका दावा है कि स्त्री के शरीर के अनावश्यक मोटापे को दूर करने, जंघाओं, बाहुमूलों और वक्षःस्थल को पुष्ट करने, कटि तथा उदर-प्रदेशों को पतला करने के लिए इससे अधिक सुन्दर व्यायाम हो ही नहीं सकता। इस व्यायाम में सबसे बड़ा गुण यह है कि यह शरीर में दृढ़ता लाता है पर अंगों की कोमलता पर बुरा असर नहीं डालता, न त्वचा को ही खुरदरा करता है। जो महिलायें टेनिस और बालीबाल को महत्ता देती हैं, या जो भाँति-भाँति के अंग-परिचालनों का अप्राकृतिक अभ्यास कर रही हैं, उन्हें चाहिए कि इस प्राचीन से प्राचीन, साथ ही अप-टु-डेट व्यायाम-पद्धति को अपनायें। काफ़ी प्रचार हो जाने पर इसके प्रति लोगों में जो ग़लत धारणा बन गई है वह दूर हो जायगी।

हमारे प्रान्त के शिक्षा-संचालकों को भी चाहिए कि छोटे-छोटे कन्या-पाठशालाओं में व्यायाम और खेलकूद अनिवार्य कर दें और यदि अधिक महँगे व्यायामों के चलाना असम्भव हो तो टहलना, कूदना, सूर्यनमस्कार, नृत्य तथा ऐसे ही व्यायामों को प्रोत्साहन देकर उनका प्रचलन किया जा सकता है। समझदार पुरुषों को भी अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि खुली हवा और मैदान में चलना-फिरना स्त्रियों के जीवन और स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है। प्रत्येक पिता अपनी पुत्री को और प्रत्येक पति अपनी पत्नी को प्रतिदिन ऐसे व्यायाम करने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करे तो हमारे घरों में बढ़ती हुई यक्ष्मा और प्रदर आदि दूषित बीमारियों का कुछ ही दिनों में लोप हो जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निपटारा

लेखक, आनरेबल पंडित प्रकाशनारायण सप्रू

हरप्रसाद सक्सेना	बैरिस्टर
मनोरमा	हरप्रसाद सक्सेना की स्त्री
विमला	एक स्त्री
रामावतार	एक सब बैरिस्टर
मनोरमा	एक ज़मींदार की लड़की
लेडी पार्वती	मनोरमा की मा

दृश्य १

(मनोरमा अपने ड्राइंग-रूम में आराम-कुर्सी पर लेटी हुई 'स्टेट्समैन' पढ़ रही है। पार्वती का प्रवेश।)

मनोरमा—आओ मा, आइए मा, मा। आप बहुत दिनों से मुझसे मिलने नहीं आई हैं।

लेडी पार्वती—मैंने सुना है कि आज-कल तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है। तुम दुबली क्यों होती जाती हो? क्या बात है?

मनोरमा—कुछ नहीं मा! योंही मामूली बात है।

लेडी पार्वती—कुछ कारण तो ज़रूर ही होगा। क्या तुम विमला की बात से चिन्तित रहती हो? क्या सचमुच हरी उससे शादी करना चाहता है?

मनोरमा—मुझे नहीं मालूम है। मुझे इसकी परवा नहीं कि वे क्या कर रहे हैं? इधर उनका व्यवहार कुछ अजीब बेढंगा हो गया है। मुझसे तो वे क़रीब क़रीब मिलते ही नहीं।

लेडी पार्वती—तुमने उससे कुछ पूछा नहीं?

मनोरमा—हाँ, हाँ, मैंने उनसे कहा था। लेकिन कहूँ किससे? वे तो विमला के पीछे बिलकुल पागल-सा हो गये हैं। मैंने सुना है कि उनका विमला के यहाँ बहुत आना-जाना रहता है और वे उसको अपने साथ लिये घूमा करते हैं। और विमला की प्रिंसिपली का मामला भी बहुत मशहूर हो गया है। मुझको इसमें कुछ करना पड़ेगा। मैंने विमला से कह दिया है कि उसको स्कूल छोड़ना पड़ेगा। ऐसी बदनाम अध्यापिका स्कूल में कभी नहीं रक्खी जा सकती।

लेडी पार्वती—उसने क्या जवाब दिया?

मनोरमा—वे मुझको धोखा देना चाहते हैं। मुझसे उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि वे मुझको धोखा नहीं देना चाहते हैं। परन्तु यह बिलकुल सत्य है कि वे विमला से प्रेम करते हैं और विमला से विवाह करने का उन्होंने पूरी तौर से निश्चय कर लिया है। विमला ने भी उनसे विवाह करने का वादा करा लिया है। वे विमला को लेकर अलग रहेंगे, मुझसे कोई सम्बन्ध न रक्खेंगे।

लेडी पार्वती—मगर यह तो बिलकुल पागलपन की बात है। वह विमला से शादी नहीं कर सकता और न तुमको इस तरह छोड़ ही सकता है। क्या तुमने उससे यह नहीं कहा कि मैं तुमको ऐसा मूर्खतापूर्ण काम नहीं करने दूँगी।

मनोरमा—नहीं, मैंने नहीं कहा, न मैं कहूँगी। वे जो चाहें करें। अगर वे विमला से ख़ुश हैं और वे समझते हैं कि उनका भला विमला के साथ रहने में है तो वे रहें। मुझे भी अब उनके प्रति कुछ भी प्रेम नहीं है और न मैं उनसे कोई वास्ता रखना चाहती हूँ।

लेडी पार्वती—मगर यह तो ठीक बात नहीं है। यह तुम झूठ कह रही हो। यह बात बिलकुल असत्य है कि तुम्हारा उससे बिलकुल प्रेम नहीं है। तुम्हारा कर्तव्य तो यह है कि तुम अब उसको सीधे रास्ते पर लाओ। तुमको अपने घर और अपने नाम पर कलंक का टीका नहीं लगाना चाहिए।

मनोरमा—घर! मुझे नहीं मालूम कि इस शब्द का क्या अर्थ है। वे चाहे जिससे शादी करें, मैं उनका संग नहीं चाहती। मेरे जी में जो आयेगा, करूँगी। मुझको घर-बार की कोई परवा नहीं है।

लेडी पार्वती—यह मैं क्या सुन रही हूँ? तुम मनमाने ढंग से नहीं रह सकती हो। मर्द तो सब कुछ कर सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। स्त्री का मुख्य कर्तव्य यही है कि वह धैर्य से सब कुछ सहन करे।

मनोरमा—यह आपका विचार है, पर मेरा ऐसा विचार नहीं है। क्या उनसे मेरी रक्षा हो सकती है? पति तो एक रक्षक होता है। मुझे रक्षक की कोई ज़रूरत नहीं। मुझे प्रेम की कोई ज़रूरत नहीं। दुनिया में बहुत से कार्य हैं, जिनको मैं कर सकती हूँ। इस मार्ग में बहुत दुःख और लाञ्छना है। मैंने निश्चय कर लिया है कि अब मैं अपना सारा जीवन अपने ग़रीब भाइयों की सेवा में लगाऊँगी।

लेडी पार्वती—नहीं, नहीं। हिन्दू-स्त्रियों का सबसे बड़ा धर्म पति भक्ति है। अँगरेज़ी शिक्षा ने तुमको भ्रष्ट कर दिया है।

मनोरमा—आप क्या कह रही हैं? मैं एक पशु के समान मनुष्य से प्रेम नहीं कर सकती। मैंने उनमें कोई अच्छी बात नहीं देखी है। मुझे उनसे कोई सरोकार नहीं है।

लेडी पार्वती—उनके पास रुपया है।

मनोरमा—मगर रुपये को मैं तुच्छ समझती हूँ। देखिए, मुझे एक अच्छी नौकरी मिल गई है। मैं एक कालेज की प्रिंसिपल हो रही हूँ। इस पद पर काम करते समय मैं लड़कियों का चरित्र सुधारूँगी। यह बड़े महत्त्व का कार्य होगा।

लेडी पार्वती—देखो, तुम इस पद को कदापि न स्वीकार करना। तुम्हारा विचार भ्रमपूर्ण है। कुछ भी हो, आख़िर वह तुम्हारा पति ही है। और तुम्हारा कर्तव्य यह है कि इस अवसर पर तुम उसकी रक्षा करो।

मनोरमा—(गुस्से में) मैं यह सब कुछ नहीं करूँगी। उनका जो जी आये, करें। मुझको अपने बारे में ज़रा भी नहीं सोचना है। मुझको संसार में बहुत काम हैं। मैं अपने कामों से अपना जीवन भले प्रकार बिता सकती हूँ। (दरवाज़ा खुलता है) नौकर आकर कहता है कि रामावतार आये हैं।

मनोरमा—आओ राम जी भैया!

राम जी—मैंने सोचा कि मैं तुमसे मिल आऊँ।

(मनोरमा की ओर मुँह करके) मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ।

मनोरमा—क्या बात है? किसके बारे में?

राम जी—हम लोगों की माता यहाँ हैं। माता के सामने बात न होगी।

लेडी पार्वती—मैं जानती हूँ, तुम उससे क्या कहना चाहते हो। मैं भी उससे वही कह रही थी। देखो तुम जानते हो कि हरप्रसाद विमला के लिए पागल हो रहा है। तुमको मालूम है कि इसमें मेरी भी कुछ ज़िम्मेदारी है। मैं विमला को जानती हूँ। मेरे ही द्वारा उससे उसकी मुलाक़ात हुई थी। पर मुझे अब विमला के बारे में कुछ भी नहीं मालूम है और न उसके बारे में जानना ही ज़रूरी है।

राम जी—नहीं, नहीं! तुमको सब बातें जाननी पड़ेंगी। इस तरीक़े से विवाह हर्गिज़ न होने पायेगा। ऐसी भयानक चीज़ कभी न होने पायेगी।

मनोरमा—कौन भयानक चीज़?

राम जी—विमला से विवाह!

मनोरमा—मुझे अब उनसे कोई सरोकार नहीं। वे जो चाहें कर सकते हैं। मेरा भी जीवन किसी न किसी तरह बीत ही जायगा।

राम जी—मुझे मालूम है। मुझे गर्व है कि तुम्हारा स्वभाव इतना अच्छा है। अपने पति के पतन को देखकर तुम्हारा दुखी होना स्वाभाविक है। परन्तु अपने स्वाभिमान के कारण तुम झुकना नहीं चाहती हो इसी से सारी दिक़्क़तें हैं। तुम मेरी बहन हो। मैं इस घर का इस तरह मिट जाना नहीं देख सकता।

मनोरमा—घर! मेरा कोई घर नहीं है। मेरा घर था जब मैं अपने पति के संग रहती थी। देखिए, इस पत्र को देखिए। मुझको एक जगह कालेज में प्रिंसिपल का पद मिल गया है। मुझे उनकी अब कोई परवा नहीं है।

लेडी पार्वती—यह बिलकुल पागल हो गई है।

राम जी—(मनोरमा से) यह तुम झूठ कहती हो कि तुमको उनकी परवा नहीं है। तुमको उनकी परवा करनी पड़ेगी। तुमको वे जो भी कहें, सुनना पड़ेगा। मनोरमा! तुम अपने आपको दुर्बुद्धि के हवाले मत करो। हरप्रसाद बुरे आदमी नहीं हैं। उन्हीं में दोष नहीं हैं। दोष तो हममें भी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरमा—(गुस्से में) मैं यह नहीं कहती कि मैं महात्मा हूँ। क्या कोई मेरे बारे में ऐसी बातें कह सकता है ?

राम जी—अहंकार बहुत बुरी चीज़ होती है। तुममें अहंकार बहुत है। तुमने अपने अहंकार के कारण कभी कोशिश ही नहीं की कि तुम अपने पति को समझो या अपने पति के प्रति सहानुभूति ही प्रकट करो। माना हरी में कमज़ोरियाँ हैं। तुमको उन कमज़ोरियों के सुधारने की कोशिश करनी चाहिए।

मनोरमा—राम जी, मैं नहीं जान सकी कि वे पुण्य और पाप में फ़र्क़ समझते हैं! यह सच है, उन्होंने मुझे बुरी तरह कभी नहीं रक्खा है। जो कुछ माँगा, हमेशा दिया। लेकिन अब? अगर वे कहते हैं कि हम उससे प्रेम नहीं करते तो मैं उनसे घृणा करती हूँ। मुझे उनके ढंग से घृणा है, उनकी बातों से घृणा है, उनकी चालों से घृणा है, उनके आदर्शों से घृणा है।

राम जी—क्या तुम उनसे घृणा करती हो? क्या तुम तब भी घृणा करती थीं जब विवाह किया था। क्या तभी से उनसे घृणा करती हो? यह विवाह तो तुमने अपने आप किया है। तुम्हारी पसन्द से तुम्हारा यह विवाह हुआ है। वे पढ़े-लिखे हैं, होशियार हैं। हमेशा दूसरों की मदद करने के लिए तैयार रहते हैं। यह सब मामला विमला से तय हो सकता है, अगर तुम हमारी मदद करो।

मनोरमा—मगर मैंने तो यह निश्चय कर लिया है कि मैं अब नौकरी करूँगी। मुझे इसी में आनन्द मिलेगा। राम जी, तुम मुझे यह नौकरी कर लेने दो। मना न करो। अगर तुम मेरी बात भी सुनते।

लेडी पार्वती—क्या तुम विमला से नहीं कह सकते? क्या विमला को तुम नहीं समझा सकते?

राम जी—देखिए। जो हो सकेगा, करूँगा।

दृश्य २

(विमला का कमरा)

(वह अकेली बैठी हुई अपना शृङ्गार कर रही है। एक सिगरेट लेकर जलाती है। दरवाज़े का रिंग खुलता है। हरी का प्रवेश)।

विमला—एक मिनट बैठिए। मैं अभी आती हूँ।

(विमला आती है)

हरी—आज तो तुम बहुत अच्छी मालूम हो रही हो। चलो, खाना खाने चलें।

विमला—थोड़ी देर के बाद। ठहरिए। थोड़ी देर के बाद। मुझको तुमसे कुछ कहना है।

हरी—वह क्या है? क्या तुमने अपनी राय बदल तो नहीं दी। मैंने सब ठीक कर लिया है। हमारी शादी कल होगी।

विमला—मैं यह सब नहीं सोच रही थी। मेरे प्रिंसिपल ने मुझको आज बुलाया था। उन्होंने मेरे बारे में बड़ी बड़ी बातें सुनी हैं। जान पड़ता है, मुझे अपनी नौकरी छोड़नी होगी। मैंने उनसे कह दिया है कि मुझे कुछ परवा नहीं है। अगर वे चाहें तो मैं इस्तीफ़ा दे सकती हूँ। उन्होंने मुझसे कहा कि तुम एक आदमी से प्रेम कर रही हो और वह आदमी विवाहित है। मैंने कहा कि आपको इन बातों के पूछने का कोई हक़ नहीं है। मैं अपने व्यक्तिगत मामले में स्वतन्त्र हूँ। जो जी में आयेगा, करूँगी। मैंने स्कूल का काम बहुत अच्छे तरीक़े से किया है। आपको इन बातों से कोई मतलब नहीं कि मैं किससे शादी करती हूँ। उन्होंने कहा कि मुझे क्या, अधिकारियों के जी में जो आयेगा करेंगे।

हरी—अच्छा तो तुम इसकी क्यों चिन्ता करती हो? जब हमारा विवाह हो जायगा तब मैं खुद ही तुम्हें काम न करने दूँगा। देखो हमारी वरमूथ (एक प्रकार की शराब) कहाँ है?

विमला—मैं उसे लिये आती हूँ, मगर तुम बहुत पीते हो।

हरी—यह सब मत कहो। आज थोड़ी सी तुमको भी पीनी पड़ेगी। (विमला वरमूथ लाती है। हरी उसको देता है। वह एक छोटा प्याला भर पीती है।)

विमला—अच्छा तो मनोरमा ने क्या तय किया है? उसके सम्बन्ध में जो तुम कर रहे हो वह ठीक नहीं। तुम्हारे बिना वह जी नहीं सकती। मैंने सुना है कि आज वह घर छोड़ने जा रही है। उसको एक कालेज में प्रिंसिपली मिल गई है।

हरी—ज़रा इधर पास आओ—इस ज़िक्र को छोड़ो।

(हरी विमला के पास जाकर बैठ जाता है और उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुम्बन और आलिंगन करता है। इतने में दरवाज़े पर एक धक्का लगता है। राम जी का प्रवेश)

हरी—हलो! आज बहुत दिनों के बाद मुलाक़ात हुई। आपसे मिलकर बहुत ख़ुशी हुई। क्यों? आज किस वास्ते तशरीफ़ लाये?

राम जी—तुमको मालूम होना चाहिए कि मैं क्यों आया हूँ। यह शादी नहीं होगी।

विमला—कौन कहता है, नहीं होगी? होगी और अवश्य होगी। हरी मुझको छोड़ नहीं सकता। वह इतना निकम्मा नहीं है कि अपने वचन से टल जाय।

राम जी—इसमें तुम्हारी कोई हानि न होगी। मैं तुम्हारे आदर्श पर लांछन नहीं लगाना चाहता। ज़रा सोचो, तुम क्या कर रही हो। तुम एक घर को तबाह कर रही हो।

विमला—क्या मेरे घर भी था। मैं जानती हूँ कि तुम क्या चाहते हो। क्या मैं बिलकुल भिखारिन बन जाऊँ? तुम मेरा अपमान करना चाहते हो। नौकरी भी चली गई और मेरे सुखों का तो सर्वनाश हो ही गया। अब विवाह के सिवा और कोई चारा नहीं।

हरी—राम जी, यह तुम क्या उलटी-सीधी बातें विमला से कर रहे हो? हम विमला से प्रेम करते हैं और हम अपना प्रेम-पूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। मनोरमा का क्या हाल है? विवाह होना उसके लिए भी ज़रूरी है। तुम कदापि न चाहते होगे कि मैं एक कलंकी संतान पैदा करूँ।

राम जी—मैंने इन सब बातों पर विचार किया है। अब मैं अन्तिम निर्णय पर पहुँचा हूँ। यह सब कुछ न होने पायेगा। इन सब बातों की फ़िक्र तुम छोड़ दो। मैं सब ठीक कर लूँगा।

हरी—तुमको इन सब बातों से क्या मतलब है?

राम जी—इस वास्ते कि मनोरमा मेरी सौतेली बहन है और उसकी माता मेरी भी माता है।

हरी—हुआ करे। यह तो मुझे भी मालूम है। सभी को मालूम है। इससे क्या होता है? मैंने जो ठान लिया है उससे मैं हर्गिज़ न हटूँगा, न विमला ही हटेगी। यहाँ से तशरीफ़ ले जाइए।

राम जी—विमला! हरी नहीं समझता है। उसी ने तुमको हरी से मिलाया था। और तुम अब उसे मिट्टी में मिलाना चाहती हो। मैं तुम्हारा शुभचिन्तक हूँ। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी हानि हो। हरी इस समय पागल हो गया है। तुम भी पागलपने की बातें करती हो। जिस वक़्त तुम्हारा विवाह हो जायगा, उस वक़्त तुम लोगों का बिलकुल दूसरा विचार हो जायगा, तब तुम समझोगी। इसमें न सिर्फ़ मनोरमा की ख़राबी है, बल्कि तुम्हारी भी ख़राबी है। तुमने इतनी अधिक शिक्षा पाई है। क्या इसी दिन के वास्ते यह शिक्षा पाई थी?

विमला—(बड़े क्रोध में) मैं कुछ उत्तर नहीं दे सकती। उन्होंने मेरा सर्वनाश कर दिया है। मुझको अब विवाह के सिवा कोई चारा नहीं है। अगर मेरा विवाह नहीं होगा तो मैं लोगों को अपना मुँह भी नहीं दिखला सकूँगी।

राम जी—देखो, मैं अपनी माता का बुढ़ापा ख़राब नहीं करना चाहता। उन्होंने अपने जीवन में बहुत दुख झेला है। १६ वर्ष की उम्र में विधवा हो गई थीं। उसके बाद मेरे पिता से उनका पुनर्विवाह हुआ। हर तरह उन्होंने उनका साथ दिया, मगर उनका भी देहान्त हो गया। हम दो बच्चों के सिवा उनका दुनिया में कोई तीसरा नहीं है। उनकी वृत्ति धार्मिक रही है। उनका दिल बिलकुल टूट जायगा। अगर हरी का विवाह तुमसे हुआ तो उनका दिल बिलकुल टूट जायगा। उनका मनोरमा और तुमसे बड़ा घनिष्ठ प्रेम है और वे चाहती हैं कि दोनों एक बहुत अच्छे ढंग से ज़िन्दगी बितावें। हरी बिलकुल व्यर्थ की बातें बकता है।

विमला—अगर मनोरमा और हरी एक-दूसरे से प्रेम नहीं करते और उनका एक-दूसरे के प्रति प्रेम नहीं है तो मेरा और इनका दिल एक क्यों नहीं होने देते?

राम जी—सामाजिक रवाज का पालन करना हम सबका धर्म है। अगर वे एक-दूसरे से प्रसन्न नहीं हैं तो भी संसार के सम्मुख यह प्रकट करना है कि अतीव प्रसन्न हैं।

हरी—तुम यह क्या कह रहे हो? मैं विमला को अच्छी तरह जानता हूँ। वह मुझे कैसे छोड़ सकती है?

राम जी—देखो, रास्ता बिलकुल सीधा है। कोई कठिनाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। मैं विमला से शादी करने को तैयार हूँ। तुम जानते हो कि मेरे पास काफ़ी ज़मींदारी है और विमला को मैं सुख से रख सकता हूँ। उसका लड़का मेरा लड़का होगा। इस तरह सब कलंक दूर हो सकता है।

हरी—क्या तुम विमला से शादी करना चाहते हो और ये सब बातें मेरे सामने कर रहे हो? मगर मेरा तो विमला से बड़ा प्रेम है।

राम जी—अगर तुम्हें प्रेम है तो तुम उससे प्रेम करो। मेरा इससे कोई मतलब नहीं है। मैं उसमें किसी प्रकार का आक्षेप नहीं करूँगा।

विमला—मगर यह तो एक बड़ा अधार्मिक हल है। मैं प्रेम करूँ हरी से और बीबी बनूँ तुम्हारी।

राम जी—हमारा यह हल एक धार्मिक यादगार है। इस निर्णय से किसी का घर तबाह नहीं होगा, तुम कलंक से बच जाओगी और तुम्हारी ज़िन्दगी भी तबाह नहीं हो सकेगी।

विमला—हरी, तुमने क्या इस बात को सोचा है?

(दो मिनट तक सब बिलकुल चुप हैं)

विमला—तुम मुझे संध्या तक समय दो। मैं इस प्रस्ताव पर विचार करूँगी।

हरी—इसमें सोचने की क्या बात है? तुम इस बात को मंज़ूर तो कर नहीं सकतीं।

विमला—नहीं, नहीं, मैं अभी उत्तर दूँगी। मैं एक घर चाहती हूँ। मैं एक परिवार चाहती हूँ।

राम जी—मैं परिवार देने के लिए तैयार हूँ! मैं पालन-पोषण करने के लिए तैयार हूँ।

विमला—राम जी, मैं शादी करके किसी की ज़िन्दगी तबाह नहीं कर सकती। रहा प्रेम, सो मैं प्रेम कर सकती हूँ और जिससे मैं चाहूँगी, उससे प्रेम करूँगी। हरी, तुम भ्रम में हो। मैंने तुमसे प्रेम नहीं किया है। यह न समझना कि अगर मैं तुमसे प्रेम करना छोड़ दूँगी तो मेरा दिल नहीं टूट जायगा। मगर मैं तुमसे प्रेम करना छोड़े देती हूँ। मैं तुमसे शादी नहीं कर सकती—हर्गिज़ नहीं कर सकती, यह मैंने निश्चय कर लिया है। राम जी से विवाह करना मैं स्वीकार करती हूँ।

(हरी ग़ुस्से में आकर कमरे से बाहर चला जाता है)

विमला—अब मैं तुम्हारी हूँ। मगर तुम मेरी कमज़ोरियों को जानते हो।

राम जी—मैं सब कुछ जानता हूँ। विवाह के बाद तुम क्या करोगी, यह तुम्हारे ऊपर निर्भर है।

विमला—मैं तुमसे सत्य कहती हूँ कि आज से मैं तुम्हारी होकर रहूँगी। मैं कोई ऐसा काम नहीं करूँगी जिससे मेरे ऊपर किसी तरह का कलङ्क लग सके। हरी से मैंने प्रेम किया है। अब वह प्रेम सिर्फ़ स्वप्न है। मैं उसको भूल गई। और भूल जाऊँगी।

(राम जी विमला के पास जाकर उसका चुम्बन करता है)

दृश्य ३

(मनोरमा का कमरा)

(लेडी पार्वती मोज़ा बुन रही हैं। राम जी कमरे में घुसता है)

मनोरमा—मैंने अपनी प्रिंसिपली का चार्ज ले लिया है।

राम जी—अच्छा! हरी और विमला की शादी नहीं हो रही है।

मनोरमा—क्यों? क्यों?

राम जी—विमला ने इनकार कर दिया है। मैं उससे शादी कर रहा हूँ। मेरी शादी कल होगी। मैं किसी को भी नहीं बुला रहा हूँ। माता और आप कल इस शादी में ज़रूर आइएगा।

मनोरमा—तुम ऐसी स्त्री से क्यों शादी कर रहे हो?

राम जी—भूल सबसे होती है। विमला से भी भूल हो सकती है।

लेडी पार्वती—मैं सब समझ गई। हम सबसे भूल होती है। किसने इस ज़िन्दगी में भूल नहीं की है? तुमने ठीक किया।

राम जी—मगर हरी से कहा है कि मैं तुम्हारा और हरी से मेल करवा दूँगा।

मनोरमा—मेल करवाओगे ऐसे आदमी से जो दूसरी स्त्रियों के पीछे पीछे दौड़ता है?

राम जी—ज़रा मुझे देखो। मैं कैसी स्त्री से शादी कर रहा हूँ? क्या तुम अपने स्वामी व अपने पति को क्षमा भी नहीं कर सकतीं?

मनोरमा—मगर मैं अपनी नौकरी नहीं छोड़ूँगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम जी—नहीं। तुम अपना काम करो। क्यों छोड़ो? एक विवाहित स्त्री तो कोई काम नहीं करती है, मगर तुम काम भी कर सकती हो और अपने पति के साथ आराम से जीवन भी बिता सकती हो।

दृश्य ४

(विमला का कमरा)

(हरी आता है)

हरी—तुमने मुझे छोड़ दिया!

विमला—यह तो बहुत अच्छा किया है। राम जी को मैंने जिस तरह पूजा है, उसी तरह उसने हमारे कुल की प्रतिष्ठा को क़ायम रक्खा है। तुमको मनुष्यता के कार्य करने चाहिए। तुम बड़े योग्य हो। तुम बड़े बड़े काम कर सकते हो। अब तुम बड़े बड़े काम कर सकोगे।

हरी—मगर क्या मैं तुम तक आ नहीं सकता और तुमसे मिल-जुल नहीं सकता।

विमला—मिल तो तुम हमेशा सकते हो। हमेशा तुम्हारा स्वागत है। मगर अब हमारी मित्रता दूसरे ढंग की होगी। इसमें विलास का कोई स्थान नहीं।

(दरवाज़ा खुलता है। राम जी का प्रवेश)

राम जी—सब ठीक हो गया है। कल हमारी शादी होगी। पार्वती और मनोरमा शादी में आवेंगी। हरी तुमको भी शादी में आना होगा।

हरी—अच्छा! पर मुझे कोई ख़ुशी नहीं है। यह तुमने अच्छा समाधान किया।

राम जी—ख़ैर, तुम मेरे साथ चलो और मनोरमा बहन से मेल कर लो।

हरी—मगर वह तो मुझसे बात भी नहीं करेगी।

राम जी—नहीं, वह करेगी। अगर तुम मुझसे यह प्रतिज्ञा करो कि तुम आगे उससे ठीक ठीक बर्ताव करोगे। अगर तुमसे उसका प्रेम रहा तो वह तुमसे प्रेम भी करेगी। तुम जानते हो, वह एक सीधी-सादी स्त्री है। आओ! चलो।

दृश्य ५

(मनोरमा का कमरा)

(हरी और राम जी का प्रवेश)

हरी—मनोरमा, मुझे क्षमा करो। मैं अपराधी हूँ। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। मनोरमा, पुरानी बातों की याद भूल जाओ। जो बीता सो बीता। उसको जाने दो।

राम जी—बस, मेरे कार्य की इति हुई।

(राम जी कमरा छोड़ता है, हरी और मनोरमा एक दूसरे को देखते हैं)

(पर्दा गिरता है)

युवक से—

लेखक, पंडित रूपनारायण चतुर्वेदी

रे भावुक तेरी नव-उमंग है चल-सरिता की कल तरंग।
उत्तुंग शृंग कर चूर चूर।
मद-मोह-लोभ से दूर दूर।
उद्गार-नीर, उच्छ्वास-हास,
नव-भाव-कूल का भ्रू-विलास।
तेरी उमंग तेरे विचार
नूतन पवित्र शुभ निर्विकार।
कल्याण-कामना हृदय-बीच,
प्रेरित करती निज ओर खींच।
सद्भाव लोक-मंगल सुध्येय।
अनवरत प्रेम क्या गुप्त ज्ञेय।
नव-जीवन चेतन-कर्म-ज्ञान,
ध्रुव-धैर्य धर्म का सदा ध्यान।
तू है शुभेच्छु कल्याण-मूर्ति।
तुझमें विकास है नवल स्फूर्ति।
कर दे स्वदेश-गौरव-प्रदान।
हे धीर-वीर हे शक्तिमान!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

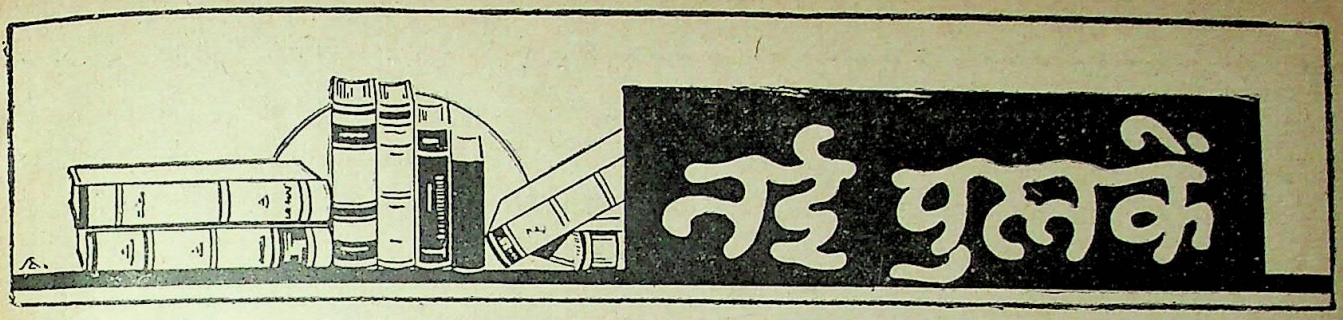

१-२—श्री राजेश्वरी-साहित्य-मंदिर, सूर्यपुरा, शाहाबाद, की दो पुस्तकें—

(१) गांधी-टोपी—लेखक, श्रीयुत राजा राधिकारमण-प्रसादसिंह, एम० ए० हैं। पृष्ठ-संख्या १४३, मूल्य १।) है।

यह पुस्तक राजा साहब की कहानियों का संग्रह है। अधिकांश कहानियाँ परिणति के पूर्व विशृंखल हो गई हैं। परिणति के उपरान्त भी आगे बढ़ाना रुचिकर नहीं लगता। मुहावरे ठूँसने का अधिक प्रयत्न किया गया है, फलतः भाषा कुछ अस्वाभाविक हो गई है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से बिगड़े रईसों का चित्रण सफल हुआ है, ग़रीब पात्रों का असफल। 'दरिद्रनारायण' और 'गांधी-टोपी' साधारणतः अच्छी कहानियाँ हैं। पात्रों की वाचालता कथानक के विकास में बुरी तरह बाधक हुई है।

(२) सावनी समाँ—लेखक, श्रीयुत राजा राधिकारमणप्रसादसिंह, एम० ए० हैं। पृष्ठ-संख्या १९३ और मूल्य २) है। छपाई-सफ़ाई व गेट-अप सुन्दर है।

सावनी समाँ लखनौआ ज़िन्दगी बसर करनेवालों का ख़ासा चित्र है। बाप की रोटी और माँ ये दो कहानियाँ पीछे से मिला दी गई हैं, जो काफ़ी दिलचस्प हैं, शौक़ीन मिज़ाज़ पाठक इन्हें ख़ूब पसन्द करेंगे।

३-४—रामविलास पोद्दार स्मारक-ग्रंथमाला की दो पुस्तकें—

(३-४) संस्कृत-साहित्य का इतिहास, प्रथम व द्वितीय भाग—लेखक, श्रीयुत सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, प्रकाशक, रामविलास पोद्दार स्मारक-ग्रन्थमाला-समिति, नवलगढ़ हैं। मूल्य प्रत्येक भाग का १।) है। छपाई-सफ़ाई उत्तम है। पुस्तकें सजिल्द हैं।

इस पुस्तक से लेखक महोदय के काव्यशास्त्र-सम्बन्धी गंभीर अध्ययन का प्रमाण मिलता है। इसे हम 'संस्कृत-साहित्य की भूमिका' कह सकते हैं, इतिहास नहीं। सम्भव है, इसके आगामी भाग इतिहास नाम को सार्थक कर सकें। लेखक महोदय ने संस्कृत के कवियों के वर्गीकरण का भी प्रयत्न किया है। वाल्मीकि के काल-निर्णय में उन्होंने समस्त पौरस्त्य व पाश्चात्य विद्वान् ऐतिहासिकों के मतों का निराकरण सफलतापूर्वक किया है, पर अपना कोई मत नहीं दिया है! आख़िर वाल्मीकि जी को कब का माना जाय? प्रूफ़-सम्बन्धी भूलें खटकती हैं। संस्कृत-साहित्य के प्रेमियों के लिए पुस्तकें संग्रहणीय हैं।

५—श्री हिमांशुविजय जी ना लेखो—संपादक, श्रीयुत मुनि विद्याविजय जी, प्रकाशक, श्रीयुत दीपचंद खांडीया, मंत्री श्री विजयधर्म सूरि-ग्रन्थमाला, छोटा सराफ़ा, उज्जैन हैं। पुस्तक सजिल्द है। पृष्ठ-संख्या ५६८ है। मूल्य १॥) है। छपाई-सफ़ाई उत्कृष्ट है।

इसमें जैन विद्वान् श्री हिमांशुविजय जी के विभिन्न विषयों पर हिन्दी व गुजराती में लिखे गये लेखों का संग्रह है। पुस्तक जैन भाइयों के बड़े काम की है।

६—संगीतांजलि—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत पंडित ओम्कारनाथ गौरीशंकर ठाकुर, खेतवाड़ी मेनरोड, बम्बई नं० ४, हैं। पृष्ठ-संख्या १०७ है और मूल्य १।) है। छपाई-सफ़ाई अच्छी है।

इसमें समस्त प्रसिद्ध राग-रागिनियों की स्वरलिपियाँ दी गई हैं। पुस्तक संगीत-प्रेमियों के लिए उपयोगी है।

७-९—पुस्तक-भंडार लहेरिया सराय की तीन पुस्तकें—

(१) लेख-मणि-माला (प्रथम खंड)—लेखक, पंडित अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द' हैं। पृष्ठ-संख्या १४४ और मूल्य १) है। छपाई-सफ़ाई साधारण है। यह वयोवृद्ध 'मिश्र' जी के साहित्यिक निबन्धों का संग्रह है। अन्त में कुछ रोचक कवितायें भी दी गई हैं, जो आपने 'विप्रचन्द' नाम से व्रजभाषा में रची थीं। साहित्य के विद्यार्थी इससे लाभ उठा सकते हैं। निबन्ध नये युग के आरम्भकालीन हैं।

(२) आवारे की योरप-यात्रा—लेखक श्रीयुत डाक्टर सत्यनारायण, पी० एच० डी० हैं। (सजिल्द व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचित्र)। मूल्य २।) है। पृष्ठ-संख्या ३४६ है। छपाई व सफ़ाई अच्छी है। पुस्तक का विषय नाम से स्पष्ट है। शैली अत्यन्त रोचक वा आकर्षक है। चित्रों के प्राचुर्य ने इसमें चार चाँद जोड़ दिये हैं।

(३) लोक-सेवक महेन्द्रप्रसाद—लेखक, श्रीयुत साँवलिया बिहारीलाल वर्मा, एम० ए० हैं। मूल्य १॥) है। पृष्ठ-संख्या १३४ है। यह देशरत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी के ज्येष्ठ भ्राता श्रीयुत महेन्द्रप्रसाद जी की जीवनी है। इसमें उक्त स्वर्गीय महानुभाव की देश-सेवाओं का सविस्तर वर्णन है। यथावश्यक चित्र भी दिये गये हैं। नवयुवकों व धनीमानियों को यह पुस्तक पथ-प्रदर्शन कर सकती है।

१०—समाधि-दीप—रचयिता, श्रीयुत चन्द्रप्रकाश वर्मा "चन्द्र", प्रकाशक, प्रमोद-पुस्तकमाला, कटरा, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या ११२ और मूल्य १) है।

यह नई लहर-व-बहर में हिन्दी छन्दों में लिखा हुआ मरसिया है। हिन्दू प्रेमी अपनी प्रेयसी के मज़ार पर दीप व फूल चढ़ाते हैं, यह एक नई व अनोखी उपज है। कविता में सच्चा कविहृदय बिखरा पड़ा है। भाषा में नैसर्गिक व स्वच्छन्द प्रवाह है। प्रसादगुण भी भरपूर है, जो इस ढंग की पुस्तकों की जद्दी जायदाद है। मनचले लोगों के गुनगुनाने के लिए पुस्तक में काफ़ी अच्छा मसाला है।

११—आशा—(कहानियों का संग्रह)—लेखक, श्रीयुत करुण, प्रकाशक, सरस-साहित्य-सदन, प्रयाग हैं। मूल्य ॥।) और पृष्ठ-संख्या १३६ है।

इसमें कुल १० कहानियाँ हैं, जिनमें से 'उसका प्यार' और 'आन' अच्छी हैं, शेष साधारण। भाषा में सफ़ाई की काफ़ी गुंजायश है।

१२—दिमाग़ी ग़ुलामी—लेखक, श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशक, श्रीयुत रामनाथ त्रिवेदी, हिन्दी कुटिया, पटना हैं। मूल्य अनिर्दिष्ट और पृष्ठ-संख्या ९५ है।

हमारे देश में रूढ़िवाद के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन चल रहा है। लेखक महोदय ने उसके नेता की हैसियत से अपने तद्विषयक विचार बड़ी निर्भीकता, युक्तिमत्ता और अधिकार-पूर्वक इस पुस्तक में १० विभिन्न निबन्धों-द्वारा प्रदर्शित किये हैं। दृष्टिकोण सर्वथा क्रान्तिकारी तथा साम्यवादी है। पुस्तक नवयुवकों में क्रांति और जीवन उत्पन्न करने-वाली है। पर कहीं कहीं शैली आवश्यकता से अधिक तीखी हो गई है, जिसकी आशा इतने बड़े गम्भीर लेखक से नहीं थी। हम जानते हैं कि किसी को 'बेवक़ूफ़' कहना गाली है, पर उसमें बेवक़ूफ़ी बतलाना, वही अर्थ रखने पर भी, पार्लियामेंटरी भाषा में उचित माना जाता है। पर शालीनता का भी कोई मूल्य अवश्य होता है।

१३—चुने हुए फूल—प्रकाशक, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मदरास है। मूल्य ॥) और पृष्ठ-संख्या १०३ है।

यह हिन्दी के प्रख्यात कवियों की सुन्दर रचनाओं का संग्रह है। पुस्तक अपने उद्देश के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

१४—यौवन-तरंग—प्रणेता, श्रीयुत महावीरप्रसाद दाधीच, बी० ए०, एल-एल० बी०, प्रकाशक श्रीयुत महावीर-प्रसाद दाधीच, राउण्ड बिल्डिंग, कालबादेवी रोड, बम्बई नं० २ हैं। मूल्य पाँच आने और पृष्ठ-संख्या ४० है।

यौवन, सौन्दर्य और 'रोमांस' ही जिनके जीवन के ध्येय हैं वे इसे अनोखा साथी समझेंगे। जवानी के नशे में संसार कैसा दिखाई देता है, यही पुस्तक का वर्ण्य विषय है। इस दृष्टि से एक रुचि-विशेष के रसिकों के निकट यह पुस्तक आदर पायेगी, इसमें सन्देह नहीं।

× × ×

१५—श्री व्यासगीता—लेखक, श्रीयुत रघुवीरसहाय चित्रशी, प्रकाशक, साहित्य-प्रकाशक मंडल, भारती विद्यालय, नयागञ्ज, कानपुर हैं। मूल्य ॥=) है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक महोदय ने श्रीमद् भगवद्गीता की दार्शनिक गुत्थियाँ सुलझाने का मनोविज्ञान-सम्मत प्रयत्न किया है। सफलता-असफलता का निर्णय तो रुचि-वैचित्र्य पर निर्भर हैं, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उन्होंने गीता के अध्ययन के लिए एक नया वैज्ञानिक दृष्टिकोण सामने रक्खा है।

इस दृष्टि से पुस्तक उपयोगी और पठनीय है।

१६—चीन का स्वाधीनता-युद्ध—लेखक, श्रीयुत श्रीकृष्णचन्द्र विद्यालङ्कार, प्रकाशक, विजय-पुस्तक-भण्डार, अर्जुन प्रेस, देहली हैं। मूल्य १) है। पृष्ठ-संख्या २१२ है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक महोदय ने १७९२ से १९३१ तक चीन की राजनैतिक परिस्थिति पर संक्षेप में विचार किया है। चीन की अवस्था भारतवर्ष से बहुत अच्छी नहीं है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु एक बात जो चीनवालों में विशेष है वह है उनका अदम्य उत्साह और साहस।

उन्होंने चीन-वासियों के अनेक प्रयत्नों का, उनके उत्साह और साहस का एक सुन्दर और संक्षिप्त चित्र इसमें खींचा है। भाषा सरल और साहित्यिक है।

—श्रीकृष्ण एम० ए०

१७—प्रयास—इस पुस्तक के पूर्वार्द्ध में केवल समस्या-पूर्तियाँ-सी हैं, उत्तरार्द्ध की रचनायें कुछ अच्छी हैं। संस्कृत-शब्दों के ठूँसने का अत्यधिक प्रयास किया गया है।

"नवजात शिशु की मृत्यु पर" की कविता तथा "भेंट" की कविता सुन्दर हैं। "फूल" शीर्षक कविता की अधोलिखित पंक्तियाँ सुन्दर तथा स्वाभाविक हैं—

"जग क्षणभंगुर स्वार्थपूर्ण है, इसको तुम जाना मत भूल।
तुहिन-कणों से भरकर आँखें कवि से कहता बिखरा फूल॥"

नवजात शिशु की मृत्यु पर कवि अपने विचारों को प्रकट करते समय लिखता है—

"मृत्यु-वायु स्नेह दीप की नहीं बुझा सकती है।
तीर सदृश जाते जीवन को सरस बना सकती है।"

श्री दिनेशनारायण उपाध्याय "विशारद"

१८—रक्त-रंजित स्पेन—लेखक, श्रीयुत शिवदानसिंह चौहान, बी० ए०, प्रकाशक, लक्ष्मी आर्ट प्रेस, दारागंज, प्रयाग हैं। भूमिका-लेखक—पं० जवाहरलाल नेहरू। पृष्ठ-संख्या १४८ और मूल्य १) है।

लेखक महोदय ने इस छोटी सी पुस्तक में स्पेन के गृह-युद्ध, उसके ऐतिहासिक आधार और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर विचार किया है। स्पेन में जो आज़ादी की लड़ाई चल रही है उसमें इटली के फ़ासिस्ट-समुदाय और जर्मनी के नाज़ीदल की हस्तक्षेप-नीति तथा ब्रिटेन की उदासीन-नीति जिस स्वार्थ-भावना से प्रेरित हैं उनका विचार उन्होंने सुलझे ढंग से किया है। इस पुस्तक के पढ़ने से अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के समझने में बड़ी सहायता मिल सकती है।

पुस्तक अँगरेज़ी ढंग से लिखी गई है। भाषा सरल है, परन्तु कहीं कहीं वाक्यरचना विदेशी ढंग की हो गई है। उदाहरण के लिए—"एक बेजोड़ पृष्ठ खोला" (Opened an Incomparable Page) का छाया-नुवाद है।

१९—जन्म-पत्री—लेखक तथा प्रकाशक बद्रिकाश्रम-निवासी, मेमियो-बर्मा-प्रवासी पंडित केशवानन्द शर्मा 'जदली', जदला-लैन्सडोन-गढ़वाल। मूल्य १॥), पृष्ठ-संख्या १०८ है।

आज-कल जीवन को सरल बनाने का अत्यधिक प्रयत्न किया जा रहा है। प्रस्तुत पुस्तक भी कुछ उसी तरह की है। इसमें जन्मपत्री के लिए चक्र, कोष्ठक इत्यादि बना दिये गये हैं। पंडितों के थोड़े से अंक या फल बनाकर लिखने भर से सुन्दर व पूर्ण जन्मपत्र बन सकता है।

पुस्तक की छपाई-सफ़ाई सुन्दर है। परन्तु इसमें एक कमी भी है। फल, सूचना इत्यादि सभी संस्कृत में ही दिये गये हैं। यदि लेखक महोदय ने उनका अनुवाद हिन्दी में भी कर दिया होता तो साधारण पंडितों को भी लाभ पहुँच सकता था।

२०—मा—लेखक, श्रीयुत धन्यकुमार जैन—और श्री सन्मति पुस्तकालय (प्रचार-विभाग) २, बाँसतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। पृष्ठ-संख्या ३९ और मूल्य =) है।

प्रस्तुत पुस्तक रवीन्द्र बाबू के 'विसर्जन' नामक नाटक के आधार पर लिखी गई है। पात्रों का नाम इस प्रकार परिवर्तित किया गया है कि सम्पूर्ण नाटिका एक आध्यात्मिक रूपक के रूप में आ गई है, जिससे इसका सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है।

पुस्तक की छपाई, सफ़ाई और गेट-अप सुन्दर और आकर्षक है।

२१—कुशलांजलि—लेखक, राजा बहादुर श्रीयुत कुशलपालसिंह, एम० ए०, एल-एल० बी०, एम० एल० ए० हैं। मुद्रक—श्रीयुत रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी-मन्दिर प्रेस, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या ७८ और मूल्य चार आना है।

प्रस्तुत पुस्तक राजा बहादुर कुशलपालसिंह-द्वारा रचित छन्दों का संग्रह है। कविता के विषय हैं गीता, भक्ति, अंतकाल, वैराग्य, असारता, फुटकर और ज़मींदार। इस पुस्तक को कविता की दृष्टि से देखना ही नहीं चाहिए, यह तो राजा साहब की साहित्याभिरुचि का आदर्शमात्र है।

राजा साहब ने अपनी 'अटपटी, प्रेम-लपेटी' बानी में जो कुछ लिखा है उसमें उनकी भक्ति और ईश्वर-प्रेम छलका पड़ता है। यह दूसरी बात है कि उनमें कवित्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पिंगल ज्ञान का एकान्त अभाव है। छपाई-सफ़ाई साधारणतः अच्छी है।

'ज़मींदार' शीर्षक रचना में 'ज़मींदार वर्ग की सामयिक परेशानी का अच्छा चित्रण है। इस परेशानी का हक़ भी ज़मींदारों के दृष्टिकोण से देने का प्रयास किया गया है।

—विश्वनाथ रावत, एम० एस-सी०

२२—मीरा की प्रेम-साधना—लेखक, श्रीयुत भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव', एम० ए०, प्रकाशक वाणी-मंदिर, छपरा हैं। मूल-पुस्तक की पृष्ठ-संख्या १०५ है। आरंभ में आचार्य ध्रुव-लिखित परिचय और पंडित राम-चन्द्र शुक्ल-लिखित प्रस्तावना है। मूल्य १॥) है। छपाई, सफ़ाई और गेट-अप सुन्दर है।

विषय का प्रतिपादन भावुकता-पूर्ण भाषा में किया गया है। लेखक महोदय के भक्त और भावुक हृदय से निकले हुए उद्गारों में गद्य-काव्य का आनंद आता है। ऐसी दशा में इस पुस्तक में मीरा की प्रेम-साधना के गम्भीर वैज्ञानिक अथवा दार्शनिक विवेचन की आशा नहीं की जा सकती। लेखक महोदय मीरा के काव्य अथवा भक्ति के विषय में कोई नवीन दृष्टिकोण भी नहीं उपस्थित करते। मीरा के गीतों का भी कोई विशेष उपयोग उन्होंने अपने विषय के प्रतिपादन में नहीं किया। कदाचित् इसी लिए उन्होंने गीतों का आनन्द अलग से लेने के लिए पुस्तक के अंत में उनका संकलन कर दिया है।

आरंभ के ३५ पृष्ठों में श्रीकृष्ण-भक्ति के विषय में कुछ कथन है, जिसमें किंचित् ऐतिहासिकता, किंचित् दार्शनिकता लिये हुए भावुकता-पूर्ण शैली में प्रेम-तत्त्व का निरूपण है। इसमें कुछ खटकनेवाली बातें भी हैं। जैसे, 'रामानुज के शिष्य स्वामी रामानंद जी ने श्री सीताराम की उपासना निरूपित कर महामंत्र 'रामनाम' को प्रतिष्ठापित किया।' तथा 'दास्य-भाव के उपासक गोस्वामी जी तक ने भी 'कामिहि नारि पियारि जिमि' की भावना में ही हृदय को तृप्त होने का आदर्श स्वीकार किया है। यहाँ 'नारि' में परकीया का ही बोध होता है जिसमें रति की चरम अभिव्यक्ति होती है।' इसके आगे हम समझ सकते हैं कि 'दाम' के 'लोभ' में ही हृदय की तल्लीनता का आदर्श गोस्वामी जी जैसे मर्यादावादी को स्वीकृत था और वह दाम भी दूसरे का होना चाहिए, जिसमें लोभ की पूर्णता परिलक्षित होती है। 'रास और चीर-हरण का रहस्य' शीर्षक अध्याय में मीरा के एक भी तद्विषयक गीत का न होना उसे व्यर्थ-सा बना देता है। 'मीरा के कुल-संस्कार एवं परिस्थिति' के विवरण में लेखक महोदय ने मीरा के गोस्वामी तुलसीदास जी से पत्र-विनिमयवाली जनश्रुति को भी सम्मिलित कर लिया है। प्रेम-परिप्लावित भक्त-हृदय इसका लोभ संवरण भी कैसे कर सकता था? 'प्रेम-साधना' के निरूपण में उन्होंने हिन्दी और अँगरेज़ी के समान भाववाले उद्धरण देकर उसकी रोचकता बढ़ा दी है।

सब मिलाकर पुस्तक साधारण प्रेम-पंथी रसिकों और भावुक भक्तों के मनोरंजन के लिए अच्छी सामग्री उपस्थित करती है। लेखक महोदय की शैली रोचक है। आचार्य ध्रुव ने 'प्रस्तावना' में भक्ति का विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है। भक्ति-काल के अंतर्गत मीरा के स्थान का संक्षिप्त ऐतिहासिक विवेचन देकर शुक्ल जी ने 'परिचय' में पुस्तक की एक भारी कमी को कुछ हद तक पूरा कर दिया है।

—व्रजेश्वर, बी० ए०

२३—प्रेमचंद की उपन्यास-कला—लेखक, श्रीयुत जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', प्रकाशक, वाणी-मन्दिर, छपरा हैं। १८६ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य १॥) है। छपाई, सफ़ाई और गेट-अप सुन्दर है।

पुस्तक सन् १९३३ के दिसम्बर में निकली थी, अतः इसमें प्रेमचंद जी के सेवा-सदन, वरदान, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, प्रतिज्ञा, ग़बन, कर्मभूमि और निर्मला आदि उपन्यासों का ही विश्लेषणात्मक अध्ययन है। 'विषय-प्रवेश' में हिन्दी के कथा-साहित्य के विकास-क्रम की संक्षिप्त रूप-रेखा के साथ प्रेमचंद जी के उपर्युक्त उपन्यासों का थोड़ा-सा परिचय दिया गया है। उपन्यास-कला के विवेचन को लेखक महोदय ने जिन शीर्षकों में बाँटा है वे ये हैं—वस्तु-विन्यास, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन का प्रयोग, देश-काल का प्रतिबिंब, भाषा-शैली और भावव्यंजना तथा उद्देश्य-पालन। इस विषय-विभाजन से स्पष्ट है कि उन्होंने प्रेमचंद की उपन्यास-कला का शास्त्रीय ढंग से विश्लेषणात्मक अध्ययन उपस्थित करने का यत्न किया है और हम कह सकते हैं कि वे अपने उद्देश्य में सफल भी हुए हैं। उपसंहार में हिन्दी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ अन्य भाषा के औपन्यासिकों से प्रेमचंद की संक्षिप्त तुलना की गई है।

कथा-साहित्य के उद्भव और हिन्दी में उसके विकास का विवरण इस पुस्तक का विषय नहीं हो सकता और लेखक महोदय ने इस विषय में संक्षेप से काम लेकर ठीक ही किया है। परन्तु जहाँ उन्होंने प्रेमचंद के विभिन्न उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय दिया है, हम उनसे अधिक विस्तार की आशा कर सकते थे। उन्होंने प्रेमचंद जी की कला के विकास-क्रम का कुछ संकेत अवश्य किया है, पर वह बहुत ही अपर्याप्त है। इसका एक कारण तो यह है कि उन्होंने प्रेमचंद जी की उर्दू की कृतियों तथा उनकी हिन्दी की कहानियों से सहायता नहीं ली। यह ठीक है कि यहाँ उन्हें केवल उपन्यास-कला का विवेचन अभीष्ट था, अतः कहानी-रचना का विस्तृत विवरण नहीं दिया जा सकता था। परन्तु उपन्यास और कहानी दोनों कथा हैं; दोनों में तात्त्विक भेद नहीं किया जा सकता। अतः जब हम किसी उपन्यासकार के कथा कहने के विकास-क्रम का विवेचन करते हैं तो हम उसके उपन्यास और कहानियों में कोई निश्चित विभाजक रेखा नहीं खींच सकते। दोनों का मूलाधार एक ही प्रकार की प्रकृति है और कथा-कार की कला का विकास दोनों को साथ लेकर चलता है। दूसरे, लेखक महोदय ने प्रेमचंद जी के व्यक्तिगत जीवन से उनके कथा-कार का कोई सम्बन्ध नहीं दिखाया। कला मानव-जीवन की अभिव्यक्ति है। कवि, गायक, चित्रकार, औपन्यासिक सभी अपने-अपने माध्यम-द्वारा अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन करते हैं। आलोचक जब उनकी कृतियों का अध्ययन करता है तब उसका कर्त्तव्य केवल इतना ही नहीं होता कि वह अपने सम्मुख उपस्थित की गई कला की कृति का विश्लेषण भर कर दे, बरन उसे यह भी देखना पड़ता है कि कलाकार के व्यक्तित्व में कला का उद्गम का स्रोत कहाँ है। ऐसे भी कलाकार हो सकते हैं जो अपने व्यक्तित्व की छाया भी अपनी कला की कृतियों पर न पड़ने दें। परन्तु सूक्ष्मदर्शी आलोचक हमें बताने का यत्न करता है कि उन कृतियों में भी कलाकार का व्यक्तित्व कहीं बोल रहा है, चाहे उनकी भाषा कितनी भी प्रच्छन्न क्यों न हो। प्रेमचंद ऐसे कहानी-कार नहीं हैं जो अतीत की कोई कहानी कहने बैठे हों या जो किसी दूर देश का सन्देश सुनाने आये हों। लेखक महोदय के ही शब्दों में उनकी कथा-सामग्री उनके चारों ओर बिखरी पड़ी है और कल जिस घटना को वे किसी समाचार-पत्र में पढ़ चुके हैं उसे आज वे कथा का रूप देने लगते हैं। ऐसी दशा में आलोचक का कर्त्तव्य है कि वह प्रेमचंद की कहानी-कला का विकास दिखाते हुए यह भी दिखाने का प्रयत्न करे कि उनका कहानी-कार उनके व्यक्तित्व में कहाँ छिपा है और बाह्य जीवन की परिस्थितियों का उसके विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसके लिए उसे न केवल कहानी-कार की कृतियों का ही विवेचन आवश्यक है, बरन उसके जीवन का सूक्ष्म अध्ययन भी।

वस्तु-विन्यास, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन और शैली के विषय में हमें कुछ विशेष नहीं कहना है। ये अध्याय लेखक महोदय के गम्भीर अध्ययन, मननशीलता और विश्लेषण-शक्ति के परिचायक हैं। प्रेमचंद के विभिन्न रुचिवाले पाठकों का लेखक के दृष्टिकोण से कहीं भले ही मतभेद हो, पर उनकी विवेचना के व्यापक सिद्धान्तों से सभी सहमत होंगे। चरित्र-चित्रण के सिलसिले में एक बात कह देना आवश्यक है। कथा-कार की कला के विकास का प्रधान आधार उसके द्वारा खड़े किये हुए चरित्र होते हैं। अतः जहाँ हम आलोचक के लिए चरित्रों का व्यक्तिगत विश्लेषण आवश्यक समझते हैं, वहाँ उससे यह भी आशा करते हैं कि वह हमें बताये कि चरित्रों के विकास में कथा-कार कहाँ तक पहुँच सका है। विशेषकर प्रेमचंद जैसे कलाकारों की कृतियों में जिन्हें हम आदर्शवादी कहते हैं ऐसे विकास की सम्भावना सबसे अधिक है। असाधारण वर्ग के उन पात्रों के चरित्र में, जिन्हें लेखक महोदय ने अत्यन्त उच्च कहा है, यह देखना चाहिए था कि वे जिन उपकरणों से बने हैं उनमें कहाँ तक समानता और कितनी विषमता है तथा उनमें कोई विकास-क्रम दिखाई देता है या नहीं। प्रेमशङ्कर, विनय, सूरदास, चक्रधर इत्यादि में यदि कोई विकास-क्रम नहीं है तो उनमें से कौन प्रेमचंद के उच्चाति-उच्च आदर्शों की कसौटी पर उतरता है और यदि उसके बाद भी उन्होंने उसी वर्ग के चरित्र की अवतारणा की है तो वे उसे उठाने में सफल क्यों नहीं हो सके। कहने का तात्पर्य यह कि चरित्रों के मनोवैज्ञानिक विकास का कथा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार के मानसिक विकास से सम्बन्ध दिखाना आलोचनात्मक अध्ययन के लिए आवश्यक है।

'उद्देश्य पालन' शीर्षक अध्याय में लेखक महोदय ने प्रेमचंद की जीवन-समीक्षा का विवेचन किया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—"सच पूछिए तो सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना ही इनकी जीवन-समीक्षा का आधार बन जाता है। उससे अलग हटकर ये जीवन की जाँच-पड़ताल कर ही नहीं सकते।" जब यह बात है तब हम उनसे आशा करते हैं कि वे हमें बतायें कि प्रेमचंद के जीवन-सिद्धान्त क्या हैं। उन्होंने केवल इतना कहकर सन्तोष किया है कि प्रेमचंद सत्य और आदर्श का सुन्दर कलात्मक सम्मिश्रण करके नीति-शिक्षा का प्रतिपादन करते हैं! प्रश्न यह है कि प्रेमचंद केवल नीति की उन पुरानी बातों को ही दुहराकर अपने कर्तव्य की इति-श्री समझ लेते हैं जिन्हें महापुरुषों ने समय-समय पर प्रतिपादित किया है अथवा उनकी अपनी कोई जीवन की फ़िलॉसफ़ी भी है! प्रेमचंद जैसे उपन्यासकार के विषय में इस प्रश्न पर प्रकाश न डालना वास्तव में बड़े आश्चर्य की बात है। मानव-जीवन और समाज के लिए उनका क्या संदेश है, यही तो उनके अध्ययन का सबसे प्रधान विषय होना चाहिए था, क्योंकि स्वयं लेखक महोदय के शब्दों में प्रेमचंद की कला सोद्देश्य है और वह उद्देश्य जीवन के लिए है, क्योंकि उनकी कला जीवन से ही प्रेरित होकर प्रकट हुई है। 'प्रेमचंद ने स्वर्ग भी बनाये हैं और नरक भी', केवल इतना कह देने भर से काम नहीं चल सकता। पृथ्वी पर स्वर्ग की अवतारणा करना उनका उद्देश है, अतः हम जानना चाहेंगे कि उनके स्वर्ग का रूप क्या है और उसका मूल्य एवं उपादेयता क्या है।

यही बात प्रेमचंद की तुलना में हिंदी के अन्य औपन्यासिकों से करते हुए लेखक महोदय ने दृष्टिगत नहीं रक्खी। उन्होंने केवल इतना लिखा है—"हमारे नये कलाकार अब जीवन का अनुभव नये ढंग से कर रहे हैं, उनकी जीवन-समीक्षा की प्रणाली भी नई बनती जा रही है और उसका अब एक ही विषय मुख्य रह गया है—'हृदय'।" हम नहीं समझते कि जीवन-समीक्षा की प्रणाली में 'हृदय' की प्रधानता ने प्रेमचंद की कला का ही आगे विकास किया है या प्रेमचंद की कला इस नवीन 'हृदय'-प्रधान कला के आगे कुंठित हो गई है! गंभीर दृष्टि से देखने पर हम प्रेमचंद की कला और अपने नवीन कथाकारों की कला में जो अंतर देखते हैं वह केवल 'हृदय' शब्द से व्यंजित नहीं हो सकता। उन्होंने हिंदी के कथाकारों से प्रेमचंद की तुलना बहुत संक्षेप रूप में की है। प्रेमचंद की कला की मुख्य विशेषतायें दिखाते हुए नवीन कथा की विशेषताओं से उसकी तुलना आवश्यक थी। इसके साथ ही हम यह भी आशा कर सकते हैं कि वे प्रेमचंद की कला की भावी संभावनाओं का भी कुछ आभास दे सकें।

अहिंदी और कतिपय विदेशी उपन्यासकारों से भी प्रेमचंद की तुलना की गई है। 'हार्डी' के साथ तुलना करते हुए लेखक महोदय ने दोनों के प्राकृतिक चित्रणों के अंतर तथा निराशावाद और आदर्शवाद की विभिन्नता का ही ज़िक्र करके छोड़ दिया है। इस संबंध में एक बात और ध्यान में रखनी आवश्यक थी। हार्डी ने अपने प्रायः सभी उपन्यासों में ग्रामीणों के सीधे-सादे जीवन में नवाविष्कृत मशीनरी के बढ़ते हुए प्रयोग-द्वारा होनेवाले विघ्न और विशृंखलता को भी अपने पात्रों के दुःखान्त जीवन का प्रधान कारण दिखाया है। प्रेमचंद जी भी ऐसे युग में हुए हैं जब हमारे जीवन में न केवल भौतिक कारणों से, बरन सांस्कृतिक प्रभावों से भी एक नवीन परिवर्तन, एक नई क्रांति फैल रही है। इस नवीनता के प्रति प्रेमचंद और हार्डी के दृष्टिकोण भिन्न भिन्न हैं। लेखक महोदय की तुलना अधूरी है। इसी प्रकार गाल्सवर्दी और प्रेमचंद की कला में भी जो मूल अंतर है उस तक लेखक महोदय ने पहुँचने का प्रयत्न ही नहीं किया। दोनों के सामने सामाजिक समस्यायें अपने विविध रूप में आती हैं। प्रेमचंद में एक विशेष बात हम यह देखते हैं कि वे समस्याओं का हल भी हमें सुझा देते हैं। गाल्सवर्दी समस्या की जटिलता खड़ी करके पाठक को अकेला छोड़ देता है। प्रेमचंद की तुलना कुछ और विदेशी औपन्यासिकों से सफलतापूर्वक की जा सकती थी जो प्रेमचंद की कला के अधिक निकट हैं। टालस्टॉय और डिकेंस इनमें मुख्य हैं।

अपने निर्धारित क्षेत्र में पुस्तक उपयोगी और विद्वत्तापूर्ण है। साधारण पाठकों तथा परीक्षार्थियों दोनों के काम की है। आलोचना के विशुद्ध दृष्टिकोण के लिए हम लेखक को बधाई देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

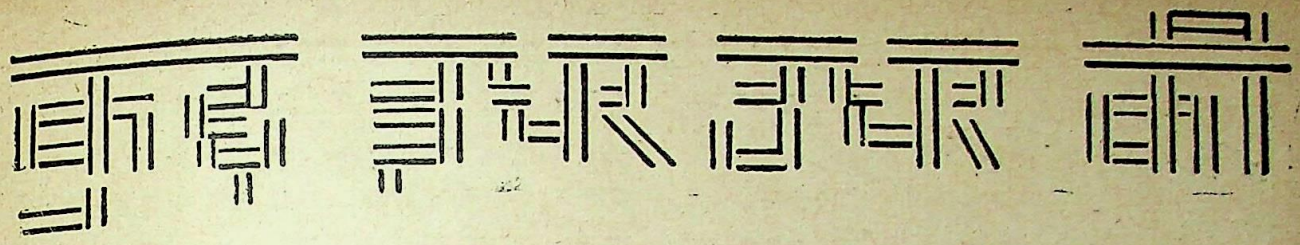

कामरेड एम० एन० राय

"बड़ी परेशानी है। गांधीवादी मेरी बात सुनना नहीं चाहते क्योंकि उन्होंने अपना दिमाग़ कम-से-कम आगामी बीस वर्षों के लिए गांधी जी के पास गिरवीं रख दिया है। मज़दूर-नेता मेरी स्कीम को विचित्र और अवाञ्छनीय मानते हैं। फिर भी मुझे विश्वास है कि मेरा मस्तिष्क सबसे अधिक विशाल है; हाँ मेरे अनुयायी अभी कम हैं, यही मेरे हाथ-पाँव की कमज़ोरी है, अन्यथा मैं कांग्रेस को अपनी मुट्ठी में करने में अवश्य सफल हो जाता।"

× × ×

'पूर्व का उदयोन्मुख सूर्य' जिस अपनी अग्रगामी सभ्यता को तोपों और बमों के द्वारा चीन में फैलाने का दावा कर रहा है उसके अनेक सफल प्रयोग वह अपने देश में बहुत पहले से करता आ रहा है। सन् १९३३ में ओशिया के ज्वालामुखी के मुख में कूद कर एक १९ वर्षीया छात्रा ने आत्महत्या कर ली थी। जापानियों ने ठीक ही समझा कि इस प्रकार प्राण विसर्जन का यह तरीक़ा शायद कुछ ज़्यादा दिलचस्प है। बस फिर क्या था, १४३ आदमियों ने तो उसी वर्ष उस लड़की का पदानुसरण किया। दूसरे वर्ष से आत्मबलि देनेवालों का ताँता लग गया और उनकी सुविधा के लिए वहाँ होटल और दूकानें भी खुल गईं। रेलवे ने भी इन पुण्य-यात्रियों के सहायतार्थ भाड़ा कम कर दिया। घटना अधिक व्यापक हो जाने पर एक दैनिक पत्र के संपादक ने इस ज्वालामुखी का वैज्ञानिक अनुसंधान करना चाहा। आप लोहे की सन्दूक़ची में बैठकर उसके मुख में उतरे। पर वहाँ चीन-साम्राज्य जैसी कोई आकर्षक वस्तु न पाकर हाय हाय करके उलटे पाँव भागे। अब तो सरकार को भी इधर ध्यान देना पड़ा और १९३५ तक पुलिस और फ़ौज की सहायता से सभ्यता की यह प्रगति रोकी जा सकी। हम महाकवि योने नागुची से प्रार्थनापूर्वक अनुरोध करेंगे कि वे कृपया अपने देशवासियों के इस उत्कट ज्वालामुखी-प्रेम पर एक महाकाव्य लिख डालें, क्योंकि शिवमूर्त्ति की अपेक्षा ओशिया का ज्वालामुखी काव्य का कहीं अच्छा विषय है।

× × ×

हिन्दी-कविता में इस ओर कुछ सच्ची प्रगति दिखाई दे रही है। हमारे कलाकार अनन्त की ओर दौड़ते-दौड़ते अब थक गये हैं और वे अपनी प्रगतिशीलता का परिचय खाने-पीने की कलापूर्ण चिन्ता-द्वारा देना चाहते हैं। कुछ नमूने देखिए—

एक— "भर दे गिलास !"
"भर दे गिलास !"
प्रिय होने दे विजया-विलास,
आई संध्या ! आई संध्या !
तुझ-सी ही मन भाई संध्या
बादाम भाँग लाई संध्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे अधरों में मधुप-प्यास
तेरे अधरों में मधु-विलास
फिर क्यों न उठे ध्वनि आस-पास,
"भर दे गिलास !" "भर दे गिलास !"
विजया मेरी मन मानी है,
साक़ी, तू मेरी रानी है,
"नाहीं करना नादानी है।"
"हमने भी गहरी छानी है।"

दो—

साक़ी मन, अब रात हो गई, आई घुमड़ मेघमाला,
अब कैसा विलंब है, भर-भर लादे अंगूरी हाला,
प्याले दो प्याले में बुझनेवाली मेरी प्यास नहीं
बार बार ला, ला कहने का समय नहीं अभ्यास नहीं।
कितनी पीली, कैसी पीली,
क्यों इसका कर रहा शुमार,
आज पिला दे ऐसे साक़ी जो सदियों तक रहे ख़ुमार।
भर भर दे ला ला और ! और !!
यह और-और !
वह और-और !

तीन—

कहाँ खोजने जाते मानव, सुन्दरता औ' स्वाद अपार ?
'मांस' शब्द में ही है मूर्त्तित, अखिल भावनाओं का सार
'मांस' नहीं नश्वर है ज्योतित—
मांस विश्व में जीव-विलास।
रोटी-दाल दूध-घी तम हैं,
एक 'मांस' ही अमर प्रकाश !
मांस ब्रह्म है, मांस पूर्ण हैं
इसका होता नहीं विनास
मांस-भुक्ति ही लोक-मुक्ति है
मांस-भोज ही चरम विकास।
सब मांसों से श्रेष्ठ मानुसी मांस—
करो इसका सम्मान
थापन करो मांसमय जीवन
चटपट मांस करो निर्माण।"

चार—

प्यारी, सारी की झंझट क्यों ?
घूँघट की झूठी खट पट क्यों ?
तुम माया हो,
मैं जीव सखी !
तुम जाया हो,
मैं पीव सखी !
फिर द्वैत कहाँ ! क्या भेद-भाव !
यह वस्त्रों से किसका दुराव ?
निशि नग्न
दिगंबर अंधकार !
फिर हम-तुम ही क्यों सहें भार ?
आओ हिल-मिल हों तदाकार।

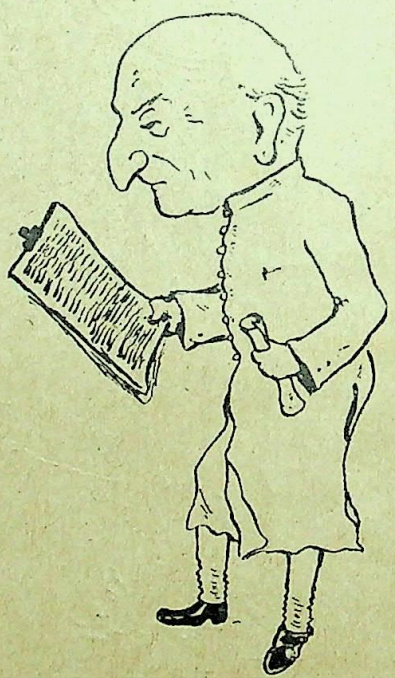

श्रीयुत भूलाभाई देसाई का व्यंग्य-चित्र
[चित्रकार, श्रीयुत बलरामकृष्ण अग्रवाल]

× × ×

बीसवीं सदी में सिद्धों की बाढ़ आ रही है, यद्यपि लोग भ्रमवश इसे विज्ञान की सदी समझ रहे हैं। गत वर्ष मैनपुरी के 'दहीपगार' गाँव में एक हरिजन सिद्ध प्रकट हुए थे। आप पलक मारते ही लाखों निराश और असाध्य रोगियों को चंगा कर देते थे। महीने-दो-महीने बड़ी धूम-धाम रही। बड़े-बड़े जज, वकील और बैरिस्टरों की मोटरें आपका आशीर्वाद लेने पहुँचती थीं, फिर साधारण जनता का तो कहना ही क्या ? पर कुछ ही दिन बाद भंडा फूटने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिटलर साहब ब्रिटिश-सिंह की दुम से ज़ेकोस्लोवेकिया का गला घोंट रहे हैं।
(माडर्न-रिव्यू से)

पर महात्मा जी तो अन्तर्धान हो गये, हाँ उनके साधकों की अलबत्ता ख़ासी जाफ़त की गई।

इधर सिंहभूमि ज़िले में भी एक ऐसे ही मसीहा ने अवतार लिया है। आपके साधकों ने जनता के उपकार के लिए पत्रों में प्रकाशित कराया है कि "महात्मा योगीश्वर मुनि जी, छूकर, फूँक कर, पानी छिड़क कर, या कभी-कभी केवल दृष्टि से देखकर ही पुराने-से-पुराने और असाध्य-से-असाध्य रोगियों को केवल एक सेकंड में चंगा कर देते हैं। ऐसा चमत्कार ईसा मसीह के बाद इस बार ही देखा गया है।"

मेरी समझ में अब शफ़ाख़ानों और डाक्टरों—वैद्यों की क़तई ज़रूरत नहीं है। स्वास्थ्य-विभाग एकदम सिद्ध जी और उनके साधक शिष्यों के हाथ में सौंप दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से जनता का भी सच्चा उपकार होगा और सरकार को भी लाखों रुपये की सालाना बचत हो जायगी। आशा है कि बंगाल-सरकार ऐसे सिद्ध योगिराज का शीघ्र ही काफ़ी सत्कार करेगी।

× × ×

वोटर लोग वोट देते समय कहाँ तक समझ से काम लेते हैं, इसका एक बड़ा दिलचस्प उदाहरण वाशिंगटन के एक मेयर ने पिछले एक चुनाव के अवसर पर दिया है। आपने अपनी पार्टी की ओर से एक ख़ाली सीट के लिए 'वोस्टन कुर्टिस' नामक एक महाशय को नामज़द किया। बड़े ज़ोर से कनवेसिंग हुआ। प्रचारकों ने गला फाड़-फाड़ कर मिस्टर वोस्टन कुर्टिस के अपूर्व गुणों की प्रशंसा की। फलस्वरूप निर्वाचन के समय इसी उम्मीदवार को सबसे अधिक वोट मिले और वह चुन लिया गया।

चुनाव समाप्त हो जाने के बाद मेयर ने वोटरों और कनवेसरों की एक सभा की और उसमें बड़ी गम्भीरता से सबको धन्यवाद देते हुए सूचित किया कि वोटरों ने जिस उम्मीदवार के लिए वोट दिया है वह कोई आदमी नहीं है बल्कि एक भूरे रंग का बड़ा-सा ख़च्चर है।

× × × ×

पागलों के काम अद्भुत होते हैं। उन्हें देखकर हम कभी हँसते हैं, कभी खीजते हैं। पर कभी-कभी कोई-कोई पागल ऐसा भी काम कर डालता है जिसे देखकर बड़े-बड़े बुद्धिमान् कहलानेवाले भी हैरत में आ जाते हैं। पिट्सबर्ग (अमरीका) के किसी डाक्टर लेमेंट ने, जो स्वयं काफ़ी पागल थे, एक ऐसा ही चमत्कार कर दिखाया है। आपकी पत्नी 'एलीना' को एक पागल कुत्ते ने काट लिया था। कई अच्छे-अच्छे डाक्टरों की सहायता लेने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी जब वह अच्छी न हो सकी और हफ़्तों तक कष्ट पाने के बाद अन्त को चल बसी, तब आपका पागलपन सीमा से पार हो गया। 'प्यारी एलीना अकेली ही उस मार्ग से क्यों जाय'—यह सोच कर, उसी पागल कुत्ते के विष से आपने इंजेक्शन तैयार किया और अपने सब मरीज़ों पर आप उसका प्रयोग भी करने लगे। फल यह हुआ कि शहर में पागलों की बाढ़ आ गई। अधिकारी हैरान होगये कि इस 'पागलपन' का कारण क्या है! आख़िर, कुछ दिन बाद आपने स्वयं जाकर पुलिस को अपने इस महत्त्वपूर्ण आविष्कार की सूचना दी। फल-स्वरूप आप 'पागल ख़ाने' के स्थायी मेहमान बना दिये गये।

कुछ दिन बाद उसी पागलख़ाने में एक और रोगी लाया गया जो शिर में चोट लगने से पागल हुआ था। डाक्टरों ने इसे असाध्य कह कर छोड़ दिया था। 'पागल डाक्टर' ने अधिकारियों से कहा कि अगर मुझे इजाज़त मिल जाय तो उस मरीज़ को मैं ठीक कर सकता हूँ। पर अधिकारियों ने उसकी प्रार्थना पर ध्यान न दिया। दो चार दिन का भुलावा देकर आख़िर एक दिन आप सीधे आपरेशन के कमरे में पहुँचे और वहाँ की नर्सों को हुक्म दिया कि मुझे आपरेशन करने की इजाज़त मिल गई है, फ़ौरन सब सामान ठीक करो, और अमुक पागल को यहाँ ले आओ। ऐसा ही किया गया। आपने चार घंटे तक आपरेशन करके उस मरीज़ को बिलकुल ठीक कर दिया।

पागल डाक्टर पागलों के इलाज में सफल हुआ!!

विधवा के जीवन पर मृत्यु के पंजे की छाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

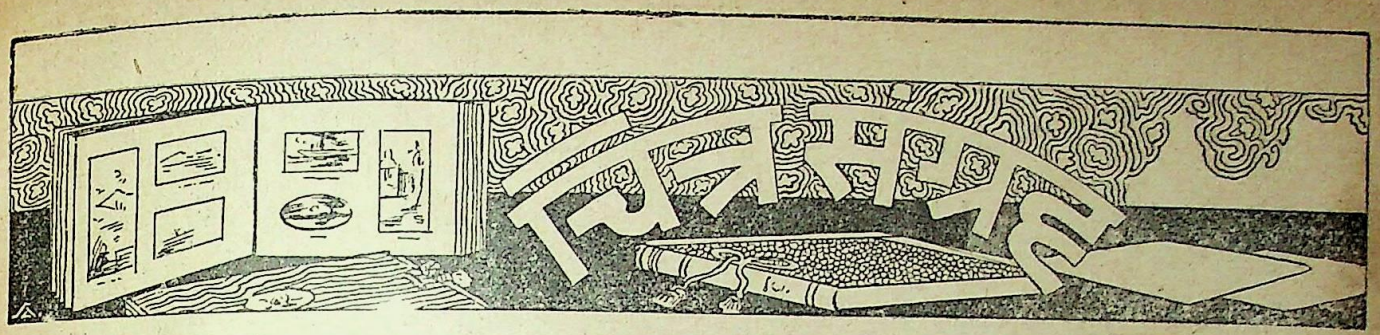

ग्वालियर दरबार के लब्ध-प्रतिष्ठ चित्रकार श्रीयुत नागेश यावलकर के कुछ चित्र जिनकी केलीफोर्निया और अन्यान्य विदेशी प्रदर्शनियों में बहुत प्रशंसा हुई है।

श्रीयुत नागेश यावलकर, अपनी चित्रशाला में—

"तुरहीवाला"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सुनार'

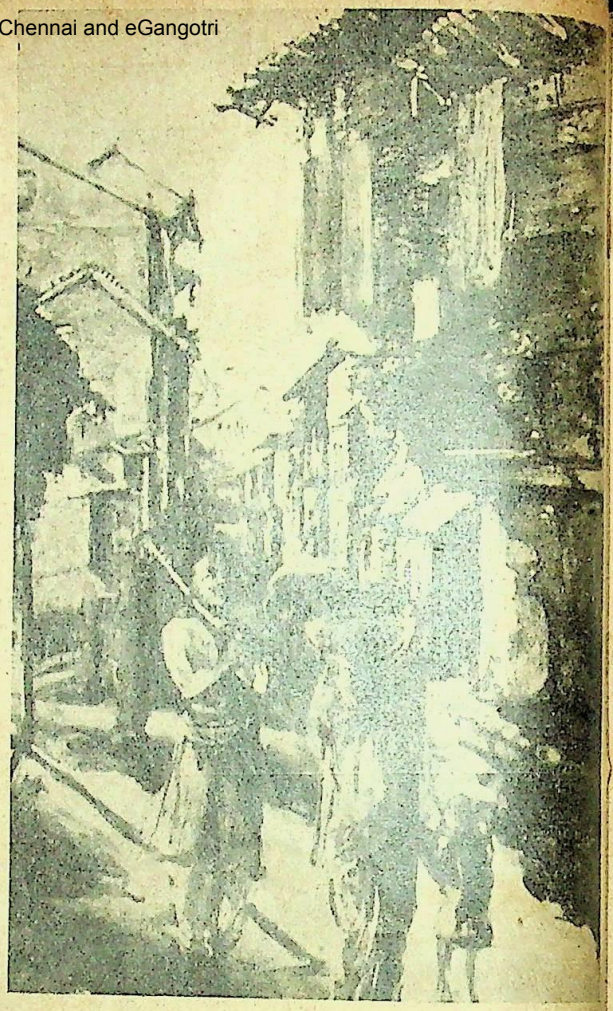

"प्राचीन नासिक"

"गाँव का पड़ाव"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

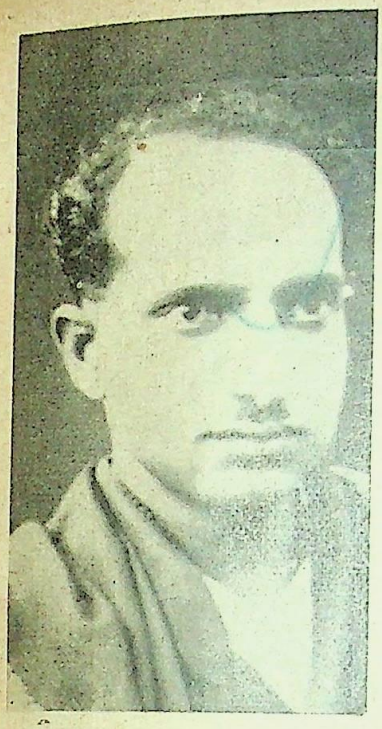

प्रख्यात संगीताचार्य प्रोफेसर वेनी-प्रसाद श्रीवास्तव (भाई)

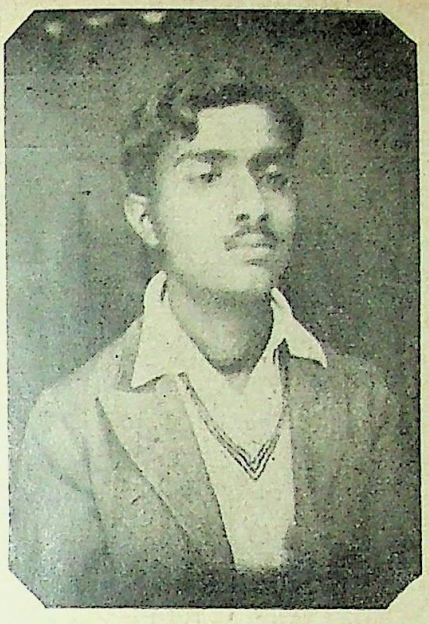

श्रीयुत सन्तोषकुमार वसु, बी० ए०
अभी हाल ही में प्रयाग में जो दसवीं अखिल भारत-वर्षीय संगीत कान्फ्रेंस हुई थी उसकी संगीत-प्रतियोगिता में आप सर्वप्रथम हुए हैं।

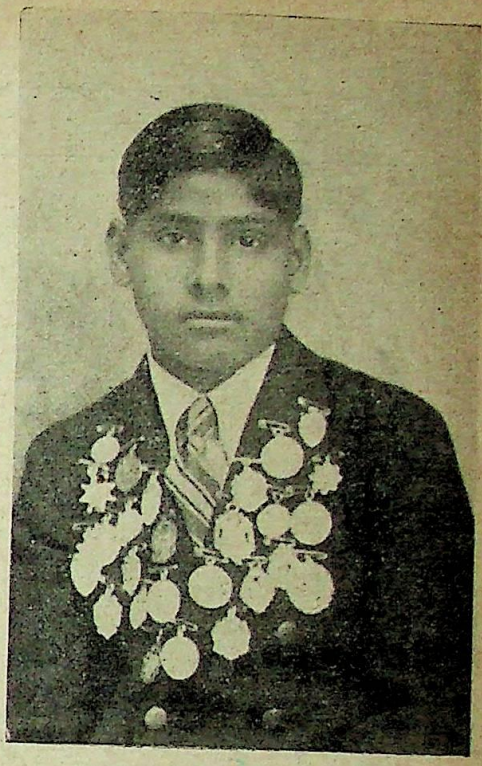

मास्टर जगदीशसहाय, आप संगीत में अनेक पदक प्राप्त कर चुके हैं।

श्रीयुत जितेन्द्रनारायण राय चौधरी, बी० ए०,
आप बाँसुरी बजाने में बहुत कुशल हैं। आप भी उक्त 'भाई' जी के शिष्य हैं।

श्रीयुत नरेन्द्रसहाय वर्मा, आप हारमोनियम बजाने में प्रवीण हैं। आप भी 'भाई' जी के शिष्यों में से हैं।

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

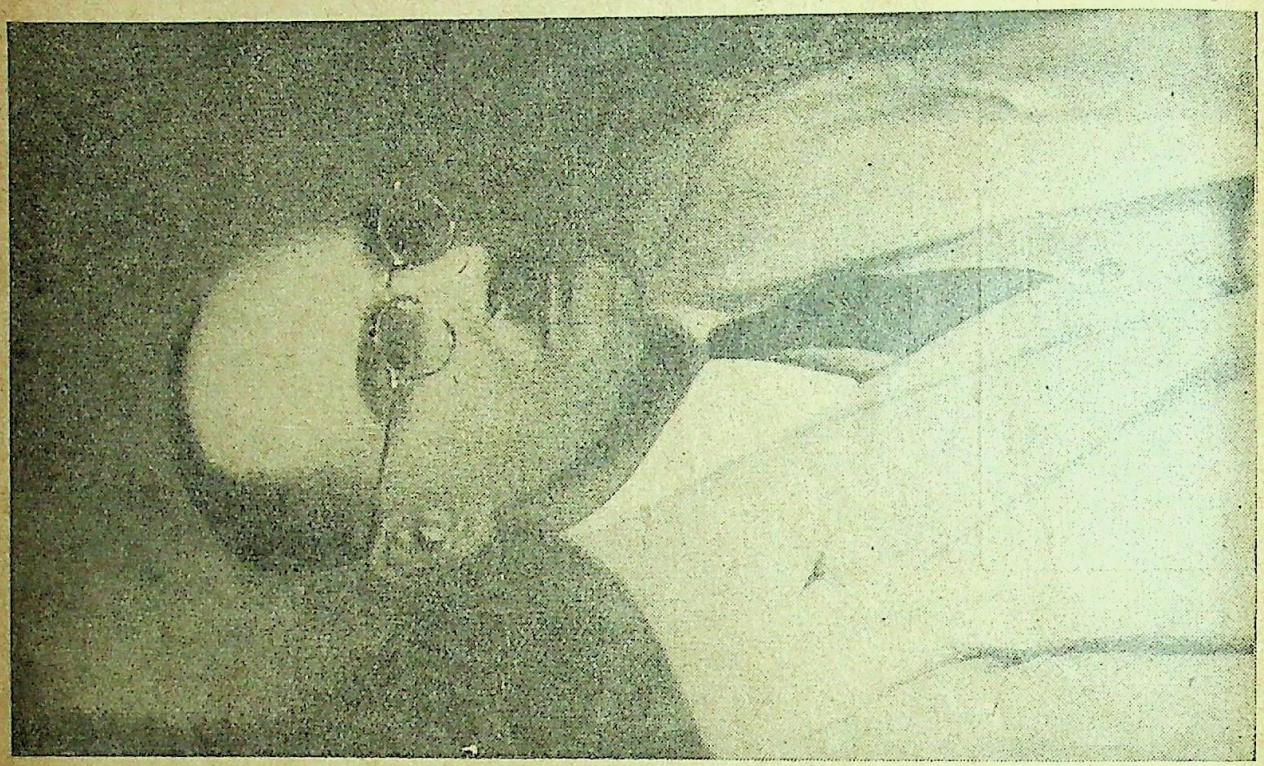

श्रीयुत घ० रहीम—आप बर्मा-सरकार द्वारा बर्मा-दङ्गा-इनक्वायरी

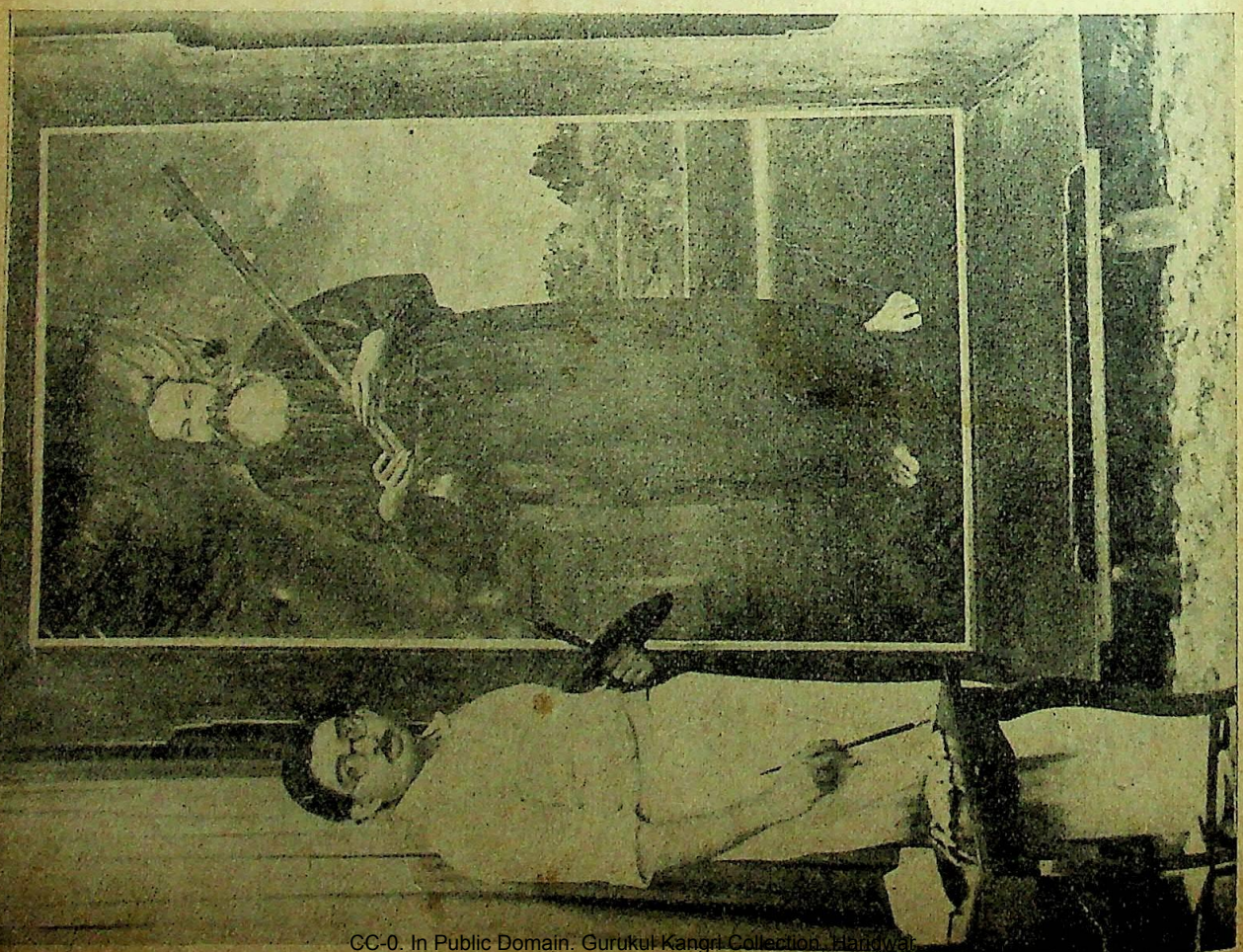

प्रसिद्ध कलाकार श्रीयुत पी० मुकर्जी संगीताचार्य विष्णु दिगम्बर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अल्पता की समस्या

लेखक, श्री वेंकटेश नारायण तिवारी

हमारे सूबे ही में क्या किन्तु सारे भारत में इस समय अल्पता की समस्या के सामने और सब समस्यायें तुच्छ और नगण्य-सी हो गई हैं। हिन्दू, ईसाई और सिक्ख—इन सम्प्रदायों के अनुयायियों ने अपने-अपने धार्मिक विभेदों के बल पर राजनीतिक क्षेत्रों में विशेष अधिकारों की जो माँगें पेश की हैं, वे भारत के इतिहास में कोई नई बात नहीं। हिन्दुओं में सवर्ण और अवर्ण तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, जाट और अहीर आदिक विभिन्न जातियाँ धारा-सभाओं में प्रतिनिधित्व और सरकारी नौकरियों में समुचित हिस्सा पाने के लिए सतर्क और सचेष्ट हैं। अँगरेज़ी अमलदारी ने जहाँ भारतवर्ष में राजनीतिक एकता की प्रवृत्ति को पुनर्जन्म दिया वहाँ अँगरेज़ी शासकों ने एक राष्ट्र के उद्भव और विकास में जाति-विशिष्टताओं को प्रोत्साहन देकर अड़ंगा भी लगाया। अँगरेज़ी शासक सदैव इस लांछन का ज़ोरों के साथ प्रतिकार करते आये हैं। उनकी ऐसी इच्छा रही हो या न रही हो, लेकिन उन्होंने समय-समय पर जिन-जिन नीतियों का अवलम्बन किया उनका परिणाम यह अवश्य होता गया कि भारतीय समाज एकता की ओर उतनी शीघ्रता के साथ बढ़ने में समर्थ न हो सका जितनी शीघ्रता से वह अँगरेज़ी शासन-काल में बढ़ सका था। भारत के सेवकों के सामने मौजूदा परिस्थिति में यह सवाल नहीं है कि अँगरेज़ी शासकों की राजनीतिक चालों के कारण राष्ट्रीयता का विकास रुका या उसमें बाधा पड़ी, किन्तु उसके सामने तो इस समय प्रश्न यह है कि अभी तक जो बाधायें हमारे मार्ग में थीं उनको किस तरह दबा-कर हम भारतीय राष्ट्रीयता के भाव को सबल और देशव्यापी बना सकते हैं। हमारा तो यही ध्येय है; और जब तक इस ध्येय की सिद्धि न होगी तब तक न तो हम आज़ाद हो सकते हैं और न आज़ादी पा जाने पर भी उसकी रक्षा करने में हम समर्थ ही हो सकते हैं। इसी लिए अल्पता का प्रश्न सब प्रश्नों से अधिक महत्त्व का है। इसके ऊपर शान्तिपूर्वक मनन करना और इस अल्पता की गुत्थी को सुलझाना हम सबका परम धर्म है।

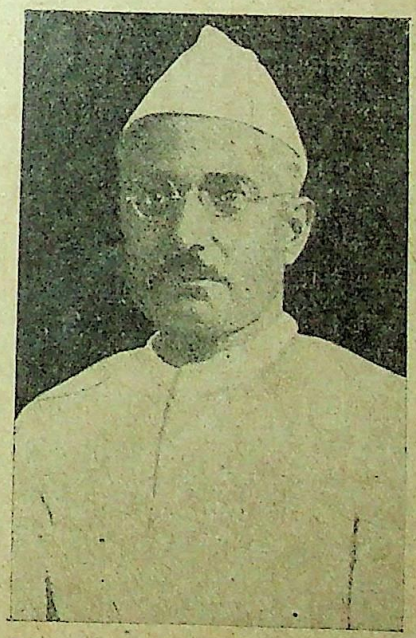

पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी

कांग्रेस के ऊपर तो इस मसले को हल करने की सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी है। देश में यही एक राष्ट्रीय संस्था है। इसकी दृष्टि में हिन्दुस्तान के सब निवासी—वे चाहे जिस जाति, वर्ण या सम्प्रदाय के क्यों न हों—समान हैं। सबके स्वत्वों, हितों और अधिकारों की रक्षा करना इसका धर्म है। यह उन्हीं नीतियों का समर्थन करने के लिए बाध्य है, जिनसे सबका समान हित हो। राजनीतिक, सामाजिक या साम्पत्तिक शोषण और आधिपत्य का विरोध इसके आन्दोलन की जड़ में है। इसी बुनियाद पर हम स्वराज्य-मन्दिर का निर्माण करना चाहते हैं। कांग्रेस के सदस्य सार्वजनिक क्षेत्रों में भारतीय हैं। मनसा, वाचा, कर्मणा उसके लिए अपने को भारतीय मानना या समझना आवश्यक है। वह न तो कांग्रेसी है और न सच्चा हिन्दुस्तानी ही है जो धर्म के भेदभावों के आधार पर एक भाई को दूसरे भाई से नीचा दिखाए या एक के साथ रियायत और दूसरे के साथ ज़्यादती करे। कांग्रेसी न तो हिन्दू है और न मुसलमान; न ईसाई और न सिक्ख। धर्म तो उसके लिए एक निजी बात है। इसका उसके सार्वजनिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं। जहाँ मुल्लाओं और पंडितों के चंगुल से भारतीय जनता को छुड़ाना आवश्यक है वहाँ एक भारतीय के लिए यह भी आवश्यक है कि वह ख़ुद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञात या अज्ञात रूप से कोई ऐसा वचन न कहे और न कोई ऐसा काम करे जिसके कारण हिन्दुस्तानियों में घरेलू झगड़ों की आग धधक उठे या आपसी मन-मुटाव फैले। ऐसी दशा में हमारी यह निश्चित धारणा है कि देश में कांग्रेस ही एक ऐसी संस्था है जो इस मसले को आसानी के साथ हल कर सकती है।

अल्पता का सवाल है क्या? अँगरेज़ी में इसे "माइनारिटी" का प्रश्न कहते हैं, उर्दूवाले "अक़्लियत" का मसला कहते हैं। अक़्लियत, माईनारिटी और अल्पता, तीनों ही एक ही बात के द्योतक हैं। हिन्दुस्तान की अल्पता का अर्थ आजकल राजनीतिक क्षेत्रों में जो लगाया जाता है उसका वह अर्थ वास्तव में है नहीं। हिन्दुस्तान में अल्पता का निर्णय साम्प्रदायिक विभेदों के आधार पर किया जाता है। योरप में जाति-विभेद के आधार पर किसी समुदाय-विशेष को, किसी दूसरे समुदाय-विशेष की तुलना में, अल्पसंख्यक समुदाय मानते हैं। चैकोस्लोवाकिया में जर्मन्स, पोल्स और हंगेरियन्स अल्पसंख्यक थे; लेकिन उनके अल्पता की कसौटी जाति-भेद थी, न कि धार्मिक भेद। जर्मनी में अनेक सम्प्रदाय हैं। रोमन कैथलिक्स वहाँ पर अल्पसंख्यक हैं; लेकिन जर्मनी के अन्दर रोमन कैथलिकों को कोई अल्पसंख्यक समुदाय-विशेष नहीं मानेगा। जर्मनी के सब जर्मन्स जर्मन्स हैं, चाहे वे इस सम्प्रदाय के माननेवाले हों, चाहे उस सम्प्रदाय के। साम्प्रदायिक भेद पर नहीं किन्तु जाति-भेद पर योरोप में अल्पता मानी जाती है

दुर्भाग्यवश हिन्दुस्तान में अँगरेज़-शासकों ने अल्पता का अर्थ ही दूसरा लगाया। उन्होंने जाति-भेद नहीं किन्तु सम्प्रदाय-भेद के आधार पर हिन्दुस्तान के निवासियों को बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक की पदवी दे डाली। यही कारण है कि आज हिन्दुस्तान के मुसलमान अपने को हिन्दुस्तान के हिन्दुओं से एक भिन्न जाति का कहते हैं। वास्तव में यह बात ठीक नहीं है। बङ्गाल के हिन्दू और मुसलमान जाति की दृष्टि से एक हैं, यद्यपि दोनों भिन्न-भिन्न मज़हब के माननेवाले हैं। दोनों के रहन-सहन, बोल-चाल और मानसिक तथा नैतिक प्रतिक्रियाओं के व्यापार और सांस्कृतिक बुनियादों में समानता है। सिन्ध के मुसलमानों और बङ्गाल के मुसलमानों में कोई समानता नहीं। लेकिन हिन्दुस्तान के राजनीतिक गोरखधन्धे में अँगरेज़-शासकों की चाल चल गई और प्रान्तिक भेद के साथ-साथ धार्मिक भेदों के आधार पर राष्ट्रीय एकता मिटाने के लिए द्वन्द्व मच गया। न केवल मुसलमानों ही में यह धारणा फैल गई कि उनकी जाति हिन्दुओं की जाति से भिन्न है किन्तु हिन्दुस्तान के लेखकों और कार्यकर्त्ताओं ने भी उनके इस दावे को ज्ञात या अज्ञात रूप से स्वीकार कर लिया; लेकिन है यह केवल हमारा मानसिक भ्रम।

जर्मनी वग़ैरह में अगर हमारे मुसलमान भाई धर्म भेद के आधार पर विशेष प्रतिनिधित्व या अधिकारों की माँग पेश करें तो न तो जर्मनी के जर्मन्स और न योरोप के किसी और देशवाले इनकी इस माँग को ठीक समझेंगे। लेकिन मिस्टर जिन्ना करांची में होनेवाले मुस्लिम-लीग के अधिवेशन में हिन्दुस्तान के मुसलमानों की तुलना चैकोस्लोवाकिया के सूडेटन जर्मन्स से करते हैं। जिस देश में माईनारिटी, अक़्लियत या अल्पता के शब्दों का इतना भ्रमपूर्ण और भ्रामक अर्थ लगाया जाय, उस देश में अल्पता की समस्या न तो आज हल हो सकती है, और न निकट भविष्य ही में उसके हल होने की कोई सम्भावना है। यदि युक्त-प्रान्त के मुसलमान युक्त-प्रान्त के हिन्दुओं से, केवल इसलिए भिन्न हैं कि दोनों के मज़हब भिन्न-भिन्न हैं, तो फिर यह भी मानना पड़ेगा कि युक्त-प्रान्त के मुसलमानों में—शियों और सुन्नियों में—भी जाति-भेद है। अहमदिया और वहाबी मुसलमानों की भी जाति शियों और सुन्नियों की जातियों से भिन्न माननी पड़ेगी। लेकिन युक्त-प्रान्त के हिन्दू और मुसलमान वास्तव में समान जाति के हैं। दोनों की रगों में समान रक्त बहता है, दोनों एक ही राख से बने हैं और अन्त में दोनों एक ही राख में मिल जाएँगे। सच तो यह है कि मद्रास और युक्त-प्रान्त के आदमियों में जाति-भेद भले ही हो लेकिन युक्त-प्रान्त के हिन्दू और मुसलमानों में जाति की दृष्टि से कोई भेद नहीं।

इसी तरह से हमारे सूबे में जो ईसाई भाई हैं वे भी हमारी ही जाति के हैं और अन्त तक हमारी ही जाति के बने रहेंगे। उन्हें विभिन्न जाति का मानना या कहना सत्य के साथ अन्याय करना है। यह एक ऐसी ग़लत बात है, जिसकी बुनियाद में हमारे जीवन का अवश्यम्भावी विनाश निहित है। एक हिन्दू जब ईसाई या मुसलमान हो जाता है या मुसलमान या ईसाई शुद्ध होकर हिन्दू हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है तो उसके मज़हब में अन्तर भले ही हो जाय किन्तु उसकी जाति में कैसे अन्तर आ गया—यह राजनीतिक कठ-मुल्लाओं के लाख कहने पर भी हम स्वीकार करने को तैयार नहीं। इसलिए, आइए, हम और आप शान्तचित्त होकर इस अल्पता के मसले पर विचार करें।

१९३१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार इस सूबे की आबादी लगभग ५ करोड़ थी, जिनमें से हज़ार पीछे १४८ मुसलमान और ४ ईसाई थे बाक़ी सब हिन्दू। अथवा, दूसरे शब्दों में, इस सूबे के १० हज़ार आदमियों में विभिन्न सम्प्रदायों की निम्न गणना होगी:—

हिन्दू	=	८,४६४.
मुसलमान	=	१,४८४.
ईसाई	=	४२
अन्य	=	१०
कुल जोड़	=	१०,०००

हिन्दुओं में हरिजनों या शैड्यूल्ड कास्ट के लोगों की संख्या भी शामिल है। ये लोग सूबे में लगभग २२ प्रतिशत हैं। इस सूबे में विदेशियों की या विदेश से आये हुए प्रवासियों की संख्या बहुत ही थोड़ी है। ऐसे लोगों में पारसी, योरपियन, सिक्ख, ईरानी और यहूदी शामिल हैं। लेकिन इन विदेशियों या प्रवासियों की संख्या इतनी थोड़ी है कि वह नगण्य के बराबर है। इनको छोड़कर, बाक़ी जनता जातीय दृष्टि से एक है। सम्प्रदायविषयक विभिन्नता के आधार पर विभिन्न सम्प्रदायवालों को विभिन्न जातियाँ कहना सरासर भूल है। मुझे मालूम है कि ईसाइयों के भी कुछ नासमझ और नादान नेता, कुछ मुसलमान-नेताओं की देखादेखी, यह दावा करने लगे हैं कि ईसाई हिन्दू या मुसलमानों से भिन्न हैं—भिन्न हैं न केवल धार्मिक मामलों में, किन्तु भिन्न हैं जाति में भी! मुझे खेद है कि इस सूबे में पढ़े-लिखे लोग और ख़ुद सम्मानित सम्पादक-गण भी अल्पता के मसले पर लिखते हुए इन राजनीतिक भूलों के प्रचार में अज्ञात रूप से सहायक हो रहे हैं। वे अल्पसंख्यक सम्प्रदाय न लिखकर अल्पसंख्यक जाति लिखते हैं। मैं फिर कहता हूँ कि इस सूबे में कई जाति के लोग नहीं बसते। इस सूबे में एक ही जाति के लोग हैं। मिश्रित जाति के हैं, वर्णसंकरी जाति के हैं। न कोई विशुद्ध अरबी है, न कोई ईरानी है और न कोई आर्य है। सब में अनेक जातियों का ख़ून मिला हुआ है। युगों के हेरफेर के साथ-साथ भौगोलिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों ने विभिन्न जातियों के लोगों को एक शक्ल और एक रंग का बना दिया। इस जातीय सत्य से लोग कितना ही क्यों न भड़कें, लेकिन इसका मिटाना उतना ही असंभव है जितना हथेलियों की रेखाओं को मिटा देना। इन भेदभावों के मसले को उठाकर हिन्दुओं, ईसाइयों और मुसलमानों के राजनीतिक स्वत्वों को कुछ लाभ भले ही पहुँचे लेकिन इनमें से हर एक को यह याद रखना चाहिए कि युक्त-प्रान्त के बाहर इनके लिए न स्थान है और न इस बिना पर सौदे की कोई सम्भावना है। हमारे मुसलमान अफ़ग़ानिस्तान, ईरान या अरब में जाकर देख सकते हैं कि मुसलमान होने के नाते उनका वहाँ स्वागत नहीं होगा। वहाँ वे हिन्दी कहलायेंगे और हिन्दी होने की वजह से उनका वहाँ पर उसी तरह अनादर होगा जिस तरह आज हिन्दुस्तान के पराधीन होने की वजह से हमारा अनादर हो रहा है। बंगाल के मुसलमानों का साम्पत्तिक हित युक्तप्रांत के मुसलमानों के साम्पत्तिक हित से मेल नहीं खाता। जूट के ऊपर जो निर्यात-टैक्स लगा है उसकी आमदनी के अंश के मिल जाने से बंगाल के मुसलमानों को फ़ायदा भले ही पहुँचे लेकिन युक्त-प्रान्त के हिन्दू और मुसलमान किसानों को उससे कोई लाभ नहीं मिला। लाभ का जो कुछ अंश भारतीय गवर्नमेंट ने छोड़ा वह बंगाल के लिए छोड़ा। युक्त-प्रान्त और बिहार में शक्कर-मिल-नियंत्रण-सम्बन्धी क़ानून बनने के कारण इन दोनों सूबों के हिन्दू और मुसलमानों को जो फ़ायदा हुआ उस फ़ायदे से सिन्ध, पंजाब या मद्रास के मुसलमान या हिन्दू कृषकों को कोई लाभ नहीं पहुँचा। भिन्न सूबे के भिन्न साम्पत्तिक हित हैं। प्रत्येक सूबे की अलग-अलग राजनीतिक और साम्पत्तिक समस्यायें हैं। उन समस्याओं का समाधान साम्प्रदायिक भेद पर नहीं हो सकता। उनका निर्णय तो होगा सूबे के सार्वजनिक हितों की दृष्टि से।

इस विषय पर विचार करते समय लोग प्रायः एक और भी भूल किया करते हैं, और वह भूल यह है कि यू० पी० के मुसलमानों को लाभ पहुँच सकता, यदि बंगाल के या पंजाब के मुसलमान वहाँ के अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के साथ अनादर का व्यवहार करें। यदि यू० पी० के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसलमान, मान लीजिए, तालीम में पिछड़े रहें और बंगाल और पंजाब के मुसलमान बहुत आगे बढ़ जाएँ तो यू० पी० के मुसलमानों को कोई फ़ायदा न होगा। वैसे ही, जैसे यू० पी० के हिन्दुओं को कोई फ़ायदा न होगा, यदि बम्बई और मद्रास के हिन्दू आगे बढ़ जाएँ और ये पीछे ही पड़े रहें। प्रान्तगत परिस्थितियों से भेद होगा और भेद हो सकता है। प्रान्त की उन्नति या अवनति पर उन सबकी उन्नति और अवनति निर्भर है जो प्रान्त में रहते हैं—धार्मिक मत उनके चाहे एक या अनेक भले ही हों।

तीसरी बात जिस पर मैं यहाँ पर ज़ोर देना चाहता हूँ यह है कि जो लोग आजकल हिन्दुस्तान में या हिन्दुस्तान के किसी सूबे में सम्प्रदाय-भेद के आधार पर राजनीतियों का निर्माण करना चाहते हैं वे समय के प्रवाह के प्रतिकूल तैरने की चेष्टा कर रहे हैं। अब युग है अन्ताराष्ट्रीयता का या भीषण राष्ट्रीयता का। योरप में आजकल राष्ट्रीयता का भीषण तूफान उठ रहा है। योरप का मानचित्र इसी राष्ट्रीयता के संघर्ष के कारण द्रुतगति से बदल रहा है। कल का चित्र आज नहीं और आज का चित्र कल न रहेगा। लेकिन वहाँ पर समय के उलट-फेर से साम्प्रदायिक भेद का न केवल नाश हो गया है बल्कि राष्ट्रीयता के पीछे जातीय भेद-भाव की प्रबल भावना काम कर रही है। हिन्दुस्तान में कई लोग उल्टी गङ्गा बहाने की चेष्टता कर रहे हैं। दुख के साथ कहना पड़ता है कि इन भूले हुए लोगों में मिस्टर जिन्ना की गणना भी हमको करनी पड़ती है। किसी समय इन्हें किसी ने मुस्लिम गोखले का पद दिया था। किसको मालूम था कि इस पद में एक भविष्यवाणी छिपी हुई है? गोखले के पास जो कुछ था उसे उन्होंने राष्ट्रीयता की वेदी पर अर्पित कर दिया। लेकिन दुर्भाग्य से मि० जिन्ना गोखले तो न सिद्ध हुए; वे गोखले के दिखाये हुए पथ पर भी अधिक दिनों तक नहीं चल सके। जो कुछ देश के लिए इन्हें देना चाहिए था, उसे इन्होंने देश में आपसी भेदभाव फैलाने में लगा दिया। मि० जिन्ना केवल मुसलमान रह गये, गोखले न हुए। मुसलमानों को भी एक नहीं कर सके, उनमें भी इनकी नीति से वे भेद पैदा हो गये जो पहले नहीं मौजूद थे। यही हाल हमारे आदरणीय स्वर्गवासी मौलाना शौकतअली का भी था। क्या यह दुःख की बात नहीं कि एक मुसलमान को देश के भाइयों से विरोध हो। हर विदेश के तो वे हि हो सकते हैं लेकिन अपने देशवासियों के वे शत्रु ही (यहाँ पर यह साफ़ कह देना अनुचित न होगा कि बहुसंख्यक मुसलमान आज दिन भी हमारे बीच मौजूद जो हिन्दुस्तान को पहला और दूसरे मुल्कों को दूसरा स्थ देते हैं। वे मुस्लिम होते हुए भी मुल्क-परस्त हैं; फ़िरक़ परस्ती से उन्हें कोई सरोकार नहीं। आज़ादी की लड़ में अर्बिस्तान, तुर्किस्तान और ईरान के प्रति तो ली मुस्लिमों की सहानुभूति है; लेकिन इसका तो यह अर्थ होना चाहिए कि हम ग़ैरों का तो भले ही साथ दें पर अपने मुल्क को आज़ाद करने के लिए जो लोग मैदान उतर आये हैं उनका साथ न दें। परन्तु साथ देना तो रहा; उल्टे, उनका विरोध करें।

मुस्लिम लीग मुल्क को आज़ाद करने में सदा उदासीन चली आई है और अपनी इस उदासीनता दोष मढ़ती है हिन्दुओं के सिर। अगर हिन्दुस्तान मुसलमान फ़िलस्तीन के अरबों के प्रति सहानुभूति करते तो यह एक स्वाभाविक बात है क्योंकि संसार के स आज़ादी के पुजारियों के लिए फ़िलस्तीन के अरबों के स हमदर्दी करना लाज़िमी है। इसलिए नहीं कि वहाँ के अ मुसलमान हैं बल्कि इसलिए कि वे आज़ादी के लिए ल रहे हैं। संसार में जहाँ कहीं भी कोई परतन्त्र और प दलित जाति आज़ाद होने की चेष्टा में लगी हो उस साथ हम भारतीय ग़ुलामों की सहानुभूति का हो स्वाभाविक है। परन्तु इस सम्बन्ध में यह याद रख ज़रूरी है कि फ़िलस्तीन में मुसलमानों और ईसाइयों संघर्ष नहीं है; वहाँ संघर्ष है अरब जाति और यहूदी ज के बीच में। फ़िलस्तीन में जातिगत संघर्ष है; साम्प्रदा संघर्ष नहीं। यह भी याद रखने की बात है कि फ़िलस्त के अरबों में जहाँ मुसलमान हैं वहाँ ईसाई भी हिन्दुस्तान के मुसलमान अरबों के साथ तो सहानु प्रकट करें लेकिन हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय संग्राम में जयच खेल खेलें—यह दुख की बात है। क्या अरबों के उन्हें हमदर्दी महज़ इसलिए है कि बहुसंख्यक मुस्लिम हैं? क्या उन्हें सिर्फ़ मुस्लिमों की ग़ुलामी देखकर पीड़ा पहुँचती है? क्या ग़ैर मुस्लिमों की दशा सुधार की कुछ भी चिन्ता उन्हें नहीं है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़िलाफ़त के मसले के साथ हिन्दुस्तानी मुसलमानों को काफ़ी हमदर्दी थी। अपने मुसलमान भाइयों की इस हमदर्दी को हिन्दुस्तान में रहनेवाले हिन्दुओं ने अपनाया; और न सिर्फ़ अपनाया ही बल्कि उसके लिए उन्होंने सब तरह का त्याग भी किया। लेकिन तुर्किस्तान ने ख़ुद ख़िलाफ़त का अन्त कर दिया। तुर्कों ने हिन्दुस्तान के मुसलमानों की रत्ती भर भी परवाह न की। इन हिन्दी मुसलमानों की तुर्किस्तान के मुसलमानों को क्या परवाह थी? उन्होंने जो कुछ किया, अपने मुल्क की बेहबूदी के लिए किया। वे लोग फ़ज़ूल की बातों में नहीं फँसे, महज़ हिन्दुस्तान के मुसलमानों को ख़ुश करने के लिए। इसी तरह से इब्न सऊद ने हिन्दुस्तान के मुसलमानों को मक्का में होनेवाली कान्फ्रेंस में फटकार दिया। अरब के वहाबियों ने उन बातों को अपनाया जो उनके मुल्क की बेहबूदी के लिए थीं। हिन्दुस्तान के मुसलमानों की बातें उन्होंने सुनी-अनसुनी कर दीं। सुनी-अनसुनी इसलिए कर दीं क्योंकि मुसलमान होते हुए भी वे राष्ट्रवादी थे। अपनी जाति और अपने मुल्क की रक्षा करना उन्होंने अपना परम धर्म समझा। उन्होंने कभी इस बात को स्वीकार नहीं किया कि संसार के सब मुसलमान एक हैं या सब मुसलमानों के हित समान हैं। ईरान, तुर्किस्तान, अरब, अफ़ग़ानिस्तान और मिस्र इस बात के प्रबल प्रमाण हैं कि मज़हबी समानता के आधार पर नहीं किन्तु जातीय हितों के आधार पर राष्ट्र और जाति का संगठन संभव है।

यही हाल ईसाइयों का है। योरोप में सब प्रायः ईसाई हैं। लेकिन समान मतावलम्बी होते हुए भिन्न-भिन्न देशों के ईसाइयों में राजनीतिक और साम्पत्तिक हितों में विरोध के कारण भयंकर संघर्ष है; और इस संघर्ष की बदौलत योरोप में आजकल जो बेचैनी फैल रही है वह किसी से छिपी नहीं है।

चीन में जापानी आक्रमणों के कारण राष्ट्रीय एकता की जो लहर फैल गई है, वह बीसवीं सदी की एक आश्चर्यजनक घटना है। चीन के कुछ मुस्लिम प्रतिनिधियों का एक दल अभी हाल ही में हिन्दुस्तान में आया था। लखनऊ में जब यह दल पहुँचा तो हमारे सूबे के प्रमुख मुसलमान-नेताओं ने उनसे यह पूछा कि चीन के मुसलमानों को चीन में क्या विशेषाधिकार प्राप्त हैं। उन्होंने कहा,—"चीन के मुसलमान ख़ुदग़रज़ नहीं हैं। मुल्क की आज़ादी और मुल्क की हस्ती का सौदा हम नहीं करना जानते। मुल्क को दुश्मनों के चंगुल से छुड़ाना हर चीनी का फ़र्ज़ है—वह ईसाई हो या बौद्ध हो या किसी और मज़हब का माननेवाला ही क्यों न हो।" साम्प्रदायिक भेद पर विशेष अधिकार माँगना और ऊल-जलूल दावे पेश करना और उन माँगों के न पूरा होने पर मुल्क-फ़रोशी पर कमर कस लेना किसी सच्चे देशभक्त का न फ़र्ज़ है, और न होना चाहिए।

इसी तरह इस सूबे के ईसाई भाई भी साम्प्रदायिक भेद के कारण अपने को एक अलग जमात का समझते हैं। ईसाई जनता में रात-दिन इस भाव के भड़काने की कोशिश जारी है। अलग लेख में हम इसका सविस्तर वर्णन करेंगे लेकिन यहाँ पर इतना कह देना ज़रूरी है कि ईसाई सम्प्रदाय आज तालीम के लिहाज़ से इस सूबे के अन्य सम्प्रदायों से बहुत आगे बढ़ा-चढ़ा है। ईसाई मज़हब का इतिहास इस बात का गवाह है कि ईसाइयों ने सदा से अपने मुल्क की आज़ादी की लड़ाई में सबसे आगे क़दम बढ़ाया है। चीन के ईसाइयों ने कोई ज़िद नहीं की, कोई ख़ास माँग नहीं पेश की और न उन्होंने यह कहा कि जब तक ये उनकी माँगें पूरी न की जायँगी तब तक जापान के ख़िलाफ़ वे तलवार न उठायेंगे। इसी तरह जापान के ईसाइयों ने भी अपनी देशभक्ति का सौदा करना अपने उसूलों के ख़िलाफ़ समझा। इजिप्ट (Egypt) के काप्टों (Copts) का भी यही दृष्टिकोण है। उन्होंने न तो कोई विशेषाधिकार माँगे और न उन्हें कोई विशेषाधिकार दिये गये। फिर कोई वजह नहीं है कि इस सूबे के ईसाई अपने को एक विभिन्न जाति वाला समझें, जिनको इस मुल्क की आज़ादी या ग़ुलामी से कोई ख़ास सरोकार नहीं है; और धर्म के नाम पर बग़ावत के नेता बने रहें जब अन्य मज़हबों के मानने वाले उन्हीं के भाई आज़ादी के नाम पर हर तरह से क़ुर्बानियाँ कर रहे हों—

इस अल्पता की समस्या के नाम पर आज एक बहुत बड़ी बात देखने में आई। पटना में जो अभी हाल ही में मुस्लिम लीग का अधिवेशन हुआ उसमें देशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रियासतों के विषय में एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। उस प्रस्ताव का लक्ष्य हैदराबाद के कांग्रेस-आन्दोलन की ओर है। उसमें कहा गया है कि यद्यपि मुस्लिम लीग को देशी रियासतों की रियाया के साथ पूरी सहानुभूति है लेकिन अगर इंडियन-नेशनल-कांग्रेस उनकी हिमायत करेगी तो मुस्लिम लीग ख़ामोश नहीं बैठेगी बल्कि कांग्रेस से ताल ठोंक कर मोरचा लेने के लिए मैदान में उतर पड़ेगी। हैदराबाद की शासन-प्रणाली उसी तरह निरंकुश है, जिस तरह ग्वालियर, इन्दौर या बड़ौदा की। भूपाल और रामपुर की वही दशा है जो टीकमगढ़, रीवा या टेहरी (गढ़वाल) की है। हम लोग जो प्रजातंत्रवादी हैं उनके लिए हैदराबाद और बड़ौदा, भूपाल या ग्वालियर सब समान हैं। चाहे इस्लामी झंडे के नीचे निरंकुशता राज्य करती हो, चाहे हिन्दवानी झंडे के नीचे, वह निरंकुशता निरंकुश ही बनी रहेगी। प्रत्येक स्वाधीन-चेता भारतवासी की दृष्टि में वह एक-सी दूषित है। देशी रियासतों की प्रजा के साथ सदा से जो ज़ुल्म होते चले आये हैं और जिस तरह उनके हाथों इनका शोषण होता रहा है उसको देखकर कौन आज़ादी-परस्त हिन्दुस्तानी होगा जिसके हृदय को चोट न लगे। हम उनका साथ दें या न दें, यह एक बात है; लेकिन इस हद तक गिर जाना हमारे लिए शर्म की बात होगी कि वहाँ की हिन्दू या मुसलमान रियाया के साथ चाहे जितना अत्याचार क्यों न हो किन्तु ब्रिटिश इंडिया के किसी हिन्दू या मुसलमान को ज़बान खोलने का अधिकार नहीं है। मुस्लिम लीग का यह दावा कि हैदराबाद की रियाया अगर आज़ादी की लड़ाई लड़े तो ब्रिटिश इंडिया के हिन्दू या मुसलमान वहाँ की रियाया के साथ हमदर्दी ज़ाहिर न करें, सरासर ग़लत है, और यह इस बात का सबसे बड़ा सबूत है कि मुस्लिम लीग का दृष्टिकोण एक साम्प्रदायिक दृष्टिकोण है। वह कोई आज़ादी की लड़ाई लड़नेवालों की जमात नहीं। वह तो उन लोगों की जमात है जो मज़हब के नाम पर विशेष अधिकार पाने या जहाँ पर उनको वे अधिकार प्राप्त हैं वहाँ उनकी रक्षा करने के लिए मर-मिटने को तैयार है। मुसलमान सरमायेदारों और ठेकेदारों की तो वह आजकल पनाह बन गई है। ग़रीबों का चाहे जितना शोषण हो लेकिन अगर शोषण करनेवाले मुसलमान हैं तो उनकी तरफ़ किसी को उँगुली उठाने की हिम्मत भी नहीं करनी चाहिए। अगर काश को भूल से ऐसी बेअदबी कर बैठे तो मुस्लिम लीग उससे ख़ुद लड़ने के लिए तैयार हो जायगी। लीग दावा करती है कि आज़ादी की लड़ाई में फ़िलस्तीन के अरबों से उसको हमदर्दी है। फ़िलस्तीन के यहूदियों को विशेषाधिकार तो नहीं मिलना चाहिए, अधिकार मिलना तो दूर रहा, उन्हें वहाँ रहने भी न देना चाहिए। वहाँ पर अक्सरियत (Majority) की ये लोग दुहाई देते हैं लेकिन हिन्दुस्तान में ये लोग अक्सरियत को भूल जाते हैं। यहाँ पर अक़्लियत (माइनारिटी) का झंडा ऊँचा रखना चाहते हैं। हिन्दुस्तान के बाहर मुस्लिम देशों में मुस्लिम लीग वाले अक्सरियत के हिमायती हैं लेकिन हिन्दुस्तान के अन्दर इनकी निगाह में अक्सरियत की कोई वक़त नहीं। उन सूबों में जहाँ मुसलमानी सम्प्रदायवालों की संख्या आबादी के लिहाज़ से ज़्यादा है लीग बहुतों की समर्थक है लेकिन जिन सूबों में मुसलमानों की संख्या आबादी के लिहाज़ से कम है वहाँ ये लोग अक्सरियत की दुहाई नहीं देते। वहाँ अक्सरियत का उसूल ठुकराने के लिए तैयार हैं और अक़्लियत का झंडा ऊँचा करना चाहते हैं। क्या इनका यह दावा है कि ऐसे सूबों में अक्सरियत का कोई हक़ नहीं है, उसका कोई अधिकार नहीं? वहाँ यदि किसी का कोई हक़, स्वत्व और अधिकार है तो क्या केवल अक़्लियत को वह प्राप्त है?

इस राजनीतिक ला उसूली—सिद्धान्त-हीनता—का एक ही कारण है। वह यह है कि हिन्दुस्तान में अल्पताया अक्सरियत की समस्या को मुस्लिम लीग शुरू से ग़लत समझती चली आई है। इसको सही ढङ्ग पर जनता के सामने रखने की उसने कभी कोशिश नहीं की। वह तो सरमाएदारों की हिमायती और ब्रिटिश साम्राज्यी नीति की पोषक थी और आज भी है। इसलिए मिस्टर जिन्ना पटने से चिल्लाते हैं कि हिन्दुस्तान के सब मुसलमानों की एक जाति है। हिन्दुस्तान के मुसलमान, उनके शब्दों में, एक नेशन हैं। नागपुर से इसके जवाब में हिन्दू-महासभा के सभापति, श्री विनायक दामोदर सावरकर, हुंकार देते हैं कि हिन्दुस्तान के हिन्दू बहुसंख्यक हैं; वे ही हिन्दुस्तानी राष्ट्र के एकमात्र अंग है। मुसलमान और ईसाई तो उस अंग के बाहरी टुकड़े हैं। दोनों ही ग़ल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रास्ते पर चल और अपने-अपने अनुयायियों को ख़ंदक़ में ढकेलने की कोशिशें कर रहे हैं। सच तो यह है कि हिन्दुस्तान में न मुस्लिम-राष्ट्र सम्भव है और न हिन्दू-राष्ट्र। हिन्दुस्तान की राष्ट्रीयता हिन्दी राष्ट्रीयता है। हम भारतीय हैं। यहाँ पर एक ही राष्ट्र हो सकता है। उस राष्ट्र का आधार हिन्दी जाति है। वह जाति न हिन्दू है, न मुसलमान। उसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, पारसी, यहूदी और बौद्ध, सभी शामिल हैं। अल्पता का सवाल योरोप में भिन्न है, वहाँ इसका आधार जाति-भेद है। हिन्दुस्तान में भी जाति-भेद के कारण अल्प-भेद हो सकता है। लेकिन सम्प्रदाय-सम्बन्धी विभेदों पर जाति-निर्माण न तो जिन्ना साहब करने में समर्थ होंगे और न सावरकर साहब।

इसी दृष्टि से हम इस सूबे की अल्पता-समस्या पर विचार करने जा रहे हैं। समस्या हमारे सामने मौजूद है। उसके अस्तित्व से किसी को इनकार नहीं। शीघ्र से शीघ्र उसका समाधान होना मेरी दृष्टि में परमावश्यक है; लेकिन इसका समाधान तभी सम्भव है जब बुनियादी बातों के सम्बन्ध में हम सही राय क़ायम करें। अगर बुनियादी मामलों ही में हम भटक गये तो समस्या का सही ढङ्ग से हल करना हमारे लिए संभव न होगा। और बुनियादी बात यह है कि इस सूबे की अल्पता साम्प्रदायिक है जातिगत नहीं।

आश्वासन

लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र

डर न, मन !
असमय घिरे घन जो,
स्वयम् हट जायँगे !—
फट जायँगे। जब-
विष-सदृश वह वज्र उर का—
(किसी विधवा की अभागी कोख के जारज सदृश ही)—
निकल उल्कापात-सा धँस जायगा सहसा धरा में;
उपल-दल गल जायँगे !
तू डर न, मन !
असमय घिरे घन जो,
स्वयम् हट जायँगे !—
फट जायँगे।

स्वप्न सुख के फिर हँसेंगे—
पूर्णिमा के चाँद-से वे
व्योम-से उर में बसेंगे !
रोम, हाँ—प्रति रोम
प्रिय के मिलन की प्रिय कल्पना में
चट पुलक बन जायँगे !
रहेंगे दुर्दिन न सब दिन,
दिन पलट फिर आयँगे !
तू डर न, मन !
असमय घिरे घन जो,
स्वयम् हट जायगे !—
फट जायँगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशी राज्य और जनता

इस समय कई देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन की प्राप्ति के लिए वहाँ के प्रजाजनों-द्वारा उग्र आन्दोलन छिड़ा हुआ है। राज्यों की सरकारें भी आन्दोलन को दबाने के लिए उग्र उपायों से काम ले रही हैं। इस परिस्थिति के सम्बन्ध में महात्मा गान्धी ने 'हरिजन' में एक लेख लिखा है। उसका एक अंश इस प्रकार है—

राजा लोगों के लिए केवल दो मार्ग रह गये हैं। शासन की ज़िम्मेदारी प्रजा को सौंपकर स्वयं उनके अभिभावक बने रहना तथा अपने परिश्रम के बदले कुछ मुआविजा लेते रहना या फिर अपने राज्य के विनाश के लिए तैयार रहना, इनके सिवा और कोई बीच का रास्ता नहीं। इसलिए मैं उम्मीद करता हूँ कि यह अफ़वाह ग़लत है कि कुछ राजाओं या उनके दीवानों के कहने से ब्रिटिश सरकार अपनी उस नीति को बदलने का विचार कर रही है जिसकी घोषणा हाल में ही अर्ल विण्टरटन ने की थी और जिसमें कहा गया था कि राजा लोग चाहें तो अपनी प्रजा को उत्तरदायी शासन प्रदान कर सकते हैं (ब्रिटिश सरकार उसमें दस्तन्दाज़ी न करेगी)।

ब्रिटिश सरकार ने राजाओं-द्वारा अपनी प्रजा को बड़े से बड़ा अधिकार दिये जाते समय कभी हस्तक्षेप किया हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि सार्वभौम सत्ता के नाते जिस तरह ब्रिटिश सरकार का यह फ़र्ज़ है कि वह भीतर या बाहर से पहुँचनेवाली क्षति से राजाओं की रक्षा करे, उसी तरह या उससे भी ज़्यादा यह देखना उसका फ़र्ज़ है कि राजा लोग अपनी प्रजा पर न्यायपूर्ण शासन करते हैं या नहीं। इसलिए सरकार जब किसी रियासत को पुलिस या पलटन की मदद भेजती है तो उसका यह अनिवार्य कर्तव्य हो जाता है कि वह इस बात को अच्छी तरह समझ ले कि सचमुच इनकी वहाँ ज़रूरत है या नहीं और यह भी देखे कि पुलिस या सेना का प्रयोग उचित संयम के साथ किया जाय।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि प्रान्तों के उत्तरदायी मन्त्रियों की कोई नैतिक ज़िम्मेदारी उन रियासतों की जनता के प्रति है या नहीं जो उन प्रान्तों की सीमा के भीतर हों। शासन-विधान के अनुसार मन्त्रियों को उनके सम्बन्ध में कोई अधिकार नहीं दिया गया है। वाइसराय ही सार्वभौम सत्ता के प्रतिनिधि हैं और गवर्नर उनके एजेण्ट हैं। फिर भी इन रियासतों में जो कुछ होता है उसकी नैतिक ज़िम्मेदारी अवश्य ही स्वायत्त शासन-प्राप्त प्रांतों के मन्त्रियों पर है। इन राज्यों में अच्छी बुरी कोई भी बात क्यों न हो, उसका असर सारे प्रान्त पर पड़ता है। इसलिए मैं समझता हूँ कि प्रान्त के मन्त्रियों को, उनके सिर पर जो भारी ज़िम्मेदारी रहती है उसकी वजह से, आन्तरिक शान्ति और शिष्टता की रक्षा के लिए परिमित सीमा के भीतर ऐसे मामलों में दस्तंदाज़ी करने का नैतिक अधिकार प्राप्त है। वे उस समय चुपचाप खड़े होकर तमाशा नहीं देख सकते जब रियासतों की प्रजा अत्याचारों से पीसी जा रही हो।

मेरा ख़याल है कि प्रान्तों के आसपास की रियासतों में यदि कोई भारी अन्धेर होता हो तो उस तरफ़ ध्यान देने और ऐसे मामले में क्या करना चाहिए इस सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार को सलाह देने के लिए प्रान्त के मन्त्री नैतिक दृष्टि से बाध्य हैं। प्रान्त के मन्त्रियों के साथ यदि केन्द्रीय सरकार दोस्तानाभाव बनाये रखना चाहती है तो उसे उनकी सलाह पर सहानुभूति के साथ विचार करना ही पड़ेगा।

एक बात और है जिसकी तरफ़ राजाओं तथा उनके सलाहकारों को ध्यान देना ज़रूरी है। (उन्हें कांग्रेस के नाम से ही भय मालूम होता है।) वे कांग्रेसजनों को बाहरी, विदेशी और न जाने क्या क्या समझते हैं। मुमकिन है कि क़ानून की दृष्टि से वे ऐसे ही हों कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक नियम के सामने मनुष्य का बनाया हुआ क़ानून बेकार है। अपने हिताहित के मामले में देशी राज्यों के लोग कांग्रेस की ओर दृष्टि लगाये रहते हैं।

कांग्रेस जो अभी तक रियासतों के मामले में हस्तक्षेप न करने की नीति बर्तती रही है, उसके लिए मैं ही ज़िम्मेदार हूँ किन्तु कांग्रेस का प्रभाव बराबर बढ़ रहा है अतः देशी राज्यों में ऐसे अत्याचारों के होते इस नीति की रक्षा करना मेरे लिए सम्भव न होगा। जिस समय कांग्रेस समझेगी कि सफलतापूर्वक हस्तक्षेप करने की शक्ति उसमें है, उस समय पुकार होने पर वह ऐसा करने से न चूकेगी। यदि राजा लोग सचमुच यह मानते हों कि प्रजा की भलाई ही उनकी भलाई है तो वे कृतज्ञतापूर्वक कांग्रेस की सहायता स्वीकार करें। जो संस्था (कांग्रेस) निकट भविष्य में—मुझे आशा है कि आपस की मित्रतापूर्ण व्यवस्था के अनुसार—सार्वभौम सत्ता का स्थान ग्रहण करनेवाली हो, उससे मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना उनके लिए अवश्य ही लाभदायक होगा।

रूस और जापान

रूस और जापान में कैसी तनातनी है, इसका रोचक वर्णन 'लिविंग एज' में श्रीयुत ओलेण्ड डी० रसेल ने किया है। इस महत्त्वपूर्ण लेख का आवश्यक अंश हम 'प्रताप' से यहाँ उद्धृत करते हैं :—

सोवियट रूस और जापान के बीच की भूमि से मंचूली नगर तक, जो किसी राष्ट्र का देश नहीं कहलाता है, प्रतिसोमवार और गुरुवार को १ बजे ट्रान्स साइबेरियन एक्सप्रेस-द्वारा संधि का एक झण्डा फहराया जाता है। इस प्रदेश में रूस और जापान के लोग संदिग्ध दृष्टि से लोगों की ओर देखते रहते हैं और जाँच करते हैं। सन्देह हो जाने की दृष्टि से कोई आदमी ट्रेन में अनावश्यक रूप से इधर-उधर चल-फिर या हिल-डोल नहीं सकता। स्टेशन पर दोनों देशों के गार्ड मुसाफ़िरों की तलाशी लेते हैं। तलाशी के बाद मुसाफिर आगे बढ़ने पाते हैं। मंचूली मंचूको के बिलकुल उत्तर-पश्चिम कोने में हैं। ब्लाडीवास्टक दूसरे छोर पर है। मंचूली की सीमा पर जापान के हवाई जहाज़ मँडराया करते हैं और इधर सोवियट सीमा के भीतर रूस के हवाई जहाज़ मँडराते रहते हैं। जापान चाहता है कि मंचूको दूसरी रूस-जापान लड़ाई में युद्ध-भूमि न बन सके। इसलिए उधर मंचूली प्रदेश में जापान की और इधर ब्लाडीवास्टक में रूस की सेना तैयार रहती है।

टोकियो और सोवियट सीमा के बीच दोनों देश की पुलिस यात्रियों की खूब जाँच-पड़ताल करती है।

साइबेरिया में रूस की ओर से बहुत-से अस्त्र-शस्त्र और आदमी भेजे जा रहे हैं। आज दो वर्षों से लगातार चौबीसों घंटों अस्त्र-शस्त्र यहाँ भेजे जा रहे हैं। सुदूर पूर्व में रूस अपनी रक्षा के हेतु ऐसा कर रहा है ऐसा बतलाया जाता है। पूर्व साइबेरिया में घुड़सवार सेना और हवाई जहाज़ बहुत अधिकता से हैं। इसी से अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि साइबेरिया में कितनी बड़ी सैनिक तैयारी है। ट्रान्स-साइबेरियन रेलवे के अलावा रूस एक दूसरी रेलवे सड़क तैयार कर रहा है जिसका जापान को ठीक ठीक पता नहीं है। यह सड़क तैयार हुई या नहीं इसका अधिकांश रूसियों को भी पता नहीं है। रूस-जापान के युद्ध के समय यह नई सड़क सैनिक दृष्टि से बहुत ही महत्त्व-पूर्ण होगी। यह सड़क अभी तक एक सैनिक रहस्य बनी हुई है। किसी को इसका ठीक पता नहीं है। कहा जाता है कि ट्रान्स साइबेरियन रेलवे के समानान्तर ही यह सड़क बनाई जा रही है जो उक्त ट्रान्स-साइबेरियन रेलवे से २०० से ५०० मील उत्तर में है। यह सड़क जापानी बमवर्षा करनेवालों की पहुँच के बाहर होगी। इस सड़क के बन जाने के बाद जापान सिर्फ़ समुद्री मार्ग और कोरिया की सीमा से आक्रमण कर सकता है जो उसके लिए बहुत ही कठिन काम है।

सुदूरपूर्व की लाल सेना मार्शल वैसिली के० ब्लूशर के सेना-नायकत्व के अधीन है। मार्शल वैसिली के० ब्लूशर 'रेड नेपोलियन' कहलाता है। वह एक ज़बर्दस्त सैनिक प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति है। वह एशिया महादेश का एक महान् योद्धा है। गैलन के नाम से उसने चीन में प्रजातन्त्र के संस्थापक स्वर्गीय डा० सनयात सेन को चीन की क्रान्तिकारी सेना तैयार करने में मदद दी थी। उसकी स्वाभाविक सैनिक प्रतिभा का विकास रूस के गृह-युद्ध में हुआ था। जापानी अख़बार यह अफ़वाह फैलाने की चेष्टा करते हैं कि उसका जोसेफ़ स्टेलिन से विरोध हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह बात ग़लत है। उसके नायकत्व में चार लाख सेना सुदूरपूर्व में है, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह संसार में सबसे अधिक संगठित और कुशल सेना है। इसमें शक नहीं कि साइबेरिया की सेना बहुत संगठित है। पिछले साल जापान को चेतावनी देते हुए मार्शल ब्लूशर ने एक महत्त्वपूर्ण आज्ञापत्र निकाला था जिसमें उसने कहा था कि सुदूरपूर्व की सेना जो लाल सेना का एक सुसंगठित अंग है सोवियट सुदूरपूर्व सीमा की रक्षा करती है जो रूस का एक ख़तरनाक स्थान है। हम घोषित करते हैं कि हमारी यह सेना फाशिस्त सेना को अपनी सीमा का दुरुपयोग नहीं करने देगी।

साइबेरिया और मञ्चूको में बहुत समानता है। दोनों देश रूस और जापान की प्रयोगशाला, और क़ब्जा-यद-भूमि हैं। दोनों देशों में स्वाभाविक जीवन का अभाव है।

रूस और जापान बहुत तेज़ी से अपने राज्यों के बीच में उपनिवेश बसा रहे हैं। साइबेरिया की १९१४ में १,००,००,००० आबादी थी जो १९३४ में बढ़कर २,५५,००,००० हो गई। इस समय के दर्मियान कृषि भी ३२,००० वर्ग मील से बढ़कर ९७,००० वर्ग मील हो गई। जापान ने इस साल एक योजना बनाई है जिसके अनुसार २० वर्षों में १०,००,००० युवकों को मंचूको भेजने का निश्चय किया है। लेकिन जापान का उपनिवेश मौजूदा साइबेरिया का १० वाँ हिस्सा है। जापान और रूस में सघर्ष होगा, दोनों देश इस बात को जानते हैं। इसी लिए ऐसी तैयारी है। पिछले साल की चाकू फैंग पहाड़ की घटना दोनों देशों में होनेवाले संघर्ष की पूर्व सूचना है।

साहित्यिक भिक्षुक

हिन्दी-पत्रकार की इस समय कैसी दयनीय आर्थिक परिस्थिति है, और इसी के कारण वह किस प्रकार सम्माननीय साहित्यिक के पद से गिरकर साहित्यिक भिक्षुक बनता जा रहा है, इस पर सहयोगी 'जयाजी प्रताप' में श्रीयुत सेठ गोविन्ददास जी ने एक रोचक और गवेषणापूर्ण लेख लिखा है। पाठकों की जानकारी के लिए उसका आवश्यक अंश हम यहाँ देते हैं—

आजकल हिन्दी-साहित्य ग़रीब है। इस क्षेत्र में साहित्यिकों के जाने के लिए कोई विशेष आशा नहीं है। एक कंकाल के रूप में आज का हिन्दी-क्षेत्र साहित्यिकों के सामने उपस्थित है। वे उसकी सेवा करके उसका उपकार भले ही कर सकते हैं, लेकिन उससे उन्हें किसी लाभ की आशा नहीं रहती। और इस अवस्था में कोई आश्चर्य की बात नहीं अगर हिन्दी के साहित्य-क्षेत्र में साहित्यिक भिक्षुओं की संख्या बढ़ रही हो, क्योंकि उनके सामने भी संसार की साधारण समस्यायें होती हैं। और फिर आज-कल के ज़माने में जब कि संसार में नई चाल-बाज़ियों और ठग-विद्याओं का आविष्कार हो रहा है, मनुष्य का भी स्वभाव समय की गति के अनुसार बदल रहा है। मनुष्य की भावनायें पहले से ही दूषित होती जाती हैं। स्वार्थ और अर्थ की अर्चना सबसे पहले की जाती है। वह काल भी अब हिन्दी-साहित्य में से धीरे-धीरे अतीत के गर्भ में छिपता जाता है जब साहित्यिकों में साहित्य के लिए सब कुछ अर्पण कर देने की क्षमता थी। वे भूखे रहकर भी साहित्य-सेवा के मार्ग में कटिबद्ध होकर आगे बढ़ते थे। आज-कल उन्हीं में से कुछ महान और अवस्था-प्राप्त साहित्यिक शेष हैं वही हिन्दी-साहित्य में समय-समय पर लोगों को इस ओर से सचेत करने में नहीं चूकते। लेकिन हिन्दी के साहित्यिक क्षेत्र में ज्यों-ज्यों नई नई पौद बढ़ रही है, नये नये विचारों के साहित्यिक इस क्षेत्र में आ कूदे हैं, त्यों त्यों साहित्यिक भिक्षुओं की संख्या और भी अधिक बढ़ रही है। प्राचीन साहित्यिक उद्देश्यों पर अटल रहने की शक्ति का उनमें अभाव है अथवा यह भी कहा जा सकता है कि आधुनिक संसार की परिस्थितियों के इस गाढ़े समय में चारों ओर दूषित हवायें बह रही हैं अतः वे अपने को उसी स्थान पर दृढ़रूप से रखने में असमर्थ हैं। इन नये साहित्यकारों में वे ही अभी इस विषैले वातावरण से शेष हैं जिन पर अभी वह पुरानी छाया है।

सबसे पहला कारण तो एक साहित्यिक के पतन का यह है कि हिन्दी के साहित्यिक क्षेत्र को कुछ कोरी कीर्ति लाभ करनेवालों ने गंदा कर दिया है और वे ही इस साहित्यिक भिक्षा-वृत्ति का बीजारोपण कर रहे हैं। आज हिन्दी का क्षेत्र ग़रीब है तो क्या हुआ लेकिन उसके सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने आदर्श हैं जो अधपेट रहने पर भी निष्पक्ष साहित्य-वृत्ति करने का आदेश देते हैं। मुझे अच्छी तरह याद है कि पूज्य द्विवेदी जी ने किन भीषण परिस्थितियों और भयंकर अर्थसंकट के जीवन में कितनी पुनीत साहित्य सेवा की। जब वे सरस्वती के सम्पादन-भार से मुक्त हुए तो उनके पास उतने वर्ष की सेवा की पूँजी में सिवाय आदर और सम्मान के क्या शेष था! लेकिन आज द्विवेदी जी साहित्यिकों के सामने आदर्श-मात्र हैं। कितने सम्पादक और साहित्यिक हैं जो उनके आदर्शों पर चलकर विशुद्ध साहित्यिक जीवन बिताने के लिए तैयार हैं? साथ ही साथ उनके समान सादा और संकट-ग्रस्त जीवन व्यतीत करने के लिए आज के नित नये उत्पन्न होनेवाले साहित्यिकों के लिए यह असम्भव है। आज के संसार के सुख-भोग और सम्पन्न जीवन व्यतीत करने की लालसा उनमें आवश्यकता से अधिक है। और फिर हिन्दी के इस ग़रीब साहित्यिक क्षेत्र में उतरकर उनके सामने उन इच्छाओं की पूर्ति का कोई साधन नहीं रहता।

दूसरी बात यह है कि आज-कल साहित्यिक कीर्ति लूटने के लिए साहित्यिकों ने ही नहीं बरन नामधारी साहित्यिकों ने भी होड लगा दी है। हर एक व्यक्ति, जो साहित्य के क्षेत्र में है, जिसके पास धन है, अनधिकार रूप से साहित्यिक कीर्ति लूटना चाहता है। अतः आज साहित्यिक भिक्षुओं की संख्या बढ़ रही है। जहाँ किसी अर्थ-वश एक बार लेखक लेखनी का दुरुपयोग करता है तो उसका आत्मसम्मान धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है। आगे चलकर यही भिक्षा-वृत्ति का रूप धारण कर लेता है। लेखनी स्तुति-निन्दा के मार्ग पर अबाधगति से दौड़ने लगती है। स्तुति-निन्दा में उसे अर्थलाभ आवश्यकता से अधिक हो जाता है। आगे चलकर यही आत्म-पतन का स्वरूप सीमा पर पहुँच जाता है।

छोटे छोटे उद्यमों की उन्नति का प्रश्न

छोटे छोटे उद्यमों को समुन्नत करने की बात से सभी लोग सहमत हैं। प्रान्तीय औद्योगिक सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष के पद से श्रीमान् सेठ अचलसिंह ने जो भाषण किया है उसमें उन्होंने इस विषय की व्योरेवार चर्चा की है। उसका उक्त अंश इस प्रकार है—

"हमारे देश हिन्दुस्तान की अवस्था तथा व्यवस्था अन्य देशों के मुक़ाबिले बिलकुल मुख़्तलिफ़ है। मेरा तो यह छोटा सा अनुभव है कि अगर हम हूबहू पश्चिमी देशों की नक़ल करेंगे तो अवश्य हमें दिक़्क़तों में पड़ जाना पड़ेगा। इस बात को मैं मानने के लिए तैयार हूँ कि जो बातें हमारे अनुकूल हैं उनको अवश्य ग्रहण करना चाहिए। हमारा देश एक ऐसा देश है जिसमें क़रीब ९० फ़ी सदी लोग वे हैं जो गाँवों में काश्तकारी या मज़दूरी का काम करते हैं। काश्तकार लोग साल में क़रीब ८ महीने काश्त के कामों में लगे रहते हैं और क़रीब ४ महीने उनके ख़ाली रहते हैं। मज़दूर लोगों को मुश्किल से २ या ४ महीने अच्छा काम मिलता है। अगर हम छोटे छोटे यन्त्र यानी मशीनें तैयार करें तो उनके द्वारा ग्रामीण लोग न केवल अपनी ज़रूरतों को पूरा कर सकेंगे बल्कि कुछ ज़्यादा माल बनाकर भी क़स्बों व शहरों में भेज सकेंगे। इस प्रकार की मशीनें निम्न प्रकार की हो सकती हैं—ईख से रस निकालने का कोल्हू, तेल निकालने का कोल्हू, कपास से रुई निकालने की रहटी, धुनने का यन्त्र, कातने के अच्छे-अच्छे चरख़े, बुनने के वास्ते करघे। इसके अलावा चमड़ा पकाना व बनाना, मधु-मक्खी-पालन, रस्सी बनाना, टोकरी व चटाई आदि तैयार करना तथा बढ़ई, लुहार, ठठेरा, धुनने व बुननेवाले, रँगरेज आदि प्रत्येक गाँव के वास्ते आवश्यक हैं। यह काम केवल पंचायती सरकार-द्वारा ही जैसी कि हमारी कांग्रेसी सरकार है आसानी से किया जा सकता है।"

"हमारी सरकार ने कुछ अल्पकालीन (शार्टटर्म) और कुछ दीर्घकालीन (लांग टर्म) वज़ीफ़े देकर विद्यार्थियों को नई दस्तकारियाँ सीखने या उनमें निपुणता प्राप्त करने की गरज से विलायत भेजने की व्यवस्था की है। इस योजना का हम हार्दिक स्वागत करते हैं। पर इस सम्बन्ध में कहना होगा कि जो वज़ीफ़े दिये गये हैं वे नाकाफ़ी हैं और अभी काफ़ी विद्यार्थियों को विदेशों में भेजने की आवश्यकता है। प्रान्तीय सरकार के उद्योग-विभाग ने कुछ स्कूल जिनकी संख्या क़रीब २४ के लगभग है खोल रक्खे हैं—उनमें ये विषय सिखाये जाते हैं—जैसे बुनाई,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगाई, चमड़े का काम, छपाई आदि। लेकिन ये स्कूल नाममात्र के हैं। अतः उनमें दस्तकारी की आदर्श शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए।"

यह प्रसन्नता की बात है कि काग़ज़, तेल, चमड़ा व शीशे की दस्तकारी की शिक्षा के लिए हमारी सरकार ने विशेषज्ञों को नियत किया है। माघमेला तथा कांग्रेस व अन्य औद्योगिक नुमायशों में सरकारी उद्योग-विभाग की नुमायशें मुफ़ीद साबित हुई हैं। इसके अलावा सरकार ने औज़ार व यन्त्र ख़रीदने के लिए आर्थिक सहायता दी है। उसने नवयुवकों को कुछ गृह-उद्योग खोलने के लिए भी प्रोत्साहन किया है और सहायता दी है। उद्योगों की उन्नति व विकास के लिए प्रान्तीय औद्योगिक बोर्ड भी स्थापित है। इधर हाल में संयुक्त-प्रान्तीय इंडस्ट्रियल फाइनेंसिंग कारपोरेशन लिमिटेड की भी स्थापना हुई है। इसके ज़रिये कम सूद पर रुपया उधार मिल सकेगा और उससे उन लोगों को फ़ायदा होगा जो कि धनाभाव के कारण अपने उद्योगों को यथेष्ट तरक़्क़ी नहीं दे सकते।

"पिछले वर्षों में छोटी छोटी दस्तकारियों में समयानुसार उतनी तरक़्क़ी नहीं हुई जितनी कि होनी चाहिए। पर बड़ी-बड़ी मिलों व फ़ैक्टरियों ने अलबत्ता तरक़्क़ी की है। सन् १९१४ में २२४ बड़ी मिलें संयुक्त-प्रान्त में थीं जब कि सन् १९३२ में उनकी संख्या ५०५ हो गई और उनमें ६२,५०० आदमियों के बजाय १,०३,५०० आदमी काम करने लगे। सन् १९३२ के बाद अब तक इस दिशा में और भी तरक़्क़ी हुई है।

दूसरी तरफ़ छोटी छोटी दस्तकारियों में काफ़ी गुंजाइश है जैसे ब्रुश, साबुन, कपड़ा बुनना, मधु-मक्खी पालना, काग़ज़ बनाना, दरी, निवाड़, मूँज, मैटिंग, आदि का बुनना, रंग, रोगन, वारनिश वग़ैरह तैयार करना, फाउन्टेन पेन, पेंसिल, चाक स्टिक बनाना, मोजे व बनियाइन आदि बुनना, पीतल-कांसे व लोहे का सामान ढालना, जूते की पालिश, फीते तथा जूते का अन्य सामान बनाना, चमड़ा कमाना व पकाना और उससे जूते, बक्स, बिस्तरबन्द आदि सामान तैयार करना, गलीचे, नमदे आदि बनाना, कपड़ा रँगना व छापना, ताले, कैंची, चाक़ू सरौते आदि सामान लोहे से तैयार करना, बिजली का छोटा-मोटा सामान तैयार करना, ग्रामोफोन, रेडियो आदि बनाना, पिन, कारबन, रिबन आदि का निर्माण करना, छाते व लकड़ी के सामान तथा अन्य ज़रूरियात के सामान बनाना, लोहे पर कलई करना, काँच से चूड़ी, गिलास व अन्य सामान तैयार करना, दरदोजी, गोटा, सलमा-सितारा आदि बनाना, सोना, चाँदी व जवाहरात का सामान तैयार करना, वसली और दियासलाई आदि आदि।

छोटी छोटी दस्तकारियों के बारे में पिछले चार-छः महीने में अपने प्रान्त के बहुत-से भाइयों से लिखा-पढ़ी करने का मुझे जो सुअवसर प्राप्त हुआ था उसके परिणामस्वरूप कुछ भाइयों ने निम्नलिखित योजनाओं पर प्रकाश डाला है। इनमें से कुछ ऐसी दस्तकारियाँ हैं जो सहायता मिलने पर खुल सकती हैं, कुछ ऐसी हैं जिनके खोलनेवाले रुपये उधार चाहते हैं, कुछ ऐसी हैं जो खुली हुई हैं पर जिनकी उन्नति व विकास सहायता प्राप्त होने या रुपया उधार मिलने पर हो सकता है। वे दस्तकारियाँ ये हैं—चीनी, साबुन, रेडियो, व बिजली के सामान, फल, चपड़ा, तेल, छोटी मशीनें ग्लेल्ड टाइल्स, स्याही व छपाई की स्याही, छापाख़ाना, हाइड्रो इलेक्ट्रिक मशीन, मोजे की फैक्टरी, कारबन, डेयरी, फ़ार्म आयरनफाउन्ड्री, दियासलाई, नेवाड़ व मोज़े, जड़ी-बूटी, कृषि, आटा व चावल की मिल, तम्बाकू, चूड़ी, क्रिकेट व हाकी के बाल, मिट्टी का तेल, फ़ाउन्टेन पेन व निब, रोटरी मिल, टेबिल साल्ट, मधु-मक्खी-पालन, कार्डबोर्डबक्स, पिन, स्ट्राबोर्ड, कपड़ा, रिबन, बूटपालिश, बीज व खाद, शीशे की चीज़ें, गाढ़ा, ऊन आदि आदि।"

धर्म का महत्त्व

बनारस के हिन्दू-विश्वविद्यालय के उपाधि-वितरणोत्सव पर डाक्टर राधाकृष्णन ने जो दीक्षान्त भाषण किया है उसमें उन्होंने धर्म को जो महत्त्व दिया है वह ध्यान देने योग्य है। भाषण का उक्त अंश हम 'भारत' से यहाँ उद्धृत करते हैं—

विश्वविद्यालय की शिक्षा ही जीवन की पूर्णता नहीं है। एक वस्तु ऐसी भी है जो इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। और वह स्वतः जीवन है। जब तक आप अपने भावी जीवन की दिशा में इस विश्वविद्यालय में प्राप्त होनेवाली शिक्षा का उपयोग नहीं करते तब तक आपके लिए विश्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यालय की शिक्षा व्यर्थ है। यदि आपकी शिक्षा ऐसी नहीं है जिससे कि आप अच्छी तरह से जीवन व्यतीत कर सकें, यदि वह ऐसी नहीं है जिससे आप दूसरों को अपने प्रभाव में ला सकें तो आपकी वह शिक्षा असफल है। क्योंकि उससे शिक्षा के वास्तविक अर्थ की पूर्ति नहीं होती। सामाजिक भलाइयाँ किताबों पर नहीं निर्भर करतीं।

आज-कल शिक्षा का व्यापक प्रचार हुआ है किन्तु हमें इस बात का पक्का विश्वास नहीं होता कि हमारा जीवन अपेक्षाकृत अधिक उन्नत और हमारा भविष्य अधिक उज्ज्वल हो गया है। हमें अपने सामाजिक सम्बन्धों को बढ़ाने के लिए बौद्धिक ज्ञान नहीं प्राप्त हो सका है उसी के कारण निराशा पाई जाती है। हम देखते हैं कि आदर्श मानव-सम्बन्ध स्थापित करने की समस्या एक प्रकार से सर्वथा भिन्न समस्या है। रहन-सहन की समस्या बहुत अधिक जटिल हो गई है और जिस रूप से हमें इसका सामना करना पड़ रहा है वह ठीक नहीं।

हम चिरन्तन सत्य की ओर न जाकर, छोटी छोटी बातों के लिए आपस में झगड़ा मोल ले लेते हैं। हिन्दू-धर्म का मूलमंत्र आत्मा के प्रति विश्वास है। धार्मिक कृत्य आदि सभी बातों को दूसरा स्थान प्राप्त है। धर्म का प्रभाव बाह्य नहीं आन्तरिक होता है जिसका सांसारिक बातों से कोई मतलब नहीं होता। मनुष्य को एक बार अपनी आत्मा का बोध होने, आभ्यन्तरिक जगत् से सम्पर्क स्थापित करने के उपरान्त उसका अभिमान, दम्भ आदि नष्ट हो जाता है और उसमें एक नवीन प्रकार की भावना उत्पन्न होती है।

मनुष्य में स्वभावतः अच्छा बनने और सत्य की खोज करने की इच्छा होती है। किन्तु जब तक उसमें ग्रहण करने की शक्ति नहीं है तब तक उसे सत्य की शिक्षा नहीं दी जा सकती। मानव-जीवन में आध्यात्मिक जीवन के गुण विद्यमान हैं। धर्म मनुष्य की आत्मा को पवित्र करता है, वह विश्व के रहस्य की भावना जाग्रत करता है। धर्म करुणा और दया को संचार करनेवाला होता है। धर्म का समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

हिन्दू-सभ्यता का निर्बाध चला आना ही उसकी शक्ति का परिचायक है। यदि कोई अवयव अपने मार्ग में बुराई उत्पन्न करनेवाली वस्तु को दूर करने में समर्थ नहीं होता तो उसे सक्रिय नहीं कहा जाता, वह मृतक हो जाता है। आज-कल हिन्दू-समाज के सामने सबसे महत्त्व का प्रश्न यह है कि क्या वह अपने मार्ग की बाधाओं को स्वतः दूर कर सकने में समर्थ है। यदि हम वर्तमान सामाजिक स्वरूप को, जो नष्ट हो रहा है, इस प्रकार रखना चाहते हैं, यदि हम वर्णभेद तथा छुआछूत की भावनाओं को प्रश्रय देना चाहते हैं तो उस अवस्था में हिन्दू-धर्म के प्रति अपने को सच्चा नहीं साबित कर सकते। हम इस तरह की अनुचित बातों को क़ायम रखने के लिए दलील पेश करने के सिवाय ईश्वर को प्रसन्न नहीं कर सकते। एक परमात्मा में विश्वास रखने का मतलब यह है कि हम सभी उसी की सन्तान हैं, हम सब एक ही से उत्पन्न हुई हैं। ब्राह्मण और हरिजन अथवा अन्य सभी भिन्न-भिन्न नामों से उसी एक ही परमात्मा की उपासना करते हैं। यदि समाज को क़ायम रखना है तो व्यक्तिगत मर्यादा की रक्षा के लिए ध्यान देना सबसे आवश्यक है।

मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि जब संसार के समस्त राष्ट्र एक सूत्र में बँध जायँगे और जब एक प्रजातन्त्र क़ायम होगा तो उस समय भारत को एक बहुत ही महत्त्व का स्थान प्राप्त होगा।

भारत के व्यापार की दुरवस्था

बम्बई के मारवाड़ी चेम्बर आफ़ कामर्स का अभी हाल में वार्षिक अधिवेशन हुआ था। उसके सभापति के पद से श्रीयुत वेगराज गुप्त ने एक महत्त्वपूर्ण भाषण किया है। उन्होंने उसमें भारत की व्यापारिक दशा के अधःपात का ब्योरेवार वर्णन किया है। उसका ज्ञातव्य अंश हम 'प्रताप' से यहाँ संकलित करते हैं।

गत वर्ष देश की व्यापारिक और आर्थिक दशा का गम्भीर अधःपतन हुआ है। सन् १९३५ में जो सुधार आरंभ हुआ था वह १९३७ के मध्य तक तो क़ायम रहा था किन्तु उसके बाद व्यापारिक प्रवाह की लहर फिर पलट गई। इसके समर्थन में इतना कह देना काफ़ी होगा कि १९३७ के द्वितीय त्रयमास में निर्यात का परिणाम जो ५० करोड़ रुपये था वह तृतीय त्रयमास में ४८ करोड़ और चतुर्थ त्रयमास में ४३ करोड़ रह गया था। वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९३८ के पहले तीन महीने में ३९ करोड़ और दूसरे चतुर्थ मास में घटकर सिर्फ़ ३७ करोड़ का रह गया था। यों कमी तो आयात के परिमाण में भी हुई है लेकिन निर्यात की तुलना में नहीं के बराबर। इस बात का अन्दाज़ा इस बात से लग सकता है कि उपर्युक्त समय के अन्दर त्रैमासिक आयात ४२ करोड़ से घटकर ३८ करोड़ हो गया था। इन परिवर्तनों का नतीजा यह हुआ है कि हिन्दुस्तान का "ट्रेड बैलेन्स" जो १९३५-३६ के ३०॥ करोड़ से बढ़कर १९३६-३७ में ७७॥ करोड़ हो गया था। वह १९३७-३८ में गिरकर सिर्फ़ १६ करोड़ रह गया है। उसके बाद भी परिस्थिति में कोई सुधार के लक्षण प्रकट नहीं हुए हैं। सन् १९३७ के जुलाई, अगस्त और सितम्बर के महीनों में जो विदेशी व्यापार का मासिक परिमाण ३० करोड़ के लगभग था वह १९३८ के उन्हीं तीन महिनों में २५ करोड़ मासिक रह गया था।

वस्तुओं के भावों में भी इसी प्रकार का चिन्ता-जनक पतन दिखाई पड़ता है। १९३७ के आक्टोबर के महीने से जिन्सों के भाव किस प्रकार लगातार गिरते आ रहे हैं इसका ठीक ठीक परिचय निम्नलिखित तालिका से हो जायगा।

(जुलाई १९१४-१००)

सितम्बर	१९३७	१०४
आक्टोबर	,,	१०४
नवम्बर	,,	१०३
दिसम्बर	,,	१०१
जनवरी	१९३८	९९
फ़रवरी	,,	९७
मार्च	,,	९६
अप्रैल	,,	९४
मई	,,	९४
जून	,,	९४
जुलाई	,,	९५
अगस्त	,,	९४
सितम्बर	,,	९५

यह पतन जो हुआ है तो किसी एक या दो चीज़ों की मंदी के कारण नहीं हुआ है। अनाज, रुई, जूट, तिलहन-बान, कपड़े, चाय, धातुओं आदि सभी व्यापारिक वस्तुओं के भाव गिर गये हैं। केवल शकर और इमारती सामान के भावों में वृद्धि हुई है।

भविष्य अन्धकारमय होगा या प्रकाशमान यह इस बात पर निर्भर होगा कि हम इस अन्धकार में प्रकाश फैलाने के लिए संगठित संगत रीति से देश की निर्माण-शक्ति का उपयोग कर कौन से प्रयत्न करते हैं। आर्थिक क्षेत्र में संकुचित राष्ट्रीयता की हम भले ही निन्दा करें परन्तु कम से कम निकट भविष्य में तो दुनिया के अधिकांश भागों में आर्थिक आत्मनिर्भरता की नीति का आधिपत्य रहनेवाला है। खेद की बात यह है कि हिन्दुस्तान की सरकार को देश के व्यापार की बरबादी और बढ़ती हुई बेकारी के सवालों को हल करने के लिए कुछ भी करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। उनके विचार से कदाचित् बजट बैलेन्स कर लेने और फ़ौजों के द्वारा आतंक जमाये रखने में आदर्श शासन की इतिश्री हो जाती है। मेरे नम्र मत से इस अवसर पर भारतीय जनमत को अपनी शक्ति का अनुभव कर अपनी आवाज़ बुलंद करनी चाहिए। देश की रक्षा करने का उपाय यही है कि एक तरफ़ सिक्के का मूल्य घटाकर वस्तुओं का भाव बढ़ाया जाय, दूसरी तरफ़ देश की समस्त शक्तियाँ आर्थिक पुनर्निर्माण में संलग्न की जायँ।

पत्रकारों के कर्तव्य

संयुक्त-प्रान्त के प्रधान मंत्री माननीय पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त ने प्रेस-सलाहकार-कमिटी की बैठक में 'पत्रकारों के कर्तव्य' के विषय पर एक महत्त्वपूर्ण भाषण किया है। पत्रकारों को इस भाषण को ध्यान से पढ़ना चाहिए। भाषण का आवश्यक अंश निम्न है—

प्रचार पर ही प्रजातंत्र फलता फूलता है। प्रजातंत्र के फलने फूलने में प्रेस की ज़िम्मेदारी तथा अनेक सार्वजनिक प्रश्नों के प्रति उसके रुख़ का भी बहुत कुछ हाथ रहता है। जिस उत्साह, जोश, निर्भीकता, गम्भीरता तथा न्यायप्रियता से पत्रकार अपने कर्तव्य का पालन करते हैं उससे जनता की विचारधारा पर बहुत ज़्यादा प्रभाव पड़ता है। किसी किसी देश में प्रेस को राज्य के प्रबन्ध में चौथा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। मैं भी प्रेस को एक सभ्य प्रगतिशील समाज का बहुत ही आवश्यक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग समझता हूँ। कभी कभी प्रेस के दुरुपयोग से बहुत बुरा नतीजा होता है। कभी कभी जनता की विचारधारा को दबाने तथा वास्तविक घटना को छिपाने के लिए भी प्रेस का उपयोग किया जाता है। आप जानते हैं कि कुछ देशों में प्रेस का नियंत्रण किस प्रकार किया जा रहा है। परन्तु हम प्रेस को अपना सहायक समझते हैं। हम यह उम्मीद करते हैं कि सहायता से हम अपना कार्य अधिक सुगमता से कर सकेंगे। प्रेस के साथ हमारा सम्बन्ध दो प्रकार का हो सकता है। हम चाहे उनके साथ सहयोग करें या उनका दमन करना शुरू कर दें। हम लोगों ने पहला रास्ता अख़्तियार करना ही अधिक श्रेयस्कर समझा है। ऐसा हम लोगों ने इसलिए किया है कि हम प्रजातन्त्र की इज़्ज़त करना चाहते हैं। और हम समाज तथा व्यक्ति विशेष के नागरिक स्वतंत्रता को क़ायम रखना चाहते हैं। सरकार नागरिक स्वतंत्रता को क़ायम रखने के लिए सब कुछ कर रही है। आपको मालूम होगा कि मंत्रिपद ग्रहण करते ही हम लोगों ने प्रेस के ऊपर से सब तरह की रोकें हटा लीं। प्रेस ऐक्ट के अन्तर्गत अख़बारों से जो ज़मानतें ली गई थीं उनको हमने वापस करा दिया। कुछ प्रांतों में अब यह कोशिश हो रही है, जैसा कि मैंने सुना है, कि प्रेस की अनधिकारपूर्ण आज़ादी पर कुछ रोक लगा दी जाय। मुझे अन्य प्रांतों के मामलों से कोई सरोकार नहीं है और न मैं उसके विषय में अपने विचार ही व्यक्त करना चाहता हूँ। कुछ ख़ास मौक़ों पर अन्य प्रान्तों में कुछ क़ायदे भी बनाये गये हैं। परन्तु हमको अपने प्रांत में ही अनेक जटिल समस्याओं को सुलझाना है। मुझे यह कहते हुए बड़ा खेद होता है कि ऐसी हालत में भी हमारे प्रांत के कुछ पत्र बहुत ही अनर्गल बातें लिख मारते हैं और उनके विचार ऐसे नहीं होते जो एक ज़िम्मेदार पत्र के लिए होना बहुत ज़रूरी है। हमने इस बात की बराबर कोशिश की है कि प्रेस की आज़ादी क़ायम रखी जाय। अब तक हमने किसी भी मामले में प्रेस ऐक्ट का प्रयोग नहीं किया है। हमने धारा १२४ (अ) के अन्तर्गत भी अब तक कोई कार्यवाही नहीं की है और अब तक बावजूद इसके कि हम पर व्यक्तिगत आक्षेप किये गये हमने हतक़ इज़्ज़ती का कोई भी दावा नहीं किया। हम अपनी नीति पर सदा क़ायम रहना चाहते हैं। यदि आज हम प्रेस की स्वतंत्रता पर कुठाराघात करना शुरू कर दें तो सारी व्यवस्था ही उलट जायगी। हम अपने देश में आज़ादी क़ायम करना चाहते हैं। हमारे पास मौजूदा हालत में जो अधिकार हैं उन्हीं पर अमल करते हुए हम भविष्य के लिए एक ऐसी परम्परा स्थापित करना चाहते हैं जो स्वस्थ और अनुकरणीय हो। सरकार को सज़ा देने के जो अधिकार प्राप्त हैं उनकी मदद से वह प्रेस को ऐसा अनधिकारपूर्ण चेष्टाओं के लिए सज़ा दे सकती है, परन्तु यह सज़ा केवल भौतिक होगी। परन्तु प्रेस नैतिक वातावरण को दूषित कर सकता है। वह हमारे दिमाग़ को विषाक्त बना सकता है। वह हमें ऐसे नैतिक पतन की ओर अग्रसर कर सकता है कि जिससे निकलने के लिए अच्छे से अच्छा उपाय भी कारगर न हो सके। अब मैं प्रेस कमिटी से यह उम्मीद करूँगा कि वह इन समस्याओं पर अधिक गम्भीरतापूर्वक विचार करेगी। प्रेस को दूषित वातावरण से दूर रखने और उसको इस प्रकार से सुसंगठित करने के लिए जिसमें उसका संगठन दृढ़ और स्वस्थ हो यह बहुत ज़रूरी है कि पत्रकारों की शक्ति स्वयं इसके लिए अग्रसर हो।

अपने संगठन को बुरे आदमियों से मुक्त रखने के लिए यह ज़रूरी है कि आप उनसे सदा सतर्क रहें। मैं यह चाहता हूँ कि आप स्वयं ही इस बात की ज़रूरत महसूस करें कि अपने संगठन पर आपको ख़ुद ही नियंत्रण रखना है आपको ख़ुद अपने पत्रों पर कड़ी नज़र रखना है। जब आप यह महसूस करें कि किसी पत्र ने कोई ऐसा काम किया जिससे आपके पेशे के सम्मान को धक्का पहुँचता है तो आपका यह कर्तव्य हो जाता है कि आप ऐसे पत्रकार को इसके लिए उचित दंड दें ताकि आपके मामलों में दूसरों को पड़ने की ज़रूरत न पड़े। आप इस बात की उम्मीद नहीं रख सकते कि सभी पत्रकार और पत्र एक उँचे स्टैंडर्ड को क़ायम रख सकेंगे। परन्तु ऐसे पत्रकारों के सम्बन्ध में जो अपने पेशे का उचित सम्मान नहीं कर सकते और जो पत्रकार ऐसी आदर्श कला के नाम पर धब्बा लगाते हैं जिससे आपके पेशे को बहुत कुछ हानि हो सकती है, आप उचित कार्यवाही कर सकते हैं। यदि आप ऐसा नहीं करते हैं तो आपको अपनी स्थिति सुरक्षित रखने में बड़ी कठिनाई होगी। आपको यह मालूम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही है कि जातीयता तथा साम्प्रदायिकता का प्रश्न हमारे देश के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। आपमें से हर एक को यह भली भाँति मालूम है कि विभिन्न सम्प्रदाय तथा जाति के परस्पर मैत्री भाव पर ही हमारे देश का उत्थान निर्भर है। प्रेस इस मैत्री भाव को स्थापित करने में बहुत कुछ कर सकता है। प्रेस का यह परम कर्तव्य है कि वह अपने पत्रों में ऐसी बातों को स्थान न दे जिससे परस्पर वैमनस्य बढ़ने में सहायता मिल सके। यदि कोई पत्र इन बातों का ख़्याल न रख करके साम्प्रदायिक वैमनस्य फैलाना ही अपना कर्तव्य समझता है तो हमारे सामने एक विकट परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। अब हम आपको इस बात का निमंत्रण देते हैं कि आप स्वयं ऐसी योजना तैयार करें जिससे विभिन्न सम्प्रदाय और जाति-वालों में परस्पर मैत्री भाव और सद्भावना स्थापित हो जाय और पूर्ण शान्ति क़ायम रक्खी जा सके। मैं यह नहीं चाहता हूँ कि आप किसी की आलोचना न करें यदि आपसे यही अधिकार छीन लिया जाय तो आपके पास फिर रह क्या जाता है? आपका तो यह कर्तव्य है कि आप दूसरों की ग़लती बतलाकर उन्हें ठीक रास्ते पर लगायें। आप जो कुछ भी काम करें, जो कुछ भी लिखें या जो कुछ भी उपदेश दें सबका ध्येय यही होना चाहिए कि हममें विश्व भ्रातृत्व का भाव व्याप्त हो। सरकार की कार्यवाहियों और योजनाओं को आलोचना करने के अलावा आपको यह भी करना चाहिए कि आप सरकार को क्रियात्मक योजनायें पेश करके सहायता दें। इसके लिए हम आप लोगों के बड़े कृतज्ञ होंगे। मैं आपको यह विश्वास दिलाता हूँ कि पब्लिक इन्फ़ार्मेशन विभाग आपको सब तरह की सहायता देने के लिए हमेशा तत्पर रहेगा।

भारत का आर्थिक संकट

१९३७-३८ के भारत के व्यापार की रिपोर्ट प्रकाशित हो गई है। इसे भारत-सरकार के आर्थिक सलाहकार ने लिखा है। इसके पढ़ने से विदित होगा कि भारत में आर्थिक संकट की शुरुआत कैसे हुई और भारतीय किसान पर उसका सबसे अधिक असर क्यों पड़ा। रिपोर्ट का उक्त अंश इस प्रकार है—

१९३७-३८ में दुनिया भर के व्यापार की अन्तर्राष्ट्रीय कक्षा में भारतीय व्यापार उन्नति की पराकाष्ठा को पहुँच गया था। १९३७ के प्रारम्भ में लक्षण अच्छे दिखाई पड़े, क्योंकि शस्त्रीकरण के फलस्वरूप कच्चे और पक्के दोनों तरह के माल की माँग की बड़ी आशा थी। यह माँग १९३७ में इतनी तेज़ी से बढ़ी कि व्यापारियों को इस बात का भय होने लगा कि कहीं माल कम न पड़ जाय।

किन्तु यह उन्नति स्थायी न रह सकी। अप्रैल १९३७ में चीज़ों के दाम अधिक से अधिक ऊँचे होकर ठहर गये। इसके बाद गिरना शुरू हुआ और जून तक दाम तेज़ी से गिरते गये। थोड़े दिनों के मामूली उतार चढ़ाव के बाद सितम्बर से नवम्बर तक दाम फिर पहले की तरह तेज़ी से गिरते गये। इसके बाद बाज़ार का रुख़ थोड़े दिनों तक तो अच्छा रहा और इसके बाद दामों का गिरना फिर शुरू हो गया, जो जून १९३८ तक जारी रहा। उसके बाद से अब फिर दामों का चढ़ना जारी है, लेकिन अभी यह कोई नहीं बता सकता कि उन्नति की यह स्थिति निश्चित रूप से जारी रहेगी और १९३८ का जून महीना ही स्थिति को बदल देनेवाला समझा जायगा।

१९२९ में व्यापार में संकट का सूत्रपात हुआ था, जिससे उद्योग-प्रधान देशों की अपेक्षा कृषि-प्रधान देशों को कहीं अधिक हानि पहुँची। कृषिजन्य पदार्थों के दाम गिर जाने से भारतीय किसान बड़े ही अर्थसंकट में फँसा था। १९३२-३३ की व्यापारिक उन्नति में भी उसे कोई लाभ न हुआ, क्योंकि जिन चीज़ों का मूल्य बढ़ने में उसका लाभ था उनके मूल्य में कोई ख़ास वृद्धि न हो सकी। १९३७ के बाद से व्यापारिक ह्रास का स्वरूप स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा।

भारतीय उद्योग-धन्धे ने कुछ दिनों तक तो इस अवनति का मुक़ाबिला किया लेकिन आक्टोबर १९३७ के बाद जब सारे संसार की स्थिति डगमगाने लगी भारत भी संसारव्यापी औद्योगिक ह्रास का ग्रास बन गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग नं० २६ का नतीजा

इस बार शुद्ध पूर्ति एक व्यक्ति की भी नहीं आई।

प्रथम पुरस्कार ३००) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ६ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ५०) मिला।

(१) प्रकाश बाबू c/o बाबू प्रयागनाथ, टैक्स कलेक्टर, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, तहसील व डाकख़ाना सिराथू, ज़िला इलाहाबाद।

(२) प्रयागनाथ टैक्स कलेक्टर, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, तहसील व डाकख़ाना सिराथू, इलाहाबाद।

(३) पुष्पा श्रीवास्तव c/o डा० वृजविहारीलाल, मेडिकल आफ़िसर, दारागञ्ज, इलाहाबाद।

(४) दयानिधान जौहरी c/o डा० परमात्माशरण, मु० ज़काती, बरेली।

(५) फ़तेहबहादुरसिंह, रुड़की इञ्जीनियरिङ्ग वर्क्स, १३ कैनिंग रोड, इलाहाबाद।

(६) वीरेन्द्रकुमार c/o डाक्टर धीरेन्द्रकुमार, श्रीरामपुर, ज़िला हुगली।

द्वितीय पुरस्कार १६८) (दो अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित १४ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १२) मिला।

(१) नौरतनसिंह, ३७८ कीटगञ्ज थाने के पास, इलाहाबाद।

(२) जवाहरलाल c/o छत्रधारी भगत, सत्यनारायण राय, बलिया। (यू० पी०)

(३) ला० गोपाल साह ओखलिया, पो० बागेश्वर चौक बाज़ार, ज़िला अलमोड़ा।

(४) प्रयागशङ्कर वाजपेयी, चौखंडी, कीटगञ्ज, इलाहाबाद।

(५) सूरजमुखी देवी, फ़ोर्ड और मेकडानल्ड लिमिटेड, सलीपा देवी रोड, बनारस।

(६) कर्णसिंह, जागीर पुरावस, पो० अम्बाह, ग्वालियर स्टेट।

(७) विजयपाल अग्निहोत्री, मु० पो० अकबरपुर, ज़िला कानपुर।

(८) बरकतराम, टीचर बिरला कालेज, पिलानी, जयपुर स्टेट, राजपूताना।

(९) भरगेशप्रसाद नारायण, हेड मास्टर मिडिल स्कूल सुनेल, हो० स्टेट।

(१०) वि० सी० कारकी, मुआनी, पो० थल, अलमोड़ा।

(११) शिवप्रसाद, कोठी, पो० मु० ज़िला बलिया।

(१२) विन्सेंट विजयकुमार पीटर्स, चर्च रोड, धमतरी, ज़िला रायपुर, सी० पी०।

(१३) जुंगीलाल शर्मा, हेडमास्टर ए० व्ही० एम० स्कूल जौरा, ग्वालियर गवर्नमेंट।

(१४) तुलसीराम जयनगर पो० जयनगर ज़ि० २४ परगना।

तृतीय पुरस्कार ३९) (तीन अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ३९ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १) मिला।

(१) अनन्तलाल झा, इंडियन इन्स्टीट्यूट क्वार्टर्स, धनबाद, बिहार।

(२) मिसेज़ श्यामबिहारीलाल साहब वकील, बाराबंकी।

(३) जयलाल साह, हाट पोस्ट द्वारा हाट, तहसील रानीखेत, ज़िला अलमोड़ा।

(४) अम्बादत्त बदूशी, संडेमैन लाइब्रेरी, क्वेटा।

(५) सूरजप्रकाश s/o बाबू मुकुट बिहारीलाल वकील, आलमगीरीगंज, बरेली।

(६) म० ख़लीलुर्रहमान, हेड पंडित डुमरी मि० ई० स्कूल, पोस्ट जट डुमरी, ज़िला पटना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७) गायत्रीदेवी c/o बाबू आद्याप्रसाद, प्रधानाध्यापक, वो० मि० इ० स्कूल, महेश, पोस्ट सरमेरा, मुँगेर।

(८) जैनारायणलाल केडिया, नजरगंज, पोस्ट पूरनिया सीटी, ज़िला पूरनिया।

(९) जयमंगलसिंह, अमनौर हा० ई० स्कूल ११वाँ वर्ग, पोस्ट अमनौर, ज़िला सारन (बिहार)।

(१०) कपिलदेवनारायणसिंह, मु० विक्रमपुर, पोस्ट मढ़ौरा, ज़िला सारन (बिहार)।

(११) सुजनदत्त शर्मा, मु० खुरजा, पोस्ट हनुमान टीला, ज़िला बुलन्दशहर।

(१२) मोतीलाल भण्डारी, पो० सैलाना, सी० आई०।

(१३) सूरजसहाय सक्सेना, क्लर्क कलेक्टरी, उरई (यू० पी०)।

(१४) कमलादेवी मिश्र c/o गोपालकृष्ण मिश्र, स्थान कुम्हरावाँ, पो० आ० इटौंजा, लखनऊ।

(१५) श्रीमती बी० ए० नारायन c/o डाक्टर के० नारायण, पो० इंफल, मनीपुर स्टेट, आसाम।

(१६) बटुकनाथ c/o बालमुकुन्द वर्मा, ब्रह्मनाल, बनारस।

(१७) दयाकृष्ण पन्त c/o कैलाशसुधा कार्यालय, बेनीनाग, अलमोड़ा।

(१८) जगदम्बाप्रसाद सक्सेना, हेडमास्टर मिडिल स्कूल गोला गोकरननाथ, ज़ि० खीरी, लखीमपुर।

(१९) मायादेवी c/o ला० देवीदयाल लाँबा ब्लाक नं० १७, सरगोधा।

(२०) सावनमल c/o ला० देवीदयाल लाँबा ब्लाक नं० १७, सरगोधा (पंजाब)

(२१) सत्यभगवान मस्करा, ठंडीराम सूरजमल नं० २६ बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता।

(२२) श्रीमती जयालक्ष्मी याज्ञिक c/o माधवलाल याज्ञिक, हाई स्कूल फीरोज़ाबाद, (आगरा)

(२३) माधवलाल याज्ञिक, हाई स्कूल, फीरोज़ाबाद (आगरा)

(२४) मिसेज़ बी० सिंह, ब्रिज निकलसन रोड, लाहौर।

(२५) रिक्षपालसिंह, ब्रिज निकलसन रोड, लाहौर।

(२६) हेमराज कयाल, डिब्रूगढ़।

(२७) मिसेज़ एल० पी० सक्सेना, ६१९ सिविल लाइन्स, आगरा।

(२८) कान्तकुमारी सक्सेना c/o प्रोफ़ेसर एल० पी० सक्सेना, ६१९ सिविल लाइन्स, आगरा।

(२९) प्रियरञ्जन सिनहा c/o प्रोफ़ेसर मनोरञ्जनप्रसाद सिनहा, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस।

(३०) एक्बालनारायण, पार्सलक्लर्क ई० आई० रेलवे, कानपुर सेन्ट्रल।

(३१) राधाविनोद वाजपेयी, चौखंडी कीटगंज इलाहाबाद।

(३२) शिवबालकप्रसाद वाजपेयी c/o रुड़की इंजी० नियरिंग वर्क्स, १३ कैनिंग रोड, इलाहाबाद।

(३३) लाली, ब्रिज निकलसन रोड, लाहौर।

(३४) शान्ती, ब्रिज निकलसन रोड, लाहौर।

(३५) कुमारी सरिता सेठ c/o श्री कैलाशचन्द्र सेठ १३५ सिविल लाइन्स, बरेली।

(३६) रघुनाथप्रसाद, सेकेंड मास्टर लवेट हाई स्कूल ज्ञानपुर, बनारस स्टेट।

(३७) धर्मपाल मित्तल c/o बाबू भगवानदास पोस्ट पेन्शनर, गाज़ियाबाद।

(३८) लक्ष्मणदेव c/o ला० झब्बालाल सर्राफ़, देहरादून।

(३९) सत्यव्रत, c/o ला० झब्बालाल सर्राफ़, देहरादून

उपर्युक्त सब पुरस्कार २३ जनवरी को भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।

केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

जिनको १) का पुरस्कार मिला है उन्हें १) के दो प्रवेश-शुल्क-पत्र भेज दिये जायँगे, जो नियम अनुसार तीन महीने के भीतर इसके साथ दो पूर्तियाँ भेज सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यत्यस्त रेखा शब्द पहेली

CROSSWORD PUZZLE IN HINDI

३००) शुद्ध पूर्तियों पर

२००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनी-आर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ३०, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २७ जनवरी तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २५ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्क-परिचय

बायें से दाहिने

१—शिव जी। ४—सत्कारसहित।
७—आने-जाने के लिए ही यह होता है।
८—किसानों के घरों में यह प्रायः दिखाई पड़ता है।
१०—यह उपयोग की वस्तु है ही।
११—हिन्दुओं का प्राचीन तीर्थस्थान।
१२—इसके द्वारा सरकारी आमदनी अवश्य होती है।
१४—आज-कल संसार की दृष्टि इस पर लगी है।
१५—इसके नाम से रंगमंच का स्मरण हो आता है।
१७—देहात के रहनेवाले इसका उपयोग अवश्य करते हैं।
२०—इसके गड़बड़ से जो शब्द बनता है वह कमल अर्थ का द्योतक है।
२१—बातूनी व्यक्ति प्रायः यह काम करते हैं।
२२—राजा को यह बहुत ही प्रिय है।
२४—खेत जोतनेवाला।
२७—शरीर। २८—अच्छा
२९—चोट लगने पर इसका होना ज़रूरी है।
३१—एक वृक्ष।
३३—इसका उलट-फेर साँप अर्थ का बोधक है।
३४—इसका पानी उपयोग में आता है।

ऊपर से नीचे

१—यह प्राचीन ऐतिहासिक स्थान आज-कल लोगों की ज़बान पर है।
२—प्राणी, जीव।
३—बालकों को ..... भला मालूम होता है।
४—गृहस्थों के यहाँ इसका उपयोग होता ही है।
५—इस शब्द को सुनकर देखने का बोध होता ही है।
६—आज-कल योरप में इसकी बड़ी चर्चा है।
८—बहुत से लोग ऐसे भी हैं जो इसे खाकर पेट भरते हैं।
९—ठंड लगना। १३—रात्रि।
१४—चिल्लाना। (इससे बननेवाले शब्द के 'क्का' को 'त्का' पढ़िए)।
१६—इसका चित्त चंचल होता है।
१८—यह राजा को अधिक प्रिय होती है।
१९—राजा जहाँ रहता है वहाँ इसका होना आवश्यक है।
२१—कुसंगति से प्रायः नवयुवक ..... जाते हैं।
२३—माता।
२५—इसे अपने काम में परिश्रम करना ही पड़ता है।
२६—प्रसन्नता।
२८—धोती के लिए यह आवश्यक है।
३०—अभिमान, घमंड।
३२—नौकर को मालिक के .....से काम करना चाहिए।

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३० की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

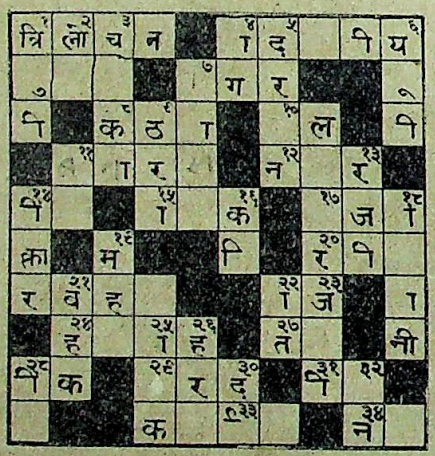

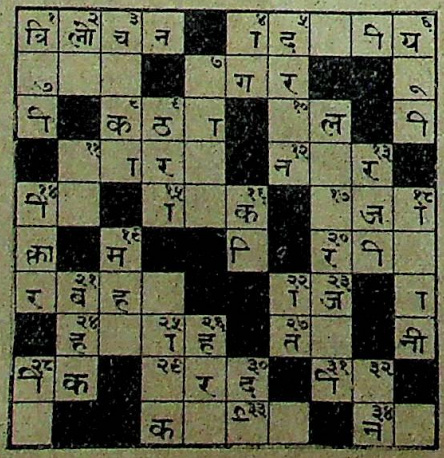

वर्ग नं० २९ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर २९ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।

स	मा	ज	वा	द	■	■	ना	य	क
ब	न	वा	स	■	स	बा	र	■	ला
ले	स	■	व	र	दा	न	■	■	प्रे
■	रो	ष	■	स	सु	र	■	श	मी
दाँ	व	■	शा	■	हा	■	ता	■	■
■	र	सि	क	■	गि	रि	त	न	या
रा	■	क	■	मा	न	■	■	व	■
ज	र	ता	र	■	■	ज	री	यु	ज
का	म	■	त	■	क	ल	र	व	■
ज	ल	ज	■	बे	न	ज	■	क	र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

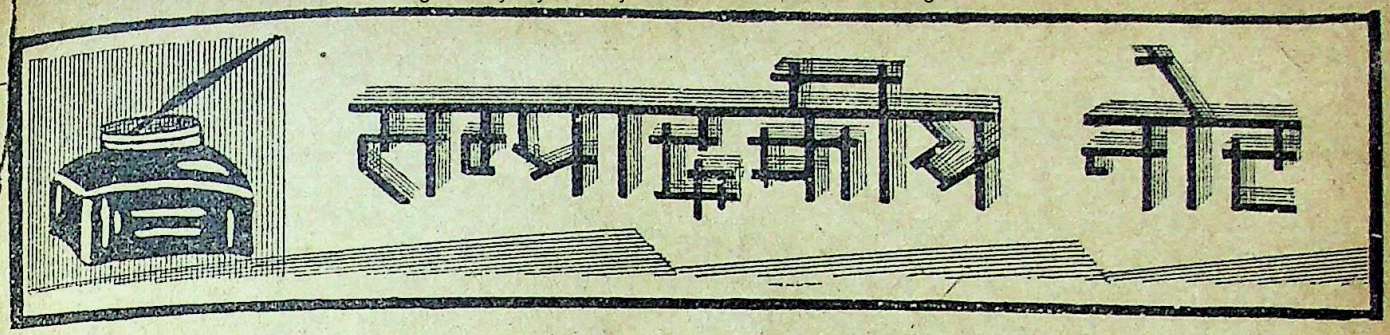

देशी राज्य और सङ्घ-शासन

इस समय देश में कतिपय देशी राज्यों में बड़ी अशान्ति है और वहाँ के निवासी उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए ज़ोरों का आन्दोलन कर रहे हैं। इस आन्दोलन को कांग्रेस की सहानुभूति तो प्राप्त है ही, और कहीं कहीं आन्दोलनकारियों को कांग्रेस के प्रसिद्ध नेताओं का सहयोग तक प्राप्त है। इस अवस्था से जान पड़ता है कि यह आन्दोलन देशी राज्यों में ज़ोर प्राप्त कर जायगा और उसे सफलता भी प्राप्त होगी। बात यह है कि १९४० में संघ-शासन की स्थापना होगी और उसमें ये देशी राज्य भी अपने प्रतिनिधि भेजेंगे। यदि देशी राज्यों में निरंकुश शासन ही जारी रहा तो उनके प्रतिनिधि भी निरंकुश रहेंगे। और संघ-सरकार की असेम्बली में ऐसे निरंकुश प्रतिनिधियों के होने से अँगरेज़ी भारत के स्वराज्य-प्राप्त प्रान्तों के प्रतिनिधियों के राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में वे बाधक सिद्ध होंगे। अतएव यह आवश्यक है कि देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन जारी हो। और जब अब देशी राज्यों में उसका आन्दोलन छिड़ गया है तब यह ज़रूरी है कि कांग्रेस उसकी उपयुक्त सहायता करे। यह उसके लिए भी हित की बात होगी। क्योंकि वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने कलकत्ते के अपने हाल के भाषण में कह दिया है कि भारत में संघ-शासन स्थापित होगा और इसके लिए राजाओं के पास आवेदन-पत्र का मसविदा भेज दिया गया है और उनसे कहा गया है कि या तो उसे स्वीकार करें या अस्वीकार करें। प्रभु शक्ति के इस आदेश को देशी राजे शायद ही अस्वीकार करें। अतएव इसे तय समझना चाहिए कि नियत समय पर राजाओं की स्वीकृति वायसराय महोदय के पास पहुँच जायगी। और उनकी स्वीकृति का न मिलना ही अभी तक संघ-शासन-व्यवस्था की स्थापना के मार्ग में बाधक रहा है। परन्तु अब जब उसका मिल जाना निश्चित सा है तब संघ-शासन की स्थापना की योजना कार्य में परिणत की जायगी। और यही वह समस्या है जिसको सुलझाने में कांग्रेस को अधिक बल लगाना पड़ेगा। ऐसी दशा में देशी राज्यों के इस आन्दोलन से वह उदासीन नहीं रह सकती। फलतः देशी राजाओं को अपने यहाँ उत्तरदायी शासन स्थापित करना पड़ेगा या उन्हें अपने प्रजावर्ग के संगठित आन्दोलन से सामना करना पड़ेगा। इस स्थिति को ध्यान में रखकर प्रभुशक्ति ने जो घोषणा की है उससे प्रकट होता है कि वह राजाओं को उत्तरदायी शासन जारी करने से विरत नहीं करेगी, परन्तु जो राजा ऐसा करना नहीं चाहेगा और यदि इस बात को लेकर उसके राज्य में विद्रोह उठ खड़ा होगा तो प्रभुशक्ति सेना भेजकर राजा की रक्षा करेगी। अर्थात् अँगरेज़ी सरकार देशी राज्यों में अहिंसात्मक आन्दोलन के मार्ग में हस्तक्षेप नहीं करेगी। परन्तु क्या देशी राज्यों की सरकारें उस अहिंसात्मक आन्दोलन का तेज सहन कर सकेंगी जिसके आगे स्वयं अँगरेज़ी सरकार को नत होना पड़ा है? फिर राजकोट के इस आन्दोलन की सफलता इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। ऐसी दशा में चाहिए तो यह था कि अँगरेज़ी सरकार देशी राजाओं को यह सलाह देती कि वे जल्दी से जल्दी अपने अपने यहाँ उत्तरदायी शासन की स्थापना कर दें ताकि राजा-प्रजा में कटुता न बढ़े। परन्तु ऐसा नहीं किया गया, यह दुःख की बात है। ऐसी दशा में यह स्पष्ट है कि अगले महीनों में देशी राज्यों में आन्दोलन उग्र रूप धारण करेगा, और उसके संघर्ष में देशी नरेश तथा उनकी प्रजा दोनों को पिसना पड़ेगा। रही उत्तरदायी शासन की स्थापना की बात, सो वह तो सभी राज्यों में स्थापित होगी ही, क्योंकि तभी संघ-शासन को कांग्रेस का सहयोग प्राप्त होगा।

राष्ट्रीयता के विकास के साधन

कांग्रेस के प्रान्तों में शासनारूढ़ हो जाने से राष्ट्रीय भावना को काफ़ी अधिक दृढ़ता प्राप्त हो गई है। अतएव अब इस बात की आवश्यकता है कि यह भावना और भी अधिक विकसित की जाय। इसके लिए हमें अन्य साधनों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनाना होगा। उनमें से हम एक महत्त्व के साधन का यहाँ उल्लेख करते हैं। वह है देश के प्राचीन ऐतिहासिक चिह्नों तथा व्यक्तियों के महत्त्व की ओर लोगों को आकृष्ट करना। अपने प्राचीन चिह्नों तथा ऐतिहासिक स्थानों के प्रति यहाँ की जनता का ध्यान सदा रहा है। अपने दुर्दिनों में भी उसने उन्हें नहीं भुलाया और अपने ढंग से वह उनकी स्मृति को अमर ही बनाये रही है। परन्तु अब इस बात की आवश्यकता है कि उनको राष्ट्रीयता का रूप दिया जाय। उदाहरण के लिए हम यहाँ संयुक्त-प्रान्त के कसया और मगहर का उल्लेख करते हैं। कसया में गौतम बुद्ध का और मगहर में कबीर का निर्वाण हुआ था। परन्तु आज इन दोनों महापुरुषों के इन पवित्र स्थलों का क्या रूप है? भला हो ब्रह्मदेश और तिब्बत के बौद्धों का कि गौतम बुद्ध का जन्मस्थान और निधन-स्थान दोनों आज भी अपने अस्तित्व को क़ायम किये हुए हैं। इसी प्रकार कबीरपन्थी भी 'मगहर' को महत्त्व दिये हुए हैं। परन्तु आज के राष्ट्रीयता के युग में तो ऐसे स्थानों का दूसरा ही रूप होना चाहिए—ऐसा रूप कि उनके द्वारा हम अपनी राष्ट्रीय भावना को अधिक व्यापक रूप प्रदान कर सकें। इस ओर स्थानीय कांग्रेसी कार्यकर्ताओं का ध्यान विशेष रूप से जाना चाहिए। उनके ध्यान देने से उन महत्त्व के स्थानों को राष्ट्रीयता का रूप तो प्राप्त हो ही जायगा, साथ ही जनता की मिथ्या धारणाओं का भी उन्मूलन हो जायगा जो उनको लेकर उनमें समाई हुई हैं। परन्तु स्थानीय कार्यकर्ता तो इस ओर तभी ध्यान दे सकेंगे जब उन्हें किसी बड़े नेता से इस बात की प्रेरणा मिलेगी। और बड़े नेताओं को ऐसी बातों की ओर ध्यान देने की फ़ुर्सत ही कहाँ रहती है? ऐसी दशा में अच्छा तो यही होगा कि यह प्रश्न असेम्बलियों में उठाया जाय। क्या कोई सहृदय कांग्रेसी सदस्य इस महत्त्व के प्रश्न को अपने हाथ में लेने की उदारता दिखायेंगे।

स्वर्गीय मौलाना शौक़तअली

अलीबन्धु भारत में ही नहीं, भारत के बाहर के देशों में भी प्रसिद्ध थे। उनमें अपने देश और अपनी जाति के प्रति जो उत्कट अनुराग था उसी ने उनमें ऐसी तेजस्विता

[स्वर्गीय मौलाना शौक़तअली]

भर दी थी कि वे भारत के मुसलमानों के ही नहीं, हिन्दुओं के भी आदरणीय नेता बन गये थे। उन्होंने भारत में और भारत के बाहर भारत की स्वाधीनता की जो वकालत की है उसके बतलाने की यहाँ ज़रूरत नहीं है, क्योंकि वह सर्व विदित है। उन्होंने अपने स्वाधीन विचारों तथा अपनी जाति और देश के लिए संकट सहा और स्वार्थ-त्याग भी किया। ख़िलाफ़त-आन्दोलन के समय सारे भारत में अली बन्धु ही दिखाई देते थे। अपनी वीर माता को साथ लेकर उन्होंने सारे देश का भ्रमण किया था और ख़िलाफ़त के लिए जो विकट आन्दोलन किया था उससे ब्रिटिश सरकार भी काँप गई थी, परन्तु बाद को मतभेद हो जाने के कारण वे कांग्रेस से अलग हो गये और उन्होंने अपने सम्प्रदाय की सेवा में ही अपना शेष जीवन व्यतीत किया। मौलाना शौक़तअली अलीबन्धुओं में ज्येष्ठ थे। अपने लघु भ्राता मुहम्मदअली के देहावसान के बाद उन्होंने उनके स्थान की पूर्ति तेजस्विता के साथ की। आज उनके निधन से भारत का एक राष्ट्रसेवी नेता उठ गया। हमें उनके परिवार के साथ हार्दिक संवेदना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनिमय-दर का प्रश्न

भारत-सरकार ने कांग्रेस की कार्य-समिति की सलाह भी नहीं मंज़ूर की और एक फ़र्मान निकाल कर घोषित कर दिया है कि सरकार अपने निश्चय पर दृढ़ रहेगी और वह विनिमय-दर को ज्यों का त्यों बनाये रखना ही उचित समझती है। जब से सरकार ने रुपये का विनिमय-मूल्य १८ पेंस ठहराया है तभी से इसका विरोध हो रहा है। देश के अर्थशास्त्रियों तथा बड़े बड़े व्यापारियों ने इसका बार बार विरोध किया है और आँकड़े देकर भले प्रकार सिद्ध किया है कि इस विनिमय-दर से भारत की अपार हानि हो रही है। परन्तु भारत-सरकार उनके आरोपों को एक कान से सुनकर दूसरे से निकालती जा रही है। अन्त में कांग्रेस की कार्य-समिति को भी बोलना पड़ा और अभी हाल में उसने एक प्रस्ताव-द्वारा सरकार से कहा कि वर्तमान विनिमय-दर में परिवर्तन किया जाय और वह १८ पेंस से घटाकर १३ पेंस कर दी जाय। परन्तु सरकार कार्य-समिति की भी बात मानने को नहीं तैयार हुई। उसकी ओर से यही कहा गया कि दर में परिवर्तन नहीं होगा। परन्तु क्या कार्य-समिति इस महत्त्व के प्रश्न को इस तरह हवा हो जाने देगी? यह तो राष्ट्र के जीवन-मरण का प्रश्न है। राष्ट्रपति सुभाष बाबू ने घोषित किया है कि कार्यसमिति ने इस प्रश्न को अपने हाथ में ले लिया है और अब कुछ न कुछ होकर ही रहेगा। होना भी ऐसा ही चाहिए।

स्वदेशी की भावना और दरिद्रनारायण

संयुक्त-प्रान्त की सरकार किसानों के उद्धार के लिए जो नया क़ानून बनाना चाहती है वह अब प्रान्तीय असेम्बली में पेश हो गया है और उस पर वाद-विवाद हो रहा है। इसके वाद-विवाद से जान पड़ता है कि इसके पास होने में अभी देरी है। तथापि सरकार महत्त्व के अपने एक दूसरे क़ानून के मसविदे को असेम्बली में पेश करने की तैयारी कर रही है। यह क़ानून स्थानीय स्वराज्य-विषयक है, जिसके अनुसार देहातों में पंचायतें क़ायम की जायँगी और देहाती लोगों को भी स्वायत्त-शासन-सम्बन्धी अधिकार प्राप्त होंगे। इसमें सन्देह नहीं है कि इन दोनों क़ानूनों के बन जाने पर इस प्रान्त में एक नये प्रकार के जीवन का प्रादुर्भाव हो जायगा और यहाँ की करोड़ों की संख्या की जनता को सदियों के बाद इस बात का अनुभव होगा कि वह भी मनुष्य-जाति का एक आदरणीय समुदाय है। परन्तु इन क़ानूनों के बन जाने पर भी उन लोगों की कमर सीधी न हो सकेंगी जिनको महात्मा गान्धी 'दरिद्रनारायण' कहते हैं। उनके उद्धार के लिए तो प्रान्तीय सरकार को कोई दूसरा ही उपाय करना पड़ेगा। ग्रामोद्धार का जो व्यापक कार्य-क्रम सरकार ने छेड़ा है तथा सड़कें बनाने की जो आयोजना कार्य में परिणत होने वाली है इन दोनों महान् प्रयत्नों से शायद उन लोगों को कुछ समय के लिए सुख की साँस लेने का अवसर मिल जाय, स्थायी रूप से उनकी स्थिति में सुधार कदापि नहीं हो सकेगा। उसके लिए तो स्वदेशी का व्रत ग्रहण करके उन उद्यमों का दृढ़ता से प्रचलन करना पड़ेगा जिनका गत ५० वर्ष के भीतर या तो उन्मूलन हो गया है या जो लस्टम-पस्टम आज भी चल रहे हैं। उदाहरण के लिए देशी जूतों के धन्धे को ही लीजिए। आज भी यह धन्धा देहातों में उतनी बुरी दशा में नहीं है और यदि इस धन्धे को उपयुक्त सहारा सरकार से मिल जाय तो इससे महात्मा जी के दरिद्रनारायणों के एक बड़े अंश की कमर बहुत कुछ सीधी हो सकती है। इसी प्रकार के बहुत-से ऐसे धन्धे हैं या थे जिनको स्वदेशी का व्रत ग्रहण करने से ही प्रोत्साहन मिल सकता है। ऐसे धन्धों को उठाकर खड़ा कर देने से हम देहात के दरिद्रों की जीविका के स्थायी साधन जुटा सकेंगे। और यही मुख्य बात है जिसकी सबसे पहले आवश्यकता है। इसकी व्यवस्था हो जाने पर ही दूसरे प्रयत्न कारगर हो सकेंगे। सरकार खेती के पशुओं की नस्ल सुधारने का आयोजन तो कर रही है, परन्तु इस बात की ओर उसका उतना ध्यान नहीं है कि पशुओं का भरण-पोषण कैसे हो। बिना चरागाहों की व्यवस्था किये पशुओं की नस्ल का सुधार करना बेकार है। फिर सरकार का ध्यान दूसरे आवश्यक पशुओं के सुधार की ओर बिलकुल ही नहीं है। बकरी पालने के प्रचार से लोक-व्यापी क्षय-रोग का भी बहुत कुछ प्रतीकार किया जा सकता है। परन्तु गायों की तरह बकरियों का भी संहार हो गया है। और स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अति महत्त्व की बकरी आज ग्रामों से लोप होती जा रही है। इसी प्रकार भेड़ों का हाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और जिनकी कमी हो जाने से आज देहात के लोगों को ओढ़ने-बिछाने के लिए कम्बलों का अभाव हो गया है। और घोड़े तो अब कोई रख ही नहीं सकता, यद्यपि देहात के लोगों के लिए ये सदैव अति आवश्यक रहे हैं। ये ऐसी बातें हैं जिनकी ओर ग्राम-सुधार के सूत्रधारों को समुचित ध्यान देना चाहिए। इन तथा ऐसी दूसरी बातों की ओर समुचित ध्यान देकर ही हम ग़रीबों की जीविका के साधन जुटा सकेंगे। और यह सब तभी सम्भव हो सकेगा जब हमारी कांग्रेसी सरकार स्वदेशी के भाव को अधिकाधिक व्यापक बनाने की ओर यत्नशील होगी।

स्वर्गीय पंडित जगतनारायण मुल्ला

लखनऊ के प्रतिष्ठित नागरिक तथा वकील पंडित जगतनारायण मुल्ला का गत ११ दिसम्बर को, ७५ वर्ष की आयु में, एक मित्र के घर शतरंज खेलते-खेलते सहसा हृदय की गति रुक जाने से देहान्त होगया। वे युक्त-प्रान्त के पुराने कांग्रेसवादियों में से थे। उन्होंने अपने समय के नेता पंडित विशननारायण दर के साथ काम किया था। वे सन् १९१६ ई० में कांग्रेस के लखनऊ-अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे। सन् १९१८ में कांग्रेस में उग्र मतवालों का प्राधान्य बढ़ जाने से वे उसका साथ छोड़कर लिबरलों में जा मिले।

सन् १९२० में वे मांटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड-योजना के अनुसार मिनिस्टर बनाये गये थे। बाद को गवर्नर से कुछ मतभेद हो जाने के कारण श्री चिन्तामणि के साथ ही उन्होंने भी उक्त पद से इस्तीफ़ा दे दिया। उसके बाद वे लखनऊ-विश्व-विद्यालय के वायस चांसलर बनाये गये।

फ़ौजदारी के मामलों में वे विशेष कुशल थे। सरकार भी उनकी योग्यता का लोहा मानती थी। यहाँ तक कि मैनपुरी और काकोरी के राजनैतिक षड्यन्त्रों में वही सरकारी वकील बनाये गये थे। इधर कुछ काल से अस्वस्थ रहने के कारण वे सार्वजनिक क्षेत्र से अलग हो गये थे। उनकी मृत्यु से इस प्रान्त का एक सुयोग्य वकील उठ गया है। हम यहाँ उनके परिवार के लोगों के साथ अपनी संवेदना प्रकट करते हैं।

सैनिक योग्यता का मसला

अँगरेज़ी सरकार ने अपने गत १०० वर्ष के शासन में जहाँ और अनेक बातें की हैं, वहाँ भारत में सैनिक योग्यता का पट्टा एकमात्र पंजाबियों को दे दिया है। बात यह हुई कि सन् ५७ के ग़दर की आग बुझाने में उसे पंजाबियों और नैपालियों से ही वास्तविक सहायता मिली थी। उसी के फल-स्वरूप भारत की सेना में पंजाबियों और नैपालियों का इतना अधिक महत्त्व दे दिया गया कि अन्य शेष भारत के निवासी सैनिक कार्य के योग्य ही नहीं समझे जाते हैं। सरकार की इस भेद-नीति की देश के पत्रों में बराबर आलोचना होती आई है, परन्तु इधर जब से पंजाब के प्रधान मंत्री ने एकमात्र पंजाब के निवासियों के ही सैनिक होने का दावा किया है, अन्य प्रान्तवासियों के स्वाभिमान को भारी ठेस पहुँची है और इस त्रुटि की ओर उनका ध्यान आकृष्ट हुआ है। हमारे दो-एक नेता तो उनसे वाक्युद्ध करने को उतारू हो गये हैं और उनका मुँह बन्द करने के लिए उन्हें भारत का पुराना इतिहास पढ़ने की सलाह दी है। परन्तु इससे तो इस समस्या का हल नहीं होगा। यह एक प्रकट बात है कि सेना में अन्य प्रान्तों को उनकी आबादी के अनुपात के अनुसार स्थान नहीं प्राप्त है, यद्यपि उनकी आय का अधिकांश सेना पर ही ख़र्च हो जाता है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि ये प्रान्त इतना समर्थ नहीं हैं कि सरकार पर दबाव डालकर इस अन्याय का प्रतीकार करा सकें। परन्तु इतना अधिकार तो इनको अब प्राप्त ही है कि ये अपने 'असैनिकता' के कलंक को दूर कर सकते हैं और अपने यहाँ के निवासियों को सैनिकोचित सद्गुणों की ओर आकृष्ट कर सकते हैं। यह सच है कि कांग्रेसी सरकारों का इस त्रुटि की ओर पहले से ही ध्यान है और बिहार तथा संयुक्त-प्रान्त की सरकारें इस सम्बन्ध में कोई कारगर कार्रवाई करने की बात सोच भी रही हैं। आशा है, अन्य प्रान्तों की कांग्रेसी सरकारें भी इस ओर समुचित ध्यान देंगी और अपने अपने प्रान्त की जनता को उनकी इस विषय की दयनीय अवस्था का ही ज्ञान उन्हें नहीं करा देंगी, किन्तु उन्हें स्वदेश की रक्षा करने के योग्य बनाने के लिए कोई ठोस योजना कार्य में परिणत करेंगी, क्योंकि अवसर आने पर भारत की रक्षा करना केवल स्वतंत्र इलाक़ों, नैपाल और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब के वेतनभोगी सैनिकों का ही काम नहीं होगा। इसके लिए सारे देश को तैयार रहना पड़ेगा। जब हम स्वराज्य प्राप्त कर रहे हैं तब हमें उसकी रक्षा करने के लिए भी तैयार रहना होगा। और यह महान् उत्तरदायित्व अकेला पंजाब नहीं सँभाल सकता, भले ही वह हमारी ब्रिटिश सरकार की दृष्टि में 'सैनिकों का जन्मस्थल' हो। इसके लिए तो सभी प्रान्तों को 'सैनिकों का जन्मस्थल' बनना पड़ेगा। हम यहाँ इतिहास की पुरानी बातों का उल्लेख करने की ज़रूरत नहीं समझते, क्योंकि हम जानते हैं कि हम क्या थे। ज़रूरत तो सिर्फ़ इतनी ही है कि हम जैसे पहले थे, वैसे ही फिर हो जायँ। और यह हमारे लिए इस नव जागरण के काल में भले प्रकार सम्भव हो गया है। केवल इस बात की आवश्यकता है कि हम इस दिशा में क्रियाशील भर हो जायँ।

———

ग़दर के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण

अभी उस दिन केन्द्रीय असेम्बली में बैठक को स्थगित करने का एक प्रस्ताव पेश किया गया था। बात यह हुई कि दिल्ली के पास सन् ५७ के ग़दर में मारे गये सैनिकों के सम्बन्ध में एक नये स्मारक का भारत के प्रधान सेनापति ने उद्घाटन किया था। यह बात असेम्बली के कांग्रेसी सदस्यों को अपमानजनक प्रतीत हुई। फलतः उक्त प्रस्ताव उपस्थित किया गया, जिसे अध्यक्ष महोदय ने स्वीकार कर लिया। वाद-विवाद होने पर प्रस्ताव के पक्ष में जो भाषण किये गये उनमें वक्ताओं ने उस युद्ध में मारे गये विद्रोही देशी सिपाहियों को 'शहीद' के नाम से याद किया। सरकारी पक्ष ने जो बातें कहीं उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा और प्रस्ताव पास हो गया। यह तो यहाँ भारत-सरकार का हाल है, जो ग़दर की स्मृतियाँ बनाये रखना अपना कर्तव्य-सा समझती है। उधर ब्रिटिश सरकार का इस सम्बन्ध में दूसरा रुख़ है। वहाँ हाल में 'सीज आफ़ लखनऊ' (लखनऊ का घेरा) नाम का ग़दर-सम्बन्धी एक फ़िल्म बनाया गया था, जिसके दिखाये जाने का वहाँ की सरकार ने निषेध कर दिया। जब इसके विरोध में पार्लिमेंट में प्रस्ताव पेश किया गया तब सरकार की ओर से गृह-सचिव ने कहा कि सरकार ने भारत में नया शासन-सुधार जारी किया है, अतएव वह ग़दर की बातों को फ़िल्मों-द्वारा प्रकाश में लाना अवाञ्छनीय समझती है। उन्होंने यह भी बताया कि तीन वर्ष पहले भी एक और ऐसा ही फ़िल्म दिखाये जाने से रोका गया था। ब्रिटिश सरकार की भारत के सम्बन्ध में जो यह उदार भावना है, सर्वथा अभिनन्दनीय है, परन्तु यहाँ भारत में उसकी मातहत सरकार ग़दर की स्मृतियों को ताज़ा बनाये रखना ही साम्राज्य के हित की बात समझती है। इस सम्बन्ध में टीका-टिप्पणी करना व्यर्थ है।

——

स्वर्गीय ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा

ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा का गत मास स्वर्गवास हो गया। वे हिन्दी के पुराने लेखक थे। अभ्युदय के उदय के समय उन्होंने उसके संपादकीय-विभाग में काम किया था। वे एक ठोस लेखक थे। जिन्होंने उनका लिखा 'झाँसी की रानी का जीवन-चरित' पढ़ा है वे हमारे इस कथन को सत्यता को स्वीकार करेंगे। सन् १९०८ में जब स्वदेशी आन्दोलन का ज़ोर था और जिन दिनों नागपुर से 'हिन्दी-ग्रन्थमाला' नाम की मासिक पत्रिका निकलती थी उस समय उनका उक्त जीवन-चरित उसमें खंडशः प्रकाशित हुआ था। वे एक देशभक्त सुलेखक थे। आप ग्वालियर-राज्य के निवासी थे और वहीं सरकारी नौकर थे। वहाँ से निकलनेवाले 'जयाजी प्रताप' में वे अक्सर लिखा करते थे। कई वर्ष हुए एक बार उन्होंने प्रयाग आकर हमें अपने दर्शन दिये थे। उनकी बातचीत से हमें मालूम हुआ था कि हिन्दी के प्रति और देश के प्रति उनका कितना गहरा अनुराग था। उनकी बातचीत से हमें यह भी मालूम हुआ था कि यदि उन्हें अवसर मिलता तो दोनों हाथों से हिन्दी-साहित्य का भांडार भरने के लिए वे कटिबद्ध हो जाते। इसमें सन्देह नहीं कि वे हिन्दी की पिछली पीढ़ी के निःस्पृह लेखकों में से एक धुरीण लेखक थे। हम ईश्वर से उनकी मृतात्मा के लिए सद्गति की प्रार्थना करते हैं।

———

योरप का रंग-ढंग

योरप के रंग-ढंग अच्छे नहीं दिखाई दे रहे हैं। एक न एक शिगूफ़ा वहाँ छिड़ा ही रहता है। ज़ेचोस्लोवेकिया का मसला ज्यों-त्यों करके निपटा तो अब इटली ने पैर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फैला दिये हैं और वह ट्यूनिस, कार्सिका और नीस की माँग कर रहा है। और ये सब देश फ्रांस के अधिकार में हैं। फलतः फ्रांस में इस शिगूफ़े को लेकर बड़ा रोष प्रकट किया जा रहा है। इस प्रश्न पर इन दोनों देशों के अख़बारों तथा वैदेशिक विभागों में करारी नोक-झोंक हो रही है। इटली की सरकार ने कोई स्पष्ट माँग नहीं की है, तथापि फ्रांस की सरकार सजग हो गई है और उसने अपने उक्त प्रदेशों की रक्षा करने की ओर समुचित ध्यान दिया है। फिर इधर जब ब्रिटेन के प्रधान मंत्री ने यह कहा है कि किसी सन्धि-पत्र से ब्रिटेन बाध्य नहीं है कि इटली से युद्ध छिड़ने पर वह फ्रांस की फ़ौज से सहायता करे तब से इस बात की पूरी आशंका हो गई है कि इटली की माँगें कोरी धमकियाँ ही नहीं हैं, किन्तु उनका अपना सुदृढ़ आधार है। इटली के वैदेशिक मंत्री ने कहा भी है कि 'सुडेटन जर्मनों' के मसले से जिसका निपटारा फ्रांस और ब्रिटेन ने किया है, एक नये सिद्धान्त की अवतारणा हो गई है और उसके अनुसार इटली भी अपनी माँगें कर सकता है। उस हिसाब से इटली का ट्यूनिस पर दावा हो सकता है, क्योंकि वहाँ सवा लाख के लगभग यदि फ़रासीसी बसते हैं तो नब्बे हज़ार के लगभग इटली के लोग भी बसे हुए हैं। असल बात यह है कि इस समय इटली और जर्मनी ज़ोर पर हैं और जिन भूभागों की उनके विकास के लिए ज़रूरत है उन्हें हस्तगत करने के लिए वे मरने-मारने को तैयार हैं। भूमध्य-सागर और स्वेज़ की नहर भी इन दोनों की निगाह में है। ये यहाँ समानता का अधिकार चाहते हैं। उधर जर्मनी का उपनिवेशों का सवाल छिड़ा ही हुआ है, जिसके सम्बन्ध में ब्रिटेन के प्रधान मंत्री अभी यही कह रहे हैं कि जर्मनी की सरकार ने सरकारी तौर पर उनकी माँग नहीं की है। परन्तु यह स्पष्ट है कि ये सभी मसले निपटाने होंगे। बिना इनका समाधान किये योरप की ख़ैर नहीं है। और यदि ये सब जर्मनी और इटली की महत्त्वाकांक्षा के अनुसार निपटा दिये जायँगे तो उस दशा में योरप में ब्रिटेन और फ्रांस का स्थान ये दोनों राष्ट्र ग्रहण कर लेंगे, जिसका संसार की राजनीति पर व्यापक प्रभाव पड़ेगा। यही सब देखकर अमरीका के संयुक्तराज्य के राष्ट्रपति की अब नींद खुली है और वे प्रजातन्त्र-भावनाओं की रक्षा करने के विचार से उस श्रेणी के राष्ट्रों का संगठन करने के लिए आज विशेष उत्सु दिखाई दे रहे हैं। ये सब ऐसी बातें हैं जिनको देख यही कहना पड़ता है कि योरप के रंग-ढंग ठीक नहीं और वहाँ इस समय कोई किसी का साथी नहीं ऐसी दशा में वहाँ कब क्या घटित हो जाय, कौन सकता है ?

सरकारी पुरातत्त्व-विभाग की शिथिलता

भारत जैसे अति प्राचीन सभ्यता के देश के पुरा इतिहास की जैसी चाहिए वैसी खोज नहीं हो रही है। होती तो संसार का उससे लाभ ही होता। परन्तु खेद बात है कि भारत की सभ्य सरकार इस दिशा में आवश्य धन-व्यय नहीं करती है। ऐसी दशा में यह आवश्यक गया है कि देश के धनीमानी लोग इस ओर समुचित ध्या दें। प्रसन्नता की बात है कि ऐसे महानुभावों का ध्यान ओर गया भी है। कुछ भारतीयों तथा योरपीयों ने हाल में पंजाब में इतिहास-सम्बन्धी खोज करने के लिए 'कोष' खोला है और उन्होंने आवश्यक धन भी एकत्र लिया है। इस धन से तीन ऐसे टीलों में खोज की जा जो बौद्ध-काल के पहले के माने जाते हैं। इसी प्र बंगाल में उद्धारन-दत्त-समिति भी इस दिशा में उप कार्य कर रही है और वह सरकार से इस बात का आ कर रही है कि 'सप्तग्राम' नामक स्थान की खोदाई की जा यह स्थान भी बौद्ध-काल से पहले का माना जाता है मुसलमानों के समय तक यह एक ऐतिहासिक स्थान भी है। इधर मध्य-भारत में स्वर्गीय करन्दीकर महो के प्रयत्नों से इन्दौर तथा ग्वालियर की सरकारों को खोज के काम में दिलचस्पी हो गई है। करन्दीकर ने इन्दौर-राज्य के कसरावद गाँव में जो खोज की उससे वह स्थान मौर्यों के समय का मान लिया गया यदि देशी राज्य इस दिशा में अधिक-उत्साह से काम तो इस क्षेत्र का काम और भी अधिक उन्नति कर स है। परन्तु यह सब तरह से स्पष्ट है कि इस ओर ग़ैरसर लोगों को विशेष रूप से ध्यान देना होगा, अन्यथा दिशा में वाञ्छनीय उन्नति नहीं हो सकेगी। यदि प्रान्तों के इतिहास-प्रेमी अपना सङ्गठन कर इस स में अपने-अपने प्रान्त में काम करना शुरू कर दें तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय पंडित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी

लेखक, पण्डित कामताप्रसाद गुरु

स्वर्गीय द्विवेदी जी से, पत्र-व्यवहार के रूप में, मेरा प्रथम परिचय उस समय हुआ, जब उन्होंने आज से लगभग ३३ वर्ष पूर्व मुझसे 'सरस्वती' के लिए कविता माँगी थी। इसके पूर्व मैं स्वर्गवासी पंडित माधवराव सप्रे के 'छत्तीसगढ़-मित्र' तथा 'हिन्दी-ग्रंथमाला' नामक पत्रों में यदा-कदा लेख और पद्य लिखा करता था। श्रद्धेय द्विवेदी जी का कृपा-पत्र पाकर मैं बहुत ही उत्साहित हुआ, क्योंकि उस समय मुझे साहित्य-क्षेत्र में प्रविष्ट हुए कुछ ही वर्ष हुए थे और 'सरस्वती'-सरीखी तत्कालीन एक-मात्र उच्च कोटि की पत्रिका में निम्न कोटि के लेखों और पद्यों के लिए स्थान मिलना कठिन था। पूज्य द्विवेदी जी के आज्ञानुसार मैंने एक अँगरेज़ी-कविता के आधार पर 'बेटी की बिदा' नामक पद्य लिखकर उनके पास भेज दिया। श्रीमान् द्विवेदी जी ने उसे पसन्द कर 'सरस्वती' में छाप दिया और मुझे गौरव प्रदान किया। इसके पश्चात् पूज्य पंडित जी ने मुझे ठोक-पीटकर 'सरस्वती' का सेवक बना लिया और मैं उसके लिए नियमपूर्वक साहित्यिक लेख और वर्णनात्मक पद्य लिखने लगा।

मेरी थोड़ी ही किन्तु नम्र साहित्य-सेवा से द्विवेदी जी इतने प्रसन्न हुए कि वे मेरी रचना को बिना संशोधन किये ही छापने लगे, यद्यपि मैं उनसे संशोधन के लिए सदैव आग्रह किया करता था। उनकी कृपा मेरे ऊपर यहाँ तक बढ़ी कि उन्होंने मुझे अपने 'कविता-कलाप' में चार कवियों के साथ 'पाँचवाँ सवार' बना दिया और उनकी मण्डली के बीच में मेरा चित्र छाप दिया। आपकी कृपा-दृष्टि और भी विस्तृत हुई और उन्होंने मुझे 'बाल-सखा' का मुख्य संपादक और पंडित देवीप्रसाद शुक्ल के साथ 'सरस्वती' का सहकारी संपादक बनवा दिया। खेद है कि श्रीमान् द्विवेदी जी की इस कृपा का लाभ मैं केवल एक ही वर्ष तक उठा सका, क्योंकि मुझे प्रयाग की उष्ण जलवायु सहन न हुई। द्विवेदी जी ही की सिफ़ारिश से नागरी-प्रचारिणी सभा ने मुझे हिन्दी-व्याकरण लिखने का कार्य सौंपा था।

द्विवेदी जी से मेरा प्रत्यक्ष परिचय उस समय हुआ जब मैं पंडित सुखराम चौबे के साथ लखनऊ के 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' के अधिवेशन से लौटकर उनसे कानपुर के पास जुही में मिला। उसी समय पंडित माखनलाल जी चतुर्वेदी भी श्रीमान् द्विवेदी जी से मिलने आये। मेरे नाम से समाचार भेजे जाने पर आप स्वागत करने द्वार पर आये और मुझे देखकर (तथा पहचानकर) विनोद-भाव से बोले—"तस्मै श्रीगुरवे नमः।" हम लोगों ने उन्हें प्रणाम किया और उनके साथ उनकी बैठक में जहाँ उनका पुस्तकालय भी था, प्रवेश किया। मेरे द्वारा वहाँ अन्य दोनों सज्जनों का परिचय पाकर वे विशेष प्रसन्न हुए और हम लोगों से साहित्य-संबंधी वार्तालाप करने लगे। इसके पश्चात् उन्होंने हम लोगों को जलपान कराया और पान दिये। इस प्रकार लगभग दो घंटे तक हम लोग द्विवेदी जी के सत्संग में आनंद मनाते रहे। अंत में हम लोगों के विदा लेने पर आप सड़क तक हम सबको भेजने आये और आदर-सत्कार की त्रुटियों के लिए क्षमा माँगी।

स्वर्गवासी द्विवेदी जी शिष्टाचार के पूरे पालक थे, अतएव उन्हें किसी की थोड़ी भी अशिष्टता सह्य नहीं होती थी। पूर्वोक्त अवसर पर जब द्विवेदी जी कुछ कह रहे थे तब मैं भूल से बीच में कुछ कह गया। इस पर उन्होंने कुछ रूखे होकर कहा कि आपके साथ बातचीत करना कठिन है! मैं नत-मस्तक होकर रह गया। द्विवेदी जी का स्वभाव जितना दयालु था उतना ही उग्र भी था, मानो वे "साँसति करि पुनि करहिं पसाऊ"। अनधिकारी लोगों के वार्तालाप तथा व्यवहार से उनके मन में ग्लानि होती थी। वे पत्रों का उत्तर बहुधा लौटती डाक से देते थे और जो उनके पत्र का उत्तर नहीं देता था उसे वे असभ्य समझते थे तथा उसकी अवहेलना को अपना अपमान मानते थे।

स्वर्गीय द्विवेदी जी में विद्या और बुद्धि समानरूप से पाई जाती थी। संस्कृत, फ़ारसी, हिन्दी और उर्दू के सिवा आपको बँगला, मराठी और गुजराती का भी अच्छा ज्ञान था। सुना है कि आप मराठी के 'केरलकोकिल' में कविता लिखा करते थे। आपका अँगरेज़ी-भाषा का ज्ञान किसी योग्य ग्रेजुएट से किसी प्रकार कम न था, यद्यपि वे विश्वविद्यालय की एक भी सीढ़ी नहीं चढ़े थे। द्विवेदी जी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तर्क-प्रणाली युक्ति-पूर्ण और मनोरंजक थी। वे जिस बात को सिद्ध करने की ठान लेते थे उसे अनेक प्रमाणों और युक्तियों से मनोरंजकता के साथ सिद्ध कर देते थे। एक बार 'अनस्थिरता' शब्द को शुद्ध सिद्ध करने में उन्होंने 'सरस्वती' में अनेक विद्वानों की सम्मतियाँ प्रकाशित की थीं। उनकी समालोचना भी इसी प्रकार तर्क-पूर्ण, न्याय-संगत और तीव्र होती थी। उन दिनों द्विवेदी जी की अनुकूल समालोचना किसी भी पुस्तक की उपयुक्तता सिद्ध करने तथा उसका प्रचार बढ़ाने में सहायक होती थी।

द्विवेदी जी की भाषा-प्रणाली और रचनाशैली उनकी निज की थी। उनके लेख प्रभावशाली, तर्क-पूर्ण और मनोरंजक होते थे। उन्होंने भाषा को जान-बूझकर जटिल बनाने की कभी चेष्टा नहीं की, जैसी उस समय के कुछ लेखक किया करते थे। तथापि वे कभी-कभी एक ही बात को दो-तीन बार दुहराते थे, जिससे कुछ लोगों को आक्षेप करने का अवसर मिल जाता था। उनकी वाक्य-रचना साधारण, स्पष्ट और मनोहर होती थी। यथार्थ में द्विवेदी जी ने भारतेन्दु जी के समय की हिन्दी का नव-निर्माण किया था और आज-कल लेखक लोग अधिकांश में उसी परिष्कृत भाषा का उपयोग करते हैं। उनकी रचना-शैली भी आज आदर्श का काम देती है।

श्रीमान् द्विवेदी जी से दो-तीन बार मेरी भेंट इंडियन प्रेस में हुई, जहाँ मैं उनकी कृपा से 'सरस्वती' का सम्पादन करता था। उनकी बहुत इच्छा थी कि मैं 'सरस्वती' का सम्पादन स्थायी रूप से करूँ, और इसके लिए वे सब प्रकार से मेरी सहायता करने को तैयार थे; परन्तु लड़कों-बच्चों की बीमारी के कारण मुझे यह अलभ्य लाभ प्राप्त न हो सका। उन्होंने मेरी सहायता के लिए पंडित देवीदत्त शुक्ल वर्तमान सम्पादक को इंडियन प्रेस में नियुक्त कराया था, जिन्होंने मेरी साहित्यिक सहायता के साथ-साथ मेरे घरवालों की कुछ चिकित्सा भी की थी। इस अवसर पर मैं शुक्ल जी को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। मेरे 'सरस्वती'-विच्छेद पर द्विवेदी जी ने परोक्ष रूप से अपना असंतोष प्रकट किया।

'सरस्वती' के संपादन-काल में एक बार 'मैटर' की कमी के कारण मैं बड़े संकट में पड़ गया और मैंने द्विवेदी जी से पुराने अप्रकाशित लेखों के लिए याचना की। आप उन दिनों जुही में रहते थे। मेरी प्रार्थना पर आप दूसरे ही दिन एक अंक की पूरी फ़ाइल लेकर प्रयाग पहुँचे और मुझे वह देकर बोले कि आपको कम से कम दो अंक पहले से तैयार रखना चाहिए, तो भी आवश्यकता पड़ने पर मुझसे लेख मँगा लीजिए। इस कृपा के लिए मुझे बार-बार पद्माकर कवि के इन शब्दों का स्मरण होता था—

"दौरे गयंद उबारिबे कों प्रभु बाहन छोड़ि उबाहने पायन।"

पूज्य द्विवेदी जी मध्य-प्रदेश के कई स्थानों जैसे, नागपुर, खण्डवा, इटारसी, होशंगाबाद और जबलपुर में कुछ वर्षों तक तार-विभाग में नौकरी करते हुए रहे। पिछले स्थान में ओमती-मुहल्ले में रहने की बात उन्होंने एक बार मुझसे कही थी। बहुत प्रयत्न करने पर भी मुझे उनके जबलपुर के निवास-स्थान का पता न लग सका। मैंने द्विवेदी जी के किसी लेख में पढ़ा था कि उन्होंने नागपुर-सेक्रेटरियट के बहुत पुराने अनुवादक बाबू हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ के पास होशंगाबाद में पिंगल-शास्त्र का अध्ययन किया था। इन पंक्तियों के लेखक के अतिरिक्त आपने मध्य-प्रदेश के अन्य लेखकों को भी उत्साहित किया था, जिनमें स्वर्गीय पंडित प्यारेलाल मिश्र, स्वर्गीय पंडित माधवराव सप्रे, पंडित गणेशराम मिश्र और श्रीमान् सेठ गोविन्ददास मुख्य हैं। जबलपुर का उन्हें विशेषरूप से ध्यान था, क्योंकि उन्होंने मुझसे एक बार यहाँ अपनी चिकित्सा के लिए आने का विचार प्रकट किया था। इन बातों में हम मध्य-प्रदेश-वासियों—विशेषतया जबलपुर-निवासियों का अपना गौरव समझना चाहिए। यहाँ के अस्तंगत 'राष्ट्रीय हिन्दी-मंदिर' ने द्विवेदी जी की 'कालिदास' 'रसज्ञ-रंजन' और 'औद्योगिकी' नामक पुस्तकें प्रकाशित की थीं।

मेरे लिखे 'हिन्दी-व्याकरण' का संशोधन करने के लिए सन् १९२० में जो समिति बनाई गई थी उसके सभापति श्रद्धेय द्विवेदी जी थे। इस समिति की बैठक काशी में हुई थी, जहाँ द्विवेदी जी ने, मेरे विशेष आग्रह पर, सहर्ष पधारने की कृपा की थी। नियमों पर वाद-विवाद होते समय मैंने द्विवेदी जी से उनके कुछ चिन्त्य प्रयोगों की चर्चा की, जैसे, राजे, येाद्धे, जुदा जुदा नियम, हज़ा-रहा इत्यादि। इस पर उन्होंने मुझसे कहा कि आप मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन प्रयोगों को अशुद्ध समझते हैं उनकी स्वतंत्रता से समालोचना कर सकते हैं। ऐसे प्रयोगों का मैंने अपने व्याकरण में उचित खंडन-मंडन कर दिया है; पर उसके विषय में उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा-सुना। कदाचित् वे उसे उपेक्षणीय समझते रहे हों, क्योंकि मातृ-भाषा के ज्ञान के लिए वे व्याकरण की आवश्यकता नहीं मानते थे और हिन्दी में व्याकरण-विषयक वाद-विवाद भी बहुत कम हुए थे। हमारी भाषा के इस अभाव की पूर्त्ति अभी तक नहीं हुई।

द्विवेदी जी से मेरी अन्तिम भेंट उनके आदरार्थ प्रयाग में भराये गये प्रसिद्ध मेले के अवसर पर हुई। इस समय उनसे कोई विशेष वार्तालाप नहीं हुआ, क्योंकि अनेक कवि और लेखक उनके दर्शनार्थ उपस्थित थे। जबलपुर से कई सज्जन द्विवेदी-मेले में सम्मिलित हुए थे, जिनमें पंडित माखनलाल चतुर्वेदी, पंडित गंगाविष्णु पाण्डेय और व्योहार राजेन्द्रसिंह प्रमुख थे। सभी ने द्विवेदी जी के दर्शन कर अपने को धन्य माना और उनके सौजन्य की प्रशंसा की। इस अवसर पर सबसे प्रभावशाली घटना यह हुई कि महामहोपाध्याय डाक्टर गङ्गानाथ झा ने दोनों हाथों से द्विवेदी जी का चरणस्पर्श किया, जिससे सभामण्डप भारी करतल-ध्वनि से गूँज गया।

द्विवेदी जी कविता भी करते थे और (मेरी समझ में) बहुत अच्छी कविता करते थे; पर किसी के आक्षेप करने पर उन्होंने कविता लिखना बन्द कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि हम लोग 'कुमारसंभवसार' सरीखी पुस्तकों और 'विधि-विडंबना' सदृश रचनाओं से वंचित हो गये। यदि द्विवेदी जी खड़ी बोली की कविता का आरम्भ स्वयं न करते और दूसरों को उत्साहित न करते तो आज इस प्रकार की कविता की जो उन्नति हुई है वह कहाँ से होती? हाँ, यह बात अवश्य है कि आज-कल तरुण कवि जिस अर्थ में 'कवि' और 'कविता' शब्दों का प्रयोग करते हैं उस अर्थ में ये शब्द द्विवेदी जी के समय में प्रयुक्त नहीं होते थे।

द्विवेदी जी ने हिन्दी-भाषा और साहित्य को जो गौरव प्रदान किया है वह कभी घटने का नहीं, चाहे कोई भाषा और भावों के साथ कितनी ही अशिष्टता क्यों न करे? अनेक लेखक और कवि भी अपने उत्कर्ष के लिए द्विवेदी जी के ऋणी हैं। यदि मैं अपने विषय में कुछ कहने का साहस करूँ तो मैं कवि के शब्दों में यही कहूँगा कि—

वह चाहे बनावें, वह चाहे बिगाड़ें,
हम आख़िर उन्हीं के बनाये हुए हैं।

आचार्य के चरणों में

लेखक, श्रीयुत 'चातक' कविरत्न

यह नव रत्नमयी नव माल!
पहनो नव रस-रसिक-रसाल!

× × × ×

मानी मान सर के विहारी थे मराल तुम्हीं
हृदय-कमल के खिलानेवाले सूर थे।
कीर्ति है अतुल-सी, तुम्हारी कवि-मण्डल में—
कर्मयोगी केशव के भक्त भरपूर थे।
सामाजिक भव्य भावनाओं के विभूषण थे—
मतिराम-सी थी स्वच्छ दूषणों से दूर थे।
ललित कला के थे प्रकाशक प्रसिद्ध चन्द्र—
नरदेव सच्चे महावीर मशहूर थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोकाञ्जलि

लेखक, पंडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

है शोक-मग्न अवनी अम्बर,
उठ गये हाय ! आचार्य प्रवर।

(१)

जिनकी प्रतिभा थी परम प्रखर,
था प्राप्त जिन्हें वाणी का वर,
तप-निरत रहे जो जीवन भर,
जिनकी है जग में कीर्ति अमर,
जो थे अजेय निर्भीक निडर,
लेखनी विकट थी वह खंजर,
प्रतिपक्षी होता था जर्जर,
मैदान किये कितने ही सर,
हम फूले थे जिनके बल पर—
उठ गये हाय ! आचार्य प्रवर

(२)

जब यह हिन्दी तुतलाती थी,
कर सीधी बात न आती थी,
तब वह उनकी ही छाती थी,
जो निद्रा-क्षुधा भुलाती थी,
हिन्दी-सेवा करवाती थी,
नित भाव भव्य भरवाती थी,
नव कवि लेखक उपजाती थी,
हिन्दी की धाक जमाती थी,
चरचा चलवाती थी घर-घर,
उठ गये हाय ! आचार्य प्रवर।

(३)

कवि लिखते थे कच-कुच-वर्णन,
मुग्धाओं पर थे मुग्ध नयन,
कविता का था शतमुखी पतन,
करके कुवृत्तियों का खण्डन,
दे दिया उसे फिर से जीवन,
लग गई देश की दिव्य लगन,
जो बना हुआ था बीहड़ वन,
बन गया वही नन्दन कानन,
दे दिये कल्पना को भी पर,
उठ गये हाय ! आचार्य प्रवर।

(४)

अज्ञान मिटा सद् ज्ञान भरा,
मस्तिष्कों में विज्ञान भरा,
नैराश्य हटा अरमान भरा,
पतनोन्मुख में उत्थान भरा,
निर्जीवों में नव प्रान भरा,
जागरण, आत्म-अभिमान भरा,
कलकण्ठों में कल गान भरा,
संस्कृति का सब सामान भरा,
आन्दोलित करके अन्तरतर—
उठ गये हाय ! आचार्य प्रवर।

(५)

कलि में वह ऋषियों का जीवन,
पर-हित तप करना जिनका धन,
संकल्प सुदृढ़ था निर्मल मन,
था मृदुल हृदय थे सत्य वचन,
देखते किसी को खिन्न वदन,
बन जाते लोचन सावन-घन,
विज्ञों में ऊँचा था आसन,
दुर्लभ हैं हा ! उनके दर्शन,
यद्यपि है यशः शरीर अमर,
उठ गये हाय ! आचार्य प्रवर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी जी की सहृदयता

लेखक, श्रीयुत हरिभाऊ जी उपाध्याय

नको कभी स्वर्गीय पूज्य द्विवेदी जी के नज़दीक रहने का अवसर नहीं आया वे एकाएक नहीं जान सकते कि द्विवेदी जी कितने सहृदय थे। 'सरस्वती'-सम्पादक के रूप में उनकी ख्याति एक कठोर और शायद निष्ठुर व्यक्ति की रही थी, परन्तु उन्हीं दिनों मुझे उनके जीवन का घरेलू और सहृदय पहलू देखने का अवसर मिला और मैं जान गया कि द्विवेदी जी वास्तव में नारियल की तरह हैं—ऊपर से बहुत कड़े और अन्दर से मधुर जीवन-रस से ओत-प्रोत।

मैं जुही में था। सन् १९१६-१७ की बात है। मेरा छोटा भाई मार्तण्ड उस समय ७-८ साल का रहा होगा। एकाएक डबल ब्रेंको न्यूमोनिया उसे हो गया। एक वत्सल पिता की तरह द्विवेदी जी ख़ुद अपनी देख-रेख में बड़ी चिंता के साथ उसकी चिकित्सा करा रहे थे। वह अच्छा हो चला था। अभी अन्न खाने की मनाही थी, उसे कुछ पथ्य दिया गया था कि द्विवेदी जी आये। मार्तण्ड दाल के लिए मचल पड़ा। द्विवेदी जी ने बड़े दुलार से उसे समझाया और घर गये। मुझे शाम को मालूम हुआ कि जब वे खाना खाने बैठे तब उनसे दाल नहीं खाई गई। उन्होंने कहा—"मार्तण्ड को दाल नहीं मिली। मुझसे आज दाल कैसे खाई जायगी?" उस समय एक पिता का नहीं, सच पूछिए तो मा का हृदय बोल रहा था।

उनकी एक मानी हुई बहन के पुत्र श्री कमलाकिशोर मस्तिष्क-रोग से उन्हीं दिनों पीड़ित हुए। उनके दो छोटी बहनें थीं। तीनों को द्विवेदी जी ने अपने बच्चों की तरह पाला-पोषा था। कमलाकिशोर की मस्तिष्क की बीमारी के समय मैंने जो विह्वलता द्विवेदी जी में देखी वह मुझे रह-रह कर याद आती है। क्या बीमारी और क्या दवा और क्या पथ्य और क्या अनुपान, हर बात की इतनी बारीकी में जाते व सावधानी रखते कि मैं दंग रह जाता था। उनके बाद यह गुण मैंने पूज्य महात्मा जी में ही पाया है।

एक बार मैं उनके गाँव दौलतपुर गया। अपने मकान के पड़ोस में ही कच्ची ईंट की दीवारों पर एक फूस की झोंपड़ी उन्होंने मेरे लिए बनवाई, जिसे विनोद में वे 'हरि बाबू का बँगला' कहते थे। उसी में मैं रहता था और उसी में अपना खाना भी बना लेता था। भोजपुर नामक एक गाँव की हाट से खाने-पीने की सब चीज़ें आया करती थीं। शायद आठवें दिन हाट लगती थी। एक बार मैं नियत समय पर चीज़ों की फ़ेहरिस्त देना भूल गया, जिससे बिना दाल और सब्ज़ी के सिर्फ़ रोटी ही खाने की नौबत आ गई। मैं स्वभाव से संकोच-शील और कष्ट या असुविधा सहन करने में आनंद मानने-वाला जीव ठहरा। इत्तिफ़ाक़ से द्विवेदी जी उसी समय आ पहुँचे। कोरी रोटी खाते हुए मुझे देखकर त्योरी चढ़ाकर बोले—"हैं, यह क्या? सब्ज़ी भी नहीं? दाल भी नहीं? क्या रोज़ ऐसा ही खाते हो?" मैंने शर्म से नीचा मुँह करके जवाब दिया—"पंडित जी, भूल से अब की हाट से सामान मँगाना भूल गया।"

"तो क्या हुआ? क्या यहाँ घर नहीं है? घर से क्यों नहीं मँगवा लिया?" और तुरंत आवाज़ दी—"बिटिया?" कमला दौड़ी आई तो उसको हुक्म दिया—"देखो, कल से रोज़ जब उपाध्याय जी खाने बैठें तब आकर देख जाया करो। अगर दाल बनायें तो साग अपने चौके से दे जाया करो और साग बनायें तो दाल दे जाया करो।"

मैंने अपनी उस ग़लती का उनके हाथों ऐसा मधुर फल पाया।

दौलतपुर की ही बात है। एक बार मैंने चूल्हा जलाकर दाल के लिए अदहन रक्खा था कि पंडित जी ने आवाज़ लगाई। उन दिनों वे 'किरातार्जुनीय' का हिन्दीरूपान्तर मुझे लिखाते थे। मैंने उसी क्षण बटुआ चूल्हे से उतारकर चूल्हा बुझा दिया और लिखने आ बैठा। दो घंटे तक लिखाते रहे। बाद को मैं रसोई बनाने बैठा। जब उन्हें मालूम हुआ कि मैं चूल्हा बुझाकर आया था तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उसके बाद आवाज़ देने से पहले वे पूछ लिया करते थे कि 'क्या कर रहे हो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी जी को आम खाने का बड़ा शौक़ था। छः महीने आमों पर रहते थे। मीठे और पतले रसवाले आम उन्हें पसंद थे। कई बाग़ वे आम के ख़रीदा करते थे। मुझसे कहा—"अपने यहाँ ख़ूब आम आते हैं। मँगा लिया करो और डट कर खाया करो।" मगर मैंने संकोच से कभी उनके इस आदेश का पालन नहीं किया। एक रोज़ किसी प्रसंगवश बिटिया से पूछ बैठे—"उपाध्याय जी आम मँगा लेते हैं न?"

मैं तो झेंप गया। उधर बिटया ने जवाब दिया—"नहीं तो!" उनका फ़र्मान निकला—"देखो, हमारे खाने के मीठे आमों में से रोज़ उपाध्याय जी को सुबह-शाम आम दे जाया करो।"

मैं बड़ा शर्मिंदा हुआ। उन आमों के रस से भी अधिक मधुर उनके इस वात्सल्य में डूब गया।

संपादक, विद्वान्, आचार्य द्विवेदी जी को सारा हिन्दी-संसार जानता है। परंतु सहृदय, वत्सल पिता द्विवेदी जी को कितने लोग जानते होंगे? निश्चय ही संपादक द्विवेदी से यह पिता द्विवेदी अधिक महान् था।

स्वर्गीय श्रद्धेय द्विवेदी जी के प्रति

लेखक, श्रीयुत आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव

क्या कहें था आपमें शुचि मातृ-भाषा-प्यार कितना?
क्या कहें था आपका उसमें मधुर अधिकार कितना?
क्या कहें था आपने उस पर किया उपकार कितना?
क्या कहें था आपने उसका बढ़ाया सार कितना?

मूक वाणी हो रही है सब तरह विह्वल हमारी,
क्या कहे या क्या सुनाये आज जग को वह बिचारी?
आप हिन्दी छोड़ पाने क्या गये हैं वस्तु न्यारी?
आपको तो थी नहीं उससे अधिक कुछ वस्तु प्यारी?

छोड़ना था जो उसे तो क्यों किया निर्माण उसका?
आज उससे पूछिए, क्या कह रहा है प्राण उसका?
ज्ञात होता है करेंगे स्वर्ग में संचार उसका,
थे यहाँ आधार, होंगे बस वहाँ आधार उसका?

स्वर्ग में भी आप छोड़ेंगे नहीं व्यवहार उसका,
क्योंकि नस नस में भरा है आपके शुचि प्यार उसका।
क्या कहें था आपसे हमको अधिक अनुराग कितना?
था हमारी भी प्रगति में आपका शुभ भाग कितना?

व्यर्थ कहना और सुनना हो गया है आज सारा,
ज्ञात होता है हमें है छिन गया सब कुछ हमारा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य द्विवेदी जी की धर्मपत्नी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बायीं ओर से—(खड़े) द्विवेदी जी के भानजे श्री कमलाकिशोर त्रिपाठी, (बीच में कुर्सी पर) आचार्य द्विवेदी जी (गोद में उनकी छोटी भानजी कुमारी विद्यावती), (किनारे खड़ी) द्विवेदी जी की बड़ी भानजी कुमारी कमलावती (स्वर्गीया)। सन् १९१७ का चित्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय आचार्य श्री पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी के कुछ संस्मरण

लेखक, पण्डित सूर्यनारायण दीक्षित, एडवोकेट

रस्वती-सम्पादक की आज्ञा हुई कि मैं आचार्य श्री पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के कुछ संस्मरण लिखूँ। इस आज्ञा को मैं टाल नहीं सकता, यद्यपि आचार्य जी को दिवंगत हुए इतना थोड़ा समय बीता है कि हृदय के घाव का सूखना क्या, अभी तो उससे रक्त का बहना भी बन्द नहीं हुआ है, तथापि आचार्य जी के संस्मरण लिखने में जिस निष्पक्षभाव और उनके चरित्र के अन्तर्गत विशेष गुणों के प्रति जिस हार्दिक व्यञ्जना के व्यक्त करने की आवश्यकता है उसका स्पर्श तक इस समय के संस्मरण में नहीं आ सकता।

सन् १९०० या १९०१ ईसवी में पहले-पहल मेरी आचार्य जी से भेंट हुई थी। लखनऊ के पण्डित गिरिजादत्त वाजपेयी एम० ए० उस समय के मेरे मित्र हैं और वाजपेयी जी का द्विवेदी जी से अति घनिष्ठ सम्बन्ध था। मैं प्रायः वाजपेयी जी के यहाँ रानी कटरे में, जो लखनऊ का एक मोहल्ला है, आया जाया करता था। वहीं द्विवेदी जी से भेंट हुई। उनके गुणों को मैं पहले से जानता था और बहुत दिनों से मेरी इच्छा थी कि उनके दर्शन हों। प्रथम भेंट में ही मैं मुग्ध हो गया। सुन रक्खा था कि द्विवेदी जी बड़े उद्धत स्वभाव के मनुष्य हैं, किन्तु जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है उनको मैंने सदा सौम्य और शान्त पाया। मेरे दुष्टता करने पर भी कभी उन्होंने मेरे प्रति क्रोध के भाव को नहीं दर्शाया। समय बीतता गया और धीरे धीरे मेरी उनसे घनिष्ठता बढ़ती गई और मैं कई बार उनके दर्शनार्थ जुही (कानपुर) गया और उनका आतिथ्य ग्रहण किया। कानपुर के लाला सीताराम उनके अन्तरंग मित्र थे और उन्हीं के जुहीवाले प्रेस के अहाते के एक छोटे से मकान में रहते थे। उसके एक कमरे में द्विवेदी जी का पुस्तकालय था। उसको पुस्तकालय न कहकर सरस्वती देवी के भिन्न भिन्न रत्नों का एक महान् भाण्डार कहना चाहिए। कमरे की चारों दीवारों में अलमारियाँ चिपकी हुई थीं, जिनमें किताबें ठसाठस भरी हुई थीं। उसके एक कोने में छोटा सा तख़्त बिछा हुआ था। तख़्त के एक ओर एक जोड़ा खड़ाऊँ और दूसरी ओर जूते रक्खे रहते थे। तख़्त के ऊपर लेखन-सामग्री रक्खी रहती थी और उसी पर विराजमान होकर द्विवेदी जी भगवती सरस्वती की एकाग्रचित्त से आराधना किया करते थे। अलमारियों में एक ओर हिन्दी-भाषा की पुस्तकें थीं, दूसरी ओर मराठी, गुजराती, अँगरेज़ी और बँगला की पुस्तकों का भाण्डार था। अलमारियों के ऊपर मचान बँधे हुए थे और उन पर संस्कृत के ग्रन्थरत्न खारुये से बँधे हुए सुरक्षित रक्खे हुए थे। पत्रों के रक्षण करने का द्विवेदी जी को इतना प्रेम था कि सूचीपत्र आदि तक यथास्थान सँभाल कर रक्खे रहते थे। द्विवेदी जी जिस सिलसिले में पुस्तकें रखते थे उस सिलसिले में यदि कोई परिवर्तन कर देता था तो यदि वह द्विवेदी जी का घनिष्ठ और असीम मित्र न होता था तो द्विवेदी जी उसी के सामने चुपचाप उठकर उन पुस्तकों को फिर यथास्थान रख देते थे और यदि उससे घनिष्टता और मित्रता हुई तो उसको द्विवेदी जी की डाँट भी सहनी पड़ती थी। एक बार मैंने द्विवेदी जी की खड़ाऊँ इधर से उठाकर उधर रख दी। द्विवेदी जी ने तुरन्त भर्त्सना-पूर्वक मेरी उच्छृंखलता पर फटकारा और कहा कि मनुष्य-जीवन में प्रत्येक मनुष्य को तरतीब का मूल्य समझना चाहिए और कभी बेतरतीबी से कार्य नहीं करना चाहिए।

एक बार मैं और आचार्य जी भोजन करने बैठे तब उनकी धर्म्मपत्नी ने थाली में खाद्य पदार्थ उस सिलसिले में नहीं रक्खे थे जिसमें द्विवेदी जी नित्यप्रति रखवाते थे, अतएव उनको भी स्नेह-मिश्रित भर्त्सना सुननी पड़ी।

जिस वस्तु से द्विवेदी जी को बहुत प्रेम होता था उसकी क़द्र करने में द्विवेदी जी धन की परवा नहीं करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। एक बार लखनऊ में द्विवेदी जी ने मुझसे कहा कि चलो किसी अच्छे दर्ज़ी के यहाँ अपना सूट दे आवें। मैं उनके साथ हो लिया। अमीनाबाद में एक बहुत बड़ी दूकान में जाकर आपने सूट का आर्डर दिया और उसके लिए एक मूल्यवान् वस्त्र ख़रीदा। यह सूट और इसकी कतर-ब्योंत दो मिनट में हो गई; उसके अच्छे सिले जाने के लिए कोई चिन्ता प्रकट नहीं की। आपके पास एक गाढ़े का थान भी था। वह भी आपने सूट सिलने के लिए दिया, पर गाढ़े के सूट के सिलने के लिए इतनी चिन्ता प्रकट की जितनी चिन्ता रेशमी सूट के लिए नहीं की थी। सूट का अर्थ यह न समझिएगा कि कालर टाई लगानेवाला कोट और पतलून—आपका सूट होता था बन्दगले का कोट और विजिसनुमाँ पायजामा। हाँ, तो आपने दर्ज़ी से कई बार कहा कि देखो टेलरमास्टर, हमारा गाढ़े का सूट ख़राब न होने पावे। रेशमी सूट में कोई त्रुटि हो जावे तो कोई परवा नहीं, लेकिन गाढ़े के सूट में कोई त्रुटि न होने पावे। गाढ़े के सूट के बारे में कम से कम आध घण्टा लगा दिया। जब दर्ज़ी की दूकान से हम लोग १०-१५ क़दम जा चुके थे तब फिर लौट आये और गाढ़े के सूट के अच्छे सिलने के लिए अनुरोध किया। मुझको हँसी आ गई और मैंने व्यंग्यपूर्वक कहा कि द्विवेदी जी आप विचित्र हैं! अशर्फ़ियाँ लुटाते हैं और कोयलों पर मोहरें करते हैं। १५)-२०) के रेशमी थान के लिए परवा नहीं, परन्तु २) के गाढ़े के थान के लिए इतनी चिन्ता! वे हँसकर बोले, तुम्हें मालूम नहीं कि यह गाढ़ा ख़ास हमारे ज़िले का बना हुआ है, इसलिए उस पर हमारी इतनी ममता है। पाठकगण, स्मरण रहे कि यह घटना उस समय की है जिस समय स्वदेशी-आन्दोलन का सूत्रपात भी नहीं हुआ था और जब हमारे देशवासी ख़ास इँग्लैंड के बने वस्त्रों से अपने शरीरों को ढाँकने में आत्म-गौरव का अनुभव करते थे।

सन् १९००-०१ ईसवी में कान्यकुब्ज-सभा का अधिवेशन कानपुर में हुआ था। एक वयोवृद्ध महानुभाव (लखनऊ के वाजपेयी, चूड़ा के आँक के) सभापति के आसन पर सुशोभित थे। सभापति क्या थे, एक श्वेत मर्म मयी चन्दन-खौर-खचित एक सौम्य प्रस्तर की मूर्ति सभापति के सिंहासन पर विराजमान थी। सभापति का सब काम पंडित सूर्यप्रसाद जी नाम के एक आर्यसमाजी सज्जन कर रहे थे। इन सज्जन को सभा-सञ्चालन-विद्या का पूर्ण ज्ञान था और ये अपनी दाढ़ी हिला हिलाकर कहते थे कि सभापति महोदय की यह आज्ञा है और वह आज्ञा है तो मुझको बेतहाशा हँसी आ जाती थी। उस सभा में सम्मिलित होने के लिए आचार्य द्विवेदी जी, राय साहब पंडित चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी अजमेर-वाले, पंडित गिरिजादत्त वाजपेयी एम० ए० लखनऊ के पधारे थे और लखीमपुर से मैं भी गया था। हम लोग कान्यकुब्ज-मण्डल में सुधारक पार्टी के सभासद् थे। अजमेर से 'कान्यकुब्ज-सुधारक' नाम का पत्र राय साहब पंडित चन्द्रिकाप्रसाद की संरक्षकता में निकलता था और कानपुर से पंडित मनोहरलाल जी 'कान्यकुब्ज-हितकारी' निकालते थे। 'सुधारक' प्रगतिशील पत्र था और हितकारी पुराने ढर्रे का। दोनों पत्रों में इस प्रश्न पर कि कान्यकुब्जों में सहभोज होना चाहिए या नहीं, महीनों वाद-विवाद चला था और मैं व पंडित गिरिजादत्त वाजपेयी जी बहुधा 'कान्यकुब्ज-सुधारक' में लेख लिखते थे और 'कान्यकुब्ज-हितकारी' के स्तंभों में गालियाँ खाते थे। कान्यकुब्ज-सभा के अधिवेशन में हम लोग इस विचार से गये थे कि सभा के सम्मुख सहभोज का प्रस्ताव रक्खेंगे, परन्तु जब पहले या दूसरे दिन स्त्री-शिक्षा के प्रस्ताव पर कनौजिया लोगों ने हल्ला मचा दिया और गले में बटुआ डाले हुए चूना और तम्बाकू की पीक को मुँह में भरे हुए कान्यकुब्ज आचार्यों के मुख से निस्सृत "स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्" का घोष आकाश तक गूँज उठा और पुरातनवादी महायोद्धाओं की फड़कती हुई भुजाओं और लाल लाल आँखों से निकलती हुई अग्नि-शिखाओं से वायुमण्डल त्रस्त और स्पंदित हो उठा तब हम लोगों को सहभोज के प्रस्ताव को उपस्थित करने का साहस नहीं रहा और द्विवेदी जी ने कहा कि भैया, अब यहाँ से चलो; इस सभा में हम लोगों के लिए स्थान नहीं है। सभा से लौटते समय, मुझको भली भाँति स्मरण है, 'कान्यकुब्ज-हितकारी' की जितनी फ़ाइलें आचार्य जी के पास थीं, सबकी सब उन्होंने पंडित मनोहरलाल जी को वापस कर दीं और कहा कि "भैया, यहु आपन कूड़ा करकट लेउ।" वयोवृद्ध होने पर भी द्विवेदी जी में सुधारक की उमंग युवकों से बढ़कर थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९०७-०८ ईसवी में बाबू श्यामसुन्दरदास (अब राय बहादुर) ने हिन्दी के लेखकों की एक 'चरितावली' निकालने का विचार किया था और मुझसे लिखा था कि मैं द्विवेदी जी का एक छोटा-सा जीवनचरित लिखकर उनके पास भेज दूँ। उन दिनों मैं नीमराणा में था। नीमराणा राजपूताने में एक छोटी सी रियासत है। मैं इस कार्य के लिए नीमराणा से जुही गया और द्विवेदी जी से पूछ-पाछकर और इधर-उधर से कुछ सामग्री जोड़कर मैंने एक छोटा सा जीवनचरित तैयार किया और पाण्डुलिपि द्विवेदी जी को दिखाकर बाबू श्यामसुन्दरदास के पास भेज दी। मैंने ग़लती यह की थी कि पाण्डुलिपि द्विवेदी जी को दिखा दी थी। बाबू श्यामसुन्दरदास ने उस पाण्डुलिपि में कुछ परिवर्तन करके उसे इंडियन प्रेस में छापने के लिए भेज दिया। द्विवेदी जी उन दिनों 'सरस्वती' के सम्पादक थे ही। उनको जब यह ज्ञात हुआ कि बाबू श्यामसुन्दरदास ने कुछ परिवर्तन कर दिया है तब उन्होंने बहुत बुरा माना और अपना चरित छपने नहीं दिया। द्विवेदी जी में यह बात अवश्य थी कि जब कोई उनके मान को चोट पहुँचाता था तब वे अग्निशर्म्मा हो जाया करते थे। और कौन स्वाभिमानी मनुष्य है जो अपमान को सहन कर सकेगा?

द्विवेदी जी की समालोचना प्रसिद्ध थी। उनके लेखों में समालोचनात्मक लेख बड़े महत्त्व के हैं। उनका मज़ाक भी चुटीला और साहित्यिक दृष्टि से रसीला होता था। मुझे वकालत करते कई वर्ष हो गये थे। मैंने न तो उनको कोई पत्र लिखा और न उनसे भेंट ही की। ८-१० वर्ष हुए जब मुझको एकाएक उनका एक पोस्टकार्ड मिला। उसमें 'लखीमपुर' पर व्यंग्य करते हुए मुझे लिखा था कि लक्ष्मीपुर में रह कर लक्ष्मी की सेवा में इतने लवलीन हो गये हो कि तुमने सरस्वती की सेवा बिलकुल छोड़ ही दी है। और कुछ इसी आशय का एक संस्कृत का श्लोक भी उस पोस्टकार्ड में उद्धृत किया था। मुझे खेद है कि बहुत खोजने पर भी मुझे वह पोस्टकार्ड नहीं मिला और न श्लोक ही याद आ रहा है। वास्तव में द्विवेदी जी का आक्षेप सत्य था, क्योंकि वकालत के पेशे में पड़कर मुझे इतना समय ही नहीं मिलता था कि मातृभाषा की कुछ सेवा करता। पोस्टकार्ड पाकर मुझे लज्जा तो अवश्य हुई, किन्तु उस लज्जा को छिपाने के लिए मैंने द्विवेदी जी को वकीलों ऐसा एक उत्तर लिख दिया। द्विवेदी जी ने 'लक्ष्मीपुर' पर व्यंग्य किया था और मैंने 'दौलतपुर' का सहारा लिया। मैंने लिखा था कि जब तक आप दौलतपुर में रहते हैं तब तक आपको लखीमपुर में रहनेवाले एक क्षुद्र मित्र पर आक्षेप नहीं करना चाहिए।

वर्षों से द्विवेदी जी के दर्शन मुझे प्राप्त नहीं हुए थे। मेरे भाग्य में यह न था कि मैं अन्तिम बार उनके दर्शन कर लेता। आज-कल विचार कर रहा था कि एक-दो दिन का अवकाश निकाल कर दौलतपुर जाकर उनके दर्शन और सत्सङ्ग का लाभ प्राप्त करूँ कि अकस्मात् उनके देहावसान का समाचार सुना और सुनकर स्तब्ध रह गया। यहाँ तक कि मैं संस्मरण लिखने में असमर्थ हूँ। भविष्य में यदि कभी स्मृति जाग्रत हुई तो आचार्य द्विवेदी जी के जीवन-चरित्र के चित्रों को अंकित करके आत्म-सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे आचार्य

लेखक, पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी

आचार्य द्विवेदी जी का नाम मैंने अब से ३८ वर्ष पहले सुना था। परन्तु उसके लगभग चार वर्ष के बाद कानपुर में उनकी जुही की बैठक में उनका दर्शन हुआ। मैं उस समय लगभग १६-१७ वर्ष का बालक था। मन में लेखक और कवि तथा देश का कोई बड़ा भारी नेता बनने की महत्त्वाकांक्षा जाग्रत हो उठी थी। एक ऊटपटाँग लेख, पंडित प्रतापनारायण मिश्र का जीवन-चरित, लिखकर 'सरस्वती' में छपाने के लिए साथ में ले गया था। मेरे साथ सुलेखाचार्य पंडित गौरी-शंकर भट्ट भी थे। आचार्य ने हम दोनों का प्रेमपूर्ण स्वागत किया, पर उस समय मैं यह समझ न सका कि यही मेरे भावी आचार्य हैं।

शायद उसी साल कानपुर में या और किसी जगह किसी बड़े आदमी के दीवान-ख़ाने में मैंने दीवार पर लगा हुआ एक चित्र-समूह देखा। दिखलानेवाले ने मुझे बतलाया कि भारत के सबसे बड़े ६४ महापुरुषों का यह एक 'ग्रूप' है। उन ६४ महापुरुषों में पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी का भी चित्र था। दादाभाई, तिलक, गोखले, फ़ीरोज़शाह मेहता, मालवीय जी, लाला लाजपतराय इत्यादि भी उसमें थे। मैं चकित रह गया कि क्या द्विवेदी जी इतने महान् हैं!

इसके दो वर्ष बाद मैं नागपुर में स्वर्गीय पंडित माधवराव जी सप्रे के साथ 'हिन्दी-ग्रन्थमाला' और 'हिन्दी-केसरी' के सम्पादकों में था। वहीं से आचार्य द्विवेदी जी को मैंने जाना कि ये मेरे आचार्य हैं और इनका महत्त्व क्या है। अब मेरी अवस्था १९ वर्ष के लगभग थी। मैं गरम दल का राष्ट्रीय युवक हो चुका था। मैंने वहीं से देखा कि आचार्य द्विवेदी जी हिन्दी-भाषा के कितने बड़े पंडित हैं, इनकी प्रतिभा को छूनेवाले कितने व्यक्ति भारत में हैं।

द्विवेदी जी का प्रथम ग्रन्थ 'स्वाधीनता' मेरी ग्रन्थ-माला में छप रहा था। प्रूफ़ मेरे ही हाथ से पास होते थे। मैं अध्ययन कर रहा था कि यह कितने तेज़ दिमाग़ का उद्भट विद्वान् है। इसके कुछ ही पहले काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा से द्विवेदी जी का तीव्र मतभेद हो चुका था। मतभेद का मुख्य कारण तो मुझे इस समय स्मरण नहीं; पर इस विवाद पर आचार्य ने अपना एक बड़ा 'वक्तव्य' दिया था, जो एक बड़ा पोथा बन गया था। वह पोथा पंडित माधवराव जी सप्रे के पास द्विवेदी जी ने भेजा और सम्मति माँगी कि यह 'ग्रन्थमाला' में पुस्तकाकार प्रकाशित क्यों न किया जाय। मैंने उस हस्तलिखित पोथे को उसी समय पढ़ा। मुझे मालूम हुआ कि मेरे आचार्य द्विवेदी जी प्रतिस्पर्धियों के लिए कितने भयंकर हैं शायद 'प्रतिवादि-भयंकर'—से भी बढ़कर तर्क की तलवार रखते हैं। वह हस्तलिखित पोथा शायद काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा में सुरक्षित रक्खा है।

> "कैसी दिल्लगी है; देहाती कूड़े-करकट में लोटा करें, निरक्षरता के गढ़े में पड़े रहें, बीमारी से अधमरे होकर एक पुड़िया कुनैन के लिए तरसें और उनके लगान व मालगुज़ारी से शहरों के लोग सफ़ाई और सुविधाओं का स्वाद चखें।"
>
> आचार्य द्विवेदी जी माच १९२०

उस समय अर्थात् सन् १९०७ में आचार्य का मेरे प्रति वात्सल्य-भाव उत्पन्न हो चुका था। मैं 'सरस्वती' का रेगुलर कान्ट्रिब्यूटर बन चुका था। आचार्य द्विवेदी जी मनुष्य की परीक्षा करना ख़ूब जानते थे। मेरे प्रति उनके ये भाव बन गये थे कि मैं उनका एक अनन्य भक्त हूँ; और साथ ही वे यह समझ चुके थे कि इस नवयुवक को यदि प्रोत्साहन मिला तो यह आगे चलकर कुछ हो जायगा। इसका परिणाम यह हुआ कि मैंने जितने लेख या कवितायें 'सरस्वती' में छपने को भेजीं, प्रायः सभी छपीं—कोई न्यूनाधिक रूप में छपी, कोई ज्यों की त्यों।

मैंने ख़ास बात लेखक और सम्पादक के व्यवहार में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी जी में यह देखी कि वे अपने सम्पादन में अपनी एक ख़ास दृष्टि रखते थे। जो लेख-सामग्री उनके टेबुल पर आकर गिरती उसी में से वे लेखों का चुनाव नहीं करते थे; बल्कि वे यह सोचते रहते थे कि हमको अपने पाठकों को क्या चीज़ देनी है; और जो कुछ देनी है वह कहाँ कहाँ से प्राप्त हो सकती है। वे लेखकों और कवियों को जुटाना भी ख़ूब जानते थे। साथ ही उनकी पैनी दृष्टि यह भी ताड़ती रहती थी कि कौन लेखक किस विषय पर अच्छा लिख सकता है। अक्सर वे अपने लेखकों और कवियों को आदेश किया करते थे कि इस विषय पर लेख अथवा कविता भेजो। लेख या कविता उनके यहाँ पहुँची नहीं कि तुरन्त पहुँच और छपने न छपने का उत्तर तीसरे दिन भारत भर में सब कहीं पहुँच जाता था।

पत्र का तुरन्त उत्तर देनेवाला ऐसा कोई भी व्यक्ति शायद दुनिया में दूसरा न मिलेगा। द्विवेदी जी की बैठक में एक छोटी टेबुल पर पोस्टकार्ड लिफ़ाफ़े और लेटर-पेपर, क़लम-दावात के साथ हर वक़्त रक्खे रहते थे। कोई ख़त हो, चाहे लेख या कविता हो, वे पहुँचते ही तुरन्त उसे पढ़ते थे और उसी दम भेजनेवाले को उत्तर लिख देते थे। सौ काम छोड़कर वे पत्र का उत्तर देते थे। पत्र उनका बहुत ही संक्षिप्त, चोज़ भरा हुआ, बहुधा व्यंग्य-पूर्ण और पढ़नेवाले को हर्षित करनेवाला होता था। लेखकों के प्रति शालीनता, नम्रता और ख़ुशामद की हद कर देते थे। आह! कौन समझ सकता था कि यह कितना महान् पुरुष है जो अपने छोटे से छोटे लेखकों के प्रति इतना उदार, इतना विनम्र और इतना ख़ुशामद से काम लेनेवाला है।

एक बार आचार्य ने मेरे एक लेख का शीर्षक बदल दिया। 'सरस्वती' आई, मैंने शीर्षक बदला हुआ पाया। मुझे बड़ा क्रोध आया। लड़कपन था, मैंने डाँटकर पत्र लिखा। उत्तर में अत्यन्त विनम्र शब्दों में क्षमा माँगी गई थी। यह उस समय की बात है जब 'सरस्वती' में लेख छपने पर मैं अपने को कृतार्थ समझता था।

मेरे बारे में भी द्विवेदी जी का एक ख़याल बँध गया था। उनको मालूम था कि मैं उस समय (सन् १९०७-०८ में) महाराष्ट्रों के सम्पर्क में था, इसलिए उन्होंने मुझे आज्ञा दी कि मैं 'नाना फड़नवीस' पर कुछ लिखकर 'सरस्वती' के लिए भेजूँ। मैं नागपुर में 'हिन्दी-केसरी' में काम करता था, पर नाना फड़नवीस के बारे में मुझे प्रायः कुछ भी मालूम नहीं था। आचार्य की आज्ञा का पालन करने के लिए मैंने नाना फड़नवीस के बारे में जितनी भी पुस्तकें मुझे मिल सकीं, प्रयत्न से एकत्र कीं और सबका अध्ययन किया; फिर 'सरस्वती' के लिए लेख लिखना शुरू किया। मसाला मेरे सामने बहुत था, पर अनुभव कम। अतएव मैं लगभग ५० पृष्ठ हाफ़ फ़ुलिस्केप शीट लिख गया और आचार्य जी के पास 'सरस्वती' में छपने को भेज दिया। लौटती डाक से द्विवेदी जी का पत्र मिला कि आपने यह 'सरस्वती' के लिए लेख लिखा है या ग्रन्थ लिखा है। ख़ैर, अब किसी तरह इसका उपयोग कर लिया जायगा। मैंने उत्तर में निवेदन किया कि महाराज, उपयोग करके मेरी हस्तलिखित कापी मुझे वापस कर दीजिएगा। द्विवेदी जी ने वैसा ही किया और मेरी कापी मेरे पास जब वापस आई तब मैंने देखा कि प्रत्येक कापी के हाशिये पर किनारे किनारे लेख के उतने ही अंश पर पेंसिल के निशान हैं, जितना लेख के लिए उपयोगी हैं—बीच बीच में अँगरेज़ी में कुछ टीकात्मक वाक्य भी हैं, जो मेरे लेख से प्रभावित होकर लिखे गये हैं। समय पर 'सरस्वती' आई और मैंने आश्चर्य और उत्सुकतापूर्वक देखा कि नाना फड़नवीस का मेरा वह ५० पृष्ठ में लिखा हुआ जीवन-चरित 'सरस्वती' के आठ पेज में छपा हुआ है। लेख का सार तथा सिलसिला इतना उत्तम बँधा हुआ कि कहीं विशृंखलता मालूम नहीं दी। इतना ही नहीं, बल्कि लेख मेरे नाम से छपा हुआ है और दो रुपये पेज के हिसाब से १६) का मनीआर्डर भी पुरस्कार में मेरे पास एक हफ़्ते के अन्दर ही—आप ही आप—आगया! मैं तो भौचक्का रह गया कि यह कैसा महान् पत्रकार है कि जो अपने छोटे छोटे कृपापात्र लेखकों के प्रति इतना सजग रहता है!

मैं एक दो-साल से 'सरस्वती' का साधारण लेखक और कवि था; द्विवेदी जी ने बिना मेरी प्रार्थना के ही मुझे सूचित किया था कि अब 'सरस्वती' आपकी सेवा में 'फ्री' आया करेगी और बिना माँगे ही पुरस्कार भिजवाना शुरू कर दिया था। मुझे इस बात का पता है कि मेरे साथ ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी जी का ऐसा व्यवहार नहीं था, बल्कि उनके संसार में सैकड़ों ही ऐसे व्यक्ति थे जिनको वे प्यार करते थे।

सन् १९०७ से १९१४ तक लेखक और पत्रकार के नाते मेरा और द्विवेदी जी का अनवरत सम्पर्क रहा, और बराबर—मैं चाहे नागपुर में रहा या रायपुर में, या पूने में—पत्र आते-जाते रहे। सन् १९१४ के लगभग मैं 'आर्यमित्र' का सम्पादक होकर आगरे चला आया। द्विवेदी जी 'आर्यमित्र' से और आर्यसमाजियों से कुछ चिढ़े हुए थे। इसी बीच में स्वामी विरजानन्द जी के एक छोटे से जीवन-चरित की समालोचना करते हुए द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' में एक ऐसी बात लिख दी कि आर्यसमाजियों और उनके अख़बारों में एक बड़ा भयानक आन्दोलन खड़ा हो गया। आर्यसमाजियों का सङ्गठन एक बर्रों के छत्ते की तरह है, इसको किसी ने छेड़ा नहीं कि एकदम बर्रों की तरह ये उस पर टूट पड़ते हैं। कई वर्ष पहले, पाठकों को याद होगा कि, महात्मा गांधी जी ने इनको थोड़ा सा छेड़ दिया था कि एकदम सब महात्मा जी पर टूट पड़े; और अन्त में महात्मा जी को इन्हें शान्त ही करना पड़ा। अस्तु, मैंने आर्यसमाजी दृष्टिकोण से आचार्य के विरुद्ध 'आर्यमित्र' में लेख लिखे और दूसरों के भी प्रकाशित किये। इस पर द्विवेदी जी मेरी ओर से कुछ खिंच से गये और मुझे पत्र लिखना बन्द कर दिया। मैंने भी कोई पत्र नहीं लिखा और न कभी उनसे मिलने ही गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि इतना होने पर भी आचार्य के प्रति मेरी श्रद्धा और मेरे प्रति आचार्य का स्नेह और सौहार्द कम नहीं था। इसका प्रमाण आगे चलकर कई वर्ष के बाद, जब कानपुर में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन होने जा रहा था, तब मिला।

मेरे कानपुर के मित्रों ने सम्मेलन का संगठन करने के लिए मुझे लगभग एक मास पहले ही बुलाया था। सम्मेलन का स्वागताध्यक्ष कौन बनाया जाय? आचार्य जी कानपुर में ही जुही के बँगले में—बँगले में क्या, क्वार्टर में कहिए—रहते थे। हमारी मित्र-मंडली शहर में बैठी और यह तय हुआ कि जब हम सब लोग जो आचार्य के परम वात्सल्य-भाजन हैं, चलकर प्रार्थना करेंगे तब शायद वे स्वीकार कर लें, क्योंकि द्विवेदी जी को किसी सार्वजनिक भीड़भड़क्के में भाग लेने के लिए मना लेना कोई हँसीखेल नहीं था। जो व्यक्ति सदैव एकान्त साहित्य-तपस्वी था और जिसकी साधना आजीवन सभा-समाजों से विरक्त रहकर केवल एकमात्र सरस्वती देवी की पूजा और सरस्वती के सेवकों की आराधना और सेवा ही थी। जो दुनिया के जनसमूह में घूमकर एक एक व्यक्ति के हृदय में पलीता लगाना नहीं जानता था, बल्कि एकान्त-कोठरी में अकेला बैठकर अपने हृदय के अन्दर ही आग लगाता था और सारी दुनिया उसी में जलती थी—ऐसे व्यक्ति को हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और द्विवेदी-मेला के समान भयङ्कर जनसंमर्द में खींच लाकर उसका तमाशा बनाना कोई हँसी-ठट्ठा नहीं था। परन्तु वह कैसा सरल और करुण हृदय था भक्तवत्सल!—कि अपने भावुक और अनन्य भक्तों के सामने बिलकुल आत्म-समर्पण कर देता था!

हम लोगों ने स्वागताध्यक्ष बनने के लिए उनके चरणों में जाकर प्रार्थना की—कई वर्ष में मैंने जाकर उनके चरण छुए थे—मेरी ओर सिर उठाकर देखा और बोले—लक्ष्मीधर! बस, पानी पानी हो गये। बोले—"भाई, हमको इस झंझट में न डालो! मैं स्वागता-वागताध्यक्ष बनकर क्या करूँगा। उसमें आगत प्रतिनिधियों के स्वागत और सेवा का बड़ा भारी काम है, मैं कैसे करूँगा। बीमार आदमी। इतना बड़ा बोझ कैसे उठाऊँगा। हाँ, आप लोग नहीं मानते तो आगत सज्जनों के चरण धोने का कार्य मुझे दे दीजिएगा। मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।" इस प्रकार बड़ी मुश्किल से स्वीकृति मिली, और बाबू पुरुषोत्तमदास जी टंडन को सम्मेलन का सभापति बनाने का परामर्श करके हम लौट आये।

इसके कई वर्ष बाद जब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मन्त्री पंडित कृष्णकान्त मालवीय थे, सम्मेलन के एक अत्यन्त आवश्यक कार्यवश मुझे द्विवेदी जी की सेवा में उनके ग्राम दौलतपुर जाना पड़ा। सम्मेलन के अधिकारियों ने मुझसे कहा कि द्विवेदी जी सम्मेलन के अधिकारियों से बहुत प्रसन्न नहीं हैं, इसलिए आप ही उनसे इस कार्य को सम्मेलन के लिए करा सकते हैं। मैं प्रयाग से पहली ही ट्रेन से दौलतपुर के लिए चल दिया। बरसात का मौसिम था। जिस दिन मैं चला उसके दूसरे ही दिन मुझे कार्य पूरा करके प्रयाग वापस आना था; क्योंकि कार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा ही ज़रूरी था। मुझे द्विवेदी जी के गाँव दौलतपुर का रास्ता तक नहीं मालूम था। सीधा मैं कानपुर पहुँचा और वहाँ द्विवेदी जी के व्यावहारिक सहयोगी मित्र बाबू भगवान-दास कमर्शल-प्रेसवालों से मिला। बाबू साहब ने बताया कि दौलतपुर के दो मार्ग हैं—एक बड़ी लाइन से कंसपुर-गोगौली स्टेशन से उतरकर गंगा पार करके जाना, जो नज़दीक का मार्ग अवश्य है, पर इस मौसिम में अत्यन्त दुर्गम है। दूसरा उन्नाव से तकिया-स्टेशन होकर, जो बहुत दूर का मार्ग है; पर इस समय कुछ सुगम पड़ सकता है। मैंने इसी दूसरे मार्ग से जाने का निश्चय किया; और शाम को छः बजे के लगभग तकिया स्टेशन पर जाकर उतरा। वहाँ पूछा तब मालूम हुआ कि दौलतपुर यहाँ से १६ मील के क़रीब है। मुझे तो जाना ही था; और कार्य करके दूसरे दिन वापस भी आना था। एक कुदर-बंडी बैलगाड़ी में बैठा, जो वहाँ से सिर्फ़ आधी दूर—नगर—तक जाती थी। बरसात का देहाती कच्चा रास्ता; और उस रद्दी बैलगाड़ी पर बैठने का मेरा नया अनुभव, जिस पर तीन ज़बर्दस्त ग्रामीण मेरे ऊपर बैठे हुए मुझको नीचे की ओर झुकती हुई गाड़ी में कुचल रहे थे और मार्ग का कीचड़ भी उछल उछलकर मेरे ऊपर गिरता था—मैं ९-१० बजे रात के क़रीब 'नगर' के बाज़ार में पहुँचा। वहाँ एक उत्साही नवयुवक पंडित चन्द्रिकाप्रसाद मेरे आगे आ गये, और मेरे नाम से परिचित होने के कारण रात को उन्होंने मुझे काफ़ी आराम दिया।

सुबह ४ बजे के क़रीब मैं उठा और बाक़ी का बिना जाना हुआ मार्ग, भूलते-भटकते, बड़ी कठिनाई से पैदल तय करके मैं लगभग ८ बजे सुबह दौलतपुर द्विवेदी जी के द्वार पर जाकर उपस्थित हुआ।

घर के सामने पक्का कुआँ, छोटी सी फुलवाड़ी, अगल-बगल में हिन्दी-पाठशाला, डाकघर, अतिथिशाला, गोशाला, सब उसी घर से मिले हुए छोटे दायरे में थे। सामने ही मैदान में एक ओर एक पक्का चबूतरा और उस पर छोटा सा महावीर जी का मन्दिर, फिर माता जी (आचार्य-पत्नी) का मन्दिर, फिर एक बड़ा सा गहरा तालाब! प्रथम दर्शन में ही उस बीहड़ देहात में यह दृश्य सचमुच एक तीर्थस्थान सा दिखाई दिया। मैं सामने ही चबूतरे पर चढ़कर पादत्राण बाहर उतार एकदम आचार्य के बैठके में घुस गया। आप एक बंडी पहने हुए, बिल-कुल देहाती—वज्र गवाँर से—एक छोटा सा झाड़न लिये आल्मारियों की अपनी पुस्तकें पोंछ रहे थे। पुस्तकों में धूल चढ़ी हुई नहीं थी; पर आचार्य का यह क्रम था कि प्रतिदिन सुबह उठकर पहले सफ़ाई का काम करते और देखते थे। तमाम कमरा साफ़, सामान साफ़, जहाँ का तहाँ बाक़ायदा। बाहर चबूतरा बिलकुल साफ़ झाड़ा पोंछा हुआ!

आचार्य छोटा सा झाड़न लिये सिर झुकाये किताबें पोंछ रहे थे। मैं एकदम गया, और पैर छुए। आपने सिर ऊपर उठाया; और मेरी ओर अपनी स्वाभाविक जलदगम्भीर, पर मधुर स्नेह से भरी हुई, ध्वनि से बोल उठे—"लक्ष्मीधर!" एक-दो कुशल प्रश्न की बातें हुईं; और आचार्य फिर पुस्तकें पोंछने में लग गये। मैं बाहर तालाब की तरफ़ जाकर जंगल की तरफ़ इधर-उधर देखने लगा; पाँच-सात मिनट बाद आया तब देखता क्या हूँ कि मेरे पादत्राण जो कमरे के बाहर दरवाज़े के पास चबूतरे पर सामने ही धूलधूसरित रक्खे हुए थे—बिलकुल साफ़ लकदक़! मैं देखकर एकदम भौचक्का रह गया। भीतर गया तब आचार्य जी मेरी तरफ़ मोहभरी मुद्रा से बोले, तुम थके बहुत मालूम होते हो, इस पलँग पर थोड़ी देर लेट कर विश्राम कर लो। और लगे हाथ स्वयं पलँग बिछाने लगे। मैं मन ही मन लज्जित हुआ। थका हुआ तो था ही, लेटकर सो गया।

एक घंटे के बाद उठा तब द्विवेदी जी उसी कमरे में तख़्त पर बैठे कुछ काम कर रहे थे। मैंने अपने मुख्य कार्य—जिसके लिए मैं गया था—के विषय में पहले बातचीत की, फिर द्विवेदी जी ने मुझसे पूछा—"आपके भोजन का क्या प्रबन्ध हो? क्या पूड़ी आप मेरे यहाँ खायँगे? कच्ची रसोई तो आप मेरे यहाँ कैसे खायँगे; क्योंकि मैं कनौजियों में बहुत छोटा हूँ; और २० बिस्वावाले कनौजिया तो मेरे यहाँ पूड़ी तक खाने नहीं आते। कहते हैं, १६) दक्षिणा दो तो खायँ।" हाँ, बड़े बड़े पंडित, पुरोहित और पाधा यदि कोई पुराण-उराण देखना होता है तो ज़रूर आते हैं।"

इतने में एक देहाती किसान एक बड़ी भारी फूट (पकी हुई ककड़ी) लाकर द्विवेदी जी के कमरे में रख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। उसको देखकर मुझे आचार्य के शहरी जीवन का स्मरण हो आया और मैंने पूछा—"महाराज, यहाँ देहात में आपको तो बड़ी तकलीफ़ होती होगी। आपकी तबीयत ख़राब रहती है। फल-वल यहाँ खाने को आपको कहाँ मिलते होंगे"? आचार्य ने कहा—"भाई, यहाँ का तो फल यही है (सामने लम्बी ज़बर्दस्त पड़ी हुई फूट की तरफ़ इशारा करके)—फूट!" मैं आचार्य का अभिप्राय समझ गया कि यहाँ देहात में आपस की फूट ही बड़ा भारी फल है। क्योंकि वहाँ द्विवेदी जी 'विलेज मुंसिफ़' का काम भी कई वर्ष से कर रहे थे; और आस-पास के देहात के तमाम मामलों को निपटाया करते थे। मुझे वहाँ के लोगों से मालूम हुआ कि बड़े बड़े लोग मामलों के सम्बन्ध में सलाह लेने के लिए "बाबू जी"* के पास आते हैं, और बाबू जी उनको समझाकर आपस में ही फ़ैसला करा देते हैं। मुक़दमेबाज़ी ज़्यादा नहीं चलने देते। आप किसानों और ग़रीबों को उधार तथा सूद तथा बिना सूद पर रुपया देकर उनकी मदद भी किया करते हैं। तब मुझे मालूम हुआ कि हमारा आचार्य कितना बड़ा देशभक्त और सुधारक है। वह ख़ाली साहित्य-महारथी ही नहीं है; बल्कि राष्ट्र का सच्चा सेवक भी है। ग्राम-सुधार का आन्दोलन कांग्रेस ने आज चलाया है, पर आचार्य द्विवेदी जी दौलतपुर में बैठे हुए लगभग २० वर्ष से यही काम कर रहे थे। अस्तु।

आचार्य ने मुझसे फिर पूछा—"भाई, तुम पक्के कनौजिया हो। मेरे यहाँ कैसे खाओगे?" मैंने उत्तर दिया—"महाराज, मैं तो आज ३० वर्ष से कनौजियापन को बिलकुल तलाक़ दे चुका हूँ; और सैकड़ों मील देहातों में पैदल घूमते हुए मैंने सब जातियों के लोगों के यहाँ कच्चा भोजन किया है। हिन्दू-मुसलमान, चमार, पासी मुझसे कोई नहीं बचा है, लेकिन मैंने सिर्फ़ भोजन करने के लिए ही किसी के यहाँ भोजन नहीं किया है; बल्कि देश का काम करते हुए जहाँ मुझे भूख लगी; और मैं जिसके दरवाज़े ठहर गया, फिर मैंने जातपाँत नहीं पूछी; और यजमान से पहले ही प्रार्थना कर देता हूँ कि भाई, तेरी रसोई में जो कुछ रोज़ बनता है, उसी को पाऊँगा। मेरे लिए कोई विशेष आडम्बर न करना। नहीं तो मैं तुरन्त तेरे दरवाज़े से चलता बनूँगा। ऐसे मौक़े मेरे जीवन में सैकड़ों आये हैं; और आप, महाराज, तो मेरे गुरु हैं, ब्राह्मण हैं, पूज्य हैं, आपके यहाँ मैं भोजन न करूँगा!"

मेरे इस उत्तर को सुनकर तो द्विवेदी जी अवाक् रह गये; और बोले—"ऐसा!" उनकी पुत्रवधू राधादेवी अन्दर भोजन बना ही रही थीं। मैं भोजन के लिए तैयार हो गया; और मेरे साथ कमला भाई। द्विवेदी जी मुझे घर के अन्दर ले गये; और मेरे पैर धुलाने के लिए पानी लोटे में लेकर खड़े हुए! मैं घबरा गया—कैसा है यह आचार्य! मैं कमला भाई के साथ भोजन को बैठा। आचार्य वहीं खड़े थे; और बीच बीच में मुझसे पूँछते जाते थे—"भाई, क्या लाऊँ यहाँ देहात में? गोतक्र लाऊँ?" मैंने कहा—"महाराज, आपका यही आशीर्वाद है!" द्विवेदी जी चट से बाहर से गोतक्र गिलास में ले आये! आचार्य द्विवेदी जी को निकट से देखते तो पता चलता कि वे क्या थे—दूर से तो सिर्फ़ उनका 'उग्र स्वभाव' ही दिखाई देता था। पर वे क्या थे; और क्या नहीं थे, कितने गम्भीर थे, थाह पाना मुश्किल है। नमक की पुतली समुद्र की थाह लेने गई, घुलकर उसी में रह गई!

हाँ, एक घटना मैं भूल गया। द्विवेदी जी की बैठक में माता जी (आचार्यपत्नी) का फोटो लगा हुआ था। उसको देखकर मैंने आचार्य से पूछा—"महाराज, माता जी का फोटो शायद यही मालूम पड़ता है।" द्विवेदी जी ने कहा—"हाँ!" मैंने कहा—"महाराज, मैंने सुना है कि आपने इनका कोई मन्दिर बनवाया है!" आचार्य ने उत्तर दिया—"देखते नहीं हो। वह सामने!" मैंने कहा—"महाराज, उसमें तो ताला बन्द है। मैं तो दर्शन करना चाहता हूँ।" "भाई, ताला न बन्द रक्खूँ, क्या करूँ? आप जानते हैं, यहाँ देहात के आदमी, बड़े बड़े पण्डित पाधा पुरोहित, इसको देखकर जलते हैं, कहते हैं, इसने अपनी स्त्री की मूर्ति स्थापित की है, इसकी यही बड़ी देवता है! पुजवाना चाहता है!" मैंने कहा—"महाराज, ये लोग भ्रम में भूले हैं। बाद को यही एक तीर्थ-स्थान हो जायगा और हमारे समान हज़ारों पुजारी तो अब

---

* वहाँ उस जवार में कई कोस के अन्दर लोग आचार्य द्विवेदी जी को "बाबू जी" ही कहते हैं। शायद रेलवे में नौकरी करने के ज़माने से ही आपका यह नाम वहाँ प्रसिद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी इसी दृष्टि से देखते हैं। आगे यहाँ के लोग भी समझ जायँगे। लेकिन मैं तो दर्शन अवश्य करूँगा।" आचार्य ख़ामोश रहे।

मैं भोजन करके कमला भाई के साथ निकला। आचार्य एक दूसरे कमरे में मालिश करा रहे थे। मैंने कमला से चुपके कहा—"भाई, कुंजी ले आओ। मामा को मालूम न होने पावे; मन्दिर खोल कर मुझे चुपके से दर्शन करा दो।" कमला ने ऐसा ही किया। मैं मन्दिर के अन्दर गया। दीवार के सहारे स्थापित मुझे संगमर्मर की तीन प्रतिमायें, एक के बाद एक, अत्यन्त सुन्दर दिखाई दीं। उन तीनों प्रतिमाओं के ऊपरी ओर आचार्य के रचे हुए संस्कृत श्लोक खचित हैं। श्लोक मैं सब लिख कर लाया था; पर मेरे पास से खो गये हैं। उनका भावार्थ यह है कि—मैंने (आचार्य ने) आजीवन 'सरस्वती' की सेवा की; और 'लक्ष्मी' के नाम पर सिर्फ़ तुम्हीं को पूजते रहे। तीन मूर्तियाँ—सरस्वती जी, लक्ष्मीजी और बीच में माता जी की। आचार्य की भावुकता का अन्त हो गया। हाँ! इस महापुरुष ने आजीवन सरस्वती की ही पूजा की और लक्ष्मी के नाम पर अपनी धर्मपत्नी-गृहलक्ष्मी की ही पूजा करता रहा! ऐसा ऊँचा आदर्श! दुनिया के पर्दे पर दूसरा नहीं मिलेगा।

आचार्य ने माता जी की मूर्ति स्थापित की। इसके अन्दर भी एक रहस्य है। मुझे वहाँ के एक ग्रामीण भाई ने बताया। उसने कहा—माता जी जब जीवित थीं, द्विवेदी जी एक दिन कुटुम्ब में बैठे थे। बातचीत में हँसी के तौर पर माता जी ने कहा—"तुम्हारा चबूतरा तो हमने बनवा दिया!" भावुक आचार्य माता जी से बोल उठे—"तुमने हमारा चबूतरा बनवाया है, मैं तुम्हारा मन्दिर बनवाऊँगा!"

बात यह थी कि आचार्य-पत्नी के घर में उनके पड़ोस की उनकी एक सहेली बैठती-उठती थीं। दोनों में बड़ा प्रेम था। सहेली ने माता जी से कहा कि महावीर जी की पुरानी मूर्ति दरवाज़े पर बुज़ुर्गों की स्थापित पड़ी है, इसके लिए एक पक्का चबूतरा बन जाता तो अच्छा था। माता जी ने उस सहेली की सलाह से चबूतरा बनवा दिया और महावीर जी के लिए वहीं एक मढ़िया भी। कहने की आवश्यकता नहीं कि 'महावीर' जी उनके पूज्य मेरे आचार्य 'महावीर दुबे'। इसी पर आज उन्होंने हँसी में अपने पतिदेव से अचानक कह दिया! उनको क्या मालूम था कि यह महावीर उनको कितना पूजता है! महावीर के ऊपर भी दीवार में द्विवेदी जी के रचे हुए श्लोक खचित हैं, जिनमें माता जी और उनकी सहेली की प्रशस्ति है। आह! इस दम्पति का यह अकृत्रिम प्रेम! इसी में आचार्य के सफल जीवन का सारा रहस्य निहित है।

कहाँ तक लिखूँ, बहुत सी बातें हैं!

प्रणताञ्जलिः

लेखक, श्रीयुत प्रणयेश शुक्ल

आचार्य-श्री के चरणों में है कोटिशः प्रणाम।

(१)

गूँज रही है जिनकी वाणी,
बनकर हिन्दी की कल्याणी,
जिनके मनो-भाव सुमनों से पुष्पित है आराम!

(२)

था प्रसिद्ध जिनका न्यायासन,
दिया सदा ही समुचित शासन,
अपने कुशल कलाकारों का अमर कर गये नाम!

(३)

युगसंस्थापक, युगनिर्माता,
जो थे सत्साहित्य-विधाता;
जिनके इङ्गित से होते थे कितने ही शुभ काम!

❀ ❀ ❀

देव! कृपा का कण मिल जाये,
तो जीवन की श्री खिल जाये,
बाधा-हीन बने मेरा पथ, चला चलूँ अविराम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय पंडित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी

लेखक, पण्डित रामनारायण मिश्र

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी सचमुच महा-वीर थे। वे कभी किसी से दबे नहीं; साथ ही वे दूसरों की सेवा करने में सदा तत्पर रहते थे। ये दोनों गुण, जो एक दूसरे के विपरीत मालूम पड़ते हैं, केवल वीरों में ही पाये जाते हैं। वे योद्धा थे। साहित्य-क्षेत्र में इसका मुझे सबसे पहला प्रमाण उस समय मिला था जब स्वर्गीय पंडित माधवप्रसाद मिश्र 'सुदर्शन' पत्र निकालते थे। मेरा और पंडित माधवप्रसाद जी का बहुत साथ था। 'सुदर्शन' और 'सरस्वती' के द्वारा उन दिनों मिश्र जी और द्विवेदी जी में महीनों बहस चली थी। समय और सामग्री के अभाव से मेरे लिए उस वादविवाद के विषय का उल्लेख करना इस समय सम्भव नहीं, परन्तु मुझे याद है कि स्वर्गीय बाबू देवकीनन्दन खत्री के घर जितने साहित्यसेवी एकत्र होते थे, सब उत्सुकता से प्रतीक्षा करते थे कि देखें अब की द्विवेदी जी मिश्र जी के लेख का क्या उत्तर देते हैं। दोनों ओर के लेख बड़े ओजस्वी और विद्वत्ता-पूर्ण होते थे। उसी समय से मेरे हृदय में द्विवेदी जी के लिए बड़ा ऊँचा स्थान था। मैं कभी कभी 'सुदर्शन' में कुछ लिख दिया करता था। बाबू श्यामसुन्दरदास के सम्पादकत्व के समय 'सरस्वती' में भी मैंने दो-एक लेख लिखे थे।

> "देहात में उस शिक्षा की आवश्यकता है जो किसानों को दो दफ़े खाने को दे सके। उन्हें खेती और छोटे-मोटे उद्योग-धंधे सिखाइए। औरंगज़ेब की राजनीति सिखाने और मिसीसिपी व वाल्गा के उद्गम रटाने की आवश्यकता नहीं है।"
>
> आचार्य द्विवेदी जी, अप्रैल १९२०

जब मैं स्कूलों का डिप्टी हुआ तब एक बार द्विवेदी जी का मेरे पास पत्र आया कि शिक्षा-विभाग की उस वर्ष की रिपोर्ट पर एक लेख लिख दो। मैं आश्चर्य से चकित हो गया। मुझे स्वप्न में भी यह ख़याल न था कि द्विवेदी जी स्वयं मुझे 'सरस्वती' के लिए लेख लिखने के लिए लिखेंगे। अस्तु, मैं सोच ही रहा था कि लिखूँ या न लिखूँ कि मेरे पास इण्डियन प्रेस से उक्त रिपोर्ट की एक प्रति डाक-द्वारा पहुँच गई। मैं समझ गया कि द्विवेदी जी ही ने उसे भेजवाया होगा। मैंने लेख भेजा और वह छप भी गया। मेरा उत्साह बढ़ गया और मैंने 'सरस्वती' में लिखना शुरू कर दिया। मेरे अनुकूल विषय वे बतलाते रहते थे और तक़ाज़ा करते रहते थे। 'क़ैदी बालकों के स्कूल', 'संयुक्त-प्रान्त में स्त्री-शिक्षा', 'प्रारम्भिक शिक्षा', 'डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और शिक्षा', 'भारतीय शासन-प्रणाली' इत्यादि विषयों पर उन्हीं की प्रेरणा से, समय-समय पर, मैंने लेख भेजे थे।

कहा जाता है कि रमेशचन्द्र दत्त एक बेर पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से मिलने गये थे। विद्यासागर जी ने उनसे कहा कि आपने अँगरेज़ी में तो कई पुस्तकें लिखी हैं, कुछ बङ्ग-भाषा में भी लिखिए। उन्होंने उत्तर दिया—बङ्ग-भाषा में लिखने का अभ्यास नहीं है। विद्यासागर जी बोले—जो विदेशी भाषा में इतना सुन्दर लिख सकता है, क्या वह मातृभाषा में नहीं लिख सकता? चेष्टा करने पर सब हो सकता है। रमेश बाबू ने बँगला में लिखना शुरू कर दिया और अच्छी ख्याति प्राप्त की।

द्विवेदी जी भी साहित्यिक प्रोत्साहन देने में 'विद्यासागर' थे। उनसे पहले विश्वविद्यालयों के बी० ए० और एम० ए० हिन्दी लिखते हुए कम दिखलाई देते थे। उन्होंने सैकड़ों को तैयार किया और आज अधिक संख्या में जो ऐसे लेखक मिल रहे हैं उसका श्रेय द्विवेदी जी को है। नये लेखकों के लेखों को शब्दों और पैराग्राफों के हेर-फेर से वे ऐसा सुन्दर बना देते थे कि उसमें रस आ जाता था। कभी कभी तो लेख की रूप-रेखा ही बदल देते थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर प्रकाशित होता था नाम असली लेखक का ही। यह द्विवेदी जी की उदारता थी।

द्विवेदी जी थे तो अक्खड़, परन्तु उनमें संकीर्णता नहीं थी। अनेक विषयों के ज्ञाता थे, तिस पर भी जिज्ञासु थे। ज्ञान प्राप्त करने के अवसर को वे कभी हाथ से जाने नहीं देते थे।

साहित्यिक प्रभाव के अतिरिक्त नवयुवकों पर उनके व्यक्तिगत जीवन का भी बड़ा प्रभाव पड़ता था, पर इसका लाभ वे ही उठा सकते थे जो उनके निकट थे। उनकी वक्त की पाबन्दी, उनका खरापन, उनकी दानशीलता का हाल तो वे ही बतला सकते हैं जिनको उनसे अधिक मिलने-जुलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

उनकी हर एक बात में निरालापन था। काशी के 'सेन्ट्रल हिन्दू-स्कूल' में एक छात्रवृत्ति हिन्दू-विश्वविद्यालय-द्वारा दी हुई है। उसको वही पा सकता है जो द्विवेदी जी की बिरादरी का हो। साथ ही वह या तो उनके गाँव का हो या ज़िले का या अवध का इत्यादि। इतने प्रतिबन्ध होने के कारण इस छात्रवृत्ति के योग्य छात्र ढूँढ़ने में महीने दो महीने की देर हो जाया करती है।

मेरा द्विवेदी जी का साक्षात्कार तीन-चार बार ही हुआ था। नागरी-प्रचारिणी सभा के सम्बन्ध में कई बार निजी पत्र-व्यवहार भी हुआ। थोड़ा संसर्ग होने पर भी मैं कह सकता हूँ कि उनमें प्रतिभा थी और व्यक्तित्व था। वे ऐसी ऊँचाई पर थे जिस पर उनके समकालीन और पीछे के लोग भी अब तक पहुँच नहीं सके हैं।

शोक-गाथा

लेखक, श्रीयुत पण्डित नयनचन्द्र मुखोपाध्याय

दीप्त सूर्यरश्मि यथा मध्याह्न-आकाशे
तेमति तोमार कीर्ति मातृभाषा माझे;
तोमार से काव्य-कुंज त्रिदिव-सुवासे
रेखेछे भरिया चित्त अपरूप साजे।

आज तुमि नाइ हेथा, उगो कर्मवीर!
डूबे गेछ चिरतरे काल-पारावारे।
उठिछे आकुल कण्ठ भाषा जननीर,
वेजेछे दारुण व्यथा हृदयेर तारे!

हिन्दीर साहित्याकाश आजि अन्धकार,
वहितेछे अश्रुजल कालेर प्रान्तरे;
समाप्ति जीवनव्यापी शव-साधनार;
लभेछ से ध्रुव मृत्यु जीवनेर परे।

मृत्यु किन्तु नहे शेष, नवीन जीवन
आछे परे, लभ देव, अनन्त-मिलन॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरलोकवासी श्री महावीरप्रसाद जी द्विवेदी

लेखक, साहित्यशिरोमणि पंडित गिरिधरशर्मा नवरत्न

वाग्देवतावतारश्री मम्मट-प्रतिरूपकः।
धीरोऽसौ स महावीरोऽञ्जलिनाऽनेन तृप्यताम्॥

पण्डित श्री महावीरप्रसाद जी द्विवेदी क्या न थे? वे विनोद-शील व्यंग्य-चित्रकार थे (देखो सन् १९०२ की 'सरस्वती' में 'साहित्य-समाचार'), सुन्दर गद्य-लेखक थे, उत्तम पद्य-निर्माता थे, स्पष्टवादी समालोचक थे, सफल सम्पादक थे और थे कलाकोविद सहृदय पुरुष। अनेक महापुरुषों की तरह उनका जन्म गाँव (दौलतपुर) में हुआ था। उनकी स्कूली शिक्षा न कुछ के बराबर थी, परन्तु स्वाध्यायशीलता के कारण गुजराती, मराठी, उर्दू, बंगाली, अँगरेज़ी आदि अनेक भाषाओं में उन्होंने प्रवीणता पाकर विपुल ज्ञान-राशि का सम्पादन किया था। उनकी जीवनी अनेक रङ्गों से रंजित थी और उनका अध्यवसाय कठिनाइयों पर विजय पानेवाला था। वे हिन्दी-कवियों की अपेक्षा संस्कृत-कवियों से अधिक परिचित थे; और यही कारण है कि हम 'नैषधचरित-चर्चा,' 'विक्रमाङ्कदेव-चरित,' 'कालिदास की निरंकुशता,' आदि चीज़ों को हिन्दी में पा सके हैं। रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत और किरातार्जुनीय आदि उनकी पुस्तकें हिन्दी-जनता को संस्कृत-कवियों के रस का आस्वादन कराती रहेंगी।

> "शासन का अधिकारी वही हो सकता है जिसके हाथ में बल है। जो लम्बी लाठी रखता है उससे तब तक परित्राण नहीं हो सकता, जब तक निर्बलों का समुदाय उसका चारा-पानी बन्द नहीं कर देता। अन्य योजनायें व्यर्थ हैं।"
>
> आचार्य द्विवेदी जी, फ़रवरी १९२४

मैंने उनकी 'हिन्दी-कालिदास की समालोचना,' 'हिन्दी-शब्दावली की आलोचना' पढ़ी थीं और वे मुझे स्वर्गीय राय देवीप्रसाद जी पूर्ण, बी० ए०, एल-एल० बी०, की 'साहित्य-हत्या' नामक समालोचना से कुछ कम नहीं जँची थीं; परन्तु मुझे जिस चीज़ ने आकृष्ट किया वह द्विवेदी जी की गुणग्राहकता थी, जो उन्होंने संस्कृत के आशुकवि अयोध्यानाथ के विषय में सन् १८९६ के आस-पास 'श्री वेंकटेश्वर-समाचार' में प्रकट की थी। इस लेखमाला को यदि कोई 'श्री वेंकटेश्वर-समाचार' की पुरानी फ़ाइलों में से उद्धृत कर प्रकट कर दे तो अच्छा ही हो। इस लेख-माला को पढ़कर मैं मुग्ध हो गया और मेरे चित्त में संस्कृत का जो प्यार लबालब भरा था, उमड़ पड़ा। द्विवेदी जी के 'सम्पादकस्य प्रतिस्तव', 'सूर्यग्रहणम्', 'कान्यकुब्जलीलामृतम्' 'कस्महं नास्तिकः' इत्यादि संस्कृत-काव्य और स्वर्गीय भारतरत्न अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य के सुललित गद्यकाव्य 'शिवराज-विजय' पर की हुई गद्यात्मक समालोचना देखने के योग्य है और उनके संस्कृत के गद्य-पद्य के नमूने हैं।

उनका मुझसे सौहार्द था। उन्होंने लाला सीताराम जी (जुहीवाले) से कह रक्खा था कि वे मेरी और पंडित पद्मसिंह जी शर्मा की चिट्ठियों को जहाँ पर द्विवेदी जी हों, डाक-द्वारा लौटा दिया करें। एक बार नौकरी छोड़ देने के बारे में पूछने पर द्विवेदी जी ने मुझे लिखा—

"हमारे अनेक मित्रों ने नौकरी छोड़ देने पर हमें बहुत बुरा-भला कहा। आपको लिखते तो आप भी हमारी ख़बर लेते।"

एक दूसरे पत्र में उन्होंने लिखा—

"हमारे नौकरी छोड़ देने पर लाला सीताराम जी ने हमें अपने यहीं रख लिया था और ढाई हज़ार रुपये इस-लिए दिये थे कि हम इनसे अपना काम चलावें और हिन्दी की सेवा करें। हम लाला जी के यहीं रह गये। ऊपर भी हमारे सीताराम हैं और नीचे भी सीताराम। अब तो यह रुपया चुक भी गया है।"

तीस वर्ष पहले कदाचित् सन् १९०९ में मैं अपने मामा के पुत्र ज्योतिषी नारायणसहाय को साथ लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झालावाड़ के दीवान पंडित परमानन्द जी चतुर्वेदी (जिनको द्विवेदी जी ने 'शिक्षा' समर्पण की है) के आमन्त्रण पर कायमगंज गया था। वहीं लाला छोटेलाल जी 'बार्हस्पत्य' जो संस्कृत, फ़ारसी, अरबी और अँगरेज़ी आदि भाषाओं के उत्कृष्ट विद्वान् थे, मिले। वे द्विवेदी जी की बड़ी प्रशंसा करते थे और ख़ास करके द्विवेदी जी की नियमितता की। जहाँ तक मुझे मालूम है, 'सरस्वती' का एक ही अङ्क युग्माङ्क के रूप में प्रकाशित हुआ है; कदाचित् सन १९०४ में। बाक़ी यथासमय प्रकाशन होता रहा। ठीक समय पर काम का सम्पन्न होना इण्डियन प्रेस के स्वनामधन्य स्वामी स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष को भी बहुत पसन्द था और द्विवेदी जी कर्तव्यनिष्ठ पुरुष थे।

कायमगज से मैं कानपुर गया। स्टेशन से सवारी करके जुही गया। सामान और अपने मामा के लड़के को बाहर बिठला गया और मैं भीतर जाकर द्विवेदी जी के कमरे में बैठ गया। द्विवेदी जी सन् १९०६ में मेरा चित्र 'सरस्वती' में लम्बी-चौड़ी प्रशंसा के साथ छाप चुके थे। मेरा ख़याल है कि हिन्दी-लेखक के नाते 'सरस्वती' में सबसे पहला चित्र यही छपा था और जायसवाल जी का दूसरा। फिर तो हिन्दी-पत्रों में धीरे धीरे यह परम्परा चल निकली। मेरा यह चित्र राजपूताने के ढंग का था और सन् १९०३ या १९०४ का लिया हुआ था। इस समय मैं युक्त-प्रान्त के वेश में था और यह सोच रहा था कि द्विवेदी जी मुझे न पहचानेंगे। हुआ भी वैसा ही। लाला सीताराम जी इस रहस्य को जानते थे। मैं द्विवेदी जी के पलँग के पास बैठा हुआ अख़बार पढ़ने में लग गया। द्विवेदी जी कोई पंद्रह मिनट में शौच जाकर आये—खुला बदन, कान पर उपवीत और हाथ में लोटा। उन्होंने आकर देखा, कोई पुरुष उनके अख़बार को पढ़ रहा है। प्रश्न हुआ—

"आप कौन हैं?"

जवाब दिया गया—"पुरुष"

"यह तो मैं भी जानता हूँ। परन्तु आप अन्दर कैसे आ गये?"

"अपना अधिकार समझकर।"

तीव्रता बढ़ गई। लाला सीताराम जी मन ही मन मज़ा ले रहे थे।

"आपका नाम?"

"पहले हाथ पैर-धोकर आइएगा, फिर बतलाया जायगा।"

भौंहें तन गईं। मुझे "सीधी से सहस्रगुनी टेढ़ी भौंहें मीठी हैं" का मज़ा आया। नाम बताया गया। बाहुयुद्ध की जगह बड़े ज़ोर से आश्लेष हुआ, जो कभी भुलाया नहीं जा सकता।

"वाह ख़ूब! सामान कहाँ है?"

"बाहर।"

बड़े आनन्द के साथ सामान भीतर लाया गया। दो-एक दिन मैं वहाँ रहा। द्विवेदी जी के उत्साह और आनन्द का ठिकाना न था। जिस हैहयवंशीय क्षत्रिय-जाति ने महामहोपाध्याय डाक्टर काशीप्रसाद जी जायसवाल एम० ए०, बार-एट-ला, स्वर्गीय डाक्टर हीरालाल जी, सौजन्यमूर्ति डाक्टर गोरखप्रसाद जी आदि हिन्दी-प्रेमियों को उत्पन्न किया, उसी क्षत्रिय-जाति के परम हिन्दी-हितैषी थे लाला सीताराम जी। वे हम दोनों के मिलाप से अत्यन्त प्रसन्न थे, उत्साह का ठिकाना न था। आर्मी-प्रेस चलाते थे, बढ़ई का कारख़ाना था, ख़ुद देखभाल करते थे और मुस्तैदी के साथ काम करते थे। मुझसे कहने लगे—"द्विवेदी जी का इस कुटिया में रहना मेरे परम सौभाग्य की बात है। इनके कारण अनायास ही आप जैसे महानुभावों के दर्शन हो जाते हैं।" न मालूम कितने विषयों पर हम लोगों का वार्तालाप हुआ और न जाने कितने काव्यों के रसास्वादन से मुग्ध हुए। द्विवेदी जी मुझे राय देवीप्रसाद जी 'पूर्ण' के पास लिवा ले गये और उनके साथ हम लोगों का ख़ूब वार्तालाप हुआ। पूर्ण जी अच्छे लेखक और सुकवि थे और पंडित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी के प्रति उनका बड़ा ही सद्भाव था। 'कालिदास की निरंकुशता' और 'निरंकुशतानिदर्शन' तो साथ साथ छपे हैं, परन्तु क्या ही अच्छा होता कि पूर्ण जी की लिखी हुई 'आत्माराम की टें टें' भी छप गई होती। पूर्ण जी का विपद्विदारण-स्तोत्र अब भी भक्तों को गद्गद किये बिना नहीं रह सकता। पूर्ण जी की धाराधरधावन की इस पंक्ति से—

"मेरे जान है है सुकुमारी प्रानप्यारी—
सखा सुन्दर सरोजिनी तुषार की सताई सी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम लोगों को बड़ा ही आनन्द आया। "इस पद्य में का 'सी' तो वस्तु को मूल से भी अधिक सुन्दर कर देती है", यह बात द्विवेदी जी के और मेरे मुँह से सहसा एक साथ निकल पड़ी।

एक रोज़ मैं कुछ कवित्त सुना रहा था। लाला सीताराम जी भी थे। मेरे इस कवित्त पर—

"आज करने का काम आज परिपूर्ण करो
कभी मत छोड़ो उसे कल के भरोसे पर
स्वयं जिसे कर सको और से कराओ मत
आप कर डालो उसे पूरा परिश्रम कर
समय पै श्रम किये होते सब अर्थ सिद्ध
जपो यही मूल मन्त्र चलो इसी मार्ग पर
पौरुष दिखाओ वीर पुरुषार्थ सिद्ध करो
बजाओ विजयवाद्य पाओ सुख निरन्तर।"

मैं तीसरे दिन वापस आया। जुही में उस वक्त सवारी न मिलती थी। मज़दूर के सिर पर सामान रखवाया गया तथा द्विवेदी जी और लाला सीताराम जी दोनों पहुँचाने को आये। सीताराम जी को और द्विवेदी जी को मैंने वापस जाने का आग्रह किया। किसी तरह लाला जी को तो मैं वापस भेज सका, परन्तु द्विवेदी जी ने एक न माना। वे स्टेशन तक आये और जब तक मैं चलती हुई रेल में नज़र आता रहा, अपनी स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखते रहे। मैं कायमगंज होता हुआ जयपुर होकर यहाँ (झालरापाटन) आ गया।

द्विवेदी जी अपने सुख-दुख की बात मुझे लिखते थे और मेरे सुख-दुख की बात मुझसे पूछते थे।

एक बार आपने लिखा—

"आपकी तरह अब हम भी धृतराष्ट्र होने जा रहे हैं।"

एक बार बीमारी से तंग आकर आपने लिखा—"प्रार्थना कीजिए कि सुख से शरीरान्त हो जाय, दुःख न भोगना पड़े।"

एक बार आपने लिखा—

"क्या करता हूँ? जब उद्विग्न होता हूँ तो श्रीमद्भागवत का पाठ किया करता हूँ और भगवान् से प्रार्थना कर रोया करता हूँ।"

कितना कितना उद्धरण करूँ, द्विवेदी जी एक महापुरुष थे, उदार थे, अनेक जनों को हिन्दी-सेवा की प्रेरणा देनेवाली महाशक्ति थे। परमात्मा उन्हें स्वर्ग में शान्ति दे और हिन्दुस्तान में हिन्दी के द्वारा सब जातीय काम होने लगें।

द्विवेदी

लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीप्रसाद मिश्र 'रमा'

तन में जब लौं रही शक्ति 'रमा'
लिखते वे रहे दृग-दृष्टि भो दे दो।
वर-भाँतिन भाँति के ग्रन्थ रचे,
भर दी शुचि हिन्दी सुमातु की वेदो।
बरनौं कहँ लौं शुभ कीरति मैं,
वह सारो साहित्य-कला के थे भेदो।
समता में न आन दिखात कोइ,
अपने सम आप थे एक द्विवेदो।

('श्री वेंकटेश्वरसमाचार' से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी जी

लेखक, रावराजा डाक्टर श्यामबिहारी मिश्र

और

राय बहादुर पंडित सुखदेवबिहारी मिश्र

शोक का विषय है कि मित्रवर पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी अब इस नश्वर लोक में नहीं हैं, पर आपका यश हिन्दी-संसार में बहुत समय तक स्थिर रहेगा। इसका सबसे बड़ा कारण है आपका हिन्दी पर असीम प्रेम। आपके जीवन की दो-चार मुख्य मुख्य बातों का उल्लेख करके हम इस लेख के उद्देश्य पर आवेंगे।

आप दौलतपुर, रायबरेली ज़िला, के निवासी कान्य-कुब्ज ब्राह्मण थे। आपका जन्म संवत् १९२० (सन् १८६३ ईसवी) के लगभग हुआ था। बाल-काल से ही आपकी प्रतिभा प्रस्फुटित होने लगी थी और थोड़े ही समय में आप हिन्दी, संस्कृत और अँगरेज़ी भाषाओं के अच्छे ज्ञाता समझे जाने लगे। कई स्थानों में सेवा करके अंत में आपने झाँसी से रेलवे-आफ़िस की हेड असिस्टेंटी के पद पर आरूढ़ रहकर विश्राम लिया। आपका विवाह समयानुकूल हुआ, पर आपने कोई संतति नहीं छोड़ी। कविवर पण्डित श्रीधर जी पाठक से आपका प्रगाढ़ प्रेम था तथा हिन्दी के अनेक प्रसिद्ध कवियों और लेखकों से आपकी मैत्री थी। मैथिलीशरण जी गुप्त पर आप विशेष प्रेम रखते थे और पाठक जी को एक बड़ा उद्भट कवि ठीक ही मानते थे। हमारे सुहृद्वर पण्डित गिरिजादत्त जी वाजपेयी तथा पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद जी तिवारी आपके प्रगाढ़ मित्रों में से थे। हमारा भी आपसे ख़ासा मैत्री-भाव था और कई वर्ष तक ख़ूब पत्र-व्यवहार रहा तथा दो-तीन बार आप हमारे मान्य अतिथि रहे। उन अवसरों पर जो साहित्यानन्द तथा प्रेमपूर्ण वार्तालाप रहा उसका स्मरण करके अब भी चित्त गद्गद हो जाता है। यों तो द्विवेदी जी ऊपर से कुछ शुष्क प्रकृति के मनुष्य प्रतीत होते थे, पर वास्तव में आप बड़े ही सज्जन पुरुष थे तथा हास्य एवं विनोद की मात्रा भी आपमें कम न थी। संस्कृत एवं हिन्दी-साहित्य में आपकी अच्छी गति थी और सार्वभौमिक ज्ञान भी बढ़ा-चढ़ा हुआ था। हमें शोक है कि आपसे जो हमारा पत्र-व्यवहार समय समय पर हुआ उसे हमने रख न छोड़ा और अपनी साधारण आदत के अनुसार क्रम से नष्ट करते गये, अन्यथा उससे द्विवेदी जी के विषय में हम अनेक जानने योग्य बातें पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर सकते। द्विवेदी जी हमें अपने छोटे भाई मानते थे और हम आपको ज्येष्ठ बंधुवत् मानने में अपना सौभाग्य समझते और आपके लिए पूज्य बुद्धि रखते थे। आपका स्वास्थ्य बहुत दिनों से कुछ गड़-बड़ चला आता था। प्रायः ३७-३८ वर्ष हुए आपने हमें लिखा था कि आपकी आँख में बहुत ख़राबी हो रही थी और दृष्टि के सामने काले बिन्दु देख पड़ते थे तथा साधारण स्वास्थ्य भी अच्छा न था। इसको देखते आप काफ़ी दीर्घायु हुए और निगाह भी चिर काल तक भली-चंगी बनी रही। आर्थिक दृष्टि-कोण से भी आप अच्छी दशा में रहे और यद्यपि आप बहुत धनी न थे, तथापि

> "ताल्लुक़ेदारों के फ़ार्म खोल देने से कृषि की उन्नति नहीं हो सकती। पूरी उन्नति तो तभी होगी जब दस-बीस बीघे ज़मीन जोतनेवाला किसान भी वैज्ञानिक ढंग से खेती करने लगेगा।"
>
> आचार्य द्विवेदी जी, फ़रवरी १९२१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरण-पोषण की पूरी सुविधा थी और सदा ही प्रसन्न रहा करते थे।

हिन्दी-संसार में द्विवेदी जी का बड़ा मान था और अंत में आप प्रायः ऋषिवत् पूज्य माने जाते थे। दो-तीन बार आपको हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति बनाये जाने का विचार प्रस्तुत हुआ, पर कारणविशेष से जो हमें ख़ूब ज्ञात है, आपने उसे दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर दिया। अभी गत वार्षिक बैठक में सम्मेलन ने आपको 'साहित्य-वाचस्पति' की उपाधि दी। यों भी कई साल से आपको लोग 'आचार्य' की उपाधि से विभूषित कर चुके थे। आपकी मृत्यु से हिन्दी-संसार में खलबली मच गई है और हिन्दी-रसिक इस विचार तथा उद्योग में निमग्न हैं कि आपका कौन-सा स्मारक बनाया जाय। यों तो काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने आपके ७०वें जन्मोत्सव के अवसर पर एक 'द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ' प्रकाशित किया था, पर हम लोगों का दृढ़ विचार है कि हिन्दी के ऐसे प्रकाण्ड पंडित, उग्रलेखक, योग्य समालोचक और सत्कवि का एक अच्छा स्मारक अवश्य बनना चाहिए।

अब हम आपके एक मुख्य काम का कुछ उल्लेख करके इस छोटे से लेख को समाप्त करेंगे, और वह है आप का 'सरस्वती' पत्रिका से सम्बन्ध। आपकी योग्यता को इंडियन प्रेस के प्रस्थापक परम हिन्दी-प्रेमी तथा प्रसिद्ध नर-पारखी बाबू चिन्तामणि जी घोष ने पहचाना था और बरबस आपको 'सरस्वती' के सम्पादन का भार ग्रहण करना पड़ा। यह पत्रिका उस समय अपने बाल्यकाल में ही थी, पर द्विवेदी जी ने उसे जिस असीम योग्यता एवं महान् उत्साह के साथ सुचारुरूप से चलाया उसकी जो कुछ प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इस काम में आपने अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया, जिससे 'सरस्वती' का यश न केवल संयुक्त-प्रान्त वरन समस्त भारतवर्ष में फैल गया और इसकी गणना हिन्दी की सर्वोच्च मासिक-पत्रिकाओं में होने लगी। हिन्दी के प्रायः सभी तत्कालीन प्रसिद्ध लेखक और कवि इसमें अपने लेख तथा रचनायें चाव से भेजा करते थे। उन दिनों इसके मासिक अंकों को हिन्दी-रसिक बाट सी देखा करते थे, और अनेक बड़े मार्के के लेख तथा वाद-विवाद इसमें प्रकाशित हुए। द्विवेदी जी उग्र आलोचक और लेखक थे, जिससे कई नामी लेखकों से आपसे तीव्र वाद-विवाद भी हुए। 'कालिदास की निरंकुशता,' 'अनस्थिरता' आदि विषयों पर ख़ूब नोक-झोंक हुई और बड़ा ही आनन्द आया।

कदाचित् यह लिख देना भी असङ्गत न होगा कि हमारी एवं कुछ अंशों तक द्विवेदी जी की भी भूल से आपसे हम लोगों की भी थोड़ी सी अनबन हो गई थी, पर हमारे बीच मित्र-भाव जैसा का तैसा स्थिर रहा, और हमारा आप से जब कभी साक्षात्कार हो गया तब उसी प्रेमभाव से बातचीत हुई जैसे पहले हुआ करती थी। यदि ऐसा न भी होता तो 'जियत लौं है बैर, बैर न मरे करत सुजान' के सिद्धान्तानुसार भला अब आपका यशगान करने में हमें कैसे संकोच हो सकता था? द्विवेदी जी सभी प्रकार से सुयोग्य और महामान्य थे तथा हिन्दी पर आपका भारी उपकार है। अतः हिन्दी के सभी रसिकों का यह पुनीत कर्तव्य है कि आपका समुचित स्मारक शीघ्र स्थापित करें।

वीर महावीर

लेखक, श्री शिवदुलारे शर्मा 'शिव'

चाहत की चोटी पै चढ़ा दूँ देवनागरी को, सोच ये जुटे स्वयं, न चाह को सहारा की!
नागरी हो मग्न लगी नाचने इशारों पर, होके वशवर्त्ती रही आरती उतारा की!
भारती समोद मंजु आनन निहारकर, वार कर प्राण जान लाल पुचकारा की!
वीर महावीर स्वर्ग करने पुनीत गये, करके पवित्र वरभूमि बैसवारा की!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य द्विवेदी जी

लेखक, पण्डित बाबूराव विष्णु पराडकर

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी मेरे लिए गुरुतुल्य थे और इन कुछ पंक्तियों-द्वारा मैं उनकी पुण्य-स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पण करना चाहता हूँ। उनके जीवन पर प्रकाश डालने अथवा उन्होंने हिन्दी-साहित्य और पत्रकार-कला की जो सेवा की है उसका मूल्य आँकने का यह समय नहीं है। वस्तुतः किसी भी मनुष्य के कार्य का मूल्य उसकी मृत्यु के बहुत दिन बाद ही आँका जा सकता है। हमारे लिए, जिन्होंने उनके चरणों में बैठकर अथवा उनके लेखों से शिक्षा ग्रहण की है, वे अमूल्य थे और अन्त तक अमूल्य ही बने रहेंगे।

मेरे लिए आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का महत्त्व उनके सम्पादन-कौशल में है। वैसे तो स्कूल-कालेज में रहते भी मैं 'सरस्वती' पढ़ा करता था, पर सन १९०६ ईसवी से, जब मैंने स्वयं पत्रकार के क्षेत्र में प्रवेश किया, प्रतिमास 'सरस्वती' का अध्ययन करना मेरा एक कर्त्तव्य हो गया और यह सन् १९१५ के अन्त तक ज्यों का त्यों बना रहा। मैं 'सरस्वती' देखा करता था सम्पादन सीखने के लिए। कभी कभी स्वर्गीय श्री सखाराम गणेश देउसकर जी को भी, जो सम्पादन-कला में मेरे गुरु थे, पढ़कर सुनाया करता था और वे ही मुझे उसकी विशेषतायें बताया करते थे। वह विशेषता यह थी कि 'सरस्वती' का प्रत्येक अंग एक सर्वांगपूर्ण चित्र मालूम होता था। सारे अंगों में सामंजस्य हुआ करता था। यह नहीं कि जैसे जैसे लेख आये, वैसे वैसे छाप दिये गये। आदि से अन्त तक उसके चतुर चित्रकार का परिचय मिला करता था।

यह बात मैंने अब तक किसी मासिक पत्रिका में नहीं पाई। अँगरेज़ी की बात जाने दीजिए, उसका स्थान बहुत ऊँचा है। बँगला और मराठी सामयिक पत्र मुझे प्रायः पढ़ने पड़ते थे, पर उनमें भी स्वर्गीय श्री सुरेशचन्द्र समाजपतिद्वारा सम्पादित बँगला 'साहित्य' के सिवा मैंने कोई ऐसा मासिक-पत्र नहीं देखा जिसका प्रत्येक अंक अपने सम्पादक के व्यक्तित्व की घोषणा करता रहा हो। यह 'सरस्वती' की ही विशेषता थी और वह स्वर्गीय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का निजत्व था। दुःख से लिखना पड़ता है कि वह मैंने उन्हीं में पाया और उन्हीं के साथ लुप्त होते भी देखा।

इसी सम्पादन के सम्बन्ध में आचार्य द्विवेदी की दूसरी विशेषता थी होनहार की पहचान और उसको उत्साह-प्रदान। आज हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों में अधिक ऐसे हैं जिन्हें द्विवेदी जी से लिखने का उत्साह मिला था। यह न मिला होता तो शायद वे लेखक न होते। नवीन होनहार लेखक को उत्साहित करने का अर्थ यह नहीं है कि उसका जो लेख आवे वही छाप दिया जाय। इससे तो उसका भविष्य नष्ट हो जाता है। वह अपने दोष समझ नहीं पाता, अतः सुधरने का यत्न भी नहीं करता। 'अहं' की वृत्ति बढ़ जाती है और सस्ते लेखकों की संख्या बढ़ती है। उत्साह-प्रदान के पहले यह आवश्यक है कि लेखक के भीतर जो कला छिपी पड़ी है उसे पहचाने तथा उसे बाहर निकालने का यत्न करे। यह काम द्विवेदी जी ही कर सकते थे। लेखक की विशेषताओं की रक्षा करते हुए उसके लेख का संशोधन करना अत्यन्त कठिन कार्य है। मैंने आचार्य द्विवेदी की ऐसी संशोधित 'कापी' (पुस्तक की) देखी है, जिसमें आपने पन्ने के पन्ने फिर से लिखे थे, पर मूल लेखक की विशेषता कहीं भी नष्ट न होने पाई थी। सम्भवतः 'सरस्वती' में प्रकाशित अधिकतर लेख इसी तरह संशोधित हुआ करते थे। इतना संशोधन करके भी आप लेखकों से पत्र-व्यवहार करते, उन्हें उत्साह-प्रदान करते और कभी कभी चुटकियाँ भी लिया करते थे।

द्विवेदी जी के पोस्टकार्ड का प्रथम दर्शन मुझे सन् १९०८ ईसवी में हुआ था। उन दिनों मैं कलकत्ते में 'हितवार्त्ता' का सम्पादन करता था। उसके कुछ लेखों से संतुष्ट होकर आपने प्रथम कार्ड में मुझे केवल आशीर्वाद दिया था। बाद के कार्डों में मेरी भाषा की त्रुटियाँ दिखाई गई थीं—विषय के अनुरूप शैली न होने की बुराई की ओर मेरा ध्यान दिलाया गया था। उन दिनों मेरे सामने आदर्श था स्वर्गीय पंडित गोविन्दनारायण मिश्र का, जिनकी गम्भीर विद्वत्ता तथा प्राकृत और हिन्दी के साहित्यों का अध्ययन और मनन वस्तुतः अपूर्व था। पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंडित गोविन्दनारायण जी का गद्य कादम्बरी का अनुकरण था और मैं भी उनका पदानुसरण करने का यत्न किया करता था। द्विवेदी जी को यह शैली पसन्द नहीं थी और अपने एक काड में आपने यह लिख भी दिया था। वर्षों बाद मुझे द्विवेदी जी के इस कथन की सत्यता का अनुभव हुआ। मैं भी भाषा सरल और वाक्य छोटे करने का यत्न करने लगा। 'आज' के कुछ लेख आपको बहुत पसन्द आये थे और जब जो लेख अच्छा मालूम हुआ, तुरन्त कार्ड लिखकर अपना सन्तोष प्रकट किया। कार्यक्षेत्र से अवसर ग्रहण करने के बाद भी मेरे जैसे एक साधारण पत्रकार पर भी ऐसी दयादृष्टि रखनेवाला आचार्य हिन्दी को पुनः कब प्राप्त होगा?

हा द्विवेदी जी !

लेखक, श्रीयुत सनेही

(१)

एक ही भारती-भक्त था भावुक राष्ट्र की भाषा का सच्चा पयम्बर।
विज्ञता में विधि दूसरा था तप त्याग विराग में जैसे दिगम्बर।
बारह-बाँट किया अड़तीस ने आगया नन्दन जाने का नम्बर।
तूने दसों किया तू थी उनीस तो क्यों बनी थी तू इकीस दिसम्बर॥

(२)

स्वत्व का तत्त्व महत्त्व जताकर जीवन-युद्ध में जान पै खेले।
सम्पदा की परवा नहीं की विपदायें सहीं दुख शान से झेले।
क्या कहिए गुरुता उनकी गुरु के गुरु हैं जिनके हुए चेले।
मेले लगे जिन्हें देखने को सुरलोक गये वही हाय! अकेले॥

(३)

सुरलोक में हैं इस लोक में भी उनके यश की है पताका गड़ी।
जनता को जगा गये दे गये जोश जता गये जीवन की हैं जड़ी।
वचनावली से वे सरस्वती को हैं पिन्हा गये मोतियों की सी लड़ी।
उनके ही वियोग में रोती पड़ी जिनके बल से हुई हिन्दी खड़ी॥

(४)

जिसकी महावीरता 'शंकर' जी ने सरस्वती के मिस से थी बखानी।
जिसका वर पाके 'गणेश' गणेश हुए थे प्रताप-ध्वजा फहरानी।
जिसने कि पता दिया 'मैथिली' का अब भी जिसका न कहीं कोई सानी।
जिसके बल से बढ़ा आगे 'त्रिशूल' 'सनेही' वही हा! विभूति विलानी॥

(५)

सुध आती है तो फटता उर है पहरों लगी अश्रु-झड़ी रहती है।
उनके प्रिय व्यंग्य विनोद की सोच के शोक-घटा उमड़ी रहती है।
लिखूँ भी तो दिखाऊँ-सुनाऊँ किसे बस लेखनी मौन पड़ी रहती है।
सुरलोक से प्रेरणा देंगे हमें यही सामने आशा खड़ी रहती है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी महत्ता

लेखक, श्रीयुत उदयनारायण त्रिपाठी, एम० ए०, साहित्यरत्न

द्विवेदी जी लेखक कितने बड़े थे, कितनी भाषाओं के वे पण्डित थे, सम्पादक-रूप में भाषा-परिष्कार, लेख-चयन और प्रतिभा की कितनी ऊँची परख वे रखते थे, ये सब बातें एक ओर छोड़कर जब मैं एक सत्य के पुजारी, निर्भीक किन्तु विनम्र साहित्यिक के रूप में उन्हें देखता हूँ तब मुझे ऐसा जान पड़ता है, जैसे ऐसा देवोपम मृदुल स्वभाव का व्यक्ति हमारे साहित्यिक-समाज में इधर सदियों से नहीं हुआ। इसी सम्बन्ध की एक घटना का उल्लेख यहाँ किया जाता है।

'द्विवेदी-मेला' के नाम से प्रयाग में जो साहित्यिक समारोह सन् १९३३ के अप्रैल में हुआ था वह वास्तव में प्रयाग के इतिहास में अभूत-पूर्व था। आचार्य पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी की ७०वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने एक 'अभिनंदन-ग्रंथ' देने का आयोजन किया था। उसी अवसर पर प्रयाग के साहित्य-सेवियों ने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में यह प्रस्ताव किया कि आचार्य के सम्मानार्थ प्रयाग में एक द्विवेदी-मेला किया जाय। आरंभ में इस मेले का कार्य मन्द गति से चलता रहा, किन्तु जब लगभग २०-२५ दिन शेष रह गये तब प्रयाग का प्रायः प्रत्येक साहित्य-सेवी इस साहित्यिक अनुष्ठान को सफल बनाने के लिए कटिबद्ध होगया।

> "इस संसार की सृष्टि एक ऐसे ईश्वर ने की है जिसकी कोई जाति नहीं, जो नीचता और उच्चता का क़ायल नहीं, जो ब्राह्मण और अब्राह्मण दोनों के हृदय-मन्दिरों में बैठा रहता है, जो चाण्डालों ही में नहीं, कीड़ों-मकोड़ों तक में अपनी सत्ता प्रकट करता है।"
>
> (आचार्य द्विवेदी जी, अगस्त १९२४)

उस समय का दृश्य आज भी मेरे स्मृति-पटल पर पूर्ववत् अंकित है। मेले के समारंभ के समय युक्त-प्रांत, बिहार तथा मध्य-प्रांत के प्रायः सभी लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक तथा कवि उपस्थित थे। अनेक राजाओं, ताल्लुक़दारों तथा विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसरों से सभा-मंडप सुसज्जित था। मंच पर आचार्य द्विवेदी जी के अतिरिक्त 'लीडर' के यशस्वी सम्पादक श्री सी० वाई० चिन्तामणि, जस्टिस उमाशंकर जी वाजपेयी, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, महामना पंडित मदनमोहन मालवीय जी जैसे महानुभाव आसीन थे। महामना मालवीय जी ने ही इस मेले का उद्घाटन किया था। इसके पश्चात् हिन्दी तथा संस्कृत में कतिपय प्रशस्तियाँ पढ़ी गईं। तदनन्तर डाक्टर गंगानाथ झा जो इस समारोह के सभापति थे, भाषण देने के लिए उठे।

झा महोदय ने अपने भाषण में क्या कहा, इसके लिखने के पूर्व उनके सभापतित्व-पद के स्वीकार करने के सम्बन्ध में भी यहाँ मुझे एक बात कहनी है। यों तो महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा को प्रयाग-विश्वविद्यालय से सम्बन्ध रखनेवाला प्रायः प्रत्येक व्यक्ति जानता है; किन्तु झा महोदय का कार्यक्षेत्र विश्वविद्यालय तक ही सीमित नहीं रहा है। वे केवल विद्या के ही अर्णव नहीं हैं, बल्कि शील और विनय की भी साक्षात् मूर्ति हैं और यही कारण है कि प्रयाग की छोटी-छोटी पाठशालाओं से लेकर देश की बड़ी-से-बड़ी सभाओं में भी वे सभापति के रूप में अभिनिमंत्रित होते रहते हैं। हाँ, तो द्विवेदी-मेला के लिए भी एक सभापति की आवश्यकता थी। इस मेले के डिक्टेटर पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी के हृदय में यह बात आई कि इस शुभ अनुष्ठान का समारंभ ऋषि-तुल्य झा महोदय के कर-कमलों से ही होना चाहिए। वाजपेयी जी अपने कतिपय सहयोगियों के साथ झा जी के बँगले पर जा पहुँचे। उन्होंने उनसे द्विवेदी मेले का सभापतित्व स्वीकार करने को कहा। झा जी को उसी समय आवश्यक कार्यवश दरभंगा जाना था। किन्तु थोड़ी देर तक मौन तर्क-वितर्क के पश्चात् उन्होंने कहा—"अच्छा, मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ जाऊँगा।" झा महोदय किस तर्क-वितर्क में पड़े थे, इसका रहस्य उस समय किसी की समझ में नहीं आया। किन्तु जब उन्होंने सभापति-पद से भाषण देना प्रारंभ किया तब वह स्पष्ट होगया।

हाँ, तो भाषण में झा महोदय ने कहा—

"सज्जनो, यहाँ जब मैं म्योर-सेन्ट्रल कॉलेज में काम करता था; एक दिन पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी, अपनी लठिया टेकते हुए, मेरे बँगले पर आये। यथोचित आदर-सम्मान के पश्चात् उन्होंने मुझसे कहा—"झा जी, आप 'सरस्वती' में लेख क्यों नहीं लिखते?" मैंने कहा—"पंडित जी, मेरी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं है। संस्कृत और अँगरेज़ी में तो मुझे लिखने का अभ्यास है। लेकिन हिन्दी में तो कदाचित् मैं लिख ही नहीं सकता। मैं घबड़ाता हूँ कि हिन्दी में व्याकरण की अनेक अशुद्धियाँ हो जायँगी।" द्विवेदी जी इसे गंभीर मौन के साथ सुनते रहे, फिर बोले—"आप लिखिए तो। आप पंडित हैं। आप जो लिखेंगे, वह अच्छा ही होगा। अच्छा तो आप लेख भेज रहे हैं न।" यह कह कर द्विवेदी जी वहाँ से चले गये।

इसके पश्चात् साहस करके मैंने 'सरस्वती' में एक लेख भेजा और महीने के अंत में मेरे पास 'सरस्वती' आ पहुँची। मैंने जब ध्यान-पूर्वक उस लेख को पढ़ा तब मुझे विदित हुआ कि यद्यपि भाव सब मेरे ही हैं; किन्तु भाषा में एक प्रकार से आमूल परिवर्तन कर दिया गया है।

झा महोदय ने कहा—"सज्जनो, इस प्रकार, आप देखेंगे कि द्विवेदी जी मेरे हिन्दी के गुरु हैं।" यह कहते-कहते उनका कंठ रुद्ध हो गया और वे द्विवेदी जी का चरण-स्पर्श करने के लिए झुक पड़े।

द्विवेदी जी झट कुर्सी छोड़कर अलग जाकर खड़े होगये। समस्त जनता इस दृश्य को मंत्र-मुग्ध की भाँति देखती रही। जब आवेग कुछ शांत हुआ तब द्विवेदी जी अपने स्थान पर आये और बोले—

"भाइयो, जिस समय डाक्टर गंगानाथ झा मेरी ओर बढ़े, मैंने सोचा, यदि पृथ्वी फट जाती और मैं उसमें समा जाता तो अच्छा होता। झा जी जो मुझे अपना गुरु बतला रहे हैं, यह इनकी नम्रता और विनयशीलता है; किन्तु इन्हें क्या मालूम कि जब मैं इनसे लेख माँगने गया, उससे बहुत पहले ही मैं इन्हें अपना गुरु बना चुका था। प्रत्यक्ष रूप से साक्षात्कार न होने पर भी मैं झा जी के द्वारा सम्पादित संस्कृत की अनेक पुस्तकें पढ़ा करता था। उस समय मैं इन्हें अपने गुरु के ही रूप में देखता था और मन ही मन सोचता था कि अपनी लेखनी-द्वारा जो विभूति ये संस्कृत और अँगरेज़ी को प्रदान कर रहे हैं, यदि वही हिन्दी को भी ये देने लगें तो सचमुच इससे राष्ट्र और हिन्दी का कितना कल्याण होगा!"

मैंने देखा कि इस बात को कहते-कहते द्विवेदी जी का कंठ रुद्ध होगया और उनके नेत्रों में आँसू छलछला आये। वास्तव में यह दो आचार्यों का नहीं, ऋषियों का नहीं, महात्माओं का सम्मिलन था!

इस घटना का महत्त्व उस समय और बढ़ जाता है, जब हम द्विवेदी जी को अपने युग के भाषा-निर्माता, एक सर्वश्रेष्ठ सम्पादक तथा साहित्य-निर्देशक की दृष्टि से देखकर उनकी गुरुगम्भीर कर्तव्य-निष्ठा तथा एकरस (टस-से-मस न होनेवाली) कार्य-शैली पर दृष्टिपात करते हैं। हिन्दी-भाषा और उसके साहित्य के नव-निर्म्माण के सम्बन्ध में जो व्यक्ति लौहस्तम्भ की भाँति दृढ़ रहा हो, आप देखेंगे कि वही अपने जीवन में कितना भाव-प्रवण, कैसा कुसुमादपि मृदुल था!

"शोकाञ्जलि"

लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीशङ्कर मिश्र 'निशङ्क'

ग्रन्थियाँ अनेक काव्य-भाषा में पड़ेंगी जब,
विश्व में द्विवेदी बिना कौन सुलझायेगा।
गद्य का प्रवाह मन्द होगा जब भारत में,
बन अग्रदूत कौन युक्तियाँ बतायेगा।
होकर 'निशंक' समालोचना-जगत बीच,
कौन अब लेखनी प्रखर चमकायेगा।
शारदा के हेतु कौन बुद्धि-रवि-रश्मियों से,
कल्पना-सरों में भाव-पंकज खिलायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धाञ्जलि

लेखक, डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए०, डी० एस-सी०

आचार्य श्री महावीरप्रसाद जी द्विवेदी विद्यावाचस्पति के स्वर्गारोहण का समाचार पढ़कर प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी के हृदय पर भारी चोट लगी होगी। हिन्दी-संसार में उनका जो स्थान था वह सम्भवतः भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद आज तक किसी को भी प्राप्त नहीं हुआ है। हिन्दी के आधुनिक आकार-प्रकार और स्वरूप का निर्धारण करने में उन्होंने जो कार्य किया है वह वैसा ही है जैसा कि संस्कृत के लिए पाणिनि और पतञ्जलि ने किया था। इसके सिवा आधुनिक हिन्दी-साहित्य की रचना में भी उन्होंने बड़े महत्त्व का काम किया है। हिन्दी गद्य में निबन्ध-रचना, समालोचना और गंभीर लेखों की शैली के भी पथ-प्रदर्शक थे। हिन्दी-पद्य-विभाग में उन्होंने खड़ी बोली की कविता और नवीन विषयों पर कविता करने को ऐसा प्रोत्साहन दिया कि हिन्दी-काव्य की प्रवृत्ति ही दूसरी ओर हो गई। आज कितने ही प्रसिद्ध लेखक और कवि उनकी सहायता और प्रोत्साहन का गुण-गान कर रहे हैं। इन्हीं अपूर्व सेवाओं के कारण उनका आदर सारा हिन्दी-संसार करता है और करता रहेगा। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में उनकी कीर्ति सदैव स्वर्णाक्षरों में अमर रहेगी।

आचार्य द्विवेदी जी को अपने काम करने में अनेक बाधाओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। किन्तु अपने त्याग, सन्तोष, दृढ़ व्रत और निर्भीकता के प्रभाव से सब कठिनाइयों को झेलकर उन्होंने अपना संकल्प पूर्ण किया और अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लिया। द्विवेदी जी का आत्म-बल और अदम्य उत्साह देखकर सब आश्चर्य करते और उन पर श्रद्धा रखते थे। वे जिस बात को तथ्य और सत्य समझते थे उसको निर्भय होकर बिना वाग्जाल और लल्लो-पत्तो के साफ़ साफ़ कह देते थे। इस कर्त्तव्य के पालन में वे मित्र-अमित्र का भेद नहीं रखते थे। वे प्रशंसा अथवा निन्दा के कारण अपने कर्तव्य से कभी विचलित नहीं हुए।

आचार्य द्विवेदी जी के प्रोत्साहन से जिस प्रकार लोग कृतकृत्य और हर्षित होते थे, उसी प्रकार उनकी लेखनी के आघात से लोग घबरा और तिलमिला उठते थे। हिन्दी के बड़े बड़े लेखक उनका सामना करने से डरते रहते थे। इसी कारण यह अपवाद उठ खड़ा हुआ कि द्विवेदी जी का स्वभाव उग्र और तीखा था। किन्तु वस्तुतः यह बात ठीक नहीं है जैसा कि इन पंक्तियों के लेखक को स्वयं अपने अनुभव से ज्ञात हुआ। मैंने हिन्दी की कुछ रीडरों का सम्पादन किया था, जिनको शिक्षा-विभाग ने स्वीकृत कर लिया था। द्विवेदी जी के किसी बालक को वे पढ़ने को मिलीं और इस प्रकार वे उन तक पहुँच गईं। उनमें द्विवेदी जी को कुछ ऐसे दोष दिखाई पड़े जिनसे उनका हृदय क्षुब्ध हो गया। यद्यपि उन्होंने इस समय लिखना बन्द कर दिया था, तथापि बालकों की शिक्षा के हित के लिए उन्होंने उन रीडरों की ज़ोरदार आलोचना प्रकाशित की। उन लेखों को पढ़कर प्रकाशक तो काँपकर अनाप-शनाप कहने लगे, और सच तो यह है कि मैं भी स्तब्ध हो गया। किन्तु ऐसे गुरुवर का तमाचा खाकर भी उनके प्रति मेरी श्रद्धा में तनिक भी बल न आया। उन्होंने अपना कर्तव्य समझकर मेरे और बच्चों के हित के लिए ही मुझे कनेठी दी थी। यह उनका अधिकार ही था। मैं क्या कहता और क्या करता। यह बात उनको मेरे एक परम मित्र के द्वारा मालूम हो गई। उन्होंने कृपा करके मुझे उन्हीं मित्र के द्वारा सान्त्वना दी। समय बीत गया और बात भूल-सी गई। किन्तु जब 'साहित्य-सम्मेलन' ने प्रयाग में अभिनन्दन करने के लिए उनको निमन्त्रित किया तब 'हिन्दी-प्रेस' में उनके दर्शन करने का मुझे दूसरी बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस अवसर पर उनका ध्यान मैंने अपनी ओर आकर्षित किया। मेरा कुछ देर तक उनसे वार्तालाप हुआ। उस समय उनके हृदय की कोमलता, वत्सलता, सहृदयता, सुहृदता, सरलता और मानसिक पवित्रता का जो अनुभव मुझको हुआ वह मैं कभी न भूलूँगा। वह एक प्रकार से अनिर्वचनीय है। उसने द्विवेदी जी के सम्बन्ध में प्रचलित अपवाद का मेरे हृदय से मूलोच्छेदन ही नहीं कर दिया, बल्कि उनके प्रति मेरी श्रद्धा को कई गुना बढ़ा कर अटल भी कर दिया। जो लोग दृढ़व्रत, निर्भयता, सत्यता, निष्पक्षता और गंभीर एवं उत्तरदायित्वपूर्ण उदारता और सुहृद भाव का साहित्य-क्षेत्र में आदर करते हैं उनके लिए तो द्विवेदी जी ऋषि के समान और आदर्शरूप अवश्य रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोकोच्छ्वास

लेखक, श्रीयुत जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी'

स्वर्ण उषा का लूटा किसने—
रजनी के हैं रत्न चुराये।
सूर्य्य सुधाकर तारे, सारे
किसने हाय! त्रिशङ्कु बनाये?

कौन रसा को सुमन-स्मित से
मधु-ऋतु में है नित्य हँसाता
अम्बर को अम्बुद-आँसू से
पावस में है कौन रुलाता?

एक विहग प्यासे के प्राणों—
को दे वारिद-वारि-पिपासा।
एक विहग को दे चिनगारी—
चुगकर चन्द्रमिलन की आशा।

दिन का हास्य, रुदन रजनी का
दे नभ को—कर उज्ज्वल, नीला।
दे सागर की लोल लहरियाँ—
को उत्थान, पतन की लीला।

राका शशि-मुख कालिख देकर,
नीचे, उडुगण उच्च गिराये।
विश्व प्रकाशित करनेवाले—
रवि में अगणित दाग़ लगाये।

सुन्दर सुन्दर स्वप्न दिखाकर
आशा का नव बाग़ लगाकर।
पृथ्वी पर आरोपित करके
दिव से कल्पद्रुम को लाकर।

पूर्ति हमारी आकांक्षाओं—
की करने का अभिनय रचकर।
सुख दिखलाकर दुख देता है
कौन अलख, आँखों से बचकर?

× × ×

दृग मुद्रित कर लेता मैं, यदि—
होती केवल दर्श-पिपासा।
विरह-वह्नि ही उर में होती
तो न निकलती शीतल श्वासा।

रहता मौन प्रलाप न करता—
मैं टूटी-फूटी भाषा में।
यों न निराशा लेकर रोता—
होता मैं हर्षित आशा में।

धीरज-बाँध बाँध अवरुद्धा
नयनों को धारा कर लेता।
मिल जाता जो दैव अदय तो
मैं वारा-न्यारा कर लेता।

× × ×

अरे! राष्ट्रभाषा-निर्माता—
पूज्याचार्य महान् द्विवेदी।
वर्तमान हैं नहीं जगत में—
क्या? हम सबके प्रान द्विवेदी।

मैं तो आँखें मूँदे मूँदे-
दर्शन कर रहा अब भी उनके।
प्रभु के-से पावन पाँवों का—
स्पर्श कर रहा अब भी उनके।

नतशिर हो आकाशस्पर्शी—
जब लेकर पद-रज उठता है।
"चिरजीवी होवो" परिचित स्वर
इन कानों में बज उठता है।

मुदित बनाने को मन मेरा
सरस कथायें जो कहते थे।
छोटों को छोटे कार्यों पर
प्रोत्साहन देते रहते थे।

सीख रहा था इङ्गित से मैं
चलना जिनकी तर्जनि धरके।
पीछे थे जो, गिरते-पड़ते—
शिशु को आगे आगे करके।

एक अजाने पथ में मुझको
छोड़ गये विश्वास नहीं है।
देव अमर मर सकते हैं? यह
क्या है, यदि परिहास नहीं है?

× × ×

संध्या और उषा दोनों ही...
एक अलक्ष्य जगत तक जातीं।
अपने अपने नियत समय पर
हँसती रोती हैं फिर आतीं।

नभ नालाञ्चल में दो बालक
जो दिन-रात चला करते हैं।
खेला करते हैं लुक-छिपकर
फिर सम्मुख निकला करते हैं।

ऐसे ही वह आर्य्य हमारे
लुक-छिपकर फिर आ जायेंगे।
हस्त अभय शिर पर फेरेंगे
प्यार करेंगे दुलरायेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी श्रद्धाञ्जलि

लेखक, श्रीयुत कालिदास कपूर, एम० ए०, एल-टी०

न् १९३१ की कार्तिकी पूर्णिमा के अवसर पर मुझे द्विवेदी-तीर्थ में उसके देवता का सदेह दर्शन प्राप्त हुआ था। उसके पश्चात् भी कई बार दर्शन हुए, परन्तु द्विवेदी-तीर्थ जाने का सौभाग्य न प्राप्त हो सका। इधर सुना था कि द्विवेदी जी बहुत बीमार हैं, रायबरेली आगये हैं, रायबरेली जाकर द्विवेदी जी के अंतिम दर्शन करने की इच्छा भी हुई, परन्तु दर्शन भाग्य में न थे और २१ दिसबर के ब्राह्ममुहूर्त पर उन्होंने अपना नश्वर शरीर छोड़ कर अमरत्व प्राप्त किया।

द्विवेदी जी के शरीर-पात की ख़बर सुनकर दुःख होना स्वाभाविक था। बचपन का समय याद आया जब मैं उनकी 'सरस्वती' के सहारे हिन्दी सीखता था; फिर, उस पत्र की याद आई जिसमें पहला लेख उनकी सेवा में पहुँचने पर, उन्होंने मेरे प्रति अपनी आत्मीयता प्रदर्शित की और मुझे सेवा करने के लिए प्रोत्साहित किया। गुरु-शिष्य का संबंध जो अब तक हम दोनों के बीच परोक्ष रूप से था, अब प्रत्यक्ष हो गया और उनका आदेश-पालन मेरा जीवन-धर्म हो गया। कई बार अपने देवता के दर्शन कर सका, उनके आशीर्वाद से हिन्दी की थोड़ी बहुत सेवा भी कर सका, परन्तु परिस्थितियाँ मुझसे हिन्दी-साहित्य की अनवरत सेवा कराने के प्रतिकूल थीं। मैं उनके आदेश-पालन में अपना पूरा समय न दे सका।

द्विवेदी जी के निधन की सूचना से मेरी व्यक्तिगत कल्पना में दुःख की रेखायें अवश्य पड़ीं, परन्तु उनका साहित्यिक जन्म तो उनके शरीरांत होने पर ही हुआ। हम शोक-सभा क्यों करें, उनका कीर्तन क्यों न करें? जिस महापुरुष ने हिन्दी-गद्य को राष्ट्र-भाषा का पद पाने योग्य बनाया, जिसने अपने अनुशासन और प्रोत्साहन से सैकड़ों हिन्दी-लेखक उस काल में तैयार किये जब हिन्दी का विश्वविद्यालयों में कोई स्थान न था, जिसने खड़ीबोली की कविता के युग का प्रवर्तन किया और जिसके जीवन-चरित में बीसवीं शताब्दी के जन्म से अब तक के हिन्दी-साहित्य का इतिहास निहित है, उसके अमरत्व प्राप्त करने पर हम क्यों शोच करें? क्यों न तुलसीदास जी के शब्दों को कुछ बदलकर हम भी यह कहें—

सोचनीय नहिं हिन्दी राऊ। भुवन चारि दस प्रगट प्रभाऊ॥

परन्तु क्या द्विवेदी-कीर्तन करने से ही हिन्दी-साहित्य के महावीर की आत्मा को शान्ति मिलेगी? शिष्यवर प्रेमनारायण टंडन ने द्विवेदी जी के साहित्यिक और वैयक्तिक महत्त्व पर कुछ लेख लिखे हैं और उनका संग्रह वे पुस्तकाकार प्रकाशित कर रहे हैं। इस संग्रह-द्वारा उन्होंने द्विवेदी जी की जो स्मृति-सेवा की है वह सराहनीय है। अभिनंदन-ग्रंथ के पश्चात् हिन्दी-साहित्य में अभी तक उनकी पुण्यगाथा पर एक यही पुस्तिका प्रकाशित होने जा रही है। परन्तु क्या इतना ही यथेष्ट है? मैं जानता हूँ कि मुझे रास्ता दिखाने का हक़ नहीं है क्योंकि मैं स्वयं अभी तक 'खुदरा फ़ज़ीहत' ही रहा, द्विवेदी-युग पर एक विशद ग्रंथ लिखने की योजना हृदय में रखते हुए भी साहित्य की यह आवश्यक सेवा न कर सका; परन्तु अब हिन्दी-संसार में उच्च शिक्षाप्राप्त साहित्य-सेवियों की कमी नहीं है। इसलिए 'पर उपदेश' की धृष्टता अपने लिए क्षम्य समझता हूँ।

इस सम्बन्ध में यह भी आवश्यक है कि द्विवेदी जी के जो प्रकाशित लेख-संग्रह हैं उनके साथ साथ उन प्रतिलिपियों का चुना हुआ संग्रह भी प्रकाशित किया जाय जिनमें आये हुए लेखों को उन्होंने अपनी क़लम से संशोधित और परिमार्जित किया था। इस तरह के दो-एक लेख मैंने 'सरस्वती' में देखे थे। परन्तु उनका पुस्तकाकार प्रकाशन भी आवश्यक है।

क्या द्विवेदी जी का कोई प्रस्तर-स्मारक भी हो सकता है? क्या हम उनकी जन्मभूमि दौलतपुर में हिन्दी-साहित्य का एक आधुनिक तीर्थ स्थापित करने की योजना नहीं कर सकते? मनोहारिणी जाह्नवीतट के किनारे बैसवाड़े की वीरभूमि के केन्द्र में देश के साहित्यिकों के लिए यहाँ एक विश्रांति-गृह बनना सब प्रकार से उचित है। अभी दौलतपुर का मार्ग भी दुर्गम है। द्विवेदी जी एक राष्ट्रीय व्यक्ति थे; द्विवेदी-तीर्थ एक राष्ट्रीय तीर्थ होगा। हमारी राष्ट्रीय सरकार अन्य तीर्थों तक जनता को सुविधायें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचाने का प्रयत्न करती है। क्यों न उससे यह भी विनम्र निवेदन करें कि वह दौलतपुर के दुर्गम मार्ग को सड़क बनाकर सुगम कर दे। फिर वहाँ द्विवेदी-मंदिर स्थापित हो जिसमें उनकी कृतियों के साथ साथ हिन्दी-साहित्य के अन्य रत्न भी संगृहीत हों; विश्रांति के लिए कुटियाँ हों, जहाँ थके हुए साहित्यिक स्वास्थ्य लाभ कर सकें और साहित्य-सेवा कर सकें।

शोकाञ्जलि*

लेखक, श्रीयुत ज्वालाप्रसाद मिश्र, रायगढ़ स्टेट, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०

आचार्य द्विवेदी जो अपने, क्या कहा? लोक में नहीं रहे।
उस कर्णधार को खोकर हम फिर रहे आज फिर बहे बहे॥

खो दिया आज हमने अपना हिन्दी का दुर्धर महारथी।
वह अपनी उपमा आप रहा उसकी बस कहीं मिसाल न थी॥

हिन्दी के वर्तमानयुग का वह आदि प्रवर्त्तक पथदर्शक।
साहित्य-स्वरूपिणी वसुधा का था मानो कुशल कृती कर्षक॥

उसकी बोई भी कृषि कैसी फल-फूलों-युत लहलहा रही।
कितने कवि और लेखकों को वह पालनकर्त्री कहा रही॥

कितनी गुरु गौरवमयी हुई उसको पाकरके सरस्वती।
हिन्दी-सेवा के व्रत का वह आजन्म रही आदर्श व्रती॥

था कूट कूट कर भरा हुआ उसमें हरदम आत्माभिमान।
दीनों दुखियों के लिए नित्य न्यौछावर उसके रहे प्राण॥

वह दौलत थी 'दौलतपुर' की जो सहसा यों लुट गई आज।
उजड़ी हिन्दी की हाट बाट बिखरे हैं उसके सकल साज॥

इस रोने में क्या है आओ हम हिन्दी का वह काम करें।
जिससे आचार्य द्विवेदी का युग युग तक जीवित नाम करें॥

निज भाषा की उन्नति ही तो उनकी सुन्दर-सी स्मृति होगी।
उनका स्मारक, अपनी कोई सुन्दर साहित्यिक कृति होगी॥

वह अमर रहेंगे, अमर रही यदि अपनी यह प्यारी हिन्दी।
हैं कृष्ण कहाँ? पर उनके गुन गाती है अब भी कालिन्दी॥

* रायगढ़ में द्विवेदी-शोकसभा के अवसर पर लेखक-द्वारा पठित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य द्विवेदी जी युवावस्था में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

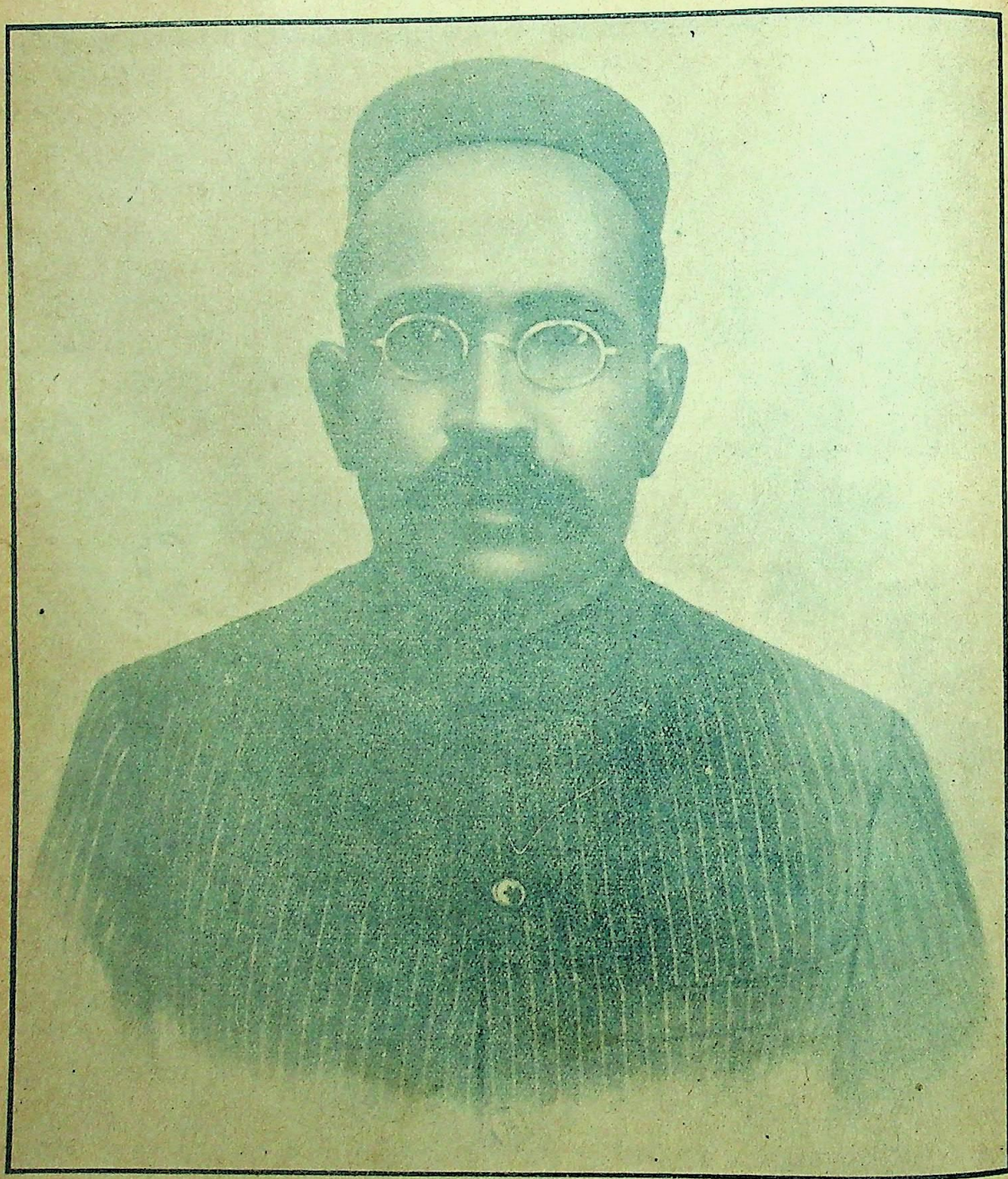

आचार्य द्विवेदी जी—सन् १९१४ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी श्रद्धाञ्जलि

लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास

स्वर्गवासी पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी से मेरा परिचय सन् १८९८ के लगभग हुआ जब उन्होंने 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' में अपने लेख और पद्य देने आरम्भ किये। मुझे स्मरण है कि एक बेर उन्होंने विधवा-विलाप पर एक कविता लिखकर पत्रिका में प्रकाशित होने के लिए भेजी थी। उस समय पत्रिका के संपादक गोलोकवासी बाबू राधाकृष्णदास थे। भारतेन्दु जी के घराने से उनका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। इस वंश का प्रमुख व्यक्ति अग्रवालों की पंचायत का चौधरी होता था। उस समय विधवाओं के पुनर्विवाह की चरचा किसी प्रतिष्ठित कुल में कोई नहीं करता था। बाबू राधाकृष्णदास ने द्विवेदी जी की उस कविता को छापना स्वीकार न किया। इससे चिढ़कर उन्होंने एक 'गर्दभस्तोत्र' लिख भेजा जो पत्रिका में प्रकाशित हुआ।

सन् १९०२ में जब मैंने 'सरस्वती' के संपादकत्व से इस्तीफ़ा दिया तो इंडियनप्रेस के स्वामी बाबू चिंतामणि घोष को एक सुयोग्य व्यक्ति को संपादक बनाने की विशेष चिंता हुई। उन्होंने मुझसे परामर्श करके पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी को चुना और उनसे पत्र-व्यवहार किया। कुछ लिखा-पढ़ी के अनन्तर उन्होंने यह कार्य करना स्वीकार किया और जनवरी सन् १९०३ से वे 'सरस्वती' का संपादन करने लगे। उनके हाथों में जाकर 'सरस्वती' ने जो उन्नति की और अपनी धाक जमाई वह सबको विदित है। चिंतामणि बाबू ने द्विवेदी जी से कहा था कि हमें 'सरस्वती' को स्थायी बनाना है। अभी तो उसकी छपाई का भी ख़र्च नहीं निकलता है। आप सरल से सरल भाषा में अनेक विषयों पर लेख लिखें और लिखवावें जिसमें सब लोग उसकी ओर आकृष्ट हों। द्विवेदी जी ने इस परामर्श को स्वीकार किया और तदनुसार वे संपादन-कार्य करने लगे। अतएव 'सरस्वती' के लेखों से उनकी भाषा के आदर्श को नहीं समझना चाहिए। उनकी वास्तविक भाषा का परिचय तो उनके उस भाषण से मिल सकता है जो उन्होंने कानपुर में होनेवाले हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में, स्वागताध्यक्ष के पद से, दिया था।

द्विवेदी जी ने 'सरस्वती'-द्वारा हिंदी-भाषा को सुन्दर और व्याकरणसिद्ध रूप दिया। इस समय तक लोग भाषा की शुद्धता पर विशेष ध्यान नहीं देते थे। जो जिसके मन में आता, लिख मारता था। यों तो हिन्दी लिखनेवालों की संख्या ही बहुत कम थी, जो लिखते भी थे वे भाषा के सौष्ठव का उतना ध्यान नहीं रखते थे। द्विवेदी जी ने इस उच्छृङ्खलता को बड़े ज़ोर के साथ रोका और शुद्ध भाषा लिखने पर ज़ोर दिया। साथ ही वे नवयुवकों और अँगरेज़ी पढ़े लिखे लोगों को विविध विषयों पर लेख लिखने के लिए उत्साहित करने लगे। जो लेख छपने के लिए आते थे उनका वे स्वयं संशोधन और सम्पादन करते थे। उनके सम्पादन-काल में 'सरस्वती' में जितने गद्य-पद्यमय लेख छपे उनकी पूरी फ़ाइल, उनके किये संशोधनों के साथ, 'नागरी-प्रचारिणी सभा' काशी, के पुस्तकालय में सुरक्षित है। उसको देखकर जिज्ञासु व्यक्ति अपनी ज्ञान-पिपासा शांत कर सकते हैं।

द्विवेदी जी का महत्त्व उनके लेखों में नहीं है। उनका महत्त्व विशेषकर इसी बात में है कि उन्होंने भाषा को परिमार्जित और सुन्दर रूप देने का सफलता-पूर्वक उद्योग किया। कहें तो कह सकते हैं कि वे वर्त्तमान हिंदी-भाषा के निर्माता के नाम से प्रसिद्ध रहेंगे। वे कुछ दिनों तक बम्बई में रहे थे। वहाँ उन्होंने मराठी-भाषा सीखी और फिर संस्कृत छंदों में, खड़ी बोली में, कविता का मार्ग प्रदर्शित किया। सारांश यह है कि द्विवेदी जी ने भाषा के निर्माता और खड़ी बोली की कविता के प्रचारक के रूप में आशातीत सफलता प्राप्त की।

इस उद्देश्य को लेकर उनको अपनी धाक जमाना आवश्यक हुआ। बाबू बालमुकुंद गुप्त से, जो उस समय के प्रसिद्ध साप्ताहिक-संपादकों में थे, उनकी मुठभेड़ हुई और पत्रों में दोनों ओर से खूब लेख निकले। उन्हें पढ़कर लोग समझ सकते हैं कि भाषा के रणक्षेत्र में दो बली योद्धाओं का कैसा मल्लयुद्ध हुआ था।

मुझे उनके सम्बन्ध की बहुत सी बातें स्मरण आ रही हैं जिससे उनके चरित्र का कुछ स्पष्टीकरण हो सकता है। पर इस समय न इतना अवकाश ही है और न लंबे लेख के लिए 'सरस्वती' में स्थान ही है अतएव यावत् अवसर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिला तो सब बातों को लिखने का उद्योग करूँगा। केवल एक बात यहाँ लिख देना चाहता हूँ। जब 'हिन्दी-कोविद-रत्नमाला' के लिए मुझे उनके चरित्र की आवश्यकता हुई तब इसके लिए मैंने उनसे प्रार्थना की। उन्होंने लख देना स्वीकार किया। अंत में लखीमपुर (खेरी) के पंडित सूर्यनारायण दीक्षित, जो उस समय सेंट्रल हिन्दू कालेज के छात्र थे, मेरे अनुरोध से द्विवेदी जी से मिले और उनका जीवन-वृत्तांत जानकर उन्होंने लिखा तथा संशोधन के लिए उनके पास भेजा। उसका संशोधन कर उन्होंने दीक्षित जी के पास भेज दिया। उसी में यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन कर मैंने उसे पुस्तक में दे दिया। उसमें मैंने अंत में इतना बढ़ा दिया था कि द्विवेदी जी का स्वभाव किंचित् उग्र है। यह छप गया तब उनको उसका पता लगा! 'उग्र' शब्द पर वे आपे से बाहर होगये और प्रेस को लिखा कि या तो इस वाक्य को निकाल दो या मेरा चरित्र ही न छापो। बाबू चिंतामणि शांतिप्रिय मनुष्य थे। उन्होंने मुझे समझाया कि तुम्हारा लिखना तो प्रकाशित हो गया, अब आग्रह करके क्यों विवाद बढ़ाते हो। मैं मान गया और वह चरित्र उस वाक्य को छोड़कर पुनः छापा गया। द्विवेदी जी के चरित्र की, उन्हीं के हाथ से संशोधित, प्रति अब तक मेरे पास है। संभव हुआ तो किसी समय उसका फोटो चित्र छपवा दूँगा।

मैं अंत में द्विवेदी जी के परलोकगत आत्मा को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ। उन्होंने हिन्दी की सेवा का जो बीड़ा उठाया था उसे २० वर्ष तक अविचल रूप से निबाहा और वे हिन्दी-भाषा के विकास और प्रचार में दृढ़ता-पूर्वक अपना कर्तव्य पालन करते रहे। यों तो मनुष्य में कोई न कोई त्रुटि होती ही है पर हमको तो उनके किये उपकारों का ध्यान करना चाहिए और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए।

क्या ही अच्छा होता यदि इंडियन प्रेस उनकी समस्त कृतियों का, समयानुक्रम से, एक सुन्दर संग्रह निकालता जिससे आगे चलकर भाषा के तत्त्व की खोज करनेवालों को ईप्सित सामग्री प्रस्तुत मिलती।

पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी

लेखक, पंडित गिरिजादत्त वाजपेयी, एम० ए०

आपने हमको यह आज्ञा देकर कि मैं श्रीमान् पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी का कुछ चरित आपके फ़रवरी के अंक के लिए, जो उनकी यादगार में होगा, लिखकर भेजूँ, मुझे अनुग्रहीत किया है।

मैं एक तो ऐसे ही इस योग्य नहीं कि ऐसे महान् विषय पर उनकी महत्ता के माफ़िक कुछ लिख सकूँ, दूसरे अस्वस्थ होने के कारण अधिक दिमाग़ को ज़ोर नहीं दे सकता, परन्तु एक तो आपकी आज्ञापालन करने का ख़याल, दूसरे हमारा और स्वर्गीय पंडित जी का घनिष्ट सम्बन्ध मुझे मजबूर करता है कि जो कुछ हो सके आपकी सेवा में लिखकर भेजूँ।

यों तो बड़े बड़े पंडित द्विवेदी जी की विद्वत्ता, गंभीरता, परोपकार आदि का वर्णन करेंगे ही मैं इनके बारे में कुछ न कहूँगा, न कहने के समर्थ ही हूँ। मैं केवल वह हाल लिखूँगा जिसका उनके साथ झाँसी में मुझे ख़ुद व्यक्तिगत अनुभव हुआ।

मेरा द्विवेदी जी का सम्बन्ध सन् १८९४-९५ से शुरू हुआ था। उसी साल स्कूली तालीम ख़तम करके मैं अपने पिता के आज्ञानुसार उनके साथ झाँसी में गर्मी की छुट्टियाँ बिताने गया था।

उस समय पंडित जी झाँसी के इंडियन मिडलैंड रेलवे में जो पीछे से ग्रेड इंडियन पेनिनसुला रेलवे में मिल गया, एक मामूली क्लर्क थे। हाँ थे तो केवल एक मामूली क्लर्क, मगर उनकी विद्या और गुणों के कारण उनका जो मान और दबदबा देखा उससे मुझे आश्चर्य होता था। सब हिन्दुस्तानी लोग तो उन्हें अपना अगुआ मानते ही थे, बड़े साहब यानी जनरल ट्रैफ़िक मैनेजर जिनके दफ़्तर में द्विवेदी जी काम करते थे वे भी हर बात में उन्हीं से राय लेते और उसी पर अमल करते थे। उन दिनों की उनकी दिनचर्या जो मैंने देखी वह यह थी।

बहुत सवेरे उठकर पहले तो संस्कृत के ग्रन्थों का अवलोकन करते, फिर चाय के बाद ७ बजे से ८ बजे तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक महाराष्ट्र पंडित से, जिनको उन्होंने अपना मास्टर बनाया था, कुछ ग्रन्थों के बारे में पूछ-पाँछ करते, फिर कुछ गुजराती, बंगाली, संस्कृत की पत्रिकाओं का अवलोकन करते और उसके बाद थोड़ा सा ख़ुद भी लिखते। १० बजे के क़रीब भोजनोपरान्त दफ़्तर जाते थे। वहाँ जो सिर झुकाया तो १ बजे तक ढेर के ढेर फ़ाइलों को साफ़ करके तब २ बजे के क़रीब उठकर कुछ जलपान किया करते। लौटकर अँगरेज़ी अख़बार अवलोकन करते और जो काम आता जाता उसे समाप्त करते। ४-५ बजे के निकट घर आकर हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदलकर दरवाज़े पर बैठ जाते। जो लोग आते उनसे वार्तालाप होता। उनको नेक सलाह देना और किसी को कुछ ज़रूरत हुई तो उसका भी इन्तिज़ाम करना। बस घंटे डेढ़ घंटे यही उनका दिल-बहलाव होता। इसके बाद फिर किताबों का अवलोकन करके ९-१० बजे तक बिस्तर पर चले जाते।

इस कठिन मेहनत की उनको यों ज़रूरत हुई कि उनकी स्कूली तालीम बहुत थोड़ी थी।

अपनी ख़ास ज़रूरतें इतनी कम रखते थे कि शायद आमदनी के तिहाई हिस्से में अपना सब काम चला लेते थे। बाक़ी अख़बारों के चन्दों में, पुस्तकें ख़रीदने में और दूसरों की मदद करने में जाता। उस वक़्त उनको केवल १०० या १२० रुपये मिलते थे। इसमें से १० या १५ महाराष्ट्र पंडित के नज़र होता था। केवल ५ रुपये महीने का मकान था। दफ़्तर हमेशा पैदल ही जाते और किसी क़िस्म का विद्या के सिवा और कोई शौक़ न रखते थे। उनके साहब ने उन्हें तरक़्क़ी पर इधर-उधर भेजना चाहा, यहाँ तक कि झाँसी का ही स्टेशन-मास्टर बनाना चाहा, मगर इस डर से कि कहीं उनकी दिनचर्या में तबदीली न करनी पड़े या विद्योपार्जन का समय न कम हो जाय वे बराबर इनकार ही करते रहे।

उसी दफ़्तर में ३ या ४ वर्ष में चीफ़ क्लर्की तक पहुँचे। इसके पीछे रेलवेवालों ने उनको बड़े ओहदों पर बम्बई को भेजना चाहा, मगर उनको न तो लोभ था, न कोई शौक़। उन्होंने अपना पुस्तकालय और सरल जीवन छोड़ना पसन्द न किया। जब आई० एम० आर० लाइन के जी० आई० पी० में मिल जाने पर उन्हें बम्बई जाना ही पड़ा तब थोड़े ही दिनों के बाद नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया और बिलकुल ही विद्याव्यसन में लग गये। यह वह समय था जब वे 'सरस्वती' के सम्पादन का भार अपने ऊपर ले चुके थे। वे झाँसी छोड़कर कानपुर में जुही में एक छोटे से मकान में जाकर रहे। उस वक़्त उनकी अवस्था केवल ४० वर्ष के लगभग थी। इतनी थोड़ी अवस्था में कई भाषाओं के विशेषकर संस्कृत के महान् पंडित भी होगये और काफ़ी धनोपार्जन भी कर लिया कि स्वाधीन रह सकें और लोगों की मदद भी कर सकें।

यह मैंने पहले ही कहा है कि स्कूली तालीम उनकी बहुत थोड़ी थी। अपने पराक्रम से इस वक़्त तक उन्होंने संस्कृत, बँगला, मराठी, गुजराती और उर्दू में भी अच्छे पंडित हो गये। अँगरेज़ी में सिर्फ़ यही नहीं कि सभी किताबें, किसी विषय पर हों, पढ़ लेते थे, बल्कि यह भी कि किसी ग्रेजुएट के मुक़ाबिले में लेख लिख सकते थे। मगर सबसे ज़्यादा प्रेम उनको मातृभाषा और संस्कृत से था। संस्कृत में तो पढ़ने-लिखने के अलावा धाराप्रवाह बोल भी सकते थे। इस महान् परिश्रम का असर उनके स्वास्थ्य पर ख़राब हुआ। ४० वर्ष की उम्र के पहले ही निद्रा न आने की शिकायत शुरू हुई और धीरे धीरे बढ़ती गई, क़ब्ज़ की शिकायत भी बढ़ती गई, हफ़्तों हरारत रहती। मगर इस पर भी उन्होंने पढ़ने-लिखने का व्यसन जारी रक्खा। फिर भी वे हिन्दुस्तानी हिसाब से दीर्घायु हुए। इसका कारण केवल उनकी पैदायशी काठी की मज़बूती तथा नियमपूर्वक रहना एवं सब दुर्व्यसनों से दूर रहना ही था।

देशभक्ति भी उनकी असीम थी। जहाँ तक हो सकता था कोई विदेशी चीज़ काम में न लाते। मिजाज़ में बेहद मृदुलता और दया थी। मगर उसके साथ ही ज़रा सी बात में बहुत क्रोध होता। हाँ इसे वे बहुत जल्दी ही भूल जाते। फिर वही स्वाभाविक कोमलता और दया आ जाती। उनकी ज़िन्दगी महर्षियों की सी थी। दौलतपुर गाँव में जहाँ वे रहते थे उनका वह सम्मान और दबाव था जो बड़े-बड़े ज़मींदारों का होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य द्विवेदी जी

लेखक, श्रीयुत कृष्णप्रसाद गौड़, एम० ए०, एल-टी०

प्राणी के शरीर में जिस प्रकार से आत्मा होती है उसी प्रकार से साहित्य में भी आत्मा होती है। जैसी तेजःपूर्ण आत्मा का निवास साहित्य में होगा वैसा ही उस काल का साहित्य बलवान् और तेजोमय होगा। आचार्य द्विवेदी जी ऐसी ही आत्मा थे। जब तक यह आत्मा हिन्दी को स्पंदित करता था तब तक हिन्दी-साहित्य में एक विशेष प्रकार की ज्योति थी। और आज जो एक विशिष्ट रूप हिन्दी-साहित्य का हमारे सामने है उसके निर्माण में द्विवेदी जी का कुशल हाथ पूर्णरूप से था।

आज घर-घर में हिन्दी के लिए जाग्रति है। परन्तु आज से तीस-पैंतीस साल पहले की अवस्था का सिंहावलोकन कीजिए जब न तो सम्मेलन की परीक्षायें थीं, न विश्वविद्यालयों और कालेजों में हिन्दी थी, न रङ्ग-बिरंगे मासिक-पत्र थे। ऐसे ही समय द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' का संपादन अपने हाथों में लिया। 'सरस्वती'-प्रकाशन का आरम्भ नागरी-प्रचारिणी सभा काशी की प्रेरणा थी। पहले पाँच विद्वान् उसका संपादन करते थे। द्विवेदी जी के हाथों में 'सरस्वती' गई और उन्होंने अपने अनवरत परिश्रम से, मनोयोग से, ऐसे स्थान पर पहुँचाया कि बड़े से बड़े विद्वान् इस बात के लिए लालायित रहते थे कि मेरा लेख उसमें छप जाय। 'सरस्वती' को द्विवेदी जी ने ऐसी पत्रिका बना दिया कि जो 'सरस्वती' में भाषा लिखी जाय वही हिन्दी है। एक वस्तु को लेना, बनाना और इतनी ऊँची श्रेणी में ले जाकर रख देना साधारण मनुष्य का काम नहीं है। उस समय हिन्दी-जगत् में और भी विद्वान् थे। संस्कृत के, प्राकृत के, अपभ्रंश के बड़े बड़े विद्वान् थे, बड़े बड़े कवि थे और संपादक थे। मैं उन लोगों की विद्वत्ता का आदर करता हूँ। उनमें से कितनों के संपर्क का मुझे सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है। उन लोगों की कृतियाँ भी हिन्दी को अलंकृत करती हैं। उन लोगों के कार्यों को मैं उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखता। परन्तु यह तो स्पष्ट सत्य है कि हिन्दी-भाषा और साहित्य पर द्विवेदी की जो छाप है वह और किसी की नहीं।

खड़ी बोली गद्य का जो स्वरूप आज हम देखते हैं उसका आरम्भ तो पहले हो चुका था, परन्तु उसकी शैली सुगठित और प्रांजल न थी। द्विवेदी जी ने शैली गढ़ने और भाषा बनाने के लिए न तो कमिटियाँ बनाईं और न वे घर-घर डेपुटेशन ही ले गये। उन्होंने स्वयं लिखकर और दूसरों के लेखों को काट-छाँट कर, गढ़ कर, हिन्दी-भाषा-भाषियों के सम्मुख उदाहरण रक्खा। और यदि कहीं लचर और बेढंगी भाषा का प्रयोग देखते थे तो तीव्र रूप से उसकी निन्दा करते थे। यही कारण था कि उनके द्वारा हिन्दी की इतनी उन्नति हुई। उन्हें हिन्दी से इतना प्रेम था कि वह भाषा और साहित्य को ग़लत राह पर जाते देख उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते थे। आरम्भ की 'सरस्वती' की फाइलें उठा लीजिए। विज्ञान पर द्विवेदी जी लिख रहे हैं, व्याकरण पर भी, साहित्य पर भी, और राजनीति पर भी।

आज-कल की पत्रिकाओं की भाँति 'सरस्वती' में केवल बड़े आदमियों को प्रसन्न करने के लिए अथवा डिग्री देखकर लेख कभी नहीं छपे। हाँ, यदि लेख में तत्त्व होता तो भाषा ठीक कर द्विवेदी जी छाप देते थे।

कितने लोगों के लेख, लाल रोशनाई से दुरुस्त करके, उनके पास लौटा दिया करते थे। बहुत से लोग इससे रुष्ट हो जाते थे। एक बार काशी के एक सज्जन ने 'सरस्वती' में छपने के लिए एक कविता भेजी। वह न छपी। इस पर उक्त सज्जन ने पद्यबद्ध लंबा सा पत्र, द्विवेदी जी को बुरा-भला लिखकर, उनके पास भेजा। कविता की आन्तम पंक्ति थी 'आपका सेवक एक दुष्ट'। द्विवेदी जी ने सारा पत्र 'सरस्वती' में छाप दिया। उक्त सज्जन ने नाराज़ होकर 'सरस्वती' की होड़ में 'तरंगिणी' नाम की एक पत्रिका निकाली। तरङ्गिणी तो तरङ्ग में विलीन हो गई, लेकिन 'सरस्वती' इस पर उड़ रही है। परन्तु होनहार लेखकों को उन्होंने कभी निरुत्साहित नहीं किया; ऐसा कितने ही लोगों का अनुमान होगा। मुझे याद है, आज से लगभग बीस साल पहले की बात है। मेरे एक युवक मित्र ने, जो अब इस संसार में नहीं है, 'समय' नाम का एक नाटक लिखा। एक अनुभवी लेखक की रचना में जो त्रुटियाँ हो सकती हैं, सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें थीं। परन्तु नाटक में गुण भी थे। नाटक की भूमिका में लेखक ने लिखा था—'यह प्रारम्भिक प्रयास है, परन्तु समालोचकों की क्रूर कटार से आशंका है कि कहीं शैशवावस्था में ही इसका प्राण न हर लिया जाय। आशा है, समालोचक-गण इस पर दया की दृष्टि रखेंगे'। नाटक की एक प्रति सपादक-सरस्वती के नाम भेजी गई। उस समय प्रत्येक पुस्तक की दो-दो प्रतियाँ भेजने का 'जनैली' हुक्म न था। हम लोगों का विश्वास था कि समालोचना तो क्या इसकी प्राप्ति भी स्वीकार न की जायगी। दो महीने के बाद 'सरस्वती' में 'समय' की समालोचना निकली। दो वाक्यों में गुणों का उल्लेख करने के बाद त्रुटियों के सम्बन्ध में लेखक की भूमिका का हवाला देकर द्विवेदी जी ने लिखा था 'इसलिए अब इसका कुछ लिखना ठीक नहीं।' इस प्रकार से यथा-योग्य उनका व्यवहार होता था। यदि उन्हें कोई ललकारता था तो वे भी ताल ठोंककर खड़े हो जाते थे। वे महावीर की भाँति निडर और साहसी थे। भाषा की 'अनस्थिरता' वाली कहानी पुराने साहित्यसेवियों को न भूली होगी। वे साहित्य की रणस्थली में डटना जानते थे, भागना नहीं।

द्विवेदी जी की चुटकी बड़ी मीठी होती थी। एक बार एक पुस्तक की समालोचना करते हुए आपने लिखा—"प्रकाशक ने मेरे पास पुस्तक भेजने में चार आने की किफ़ायत की है"। प्रकाशक ने अजिल्द पुस्तक भेजी थी। स्वर्गीय गोखले को के० सी० आई० ई० की पदवी मिल रही थी, जिसे लेने से उन्होंने इनकार कर दिया। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' में इसका उल्लेख करके यह लिखा कि 'यह सुन कर मुझे उनका सी० आई० ई० याद आ गया।' इस छोटे से वाक्य में जो अर्थ भरा है, पाठक समझ सकते हैं।

मैंने अपनी पुस्तक उनके पास भेजी। उसके आरंभ में, समर्पण में, एक ही वाक्य में असावधानी से 'मुझे' और 'हमें' आगया। पुस्तक की बड़ी प्रशंसा करते हुए अंत में आपने लिखा—'वाह रे एम० ए० कुछ मैं-हम का भी ख़याल है'।

जो द्विवेदी जी एक मात्रा और एक अक्षर की भी भूल नहीं सहन कर सकते थे वही जीवन के संध्याकाल में सबको आशीर्वाद देते और सबकी प्रशंसा क्यों करते थे? वे एक वीर सेनानी थे। परन्तु हृदय बड़ा कोमल था। जब तक जेनरल की भाँति साहित्य-क्षेत्र में रहे, अपनी भाषा के हित के लिए, उसके मान की रक्षा के लिए, उसके गौरव के लिए लड़ते रहे। जब अवकाश ग्रहण किया, उनकी स्वाभाविक हृदय की कोमलता फूट पड़ी। अभिनदनोत्सव के समय काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के मच पर से जो भाषण उन्होंने दिया था उससे उनके हृदय की भावना ख़ूब टपकती है। वे करुणा के आगार थे।

स्वभाव से वे विनोदी भी थे। बहुत कम लोगों को यह मालूम होगा कि जब साहित्य-सम्मेलन ने अपनी परीक्षायें चलाईं तब प्रथमा परीक्षा के लिए द्विवेदी जी ने आवेदन-पत्र भरके भेजा था। जब पहले-पहल राय कृष्णदास जी ने मेरा उनसे परिचय कराया, वे अस्वस्थ थे, उठ खड़े हुए। संस्कृत में एक श्लोक तत्काल बना कर, जिसमें मेरा नाम भी था, आशीर्वाद दिया और बोले—मैं भी 'चिकित्सा के चक्कर' में हूँ। इस नाम का मेरा लेख 'सरस्वती' में छपा था, जिसे संभवतः उन्होंने पढ़ा था।

पत्रों में ऐसा लिखा करते थे मानो वे किसी आत्मीय को लिख रहे हों। मुझे उन्होंने कई बार लिखा कि मार्क ट्वेन पढ़ो, हास्य लिखने में सहायता मिलेगी।

उनका जैसा नाम था, वैसे साहित्यिक महावीर वे थे। कुछ लोगों का विचार है कि उनका उपयुक्त सम्मान नहीं हुआ। यों तो ऐसे महान् व्यक्तियों का जितना भी आदर किया जाय, कम है। परन्तु जो हम हिन्दीवालों के हाथ में था वह हुआ। प्रत्येक हिन्दी-साहित्य-प्रेमी का हृदय उनके चरणों पर था। हिन्दीवालों के हाथ में 'सर' या 'राय बहादुर' या 'डाक्टर' तो है नहीं। और बहुत ठीक हुआ कि हिन्दी-वालों ने सरकार या किसी से द्विवेदी जी के लिए भिक्षा नहीं माँगी। वे हिन्दी के 'आचार्य' थे, हिन्दी-भाषा-भाषियों के आचार्य थे। जिस श्रद्धा और प्रेम से हम हिन्दीवाले उन्हें आचार्य कहते थे और जिस भाव से समस्त हिन्दी जनता ने अपने मन से उन्हें यह पदवी दी उससे बढ़कर अनमोल प्रेमपूर्ण पदवी और हो नहीं सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ संस्मरण

लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० एस-सी०

स लेख में द्विवेदी जी का जीवन-चरित लिखने की आवश्यकता नहीं है। मुझे तो कुछ अपने से संबंध रखनेवाले उनके संस्मरण ही देना है। बहुत वर्षों तक द्विवेदी जी कानपुर शहर के पास जुही में रहे थे। वे वहीं से 'सरस्वती' का सम्पादन भी करते थे और पुस्तकें भी लिखा करते थे। कभी-कभी वे अपने घर दौलतपुर भी चले जाते थे, पर अधिकतर जुही में ही रहते थे। इसी लिए कानपुर के हिन्दी-प्रेमियों को उनके साक्षात्कार का और उनसे शिक्षा लेने का अमूल्य अवसर प्राप्त था। हम लोग प्रायः उनके यहाँ जाया करते थे, और विभिन्न विषयों पर बातचीत किया करते थे। स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी ने अपना साहित्यिक जीवन 'सरस्वती' के सहायक-सम्पादक की हैसियत से प्रारम्भ किया था। विद्यार्थी जी के साथ मैं भी जुही जाया करता था और द्विवेदी जी के पुस्तकालय से पुस्तकें ले आया करता था। प्रथम साक्षात्कार के पूर्व ही अर्थात् सन् १९१२ ईसवी में मैंने एक लेख इतिहास पर 'सरस्वती' के लिए भेजा था। द्विवेदी जी ने बड़ी प्रसन्नता के साथ उसे अपनी पत्रिका में स्थान दिया था। मैं हिन्दी में १९१० ई० से 'सत्येन्दु' उपनाम से लेख लिखा करता था। पर द्विवेदी जी के कहने से 'सरस्वती' के लिए मैंने एक दूसरा ही उपनाम 'सत्यशोधक' रख लिया। १९१२ से १९१८ तक मुझे उनसे मिलने और उनका प्रेमपात्र रहने का सौभाग्य प्राप्त रहा।

अभाग्यवश हिन्दी के बहुत से लेखकों से उन दिनों द्विवेदी जी का व्यवहार प्रेममय नहीं था। कुछ लोगों से वे नाराज़ थे और बहुत से लोग उनसे नाराज़ थे। कुछ लोग तो द्विवेदी जी से इसलिए नाराज़ हो गये थे कि वे उनके किसी लेख को छापने से इनकार कर चुके थे या उसमें कुछ परिवर्तन करना चाहते थे। कुछ इसलिए नाराज़ थे कि द्विवेदी जी ने उनके ग्रन्थों की तीव्र आलोचना की थी। कुछ लोगों को द्विवेदी जी की कीर्त्ति से कुछ जलन भी होती थी। द्विवेदी जी का स्वभाव भी ऐसा था कि जिससे वे नाराज़ हो गये उससे वे बहुधा सभी सम्बन्ध तोड़ देते थे। इन सब घटनाओं में उनको कुछ मानसिक कष्ट रहा करता था। नगर से दूर जुही में रहने के कारण द्विवेदी जी का जीवन भी कुछ एकान्तमय होगया था और इधर-उधर की घटनायें उनके मन में चक्कर काटा करती थीं। इन सब बातों का प्रभाव उनके जीवन और स्वास्थ्य पर भी पड़ा। ज्यों ज्यों स्वास्थ्य निर्बल होता गया उनका मिज़ाज भी तेज़ होता गया। पर कानपुर में कुछ ऐसे नवयुवक भी थे जिनके साथ द्विवेदी जी के सम्बन्ध सदा स्नेहमय रहे। द्विवेदी जी ने उनके साहित्यिक जीवन को बहुत सहारा दिया और उन्होंने भी द्विवेदी जी को सदैव कृतज्ञता और श्रद्धा की दृष्टि से देखा। हम लोगों के प्रति द्विवेदी जी का विश्वास था कि और कोई प्रसन्न हो या अप्रसन्न, हम लोग सदैव उनके भक्त रहेंगे। उनका यह विश्वास उनके अन्त-समय तक बिलकुल ठीक उतरा। हिन्दी-संसार ने तो द्विवेदी जी को 'आचार्य' की पदवी बहुत पीछे दी, पर कानपुर में हम लोग द्विवेदी जी को सदा से अपना 'आचार्य' मानते रहे थे। उनका आशीर्वाद लेकर गणेशशंकर विद्यार्थी ने 'सरस्वती' का काम छोड़ कर 'अभ्युदय' का भार अपने ऊपर लिया, फिर कुछ दिनों के बाद कानपुर में ही 'प्रताप' की स्थापना की तब द्विवेदी जी से ही वह मूल-मंत्र लिया जो आज तक 'प्रताप' पर छपता है।

"जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है
वह नर नहीं नरपशु निरा है और मृतक समान है।"

द्विवेदी जी में कुछ गुण ऐसे भी थे जो हमीं लोगों को ज्ञात थे। बाहरी लोग उनके विषय में बहुत कम जानकारी रखते थे। अपने कुटुम्बियों, सम्बन्धियों और मित्रों के साथ व्यवहार करने में द्विवेदी जी सदा अत्यन्त उदारता से काम लिया करते थे। हम साक्षात् देखा करते थे कि द्विवेदी जी स्वयं मोटा कपड़ा पहन कर और सादा जीवन व्यतीत कर दूसरों की सहायता भरसक किया करते थे। फिर भी कभी किसी ने इस विषय में अपनी डींग मारते उन्हें नहीं सुना—यहाँ तक कि वे किसी से अपने किये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए उपकार का ज़िक्र तक न करते थे। कभी-कभी तो स्वार्थत्याग दिखाने में वे बहुत आगे बढ़ जाते थे। उन्होंने अकसर लोगों की मदद करना उस समय तक जारी रक्खा जब कि वे लोग अपने को इसके अयोग्य साबित कर चुके थे। अकृतज्ञता का कोई प्रभाव द्विवेदी जी के मन पर नहीं पड़ा। सच तो यह है कि वे नेकी के लिए नेकी करते थे, कृतज्ञता के लिए नहीं। वही मसल थी—नेकी कर, कुए में डाल! इस परोपकार की वृत्ति तथा स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण द्विवेदी जी के कार्यक्रम में अद्भुत व्यवस्था आ गई थी। उनका हर एक काम बड़े ढंग से होता था। उनके पास बहुत-सी किताबें थीं, पर प्रत्येक पुस्तक के लिए नियत स्थान था। 'सरस्वती' के लिए आये हुए लेख और चिट्ठी-पत्री सब यथास्थान दिखाई देते थे। सम्पत्ति का दुरुपयोग न होने देते थे। चिट्ठियों में यदि कोई सादे पन्न आते तो फाड़ कर काम के लिए रख लेते थे। समय का वे सदैव सदुपयोग करते थे।

द्विवेदी जी ने जीवन भर साहित्य की सेवा की। उसके तीन विशेष अंग हमारे सामने आये, अर्थात् द्विवेदी जी ने साहित्य की ३ प्रवृत्तियों में विशेष योग दिया—(१) वे उन थोड़े से लेखकों में थे जिन्होंने हिन्दी-गद्य का परिमार्जन किया और उसे अर्वाचीन विज्ञान और शास्त्रों के योग्य बनाया। (२) उन्होंने हिन्दी-गद्य में प्रसादगुण लाने का प्रयत्न किया, अर्थात् उसे जनता के लिए बोध-गम्य बनाने की आवश्यकता समझी। (३) द्विवेदी जी ने समालोचना का महत्त्व समझा और उसके मार्ग पर प्रकाश डाला। यद्यपि इन तीनों बातों का प्रारम्भ द्विवेदी जी के पहले से ही हो गया था, पर इनमें पूर्ण सफलता हिन्दी-साहित्य को आज तक नहीं मिली है। द्विवेदी जी ने अपने लेखों, पुस्तकों और संपादन के द्वारा इस दिशा में अग्रगण्य काम किया। अगर अभी तक ये काम पूरे नहीं हुए तो इससे यही सिद्ध होता है कि हिन्दी-संसार को अभी उनके जैसे प्रतिभाशाली लेखकों की आवश्यकता है।

भाषा का परिमार्जन

अभी हमारी देशी भाषाओं में—और विशेष करके हिन्दी में—व्यञ्जना की पूर्ण शक्ति नहीं आई है। जिन लोगों को अँगरेज़ी के ग्रन्थों या लेखों को हिन्दी में अनुवाद करने का अवसर आया है या जो वैज्ञानिक या दार्शनिक विषयों पर लिखने का प्रयत्न करते हैं वे जानते हैं कि शब्दों और मुहाविरों के चयन में कितनी भारी अड़चन आती है। एक समय था जब अँगरेज़ी, फ्रेंच, जर्मन आदि योरपीय भाषाओं की भी यही दशा थी, पर धीरे-धीरे इनकी क्षमता का विकास होता रहा। हिन्दी-गद्य के इस प्रकार के विकास में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद द्विवेदी जी का नाम सबसे पहले आता है। उन्होंने भाषा को व्याकरण के ठीक ठीक नियमों में बाँधने का प्रयत्न किया। उन्हीं के प्रयत्नों से हिन्दी-गद्य का रूप निखर गया।

'बेकन-विचाररत्नावली' में स्वयं द्विवेदी जी ने क्लिष्ट भाषा का प्रयोग किया है। पर यह उनका पहला प्रयास था। आगे चलकर उन्होंने यह ज़रूरी समझा कि भाषा में बनावटीपन न हो और वह बोधगम्य हो। आज कल कुछ लोग 'हिन्दुस्तानी' का समर्थन इसलिए करते हैं कि उससे हिन्दू-मुसलिम मैत्री में सहायता मिलेगी। पर खेद का विषय है कि भाषा का यह प्रश्न हिन्दू मुसलिम समस्या से नत्थी हो गया है और इसलिए दिन पर दिन उलझता जाता है। द्विवेदी जी ने इस प्रश्न को वास्तविक रूप में देखा था। असल में यह प्रश्न हिन्दू-मुसलमान का नहीं है, यह जनता तक साहित्य और विज्ञान के पहुँचाने का है। भाषा में प्रसादगुण वहाँ भी रहना चाहिए जहाँ न हिन्दू हैं, न मुसलमान। 'सरस्वती' के सम्पादक की हैसियत से द्विवेदी जी ने बहुत से लेखकों को इसका महत्त्व समझाया। १९१४ ई० में योरपीय लड़ाई छिड़ने पर उन्होंने मुझे इसके कारणों पर एक लंबा लेख लिखने की आज्ञा दी। जब लेख दौलतपुर पहुँचा तब उन्होंने उसे कुछ साधारण पढ़े-लिखे किसानों को सुनाया। वे बहुत प्रसन्न हुए कि लेख का बहुत भाग उनकी समझ में आ गया। पर इसके यह अर्थ नहीं कि वे गूढ़ विषयों को भी इतनी ही सरल भाषा में प्रकट करने की आशा करते थे। इसी समय के लगभग जब मैंने जान स्टुअर्ट मिल की दो पुस्तकों—'उपयोगितावाद' और 'स्त्रियों की पराधीनता' का संक्षेप 'सरस्वती' के लिए भेजा तब उन्होंने उसे एक-दम छाप दिया। जान स्टुअर्ट मिल की विचार-धारा के संक्षेप आसानी से किसी की समझ में नहीं आ सकते और साधारण शब्दों में रक्खे भी नहीं जा सकते। ऐसे अव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरों पर आवश्यकता केवल इस बात की होती है कि भाषा में कृत्रिमता न हो। द्विवेदी जी ये सब बातें अच्छे प्रकार जानते थे।

समालोचना

हिन्दी में आज-कल जैसी समालोचना होती है, वैसी २५ वर्ष पहले न होती थी। पुराने कवियों की प्रशंसा तो बहुत होती थी, पर समालोचना बहुत कम देखने में आती थी। उस समय के लेखक और सच पूछिए तो बहुत से इस समय के लेखक भी—अपनी पुस्तकों के विषय में केवल स्तुति ही पढ़ना चाहते हैं। द्विवेदी जी उन बहुत थोड़े से आदमियों में से थे जिन्होंने इस पुराने मार्ग को छोड़कर वास्तविक समालोचना का साहस किया। जब 'कालिदास की निरंकुशता' शीर्षक निबन्ध में उन्होंने उस महाकवि की कुछ भूलें दिखाईं तब साहित्य-संसार में तूफ़ान सा आ गया। चारों ओर से द्विवेदी जी पर बौछारें पड़ने लगीं। पर उनको इसकी कुछ परवा न हुई, और शायद एक ही लेख में बड़े गौरव के साथ अपनी शैली के पक्ष में कुछ कहा। द्विवेदी जी के हाथों से हिन्दी रीडरों की समालोचना जो समय-समय पर हुई वह स्कूलों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई।

द्विवेदी जी अब इस संसार में नहीं हैं। पर अभी बहुत वर्षों तक उनकी रचनायें जीवित रहेंगी। संभव है, सुदूरवर्त्ती काल में उनकी रचनायें भी काल के गाल में चली जायँ, तथापि हिन्दी-गद्य के इतिहास में द्विवेदी जी का नाम अजर-अमर रहेगा। जब हिन्दी-साहित्य का क्षेत्र बहुत विशाल हो जायगा; जब हिन्दी-भाषा की शक्तियाँ पूरी तरह से विकसित हो जायँगी; जब हिन्दी की शैली में कृत्रिमता के स्थान पर स्वाभाविकता का राज्य हो जायगा और जब यथेष्ट समालोचना की परिपाटी भी स्थिर हो जायगी, तब भी द्विवेदी जी का नाम उन थोड़े से लेखकों के साथ लिया जायगा जिन्होंने साहित्य की प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाने में भाग लिया है और जो आगे भाग लेंगे। द्विवेदी जी उदारता और साहित्य-सेवा का एक उज्ज्वल दृष्टान्त सदा के लिए स्थिर कर गये हैं।

सम्पादकीय निवेदन

'सरस्वती' के 'द्विवेदी-स्मृति-अंक' को इस रूप में निकालने में हमारी जिन महानुभावों ने सहायता की है उनके हम हृदय से कृतज्ञ हैं। द्विवेदी जी के सम्बन्ध में जो महत्त्वपूर्ण संस्मरण तथा मर्मस्पर्शी श्रद्धाञ्जलियाँ इस अंक में प्रकाशित हुई हैं उन्हें उनके मित्रों, सहयोगियों तथा शिष्यों ने लिखा है और उनमें दिवंगत आचार्य के महत्त्व का ही निदर्शन नहीं हुआ है, किन्तु उनसे यह भी प्रकट हुआ है कि वे हिन्दी के क्षेत्र में क्यों इतने अधिक समादृत थे। इस अंक में छापने के लिए हमें इतने अधिक लेख तथा कवितायें मिलीं कि स्थानाभाव के कारण हम उन सबको नहीं छाप सके। इसका हमें खेद है और जिन महानुभावों के लेखों तथा कविताओं का इस अंक में समावेश नहीं हो सका है उनसे हम क्षमा माँगते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग नं० ३० का नतीजा

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित २ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १५०) मिले।

(१) श्रीयुत सद्गुरुशरण, अरदलीबाज़ार, बनारस।

(२) श्री तुलसीराम रामकिशनदास, कलकत्ता।

द्वितीय पुरस्कार १७४) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित २ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ८७) मिले।

(१) श्री गुरुदयाल, अरदलीबाज़ार, बनारस।

(२) श्री वीरेन्द्रकुमार, पोस्ट जयनगर, ज़िला २४ परगना।

तृतीय पुरस्कार २०) (चार अशुद्धियों पर)

(१) श्री शिवबालकप्रसाद वाजपेयी, इलाहाबाद।

चतुर्थ पुरस्कार ६) (पाँच अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ६ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १) मिला।

(१) श्री कन्हैयालाल वर्मन, बनारस।

(२) श्री रामनिरञ्जन, बिसाऊ, जयपुर।

(३) श्री रविप्रकाश वर्मा, नरसिंहपुर, सी० पी०।

(४) श्री शिवबोध मालवीय, इलाहाबाद।

(५) श्री नाथूराम गुप्ता, कानपुर।

(६) श्री हरिशङ्करलाल खत्री, बनारस।

उपर्युक्त सब पुरस्कार २३ फ़रवरी को भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।

केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

जिनको १) का पुरस्कार मिला है उन्हें १) के दो प्रवेश-शुल्क-पत्र भेज दिये जायँगे, जो नियम के अनुसार तीन महीने के भीतर इसके साथ दो पूर्तियाँ भेज सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्राट् पञ्चम जार्ज

लेखक

पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी, एम० ए०, एल० टी०, इंस्पेक्टर आफ़ स्कूल्स

भूमिका-लेखक

संयुक्त-प्रान्त के भूतपूर्व शिक्षा-मंत्री, सर ज्वालाप्रसाद श्रीवास्तव

इस पुस्तक में स्वर्गीय सम्राट् पञ्चम जार्ज का जीवन-चरित तथा उनके जीवन-काल का संक्षिप्त इतिहास वर्णित है। सम्राट् जार्ज के व्यक्तित्व में कितनी मधुरता तथा कर्मनिष्ठा थी, वे कितने प्रजावत्सल एवं नीतिकुशल शासक थे, तथा अपने दूरदर्शिता-पूर्ण आचरण के कारण तरह तरह की संकटमय अवस्थाओं से पार होकर उन्होंने किस प्रकार साम्राज्य की उत्तरोत्तर उन्नति करने में सफलता प्राप्त की, ये सभी बातें इस पुस्तक में विस्तारपूर्वक लिखी हैं। पुस्तक बड़े आकार में आर्ट-पेपर पर दो रंगों में छापी गई है। रंगीन तथा सादे चित्रों की भरमार है।

मूल्य केवल ३) तीन रुपये।

भारतीय शासन-विकास

लेखक, डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए० डी० एस-सी० (लन्दन)

की एक प्रति अवश्य मँगा लीजिए। इसमें डाक्टर साहब ने बड़ी ही रोचक भाषा में और अत्यन्त सरल ढङ्ग से यह समझाया है कि १६०० ईसवी से लेकर अब तक भारतीय शासन कैसे विकसित हुआ है और नये शासन-विधान के अनुसार उसका क्या स्वरूप होगा। हिन्दी में इस विषय की यह सर्वथा नई और बेजोड़ पुस्तक है। जो कौंसिलों में जा रहे हैं या जाना चाहते हैं उन्हें तो पग पग पर इसकी जरूरत पड़ेगी। उनके अलावा प्रत्येक भारतीय के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने समाज और देश की संस्थाओं और शासन-विधान का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर ले। यह ज्ञान जल्दी से जल्दी और सरलतापूर्वक एक-मात्र इसी पुस्तक से प्राप्त किया जा सकता है।

मूल्य केवल १॥।) एक रुपया बारह आने।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनी-आर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ३१, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २४ फ़रवरी तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २२ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाहिने से बायें

१–देवताओं का लोक।
४–यह सभी लोगों की सुन्दर नहीं होती।
६–कितने ही बच्चे इससे पलते हैं।
७–कितने ही महत्त्वाकांक्षी ऐसे होते देखे गये हैं।
८–जहाँ अच्छे मंत्री नहीं होते वहाँ यही होता है।
९–इसे देखना सब लोग पसन्द करते हैं।
११–बहुत से लोग युवकों का यह पसन्द नहीं करते।
१३–तिब्बत के यात्री इसके भी दर्शन करते हैं।
१७–आर्य लोग इसके बराबर गीत गाते आये हैं।
१८–मनुष्य इसका शिकार हुआ और गया।
१९–लड़के इससे भी आनन्द खोज लेते हैं।
२४–मार्ग में इसकी अधिकता यात्रियों के कपड़े ख़राब कर देती है।
२५–भारतीय किसान का यह एक ख़ास गुण है।
२७–स्त्रियों के ओढ़ने का एक बहुरंगी वस्त्र।
२८–जितना ही स्वच्छ हो उतना ही लाभदायक होता है।
२९–एक सुन्दर मादा-पशु।
३०–इसकी लकड़ी चिकनी और मज़बूत होती है।
३२–छोटा सा कण।
३३–स्त्रियाँ सावन में इसे लगाना बहुत पसन्द करती हैं।
३४–चलना ही इसका काम है।

ऊपर से नीचे

१–इसके बिना स्त्री का जीवन विशेष दुःखी हो जाता है।
२–इससे दूर ही रहना अच्छा है।
३–इससे मार्ग जल्दी तय होता है।
५–यह चोरों को बहुत प्यारी है।
९–इसकी प्रधानता घर को बरबाद कर देती है।
१०–जिसके वश में यह हो उसका क्या कहना।
१२–इनके बिना मनुष्य लँगड़ा रहता है।
१४–पहले ज़माने की स्त्रियाँ इससे डरकर इसकी पूजा करती थीं। पर अब वे इससे प्रेम करती हैं।
१५–हलका मीठा दर्द। १६–एक प्रकार का सूती वस्त्र।
२०–एक प्रकार का फल। २१–शरीर का एक अंग।
२२–यह देवताओं को बहुत प्रिय है।
२३–यह अकेला भी किसी को कुछ करने नहीं देता।
२५–मकान में इसकी अधिकता स्वास्थ्य के लिए घातक होती है।
२९–इसे न चलानेवाला काश्तकार तबाह हो जाता है।
३०–कुछ लोग इसी की सवारी पसन्द करते हैं।
३१–देहाती रास्तों में यह सच्चे मित्र का काम देता है।

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३१ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

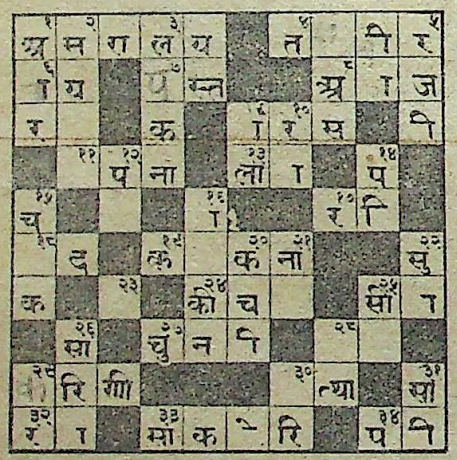

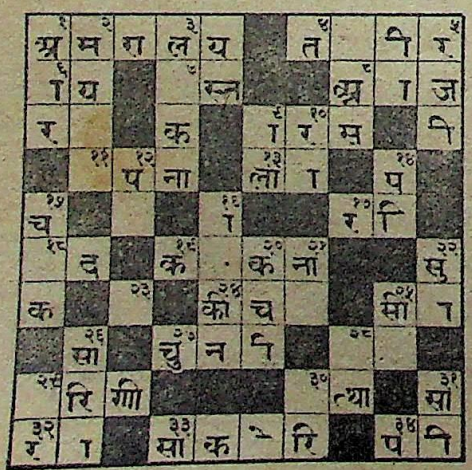

वर्ग नं० ३० की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ३० की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।

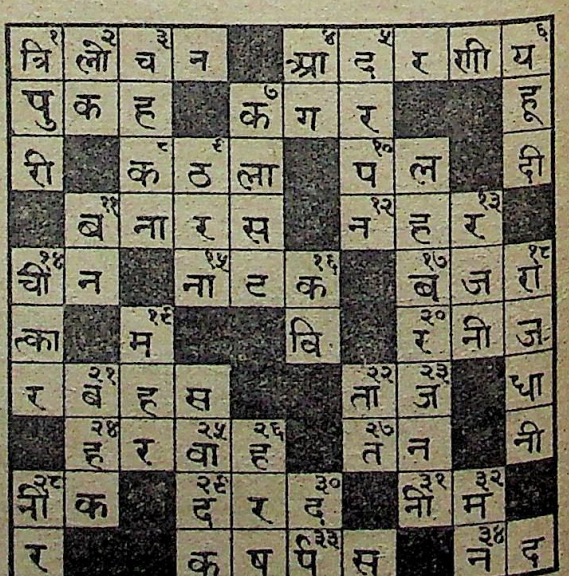

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग नं० ३० (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ३० के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०...में { कोई अशुद्धि नहीं है। / १, २, ३, ४, ५ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर _____

पता _____

_____

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १५ फ़रवरी के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० ३१

इंडियन प्रेस, लि०,

इलाहाबाद

मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

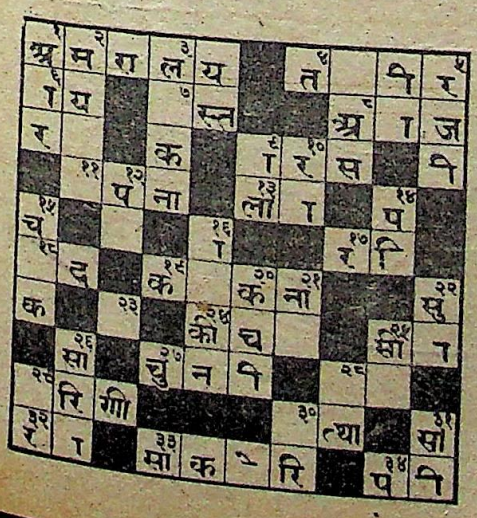

हान् संपादक

श्रीयुत हरिकेशव घोष

ही मेरे महान् त की जी ने दिन से वे घंटों ाक्षाप्रद क दिन उनके हते थे। उपदेश ोकपूर्ण ा चित्र समीप वे मुझे हुमूल्य कार्य-

त्री और म्पादक ी कहीं उसके ने इन जी— वन के तन की कर्त्तव्य

सम्पा- पूर्ति हो व दया-

पूर्ण था; उनकी कार्यप्रणाली स्वच्छ थी और उनके उपदेश यथार्थ थे।

'सरस्वती'-विभाग का प्रत्येक व्यक्ति उन्हें श्रद्धा और स्नेह की दृष्टि से देखता था। यद्यपि अस्वस्थता के कारण 'सरस्वती' का सम्पादन वे जुही से करते थे पर मुद्रकों को सदा यही अनुभव होता था मानों द्विवेदी जी सामने मौजूद हैं। उनके पास से प्रकाशनार्थ आई हुई सामग्री इतनी शुद्ध और स्पष्ट होती थी कि उनसे किसी बात को दुबारा पूछने की ज़रूरत शायद ही पड़ती थी। वे ग़ज़ब के प्रूफ़ संशोधक थे। शैली, स्पेलिङ्ग और विरामचिह्नों की एकरूपता का उन्हें बड़ा ध्यान रहता था। छापे की छोटी-से छोटी भूल भी उन्हें असह्य थी। उनके कठोर व्यक्तित्व ने साहित्यिक-जीवन के आरम्भ-काल में उनके कई आलोचक भी पैदा कर दिये थे। फिर भी, जब तक द्विवेदी जी को अपनी भूल का निश्चय न हो जाय, किसी के सामने झुकना उन्हें आता ही न था। फिर जिस विषय में उन्हें अपने 'ठीक' होने का निश्चय रहता था, उसमें वे तीव्र से तीव्र टिप्पणियाँ देने में भी हिचकते न थे।

यद्यपि तत्कालीन दक्रियानूसी लेखकों में वे इतने प्रख्यात न थे, पर हिन्दी-लेखक न जाने उन्होंने कितने पैदा कर दिये। वे लेखक, जिन्हें प्रोत्साहित करके द्विवेदी जी ने लिखना सिखाया, सदैव उनके समथक बने रहे। इस प्रकार उनके अनुयायियों की भी संख्या बहुत बड़ी थी। नये लेखकों का उत्साह बढ़ाने के लिए, द्विवेदी जी उनके लेख शुद्ध करके—और कभी कभी दुबारा स्वयं लिख कर—उनके नाम से छाप दिया करते थे। सरस्वती से अवकाश ग्रहण कर लेने के उपरान्त भी वे प्रायः उसमें अपने बहुमूल्य लेख भेजते रहे।

यद्यपि वे अब हमारे बीच में नहीं हैं फिर भी उनकी अदृश्य सत्ता और उनका आदर्श व्यक्तित्व चिर काल तक 'सरस्वती' के संचालन में पथ-प्रदर्शन करता रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्क-परिचय

दाहिने से बायें

१–देवताओं का लोक।
४–यह सभी लोगों की सुन्दर नहीं होती।
६–कितने ही बच्चे इससे पलते हैं।
७–कितने ही महत्त्वाकांक्षी ऐसे होते देखे गये हैं।
८–जहाँ अच्छे मंत्री नहीं होते वहाँ यही होता है।
९–इसे देखना सब लोग पसन्द करते हैं।
११–बहुत से लोग युवकों का यह पसन्द नहीं करते।
१३–तिब्बत के यात्री इसके भी दर्शन करते हैं।
१७–आर्य लोग इसके बराबर गीत गाते आये हैं।
१८–मनुष्य इसका शिकार हुआ और गया।
१९–लड़के इससे भी आनन्द खोज लेते हैं।
२४–मार्ग में इसकी अधिकता यात्रियों के कपड़े ख़राब कर देती है।
२५–भारतीय किसान का यह एक ख़ास गुण है।
२७–स्त्रियों के ओढ़ने का एक बहुरंगी वस्त्र।
२८–जितना ही स्वच्छ हो उतना ही लाभदायक होता है।
२९–एक सुन्दर मादा-पशु।
३०–इसकी लकड़ी चिकनी और मज़बूत होती है।
३२–छोटा सा कण।

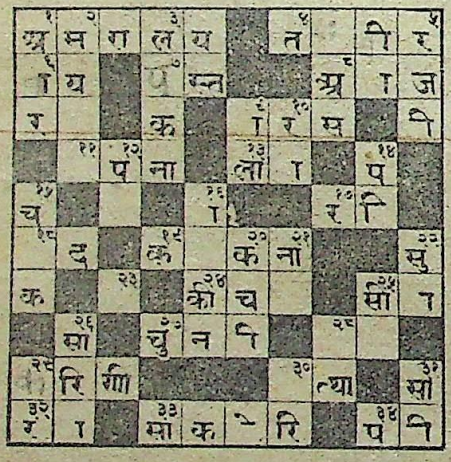

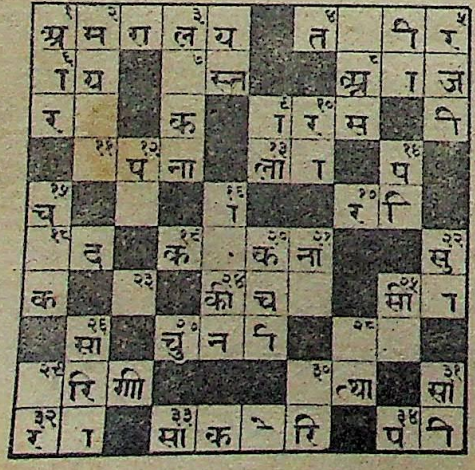

आपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३१ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

३३–सि
३४–च

व्यों की भिन्न भिन्न संख्या की ओर है, न कि काव्य

१–इंगित वर्णित व्यक्ति की ओर जैसा कि आपने इस
२–इ संकेत में किया है। मुझे आशा है कि आप वर्ग-
३–इ महाशय के इस प्रश्न के पहलू पर अपनी राय दे
५–यह
९–इ जैसे पाठकों की शंका का समाधान करेंगे।
१०–जि
१२–इन
१४–पह
कर
१५–हल

कला-प्रेमी या कथा-प्रेमी ?

२०–एक
२२–यह दक जी
२३–यह न० २९ की शुद्ध पूर्ति में अंक नं० ६ ऊपर से
२५–मक होती प्रकार है— सरस्वती के कुछ पाठक ऐसे भी हैं।
२९–इसे र में कला-प्रेमी दिया गया है। मेरे ख़्याल में
३०–कुछ
३१–देहा लत है क्योंकि कला-प्रेमी तो सरस्वती के सभी

सरस्वती कला की उच्च कोटि की पत्रिका है और
ोग इसी ख़्याल से इसे पढ़ते हैं। मैं वास्तव में
्याल से पढ़ता हूँ और इसी से ग्राहक बना हूँ।
वर्ग न मतलब यह कि अधिकांश प्रेमी पाठकों को कला
लगाकर र और कथा से प्रेम कुछ ही को है। मुझे आशा है
र्गीता महोदय प्रश्न के इस पहलू पर भी विचार

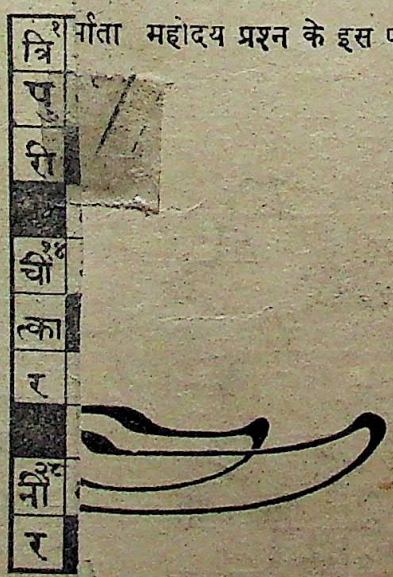

आपका
कृष्णमुरारी
बढ़कर, बाँदा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

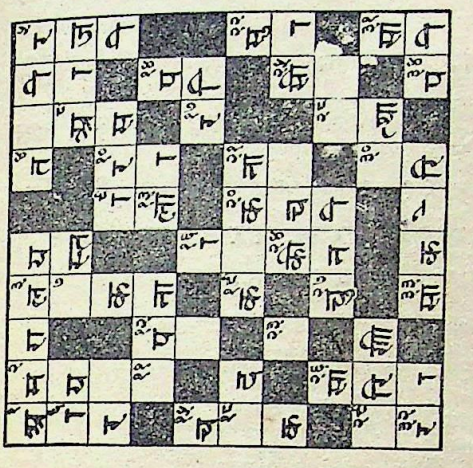

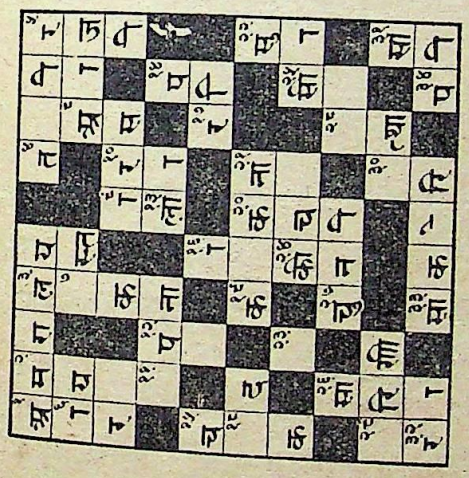

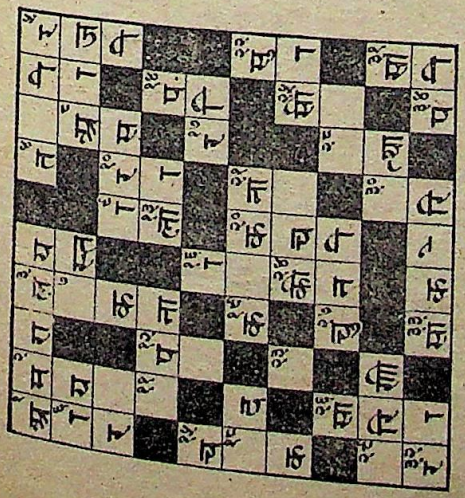

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३१ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

हान् संपादक

श्रीयुत हरिकेशव घोष

ही मेरे
महान्
ात की
ी जी ने
दिन से
वे घंटों
शक्षाप्रद
छ दिन
उनके
हते थे।
उपदेश
ोकपूर्ण
चित्र
समीप
वे मुझे
हुमूल्य
कार्य-

त्री और
म्पादक
कहीं
उसके
ने, इन
जी—
वन के
न की
कर्त्तव्य

सम्पा-
पूर्ति हो
व दया-

पूर्ण था; उनकी कार्यप्रणाली स्वच्छ थी और उनके उपदेश यथार्थ थे।

'सरस्वती'-विभाग का प्रत्येक व्यक्ति उन्हें श्रद्धा और स्नेह की दृष्टि से देखता था। यद्यपि अस्वस्थता के कारण 'सरस्वती' का सम्पादन वे जुही से करते थे पर मुद्रकों को सदा यही अनुभव होता था मानों द्विवेदी जी सामने मौजूद हैं। उनके पास से प्रकाशनार्थ आई हुई सामग्री इतनी शुद्ध और स्पष्ट होती थी कि उनसे किसी बात को दुबारा पूछने की ज़रूरत शायद ही पड़ती थी। वे ग़ज़ब के प्रूफ़ संशोधक थे। शैली, स्पेलिङ्ग और विरामचिह्नों की एकरूपता का उन्हें बड़ा ध्यान रहता था। छापे की छोटी-से छोटी भूल भी उन्हें असह्य थी। उनके कठोर व्यक्तित्व ने साहित्यिक-जीवन के आरम्भ-काल में उनके कई आलोचक भी पैदा कर दिये थे। फिर भी, जब तक द्विवेदी जी को अपनी भूल का निश्चय न हो जाय, किसी के सामने झुकना उन्हें आता ही न था। फिर जिस विषय में उन्हें अपने 'ठीक' होने का निश्चय रहता था, उसमें वे तीव्र से तीव्र टिप्पणियाँ देने में भी हिचकते न थे।

यद्यपि तत्कालीन दक्रियानूसी लेखकों में वे इतने प्रख्यात न थे, पर हिन्दी-लेखक न जाने उन्होंने कितने पैदा कर दिये। वे लेखक, जिन्हें प्रोत्साहित करके द्विवेदी जी ने लिखना सिखाया, सदैव उनके समर्थक बने रहे। इस प्रकार उनके अनुयायियों की भी संख्या बहुत बड़ी थी। नये लेखकों का उत्साह बढ़ाने के लिए, द्विवेदी जी उनके लेख शुद्ध करके—और कभी कभी दुबारा स्वयं लिख कर—उनके नाम से छाप दिया करते थे। सरस्वती से अवकाश ग्रहण कर लेने के उपरान्त भी वे प्रायः उसमें अपने बहुमूल्य लेख भेजते रहे।

यद्यपि वे अब हमारे बीच में नहीं हैं फिर भी उनकी अदृश्य सत्ता और उनका आदर्श व्यक्तित्व चिर काल तक 'सरस्वती' के संचालन में पथ-प्रदर्शन करता रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाहिने से बायें

१–देवताओं का लोक।
४–यह सभी लोगों की सुन्दर नहीं होती।
६–कितने ही बच्चे इससे पलते हैं।
७–कितने ही महत्त्वाकांक्षी ऐसे होते देखे गये हैं।
८–जहाँ अच्छे मंत्री नहीं होते वहाँ यही होता है।
९–इसे देखना सब लोग पसन्द करते हैं।
११–बहुत से लोग युवकों का यह पसन्द नहीं करते।
१३–तिब्बत के यात्री इसके भी दर्शन करते हैं।
१७–आर्य लोग इसके बराबर गीत गाते आये हैं।
१८–मनुष्य इसका शिकार हुआ और गया।
१९–लड़के इससे भी आनन्द खोज लेते हैं।
२४–मार्ग में इसकी अधिकता यात्रियों के कपड़े ख़राब कर देती है।
२५–भारतीय किसान का यह एक ख़ास गुण है।
२७–स्त्रियों के ओढ़ने का एक बहुरंगी वस्त्र।
२८–जितना ही स्वच्छ हो उतना ही लाभदायक होता है।
२९–एक सुन्दर मादा-पशु।
३०–इसकी लकड़ी चिकनी और मज़बूत होती है।
३२–छोटा सा कण।

३३–कर भेजना चाहिए और दो ख़ाने ख़ाली छोड़
३४–ए।

स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में
१–लय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और
२–बीच में डाली जा सकती हैं।
३–वर्ग नम्बर ३१ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर
५–बन्द दिया गया है, ता० २५ फ़रवरी सन् १९३९ को
९–सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण
१०–जि खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं
१२–इन होकर उसे देख सकते हैं।
१४–पह
कर
१५–हल
२०–एक
२२–यह
२३–यह
२५–मक
होती
२९–इसे
३०–कुछ
३१–देहा

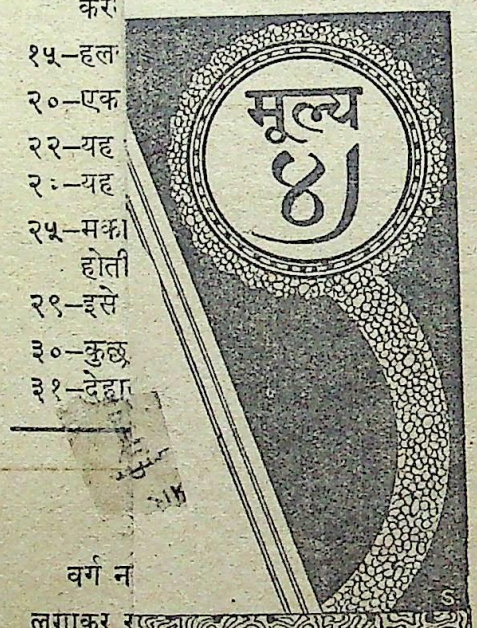

वर्ग न
लगाकर

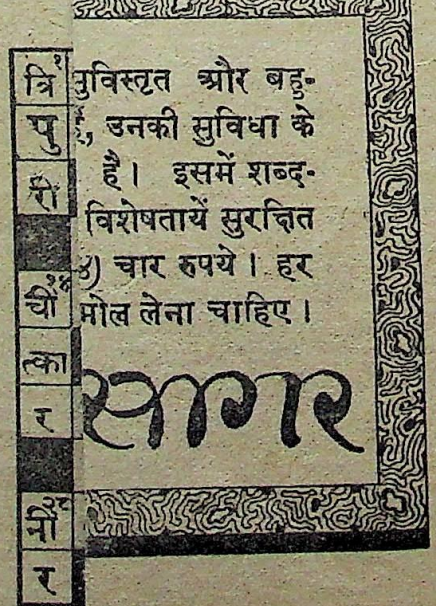

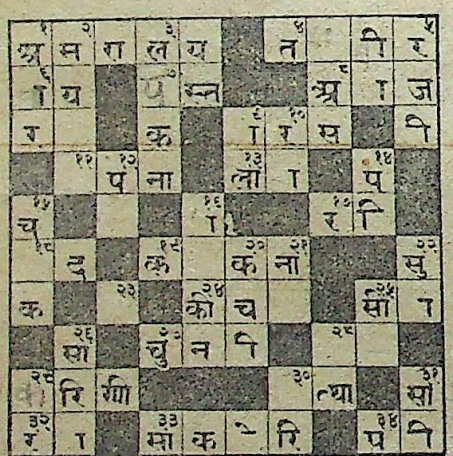

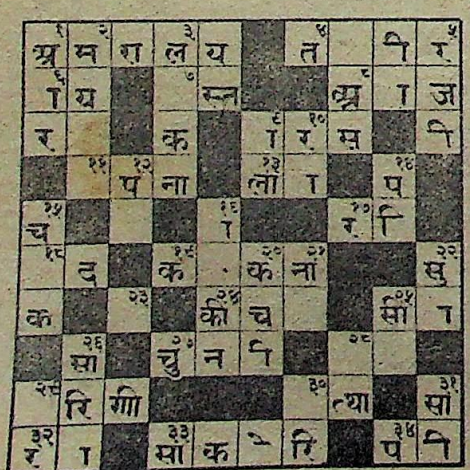

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३१ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए।
और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक महान् संपादक

लेखक, श्रीयुत हरिकेशव घोष

सन् १९१० का शीतकाल था। एक दिन सवेरे ही मेरे पूज्य पिता ने बड़े भाई के साथ, मुझे उन महान् साहित्यिक का दर्शन कराया। उस पुण्य प्रभात की स्मृति अब भी मेरे मस्तिष्क में ताज़ी है। द्विवेदी जी ने मेरी पीठ पर हाथ फेरा; मुझे प्यार किया। उसी दिन से मैं उनका वात्सल्य-भाजन बन गया। शाम को वे घंटों मुझे राजपूताना के इतिहास की वीरतापूर्ण और शिक्षाप्रद कहानियाँ सुनाया करते थे। इलाहाबाद में कुछ दिन रुककर जब वे जुही को चले जाते थे तब भी हम उनके महान् व्यक्तित्व का अनुभव बहुत दिनों तक करते रहते थे। कानों में पड़े हुए उनके अमूल्य और उत्साहवर्द्धक उपदेश मुझे आज तक याद हैं। उनके वियोग की इस शोकपूर्ण अवस्था में मैं उन समस्त छोटी-छोटी घटनाओं का चित्र खींच सकता हूँ जिन्होंने द्विवेदी जी को हमारे इतने समीप कर दिया था। मेरे प्रकाशन-सम्बन्धी कार्यों में वे मुझे जीवनभर बराबर प्रोत्साहन देते रहे। उनकी बहुमूल्य शिक्षायें—जो मुझे हृदयङ्गम हो गई हैं—आज तक कार्य-सञ्चालन में मेरा पथ-प्रदर्शन करती हैं।

द्विवेदी जी और इंडियन प्रेस का सम्मिलन मैत्री और मेलजोल का एक लम्बा रेकार्ड है। एक आदर्श सम्पादक और प्रकाशक का इससे अच्छा सहयोग शायद ही कहीं देखने में आये। 'सरस्वती'-द्वारा हिन्दी-भाषा और उसके साहित्य की उन्नति ही एक ऐसा आदर्श था जिसने इन दोनों महान् आत्माओं—मेरे पिता जी और द्विवेदी जी—को एक कर दिया। दोनों महापुरुष अपने जीवन के उद्देश्य में सफल हुए और उन दोनों के मिलन की स्मृति इस संस्था को क़ायम रखना मैं अपना कर्त्तव्य मानता हूँ।

द्विवेदी जी नियमों के कड़े पाबन्द और आदर्श सम्पादक थे। इन गुणों को देखते हुए उनकी स्थानपूर्ति हो सकना बहुत काल तक कठिन है। उनका स्वभाव दया-पूर्ण था; उनकी कार्यप्रणाली स्वच्छ थी और उनके उपदेश यथार्थ थे।

'सरस्वती'-विभाग का प्रत्येक व्यक्ति उन्हें श्रद्धा और स्नेह की दृष्टि से देखता था। यद्यपि अस्वस्थता के कारण 'सरस्वती' का सम्पादन वे जुही से करते थे पर मुद्रकों को सदा यही अनुभव होता था मानों द्विवेदी जी सामने मौजूद हैं। उनके पास से प्रकाशनार्थ आई हुई सामग्री इतनी शुद्ध और स्पष्ट होती थी कि उनसे किसी बात को दुबारा पूछने की ज़रूरत शायद ही पड़ती थी। वे ग़ज़ब के प्रूफ़ संशोधक थे। शैली, स्पेलिङ्ग और विरामचिह्नों की एकरूपता का उन्हें बड़ा ध्यान रहता था। छापे की छोटी-से छोटी भूल भी उन्हें असह्य थी। उनके कठोर व्यक्तित्व ने साहित्यिक-जीवन के आरम्भ-काल में उनके कई आलोचक भी पैदा कर दिये थे। फिर भी, जब तक द्विवेदी जी को अपनी भूल का निश्चय न हो जाय, किसी के सामने झुकना उन्हें आता ही न था। फिर जिस विषय में उन्हें अपने 'ठीक' होने का निश्चय रहता था, उसमें वे तीव्र से तीव्र टिप्पणियाँ देने में भी हिचकते न थे।

यद्यपि तत्कालीन दक़ियानूसी लेखकों में वे इतने प्रख्यात न थे, पर हिन्दी-लेखक न जाने उन्होंने कितने पैदा कर दिये। वे लेखक, जिन्हें प्रोत्साहित करके द्विवेदी जी ने लिखना सिखाया, सदैव उनके समर्थक बने रहे। इस प्रकार उनके अनुयायियों की भी संख्या बहुत बड़ी थी। नये लेखकों का उत्साह बढ़ाने के लिए, द्विवेदी जी उनके लेख शुद्ध करके—और कभी कभी दुबारा स्वयं लिख कर—उनके नाम से छाप दिया करते थे। सरस्वती से अवकाश ग्रहण कर लेने के उपरान्त भी वे प्रायः उसमें अपने बहुमूल्य लेख भेजते रहे।

यद्यपि वे अब हमारे बीच में नहीं हैं फिर भी उनकी अदृश्य सत्ता और उनका आदर्श व्यक्तित्व चिर काल तक 'सरस्वती' के संचालन में पथ-प्रदर्शन करता रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धेय आचार्य श्री द्विवेदीजी

लेखक, श्रीयुत बाबा राघवदास

१९२९ की बात है। पूज्य महात्मा गांधी गोरखपुर आदि ज़िलों में खादी-सहायतार्थ दौरा कर चुके थे और उसी साल गोरखपुर में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का वार्षिकाधिवेशन होनेवाला था। गोरखपुर के सभी मित्रों ने यह तय किया कि श्रद्धेय आचार्य द्विवेदीजी को सभापति बनाया जाय। और यह काम मुझे सौंपा गया कि मैं कानपुर जाऊँ और स्वर्गीय गणेशशंकर जी विद्यार्थी की सहायता से आचार्य जी को इस पद के लिए राज़ी करूँ। मैं कानपुर गया। श्री गणेश जी से मिला। श्री गणेश जी ने कहा—मैं इस कार्य में आपकी सहायता नहीं कर सकूँगा। आचार्य जी इस बारे में निश्चय कर चुके हैं, पर आप उनके पास जायँ और प्रयत्न करें। देखिए, क्या जवाब देते हैं।

श्री गणेश जी से दौलतपुर का रास्ता पूछकर मैं वहाँ गया। क़रीब ११ बजे बिन्दकी स्टेशन से पैदल चल कर गंगापार करके दौलतपुर पहुँचा। आचार्य जी मेरा नाम तो पहले से ही जानते थे। पास जाने पर वे मुझे पहचान गये और आने का कारण पूछा। मैंने उनसे कहा कि गोरखपुर के सभी मित्रों का सविनय आग्रह है कि आप सम्मेलन के अध्यक्ष होकर पधारने की कृपा करें। इस पर वे बोले कि भाई, मैं तो वृद्ध हो गया हूँ। मुझे अपना रोज़ का काम ही कठिन हो गया है। इस झंझट में कहाँ डालते हो। आदि। मेरे बार बार विनय करने पर भी उन्होंने असमर्थता प्रकट की। इसके बाद मैंने सन्देश माँगा जो उन्होंने लिखकर दे दिया।

दौलतपुर में जाकर वहाँ की सफ़ाई, पंचायत, पाठ-शाला आदि का प्रबन्ध देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई थी। आचार्य जी केवल हिन्दी के ही आचार्य नहीं थे, पर जिस ग्राम-सुधार-सेवा की चर्चा आज इतने ज़ोरों से हो रही है उसको उन्होंने अपनी वृद्धावस्था में आज से १० वर्ष पहले कर दिखाया था। वे जैसे लेखक थे, वैसे ही कर्मठ ग्राम-सेवक भी थे।

बरहज आश्रम में हम लोग हाथ से काग़ज़ बनाते हैं। इसकी सूचना हरिजनसेवक में प्रकाशित की गई। उसके प्रकाशित होते ही आचार्य जी का एक कार्ड मिला, जिसमें इस ग्रामोद्योग के लिए प्रसन्नता प्रकट की गई थी और १) का हाथ का काग़ज़ वी० पी० से माँगा था। पत्र पढ़कर मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। कहाँ हमारा यह प्राथमिक कार्य और कहाँ यह आचार्य जी के द्वारा मिला हुआ प्रोत्साहन! आचार्य जी नवयुवकों का उत्साह कैसे बढ़ाते रहे हैं, इसका यह एक सुन्दर उदाहरण है।

मैंने विचार किया कि श्री रामायण-प्रचार-समिति-बरहज से जो हज़ारों छात्र रामायण-परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं उनको दिये जानेवाले प्रमाण-पत्रों पर अध्यक्ष की हैसियत से आचार्य से हस्ताक्षर कराया जाय। 'कल्याण'-सम्पादक श्री हनूमानप्रसाद जी पोद्दार से इस विषय में बातें हुईं। आचार्य जी से पत्र-व्यवहार हुआ। बड़ी कठिनाई से वे राज़ी हुए। आश्रम से श्री पाठक जी रामायण-परीक्षा के सभी प्रमाण-पत्र लेकर गये और ५।६ दिन आचार्य जी के चरणों में बैठकर उनसे हस्ताक्षर कराये। आचार्य जी को इस कार्य में कष्ट हुआ, पर हमारे आग्रह को वे टाल न सके। रामायण-प्रचार-समिति के प्रमाण-पत्रों पर पहले-पहल आचार्य जी ने ही अध्यक्ष की हैसियत से हस्ताक्षर किये थे।

आचार्य जी को मराठी-भाषा से बहुत प्रेम था। मैं जैसे दौलतपुर पहुँचा और उनसे बातें करने लगा, वे बोले, आपकी बोली में मराठी-भाषा की बू आती है। मैंने कहा—"हाँ, मैं तो महाराष्ट्र का ही हूँ।" इस पर उन्होंने मुझसे मोरोपंत, एकनाथ, मुक्तेश्वर आदि कई प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय कवियों के बारे में कई प्रश्न पूछे। मैं उनके प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर न दे सका। मुझे उनकी मराठी में भी जो विशद जानकारी थी उसको देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

उनका शिष्टाचार, वात्सल्य, ग्रामीणों के प्रति अपार प्रेम और विद्वत्ता देखकर उनके सामने बरबस सिर झुक जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

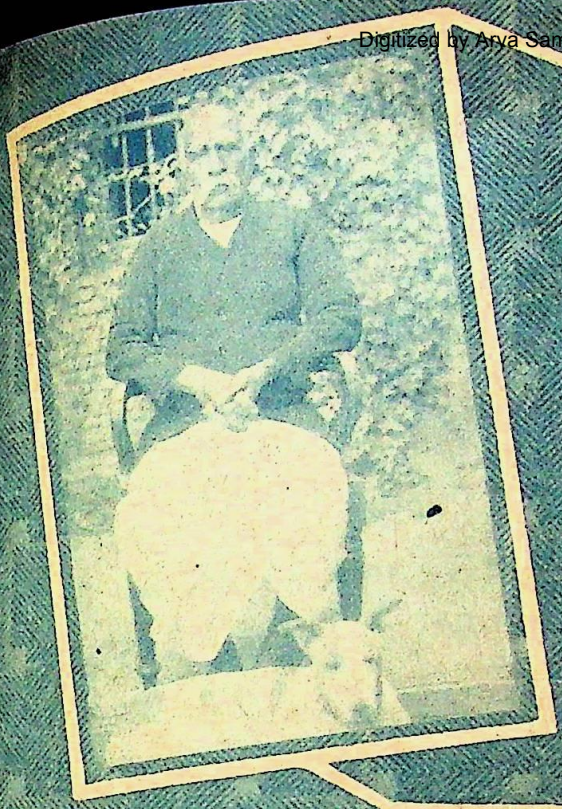

ऊपर बायें—द्विवेदी जी अपने प्यारे कुत्ते के साथ। **ऊपर दाहने**—द्विवेदी जी के दरवाज़े पर ग्राम-पाठशाला। **बीच में**—द्विवेदी जी अपने खेत के पास। **नीचे बायें**—द्विवेदी जी अपनी बैठक के बाहर। **नीचे दाहने**—द्विवेदी जी के उत्तराधिकारी पण्डित कमलाकिशोर त्रिपाठी।

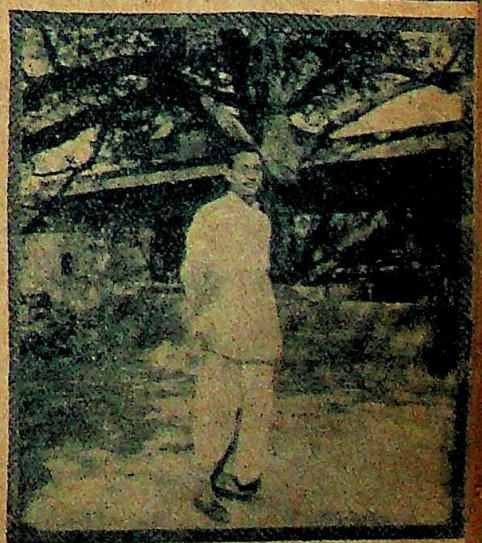

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Coll

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

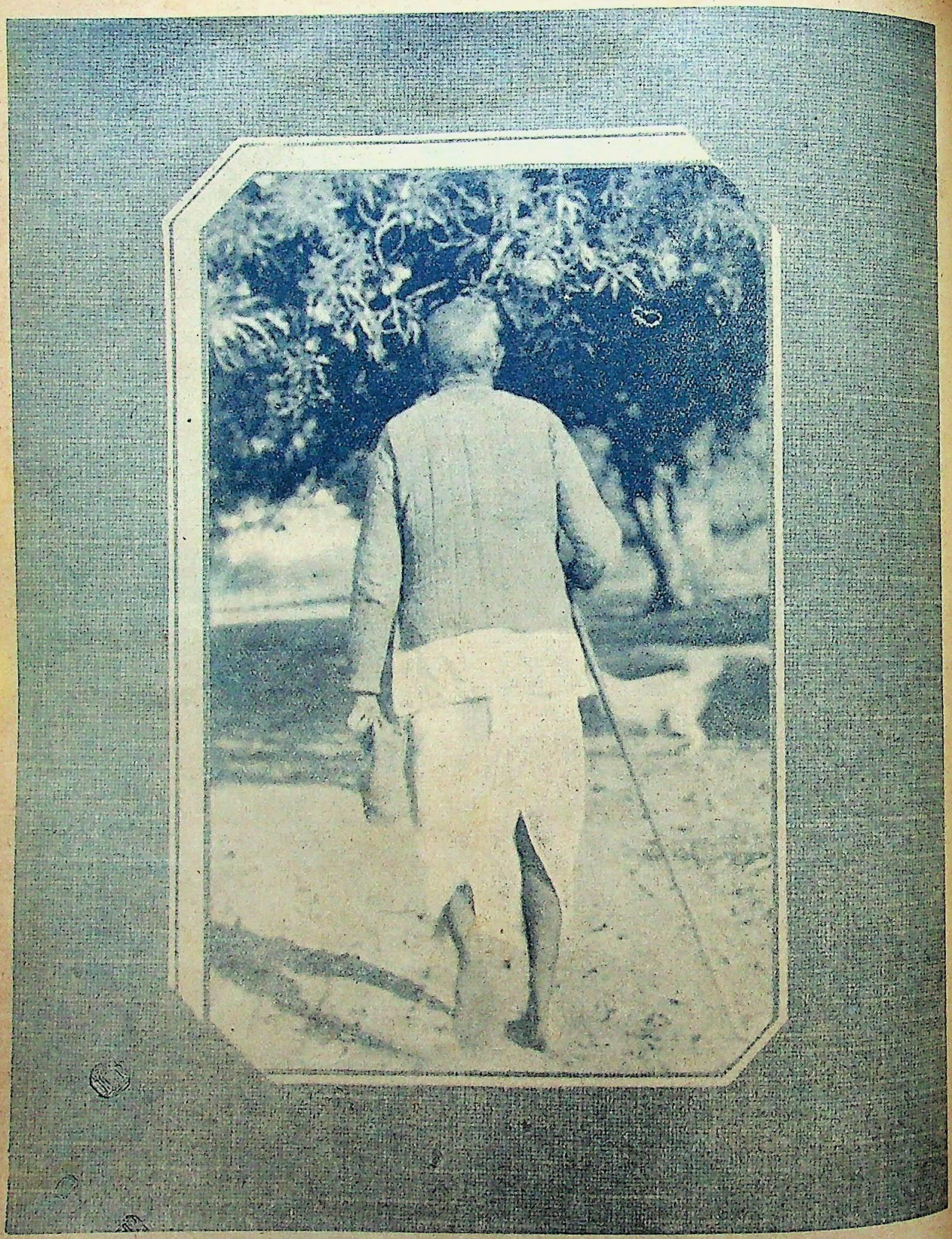

आचार्य द्विवेदी जी अपने गाँव में वायुसेवन के लिए जा रहे हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी जी सहृदय पुरुष

लेखक, पण्डित ज्वालादत्त शर्मा

बहुत सहृदय पुरुष थे, थोड़ी सी सचाई पर भी बहुत रीझ जाते थे और कपट की गन्ध पर खीज। जिसमें प्रेम का थोड़ा भी अंश पाते थे उसे अपना लेते थे, द्वेष की गन्ध पाते ही उसे तत्काल और सदा के लिए त्याग देते थे। 'सदा के लिए' उनकी विशेषता थी। अपने दिल के आइने को साफ़ रखना चाहते थे, सत्य और प्रेम की आभा से वह उज्ज्वल रहता था। ईर्ष्याद्वेष की धूल और मिथ्या कपट का धुवाँ उसके पास न आ जाय इस पर उनकी बड़ी कड़ी नज़र रहती थी। बालकों की तरह सरल, भक्तों की तरह नम्र और पण्डितों की तरह विवेकशील थे, साथ ही एक बार सोच-विचार कर जो निर्णय और तदनुसार निश्चय कर लेते थे उसके पालन में पत्थर की तरह कठोर और हिमालय की तरह स्थिर हो जाते थे। आडम्बर से दूर रहते थे किन्तु सुव्यवस्था के स्वरूप थे, खुशामद उनकी आदत में न थी; न करते थे न सुनना पसन्द करते थे किन्तु विनय और नम्रता के अवतार थे। विद्वान् उच्च कोटि के थे साथ ही निरभिमान भी परले सिरे के थे, भीतर से पक्के ज्ञानी भक्त थे किन्तु बाहर के मोहमुग्ध संसारी जीव थे। अन्तःकरण नवनीत की तरह कोमल और स्वच्छ था, बाहर से रूखे और कठोर से दिखाई पड़ते थे, उनमें जिन अलौकिक गुणों का समावेश हुआ था उसके कारण ही वे साधारण से असाधारण बने थे और उन्हीं के संग्रह और संरक्षण में उन्होंने अपने ढङ्ग से—दीखने में अद्भुत—परिसमाप्ति की। हाली के नीचे लिखे शेर उन पर पूरे घटते हैं—

नुक्ता दाँ नुक्ता संज नुक्ता शनास,
पाकदिल पाकज़ात पाक सिफ़ात।
लाख मज़मून और उसका एक ढिठोल,
सौ तकल्लुफ़ और उसकी सीधी बात।
एक रोशन दिमाग़ था न रहा,
शहर में एक चिराग़ था न रहा।
नक़्दे मानी का गंजदाँ न रहा,
ख़ाने मज़मूँ का मेज़बाँ न रहा।
कोई वैसा नज़र नहीं आता,
वह ज़मीं और वह आस्माँ न रहा।
ख़ाकसारों से ख़ाकसारी थी,
सर बुलन्दों से इनकिसार न था।
अब न दुनिया में आयँगे यह लोग,
कहीं ढूँढे न पायँगे यह लोग।
मज़हरे शान हुस्ने फ़ितरत था।
मानिये लफ़्ज़ आदमीयत था।

श्रद्धा के फूल

लेखक, श्रीयुत श्रीचूड़ामणि शर्मा 'चातक'

आज न घन-माला में मुकुलित सतरंगा सुर-चाप,
आज न अपने में पाता हूँ परिचित प्रचुर प्रताप।
मानस के कोने-कोने में श्याम अमा को रात,
उर में चिर पतझर का नर्तन, नयनों में बरसात।
विषमविषादाकुल मुखधूमिल सत्साहित्याकाश,
हुआ तिरोहित तमसा-तट पर, रवि का प्रखर प्रकाश।
मौन विवशता के अंचल से सजलनयन साहित्य,
खोज रहा पश्चिम-जल-निधि में वह अपना आदित्य।
बदल गया बस एक पलक में मधुवन का सब साज,
पतझर के कर में कर देकर चले गये ऋतु-राज।
सरस्वती-मन्दिर के तुम थे सुन्दर बन्दनवार,
अर्पित हो सेवा में वन्दन-अभिनन्दन शत बार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी जी का आचार्यत्व

लेखक, पण्डित केशवप्रसाद मिश्र काव्यतीर्थ

तीस-छत्तीस वर्ष की बात है। मैं संस्कृत का विद्यार्थी था। काशी में व्याकरण पढ़ता था। यों मेरी दुनिया ही दूसरी थी। मेरे संसार में हिन्दी का कोई स्थान न था। 'भाखा' कहकर उसे तुच्छ समझने-वालों की मण्डली में मेरे दिन बीतते थे सही, पर न जाने क्यों 'सरस्वती' मुझे बहुत अच्छी लगती थी। अवच्छेदकता-प्रकारता की गुलझटों से उचटता कि 'सरस्वती' में गोते लगाता। 'सरस्वती' मेरे यहाँ नहीं आती थी, एक पड़ोसी की होती थी, इससे कभी कभी सूखा भी पड़ जाता था। पर किसी न किसी फेर से बिना अथ से इति तक चाटे मुझे चैन ही न पड़ता था। जब किसी परिचित का लेख या कविता पढ़ता तब मन के किसी कोने में एक आकांक्षा जाग उठती—काश मेरी भी कोई चीज़ 'सरस्वती' में निकलती!

यों ही दस वर्ष बीत गये। सन् १९१३ के दिसम्बर में आख़िर हिम्मत कर ही तो डाली। 'सुदामा' पर एक लम्बी तुकबन्दी लिखकर उत्साह से द्विवेदी जी के पास भेज दी और मान लिया कि अब पंच बराबर होने में बस सिर्फ़ एक ही महीने की देर है। 'सरस्वती' में मेरी 'कविता' निकली कि मैं लेखकों में गिना गया।

लेकिन द्विवेदी जी ने तुकबन्दी लौटा दी। लिखा कि इसमें ये दोष हैं, इन्हें दूर करके किसी और पत्रिका में प्रकाशित करा लो। मैंने ठीक करके उसे 'मर्यादा' में भेज दिया और वह यथासमय प्रकाशित भी हो गई।

हाँ, द्विवेदी जी ने मुझे उसी पत्र में यह भी लिखा था कि 'वर्त्तमान दुर्भिक्ष' पर एक अच्छी कविता भेजो तो मैं 'सरस्वती' में प्रकाशित कर दूँगा। इससे मेरा उत्साह भग्न नहीं हुआ, मेरी पहली कविता के लौट आने से उसे थोड़ी-बहुत ठेस भले ही लगी हो।

मैं रोम रोम से मा सरस्वती की वन्दना करने लगा, वरदे! शारदे! थोड़ी ही देर के लिए मुझ पर पसीज जा! मैं भी 'सरस्वती' का लेखक बन जाऊँ। मैंने तन-मन से दुर्भिक्ष पर कुछ पंक्तियाँ लिख डालीं। इनकी रचना में मुझे कुछ देर न लगी। फिर क्या था, तुरन्त ही द्विवेदी जी को भेज दीं। उन्होंने दाद दी और मैं उनकी दीक्षा से 'सरस्वती' का लेखक बन गया। थोड़े ही दिनों में द्विवेदी जी का यह पत्र आया कि "सरदार शहर राज-पुताना के एक सज्जन तुम्हारी कविता से प्रभावित होकर तुम्हें ही स्वतः दुर्भिक्ष-पीड़ित समझ कर कुछ सहायता करना चाहते हैं। मैंने उन्हें सच्ची बात लिख दी है।"

कुछ दिनों के बाद जीविका के लिए मुझे इटावे में रहना पड़ा। द्विवेदी जी उन दिनों जुही, कानपुर, में ही रहते थे। मेरी इच्छा हुई कि एक बार द्विवेदी जी के दर्शन तो कर लूँ, इतना समीप आ गया हूँ। मैंने आज्ञा माँगी। उन्होंने लिखा—"आइए, खुशी से आइए। पर आज-कल मेरे पास कोई आदमी नहीं। इसलिए तकलीफ़ का ख़याल कर लीजिएगा।" मैं तकलीफ़ का क्या ख़याल करता? संस्कृत का विद्यार्थी था। दूसरे ही दिन जा पहुँचा।

जाड़े के दिन थे। मैंने एक सज्जन को अमौवे की बंडी और पण्डिताऊ कन्टोप पहने चारपाई पर बैठे देखा। समझा, ये कोई ग्रामीण विद्वज्जन हैं और इनसे द्विवेदी जी का पता चलेगा। मैंने नाम बताया और द्विवेदी जी के दर्शनों की अभिलाषा प्रकट की। आचार्य उठ खड़े हुए और मुझे भुजाओं में समेट लिया।

जिस स्नेहासिक्त वात्सल्य का आलम्बन मैं उस दिन बन सका, शायद अब इस जीवन में मुझे उसकी अनुभूति न होगी।

बातें होने लगीं। आचार्य की सोई संस्कृत-सरस्वती जाग उठी। कितने काव्यों और शास्त्रों की चर्चा हुई, कह नहीं सकता। सायंकाल मैं बैठा कुछ देख रहा था। आचार्य सामने आये। मैं उठ खड़ा हुआ। बोले—

"विरम्यतां भूतवती सपर्या
निर्विश्यतामासनमुज्झितं किम्" (नैषधीयचरित)

मैं चकित होकर रह गया। बात बात में संस्कृत का प्रवाह! सच तो यह है कि उनके सत्संग में मैंने जो संस्कृत-सागर की लहरें लीं वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। गया था बारह घंटे के लिए, रह गया डेढ़ दिन!

सबेरे उठता हूँ तब देखता हूँ कि पानी का लोटा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये आचार्य स्वयं खड़े हैं। मैं लज्जा में डूब गया। बोले—वाह! तुम तो मेरे अतिथि हो!

दस बजे। द्विवेदी जी ने मुझे कुछ पुस्तकें दीं और कहा कि अब पाँच बजे तक मुझसे बातचीत न हो सकेगी, अब इन्हें पढ़ो और आर्मीप्रेस के मैनेजर भगवान्दास जी से बातचीत करो।

द्विवेदी जी तो तल्लीन होकर 'सरस्वती' का सम्पादन करने लगे और मेरे वे घंटे दूभर हो गये।

रात्रि के समय द्विवेदी जी 'सैंटिफ़िक अमेरिकन' पढ़ते और उसके आधार पर वैज्ञानिक नोट लिखते। मैंने देखा, कितने ही नामी नामी लेखक किस प्रकार वहाँ सुधारे-सँवारे जाते हैं।

द्विवेदी जी कभी 'नियमनारायण शर्मा' के रूप में हिन्दी के अक्षरविन्यास को व्यवस्थित करते, कभी 'श्रीकण्ठ पाठक एम० ए०' होकर भाषा की मिट्टी पलीद करनेवालों को राह पर लाते, कभी 'भुजङ्गभूषण भट्टाचार्य' बनकर कथासाहित्य की नींव डालते तो कभी 'कश्चित् कान्यकुब्जः' का जामा पहनकर समाज को सुधारने का प्रयत्न करते। ऐसे थे वे सर्वाङ्गसेवक!

जो कुछ कहना होता, निर्भीक होकर कहते और कभी किसी फ़िसलन में पड़कर अपने सिद्धान्तों से बाल भर भी न टलते।

आलोचना-प्रत्यालोचना के क्षेत्र में ही उनकी लेखनी का दिल खुलता और वे खुल खेलते। क्या मजाल कि कोई साहित्य-संसार में रत्ती भर भी अन्याय करने पाता। जहाँ जो सिर उठाता वहीं उस पर महावीर की चपेट पड़ती।

जैसे द्रोणाचार्य एकलव्य के गुरु थे, वैसे ही द्विवेदी जी को मैं अपना गुरु मानता हूँ। 'सरस्वती' से ही मैंने हिन्दी सीखी है और आज इतनी संस्कृत पढ़ने पर भी हिन्दी की ही रोटी खाता हूँ।

श्रद्धाञ्जलि*

लेखक, श्रीयुत राजमणि शर्मा

खिला कविकुल-कुसुमों का पुञ्ज
बना नव गौरवमय साहित्य—
अचानक आह! हो गया अस्त,
वही हिंदी-जग का आदित्य।

रिक्तकर मा वाणी की गोद—
दुखी हिंदी-जग का परिवार
अमर-पद पाया उसने आज—
गया कर भवसागर को पार।

समर्पित श्रद्धाञ्जलि है आज,
उसे जो हम सबका आचार्य—
सतत सुरपुर हो अविचल वास,
शांति सद्गति पाये वह आर्य।

---

* साहित्यिक गोष्ठी कानपुर की शोक-सभा में पठित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी जी की अन्तिम बीमारी

लेखक, डाक्टर शंकरदत्त शर्मा

पूज्य आचार्य द्विवेदी जी अपने अंतिम बीमारी में एक मास पहले से मेरे यहाँ आगये थे और मेरे ही यहाँ उनकी चिकित्सा हुई थी।

सबसे पहले मुझे उनके संबंध में दो-एक बातें बतला देना आवश्यक प्रतीत होता है। पाठकगण क्षमा करें।

वैसे तो मैं वर्षों से द्विवेदी जी के विषय में पढ़ा और सुना करता था, परन्तु सन् १९३७ से जब उनकी पोष्यपौत्री (उनके भानजे पंडित कमलाकिशोर जी त्रिपाठी की पुत्री) का विवाह मेरे बड़े लड़के के साथ हुआ तब से मुझे उनके संपर्क का भी सौभाग्य हुआ और बड़ी घनिष्ठता हो गई। वे मुझे अपना भाई समझते थे और मुझ पर बड़ी कृपा रखते थे और बड़ा प्रेम करते थे। समय-समय पर मुझे दौलतपुर बुलाकर अपने सुख-दुख की गाथा सुनाकर शान्तिलाभ किया करते थे। मुझे इस बात का बड़ा दुःख है कि मेरा-उनका यह परस्पर का सम्बन्ध बहुत दिनों तक जारी न रह पाया और वे सदा के लिए हम लोगों को रोता-बिलखता छोड़कर इस असार संसार से चल बसे। जितना ही ज़्यादा मैं उनसे मिलता था, उतना ही ज़्यादा मेरी श्रद्धा और भक्ति उन पर बढ़ती जाती थी।

मैं समझता हूँ कि उनके बराबर सदाचारी होना अत्यन्त कठिन है। जब उनकी धर्मपत्नी जी का देहान्त हुआ था तब उनकी आयु केवल ४२ वर्ष की थी। लोगों ने दूसरा विवाह करने के लिए उनसे बहुत कुछ कहा-सुना, परन्तु वे किसी तरह भी राज़ी नहीं हुए। वे एकपत्नी-व्रती थे। अपनी स्त्री पर उनकी अपार श्रद्धा थी। इसी लिए उन्होंने अपनी बैठक के सामने एक छोटे से मंदिर में उनकी एक प्रतिमा स्थापित की थी और नित्य उसको प्रणाम किया करते थे। श्रीमती जी की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने यह सोचकर कि इन्द्रियाँ प्रबल होती हैं, कहीं उनका मन डिग न जाय, एक डाक्टर से शस्त्र-प्रयोग-द्वारा सदा के लिए अपने को अयोग्य बनवा लिया था। सदाचार और एकपत्नीव्रत की दृढ़ता का इससे बढ़कर क्या कोई दूसरा उदाहरण मिल सकता है?

इधर कई वर्षों से पूज्य द्विवेदी जी कुछ न कुछ अस्वस्थ बने ही रहते थे। उनका आहार लौकी की तरकारी, दलिया और दूध था। दो-तीन बार वे बहुत बीमार पड़े, यहाँ तक कि उनके जीने की कोई आशा बाक़ी न रही थी, परन्तु ईश्वर की कृपा से वे बच जाते रहे। पर इन बीमारियों के झटकों से उनका शरीर कमज़ोर हो गया। कुछ समय से उनकी स्मरण-शक्ति भी कमज़ोर पड़ गई थी। वे बहुत दवाइयाँ खाना पसंद नहीं करते थे। व्यायाम और आहार से ही छोटी-छोटी तकलीफ़ों को दूर करने का प्रयत्न करते रहते थे।

गत आक्टोबर मास में उन्होंने मुझे लिखा कि मैं सूखी खुजली से बहुत तंग हूँ। कई आयुर्वेदिक ओषधियों का प्रयोग किया, पर कोई लाभ नहीं हुआ। कुछ समय तक होमियोपैथिक चिकित्सा भी की, पर उससे भी कोई फ़ायदा नहीं पहुँचा। तब मैंने रायबरेली से शरीर पर लगाने की एक ओषधि भेजी, परन्तु वह भी बेकार साबित हुई। अंत में मैंने उनको लिखा कि आपकी खुजली किसी आंतरिक विकार का फल मालूम होता है, आपके मूत्र आदि की परीक्षा होना चाहिए।

नवम्बर के द्वितीय सप्ताह में मैं दौलतपुर गया और जब अच्छी तरह देखा-भाला तब पता चला कि उनका पेशाब बहुत कम पड़ गया है और उसमें अल्ब्यूमिन और शुगर तो नहीं है परन्तु यूरेट बहुत जाते हैं। पेट में पानी आ गया है अर्थात् जलोदर हो गया है। शरीर के किसी भाग पर उस समय तक सूजन नहीं आई थी। कुछ दिनों तक उनके पास ठहरकर चिकित्सा आरम्भ की। जब कोई विशेष लाभ दृष्टिगोचर न हुआ तब मैंने उनसे निवेदन किया कि आप रायबरेली चलिए और मेरे यहाँ ठहरिए। तभी आपकी चिकित्सा समुचित रूप से हो सकती है। यहाँ रह कर नहीं। उन्होंने लोकापवाद और रूढ़ि की तनिक भी परवा न करते हुए मेरी प्रार्थना को तत्काल स्वीकार कर लिया। निश्चय हुआ कि मैं पंडित कमलाकिशोर जी त्रिपाठी को लेकर रायबरेली जाऊँ और वहाँ से त्रिपाठी जी के साथ उनके लिए मोटर भेज दूँ। हम दोनों १६ नवम्बर को रायबरेली आये और दूसरे दिन १७ को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोटर-गाड़ी भेज दी। १८ को सायंकाल ४ बजे पूज्य द्विवेदी जी रायबरेली पहुँच गये। रास्ते में लोन नदी में पानी कुछ अधिक था, इससे मोटर चक्कर से आई-गई। मार्ग में उनको बड़ा कष्ट हुआ। यहाँ पहुँचते ही उन्होंने मुझसे कहा कि भाई! बड़ी तकलीफ़ उठानी पड़ी, ख़ैर, किसी तरह से पहुँच गया। रास्ता अधिकतर कच्चा था। झटकों से उनको बड़ा कष्ट पहुँचता था और वे चिल्ला-चिल्ला उठते थे। यहाँ आने पर देखा तब मालूम हुआ कि दोनों पैरों पर सूजन आ गई है।

१९ को मैंने यहाँ के सदर अस्पताल के असिस्टेंट सर्जन डाक्टर जैन तथा प्राइवेट प्रैक्टिशनर डाक्टर डे को भी बुलाकर दिखलाया और सबके परामर्श से चिकित्सा प्रारम्भ हुई। दो तीन दिन के बाद पैरों की सूजन तो जाती रही, परन्तु पेट का पानी नहीं कम पड़ा। जब दवा करते-करते काफ़ी समय बीत गया और पेट का पानी नहीं कम पड़ा और कष्ट बढ़ता ही गया तब यह निश्चय हुआ कि पेट का पानी निकाल देना चाहिए। निदान ४ दिसम्बर को डाक्टर जैन ने पानी निकाला। लगभग ५-६ सेर पानी निकला। इससे पेट के दर्द में कमी होगई और भूख भी बढ़ी। फलों का रस और दूध दिया जाता था सो अब कुछ अधिक मात्रा में लेने लगे। यह सब तो हुआ, परन्तु कमज़ोरी जो पहले ही से बढ़ी हुई थी उसमें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा, बल्कि बढ़ती ही जाती थी। मालूम होता था कि जो कुछ खाते-पीते हैं वह शरीर में लगता ही नहीं।

कानपुर के आर्य-समाज-डिस्पेंसरी के डाक्टर राम-नारायण वर्म्मा को भी बुलाया, क्योंकि पहले कई बार आपने भी द्विवेदी जी की चिकित्सा की थी। वे आये और देखभाल कर चले गये। कह गये कि जो ओषधियाँ दी जा रही हैं वही देते जाइए।

पूज्य द्विवेदी जी की कमज़ोरी बराबर बढ़ती ही जाती थी और किसी भी दवा से कोई लाभ नहीं हो रहा था। वे रात-दिन पलङ्ग पर पड़े ही रहते थे—उठते-बैठते नहीं थे। कभी-कभी कुछ थोड़ी देर के लिए बेहोशी सी भी हो जाया करती थी। इस बीच में हम लोगों ने उनसे कई बार पूछा कि क्या आप दौलतपुर जाना चाहते हैं। हर बार उन्होंने यही उत्तर दिया कि वहाँ क्या धरा है जो जाऊँ। वहाँ दवादरमट का भी तो ठीक नहीं। मैं तो यहीं रहूँगा और कहीं आऊँ-जाऊँगा नहीं—चाहे जो कुछ हो, जो होना है वह यहीं होगा।

१९ को सबेरे से कुछ हिचकियाँ आने लगीं और बेहोशी भी बढ़ चली। जब अँगरेज़ी दवाइयों से इनमें कोई कमी न हुई तब पंडित कमलाकिशोर जी ने मुझसे कहा कि यदि आप कहें तो अब मैं कुछ होमियोपैथिक दवाइयाँ देकर देख लूँ। मैंने कहा कि ठीक है, क्यों न उन्हें देकर देख लिया जाय! अतः त्रिपाठी जी ने दवाइयाँ देना आरम्भ किया और समय-समय पर यहाँ के होमियोपैथिक चिकित्सक बाबू बद्रीप्रसाद जी से भी सलाह-मशविरा लेते रहे। २० को प्रातःकाल आपने कृपा कर स्वयं देखने का भी कष्ट उठाया और ओषधियों के विषय में जो बतलाना था सो बतलाया। इस चिकित्सा से भी कुछ लाभ नहीं पहुँचा, अर्थात् हिचकियाँ बराबर बढ़ती ही गईं। रात में पिछले प्रहर सवा चार बजे जब मैंने उनको देखा तब उनकी नाड़ी की गति बहुत क्षीण पाई। पौने पाँच बजे उनके मुँह से कुल्लाभर पानी निकला और तत्काल प्राण-पखेरू उड़ गये।

मैंने तत्काल ही मोटर का प्रबन्ध किया और ६ बजे प्रातः काल उनके शव को दौलतपुर भेज दिया। मोटर ९ बजे दौलतपुर पहुँच गई और उसी दिन तीसरे प्रहर तक उनका दाह-कर्म हो गया।

अबकी जब से वे बीमार पड़े थे, बराबर कहा करते थे कि मेरे महाप्रस्थान का समय आगया है। मैं अब की बचूँगा नहीं। बीमारी में उनको बाहर के आदमियों से बहुत कम मिलने-जुलने दिया जाता था। फिर भी जो कोई आ जाता था उससे दो-चार बातें कर ही लेते थे। मरने से पूर्व उन्होंने कुछ नहीं कहा। जो कुछ उनको किसी से कहना-सुनना था वह वे पहले ही समझा-बुझा चुके थे।

लेख समाप्त करने से पहले मैं डाक्टर जैन तथा डाक्टर डे को विशेष धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता, जो समय-समय पर बराबर पधारकर उनकी चिकित्सा में योग दिया करते थे और हर समय बड़े चाव तथा लगन से देखने-भालने को तैयार रहते थे। साथ ही यहाँ के पंडित मार्तण्डदत्त जी वैद्य को भी धन्यवाद है जो कभी-कभी पधारकर देख जाने का कष्ट उठाया करते थे।

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे पथप्रदर्शक गुरु

लेखक, पंडित विश्वम्भरनाथ शर्म्मा कौशिक

पहले-पहल द्विवेदी जी के दर्शनों का सौभाग्य मुझे सन् १९१२ में प्राप्त हुआ था। सन् १९०९ से 'सरस्वती' का ग्राहक था। सरस्वती का ग्राहक होने के पश्चात् मेरे हृदय में लेखक बनने की महत्त्वाकांक्षा उत्पन्न हुई। परन्तु लिखूँ तो क्या लिखूँ ?

सन् १९१२ तक मैं इसी उधेड़-बुन में रहा। जब जब 'सरस्वती' का नया अङ्क आता तभी लेखक बनने का चाव उमड़ पड़ता, परन्तु चार-छः दिनों के पश्चात् फिर उस पर तुषार-पात हो जाता। अन्त को सन् १९१२ में बड़ा साहस करके मैंने एक कहानी 'नक़ली जन्टिल-मैन' के नाम से भेजी और धड़कते हुए हृदय से परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा। दस-बारह दिनों के पश्चात् कहानी वापस आई। उस समय मुझे जैसी निराशा हुई वह वर्णनातीत है। मैंने समझ लिया कि मैं इस जन्म में लेखक न बन सकूँगा और उसी दिन से लेखक बनने का ख़याल छोड़ दिया! परन्तु जब 'सरस्वती' का अङ्क आता तब उसे देखकर हृदय में एक टीस सी होने लगती थी। "ऐसी सुन्दर पत्रिका! ऐसे सुन्दर चित्र! ऐसा सुन्दर काग़ज़! ऐसी छपाई-सफ़ाई! आह! यदि इसमें मेरे लेख निकल सकते तो जन्म सफल हो जाता।"

अन्त को लेखक बनने की अन्तर्ज्वाला ने चैन से न बैठने दिया। इस बार खूब सोच-समझकर यह निश्चय किया कि कहानी न लिख कर कोई ऐसा लेख लिखना चाहिए जो अवश्य ही छप जाय। अतएव 'एयर पंप' पर एक सचित्र लेख लिखा। खूब रच रच कर लिखा—उसके चित्र भी स्वयम् ही बनाये, क्योंकि स्कूल में ड्राइङ्ग का अच्छा अभ्यास कर लिया था, और देवी-देवताओं का स्मरण करके उसे भेजा। उसका शीर्षक मैंने 'वायुपम्प' रक्खा था। लेख भेजकर आशा तथा निराशा के मध्य में झूलने लगा। एक सप्ताह व्यतीत होने पर भी जब कोई उत्तर न मिला तब बेचैनी पैदा हुई। यह तो ज्ञात था ही कि भाग्यविधाता (द्विवेदी जी) कानपुर में ही रहते हैं। अतएव दिल कड़ा करके यह निश्चय किया कि "चलो, ज़रा पता तो लगाओ कि छपेगा या नहीं! शायद आमना-सामना होने पर विधाता जी को कुछ दया आ जाय।" यह निश्चय करके झूही पहुँचा। सौभाग्य से द्विवेदी जी उस समय अकेले ही मिल गये। कमरे के बाहर एक खरहरी (बिना बिछौने की) चारपाई पर बैठे थे। शरीर पर एक बण्डी, घुटनों तक धोती, पैर में खड़ाऊँ! बैठे अपने विशाल उन्नत ललाट पर हाथ फेर रहे थे और कुछ ध्यान-मग्न से थे। मेरी आहट पाकर निगाह ऊपर उठाई। मैंने सकुचाते हुए कहा—"मैं द्विवेदी जी से मिलना चाहता हूँ।" आपने गम्भीरतापूर्वक एक कुर्सी की ओर (चारपाई के पास दो-तीन कुर्सियाँ रक्खी थीं) संकेत करते हुए कहा—"बैठिए! मैं ही द्विवेदी हूँ।" मैं हाथ जोड़कर संकुचित होता हुआ कुर्सी पर बैठ गया। क्या यह देहाती ही 'सरस्वती' का सम्पादक है!—यह विचार हृदय में उठा ही था कि द्विवेदी जी बोल उठे—"कहिए!" मेरी उनकी दृष्टि मिली। दृष्टि मिलते ही ऐसा प्रतीत हुआ, मानो किसी ने सिर पर हाथ रखकर नीचे को दाब दिया। मुझ पर उनका रोब छा गया। विशाल उन्नत ललाट की दमक, लम्बे बालों की घनी भौंहें, अन्तर्तल को छेदनेवाले नेत्र, घनी मूँछें, गम्भीर मुद्रा—इन सबका ऐसा प्रभाव पड़ा कि मेरी आँखों के सामने से बण्डी और ऊँची धोती लुप्त हो गई—केवल उनका रोबीला मुखमण्डल आँखों के सामने रह गया। उसे देखकर मैंने समझा कि मैं किसी बहुत बड़े आदमी के सामने बैठा हूँ। मैं बोला—"मैंने आपकी सेवा में एक लेख.....!"

"लेख का नाम क्या है?" द्विवेदी जी ने कहा।

"वायु-पम्प!" मैंने उत्तर दिया।

द्विवेदी जी की गम्भीरता मृदुता में बदल गई। किञ्चित् मुस्कराकर बोले—"हाँ वह लेख! वह लेख तो आप ही की तरह सुन्दर है।"

मैं इस वाक्य का तात्पर्य समझने की चेष्टा कर रहा था कि द्विवेदी जी पुनः बोले—"आपका लेख बहुत अच्छा है। मैं उसे छापूँगा।" कैसे मीठे थे वे शब्द!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे मीठे शब्द इतने जीवन में दो-चार बार ही सुनने को मिले। द्विवेदी जी मेरे लिए देवता थे और उनके शब्द वरदान। कुछ क्षणों तक स्तब्ध बैठा रहा। द्विवेदी जी ने पूछा—"पहले भी कभी कुछ लिखा है?"

"जी नहीं!"

यद्यपि मैंने एक उपन्यास लिखा था, जो मित्र-मण्डली में चक्कर काटते हुए वह खो गया, एक नष्ट वस्तु का ज़िक्र करके व्यर्थ में बात बढ़ाना रुचिकर प्रतीत न हुआ।

"आप ख़ासा लिखते हैं, लिखा करें!"

"लिखूँ क्या, यह समझ में नहीं आता!"

"रुचि किस ओर है?"

मैं अपनी रुचि बताते हुए झिझका। मेरी रुचि उपन्यास और गल्पों की ओर अधिक थी; क्योंकि उस समय स्कूली शिक्षा के अतिरिक्त केवल इन्हीं का अध्ययन बढ़ा हुआ था।

मैं सोच ही रहा था कि क्या कहूँ कि द्विवेदी जी ने दूसरा प्रश्न किया—"शिक्षा कहाँ तक पाई है?"

"मेट्रिक तक!" मैंने झेंपते हुए उत्तर दिया।

"क्या पढ़ना छोड़ दिया?"

"जी हाँ!"

"क्यों?"

"मैथेमेटिक्स (गणित) से तबीयत बहुत उलझती थी और उसी के कारण दो बार फ़ेल हुआ। तब से जी उचाट हो गया।" मैंने उत्तर दिया।

द्विवेदी जी मुस्कराये। मेरा साहस बढ़ा। मैंने कहा—"और सच तो यह है कि स्कूली शिक्षा में मेरा मन पूरी तरह कभी नहीं लगा।"

"कोई चिन्ता नहीं। बिना स्कूल की सहायता के भी बहुत कुछ पढ़ा जा सकता है—शौक़ होना चाहिए।"

"पढ़ता तो कुछ न कुछ रहता ही हूँ।"

"क्या पढ़ते हैं?"

इस बार साहस करके कह दिया—"अधिकतर तो उपन्यास और गल्पें ही पढ़ी हैं।"

"अच्छा! कौन कौन उपन्यास पढ़े हैं?"

मैंने अँगरेज़ी, हिन्दी, बँगला तथा उर्दू के कुछ प्रसिद्ध उपन्यासों के नाम बताये।

"उपन्यास तो ख़ूब पढ़े हैं।"

"जी हाँ। और लिखने की रुचि भी कुछ इसी ओर है।

"बड़ी अच्छी बात है। छोटी छोटी कहानियाँ और गल्पें तो पढ़ी ही होंगी—वैसी ही लिखा कीजिए।"

"देखिए, प्रयत्न करूँगा।"

द्विवेदी जी सिर झुकाकर मस्तक पर हाथ फेरने लगे। कुछ क्षणों पश्चात् बग़ल से पानों की डिबिया उठाकर उसमें से दो पान निकाले और मुझे दिये। इसके पश्चात बोले—"मैं एक मिनिट में आता हूँ।" यह कहकर उठे और कमरे के अन्दर चले गये। लौटकर एक पुस्तक हाथ में लिये हुए आये। चारपाई पर बैठकर बोले—"बँगला तो आप जानते ही हैं—रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गल्पें पढ़ी होंगी—उन्हीं की गल्पों का यह संग्रह है। इसमें से कोई एक गल्प जिसे आप सबसे अच्छी समझें, हिन्दी में अनुवाद करके मुझे दें—मैं उसे छापूँगा। लेकिन इतना ध्यान रखिएगा कि न तो पुस्तक में कहीं क़लम या पेन्सिल का निशान लगाइएगा, न स्याही के धब्बे पड़ने दीजिएगा, न पृष्ठ मोड़िएगा।"

इतनी पाबन्दियाँ सुनकर मैं घबराया; परन्तु लेखक बनने के उत्साह में मैंने तुरन्त यह सोच लिया कि यदि आवश्यकता पड़ेगी तो नई पुस्तक ख़रीद कर दे दूँगा। पुस्तक को मैंने बहुत सँभाल कर लिया और खोलकर देखा तो 'षोडशी' नामक संग्रह था। मेरा पढ़ा हुआ था। इसके पश्चात् थोड़ी देर और बैठा। द्विवेदी जी ने मेरा अधिक परिचय जानने की इच्छा प्रकट की। मैंने इन्हें अपना विस्तृत परिचय बताया। इसके पश्चात् विदा माँगी। उन्होंने फिर दो पान दिये। मैं चलने लगा तो बोले—"ख़ूब पढ़ा कीजिए! केवल उपन्यास और गल्पें ही नहीं, अन्य विषयों की पुस्तकें भी पढ़ा कीजिए।"

मैं उनकी बात शिरोधार्य्य करके बिदा हुआ। द्विवेदी जी के दर्शन करने का यही मेरा पहला अवसर था।

तब से मैं बराबर मौलिक कहानियाँ लिखकर देने लगा और द्विवेदी जी उन्हें प्रकाशित करने लगे। कभी कभी कोई अँगरेज़ी अथवा बँगला का लेख मुझे अनुवाद करने के लिए दे दिया करते थे। मैं अनुवाद करके दे देता था। उसे वे मूल लेखक के नाम से ही प्रकाशित किया करते थे—अनुवादक के स्थान में मेरा नाम नहीं देते थे। मैंने कभी इस बात की इच्छा भी प्रकट नहीं की कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवादक की हैसियत से मेरा नाम दिया जाय। एक दिन अपने-आप ही बोले—"मैं अनुवादक की जगह आपका नाम नहीं देता हूँ। आपको बुरा तो नहीं लगता?

मैंने हाथ जोड़कर कहा—"बिलकुल नहीं! मुझे विश्वास है कि आप मेरे लिए जो उचित समझेंगे वही करेंगे।"

बोले—"अब तो आप मौलिक लिखने लगे—अब आपका नाम अनुवादक में अच्छा नहीं लगेगा, इसी लिए मैं नहीं देता।"

मेरी तीन-चार कहानियाँ तथा लेख प्रकाशित होने के पश्चात् एक दिन बोले—"आप 'सरस्वती' ध्यान से नहीं पढ़ते।"

मैं घबराकर बोला—"पढ़ता तो हूँ।"

"पढ़ते होते तो 'सरस्वती' की लेखनशैली की ओर आपका ध्यान अवश्य जाता। 'सरस्वती' की अपनी निजी लेखनशैली है। वह मैं आपको बताता हूँ। देखिए—लेने के अर्थ में जब 'लिये' शब्द लिखा जाता है तब 'यकार' से लिखा जाता है और जब विभक्ति के रूप में आता है तब 'एकार' से लिखा जाता है। जो शब्द एक वचन में यकारांत रहते हैं वे बहुवचन में भी यकारान्त ही रहेंगे। जैसे 'किया' 'किये' 'गया' 'गये', परन्तु स्त्रीलिङ्ग में 'गयी' न लिखकर ईकार से 'गई' लिखा जाता है। 'कहिए', 'चाहिए', 'दीजिए' इत्यादि में 'एकार' लिखा जाता है। अकारान्त शब्दों का बहुवचन एकारांत होता है। जैसे, 'हुआ' का बहुवचन 'हुए'। जहाँ पूरा अनुस्वार बोले वहाँ अनुस्वार लगाया जाता है। जैसे 'संस्कार' और जहाँ आधा अनुस्वार, जिसे उर्दू में 'नून गुन्नः' कहते हैं, बोले वहाँ चन्द्र-बिन्दु लगाया जाता है—जैसे 'काँपना'! सम्भव है, मेरी इस शैली से आपका मतभेद हो; परन्तु प्रार्थना यह है कि 'सरस्वती' के लिए जब लिखिए तब इन बातों का ध्यान रखिए। इससे मुझे बड़ी सुविधा हो जायगी। मुझे जितनी ही सुविधा आपकी ओर से मिलेगी, उतना ही मेरा हृदय आपको आशीर्वाद देगा।"

मेरी आँखें सी खुल गईं। 'सरस्वती' पढ़ते कई बरस हो गये थे, पर इन बातों की ओर कभी ध्यान ही न गया था। तब से मैं आज तक द्विवेदी जी की बताई हुई शैली ग्रहण किये हुए हूँ।

इसके पश्चात् तो उनकी सेवा में उपस्थित होने का सौभाग्य ख़ूब ही प्राप्त होता रहा।

मुझ पर उनका बड़ा स्नेह था।

उनकी बातों का कहाँ तक वर्णन किया जाय! सब बातें लिखी जायँ तो एक पुस्तक तैयार हो जाय। उनकी सेवा में मेरे जीवन के जो क्षण व्यतीत हुए हैं वे मेरे जीवन की सुखद स्मृतियाँ हैं। परमात्मा इन स्मृतियों को अमिट रक्खे और इन स्मृतियों को अङ्कित करनेवाले उस महापुरुष को परमपद प्रदान करे।

'श्रद्धेय द्विवेदी जी के प्रति'

लेखक, श्रीयुत दलमर्दनसिंह राठौर

ओ हिन्दी के तुम पुण्य-प्राण!
इस भूमण्डल के मधुर गान!
तुमने उस पल्लव को सींचा
जब सोते थे सब नर अजान।
हम सब रोते गाते केवल
रह जाते अपनी हार मान॥
तुमने अपनी लघु असि से ही
काटे झाड़ झंखड़ महान।
ओ हिन्दी के तुम पूज्य-प्राण!
हम आज व्यथित, एकाकी हैं
तुम हाय कर गये हो प्रयाण!
अब हमको कौन बढ़ायेगा,
देकर नित नव उत्साह दान!
ओ हिन्दी के तुम पर्व-प्राण!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकाचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के संस्मरण

लेखक, साहित्य-भूषण पण्डित द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी

जो जन्मा है वह कभी न कभी निधनत्व को भी अवश्य प्राप्त होगा। यह ईश्वरीय नियम है और सबके लिए अनिवार्य है। यह जानते हुए भी हम लोगों को अपने किसी आत्मीय अथवा किसी प्रियजन के पञ्चत्व को प्राप्त होने पर शोक हुए बिना नहीं रहता। एक साहित्य-सेवी के नाते द्विवेदी जी प्रत्येक हिन्दी-साहित्य-सेवी एवं अनुरागी के परम प्रिय बन्धु थे, अतः अपने एक परमप्रिय बन्धु के वियोग का दुःखद दुस्संवाद सुन आज प्रायः समस्त हिन्दी-भाषा-भाषी शोकग्रस्त हैं। द्विवेदी जी यद्यपि पौन सौ वर्षों का वय प्राप्त कर स्वर्ग को सिधारे हैं, तथापि उनका हमसे सदा के लिए वियोग हमको अधिकाधिक इसलिए अखर रहा है कि उनके चले जाने से हमारी जो क्षति हुई है उसकी पूर्त्ति का कोई साधन देख नहीं पड़ रहा है।

> "गवर्नमेंट की नीति यह होना चाहिए कि जहाँ तक संभव हो, सभी शिक्षा देशी भाषाओं द्वारा दी जाय। बच्चे जो विषय हिन्दी भाषा में आसानी से समझ सकते हैं उन्हें अँगरेज़ी में पढ़ाना उनका समय और स्वास्थ्य ख़राब करना है।"
>
> आचार्य द्विवेदी जी, अप्रैल १९१५

द्विवेदी जी से हमारी सर्वप्रथम भेंट महोबा के रेलवे स्टेशन पर उस समय हुई थी जब उनका नाम हिन्दी-संसार में अप्रसिद्ध था। उस समय वे इण्डियन मिडलैंड रेलवे में हेड टेलीग्राफ इंस्पेक्टर थे और हमारे एक चचेरे भाई वहाँ तार बाबू थे। द्विवेदी जी वहाँ इंस्पेक्शन करने आये थे और हम वहाँ अपने भाई के पास थे। हमारे माथे पर लगे ऊर्ध्वपुण्ड्र ने द्विवेदी जी का ध्यान हमारी ओर बलात् आकर्षित किया और कुछ ही क्षणों के परस्पर वार्त्तालाप के अनन्तर हम दोनों के हृदयों में एक-दूसरे के लिए स्थान हो गया। ब्राह्मणोचित कर्त्तव्यों की चर्चा चल पड़ी और द्विवेदी जी ने सन्ध्योपासन की आवश्यकता और महत्त्व बतलाते हुए अघमर्षण-मंत्र की हृदयग्राही युक्तियुक्त व्याख्या की। अन्त में हमारे नित्यानुष्ठान की बातें सुनकर आप हम पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उपहार-स्वरूप हमें एक प्रति गायत्री-पञ्चाङ्ग की दी, जो आज तक हमारे पास है। द्विवेदी जी इसके बाद झाँसी लौट गये और हम कुछ दिनों के बाद महोबा से इटावे चले आये। तब से कितने ही वर्षों तक हम दोनों एक-दूसरे को भूले से रहे। फिर जब द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' का सम्पादन-भार ग्रहण किया और हमें प्रयाग में सिविलसर्जन के दफ़्तर में काम मिला तब एक दिन अचानक कटरे के चौराहे पर द्विवेदी जी हमें मिले। पूर्व-परिचय का स्मरण कराते ही सहृदय द्विवेदी जी बड़े आग्रह के साथ हमसे वैसे ही मिले, जैसे चिर काल के बिछुड़े दो सहोदर भ्राता मिलते हैं। इस बार द्विवेदी जी ने हमें अपनी फुटकर कविताओं का संग्रह जिसे जयपुर के मिस्टर जैन वैद्य ने 'काव्य-मञ्जूषा' के नाम से प्रकाशित किया था, दिया। पुस्तक हाथ में आने पर हमारी उत्सुकता इतनी बढ़ी कि हम द्विवेदी जी के सामने ही एक बार उस पुस्तक के सब पन्ने उलट गये और हमें बड़ी प्रसन्नता हुई।

सन् १९१० में हम इटावे आते हुए कार्यवश कानपुर गये और द्विवेदी जी से मिले। इस बार आपने हमें निज-रचित 'सम्पत्ति-शास्त्र' की एक प्रति दी। सन् १९११ में हमने अपनी समझ के अनुसार इस पुस्तक पर एक प्रलम्ब आलोचना लिखकर द्विवेदी जी के पास भेजी। उसे पढ़कर द्विवेदी जी ने एक लम्बा पत्र हमें लिखा। वह पत्र इस समय हमारे पास नहीं है, किन्तु उसका सारांश याद है। उन्होंने लिखा था कि जहाँ परस्पर प्रेम होता है वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तविक दोष भी गुण ही जान पड़ते हैं। तुम्हारी लिखी प्रशंसा के योग्य वह पुस्तक नहीं है। द्विवेदी जी ने इस पत्र में हमें मुक्तकण्ठ से धन्यवाद तो अनेक दिये, किन्तु हमारी उस आलोचना को प्रकाशित न किया।

द्विवेदी जी ने रामायण एवं महाभारत पर भी लेख लिखे। इन लेखों को पढ़ औरों की बात नहीं कहते, हम स्वयं द्विवेदी जी के धार्मिक विचारों के सम्बन्ध में भ्रम में पड़ गये और कई एक वर्षों तक उनके सम्बन्ध में हमारी धारणा विपरीत बनी रही। जब द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के सम्पादन-कार्य से अवकाश ग्रहण किया तब एक बार कानपुर में हमारी उनसे अचानक भेंट हो गई और वे बड़े आग्रह के साथ हमें अपने आवस-स्थान पर लिवा ले गये। उन दिनों वे श्रीमद्भागवत का नित्य स्वाध्याय किया करते थे। अतः जब तक हम उनके पास रहे तब तक उसी की चर्चा होती रही। वृत्रासुरकृत स्तुति के कतिपय श्लोकों को पढ़ते समय द्विवेदी जी की दशा ठीक वैसी ही हो गई, जैसी भगवन्नाम-कीर्त्तन करते समय गौराङ्ग महाप्रभु की हुआ करती थी। उनके नेत्रों से अविरल अश्रुप्रवाह हो रहा था, और भगवद्भक्ति में वे विभोर हो उठे थे। यह देख हम अपनी पूर्व-धारणा को बदलने के लिए केवल हठात् बाध्य हो न हुए, प्रत्युत हमें इस भागवतापचार के प्रशमनार्थ प्रायश्चित्त-रूप द्विवेदी जी से क्षमायाचना भी करनी पड़ी। बनावटी और सच्ची बात छिपाये नहीं छिपती—अतः हमारे उस सच्चे पश्चात्ताप को देख द्विवेदी ने हमें अपने कण्ठ से लगाया और कहा—चतुर्वेदी जी! अकेले आप ही को नहीं, हमारे अनेक परिचित व्यक्तियों को भी ऐसा ही भ्रम है। पर हमें इस बात से परम सन्तोष है कि आपका भ्रम आज दूर हो गया। हम द्विवेदी जी की इस उदारता से लज्जावनत थे। अतः हमारा ध्यान बटाने को द्विवेदी जी ने वार्तालाप का प्रसङ्ग बदल दिया। द्विवेदी जी का वर्त्ताव कभी कभी बड़ा रूखा अवश्य होता था, जिससे अनेक लोग, हमारी तरह, धोखा खा जाते थे। परन्तु वास्तव में द्विवेदी जी बड़े ही सहृदय, बड़े ही उदार थे और उनका हृदय बड़ा कोमल था।

द्विवेदी जी सस्ती ख्याति, मानप्रतिष्ठा और हिन्दी-साहित्य-आडम्बर से भागते थे। सम्मेलन के सभापति बनने को द्विवेदी जी से कितनी ही बार साग्रह अनुरोध किया गया, किन्तु उन्होंने कभी स्वीकृति ही न दी।

प्रायः गत ४० वर्षों से द्विवेदी जी हमें जानते थे। हमारा पौत्र चिरंजीवी उपेन्द्रनाथ रायबरेली में सबडिप्टी इंस्पेक्टर है। वह कभी कभी दौलतपुर द्विवेदी जी के दर्शन करने जाया करता था। जब जब वह मिलता, द्विवेदी जी हमारा स्मरण अवश्य करते और हमारा क्षेमकुशल-समाचार पूछा करते थे। हमने द्विवेदी जी को सहृदय, विनम्र और परदुःखकातर एवं मिलनसार पाया। उनसे वार्त्तालाप करने में बड़ा आनन्द प्राप्त होता था। मौक़े मौक़े पर वे उपयुक्त श्लोक पढ़ दिया करते थे। उनका संस्कृत के शब्दों का उच्चारण अत्यन्त शुद्ध और स्पष्ट होता था। वे जनसमुदाय से घबराते थे। अतः उनके जीवन का अधिक भाग एकान्त में ही व्यतीत हुआ था। उनका जीवन स्वावलम्बन और स्वाभिमान का जीवन था। न दैन्यं न पलायनं उनके जीवन का सिद्धान्तवाक्य था। सरस्वती को प्रथम श्रेणी का मासिक-पत्र बनाने में द्विवेदी जी को बड़ा परिश्रम करना पड़ा।

उनकी लेखनशैली बड़ी प्रभावोत्पादक थी। क्लिष्ट विषयों को सरलता से समझाने की असाधारण शक्ति उनमें थी। उनका ध्यान पाण्डित्य-प्रदर्शन की ओर उतना नहीं रहता था, जितना लेख को सुबोध बनाने की ओर रहता था। लेख को सुबोध बनाने के लिए वे अरबी, फ़ारसी, उर्दू, अँगरेज़ी के शब्दों का प्रयोग निस्सङ्कोचभाव से करते थे। व्यंग्यपूर्ण लेख लिखने में द्विवेदी जी बड़े पटु थे।

सम्पादकाचार्य द्विवेदी जी में अनेक गुण और विशेषतायें थीं। उन सबका उल्लेख यदि किया जाय तो एक पोथा तैयार हो जाय। ऐसे एक असाधारण एवं उत्कृष्ट विद्वान् का इस संसार से उठ जाना किसे विकल न करेगा! यद्यपि द्विवेदी जी का भौतिक शरीर अब इस संसार में नहीं, तथापि वे जो कुछ छोड़ गये हैं वही उनका नाम इस जगत् में स्थायी बनाये रखने को यथेष्ट है। दयारूप भगवान् इस साहित्यसेवी को परलोक में सुखशान्ति प्रदान करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हा द्विवेदी जी !

लेखक, पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

माननीय पंडित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी के पुण्डरीकाक्षपुर-गमन से हिन्दी-संसार की जो हानि हुई है वह वर्णनातीत है। जो स्थान रिक्त हुआ है उसका पूर्ण होना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। द्विवेदी जी अपने ढंग के एक ही थे। वे बड़े परिश्रमी, अध्यवसायी और उद्योगी थे। केवल निज उद्योग से उन्नति किस तरह की जाती है, इसके वे आदर्श थे। नवयुवकों को उनके चरित से शिक्षा लेनी चाहिए।

हिन्दी की सेवा उन्होंने खूब की और शिक्षित युवकों को भी इसके लिए उत्साहित ही नहीं किया, उन्हें सुलेखक और सुकवि भी बनाया। उनके अनुयायियों की संख्या यथेष्ट है। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' में युवकों की रचनायें छापकर उन्हें उत्साहित और सुप्रसिद्ध किया। द्विवेदी जी-रचित 'बेकन-विचार-रत्नावली' आदि की भाषाशैली और 'सरस्वती' के पिछले लेखों की शैली में आकाश-पाताल का अन्तर है। शैली में शनैः शनैः कैसे सुधार हुआ है, यह उनके पढ़ने से ही प्रकट हो जायगा।

> "भारत इन्हीं गन्दे गाँवों के अस्तित्व के कारण आबाद है जहाँ निरक्षरता का समुद्र उमड़ रहा है। इन्हीं में शिक्षा-प्रचार करने से भारत की उन्नति होगी। यह बात ध्रुव सत्य है।"
>
> आचार्य द्विवेदी जी, जुलाई १९१४

राय बहादुर श्री श्यामसुन्दरदास जी के बाद द्विवेदी जी 'सरस्वती' के सम्पादक होकर उसे सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने के लिए विविध विषयों के लेख लिखा करते थे। 'भारतमित्र' में प्रतिमास 'सरस्वती' की समालोचना हुआ करती थी। 'भाषा की अनस्थिरता' आदि इसके प्रमाण हैं।

मेरी और द्विवेदी जी की खूब छेड़-छाड़ चलती थी। मैं 'भारतमित्र' में लिखता और वे 'सरस्वती' में। उनकी 'कालिदास की निरङ्कुशता' और मेरा 'निरंकुशता-निदर्शन' इसका प्रमाण है। इसके सिवा और भी लिखा-पढ़ी हुई थी, जिसकी चर्चा फिर कभी की जायगी। यह सब होने पर भी मेरे उनके मित्रभाव में कभी अन्तर नहीं पड़ा। मैं जब कानपुर जाता तब उनके दर्शन अवश्य करता और वे भी बड़े सद्भाव से मिलते थे। घंटों बात-चीत होती थी। ये सब बातें यादकर सचमुच दुःख होता है। उनसे छेड़-छाड़ करने में भी मज़ा आता था, क्योंकि वे भी तुर्की-बतुर्की जवाब दिये बिना नहीं रहते थे। अब न वह समय है और न वे मनुष्य ही हैं जिनसे छेड़-छाड़ की जाय।

असुस्थ और निर्बल होने के कारण और अधिक न लिख सका। द्विवेदी जी के सम्मानार्थ ही ये कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं।

सवैया

लेखक, श्रीयुत हरिनाथ

रवि प्रेम के चंदै न मंद करै,
जयशंकरै सम्भु प्रचारै नहीं।
निसानाथ सौं पद्म सकोचिकै आपु,
अलोचना आयुध डारै नहीं॥
यहै देखै दुवेदी गये, नवनीत,
गुरू समुहे पग टारै नहीं॥
कविता के विवादीन मैं कवि सौं
रतनाकर जू कहूँ हारै नहीं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्यदेव

लेखक, श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त

मैं जब और कुछ न बन सका तब मैंने कवि बनने की ठानी। हाय, कहीं सब पोले बाँस वेणु बन सकते हैं!

एक जन, जो गधे पर बैठने की भी योग्यता न रखता था, बनानेवालों के बढ़ावे में आकर घोड़े पर चढ़ बैठा। घोड़ा भी ऐसा जो धरती पर पैर ही न रखना चाहता था। ऐसा आरोही तो उसके लिए अपमानजनक था। परन्तु क्या जानें, घोड़े को भी विनोद सूझा और वह उसे एक वर्जित स्थान में ले दौड़ा। वहाँ का प्रहरी सतर्क होकर चिल्लाया—सावधान! परन्तु आरोही सावधान होकर भी क्या करे? तब प्रहरी ने शस्त्र सँभालकर कहा—अच्छा, चला आ—ऐसे ही! अब आरोही चिल्लाया—दुहाई आपकी! मैं स्वयं नहीं आ रहा हूँ, यह दुर्मुख मुझे लिये आ रहा है! प्रहरी भी समझ गया और जिसे अनधिकार प्रवेश करने का दण्ड देने जा रहा था उस भाग्यहीन अथवा भाग्यवान् की उसे उलटी सँभाल करनी पड़ी।

> "अपने देश, अपने प्रान्त और अपने जन-समुदाय के सर्वाङ्गीण कल्याण की रामबाण औषध है हिन्दी भाषा का प्रचार।"
>
> आचार्य द्विवेदी जी, अप्रैल १९१५

कवि तो बनाये नहीं जाते, परन्तु कोप-भाजन होने योग्य होकर भी मैं पूज्य द्विवेदी जी महाराज का अनुग्रह-भाजन हो गया। इससे बढ़कर किसी का क्या सौभाग्य होगा?

पैंतीस-छत्तीस वर्ष पहले की बात है। मैं कुछ पद्य बनाने लगा था। पण्डित जी उन दिनों झाँसी में ही थे। उनका नाम मैं सुन चुका था और उनकी 'सरस्वती' के दर्शन भी मैंने पा लिये थे। मेरे मन में प्रश्न उठा—क्या 'सरस्वती' में अन्य कवियों की भाँति मेरा नाम नहीं छप सकता? इसका उत्तर अपने ही दीर्घ निःश्वास के रूप में मुझे मिल जाना चाहिए था। परन्तु लड़कपन अल्हड़ होता है और दुस्साहसी भी।

पिता जी के साकेतवास के पीछे, उनके नाते कृपा बनाये रखने के प्रार्थी होकर, अपने काका जी के साथ हम लोग पहली बार कलक्टर साहब को जुहारने झाँसी गये थे। मेरे जाने का प्रधान उत्साह और ही था। भीतर भीतर 'सरस्वती' में अपना नाम छपाने का डौल लगाने की लालसा से, और बाहर बाहर ऐसे महानुभाव के दर्शन करने की इच्छा से, अपने अग्रज को साथ लेकर मैं पण्डित जी के स्थान पर पहुँचा। घर छोटा ही था। द्वार पर बाँस की सींकों की बनी लिपटी हुई चिक बँधी थी, जिसकी गोट का हरा कपड़ा कुछ फीका पड़ चला था। एक ओर उनके नाम की पट्टी लगी थी। दूसरी ओर भी एक पटली थी। उसमें लिखा था—सवेरे भेंट न होगी। हम लोग इस बात को सुन चुके थे, अतएव तीसरे पहर गये थे। तब भी वे आफ़िस से नहीं लौटे थे। छोटे से उसारे में एक बेंच पड़ी थी। उसी पर हम बैठ गये। भीतर कमरे में खुली अलमारियों की पुस्तकों की दूसरी दीवार-सी बनी थी। बाईं ओर के पक्खे से सटकर एक पलँग पड़ा था। उस पर लपेटे हुए बिछौने ने लोड़ का रूप धारण कर रक्खा था। दाईं ओर के पक्खे से लगी दो-तीन कुर्सियाँ पड़ी थीं। बीच के रिक्त स्थान में पलँग से कुछ हटकर प्रवेशद्वार के खुले किवाड़ को छूता हुआ एक छोटा-सा टेबुल या चेयर डेस्क था। उसके सामने भी एक कुर्सी पड़ी थी। टेबुल लिखने-पढ़ने की सामग्री से भरा था, परन्तु सब सामग्री बड़े ढंग से सजाई गई थी। प्रवेश-द्वार के सामने ही भीतर जाने का द्वार था। उसमें से एक मँझपौरिया दिखाई देती थी। सारा स्थान बहुत ही परिष्कृत, स्वच्छ और शान्त-कान्त दिखाई पड़ता था। तो भी पण्डित जी के आने का समय निकट जानकर घर की परिचारिका हाथ में गमछा लिये उसे कमरे में इधर-उधर फटकार रही थी। ऐसा जान पड़ता था मानो यह एक विधि है, जिसे आवश्यक हो या न हो, पूरा करना ही चाहिए। ऐसी समझदार और कुशल सेविकायें बिरली ही होती हैं। बड़ी अपनाहट के साथ उसने हम लोगों का स्वागत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्कार किया। उसकी मृत्यु होने पर पण्डित जी ने मुझे यथार्थ ही लिखा था—ऐसा जन अब मिलने का नहीं।

तनिक देर पीछे उसने एक बार इधर-उधर देखा। फिर उसारे से नीचे उतरकर कुछ दूर तक पण्डित जी के आने का मार्ग भी बुहार दिया। इतना करके मानो वह उस समय के कार्य से निश्चिन्त हो गई। उसी समय पण्डित जी आते हुए दिखाई दिये। व्यक्तियों की विशिष्टता मानों उनके आगे चलती है। हम लोगों ने देखते ही समझ लिया, यही पण्डित जी हैं, यद्यपि बिना पगड़ी के मैं पण्डितों का अनुमान ही न कर सकता था और उनके सिर पर टोपी थी। मैंने सन्ध्या-समय दफ़्तर से लौटते हुए बहुत से बाबुओं को झाँसी में ही देखा था। परन्तु पण्डित जी जैसा कोई बाबू न देखा था। जान पड़ा, 'बाबू' के वेश में वे कोई 'साहब' हैं। विलायती साहब बहादुर से तो हम लोग मिल ही चुके थे। उसका जो तेज था वह बहुत कुछ उसके अधिकार के कारण था, पण्डित जी का प्रताप सर्वथा व्यक्तिगत। हम लोग ससम्भ्रम उठ खड़े हुए। जाड़े के दिन थे। वे हलके कत्थई रङ्ग का नीचा ऊनी कोट या अचकन पहने थे और ऊनी ही सफ़ेद फलालैन का पतलून जैसा पाजामा। बाँयें हाथ में कुछ काग़ज़-पत्र लिये थे, दायें में छड़ी। दफ़्तर से लौटनेवालों के विपरीत अनातुर धीर गति से पैदल आ रहे थे, ऐसे मानो अभी सवारी से उतरे हों! आफ़िस दूर न था और पैदल आने-जाने से वे छोटे नहीं होते थे, क्योंकि स्वभावतः बड़े थे। झूठे सम्मान के पीछे वे टहलने के सुयोग से वंचित क्यों होते जब सच्चा सम्मान उन्हें सुलभ था? ऊँचे ललाट के नीचे घनी और मोटी भौंहें उसके अनुरूप ही थीं। उनकी छाया में विशेष चमकती हुई आँखें बड़ी न होने पर भी तेज से भरी दिखाई देती थीं। पण्डित जी वेश-भूषा से सुसंस्कृत, आकृति से गौरवशाली और प्रकृति से गम्भीर तथा चिन्तनशील जान पड़ते थे। हम लोगों का प्रणाम स्वीकारकर और हम पर एक दृष्टि डालकर वे कमरे के भीतर जाकर ही रुके। वहाँ इधर-उधर देखकर और तुरन्त ही 'आइए' कहकर उन्होंने हमें भीतर बुलाया। जब तक हम कमरे में पहुँचे तब तक छड़ी और काग़ज़-पत्र यथा-स्थान रखकर उन्होंने अपनी टाइम-पीस घड़ी उठा ली थी और उसमें ताली देना आरम्भ कर दिया था। वे बड़े ही नियमबद्ध थे और सम्भवतः आफ़िस से लौटकर घड़ी कूकने का समय उन्होंने बाँध रक्खा था।

"बैठिए" सुनकर भी हम लोग खड़े ही रहे। हमारा भाव समझकर घड़ी रखते हुए वे पलँग पर बैठ गये। सामने की कुर्सियों की ओर हाथ बढ़ाते हुए फिर स्निग्ध स्वर में बोले—बैठिए। हम लोगों के नाम और परिचय से वे कुछ आकर्षित से हुए और हाल ही में हमें पितृहीन हुआ सुनकर सहानुभूति प्रकट करने लगे। पिता जी की अनन्यभक्ति की चर्चा के प्रसङ्ग में उन्होंने यह पूछा कि आप लोग किस सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। 'विशिष्टाद्वैत' सुनकर बोले—हाँ। बहुत दिन पीछे प्रसिद्ध विद्वान् माननीय 'बार्हस्पत्य' जी से जब मैं पहली बार मिला तब उन्होंने भी मुझसे यही पूछा था और उत्तर सुनकर कहा था, हम विशिष्टाद्वैत मत के तो नहीं हैं, पर अच्छा उसी को मानते हैं। यह कहकर वे मुसकराने लगे थे। मैं भी उन्हीं का अनुसरण करके हँस गया था। पण्डित जी ने हाँ कहते हुए अपना सम्प्रदाय भी बताया था, सम्भवतः—वल्लभ। इसी सम्बन्ध में उन्होंने एक बार कहा था, हमारे पिता कुछ लिखने के पहले लिखा करते थे—'श्री-लाड़लेश्वराय नमः।' परन्तु अब हम देखते हैं, यह 'लाड़ले' और 'ईश्वर' का संधि-संयोग ही ठीक नहीं है!

पण्डित जी से हम लोगों की बातचीत आरम्भ ही हुई थी, इतने में भीतर से एक सुन्दर और हृष्टपुष्ट बिल्ली आई और उछलकर पण्डितजी की गोद में आ बैठी। उनके कण्ठस्वर से उन्हें आया जानकर ही वह भीतर से दौड़ आई थी। पशु-पक्षी मैंने भी पाले हैं, परन्तु पली बिल्ली मैंने पहले-पहल वही देखी थी। मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। मैंने देखा, पण्डित जी धीरे धीरे उसे हाथ फेर रहे हैं और वह हर्ष और गर्व से एक असाधारण शब्द कर रही है। जो लोग पक्के गाने से चिढ़कर उसे बिल्लियों का लड़ाना कहते हैं वे कहीं उस बिल्ली का शब्द सुनते तो जानते बिल्लियाँ भी स्नेह में कैसा प्यारा बोलती हैं। पण्डित जी ने पशुपक्षियों की चेष्टाओं पर 'सरस्वती' में एक लेख लिखा था। मुझे ठीक स्मरण नहीं, इस बिल्ली को देखकर मुझे उसका ध्यान आ गया था अथवा उसे देखकर इसका।

परन्तु जिस उद्देश्य को लेकर मैं पण्डित जी के यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था उसके विषय में कुछ कहने का मुझे साहस ही न हुआ। मेरा सारा उत्साह न जाने कहाँ चला गया। मेरे अग्रज ने प्रसङ्ग चलाकर एक बार कहा भी कि ये भी कुछ कविता बनाते हैं। 'बड़ी अच्छी बात है' कहकर पण्डित जी ने मेरी ओर देखा। मैं तो कुछ नहीं, कुछ नहीं, कहकर संकोच से सिकुड़ सा गया। मुझे विपत्ति में पड़ा देखकर फिर उन्होंने कुछ नहीं कहा। कुछ कहने के लिए मैंने कहा—हम लोग तो सवेरे ही आनेवाले थे, परन्तु सुना कि सन्ध्या को ही आप से भेंट होती है, इसलिए इस समय सेवा में उपस्थित हुए हैं। वे हँसकर बोले—हाँ, सवेरे हम 'सरस्वती' का काम करते हैं और कुछ लेख आदि लिखते हैं। फिर अवकाश नहीं पाते। परन्तु जब आप इतनी दूर से आये हैं तब क्या हम उस समय भी आपसे न मिलते। कभी झाँसी आया कीजिए और सुविधा हो तो मिला कीजिए।

उनका अधिक समय लेना अपराध करना था। रोकने पर भी हम लोगों को बिदा करने वे बाहर आये। आगत का स्वागत सभी करते हैं, परन्तु अपने छोटों के प्रति भी उनका सदा ऐसा ही उदार व्यवहार रहा।

अपने पद्यों के विषय में प्रत्यक्ष कुछ कहने की अपेक्षा पत्र-व्यवहार करने में ही मुझे सुविधा दिखाई पड़ी। वस्तुतः उनके प्रभाव से मैं अभिभूत हो गया। पीछे न जाने कितनी बार उनकी सेवा में उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, वे भी कृपाकर एक बार यहाँ पधारे, परन्तु वैसा आतंक कभी नहीं जान पड़ा। इसके विरुद्ध जैसे जैसे निकट से उनका परिचय मिलता गया, वैसे वैसे उनकी सदयता और सहृदयता का ही अधिकाधिक अनुभव होता रहा। अपने कर्त्तव्य में ही वे कठोर प्रतीत होते थे, आत्मसम्मान का प्रश्न आ जाने पर उनमें उग्रता भी आ जाती थी, अन्यथा उनका सा कोमल हृदय दुर्लभ ही है। एक बार वाद-विवाद में दूसरे पक्ष ने लिखा—यह विवाद व्यर्थ है। आप तो ब्राह्मण हैं, आपको क्षमा नहीं छोड़नी चाहिए। पण्डित जी ने उत्तर में लिखा—हमने जो आरोप लगाये हैं उन्हें व्यर्थ कहने से काम न चलेगा। या तो आप कहिए, वे झूठे हैं, हम आपसे क्षमा-याचना करेंगे या उनके लिए खेद प्रकट कीजिए। उस समय हम आपको हृदय से क्षमा न कर दें तो ब्राह्मण नहीं।

उनकी वैसी वेश-भूषा भी फिर मैंने नहीं देखी। एक बार पेंट के साथ उन्हें बंडा कोट पहने देखकर तो ऐसा भी लगा, जैसे यह उनके अनुरूप न हो।

इधर प्रायः कुरता और धोती ही वे पहना करते थे और यह वेश उन्हें बहुत सोहता भी था। अभिनन्दन के अवसर पर भी वे इसी परिच्छद में थे। अस्तु।

उस दिन लौटकर मुझे कुछ आत्मग्लानि सी हुई कि मैं क्यों इतना हतप्रभ हो गया कि अपनी बात भी उनसे न कह सका। और, झूठ क्यों कहूँ, उनके प्रति कुछ ईर्ष्या भी मन में उत्पन्न हो गई। परन्तु 'सरस्वती' में नाम छपने का लोभ प्रबल था। आशा भी बलवती थी। कुछ दिन पीछे मैंने एक रचना भेज ही दी और उत्सुकता से मैं उनके पत्र की प्रतीक्षा करने लगा। मुझे स्मरण नहीं, इतने लम्बे समय में भी, पण्डित जी ने मेरे किसी पत्र का उत्तर देने में विलम्ब किया हो। इतनी तत्परता मैंने और किसी के पत्र-व्यवहार में नहीं पाई। मैंने भी बहुत दिन उनका अनुकरण करने की चेष्टा की, परन्तु अन्त में मैं हार गया और अब तो शरीर और मन प्रकृतिस्थ न रहने से एक-आध पत्र लिखना भी भारी हो उठा है। परन्तु पण्डित जी वृद्ध और क्षीण होने पर भी अन्त तक अपना नियम निभाते रहे। कितनी दृढ़ता थी उनमें!

यथासमय उनका उत्तर आ गया—"आपकी कविता पुरानी भाषा में लिखी गई है। 'सरस्वती' में हम बोल-चाल की भाषा में ही लिखी गई कवितायें छापना पसन्द करते हैं।" राय कृष्णदास जैसे बन्धु के संसर्ग से भी जो एक एक चिट भी यत्न से छाँट कर रखते हैं, मैं पत्रों के संग्रह में उदासीन ही रहा हूँ। इसके लिए समय समय पर मुझे अनुताप भी हुआ है। इसी प्रकार डायरी न रखने से प्रसंगवश अथवा अचानक उठे हुए कितने ही विचार किंवा भाव भी मुझे खो देने पड़े हैं। परन्तु पण्डित जी के पत्र न जाने कैसे मैं आरम्भ से ही रखता रहा। कुछ प्रारम्भिक पत्रों की एक गड्डी सम्भवतः कहीं ऐसी सुरक्षित रक्खी है कि इस समय मुझे भी नहीं मिल रही है! ऊपर मैंने जिस पत्र का उद्धरण दिया है, सम्भव है, उसमें शब्दों का हेर-फेर हो, किन्तु बात वही है।

'बोलचाल की भाषा' अर्थात् 'खड़ी बोली' और 'पुरानी भाषा' अर्थात् 'ब्रजभाषा।' पाठक ही समझ लें,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे मन में अपनी रचना की अस्वीकृति खली या व्रजभाषा की उपेक्षा। मन कुछ विद्रोही था ही, आशा भी पूरी न हुई। अब क्या था, एक कड़ा सा पत्र लिख दिया। एक बात सुनी थी कि शेख़सादी साहब को फ़ारसी-भाषा की मधुरता का बड़ा अभिमान था। एक बार वे यहाँ आये। व्रजभाषा की प्रशंसा सुनकर उन्होंने नाक सिकोड़ी और भौंह चढ़ाई। घूमते-घामते वे व्रज में पहुँचे। वहाँ मार्ग में पहले-पहल उन्होंने एक छोटी सी लड़की की बात सुनी। वह अपनी माता से कह रही थी—'मायरी माय, मग चल्यौ न जाय—साँकरी गली, पाय काँकरी गड़तु है।' इस बात का संकेत भी मैंने अपने पत्र में कर दिया और समझ लिया कि बदला ले लिया। परन्तु उस पत्र का कोई उत्तर न मिला। भगवान् ही जाने, इसे मैं अपनी जीत समझा या अपने प्रहार को सर्वथा निष्फल समझकर और भी हताश हो गया। प्रतिघात सह लिया जा सकता है, किन्तु आघात का व्यर्थ होना प्रतिघात से भी कठोर होता है। तथापि मेरी क्षुद्रता का वे क्या उत्तर देते? मैंने धृष्टतापूर्वक एक पत्र और भी इस सम्बन्ध में भेजा। वह वैसा ही लौट आया अथवा लौटा दिया गया।

इस बीच कलकत्ते के 'वैश्योपकारक' मासिक पत्र में मेरे पद्य छपने लगे थे। इससे मुझे कुछ अभिमान भी हो गया था। परन्तु हिन्दी की एकमात्र प्रतिष्ठित पत्रिका 'सरस्वती' थी। मन मेरा उधर ही लगा था। झख मार-कर खड़ी बोली के नाम से 'हेमन्त' शीर्षक कुछ पद्य लिखे। उन्हीं दिनों स्वर्गीय राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' की 'शरद' नाम की एक कविता 'सरस्वती' में छपी थी। वह पुरानी भाषा में ही थी। 'शरद' छपी तो 'हेमन्त' भी छप सकता है। उसे भेजते हुए मैंने निर्लज्जतापूर्वक इतना और लिख दिया कि प्रसन्नता की बात है, अब 'पुरानी भाषा' के सम्बन्ध में आपका वह विचार बदला है। जिस दिन उत्तर मिलना चाहिए था, उत्सुकतापूर्वक मैं स्वयं डाकघर पहुँचा। उनका उत्तर पोस्ट-कार्ड के रूप में उप-स्थित था। धड़कते हृदय से पढ़ा। लिखा था—'आपकी कविता मिली। राय साहब की कविता अच्छी होने से हमने छापी है।' अब समझ में आया कि नई-पुरानी भाषा का तो एक बहाना था, मेरी कविता अच्छी न होने से न छप सकी थी। यह उस समय भी न समझ में आया कि मेरी रचना अच्छी न थी, फिर भी उन्होंने उसे बुरा न बताकर भाषा की बात कहकर कितनी शिष्टता से मुझे उत्तर दिया, यद्यपि यह ठीक था कि बोलचाल की भाषा की कविता के ही वे पक्षपाती थे और उसी का प्रचार भी कर रहे थे। जो हो, मेरा जी बैठ गया। 'सरस्वती' आई, पर 'हेमन्त' न आया। वह क्यों नहीं आया, आवेगा भी या नहीं, यह पूछने का भी धीरज न रहा। कन्नौज से 'मोहनी' नाम की एक समाचारपत्रिका निकलती थी। उसी में छपने के लिए मैंने 'हेमन्त' भेज दिया और अगले सप्ताह ही वह छप कर आ गया। एक द्विवेदी जी न सही तो दूसरे गुण-ग्राहक तो विद्यमान हैं, यों मैंने मन समझाने की चेष्टा की। मन ने मान भी लिया, कारण, अपमान भी उसी ने माना था। तथापि उसके एक कोने से यह शब्द उठे बिना न रहा कि—हाय सरस्वती।

नये वर्ष की 'सरस्वती' आई नई ही सजधज से। अब उसका रूप-रंग और भी सुन्दर हो गया। देखकर जी ललच गया। परन्तु जिस बात की आशा भी न थी उस 'हेमन्त' को भी वह ले आई। मेरा रोम रोम पुलक उठा। जिस रूप में मैंने उसे भेजा था उससे दूसरी ही वस्तु वह दिखाई पड़ती थी—बाहर से ही नहीं, भीतर से भी। पढ़ने पर मेरा आनन्द आश्चर्य में बदल गया। इसमें तो इतना संशोधन और परिवर्द्धन हुआ था कि यह मेरी रचना ही नहीं कही जा सकती थी। कहाँ वह कंकाल और कहाँ यह मूर्त्ति! वह कितना विकृत और यह कितनी परिष्कृत। फिर भी शिल्पी के स्थान पर नाम तो मेरा ही छपा है। मुझे अपनी हीनता पर लज्जा आई और पण्डित जी की उदारता देखकर श्रद्धा से मेरा मस्तक झुक गया। इतना परिश्रम उन्होंने किया और उसका फल मुझे दे डाला। यह तो मुझे पीछे ज्ञात हुआ कि मेरे ऐसे न जाने कितने लोग उनसे इस प्रकार उपकृत हुए हैं। नाम की अपेक्षा न रखकर काम करना साधारण बात नहीं, परन्तु काम आप करके नाम दूसरे का करना और भी असाधारण है। पण्डित जी अपने सम्पादकीय जीवन भर यही करते रहे। उनके तप और त्याग का मूल्य आँकना सहज नहीं। हिन्दी के प्रभविष्णु कवि स्वर्गीय नाथूराम शंकर शर्मा ने एक पत्र में मुझे लिखा था—"सम्पादक जी बहुधा कवि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताओं में संशोधन भी कर देते हैं। 'केरल की तारा' नाम की कविता में मैंने लिखा था—

पीठ पर टपका पड़ा तो आँख मेरी खुल गई
चार बूँदों से मिले मन की लँगोटी धुल गई

इसमें नीचे की पंक्ति उन्होंने बदलकर छापी—

विशद बूँदों से मिले मन मौज मिश्री घुल गई।"

लाभ से मेरा लोभ और भी बढ़ गया। कुछ दिन पीछे 'क्रोधाष्टक' नामक एक तुकबन्दी मैंने और भेज दी। उपद्रव सहने की भी एक सीमा होती है। इस बार क्षुब्ध होकर उन्होंने जो पत्र लिखा वह, इधर स्मृति विकृत होने पर भी, मुझे भली भाँति स्मरण है—

"हम लोग सिद्ध कवि नहीं। बहुत परिश्रम और विचारपूर्वक लिखने से ही हमारे पद्य पढ़ने योग्य बन पाते हैं। आप दो बातों में से एक भी नहीं करना चाहते हैं। कुछ भी लिखकर उसे छपा देना ही आपका उद्देश्य जान पड़ता है। आपने 'क्रोधाष्टक' थोड़े ही समय में लिखा होगा, परन्तु उसे ठीक करने में हमारे चार घंटे लग गये। पहला ही पद्य लीजिए—

होवे तुरन्त उनकी बलहीन काया
जानें न वे तनिक भी अपना-पराया
होवें विवेक वर बुद्धि विहीन पापी
रे क्रोध, जो जन करें तुझको कदापि

क्या आप क्रोध को आशीर्वाद दे रहे हैं जो आपने ऐसी क्रियाओं का प्रयोग किया? इसे हम अवश्य 'सरस्वती' में छापेंगे, परन्तु आगे से आप 'सरस्वती' के लिए लिखना चाहें तो इधर-उधर अपनी कवितायें छपाने का विचार छोड़ दीजिए। जिस कविता को हम चाहें उसे छापेंगे। जिसे न चाहें उसे न कहीं दूसरी जगह छपाइए, न किसी को दिखाइए। ताले में बन्द करके रखिए।"

रोष ही मेरे लिए परितोष बन गया। अयोग्य देखकर भी पण्डित जी ने मुझे त्यागा नहीं, सदा के लिए अपना लिया। इसी पद्य में मुझे बोलचाल की भाषा में पद्य रचने का 'गुर' मिल गया। बातें इतनी ही नहीं हैं। परन्तु आज मैं और कुछ न लिखकर अपने प्रभु से यही प्रार्थना करता हूँ कि परलोक में भी उनका सा पथ-प्रदर्शक मुझे प्राप्त हो।

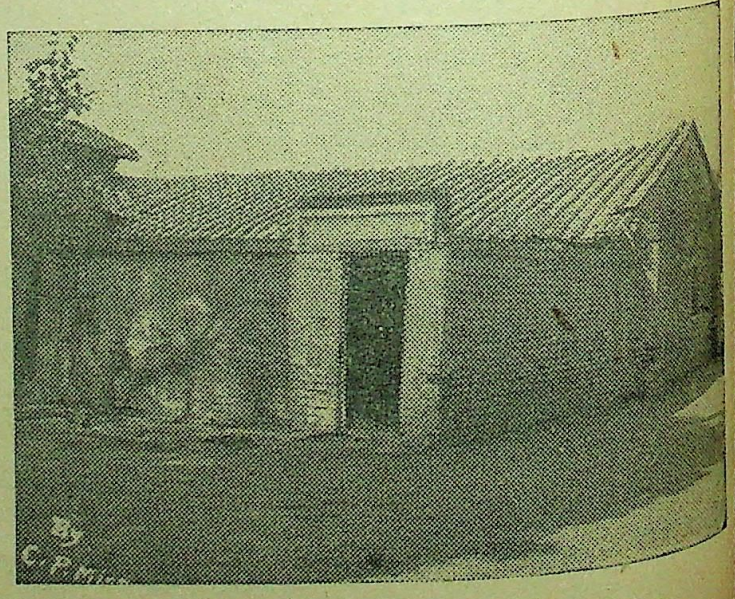

जुही का गुरुद्वारा

जुही के इसी खपरैले में १८ वर्ष रहकर आचार्य द्विवेदी ने 'सरस्वती' का सम्पादन किया था। यह चित्र हमें वर्तमान सञ्चालक पण्डित रमाशंकर अवस्थी की कृपा से मिला है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो दर्शन

लेखक, पण्डित शिवाधार पाण्डेय, एम० ए०

द्विवेदी जी को पहले-पहल मैंने देखा जब मैं सत्रह बरस का था—कन्नौज में—कान्यकुब्ज महासभा के मंडप में। आप आये—ऊँचा माथा, ऊँचा शरीर, बड़ी बड़ी मूँछें, तेज से भरी आँखें। हँसकर बोले—"मेरा सिर वैसा ही गरम है, जैसा वह तवा जिस पर मैं रोटी करके आ रहा हूँ। जो कुछ लिख सका हूँ, सेवा में उपस्थित है। आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा धर्म है।" एक छोटी सी स्वागत की कविता आपने सुनाई। ज्वर होते हुए भी लोगों के कहने से वह लिखी गई थी। रोटी भी छोटों के लिए बनाई थी।

जुही में द्विवेदी जी को मैंने देखा सन् १९११ में। बीमार थे: छुट्टी ली थी। शय्या पर पड़े हुए थे। उन दिनों मैं 'अभ्युदय' का सम्पादक था। 'सरस्वती' और 'मर्यादा' में कुछ अनबन हो गई थी। पूरे एक घंटे भर आपने बातें कीं। उत्साह की नदी बहा दी। आपे को भूल गये। अपनी पत्रिका से आपको कितना प्रेम था, साहित्य पर आप कितना न्यौछावर थे, प्रत्यक्ष हो गया।

महावीरप्रसाद द्विवेदी सिंह-से निडर थे, समुद्र-से गंभीर थे। रोष में ब्राह्मण थे, क्षमा में ब्राह्मण थे। रोष उनका टिकता नहीं था। रोष से भरे हों, पर उस पर पूरा शासन करते थे। उनके रोष में पक्षपात नहीं था। अपने पक्ष के समर्थन के लिए उन्होंने कभी रोष नहीं किया। उनकी हँसी में एक अद्भुत आनन्द था—अभी तो गरज और कड़क और अभी सुनहली धूप! उनका चित्त कितना कोमल था, कितना मृदुल था, सारा हिन्दी-संसार जानता है। बच्चे उनको बहुत पसन्द थे। पश्चिम की कोरी डींग उन्हें भाले की नोक-सी चुभती थी। हिन्दी पर वे प्राण देते थे। कष्टों से उनका साहस बढ़ता था, क्लेशों को चुनौती देते थे। कर्त्तव्य को वे पूरा पूरा समझते थे, सत्य की पूरी खोज करते थे। चंगे हों या न हों, हृदय उनका साहित्य की उमंग से सर्वदा चंगा रहता था। सम्पादकों में वे महारथी थे, सरस्वती के तो पुजारी थे।

बीसवीं सदी के हिन्दी-साहित्य में द्विवेदी जी का स्थान क्या होगा? वे कहते थे, यह गद्य का युग है। परन्तु खड़ी बोली का पद्य उन्हीं की दया से लड़खड़ाता हुआ उठ बैठा और चल निकला। कविता की भाषा का साँचा ही बदल गया। गद्य में जो जो रंग बदले, जो जो शैलियाँ निकलीं, जिन जिन भावों की बाढ़ आई, वह क्या एक इस काया-पलट के बराबर है जिससे हिन्दी-कविता भारतवर्ष भर में एक दिन जगमगा उठेगी और काश्मीर से सिंहल तक लिखी जायगी।

बल, गौरव, स्वाभिमान—सम्पादक-समुदाय पर द्विवेदी जी का यह दूसरा प्रभाव पड़ा। थोड़ा-सा वेतन, पत्रिका बेचारी मासिक, परन्तु आत्मा अखंड और लेखनी उद्दंड। बड़े बड़े दैनिक-सम्पादक, बड़े बड़े साहित्यिक आज जो उछलकूद मचा रहे हैं, लोकप्रियता बटोर रहे हैं, इसकी शिक्षा द्विवेदी जी ने ही दी। क्या अगली सदी की भी कोई पत्रिका इस उत्सुकता से जोही जायगी, इस उत्साह से उड़ाई जायगी, जैसे द्विवेदी जी की 'सरस्वती'?

ये दोनों बातें डाक्टर जॉनसन में नहीं थीं। कविता की भाषा महाकवि ही बदलते हैं। अँगरेज़ी की चौसर ने नींव डाली। पोप ने पद्य की भाषा का संस्कार करना चाहा। वड्सवर्थ ने सौ बरस के लिए ढाँचा बदला। इस सदी में भी उसमें परिवर्तन हो रहा है। परन्तु जितना दूरदर्शीपन, जितना उत्साह हिन्दी के लिए इस विषय में द्विवेदी जी ने दिखाया, उतना तो इतनी परिमित शक्ति-वाले कदाचित् किसी ही मनुष्य ने सारे संसार के इतिहास में दर्शाया होगा। जानसन ने साहित्यिकों को स्वाधीनता दी। द्विवेदी जी ने जो किया वह अँगरेज़ी की किसी मासिक-पत्रिका के सम्पादक से नहीं हुआ।

गद्य में द्विवेदी जी ने क्या क्या किया और क्या क्या नहीं किया, इसके लिए इस समय यहाँ स्थान नहीं है। हिन्दी में सच्ची साहित्यिक रचनाओं से ही कौन स्वाधीन जीवन का पथ पूरा पूरा खोलने में सफल होगा, यह भी अभी नहीं कहा जा सकता। परन्तु यह निस्सन्देह है कि सन् १९०५ और १९३९ की द्विवेदी जी की मूर्त्ति ध्यान में आने से उन विद्यावीरों का स्मरण आता है जो अपने मार्ग में अद्वितीय थे और जो दिग्विजयी होने का दम भरते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुण्यस्मृति

लेखक, पण्डित देवीप्रसाद शुक्ल, बी० ए०

स्व

र्गीय पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है इस विषय में कुशल साहित्यज्ञ लिखने के अधिकारी हैं। मुझ ऐसे अल्पज्ञ को तो द्विवेदी जी की पुण्यस्मृति में कुछ पंक्तियाँ ही लिखकर संतोष करना है। यों तो द्विवेदी जी की कीर्ति मैं लड़कपन ही में सुना करता था परन्तु तब मुझे ये समाचार ही मिलते थे कि द्विवेदी जी ने आज इस आदमी को रेल में नौकर रखवा दिया, कल उस आदमी को। उस समय उनके विषय में मेरी धारणा थी कि वे एक प्रभावशाली व्यक्ति हैं, जिन्हें परोपकार करने में आनन्द आता है। कुछ दिनों के बाद मुझे उनके लेखों के पढ़ने का अवसर इधर-उधर समाचार-पत्रों में प्राप्त हुआ, विशेषकर अजमेर से निकलनेवाले 'कान्य-कुब्ज-सुधारक' में। लगभग ३८ वर्ष हुए पहली कान्य-कुब्ज-कान्फ़रेन्स कानपुर में हुई थी। उसमें द्विवेदी जी भी पधारे थे। वहाँ द्विवेदी जी के दर्शन मुझे पहले-पहल हुए, परन्तु दूर ही से। समयाभाव के कारण मैं उनसे वार्तालाप करने का सौभाग्य प्राप्त न कर सका। कान्फ़रेन्स में पहले दिन थोड़ी देर बैठ कर वे फिर न आ सके। इसके तीन वर्ष के बाद जब कानपुर में प्लेग का प्रकोप हुआ, रेलवे-स्टेशन पर एक रिश्तेदार के निकट तम्बू लगा-कर मुझे शरण लेनी पड़ी। उन दिनों 'कान्यकुब्ज-सभा' में प्रतिष्ठित कान्यकुब्जों को भर्ती कराने की धुन मेरे ऊपर सवार थी। पता लगा कि द्विवेदी जी समीप ही जुही नामक गाँव में आ बसे हैं। बस, फिर क्या था! सोचा कि भारी शिकार हाथ आया। प्रवेशपत्र लेकर द्विवेदी जी के स्थान पर जा पहुँचा। देखा कि द्विवेदी जी जल्दी फँसने-वाले असामी नहीं हैं। परन्तु उन्होंने मेरा स्वागत और सत्कार बड़े उत्साह से किया, जिसका प्रभाव मेरे हृदय पर बहुत कुछ पड़ा। शिष्टता की तो वे मूर्ति ही थे। दूसरे ही दिन वे 'विज़िट रिटर्न' करने को मेरे तम्बू में अपने मित्र आर्मी-प्रेस के प्रोप्राइटर लाला सीताराम के साथ आ पहुँचे। तदनन्तर उस 'वनवास' की दशा में मेरा आना-जाना द्विवेदी जी के स्थान पर शीघ्रता के साथ होने लगा। प्रायः साहित्यिक चर्चा भी हुआ करती थी। तभी द्विवेदी जी ने मुझे अपनी 'काव्य-मञ्जूषा' भेंट की थी, जिसे पढ़कर मेरा हृदय अब भी गद्गद हो जाता है। प्लेगप्रकोप के शान्त होने पर जब मैं अपने घर कुर्सवाँ लौट आया तब वहाँ भी द्विवेदी जी मेरे घर प्रायः पधारा करते थे। तब से उनकी कृपा मुझपर यावज्जीवन अनवरत बनी रही। यह उनकी दयादृष्टि ही थी कि उन्होंने 'सरस्वती' के सम्पादन का भार मुझे दो दफ़े सौंपा। अन्यथा कहाँ 'सरस्वती' ऐसी पत्रिका का सम्पादन और कहाँ मेरी अल्पज्ञता!

> "हमारे देश के ९० फ़ी सदी मनुष्यों का पेट खेती से पलता है। पर उसकी बुरी दशा है। इसका कारण है सरकार की भूमि-कर-संबंधी नीति और किसानों की निरक्षरता।"
>
> आचार्य द्विवेदी, मई १९१५

सच तो यह है कि मेरे ऐसे कृपापात्र द्विवेदी जी के कितने ही लोग हैं। परोपकार करना उनकी प्रकृति थी। खरा और सच्चा व्यवहार करनेवाले उनसे बढ़कर थोड़े ही लोग होंगे। यही कारण है कि जिन-जिन लोगों का किसी न किसी रूप में उनसे सम्बन्ध रहा उनकी श्रद्धा और भक्ति द्विवेदी जी के प्रति बढ़ती ही गई। द्विवेदी जी की उग्र समालोचनाओं से उनके स्वभाव का पता लगाना भूल है। मुझे द्विवेदी जी की तरह कोमलहृदय सज्जन बहुत कम मिले हैं। मैंने दो-एक बार उनसे कहा भी कि 'आप समालोचना बहुत कड़ी करते हैं'। उत्तर मिला कि 'किन्तु-परन्तु' और 'अगर-मगर'वाली समालोचना का असर नहीं होता। उस ज़माने में बहुतेरे लेखक बङ्गला और मराठी पत्रिकाओं से लेख चुराकर हिन्दी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवाद करके अपने नाम से चलता कर दिया करते थे। यह डाकेज़नी द्विवेदी जी से कम छिपती थी, क्योंकि वे अन्य भाषाओं की भी पत्र-पत्रिकायें ध्यान से पढ़ा करते थे। आख़िर 'वागपहरण' भी तो पाप ही है। शब्दचौर्य का बन्द कराना भी समालोचना का एक अङ्ग है। यों भी कड़ी समालोचना करने के स्वभाव ने ही कभी कभी उनमें और उनके बाज़ बाज़ मित्रों के बीच कुछ दिनों के लिए अनबन पैदा कर दी थी। उदाहरणार्थ 'हिन्दी कालिदास की समालोचना', 'हिन्दी-भाषा और व्याकरण' आदि लेखों ने तत्कालीन हिन्दी-साहित्य-संसार में कुछ हलचल उत्पन्न कर दी थी और वाद-विवाद महीनों चलता रहा। एक ओर 'भारतमित्र' के सम्पादक स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्त और उनकी मित्र-मण्डली थी और दूसरी ओर द्विवेदी जी, पण्डित गोविन्दनारायण मिश्र और बेङ्कटेश्वर-समाचार के सम्पादक श्री अमृतलाल चक्रवर्ती तथा पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री थे। उस समय के प्रकाशित बाज़ बाज़ लेख तो साहित्य की दृष्टि से अब भी रुचिकर हैं। 'सरस्वती' काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के अनुमोदन से संस्थित थी। द्विवेदी जी ने अपने सम्पादकत्व में 'सरस्वती' में सभा की खोज की पुस्तकों की रिपोर्ट की समालोचना कर डाली। इस पर सभा के कुछ पदाधिकारियों ने एतराज़ किया और सभा के 'अनुमोदन का अन्त' हो गया। द्विवेदी जी का पक्ष था कि सभा की कार्य्यवाही की समालोचना करने का 'सरस्वती' को सभा की संरक्षा में रहते हुए भी अधिकार है। इसी विचार की पुष्टि में द्विवेदी जी ने मिल की 'लिबर्टी' नामक पुस्तक का अनुवाद कर डाला। इसी प्रकार 'हिन्दी कालिदास की समालोचना' लिखने के अनन्तर जब किसी ने उनसे ये व्यङ्ग्यात्मक शब्द कहे कि 'भला आप ही कुछ लिख कर बतलाइए कि हिन्दी-कविता में कालिदास के भाव कैसे प्रकट किये जायँ' तब नमूने के तौर पर द्विवेदी जी ने कुमारसम्भव के प्रारम्भ के ५ सर्गों का अनुवाद कर 'कुमार-सम्भवसार' के नाम से प्रकाशित किया।

'सरस्वती' के सम्पादन का भार लेने के पहले से ही द्विवेदी जी का ध्यान गद्य लिखने की ओर आकृष्ट हो गया था। कविता लिखना कम कर दिया था। और लिखते भी थे तो 'खड़ी बोली' में। अपने मित्रों को भी वे खड़ी बोली में ही कविता करने के लिए उत्साहित करने लगे थे। उनका विचार था कि कविता भी उसी भाषा में होनी चाहिए जिसमें गद्य लिखा जाता है। उत्तम कविता के लिए किसी भाषा विशेष की इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी प्रतिभा की। भावशून्य और नीरस जन किसी भी बोली में अच्छी कविता नहीं कर सकते। पण्डित नाथूराम-शङ्कर, पण्डित रामचरित उपाध्याय, बाबू मैथिलीशरण गुप्त, राय देवीप्रसाद पूर्ण आदि मित्रों की कविता खड़ी बोली में ही 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगी। राय साहब यद्यपि खड़ी बोली में कविता करने लगे, तथापि उनका अनुराग 'ब्रजभाषा' से कभी नहीं छूटा। राय साहब का 'रसिकसमाज' ब्रजभाषा ही का भक्त रहा और उनकी 'रसिक-वाटिका' भी ब्रजभाषा ही से प्रफुल्लित रही। कविता के विषय और विधि में भी द्विवेदी जी स्वातंत्र्य चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि कविजन समस्या-पूर्त्तियों और नायक-नायिकाओं की मीमांसा में न उलझ-कर परमेश्वर की सृष्टि में उत्पन्न और भी पदार्थों का वर्णन करें, सिर्फ़ दोहे-चौपाई, सवैया, कवित्त आदि इने-गिने कुछ छन्दों में ही नहीं, किन्तु और भी अनेक छन्दों में। द्विवेदी जी की गद्यशैली में भी शीघ्र ही परिवर्त्तन हो गया। 'बेकन-विचार-रत्नावली' की भाषा और कुछ काल के बाद 'सरस्वती' की भाषा में अन्तर साफ़ साफ़ मालूम होने लगा। जहाँ तक हो सकता था वे भाषा सरल और सुबोध लिखते थे और अन्यान्य भाषाओं के ऐसे शब्दों के प्रयोग करने में उन्हें ज़रा भी परहेज़ न रह गया था जो शब्द व्यवहार में प्रचलित हो गये थे। वे मुझसे कहते थे कि 'सरस्वती' के पाठकों की संख्या बढ़ने का एक यह भी कारण है कि उसकी भाषा उत्तरोत्तर सरल होती जाती है। जो हो, जैसा मैंने पहले कहा, अपनी अल्पज्ञता के कारण द्विवेदी जी की साहित्य-सेवा और उसकी विवेचना करने के सम्बन्ध में मैं अपने को अधिकारी नहीं समझता। प्रसङ्ग-वश मैंने ये बातें लिख दी हैं। मेरा अभिप्राय उनके शील-स्वभाव के विषय में ही कुछ चर्चा कर देने का है।

द्विवेदी जी ने किसी यूनिवर्सिटी में शिक्षा प्राप्तकर डिग्रियाँ हासिल नहीं की थीं। आर्थिक दृष्टि से भी उनका बाल्यकाल साधारण घर में ही बीता था। जीविका भी उन्हें अत्यल्प वेतनवाली रेलवे में ही मिली। परन्तु उनकी बुद्धि ऐसी प्रखर थी और उनका विद्यानुराग ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबल था कि प्रतिकूल परिस्थितियों में रहते हुए भी अनेक भाषाओं में उन्होंने पाण्डित्य प्राप्त कर लिया। अपने रेलवे के कार्य्य में भी दक्ष होकर शीघ्र ही उच्च पद पर विराजमान हो प्रभावशाली बन गये। उनके अफ़सर उन्हें बहुत मानते थे। अपने दफ़्तर का कार्य थोड़ी ही देर में सुचारु-रूप से समाप्त कर बाक़ी वक़्त साहित्यावलोकन में व्यतीत करते थे। समय परिवर्तनशील है। द्विवेदी जी की क़द्र करनेवाले अफ़सरों के चले जाने के बाद कुछ लोग ऐसे आये जिन्हें द्विवेदी जी का रङ्ग-ढङ्ग पसन्द न आया और न द्विवेदी जी को उनका। एक दिन उनके अफ़सर नये साहब बहादुर ने अपनी अप्रसन्नता प्रकट करते हुए उनसे कह दिया कि यदि आपकी ऐसी ही गति रही तो कहीं आपको इस्तीफ़ा न देना पड़े। साहब बहादुर की यह धमकी द्विवेदी जी कब बर्दाश्त कर सकते थे! उन्होंने दूसरे ही दिन इस्तीफ़ा दे दिया। अपने प्रतिष्ठित और पर्याप्त वेतनवाले पद के परित्याग करने में उन्हें ज़रा भी हिचक न हुई। दफ़्तर से आकर उन्होंने केवल अपनी धर्म्मपत्नी से इसका ज़िक्र करते हुए कहा कि अब हम लोगों को ग़रीबी में ही ज़िन्दगी बसर करनी पड़ेगी। द्विवेदी जी की धर्म्मपत्नी भी पतिव्रता हिन्दूमहिला थीं। उन्हें भला ग़रीबी और अमीरी से क्या मतलब! उनकी प्रसन्नता तो द्विवेदी जी के प्रसन्न रहने में थी। तदनन्तर साहब बहादुर के पश्चात्ताप करने और अनेक मित्रों के समझाने पर भी द्विवेदी जी ने इस्तीफ़ा वापस न लिया। 'सरस्वती'-सम्पादन का भार उन दिनों में लिया ही था। उसकी ग्राहक-संख्या भी थोड़ी थी। उसके द्वारा प्राप्त अत्यल्प वेतन के सहारे ही जुही में एक मित्र के घर के एक कोने में द्विवेदी जी आ विराजे। अपनी लम्बी तन-ख़्वाहवाली रेलवे की नौकरी को लात मारने के पहले उन्होंने ७ सितम्बर १९०२ के अवध-समाचार में प्रकाशित 'सेवावृत्ति की विगर्हणा' शीर्षक कविता लिखी थी, जिसकी निम्नलिखित पंक्तियों से सेवावृत्ति के विरुद्ध उनका हृदयगत भाव प्रकट होता है—

"सेवा-समान अति दुस्तर दुःखदायी
दुर्वृत्ति और अवलोकन में न आई।
जीना कभी न उसका जग में भला है;
जो पेट हेत पर-सेवन को चला है॥
"आलस्यलीन, शुचि-सज्जनता-विहीन,
अन्तर्मलीन, पर-पीड़न में प्रवीण।
दे दैव! दण्ड मन जो कुछ और आवै;
ऐसे प्रभु-प्रवर से पर तू बचावै॥

द्विवेदी जी परोपकारी, दयालु और बात के धनी थे। कितने ही लोगों की जीविका उनकी बदौलत रेल में और अन्यत्र हो गई। अपने कुछ रिश्तेदारों और मित्रों के न रहने पर उनके कुटुम्बों की रक्षा और आर्थिक सहायता अपने ऊपर अनेक कष्ट उठाकर भी द्विवेदी जी ने बरसों की। सद्व्यवहार में तो वे कभी चूकते ही न थे। मैंने एक दफ़े यों ही बातें करते हुए उनसे पूछा—चापलूसी करना तो आपके स्वभाव के विरुद्ध है तब फिर आपने 'अयोध्याधिपस्य प्रशस्तिः' संस्कृत में क्यों लिख डाली! फिर चाटूक्तियाँ भी कैसी, कुछ ठिकाना है?

त्वां वीक्ष्य दाननिरतं सततं नरेश!
लज्जाविनम्रवदनः सुरपादपः सः॥
शङ्के सुमेरुगिरिगह्वरमाविवेश;
नो चेत्, कथं न भुवि लोचनलक्ष्यमेति?

हे नरेश! आपको सतत दाननिरत देखकर, लज्जा से अपना सिर नीचा करके वह जगत्प्रसिद्ध कल्पवृक्ष हमारे जान मेरु पर्वत की कन्दरा में छिप गया है। यदि ऐसा न होता तो वह भूमंडल में दिखाई क्यों न देता?

दानं, दयाधन! दयां, नयनैपुणञ्च
शास्त्रे गतिं जनहिताचरणे रतिं ते।
दृष्ट्वा दिलीपरघुरामकुशाजमुख्यान्
भूपांश्च न स्मरति पूर्वभवानयोध्या॥

हे दयाधन! आपकी दया, आपका नीतिनैपुण्य, शास्त्र में आपकी गति तथा लोक-हित में आपकी प्रीति को देखकर आपकी राजधानी यह अयोध्या दिलीप, रघु, रामचन्द्र, कुश, अज आदि पहले के राजाओं को भूल गई।

'श्रीधरसप्तक' आपने लिखा तो इसलिए कि पाण्डेय जी आपके मित्र थे और उन्होंने आपकी बड़ी ख़ातिर की थी। उनकी कविता की प्रशंसा करना बेजा नहीं। इसे अत्युक्ति भले ही हो—

बाला-वधू अधर-अद्भुत स्वादुताई,
द्राक्षाहु की मधुरिमा, मधु की मिठाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकत्र जो चहहु पेखन प्रेम-पागी,
तो श्रीधरोक्त-कविता पढ़ियेऽनुरागी ॥
पीयूष है यदि पदार्थ, यथार्थ कोऊ
काहे न ताहि करि पान प्रसन्न होऊ।
प्रत्येक पद्य, प्रति पंक्तिहु में, सदाहीं
सो विद्यमान कवि-श्रीधर-काव्य माहीं॥

आपने कवि की प्रशंसा करके उनसे उचित ही प्रार्थना की है—

तोसौं कहौं कछु कवे! मम ओर जोवौ,
हिन्दी-दरिद्र हरि तासु कलङ्क धोवौ।
होवौ शतायु, सुख सों रहि, दुःख खोवौ,
फैलै त्वदीय यश; सर्व-व्यथा विगोवौ॥

अप्रैल १९०० के 'सुदर्शन' में प्रकाशित 'कृतज्ञता-प्रकाश' नामक कविता भी जिसमें सर एन्टनी मेकडानल की प्रशंसा की गई है, सार्थक है। लाट साहब के उद्योग और कृपा से नागरी-अक्षरों का प्रवेश अदालतों में हुआ था। उनके विषय में यह कहना उपयुक्त था—

"हे न्यायधाम! गुण-गौरव-धर्म्म-धाम!
सत्शीलधाम! म्यकडानल पूर्णकाम!
सारी प्रजा पुलक-पूरित-गातधारी
उन्मत्तवत् कहहि "जै जय जै" तिहारी।"
× × ×
× × ×
सत्यानुरोध, नय, दिव्य दया-निधान,
तीनौ, त्रिवेणिवत, ये गुणभासमान।
सीखे प्रयाग सन काह? कहो बुझाय;
हे तीर्थराजपुर लाट! पुनीत-काय!
× × ×

परन्तु अयोध्यानरेश दद्दुआ साहब की प्रशंसा में आपकी अत्युक्तियाँ कुछ समझ में न आईं? द्विवेदी जी ने उत्तर दिया—"बात तो ठीक कही है। परन्तु यह स्तुति भी मैंने किसी स्वार्थ-साधन के लिए नहीं लिखी थी। अवध-निवासी अमुक व्यक्ति को मैं शिक्षा दिला रहा था। जहाँ तक भारतवर्ष में उनकी शिक्षा हो सकी, मैं इसका प्रबन्ध करता रहा। इसके आगे मेरा सामर्थ्य नहीं था कि मैं विलायत भेजकर उन्हें शिक्षा दिलाऊँ। अयोध्याधिप से विनय करके अमुक व्यक्ति को विलायत में पढ़ाने का उद्योग किया था।" ये व्यक्ति न तो द्विवेदी जी के वंशज थे और न कोई रिश्तेदार। परन्तु द्विवेदी जी जिसकी मदद करते थे, दिलोजान से करते थे। अपने धुन के पक्के थे। बादाख़िलाफ़ी से उन्हें सख़्त नफ़रत थी। यदि अनायास ही कभी उनकी ज़बान से कोई बात निकल जाती थी तो अपने वचन के प्रतिपालन करने में वे कुछ उठा न रखते थे, चाहे उन्हें इसमें कितना ही कष्ट क्यों न हो। मुझे स्मरण है कि यदि उनके मुख से कभी यह निकल गया कि अमुक दिन आपके घर अमुक समय आऊँगा तो फिर चाहे कितने ही विघ्न क्यों न उपस्थित हो जायँ, उस दिन और उसी समय वे वहाँ पहुँच ही जायँगे। कितनी ही बार ऐसा हुआ कि ज्येष्ठ मास के अपराह्न में द्विवेदी जी कानों में दुपट्टा लपेटे, लू में, छाता लिये मेरे मकान पर कम से कम ढाई कोस पैदल आ पहुँचते थे। मैंने उनसे कहा भी कि ऐसा क्या काम था, लू चल रही है, फिर कभी दर्शन हो जाते। उत्तर मिलता, भाई, कह दिया था, आते कैसे न? जिन लोगों को उनसे पत्र-व्यवहार करने का अवसर मिला है वे जानते होंगे कि पत्रोत्तर वे यथाशक्ति वापसी डाक ही से दिया करते थे। उनमें त्रुटि यही थी कि वे आशा करते थे कि दूसरे लोग भी उनके साथ ऐसा ही बर्ताव करें। जब और जहाँ यह बात न पाते थे, चिढ़ जाते थे। मुझ ऐसे ढीले-ढाले आदमी पर तो कई बार उनकी ख़फ़गी हुई, परन्तु बहुत दिन ठहरी नहीं। थोड़ी ही डाँट-फटकार खाने के बाद मेरा छुटकारा हो जाता था।

मित्रों और सम्बन्धियों के प्रति द्विवेदी जी का जो सद्व्यवहार था उसे जाने दीजिए। अपने दास और दासियों की ओर भी सदा सदय रहते थे। अपराध करने पर भी नौकरों को कठोर वचन कहते मैंने उन्हें कभी नहीं सुना। बहुत दिनों के बाद ही मुझे यह पता लगा कि वे लोग उनके दासदासी हैं। उनकी वेषभूषा और उनके प्रति किये गये बर्ताव को देखकर तो यही जान पड़ता था कि वे लोग नौकर नहीं, कुटुम्बी हैं। दूसरों को भी अपने आश्रितों और सेवकों के साथ कठोरता का व्यवहार देखकर वे दुःखी हो जाते थे।

द्विवेदी जी के कोई सन्तति न होने के कारण उनकी माता सदैव दुःखी रहीं। एक दिन अपनी माता को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष सन्तप्त देखकर उनसे न रहा गया। उन्हें समझाने के बाद ८ जनवरी १९०० के 'भारतमित्र' में प्रकाशित 'सुतपञ्चाशिका' लिख डाली। उसकी कुछ पंक्तियाँ ये हैं—

हे मातु ! वृथा कत करहु शोक ?
सुनि कैहहिं कह बुधिवन्त लोक ?
जामे न कछू अपनी बसाय,
खेदित तदर्थ को होहि माय ?
सुत-वदन-धूरि धरि भूरि लोक,
दुखहू महँ होवहिं विगत-शोक।
यह सर्व सत्य, पै सुनहु तत्त्व,
कर अपने में नहि ईश्वरत्व ॥
× × ×
सुतही सुमुक्ति-दाता प्रवीन,
अस बोलहिं केवल बुद्धिहीन।
जिहि जाति माँहिं नहिं पिण्डदान,
सब जावै नरकहि ! कह प्रमान ?
सत्कर्म्म, धर्म्म, अरु दयाभाव,
उपकार, सदा सरलस्वभाव।
सन्मुक्ति हेत एही समर्थ;
आडम्बर और विशेष व्यर्थ ॥

यद्यपि द्विवेदी जी के स्वभाव में गाम्भीर्य्य की मात्रा विशेष थी, तथापि उनका हृदय परिहास से सर्वथा शून्य नहीं था। एक बार उनके पास एक सम्पादक महोदय की ओर से कविता की माँग आई, परन्तु यह शर्त थी कि वह न तो धार्मिक विषय की हो और न सामाजिक या राजनैतिक हो। इसपर द्विवेदी जी को मज़ाक सूझा। कहने लगे कि इस तरह तो प्रायः सभी विषय निकल गये, कविता काहे पर की जाय ? गधे पर ? बहुत अच्छा, "गर्दभकाव्य" ही सही। यह कविता २९ अगस्त १८९८ के 'हिन्दीबङ्गवासी' में प्रकाशित हो गई, जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

विप्रवर्ग से छठि आठैं है, क्षत्री महा जुझारा है,
वैश्य जाति के यहाँ हमारो घंटा भरि न गुज़ारा है।
योग्य जानि यजमान आपनो हम धोबी स्वीकारा है;
सच्ची कहना ऐसो उज्ज्वल कोई और निहारा है ?
परम प्रसिद्ध राम को वैरी खर सो ससुर हमारा है,
कान कान्ह के खड़े कीन जिन धेनुक, सोई सारा है
नाम धरैं जे तऊ हमारो तिन मानहु झख मारा है;
जाके असि ऊँचे सम्बन्धी ताको कहैं नकारा है ?
बड़े बड़े कवि, पण्डित, ज्ञानी, जग जिनते उजियारा है;
तेऊ लहैं उपाधि हमारी जब तब; अस सत्कारा है ॥

इसी तरह का मज़ाक १९ आक्टोबर १९०० के 'वेङ्कटेश्वर-समाचार' में प्रकाशित 'बलीवर्द' शीर्षक कविता में किया गया है। द्विवेदी जी एक महाशय से मिलने गये। वे बड़े अहङ्कारी निकले। उन्होंने द्विवेदी जी की कुछ भी परवा न की। वस्तुतः बलीवर्द की उपमा अहङ्कारी पुरुष से नहीं की गई है, किन्तु बलीवर्द के रूप में उन गर्विष्ठ के स्वरूप और महिमा का वर्णन किया गया है—

अभिमानी में वृषभ ! तुम्हारा लक्षण सभी समाता है।
तौल तुम्हारी करैं उसी से यही चित्त में आता है।
बलीवर्द ! मत बुरा मानना, बात सत्य हम कहते हैं,
झूठ बोलनेवाले से हम सदा दूर ही रहते हैं।
गज भी जो आवै, तुम उसकी ओर न आँख उठाते हो,
लेटे कभी, कभी बैठे ही, कभी खड़े रह जाते हो,

मैं पहले कह चुका हूँ कि कितने ही लोगों की सहायता द्विवेदी जी गुप्तरूप से यथाशक्ति किया करते थे। बाज़ बाज़ ख़ानदानों का परिपालन तब तक करते रहे जब तक उस ख़ानदान का कोई लड़का समर्थ न हो गया। ऐसे ही एक कुटुम्ब में बरात आई। सम्बन्धी उच्च कुलाभिमानी कान्यकुब्ज थे। विवाहों में जैसा होता है, किसी कारण वे नाराज़ हो गये। लड़कीवालों की ओर से द्विवेदी जी भेजे गये कि वही रुष्ट समधी जी को मनावें, शायद मान जावें। द्विवेदी जी जनवासे गये। पता लगा कि समधी जी दुपट्टा ताने निद्रा के बहाने लेटे हुए हैं। बरातियों में एक ऐसे व्यक्ति थे जिनको द्विवेदी जी की ही कृपा से रेलवे में जमादारी मिली थी। द्विवेदी जी ने सोचा कि जमादार साहब की मार्फ़त ही समधी जी तक रसाई हो जायगी। उन्हें क्या पता था कि बरात में जमादार साहब का और ही स्वरूप है। सहायता करना तो दूर रहा, अकड़कर उन्होंने कहा—"जैहौ इहाँ ते, यहु काव्य करबु न आय, यहु कनवजिया क्यार मामिला है, तुम्हरी बातन ते न सुरझी"। यह फटकार सुन द्विवेदी जी अपना सा मुँह लेकर लौट आये। 'संस्कृतचन्द्रिका' में प्रकाशित 'कान्यकुब्जलीलामृत' नामक कविता लिखकर अपना मनस्ताप मिटाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर कविता का पूर्वार्द्ध व्यङ्ग्योक्तियों से परिपूर्ण है और उत्तरार्द्ध उपदेशों से। देखिए—

सदैव शुक्लारुणपीतवर्ण-
पाटीरपङ्कावृतसर्वभाल।
आभूतलालम्बिदुकूलधारिन्!
हे कान्यकुब्ज द्विज! ते नमोऽस्तु॥

सफ़ेद, लाल और पीले रङ्ग के चंदन का खौर जिसके सारे मस्तक पर चढ़ा हुआ है, धोती जिसकी इतनी लम्बी है कि ज़मीन तक ख़बर लेती है; ऐसे हे कान्यकुब्ज देवता जी! आपको हमारा नमस्कार है।

भवन्ति ते धन्यतमा द्विजा ये
त्वदीयसम्बन्धमवाप्नुवन्ति।
व्रजन्ति ते ब्रह्मपदं तथान्ते
त एव वंशं निजमुन्नयन्ति॥

जिन पुण्यवान् ब्राह्मणों से आप सम्बन्ध करते हैं, वे धन्य हैं, ब्रह्मपद उन्हीं को अन्त में मिलता है; और वही अपना वंश उच्च पदवी को पहुँचाते हैं।

दिनानि ते तानि गतानि नातः शुष्काभिमानेन सुवंशजेन।
भविष्यति त्वत्कुशलं कदापि; विचिन्तयान्तःकरणे त्वमेव॥

आपके वे पहले दिन गये। उच्च कुल में पैदा होने के शुष्क अभिमान को आप अब जाने दीजिए। ऐसा न करने से आप कदापि अपनी कुशल न समझें। आप अपने अन्तःकरण में विचार करके देखिए इसी में आपकी भलाई है।

त्यजालसं शीलय विप्र विद्यां विधेहि दुष्टव्यवहारनाशम्।
उदारतां बन्धुषु दर्शय त्वं, कुरुष्व कार्यं सुजनाहतं च॥

विप्र जी! आप आलस छोड़िए, विद्या पढ़िए, बुरे बुरे व्यवहारों की इतिश्री कीजिए। अपनी जातिवालों के ऊपर अधिक उदार हूजिए और भले आदमी जिस काम को अच्छा कहते हैं उसे करना सीखिए।

द्विवेदी जी अपने आय-व्यय का हिसाब पैसे पैसे का रखते थे। इसी तरह अपने समय का भी। फ़िज़ूल वक़्त जाना उन्हें अखर जाता था। स्थान की स्वच्छता, चीज़ों की सँभाल और सजाकर यथास्थान रखना उन्हें बहुत प्रिय था। उनमें मितव्ययिता और उदारता का अच्छा संयोग था। बाहर से आये हुए पत्र-पत्रिकाओं के पैकटों के कवर और बन्धनों को रख छोड़ते थे और अपनी ओर से जाने-वाले पैकटों के काम में ले आते थे। मन्दाग्नि और उन्निद्र रोग से वे यावज्जीवन पीड़ित रहे, पर उनका संयम ऐसा था जिससे उनके कामों में बाधायें कम पड़ने पाती थीं और जिसकी बदौलत उनका जीवन इस संसार में इतने दिन चल सका। रुग्णावस्था में भी निरामिषान्न ही ग्रहण करते थे। मांसाहार से उन्हें घृणा थी, जैसा उनकी 'मांसाहारी को हंटर'-शीर्षक कविता से प्रकट है—

रे रे अजान! रसनारत! बोलु बोलु;
मौनावलम्ब कत? रे मुख खोलु खोलु।
मिष्टान्नहू न कह एकहु तोहिं भावै?
स्वादिष्ट मूल-फलहू न कहा सुहावै?
जो तू अरे! कहत कम्पित होत गात,
लीलै महामलिन मांस मिलाय भात।
जानै नहीं निज हिताहितयुक्त बात;
है हानि जाहि महँ तोहिं सुई सुहात!!
आरक्तरक्त जिहि माँहिं सनो घनेरो;
मज्जा-प्रपुञ्ज सन जो सब ओर घेरो।
जामे भरो अति अपावन अस्थि-जाल;
तू सोइ मांस गटकै नित लाल लाल॥
लै अस्थि, ताहि अपने मुख माहिं डारी,
चूसै शुनी शुनक हर्ष विशेषधारी।
जो तूहु मोद-युत चाबतु हाड़ हा हा!
तो श्वानवर्ग अरु तो महँ भेद काहा?
माता समान पय-पान सदा करावै;
बेरी, पलाश अरु आक, जवास खावै।
सोई अजा भखत तोहिं न लाज आई,
हा हन्त! हा! इतिक घोर कृतघ्नताई!!!
नाई जु भूलि नख जीवित काटि देवै;
तू आर्तनाद करिकै कर खैंचि लेवै।
तो कण्ठ काटि पशु मारन में कितेक
होवै व्यथा शठ! हिये महँ सोचु नेक।
अत्यल्प काल अथवा बहुकाल माहीं
रे! नाश है अवशि संशय लेश नाहीं
जो अन्त, मांस-रस-पुष्ट-शरीर छूटै,
तो मूढ़! व्यर्थ कत पातक-पुञ्ज लूटै!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्राण हैं प्रिय अरे शठ ! तोहि जैसे,
अन्यान्य जीवगणहू कहँ मूखे तैसे
काहे कमात पर-पीडन-पाप भार ?
धिक्कार तोहिं शत बार सहस्र बार ।

यद्यपि द्विवेदी जी हर एक रस में कविता करने की योग्यता रखते थे, तथापि शृङ्गाररस की ओर उनकी प्रवृत्ति कम थी। इसका बहुत कुछ कारण यह भी था कि वे तत्कालीन कवियों की रुचि अन्यान्य रसों और विषयों की ओर फेरना चाहते थे। करुणरस की ओर उनकी लेखनी जल्दी झुकती थी, जैसा कि 'अयोध्या का विलाप', 'स्वप्न', 'नागरी ! तेरी यह दशा !!!' 'त्राहि नाथ त्राहि,' 'भारतदुर्भिक्ष' आदि कविताओं से प्रतीत होता है। इन सभों में ७ आक्टोबर १८९८ के 'भारतमित्र' में प्रकाशित 'बाल-विधवा-विलाप' शीर्षक कविता अधिक हृदयग्राहिणी हुई है। कविता तभी बन पड़ती है जब कवि का हृदय किसी भाव से भरा हो। भावोद्गार अवसर पाकर ही होता है। द्विवेदी जी की भी वे कवितायें ख़ासकर हिन्दी की, बड़ी सरस हैं जो किसी ख़ास मौक़े पर की गई हैं, जिनके बनाये जाने में कोई विशेष कारण रहा है। यों तो सुन्दर कल्पनाओं और उत्प्रेक्षाओं की छटा उनकी संस्कृत-कविता में जिसका पहले उन्हें शौक़ था, बहुतायत से मिलती है। 'शिवाष्टकम्', 'प्रभातवर्णनम्', 'सूर्यग्रहणम्', 'मेघमालां प्रति चन्द्रिकोक्तिः', 'काक-कूजितम्', 'समाचारपत्रसम्पादकस्तवादि' कविताओं को पढ़-कर बड़ा आनन्द प्राप्त होता है, परन्तु जो रसोद्रेक पूर्वोक्त 'बाल-विधवा-विलाप' में है वह अन्यत्र नहीं मिलता। इसका यही कारण है कि द्विवेदी जी को अपने साले की मृत्यु हो जाने पर अपनी विधवा सरहज को देखकर भारतवर्ष की हिन्दू बाल-विधवाओं की दशा का स्मरण हो आया और उन्होंने उनका मर्मस्पर्शी वर्णन कर डाला—

आकाश-मध्य रवि अंशु अनन्तधारी,
देखो प्रदीप्त दिन में तमपुञ्जहारी।
ताराधिनाथ जनमानसमोदकारी,
नक्षत्रयुक्त विलसै रजनीविहारी।
विद्युत्प्रकाश अनलोद्भवभास भारी,
नाना नई विमलदीपशिखा सुखारी।
तेजोमयी शुचि महामणिमूर्ति सारी।
रत्नादिराशि महि माहि घनी निहारी।
काहे तऊ अहह ! मोहिं महाऽन्धकारा
सर्वत्र सम्प्रति दिखाय अहो ! अपारा।
मत्प्रश्न हाय ! यह, जीवन के अधारा !
पापिष्ठ हृत्पटल फारि करै दरारा !!

मेरे दिनेश तुमहीं, तुमहीं निशेशा,
तारादि हू तुमहिं नाथ ! रहे अशेषा।
प्राणेश ! अस्त तव होतहि लोक माहीं,
सारे प्रकाश मम अस्त भये लखाहीं
वैधव्यजातदुखसम्मुख तीव्र आगी,
है कः पदार्थ ? जरु देह ! अरे अभागी।
हे प्राणनाथ ! नहिं सम्भव सोउ हा हा,
जानौं भले विधिविरुद्ध शरीरदाहा।

देखी कहूँ न विटपाश्रयहीन बेली,
प्राचीन होहु अथवा अति ही नवेली।
मैं मन्दभाग्य तिनतेऽधिक भूमि आई,
आधारहीन जऊ जीव तऊ न जाई।
प्राणाधिक ! त्वदनुराग हिये जगाई,
राखौं शरीर यदि दारुण दुःख पाई।

गालि-प्रदान निशिवासर नित्य पैहौं
हा हन्त ! दुःखमय जीवन यों बितैहौं।
"रंडे ! तुही अवश मत्सुत लीन खाई"
त्वन्मातु नाथ ! जब तर्जिहि यों रिसाई।
है है इहै तव मदीय मताऽधिकाई
पृथ्वी फटै त्वरित जाहुँ तहाँ समाई।

ऐसो भयो कहहु मोसन कौन पापा ?
जो देहिं मोहि सिगरे मिलि तीव्र तापा।
आपै मरो जु तिहि मारन में उछाहा !
अन्याय हाय ! इहि ते बढ़ि और काहा ?
धोती मलीन तन, कज्जलहीन नैन,
सिन्दूरबिन्दु बिन मस्तक, दीन बैन।

एरंड दंड सम हस्त जटालुकेश,
मद्देशवासि अस कीन मदीय वेश।
एहो समाज कुलदीप ! इती हमारी
विज्ञप्ति लेहु सुनि दीन दशा निहारी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

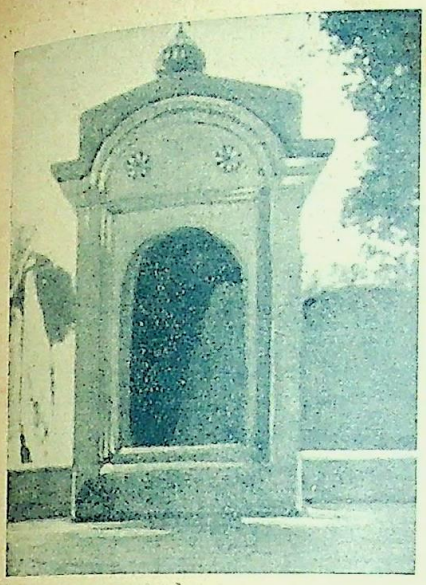

स्मृति-मन्दिर के पास श्री हनूमानजी की मढ़िया

आचार्य द्विवेदी जी की धर्मपत्नी का स्मृति-मन्दिर

पीछे की पंक्ति में खड़े बायीं ओर से--श्रीमती विद्यावती, पंडित कमलाकिशोर त्रिपाठी, श्री कमलाकिशोर त्रिपाठी की धर्मपत्नी श्रीमती राधादेवी।

बीच की पंक्ति में कुर्सी पर बैठे बायीं ओर से—द्विवेदी जी की चचेरी बहन लक्ष्मीदेवी (९० वर्ष) आचार्य द्विवेदी जी, उनकी गोद में श्रीमती विद्यावती का पुत्र इन्द्रदत्त (७ मास), लक्ष्मीदेवी की लड़की की लड़की श्रीमती दुलारीदेवी।

नीचे की पंक्ति में—श्री कमलाकिशोर के साले की लड़की रानीदेवी, श्रीमती विद्यावती का पुत्र रुद्रदत्त, श्री कमलाकिशोर की पुत्री मनोरमा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

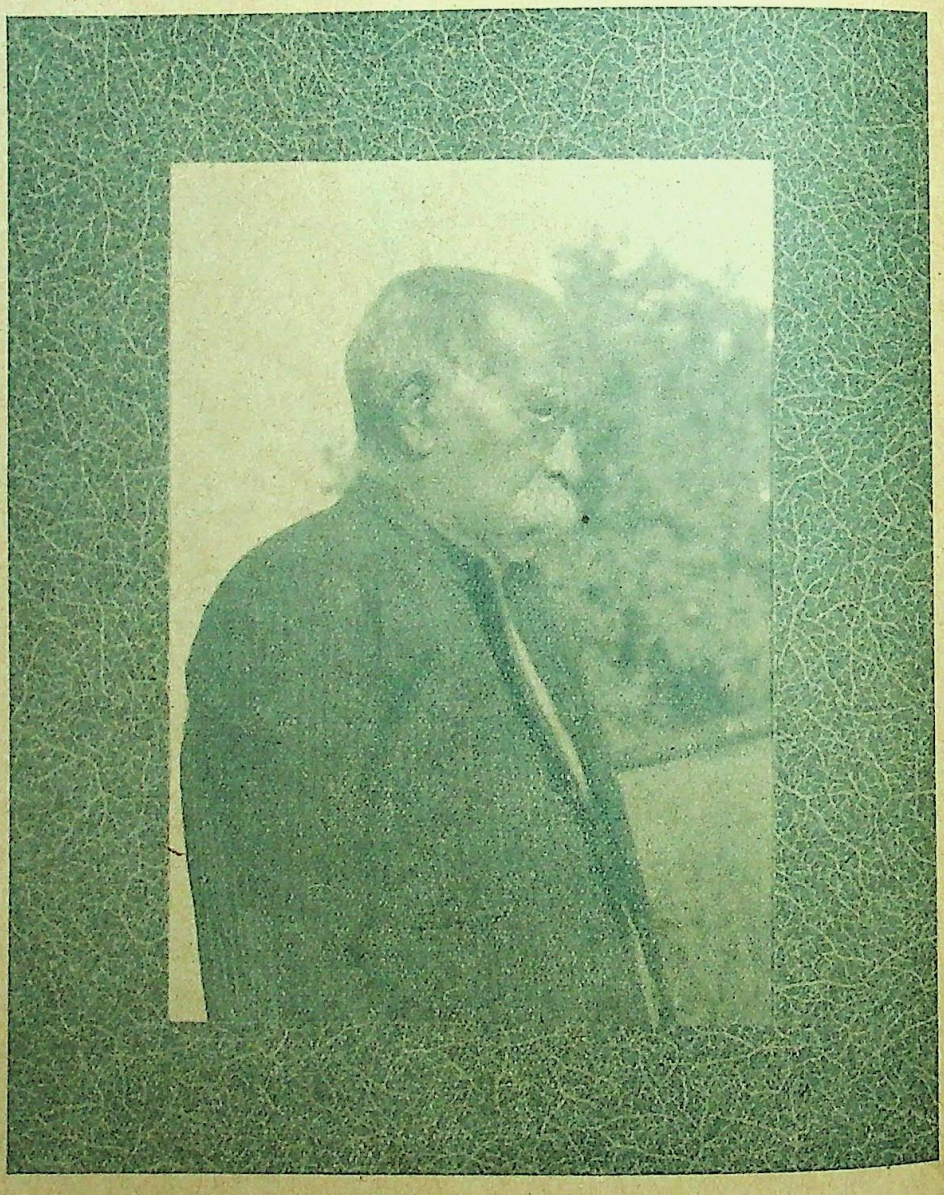

आचार्य द्विवेदी जी—जनवरी सन् १९३४ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जुही का गुरु-द्वारा

लेखक, श्रीयुत नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी० ए०

पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी का नाम तो बचपन से सुनता था, परन्तु साक्षात्कार कभी नहीं हुआ था। पण्डित उदयनारायण वाजपेयी द्विवेदी जी के सहायक थे और प्रति-दिन 'सरस्वती' के लेखों का एक पोथा लेकर मेरे दरवाज़े से जाया-आया करते थे। एक दिन उनसे कहा कि मुझे भी जुही के गुरुद्वारे ले चलो तो बड़ी कृपा हो। वे राज़ी हो गये और मैंने जाकर अपने हिन्दी-भाषा के भावी गुरु के दर्शन किये। मैंने द्विवेदी जी से कहा—"मुझे हिन्दी लिखना नहीं आता। सिखा दीजिए। बड़ी कृपा होगी।" गुरु जी ने कहा—"माता से बात करना घर में कौन सिखाता है? उसी तरह जो बोलो वह लिख लो। ठीक मैं कर दूँगा। बस फिर क्या था।" लिखना, दिखाना और अक्सर का आना-जाना शुरू हो गया।

> "मूर्ख, अपढ़ या अल्पज्ञ यदि कर्त्तव्य-पालन न करे तो उसे क्षमा मिल सकती है; विद्वान् और बहुज्ञ के इस अपराध की क्षमा नहीं। उसकी कर्त्तव्य-च्युति का कुफल बहुत ही भयंकर होता है।"
>
> आचार्य द्विवेदी, सितम्बर १९१४

द्विवेदी जी केवल मुझ सरीखे नाचीज़ के ही गुरु नहीं थे, बल्कि सैकड़ों हिन्दी-लेखकों के गुरु थे। स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी उनको अपना गुरु मानते थे और 'प्रताप' के मुख-पृष्ठ पर जो कविता—

"जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर-पशु निरा है और मृतक समान है"—

छपती है वह द्विवेदी जी की ही बनाई हुई है। पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी भी द्विवेदी जी के चेलों में से हैं।

एक दिन मैंने द्विवेदी जी से उनकी 'काव्य-मंजूषा' पढ़ने को माँगी। पुस्तक मेरे हाथ में देते हुए द्विवेदी जी ने कहा—"क्या दोस्तों को देना है?" उनका मतलब पण्डित वेंकटेशनारायण तिवारी से था, जो उन दिनों 'मर्यादा' में द्विवेदी जी की कविता की समालोचना कर रहे थे। मैंने कहा—"नहीं। मैं किसी को पुस्तक दूँगा नहीं। केवल स्वयं पढ़ूँगा।" और ऐसा मैंने किया भी। शीघ्र ही पढ़कर पुस्तक वापस कर दी और उक्त समालोचना के समझने में सहायता भी प्राप्त की।

द्विवेदी जी का यह दस्तूर था कि जो कोई भी उनसे मिलने जाता उसे अपनी डिबिया से दो पान भेंट करते और बातचीत समाप्त कर लेने पर दो पान और भेंट करते, जो इस बात का इशारा था कि बस अब आप तशरीफ़ ले जाइए जैसा कि महात्मा गांधी भी बातचीत समाप्त करने पर कह देते हैं कि "बस खलास।" इससे यह प्रकट होता है कि द्विवेदी जी व्यर्थ की बकवास और समय का नष्ट करना पसन्द नहीं करते थे। बड़े आदमियों की छोटी छोटी बातों से भी अगर हम चाहें तो बहुत कुछ सीख सकते हैं। द्विवेदी जी के कमरे में प्रत्येक वस्तु क़रीने से रक्खी रहती थी। जहाँ से जो चीज़ उठाई गई उसी स्थान पर उसे पुनः रखना आवश्यक था। अगर कोई आदमी इसके ख़िलाफ़ करता तो वे नाराज़ होते थे। कुछ लिखने के बाद जब क़लम अपने स्थान पर रक्खी जाती थी तब निब की स्याही साफ़ कर दी जाती थी। उनका कमरा ठसाठस तो अवश्य रहता था, परन्तु हर एक चीज़ साफ़-सुथरी दिखाई देती थी। उनको सफ़ाई पसन्द थी और प्रत्येक वस्तु को ढंग से रखने के आदी थे।

पत्रों का उत्तर भी द्विवेदी जी शीघ्र और अवश्य देते थे और दूसरों से भी यही आशा रखते थे।

उनके कमरे में एक फरसा भी टँगा रहता था, जो उनके उग्र स्वभाव का द्योतक था। यदि वे एक बार किसी से नाराज़ हुए तो शीघ्र माफ़ करनेवाले नहीं थे। शायद उसी फरसे को ही देखकर पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी ने उन्हें 'वाक्य-शूर परशुराम' लिखा था।

महात्मा गांधी से मिलती हुई दूसरी बात द्विवेदी जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में यह थी कि पत्र आने पर उसका लिफ़ाफ़ा द्विवेदी जी फेंक नहीं देते थे, बल्कि चाक़ू से काटकर उसे रख लेते थे और उसकी पीठ पर लिखते थे। यह उनकी किफ़ायत-शारी का नमूना है।

कानपुर से तीन मील दूर जुही की जिस कुटिया में बैठकर द्विवेदी जी ने बरसों 'सरस्वती' का सम्पादन किया है उसे हिन्दी-प्रेमियों को एक साहित्यिक तीर्थ बनाना चाहिए। यह उनकी एक ख़ास यादगार भी रहेगी।

जुही छोड़ने के पश्चात् जब कभी द्विवेदी जी दौलत-पुर से कानपुर आते थे तब मनीराम की बगिया में ठहरा करते थे और एक बार वहीं सख़्त बीमार भी हो गये थे।

द्विवेदी जी सफल सम्पादक, सच्चे समालोचक, उत्तम अनुवादक और आधुनिक कवि थे। इसमें जिसे शक हो वह 'सरस्वती' की पुरानी फ़ाइलें उठाकर देख ले उसका शंका-समाधान हो जायगा। द्विवेदी जी में जो ख़ास बात थी वह यह थी कि वे हर लेख को अपने साँचे में ढाल लेते थे और ऐसा बढ़िया संशोधन कर देते थे कि छोटे से छोटे लेखक का लेख भी स्वयं द्विवेदी जी की लेखनी के में परिवर्तित हो जाता था और एक उत्तम लेख जैसा लगता था। परिणाम यह होता था कि लेखक को उत्साह मिलता था और द्विवेदी जी ने जो शैली स्थापित की वह भी बिगड़ने नहीं पाती थी। वर्तमान साहित्य में शैली 'द्विवेदी-स्कूल' के नाम से प्रसिद्ध है।

गद्य, पद्य, अनुवाद, समालोचना और मौलिक पुस्तकें द्विवेदी जी ने कई लिखी हैं। साथ ही उन्होंने छोटी छोटी पुस्तकें भी लिखी हैं, और उनमें 'कानपुर का भूगोल' भी एक है। आशा है, उनके स्मारक में उनका लिखा हुआ सारा साहित्य एक आकार-प्रकार में वैसे ही निकलेगा जैसे कि पाश्चात्य लेखकों के ग्रन्थ निकले हैं।

वज्रपात

लेखक, श्रीयुत सागरसिंह 'नागर'

यह वज्रपात !!
मा के मन्दिर में पतझड़-सा है उदासीन जीवन प्रभात !
कविता के वे सुख-स्वप्न अमर,
कल्पना सहचरी का मधु स्वर,
सूने पथ पर का मूक प्यार
गीले पलकों के भाव सजल
लो, फूट पड़े बन करुण-गीत !
लुट गया आह !
यह अरे कौन !
स्पन्दित उर, कवि का हृदय मौन।
उद्गार शान्त, जग-पथ अनन्त—आशा विलीन—
जल-कण में बिखरा हृदय दीन
अस्फुट स्वर में चित्रित अतीत
हैं रहे सिसक कर नयन देख
जग का ताण्डव।
रुक गया क्षितिज के पास कहीं
सन्देश नवल औ' मलय-वात
जीवन की कलियाँ नरम पात—
जो मुस्काते थे अभी अभी—
जीवन की मधु आशा लेकर
द्रुत म्लान हो गये हाय ! सभी।
धिक् वात, अरे धिक् नियति तुझे,
हा ! आई ले यह वज्रपात।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर्म्मान्तक मरण

लेखक, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तञ्च जीवनम् ॥१॥
'अद्यैवाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवम्,
'मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः,
'धरा को प्रभाव यहै तुलसी
जो फरा सो झरा जो बरा सो बुताना।
'लाई हयात आये क़ज़ा ले चली चले।
अपनी खुशी न आये न अपनी खुशी चले ॥

क्या विवशता है, कैसा अद्भुत परिवर्तन है, क्षणमात्र में क्या से क्या हो जाता है, कुछ कहा नहीं जा सकता। क्षण भर पहले एक संसार सामने था, पर क्षण भर बाद कहीं कुछ नहीं, कैसा आश्चर्यजनक दृश्य है! क्या कहा जाय—

क्या ठिकाना है ज़िन्दगानी का।
आदमी बुलबुला है पानी का।
'दम आवे न आवे ठिकाना क्या'।

यद्यपि ऐसे वाक्य मिलते हैं, जिससे मरण भयङ्कर नहीं माना जाता। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवन जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

कबीर साहब कहते हैं—

मरने से सब जग डरे मेरे मन आनन्द।
मरने ही से पाइए पूरन परमानन्द।

जो कुछ हो, बड़ों की बड़ी बातें होती हैं। जो दिव्य दृष्टिवाले हैं उनकी दृष्टि ही और है, पर हम संसारियों के लिए मृत्यु से बढ़कर भयंकर और कुछ नहीं। सबका मरण मरण ही है, परन्तु विशेष पुरुषों का मरण मर्म्मान्तक मरण है। जिनसे देश, जाति, भाषा और समाज का उत्थान हुआ हो, जो अपने उतने नहीं थे जितने लोक के थे, आजीवन जिनका सेवाव्रत ही रहा, उनका मरण वज्रपात से कम नहीं। स्वर्गीय पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी का मरण ऐसा ही मरण है। हिन्दी-संसार में वे एक युगप्रवर्तक थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद इस पद को यदि किसी ने प्राप्त किया तो उन्हीं ने प्राप्त किया। किन्तु 'हरेरिच्छा बलीयसी'। मनुष्य के हाथ में सिवा हाय, हाय, करने के और है ही क्या?

मेरे तो वे ज्येष्ठ भ्राता थे, मुझसे छः महीने बड़े थे। उनका आजीवन मेरे साथ ज्येष्ठ भ्राता का-सा ही बर्ताव रहा। आरा की नागरी-प्रचारिणी-सभा ने मेरे अभिनन्दन-ग्रन्थ के लिए जब उनसे आशीर्वाद माँगा, उन्होंने यह श्लोक लिखकर भेजा—

"अयोध्यासिंहशर्म्माणमुपाध्यायकुलोद्भवम्।
साहित्यज्ञं कविश्रेष्ठं प्रणमामि पुनः पुनः ॥"

मुझको जब यह बात ज्ञात हुई तब मैंने उनसे प्रार्थना की कि आप श्लोक बदल दीजिए, क्योंकि आप मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं, आपको मुझे आशीर्वाद देना चाहिए, न कि उलटे प्रणाम करना चाहिए, परन्तु उन्होंने मेरी प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। मुझको यही लिखा कि मेरी आन्तरिक इच्छा यही है कि आपके अभिनन्दन-ग्रंथ में मेरा श्लोक इसी रूप में रहे। देखिए उनका महत्त्व और औदार्य। मेरे पौत्र ने 'झलक' नाम की एक छोटी-सी पुस्तिका मेरे विषय में लिखी है। उसने उनकी सेवा में उस पुस्तिका को भेजा था। उसकी प्राप्ति स्वीकार करते हुए वे लिखते हैं—यह पत्र २०।१०।३८ का लिखा हुआ है—मेरे पास उनका यही अन्तिम पत्र है—

"आपने बड़े पुण्य का काम किया। हरिऔध जी मेरे पुराने प्रेमी हैं, वे हिन्दी-साहित्य के उन्नायक और महाकवि हैं। उनके विषय में लिखी गई आपकी पुस्तक यत्र तत्र पढ़कर मुझे परमानन्द हुआ। चिरञ्जीवी भूयाः।"

देखिए इस पत्र में उनका कितना स्नेह और कितनी ममता भरी है। अधिक क्या लिखूँ। लेख लिखते समय मेरा जी बार बार भर आता है, कुछ लिखते भी नहीं बनता। वास्तव में उनका वियोग मेरे लिए आत्मीय वियोग है। मैं उनको जीवित ही समझता हूँ, क्योंकि 'कीर्त्तिर्यस्य स जीवति', किन्तु परम्परानुसार मैं उनकी सद्गति की कामना करता हूँ, और उनके उत्तराधिकारी से समवेदना प्रकट करते हुए निम्नलिखित पद्य के साथ इस लेख को समाप्त करता हूँ—

चिरजीवी कैसे वे रसिकजन होंगे नहीं
नाना रस ले ले जो रसायन बनाते हैं।
लोग क्यों सकेंगे भूल उन्हें जो लगन साथ
कीर्त्ति-बेलि उर आलबाल में उगाते हैं।
'हरिऔध' कैसे वे न जीवित रहेंगे सदा
जग में सजीव कविता जो छोड़ जाते हैं।
कैसे वे मरेंगे जो अमर रचनायें कर
मर मेदिनी ही में अमर-पद पाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के चरणों में श्रद्धाञ्जलि

लेखक, बाबू शिवप्रसाद गुप्त, काशी

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी अब इस असार संसार में नहीं रहे, किन्तु उनकी प्रतिभा, उनका कार्य, उनका त्याग, उनकी महान् विद्वत्ता चिरस्थायी है और चिरकाल तक हिन्दी के सेवकों के पथ-प्रदर्शन का कार्य करती रहैगी। इस ज्योति-स्तम्भ को देखकर हिन्दी के पथिकों को इस भवसागर में पोताश्रय पाने का सहारा मिलता रहैगा। द्विवेदी जी की महान् स्मृति भुलाने से भी न भूलेगी।

बहुत समय हुआ, जब मुझे पहले-पहल आचार्य द्विवेदी जी का परिचय एक कविता से मिला था। उस समय सरस्वती काशी के बाबू श्यामसुन्दरदास जी व अन्य कई सज्जनों के सम्पादकत्व में निकलती थी। द्विवेदी जी की भेजी हुई अनेक कविताओं को सामयिक सम्पादकों ने यह कह कहकर लौटा दिया था कि उनमें राजनीति की, समाज-सुधार की और अन्य इसी प्रकार की गन्ध आती है। तब द्विवेदी जी ने एक कविता 'गर्दभ' पर लिखकर छापी थी। उस कविता की एकाध पंक्तियाँ मुझे स्मरण हैं, जो यहाँ उद्धृत करने की धृष्टता करता हूँ—

"लच्छेदार, चीथड़े कूड़े, जिन्हें बुहारि निकारा है,
सोई, सुनौ सुजानशिरोमणि, मोहनभोग हमारा है॥"

इसी कविता द्वारा प्रथम दर्शन मुझे द्विवेदी जी का प्राप्त हुआ था। कुछ दिन पीछे जब 'सरस्वती' आचार्य द्विवेदी जी के सम्पादकत्व में आ गई, उस समय भी 'सरस्वती' के मुखपृष्ठ पर 'काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा-द्वारा अनुमोदित" यह वाक्य छपा करता था। पीछे सभा की एक समालोचना 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई, जिससे असन्तुष्ट होकर सभा ने इस वाक्य को उस पर से हटा देने का निश्चय किया और बहुत आग्रह करने पर भी उसके रक्खे रहने देने की अनुमति न दी। तब द्विवेदी जी ने सभा से बिदा लेते हुए अनीस की एक सुन्दर कविता 'सरस्वती' में छापकर सभा से बिदा ली थी। वह कविता भी पाठकों के मनोरञ्जनार्थ यहाँ उद्धृत करता हूँ—

"ए हो बिटपवर पुहुप तिहारे हम,
राखिहो हमैं तो शोभा राउरे बढ़ावैंगे।
तजिहौ कदाचित तो बिलग न मानैं कछू,
जहाँ जहाँ जैहैं, तहाँ दूनौ यश छावैंगे।
सुरन चढ़ैंगे, नरसिरन चढ़ैंगे,
'सुकवि अनीस' हाट-बाटन बिकावैंगे।
देस में रहैंगे, परदेस में रहैंगे,
काहू भेस में रहैंगे, तऊ राउरे कहावैंगे॥"

अनीस की इस सुन्दर कविता को उद्धृत करके द्विवेदी जी ने सरस्वती का नाता काशी की नागरी-प्रचारिणीसभा से तोड़ा। उसके उपरान्त द्विवेदी जी के सम्पादकत्व में वह दिनों दिन फली-फूली और हिन्दी के विकसित लेखकों और पाठकों को 'भाखा' के लेखकों के नाम से उठाकर हिन्दी लेखकों के उच्च सिंहासन पर आरूढ़ किया। मैं उस ज़माने की चर्चा कर रहा हूँ, जब बाबू राधाकृष्ण दास जी ऐसे स्वनाम-धन्य विद्वान् लोगों को भी नागरी-प्रचारिणीसभा में बैठकर महारानी विक्टोरिया की मृत्यु पर 'अरबी-लिपि' में प्रस्ताव लिखकर उपस्थित लोगों के सामने पेश करना पड़ा था। मैं उस समय बच्चा था, पर यह घटना मुझे अच्छी तरह स्मरण है। उस ज़माने की तुलना आज से कीजिए, जब जगह जगह 'अरबी-अक्षरों' के भक्तों को इस बात की चेष्टा करनी पड़ रही है कि हिन्दी के साथ 'अरबी-अक्षर' पाठशालाओं में सब विद्यार्थियों को अनिवार्य-रूप से पढ़ाये जायँ और दुःख से कहना पड़ता है कि आज दिन देश के चिर स्मरणीय महान् नेता लोग भी अनेक विचारों से प्रेरित होकर इसका समर्थन कर रहे हैं। आज जो स्थान हिन्दी को प्राप्त है उसके लाने में आचार्य द्विवेदी जी का अत्यन्त साथ महान् स्थान है। अब वह समय आ गया है, हिन्दी अपने उस स्थान पर विराजमान है, जहाँ से उसे हटाने में भगीरथप्रयत्न का भी सफल होना कठिन है, और इसका श्रेय बहुत कुछ आचार्य द्विवेदी जी को भी है।

आचार्य द्विवेदी जी युग-प्रवर्तक थे, उन्होंने एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की समाप्ति देखी है और दूसरे युग के आरम्भ कराने में हाथ बँटाया है, किन्तु स्वयं उनको इस असार संसार को उसी दीनावस्था में त्यागना पड़ा जैसा कि ऐसे पराधीन देश में विद्वानों और युगप्रवर्तकों को करना पड़ता है। अभी द्विवेदी जी से थोड़े दिन पहले स्वनामधन्य अमृतलाल चक्रवर्ती के अन्तिम समय की अवस्था का ज्ञान जिन लोगों को है वे भली-भाँति जानते हैं कि ऐसे विद्वान् और हिन्दी के बङ्गाली सेवक का अन्तिम समय किस कष्ट और आर्थिक सङ्कट में बीता था। भगवान् इण्डियन प्रेस के मालिकों को इसका सुफल दे जिनकी उदारता से आचार्य द्विवेदी जी के अन्तिम समय में थोड़ी सहायता मिलती रही, अन्यथा उनका अन्तिम समय किस कष्ट में बीतता, इस विचार से ही रोमांच हो आता है।

मुझे इधर पचीस-तीस वर्षों से आचार्य द्विवेदी जी से थोड़ा परिचय था, एकाध बार उनकी चरण-सेवा का मुझे अवसर भी मिला था, मैं भली-भाँति इसका अनुभव कर सकता हूँ कि हिन्दी के ऐसे उत्कट युग-प्रवर्तक विद्वान् सेवक का हिन्दी-जनता ने कुछ भी ख़याल नहीं किया व न उनके अन्तिम समय को सुखी बनाने में कोई हाथ ही बँटाया। उनका इधर का दस-बारह वर्षों का समय शारीरिक रुग्णावस्था और अर्थ-सङ्कट में ही बीता। अब वे इस दुःखमय असार संसार को छोड़कर वहाँ चले गये हैं, जहाँ का पूरा ज्ञान इस संसार में रहनेवाले व्यक्तियों को न है, न हो सकता है और मेरी प्रार्थना उस जगन्नियंता के चरणों में यही है कि जहाँ कहीं भी वह आत्मा हो, उसे शान्ति और सन्तोष प्रदान करे। इति।

पुण्य-स्मृतिः

लेखक, ईशदत्तशास्त्री 'श्रीशः' साहित्याचार्यः साहित्यरत्नं काव्यतीर्थः

सरस्वति ! त्वं विधिवञ्चिताऽस्यहो,
हताऽसि 'हिन्दी'-जननि ! प्रभाभरे !
यदद्यकालाद् भविता न भूतले,
पुनर्महावीरप्रसाद'-दर्शनम् !!

तडिन्निपातोऽभवदार्यमण्डले,
गताऽऽर्यभाषागतवैभवप्रभा;
यतः स 'आचार्य'–वरो दिवङ्गतः,
श्रुत-द्विवेदी-कुल-कीर्ति-सङ्गतः !!

प्रसिद्ध'चिन्तामणि'-मंत्र-लब्ध-धीः,
स्व - देश - सद्धर्म - समाज - सेवकः
महामनीषी जगदेकरञ्जनः,
न तादृशकोऽप्यधुना विलोक्यते

न यो विसस्मार कदाप्यहो सकृद्
गृहागताँस्तानतिथीनपि भृशम्।
कथं दयार्द्रेण बुधेन तेन हाऽ!-
तिविस्मृताऽसौ जननी च जन्मभूः !!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी जी की विशेषतायें

लेखक, पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी की जीवनी से जो अमूल्य शिक्षा युवकों को मिल सकती है वह यह है कि मनुष्य आप अपना विधाता है, वह अपने को बना और बिगाड़ सकता है। द्विवेदी जी ने अपने को आप बनाया था। उन्होंने कोई उच्च परीक्षा नहीं पास की थी, तथापि वे उच्च परीक्षा पास लोगों के गुरु थे। उन्होंने बीस वर्षों में जो काम किया उसके लिए जगह जगह उनका गुणानुवाद होता है। यदि वे झाँसी में रेलवे की नौकरी करके पेनशन ले लेते तो आज उनका नाम कौन जानता और कौन उनकी याद करता? रेलवे की नौकरी छोड़ने में उनके त्याग के साथ ही जो स्वाभिमान की भावना देखी गई वही उनको आज उच्चासन पर बैठाने का कारण हुई।

द्विवेदी जी से हमारा परिचय सन् १९०८ में हुआ था और तीस वर्षों के इस लम्बे अन्तर में कभी हमारा उनके साथ मनमुटाव वा विवाद नहीं हुआ। जो सुसम्बन्ध आरम्भ में हुआ था वह अन्त तक बना रहा। यह बात नहीं थी कि ऐसी घटनायें न हुई हों जिनसे वैमनस्य होना स्वाभाविक था। परन्तु जब भेंट होती तब कभी उनकी चर्चा ही न उठती थी। पत्र में द्विवेदी जी के असन्तोष का कभी घुणाक्षरन्याय से भी पता नहीं लगता था। द्विवेदी जी से मित्रता होना साधारण लाभ न था, क्योंकि वे मित्र की सहायता अपनपौ खोकर किया करते थे। द्विवेदी जी के स्वभाव की उग्रता की जो लोग शिकायत करते थे वे उसके मूल ब्राह्मणोचित स्वाभिमान की अवहेलना करते थे और स्वाभिमान को धक्का लगते ही ब्रह्मवर्चस् जागरित होता है यह उनके ध्यान में नहीं आता था। हम तो इसे मनुष्य का आवश्यक गुण मानते हैं।

द्विवेदी जी और 'सरस्वती' का अभिन्न सम्बन्ध था। आज इस प्रश्न का उत्तर कोई नहीं दे सकता कि यदि द्विवेदी जी को 'सरस्वती' न मिलती और द्विवेदी जी 'सरस्वती' को न मिलते तो आज उनकी जो प्रशंसा और पूजा हो रही है वह होती या न होती अथवा हिन्दी में जो उन्नति उर्दू-प्रधान लोगों में आज देखी जाती है वह दिखाई देती या नहीं। जिस समय द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' का सम्पादन-भार लिया था, उस समय भी हिन्दी के अच्छे लेखक थे; पत्र-पत्रिकायें भी निकलती थीं, परन्तु दो बातों का अभाव था। एक तो द्विवेदी जी जितनी भाषायें जानते थे और अपने कार्य के लिए उनका उपयोग कर सकते थे, उतनी भाषायें शायद उनमें कोई नहीं जानता था और दूसरे जिस लगन से द्विवेदी जी काम करते थे उस लगन से शायद कोई नहीं करता था। जहाँ तक पता है, उस समय अधिक से अधिक चार भाषायें जाननेवाले सम्पादक थे, परन्तु द्विवेदी जी आठ भाषायें जानते थे। उनके कार्य में इस ज्ञान से बड़ी सहायता मिलती थी। सम्पादनकार्य में द्विवेदी जी जितना परिश्रम करते थे, उतना कोई सम्पादक न करता था और न करता है। उनके स्वास्थ्य के बिगड़ने का यह बहुत बड़ा कारण था।

द्विवेदी जी ने व्याकरणसिद्ध भाषा लिखनेवाले बहुत से लेखक तैयार किये थे। वे आप शुद्ध लिखते और दूसरों से शुद्ध लिखने का आग्रह करते। परन्तु खेद है कि उनके जीते जी ही अशुद्ध भाषा ज़ोरों से लिखी जाने लगी। जब अशुद्ध प्रयोगों और भद्दी भाषा की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया जाता तब उत्तर देते, "बर्रे के छत्ते को कौन छेड़े?" हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा हो या न हो, वह उत्तर-भारत और मध्य-भारत के बड़े भाग की भाषा है, इसमें तो किसी प्रकार का सन्देह नहीं। परन्तु क्या यह परिताप का विषय नहीं कि हिन्दी-भाषी अपनी भाषा की शुद्धता की ओर सम्यक् रूप से ध्यान नहीं देते? हम समझते हैं कि 'सरस्वती' को द्विवेदी जी की वह परम्परा जारी रखनी चाहिए और शुद्ध भाषा का आग्रह करना चाहिए। द्विवेदी जी का यह सबसे उत्तम स्मारक होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

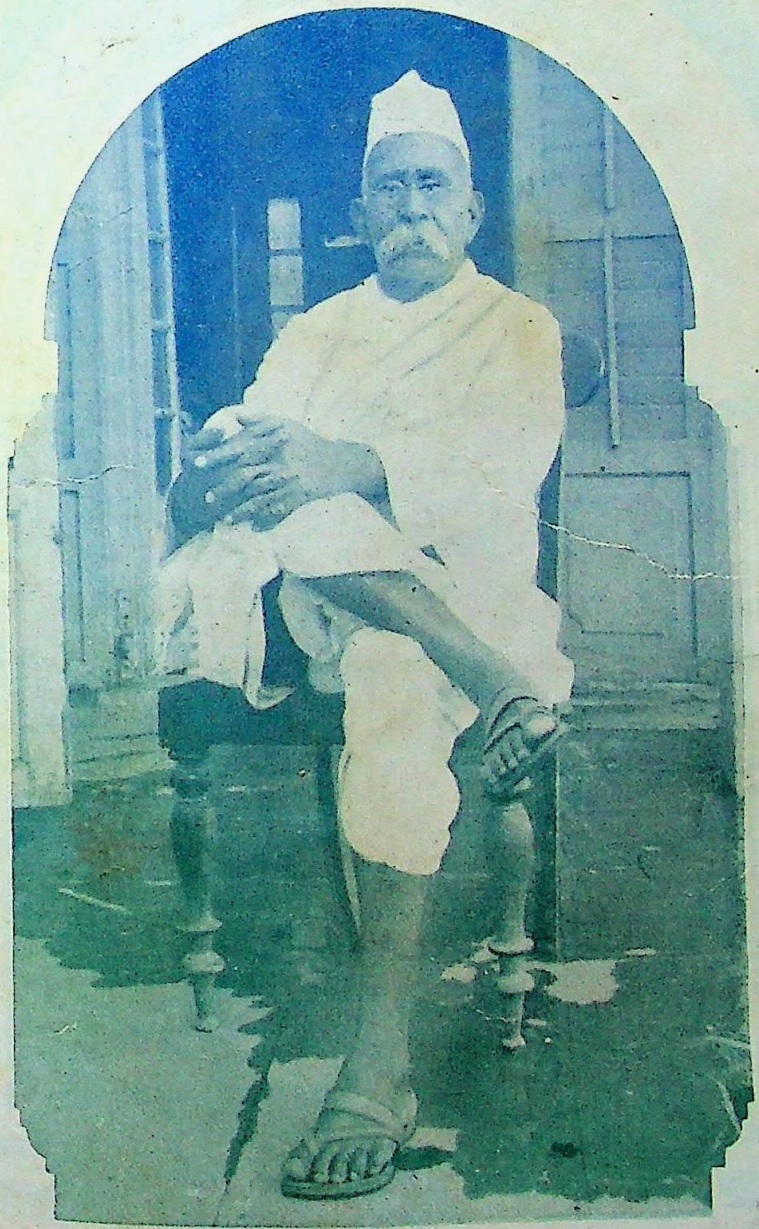

कलाभृद् विश्वविद् विद्वान् श्रीसरस्वत्युपासकः ।
महावीरप्रसादोऽसौ यशोदेहेन राजताम् ॥

—गिरिधरशर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फरवरी १९३५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्रदेव

अप्रैल १९३९ } भाग ४०, खंड १ संख्या ४, पूर्ण संख्या ४७२ { चैत्र १९९६

भाव-शिशु

लेखिका, कुमारी प्रतिभा त्रिपाठी

सरल सुन्दर भाव-शिशु को, सजनि मैं कैसे सुलाऊँ!

कामिनी के कुंतलों से,
ओसमय दूर्वादलों से,
काल के अस्थिर पलों से,
वारि-निर्मित बुलबुलों से, खेलता कैसे बुलाऊँ!

चाँदनी के शुभ्र कर में,
पुष्प के सस्मित अधर में
तितलियों के मृदुल पर में
सिन्धु की चंचल लहर में, झूलता, कैसे झुलाऊँ!

कोकिला के सप्त-स्वर पर
वायुमय पर्वत-विवर पर
गुनगुनाते मधुपवर पर
झूमता प्रति ताल-स्वर पर, कौन सी लोरी सुनाऊँ!

खेल कर जब क्लान्त होगा,
शिशु-हृदय कुछ शान्त होगा,
फिर न यों उद्भ्रान्त होगा,
पथिक-सा विश्रान्त होगा, मैं न फिर इसको जगाऊँ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

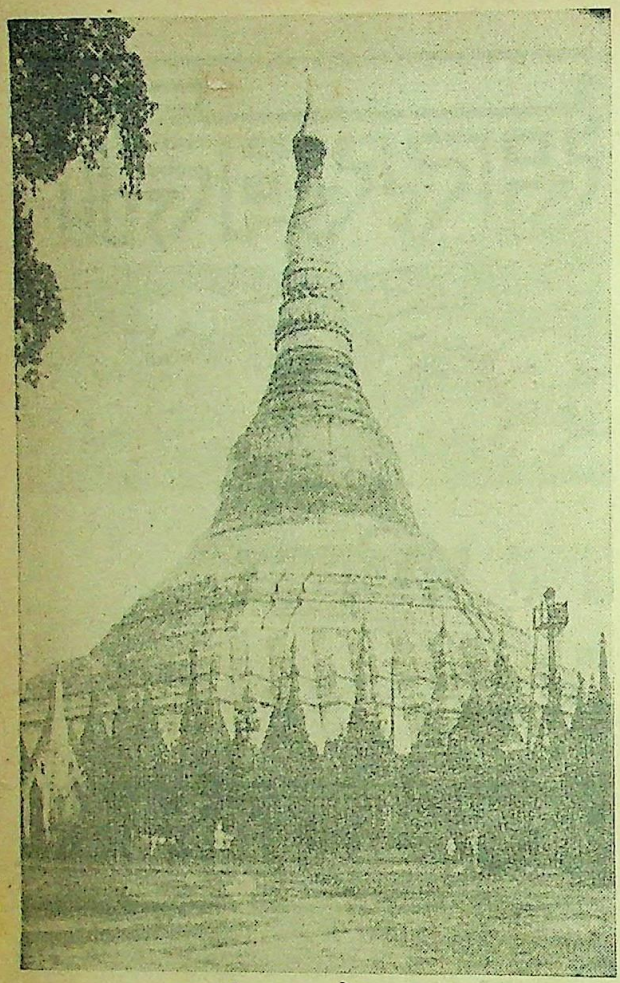

[शिवडागन पैगोडा]

ब्रह्मदेश की एक झलक

लेखक, श्रीयुत सी० बी० कपूर, एम० ए०, एल-एल० बी०

कहा जाता है कि जो पुरुष एक बार बरमा देश जाता है तो वह इसमें दूसरी बार भी ज़रूर आता है! इस कहावत में रत्ती भर भी झूठ नहीं है। इस सुन्दर देश के सुनहरी चमकते हुए पगोडे (मन्दिर) और इसके हँसमुख खूबसूरत लोग, रह रह कर याद आते हैं।

ब्रह्मदेश अभी तक 'भारतीय साम्राज्य' का एक प्रान्त भर था। परन्तु १९३७ में नये शासन-विधान के प्रचलन पर वह भारत से अलग कर दिया गया। लेकिन अभी तक वहाँ जाने के लिए 'पासपोर्ट' लेने की ज़रूरत नहीं पड़ती है। कलकत्ता से रंगून को सप्ताह में तीन जहाज़ जाते हैं। कोई ७४० मील की यात्रा है, जो तीन से लेकर चार दिन में पूरी होती है। तीसरे दर्जे, यानी डेक पर का किराया १४) है। इस यात्रा के लिए आक्टोबर से अप्रैल तक का समय बहुत अच्छा रहता है।

यह आक्टोबर का महीना था, जब हमारा जहाज़ प्रातःकाल के समय मटयाली रंग की रंगून-नदी में घुसकर रंगून-पोर्ट पर जा लगा।

पोर्ट पर बहुत-से लोग अपने सम्बन्धियों को लेने आये थे, परन्तु सिवा कुछ ब्रह्मदेशियों के सबके सब हिन्दुस्तानी ही थे। यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ, क्योंकि मैं तो ब्रह्मदेश और ब्रह्मदेशियों को देखने आया था न कि अपने देश-बन्धुओं को। परन्तु जब मैंने जहाज़ से उतर कर देखा तब रंगून शहर में भी सब ओर सिवा कुछ ब्रह्मदेशियों के सर्वत्र हिन्दुस्तानी ही दिखाई देते थे। दूकानों पर, दफ़्तरों को जाते हुए, घोड़ा-गाड़ीवाले, रिक्शा-कुली सबके सब भारतीय ही थे। रंगून के सुन्दर आर्य-समाज-भवन में जाकर मैंने डेरा लगाया।

रंगून एक विचित्र नगर है। इसकी आबादी ४ लाख से कुछ अधिक है। रंगून तीन भागों में है—पोर्ट, शहर और छावनी। इसके सिवा नगर का एक भाग रंगून नदी के दूसरे तट पर भी है। नगर की ऊँची ऊँची इमारतें, चौड़ी चौड़ी सड़कें, खुले बाज़ार सब उसकी शोभा को बढ़ाते हैं। असल में इस नगर को अँगरेज़ों ने बनाया और बसाया है। इसलिए यह बिलकुल नये तरीक़े पर बसा हुआ है। लोकल ट्रेनों के सिवा यहाँ ट्रामें, बसें, घोड़ागाड़ियाँ, रिक्शे आदि खूब चलते हैं। रिक्शों को वहाँ 'लंचा' कहते हैं। इनका वहाँ अधिक चलन है और ये सस्ते और सुविधा-जनक होते हैं। लंचाकुली सबके सब मदरासी या कुरंगी हैं। ब्रह्मदेशीय लंचाकुली का काम पसन्द नहीं करते और न किसी और ही कठिन या गन्दे काम में हाथ लगाते हैं। ये लोग अपने आपको कुछ ऊँचा समझते हैं और बड़े आरामतलब होते हैं। यही कारण है कि वहाँ अधिक संख्या में भारतीय कुलि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का समावेश हो सका है और ये लोग उनके ऊँच-नीच सब कामों को सँभाले हुए हैं। परन्तु इधर जब से ब्रह्मदेश भारत से अलग हुआ है, वहाँ के लोगों में राष्ट्रीय भाव का उदय हुआ है और यही वहाँ के वर्तमान सारे झगड़ों की जड़ है। पिछले झगड़ों के कारण बहुत-से भारतीय मज़दूर वहाँ से भाग आये हैं, इससे वहाँवालों ने नये ढग के 'लंचे' चलाये हैं। साइकलों के साथ 'साइड-कार' लगवाये हैं, जिनमें वे दो व्यक्तियों को बैठाकर खींच ले जाते हैं। ये लोग हर एक बात में नये ढङ्ग चलाना चाहते हैं। इनके गाने-बजाने के तमाम साज़ विलायती होते हैं और इनके गाने या बजाने के ढङ्ग व सुर भी बहुत कुछ विलायती ढङ्ग के होते हैं।

रंगून एक दर्शनीय नगर है। इसके सुन्दर बाग़ों, पोलो, फ़ुटबाल और गोल्फ़ के मैदानों की जितनी भी प्रशंसा की जाय, उतनी थोड़ी है। शहर के साथ दो झीलों और उनके साथ सुन्दर महलों को देखकर सचमुच स्वर्ग के नमूने की याद आ जाती है। इन झीलों के पास ही चिड़िया-घर है जिसमें कई नये और अजीब जानवर देखने के योग्य हैं। शहर में कारपोरेशन के तीन बड़े बड़े बाज़ार हैं, जिनमें सबसे बड़े का नाम 'सकाट मार्केट' है। इसमें सुई से लेकर हाथी तक तमाम वस्तुएँ मिल सकती हैं। इसमें जितनी ब्रह्मदेशियों की दूकानें हैं उन सब पर स्त्रियाँ ही बैठती हैं। मेरे मित्र ने जो मुझे दिखाने ले गये थे, बतलाया कि यहाँ स्त्रियाँ दूकानों पर ही नहीं बैठती हैं, बल्कि व्यापार आदि सारे काम ख़ुद ही करती हैं। यहाँ के पुरुष ख़ाली बैठे रहते हैं और कोई काम-काज नहीं करते।

रंगून में सबसे सुन्दर और प्रसिद्ध चीज़ है 'शवेडि-गान पगोडा'। यह रंगून से दो-तीन मील की दूरी पर है और ब्रह्मदेश का सबसे बड़ा बौद्ध-मन्दिर है। यह एक बड़े घंटे के आकार का बना है। इसकी उँचाई कोई ३७० फ़ुट है और घेरा १,३०० फ़ुट से भी अधिक है। इस पर कई इंच मोटा सोने का पत्र चढ़ा हुआ है। इसकी 'हिति' या छत्री मोतियों और हीरों से भरी हुई है, जिनके मूल्य का अन्दाज़ा कोई ५० लाख रुपया से भी अधिक लगाया गया है। इस बड़े मन्दिर के चारों ओर बहुत-से छोटे-छोटे पगोडे या मन्दिर हैं, जिनमें भगवान् बुद्ध की सुन्दर मूर्तियाँ

[एक ब्रह्मदेशीय महिला]

रक्खी हुई हैं। इस मन्दिर के चारों ओर और बहुत-सी सुन्दर पुरानी इमारतें हैं। वे भी देखने के योग्य हैं।

इस बड़े पगोडा का दूर का दृश्य और भी अधिक सुन्दर है। रात में यहाँ बिजली का प्रकाश होता है, जिसका दृश्य नगर के प्रत्येक मकान की छत से दिखाई देता है।

रंगून के व्यापारी नगर होने के कारण वहाँ हर एक देश और जाति के लोग रहते हैं। ब्रह्मदेश से चावल, पेट्रोल, लकड़ी, रबर और रेशम आदि वस्तुएँ दूसरे देशों को भेजी जाती हैं। इनका बहुत-सा व्यापार अँगरेज़ों और हिन्दुस्तानियों के हाथ में है।

रंगून में हिन्दुस्तानियों और चीनियों की आबादी सबसे अधिक है।

ब्रह्मदेशीय कई श्रेणियों में विभक्त हैं। एक श्रेणी उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

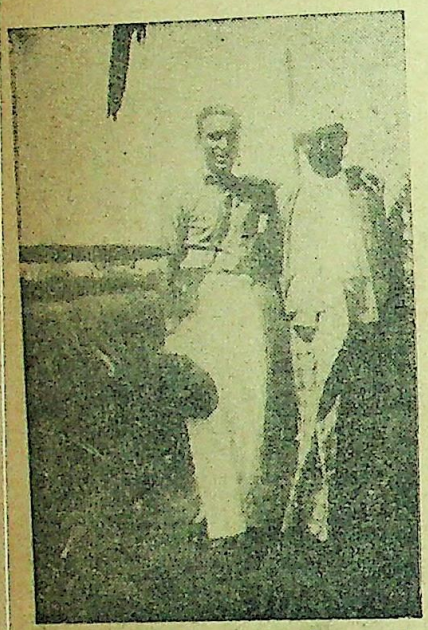

[लेखक, अपने एक मित्र के साथ]

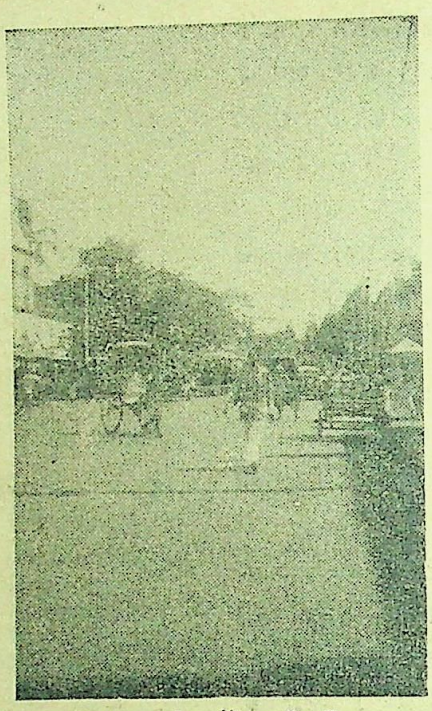

[रंगून की मर्चेंट स्ट्रीट]

[एक ब्रह्मदेशीय सुन्दरी]

है जो बौद्ध हैं। यही लोग मुख्य ब्रह्मदेशीय हैं। दूसरी श्रेणी में शान, चिन और काचीन लोग हैं। ये लोग वहाँ की पहाड़ी रियासतों में रहते हैं। इनकी पोशाक और शकल-सूरत ब्रह्मदेशियों से कुछ भिन्न होती है।

तीसरी श्रेणी 'करिन' लोगों की है। ये लोग सिर्फ़ प्रेतात्माओं की पूजा करते हैं। अब इनमें से बहुत ईसाई हो गये हैं। ये लोग हमारे देश के पारसियों की तरह धनवान् और नये रंग-ढंग के होते हैं। परन्तु इन श्रेणियों के भेद का पता वहाँ कुछ महीनों रहने के बाद ही लगता है, क्योंकि इन सबकी शकल-सूरत में विशेष अन्तर नहीं होता।

ब्रह्मदेशियों का भोजन चावल और मछली है। वे चाय भी ख़ूब पीते हैं। मांस बहुत कम खाते हैं। यहाँ घी की जगह नारियल का तेल काम में लाते हैं। सबसे अधिक हैरान करनेवाली बात यह है कि ये तमाकू बहुत पीते हैं। बच्चे, स्त्रियाँ, पुरुष चौबीसों घंटे सिगरेट या बड़े बड़े सिगार पीते रहते हैं। इनका पहनावा बहुत सुन्दर होता है। पुरुष-स्त्रियाँ दोनों 'लुंगी' पहनते हैं। पुरुष अपनी कमीज़ को लुंगी के अन्दर पतलून की तरह डालकर रखते हैं और स्त्रियाँ कमीज़ की जगह पतले मलमल का सफ़ेद जैकेट-सा डाल लेती हैं। पुरुष सिर पर हैट या देशी पगड़ी रखते हैं। स्त्रियाँ सिर को खुला रखती हैं। स्त्रियों के सिर के बाल बहुत लम्बे होते हैं, जिनको ये सिर पर इकट्ठा करके टोपी की तरह बना लेती हैं, इसे हर समय सुन्दर असली या नक़ली फूलों से सजाये रखती हैं। स्त्रियों का रंग गोरा होता है। वे अपने मुँह पर हर समय 'तनाखा' (चनन का पानी) या पाउडर लगाये रहती हैं। इस प्रकार सजधज कर जब वे बाज़ारों में छाता लेकर निकलती हैं तब सचमुच एक खिलौने की तरह दिखाई पड़ती हैं। ब्रह्मदेश हँसमुख लोगों का, फूलों का, रंगों का, दावतों का और त्यौहारों का देश है। इनकी लुंगियाँ इतनी रंग-बिरंगी होती हैं कि यात्री देखकर हैरान हो जाते हैं कि संसार में कितनी भाँति के रंग होते हैं।

पियापन ब्रह्मदेश का एक ज़िला है। मेरे एक रिश्तेदार वहाँ सिविलसर्जन थे। मैंने उनके पास जाकर कुछ दिन रहने का निश्चय किया। मुझे बताया गया कि पियापन को रेल-गाड़ी या मोटर नहीं जाते, छोटे-छोटे जहाज़ जाते हैं। यह मेरे लिए एक नई बात थी। ब्रह्मदेश में बहुत-सी यात्रा नावों और छोटे-छोटे जहाज़ों से ही होती है। यहाँ दो बड़ी नदियाँ हैं—इरावदी और सालविन, और इनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

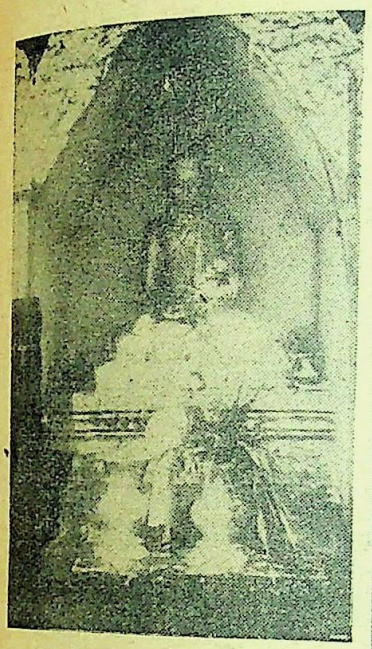

[बुद्ध की एक प्रतिमा]

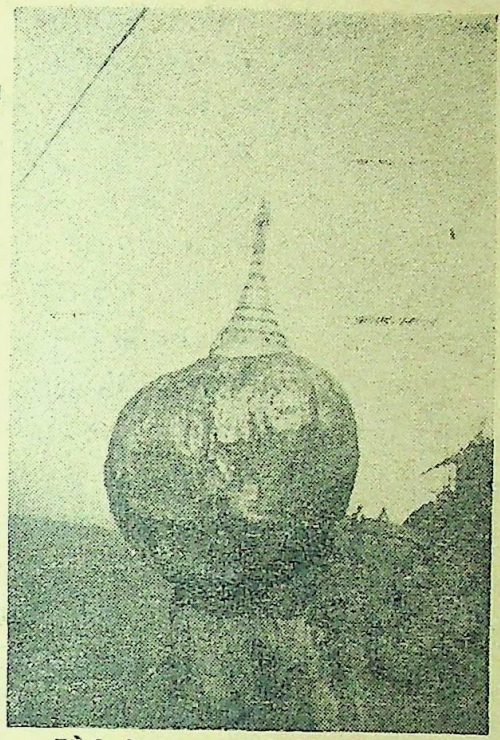

[चैठियो पत्थर पर सोने का २० फ़ुट ऊँचा पैगोडा]

[३ साल की ब्रह्मदेशीय एक लड़की उत्सव में नाच रही है]

अनेक लम्बी-लम्बी शाखायें हैं, जिनमें छोटे-छोटे जहाज़ अच्छी तरह चल सकते हैं। रेल-गाड़ी का मार्ग तो दक्षिण से उत्तर को सीधा साँप की तरह गया है और गाड़ी भी छोटे गाज़ की चलती है। गाड़ी के डिब्बों में बैठने और सोने के लिए जो स्थान हैं, वे अच्छे हैं। हाँ, गाड़ी में स्त्रियों के लिए कोई अलग डिब्बा नहीं होता और न यहाँ उनको ऐसे डिब्बे की आवश्यकता ही है। लेकिन मेरे विचार से एक ख़ास डिब्बा उन लोगों के लिए ज़रूर होना चाहिए जो तम्बाकू नहीं पीते हैं।

जहाज़ की कोई ७ घंटे की यात्रा के बाद मैं रंगून से पियापन पहुँच गया। लेकिन यहाँ रंगून की तरह अपने हिन्दुस्तानी कुलियों को नहीं पाया। यहाँ सब ब्रह्मदेशी कुली थे और मैं अब एक विशुद्ध ब्रह्मदेशी शहर में था। कुछ हिन्दुस्तानियों को छोड़कर यहाँ सब ओर ब्रह्मदेशी बच्चे, स्त्रियाँ और पुरुष ही दिखाई देते थे। मैंने यहाँ रहकर ब्रह्मदेशियों की बहुत-सी अनोखी बातों का अनुभव प्राप्त किया।

ये लोग स्वच्छता के विशेष प्रेमी होते हैं। वस्त्रों को गन्दा नहीं होने देते। दिन में कई बार स्नान करते हैं और उनकी स्त्रियाँ तो दिन में कई बार कपड़े भी बदलती हैं। ये लोग घरों को भी ख़ूब साफ़-सुथरा और सजाकर रखते हैं। घर का जो भी अच्छा सामान होगा उसको ये लोग मकान के पहले कमरे में दरवाज़ों के सामने रखते हैं। मैंने पहले इनके घरों को होटल या फोटोग्राफ़र की दूकान समझा था। इन लोगों को फोटो आदि का भी बड़ा शौक़ है। पर्दे का यहाँ नाम तक नहीं है। इनके घर में जाने पर घर के सब लोगों से जाते ही भेंट हो जाती है। घर का हर एक व्यक्ति अतिथि को प्रसन्न करने और आराम पहुँचाने का यत्न करता है। ये लोग विनम्रता के पुतले होते हैं। घर में और घर के बाहर भी घर की आय और व्यय की देखरेख स्त्रियों के हाथ में रहती है। स्त्रियाँ हाट-बाज़ार करती हैं, यहाँ तक कि अपने पति आदि के वस्त्र तक भी वे मोल लाती हैं। यहाँ के बाज़ार स्त्रियों से हर समय भरे रहते हैं। स्त्रियाँ ही बेचनेवाली और स्त्रियाँ ही ख़रीदनेवाली होती हैं।

ब्रह्मदेश की स्त्रियों को संसार भर में सबसे अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। इतना ही नहीं, बल्कि वहाँ के पुरुष स्त्रियों के ग़ुलाम बनकर रहते हैं, क्योंकि कुछ समय पहले—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

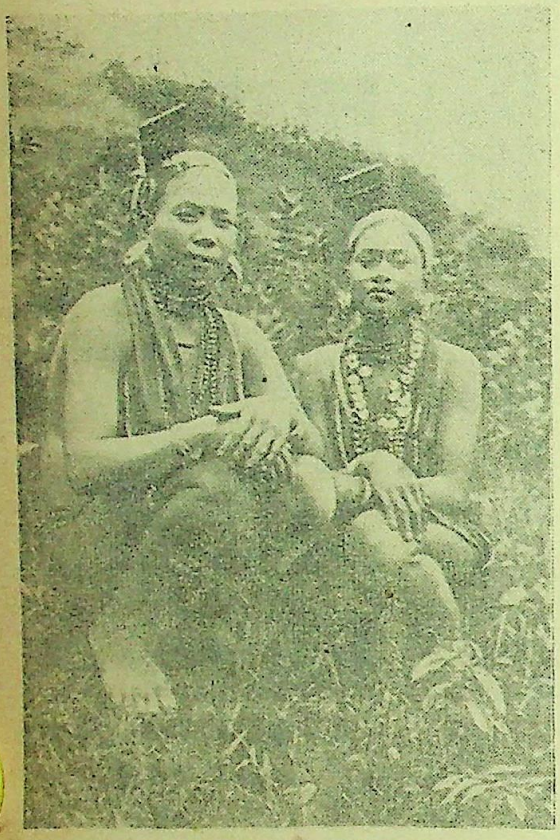

[शान की पहाड़ी स्त्रियाँ]

और अब तक भी—स्त्रियाँ ही अपने पति और बच्चों के लिए कमा कर लाया करती थीं, और उनके पति घर में बच्चे खिलाते या बैठे चुरट पिया करते थे। कठिन से कठिन काम भी ये स्त्रियाँ करती रही हैं और आज भी करती हैं। मैंने कई स्टेशनों पर युवा लड़कियों और स्त्रियों को ही कुलियों का काम करते पाया। देखकर भी मुझे विश्वास नहीं होता था कि ऐसी सुन्दर और जवान लड़कियाँ और स्त्रियाँ साफ़ सुन्दर वस्त्र पहने, बालों में फूल लगाये कुली का काम करती हों, लोगों के बिस्तरे और ट्रंक सर पर उठाकर ले जाती हों और उनके पुरुष दूर खड़े बच्चे खिलाते हों। परन्तु जब मैं उनकी बाहों पर पीतल का नम्बर लगा देखता था, या उन्हें इतना सामान उठाये देखता था तब मुझे मानना ही पड़ता था कि वे कुली हैं। वहाँ क़ानून ने भी स्त्री-पुरुष में कोई भेद नहीं रखा है। लड़का और लड़की दोनों को पिता की जायदाद में समान भाग मिलता है। वहाँ लड़की का विवाह होता है, न कि लड़के का। और विवाह के बाद लड़का लड़की के घर जाकर रहता है, न कि लड़की लड़के के घर। सिवा कुछ धनवान् लोगों के जो विवाह पर बाजे या भोजन आदि का प्रबन्ध करते हैं या धार्मिक रीतियाँ कराते हैं, अन्य लोगों में विवाह की कोई 'रस्म' नहीं होती। जब जिस लड़की और लड़के का परस्पर प्रेम हो जाता है तब वे दोनों कुछ दिन के लिए अपने शहर से भाग जाते हैं, जिसको वहाँ के लोग विवाह का हो जाना समझते हैं। वहाँ लड़की और लड़के एक दूसरे से स्वतन्त्रतापूर्वक मिलते-जुलते रहते हैं, अतएव वहाँ सबके सब प्रेम-विवाह ही होते हैं। उनके ये विवाह टूट भी सकते हैं। ये तलाक़ भी दे सकते हैं। उन लोगों के नाम भी विचित्र होते हैं। कुटुम्ब या जाति के नाम तो होते ही नहीं। विवाह के बाद लड़की अपने पति के नाम को नहीं धारण करती है। इनकी भाषा में प्रणाम या नमस्कार का सूचक कोई शब्द नहीं है। जब ये एक दूसरे से मिलते हैं तब नम्रता से सिर झुकाकर मुसकरा देते हैं। इनका यही 'नमस्कार' है।

एक दिन अपने सम्बन्धी डाक्टर साहब के साथ मैं सायंकाल के समय सैर कर रहा था। रास्ते में एक अँगरेज़ मिला, जो निकर और कमीज़ पहने और हाथ में छाता लिये था। पूछने पर डाक्टर साहब ने बतलाया कि वह पियापन का डिप्टी कमिश्नर है। यह सुनकर मैं आश्चर्य करने लगा कि एक ज़िले का सबसे बड़ा अफ़सर इस तरह अकेला घूम रहा है। वहाँ के लोग इतने स्वाभिमानी होते हैं कि वे किसी अफ़सर से किसी मतलब के बिना मिलते-जुलते नहीं।

ब्रह्मदेशी जुआ खेलने के बड़े शौक़ीन हैं। वहाँ की सरकार की तरफ़ से साल में तीन बार लाटरी निकाली जाती है, जिससे सरकार को कई लाख रुपया साल की आमदनी हो जाती है और लोगों का शौक़ भी पूरा हो जाता है। तो भी ताश आदि का जुआ बहुत खेला जाता है, और उसमें स्त्रियाँ भी शामिल होती हैं। यही कारण है कि वहाँ के लोग अपनी जेब में रुपया नहीं रहने देते। चाहे कितना ही क्यों न हो, वह पहले पास का रुपया ख़र्च कर डालेगा तब सोयेगा। वह कल की बात नहीं सोचेगा और प्रायः ऐसा भी हो जाता है कि कल के वास्ते उसके पास कुछ भी नहीं रह जाता। तब वह उनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

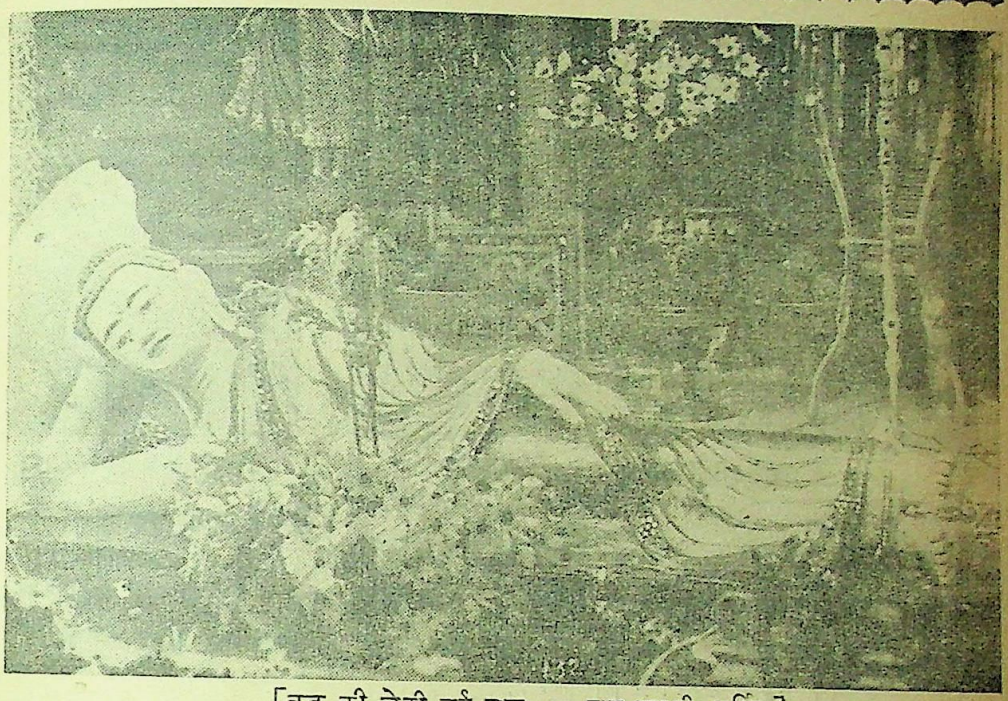

[बुद्ध की लेटी हुई एक ४० फ़ुट लम्बी मूर्त्ति]

से कई वस्तुएँ जिन्हें उसने एक दिन पहले मोल लिया था, कुछ दामों पर 'पानशाप' में गिरवी रख आता है, जिन्हें वह एक या दो महीने में छुड़ा ले तो छुड़ा ले, अन्यथा वे वस्तुएँ उस दूकानवाले की हो जाती हैं। इन दूकानवालों को सरकार को हज़ारों रुपये ठेके के देने पड़ते हैं। प्रत्येक नगर में ऐसी कई दुकानें होती हैं। जुए की इस आदत के कारण वहाँ घूस का काफ़ी दौर-दौरा है और यही कारण है कि वहाँ पुलिस, जेल या कोई और ज़िम्मेदारी की नौकरी वहाँवालों को नहीं दी जाती। फलतः ऐसे पद हिन्दुस्तानियों के हाथ में हैं। कहते हैं कि एक शहर के एक ब्रह्मदेशी तहसीलदार ने सरकारी ख़ज़ाने से कुछ रुपया निकाल कर जुआ खेला और हार गया। इस पर वह तहसीलदारी से हटा दिया गया। कुछ दिनों के बाद वही तहसीलदार साहब बाज़ार में केले बेचते फिरते और हँसते रहते। वहाँ के लोग ऐसी बातों को उतना महत्त्व नहीं देते हैं और नौकरी आदि की परवा तक नहीं करते। वे समझते हैं कि वे संसार में मज़े उठाने आये हैं। भूखे रहकर रुपये बटोरने की लालसा उनमें नहीं होती। यही कारण है कि वे लोग मृत्यु के समय भी रोते-पीटते नहीं, बल्कि ख़ुश होते हैं। मृत्यु पर वे शव को कई दिन घर में रक्खे रहते हैं। उसको फलों और सुगन्धियों से ढाँप रखते हैं और गाते-बजाते रहते हैं और आने-जानेवालों को भोजन खिलाते रहते हैं। बड़े-बड़े पंडितों और पुजारियों का शव तो साल से भी अधिक समय तक रक्खा रहता है और तब उसका एक भारी जलूस निकालकर उसको जलाते हैं। बड़े महात्मा लोगों को छोड़कर अन्य लोग अपने शव पृथ्वी में गाड़ते हैं। खान-पान में छूत-छात और भक्ष्य-भक्ष्य का वे विचार नहीं करते। वे सभी तरह का मांस खा लेते हैं। परन्तु अब बहुत-से समझ गये हैं और गोमांस नहीं खाते। मुसलमानों से ब्याह तक भी कर लेते हैं, परन्तु यह कहते हैं कि हिन्दू हमारे भाई हैं। बहुत से भारतीय ब्रह्मदेश में बस गये हैं और उन्होंने वहाँ की स्त्रियों से ब्याह कर लिया है।

ब्रह्मदेश में यों तो छोटे-छोटे त्योहार बहुत-से होते हैं, परन्तु बड़े सिर्फ़ दो ही हैं, जो हमारी दिवाली और होली की तरह हैं और उनसे कुछ दिन पहले या पीछे पड़ते हैं। एक का नाम 'थदजिड़ो' है। यह आक्टोबर के महीने में आता है। इस अवसर पर कई दिनों तक प्रत्येक मकान पर हर रंग के दीप जलाये जाते हैं और रात के समय बड़े लम्बे-लम्बे और हाथी-घोड़े आदि की शकल के हवाई बैलून उड़ाये जाते हैं। परन्तु हमारी दिवालीवाले दिन की तरह वे लोग मिठाई आदि नहीं खाते और न एक दूसरे को भेजते हैं। वहाँ के लोग मिठाई और दूध का भी बहुत ही कम व्यवहार करते हैं। इसलिए वे न मिठाई बनाना जानते हैं और न यह वहाँ बिकती है। हाँ, वे लोग फल अधिक पसन्द करते हैं। वहाँ फल बहुत होते हैं और सस्ते मिलते हैं।

दूसरा बड़ा त्योहार अप्रेल में आता है। उसे 'नाट' कहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

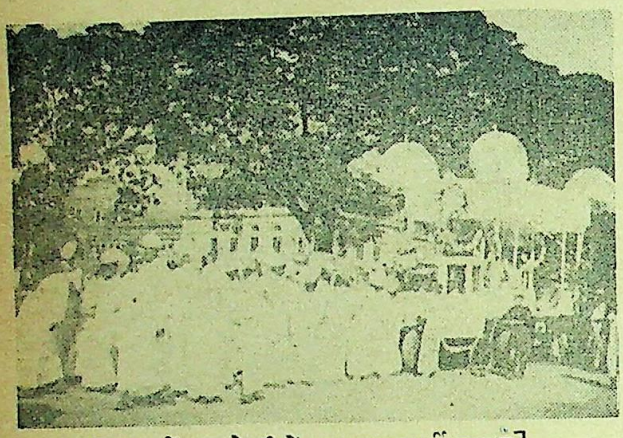

[रंगून में ब्रह्मदेशीयों का एक अर्थी-जलूस]

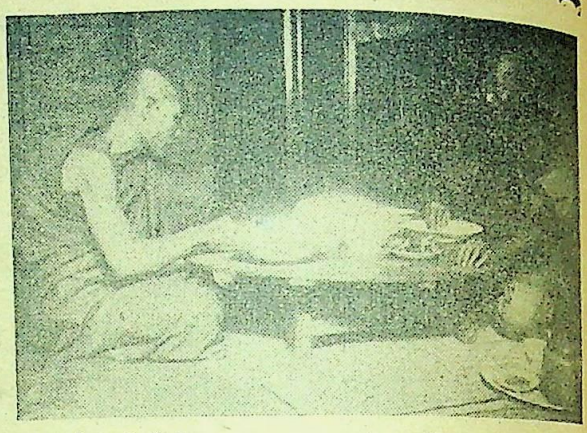

[चैठियो पैगोडा का बड़ा फुंजी अपने शिष्य के साथ भोजन करता हुआ]

हैं। यह उनके नये सालवाले दिन होता है। उस दिन वहाँ के लोग एक-दूसरे पर ख़ूब पानी फेंकते हैं और हँसी करते हैं। इन त्योहारों के अवसर पर कई रात 'पुये' यानी नाटक आदि होते रहते हैं। पुये भी तरह तरह के होते हैं। एक तो वे जिनमें पुराने यानी रामायण या महाभारत के खेल होते हैं, इन्हें वे 'ज़ेतपुये' कहते हैं। दूसरे स्त्रियों के नाच, जिनको 'अनयापुये' कहते हैं। वहाँ के लोग गाने-बजाने और पुयें के बड़े शौक़ीन होते हैं। बीस-बीस मील तक से लोग उन्हें देखने-सुनने आते हैं और सारी रात उनके ये खेल होते रहते हैं। पियापन में मैं उनके सब पुयें को देखने जाया करता था, क्योंकि ये मुझे बहुत प्रिय लगते थे। उनके दीपवाले त्योहार से पहले पियापन में एक सप्ताह भर 'यामापुये' अर्थात् रामायण का नाटक होता रहा था। हज़ारों पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे उसको देखने को आते थे, क्योंकि स्त्रियाँ, पुरुष वहाँ सब इकट्ठे बैठते थे, इसलिए अपने देश की तरह कोई धक्का-धुक्की नहीं होती थी। बच्चे तक बड़ी शान्ति और आराम से बैठे रहते थे। मैं वहाँ की शान्ति और व्यवस्था को देखकर चकित होता था।

उनकी बोली और मख़ौल तो मेरी समझ में नहीं आते थे, परन्तु उनका गाना और नाच मुझे बहुत अच्छा लगता था। ये लोग बहुत ही ऊँचे दर्जे का नाच जानते हैं, मानो वे सबके सब हमारे उदयशंकर के चेले हों। वहाँ प्रायः प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बच्चा नाचना और गाना जानता है। मैंने एक बार एक तीन साल की लड़की को इतना सुन्दर नाचते देखा कि मैं हैरान रह गया। वहाँ की स्त्रियाँ पुयें का पुरुषों से भी अधिक शौक़ रखती हैं, इसलिए उनमें हर ओर स्त्रियाँ ही स्त्रियाँ दिखाई देती हैं। केवल पुयें में ही नहीं, प्रत्येक तमाशे या खेल आदि में आने-जाने का स्त्रियों को बहुत शौक़ है। समझ में नहीं आता कि उनको घर के कामों से कैसे फ़ुरसत मिल जाती है। वे फ़ुटबाल या बाक्सिंग आदि देखना भी पसन्द करती हैं।

पश्चिमी खेलों में से फ़ुटबाल का बहुत प्रचार है। वहाँ का एक और ख़ास खेल है, जिसे 'चिनलों' कहते हैं। यह बेत के छोटे से फ़ुटबाल का खेल है। बहुत-से खिलाड़ी एक चक्कर में इकट्ठे हो जाते हैं और जहाँ तक हो सकता है गेंद को बिना हाथ लगाये हवा में ही रखते हैं। अपने सिर, घुटनों या शरीर के किसी दूसरे हिस्से से गेंद को मारते हैं।

यात्री को वहाँ जो सबसे अधिक विचित्र बात मालूम होती है वह है स्त्रियों की स्वतन्त्रता। उसके बाद जो दूसरी बात अजीब लगती है वह है वहाँ के पगोडे और उनके पुजारी। छोटे-से-छोटे शहर या गाँव में भी एक-दो दर्जन से कम पगोडे न होते होंगे, और इन प्रत्येक पगोडों में बुद्ध की एक फ़ुट से लेकर १०० फ़ुट तक की मिट्टी की बनी बहुत सुन्दर सफ़ेद मूर्तियाँ रक्खी रहती हैं। ये पगोडे बाहर और भीतर से लकड़ी के या पीतल के काम से ख़ूब सुन्दर सजाये होते हैं। वहाँ के लोग इनकी मूर्तियों के सामने घंटों हाथ जोड़े बैठे रहते हैं और इन पगोडों और फुंजियों के लिए सब कुछ दान करने को तैयार हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

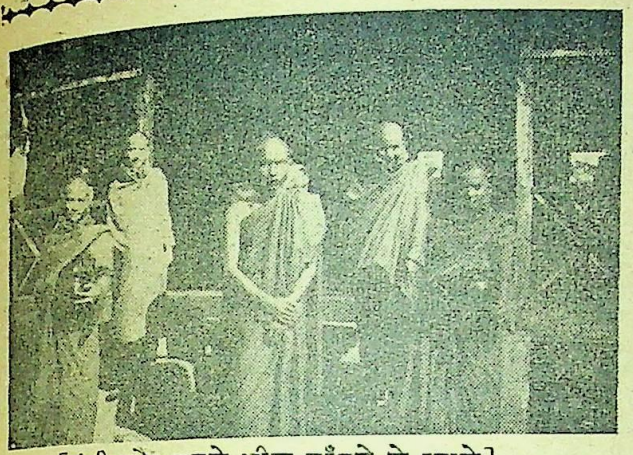

[फुंजी और उनके भीख माँगने के प्याले]

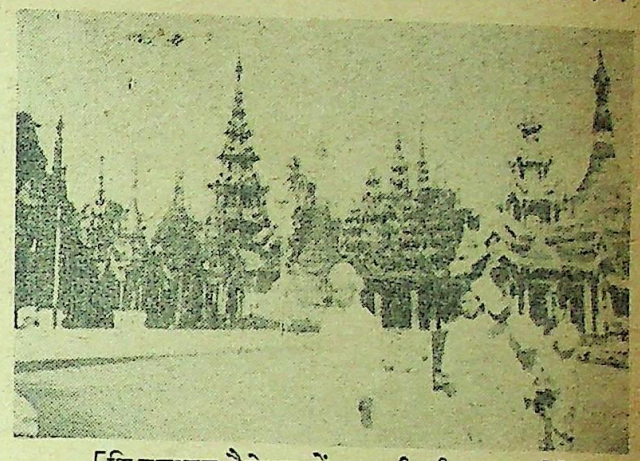

[शिवडागन पैगोडा में लकड़ी की नक्क़ाशी]

प्रत्येक बड़े पगोडे के साथ फुंजियों के एक-दो आश्रम बने हुए होते हैं। इन आश्रमों में ५ साल के लड़के से लेकर बड़े-बूढ़े फुंजी तक रहते हैं। स्त्री-फुंजियों के लिए अलग आश्रम बने हुए हैं। इन फुंजी-आश्रमों को 'फुंजीचों' कहते हैं। प्रत्येक ब्रह्मदेशी पुरुष को किसी आयु में एक बार फुंजी बनकर फुंजीचों में कुछ समय के लिए रहना ज़रूरी है। नहीं तो वह पुरुष बुद्ध का अनुयायी नहीं समझा जाता। इसलिए इनका प्रत्येक शहर में बाहुल्य है। फुंजियों-जीवन त्याग का जीवन होता है। इनको अपना खाना-पहनना माँगकर लाना पड़ता है। इन लोगों के झुंड के झुंड काले रंग के डबे लेकर कोई १० बजे चावल आदि माँगने के लिए निकल पड़ते हैं। प्रत्येक फुंजी को कोई ८ या १० फुंजियों के लिए खाना माँगकर लाना पड़ता है। ये लोग मुँह से नहीं माँगते बल्कि स्त्रियाँ इन्हें खुद बुला-बुलाकर इनके डबों में चावल आदि डाल देती हैं। ये लोग मांस-मछली तक लेने से इनकार नहीं करते। ये लोग सिर्फ़ अपने हाथ से जीववध करना पाप समझते हैं, परन्तु यदि कोई दूसरा मांस बनाकर इनको दे दे तो ये उसे खाने में पाप नहीं समझते।

ब्रह्मदेशियों के शरीर और मुख पर वैसे ही बाल नहीं होते, फुंजी लोग सिर को भी उस्तरे से साफ़ किये रखते हैं और शरीर पर भगवे रंग का वस्त्र डाले रहते हैं। फुंजीचों में इनका काम बौद्ध-धर्म के शास्त्रों का पढ़ना और पढ़ाना होता है। फुंजीचों में रहकर ये अपने सम्बन्धियों, मित्रों या किसी और संसारी पुरुष से भी बात-चीत नहीं कर सकते। इन लोगों की वहाँ बड़ी महिमा है। जो आजीवन फुंजी रहते हैं उनको तो लोग देवता की तरह पूजते हैं। वहाँ के बड़े-से-बड़े लोग तक उनके सामने लेट लेटकर उनको नमस्कार करते हैं। मांडले में हज़ारों की संख्या में फुंजी रहते हैं और वहाँ उनका बड़ा ज़ोर है।

मैं पियापन में एक महीने तक रहा। वहाँ से रंगून लौट आया। फिर रेलगाड़ी से उत्तरी ब्रह्मदेश के प्रसिद्ध नगर मांडले पहुँचा। यह शहर रंगून से कोई ३८६ मील दूर है। रेलगाड़ी वहाँ के बड़े शहरों यानी पीगू, टोंगू, थाज़ी आदि से होती हुई जाती है। मांडले की आबादी डेढ़ लाख से भी ऊपर है, और वहाँ भी ट्रामें, बसें आदि चलती हैं। यह वहाँ की पुरानी राजधानी है। ब्रह्मदेश के पहले के राजाओं के सुन्दर महल आदि देखने के योग्य हैं। उनमें ऊँचे दर्जे के लकड़ी के काम देखने को मिलते हैं। मांडले का 'कुथोदाह' अर्थात् पगोडों का शहर भी देखने के योग्य है। वहाँ के एक राजा ने बौद्ध-धर्म के ग्रन्थ को ७३० पत्थरों पर लिखवाकर उनमें से प्रत्येक पत्थर के ऊपर एक-एक सुन्दर पगोडा बनवा दिया। ये ७३० छोटे-छोटे सफ़ेद पगोडे कोई आध मील के चक्कर में हैं। यहाँ लकड़ी का काम बहुत अच्छा होता है। यहाँ के बहुत से मकान लकड़ी और बाँस के बने हुए हैं। इस शहर के चारों ओर बड़े-बड़े पर्वत भी दिखाई देते हैं।

मांडले से मेमियो को जो रेलमार्ग गया है उसका दृश्य बहुत ही अनोखा है। मेमियो और कल्लो वहाँ के प्रसिद्ध पहाड़ी शहर हैं। गर्मियों में वहाँ की सरकार के सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[शान-रियासत के भैंसे और उनके सवार]

दफ़्तर मेमियो आ जाते हैं। इस शहर की उँचाई समुद्र से ३,४०० फ़ुट है। इसकी आबादी कोई २२,००० है। गर्मियों की राजधानी होने के कारण यहाँ भी हिन्दुस्तानी बहुत रहते हैं। यह बहुत ही सुन्दर शहर है और यहाँ रात ख़ूब शीतल होती है। यह शहर एक मैदान में बसा हुआ है और यहाँ से शान की रियासतों और चीन को रास्ता जाता है। यहाँ के सुन्दर मकान, बाज़ार, खेल के मैदान आदि देखने के योग्य हैं। परन्तु सबसे मशहूर 'गोकांतक पुल' है जो दुनिया भर में मशहूर है। यह पुल मेमियो से ४५ मील दूर है। यह २,२०० फ़ीट लम्बा और नदी से ५५० फ़ीट ऊँचा है। इसको अमरीका की एक कम्पनी ने १९०० ईसवी में बनाया था। गाड़ी एक पहाड़ी से दूसरी पहाड़ी पर बिना नीचे उतरे सीधी चली जाती है। गाड़ी में बैठे हुए नीचे देखने में कुछ डर-सा लगता है। मेमियो में मैं अपने एक अँगरेज़ मित्र के यहाँ रहा। वे फ़ौज में कप्तान थे। उन्होंने मुझे अपने मोटर पर पास की शान रियासतों की और इस अजब पुल की सैर कराई। छः दिन के बाद मैं फिर रंगून लौट आया।

मेमियो से आकर रंगून कुछ गरम मालूम पड़ता था। परन्तु महीना तो दिसम्बर का ही था। कुछ दिन रहने के बाद एक ब्रह्मदेशी मेरे अधिक मित्र बन गये। एक दिन वे और मैं दोनों गाड़ी पर बैठकर चैठो शहर को चल दिये और ४ घंटे में वहाँ पहुँच गये। चैठो थेटन ज़िले की एक तहसील है और ब्रह्मदेश का सबसे बड़ा तीर्थ-स्थान है। यहाँ से कोई ७ मील पर एक ऊँचे पहाड़ के ऊपर एक पगोडा है, जिसे अँगरेज़ी में 'हैंगिंग पैगोडा' अर्थात् 'हवा में लटकनेवाला' पगोडा कहते हैं। वहाँवाले इसे 'चैढियो पगोडा' कहते हैं। बड़ी दूर-दूर से ब्रह्मदेशी और चीनी पुरुष, स्त्री, बच्चे आदि हज़ारों की संख्या में हर साल यहाँ आते हैं। जब हम पहाड़ पर चढ़ रहे थे तब हम कई एक ब्रह्मदेशियों और चीनियों के झुंडों के पास से गुज़रे। स्त्रियों और बच्चों के साथ होने के कारण कई झुंड तो बहुत धीमे-धीमे चल रहे थे और ऐसे कई झुंड हमारी वापसी पर भी अभी जाते हुए ही मिले। मेरे मित्र इनसे ख़ूब बातें करते और हँसते जाते थे। हम प्रातःकाल चले थे। ११ बजे इस पहाड़ की चोटी पर पहुँच गये। मुख्य स्थान से आधा मील पहले ही हमें अपने जूते उतार कर उन्हें हाथों में लेकर चलना पड़ा।

यहाँ पहाड़ी की चोटी पर बौद्ध दानियों ने बहुत-सा रुपया लगा कर सुन्दर फ़र्श और यात्रियों के रहने, खाने पकाने के लिए धर्मशालायें बनवा दी हैं। यह एक गाँव-सा मालूम होता है।

झूलता हुआ पगोडा तो ५० फ़ुट चौड़े और इतने ही ऊँचे पत्थर भर सोने का छोटा सा बना हुआ है। यह इतना बड़ा पत्थर एक और बड़े पत्थर की चट्टान के ऐन किनारे पर खड़ा हुआ है, जिसे मैंने और मेरे मित्र ने अपने कंधों

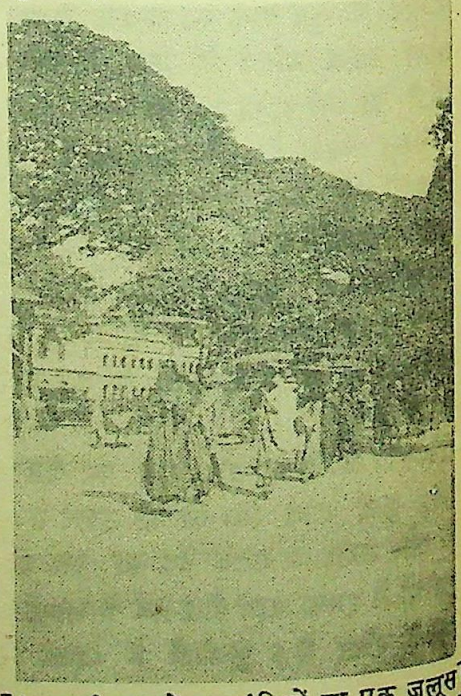

[रंगून की सड़कों पर फ़ुंजियों का एक जलूस]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ज़ोर से ही हिला दिया था और बहुत समय तक यह इधर-उधर हिलता रहा। हमें बतलाया गया कि यह चाहे कितना ही ज़ोर से क्यों न हिलाया जाय, कभी गिरता नहीं। यह सचमुच ही कुछ अजब खेल-सा मालूम होता था। वहाँ एक और भी चीज़ देखने के योग्य है। वहाँ एक बहुत मोटी लकड़ी का कोई ४ फ़ुट लम्बा टुकड़ा है, जो रक्खे-रक्खे अब पीतल-सा हो गया है। ऊपर से देखने में तो लकड़ी का ही मालूम होता है, परन्तु जब उसे एक और लकड़ी से मारा जाय तो पीतल की तरह गूँजती हुई ज़ोर से आवाज़ निकलती है। इन दोनों वस्तुओं को देखकर आश्चर्य होता है। इन दोनों के बारे में बहुत अनोखी कहानियाँ सुनने में आईं। वहाँ के सबसे बड़े फ़ुंजी ने हमें बतलाया कि उसने अपने हाथ से हाल में ही इस पत्थर के नीचे से पतला-सा गोली का धागा निकाला था। कोई समय था जब यह पत्थर बिलकुल हवा में ही लटका रहता था और उसके नीचे से मोटे से मोटा रस्सा भी निकल जाया करता था। अब ज्यों-ज्यों संसार में पाप बढ़ता जाता है, यह पत्थर भी नीचे लगता जा रहा है। इस पत्थर के नीचे महात्मा बुद्ध के सिर के दो बाल रक्खे हुए हैं, जो उन्होंने मरने से पहले थेटन के राजा के लड़के को, जो उनका चेला था, दिये थे। उस राजा के लड़के ने अपने मरने से पहले उन बालों को यहाँ लाकर इस पत्थर के नीचे रख दिया। परन्तु उसका ऐसा रखना था कि वह बड़ा पत्थर उन पर अपना बोझ न डालने के लिए ऊँचा उठकर हवा में लटका रहा। परन्तु अब लोगों में पाप आ गया है और इन बालों के चोरी होने के डर से अब पत्थर नीचे आ गया है। इस कहानी में कितना सच है, मैं नहीं कह सकता। प्रत्येक यात्री वहाँ आकर उस पत्थर पर सोने का पत्र चढ़ाता है। हमारे आने से कुछ पहले हज़ारों रुपये का सोना उस पत्थर पर चढ़ाया जा चुका था। चैढो वापस आकर हमने एक ब्रह्मदेशी के बाँस के बने हुए बँगले में विश्राम किया। दूसरे दिन वर्षा के (वहाँ बहुत-से स्थानों पर सिर्फ़ वर्षा का मिट्टी के बर्तनों में या तालाबों में इकट्ठा किया हुआ पानी मिलता है) पानी में स्नान कर, चावल-मछली खा और चाय पीकर हम रंगून को चल दिये।

रंगून पहुँचकर मैंने अपने मित्र को धन्यवाद दिया। फिर स्वदेश को लौटने का प्रबन्ध करने लगे। इस बार मैं रंगून में अपने एक मुसलमान मित्र के यहाँ ठहरा। उनकी बीबी और लड़की मुझसे बिलकुल पर्दा नहीं करती थीं और वहाँ की स्वतन्त्र स्त्रियों की तरह रहना पसंद करती थीं। ब्रह्मदेश में हिन्दू व मुसलमान सब भाई-भाई और एक ही देश के बनकर रहते हैं। एक दूसरे की दूकान से वस्तुएँ लेकर खाते-पीते हैं। मुझे इस प्रेमभाव को देखकर बहुत ही आनन्द आया करता था और मैं प्रार्थना किया करता था कि ये दो बड़ी जातियाँ अपने देश में भी ऐसे ही रहें और इकट्ठे मिलकर देश की उन्नति के लिए सोचें और काम करें।

स्मृति

लेखक, श्रीयुत रमाशङ्कर पाण्डेय 'प्रभाकर'

स्वर्णिम अतीत तम-सान्ध्य में विलुप्त हुआ,
स्फीत नैश-दुःख है, न सुख कटु प्यार में।
परम प्रशान्त जो था, क्लान्त हो के खोता धैर्य,
स्थिर नहीं चित्त है विमग्न हाहाकार में।
धारणा विलीन हो रही है ध्यान-मूर्त्ति में हो,
वृत्ति की प्रतारणा प्रकट व्यवहार में।
उर में प्रकाश देती स्मृति उनकी तो सदा,
विस्मृति डुबाये रहता है अन्धकार में॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त में ग्राम-सुधार का कार्य

लेखक, श्रीयुत शङ्करदयालु श्रीवास्तव एम० ए०

हमारे सूबे की कांग्रेस सरकार अपने लाखों ग्रामीणों के जीवन को शिक्षित और समुन्नत बनाने के लिए अत्यधिक प्रयत्नशील है। वह चारों ओर से किफ़ायत करके इस मद में अधिक से अधिक व्यय करना चाहती है। ग्राम-सुधार के कार्य को सफल बनाने के लिए उसने एक सुन्दर योजना चलाई है। उसी योजना का इस लेख में लेखक महोदय ने विस्तृत परिचय दिया है।

रतवर्ष प्रधानतः गाँवों का देश है। यहाँ के लगभग ९० प्रतिशत निवासी गाँवों में रहते हैं। अतएव हमारी सभ्यता, उन्नति तथा रहन-सहन का माप वास्तव में ग्रामीण जनता की अवस्था के आधार पर ही होना चाहिए। नगरों की उच्च अट्टालिकाओं, विशाल भवनों, प्रशस्त सड़कों, बड़ी बड़ी दूकानों, स्कूल-कालेजों तथा पार्कों को देखकर हम गाँवों की वास्तविक अवस्था का अनुमान कभी नहीं कर सकते। ऐसी परिस्थिति में, यदि गाँवों की उपेक्षा कर केवल नगरों की उन्नति और सजावट पर ही बराबर ध्यान दिया जाय, नगर-निवासियों की ही सुविधाओं और हितों का चिन्तन किया जाय, उन्हीं के बच्चों को समुचित शिक्षा देकर योग्य नागरिक बनाने तक अपने प्रयत्न को सीमित रक्खा जाय तो सैकड़ों वर्षों के अनवरत परिश्रम तथा आन्दोलन के उपरान्त भी हमारा देश समष्टिरूप से सुखी, उन्नत तथा समृद्ध नहीं बन सकेगा। हमारे इस कथन में किसी को लेशमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता। कहने का मतलब यह है कि हमारा देश वास्तविक रूप से तब तक उन्नत और सम्पन्न नहीं कहा जा सकता जब तक ग्रामीण जनता भी शिक्षित और सुखी न बन जाय और ग्राम-निवासियों तथा नगर-वासियों के बीच का यह विषम अन्तर दूर न हो जाय।

आन्दोलन का सूत्रपात

इसी बात को दृष्टि में रखकर हमारे देश के अन्दर ग्राम-सुधार के आन्दोलन का सूत्रपात राष्ट्रीय जागृति के बाद हुआ। ज्यों-ज्यों स्थानीय-स्वायत्तशासन की माँग ज़ोर पकड़ती गई और केन्द्रीभूत शासन का विकेन्द्रीकरण प्रारम्भ हुआ, त्यों-त्यों गाँवों के पुनःसंगठन के प्रश्न की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित होने लगा। धीरे-धीरे गाँवों में पंचायतें क़ायम होने लगीं और अनेक प्रान्तों में 'पंचायत ऐक्ट' पास हुए। सहकारी समितियाँ भी गाँवों में काम करने लगी थीं। किन्तु किसी प्रान्त में ग्राम-सुधार का कार्य संगठित रूप से, किसी विस्तृत योजना को सामने रखकर, प्रारम्भ नहीं हुआ। हाँ, बंगाल तथा मदरास आदि कतिपय प्रान्तों में और प्रान्तों की अपेक्षा कुछ अधिक प्रयत्न किया गया था।

इस समय विभिन्न प्रान्तों में जो ग्राम-सुधार-आन्दोलन हो रहा है वह बिलकुल नया है। इस आन्दोलन का श्रीगणेश सबसे पहले महात्मा गांधी ने किया। उन्होंने स्वतन्त्रता-आन्दोलन का ग्रामीण जनता से घनिष्ट सम्बन्ध बतलाकर गाँवों के पुनःसंठगन तथा सुधार पर ज़ोर दिया। उन्हीं के प्रयत्न से राष्ट्रीय जागृति तथा आन्दोलन का संदेश गाँवों में पहुँचा और गाँववाले नये जीवन के संपर्क में आने लगे। महात्मा जी ने ग्रामीण जनता के प्रति बहुत सहानुभूति प्रकट की और घोषित किया कि जब तक राष्ट्रीय आन्दोलन जन-साधारण का आन्दोलन नहीं बन जाता तब तक वास्तविक स्वतन्त्रता किसी प्रकार प्राप्त नहीं हो सकती। ग्रामीण जनता की अवस्था में सुधार करने के लिए उन्होंने कुछ उपाय भी बतलाये। इसके अतिरिक्त उन्होंने ग्रामीणों में काम करने के लिए एक अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ नामक एक संस्था भी स्थापित की। उनके इस कार्य से प्रत्यक्षतः तथा अप्रत्यक्षतः दोनों रूपों से ग्राम-सुधार-आन्दोलन को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। लोग गाँवों में जाकर काम करने लगे। सरकार ने समझा कि ग्रामीण जनता में कांग्रेस का प्रभाव बढ़ाने के लिए ही महात्मा गांधी ने गाँवों की ओर ध्यान दिया है। कहीं गाँवों के लोग पूर्णतः कांग्रेस के ही प्रभाव में न आ जायँ, इस भय से सरकार ने भी गाँवों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ओर अपना ध्यान दिया। गाँवों का सुधार तथा संगठन करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने १ करोड़ रुपया अलग रख दिया और उसे विभिन्न प्रान्तों में बाँट दिया। यद्यपि यह कार्य राजनैतिक उद्देश्य से—ग्रामीण जनता को कांग्रेस के प्रभाव से बचाने के लिए आरम्भ किया गया, तथापि उससे गाँवों को कुछ लाभ ज़रूर हुआ। प्रान्तीय सरकारों ने स्थायी रूप से गाँवों में सुधार-कार्य करने का निश्चय कर लिया। केन्द्रीय सरकार से मिली हुई रक़म के अलावा प्रान्तीय सरकारें अपने कोष से भी कुछ धन देने लगीं।

प्रान्तीय सरकारों ने अपने यहाँ ग्राम-सुधार की क्या योजना तैयार की और किस तरह उसे कार्यान्वित करना आरम्भ किया, इसका विवरण विस्तार के साथ प्रस्तुत लेख में नहीं किया जायगा। यहाँ केवल युक्तप्रान्त के ग्राम-सुधार-कार्य का संक्षेप में वर्णन किया जायगा। युक्तप्रान्त में कांग्रेसी मंत्रिमंडल के पदस्थ होने के पूर्व ग्राम-सुधार की एक योजना तैयार की गई थी और उसके अनुसार कार्य आरम्भ किया गया था। इस कार्य के लिए युक्त-प्रान्तीय सरकार को १५ लाख रुपये उस रक़म में से मिले जो केन्द्रीय सरकार ने विभिन्न प्रान्तों में बाँटी थी। यह १५ लाख की रक़म ५ साल में ख़र्च करने के लिए थी। इस प्रकार ३ लाख रुपया प्रतिवर्ष भारत-सरकार की ओर से मिला। प्रान्तीय सरकार ने भी अपनी ओर से १ लाख रुपया साल इस कार्य में ख़र्च करने के लिए मंज़ूर किया। ग्राम-सुधार की यह योजना जो ५ साल के लिए बनाई गई थी, सिद्धान्ततः अच्छी थी, किन्तु जो व्यक्ति इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए नियुक्त किये गये थे वे इस कार्य के योग्य तथा उपयुक्त नहीं थे। उनमें त्याग, सेवा तथा उत्साह आदि के भावों का अभाव था जो ग्राम-सुधार के कार्यकर्त्ताओं के लिए अपेक्षित है।

कांग्रेसी सरकार के क़ायम हो जाने के पश्चात् ग्राम-सुधार-आन्दोलन को यथेष्ट प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, जो बिलकुल स्वाभाविक था। कांग्रेस के जिस कार्यक्रम को कार्यान्वित करने का भार कांग्रेसी मंत्रिमंडल के ऊपर आया उसमें पहले से ही ग्रामीणों की अवस्था में सुधार करने का संकल्प प्रकट किया गया था। फलतः कांग्रेसी सरकार ने ग्राम-सुधार-कार्य में बड़ी दिलचस्पी लेनी प्रारम्भ की और बड़ी तत्परता के साथ उसने इस कार्य को अग्रसर किया। पंडित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल ने, जिन्हें कांग्रेसी सरकार ने प्रान्त का ग्राम-सुधार अफ़सर नियुक्त किया, एक नई योजना की रूप-रेखा तैयार की और उनके बाद के ग्राम-सुधार अफ़सर श्री मनोहरदास चतुर्वेदी ने उसको विस्तृत रूप प्रदान किया। इस नई योजना के अनुसार ही आजकल काम हो रहा है। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए जो संगठन स्थापित किया गया है वह संक्षेप में इस प्रकार है।

संगठन

सुधार का काम प्रारम्भ करने के लिए प्रत्येक ज़िले में कुछ हलक़े क़ायम किये गये हैं और प्रत्येक हलक़ा एक वेतन-भोगी कार्यकर्त्ता के सिपुर्द कर दिया गया है, जिसे आर्गनाइज़र या संगठनकर्त्ता कहते हैं। हर एक हलक़े के अन्दर कुछ गाँव होते हैं। आर्गनाइज़र का कर्त्तव्य है कि वह अपने हलक़े के प्रत्येक गाँव में रहन-सहन को अच्छा बनानेवाली एक समिति स्थापित करे। विचार यह है कि इस समिति में गाँव के सभी बालिग़—नहीं तो कम से कम ७५ फ़ी सदी लोग—सदस्य बन जायँ। जब कम से कम ६ समितियाँ ऐसी स्थापित हो जायँ तो उन्हें मिलाकर एक बड़ा संघ क़ायम किया जाय। इसके अतिरिक्त आर्गनाइज़र का काम गाँववालों को योग्य नागरिक बनाना, उनके जीवन में आमोद-प्रमोद का भाव भरना, खेलों तथा मनोविनोद के साधनों की व्यवस्था करना, मामूली दवाओं का प्रबन्ध करना, सब गाँवों में सफ़ाई कराना, गलियों को चौड़ी कराना तथा पंचायतघर बनवाना आदि हैं।

हर ज़िले में एक ज़िला-ग्राम-सुधार-सभा क़ायम की गई है। इसका अध्यक्ष सरकार-द्वारा मनोनीत कोई ग़ैर-सरकारी व्यक्ति होता है। कुछ ग़ैरसरकारी सदस्य होते हैं, जिन्हें सरकार नामज़द करती है। ज़िले के अन्दर रहनेवाले प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्य भी उसके मेम्बर होते हैं। ज़िले के दो डिप्टी कलेक्टर भी रहते हैं, जिन्हें ज़िले का हाकिम नामज़द करता है। ज़िला-बोर्ड का चेयरमैन तथा शिक्षा-समिति का चेयरमैन भी उक्त सभा में शामिल किया जाता है। ग्राम-सुधार का डिवीज़नल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुपरिन्टेन्डेन्ट अपने पद के अधिकार से उसका सदस्य होता है। ग्राम-सुधार में दिलचस्पी लेनेवाले कुछ प्रभावशाली व्यक्ति तथा स्थानीय सीनियर अफ़सर भी सदस्य होते हैं। ज़िला-हाकिम सभा से परामर्श कर अपने द्वारा नामज़द किये हुए दो डिप्टी कलक्टरों में से एक को सभा का मन्त्री नियुक्त कर देता है। ग्राम-सुधार-विभाग का इन्सपेक्टर सहायक-मंत्री भी होता है। सभा का काम ज़िले के लिए स्वीकृत धन को विभिन्न कार्यों के लिए तथा विभिन्न हलक़ों में बाँटना, सब प्रकार की सलाह देना, सुधार के विभिन्न विभागों के कार्यों में संबध व सहयोग स्थापित करना, बीजगोदाम, स्कूल, पुस्तकालय आदि के लिए स्थानों का चुनाव करना तथा विभिन्न योजनाओं व तजवीज़ों पर विचार करना है, सभा की सहायता के लिए एक छोटी सी कार्यकारिणी समिति भी बना दी गई है, जिसके अध्यक्ष, मंत्री व सहायक मन्त्री वे ही होते हैं जो उस सभा के होते हैं। इस कार्यकारिणी में दो ग़ैर-सरकारी सदस्य होंगे, जिन्हें सभा के सदस्य चुनेंगे।

हर ज़िले में ग्राम-सुधार का एक इन्सपेक्टर होता है, जो ज़िले पर के आर्गनाइज़रों के काम का निरीक्षण करता है और उन्हें आवश्यक सलाह देता है। इन्सपेक्टरों के ऊपर हर डिवीज़न में एक अफ़सर नियुक्त किया गया है, जो डिवीज़नल सुपरिन्टेन्डेन्ट कहलाता है। वह अपने डिवीज़न के इन्सपेक्टरों के कार्य का निरीक्षण करता है और सरकारी अफ़सरों व ग़ैर-सरकारी व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करने की चेष्टा करता है। उसे अधिकार है कि वह गाँवों में जाकर भिन्न-भिन्न कार्यों का निरीक्षण करे और ज़िले की कार्यकारिणी कमिटियों के सामने कोई योजना उपस्थित करे।

सबके ऊपर एक ग्राम-सुधार अफ़सर नियुक्त किया गया है, जो अपने कर्मचारियों के साथ सदर मुक़ाम (लखनऊ) में रहता है। संपूर्ण प्रान्त के लिए एक प्रान्तीय ग्राम-सुधार-बोर्ड स्थापित किया गया है जिसके अध्यक्ष माननीय न्यायमंत्री तथा मंत्री ग्राम-सुधार-अफ़सर हैं। उक्त बोर्ड में सुधार के विभिन्न विभागों के बड़े अफ़सर, असेम्बली के पाँच तथा कौन्सिल के दो निर्वाचित सदस्य, न्यायमंत्री के पार्लिमेन्टरी सेक्रेटरी तथा ग्राम-सुधार के कार्य में विशेष दिलचस्पी लेनेवाले सरकार-द्वारा मनोनीत कुछ अन्य व्यक्ति मेम्बर हैं। बोर्ड का काम ग्राम-सुधार के साधारण कामों में सलाह देना, विभिन्न ज़िला-सभाओं को धन बाँटने की व्यवस्था बतलाना तथा सदस्यों की दी हुई रायों पर विचार करना है।

कांग्रेसी सरकार ने ग्राम-सुधार का जो कार्यक्रम अपने सामने रक्खा है उसके कार्यान्वित हो जाने पर ग्रामनिवासियों के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा औद्योगिक जीवन में एक क्रान्ति पैदा हो जायगी। ग्राम-सुधार के लिए पहले प्रतिवर्ष एक लाख रुपया प्रान्तीय कोष से दिया जाता था। अब बजट में उसके अतिरिक्त १० लाख रुपये की और व्यवस्था कर दी गई है। ३ लाख रुपये भारत-सरकार से प्राप्त होते हैं। इस प्रकार अब इस कार्य में ख़र्च करने के लिए १४ लाख रुपया मिल गया है। वास्तव में गाँवों के सुधार के लिए और कई लाख रूपये भी मंज़ूर किये गये हैं किन्तु वे रक़में कृषि, उद्योग, चिकित्सा, शिक्षा, पशु-पालन तथा सहकारिता आदि मदों के अंदर मंज़ूर की गई हैं।

कृषि-सुधार

ग्राम-सुधार का मुख्य कार्यक्रम खेती के तरीक़ों में सुधार करना, लड़के-लड़कियों तथा बालिग़ों की शिक्षा का प्रबन्ध करना, डाक्टरी सहायता पहुँचाने की व्यवस्था करना, ग्रामीण उद्योग-धंधे की उन्नति करना, गाँवों की पैदावारों की बिक्री का इंतिज़ाम करना, कृषि तथा अन्य रोज़गारों के लिए कम ब्याज पर क़र्ज़ दिलाने का प्रबन्ध करना, आदि है। जहाँ तक कृषि-सुधार का सम्बन्ध है, ५०० बीज-गोदाम खोलने की व्यवस्था की गई है। प्रत्येक गोदाम में वितरण के लिए २ हज़ार मन अच्छा बीज रक्खा जाता है। अच्छी पैदावार के लिए अच्छे बीजों का होना बहुत आवश्यक है, किन्तु इसका पहले कोई समुचित प्रबन्ध नहीं था। ग़रीब किसानों को समय पर बोने के लिए बीज मिलना मुश्किल था। महाजनों से ज़्यादा सूद पर क़र्ज़ लेकर वे घटिया बीज ख़रीद कर काम चलाते थे। अब नाममात्र के सूद पर उन्हें अच्छा बीज मिल जाया करेगा और खेती की पैदावार में उन्नति होगी। कृषि-सुधार के लिए दूसरी आवश्यक चीज़ पर्याप्त मात्रा में अच्छी खाद है। गोबर और कूड़ा-करकट जमा करने के लिए गाँवों में जो घूर होते हैं वे काफ़ी उपयोगी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते। गहरा गड्ढा न होने से खाद ऊपर ही पड़ी रहती है और उसकी ताक़त घट जाती है। फिर बरसात के दिनों में बहुत-सी खाद बह जाती है। अब ग्राम-सुधार-विभाग ने गाँव-गाँव में वैज्ञानिक रूप से खाद के गड्ढे खुदवाने शुरू कर दिये हैं। विभाग की ओर से इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि हर गाँव में खाद के गड्ढे खुदवाये जायँ और उनकी संख्या इतनी हो जितने उस गाँव में घर हों। इस साल के शुरू से सितम्बर तक बनारस-कमिश्नरी में ९,३०३, झाँसी में ४,७३७, कुमायूँ में ३६० तथा आगरा में ४,२५९ खाद के गड्ढे खुदवाये गये। अन्य कमिश्नरियों के जो आँकड़े प्राप्त हुए हैं वे जून के हैं। इन आँकड़ों के अनुसार फ़ैज़ाबाद-कमिश्नरी में २,२२१, मेरठ में १,५९६, इलाहाबाद में ३८५ तथा गोरखपुर में ३६९ गड्ढे खुदवाये गये। किसान लोग गोबर का उपयोग खाद के रूप में कम करते हैं। वे गोबर को उपले बनाकर जलाने के काम में ले आते हैं। उनको इस बात का ज्ञान नहीं है कि गोबर की गिनती संसार की उत्तमोत्तम खादों में है। गोबर का प्रयोग केवल खाद के रूप में किया जाय, इस बात को दृष्टि में रखकर फालतू पड़ी हुई ज़मीन में ऐसे वृक्ष लगवाने का प्रयत्न किया जा रहा है जिनकी लकड़ी ईंधन का काम दे। इस कार्य के लिए जंगल-विभाग के कुछ अफ़सर तैनात कर दिये गये हैं। उन्होंने प्रान्त भर में भ्रमण करके इस बात का पता लगाया है कि ऐसे पेड़ लगवाने के लिए कहाँ-कहाँ उपयुक्त ज़मीन मिल सकती है। उनके इस भ्रमण के परिणामस्वरूप प्रतापगढ़, हरदोई, पीलीभीत, बरेली, बिजनौर, बुलन्दशहर, मेरठ तथा मुज़फ़्फ़रनगर के ज़िलों में ईंधन के लिए पेड़ लगवाने की तैयारी की जा रही है। बहुत सी ज़मीन में पेड़ लगवाये भी जा चुके हैं। पशुओं की नस्ल में सुधार करने का भी प्रयत्न किया जा रहा है। बुरी नस्ल के साँड़ बधिया कर दिये जायँगे ताकि वे अगली नस्ल न ख़राब कर सकें। असली नस्ल के मवेशी मुहैया करने के लिए ४ केन्द्र स्थापित किये जा रहे हैं—इटावा, प्रतापगढ़, बलिया तथा मिर्ज़ापुर।

किसानों की क़र्ज़दारी भी दूर करने की कोशिश की जा रही है। किसानों में मितव्ययिता नहीं, शादी-विवाह आदि में वे फ़िज़ूल कामों में हैसियत से अधिक धन ख़र्च कर देते हैं, और बहुत ज़्यादा सूद पर महाजनों से क़र्ज़ लेते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वे क़र्ज़ के बोझ से दबे रहते हैं। ऐसी अवस्था में वे अपनी कुछ उन्नति नहीं कर सकते, अतः उनके क़र्ज़ के बोझ को हलका करने का यत्न किया जा रहा है। किसानों को कृषि में सुधार करने तथा नये उद्योग-धन्धे आरम्भ करने के लिए भी धन की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे कार्यों के लिए आर्थिक सहायता देने के हेतु प्रान्तीय ग्राम-सुधार-विभाग सहकारिता-विभाग के सहयोग से सहकारी ऋण-सभायें क़ायम कर रहा है। इन सभाओं से किसानों को नाममात्र के सूद पर क़र्ज़ मिलेगा और वे महाजनों के अत्याचार से बच जायँगे। कृषि की पैदावार की बिक्री का भी इन्तिज़ाम किया जा रहा है। बिक्री करने के लिए १४० दूकानें अथवा स्टोर खोले जा रहे हैं। खेती के लिए उन्नत औज़ार भी मुहैया करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

उद्योग-धन्धे

इस बात को अब प्रायः सभी लोग स्वीकार करने लगे हैं कि उद्योग-धन्धों की उन्नति के बिना प्रान्त की आर्थिक स्थिति नहीं सुधारी जा सकती। ग्राम-निवासियों का केवल कृषि पर निर्भर करना ठीक न होगा। प्राचीन काल में ग्रामीण उद्योग-धन्धों की बदौलत लोग सुखी और सम्पन्न रहते थे, किन्तु उन धन्धों के नष्ट हो जाने से ग्रामीण लोग अब बहुत ग़रीब हो गये हैं, उनकी अवस्था शोचनीय हो गई है। यदि पुराने उद्योग-धन्धे पुनर्जीवित किये जायँ और नये उद्योग-धन्धे लोगों को सिखा दिये जायँ तो ग्रामीणों की आर्थिक स्थिति बहुत सुधर सकती है। सूत-कताई, बुनाई, रँगाई, छपाई, चमड़े का काम, लकड़ी का काम, गुड़ का काम, काग़ज़ बनाने का काम, सिलाई, खिलौने बनाना, बेंत की कुर्सी, मेज़ आदि चीज़ें बनाना—आदि अनेक छोटे-मोटे धन्धे हैं, जिनका गाँवों में प्रचार किया जा सकता है। कताई और बुनाई की शिक्षा देने के लिए गोरखपुर तथा प्रतापगढ़ में चर्खा-आश्रम खोले गये हैं। फ़ैज़ाबाद तथा उन्नाव के ज़िलों के अन्दर दो औद्योगिक आश्रम खोले गये हैं। इन आश्रमों में कताई, बुनाई, रँगाई, छपाई, बढ़ई गिरी, चमड़ा कमाना और जूता, काग़ज़ तथा टोकरी बनाना सिखाया जाता है। यहाँ प्रान्त के विभिन्न ज़िलों के विद्यार्थी शिक्षा देने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भर्ती किये जाते हैं। गाँववालों को औद्योगिक काम सिखाने के लिए ७० कारीगर तथा ९६ चर्खा-मास्टर नियुक्त किये जा रहे हैं। ये लोग चारों ओर घूम-घूम कर औद्योगिक कार्यों का प्रदर्शन करेंगे और पता लगायेंगे कि कहाँ कहाँ औद्योगिक केन्द्र स्थापित किये जा सकते हैं। बरेली-ज़िला के गाँवों में खिलौने बनाने के केन्द्र भी स्थापित किये जा रहे हैं। इन केन्द्रों में कुछ और भी काम होंगे। प्रत्येक कमिश्नरी में सैकड़ों व्यक्तियों को घरेलू उद्योग-धन्धों की शिक्षा दी जा चुकी है। यदि गाँवों में लोग छोटे-मोटे घरेलू उद्योग-धन्धों को सीखकर काम करना प्रारम्भ कर दें तो ग्रामीणों के आर्थिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाय और सब लोग सुखी तथा खुशहाल बन जायँ।

शिक्षा

गाँवों में शिक्षा-प्रचार की सबसे बड़ी आवश्यकता है। शिक्षा सब प्रकार की उन्नति की जड़ है। जो समाज शिक्षा में जितना ही आगे होगा वह उतना ही सभ्य, उन्नत तथा सम्पन्न होगा। हमारा प्रान्त शिक्षा-प्रचार में बहुत पीछे है। ग्रामीण समाज तो और भी अन्धकार में पड़ा हुआ है। लगभग ९० प्रतिशत व्यक्ति अपढ़ हैं। जब तक ये अपढ़ व्यक्ति साक्षर नहीं बनाये जायँगे तब तक ग्रामों का उद्धार नहीं होगा। स्थानीय संस्थाओं की ओर से प्रान्त में लड़कों के लिए ६५७ वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल तथा १३,४४६ प्राइमरी स्कूल हैं, जिनमें कुल मिलाकर क्रमशः ७६,००० तथा लगभग ६ लाख बच्चे पढ़ते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत-से सहायता-प्राप्त स्कूल, पाठशालायें तथा मक़तब हैं। जिला-बोर्ड देहातों की शिक्षा पर क़रीब एक करोड़ रुपया ख़र्च करते हैं। जहाँ तक लड़कियों का सम्बन्ध है वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूलों में उनकी संख्या ३९,००० तथा प्राइमरी स्कूलों में ७५,००० है। इसके अतिरिक्त ७९,००० लड़कियाँ लड़कों के स्कूलों में पढ़ती हैं। १९३५-३६ ई० में शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने जो रिपोर्ट प्रकाशित की थी उसको देखने से मालूम होता है कि माध्यमिक स्कूलों पर ४८·६ प्रतिशत तथा प्राइमरी स्कूलों पर २४·२ प्रतिशत ख़र्च किया गया है। संसार में शायद ऐसा कोई देश नहीं मिलेगा जहाँ उच्च शिक्षा पर प्रारम्भिक शिक्षा की अपेक्षा दूना ख़र्च किया जाता हो। मदरास, बम्बई, पंजाब और बंगाल युक्तप्रान्त की अपेक्षा शिक्षा में अधिक धन ख़र्च करते आये हैं।

जब से प्रान्त के शासन की बागडोर कांग्रेस के हाथ में आई, शिक्षा-प्रणाली में आवश्यक परिवर्तन करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया गया। प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा-प्रणाली के पुनःसंगठन के लिए योजना क़रीब-क़रीब तैयार हो गई है। प्रारम्भिक शिक्षा के सम्बन्ध में उसने दो मूलसिद्धान्त स्थिर कर लिये हैं, जिनमें से एक तो यह है कि सात से चौदह साल की अवस्था तक सभी बालक-बालिकाओं को निश्शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देनी चाहिए; और दूसरा यह कि प्रारम्भिक शिक्षा किसी उत्पादक शिल्प पर केन्द्रित होनी चाहिए। शिक्षा-विभाग की ओर से गाँवों में इस नई योजना को कार्यान्वित करने का प्रयत्न तो किया ही जायगा, ग्राम-सुधार-विभाग भी ग्रामीणों को शिक्षित बनाने का प्रयत्न कर रहा है। गाँवों में पुस्तकालय तथा वाचनालय खोले जा रहे हैं। देहातों में ७०० पुस्तकालय तथा ३६०० वाचनालय स्थापित करने का विचार किया गया है। पुस्तकों तथा समाचार-पत्रों को पढ़कर ग्रामीण लोगों की कूपमंडूकता दूर हो जायगी और वे अज्ञानान्धकार से निकल कर प्रकाश में आ जायँगे। ग्रामीणों में नये जीवन का संचार हो जायगा। बालिग़ों की निरक्षरता दूर करने के लिए भी प्रयत्न किये जा रहे हैं। रात्रि-पाठशालायें खोली जा रही हैं।

स्वास्थ्य और चिकित्सा

अब तक सरकार ग्रामीणों के स्वास्थ्य और चिकित्सा पर पर्याप्त ध्यान नहीं देती रही है। गाँवों में अस्पताल तथा वैद्य-डाक्टरों का प्रायः बिलकुल अभाव है। आवश्यकता पड़ने पर बेचारे गाँववालों को डाक्टरी सहायता मिलनी कठिन हो जाती है। अब कांग्रेसी सरकार गाँवों की सफ़ाई आदि करने तथा ग्रामीणों का स्वास्थ्य सुधारने की चेष्टा कर रही है। स्वास्थ्य-विभाग के आँकड़ों को देखने से पता चलता है कि १९३५-३६ ई० में केवल ज्वर से इस प्रान्त के गाँवों में १७,८१,१४५ व्यक्ति मरे। हैज़ा से १७,२०५ व्यक्ति मरे। इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि गाँवों का स्वास्थ्य सुधारने तथा वहाँ डाक्टरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायता पहुँचाने की कितनी ज़रूरत है। ग्राम-सुधार-विभाग की ओर से लगभग ४,००० केन्द्रों में दवा के बक्स रक्खे जा रहे हैं और इसके लिए ४८,००० रुपये मंज़ूर किये गये हैं। बजट में गाँवों के लिए १०० डाक्टरों तथा तीन-चार सौ हकीम-वैद्यों के लिए भी व्यवस्था की गई है। कुछ डाक्टर और वैद्य-हकीम नियुक्त भी किये जा चुके हैं। गाँवों में मल-मूत्र त्याग करने के लिए हज़ारों गड्ढे खुदवाये जा रहे हैं। गाँवों में कूड़े-करकट के जो ढेर गन्दगी फैलाते रहते थे, हटाये जा रहे हैं। कुओं की सफ़ाई कराई जा रही है। पानी बहने के लिए मोरियाँ बनवाई जा रही हैं। प्राथमिक उपचार की शिक्षा लोगों को दी जा रही है।

गाँवों में सुधार का काम करने के लिए जो संगठन-कर्त्ता नियुक्त किये गये हैं उन्हें समुचित शिक्षा देने की व्यवस्था की गई है। कानपुर, फ़ैज़ाबाद, मेरठ, इटावा, गोरखपुर तथा मैनपुरी में इसके लिए केन्द्र खोले गये हैं। २४० संगठनकर्त्ताओं को शिक्षा दी जा चुकी है। अन्य २४० संगठनकर्ताओं के दल को शिक्षा देना शुरू किया गया है। इन कर्मचारियों को सहकारिता, कृषि, स्वास्थ्य-सफ़ाई, प्राथमिक उपचार, स्काउटिंग, कताई, बुनाई आदि उपयोगी विषयों की शिक्षा दी जाती है। अन्य विभागों के स्थानीय अफ़सर भी इस कार्य में सहयोग दे रहे हैं। समय-समय पर इन्सपेक्टरों तथा डिवीज़नल सुपरिन्टेन्डेन्टों के सम्मेलन भी होते रहते हैं और वे सब एकत्र होकर विचार करते हैं कि ग्राम-सुधार के कार्यक्रम को अग्रसर करने के लिए क्या क्या उपाय करना चाहिए और सरकार को क्या सलाह देनी चाहिए। यदि ग्राम-सुधार-कार्य की वर्तमान प्रगति कुछ वर्षों तक जारी रही तो निश्चय है कि ग्रामीणों के जीवन में एक युगान्तर उपस्थित हो जायगा।

कवि और चित्रकार

लेखक, श्रीयुत मित्तल

तू इन दुखियों के चित्र बना, मैं इन दुखियों के रचूँ गीत।
तू रेख-रेख में दर्द जगा, मैं शब्द शब्द में भरूँ पीर।
तू रंग-रंग से आह उड़ा, मैं आह-आह पर लिखूँ गीत।
तू उनका जर्जर हृदय दिखा, मैं उनका मानस रखूँ चीर।
तू उनको भाव-भंगिमा में, भर दर्द, कसक, सब हूक, टीस।
मैं उनके क्रन्दन में कह दूँ, वे क्यों पीड़ित, वे क्यों अधीर?

× × × ×

तू उनके चित्रों से कहला—
वे भी जगती के मालिक हैं, उन पर भी है ज़िम्मेदारी।
मैं उनके गीतों में गा दूँ—
वे दुख सहने के लिए नहीं, वे भी वैभव के अधिकारी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताँगेवाला

लेखक, श्रीयुत उपेन्द्रनाथ 'अश्क', बी० ए०, एल-एल० बी०

गाड़ी नम्बर १ प्लेटफ़ार्म पर रुकी। तीसरे दर्जे के एक भरे हुए डिब्बे से एक घबराई हुई आवाज़ आई—"क़ुली! क़ुली!"

लोगों को अपने चढ़ने-उतरने की चिन्ता थी। उतरनेवालों की अपेक्षा चढ़नेवाले अधिक उतावले थे, और चढ़नेवालों की अपेक्षा उतरनेवाले अधिक अधीर! तब कोई क़ुली उस क्षीण आवाज़ को कैसे सुन पाता? और सुन भी पाता तो एकदम वहाँ कैसे जा खड़ा होता? कोलाहल को भरसक प्रयत्न से चीर कर वह क्षीण पर तीखी-घबराई हुई आवाज़ फिर डिब्बे के बाहर गूँज गई—"क़ुली, क़ुली!" अब खिड़की से उतरने-चढ़नेवाली भीड़ में रास्ता बनाता हुआ एक क़ुली अन्दर चला गया। कुछ देर के बाद वह सिर पर एक ट्रंक और बाज़ू में एक छोटा सा बिस्तर लटकाये बाहर निकला। ट्रंक बहुत पुराना और टूटा हुआ था, रंग-रोग़न उड़ चुका था, किनारे मुड़ गये थे और कपड़ों की रक्षा करने की अपेक्षा वह पास से गुज़रनेवालों के कपड़े अधिक फाड़ सकता था। बिस्तर भी साधारण था, एक दरी में शायद खेस, चादर या कपड़े रख, गोल करके रस्सी से बाँध दिया गया था।

क़ुली के पीछे डिब्बे से किसी ने कहा—"भाई, इसे ट्रंक पर रख ले, नहीं तो रस्सी टूट जायगी।" यह कहती हुई एक बुढ़िया अपने श्वेत बालों और दोहरी कमर को लिये हुए जैसे अपने बूढ़े वर्षों के भार से झुकी काँपते हुए हाथों से खिड़की का सहारा लेकर उतरी।

"मुझे ताँगे तक पहुँचा दे, भाई। तेरा भला होगा।"—प्लेटफ़ार्म पर पाँव रखते ही सुख की एक साँस लेकर उसने कहा।

"नमस्ते मा जी।"—गाड़ी में बैठी हुई किसी तरुणी ने अपनी मीठी आवाज़ में पुकारा।

बुढ़िया तब चौंकी और उसे उस सुन्दर युवती का ख़याल हो आया जिससे अभी कुछ देर पहले वह मा-बेटी का नाता जोड़ चुकी थी। मुड़कर उसने अपना हाथ उठाकर उसे आशीर्वाद दिया—"जीती रहो बच्ची। सुखी रहो।" गार्ड ने झंडी हिलाई, इंजन ने सीटी दी और धुआँ उड़ाता हुआ वह अपनी लम्बी यात्रा पर रवाना हो गया।

× × × ×

सन्तोष की साँस लेकर वृद्धा ने देखा। क़ुली उसके पीछे-पीछे आ रहा था। वह ड्योढ़े दर्जे के दरवाज़े की ओर बढ़ी।

जालंधर है तो जंकशन, पर इतना बड़ा नहीं कि यात्री प्लेटफ़ार्मों की भूल-भुलैया में ही फँस कर रह जाय। दो लम्बे-लम्बे प्लेटफ़ार्म हैं, पुल के द्वारा दो-दो हिस्सों में विभक्त करके उनमें चार नम्बर लगा दिये गये हैं। बाहर निकलने का दरवाज़ा नम्बर १ प्लेटफ़ार्म पर ही है। बुढ़िया ने जल्दी से टिकट दिया और बाहर निकल गई और वह क्षणिक-मुस्कान जो उस युवती को आशीर्वाद देते समय उसके चेहरे पर आई थी, फिर व्यथा के पर्दे में छिप गई। प्लेटफ़ार्म का गेट पार कर, सीढ़ियों पर, वह कुछ क्षण के लिए रुकी और उसकी आँखों के सम्मुख उसकी बीमार भतीजी का चित्र खिंच गया, जिसे देखने के लिए वह हरिद्वार से सीधी इधर आई थी। पर ताँगेवालों ने ज़्यादा देर तक उसे इस तरह अपने विचारों में निमग्न न रहने दिया।

"इधर आइए मा जी।"

"सिर्फ़ एक सवारी चाहिए।"

"बस बैठिए कि चल दूँगा।"

"पंजपीर को जायँगी क्या?"

"बस्ती जाना हो तो इधर आ जाइए। बस, ताँगा तैयार ही है।"

उसने सबकी सुनी-अनसुनी कर दी और किसी तरह अपने आपको उनके चंगुल से बचा कर क़ुली पीछे-पीछे वह सीधी एक ताँगे की ओर बढ़ी, जो दूसरों से अलग इस तरह खड़ा था, मानो उसे सवारियों की आव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यकता ही न हो। न गला फाड़ फाड़ कर चिल्लाता था, न आगे बढ़-बढ़ कर बातें बनाता था।

"ताँगा ख़ाली है ?"—बुढ़िया ने चौंक कर पूछा।

"जी हाँ।"—ताँगेवाले ने उत्तर दिया।

वह बैठ गई, कुली ने ट्रंक और बिस्तर उसके पाँवों के नीचे रख दिया। ताँगा चलने लगा। किधर ? न ताँगे-वाले ने पूछा, न घबराहट में बुढ़िया ही ने कुछ कहा।

× × × ×

"हम किधर जा रहे हैं ?"—वृद्धा ने कुछ देर के बाद चौंक कर पूछा।

"आपको किधर जाना है ?"

"छावनी की सड़क पर फाटक के पास !"

ताँगेवाला विषाद से हँसा—"हम तो शहर में आ गये हैं, भाई !" और फिर बोला—"छावनी की सड़क पर आप कहाँ जायँगी ?"

"थाने के समीप !"—वृद्धा ने घबराकर उत्तर दिया।

"आपने पहले क्यों न बता दिया मा जी ?"—ताँगेवाले ने शिकायत के स्वर में कहा—"यह तो होशियारपुर का अड्डा है। अब फिर वापस जाना पड़ेगा। बड़ा चक्कर लगेगा।"

"जो भी हो भाई, मुझे तो अब वहीं ले चल।"

"आप चिन्ता न करें। मैं ले चलता हूँ अभी !"—और उसने ताँगा मोड़ लिया। घोड़े को पुचकारते हुए उसने टिटकारी भरी और कहा—"चल बेटा ज़रा जल्दी !"

ताँगा हवा से बातें करने लगा।

× × × ×

ताँगेवाला कौन था, कहाँ से आया था, यह किसी को मालूम न था। पर सभी यह जानते थे कि उसने एक दर्द-भरा दिल पाया है, जिसमें दूसरों के लिए तड़प मौजूद है। उसे यहाँ आये बहुत दिन नहीं हुए थे। एक शाम को जब ताँगेवाले अपने अपने घोड़ों को दाना-पानी देकर हुक्क़ा पीने के लिए जमा हुए थे तब उन्होंने पहली बार उसे देखा था। वह एक जवान आदमी था, पर दाढ़ी-मूछों के बढ़ जाने से उसकी आयु कहीं अधिक मालूम होती थी। चेहरा उसका बालों से छिपा रहता था और सिर पर रूखे-लम्बे केश लहराया करते थे, जो उसकी बेपरवाही और उदासीनता के परिचायक थे; पर इतने पर भी उसके व्यक्तित्व में एक विशेष आकर्षण था। शायद इसका कारण उसकी आँखों की करुणा थी, जो आँखों में रहकर भी उसके सारे व्यक्तित्व पर छाई जाती थी।

स्टेशन के समीप पहुँचकर वृद्धा ने कहा—"हम तो वापस स्टेशन को जा रहे हैं।"

"हाँ, मा जी।" ताँगेवाले ने विनम्रता से कहा—"मंडी के ऊपर से होकर जाना पड़ेगा।"

करुण, मीठी और विनय से सनी आवाज़ ! दूसरे ताँगेवालों में और उसमें यही एक अन्तर था। वह उन सबसे कहीं अधिक सभ्य था, किसी से लड़ता-झगड़ता न था। साधारणतया सवारियों को अपनी अपनी तरफ़ खींचने के लिए ताँगेवाले आपस में बेतरह झगड़ते हैं, वे गालियाँ बकते हैं कि भगवान् बचाये ! किन्तु किसी ने उसके मुँह से कभी गाली न सुनी थी, उसकी वाणी में मिठास का सागर उमड़ा पड़ता था। नगर के बहुत लोग उससे परिचित हो गये थे और साधारणतया उसके ताँगे में ही जाते थे। चुपचाप वह अपनी जगह पर खड़ा रहता था। कोई आता तो उसे आराम से उसके घर पहुँचा देता था। पैसों के लिए वह कभी नहीं लड़ा, उसके और उसके घोड़े के लिए जितने पैसे काफ़ी होते, उतने ही कमा कर वह निश्चिन्त हो जाता, इससे अधिक परिश्रम उसने अपने जानवर से कभी नहीं लिया। उसका ताँगा सबसे अच्छा था; और घोड़ा— वह तो जैसे उसका बेटा था, सुन्दर और सुडौल, अनायास ही पुचकारने और प्यार करने को जी चाहता था। उसे देखकर आँखों की भूख मिटती थी। दूसरे ताँगेवालों से पहले ही वह उसे खोल देता था और प्रेम से उसे दाना खिलाता था। घोड़े का नाम उसने रख छोड़ा था 'संतोष'।

दोनों में कौन अधिक संतोष की मूर्ति था, यह कहना कठिन था। जब दाना खिला कर वह उसकी पीठ सहलाता और उसकी गर्दन थपथपा कर उसका नाम पुकारता था, तब घोड़ा हिनहिना कर गर्दन उठाता। मानो कहता हो—"मैं भी तुम्हें कम प्यार नहीं करता।"

ताँगेवालों ने प्रायः उसका घरबार पूछने की चेष्टा की थी, पर उसने सदैव टाल दिया था और अधिक अनुरोध करके का साहस उसकी आँखों की करुणा ने उन्हें नहीं दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंडी को पार कर ताँगा कम्पनी बाग़ को जानेवाली सड़क पर बढ़ा। सहसा ताँगेवाले ने पूछा—"आपको थाने में जाना है, मा जी ?"

"नहीं बच्चा थाने के पास ही।"

"पर वहाँ तो कोई मकान नहीं है, मा जी।"

वृद्धा ने कहा—"तुम ठीक कहते हो भाई, पर मेरी भतीजी बीमार है। क्षयरोग हो गया है उसे। डाक्टरों ने आदेश दिया है कि उसे बाहर खुले में रक्खो। इसलिए मेरे भतीजे ने वहीं एक अस्थायी झोंपड़ी सी बनवा ली है। पत्र में उसने यही बात लिखी है। मैं तो बच्चा, पहली बार ही जालन्धर आई हूँ। तुम्हें भलामानस समझकर तुम्हारे ताँगे में आ बैठी। ठीक जगह पर उतार देना भाई।"

"आप बिलकुल चिन्ता न करें, मा जी।"—ताँगेवाले ने कहा—"मैं ढूँढ़ कर आपको वहाँ पहुँचा दूँगा।"

"तेरी बड़ी बड़ी उम्र हो बेटा।"—बुढ़िया खुल चली। एक दीर्घ निश्वास छोड़कर उसने कहा—"क्या कहूँ भाई, मैं तो तीर्थ-यात्रा करती रहती हूँ। आज-कल हरिद्वार थी। वहीं मुझे छोटी भतीजी का पत्र मिला कि संतोष बीमार है।"

"संतोष ?"—ताँगेवाले ने चौंक कर पूछा।

"क्यों ?"—वृद्धा बोली।

"कुछ नहीं।"—ताँगेवाले ने दीर्घ निश्वास छोड़ा। उसने कहा—"मेरे घोड़े का नाम भी संतोष है।"

उसका मुख पीला पड़ गया था, वृद्धा ने यह नहीं देखा। वह अपनी बात कहती गई।—"क्या कहूँ भाई, चाँद जैसी लड़की है। उसके मा-बाप लाहौर में रहते थे। वहीं एक लड़के के साथ उसका विवाह हुआ था। विवाह के बाद मेरे भाई और भावज का देहान्त हो गया और घर में केवल मेरा भतीजा और छोटी भतीजी रह गये। पीछे भतीजा जालन्धर में नौकर हो गया। तब छोटी लड़की भी अपने भाई के साथ यहीं आ गई। मैं लड़की के विवाह में शामिल न हो सकी थी, बहुत बीमार थी। तब नई-नई चोट सहनी पड़ी थी। उनकी मृत्यु हो गई थी।"...और अपने स्वर्गीय पति के निधन का ध्यान आते ही वृद्धा की आँखें भर आईं और कंठ भी आर्द्र हो उठा। दुपट्टे से आँखें पोंछ कर उसने फिर कहना शुरू किया—"तब सुना था कि लड़का सुन्दर है। बीमारी से आराम पाने पर मन ऐसा उचाट हुआ कि मैं तीर्थ-यात्रा को चल पड़ी। हरिद्वार में मुझे सन्तोष की बीमारी का पत्र पहुँचा और फिर तार—शायद बीमार होकर भाई के पास आ गई है। तभी सब तीर्थ छोड़-छाड़ भागी आई हूँ। जाने उसका क्या हाल है ? पत्र में लिखा था कि बहुत कमज़ोर हो गई है। कंकालमात्र—भाई ज़रा जल्दी करो न !"

और ताँगेवाले ने फटी हुई आस्तीन से आँखों को पोंछते हुए घोड़े की लगाम ढीली छोड़ कर एक बार कहा—"चल बेटा !"

× × ×

आकाश पर बादल घिर आये थे, सूरज अस्ताचल की ओर जा चुका था। छावनी की सड़क पर फाटक की दाईं ओर एक साधारण सा कच्ची ईंटों का मकान था, उसके आगे एक छोटा सा बरामदा था, जिस पर सरकंडों का छप्पर पड़ा था। मकान के एक ओर कुआँ था, जो शायद शेरशाह सूरी के ज़माने का बना था और बड़ी सड़क पर लम्बी यात्रा करनेवालों की प्यास बुझाने के काम आता था। कुएँ पर एक ग्यारह बारह वर्ष की लड़की पानी भर रही थी। सुनसान-सी जगह और सन्ध्या का उदास वातावरण ! उस छोटे-से मकान पर कुछ ऐसी वेदना सी बरस रही थी कि ताँगेवाले ने अनायास ही वहाँ ताँगा रोक दिया। लड़की ने मुड़कर देखा और दौड़कर वृद्धा से लिपट गई—"आ गईं बुआ !"

बुआ ने उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरा और उसकी आँखें भर आईं।

ताँगेवाले ने सामान उठाया और वह बरामदे की ओर चला।

"सन्तोष कहाँ है ?"—बुआ ने पूछा।

"अन्दर !"

दोनों अन्दर गईं, बुआ ने जैसे दौड़ कर अपनी बीमार भतीजी के मस्तक को चूम लिया।

सन्तोष ने आर्द्र, दयनीय आँखों से बुआ की ओर देखा और बुआ ने साड़ी के छोर से अपनी आँखें ढँक लीं।

पीला काला-सा पड़ा चेहरा, पिचके गाल, जबड़ों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उभरी हुई हड्डियाँ, रूखे शुष्क बाल, हड्डियों का ढाँचा जीर्ण-शीर्ण शरीर—सन्तोष बिस्तर पर क्षय की आग में झुलसी पड़ी थी। अतीत का जैसे सब कुछ झुलस गया था, जल गया था। बच गई थीं केवल आँखें—बड़ी बड़ी गोल आँखें, पर श्री उनकी भी जैसे फीकी पड़ चली थी। बुआ का हृदय जैसे बाहर उछल पड़ने को हो गया।

अपने हाड्डियों ऐसे हाथ उठा कर सन्तोष ने बुआ को प्रणाम करने का यत्न किया, पर हाथ काँपने लगे, बोलना चाहा, पर खाँसी के मारे बेहाल हो गई। तब दो बड़े-बड़े आँसू, उसके सूखे गालों के गढ़ों में डूब चले। बुआ उसके सिरहाने बैठ गई। बहते हुए आँसुओं को उसने पोंछ डाला और सान्त्वना के स्वर में बोली—"जी क्यों छोटा करती हो? देखो अब मैं आ गई हूँ। अब कुछ दिनों में ही तुम अच्छी हो जाओगी। भला हेम कहाँ है? दवाई लेने गया होगा!"

हेम के नाम पर रुग्णा के पीले चेहरे पर एक व्यङ्ग्य भरी मुस्कान एक निमिष के लिए आई और फिर स्याही में परिणत हो गई।

बुआ ने लड़की से पूछा—"क्यों विमला, हेम कहाँ है?"

विमला के नथने फड़कने लगे—"वही तो इस रोग का कारण है बुआ....."

"वह—हेम!"

"हाँ वही।"

"क्या?"

और विमला का क्रोध कहनी-न-कहनी बात की अपेक्षा किये बिना बोल उठा—"जीजा जी ने बहन की क़द्र नहीं की, बुआ। वे फ़ैशन के दीवाने हैं। चाहते थे कि बहन का हाथ थामकर ठंडी सड़क पर घूमें, लारेंस की सैर करें। अधिक शिक्षित न होकर भी वे चाहते थे शिक्षितों की नक़ल करना। और बहन को तो तुम जानती हो, कैसी शिक्षा मिली है। जीजा जी ने इसे न समझा, बुरे रास्ते में पड़ गये और जब सब कुछ समाप्त हो गया तब एक दिन बहन के गहने उठा कर भाग गये।"

सन्तोष ने जैसे असह्य पीड़ा से थूक निगला। इस प्रसंग से न जाने उसे कितना कष्ट हो रहा था!

उसके सिर पर प्यार से हाथ फेर कर बुआ ने धीमे से पुकारा—"सन्तोष!" और ऐसी आँखों से देखा, मानो पूछ रही हो कि यह सब सच है क्या।

सन्तोष की आँखों से केवल आँसू बह निकले।

× × × ×

"तुम अभी यहीं बैठे हो?"—बुआ ने बाहर आकर कहा।

"तांगेवाला चुप रहा।"

"क्या कहूँ भाई, लड़की की हालत देखकर कलेजा मुँह को आता है। मैं तो उसका कष्ट देखकर, सब कुछ भूल गई। दो साल की बात है. वह भली-चंगी थी—हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ! पर आज वह ककालमात्र है, भाई!"

तांगेवाले की आँखों में आँसू भर आये थे। उसने उन्हें छुपाने के लिए मुँह फेर लिया।

"तुम रोते हो भाई!"—बुआ ने आर्द्रकंठ से कहा—"जो भी देखेगा दुखी होगा।"

तांगेवाला चुप रहा, केवल उसने अपने मैल से सने कुर्ते की आस्तीन से आँखें पोंछ लीं।

"अच्छा भाई!" जेब में पैसों के लिए हाथ डालते हुए बुआ ने कहा—"तुम्हें देर हो रही है, अब तुम जाओ।"

पश्चिम की ओर से बढ़ते हुए गहरे अँधेरे को एक नज़र देखकर तांगेवाले ने कहा—"अब मैं कहाँ जाऊँगा, भाई। यहीं न लेट रहूँ। शायद बाज़ार से कोई चीज़ लानी पड़े!"

कुछ सन्देहभरे स्वर में बुआ ने कहा—"नहीं भाई, अपने घर जाओ। यहाँ कहाँ रहोगे? कोई जगह भी हो, और यह कह कर बुआ ने आठ आने पैसे उसके हाथ पर रख दिये।

तांगेवाला उठा—"अच्छा तो भाई सुबह मैं आ जाऊँगा। बीमार की हालत ठीक नहीं और यह जगह शहर से इतनी दूर है—शायद कोई चीज़ ही लानी पड़े।"

अन्दर से खाँसने की आवाज़ आई। बुआ भाग कर अन्दर चली गई।

सन्ध्या का अँधेरा और भी गहरा हो गया था। दूर कहीं-कहीं कोई दीपक म्रियमाण व्यक्ति की झिलमिलाती आशा की भाँति चमक उठा था। तांगेवाला उठा, अन्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनस्कता से उसने ताँगे की बत्तियाँ जलाईं और फिर उसे शहर की तरफ़ मोड़ दिया।

अड्डे के पास एक छोटी-सी कोठरी थी। उसी में वह रहता था। उस रात को वह सो नहीं सका। रुग्णा की मुरझाई, फीकी, श्रीहीन आँखें उसके सामने घूमती रहीं!

× × × ×

दूसरे दिन सन्तोष की हालत पहले से भी ख़राब हो गई। विमला दिन भर रोती रही। बुआ भी जी को सँभाले उसकी सेवा-शुश्रूषा में लगी रहीं। सन्तोष का भाई नरेन्द्र इतनी छुट्टियाँ ले चुका था कि अब और छुट्टी उसे मिलनी मुश्किल थी। वह सुबह दवाई आदि की व्यवस्था करके दफ़्तर चला गया था। उसके जाते ही ताँगेवाला वहाँ पहुँच गया। सहृदय, ग़रीब व्यक्ति! जाने कौन सी चोट खाये हुए था। सारा दिन उससे जितना बन पड़ा उसने उनकी सहायता की। दो बार तपती धूप में उसे शहर जाना पड़ा। अपने प्रिय घोड़े को भी आज उसने आवश्यकता से ज़्यादा कष्ट दिया। उसे दाना देना तक वह भूल गया।

मध्याह्न के समय वह बीमार के लिए दवाई तैयार कर रहा था। बुआ और विमला कुएँ पर पानी लेने गई थीं, सन्तोष को ज़ोर की खाँसी आई, वह हड़बड़ा कर अन्दर पहुँचा। उसे ख़ून आया था, उसने उसे पानी दिया। सन्तोष ने आँखें खोल दीं, देखा सामने ताँगावाला खड़ा है और उसकी आँखें भीगी हुई हैं। वह आँखें बन्द न कर सकी। उसकी ओर आश्चर्यान्वित देखती ही रही।

ताँगावाला उसके और समीप आ गया। भरे हुए गले से उसने पूछा—"अब जी कैसा है?"

रुग्णा ने उत्तर नहीं दिया। वह केवल उसकी ओर देखती रह गई और फिर उसने एक बार ही अपनी आँखें बन्द कर लीं।

ताँगेवाले ने कहा—"देवी, अपने क्रूर पति को माफ़ कर दो। ताकि जब उसका अन्त-समय आये वह शान्ति से मर सके। लाख पापी है, फिर भी तुम्हारा पति है।"

सन्तोष ने आँखें खोलीं और ऐसे सिर हिलाया जैसे वह उसे पहचानती हो या उसकी बात समझती हो। फिर उसने एक लम्बी साँस लेकर आँखें बन्द कर लीं। उसके चेहरे पर शान्ति थी, जैसे उसके मन का बोझ उतर गया हो, जैसे उसने अपने पति को क्षमा कर दिया हो।

ताँगेवाला चुपचाप बरामदे में वापस आ गया। आँखों के आँसू उसने पोंछ लिये और वह दवाई रगड़ने लगा। तभी विमला आ गई। पानी रखकर और हाथ पोंछकर उसने बहन के मस्तक पर हाथ रक्खा। ज्वर का नाम न था। रुग्णा के शुष्क होठों पर मुस्कराहट खेल रही थी। वह भाग कर बाहर आई। बुआ को पुकार कर उसने कहा—"बुआ, बहन का ज्वर उतर गया है।"

"ऐं!"—बुआ के चेहरे पर एक स्याह बादल छा गया।

"हाँ!"—विमला ने अपने उल्लास में कहा।

"तो बस, अन्त समझो!"

विमला के चेहरे का रंग उतर गया।

दोनों अन्दर उसके पास गईं। बुआ ने पुकारा—"सन्तोष, बेटी!" "हाँ बुआ।"—अत्यन्त धीमे स्वर में सन्तोष ने उत्तर दिया। उसमें जैसे बोलने की शक्ति आ गई थी।

'कैसा जी है बेटी?'

"बस अब अन्त आ गया है, बुआ।"

नहीं, ऐसा न कहो।"—बुआ ने जैसे उसकी अपेक्षा अपने आपको हौसला देते हुए कहा। पर साथ ही उसने उसके मुड़ते हुए हाथों को भय से देखा।

विमला का हाथ सन्तोष ने अपने काँपते हाथ में ले लिया और उस पर अपना लकड़ी जैसा हाथ फेरा।

विमला के शरीर में सनसनी दौड़ गई।

धीरे-धीरे उखड़े उखड़े स्वर में सन्तोष ने कहा—"तुम सुखी रहो बहन, तुम्हारा विवाह अच्छी जगह हो, तुम्हें अच्छा वर मिले, यही मेरी अन्तिम कामना है।"

फिर कुछ साँस लेकर बोली—"मैं सुखी हूँ, मुझे कोई चिन्ता नहीं, मुझे अब आराम है और मैं आराम से मर रही हूँ।"—यह कहते कहते उसकी नाक मुड़ गई, आकृति बिगड़ गई, साँस भी उखड़ गई। दोनों ने उसे जल्दी से बिस्तर से उतार कर फ़र्श पर लिटा दिया।

× × ×

बुआ ने कहा—"चलो भाई तुम भी चलो, अब!"

ताँगे वाले ने उत्तर न दिया।

"तुम्हें धन्यवाद मैं किस मुँह से दूँ, भाई। तुम न होते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो न जाने सन्तोष को मरते समय कितना कष्ट होता, पर तुम्हारे कारण वह आराम से मरी, तुमने उसकी बड़ी सेवा की। परमात्मा तुम्हें उसका फल देगा।"

तांगेवाले ने कोई उत्तर न दिया।

दफ़्तर से नरेन्द्र के आ जाने पर सन्तोष का मृतक शरीर वहीं जला दिया गया। सब वापस शहर जाने को तैयार हुए। अधिक रोने से विमला की आँखें सूज गई थीं; उसके चेहरे पर उन्माद सा छाया हुआ था।

एक वृक्ष के नीचे तांगेवाले का घोड़ा भूखा-प्यासा खड़ा था, तीन दिनों से उसने घोड़े की सुध न ली थी; बीमार सन्तोष के लिए उसने अपने स्वस्थ सन्तोष को बीमार-सा कर दिया था।

बुआ ने कहा—"अपने घर न चलोगे?"

तांगेवाले ने उत्तर न दिया।

बुआ ने फिर पूछा—"अपने घर न चलोगे, भाई?"

अब तांगेवाला बोला—"नहीं।"

"क्यों?"

"मैंने अपना जीवन यहीं बिताने का निश्चय कर लिया है?"

"किस लिए?"

"अपने पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए!"

"कैसे पाप?"

"जो मैंने सन्तोष के साथ दुर्व्यवहार करने में किये!"

"सन्तोष के साथ!"

नरेन्द्र तांगेवाले के समीप आ गया। उसने उसे अच्छी तरह देखा और चौंक कर बोला—"कौन? हेमराज!"

तांगेवाले ने केवल आँखें उठाकर उसकी ओर देखा और फिर गर्दन झुका ली।

नरेन्द्र ने उपेक्षा से मुँह फेर लिया।

बुआ ने भौंवें सिकोड़ लीं।

विमला ने एक बार उसकी ओर देखा और सड़क की ओर चल दी।

हेम ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा और वह अपने घोड़े के पास जाकर उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा।

वसन्त

लेखक, श्रीयुत सागरसिंह 'नागर'

'जग-पथ मधुमय, जोवन पागल'
सन्देश नवल लाया वसन्त

तरु पात पात को चूम चूम
जग कानन में भर प्रणय-गान
नीला पीला आवरण लिये
लो, आया जग का नव विहान
जीवन में रे! यह मधुबेला
आई अनादि का गान लिये
लो रूप-रश्मि के दोलों पर
बिछ गई भैरवी तान लिये
यौवन का मधु उपहार चुरा
उन्मुक्त हुआ जीवन अनन्त!
कलि में, अलि में, जग-कण-कण में
रे मधु भरता आया वसन्त!

'आया वसन्त' पिक बोल उठो
द्रुत हिलो जगत को डाल-डाल
स्वागत, स्वागत ओ नभवासिनि!
स्वागत, स्वागत ओ मधुर चाल!
लो, विहँस उठीं कोमल कलियाँ
अलि पर मस्तों का भार नया
चुम्बन करने को साध नवल
कवि देख रहा संसार नया!
गायक मस्तों में झूम-झूम
कहता, "वसन्त का हो न अन्त"
प्रेयसि का बिछुड़ा प्यार लिये
रे आया यह प्रेमी वसन्त!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्ष—उसकी साधना का चढ़ाव-उतार

लेखक, श्रीयुत हजारीप्रसाद द्विवेदी

पण्डित द्विवेदी रवीन्द्र बाबू के शान्ति-निकेतन में हिन्दी व संस्कृत साहित्य के प्रोफ़ेसर हैं। आपका अध्ययन बहुत गम्भीर व विशाल है। अपनी विचारपूर्ण आलोचनाओं के द्वारा आप हिन्दी-साहित्य में काफ़ी प्रसिद्ध भी हो चुके हैं। अपने इस लेख में आपने दिखलाया है कि भारत की वर्त्तमान अधोगति का कारण कोई बाह्य या आकस्मिक घटना नहीं है। यह तो भारत के अपने सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक परीक्षण का अवश्यंभावी फल है। फलतः इस अधःपतन में भी भावी उन्नति की आशा का बीज उपस्थित है।

(१)

शान्ति-निकेतन में भ्रमणार्थ आई हुई अमेरिकन वृद्धायें जब आये दिन स्नेह-व्याकुल स्वर में पूछती हैं कि—अँगरेज़ों के चले जाने के बाद भारतवर्ष का क्या होगा?—तो उत्तर देनेवाले को ज़रा असमंजस में पड़ जाना पड़ता है। कूटनीतिज्ञ योरपियन सांवादिक को आप आसानी से जवाब दे सकते हैं—आपको चिन्तित होने की कोई ज़रूरत नहीं, हम अपनी देख लेंगे, परन्तु वह उत्तर यहाँ उपयुक्त न होगा। समवेदनाशील यवद्वीप-वासी को आप पुचकार कर कह सकते हैं—अँगरेज़ों के इस देश में वास करने से बड़ा रोग यहाँ कुछ भी नहीं है, उनके हटते ही केवल कमज़ोरी दूर करने के लिए किसी पौष्टिक दवा की ही ज़रूरत रह जायगी; पर अमेरिकन वृद्धा को आप इस उत्तर से सन्तुष्ट नहीं कर सकते। क्योंकि अँगरेज़ कूटनीतिज्ञ को भारतीय दुर्बलता की अपेक्षा अपनी नैतिक कमज़ोरी का अधिक ज्ञान होता है और समवेदनाशील विदेशी को योरपियन शासन के ज़हरीलेपन का पूर्ण अनुभव होता है, पर अमेरिकन वृद्धा यह भी नहीं है, वह भी नहीं है। निरन्तर प्रचार के फल-स्वरूप उसके पल्लवग्राही मस्तिष्क में यह बात भरी हुई है कि अँगरेज़ ही भारतीय शान्ति और व्यवस्था के स्रष्टा, पालक और नियन्ता हैं और अँगरेज़ी शासन की ज़हरीली भेदनीति का प्रत्यक्ष परिणाम साम्प्रदायिक कलह स्वभावतः ही उसकी पूर्व निर्णीत धारणाओं को दृढ़ करती है। और ज़रा अधिक टकटोर कर यदि वृद्धा के दिमाग़ की जाँच की जाय तो शीघ्र ही पता चल जायगा कि कोड़ियों अशिक्षित, अर्द्धशिक्षित और अपशिक्षित भारतीय—जिनमें अँगरेज़ी शासन-व्यवस्था के वाहक, होटलों के मैनेजर और स्टेशनों के कुली तक शामिल हैं—उसको निश्चय-पूर्वक बता चुके हैं कि भारतवर्ष में ईमानदार आदमियों का नितान्त अभाव है! अमेरिकन वृद्धा जब आग्रहपूर्वक प्रश्न करती है तो उसके प्रश्न का सीधा-सा अर्थ यह होता है कि भारतीय चरित्र में क्या सचमुच कहीं तेज है, भारतीय जन-समुदाय में क्या धारक शक्ति का प्रवाह है, भारतवर्ष के भीतर क्या बलदृप्त आधुनिक राष्ट्रों के विकराल आक्रमण को रोकने की शक्ति है? संक्षेप में वह जानना चाहती है कि भारतवर्ष क्या है और क्या नहीं है। गन्दी और तंग गलियों में रहनेवाले, घूरे और करकट-वाही ग्रामों में बसनेवाले, दरिद्र, अकिञ्चन, आत्मविश्वासहीन, रूढ़ियों और अंधविश्वासों से जर्जर, परिवार-भार से दबे हुए, मेरुदण्डहीन, निस्तेज, भुक्खड़ों का यह देश ही क्या भारतवर्ष है? या स्वाभिमान-शून्य, पैसे पैसे के लिए सलाम बजानेवाले, पैसे-दो पैसे के लिए धोखा देनेवाले, चरित्र-हीन नक़्क़ालों का देश भारतवर्ष है? बाहर भारतवर्ष के इसी रूप का विज्ञापन है, और भीतर प्रवेश करते ही भारतवर्ष का यही रूप विदेशी की नज़रों से टकराता है—उसका पूछना स्वाभाविक ही है कि यह भारतवर्ष किस प्रकार के भविष्य का सपना देखता है।

भारतवर्ष अमेरिका की तरह बालक नहीं है। कालचक्र की अनेक लीकें उसके पुराण-शरीर पर अपना चिह्न छोड़ गई हैं। बड़े-बड़े साम्राज्य उसकी धूल में दबे हुए हैं, बड़ी बड़ी धार्मिक घोषणायें उसके वायुमण्डल में निमग्न हो गई हैं, बड़ी बड़ी सभ्यतायें उसके प्रत्येक कोने में उत्पन्न और विलीन हो चुकी हैं—इनके निर्जीव स्मृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिह्न अब भी खड़े हैं, मानो अट्टहास करती हुई विजय-लक्ष्मी को बिजली मार गई हो। अँगरेज़ों के आने के—यहाँ तक कि उनके पैदा होने के—हज़ारों वर्ष पहले से भारतवर्ष था और उनके जाने के भी हज़ारों वर्ष बाद तक रहेगा। अनादिकाल से इस महादेश में आर्य, अनार्य, शक, हूण, किरात, यवन आदि जातियाँ आती रहीं और क्षण भर के लिए अपने विजय-निनाद से दिगन्त मुखरित कर देती रहीं; क्षण भर के लिए इस महामानव-समुद्र के ऊपरी सतह को विक्षुब्ध कर देती रहीं, परन्तु अन्त तक कोई भी उसकी महिमा को खर्व नहीं कर सका। ऊपर-ऊपर से देखनेवाले को यह बात एक अद्भुत विरोधाभास जैसी दिखेगी, पर है यह सच। देखा जाय वह क्या वस्तु है जो हज़ारों वर्ष पहले से है और हज़ारों वर्ष बाद तक रहेगी, जो भारतवर्ष की आत्मा है, जो उसके बाह्य शरीर के परिवर्तित होते रहने पर भी एक-रस है। जाति-पाँति के ढकोसलों से शतधा विच्छिन्न, बात-बात पर साम्प्रदायिक असहन-शीलता का शिकार, दर्जनों रेसों, कोड़ियों भाषाओं, सैकड़ों टुकड़ियों का दावेदार, हज़ारों वर्ष का कुचला हुआ भारतवर्ष क्यों ऐसा है, क्यों दूसरा कुछ नहीं हुआ और क्यों सदा के लिए धरती पर से उठ नहीं जायगा? इस प्रश्न का उत्तर खोजते समय हमें केवल एक बात ध्यान में रखनी होगी। आज जो भारतवर्ष की ऊपरी सतह दिखाई दे रही है वह उसका स्वाभाविक रूप नहीं है; एकाएक अनेक जातियों के आचार, विचार, दबाव, प्रचार आदि के परिणामस्वरूप वह विक्षुब्ध हो गया है। तूफान के समय समुद्र की ऊपरी सतह की उथल-पुथल से उसकी भीतरी शान्ति या गहराई का अनुमान करना असंगत है। पीड़ित मनुष्य की बर्राहट उसके चरित्र की निर्णायक नहीं हो सकती, और सड़कों, गलियों और बाज़ारों में सलाम बजानेवाली जनता भी भारतीय चरित्र की गवाही नहीं दे सकती।

(२)

कल्पनातीत-काल से भारतवर्ष ने अपने अनुभवों, विश्वासों और आचरणों का हिसाब रखा है। उसका साहित्य संसार में सबसे प्राचीन ही नहीं है वह सबसे अधिक समृद्ध भी है और जैसा कि स्वर्गीय विंटरनित्स ने कहा है (हिस्ट्री आफ़ इंडियन लिटरेचर, भू० पृ० १) 'भारतीय साहित्य में वह सब कुछ है जो 'साहित्य' शब्द के व्यापकतम अर्थ में अन्तर्भुक्त हो सकता है; धर्म-मूलक ग्रन्थ, ऐहिकतापरक (सेक्यूलर) रचनायें, महाकाव्य, नाटक, आख्यायिका, नीति-काव्य से लेकर वर्णनात्मक और वैज्ञानिक गद्य तक इस साहित्य में भरे पड़े हैं।' श्लिगल ने सौ वर्ष पहले कहा था कि संस्कृत-साहित्य अकेला ही ग्रीक और रोमन-साहित्य से कई गुना बड़ा है। श्लिगल के उक्त कथन के बाद निरन्तर नये-नये ग्रंथों का पता लगता गया है। मध्य एशिया और चीनी तुर्किस्तान से लेकर कम्बोडिया तक विस्तीर्ण भूभाग में हज़ारों वर्ष तक इस साहित्य की रचना होती रही है। अधिकांश खो जाने के बाद भी संस्कृत-साहित्य के ग्रंथों की संख्या आधे लाख को पार कर चुकी है और फिर भी आज तिब्बत से और कल चीन से नये नये ग्रंथ मिलते ही रहते हैं। इनमें पाली, प्राकृत, अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं की ग्रंथ-संख्या जोड़ दी जाय तो इस विराट् ग्रंथभाण्डार की तुलना हो ही नहीं सकती। अधिकारी विदेशी पंडित यह देखकर आश्चर्य में आ गये हैं कि इस विराट् ज्ञान-भाण्डार में प्रत्येक पंक्ति सोच-समझकर लिखी गई है; ग्रंथकार ने केवल नाम कमाने के लिए, या केवल बकवास की तृषा मिटाने के लिए कुछ भी नहीं लिखा। जो कुछ लिखा है वह जीवन के सर्वश्रेष्ठ अनुभव को ईमानदारी के साथ व्यक्त करने के पवित्र उद्देश्य से लिखा है। सच पूछा जाय तो, जैसा कि डाक्टर केर्न ने (वृहत्संहिता, भूमिका पृ० ५२) लिखा है, "इस प्रकार की धारणा कि मनुष्य का मस्तिष्क उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति है हिन्दुओं में तो ज्ञात ही नहीं थी। यह धारणा योरप में (पुस्तक लिखकर नाम और धन कमाने के रूप में) अत्यन्त उपहासास्पद परिस्थिति को पहुँच चुकी है।" भारतीय आचार्य ने ज्ञान-चर्चा को यज्ञरूप में स्वीकार किया है, उसके साथ उसका सम्बन्ध पवित्र पूजा का सम्बन्ध है, मनोविनोद या आत्माभिव्यक्ति का नहीं। इतना ही नहीं, ज्ञान-चर्चा को भारतीय पंडित ने जीवन की सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी के रूप में ग्रहण किया है, वह ऋषि-ऋण से उऋण होने की ज़िम्मेदारी है।

इस विराट् प्रयत्न के पीछे कितना संयम, कितनी निष्ठा और कितना त्याग है वह समझने के लिए दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बातें नोट कर लेनी चाहिए। आज हम ज्ञान के अर्जन और विकिरण में जितनी जल्दबाज़ी कर रहे हैं वह भारतीय मनीषा को एक-दम अज्ञात थी। हम संसार को कुछ नया देने के लिए व्याकुल रहते हैं, पुराने का अनुवर्तन आज एक दोष माना जाता है। भारतीय ग्रन्थकार ने कभी नया—कुछ देने का दावा नहीं किया। वह ज्ञान को अनादि अनन्त मानता रहा। उसके मत से ज्ञान का दर्शन पहिले से ही अलौकिक शक्तिशाली ऋषियों ने कर लिया था। वह केवल उसे स्मरण (स्मृति) या व्याख्यान (भाष्य) या बोधगम्य (टीका) करता रहा है। जो कुछ भी उसने सोचा विचारा उसे प्रकाश करने में वह तब तक हिचकता रहा जब तक किसी श्रुति, आगम या निगम का प्रमाण नहीं मिल गया। शंकर और कुमारिल, ब्रह्मगुप्त और भास्कर, चरक और सुश्रुत, कालिदास और भवभूति—जिनके ज्ञान-विज्ञान और रस-साहित्य की महिमा सारा संसार स्वीकार कर चुका है, सदैव सबने अपनी प्रतिभा को अनादि ज्ञान के अधीन माना है। इसी लिए उच्छृङ्खलता नामक वस्तु प्राचीन भारतीय साहित्य में एक-दम अपरिचित है। भारतीय साहित्य की विशालता के साथ इस संयम और निष्ठा का जो मणिकाञ्चन योग हुआ है उसने उसे एक अपूर्व श्री से समृद्ध किया है। परन्तु साथ ही उसने उस साहित्य के संस्कारों से संस्कृत जनता में अपने व्यक्तित्व के प्रति उपेक्षा पैदा कर दी है। आज इस श्रद्धावनत समाज को देख कर विदेशी की आँखों में घृणा भर आती है। वह तिरस्कार के साथ सोचता है कि इस बेहूदी जनता का संसार में क्या स्थान हो सकता है? आज इस भौतिक अधिकार-लिप्सा की अहमहमिका से व्याकुल जगत् में जो सिर ऊँचा करके और छाती फुलाकर चलना नहीं जानता, उसके जीवित रहने का औचित्य स्वीकार ही नहीं किया जाता। परन्तु औचित्य स्वीकार किया जाय या नहीं, भारतवर्ष फिर भी जीता रहेगा और शान के साथ जीता रहेगा, क्योंकि उसका पूववर्ती सन्तानों ने जो तपस्या की है वह व्यर्थ नहीं जा सकती।

जिन्होंने भारतीय साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया है उन्होंने देखा है कि इसके उत्पादयिता मनीषियों ने जीवन को समग्र भाव से देखा है। उसके सात्त्विक, राजसिक और तामसिक पहलुओं का विवेचन किया है और तद्वत् प्रकृति के मनुष्यों का कर्तव्य निर्देश किया है। उन्होंने जीवन के चारों लक्ष्यों—पुरुषार्थों—की सूक्ष्म विवेचना की है और जीवन के नाना व्यापारों में उनके सन्तुलन का पूरा ध्यान रखा है। उन्होंने जीवन के प्रत्येक सोपानों—आश्रमों—का चिन्तन किया है और इस बात का ध्यान रखा है कि व्यावहारिक जगत् में किसी एक का पलड़ा भारी न हो जाने पावे और दूसरे का हलका न हो जाय। उन्होंने मानवजीवन के तीनों आधारों की—कर्म, भक्ति और ज्ञान की—और पूरी सतर्कता रखी है। इससे अधिक संपूर्ण जीवन की कल्पना किसी जाति ने नहीं की है। और जैसा कि बिल्सन ने कहा था—उस (हिन्दू) के के समान जीवन को सम्यक् दृष्टि से देखनेवाली जाति को दुनिया आज भी नहीं जानती।

इस स्थान पर मुझे ग़लत समझा जा सकता है। मैं यह नहीं कहता कि इस प्रकार जीवन को समग्रभाव से देखनेवाले मनीषियों की सन्तान आज संसार की सर्वश्रेष्ठ जनता है। एकदम नहीं। उलटे वह आज अत्यन्त संकीर्ण दर्शी हो गई है। उसके कारण हैं। मैं उन कारणों को यथासाध्य समझने की चेष्टा करनेवाला हूँ। मैं केवल यह कहना चाहता हूँ कि इस जनसमुदाय के पूर्व पुरुषों की तपस्या व्यर्थ नहीं जायगी और कुछ अंशों में अब भी व्यर्थ नहीं हुई है। आज भी उस चिन्ता से परिचित लोगों का चरित्र इस बात का सबूत है। आज से आधी शताब्दी पहले लंदन में सिविल सर्विस के परीक्षार्थियों के सामने भाषण देते हुए प्रो० मैक्स मूलर ने कहा था (इंडिया हाट कैन इट टीच अस, पृ० ६३) कि "गत बीस वर्षों में मुझे अनेक भारतीय विद्वानों के चरित्र का पर्यवेक्षण करने का सुन्दर सुयोग मिला है। ऐसे भी अवसर मिले हैं जब कि मनुष्य के असली चरित्र का परिचय पाना कठिन नहीं है—मेरा मतलब साहित्यिक वादविवादों से है। मैंने ध्यानपूर्वक उनको आपस में और योरपियन पांडतों के साथ तर्क करते देखा है, और मुश्किल से एक अपवाद को छोड़कर मैं यह कहने को बाध्य हो रहा हूँ कि हम योरप और अमेरिका में सत्य के प्रति जो सम्मान प्रकट करने के अभ्यस्त हैं उससे कहीं अधिक सम्मान इन भारतीय पण्डितों ने प्रकट किया है, और उनके अन्दर कहीं अधिक पुरुषोचित उदारता के भाव वर्तमान हैं। उन्होंने अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्ष के समर्थन में दृढ़ता तो दिखाई है किन्तु उद्दण्डता बिलकुल नहीं; यही नहीं, कुछ योरपियन पण्डित जिस प्रकार के रूढ़ गाली-गलौज पर उतर आये हैं, इससे अधिक आश्चर्य उन्हें और किसी बात से नहीं हुआ है। क्योंकि उन्होंने मानव-प्रकृति को जिस रूप में देखा है उसके अनुसार वाणी का असंयम और औद्धत्य केवल नीच-वंश-जात होने का ही सबूत नहीं है बल्कि ज्ञान के अभाव का भी ज्वलन्त प्रमाण है। जब उन्होंने ग़लती की है तब साबित करते ही उसे स्वीकार कर लिया है, और जब वे सही पक्ष पर रहे हैं तब कभी भी अपने योरपियन प्रतिद्वंद्वियों के प्रति कटूक्ति नहीं प्रकाश की है। कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़ कर कहीं भी उनकी ओर से शब्दों की मार पेंच या वितण्डा या असत्यवादिता नहीं हुई है और यह तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उनमें वह निम्न कोटि की धूर्तता नहीं हैं जो हमारे उन विद्वानों में पाई जाती है जो उन बातों को लिखते हैं और प्रकाशित करते हैं जिनके विषय में वे ठीक जानते हैं कि ये बातें नितान्त मिथ्या हैं; और फिर भी उन पंडितों की ओर उँगली उठाया करते हैं जो विजय-वार्ता और करतल-ध्वनि की अपेक्षा सत्य और आत्म-सम्मान को अधिक मूल्यवान् समझते हैं।" भारतवर्ष को तीन दिन में इस सिरे से उस सिरे तक रौंदनेवाले विदेशी पत्रकार के विषय में मैक्स-मूलर साहब की क्या राय थी, यह जानने का आज कोई उपाय नहीं है।

(३)

जैसा कि ऊपर बताया गया है, भारतवर्ष ने अपनी समस्त चिन्ताओं का हिसाब रखा है। भारतीय पण्डित उनमें से किसी भी वक्तव्य के प्रति अनादर का भाव नहीं रखता। उसने सबको स्वीकार कर लिया है। हज़ारों वर्ष और हज़ारों योजन में विस्तृत इस विशाल चिन्ता-राशि में स्वभावतः ही अनेक परस्पर-विरोधी बातें हैं, इन सबके भीतर से अपने चलने का रास्ता निश्चित कर लेना दुःसम्भव व्यापार है। भारतीय पंडित ने इसी दुःसम्भव व्यापार को शिरोधार्य किया है। आज के अनादर-जर्जर युग में वह इसी लिए उपहासास्पद हो उठा है, परन्तु उसकी निष्ठा, उसकी सावधानता और उसकी सम्मान-भावना हँस कर उड़ा देने की चीज़ नहीं है। आज जो उसे हँस कर उड़ा देना सम्भव हुआ है, वह भी अपने आपमें बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है।

स्पष्टतः ही भारतवर्ष का सबसे कुत्सित रूप जो विदेशी को परेशान करता है उसका जाति-उपजातियों में विभक्त होना है। विदेशी इस विचित्र वस्तु को समझ नहीं पाता और बिना किसी हिचकिचाहट के उसके भद्देपन पर रिमार्क ठोंक देता है। हम आधुनिक शिक्षा-विकार-ग्रस्त लोग भी इस प्रथा को अपने पूर्वजों का अप्रज्ञाल्य कलङ्क समझते हैं। असल में भारतवर्ष में इतनी जातियों का होना प्राचीन भारतीय मनीषियों के लिए कलङ्क की बात नहीं है। जिन्होंने दक्षिण-अमेरिका और मेक्सिको के विजय की कहानियाँ पढ़ी हैं वे जानते हैं कि वहाँ किस प्रकार निर्दयता के साथ आदिम जातियों को ध्वंस कर दिया गया है। आर्य पूर्वजों ने उस क्रूर नीति का अवलम्बन नहीं किया। उन्होंने तद्वत् जातियों के किसी भी भीतरी व्यापार में हस्तक्षेप नहीं किया और न स्वयं अपने में हस्तक्षेप करने दिया। इसी का परिणाम है कि आज सैकड़ों जातियाँ अपनी सनातन प्रथाओं के साथ इस महा-देश में बास करती आ रही हैं। अगर आर्य-पूर्वजों ने योरपियन-पूर्वजों की भाँति समस्या हल की होती तो विदेशी की आँखों में भारतवर्ष का शायद उज्ज्वलतर रूप प्रतिच्छायित होता पर निश्चय ही उस अक्षम्य क्रूरता को भावी संसार क्षमा नहीं करता। जिस प्रकार हज़ारों वर्षों की समग्र ज्ञान-साधना को भारतीय मनीषियों ने स्वीकार कर लिया है और नाना भाँति के परस्परविरोधी मतवादों में से सावधानतापूर्वक अपना मार्ग निश्चित किया है, उसी प्रकार हज़ारों वर्षों की समस्त आदिम जातियों को भी उसमें अविचलित धैर्य के साथ स्वीकार कर लिया है। इन सबके भीतर से जीवन की उपयोगी मार्ग-पद्धत्ति स्थिर करने में भी उसे एक ओर दुस्सम्भव व्यापार का सामना करना पड़ा है।

यहाँ पर फिर एक बार ग़लतफ़हमी होने का मौक़ा है। हमारे कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि यह जाति-पाँतियों में शतधा विभक्त, शतच्छिद्र कलश के समान जर्जर भारतीय समाज संसार का सर्वश्रेष्ठ समाज है। एकदम नहीं। उल्टे उसमें अत्यधिक हीन-वीर्यता आ गई है। कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि भारतीय मनीषियों ने—आर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आर्येतर दोनों—अत्यन्त शान्ति, सहनशीलता और कठोर धैर्य के साथ छोटी-छोटी जातियों की स्वतन्त्र सत्ता को सुरक्षित रख कर जिस महासाधना की परम्परा क़ायम की है, वह व्यर्थ नहीं जायगी। आज भी व्यर्थ नहीं जा रही है। भारतीय जन-साधारण में आज भी जो सामाजिक और धार्मिक सहिष्णुता पाई जाती है वह उसी साधना का परिणाम है।

सवाल यह है कि ऐसी उदार तपस्या के परिणाम में ऐसी शिथिलता कैसे हुई। क्यों इतना विराट् ज्ञान-यज्ञ, इतनी धैर्यपूर्ण स्वातन्त्र्य-साधना आज व्यर्थ-सी हुई दिखाई दे रही है। आज शास्त्रीय मतवाद ढकोसले-से हो गये हैं, उनके दुर्विषह भार को हिन्दू-समाज ढोने में असमर्थ हो रहा है। जातियों का अस्तित्व आज केवल भारतवर्ष को लज्जित ही नहीं कर रहा है, पद-पद पर उसे अपमानित और अधःपातित कर रहा है। इस प्रश्न के अनेकानेक उत्तर दिये गये हैं, भविष्य में भी दिये जायँगे। समस्या सर्व-सम्मत है, उत्तर और समाधान के विषय में 'नैको मुनिर्यस्य वचो न भिन्नम्।'

ऐसा जान पड़ता है कि भारतीय मनीषियों ने जितने उच्च कोटि के ज्ञान का आविष्कार किया था, उसके विकिरण का वैसा प्रशस्त मार्ग नहीं खोला। जहाँ जातियों की भीतरी स्वतन्त्रता की रक्षा का पूरा यत्न किया गया वहाँ उनके भीतर प्रचलित अज्ञान और अन्धविश्वासों की रक्षा भी उसी सावधानी से होती रही। भारतीय परम्परा के अध्ययन से स्पष्ट ही जान पड़ता है कि तत्तत् जातियों और उप-जातियों में एक प्रकार की प्रकृति का आरोप करके उसे अपरिवर्तनीय मान लिया गया। शूद्रों के लिए पुराणों के द्वारा ज्ञान फैलाने की योजना चाहे जितनी भी साधु उद्देश्य-द्वारा प्रणोदित रही हो, ज्ञान के विशुद्ध रूप में प्रसार करने में वह असफल हुई। पुराण के रूपक अन्धविश्वासों के सहोदर हो उठे। दार्शनिकों और वैज्ञानिकों ने जहाँ पुराणपंथियों की खिल्ली उड़ाई वहाँ अन्य मार्ग के अनुसन्धान में दत्त-चित्त नहीं हुए। समग्र ज्ञान-साधना एक छोटे से सम्प्रदाय में आबद्ध हो गई। धीरे धीरे यह अपरिवर्तनीय सत्य के समान स्वीकार कर लिया गया कि तथा-कथित द्विजेतर जातियों में इस ज्ञान के प्रति आकर्षण होगा ही नहीं। जिनको इस प्रकार विशुद्ध ज्ञान से वंचित रहना पड़ा वे स्वभावतः ही समाज के भार हो उठे। जिन्हें दबा कर रखा गया वे ही पैरों को नीचे की ओर खींचने लगे। कवि ने अपने अभागे देश को लक्ष्य करके ठीक ही गाया है—(हे मेरे अभागे देश), जिन्हें तुमने अज्ञान के अन्धकार में रखकर ओट में ढक रखा है, वे ही आज तुम्हारे मंगल को ढक कर घोर व्यवधान की सृष्टि कर रहे हैं—अपमान में तुम्हें भी उन सबके समान होना पड़ेगा—

अज्ञानेर अन्धकारे आड़ाले ढाकिछ चारे
तोमार मंगल ढाकि' गड़िछे से घोर व्यवधान।
अपमाने होते हवे ताहादेर सबार समान।

(४)

महाभारत और रामायण के युग में यद्यपि कुछ छोटे-बड़े राज्य संगठित हो चुके थे, परन्तु जनसाधारण के साथ राजपुरुषों का व्यवधान बहुत अधिक नहीं था। महाभारत का कवि प्रयत्नपूर्वक सँभालकर अपने चरित्रों की रचना में दत्तचित्त नहीं हुआ। उसके चरित्र मिट्टी से उठे हैं और किसी की सहायता की अपेक्षा न रखते हुए ही बढ़े हैं। यदि यह महाकाव्य उस युग के भारतवर्ष का परिचायक है—और वह सर्ववादिसम्मतभाव से ऐसा ही है—तो स्पष्ट है कि वहाँ महलों और झोपड़ियों में नाम-मात्र का अन्तर है। महाभारत का शायद ही कोई उत्तम चरित्र महलों में पल कर चमका हो, सबके सब एक तूफ़ान के भीतर से होकर गुज़रे हैं, अपना रास्ता उन्होंने स्वयं बनाया और अपनी ही रची हुई विपत्ति की चिता में वे हँसते हँसते कूद गये हैं। निर्धन और राजेतर-कुल में उत्पन्न होने के कारण कोई भी अपने को छोटा नहीं समझता। उसका अदना से अदना चरित्र भी डरना नहीं जानता। इस युग के बाद भारतवर्ष को विदेशी राष्ट्रों का मुक़ाबला करना पड़ा। यवनों, शकों, आभीरों आदि के निरन्तर धावे होते रहे। जीवित भारतीय राजसत्ता शीघ्र ही चेत गई और इन हमलों की प्रतिक्रिया के रूप में बड़े बड़े साम्राज्य संगठित हुए। भारतवर्ष ने पहली बार राजा और प्रजा के व्यवधान को निविड़ अभाव से अनुभव किया। सन् ईसवी के दो चार सौ वर्ष पहले से लेकर दो चार सौ वर्ष बाद तक यह नया भाव भारतीय अन्तरीप के इस छोर से उस छोर तक उठता-गिरता रहा और आज से लगभग डेढ़ हज़ार वर्ष पहले निश्चित रूप से यह आर्थिक और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीतिक व्यवधान गम्भीर और स्थायी हो उठा। इस काल को विदेशी ऐतिहासिक भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग कहता है। उसका कहना स्वाभाविक है। वह इस युग में ग्रीक और रोमन स्वर्णयुग का आभास पाता है। अपनी प्रकृति के अनुकूल अवस्था को पसन्द करना अस्वाभाविक नहीं है।

परन्तु इस भारतीय इतिहास के 'स्वर्णयुग' का परिणाम ही आधुनिक भारत है। आज भारतवर्ष जिन धार्मिक, सामाजिक या अन्य शास्त्रीय विधि-निषेधों से परिचालित है उनमें का अधिकांश—प्रायः सबकी—रचना इसी 'स्वर्ण-युग' में हुई थी। मनु, पराशर, याज्ञवल्क्य और अन्यान्य ऋषियों की स्मृतियाँ, सूर्यसिद्धान्तकार, बराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त आदि के ज्योतिषग्रन्थ, विष्णु, पद्म, भागवत आदि महापुराण, चरक, सुश्रुत आदि के चिकित्साग्रन्थ, कालिदास, बाण और भवभूति आदि के काव्यग्रन्थ, भरत, दण्डी और भामह के अलंकारग्रन्थ आदि जो आज भारतीय जनमत को नियमित करते और कर्तव्य निर्धारण में सहायक होते हैं, इसी युग में लिखे गये। इसके पहले का लिखित साहित्य पंडितों—और उनमें भी एक अत्यन्त सीमित समुदाय—का आलोच्य विषय रह गया है। भारतीय साहित्य का विद्यार्थी ज़रा चिन्तित होकर सोचता है—हाय, उस स्वर्णयुग का परिणाम यह कोयलायुग हो गया!—

तस्य प्रेम्णस्तदिदमधुना वैशसं पश्य जातम्।

किन्तु इस युग के साहित्य को अध्ययन करने से मालूम हो जायगा कि इस युग के अन्दर ही भावी अकल्याण का छोटा-सा बीज छिपा हुआ था। इस युग के साहित्य का आदर्श आराध्य राज था। पुनर्जन्म और कर्मवाद का इतना ज़बर्दस्त प्रभाव इन साहित्यिकों के मस्तिष्क पर था कि देश की अधिकांश जनता के दुर्भाग्य और दुरवस्था को उन्होंने निश्चित सत्य के रूप में स्वीकार कर लिया। कहीं भी असन्तोष और विद्रोह का भाव इनमें पाया ही नहीं जाता। राजा और प्रजा का, विद्वान् और मूर्ख का, नागरिक और ग्राम्य का घोर व्यवधान इस साहित्य में उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ ही दृष्ट होता है। इसका अवश्यंभावी परिणाम राजशक्ति के प्रति साधारण जनता की उदासीनता हो गई। आगे चलकर यह उदासीनता इतनी उपहासास्पद परिस्थिति को पहुँची कि दिल्ली के तख़्त पर से रातों रात एक आदमी को ढकेल कर दूसरा आदमी—चाहे वह चोर हो या डाकू, सरदार या ग़ुलाम—बैठ जाता और सारे भारतवर्ष का सम्राट् हो उठता। साधारण जनता का जैसे इससे कोई सम्बन्ध ही न हो, मानों वे उदासीनतापूर्वक कह रहे हों—कोउ नृप होउ हमहि का हानी!

इन दिनों भारतीय मनीषियों ने निश्चित रूप धारण कर लिया था। कर्मफलवाद और पुनर्जन्म आदि के सिद्धान्त जनसाधारण में बद्धमूल हो गये थे। परन्तु विद्वानों और अविद्वानों में उनके विषय में विश्वास का भेद था। विद्वानों ने उनके हर विरुद्ध दलीलों को जानने और उन्हें खण्डन करने का प्रयत्न किया पर साधारण जनता को विरुद्ध दलीलों को जानने का मौक़ा ही नहीं मिला। व्यवधान निरन्तर बढ़ता गया। जनता निरन्तर एकांगी होती गई। उसकी तर्कशक्ति भोथी होती गई। यह क्रिया जब अत्यन्त चिन्ताजनक परिस्थिति को पहुँच चुकी थी उसी समय इस मज़हब-हीन देश में मज़हब का प्रादुर्भाव हुआ। उसकी शक्ति का केन्द्र राजा नहीं था, साधारण जनता थी। इस प्रकार एक तरफ़ जनता की संघटित शक्ति थी और दूसरी तरफ़ जन-निरपेक्ष राजशक्ति। दूसरी हारने को बाध्य थी। उसमें वीरता थी, उदारता थी, धर्मज्ञान था पर ये चीज़ें जितनी भी बड़ी क्यों न हों उस भयंकर कमज़ोरी का मुक़ाबला नहीं कर सकतीं जो साधारण जनता की उपेक्षा से पैदा होती है। यह ध्यान देने की बात है कि जब तक केवल राजशक्ति का आक्रमण होता रहा तब तक भारतवर्ष कभी हारा नहीं, पर जन-शक्ति का आक्रमण जिस दिन से होने लगा उसी दिन से वह बराबर हारता गया। जातियों को अपनी विशेषताओं की रक्षा करते समय, जनसाधारण के अन्धविश्वासों में दख़ल न देते समय, और पण्डितों के उत्तरोत्तर बाल की खाल निकालनेवाले तर्कशास्त्र को प्रोत्साहित करते समय भारतवर्ष ने जिस उदारता का परिचय दिया था वह उसकी कमज़ोरी सिद्ध हुई। उसके पण्डित ठीक इस कमज़ोरी का कारण नहीं समझ सके। वे शास्त्रों को फिर से उलटने लगे। मुसलमानों के आने के बाद भारतीय साहित्य टीका-टिप्पणियों का साहित्य हो गया। उस युग को टीका-युग कहना अन्याय नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु भारतीय तपस्या हार माननेवाली चीज़ नहीं है। शीघ्र ही कुछ मनीषियों ने पुरानी ग़लती का प्रायश्चित्त किया। ये लोग निरक्षर जनसाधारण में से आये थे, उनकी समस्याओं से परिचित थे। सन्तों के इस दल ने ज्ञान, यज्ञ का द्वार सर्वसाधारण के लिए खोल दिया। उन्होंने देखा कि संस्कृत के 'कूपजल' से जनसाधारण की ज्ञान-पिपासा मिटाना सम्भव नहीं है, उनके लिए तो 'भाषा बहता नीर' चाहिए। यह भारतवर्ष का नया प्रयोग था। भारतीय साहित्य में तीसरा अध्याय था। जो लोग इसके समूचे इतिहास को नहीं देखते वे इसे 'सधुक्कड़ी' भाषा का 'बटोरा हुआ' ज्ञान कह कर अपने को उपहासास्पद करते हैं। जो लोग इस महान् साधना को ठीक-ठीक हृदयंगम नहीं कर सकते उन्हें हिन्दी के प्राचीन साहित्य की व्याख्या करते देख हँसी आती है।

भारतवर्ष में उस समय दो विरोधी शक्तियों का सम्मिश्रण हुआ था। इन दोनों के विरोध में से एक सामंजस्य-प्रवण मतवाद निकालना आसान काम न था। इन सन्तों ने यही किया। आज संसार में नाना विरोधी शक्तियों का संघर्ष चल रहा है। जो समाधान दो शक्तियों के विरोध में से निकाला गया था वह उससे अधिक विरुद्ध शक्तियों के संघर्ष के उपशम में भी प्रयोज्य हो सकता है। हिन्दी-साहित्य के पितामहों का वह सन्देश अब भी संसार के सामने नहीं आया है। आज जब कि पारस्परिक अविश्वास नाना रूपों में प्रकट हुआ है, शान्ति और उपशम की बातें उपहासास्पद जान पड़ती हैं, परन्तु ये सामयिक बातें लोप हो जायँगी। संसार लड़ झगड़ कर एक दिन श्रान्त-क्लान्त होकर बैठ जायगा उस दिन भारतीय साहित्य का यह तीसरा अध्याय काम आ भी सकता है।

(५)

इस मज़हबहीन देश में मजहब आकर एक अशान्ति पैदा कर गया। भारतीय मनीषियों ने उस अशान्ति का समाधान निकाल लिया था। परन्तु उसके प्रयोग अभी बाल्यावस्था में ही थे कि इस नेशन-हीन देश में नेशन का पदार्पण हुआ। इसने देश को इस सिरे से उस सिरे तक बुरी तरह झकझोर दिया। पुराने प्रयोग पड़े ही रह गये। वे ज्ञान के सर्वोत्तम लक्ष्य-द्वारा चालित थे पर उनमें विज्ञान की और दर्शन की सर्वदर्शिता और सूक्ष्मदर्शिता नहीं थी। इसी लिए उनकी जड़ मज़बूत नहीं हो पाई थी। नये संघर्ष के समय वे छितरा गये, जो वृक्ष सावधानी से एक दूसरे में लगाकर एक बनाये जा रहे थे, उनमें हठात् झटका लगा, वे अलग हो गये। ज्यों ज्यों आघात की चोट बढ़ती गई त्यों-त्यों उनका मोह टूटता गया, अपने पुराने गुण-दोष स्मरण आते गये, उन पर चिपटने की प्रवृत्ति बढ़ गई। आज अवस्था आशंकाजनक हो गई है।

परन्तु आशंका का कोई कारण नहीं है। भारतवर्ष बच्चा नहीं है। वह हज़ारों वर्ष का अनुभवी है। वह जातियों के उत्थान-पतन को देखते-देखते ही इस अवस्था को पहुँचा है। सामयिक सुविधा-असुविधाओं से वह विचलित कभी नहीं हुआ, आज भी नहीं होगा। उसके पूर्व पुरुषों ने ज्ञान-साधना के जिस अमृत से उसका सेचन किया है उसने उसे अमर बना दिया है। वह अपने को शीघ्र ही सँभाल लेगा। मज़हब और नेशन का संघर्ष उसके लिए बहुत कठोर समस्या नहीं है। उससे कहीं अधिक कठोर समस्याओं को उसने अविचल धैर्य के साथ समाधान किया है। उसकी ज्ञान-साधना उसका सबसे बड़ा रक्षा कवच है। उसने ग़लतियाँ की हैं पर प्रत्येक बार ग़लतियों के जान लेने पर उसकी शक्ति बढ़ी है। बड़ी-बड़ी चिन्तायें आज लोप हो गई हैं, बहुत-सी लोप होने जा रही हैं, बहुत-सी लोप हो जायँगी फिर भी वे व्यर्थ नहीं जायँगी।

जो लोग सांस्कृतिक गौरव बोध को ठीक-ठीक नहीं समझते वे भारतीय साम्प्रदायिक समस्या को बड़ी निराशा के साथ देखते हैं। ज्ञान और सत्य का प्रचार यदि निरंतर निर्भीक भाव से किया जाता रहा तो भारतवर्ष का साम्प्रदायिक साहित्य निश्चित रूप से निश्चिह्न हो जायगा। सीमान्त-प्रदेश का पठान जिस दिन जानेगा कि संसार के सर्वश्रेष्ठ भाषातत्त्वज्ञ पाणिनि और संसार के सर्वादि कोषकार यास्क उसी के पूर्व पुरुष थे उस दिन वह चाहे जिस धर्म को मानता हो भारतीय संस्कृति के लिए गर्व किये बिना न रहेगा। उस दिन उसका मज़हबी कट्टरपन दूर हो जायगा, सारे भारतवर्ष के सभी सम्प्रदाय निश्चय ही इस संस्कृति के वास्तविक ज्ञान को पाकर छोटी-मोटी बातें भूल जायँगे। बौद्धों और ब्राह्मणों में कभी काफ़ी तनातनी थी पर आज ज्ञान के आलोक में देखने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण बौद्धधर्म का विरोधी नहीं है। भारतीय संस्कृति का प्रचार उसकी समस्त समस्याओं की अमोघ औषध है। समय बड़ी तेज़ी से उस औषध को सुलभ कर रहा है। आज की तनातनी इसलिए है कि वह संस्कृति आंशिक रूप में ही जानी जा सकी है और एक निश्चित वर्ग के लोग एक निश्चित काल तक ही अपने ज्ञान को सीमित रक्खे हुए हैं। भारतीय साधना कभी भी निष्फल नहीं जायगी। कवि ने ठीक ही गाया है—जीवन में जो पूजायें पूरी न हो पाईं, मैं ठीक जानता हूँ, वे भी खो नहीं गई हैं। जो फूल खिलने के पहले ही पृथ्वी पर झड़ गया, जो नदी मरुभूमि के मार्ग में ही अपनी धारा खो बैठी है—मैं ठीक जानता हूँ कि वे भी खो नहीं गई हैं। जीवन में आज भी जो पीछे छूट गया है, अधूरा रह गया है, मैं ठीक जानता हूँ वह भी व्यर्थ नहीं हो गया। मेरा जो भविष्य है, जो अब भी अछूता है, वे सब तुम्हारी वीणा के तारों में बज रहे हैं, मैं ठीक जानता हूँ ये भी खो नहीं गये है—

जीवने यत पूजा हलो न सारा,
जानि हे जानि ताओ हय नि हारा।
ये फूल ना फुटिते, झरेछे धरणि ते,
ये नदी मरुपथे हारालो धारा।
जानि हे जानि ताओ हयनि हारा।
जीवने आजो याहार येछे पिछे,
जानि हे जानि ताओ हयनि मिछे,
आमार अनागत, आमार अनाहत,
तोमार वीणा तारे वाजिछे तारा,
जानि हे जानि ताओ हय निहारा।

(गीताञ्जलि)

पीर

लेखक, श्री हितानन्द गोस्वामी

खूब लिया है समझ, नहीं
इसके आगे अब और समझना।
मानव का मानव दुश्मन है
मानव का मानव चिर अपना।
इस नगरी में गरल बहो है
कभी-कभी जो अमृत कहाता।
सुखद-समीर कभी अन्धड़ बन
नादानी करने लग जाता।
अनुसन्धान नवीन नहीं यह
युग-युग की अनुभूत कहानी।
पीर बढ़ो जिस जिसके उर में
पड़ी उसी को यह दुहरानी।
और आज भी जग इसको
सुनता है नूतन हाल समझकर।
क्या वसन्त भी जोगी हो सका
बार-बार आकर जगती पर?

यद्यपि सुख के क्षण में कोई
नहीं इसे सुनना भी चाहे।
यौवन की उत्ताल तरंगों में
बेसुध बहता ही जाये।
किन्तु, सजनि री! वही कहीं यों,
सोते-सोते जग जाता है।
कुटिल-जगत के कालेपन पर
हाथ मसल कर रह जाता है।
समझायें हम सही उसे सखि!
कौन भला है सुननेवाला?
मिलकर सबने पी रक्खी है
मतलब ही की काली हाला।
लेकिन अब तो ध्येय हमारा
केवल दर्द सुनाना ही है।
सुने न कोई, पर इससे क्या
हमें सुनाये जाना ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपस्वी विनोबा

लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

विनोबा भावे वर्धा के उन व्यक्तियों में हैं जिन्होंने नाम की बिलकुल परवा नहीं की और अपना सारा जीवन देश की सेवा में ही बिताया है। यही कारण है कि देश की अधिकांश जनता उनके नाम और कार्य से अनभिज्ञ है। वर्धा आने के पहले मैंने भी उनका नाम न सुना था, क्योंकि विनोबा जी अख़बारों में नाम छपवाने से सदा घृणा करते रहे हैं। परन्तु उनका व्यक्तित्व सचमुच हमारे जानने योग्य है। वे गांधी-युग की महान् विभूतियों में से एक हैं और गांधी जी के कई कार्यों के पीछे उनकी शक्ति प्रकटरूप से लगी रहती है। उनके जीवन को देख-कर हमें अनायास ही भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों की याद आ जाती है। उनका जीवन बहुत ही सरल और गम्भीर है। वे लोगों से अधिक मिलना-जुलना नहीं पसन्द करते। पहली बार की भेंट में वे बहुत रूखे स्वभाव के जान पड़ते हैं। किन्तु अगर हम उनकी जीवन-कहानी को जानें तो हमें मालूम होगा कि उनकी ऊपरी शुष्कता के पीछे कितनी भावना और तपस्या छिपी हुई है।

× × × ×

विनोबा जी का जन्म बम्बई के कोलाबा ज़िले में गागोदें नामक गाँव में हुआ है। किन्तु उनके पिता प्रोफ़ेसर गजर-द्वारा संचालित "कला-भवन" में उद्योग सीखने के लिए बड़ौदा चले गये थे। इसलिए उनकी प्रारम्भिक शिक्षा बड़ौदा में ही हुई। विनोबा जी ने कई वर्ष तो घर पर ही अपने पिता जी से शिक्षा ग्रहण की, बाद को वे एक विद्यालय में भर्ती हुए। उनके पिता जी चाहते थे कि वे किसी उद्योग में प्रवीण बन जायँ। इसलिए विनोबा जी को चित्रकला का विशेष अभ्यास कराया गया।

किन्तु उनका मन तो दूसरी ओर ही खिंचता जा रहा था। वंग-भंग आन्दोलन के बाद महाराष्ट्र के युवकों में भी काफ़ी उत्तेजना और हलचल फैल गई थी। सब युवक सोचते थे कि जिस तरह समर्थ रामदास जी ने ब्रह्मचारी रहकर शिवा जी के द्वारा देश की सेवा की थी, उसी तरह वे भी अपना जीवन देश को उन्नत बनाने में क्यों न लगा

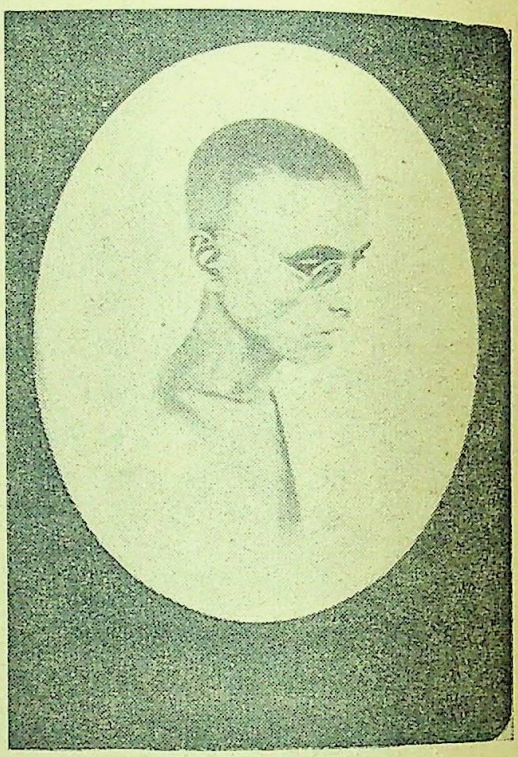

[श्री विनोबा भावे]

दें। विनोबा जी के मन पर भी वंग-भंग आन्दोलन का काफ़ी असर हुआ और उन्होंने बाल-ब्रह्मचारी रहने का व्रत ले लिया। उस व्रत को उन्होंने आज तक निभाया है।

विनोबा जी प्रारम्भ में राजनीति की ओर भी झुके। लोकमान्य तिलक के विचारों से वे काफ़ी प्रभावित हुए। उनके दिल में क्रान्तिकारी भावनायें भी उठती थीं, और उनका स्वभाव भी उग्र था। विद्यार्थी-जीवन में उनको गणित से विशेष रुचि थी, और अभ्यास में वे अपनी कक्षा में सर्वप्रथम रहते थे। उनके पिता को आशा थी कि वे उच्च शिक्षा प्राप्त कर और किसी कला में पारंगत बनकर नाम कमायेंगे। किन्तु दिन-दिन विनोबा जी में धार्मिक और आध्यात्मिक भावनायें ज़ोर पकड़ती गईं और उनके मन में साधारण शिक्षा और संसारी बातों के प्रति अरुचि पैदा होती गई। विद्यालय की पढ़ाई में वे बिलकुल कम ध्यान देने लगे और मराठी-साहित्य तथा धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन में लग गये। प्रारम्भ में तो उन्होंने संस्कृत का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

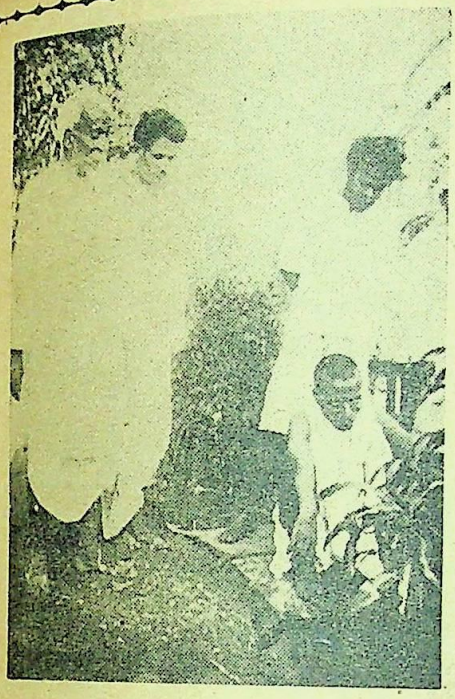

[विनोबा जी एक पौधा लगा रहे हैं।]

अभ्यास नहीं किया था और उसके स्थान में फ्रेंच-भाषा सीखी। किन्तु मराठी-साहित्य से अच्छा परिचय होने के कारण उनको संस्कृत सीखने में कठिनाई न हुई। जब उन्होंने सुना कि लोकमान्य तिलक 'गीता-रहस्य' प्रकाशित करनेवाले हैं तब उसके स्वागत की तैयारी के लिए विनोबा जी गीता के अध्ययन में लग गये और उसके द्वारा संस्कृत के भी पंडित बन गये।

गीता के अध्ययन के बाद विनोबा जी की आध्यात्मिक प्रवृत्ति और भी बढ़ गई। किन्तु उनके मन में शान्ति न थी। उन्होंने देखा कि घर में रहकर वे पर्याप्त अध्ययन और मनन न कर सकेंगे। इसलिए उन्होंने घर छोड़ कर कहीं बाहर जाने का इरादा कर लिया। उनके पिता उनकी प्रवृत्ति से असन्तुष्ट थे। इसलिए जब विनोबा जी इन्टर-मीडियेट की परीक्षा के लिए बड़ौदा से बम्बई गये तब परीक्षा में बैठने के बजाय काशी भाग गये। वहाँ उन्होंने कुछ महीने संस्कृत के धार्मिक ग्रन्थों का अभ्यास किया। उनको काफ़ी कष्ट भी सहने पड़े। किन्तु तब भी उनको आन्तरिक शान्ति नहीं मिली। वे सन्यासी बनकर हिमालय नहीं जाना चाहते थे। उनके मन में देश के लिए कुछ ठोस कार्य करने की भी प्रबल इच्छा थी। लेकिन उनको अभी तक मार्ग-दर्शन नहीं हुआ था। इतने में उन्होंने महात्मा गांधी के साबरमती-आश्रम के बारे में सुना। उन्होंने देखा कि हिन्दुस्तान के नेताओं में उनके विचार गांधी जी से ही बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। इसलिए उन्होंने गांधी जी से पत्र-द्वारा आश्रम में भर्ती होने की आज्ञा माँगी, और उत्तर आने की प्रतीक्षा किये बिना ही, साबरमती जा पहुँचे। उनको आश्रय तो मिल गया, किन्तु शुरू में किसी का उनकी ओर विशेष ध्यान न गया। उन दिनों उनका स्वास्थ्य भी बहुत ख़राब हो गया था, और शरीर काफ़ी दुर्बल था। आश्रम का जीवन तो बहुत कठोर था; शारीरिक श्रम आवश्यक था। विनोबा जी को पानी खींचने का काम मिला। शरीर कमज़ोर होते हुए भी उन्होंने अपना काम बड़ी तत्परता और लगन से किया। गांधी जी को भी काफ़ी आश्चर्य हुआ। उन्होंने एक दिन विनोबा जी से पूछा—"तुम्हारा शरीर तो बहुत अस्वस्थ

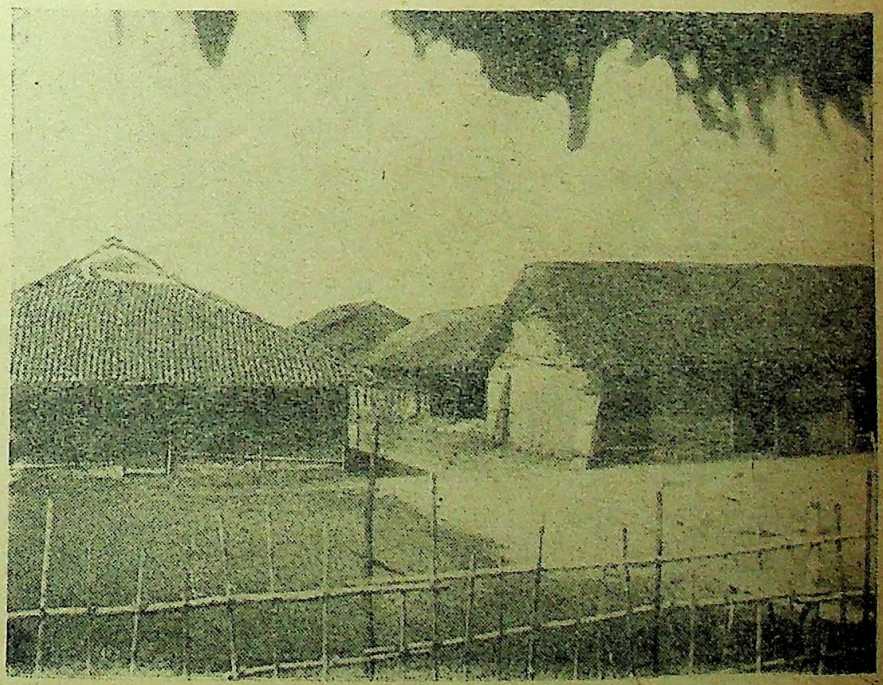

[नालबाड़ी में विनोबा जी के रहने का स्थान]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है; फिर भी तुम इतना श्रम किस प्रकार कर लेते हो !" उत्तर मिला—"आत्मा तो बलवान् हो सकती है !" उसी दिन से गांधी जी का ध्यान विनोबा जी की ओर जाने लगा, और धीरे-धीरे, ज्यों-ज्यों उनसे सम्पर्क बढ़ता गया, गांधी जी उनकी अधिक क़द्र करने लगे। बाद में तो विनोबा जी साबरमती-आश्रम के मुख्य व्यक्तियों में गिने जाने लगे।

नागपुर-कांग्रेस के बाद श्री जमनालाल जी बजाज़ की इच्छा हुई कि वर्धा में भी एक सत्याग्रह-आश्रम स्थापित किया जाय। गांधी जी ने इस आश्रम का संचालन करने के लिए विनोबा जी को चुना, और इस प्रकार विनोबा जी सन् १९२१ से वर्धा में ही रह रहे हैं। सन् १९२३ में यह आश्रम बन्द होगया, और तब से विनोबा जी वर्धा शहर से क़रीब डेढ़ मील की दूरी पर नालबाड़ी नामक गाँव में बस गये हैं। वहाँ उन्होंने खादी का एक केन्द्र खोला है, और आस-पास के गाँवों के कुछ लोग वहाँ सूत कातकर और कपड़े बुनकर अपनी जीविका चलाते हैं। विनोबा जी ने नालबाड़ी में चर्ख़ा और तकली को अधिक उपयोगी बनाने के लिए बहुत-से प्रयोग किये हैं। फलतः खादी-शास्त्र के विकास का श्रेय उन्हीं को देना उचित होगा।

× × × ×

[विनोबा जी फ़ैजपुर कांग्रेस की तैयारी के समय पहला खम्भा अपने हाथ से गाढ़ रहे हैं।]

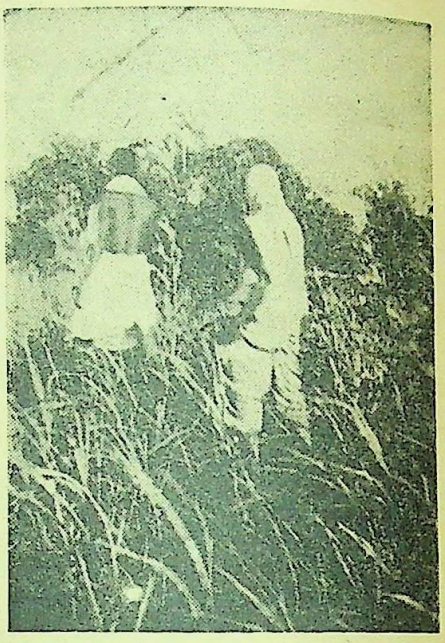

[विनोबा जी खेतों में से होकर गाँवों की सेवा के लिए चले जा रहे हैं।]

विनोबा जी में आध्यात्मिकता पूरी तौर से भरी हुई है। उनका जीवन बिलकुल सन्तों जैसा है। गीता के तत्त्वों को न केवल उन्होंने ख़ुद समझ कर दूसरों की कठिनाइयों को सुलझाया है, किन्तु उन तत्त्वों पर सफलतापूर्वक अमल भी किया है। गांधी जी के सिद्धान्तों को भी अपने सुलझे दिमाग़ से विनोबा जी ने जितना समझा है, उतना बहुत ही कम लोगों ने समझा होगा। उनके विचार मौलिक और मार्मिक हैं। उनकी वृत्ति गणितज्ञ जैसी है। उनका प्रत्येक विचार सुव्यवस्थित और स्पष्ट है। उनके दिमाग़ में व्यावहारिकता भी कूट-कूट कर भरी है। इसलिए खादी के सम्बन्ध में उनका ठोस कार्य सफल हो सका है। वर्धा-शिक्षण-योजना के पीछे भी विनोबा जी का व्यावहारिक और सक्रिय ज्ञान छिपा हुआ है। उद्योग-द्वारा शिक्षा देने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोग विनोबा जी के लिए बिलकुल नया नहीं था। वे तो इसी पद्धति को स्वाभाविक रूप से काम में ला रहे थे। खादी-शास्त्र में वे इतने तल्लीन हो गये हैं कि उसी में से वे सभी प्रकार की विद्या का स्रोत निकाल सकते हैं। उनकी प्रखर बुद्धि के ही कारण आज वर्धा-शिक्षण-योजना इतने विस्तार से देश के सामने रक्खी जा सकी है।

विनोबा जी एक आदर्श शिक्षक हैं। उनकी लेखनशैली भी आकर्षक है। 'मधुकर' नाम से उनके मराठी लेखों का संग्रह एक वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था। उनके लेख किसी भी भाषा के साहित्य को गौरव दे सकते हैं।

× × × ×

विनोबा जी की रहन-सहन बहुत ही सादी है। नालवाड़ी में बाँस की एक मामूली झोंपड़ी में रहते हैं। कुछ महीनों से वे अपना स्वास्थ्य सुधारने की दृष्टि से पवनार में रह रहे हैं। यह स्थान वर्धा से लगभग छः मील की दूरी पर है।

विनोबा जी शहरों से तो हमेशा दूर ही रहने की कोशिश करते हैं। उनको गाँवों की ग़रीब जनता की ही मूक सेवा करने में आनन्द आता है। वे अकसर आसपास के गाँवों में पैदल ही जाते हैं और लोगों में खादी और गीता का प्रचार करते हैं। ख्याति की उन्होंने कभी इच्छा नहीं की, इसलिए उनका नाम अधिक प्रसिद्ध नहीं है। किन्तु उनका जीवन इतना उज्ज्वल है कि गांधी जी भी कई बातों में उन्हें अपना आदर्श मानते हैं।

मोह-कातरता

लेखिका, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा

देव! अरे यह जीवन कितना क्षणभंगुर है परवश है?
मानव जो कहता है वह कब करने को उसका वश है?
भोले शैशव की मादकता रहती है कितने कम दिन!
विकसित यौवन के विलास के लघु पल भी जाते गिन-गिन।
जग कितना रसमय छविमय पर हो सकता उपभोग भला?
चिर-अभिशापों से विमुक्त करने में कब कुछ योग चला?
प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं ले दुनिया अरमानों को।
यहाँ नहीं कोई, जिस पर बस्ती बसती अभिमानों की।
आओ, अपना इस छोटी सी दुनिया में भूल अनबन।
मिल हम तुम दो दिन बेसुध हों, जाना एकाकी उस दिन।
हम होंगे रज में, जाने यह रवि-शशि-प्रभा खिलेगी भी।
क्या जाने मृदु वल्लरियों पर वनश्री पुनः मिलेगी भी।
फिर क्या जाने, शुभ वसन्त सौरभ सुषमा बरसाये ना।
फिर क्या जाने, मत्त-पिकी रस की नदियाँ उमड़ाये ना।
फिर क्या जाने मलय-वायु उत्फुल्ल हृदय को करे कभी।
फिर क्या जाने लहर-लहर निर्झरिणी मन को हरे कभी।
फिर क्या जाने संचित सपनों का होगा निर्माण कभी।
मधुर-प्रणय की पीर से भरे हँसते होंगे प्राण कभी।
आज यहाँ हैं दो दिन हम, हँसती उर की मनुहार सखे।
क्या जाने कल कहाँ रहेंगे, इस दुनिया के पार सखे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे ईसाई भाई

लेखक, पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी

(१)

युक्त-प्रान्त में अल्पता की समस्या का एक पहलू हमारे ईसाई भाइयों का सवाल है। इस सूबे की कुल आबादी ४ करोड़ ८४ लाख है। इनमें—

१ मुसलमान	... ...	७२ लाख
२ ईसाई	... ...	२ ,, ५ हज़ार
३ सिक्ख	... ...	४७ हज़ार
४ पारसी	... ...	१ हज़ार

ऐसी दशा में युक्तप्रान्त के लिए अल्पता के सवाल का सबध केवल मुसलमान और ईसाइयों ही से है। जहाँ तक ईसाइयों का सम्बन्ध है वहाँ तक भाषा और लिपि का कोई प्रश्न नहीं उठता। इनके विषय में जिन बातों पर विचार करना है उनका सम्बन्ध या तो नौकरियों से है या स्थानिक संस्थाओं में प्रतिनिधित्व से। धार्मिक स्वतंत्रता और नागरिक हक़ों के संरक्षणों का सवाल भी हमारे ईसाई भाई उठाते हैं। अतएव ईसाइयों की समस्या के तीन रूप हैं। सरकारी नौकरियों में इनको कितना हिस्सा दिया जाय? म्यूनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या गाँव-पचायतों में इन्हें अलग से प्रतिनिधित्व दिया जाय या न दिया जाय, और यदि दिया जाय तो कितना? इन्हीं तीन प्रश्नों पर हमें इस लेख में विचार करना है।

ईसाइयों की समस्या की तह में केवल धार्मिक भेद ही नहीं है। इसमें धार्मिक अन्तर के साथ जातिगत भेद भी मिला है, क्योंकि हमारे ईसाई तीन भिन्न जातियों के हैं। इस सूबे में सब मिला कर २ लाख ५ हज़ार ईसाई हैं, जिनमें से १ लाख ८० हज़ार देशी या हिन्दुस्तानी ईसाई हैं, बाक़ी ३५ हज़ार ईसाइयों में २४ हज़ार विदेशी हैं, अर्थात् वे जो हिन्दुस्तान के बाहर से आकर यहाँ बस गये हैं और उनके बाल-बच्चे। शेष ११ हज़ार ऐंग्लो-इंडियन हैं जो, जैसा नाम ही से प्रकट है, अर्ध भारतीय और अर्ध अभारतीय हैं। इन तीनों ही जातियों* के ईसाइयों के हित अलग-अलग हैं और तीनों ही की समस्याओं के रूप भी जुदा-जुदा हैं। उन रूपों पर विचार करने से पहले आइए उनके बाहिरंग वितरण का चित्र स्पष्ट रूप से अपने मानसिक पटल पर आंकत कर लें।

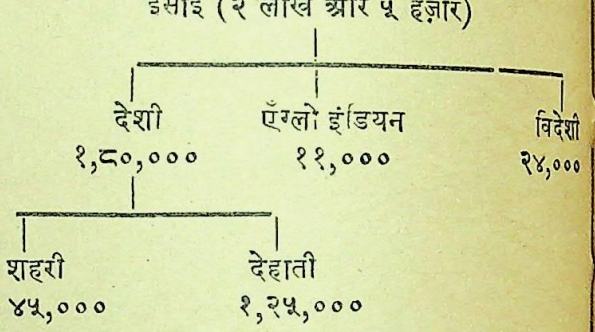

देशी ईसाइयों की संख्या अन्य दो जातियों के ईसाइयों की संख्या से चौगुनी है, अर्थात् प्रत्येक ५ ईसाइयों में से ४ ईसाई हिन्दुस्तानी हैं। शहरों या क़स्बों में रहनेवाले ईसाइयों में ४५,००० हिन्दुस्तानी; २४,००० विदेशी; और ११ हज़ार एँग्लो इंडियन हैं। देहातों में ईसाइयों की संख्या १,२५,००० है, जिनमें से प्रायः सभी देशी हैं। एँग्लो इंडियन विशेष कर सूबे के चार नगरों में आबाद हैं। इलाहाबाद में इनकी संख्या लगभग २,१००; लखनऊ में १,५००; आगरे में १,३००; और झाँसी में १,००० है। अथवा, सूबे के ११,००० एँग्लो इंडियनों में से लगभग ६,००० इन्हीं चार शहरों में रहते हैं, यानी ५५ प्रतिशत। इसी तरह से सूबे के २२ प्रमुख 'नगरों में'—अर्थात्, मदुमशुमारी की रिपोर्ट में जिन नगरों को "सिटी" की पदवी दी गई उनमें—२४,००० विदेशी ईसाइयों में से १८,००० से कुछ अधिक यानी ७५ फ़ी सदी निवास करते हैं। तीनों जातियों के ईसाइयों में स्त्री-पुरुषों की तुलनात्मक संख्या है—

जाति	पुरुष	स्त्री
१ विदेशी ईसाई ...	१७,५५८	... ५,९४२
२ ऐंग्लो इंडियन ...	५,८६८	... ५,४०४
३ देशी ईसाई ...	८९,७०६	... ८३,३७१

विदेशी ईसाइयों में जहाँ तीन मर्द हैं वहाँ एक

* जाति शब्द की बड़ी दुर्दशा है। जितने मुँह, उतने उसके अर्थ। मैं किसी देशविशिष्ट के निवासियों के समुदाय के अर्थ में इस शब्दविशेष का प्रयोग करना चाहता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औरत। इसका कारण यह है कि बहुत से विदेशी ईसाई फ़ौज में नौकर हैं। तमाम सूबे के स्त्री-पुरुष-संबंधी अनुपात की दृष्टि से एँग्लो इंडियनों और देशी ईसाइयों के मर्द और औरतों की संख्याओं में कोई विशेष अन्तर नहीं है। युक्तप्रान्त में सन् ३१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट के अनुसार प्रत्येक सौ मर्दों के अनुपात में ९० औरतें थीं। इस दृष्टि से एँग्लो इंडियनों और ईसाइयों में स्त्रियों की संख्या बहुत क़ाफ़ी है।

देशी ईसाइयों का विभाजन

देशी ईसाइयों की आबादी १८८१ में ४८ हज़ार थी, जो ५० साल में बढ़कर १९३१ में २ लाख ५ हज़ार हो गई। पिछली ६ मर्दुमशुमारियों में इनकी संख्या निम्नांकित है—

		पूर्णाङ्कों में
१८८१	में ...	४८ हज़ार
१८९१	,, ...	५८ ,,
१९०१	,, ...	१ लाख २ ,,
१९११	,, ...	१ ,, ७८ ,,
१९२१	,, ...	२ ,, १ ,,
१९३१	,, ...	२ ,, ५ ,,

ऊपर के आँकड़ों को देखने से दो बातें स्पष्ट होती हैं। एक तो यह कि १८८१ से लेकर १९०१ तक अर्थात् २० साल की इस अवधि में ईसाइयों की संख्या दूनी हो गई, अथवा ५८ हज़ार से बढ़कर १ लाख २ हज़ार को पहुँच गई। और १९०१ और १९३१ के बीच में भी इनकी संख्या में वृद्धि उतनी ही हुई जितनी १८८१ और १९०१ में हुई थी। १८९१ और १९११ के बीच में विशेष वृद्धि हुई, अर्थात् १८९१ के ५८ हज़ार ईसाई १९११ में १ लाख ७८ हज़ार हो गये, यानी इस २० वर्ष की अवधि में ईसाइयों की संख्या २०८ प्रतिशत के हिसाब से बढ़ी, लेकिन १९११ और १९३१ के बीच में प्रतिशत वृद्धि की गति २०८ से घट कर केवल १५ रह गई। इन आँकड़ों के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए हम पाठकों का ध्यान इस बात की ओर दिलाना चाहते हैं कि जहाँ १८९१ से १९११ में ईसाइयों की संख्या में १ लाख २० हज़ार की वृद्धि हुई वहाँ १९११-१९३१ में केवल २७ हज़ार की बढ़ती हुई। इन २० साल में वृद्धि की गति उन २० साल की तुलना में कुछ कम एक-चौथाई रह गई। इस घटती का क्या कारण है? बढ़ती या तो धर्मपरिवर्तन या नैसर्गिक वृद्धि से होती है। नैसर्गिक वृद्धि उसी समय सम्भव है जब किसी जातिविशिष्ट या सम्प्रदायविशेष में मरनेवालों की संख्या पैदा होनेवालों की संख्या के मुक़ाबिले में कम हो। लेकिन सूबे के अन्य सम्प्रदायों की तुलना में ईसाइयों में न तो अधिक बच्चे ही पैदा हुए और लोग भी कम मरे। अतएव वृद्धि तभी अधिक होगी जब दूसरे सम्प्रदायों के लोग ईसाई होते जाएँ। ऐसा होना भी अब कम हो चला है। घटती का मुख्य कारण सन् १९३१ की मरदुमशुमारी के कमिश्नर की सम्मति में हिन्दुओं का शुद्धि-आन्दोलन था। उदाहरण के लिए, मेरठ ज़िले को ले लीजिए। वहाँ के ईसाई सन् १९२१ में २७ हज़ार से घटकर १९३१ में लगभग १४ हज़ार रह गये, क्योंकि जिन चमारों और भंगियों ने अपने को १९२१ में ईसाइयों में गिनवाया था उनमें से बहुतों ने सन् १९३१ में अपने को आर्यसमाजी लिखवाया। एटा ज़िले में इसी कारण से सन् १९२१ की तुलना में की सन् १९३१ में ईसाइयों की संख्या में लगभग ३ हज़ार क कमी हो गई। इसी तरह से पीलीभीत में भी घटती हुई। सन् ४१ की मरदुमशुमारी के समय इस सूबे के ईसाइयों की क्या स्थिति होगी, इसके विषय में अभी कुछ कहना असम्भव है।

इस सूबे के ईसाइयों की तीन भिन्न जातियाँ हैं—(१) योरोपियन, (२) एँग्लो इंडियन और (३) देशी ईसाई। सन् ३१ में इस सूबे में २४ हज़ार योरोपियन ईसाई थे, ११ हज़ार एँग्लो इंडियन और एक लाख ७० हज़ार देशी ईसाई। विदेशी ईसाइयों की संख्या १९११ में ३४,००० से घट कर १९३१ में २४,००० रह गई। इनमें से अधिकांश शहरों में रहते हैं। सूबे के २२ प्रमुख नगरों में योरोपियनों की आबादी १८ हज़ार और एँग्लो इंडियनों की आबादी लगभग ८ हज़ार सन ३१ में थी।

आइए, अब सूबे में देशी ईसाइयों के वितरण पर एक नज़र डालें। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, इस सूबे में १ लाख ७० हज़ार देशी ईसाई हैं। इनमें से ४५ हज़ार शहर और क़स्बों में आबाद हैं; और १ लाख २५ हज़ार देहातों में आबाद हैं। आगे की तालिका से ईसाइयों का ज़िलेवार वितरण पाठकों को मालूम होगा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शहरों और क़स्बों में रहनेवाले ईसाइयों की संख्या पूर्णाङ्कों में

ज़िले का नाम	देशी ईसाई	विदेशी और ऐंग्लो इंडियन ईसाई	जोड़
१ मुरादाबाद	४,७००	५००	५,२००
२ लखनऊ	३,७००	५,९००	९,६००
३ मेरठ	३,६००	३,३००	६,९००
४ अलीगढ़	२,९००	१००	३,०००
५ इलाहाबाद	२,५००	४,०००	६,५००
६ कानपुर	२,४००	२,६००	५,०००
७ बरेली	२,४००	१,५००	३,९००
८ आगरा	२,२००	३,९००	५,४००
९ बुलन्दशहर	१,९००	४०	१,९४०
१० बदायूँ	१,९००	२६	१,९२६
११ देहरादून	१,६००	२,५००	४,१००
१२ झाँसी	१,६००	२,७००	४,३००
१३ सहारनपुर	१,५००	८००	२,३००
१४ एटा	१,५००	२६०	१,७६०
१५ मुज़फ़्फ़रनगर	१,५००	१२०	१,६२०
१६ मथुरा	१,३००	६००	१,९००
१७ बिजनौर	१,३००	३१	१,३३१
१८ पीलीभीत	१,०००	११	१,०११
१९ फ़र्रुख़ाबाद	१,०००	१७७	१,१७७

देहातों में रहनेवाले ईसाई प्रायः सभी देशी हैं। केवल ८ ज़िले ऐसे हैं जिनकी देहातों में रहनेवाले देशी ईसाइयों की संख्या ५,००० से अधिक है।

नम्बर	नाम ज़िला	देहातों में रहनेवाले (पूर्णांकों में)
१	मुरादाबाद में	१८,०००
२	अलीगढ़ ”	१५,०००
३	बदायूँ ”	१४,०००
४	बुलन्दशहर ”	१२,०००
५	मेरठ ”	१०,०००
६	बरेली ”	१०,०००
७	मुज़फ़्फ़रनगर ”	९,०००
८	एटा ”	८,०००

४ ज़िलों में ऐसे ईसाइयों की संख्या ३ और ४ हज़ार के बीच में है—

१ मथुरा
२ मैनपुरी
३ फ़र्रुख़ाबाद
४ आगरा

निम्नलिखित ६ ज़िलों में देहाती ईसाइयों की संख्या १,००० से अधिक है।

१ अल्मोड़ा २ बनारस
३ गोरखपुर ४ बलिया
५ बिजनौर ६ सहारनपुर

सूबे के शेष ३० ज़िलों के देहातों में इनकी संख्या प्रति ज़िला १,००० से नीचे है।

ऊपर की तालिकाओं का विशेष महत्त्व है। विशेष महत्त्व कई दृष्टियों से है। ग्राम-पंचायतों, ज़िला बोर्डों, और म्युनिसिपल-बोर्डों में ईसाइयों का, और विशेषकर देशी ईसाइयों का किस अनुपात से प्रतिनिधित्व हो? क्या ग्राम-पंचायतों में इनको प्रतिनिधित्व दिया जाय? और यदि दिया जाय तो इनका चुनाव पृथक् हो या संयुक्त? यदि संयुक्त हो तो इनके प्रतिनिधियों की संख्या क़ानूनन सुरक्षित कर दी जाय? ऐंग्लो-इंडियनों और योरोपियनों को पृथक प्रतिनिधित्व दिया जाय या नहीं? ये सब प्रश्न महत्त्व के हैं। इन पर विचार करने के लिए ऊपर के आँकड़ों से पाठकों को बड़ी सहायता मिलेगी। उदाहरण के लिए, ग्राम-पंचायतों को ले लीजिए। सूबे में १ लाख ६ हज़ार गाँव शहर या क़स्बे हैं, जिनमें से सारे युक्त-प्रान्त में ४५० नगर और क़स्बे माने जाते हैं। इस हिसाब से देशी रियासतों को छोड़कर युक्त-प्रान्त में लगभग १ लाख ५ हज़ार गाँव होंगे और इन देहाती रक़बों में बसनेवाले देशी ईसाइयों की संख्या १,२५,००० है जिनमें से बालिगों की संख्या लगभग ६० हज़ार होगी, अर्थात् प्रत्येक गाँव पीछे १ से कम और आधे से कुछ अधिक देशी ईसाई बैठा। इस एक से कम ईसाई के विशेषाधिकार के संरक्षण के लिए ग्राम-पंचायतों में विशेष प्रतिनिधित्व देना चाहिए या नहीं?

इस सूबे में केवल १९ शहर ऐसे हैं, जिनमें देशी ईसाइयों की आबादी १,००० से अधिक है। इन शहरों के नाम और इनके देशी ईसाई निवासियों की संख्या पाठकों को मिल जायगी। सबसे अधिक संख्या मुरादाबाद शहर में है, जहाँ ४,७०० देशी ईसाई रहते हैं। मथुरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बिजनौर में सबसे कम ईसाई हैं, अर्थात् प्रत्येक में लगभग १,३०० हैं। ऊपर पाठकों को उन ज़िलों के नाम मिलेंगे जिनमें १,००० से अधिक देशी ईसाई रहते हैं। यहाँ पर इतना कह देना सिर्फ़ काफ़ी होगा कि सिर्फ़ ८ ज़िलों के देहातों में ८,००० से लेकर १८,००० तक की संख्या में देशी ईसाई मिलेंगे। चार ज़िलों में देशी ईसाइयों की संख्या ३ हज़ार से ४ हज़ार प्रतिज़िले के बीच में है। ३,००० से कम किन्तु १,००० के ऊपर देशी ईसाइयों की आबादी जिन ज़िलों में है उनकी तायदाद सिर्फ़ ६ है। सूबे में सिर्फ़ १८ ज़िले ऐसे हैं जिनके देहातों में १,००० से अधिक देशी ईसाई आपको मिलेंगे और महज़ ८ ज़िलों में इनकी आबादी ५,००० से ऊपर है।

शिक्षा

इस सूबे में पढ़े-लिखों की संख्या बहुत थोड़ी है। सब मज़हबों को यदि हम लें तो सन् ३१ में ५ वर्ष और ५ वर्ष से अधिक आयुवाले प्रत्येक हज़ार व्यक्तियों में केवल ५५ साक्षर थे, जिनमें से ऐसे पुरुषों में ९४ और ऐसी स्त्रियों में ११ प्रतिहज़ार पढ़-लिख सकती थीं। सब जातियों के ईसाइयों में साक्षरता सूबे के अनुपात से पँचगुनी अधिक थी। सन् ३१ में ५ वर्ष या उससे अधिक उम्रवाले साक्षर ईसाई २८९ प्रतिहज़ार, ३२७ प्रतिहज़ार मर्द और २४१ प्रतिहज़ार औरतें थीं। स्त्रियों की साक्षरता विशेष रूप से चित्ताकर्षक है। सूबे में जहाँ हज़ार में सिर्फ़ ११ स्त्रियाँ साक्षर थीं, वहाँ ईसाइयों में साक्षर स्त्रियों की संख्या प्रतिहज़ार २४१ थी, यानी सूबे के औसत से २१ गुना अधिक साक्षरता ईसाई स्त्रियों में विद्यमान थी। देशी और विदेशी ईसाइयों में सूबे के औसत की तुलना में कितनी अधिक साक्षरता फैली हुई है इसका पता नीचे की तालिका से हमें लगता है :—

		१९३१ में व्यक्तियों में	मर्दों में	स्त्रियों में
१	सूबे की सब जातियों और सम्प्रदायों का औसत	४७	९१	९
२	देशी ईसाई	१५२	१५६	१४८
३	अन्य ईसाई	७०१	७५६	५८७
४	सब ईसाई	२४५	२८२	२०२

यदि हम १९३१ की आबादी में सिर्फ़ इन्हीं व्यक्तियों को लें जिनकी उस समय उम्र १५ से २० वर्ष तक थी, तो विभिन्न सम्प्रदायों के प्रत्येक हज़ार में साक्षरों की संख्या निम्न थी—

सब उम्रों के प्रत्येक हज़ार में साक्षरों की संख्या

		व्यक्ति	मर्द	औरत
१	सूबे का औसत	७२	१२०	१८
२	हिन्दू 'सनातनी'	६७	११४	१३
३	मुसलमान	७७	१२४	२६
४	सिक्ख	१५४	२२२	४९
५	देशी ईसाई	२३७	२४४	२२९
६	अन्य ईसाई	७७६	८१५	६२७

ऊपर के आँकड़ों को ज़रा ध्यान से देखिए। हिन्दुओं और मुसलमानों के मुक़ाबिले में देशी ईसाई तिगुनी से अधिक संख्या में साक्षर हैं। कम से कम तालीम की दृष्टि से देशी ईसाइयों को पिछड़ा या दलित कोई भी न कहेगा। जिस सम्प्रदाय के लोग शिक्षा में इतनी अधिक उन्नति कर चुके हों वे यदि चाहें तो सूबे के सार्वजनिक और साम्पत्तिक जीवन में आसानी से नेतृत्व को अपने हाथ में ले सकते हैं। क्यों उन्होंने ऐसा नहीं किया, इसके ऐतिहासिक कारण हैं। उनकी विवेचना हम आगे चलकर करेंगे। यहाँ पर तो इस सम्भव के असम्भव हो जाने के रहस्य की ओर हम संकेत कर देना चाहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देहाती क़र्ज़ की समस्या

लेखक, श्रीयुत मणिशंकर मिश्र, बी० काम

हमारे गाँवों में ग़रीबी को आग ज़ोर से धधक रही है। प्रान्तीय सरकारों द्वारा किये गये प्रयत्न उसे शान्त करने में काफ़ी सफल होते नहीं दिखाई देते। जब तक किसान ग़रीब है, और जब तक उसकी ग़रीबी मिटाने के लिए उसे अधिक-से-अधिक आर्थिक सुविधाएँ और रियायतें नहीं दी जातीं; तब तक ग्राम-सुधार के कार्य में पूरी सफलता नहीं मिल सकती। इस लेख में लेखक महोदय ने इस सम्बन्ध में एक नया दृष्टिकोण रखने का प्रयत्न किया है। आशा है कि प्रान्तीय सरकारें इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगी।

अब भारतवर्ष के अधिकांश प्रान्तों में कांग्रेसी सरकार का राज्य है। प्रान्तीय सरकारें अपने भरसक ग्रामीण-सुधार का प्रयत्न कर रही हैं। लाखों, करोड़ों रुपये ख़र्च किये जा रहे हैं और नये-नये क़ानून बन रहे हैं। संयुक्तप्रान्त की सरकार भी लगान-सम्बन्धी क़ानून बन जाने पर ऋण-विषयक क़ानून बनाने की ओर ध्यान देगी। ऋण-सम्बन्धी कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित हो गई है और कमेटी की राय है कि कृषकों के वर्तमान क़र्ज़ को उनके अदा करने की शक्ति के अनुपात से क़ानूनन कम कर देना चाहिए और भविष्य के लिए सहकारी ऋण व अन्न-बिक्री-समितियों का तेज़ी से संगठन हो जाना चाहिए ताकि किसान फिर महाजनों के फेर में न पड़ें।

संयुक्तप्रान्त के किसानों की ऋण-समस्या कम जटिल नहीं है। किसान के पास ज़मानत तो होती नहीं। इससे महाजन अधन्नी व एकन्नी का सूद लेते हैं। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए सहकारी समितियों का प्रचार किया गया। प्रायः ३५ वर्ष से ऐसी समितियाँ बनती टूटती रही हैं। कहीं-कहीं तो इन ऋण-समितियों से किसानों को ख़ूब लाभ हुआ और वे महाजनों के चंगुल से छूट गये। धीरे-धीरे उनकी निजी पूँजी जमा हो गई, सूद की दर बराबर कम होती रही और इन समितियों ने कृषि-सुधार इत्यादि का ठोस रचनात्मक काम भी किया। मगर बहुत से गाँव इन ऋण-समितियों-द्वारा तबाह भी हो गये और ऐसे तबाह हुए कि अब मुश्किल से पनप पायेंगे।

बात यह है कि किसानों की आमदनी कम और ख़र्च ज़्यादा है। किसान अपने बजट की कमी को पूरा करने के लिए क़र्ज़ लेता है और उधर हर साल उसके बजट में घाटा रहता है, इसलिए पुराने क़र्ज़ का अदा करना उसके लिए एक प्रकार से असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। अन्य देशों में ऋण-समितियों से कृषकों ने क़र्ज़ लेकर खेती में लगाया, जिससे लाभ हुआ और क़र्ज़ अदा करके चार पैसे बचा भी लिये। मगर यहाँ ऐसा नहीं हुआ। सच पूछिए तो वर्तमान परिस्थिति में खेती में बहुत ज़्यादा पूँजी लगाने की गुंजाइश भी नहीं है, क्योंकि क्रमागत उत्पादन-ह्रास का नियम बड़ी जल्दी लागू होने लगता है। सम्मिलित रूप से बड़े पैमाने पर खेती की जाय (जिसकी श्रद्धेय नेहरू जी अकसर सलाह दिया करते हैं) तो पूँजी भी अधिक लगाई जा सकती है और आमदनी भी बढ़ सकती है, लेकिन फ़िलहाल तो ऐसा होता नहीं। यहाँ तो यह विचार है कि साझे की खेती गधे चरा करते हैं।

अब रही उद्योग-धंधों में पूंजी लगाने की बात, सो गृह-उद्योग के विस्तार का भी क्षेत्र संकुचित-सा ही है। बड़े-बड़े कल-कारख़ानों के सामने न खद्दर ठहरेगा, न हाथ का काग़ज़। दिल बहलाने के लिए हम चाहे जो करें। देश की बेकारी रेल-जहाज़ों के कारख़ाने व मशीन-युग के आगमन से ही दूर होगी। टोकरी बिनकर, रस्सी बटकर मुर्ग़ी या शहद की मक्खी पालकर बेकारी नहीं दूर होगी। और इन चीज़ों का बेतहाशा प्रचार भी किया जाय तो कौन इतनी टोकरियाँ ख़रीदेगा?

सहकारी ऋण-समितियों के आंशिक असफलता का कारण एक और भी है। गाँवों में ज़मींदार, महाजन, सरकार (तकावी के रूप में), सहकारी ऋण-समितियाँ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहकारी अन्य प्रकार की (गन्ना या अन्न-बिक्री) समितियाँ, क़ाबुली और अन्य लोग सभी क़र्ज़ बाँटते हैं। फ़सल तैयार होने पर ज़मींदार अपना पावना वसूल कर लेता है। तहसील के अहलकार तक़ावी वसूल कर लेते हैं। अब जो बचा उसमें महाजन व सहकारी समितियाँ लूट-खसोट मचा कर जो पाती हैं, ले लेती हैं।

और सबसे दुख की बात तो यह है कि हमारे कुछ किसान भाई जो देखने में इतने सीधे व असहाय-से होते हैं, दर-असल वैसे नहीं होते। पहनने-ओढ़ने व बातचीत में सरल होते हुए भी किसान एक शहरी आदमी से कहीं ज़्यादा चालाक व मतलबी होता है। वह क़र्ज़ लेकर अपने आप लौटाना तो बहुत कम जानता है। टेंट में रुपये रक्खे रहेगा, लेकिन जब तक सख़्ती न की जाय, वह एक पैसा न देगा, बल्कि घिघियाता रहेगा। सदियों की दासता ने उसकी सद्वृत्तियों की हत्या कर डाली है। दरिद्रता व अशिक्षा ने उसे उदासीन व स्वार्थी बना डाला है। दबाव डाल कर चाहे जो कराया जा सकता है, समझा कर कुछ भी नहीं।

फल यह होता है कि ऋण-समितियों से क़र्ज़ लेकर साल दो साल तक महाजनों से क़र्ज़ लेकर समिति की वह क़िस्त चुकाता है। फिर समिति से क़र्ज़ लेकर महाजन को चुकाता है। २-४ वर्ष यह चालबाज़ी चलती है फिर क़िस्तें बाक़ी पड़ती हैं, दावा होता है और डिगरी अदालत माल से इजरा की जाती है। लोटा, थाली, चारपाई, चिथड़े, गुदड़े कौड़ीमाल नीलाम हो जाते हैं। अर्थशास्त्र के अध्यापकों व विद्यार्थियों की तो यही सम्मति है कि भारत का उद्धार सहकारी समितियों-द्वारा ही हो सकता है और सिद्धान्तरूप से यह है भी ठीक। सहकारिता में साम्यवाद के सब गुण मौजूद हैं, मगर उसकी बुराइयाँ एक भी नहीं। व्यक्तिगत पूँजी का बिना नाश किये यदि किसी देश के छोटेभैयों ने उन्नति की है तो सहकारी-समितियों के द्वारा ही।

किन्तु हमारे देश की दशा कुछ भिन्न है। गाँव में ऋण-समिति खुलने पर लोग अंधाधुन्ध क़र्ज़ लेने लगते हैं; पंच लोग बड़ी-बड़ी रक़में लेकर न ख़ुद अदा करते हैं, न लिहाज़ के मारे दूसरों से तक़ाज़ा करते हैं। सहकारिता के भाव लोगों के मन में तो उदय होते ही नहीं। दबाव डालकर जो कुछ करा लिया जाता है उसी की बार-बार चर्चा की जाती है कि यह हो गया, वह हो गया। और सब गाँवों में सहकारी समितियाँ हैं भी तो नहीं। ३४ वर्ष में ७ हज़ार समितियाँ बनीं और कुछ बन कर टूटीं। अगर प्रान्तीय सरकार इस विषय पर अधिकाधिक ध्यान दे तो भी कहीं १० वर्षों में सब गाँवों में शायद सभायें बन सकें। अगर काग़ज़ी दिखावे के लिए जल्दी की गई तो काम और भी बिगड़ जायगा।

तो फिर किया क्या जाय?

मैं कोई अर्थ-शास्त्र का पेशेवर विशेषज्ञ नहीं हूँ, इससे मेरी क्षुद्र सम्मति का उतना मूल्य भी नहीं। मैंने १२ वर्ष तक देहाती क़र्ज़-समस्या का जो अनुभव प्राप्त किया है उसके आधार पर कुछ लिखने का यहाँ साहस करता हूँ।

सबसे पहले तो हमारी सरकार को सुधार के प्रचार की नीति में नैतिक परिवर्तन करना है। बार-बार समझाने-बुझाने में समय व धन का अपव्यय होता है और नतीजा भी विशेष संतोषप्रद नहीं होता। उसके स्थान पर सरकार को एक नृशंस डिक्टेटर की भाँति अपनी राय, जनता पर लाद देनी चाहिए। गाँवों में सब जानते हैं कि कांग्रेस का राज्य है और कांग्रेस भरसक उनकी भलाई की कोशिश कर रही है। लेकिन किसी कांग्रेस के सेवक या ग्राम-सुधार-विभाग के आर्गनाइज़र को चाहे गाँववाले एक लोटा पानी भी न पिला सकें, उनकी बातों में ज़रा भी दिलचस्पी न दिखावें, लेकिन एक कान्सटेबुल या थानेदार के आगमन पर तुरन्त आवभगत करने लगेंगे। अब पहले की-सी बात नहीं रही है, लेकिन है अब भी वही हाल। ग्राम-सुधार पर सरकार लाखों रुपये ख़र्च कर रही है, मगर आर्गनाइज़रों के गाँव में टिकने पर ही गाँववालों को अड़चन-सी होती है कि इसे इंधन व चारपाई देनी पड़ेगी। कोई बेचारे की तरफ़ मुख़ातिब तक नहीं होता। एक गाँव के ठाकुर लोग जो कुछ पढ़े लिखे भी थे, कहने लगे कि कांग्रेसवालों ने अपने रिश्तेदारों को नौकरी दिलाने के लिए ग्रामसुधार का स्वाँग रचा है, ३०) महीने का आर्गनाइज़र रक्खा है और उसके पास १० गाँव हैं, यानी २॥) फ़ी गाँव का ख़र्च है। अगर सरकार २॥) महीने पर एक एक मेहतर रख दे तो इस आर्गनाइज़र की क्या ज़रूरत, जो महीने पंद्रहवें आ आकर कहता है कि गली झाड़ो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाद के गड्ढे हटाओ। गली झाड़ना ही उन्होंने ग्राम-सुधार समझा है। यह हमारी ग़ुलाम मनोवृत्ति का सिर्फ़ एक नमूना है। इतने लाख रुपये ख़र्च करने पर ग्राम-सुधार-विभाग ने कुछ खाद के गड्ढे खुदवाये, कुछ बीज बुवाया, कुछ रात्रि-पौढ़-पाठशालायें खुलवाइ। कुछ काम ज़रूर हुआ है, मगर जितना ख़र्च हुआ है उसके अनुपात में काम नहीं हुआ है। किसी बड़े अफ़सर के आगमन की सूचना पर आर्गनाइज़र ने अपनी रोज़ी क़ायम रखने के लिए अपने पैसे से गाँव में झाड़ू लगवा दी। अफ़सर के आने पर २-४ आदमी गाना-भजन करने लगे। उन्हें गेंदे के फूलों की माला पहना दी! अफ़सर महोदय ने भी चुने हुए शब्दों में ग्राम-सुधार के मंत्र दुहरा दिये। बस सुधार हो गया। सब जगह ऐसा न होता हो, मगर है यह कटु सत्य, जिसे अपनी गवर्नमेंट के सामने प्रकट करने में हमें संकोच नहीं है।

मैं तो ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि हमारे महामंत्री पंत, हिटलर व मुसोलिनी की भाँति, अपने विचार सारी जनता के दिमाग़ में ज़बदस्ती ठूँसें। देश का बच्चा-बच्चा जानता है कि कांग्रेस जो कुछ करेगी वह देश की भलाई के लिए ही करेगी। तब क्यों न कुछ करवाया जाय? खुद कुछ करने की न तो हम इच्छा ही करते हैं, न उसके लिए कुछ तकलीफ़ उठाना चाहते हैं। हमसे ज़बर्दस्ती जो कुछ कराया जाय, करेंगे। पहले कुछ कुनमुनायँगे, मगर फिर अपने उद्योग का सद्फल देखकर नित्यकर्म की भाँति सरकारी आदेशों का पालन करने लगेंगे।

इस स्वतन्त्रता के युग में ज़बदस्ती की चर्चा चलाना एक तरह की हिमाकत-सी है, मगर फिर दूसरी सूरत भी नहीं है। लोग कहेंगे, पुराना नासूर दो-चार दिन दवा लगाने से अच्छा थोड़े ही हो जायगा। मेरा कहना है, अधिक नहीं तो २० वर्ष तक उस दवा से लाभ न होगा। होमियोपैथक गोलियों से झूठमूठ का दिलासा बँधा रहे, मगर रोग दूर न होगा। ज़रूरत है रोगी के हाथ-पैर बाँध कर क्लोरोफ़ार्म देकर आपरेशन करने की।

लगान का नया क़ानून बन जाने से व भूमिहीन कृषकों को भूमि मिल जाने से देहात में लोगों को बहुत सहारा मिल जायगा। इसके बाद गाँवों का आर्थिक निरीक्षण होना चाहिए, जिसमें प्रत्येक किसान के क़र्ज़ का व उसके वार्षिक आय-व्यय का अंदाज़ा लगाया जाय। फिर किसानों के पुराने क़र्ज़ के एक अंश को उनकी बचत के हिसाब से सरकार अदा कर दे। बाक़ी माफ़ कर दिया जाय। फिर हर एक किसान को भविष्य में सरकार ख़ुद क़र्ज़ दे। किसान को यह अधिकार रहे कि वह महाजन से क़र्ज़ ले सके, किन्तु महाजन को उस क़र्ज़ को अदालत की मार्फ़त वसूल करने का अधिकार न होना चाहिए। इससे भविष्य में दीवानी की डिगरियों का अस्तित्व ही न रह जायगा। यदि किसानों को सरकार स्वयं क़र्ज़ दे तो शुरू में १ करोड़ का क़र्ज़ ३ प्रतिशत पर लेकर ६ प्रतिशत पर बाँटा जाय। ३ प्रतिशत की बचत में सरकारी नौकरों की तनख़्वाहें निकाल कर जो बचे वह 'रोज़गार' के भावी नुक़सान की पूर्ति के लिए एक कोष के रूप में जमा रहे। महाजनों के पुराने क़र्ज़ को सरकार नक़द या बांड के रूप में लौटा दे। जब महाजन ख़ुद देहात में अपना रुपया न लगा पायेंगे तब वे अपना रुपया सरकारी ऋण-पत्रों में लगायेंगे। भविष्य में क़र्ज़ बैल ख़रीदने, मकान बनाने, ब्याह शादी या दवा—इलाज करने के लिए दिया जाय। लगान के लिए क़र्ज़ देना ठीक नहीं, अगर किसान अपनी फ़सल से लगान भी न अदा कर सके तो क़र्ज़ लेना हिमाक़त है। क्या हो अच्छा हो कि सरकार किसानों की कुल फ़सल ले ले। उसमें से पैदावार के हिसाब से ज़मींदारों की ओर से ख़ुद लगान ले ले। उसके बाद किसान के कुटुम्ब के खाने के लिए अन्न छोड़ दे। फिर जो बचे उसमें से क़र्ज़ की रक़म काटकर जो बचे वह उसकी अमानत के तौर पर जमा रक्खे। यदि लगान रुपयों में न होकर पैदावार के अंश में हो और बजाय ज़मींदार के सरकार ख़ुद लगान वसूल करे तो किसानों की दशा सुधर सकती है और उनकी आर्थिक स्थिति में स्थायित्व आ सकता है। लेकिन सरकार का ख़र्च तो स्थायी है। यह हो कैसे? मैं समझता हूँ, यह भी हो सकता है। प्रान्तीय औसत कृषि-उत्पादन के हिसाब से सरकारी नौकरों को तनख़्वाहें दी जायँ। यही कारण है कि जब देश की ९० प्रतिशत जनता भूखों मरे तब नौकरों की जेबों पर उसका असर न हो।

बोने के लिए बीज भी सरकार ही दे और जैसा ऊपर दिखाया गया है पैदावार से काट ले। किसे कौन-सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़सल बोनी होगी, यह भी सरकार ही तय कर सकती है, यहाँ तक की ब्याह शादी के ख़र्चे भी सरकार ही तय करे।

पढ़ने में ये बातें विक्षिप्त के प्रलाप-सी जान पड़ेंगी, लेकिन अभी न होंगी तो कुछ दिन बाद होंगी। और हम जितनी जल्दी इसके लिए तैयार हो जायँ, उतना ही अच्छा। देश में साम्यवादी विचार इस तेज़ी से बढ़ रहे हैं कि पूँजी और भूमि का राष्ट्रीयकरण अवश्यभावी है। कोई सार्वजनिक संस्था चाहे वह कितनी ही अच्छी क्यों न हो, ये सब काम नहीं कर सकती, क्योंकि बड़े भारी आर्थिक उत्तरदायित्व का प्रश्न उपस्थित होता है। अगर देहाती क़र्ज़-संस्थाओं के राष्ट्रीयकरण से सरकार को कुछ हानि भी उठानी पड़े तो उठानी चाहिए। किसानों व मज़दूरों की सरकार यदि उन्हीं की भलाई के लिए क़र्ज़ लेती रहे तो यह क़र्ज़ उस क़र्ज़ से बुरा न होगा जो सारे राष्ट्र सैनिक व्यय के लिए लेते हैं।

अब रहा प्रबन्ध का प्रश्न! लोग कहेंगे कि हर एक गाँव में कौन बीज बाँटेगा कौन क़र्ज़, कौन ग़ल्ला वसूल करेगा, वहाँ वह बृहत् अन्नराशि बिकेगी। सब कुछ हो सकता है। यह कोई ऐसा मुश्किल काम नहीं है। इसी काम के लिए देश भर में सरकारी नौकरों का जाल बिछाया जा सकता है। गाँव-गाँव पंचायतें बनाई जा सकती हैं। अड़चनें तो फिर होती ही हैं। मगर कांग्रेस ने ध्वंसात्मक कामों में जब इतनी युद्ध-कुशलता, धैर्य व साहस का परिचय दिया है, इतनी अड़चनें पैरोंतले कुचल डाली हैं तब अब शांति-युग में रचनात्मक कार्यों की अड़चनें नगण्य-सी हैं।

देश के ग़रीब भाई यही आशा लगाये हैं कि सरकार उनके लिए 'कुछ' करेगी। बेचारे 'कुछ' की परिभाषा नहीं कर सकते, लेकिन सरकार के वर्तमान उपदेशों में उन्हें उस 'कुछ' का आभास-मात्र मिलता है, दर्शन नहीं होते। हमें उसका दर्शन कराना है। देश की सामूहिक शक्ति चाहे वह आर्थिक क्षेत्र में हो या राजनैतिक, बिना 'व्यक्तित्व' का नाश किये नहीं हो सकती और यदि हुई भी तो शताब्दियों के बाद। हमें अन्य उठते हुए राष्ट्रों का अनुकरण करना ही होगा—अभी करें या चार दिन पीछे।

चुप हो, मत रो मेरे प्यारे!

लेखिका, श्रीमती तारा पाण्डेय

मैं चाहे कितना हो रोऊँ
तुझ न पल भर रोने दूँगी,
सोने के दिन, चाँदी को निशि
तेरे व्यर्थ न होने दूँगी;
हँसते-हँसते बढ़ा करेंगे
इस जीवन के पल-छिन सारे!

संध्या को जो झिलमिल करती
अम्बर में मोती की जाली
दुखिया आँखों की निधि हैं वे
चंदा मामा की दीवाली;
तेरी आँखों के आँसू से
बुझ जायँगे नभ के तारे!

तेरा हँसना सुमन खिलाता
तू रोता झरते हैं मोती।
हास-रुदन की इस क्रीड़ा में
मेरे उर को पीड़ा खोती;
तुझको पाकर दूर हुए हैं
उर-नभ के वे बादल कारे!
चुप हो, मत रो मेरे प्यारे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम का सौदा

लेखक, श्रीयुत मारकण्डेय वाजपेयी, एम० ए०, एल-एल० बी०

ता न बताता। बहुत दिनों से तुम पूछ रहे हो और मैंने नहीं बताया है। पर आज, न जाने क्यों, बताने का जी करता है। मालवा की शाम और रात में जादू है। आकाश रक्त-वर्ण हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति ने संसार से प्रेम करके भग्न-हृदय ही पाया है और नैराश्य के अन्धकार से पूर्व अपनी दुःखगाथा सर्वसाधारण के सम्मुख आकाश में अपने हृदय से बहे हुए रक्त से लिख-लिख कर वह रख रही है। अन्धकार बढ़ता चला आ रहा है पर सामनेवाली झील में उस रक्त-रञ्जित कथा का प्रतिबिंब अभी शेष है। मालूम होता है कि प्रकृति अपनी गाथा संसार को पढ़ाने के लिए पृथ्वी पर सदा के लिए अंकित कर देना चाहती है। पर समय उसे रहने देगा क्या? संसार कुछ जानेगा, समझेगा अथवा प्रकृति के इस बलिदान पर कभी दो आँसू बहायेगा? तुम्हीं नहीं समझते। इस दुःखगाथा को तो पढ़ते नहीं, गाते चले जाते हो कि "रूपनगर में दिल मुसाफ़िर प्रेम-सौदा कर ले।" प्रकृति ने वह सौदा किया। मर मिटी। मैंने भी प्रेम का सौदा किया था। हृदय देकर हृदय माँगा था। सचमुच। मुस्कराते क्यों हो? आज मेरी उमर ज़्यादा हो गई है, मेरा हृदय कठोर हो गया है तो क्या मैं सदा ही ऐसा था? मेरी भी नसों में ख़ून था। मेरे भी हृदय में उमंगें नृत्य किया करती थीं। मेरी भी आँखों में कोई बसा था।

बहुत दिनों की बात है। आज की तरह दूर देश में सबसे अलग तब नहीं पड़ा था। अपने ही घर में रहता था, हँसी-ख़ुशी से दिन गुज़ारता था। यह भी नहीं पता चलता था कि कब दिन हुआ और कब रात हुई। सुनते हैं कि देवताओं को मनुष्यों का सुख अखरता है। उन्होंने मेरा सुख छीन लिया। कैसे छीना यह फिर कभी बताऊँगा। उसका इस कहानी से कोई सम्बन्ध नहीं है। निराशा और दुःख के समुद्र में मैं ग़ोते लगाने लगा। किसी तरह से चैन नहीं मिलता था। कोई सहारा न था। जिधर दृष्टि पड़ती थी अन्धकार ही अन्धकार दृष्टिगोचर होता था। दुःखी हृदय कठोर होने से प्रथम भावुक होता है। तिरस्कार की निर्दयता, निराशा की क्रूरता और वेदना की बर्बरता हृदय को जमा कर पत्थर कर देती हैं। पत्थर बने बिना दुनिया में काम भी नहीं चलता है। यहाँ तक सच है कि पत्थर बने बिना आदमी ज़िन्दा ही नहीं रह सकता। बालक कोमल तथा सहृदय होता है, इसी लिए बालक कहलाता है। पुरुष निष्ठुर तथा हृदयहीन होता है। इसी लिए आदमी दुनिया में बड़ा होता है, वरना उम्र में बड़ा होकर भी लड़का ही कहलाता है। मेरे जीवन की हार ने मुझे लड़के से आदमी बना दिया। आदमी होने के मानी यह नहीं हैं कि मैं बड़ा सचमुच ही हो गया। मैं तो हर तरह से, हर तरफ़ से बहुत छोटा आदमी हूँ। पर लड़कपन से आदमियत में पदार्पण करने का कारण मेरा निष्फल प्रेम ही था। जिन दिनों मेरा हृदय सहानुभूति तथा सांत्वना के लिए विकल था उन्हीं दिनों एक लड़की से मेरा परिचय हुआ।

वेदना बढ़ने पर मैं घर से भाग गया था। हिमालय की ठंढी-ठंढी हवा से पागल मस्तिष्क के ठंढे होने की आशा थी। स्थान बड़ा रम्य था पर उन दिनों प्राकृतिक सौंदर्य भी मुझे भुलावे में डाल सकने में असमर्थ था। केवल उस लड़की की भोली बातों में जी कुछ बहल जाता था। लड़की के पिता पहले व्यापारी थे। बाद को व्यापार में घाटा आने पर नौकरी करने लगे थे। देखने में वे बड़े सीधे लगते थे पर वास्तव में उनकी प्रकृति क्रूर और अनुदार थी। अपनी मुसीबतों का रोज़-रोज़ रोना रो कर अपने घरवालों पर बड़ी धाक जमाये हुए थे। घरवाले उनके नाम से काँपते थे। बातें करते थे नपी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की, और बहुत बढ़ बढ़ कर, पर थे बड़े कट्टरपंथी। यह दोष उन्हीं का न था। हम लोगों में से अधिकांश व्यक्ति ऐसा ही किया करते हैं। ज़माना बदल जाता है पर समाज तथा रूढ़ियों के बदलने में बड़ी देर लगा करती है। रद्दोबदल के ज़माने में बातें नये ज़माने की करनी पड़ती हैं, नहीं तो दक़ियानूसी क़रार दे दिये जायँ। पर काम पुराने ज़माने के करने पड़ते हैं। क्योंकि समाज से संग्राम करने के लिए साहस की आवश्यकता है। वह साहब भी ऐसे ही थे। थे बड़े मज़ेदार आदमी और बड़ी लगन के। पैसा जेब में हो तो ख़र्चे अनाप-शनाप, न हो तो फ़ाक़ेमस्त। दोस्ती में घरबार बेच डालें और दुश्मनी बेबात के कर लें। भावुकता उनमें इतनी अधिक, कि ज़रा से में गले लगा लें और ज़रा से में आगबबूला होकर वह कह डालें और कर डालें जिसके पीछे जीवन भर पछताना पड़े। जानता मैं उन्हें पहिले से भी था। एक बार उन्होंने मेरी बड़ी सहायता भी की थी जिसके लिए उनका मैं जन्म भर आभारी रहूँगा। पर ज़्यादा मैंने तभी उन्हें जाना जब उनके नगर में जाकर रहने लगा। लड़की रूपवती थी, लावण्यमयी थी, सुशील थी और थोड़ी बहुत पढ़ी-लिखी थी। उसके पास किसी कालेज-परीक्षा की डिग्री न थी पर सैकड़ों डिग्रीवालियों से वह अच्छी थी। पर्दा वह करती न थी। हम लोग एक दूसरे से ऐसे हिलमिल गये जैसे बचपन के साथी हों। हम दोनों की उम्रों में बहुत अन्तर न था। विचारधारायें एक सी थीं। दुःखी हृदय सहानुभूति पाकर फिर से हरा होने लगा। अनजान में ही प्रेम का सौदा हो गया। पहले तो इसका कभी ध्यान भी न था। स्नेह भर था। पर स्नेह के प्रेम में बढ़ते किन्हीं परिस्थितियों में विलम्ब नहीं लगता। यूँ तो मुझे कभी प्रेम का भ्रम भी न होता। मेरी शक्ल-सूरत इस क़ाबिल नहीं है कि कोई मुझे प्रेम कर सके। धर्म ने साथ ज़बर्दस्ती बाँध दिया हो तो और बात है। भारतीय सतियाँ अपने पतियों के रंग-रूप पर कभी ध्यान नहीं देतीं। पर प्रेम जीतने के लिए जिन बातों की आवश्यकता होती है उनमें रंग-रूप का स्थान प्रमुख है। परमात्मा मुझे बनाते समय बुद्धि, रंग-रूप, लक्ष्मी सभी देना भूल गये। उनकी शिकायत करूँ भी तो किससे? मनुष्य से हारकर आदमी परमात्मा की शरण जाता है। जब परमात्मा को ही कुछ बातें भूल जायँ तब आदमी कहाँ जाय? हाँ! एक बात के लिए मैं परमात्मा का बड़ा कृतज्ञ हूँ। उन्होंने मुझे साधारण-ज्ञान पर्याप्त दिया है। इसी लिए संतोष की मात्रा भी यथेष्ट है। जीवन में सदा हार ही मिलती रही पर उससे भी ख़ुश हूँ। जो कुछ मिलता है उसी को बहुत समझ कर परमात्मा का नाम लेता हूँ। मनुष्य का भाग्य सदा एक सा नहीं रहता। बहुत ख़राब भी होता है तो कभी-न-कभी चमक उठता है। मेरा प्रयत्न सदा यह रहता है कि अपने भावों को प्रकट न होने दूँ। पर प्रेम की आग ऐसी है कि उसकी लपट कभी-न-कभी निकले बिना नहीं रहती है। एक दिन हम लोग बातें कर रहे थे। आतुर-हृदय के भाव शायद कुछ मुँह पर दिख गये होंगे। उस लड़की ने एक बार मेरी ओर देखा, फिर सिर झुका लिया। चेहरा लाल हो गया। बातें जल्दी-जल्दी करने लगी। जब मैं उसके घर से आया तो मेरे हृदय ने मुझे बहुत बुरा भला कहा। चाँद के टुकड़े को ललचाने से क्या लाभ? कभी हाथ तो आ ही नहीं सकता। तभी तो कवि विद्यापति ने कहा है कि—"जे अनुपम उपभोग न आवये ते फल काहि निहारि?" कवि जायसी ने इसके विपरीत अवश्य कहा है कि—"मोहि भोग सेा काज न बारी। सौंह दीठि के चाहनहारी"। पर मेरे प्रेम की मात्रा तो इस हद से ज़्यादा आगे निकल गई थी। अधर्म का कोई विचार न था। अधर्म के पथ पर मैं आज तक जान बूझ कर कभी भी अग्रसर नहीं हुआ। अब तो समझता भी हूँ, पर उन दिनों यह भी नहीं जानता था कि धर्म के मार्ग पर चल कर सफलता कभी नहीं मिल सकती और अधर्मी जो चाहे कर सकता है। जानकारी उस समय थी केवल निष्पाप-प्रेम की, तथा असह्य-वेदना की। अब तो ग़लतफ़हमियों की भी मुझे परवाह नहीं। अपना रास्ता अपने ठीक और ग़लत के विचार से चलता हूँ, यह कभी नहीं सोचता कि और लोग क्या कहेंगे। औरों के कहने की परवाह भी नहीं है। पर उन दिनों ग़लतफ़हमियाँ नहीं सहन होती थीं, हृदय बड़ा कोमल था, निराशाओं ने तब तक पत्थर न बना पाया था। आज सोचता हूँ तो अपने उस समय के व्यक्तित्व पर कुछ हँसी आती है और कुछ तरस आता है।

कई दिन नहीं गया। उधेड़बुन में पड़ा रहा। फिर एक दिन साहस करके उसके घर गया। वह पहिले ही की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाँति मिली। वही हँसी, वही मज़ाक़ पर सिर नीचा। एक बार हृदय आनन्द से फूल उठा। फिर आवश्वास की आँधी आई, निराशा का समुद्र उमड़ चला। कभी ख़याल होता कि वह भी प्रेम करती है। फिर अपनी कमज़ोरियाँ याद आ जाती थीं। स्मरण आता था कि संसार के प्रेमी सभी सुन्दर नहीं हुए हैं और अभागों का भी भगवान् होता है। फिर ध्यान आता था कि मेरे पास है ही क्या? वह जिसे अपना कह दे वही अपने को धन्य समझेगा। सारी दुनिया उसके पैरों पर है, मुझे कौन पूछेगा? पर जी न माना। पूछने का तो साहस न हुआ। डरते-डरते दूसरे से पुछवाया। जिस दिन उत्तर मिला, मेरे पैर ज़मीन पर न पड़ते थे। हृदय से हृदय का सौदा किया था। विजयोल्लास में हृदय दोगुना बड़ा हो गया। एक तो अपना था ही, दूसरा और मिल गया। मेरी समझ में 'आज' तक नहीं आया है कि उसने मुझ में क्या देखकर मुझसे प्रेम किया था। संभव है उसे भ्रम हुआ हो। सहृदया और कोमलता ने इसलिए "हाँ" करा लिया हो कि दुखी-हृदय और अधिक न दुख जाय। कई बार उसने बाद में बातें कुछ ऐसी कीं कि जैसे किन्हीं कारणों से उसे पश्चात्ताप हो रहा हो। कुछ दिन बड़े सुख के कटे। मैंने कभी उसे हाथ तक न लगाया क्योंकि पाप की ओर मेरी प्रवृत्ति ही न थी। सुखस्वप्न भर देखता रहा कि जब हम दोनों एक दूसरे के होंगे तो जीवन में यह करेंगे, वह करेंगे। तुम तो समझ ही गये होगे कि फिर क्या हुआ। संसार को किसी का सुख बड़ा अखरता है। दुनिया कानाफूसी करने लगी। मैंने कभी दुनिया को इसका अवसर भी नहीं दिया था पर जैसा उर्दू कवि अकबर ने कहा है :—

"निगाहें मिल गई थीं मेरी उनकी रात महफ़िल में।
ये दुनिया है, बस इतनी बात फैली दास्ताँ होकर॥"

रिश्तेदार, नातेदार, दुनियाई दोस्त मौक़ा पड़ने पर कभी काम नहीं आते, पर ऐसी बातों में उनकी ख़ास दिलचस्पी होती है। उन्होंने उसके पिता से न जाने क्या-क्या लगा दिया! परमात्मा जाने कौन-कौन से पाप मेरे सिर मढ़े गये। मैंने तो कोई पाप नहीं किया था। पर संसार को सत्य से प्रेम नहीं। वह दूसरे की बुराई ही सुनना चाहता है, भलाई नहीं। एक छोटी सी बात पर दुनिया ने लड़ाई करा दी। दोष शायद मेरा ही था। सच पूछो तो मुझे अपना दोष आज तक ज्ञात नहीं, पर यह कैसे कहूँ कि और लोग भी भूल कर सकते हैं। अनुभव से मैंने यह जाना है कि अपनी भूल कोई नहीं स्वीकार करता है और वाद-विवाद व्यर्थ होता है। इसलिए भली राह यही है कि अपनी भूल मान कर अपना दोष स्वीकार कर लेना चाहिए; चाहे वास्तव में भूल हुई हो या न हुई हो। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसके पिता उसे मुझे सौंपना तो क्या पसंद करते, उन्हें मेरी सूरत से नफ़रत हो गई। समाज-सुधार की बातें कोरी गप्पें थीं, यह भी मुझे तभी मालूम हुआ। ऐसा भी आभास हुआ कि प्रेम के जंजाल से वह भी घबरा उठी है। अपने घरवालों का मोह उसे अधिक हुआ है। अपनी सारी कमज़ोरियाँ ध्यान आईं। फिर उसी विचार ने ज़ोर मारा कि मेरी प्रेमिका को प्रेम का भ्रम हुआ है और तरस और प्रेम का अंतर उसे अब मालूम हुआ है। भगवान् और प्रकृति ने जिसे अभागा बनाया होता है उसका हृदय बड़ा कोमल होता है, पर दिमाग़ बड़ा अहंकारी होता है। मैं वहाँ से तुरंत दूसरी जगह चला गया। लौट कर आने पर पता चला कि उसका विवाह हो गया है। वह सचमुच मुझसे प्रेम करती थी, यह तो वही जाने। अब भी दर्द होता है तो मालूम होता है कि करती थी। पर संभव है यह केवल मेरा अहंकार हो जो मुझे ऐसी धारणा दिलाता हो। मैं तो उसके सुखी जीवन की सदा ही कामना किया करता हूँ। वह जहाँ भी हो, जैसी भी हो, भगवान् उसे सुखी रक्खे। मेरा उसे यही आशीर्वाद है। और सुखी जीवन के लिए यह आवश्यक है कि उसे यह विश्वास हो जाय कि वह मुझे प्रेम नहीं करती थी, केवल दुखी व्यक्ति पर तरस भर खाती थी। और यदि यह बात न हो और चाहे चार दिन के लिए ही मैं उसकी निगाह में रहा हूँ तो मैं भगवान् से यही प्रार्थना कर सकता हूँ कि सपना समझ कर वह मुझे भूल जाय और अपने विवाहित जीवन में उस निष्फल प्रेम की कहीं छाया न आने दे।

मैंने उसके अनन्तर वह नगर ही छोड़ दिया। हिमालय के सुन्दर दृश्य मुझे काटे खाते थे। सारा कारबार बंद करके मैं बरसों घूमता रहा। उससे भी शांति न मिली तो यहाँ आ बसा। कमाता-खाता हूँ, मौज से हूँ। तुम्हारे जैसे दो चार दोस्त हैं। आदमी को जीवन में और चाहिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही क्या ? कल की याद है ? हम लोग पास के नगर में सिनेमा देखने गये थे। वहीं से अनमना सा होकर लौटा हूँ। इसीलिए तो तुम्हें आज यह कथा सुना रहा हूँ। इस दूर देश में, जंगल में, भला कैसे आशा कर सकता था कि उसके फिर से दर्शन होंगे ! पर भगवान् की लीला अपरम्पार है। अँधेरे में भी प्रकाश हो सकता है। तुम तब टिकट ले रहे थे तब मैं भीड़ में कुछ खोया हुआ सा खड़ा था। भीड़ की आदत अब छूट गई है। इतने में ही वह सामने मुझे दिखाई दी। एक बार चौंक कर देखा। संयोगवश वह भी मेरी ही ओर देख रही थी। मेरे पैर काँपने लगे, सिर घूम गया, पुरानी बातें याद आ गईं। मैंने ही आँखें नीची कर लीं। जीवन में सदा मेरी हार ही रही, उस समय ही कैसे जीत होती। एक बार फिर मैंने उधर देखा, पैरों की ओर, और श्रीमती महादेवी वर्मा की ये पंक्तियाँ मुझे स्मरण हो आईं :—

"मैं भी भर झीने जीवन में, इच्छाओं के रुदन अपार।
जला वेदनाओं के दीपक, आई इस मंदिर के द्वार॥
क्या देता मेरा सूनापन, उनके चरणों को उपहार ?
बे सुध सी मैं धर आई, उन पर अपने जीवन की हार॥"

उसने वह समर्पण स्वीकार किया कि नहीं, यह देखने की मुझमें सामर्थ्य न थी। किसी काम से इधर आई होगी। अब तक लौट गई होगी। यहाँ जंगल में सिवा हमारे जैसे दीवानों के और रहता ही कौन है ?

उठ उठ री मानस की उमंग !

लेखक, श्रीयुत सोहनलाल द्विवेदी, एम० ए०

उठ उठ री मानस की उमंग ! भर जीवन में नव रूप रंग

फूटे तरु में नव - नव पल्लव
ले शत शत रंगों का वैभव
कोमल कलियों का नव उद्भव
लाया मादक सौरभ तरंग
उठ उठ री मानस की उमंग !

फैला किरणों का अरुण जाल
बरसा तृण पल्लव पर गुलाल
रँग उठी धरा यह लाल लाल
पुलकित होकर गाते विहंग
उठ उठ री मानस की उमंग !

वे इन्द्रधनुष-से पंख खोल
नभ में पंछी करते किलोल
उड़ चले क्षितिज पर डोल-डोल
लेने जीवन संबल सुरंग
उठ उठ री मानस की उमंग !

सरसी में उठती लोल लहर
छा जाती दोनों कूल छहर
कल-कल छल-छल कर प्रहर-प्रहर,
गमकाती जीवन की मृदंग
उठ उठ री मानस की उमंग !

नीलम दूबों पर ये हिमकण
लगते—मानो बरसा कंचन
हँसते, खिलते रह रह तृण-तृण
जीवन-धन का मिल गया संग
उठ उठ री मानस की उमंग !

सरिता अपनी धुन में बहती
चुप चुप सुख-दुख गाथा कहती
धारा में कितनी गति रहती ?
होता धीवर का धैर्य भंग
उठ उठ री मानस की उमंग !

सामने खड़ा जो शैल अचल
योगी-सा आसन में अविचल
दृढ़ता में कितनी गुरुता, बल ?
नीलांचल तक छू रहा शृङ्ग
उठ उठ री मानस की उमंग !

मृदु सुमन खोल अन्तस के दल
बन बन बिखेरते हैं परिमल
मधु-गन्ध भार आकुल दिशि पल,
छूते प्राणों के तार भृंग
उठ उठ री मानस की उमंग !

कोयल विटपी पर रही बोल
प्राणों में अमृत रही घोल,
पगली, तू भी मृदु कंठ खोल,
गा री, नवजीवन के प्रसंग
उठ उठ री मानस की उमंग !

गा नवजीवन के नव प्रसंग भर जीवन में नव रूप रंग !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन खड़ी बोली का दृष्टान्त

लेखक, श्रीयुत यतीन्द्रमोहन भट्टाचार्य, एम० ए० और श्रीयुत कालिदास मुकर्जी, बी० ए०, एम० आर० ए० एस० (लन्दन)

वैज्ञानिक दृष्टि से हिन्दी-भाषा और उसके साहित्य की समालोचना करना कुछ हँसी-खेल नहीं है। भारत के प्रसिद्ध हिन्दी-साहित्यकारों ने भाषा तथा हिन्दी-साहित्य का इतिहास लिखने का विशेष प्रयत्न किया है तथा उन्होंने जो कुछ भी लिखा है वह अति आदरणीय है। उनमें पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास', बाबू श्यामसुन्दरदास का 'हिन्दी भाषा और साहित्य', मिश्रबन्धुओं का 'हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' तथा श्री एफ़० ई० के का 'हिस्ट्री आफ़ हिन्दी लिटरेचर' आदि विशेष उल्लेख-योग्य हैं। भाषा के इतिहास पर डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा का 'हिन्दी-भाषा का इतिहास' अपने ढंग का प्रथम एवं अति उत्तम है। इनके अतिरिक्त हिन्दी-भाषा तथा उसके साहित्य पर छोटी-मोटी कई पुस्तकें छप चुकी हैं और छपती जा रही हैं, साथ ही साथ मासिक तथा त्रैमासिक पत्रिकाओं में उपर्युक्त विषय पर बरसों से प्रबन्ध लिखे जा रहे हैं। परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि उनको हम सम्पूर्ण एवं सुसम्बद्ध नहीं कह सकते। प्राचीन हिन्दी-ग्रन्थों का अर्थात् मुद्रणयन्त्र की स्थापना के पूर्व लिखे गये हिन्दी के ग्रन्थों में से आज भी अधिकांश अप्रकाशित हैं। धारावाहिक रूप से सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्य का इतिहास आज तक नहीं लिखा गया है और उसका लिखा जाना भी सर्वथा असम्भव-सा है, क्योंकि बहुत-सी हस्तलिखित पुस्तकें आज भी नहीं मिल सकी हैं और बहुतों को तो कीड़े-मकोड़ों ने खा भी डाला है, तथा अधिकांश मुसलमानों के हमलों से तथा अग्नि और वरुण देवताओं की क्षुधा-निवारणार्थ संसार से विलीन हो गई हैं। मिश्रबन्धुओं ने 'मिश्र-बन्धु-विनोद' में अनेक लेखकों का दिग्दर्शन कराया है सही, परन्तु सर्वथा ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने आज तक के सब हिन्दी-लेखकों का पता पाया है। इसके अतिरिक्त मुद्रणयन्त्र की स्थापना के पश्चात् भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में जो हिन्दी-पुस्तकें आज तक छप चुकी हैं उनकी भी विश्वासयोग्य पूर्ण तालिका कहीं प्राप्य नहीं है। पुस्तकालयों में इस प्रकार की छपी हुई पुस्तकों की तालिका मिलती अवश्य है, परन्तु उनसे आज तक की छपी हुई सब पुस्तकों की तालिका कहीं नहीं मिलती।

१९वीं शताब्दी तथा उसके पूर्व जो कुछ नाटक, उपन्यास, आख्यायिका तथा भ्रमण-कहानियाँ लिखी गई हैं उनमें कौन-सी सर्वप्रथम हैं, यह हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते, क्योंकि उस समय की लिखी गई समस्त पुस्तकों का पता हमें नहीं है। सन् १८६८ ईसवी में सरकार ने एक क़ानून जारी किया, जिसके अनुसार भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न भाषाओं में छपी हुई विभिन्न पुस्तकों की कम-से-कम एक प्रति सरकार को देने का हुक्म हुआ। इसके फलस्वरूप विभिन्न प्रादेशिक त्रैमासिक पत्रिकाओं के परिशिष्ट में उन प्रदेशों के विभिन्न छापाख़ानों से प्रकाशित पुस्तकें तथा समाचार-पत्रों की तालिका प्रकाशित होने लगी। यह प्रथा आज भी जारी है। इसलिए सन् १८६८ ईसवी से आज तक जो हिन्दी-पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं उनकी तालिका के लिए प्रादेशिक त्रैमासिक-पत्रिकाओं के पन्ने उलटने पड़ेंगे। लेकिन सन् १८६८ ईसवी के पूर्व प्रकाशित हिन्दी-पुस्तकों की सम्पूर्ण तालिका कहीं भी प्राप्य नहीं है। अतएव १९वीं शताब्दी के पूर्व का हिन्दी-साहित्य का सम्पूर्ण इतिहास लिखा जाना किस प्रकार सम्भव हो सकता है, वह पाठक स्वतः समझ सकते हैं।

इस प्रबन्ध के अन्यतम लेखक श्रीयुत यतीन्द्रमोहन भट्टाचार्य सन् १८६८ ई० के पूर्व की बँगाला की पुस्तकों की छानबीन कर रहे हैं। उनके साथ काम करते हुए सौभाग्यवश मुझे सन् १८६८ के पूर्व की हिन्दी-पुस्तकों का कुछ पता लगा है। उन्हीं का यहाँ परिचय देने के लिए मैंने अपनी क़लम उठाई है। भविष्य में हिन्दी-भाषा और उसके साहित्य की जो आलोचना करेंगे उनके लिए ये प्राचीन ग्रन्थ कुछ सहायक हो सकेंगे, यही समझकर उन ग्रन्थों का परिचय देने के लिए मैं अग्रसर हुआ हूँ। भारत-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष में सन् १८६८ के पूर्व के लिखे एवं मुद्रित ग्रन्थ खोज करने से मिल सकते हैं और यदि भविष्य में सौभाग्यवश उन सब ग्रन्थों का पता लग जाय तो सम्भवतः हिन्दी-साहित्याकाश में उस पूर्णिमा-चन्द्र का उदय होगा जिसके सामने अन्य साहित्य तारा-मण्डल या जुगनू-सा प्रतीत होंगे।

सन् १८०३ के लगभग (संवत् १८६०) श्री जान गिलक्राइस्ट ने लल्लूजीलाल तथा सदलमिश्र को हिन्दी-पुस्तक लिखने का आदेश किया। श्री एफ़० ई० के महोदय ने अपने हिस्ट्री आफ़ हिन्दी लिटरेचर में लिखा है—"इस नई बोली की पहली किताब, जो कि एक स्टैंडर्ड किताब समझी जाती है, लल्लूलाल का प्रेमसागर है, जो भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर लिखा गया है.....इसका लिखा जाना सन् १८०४ में शुरू हुआ था और सन् १८१० में समाप्त हुआ था। अतएव लल्लूलालकृत प्रेमसागर की रचना सन् १८१० में हुई। परन्तु उनकी भाषा को हम स्टैंडर्ड की पदवी नहीं दे सकते। दृष्टान्त-स्वरूप उनकी भाषा देखिए—"इतना कह महादेव जी गिरजा को साथ ले गंगा तीर पर जाय, नीर में न्हाय न्हिलाय, अति लाड़-प्यार से लगे पार्वती जी को वस्त्र आभूषण पहिराने। निदान अति आनन्द में मग्न हो डमरू बजाय बजाय, तांडव नाच नाच, संगीत शास्त्र की रीति से गाय गाय लगे रिझाने.....।"

तत्पश्चात् भारतवर्ष में शिक्षा-प्रचारार्थ सन् १८१७ ईसवी में 'कलकत्ता-स्कूल-बुक-सोसाइटी' की स्थापना हुई। उक्त सोसाइटी या समिति ने हिन्दी, फ़ारसी, संस्कृत, बँगला आदि भाषाओं में स्कूल-पाठ्योपयोगी अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं, एवं उन पुस्तकों की छपाई में योरपीय तथा भारतीय विद्वानों ने विशेष सहयोगिता प्रदर्शित की। कलकत्ता-स्कूल-बुक-सोसाइटी के दूसरे और चौथे नियमों में लिखा है—

2. That the objects of this society be the preparation, publication and cheap or gratuitous supply of works useful in schools and seminaries of learning.

4. That the attention of the society be directed, in the first instance, to the providing of suitable books of instruction for the use of native schools in the several languages, (English as well as Asiatic) which are, or may be taught in the provinces subject to the Presidency of Fort William.

इसके अतिरिक्त उपर्युक्त समिति के २१ सितम्बर, मंगलवार, सन् १८१६ के कार्य-विवरण में यह लिखा है—

"An edition of 4,000 copies in the Nagree character has been ordered of Baboo Tarinee Charan Mitr's translation of the 2nd Neeti Cotha, into Hindi."

उपर्युक्त 'नीतिकथा' ही हमारी आलोच्य पुस्तक है। नीचे उसी पुस्तक के आख्यापत्र (Title page) की नक़ल दी जा रही है, साथ ही पाठकों के समझने के लिए दो पंक्तियों के बीच एक तिरछी लकीर (/) दी गई है—

नीतिकथा, दूसरा खण्ड। / खड़ी बोली में / Hindooee Fables, / (Part II) in the khuree bolee / C. S. B. S. / 4000, Copies 1st Ed. Jan. 1822.

आलोच्य पुस्तक की लम्बाई ८" (इंच) है, तथा चौड़ाई ६·३"। यद्यपि आख्यापत्र से विदित होता है कि सारी पुस्तक खड़ी बोली में लिखी गई है, तथापि पुस्तक के अंत में कुछ ऐसी रचनायें मिलती हैं जो खड़ी बोली में न होकर फ़ारसी-अरबी के तत्सम तथा तद्भव शब्दों से भरी पड़ी हैं। इससे इस पुस्तक को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम भाग खड़ी बोली में लिखी रचनाओं का तथा दूसरा भाग उर्दू भाषा में लिखी रचनाओं का। सारी पुस्तक नागरी लिपि में है। प्रथम भाग में २६ पृष्ठों में १३ कहानियाँ तथा दो कवितायें हैं। २७वें पृष्ठ के शीर्षक में।

तत्तिम्मः।/ नक़लें बारकपुर के पार्क स्कूल के इन्तिख़ाब से फिर छापी गईं।/

लिखा हुआ है। २७ पृष्ठ से ३४ पृष्ठ तक की रचनायें जैसा ऊपर बतलाया गया है, उर्दू-भाषा में हैं, यद्यपि उनकी लिपि नागरी ही है। प्रथम भाग में लिखित रचनायें आगे दी जाती हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) अहंकार की कथा। (पृष्ठ १-२)
(२) दूसरी कथा अच्छे व्योहार की। (पृष्ठ २-३)
(३) तीसरी कथा दरिद्री और मूरख की। (पृष्ठ ३-४)
(४) चौथी कथा बंधुता की। (पृष्ठ ४-५)
(५) पाँचवीं कथा लोभी की। (पृष्ठ ५-६)
(६) छठी कथा धनलोभी बालक की। (पृष्ठ ६-७)
(७) सातवीं कथा विद्या-अभ्यास की। (पृष्ठ ७-९)
(८) आठवीं कथा कुवचन के शासन में। (पृष्ठ ९-१०)
(९) नवीं कथा असकती बालक की। (पृष्ठ १०-११)
(१०) दशवीं कथा विद्वान् और मूरख की। (पृष्ठ ११-१२)
(११) ग्यारहवीं कथा एक बूढ़े और उसके दो लड़कों की। (पृष्ठ १२-१६)
(१२) बारहवीं कथा। (पृष्ठ १७-१९)
(१३) तेरहवीं कथा। (पृष्ठ १९-२२)
(१४) चौदहवीं कथा। (पृष्ठ २२-२४)
(१५) पंद्रहवीं कथा मुँह-पेट के रोग की। (पृष्ठ २४-२६)

उपर्युक्त कथाओं में प्रथम और अंतिम रचना-विशेष हैं। तथा तीन कहानियों के शीर्षक के नीचे प्रवाद दिये गये हैं, एवं उन प्रवादों को समझाने के लिए उन कहानियों की रचना की गई है। यथा :—

तीसरी कथा दरिद्री और मूरख की।

दरिद्री को सहज में लक्ष्मी मिलनी सम्भव है, पर मूरख को अचानक विद्यालाभ होना असम्भव।

.....कथा.....

दो कहानियों के अंत में उनका सार मिलता है; यथा :—

छठी कथा धनलोभी बालक की।

.....

इसका फल यह है।

लड़कपन में धन का लोभ होने से विद्यालाभ नहीं होता।

तीन कहानियों के शीर्षक के नीचे प्रवाद तथा अन्त में उन कहानियों का सार लिखा हुआ है; यथा :—

चौथी कथा बंधुता की

सोने की परीक्षा आग से होती है।
और बंधुता की परीक्षा विपत्काल में।

.....

इसका फल यह है।

सचमुच का बंधु न होने से वह किसी काम का नहीं पर सच बंधु केवल विपतकाल में जाना जाता है।

दृष्टान्तस्वरूप पाँचवीं कथा नीचे दी गई है :—

पाँचवीं कथा लोभी की

अति लोभ से सब खोया जाता है।

किसी प्रजा के उद्यान में एक उत्तम आत का पेड़ था, उसका मोल बाटी के और वृक्षों से अधिक था। वह प्रजा वरस वरस उसी पेड़ के आत राजा को देता, राजा उन फलों को बहुत चाहते थे॥ कुछ एक दिन पीछे उसने यह विचारा, जो इस पेड़ को यंहा से उठा ले जाकर अपने आराम में लगाने से उसके सब फल हमको मिलेंगे; इसलिए वहाँ से उठाने से वह पेड़ सूख गया, इसमें फल और वृक्ष दोनों का शेष भया।

इसका फल यह है॥

राजा ने लोभ औ अहंकार से प्रजा को फलदान के समर्थ से रहित करके, इस भाँत प्रजा की हिंसा की, इसमें आप निराश हूए औ फल और वृक्ष भी नष्ट भये।

आलोच्य पुस्तक के प्रथम भाग में पूर्ण विराम (।) के स्थान पर प्रायः दो खड़ी लकीरें (॥) मिलती हैं तथा द्वितीय भाग में पूर्ण विराम के स्थल पर रोमन प्रथानुसार फुल-स्टाप (.) दिया हुआ है, किन्तु उर्दू नक़ल के अन्त में हिन्दी-विभागानुसार दो खड़ी लकीरें (॥) मिलती हैं।

आलोच्य पुस्तक में कुछ ऐसे शब्द मिलते हैं जो आधुनिक गद्यशैली में अप्रयुक्त हैं, यथा—

पाठशाला के स्थान पर 'पाठशाल'
ऐसे के स्थान पर 'ऐसे'
(एक स्थल पर 'अंसा' मिलता है)
प्राचीन के स्थान पर 'प्राचनीन'
व्यवसाय के स्थान पर 'व्यवसा'
इच्छा के स्थान पर 'इछा' आदि

व्याकरण-सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ मिलती हैं; यथा—

(अ) मैं अपने भाई के साथ परामर्श करके आपको समाचार देंगे। (पृष्ठ ६)
(ब) सामग्री ढोना पड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ङ) औ आप जैसा दुष्ट था वैसे ही और दो मनुष्य के साथ प्रीत की। (पृष्ठ १३) आदि।

पुस्तक में कुछ बँगला-शब्द भी मिलते हैं; यथा—

यात्रा के स्थान में 'जात्रा'

ताराचन्द के स्थान में 'ताराचाँद'

निंबू के स्थान में 'लेमू' आदि।

प्रथम भाग में संस्कृत के तत्सम या तद्भव शब्द ही मिलते हैं, परन्तु एक स्थल पर 'आवरदा' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार उर्दू-विभाग में अरबी-फ़ारसी के शब्दों की अधिकता रहते हुए भी एक स्थल पर 'डरेल' (ड्रिल) शब्द कानों को कुछ खटकता है।

आलोच्य पुस्तक में कहीं कहीं उच्चारणानुसार शब्दों की मात्रा दी हुई है; यथा :—

पास्, उन्, उसको, चपरासी, तरह, लपक्के आदि इन सब त्रुटियों के अतिरिक्त कुछ अच्छे मुहावरे भी प्रयुक्त किये गये हैं, यथा :—

दुर्गति का पानी पिलाना (पृष्ठ १४) छाती पीटना (पृष्ठ २९) इत्यादि। साथ ही पुस्तक रचयिता की 'साहब-प्रीति' सराहनीय है; क्योंकि जहाँ कहीं किसी विचारशील मनुष्य की आवश्यकता पड़ी, आप साहब ने चट किसी साहब को ला उपस्थित किया। सम्भवतः उनके मतानुसार विचारशील एवं शिक्षित केवल साहब ही हो सकते थे, कोई भारतवासी पंडित नहीं।

ऊपर उर्दू-विभाग के विषय में कुछ कहा जा चुका है। इस विभाग में नौ नक़लें क्रमशः ये हैं—

(१) नक़ल १।/ बेनीसिंह की।/ (पृष्ठ २७-२८)
(२) नक़ल २।/ शिवसिंह की।/ (पृष्ठ २८-२९)
(३) नक़ल ३।/ कुत्ते और गोश्त की।/ (पृष्ठ २९)
(४) नक़ल ४।/ गधे बनमानुष और छुछुंदर की।/ (पृष्ठ ३०)
(५) नक़ल ५।/ चोर और कुत्ते की।/ पृष्ठ (३०)
(६) नक़ल ६।/ हरी और भवानी की।/ (पृष्ठ ३१-३२)
(७) नक़ल ७। (पृष्ठ ३३)
(८) नक़ल ८। (पृष्ठ ३३-३४)
(९) नक़ल ९। (पृष्ठ ३४)

इस विभाग में एक बड़ी खटकनेवाली भूल है, जिसमें रचयिता ने हिन्दुओं से भी ख़ुदा कसम खिलाई है। दृष्टान्तस्वरूप हिन्दी और उर्दूविभाग की दो रचनायें नीचे दी जाती है।

आठवीं कथा, कुवचन के शासन में।

जिसका सुभाव बुरा है वह दुरवचन कहता है, औ जिसका सुभाव भला है वह अच्छी बात कहता है।

इसका प्रमान यह है।

किसी राजपुत्र को एक कंगाल ने गाली दी थी, इसमें राजपुत्र रोते रोते राजा के निकट आय यह बोला, पिता! आज हम खेलने को गये थे, इसमें अमुक बालक ने जो उसके मुँह में आया हमें गालियाँ दीं; राजा ने यह बात सुन मन्त्रियों को बुलाकर पूछा मेरे लड़के को जिसने गालियाँ दी हैं, उसका दंड करना तुम लोगों के विचार में क्या उचित है? उन्हों में से एक ने कहा, इसे मार डालने की आज्ञा कीजे; किसी ने कहा उसे कारागार में बँध करने की आज्ञा कीजे, इसी भाँत वे सब कहने लगे, तब राजा ने अपने बेटे को बुलाकर कहा, मैं राजा हूँ सही, औ विचार करके इसका दंड कर सकता हूँ, पर इसमें कौन भला कौन बुरा सो जाना नहीं जाता; इसलिए जो तुम भला हुआ चाहो तो इसी समय से क्षमा करना सीखो, औ उसको क्षमा करो, तब राजपुत्र ने उसे क्षमा करके कहा, देखो मुझमें दंड करने की सकत रहते भी तुमको क्षमा किया, इस कारन तुम और किसी को गाली मत देना; और तुम्हें जो कोई गाली दे तो इसी भाँत उसको क्षमा करियो।

इसका फल यह है॥

लड़कों को बालपन से नीति सीखना उचित है।

नक़ल १।

बेनीसिंह की।

बेनीसिंह एक मुफ़्लिस का बेटा था, उसके बाप ने उसे लिखना पढ़ना सिखलाया था, ताकि उसको फ़ायदा होवे; जब तक् बेनीसिंह छोटा लड़का था, अपने बाप के सब काम में मददगार था, और जब वह बड़ा हूआ, तब सिपाही हूआ, डरेल और क़वाइद में बहुत मजबूत और अपने सरदार के हुकम से बहुत् होशियार था, और अपने असबाब औ कपड़े को हमेश साफ् रखता था, इसलिये जल्द नाइक हूआ और कोत हवालदार बनाया गया, क्योंकि रास्तबाज़ था, खूब तरह लिखा पढ़ा जानता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, होशियार और हिसाबी था, उसने कोत हवालदारी के काम से बहुत् रुपैया पैदा किया, और अपने ग़रीब मा बाप के वास्ते भेजता था, कि वे उस हालति जईफ़ी में कुछ काम कर नहीं सकते थे; और बेनीसिंह ग़रीब मुहताजों को दान ख़ैरात भी दिया करता था, और अपनी अगली मुफ़लिसी ग़रीबी को याद रखता था, इस वास्ते कि खुदा ने उस मुफ़लिसी की हालत में उसको बचाया था, बाद उसके सूबेदार हूआ, और उसके लड़के बाले हूए, सब नेक और भले थे, जो अपने मा बाप को पियार करते थे और उनका हुकम मानते थे, कैसा भला मगन आदमी बेनीसिंह था।

आलोच्य पुस्तक में कुछ त्रुटियाँ रहते हुए भी हमें प्राचीन हिन्दी का कुछ दृष्टांत मिलता है। अन्त में यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि ४००० छपी हुई पुस्तकों में केवल २८ पुस्तकें ≈) तीन आने मूल्य पर बिकी थीं, शेष वितरित की गई थीं।

अपने प्रश्नदाता से

लेखक, श्रीयुत शाखाल एम०, ए०

मेरी हर साँसों पर प्रियतम, जयगीत रूप के लिखता है।
हर आँसू-कन में उतर-उतर वह नया-नया-सा दिखता है!

तुम क्या जानो, मेरे भ्रममय
सुख में है कितना आकर्षण!
कण्टक में ही ऋतुराज यहाँ
जब उजड़ चुका सारा मधुवन;
तुम प्यास बिना कैसे जानो, मृगजल में क्या सुन्दरता है?
बिरही-पंथी हो जान सका, श्रम-श्रान्ति क्षितिज क्यों हरता है?

हर साँझ व्यथा को साँसें ले
दिल-सा रहता है मौन गगन;
आँसू-सी चुप जग की आँखें
कुहरे-से नीरव क्षितिज-नयन,
सागर-तट आवाहन का जग उठ-उठकर मिटता रहता है!
नभ में मेरे प्रियतम का घर छाँव-जल सागर में बहता है!

तुमसे क्या हो समता मेरी
तुम विश्व-सखा, मैं बौराना;
तुम चाँद जगत है तारक-दल
तुम दीप जगत है परवाना;
मैं रंक-सा आज-पथिक मुझको कब कोई संगी मिलता है?
पर सुख है सूनापन—जिसमें जल-जल कर जीवन पलता है!

तूफ़ानी समय-सिन्धु, मेरा—
पथ पूछ रहा; किस ओर कहूँ!
लहरें बनतीं; लहरें मिटतीं;
किस एक लहर के संग बहूँ!
जब टूट चुकी अपनी तरणी हर ओर किनारा दिखता है!
जिस ओर घुमाता हूँ आँखें मुझको ध्रुवतारा दिखता है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

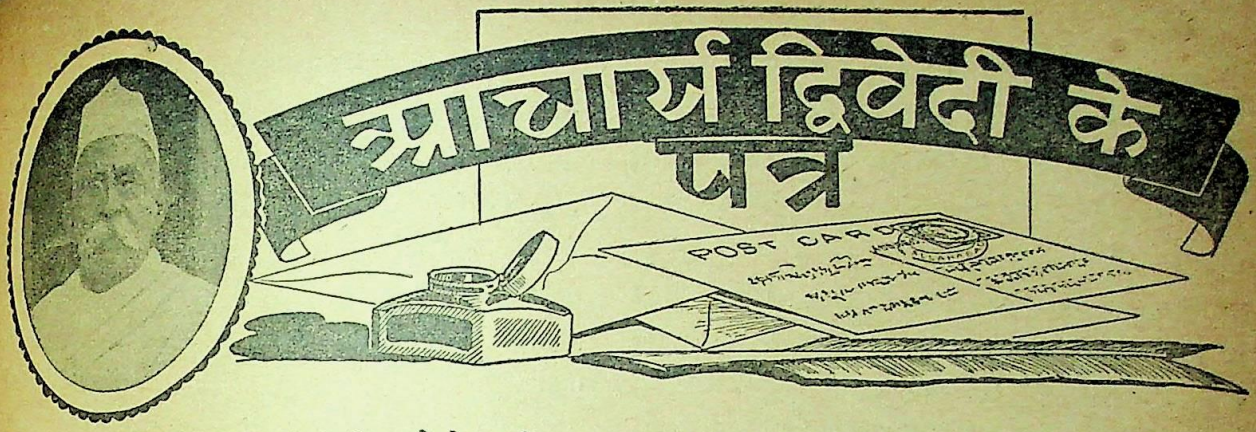

रायबरेली के प्रसिद्ध हिन्दी-प्रेमी एडवोकेट पण्डित गुरुदयाल त्रिपाठी ने आचार्य द्विवेदी के कुछ पत्र छपने के लिए भेजे हैं। वे उनके वक्तव्य के साथ यहाँ छापे जाते हैं। आशा है, अन्य महानुभाव भी अपने पास के पत्र भेजने की कृपा करेंगे। काम हो जाने पर सब पत्र-प्रेषक महोदय के पास सुरक्षितरूप से लौटा दिये जायँगे। —सम्पादक

त्रिपाठी जी का वक्तव्य

द्विवेदी जी के प्रथम दर्शन मुझे सन् १९०१ में कानपुर में, जहाँ मैं वकालत करता था, 'कान्य-कुब्ज महती सभा' के प्रथम अधिवेशन में हुए थे। मैं स्वागतकारिणी समिति का सभापति था। जब द्विवेदी जी कानपुर आ गये तब तो अकसर भेंट हुआ करती थी। वे रायबरेली आने पर मेरे यहाँ ही ठहरा करते थे। एक बार जब आप ठहरे हुए थे तो इस प्रकार मुझे लिखने के लिए प्रोत्साहित किया, "जैसे आप बोलते हैं वैसा ही लिखा कीजिए। भाव होना चाहिए, लेख में भाव ही प्रधान होता है।" यह इसी कृपा का फल है कि 'कान्य-कुब्ज' तथा 'कान्य-कुब्ज-हितकारी' में मैं कुछ लिख सका।

सन् १९१३ में मैंने अपने वंश का इतिहास 'साँवले राम-वंश-चरित्र' उनके पास समालोचनार्थ भेजा। उसकी समालोचना 'सरस्वती' के भाग १४, खंड २, संख्या ४, पृष्ठ ५९९ में है। इस पुस्तक के द्वितीय संस्करण में आपने रुग्ण होते हुए भी जो अनुपम सहायता दी वह वंश के लिए चिर-स्मरणीय रहेगी। आपने उसको आद्योपान्त पढ़ा तथा यत्र-तत्र भाषा में सुधार किया। उनकी सुधारी हुई वह पाण्डुलिपि मेरे पास सुरक्षित रखी है।

सन् १९३० से अब तक के उनके कुछ पत्र मेरे पास मौजूद हैं। उनमें से कुछ भेज रहा हूँ।

(१)

दौलतपुर, रायबरेली
१-१०-३०

श्रीयुत त्रिपाठी जी को प्रणाम

चन्द्रपालसिंह ने आपका पत्र दिया। आपने और पं० शिवगोविन्द ने बड़ी कृपा की जो बाग़ के मुक़द्दमे में पैरवी कर दी। मैं कहाँ तक आपका शुक्रिया अदा करूँ। मैं आमरण आपसे उऋण नहीं। कृपा करके डिप्टी साहब के हुक्म की नक़ल भिजवा दीजिए।

पर-सवर्ण का सवाल हिन्दी में उठाना अनुचित है। उसका ख़याल तो संस्कृत में भी लोग कम ही रखते हैं। आप ख़ुशी से अंत, दिसंबर, कर्म्मकांड आदि लिखिए। इस तरह की लिखावट सर्वथा शुद्ध है। नागरी-प्रचारिणी-सभा (काशी) वाले तो अनुस्वार ही से काम चलाते हैं। उनके उतने बड़े कोश में भी पर-सवर्ण का ख़याल नहीं रक्खा गया।

जिस वक्त चन्द्रपाल चलने लगे मेरे पास एक भी रुपया न था। १) का नोट बतौर Curio या Curiosity के बक्स में रख छोड़ा था। लाचार वही भेज दिया। मैंने कहा, शायद ट्रेज़रीवाले ले लें। मगर Currency Office के सिवा शायद ही कोई उसे लेकर रुपया दे। आप उसे मेरी बेवकूफ़ी का चिह्न समझ कर पड़ा रहने दें। आज १) मनीआर्डर से भेजता हूँ। कोर्ट फ़ीस वग़ैरह की क़ीमत तो पं० शिवगोविन्द को न देनी पड़े। मैं उनसे और आपसे कभी उद्धार नहीं। मिहनताना देने या भेजने की तो हिम्मत ही नहीं होती। आपका म० प्र० द्विवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

दौलतपुर (रायबरेली)
२५-९-३१

सादर प्रणाम

२२ का पो० का० आज सुबह मिला। रायबहादुर दीवान साहब जो आज्ञा देंगे उसका तो पालन करना ही होगा। पर मेरी मन्दबुद्धि में यह आता है कि—

जिस पुस्तक में साँवले राम का वंश वर्णन हो उसमें उस वंशावली का हाल होना चाहिए। उनके वंशजों में से जिस किसी का और जितना सम्बन्ध कान्यकुब्ज-सभाओं से रहा हो, या हो, उतने का वर्णन आने में हर्ज नहीं। वह तो विषय के भीतर ही है। उससे अधिक अप्रासंगिक होगा। Relevancy और Irrelevancy पर आप अकसर ही अदालतों में बहस करते होंगे और मुझसे अधिक इस बात को समझते होंगे।

कान्यकुब्ज-सभाओं, पत्रों, लेखकों आदि पर यदि कुछ लिखना ही हो तो वह सब इतिहास के तौर पर अलग लिखा जाना चाहिए। यदि ऐसी कोई पुस्तक निकले तो बड़े महत्त्व की होगी।

कान्यकुब्जलीलामृतम् की कोई कापी मेरे पास नहीं। वह मेरी सुमन नामक पुस्तक में छपा है। आज मैंने साहित्य-प्रेस, चिरगाँव, (झाँसी) को लिखा है कि उसकी एक कापी आपको रजिस्टरी करके भेज दी जाय।

मैं किसी तरह जी रहा हूँ और आप लोगों की शुभाचिन्तना किया करता हूँ।

कृपाकांक्षी म० प्र० द्विवेदी

(३)

भाई साहब,

आपके डर के मारे दोनों कापियाँ मैंने साद्यन्त पढ़ डालीं। भाषा में सर्वत्र संशोधन कर दिया है। माफ़ कीजिएगा। ऐसे ही छपने भेज दीजिएगा। प्रेसवाले संशोधन आसानी से पढ़ लेंगे। पर पहले आप दोनों कापियाँ देख जाइएगा। ऐसा न हो, संशोधनों से कहीं आपका मतलब ख़ब्त हो गया हो। एक जगह मैंने कुछ बढ़ाया है। व्यर्थ हो तो काट दीजिएगा। दो तीन जगह हाशिये पर कुछ लिख दिया है। एक जगह आपको मुजरिम भी करार दिया है—एक के रहते दूसरी पत्नी करने पर। गुस्ताख़ी शायद ही आप माफ़ करें।

आपने अच्छी पुस्तक लिखी। आपके वंशजों के बड़े काम की है। और लोग भी इससे सबक़ सीख सकेंगे। एक मैं आलसी क्या उल्लू हूँ जो रुपयों की थैलियों का लोभ दिलाये जाने पर भी अपना कुछ भी हाल नहीं लिख सका।

कापियों की पहुँच लिख भेजिएगा।

म० प्र० द्विवेदी
१४।१।३३

(४)

दौलतपुर (रायबरेली)
१३ अगस्त ३४

श्रीमान् त्रिपाठी जी को सादर प्रणाम

बड़े असमंजस में पड़कर आज आपको कुछ कष्ट देने पर उतारू हो गया हूँ।

रायबरेली में श्रीमान् शिवशङ्कर जी त्रिपाठी नाम के कोई वकील—शायद एडवोकेट—हैं। आपके वंशज नहीं तो आपके फ़िरक़े ही के ज़रूर होंगे। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की चेयरमैनी का भारी बोझ आज-कल उन्हीं के दोनों कन्धों पर है। मेरी तरफ़ से हाथ जोड़कर मेरी एक प्रार्थना उन तक पहुँचाइए और अपनी तरफ़ से उसकी मंज़ूरी के लिए उनसे सिफ़ारिश भी कीजिए।

यहाँ दूर दूर तक न तो कोई अस्पताल या दवाख़ाना है और न औषधालय। वैद्य एक आध दूर दूर के मौज़ों में हैं। पर चतुरी चमार और प्रेमा पासी को मुफ़्त दवा देनेवाले नहीं। मैंने अपने ख़र्च से कुछ आयुर्वेदिक और कुछ ऐलोपैथिक पेटेंट दवायें मँगा रक्खी हैं। भानजा मेरा होमियोपैथिक बक्स लिये बैठा रहता है। मगर मैं एक मामूली गृहस्थ हूँ। यह सब ख़र्च नहीं उठा सकता। दिन में दस पाँच मरीज़ घेरे ही रहते हैं। ग़रीबों का दुख-दर्द नहीं देखा जाता।

यहाँ तक लिख चुकने पर लोकई चमार की दुलहिन सिर पीटते आई। उसका १४ वर्ष का लड़का बीमार है। हैज़े के जैसे दस्त आ रहे हैं। उसे अर्क कपूर दिया। न फ़ायदा होगा तो क्लोरीडिन दूँगा।

तीन वर्ष से बोर्ड को लिख रहा हूँ कि यहाँ एक वैद्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेंबर औषधालय खोल दो। पहले तो बोर्ड ने ऊल-जलूल एतराज़ किये। फिर मंज़ूरी दे दी। लिखा कि कहीं का औषधालय बन्द करके यहाँ खोल दिया जायगा। तब तक बोर्ड पर सरकार ने कब्ज़ा कर लिया। अब जो फिर हम लोगों की अमलदारी हुई तो कोई चिट्ठी का जवाब तक नहीं देता।

राजा साहब शिवगढ़ की मुझ पर कृपा है। वे दौलतपुर आनेवाले भी थे। पर मैं उन दिनों बीमार था। उन्होंने अपने सिर पर, ख़ुद ही लाई हुई, बला पूर्व निर्दिष्ट त्रिपाठी जी पर पटक दी है। बाबू सीतलासहाय की मारफ़त राजा साहब से सिफ़ारिश कराई तो त्रिपाठी जी हीले-हवाले कर रहे हैं। कहते हैं बजट में गुंजायश नहीं, पहले से क्यों नहीं कहा! जैसे बोर्ड के दफ़्तर के काग़ज़ात नष्ट हो गये हों! प्रार्थना कीजिए कि किसी और मद में ढाई तीन सौ की बचत निकाल लें, या ख़ासतौर से मंज़ूरी माँगें, या बजट से ज़ायद ख़र्च हो जाय तो Supplementary बजट पेश करें। करने और देने के हज़ार तरीक़े हैं। इस तरफ़ के देहाती सिर्फ़ बोर्ड के स्कूलों से ही फ़ायदा उठाते हैं। हम लोगों से अब Tax भी ज़्यादा लिया जाता है। हम लोगों के लिए दवा-दारू का भी तो कुछ प्रबन्ध करना चाहिए।

आपके भाई साहब या आपके अन्य मित्र जो बोर्ड के मेम्बर हों उनसे भी कहिए, कुछ मदद करें। मुझे तो विश्वास है कि आपकी सिफ़ारिश से चेयरमैन त्रिपाठी जी का हृदय ज़रूर पसीज उठेगा और वे मेरा मनोरथ सफल करके यहाँ के दीन-दुखियों के आशीर्वाद का पुण्य प्राप्त कर सकेंगे। उन्हें महाभारत के इस श्लोक की याद दिलाइएगा—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापवर्गकम्।
कामये तापतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

कृपापात्र
महावीरप्रसाद द्विवेदी

(५)

दौलतपुर (रायबरेली)
१०-६-३४

श्रीमान् त्रिपाठी जी को प्रणाम!

८ जून का पो० का० मिला। यह जानकर मुझे परमानन्द हुआ कि आपकी पुत्री का विवाह अच्छी तरह सम्पन्न हो गया। बाराती सब प्रसन्न रहे, यह आपकी कार्य-कुशलता और उदारता का फल है। दूरस्थ लोग भी जब आप जैसे सज्जन और उदारचेता से प्रसन्न रहते हैं तब आपके निकटस्थ सम्बन्धी क्यों न प्रसन्न रहें।

आपका मन अब भगवद्भजन की ओर झुक रहा है, यह बड़े ही हर्ष की बात है। भगवद्गीता तो ज्ञानियों के लिए है। हम जैसे मूढ़ों और माया में लिप्तों के लिए तो विनयपत्रिका और रामायण ही सर्वोपरि है। बड़े अच्छे पद का उल्लेख आपने किया। उसके सिवा मैं तो 'मैं हरि पतित-पावन सुने' और रामायण का अन्तिम छन्द—मो सम दीन न दीनहित तुम समान रघुवीर—पढ़ पढ़कर रोया करता हूँ।

कृपा बनी रहे।

प्रणत,
म० प्र० द्विवेदी

(६)

दौलतपुर (रायबरेली)
७-११-३४

श्रीमान् त्रिपाठी जी को बहुशः प्रणाम

कल सुबह एक पोस्टकार्ड मैं आपको भेज चुका हूँ। कल ही शाम की डाक से ३ ता० का आपका कार्ड मिला। अनेक धन्यवाद।

कल्याणमस्तु भवतां हरिभक्तिरस्तु

अब जो काम शेष रह गया है उसे भी कृपापूर्वक सिद्ध करा दीजिए। अन्यत्र यदि कम्पौंडर रहता हो तो वह भी दिया जाय। सबके लिए रहने की जगह बनी बनाई तैयार है। मेरे संग्रह में आयुर्वेद की ढेरों पुस्तकें हैं। डाक्टरी और होमियोपैथी की भी हैं। जो कोई भेजा जाय अनुभवी और संस्कृतज्ञ हो। उसे यहाँ अपनी विद्या और चिकित्सा कौशल की उन्नति के लिए यथेष्ट सामग्री है। यहाँ दूर दूर तक चिकित्सा का प्रबन्ध नहीं। मेरा भानजा दिन भर दीन दुखियों को होमियोपैथी दवायें बाँटा करता है। मेरे पास भी आयुर्वैदिक और कुछ पेटेंट दवायें हैं। उनका उपयोग मैं भी औरों के लिए करता हूँ।

आपकी कृपा के लिए पुनरपि धन्यवाद।

कृपापात्र
म० प्र० द्विवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७)

दौलतपुर (रायबरेली)
२३-१-३५

श्रीयुत त्रिपाठी जी को सादर प्रणाम

२० जनवरी का कृपापत्र मिला। संघ के विस्तृत समाचार के लिए धन्यवाद। इधर दो तीन महीने मैं कहीं बाहर जाने योग्य नहीं। आगे आप जो आज्ञा देंगे करूँगा। आँखों में मेरी मोतियाबिन्द शुरू हो गया है।

अपनी तन्दुरुस्ती का क्या हाल लिखूँ। शरीर किसी तरह लस्टम पस्टम चला जाता है, पं० प्रतापनारायण की एक लाइन है—

छिन मां चटक छिनै मां अनकांन
जस बुझात खन होय दिया

बस मैं इसी का उदाहरण हो रहा हूँ।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अकौंटेंट पं० चन्द्रशेखर जी मिश्र के पत्र से मालूम हुआ कि Supplementary Budget मंज़ूर हो गया। कृपापूर्वक अपने मित्रों पर ज़ोर डालकर अब यहाँ औषधालय खुलवा दीजिए। चेयरमैन साहब से भी मैंने प्रार्थना कर दी है।

कृपापात्र
म० प्र० द्विवेदी

(८)

दौलतपुर (रायबरेली)
४-३-३५

श्रीमान् तिवारी जी को सादर प्रणाम

कृपापत्र मिला। रायगढ़ रियासत के दीवान पं० बलदेवप्रसाद मिश्र मेरे मित्र हैं। उनकी चिट्ठी का जवाब मैं परसों ही दे चुका हूँ। विषय वही था जो आपने लिखा है।

भाई साहब, मेरे ये दिन राम राम रटने के हैं। मेले ठेले और सम्मेलन में जाने के नहीं। चल फिर कम सकता हूँ। दूर की चीज़ नहीं देख पड़ती। एक काडे लिखने में भी तकलीफ़ होती है। Medinel नाम की एक विषाक्त दवा खाने से रात को कुछ नींद आती है। रात में चारपाई पर पड़े ही पड़े हाजतें रफ़ा करनी पड़ती हैं। इस दशा में मैं कहीं बाहर जाने लायक़ नहीं। पं० रामनारायण और उनके मित्र मुझे माफ़ करें। सभापति बनकर कुछ काम करना चाहिए। साल भर तक उसे देखभाल भी करनी पड़ती है। क्या यह सब मैं कर सकता हूँ! दिखावा मुझे पसन्द नहीं।

कृपेषी
म० प्र० द्विवेदी

(९)

दौलतपुर (रायबरेली)
२०-४-३५

श्रीमान् त्रिपाठी जी को प्रणाम

पोस्टकार्ड मिला। कृतज्ञ हुआ। आपके यहाँ तो इस साल कई विवाह हो रहे हैं। पुरानी बेढंगी रस्मों से ज़रा बचिएगा।

परमात्मा करे, लड़का बी० ए० में नामवरी के साथ पास हो जाय।

बहुत अच्छा, आप मँडला जाइए। अच्छी जगह है। बर्तनों के लिए मशहूर है। पं० शिवगोविंद से कह दीजिएगा, अगर मैं रायबरेली जाऊँ तो मुझे कहीं एकान्त में पड़ा रहने दें और मेरी देख रेख रक्खें। अन्न मुझे बहुत कम हज़म होता है! दूध और ख़रबूज़े वग़ैरह खाकर एक दिन काट दूँगा। नींद नहीं आती। कमज़ोरी बहुत है। कभी कभी मूर्च्छा भी आ जाती है।

कृपापात्र
म० प्र० द्विवेदी

(१०)

दौलतपुर (रायबरेली)
७-५-३५

श्रीमान् तिवारी जी को सादर प्रणाम

इलाहाबाद से भेजा गया पत्र मिला। लड़का B.Sc. पास हो गया, यह सुनकर मुझे परमानन्द हुआ। मैं लड़के से प्रत्यक्ष परिचित हूँ। बड़े योग्य हैं। उन्हें I.c.s. के लिए तैयार कीजिए।

पं० काशीप्रसाद पाठक अगर वही हैं जिनका सम्बन्ध किसी समय कान्यकुब्ज बैंक से था तो मैं उन्हें जानता हूँ। बड़े सज्जन हैं। आशा है, आप उनसे सन्तुष्ट लौटेंगे। आप तो ग़ज़ब कर रहे हैं। जहाँ खोर के पाँड़ों को लड़कियाँ ले आते हैं वहाँ पाठकों को भी पवित्र करते हैं। मैं आपके विचार और व्यवहार से बहुत ख़ुश हूँ। मैं तो एकदम सुधारवादी हूँ। परसू के मिश्रों को भाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देकर लखनऊ के वाजपेयियों से मैंने रिश्ता जोड़ा। फिर मकरन्द के शुक्लों के यहाँ दो भानजियाँ दीं। कुलीनता-अकुलीनता की ज़रा भी परवा नहीं की।

एक बात में शायद मैं आपसे भी आगे हूँ। आपने इन दो विवाहों में लड़कियों को देख लिया था या नहीं, यह मैं नहीं जानता। मैंने तो जब अपने भानजे की शादी इलाहाबाद में प० कालिकाप्रसाद दुबे की लड़की से करना तय किया तब वहाँ गया। लड़की की परीक्षा ली—पढ़ने लिखने ही की नहीं, घर-गृहस्थी और स्वयंपाक की भी। वह पास हो गई। तब शादी की। वही आजकल मेरे घर की लक्ष्मी है। मिडिल पास है। संस्कृत भी कुछ जानती है।

आप अब मेरी भी कुछ सहायता कीजिएगा। भानजे की लड़की मनोरमा इलाहाबाद में पढ़ती है। छठे दरजे में है। उसकी पढ़ाई में मुझे कोई २०) महीने ख़र्च पड़ता है। स्वस्थ और स्वरूप है। १२ वर्ष की होने आई। उसके लिए कोई योग्य वर ढूँढ़ देने में मैं आपकी मदद चाहता हूँ। देख रखिए। दो तीन वर्ष बाद शादी करूँगा।

कृपापात्र
म० प्र० द्विवेदी

(११)

दौलतपुर (रायबरेली)
२६-१-३६

श्रीमान् तिवारी जी को प्रणाम!

पोस्टकार्ड मिला। वंशवर्णन की २ कापियाँ भी पाकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। यह संस्करण बहुत ही अच्छा निकला। आपकी यह पुस्तक आदर्श का काम दे सकती है। और भी कुछ समर्थ सज्जन यदि अपने अपने वंश का वर्णन लिख डालें तो कान्यकुब्जों का पूरा इतिहास हो जाय। इस पुस्तक की एक एक कापी इन लोगों को भेजिए—

१—पं० देवीदत्त शुक्ल, सम्पादक सरस्वती, प्रयाग
२—पं० रमाशंकर अवस्थी, सम्पादक वर्तमान, कानपुर
३—प्रोफ़ेसर सद्गुरुशरण अवस्थी, सनातनधर्म कालेज, कानपुर
४—पं० देवीप्रसाद शुक्ल, हिन्दू-होस्टल, प्रयाग

कृपा बनी रहे। पं० चतुर्वेदी S. D. O. इस तरफ़ दौरे पर हैं। भोजपुर आये तो दर्शन करूँगा।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

(१२)

दौलतपुर (रायबरेली)
२४-१०-३८

श्रीमान् तिवारी जी को सादर प्रणाम

२२ तारीख़ का पत्र मिला। यह सब आप लोगों की और डाक्टर साहब की कृपा का फल है जो मेरी बात रह गई। मैं आपका अत्यन्त अनुगृहीत हूँ। मुझ पर आपकी सदा ही कृपा रही है। वैसी ही बनी रहे, यही प्रार्थना है। पं० शिवगोविंद को मेरा आशीर्वाद—चिरञ्जीवी भूयात्।

कृपापात्र
म० प्र० द्विवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

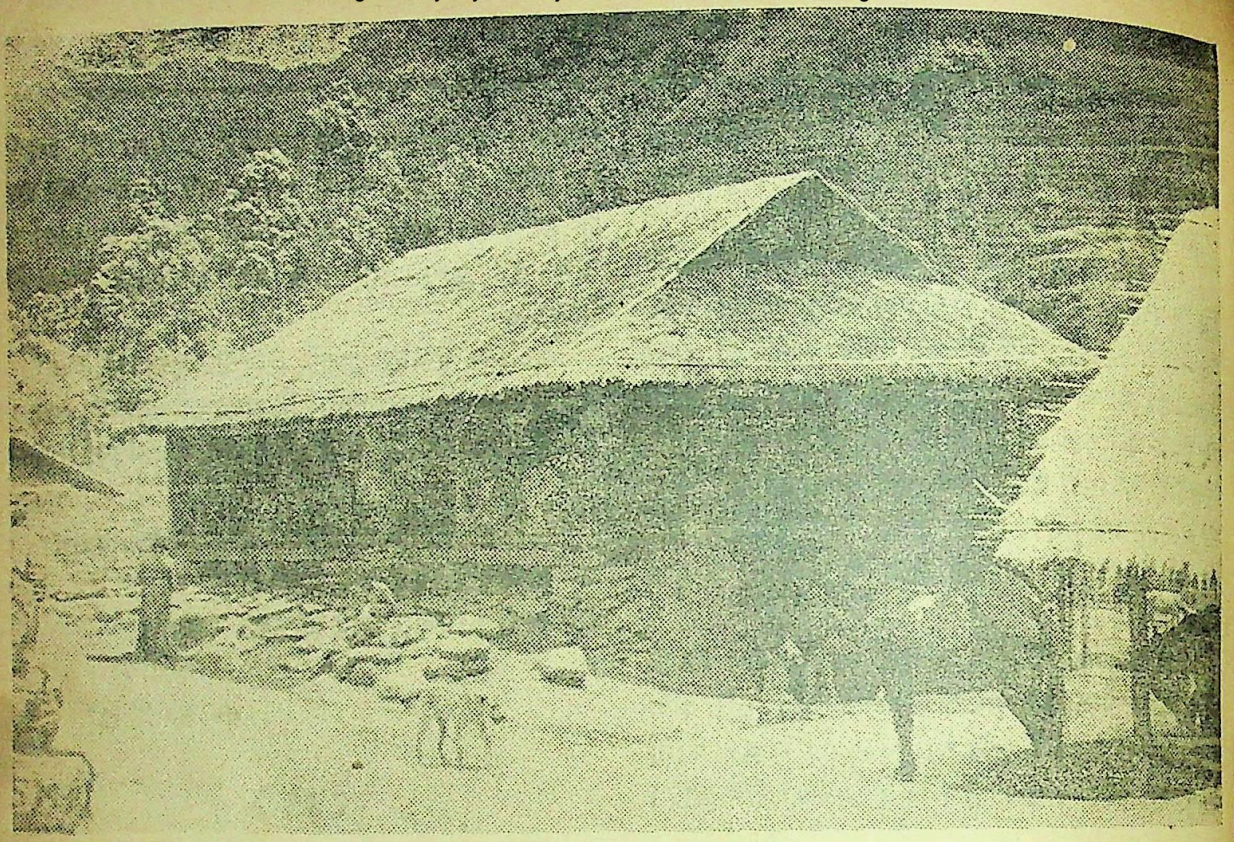

[तिब्बत के मार्ग पर पेडांग नाम का पहला पड़ाव]

मैं तिब्बत कैसे पहुँचा ?

लेखक, श्रीयुत फेनी मुकर्जी, कलाकार, ए० सो० ए०; आई० ए० एस०

(२)

पेडांग की सराय के सामने मांस की एक दूकान थी, जिसमें बड़े जानवर के मांस के बड़े-बड़े टुकड़े लटक रहे थे। मुझसे राय ली गई कि अगर ताज़ा मांस खाना चाहते हो तो ले सकते हो। कट्टर होने से मेरे दिल ने साथ नहीं दिया और हद से ज़्यादा बुरी बदबू-वाले भेड़ के सूखे मांस को ही खाना मैंने पसन्द किया। इसे हम लोग कलिम्पोंग से अपने साथ लेते गये थे। सराय के पास ही अंगरेज़ों के लिए डाक-बँगला बना हुआ है। इस तरह के डाक-बँगले ग्यानसी तक बराबर मिलते हैं।

सराय लकड़ी की बनी थी। हम लोग दोमंज़िले वाले भाग में ठहराये गये थे। कमरा धुँए से काला हो गया था। उसके भीतर अँधियारा इतना अधिक था कि हम भीतर घुसते समय सराय की मालकिन से टकरा गये। वह वहाँ हम लोगों का स्वागत करने को खड़ी थी। अतएव बरामदे में ही रहना अच्छा समझा गया और वहीं हम लोगों ने रात बिताई। बराबर में एक तिब्बती सौदागर साहब बैठे सूखे बकरे को चाक़ू से काट-काट कर चाय में तर करते हुए खा रहे थे, मानो ब्रिटेनिया के बिस्कुट हों।

हमने भी किसी तरह सूखा मांस, चावल और गरम-गरम सोडा पड़ी चाय पीकर पेट भर लिया। फिर सन्ध्या होने की प्रतीक्षा करने लगे। पर दिल बहुत घबरा उठा। अतएव सैर करने को बाहर निकल गये। रास्ता बहुत सुहावना था। पहाड़ी रास्तों पर घूमता हुआ मैं एक झरने के क़रीब जा बैठा। इतने में देखा कि एक छोटी-सी लड़की जो मेरे अन्दाज़ से ७ या ८ साल से ज़्यादा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

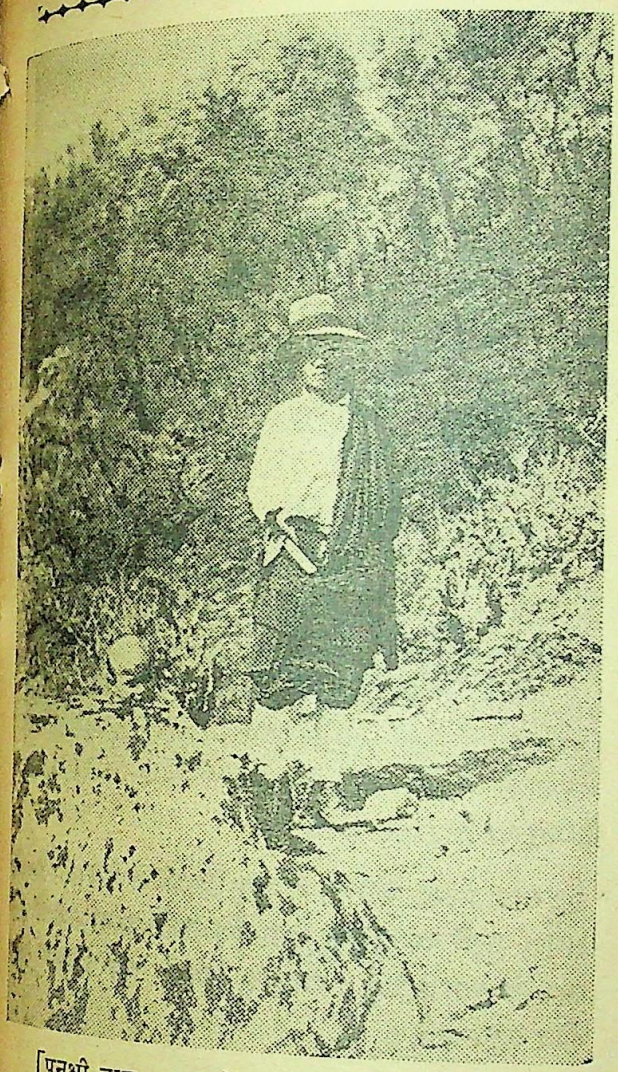

[पुनश्री नाम का हमारे साथ का तिब्बती नौकर]

की न थी, पीठ पर लकड़ी की एक बहुत बड़ी बालटी लटकाये दौड़ी चली आ रही है। वहाँ आकर वह झरने से पानी भरने लगी। मुझको सिगरेट पीते देखकर उतर-कर वह मेरे पास आई और अपनी भाषा में सिगरेट माँगने लगी। उसकी भाषा हिन्दुस्तानी से मिलती-जुलती थी। मैं इस बात से हैरान था कि इतनी छोटी लड़की उस बड़े बर्तन को भरकर कैसे ले जायगी, क्योंकि अँधेरा भी होता जा रहा था और वह अकेली थी। और ज़्यादा हैरान इस बात से हुआ कि जिस जगह सिगरेट पाना सबसे ज़्यादा पाप है, वहाँ एक लड़की एक अजनबी से बेतकल्लुफ़ी से पास खड़ी होकर सिगरेट कैसे माँग रही है। इसी बीच में एक ओर आवाज़ सुनाई पड़ी। घूमकर देखा कि एक लड़का जो मेरे अंदाज़ से क़रीब १२ या १३ साल का था, पहाड़ से उतरता हुआ चला आ रहा है। उसकी आवाज़ को सुनकर वह लड़की भागी और उस लड़के से जा मिली। अब दोनों साथ-साथ मेरे पास आये और लड़का मुझसे सिगरेट माँगने लगा। मैंने पूछा—क्या तुम सिगरेट पीते हो ? उसके जवाब से मैं ताड़ गया कि वह सिगरेट पीने का आदी है। मैंने उसको एक सिगरेट दे दी। लड़की ने भी हाथ बढ़ाया तब मैंने एक पैसा निकाल कर उसे दे दिया। वे दोनों सूरत-शकल से भाई-बहन मालूम पड़ते थे। पूछने पर मालूम हुआ कि वे पास ही रहते हैं, उनके मा-बाप जीवित हैं। उन्होंने यह भी बताया कि उनके घर खेती नहीं होती, बल्कि गाय-बैल पाले जाते हैं और वे भूटान के रहनेवाले हैं एवं उनको वही मुल्क बहुत पसन्द है। देखते-देखते शाम हो आई। मैं भी उठकर चल पड़ा। वह लड़की भी पानी से भरी हुई बालटी उठाकर गाना गाती हुई चल पड़ी और वह लड़का भी उसके साथ हो गया। राहुल जी से बाद को मालूम हुआ कि जिस लड़की को मैंने क़रीब ८ साल की समझा था वह १४ से कम की न थी और वह लड़का १६ या १७ साल का था।

रात में आँधी आई और ज़ोरों से पानी बरसा। बरामदे में ख़ूब छींटें आने लगीं, पर थकावट इतनी ज़्यादा थी कि आँख ही न खुली। सुबह ४ भी न बजने पाये थे कि ख़च्चरवालों ने शोर मचाना शुरू कर दिया। हम लोग भी उठ पड़े। चाय पीकर सारा सामान ख़च्चरों पर लदवा दिया। हम लोग भी अपने ख़च्चरों पर सवार होकर चल दिये। वहाँ ५॥ बजे ऐसा मालूम होता था, जैसा कलकत्ते में ८ बजने पर मालूम होता है। रास्ता बहुत ही सुखद था। लगातार उतराई से उतरते जा रहे थे। रास्ते में बहुत से फोटो लिये। उस उतराई में हम लोगों को पैदल चलना पड़ा। पेडांग में रहने का किराया और लकड़ी का ख़र्च हम लोगों को ॥)॥ देना पड़ा। ११ बजे के क़रीब हम लोग एक जगह पर आ पहुँचे। इस जगह का नाम चैंग-थावा है। यहाँ अण्डे, केला और चाय का नाश्ता किया। इस वक़्त भी खाने-पीने का ख़र्च नौकरों के सहित ॥) देना पड़ा। यह रास्ता सिकिम की सीमा से जाता है। इसलिए हम लोगों के पासपोर्ट देखे गये और हस्ताक्षर लिये गये। मैं तो पहले ही लिख चुका हूँ कि इधर की पुलिस का कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

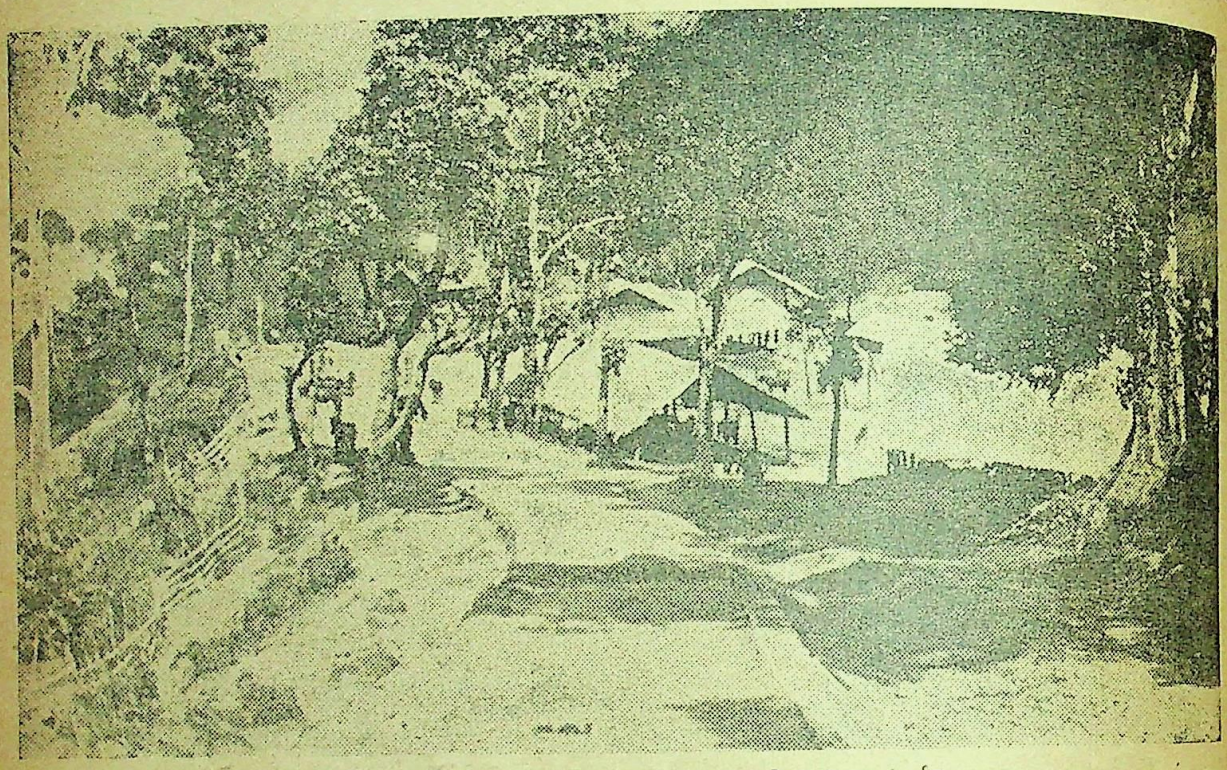

[सिक्कम से होकर जानेवाला तिब्बत का टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग]

और ही ढङ्ग है। पुलिसवालों ने हमको आगे जाने से रोक दिया। वे हमें इस ढङ्ग से देखने लगे, मानों हम लोग कोई बहुत बड़े अपराधी हों। हमारे साथी राहुल जी उनके बर्ताव को न सह सके और क्रोध में आकर उनसे भिड़ने को तैयार हो गये। मैंने उन्हें रोका और समझाया कि इस समय हमें बुद्धि से काम लेना चाहिए और क्रोध नहीं करना चाहिए। आख़िर उनसे बातचीत शुरू की। उनके प्रश्न इतने बेतुके थे कि सुनकर हँसी आ जाती थी, जिससे उनका सन्देह राहगीर पर और ज़्यादा होता जाता था। उनका एक यह प्रश्न भी था कि आप हिन्दुस्तानी हैं या अँगरेज़। मैंने हँसी रोक कर जवाब में कहा कि तुमको क्या जान पड़ता है। एक पुलिसवाला झट बोल उठा कि अँगरेज़। अब बिना हँसे न रह सका। लेकिन मैंने गम्भीरता धारण कर उत्तर दिया कि मैं बंगाली हूँ और बिहार-गवर्नमेंट की ओर से तिब्बत जा रहा हूँ। गवर्नमेंट का नाम सुनकर वे कुछ शान्त हुए और एक रजिस्टर उठा लाये, जिसमें बहुत से कालम बने हुए थे। उन सारे कालमों को क्रम से भरकर हम लोगों ने हस्ताक्षर किये। मेरी उम्र २८ साल लिखी देखकर वे कुछ हैरानी से मेरी ओर देखने लगे। पूछने पर मालूम हुआ कि उनके अन्दाज़ से मैं ४० साल से कम नहीं हूँ। आख़िर उनको चुप देखकर हम लोग आगे चले।

यात्रा-मार्ग का दृश्य बहुत ही सुहावना था। सारा दिन ख़ुशी-ख़ुशी यात्रा करते हुए हम लोग शाम के क़रीब १२ मील की दूरी तय करके 'रीनक ला खंग' जिसका अर्थ है 'रीनक भगवान् का मन्दिर', नामक सराय में जाकर ठहरे। यहाँ भी पूर्ववत् सूखा मांस, चावल तथा नमकीन चाय से पेट भरकर अधीरता से रात की प्रतीक्षा करते रहे, और फिर सारी रात सोकर बेख़बरी से बिता दी। सबेरे रहने का किराया और लकड़ी का ख़र्च ६ आना देकर ५ बजे के क़रीब फिर चल पड़े।

यह रास्ता और भी ज़्यादा सुन्दर था जो चुम्बी नदी के साथ साथ गया था। कभी नदी से ५०० फुट की ऊँचाई पर चढ़ता था और फिर धीरे-धीरे उतर कर नदी के बगल में आ जाता था। जगह-जगह पहाड़ी झरनों और पगडंडियों ने उसे तोड़ फोड़ दिया था, जिससे पैदल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[पेडांग की सराय में एक तिब्बती दूकानदार सूखा मांस और सत्तू खा रहा है।]

चलना पड़ा। आसपास का जंगल बाँस से भरा हुआ था। ये बाँस मामूली बाँस से १० गुना लम्बे और बहुत मोटे थे।

एकाएक तुरही की एक तेज़ आवाज़ ने जंगल को गुंजा दिया, जिससे मेरा दिल हिल उठा। वह आवाज़ जंगली लय में थी, लेकिन तो भी दिल ने कहा कि है तो बाजे की ही आवाज़। अधीरता से आगे बढ़ा, देखा कि सुनसान रास्ते के बग़ल में एक छोटा सा गाँव है। गाँव के कुछ आदमियों का एक जलूस जा रहा था, जिसके आगे एक आदमी तुरही लिये फूँक रहा था और उसके पीछे दो तीन मर्द और पाँच सात औरतें तथा बच्चे थे। स्त्रियों के सिर और हाथों पर थालियाँ आदि थीं, जो रंग-बिरंगे कपड़ों से ढकी हुई थीं। चाल-ढाल से मालूम हुआ है कि विवाह की कोई रस्म हो रही है। लेकिन यह नहीं मालूम पड़ा कि ये लोग बेटेवाले हैं या बेटीवाले। हमें वे नेपाली जान पड़े। आज भी खुशी-खुशी क़रीब ७ मील का सफ़र तय कर हम लोग रंगलीचूखा के क़रीब ११ बजे पहुँच गये। यहाँ पहाड़ियों की संयुक्त-प्रान्त के लोगों की कुछ दूकानें हैं। उन दूकानदारों में से एक राहुल जी को पहचानता था।

उसने हम लोगों को रोक लिया और खाना खाने को बाध्य किया। हम लोग कुछ देर के लिए वहाँ ठहर गये और हाथ-मुँह धोने के बाद चावल, आलू का साग और दाल का पानी पिया। नीबू के अचार और पान ने हिन्दुस्तान की याद दिला दी। दो-चार चीज़ें ख़रीदने के बाद हम लोग फिर चल पड़े। पास ही के कमरे से पैर की आहट सुनाई दी। घूमकर देखा, एक सुन्दर स्त्री बड़ी उत्सुकता से हम लोगों की ओर देख रही है। वह सजावट और रूप-रेखा से पहाड़िन जान पड़ी।

१२ बजे के क़रीब हम लोग आगे बढ़े। राह में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

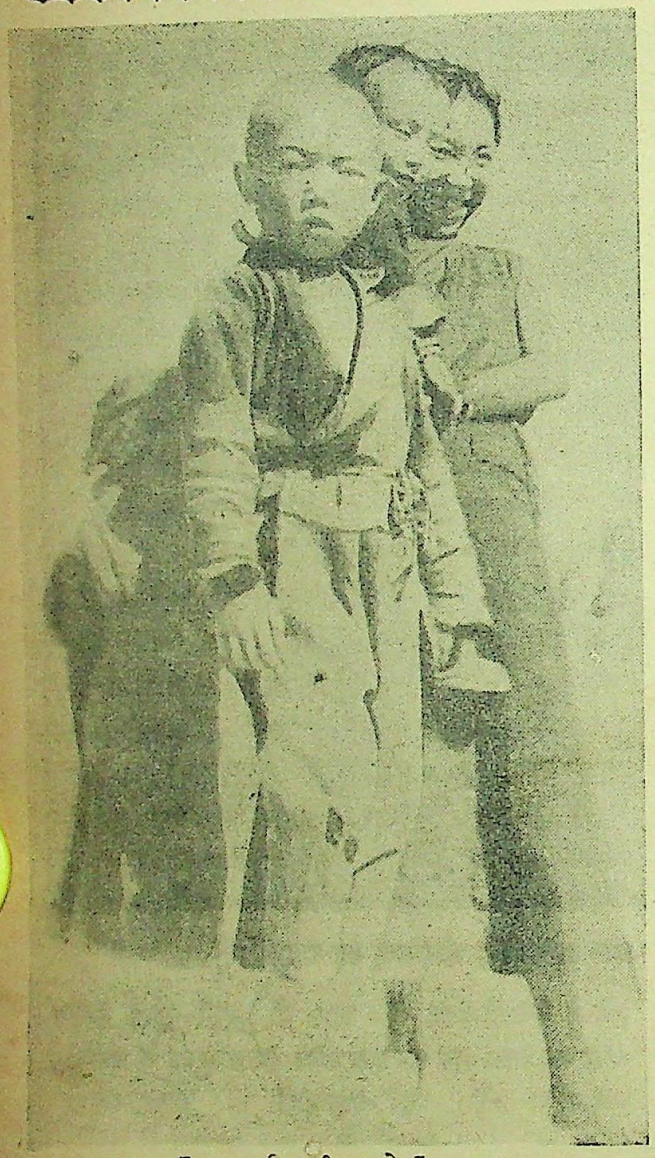

[कुछ सिकमी बच्चे]

एक स्कूल देखा, जिसमें नेपाली बच्चे थे। रास्ता और भी सुन्दर मिला। जगह-बजगह झरने और पुल थे। अति उच्च नीले-नीले पहाड़ों की जड़ से रास्ता इस तरह घूमने लगा, मानों किसी प्राकृतिक बाग़ में हम लोग सैर कर रहे हों। झरनों की गरज और पक्षियों की चहचहाहट ने दिल को बाग़बाग़ कर दिया। हम आज की यात्रा को 'यात्रा' इसलिए नहीं कह सकते कि यह एक बहुत ही मज़ेदार 'सैर' थी। इस प्रकार आज हम लोगों ने 'सैर' करते हुए क़रीब १४ मील की दूरी तय कर डाली। शाम को क़रीब देखकर लिग्टम गाँव की एक सराय में जाकर ठहर गये। वहाँ जाते ही मालूम हुआ कि ८ या ९ आदमियों का एक दल तिब्बत जा रहा है और उसको ब्रिटिश पुलिस ने रोक लिया है, क्योंकि उस दल में २ चीनी और बाक़ी भोटिया हैं। उस दल का सरदार एक भोटिया लामा था। वह बहुत ही बुद्धिमान् था। उसने पुलिस के हस्तक्षेप के बारे में हिन्दुस्तान को तुरन्त तार दिया। इस ख़बर से गाँव में बड़ी सनसनी फैली हुई थी। हमारे राहुल जी और गेशेला साहब भी इस मामले में बड़ी दिलचस्पी लेने लगे। और पुलिस के आदमी को उनका पासपोर्ट पढ़कर सुनाया और बतलाया कि वे लोग तिब्बत जा सकते हैं। लेकिन यहाँ की पुलिस के बारे में मैं पहले ही बतला चुका हूँ। इसलिए इस सम्बन्ध में हम लोगों का कोई असर न हुआ। आख़िर दूसरे दिन सुबह को हिन्दुस्तान से तार का जवाब आया कि उन लोगों को जाने दो। पुलिस की ऐसी कुछ बातों को देखकर हँसी आती थी। दूसरे दिन ७ मई की सुबह को ॥-)॥ किराया और लकड़ी का दाम देकर हम लोग फिर आगे बढ़े। जंगल को घूम-घाम कर क़रीब ८ या ९ मील का सफ़र तय करने के बाद हम लोग एक बहुत सुन्दर गाँव फैदम चान में जा पहुँचे। उस समय कोई ११ बजे थे। हम लोग सराय में गये और हम तीनों आदमियों और नौकरों ने नमकीन चाय और कुछ खाना खाया। कुल ख़र्च ।=) हुआ। खाने में १ दर्जन अंडे भी मिले थे। यहाँ की इन सरायों में बड़ा आराम मिलता है। सरायों की मालकिन एक स्त्री होती है और वह और उसकी नौकरानी जो उसकी सहेली मालूम पड़ती हैं, बहुत ही दयालु प्रकृति की होती हैं। यात्री के पहुँचते ही ख़च्चर को पकड़ लेती हैं और बड़े आदर से यात्री को उतार लेती हैं। हर समय आज्ञा पालन करने को तैयार रहती हैं और यात्री को किसी तरह की तकलीफ़ नहीं होने देती। बातचीत में और बर्ताव में बहुत सरल और विनम्र होती हैं। चलते समय अपने वाजिबी पैसे लेकर खुश हो जाती हैं और बहुत ग़रीब होते हुए भी यात्री को बख़शीश लेकर तंग नहीं करती हैं।

यहाँ से आगे बढ़ने पर ग़ज़ब की चढ़ाई शुरू हुई। रास्ता भी पतला था। अपने ख़च्चरों को क़ाबू में करने के लिए उसकी पीठ पर बैठकर चलते-चलते क़रीबकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

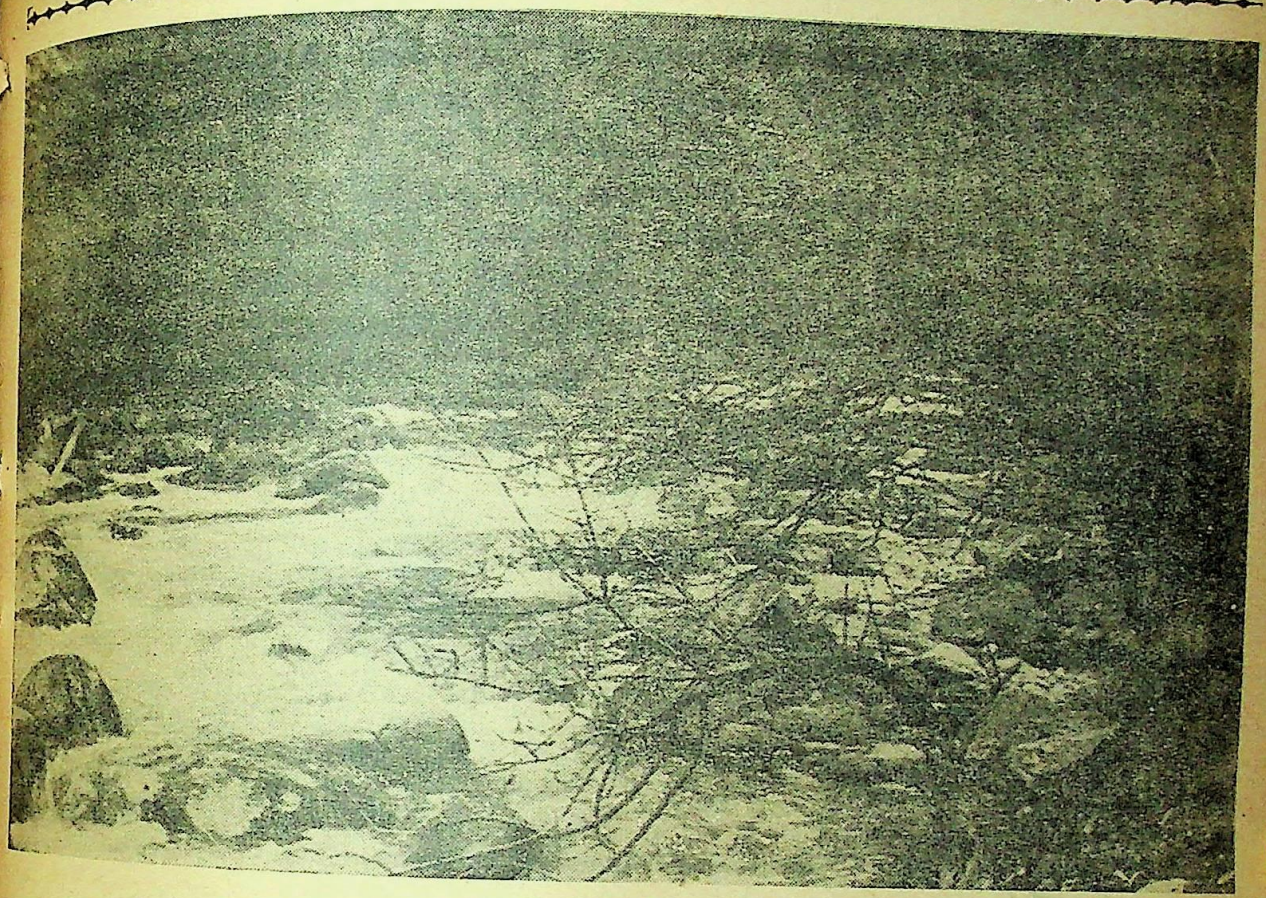

[चम्बी नदी]

टहनियों को तोड़ना चाहा, पर वे इतनी मज़बूत निकलीं कि नहीं टूटीं और हाथ से टहनी फिसल जाने से दाहने हाथ की अँगुली बुरी तरह कट गई। घाव को रूमाल से ख़ून कस कर बाँध दिया, लेकिन जलन और लगातार ख़ून के निकलने की वजह से उतर कर मलहम-पट्टी की। दो ही कदम आगे बढ़े होंगे कि घुमाव पर आकर ख़च्चर बिदक गया। उसको १ हज़ार फ़ुट की निचाई में जाते देखकर मेरी देह में पसीना आ गया, लेकिन जहाँ मनुष्य की बुद्धि काम नहीं करती, वहाँ ये ख़च्चर बड़े विचित्र ढंग से जोखिम को बचा जाते हैं। थोड़ी ही दूर आगे बढ़े होंगे कि देखा ख़च्चरों की एक बड़ी लम्बी पंक्ति नीचे उतर रही है। यह चढ़ाई बहुत ही सीधी थी और रास्ता भी बहुत ही तंग था। उतरते हुए ख़च्चर ज़्यादा ढाल के होने से अपने को रोक नहीं सकते थे, इसलिए हम लोग रुक गये। हमारा दल भी ४० ख़च्चरों के साथ चढ़ रहा था। उनमें से एक ख़च्चर बड़ी अधीरता से ऊपर चढ़ने लगा, जिससे वह उतरते हुए माल लदे हुए ख़च्चरों से टकरा गया और जगह की तंगी की वजह से अपने को सँभाल न सका और क़रीब ५०० फ़ुट की उँचाई से हम लोगों के सामने पथरीली सड़क पर आ गिरा। उसका सिर कुचल गया और वह तुरन्त मर गया। ख़च्चरों के मालिक ने उतर कर अपने सवारीवाले ख़च्चर पर उसका माल लाद लिया और फिर हम लोग आगे बढ़ चले। मैंने उस मृत ख़च्चर का फोटो लेना चाहा, लेकिन साथियों ने मना किया कि ऐसा करने से ख़च्चरवाले नाराज़ हो जायँगे। आज का रास्ता देखने में सुहावना था, लेकिन चढ़ाई और उतराई इतनी ज़्यादा थी कि हर समय जान का ख़तरा था। अभी उतराई से उतर कर चढ़ाई शुरू ही की थी कि फिर माल से लदा हुआ एक ख़च्चर फिसल पड़ा, लेकिन वह दो-चार कलाबाज़ियाँ खाने के बाद एक झाड़ी के झुण्ड में जाकर रुक गया। ख़च्चरवाले दौड़ पड़े और उसको बाहर निकालकर ईश्वर-ईश्वर कर आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[सिकम में बोझ लादे हुए हमारे ख़च्चर]

की यात्रा समाप्त की। कुल १३ मील चल कर हम लोग जूलू की सराय में ठहरे। आज की रात बहुत दुःखद रही। ग़रीब ख़च्चरवाले बहुत ही दुःखी थे, क्योंकि उनका एक सबसे अच्छा जवान ख़च्चर जिसकी क़ीमत सौ रुपये से कम न थी, जाता रहा।

दूसरे दिन ८ मई की सुबह को हम लोग ५ बजे के क़रीब फिर रवाना हुए। यहाँ की उँचाई १३ हज़ार फ़ीट से ज़्यादा ही मालूम हुई, क्योंकि जगह-जगह दरख़्तों की गली हुई हालत यही कह रही थी कि बरफ़ अभी हाल में ही गली है। चढ़ाई और भी सीधी और ख़तरनाक थी। दो घण्टा चलने के बाद एकाएक शोर गुल सुनाई दिया। लपक कर आगे बढ़े तब मालूम हुआ कि फिर एक ख़च्चर नीचे गिर गया है और क़रीब ५० फ़ुट की निचाई में झाड़ी से अटक गया है। बड़ी हिम्मत और मेहनत से रस्सियों के ज़रिये वह निकाला गया। एक-दो मामूली ख़राश के और ज़्यादा चोट नहीं आई थी। कुछ देर के बाद हमारा काफ़िला फिर आगे बढ़ा। रास्ते में अक्सर उतरते और चढ़ते हुए काफ़िलों से मेल होता था। उतरते हुए ख़च्चर तो रुक नहीं सकते, इसलिए बचाव का सारा दारमदार चढ़ते हुए काफ़िले पर रहता है। ख़च्चरों के गले में बँधे हुए बड़े बड़े घण्टे दूर से ही सावधान कर देते हैं, तो भी रास्ता बहुत कम चौड़ा होने की वजह से बड़ी मुश्किल पड़ जाती है। क़रीब १०॥ बजे हम लंगडू डांगबी की बस्ती में जा पहुँचे और एक सराय में जाकर चाय पी। अभी थोड़ी-थोड़ी बारिश होती हुई थी, और सरदी भी तेज़ हो गई थी लेकिन पहाड़ी बारिश को थोड़ी देर की तकलीफ़ समझ कर हम लोग फिर आगे चल पड़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

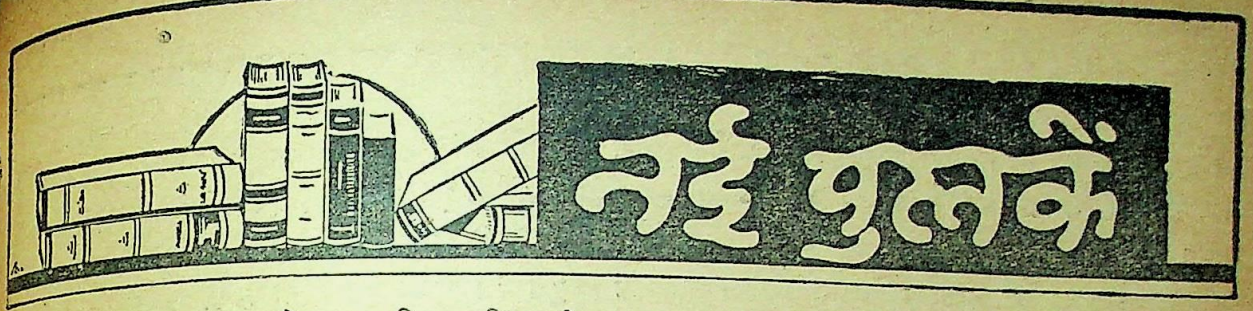

१—विश्व-परिचय—मूल-लेखक, विश्व-कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर और अनुवादक शान्ति-निकेतन के हिन्दी-प्रोफ़ेसर पंडित हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, शास्त्री, शास्त्राचार्य हैं। प्रकाशक, विश्वभारती ग्रन्थालय, २१० कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता है। पुस्तक सजिल्द है। छपाई-सफ़ाई व गेट-अप सुन्दर है। पृष्ठ-संख्या ११४ और मूल्य १) है।

विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने साहित्य के अलावा विज्ञान जैसे रूखे विषयों पर भी लिखा है, और बहुत अच्छा लिखा है। उनकी लेखनी ने इस विषय को रोचक बना दिया है। प्रस्तुत-पुस्तक भी भौतिक-विज्ञान से सम्बन्ध रखती है। इसमें परमाणुलोक, नक्षत्रलोक, ग्रहलोक और अन्त में, भूलोक का परिचय दिया गया है। यथावश्यक चित्र भी लगाये गये हैं। अनुवाद भी सुन्दर हुआ है। इससे साधारण पढ़े-लिखे पाठक भी सृष्टि-सम्बन्धी अनेक रहस्यों को जानकर अपना ज्ञानवर्द्धन व मनोरंजन कर सकते हैं।

२-८—पुस्तक-भवन, बनारस सिटी की ७ पुस्तकें—

(१) विक्रमोर्वशीय नाटक—अनुवादक, पण्डित चन्द्रकान्त पाठक, काव्यतीर्थ हैं। छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या ९५ और मूल्य दस आने है।

यह महाकवि कालिदासकृत संस्कृत के प्रसिद्ध नाटक विक्रमोर्वशीय का हिन्दी-अनुवाद है। गद्य-स्थलों का अनुवाद कुछ अच्छा हुआ है, पर पद्य-स्थलों का अनुवाद किसी काम का नहीं है। कुछ नमूने देखिए—

"उपमिति की प्रत्युपमिति वपु हो सकता है"

"अतएव यह अनुपम अभिख्या मासवर मधुमास की"

"मृदु आशुग से कम्पित घन-सा रुचिर बर्ह इसका जो है,
प्राणप्रिया के आज नाश से निःसपत्न ध्रुव ही सो है।"

अनुवादक यदि कवि के भावों को समझ कर प्रचलित हिन्दी में अनुवाद करने की चेष्टा करता तो उसे अधिक सफलता मिल सकती थी। पुस्तक में छापे की अशुद्धियाँ भी अधिक हैं।

(२) वाह रे परीक्षा!—(कहानीसंग्रह), पृष्ठ-संख्या १३६, छपाई-सफ़ाई साधारण, काग़ज़ घटिया, फिर भी मूल्य १) है।

इस पुस्तक में कुल ५ कहानियाँ हैं जो ३ लेखकों की लिखी हुई हैं। लेखकों के नाम हैं श्रीयुत 'हरी', 'कृष्ण' और 'गणेश'। सभी लेखक आवश्यकता से अधिक वाचाल हैं। सनसनी पैदा करने की लहर में वे ऐसे बह जाते हैं कि प्लाट की भी ख़बर नहीं रखते। फलतः एक भी कहानी सुन्दर नहीं बन पड़ी है। शैली में भी उग्रता लाने का असफल प्रयत्न किया गया है। 'परीक्षा और भूल' का प्लाट ग़लत है। 'आकर्षण का फल' का अस्वाभाविक और लम्बा।

(३) शैलबाला—(ऐतिहासिक उपन्यास) अनुवादिका, श्रीमती सावित्रीदेवी हैं। छपाई-सफ़ाई साधारण, कवर सचित्र, पृष्ठ-संख्या २१६ और मूल्य १।) है।

यह पुरानी शैली में लिखे हुए श्रीयुत ननीलाल वंद्योपाध्याय के बँगला-उपन्यास शैलबाला का हिन्दी-अनुवाद है। कथानक रोचक है पर शैली पुरानी है।

(४) तू-तू, मैं-मैं—लेखक, श्रीयुत व्यासाचार्य हैं। पृष्ठ-संख्या ६४, छपाई-सफ़ाई साधारण और मूल्य ॥) है, जो कुछ अधिक है।

इस पुस्तक में हास्यरस के कुछ निबंध हैं। लेखक को इसमें अच्छी सफलता मिली है। पुस्तक रोचक है, पर बंगाली हास्य-लेखकों की शैली की नक़ल साफ़ दिखाई देती है। फिर भी इससे हिन्दी में शिष्ट हास्यरस की पुस्तकों के एकांत अभाव की आंशिक पूर्ति होती है।

(५) हुगली का इमामबाड़ा—(ऐतिहासिक एवं आध्यात्मिक उपन्यास) अनुवादक, श्रीयुत मुरारीदास अग्रवाल हैं। पृष्ठ-संख्या २२८ है। छपाई-सफ़ाई साधारण, कवर रंगीन और मूल्य १।॥) है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में प्रेमचन्द जी से पूर्व सुन्दर मौलिक उपन्यासों का एकान्त अभाव था। उन दिनों हिन्दी के पाठकों को बँगला और मराठी की जूठन पर ही सन्तोष करना पड़ता था।

यह अनुवाद भी उसी युग की सृष्टि है। कथानक रोचक है जो कि पिछले खेवे के बंगाली लेखकों की निजी विशेषता थी। हिन्दी के सामान्य रुचिवाले पाठक अब भी ऐसे उपन्यासों को मोल लेकर पढ़ते हैं!

(६) शराबी—लेखक, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' हैं। छपाई-सफ़ाई साधारण है। पृष्ठ-संख्या २०४ और मूल्य १॥) है।

'उग्र जी' अपनी शैली की उग्रता के कारण काफ़ी नाम पा चुके हैं। ईश्वर की कृपा से आपको कथानक भी ऐसे सुन्दर मिल जाते हैं, जिनमें "सेक्स-साइकालोजी" के हथकंडे दिखाने का अच्छा अवसर रहता है। एक विशेष रुचि के पाठक ऐसे उपन्यासों की ख़ूब क़द्र करते हैं। यह पुस्तक भी साहित्यिकों की दृष्टि में चाहे उतनी अच्छी न हो पर बाज़ार में बिकी ख़ूब होगी; क्योंकि इसमें ऐसी "छोकरियों" का परदा खोला गया है जो गाँव की "लुगाइयों" की दृष्टि में "कलमुहीं" समझी जाती हैं। पर उग्र जी की कला-पारखी दृष्टि उन्हें "जवाहर" समझती है।

(७) सच्चो झूँठ—लेखक, लाला रामजीदास वैश्य हैं। छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या ७५ और मूल्य ॥) है।

यह सामान्य रुचि के पाठकों के लिए लिखा गया एक सामाजिक उपन्यास है। कथानक, शैली और उद्देश्य सबमें बज़ारूपन है।

(८) मैसूर में—लेखक, श्रीयुत गुरुनाथ शर्मा हैं; प्रकाशक, देशीराज्य साहित्य-मन्दिर, मद्रास है। पृष्ठ-संख्या १०४ और चित्र-सख्या २४ है। छपाई-सफ़ाई साधारण और मूल्य ।।) है।

यह पुस्तक नितान्त समयानुकूल है। आज-कल देशी राज्यों में स्वाधीनता-आन्दोलन चल रहा है। इस दशा में मैसूरराज्य से बाहर के निवासियों को मैसूर की अन्दरूनी हालत जानने में यह पुस्तक पूरी सहायता कर सकती है। भूगोल के प्रेमी भी इससे लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक सभी दृष्टियों से संग्रह करने व पढ़ने योग्य है। चित्रों की प्रचुरता ने विषय को अत्यन्त रोचक बना दिया है।

९—११—वाणीमन्दिर छपरा की तीन पुस्तकें—

(१) फलों का गुच्छा—लेखक, श्रीयुत रामवृक्ष बेनीपुरी हैं। छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या १३१ और मूल्य ।।।) है।

इस पुस्तक में ९ छोटी-छोटी कहानियाँ हैं जो अँगरेज़ी, ग्रीक, फ्रेंच और जर्मन आदि ९ विदेशी कहानी-लेखकों की हैं। सभी लेखक लब्धप्रतिष्ठ और प्रख्यात हैं। चयन और अनुवाद सुन्दर हुआ है। पुस्तक किशोरावस्था के पाठकों के लिए विशेष उपयोगी है।

(२) पद-चिह्न—लेखक, श्रीयुत रामवृक्ष बेनीपुरी हैं। छपाई-सफ़ाई साधारण अच्छी, पृष्ठ-संख्या ६८ और मूल्य ।≡) है। यह पुस्तक भी छोटे बालकों के लिए लिखी गई है। इसमें कुछ विदेशी कवियों, लेखकों और वीरों का थोड़ा-थोड़ा परिचय दिया गया है। भाषा सरल है।

(३) ज्योतिमयी—लेखक, श्रीयुत अनूपलाल मंडल, साहित्यरत्न हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी है। पृष्ठ-संख्या २१० है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) है।

यह एक सुन्दर सामाजिक उपन्यास है; कथानक रोचक है। भाषा भी काफ़ी साफ़ है पर उद्वेगजनक स्थलों पर प्रेमचन्द की शैली की झलक मिलती है। सभी पात्रों का एक जैसी और साहित्यक भाषा बोलना अस्वाभाविक लगता है।

१२—योरोप का आधुनिक इतिहास (प्रथम भाग) :—लेखक, डाक्टर सत्यकेतु, विद्यालङ्कार, डी० लिट० हैं। प्रकाशक इतिहाससदन, नई दिल्ली है। छपाई-सफ़ाई उत्कृष्ट, पृष्ठ-संख्या २८० और सजिल्द पुस्तक का मूल्य १॥) है।

हमारे देश के स्कूलों-कालेजों में योरप का इतिहास पढ़ाने का कम रिवाज है। यहाँ हाईस्कूलों तक तो भारत वर्ष का इतिहास ही दिखाया जाता है, फिर इंटर मीडिएट में इँग्लैंड का इतिहास पढ़ाते हैं। जो विद्यार्थी बी० ए० में इतिहास लेते हैं उन्हें अलबत्ता योरप का इतिहास पढ़ना होता है, जो विद्यार्थी दूसरे विषय लेते हैं उन्हें यह सौभाग्य फिर कभी नसीब नहीं होता। इस प्रकार सामान्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान के अत्यन्त आवश्यक अंग से वे वञ्चित रह जाते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस ज़माने में योरप के इतिहास का जानना कितना आवश्यक है क्योंकि संसार की वर्त्तमान प्रगति का मूलस्रोत योरप ही है।

हिन्दी में, आज तक योरप का कोई अच्छा इतिहास प्रकाशित नहीं हुआ था। फलतः सम्मेलन के इतिहास लेने वाले परीक्षार्थियों को यह विषय अंगरेज़ी में लिखे इतिहासों से ही पढ़ना पड़ता था। प्रस्तुत पुस्तक से इस बड़े अभाव की पूर्ति होती है। विद्यार्थियों के अतिरिक्त साधारण श्रेणी के हिन्दी-पाठकों को भी इस पुस्तक से ज्ञान-वृद्धि में सहायता मिलेगी। इसकी भाषा सरल, सुबोध और विषय के उपयुक्त है। शैली इतनी रोचक है कि पढ़ने में उपन्यास का मज़ा आता है। यह इस इतिहास का प्रथम खण्ड है जिसमें १८३० की फ्रांस की दूसरी राज्य-क्रांति तक का वर्णन आ गया है। ऐसी सुन्दर पुस्तक लिखने के लिए बधाई देते हुए, इसके दूसरे भागों की हम उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करेंगे। मानचित्रों का अभाव खटकने वाली बात है। आगामी भागों में, आशा है, इसकी पूर्ति कर दी जायगी।

१३—दर्ज़ीगिरा—लेखिका, श्रीमती आयशाबेगम हैं। प्रकाशक, लाला राधामोहन रामनारायन अग्रवाल, जबलपुर हैं। पृष्ठ-संख्या १२९ और मूल्य १॥।) है।

कन्यापाठशालाओं में कुछ समय से, सिलाई आवश्यक विषय कर दिया गया है। घर-गृहस्थी की स्त्रियाँ भी अब इसकी ओर अधिक ध्यान देने लगीं हैं। पर इस दिशा में मार्ग-प्रदर्शन करने के लिए हिन्दी में अब तक कोई पुस्तक नहीं थी। प्रसन्नता की बात है कि प्रस्तुत पुस्तक ने इस कमी को बड़ी सुन्दरता के साथ पूरा कर दिया है। इसमें स्त्रियों, पुरुषों व बच्चों के हर क़िस्म के कपड़ों का काटना, सीना, तुरपना, रफ़ू करना, आदि विस्तारपूर्वक, सरल भाषा में समझाया गया है। आवश्यकतानुसार प्रचुर चित्र भी दिये गये हैं। सिलाई की मशीनों का भी सचित्र विवरण दे दिया गया है। अन्त में परिशिष्ट की भाँति कपड़ों का छापना, धोना, और उनके धब्बे छुड़ाना व उन पर लोहा करना भी बतला दिया गया है। यह पुस्तक कन्यापाठशालाओं के पाठ्यक्रम में रखने योग्य तो है ही, गृहस्थ स्त्रियों के भी बड़े काम की है। वे इसकी सहायता से सिलाई सम्बन्धी छोटे-मोटे काम बड़ी सरलता और सुन्दरता से कर सकती हैं।

—विद्युत्तमा मिश्र

१४—अरब में सात साल—लेखक, पण्डित रुचिराम जी, वैदिक मिशनरी हैं। प्रकाशक, श्रीयुत ब्रह्मानन्द बी० ए०, सरल साहित्य-सदन, ३६, एडवर्ड स्क्वायर, नई दिल्ली हैं। पृष्ठ-संख्या २२४ और मूल्य १।) है। छपाई-सफ़ाई मामूली है।

आर्यसमाज के उपदेशक पण्डित रुचिराम जी अपने गुरु स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी के आज्ञानुसार सन् १९२९ में ओ३म् का झंडा लेकर वैदिक धर्म का डंका पीटने के लिए अरब गये थे। वहाँ वे सात साल तक रहे। फिर शायद समूचे अरब को आर्य बनाकर स्वदेश लौट आये। आपने अरब का अपनी आँखों देखा हाल इस पुस्तक में लिखा है। पुस्तक की शैली बड़ी रोचक है। इससे अरब-निवासियों के सामाजिक जीवन का पूरा हाल मिल जाता है। कुछ वर्णन बड़े अनोखे हैं। उदाहरणार्थ आपने एक स्थान पर लिखा है कि अरबी लोगों की एक जाति ऐसी भी होती है जो अपने घरों को गाय के गोबर से लीपती है, गोपद के बराबर चोटी रखती है और अपने को आर्य वंश का मानती है। पुस्तक में क़ुरान और अल्लाह की ख़बर स्थान-स्थान पर ली गई है, क्योंकि इसका प्रचार-क्षेत्र भारतवर्ष है; पर अरब में रहते हुए पण्डित जी को भी अपने धर्म का प्रचार आर्य-समाज के स्थान पर "हिज़-बुल्लाह" नाम देकर करना पड़ा और बात-बात पर "अल-हम-दुलिल्लाह" की दुहाई देनी पड़ी। समय के अनुसार रंग पलटना भी ज़रूरी होता है। आशा है कि आर्य सार्वदेशिक सभा के प्रचारक पण्डित जी के अनुभवों से लाभ उठा कर "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का स्वप्न सत्य करेंगे।

१५—विजया-विहार—लेखक, श्रीयुत प्रणयेश शुक्ल हैं; प्रकाशक, श्रीयुत रामदयाल प्रकाशचन्द्र, चौक, कानपुर हैं। पृष्ठ-संख्या ४८, छपाई-सफ़ाई साधारण और मूल्य चार आने है।

कवि-पेशा लोग हमेशा इस ताक-झाँक में रहते हैं कि कोई ऐसी नई बात कही जाय जिसकी ओर लोग कुतूहल-वश दौड़ पड़ें। कबीर आदि सन्तों को इस प्रकार की कुतूहलजनक सामग्री एकत्र करने की प्रेरणा उनकी साम्प्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दायिक आकांक्षाओं से मिली थी; पर इधर कुछ नवीन कवि-कर्मी लोग इस पुराने तरीक़े का इस्तेमाल महज़ लोक-प्रियता और आर्थिक लोभ की प्रेरणा से करने लगे हैं। छायावाद की प्रतिक्रिया में पैदा हुए उमरख़ैयामी हाला और प्यालावाद की लोक-प्रियता बढ़ते देखकर एक-आध ऐसे ही स्वयंभू कवियों को भी भंग का कूँड़ी-सोंटा खटकाने की सूझी। और दर असल उन्होंने सोचा भी ठीक; क्योंकि हाला-प्याला तो शायद उसके समर्थकों और प्रचारकों को कभी-कभी ही नसीब होता होगा; भंग अलबत्ता रोज़ थोड़ी-बहुत छानी जा सकती है। इन कवियों ने यह भी सोचा होगा कि स्वदेशी होने के नाते इस चीज़ की यहाँ खपत भी अच्छी होगी।

प्रस्तुत पुस्तक भी ऐसी ही है। इसमें लोक-प्रियता की पिछलगुआ मनोवृत्ति साफ़ प्रकट होती है। मनहरण कवित्तों और सवैयों में लिखते हुए भी लेखक ने छायावादी कविताओं की भाँति इसे रबड़-छन्दों के रूप में छपाया है, जिसे देखकर हँसी आती है। भाषा चलती हुई और लालित्य-पूर्ण है।

—व्रजेश्वर

१६—अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास—लेखक, श्रीयुत सत्यकेतु, विद्यालंकार, डी० लिट० हैं। प्रकाशक, इतिहास-सदन, एम०, १, कनाट सरकस, नई दिल्ली है। पृष्ठ-संख्या ३०४ है। छपाई और काग़ज़ बहुत बढ़िया और सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३) है।

अग्रवाल भारतीय वैश्यों की एक प्रसिद्ध जाति है। लेखक ने, प्रस्तुत पुस्तक में इसी जाति का प्रामाणिक इतिहास बड़ी खोज के साथ संकलित किया है। इसकी प्रामाणिकता और उपयोगिता के विषय में इतना लिखना काफ़ी है कि इसी निबन्ध पर लेखक को डाक्टरेट् की उपाधि मिली थी। अग्रवालों के अतिरिक्त इतिहास के विद्यार्थियों के निकट भी यह पुस्तक उपादेय और संग्रहणीय है।

१७—चर्यानिका—संग्रहकर्त्ता और सम्पादक, श्रीयुत रामानन्द शर्मा और श्रीयुत व्रजनन्दन शर्मा हैं। प्रकाशक, दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार-सभा, मदरास है। पृष्ठ-संख्या २७६, छपाई-सफ़ाई बढ़िया और मूल्य १।) है।

यह पुस्तक दक्षिण-भारत के हिन्दी-प्रेमियों को आधुनिक हिन्दी-कविता का परिचय कराने के उद्देश्य से लिखी गई है। प्रसिद्ध कवियों में से एक भी कवि छूटने नहीं पाया। कविताओं का चयन भी सुन्दर हुआ है। कवियों का संक्षिप्त-परिचय और अन्त में शब्दार्थ-कोष तथा पुस्तक के आरम्भ में आधुनिक कविता की झाँकी दे देने से पुस्तक और भी उपयोगी बन गई है।

१८—मुस्तफ़ा कमाल—लेखक, श्रीयुत देवव्रत हैं। प्रकाशक, नवशक्ति-प्रकाशन मन्दिर, पटना है। छपाई-सफ़ाई अच्छी और मूल्य १।) है। पृष्ठ-संख्या २०२ है।

स्वर्गीय अतातुर्क कमाल संसार की उन उज्ज्वल विभूतियों में से थे, जो अपने देश को विदेशियों के पैरों पर से उठाकर संसार के समुन्नत राष्ट्रों की पंक्ति में बिठा देती हैं। देश का बच्चा-बच्चा ऐसे महापुरुषों को पिता कहकर श्रद्धा और सम्मान प्रदान करता है। इस पुस्तक में इसी महापुरुष का जीवन-वृत्त सुन्दर और रोचक ढंग से लिखा गया है। विद्यार्थी और राष्ट्रप्रेमी इसे बड़े प्रेम से पढ़ेंगे। पुस्तक का नाम मुस्तफ़ा-कमाल होना ठीक नहीं है, क्योंकि अन्तिम समय में कमाल ने 'अतातुर्क' की उपाधि धारण की थी और मुस्तफ़ा शब्द को अपने नाम से पृथक् कर दिया था। अगले संस्करण में, आशा है, लेखक यह भूल ठीक कर देंगे।

१९—तिरंगा हो क्यों?—लेखक, श्रीयुत रामदत्त मिश्र, सुलतानपुर, रजीपुर, फ़र्रुख़ाबाद हैं। प्रकाशक, ओम् प्रेस फ़तहगढ़ है। पुस्तक अमूल्य है। छपाई-सफ़ाई मामूली और पृष्ठ-संख्या १६ है।

यह पुस्तक कांग्रेस-सभाओं के जुलूसों में गाने के लिए लिखी जान पड़ती है। ऐसे साहित्य ने देहाती और अपढ़ जनता में कांग्रेस और महात्मा गांधी का विज्ञापन करने में जो सहायता की है, वह प्रशंसनीय है। उधर के अनेक देहाती इसके गीत राह चलते गाया करते हैं। भाषा चलती हुई और भाव चुभते हुए हैं। लेखक ने पुस्तक की देवी के प्रायः सभी बड़े-बड़े नेताओं को भेंट की है, जिससे उसकी महत्त्वाकांक्षा का परिचय मिलता है।

२०—श्रीमद्भागवत—लेखक, पण्डित भगवानदत्त अवस्थी एम० ए०, प्रकाशक, ज्ञानलोक, दारागंज, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या ४१६ और मूल्य १॥।≈) है।

आलोच्य पुस्तक के लेखक अवस्थी जी ने एक अरसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नव आयोजन किया है। वे पुराणों एवं रामायण आदि हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों को हिन्दी में निकालना चाहते हैं। इस श्रीमद्भागवत को उन्होंने हिन्दी में लिखा है और ग्रन्थ के मूल के आशय को संक्षेप में लिखा है। इसके द्वारा साधारण हिन्दी पढ़े-लिखे लोग श्रीमद्भागवत जैसे महान् ग्रन्थ का आशय भले प्रकार समझ सकते हैं। इसमें बारहों स्कन्धों का संक्षेप दिया गया है, परन्तु स्कन्धों के क्रम में यह फेर-फार किया गया है कि दशम स्कन्ध प्रारम्भ में रक्खा गया है। हमारी समझ में ऐसा नहीं होना चाहिए। तथापि अवस्थी जी का यह कार्य अभिनन्दनीय है। यदि हिन्दी-प्रेमियों ने उनसे सहयोग किया तो उनके प्रयत्न से हमारे सब पुराण आदि ग्रन्थ अपने लघु रूप में हिन्दी में सुलभ हो जायँगे। इस श्रीमद्भागवत की भाषा भी सरल और सरस है। इसमें ६ तिरंगे चित्र भी दिये गये हैं, साथ ही पुस्तक अच्छे काग़ज़ और टाइप में छापी गई है। धार्मिक ग्रन्थों के प्रेमियों को इस ग्रन्थ का संग्रह करना चाहिए।

२१—सुरीली बाँसुरी—लेखक, सैयद अनवरहुसेन 'आरज़ू' प्रकाशक, इण्डियन बुकांडपो, लखनऊ। आकार डबलक्राउन सोलहपेजी है। इसमें २०३ सफ़हे हैं और अच्छी जिल्द है।

यह किताब हिन्दी और उर्दू दोनों लिपियों में छापी गई है। इसके लेखक जनाब 'आरज़ू' साहब उर्दू के बहुत मशहूर शायरों में हैं और इन कविताओं के लिखने में उन्होंने इस बात की कोशिश की है कि ज़बान ज़्यादा से ज़्यादा आसान यानी हिन्दुस्तानी हो। आपने आम बोल-चाल के शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग किया है और इस बात की परवा नहीं की कि हिन्दी उर्दू के कट्टरपन्थी समालोचक क्या कहेंगे। जो लोग यह राय रखते हैं कि हिन्दुस्तानी में अच्छी शायरी नहीं हो सकती उन्हें 'आरज़ू' साहब की यह किताब पढ़ने के बाद अपनी राय बदलनी पड़ेगी। कुछ बानगी लीजिए—

उन्हें क्या पड़ी है जो तलवार धोयें,
लहू लाल था और धब्बा है काला।
उलहने जो देते हैं पहले कहाँ थे,
किसी ने न गिरते हुए को सँभाला॥

× × ×

हम किसी की कभी नहीं सुनते,
किसी गूँगे को यह सुनाइए आप।

× × × ×

वे आसी की बात है झूठी, जब तक कुछ भी झलके आस
जिसमें चमक जाये जुगनू भी, उसको अँधेरी रात न कह।

× × × ×

पत्ता कैसा बूटा कैसा, जड़ तो एक है दोनों की।
कहने को हम भी कह देते हैं यह पत्ता वह बूटा है॥

२२—बोलती प्रतिमा—लेखक, श्रीयुत श्रीरामशर्मा और प्रकाशक हिन्दी-साहित्य-सदन आगरा हैं। २३६ पृष्ठ भी सजिल्द पुस्तक का मूल्य १॥।) है।

श्रीयुत शर्मा जी के 'शिकार' से हिन्दी-पाठक सुपरिचित हैं। प्रस्तुत पुस्तक में आप हिरनों, मगरों और बाघों के चित्रों के बजाय, मनुष्यों के चित्र लेकर हमारे सामने आये हैं।

हिन्दी में रेखा-चित्र लिखने का रवाज प्रायः नहीं के बराबर है। शर्मा जी ने इस दिशा में जो प्रयत्न किया है वह स्तुत्य और सराहनीय है।

'बोलती प्रतिमा' में तीन काल्पनिक कहानियों को छोड़कर शेष सब ऐसे मनुष्यों के रेखाचित्र हैं जिनके साथ लेखक का न केवल रागात्मक वरन भौतिक सम्बन्ध भी है। कहानी और रेखाचित्र में 'टेकनीक' के अन्तर के अलावा सबसे बड़ा अन्तर यह होता है कि जहाँ कहानी के पात्र लेखक के कल्पना-जगत् के सम्बन्धी होते हैं, वहाँ रेखा-चित्रों के विषय उसके दैनिक जीवन के इतने समीप होते हैं कि उन्हें अच्छी तरह परख सकना विरलों का ही काम है। निकट की वस्तुएँ या तो बहुत बड़ी दिखाई देती हैं, या निकटता के कारण हम उनकी उपेक्षा कर देते हैं। यही कारण है कि हमारे कहानी-लेखकों की दृष्टि अपने चारों ओर बिखरी हुई सामग्री की ओर नहीं जा पाती, और उन्हें कल्पना-लोक से ऐसे-ऐसे चित्रों की उद्भावना करनी पड़ती है। बोलती प्रतिमा का रेखाचित्र इनमें सबसे सुन्दर है। केवल यही एक चित्र लेखक को सफल स्केच-लेखक बनाने के लिए काफ़ी हो सकता था। इसका चित्रपट, रंगों का चुनाव, शेड, रेखायें सभी कुछ कमाल का है। उस जीवित शव के चित्र में कितनी चेतना, कितनी सजगता और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितना आकर्षण भर दिया गया है। मानों आज भी वह अपने जीवन की अमर कहानी कहने को हमारे सामने प्रस्तुत हो।

कहानी और रेखा-चित्रों में एक भेद और है जो शर्मा जी की कहानियाँ पढ़ने पर साफ़ प्रकट हो जाता है। कहानी-लेखक को कल्पना के प्राणियों को भूमि पर लाकर उनसे मनमाना काम कराना पड़ता है; और रेखा-चित्र बनानेवाले को जीवन की दैनिक नीरसता से आच्छादित भूमि के प्राणियों को कुछ उठा कर उनमें उचित मात्रा में काल्पनिक रागात्मकता स्थापित करनी पड़ती है। शर्मा जी, जितने पिछली कला में दक्ष हैं उतने पहली में नहीं जान पड़ते। उनकी कहानियों में रेखा-चित्रों की कठोरता अधिक है; कहानियों की सुकुमारता कम। इसका कारण है शायद उनके वर्त्तमान समाज-सम्बन्धी क्रान्तिकारी विचार।

शर्मा जी के विचारों में आधुनिकता स्पष्ट रूप से झलकती है। परन्तु फिर भी इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि उनकी विचारशैली भावात्मक अधिक है। जो कभी-कभी स्वाभाविकता से दूर और अजनबी-सी लगती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि रेखाचित्र बनानेवाले को केवल चित्र-पट और तूलिका की चिन्ता करनी पड़ती है; उसके चित्रों का विषय अनन्त और अपार है। परन्तु चित्र-पट और तूलिका सँभालने के पहले मस्तिष्क को एक विशेष प्रकार से शिक्षित करना पड़ेगा, नहीं तो रंगों के हलके भारी हो जाने की पद-पद पर आशंका है। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, निकट के पदार्थों और विशेष कर हाड़-मांस के चलते-फिरते पुतलों के प्रति अपने मोह के कारण हमारे मस्तिष्क का संतुलन तथा तटस्थता जाती रहती है और उत्तेजित होकर हम या तो उपदेशक का स्थान ले लेते हैं, या अपने चरितनायकों के भावों में बह जाते हैं। 'फ़ीरोज़ाबाद की काल कोठरी' उसी प्रकार का उदाहरण है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हम कला के उन थोथे सिद्धान्तों के समर्थक हैं, जो लेखक को महज़ एक तटस्थ प्रेक्षक और उदासीन आलोचक के रूप में देखना चाहते हैं। 'फ़ीरोज़ाबाद की कालकोठरी' के निरीह बलिदानों पर भी यदि रोष और उत्तेजना से हमारा मन विचलित न हो जाय तो हम आदमी ही काहे के? फिर भी कहना पड़ता है कि रंग कुछ कम गहरा होता तो चित्र का प्रभाव कुछ अधिक स्थायी और कलापूर्ण होता। वसीयत, हरनामदास और पीताम्बर के चित्र इस प्रकार के दोष से सर्वथा युक्त हैं।

शर्मा जी की भाषा व शैली के विषय में अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। उनका व्यक्तित्व उनके प्रत्येक शब्द में प्रतिबिम्बित होता है। 'गधा-पचीसी' आदि शब्द उनकी सजग और स्वस्थशैली के परिचायक हैं।

—ब्रजेश्वर

२३-२५—मासिक पत्र

(१) परवारबन्धु का प्रवेशांक—अखिल भारतवर्षीय दिगंबर जैन परवारसभा, जबलपुर की ओर से यह नामक मासिक पत्र प्रकाशित होना आरंभ हुआ है। इसके सम्पादक हैं स० सि० धन्यकुमार जैन। वार्षिक मूल्य २) है। परवार बन्धुओं के काम का है।

(२) जीवन-सखा (मासिक)—सम्पादक श्रीयुत ब्रजभूषण मिश्र, एम० ए० हैं। नेचर क्योर हेल्थ होम ३०, बाई का बाग़, इलाहाबाद से प्रकाशित होता है। वार्षिक मूल्य ३) है। इसमें सभी लेख प्राकृतिक चिकित्सा से सम्बन्धित छपते हैं। पत्र सुसंपादित है। साधारण गृहस्थों और रोगियों को इसके पढ़ने से बहुत लाभ हो सकता है।

(३) अनुभूतयोगमाला—यह पत्रिका बरालोकपुर, इटावा से वैद्यराज पंडित विश्वेश्वर दयालु के सम्पादकत्व में पिछले १६ वर्ष से प्रकाशित हो रही है। आयुर्वेद विषय के सुन्दर विशेषांक और लेख व अनुभूत योग निकालकर इसने धन व मान की प्राप्ति की है। अभी तक यह पत्रिका पाक्षिक थी और इसमें केवल अनुभूत योग तथा आयुर्वेद से संबंधित लेख छपा करते थे, पर अब गत जनवरी मास से मासिक हो गई है और अन्यान्य कलाओं (?) पर भी लेख प्रकाशित करने लगी है; शायद इसी कारण पत्रिका का अगला पद शब्द पिछले पद के पीछे छिपने की चेष्टा कर रहा है। लेखचयन सुन्दर है। यूनानी चिकित्सांक भी अच्छा निकला है जो वैद्यक के एक अभाव की पूर्ति करता है। पत्रिका का वार्षिक मूल्य आज-कल क्या है इसका पता इन अंकों से नहीं लगता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाग्रत नारियाँ

लाहौर का शान्तिकुंज-महिलाश्रम

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू

मई १९३६ में लाहौर शहर में शान्तिकुंज नाम का स्त्रियों के लिए एक आश्रम खोला गया था। ढाई साल की अवधि में इस आश्रम ने जो काम किया है उसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

जो स्त्रियाँ किन्हीं कारणों से पाप-वृत्ति ग्रहण कर लेती हैं और अपना शरीर बेचकर धन कमाती हैं उनको उस वृत्ति से छुड़ा कर पापरहित जीवन बिताने का उत्साह और साधन देना इस आश्रम का मुख्य उद्देश्य है। बहुधा स्त्रियाँ इस कर्म को खुशी से नहीं करतीं। समाज और स्थिति का शिकार बन कर अज्ञानतावश वे इस कर्म में फँस जाती हैं। शहरों में रहनेवाली बहुधा छोटी अवस्था की अज्ञान और सीधी-सादी बालिकायें ऐसी होती हैं जिन्हें बूढ़ी स्त्रियाँ और पुरुष धन कमाने के लिए घरों में रख लेते हैं। वे इनसे कुकर्म करा कर अपना पेट पालते हैं। ऐसी बालिकायें पुलिस की या किसी सहृदय पुरुष की सहायता से जब अपने मालिक के पंजे से छुटकारा पाती हैं तब इनके रहने के लिए कोई ठौर नहीं होता। ऐसी स्त्रियों को शरण देना और उनकी सहायता करना आश्रम का काम है। जिन स्त्रियों ने आश्रम की शरण अब तक ली है, उनमें से बहुतों की कथा बड़ी हृदय विदारक है। एक स्त्री माता-पिता और पति के मर जाने पर अनाथ हो गई और किसी अन्य साधन के न होने के कारण इस कर्म में पड़ गई। दूसरी स्त्री अफ़ग़ानिस्तान की पठानी थी जिससे उसका अपना पति धन की लालसा से यह

[कुमारी सावित्री बाला, आपने जल और स्थल के अनेक खेलों में कुशलता दिखा कर सैकड़ों तमग़े और ट्राफियाँ प्राप्त की हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[बंबई की कुछ महिलायें साइकल की दौड़ में भाग ले रही हैं।]

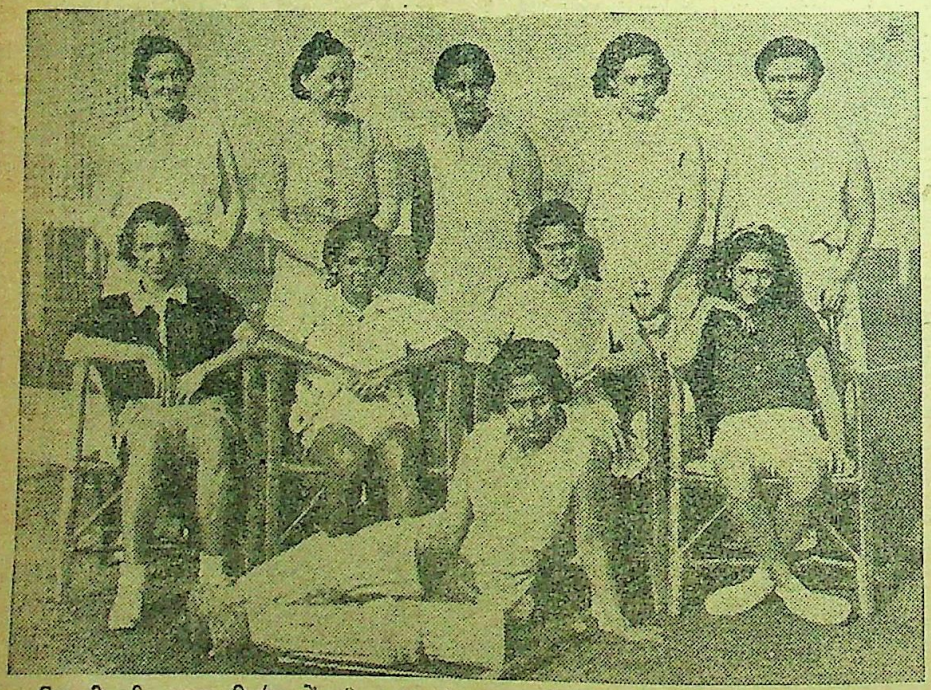

[हाकी की खिलाड़ी स्त्रियों की प्रसिद्ध "ब्लूबर्ड टीम"। इसने हारनेट्स टीम को ४ गोल से हरा दिया।]

कुकर्म कराता था। इसी प्रकार किन्हीं को घरों से बहला-फुसला कर भगा लिया जाता है। कोई रास्ता खो जाने से मेलों-तमाशों में कुकर्मियों के हाथ फँस जाती हैं और किसी-किसी का एक ग़लती हो जाने से सारा जीवन बिगड़ जाता है। ऐसी स्त्रियाँ साधारण गृहस्थ-जीवन के लिए तरसती रह जाती हैं परन्तु हमारी कठोर समाज के प्रचलित नियमों के कारण उनको वह जीवन नसीब नहीं होता। गत ढाई वर्षों में ८९ स्त्रियाँ, जिनमें से ५९ हिन्दू, २७ मुसलमान और ३ ईसाई थीं, इस आश्रम से सहायता प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

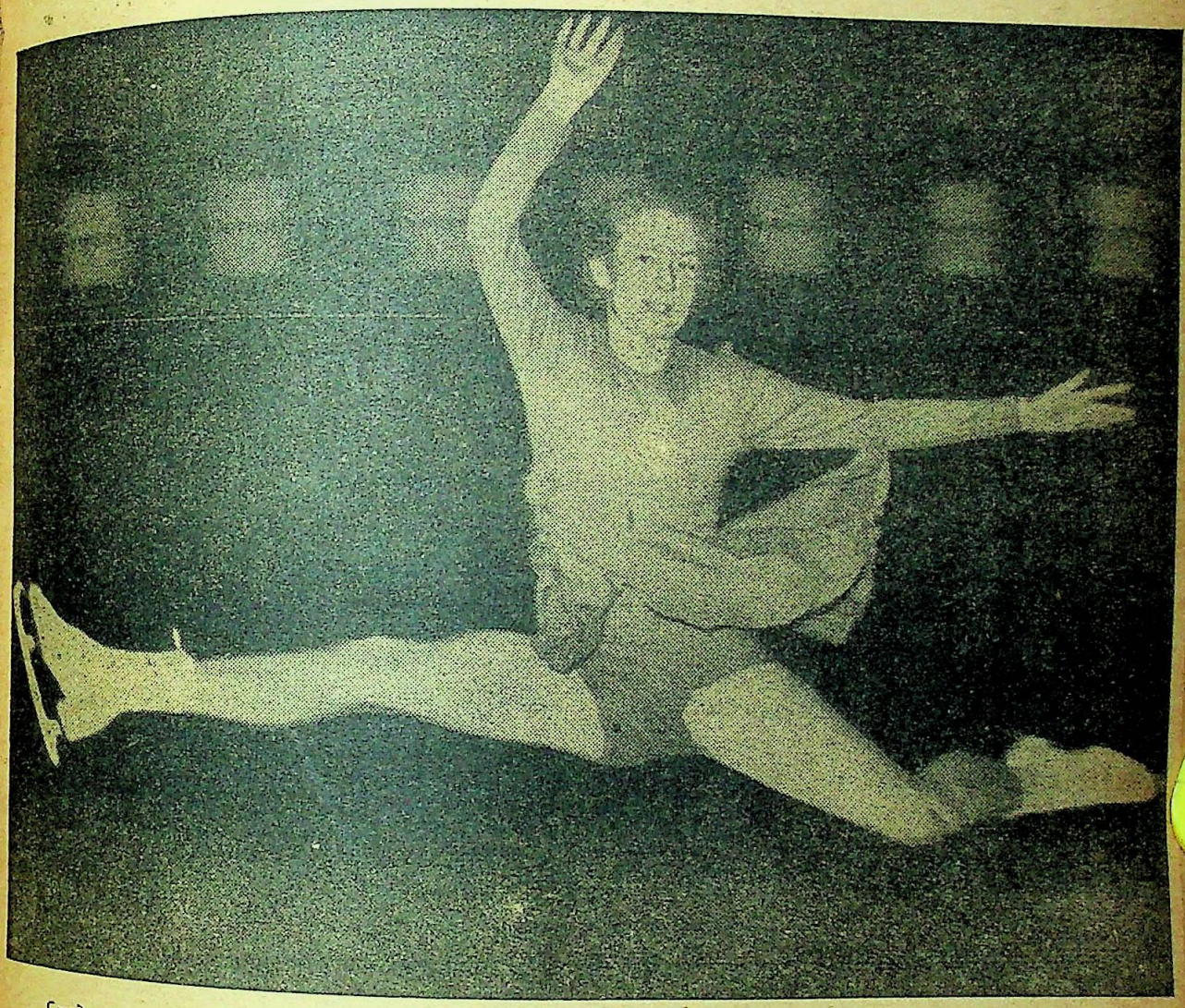

[इस्केटर नाम की इस लड़की ने अल के कोर्ट में ऊँची कुदान दिखाकर बड़े-बड़े कूदने वालों को आश्चय में डाल दिया है।]

कर चुकी हैं। इनमें से ५ स्त्रियों का आश्रम की ओर से विवाह कर दिया गया, ६५ अपने नातेदारों के पास पहुँचा दी गईं, कुछ भाग गईं और इस समय ९ आश्रम में रहती हैं।

आश्रम में स्त्रियों को हिन्दी-उर्दू पढ़ना, लिखना, बुनना, काढ़ना और सूत कातना सिखाया जाता है। नीति और शील की शिक्षा दी जाती है। सुबह-शाम भगवान् की आराधना करनी सिखाई जाती है; धार्मिक पुस्तकें पढ़ाई और सुनाई जाती हैं; सब स्त्रियों से अपने ही धर्म्म के अनुसार आराधना करने और अपने ही धर्म्म में बने रहने का अनुरोध किया जाता है।

सप्ताह में दो-तीन बार स्त्रियों को बाहर घुमाने फिराने के लिए ले जाते हैं। गत वर्ष अजायबघर और प्रदर्शनी दिखाने को ले गये थे। ज़नाने खेल-तमाशों में भी इन्हें ले जाया जाता है। हर प्रकार से इस बात का उद्योग किया जाता है कि इनका जीवन रोचक और रसमय बने।

आश्रम का सब प्रबन्ध स्त्रियों ही के हाथ में है जो सब कार्य को बड़ी योग्यता और लग्न के साथ कर रही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[श्रीमती एस० ई० बार्लो और इलाहाबाद की कुछ लड़कियाँ जिन्होंने पिछले ओलिम्पिक खेलों में पिछला रिकाड तोड़ा है।]

रिस्क्यू होम सोसाइटी में पुरुष भी सभासद् हैं, परन्तु प्रबन्धकारिणी में केवल स्त्रियाँ ही मेम्बर हो सकती हैं। सोसायटी के मेम्बर प्रबन्धकारिणी को चुनते हैं जिसमें १२ मेम्बर हैं। सोसायटी की वर्ष में दो बार बैठक होती है परन्तु कार्यकारिणी की बैठक प्रतिमास होती है और आश्रम का सब काम इसी कमिटी-द्वारा सम्पादित होता है। आजकल कमिटी की सभापति कौरानी दलीपसिंह हैं। सेक्रेटरी मिस प्रेमवती थापड़ और उपसभापति लेडी अब्दुल क़ादिर और श्रीमती रामेश्वरी नेहरू हैं। कमिटी की सब मेम्बर बड़े उत्साह से काम करती हैं। चन्दा जमा करने का काम मिसेज़ भडूचा ने बड़े परिश्रम से किया है और अधिकांश चन्दा उन्हीं का जमा किया हुआ है। एक लेडी सुपरिंटेंडेंट आश्रम में रहती और सब प्रबन्ध करती हैं। सहायता के लिए एक और बहन भी साथ में हैं। स्त्रियों को दस्तकारी सिखाने का काम वेही करती हैं। इतने दिन के अनुभव से यह देखा गया है कि आश्रम का निवास स्त्रियों के जीवन में घोर परिवर्तन पैदा करता है। उनकी रुचि पलट जाती है और वे एक नये संसार का अनुभव करने लगती हैं। आश्रम का व्यय बजट के अनुसार २२३) मासिक है। जिसमें ९०) मासिक स्टाफ का वेतन, ६५) मकान का किराया, १८) टेलिफोन, ५०) भोजन का व्यय है। १००) मासिक सरकारी सहायता मिलती है। १५६॥) मासिक चन्दा हो जाता है। कुछ जमा किये हुए रुपये का सूद मिलता है। और शेष पूर्त्ति दान से होती है। गत वर्ष एक ड्रामा किया गया था जिससे ६४२॥)॥॥ आय हुई थी।

पतितों को उठाने और उन्हें ठीक रास्ते पर चलाने का काम बड़ा पवित्र काम है। अभागी पतित बहनें हमारे सहयोग और सहानुभूति की पात्र हैं। हमें आशा है कि इस पुनीत कार्य में सर्वसाधारण से हमें पूरी सहायता मिलेगी। जो भाई और बहनें ऐसी पीड़ित स्त्रियों को आश्रम में भेजने की कृपा करेंगे हम उनका आभार मानेंगे। आश्रम में जितनी स्त्रियाँ इस समय हैं उनसे दो गुनी के लिए स्थान अभी और है। ऐसी स्त्रियों की, जिन्हें सहायता की आवश्यकता है, कुछ कमी नहीं है; परन्तु उनको हम तक लाने और रास्ता दिखाने की आवश्यकता है। जिन अभागी बिन ब्याही कन्याओं के बालक हो जाते हैं उनके बालकों के भी आश्रम में रख लिया जाता है। प्रसव की भी उचित व्यवस्था है। रोगी स्त्रियों की चिकित्सा होती है। सारांश यह कि हर प्रकार से स्त्रियों की सहायता करके उनके जीवन को उच्च और उत्तम बनाने का अवसर दिया जाता है।

सर्वसाधारण से प्रार्थना है कि वे धन देकर और स्त्रियों को हमारे पास भेज कर हमारी सहायता करें।

शान्तिकुंज आजकल १८ नम्बर वारिस रोड पर है। इसी पते से पत्र-व्यवहार होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुसुम

लेखिका, कुमारी अविनाश कपूर, बी० ए०

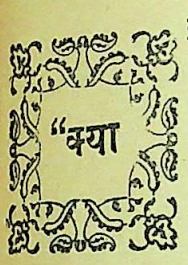

"क्या तुमने कभी प्रेम किया है?"—सिविल अस्पताल के आठ नम्बरवाले रोगी ने जीभ से ओठों को भिगोते हुए पूछा।

डाक्टर कौल यह सवाल सुन कर चौंके। स्वाभाविक संकोच से ऐसे आत्मीय प्रश्न का उत्तर देना उसके लिए अति कठिन था। उसने रोगी के उन्माद भरे नेत्रों को देखा। उनमें मृत्यु की क्षीण रेखा झलक रही थी। रोगी के मुख पर अनन्त की शान्ति-ज्योति थी। 'बुझने से पहले उजाला'—डाक्टर ने सोचा। न जाने क्यों उसकी आत्मा में रोगी के प्रति इतनी सहानुभूति जाग्रत हो रही थी। रोगी उसी प्रकार डाक्टर की ओर उत्तर की प्रतीक्षा में उत्तेजित भाव से देख रहा था। "हाँ मैं अपनी पत्नी को प्यार करता हूँ"—डाक्टर ने लज्जा से लाल होते हुए कहा।

तब तुम कुछ उन भाग्यशाली आदमियों में से हो जो दोनों दुनिया में खुशनसीब गिने जाते हैं। मैं उनमें से हूँ जो दूसरी दुनिया में अपनी प्रेयसी को पाने की आशा करते हैं। तुम सुन कर शायद आश्चर्य करोगे कि हम एक भूमंडल पर रहते हुए भी दूर-दूर हैं। वह हिन्दू है और मैं मुसलमान।" डाक्टर कौल हैरानी से उसकी उत्तेजित बातें सुन रहे थे। उनकी दृष्टि में शायद ये बातें रुग्ण-मन के विकारमात्र थीं।

रोगी कहता चला गया—मानों वह अपने जीवन की बीती हुई वर्णन कर रहा था—"सचमुच तुम अत्यन्त भाग्यशाली हो—नहीं तो ज़िन्दगी में कितनी रिक्तता है, कितनी निराशा है, कैसी बेचैनी है। अपने कर्त्तव्य-पालन से कितनी बार हम गिरते हैं, बचते हैं। यही ख़याल हमें बचाये रखता है कि क़यामत के बाद हम अपनी यहाँ की हवस पूरी करेंगे।"

डाक्टर ने रोगी को रोकना चाहा। रोगी अपनी अन्तिम घड़ियाँ काट रहा था। अचानक वह बिस्तर से उठ बैठा—"डाक्टर आख़िर की घड़ियों में क्यों रोकते हो। न जाने कितना इन्तज़ार करना होगा—फिर उसकी बातें करने को...या अल्लाह मुझे बड़ा दिल देना....." रोगी अपने आपसे बातें कर रहा था मानों उसे शारीरिक कष्ट से मानसिक वेदना अधिक थी। उसके शब्द रुकी हुई बाढ़ के समान बाँध टूटने पर अदम्य प्रवाह से बह रहे थे; उसी प्रवाह में उसके जीवन की घड़ियाँ भी बही जा रही थीं—अज्ञात और अनन्त की ओर!

डाक्टर कौल के मुख पर निराशा, वेदना और सहानुभूति की रेखा थी। उन्होंने मरीज़ को सावधानी से तकिये पर लिटाया। बीमार किसी छुपी हुई शक्ति से बातें किये जा रहा था। उसके हाथ में सिगरटकेस था।

"डाक्टर, इसको मेरे साथ दफ़नाने की मेहरबानी करना,"—उसने सिगरट केस की तरफ़ इशारा करके कहा।

रोगी की अवस्था बिगड़ रही थी। उसकी ज़बान लड़खड़ा रही थी। डाक्टर अधिक देर न देख सके "सुमु...सुमी...या मेरे खुदाय"...के अस्पष्ट शब्द उनके कानों में पड़े। रोगी सदा के लिए सो रहा था। उसका उत्तेजित मुख शान्त था।

× × × ×

डाक्टर अपने हाल के स्वर्गीय रोगी की निराली प्रेम कहानी तथा उसकी अतीव शोकनीय मृत्यु के बारे में सोच रहे थे। उनके मुख से दीनता टपक रही थी। उनके वही भाव थे जो कि मृत्यु के सामने मनुष्य को नीचा कर देते हैं। उस समय वे अनन्त के कितने निकट पहुँचे हुए थे। "साहब कोठी पहुँच गये"—ड्राइवर के इन शब्दों ने उनका ध्यान भङ्ग किया।

उनके मुख से अवश्य कुछ ऐसे भाव प्रकट हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होंगे कि पहुँचते ही कुसुम ने उनकी तबीयत के बारे में पूछा। मनोवेग को घटाने की इच्छा से सुरेन्द्र ने कुमी को अपने रोगी का हाल सुनाने की ठानी।

सुरेन्द्र ने सिगरट मुँह में दबाया और उसे जलानेवाला ही था कि कुमी ने आगे बढ़ कर जलाने का आग्रह किया। कुमी के इस कार्य से उसे मृत रोगी की कही हुई बात याद आई—"सचमुच तुम बड़े ख़ुश क़िस्मत हो"—परन्तु यह पहला ही भाग्यवान् अवसर था। उसने कुमी के भाव को समझना चाहा परन्तु वह उसके लिए एक अनूठी पहेली थी।

सुरेन्द्र ने सिगरट पीते-पीते मरीज़ का सब हाल कह सुनाया। दूसरा सिगरट मुँह में दबाया और इस आशा से कि कुमी उसे भी अपने कोमल करों से सुलगा देगी, उसकी ओर देखा। वह कुर्सी पर न जाने कब से बेहोश पड़ी थी। "कुमु! कुमु!" सुरेन्द्र ने आर्द्रस्वर में पुकारा।

होश आने पर कुमी ने स्नेहभरी चितवन से पति की ओर देखा और मुस्करा कर बोली "तुम्हारी सिगरट बड़ी तेज़ थी, मैं शायद पूरी बात न सुन सकी।"

सुरेन्द्र ने चिन्तित होकर उसे आराम करने को कहा। वह उन आदमियों में से था जो अपने भाव प्रकट करने में संकुचित परन्तु प्रेम करने में अत्यन्त गहरे होते हैं। वह कुमी को प्यार करता था—बहुत अधिक।

× × × ×

सुरेन्द्र करवटें ले रहा था। कुमी को आराम से सोते देखने की भावना उसके मन में ज़ोर मार रही थी; परन्तु उसके कमरे में जाने का साहस न पड़ता था। इस बारे में उनमें एक तरह का पारस्परिक समझौता था जो आज तक कभी न टूटा था। आज न जाने सुरेन्द्र को कुमी के विषय में क्या भय था। वह उसे ठीक ठाक सोया हुआ देखना चाहता था। गाउन और स्लीपर सँभालता हुआ वह कुमी के कमरे की ओर बढ़ा। धीरे धीरे दरवाज़े पर दस्तक दी। सोई हुई समझ आहिस्ता से कमरे के भीतर प्रवेश किया। कुसुम बिस्तरे पर लेटी थी। टेबुल-लैम्प जल रहा था। उसके हाथ में मृत रोगी का चित्र था।

प्रणाम

लेखिका, कुमारी ज्ञानवती वर्मा, हिन्दी-रत्न, (वय १३ वर्ष)

तुम अमर लोक की छवि ललाम,
तुम भू की प्रतिभू, रूप-नाम।
तुम गौरी-काली अमित रूप,
तुम ओज-तेज प्रतिमा अनूप।

तुम जगज्जननि, तुम पूर्णकाम,
हे देवि! तुम्हें शत-शत प्रणाम।

दर्शन पाकर हम हुईं धन्य
है तुम-सी वरदा कौन अन्य
तुम विश्व-वन्द्य वाणी प्रतीक
तुम ही माँ, कल्याणी अलीक

तुम जीवन-सत्ता का प्रमाण
तुमसे अनुप्राणित लोक-प्राण।

वरदा-रौद्री का युग्म साज,
लख कर विस्मित है सब समाज
प्रमुदित सुर-नर जप रहे नाम
भयभीत असुर दल अष्ट-याम

कैसे गाऊँ तव कीर्त्ति गान,
लघु बुद्धि और गौरव महान
यह सतत-संतरित प्रेमदाम,
हे देवि! तुम्हें शत-शत प्रणाम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़्रान्स की पुलिस स्पेन से भागे हुओं को फ़्रान्स में घुसने से रोक रही है।

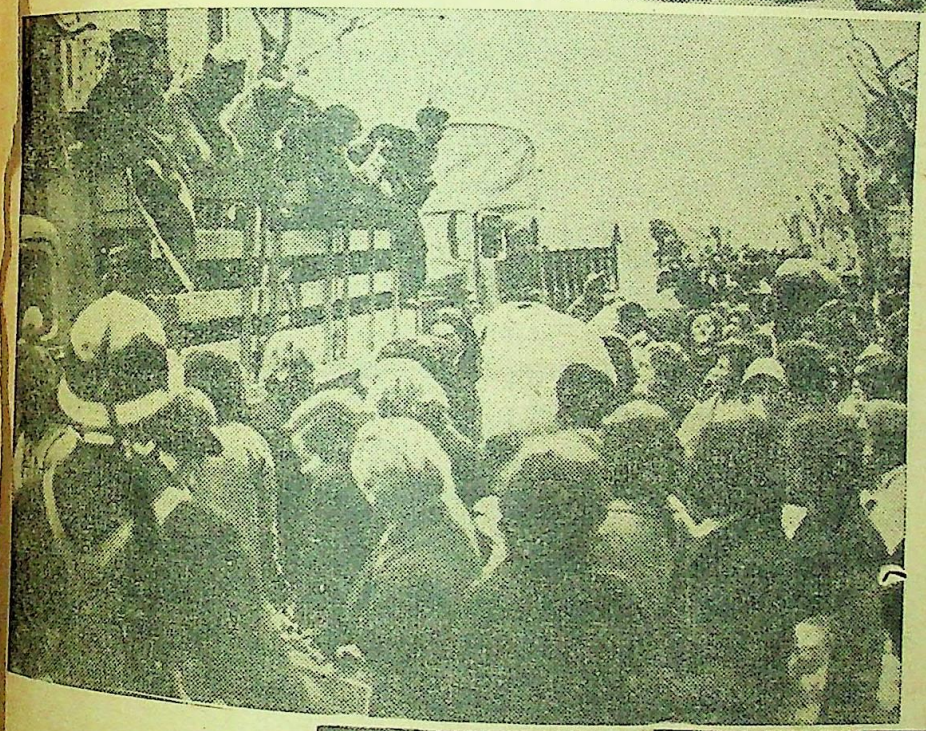

स्पेन के निवासी भाग-भाग कर फ़्रान्स में घुसने का प्रयत्न कर रहे हैं। पुलिस सीमा पर उन्हें रोक रही है।

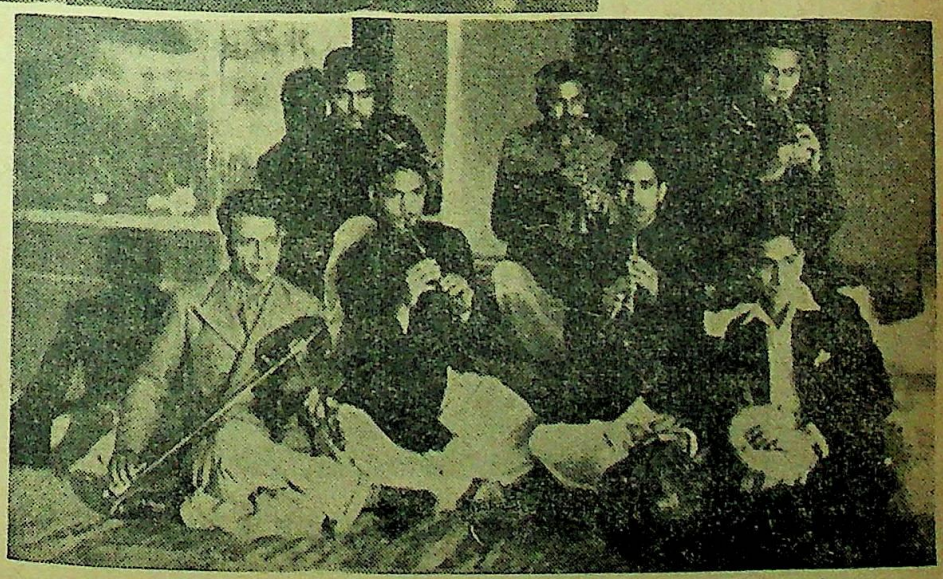

लखनऊ की संगीत-परिषद् में भाग लेनेवाले कुछ सफल युवक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

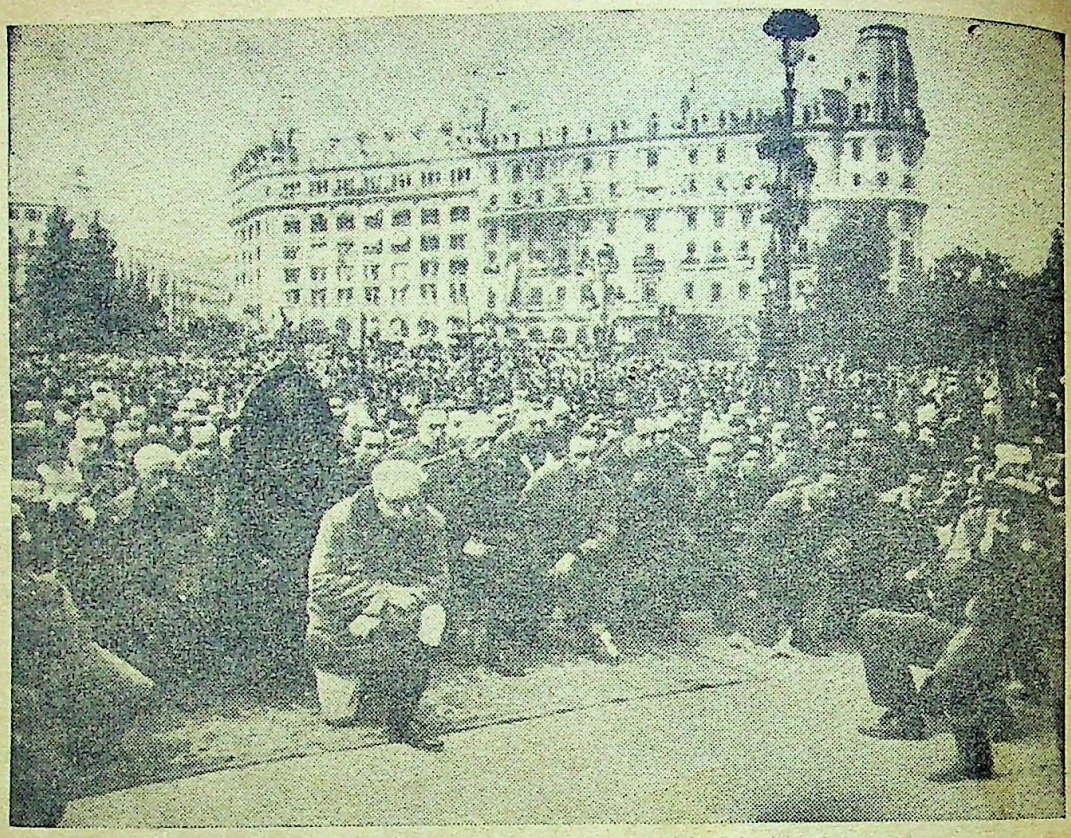

फ्रैंको की सेना के जनरल यागू। बार्सिलोना की विजय के उपलक्ष्य में अपने दल के लोगों के साथ सम्मिलित प्रार्थना कर रहे हैं।

बार्सिलोना से भागे हुए स्पेनी बच्चे, बहुत दिनों बाद फ्रान्स के लेबूलन नगर के एक होटल में भोजन पा रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग नं० ३१ का नतीजा

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ३ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १००) मिला।

(१) मास्टर कुलुक १२ बादुल बागान स्ट्रीट, कलकत्ता।
(२) काशीनाथ, पो० रक्सौल, ज़िला चम्पारन।
(३) वीरेन्द्रकुमार, पो० भंग, बलसौर (उड़ीसा)।

द्वितीय पुरस्कार १०१) (दो अशुद्धियों पर)

रामदीन त्रिवेदी, गिरिडीह, बिहार।

तृतीय पुरस्कार ५०) (तीन अशुद्धियों पर)

रामप्रसाद, पो० निरंजनपुर, ज़िला गया।

चतुर्थ पुरस्कार २५) (पाँच अशुद्धियों पर)

माधवप्रसाद c/o जमुनाप्रसाद ठेकेदार, बीजापुर।

पंचम पुरस्कार २४) (आठ अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित तीन व्यक्तियों में बाँटा गया, प्रत्येक को ८) मिला।

(१) सच्चितानन्द बी० ३/३०५ करुणभवन शिवाला, बनारस।
(२) श्रीमती सुप्रभा देवी सक्सेना बैजनाथ स्ट्रीट, फर्रुखाबाद।
(३) कान्ताकुमारी सक्सेना, ६१९ सिविल लाइन्स, आगरा।

उपर्युक्त सब पुरस्कार २७ अप्रैल को भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।
केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छप गया छप गया

प्रकाशित हो गया

हमारा नया मौलिक उपन्यास

जीवन-क्रान्ति

लेखक, पंडित गौरीशङ्कर मिश्र बी० ए०, एल-एल० बी०

उपन्यास का विषय इसके नाम से ही प्रकट है। इसमें जहाँ धनाधिपों तथा अधिकार-सम्पन्न व्यक्तियों की नृशंसता का लोमहर्षण वर्णन है, वहीं सेवा-परायण तथा त्यागमय जीवन की महत्ता भी प्रदर्शित की गई है। अनुभवी तथा विद्वान् लेखक ने इस उपन्यास में सेठ साहूकारों तथा बड़े आदमी कहे जानेवाले व्यक्तियों की नरपिशाचता, पुलिस तथा अन्य अधिकारियों के हथकण्डों और धन के लोभ से निरपराधों को अपराधी ठहराकर कारागार की नारकीय यातना भोगने के लिए विवश करने के माया-जाल का बहुत ही आकर्षक शैली में वर्णन किया है। उपन्यास की एक एक पंक्ति ओजपूर्ण और हृदय में घर कर लेनेवाली है। मूल्य केवल २)

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग नं० ३१ का संशोधित नतीजा

दुबारा जाँच के लिए आये हुए प्रार्थनापत्रों के आधार पर जाँच करने से विदित हुआ कि वर्ग नं० ३१ में कुछ प्रतियोगी इनाम के हक़दार और हैं। अतः सब इनाम दुबारा बाँटे गये हैं। पुरस्कार-विजेताओं की संशोधित सूची इस प्रकार है:—

प्रथम पुरस्कार ३२४) (दस अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार ४ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ८१) मिले।

(१) शीतलाप्रसाद दुबे, जमीरा, आरा।
(२) प्रभाशंकर माथुर, टेंडिनवाला, लायलपुर।
(३) मातादीन अग्रवाल कर्सियांग, दार्जिलिंग।
(४) हरिहरप्रसाद मारफ़त बद्रीनाथ पाठक, दारागंज, प्रयाग।

द्वितीय पुरस्कार ८०) (ग्यारह अशुद्धियों पर)

(१) बाबू कुंजलाल वार्सिनी c/o धनीराम उमाशंकर सर्राफ़, अलीगढ़।

तृतीय पुरस्कार ७८) (बारह अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ६ व्यक्तियों में बाँटा गया, प्रत्येक को १३) मिला।

(१) केदारनाथ वार्सिनी c/o चुन्नीलाल केदारनाथ सर्राफ़, अलीगढ़।
(२) विद्यादेवी भिंगन, ४१, सिद्धेश्वरी मुहल्ला, बनारस।
(३) गजाधरप्रसाद पोद्दार कालिज रोड, पुरानी बस्ती, कंकाली वार्ड, रायपुर, सी० पी०।
(४) इक़बालनारायण पारसल-क्लर्क, ई० आई० आर०, कानपुर सेन्ट्रल।
(५) मिसेज़ श्यामबिहारीलाल साहब, वकील, बाराबंकी।
(६) गोविन्दराव भट्ट, मारफ़त विनायकराव भट्ट सब पोस्ट मास्टर, ललितपुर।

चतुर्थ पुरस्कार १०) (तेरह अशुद्धियों पर)

(१) फ़तेहबहादुरसिंह, रुड़की इंजिनियरिंग वर्क्स, १३ कैनिंग रोड, इलाहाबाद।

पंचम पुरस्कार ८) (चौदह अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ८ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १) मिला।

(१) रघुनाथप्रसाद सेकंड मास्टर, लवेर हाई स्कूल जीतपुर, बनारस स्टेट।
(२) मदनमुरारीलाल माथुर, वकील हाईकोर्ट, शाजापुर, मालवा।
(३) पाडत रामसमुझ मिश्र, गंगादयाल मिडल स्कूल बस्तीपुर, पो० कामपरगंज, ज़िला गोरखपुर।
(४) गः विः घरोकर मास्टर हायर स्कूल, जुना, ग्वालियर स्टेट।
(५) लक्ष्मीनारायण c/o बाबू बसन्तलाल लक्ष्मीनारायण, मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार)
(६) मङ्गलप्रसाद द्विवेदी २४६, दाना बाज़ार, पो० छावनी, औरंगाबाद, दक्खन।
(७) कान्तकुमारी सक्सेना c/o प्रो० एल० पी० सक्सेना, ६१७ सिविललाइन, आगरा।
(८) भगवानदास पेन्शनर, गाज़ियाबाद, ज़िला मेरठ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी महाभारत का परिशिष्टाङ्क

अर्थात्

महाभारत में आये हुए मुख्य-मुख्य व्यक्तिवाचक नामों तथा महत्त्वपूर्ण विषयों की अनुक्रमणिका और

महाभारत के प्रमुख पात्र

महाभारत के सम्बन्ध में जितनी भी ज्ञातव्य बातें हो सकती हैं वे सभी इसमें दी गई हैं। इसे अपने पास रख लीजिए और महाभारत पढ़ते जाइए। जो बात आपकी समझ में न आवे, झटपट इसे उठाकर देख लीजिए। महाभारत में दिये गये विषयों को भी इस अनुक्रमणिका की सहायता से आप आसानी से खोज सकेंगे, क्योंकि इसमें हर एक व्यक्ति, स्थान तथा विषय के विवरण के साथ हिन्दी-महाभारत की पृष्ठ-संख्या भी दे दी गई है। सर्वसाधारण की सुविधा के लिए इसका मूल्य भी केवल २) दो रुपये रक्खा गया है।

ध्रुवयात्रा

सम्पादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

मूल्य ॥=) दस आने।

इस पुस्तक को दक्षिणी तथा उत्तरी ध्रुव का एक प्रकार का विस्तृत भूगोल समझिए। इसमें ध्रुवों में निवास करनेवाले जीव-जन्तुओं तथा वहाँ की वनस्पति आदि का हाल लिखा है। इसमें यह भी लिखा है कि ध्रुव क्या है, उनकी खोज किसने की और इस खोज के कारण लोगों को किस किस प्रकार के कष्ट सहन करने पड़े। पुस्तक प्रश्नोत्तर के रूप में लिखी गई है, जिससे इसकी रोचकता और भी बढ़ गई है। इसके पढ़ने से बालकों की ज्ञान-वृद्धि तो होगी ही साथ ही उनका मनोरञ्जन भी होगा।

अन्वेषण-यात्री

लेखक, श्रीयुत महेशचन्द्र राय

मूल्य ॥।) बारह आने।

यह पुस्तक एक प्रकार से भौगोलिक इतिहास है। पहले संसार के कितने ही मुख्य मुख्य स्थान लोगों को मालूम नहीं थे। एक देश से दूसरे देश में जाना भी सम्भव नहीं था। वास्को डि गामा आदि कुछ अपूर्व साहसी तथा अध्यवसायशील व्यक्तियों ने अपने प्राणों की बाजी लगा कर देशान्वेषण के लिए निकले और बहुत-से नये नये स्थान खोज कर जनता को बता लाया। इस पुस्तक में उन्हीं वीर यात्रियों की कथा ओजपूर्ण भाषा में लिखी गई है। पुस्तक बहुत ही रोचक और उपयोगी है।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

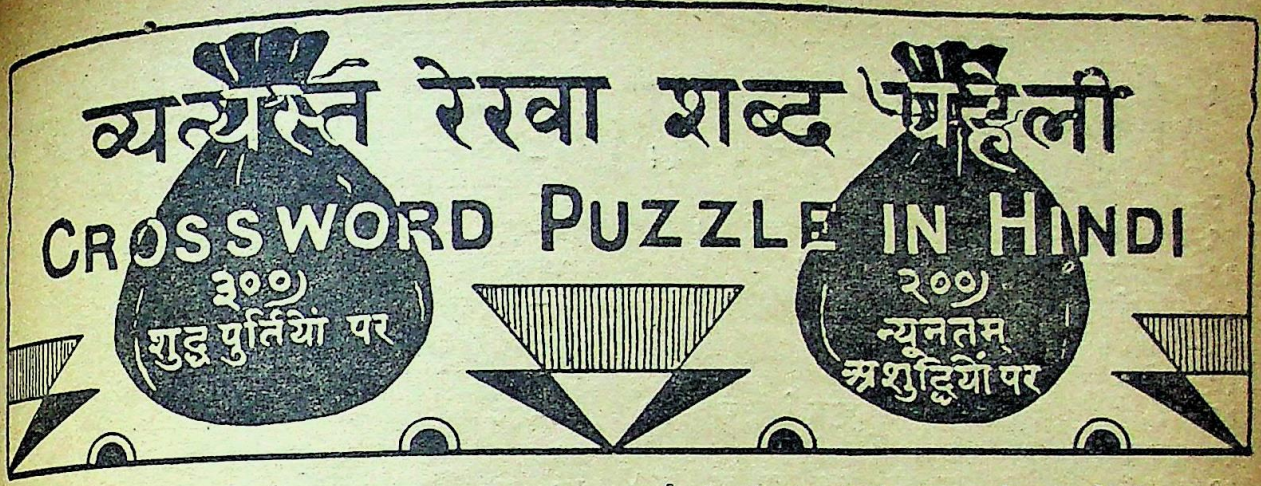

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेज़ना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनी-आर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ३३, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २४ अप्रैल तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २२ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्क-परिचय

बायें से दाहिने—

१–कितने ही वैष्णव श्रीकृष्ण के इसी स्वरूप की आराधना करते हैं।
५–इसके कौशल की परीक्षा कांठन स्थान पर होती है।
८–इसमें कभी-कभी बहुत गहरा जल होता है।
९–बिना जल के इसका जीवित रहना असंभव है।
११–इसके उलटते ही झगड़ा हो जायगा।
१२–रानियाँ यहीं रहती हैं।
१४–चमड़ा।
१५–इससे मनुष्य का पतन होता है।
१६–देवमंदिरों में भक्त इसके लिए उत्सुक देखे जाते हैं।
१८–एक प्रकार की मिठाई।
१९–इसे बनाने के लिए मिट्टी की आवश्यकता पड़ती है।
२०–इसकी उत्पत्ति समुद्र से है।
२१–इसका दिल पर बहुत असर पड़ता है।
२३–इसके न होने पर किसानों के बहुत से काम रुक जाते हैं।
२४–हममें से बहुत से लोग इसके प्रेमी हैं।
२५–भाम नापते समय इसकी आवश्यकता पड़ती है।
२७–इसके अच्छे होने से सुख प्राप्त होता है।
२९–उच्च कोटि का साधक इसकी इच्छा न करेगा।
३१–इसकी तरफ़ ध्यान बरबस आकर्षित हो जाता है।
३२–अच्छे बाग़ के लिए इसका होना आवश्यक है।

ऊपर से नीचे—

१–इनसे कभी-कभी बहुत ज़्यादा हानि हो जाती है।
२–उधार लेने के लिए किसान प्रायः इसी के पास जाता है।
३–एड़ी के ऊपर की हड्डी के चारों ओर का घेरा।
४–हर एक को इससे बचने की कोशिश करनी चाहिए।
६–गाँववालों को इसकी बहुत ज़्यादा ज़रूरत होती है।
७–डरावना। १०–बच्चों के लिए एक प्यार का शब्द।
१३–यात्रा के प्रारम्भ में इसके मिलने से खुशी होती है।
१४–एक सिक्का।
१६–इससे विशेष आराम मिलता है।
१७–बहुत से लोग इससे दूर रहने में ही कुशल समझते हैं।
१८–यह किसी-किसी बाग़ में पाया जाता है।
१९–इससे छोटेपन का बोध होता है।
२०–एक खाद्य पदार्थ।
२२–आजकल के कतिपय नवयुवक असफल होने पर इसी की सहायता लेते हैं।
२५–इसके बिना कमल का होना असंभव है।
२६–देहाती औरतें इसकी सवारी ज़्यादा पसंद करती हैं।
२७–इसके बिना मनुष्य बेकार है।
२८–इसे ऊपर ले जाने में बहुत कठिनाई पड़ती है।
३०–इसके बिना किसान पंगुल है।

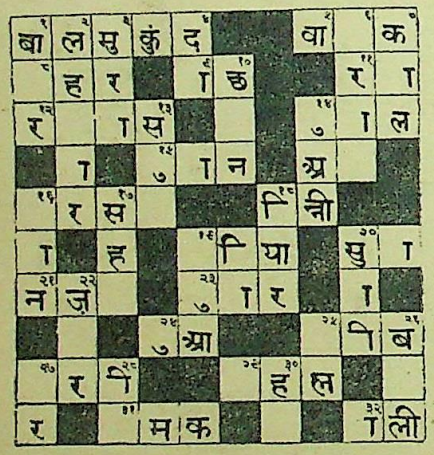

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३२ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

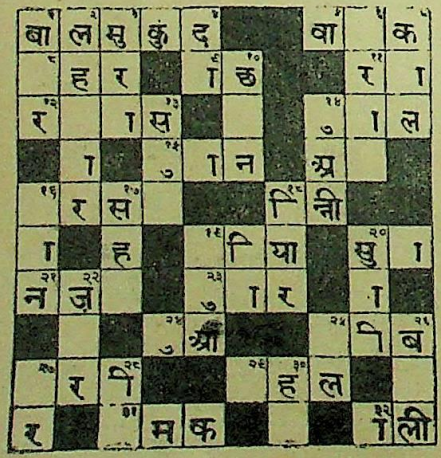

वर्ग नं० ३२ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ३२ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग नं० ३२ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ३२ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०...में { कोई अशुद्धि नहीं है। / १, से ८ अशुद्धि तक

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर _____

पता _____

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १५ अप्रैल के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० ३३

इंडियन प्रेस, लि०,

इलाहाबाद

मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० ३३ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

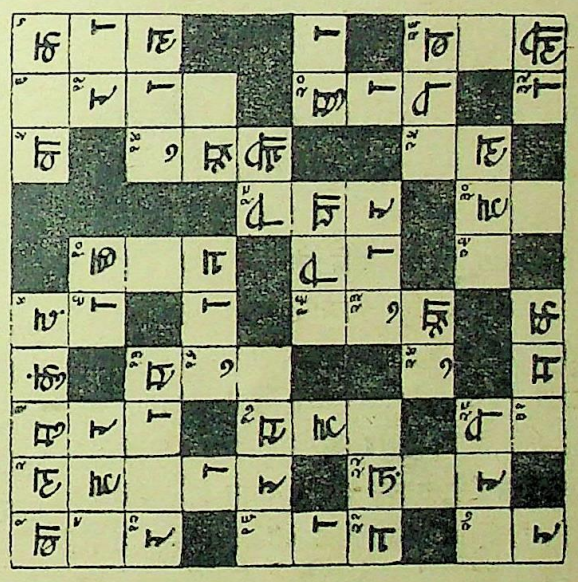

वर्ग नं० ३३ पूर्ति नं०... फ़ीस ।।)

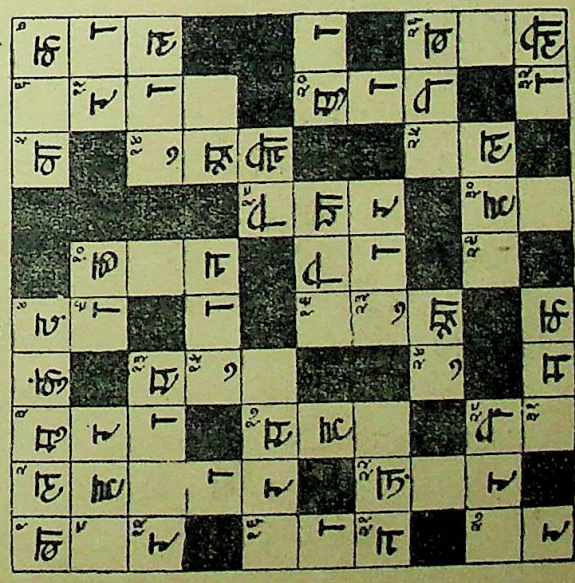

वर्ग नं० ३३ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

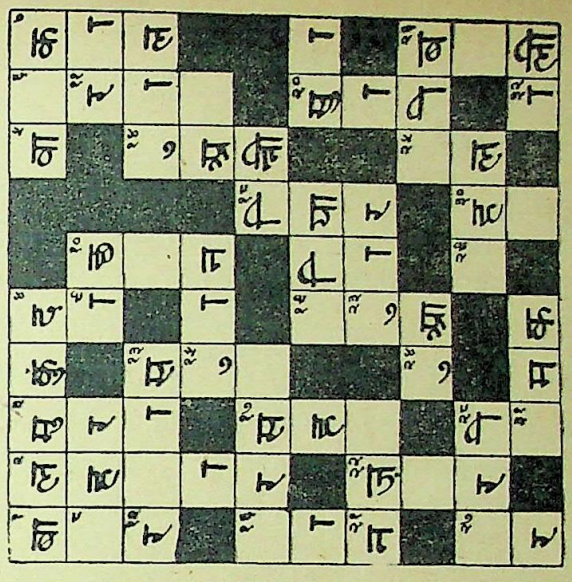

नाम

पता

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को यों ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ ४१४ पर देखिए।

रक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा रहित और पूर्ण हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंका-समाधान

(१) कठरा नहीं कठला

इस शब्द के विरुद्ध आपने दो युक्तियाँ दी हैं। (१) 'कठला' शब्द स्त्री-लिंग है, (२) कठला किसान के यहाँ प्रायः होता नहीं है। समाधान इस प्रकार है—

(१) कठला शब्द स्त्री-लिंग है, यह आपने किस व्याकरण से निकाल लिया? आपने संक्षिप्त हिन्दी-शब्द-सागर भी देखने का कष्ट नहीं उठाया, जिसमें 'कठला' शब्द साफ़ संज्ञा पुं० लिखा हुआ है। कठरा शब्द के आगे भी यही संकेत लिखा है। जिसके अर्थ हैं—'संज्ञा पुल्लिङ्ग'। अतः आपकी पहेली शंका निराधार है। आपको शायद इसके अर्थ 'माला' देखकर भ्रम हुआ है। पर माला के स्त्री-लिंग होने से कठला स्त्री-लिंग क्यों हो जायगा? बोल-चाल में भी 'कठला पहनाया' कहने का रवाज है; 'कठला पहनाई' कोई नहीं कहता।

(२) कठला हिन्दूमात्र के यहाँ होता है, मुसलमानों के यहाँ नहीं, और यह देव-मन्दिरों में ही होता है, आम किसानों के घर नहीं, ये दो बातें निराधार हैं। किसान अपने बच्चों को भूत-प्रेत से बचाने के लिए प्रायः कठला पहनाते हैं—हिन्दू भी और मुसलमान भी। देहातों में अब भी इसका रवाज है। हर एक बच्चा किसी न किसी प्रकार का कठला पहिने मिलेगा। कठरा सब किसानों के यहाँ पाया भी नहीं जाता, ग़रीब और नीच जाति के लोग ही इसे रसोई में रखते हैं, सवर्ण और धनवान् इसे अकसर अपवित्र समझते हैं। अतः "कठला" ही ठीक है। 'कठरा' नहीं।

(२) नल नहीं नद

नल और नभ दोनों में अव्याप्ति दोष है। नल का पानी भी सर्वत्र उपयोग में नहीं आता, न नभ का (आकाश का ही) हाँ नद का पानी सर्वत्र काम में आता है। नल निकाला भी नद है ही तो जाता है। मिस्र आदि देशों में भी, जहाँ न नभ बरसता है, न आपके नल ही है, नद (नील नदी) से सिंचाई होती है। हमारे देश में भी नदों से ही नहरें निकाली जाती हैं जिनसे सिंचाई होती है। अतः "नद" शब्द ही अधिक ठीक है।

(२) 'हलवाहा' शब्द तत्सम है और 'हरवाहा' तद्भव। लोक में तत्सम की अपेक्षा तद्भव शब्दों का ही अधिक प्रचार होता है। प्रचार और प्रसिद्ध के दृष्टिकोण से ही 'हरवाहा' अधिक ठीक है।

वर्ग नं० ३१ पर नई शंकाएँ

(१) कीचक या कोचड़?

श्रीयुत वर्ग मैनेजर महोदय,

सरस्वती वर्ग नं० ३१ में (२४ बायें से दाहिने) में संकेत—"मार्ग में इसकी अधिकता चलनेवालों के कपड़े ख़राब कर देती है।" में शुद्ध शब्द 'कीचक' दिया है। यह शुद्ध किस प्रकार है? कीचक के अर्थ कोष में ये दिये हैं—१ बाँस, जिसके छेद में घुस कर वायु हू-हू शब्द करती है, २, राजा विराट का साला। इन दोनों अर्थों से संकेत का कोई सबन्ध नहीं है। यहाँ "कीचड़" शब्द ही शुद्ध मानना चाहिए। क्योंकि कीचड़ के अर्थ हैं—पानी मिली धूल या मिट्टी। इससे पथिकों के वस्त्र ख़राब हो ही जाते हैं।

(२) सुरा या सुधा?

(नं० २२ ऊपर से नीचे) "यह देवताओं को अतिप्रिय है।" यह संकेत दिया गया है। समझ में नहीं आता कि क्या देवता कलियुग में सुरापान करने लगे? जब कि कांग्रेस सरकार साधारण पियक्कड़ों को भी इसके त्यागने का उपदेश कर रही है। फिर सुरा उत्तर ठीक कैसे है? यदि आपका अभिप्राय सुरावती से है जो कि अदिति या देवताओं की माता थी, तब भी यह सही नहीं होता, क्योंकि २ अक्षरों से ४ अक्षरों को पहचान करने का आपने कोई साधन नहीं दिया है।

आशा है कि आप इन शंकाओं का समुचित उत्तर देंगे।

९-३-३९

भवदीय—
धर्मेन्द्र मोहन सिन्हा
मारफ़त बाबू जियालाल पेशकार
बिजनौर

(३) हत्था क्यों?

महाशय,

वर्ग नं० ३१ में नं० ३० (बाए से दाहिने)—में संकेत दिया गया है कि 'इसकी लकड़ी चिकनी और मज़बूत होती है।' यह संकेत हत्थे के लिए कहाँ तक उपयुक्त है? आशा है आप उत्तर देंगे।

—भवदीय
शिवबोध मालवीय
४२, त्रिपौलिया, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

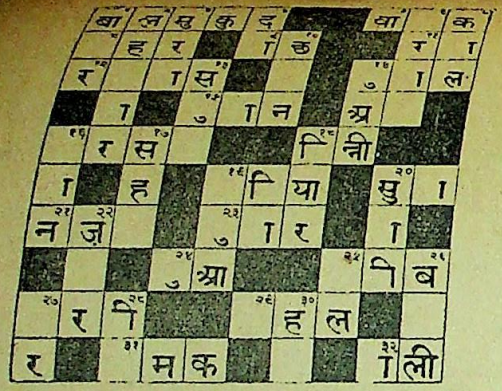

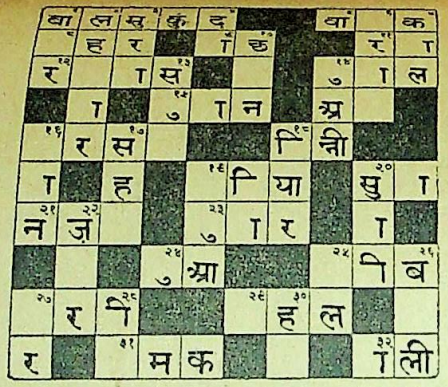

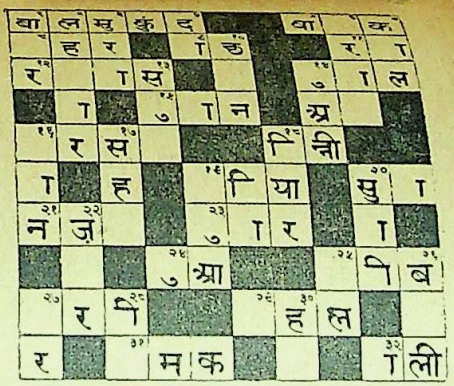

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३३ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० ३३ पूर्ति नं०... फ़ीस ॥)

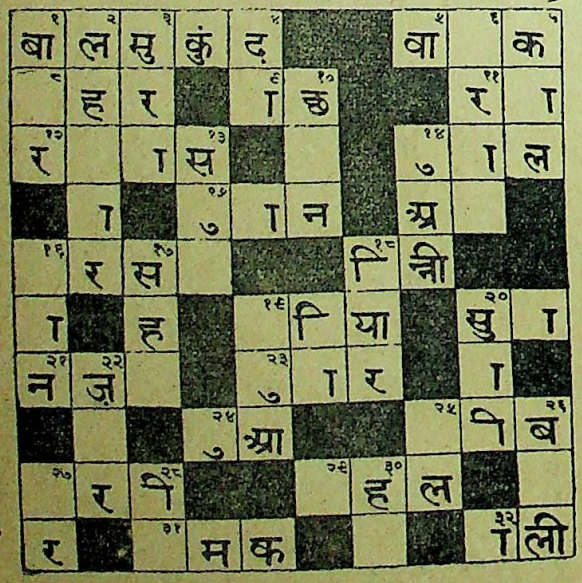

वर्ग नं० ३३ पूर्ति नं०... फ़ीस ॥)

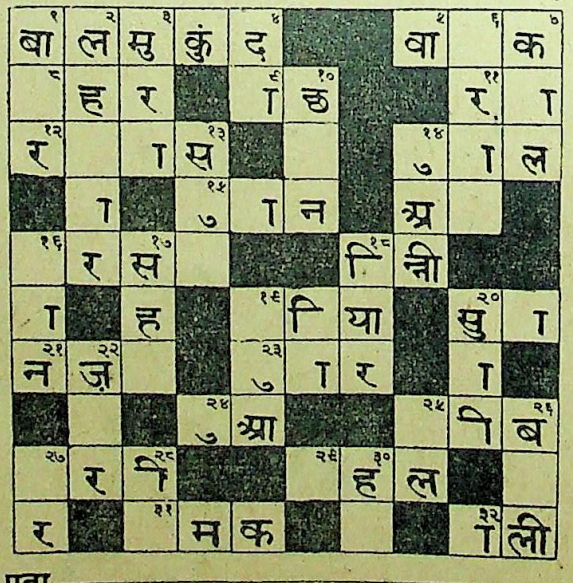

वर्ग नं० ३३ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

नाम पता

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काटकर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को यों ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ ४१४ पर देखिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक सूचनायें

(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० ३३ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो ख़ाने ख़ाली छोड़ देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर ३३ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २५ अप्रैल सन् १९३१ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

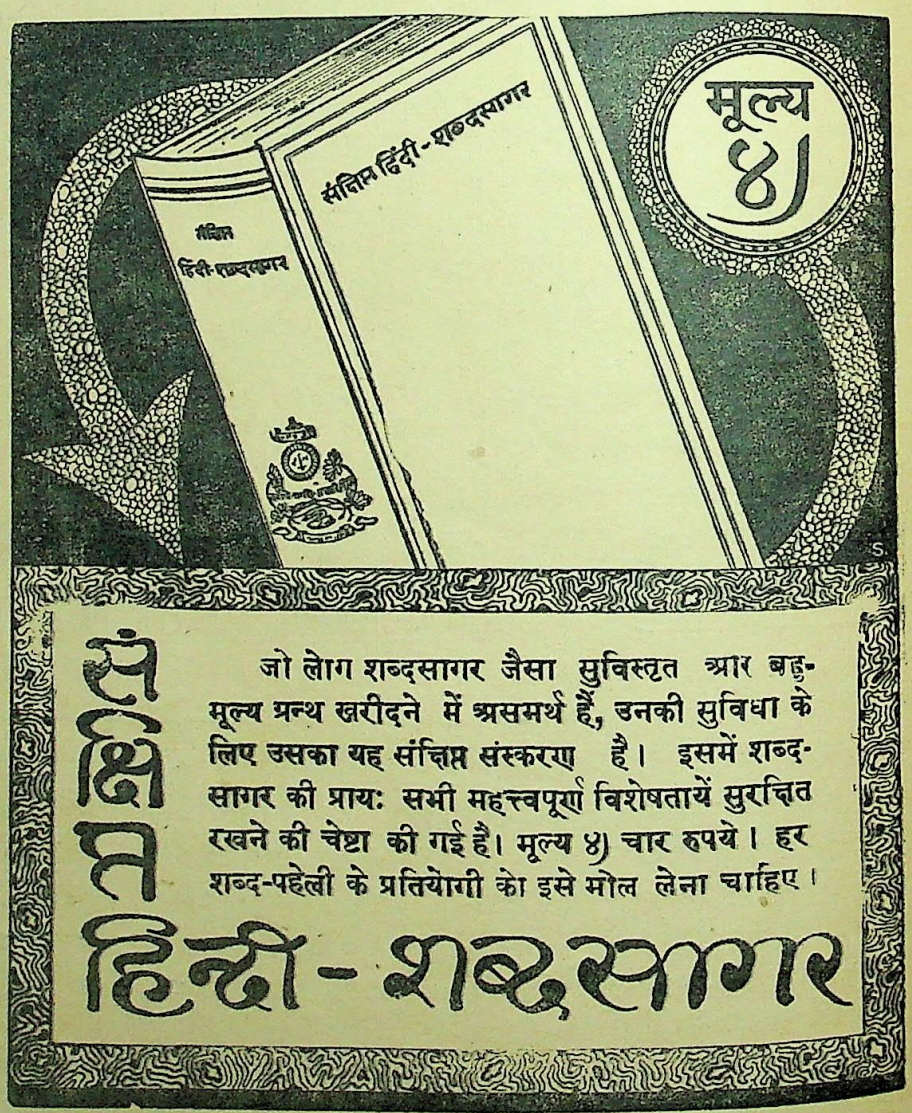

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीवाँ-नरेशों की हिन्दी-सेवा

लेखक, लाल भानुसिंह जी बाघेल

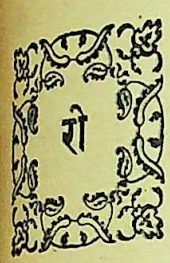

रीवाँ-नरेशों के मूल पुरुष यद्यपि गुजराती हैं, पर रीवाँ-प्रान्त में उनके आने पर उस प्रान्त का नाम उनकी जाति नाम से बघेलखण्ड और वहाँ बोली जानेवाली बोली बघेलखण्डी कही जाने लगी। हिन्दी-भाषा के विकास में अवधी और व्रज के बाद बघेलखण्डी ने भी हाथ बँटाया है। प्राचीन काल प्रचार-काल नहीं था, वह निर्माण-काल था। अस्तु, सब प्रान्तों की भाँति बघेलखण्ड ने भी हिन्दी-भाषा के निर्माण में योग दिया है। महाराज जयसिंह देव-द्वारा यह कार्य विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रारम्भ होकर बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (लगभग १०० वर्ष) में, उनकी तीसरी पीढ़ी महाराज रघुराजसिंह-द्वारा इसकी पूर्ति हुई है और वह इतने विशद-रूप से हुई है कि यदि इसी समय के रीवाँ-राज-घराने एवं राज्य के अन्य कवियों की कृतियों को छोड़कर केवल इन्हीं तीन महाराजाओं की हिन्दी-रचना (इन लोगों ने संस्कृत में भी रचना की है) का ही संग्रह किया जाय तो एक महाग्रन्थ बन सकता है। इस लगभग एक शताब्दी के समय में रीवाँ-नरेशों ने जो हिन्दी-सेवा की है वह अप्रकाशित होने से अन्धकार में है अवश्य, पर उसका पता पाठकों को काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज की रिपोर्टों से लग सकता है। विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी से मध्य-भाग में जब हिन्दी-भाषा में प्रौढ़ काव्य-रचना हो रही थी तब से प्रारंभ करके हरिश्चन्द्र-काल तक रीवाँ-नरेशों की क्रमशः तीन पीढ़ियों की काव्य-धारा अविच्छिन्न-रूप से प्रवाहित होती रही है। और यह नहीं कि वह एकांगी हो, उसमें किसी एक निर्दिष्ट विषय का वर्णन हो अथवा वह रचनामात्र से हिन्दी से सम्बन्ध रखती हो। उसमें उन गूढ़-गंभीर एवं कोमल-कान्त विषयों का समावेश हुआ है जिनके कारण हिन्दी-भाषा आज अपने उन्नत-काल में भी अपना मस्तक ऊँचा कर सकती है। भक्ति-रस की तो उसमें अजस्र धारा बही है; किन्तु उसके साथ ही उसमें अन्य रसों की उपधारायें भी पर्याप्त-रूप से प्रवाहित हुई हैं। अर्थात् इनके भक्ति-काव्य केवल भक्ति-काव्य ही नहीं, किन्तु सूर और तुलसी के समान कवित्वमय भक्ति-काव्य हैं। स्फुट काव्य, खण्डकाव्य और प्रबन्ध काव्य ही नहीं, उसमें नाटकों और महाकाव्यों तक का निर्माण हुआ है। जब अन्यत्र नायिका-भेदों और रीति-ग्रन्थों की ही रचना हो रही थी तब रीवाँ-नरेशों ने हिन्दी को नाटकों और महाकाव्यों से सम्पन्न किया। उनके वर्णनीय विषय भी केवल काव्यांग नहीं, राजनीति, अध्यात्म और दर्शन-शास्त्र भी हैं। तात्पर्य यह कि रीवाँ-नरेशों ने हिन्दी-भाषा को सब प्रकार से सम्पन्न करने का प्रयत्न किया है।

महाराज जयसिंहदेव की भाषा बहुत ही कोमल, सरल और सालंकार है। उसमें अवधी, व्रजभाषा और बघेलखण्डी तीनों भाषाओं का मिश्रण है। उनका वर्णन बहुत विशद है। तुलसीदास के बाद उन्हीं ने हिन्दी में सुन्दर चौपाई-छन्द लिखा है। उनके अनेक ग्रन्थों में 'कृष्ण-तरंगिणी' एक पाण्डित्यपूर्ण रचना है। 'हरिचरित्रचन्द्रिका' एक सरल, सरस, सुन्दर और सालंकार काव्य है। 'त्रय-वेदान्तप्रकाश' और 'निर्णय-सिद्धान्त' वेदान्त और दर्शनशास्त्र के ग्रन्थ हैं। उनकी रचना कैसी सरस है, नीचे के पद्यों में देखिए—

पलना परे कबहुँ कर झटकत।
बारहि बार कबहुँ पद पटकत॥
कबहुँक बिहँसत कबहुँक रोवत।
अधखुल नैन उताने सोवत॥
छबि लखि मातु दिठौना दीन्हों।
आनन सरद चन्द सम कीन्हों॥
रत्ना-तिलक सुअंजन छाजत।
गरे बघनहा जंत्र बिराजत॥
कर पग चूरा कंचनवारे।
रेशम करधनि मृदु कटि धारे॥
रत्ना-सूत मातु कर बाँधे।
निरखत बदन मनोरथ साधे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरबन झलकति अति अरुनाई।
मनहुँ लगी माराग ललाई॥
गूँ करि गाँ करि मा मुख ताकत।
मुख छबि छाकि मातु मन छाकत॥
× × ×
ता छन उयो अरुन राकासासि।
प्राची कुंकुम दिये मनो घसि।
रमा-वदन सम दुति दरसावत।
इन्दीवर-कानन बिहसावत॥
नभ चढ़ि भयो पीतपट छावत।
निसि-मुख लखि मन बिवरन भावत॥
पुनि कछु चढ़ि सित भयो विराजत।
मदन महीप छत्र जनु छाजत॥
तरु कोपनि कुसुमनि कर परसत।
अमीकन्द मनु अमिकन बरसत॥
लसत कौमुदी काँस कुसुम कर।
मनु महताब प्रकाश फाटिकघर॥
जपा मालती बेला पुंजनि।
गहगह फूले खखियत कुंजनि॥
शशि कर परसि चमक इमि साजहि।
चुनि चुनि कनि मनु डाँक विराजहि॥

(हरिचरित्रचन्द्रिका)

महाराज जयसिंहदेव के पाटवी पुत्र महाराज विश्वनाथसिंह भी प्रतिभाशाली कवि हुए। उनकी रचना व्रजभाषा प्रधान है। भक्ति और वेदान्त के सिवा राजनीति में भी उन्होंने ग्रन्थ लिखे हैं। हिन्दी के लिए यह नई बात थी। विद्यापति ठाकुर (१४४५ वि०) के बाद सवा चार सौ वर्षों में उन्हीं ने पहले पहल हिन्दी में नाटक लिखा। यद्यपि उनकी काव्य-धारा उनके पिता महाराज जयसिंहदेव के समान सरल एवं कोमल नहीं मालूम होती, पर प्रवाह उसका एकमुखी नहीं, चौमुखी है। गीता रघुनन्दन, कबीर के कई ग्रन्थों की व्याख्या, तत्त्वप्रकाश, परानीय तत्त्वप्रकाश, वेदान्तपंचक, पाखण्ड-खण्डिनी, परमतत्त्व, तत्त्वमस्य सिद्धान्त आदि वेदान्त और अध्यात्म के उत्तम ग्रन्थ लिखे हैं। ध्रुवाष्टक, उत्तमनीति-चन्द्रिका और अबाध नीति आदि राजनीति और साधारण नीति की रचनायें हैं। अब रहा 'आनन्दरघुनन्दन नाटक', सो इसमें उन्होंने रामजन्म से राजगद्दी तक की कथा नाटक के रूप में वर्णित की है। किन्तु इसमें पात्रों के नाम की कल्पना विचित्र ढंग से की गई है, जैसे—

हितकारी = राम, डह डहजगकारी = भरत, डील-धराधर = लक्ष्मण, डिभीदर = शत्रुघ्न, दिग्यान = दशरथ, दिक्शिर = रावण, सुगल = सुग्रीव, त्रेतामल्ल = हनुमान, भुवनाहित = विश्वामित्र, जगद्योनिज = वशिष्ठ, इत्यादि।

उनका ध्रुवाष्टक राजनीति का सार है। इसके चार छन्दों में राजाओं के अवनति और चार में उन्नति के कारण कहे गये हैं। उनकी यह रचना बड़ी लोकप्रिय है। इसके दो पद्य ये हैं—

जो बिन कामहि चाकर राखत ऐन अनेक वृथा बनवावै।
आमद ते अधिको करै खर्च रिनै करि ब्योहरै ब्याज बढ़ावै॥
बूझत लेखा नहीं कछुऐ नहि नीत की रीति प्रजान चलावै।
भाषत हैं विसुनाथ ध्रुवै वहि भूपति के घर दारिद आवै।
निहचै करि धर्म विचार भयो दबि भाइन भृत्यन नाहि चलावै।
मंत्रिन आदि सुलच्छनहीन औ आलसी होय सलाह बतावै।
मानि सकोच करै व्यवहार वृथा ही इनाम की रीति बढ़ावै।
भाषत हैं विसुनाथ ध्रुवै वह भूपति ना कबहूँ कल पावै।

महाराज विश्वनाथसिंह के पुत्र महाराज रघुराजसिंह की हिन्दी-सेवा का परिचय देना तो सूर्य को दीपक दिखाना है। उनकी भाषा में व्रजभाषा एवं बघेलखण्डी की प्रधानता है। उन्होंने शृंगार, वीर, भक्ति इत्यादि सभी रसों का विशद वर्णन किया है। उनके समान सुन्दर युद्ध-वर्णन तो हिन्दी में शायद ही किसी ने किया हो। उन्होंने तुमुल युद्ध, द्वन्द-युद्ध, मल्ल-युद्ध इत्यादि युद्ध के सभी अंगों का विशद वर्णन किया है। वे महाकवि थे। महाकवि केशव के बाद उन्हीं ने हिन्दी में दूसरा महाकाव्य लिखा। उनका 'रुक्मिणीपरिणय' हिन्दी का एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। उनके 'रामस्वयंवर' ग्रन्थ का तो रीवाँ-राज्य में रामायण के ही समान प्रचार है। उन्होंने श्रीमद्भागवत का पद्यानुवाद किया है और उससे उनके प्रखर पाण्डित्य का परिचय मिलता है।

उनकी रचना के कुछ उदाहरण हम यहाँ देते हैं—

भिरे तुरंग सों तुरंग जंग-रंग छाय के,
सवार सो सवार के प्रहार खड्ग धाय के।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतंग सों मतंग दन्त-दन्त सों भिड़ाय के,
लरैं प्रवीर सों प्रवीर धीर चित्त चाय के।
कहूँ तुरंग कूदि के मतंग पै चमक्कहीं,
मनो सु श्याम मेघ-मध्य दामिनी दमक्कहीं।
कहूँ तुरंग पै मतंग धाय दन्त देत हैं,
सकोपि शेन ज्यों लवै समेटि दाबि लेत हैं।
भरत पैतरे चलि-चलि बीरा।
करन लगे दोउ युद्ध गँभीरा।
इनहि हाथ बहु पट्टन केरे।
कूदि जाहि कहुँ रहहि न नेरे।
कहुँ असि रोकहि ढालहि माहीं।
कहुँ हनि हनि पुनि दोउ बिलगाहीं।
शिर देखाय मारहि पगमाहीं।
कहुँ प्रवीर खाली दै जाहीं।
कहुँ नभ उड़ि दोउ करहि प्रहारा।
करहि कबहुँ मण्डल बहु बारा।

महाराज रघुराजसिंह के पुत्र महाराज वेंकटरमण-सिंह ने यद्यपि कविता-द्वारा हिन्दी-सेवा नहीं की; पर कार्य-द्वारा उन्होंने हिन्दी-हित खूब किया है। जिस समय प्रायः समस्त देशी राज्यों की अदालती भाषा उर्दू थी उस समय पहले-पहल आप ने ही अपने राज्य की अदालतों से एक-दम (धीरे-धीरे नहीं) उर्दू को हटा कर हिन्दी का प्रचार किया था। वे हिन्दी-हितैषी संस्थाओं की समय-समय पर बराबर सहायता करते ही रहते थे। यही नहीं, उन्होंने आधुनिक युद्धों के इतिहासों एवं युद्ध-विद्या-सम्बन्धी प्रायः एक दर्जन के लगभग अँगरेज़ी-पुस्तकों का हिन्दी-अनुवाद करा कर, बड़ी मोटी-मोटी जिल्दों में प्रकाशित कराया। कुछ संस्कृत-पुस्तकों का भी हिन्दी भाषान्तर कराके प्रकाशित कराया। वर्तमान बान्धवेश महाराज गुलाबसिंह जी हिन्दी-प्रेमी नरेश हैं। आशा है, अपने पूर्वजों की भाँति ये भी हिन्दी को उन्नत करने में समुचित योग देंगे।

जीवन-माया

लेखक, श्रीयुत उदयशङ्कर भट्ट

तुम अर्ध-सजग मैं मूक-स्वगत यह जीवन कैसी माया!
विस्मृति के कण-कण का खुमार क्या महाविश्व बन आया,
जग प्रेम हृदय से क्यों चिपकाये फिरता?
यह शलभ आग में बिना मौत क्यों मरता?
यह सर्प विषम विष पीकर जीता रहता
यह हेय 'मरण' क्यों भरण भार नित सहता
क्यों अन्धकार का एक महासागर अभिनव लहराया।
तुम अन्धकार मैं अन्धकार जीवन प्रकाश क्या माया।
मैं हँसता हूँ अपने छोटे जीवन पर
उसका हँसता है हृदय अश्रुमय बनकर
मोती से आँसू भर नित नभ यह आता
सोई आँखों में मेरी बिखरा जाता
उस समय विश्व का सब विलास जागृति में 'मृत' की छाया
तुम अर्ध-सजग मैं मूक-स्वगत यह जीवन कैसी माया!
मृदु कलियाँ अपना हृदय फाड़कर फूलीं
मस्ती किसलय तज पीत पत्र पर झूली
घन सब कुछ देकर गरज रहा है ऊपर
क्षण-क्षण जीवन क्षय होता हँसकर भू पर
फिर रवि-प्रकाश दीपक-विलास में तिमिर कहाँ से आया?
तुम अर्ध-सजग मैं मूक-स्वगत यह जीवन कैसी माया!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिपुरी का काँग्रेस-अधिवेशन

लेखक, श्रीयुत विष्णुदत्त मिश्र 'तरङ्गी'

आशाओं की एक दुनिया लेकर त्रिपुरी उदय हुई और निराशा के भूकम्प के साथ लुप्त हो गई! कितने ही कांग्रेस-अधिवेशन हुए और होंगे, लेकिन त्रिपुरी उनमें सबसे निराली थी। कांग्रेस के इतिहास में केवल त्रिपुरी-कांग्रेस ही ऐसी थी, जो बृहस्पति की छत्रच्छाया में तो जन्मी, लेकिन मंगल और राहु के दबाव में आकर नष्ट हो गई। भूतकाल की त्रिपुरी में भले ही इतिहास की रचना हुई हो, लेकिन कांग्रेस की त्रिपुरी के कलेवर से तो यही ध्वनि निकलती थी कि—

"हँसती हुई निराशा आई, रोती आई मधु आशा।"

जिन दुर्भाग्यपूर्ण क्षणों में त्रिपुरी के गत वैभव के पुनरुत्थान की योजना स्वागत-समिति के सभापति सेठ गोविन्ददास ने की, उस समय कौन जानता था कि त्रिपुरी की ऐतिहासिक भूमि ऐतिहासिक निर्णय करने में समर्थ न होगी। कलचुरी-वंश की राजधानी त्रिपुरी, महाराज काल के हाथ में थपेड़े खाती हुई, वैभवहीन होकर पड़ी थी और उसके आस पास ही पड़े हुए कुछ जीवित पाषाण कह रहे थे कि—

ख़ाक का पुतला बना है, ख़ाक की तस्वीर है।
ख़ाक में मिल जायगा, और ख़ाक दामनगीर है॥

आज से एक हज़ार वर्ष पहले ही तो त्रिपुरी कलचुरि-वंश की राजधानी थी। वैसे तो पौराणिक-काल में भी त्रिपुरी का अस्तित्व था। लेकिन त्रिपुरी ने अपनी उन छापों को छिपा कर नहीं रक्खा। अपने उत्थान और पतन के उन निठुर चिह्नों को भगवान् बौद्ध की मूर्तियों के रूप में जीवित रखकर अपने इतिहास को नष्ट नहीं होने दिया। त्रिपुरी के वे कैसे सुहाग के दिन थे जब उसकी टकसालों में सोने के सिक्के ढलवाने के लिए दूर-दूर से कलचुरि-साम्राज्य के नागरिक आया करते थे। वे आनन्द के दिन थे; लेकिन उनके मिटने की तिथि महाराज भविष्य के सिवा और

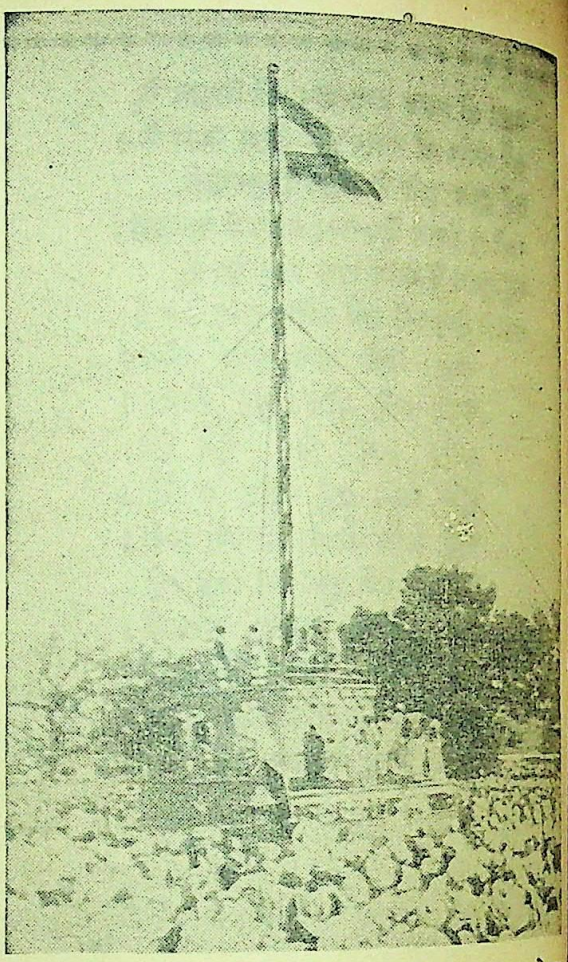

[त्रिपुरी के विष्णुनगर में पण्डित जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय झण्डा फहरा रहे हैं।]

कौन जानता या जान सकता था? गोलियों से सज्जित खन खन घूँघरू पहने जहाँ मस्त हाथी राजद्वार पर डोला करते थे, राजमहिषियाँ जहाँ चन्दन से अपने शरीर को चर्चित किया करती थीं और मोगरे के फूलों से प्रियतम के लिए हार बनाया करती थीं; वह त्रिपुरी फिर अपने यौवन के दिनों की यादगार तपस्वी तरुणी के रूप में करने के लिए तैयार हो गई, जब त्रिपुरी को ही स्वागतकारिणी समिति ने कांग्रेस-अधिवेशन का स्थान बनाने का निश्चय किया।

और यह त्रिपुरी के जीवन में नई बात नहीं थी। उसकी भूमि की ख़ूबी यह रही है कि परिवर्त्तन को उसने मौन आँखों से देखा तो अवश्य; लेकिन वह मर कर फिर जी उठी है। कलचुरि गये; समय के ज्वार के साथ आकर वे कुसमय के भाटे में बह गये। परिहार आये और उन्होंने त्रिपुरी की भूमि में अपना अस्तित्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाड़ा। लेकिन वे कैसे बचते; जब कोई न बचा। और एक दिन वह था जब त्रिपुरी की भूमि पर मदनमहल के क़िले से हृदयशाह से आलिंगन में बँधी हुई रानी दुर्गावती की नज़रें पड़ा करती थीं। वे क्या कहते थे, उनके हृदय में क्या कम्पन होते थे; वे त्रिपुरी की भूमि पर उगे हुए झाड़झंखाड़-पत्तों से एक-दूसरे के कान में फुसफुसाकर कहा करते थे। देखते-देखते ही त्रिपुरी की भूमि वीर गोंड़ों की पद-धूल से चमक उठी और देखते ही देखते वह युगल जोड़ी भी न रही, क्षत्राणी दुर्गावती भी वीरगति पा गई और इतिहास की इस महती दुर्घटना की ख़बर संसार को सुनाने के लिए त्रिपुरी और मदनमहल दोनों खड़े रह गये। आँधी-पानी में वे दोनों साथी खड़े रहे, प्रतीक्षा करते रहे; जब तक कि—

[त्रिपुरी-कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष सेठ गोविन्ददास, एम० एल० ए०]

एक दिन

स्वागतकारिणी समिति ने अन्तिम रूप से फ़ैसला कर दिया कि त्रिपुरी ही आगामी (५२ वीं) कांग्रेस की पुण्य-भूमि बनेगी। उन दिनों की त्रिपुरी क्या थी! उसकी ऐतिहासिक समाधि पर झाड़-झंखाड़ और कटीली झाड़ियों का साम्राज्य था और बहुत से लोग दाँतोंतले उँगली दबा कर रह गये, जब कांग्रेस-इंजीनीयर श्री० गुलारी ने घोषणा की कि इस भूमि पर 'विष्णुदत्तनगर' की रचना बड़े मज़े में हो सकती है। त्रिपुरी के अंचल में बसे हुए विष्णुदत्तनगर की कल्पना शायद केवल दो ही तीन व्यक्तियों के मन में उठी होगी। दोस्त अहबाब हंसते थे और सोच रहे थे कि ऊबड़-खाबड़ में कहीं कांग्रेस हुई भी है। लेकिन एक दिन सेठ गोविन्ददास ने फावड़े की पल्टन को काम करने का हुक्म दे दिया। आस-पास बीसों मील से महाकोशल के स्त्री-पुरुष मज़दूरों के रूप में विष्णुदत्तनगर की रचना करने के लिए आ गये। दिन और रात काम हुआ। देखते-देखते त्रिपुरी की भूमि सँवरने लगी। जहाँ कभी शृगाल बोला करते थे, गाँव की देहातिनें कण्डे बीनने के लिए आया करती थीं और ग्वाले गायें चराया करते थे; जहाँ केवल शान्ति का अखण्ड साम्राज्य था, वहाँ जीवन की हरकत प्रारम्भ हो गई, मोटर चलने लगे। चटाइयों से कलचुरिकला के द्वार बनने लगे और पहली मार्च को विष्णुदत्तनगर का ढाँचा तैयार हो गया। जो त्रिपुरी के अंचल से खेल रहा था।

विष्णुदत्तनगर की झाँकी

त्रिपुरी तो उस जगह का नाम था, जहाँ कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, लेकिन उसके अंचल में जो नगर बसा उसका नाम 'विष्णुदत्तनगर' रक्खा गया! सारे विष्णुदत्त-नगर का विस्तार क़रीब पाँच वर्गमील में था। नगर नर्मदा के तट पर बसा था और नागपुर से आनेवाली सड़क, जो जबलपुर को जाती है, ठीक त्रिपुरी के बीच से जाती है। अधिवेशन के दिनों में यही सड़क त्रिपुरी का राजपथ थी। त्रिपुरी का सबसे प्रधान द्वार 'माधव-द्वार' था और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

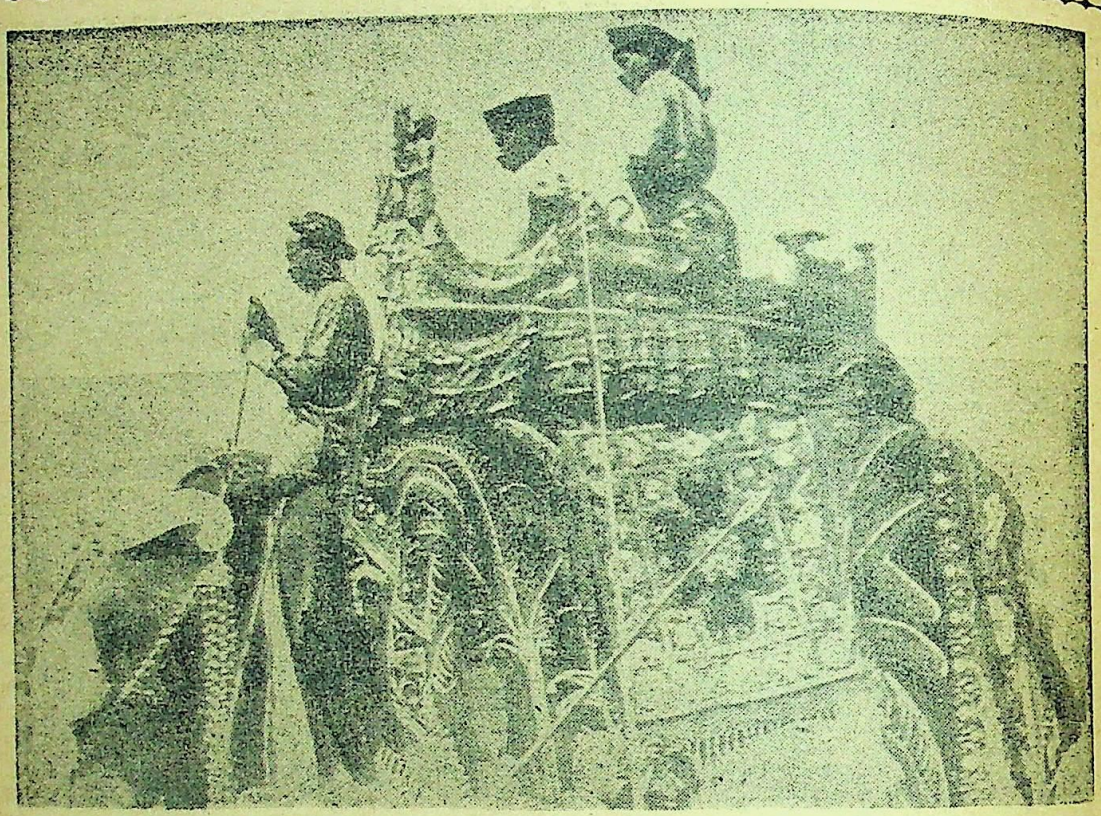

[त्रिपुरी के हाथियों के जुलूस का सबसे आगे का हाथी। इस हाथी पर महात्मा गान्धी का चित्र रक्खा गया था।]

इसके बाद भीतर जाने पर तीन द्वार और थे। बीच में तो एक द्वार था और बगल में एक प्रदर्शनी का था और दूसरा खुले अधिवेशन के पण्डाल का। जहाँ पहले चुँगी-चौकी थी, वहीं आस-पास स्वागतकारिणी समिति का दफ़्तर था; जिसमें गंभीर घनश्यामदास और स्फूर्तिमान् सेठ गोविन्ददास काग़ज़ के गट्ठरों के निठुर रहस्यों को सुलझाया करते थे। मुख्य राजपथ के एक ओर सर्व-भारतीय कांग्रेस-समिति का पण्डाल था और दूसरी ओर दूकानें। लेकिन त्रिपुरी की विशेषता यह थी कि जहाँ हरिपुरा बाँसों का नगर था, वहाँ त्रिपुरी चटाइयों का।

त्रिपुरी बनाम हरिपुरा

देहाती कांग्रेस के इतिहास में त्रिपुरी ने भले ही एक नया इतिहास बनाया हो, पर हरिपुरा का अधिवेशन सम्पन्न गुजरात में हुआ था और वहाँ कांग्रेस-अधिवेशन पर महात्मा गान्धी की नाराज़ी के बावजूद भी ७ लाख रुपया ख़र्च कर देना आसान था। इधर महाकोशल तो उन लोगों का देश है जिनके बारे में मशहूर है कि—

दिहाती फिरैं नाँय के पाँय।
चूना तमाखू खाँय, दिहाती फिरैं नाँय के पाँय।

पिछले दस वर्षों से महाकोशल में फ़सलें भी ठीक नहीं हुईं, इस कारण यह संभव नहीं था कि कोई फ़ैयाज़ी त्रिपुरी में ख़र्च करे। मैंने स्वयं चिन्तित सेठ शिवदास डागा को देखा था, जो अर्थ-संग्रह-समिति के प्रधान थे। दस-दस, पाँच-पाँच रुपये तक लिये जा रहे थे और जब स्वागत-समिति ने बजट बनाया था तब किसको यह पता था कि स्वागत-समिति की तिजोरी प्रायः ख़ाली थी। लेकिन 'जहाँ चाह, तहाँ राह।'

हरिपुरा के सात लाख ख़र्च की त्रिपुरी के दो लाख के ख़र्च के अन्तर को समझने के लिए आपको उन कार्यकर्त्ताओं की प्रशंसा करनी पड़ेगी जो त्रिपुरी के निर्माता थे! सेठ गोविन्ददास व आनरेबल घनश्यामदासजी की मितव्ययिता लाभजनक साबित हुई। जो चीज़ माँगने-जाँचने से आ सकती थी—वह वैसे ही प्राप्त की गई। यहाँ तक कि रेलवे से बिजली ले जाने के लिए तार के खंभे भिक्षु

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये; तो फ़ोर्ड-कम्पनी से चमचमाते हुए ६ मोटर। भोजन का प्रबन्ध ठेके पर देकर त्रिपुरी की स्वागत-समिति ने अपनी तैयारी के एक बड़े अंश से मुक्ति पा ली थी। बाँस और चटाइयों से त्रिपुरी की रचना कर दी गई। बिजली भी थी, निवास-प्रबन्ध भी था; लेकिन कुल ख़र्च २ लाख से आगे जानेवाला नहीं है।

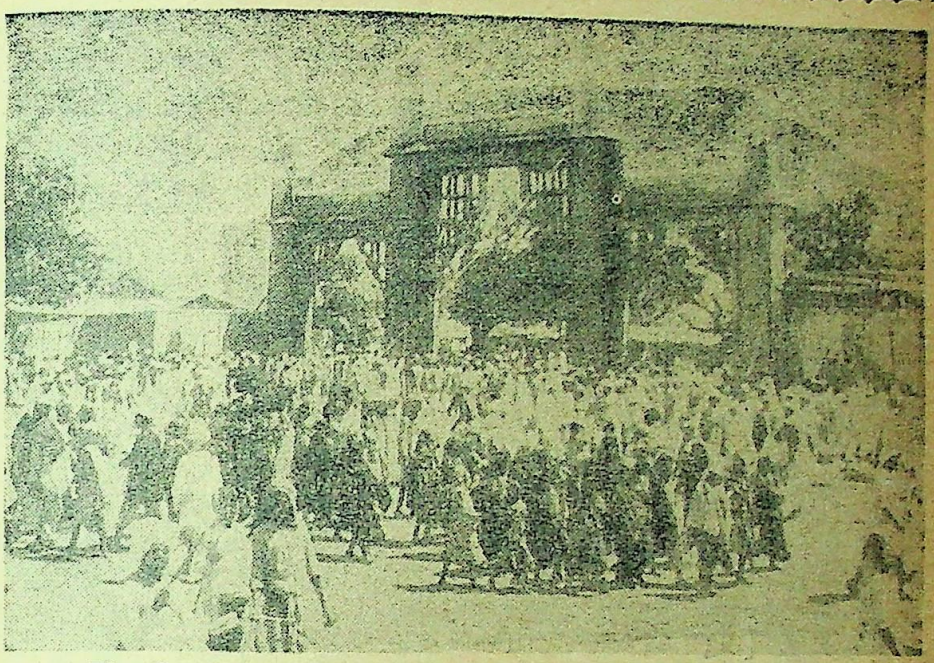

[त्रिपुरी-कांग्रेस की भीड़ का एक दृश्य। इस अधिवेशन में ५ लाख से अधिक लोग एकत्र हुए थे।]

लेकिन त्रिपुरी किन्हीं अभागे क्षणों में ही पुनर्जीवित हुई थी, क्योंकि उसके ऊपर जो घटायें छाई थीं वे अपने अन्तिम रूप तक विद्यमान रहीं। जब त्रिपुरी का जीवन उजड़ रहा था तब भी देश मेघाच्छन्न था। इसके अतिरिक्त ऐन मौक़े पर सभापति श्री सुभाषचन्द्र बोस की बीमारी ने त्रिपुरी को और श्रीहीन बना दिया! त्रिपुरी के अंचल में ही वे पड़े रहे, लेकिन कांग्रेस के खुले अधिवेशन में वे जा न सके। त्रिपुरी के इतने निकट होते हुए भी वे उससे कितने अधिक दूर थे। उनकी बीमारी ने त्रिपुरी के कोलाहलपूर्ण जीवन में बड़ी बेचैनी कर रक्खी और जब १२ मार्च को उनका तापमान १०५ के ऊपर पहुँच गया तब त्रिपुरी में घबराहट फैल गई। ऐसा मालूम होता था कि जङ्गल के मङ्गल के रङ्ग में कहीं भङ्ग न पड़ जाय। लेकिन प्रभु ने राष्ट्र की सुनी। सुभाष बाबू सङ्कट के क्षणों को चीर कर सकुशल बाहर आ गये। तीन लाख आदमियों की बस्ती त्रिपुरी में ज़रा सा होश आया; ज़रा सा उत्साह हुआ।

[त्रिपुरी में झण्डा फहराने के समय की भीड़ के एक अंश का दृश्य।]

राजनैतिक घात-प्रतिघात

लेकिन त्रिपुरी के कांग्रेस-अधिवेशन की महत्ता इसमें नहीं है कि वहाँ सबसे कम ख़र्च हुआ और न इसमें है कि राष्ट्रपति एक दिन को छोड़कर बैठक में शामिल न हुए। विशेषता तो उसके राजनैतिक घात-प्रतिघातों में है। सुभाष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

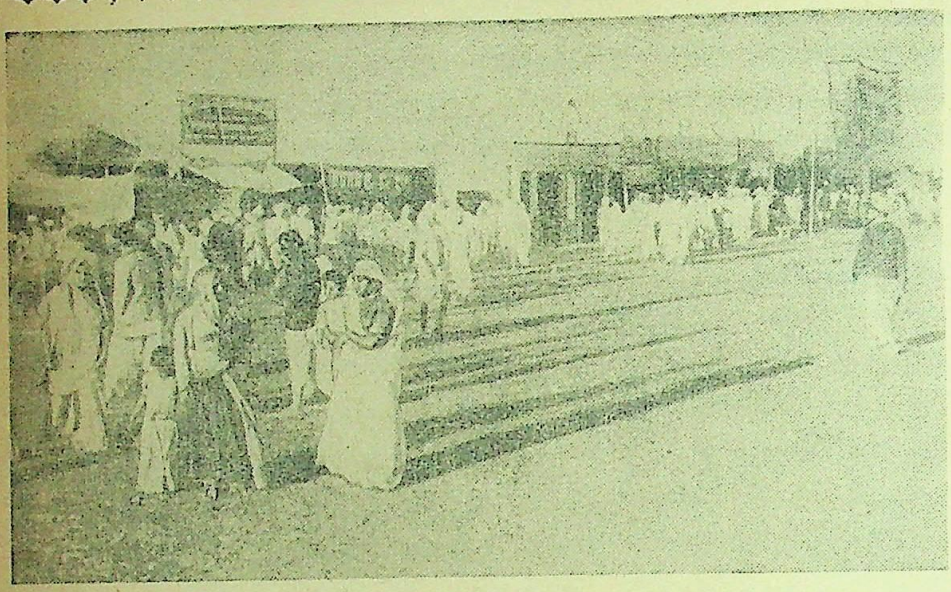

[त्रिपुरी की कांग्रेस-प्रदर्शिनी के भीतर का एक दृश्य।]

बाबू की विजय से गांधी जी को भारी धक्का लगा था और कार्य-समिति के १३ सदस्यों के इस्तीफ़े के बाद देश में ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई थी जिसमें सुभाष बाबू अपने को अकेला पा रहे थे। वे बीमार थे, वर्धा जाने में असमर्थ थे, जब कांग्रेस के १३ दिग्गजों ने उनका साथ छोड़ दिया और दिलजमई या सफ़ाई का कोई मौक़ा तक उन्हें नहीं दिया। ये सब घटनायें ऐसी तेज़ी से हुईं कि देश हक्का-बक्का रह गया। त्रिपुरी के सामने इन्हीं के सुलझाने का प्रश्न था।

सुभाष बाबू चाहते थे कि वे ज़रा स्वस्थ हो लें तो स्वयं उपस्थित हो सकें और इसलिए उन्होंने स्वागत-कारिणी के सभापति से प्रार्थना की कि अधिवेशन की तिथियाँ बढ़ा दी जायँ। स्वागतकारिणी ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। लेकिन जब कुछ दिनों के बाद ही महात्मा गान्धी का अनशन छिड़ा तब वही स्वागतसमिति अधिवेशन मुल्तवी करने के लिए तैयार हो गई, पर इस बार सभापति ने इसे स्वीकृत नहीं किया और वे मृत्यु से द्वंद्व कर त्रिपुरी आये।

दिग्गजों का परामर्श

महात्मा गान्धी ने राष्ट्रपति के चुनाव के पश्चात् सुभाष बाबू को अपने मन की कार्य-समिति बनाने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया था और यह स्थिति दक्षिण पन्थीय दल के लिए हितकर नहीं थी। इसलिए जब नेतागण त्रिपुरी में इकट्ठा हुए तब वातावरण ऐसा था कि अगर सुभाष बाबू यों ही छोड़ दिये गये तो गांधी जी के प्रोग्राम को सख़्त धक्का पहुँचेगा, इसलिए चेष्टा यह की गई कि सुभाष बाबू पुराने लोगों को कार्यसमिति में लेने को बाध्य हों। कांग्रेस के इतिहास में यह एक अजीब घटना थी और मदरास के सुयोग्य प्रधान मंत्री के ऊपर यह भार छोड़ा गया कि वे

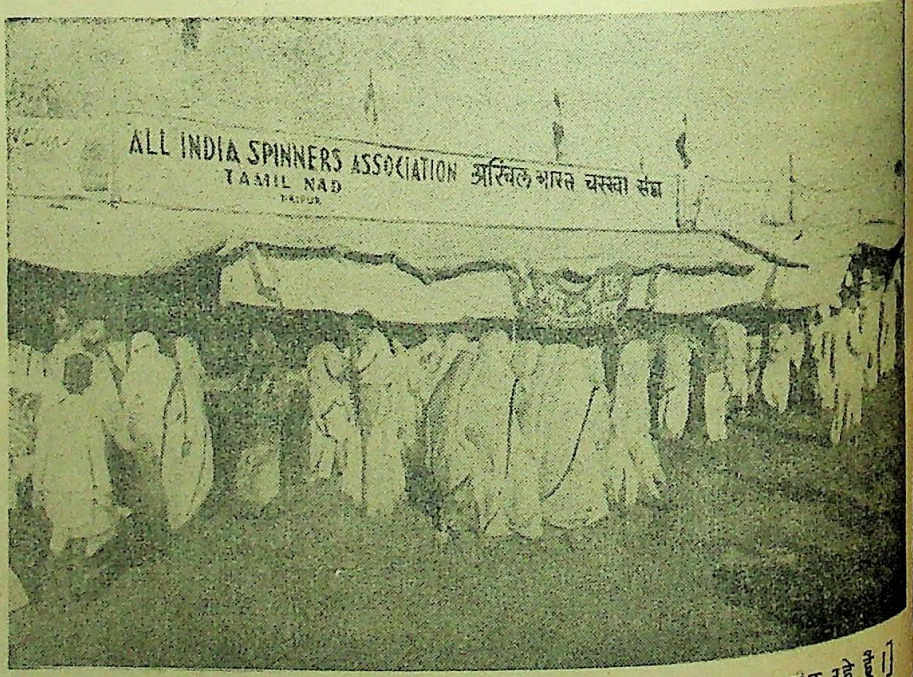

[कांग्रेस-प्रदर्शनी में स्त्रियां और बच्चे सैर कर रहे हैं तथा सादा ख़रीद रहे हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपढ़ किसानों को वर्तमान परिस्थिति का बोध कराने के लिए त्रिपुरी की कांग्रेस में बहुत से माडल दिखाये गये थे, जिनमें के कुछ ये हैं—

[मिलों और फ़ैक्टरियों की वृद्धि का अर्थ बेकारी है, यही बात इस चित्र में व्यक्त की गई है।]

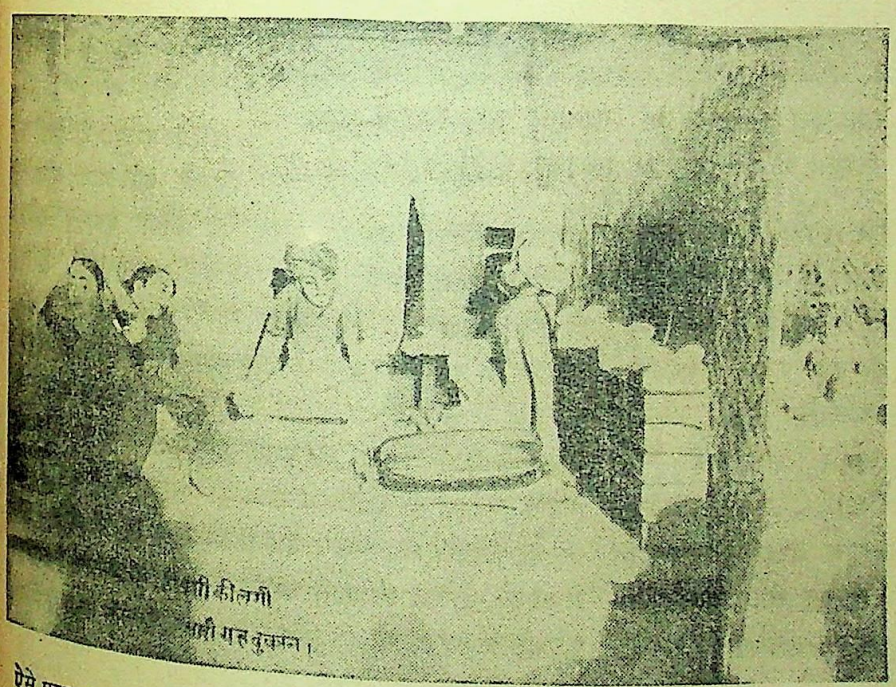

[विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार।]

ऐसे प्रस्ताव का मसविदा तैयार करें जिससे न तो साँप मरे और न लाठी टूटे। इस तरह जब माननीय श्री राजगोपालाचार्य प्रस्ताव बना रहे थे तब उनके सामने तीन बातें काम कर रही थीं :—

(१) सुभाष बाबू ने कार्यसमिति फ़ेडरेशन के सम्बन्ध में समझौता करने का जो कथित आरोप लगाया है उसका खंडन हो जाय और इस तरह सुभाष बाबू के प्रति अप्रत्यक्ष रूप से अविश्वास और इस्तीफ़ा देनेवालों के प्रति विश्वास प्रकट करा दिया जाय।

(२) पुराने लोगों को कार्यसमिति में रखने के लिए सुभाष बाबू विवश किये जायँ।

(३) महात्मा गांधी कांग्रेस में पुनः सर्वोपरि किये जायँ।

श्री राजगोपालाचार्य के हिस्से में कांग्रेस के ऐसे ही कई एक नाजुक अवसरों पर प्रस्ताव तैयार करने का भार रहा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

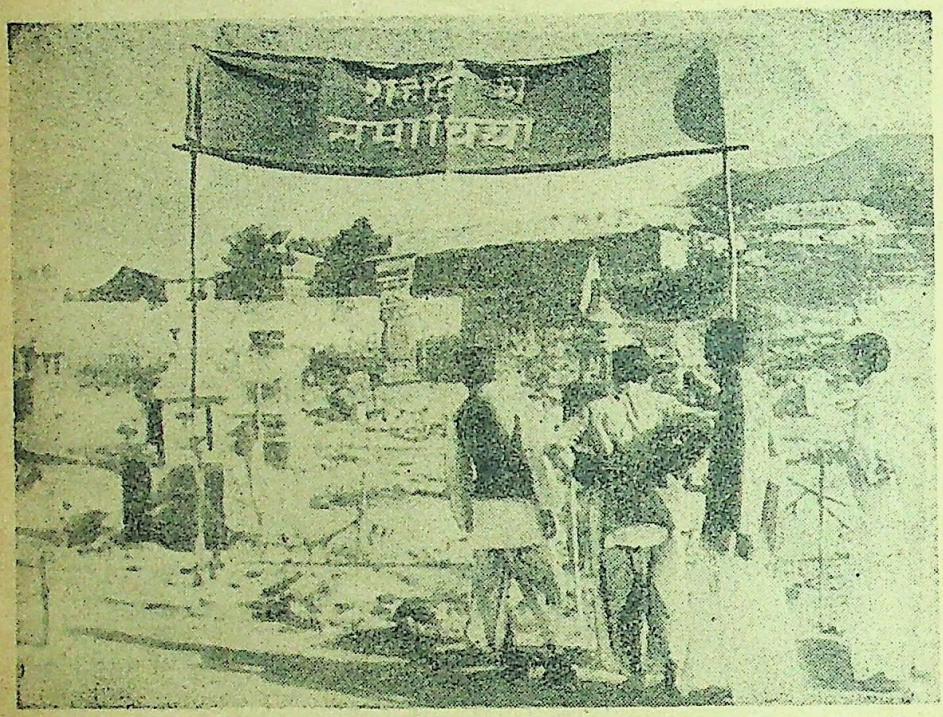

[त्रिपुरी में उन व्यक्तियों की समाधियाँ बनाई गई थीं जिन्होंने राष्ट्र-सेवा के कार्य में आत्मबलिदान किया है। उसी विभाग के एक अंश का यह चित्र है।]

और सदा की भाँति इस बार भी वे अपना प्रस्ताव तैयार करने में सफल हुए। मैंने स्वयं डेलीगेटों के कैम्पों में घुस कर अनेक लोगों से पूछा है कि क्या राष्ट्रपति सुभाष बाबू ने यह बात बिना किसी आधार पर कही है कि फ़ेडरेशन के पक्ष पर दक्षिणपन्थीय लोग समझौता करना चाहते हैं। कौन नहीं जानता कि श्री सत्यमूर्ति फ़ेडरेशन के पक्ष में कितना आन्दोलन कर रहे हैं? और कौन नहीं जानता कि अख़बारों में समय-समय पर इस तरह के अनुमान निकल चुके हैं। हाँ, सुभाष बाबू से यह अपराध अवश्य हो गया कि उन्होंने लोगों की प्रचलित धारणा को अपने मुँह से कह दिया। बस, इसी पर उनके विरुद्ध तूफ़ान खड़ा कर दिया गया। आज यह सब मानते हैं कि सुभाष बाबू की विजय गांधीवाद की किसी तरह भी पराजय नहीं थी, बरन अगर मुझे यह कहने की आज्ञा दी जाय तो वह सरदार पटेल के विरुद्ध कांग्रेस में फैली हुई इच्छा का प्रदर्शन था। लेकिन जब गांधी जी ने कह दिया कि इसमें उन्हीं की हार हुई है, चाहे और लोग और विजय भी उसे स्वीकार न करें; तो फिर गांधी जी में पूर्ण विश्वास प्रकट करने की ज़रूरत आ ही गई थी और यह अच्छा ही हुआ कि वह इस प्रकार प्रकट कर दिया गया। लेकिन क्या यह खेद की बात नहीं है कि जिन महात्मा गांधी को सारा राष्ट्र एक स्वर से अपना नेता स्वीकार करता है उनको आज बहुमत से देश का नेतृत्व करना पड़े। अगर गांधी जी इस झगड़े में न लाये जाते तो उस महान् को आपसी तू-तू, मैं-मैं के कीचड़ का शिकार न होना पड़ता।

जो भी हो! उक्त प्रसिद्ध प्रस्ताव के उपस्थित करने का भार माननीय पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त को सौंपा गया। पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त प्रसिद्ध तर्कशील वक्ता हैं, लेकिन वे इस आलोचना का उत्तर न दे सके कि जब कांग्रेस-विधान के अन्तर्गत सभापति को अपनी कार्य समिति बनाने का हक़ है तब सभापति का यह प्रधान-अधिकार कांग्रेस के बाहर के किसी व्यक्ति को क्यों दिया जा रहा है, चाहे वह व्यक्ति कितना ही महान क्यों न हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह आक्षेप सैद्धान्तिक रूप से ही ठीक है, यों तो इस युग में किसी भी देश को आगे बढ़ाने के लिए लोकप्रिय डिक्टेटर की ही आवश्यकता है। ख़ैर, विषय-निर्वाचनी समिति में जो कार्यवाही हुई उससे मालूम पड़ता था कि समाजवादियों की एक भी बात नहीं सुनी जा रही है और उक्त प्रस्ताव ज्यों-का-त्यों पास हो गया। आचार्य नरेन्द्रदेव ने एक पुरजोश अपील में सहयोग की भीख माँगी, लेकिन वह भी ठुकरा दी गई। त्रिपुरी के अधिवेशन की यह विशेषता थी कि इस बार समाजवादी नरम थे और दक्षिणपन्थीय गरम।

खुले अधिवेशन में

पहाड़ की तलहटी में बने हुए अधिवेशन के विशाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डाल में ढाई लाख व्यक्तियों की उपस्थिति में कांग्रेस का खुला इजलास शुरू हुआ। और उसी दिन सभापति को १०५ डिगरी का बुख़ार था। मिस्र के वफ़द्दल के प्रतिनिधि भी इसी समय वहाँ आये थे। माननीय पन्त का जो प्रस्ताव विषय-निर्वाचिनी-समिति में पेश हुआ था, नियम के अनुसार वह पहले आना चाहिए था। लेकिन बापू जी अणे ने यह संशोधन पेश किया कि राष्ट्रपति की बीमारी के कारण उक्त प्रस्ताव सर्वभारतीय कांग्रेस समिति के सिपुर्द कर दिया जाय। पर सुभाष बाबू के समर्थक इस पर राज़ी नहीं थे, क्योंकि उनका ख़याल था कि ऐसा करने का अर्थ यह है कि सुभाष बोस पर उक्त कमिटी के भय की तलवार लटकती रहेगी इसलिए जब स्थानापन्न सभापति श्री० मौलाना अबुलकलाम आज़ाद ने यह घोषणा की कि श्री अणे का प्रस्ताव पास हो गया तब हुल्लड़ मच गया। हुल्लड़ में वैसे तो अधिकांशतः बंगाली थे, लेकिन अन्य प्रान्तों के लोग भी उसमें शामिल थे। इन लोगों का यह कहना था कि खुले अधिवेशन में सुभाष बाबू का बहुमत है और इस तरह खुले अधिवेशन में उक्त प्रस्ताव पर वोट लेने की बात टलती जा रही है। जो हो, जब हुल्लड़ १ घंटे १० मिनिट तक चलता रहा और पंडित जवाहरलाल नेहरू बार-बार चेष्टा करने पर भी बोलने न पाये, तब प्रदर्शनकारियों के उद्देश्य को धक्का लगा और इसी प्रदर्शन के फलस्वरूप तसवीर का सारा रुख़ पलट गया। दक्षिणपन्थीय दलवालों को इस हुल्लड़ से अपने प्रचार का एक बड़ा अस्त्र मिल गया और संयुक्त-प्रान्त के समाजवादी भी रुष्ट हो गये क्योंकि उनके प्रान्त के नेता का अपमान किया गया। विषय-निर्वाचिनी समिति तक सुभाष बाबू का निर्वाचन दक्षिणपन्थीय और वामपन्थीय लोगों के बीच का मतभेद भर था, पर खुले अधिवेशन के इस अरुचिकर प्रदर्शन के पश्चात् मामला तूल पकड़ गया और वह बङ्गाल और अन्य प्रान्तों के बीच का झगड़ा हो गया। फलतः माननीय पन्त जी का उक्त प्रस्ताव प्रचण्ड बहुमत से पास हो गया; नहीं तो यह आशा थी कि उक्त प्रस्ताव २०० से अधिक बहुमत से कदापि पास न होता।

त्रिपुरी-कांग्रेस में प्रस्तावों की दृष्टि से कोई विशेष बात नहीं हुई। हरिपुरा के रियासत-सम्बन्धी प्रस्ताव में केवल इतनी तरमीम कर दी गई है कि कांग्रेस की अहस्तक्षेप की नीति अत्यन्त परिवर्तनशील है; फ़ेडरेशन का विरोध किया गया और उसके लिए संयुक्त मोर्चे की योजना की गई।

लेकिन त्रिपुरी-कांग्रेस का सबसे खेदजनक अंश स्वागत-भाषण था। कांग्रेस के ५२ वर्षों के इतिहास में उक्त भाषण दूरदर्शिता का भाषण नहीं गिना जायगा। राष्ट्र और राष्ट्रपति दोनों स्वागत-समिति के मेहमान थे, लेकिन भाषण में राष्ट्र के सबसे बड़े मेहमान पर छींटेकशी की चेष्टा की गई।

इस बार की कांग्रेस में पर्चेबाज़ी और कैनवेसिंग का बहुत ज़ोर रहा। राष्ट्रपति की बीमारी के सम्बन्ध में जब तरह तरह के आक्षेप उठाये गये तब दूसरे पक्ष ने भी प्रचार किया कि महात्मा गान्धी भी जानबूझ कर त्रिपुरी नहीं आये। दोनों बातें एकदम ग़लत थीं, लेकिन दल-बन्दी में ऐसी ही दलदल अवश्यम्भावी थी। त्रिपुरी में स्वागत-समिति ने दूकानदारों से ख़ूब किराया लिया जिसका नतीजा यह हुआ कि दर्शक ख़ूब चूसे गये। दो आने में एक प्याला चाय त्रिपुरी में ही मिली है। किसानों के कैम्प में डेढ़ आने में भोजन मिलने की सारी योजना फ़ेल हो गई।

त्रिपुरी ने कोई नया संदेश नहीं दिया, वरन् वहाँ केवल यही बात प्रकट हुई कि देश में कौन कौन सी विचारधाराएँ काम कर रही हैं। त्रिपुरी में यह प्रकट हो गया कि दक्षिणपन्थीयों और वामपन्थीयों में मुठभेड़ शुरू हो गई है और इस संघर्ष में महात्मा जी के महान् व्यक्तित्व की आड़ लेने की चेष्टा है। त्रिपुरी में जिस उद्देश्य को लेकर, जिस भावना को लेकर लोग गये, उस उत्साह को लेकर नहीं लौटे।

अब त्रिपुरी उजाड़ हो रही है, उसकी अढ़ाई दिन की दुनिया मिट रही है, लेकिन उससे किसी को सहानुभूति नहीं। त्रिपुरी ने हज़ारों-लाखों दिल तोड़ दिये हैं। यही उसका निराशा का सन्देश है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

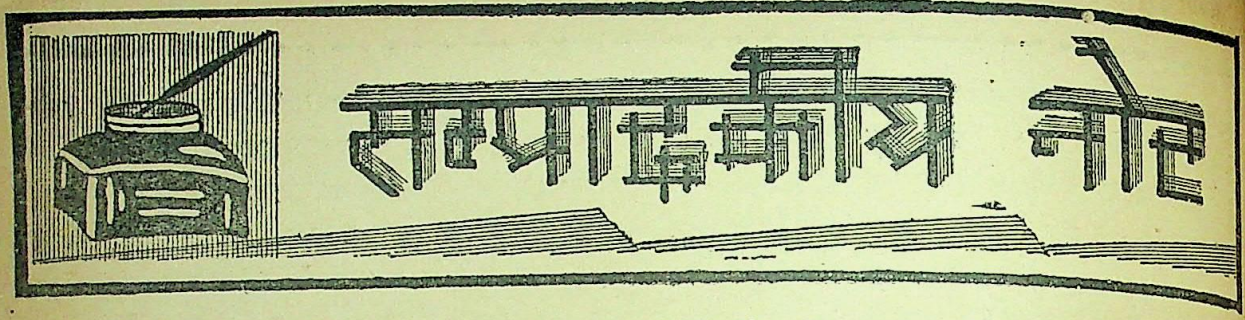

महात्मा गान्धी की पराजय नहीं, विजय

महात्मा गान्धी कोरे भगवद्भक्त महात्मा ही नहीं हैं, वे उतने ही विचक्षण राजनीतिज्ञ भी हैं और अपनी इस विशिष्टता का वे बार-बार परिचय भी दे चुके हैं। अभी हाल में उसका परिचय कहीं अधिक सफलता के साथ एक बार फिर मिला है। पिछले दिनों कांग्रेस के अध्यक्ष के चुनाव को लेकर कांग्रेस के प्रमुख व्यक्तियों में जो संघर्ष हुआ था उसमें महात्मा जी के अनुयायी बुरी तरह हार गये। परन्तु उनकी हार को अपनी हार मानकर महात्मा जी ने जो विजय प्राप्त की है, देश के राजनीति के इतिहास में सदैव अनूठी मानी जायगी। इस बार उन्होंने एक ही तीर से दो शिकार मार गिराये। जब उन्होंने देखा कि कांग्रेस के प्रतिनिधियों पर उनके प्रमुख अनुयायियों का वैसा प्रभाव नहीं है, तब वे झट मैदान में कूद पड़े। राजकोट में जो सत्याग्रह छिड़ा हुआ था उसको स्थगित करवा कर वे खुद वहाँ जा पहुँचे और वहाँ के अधिकारियों से भेंट-मुलाक़ात करने के बाद इस बात पर आमरण उपवास शुरू कर दिया कि राजकोट के राजा ने अपना वचन भंग किया है। कोई नहीं जानता था कि महात्मा जी अपने अमोघ अस्त्र का इस अवसर पर प्रयोग करेंगे। उनके उपवास का प्रारम्भ करते ही सारे देश में तहलका मच गया। यहाँ तक वायसराय महोदय को शीघ्र ही हस्तक्षेप करना पड़ा। उन्होंने महात्मा जी को पत्र लिखकर आश्वासन दिया कि राजकोट के राजा को अपने वचन का पालन करना पड़ेगा, आप अपना अनशन तोड़ दें और मुझसे आकर दिल्ली में मिलें। महात्मा जी के उपवास की इस सफलता का प्रभाव कांग्रेस के त्रिपुरी के अधिवेशन पर कहीं अधिक पड़ा। कांग्रेस के जिन प्रतिनिधियों ने कार्य-समिति के सदस्यों के आदेश के विरुद्ध अगले साल के लिए सुभाष बाबू को पुनः अपना अध्यक्ष मनोनीत किया था उन्हीं प्रतिनिधियों ने महात्मा जी की बढ़ती हुई कला को देखकर उनको मँझधार में छोड़ दिया और महात्मा गान्धी को अपना सर्वेसर्वा स्वीकार कर अपने उस सिद्धान्त की उपेक्षा कर डाली जिसकी रक्षा करने के लिए वे आगे आये थे।

इस घटना के परिणाम से तो यही प्रकट होता है कि महात्मा गान्धी कितने महान् और कितने कुशल राजनीतिज्ञ हैं। ऐसी दशा में उनकी उक्त पराजय भी विजय ही सिद्ध होती है। और जब तक वे जीवित हैं, उन्हें अन्त तक प्रत्येक कार्य में ऐसी ही विजय प्राप्त होती जायगी। कहाँ उनके राजकोट जाने के पहले ऐसा जान पड़ता था कि इस बार त्रिपुरी में कांग्रेस में भारी फूट हो जायगी, कहाँ उनके राजकोट के उपवास ने सारी स्थिति को ही बदल दिया। त्रिपुरी की कांग्रेस के क्षेत्र का वायुमण्डल महात्मा जी की महत्ता से एक बार कैसे गुञ्जायमान हो गया और जो लोग उनके अनुयायियों से भिड़ने के भाव में थे उनमें से अधिकांश महात्मा जी के पक्ष में कैसे हो गये, इसका रहस्य जानना कठिन है, तथापि यह सब राजकोट की समस्या के हल से भी अधिक महत्त्व का हुआ है और यही महात्मा जी की पराजय की सबसे बड़ी विजय है। त्रिपुरी के कांग्रेस के अधिवेशन में पण्डित गोविन्द-वल्लभ पन्त का जो प्रस्ताव पास हुआ है उसके द्वारा महात्मा गान्धी कांग्रेस के सर्वेसर्वा घोषित किये गये हैं, साथ ही राष्ट्रपति से कहा गया है कि वे महात्मा गान्धी की स्वीकृति से अपनी कार्य-समिति का निर्माण करें। इस समय भारत की राजनीति की जो स्थिति है उसको देखते हुए उक्त व्यवस्था सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होती है और महात्मा गान्धी के नेतृत्व में उसका शान्ति के साथ निर्वाह भी हो जायगा। यही सब समझ-बूझ कर यह कार्य किया गया है। यह बात दूसरी है कि इस कार्यवाही से प्रजातंत्र की भावना को भारी ठेस पहुँचती हो। फिर इस समय संसार में प्रजातंत्र का महत्त्व माना ही कहाँ जा रहा है। चाहे जो हो, पिछले दिनों इस सिलसिले में जो अप्रत्याशित कर घटनायें हुई हैं उनसे एक बार यह फिर सिद्ध हो गया है कि चाहे इच्छा से हो, चाहे अनिच्छा से हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गान्धी जी के विरोधी भी उनके साथ हैं, जैसा कि त्रिपुरी के कांग्रेस के अधिवेशन ने भले प्रकार सिद्ध कर दिया है। इसमें सन्देह नहीं है कि महात्मा गान्धी ही भारत के एकमात्र सर्वप्रधान नेता हैं।

त्रिपुरी का कांग्रेस-अधिवेशन

कांग्रेस का बावनवाँ अधिवेशन इस बार मध्यप्रदेश के जबलपुर के पास त्रिपुरी (तेवर) नामक स्थान में गत वर्ष के राष्ट्रपति श्रीयुत सुभाषचन्द्र बसु के सभापतित्व में हो गया। सुभाष बाबू ही इस वर्ष के लिए भी कांग्रेस के प्रतिनिधियों-द्वारा उसके सभापति बहुमत से मनोनीत हुए थे, यद्यपि कांग्रेस के सूत्रधार यह नहीं चाहते थे कि वे दूसरी बार इस वर्ष भी उसके अध्यक्ष बनाये जायँ। और यह बात इतना अधिक तूल पकड़ गई कि कांग्रेस का यह अधिवेशन उसके उपयुक्त कहाँ तक रहा, यह कहना कठिन है। आज भारत के ११ प्रान्तों में से ७ प्रान्तों का शासन-सूत्र कांग्रेस के हाथ में है, जिसको देखते हुए उसकी शक्ति और क्षमता का अनुमान भले प्रकार किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में जानकार लोगों को आशा थी कि त्रिपुरी के अधिवेशन में बल-सम्पन्न कांग्रेस अपनी शक्ति का समुचित रीति से परिचय देगी और देश स्वाधीनता के पथ पर आगे बढ़ेगा। परन्तु राष्ट्रपति के चुनाव को लेकर भारत की राजनीति में एकाएक संघर्ष का भाव उठ खड़ा हुआ, जिसका सबसे भयानक परिणाम यह हुआ कि इस वर्ष कांग्रेस देश के आगे कोई ठोस योजना न उपस्थित कर सकी, क्योंकि उसके सूत्रधार एकमात्र प्रतिनिधियों का विश्वास प्राप्त करने के काम में ही संलग्न रहे। इस प्रसंग में सबसे अधिक दुःख की यह बात हुई कि अपनी बीमारी के कारण राष्ट्रपति कांग्रेस के अधिवेशन में उपस्थित न हो सके। और उनकी अनुपस्थिति में माननीय पन्त जी का वह प्रस्ताव पास हो गया जिसके द्वारा गत वर्ष की कार्य-समिति से पदत्याग करनेवाले सदस्यों पर विश्वास प्रकट किया गया और यह आदेश दिया गया कि राष्ट्रपति अपनी कार्य-समिति महात्मा गान्धी के निर्देशानुसार बनायें। वस्तुतः त्रिपुरी की कांग्रेस का यही सर्वप्रधान प्रस्ताव था और इसके पास हो जाने से यह प्रकट हो गया कि कांग्रेस में साम्यवादियों का बहुमत नहीं है। यही नहीं इस, अधिवेशन से इस बात का भी संकेत मिल गया कि कांग्रेस का बहुमत कांग्रेस के राष्ट्र-निर्माण के वर्तमान कार्यक्रम के आगे क़दम रखना नहीं चाहता।

यों कांग्रेस के इस अधिवेशन में काफ़ी धूम-धाम रही। कोई दो लाख प्रतिनिधियों एवं दर्शकों ने उसके खुले अधिवेशन में भाग लिया। उपर्युक्त प्रस्ताव पर विषयनिर्वाचिनी समिति में जिस प्रकार डटकर वाद-विवाद हुआ, खुले अधिवेशन में उसका शगल कुछ कम नहीं रहा। यही क्यों, खुले अधिवेशन में तो प्रस्ताव के विरोधियों ने बड़ा होहल्ला तक मचाया, जो सर्वथा अशोभन-कार्य था। ख़ैर, जो कुछ हुआ, हो गया, अब तो यही उचित है कि परिस्थिति सँभाली जाय और ऐसा प्रयत्न किया जाय कि राष्ट्र की सारी शक्ति दृढ़ता के साथ राष्ट्रोद्धार के कार्य में संलग्न हो।

जर्मनी की अनीति

पिछले महायुद्ध के बाद विजयी राष्ट्रों ने मध्य-योरप में ज़ेचो-स्लोवेकिया नाम के जिस नये प्रजातंत्र-राज्य की स्थापना की थी, बीस वर्ष बाद उसे हिटलर ने नष्ट कर अपनी अधीनता में ले लिया और उसके संस्थापक उनकी यह लीला चुपचाप देखते रहे। इस घटना से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि जर्मनी के वर्तमान सूत्रधार हर हिटलर अनीति के मार्ग के हिमायती हो गये हैं, आये दिन एक न एक नई बात करते ही रहते हैं। यहूदियों पर जो अत्याचार हो रहा है वह तो अब पुरानी बात हो गई है। अभी हाल में उन्होंने उस ज़ेचो-स्लोवेकिया के शेष भाग पर भी अधिकार कर लिया है जिसे म्यूनिच के समझौते के अनुसार उन्होंने खुद स्वतंत्र स्वीकार किया था। उस अवसर पर जब उन्होंने ज़ेचास्लोवेकिया के जर्मन-वसित प्रदेशों पर अधिकार करने का आयोजन किया था तब ब्रिटेन और फ्रांस ने उनकी कार्यवाही का तीव्र विरोध किया था। फलतः म्यूनिच में फ्रांस और ब्रिटेन के प्रधान मंत्रियों ने जाकर हर हिटलर और सिग्नर मुसोलिनी से समझौता किया, जिसके अनुसार बचे-खुचे ज़ेचोस्लोवेकिया की स्वतंत्रता मान ली गई। परन्तु आज हर हिटलर ने उस समझौते को फाड़ फेंका है और दलबल के साथ प्रेग पहुँच कर 'ज़ेचो स्लोवेकिया' का नाम शेष कर देने की घोषणा कर दी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार उन्होंने अनीति और अन्याय की हद कर दी है। ऐसी दशा में उनकी बात का ठिकाना तक नहीं रहा। और वे कब किस देश पर आक्रमण कर सकते हैं, कौन कह सकता है? जर्मनी के पड़ोस के छोटे छोटे राज्य उनके आतंक से सुख की नींद कैसे सोते होंगे जब ब्रिटेन और फ्रांस जैसे शक्तिशाली राष्ट्र तक अहर्निश त्रस्त रहते हैं? जर्मनी के वर्तमान अनीति-पूर्ण व्यवहारों से तो यही सिद्ध होता है कि महायुद्ध के सारे बलिदान व्यर्थ गये और स्वाधीनता के उपासकों को आत्मरक्षा के लिए पिछले महा-युद्ध की अपेक्षा कहीं अधिक स्वार्थत्याग करने को तैयार रहना होगा। क्योंकि यह अब एक प्रकट बात है कि जर्मनी उन सारे भूभागों को अपने अधिकार में किये बिना नहीं मानेगा, जो पड़ोस के दूसरे देशों के अन्तर्गत हैं, क्योंकि ज़ेचोस्लोवेकिया की इस पिछली घटना के बाद उसने लिथुआनिया से मेमेल भी ले लिया है। और यही क्यों? वह अपनी आवश्यकता के अनुसार उन देशों पर भी अधि-कार करने का उपक्रम करेगा जिन्हें वह अपने लिए उप-योगी समझेगा। आज का जर्मनी शक्तिशाली ही नहीं, दुराचारी भी है। इसी से उसने नीति और न्याय को उठाकर ताक पर रख दिया है। वह देखता है कि ब्रिटेन, फ्रांस और रूस उससे डर गये हैं और वे सबके सब मिल कर पहले की तरह उससे लड़ने को तैयार नहीं हैं, और पृथक पृथक् तो उससे कोई भी भिड़ने का साहस न करेगा। यही सब देख-भाल कर आज जर्मनी अनाचार और अनीति के मार्ग पर आरूढ़ है। यह पूर्ण स्पष्ट हो गया है कि अब योरप में समराग्नि की ज्वाला शीघ्र ही किसी दिन बड़े वेग से धधक उठना चाहती है। विश्वशान्ति आज जोखिम में है और उसकी रक्षा भगवान ही करें तो करें, वह मनुष्य के हाथ की बात अब नहीं रही।

फ़िलिस्तीन की विकट समस्या को हल करने के लिए लन्दन में जो आयोजन हाल में हुआ था वह भी पूर्णरूप से सफल नहीं हुआ। अरब देशों के तथा फ़िलिस्तीन के जो प्रतिनिधि तथा यहूदियों के जो प्रतिनिधि वहाँ एकत्र हुए थे उनमें आपस में जब समझौता नहीं हो सका तब ब्रिटिश सरकार को अपने प्रस्ताव रखने पड़े। उन प्रस्तावों से न यहूदी सहमत हुए, न अरब प्रतिनिधि। प्रारम्भ में अरबों ने इस मतलब से उन्हें स्वीकार कर लिया था कि उनके आधार पर फ़िलिस्तीन के बड़े मुफ़्ती से ब्रिटिश सरकार की बातचीत हो सकेगी। फलतः अरब प्रतिनिधियों के आग्रह पर ब्रिटिश सरकार ने वह सारी लिखापढ़ी प्रकाशित कर दी है जो महायुद्ध के समय अरब नेताओं से मिस्र के तत्कालीन हाई कमिश्नर मैकमेहन साहब की हुई थी। अरबों का कहना था कि उन्होंने फ़िलिस्तीन को अन्य अरब प्रदेशों की भाँति स्वाधीनता प्रदान करने का वचन दिया था। परन्तु जो पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ है उससे प्रकट होता है कि अदाना और मर्सीना के उत्तर ३७वीं डिगरी तक, पूर्व में फ़ारस की सीमा और फ़ारस की खाड़ी तक, दक्षिण में अदन को छोड़कर भारतीय समुद्र तक और पश्चिम में लालसागर और भूमध्यसागर तक अरब के प्रदेशों को स्वाधीनता प्रदान की जायगी। और उक्त पत्र-व्यवहार में मर्सीना और अलेक्ज़ेंड्रेटा के ज़िले एवं दमस्कस, होम्स, हामा और अलेपो के ज़िले के पश्चिम के भूभाग अलग रक्खे गये हैं। साथ ही इस लिखा-पढ़ी में फ़िलिस्तीन का उल्लेख नहीं हुआ है। जब स्वाधीनता प्रदान करने का समय आया और उक्त सीमा के भीतर के अरब प्रदेशों को स्वाधीनता दी गई तब फ़िलिस्तीन की स्वाधीनता का प्रश्न नहीं उठाया गया। १९१७ के नवम्बर में फ़िलिस्तीन में यहूदियों के बसाने और उसे यहूदी देश बनाने की घोषणा की गई थी। इसके लगभग ४ वर्ष बाद फ़िलिस्तीन का प्रश्न उठाया गया, जो अब अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक विकट प्रश्न हो गया है, यहाँ तक कि उसके सुलझाने का जितना ही प्रयत्न किया जाता है, वह और भी अधिक उलझ जाता है। लन्दन में इस समय उसके निपटारे का जो प्रयत्न हो रहा है उसमें भी ब्रिटिश सरकार को सफलता नहीं मिली है। यह बात दूसरी है कि शान्ति और व्यवस्था की स्थापना के लिए वह अपने ढंग से उसका निर्णय करने को बाध्य है। उसके निर्णय के अनुसार फ़िलिस्तीन एक स्वाधीन राज्य मान लिया गया है, पर वह स्वाधीन किया जायगा दस वर्ष के बाद। साथ ही वहाँ यहूदियों के बसाने जाने की बात छोड़ दी गई है और अगले पाँच वर्ष तक कुल ७५ हज़ार यहूदी वहाँ जाने पायेंगे। उसके बाद उनका वहाँ जाना यहूदियों और अरबों की इच्छा पर निर्भर होगा। इस तरह फ़िलिस्तीन के भाग्य का निर्णय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया। अब यह देखना है कि इस निर्णय से उस अभागे देश में स्थायी शान्ति स्थापित होती है या नहीं।

आन्ध्र का झंडा-प्रेम

भारत जैसे विशाल देश में प्रान्त-प्रेम का होना सर्वथा स्वाभाविक है। भारत में प्रान्त-प्रेम पहले भी था और आज भी है। यह बात भी है कि सर्वभारतीयता भी रही है और उसके साथ प्रान्तीयता भी। परन्तु आज प्रान्तीयता का निषेध किया जा रहा है। तो भी कहीं कहीं उसका विकृत रूप दिखाई पड़ जाता है। ऐसी विकृत प्रान्तीयता की चर्चा करने का यहाँ हमारा प्रयोजन नहीं है। यहाँ हम आन्ध्रों की प्रान्तीयता की एक उत्साहवर्द्धक बात का उल्लेख करना चाहते हैं। वह है उनका राष्ट्रीय पताकाओं का प्रेम। वे कांग्रेस के 'तिरंगे झंडे' को तो मानते ही हैं। इसके सिवा उन्होंने अपना आन्ध्रों का एक अलग तिरंगा झंडा १९३८ से चलाया है। यह हरे, लाल और सफ़ेद रंग का है। इसमें तीन फूल—कमल, कुमुदिनी और गुलाब बने हुए हैं तथा ढाल के नीचे भाला और तलवार। ढाल पर तेलुगू में 'आन्ध्र' लिखा हुआ है। इसके सिवा वहाँ के साम्यवादियों का हंसिये और हथौड़े का लाल झंडा, स्वराज्यवादियों का प्रणव और चक्र-युक्त लाल झंडा, जस्टिसदलवालों का बाँट-तराज़ू के चिह्न का लाल झण्डा अलग अलग फहराता है। इन नये झंडों के सिवा पुराने झंडे भी वहाँ अभी तक फहराते हैं। वहाँ के सबसे बड़े राज्य विजयनगर का पुराना झण्डा लाल रङ्ग का है और उसमें दोहरी तलवार का चिह्न है। पेरुर की ज़मींदारी का भी झंडा लाल है और उसमें सूर्य और चन्द्र की आकृतियाँ हैं। अन्य ज़मींदारियों के भी अपने अपने झंडे हैं—किसी का लाल, किसी का सफ़ेद तो किसी का पीला। इस प्रकार आन्ध्र एक प्रकार से झंडाप्रेमियों का प्रान्त है। और इस दिशा की उसकी प्रान्तीयता वास्तव में प्रशंसनीय है, क्योंकि झंडा का प्रेम एकता की भावना का प्रतीक है।

तीसरे दर्जे के यात्रियों का मूल्य

रेल के तीसरे दर्जे के यात्रियों को यात्रा में जो कष्ट भोगने पड़ते हैं वे सभी लोग जानते हैं—अधिकारी भी और लोक-नेता भी। परन्तु अभी तक उनके कष्ट दूर नहीं किये गये और वे ज्यों-के-त्यों बने हुए हैं। और सच पूछिए तो रेलों की सबसे अधिक आमदनी इन्हीं तीसरे दर्जे के यात्रियों से होती है, जिसका ब्योरा 'माडर्न रिव्यू' के सम्पादकीय में इस प्रकार दिया गया है—

रेलवे-बजट पर जो बहस हुई है उससे प्रकट होता है कि गत वर्ष भारत में रेलगाड़ियों से पहले दर्जे से ४ लाख, दूसरे दर्जे से ४२ लाख, ड्योढ़े से १ करोड़ १३ लाख और (तीसरे से) ५० करोड़ ५३ लाख यात्रियों ने यात्रा की। और रेलवेवालों को पहले दर्जे से ७९ लाख, दूसरे दर्जे से १४४ लाख, ड्योढ़े दर्जे से १२२ लाख और तीसरे दर्जे से २७६२ लाख रुपये की आय हुई।

रेलवे को तीसरे दर्जे से शेष तीनों दर्जों की अपेक्षा अठगुनी आय होती है, पर उसकी निगाह में तीसरे दर्जे के यात्रियों का कोई मूल्य ही नहीं।

क्या यही स्वराज्य है?

'नये इंडिया ऐक्ट' के अनुसार भारत के कुछ प्रान्तों को स्वराज्य दिया गया है। उसके अनुसार भारत के ११ प्रधान प्रान्तों में शासन प्रचलित है। इन प्रान्तों में क़ानून बनानेवाली जो नई सभायें स्थापित हैं उनका निर्माण प्रजा-द्वारा चुने हुए सदस्यों से हुआ है। इन सभाओं में जिस दल का बहुमत है उसका नेता प्रधान मंत्री बनाया गया है, जो अपने मन्त्रिमण्डल के द्वारा प्रान्त के शासन का परिचालन करता है। यही स्वराज्य प्रान्तों को दिया गया है।

परन्तु इस परिवर्तन से जनता के जीवन में क्या परिवर्तन हुआ है, यह बतलाना कठिन है। और साल-दो साल के भीतर कोई प्रजातंत्रात्मक शासन-प्रणाली चमत्कार का कोई काम कर भी क्या सकती है? यह तो तानाशाह ही कर सकते हैं। तब यदि इस शासन-परिवर्तन, अर्थात् स्वराज्य मिल जाने से सर्वसाधारण की स्थिति में विशेष उन्नति-मूलक परिवर्तन न हुआ हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

हम देखते हैं कि उपर्युक्त ११ प्रान्तों में प्रजा के प्रतिनिधियों की बड़ी बड़ी सभायें स्थापित हैं, जिनके प्रायः सभी सदस्य अपने अपने निर्वाचन-मण्डल के नेता या प्रसिद्ध लोकसेवक हैं तथा उनके मंत्रिमण्डल में एकमात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रधान प्रधान नेता ही रक्खे गये हैं। तब शिकायत किस बात की हो सकती है? यदि ये लोग जनता के जीवन को समुन्नत न बनावेंगे तो और कौन बनावेगा? जो वर्षों से देशसेवा के कार्य में लगे रहे हैं तथा जिन्होंने बहुत बड़ा त्याग किया है, साथ ही तरह तरह के कष्ट भी झेले हैं, वही जब अपने शासन-काल में 'सुराज्य' भी न क़ायम कर सकेंगे तो फिर उसका अस्तित्व में आना असम्भव ही है।

जहाँ तक दिखाई देता है, 'स्वराज्य' की कौन कहे, 'सुराज्य' भी अभी तक अस्तित्व में नहीं आ सका है। यही नहीं, हालत तो और भी ख़राब होती जा रही है, जिससे सुख-शान्ति का लोप सा हो गया है। वही लूट-मार, वही चोरी-चाण्डाली, वही त्रास और प्रतारणा ज्यों की त्यों बनी ही हुई नहीं है, किन्तु उनके अतिरिक्त और नये नये संकट उठ खड़े हुए हैं। हिन्दू-मुसलमानों के दंगों ने वर्ष के सभी त्योहारों के खुशी के दिनों को ग़म के दिनों में परिणत कर दिया है। ज़मींदारों और किसानों में भारी संघर्ष छिड़ा हुआ है। अछूत और सवर्ण एक होने के बजाय अलग होने के लिए छटपटा रहे हैं। उधर दरिद्रता की वृद्धि में ह्रास का चिह्न तक नहीं है। इस अवस्था को स्वराज्य का राज्य कहना उस पवित्र शब्द का उपहास करना होगा। तथापि लाचारी है, क्योंकि इस समय हमारे 'स्वराज्य' का रूप ऐसा ही है।

ऐसा क्यों है? इसलिए कि स्वराज्य-सरकार प्रजातंत्रात्मक सरकार है। इसके सिवा पहले की नौकरशाही के संगठन के भीतर रहकर ही उसे अपना काम-काज करना पड़ता है। और अँगरेज़ी नौकरशाही दफ़्तरी काम-काज में अपना सानी नहीं रखती। उसकी फ़ाइलबाज़ी जगत्प्रसिद्ध है। हमारे लोक-नेता सरकार के घर पहुँच कर उसी फ़ाइल-बाज़ी के जाल में फँस गये हैं, जिसका परिणाम यह हुआ है कि नौकरशाही का बोलबाला है।

देहातों में चौकीदार, पटवारी और ज़िलेदार पहले की ही भाँति राज कर रहे हैं। उनके कुचक्रों से प्रजाजन पूर्ववत् पीड़ित हैं। उनको इसका बोध अथवा अनुभव क्योंकर हो कि उनका जीवन स्वराज्य के शासन में बीत रहा है। हाँ, किसानों को अलबत्ता कुछ राहत मिली है, पर वह भी केवल उन्हीं को, जो पट्टेदार हैं। और यह राहत भी मिली है केवल लगान के देने के सम्बन्ध में। बाक़ी सब संकट पहले की तरह बने हुए हैं। वे अशिक्षित हैं और अशिक्षितों में जो कमज़ोरियाँ होती हैं वे सब उनमें हैं। तब वे चौकीदार, पटवारी, ज़िलेदार आदि के त्रास से त्रस्त हैं तो यह स्वाभाविक ही है। ऐसी दशा में इस बात की आशा कैसे की जा सकती है कि हमारे लोकनेता शासन के प्रमुख सञ्चालक होकर भी हमारे कष्टों को दूरकर 'सुराज' की स्थापना आसानी से कर लेंगे? और यही वह अवस्था है जिसे देखकर कहना पड़ता है कि क्या यही स्वराज्य है?

प्रान्तीय सरकार के इंजीनियरिंग-विभाग की रिपोर्ट

हमारे प्रान्त की सरकारी की सड़कों तथा इमारतों के मुहकमे की सन् १९३७-३८ की रिपोर्ट पिछले दिनों प्रकाशित हुई है। इसे देखने से ज्ञात होता है कि प्रान्तीय सरकार को सड़कों के सुधार के लिए केन्द्रीय सरकार से ३,४०,०००) इस वर्ष प्राप्त हुए हैं। १,५५,८६३) पिछले वर्ष की इसी मद में मिली हुई रक़म में से शेष थे। इस प्रकार कुल मिलाकर ४,९५,८६३) केन्द्रीय सरकार से मिले। इनके अतिरिक्त ४,३१,२९०) केन्द्रीय सड़क-सुधार कोष से मिले। कुल योग ९,२७,१५३) होगया। व्यय के विवरण में दिखाया गया है कि ८,९६,१३८) कुल सड़कों के पुनर्निर्माण व पुल आदि के बनाने में व्यय किये गये। इस व्यय से सुधरनेवाली सड़कों की लम्बाई २२५ मील है। इसके सिवा ६,२५३ मील की मरम्मत प्रान्तीय सरकार के कोष से भी की गई है। मेरठ-डिवीज़न में ग्रैंड ट्रक-रोड के पुनर्निर्माण तथा कानपुर-डिवीज़न की कुछ सड़कों को फिर से सुधारने में प्रान्तीय सरकार के राजस्व से क्रमशः २६,०००) तथा १४७००) ख़र्च किये गये।

सड़कों की साधारण मरम्मत में जो रुपया व्यय हुआ है उसका औसत ७५७) प्रतिमील पड़ा है। ऐसी मरम्मत की मद में साल भर में कुल २५,६६,१२०) व्यय किये गये हैं।

इमारतों की मद में ख़र्च होनेवाले रुपये का विवरण इस प्रकार है। सरकार के विभिन्न-विभागों के लिए आवश्यक इमारतें बनवाने में इस वर्ष ६,५२,१७९) व्यय किये गये हैं। गवनर महोदय के चीफ़ सेक्रेटरी के लिए लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नऊ में एक वासस्थान बनवाना आरम्भ किया गया है, जिसका अनुमित व्यय ३३,६६२) है। इनमें से ३१,१०५) इस वर्ष व्यय किये गये हैं। लखनऊ के कौंसिल-भवन के विस्तार में भी ५,०८,५०४) व्यय हुए। इसी प्रकार कहीं थाने बनवाये गये, कहीं तहसीलें, कहीं ख़ज़ाने के दफ़्तर। पुरानी इमारतों की मरम्मत के लिए भी ख़ासी रक़म ख़र्च की गई। इन इमारतों की देखरेख के लिए जो अफ़सर रक्खे गये तथा जिन्होंने नक़्शे आदि बनाये, एवं हिसाब-किताब लिखा, उनका वेतन इस व्यय में सम्मिलित नहीं है।

रिपोर्ट में यह भी सूचित कर दिया गया है कि धनाभाव के कारण इस वर्ष प्रान्त में कोई नई सड़क नहीं बनाई जा सकी। हाँ, देहरादून फ़ौजी कालेज के सामनेवाली सड़क की पटरियाँ, जो कच्ची थीं और जिनसे धूल उड़-उड़ कर कालेज में पहुँचती थी और गोरे अफ़सरों के सुनहरे केशों व वस्त्रों में भर जाती थी, ११,९८५) लगाकर पक्की करा दी गई हैं। इस प्रकार फ़ौजी कालेजवालों की एक बहुत बड़ी तकलीफ़ दूर हो गई। ऐसा कौन समझदार आदमी होगा जो मुहकमे की इस हमदर्दी और उदारता की प्रशंसा न करे।

महर्षि शिवव्रतलाल जी का स्वर्गवास

गत २३ फ़रवरी को ७८ वर्ष की आयु में महर्षि शिवव्रतलाल वर्मन का मिर्ज़ापुर में देहान्त हो गया। महर्षि जी राधास्वामी-सम्प्रदाय के एक विशेष दल के प्रवर्तक व आचार्य थे। आपका अध्ययन बहुत गम्भीर तथा विशाल था। अध्यात्म तथा धार्मिक विषयों पर आपने सैकड़ों पुस्तकें लिखी हैं और अपने जीवन-काल में लगभग १६ पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया है। आपकी पुस्तकें धर्म-साहित्य के प्रेमियों में आदर के साथ पढ़ी जाती हैं। प्रारम्भ में आप उर्दू में लिखते थे। बाद में आपने अपनी रचनायें हिन्दी में प्रकाशित कीं। आपका 'शाही लकड़हारा' एक प्रसिद्ध रचना है। आपका हिन्दी के प्रति विशेष अनुराग था। आपने अपनी मृत्यु-तिथि की सूचना महीनों पूर्व से दे दी थी और स्वयं अपने हाथों से अपना मरसिया भी लिख दिया था, जिसका एक शेर यह है—

है दिल में पूरी इस्तग़ना किसी से क्या ग़रज़ हमको
न हम दरबार में आये न हम सरकार में आये।

युक्तप्रान्तीय सरकार का नया बजट

युक्तप्रान्तीय सरकार के नये साल के बजट की लोकोपयोगिता के विषय में इतना लिखना ही पर्याप्त है कि हमारे प्रान्त की सरकार किसानों और मज़दूरों की भलाई के लिए अधिक-से-अधिक व्यय करना चाहती है। ग्रामीणों की सब प्रकार की उन्नति करने के लिए उसने जिन योजनाओं को चलाया है और उन पर जिस उदारता से वह व्यय कर रही है उन्हें देखते हुए हम अपने प्रधान और अर्थमन्त्री माननीय पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। बजट का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

इस वर्ष की अनुमित आय १३,३१,४४,९८७ रुपये है।

(१९३९-४०)

और अनुमित व्यय १३,६९,३८,४२२ रुपये है।

इस प्रकार अनुमित घाटा होगा ३७,९३,४३५ रुपये।

घाटे की पूर्ति के लिए सरकार ने दो नये कर लगाये हैं। एक तो पेट्रोल की बिक्री पर और दूसरा लम्बी तनख़्वाह पानेवालों के वेतन पर। इन करों से क्रमशः आठ लाख और तीस लाख रुपये की आमदनी का अनुमान लगाया गया है। इनमें से पेट्रोल की आमदनी तो आयखाते में जमा भी कर ली गई है। बजट में ४५,९३,४३५) के घाटा का अनुमान था। तनख़्वाहों का कर निकाल कर सरकार को कुल ८ लाख रुपये की घटी और रहती है, जिसे सरकार अपने ख़र्च में किफ़ायत करके पूरा करेगी। बजट के आँकड़ों से पता लगता है कि इस साल ५४ लाख रुपये का व्यय बढ़ाया गया है। इसका औचित्य समझने के लिए हम नीचे कुछ मदों का विवरण देते हैं :—

छोटे नौकरों का वेतन बढ़ाने के लिए १२ लाख।

न्याय और शासन-विभाग पृथक् करने के लिए २५ हज़ार।

जेल-सुधार के लिए १ लाख ८७ हज़ार ३ सौ पचास रुपये।

हरिजनों को छात्रवृत्तियाँ देने को ६५ हज़ार।

हिन्दू-विश्व-विद्यालय को ७५ हज़ार।

स्त्री-शिक्षा-प्रचार के लिए २५ हज़ार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औषधालयों आदि के लिए १ लाख

बनारस में इम्प्रूवमेंट-ट्रस्ट स्थापित करने के लिए २० हज़ार।

छोटे खेतों के एकीकरण तथा सहयोग-कृषि-प्रचार के लिए ७५ हज़ार।

ऊसर को उपजाऊ बनाने के लिए ५० हज़ार।

काँच-व्यवसाय के लिए १ लाख।

गुड़-व्यवसाय के लिए ६० हज़ार।

छाते की मूठियाँ बनाने को २५ हज़ार।

युवकों को नये उद्योग-धंधों में लगाने को ४० हज़ार इत्यादि।

शेष मदें भी प्रायः ऐसी ही हैं। इनमें से ३९ लाख रुपया तो प्रतिवार्षिक व्यय है और १५ लाख एक वार्षिक। पर केवल व्यय के बढ़ाने से ही तो देश-सेवा नहीं हो जाती। उसके लिए आय के बढ़ाने का भी मार्ग निकालना पड़ता है। स्पष्ट है कि सरकार को प्रजा के कर-से ही आमदनी होती है, कहीं आसमान से फट नहीं पड़ती। इसके लिए सरकार ने उपर्युक्त नये कर लगाये हैं—

इनमें से पेट्रोल-कर की उपयोगिता निर्विवाद है। सरकार प्रान्त में सड़कें और पुल आदि बनाने में करोड़ों रुपया व्यय करना चाहती है। यह रक़म प्रान्त की साधारण आय से नहीं मिल सकती। पन्त जी का कथन है कि पेट्रोल-कर से होनेवाली आय का उपयोग इसी मद में किया जायगा। एक गैलन पर दो आने कर लगाने से २० मुसाफ़िरों अथवा ४० मन बोझ पर प्रतिमील एक पैसा व्यय बढ़ता है, यदि लारीवाले बेईमानी करके मुसाफ़िरों से अधिक वसूल न करने लगें। दूसरा कर वेतन पर है जो २५००) प्रतिवर्ष या उससे अधिक वेतन पर लगाया गया है। स्पष्ट है कि सरकार उच्च वेतनभोगियों की तनख़्वाह कम नहीं कर सकती। इसलिए उसने इस युक्ति से काम लिया है। छोटे नौकरों की तनख़्वाह बढ़ाने का १२ लाख रुपया इसी में से तो निकाला जायगा। फिर सरकार की विस्तृत उपयोगी योजनाओं को देखते हुए ये कर नगण्य हैं। इस प्रान्त में जिस तेज़ी से नशा-निवारण का काम हो रहा है, ग्रामीणों का सुधार और शिक्षण और स्वास्थ्य के लिए जो योजनायें चल रही हैं, उनको देखते हुए ३८ लाख के ये कर सर्वथा उचित हैं। मदरास आदि प्रान्तों की सरकारों ने तो इनसे कहीं अधिक कर लगाये हैं, फिर भी उनकी अपेक्षा हमारे प्रान्त के नये सुधारों में कहीं सफलता मिली है। यह हमारे प्रान्त के माननीय मन्त्रियों की बुद्धिमत्ता का ज्वलन्त प्रमाण है।

मनुष्य के विविध खाद्यों का चूहों पर प्रभाव

गत नवम्बर मास के "न्यूज़-रिव्यू" नामक पत्र में खाद्यों के एक प्रयोग का विवरण छपा था। डाक्टर सर राबर्ट ने जो खाद्यों के विशेषज्ञ हैं, एक ही ख़ान्दान के चूहे छाँट लिये और उनमें से, एक-एक को अँगरेज़ी, फ्रेंच, जापानी, पठानी और मद्रासी खाना खिलाने लगे। यह ध्यान देने की बात है, कि जिस चूहे को फ्रेंच खाना खिलाया जाता था, उसे 'पाट-आं-फ्यु' नामक खाद्य दिया जाने लगा। इसमें चर्बी बहुत रहती है तथा चटनी मिला मांस और अन्त में तर कर सलाद दिया गया। यह चूहा नाटा और मोटा हुआ। उसके केश और गलमुच्छे तेल से चिकने निकले। जापानी खाना जिसे खिलाया जाता था, उसे ख़ूब पालिस किया हुआ चावल, मछली और केंकड़ा खिलाया गया। यह छोटा और पतला हुआ। पर इसमें बहुत अधिक शक्ति तथा चंचलता दिखाई दी। जिसे मद्रासी खाना, भात, लाल मिर्चा, इमली, सूखी मछली और काँजी खिलाई गई, वह बड़े चूहे के आकार से अधिक न बढ़ा, पर यह पूर्ण स्वस्थ था। पठानी खाना—खट्टा दही, कुछ मांस, केवल गेहूँ की रोटी, आलू बहुत सी सब्ज़ियाँ—जिसे खिलाया गया, वह ख़ूब बढ़ा हुआ, उसके रोएँ नरम और चिकने हुए पर यह बहुत शान्त रहता था और आपस में खेल-कूद में भी सम्मिलित न होता था। अन्त में जिस चूहे को अँगरेज़ों का जातीय भोजन—सफ़ेद रोटी, उबाला गोश्त, मछली, साग-सब्ज़ी और चाय—खिलाया गया, वह सबमें अच्छा निकला। वह ख़ूब सुदृढ़ और स्वस्थ हुआ, उसके केश और गलमुच्छे रूखे तथा कड़े कड़े हुए, तथा इसमें लड़ने भिड़ने के भाव भी ख़ूब अधिक था।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., ALLAHABAD.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध की डायरी

२२ नवम्बर—एक ग्रीक और एक इटालियन जहाज़ सुरंग से टकरा कर डूब गये। एक अँगरेज़ी जंगी जहाज़ भी डुबा दिया गया। एक जर्मन जहाज़ और दो जर्मन ग़ोताख़ोर भी डुबा दिये गये।

पश्चिमी मोर्चे पर ज़मीन पर तो वैसी ही शान्ति है पर हवाई युद्ध काफ़ी ज़ोर का हुआ—फलस्वरूप पाँच जर्मनी के और एक फ़्रांस का हवाई जहाज़ नष्ट हुए। हीटलैंड-क्षेत्र पर जर्मन हवाई हमला हुआ, जिससे आग लग गई, पर कोई जान नहीं गई। एसेक्स पर भी ऐसा ही एक हमला हुआ।

२३ नवम्बर—पाँच छोटे-बड़े अँगरेज़ी जहाज़ जर्मनी द्वारा डुबा दिये गये! एक फ़्रेंच मछुआ जहाज भी डुबा दिया गया।

पश्चिमी मोर्चे पर हवाई युद्ध हुआ, जिसमें ८ जर्मन हवाई जहाज़ नष्ट हुए। मित्रराष्ट्रों का भी कुछ नुक़सान हुआ।

२४ नवम्बर—एक जर्मन ग़ोताख़ोर डुबा दिया गया। ८,८८६ टन का एक और ब्रिटिश जहाज़ सुरंग से टकरा कर डूब गया।

हीटलैंड पर दो जर्मन हवाई हमले हुए। नौ बम गिराये गये।

२५ नवम्बर—दक्षिणी एटलान्टिक समुद्र में एक जर्मन जहाज़ ने ख़ुद को डुबा लिया।

२६ नवम्बर—जर्मन हवाई जहाज़ों ने दो बार अँगरेज़ी जंगी बेड़े पर हमले किये।

१७ हज़ार टन का रावलपिंडी नामक सशस्त्र व्यापारिक जहाज़, १४ हज़ार टन का अँगरेज़ी सेना का पोल जहाज़ और तीन दूसरे छोटे जहाज़ डुबा दिये गये।

२७ नवम्बर—६ जहाज़ डुबो दिये गये। इन में तीन जर्मनी के थे जो बंदी बनाकर अँगरेज़ी बंदरगाहों पर लाये जा रहे थे।

२८ नवम्बर—रूस के इच्छानुसार फ़िनलैंड ने अपनी फ़ौजें रूसी सीमा से २५ किलोमीटर दूर हटाना मंज़ूर कर लिया। तीन फ़िनिश सिपाही रूसी सेना-द्वारा बंदी बनाये गये।

२९ नवम्बर—दो जर्मन जहाज़ों को फ़्रांस की जल-सेना ने अपना बंदी बना लिया। एक अँगरेज़ी जहाज़ डुबाया गया।

फ़िनिश प्रस्तावों का उत्तर देते हुए रूसी घोषणा में फ़िनलैंड को आपसी आक्रमण न करने की रूस फ़िनलैंड संधि को तोड़ने के लिए ज़िम्मेवार ठहराया और कहा कि अब संधि से रूस अपने को बँधा हुआ नहीं समझता।

३० नवम्बर—सुबह रूस की फ़ौजें हमला करने के लिए फ़िनलैंड की सीमा में घुसीं। फ़िनिश राजधानी पर रूसी जहाज़ भी उड़े।

फ़िनिश राजधानी का रूसी राजदूत भी वापस रूस बुला लिया गया।

फ़िनिश प्रेसीडेन्ट ने अपने यहाँ युद्ध-काल की घोषणा कर दी।

१ दिसम्बर—फ़िनिश सरकार ने इस्तीफ़ा दे दिया। एक गुड़िया सरकार एम० रेटी को प्रधान मंत्री और डाक्टर टेनर को विदेश-मंत्री बनाकर स्थापित हुई। इन्होंने सोवियट के साथ संधि-वार्ता आरम्भ की। रूसी सेनाओं ने पेटसामो पर अधिकार कर लिया और हैंगो व विबर्ग पर गोले गिराये। फ़िनिश जहाज़ मरकेटर और ब्रिटिश जहाज़ डालरयाड सुरंगों से टकराकर डूब गये।

३ दिसम्बर—लायोगा झील के उत्तर में रूसी व फ़िनिश सेनाओं में घनघोर युद्ध हुआ। ब्रिटिश वायुयानों ने हेलिगोलैंड के नज़दीक एक जर्मन जहाज़ को डुबा दिया। ४ जर्मन बोट भी डुबाये गये। नार्वे का जहाज 'आर्कतूरस' माइन से टकरा कर डूब गया।

४ दिसम्बर—जर्मनी का एक जहाज़ सुरंग से टकरा कर डूब गया। एस्केडीन, डोरिंग, स्टार व नेम्स्टर्ली नामक ब्रिटिश व रूडोल्ड नामक स्वीडन के जहाज़ डूब गये।

६ दिसम्बर—लारेन फ़्रांट पर २० मील की चौड़ाई में जर्मनों ने २४ घंटे में ६ बार आक्रमण किये, पर विफल कर दिये गये। ब्रिटिश लड़ाकू जहाज़ों ने एक ७,८३४ टन के जर्मन जहाज़ 'उस्सूकूमा' को पकड़ लिया।

७ दिसम्बर—१ ग्रीस का, १ नार्वे का, १ डेनमार्क का, १ डच स्टीमर डूब गये।

८ दिसम्बर—ब्रिटिश हवाई जहाज़ों ने एक जर्मन पनडुब्बी को डुबा दिया। ३ ब्रिटिश जहाज़ डूब गये। रूसी सेनाओं ने फ़िनलैंड के सूरसारी द्वीप पर क़ब्ज़ा कर लिया।

१० दिसम्बर—रूसी सेना कारेलिया में पहुँच गई। हागलैंड पर उसका अधिकार हो गया। ब्रिटेन के बादशाह युद्ध-क्षेत्र का निरीक्षण करके वापस आ गये।

११ दिसम्बर—राष्ट्र-संघ में फ़िनलैंड की अपील पर विचार किया गया। सोवियट रूस ने उस बैठक का बहिष्कार किया। ब्रिटेन के ३ जहाज़ डुबा दिये गये। दो जहाज़ तटस्थ देशों के भी डूबे।

१२ दिसम्बर—रूस ने राष्ट्रसंघ के प्रस्ताव को—रूस फ़िनलैंड से अपनी सेनायें लौटा ले—ठुकरा दिया।

१३ दिसम्बर—तोलवाजेरवी के स्थान पर रूसी व फ़िन सेना में युद्ध हुआ।

१४ दिसम्बर—राष्ट्र-संघ ने रूस को संघ से बाहर करने का प्रस्ताव बहुमत से पास कर दिया। 'ग्राफ्सी' नामक जर्मन जहाज़ को ब्रिटिश स्टीमरों ने 'मांटिवीडियो' के पास घेर लिया।

१५ दिसम्बर—फ़िनलैंड ने रेडियो-द्वारा रूस से सुलह की अपील की।

Printed and published by K. Mitra, at The Indian Press, Ltd. ALLAHABAD.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताक़त और जवानी को क़ायम रखने के लिए

ओकासा खाइये

जीवन का आनन्द

इन्सान मर्द हो या औरत तभी जीवन का पूरा आनन्द प्राप्त कर सकता है जब उसकी ताक़त और जवानी क़ायम हो। ज्यों उम्र बढ़ती जाती है इन्सान की हर ताक़त अमूमन जिन पर जीवन के आनन्द का दारोमदार है कम होती जाती है औरत बुड्ढी होती जाती है और मर्द कमज़ोर। साइन्स की जदीद तहक़ीक़ात से क़ुदरत के वह गुप्त राज मालूम हो गये हैं जिनसे आप अपनी जवानी और ताक़त को अर्सा दराज़ तक क़ायम रख सकते हैं। जर्मनी के मशहूर डाक्टर लाहोजन ने इसके लिए एक मशहूर और बे नज़ीर दवा जिसको **ओकासा** कहते हैं ईजाद की है। **ओकासा** के इस्तेमाल से आप तमाम उन मरकज़ों पर जिन पर कि आपकी ताक़त और जवानी का दारोमदार है ताक़त पहुँचेगी। ओकासा कोई गर्मी पैदा करनेवाली दवा नहीं है वह जिस्म के अन्दर के ग्लांडस (Glands) के लिये ग़िज़ा है। आज ही से ओकासा खाना शुरू कर दीजिये।

सावधान

ओकासा की क़ीमत में कोई ज़्यादती नहीं हुई है। १०० गोलियों की क़ीमत १०) और ३० गोलियों की क़ीमत ३।।।) । अगर कोई भी दूकानदार इससे ज़्यादा मांगें तो सीधे

ओकासा कम्पनी लिमिटेड, पोस्टबक्स ३९६, बम्बई से मँगवाइये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

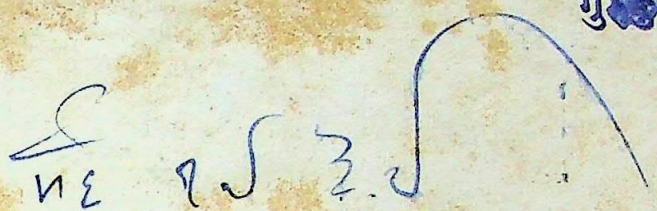

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युगावतार गांधी

[चित्रकार श्रीयुत नन्दलाल बसु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गुरुकुल कांगड़ी

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्रदेव

मई १९३९ | भाग ४०, खंड १ संख्या ५, पूर्ण संख्या ४७३ | वैशाख १९९६

युगावतार गांधी

लेखक, श्रीयुत सोहनलाल द्विवेदी

चल पड़े जिधर दो डग, मग में
चल पड़े कोटि पग उसी ओर,
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि,
गड़ गये कोटि दृग उसी ओर।

जिसके सिर पर निज धरा हाथ,
उसके सिर-रक्षक कोटि हाथ;
जिस पर निज मस्तक झुका दिया,
झुक गये उसी पर कोटि माथ!

हे कोटिचरण, हे कोटिबाहु,
हे कोटिरूप, हे कोटिनाम!
तुम एक मूर्त्ति, प्रतिमूर्त्ति कोटि—
हे कोटिमूर्त्ति, तुमको प्रणाम!

युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख,
युग हटा तुम्हारी भृकुटि देख;
तुम अचल मेखला बन भू की,
खींचते काल पर अमिट रेख।

तुम बोल उठे, युग बोल उठा
तुम मौन रहे, युग मौन बना
कुछ कर्म तुम्हारे कर संचित
युगकर्म जगा, युगधर्म तना।

युगपरिवर्त्तक, युगसंस्थापक,
युगसंचालक, हे युगाधार!
युग निर्माता, युगमूर्त्ति तुम्हें—
युग-युग तक युग का नमस्कार!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माननीय न्याय-मंत्री

लेखक, श्रीयुत आत्मानन्द मिश्र, एम० ए०, एल-एल० बी०, विशारद

सेम्बली के अध्यक्ष ने ज्यों ही कहा—'माननीय न्याय-मन्त्री' कि तुरन्त ही उनकी दाहनी ओर पहली पंक्ति की तीसरी सीट पर बैठे स्वच्छ श्वेत शेरवानी, पायजामा और नुकीली टोपी से विभूषित एक दुबले पतले व्यक्ति नाक पर ऐनक सँभालते हुए, उठ खड़े होते हैं। सामने रक्खी फ़ाइल से कुछ पढ़कर बे चट अपनी ऐनक उतार कर, कमर के पीछे हाथ बाँधकर, सदस्यों के पूरक प्रश्नों की बौछार का मोचा लेने को तत्पर हो जाते हैं। प्रश्नावली के समाप्त होते ही वे डेस्क के बराबर ऊँचे फ़ाइलों के ढेर में फिर पूर्ववत् निमग्न हो जाते हैं। बीच बीच में ये लिखना छोड़ कर व्यवस्थापिका-पारिषद् के कार्य-क्रम को सुनने लगते हैं। यद्यपि देखने में वे बड़े गम्भीर तथा रसविहीन जान पड़ते हैं, तथापि अवसर पड़ने पर अपनी विनोदप्रियता का प्रमाण देने में नहीं चूकते। ये हैं संयुक्तप्रान्तीय मंत्रिमण्डल के एक अमूल्य रत्न—माननीय डाक्टर कैलासनाथ काटजू, एम० ए०, एल-एल० डी०।

मन्त्रिपद उनके लिए कोई नई वस्तु नहीं है। इस पद का उत्तरदायित्व सँभालने की शक्ति उनको वंशपरम्परा-द्वारा प्राप्त है। आपसे तीन-चार पीढ़ी पहले आपके पूर्वज मध्यप्रान्त-स्थित झाराराज्य के उच्च पदाधिकारी होते चले आये हैं। उनके पिता पण्डित त्रिभुवननाथ काटजू आज दिन भी राज्य के मालमंत्री के पद को सुशोभित कर रहे हैं। पण्डित कैलासनाथ काटजू का जन्म इसी राज्य में सन् १८८७ ई० में एक उच्च काश्मीरी घराने में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर पाकर उन्होंने राज्य के सरकारी स्कूल में अध्ययन प्रारम्भ किया। सन् १९०१ में वे लाहौर चले गये, जहाँ उन्होंने रंगमहल हाई स्कूल से मैट्रिक परीक्षा उच्च श्रेणी में पास की। तत्पश्चात् लाहौर के फ़ोरमैन क्रिश्चयन कालेज में भरती हुए। उनके कालेज में आने के कुछ ही दिन पूर्व दो होनहार बालकों ने कालेज छोड़ा था। एक थे विदेश में हिन्दू-दर्शन की ध्वजा फहरानेवाले स्वामी रामतीर्थ जी महाराज और दूसरे थे डाक्टर हरदयाल जी। इन लोगों ने अपनी प्रतिभा तथा अर्जित शक्ति-द्वारा कालेज में बड़ा नाम कमाया था और बालक काटजू भी अपने अध्यवसाय-द्वारा उनका अनुसरण करने में बहुत कुछ सफल हुआ। सन् १९०५ में बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् उन्होंने क़ानून पढ़ना चाहा। अतएव वे इलाहाबाद चले आये और यहाँ के विश्वविद्यालय में क़ानून तथा एम० ए० का साथ-साथ अध्ययन करने लगे। दो वर्ष के बाद उन्होंने दोनों की परीक्षायें पास कर लीं और वे वकालत करने के लिए तैयार हुए। उन दिनों प्रयाग-हाईकोर्ट में वकील-परीक्षा होती थी। वे इसमें सम्मिलित हुए और सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए।

इस प्रकार अध्ययन समाप्त कर उन्होंने कानपुर जाकर वकालत करना आरम्भ किया और कई वर्ष तक वहाँ काम करते रहे। वहाँ रहकर उन्होंने प्रयाग-विश्वविद्यालय की एल-एल० एम० की परीक्षा पास कर ली और डाक्टर आफ़ लाज़ की उपाधि पाने का प्रयत्न करने लगे। इनके पहले विश्वविद्यालय तीन उद्भट विद्वानों को इस उपाधि से विभूषित कर चुका था। श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ सेन, श्रीयुत सतीशचन्द्र सेन तथा पण्डित तेजबहादुर सप्रू को। अब चौथा नम्बर काटजू जी का हुआ। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने के उपरान्त सन् १९१३ में डाक्टर काटजू प्रयाग चले आये और यहाँ के हाईकोर्ट में वकालत करने लगे। प्रारंभिक कठिनाइयों का सामना करते हुए उन्होंने अपनी प्रतिभा तथा परिश्रम से प्रतिदिन अधिकाधिक मोवक्किल आकर्षित किये और उनके कार्यों को बड़ी लगन एवं कुशलता से पूर्ण किया। क्रमशः उनका नाम भी अग्रश्रेणी के वकीलों में लिया जाने लगा। अब वे बड़े-बड़े मुक़दमों में सम्मिलित होने लगे। मेरठ-षडयन्त्र ऐसे संगीन मुक़दमे में सफलता पाने के कारण उनकी ख्याति और भी अधिक हो गई।

महात्मा जी का प्रभाव डाक्टर काटजू पर भी पड़ा और धीरे-धीरे वे भी भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन की ओर खिंचने लगे। स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू के सम्पर्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में होने के कारण उन पर उनके व्यक्तित्व तथा विचारों का भी प्रभाव पड़ा। अतएव अपनी वकालत के साथ-साथ वे स्वदेश की स्वतंत्रता के लिए यथाशक्ति काम करते रहे। उन्होंने ज़िला तथा प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के पदाधिकारी रहकर बहुत कुछ आवश्यक कार्य किया। अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी के भी वे सदस्य रहे हैं। सन् १९३३ के हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य-सम्मेलन की बैठकें उनके ही प्रयाग के एडमस्टन रोड वाले घर पर हुई थीं। उस समय प्रतिनिधियों की सुविधा के लिए उन्होंने जो कुछ किया था, वह सर्वथा प्रशंसनीय था। डाक्टर काटजू स्त्रीशिक्षा के पक्षपाती हैं और महिला-विद्यापीठ के चान्सलर के पद से उसकी उन्नति के लिए बड़ा कार्य कर रहे हैं। इलाहाबाद-अग्रीकलचर असोसियेशन के सभापति होने के नाते उन्होंने कृषि की वृद्धि के लिए यथा-शक्ति उद्योग किया है। उनको महात्मा गांधी के ग्रामोद्धार-आन्दोलन से विशेष सहानुभूति है और उसकी सहायता के लिए सदा तैयार रहते हैं। उनके विचार से गाँव-सुधार के बिना ठोस तरक़्क़ी ग़ैर मुमकिन है, अतएव देहातों में फिर से नई जान डालनी चाहिए और देहातियों की नींद दूर करनी चाहिए।

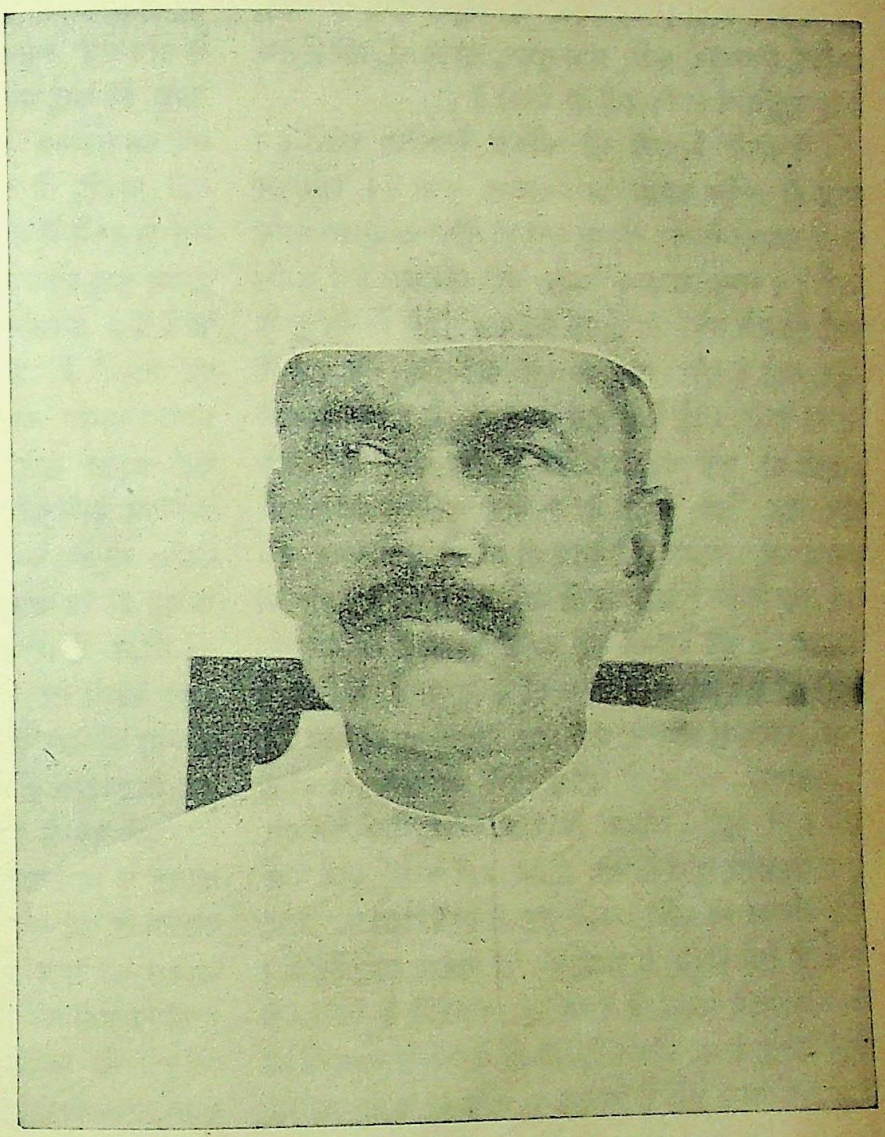

[माननीय डाक्टर कैलासनाथ काटजू]

सन् १९०३ में वे प्रयाग के म्यूनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन निर्वाचित हुए और तब से मन्त्री होने के पूर्व तक बड़ी कुशलता एवं निर्भीकता के साथ नगरवासियों की सेवा करते रहे।

डाक्टर काटजू बहुत पहले से ही मन्त्रिपद ग्रहण करने के पक्ष में थे। जब देश के बड़े बड़े नेताओं में इस प्रश्न पर वाद-विवाद हो रहा था, उन्होंने इस सम्बन्ध में बड़ी स्पष्टता के साथ अपने विचार प्रकट किये थे। प्रान्तों में नये विधान के जारी होने पर उससे सहमत लोगों की संख्या बढ़ी, जिसके फलस्वरूप आज आठ प्रान्तों में कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल स्थापित हो गये हैं। पन्त-मन्त्रि-मण्डल बनने पर डाक्टर काटजू ने देश-सेवा के ध्यान से अपनी लगभग दस हज़ार रुपया प्रतिमास आय की वकालत पर लात मार दी और न्यूनतम वेतन पर अत्यधिक काम करने का बीड़ा उठाकर अपूर्व त्याग और साहस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का परिचय दिया। आजकल वे संयुक्त-प्रान्त के न्याय, उद्योग, व्यवसाय, कृषि, ग्राम-सुधार, आबकारी, रजिस्ट्रेशन, तथा पशुचिकित्सा विभागों के मन्त्री हैं।

वे अपने विभागों की चौकस देख-रेख रखते हैं। स्वयं ही प्रत्येक काग़ज़ का निरीक्षण करते हैं। लगातार घण्टों फ़ाइलों से सिर लड़ाना बड़ा ही नीरस तथा श्रम-साध्य कार्य है। परन्तु डाक्टर साहब बड़े परिश्रमी हैं। कभी-कभी छः बजे सवेरे ही बिना जलपान किये वे चैम्बर में पहुँच जाते हैं और फिर लगभग ढाई-तीन बजे उठकर भोजन करने जाते हैं। उस समय भी वे अपने मोटर में फ़ाइलों का एक गट्ठर रख लेते हैं, जो शाम को उनके साथ फिर लौट आता है। यदि कहीं कांग्रेस-कमिटी अथवा मन्त्रिमण्डल की बैठक हो गई तो फिर बारह बजे रात तक के लिए निश्चिंत हो जाते हैं। उनके ऐसे मन्त्रियों के काम में जुटे देखकर यही कहना पड़ता है कि मन्त्रिपद फूलों की सेज नहीं बरन भीष्म की शरशय्या है, जहाँ अपूर्व त्याग, अनवरत परिश्रम, तथा प्रखर प्रतिभा का ही काम है।

डाक्टर काटजू को भाषण देने का अधिक अभ्यास नहीं। वे कुशल वक्ताओं के शब्दाडम्बर, वाक्यचमत्कार तथा आकर्षण-युक्तियों का प्रयोग नहीं करते, बरन एक श्रेष्ठ बैरिस्टर की भाँति अपने पक्ष की सभी बातों को गिना जाते हैं तथा विपक्ष के अवगुणों को प्रत्यक्ष कर देते हैं। जिस प्रकार वे गवाह को देखते ही ताड़ लेते हैं कि उससे कैसी जिरह करनी उचित है, वैसे ही वे अपने श्रोताओं को देख कर समझ लेते हैं कि उन पर कौन सा अस्त्र कारगर होगा। पीछे कमर पर हाथ बाँधे, आगे कुछ झुकते हुए अथवा टेढ़ी ग्रीवा किये जब वे एक-चतुर वकील की भाँति अपनी दलीलें देनी शुरू करते हैं तब विरोधी दलवाले अनायास ही औंघाते जूरियों की भाँति अपना सिर हिलाने लगते हैं। विपक्षियों को अपनी बात समझा देने की उनमें अपूर्व क्षमता है।

डाक्टर साहब में दो विशेष गुण हैं—निर्भीकता तथा स्पष्टवादिता। मन में जो होता है उसी को वे मुख से निकालते हैं। हृदयस्थित विचारों को छिपाकर कपटपूर्ण व्यवहार करना उनको नहीं आता। उनके मन, वाणी और कर्म में विरोध का अनुभव होना सम्भव नहीं। दूसरे से बात-चीत करते समय वे उस पर ऐसी तीक्ष्ण दृष्टि डालते हैं, मानो उसके हृदय को टटोल रहे हों। जिस बात को वे सत्य एवं न्यायसंगत समझते हैं उसके व्यक्त करने में उन्हें किंचित् भय नहीं होता। आप उदासीन, तटस्थ, एवं अन्यमनस्क होकर बात करते हैं और खरी कहने में नहीं चूकते, वे "न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्" के नियम का उल्लंघन करने में भी संकोच नहीं करते। उनके इस स्वभाव के कारण कुछ लोग उनको रूखा एवं अशिष्ट कहने की ढिठाई करते हैं। प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी की एक बैठक में कतिपय सदस्यों ने उनके शुष्क व्यवहार के विरोध में एक प्रस्ताव रक्खा चाहा, परन्तु पंडित जवाहरलाल नेहरू ने यह कहकर उसे टाल दिया कि "इस प्रस्ताव के साथ त्यागपत्र आने की सम्भावना है। यदि आप ऐसे अमूल्य व्यक्ति को खो देना चाहते हैं तो मुझे कोई एतराज़ नहीं। अच्छा हो कि आप मुझे उनसे इस सम्बन्ध में बात करने का मौक़ा दें।" डाक्टर साहब से कोई व्यक्ति अनुचित लाभ उठाने का साहस नहीं कर सकता। वे सबके साथ एक-सा व्यवहार करते हैं, जिसके कारण असामान्य व्यवहार के इच्छुक लोग उनसे रुष्ट हो जाते हैं।

एक वर्ष से अधिक हुआ कि वे मन्त्री के कार्य को कीर्त्ति के साथ चला रहे हैं। अपने विभागों से सम्बन्ध रखनेवाले कई नये क़ानून बनाकर उन्होंने संयुक्तप्रांतीय सरकार की आय बढ़ाने का प्रयत्न किया है, जिससे वह दुखी किसानों की अधिकाधिक सहायता कर सके। मिल-मज़दूरों के पारिश्रमिक, छुट्टी, काम करने के घंटों, मनोरंजन, स्वास्थ्यवृद्धि, तथा रहने आदि के लिए तरह-तरह की सुविधायें कर दी हैं। उन्होंने नशा-निषेध का क़ानून भी लगा दिया है। नशाबन्दी के कार्य में उनको खूब सफलता मिल रही है। इसी प्रकार वे अपने अन्य विभागों में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने में लगे हुए हैं, जिसमें न्याय और शासन-विभाग पृथक् करने की योजना उल्लेखनीय है। वे बहुधा प्रान्त के कोने-कोने में घूमकर कार्य का निरीक्षण करते रहते हैं, तथा स्थान स्थान पर सार्वजनिक भाषण देकर जनता को अपनी योजनाओं का उद्देश्य भी समझाते चलते हैं। संयुक्तप्रान्त डाक्टर काटजू ऐसे मन्त्री को पाकर उन पर गर्व करता है। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह उन्हें और शक्ति एवं बुद्धि दे जिससे वे प्रान्त की अधिकाधिक सेवा कर सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक सामाजिक कहानी

लगान-बन्दी

लेखक, पंडित मोहनलाल महतो

(१)

रामदयाल जेल से छूटकर आया तो उसे देखने के लिए गाँव भर के किसान जमा हुए। दरवाज़ों पर खड़ी होकर गाँव की स्त्रियों ने स्नेह और उत्सुक आँखों से रामदयाल का स्वागत किया। रात को गोविन्द जी के मन्दिर पर किसान जमा हुए। रामदयाल की वहाँ अभ्यर्थना की गई। मन्दिर के पुजारी वृद्ध माधव पांडे ने स्नेह-गद्‌गद कंठ से खड़े होकर कहा—"भाइयो, रामदयाल हमारे लिए जेल गया। गाँव का मुख उज्ज्वल हुआ। श्री गोविन्द जी से विनय है कि वे इस माई के लाल को चिरायु करें।" इतना बोलते-बोलते वृद्ध का गला भर आया। वे काँपते हुए से बैठ गये! उपस्थित लोगों में आनन्द की लहर फैल गई तो हाथ जोड़कर, गांधी जी की तरह, रामदयाल बोला—"भाइयो, मैंने तो अपना जीवन ही देश के लिए अर्पण कर दिया है। जेल की यातना मेरे लिए तो गौरव की चीज़ है। अब विनय है कि आप लोग संगठित हो जायँ। यह देश आप लोगों का ही है। बड़े-बड़े नेता आपका मुँह जोहा करते हैं। आप अपनी ताक़त को काम में लायें तो आपके सभी कष्टों का अन्त हो जाय। सच्चा स्वराज्य तो आपके ही उद्धार से भारत को मिलेगा।" इतना बोलकर रामदयाल चारों ओर देखने लगा। वह अपने सारवान् व्याख्यान का प्रभाव देखना चाहता था। उसने जो कुछ देखा उससे उसे उतनी प्रसन्नता नहीं हुई जितनी की कामना उसने की थी। भीड़ में से एक आवाज़ आई—"भाई, हम क्या कर सकते हैं। खाने को तो भर पेट अन्न भी नहीं मिलता। ताक़त कहाँ से आये।" रामदयाल बोला—"शारीरक ताक़त की ज़रूरत नहीं है। हमें आत्मबल की ज़रूरत है—'रूहानी-ताक़त' से आप अपने को आज़ाद कर सकते हैं। एक किसान बोला—"यह आत्मबल क्या होता है, दयाल?" रामदयाल विज्ञ की तरह मुस्करा कर बोला—"आत्मा का बल। कष्ट सहने की ताक़त। सत्य और अहिंसा से जो ताक़त हासिल होती है वही आत्मबल है।" एक कोने से एक लम्बा सा किसान बोल उठा—"कष्ट सहने से क्या ताक़त मिलती है भाई, कष्ट सहते-सहते हमारी रीढ़ की हड्डी टूट गई। मेरी ओर देखो, छाती की हड्डियाँ गिन सकते हो। वैद्य जी कहते हैं क्षयी हो गई है। यह शरीर अब जुल्म सहने के लायक़ नहीं रह गया।" रामदयाल ने खाँस कर कहा—"परवा नहीं गणेश भैया, यदि हज़ार-लाख शरीरों की रक्षा के लिए एक शरीर की खाल ही खींच ली जाय तो परवा नहीं। अन्त में सत्य की जीत तो होकर ही रहेगी। अत्याचार का दिवाला एक न एक दिन अवश्य निकलेगा। वह दिन दूर नहीं है।" जेल से बहुत से नये शब्द वह सीख आया था, जिन्हें वह याद करने लगा।

हरनाम ग्वाले ने खीस निकालकर कहा—"कल मेरी दो गायें छीन ली गईं। बच्चे बिना दूध के तरस रहे हैं और मेहरिया बुख़ार से तड़प रही है—मेरे यहाँ दूध-दही की नदी बहती थी तो एक बूँद गोरस के लाले पड़ रहे हैं। रामदयाल भाई, बोलो क्या करें। दोनों बगौधी ऐसी थीं कि देखनेवालों की आँखें ठंढी हो जाती थीं—हाय री मेरी लक्ष्मी।" हरनाम ने पुक्का फाड़ कर रो दिया! किसानों में रोषपूर्ण सनसनी फैल गई। माधव पाँडे ने अपनी जप की माला को जल्दी-जल्दी समाप्त करके कहा—"यह तो बड़ा अन्याय है। बेचारे हरू का पेट इन्हीं गायों की बदौलत चलता था—दूध-घी बेचकर यह ग़रीब अपने परिवार का पालन करता था। अभागा बेमौत मर जायगा। गोविन्द जी रक्षा करेंगे!" उत्तेजनापूर्ण वातावरण में सभा भङ्ग हो गई। सभी किसान झल्लाये हुए से लौटे। रामदयाल को बड़ी ख़ुशी हुई।

बैसाख की रात थी। कभी गरम और कभी शीतल हवा के झोंके उजाड़ खेतों से होकर आ रहे थे। मलिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रमा पूर्व के आकाश में दिखलाई पड़ा। दूर—ख़ूब दूर से पपीहे की थकी हुई आवाज़ रह-रहकर सुन पड़ती थी। अन्धकार धीरे-धीरे फीका होता जा रहा था। मटमैली चाँदनी में गाँव अत्यन्त मनहूस सा दिखलाई पड़ता था! आधी रात हो गई थी।

(२)

रामदयाल देखते-देखते अपने गाँव का नेता बन गया। जब से वह नेता बना उसने खुलेआम ताड़ी पीना बन्द कर दिया, हाँ बीड़ी अवश्य पीता। एक जापानी फ़ाउन्टेनपेन भी उसने ख़रीदा तथा नोटबुक की ज़रूरत भी उसने महसूस की। वह गम्भीरतापूर्वक हँसता और बीच-बीच में नेहरू जी और लेनिन का नाम बड़े ताव से लेता। एक दिन भदई गोंड़ ने पूछा—"भइया, नेहरू जी को तो देखा है—आये थे न उस साल? यह लेनिन जी कौन हैं? कभी इन्हें भी तो बुलवाओ भइया, ये सब नेता तो तुम्हारे इशारे पर आते-जाते हैं।" मन ही मन अत्यन्त पुलकित होकर रामदयाल बोला—"लेनिन तो विलायत का रहनेवाला था। जब जवाहरलाल जी लेनिन के सामने गये तो उसने गरज कर कहा—'बिना किसानों की सहायता के स्वराज्य नहीं होगा।' लेनिन की बात सुनकर जवाहर-लाल जी चिन्ता.....।" भैरोदीन बोला—"किसान कैसे सहायता करेंगे। देखो, कल भुलइया को ज़मींदारी कचहरी में रोक कर बीस रुपये जुर्माने के वसूल किये गये। अपराध यह था कि उसके ढोर जगरूपसिंह के खेत में चले गये थे।" रामदयाल ने इधर-उधर देखकर कहा—"यह तो अन्याय है। इसका विरोध होना चाहिए। आज संध्या समय सब कोई—हाँ, भैरो भइया, तुम्हारे यहाँ हम आयें।" भैरोदीन ने ज़ोर लगाकर मुँह का थूक निगल कर कहा—"मेरे यहाँ? जगह कहाँ है? भुलइया के यहाँ सब इकट्ठे हों।" भुलई बोला—"सबसे अच्छी जगह है गोविन्द जी का मन्दिर। सौ-पचास भाई बैठ सकेंगे? राम-दयाल ने कहा—"मुसलमान मन्दिर में कैसे घुसेंगे भुलई? यही तो हम लोगों में दोष है। क्या मुसलमान हमारे भाई नहीं हैं?"

भैरोदीन बोला—"वाह, मुसलमान हमारे भाई कैसे कब से हुए। तुमने तो जेल जाकर अपना धर्म-कर्म सब गँवा दिया।"

रामदयाल व्यंग्यपूर्ण हँसी हँसकर बोला—"क्या धर्म-कर्म इसी का नाम है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से घृणा करे। ख़ैर, जाने दो इस बहस को, तो कल सब भाई मेरे ही यहाँ पधारें। लो, गाँव में ख़बर भेजवा दो। चुप रहने से नहीं बनेगा।" ठीक समय पर सभी किसान रामदयाल की चौपाल में एक-एक करके जमा हुए। माधव पांडे भी अपनी माला के साथ पधारे और भैरो हाथ में चिलम लिये आया। गाँव के कुछ मुसलमान भी आये। रात होते न होते चौपाल भर गई। कुछ अछूत भी आये जो नीचे बैठ गये। हाथ जोड़ जोड़कर रामदयाल ने सबको बैठाया। सबसे पहले ईदनमियाँ बोला—"बेशक किसान सताये जाते हैं, पर इलाज क्या है। आप विचार करें। लगान की वसूली के लिए जो तरीक़ा काम में लाया जाता है वह भी तो बहुत ही ख़राब है। हमारी कोई इज़्ज़त मालिक की नज़रों में नहीं है—पशुओं से भी हम गये बीते हैं।"

चारों ओर से ईदनमियाँ का समर्थन हुआ। रामदयाल खड़ा होकर बोलने लगा—"भाई, अन्याय का विरोध करना चाहिए। अन्याय से जो पैसा हमसे लिया जाता है वह नहीं देना चाहिए। हम लगान बन्द कर दें तो ज़मींदार सरकारी ख़ज़ाना कहाँ से अदा कर सकेंगे। उनकी सारी शेख़ी हमारे पैसों पर ही है।" फिर खलबली मची। चारों ओर से तरह-तरह की आवाज़ें आने लगीं। किसी ने समर्थन किया तो किसी ने विरोध। अन्त में यह निश्चय हुआ कि लगान-बन्दी का आन्दोलन किया जाय। इस निश्चय होने के पहले ही आधे से अधिक किसान खिसक गये। जो बैठे रहे वे भी सुस्त से हो गये—कोई उत्साह नहीं रह गया। रामदयाल ने जोश में आकर कहा कि—"कल हम व्रत रखकर भगवान् से प्रार्थना करेंगे। भाइयो, यह धर्म युद्ध होनेवाला है। ईश्वर से विनय करना हमारे लिए लाज़िम है। भगवान् हमारे पथ-प्रदर्शक बनेंगे।"

रामदयाल चुप हो गया। एक भद्दी सी ख़ामोशी छा गई। भैरो अपनी चिलम की राख फूँकता हुआ बोला—"इस आग होगी दयाल भैया! तम्बाकू जली नहीं और आग ठंडी हो गई।" रामदयाल खिन्न स्वर में बोला—"आग तो नहीं है, दियासलाई कहो तो दूँ।" ईदन ने कुछ सोचकर कहा—"व्रत के क्या मानी हैं? हम लगान बन्द कर देंगे तो ज़मींदार का क्या बिगड़ेगा। उसके आधकार में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्जनों गाँव हैं। हमारी ज़मीन जो नीलाम हो जायगी तो...।"

महादेव गोड़, जो अब तक अपने दमे के कारण खाँस रहा था, बोला—"बोलो न रामू, ज़मीन नीलाम हो जायगी तो क्या होगा? खाने को कौन देगा? तुम तो शहर में बीड़ी-पान की दुकान करते हो और हम किसके घर जायँगे?"

गरम होकर रामदयाल बोला—"बिना कष्ट झेले, बिना बलिदान हुए कहीं आज़ादी मिलती है। क़ुर्बानी के बिना कोई देश.....।"

माधव पांड़े बोले—राम, राम क़ुर्बानी तो म्लेच्छ..... गोविन्द, गोविन्द!

ईदनमियाँ की ओर देखकर माधव पांड़े चुप हो गये। ईदन से उन्होंने अपनी लड़की के ब्याह के अवसर पर पन्द्रह मन धान और कुछ नक़द भी उधार लिया था। माधव को चुप देखकर भैरों बोला—"क्या कह रहे थे माधव बाबा?"

बग़लें झाँक कर पांड़े ने धीमे स्वर में कहा—"क़ुर्बानी तो मुसलमान करते हैं न! हम कैसे क़ुर्बानी कर सकते हैं। रामदयाल कहता है कि.....।"

रामदयाल बोला—"मैं क्या कहता हूँ गोकुशी करने को! तुम्हारी समझ पर पत्थर पड़े। क़ुर्बानी के मानी हैं त्याग, आत्मबलिदान।" भैरों ने एक तिनके से चिलम कुरेदते हुए कहा—"क़ुर्बानी तो सचमुच मुसलमान करते हैं। पूछो ईदन चाचा से! क्यों चाचा, तुम लोग क़ुर्बानी करते हो या नहीं? पिछले साल क़ुर्बानी के चलते ख़ून होते होते.....।"

"बड़े उल्लू हो जी"—चिल्लाकर रामदयाल बोला—"सुनते भी नहीं। क़ुर्बानी के मानी हैं.....।" भैरों भी चिल्लाकर बोला—"हमें चाहे ज़मींदार चबा जाय पर हम क़ुर्बानी नहीं कर सकते। गोवध करने से हमारा उद्धार.....।"

एक साथ ही बहुत से किसान चिल्लाने लगे। भैरों बायें हाथ में चिलम लेकर दहिना हाथ नचा-नचा कर बोलने लगा। सभी बोल ही रहे थे सुननेवाला कोई न था। एक हंगामा मच गया। रामदयाल ने बहुतेरा प्रयत्न किया कि शान्ति स्थापित हो जाय पर होहल्ला बढ़ता गया। थोड़ी देर के बाद सभास्थल ख़ाली हो गया। रात अधिक हो गई थी। कभी गरम और कभी ठंडी हवा के हल्के-हल्के झोंके आ रहे थे। धूलि से भरे आकाश में चन्द्रमा की मटमैली विभा फैल गई।

भारी मन लिये रामदयाल घर में घुसा। उसके मन की बातें उसके मन में ही रह रह कर घुमड़ रही थीं। उसने अपनी स्त्री को बैठाकर डेढ़ घंटे तक समझाया। इस तरह अपने मन का दुर्वह भार उतार कर वह अनेक असंभव तथा दुःसाध्य प्रण करके सो गया। रात भर उत्तेजनापूर्ण बुरे बुरे सपने आते रहे।

(३)

संध्या के बाद हवा के एक शीतल झोंके के साथ बैसाख की उदास रात आई। मन्दिर के फ़र्श पर छिड़काव कर चुकने के बाद भज्जू अहीर बोला—"बाबा, चिलम कहाँ है?" इस रुचिकर प्रश्न के उत्तर में जप समाप्त करते हुए माधव पाँड़े उत्साहपूर्वक बोले—"उस कोने में! हाँ, हाँ दाहनी तरफ़—वहां पर, जहाँ बाल्टी पड़ी है! क्योंरे भज्जू, तेरी मेहरिया का बुख़ार छूटा या नहीं?" एक लकड़ी लेकर चिलम कुरेदता हुआ भज्जू बोला—"चुड़ैल है सुसरी, मर जाय तो गले की फाँसी छूटे।"

"फाँसी"—माधव पाँड़े गम्भीर स्वर में कहने लगे—"ऐसी सुलच्छनी को तू चुड़ैल कहता है! मर गई तो तू कौड़ी का तीन हो जायगा—इतनी गाय भैंसों को कौन.....।" भज्जू ने कहा—"बाबा, कंडे की आग से गाँजा खूब ठहरता है। कोयले की आग जल्द ठंडी पड़ जाती है।" माधव लुब्ध दृष्टि से चिलम की ओर देख रहे थे। उन्हें इस बात का संदेह था कि भज्जू कहीं गाँजा चुरा न ले। भज्जू के हाथों की ओर अपलक दृष्टि जमाकर पाँड़े बोले—"अरे, हैं, हैं दबा मत। गाँजा बैठ जायगा तो? तुझे कब अकल होगी—सचमुच ग्वाले बड़े बेहूदे होते हैं।" भज्जू इस जातीय अपमान को कभी बर्दाश्त नहीं करता पर उसे भय था कि यदि पाँड़े बाबा नाराज़ हो गये तो गाँजे की दम के लाले पड़ जायँगे। उसने कहा—"कल क्या हुआ बाबा! सुना कि रामदयाल सबको क़ुर्बानी करने की सलाह देता है—साला म्लेच्छ है।" इधर उधर देखकर पाँड़े बोले—"यह गाँव में दंगा करवाना चाहता है। कल तक उसका बाप हल जोतता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, आज नेता की पूँछ बना फिरता है। अभागा है—।" भज्जू गाँजे की चिलम तैयार करके सोत्साह बोला—"मालिक (ज़मींदार) सुनेंगे तो पीठ की खाल खिचवा लेंगे।—बाप रे, उनसे डिप्टी, लाट सभी डरते हैं। बेचारे कलक्टर का क्या बिसात है—दारोग़ा तो नाम सुनते ही बेंत की तरह काँपता है।" चिलम लेकर पाँड़े ने गम्भीरता-पूर्वक उसे ललाट से स्पर्श कराया और कहा—

"लेना हो गिरधारी, भरोसा तेरा भारी। जो न पिये
गाँजे की कली, उस लड़के से लड़की भली।"

पाँड़े बाबा ने सारे शरीर का बल लगाकर दम लगाई। भज्जू व्याकुल दृष्टि से देखता रहा। उसे भय था कि कहीं पाँड़े एक ही दम में गाँजे को जलाकर ख़ाक न कर डालें। उसे यह भी आशंका थी कि एक दो गँजेड़ी कहीं से आ न जायँ। यदि वश चलता तो भज्जू, पाँड़े बाबा के हाथ से, चिलम छीन लेता। दम लगाकर पाँड़े बाबा जब तृप्त हुए तो बोले—"मैंने मालिक से कह दिया है। उन्होंने बड़े ध्यान से सब समाचार सुना। बूढ़े सरकार (ज़मींदार के पिता) मुझे भाई की तरह मानते थे। वे देवता थे। प्रत्येक वर्ष झूलनोत्सव पर काशी और पटना से अच्छी अच्छी रंडियाँ आती थीं। अब ज़माना ही बदल गया। धर्म-कर्म पर से सब की श्रद्धा उठ गई। कलिकाल है न?"

भज्जू मन ही मन खिन्न हो रहा था। गाँजा प्रायः जल कर उसके हाथ में आया। पाँड़े जी की इस हरकत को वह नापसन्द करता था पर प्रतीकार का कोई उपाय उसके पास न था। पाँड़े जी की बातें भज्जू को अनहोनी लगीं। उसने कहा—"रामदयाल की बातें सही हैं! आप तो लाखराज खेत आबाद करते हैं। हमारी ओर तो देखिए। पचास-साठ बीघे का काश्तकार भी मालिक के ज़ुल्म से दाने-दाने को तरस रहा है।"

निश्चय ही यदि पाँड़े जी गाँजे का ख़ाक न कर देते तो भज्जू कभी भी रामदयाल का समर्थन नहीं करता। वह इस तरह अपने मन की कचट व्यक्त कर रहा था। पाँड़े जी झल्लाकर बोले—"तू गधा है। तुझे क्या मालूम कि राज्य कैसे चलता है। मेरे पिता के नाना अयोध्या-महाराज के सभा-पंडित थे। राजा-महाराजा के अन्न खाकर यह शरीर पला है। प्रजा से कर लेना राजधर्म है।"

भज्जू ने कहा—"प्रजा का ख़ून चूसना कहाँ का राजधर्म है बाबा!"

पाँड़े जी चिल्लाकर बोले—"तूने कौन-कौन शास्त्र पढ़े हैं। जा अपना गाय भैंस की देखभाल कर—मूर्ख कहीं का।" भज्जू कुछ लज्जित होकर बोला—"बाबा, आप लोगों के ही मुँह से सुना है कि प्रजा को सतानेवाला राजा नरक में पड़ता है।"

इसी समय दो तीन किसान और आये। काफ़ी बहस छिड़ गई। कुछ लोगों ने तो रामदयाल का समथन किया और कुछ लोगों ने पाँड़े जी का। काफ़ी होहल्ला मच गया। पाँड़े जी ने अपना पक्ष निर्बल समझकर रामदयाल की ही बातों पर मुहर लगाई पर उनका हृदय भीतर ही भीतर जल रहा था। रामदयाल के बढ़ते हुए प्रभाव को वे अपने लिए उचित नहीं समझते थे। पाँड़े जी को ऐसा लगा कि उनके ख़िलाफ़ रामदयाल अपनी हवा बाँध रहा है—रामदयाल के सर्वप्रिय होने के मानो हे पाँड़े जी का सामाजिक पतन! यह उनका भ्रम था पर संसार में भ्रम की भी अपनी सत्ता है।

भीड़ समाप्त हो गई तो पाँड़े जी ने भगवान् को लक्ष करके कहा—"नारायण, इस बुढ़ौती में दाग़ मत लगाना। कल का छोकड़ा रामदयाल साला.....अच्छा।" इतना बोलते-बोलते वृद्ध पुजारी बाबा का गला भर आया। उन्होंने जिस रामदयाल को अपना प्रतिद्वन्द्वी मान लिया था वह बेचारा स्वप्न में भी ऐसी अनहोनी बात की कल्पना नहीं करता था। एक सीधा सादा किसान सेवक के रूप में अपने को समाज के सामने पेश करना चाहता था—वह पाँड़े जी के नेतृत्व को रौंदना नहीं चाहता था। उसे मालूम भी नहीं था कि उसकी कारवाइयों से पाँड़े जी के मान-सम्मान में बट्टा लगनेवाला है।

भरे हुए मन से पाँड़े जी अपनी खाट पर लेट गये—सारी रात उन्हें नींद नहीं आई जब कि रामदयाल शहर जाने की तैयारी कर रहा था!

(४)

माधव पाँड़े ने रामदयाल के विरुद्ध लोकमत बनाना आरम्भ किया पर उन्हें विश्वास हो गया कि जिस काम को वे सहज समझ रहे थे वह लोहे के चनों से भी कड़ा था। रामदयाल दो चार दिनों में लौट आया। जब उसे पुजारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबा के प्रचार का पता लगा तो वह मर्माहत हुआ। उसने प्रयत्न किया कि ग़लतफ़हमी मिटे पर फल उलटा हुआ। इधर ज़मींदार ने भी गाँव में फूट पैदा करने का जघन्य काम आरम्भ कर दिया। बड़ी तेज़ी से किसान दो दल हो गये।

जिस गाँव में रामदयाल रहता था उसके पासवाले गाँव में डाका पड़ा। सुनसान अँधेरी रात को मुँह में तारकोल लगाकर डाकू आये और एक महाजन का कुछ नक़द लेकर चलते बने। डाकूदल के बाद पुलिसदल का सफल धावा हुआ। डाकू तो अँधेरी रात को मुँह में कालिख लपेट कर आये थे पर एक मोटे से दारोग़ा जी के नेतृत्व में पुलिसदल ठीक दोपहर को गाँव की शान्त गलियों में घूमता नज़र आया। हक्के बक्के लड़कों ने देखा, अपनी बड़ी सी तोंद पर चमड़े की पेटी कसे दारोग़ा जी अनर्गिनत गालियाँ बकते हुए 'खटोली' पर आ रहे हैं। तत्काल आतङ्क का राज्य हो गया। 'धरो पकड़ो' 'फलाने को पकड़ कर लाओ, अमुक की मूँछें उखाड़ लो'—का समा बँध गया। एक मोटा सा पाठा मारा गया और शुद्ध गव्यघृत में अत्यन्त स्वास्थ्यवर्धक पूरियाँ छानी जाने लगीं। कहीं से मलाई-दार दही आया तो कहीं से भर कटोरा हलवा। बड़े समारोह से दुघटना की जाँच आरम्भ हुई। रामदयाल की भी तलबी हुई—वह झिझकता हुआ हाज़िर हुआ। एक बड़ी सी मूँज की चारपाई पर तकियों के बीच में दारोग़ा जी बैठे थे। सिपाही और दूसरे लोग इधर उधर बैठे गप्पें मार रहे थे। घबराये से कुछ किसान दूर से खड़े खड़े यह दृश्य अपलक आँखों से देख रहे थे। गालियों और धमकियों की झड़ी में कुछ अभागे हाथ बाँधे सामने खड़े थे। चश्मे के भीतर से घूरते हुए दारोग़ा जी ने रामदयाल से कहा—"तुम शहर में क्या करते हो? कई बार जेल गये—कोई है? यह साला पक्का बदमाश है।" रामदयाल बोला—"मैं कभी चोरी-डकैती करके जेल नहीं गया...।" दारोग़ा जी ने गुर्रा कर कहा—"भिखारीसिंह!" छः फ़ुट का भिखारीसिंह कान्स्टेबुल हाज़िर हुआ। आज्ञा हुई—"इसे गिरफ़्तार कर लो—साला, बहस करता है। देखते नहीं—चेहरे से शरारत टपकती है।" कुछ अनुनय-विनय करने के पहले ही रामदयाल की मुश्कें कस डाली गईं। पुजारी बाबा भी सम्माननीय दर्शकों के दल में थे। आपने तृप्ति की साँस ली और ज़रा ऊँची आवाज़ में कहा—"गोविन्द! गोविन्द!! शहरी लफंगा है। उलटा पाठ पढ़ाकर गाँव का सत्यानाश करना चाहता था। भगवान् ने....." दारोग़ा जी बोले—"हाँ, क्या बात है। सामने आकर बयान दो। हाँ जी तुम्हारा नाम क्या है? बाप का नाम, क़ौम—किस गाँव में रहते हो?" दारोग़ा जी ने पेंसिल उठाते हुए इधर उधर गौरवपूर्ण दृष्टि डाली। सन्नाटा छा गया। पाँड़े जी का मुँह सूख गया। झिझकते हुए वे सामने आये। दर्शकों में कानाफूसी फैल गई। मधुमक्खी के छत्ते की सी दबी हुई भनभनाहट से चौपाल भर गया। पुजारी जी ने अपने झूठे बयान में यह कहा कि—"रामदयाल को मैंने देखा था। वह आधी रात को मन्दिर के कुएँ पर मुँह धो रहा था। उसका मुह एकदम काला था—भूत की तरह।" ज़मींदार बोले—"और वह तलवारवाली बात तो आपने कही नहीं—हाँ, कई आदमी थे?" माधव पाँड़े ज़ोर लगा कर बोले—"कह तो रहा हूँ। मैं सत्तर साल का हुआ। इसी गाँव में मेरा घर है। सन् सत्तावन के ग़दर में मेरे पिता.....।" घुड़क कर दारोग़ा बोले—"बड़े अहमक़ हो जी! रामदयाल के साथ जो आदमी थे वे भी तलवार या बन्दूक़ लिये हुए थे या अकेले रामदयाल के हाथ में हथियार था—सोच सोचकर बोलो।" घबरा कर पाँड़े जी बोले—सब बन्दूक़ लिये हुए थे। बन्दूक़ की नोक चमक रही थी। लम्बी-लम्बी लाठी में बन्दूक़ लगी...।" फिर दारोग़ा जी दहाड़ उठे—"होश करो। लम्बी लाठी में बर्छी लगाई जाती है? सोचकर बोलो—बन्दूक़ थी या बर्छी।" पाँड़े जी आपादमस्तक काँप उठे। भद्दा सा सन्नाटा छा गया। इधर-उधर कातर दृष्टि डालकर वे बोले—"बन्दूक़ और बर्छी—दोनों हथियार थे।" दारोग़ा बोले—"और तलवार!" "जी हाँ"—पुजारी जी ने—खुलासा हो कहा—"तलवार भी थी।" दारोग़ा जी ने लिखते हुए अस्पष्ट स्वर में कहा—"तलवार, बर्छी और बन्दूक़, तीन-तीन हथियार—पक्के डाकू।"

दिन भर की चहल-पहल के बाद रामदयाल को लेकर पुलिसदल चला गया। घर-घर तरह तरह की चर्चा फैल गई। किसी ने पुजारी जी को दोष दिया तो किसी ने रामदयाल को अश्राव्य भाषा में भला बुरा कहा। गाँव की स्त्रियाँ रामदयाल के लिए आँसू बहाने लगीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)

सावन की घटा छाई रामदयाल के घर के ऊपर! भीनी-भीनी बूँदों ने जेठ की ज्वाला पर मोती बरसा दिये। शीतल हवा के झोंकों से खेत लहराने लगे—हरियाली विभा में दिशायें मुस्कराने लगीं। रामदयाल की जीवन-सहचरी ने आँगन में आकर देखा—आकाश भरा हुआ है काली काली सुमींली घटाओं से। दिन का अन्त हो रहा है। चारों ओर से घेर कर अन्धकार धीरे-धीरे बढ़ रहा है। वह गहरा निश्वास त्याग कर घर के भीतर चली गई—तीन मास से रामदयाल का कोई पता न था। दारोग़ा जी ने न जाने उसे कहाँ भेज दिया—इस लोक या परलोक में। रामदयाल की स्त्री—भोली—को कम से कम इसकी जानकारी न थी। ईदन मियाँ जान लड़ा कर मुक़दमे की पैरवी कर रहे थे—और कोई सहायक न था। भोली अपनी बच्ची को लेकर मन को धोखे में रखने का प्रयत्न करती थी पर हृदय की आग आँखों के पानी से और भड़कती है—शान्त नहीं होती। भोली दिल पर पत्थर रखकर किसी तरह गुज़र करती। जिस तरह चुल्लू का पानी धीरे-धीरे क्षीण हो जाता है उसी तरह भोली के धैर्य के साथ उसकी छोटी सी सम्पत्ति का भी अन्त हो गया। रात समाप्त होने पर एक एक करके तारे छिपते जाते हैं—यह तो आप सब ने देखा है पर भोली के शरीर पर से एक एक करके चाँदी और सोने के गहने कैसे लोप हो गये, यह केवल ईदन मियाँ ने देखा। क्षुब्ध ईदन की आत्मा रो देती जब उसके हाथ में, मुक़दमा ख़र्च के लिए एक न एक ज़ेवर भोली रख देती। एक दिन फिर रुपयों की ज़रूरत पड़ी तो भोली अपनी एकलौती बच्ची के हाथ के कड़े उतारने का प्रयत्न करने लगी। ईदन मियाँ बाहर दरवाज़े पर बैठे थे—भीतर भोली बच्ची को फुसला रही थी, कड़ों के लिए। बच्ची रोकर बोली—"नहीं दूँगी।" भोली ने कहा—"बाबू जी ने माँग पठाये हैं—इससे अच्छे नये कड़े……।" इतना बोलते-बोलते भोली का गला भी रुँध गया। रोती हुई बच्ची के हाथों से ज़बरदस्ती कड़े उतार कर भोली ने ईदन मियाँ के पास भेजवाये। बाहर बैठे हुए ईदन मियाँ सभी कुछ सुन रहे थे। उनकी आत्मा कराह उठी—वह रो उठे। कड़े लौटाते-बोले—"अभी रुपयों की ज़रूरत नहीं है। मेरे पास हैं—! उम्मीद है, इतने से काम चल जायगा। मैं रुपये माँगने नहीं—घर का समाचार पूछने आया था।"

ईदन की सफ़ेद दाढ़ी और मूँछों पर से आँसुओं की बूँदें मोती की तरह बरस पड़ीं। ठंडा साँस लेकर भोली ने बच्ची को कड़े पहना दिये—वह खोई हुई प्रिय वस्तु पाकर पुलकित हो उठी; कड़े देखती हुई खेलने चली गई।

ईदन अपने दरवाज़े पर पहुँचे तो उन्हें ऐसा लगा कि यह सारा संसार हाहाकार-निमग्न है। सूर्य, चाँद, नदी, पहाड़ जो कुछ दृश्य जगत में है, केवल हाहाकार है। हवा में हाहाकार है और प्रकाश में भी हाहाकार है। कुछ देर ठहर कर ईदन मियाँ ने अपने बैलों की जोड़ी की ओर आँख उठाकर देखा जो खड़ी-खड़ी सानी खा रही थी। ऊँचे-मस्त बैल, देखनेवालों की आँखें तृप्त हो जायँ। धीरे धीरे ईदन मियाँ उठे और बैलों को खोलकर महादेव साव के घर की ओर चले। महादेव साव गाँव का महाजन था। मोटा-काला, दुर्भाग्य के ढेर की तरह, पक्का सूदख़ोर। महादेव साव ने ईदन को देखकर कहा—"क्यों चाचा किधर किधर चले! बड़ी अच्छी जोड़ी है—कितने में ख़रीदी।" इतना बोल कर वह बैलों की पीठ सहलाने लगा। ईदन मियाँ बोले—"सुनो भाई, मैं इन्हें बेचना चाहता हूँ। मैंने डेढ़ सौ में दोनों को ख़रीदा था—तुम चाहो तो सवा सौ दे सकते हो?" बच्चों की तरह ईदन मियाँ रो उठे बैलों की ओर देखकर—वे चुपचाप खड़े थे जैसे मूर्ति हों।

पुजारी बाबा से ज़मींदार के दीवान साहब बोले—"कल जज साहब के यहाँ आपका बयान होगा। गाँजा पीकर मत जाना। यही कहना कि—मैंने रामदयाल, शिवधारी, भज्जू महादेव को तलवारों और बर्छों से लैस देखा है—बन्दूक़-तोप की चर्चा मत करना।" मैं कहता हूँ—"इस बार भूले हो···हाँ।" पण्डित जी बोले—"मैं सरकार से फ़क़ थोड़े हूँ—जो हुक्म होगा, पर सरकार····· ?"

दीवान साहब बोले—"हाँ, हाँ कहिए? क्या कहना चाहते हैं। गाँजे के लिए पैसे?" पुजारी बाबा ने खीस काढ़ कर कहा—"ज़मीन का दानपत्र नहीं मिला। हुक्म हुआ था कि……।"

दीवान गुर्राकर बोले—"मन्दिर में जो सात बीघे खेत हैं। वे क्या तुम्हारे बाप के हैं? मुक़दमे के बाद देखा जायगा। अभी कुछ नहीं हो सकता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षरता लिपि और भाषा

लेखक, श्रीयुत रणजित् सीताराम पंडित

कांग्रेस-सरकार ने निरक्षरता-निवारण के लिए व्यापक कार्यवाही शुरू कर दी है। पिछले दिनों हमारे प्रान्त में सर्वत्र साक्षरता-दिवस बड़े उत्साह एवं समारोह से मनाया गया था; उसी दिन से देश के कोने-कोने से साक्षरता के कलंक को धो-बहाने का प्रयत्न होने लगा है। इसमें सन्देह नहीं कि अन्य आन्दोलनों की भाँति साक्षरता-प्रचार के आन्दोलन के लिए भी इसी प्रकार के संगठित प्रयत्न की आवश्यकता है।

इस प्रकार की योजना हमारे देश के लिए प्रायः नई है। पर अन्य देशों में इसका प्रयोग बहुत पहले से हो रहा है। साक्षरता-योजना के सम्बन्ध में अपने देश की तुलना दूसरे देशों से करना मनोरंजक होगा। रूस में क्रान्ति के पश्चात् जब साक्षरता-आन्दोलन चलाया गया था, उन दिनों उसकी दशा लगभग ऐसी ही थी जैसी कि आज-कल हमारे देश की है। वहाँ भी बड़े-बड़े हलक़े थे, जिनमें लाखों निरक्षर किसान रहते थे। उन किसानों का रहन-सहन सर्वथा मध्य-कालीन था। यातायात के साधन भी अपर्याप्त थे। न कोई पत्र पढ़ता था, न पुस्तकें; न कालेज थे, न विश्वविद्यालय। सोवियट प्रजातन्त्र को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा था। उस अवस्था में उसने जिन उपायों-द्वारा सफलता पाई थी उनमें से कुछ का उपयोग हमारे देश के लिए भी लाभदायक हो सकता है। सोवियट सरकार ने देश भर में चारों ओर बड़े-बड़े पोस्टर लगवा दिये थे। इन पोस्टरों में एक अंधे का चित्र था, जो एक भयानक खन्दक के बिलकुल किनारे पर खड़ा दिखलाया गया था। चित्र के नीचे लिखा था कि निरक्षर आदमी इस अन्धे के समान है जो खन्दक के किनारे पर खड़ा है, पर यह नहीं जानता कि उसका विनाश निकट है। इस खन्दक से बचने के लिए केवल एक उपाय है—'साक्षरता'। वहाँ साक्षरता-प्रचार के लिए सिनेमा का भी उपयोग किया गया था। अनुभव से सिनेमा का पर्दा इस कार्य के लिए लकड़ी के साधारण श्यामपट की अपेक्षा कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ। क्योंकि श्याम-पट छोटा होता है अतः उसे कुछ दर्जन व्यक्ति ही देख पाते हैं; सिनेमा का पर्दा आकार में उससे कहीं बड़ा होता है, इससे उसे हज़ारों व्यक्ति एक साथ देखते हैं। फिर सिनेमा में आकर्षण भी होता है, जो लाखों किसानों को दूर-दूर से अपनी ओर खींच लेता है। श्यामपट में वह आकर्षण कहाँ?

साक्षरता के साथ लिपि का अटूट सम्बन्ध है; इस दिशा में भी हम रूस के अनुभव से लाभ उठा सकते हैं। ज़ारशाही के दिनों में रूस भर में जो स्कूल थे वे रूसी-भाषा के थे। रूस ने जीते हुए तथा उसके निकटस्थ उपनिवेशों पर भी रूसी-भाषा राजभाषा के रूप में ज़बर्दस्ती लाद दी गई थी। वहाँ के सभी स्कूलों में रूसी-भाषा का पढ़ना अनिवार्य कर दिया गया था। इस नियम का पालन ऐसी सख़्ती से किया जाता था कि पोलैंड आदि के विद्यार्थी भी जब तक कि वे स्कूलों में रहें, अपनी मातृ-भाषा नहीं बोल सकते थे। रूसी के अलावा अन्य भाषा बोलना वहाँ अपराध समझा जाता था। स्कूलों का सारा काम भी रूसी में ही होता था। ज़ारराज्य के उन प्रदेशों में जो मध्य एशिया में थे—जैसे खिरगिज़ और तातार—जनशिक्षा की कोई व्यवस्था न थी। वहाँ के निवासी बौद्ध और मुसलमान जो चाहते थे, पढ़ते-लिखते थे। हाँ, राज्य के शासन-केन्द्रों में कुछ स्कूल अवश्य थे, जिनमें रूसी-भाषा को प्रोत्साहन दिया जाता था; पर उन्हें छोड़कर प्रान्त के शेष भागों में एक भी स्कूल न था। राज्य-क्रान्ति के उपरान्त सोवियट अधिकारियों ने आरंभिक शिक्षा को उकसाने का भरसक प्रयत्न किया। उनकी इच्छा थी कि सोवियट प्रजातन्त्र की प्रत्येक प्रजा आरम्भिक शिक्षा प्राप्त कर सके। सरकार की ओर से ऐसी अनेक संस्थाएं खोल दी गईं जो विभिन्न प्रदेशों को उनकी प्रथाओं और सांस्कृतिक अवस्थाओं के अनुसार उन्नति करने के लिए प्रोत्साहित करती थीं। उन संस्थाओं को प्रारम्भिक शिक्षा के लिए जो पुस्तकें दी जाती थीं उनकी शैली तो आधुनिक ही होती थी, पर भाषा और लिपि भिन्न-भिन्न प्रदेशों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की थी। उदाहरण के लिए बश्कीर-जाति का नाम ले सकते हैं। मध्य-एशिया के पहाड़ी प्रान्तों की इन जातियों में शिक्षा का चलन क़तई नहीं था। इन्हें साक्षर बनाने के लिए इनकी बोलियों की लिपियाँ निकाली गईं। ये लिपियाँ उन पुरातन धर्म-पुस्तकों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार पर निकाली गई थीं जो इन जातियों के धर्मात्मा व्यक्तियों के पास सुरक्षित थीं। स्थानीय तुर्की बोलियों की प्रचलित और अप्रचलित लिपियों का भी इस काम के लिए पूरा-पूरा उपयोग किया गया। कारण यह था कि वे अधिकारी जानते थे कि विद्यार्थी उस लिपि के सहारे अधिक आसानी से उन्नति कर सकता है जो उसके लिए निकट तथा ग्राह्य हो। जो विषय उसे अपनी मात-भाषा में सिखाये जायँगे उन्हें वह जल्द सीख लेगा। आँकड़ों से ज्ञात हुआ है कि छोटे बच्चों में साक्षरता की वृद्धि मात-भाषा के ज्ञान के अनुपात से होती है; वयस्क छोटे बच्चों की अपेक्षा ५ गुना अधिक तेजी से उन्नति करता है। कारण यह है कि वयस्क का अपनी भाषा के शब्दों पर तो अधिकार होता ही है, उसे केवल उसका लिखित रूप सीखने को रहता है; और बच्चे को शब्द भी सीखने पड़ते हैं।

सोवियट सरकार को इन उपायों-द्वारा आशातीत सफलता प्राप्त हुई और वहाँ अल्पकाल में ही साक्षरता का काफ़ी प्रचार हो गया। हमें अपने देश में भी भाषा और लिपि के प्रश्न को इसी दृष्टिकोण से हल करना चाहिए। साक्षरता के लिए लिपि की आवश्यकता होगी ही। पर इसके लिए कौन लिपि काम में लाई जाय, इसका निर्णय सीखनेवाले पर छोड़ देना ही ज्यादा अच्छा होगा। किसी किसी प्रान्त में एक से अधिक लिपियाँ भी प्रचलित होती हैं। यदि कोई अल्पसंख्या अपनी धार्मिक व सांस्कृतिक भावनाओं की रक्षा के लिए लिपि-विशेष को सुरक्षित करने की माँग करे तो उसे स्वीकृत कर लेना ही सर्वथा न्याय है। ऐसी जातियों को अपनी अभीष्ट लिपि की उन्नति के लिए हर प्रकार की उचित सुविधा मिलनी चाहिए। यह राजनैतिक दृष्टिकोण से ही नहीं, साक्षरता-प्रचार के दृष्टिकोण से भी निहायत आवश्यक व वांछनीय है—यदि हम सचमुच साक्षरता का प्रचार करना चाहते हों तो! पर जहाँ अल्पसंख्या को अपनी लिपि सुरक्षित रखने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए, वहाँ बहुसंख्या को भी इसी प्रकार की स्वाधीनता होनी चाहिए। पर जहाँ अल्पसंख्या केवल पृथक्ता की भावना को लेकर ही अपनी लिपि को सुरक्षित करने की माँग कर रही हो तो उसे शान्त रखने के लिए ही बहुसंख्या से यह आशा करना कि वह आंशिक रूप में या अपनी लिपि का सर्वथा त्याग करके पूर्णरूप से अल्पसंख्या की लिपि को अपना ले सर्वथा अनुचित है। सम्भव है कि अल्पसंख्या अपनी लिपि को अधिक प्रचलित करने के अभिप्राय से सरकार से ऐसी माँग करे! पर सरकार के लिए इस प्रयत्न का निपटारा करने का एक यही उपाय है कि वह अपने साधारण व्यवहार के लिए केवल बहुसंख्या की लिपि को अपनाये। साथ ही अल्पसंख्या की लिपि को भी पूरा प्रोत्साहन देती रहे। हमारे देश में व्यवहृत होनेवाली विभिन्न लिपियों व भाषाओं के उद्गम व विकास पर हम आगामी लेख में विचार करेंगे। यहाँ इतना कहना ही काफ़ी है कि इस परिवर्त्तनशील संसार में हमारी भाषा से अधिक परिवर्त्तनशील दूसरी कोई वस्तु नहीं। भाषा एक जीवित प्राणी के समान होती है। भोजन और मलविसर्जन उसके जीवन के आवश्यक धर्म हैं। वह नये भावों के व्यञ्जक नये शब्दों को शीघ्र ग्रहण कर लेती है, यही उसका भोजन है। पुराने शब्दों को घिसे-घिसाये अथवा जाली सिक्कों की भाँति निकाल कर बाहर कर देना ही उसका मलोत्सर्ग है।

आज का संसार शीघ्रता-पूर्वक एक हो रहा है। वायरलेस और हवाई जहाज़ों के प्रचार ने समय और दूरी के प्रश्न को हल कर दिया है। अब एक देश के विचार दूसरे देश में बिजली की भाँति फैल जाते हैं। कुछ देशों में—जो अभी कल तक मध्यकालीन दशा में थे—जैसे तुर्की और ईरान, भाषा में आधुनिकता लाने और लिपियों में आवश्यक परिवर्त्तन एवं संशोधन करने के लिए समितियाँ बना दी गई हैं। स्वर्गीय कमाल अतातुर्क ने तुर्की की पुरानी लिपि को रोमन में बदल दिया। यही नहीं, उन्होंने तुर्की-भाषा में से फ़ारसी और अरबी के शब्दों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर निकाल फेंकने के लए एक कमिटी भी बना दी। इस कमिटी की राय में तुर्की-भाषा की उन्नति व उसके नवीकरण के लिए विदेशी शब्दों का बहिष्कार आवश्यक था, क्योंकि अपना ऐसा किये न तो तुर्की के निवासियों के विचारों में नवीनता व आधुनिकता आ सकती थी और न तुर्की-भाषा ही इस युग के व्यवहार के लिए उपयुक्त हो सकती थी। पुरानी लकीर पर चलते हुए तुर्की का भविष्य में विकास भी असम्भव था। आँकड़ों से पता लगता है कि तुर्की-भाषा में प्रतिशत २४ शब्द अरबी के थे और ४० प्रतिशत फ़ारसी के। नई तुर्की ने ऐसे समस्त शब्दों का पूर्ण बहिष्कार कर दिया है।

राष्ट्रीय जागृति के साथ-ही-साथ ईरान में भी भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के परिष्कार का प्रश्न उठा। ईरानियों ने अपनी भाषा में से अरबी शब्दों का यहाँ तक बहिष्कार कर दिया कि स्वयं बादशाह ने ईरान की किसी पिछली विजय के स्मृति-स्वरूप पहलवी की उपाधि धारण की। अरबी-शब्द फ़ारसी-भाषा में बुरी तरह घुल-मिल गये थे, अतः वहाँ अरबी-शब्दों के बहिष्कार का प्रश्न बड़ा कठिन पड़ा। फिर भी किसी-न-किसी प्रकार ईरानियों ने यह कठिन कार्य भी पूरा कर डाला और आज-कल उनकी भाषा में अरबी का एक भी शब्द देखने को नहीं मिलता। यहाँ तक कि मुसलमान होते हुए भी मुसलमानों के अत्यन्त प्रिय वाक्य 'बिस्मिल्लाह अर्रहमान अर्रहीम' के स्थान पर भी वहाँ 'बनामे ख़ुदा' का प्रयोग होने लगा है। रोमन-लिपि को अपनाने के सम्बन्ध में ईरानियों ने अभी तक कोई निर्णय नहीं किया। इस विषय को उन्होंने अपनी सरकार पर छोड़ दिया है। प्रसन्नता की बात है कि मुसलमान होते हुए भी तुर्की और ईरानी भाषा और लिपि के प्रश्न को धर्म के साथ सम्बन्धित नहीं करते। उनका यह भाव उनकी उन्नतिशील मनोवृत्ति का परिचायक है। पर हमारे अभागे देशवासियों की मनोवृत्ति भी विलक्षण है। हम लोग भाषा और लिपि के मामले में भी धर्म को ला घुसेड़ते हैं। यही नहीं, हम तो भाषा और लिपि के प्रश्न को भी मिलाकर देखना चाहते हैं—पृथक्-पृथक् नहीं। योरप के सब देशों ने साक्षरता-प्रचार के लिए सुविधा की दृष्टि से रोमनलिपि को स्वीकार कर लिया है। सब जानते हैं कि योरप की भाषायें उच्चारण-वैभिन्य के कारण एक-दूसरी से सर्वथा पृथक् हैं, पर लिखने में रोमन-लिपि से सबका काम अच्छी तरह चल जाता है। हमारे देश की अदालतों में भी हिन्दुस्तानी-भाषा के लिए रोमन-लिपि का प्रयोग अँगरेज़ जजों की सुविधा की दृष्टि से किया जाता है। पुर्तगालवालों ने तो हिन्दुस्तान के स्वाधिकृत प्रदेशों में रोमन-लिपि का प्रचार वहाँ की स्थानीय बोली को लिखने के लिए शताब्दियों से कर रक्खा है। गोआ-निवासी कोकानिम भाषा बोलते हैं, जो रहठी की एक शाखा है, पर उसे लिखते हैं रोमन-अक्षरों में। मेरी समझ से भारत के अन्यान्य सभी प्रदेशों में रोमन-लिपि सफलता-पूर्वक काम में लाई जा सकती है बशर्ते कि वहाँ के निवासी उसका प्रयोग अपनी लिपि के स्थान में करना स्वेच्छापूर्वक पसन्द करें।

हमारे प्रान्त की शिक्षा-संगठन-कमिटी ने ७ से लेकर १४ वर्ष तक की आयवाले बच्चों के लिए शिक्षा अनिवार्य तथा निःशुल्क कर देने की सिफ़ारिश सरकार से की है। यह भी सिफ़ारिश की गई है कि इस प्रयोजन के लिए जो पाठ्य-पुस्तकें लिखाई जायँ उनकी भाषा साधारण हिन्दुस्तानी हो। न तो उसमें अरबी-फ़ारसी के कठिन शब्द हों, न संस्कृत के। साथ ही भाषा ऐसी हो जो अरबी और देवनागरी दोनों लिपियों में लिखी जा सके। कमिटी ने अरबी और देवनागरी दोनों लिपियों का अनिवार्य रूप से प्रारंभिक पाठशालाओं में पढ़ाना स्वीकार कर लिया है। यह सचमुच बड़ा भयानक निर्णय है। उचित तो यह था कि लिपि का चुनाव विद्यार्थी तथा उसके अभिभावकों पर छोड़ दिया जाता। यदि विद्यार्थी साथ ही साथ दूसरी लिपि भी सीखना चाहता तो उसे ऐसा करने के लिए भी पूरी आज़ादी रहती। अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा के लिए अनिवार्य केवल एक लिपि को किया जाता। अगर विद्यार्थी दूसरी लिपि को पढ़ना चाहता तो उसे रोमन या हिन्दी-उर्दू में से किसी एक को चुनने की स्वतंत्रता दी जाती। ऐसा करने से हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के छात्रों को अपनी प्रारंभिक शिक्षा के लिए लिपियाँ चुनने का मौक़ा रहेगा। उन्हें द्वितीय लिपि के लिए रोमन सीखने का भी अवसर रहेगा जो आगे चलकर अँगरेज़ी पढ़ने में सहायक सिद्ध होगी, क्योंकि माध्यमिक शिक्षा के लिए अँगरेज़ी को अनिवार्य्य कर देने की सिफ़ारिश की गई है। हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के छात्र चाहने पर अरबी-लिपि-द्वारा ही प्राथमिक शिक्षा का प्रारंभ कर सकते हैं; इसी प्रकार देवनागरी-लिपि को भी चुनने का दोनों को समान अधिकार रहेगा। पर हमारी सरकार को प्रारंभिक शिक्षा के लिए प्रान्त की सब पाठशालाओं में नागरी-अरबी दोनों लिपियों का अनिवार्य कर देना छात्रों के हित में अच्छा नहीं हुआ। शिक्षारंभ से ही विद्यार्थी पर बहुत अधिक लिपियों या शब्दों का बोझ लाद देना अनुचित है; इससे उसके मानसिक विकास में बाधा पड़ती है। साथ ही ऐसा करना मनुष्य के उस जन्मसिद्ध अधिकार की उपेक्षा करना है जो उसे अपनी भाषा को अपनी लिपि-द्वारा सीखने के लिए तथा अन्यान्य अनावश्यक व अवाञ्छनीय लिपियों को अपने दिमाग़ में न आने देने के लिए, स्वभावतः प्राप्त है।

भाषा के संबंध में इतना कहना काफ़ी है कि इसके लिए क़ब्रों के गड़े मुर्दे उखाड़ने की ज़रूरत क़तई नहीं है। क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे अनावश्यक वितंडा के खड़े हो जाने की आशंका है। जब गाँवों का बहुसंख्यक जन-समाज साक्षर हो जायगा तब बोलचाल की भाषा का आप-से-आप प्राधान्य हो जायगा। हमें इस समय आवश्यकता तो एक ऐसी भाषा की है जो हमारे दैनिक व्यवहार व साहित्य की आवश्यकताओं की पूर्त्ति कर सके; साथ ही हमारे विज्ञान-संबंधी अध्ययन व 'रिसर्च' के लिए भी उसके पर्याप्त पारिभाषिक शब्द हों। वह भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसके द्वारा हम अपने भूत व वर्त्तमानकालिक सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक भाव आसानी से व्यक्त कर सकें; जिसे हम अपने राजनीतिक विचार-विनिमय का माध्यम बना सकें और जिसमें हम व्यवस्थापिका सभाओं की कार्यवाही कर सकें और क़ानून बना सकें। ऐसी ही भाषा लोकभाषा का पद पा सकेगी। उसका उदय जनसाधारण में से होगा। मुग़ल-युग या उससे भी अधिक पुराने युग की भाषा को, इसी उद्देश्य से, पुनर्जीवित करने की चेष्टा करना अनावश्यक है। न आवश्यकता होने पर भी ऐसा कर सकना अब संभव ही है। 'सुभाषण' की समस्या भी हमारी भाषा को ही हल करनी होगी। हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे स्पष्ट और श्रुतिमधुर भाषा बोलें। जो भाषा हम आज-कल बोलते हैं वह हमारे उच्चारणोपयोगी अवयवों व प्रयत्नों के सर्वथा अनकूल है। जब सर्वसाधारण में शिक्षा का प्रचार हो जायगा तब हमारी भाषा में से भी विदेशी परिभाषायें और उच्चारण निकाल बाहर किये जायँगे। भूतकाल की अपनी भूलों को सुधारने पर हमें पूरा ध्यान देना चाहिए। हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपनी 'लफ़्फ़ाज़ी' को छोड़कर अपनी भाषा को इस रूप में विकसित करने का प्रयत्न करें कि वह हमारी वर्त्तमान युग की समस्त आवश्यकताओं को पूरा करने के उपयुक्त हो जाय।

द्वार खड़ी आहुति की बेला

लेखक, श्रीयुत अंचल

आज न यौवन का मुख देखो द्वार खड़ी आहुति की बेला।

आई निष्ठुर दिवा स्वामिनी की, प्रज्वलित ख़ून की प्यासी,
हर लेगी जो रजनी उत्सव की ममता की सुखर उदासी।
फफक रहा किरणों का मंडल देखो प्रिये विरह की छाया,
इस अपूर्णता को जगती में किस युग में संघर्ष न आया,
फटे शिखर ज्वाला गिर के जब टूटे नारी हृदय तुम्हारा,
मुक्त करो चिर मुक्त करो अब जीवन का दावानल सारा;
हो अक्षय शृंगार तुम्हारा क्या चिन्ता मैं रहूँ अकेला,
आज न यौवन का मुख देखो द्वार खड़ी आहुति की बेला।

अब तक सपनों में पागल थे अब देखें उल्लास मरण का,
अब तक गीतों में बन्दी थे आज सुनें चीत्कार हरण का;
आज सुनें भूखों का हाहाकार दलित की दाह कहानी,
मर्म वेदना अपमानित की वक्षहीन लज्जा की वाणी;
फिर स्फुलिंग निकल वर्षा से खोलो ये विलास के बन्धन,
जीवन को जीवन की तृष्णा आज निधन के खुले निमंत्रण;
और गृहों संसारों में भी करूँ शासनों को अवहेला,
आज न यौवन का मुख देखो द्वार खड़ी आहुति की बेला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं तिब्बत कैसे पहुँचा !

लेखक,
श्रीयुत फेनो मुकर्जी, कलाकार
ए० सो० ए०, आई० ए० एस०

(३)

हवा तेज़ हो गई, बारिश भी साथ साथ मूसलाधार होने लगी, लेकिन घोड़े से उतर कर बरसाती निकालने की हिम्मत न हुई। इसलिए आगे चलने पर मजबूर हुए। घोड़े के पैर कई जगह फिसले। क़रीब आध घण्टे के बाद बारिश तो रुक गई, पर छोटे-छोटे ओले गिरने लगे। सरदी बहुत ज़्यादा बढ़ गई। चन्द मिनट के बाद ही बरफ़ पड़ने लगी और देखते-देखते तमाम कपड़े और घोड़ों की पीठ सफ़ेद हो गईं। लेकिन सड़क के संकीर्ण होने से रुकने का कोई सुभीता नहीं था, और रुकना जोखिम भी था। ऐसे अवसर पर देह का गरम रहना ज़रूरी है। कभी बारिश की बौछार और कभी बरफ़ के तूफ़ान के अन्दर से गुज़रते हुए हम लोग क़रीब ३॥ बजे नाथङ्ग पहुँचे और वहाँ की सराय में आ ठहरे। सराय बड़ी आराम देह थी। बरफ़ और ओलों की मार से हमारा बुरा हाल था। हमारी दशा को देखकर सराय की स्वामिनी ने हम लोगों के पास बहुत सी आग लाकर रख दी। उसने मुझ पर विशेष कृपा की, मुझे ले जाकर अपनी रसोई के चूल्हे के पास बैठा दिया और हमारे कोट और जूते उतार दिये, क्योंकि उन पर बरफ़ जमी हुई थी और आग की गरमी से पानी गल गलकर उनमें समा रहा था, इसलिए

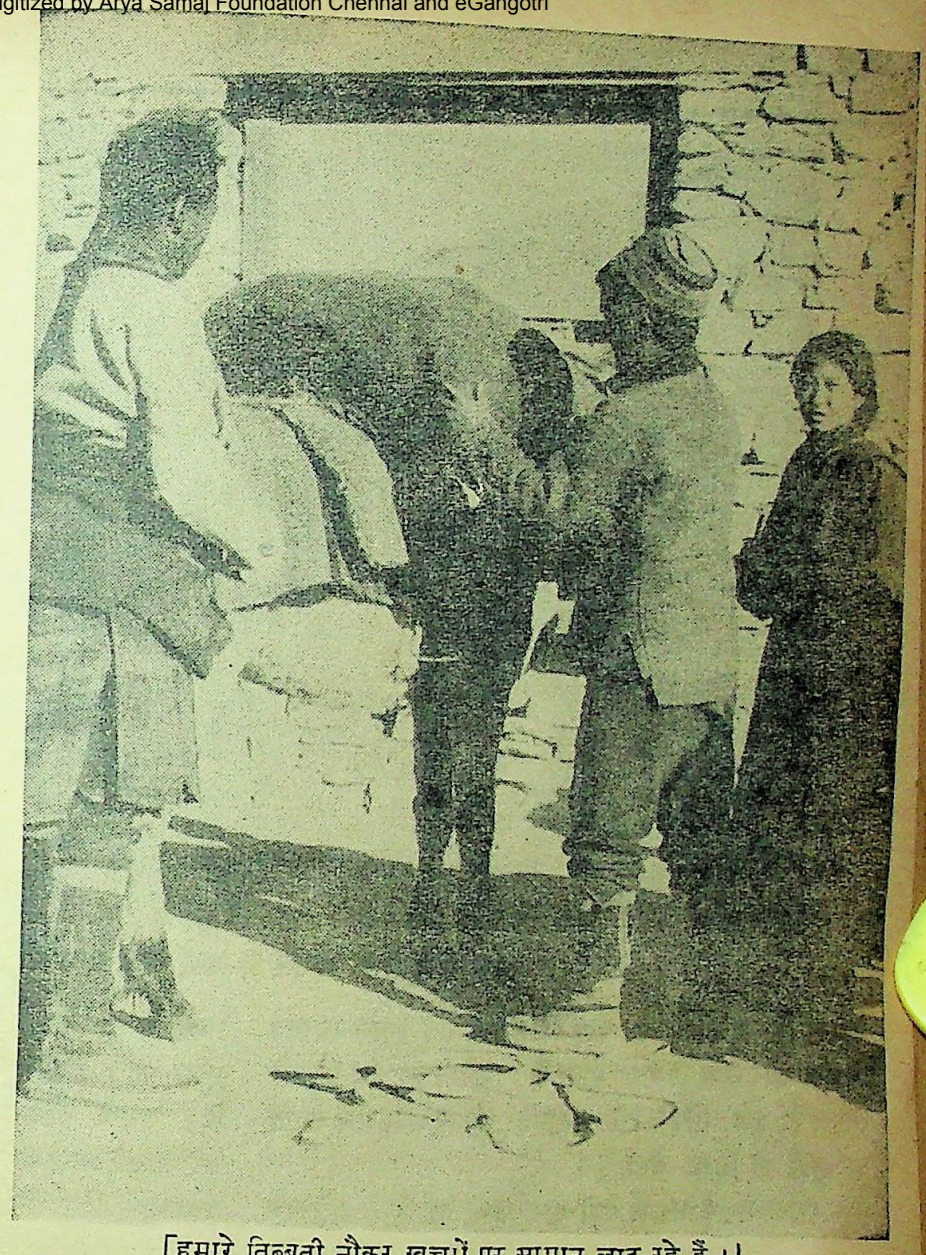

[हमारे तिब्बती नौकर ख़च्चरों पर सामान लाद रहे हैं।]

उन्हें उतार डालना ज़रूरी था। वह हमको वहीं नमकीन चाय पीने को मजबूर करने लगीं। जब मैं सराय से निकल कर बाहर बरफ़ की चोटियों को देख रहा था उस वक़्त वह भी मेरे साथ साथ घूमने लगी और अपनी बोली में न मालूम क्या कहने लगी। लेकिन मैंने उसको यह बता कर उदास नहीं किया कि मैं तिब्बती बिल्कुल ही नहीं समझता हूँ। बाहर मेरे मित्र गेशेला दिखाई दिये। उनको बुलाकर मैंने कहा कि तुम इस स्त्री से पूछो कि यह मुझसे क्या कहती है। पूछने पर मालूम हुआ कि वह मुझको देखकर बहुत ख़ुश हुई है और चाहती है कि मैं कुछ दिन यहीं रह जाऊँ और इस तूफ़ान में बरफ़ से जमी हुई चोटियों को अभी पार न करूँ। उसकी यह बात सुनकर मुझे अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[लामा लोग भूतों को भगाने के लिए नाच गान कर रहे हैं।]

पुराना विचार ठीक जान पड़ा कि मनुष्य का हृदय स्वभाव से प्रेम और दया से भरा होता है। लोगों का यह ख़याल ग़लत है, हम लोगों की संस्कृति ही हमको प्रेम आदि सद्गुणों की शिक्षा देती है।

आज उसके घर में बड़ी धूम मची हुई है। बड़े बड़े ढोल बज रहे हैं और मन्त्रों के पढ़े जाने की आवाज़ आ रही है। वही औरत मुझको एक कमरे के अन्दर लिवा ले गई। वहाँ जाकर उनके दस्तूर के अनुसार तीन दफ़ा लेटकर नमस्कार किया और उनकी पद्धति के अनुसार जीभ को बाहर निकालकर सिकुड़े हुए एक कोने में खड़ा होकर देखने लगा। मुझको देखकर चरणामृत पीने को दिया गया और सिर पर हाथ रखकर मुझे आशीर्वाद दिया गया। उस कमरे में सत्तू और आटे की बनी हुई ३ फ़ुट ऊँची एक मूर्ति रक्खी थी और उसके आसपास उसी क़िस्म की छोटी छोटी सैकड़ों मूर्तियाँ रक्खी थीं। एक मेज़ के ऊपर चाँदी के कटोरों में पवित्र पानी भरा हुआ था। रंग-बिरंग के कपड़ों और झंडियों से कमरा सजा हुआ था। मोर के पंख के चँवर और बहुत बारीक लम्बी घास से जिसको वे लोग कुश कहते हैं, वह स्थान सजा हुआ था। वहाँ ८ या ९ आदमी एक दायरे में बैठे हुए थे। उनके बीच में एक व्यक्ति एक रङ्गीन कपड़ा पहने हुए जिसमें जगह जगह जरी का काम था, बड़ी शान से बैठा हुआ एक मोटी पोथी खोले पढ़ता जाता था और बाक़ी आदमी उन मंत्रों को ऊँची धीमी आवाज़ से दोहराते जाते थे। उन आदमियों के हाथों में बड़ी-बड़ी ढालें थीं और वे उनको एक ताल में बजा रहे थे। वे लोग 'ढाबा' कहे लाते हैं और बीचवाला व्यक्ति लामा। ये लोग किसी पास के मठ से बुलाये गये थे और पिछले ६ दिन से वहाँ थे। कल पूजा समाप्त होगी। तब दक्षिणा लेकर चले जायँगे। उनको सराय की स्वामिनी ने बुलाया था। उसने अपना यह मकान नया बनवाया था। वह वेवक्त की बारिश और बरफ़ के तूफ़ान को देखकर डर रही थी, इसलिए उसकी रक्षा के लिए ये लोग मंत्र पढ़कर विघ्नकारी देवताओं को भगा रहे थे। ऐसे कामों के लिए ये लोग जगह जगह घूमते रहते हैं और उनको हर जगह खाना-पीना मुफ़्त मिलता है। वहाँ हर एक आदमी का यह कर्तव्य है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उनकी हर एक माँग को पूरा करे। चलते वक्त उनको १० या १२ रुपये दक्षिणा भी दी जाती है, जो पहले से तय रहती है।

वहाँ हमको ख़बर मिली कि भेड़ का ताज़ा मांस मिल रहा है। मैंने क़रीब आधी भेड़ १॥) में ख़रीद ली। सारी रात उस दयालु स्त्री की कृपा से बड़ी चैन से गुज़री। रात भर लगातार बारिश और बरफ़ का तूफ़ान जारी रहा। सुबह को उठा तब आसमान साफ़ था, लेकिन सर्दी बहुत तेज़ थी। चारों तरफ़ बरफ़ से सफ़ेद हो गया था। हमारे आगे जाने को सड़क एक लकीरनुमा सफ़ेद बरफ़ से ढँकी हुई चोटी पर दिखलाई पड़ रही थी, जिसको देखकर दिल दहल गया। मकान के इर्द-गिर्द बरफ़ के ढेर को ठोकरें मार मारकर खेलने लगे। इन पुजारियों को मकान के चारों ओर मन्त्र पढ़ते और ढोल बजाते हुए घूमते देखकर मैंने उनका फोटो लिया और फिर उनके साथ साथ

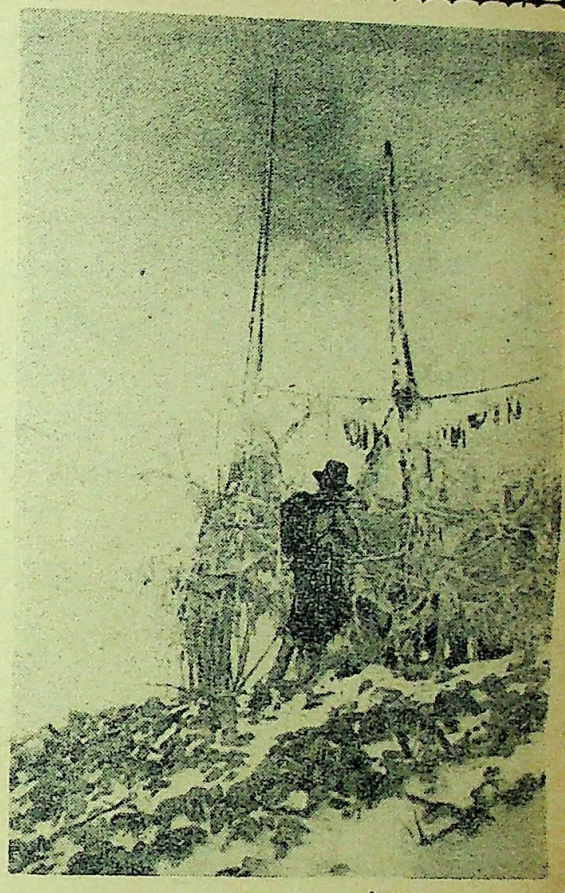

[हमारा नौकर जलेपा की बर्फ़ में अपनी सास की हड्डियाँ दबा रहा है।]

[सराय की एक जमादारिन चाय कूट रही है।]

फा० ३-४

बहुत दूर की एक घाटी में गया, जहाँ उन्होंने पूजा का सारा सामान और सत्तू की मूर्तियों को मन्त्र पढ़ कर फेंक दिया। पूछने पर मालूम हुआ कि इन सबको पानी में फेंकने का दस्तूर है, लेकिन अब उसके जम जाने की वजह से बरफ़ पर फेंका जा रहा है। सराय की स्वामिनी को ।) लकड़ी का दाम ज़बरदस्ती दिया, क्योंकि वह लेना नहीं चाहती थी। ६ मई १९३८ को ५ बजे सुबह फिर आगे बढ़े।

ऊँचाई बराबर ज़्यादा होती जा रही थी तमाम सड़क बफ़ से ढँकी हुई थी। यात्रा बड़ी जोखिम की थी। ख़च्चरों के पैर बराबर फिसल रहे थे। लेकिन चारों ओर का दृश्य बहुत ही अच्छा था। सर्वत्र सफ़ेदी ही सफ़ेदी दिखलाई पड़ती थी और उसकी सफ़ेद सतह पर काले काले आदमी और ख़च्चरों की पंक्ति बहुत ही अच्छी मालूम देती थी, जिसको देखकर मैं बार बार फोटो लेने लगता। आख़िर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

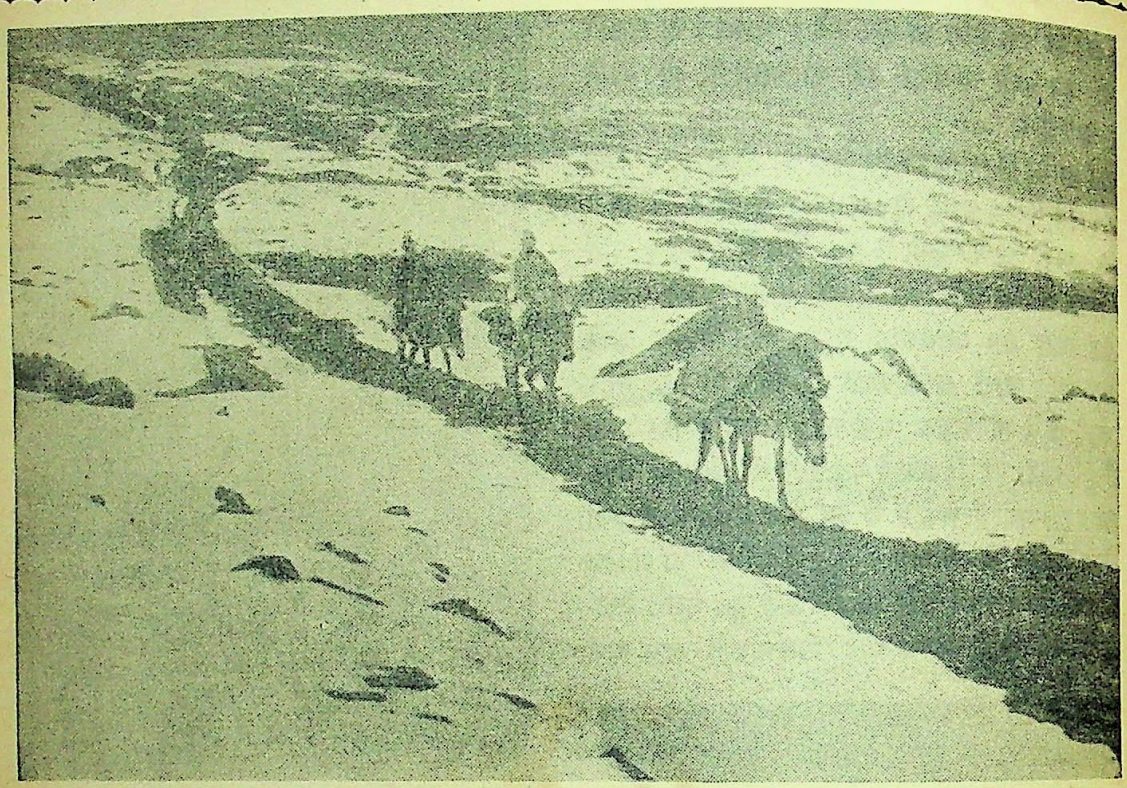

[जलेपलारिंग का बर्फ़ीला मार्ग]

मुझसे न रहा गया और ख़च्चर से उतर पड़ा, लेकिन पैर के फिसल जाने की वजह से नीचे खिसकने लगा। चोटी १४,५०० फ़ुट ऊँची थी और दर्रे का नाम जलेपा था। चोटी पर एक जलेपला देवता का स्थान है, जहाँ बहुत से संगमरमर के पत्थर जमा हैं और उस ढेरी पर हज़ारों झंडियाँ लगी हुई हैं। हमारे नौकरों में से एक नौकर अपनी सास की हाड्डयाँ लाया था। वह उनको बरफ़ में दबाने लगा। मालूम नहीं, उसने क्या क्या मंत्र पढ़े। वह हैट उतार कर नमस्कार करने लगा। पूछने पर मालूम हुआ कि वह जगह इस काम के लिए बहुत पवित्र मानी जाती है, जैसे हिन्दुस्तान में गया जी। पास में ही एक झील थी, जहाँ वह उन हाड्डियों को फेंकना चाहता था। लेकिन वह बरफ़ से जमी हुई थी, इसलिए उसने वहीं दबा देना मुनासिब समझा। इनके कई फोटो लिये। हमारे बाईं तरफ़ किंन्चनजंगा साफ़ दिखलाई पड़ रहा था, जिसको देखकर दिल दहल गया। उसके बाईं तरफ़ कुछ फासले पर माउन्ट एवरेस्ट की चोटी भी दिखलाई पड़ी। दृश्य इतना अच्छा था कि वर्णन के बाहर है। इस जगह भी मैंने कई फोटो लिये। इतने में दुर्भाग्य से बादलों का एक झुंड उस घाटी में घुस आया और कुछ मिनटों में वह सारा दृश्य ग़ायब हो गया।

अब नीचे की तरफ़ उतराई शुरू हुई जो इतनी जोखिम की थी कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। पद-पद पर मृत्यु और जीवन का सवाल था। सड़क के बाईं तरफ़ बड़ी भारी झील थी, पैर के फिसलते ही उसके अगाध पानी में ग़ायब हो जाने का डर था। आप चाहें कि बहुत धीरे-धीरे चलें और पैर फिसलते वक़्त थोड़ा रुक भी जाएँ तो ऐसा नहीं कर सकते, क्योंकि रास्ता क़रीब ८ इंच चौड़ा था। बीच की बरफ़ पैरों से कुचलने से एक लकीर सी बन गई थी, इसलिए रुकने से पीछे आनेवाले ख़च्चर और आदमी आपको धक्का देकर आगे बढ़ा देंगे। और रुकने में यह भी डर था कि चलते-चलते एकबारगी रुकने से आप अपने बोझ को सँभाल भी न सकें और गिर पड़ते। जो बरफ़ पर चलने के आदी नहीं हैं उनके लिए वह उतार बहुत ही कष्टप्रद था। आगे बढ़ते चलो, लेकिन मज़बूती के साथ; एकमात्र यही उपाय था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक भी क़दम रखने में अगर ग़लती की तो उसकी सज़ा मौत ही थी। इस बात को हर घड़ी याद रखना पड़ता था। इस धक्का-धक्की से आरी आकर मैं उस दबी हुई बरफ़वाली लकीर से हटकर चलने लगा। लेकिन फूली हुई बरफ़ में पैर धँसने लगा और एकाएक मेरा दाहिना पैर एक गड्ढे में घुस गया। इस अचानक झटके से पैर टूटने से साफ़ बच गया, क्योंकि मैं फ़ौरन बैठ गया। अभी सोच ही रहा था कि क्या करूँ कि देखा कि एक ख़च्चर बिलकुल मेरे ऊपर ही आ गया है। मैंने फ़ौरन टाँग निकाल ली और कूल्हा खिसक कर उसको जाने के लिए जगह दे दी। ख़च्चर-वाले बड़ी भागदौड़ और शोर कर रहे थे, क्योंकि ख़च्चरों के पैर फिसलने की वजह से तमाम काफ़िले के तितर-बितर हो जाने का डर था। ख़च्चरों में और आदमियों में एक तरह की लड़ाई सी हो रही थी। दोनों ही अपने लिए अच्छा रास्ता चाहते थे। इस क़िस्म की लड़ाई और जोखिम का मार्ग क़रीब १॥ घण्टे तक जारी रहा। उसके बाद उतराई पर हम लोग एक झील के क़रीब इधर-उधर पत्थरों पर

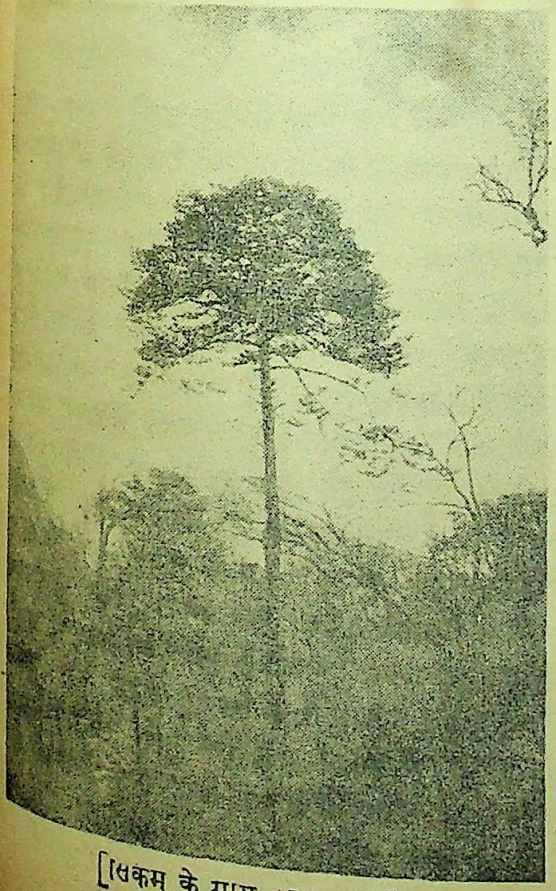

[सकम के मार्ग का अन्त।]

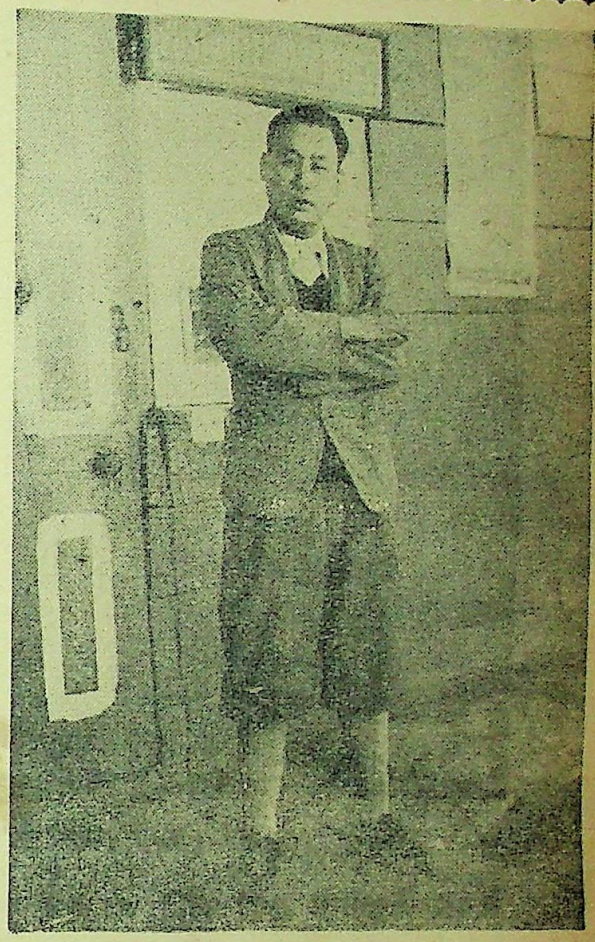

[फ़ेरीज़ोंग के दयालु पोस्ट मास्टर जिन्होंने राहुल जी के प्राण बचाने में हमारी सहायता की।]

छलाँगें मारते हुए आगे बढ़ चले। आगे बढ़ने पर एक पगडंडी मिली। लेकिन यह बहुत ज़्यादा उतराई थी और तेज़ मोड़ों की वजह से ख़च्चरों पर सवार होना कठिन था। इतने में सामने हरियाली दिखाई दी और ऐसा मालूम हुआ कि किसी अज्ञात शक्ति ने बड़े सुन्दर चित्र सजाकर रक्खे हैं।

क़रीब ११॥ बजे होंगे, हम लोग लाँगड़ा गाँव में पहुँचे। यहाँ हम लोग चन्द मिनट रुके और कुछ खाया-पिया। यहाँ एक नेपाली ने हम लोगों को मीठी चाय पिलाई।

अब आगे बढ़े। फिर बहुत ज़्यादा उतराई शुरू हुई। क़रीब तमाम दिन पैदल लुढ़कते हुए उतरे। कभी-कभी इस उतराई और गरमी से दिल थककर कहता था कि आज हम नरक में उतर रहे हैं लेकिन फिर दिल कहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[चोमो लहारी के निकट पुराना डाकघर]

था कि मैं नरक में जाने से डरता नहीं। जब नरक का रास्ता इतना सुन्दर है तब वह जगह हद से ज़्यादा सुन्दर होगी।

आख़िर शाम को २१ मील का सफ़र तय कर हम लोग रिमछेनगंज नामक एक बहुत सुन्दर गाँव में आ रुके। यहाँ की खेती अच्छी थी। धान खूब पैदा होता है। लोग भी शौक़ीन हैं और अच्छी हालत में हैं। हम लोग एक सराय के एक लकड़ी के कमरे में ठहर गये। यह सराय दो सुन्दर और साफ़-सुथरी औरतों की थी। हमारा कमरा जापानी और चीनी तसवीरों से सजा हुआ था। चारों तरफ़ दीवार पर तेज़ रंग के बेलबूटे खिँचे हुए थे। शीशे की खिड़कियाँ बाक़ायदा पर्दों से ढँकी हुई थीं। बैठने का गलीचा और सामने रक्खी हुई चाय की प्याली और चौकी बहुत ही सुन्दर और रंगीन थे।

रिमछेनगंज की चाँदनी रात बड़ी भली मालूम हुई। अकेले रात में बाहर जाना बड़ा जोखिम था, इसलिए एक नौकर को साथ लेकर बाहर सैर के लिए चला। समय काटने के मतलब से उससे बातें करने लगा। उसकी उम्र ३० साल की रही होगी लेकिन उसने बतलाया कि वह अभी २२ साल से ज़्यादा की नहीं है। वह विवाहित था। उसने अपनी पत्नी की उम्र ३५ साल बतलाई। उसने कहा, माँ मर गई है, बाप ज़िन्दा है। लेकिन वह बाप सौतेला है और उसकी परवा नहीं करता, उसके माँ के मर जाने पर उसका सारा सामान छीनकर उसको घर से निकाल दिया है। उसका विश्वास है कि उसकी माँ ज़्यादा मेहनत करने और तकलीफ़ उठाने की वजह से जल्दी मर गई। इसी बात से उसे एक दिन बाप पर बहुत क्रोध आया और उसको एक दिन बाज़ार में पकड़कर मार डालने की कोशिश की। पुलिस ने आकर उसको पकड़ लिया और थाने में लेजाकर उसको खूब धमकाया और छोड़ दिया। लेकिन यह अपनी ज़िन्दगी से आरी आ गया था, इसलिए इसने पुलिस से प्रार्थना की कि वह रिहाई नहीं चाहता। पर पुलिस ने उसकी नहीं सुनी और उसे खदेड़ दिया। ये सब बातें कालिम्पोंग में हुईं, जहाँ ये लोग तिब्बती सौदागरों की नौकरी करते हैं।

१० मई सन् १९३८ की सुबह को फिर हम लोग चल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़े। और हमारा दिमाग़ कई फ़िक्रों से भरा हुआ था, क्योंकि आज हमें पोलिटकल एजेन्ट के दफ़्तर में जाना था और उनसे भेंट होने पर दो पासपोर्ट लिखाने थे। लेकिन मुलाक़ात होने की बहुत कम आशा थी। रास्ता नदी के बराबर गया था। यहाँ नदी बहुत तेज़ और चौड़ी थी। दो बड़े ऊँचे पहाड़ों क बीच में बहती हुई गई थी। इस वजह से सूर्य का प्रकाश बहुत देर में हमारे ऊपर पड़ा। हवा बहुत तेज़ और ठंडी थी। लेकिन दृश्य बहुत ही अच्छा था। चलते-चलते एक गाँव के बीच से निकले। यहाँ के लोग बड़े सुन्दर और साफ़ रंग के थे। चलते चलते एकाएक एक भोटिया सिपाही ने आगे जाने से रोक दिया और पासपोर्ट दिखाने को मजबूर किया। पासपोर्ट देने पर उसने उसको उलटा पकड़ कर देखा और फिर हम लोगों की तरफ़ देखा। शायद उसको कुछ सन्देह हुआ, जिससे वह कहने लगा कि अभी तुम लोग यहाँ रुको, आगे नहीं जा सकते। हम लोगों ने आगे जाने पर ज़िद की और बतलाया कि मैं आज पोलिटकल एजेन्ट से मिलना चाहता हूँ। इस पर वह अन्दर गया और अपने साथ दो आदमी बुला लाया, जिनको देखकर मैं यह नहीं पहचान सका कि वे लड़कियाँ थीं या लड़के थे। ख़ैर, कुछ भी हो वे बड़े सभ्य थे। हमारी दुर्दशा को देखकर उनमें से एक ने कहा कि आप लोग ठहरें, उतरने की ज़रूरत नहीं, मैं अभी अपने अफ़सर को यह पासपोर्ट दिखलाकर लिये आता हूँ। अफ़सर साहब सोते से उठाये गये और हम लोगों को आगे बढ़ने की आज्ञा मिली।

क़रीब एक घंटे के बाद सासमा (याटङ्ग) पहुँच गये। यह जगह बहुत मनोरम निकली। यहाँ पोलिटकल एजेन्ट का एक दफ़्तर है। जाते ही मालूम हुआ कि पोलिटकल एजेन्ट साहब आज भूटान को रवाना हो रहे हैं। जल्दी जाकर उनके प्राइवेट सेक्रेटरी से मुलाक़ात की। वे देखने में जैसे सुन्दर थे, वैसे ही स्वभाव भी उनका बहुत अच्छा था। वे सिक्किम के रहनेवाले थे। उनकी कृपा से हमको १०½ बजे दो पासपोर्ट मिले। उनमें से एक हमारे मित्र कमलकृष्ण जी के लिए था, जो अपने आर्ट स्कूल की पढ़ाई छोड़कर तिब्बत के डाकरूम के काम में मेरी मदद करने के लिए आ रहे थे। दूसरा पासपोर्ट रेवेरेन्ड नागार्जुन के लिए था, जो राहुल जी को मदद देने को सीलोन से

[तिब्बती स्त्रियाँ पथरीली ज़मीन खोद कर घास की जड़ें निकाल कर ला रही हैं।]

आ रहे थे। पासपोर्टों के मिल जाने से हम लोगों को बड़ी ख़ुशी हुई और फ़ौरन बिना कुछ खाये-पिये हुए ही हम आगे को चल पड़े। लेकिन एक नेपाली व्यापारी ने हम लोगों को रोक लिया और चाय-बिस्कुट आदि से हम लोगों का सत्कार किया। यहाँ का बाज़ार बड़ा था। यहाँ ब्रिटिश पुलिस और भोटिया पुलिस यात्रियों और व्यापारियों की जाँच करती है। हमारे सामने ही एक भोटिया व्यापारी पकड़ा गया, जो सिगरेट का एक डिब्बा छिपाकर तिब्बत ले जा रहा था। यहाँ एक सिक्ख रेज़ीमेंट रहता है। यहाँ एक पहाड़ देखा, जिस पर बहुत कुछ खुदा हुआ था। मालूम हुआ कि जब कोई रेज़ीमेंट यहाँ आता है तब जाते वक्त वह अपना नाम और रहने की तारीख़ वहाँ लिखवा देता है, जिससे उस पहाड़ पर एक चार्ट बन गया है। यह जगह सिक्किम यानी अँगरेज़ी भारत और तिब्बत की सरहद पर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[यातुग में पोलीटिकल एजेंट का स्थान और बाज़ार]

इस जगह के आस-पास काफ़ी अधिक चरागाह हैं। यहाँ आलू और धान खूब पैदा होता है और पहाड़ों की चोटियाँ हरितमापूर्ण हैं। यहाँ से धीरे-धीरे चलकर हम एक सुन्दर घाटी में पहुँचे, जो रंगबिरंगे पेड़ों और झाड़ियों से भरी हुई थीं। हमारे चारों तरफ़ जंगली फूल खिले हुए थे और पाइन के लम्बे पेड़ कुछ और ही मज़ा दे रहे थे। आज का सफ़र हम लोगों ने और दिनों से ज़्यादा तय किया ताकि फेरींज़ान जहाँ पोस्ट आफ़िस था, जल्दी पहुँच जायँ। २६ मील का सफ़र तय करके हम लोग बहुत थक गये थे, तथापि मार्ग के दृश्य अति सुन्दर होने से दिल बहुत ख़ुश था। आज हम लोग एक सराय में ठहरे, जो कुछ दिन हुए जल गई थी। उस आधी जली हुई झोपड़ी में ही हम सब लोग ठहराये गये, क्योंकि वही एक झोपड़ी बरबाद होने से बची थी। उसके अन्दर बड़ी गन्दगी थी, तिस पर हम २० या २२ आदमी साथ में सरायवाले का कुटुम्ब मिलाकर थे। वह रात इसके अन्दर बितानी पड़ी। इस गाँव का नाम गाउ है।

दूसरे दिन ११ मई को तड़के गरम चाय पीकर चल दिये। मार्ग में एक जगह मेरा घोड़ा फिसल गया और मेरे सौभाग्य से वह एक पत्थर में अटक गया। थोड़ी दूर तक तो हरियाली रही, लेकिन धीरे-धीरे पेड़ों के वृक्ष से आगे निकल गये। यहाँ हवा बड़ी तेज़ और ठंडी थी। यह हवा ज़्यादा खुश्क थी, इसलिए बड़ा कष्ट हुआ। रास्ता बड़े बड़े पहाड़ों के बग़ल से घूमता हुआ गया था, इसलिए दूर से ४० या ४५ ख़च्चरों और २० या २२ आदमियों की पंक्ति को एक साथ देखने में बड़ा मज़ा आता था। अब सफ़र में कोई दिलचस्पी नहीं थी, क्योंकि ठंडी हवा बहुत तकलीफ़ दे रही थी और इस जगह डाकुओं का भी डर था। आगे चलकर देखा कि रास्ता एक बहुत बड़े मैदान से होकर जाता है। यह मैदान सैकड़ों मील ऊँचा, और वीरान है। इर्द-गिर्द पीले रंग की सूखी पहाड़ी हैं, जो ज़्यादातर गोल हैं। इसकी चोटियों पर टोपीनुमा सफ़ेद बरफ़ जमी हुई थी। यह पहाड़ी देखने में कुदरती नहीं मालूम होती और बहुत भद्दी है। चारों तरफ़ का दृश्य बहुत रूखा है। हरियाली का यहाँ नाम तक नहीं है। चलते-चलते एक सराय के पास आये लेकिन देर हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने के डर से ठहरे नहीं। फैरीज़ोम जल्दी पहुँचने के विचार से आज सुबह खाना भी नहीं खाया था। रास्ते में पानी के कई बड़े बड़े झरने देखे लेकिन वे ऐसी बरफ़ से जमे हुए थे मानों ऊपर से नीचे तक बरफ़ की शहतीर खड़ी हो। फोटो लेने की कोशिश की, लेकिन उँगलियाँ सरदी से इतनी सख़्त हो गईं थीं कि कैमरा ही नहीं खुल सका। सड़क के बीच में कहीं कहीं पानी की बड़ी पतली धार बहती मिली। यह पानी इतना ठंडा था कि ख़च्चर भी पैर रखने से डरते थे।

इस सरदी में हवा को चीरते हुए हम लोग बराबर चलते रहे, पर हम लोगों के हाथ, नाक-पैर सुन्न हो गये। आंख और नाक से लगातार पानी बहने लगा हालाँकि हम लोग ऊनी टोप, चमड़े के दस्ताने पहने और बरफ़ में लगाया जानेवाला चश्मा लगाये हुए थे। फिर भी ऐसा मालूम होता था कि चेहरे और सारे जिस्म का ख़ून जम गया है। इस हवा और सरदी से लगातार ७ घंटे लड़ते हुए हम लोग फैरीज़ोम शाम को ४ बजे पहुँच गये। आज का फ़ासला २४ मील से ज़्यादा तय नहीं किया होगा, लेकिन अधमरे की हालत हो गई थी, खड़े होने की शक्ति न रह गई थी और उतरते वक़्त ज़मीन पर गिर पड़े। फैरीज़ोग तिब्बत और हिन्दुस्तान के बीच का स्टेशन है। पास ही ब्रिटिश पोस्ट आफ़िस है। यह सुनकर बहुत दुख हुआ कि सारी डाक ग्यानसी भेज दी गई है। आज शाम को हमारे राहुल जी को बुख़ार आ गया, और वह बढ़ता ही रहा। यहाँ तक कि १०४ और १०५ डिग्री तक पहुँच गया। उनकी दशा देखकर मैं बहुत घबरा गया। ब्रिटिश ट्रेड एजेन्ट के पास तार भेजा कि हमको डाक-बँगले में ठहरने की आज्ञा दी जाय। फिर बाद को टेलीफोन से बातचीत की और राहुल जी को डाक-बँगलों में लेजाकर रक्खा। इसी समय वहाँ ख़ूब बरफ़ पड़ी और वह सारा पीला मैदान और पहाड़ियाँ सफ़ेद हो गईं। इधर रात और दिन राहुल जी की शुश्रूषा और देख-भाल में हम लोग थे। हिन्दुस्तान को तार दिया। १४ तारीख़ को उनका बुख़ार कुछ हलका हुआ और ब्रिटिश ट्रेड एजेन्ट की हिदायत के अनुसार उनको लेकर ग्यानसी जाने का बन्दोबस्त किया। ८ या ९ कुली और लिये और एक लकड़ी की डाँडी बनवाई। कुलियों के ग्यानसी तक ले जाने का ठीका ५२) में तय हुआ।

यहाँ मार्ग में बरफ़ से ढँकी हुई एक बड़ी ज़बरदस्त चोटी दिखलाई पड़ी, जिसको वे लोग चोमो लारी कहते हैं, जिसका अर्थ है पहाड़ का रानी। यह पहाड़ तिब्बत के ८ पवित्र पहाड़ों में से एक है।

फैरीज़ोग दुनिया की सबसे गन्दी जगह है। यह मेरा ही विचार नहीं है, बल्कि हर एक यात्री ने यही लिखा है। यह तिब्बत और हिन्दुस्तान के बीच उनके व्यापारियों का हाफ़ये-स्टेशन है। यहाँ खेत है ही नहीं। चारों तरफ़ की ज़मीन पथरीली और रेगिस्तान है। लोग हद से ज़्यादा ग़रीब और गन्दे हैं। जिन लोगों की जेब में कुछ पैसे हैं उनकी जान यहाँ बहुत जोख़िम में रहती है। पोस्ट मास्टर साहब ने बताया कि एक हफ़्ता हुआ, एक आदमी के जेब में ≋) पैसे थे और वह मारकर लूट लिया गया।

बरफ़ पड़ते समय जब हवा तेज़ चलती है तब बरफ़ का भयानक तूफ़ान आता है। तरकारी, ताज़ा गोश्त, चावल या आटा यहाँ नहीं मिलता। यहाँ का बाज़ार भी बहुत मामूली है, जहाँ जापानी चीज़ें और कपड़े मिलते हैं। यहाँ एक रेस्टोरेन्ट है। उसके अन्दर गये, लेकिन वहाँ का खाना हमको अच्छा नहीं लगा, क्योंकि वह चीनियों के ढँग का खाना था। यहाँ सदाचार को उतना महत्त्व नहीं दिया जाता। सुन्दर युवा लड़कियाँ भीख माँगने के बहाने घर-घर में घूमती रहती हैं और नाजायज़ तरीक़े से रोज़ी कमाती हैं। शहर से क़रीब ३ मील की दूरी पर एक मान्दर है, जिसको वे लोग गुम्बा कहते हैं। यहाँ के कुत्ते शेर की तरह भयानक होते हैं। इनका रंग काला होता है और ये हज़ारों की संख्या में घूमते रहते हैं। गाँव चारों तरफ़ मरे हुए जानवरों की हाड्डियों और याक के गोबर से पटा पड़ा था। मकानों की शक्ल बहुत ही गन्दी है। यहाँ पर एक तिब्बती गवनर की कोठी है, एक पहाड़ी क़िला है, जिसको यहाँ के लोग "ज़ोंग" कहते हैं। इसी नाम से वे गवनर और उनकी कोठी को पुकारते हैं। बरफ़ पड़ने के बाद जब सूरज निकलता है तब चारों तरफ़ कीचड़ से और भी गन्दा हो जाता है। बस्ती के लिहाज़ से यहाँ ५० मकान होंगे और यह तिब्बत की सबसे ऊँची आबादी है। इस फैरी-ज़ोग को हम कभी नहीं भूल सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खँडहर

लेखक, श्रीयुत 'नीरव'

ये खंडहर, य सूने खँडहर !
कुछ स्वेच्छाओं को-सी समाधि, कुछ भाव प्रलय के-से सहचर।
इनको दुनिया में बसते हैं, जग की बसतों के उजड़े घर;
इनको बेहालों पर रोतीं रचनायें सुन्दर—सुन्दरतर,
इनके एकाकीपन में भी सोया है कितना कोलाहल,
यह धूलि बनी होगी इनकी कितनी आशाओं की हलचल !
इनका सूनापन कहता है नभ की नीरवता से पल-पल
इस पल की अंतिम साँसों तक परवश-संसृति के पल निर्भर !

पलकों में मंदिर दृष्टि भर कर अधरों में संचित प्यार किये
जब सतत विजय की आशा में अपने जीवन को हार लिये
वह भ्रुकुटिविलास कहाँ चंचल, यौवन की उन्मदराशि कहाँ
क्या चिह्न आज स्नेही दम्पति सोये थे अंतिम बार जहाँ ?
वह कसक, प्यार, पीड़ा, विषाद, चीत्कार हार सब कुछ लेकर
मानव-जग के भस्मावशेष, ये शेष खड़े सूने खँडहर !

जिनकी अलसाई आँखों में मुस्काता स्वर्ण प्रभात रहा,
जिनके पल-पल की गति विधि को दुख-दैन्य सदा अज्ञात रहा,
जिनके शाश्वत सुख-वैभव का जयघोष दिशाओं में उठकर
भर लेता अपनी प्रतिध्वनि से वह गर्वित गान धरा-अम्बर
अब उन्हीं राजप्रासादों में हो रहा शून्यता का तांडव
जग के अविवेकी वैभव पर ये मानवता की हार अमर !

हाँ, एक बार जिसने जाकर निर्भीक हस्तिनापुर देखा,
जिसको समझाती मौन रही वह तक्षशिला अपना लेखा;
नगरों को सजधज हिल जाया करती अब भी जिसके भय में
ये दुर्ग भ्रान्तपथ दानव-से चुपचाप खड़े जिस विस्मय में—
उसकी चिंता में गलता है कण-कण यमुना-तट ताज आज
किस युग में किस निर्दय पल में आ जाये वह दिन भूल इधर !

मिट्टी की दीवारों में भी आ जाता जीवन का सपना
सोने के महलों में भी यह उपहास करा लेता अपना
इनने भी जीवन देखा है, देखा है जीवन का उपक्रम
इनके जीवन का देख अंत क्यों आज हँसे कोई निर्मम
जिनका निरवधि पथ देख रहे ये, क्या उनकी भूली पदध्वनि
सहला देगी आकर इनको उन्माद निराशा का पल भर !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे संस्मरण

लेखक, श्रीयुत गोपालराम गहमरी

पटना के नार्मल स्कूल की अन्तिम परीक्षा ससम्मान पास करने के बाद दस महीने तक मैं घर पर बेकार बैठा रहा। अन्त में रोहतासगढ़ के हेडमास्टर की जगह पर मेरी तैनाती का परवाना आया। यह नवम्बर सन् १८८८ की बात है।

रोहतासगढ़ जाकर हेडमास्टरी का चार्ज ले लिया और लड़कों को पढ़ाने लगा। लेकिन मन में अख़बारों में लिखने की जो रुचि बढ़ती जा रही थी वह बढ़ती ही गई। एक वर्ष भी नहीं बीता था कि बम्बई के सेठ खेमराज की आज्ञा पहुँची। हेडमास्टरी छोड़कर बम्बई चला गया। वहाँ कुछ महीने रहा। लेकिन उस नामी प्रेस से उस समय कोई समाचार-पत्र नहीं निकलता था, इस कारण समाचार-पत्र के दफ़्तर में दिन बिताने की लालसा नहीं पूरी हुई। बहुत आग्रह करने पर सेठ जी ने कहा कि एक साप्ताहिक पत्र निकालेंगे, लेकिन थोड़ा ठहरकर। प्रेस में काम करते समय भी समाचार-पत्रों में लिखने का रोग बढ़ता ही गया। कालाकाँकर से माननीय राजा रामपालसिंह का 'हिन्दोस्थान' निकल रहा था। उसका मैं नियमित लेखक था। विहारबन्धु, भारत-जीवन, सारसुधानिधि में मैं लिखा करता था, लेकिन मेरा मन लिखने का गहगड्ड मैदान खोजता था। वह लालसा 'हिन्दोस्थान' (कालाकाँकर) के सम्पादकीय स्टाफ़ में पहुँचने पर पूरी होने लगी। लेकिन कालाकाँकर में बँगला सीख चुकने पर प्रियनाथ मुकर्जी का 'दारोगा दफ़्तर' पढ़ने को मिला। यह सन् १८९२ की बात है। सन् १८९३ में फिर बम्बई जाकर 'बम्बई-व्यापार-सिन्धु' का सम्पादन करने लगा। उसे एक पोस्टमैन ने नकालकर अपने असीम साहस का परिचय भर दिया था। छः महीने के बाद वह पत्र बन्द हो गया तब वहाँ के हिन्दी-प्रेमी डाक्टर एस० एस० मिश्र ने मुझे बुलाकर 'भाषा-भूषण' मासिक निकालना आरम्भ किया। इसमें स्वतन्त्र भाव से मैंने लिखा और उस समय उसको लोग बड़े चाव से पढ़ते थे। उसी साल अर्थात् १८९३ में वहाँ पहले-पहल साम्प्रदायिक दंगा मैंने देखा। चार दिन तक मार-काट होती रही। पूना की पल्टनें जब बम्बई आकर बड़े रोब से सड़कों पर गश्त लगाने लगीं तब हज़ारों नर-नारियों की बलि लेकर बलवाराम शान्त हुए। उसी चपेट में भाषा-भूषण को बन्द कर देना पड़ा। तब मुझे अपने मित्र पंडित बालमुकुंद पुरोहित की कृपा से मण्डला जाना पड़ा। वहाँ मैंने 'गुप्तकथा' नाम का ५० पृष्ठ का मासिक पत्र निकाला। उसको लोगों ने पसन्द किया। लेकिन पास में रुपया नहीं था, इस कारण उसे स्थायी नहीं बना सका। नागपुर से 'सत्यवादी' नाम का पत्र वहाँ के हरीशा रूपसा ने निकाला था। फिर मेरठ से 'साहित्य-सरोज' निकला। इन पत्रों में आने-जाने और पाटन के ताल्लुक़ेदार के मुख़्तार-आम बनने आदि में कुछ वर्ष बीते और इस अवसर में सेठ खेमराज ने 'श्री वेङ्कटेश्वर-समाचार' निकाल दिया। मैं फिर तीसरी बार बम्बई गया। उस अवसर पर प्रयाग के प्रदीप मासिक में बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त ने हीरार मूल्य शीर्षक एक जासूसी कहानी लिखी। मैंने उसे हिन्दी में 'हीरे का मोल' लिखकर श्री वेङ्कटेश्वर-समाचार में कई अङ्क तक छापा। उस समय श्री वेङ्कटेश्वर-समाचार के सैकड़ों नये ग्राहक हुए और सबने यही कहा कि जिस अङ्क से हीरे का मोल शुरू हुआ है उसी अङ्क से हम ग्राहक होते हैं।

फिर जोड़ा जासूस उसी पत्र में लिखकर छपवाया। ग्राहकों ने इतना अधिक पसन्द किया कि मैं मन में बहुत कुछ आशा करने लगा।

उन दिनों एक बड़ी दिलचस्प घटना हुई। बम्बई में वैष्णवों का एक प्रधान मन्दिर समुद्र के किनारे बन रहा था। कटीले तारों से ग्राउण्ड घेरकर उसी में काम हो रहा था। एक दिन मैं अपने साथी लालबहादुर के साथ घूमता हुआ उधर चला गया। उस मन्दिर में एक जनेऊधारी पुजारी जी भी नियुक्त हो गये थे। वहाँ उनकी बड़ी महिमा थी। उस मन्दिर के नीचे ही हिन्द-महासागर की लहरें मौज ले रही थीं। उसी के हरे किन्तु नमकीन जल में स्नान करके मैं लालबहादुर के साथ बनते हुए मन्दिर की लम्बे दालान में पहुँचा। हम दोनों साथियों ने धोतियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तार के फेंसिङ्ग पर सूखने को डाल दीं और दालान में महन्त जी से इधर-उधर के गप-सड़ाके होने लगे। थोड़ी देर में मैंने पुजारी जी के नौकर से कहा कि तार पर हमारी धोती सूख रही है उसे ला दो तो गमछा उतारकर पहन लें। वह झटपट जाकर धोती उठा लाया, लेकिन पुजारी जी ने देखते ही कहा कि यह धोती तो इनकी नहीं है। मैंने भी देखकर कहा कि यह तो लालबहादुर की है, मेरी वहीं सूख रही है।

ख़ैर, नौकर दोबारा जाकर मेरी धोती ले आया और मैंने पहनकर गमछा उतार दिया। बात ख़तम हो गई। लेकिन मेरे मन में बड़ी उथल-पुथल मची थी। मैंने पुजारी जी से पूछा—"महाराज, आपने यह कैसे जाना कि मेरी वह धोती नहीं है। देखते ही आपने यह निर्णय कैसे कर लिया? उन्होंने बेरुख़ जवाब दिया—"आप जो कुर्ता पहने हुए हैं उस पर धोबी का जो निशान है वह इस धोती में नहीं था। दोनों के निशानों में फ़र्क़ देखकर मैं ताड़ गया कि यह धोती आपकी नहीं है।

मेरी शङ्का का समाधान पुजारी जी के उत्तर से हो गया। और बातों के बाद मैं लालबहादुर के साथ शाम को अपने डेरे को लौटा। तारदेव के पास जाते-जाते मैंने लालबहादुर से कहा—देखो मुंशी जी, यह पुजारी धोबी है। किसी क़सूर में देश से भाग आकर यहाँ ब्राह्मण के रूप में पुजारी बना है।

लालबहादुर ने नहीं माना, कहा—आप ऐसी बात मत कहिए। बड़े-बड़े सेठ-साहूकार इसकी इज़्ज़त करते और माथा नवाते हैं। यह धोबी नहीं हो सकता। मैंने कहा—मेरे मन में बार-बार कोई कह रहा है कि यह धोबी है।

ख़ैर, वह बात यहीं ख़तम हो गई। लेकिन लालबहादुर के मन में वह बात उथल-पुथल मचाये हुए थी। ग्रण्ड रोड के नाके पर पहुँचकर एकाएक लालबहादुर ने मुझसे कहा—बाबू जी, मुझे याद आ रहा है, मेरे गाँव (मसीहाबाद-बाराबङ्की) में एक धोबी एक दूसरे धोबी का ख़ून करके भाग गया था। उसकी स्त्री से उसका तअल्लुक़ होने का सन्देह था। आज दस-बारह बरस की बात है। उसी धोबी की सूरत का यह पुजारी है। मैं इतनी देर से इसकी याद कर रहा था। अब ठीक याद आ गया।

उन दिनों गिरगाम में एक योरपीय कांस्टेबल थे। उनका नाम था डबल्यू० सी० जार्लक़। उन दिनों योरपीय कांस्टेबलों की तनख़्वाह १२५) माहवार थी। हम लोग उनसे मिला करते थे। लालबहादुर मेरी सलाह से जाकर उनसे यह सब कह आये। वे भी बड़े आश्चर्य में हुए, लेकिन इस काम की ओर उनका मन लगा और मेरी सलाह पर काम होता गया।

बाराबङ्की के पुलिस सुपरिंटेंडेंट को लिखा गया कि दस-बारह बरस पहले मसीहाबाद में एक धोबी का ख़ून हो गया था। उसके मामले का क्या हुआ?

वहाँ से तार से जवाब आया कि उस ख़ून में ख़ूनी फ़रार हो गया। जाँच बन्द है। फिर लिखा गया कि उस थाने का उस समय का कोई अहलकार भेजा जाय। वहाँ से एक सिपाही और एक सबइन्स्पेक्टर बम्बई आये। जार्लिक़ साहब के कहे मुताबिक़ हम लोग उन्हें लेकर मन्दिर के पास गये। वे दोनों मुसलमान थे और फेंसिंग के भीतर कोई मुसलमान जाने नहीं पाता था। इस कारण उन्हें बाहर ही ठहराकर हम लोग भीतर गये। सिपाही को समझा दिया था कि जिसके पास बैठकर हम बातें करेंगे वही अगर वह फ़रार धोबी हो तो सिर आगे-पीछे हिलाकर एक बार इशारा कर देना।

जब हम लोग दालान में बैठकर पुजारी से बातें करने लगे, अवसर ताक कर मैंने पीछे देखा तब वह सिपाही अपने हाथ का पंखा कर रहा था।

मैं लालबहादुर के साथ जल्दी से उठा और तेज़ क़दम होकर उसके पास गया और "हाथ बन्द करो" कहकर उसको शान्त किया। मैंने उसे डाँट कर कहा कि ज़रा सिर हिलाकर इशारा करने को कहा था। इस तरह हाथ का पंखा क्यों कर रहा है?

उसने कहा—बाबू जी मैं ख़ुशी के मारे हवास में नहीं रहा। यही वह धोबी है जिसने ख़ून किया था।

अब जार्लिक़ साहब से सब हाल जाकर कहा गया। वे उसकी गिरफ़्तारी का काफ़ी प्रबन्ध करके घोड़े पर सवार होकर मन्दिर के पास पहुँचे। जब हम लोग भीतर गये तब पता चला कि पुजारी वहाँ से चलता बना। जार्लिक़ साहब सुनकर बिगड़े, लेकिन बाराबङ्की से आये हुए सिपाही की जल्दबाज़ी का नतीजा समझकर चुप रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दालान में पुजारी के नौकर की पूजा करने पर जब वह जासूसी लटके में आया तब उसने इतना बतलाया—

वे अहमदाबाद गये हैं। अक्सर वहीं जाते हैं। रणछोड़जी की पोल पर एक मन्दिर में ठहरते हैं।

इसी पते पर जालिक़ साहब ने जाकर पुजारी को गिरफ़्तार किया और बाराबङ्की की पुलिस के ज़िम्मे कर दिया। वहाँ मुक़दमा चलने के बाद वह धोबी कालापानी भेजा गया।

इस मुक़दमे के बाद मेरी रुचि इस काम में बहुत बढ़ी। मैं सेठ साहब की नौकरी में हूँ, यह जालिक़ साहब को नहीं मालूम था। उनको यही मालूम था कि मैं न्यूज़पेपरवाला आदमी हूँ।

उस घटना के बाद ही तिलक महाराज की गिरफ़्तारी हुई थी। राजद्रोह की दफ़ा उन पर लगाई गई थी। शनिवार को गिरफ़्तार हुए थे। उनके बैरिस्टर दावर ने (जिन्होंने बाद के केस में जज होकर उन्हें छः वर्ष की सज़ा दी थी) बहुतेरा चाहा कि तिलक महाराज को ज़मानत पर छुड़ा लें। लेकिन एक महाराष्ट्र सज्जन चीफ़-प्रेसाडेंसी के मैजिस्ट्रेट थे। उन्होंने कहा कि ऐसे केस में ज़मानत नहीं हो सकती। दावर साहब ने सैकड़ों नज़ीरें पेश करके बतलाया कि आपने भी कई ऐसे केस ज़मानत पर छोड़े हैं। तब उन्होंने पूछा कितने की ज़मानत दे सकते हो। एक लक्ष्मीदास खेम जी सेठ ने कहा—दो करोड़ की ज़मानत मैं दे सकता हूँ। महाराष्ट्र साहब ने कान पर हाथ रक्खा। कहा—बाबा हम ज़मानत नहीं माँगते। तिलक महाराज हवालात भेजे गये। सोमवार को मान्यवर बदरुद्दीन तैयब जी ने ज़मानत पर छोड़ दिया। उस दिन सड़क पर लोगों की भीड़ के मारे ट्रामवे का चलना बन्द हो गया था। प्रेसाडेंसी मैजिस्ट्रेट के बाहरी फाटक पर दो योरपीय हाथ में हंटर लिये हुए लोगों को फटकारते और मार कर भी भीड़ बड़ी काठनाई से क़ाबू में कर रहे थे।

मामला देखने के लालच से जब मैं वहाँ उस अपार भीड़ में फाटक पर पहुँचा तब देखा, एक ओर जालिक़ साहब हाथ हंटर लिये भीड़ का शासन कर रहे हैं। मेरा सलाम लेकर उन्होंने मुझे बुलाकर भीतर पहुँचाया, जहाँ मैजिस्ट्रेट के सामने दावर साहब तिलक महाराज की ओर से पैरवी कर रहे थे।

दूसरे दिन जालिक़ साहब ने कहा—बाबू, तुम चाहो तो हम कांस्टेबल का काम तुम्हें कमिश्नर (विन्सेन्ट साहब) से दिला दें। तुम पुलिस में काम करो।

मैंने कहा कि मैं नौकरी करता हूँ। मेरा गुज़ारा चला जाता है। जब ऐसा अवसर आवेगा तब मैं आपसे कहूँगा।

तब से मुझे जासूसी क़िस्से लिखने और जासूसी काम करने की रुचि और अधिक हो गई। मैंने सन् १८९९ में घर आकर 'जासूस' निकालना चाहा था कि बाबू बालमुकुन्द गुप्त अपने लड़के श्री नवलकिशोर की शादी में मुझे 'भारत-मित्र' का सम्पादन देकर अपने घर गुरियानी चले गये। इस कारण जनवरी सन् १९०० में 'सरस्वती' के जन्म के साथ ही साथ 'जासूस' का जन्म न होकर चार महीने बाद मई सन् १९०० में हुआ।

कलकत्ते में ही मैंने 'भारतमित्र' में जासूस निकालने की सूचना दे दी थी। उस समय सौ आदमियों ने ग्राहक होकर वी० पी० में 'जासूस' भेजने की चिट्ठी मुझे भेज दी थी। मेरे पास 'जासूस' का प्रथम अङ्क निकालने को भी पैसा नहीं था। मैंने मनोरमा और मायाविनी लिखकर बाबू रामकृष्ण वर्मा भारतजीवन के प्रोप्राइटर को दी। उन्होंने 'जासूस' का पहला अङ्क निकालने का ख़र्च मुझे दिया। प्रथम अङ्क बाबू अमीरसिंह ने अपने हरिप्रकाश प्रेस से छापकर दे दिया। पहले ही महीने में वी० पी० से पौने दो सौ रुपये मुझे मिले। तब से 'जासूस' बराबर निकलने लगा। जब उसको एक वर्ष निकलते हो गये तब श्री वेङ्कटेश्वर-प्रेस के स्वामी श्री सेठ खेमराज जी ने मुझे 'श्री वेङ्कटेश्वर-समाचार' का सम्पादन करने को सन् १९०१ में बुलाया। उसी वर्ष वर्त्तमान अधिकारी श्री सेठ रङ्गनाथ (अब रायसाहब) का ब्याह था। उसी अवसर पर मैंने देखा कि मारवाड़ में दूल्हे को गदहे पर सवार कराने का रवाज है। वह रस्म अदा करके घोड़े पर दूल्हा चढ़कर ससुराल जाता है। ब्याह के निमन्त्रण में मैं बम्बई गया था। उसी साल महारानी विक्टोरिया के मरने का शोक छा गया था। यद्यपि महाराज सप्तम एडवर्ड गद्दी पर बैठ चुके थे, उनकी गद्दीनशीनी की रस्म भारतवर्ष में नहीं हो पाई थी। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९०३ की जनवरी में दिल्ली-दरबार के अवसर पर की गई थी।

सन् १९०१ में बम्बई जाने पर भी 'जासूस' निकल रहा था। उस समय 'श्री वेङ्कटेश्वर-समाचार' के सम्पादक श्री महता लज्जाराम जी थे। उनको अपने घर बूँदी जाना था। उन्हें छुट्टी देकर सेठ साहब ने मुझे श्री वेङ्कटेश्वर के सम्पादन का कार्य सौंपा। साथ ही उनकी इच्छा हुई कि 'जासूस' भी उनको दे दिया जाय। सेठ खेमराज जी ने मुझे कहा कि आजन्म ५०) मासिक गुज़ारे को लेते रहो, 'जासूस' मुझे दे दो। बराबर लिखा करो। मैं छापता रहूँगा। बम्बई में रहने की इच्छा न हो तो गहमर से लिख-कर भेज दिया करो। लेकिन मैंने फिर नौकरी के झंझट में पड़ना उचित न समझकर स्वीकार नहीं किया और बहुत वाद-विवाद के बाद बम्बई से गहमर आया और 'जासूस' बराबर जारी रक्खा।

लेकिन अब मेरी रुचि 'जासूसी' उपन्यासों के लिखने में नहीं रही। अध्यात्मविषय की पुस्तक लिखने की रुचि है। उसी में मन लगता है। लेकिन स्वयं उस विषय में उतनी योग्यता न रखने के कारण और भाषाओं के साहित्य को पढ़ता और उनसे भाषान्तर करके लिखता हूँ। 'इच्छा-शक्ति' मैंने बङ्गभाषा की पुस्तक से अनुवाद करके छापी है। हिन्दीपाठकों ने उसे बहुत अपनाया। मोहिनी-विद्या मैंने मेस्मेरिज़्म सीखने के लिए लिखी। हिन्दी में इस ढङ्ग की पुस्तकें मैंने नहीं देखी हैं। हिन्दीपाठकों और इस विषय के प्रेमियों के लिए ये दोनों पुस्तकें उपयोगी सिद्ध हुई हैं। यद्यपि ये जासूसी नहीं हैं, किन्तु मैंने 'जासूस' मासिक में इनको भी निकाल दिया था। इस तरह 'जासूस' ३८ वर्ष तक मैंने जारी रक्खा।

लेकिन जो कुछ आय हुई वह उसी में लगती रही। इस कारण हैण्डटुमाउथ ही बना रहा। आज भी उसी दशा में हूँ।

जब मैं सन् १८९४ में बम्बई से मण्डला जाकर रहा था, वहाँ के थानेदार श्री मुहम्मद सरवर से विशेष परिचय हुआ। मैंने एक दिन उनसे कहा—क्यों मुहम्मद सरवर, तुम इतनी कंजूसी से क्यों रहते हो? तुमने एक आदमी को अपना बावर्ची बनाकर रक्खा है, लेकिन वही तुम्हारा अर्दली है, वही तुम्हारा ख़िदमतगार, वही तुम्हारे घोड़े का साईस है। तुम्हारे बर्त्तन भी वही मलता है। थानेदार लोगों का जो ठाठ हिन्दुस्तान में देखा जाता है उसके सामने तुम्हारी यह कंजूसी तो बड़ी बेतुकी देख रहा हूँ। हमारे देश में भगवान् जिसको लखपती करना चाहता है उसको थानेदार या तहसीलदार का दर्जा देता है। मुहम्मद सरवर मेरी बात पर नाराज़ न होकर बड़ी सजीदगी से कहने लगे—देखो बाबू, हमको पचास रुपये तो माहवार तनख़्वाह मिलती है। अगर इसी में मैं इन हरएक कामों पर एक एक आदमी रक्खूँ तो मेरी तनख़्वाह इन्हीं में ख़तम हो जायगी। फिर मैं अपने गुज़ारे के लिए रिआया से घूँस लूँ तब काम चले। लेकिन मैं घूँस लेना हराम समझता हूँ।

मेरे मन में बेहद ख़ुशी हुई। मैंने कहा—यार मुहम्मद सरवर! तुम एक दिन इन्सपेक्टर जेनरल पुलिस होगे।

मुहम्मद सरवर मेरी बात पर ठहाका मारकर हँसे, फिर बोले—तुम्हारे ऐसे अख़बार लिखनेवाले अडीटर ऐसी भोड़ी बात कहेंगे, यह मुझे ख़्वाब में भी ख़याल नहीं था। मैं हिन्दुस्तानी आदमी इन्स्पेक्टर जेनरल पुलिस कैसे हो सकता हूँ?

मैंने कहा—देखो मुहम्मद सरवर, मैंने तुम्हारी चाप-लूसी से यह बात नहीं कही है। आज तक घूँस को हराम समझनेवाला थानेदार मैंने कभी देखा ही नहीं था। अतएव ख़ुशी के कारण मेरे मुँह से बेतहाशा यह बात निकल पड़ी है।

ख़ैर, यह बात वहीं ख़तम होगई। मुहम्मद सरवर से मेरी ख़ासी मैत्री होगई। वहीं मुझे बन्दूक़ चलाने का शौक हुआ। मुहम्मद सरवर ने मेरे कन्धे पर बन्दूक़ रखकर फ़ैर करके बन्दूक़ चलाना सिखलाया। हम लोग परस्पर बराबर मिलते-जुलते रहे। मण्डले में भी उन्होंने कई ख़ून के अपराधियों को जासूसी करके पता लगाकर बहुत नाम पाया। मैं वहीं से 'साहित्य-सरोज' का सम्पादन करने मेरठ चला गया। मुहम्मद सरवर की भी वहाँ से बाद को बदली हो गई। मैं इधर-उधर घूमकर सब नौकरी-चाकरी छोड़कर बैठकर 'जासूस' निकालने लगा। मुहम्मद सरवर की याद एक दम भूल गई।

कोई बीस बरस के बाद अकस्मात् एक दिन मुहम्मद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरवर की मुझे गहमर में चिट्ठी मिली। उसमें उन्होंने लिखा था—आज बाद मुद्दत के तुमको ख़त लिखता हूँ। बीस बरस बाद तुम्हारी ज़ुबान मुबारक सही उतरी है। मैं आज भूपाल स्टेट का इन्स्पेक्टर जेनरल पुलिस (अफ़सर आला) हूँ। तुम वक्त निकालकर यहाँ आ सको तो बड़ी नवाजिश होगी। मैंने चालीस बरस में जो सुराग रसानी की है वह सब कारवाई मैं नोट करा देना चाहता हूँ। तुम अपने 'जासूस' में मेरे मरने के बाद छाप देना या अगर जीते जी छापना तो मेरा नाम न देना।

मैं ठीक समय पर भूपाल पहुँचा और एक महीने वहाँ रहा। मुहम्मद सरवर ने अपना सब हाल बयान किया। भूपाल में उन दिनों गद्दी पर माननीया श्रीमती सुलतान जहाँ बेगम विराजमान थीं। मुहम्मद सरवर ने बयान किया कि भूपाल की बेगम साहबा ने नागपुर के इन्स्पेक्टर जनरल पुलिस को लिखकर एक ईमानदार सुरागरसा मुसलमान की ज़रूरत ज़ाहिर की थी। मैं सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस की पेंशन जबलपुर में भोग रहा था। नागपुर से मेरा नाम उनको भेजा गया। मेरे नाम तुरन्त परवाना पहुँचा। मैं माननीया बेगम साहबा से दो शर्तें मंज़ूर कराकर यहाँ आया हूँ। सीधे उन्हीं से मेरी गुफ़्तगू होती है। मेरे उनके बीच किसी और अफ़सर का सरोकार नहीं है।

साथ ही उन्होंने वहाँ की सरकार और रिआया की तारीफ़ की और अपनी सर्विस में जितने जासूसी काम किये थे सब मुझे नोट करा दिये। उनका एक ख़ास मामला 'पंचों घटना' के नाम से मैंने लिखा है। हिन्दी में जासूसी उपन्यास और जासूस शब्द भी मैंने ही पहले-पहल लिखा था। मुझे किसी पुस्तक में १८९२ से पहले 'जासूस' शब्द नहीं दीख पड़ा था।

तौंतिया की गिरफ़्तारी के लिए जिन दिनों मध्यप्रदेश में बड़ी हलचल मची थी उन दिनों मुहम्मद सरवर ख़ुद तौंतिया की गिरफ़्तारी की ड्यूटी पर थे।

एक बार की बात है जब सूरत में कांग्रेस का अधिवेशन था। उसी कांग्रेसी सप्ताह में एक दिन मुहम्मद सरवर गाहरवारा स्टेशन से खुलती हुई बम्बई-मेल में सवार हुए। वहाँ गाड़ी उस दिन संयोगवश खड़ी हुई थी। गाड़ियों का फाटक बाहर से खुलता था। उसे खोलकर ज्यों ही सवार हुए, भीतर बैठे एक बङ्गाली ने उनको ऐसा धक्का दिया कि गिर चुके थे, लेकिन फ़ुर्ती से हैंडल पकड़कर पावदान पर थम गये। तब दूसरा बङ्गाली पहले को डाँटकर उठा और मुहम्मद सरवर को सादर भीतर बिठाया। परिचय पाने पर मालूम हुआ कि यह उस समय के बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और अन्त समय के सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी थे। दूसरे बङ्गाली को कुलाङ्गार बङ्गलाञ्छन आदि कहकर उन्होंने भर्त्सना की। फिर तो मुहम्मद सरवर से उनकी बड़ी मैत्री हो गई। तौंतिया की ड्यूटी पर उन्होंने जो काम किया था वह सब सुरेन्द्र बाबू ने नोट कर लिया और उसी हफ़्ते के 'बङ्गाली' नामक अँगरेज़ी दैनिक में सब बातें छप गईं।

तौंतिया की ड्यूटी के समय की कुछ घटनायें और उसकी गिरफ़्तारी कैसे हुई, यह सब मुहम्मद सरवर ने मुझे नोट करा दिया था। अभी मुहम्मद सरवर की जासूसी के कितने ही मामले लिखने को बाक़ी पड़े हैं। बहुत से लिख भी चुका हूँ। मुझे अधिक मसाला उन्हीं मुहम्मद सरवर की सच्ची कारवाइयों से मिला है। तब से जासूसी उपन्यास लिखने को मेरा उत्साह बहुत बढ़ा और लिखे भी। कोई दो सौ छोटी-बड़ी पुस्तकें मेरी लिखीं और अनुवाद की हुई हैं, जिनमें एक हज़ार फ़ार्म तो आउट आव स्टाक हैं।

प्यास

लेखक, श्रीयुत आरसीप्रसादसिंह

प्राण, तुम-बिन कौन जाने मर्म को कथा ? प्राण, तुम-बिन कौन माने प्रेम को व्यथा !
तुम नहीं जब, सुध नहीं थी;
तुम मिले जब, मैं कहीं थी !
मैं हुई जब, पास मेरे हृदय हो न था ! प्राण, तुम-बिन कौन जाने मर्म को कथा ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता का हृदय

लेखक, श्रीयुत 'अपकृद्'

गर्मी का मौसम था। प्रातःकाल का समय था। शीतल पवन चारों ओर बह रहा था। कोकिला आम की डाली पर बैठी प्रेमगीत गा रही थी। विविध भाँति के पक्षीगण किलोलें कर रहे थे। मेरे भावी जीवन का पहला प्रभात था। रूपसी और मैं बाग़ में सैर कर रहे थे। सुन्दर-सुन्दर फूल खिले थे। कहीं मोगरा, कहीं गुलाब, कहीं चमेली, कहीं चम्पा। फूलों को चुपके से तोड़ मैं रूपसी के केश-कलाप की शोभा बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा था। रूपसी आनन्द से फूली मीठी मुसकान और तिरछी चितवन से मुझे इस काम में प्रोत्साहन दे रही थी। शृंगार पूरा हुआ। हँसते किलकते हम मेंहदी के पेड़ों के पीछे छिपकर जा बैठे।

लावण्यवती रूपसी मेरे पास थी। फूल अपना सौरभ फैला मुझे मस्त कर रहे थे। निसर्ग की बाहरी हवा मेरे मानस की छिपी अभिलाषाओं के साथ बहने लगी। मैं अन्दर बाहर एक हो गया और ब्रह्मानन्द-सहोदर के सुखमय समुद्र की कोमल लहरों पर तैरने लगा।

"प्रेम है जग का सार"—सहसा रूपसी मधुर तान में गुनगुनाने लगी।

मेरी मोहनिद्रा किञ्चित् भंग हुई। फिर वही गीत सुनाई पड़ा। मानो समाधिस्थ तपस्वी के ब्रह्मांड में ओंकार हो रहा हो। सहसा मेरे कन्धों पर मृदु स्पर्श हुआ। मैं जागा। देखा कि रूपसी अपना मस्तक वहाँ रखे वही गीत गुनगुना रही है।

"प्यारी, ज़ोर से तान छेड़ो ना?"

"नहीं प्रियतम, विधि ने मेरे लिए कुछ और ठाना है"—रूपसी बोली। "विधि कौन? तुमसे मेरा आजन्म मिलन होगा; तुम गाओगी, मेरा जीवन रागमय बनाओगी, और मैं इसी सुख में आयुष्य बिताऊँगा।"

"पुरुष ऐसे ही कहा करते हैं, उन्हें हृदय कहाँ, वहाँ तो पाषाण विराजते हैं। मेरा अनुभव कटु है। सुख का प्याला मेरे अधरों तक कई बार आकर छलक गया। क्षणिक सुख के लिए पुरुष बावले हो जाते हैं—अन्त में वे कठोर से कठोर पत्थर बनते हैं।"—रूपसी बोली।

"पत्थर! रूपसी मैं पत्थर हूँ! हाँ पाषाण हूँ! परन्तु रूपसी मेरा हृदय वह पाषाण है जिनके ऊपर हरदम हरियाली बढ़ती हो, फूल खिलते हों, या जो पाषाण दुःख से विदीर्ण हो शिलाजीतरूपी अपने आँसू बहाते हों।"

"आख़िर इन सबके अन्दर पत्थर ही तो है"—रूपसी बोली।

"रूपे! इतनी उद्विग्न क्यों! मुझमें तुमने कौन-सी कमी पाई, बोलो प्रेयसि! मैं तुम्हें सर्वस्व अर्पण करने को तत्पर हूँ! प्रेम, निरिच्छ प्रेम—जग में ईश्वर-सा है! कहो! क्या करूँ कैसे परीक्षा दूँ?"

"आवेग में आ पुरुष यों ही बहुत बक जाता है, बाद में पश्चात्ताप के आँसू बहा जीवन धोता है"।—रूपसी ने कहा।

"रूपसी! मुझे उतावला कर रही हो, बोलो, जल्द बोलो!"

"क्या बोलूँ?"—रूपसी ने प्रश्न किया।

"लो, मेरी परीक्षा लो। तुम्हें क्या दूँ। तुम्हारी कैसी पूजा करूँ!"

रूपसी केवल ज़ोर से हँसी।

रूपसी के मुख को ताकते हुए मैंने कहा—"रूपसी मेरे साथ छल न करो।"

मेरे गालों पर धीरे-धीरे थपकी मारते-मारते रूपसी बोली—"तो तुम्हें परीक्षा चाहिए?"

मैं उठकर खड़ा हो गया—"हाँ"।

अच्छा—"मैं कहूँगी वैसा करोगे?" रूपसी ने प्रश्न किया।

"हाँ! हाँ! हाँ! वचन देकर, हाँ!"

"देखो कर्तव्यपराङ्मुख न होना।"

छाती ठोकते हुए मैं बोला—"नहीं, कभी नहीं!!"

"प्रेमी, तुम्हारा हृदय पाषाण है, मुझे ऐसा हृदय अर्पण करो जिसमें प्रेम का मधुर स्रोत अहर्निश बहता हो, जिसमें वात्सल्य हो, करुणा हो, संसार में उस देवी का एक ही हृदय है।"—रूपसी बोली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कहो कहाँ से लाऊँ ?"

नीची निगाह करके रूपसी खड़ी हुई—"माता" कहकर फिर कुछ बोल न सकी।

मैं अधीर हो एकदम अपनी कुटिया की ओर चला गया!

× × ×

सायंकाल का समय था। पक्षीगण किलोलें करते अपने-अपने घोसलों की ओर जा रहे थे। अँधेरा धीरे-धीरे छा रहा था! रात्रि की निःसीम शान्ति की द्योतक आवाज़ें खूब सुनाई दे रही थीं। लोग अपने-अपने घर निशादेवी की आराधना करने जा रहे थे।

अँधियारा बढ़ा। कुछ आँधी भी आई। नभ में मेघ विचरने लगे, बिजली किलकने लगी। मैं नतमस्तक हो आँसू बहाता रास्ते के एक बाज़ू से चल रहा था। बाहर अँधियारा था, मेरे मन में भी काफ़ी अँधियारा था। मुझे दिशा का कुछ ज्ञान न था। संसार मानो मेरी ओर ही दौड़ा आ रहा था। प्रातःकाल वाले मेरे शान्त मन में दरियाई आँधी खोल रही थी। मैं जा रहा था, न मालूम किधर ?

मुझे एक आवाज़ सुन पड़ी—"कौन ?" मैं सँभल न सका। पैर लटपटाने लगे। शरीर कम्पित हुआ। पसीने से तरबतर हो गया। इसी हालत में पैर कुछ आगे बढ़े। आँधी ज़ोर से आने लगी। पावस की कुछ बूँदें भी टपकने लगीं। ज़ोर से मेघ-गर्जना हुई। मैं आहत-सा गिर पड़ा। कुछ देर तक मेरे होश ठिकाने न थे।

"बेटा, तुम गिर पड़े, कहीं चोट तो नहीं आई, उठो मेरे लाल"—आकाशवाणी हुई।

वह आवाज़ मेरे हाथों से ज़मीन पर गिरे मेरे माता के हृदय की थी।

एक फ्रेञ्च कहानी के आधार पर।

पराजय-गान

लेखक, श्रीयुत अनूप शर्मा एम० ए०, एल-टी०

(१)

विजय पराजय से श्रेष्ठ, यह कल्पना।
अथवा, न सत्य बोलता हो वह जल्पना।
विजय असुन्दर न शुद्ध साधु मति जब।
सुन्दर पराजय न कोई और गति जब।

(२)

जीवन-जहाज़ असफलता-पुजारियों का।
डूबता हो अगर नगर-नर-नारियों का।
उसको विदा दो, बोलो, "राम-नाम सत्य है"।
वाली लहरों से कि तुम्हारा आधिपत्य है।

(३)

बोलो आज विजय पराजय को प्राप्त हो।
बोलो कि स्वतन्त्रता का नाटक समाप्त हो।
आँख खुली देखनवाली का रह जायगा।
कानों में निधन-घंटियाँ यों कह जायँगा—

(४)

"सोते रहो मुर्दो! हवा को बह जाने दो।
"जगना न, शंख देवताओं का बजाने दो।
"कथित स्वतन्त्रता को शूली चढ़ जाने दो।
"होगा सृष्टि पहले प्रलय मच जाने दो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वेज़-कैनाल

लेखक, श्रीयुत कुँवर राजेन्द्रसिंह

योरप की अन्तराष्ट्रीय राजनीति में भूमध्यसागर और स्वेज़-कैनाल का विशेष स्थान है। इनके प्रश्नों पर इटली का ब्रिटेन और फ़्रांस से काफ़ी अधिक मतभेद हो गया है। योरप की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को समझने के लिए इन दोनों प्रश्नों का ज्ञान आवश्यक है। कुँवर साहब ने इस लेख-द्वारा उनमें से स्वेज़-कैनाल के प्रश्न पर अच्छा प्रकाश डाला है।

यह संसार की एक महत्त्वपूर्ण नहर है। यह निन्नानवे मील लम्बी, तेंतीस फ़ुट गहरी और एक सौ अट्ठानवे फ़ुट चौड़ी है। यह भूमध्यसागर और लालसागर को मिलाती है और इस प्रकार जहाज़ों के आने-जाने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय मार्ग का निर्माण करती है। सत्ताइस हज़ार टन के जहाज़ पन्द्रह घण्टे में इसे पार कर पाते हैं। अँगरेज़ी भाषा में 'कैनाल' शब्द का अर्थ नहर है और 'स्वेज़' मिस्र देश के एक बन्दरगाह का नाम है, जो 'स्वेज़-कनाल' की दक्षिणीय सीमा पर है। यहाँ टामस बेगहान की एक मूर्ति स्थापित है, जिसने थल-द्वारा भारतवर्ष का रास्ता सोचा था। १८३७ ईसवी में पहली दफ़ा इसी रास्ते से इँग्लेण्ड से डाक अपने देश को आई थी।

पहले १८५४ में, फिर १८५६ में स्वेज़-कैनाल के बनाने के लिए एम० फ़र्डीनेण्ड डिलेसेप्स को रियायत पर ज़मीन दी गई थी। १८५८ में स्वेज़-कैनाल-कम्पनी क़ायम हुई और २५ अप्रैल १८५९ को काम शुरू हुआ। दस साल इस नहर के बनाने में लगे थे। १७ नवम्बर १८६९ को अड़सठ जहाज़ इसमें होकर भूमध्यसागर से लालसागर में गये थे। कम्पनी ने ४,००,००० हिस्से बेचे थे और हर एक की क़ीमत ५०० फ़्रेङ्क थी। फ़्रेङ्क फ़्रांस का एक सिक्का है। प्रत्येक फ़्रेङ्क साढ़े नौ आने या दस आने का होता है।

इस नहर से आने-जानेवाले जहाज़ों की संख्या हर साल बढ़ती गई। १९२५ में ५,५४५ जहाज़ इस नहर से होकर निकले थे। उनमें ३,०८५ ब्रिटिश जहाज़ थे। इस हिसाब से अँगरेज़ों के जहाज़ों का औसत ५७.१ प्रतिशत है। इस नहर का प्रबन्ध मिस्र-देश में होता है। इसके किनारों की मरम्मत बराबर हुआ करती है, इसकी बाल बराबर निकाली जाती रहती है और इसका रास्ता ठीक रक्खा जाता है। इन सब कामों के करने के लिए १९२८ में २,४६६ आदमी नियुक्त थे। इनकी मज़दूरी और बचत में भी इन्हें कुछ हिस्सा देकर कम्पनी को कुल ८,००,००० पौण्ड खर्च करना पड़ा था। सन् १९६८ में कम्पनी का ठेका खत्म हो जायगा।

इस नहर के भूमध्यसागर की तरफ़ पोर्ट सईद और दूसरी ओर लालसागर की तरफ़ स्वेज़ बन्दरगाह है। बहुत पुराने ज़माने से इस नहर के बनाने का स्वप्न देखा जा रहा था ताकि एशिया और अफ़्रीका के बीच का फ़ासला कम पड़ जाय। पुराने लेखों से पता चलता है कि ईसवी सन् के १३८० वर्ष पहले नील नदी और लालसागर के बीच में नहर थी। ईसवी सन् के ६०९ वर्ष पहले फ़रोह (मिस्रदेश के पहले के बादशाहों की यही पदवी थी) नेकों ने एक दूसरी नहर बनवानी शुरू की, परंतु वह पूरी नहीं हो पाई। हेरोडोटस (यह 'इतिहास का पिता' कहलाता है इसका जन्म ईसवी सन् के ४८४ वर्ष पहले हुआ था) का कहना है कि इस नहर के बनाने में १,२०,००० आदमियों की जानें गई थीं। ईसवी सन् के ५२० वर्ष पहले डेरियस ने फिर इस नहर का काम शुरू कराया। यह क़रीब-क़रीब पट गई थी परन्तु उसे भी शायद पूर्ण सफलता नहीं हुई, क्योंकि ईसवी सन् के २८५ वर्ष पहले पटोलेमी फ़िडालफ़स के समय यह नहर लालसागर से संयुक्त हो पाई थी। क्लोपैटरा (ईसवी सन् के ३१ वर्ष पहले) के समय यह नहर फिर ऐसी हो गई थी कि जहाज़ आ-जा नहीं सकते थे। प्रेजन ने (सन् ईसवी के ९८ वर्ष बाद) इस नहर की फिर मरम्मत करवाई थी और एक दूसरी भी नहर खुदवाई थी। कहा जाता है कि जिस समय रोम-वालों का मिस्रदेश पर अधिपत्य था तब सिवा इन नहरों की मरम्मत करवाने के और कोई काम नहीं हुआ। लोगों का यह भी कहना है कि दूसरी नहर सातवीं शताब्दी में मिस्रदेश के विजेता अरबदेश के अमर ने बनवाई थी। इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता मिलता है कि यह नहर मुसलमानों के समय में मिस्र-देश में थी। यह भी कहा जाता है कि ईसवी सन् के ७७० वर्ष बाद अबूजाफ़र ने (इसी ने बग़दाद की स्थापना की थी) इसको बन्द करवा दिया था ताकि उसके दुश्मन अरब-देशवालों की आवश्यकीय चीज़ों के मिलने में दिक्कत हो। इसका प्रमाण नहीं मिलता है कि फिर कभी यह नहर ठीक करवाई गई यद्यपि कहा यह जाता है कि सुल्तान हाकिम ने १,००० वें साल में इसको ठीक कराया था और जहाज़ आते-जाते थे। अगर यह मान लिया जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि यह बहुत जल्दी ही फिर पट गई होगी। १८११ में मोहम्मदअली ने इसे बन्द करवा दिया था। २५०० साल के बाद इसी नहर से फ़्रान्स के इंजीनियरों ने १८६१–६३ में काम लिया और कैरो से स्वेज़ तक नहर ले आये।

स्वेज़-कैनाल के ढंग की नहर बनवाने का ख़याल आठवीं शताब्दी में हारूनउल रशीद का भी था, लेकिन जब लोगों ने समझाया कि इस नहर के बन जाने से दुश्मनों के आक्रमणों का भय बढ़ जायगा तब उसने अपना इरादा छोड़ दिया। जब १५वीं शताब्दी में गुडहोप के अन्तरीप से होकर हिन्दुस्तान आने का रास्ता खुला तब वेनिसवालों ने मिस्रदेशवालों को इस नहर के बनाने की सलाह दी। परन्तु तुर्कों ने इसका विरोध किया। १६७१ में फ़्रांस के १५वें लुई से इस नहर के बनाने का प्रस्ताव किया गया था, परन्तु हुआ कुछ नहीं। १७९८ में जब नेपोलियन बोनापार्ट मिस्र में था तब उसकी आज्ञा से इसकी जाँच-पड़ताल हुई थी। एक इंजीनियर ने यह कहा था कि भूमध्य-सागर से इसका धरातल २९ फ़ीट ऊँचा है। दूसरा इंजीनियर इस राय से सहमत नहीं था। परन्तु जो समिति इस कार्य के लिए नियुक्त की गई थी, नहर के बनाने के प्रस्ताव को उसने रद्द कर दिया।

१८५४ में जब अब्बास पाशा की मौत हुई और सईद पाशा मिस्र के वायसराय हुए तब फ़र्डीनेन्ड डिलेप्स ने नहर बनाने का सवाल फिर उठाया। उसी साल ३० नवम्बर को इस नहर के खोदने के लिए रिआयत पर ज़मीन मिली। जनवरी १८५६ में और भी रिआयतें की गईं। इनमें एक शर्त यह भी थी कि ९९ वर्ष के बाद यह नहर मिस्रदेश की हो जायगी। इन सबके लिए तुर्की के सुल्तान की आज्ञा की आवश्यकता थी। जब फ़र्डीनेन्ड वहाँ गया तब मालूम हुआ कि ब्रिटिश गवर्नमेंट इसका विरोध कर रही है। फ़र्डीनेन्ड से लार्ड पामर्सटन ने लंदन में कहा था कि ऐसी नहर का बनना पहले तो असम्भव है और यदि बन भी गई तो हम लोगों की सामुद्रीय प्रधानता जाती रहेगी और 'पूर्वीय' प्रश्नों में फ़्रांस को अधिक हस्तक्षेप करने का मौक़ा मिला करेगा।

१८६६ में तुर्की के सुल्तान ने आज्ञा दी। परन्तु फ़र्डीनेन्ड ने १८५८ ही से कम्पनी खोलकर चन्दा इकट्ठा करना शुरू कर दिया था। २०० मिलियन मूलधन ४,००,००० हिस्सों में विभाजित था और प्रत्येक हिस्सा ५०० फ़्रेंक का था एक महीने के अन्दर ही ३,१४,४९४ हिस्से बिक गये। इसमें से २,००,००० फ़्रांस में बिके थे और ९६,००० तुर्की ने ख़रीदे थे और देशों ने बहुत थोड़े हिस्से लिये थे। इँग्लेंड, आस्ट्रिया, रूस और अमेरिका ने एक भी हिस्सा नहीं ख़रीदा था। जो ८५,५०६ हिस्से बचे थे उन्हें वहीं मिस्र देश के वायसराय ने ख़रीद लिया था। ये भी उन १,७६,६०२ हिस्सों में थे जो ब्रिटिश गवर्नमेंट के लिए लार्ड बेकंसफील्ड ने १८७५ में ३९,७६,५८२ पौंड में ख़रीदे थे। इसका उल्लेख उनके जीवनचरित्र में है। जैसे ही उनको ख़बर मालूम हुई थी कि ये हिस्से बिक रहे हैं, उन्होंने अपने सेक्रेटरी को रास चाइल्ड के पास भेजा और रुपया क़र्ज़ माँगा। उसने पूछा कि ज़मानत क्या है। सेक्रेटरी ने उत्तर दिया कि ब्रिटिश साम्राज्य। तब रास चाइल्ड ने फ़ौरन रुपया देना स्वीकार कर लिया। जहाँ तक मुझे याद पड़ता है, सर सिडनी ली ने सप्तम एडवर्ड की जीवनी में लिखा है कि जब यह ख़बर उनको मिली थी तब वे लखनऊ में थे और यहीं से उन्होंने लार्ड बेकंसफ़ील्ड को ख़त लिखा था और अपनी प्रसन्नता और सन्तोष प्रकट किया था।

अँगरेज़ी में एक कहावत है कि 'भविष्य ईश्वर की गोद में होता है'। यह कौन ख़याल कर सकता था कि स्वेज़-कैनाल भी कभी अन्तर्राष्ट्रीय उलझन को और भी जटिल बना देगी। अपने देश की एक पुरानी कहावत है कि 'जिसकी लाठी उसकी भैंस'। इस कथन की सत्यता स्वतः सिद्ध है। हिटलर चिकोस्लोवेकिया को हज़म कर गया और मुसोलिनी अबीसीनिया को, और किसी के बनाये कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न बना। किसी ने खूब कहा है 'किसका हुआ कौन सर आ पडी जब'। पिछले महायुद्ध के बाद जब राष्ट्र-संघ की स्थापना हुई तब उससे लोगों को बड़ी आशायें बँधी। कहा जाता था कि यदि कोई मुल्क किसी दूसरे देश पर अकारण आक्रमण करेगा तो उसके विरुद्ध सब देश मिलकर युद्ध करेंगे और इस भय से संसार में शान्ति स्थापित रहेगी। यह स्वप्न स्वप्न ही रहा। पहले तो सब शक्तियाँ सम्मिलित ही नहीं हुईं और जो हुईं भी वे सिर्फ़ 'समय की सेवा' करने के लिए। जैसे ही वे बलवान् हुईं, संघ की परवा न की और उससे अलग हो गईं। अपना देश भी संघ का एक सदस्य बनाया गया। हम लोग मारे खुशी के फूले नहीं समाते थे और यह समझने लगे थे कि हम भी कुछ हैं। यह भी एक भ्रम था, जो थोड़े ही दिन रहा। जब अपने ही देश में अपनी क़द्र नहीं है तब बाहर कैसे होती? इस संघ की सालाना बैठक के समय जो सदस्य भारत के प्रतिनिधि होकर जाते थे वे वेही होते थे जिन्हें भारत-सरकार पसन्द करती थी। लोगों ने इस प्रथा से असन्तोष प्रकट किया और दूसरा कारण यह था कि भारतवर्ष को लाखों रुपया प्रतिवर्ष उसे देना पड़ता था और जो कुछ था वह तो था ही। जितना रुपया अपने देश को देना पड़ता था उसके औसत से संघ के जिनीवा के दफ़्तर में अपने देशवालों को नौकरी भी तो नहीं मिलती थी। असन्तोष का कारण एक और भी था। जब अबीसीनिया और चिकोस्लोवेकिया वग़ैरह बिना साँस-डकार के पच गईं तब अपने देशवासियों का यह ख़याल हुआ कि जब अपने देश पर कोई आफ़त आयेगी तब तो कोई बोलनेवाला भी नहीं होगा। एक बात और भी थी। बाहरी आक्रमणों से इस देश को सुरक्षित रखने का भार हम लोगों पर तो है ही नहीं—फ़ौज के बजट में एक पैसा घटाने-बढ़ाने तक का अधिकार नहीं है, यहाँ तक कि केन्द्रीय असेम्बली के सदस्यों के सामने इसका छः लाख का बजट पेश होता था। उसका पेश होना भी बन्द कर दिया गया। विगत फ़रवरी के महीने में केन्द्रीय असेम्बली में एक प्रस्ताव पास हुआ है कि राष्ट्र-संघ से इस देश का कोई सम्बन्ध न रहे और जो खर्च देना पड़ता है वह अब न दिया जाया करे।

अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण आजकल बिगड़ा हुआ है। नित्य नये गुल खिलते रहते हैं। इटली की माँगों में एक यह भी माँग है कि स्वेज़कैनाल के प्रबन्ध में उसका भी हाथ हो। वास्तव में उसका यह कहना ब्रिटेन से है। इस नहर से सबसे ज़्यादा फ़ायदा ब्रिटेन को है। इटली का यह कहना है कि इस नहर के प्रबन्धकर्ताओं की समिति में प्रत्येक देश का प्रतिनिधि उस औसत से होना चाहिए जिस औसत से उसे अपने माल पर किराया देना पड़ता है, जो जहाज़ों-द्वारा इसमें से होकर निकलता है। १९३७ का हिसाब देखने से मालूम होता है कि दूसरा नम्बर इटली का है। ब्रिटेन का १,७२,५४,१८२ टन माल इस नहर से होकर निकला और इटली का ५८,६६,०८७ टन, जर्मनी का ३३,१३,२२० टन, हालैण्ड का २८,००,१४४ टन, फ़्रांस का १८,१९,७८३ टन और नार्वे का १६,५७,४३७ टन। ये संख्यायें जे० बी० फ़र्थ के लेख से उद्धृत की गई हैं। ये 'डेली टेलीग्राफ' और 'मार्निंग पोस्ट' में भी प्रकाशित हुई थीं। कहा जाता है कि इटली के माल का औसत १९३८ में घट गया। जिस समिति के हाथ में इस नहर का प्रबन्ध है उसके ३२ डाइरेक्टर हैं। उनमें १९ फ़्रांस के हैं, यद्यपि माल के औसत से उसका नम्बर पाँचवाँ है। ब्रिटेन के १० हैं और मिस्रदेश के केवल २ और हालैण्ड का १ है। अपनी माँग को और भी मज़बूत करने के लिए इटली का यह भी कहना है कि अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से नहर का बड़ा महत्त्व है और इस वजह से इसका प्रबन्ध किसी कंपनी के हाथ में नहीं होना चाहिए वरन् उन सब 'शक्तियों' का इस पर अधिकार होना चाहिए जो जल-द्वारा व्यापार करती हैं। इस माँग का और कुछ मतलब हो या न हो, परन्तु यह मतलब ज़रूर है कि फ़्रांस और ब्रिटेन की सामुद्रीय मख्यता जाती रहे और देश-वाले भी तो वही हक़ मागेंगे जो इटली माँग रहा है। जो अब इटली कह रहा है कि सब राष्ट्रों का इस पर अधिकार होना चाहिए, और इसका प्रबन्ध किसी एक कम्पनी के हाथ में न रहे, यही बात इँग्लेंड के सुप्रसिद्ध प्रधान मंत्री ग्लैडस्टन ने भी एक दफ़े कही थी। पर उनके कहने का अभिप्राय और था—उनका अभिप्राय प्रधान मंत्री डिज़रैली पर कामंस सभा में आक्रमण करना था। वह घरेलू नोक-झोक थी और यह कुछ और है। १९०९ में भी यही कहा गया था जब कम्पनी ने ठेके की मुद्दत और ४० साल बढ़ा देने के लिए कहा था। परन्तु कोई तरकीब समझ में नहीं आई कि किस तरह इस प्रस्ताव को क्रियात्मक स्वरूप दिया जाय। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध का सबसे बड़ा प्रश्न कम्पनी का ठेका है और दूसरा प्रश्न मिस्रदेश के प्रभुत्व का है; नहर उसी देश की ज़मीन में है।

वास्तव में इस नहर के खोदने में पूरी मदद फ़्रांस ही ने दी थी। उस समय इस पर सब राष्ट्रों के अधिकार का प्रश्न नहीं था। और होता कैसे? किसी ने कुछ मदद भी तो नहीं की थी। ब्रिटेन ने जिसको अब सबसे अधिक फ़ायदा इससे है, इसका पूर्ण रूप से विरोध किया था। जब तक नहर को पूर्ण सफलता नहीं हो ली तब तक एक हिस्सा भी नहीं खरीदा। मूलधन में इटली का बहुत थोड़ा रुपया है। यह नहीं मालूम है कि क्या उतना भी नहीं है जितना हालैण्ड का है, जिसका एक प्रतिनिधि प्रबन्धकारिणी समिति का डायरेक्टर है। कम्पनी के नियमों में लिखा तो यह अवश्य है कि इस समिति के डायरेक्टर उन सब देशों के हों जिनका नहर से ताल्लुक़ हो, परन्तु आज तक इसके अर्थ यही समझे गये कि जिसका रुपया लगा हो न कि जो इसके द्वारा लाभ उठाते हों।

१९०९ में कम्पनी ने मिस्रदेश की गवर्नमेंट से यह प्रार्थना की कि ठेका की मुद्दत २००८ ईसवी तक बढ़ा दी जाय। गवर्नमेंट राज़ी थी, परन्तु जनता ने इस प्रस्ताव को नहीं स्वीकार किया। पहले मिस्रदेश ब्रिटेन के अधीन था, अब स्वतंत्र है। परन्तु अभी इतना बलवान् नहीं है कि पूर्णरूप से इस नहर की रक्षा कर सके। इँग्लेंड और मिस्रदेश के बीच जो संधि हुई है उसकी एक धारा के अनुसार नहर की रक्षा का भार अँगरेज़ी सेना पर है, क्योंकि यह स्वीकार कर लिया गया है कि इस नहर से ब्रिटेन का विशेष सम्बन्ध है। १९१० में सर एडवर्ड ग्रेने कामंस सभा में कहा था कि इस नहर का पहला ताल्लुक़ कम्पनी और मिस्रदेश की गवर्नमेंट से है।

कम्पनी का एक नियम यह भी है कि इस नहर में से हर एक मुल्क के जहाज़ निकल सकते हैं, बस उन्हें माल पर टैक्स देना पड़ेगा। अगर झगड़ा निपटते दिखलाई देता तो शायद प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्यों में से एक इटली का प्रतिनिधि सम्मिलित कर लिया जाता। परन्तु डर और लोगों को यह है कि कहीं इस माँग के पूरी होने पर दूसरी माँगें न पैदा हो जायँ।

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति इतनी पेचीदा है कि कुछ नहीं कहा जा सकता कि किस रोज़ क्या गुल खिल जाय।*

* इस लेख के लिखने में मुझे ईंसायक्लोपीडिया ब्रिटैनिका और मिस्टर जे० बी० फ़र्थ के लेख से बड़ी सहायता मिली है।

क्या तुम अभी सँभल पाओगे?

लेखक, कुँवर सोमेश्वरसिंह बी० ए०, एल-एल० बी०

भूले हो पथ, भटक गये हो
विषम मार्ग में अटक गये हो
थके बहुत हो अन्धकार है
हार रहा मन बार बार है
कहो, अधिक क्या चल पाओगे?
क्या तुम अभी सँभल पाओगे?

हँसते तुम पर चलनेवाले
हो तुम सबको खलनेवाले
आगे सभी निकलनेवाले
बनते आग उगलनेवाले
पीछे रह क्या कल पाओगे?
क्या तुम अभी सँभल पाओगे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगबन्धु दत्त

लेखक, श्रीयुत ज्वालादत्त शर्मा

उन पुरुषों में थे जिन्होंने अपने बाहुबल और बुद्धिकौशल से 'अकृत्वा परसन्तापं' बहुत हीन दशा से बहुत ऊँची स्थिति प्राप्त की। विहित मार्ग से धन का उत्पादन, संरक्षण, और सदुपयोग उत्तरोत्तर कठिन है। ऐसे तो इस अभागे देश में अनेक उदाहरण मिलेंगे जिनमें ग़रीब बाप ने वाणिज्य-व्यवसाय में प्रचुर धन-राशि उत्पन्न की और अपने जीवन में उसका उद्देश्यविहीन संरक्षण भी मोह-माया और ममता की बलि देकर प्राणपण से किया। किन्तु वे बेचारे लक्ष्मी-कुण्ड के जन्तु इतना भी न कर सके कि जिन्हें समस्त जीवन की तपस्यारूप लक्ष्मी का उत्तराधिकार मिलनेवाला था उन्हें ढङ्ग और ढब से द्रव्यनाश करने का ही उपयुक्त पात्र बना देते। इसलिए प्रायः ऐसा देखा गया कि उत्तराधिकार मिलते ही उन्होंने उस सम्पत्ति का विनाश बहुत बुरी तरह से कर दिया। मानों लक्ष्मी उनके लिए भार-रूप थी और वे उसे दूर फेंककर सुख और शान्ति का अनुभव करने लगे, उन्हें संसार के उपहास का प्रीतिमय उपहार ही मानों अभीष्ट था। जगबन्धु बाबू ने अपने जीवन में और उसके बाद भी ऐसा न होने दिया। जब तक जीवित रहे, स्वयं सुख से रहे और नियति ने जिनको उनके साथ बाँध दिया था उन्हें भी सुखी रक्खा। और अपनी कमाई का बड़ा भाग 'कृष्णार्पण' करके आनेवाले जीवन की सुख-सम्पति का भी संरक्षण कर लिया—उनका जीवन अनेक अंशों में आदर्श स्वरूप था।

बरीसाल-ज़िले के बानरीपाड़ा ग्राम में अब से कोई पैंसठ साल पहले एक ग़रीब किन्तु प्रतिष्ठित वंश में उनका जन्म हुआ था। बचपन में लू लग जाने के कारण उनके कान ख़राब हो गये थे, तभी से वे ऊँचा सुनने लगे थे। इसी कारण पढ़ना-लिखना भी अधिक न हो सका, किन्तु उनका बहरापन उनके भावी जीवन के लिए बहुत उपयोगी प्रमाणित हुआ। वैसा न होने पर जैसी कि उनकी कुशाग्र बुद्धि और परिश्रम करने की आदत थी उसे देखते हुए उनका मैट्रिक या आई० ए० हो जाना कुछ मुश्किल न था,

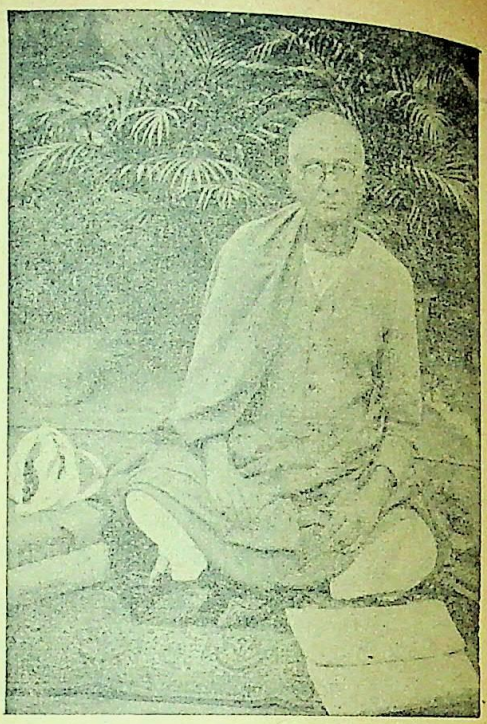

[श्री जगबन्धुदत्त]

और यदि उन पर इन छापों में से कोई छाप लग गई होती तो वे अपनी ग़रीबी का इलाज क्लर्क के रूप में ही करते। बहरे जगबन्धु को वाणिज्य-व्यवसाय के सिवा और कोई मार्ग सूझ न सका। सबसे पहले उन्होंने अपने ग्राम में ही एक छोटी सी दूकान खोली, किन्तु उसमें सफलता न हुई। इस पर खिन्न होकर उन्होंने अपने जीवन का अन्त करने के लिए अफ़ीम खा ली। किसी वैद्य की कृपा से बड़ी मुश्किल से उनके प्राण बचे। कुछ दिनों के बाद अपने जीवन में सफलता के सूत्र का अनुसंधान कर सकने पर फिर दुबारा उन्होंने अफ़ीम की शरण ली। व्यवसाय की तरह उस चेष्टा में भी वे असफल रहे। अन्त में अपने घर की चाँदी की कोई चीज़ बेचकर उन्होंने १४) प्राप्त किये और उस निधि को लेकर वे एक दिन अपने घर से चुपचाप निकल पड़े और कलकत्ता भाग आये। मन में यह दृढ़ संकल्प था कि इस बार भी सफलता न मिली तो गङ्गा-तीर पर अफ़ीम की उपासना से भवबन्धन काट फेंकेंगे, क्योंकि वहाँ एकान्त स्थान होगा और बचानेवाला कोई शत्रु नहीं मिलेगा। कई दिन तक कलकत्ता में सुबह से शाम तक घूमते रहे। भारत-वर्ष में कलि की सर्वश्रेष्ठ नगरी की हवा लगते ही जगबन्धु का विचार बदल गया और उन्होंने सोचा कि यहाँ मरने से अधिक काम करने का सुभीता है। कलकत्ता मा काली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

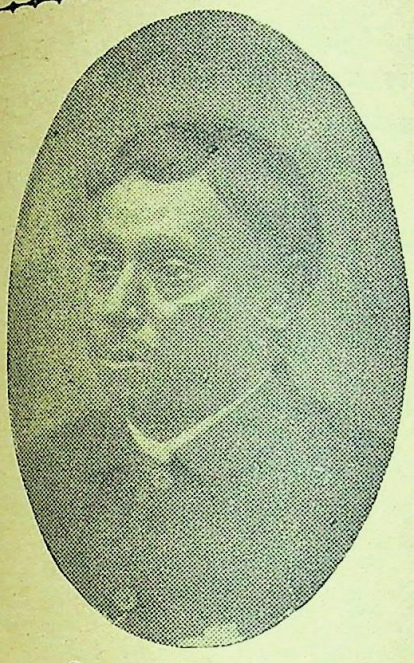

[ब्रह्मचारी श्री कृष्णानन्द]

प्रधान क्षेत्र है। यहाँ जो जिस भाव से आयेगा, यदि उसमें दृढ़ता है और वह उसके लिए बलि दे सकता है तो माता उसे अभीष्ट फल देने में देर नहीं करती। दिन भर काम की फ़िक्र में घूमते और रात को एक-दो पैसे का चबेना चाब कर गङ्गातट पर सो जाते। प्रातःकाल उठकर गङ्गा-स्नान करते और फिर घूमना शुरू कर देते। अन्त में अत्यन्त कम ख़र्च करने पर भी १४) की क्षीण रक़म क्षीण-तर होती हुई लुप्त होने का ढंग दिखाने लगी। अब जगबन्धु को बहुत चिन्ता हुई और उन्होंने निश्चय किया कि 'कलिकाता' में दाल-आटे के बाद दूसरी ज़रूरी चीज़ स्याही है, क्योंकि यह भूमि क्लर्कों की जननी है और परतन्त्र देश को क्लर्कों की सबसे अधिक आवश्यकता है, इसलिए नवयुवक जगबन्धु ने मन में मा काली का नाम लेकर कुछ पैसे ख़र्च करके 'काली' स्याही बनाई और उसकी टिकियाँ बाज़ार के मोड़ पर खड़े होकर एक एक पैसे में बेचने लगे। उससे पहले किसी ने उतनी बड़ी टिकिया एक पैसे में नहीं बेची थी, बल्कि एक प्रकार से स्याही को टिकियों के रूप में बेचने की ईजाद जगबन्धु ने ही की। बोतल में बिकने के कारण स्याही के साथ शीशे के दाम भी ग्राहक को देने पड़ते थे। साथ ही उनकी स्याही ऐसी उत्तम बनी कि जिसने उसे ख़रीदा वह उनकी तलाश में रहने लगा और कुछ ही दिनों में जगबन्धु बाबू बाज़ार की परिक्रमा से हटकर एक छोटी-सी दूकान में ठाट के साथ बैठ गये। फिर तो उनकी स्याही का प्रचार बंगाल के छोटे से छोटे ग्राम में ही नहीं हुआ, अन्य प्रान्तों में भी जे० बी० डी० मार्के की धूम मच गई, सौगात के तौर पर लोग उनकी स्याही कलकत्ता जानेवालों से मँगाने लगे और आज भी उनकी आविष्कृत स्याही अपने स्थान पर गौरव से खड़ी हुई आत्मतृप्ति का सुख अनुभव कर रही है। जब व्यवसाय की मशीन में से धन की वर्षा होने लगी तब जगबन्धु बाबू ने मा काली के वरदानस्वरूप काली स्याही के मन बहलाव के लिए अपनी दूकान में अनेक मेम्बर बढ़ा दिये। उनकी सत्यप्रियता, व्यवहार-निपुणता और सबसे बढ़कर श्रम-शीलता के कारण उनके कारोबार की बहुत उन्नति हुई। अन्त में अपने सद्गुरु की प्रेरणा से उन्होंने ६ लाख से ऊँचा दान श्रीगौड़ीय मठ का विशाल भवन निर्माण करने के लिए दिया। अकेले उन्हीं के धन से उस मठ का बाग़-बाज़ार में प्रासादोपम भवन निर्मित हुआ, जो उनके सद्-गुरु भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती प्रभु और स्वयं जगबन्धु-भक्ति-रञ्जन के कीर्ति स्तम्भ के रूप में आगरे के ताज की तरह बड़े गौरव के साथ कलकत्ता नगरी के वक्षःस्थल पर खड़ा हुआ है। जगबन्धु बाबू ने उस विशालभवन को सब प्रकार से सुसम्पन्न करके श्रीगुरु चरणों में बिना किसी शर्त के

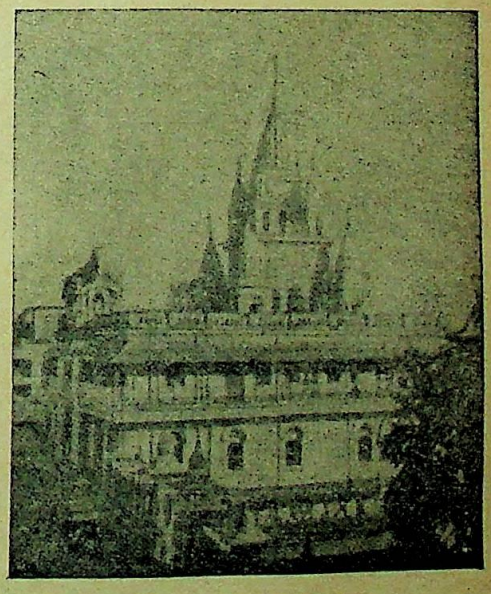

[श्री जगबन्धुदत्त का बनवाया हुआ श्रीगौड़ीय मठ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्पित किया था, त्याग और ज्ञानमय भक्ति के अवतारस्वरूप श्री गुरुदेव में उस मठ को समस्त गौड़ीय सम्प्रदाय के कल्याण के निमित्त अपनी ओर से ट्रस्ट बना कर उत्सर्ग कर दिया। वे चाहते तो अनेक साधु-सन्तों की तरह उसे अपनी निजी मिल्कयत बना सकते थे, किन्तु भगवन्नाम के कुबेर सद्गुरु के सामने छः-सात लाख की वस्तु क्या आकर्षण रख सकती थी। इसी मठ के द्वारा भारतवर्ष के प्रायः सब बड़े बड़े शहरों में और बाहर विदेशों में अनेक गौड़ीयमठ स्थापित हुए और अनेक कामों की भूरि भूरि प्रशंसा लार्ड ज़टलैण्ड जैसे महामान्य व्यक्तियों द्वारा होती रही है।

दुःख का विषय है, जगबन्धु बाबू के दो विवाह करने पर भी कोई सन्तति नहीं हुई, किन्तु वैष्णव-जगत् में उनके स्मरण करनेवाले और श्रद्धा से अञ्जलि देनेवाले इतने भक्त हैं कि परलोक में वे सन्तानवालों से कहीं अच्छी स्थिति में होंगे। अभी आठ-सात वर्ष हुए सद्गुरु के चरणों की छाया में उन्होंने अपनी मर्त्यलोक की लीला समाप्त कर दी। किन्तु जब तक बाग़बाज़ार का गौड़ीयमठ विद्यमान है, उनकी कीर्ति स्थिर रहेगी और जिसकी कीर्ति है लोगों का कहना है कि वह मरा नहीं है।

नारी

लेखक, श्रीयुत आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव

गुञ्जित करती है त्रिभुवन को जिसकी गुण-गाथा प्यारी,
लघु स्वरूप हो आदि शक्ति की जग में उतरी है नारी।
लोचन, खुल जाओ, देखो उन ललनाओं का सच्चा रूप,
पड़े वासना-अंधकूप में बने हुए हो जिनके भूप।
केवल लखते हो केशों का कालापन, घुँघरालापन,
जिनमें छिपी सती को ज्वाला कभी करेगी जग-पावन।
नयन भाल में मत देखो तुम बस चौड़ापन चिकनापन,
जिसमें लिख रक्खे हैं विधि ने पावनता के मंत्र गहन।
शुक-नासा कहकर मत टालो उसको जो लेती वह श्वास,
जिसके कारण हिन्द देश में है सतीत्व का जीवित वास।
नयन देखते हो तुम केवल नयनों की तिरछी चितवन,
क्षमा-दया-वात्सल्य-खगों से कूजित जो है नन्दनवन।
क्यों कपोल में बस गुलाब की पंखड़ियों का होता भान,
अंकित पति-चुम्बन-मुहरों से जो पवित्रता-पत्र-प्रमाण।
लखते हो पतली अरुणाई जिनमें, या जिन पर मुस्कान,
सत्यदेव की प्रभा उन्हीं में सत्यदेव का उन पर गान।
कम्बुकण्ठ को देख न सकते तुम शुचिता का शंख विशाल,
उन्हें देखते श्रीफल जिनसे निर्गत जीवन-क्षीर-रसाल।
तुम पद में पंकज लिखते हो अथवा नूपुर का शृङ्गार,
जिनकी रज मल कर मस्तक में शुद्ध बनेगा सब संसार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशी और विदेशी पूँजी

लेखक, श्रीयुत अमरनारायण अग्रवाल

आजकल हमारे देश में पूँजी का प्रश्न बहुत ही महत्त्वपूर्ण और विचारणीय हो रहा है। पूँजी मिलने की कठिनाइयाँ बहुत से उद्योगी और साहसी पढ़े लिखे नवयुवकों को उद्योग-धंधों में लगने से रोकती हैं। यह बात सभी जगह सुनाई पड़ती है। लेकिन इस बात पर कुछ इने-गिने अर्थ-शास्त्रियों को छोड़ कर और कोई गंभीरतापूर्वक नहीं सोचता कि हमारे देश में पूँजी कितनी है, कहाँ से आती है और उसकी प्राप्ति कैसे बढ़ाई जा सकती है। ख़ास कर विदेशी पूँजी की समस्या हमारे लिए बहुत जरूरी है, क्योंकि हमारी आर्थिक परतन्त्रता की बहुत-कुछ जिम्मेदारी इसी विदेशी पूँजी पर निर्भर है। इस लेख में पूँजी के संगठन, पूँजी की कमी इत्यादि तथा ऊपर कहे गये विषयों पर कुछ प्रकाश डाला गया है।

पूँजी का उत्पादन-क्रिया में एक ख़ास स्थान है। आजकल मशीन-युग में, उत्पादन-क्रिया की उत्तमता, बहुत अंशों में, पूँजी के ऊपर निर्भर है। यदि काफ़ी पूँजी मिले तो बड़ी-बड़ी और कम दाम पर माल पैदा करनेवाली मशीनें लगाई जा सकती हैं; माल बहुतायत से पैदा किया जा सकता है, और क्योंकि, कारख़ानों में, अधिकतर माल की पैदावार में, क्रमागत-वृद्धि का नियम लागू होता है, इसलिए जितना अधिक माल बनेगा, प्रति वस्तु के पैदा करने में उतना ही कम रुपया लगेगा; और चीज़ें सस्ती पैदा करने के कारण एक अधिक पूँजीवाला उत्पादक दूसरे कम पूँजीवाले उत्पादक के ऊपर प्रतियोगिता में, विजय प्राप्त कर सकता है। अगर देश के दृष्टि-कोण से पूँजी के महत्त्व के ऊपर विचार किया जाय तो इसकी महत्ता और भी बढ़ जाती है। यदि देश में पूँजी काफ़ी है तो प्रकृति के बहुमूल्य ख़ज़ाने और शक्तियाँ मनुष्यों को सुखी बनाने के लिए प्रयोग में लाई जा सकती हैं। ऊँचे ऊँचे झरनों से बिजली पैदा की जा सकती है, जो खेती और शिल्प को प्रोत्साहन दे; लोहे-कोयले की खानों से खनिज पदार्थ निकाल-निकाल कर बड़ी-बड़ी मशीनें बनाई जा सकती हैं; रेल, मोटर इत्यादि आवागमन के साधन तैयार किये जा सकते हैं; खेती के लिए ट्रैक्टर, हार्वेक्टर इत्यादि बनाये जा सकते हैं, जिससे खेती की उन्नति हो। इस प्रकार देश की आर्थिक उन्नति में पूँजी का बहुत-कुछ हाथ रहता है।

हमारे देश में पूँजी की दशा बहुत शोचनीय है। देशी पूँजी बहुत कम है। इसलिए शुरू से ही यहाँ विदेशी पूँजी का ज़ोर रहा है। 'विदेशी पूँजी कमिटी' की रिपोर्ट के अनुसार हिन्दुस्तान विदेशी पूँजी पर १,६०,००,००० पौंड, अर्थात् २१ करोड़ रुपये से अधिक प्रतिवर्ष ब्याज दे रहा है। हमारे देश में लोगों के पास पूँजी न हो, यह बात नहीं है। पूँजी है, पर या तो वह गहनों के रूप में है और या गड्ढों में गड़ी या लोहे की अलमारियों में छिपी पड़ी है। यहाँ के लोगों में इतनी निर्भयता नहीं है कि वे अपनी पूँजी, हाथ खोलकर, किसी नये व्यापार या उद्योग में लगा सकें। हाँ, जिन उद्योग-धंधों में पूँजी लगाई जा चुकी है और जिनमें फ़ायदा होता दिखाई पड़ता है उनमें पूँजी की कमी नहीं; कमी का न होना तो अलग रहा, उनमें पूँजी की अधिकता हो जाती है। उद्योग-धंधों के अतिरिक्त यहाँ के पूँजीवालों के लिए सरकारी ऋण भी अधिक आकर्षक है, क्योंकि उसमें उनके रुपये के डूब जाने की आशंका नहीं होती। लाखों-करोड़ों रुपये बात की बात में सरकार को मिल जाते हैं। पर पूँजी की जितनी बुरी दशा महायुद्ध के पहले थी, उतनी अब नहीं रही। अब पूँजीवालों का डर दूर होता जा रहा है और देशी पूँजी अधिक मात्रा में मिलने लगी है। सन् १९१३-१४ में सरकार का कुल भारतीय-ऋण ९४५ करोड़ रुपया था; पर १९३१-३२ में यह ४२७ करोड़ हो गया। इसी प्रकार महायुद्ध के पहले भारतीय मिश्रित पूँजीवाली कम्पनियों की कुल अदा की हुई पूँजी ८० करोड़ रुपया थी। १९३० में यह रक़म बढ़कर २८७ करोड़ तक पहुँच गई। इस प्रकार भारतीय पूँजी की उन्नति हो रही है, और यह बड़ी ख़ुशी की बात है। पर अभी बहुत कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना बाक़ी है। देश की आर्थिक उन्नति करने के लिए पूँजी की और अधिक उन्नति होनी चाहिए। केवल सरकारी ऋण, रुई और जूट के कारख़ानों में ही रुपया लगाकर संतोष करने से काम नहीं चलेगा। मशीनों के बनाने के कारख़ाने खोलने के लिए, पानी से बिजली बनाने के लिए, प्रति-दिन के व्यवहार की छोटी-छोटी चीज़ें तैयार करने के लिए और इसी प्रकार के अन्य कार्यों के लिए अभी करोड़ों रुपये की आवश्यकता है।

गाँवों में पूँजी देने या मिलने का कोई उचित इन्तज़ाम नहीं। यहाँ केवल महाजन या साहूकार का राज्य है। किसानों को व गाँवों के अन्य लोगों को जब रुपयों की आवश्यकता होती है तब वे इन्हीं की शरण में आते हैं। किसानों के पास, ख़ास कर कुछ सम्पन्न किसानों के पास जो रुपया है वह ज़ेवर और गहनों की शक्ल में है। गाँवों में पूँजी के मिलने का केवल महाजन ही एक ख़ास ज़रिया है। महाजन लोग किसानों, कारीगरों और छोटे-छोटे व्यापारियों को रुपया देने के अलावा गाँव में आटे की छोटी छोटी चक्की या चावल की चक्की इत्यादि में भी कुछ रुपया लगाते हैं। पर किसी नये व्यापार-धंधे को चलाने का साहस उनमें नहीं है। गाँवों में एक तीसरा समूह सरकारी नौकरों और कुछ पढ़े-लिखे पेशेवालों का है। इन लोगों की पूँजी या तो भूमि में लगी होती है या बैंक में जमा रहती है।

गाँवों में आधुनिक समय के बैंक बहुत कम हैं। हाँ, इम्पीरियल बैंक ने जब से बहुत-सी शाखायें स्थान-स्थान पर खोली हैं तब से हालत में कुछ परिवर्त्तन हुआ है, पर बहुत थोड़ा। किन्हीं किन्हीं स्थानों पर सहकारी बैंक भी पाये जाते हैं और कहीं-कहीं पोस्ट आफ़िस सेविंग्स बैंक भी खोल दिये गये हैं। लेकिन ये सब केवल नाममात्र के लिए हैं।

शहरों में पूँजी की दशा अधिक संतोषजनक है। यहाँ के पूँजीवालों में रुपया छिपा रखने की आदत कम है, और जो है वह भी कम होती जा रही है। ये लोग अपना रुपया या तो बैंक में जमा कर देते हैं या सरकारी ऋण में और मिश्रित पूँजीवाली कम्पनियों के शेयर ख़रीदने में लगा देते हैं। ये लोग नई दिशाओं में और नये उद्योग-धन्धों में रुपया लगाने में कुछ हिचकते तो ज़रूर हैं, पर जब कोई विश्वसनीय व्यापारी किसी कम्पनी की बागडोर अपने हाथ में लेता है तब रुपये की कमी नहीं होती। अभी हाल में 'डालमिया सीमेंट कम्पनी' सेठ रामकृष्ण डालमिया ने खोली थी। उसके शेयर हाथों-हाथ बिक गये। बिक्री के लिए जितने शेयर थे उनसे अधिक शेयरों की माँग हुई।

शहरों में भी कुछ बड़े-बड़े साहूकार या सेठ रहते हैं, और ये लोग भी उद्योग-धंधों में रुपया लगाते हैं। इंदौर की रूई की मिलों का काम बहुत कुछ इन्हीं लोगों के रुपयों से चलता है।

बैंक भी यहाँ काफ़ी हैं। इम्पीरियल बैंक की लगभग २०० शाखायें और सब मिश्रित पूँजीवाले बैंक इन्हीं शहरों में स्थित हैं। पर यह सब बैंक व्यापारिक बैंक हैं और थोड़े समय के लिए रुपया उधार देते हैं। बड़े-बड़े कारख़ानों को अधिक समय के लिए रुपये की ज़रूरत होती है। यदि रुपया किसी मशीन में लगाया गया तो मशीन लगाने में कुछ समय लगेगा। फिर धीरे-धीरे माल बनेगा, बिकेगा, फ़ायदा होगा और सालों में जाकर रुपया अदा करने की नौबत आवेगी। व्यापारिक बैंकों को अधिक समय के लिए रुपया उधार देना भी नहीं चाहिए, क्योंकि उनके रुपये का अधिक भाग चलतू खाते में जमा किये हुए रुपये का होता है। जो किसी समय भी माँगा जा सकता है इसलिए वे ऐसी दिशाओं में रुपया लगाते हैं जो जल्दी-जल्दी आता-जाता रहे। कारख़ाने को रुपया उधार देनेवाले बैंक दूसरे होते हैं, जिन्हें इन्डस्ट्रियल बैंक कहते हैं। ये रुपया अधिक समय के लिए जमा करते हैं और अधिक समय के लिए कारख़ानों को उधार देते हैं। भारतवर्ष में इण्डस्ट्रियल बैंक इने-गिने हैं। इण्डस्ट्रियल कमीशन और बैंकिंग जाँच कमिटी ने अपनी रिपोर्ट में ऐसे बैंक स्थापित करने पर बहुत ज़ोर डाला है। बिना ऐसे बैंकों के कारख़ानों को रुपया मिलने का सुभीता नहीं हो सकता और उद्योगों की उन्नति नहीं हो सकती।

देशी पूँजी से कई गुनी अधिक भारतवर्ष में विदेशी पूँजी है। जब से भारतीय उद्योग-धंधों को संरक्षण मिला है तब से विदेशी पूँजी के विषय में वाद-विवाद होने लगा है। भारतवर्ष में कुल विदेशी पूँजी लगभग ७५०,००,००० पौंड, यानी १०,००,००,००,००० रुपया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशी पूँजी के विषय में अर्थशास्त्रियों व अन्य विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों की राय में विदेशी पूँजी का होना भारतवर्ष के लिए हितकर है, क्योंकि इससे देश के उद्योग-धंधों की उन्नति होती है और यह उन्नति बिना विदेशी पूँजी के रुक जायगी। पर दूसरे विद्वानों का मत है कि चाहे देश के उद्योग-धंधों की उन्नति हो या न हो, पर विदेशी पूँजी को देश से बाहर कर देना चाहिए। विदेशी पूँजीवाले हमारे देश की प्राकृतिक दौलत को लूट ले जाते हैं और हमेशा इस बात की कोशिश में लगे रहते हैं कि कोई देशी कम्पनी सिर न उठाने पाये।

यहाँ एक बात बता देना बहुत आवश्यक है कि विदेशी पूँजी हमारे देश में दो शकलों में आती है—एक तो ऋण के रूप में और दूसरी रुपया लगाने के रूप में। अर्थात् एक दशा में तो भारतीय व्यापारी बाहरी पूँजी वालों से रुपया उधार लेते हैं और उन्हें ब्याज भर देते रहते हैं। दूसरी दशा में विदेशी पूँजीवाले स्वयं हिन्दुस्तान में आकर अपना रुपया लगाकर काम करते हैं और जितना फ़ायदा होता है, सब ले जाते हैं। असली वाद-विवाद दूसरी प्रकार की पूँजी के विषय में है और वही पूँजी हम लोगों की आँखों में खटकती है। ऋणवाली पूँजी से हमें बहुत लाभ है। संसार के प्रत्येक देश ने समय-समय पर विदेशी पूँजी से बहुत सहायता ली है और बहुत से देश अब भी ऐसा कर रहे हैं। जर्मनी, जापान, संयुक्त-राष्ट्र ने भी जो राष्ट्रीयता के रंग में डूबे हुए हैं, विदेशी पूँजी को इस रूप में काफ़ी उत्तेजना दी है। डाक्टर स्लेटर के कथन के अनुसार ऋणवाली पूँजी में कोई दोष नहीं, क्योंकि विदेशियों का देश के प्राकृतिक धन या श्रमी पर किसी प्रकार का अधिकार नहीं होता। इसलिए पूँजी उधार लेते समय केवल २ प्रश्न उठते हैं—(१) क्या विदेशी ऋण से कोई ऐसा काम किया जा सकता है जिसकी सालाना आमदनी सालाना ब्याज से ज़्यादा हो? (२) क्या विदेश में, देश के मुक़ाबिले में, रुपया कम ब्याज की दर पर मिल सकता है? यदि दोनों प्रश्नों का उत्तर "हाँ" में दिया जा सके तो विदेशी पूँजी लाभदायक है। पर दूसरे प्रश्न पर कुछ आपत्ति की जा सकती है। व्यापारियों के लिए तो यह प्रश्न लागू होता है क्योंकि उन्हें संसार के बाज़ारों में संसार के व्यापारियों से मुक़ाबिला करना है; इसलिए अपने माल की लागत कम रखने के लिए उन्हें ज़रूरी है कि जहाँ कम ब्याज पर रुपया मिले वहीं से ले लें। पर यदि रुपया सरकार उधार ले रही है तब केवल ब्याज की दर कम होने के ही कारण विदेश से ऋण लेना उचित नहीं। यदि देश में रुपया मिल रहा है तो उसे चाहे ब्याज की ऊँची दर पर ही क्यों न हो, उधार लेना चाहिए। इससे रुपया बचाने की और उद्योग-धन्धों इत्यादि में लगाने की आदत पड़ेगी और देश का फ़ायदा होगा।

विदेशी पूँजी के विरुद्ध तीन मुख्य दलीलें हैं—(१) प्रतिवर्ष बहुत-सा रुपया लाभ के रूप में बाहर चला जाता है। बात ठीक भी है। इसी कारण मनुष्य कहते हैं कि हम अपने देश की आर्थिक उन्नति का न होना सह सकते हैं; पर देश की आर्थिक उन्नति से विदेशियों की जेब का गरम होना नहीं देख सकते। क्योंकि आख़िर में खनिज पदार्थ आदि की समाप्ति हो जाती है और यदि विदेशियों ने इनका ख़ात्मा कर दिया तो हम लोगों के लिए क्या बचेगा? (२) फिर विदेशी कम्पनियों में विदेशी लोग ही डाइरेक्टर व अन्य बड़ी-बड़ी जगहों पर होते हैं, इसलिए देशी आदमियों को उस विषय का अनुभव नहीं हो पाता। ये कम्पनियाँ भारतीय उम्मेदवारों तक को अपने यहाँ नहीं लेती हैं। (३) विदेशी पूँजी के होने के कारण देश की बहुत सी आर्थिक और राजनैतिक हानि भी होती है।

पर विदेशी पूँजी से बहुत से लाभ भी हैं। (१) इसकी मदद से देश के उद्योग-धन्धों की शीघ्रता से उन्नति होगी और देश शीघ्र धनी होगा। विदेशी लोगों को श्रमी की मज़दूरी तो देनी ही पड़ती है और कुल मज़दूरी देश की आमदनी को बढ़ाती है। मज़दूरी फ़ायदे का काफ़ी बड़ा भाग होती है। यह सच है कि यदि देश में मज़दूरी और लाभ दोनों ही रहें तो ज़्यादा फ़ायदा होगा, लेकिन जब तक ऐसा होने की सम्भावना नहीं है तब तक विदेशी पूँजी से ही कुछ फ़ायदा उठाना चाहिए। मज़दूरी के अलावा एक और फ़ायदा यह है कि बहुत से देशवासी मशीन का, प्रबन्ध का, निरीक्षण इत्यादि का काम सीख जायँगे, जिससे वे स्वयं कारख़ाने खोल सकेंगे। पर जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, यह झूठी आशा है। विदेशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बात का मौक़ा ही नहीं देते। इसलिए उनको इस बात पर मजबूर करना चाहिए कि वे कुछ भारतीयों को ऊँचे पद पर नियुक्त करें और कुछ उम्मेदवार भी लें। यदि विदेशी पूँजीवाले यह करने को तैयार नहीं तो विदेशी पूँजी की भारतवर्ष में कोई ज़रूरत नहीं। (२) दूसरी बात यह है कि विदेशी पूँजी उद्योग-धन्धों की प्रथम उन्नति की जोखिम और नुक़सान को झेलती है और इस प्रकार देशी पूँजी का मार्ग सुगम बना देती है। लेकिन इस दलील में कोई जान नहीं। जब विदेशी कम्पनियों को २१ करोड़ रुपये से अधिक प्रतिवर्ष लाभ होता है तब पता नहीं, नुक़सान का प्रश्न मनुष्यों के विचार में आ कहाँ से जाता है? नुक़सान है ही कहाँ? फ़ायदा ही फ़ायदा तो है।

ऊपर की बातों से यह अर्थ निकलता है कि जब तक देशी पूँजी की उन्नति नहीं होती, विदेशी पूँजी हमारे लिए हितकर है, पर वह तभी जब निम्नलिखित बातों का पूरा ध्यान रक्खा जाय—(१) जहाँ तक सम्भव हो पूँजी ऋण के रूप में ली जाय। (२) जब पूँजी अन्य रूप में ली जाय तब (अ) कम्पनी की रजिस्ट्री हिन्दुस्तान में की जाय और उसकी पूँजी रुपयों में हो। इससे भारतवासियों को रुपया लगाने में आसानी होगी। (ब) कम्पनी के कुछ हिस्से हिन्दुस्तानियों को ज़रूर दिये जायँ। (स) कम्पनी के कुछ डायरेक्टर हिन्दुस्तानी अवश्य हों। (द) कम्पनी में शिक्षा के लिए कुछ उम्मेदवार अवश्य लिये जायँ। यदि ऐसा नहीं हो सकता तो हमें विदेशी पूँजी से कोई लाभ भी नहीं हो सकता। केवल नुक़सान ही नुक़सान होगा।

अभिज्ञा

लेखक, साहित्याचार्य प्रो० विश्वनाथप्रसाद, एम० ए०, बी० एल०, साहित्यरत्न

आज हमारे हृदय-देश के राजा बनकर आओ।
देव! भिखारी बन दुनिया में मुझे न अब भरमाओ॥

आते हो तुम धूलि-धूसरित दुर्बल हाथ पसारे।
थर-थर कम्पन, अस्थिमात्र तन, व्याकुल नयन उघारे॥

कातर स्वर, जर्जर चीवर, झर-झर निर्झर दृग जल का।
आह! लिये तुम आ जाते हो दिल में ताप अनल का॥

मैं मद में मदहोश तुम्हें, प्रियवर! पहचान न पाता।
पाकर भी, प्राणेश! तुम्हें 'दुर दुर' करके ठुकराता॥

घन-जन की ममता में मैं यों ही ऐंठा रह जाता।
प्राण लिये अञ्जलि में, देने को, बैठा रह जाता॥

जीवन और मरण में जिसके हित नित का तड़पन है।
स्वयमागत लख उसे निकल क्यों पड़ता निठुर वचन है!

याचक! तू भिक्षा-हित जो निज चीराञ्चल फैलाता।
हाय! बुद्धि पर वही भ्रान्ति का पर्दा-सा पड़ जाता॥

दैन्य-मध्य निज दिव्य रूप यों छिपा न और छकाओ।
आज हमारे हृदय-देश के राजा बनकर आओ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक रिकार्ड

लेखक, श्रीयुत पहाड़ी

जीवन के उछलते दिनों में चाँदनी ने क्या नहीं पाया था! धन-दौलत, मान-सम्मान! दुनिया से एक ओर सरक, अलग-सी रह, वह अपने में पूर्ण रहना चाहती थी। उन दिनों वह नहीं जानती थी कि दिन खिसकते-खिसकते बेचैनी बखेरते जा रहे हैं। वह अपने में खिली, खूब सुन्दर थी। और उस निखरे सौन्दर्य को ढकने-सँवारने की फ़ुर्सत ही नहीं मिलती थी। हँसी-खुशी और अपने उस बनाये वातावरण में, एक अजीब गुदगुदी, हमेशा उसके साथ रहती थी। एक बार उसने जो पाया, वही ले चलना निश्चय था, ठहरना उसे नहीं था। फिर उस ऐसा फक्कड़ और कौन था? ज़िन्दगी भले ही भारी एक इम्तहान हो, पर उससे वास्ता रखने की क्षमता उसे थी। और अपने व्यक्तित्व के भीतर और बाहर टटोल-टटोलकर कभी अपने को वह नहीं पाती थी। भले ही कोई याद फीकी लगे पर उस याद को आगे ला कुचल देने की हिम्मत वह कब कर पाती थी। वह जानती थी कि चाहना को उठाना ग़लत है। धारणाओं पर चलनेवाली दुनिया के बीच, चाहना को फैलाकर, टंटा-बखेड़ा जोड़ना, अनुचित बात होगी। परवाह को इसी लिए वह भूले थी। अन्यथा.....

पाँच महीने की लम्बी बीमारी के बाद, आज चाँदनी, बड़े आईने के आगे खड़ी हुई। उसने अपने सर के बालों को हिला-हिलाकर, इधर-उधर फैल जाने दिया। एक बार उन बालों ने सारा चेहरा ढक लिया। अस्तव्यस्त उच्छृङ्खलता के साथ, अपना यह रूप वह देखने लगी। अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को, ख़ूब-ख़ूब फैला आईने में फैली आँखों में डुबो, न जाने क्या सोचकर, उसने आँखें मूँद लीं। सुस्त और सफ़ेद पड़ते चेहरे पर, कहीं-कहीं अब पीली-पीली झाँइयाँ रह गई थीं। और रूप की नग्नता में वह क्या पाती! वह शरीर, जिसे रेशमी और क़ीमती कपड़ों से सँवार ढक, वह गुड़िया बनी रहती थी—उसकी अवहेलना अब उसे खल रही थी। तभी अपने शरीर का भारी मोह हटा, सफ़ेद मोटी धोती के बीच वह दुबकी रहना चाहती थी। अपने प्रति कृत्रिम उदासी साबित कर, दुःख मोल ले, निराशा की मैली गली में आज उसका सफ़र था। वह आराम चाहती है। सारा व्यवहार, दुनियादारी और अपना पराया, साबित कर लेने की भूख भी उसे नहीं है। सारे गम्भीर स्वभाव पर, बेचैनी फैल रही है। वह मजबूर है, लाचार है। अपनी लाचारी और मजबूरी को बाँध कर ही चलने के सिवा, आख़िर करे भी क्या?

चाँदनी की बुद्धि ने उसे धोका दिया है। उसकी भारी सुलझी समझ ही इस सारी परेशानी की जड़ है। वह जानती है कि वह छलना है। समझती है कि वह एक भूल है, फिर भी अपने को बहका कर ठग नहीं पाती है; उसे अपने पर भी तो कोई भरोसा नहीं रहा है। चाहती है कि कहीं दूर, एकान्त में वह अकेली-अकेली रहे। वहीं अपने मन का ताला तोड़ अपने दुःख को आँसुओं से भिगो, कूदने-फुदकने को छोड़ दे। तब निश्चिन्त होकर रहे। अपनी इस एक हवस को मन ही मन में घुमा-फिरा-कर, दिल बहलाने का साधन बनाये है। किसी से इसके बारे में वह राय नहीं माँगती है। वह किसी के अहसान की भूखी नहीं है।

वह जोगन बनेगी। भाग जायेगी, कहीं, किसी के पास। सारा व्यवहार और बर्ताव छोड़ देगी। बाक़ी ज़िन्दगी की मंज़िलें अकेले-अकेले, ही वह पार करेगी। वह सामर्थ्य रखती है। समझदार है, बावली नहीं है। शायद पगली कुछ-कुछ हो। कभी-कभी पूरी बात समझ में नहीं आती थी। दिमाग़ भी अब ठीक काम नहीं करता है। फिर सारी परेशानी बढ़ती ही जा रही है।

एकाएक वह चौंकी; उसने बच्चों के खेलने की आहट-सी पाई। एक आवाज़ सुनी—ममी। दूसरा गुड्डा-सा होगा। उनके साथ आँख-मिचौनी खेलकर वह अपने को उनके बीच भुला देगी। इसके बाद फिर एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारी भार हट जायेगा। लेकिन भागती-भागती इस भरी दुनिया के बीच वह अकेली-अकेली खड़ी क्यों है? और एक दिन जब भारी उठती अकुलाहट के साथ, रोग से घिर कर, मर जाने का सवाल मन में उठा था तब वह घबड़ा क्यों गई थी। और एक अपना ही बच्चा उस दुःख को भुला लेने को, वह किसी से माँग लेना चाहती थी। वह सारा भ्रम.....

"बी बी!"

इस भारी उलझन और अकेले वातावरण के बीच, शान्ती ने आकर सारा ख़्वाब मिटा डाला। पहेली बनाती और उसके खेल में फँसी चाँदनी को और भी ज़्यादा उलझा दिया। एक गहरी साँस को अपनी सारी ममता सौंपती वह बोली—"शान्ति"। प्यार से यह कह, अपनी भाषा में, अपाहिज की तरह, अपने को वह, इस छोटी बहिन को सौंप देना चाहती है। वह जानती है कि शान्ति यह भार सम्भाल नहीं सकेगी। पर एक तृष्णा मन में उठती है। शान्ति से सगी उसकी और कौन है? और सब बिराने हैं। यह लड़की शान्ति, एक दिलासा और उम्मीद है। उसके अज्ञान और अनभिज्ञता के भीतर वह बैठ जाना चाहती है। वहीं हारी थकी टिकी रह भी वह जायेगी। मौक़ा देखती है। किन्तु?

शान्ति आई है, अपनी बीबी को दवा पिलाने। मात्रा लगी दवा की शीशियों पर अब चाँदनी का विश्वास नहीं है। यह सब उसे अब नहीं सुहाता। दवा की 'डोज़' देख-कर मन में उकाई उठती है। भीतर शरीर के एक भारी छी-छी-छी फैल जाती है। शान्ति कब जानती है कि चाँदनी का विद्रोह सुलग चुका है। उसकी बीबी अब राख बन कर, एक दिन सिर्फ़ ढेरी रह जायेगी। अस्तु, तभी यह विद्रोह होगा। चाँदनी के मन की ख़्वाहिश तो यह है कि अपने इस विद्रोह की तेज़ आग से, मनुष्य, उसकी सभ्यता, दुनिया के क़ायदे-क़ानूनों तथा सारी और बुराइयों को भस्म कर दे। सब कुछ, कुचल कर, आगे बढ़ जायें। अन्यथा इस दुनिया में जहाँ आदर नहीं, न्याय नहीं और जहाँ कि सब कुछ फ़रेब है, रहकर उसे चलना नहीं है। दुनिया को धोखा देकर, ख़ुद अपने को भी धोखा देने की अब वह ठाने है। एक बाहरी विडम्बना के बीच, सही साबित रहने की सामर्थ्य आज उसमें नहीं। फिर भी तो...

उसे शान्ति के कहने पर फिर भी इनकार नहीं था। मुँह बिचकाकर, दवा की घूँट चाँदनी ने पी डाली। अपने ऊपर मोह उभर आया। वह एक मात्रा प्राण बचाने में मदद देगी। व्यवहार में बरती जानेवाली बात ही भरोसा कहलाती है। शान्ति जब अपना कर्तव्य जानती है, तब उसकी उपेक्षा नहीं हो सकती है। व्यवहार में निभानी पड़ेगी। पान मुँह में ठूँस लेने और ध्यान को दवा से हटा लेने पर भी मन मचल-मचल उठता है। ज़रा भी चैन नहीं है। वह क्या करे?

"शान्ति" कहती हुई चाँदनी उस लड़की को देख, आगे कुछ और कहना भूल जाती है। वह लड़की अपनी बीबी को क्यों नहीं पहचानती है! उसकी बीबी का रंग फीका-फीका पड़ता जा रहा है। वह इसके लिए क्यों कोई उपाय नहीं निकालती, लेकिन चाँदनी को तो अपनी हसरतों को तोड़-मरोड़ कर फिर टाँकना नहीं है। सब जमा की सामर्थ्य समाप्त होती जाती है। तब ख़ाली दिल की जगह में भीतर-ही-भीतर दुःख घाव बनकर दुःखता रहता है। और ख़ुद अपने को उस पीड़ा को बाँट, चाँदनी चुपचाप, निर्जीव हो, एक ढेर सी पड़ी रह जाना चाहती है।

बीबी को चुप पाकर शान्ति कुछ भी कहना नहीं चाहती है। वह लापरवाह है। सावधानी से रहने की सीख वह कहाँ से पाए। बीबी को समझाने—सँभालने की ज़िम्मेदारी एक दिन लेनी पड़ेगी यह वह नहीं जानती थी। अब तक तो बीबी का कहना मानकर ही वह चलती थी।

त्योंही चाँदनी बोली—"ग्रामोफ़ोन ले आना।" यह हुक्म शान्ति कैसे टाल दे। कई बार, वह एक रिकार्ड बज चुका है। उस रिकार्ड को चैन नहीं मिलेगा। बीबी को न जाने क्या झक सवार हो गई है। कुछ कहेगी, तो बीबी गुस्सा हो जायेगी, बात का उल्लघन वह नहीं कर सकती है और रिकार्ड को तो बजाना है।

'जो बीत गई सो बीत गई।'

अब उसकी याद सतावे क्यों?

फिर एक गहरी साँस लेकर; चाँदनी भी उस गीत को दुहराने लगती है। गाती है। सारे जीवन-उत्साह को इस गीत से ढक लेना चाहती है। फिर ख़ाली होकर, ज़िन्दगी और तवालतों से छुटकारा माँगती है। रिकार्ड की आवाज़ और गीत की लड़ियों के बीच पगली बनी वह झूमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगती है। बाक़ी सारी चाहना से छुटकारा पाकर, इस एक गीत से अपने को बहलाने की ठानकर, वह भारी प्रलय का इन्तज़ार कर रही है। वह सारी दुनिया के प्राणियों को कुचल, उन्मादिनी बनी, इस गीत को जी भर कर गाना चाहती है और फिर ख़ुद उसी के बीच समाकर, वहीं रह जाना चाहती है। कभी बीच-बीच में वह खिलखिला कर हँस पड़ती है; वह फीकी हँसी चारों ओर गहरी वेदना निचोड़ती है। कभी अपनी सूनी और ख़ाली आँखों से इधर-उधर टटोलकर, कुछ पा लेना चाहती है। कभी अपनी ठोढ़ी पर हथेली लगा चिन्ता में डूब जाती है। चारों ओर से एक ठहाका सुन पड़ता है। दिल में कोई मखौल उड़ाता है। वह चाहती है, ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाना—ओ-ओ-ओ-पगली तो वह नहीं, एक शब्द उठता है। और रिकार्ड घूमता-घूमता जाता है—

फूलों से जिनको नफ़रत है,
ख़ुशबू से उनको बहशत क्यों ?

गुन, गुन, गुन, गुन, वही-वही-वही, चाँदनी इस सबको ही तो एक-मात्र सहारा बनाये है। घमंड में फूलों को एक दिन वह कुचल चुकी थी। बाग़ उजड़ गया था। और माली खिन्न होकर भाग गया था। किससे फूलों की भीख माँगकर, वह ढेरियाँ जमा कर ले, एक भारी भूख दिल में उठी। वह आग दबती नहीं थी, काश कि सब कुछ पूर्ण होता। अप्राप्त और प्राप्त के झगड़े को वह ठुकरा सकती। केवल चाह ही उठकर, शरीर, मन और दिमाग़ को पकड़कर चल सकती। एक अज्ञेय भार न दबाता। एक अज्ञात पीड़ा, दिल को ख़रीद न लेती। अब उसे सबसे छुटकारा भी तो नहीं था।

जीवन की कपटता से कभी उसे कोई सरोकार नहीं रहा है। वह निपट कोरी रहकर चली। चलकर, पीछे फिर कर नहीं देखा बस चलती ही गई। चलकर, मुड़कर पीछे देखना नहीं जानती थी। वह अब एक मूक कहानी नहीं रही। प्रेम भी वह नहीं है। एक खेल और तमाशा भी वह नहीं थी। हृदय में फिर भी दुःख दुबका सोया था। क्या वह अपने को समझाये। यह इतनी बात निभ जाती, तो सब कुछ ठीक होता। सोचती है, प्रेम टिकाऊ नहीं; चाहती है एक की आड़ में आश्रय पाकर उसके नज़दीक रहकर चलना, वह सारा पिछला बन्धन तोड़ कर 'किसी' के चरणों में लोट लोट कर कह देना—"लो-लो-लो। मैं आ गई! बोलो-बोलो! तुम्हारे साथ चलूँगी। मुझे अब कोई भी एतराज़ नहीं है। तुम्हारी होकर रहूँगी। यही मैं चाहती थी। जगह दे दो। थक गई हूँ। टिकने दो! टिकने दो! विश्वास मानकर मैं आई हूँ।"

एक ठिकाना पाकर, वह वहीं चुपके रहना चाहती है। अपने जीवन का बाइसवाँ साल पार करके भी क्या उसे चूक जाना है। अपने सारे अरमानों को वह कैसे मिटाये? किन भारी उम्मीदों से आज तक वह उन सबको सँभाले रही है। और वे उमंगें? दुनिया क्या-क्या कहती है। वह सारा ढोंग एक वहम बना घृणा पैदा करता है। घृणा का वह छाला जब फूट गया तब वह अपने होश में नहीं थी। वह कुछ भी सीख नहीं पाई थी। जो जिसने कहा, वही जमा कर लिया था। किसी ने भी उसे अपने नज़दीक लाकर, कुछ सिखाने की कोशिश नहीं की थी। सब स्वार्थी थे, झूठे थे, फ़रेबी थे। उनको बढ़ा-बढ़ाकर बातें करनी थीं। यही वे सीखे थे। दुनिया को अपने ढोंग के साथ धोखा देना ही उन्होंने जाना था। बड़ी कड़वी घूँट पीकर उनके साथ चलना वह सीख गई थी। वह क्या करती?

शान्ति चाहती है अपनी बीबी को ख़ुश रखना! कुछ कहते-कहते उसकी बीबी मुसकुराती है। यह रिकार्ड दिन भर बजता रहेगा। बीबी अपने मन की करती है। डाक्टर कहता है—आराम ज़रूरी है। चाँदनी को नींद नहीं आती। जहाँ कुछ भारी पीड़ा उठी, वह रिकार्ड चढ़ा दिया जाता है। शान्ति बीबी को समझाना चाहती है कि वह आराम किया करे। वह ज़रूरी है। लेकिन कहे कैसे? उसके व्यवहार से अवाक् रह जाती है। कभी-कभी तो अपनी बातों का जवाब भी नहीं पाती है। मन में क्रोध आता है। क्या कहे, निश्चित नहीं कर पाती।

चाँदनी तभी पूछती है—"वहाँ चलेगी, शान्ति?"

"कहाँ बीबी।"

"अरी वहीं घूमने।"

चाँदनी किस प्रकार अपना वह परियोंवाला स्वप्न उसे सुनाये। एक तसवीर ज़रा कभी वह गढ़ पाती है। साफ़ साफ़ कुछ भी मिलता नहीं है। भ्रम कहाँ मिटता है। वह तसवीर बिगाड़ सकती तो ठीक होता। किसी से भी उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोह नहीं, प्रेम नहीं। क्यों वह अपना एक बँटवारा चाहे। वह सबकी है। इधर-उधर पसरना उसे पसन्द नहीं है। और दुनिया भर की दया की भूखी भी वह कभी नहीं रही है। अब वास्ता ही वह किसी से क्यों रक्खे! वह कुछ भी और नहीं चाहती है। उसकी एक दुनिया और जीवन है। वह चैन से अपने में है। पहले चैन से, मौज के साथ चलकर उसे थकान महसूस नहीं होती थी। अब..... वह रिकार्ड।

'खुश रहनेवाली सूरत पर, चिन्ता की बदरी छाई क्यों?'

उसने गहरी एक साँस ली। इन पाँच महीनों में वह लुट चुकी है। प्यारी-प्यारी सारी चीज़ें ओझल होती जा रही हैं। उसका वह रूप काफ़ी ढल चुका है। दुनिया के आगे खड़ी होते उसे भारी एक लाज लगती है। ज़माना बड़ी तेज़ी से बदल गया है। यह रोग उसे बीच में ही ख़तम कर दे तो वह चैन से रहेगी। लोग भी तो उसे घूर-घूरकर देखते हैं कि वह कितनी बदल गई है। अड़ोस पड़ोस की सब लड़कियाँ साँझ को सज-धज कर बैठती हैं, लेकिन चाँदनी तो उन सबसे अब छुटकारा चाहती है। अपने उन दोस्तों से भी कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहती है जो आज तक उसके लिए एक भारी दिलासा थे; अपने शरीर से भी भारी घृणा हो गई है। इसी शरीर और रूप को लेकर आज तक उसने अपनी दूकान चलाई थी। सौन्दर्य के लिए उसकी दूर-दूर तक शोहरत थी। उसकी छोटी-छोटी बातें शहर में फैल जाती थीं। आज वह कुछ नहीं चाहती। वह जीवन लुटा चुकी है, केवल एक याद आती है। वह उठकर दबाये दबती नहीं है। सोचती है—'वह भला था।' फिर सोचती है—सब बेवकूफ़ी है। कौन किसका है। उसे अकेला ही चलना है; अपने में सामर्थ्य जमाकर, सब कुछ बिसार देना चाहती है।

शान्ति कहती है—"बीबी रिकार्ड बन्द कर दूँ?"

चाँदनी सर हिलाती है, फिर पूछती है—"तुझे यह गाना कैसा लगा?"

"अच्छा है बीबी।"

और चाँदनी शान्ति से लिपटकर उसे चूम लेती है। वह अपना व्यक्तित्व उसे सौंप देना चाहती है। आँखों की पलकें भीग जाती हैं। दिल में अजीब एक कुड़कुड़ाहट होती है। शान्ति घबड़ा जाती है, सोचती है, बीबी सच ही पागल तो नहीं हो गई है। हठात् चाँदनी हट जाती है। चुपके रिकार्ड उठा, अपने कमरे में जाकर गद्दे से बिस्तर पर लेट जाती है। सारे विचार चुकने लगते हैं। वह अपने को अनिश्चित पाती है।

कुछ देर शान्ति बीबी का रोना सुनती है। उठकर कमरे में जाकर देखती है कि रिकार्ड टूटा पड़ा है। बीबी फूटफूट कर रो रही है, सिरहाने की मेज़ पर धरे रायटिङ्ग पैड पर लिखा है—'शैल'। ऊपर से आँसुओं ने उस शब्द को पोंछ लिया है।

अनजान शान्ति कुछ नहीं कह पाती। वह रिकार्ड का एक टुकड़ा उठाकर वहीं खड़ी रह जाती है।

व्यग्रता

लेखिका, श्रीमती तारा पाण्डेय

कौन कारण है सजनि, जो बढ़ रही मेरी निराशा?
देवता उर में बसे हैं
गोद में बचपन खिलाती;
भूल जाती हृदय के दुख
लोरियाँ गा-गा सुनाती।
पर न जाने कौन करता भंग मेरी मधुर-आशा!
गा रही मैं गीत सुख के
छा रहा मन में अँधेरा,
तरु गया है सूख यदि
कैसे पथिक लेगा बसेरा!
कह रहे सब रस भरा जग, किन्तु मेरा हृदय प्यासा!
जानती यह भी नहीं मैं
कौन सच है, कौन सपना;
प्राण देकर भी यहाँ
कोई बना क्या मीत अपना?
समझती हूँ सत्य है दुख, अमर है मेरी निराशा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू-मुस्लिम-समस्या और हमारा भ्रम

लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा

नए शासन-विधान प्रचलित होने के बाद से ही हिन्दू-मुस्लिम-समस्या ने विकट रूप धारण कर लिया है। किसी पराधीन देश में ऐसा साम्प्रदायिक उपद्रव होते देखकर किसे क्षोभ न होगा? उपद्रव एक-दो दिन तक ही नहीं सीमित रहता, पर महीनों चलता है। विगत एक महीने में इस साम्प्रदायिक उपद्रव ने अमृतसर, रंगून, कानपुर, बनारस तथा जबलपुर जैसे नगरों की जान व माल की बड़ी भयंकर हानि की है। यहाँ हमारे सामने यह सवाल नहीं है कि कौन ज़्यादा लड़ता है, हिन्दू या मुसलमान, कौन ज़्यादा जुल्म करता है, हिन्दू या मुसलमान। साथ ही हम इस प्रश्न पर भी नहीं विचार करना चाहते कि इन दंगों में मुस्लिम-लीग की कहाँ तक ज़िम्मेदारी है। बहुत सी बातें पाठकों को ज्ञात हैं और उनके दुहराने की ज़रूरत नहीं है। यह भी लिखना पुनरावृत्ति करना होगा कि कांग्रेसी प्रान्तों में इन दंगों की ज़िम्मेदारी कांग्रेस-मान्त्रियों पर भी इस रूप में है कि वे उतनी सख़्ती से काम नहीं लेते, जितनी उनसे आशा की जा सकती है। जो हो, उपद्रवों का होना एक विकट सत्य है और हमको राष्ट्रीय दृष्टि से इन पर विचार करना चाहिए।

निरर्थक-कारण

'मस्जिद और बाजा' या 'गो-कुशी' की समस्यायें बहाना-मात्र हैं। इनकी तह में वह जड़ता है जिसके हम शिकार हैं, अर्थात् हमारी आशङ्का इसके लिए ज़िम्मेदार है कि ऐसी बातों पर हम लड़ सकते हैं। इस आशङ्का की समस्या पर अभी वैज्ञानिक रूप से विचार नहीं हुआ है।

हिन्दू या मुसलमान दोनों इस देश में एक-दूसरे को नष्ट नहीं कर सकते। दोनों को परस्पर सहयोग से काम लेना होगा। स्वर्गीय मौलाना मुहम्मदअली ने भी साफ़ कहा था कि दोनों ही ऐसा स्वप्न न देखें। वह समय कभी नहीं आवेगा। रह गया प्रश्न नौकरी का—साम्प्रदायिक बँटवारे का। जिस प्रकार के बँटवारे की बात कहकर या हिन्दू-राज्य की धमकी देकर मुस्लिम नेता मुसलमानों को उत्तेजित करते हैं, वह भी एक भ्रम है। वास्तव में यह हिन्दुओं का कर्त्तव्य है कि अपने मुस्लिम बन्धुओं को यह समझा दें कि वस्तु-स्थिति क्या है और भारत की जनता को ग़लत रास्ते से ले जाने में किसकी ज़्यादा हानि होगी और केवल प्रेम या एकता की बात करने से ही यह समस्या हल न होगी। इसके लिए जिस ठोस प्रचार की आवश्यकता है उसी पर ध्यान देना ज़रूरी है।

कांग्रेस ने बार-बार कहा है कि हिन्दू-मुस्लिम के भेद-भाव से किसी का कल्याण न होगा। थोड़े ही समय में 'संयुक्त निर्वाचन' और 'संयुक्त मताधिकार' का महत्त्व स्थापित हो जायगा। पर इतना कहने से ही मुसलमानों के मन में विश्वास पैदा न होगा। बंगाल, पंजाब आदि प्रान्तों में अपना बहुमत देखकर वे यही चाहते हैं कि उनका अलग प्रतिनिधित्व हो। जहाँ उनका अल्पमत हो, वहाँ उनको 'अधिकार' अथवा 'वेटेज' दिया जाय। पर इससे उनका कितना कम लाभ होगा, यह भी सोच लेना चाहिए। पिछली मदुमशुमारी के अनुसार हिन्दू-मुसलमानों की संख्या तथा प्रतिशत इस प्रकार है—

प्रान्त	हिन्दू	प्रतिशत	मुसलान	प्र० श०
मदरास	४,१२,७७,३७०	८८·३१	३३,०५,९३७	७·०७
बम्बई	१,६६,२१,२२१	७६·०५	४,४५,६,८९७	२०·३९
बंगाल	२,१५,७०,४०७	४३·०४	२७,४९७,६२४	५४·८७
संयुक्त-प्रान्त	४,०९,०५,५८६	८४·५०	७१,८१,९२७	१४·८४
पजाब	६३,२८,५८८	२६·८४	१,३३,३२,४६०	५६·३५
बिहार उड़ीसा	३,१०,११,४७४	८२·३१	४२,६४,७९०	११·३२
मध्यप्रान्त	१,३३,३८,२२३	८६·०१	६,८२,८५४	४·४०
सीमाप्रान्त	१,४२,९७७	५·९०	२२,२७,३०३	९१·८४

इन ८ प्रान्तों की संख्या में केवल ३ में मुस्लिम बहुमत है। किन्तु अन्यों में उनका अल्पमत भी इतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़्यादा है कि उनकी हस्ती न-गण्य-सी हो जाती है। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि इन्हीं प्रान्तों में अन्य अल्प-मतवालों की संख्या क्रमशः २१,५६,८०० (मदरास), ७,७६,७४८ (बम्बई), १०,४५,६७१ (बंगाल) ३,२१,२५० (संयुक्तप्रान्त), ३९,१६,८०४ (पंजाब) २४,०१,३१२ (बिहार), १४,८६,६४६ (मध्यप्रान्त) तथा (सीमाप्रान्त) ५४,७९६ है। इनका औसत क्रमशः ४·६२, ३·५६, २·०९, ०·६६, १६·६१, ६·३७, ९·५९ तथा २·२६ है। आसाम में ५७·२० प्रतिशत हिन्दू और ३१·९६ प्रतिशत मुसलमान हैं। ब्रह्मदेश में, जहाँ रंगून के उपद्रव का समाचार सुनकर हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं, ९२·११ प्रतिशत ब्रह्मदेशीय इत्यादि तथा ३·९० प्रतिशत हिन्दू (५७०,९५३) और ३·९९ प्रतिशत मुसलमान (५८७,९३९) हैं। ऐसी दशा में मुसलमानों को यह भी स्मरण रखना चाहिए कि आज ब्रह्मदेश में जिस प्रकार अत्यन्त अल्प-मत होते हुए भी वे साम्प्रदायिक उपद्रव करने के कारण तबाह हो सकते हैं, उसी प्रकार भारत के अनेक प्रान्तों के 'छोटे सम्प्रदाय' अपने उतने ही अल्पमत से घोर अशान्ति उत्पन्न कर सकते हैं। इसका सबसे अधिक भय पंजाब के मुस्लिम प्रान्त में है। इसलिए क्या यह उचित नहीं है कि भारतीय मुस्लिम-हिन्दू जनता इस सम्प्रदायवाद को दफ़ना कर सुख-शान्ति की नींद से सोने की चेष्टा करे।

अन्य अल्प-संख्यक

मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य अल्प-सख्यक सम्प्रदाय-वाले कितने हैं, इसकी भी रोचक तालिका देखने से पाठकों को यह मालूम हो जायगा कि उनकी समस्या भी साधारण नहीं है।

सम्प्रदाय	ब्रिटिश भारत	देशी राज्य	प्रतिशत
सिक्ख	३२,२०,९६७	११,१४,७७४	१·२४
जैन	४,५३,५६९	७,६८,५३६	०·३६
बौद्ध	१,२६,९३,०८९	९३,७१७	०·३५
ईसाई	३८,६६,६६०	२४,३०,१०३	१·७१
यहूदी	२१,२०६	२,९३५	०·०१

इन आँकड़ों से यह पता चलेगा कि लगभग ४ प्रतिशत अल्प-संख्यक यहीं हो जाते हैं। देशी राज्यों में जैन अधिक हैं। ब्रिटिश भारत में बौद्ध। इनके अतिरिक्त 'असभ्य' या 'ट्राइबल' कहे जानेवालों की संख्या भी कुल मिलाकर ८२,८०,३४७ यानी २·३६ प्रतिशत है। इस प्रकार ६८·२४ प्रतिशत वास्तव में ७५ प्रतिशत हैं—यदि 'असभ्यों' की आधी संख्या ही मान ली जाय। मुसलमानों को भी २२·१६ प्रतिशत से बढ़ाकर २५ प्रतिशत मानना पड़ेगा। क्या इस ७५ और २५ प्रतिशत का तात्कालिक समझौता नहीं हो सकता? क्या यह सम्भव है कि एक उगता हुआ राष्ट्र इसी प्रकार झोंके खाता रहेगा? सुना जाता है कि मुस्लिम-नेता या कतिपय नेता देशी-राज्यों में भी अल्प-मत की समस्या खड़ी करना चाहते हैं। किन्तु इसमें उनको लाभ होगा या हानि, यह नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट हो जायगा। पाठक इस तालिका को भी ग़ौर से देखें—

रियासत	हिन्दू	प्रतिशत	मुसलमान	प्रतिशत	अन्य	प्रतिशत
मदरास की रियासतें	४३,२३,१५०	६४·००.	४,६७,३९६	६·९२.	१९,६३,९३८.	२९·०८.
मैसूर	६०,१५,८८०	९१·७४.	३,९८,६२८	६·०८.	१,४२,७९४.	२·१८.
सीमाप्रान्त	१३,६५१	२९·३९.	२३,०८६	४९·७०.	९,७१४.	२०·६१.
पञ्जाब	३,८३,८८३.	८७·६९.	४०·८४५.	९·३३.	१३,०५९.	२९८.
पञ्जाब-दक्षिणी एजेन्सी	१८,८७,२४७	४२·२०.	१५,५६,५६१.	३४·८०.	१०,२८,३७८.	२३·००.
राजपूताने की रियासतें	९५,७८,८०५	८५·३३.	१०,६६,३२५.	९·५३.	५,७७,५८२.	५,१४.
सिक्किम	४७,०७४	४२·८७.	१०४.	०·१०.	६२,६३०	५,७०३.
संयुक्त-प्रान्त	९,५०,७२४.	७८·८३.	२,५१,१३१.	२०·९०.	३,२१५.	०·२९
पश्चिमी भारत एजेन्सी	३२,४६,७६८.	८१·१९.	५,४५,५६६.	१३·६४.	२,०६,६१३.	५,१४
भारत के कुल देशी राज्य	६,१४,६७,१५२.	७७·७१.	१,०६,५७,१०२.	१३·४७.	६९,७३,७५४.	८८·८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या हमारे मुसलमान भाई यह सोचने का कष्ट करेंगे कि देशी-राज्यों में कुल १३·४७ प्रतिशत संख्या के लिए यह हितकर होगा कि वह पृथक् प्रतिनिधित्व लेकर पृथक् संघटन करे ? क्या उसके हित में संयुक्त-निर्वाचन से संयुक्त संघटन न होगा ? हिन्दू इन बातों की ओर अपने भाइयों का ध्यान आकर्षित करने का बहुत कम प्रयत्न करते हैं, जिससे आम मुस्लिम जनता का अज्ञान दूर नहीं होता और वह अन्धकार में पड़ी रहने के कारण किसी प्रकार का उचित आन्दोलन समझ ही नहीं पाई है। इस दृष्टि से कांग्रेस का 'समूह-सम्पर्क' या 'मास कान्टेक्ट' का आन्दोलन बहुत ही उपयुक्त और उपयोगी है और उस आन्दोलन के प्रवर्त्तकों को बड़ी सावधानी से ये बातें समझाकर दोनों को एक-साथ मिलकर चलने की सलाह देनी चाहिए।

भाषा का भय

हिन्दुओं को हिन्दी के प्रति विशेष प्रेम है, यह बात तो हम दावे के साथ नहीं कह सकते। पर ५,३४,०९,१८१ बंगला, २,६१,८२,३२४ तेलगू और २,०७,०३,२४७ मराठी के बोलनेवाले हिन्दी को ग्रहण करने को तैयार हैं या नहीं, यह एक सोचने की बात है। पर इतना अवश्य है कि हिन्दू उर्दू से उतना प्रेम नहीं करता, जितना एक अच्छी भारतीय भाषा के प्रति होना चाहिए, और उर्दू के प्रचार को वह बड़ी उत्कण्ठा की दृष्टि से, भयातुर के समान, देखता है। यह बड़ी भारी भूल है। हिन्दी-भाषा के राज-भाषा बनने का समय दूर नहीं है और उसको आँच दिखलाना भी असम्भव है। पर यदि मुसलमान उर्दू को तरजीह देना चाहते हैं तो इसमें किसी प्रकार का विरोध या कोई हस्तक्षेप भी नहीं होना चाहिए। अब हम उनको साम्प्रदायिकता रूपी विष से दूर करना चाहते हैं तथा उनकी साम्प्रदायिकता के कारण स्वयं अपने में साम्प्रदायिक विष को भरना नहीं चाहते हैं तब हमको उनके वैध स्वत्वों पर कोई आघात भी नहीं पहुँचाना चाहिए। यह ठीक वैसा ही निर्मूल है, जैसा मुसलमान या हिन्दू का यह सोचना कि सभी सरकारी नौकरी एक सम्प्रदाय हड़प लेगा या सभी सरकारी अधिकार एक सम्प्रदाय अपनाकर ज़्यादा दिन तक काम चला सकेगा। बहुत से मुसलमान ऐसे हैं जिन्होंने उर्दू की सूरत भी नहीं देखी है। ऐसी दशा में उनका उर्दू के प्रति प्रेम हो जाना बुरा भी नहीं है। भारत में उर्दू जाननेवाले कितने हैं, इसकी कोई ठीक संख्या हमें नहीं मिली है। जो मिली है वह इस प्रकार है—

	प्रतिशत
हिन्दी बोलनेवाले	२२·५३.
बंगाली	१५ २४.
बिहारी	७·९७.
तेलगू	७·४७.
पंजाबी	६ ८६.
मराठी	५·९१.
तामिल	५·७९.
राजस्थानी	३·९१.
कनाड़ी	३·१६.
उड़िया	३·१७.
गुजराती	३·०५.
मलयालम	२·५९.
बर्मी	२·५२.
सिन्धी	१·१२.
आसामी	०·५७.
पश्तो	०·४३.
काश्मीरी	०·४०.
अँगरेज़ी	०·०८.
अन्य	७·२२.

पाठक स्वयं यह विचार कर लेने का कष्ट करें कि इनमें हिन्दी बोलनेवालों की तथा हिन्दी-भाषा जाननेवालों की और उर्दू-भाषा जाननेवालों की संख्या का क्या अन्दाज़ होगा।

अस्तु, यहाँ हमने हिन्दू-मुसलिम-समस्या का एक रूप पाठकों के सामने उपस्थित कर दिया है और उस पर विचार करने के लिए उनके सामने कुछ सामग्री रख दी है। अब वे स्वयं सोचें कि इस प्रश्न को अपने हाथ में लेकर क्या हम लोग इसे नहीं सुलझा सकते जिससे हमारी भारत-माता का विशद कल्याण हो ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछते हो

लेखिका, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा

पूछते हर बार हो आशा न पूरी सजनि होगी ?
मधुर स्वप्नों के लिए वरदान नीरव रजनि होगी।
प्राण-उपवन के अमर-पतझार में मधु ऋतु खिलेगी।
मधु-उमंगों को सुखाञ्जल चन्द्रिका-धारा बहेगी ?
बस यही उत्तर! पुनः प्रिय री उठे यह प्राण मेरे!
उफ़, छलक भी तो न पाते ये भरे अरमान मेरे।
युगल दृग की मौन-भाषा को किसे पहचान मेरे।
कब हुए परिणत हँसी में आह! गीले गान मेरे।
आत्म-विस्मृति में प्रणय की चिर-विरह की याद छाई।
दो घड़ी के मिलन-संचय में लुटा सुख काँप आई!
फूल की चिर-शून्यता में शूल से बाँधी सजाई!
कल्पना के स्वप्न-रंजित व्योम में घन घटा छाई!
गा नहीं सकती हृदय की तृप्ति जीवन में यहाँ प्रिय!
हँस रहे खुल कर अभावों के अथक नर्त्तन यहाँ प्रिय!
बढ़ चली अविरल व्यथा, उल्लास आवृत्त हो गया प्रिय!
वेदना की थपकियाँ पा यह विकल मन सो गया प्रिय!
मधुर वाञ्छा का बना कब नाड़ पाले पीर सम्भव ?
प्रणय-कलरव हो मधुर आये न बाधा-भोर सम्भव ?
कामना के क्षुद्र सीपि में हम तिरें हो मग्न सम्भव ?
प्यार के आवरण डाले डोल ले उर नग्न सम्भव ?
आज दुख की चिर अमावस में न शुभ ऊषा विहँसती।
हृदय में ज्वाला धधकती नयन-जल-धारा बरसती।
जानती यदि प्यार के संसार में यह हार बसती।
व्यर्थ नाता जोड़ पल भर प्रेम-बन्धन में न फँसती।
प्रेम का कर योग साधन चल रही हूँ विरह-पथ पर।
चिर-व्यथा के तीव्र झंझा में विकम्पित उर निरन्तर।
स्नेह के दो बोल क्या ? कब देख सकती आँख भर कर ?
मैं प्रवासी हूँ! बनी, कुछ तो सुनो तुम देश रहकर ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी और उर्दू की समस्या

लेखक, श्रीयुत वेंकटेश नारायण तिवारी

इस लेख में मैं निम्नलिखित सवालों पर विचार करूँगा—

(१) इस सूबे में उर्दू के मुक़ाबिले में हिन्दी का कितना चलन है, और इस चलन में पिछले ४७ साल, अर्थात् सन् १८९०, १९३६ में क्या-क्या रद्दोबदल हुए ?

(२) इन परिवर्तनों पर विचार करने से हम किन नतीजों पर पहुँचते हैं ?

(३) हिन्दी और उर्दू में कौन-से भेद हैं, और उन भेदों के मिटाने का क्या मार्ग है ?

(४) नये शब्द कहाँ से लिये या कैसे बनाये जायँ—अरबी, फ़ारसी या संस्कृत से ?

(५) लिपि और भाषा के विषय में हमारी क्या नीति होनी चाहिए ?

(६) तालीम किस लिपि और भाषा में दी जाय ?

कुछ कहने के पहले, एक निवेदन कर देना ना-मुनासिब न होगा। मेरी हार्दिक इच्छा है कि इस मसले पर आज़ादी के साथ और साफ़-साफ़ शब्दों में लोग अपने-अपने विचार प्रकट करें। इसलिए मैं उम्मीद करता हूँ कि पाठक भी—चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान—मेरे कथनों को ध्यान-पूर्वक पढ़ने और उन पर विचार करने की कृपा करेंगे। सम्भव है, जो बातें कही जायँ, वे सबको पसन्द न आएँ। इससे हमें डरना न चाहिए, क्योंकि मतभेद होना स्वाभाविक है। पर इसके कारण एक-दूसरे की नीयत पर हमला करने की किसी को ज़रूरत नहीं। हम सबका ध्येय तो एक ही है। कौन ऐसा हिन्दोस्तानी होगा, जो साम्प्रदायिक समस्याओं को मिटाने के लिए उत्सुक न हो ? भले ही, मार्ग के विषय में राय भिन्न हों। मौजूदा परिस्थिति में हमें मानना पड़ेगा कि साधनों के विषय में मतभेद है। वह यदि मिट सकता है तो विचार-विनिमय ही के द्वारा। इसी लिए मेरी तुच्छ बुद्धि में जो कुछ ठीक जँचा, उसी को मैं इस लेख में प्रकट करता हूँ। अगर दूसरे भाई कोई दूसरा रास्ता बतायें, तो मैं उनकी सलाह पर ग़ौर करने के लिए तैयार हूँ। यदि उनकी बातें मुझे ठीक जँचीं, तो मैं निःसंकोच उनके उपदेश को मानकर अपने मत को छोड़ने के लिए तैयार हो जाऊँगा। मैं हठधर्मी नहीं, और न मेरा यह दावा ही है कि मेरी राय ग़लत नहीं हो सकती।

आइए, प्रथम प्रश्न पर विचार कर देखें कि इस सूबे में हिन्दी की क्या दशा है। युक्त प्रान्त में प्रकाशित होनेवाली सब प्रकार की हिन्दी और उर्दू की पत्र-पत्रिकाओं की ग्राहक-संख्या, दोनों भाषाओं में कितनी पुस्तकें प्रकाशित हुईं, एवं वर्नाक्यूलर-इम्तिहान में हिन्दी-उर्दू लेनेवाले परीक्षार्थियों और हाई स्कूल-इक्ज़ामिनेशन में शरीक होनेवाले विद्यार्थियों की संख्या हम नीचे चार कोष्टकों में देते हैं। ये आँकड़े सरकारी रिपोर्टों से लिए गये हैं। अतएव इन्हें प्रामाणिक समझना चाहिए।

(१) पत्र-पत्रिकाओं की ग्राहक-संख्या

वर्ष	हिन्दी	उर्दू	योग	प्रतिशत हिन्दी	प्रतिशत उर्दू
१८९१	८,००२	१६,२५६	२४,२५८	३२·९	६७·१
१९०१	१७,४१९	२३,७५७	४१,१७६	४२·०	५८·०
१९११	७७,७३१	७६,६०८	१,५४,३३९	५०·३	५९·७
१९२२	२,१५,१२४	१,४०,८४६	३,५५,९७०	६०·४	३९·६
१९३१	२,३५,४३८	१,५०,५५६	३,८५,९९४	६०·९	३९·१
१९३६	३,२४,८८०	१,८२,४८५	५,०७,३६५	६४·०	३६·०

(२) हिन्दी या उर्दू लेकर वर्नाक्यूलर फ़ाइनल परीक्षा में बैठनेवाले परीक्षार्थियों की सूची

साल	हिन्दी	उर्दू	योग	प्रतिशत हिन्दी	प्रतिशत उर्दू
१८९०	९२७	३,२१५	४,१४२	२२·४	७७·६
१९००	अप्राप्त	अप्राप्त			
१९१०	,,	,,			
१९२०	६,५९६	४,८६०	११,४५६	५७·५	४२·५
१९३०	१५,९३४	१०,७८०	२६,७१४	५९·६	४०·४
१९३६	२०,१८८	१४,२८८	३४,४७६	५८·६	४१·४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) हिन्दी और उर्दू लेकर हाई स्कूल परीक्षा में बैठनेवाले परीक्षार्थियों की तालिका

वर्ष	परीक्षा देनेवालों की कुल संख्या	हिन्दी लेनेवाले	उर्दू लेनेवाले	प्रतिशत हिन्दी	प्रतिशत उर्दू
१९२२	५,२१४	२,८६१	२,३५३	५४·८	४५·२
१९२५	५,९२७	३,०६४	२,८६३	५१·७	४८·३
१९३०	७,८८३	४,१६२	३,७२१	५२·७	४७·३
१९३५	११,७१८	६,५१९	५,१९९	५५·६	४४·४
१९३८	१३,०९१	७,४३९	५,६५२	५६ ८	४३·२

(४) इंटर मीडिएट परीक्षा में हिन्दी पर उर्दू लेकर बैठनेवाले परीक्षार्थियों की तालिका

वर्ष	योग	हिन्दी लेनेवाले	उर्दू लेनेवाले	प्रतिशत हिन्दी	प्रतिशत उर्दू
१९२६	५	२	३	४०·०	६०·०
१९३०	७९८	४८१	३१७	६०·२	३९·८
१९३५	१,७०९	९६९	७४०	५६·६	४३·४
१९३८	१,८८७	१,१५३	७३४	६१·६	३८·४

(५) पुस्तकें

साल	हिन्दी	उर्दू	योग	प्रतिशत हिन्दी	प्रतिशत उर्दू
१८८९–१८९०	३६१	५६९	९३०	३८·८	६१·२
१८९९–१९००	४९९	४८२	९८१	५०·८	४९·२
१९१०–१९११	८०४	४३६	१,२४०	६४·०	३६·०
१९१९–१९२०	९९३	२८६	१,२७९	७७·६	२२·४
१९२९–१९३०	१,९९१	३४८	२,३३९	८५·०	१५·०
१९३५–१९३६	२,१३९	२५२	२,३९१	८९·५	१०·५

ऊपर दिये हुए इन आँकड़ों की लंबी-चौड़ी व्याख्या करने की ज़रूरत नहीं। जो उनसे बातें सिद्ध होती हैं, उनकी ओर संकेत-भर कर देना काफ़ी होगा। पहली बात यह है कि यद्यपि इस सूबे में प्रकाशित होनेवाली हिंदी और उर्दू की पत्र-पत्रिकाओं की संख्या लगभग समान है, परंतु दोनों प्रकार के समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं की ग्राहक-संख्याओं में व्यापक अंतर है। हिंदी-पत्र-पत्रिकाओं की ग्राहक-संख्या जहाँ लगभग ३ लाख २५ हज़ार है, वहाँ उर्दू-पत्र-पत्रिकाओं की ग्राहक-संख्या पौने दो लाख से कुछ ही अधिक है। पत्रों की और उनके ग्राहकों की संख्याओं के लिहाज़ से भी हिंदी पत्र-पत्रिकायें उर्दू पत्र-पत्रिकाओं से और भी आगे निकल जातीं, यदि दो-तीन विशेष कारण बाधक न होते। पहली बात यह कि उर्दू के पत्रों के निकालने में बहुत स्वल्प पूँजी की आवश्यकता होती है। लीथो में छपने के कारण उर्दू-अख़बारों के संचालन में ज़्यादा पैसों की ज़रूरत नहीं पड़ती; लेकिन हिंदी में, आप चाहे जैसा पत्र क्यों न निकालें, आपको उसे छपवाने का इंतज़ाम करने में अपेक्षाकृत अधिक पूँजी की ज़रूरत पड़ेगी। इसलिए कोई अचरज की बात नहीं यदि, और कारणों के न होने पर भी, हिंदी-पत्रों की वृद्धि के मार्ग में यह एक बहुत बड़ी व्याधि सिद्ध हुई है। अधिक लागत के अलावा, एक राजनीतिक कारण भी पिछले वर्षों में उपस्थित था, जिसने न केवल इनकी वृद्धि ही को रोक दिया, बल्कि इनकी संख्या को भी घटा दिया। वह कारण यह था कि हिंदी-अख़बारों और प्रेसों ही से ज़्यादातर ज़मानतें ली गईं। सन् १९३६ में लगभग ५० अख़बार केवल इसलिए बंद हुए कि उनसे ज़मानतें माँगी गईं, और वे या तो ज़मानत न दे सके, या उन्होंने देना पसंद न किया। हिंदी के ऐसे ५० अख़बारों और प्रेसों के मुक़ाबिले में उर्दू के सिर्फ़ २ या ४ प्रेसों से ज़मानतें माँगी गईं। अगर ऐसा हुआ न होता, तो न केवल इन्हीं ६० अख़बारों का प्रकाशन न बंद होता या रुक जाता; बल्कि और भी बहुत-से लोग, जो अख़बार निकालना चाहते थे, लेकिन जिन्होंने ज़मानत के भय से उस इरादे को तर्क कर दिया, वे भी अख़बार निकालने लगते। यदि इस तरह की राजनीतिक बाधायें न होतीं, तो हिन्दी-अख़बारों की संख्या उर्दू-अख़बारों के मुक़ाबिले में कहीं अधिक हो गई होती, और उनकी ग्राहक-संख्या इनकी ग्राहक-संख्या से दुगुनी के बजाय कई गुनी अधिक हो जाती। इससे यह स्पष्ट है कि इस सूबे में हिन्दी-अख़बारों की जितनी माँग और खपत है, उतनी माँग और खपत उर्दू-अख़बारों की होनी संभव नहीं; क्योंकि इस सूबे की अधिकांश जनता हिन्दी-भाषा-भाषी है, न कि उर्दू-भाषा-भाषी। लिहाज़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो लोग यह दावा पेश करते हैं कि इस सूबे की ज़बान सिर्फ़ उर्दू है, या यहाँ की अधिकांश जनता उर्दू-भाषा बोलती है, उनके इस कथन को ऊपर के आँकड़े निस्सार और निराधार साबित करते हैं।

इसी तरह, आइए, वर्नाक्यूलर-फ़ाइनल और हाईस्कूल की परीक्षाओं के आँकड़ों की ओर एक नज़र डालें, पिछले ४६ साल में दोनों ही परीक्षाओं में हिन्दी लेनेवाले परीक्षार्थियों की संख्या बढ़ी। यह सही है कि उर्दू परीक्षार्थियों की संख्या में भी वृद्धि हुई। लेकिन जहाँ पहले की संख्या १०० में ५६ है, वहाँ दूसरे की संख्या १०० में ४४ है, और वह भी तब, जब इस समय हमारे सूबे के सरकारी दफ़्तरों, डिस्ट्रिक्टबोर्डों, म्युनिसिपैलिटियों और सरकारी अदालतों में उर्दू का बोलबाला है, जिसके कारण इन दफ़्तरों में नौकरी करनेवालों को बरबस उर्दू पढ़नी पड़ती है। अगर सरकारी दफ़्तरों और अदालतों की ज़बान उर्दू न हो, तो क्या ऊपर के आँकड़ों को देखने के बाद इसमें कुछ सन्देह रह जाता है कि इस सूबे में हिन्दी लेनेवाले परीक्षार्थियों की संख्या बहुत बढ़ गई होती। हिन्दी या उर्दू मिडिल में जहाँ १८९० में केवल २३ फ़ी सदी लड़कों ने हिन्दी ली थी, वहाँ १९३६ में ५८ फ़ी सदी ने ली, अथवा उनकी संख्या में प्रतिशत वृद्धि १३० सैकड़ा हुई, और उर्दूवालों में ७७ प्रतिशत से ४२ प्रतिशत अथवा ३७ प्रतिशत का ह्रास हुआ। उर्दू पढ़नेवाले विद्यार्थियों की मौजूदा संख्या कृत्रिम कारणों से इतनी भी है, लेकिन दिन-पर-दिन वह घटती जा रही है।

अपने उपर्युक्त कथन की सचाई सिद्ध करने के लिए सिर्फ़ इन्हीं दो तरह के आँकड़ों का आश्रय हम नहीं लेना चाहते। जिन आँकड़ों की ओर अब हम पाठकों का ध्यान आकर्षित करेंगे, उनसे तो यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जायगी कि इस सूबे की ज़बान हिंदी है और उसके बोलनेवाले न सिर्फ़ ज़्यादा हैं, बल्कि इतने ज़्यादा हैं कि उनके मुक़ाबिले में दूसरी ज़बान के बोलनेवालों की तादाद मुट्ठी-भर रह जाती है।

इस सूबे में १८९० में हिन्दी-उर्दू की जितनी किताबें प्रकाशित हुईं, उनमें हिन्दी की पुस्तकों की संख्या ३९ और उर्दू की ६१ प्रतिशत थी। लेकिन १९३६ में जितनी पुस्तकें हिन्दी-उर्दू में प्रकाशित हुईं, उनमें ८९ फ़ी सदी से अधिक हिन्दी की पुस्तकों और लगभग १० फ़ीसदी उर्दू की थीं। उर्दू पुस्तकों की छपाई बेहद सस्ती है। हिंदी की पुस्तकों का प्रकाशन महँगा है। इसलिए उर्दू की पुस्तकें सस्ते दामों पर बिकती हैं, और हिन्दी की पुस्तकों का दाम प्रायः अधिक होता है। इस पर भी इस सूबे के पढ़नेवालों ने महँगी किताबों को ज़्यादा ख़रीदा, और सस्ती किताबों को कम। इसकी क्या वजह है? क्या इसकी वजह सांप्रदायिक भेद है, या इसकी वजह यह है कि हिन्दी की किताबें जिस ज़बान में लिखी जाती हैं, उसी ज़बान को इस सूबे के अधिकांश लोग बोलते हैं? पागलख़ाने के बाहर जितने आदमी आपको मिलेंगे, वे सब इस बात को स्वीकार करेंगे कि लोग उन्हीं किताबों को ख़रीदना पसन्द करते हैं, जिनकी ज़बान को वे समझ सकते हैं, और उस ज़बान की किताबों को वे न ख़रीदेंगे, जिसे न वे बोलते और न समझते हैं। इँगलैंड में अंगरेज़ी किताबों के मुक़ाबिले में जर्मन या फ़्रेंच किताबें कम बिकेंगी। जितनी बँगला किताबें बंगाल में बिकती हैं, उतनी इस सूबे में नहीं, और न इस सूबे में मराठी किताबों का उतना चलन है, जितना महाराष्ट्र में। इसका कारण सिर्फ़ यही है कि इस सूबे की ज़बान न बँगला है और न मराठी। अगर इस सूबे की ज़बान उर्दू होती, तो यहाँ उर्दू की किताबों का सबसे अधिक चलन होता, और उसी ज़बान में ज़्यादातर किताबें प्रकाशित होतीं। जब उर्दू में कम और हिन्दी में ज़्यादा किताबें प्रकाशित होती हैं, तब तो इसमें सन्देह करने की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती कि हिन्दी-किताबों की ज़बान को यहाँ के आदमी आसानी से समझ लेते हैं, और उर्दू किताबों की ज़बान उनकी ज़बान नहीं है।

संयुक्त-प्रांत की असेम्बली के सदस्यों में मेरे अनेक मित्र हैं। उनमें हिन्दू और मुसलमान, दोनों ही शामिल हैं। इनमें से एक मुसलमान मित्र से इसी विषय पर मेरी बातें हुईं। मैंने उनसे पूछा "कि आजकल उर्दू के अख़बारनवीसों ने हिन्दी-उर्दू के मसले को लेकर क्यों शोरगुल मचा रक्खा है।"

"उन्होंने जवाब दिया कि इस सूबे के माननीय शिक्षा-मन्त्री महादय ने जो तक़रीर की उसकी वजह से यह तूफ़ान बरपा हो गया है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैंने पूँछा, जनाब, वज़ीर साहब ने अपनी तक़रीर में क्या फ़रमाया था ?"

जवाब मिला कि "अपनी उस तक़रीर में वज़ीर साहब ने हिन्दी की हिमायत की थी।"

"मैंने कहा, तो इसमें उनका क्या क़ुसूर है, उनकी क्या ख़ता है, जिसकी वजह से उर्दू-अख़बारनवीस उनसे इस क़दर ख़फ़ा हो गये !"

मेरे दोस्त ने फ़रमाया, "देखो जी, इस सूबे की ज़बान उर्दू है। हम जो ज़बान बोलते हैं, वह उर्दू है, हमारे देहाती भाई भी उर्दू ही बोलते हैं। आपकी इस मामले में क्या राय है ? क्या तुम समझते हो कि सूबे की ज़बान उर्दू नहीं है ?"

मैंने बड़ी विनम्रता-पूर्वक जवाब दिया कि आप जब फ़रमाते हैं कि इस सूबे की ज़बान उर्दू है, तब मैं इससे किस तरह इनकार कर सकता हूँ। ऐसी दशा में मेरे लिए यह कहना कि इस सूबे की ज़बान उर्दू नहीं है, अनुचित होगा।"

मेरे दोस्त बहुत ख़ुश हुए, मेरी तारीफ़ भी की। बोले—"वाह-वाह, तुम बड़े साफ़गो आदमी हो। अब तुम्हीं देखो, गर इस सूबे की ज़बान उर्दू है, तो वज़ीर साहब को इस तरह ग़लत-बयानी करने की क्या ज़रूरत थी, ख़ासकर जब उनकी ग़लत-बयानी की वजह से मुसलमानों को सदमा पहुँचता है ?"

मैं ख़ामोश रहा, लेकिन मेरे दोस्त ने इसरार किया कि मैं कुछ कहूँ। मेरा ख़ामोश रहना अच्छा होता, लेकिन ख़ामोश रहने का उन्होंने मुझे इजाजत न दी। ख़ैर, मैंने बहुत अदब से जो अर्ज़ किया, उसका खुलासा नीचे देता हूँ।

मैंने कहा—"जनाब, हम दोनों ने अपनी-अपनी पैदाइश के वक्त पल्ले दर्जे की हिमाक़त दिखलाई।

मेरे दोस्त चौंक पड़े। बोले, "हम लोगों ने क्या हिमाक़त की ?"

मैंने कहा, "अल्लाह मियाँ के यहाँ से जब हम दोनों रवाना हुए, उस समय हम लोगों ने बेवक़ूफ़ी में एक ही नम्बरी सूबे को अपनी पैदाइश के लिए चुना, जिसके रहनेवाले इतने ख़ब्ती और बेवक़ूफ़ हैं, कि दुनिया में उनकी कहीं मिसाल न मिलेगी।"

मेरे दोस्त ने चौंककर पूछा, "आप ऐसा क्यों कहते हैं ?"

मैंने अर्ज़ किया, "हुज़ूर, दुनिया के पर्दे में ऐसा और कौन दूसरा मुल्क या सूबा मिलेगा, जहाँ के लोग इतने नम्बरी बेवक़ूफ़ हों कि ऐसी ज़बान में लिखी हुई किताबों को ज़्यादा ख़रीदें, जिसे वे ख़ुद नहीं समझते; या जिस ज़बान को वे समझते हैं, उस ज़बान में लिखी हुई किताबों की कुछ भी क़द्र न करें। यद्यपि इस सूबे की ज़बान उर्दू है, तो भी यहाँ के लोग ९० प्रतिशत हिन्दी की किताबें यानी वे ९० प्रतिशत उस ज़बान की किताबें ख़रीदते हैं, जिसे, आपकी राय में, वे समझ नहीं सकते, और जिस ज़बान को वे बोलते और समझते हैं, उस ज़बान की महज़ १० फ़ी सदी किताबें ख़रीदते हैं। ऐसे पागल क्या और कहीं देखने को मिलेंगे ! जर्मन जर्मन और फ्रांसवाले फ्रेंच किताबें ज़्यादा ख़रीदते हैं। लेकिन हमारे सूबे के लोग बोलते हैं उर्दू, मगर पढ़ते हैं हिन्दी किताबें। इस हिमाक़त की भी कुछ इंतहा है। सचमुच हमारे सूबे के लोग बड़े ख़ब्ती हैं।"

मेरे दोस्त इस बात को सुनकर ख़ामोश हो गये। थोड़ी देर सिर खुजलाते रहे। बाद में मेरे कमरे से चले गये।

सर तेजबहादुर सप्रू हिन्दुस्तानी एकेडेमी के शुरू से प्रेसिडेंट होते चले आये हैं। आपकी भी राय में इस सूबे की ज़बान उर्दू है। क्या मैं उनसे अदब के साथ पूछने की जुरत करूँ कि उनकी हिन्दोस्तानी एकेडमी ने कितनी उर्दू की और कितनी हिन्दी की किताबें बेचीं ? मैंने इस सूबे के कई प्रेस-मालिकों से इस मामले में पूछ-ताछ की है, और सबका यही कहना है कि उर्दू किताबों के मुक़ाबिले में हिन्दी किताबों की माँग कहीं ज़्यादा है। इन बातों से क्या यह ज़ाहिर होता है कि इस सूबे की ज़बान उर्दू है, या यह साबित होता है कि इस सूबे के ज़्यादातर लोग उर्दू समझते हैं; या इससे यह साबित होता है कि बमुक़ाबले उर्दू के हिन्दी के क़द्रदानों की तादाद बहुत अधिक है। याद रहे कि इस सूबे की मदुमशुमारी की जो रिपोर्ट सन् १९११ में प्रकाशित हुई थी, उसमें यह तस्लीम किया गया है कि यहाँ हिन्दी बोलनेवालों की संख्या ९० प्रतिशत से ज़्यादा है, और उर्दू बोलनेवालों की तादाद सिर्फ़ ८ प्रतिशत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन इन आँकड़ों से मैं यह नतीजा नहीं निकालता कि इस सूबे में उर्दू का चलन है ही नहीं। मैं इस तरह का एक तरफ़ा फ़ैसला नहीं देना चाहता, और न मेरी यह मंशा है कि ऊपर जो आँकड़े दिये गये हैं, उनसे पाठक यह नतीजा निकालें कि इस सूबे में उर्दू को कोई स्थान न मिलना चाहिए। उर्दू के तरफ़दार हिन्दुओं को मुग़ालते में डाल कर उर्दू के नाम पर इस तरह का ग़लत दावा पेश कर सकते हैं। मैं तो सिर्फ़ यही कहूँगा कि इस सूबे में दो ज़बानें लिखी और बोली जाती हैं। यह दूसरी बात है कि हिंदी बोलनेवालों की तादाद इस सूबे में कसरत से है, और उर्दू बोलनेवालों की गिनती हिन्दी बोलनेवालों के मुक़ाबले में बहुत थोड़ी है। लेकिन जब दोनों ज़बानों के बोलनेवाले इस सूबे में मौजूद हैं, तब हमारा यह फ़र्ज़ मुहब्बी है कि हम दोनों ही ज़बानों के बोलनेवालों के लिए एकसी सुविधायें मुहैया करें, और किसी ख़ास ज़बान के बोलनेवालों की तरफ़दारी न करें। इस मामले में सरकार का क्या रवैया होना चाहिए, इसका ज़िक्र मैं आगे करूंगा। यहाँ पर तो मैं सिर्फ़ इतना ही स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि जो लोग इस सूबे की साहित्यक ज़िन्दगी में हिन्दी को कोई स्थान नहीं देते और न उसके अस्तित्व को स्वीकार करते हैं, वे ग़लती करते हैं; और ऐसी बात कहते हैं जिसके न सिर है, न पैर, और जिसे ऊपर के आँकड़े आसानी से ग़लत और बेबुनियाद साबित करने के लिए क़ाफी हैं।

अगर हम १८९० से लेकर १९३६ तक की इस सूबे की हालत पर नज़र डालें, तो हिंदी-उर्दू के पारस्परिक संबंध के विषय में हमारी आँखें और भी ज़्यादा खुल जायेंगी। यह याद रहे कि इस सूबे की सरकार जहाँ उर्दू का लाड़-प्यार करती और उसके प्रचार तथा तरक्क़ी में हर तरह से इम्दाद पहुँचाती रही, वहाँ उसने हिंदी को मिटाने और बरबाद करने में कोई दक़ीक़ा उठा न रक्खा। जिस सूबे के ९० फ़ी सदी आदमी हिन्दी बोलते हों, उस सूबे में हिंदी का सरकारी दफ़्तरों और अदालतों से बहिष्कार हों, यह अगर बेइंसाफ़ी नहीं तो क्या था? हमें दुःख के साथ कहना पड़ता है कि हमारे मुसलमान भाइयों ने सरकार की इस नीति का ज़ोरों के साथ समर्थन किया। इंसाफ़ को उन्होंने ताक़ पर रख दिया, और तअस्सुब से काम लिया। उन्होंने हिन्दी को चंद फ़सादी हिन्दुओं की नौ-ईजाद ज़बान ठहराया। उर्दू को हिन्दू और मुसलमानों की ज़बान मानकर हिन्दी को हर तरह से दबाने और कुचलने की बराबर कोशिशें कीं। सरकारी और बोर्डों के अमलों ने भी यह चलन अख़्तयार किया। इसका नतीजा वही हुआ, जो होना था। हिन्दी इस सूबे से उठ गई थी। लेकिन किसी सूबे या मुल्क की ज़बान को सरकार के फ़रमानों से ख़त्म करना आज तक मुमकिन नहीं हुआ। इसी तरह हिन्दी को ख़त्म करने की यद्यपि हज़ारहाँ कोशिशें की गईं, लेकिन उसका अंत न हो सका। वह दब भले ही जाय, कुचल उसे कोई भले ही डाले, लेकिन वह इधर दबी, उधर फूट निकली। हर तरह के विरोधों का सामना करते हुए उसने अपनी ज़िन्दगी बचाई, और धीरे-धीरे मज़बूत होती गई। यही वजह है कि जहाँ सन् १८९० में हिन्दी-अख़बारों की सम्मिलित ग्राहक-संख्या सिर्फ़ ८ हजार और उर्दू-अख़बारों की १६ हज़ार थी, वहाँ १९३६ में हिन्दी-पत्रों की ग्राहक-संख्या सवा तीन लाख हो गई और उर्दू-अख़बारों की सम्मिलित ग्राहक-संख्या हिन्दी के पत्रों की ग्राहक-संख्या की आधी रह गई। हिन्दी-अख़बारों के पढ़नेवालों की सख्या इन पिछले ४६ सालों में २९ गुना बढ़ी, और उर्दू-अख़बारों के पढ़नेवालों की संख्या महज़ १६ गुना। हिन्दी-किताबें सन् १८९० में ३९ प्रतिशत और उर्दू की ६१ प्रतिशत प्रकाशित हुई थीं, लेकिन सन् १९३६ में हिन्दी-किताबों की संख्या ९० तक बढ़ गई और उर्दू को ६१ फ़ी सदी से घटकर १० फ़ी सदी रह गई। सन् १८९० में चार लड़कों में एक लड़का हिन्दी लेकर मैट्रिकयूलेशन फ़ाइनल इम्तहान देता था। अब पाँच लड़के अगर हिन्दी लेते हैं, तो सिर्फ़ चार उर्दू। इसके मानी यह हैं कि सरकारी इमदाद होते हुए भी उर्दू हिन्दी के मुक़ाबिले में नहीं ठहर सकी। इसकी वजह साफ़ है। जो इस सूबे के अधिकांश जनता की ज़बान न थी, वह इस सूबे की आम ज़बान कैसे हो सकती थी। अगर दोनों का मुक़ाबिला बराबरी का होता, तो हिन्दी इतने दिनों में और अधिक उन्नति कर गई होती। दूसरी बात जो इन आँकड़ों से ज़ाहिर होती है यह है कि सरकारी फ़रमानों और हुक्मों से किसी मुल्क या सूबे की ज़बान न बदली और न मिटाई जा सकती है। मुख़ालिफ़त की लाख कोशिशें होने पर भी हिन्दी ज़िन्दा रही, पनपी और बढ़ती-बढ़ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरक़्क़ी कर गई। इसकी सिर्फ़ एक ही वजह है, और वह यह कि जिस ज़बान को सरकारी इमदाद प्राप्त थी, वही सिर्फ़ इस सूबे की एकमात्र ज़बान न थी।

ऊपर के इन आँकड़ों से एक तीसरी बात भी निकलती है। वह यह कि जो लोग फ़ारसी या अरबी-शब्दों को संस्कृत या संस्कृत से बने हुए शब्दों पर तरजीह देना चाहते हैं, वे इस सूबे की साहित्यिक प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ कोशिशें करते हैं। इससे क्या यह न स्पष्ट है कि जो लोग संस्कृत-शब्दों के बजाय अरबी और फ़ारसी के शब्दों को इस्तेमाल करना चाहते हैं, वे ग़लत रास्ते पर हैं? हिन्दी हिन्दोस्तान की है। न तो वह ईरान की शाखा ज़बान है, और न अरबिस्तान की। इसे अरबी या फ़ारसी की एक शाखा मान लेना या उसे उनकी मज़ारा भाषा बनाने की कोशिश करना सरासर ग़लती है। और, अगर वे अपनी इस हठधर्मी में अड़े रहेंगे, तो उसका यही नतीजा होगा कि वे ख़ुद अपनी कोशिशों के शिकार बन जायँगे, और तरक़्क़ी करने के बजाय उनका नामोनिशाँ तक मिट जायगा। पहाड़ से हम दरिया को नीचे ला सकते हैं, लेकिन नीचे से पहाड़ के ऊपर दरिया चढ़ाने की कोशिश करना एक हद दरजे की बेवक़ूफ़ी में शामिल है। युक्त-प्रान्त, में फिर कहता हूँ, न तो ईरान है, न अरब। इस सूबे की ज़बान को उन देशों की ज़बान के समान बनाना असंभव है। और यही वजह है कि उर्दू बराबर पछाड़ खाती गई। अगर उर्दू इस सूबे की एकमात्र ज़बान होती, तो सरकारी इमदाद पाने पर वह आज कहीं आगे बढ़ गई होती। न तो हिन्दी-किताबों, न हिन्दी-अख़बारों और न हिन्दी के विद्वानों की तादाद में वह आशातीत वृद्धि हो पाती, जो पिछले ४६ साल में हमें दिखाई देती है। ऊपर जो कुछ हमने संक्षेप में कहा है, उसके सुबूत में हम लेख के अंत में ४७ साल के आँकड़े दे रहे हैं। इन आँकड़ों में पिछले ४७ साल में जो हिन्दी-उर्दू के अख़बारों या किताबों के प्रकाशन में वृद्धि हुई है, या परीक्षार्थियों की तादाद में रद्दो बदल हुआ है, उसका सही नक़शा पाठकों के सामने आ जायगा।

अब आइए, हम दूसरे सवाल पर विचार करें। इस रद्दोबदल पर विचार करने से हम किन नतीजों पर पहुँचते हैं? संक्षेप में इस सवाल का जवाब हमें ऊपर मिल चुका है, लेकिन उसे एक बार फिर दोहरा देना अनुचित न होगा। नतीजा यह है कि इस सूबे में एक ज़बान नहीं, बल्कि दो ज़बानें हैं। हमें इससे यहाँ सरोकार नहीं कि किस ज़बान के बोलनेवालों की तादाद इस प्रांत में ज़्यादा है। जो लोग यह कहते हैं कि इस सूबे की ज़बान एक है और उसका नाम उर्दू है, वे ग़लती करते हैं। जो यह कहते हैं कि इस सूबे की ज़बान एक है और वह हिन्दी है, वे भी ग़लती करते हैं। जो लोग यह कहते हैं कि इस सूबे की ज़बान एक है, और उसका नाम हिंदुस्तानी है, जो हिंदी-उर्दू के मेल से बनी है, वे भी ग़लती करते हैं। यह सही है कि इस सूबे में अनेक बोलियाँ हैं, और उन बोलियों के बहुत से लफ़्ज़ समान हैं, जो सूबे के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक बराबर बोले जाते हैं, और जिनके अर्थ को सूबे के सब आदमी आसानी से समझ लेते हैं। सिर्फ़ इन्हीं बातों से तो यह कहना ग़लत न होगा कि हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी की तह में ये बुनियादी शब्द मौजूद हैं। इस अर्थ में और केवल इसी अर्थ में हम यह कह सकते हैं कि इस सूबे की ज़बान एक है, लेकिन बुनियादी शब्दों की तादाद थोड़ी है। उनके द्वारा हम अपनी रोज़मर्रा की थोड़ी-सी ज़रूरतें रफ़ा कर सकते हैं। लेकिन इन घरेलू ज़रूरतों के अलावा जैसे ही हम किसी मसले पर लिखना या बोलना चाहते हैं, तो हम मजबूर हो जाते हैं कि दूसरी ज़बान के उन शब्दों को लें, जो हमारे विचारों को प्रकट करने के लिए मौज़ूँ हों। अरबी और फ़ारसी-लफ़्ज़ों को अपनाने की वजह है, जिसकी प्रेरणा से हम संस्कृत-शब्दों को लेकर अपनी भाषा में उन्हें चला रहे हैं। संस्कृत, अरबी और फ़ारसी के अलावा भी अँगरेज़ी या योरप की दूसरी ज़बानों के भी बहुत-से शब्द हमने अपना लिये हैं। रेलवे-स्टेशन, रेडियो, टेलीग्राम, केबुल, केबुल-ग्राम, नाज़िरज़्म, कम्यूनिज़्म, पौलसी, आदि शब्द इस बात के प्रमाण हैं। दूसरी ज़बान के शब्दों को लेना कोई शरम की बात नहीं। संसार की सभी ज़िंदा ज़बानें ऐसा करती आई हैं, कर रही हैं, और करती रहेंगी। तात्पर्य यह कि जहाँ हमारी बोलियों के तमाम शब्द हम सबको विरासतें हैं, वहाँ उन्हीं के सहारे—सिर्फ़ उन्हीं के सहारे—राजनीतिक, धार्मिक और पारिभाषिक विषयों पर अपने विचारों को व्यक्त करना हमारे लिए असंभव है। दूसरी ज़बानों से हमें इसके लिए शब्द लेने पड़ेंगे, हम शब्द लेंगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, और शब्द लेते रहेंगे, और यही कारण है कि हमारे सूबे में दोनों ज़बानें आजकल रायज हो गई हैं। उर्दू-ज़बान में जहाँ संस्कृत-शब्दों की संख्या एक लुग़त के मुताबिक़ महज़ ५०० है वहाँ ५४,००० शब्दों में १४ हज़ार के क़रीब शब्द अरबी और फ़ारसी-भाषा से आये हैं। हिंदी-शब्द-सागर कोश में ९४,००० शब्द मिलते हैं, उसमें भी ७ या ८ सैकड़ा के लगभग अरबी या फ़ारसी के शब्द मिलेंगे। संस्कृत-शब्दों की काफ़ी तादाद है। हिन्दीवालों ने संस्कृत-शब्दों को अपना लिया है और उनका प्रयोग हिन्दी-व्याकरण के अनुसार करते हैं। उर्दूवाले ऐसा नहीं करते। इन्होंने बहुत-से शब्द न सिर्फ़ अरबी और फ़ारसी-ज़बान से लिये हैं, बल्कि उन ज़बान के व्याकरणों का भी अनुसरण करते हैं।

इस सूबे की ज़बान के मसले पर बहस करते हुए हमें यह न भूलना चाहिए कि इस सूबे की ज़बान वही है, जिसमें तुलसीदास ने अपनी रामायण लिखी या सूरदास ने सूरसागर रचा। तुलसीदास ने अपनी रामायण में लगभग ५,००० शब्दों का प्रयोग किया है। इन ५,००० शब्दों में अरबी और फ़ारसी-शब्दों की तादाद बहुत थोड़ी है। उतनी ही थोड़ी, जितनी थोड़ी दाल में हींग होती है। हींग को दाल का और दाल को हींग का पद देना वैसे ही अनुचित और हानिकारक होगा, जैसे इस सूबे की ज़बान में अरबी और फ़ारसी लफ़्ज़ों की या उन ज़बान के क़ायदों की भरमार करना ग़लत होगा। तुलसीदास की रामायण को इस सूबे के अमीर, ग़रीब, नागरिक और देहाती आसानी से समझ लेते हैं। ग़ालिब को समझने के लिए विद्वानों की शरण लेनी पड़ती है, ग़ालिब चंद पढ़े-लिखे लोगों के शायर हैं। तुलसीदास राह चलते हुए बटोहियों के साथी हैं। आम पाठकों के लिए तुलसीदास ने लिखा; ग़ालिब, मीर, अकबर और चकबस्त चंद तहज़ीबयाफ़्ता मौलवियों के मनोरंजन की सामग्री जुटाने में समर्थ हुए। आम आदमियों से उनका कोई सरोकार नहीं, आम आदमियों की ज़िन्दगी पर उनका कोई असर नहीं। तुलसीदास तो हमारी रग-रग में पैवस्त हो गये हैं। उनके शब्द और उनके वाक्य हमारे मानसिक जगत् के चलन सिक्के हैं। लिहाज़ा जो इस सूबे के साहित्य-निर्माताओं में अपना नाम लिखाने की तमन्ना रखते हैं, उन्हें यह याद रखना चाहिए कि वे तुलसीदास को आदर्श बनायें, तभी उनका साहित्यिक काम स्थायी होगा।

तीसरा प्रश्न यह है कि उर्दू और हिन्दी-भाषा में क्या भेद हैं, और उन भेदों के मिटाने के क्या मार्ग हैं? हिन्दी-उर्दू-भाषायें दो तरह की भाषायें हैं। उर्दूवालों को विदेशी शब्द देशी शब्दों के मुक़ाबिले बहुत पसंद आये, और उन्होंने उन्हें अपना लिया। इनको देशी लफ़्ज़ों के मुक़ाबिले में वे रायज करना चाहते हैं। हिन्दीवाले परदेशी शब्दों के मुक़ाबिले में देशी शब्दों को स्थान देते हैं। स्वदेशी शब्दों में संस्कृत-शब्द भी शामिल हैं। शामिल इसलिए कहता हूँ क्योंकि संस्कृत हिन्दुस्तान की प्रांतिक भाषाओं की जननी है। संस्कृत और प्राकृत से हमारी ज़बान पैदा हुई है। इसलिए जमुना न लिखकर यदि हम यमुना लिखें, तो कोई बड़ा अनर्थ न होगा। नेह की जगह अगर स्नेह कहें, तो कोई ज़्यादती नहीं, लेकिन हमारे लिए यह साधारण तौर से अस्वाभाविक होगा। यदि हम स्नेह को तो ठुकरा दें, और नेह को भी भूल जायँ, और इनकी जगह इश्क़ का इस्तेमाल करें। ऐसा करना साहित्यिक अनर्थ में शामिल है। हाँ, ऐतिहासिक कारणों से बहुत-से परदेशी लफ़्ज़ हमारी ज़बान में आ गये हैं। उनको हमने अपना लिया है। वे शब्द पहले परदेशी भले ही रहे हों। अब तो वे परदेशी नहीं रह गये; अब वे शरीर में हड्डी और ख़ून के समान हमारे हो गये हैं। उनके साथ हमारा इतना गहरा सम्बन्ध स्थापित हो गया है कि हम यह भूल-सा गये थे कि वे हमारे नहीं हैं। शायद हमें यह याद भी न आता, यदि हमारे उर्दूदाँ दोस्त इस इस बात को मौक़े-बे-मौक़े दोहराया न करते कि वे अरबी और फ़ारसी के लफ़्ज़ हैं।

दूसरा भेद यह है कि हिन्दीवाले व्याकरण के उन्हीं नियमों का पालन करते हैं, जो भारतीय आर्य ज़बानों के नियम हैं। उर्दूवालों ने सामी—अनार्य—ज़बानों के व्याकरणों के बहुत से मुहाविरों को अपनाया है। उर्दू भारत की एक भाषा है। उसके शब्द और व्याकरण-सम्बन्धी नियम, अन्य भारत की प्रांतिक भाषाओं के समान भारतीय-आर्य भाषाओं के शब्द और नियम होने चाहिए। किन्तु उर्दूदाँ उसमें अरबी-फ़ारसी के शब्द ठूँसते और उन भाषाओं के नियमों से अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को पाबन्द समझते हैं। उदाहरण के लिए वकील या हाकिम शब्दों को ले लीजिए। हिन्दी-व्याकरण के अनुसार बहुवचन में इनका रूप होगा वकीलों या हाकिमों। लेकिन उर्दूवाले वकीलों या हाकिमों न कहकर वक़ला या हुक्काम कहते हैं। मौलवी का बहुवचन मौलवियों नहीं, मौलवियान है। इसी तरह अमीर का बहुवचन अमीरों नहीं, उमरा है। तालिबइल्म का रूप बहुवचन में बदलकर तुलबा हो जायगा, और जमात का जमातों न कहकर जमइयत हो जायगा। जहाँ हम चमन का गुल कहेंगे, वहाँ उर्दूवाले, सामी ज़बानों के मुहाविरे के मुताबिक़, उसे गुले-चमन कहेंगे। अमन-चैन न कहकर वह अम्न-ओ-आमान को ज़्यादा पसन्द करेंगे। फ़रज़न्दे-वितानिआ उसके कानों को कहीं ज़्यादा सुहाता है। मग़बूतुलहवास इस मज़े के मरीज़ों की ज़बान पर हमें रोज़मर्रा मिलेगा। 'उल' का अर्थ सम्बन्ध-सूचक है, लेकिन 'का' के इस्तेमाल से उन्हें नफ़रत है। जहाँ 'उल' से काम चलेगा, वहाँ 'का' को वे घुसने भी न देंगे। वकील से हमें नफ़रत नहीं, काग़ज़ ठीक है, लेकिन वकला और काग़ज़ात क्यों? अर्ज़ी तो हम सब कहते हैं, लेकिन आरायज़ हम क्यों कहें? सम्बन्ध को तो हम भूल जाएँ और मुतआल्लक़ से नेह जोड़ें। तजवीज़ें कहना मुनासिब नहीं, क्योंकि शाइस्ता लोग तजावीज़ कहा करते हैं। ये सब अनुचित प्रयोग हैं। उर्दू हिन्दू की है। उसे ईरानी या अरबी का रूप देना भूल है। जो हिन्द की ज़बान लिखना या बोलना चाहते हैं, उन्हें तो इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे अपनी ज़बान में लिखने या बोलने के समय अपनी ज़बान के क़ानूनों को याद रक्खें। परदेशी ज़बान के क़ानूनों की पाबंदी करने की कोई ज़रूरत नहीं।

इसी तरह उर्दूवाले क्रिया के इस्तेमाल में भी ज़्यादती करते हैं। हिन्दी और इस मुल्क की दूसरी भारतीय आर्य भाषाओं में क्रिया वाक्य के अंत में आती है। उर्दूवाले सामी ज़बानों की नक़ल करते हुए क्रिया को वाक्य के आदि या बीच में इस्तेमाल करते हैं। वे कहेंगे—"शुक्र है उस ख़ुदा को"। उन्हें "ख़ुदा को शुक्र है" कहना ठीक नहीं जँचता। ऐसी अनेक मिसालें दी जा सकती हैं। हो सकता है कि जैसा हम कहते हैं वैसा करने से हमारी ज़बान एक आलिमाना ज़बान न रहे। लेकिन ज़बान तो ऐसी होनी चाहिए जिसे मामूली आदमी भी समझ सके। अरबों या ईरानियों की नक़ल करना जातीय पतन और मानसिक कंगाली की डुग्गी पीटना है। उर्दू को विदेशी साँचे में ढाल कर उसे स्वदेशी ज़बान क़रार देना या मनवाना साम्प्रदायिक दुराग्रह मात्र है।

हमने जो कुछ ऊपर कहा है, उससे हिन्दी-उर्दू के मामले में मेरा जो दृष्टिकोण है, वह स्पष्ट हो जाता है। हिन्दी-उर्दू में अरबी या फ़ारसी के जो शब्द प्रचलित हैं, उनके निकालने का मैं हामी नहीं। लेकिन हिन्दी-उर्दू के भेद को मिटाने या उसे कम-से-कम करने के लिए मेरी यह क़तई राय है कि हम परदेशी लफ़्ज़ों को ऐसे साँचे में ढालें, जिससे उनका परदेशी-पन दूर हो जाय। इसलिए यह ज़रूरी है कि उनका हम प्रयोग उन नियमों के अनुसार करें, जिनका हमारे देश में चलन है। विदेशी भाषा के शब्दों को लेना एक बात है; विदेशी भाषा के नियमों को भी अपनाना एकदम दूसरा मनोवृत्ति का सूचक है। इस मनोवृत्ति की जितनी भी निंदा की जाय, थोड़ी है। मेरी राय में संस्कृत-शब्दों के ख़िलाफ़ जो जहाद इस वक़्त उर्दू अख़बार और उर्दू के हिमायती उठा रहे हैं, वह ग़लत है। हमारे सामने यह सवाल नहीं है कि फ़ारसी या अरबी के रायज शब्द हमारी भाषा में से निकाल दिये जायँ, और न यही सवाल है कि संस्कृत के जो प्रचलित शब्द हमारी भाषा में शामिल हैं, उन्हें हम निकाल बाहर करें। दोनों ही तरह के शब्द हमारी अदबी ज़िन्दगी या साहित्यिक जीवन के अटूट अंग हैं। लेकिन इसके साथ ही मेरी यह भी राय है कि हिन्दी के लिए जिन नये शब्दों के बनाने की ज़रूरत पड़े, वे ज़्यादातर प्राकृत और संस्कृत से बनाये जायँ, क्योंकि हिन्दुस्तान की किसी भी प्रांतिक भाषा-विशेष से संस्कृत के साथ ऐसा सम्बन्ध है, जो उस वक़्त तक ख़त्म नहीं हो सकता, जब तक वह भाषा इस मुल्क की भाषा रहेगी। इसी मत के समर्थन में बहुत-से मुसलमान आलिमों ने ख़ुद भी बड़े ज़ोरदार शब्दों में लिखा है।

उर्दू में अरबी और फ़ारसी बहरों की चलन है। छंद-संबंधी नियमों को उर्दूवालों ने अरबी और फ़ारसी के साहित्य से ग्रहण किया है। उन नियमों के आधार पर हमारे बड़े-बड़े शायरों ने कमाल की शायरी की है। हमें उन तर्ज़ों को अपनाना चाहिए, उसी तरह जि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह हम इस मुल्क के छंद-संबंधी नियमों को अपनाते हैं। अगर हम योरपीय सानेट के वज़न पर कविता हिन्दी या उर्दू में लिखने की कोशिश करते हैं, या विदेशी छंद-शास्त्र के दूसरे नियमों के अनुसार कविता करने की कोशिश करते हैं, तो कोई वजह नहीं कि उर्दू-बहारों को हम परदेशी बहर क़रार दें, और उन्हें क्यों न अपने साहित्य का अंग बना लें। शब्दों और व्याकरण-संबंधी नियमों के विषय में इस तरह का समझौता होना असंभव है क्योंकि सामी ज़बानों के जो नियम हैं, वे इंडो-आर्यन ज़बान के नियम नहीं हो सकते। हमें बहुवचन, विशेषण और क्रिया, आदि के प्रयोग ही में अपने नियमों का पालन करना चाहिए। अगर हम हठधर्मी और तास्सुब को छोड़कर काम करें, तो कोई वजह नहीं कि हिन्दी-उर्दू में जो कशमकश इस समय नज़र आ रही है, वह चन्द दिनों में क्यों न कम हो जाय। इशा की "रानी केतकी की कहानी" में हिन्दुस्तानी शब्द ही आपको मिलेंगे, लेकिन उसके काव्यों का साँचा सामी भारतीय आर्य नहीं, इसी लिए हिन्दुस्तानी की एक किताब होते हुए हिन्दी मेरे लेखकों ने उसे उर्दू की एक साधारण पोथी माना है। हमें दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इशा ने जिस ग़लत रास्ते को अपनाया, उसी को उनके पीछे के लेखकों ने और चौड़ा करने में कोई कोर-कसर उठा न रक्खी। लफ़्ज़ों के भेद ने हिन्दी-उर्दू के मामले में उतना ज़्यादा भेद नहीं डाला, जितना अन्तर पैदा हो गया दोनों ज़बानों की बनावट के उसूलों में भेद के कारण।

ऊपर की बहस दो बातों की तरफ़ पाठकों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करती है। हिन्दी-उर्दू में एक तो झगड़ा इस बात का है कि अरबी या फ़ारसी के लफ़्ज़ कसरत के साथ प्रयुक्त किये जायँ, या संस्कृत के तत्सम या तद्भव शब्द! किसी हिन्दीवाले ने अरबी और फ़ारसी के रायज शब्दों के निकालने की माँग नहीं पेश की। अगर कोई इस तरह की माँग पेश करे, तो उसका ऐसा करना मेरी राय में नामुनासिब होगा। उर्दूवाले अगर चाहते हैं कि उनकी ज़बान का इस सूबे में प्रचार हो और ज़्यादातर लोग उर्दू की किताबें ख़रीदें और पढ़ें, तो उनके लिए यह ग़ौर करने की बात है कि क्या विदेशी शब्दों के स्थान में ज़्यादातर संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का इस्तेमाल करना मुनासिब होगा? अगर अपनी इस ग़लती को वे न मानेंगे, और परदेशी लफ़्ज़ों के सामने वे अपने लफ़्ज़ों का अनादर करते रहेंगे, तो इससे उन्हीं को नुक़सान पहुँचेगा। हमें दुःख होगा, अगर तरक़्क़ी में उर्दू की इस ज़िद की वजह से नुक़सान पहुँचा या बाधा पड़ी। लेकिन इसका फ़ैसला हम उर्दू के हामियों ही पर छोड़ते हैं। जिन शब्दों को वे आज संस्कृत के कहकर—मुश्किल और ग़ैरमानूस लफ़्ज़ क़रार देकर—शोरगुल मचाते और चाहते हैं कि उनका इस्तेमाल एकदम बन्द हो जाय, उन शब्दों की बाबत उन्हें यह सोचना चाहिए कि हिन्दीवाले इन्हीं "कठिन" शब्दों की बदौलत अपनी किताबों को हज़ारों की तादाद में बेच लेते हैं। हिन्दी-नवीस आज आज़ादी के साथ इन कठिन शब्दों का इस्तेमाल करते हैं, लेकिन हिन्दी अख़बारों या किताबों के पढ़नेवाले इन्हें न ग़ैरमानूस समझते और न उनकी वजह से ऐसे अख़बारों या किताबों के ख़रीदने से रुकते हैं। उर्दूवालों ने अपनी संकीर्णता के कारण उर्दू की स्वाभाविक उन्नति को मार दिया। उसका जो नैसर्गिक विकास था, वह इनकी साहित्यिक संकीर्णता और अदूरदर्शिता के कारण संकुचित हो गया। उसके फैलाव का दायरा इन नादान दोस्तों की नादानी की वजह से, इतना महदूद हो गया कि उसे हिलने-डुलने की भी जगह नहीं रह गई। तंग चारजामे में कसकर उन्होंने उसे अपंग और अपाहिज बना दिया। अगर हिन्दुस्तान की दूसरी प्रांतिक भाषाओं के मुक़ाबले में उन्हें अपनी ज़बान को बराबरी का दर्जा दिलाना मंज़ूर है, तो उन्हें संजीदगी से अपनी इस मौजूदा नीति पर ग़ौर करना चाहिए। उर्दू बिछड़ी—अरबी और फ़ारसी-शब्दों पर ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर देने की वजह से; हिन्दी बढ़ी—इस पाबन्दी से छुटकारा पाने की वजह से। हमें अरबी और फ़ारसी लफ़्ज़ों से कोई विद्वेष नहीं, लेकिन सच तो यह है कि उर्दू तभी ज़िन्दा रह सकती है, पनप सकती है, बढ़ सकती है, और तरक़्क़ी कर सकती है, जब वह अपने को इस मुल्क की ज़बान बनाकर लोगों के सामने आयेगी। जब तक वह अपने को सामी ज़बानों की असली बेटी समझेगी और संस्कृत के साथ सौतेलेपन का बर्ताव करने पर ऊतारू रहेगी, तब तक उसके लिए न तो इस मुल्क में भविष्य है, और न वह दूसरी प्रान्तीय ज़बानों के मुक़ा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिले में ज़्यादा दिन तक ठहर सकती है। जिस घड़ी सरकारी इम्दाद, जो उसे इस समय मिल रही है, हट जायगी, उसी वक़्त उसका ख़ात्मा हो जायगा। हिन्दी अगर बढ़ी, तो इसलिए नहीं कि सरकार ने उसकी हिमायत की। उर्दू अगर घटी, तो इसलिए नहीं कि जो सरकारी इम्दाद उसे पहले मिलती थी, उसका मिलना बन्द हो गया। सन् १९३६ तक तो कांग्रेस-गवर्नमेंट ७ या ८ सूबों में राज्य नहीं करती थी। तब तो नवाब सर मुहम्मद यूसुफ़ का इस सूबे में राज्य था। इन्हीं के भाई-बन्धु दूसरे सूबों में भी हुकूमत करते थे, फिर क्या वजह है कि इस सबके होते हुए भी हिन्दी पिछले ४७ साल में तो इतनी आगे बढ़ गई और उर्दू सरकारी इम्दाद के पाते हुए भी इतनी पिछड़ गई? वजह सिर्फ़ यह है कि उर्दू-परस्तों ने उर्दू को इस मुल्क की ज़बान न मानकर अरबी और फ़ारसी के मेल-जोल से एक नई भाषा ईजाद करने की कोशिश की। उनकी यह कोशिश ग़लत थी, और ग़लत साबित भी हुई।

ऊपर जो कहा गया है, उसी से चौथे प्रश्न का जवाब पाठकों को मिल जायगा। चौथा प्रश्न था कि नये शब्द कहाँ से लिये जायँ—अरबी, फ़ारसी या संस्कृत से? इस समय मुल्कों की सीमायें मिट-सी गई हैं। ऐसा मालूम होता है कि संसार थोड़े ही दिनों में हमारा पड़ोसी बन जायगा। चारों ओर से इस समय हिन्दुस्तान पर नये नये विचारों का प्रचंड धावा हो रहा है। नई धारणायें, नये सम्बन्धों और नये अनुभवों को व्यक्त करने के लिए हमारे लिए यह ज़रूरी हो गया है कि हम उनके लिए या तो योरप की ज़बान के शब्दों को अपनावें या अपने यहाँ के मौजूदा शब्दों से इन नये ख़्यालात को प्रकट करने के लिए नये शब्द गढ़ें। शब्द गढ़ने के लिए अगर हमें अरबी और फ़ारसी की शरण लेना मंज़ूर है, तो कोई वजह नहीं कि अरबी और फ़ारसी के बजाय हम योरपीय ज़बान के लफ़्ज़ों को क्यों न ले लें; क्योंकि दोनों ही तरह के शब्द हमारे लिए एक से परदेशी हैं। ऐसी पुकार होते हुए कोई वजह नहीं मालूम होती कि हम क्यों संस्कृत-शब्दों को छोड़कर अरबी और फ़ारसी से नये शब्द गढ़ें। बंगाली, आसामी, उड़िया, मराठी, गुजराती, तामिल, तेलगू और राजस्थानी में समान पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त हो रहे हैं। अगर हम तंग-ख़्याली छोड़कर तास्सुब से काम लें जो संस्कृत शब्दों से बने हैं। न लें, तो कोई वजह नहीं मालूम होती कि उर्दू के बजाय हम योरपीय लफ़्ज़ों को क्यों न ले लें। दोनों ही तरह के शब्द एक-से परदेशी हैं। कोई वजह नहीं मालूम होती कि हम क्यों संस्कृत-शब्दों को अरबी और फ़ारसी से गढ़ें। पारिभाषिक शब्दों की संख्या बहुत है, जिनके लिए हमें नये शब्द न गढ़ने पड़ेंगे, और जिनके लिए हमारी ज़बान में आसानी से शब्द मिल सकते हैं। यह काम आज भी उसी तरह से हो रहा है। बंगाली, आसामी, उड़िया, मराठी, गुजराती, तामिल, तेलगू और राजस्थानी में एक-से पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग हो रहे हैं। अगर हम तंगख़यालों छोड़कर तास्सुब से काम न लें, तो कोई वजह नहीं मालूम होती कि उर्दू भी हिन्दुस्तान की अन्य प्रांतिक भाषाओं की तरह उसके पारिभाषिक शब्दों को क्यों न सीखें। लेकिन अगर हमारे उर्दूपरस्त दोस्त उन पारिभाषिक शब्दों को नहीं अपनाना चाहते, जिन्हें हिन्दुस्तान की दूसरी प्रांतिक ज़बानें अपनाती हैं, या अपना लिया है, तो उन्हें आज़ादी है। अगर वे इस्तलाहात के लफ़्ज़ों को अरबी या फ़ारसी से लेंगे, तो उन्हें इस ख़तरे का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए कि उनकी ज़बान इस मुल्क की ज़बान न रह सकेगी। दूरंदेशी का तक़ाज़ा है कि वे इस मामले में हठधर्मी न करें। मुझे अगर नये लफ़्ज़ बनाने में हिन्दुस्तान में रायज ज़बानों से इम्दाद नहीं मिलेगी, तो मैं निस्संकोच अरबी और फ़ारसी के शब्दों को अपना लूँगा। लेकिन जब तक मुझे हिन्दुस्तान ही में नये लफ़्ज़ मिल सकते हैं, तब तक मेरे लिए यह नामुनासिब होगा कि हिन्दी को छोड़कर बाहरी लफ़्ज़ अमल में लाऊँ। लेकिन यह तो अपनी-अपनी नीति और सहूलियत पर निर्भर है कि कौन किस ज़बान के लफ़्ज़ों को ज़्यादा पसंद करता है। हमें उनसे कोई शिकायत नहीं, जिन्हें उर्दू पसन्द है। लेकिन अगर हम अपनी बोली से प्रीति करना चाहते हैं, तो उन्हें-हमसे झगड़ने की ज़रूरत नहीं। उन्हें भी आज़ादी होनी चाहिए, और हमें भी। फ़ैसला जनता के हाथों में है। रस्म और रिवाज आगे चलकर इस बात को तय कर देंगी कि कौन शब्द चालू रहेगा और किसका अंत हो जायगा।

पाँचवें सवाल का जवाब मैं चन्द शब्दों में दे देता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहता हूँ। मेरी राय में इस सूबे की गवर्नमेंट को साफ़ लफ़्ज़ों में यह एलान देना चाहिए कि दोनों लिपियाँ सूबे की सरकारी लिपियाँ हैं। हम उर्दू को सरकारी दफ़्तरों से निकालने के पक्षपाती नहीं। हम पक्षपाती हो भी कैसे सकते हैं, जब हमने खुले दिल से यह स्वीकार कर लिया है कि इस सूबे में दो ज़बानें हैं। सरकार को यह भी मान लेना चाहिए कि जैसे दोनों लिपियाँ इस सूबे की सरकारी लिपियाँ हैं, उसी तरह दोनों ज़बानें भी सरकारी ज़बानें हैं, और सरकारी मुलाज़िमों को पूरी आज़ादी है कि वह जिस ज़बान में चाहें, काम कर सकते हैं। दोनों को एकसाँ रुतबा मिलना चाहिए। किसी को नीचा दिखाना सरकार के लिए मुनासिब नहीं। किसी के साथ पक्षपात करना भी बेजा है। लेकिन जनता को भी पूरी आज़ादी होनी चाहिए कि वह जिस ज़बान और लिपि में चाहें, उसमें सरकार के पास अर्ज़ियाँ दे सके, या चिट्ठी-पत्री भेज सके। मद्रास में ४ ज़बानें और ४ लिपियाँ सरकारी ज़बानें और लिपियाँ हैं। बंबई प्रांत में ३ ज़बानें और लिपियाँ सरकारी लिपियाँ और ज़बानें हैं। साउथ आफ्रिका में ये सरकारी मानी जाती हैं। जब और जगहों में कई भाषायें और लिपियाँ चलती हैं, तो कोई वजह नहीं मालूम होती कि युक्तप्रांत में दो ज़बानें और दो लिपियाँ जो निश्चित हैं, क्यों न सरकारी ज़बानें और लिपियाँ मानी जायँ? अगर गवर्नमेंट इस तरह का एलान कर दे, तो हिन्दी-उर्दू का जो झगड़ा इस वक्त चल रहा है, वह आप-से-आप ख़त्म हो जायगा। हमारे मुसलमान दोस्तों के दिल में यह चोर है कि हिन्दू उर्दू को इस सूबे के सरकारी दफ़्तरों और अदालतों से निकालने की कोशिश में लगे हैं। अगर उन्हें इस बात का इतमीनान हो जाय कि उर्दू के मौजूदा हक़ूक़ क़ायम रहेंगे, तो उन्हें इस बात से कोई एतराज़ नहीं है कि अगर हिन्दी को भी वही सहूलियत दे दी जाय, जो इस वक्त इस सूबे में उर्दू को हासिल है। इस तरह से हिन्दू-मुसलमान, दोनों का समझौता आसानी से हो सकता है। मैंने जो कुछ ऊपर लिखा है, वह तो व्यापक सिद्धांतों को निर्दिष्ट करता है। इन सिद्धांतों को असली जामा पहनाने के लिए सरकार को एक कमेटी मुक़र्रर करना चाहिए। वह कमेटी गवर्नमेंट से सिफ़ारिश करेगी कि किस तरह से ऊपर कहे गये उसूलों को हम अमल में ला सकते हैं। यह सही है कि इसकी वजह से सरकारी दफ़्तरों का ख़र्च बढ़ेगा, लेकिन जनता की सहूलियत को मद्देनज़र रखने में अगर सरकारी ख़र्च बढ़े, तो एतराज़ की बात नहीं। लेजिस्लेटिव असेम्बलियों और कौंसलों की कार्यवाही जो हिन्दुस्तानी में होती है, वह हिन्दी-उर्दू दोनों में छापी जाती है। इस वजह से छपाई का ख़र्च बढ़ तो गया, लेकिन जनता की सहूलियत के लिहाज़ से ऐसा करना मुनासिब समझा गया और इसका नतीजा यह हुआ कि हिन्दू-मुसलमानों को कोई शिकायत बाक़ी नहीं रही। अगर ऐसा न किया जाता, तो दोनों की शिकायतें बनी रहतीं। रसीदें उर्दू में छापी हैं, तो कोई वजह नहीं कि वे हिन्दी में क्यों न प्रकाशित की जायँ। सम्मन दोनों लिपियों और दोनों भाषाओं में लिखे जाने चाहिए। नहरों की आबपाशी की रसीदें कोई वजह नहीं कि एक लिपि ही में क्यों दी जायँ। और इसकी कोई माक़ूल वजह नहीं मालूम होती है कि पुलिस की जो रिपोर्टें लिखी जाती हैं, वे सब उर्दू ही में लिखी जायँ। अगर उसूल मान लिया जाय, तो इकसाँ उसूल अमल में लाना कोई दिक़्क़त-तलब बात न होगी।

अब सातवाँ सवाल सिर्फ़ बाक़ी बचता है, तालीम किस लिपि और किस ज़बान में बच्चों को दी जाय। आज-कल कुछ दोस्त इस बात पर ज़ोर दे रहे हैं कि १०वाँ दर्जा तक हिन्दी-उर्दू में पढ़ाई अनिवार्य कर दी जाय। सन् १९२८ में मैंने यही बात बोर्ड ऑफ़ वर्नाक्यूलर फ़ाइनल के जलसे में उठाई थी। और, मेरा प्रस्ताव भी बहुमत से मंज़ूर हो गया था। लेकिन उस वक्त की गवर्नमेंट ने उसे मंज़ूर नहीं किया। मैं यह मानता हूँ कि इस प्रस्ताव के समर्थन में जो दलीलें दी जाती हैं, लेकिन जितना ही मैंने इस मसले पर ग़ौर किया है, उतना ही ज़्यादा एतराज़ात मेरे सामने आये हैं। और बातें जाने दीजिए, सबसे बड़ा एतराज़ यह है कि लड़कों की तालीम ज़्यादातर शाब्दिक है। उसे कार्य-शील बनाने की सिफ़ारिश कौंसिल ने की है। देहाती बच्चों को पढ़ने के लिए यों ही वक्त नहीं अगर वे एक लिपि, एक ज़बान ही सीख लें, तो बहुत बड़ी बात है। दो लिपियों और दो ज़बानों का सीखना उनके लिए मुनासिब न होगा। पहले तो पढ़ने और सीखने का उनके पास वक्त नहीं। इतना ही नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो लिपियों और दो ज़बानों के सीखने पर उनके मस्तिष्क पर ज़रूरत से ज़्यादा बोझा पड़ेगा। अगर सरकारी दफ़्तरों और अदालतों में दो ज़बानें हो जाती हैं, तो कोई वजह नहीं कि हमारे सूबे के ग़रीब बच्चों को यह ज़हमत उठानी पड़े। अपने काम के लिए वे दो लिपियों और ज़बानों में जिसको वे जानते हों, उसे इस्तेमाल कर सकते हैं। कहा यह जाता है कि जब तक दोनों लिपियों और ज़बानों में स्कूलों में इन्तज़ाम न हो जायगा, तब तक हिन्दू-मुसलमानों का मेल नहीं हो सकता। ज़बान और लिपि की मोटी दीवार दोनों के बीच में खड़ी होकर भेद-भाव बढ़ा देगी। अगर हमारे सूबे के सब बच्चे हिन्दी-उर्दू दोनों पढ़ लें, अर्थात् हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के विचारों से वाक़िफ़ हो जायँ, तो सब तालिबइल्मों के ऊपर दोनो ज़बान का असर एकसाँ हो और इस वजह से एकता का भाव घटेगा। लेकिन मैं पूछता हूँ कि क्या कोई और आसान तरीक़ा हम नहीं निकाल सकते। हिन्दी के अख़बारों ने इस काम को बहुत ख़ूबी के साथ किया है। हिन्दी की बहुत-सी पत्र-पत्रिकायें अपने हर एक अंक में बड़े-बड़े शायरों की नज़्मों और उनके शब्दों को ज्यों-का-त्यों उद्धृत करती हैं, और उनकी शायरियों में जो अरबी और फ़ारसी के कठिन शब्द आते हैं, उनके पर्यायवाची शब्दों को फ़ुटनोट में दे देती हैं। अकबर, ज़ौक़, मीर, चकबस्त और ग़ालिब के दीवानों की हिन्दी-अक्षरों में कई प्रतियाँ निकल चुकी हैं। हज़ारों की तादाद में इन किताबों की बिक्री भी हुई है। कविता-कौमुदी आदि की तरह उर्दू शायरों की नज़्मों के बड़े सुन्दर संग्रह निकल चुके हैं। इन किताबों की बदौलत उर्दू शायरों के ख़यालात का बड़ी आसानी से प्रचार हुआ है, और हो रहा है। मैंने ख़ुद जब भारत का संपादक था, तब अपने उर्दू जाननेवाले दोस्तों के ऐसे लेख छापे, जो विशुद्ध उर्दू-ज़बान में लिखे गये थे। मैंने केवल लिपि बदलकर उन्हें ज्यों-का-त्यों प्रकाशित किया। क्योंकि मेरी यह नीति थी कि भारत के पाठक दोनों ही ज़बान से वाक़िफ़ हो जायँ। क्या उर्दू-अख़बार-नवीसों ने हिन्दी शायरों या लेखकों के नज़्मों या लेखों को इसी तरह से अपने अख़बारों में शाया करने की नियत फ़रमाई है? तास्सुब उनमें है या हममें? हम एक ज़बान बनाने की सच्ची कोशिश में लगे हुए हैं या वे? दो लिपियाँ जानने की ज़रूरत नहीं, ज़रूरत है तंगदिली को छोड़ने की, तास्सुब से मुँह मोड़ने की और ज़रूरत है इस बात को दिल खोलकर तस्लीम करने की कि इस सूबे में आज दिन दो मुख़्तलिफ़ ज़बानें हैं। इस बात को भी हमें तस्लीम करना पड़ेगा कि इस सूबे में एक ज़बान के बोलनेवालों की तादाद आज दिन भी ज़्यादा है। और इस ज़बान के पढ़नेवालों की तादाद जहाँ पहले बहुत थोड़ी थी, वहाँ अब दिन-ब-दिन बढ़ती जाती है। ऐसी हालत में सब बच्चों को दोनों ज़बानें और दोनों लिपियाँ अलग-अलग सिखाने के लिए मजबूर करना ग़ैर-मुनासिब सिद्ध होगा। हाँ, सरकारी दफ़्तरों और अदालतों में जो मुलाज़िम रक्खे जायँ, उनके लिए दोनों ज़बानों और दोनों लिपियों का जानना निहायत ज़रूरी है। इस तरह का सरकारी हुक्म बरसों-पहले निकल चुका है। लेकिन अभी तक उस पर अमल नहीं किया गया। आज तक किसी उर्दू-परस्त ने इस बात की शिकायत भी नहीं की। तो जहाँ मैं इस बात का हामी हूँ कि सरकारी दफ़्तरों और अदालतों तथा बोर्डों के दफ़्तरों के मुलाज़िमों के लिए दोनों लिपियों और दोनों ज़बानों को जानना लाज़िमी क़रार दिया जाय, वहाँ मैं दोनों ज़बानों और लिपियों को लाज़िमी बनाने का विरोधी हूँ। अपनी ख़ुशी से जो बच्चा चाहे, दोनों लिपियाँ सीखे या दोनों ज़बानें पढ़े, और ऐसा करने के लिए उसको हर तरह की सहूलियत पहुँचाना हमारा फ़र्ज़ होना चाहिए। लेकिन दोनों लिपियाँ सीखने के लिए किसी को हमें जबरन मजबूर नहीं करना चाहिए। मुल्क की बदक़िस्मती से, हमारे बच्चों के लिए सूबे की ज़बान के अलावा, अँगरेज़ी ज़बान भी सीखना लाज़िमी फ़र्ज़ है। एक तीसरी ज़बान और लिपि के सीखने के लिए उन्हें मजबूर करना उनके साथ ज़ुल्म होगा। दो ज़बानें सीखने का बोझ इन बच्चों को उठाना पड़ेगा, वही क्या कम है। उर्दू का हठात् प्रचार बढ़ाने के लिए अपने बच्चों को क़ुर्बान न कर देना चाहिए। उर्दू की हैसियत क़ायम रहेगी, अगर उसमें उसी तरह की बात का ख़याल रक्खा जाय जिसका मैंने ऊपर ज़िक्र किया है, इससे अधिक करना बच्चों के साथ ज़ुल्म होगा। इससे कम करना भी हमारे सार्वजनिक जीवन में अड़ंगा लगाना होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाग्रत नारियाँ

भारतीय महिला-समाज

लेखिका, कुमारी चन्दन पारीख एम० ए०

कुमारी चन्दन पारीख एम० ए० एक योग्य और विदुषी महिला हैं। आप दो वर्ष तक अमेरिका में समाज-शास्त्र का अध्ययन करके हाल ही भारत लौटी हैं और कुछ दिनों से महात्मा गांधी जी की आज्ञा से कन्या-गुरुकुल में हिन्दी सीखने के लिए आई हैं। आपका विचार हिन्दी सीख कर भारतीय महिला-समाज में कार्य करने का है। आशा है पाठिकायें चन्दन बहिन के विचारों को ध्यान से पढ़ेंगी।

जब हम अपनी तुलना दूसरे देश के मनुष्यों के साथ करते हैं तब हमको पता लगता है कि हममें कितने दोष हैं और कितने गुण। कूप-मंडूक स्वयं को सर्वश्रेष्ठ मानता है, पर जब वह अपना कुआँ छोड़कर समुद्र में जाता है तब दूसरे जलचर प्राणियों को देखकर उसे अपने उत्थान का ठीक-ठीक पता लगता है। दूसरे के दोषों का ढोल पीट कर और अपने दोषों की उपेक्षा करके हम कभी प्रगति नहीं कर सकते, इसी दृष्टिकोण से याद मैं अपनी भारतीय बहनों के कुछ साधारण अवगुणों का ज़िक्र यहाँ करूँ तो अनुचित न होगा।

भारतीय स्त्रियों में सबसे अधिक निन्दनीय कोई दोष है तो वह है दूसरे की प्राइवेट बात जानने की गंदी इच्छा। दो स्त्रियाँ मिलती हैं तो दो ही तीन दिन में इतनी दोस्त हो जाती हैं कि आपस में सारे संसार भर की दूसरी सब बातें छोड़कर अपनी निजी बातें करना शुरू कर देती हैं। यदि एक स्त्री संकोचवश अपनी बात नहीं करती तो दूसरी अपना सारा जीवन खोल कर उसका विश्वास संपादन करती है और उससे भी अपनी निजी बातें करने के लिए आमद करती हैं। फिर दूसरी के निजी रहस्यों को जानकर

[कुमारी शान्ती देवी टंडन, इस वर्ष प्रयाग-महिला विद्यापीठ की 'सरस्वती' परीक्षा में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुई हैं। आपकी अवस्था अभी केवल १७ वर्ष की है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[श्रीमती स्टेला बानजोमन पहली महिला हैं जो कलकत्ता-विश्वविद्यालय की एम० एस-सी० काम० में सर्व-प्रथम उत्तीर्ण हुई हैं।]

उन्हें हृदय में रखना कठिन हो जाता है। भारतीय स्त्रियों का हृदय इतना संकुचित है कि उसमें अपनी भी निजी बात नहीं रह सकती, फिर दूसरों की तो रह ही कैसे सकती है। वह स्त्री जब किसी दूसरी स्त्री के साथ परिचय करती है तब उससे पहली स्त्री का सारा भेद बतला देती है। पर मज़ा यह है कि उससे यह भी कहती हैं कि बहन, यह बात तुम किसी और को न बतलाना।

दूसरों के लिए भी अपना जीवन प्राइवेट हो सकता है, भारतीय स्त्रियाँ ऐसा कभी नहीं समझ सकतीं। दो ही तीन दिन के परिचय के बाद वे कमरे में घुसकर दूसरे की किताबें और नोटबुक खोलकर देखने का प्रयत्न करती हैं कि उनमें क्या लिखा है। मेज़ पर यदि कोई ख़त मिल जाय तो उसे भी बिना पूछे खोलकर पढ़ना शुरू कर देती हैं। यदि ख़त की मालकिन सौम्य शब्दों में अपना विरोध प्रकट करती हैं तो वे कहती हैं कि कब तक आप ऐसा मान करोगी, कि हम और आप अलग-अलग हैं? हम तो मानती हैं कि आप हमारी एक स्वजन जैसी हैं, लेकिन आप हमें ग़ैर ही समझती हैं। और इसमें लज्जा की बात भी कौनसी है? मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मैं किसी से कुछ नहीं कहूँगी। वास्तव में ऐसा होता है कि ऐसी दलील के सामने दूसरी स्त्री का कुछ वश नहीं चलता, और वह भी अपने हृदय की बात किसी न किसी से कहना चाहती है ही, इसलिए पहली स्त्री से सब कुछ कह देती है। पर यदि वह अपनी बात कहना नहीं चाहती तो सब आत्मिक और मानसिक बल इकट्ठा करके कह देती है कि "नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, मैं अपना ख़त आपको पढ़ाना नहीं चाहती।" आश्चर्य की बात तो यह है कि दूसरी स्त्री की दृढ़ता और आत्मसम्मान देखकर पहली स्त्री

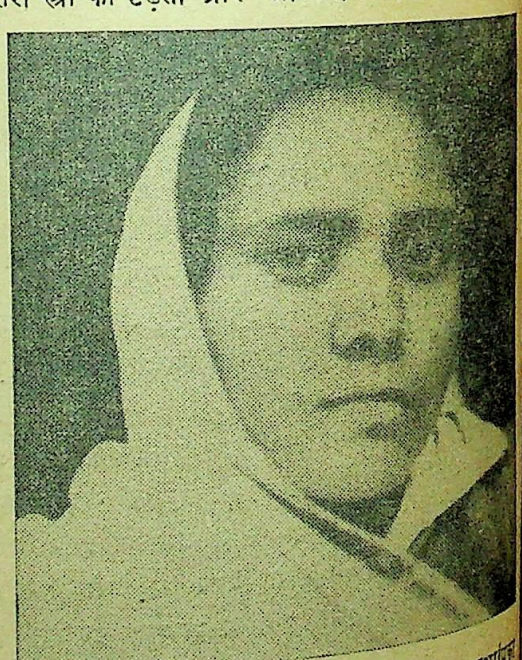

[कुमारी सरला देवी पाराशर—आप बिहार-व्यवस्थापक सभा की रिपोर्टर नियुक्त हुई हैं। इस पद पर नियुक्त होने वाली आप सर्वप्रथम महिला हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को न तो लज्जा आती है और न वह मन में उसकी प्रशंसा करती है; फल यह होता है कि वे परस्पर घृणा करने लगती हैं और हमेशा के लिए दोस्ती टूट जाती है।

[आधुनिक तुर्की की लड़कियाँ खेल-कूद और व्यायाम में बहुत दिलचस्पी रखती हैं।]

जब दो चार स्त्रियाँ साथ मिल-कर बातचीत करती हैं तब उनकी बात का एक ही विषय रहता है..."लड़की क्यों अपनी जाति छोड़कर दूसरी जाति में शादी करती है?..... बहू जी को क्यों अब तक बच्चा पैदा नहीं हुआ है?.....लड़का क्यो अब तक कुँवारा है? इन बातों और इस प्रकार की अन्य बातों पर स्त्रियाँ भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से ऐसी चर्चा करती हैं कि महात्मा गांधी जी भी राजनैतिक हलचल के बारे में इतने दृष्टिकोणों से नहीं सोच सकते हैं। शादी करना या नहीं, करना तो कहाँ करना, और शादी के बाद बच्चा पैदा करना कि नहीं ये सब निजी बातें हैं। पर न जाने, क्यों स्त्रियाँ अपनी प्राइवेट बात की चर्चा करके संतुष्ट नहीं होती हैं, वे तो दूसरों के जीवन में भी चंचुप्रवेश करना अपना अधिकार समझती हैं।

[बालिका-विद्यालय-कॉलेज, कानपुर की छात्राओं को हवाई हमले से रक्षा करने की शिक्षा दी जा रही है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[तुर्की की लड़कियाँ अब परदे से बाहर निकल आई हैं और पार्लामेण्ट के मेम्बर बनती हैं।]

कभी-कभी तो यह प्रवृत्ति अशिष्टता की हद तक पहुँच जाती है। अपने घर पर आये हुए अतिथि के पहनावे पर टीका-टिप्पणी करना उसका अपमान करना है। सभ्य समाज में ऐसा करना अशिष्टता समझी जाती है। पर इस देश की महिलायें, जिनमें से अधिकांश अपने को पढ़ी-लिखी कहने या समझने की हिम्मत भी करती हैं, ऐसा करने में ही अपनी शान समझती हैं। एक बार मैं ऐसी ही एक बहिन से उनके 'कुञ्ज' में मिलने गई। उन्होंने

[तुर्की की लड़कियाँ पहले परदे में रहती थीं।]

आदर-सत्कार के स्थान पर ऐसे प्रश्नों की झड़ी लगा दी, जिन्हें सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ।

……"बहन जी, आपकी धोती तो अच्छी नहीं है! मेरे पति थाने के अफ़सर हैं……। उन्होंने मुझे अच्छी-से-अच्छी साड़ियाँ लाकर दी हैं—आप भी अपने पति से ऐसी ही साड़ियाँ मँगा लीजिए! आपके पति ग़रीब मालूम पड़ते हैं! आप ऐसा स्वेटर क्यों पहने हैं? यह तो अच्छा नहीं है! मेरा स्वेटर तो उससे अच्छा है। यह मेरे पति ५) में लाये थे। आपके बाल बनाने का ढंग तो मुझे क़तई पसन्द नहीं है। आप नंगे सर क्यों रहती हैं? हमारे कुल में तो यह रीति नहीं है। शायद यह आप मेमों की नक़ल कर रही हैं। अरे! आप तो चूड़ियाँ भी नहीं पहनतीं! क्या आप सधवा-विधवा का भेद भाव नहीं मानतीं! आपके बुन्दे तो मुलम्मे के मालूम पड़ते हैं! आपको यह किसने ठग लिया?"—इत्यादि। मुझे अपना पीछा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

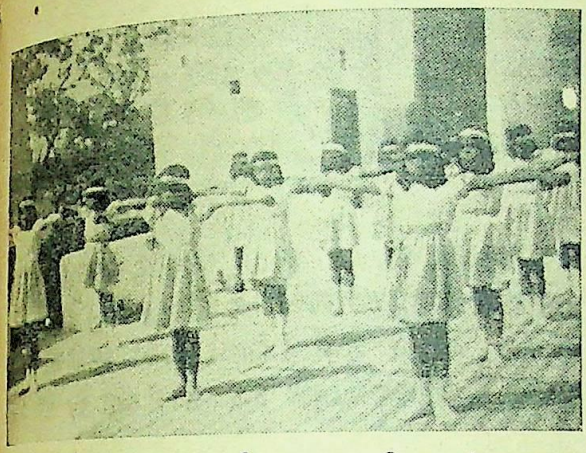

[श्री सावित्री-कन्या-हाईस्कूल, अजमेर, की छात्रायें संगीत की ताल पर डम्बल-व्यायाम कर रही हैं।]

हुड़ाना कठिन हो गया। और अधिक आश्चर्य तो मुझे तब हुआ जब मैंने जाना कि उक्त बहन जी एक जातीय महिला-मंडल की सदस्या हैं और वहाँ पर्दे के विरोध में गला फाड़-फाड़कर लेक्चर देती हैं और स्त्रियों को आधुनिकता में अपनाने की शिक्षा देती हैं। इन बहन जी में साधारण शिष्टाचार की भी तमीज़ न पाकर मुझे तो बड़ा कौतूहल हुआ। शायद इस युग में भी वे अपने सुहाग को चूड़ियों जैसा नाज़ुक समझ रही हैं।

इस बिना माँगी सलाह देने का जन्म स्त्रियों की पराई प्राइवेट बात में पड़ने की प्रकृति से हुआ है। यदि हमारा कोई दोष निकालता है तो हमको अच्छा नहीं लगता। यह सर्वमान्य सत्य है। यदि हम दूसरों की वस्तु की प्रशंसा न कर सकें तो उसमें दोष क्यों निकालें? भारतीय स्त्रियाँ दूसरी स्त्रियों की जल्दी प्रशंसा नहीं कर सकतीं—उनका हृदय चाहे तो भी! दूसरी स्त्रियाँ चाहे जैसी लायक़ हों तब भी महिलायें उनके दोष ही देखेंगी। सभी स्त्रियाँ सासु जी बनती हैं। सासु जी कभी बहू जी के काम और स्वभाव से संतुष्ट नहीं हो सकतीं। क्या यह नियम हम सबके स्वभाव पर लागू नहीं होता?

यद्यपि स्त्रियाँ किसी के भेदों का संग्रह नहीं कर सकतीं तो भी कपड़े और गहने का संग्रह अवश्य करती हैं। यदि सुशिक्षित स्त्रियाँ गुप्त बातों का संग्रह करके अपना जीवन समृद्ध करती हैं तो दूसरी स्त्रियाँ कपड़े और गहने के संग्रह में अपने को कृतकृत्य समझती हैं। आज हिन्दुस्तान में ऐसी स्त्रियाँ हैं कि जिनके पास सौ, दो सौ, तीन सौ धोतियाँ हैं। कई धोतियाँ तो बिना पहने ही फट जाती हैं। इससे हमारे देश को हानि पहुँचती है। लेकिन स्त्रियों में विचार करने की शक्ति कहाँ?

नये युग के साथ स्त्रियों के स्वभाव में एक नया परिवर्तन हुआ है। पुराने समय में तो स्त्रियाँ सब काम हाथ से कर लेती थीं और कोई काम करने में लज्जा नहीं मानती थीं, पर आज की शिक्षित लड़कियाँ कुछ काम हाथ से करना नहीं चाहतीं। उसमें उनको शरम आती है। हमारे यहाँ कॉलेज में पढ़नेवाली लड़कियों में दिखाऊपन बहुत आ गया है। स्पर्धा प्रगति के लिए अच्छी है, प्रगति का पहला पद है; अपनी श्रेणी में अपने से होशियार लड़की

[उक्त कन्या-हाईस्कूल की छात्रायें सुर-ताल पर गात्र-परिचालन का अभ्यास कर रही हैं।]

की मैं स्पर्धा न करूँ तो मैं कभी आगे न बढ़ सकूँ, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की स्पर्धा न करे तो प्रगति में पीछे रह जाय; अँगरेज़ी में कहते हैं कि स्वस्थ-प्रतियोगिता से मनुष्य आगे बढ़ते हैं; लेकिन स्पर्धा का जब दुरुपयोग होता है तब उसमें से दिखाऊपन का जन्म होता है। उस लड़की ने अच्छी धोती पहनी है, मैं उससे अधिक सुन्दर धोती लाऊँ तो मेरी शान रहेगी, इस तरह की प्रवृत्ति मनुष्य की प्रगति के लिए बाधक है। इतना ही नहीं वह उनको समय से नीचे भी गिरा देती है। क्या मैं आशा करूँ कि हमारी बहनें अपने उपर्युक्त आवश्यक-दुर्गुणों को छोड़ने का प्रयत्न करेंगी, जिनके कारण उन्हें विदेशी महिलाओं के सामने लज्जित होना पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

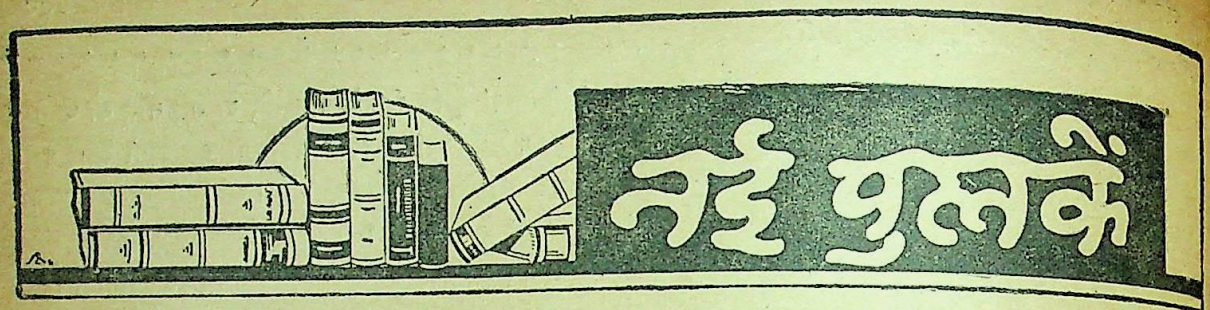

१-३—सय्यद क़ासमअली 'मीर' साहित्यालंकार नरसिंहपुर, सी० पी०, द्वारा प्रेषित तीन पुस्तकें—

(१) हैदराबाद में हिन्दुओं के सुभीते,

(२) हैदराबाद का सूक्ष्म परिचय,

(३) वन्दे मातरम् का रहस्य।

सय्यद साहब हिन्दी के सुपरिचित लेखक हैं। खद्दर पहनते, गान्धी टोपी लगाते और अपने को गान्धी जी का पक्का अनुयायी कहते हैं।

इस साधु-वेश में का कैसा अन्तरंग है, इसका पता आपकी इन पुस्तकों से लगता है। ऐसा ज्ञात होता है कि कांग्रेस और हिन्दुओं के विरुद्ध मुसलमानों को भड़काने के लिए आपको निज़ाम की सरकार या मुसलिम लीग की ओर से कुछ प्रेरणा मिलती है अन्यथा आप अपनी बुद्धि का ऐसा बीभत्स प्रयोग कदापि न करते। पुस्तक नबर तीन में आप लिखते हैं—"पं० जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, आदि नेताओं तथा सरस्वती, प्रताप, सैनिक आदि हिन्दी-पत्रों ने 'वन्दे मातरम्' का खुला विरोध किया है।" क्या इससे भी बड़ा झूठ कोई हो सकता है? क्या मीर साहब अपने कथन के समथन में उक्त पत्र-पत्रिकाओं के लेखों का हवाला भी दे सकते हैं?

हम कांग्रेस-सरकार का ध्यान इस ज़हरीले साहित्य की ओर विशेष रूप से आकृष्ट करते हैं। आश्चर्य तो यह है कि साम्प्रदायिकता का विष फैलानेवाली ऐसी पुस्तकें युक्त-प्रान्त और मध्य-प्रान्त के प्रेसों में धड़ाधड़ छप कर हज़ारों की संख्या में बाँटी जा रही हैं और सरकार ऐसे लेखकों और प्रकाशकों का कुछ भी नियत्रण नहीं करती। बिना प्रेसों का नियंत्रण किये साम्प्रदायिक दंगों को रोकने की आशा करना व्यर्थ है।

४—प्रताप-विजय—लेखक, श्रीयुत ईशदत्त शास्त्री 'श्रीशः' हैं। प्रकाशक—श्रीमाधवप्रसाद मिश्र, प्रभुदत्त वेद-विद्यालय, ११ रानी भवानी का गला, काशी है। छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या ६९ और मूल्य ।।) है।

यह संस्कृत वृत्तों में लिखी हुई एक छोटी सी काव्य-पुस्तक है। लेखक ने इसे 'खण्डकाव्य' कहा है, पर खेद है कि उस कसौटी पर यह पूरी नहीं उतरती। ६९ पृष्ठ की पुस्तक में परिचय-पत्रों के लिए १८ पृष्ठ निकाल देना कहाँ तक उचित है? हाँ उसके बाद १२ पृष्ठ के स्तव भी दिये गये हैं।

"उदग्रवेगोच्छलदच्छकेशरः।

चचाल युद्धेऽप्यचलां प्रचालयन्" ॥ आदि पदों में 'अपि' का प्रयाग कवि के शब्ददारिद्र्य और अनुचित अनुप्रास प्रेम का परिचायक है।

५—ऐतिहासिक स्त्रियाँ—सम्पादिका, श्रीमती प्रेमलता देवी हैं। प्रकाशक, श्रीयुत मूलचन्द्र किसनदास कापाड़िया दिगम्बर जैन-पुस्तकालय, सूरत हैं। छपाई भद्दी, पृष्ठ-संख्या ८७ और मूल्य ।।) है।

इसमें जैन-धर्मग्रन्थों के आधार पर भारत की ८ प्राचीन सतियों की जीवनियाँ लिखी गई हैं। पुस्तक जैन महिलाओं के लिए लिखी गई है क्योंकि इसमें दी हुई कथायें हिन्दू-समाज में परम्परा से प्रचलित आख्यायिकाओं से सामञ्जस्य नहीं रखतीं। 'सीता' जी की कथा भी कुछ अजीब-सी लगती है और नामों को छोड़कर शेष बातों में वह रामायण में दी हुई सीता की कथा से बिलकुल मेल नहीं खाती।

६—चित्रसेन पद्मावतीचरित्र—लेखक, पंडित के० भुजबली शास्त्री हैं। प्रकाशक, श्रीयुत मूलचन्द किसनदास कापाड़िया, दिगम्बर जैन-पुस्तकालय, सूरत हैं। छपाई-सफ़ाई ख़राब, पृष्ठ-संख्या ८२ और मूल्य ।=) है।

इसमें चित्रसेन व पद्मावती की कथा जैन-ग्रन्थों के आधार पर दी हुई है जो जायसी के पद्मावत की कथा से मेल नहीं खाती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७—प्रेम और क्रान्ति—संग्रहकार, श्रीयुत विजयवर्मा और प्रकाशक, प्रेमसाहित्य कार्यालय, इलाहाबाद हैं। छपाई-सफ़ाई उत्कृष्ट, साइज़ बड़ा, पृष्ठ-संख्या ५८ और मूल्य ।) है।

इसमें कुल दस कहानियाँ हैं। इनमें से ५ तो श्रीयुत वर्मा जी की लिखी हुई हैं, जो 'सरस्वती' व 'सहेली' में प्रकाशित हो चुकी हैं, शेष ५ कहानियाँ श्रीरामप्रसाद विद्यार्थी, श्रीप्रयागदत्त शर्मा, श्रीओंकारनाथ व श्री विश्वम्भर नाथ सेठ की लिखी हुई हैं। कहानियों में लोकसेवा और राष्ट्रीयता के भाव प्रधान हैं। पुस्तक सुन्दर और पठनीय है।

८—वेनीमाधवबावनी—लेखक, श्रीयुत कृष्णशंकर शुक्ल 'कृष्ण' हैं। प्रकाशक, भारतीभवन बन्नावाँ, बछरावाँ रायबरेली हैं। पृष्ठ-संख्या ८१ और मूल्य ।=) है। छपाई-सफ़ाई साधारण है।

ग़दर के दिनों में बैसवाड़े के शंकरगढ़ नामक स्थान में वेनीमाधव नामक एक बड़े वीर राजा हो गये हैं। आपने कई बार अँगरेज़ों से लोहा लिया था। प्रस्तुत पुस्तक में कवि ने इन्हीं नररत्न का वर्णन ओजपूर्ण छन्दों में किया है। पुस्तक वीररस की आदरणीय कृति है, नवयुवक होते हुए भी लेखक को इसमें अच्छी सफलता मिली है।

९—प्रेमोपहार—लेखक तथा प्रकाशक, श्रीयुत खुशीराम शर्मा वाशिष्ठ, विशारद प्रेम-कुटीर, महम (रोहतक) हैं। पृष्ठ-संख्या ६० और मूल्य ।=) है।

प्रस्तुत पुस्तक नव पत्नी को पाणिग्रहण के अवसर पर प्रेमोपहार है। लेखक ने मातृ-भाषा-मन्दिर में प्रवेश करने के लिए वास्तव में बड़ा शुभ दिन निश्चित किया; और इसके लिए मैं लेखक को बधाई देता हूँ।

कवितायें इस पुस्तक में सभी अच्छी हैं। विशेष कर 'मिलन-मन्दिर में', 'जागो', 'जीवन', 'मंगल-गीत' बहुत सुन्दर हैं।

१०—पत्र-पुष्प—(दूसरा संस्करण)—लेखक, श्रीयुत देवीसिंह चौमू हैं। प्रकाशक जयपुर प्रिंटिंग वर्क्स, जयपुर है। पृष्ठ-संख्या ६४ है। मूल्य अनिर्दिष्ट है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने भक्तों के लिए ईश्वर-वन्दना, विनय, भजन तथा पदों का संग्रह किया है। संकलन कई स्थानों से किया गया है। कबीर स्वामी, स्वामी रामतीर्थ, नानक, रहिमन इत्यादि अनेक भक्तों और कवियों की भक्तिपूर्ण और अनूठी रचनायें संगृहीत हैं और साथ ही साथ लेखक की अपनी रचनायें भी पर्याप्त मात्रा में हैं।

भक्तों के लिए पुस्तक बहुत ही उपादेय है। छपाई-सफ़ाई साधारण है।

११—शिक्षा-सुधार-नाटक—लेखक, श्रीयुत रघुवीर प्रसाद गुप्त "विशारद" सहायक अध्यापक, मिडिल स्कूल बड़ौदा, प्रान्त बाँदा हैं। प्रकाशक, बाबू बैजनाथप्रसाद बुकसेलर, राजादरवाज़ा बनारस सिटी हैं। पृष्ठ-संख्या ५२ और मूल्य ।।) है।

यह पुस्तक प्रारम्भिक शिक्षा की उद्देश्य पूर्ति का सच्चा मार्ग प्रदर्शित करती है। पिछले कई वर्षों से प्राइमरी तथा मिडिल स्कूलों में आश्चर्यजनक सुधार और उन्नति हुई है। शिक्षा के साथ ही साथ तकली से सूत कातना, रस्सी बनाना, चटाई, टाट बुनने का कार्य तथा कसरत और गानों का मिलन, बालकों के भविष्य जीवन के लिए उपयुक्त बनाता है। इसी के प्रचार के लिए लेखक ने यह नाटक तैयार किया है।

लेखक इस नाटक के लिए उपयुक्त भी हैं क्योंकि वे बाँदा के एक मिडिल स्कूल में सहायक अध्यापक हैं और उन्हें इस विषय का अनुभव भी पर्याप्त है। प्रस्तुत पुस्तक मिडिल स्कूल के बालकों तथा अध्यापकों के लिए उपादेय है साथ ही शिक्षा-प्रसार में भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

१२—वस्तुपाठ-पद्यावली—लेखक, श्रीयुत चन्द्रभानु-सिंह हैं। प्रकाशक, भारती प्रेस बलिया है। पृष्ठ-संख्या ८६ और मूल्य ।=) है।

इसमें लेखक ने बालकों के लिए पशु, पक्षियों तथा प्रचलित फल तथा वनस्पतियों पर कुछ पद्यों का संकलन किया है। साथ ही कुछ आधुनिक आवश्यक वस्तुओं पर भी सीधी-सादी रचनायें हैं, जैसे—रेलगाड़ी, मोटर, साइकिल, घड़ी, इत्यादि।

कवितायें बहुत ही सरल भाषा में सुबोध रूप से लिखी गई हैं जिसे बच्चे आसानी से समझ कर कंठाग्र कर लें। कहीं-कहीं अवसर मिलने पर लेखक ने शिक्षा भी दी है। जैसे साइकिल पर लिखते समय पद्यकार ने लिखा है—

"हानि अधिक चढ़ने से होती—शक्ति फेफड़ों तक की खोती।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार लट्टू के पाठ में पृथ्वी की गति का इशारा दिया गया है—

"जैसे वह चक्कर दे घूमे,
वैसे पृथ्वी गति ले घूमे,
जिससे निश-दिन गर्मी-सर्दी,
आती जाती लाली जर्दी।"

पुस्तक बालकों के लिए बहुत ही उपयोगी है।

१३—सत्य-संगीत—लेखक, श्रीयुत दरबारीलाल सत्यभक्त, संस्थापक-सत्यसमाज हैं। प्रकाशक, सत्याश्रम वर्धा (सी० पी०) है; पृष्ठ-सख्या १२८ और मूल्य ॥=) है।

इस पुस्तक में दो प्रकार की कविताओं का संग्रह है। कुछ कवितायें तो ईश्वर, देवी, देव तथा संसार के धर्म-प्रचारक महापुरुषों के स्तवरूप हैं और कुछ कवितायें अन्य विषयों पर लिखी गई हैं। कवितायें साधारणतः अच्छी हैं।

छपाई-सफ़ाई अच्छी है; गेट अप भी सुन्दर है। पुस्तक बहुत ही उपयोगी और उपादेय है।

श्रीकृष्ण एम० ए०।

१४-२५—सस्ता साहित्य-मंडल, दिल्ली की बारह पुस्तकें :—

(१) गीता-बोध—लेखक गांधी जी हैं। मूल्य डेढ़ आना है। पृष्ठ-संख्या १३६ है। इस छोटी सी पुस्तिका में गांधी जी के उन लेखों का संग्रह है जो उन्होंने 'यरवदा-मंदिर' से गीता की व्याख्या करते हुए साबरमती आश्रमवासियों के नाम लिखे थे।

लोकमान्य तिलक की भाँति गांधी जी का गीता का अध्ययन पांडित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता; परन्तु जैसा कि स्वयं उन्होंने लिखा है, गीता की अपूर्व शिक्षा को अपने ढंग से समझ कर उसी के अनुसार अपने जीवन को बनाने का सदा उनका प्रयत्न रहा है। इस प्रकार उनकी गीता की व्याख्या अपने ढंग की अनोखी तथा व्यावहारिक दृष्टि से अमूल्य है। उसमें गीता के ऐतिहासिक तत्त्व का अतिक्रमण करके गांधी जी ने उसके आध्यात्मिक तत्त्व को समझाने का प्रयत्न किया है। इस आध्यात्मिक तत्त्व का मूलाधार अनासक्ति योग है और उसकी प्रेरकशक्ति अहिंसा। गांधी जी की आध्यात्मिक विचार-धारा और जीवन-सिद्धान्त को समझने में यह पुस्तक बहुत सहायक हो सकती है। भाषा स्पष्ट, सरल और सुबोध है। मूल्य, उपयोगिता और महत्त्व को देखते हुए सन् ३२ के बाद ३८ ई० में इसका दूसरा संस्करण निकलना आश्चर्य की बात है।

(२) मंगल-प्रभात—लेखक गांधी जी और मूल्य डेढ़ आना है। पृष्ठ-संख्या १०५ है।

'यरवदा-मंदिर, से आश्रमवासियों के लिए प्रत्येक मंगलवार को प्रातःकाल गांधी जी आश्रम के व्रतों पर अपना भाष्य लिख भेजते थे। प्रस्तुत पुस्तिका उन्हीं प्रवचनों का संग्रह है।

योगदर्शन प्रतिपादित पाँच यमों के अतिरिक्त इन व्रतों में कुछ ऐसे भी यम हैं जिन्हें कट्टरपंथी धर्म से बहिष्कृत ही नहीं, धर्म के विरुद्ध तक समझते हैं। 'अस्पृश्यतानिवारण' उनकी दृष्टि में ऐसा ही एक विषय है। 'कायिक-परिश्रम', 'सर्वधर्मभाव', स्वदेशी आदि को कट्टरपंथी धार्मिक व्रत ही नहीं मान सकते। परन्तु यद्यपि गांधी जी के धर्म का आधार भारतीय आर्य धर्म ही है, फिर भी वह इतना व्यापक और महान् है कि उसकी सर्वमान्यता और मानव मात्र के लिए उसकी उपादेयता में किसी को तनिक भी संदेह नहीं हो सकता। वास्तव में भारतीय आर्य-धर्म का असली रूप यही है, जिसमें समस्त मतवादों का समन्वय और समाहार हो जाता है।

केवल राजनीति से दिलचस्पी रखनेवाले अक्सर गांधी जी की विचारधारा को समझने में भूल कर जाते हैं; और जिन लोगों का राजनीति से कोई संपर्क नहीं है उन्हें तो गांधी जी के विचारों को जानने का भी बहुत कम अवसर मिलता है। इस प्रकार गांधी जी का वास्तविक रूप अब तक बहुत-कुछ ऐसी बातों के नीचे छिपा हुआ है, जो गांधी के आध्यात्मिक प्रयोगों के स्थूल प्रकाशन-मात्र हैं, उनकी मूल-प्रेरणा नहीं। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ऐसे नाम हैं, जिनसे बचपन से ही हिन्दू-मात्र का परिचय हो जाता है। परन्तु गांधी जी ने उन पर जो नवीन प्रकाश डाला है, उनकी जो निराली व्याख्या की है, वह हिन्दू-धर्म-शास्त्रों की निश्चित परिधि से पार हो जाती है। न केवल उसमें नवीन आध्यात्मिक चेतना है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल्कि जीवन के व्यावहारिक पहलू की अनुभूति भी। गांधी जी के कथनानुसार 'सत्य' एक अत्यन्त व्यापक सिद्धान्त है, यहाँ तक कि सत्य ही परमेश्वर है, और उसकी प्राप्ति के प्रयत्न की पहली सीढ़ी 'अहिंसा' है। जीवन के इस आदर्श—इस चरम अनुभूति की सिद्धि के लिए अन्य व्रतों के पालन की आवश्यकता है। ये व्रत यद्यपि सत्य और अहिंसा के अंतर्गत आ जाते हैं फिर भी साधक-व्यवहार-क्षेत्र में उन्हें अलग-अलग समझने की आवश्यकता है। इस तरह हम देखते हैं कि हिन्दू-धर्म के विचारकों और मनीषियों में गांधी का एक विशिष्ट स्थान है। हिन्दू-धर्म की लोकधर्मपरक नवीन व्याख्या के लिए धार्मिकों को उनका कृतज्ञ होना चाहिए। पुस्तक सबके काम की है।

(३) सर्वोदय—लेखक गांधी जी और मूल्य एक आना है। पृष्ठ-संख्या, ७५ है।

यह पुस्तिका अँगरेज़ी के प्रसिद्ध लेखक और विचारक 'रस्किन' के 'अन-टू दिस लास्ट' का रूपान्तर है। रस्किन और कार्लायल उन्नीसवीं सदी के उन विचारकों में हैं जिन्होंने भौतिक उद्योगवाद की तीव्र आलोचना की है। अतः उन्हें पूर्वीय मनीषियों के अधिक निकट समझा जाता है। इस अनुवाद से यह स्पष्ट हो जाता है कि गांधी जी का आधुनिक समस्याओं का हल क्या है। आधुनिक विचारकों का उस हल से भारी मतभेद होना अनिवार्य है।

सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में प्रयोग होनेवाले 'गांधीवाद' को समझने में इस पुस्तक से सहायता मिलेगी।

भाषा सरल और सुबोध है।

—व्रजेश्वर

(४) गाँवों की कहानी—लेखक, स्वर्गीय रामदास गौड़ हैं और मूल्य आठ आने है। पृष्ठ-संख्या २०० है।

ग्राम और किसान ये दोनों शब्द परस्पर संबंधवंत हैं। प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान् लेखक ने किसान की समस्याओं को दृष्टिकोण में रखते हुए गाँव का क्रमिक इतिहास दिया है। वैदिक युग से लेकर वर्तमान शताब्दी तक ग्रामों की दशा तथा रूप-रेखा में क्या-क्या परिवर्त्तन हुए और इस परिवर्त्तनों का किसान के रहन-सहन तथा सामाजिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका इस पुस्तक में प्रामाणिक, युक्ति युक्त तथा विशद विवेचन दिया गया है। गाँव की मौलिक समस्याओं तथा उसकी मूल प्रकृति को समझने की इच्छा रखनेवाले सामाजिक सुधारकों के लिए पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है।

(५) राजनीति-प्रवेशिका—मूललेखक, हेरल्ड रास्की और अनुवादक, श्रीयुत गोपीकृष्ण विजयवर्गीय हैं। पृष्ठ-संख्या १४३ और मूल्य १॥) है।

प्रोफ़ेसर हेरल्ड रास्की की 'इन्ट्रोडक्शन-टू-पालिटिक्स' का यह हिन्दी-अनुवाद है। इसकी भाषा कठिन तथा शैली गुम्फित है। अनुवाद मूलग्रन्थ से भी कठिन हो गया है, अतः यह पुस्तक साधारण पाठकों के काम की नहीं रही। कुछ नमूने देखिए—"बहुघटात्मक राज्यसंस्था में द्वितीय खंड की स्थिति के विषय में दो शब्द कहना आवश्यक है। इसमें (१) संघ के अंगभूत घटकों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए और (२) शासन-विधान-द्वारा किये हुए अधिकारों के विभाजन को आक्रमण से बचाना चाहिए···।" आशा है कि प्रकाशक अगला संस्करण किसी सुयोग्य विद्वान् द्वारा सरल भाषा में कराके प्रकाशित करेंगे जिससे यह पुस्तक अधिक-से-अधिक जनता को राजनीति का सामान्य परिचय कराने के लिए उपयोगी हो सके।

(६) महाभारत के पात्र—लेखक श्रीयुत आचार्य नृसिंहप्रसाद कालिकाप्रसाद भट्ट और अनुवादक बृहस्पति उपाध्याय हैं। पृष्ठ-संख्या २०३ और मूल्य आठ आने है।

महाभारत की कथा को छोटी-छोटी रोचक कहानियों के रूप में लिखा गया है। भाषा सरल है। पुस्तक सर्व साधारण के मनोरंजन के लिए अच्छी है।

(७) अँगरेजी राज्य में हमारी आर्थिक दशा—यह डाक्टर जैबुल अहमद की लिखी 'सम फ़िनैन्शियल एस्पेक्ट्स आफ़ ब्रिटिश रूल इन इंडिया' का अनुवाद है। अनुवादक, श्रीयुत कृष्णचन्द्र विद्यालंकार हैं। पृष्ठ-संख्या १५४ और मूल्य आठ आने है।

पुस्तक दो खंडों में विभाजित है। प्रथम खंड में ब्रिटेन की औपनिवेशिक नीति का इतिहास देते हुए यह दिखाया गया है कि ब्रिटेन ने किस प्रकार भारत का शोषण करने के लिए भारतीय व्यवसायों, उद्योगों और किसानों की संपन्नता के साधनों को नष्ट किया, तथा किस प्रकार उसे अपने आर्थिक साम्राज्यवाद की चक्की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से निकलने के योग्य बनाया। अपने विषय के प्रतिपादन में लेखक ने आवश्यक आँकड़े भी दिये हैं। जो लोग मेजर बसु की अँगरेज़ी पुस्तक 'भारतीय उद्योग-धन्धों का विनाश' या उसके आधार पर लिखे गये श्रीयुत सुन्दरलालकृत 'भारत में अँग्रेज़ी राज्य' के तद्विषयक अध्यायों को नहीं पढ़ सकते, उन्हें इस पुस्तक में संक्षेप से अच्छी ऐतिहासिक सामग्री मिल जायगी।

दूसरे खंड में भारत की आर्थिक स्वतंत्रता के महत्त्वपूर्ण राजनीतिक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। यह तो सभी को विदित है कि ब्रिटेन का भारत के साथ जो कुछ राजनीतिक हित है उसका प्रधान उद्देश्य है भारत की आर्थिक गुलामी को चिरकाल तक स्थायी रखना। भारत के नवीन शासन-विधान में भी इसी उद्देश्य से ब्रिटेन के हितों का संरक्षण विशेषरूप से दिया गया है। इस खंड में लेखक ने इसी विषय पर प्रकाश डाला है।

पुस्तक उपयोगी है और सर्वसाधारण के विशेष काम की है। अनुवाद की भाषा सुबोध और चलती हुई है।

(८) संतवाणी—संकलनकर्त्ता श्रीयुत वियोगीहरि हैं। पृष्ठ-संख्या १६५ और मूल्य आठ आने है।

इसमें कबीर, दादू, नानक, जायसी, मीरा, मलूकदास, दूलनदास, दरिया, धरनीदास आदि संतों की वाणी का संग्रह प्रतिपादित विषयों के आधार पर किया गया है। विषयों के शीर्षक हैं—'घट घट व्यापक राम', 'मन्दिर मस्जिद एक', 'सो ब्राह्मण जो ब्रह्म विचारै', 'निदंक बाबा बीर हमारा', 'कछु धौं छूत', 'कहाँ ते उपजी', आदि। प्रत्येक पद्य के सामने वाम-पृष्ठ पर संकलनकर्त्ता ने गद्य में अनुवाद भी दे दिया है।

गांधी-साहित्य का प्रचार और प्रसार करनेवाले 'सस्ता-साहित्य-मंडल' के लिए यह उचित ही है कि भारतीय इतिहास के आध्यात्मिक और सामाजिक क्रांतिकारी सन्तों की वाणी का प्रचार करे, क्योंकि गांधी जी भी अपने असली रूप में सन्त ही हैं। धार्मिक सहिष्णुता, उदारता, नम्रता आदि ऐसे विषय हैं जिनके प्रचार की आवश्यकता आज भी उतनी ही है, जितनी कि तीन-चार शताब्दियों पूर्व थी। परन्तु प्रश्न यह है कि जिन संतों की वाणी हिन्दू-समाज के अङ्ग पर चिकने घड़े के पानी की तरह बह गई, क्या इस समय उसका कोई प्रभाव पड़ सकेगा? सन्तों ने सामाजिक समस्याओं को धार्मिक ढंग से सुलझाने की कोशिश की थी। यदि उस समय भी वे असफल रहे थे, तो क्या हम आशा कर सकते हैं कि संतों की वाणी कुछ धर्मबुद्धि लोगों की प्रशंसा का विषय बनने के अतिरिक्त और कुछ उपकार कर सकेगी?

अनुवाद की भाषा में गद्य-काव्य का सौन्दर्य तथा संतों की वाणी से अधिक साहित्यिकता है। इसी कारण वह अक्सर संतों की वाणी को सर्वसाधारण के लिए अधिक स्पष्ट करने के बजाय कुछ कठिन ही कर देती है। उदाहरण के लिए—

प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा,

रैदास की इस पंक्ति का यह अनुवाद है—"प्रभो तुम तो श्याम घन हो और सघन बन, और हम हैं तुम्हारे प्रेमोन्मत्त मयूर—"

(९) लोकजीवन—लेखक श्रीयुत काका कालेलकर हैं। पृष्ठ-संख्या १९० और मूल्य आठ आने है।

इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने ग्रामोद्धार जैसे प्रधानतया आर्थिक प्रश्न का चिन्तन आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से किया है। गांधी जी की विचार-शैली के अनुसार ग्राम-सुधार का प्रश्न न तो एक दम राजनीतिक है और न पूर्णतया सामाजिक। प्राचीन भारतीय संस्कृति और ग्रामीण वातावरण में उसके वास्तविक प्रकाशन की जो कल्पना उन्होंने कर रखी है, उसी के अनुसार इस शताब्दी में भी वे ग्रामों का पुनर्निर्माण करना चाहते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में भी इसी कल्पना को आधार मान कर ग्रामीण समस्याओं पर विचार किया गया है। फलतः प्रत्येक समस्या पर धर्मभाव की छाप लगा दी गई है। यद्यपि इसमें ग्राम-सुधार की कोई सम्यक् योजना नहीं बताई गई है, फिर भी गाँवों की समस्याओं का अपने ढंग का गंभीर विवेचन है। पुस्तक लोक-कल्याण की पवित्र धर्मबुद्धि वाले विचारशील लोगों के काम की है, लेखक के विवेचन में गंभीर चितन की प्रधानता है, अतः शैली भी विषय के अनुरूप कुछ गंभीर और गुंफित है।

(१०) हमारे गाँवों का सुधार और संगठन—लेखक स्वर्गीय श्रीयुत रामदास गौड़ हैं। पृष्ठ-संख्या ३३१ और मूल्य एक रुपया है।

जैसा कि नाम से ही सूचित है, इस पुस्तक में गाँवों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की समस्याओं को व्यावहारिक रूप में समझ कर उनके हल बताने का प्रयत्न किया गया है। पुस्तक बड़े परिश्रम, अध्ययन और चिंतन के बाद लिखी जान पड़ती है।

बेकारी का मुख्य इलाज लेखक के कथनानुसार है चर्ख़े का प्रचार। व्यावहारिक रूप में चर्ख़े के इलाज ने अभी उतनी सफलता नहीं प्राप्त कर पाई है जितनी कि उससे आशा दिलाई जाती है। फिर भी लोगों की धारणा है कि उसका व्यापक प्रचार होना ज़रूरी है। भूमि पर किसान का अधिकार सुरक्षित करने के लिए लेखक ने पंचायत के संगठन और असहयोग के अस्त्र की शिक्षा दी है। इसी प्रकार विदेशी साम्राज्य के कारण जो आर्थिक और सामाजिक असुविधायें हैं उनका भी एक-मात्र इलाज असहयोग है। इस प्रकार असहयोग का व्यापक प्रयोग स्वराज्य की राजनीतिक लड़ाई तथा ज़मींदारों के विरुद्ध वर्ग-युद्ध में जाकर समाप्त होता है। लेखक ने इस प्रश्न को इतनी दूर तक नहीं सोचा। गाँवों के संगठन की दृढ़ भित्ति है पंचायत और पंचायत में ही समस्त ग्रामीण समस्याओं का उपयुक्त हल मौजूद है। अतः यह उचित ही है यदि लेखक ने पंचायत के संगठन पर ही सबसे अधिक ज़ोर दिया है।

पुस्तक प्रत्येक ग्राम-सेवक तथा इस विषय में दिलचस्पी रखनेवाले के उपयोग की है। भाषा सुबोध और सरल है।

(११) स्वदेशी और ग्रामोद्योग—लेखक महात्मा गांधी हैं। पृष्ठ-संख्या १७१ और मूल्य आठ आना है।

प्रस्तुत पुस्तक गांधी जी के स्वदेशी और खादी तथा अन्य घरेलू धंधों से सम्बन्धित लेखों का संग्रह है। ग्रामोद्धार के विषय में गांधी जी के विचार अपने हैं। "यह मैं मानता हूँ कि कुछ एक चीज़ें ऐसी हैं जो बग़ैर राजनैतिक सत्ता हासिल किये नहीं हो सकतीं, मगर साथ ही ऐसी बेशुमार चीज़ें भी हैं जिनके लिए राजनैतिक सत्ता क़तई दरकार नहीं।" गांधी जी के इस कथन में ही 'ग्राम-उद्योग-संघ' की स्थापना और उसके कार्यक्रम के प्रचार का औचित्य मिलता है। 'कुछेक' और 'बेशुमार' में स्वभावतः 'बेशुमार' को चुनना ही अधिक उचित है। जो लोग गांधी जी के विचार से असहमत हैं, तथा राजनैतिक सत्ता प्राप्त करके जल्द से जल्द आधुनिक ढंग से भारत का औद्योगीकरण करना चाहते हैं, उन्हें गांधी जी के विचार नहीं रुचेंगे। परन्तु कम से कम संधिकाल के लिए तो लोक-सेवी कार्यकर्त्ताओं के सामने ग्रामोद्धार एक निश्चित क्रियात्मक प्रोग्राम है ही। इस विषय में गांधी जी के विचार सभी को विदित हैं, अतः इस स्थान पर उनकी आलोचना व्यर्थ है। पुस्तक ग्राम-सेवकों तथा सर्वसाधारण के लिए उपयोगी है। भाषा सरल है।

(१२) गांधीवाद - समाजवाद—सम्पादक श्रीयुत काका कालेलकर हैं। पृष्ठ-संख्या २१३ और मूल्य बारह आना है।

यह गांधीवाद और समाजवाद के कुछ प्रसिद्ध विचारकों के लेखों का संग्रह है। देश में इधर कुछ दिनों से गांधी जी के विचारों और समाजवाद के सिद्धान्तों में काफ़ी संघर्ष चल पड़ा है। कुछ लोगों ने तो गांधी जी को भी समाजवादी सिद्ध करने की कोशिश की है। कारण यह है कि राजनैतिक क्षेत्र में गांधी जी के विचारों का प्रभुत्व क़ायम रखने के लिए गांधी जी के अनुयायी समाजवाद की बढ़ती हुई लहर को रोकने की चेष्टा करते रहते हैं। इन लेखों को पढ़ने से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है। अधिकतर लेखकों ने विवादात्मक शैली का ही प्रयोग किया है। 'गांधीवाद' कोई वाद भी है या नहीं, पहले तो यही एक संदिग्ध बात है। फिर उसका समझना भी सबके लिए एक-सा सरल नहीं है। आचार्य कृपलानी गांधीवाद या उन्हीं के शब्दों में 'गांधी की राह' को केवल राजनीतिक और सामाजिक रूप में ग्रहण करके कहते हैं कि "जिसे समाजवादी आम हड़ताल कहना पसन्द करेंगे वही तो गांधी जी का सत्याग्रह है।" अपनी व्यंग्यपूर्ण शैली में उन्होंने लिखा है :—

"आप गांधी जी की भाषा में और सत्याग्रह की शब्दावलि में चर्चा कीजिए और एक निश्चित, दृश्य संघर्ष, रहस्यपूर्ण, आध्यात्मिक, आदर्शवादी और फलस्वरूप अवास्तविक रूप धारण कर लेगा। इसके विपरीत आम हड़ताल की भाषा में बात कीजिए और एकदम वही चीज़ वैज्ञानिक ही नहीं, ऐतिहासिक आवश्यकता में बदल जायेगी।"

उसके अनुसार तो गांधी जी की भाषा में ही कुछ प्राचीनता और आध्यात्मिकता का आभास है, मूल वस्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकदम आधुनिक है। इसी प्रकार कृपलानी जी गांधी जी के रचनात्मक कार्य को केवल विश्राम-काल का सदुपयोग समझते हैं और उनका विचार है कि राजनीतिक सत्ता पाकर रूस की तरह भारत भी पंचवर्षीय या दशवर्षीय योजना बनाकर औद्योगीकरण कर डालेगा। दूसरी ओर श्रीयुत किशोरलाल मशरूवाला तथा श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने गांधीवाद के तात्विक विवेचन का प्रयत्न किया है। 'गांधीवाद' पर सबसे अच्छा प्रकाश श्रीयुत किशोरलाल घ० मशरूवाला ने ही डाला है। जैनेन्द्रकुमार की विचार-शैली कल्पनात्मक और भाषा शैली अस्पष्ट है। अतः उसमें गांधीवाद के विवाद से भिन्न स्वयं उसी का आनन्द है, मानो चिन्तन का उद्देश्य चिन्तन ही हो।

बारह लेखों के संग्रह में समाजवाद पर केवल चार लेख हैं जिनमें से श्रीयुत राहुल जी का दो पृष्ठ का लेख केवल एक राजनीतिक-चर्चा मात्र है। सच पूछिए तो उसमें कुछ भी नहीं है। श्री जयप्रकाशनारायण के लेख की शैली सबसे अधिक विवादात्मक है अतः उसमें तात्विक तुलना बहुत कम है। गांधीवाद के विरुद्ध समाजवादी सिद्धान्तों का सबसे अधिक स्पष्ट विवेचन श्रीयुत एम० एन० राय के लेखों में है। राय महाशय ने समाजवाद का दृष्टिकोण निश्चित शैली में स्पष्ट करते हुए यह सिद्ध कर दिया है कि गांधीवाद का मार्क्स-द्वारा प्रतिपादित आधुनिक समाजवाद से किसी प्रकार भी सामञ्जस्य नहीं किया जा सकता।

गांधीवाद और समाजवाद दोनों ही विषय बड़े व्यापक हैं। अतः २१३ पृष्ठों में उनकी तुलना का बहुत थोड़ा अंश समा सकता है। फिर भी लेखों का प्रस्तुत संग्रह आदर्श नहीं कहा जा सकता। यदि कुछ अधिकारी विद्वानों और विचारकों के लेख भी प्राप्त किये जाते तो अधिक अच्छा था।

राजनीति और समाज में दिलचस्पी रखनेवालों के लिए पुस्तक उपयोगी है।

२६-३१—पत्र-पत्रिकाएँ

(१) कर्मभूमि (साप्ताहिक)—सम्पादक, श्रीयुत भक्त-दर्शन और श्रीयुत भैरवदत्त धूलिया हैं। प्रकाशक, मैनेजर कर्मभूमि-कार्यालय, लैंसडाउन, गढ़वाल और वार्षिक मूल्य ३॥) है।

यह पत्र गत १६ फ़रवरी से निकलने लगा है। सामयिक समस्याओं पर अच्छा प्रकाश डालता है। विशेषतः गढ़वाल संबन्धी विषयों पर अधिक लिखता है। दृष्टिकोण कांग्रेसी है।

(२) स्त्री-भूषण (साप्ताहिक)—सम्पादिका, श्रीमती भागवती देवी हैं। प्रकाशक, स्त्री-भूषण कार्यालय, लखनऊ और वार्षिक मूल्य ३) है।

स्त्रियों से सम्बन्धित विषयों पर अच्छा प्रकाश डालता है। शायद इस प्रकार का अकेला साप्ताहिक है।

(३) कुमार (सचित्र मासिक)—प्रकाशगृह, कालाकांकर (अवध) से यह सुन्दर पत्र गत जनवरी से कुँवर सुरेशसिंह के सम्पादकत्व में पुनः प्रकाशित होने लगा है। वार्षिक मूल्य ३) है। लेख-चयन, सम्पादन, छपाई-सफ़ाई सभी कुछ सुरुचि-पूर्ण तथा उच्च कोटि का है। बालकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

(४) देश-विदेश (मासिक)—श्रीयुत सत्यकेतु विद्यालङ्कार डी० लिट्० के सम्पादकत्व में, इतिहास-सदन, नं० दिल्ली से गत फ़रवरी से निकलने लगा है। वार्षिक मूल्य १॥) है। देश और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धी राजनैतिक तथा अन्यान्य समस्याओं पर अच्छा प्रकाश डालता है। सम्पादन भी योग्यतापूर्वक होता है।

(५) प्रगति (मासिक)—श्रीयुत सुरेन्द्रदेव बालूपूरी के सम्पादकत्व में लेफ़्टविंग पब्लिशिङ्ग हाउस, चारबाग़, लखनऊ से प्रकाशित होने लगा है। वार्षिक मूल्य १॥) है। यह अंक किस महीने का है, इसका पता नहीं लगता। दृष्टिकोण साम्यवादी है। सम्पादक महोदय रोमन लिपि के प्रचार के लिए बद्धपरिकर दिखाई देते हैं।

(६) वैदिक धर्म (मासिक)—आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पंडित श्रीमान् दामोदर सातवलेकर जी के संपादकत्व में, स्वाध्याय मंडल औंध, ज़िला सतारा से गत २० वर्ष से प्रकाशित हो रहा है। वार्षिक मूल्य ५॥) है। वेद और आर्य-साहित्य-सम्बन्धी विषयों पर इसमें विद्वत्तापूर्ण लेख रहते हैं। पत्र आर्यसमाजियों के बड़े काम का है क्योंकि वेदार्थ में एक दम आर्यसामाजिक परिपाटी का पालन होता है। यद्यपि आर्यसमाजियों का भी एक दल इसके वेदार्थ-सम्बन्धी दृष्टिकोण से पूर्णतया सहमत नहीं है। इस पत्र ने वेद-साहित्य के प्रचार में अच्छा योग दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-संग्रह

राजरत्न प्रोफ़ेसर माणिकराव जी बड़ौदा। आपने देशी व्यायाम-प्रणाली के प्रचार करने में काफ़ी ख्याति प्राप्त की है।

लाहौर के प्रसिद्ध लोकसेवकमण्डल के सदस्यगण। इस संस्था के सभापति माननीय बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन बीच में बैठे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल विश्वविद्यालय-काँगड़ी, के ३७ वें वार्षिकोत्सव के अवसर के जलूस का एक दृश्य।
जलूस में गाँधीटोपी पहने प्रान्त के शिक्षामंत्री माननीय सम्पूर्णानन्द जी हैं।

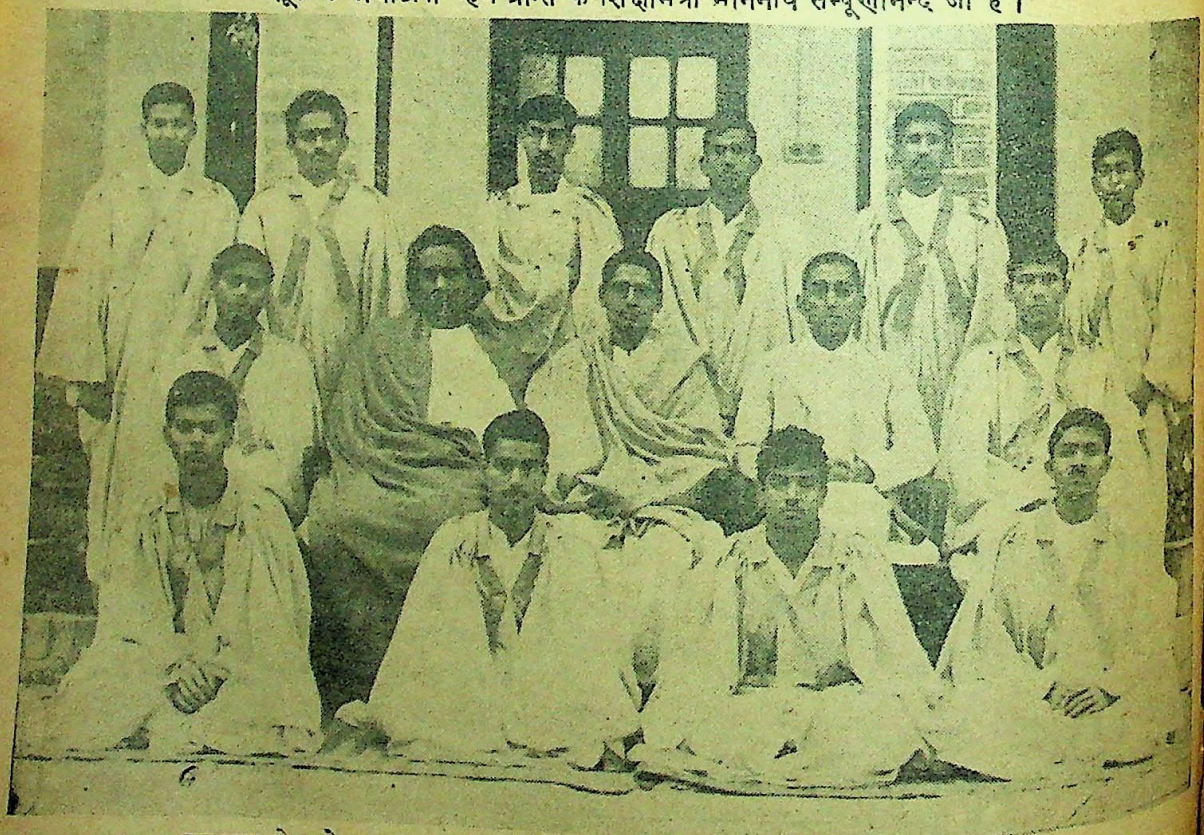

गुरुकुल के नये स्नातक। बीच में माननीय शिक्षामंत्री बाबू सम्पूर्णानन्द जी बैठे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

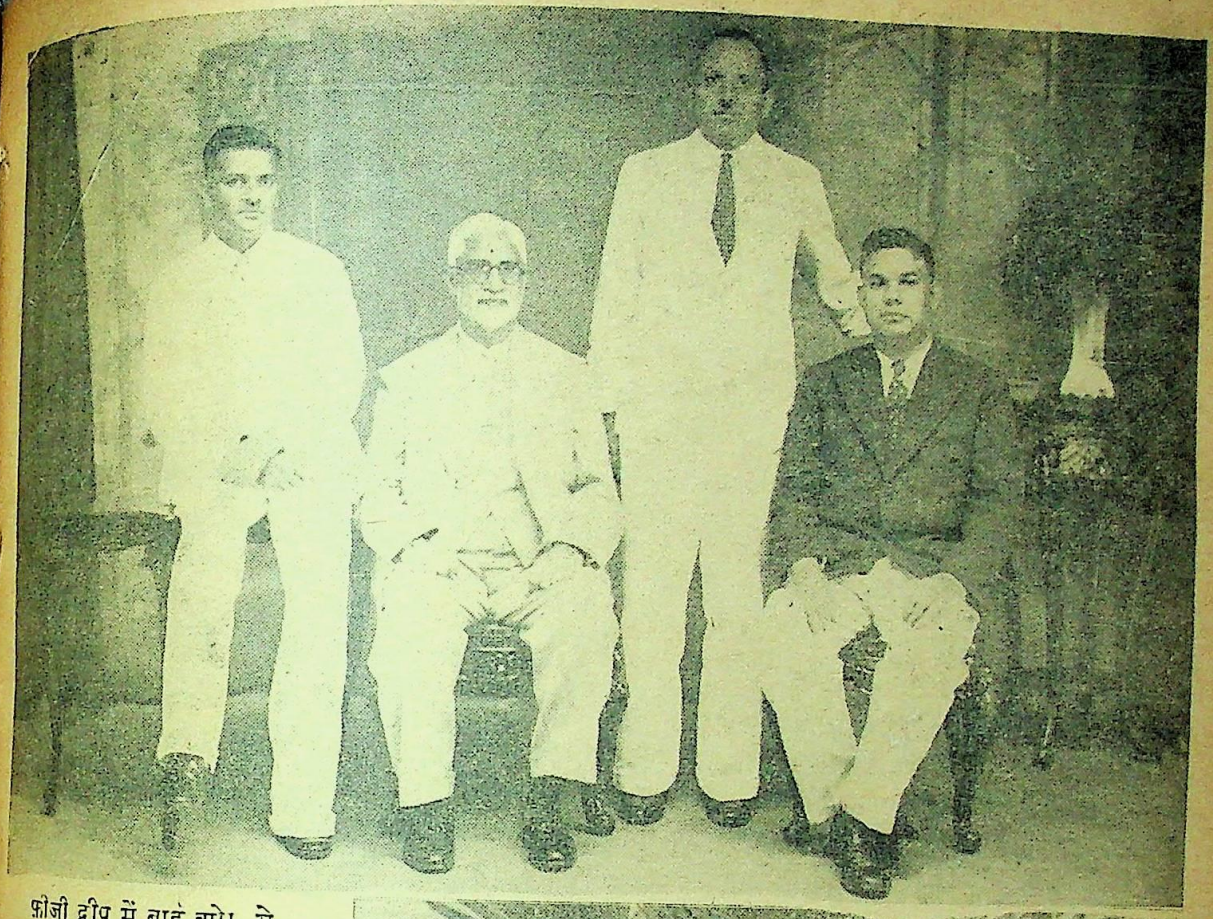

फ़ीजी द्वीप में बाईं ओर से—
(१) डा० सी० एम० गोपालन। (२) रूपचन्द वीलाराम जज, कराची (सिंध) जो आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलेण्ड, फ़ीजी होते हुए अमेरिका गये हैं। (३) बाबू सहोदरसिंह। (४) माननीय पं० विष्णुदेव एम० एल० सी० (फ़ीजी)

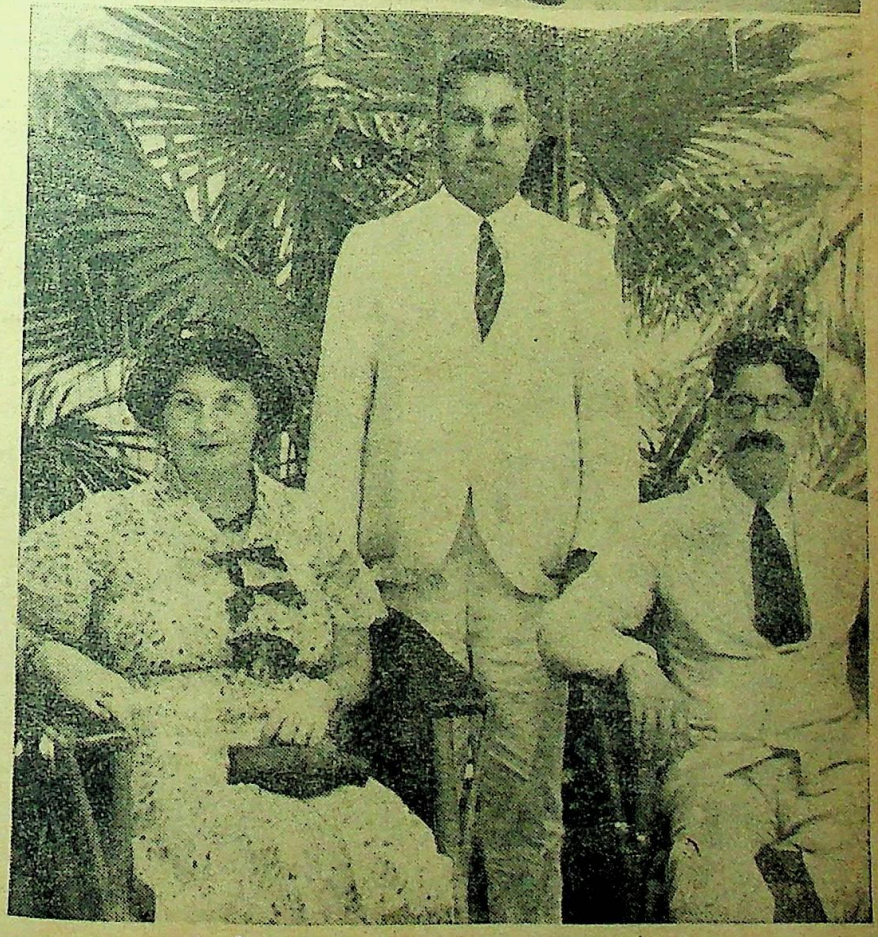

फ़ीजी द्वीप में बाईं ओर से—
(१) श्रीमती पटेल (२) माननीय पं० विष्णुदेव एम० एल० सी० फ़ीजी के प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता। (३) पं० हृदयनाथ कुंजरू।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

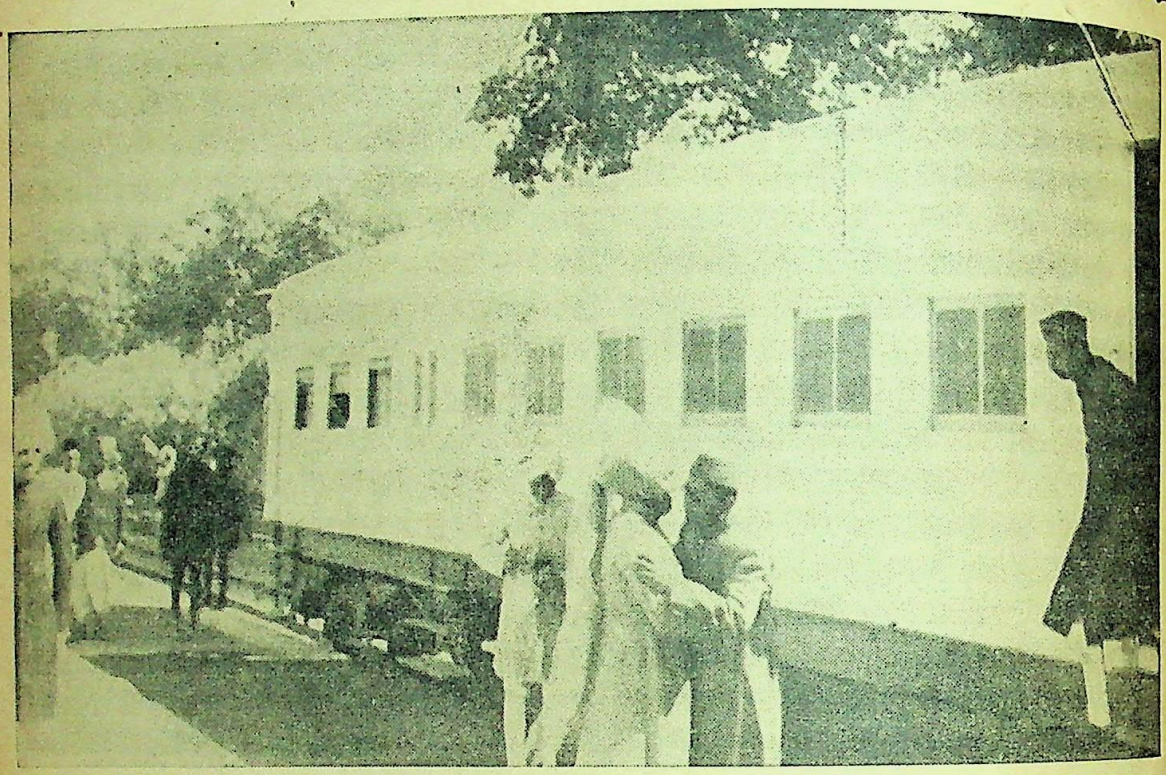

महाराज सिंधिया रामपुर के नवाब साहब का ग्वालियर में रेलगाड़ी से उतरते समय स्वागत कर रहे हैं।

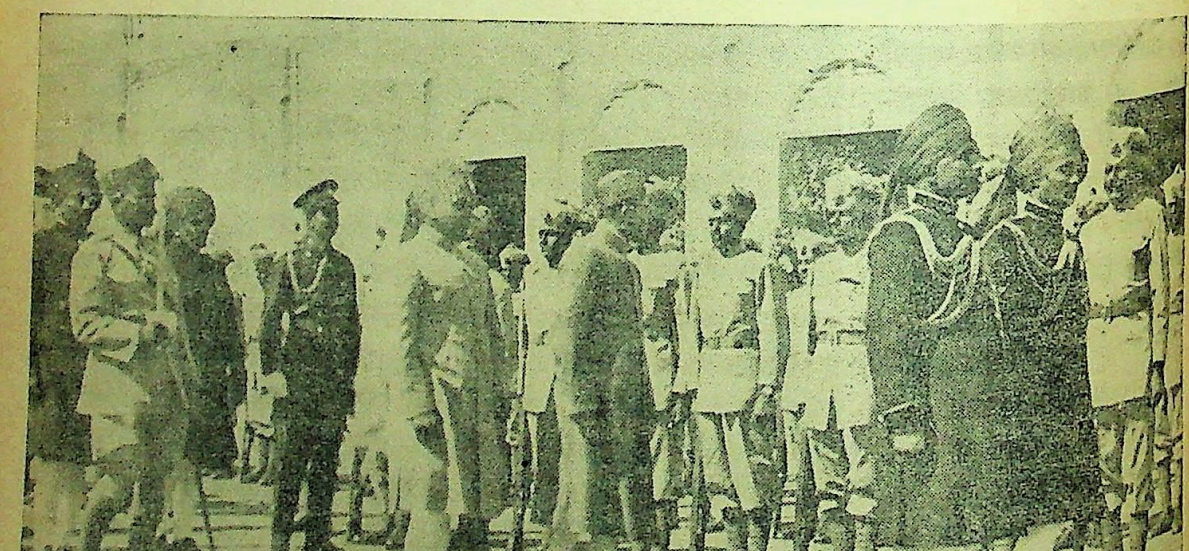

रामपुर के नवाब साहब सिंधिया महाराज के मेहमान की हैसियत से ग्वालियर में प्रवेश कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-साहित्य के त्रिदेव

'कवि ब्रह्मा होता है, सम्पादक विष्णु और समालोचक रुद्र'—यह सिद्धान्त अन्य साहित्यों पर भले ही लागू न होता हो, पर हमारे हिन्दी-साहित्य पर सोलहो आने घटित होता है। अपने कथन की पुष्टि के लिए हम नीचे हिन्दी-साहित्य के 'त्रिदेव' का परिचय दे रहे हैं।

ब्रह्मा का पहला गुण है—'स्वयंभू होना'। अर्थात् उसे कोई बनाता नहीं, पर वह सबको बनाता है। और सबको बनाने में ही आप बन जाता है। दूसरा गुण है 'रहस्य-प्रेम'। उसकी रचना इतनी रहस्यभरी होती है कि मनुष्य के दिमाग़ की तो बिसात ही क्या, स्वयं ब्रह्मा की की हुई व्याख्याओं—वेदों, उपनिषदों, शास्त्रों, आदि के द्वारा भी उसका समझ में आना कठिन होता है। तीसरा गुण है 'आत्मश्लाघा', जिसका प्रमाण पुराणों में जगह-जगह पर मिलता है और चौथा गुण है 'मिथ्याभिमान'; हज़ारों समालोचकों ने उसकी असंगति की खिल्ली उड़ाई है, पर वह स्वयं को 'विश्व-श्रेष्ठ' कहने-मानने से बाज़ नहीं आता।

हिन्दी के 'सर्वश्रेष्ठ कलाकार' में भी ब्रह्मा के उपर्युक्त गुण पूरे-पूरे पाये जाते हैं। निम्न रचना देखिए—

—"भारत के नभ का प्रभापूर्य्य
शीतलच्छाय, सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे तमस्तूर्य दिङ्मण्डल।
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान
है ऊर्मिल जल; निश्चलत्प्राण पर शत दल!
मोगल दल बल के जलद यान
दलित-पद उन्मद-नद पठान
हैं बहा रहे दिग्देश ज्ञान, शर-खरतर
बध के बिना कह, कहाँ प्रगति?
गतिहीन जीव को कहाँ सुरति
रति-रहित कहाँ सुख? केवल क्षति-केवल क्षति!
वह रत्नावली नाम शोभन
पति-रति में प्रतनु अतः लोभन
अपरिचित पुरुष, अक्षय क्षोभन धन कोई
प्रिय करालंब को सत्य यष्टि
प्रतिमा में श्रद्धा की समष्टि
मायायन में प्रिय-शयन व्यष्टि भर सोई।"

इसको कविजी की स्वयंकृत व्याख्या द्वारा समझ सकना भी कठिन है।

× × × ×

विष्णु का गुण है 'व्यापकता'। दुनिया के कण-कण की चिन्ता रखना, प्रायः निर्गुण होना, पर संसर्ग दोष से गुणवान् होकर चट बीच में कूद पड़ना। अपने भक्तों को अभयदान देना और उनके नोन-तेल की चिन्ता करना।

हिन्दी के 'आदर्श-सम्पादक' में ये समस्त गुण विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ निम्न सम्पादकीय नोट पढ़िए—

"प्रिय पाठक गण,

पूरे १ साल, ७ महीने, १३ दिन, २० मिनट और ५७ सेकण्ड तक अन्तर्धान रहने के उपरान्त मैं फिर आप लोगों की सेवा में हाज़िर हुआ हूँ। मेरे आने की ख़ास वजह यह हुई कि मुझे विश्वस्त-सूत्र से रिपोर्ट मिली कि हिन्दी में "घासलेट" की बदबू फिर से फैलने लगी है। इसी लिए तो अपनी पौने दो साल की लड़की की बीमारी की कोई परवा न करके, अपने परम स्नेही मित्र विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महात्मा गांधी तथा दीनबन्धु एण्ड्रूज़ के अनुरोधों को ठुकराकर मैं पुनः आप लोगों की सेवा-रक्षा के लिए आ गया हूँ! हिन्दी-साहित्य में फैलती हुई दुर्गंध का आभास जिस समय मुझे मिला उस समय मैं स्वर्गीय प्रिंस क्रोपाटकिन से केवल १॥ हाथ की दूरी पर बैठा था, और मेरे हाथ में 'थोरो' की 'लेक्स' का लेटेस्ट एडीशन था। पाठकों को विश्वास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना चाहिए कि मैं अब भी अराजकतावादी हूँ। मैं शीघ्र ही आपके प्रिय पत्र के पन्नों में समाजवाद की उच्छृङ्खल बाढ़ को रोकने के लिए अराजकतावाद का आन्दोलन फिर से चलानेवाला हूँ। पर इसके लिए आवश्यक है कि हमारा प्रत्येक प्रेमी पाठक विस्तार के साथ, निःसंकोच होकर निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर लिख भेजे। मेरी सुविधा के विचार से उत्तर कृपया मेरे प्राइवेट पते पर आने चाहिए।

आज-कल खाद्य पदार्थों के विषय में बड़ी अराजकता है। इसका नियन्त्रण होना आवश्यक है; हम इसके लिए सगठित आन्दोलन चलाना चाहते हैं। क्योंकि "घासलेट" के प्रचार ने मिठाइयों का मज़ा बिगाड़ दिया है। इसलिए आप लोग कृपया मुझे शीघ्र सूचित करें—कि

१—आप लोग कौन-कौन मिठाइयाँ पसन्द करते हैं?

२—वे मिठाइयाँ आप किस हलवाई से लेते हैं?

३—वह हलवाई घी कहाँ से लाता है?

हमारे पाठक हमें सदा से अपना आत्मीय मानते आये हैं। चूँकि मैं पिछले कुछ दिनों से अज्ञातवास में था और वहीं मुझे महाराज काश्मीर, महाराणा नैपाल और जेनरल च्यांगकाईशेक ने अपने-अपने प्राइवेट सेक्रेटरियों की जीवनियाँ लिखने का भार सुपुर्द किया था, अतः मैं अपने प्रेमी पाठकों की घरेलू बातें जानने से वञ्चित रहा। आशा है कि वे इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे और वापसी डाक निम्न बातों का उत्तर देकर बाधित करेंगे—

अ—आप विवाहित हैं या अभी तक अविवाहित?

आ—यदि अविवाहित हैं तो किसी सिद्धान्त-पालन के लिए या सुयोग-सम्बन्ध के अभाव से? आपका यह पत्र दोनों दशाओं में आपकी भरसक सहायता करेगा।

इ—यदि विवाहित हैं तो आपका दाम्पत्य जीवन सुखमय तो है? सन्तानें कितनी हैं? वे अच्छी तरह तो हैं?

ई—आप लोग अपनी मित्र-मंडली के पते मेरे पास भेज दीजिए जिससे उनके नाम वी० पी० भेज दी जाय और इस प्रकार आपके प्यारे पत्र का व्यापक प्रचार हो जाय।

आपका दर्शनोत्सुक
(संपादक-साहित्य-विभाग)

× × × ×

रुद्र का काम है 'रोना-रुलाना'। इसके लिए वे तीसरा नेत्र खोला करते हैं। हिन्दी-साहित्य के "क्रान्तिकारी, मौलिक और त्रिवेदज्ञ" समालोचक ने भी बड़े परिश्रम और खोजों के पश्चात् समालोचना की "बुकसेलरी-शैली" को खोल दिया है। अपनी रुद्रत्रयी में गोस्वामी तुलसीदास का सहार करते हुए आप लिखते हैं—

"तुलसीदास जी स्वर्गीय जगदीशचन्द्र वसु से भी बड़े वनस्पति शास्त्री थे। क्योंकि वे जानते थे कि (१) गूलर के फल में भुनगे होते हैं, (२) बरसात में अक-जवास पात बिन हो जाते हैं, (३) सूखत धान पर पानी पड़ने से उसे हर्ष होता है।

वे अद्भुत जीव-विज्ञान-शास्त्री थे, क्योंकि उन्होंने लिखा है—

"उमा रावनहि अस अभिमाना
जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना।
धर्म सनेह उभय मति घेरी
भइ गति साँप छछूँदर केरी।
सन्त हस गुन गहहि पय
परिहरि वारि विकार।"

वे अभूतपूर्व गणितज्ञ भी थे, देखिए—

"राम-राम को अंक है सब साधन है सून
अंक गये कछु हाथ नहि अंक रहे दस गून।
तुलसी राम सनेह करु त्यागु सकल उपचार
जैसे घटत न अङ्क नव नौ के लिखत पहार।"

वे बड़े भारी ज्योतिषज्ञ थे, देखिए—

"अधिकारी बस औसिरा भलेउ जानिबे मन्द
सुधा सजन बसु बारहौ चौथो चौथो चन्द।
रामकृष्ण थिर काज शुभ सनिवासर विश्राम
लोह महिष गज बनिज भल सुख सुपास गृह गाम।"

आश्चर्य है कि ऐसे अद्भुत वैज्ञानिक अन्वेषण करने वाले तुलसीदास को अकबरी दरबार ने डी० एस-सी० की उपाधि भी न दी! इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि तुलसीदास पर ऐसा मौलिक थीसिस लिखनेवाले समालोचक जी को इलाहाबाद विश्व-विद्यालय ने जुबली के अवसर पर भी डी० लिट् की उपाधि नहीं दी। परंतु साहित्य-सम्मेलन की उपेक्षा पर तो हमें रोष आता है आख़िर उसकी 'साहित्य-वाचस्पति' उपाधि है किस मर्ज की दवा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग नं० ३३ का नतीजा

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ३ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १००) मिला।

(१) मीरादेवी, c/o बी० बी० चटर्जी १२ बादरबागान, कलकत्ता।
(२) सेवकराम पो० आ०, मिरज़ागंज, हज़ारीबाग़।
(३) जी० पी० टंडन, १७५ खुशालपर्वत, इलाहाबाद।

द्वितीय पुरस्कार ८५) (एक अशुद्धि पर)

श्रीमती निर्मलादेवी c/o सेवकराम पो० आ० मिरज़ागंज, हज़ारीबाग़।

तृतीय पुरस्कार ५५) (दो अशुद्धियों पर)

नर्मदाप्रसाद ठेकेदार पो० आ० कारागोला, ज़िला पूर्निया।

चतुर्थ पुरस्कार ३६) (तीन अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ३ व्यक्तियों में बाँटा गया, प्रत्येक को १२) मिला।

(१) मथुराप्रसाद गुप्त c/o लक्ष्मीपुस्तकालय बुलानाला, बनारस सिटी।
(२) वरदाप्रसाद c/o नर्मदाप्रसाद कारागोला, पूर्निया।
(३) सूरजसहाय सक्सेना, क़ुर्क कलेक्टरी, उरई।

पंचम पुरस्कार २४) (चार अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित तीन व्यक्तियों में बाँटा गया, प्रत्येक को ८) मिला।

(१) मुरारीलाल, अरुण कार्यालय, जीलाक स्ट्रीट, मुरादाबाद।
(२) नारायणदत्त फुलेरिया, पोखर खालो बलटौटी, अलमोड़ा।
(३) शकुन्तलादेवी c/o सूरजसहाय सक्सेना, कलेक्टरी, उरई।

उपर्युक्त सब पुरस्कार २९ मई को भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा। केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी महाभारत का परिशिष्टाङ्क

अर्थात्

महाभारत में आये हुए मुख्य-मुख्य व्यक्तिवाचक नामों तथा महत्त्वपूर्ण विषयों की अनुक्रमणिका और

महाभारत के प्रमुख पात्र

महाभारत के सम्बन्ध में जितनी भी ज्ञातव्य बातें हो सकती हैं वे सभी इसमें दी गई हैं। इसे अपने पास रख लीजिए और महाभारत पढ़ते जाइए। जो बात आपकी समझ में न आवे, झटपट इसे उठाकर देख लीजिए। महाभारत में दिये गये विषयों को भी इस अनुक्रमणिका की सहायता से आप आसानी से खोज सकेंगे, क्योंकि इसमें हर एक व्यक्ति, स्थान तथा विषय के विवरण के साथ हिन्दी-महाभारत की पृष्ठ-संख्या भी दे दी गई है। सर्वसाधारण की सुविधा के लिए इसका मूल्य भी केवल २) दो रुपये रक्खा गया है।

ध्रुवयात्रा

सम्पादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

मूल्य ॥=) दस आने।

इस पुस्तक को दक्षिणी तथा उत्तरी ध्रुव का एक प्रकार का विस्तृत भूगोल समझिए। इसमें ध्रुवों में निवास करनेवाले जीव-जन्तुओं तथा वहाँ की वनस्पति आदि का हाल लिखा है। इसमें यह भी लिखा है कि ध्रुव क्या है, उनकी खोज किसने की और इस खोज के कारण लोगों को किस किस प्रकार के कष्ट सहन करने पड़े। पुस्तक प्रश्नोत्तर के रूप में लिखी गई है, जिससे इसकी रोचकता और भी बढ़ गई है। इसके पढ़ने से बालकों की ज्ञान-वृद्धि तो होगी ही साथ ही उनका मनोरञ्जन भी होगा।

अन्वेषण यात्री

लेखक, श्रीयुत महेशचन्द्र राय

मूल्य ॥।) बारह आने।

यह पुस्तक एक प्रकार से भौगोलिक इतिहास है। पहले संसार के कितने ही मुख्य मुख्य स्थान लोगों को मालूम नहीं थे। एक देश से दूसरे देश में जाना भी सम्भव नहीं था। वास्को डि गामा आदि कुछ अपूर्व साहसी तथा अध्यवसायशील व्यक्तियों ने अपने प्राणों की बाज़ी लगा कर देशान्वेषण के लिए निकले और बहुत-से नये नये स्थान खोज कर जनता को बतलाया। इस पुस्तक में उन्हीं वीर यात्रियों की कथा ओजपूर्ण भाषा में लिखी गई है। पुस्तक बहुत ही रोचक और उपयोगी है।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडोल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनीआर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ३४, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े के दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २५ मई तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २३ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्क-परिचय

बायें से दाहिने—

१–पुरुष श्रेष्ठ।
५–नाविक को इसी का सहारा रहता है।
८–ऐसे आदमी की कहीं इज़्ज़त नहीं होती।
९–बच्चों को स्वस्थ रखने के लिए उन्हें रोज...चाहिए।
११–यह न आता तो ऊनी कपड़ों को कौन पूछता?
१३–इसे कभी-कभी जोखम उठाना पड़ता है।
१५–कितनों के लिए यह दिल बहलाने का एक साधन है।
१७–बेकारों को अच्छा...मिलने पर बड़ी प्रसन्नता होती है।
१९–बेकारी के इस ज़माने में इसका मिलना भी कठिन हो रहा है।
२१–प्राचीन काल में इसका बहुत आदर होता था।
२४–इसे बढ़वाने के लिए लोग ज़मीन-आसमान एक कर देते हैं।
२७–इसके पाने की अभिलाषा हर एक को होती है।
२८–वन की आग।
३०–प्राचीन आर्य इसे बहुत पवित्र मानते थे।
३१–दाम चुकाने पर इसे अवश्य लेना चाहिए।
३२–यह बाँस से बनता है।
३३–इसके व्यवसाय के लिए भारतवर्ष मशहूर था।
३६–कहीं कहीं यह खाद के रूप में प्रयोग की जाती है।
३७–रथारोही।
३८–आजकल यह बहुत तरक़्क़ी पर है।

ऊपर से नीचे—

१–हर्ष। २–थका हुआ।
३–मृतक-सम्बन्धी एक कर्म।
४–इसके बनाने में परिश्रम करना पड़ता है।
५–निमिष।
६–बुद्धिमान इससे बचकर चलते हैं।
७–निर्मलता से इसकी क़ीमत बढ़ जाती है।
१०–ऐसा भोजन स्वास्थ्यदायक होता है।
१२–एक शानक।
१४–इसके लिए प्रायः लोग उत्सुक रहते हैं।
१६–इसके बिना जीवन व्यर्थ मालूम होता है।
१८–हाथ उलटा हो गया।
२०–इससे बचना हितकर है।
२२–इसमें दूध नहीं होता।
२३–दिन होने पर यह छिप जाता है।
२५–एक रोग।
२६–लोग ऐसा बनने की कोशिश करते हैं।
२९–इसमें जहाज़ चल सकते हैं।
३०–बहुत से लोग इसके लिए अपने को तैयार करते हैं।
३४–इसके लिए यह ज़रूरी नहीं है कि हमेशा चलता ही रहे। ३५–मधुरता इसका गुण है।

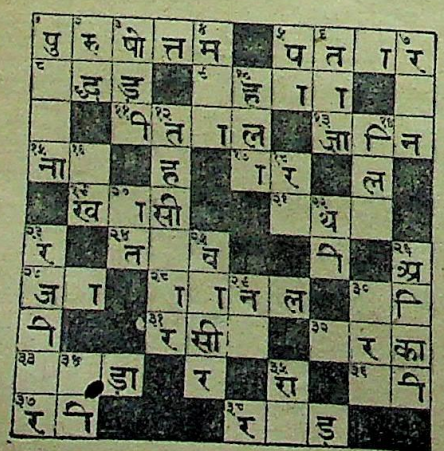

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३४ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निश्चय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

वर्ग नं० ३३ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ३३ की शुद्ध पूर्ति जो बद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।

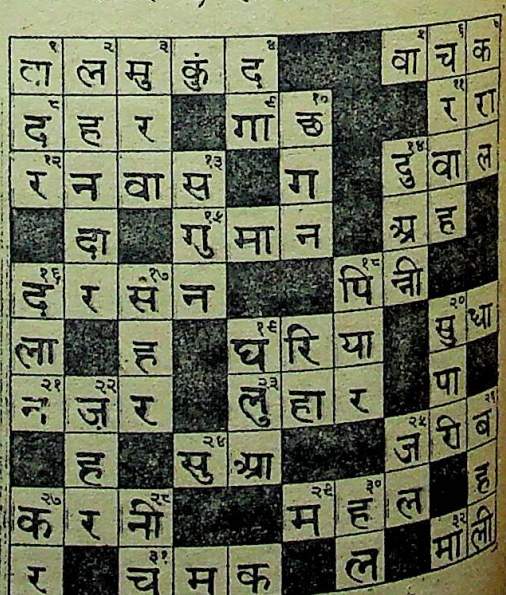

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग नं० ३३ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ३३ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति नं०...में { कोई अशुद्धि नहीं है। / १,२,३,४ अशुद्धि याँ हैं। } मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर _____

पता _____

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १५ मई के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० ३४

इंडियन प्रेस, लि०,

इलाहाबाद

मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

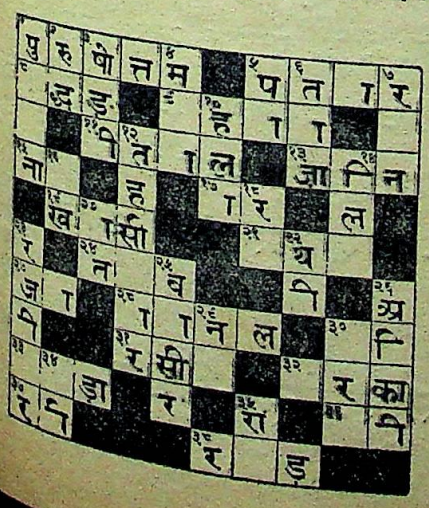

इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० ३४ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

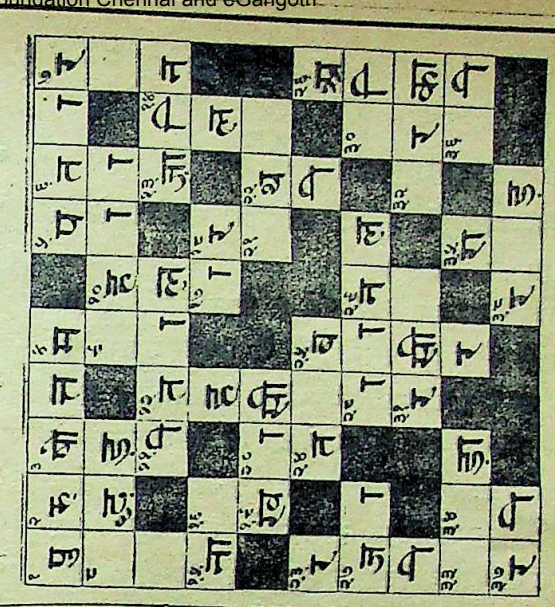

वर्ग नं० ३४ पूर्ति नं०... फ़ीस ।।)

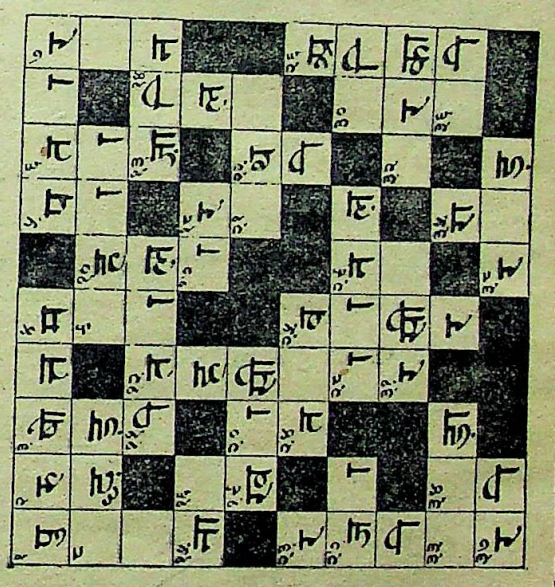

वर्ग नं० ३४ पूर्ति नं०... फ़ीस ।।।)

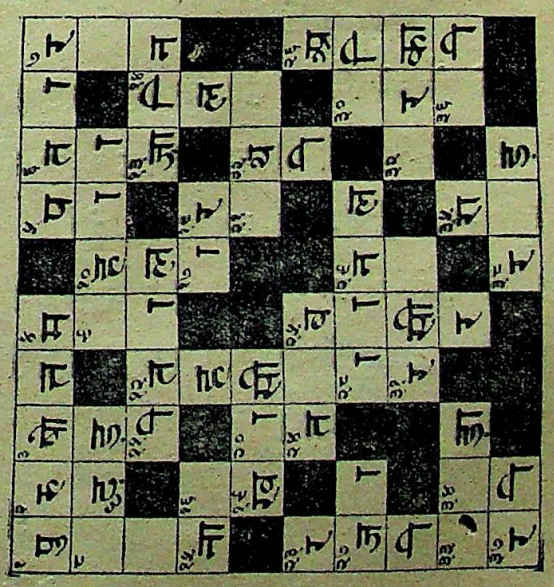

नाम

पता

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को यों ही छोड़ दें। जो दो भेजी उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगी। विशेष ब्योरा पृष्ठ ५१८ पर देखिए।

रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा रहित और पूर्ण हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग नं० ३१ पर शंका-समाधान

(१) कीचक और कोचड़

संकेत—मार्ग में इसकी अधिकता चलनेवालों के कपड़े ख़राब कर देती है।

'कीचक' का अर्थ 'बाँस' है। जिन मार्गों में बाँस अधिक होते हैं वहाँ चलनेवालों के कपड़े उलझ कर फटा ही करते हैं। 'कीचड़' अर्थ भी हो सकता है। दोनों अर्थों में जब समानता है तब कोई भी शब्द चुना जा सकता है। अतः 'कीचक' अशुद्ध है, यह कहना ठीक नहीं। क्योंकि वर्गनिर्माता भुलावे में डालने के लिए सामान्य अर्थों की अपेक्षा विशेष अर्थों को ही अधिक चुनते हैं।

(२) सुधा और सुरा

देवताओं का सुरा-प्रेम प्रसिद्ध है। पुराणों में इनके सुरापान की कथायें तो आई ही हैं स्वयं वेदों में सुरापान का उल्लेख हुआ है। शक्तिपूजा तो बिना सुरापान के सम्पन्न ही नहीं होती। अतः देवता सुरापान नहीं करते, यह कहना ठीक नहीं है। देवतागण कलियुग में ही सुरा-पान नहीं करने लगे हैं बल्कि युगों से बराबर सुरापान करते आये हैं। विश्वास न हो वाल्मीकीय रामायण खोल कर देख लीजिए।

(३) हत्था

हत्थे (हैंडिल) में जो लकड़ी लगाई जाती है वह चिकनी रहती है, जिससे पकड़नेवाले के हाथों को छील न दे, और मज़बूत तो होती ही है; यदि मज़बूत न रहे तो साधारण झटके में टूट-फट जाय। अतः यह संकेत कि—'इसकी लकड़ी चिकनी व मज़बूत होती है'—हत्थे (हैंडिल) पर ही ठीक-ठीक घटता है। अतः "हत्था" ही ठीक है। इस शब्द पर शंका की कोई गुंजाइश ही नहीं है।

आपका
वर्गनिर्माता

नोट—आशा है कि आगामी पूर्तियों पर भी प्रतियोगी-गण अपने-अपनी उचित शंकायें लिखकर शीघ्र भेजेंगे। शंकायें यथासम्भव साफ़-साफ़, काग़ज़ में एक ओर और स्पष्ट लिखनी चाहिए; तथा अपना नाम व पता भी पूरा-पूरा देना चाहिए।

वर्ग-मैनेजर

प्रतियोगी नोट कर लें

डाकख़ाने के नये नियम के अनुसार पोस्टल आर्डरों पर लगे हुए फ़ालतू टिकट रद्दी समझे जाते हैं। अतः प्रतियोगियों को चाहिए कि वे कूपनों की फ़ीस यदि पोस्टल आर्डरों द्वारा भेजना चाहें तो, पूरी रक़म के पोस्टल आर्डर ही भेजें। किसी पोस्टल आर्डर पर टिकट लगाना व्यर्थ होगा। डाकख़ाने से आठ आना, एक रुपया और इसी आनुपातिक रक़म के पोस्टल आर्डर मिल सकते हैं। जो प्रतियोगी पोस्टल आर्डरों पर टिकट लगाकर भेजेंगे उनकी पूर्तियाँ अनियमित क़रार दी जायँगी।

प्रबंधक सरस्वती-वर्ग-विभाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

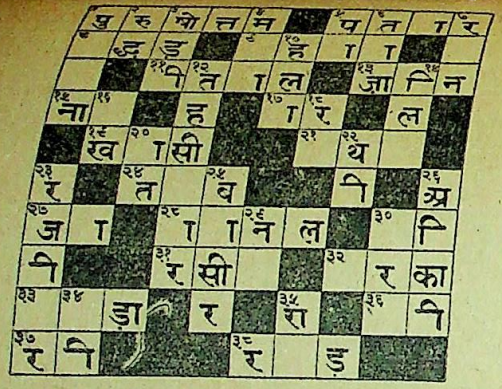

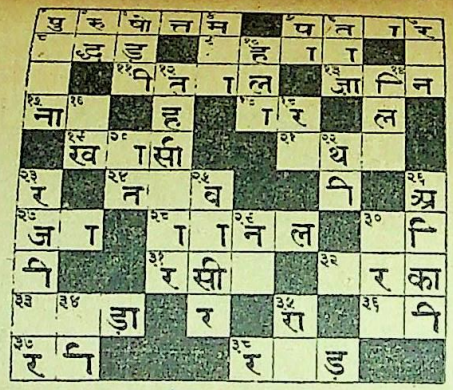

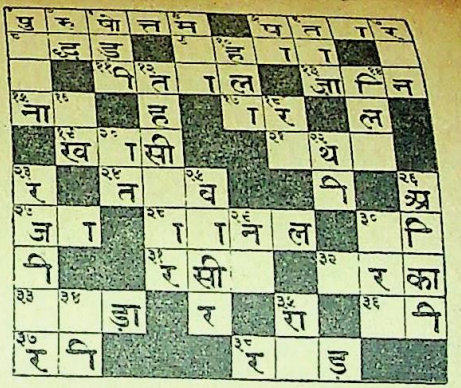

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३४ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० ३४ पूर्ति नं०... फ़ीस ॥)

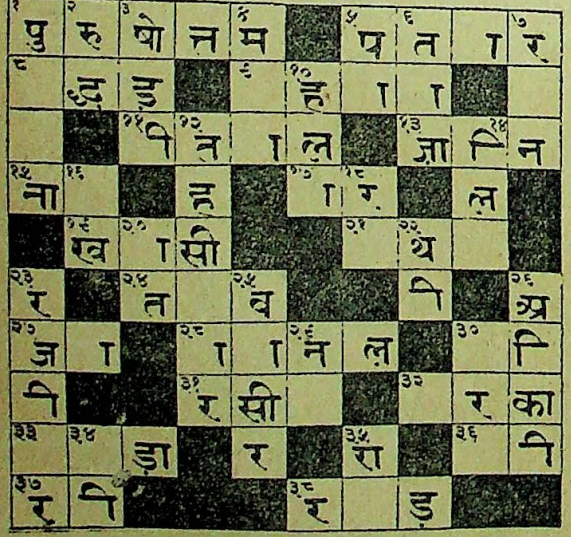

वर्ग नं० ३४ पूर्ति नं०... फ़ीस ॥)

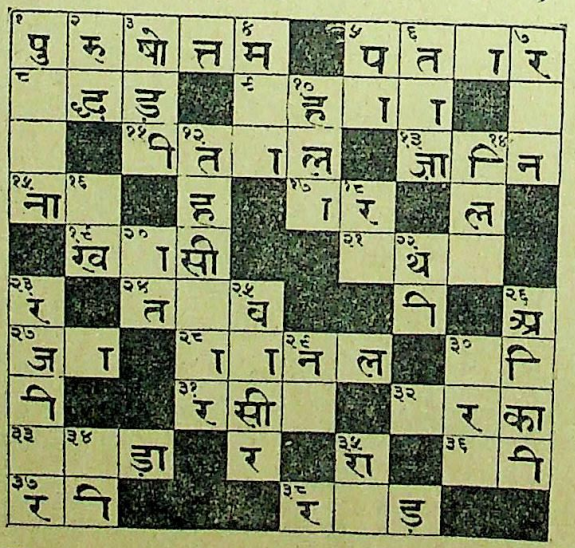

वर्ग नं० ३४ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

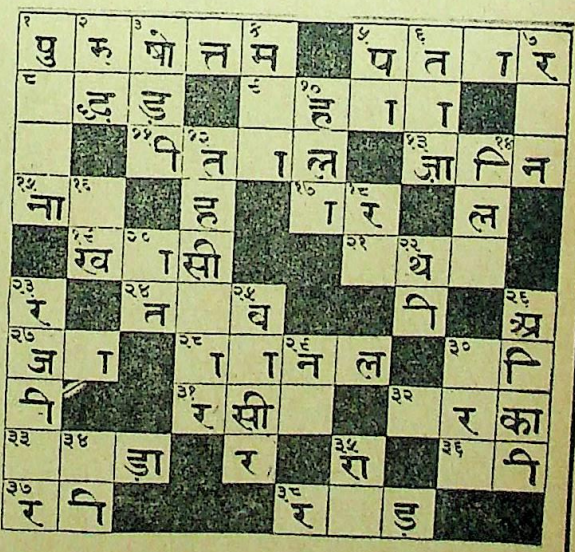

नाम

पता

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काटकर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को यों ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ ५१८ पर देखिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक सूचनायें

(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० ३४ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो आने आली छोड़ देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर ३४ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २६ मई सन् १९३९ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

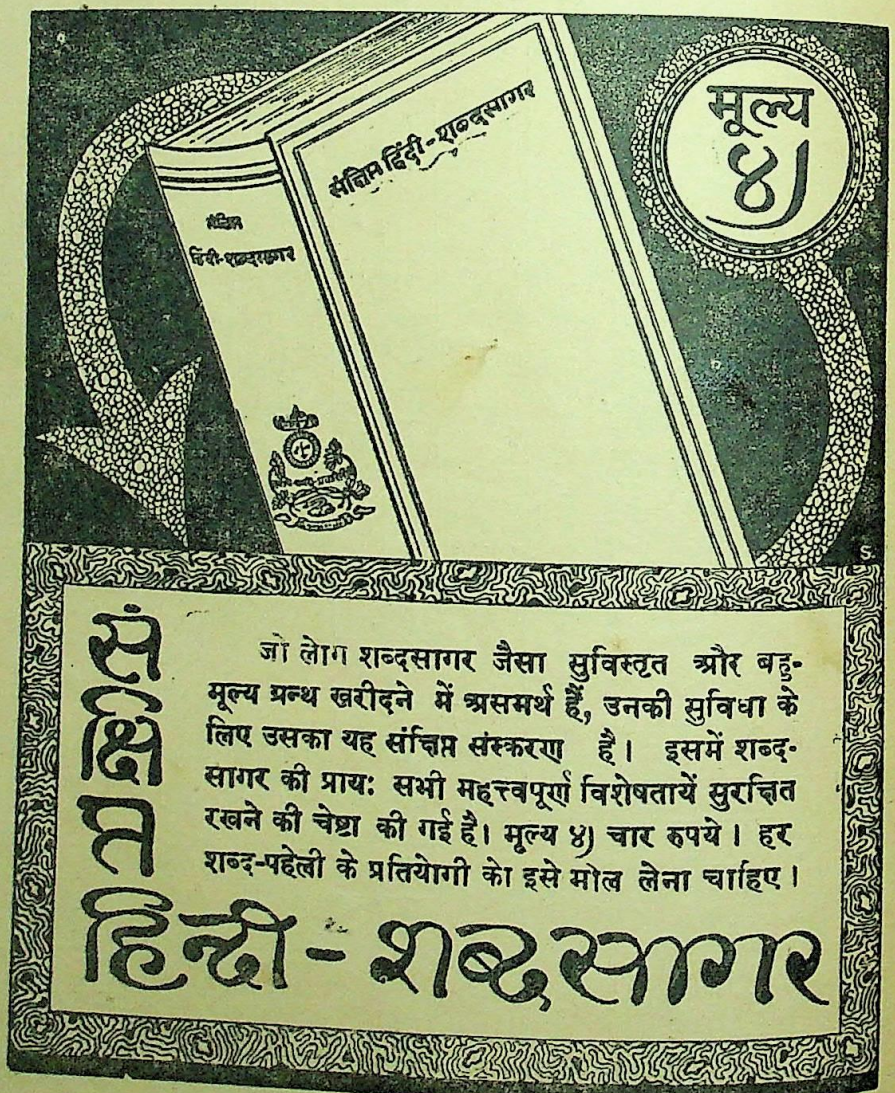

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

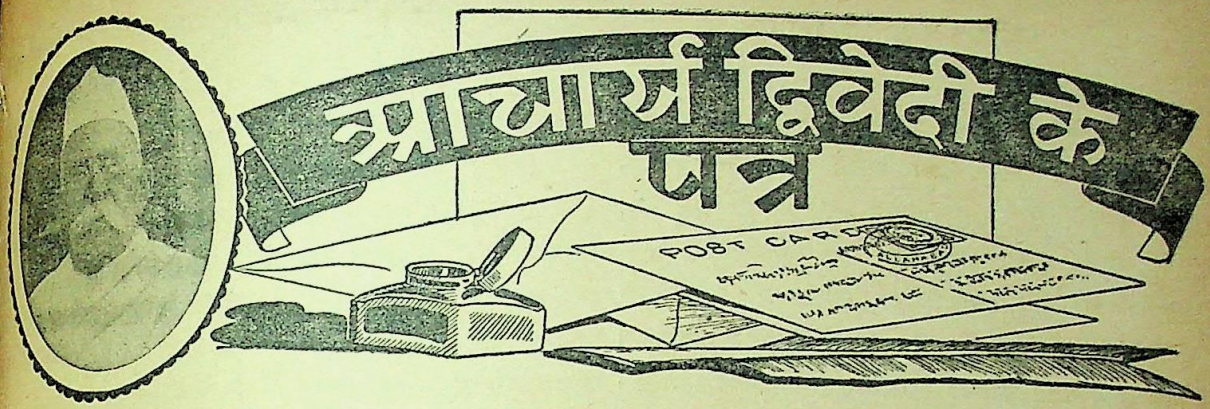

ये पत्र पंडित प्रेमवल्लभ त्रिपाठी धर्मशास्त्राचार्य, काशी का लिखे गये थे। अफ़सोस, द्विवेदी जी पूर्ण पुस्तक नहीं देख पाये। उनके निधन के दूसरे दिन पुस्तक का पैकेट पहुँचा, जिसे उनके भानजे ने वापस करते हुए लिखा कि मामा जी दिवङ्गत हो गये, इससे लौटाता हूँ।

(१)

दौलतपुर
ज़िला रायबरेली
५ जुलाई ३८

श्रीमत्सु धर्म्मशास्त्राचार्यमहोदयेषु प्रणतयो विलसन्तु।

आज सुबह उठकर अपने कमरे में आया। आँखें बन्द करके प्रार्थना करने लगा—

पापः खलोऽयमिति नार्हसि मां विहातुं
किं रत्नया कृतमतेरकृतोभयस्य।
यस्मादसाधुरधमोऽहमपुण्यकर्म्मा
तस्मात्त्वामस्मि नितरामनुकम्पनीयः॥

इतने ही में एक राजस्टरी शुदह पैकेट डाकख़ाने से मिला। भेजनेवाले कोई D. L. Shah, I. F. S., (Deputy Conservator of Forests,) Cawnpore मालूम हुए। समझ में न आया, ये कौन महाशय हैं।

ख़ैर पैकेट खोला तो आपका पत्र मिला। साथ ही ५४४ पृष्ठों तक 'स्तुत-कुसुमाञ्जलि' की कापी। यत्र तत्र देखा।

विश्वास कीजिए आपकी इस सत्कृति को देखकर और प्राप्त करके मुझे जो सुख, समाधान और सन्तोष हुआ, उसकी इयत्ता नहीं। मुझे तो यह पुस्तक क्या एक निधि-सी मिल गई। मुझे स्वप्न में भी कभी यह ख़्याल नहीं आया था कि मेरे सदृश अल्पज्ञ और अपुण्यकर्म्मा का पृष्ठपोषक भी कभी कहीं मिलेगा। उस विचार को आपने असत्य साबित कर दिया। धन्योऽसि।

शङ्करः शं करोतु ते

महाराज, आपने बड़ा काम किया। संस्कृत और हिन्दी दोनों टीकायें परमोत्तम हैं। हिन्दी को तो टीका नहीं, अनुवाद ही कहना चाहिए। कवि के भाव को आपने बड़े सुन्दर शब्दों में व्यक्त कर दिया है।

इस 'कुसुमाञ्जलि' की जैसी भक्तिभावपूर्ण कविता संस्कृत-साहित्य में भी शायद ही अन्यत्र कहीं मिले। श्रीमद्भागवत में कुछ स्थल ऐसे ज़रूर हैं जिनके आकलन से हृदय द्रवीभूत हो जाता है—

जैसे—नोचेद्वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा
ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते॥

मैं आप को शतशः साधुवाद प्रदान करता हूँ। आपने इस पुस्तक को लिखकर एक बहुत ही पुण्य का काम कर दिया है।

आशा है, कविता के प्रेमी और रसिक भक्त इस पुस्तक से परमानन्द की प्राप्ति कर सकेंगे।

मैं बहुत बूढ़ा हूँ। दृष्टि भी क्षीण हो रही है। अधिक नहीं लिख सकता। क्षम्यताम्। कृतार्थीकृत

महावीरप्रसाद द्विवेदी

(२)

दौलतपुर (रायबरेली)
ता० २०-१०-३८

नमो नमस्ते विदुषांवराय।

१६ ता० का कृपापत्र मिला। स्तुतिकुसुमाञ्जलि के फ़ार्म भी। प्राक्कथन पढ़ा। परमानन्द हुआ। आप बड़े ही भावुक और सच्चे काव्य-पारज्ञाता हैं। काशी में इतने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डितों और शिवभक्तों के होते हुए भी किसी और की नज़र 'जगद्धर भट्ट' की इस अद्भुत कृति की ओर न गई, यह बड़े ही आश्चर्य और परिताप की बात है। ख़ैर, आपने विश्वनाथ जी की नगरी की इज़्ज़त रख ली। भगवान् सदाशिव आपका कल्याण करें।

आपने जो अपनी रचित स्तुति की नक़ल भेजी उसे पढ़कर मेरे नेत्र ही नहीं, मेरा हृदय भी आर्द्र हो उठा। आपकी कृति जगद्धर की कृति का पूर्णतया अनुसरण करती है।

जो फ़ार्म आपने पहले भेजे थे उन्हें तो एक शिवभक्त हाथ-पैर जोड़ कर उठा ले गये। जो फ़ार्म आज भेजे हैं वे भी इसी तरह जायगे। जब पुस्तक पूरी छप जाय और जिल्द बँध जाय तब उसकी एक ही कापी आप मेरे लिए भेजने का कष्ट उठावें।

विनीत
महावीरप्रसाद द्विवेदी

(३)

दौलतपुर (रायबरेली)
२९-१०-३८

नमोनमः।

सरस्वती-संपादक पं० देवीदत्त शुक्ल को लिखा। उनका उत्तर यह है—

२०-१०-३८ का आपका कृपापत्र मिला। मैंने उसको मैनेजर बाबू को दिखाया। उन्होंने आज ही बनारस को पत्र लिख कर उक्त पुस्तक मगवाई है। वे उसे देखना चाहते हैं। यदि बिकनेवाली होगी तो ज़रूर ले लेंगे।

मुनासिब समझिए तो उन्हें आप ख़ुद भी अब लिखें या जाकर मिलें। अगर छपाई का ख़र्च और उसके ऊपर कुछ और भी आपको मिले तो कापीराइट इंडियन प्रेस को बेच दीजिए।

विनीत
महावीरप्रसाद द्विवेदी

(४)

दौलतपुर रायबरेली
ता० २९-९-३८

नमो नमस्ते विबुधोत्तमाय।

मेरा ता० ५ जुलाई का पत्र मिला होगा। 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि' की दो प्रति भेजने की कृपा करें। एक मेरे लिए और दूसरा मेरे एक शिवभक्त मित्र के लिए। अवश्य कृपा होगी।

आपका
महावीरप्रसाद द्विवेद

निवेदन— १७-४-३९

सृजति तरवदशेष गुणा करं
पुरुषरत्नमलंकरण भुवः।
तदपि यत्क्षणमङ्गकरोति तत्,
अहह! कष्टमपण्डितता विधेः॥

शीलाभट्टारिका।

मैं भी एक कूटस्थ, द्विवेदी जी का बहुत पुराना कृपापात्र हूँ। झाँसी से आने के बाद जुही, कानपुर में 'सरस्वती' का सम्पादन जब होता था तब मैं भी, सेवा में, जयपुर से पहुँचा था। उस समय उनकी 'काव्य-मञ्जूषा' मेरे स्वर्गीय मित्र श्री चन्द्रधर गुलेरी (सहपाठी) और मिस्टर जैनवैद्य ('नागरीभवन' के संस्थापक) जी ने प्रकाशित की थी। उसके बाद अजमेर आते-जाते हुए द्विवेदी जी हमी लोगों की टूटी-फूटी सेवाओं को स्वीकृत करने और आवश्यक हिन्दी-साहित्य का उपदेश आदि देने के विचार से १।२ बार ठहरे भी थे। उसी समय से लेख लिखना सीखा और 'सरस्वती' में कई लेख उन्हीं के इशारे पर लिखे भी थे। उस समय सम्पादकों में जो विनोद-पूर्ण संघर्ष होता था उससे मैं पूर्णरूप से परिचित हूँ। 'भाषा की अनस्थिरता' में व्याकरण से शुद्ध 'अनस्थिरता' को सिद्ध करके यहाँ से लिख भेजा था।

दौलतपुर में धर्मपत्नी के स्मारक-मन्दिर में जो शिलालेख है उसका मैंने ही ढाँचा बनाया था। अनेक बातें हैं। क्या क्या लिखूँ? प्रतिवर्ष मैं यहाँ से जब स्वदेश अयोध्या को जाता तब अवश्य जुही दोपहर में पहुँचता, ख़ूब जलपान करता और ख़ूब पान खाता एवं विदा होते समय आग्रहपूर्वक एक पान प्रसाद-रूप भी माँग कर खाता था।

मेरे पास बहुत से पत्र उनके थे, पर अब वे गड़बड़ हो चुके हैं। गत वर्षों में जो पत्र मेरे पिता म० म० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी जी (अध्यक्ष, संस्कृत कालेज, जयपुर) के स्वर्गवास तक (गतवर्ष) आये थे, उनमें जो मिल गये हैं, प्रकाशनार्थ भेजता हूँ। बस!

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१)

दोलतपुर, रायबरेली
५-११-२६

नमोनमः

बहुत समय बाद आपका पोस्टकार्ड मिला। खुशी हुई।

मैं अपना हाल क्या लिखूँ। ४ महीने कानपुर में म्रियमाण दशा में पड़ा रहा। ३ महीने सिर्फ़ दूध पीकर रहा। मरते मरते बचा। कुछ दिन नरक यातनायें और भोगनी हैं। किसी तरह जीता हूँ। चल फिर बहुत कम सकता हूँ। ईश्वर करे आपकी चिन्तायें दूर हो जायँ। कष्टों का सामना करना ही चाहिए। भयभीत होने से उनसे बचाव नहीं हो सकता। विनयी

म० प्र० द्विवेदी

(२)

दौलतपुर रायबरेली
१९-८-२७

श्री मत्सु सादरं प्रणतयः

१५ का पोस्टकार्ड मिला। पिता के स्थान में आप जयपुर पहुँच गये, यह सुनकर खुशी हुई। अब वहीं जम कर काम कीजए। पुस्तकादि लिखने का सिलसिला भी जारी रखिए। बहुत बाद आपके कुशल समाचार मिले, इससे बहुत सन्तोष हुआ।

इस समय मैं उदर व्याधि से पीड़ित चारपाई पर पड़ा हूँ। अधिक लिख नहीं सकता। आपका

म० प्र० द्विवेदी

(३)

दौलतपुर (रायबरेली)
२४-१२-२८

सादर प्रणाम

पोस्टकार्ड मिला। मैं इधर बहुत बीमार रहा। २ महीने कानपुर में म्रियमाण दशा में था। परसों लौटा हूँ। बहुत कमज़ोर हूँ। डाक्टरों ने लिखने पढ़ने की सख्त मुमानियत कर दी है।

रामायण-समालोचना का मूल्य पुस्तक पर लिखा नहीं। वह पुस्तक भी इस समय मेरे पास नहीं। भेजनेवाले के कार्ड पर यह पता है—

बालकृष्ण पाण्डुरङ्ग ठकार,
मालिक चिपलूनकर कम्पनी,
बुधवार पेठ, पूना।

आशा है आप अच्छी तरह हैं। मुझ पर पूर्ववत् कृपा बनी रहे। आपका

म० प्र० द्विवेदी

(४)

दौलतपुर (रायबरेली)
९-२-१९३०

श्रीमत्सु सादरं प्रणामाः

बहुत दिनों के बाद आपका पोस्टकार्ड मिला। आपके कुशल समाचार जानकर परमानन्द हुआ। आप कभी-कभी मेरा स्मरण कर लिया करते हैं, इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ।

भाई साहब मेरा शरीर अब जीर्ण होता चला जा रहा है। लिखने पढ़ने की शक्ति बहुत कम रह गई है। सिर्फ़ दूध पीकर शरीररक्षा कर रहा हूँ। बाहर बहुत कम जाता हूँ। गर्मियों में यदि कानपुर गया तो आपको सूचना दूँगा। परमात्मा आपको प्रसन्न रक्खे। कृष्णदत्त प्रसन्न हैं।

कृपापात्र

म० प्र० द्विवेदी

(५)

दौलतपुर (रायबरेली)
नमोनमः, २७-९-३३

बाद मुद्दत के आपके पोस्टकार्ड के दर्शन हुए।

यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ कि आपके पिता जी के नेत्रों की ज्योति जाती रही। इस बुढ़ापे में यह व्याधि और भी अधिक क्लेशकारिणी होती है। उनको मेरा हाथ जोड़कर प्रणाम।

ईश्वर से प्रार्थना है कि आपके दोनों पुत्र विद्वान हों, दीर्घायु हों और यशस्वी हों।

भाई मेरे, मैं किसी तरह कालक्षेप करता हुआ, महाप्रस्थान की राह देख रहा हूँ। शरीर अत्यन्त निर्बल है। चल फिर कम सकता हूँ, नींद भी बहुत कम आती है। शाक और दूध पर ही रहता हूँ। परमात्मा से निवेदन कीजए, मुझे अब और अधिक कष्ट न दे। प्रणत

म० प्र० द्विवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

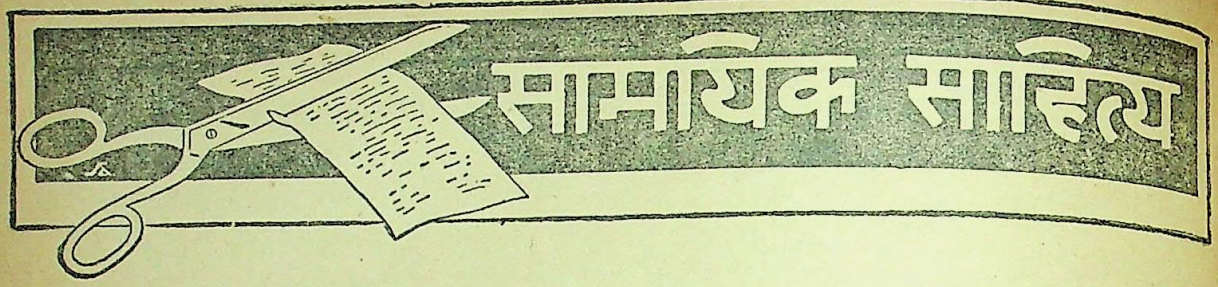

रोमन लिपि बनाम देवनागरी

कदाचित् अरबी और नागरी लिपि-सम्बन्धी अप्रिय विवाद को देखकर हमारे कुछ राजनैतिक नेता जिनमें पंडित जवाहरलाल नेहरू और राष्ट्रपति बाबू सुभाषचन्द्र बसु मुख्य हैं, यह राय दे रहे हैं कि भारत में रोमन लिपि का प्रचार होना चाहिए। यही नहीं, इस दिशा में क्रियात्मक पग तक उठाया गया है और आसाम की प्रान्तीय सरकार ने रोमन लिपि का प्रचार आरम्भ कर दिया है। ऐसी दशा में इस सम्बन्ध में राष्ट्र के सबसे बड़े नेता महात्मा गांधी के विचार जानने योग्य हैं। उन्होंने स्वयं अपने 'हरिजन' में अपने विचार स्पष्ट रूप से लिख दिये हैं। उनका वह लेख इस प्रकार है—

मैं अपनी यह राय तो ज़ाहिर कर ही चुका हूँ कि हिन्दुस्तान में सर्वमान्य हो सकनेवाली अगर कोई लिपि है तो वह देवनागरी ही है, फिर भले ही उसमें सुधार करने की गुंजाइश हो या न हो। शुद्ध वैज्ञानिक और राष्ट्रीय दृष्टि से देवनागरी की श्रेष्ठता मुसलमान भाई अपनी राज़ी से जब तक स्वीकार नहीं करते, तब तक उर्दू या फ़ारसी लिपि भी ज़रूर जारी रहेगी। इन दो लिपियों के साथ रोमन लिपि का मेल नहीं बैठता। रोमन लिपि के समर्थक तो इन दोनों ही लिपियों को रद कर देने की राय देंगे, किन्तु विज्ञान तथा भावना दोनों ही दृष्टियों से रोमन लिपि नहीं चल सकती। रोमन लिपि का मुख्य लाभ इतना ही है कि छापने और टाइप करने में यह लिपि आसान पड़ती है। किन्तु करोड़ों मनुष्यों को इसे सीखने में जो मेहनत पड़ती है उसे देखते हुए इस लाभ का हमारे लिए कोई मूल्य नहीं। लाखों, करोड़ों को तो देवनागरी में या अपने-अपने प्रान्त की लिपि में ही लिखा हुआ अपने यहाँ का साहित्य पढ़ना है, इसलिए उन्हें रोमन लिपि ज़रा भी सहायता नहीं पहुँचा सकती। करोड़ों हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए भी देवनागरी का सीखना आसान है, क्योंकि अधिकांश प्रान्तीय लिपियाँ देवनागरी से ही निकली हैं। मैंने मुसलमानों का समावेश जान-बूझकर किया है। मसलन, बंगाल के मुसलमानों की मादरी ज़बान बंगाली है और तामिलनाड़ के मुसलमानों की तमिल। उर्दू प्रचार के वर्तमान आन्दोलन का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि हिन्दुस्तान भर के मुसलमान अपनी-अपनी प्रान्तीय मातृभाषा के अलावा उर्दू भी सीखेंगे। किन्हीं भी परिस्थितियों में कुरान शरीफ़ पढ़ने के लिए उन्हें अरबी तो सीखनी ही पड़ेगी। मगर करोड़ों हिन्दू मुसलमानों के लिए रोमन लिपि का प्रयोजन तो अँगरेज़ी सीखने के सिवा कुछ भी नहीं। इसी तरह हिन्दुओं को अपने धर्म-ग्रन्थ मूल भाषा में पढ़ने के लिए देवनागरी सीखने की ज़रूरत पड़ती है और वे उसे सीखते ही हैं। इस तरह देवनागरी लिपि को सर्वमान्य बनाने के पीछे दृढ़ कारण है। अगर हम रोमन लिपि को दाख़िल करें तो वह निरी भार रूप ही साबित होगी और कभी लोक-प्रिय नहीं बनेगी। सच्ची लोक-जागृति जब हो जायगी तब इस प्रकार के भार रूप दबाव रह ही नहीं सकते। और जन-जागृति तो बहुत जल्दी आनेवाली है। फिर भी लाखों करोड़ों को जगाने में वक्त लगेगा। जागृति कोई ऐसी चीज़ तो है नहीं जो साँचे में ढालकर बनाई जा सकती है। देश के कार्यकर्ता तो केवल लोगों की मनोवृत्ति की पेशबीनी करके उसके आने में जल्दी कर सकते हैं।

रियासतों में उत्तरदायी शासन

हिमालय-रियासती-प्रजा-सम्मेलन के सभापति के पद से हाल में कांग्रेस के प्रधान नेता श्री भूलाभाई देसाई ने एक महत्त्वपूर्ण भाषण किया है जिसमें उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषित किया है कि रियासतों में उत्तरदायी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शासन की स्थापना होनी चाहिए। उनके भाषण का एक महत्त्वपूर्ण अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

कुछ रियासतों में उत्तरदायी शासन का प्रश्न साम्प्रदायिक होआ खड़ा करके ढक दिया जा रहा है। मैं यह साफ़ कह देना चाहता हूँ कि हम लोग जो उत्तरदायी शासन चाह रहे हैं वह सबके लिए है। हर बात में साम्प्रदायिकता का शोर मचाना बहुत बुरी बात है। राष्ट्रीय प्रश्नों का विचार राष्ट्रीय दृष्टि से करना चाहिए। साम्प्रदायिकता की पराकाष्ठा का पता इसी से लग जाता है कि इँग्लैंड और भारत के व्यापारिक समझौतेवाली बहस में श्री जिन्ना ने कह दिया कि मैं इससे अपना कोई वास्ता नहीं समझता क्योंकि इसमें मुसलमानों की बात नहीं है। मैं श्री जिन्ना साहब से पूछता हूँ कि पंजाब में मुसलमान जो रुई उपजाते हैं उस पर क्या 'सुभान अल्ला' लिखा रहता है और हिन्दू जो रुई उपजाते हैं उस पर गायत्री मन्त्र लिखा रहता है? मेरी समझ में इस तरह अपनी प्रश्नों को बिगाड़ना बड़ी भारी नासमझी है और ऐसा करना जानबूझकर लोगों को गुमराह करना है। भारत की प्रधान रियासत हैदराबाद में ५ से अधिक व्यक्ति इकट्ठे नहीं हो सकते। क्या इससे यह ज़ाहिर नहीं होता कि राजा लोग प्रजा का बल बढ़ते देखकर घबरा गये हैं? वे लोग प्रजा के संगठन से डर गये हैं और जनता की योजना में बाधा डालना चाहते हैं। आप लोग जनता के अधिकारों पर लगाई जानेवाली इस तरह की सारा अनुचित रुकावटों का डटकर विरोध कीजिए क्योंकि वे रुकावट आपके आत्म-सम्मान को घटानेवाली हैं। मैं चाहता हूँ कि आप लोग अपना डर दूर भगा दीजिए। ऐसा किये बिना आप लोग सत्याग्रह का शस्त्र ग्रहण नहीं कर सकेंगे क्योंकि वह शस्त्र वीरों के लिए ही है आप लोगों को हिंसा से बचे रहना चाहिए क्योंकि सरकारी दमन से आपके आन्दोलन को जितना नुक़सान नहीं होगा उतना हिंसा से होगा। इधर वर्षों से राजा और प्रजा के सम्बन्ध की मूल भावना ही बिलकुल बदल गई है। राजा लोग अपनी प्रजा के प्रति अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते। उन लोगों ने अपनी प्रजा को ग़ुलाम बना रखा है और उसे चूसा करते हैं। रियासतों में जागृति के चिह्न दिखाई दे रहे हैं।

मुसलमानों की बँटवारे की माँग

मुसलमान राजनीतिज्ञता में बढ़े चढ़े माने गये हैं। कदाचित् इसी से उन्होंने यह माँग की है कि भारत में उनका हिस्सा बाँट दिया जाय। इसके लिए उनके एक विद्वान् नेता डाक्टर लतीफ़ ने एक योजना तक तैयार कर डाली है, जो इस प्रकार है—

१९३५ के इण्डिया एक्ट का विधान मुसलमानों को निम्न कारणों से ग्राह्य नहीं है:—(क) क्योंकि यह इस धारणा पर बनाया गया है कि भारतवर्ष एक राष्ट्र है जब कि भारतवर्ष दो ऐसे सम्प्रदायों में विभक्त है जिनकी संस्कृति तथा सभ्यता मौलिक रूप से भिन्न है। (ख) क्योंकि प्रान्तों में तथा केन्द्र में जो सरकारें होंगी वह संख्या प्रधानों की अर्थात् हिन्दुओं की होगी। (ग) क्योंकि इसके ज़रिये केन्द्र में, अधिकांश प्रान्तों में तथा दो चार को छोड़ कर सब रियासतों में मुसलमानों की बड़ी दुर्दशा रहेगी। (घ) क्योंकि इस्लामी ढङ्ग पर वह मुसलमानों को आर्थिक उन्नति तथा सांस्कृतिक विकास करने नहीं देगा। (ङ) यह मुसलमानों के ऐतिहासिक महत्त्व पर पानी फेरता है तथा उनको ऐसी हैसियत प्राप्त करने से रोकता है जिससे कि वे देश पर एक सुन्दर असर डाल सकते।

इन्हीं कारणों से भारतीय मुसलमानों की ब्रिटिश पार्लियामेंट से यह प्राथना है कि वह इण्डिया एक्ट को रद कर एक ऐसी योजना बनावे जिससे भारतवर्ष सांस्कृतिक रूप से एक वर्ग स्वाधीन राष्ट्रों का संघ बन सके। ऐसे मंडलों के बटवारे में आबादियों को हटाने में कुछ समय लगेगा। आबादी हटाने के पहले ही मण्डल ठीक कर लिया जाय। आबादी के हटाने से जायदाद के हरजाने का सवाल आयेगा, सो उसे उन मंडलों की सरकारें आपस में तय कर सकती हैं।

मुसलमानों को निम्नलिखित मंडल दिये जायँ—

(क) उत्तर-पश्चिम मंडल—इसमें पञ्जाब, काश्मीर, सीमा-प्रान्त, बिलोचस्तान, सिन्ध तथा खैरपुर और बहावलपुर रियासतें हैं। यह मुस्लिममंडल माना जाय जिसमें तीन करोड़ मुसलमान होंगे, किन्तु चूँकि इसमें सिक्ख तथा हिन्दू भी हैं तथा कुछ सिक्ख तथा हिन्दू रियासतें हैं, इसलिए यह उचित होगा कि हिन्दू तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिक्ख जाकर इन रियासतों में जमा हो जायँ। इनको मंडल से बाहर जाने की ज़रूरत नहीं क्योंकि सांस्कृतिक दृष्टि से मुसलमानों से पृथक् नहीं हैं। काश्मीर की रियासत हिन्दू है, किन्तु इसमें मुसलमानों की आबादी बहुत अधिक है, काश्मीर के महाराजा ने इसे रुपयों के बदले पाया था तो या तो उन्हें रुपये देकर या काँगड़ा की घाटी (जिसमें आबादी अधिकतर हिन्दू है) देकर उनकी रियासत मुस्लिम मंडल में शामिल कर ली जाय। हाँ; अमृतसर सिक्खों के लिए धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, इसलिए यह शहर सिक्खों का स्वतन्त्र शहर माना जाय।

उत्तर-पूर्व मंडल—बंगाल और आसाम मिलाकर एक ठोस मुस्लिम मंडल या राष्ट्र हो, इसमें तीन करोड़ मुसलिम होंगे।

दिल्ली-लखनऊ-मंडल—ऊपर के दो मंडलों के बीच कोई सवा करोड़ मुसलमान बसते हैं, दिल्ली से लेकर लखनऊ तक एक मंडल बनाया जाय जिसमें ये मुस्लिम इकटठे हों। यह मंडल इस प्रकार बनाया जाय कि उसमें रामपुर आ जाय और मथुरा, हरिद्वार, बनारस, इलाहाबाद छूट जाय।

दक्खिन का मंडल—विन्ध्याचल और सतपुड़ा के दक्षिण में कोई १२० लाख मुसलमान बिखरे हैं। हैदराबाद, बरार, तथा कर्नुल, कुडप्पा होता हुआ मद्रास शहर तक एक टुकड़ा दे दिया जाय तो यह मंडल मुसलमानों के उपयुक्त होगा। कुछ लोग शायद पश्चिम में एक टुकड़ा बीजापुर तक चाहें, इस बात को देखते हुए कि कोरामण्डल तथा मालाबार किनारे के मुसलमान व्यापारी तथा खलासी हैं यह योजना उपयुक्त होगी। राजपूताने के मुसलमानों को अजमेर देकर एक स्वतन्त्र शहर बना दिया जाय।

बाक़ी भारतवर्ष भाषा के अनुसार हिन्दू मंडलों में जैसे वे चाहें बँट सकता है।

जो लोग अपने धार्मिक मंडल को छोड़कर कार्यवश किसी और मंडल में रहें, उनको संरक्षण दिये जायँगे और ये संरक्षण केन्द्रीय सरकार द्वारा पास होंगे। मंदिर मस्जिद क़ब्रस्तान वग़ैरह जो पीछे छूट जायँगे राष्ट्र के द्वारा रक्षित होंगे।

हर हिटलर का दम्भपूर्ण भाषण

१ अप्रैल को हर हिटलर ने बिलहशेवन में जो भाषण किया है उसका सारांश यह है—

ब्रिटेन का कोई राजनीतिज्ञ यदि यह चाहता है कि जर्मनी के प्रत्येक आन्तरिक मामले पर बहस की जाया करे, तो हम ब्रिटेन के सम्बन्ध में भी ठीक यही माँग पेश कर सकते हैं। फिलस्तीन में जर्मनी को कुछ नहीं देना इसी तरह ब्रिटेन को भी हमारे अन्दरूनी मामलों में कुछ नहीं लेना। फिलस्तीन में ब्रिटेन को दूसरों पर गोली चलाने का क्या अधिकार है, जब कि अपने यहाँ वह रक्षा की खुद तैयारी कर रहा है। मध्य योरप में हमने कोई हज़ारों और लाखों आदमियों का क़त्ले-आम नहीं किया, बल्कि हमने जो कुछ किया शांति से किया।

३०० साल से ब्रिटेन बुराई से काम लेता रहा, लेकिन आज बूढ़ा होकर वह नेकी बघार रहा है।

जर्मन-अधिकार, पुराने इतिहास और भौगोलिक स्थिति को अपने सामने रखते हुए हमने जो उचित समझा कर दिया। हमने चैक लोगों को कुचलने के लिए जैकोस्लोवेकिया को अपने अधीन नहीं किया। तथा—कथित भले राष्ट्रों की जनता की अपेक्षा उन्हें ज़्यादा स्वाधीनता प्राप्त होगी। मैं समझता हूँ, मैंने शांति स्थापित करने के लिए बहुत बड़ा कार्य किया है, क्योंकि मध्ययोरप के एक बहुत बड़े ख़तरे को मैंने दूर कर दिया है; जर्मनी अन्य किसी राष्ट्र पर आक्रमण करने के स्वप्न नहीं ले रहा। हम तो अपने आर्थिक हितों की उन्नति चाहते हैं। रीश ऐसा अच्छा देश है कि उसे हर कोई अपना साझीदार बना सकता है।

शान्ति की इच्छा से ही मैंने आँग्ल-जर्मन सन्धि की थी। इस वर्ष न्यूरेम्बर्ग में नाज़ी पार्टी की जो कांग्रेस होगी, उसे शांति कांग्रेस कहा जायगा। मुझे आशा है कि राष्ट्रों में कोई आख़िरी समझौता हो जायगा। बाहर हमें कोई नहीं चाहता, लेकिन हमारी इज़्ज़त सभी करते हैं। अगर कोई देश हमारे साथ ताक़त आज़माना चाहता है, तो हम लोग हमेशा तैयार हैं।... अगर ब्रिटेन में शान्ति की चाह नहीं है, तो नौ-सन्धि का कोई क्रियात्मक असर न होगा। जो लोग आग में कूदेंगे वे जल जायँगे। विशाल रीश काफ़ी शक्तिशाली हो चुका है। हम किसी दूसरे राष्ट्र की कृपा पर ज़िन्दा नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब ब्रिटेन बहुत छोटा था, तब प्रथम जर्मन बादशाह का प्रेग में राज्याभिषेक किया गया था। यदि चैक राष्ट्र जर्मन लोगों का दमन न करता और फिर यदि उसे कम्यूनिज़्म का हथियार न बनाया गया होता तो उसकी स्वाधीनता के ख़िलाफ़ हमें किसी क़िस्म की शिकायत न होती।

दूसरे राष्ट्रों से लाचार होकर जर्मनी भी अपने शस्त्रास्त्र बढ़ाता जायगा। इस दिशा में हम दूसरों की अपेक्षा ज़रा जल्दी से प्रगति करेंगे। रोम-बर्लिन धुरी त्रिकाल में भी क़ायम रहेगी। यह तो संसार का एक स्वाभाविक यन्त्र है।

अगर कोई आदमी मुझसे कहे कि ब्रिटेन व सोवियट रूस सैद्धान्तिक व मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न हैं, तो मैं उसे बधाई दूँगा।

स्पेन एक ऐसा देश है, जिसने बोल्शेविज़्म से अपना पिण्ड छुड़ाया है। मुझे गर्व है कि अनेक जर्मन युवकों ने स्पेन में अपने कर्त्तव्य का अच्छी तरह पालन किया।

युद्ध से पहले जर्मनी अपने जीने के लिए स्थान बना रहा था। उसने शान्तिपूर्ण मार्ग अपनाया, लेकिन दूसरों ने उनके ख़िलाफ़ घृणा प्रकट की। नतीजा यह हुआ कि महायुद्ध छिड़ गया।

दूसरे राष्ट्रों ने जर्मनी को घेर लेने की सोच ली थी। ब्रिटेन के एक राजनीतज्ञ ने तो यहाँ तक कह दिया था कि यदि जर्मनी का अन्त कर दिया जाय तो ब्रिटेन का प्रत्येक व्यक्ति खुशहाल हो जायगा।

कोई भी यह दावा नहीं कर सकता कि गत योरपीय महायुद्ध में जर्मनी परास्त हो गया। प्रेसीडेंट विलसन की २४ शर्तें हमारे सामने हैं। जर्मनी को निश्शस्त्रीकरण की मिसाल बनाया गया और दूसरे राष्ट्रों से आशा की गई कि वे भी उसका अनुकरण करेंगे। सारी बातों पर खुली बहस हुई और जर्मनी के स्वभाग्य निर्णय के अधिकार को मान लिया गया। जर्मनी को इसी आश्वासन पर यक़ीन था। बाद में वायदाख़िलाफ़ी की गई, नतीजा यह हुआ कि योरप में अत्याचार और दमन का दौरदौरा शुरू हो गया।

अख़बारों का डाक-महसूल

काशी के कांग्रेसी नेता बाबू श्रीप्रकाश एम० एल० ए० हिन्दी के प्रेमियों में हैं। केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य होने से वे इस बात का बराबर प्रयत्न करते रहे हैं कि अख़बारों के डाक-महसूल में अधिक से अधिक रियायत की जाय। सरकार ने इस साल के बजट में कुछ रियायत अख़बारों के महसूल में करने की कृपा की है जिसका वर्णन उन्होंने दिल्ली के 'हिन्दुस्तान' में अपने लेख में किया है। उस लेख का मुख्य अंश हम यहाँ देते हैं—

अख़बारों पर कितना डाक-महसूल लेना उचित है—यह प्रश्न बड़ा टेढ़ा है। आज के संसार में अख़बारों का विशेष महत्त्व है। सभी की आकांक्षा होती है कि अख़बारों की समुचित उन्नति हो और उनके द्वारा उचित प्रचार और जन-शिक्षा हो। यही कारण है कि गवर्नमेंट भी अख़बारों को डाक से पहुँचाने के लिए विशेष सुविधा देती रहती है।

भारत में पहले बीस तोले तक वज़न के अख़बार दो पैसे में जा सकते थे। पीछे हलके अख़बारों की सहायता के लिए ८ तोले तक के अख़बार एक पैसे में जाने लगे। कुछ वर्ष हुए, बहुत आन्दोलन करने पर और असेम्बली में प्रस्ताव पास करने पर ८ तोले की जगह वज़न १० तोला किया गया।

इस समय तक स्थिति यह रही है कि चाहे कितना ही हलका अख़बार हो, उस पर एक पैसे का टिकट लगाना ही पड़ता है और इस दर पर एक ही अख़बार जा सकता है। दस तोले का अख़बार भी एक पैसे में जाता है और ढाई तोले का भी। मेरा प्रस्ताव यह रहा है कि एक पैसे में दस तोले तक जितनी प्रतियाँ जा सकें जाने दी जायें। पर यह गवर्नमेंट को मंज़ूर नहीं हुआ। उसका कहना था कि या तो बुक पैकट रेट से अख़बार जाय या फ़ी अख़बार के लिए एक पैसा दिया जाय।

अख़बारवालों पर इसका जो प्रभाव पड़ता रहा है उसे हम एक उदाहरण लेकर समझ लें। दो पैसे का अख़बार डाक से भेजने पर उसके मालिक १ रुपया मासिक लेते हैं। मास में प्रायः २६ प्रतियाँ जाती हैं। इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६॥ आना तो डाक-महसूल में जाता है और ६॥ आना अख़बारवाले को मिलता है। २६ प्रतियों के लिए एजेंट द्वारा अख़बार पानेवाले ग्राहक का १३ आना देना पड़ता है, जिसमें से एजेंट ख़ुद ३। आना ले लेता है और पौने दस आना अख़बारवालों को देता है। इस प्रकार एक पैसा अख़बारवाले को एजेंट के द्वारा बेचने में अधिक मिलता है, पर अख़बारवाले रेल से पार्सल अपने ख़र्च से भेजते हैं इस कारण यह एक पैसा उसमें ख़र्च हो जाता है। रेलवे पार्सल के लिए कम से कम तीन आना देना पड़ता है इस कारण तीन आने लायक़ बोझ से कम का बण्डल रेल से भेजना व्यर्थ है। फिर सब गाँवों के पास रेलवे स्टेशन भी नहीं होते।

एजेंट द्वारा १३ आने में लोग अख़बार भले ही ले लें, पर स्वयं लिखकर डाक द्वारा एक रुपये महीने में अख़बार लेने में लोग संकोच करते हैं। मैंने इस सम्बन्ध में यहाँ गवर्नमेंट के लोगों से बहुत बातें कीं। यह भी कहा कि डाकख़ाने का काम बढ़ेगा, उन्हें लाभ होगा, सम्भव है कि बहुत से पासल डाक द्वारा जाने लगें, रेल से न जायँ। पर यह मानते हुए कि मेरे कथन में तथ्य है, वे संकोच ही करते रहे। मुझे प्रसन्नता है कि इस साल यद्यपि मेरी पूरी बात नहीं मानी गई पर आधी बात मान ली गई और यद्यपि इस वर्ष भी गवर्नर-जनरल ने असेम्बली के अन्य प्रस्तावों को न मानकर बिल 'सार्टिफ़ाई' कर दिया है, तथापि अख़बार की रियायत को पुनः गवर्नमेंट ने स्वीकार कर लिया है।

अब से यह व्यवस्था हुई है कि अगर किसी अख़बार के एक ही अंक की कई प्रतियाँ एक साथ बण्डल में भेजी जायँ तो दस तोले वज़न तक आध आना ही महसूल लगेगा। इसके ऊपर पाँच तोले पर एक पैसा लगेगा। २॥ तोले के अख़बार की चार प्रतियाँ दो पैसे में भेजी जा सकती हैं। पर ऐसा बण्डल डाकिया द्वारा किसी के मकान पर नहीं पहुँचाया जायगा। अख़बार का प्रमाणित एजेंट उसे डाकख़ाने से लेकर ग्राहकों को बाँट दे सकेगा। हिसाब लगाया जाय तो इस प्रकार हो सकता है—हर ग्राहक को दो पैसा देना होगा अर्थात् चार ग्राहक दो आना देंगे। ऐसे बण्डल गाँवों में ही अधिक जायँगे। सम्भव है कि एजेंट साधारण कमीशन के आधे पर काम करने को राज़ी हो जायँ। ऐसी अवस्था में एक पैसा एजेंट लेगा और दो पैसा डाकख़ाना। पाँच पैसा अख़बार-वाले को मिलेगा। अर्थात् साधारणतः डेढ़ के बदले सवा पैसा फ़ी अख़बार वह पावेगा। साथ ही अलग से रेल महसूल कुछ न देना होगा। अगर प्रचार अच्छा हुआ तो कोई हानि न होगी। मेरी प्रार्थना है कि अख़बार-वाले इस नई व्यवस्था का पूरा उपयोग करेंगे और इसे सफल बनाकर अपने अख़बारों का गाँवों में प्रचार करेंगे और डाकख़ाने के लिए यह सम्भव कर सकेंगे कि हमें आगे और रियायतें मिल सकें।

साम्प्रदायिक समस्या

इस विकट-समस्या के सम्बन्ध में प्रयाग के 'राष्ट्रमत' के सम्पादकीय में अच्छे विचार प्रकट किये गये हैं। उसकी मुख्य-मुख्य बातों को हमने यहाँ संकलित किया है—

आये दिन हम देखते हैं कि देश की साम्प्रदायिक समस्या बहुत जटिल होती जा रही है। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिए कांग्रेस और नेतागण जो प्रयत्न आज २०-२५ वर्ष से करते आ रहे हैं, उससे सफलता नहीं मिल रही है।

ब्रिटिश सरकार ने पहले से ही पृथक् निर्वाचन के द्वारा इस साम्प्रदायिक समस्या को जटिल बना दिया था, अब मुसलिम लीग का ज़हरीला प्रोपेगण्डा उसमें कोढ़ में खाज का काम कर रहा है। संयुक्त-प्रान्त में तो इसका असर और भी ख़राब है। कानपुर, बनारस और इलाहाबाद में जो दंगे अभी हाल में हुए हैं, उनको देखने से साफ़ मालूम होता है कि ये हिन्दू-मुसलिम दंगे अब केवल साम्प्रदायिक भाव से ही नहीं हो रहे हैं, बल्कि इनके अन्दर एक पेचीदा राजनीति काम कर रही है।

दंगा या साम्प्रदायिक हुल्लड़बाज़ी का मूल स्रोत कहाँ पर है; और इसको प्रोत्साहन कहाँ से मिलता है, उसी को हमें बन्द करना है। अब जिन मुहल्लों में दंगा या खून ख़राबी होगा, वहाँ अतिरिक्त पुलिस बैठाई जायगी; और इस पुलिस का ख़र्चा मुहल्लेवालों से लिया जायगा; और मुहल्ले-वाले इन गुंडों और दंगाइयों को स्वयं गिरफ़्तार न करेंगे, तो मुहल्ले के भले-मानसों का स्वयं गिरफ़्तार किया जायगा, इत्यादि-इत्यादि हमारी काम्रसी सरकार कर रही है। जितना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ अधिकार हमारी काग्रेसी सरकार के हाथ में है उसको देखते हुए ये इलाज अच्छे हैं; और इससे और कुछ लाभ हो या न हो, पर नागरिक लोगों को यह अनुभव अवश्य होगा कि दगे के ज़िम्मेदार हम हैं; और सरकार अभी हमारी जान माल की रक्षा करने में पंगु है।

कानपुर की घटनाओं को अख़बारों में हमने जो पढ़ा, उससे मालूम हुआ कि मुसलिम पुलिस पर भी मुसलिम-लीग का काफ़ी असर है; और दुर्भाग्य से हमारे प्रान्त की पुलिस में मुसलिम संख्याधिक्य काफ़ी से बहुत अधिक है; और ख़ासकर हेड कानिस्टिबल, जो कि पुलिस के सिपाहियों और सर्वसाधारण जनता के विशेष सम्पर्क में रहते हैं, उनकी संख्या तो आधे से भी अधिक है। आगे हमारी गवर्नमेंट यदि पुलिस का सुधार करनेवाली हो और साम्प्रदायिकता का नग्न नृत्य यदि इसी प्रकार जारी रहे, तो यह बहुत आवश्यक होगा कि कम से कम पुलिस में जो मुसलिम संख्याधिक्य है, वह ज़रूर काट छाँट कर बराबर कर दिया जाय; और जब प्रान्त में सिर्फ़ १४ प्रतिशत मुसलमानों की आबादी है, तो ज़्यादा से ज़्यादा २५ प्रतिशत से अधिक मुसलिम कर्मचारी पुलिस में न रहने पावें।

मुसलिमलीग का ज़हरीला प्रोपेगंडा हमारी सबसे बड़ी राज्यसभा असेम्बली में भी काम कर रहा है; और असेम्बली के मुसलिमलीगी साफ़-साफ़ कह रहे हैं कि मिनिस्ट्री में कोई मुसलिमलीगी नहीं है, इसी से साम्प्रदायिक दंगे हो रहे हैं। क्या असेम्बली के समान महासभा के इस बेतुके प्रोपेगण्डा का असर प्रान्त के मुसलमान अधिकारियों और कर्मचारियों पर नहीं पड़ता?

मुसलिमलीग के इस अखिल भारतवर्षीय विषाक्त प्रचार की प्रतिक्रिया हिन्दुओं पर भी हो रही है; बिहार प्रान्तीय हिन्दू सभा में हिन्दू नेताओं के जो भाषण हुए हैं, वे मुस्लिमलीग का ही जवाब हैं। इसी प्रकार रियासतों में भी यह रोग अब बढ़ेगा, ऐसा हमको दिखाई दे रहा है; क्योंकि हैदराबाद के आर्यसत्याग्रह का जवाब अब मुस्लिम-लीग जयपुर के ३,००० मुसलमानों की हिजरत से दे रही है। ये हिजरत करनेवाले मुसलमान ब्रिटिश भारत में आकर और भी अशान्ति पैदा करें, तो किसी का आश्चर्य न होगा।

मुसलिमलीग इतना ही करके चुप नहीं है; बल्कि निज़ाम हैदराबाद के कई बहुत बड़े राजनीतिशास्त्री डा० अब्दुल लतीफ़ साहब हैं। आपने मुसलिमलीग के आज्ञानुसार भारतीय राष्ट्र को दो विभागों में बाँट देने की भी एक अनोखी योजना बना डाली है। सारांश यह कि कांग्रेस और महात्मा गांधी हिन्दू-मुसलिम खाई को जितना ही पाटने की कोशिश करते हैं, उतना ही मुसलिमलीग इस खाई को गहरी करती चली जाती है

अब इसका इलाज हमको तो सिर्फ़ यही दिखाई देता है कि कांग्रेस अपनी ओर से एक ऐसी कान्फ्रेंस बुलावे कि जिसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिख और अन्यान्य सब राजनीतिक और धार्मिक दल के प्रभावशाली नेता उपस्थित हों। देश का कोई भी प्रभावशाली व्यक्ति आमन्त्रित करने से न छोड़ा जाय, फिर वह चाहे जिस तबके या गिरोह का हो; और उस कान्फ्रेंस के सामने यह साम्प्रदायिक समस्या रखी जाय।

अलबानिया और बादशाह जोग

अलबानिया योरप का एक पिछड़ा हुआ मुसलमानी देश है। आज-कल इटली उसे निगल जाने के प्रयत्न में है। बेचारे बादशाह जोग उसे बचाने में असमर्थ हैं। वे अपनी नवप्रसूता बेगम के साथ मारे-मारे फिर रहे हैं। इस देश में मध्यकाल की कुछ अद्भुत प्रथायें और अन्ध-विश्वास अब तक प्रचलित हैं। सहयोगी 'आज' ने एक लेख में इस देश की अनोखी रस्म-रिवाजों का बड़ा रोचक वर्णन किया है जिसे हम पाठकों के मनोविनोदार्थ नीचे दे रहे हैं—

अलबानिया में अभी तक सभ्यता नहीं आई है। यहाँ के दो तिहाई से अधिक निवासी मुसलमान हैं। उनकी रहन-सहन पुराने ढंग की है। पिता कुटुम्ब का पूरा मालिक है। वह सबसे बेगार ले सकता है और मौक़ा पड़ने पर चाहे जिसकी मरम्मत भी कर सकता है। विवाह के लिए प्रायः स्त्री का पहले हरण करना पड़ता है और कभी बच्चा हो जाने के बाद विवाह होता है। बाँझ स्त्री को वहाँ कोई नहीं पूछता। अविवाहित पुरुष निकम्मा समझा जाता है और कभी कभी तो मरने के बाद भी उसकी क़ब्र से किसी स्त्री का विवाह कर दिया जाता है। बहुविवाह की मनाही न होने पर भी देखा गया है कि यहाँ के मुसलमान भी एक ही स्त्री से विवाह करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़रीबी के कारण एक से अधिक स्त्री का रखना उनके लिए कठिन हो जाता है। टोना-टोटके में यहाँ के लोगों को बहुत विश्वास है। अच्छा आँखोंवाला बच्चा चुड़ैल का लाड़ला समझा जाता है। कई जगह यह चाल है कि जब कोई मरता है तब उसकी हजामत बनाकर और अच्छे कपड़े पहनाकर उसे घर के आँगन में एक कुरसी पर बिठला देते हैं। उसके मुँह में एक सिगार दे दिया जाता है और पास में एक बन्दूक रख दी जाती है। तब फिर सब मित्र और कुटुम्बी उसे बिदा करने आते हैं। जीवन का मूल्य तो यहाँ के निवासियों की दृष्टि में कुछ है ही नहीं। ज़रा सी बात पर किसी को गोली मार देना साधारण बात है। पर साथ ही यह भी है कि ख़ून का बदला प्रायः ख़ून ही से लिया जाता है। मरे हुए आदमी के कुटुम्बी जब तक मारनेवाले या उसके किसी कुटुम्बी के प्राण नहीं ले लेते, उन्हें चैन नहीं आता। पर यदि हरजाने का रुपया मिल जाता है तो फिर मेल हो जाता है। यहाँ के निवासी अपने को 'गिद्ध की सन्तान' कहते हैं और वास्तव में वे हैं भी वैसे ही। पहाड़ों की चोटियों पर वे सदा अपने शिकार की ताक में बैठे रहते हैं।

यहाँ के राजा जोग, जिनको मुसोलिनी ने निकाल बाहर किया है, मुसलमान हैं। सन् १९१२ तक उनकी शिक्षा कुस्तुनतुनिया में हुई थी। कहा जाता है कि तब उन्हें जूते का फीता तक बाँधने का शऊर न था। वहाँ से लौटने पर मिरयाना जागदीदी नाम की लड़की पर वे मुग्ध हो गये। परन्तु उसके पिता ने विवाह की अनुमति देने से इनकार कर दिया। तब जोग ने, जिनका नाम पहले जोगू था, प्रतिज्ञा की कि मैं किसी दिन अलबानिया का बादशाह बनकर अपनी योग्यता दिखलाऊँगा। फिर उन्होंने उस लड़की के हरण का प्रयत्न प्रारम्भ किया। इसका पता मिलने पर उसके पिता ने झुँझलाकर अपने हाथ से बेचारी जोगदीदी की छाती में ख़ंजर भोंक दिया और उसकी लाश जोगू के पास भेंट में भेज दी। तब जोगू ने यह प्रण किया कि मैं कभी शादी न करूँगा। राजनीतिक घटनाचक्र ने सन् १९२८ में जोगू को अलबानिया का बादशाह बना ही दिया, तब उसने अपना नाम 'जोग' रखा, जिसका अर्थ है 'तेज़ शिकारी पक्षी'। गद्दी पर बैठने के बाद कई लड़कियों से उनके विवाह की बात चली। एक बार किसी ने पूछा कि आप विवाह क्यों नहीं करते, तो उन्होंने उत्तर दिया कि पत्नी को देने के लिए मेरे पास रखा ही क्या है? बात यह थी कि बादशाह बनने के प्रयत्न में उनके सिर पर ८०० ख़ून लद गये थे। उनका हरजाना चुकाये बिना उनकी ख़ैर नहीं थी। अन्त में उन्होंने हंगेरियन घराने की लड़की जेरोल्डन से विवाह कर लिया, जो कोई आठ दिन के बच्चे को गोद में लिये अपनी प्राणरक्षा के लिए इधर-उधर भटक रही है।

अपने पड़ोसी युगोस्लाविया और इटली दोनों से समय समय पर अपना काम निकालना जोग की नीति थी। पहले युगोस्लाविया की सहायता से सन् १९२६ में वे अलबानिया के राष्ट्रपति बने। फिर दूसरे ही साल उन्होंने इटली से सन्धि कर ली, जिसमें दोनों ओर से २० वर्ष के लिए एक दूसरे की रक्षा का वचन दिया गया। सन् १९२८ में मुसोलिनी का इशारा पाकर जोग राष्ट्रपति से बादशाह बन गये। अलबानिया में मिट्टी के तेल की कई खानें हैं। दूसरे ही साल उसके व्यापार के लिए इटालियन कम्पनी स्थापित हो गई। इतना ही नहीं, सन् १९३० से इटली के 'राष्ट्रीय बैंक' ने वहाँ का मुद्रा-निर्माण अपने हाथ में ले लिया। आगे चलकर इटली के महाजनों ने दस साल तक ६० लाख रुपया हर साल बिना सूद अलबानिया को उधार देना स्वीकार किया। इस धन से मुसोलिनी ने वहाँ के सेना-संघटन और शिक्षा का भार अपने ऊपर लिया। इसके लिए और भी धन दिया गया। सन् १९३२-३३ में वहाँ भी राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर उठी। इस पर सन् १९३४ में इटली के १९ जंगी जहाज़ वहाँ जा धमके। तब बेचारे जोग ने १० हज़ार इटालियनों को अपने यहाँ बसने की अनुमति दी और कई इटालियनों को अपनी सेना का अफ़सर बनाना स्वीकार किया। इतने से भी मुसोलिनी का सन्तोष न हुआ और अब उन्होंने आक्रमण करके बड़े बड़े नगरों पर क़ब्ज़ा कर लिया है। राजा जोग भागे भागे फिर रहे हैं। योरप के शासकों में केवल एक वही मुसलमान थे। उनके राज्य के नाश से बाहर के मुसलमानों में भी कुछ क्षोभ उत्पन्न हुआ है। पिछले ही साल मुसोलिनी ने अपने को 'इसलाम का संरक्षक' घोषित किया था, पर अब यह उसकी अच्छी रक्षा हो रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

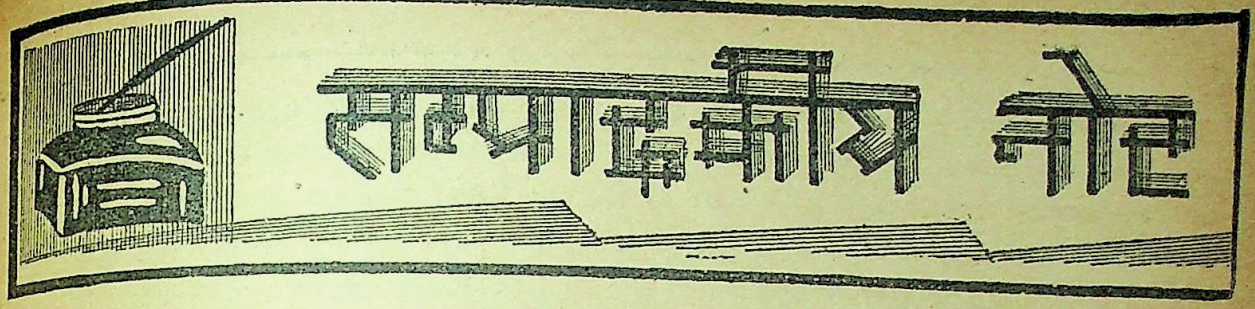

स्वायत्त-शासन का एक नमूना

गत मार्च में कौंसिल आफ़ स्टेट में गवर्नर-जनरल-द्वारा तसदीक़ किया हुआ फ़ाइनेन्स बिल विचारार्थ पेश किया गया था। उसके सम्बन्ध में विरोधी पक्ष के मेम्बरों ने जो भाषण किये थे उनसे प्रकट होता है कि ब्रिटिश सरकार ने भारतवर्ष को किस प्रकार का 'स्वायत्त-शासन' दिया है। काग्रेस-पार्टी के नेता माननीय रामदास पन्तुलु ने बिल का विरोध करते हुए कहा कि—"फ़ाइनेन्स-बिल का इस प्रकार गत ५ वर्षों से लगातार वायसराय की तसदीक़ के बल पर पास होना एक भद्दा लेखा है। हमारे लिए तो इस बिल की बहस में भाग लेना ही व्यर्थ है, क्योंकि हम जानते हैं कि वायसराय की तसदीक़ हो जाने के बाद किसी बिल में रत्तीभर भी हेर-फेर करा सकने का हमें अधिकार नहीं। 'तसदीक़' के अधिकार का ऐसा अनगेल प्रयोग जनमत की उपेक्षा करना और प्रजातन्त्र की भावना को ठुकराना है। इस संस्था के निर्माताओं का भी शायद ऐसा विचार न रहा होगा कि गवर्नर-जनरल महोदय 'तसदीक़' के अधिकार का ऐसा स्वच्छन्द और निचुर प्रयोग करेंगे। इस दशा में हम कम से कम यही कर सकते हैं कि इस बिल के विचार से स्वयं को पृथक् कर लें।"

क्या यही है स्वायत्त-शासन का वरदान, जिसके लिए भारतवासियों को भाँति-भाँति के प्रलोभन दिये गये थे?

श्रीमान् काशी-नरेश का स्वर्गवास

गत ५ अप्रैल को काशी-नरेश महाराज सर आदित्य-नारायणसिंह का हृदय की गति रुक जाने से अचानक कैलासवास हो गया। मृत्यु के समय आपकी अवस्था ६५ वर्ष की थी। कुछ महीनों से आप अस्वस्थ थे, पर पिछले कुछ दिनों से आपके स्वास्थ्य में सुधार के लक्षण दीख पड़े थे। मृत्यु की रात्रिवाली संध्या को तो आप टहलने भी गये थे और पूछे जाने पर अपनी तबीअत अच्छी बतलाई थी। उस दिन प्रातः से ही आपका दिल कुछ भारी था और श्वास-कष्ट भी था।

अपने पिता महाराज सर प्रभुनारायणसिंह के दिवंगत होने पर आप सन् १९३१ में गद्दी पर बैठे थे। आपको अपने राज्यकाल में अनेक जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ा। स्वभावतः आप शान्तिप्रिय और धर्मात्मा नरेश थे। बनारस का राज्य समवेत नहीं है। बीच-बीच में ब्रिटिश-राज्य के आ जाने से वह काफ़ी बिखरा हुआ है। फलतः शासन-व्यवस्था में इतना ख़र्च पड़ता है कि रियासत उसे बरदाश्त नहीं कर पाती। इधर प्रजा ने स्वायत्त-शासन की माँग का आन्दोलन छेड़ दिया था। महाराज बड़े प्रजावत्सल और शान्ति-प्रेमी थे। फलतः प्रजा को सन्तुष्ट करने के लिए आपने उत्तरदायी शासन स्थापित करने का वचन दिया था और यदि आप जीवित रहते तो उसकी स्थापना कर भी डालते। आन्दोलन का दमन करने के लिए आप उकसाये भी गये थे। पर आप उसके लिए किसी प्रकार राज़ी न हुए और अपने वचन की पूर्ति के लिए प्रसिद्ध राजनैतिक नेता श्री सच्चिदानन्द सिन्हा को अध्यक्षता में आपने एक कमिटी बना दी, जिसे शासन-सुधार-योजना बनाने का काम सौंपा गया।

आप एक विद्वान् नरेश थे। काशी-विश्वविद्यालय की आपने समय-समय पर प्रशंसनीय सहायता की है। अन्यान्य शिक्षा-संस्थाओं को भी आपसे नियमित सहायता मिलती रहती थी।

आपके उत्तराधिकारी आपके दत्तक पुत्र श्रीयुत विभूतिनारायणसिंह हुए हैं। नये महाराज की अवस्था अभी केवल १२ वर्ष की है। ईश्वर आप का चिरायु करे और एक योग्य शासक बनाये, यही हमारी कामना है।

राष्ट्रपति की बीमारी

राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बसु के पुनः राष्ट्रपति चुने जाने पर देश में राजनैतिक दाँव-पेचों का जो वातावरण अस्तित्व में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ गया था, उसने त्रिपुरी-कांग्रेस में तो ऐसा बवंडर उठाया कि उसके निकल जाने पर भी अभी तक हवा साफ़ नहीं हुई है और साँस लेने में दम घुटता है। इस सम्बन्ध में सुभाष बाबू ने 'माडर्न रिव्यू' में एक महत्त्वपूर्ण लेख लिख कर तत्कालीन परिस्थिति पर पूरा प्रकाश डाला है। यह सच है कि कांग्रेस-अधिवेशन के कुछ सप्ताह पूर्व से ही राजनैतिक क्षेत्रों में सुनाई देने लगा था कि सुभाष बाबू का वर्किङ्ग कमिटी की बैठक के ऐन मौक़े पर बीमार पड़ जाना राजनैतिक प्रयोजनों से ख़ाली नहीं है। फिर त्रिपुरी में तो इस सान्दिग्ध भावना का प्रचार चरम सीमा पर ही पहुँच गया। यहाँ तक कि वर्किङ्ग कमिटी के कुछ सदस्य भी सुभाष बाबू की बीमारी में राजनैतिक दाँव-पेच की गन्ध पाने लगे थे। बड़े-बड़े डाक्टरों, सिविल सर्जनों और इन्स्पेक्टर जनरलों की विज्ञप्तियों के होते हुए भी उनमें से एक सज्जन को एक डाक्टर से यह पूछने की आवश्यकता पड़ ही गई कि क्या सुभाष बाबू सचमुच बीमार हैं, क्या आपने उनका टेम्परेचर स्वयं लेकर देखा है, क्या उन्हें सचमुच १०२° का बुख़ार है। यह तो राजनैतिक स्वार्थान्धता की चरम सीमा है, जहाँ पहुँचकर मनुष्य ऐसा विक्षिप्त बन जाता है कि वह साधारण शिष्टाचार और सहृदता को ही नहीं, मनुष्यता को भी छोड़ बैठता है। सुभाष बाबू ने अपने लेख में इस परिस्थिति का जो चित्र अंकित किया है उसे देखकर किसी भी सहृदय को भारी क्षोभ, लज्जा और ग्लानि का अनुभव होगा। देश की राजनीति से सम्बन्ध रखनेवालों को तो वह लेख अवश्य ही पढ़ना चाहिए।

——

धर्म के नाम पर!

हमारी धर्मान्धता पर जब कोई मिस मेयो कटाक्ष करती है तब हम तिलमिला उठते हैं और उसे धूल का जवाब कीचड़ से देने को तैयार हो जाते हैं, पर यह सोचना गवारा नहीं करते कि हमारा धर्म जिसे हम प्राचीन, व्यापक और उदार समझते हैं, अपने अन्दर कितना कूड़ा-करकट छिपा सकता है। राम और कृष्ण के नाम की आड़ लेकर दिन-दहाड़े समाज में जो लीलायें होती रहती हैं उनका भंडाफोड़ होने पर कभी कभी ऐसे रहस्यों का पता लग जाता है जिन्हें देख-सुनकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। पर इतने पर भी हमारी निद्रा भंग नहीं होती! हम देखते हुए भी अन्धे और सुनते हुए भी बहरे बने रहते हैं। हमारी बछिया के ताऊवाली मनोवृत्ति से लाभ उठाने के लिए देश के किसी-न-किसी उपयुक्त क्षेत्र में कृष्ण या राम के एक-आध अवतार होते ही रहते हैं और हम अपनी विवाहिता या अविवाहिता बहू-बेटियों को उनके पास धर्म की दीक्षा लेने के लिए निःसंकोच भेज देते हैं। संकोच का प्रश्न ही क्या! हम तो ऐसा करने में अपना गौरव मानते हैं! यही तो हिन्दुत्व की उदारता है! यही तो उसकी महत्ता है!

पिछले कई महीनों से हम कराची के दादा लेखराज और उनकी ओम्-मंडली की चर्चा अख़बारों में पढ़ रहे हैं। उनकी कृष्ण-लीला के विरोध में कराची के सुधार-प्रेमी नागरिकों को सत्याग्रह तक करना पड़ा, यहाँ तक कि श्री टी० एल० वास्वानी सरीखे लोकसेवी संन्यासी भी जेल में बन्द हो गये। यही नहीं, सिन्ध-प्रान्त की सरकार के दो हिन्दू मंत्रियों ने विरोध प्रदर्शनार्थ इस्तीफ़ा भी दे दिया। इतने आन्दोलन के बाद सरकार ने ध्यान दिया और उसने ओम्-मण्डली, दादा लेखराज और उनकी हरकतों पर नियन्त्रण लगाया है और अब अदालती कार्यवाही करना आरम्भ किया है।

दादा लेखराज की प्रमुख शिष्या ओमूराधे ने अदालत में ओम्-मण्डली के सम्बन्ध में जो बयान दिया है उससे पता लगता है कि ओम्-मण्डली में यह शिक्षा दी जाती थी कि स्त्री-पुरुष में कोई भेद नहीं। वहाँ विवाहिता स्त्रियों को अपने पतियों को छोड़ देने और अविवाहिताओं को आजन्म कुमारी रहने की शिक्षा दी जाती थी। यह भी सिखलाया जाता था कि दादा लेखराज कृष्ण के अवतार हैं और मण्डली की समस्त स्त्रियाँ उनकी गोपिकायें!

हमें शिकायत है अपनी उन पर्दानशीन बहू-बेटियों से जो घर से बाहर निकलने में तो लाज से गड़ जाती हैं, पर धर्म के नाम पर भेड़ की भाँति अन्धे कुएं में जा गिरती हैं। बीसवीं सदी के द्वितीय चरण में भी यदि ये धर्म-मण्डलियाँ दिन-दूनी और रात-चौगुनी बढ़ती और फलती-फूलती रहें तो इसका श्रेय हम अपनी धर्मान्ध माताओं, बहनों, बधुओं और कन्याओं को छोड़कर और किसे दें!

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाहौर की विश्वेश्वरानन्द-वेद-अनुशीलन-समिति

लाहौर में विश्वेश्वरानन्द-वेद-अनुशीलन-समिति नाम की एक संस्था है, जो भारतीय पुरातन साहित्य और संस्कृति के अनुशीलन के लिए सुसगठित कार्य कर रही है। इस पुण्यकार्य का श्री गणेश स्वर्गीय स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी महाराज ने अपने प्रतिभाशाली शिष्य स्वामी नित्यानन्द की सहायता तथा सहयोग से सन् १९०३ में किया था। उन्होंने आरम्भ में बड़ोदा-नरेश स्वर्गीय महाराज सयाजीराव गायकवाड़ की संरक्षता में चारों वेदों की संहिताओं के शब्दों की एक क्रमबद्ध सूची तैयार की थी, जो सन १९०८ में प्रकाशित हुई थी।

इस समय तक यह संस्था काफ़ी काम कर चुकी है। इसकी नियमानुसार रजिस्ट्री भी हो चुकी है और इसका किसी सम्प्रदाय या मतविशेष से सम्बन्ध नहीं है। जो भी व्यक्ति इस संस्था के उद्देश्यों और कार्यों के प्रति सहानुभूति रखता हो या इसे आर्थिक अथवा बौद्धिक सहायता देना चाहे, इसका सदस्य बन सकता है। इसकी सहायता के लिए जाति या धर्म का भी कोई प्रतिबंध नहीं है। गत १५ वर्षों से यह संस्था वेद-साहित्य के अनुशीलन का बृहत्तर कार्य अपने हाथ में लिये हुए है। सुविधा के लिए इस महत्कार्यसाध्य कार्य को उसने चार खंडों में विभक्त कर लिया है। पहले खंड में वैदिक शब्दों का निघंटु है। दूसरे में वैदिक शब्द-कोष। इसमें एतद्देशीय तथा विदेशीय वेद-विद्वानों ने वैदिक शब्दों के जो-जो अर्थ किये हैं उनका सन्दर्भ-सहित विस्तृत उल्लेख है। साथ ही वैज्ञानिक विवेचन भी दे दिया गया है। तीसरे खंड में विश्व-कोष है, जिसमें वेद-कालीन रहन-सहन, सभ्यता और संस्कृति के विषय में जो कुछ नूतन-पुरातन मत प्राप्त हो सके हैं उनका संकलन किया गया है। चौथे भाग में वैदिक ऋचाओं के समस्त अनुवाद दिये गये हैं। यह ग्रन्थ शान्तकुटी-पुस्तक-माला-द्वारा ४० जिल्दों में प्रकाशित किया गया है। प्रत्येक जिल्द में ५०० पृष्ठ हैं।

इस महती योजना की पूर्ति के लिए चालीस विद्वान् पंडित रात-दिन काम कर रहे हैं। इसके पूर्ण होने के लिए ८ लाख के व्यय का अनुमान किया गया है, जिनमें से २ लाख तो चन्दे-द्वारा वसूल होकर व्यय भी हो चुके हैं। शेष आवश्यक धन से आधे की पूर्ति भारत-सरकार, प्रान्तीय सरकारों, विश्वविद्यालयों और देशी राज्यों तथा कुछ उदारचेता महानुभावों से होने की आशा है।

इस प्रकार लगभग २० हज़ार रुपया प्रतिवर्ष १५ वर्ष तक उसे मिलता रहेगा। इस समय में वह अपना कार्य भी संभवतः पूर्ण कर लेगी। वैदिक-साहित्य के प्रेमियों को इस संस्था-द्वारा प्रकाशित पुस्तकों से लाभ उठाना चाहिए।

जो तोकूँ काँटा बुवै ताय बोय तू फूल

मदोन्मत्त जापान ने निर्बल चीन पर जो भयानक और अमानुषिक अत्याचार किये हैं उन्हें पढ़कर रोंवें खड़े हो जाते हैं। जिन व्यक्तियों ने चीनी प्रजा और चीनी क़ैदियों के साथ जापानी सैनिकों का बर्बरतापूर्ण व्यवहार अपनी आँखों देखा है उनका कहना है कि पशुता और निर्दयता के प्रदर्शन में जापान ने इस बार ससार भर का रेकर्ड तोड़ दिया है। युद्ध में दोनों ओर के सिपाही बन्दी होते हैं; अवश्य ही हज़ारों जापानी सिपाही चीनी सैनिकों के हाथ भी पड़े होंगे। परन्तु जापानी बन्दियों के साथ चीन जैसा व्यवहार कर रहा है उसे देखकर कोई भी सहृदय व्यक्ति चीन की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। चीन ने दिखला दिया है कि हम अपने बुरे से बुरे वैरियों के साथ भी व्यवहार करते हुए मनुष्यता का ध्यान रखते हैं। चीन युद्ध में चाहे जीत जाय या अपनी रक्षा करने में असमर्थ होने के कारण जापानी बर्बरता का चाहे शिकार हो जाय, पर इसमें सन्देह नहीं कि उसने संसार के सामने एक महान् आदर्श रक्खा है। पशु-बल भले ही चीन को खा ले, पर नैतिक विजय चीन की ही मानी जायगी और भविष्य का इतिहास उसकी इस महान् नैतिकता की अनन्तकाल तक प्रशंसा करेगा।

जापानी क़ैदियों के साथ चीन में कैसा व्यवहार होता है, इसका पता हमें चीन के एक पत्र 'चायना-ऐट-वार' से लगता है। उसमें जापानी बन्दियों की दिनचर्या का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

"चीनी कैम्पों में जापानी बन्दी व्यवस्थित जीवन व्यतीत करते हैं। प्रातः ५ बजे उठकर, नित्य कर्म से छुट्टी पाकर वे थोड़ा व्यायाम करते हैं। सात बजे उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलेवा मिलता है। ९ बजे से ११ बजे तक पठन-पाठन होता है। दो घंटे विश्राम करने के बाद भोजन मिलता है। दोपहर के बाद दो से चार बजे तक सब अध्ययन-शाला में रहते हैं, जहाँ इच्छानुसार लिखते-पढ़ते हैं। पढ़ाई के लिए कोई निश्चित पाठ्यक्रम नहीं है। चार बजे स्नान होता है, फिर साढ़े पाँच बजे ब्यालू।

"छः बजे के बाद मन बहलानेवाले खेल, जैसे पिंग-पांग, शतरंज आदि खेले जाते हैं। रात को ९ बजे तक आवश्यक कामों से छुट्टी पाकर सब सो जाते हैं। बहुत से जापानी और कोरियन बन्दी चीनी पहरेदारों से चीनी-भाषा पढ़ते हैं और अपनी भाषा उन्हें पढ़ाते हैं। भाषाओं के पारस्परिक आदान-प्रदान द्वारा उनमें भ्रातृ-भाव उत्पन्न हो रहा है। कुछ बन्दी स्वभावतः बड़े हठी हैं। वे प्रेम-भाव की बातें सुनना भी पसन्द नहीं करते, पर बन्दी-कैम्प के अध्यक्ष कर्नल तसाऊ का विश्वास है कि वे लोग भी शीघ्र ही सीधी राह पर आ जायंगे। क़ैदियों में प्रजातन्त्र के भाव उत्पन्न करने की कोशिश की जाती है। अपनी रुचि के अनुसार भोजन-प्रबन्ध करने की उन्हें स्वतन्त्रता दे दी गई है। बुधवार को जापानी मिठाइयाँ खाने को दी जाती हैं। महीने में एक बार वे मिलकर जापानी धार्मिकोत्सव भी मनाते हैं। सिगरेट पीनेवालों को रोज़ सिगरेट का एक डिब्बा दिया जाता है। सप्ताह में एक बार चार औंस प्रतिबन्दी के हिसाब से शराब भी मिलती है। यह सच है कि वहाँ जापानी 'सेक' शराब नहीं दी जा सकती है, पर इसके बदले में चीन की सबसे बढ़िया शराब दी जाती है, जिसे जापानी सिपाही 'सेक' से कहीं अधिक पसन्द करते हैं। क़ैदियों को पत्र-व्यवहार की पूरी सुविधा दी गई है। हाँ, उनके पत्रों पर सैनिक नियमानुसार निगरानी अवश्य रक्खी जाती है। अपने घर से रुपये और वस्त्र मंगाने की सुविधा भी उन्हें प्राप्त है। घायल बन्दियों की चिकित्सा भी सावधानी से की जाती है। उन्हें थोड़े-थोड़े दिनों के बाद विद्वान् लोग उपदेश देते रहते हैं कि जापानी और चीनी एक ही नस्ल के हैं, अतः भाई-भाई हैं, उन्हें आपस में प्रेम-पूर्वक हिल-मिलकर रहना चाहिए। यह युद्ध जिसके लिए वे (जापानी सिपाही) चीन में भेजे गये हैं, चीन की इच्छा के विरुद्ध है। चीन लड़ना नहीं चाहता। पर जापान उसे लड़ने के लिए विवश कर रहा है। जापान रक्तपात और आक्रमण पर तुल गया है, जो दोनों जातियों के लिए भयानक है।"

इन शिक्षाओं का जापानी बन्दियों के हृदयों पर अच्छा प्रभाव पड़ा है और उन्हें जापान की युद्ध-नीति-सम्बन्धी मूर्खता का ज्ञान हो गया है। परन्तु सबसे महत्त्व की बात तो यह है कि चीन ने अपने इस व्यवहार से अपने उदात्त राष्ट्रीय चरित्र का परिचय दिया है, जो अन्य राष्ट्रों के लिए अनुकरणीय है।

प्रान्तीय सरकारें और मादक-द्रव्य-निषेध

हमारे प्रान्त की सरकार ने गत वर्ष दो ज़िलों में मादक-द्रव्य-निषेध का काम चलाया था। उसमें उसे काफ़ी सफलता मिली। अतएव प्रोत्साहित होकर उसने इस वर्ष अन्य ४ ज़िलों में नशाबन्दी का कार्य आरम्भ कर दिया है। इस प्रकार अब ६ ज़िले इस योजना के अन्दर आ गये हैं। इनके नाम हैं—(१) एटा, (२) मैनपुरी, (३) बदायूँ, (४) बिजनौर, (५) फ़रुख़ाबाद और (६) जौनपुर। यह काम केवल हमारे प्रान्त में ही नहीं हो रहा है, किन्तु दूसरे कांग्रेसी प्रान्तों में भी हो रहा है। प्रसन्नता की बात है कि मादक-द्रव्यों के निषेध की योजना का प्रचार लगन के साथ हो रहा है। कुछ प्रान्तों को तो इसमें स्पृहणीय सफलता भी मिली है। वहाँ के निवासियों के रहन-सहन के पैमाने में नशा-बन्दी के कारण जो उन्नति हुई है, उसकी प्रशंसा श्रीयुत जगन्नाथ चारियर जैसे विशेषज्ञों ने भी मुक्त-कंठ से की है।

इस जनोपयोगी योजना के प्रचार से कांग्रेसी सरकारों को कितनी बड़ी आर्थिक हानि सहनी पड़ रही है, इसका अनुमान निम्न आँकड़ों से लग सकता है। ब्रिटिश भारत के कुल प्रान्तों को प्रतिवर्ष लगभग २१ करोड़ रुपये की आय नशीली वस्तुओं के कर से होती थी। इस आय में प्रधान प्रान्तों का प्रतिशत भाग इस प्रकार था—मदरास ३६, बिहार और उड़ीसा ३४, बम्बई २८, युक्त प्रांत १२ और पंजाब ११। इतनी आय छोड़कर और इसके कारण अपने को भयानक आर्थिक उलझनों में डालकर जिन प्रान्तीय सरकारों ने नशे का प्रचार बन्द करने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीड़ा उठाया है वे सर्वथा स्तुत्य हैं। कोई भी स्वदेशी सरकार अपने देशवासियों के नैतिक पतन को अधिक समय तक नहीं देख सकती और न वह अपने देश को नशेबाज़ बनाकर अपनी आय बढ़ाना ही उचित मान सकती है।

खेद है, कुछ लोग कांग्रेस सरकारों की नशाबन्दी की योजना के कारण कांग्रेस सरकारों से सख़्त नाराज़ हैं। वे कभी तो वेद और क़ुरान के वाक्यों-द्वारा नशीली वस्तुओं की उपादेयता प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं, कभी चिकित्सा-शास्त्र-द्वारा। कभी बम्बई के किसी पारसी मद्य व्यापारी की भारी आर्थिक क्षति का उद्धरण देते हुए उनका हृदय दयाप्लावित हो जाता है; यही नहीं, वे सरकार के भी आर्थिक संकट का भयानक भूत दिखलाकर डराने की दुश्चेष्टा करते हैं। जब कुछ वश नहीं चलता तब सरकार को भरपेट कोस कर यहां कहते हैं कि यह हमारे प्रान्त को 'रूखा' कर देना चाहती है। नशाबन्दी होते ही यहाँ की सारी चहल-पहल दूर हो जायगी।

पर इन लोगों की नीति सचमुच वैसी ही है जैसी 'अपनी नाक कटाकर पड़ोसी का सगुन बिगाड़नेवालों की' होनी चाहिए। उनकी दृष्टि से कांग्रेसी सरकारों की प्रत्येक कार्यवाही का विरोध होना ही चाहिए, चाहे वह जनता के लिए लाभदायक ही क्यों न हो, और चाहे उनका हृदय स्वयं भी भीतर ही भीतर उसकी प्रशंसा क्यों न करता हो! इन पढ़े-लिखे बुद्धुओं की समझ पर विदेशियों को भी तरस आता है। पर उन्हें तो बुद्धिमत्ता का अर्जीण हो रहा है! वे ऐसी बातों की परवा कब करने लगे!

योरप की परिस्थिति

अपने वचनों, आश्वासनों को एक ओर रखकर जब जर्मनी ने बचे-खुचे ज़ेचोस्लोवेकिया को भी हड़प लिया, साथ ही मेमेल को लिथुआनिया से छीन लिया, तब ब्रिटेन के प्रमुख कर्णधार चैम्बरलेन साहब का आसन डिगा और उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषित किया कि यदि जर्मनी डेंजग लेने के लिए पोलैंड के साथ ज़ोर-ज़बर्दस्ती करेगा तो उसे ब्रिटेन और उसके साथी फ्रांस आदि से लड़ना पड़ेगा। यह घोषणा उन्होंने फ्रांस और रूस के प्रमुख व्यक्तियों के आश्वासन पाने पर ही की थी। वे इतना ही कहकर चुप नहीं हो गये, किन्तु उन्होंने योरप के अन्य राज्यों के कर्णधारों से गम्भीर परामर्श किया और ऐसा प्रतीत हुआ कि यदि जर्मनी या इटली योरप के किसी स्वतन्त्र राज्य के साथ ज़ोर ज़बर्दस्ती करेगा तो ब्रिटेन के नेतृत्व में योरप के अधिकांश राज्य आक्रमणकारी का सामना करेंगे। परन्तु कदाचित् इस बार छीना-झपटी करने की इटली की बारी थी और उसने यह सब होते हुए भी अपने निकटवर्ती मित्र राज्य अल्बेनिया पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कुल तीन दिन में कर लिया। उसके राजा-रानी ने भाग कर एथेंस में शरण ली और योरप की शान्ति की रक्षा करने का दम्भ करनेवाले ग्रेट ब्रिटेन आदि अल्बेनिया के मसले पर विचार-विनिमय ही करते रहे। वास्तव में उक्त घोषणा के शब्दों को देखते हुए कोई भी समझदार आदमी आसानी से कह सकता है कि वह घोषणा अकेले पोलैंड के सम्बन्ध में की गई है। चाहे जो अर्थ लगाया जाय, यह स्पष्ट है कि इटली ने अल्बेनिया पर आक्रमण करके चैम्बरलेन साहब की घोषणा का समुचित उत्तर दिया है। इटली और जर्मनी एक युग से युद्ध के लिए ललकार रहे हैं और उन दोनों ने पहले के सारे समझौतों को बारम्बार भंग किया है। परन्तु ब्रिटेन, फ्रांस आदि को कभी हिम्मत ही नहीं हुई कि आगे आकर इन दोनों के गर्व को खर्व कर न्याय और नीति की रक्षा करते! यह सच है कि ब्रिटेन, फ्रांस और रूस तीनों राज्य युद्ध के लिए भले प्रकार तैयार हैं, और उनके साथ योरप के अन्य राज्य भी हैं। परन्तु आज उनमें से एक भी आगे आने को प्रस्तुत नहीं है। यह बात दूसरी है कि उनमें से किसी पर आक्रमण होने पर वे लाचार होकर आत्मरक्षा के भाव से युद्ध में कूद पड़ें। जर्मनी और इटली को यह सारी पारिस्थिति ज्ञात है, इसी से वे उनको बचाकर ही अपनी स्वार्थ सिद्धि कर रहे हैं। यही कारण है कि योरप के सभी छोटे राज्य आतंकित और भयत्रस्त हैं और उनमें से कुछ ने अपने यहाँ का सोना अमरीका भेज दिया है। यह हाल है उस योरप का जो अभी कल तक अपनी न्यायनिष्ठा और प्रबलता के लिए संसार में अग्रगण्य था। चाहे जो हो, आज तो योरप की दयनीय दशा है। जर्मनी और इटली का सारे योरप पर आतंक छाया हुआ है। स्पेन उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभाव में आ गया है। ज़ेचोस्लोवेकिया और अल्बेनिया की स्वाधीनता का लोप हो गया है। अब पोलेण्ड की या डेन्माक की बारी होगी, यह अभी नहीं कहा जा सकता। परन्तु यह स्पष्ट है कि जर्मनी उन प्रदेशों को बिना छीने नहीं मानेगा, जिनमें जर्मन बसते हैं तथा जो दूसरे देशों के अन्तर्गत हैं। इसी तरह इटली भी उन भागों को अपने अधिकारभुक्त करना चाहता है जो प्राचीन रोमन-साम्राज्य के अन्तर्गत थे। और ये दोनों देश अपने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए सैनिक-दृष्टि से पूर्ण रूप से तैयार हैं। और बारी बारी से उसकी पूर्ति भी करते जा रहे हैं। यह सच है कि ब्रिटेन, फ्रांस और रूस उनसे पीछे नहीं हैं और युद्ध के लिए वे भी भले प्रकार तैयार हैं, परन्तु उनमें साहस और आत्मविश्वास का अभाव है, साथ ही उनमें परस्पर अविश्वास भी है। चाहे जो हो, यह बात स्पष्ट है कि योरप में महायुद्ध छिड़े बिना नहीं रहेगा और दिन प्रतिदिन उक्त अवसर निकट आता जा रहा है।

संयुक्तप्रान्त में अपराधों की वृद्धि

शासन-रिपोर्ट के आधार पर 'साप्ताहिक आज' ने संयुक्तप्रान्त में होनेवाले अपराधों के सन् १९३६, सन् १९३७ और सन् १९३८ के आँकड़े दिये हैं, जो ये हैं—

युक्तप्रान्त में १९३६, ३७ और ३८ में हुए अपराधों की तालिका इस प्रकार है—

अपराध—१९३६	१९३७	१९३८
डकैतियाँ—४१२	४९५	७०२
चोरियाँ—२८३१३	२९६८७	३४७४५
हत्यायें— ८६२	१०१३	११३५
दंगे— १४६४	२०५८	२७५०

इनमें प्रतिशत इतने मुक़दमे चलाये गये—

डकैतियाँ—५३	३९	३०
चोरियाँ— १४	१२	१०
हत्यायें— ५१	४६	४१
दंगे— ३५	२७	२३

और प्रतिशत इतने मुक़दमों में अभियुक्तों को दण्ड मिला—

डकैतियाँ—४१	२९	२१
चोरियाँ— ११	१०	८
हत्यायें— ३०	२७	२२
दंगे— २५	१९	१५

इन आँकड़ों से प्रकट होता है कि अपराधों में बराबर वृद्धि हुई है और १९३९ में प्रान्त में जो स्थिति रही है उसके अनुसार उस साल अपराधों में और भी अधिक वृद्धि हुई होगी। और यह बात सुशासन की दृष्टि से सर्वथा अशोभन और अवाञ्छनीय है। और अब जब प्रान्त के शासन की बागडोर कांग्रेस के हाथ में है तब अपराधों की वृद्धि होनी आश्चर्यजनक है। आशा है, प्रान्तीय सरकार के अधिकारियों का ध्यान इस ओर समुचित रूप से आकृष्ट होगा।

साम्प्रदायिकता का रोग

मुसलमानों में साम्प्रदायिकता का रोग अत्यधिक व्यापक हो गया है। उस दिन प्रान्तीय असेम्बली में खाँ बहादुर हाजी अब्दुरहमान ने कहा कि प्रान्तीय सरकार ने काशी के हिन्दू विश्व-विद्यालय को पचास हज़ार रुपये की वार्षिक सहायता देने की व्यवस्था करके पक्षपात का काम किया है, क्योंकि उसने अलीगढ़ की मुस्लिम-यूनीवर्सिटी को दो हज़ार रुपये वार्षिक का ही सहायता देने की व्यवस्था की है। इस रूप में उनका आरोप यथार्थ है। परन्तु बात ऐसी नहीं है, क्योंकि शिक्षा-मंत्री ने अपने उत्तर से हाजी जी के आरोप को निस्सार सिद्ध कर दिया। शिक्षा-मन्त्री ने बताया कि मुस्लिम यूनीवर्सिटी चौंसठ हज़ार रुपया वार्षिक पहले से पा रही है जब कि हिन्दू यूनीवर्सिटी को कई वर्षों से सहायता बन्द थी। ऐसी दशा में तो एक प्रकार से मुस्लिम यूनीवर्सिटी को हिन्दू-यूनीवर्सिटी की अपेक्षा वार्षिक १६ हज़ार रुपया ज़्यादा मिलेंगे। वास्तव में सरकार का यही विषम व्यवहार ही उपर्युक्त मनोवृत्ति का कारण है। यदि सरकार किसी निश्चित सिद्धान्त के आधार पर अपनी व्यवस्थायें करती होती तो सम्प्रदायवादियों को ऐसी बातें कहने का अवसर ही न आता। उसने जब शासन-सूत्र अपने हाथ में लिया है तब उसे सुधार-क़ानून के अनुसार ही अपनी व्यवस्थायें जारी करनी चाहिए। ऐसा करने पर न मुसलमानों को कोई शिकायत होती, न हिन्दुओं को। परन्तु आज जो व्यवस्था जारी है उससे न हिन्दू सन्तुष्ट हैं, न मुसलमान। सरकार का ध्यान इस परिस्थिति की ओर जाना चाहिए और उसे ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान नीति ग्रहण करनी चाहिए जिससे प्रजा के सभी वर्गों के स्वार्थों और हितों की रक्षा हो।

सिनकियांग के भारतीय व्यापारी

मध्य-एशिया का एक प्रदेश 'सिनकियांग' कहलाता है। यह भूखण्ड चीन के साम्राज्य का एक अंग है। परन्तु मुख्य चीन तथा चीन की राजधानी से यह प्रदेश अति दूर स्थित है, साथ ही आवागमन के साधनों का भी पूरा अभाव है। और इधर जब से चीन का जापान से संघर्ष छिड़ा है तब से सिनकियांग भी अशान्ति का केन्द्र रहा है। वहाँ के मुसलमानों ने चीन के आधिपत्य के विरुद्ध जो विद्रोह किया था उससे स्थानीय चीनी सरकार का प्रभुत्व तो लोप हो ही गया, साथ ही उन्हें भी स्वाधीनता न प्राप्त हुई। रूस-साम्राज्य की सीमा पर स्थित होने के कारण रूस के राजनीतिज्ञों ने वहाँ के गड़बड़ से लाभ उठाया। यद्यपि उस प्रान्त का शासन-सूत्र रूसियों की सहायता से चीनियों के हाथ में आ गया, तथापि सारी सत्ता रूसियों के हाथों में चली गई है, अर्थात् वह प्रदेश नाममात्र के लिए चीन के अन्तर्गत है, उस पर रूस का पूर्ण प्रभाव क़ायम हो गया है—उसी रूस का जो दूसरों का राज्य छीनना पाप समझता है और जो अपने को चीन के संकट-काल का मित्र घोषित करता है।

सिनकियांग का भारत से व्यापारिक सम्बन्ध है। वहाँ कुछ भारतीय व्यापारी निवास भी करते हैं। गड़बड़ के दिनों में उनको काफ़ी अधिक जान-माल की हानि उठानी पड़ी है। और अब जब रूस की सहायता से वहाँ शान्ति की स्थापना हुई है। तब वहाँ के भारतीयों को खदेड़ बाहर करने का उपक्रम हो रहा है। भारतीयों की इस दुरवस्था से भारत-सरकार पूर्णतया परिचित है, परन्तु अपनी निश्चित अन्तर्राष्ट्रीय मर्यादा के कारण वह भारतीयों के पक्ष में कोई प्रभावात्मक हस्तक्षेप भी नहीं कर सकती। इस समय ब्रटेन का रूस से सन्धि करने की बात चल रही है। उस सिलसिले में सिनकियांग का यह मसला भी कदाचित् उठाया जाय।

यदि आज चीन सबल होता तो सिनकियांग के भारतीय व्यापारियों को इस तरह के सकट का सामना न करना पड़ता।

स्वर्गीय लाला हरदयाल

प्रसिद्ध देशभक्त लाला हरदयाल का ४ मार्च को अमरीका के फिलाडेल्फिया नामक स्थान में स्वर्गवास हो गया। जिन प्रवासी भारतीयों को अंगरेज़-सरकार स्वदेश को लौटने की आज्ञा नहीं देती थी उनमें एक यह भी थे। परन्तु पिछले दिनों इनके सम्बन्ध में ख़ासा आन्दोलन हुआ था जिसमें राइट आनरेबल डाक्टर तेजबहादुर सप्रू ने प्रमुख भाग लिया था, फलतः भारत-सरकार ने इनके सम्बन्ध में अपनी निषेधाज्ञा उठा ली और ये स्वदेश लौटने का प्रबन्ध कर रहे थे कि सहसा इनकी मृत्यु हो गई।

लाला हरदयाल असाधारण प्रतिभा के एक विद्वान् व्यक्ति थे। फलतः स्वदेश में तथा विदेश में उन्होंने बड़ी ख्याति प्राप्त की। पिछले महायुद्ध के पहले वे योरप में रहकर अपने ढंग से मातृभूमि को स्वतन्त्र करने में लगे थे। युद्ध छिड़ जाने पर उनका सम्बन्ध जर्मनी के युद्ध-विभाग से हो गया और भारत में विद्रोह कराने के प्रयत्न में उन्होंने भी भाग लिया। अपने ऐसे ही कार्यों से वे भारत नहीं आ सकते थे, परन्तु महायुद्ध के बाद उन्होंने उन सब कार्यों से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया जिनके कारण ब्रिटिश सरकार उनसे नाराज़ हो गई थी।

इसके बाद उन्होंने जो लेख तथा पुस्तकें लिखीं उनसे प्रकट हुआ कि उनके विचारों में भारी परिवर्तन हो गया है और वे अब षड्यन्त्रकारी या विद्रोही नहीं रहे। यही सब देखकर ब्रिटिश सरकार ने उन्हें भारत लौटने की आज्ञा दे दी थी। परन्तु देश को उनके अनुभवों से लाभ उठाना नहीं बदा था और उनका स्वर्ग-प्रयाण हो गया।

लाला जी का जन्म दिल्ली में हुआ था। भारतीय विश्व-विद्यालय से ग्रेजुएट होने के पश्चात् वे बेडन छात्रवृत्ति तथा भारत-सरकार की छात्रवृत्ति प्राप्त कर आक्सफ़ोर्ड के सेन्ट जान्स कालेज में पढ़ने के लिए विलायत गये।

आक्सफ़ोर्ड में उन्होंने खूब कीर्ति अर्जित की और एम० ए० की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में पास हुए। वहाँ से स्वदेश लौटने के बाद वे कुछ समय तक दिल्ली के सेण्टस्टिफन्स कालेज में अर्थशास्त्र के अध्यापक रहे। १९११ में वे कुछ मित्रों के आमन्त्रण पर अमरीका के सानफ्रान्सिस्को नगर गये और वहाँ तथा इँग्लैंड और स्वडन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनेक विश्वविद्यालयों में अध्यापन-कार्य करते रहे। विदेश में रहते हुए उन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के लिए अटूट परिश्रम किया और भारत तथा भारतीयों की प्रतिष्ठा-वृद्धि के लिए लेखों और भाषणों का ताँता-सा बाँध दिया। अमेरिका में क्रान्तिकारी भारतीयों का जो दल 'हिन्दुस्तान ग़दर पार्टी' के नाम से विख्यात हुआ उसके मुख्य सञ्चालक वही थे। इस प्रकार २८ वर्ष तक लगातार विदेश में वे भारत की स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करते रहे।

लाला जी की विद्वत्ता प्रशंसनीय थी। अँगरेज़ी, फ्रेंच, जर्मन, इटालियन, स्पेनिश के अतिरिक्त उन्होंने लेटिन और ग्रीक भाषाओं का भी पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया था और भारतीय भाषाओं में हिन्दी, उर्दू, गुरुमुखी और संस्कृत के वे अच्छे ज्ञाता थे। हिन्दी में 'स्वाधीनता' तथा 'अमृत में विष' नामक उनकी दो पुस्तकों का अच्छा मान है। वे महात्मा बुद्ध को अपने जीवन का आदर्श मानते थे। राजनीति, अर्थशास्त्र, विज्ञान, इतिहास और नीति-शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे।

मालवीय जी महाराज की अन्तिम अभिलाषा

महामना मालवीय जी ८० वर्ष के हो गये हैं; साथ ही उनका स्वास्थ्य भी गिर गया है। कभी तबीयत ज़्यादा ख़राब हो जाती है, कभी कुछ सँभल जाती है। महीनों से यही सिलसिला है। अभी त्रिपुरी की कांग्रेस से लौटते हुए पंजाब के एक सज्जन ने काशी जाकर मालवीय जी महाराज के दर्शन किये थे। उन्होंने मालवीय जी के स्वास्थ्य का चिन्ताजनक वर्णन अख़बारों में छपवाया है। उन्होंने अपने लेख के साथ महामना मालवीय जी का वक्तव्य भी छापा है जो इस प्रकार है।

"मुझे दुःख है कि मैं पड़ा हूँ और देश में एक लड़ाई छिड़ी हुई है और एक बड़े शत्रु से उसका मुक़ाबिला है। मैं विवश हूँ। मैं इतना कमज़ोर हो गया हूँ कि लोग मुझे कोई काम करने नहीं देते। देश पर इस समय संकट आया हुआ है। मुझे अनेक काम करने हैं। मैं चाहता हूँ कि देश का लम्बा दौरा करूँ और विश्वविद्यालय की आर्थिक दशा को अच्छी तरह सुधार दूँ। मुझमें अभी तक उत्साह है और मैं चाहता हूँ कि राष्ट्रीय संग्राम में क्रियात्मक भाग लूँ।" और उपर्युक्त बातें पूज्य मालवीय जी ने रावल-पिण्डी सिटी कांग्रेस के प्रेसीडेण्ट योगी रामनाथ शास्त्री से कहीं। शास्त्री जी त्रिपुरी जा रहे थे और वे बनारस में पूज्य मालवीय जी से बाबू शिवप्रसाद जी गुप्त के सेवा-उपवन में मिले। योगी रामनाथ जी का कहना है कि "यद्यपि मालवीय जी के शरीर में हड्डी ही हड्डी रह गई हैं, उनकी सब हाड्डियाँ दिखलाई देती हैं, उनका बायाँ हाथ काँपता है तब भी उनका चित्त वैसा ही शान्त है और इस बुढ़ापे में भी उनकी देश-सेवा की अभिलाषा वैसी ही उत्कट और प्रबल है। मालवीय जी यद्यपि सौ क़दम भी नहीं चल सकते और न १० मिनट तक सीधे बैठ सकते हैं लेकिन उनकी मूर्त्ति वैसी ही भव्य और शान्त है। कुछ लोग उनसे सन्देश ले रहे थे। वे लगभग एक दर्जन आदमियों से मिले और ख़ास-ख़ास स्थानों पर अपने देश-वासियों के दुःख के कारण घर छोड़ने की बात सुनकर बहुत दुखी हुए। देश की वर्तमान स्थिति पर बातचीत करते हुए पण्डित जी ने मुझसे कहा कि "वृद्धावस्था और चिन्ताओं के कारण मैं कमज़ोर तो होगया हूँ लेकिन मेरा हृदय पहले ही की तरह बलवान् है। काम करने और देश-सेवा के लिए मुझमें वैसा ही उत्साह है जैसा मुझमें युवा-वस्था में था। ज्यों ही मैं रोग से कुछ निवृत्त होऊँगा तो मैं देश का दौरा करूँगा और हिन्दू विश्वविद्यालय को आर्थिक कठिनाइयों से मुक्त करने के बाद मरूँगा।"

भगवान् करे, मालवीय जी महाराज स्वस्थ हों, और उनकी अभिलाषा की पूर्त्ति हो।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., ALLAHABAD.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मुझे लिखने का आदेश भी देते थे, पर मैं फूस की नौका पर चढ़कर प्रशान्त महासागर पार करने की हिम्मत रखनेवालों में अपनी गणना कराने की ग़लती करने को कतई तैयार न था। बीती बातों की चर्चा व्यर्थ है।

हाँ, तो संत जी के विषय में मैंने अधिक जानकारी जायसवाल जी से प्राप्त की। उन्हीं से मैंने यह भी सुना कि संत जी कठोर परिश्रमी हैं तथा न तो काम करते हुए खुद थकते हैं और न अपने सहयोगियों को दम मारने की फ़ुर्सत देते हैं। यदि यह बात सही है कि "परिश्रम करने से ही कला और सफलता प्राप्त होती है" तो मैं अत्यन्त साहस-पूर्वक सन्त जी को नज़ीर के रूप में पेश करूँगा। आपका जीवन—जैसा कि जायसवाल साहब अकसर कहा करते थे—मूर्तिमान् 'अदम्य परिश्रम और उत्साह' है। अपनी जानकारी के बल पर मैं विश्वास-पूर्वक कह सकता हूँ कि जायसवाल साहब ख़ुद आरामतलब मनुष्य थे। अधिक परिश्रम उन्हें मंजूर न था। मेज़ और कुर्सी पर जितना काम किया जा सकता है, उतना ही जायसवाल जी को पसन्द था। निश्चय ही संत साहब का अथक परिश्रम उनके लिए एक लुभावनी चीज़ थी। वे चाहते थे, पसन्द करते थे कि संत जी की तरह ही परिश्रम किया जाना उचित है, पर उनसे वैसी कड़ी मेहनत संभव न थी, इसी लिए संत जी की परिश्रमी प्रकृति का वर्णन करके ही वे अपने को तृप्त कर लेते थे। दूसरा उपाय भी तो नहीं था।

जो हो, संत जी के सम्बन्ध में जब मैंने जायसवाल साहब से बहुत कुछ सुना तब मैं भी उनके दर्शनों के लिए उत्सुक हो उठा। सुना था, इन दिनों संत जी देहरादून में हैं—पटना और देहरादून में कितना अन्तर है, यह भी मैं बतला चुका। यदि इस समय मेरी मेज़ पर रेलवे का टाइमटेबिल न होता। पाठक इतने से ही संतोष-लाभ करें कि मेरे-जैसे अत्यधिक व्यस्त मनुष्य के लिए यह संभव नहीं कि मैं महज़ संत जायसवाल साहब के दर्शनों के लिए ही गठरी बाँध कर देहरादून की लम्बी यात्रा का महँगा शौक़ करने को उतारू हो जाता। मैंने सोचा—गया-जैसे खँडहर में संत साहब के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त नहीं होने का। इस उजड़े दयार में लन्दन और न्यूयार्क का रहनेवाला क्यों आने लगा। 'ह्वाइट हॉल' और 'बकिंघम पैलेस" के आदरणीय पत्रकार का गया-जैसे स्थान से क्या वास्ता।

कर्महीन दोपहरी—इसी फागुन का पहला सप्ताह! मैं चुपचाप लेटा हुआ कांग्रेस-प्रेसीडेन्ट के चुनाव की धमा-चौकड़ी पर ग़ौर कर रहा था—एक समाचार-पत्र मेरे हाथ में था। राजनैतिक पटेबाज़ियों पर विचार करता करता मैं कभी महात्मा जी की नीति पर झल्ला उठता तो कभी सुभाष बाबू की तेज़ी पर! इसी समय मेरे मित्र पंडित गोविन्द-लाल जी झंगर चप्पल घसीटते हुए पधारे। आप जब कभी पधारते हैं तब मुझे तो ऐसा लगता है कि उर्दू के कुख्यात कवि मियाँ चिरकीं ब्राह्मण के रूप में तशरीफ़ ला रहे हैं। कारण यह है कि चिरकीं की कविताओं के रूप में ही आपने कविता को पहचाना है—मतलब यह कि आपको चिरकीं का पूरा दीवान कंठस्थ है और प्रायः चिरकीं की कविताओं के विषय में ही सोचा, बोला और लिखा करते हैं। भोजनोपरांत गलीज़-प्रेमी चिरकीं का साहित्य किसे पसन्द होगा, यह बतलाना झंगर भाई से लड़ाई मोल लेना होगा। भाई गोविन्दलाल को देखते ही मैंने समझा कि चिरकीं के कवितासागर का कोई क़ीमती रत्न आपके हाथ लगा है। पर आपने आते ही कहा कि "श्री विष्णु-पदमन्दिर में संत निहालसिंह तुम्हें खोज रहे थे। वे गया स्टेशन पर—अपने 'सैलून' में ठहरे हुए हैं। कई दिनों से तुम्हारी तलाश में हैं।"

सहसा मैं भाई गोविन्दलाल की बातों पर विश्वास करने को प्रस्तुत न था, पर मैं यह भी सोचने लगा कि कोई कारण नहीं कि वे झूठ बोल कर मुझे अकारण स्टेशन तक दौड़ाने का दायित्व अपने सिर पर लाद लेने की भूल करेंगे। मैंने पूछा—"संत जी, विष्णुपदमन्दिर में क्या करने गये थे?"

झंगर जी कहने लगे—"वे अपने केमरे के साथ कई दिनों से मन्दिर में आ रहे हैं और चित्र उतार रहे हैं। उन्होंने कई बार तुम्हारी खोज की और ख़ास तौर से मुझे सूचना देने की हिदायत भी की है। संध्या-समय वे अपने सैलून में तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे—मैं भी चलूंगा, चलना।"

मितभाषी गोविन्दलाल जी इतना कहकर एक अख़बार पर टूट पड़े। यदि अख़बार पर उनकी दृष्टि न पड़ती तो मियाँ चिरकीं के दो-चार क़लाम सुनाये बिना न रहते। मैंने धीरे से दो-तीन अख़बार उनकी ओर बढ़ा कर मानो एक बला से अपनी रक्षा कर ली। मैं भोजन कर चुका था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

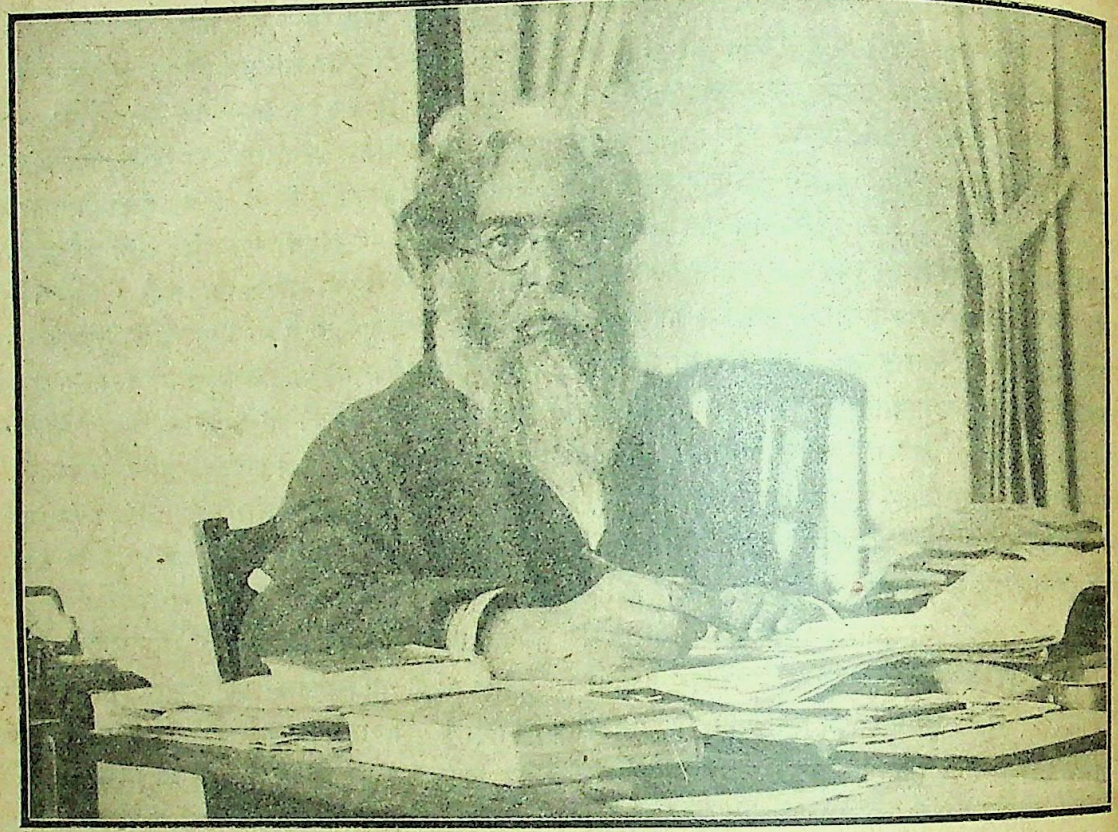

[श्रीयुत सन्त निहालसिंह]

और विष्ठाप्रेमी कवि चिरकीं की सूक्तिमुक्तावली से आनन्दोपभोग करने योग्य मनःस्थिति में न था।

मन ही मन संत निहालसिंहजी की बात सोचता रहा और अघटन-घटना-पटीयसी भगवति भवितव्यता की महिमा को मन ही मन प्रणाम भी करता रहा। सचमुच संत साहब 'गया' आये हैं--यह स्वीकार करने को मन तैयार न था? पर सत्य पर धूल उड़ा कर उसे छिपाने का प्रयत्न करना निरी मूर्खता के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है?

ज्यों-त्यों करके संध्या आई। मैं स्टेशन की ओर चला। भंगर जी भी साथ थे। स्टेशन पहुँच कर देखा--प्रधान प्लेट-फ़ार्म के दक्षिण छोर से ज़रा-सा हटकर एक सुन्दर गाड़ी--एक डिब्बा--खड़ी है। फ़र्स्ट क्लास का डिब्बा अस्त होते हुए सूर्य की सुनहरी धूप में चमक रहा था। एक ओर खूब सुन्दर छज्जी है और उसी डिब्बे में रसोईघर, स्नानघर, नौकरों के रहने का कमरा, सोने का कमरा, बैठने का कमरा आदि सब हैं। पूछने से पता चला कि १) या १॥) प्रति मील के हिसाब से इसका किराया रेलवे कम्पनी को देना पड़ता है--इसी का नाम है 'सैलून'। एक-दो बार ऐसा महाराजा साहब के चलते 'सैलून' पर सफ़र करने का मौक़ा उन्हीं के साथ--आया था, पर कोई पत्रकार या लेखक यदि वह भारतीय हो तो, सैलून पर सफ़र करने की हिम्मत कर सकता है, यह एक नई बात है। इस लेख के आदि में जिन हिन्दी साहित्यिक की मैंने दुःख के साथ चर्चा की और जो थर्ड क्लास में पधारे थे उनकी स्मृति सैलून को देखते ही ताज़ी हो गई और मुँह से सहसा 'आह' निकल पड़ा। संत जी भी पत्रकार हैं, लेखक हैं और मेरे वे सज्जन भी पत्रकार और लेखक थे, किन्तु दोनों की स्थिति में कितना अन्तर है, बीच में कितनी चौड़ी खाई है, यह बतलाना कठिन है। उस खाई को मापना मेरे लिए असंभव है। हिन्दी के भुखमरों की कातरवाणी है और अँगरेज़ी शासकों की गुर्राहट, हिन्दी विनय करने की भाषा है और अँगरेज़ी डाँटने-फटकारने की। हिन्दी खादी की फटी साड़ी है

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर गाँव के उजड़े खेतों में घूमती-फिरती है तो अँगरेज़ी तोप-बन्दूकों और हवाई जहाज़ों की छाया में 'बकिंघम पैलेस' में सुख के पालने पर झूलती है। संत जी ग़रीबी और धूल में पाली-पोसी गई ग़रीबिनी हिन्दी के सेवक नहीं, बड़े बड़े दिग्विजयी सम्राटों के गर्वोन्नत मस्तक पर छत्र बन कर आदर पानेवाली अँगरेज़ी के हिमायती हैं। फिर वे क्यों बग़ल में कम्बल की बुकची दबा कर थर्ड क्लास में से धक्के खाते हुए उतरें। मैं सच कहता हूँ, संत साहब का सैलून देखकर मुझे प्रसन्नता नहीं, पीड़ा हुई। अपनी ग़रीबी, जिसे हम प्रयत्न करके मन से भुलाये रहते थे, एकाएक स्पष्ट हो गई। मैंने संत साहब का चमकता हुआ शानदार सैलून नहीं देखा, बल्कि देखा अपनी दरिद्रता को, रोती-सिसकती और दिखलाई पड़ा मुझे वह दिव्य सैलून खड़ा-खड़ा निष्ठुर परिहास करता हुआ। संत साहब अनुपस्थित थे। अपने नाम का कार्ड छोड़कर हम लौट पड़े। मेरा मन भारी हो गया था। बिजली के स्वच्छ प्रकाश से जगमगाते हुए प्लेटफ़ार्म की एक बेंच पर बैठ कर मैंने प्रयत्न किया अपने मन को भारमुक्त करने का, पर प्रयत्न में इतना बल नहीं जो वह सत्य को धकेल कर मन से बाहर कर दे। मेरे हृदय का भार सत्य था, 'प्रयत्न' तो लीपापोती को ही कहना चाहिए।

भंगर जी रुलासे स्वर में बोले—"भाई, संत जी से मुलाक़ात नहीं हो सकी। ख़ैर, कल भी आना पड़ा। भाई, कितना शानदार रहन-सहन है। क्या हमारे लेखक और पत्रकार .....।"

मुझे आश्चर्य हुआ कि जिस बात को मैं बड़ी छटपटाहट के साथ सोच रहा था उसी बात को हमारा यह सीधा-सादा विद्वान् भाई भी सोच रहा है। मुझे संतोष हुआ कि मैं अपनी भावुकता के कारण कोई बात नहीं सोच रहा हूँ—जो भी समझदार या हृदयवान् व्यक्ति इस दृश्य को देखेगा, इसी नतीजे पर पहुँचेगा।

हम धीरे धीरे स्टेशन से बाहर हो गये। बाहर निकल कर देखा, ऊँचे ऊँचे मकानों के ऊपर शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा उठ रहा है। हम चुपचाप घर की ओर चले—हम एकदम चुप थे। रास्ते में भी किसी ने कोई बात नहीं की। मन ही अस्वस्थ हो गया था! चुपचाप उदासीनता का दुर्वह भार लादे घर पहुँचे।

(४)

कल जब संत जी के दर्शनों के लिए चला तब मैं अकेला ही था। उनके अर्दली ने कहा कि—"साहब ने कहा है कि पंडित जी आवें तो उन्हें बैठाना।" मैं बोला—"मैं प्लेटफ़ार्म पर टहलता हूँ। आ जायँ तो सूचना दे देना।" व्हीलर की दूकान से अख़बार ख़रीद कर मैं बैठ गया। संध्या-समय बनारस जानेवाली गाड़ी सामने खड़ी थी—तरह तरह की मूर्तियाँ नज़र आ रही थीं। प्रत्येक के चेहरे पर घबराहट थी और वह घबराहट गाड़ी पर बैठते ही संतोष के रूप में बदल जाती थी। 'चाय रोटी, बिस्कुट', 'गरम चाय', 'पान सिगरेट' की सस्वर पुकारों ने अपना एक अलग समा बाँध रक्खा था। गोद में अख़बार रक्खे मैं एकटक यात्रियों को एकाग्रचित्त से देख रहा था कि संत जी का अर्दली आया और बोला—"साहब सलाम कहते हैं!"

× × × ×

आपने कभी विश्वविख्यात विद्रोही कार्ल मार्क्स का चित्र देखा है—घनी दाढ़ी, सिर बड़े बड़े बालों से आच्छादित, पुष्ट शरीर! बस संत जी सामने से देखने में ठीक कार्ल मार्क्स जैसे दिखलाई पड़ते हैं। दोनों के रूप में कितना साम्य है, यह एक आश्चर्य की बात है या मेरी आँखों की भूल, यह मैं आज तक नहीं सोच सका! मैं अपनी यह धारणा बदलने को तैयार भी नहीं हूँ—क्या मैं दोनों के रूप की तुलना करने में भूल कर रहा हूँ! यद्यपि संत जी पंजाबी हैं, तथापि एक मुद्दत तक विदेशों में रहने के कारण उनके चेहरे का रंग ख़ूब साफ़ होकर कुछ कुछ योरपियनों से मिल गया है।

बाहर ठंडी हवा चल रही थी, पर गाड़ी के भीतर क़दम रखते ही मुझे ऐसा जान पड़ा कि मैं किसी ख़ूब गरम कमरे में आ गया हूँ। संत जी बैठे भोजन कर रहे थे, मेज़ की दूसरी ओर उनकी श्रीमती जी बैठी थीं। कई सुन्दर बिजली के झाड़ जल रहे थे—स्वच्छ प्रकाश से सारा सैलून जगमगा रहा था। भड़कदार वर्दी पहने ख़ानसामा प्लेट पर प्लेट मेज़ पर रख और उठा रहा था।

बड़े तपाक से उठ कर संत जी ने हाथ मिलाया और तत्काल अत्यन्त पुराने परिचित की तरह देश-विदेश की चर्चा में हम निरत हो गये। थोड़ी देर के बाद एक प्रेस-रिपोर्टर आया, जो दूर एक कुर्सी खींच कर बैठ गया। संत जी बोलते थे और बीच बीच में बच्चों की तरह खिल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खिला कर हँस पड़ते थे। ऐसी स्वच्छ हँसी जिससे लाल झरते हों, मैंने कभी कभी सुनी है। कोई स्वच्छ हृदय का महापुरुष ही ऐसी पवित्र हँसी हँस सकता है। महात्मा जी, रवीन्द्र आदि की हँसी से जिस आनन्द-लोक का सृजन हो जाता है, वैसी हँसी अन्यत्र सुलभ नहीं। श्रीमती सिंह गम्भीरतापूर्वक चाय में दूध मिलाती हुई बोलीं—"तुम चाय पीते हो—शक्कर दूँ या बिना शक्कर की चाय पीते हो।" मैं अदब से बोला—"धन्यवाद। मैं बिना शक्कर की चाय नहीं पीता—ब्राह्मण हूँ, इसलिए मीठा प्रिय है। यह अपना जातीय गुण है।" फिर हँसी—दोनों हँस पड़े। श्रीमती सिंह अमेरिकन हैं और हिन्दी नहीं समझतीं। यदि कुछ कुछ समझती भी हैं तो बोल नहीं सकतीं। वे खद्दर की पोशाक पहने थीं। मैंने पूछा—"आप तो शुद्ध खादी धारण किये हैं। उन्होंने कहा—"मैं तो भारतीय हूँ। मदरास में यह खादी उपहार-स्वरूप मिली थी। मैं बराबर खादी काम में लाती हूँ।"

संत जी ने भी खादी को ही अपनाया था। पतलून, कमीज सभी खादीमय। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। महात्मा जी के सम्बन्ध में संत जी के विचार अत्यन्त ऊँचे हैं। वे उन्हें न केवल एशिया के ही, बल्कि समस्त संसार के सिरताज समझते हैं। महात्मा जी के सम्बन्ध में संत जी के विचार पढ़ने का अवसर मुझे प्राप्त हो चुका था। 'सरस्वती' में उनके संस्मरण पढ़कर ही मैंने समझ लिया था कि संत जी का हृदय कितना भारतीय है। जिसके जीवन का श्रेष्ठ भाग भारत के बाहर व्यतीत हुआ है उसमें यदि भारतीयता कम मात्रा में हो तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं, पर संत जी तो पूरे भारतीय हैं। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में डूबने उतरानेवाला पत्रकार भारत के प्रश्न को उतना शायद ही महत्त्व देने को तैयार होगा, क्योंकि उसका कर्मक्षेत्र योरप और एशिया के बड़े बड़े राष्ट्रों के आँगन में है। किन्तु मैंने आश्चर्य के साथ यह अनुभव किया कि संत जी की पैनी दृष्टि में भारत की एक बात भी छिपी नहीं है। उन्होंने पूरी हमदर्दी और गहराई के साथ अपने घर के सवालों का भी समुचित अध्ययन किया है। वे भारत की बातों को पक्के भारतीय राजनीतिज्ञों की तरह सोचते हैं।

बातों ही बातों में उन्होंने बतलाया कि—वे एक ग्रन्थ लिख रहे हैं—भारत के सांस्कृतिक विकास पर। इसी उद्देश्य से उन्हें क़रीब एक लाख मील का साहित्यिक दौरा करना पड़ा है। ६० हज़ार मील अभी और घूमना है। उन्होंने यह भी कहा कि क़रीब ६० हज़ार चित्र उन्होंने खींचे हैं—२०-२५ हज़ार चित्र और खींचने का विचार है। १६ मोटी मोटी जिल्दों में पुस्तक समाप्त होगी। छाँट-छाँट कर २५ हज़ार चित्र पुस्तक में दिये जायँगे, पर कुछ कम भी दिये जा सकते हैं। भारत-सरकार ने इस महान् कार्य में आपको पूरी सहायता पहुँचाई है। प्रान्तीय गवर्नरों ने भी पत्र लिख लिख कर आपकी सहायता करने के अवसर का स्वागत किया है। मैं नहीं कह सकता, संत साहब की पुस्तक कैसी होगी, पर इतना तो अवश्य कह सकता हूँ कि पुस्तक लिखने की सामग्री जुटाने के मामले में सरकार का पूर्ण सहयोग संत जी को मिला है। संत जी एक महान् लेखक हैं—वे जो कुछ भी लिखेंगे वह अमूल्य चीज़ होगी। सरकारी सहायता से संत जी को भारतीय सभ्यता या संस्कृति-सम्बन्धी अपने विचारों को पुस्तक-रूप में उपस्थित करने की दिशा में, जो सहूलियतें मिली हैं वे कुछ कम मूल्यवान् नहीं हैं। ऐसी पुस्तक लिखने के मार्ग में जो कठिन बाधायें होती हैं उन पर संत जी ने शानदार विजय पाई है—इसमें संदेह की गुंजाइश, यदि हो भी तो वह अत्यन्त स्वल्प और नगण्यप्राय है। आपने कहा कि "पचीसों साल से पुस्तक लिख रहे हैं। अब वह प्रेस में जानेवाली है। इसी लिए आवश्यक संशोधन-परिवर्तन-परिवर्धन की बारी आ गई है।"

रात अधिक हो गई थी। सुबह आने का वादा करके मैं चल पड़ा। मैं विचारों की उत्ताल-तरंगों में उछलता-कूदता घर पहुँचा।

(५)

एक बात मैं कहूँगा—हमारे बहुत से विद्वानों में उत्साह से अधिक आलस्य पाया जाता है। पंडित शिवकुमार शास्त्री अपने काल के बृहस्पति माने गये थे, पर उनका प्रतिनिधित्व करनेवाला एक भी ऐसा ग्रन्थ, जिसे उन्होंने देश के कोष समाज को दिया हो, नहीं है। उन्होंने जो कुछ पढ़ा, जाना, किया, चिन्तन किया, उससे हम पूरा लाभ नहीं उठा सके। यह एक ऐसी राष्ट्रीय हानि है जिससे देश की प्रगति रुक में पड़ जाती है। इसके बाद पंडित रामावतार शास्त्री का भी यही हाल हुआ। 'मुद्गर इत' आदि दो चार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटी पुस्तिकायें लिख-लिखाकर उन्होंने भी अपनी राह ली। हाँ, 'कोश' की बात दूसरी ही है। सो भी शर्मा जी का 'कोश' असम्पूर्ण है—कौन विद्वान् उसकी पूर्ति करने का बीड़ा उठाता है, यही देखना है। एक जायसवाल जी थे जो भी चलते बने। यदि वे हमारे बीच में होते भी तो अपने अलसी स्वभाव के कारण—मेरा विश्वास है—कुछ भी न कर पाते। स्वयं वही अपना बहुत-सा अधूरा काम छोड़ गये हैं। अपनी विश्वविख्यात 'हिन्दू पॉलिटी' के जोड़ का दूसरा महाग्रन्थ लिखना चाहते थे। दिन रात कठिन परिश्रम करके मैंने एक 'विषय-सूची' भी तैयार की थी, पर फल कुछ भी न हुआ। आज तक वह विषय-सूची मेरे मेज़ की दराज़ में, अपने विफल जीवन का भार लादे, पड़ी है। और-और जो मसाले संग्रह किये गये थे उनका क्या हुआ, भगवान् जाने। यद्यपि जायसवाल साहब ने बहुत कुछ लिखा है, तथापि मैं कहूँगा कि जितना वे लिख सकते थे उसका आधा से भी कम उन्होंने लिखा। वे काग़ज़-क़लम से प्रायः घबराते थे—हँसी-मज़ाक, हाहा हीही में ही अपना मूल्यवान् समय व्यतीत कर देते थे। वे परिश्रम-प्रिय कम और विनोद-प्रिय अधिक थे।

कितनी नज़ीरें पेश करूँ—न जाने क्यों हमारे भारतीय विद्वान् लिखने से बहुत ही घबराते हैं। महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ जी झा एक ऐसे विद्वान् हैं जिनका सारा समय अध्ययन और लिखने में व्यतीत होता है। बुढ़ौती और अपने गिरे हुए स्वास्थ्य की उपेक्षा करते हुए झा महोदय जिस लगन से भारतीय साहित्य का वाङ्मय भांडार भर रहे हैं, यह आश्चर्य की बात है।

संत निहालसिंह जी चाहे जितने बड़े भारतीय हों, पर उन पर भारतीय साहित्य का जो ऋण है उससे वे शायद उऋण न हो सके। अँगरेज़ी-साहित्य को रत्नों से भरकर उन्होंने उसे अपना ऋणी बनाया, पर भारतीय साहित्य का, जिसका ऋण उन पर है, उन्होंने, अपने ज्ञानालोक से वंचित ही रक्खा। कितने परिताप की यह बात है!

संत साहब की सेवा में मैं दूसरे दिन सुबह उपस्थित न हो सका। पेट की प्रेरणा से मैं गृहकर्म में ही उलझा रहा। दोपहर को वे विष्णुपदमन्दिर में आनेवाले थे। मन्दिर के दरबान ने आकर उनके आने की सूचना दी।

विष्णुपदमन्दिर में अपना क़ीमती केमरा लिये संत साहब को देखा। आप बड़े ज़ोर से हँस कर बोले—"आ गये तुम! अच्छा मेरी सहायता करो।" मैं सहायता की बात नहीं समझ सका, पर एक सिपाही की तरह 'अटेंशन' में खड़ा हो गया। खद्दर की मोटी कमीज़, देशी कपड़े की पतलून और सिर पर बड़ा-सा हैट रक्खे संत साहब बड़ी लगन से पुरानी मूर्तियों का निरीक्षण करते रहे। बीच बीच में वे मुझसे भी पूछते जाते थे—"जायसवाल जी इस मूर्ति के विषय में क्या कहते थे? इस मूर्ति के सम्बन्ध में उनका क्या मत था? इस टूटी मूर्ति का समय वे क्या बतलाते थे?"

जायसवाल साहब के चरणों में बैठने से पुरातत्त्व के सम्बन्ध में क, ख पढ़ने का सौभाग्य किसी को भी प्राप्त हो सकता था बशर्ते कि उस व्यक्ति के भीतर अपने अतीत के लिए ज़रा भी स्नेहमय स्थान हो। मैं नहीं कह सकता कि अपने विषय में मेरा क्या मत है, पर मुझे सन्तोष हुआ कि संत जी प्रायः मेरी राय से सहमत हो जाते थे और कभी कभी तो अपना नोट दिखला कर साथ के एक दूसरे सज्जन से आप कहते थे कि—"देखो, मैंने भी यही बतलाया था। मैंने यही नोट किया है—देखो!"

विष्णुपद का मन्दिर चारों ओर इमारतों से घिरा हुआ है। बीच में इतना स्थान नहीं कि पूरे मन्दिर का चित्र उतारा जा सके। संत जी इस फ़िक्र में केमरा घसीटे फिरते थे कि कहीं से पूरे मन्दिर का चित्र खींचने का मौक़ा हासिल हो। दुःख है कि वे इस प्रयत्न में असफल ही रहे। बग़ल में एक मकान था, जिसकी छत पर से मन्दिर का तीन चौथाई हिस्सा नज़र आता था। मकान पुराना, अन्धकारमय और कुछ कुछ बेमरम्मत भी था। बराबर ताला बन्द रहने के कारण उस मकान का वातावरण मनहूस हो गया था। संत जी ने उसकी छत पर चढ़ने की इच्छा प्रकट की। ताला खोला गया, पर अँधेरी सीढ़ियों पर चढ़ना कठिन था, जो चमगादड़ों की बीट से भरी हुई थीं। जब हम उस घर में घुसे तब चमगादड़ों को हमारी यह हरकत बुरी लगी। वे हमारे सिर पर झुंड के झुंड उड़ने लगे। उनके पंखों की हवा हमारी गर्दन और मुँह में लगने लगी। सील और नमी के कारण वातावरण में एक खास तरह की बदबू भरी हुई थी। रामराम करके हम छत पर पहुँचे। मुझे तो ऐसा लगा कि कहीं पुरानी छत हम लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को लिये अर्रा कर बैठ न जाय। लगन भी बुरी बला होती है। संत जी का ध्यान इस ओर न था। संत जी बोले"—यहाँ से भी मन्दिर का पूरा हिस्सा नज़र नहीं आता।" यदि उनका वश चलता तो वे मन्दिर के चारों ओरवाले कमरों और छज्जों को तुरन्त तुड़वा कर ही दम लेते। वे दुःखभरे शब्दों में कहने लगे—"भला इन भद्दी इमारतों की क्या ज़रूरत थी। इतना सुन्दर मन्दिर और इस बुरी तरह घिरा हुआ! इसे तो खुले मैदान में होना चाहिए था।"

इमारत बनवानेवालों को यह क्या मालूम कि किसी समय "भारत के सांस्कृतिक इतिहास" के लिए इस मन्दिर के चित्र की आवश्यकता पड़ेगी। कभी कभी जायसवाल साहब पटना के 'गोलघर' को देखकर कहा करते थे कि—"इसे शहर के बीचो बीच में बनवाना चाहिए था।" यदि कोई तरीक़ा निकल आता तो वे अवश्य ही 'गोलघर' को घसीट कर शहर के बीच में स्थापित कर देते—भले ही उस भद्दे गोलघर से शहर की शोभा नष्ट हो जाती, पर जायसवाल साहब को तो संतोष ही होता। अपने संतोष के लिए मानव न जाने क्या क्या करने पर उतारू हो जाता है? यह तो तुच्छ "गोलघर" और पटने की शोभा की ही बात थी।

चित्र खींचते खींचते संध्या हो गई और मकान के निचले दो खंड अन्धकार में डूब गये। ख़ास तौर से सीढ़ियाँ तो सुरंग-सी जान पड़ने लगीं। संत साहब घबराये। बड़ी कठिनता से मेरे कन्धों का सहारा लेकर वे नीचे उतरे। यदि मेरे पैरों में चप्पल के स्थान पर अँगरेज़ी जूते होते तो निश्चय ही मैं संत साहब को लिये हुए सभी सीढ़ियों को लुढ़क कर पार कर डालता और परिस्थिति चिन्ताजनक हुए बिना न रहती! संत साहब का शरीर भारी है, पृथुल है। मैंने अनुभव किया कि मेरे दोनों कन्धे इतने दुख गये हैं कि या तो मैं 'हल' में जोत दिया गया होऊँ या ईंटें लदी हुई किसी पुरानी बेढंगी बैलगाड़ी में। सीढ़ियों के संकट से मुक्त होने पर जितनी प्रसन्नता मुझे हुई, उतनी हमारे साथियों में से किसी को भी न हुई होगी।

संत जी की एक विचित्रता को मैं कभी भूलने का नहीं। मैं उन्हें कुछ नोट लिखवा रहा था। मैं १५-१६ मिनट लगातार बोलता और वे दो तीन पंक्तियों में मेरी पूरी बातों का सारांश विचित्र ढंग से लिख लेते। तारीफ़ यह कि मेरी सभी बातें कुछ शब्दों में समा जातीं। भाषा पर ऐसा अभूतपूर्व अधिकार मैंने अन्यत्र नहीं देखा। नोट लिखने में निश्चय ही संत साहब अपनी जोड़ नहीं रखते। मैंने अनुभव किया कि एक श्रेष्ठ पत्रकार में इस विशेषता का रहना स्वाभाविक और आवश्यक है।

(६)

संत साहब का शाही सैलून स्टेशन पर ही लगा हुआ था। दिन-रात इंजनों और गाड़ियों का आना-जाना लगा रहता था। कुछ देर वहाँ बैठकर मैंने यह अनुमान लगाया कि यहाँ एक कार्ड भी लिखना अपनी मानसिक एकाग्रता पर अत्याचार करना है। एक इंजन हाहाकार करता हुआ आया, फिर मालगाड़ी की लम्बी पाँत शुरू हो गई—गरज यह कि हर घड़ी कुछ न कुछ शाब्दिक उपद्रव होता ही रहता। मैंने देखा, एक विशाल इंजन संत जी के सैलून के सामने आकर काला-काला धूआँ उगलने लगा। बावर्ची अर्दली दौड़े—उसे खदेड़ कर वे लौटे भी न थे कि सीटी देता हुआ दूसरा आया। सच पूछिए तो बैठा बैठा मैं घबरा उठा। मुझे संत जी के धारा-प्रवाह सवालों का उत्तर देना पड़ रहा था। मैंने उनसे झिझकते झिझकते पूछा—"यहाँ तो बड़ा शोर रहता है। आपका काम तो शान्ति का है।"

संत जी मेरा प्रश्न सुनते ही पहले तो बड़े ज़ोर से हँसे और फिर कहने लगे—"मुझे ऐसे वातावरण में काम करने का अभ्यास हो गया है। यात्रा में ही मैं लिखा करता हूँ। रेल और जहाज़ पर लिखते-पढ़ते मुझे एकाग्र हो जाने की आदत सी पड़ गई है। पहले-पहल जिस अख़बार के दफ़्तर में मुझे काम करना पड़ता था, वहाँ बड़ा हंगामा रहता था। मेरे कमरे में दर्जनों सम्पादक और रिपोर्टर बैठते थे। बग़ल के कमरों में अनगिनत टाइपराइटर अपनी पूरी "स्पीड" में काम करते थे। निचले खंड में विशाल प्रेसों की दहलहट रात-दिन घर को दहलाती रहती थी—उस पर प्रेस कर्मचारियों का और आने-जानेवालों का कोलाहल अलग से। हम अपनी अपनी मेज़ पर सिर झुका कर देश-विदेश की बातें सोचते, लिखते, संशोधन करते और प्रूफ़ ५ मिनट पर प्रेस के छोकड़े को 'मैटर' देते जाते। हम १५ पंक्तियाँ काग़ज़ के टुकड़े पर लिख कर प्रेस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंधते जाते थे। यह भी याद रखना पड़ता था कि क्या लिख कर प्रेस में भेजा है और अब क्या लिखना है। मैं शोर-गुल में बैठ कर काम करने का अभ्यासी हो गया हूँ।"

मैं अवाक् भाव से सुन रहा था और संत जी बोल रहे थे। मुझे याद है कि १९१९ ईसवी के अपने तूफ़ानी दौरे में महात्मा गांधी को मैंने इसी तरह दो दो पत्रों का सम्पादन करते अपनी आँखों से देखा था। दिन भर में १०-१० सभाओं में आप व्याख्यान देते और दौड़ते हुए मोटर पर जा सोते। इतना ही नहीं—लेख भी लिखा करते। उन दिनों अँगरेज़ी में 'यंग-इंडिया' और हिन्दी तथा गुजराती में 'नवजीवन' प्रकाशित होता था। अँगरेज़ी और गुजराती के पत्रों में महात्मा जी को प्रतिसप्ताह लिखना पड़ता था। अपने व्यस्त कार्यक्रम में भी दिन-रात के कामों की नियमितता अक्षुण्ण रखना ही साधारण व्यक्ति का काम नहीं है। उस पर सुव्यवस्थित दिमाग़ से लेख लिखना तो अत्यधिक शान्तधी का ही काम हो सकता है। महात्मा जी के लेखों के एक एक शब्द पर संसार के बड़े बड़े विवेचक विचार करते हैं—ऐसी स्थिति में उनका कुछ भी लिखना कितना उत्तर-दायित्वपूर्ण है, यह बतलाना न होगा। अपने को उस हैसियत में महात्मा जी कैसे व्यवस्थित रखते होंगे, यह महात्मा जी ही बतला सकते हैं। यह तत्त्व मेरी समझ के परे की चीज़ है।

जायसवाल जी में यह बात न थी। वे लिखते-पढ़ते समय घड़ी का टिक्-टिक् शब्द भी सहन नहीं करते थे। वे कहा करते थे कि "लेखक का लिखने-पढ़नेवाला कमरा हिमालय की किसी गुफ़ा की तरह शान्त होना चाहिए, जहाँ मानव क्या एक चिड़िया भी नहीं जा सकती।" संत जी हल्लेगुल्लेपाड़े की—शोर-गुल की—क़तई परवा नहीं करते। अख़बार के आफ़िस में काम करते करते तथा लगातार यात्रा में रहने के कारण अपने आपको स्वस्थ कर लेने की प्रचंड क्षमता उनमें उत्पन्न हो गई है। उन्होंने बड़े उल्लास से यह बात ज़ाहिर की कि अब तक वे तीन बार भू-प्रदक्षिणा कर चुके हैं। चौथी बार के लिए तैयारी कर रहे हैं। यात्रा के सम्बन्ध में आपकी राय है कि—यह सारा विश्व-प्रपंच एक विशाल विश्वविद्यालय है। एक अरबी लोकोक्ति (अस्सफ़रो वसीलः तुज्जफ़र) के अनुसार "यात्रा सफलता की कुंजी है।"

लोकोक्ति चाहे जो कहे, पर संत साहब के लिए उनकी यात्रा-प्रियता फलवती हुई। न जाने संसार में कितने ऐसे अभागे हैं जो घर-द्वार छोड़ कर मारे-मारे फिरते हैं, पर उन्हें किस बात की सिद्धि प्राप्त होती है, यह आज तक प्रकाश में नहीं आया। मानसरोवर में बगले और हंस दोनों ही बैठते हैं, पर अपने अपने गुण-कर्म के अनुसार अलग अलग फल दोनों को मिलते हैं—बगले तो मछलियों की खोज में रहते हैं और हंस मोतियों की तलाश में। विश्व-मानसर के कूल पर हंसों और अभागे बगलों की कमी नहीं। संत निहालसिंह जी ने जिस विश्व-भ्रमण से अकथनीय लाभ उठाया है वही विश्व-भ्रमण करके हमारे एक परिचित बन्धु आज-कल धूलि की रस्सी बँटा करते हैं।

विष्णुपदमन्दिर से सूर्यास्त होते न होते सैलून में हम लौटे। मैंने देखा श्रीमती निहालसिंह सैलून की छज्जी पर खड़ी खड़ी पथ निहार रही हैं। वृद्ध दम्पति का यह स्नेह इस पाप-तापमय संसार के लिए अभिनव स्वर्ग की सृष्टि करनेवाला है।

पश्चिम दिशा में सूर्यास्त हो रहा था। श्रीमती सिंह छज्जे पर झुकी हुई रास्ते की ओर देख रही थीं। उनके लाल चेहरे पर और कर्पूरनिभ श्वेत बालों पर अस्तंगत दिनमणि की सुनहरी विभा बड़ी ही कोमलता के साथ चमक रही थी। लुभावना दृश्य था।

हम धीरे धीरे सैलून में पहुँच कर थके-से बैठ गये। उत्सुक श्रीमती जी संत साहब से दिन भर के काम का हाल पूछने लगीं। संत साहब उन्हें बतलाने और हँसने लगे।

'बेरा' आया और मेज़ पर भोजन की गरमागरम रक़ाबियाँ रख कर चला गया। सैलून भोजन की सुगन्ध से भर गया। संत जी हँस-हँस कर भोजन करने लगे और अन्तर्राष्ट्रीय चर्चा छिड़ गई।

देखते देखते दिन का प्रकाश स्टेशन के भद्दे क्वार्टरों के उस पार जाकर समाप्त हो गया!

(७)

संत जी आडम्बर-प्रिय नहीं कहे जा सकते। आप अत्यन्त मामूली काग़ज़ की नोट-बुक पर लिखते हैं, जो बाज़ार में ⩽) में मिल सकती है। साधारण सी ज़िल्द और)। की पेंसिल। बस, यही सामान। आपके अक्षर छोटे छोटे और गोल गोल होते हैं—बड़ी तेज़ी से लिखते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। नवयुवकों की तरह ख़ूब दृढ़तापूर्वक क़लम पकड़ते हैं और दबाकर लिखते हैं। यदि पतला काग़ज़ हो तो क़लम दो-तीन पन्नों को पार कर जाय। पूछने पर आप कहने लगे—"पंडित जी, मैं आडम्बर से चिढ़ता हूँ। सादगी, ज़िन्दगी का प्रधान गुण है। मेरा भोजन, मेरे कपड़े—मैं प्रयत्न करता हूँ कि मेरे जीवन में आडम्बर न घुसने पावे। हम (श्रीमती सिंह की ओर इशारा करके) अत्यन्त सादा भोजन पसन्द करते हैं—बस, रोटी, फल, दूध थोड़ा-सा मांस। मसाले से परहेज़ है—शक्कर की बनी चीज़ें हम नहीं छूते।"

बड़े बड़े महापुरुषों में—जायसवाल जी को छोड़कर—मैंने सादगी का शुद्ध रूप देखा है। जायसवाल साहब खाने-खिलाने के शौक़ीन थे। राजसी भोजन—ख़ूब मिठाइयाँ और दामी दामी फल। उनके भोजन की मेज़ दर्शनीय होती थी! खाते-खाते जब पेट तन जाता तब वे अपने नेपाली रसोइये को कोई न कोई नई चीज़ बनाकर लाने का आदेश देते थे। संत साहब ने बड़े ही दुःखपूर्ण शब्दों में कहा—"मैंने डाक्टर जायसवाल को कई बार समझाया कि "मीठा खाना बन्द करो और सादा भोजन करो।" पर उन्होंने इस ओर ध्यान ही कहाँ दिया! 'डाइबिटीज़' के पुराने मरीज़ थे। अन्त में इसी मर्ज़ ने उन पर विजय पाई! 'डाइबिटीज़' के रोगी को मिठाइयों से परहेज़ रखना चाहिए।"

मैं चुपचाप बैठा सुनता रहा। यद्यपि सादा भोजन बढ़िया होता है तो भी जो केवल अपने को जीवित रखने के लिए ही दवा के रूप में भोजन करते हैं उनके लिए सादा भोजन का महत्त्व है, पर हमारे-जैसे जो जीव केवल भरपेट नाना प्रकार के मिष्ठान्न-पक्वान्न खाने के लिए ही इस धराधाम पर अवतरित होकर जी रहे हैं उनके लिए संत जी की बातें निरी अनोखी होंगी। मैं स्वयं ख़ूब मसाले और मिठाइयाँ खाता हूँ। मरूँ या चिरजीवी होऊँ, भला उबाली हुई सब्ज़ी और चोकर की रोटी खाकर जीवित रहना तो मर जाने से भी कष्टदायक है। भले ही मसालों और मिठाइयों के चलते साल में एक-दो दर्जन बार उपवास करना पड़े—इसकी मुझे तनिक भी परवा नहीं। डाक्टर जायसवाल का कथन भूलने लायक़ नहीं है। आम के दिनों में जब आप एक दर्जन 'मालदह' आम अपने सामने रख कर बैठते थे तब कहा करते थे—"बेटा, भूखों मरने से सुखद है खाते खाते मर जाना।" इतना बोल कर आप आम खाना शुरू करते थे और तब तक खाते रहते थे जब तक सभी आम नहीं खा जाते थे। मैंने संत साहब की मेज़ पर नज़र डाली तो देखा—उबाले हुए आलू, शाक, गोभी और दो-चार रूखी रोटियाँ। एक प्याला चाय, जिसमें शक्कर नदारत और थोड़ा-सा पका हुआ (उबाला हुआ?) मांस! आप बड़ी रुचि से भोजन कर रहे थे। श्रीमती सिंह प्रायः 'प्रोटिन' काम में लाती हैं। 'विटामिन' और 'प्रोटिन' के अतिरिक्त आप लोग दूसरी चीज़ों की ओर आँख उठा कर देखते भी नहीं—खाना तो दूर की बात है। सिगरेट-शराब भी नहीं छूते—सादा, साफ़, हलका भोजन!

सादगी संत जी की आदत में घर कर गई है। मैं नहीं समझता कि योरप और अमरीका में रहनेवाला, उस पर भी अन्धाधुन्ध कमानेवाला व्यक्ति कैसे इतनी सादगी को अपना सका। श्रीमती सिंह तो संत जी से भी एक डग आगे नज़र आईं। यह गुण किसने किससे सीखा, यह बतलाना कठिन है। मुझे तो इसी बात का आश्चर्य है कि गुण, कर्म स्वभाव की ऐसी एकरूपता दो ऐसे व्यक्तियों में, जिनकी संस्कृति और जिनका देश एक-दूसरे से हज़ारों मील के फ़ासले पर हो, कैसे पाई जा सकती है। संत जी भारतीय हैं और उनकी श्रीमती जी अमेरिकन। फिर भी दोनों के गुण, कर्म और स्वभाव में आश्चर्यजनक मेल है, अद्भुत ऐक्य है। यह भी एक तरह की अनहोनी घटना-मात्र है।

दूसरे दिन मैं सुबह ६॥ बजे संत जी की सेवा में उपस्थित हुआ। आपने इसी समय बुलाया ही था। स्टेशन का प्रभात-वर्णन पत्थर के कोयले के गला घोंटनेवाले धुएँ से आरम्भ करना चाहिए। मन्दमलयानिल के स्थान पर हलवाइयों और चायवालों के चूल्हों से जो काला काला गंदा धुआँ निकल रहा था उससे वातावरण दुर्गन्धमय हो उठा था। 'फ़िनाइल' से धोये जाने के कारण सारा स्टेशन फ़िनाइलमय हो रहा था। काले काले भद्दे कोट पहने हुए टी० आई० यत्र तत्र टहल रहे थे। अपनी नाइट ड्यूटी समाप्त करके कुछ बाबू उदास मुंह लिये रिक्शाकुलियों से झगड़ रहे थे। उन्हें दूर—अपनी 'वियोगिनी' के पास जाना था। क्या जीवन है इनका भी!

इसी चहल-पहल में मैं अपने बन्धु पन्नालाल के साथ संत जी के सैलून के सामने उपस्थित हुआ। उस समय आप एक सज्जन को कुछ पत्र लिखने का आदेश दे रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और खुद सुबह का भोजन समाप्त करने की धुन में थे। जब मैंने उनके सामने दो-तीन संतरे भी देखे! वे खूब प्रसन्न दिखलाई पड़ते थे।

संत जी में एक विचित्रता है। वे किसी प्रश्न का उत्तर नहीं देते। प्रश्न करने में तो वे एक ही हैं। प्रश्न पर प्रश्न करके वे आगन्तुक की जानकारी का दिवाला निकाल कर ही दम लेते हैं। मैं घर से सोचकर चला था कि आज संत जी को प्रश्न करने का मौक़ा नहीं देना चाहिए। बैठते ही मैंने पूछा—"आप 'हिन्दुस्तानी' के विषय में क्या सोचते हैं।" कुछ देर तो संत साहब सोचते रहे, फिर अत्यन्त गम्भीर होकर बोले—"हिन्दुस्तानी का प्रचार होना चाहिए। न कठोर संस्कृत-शब्दों की भरमार हो और न अरबी फ़ारसी की। हिन्दुस्तानी-भाषा भारत की भाषा कही जायगी।"

मैंने फिर पूछा—"कुछ लोगों का यह मत है कि मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए या उन्हें अपनी ओर खींचने के लिए हिन्दी का रूप बिगाड़ा जा रहा है। इस प्रयत्न से वे हिन्दी पढ़ सकेंगे तो सांस्कृतिक ऐक्य हो जायगा।"

संत जी ने कहना शुरू किया—"पंडित जी, यदि यह बात सही है तो मैं कहूँगा कि हिन्दुस्तानी के हिमायतियों को एक बार फिर से ग़ौर कर लेना चाहिए। कल क्या होगा, यह पता नहीं, पर आज तो मुसलमानों ने हिन्दुओं और भारतीयता का विरोध करने का मानो निश्चय सा कर लिया है। वे हिन्दुस्तानी के प्रचार को भी मुस्लिम-संस्कृति के लिए अवांछनीय समझ सकते हैं। जब उन्होंने सोचने का अपना तरीक़ा ही बदल डाला है तब इस तरह के सभी प्रयत्न बेकार साबित होंगे।"

थोड़ा ठहर कर संत जी ने फिर कहना आरंभ किया—यह बात भी बुरी है कि हिन्दी के हिन्दू लेखक तो अन्धाधुन्ध संस्कृत-शब्दों को अपनी भाषा में भरते जायँ और मुसलमान अरबी-फ़ारसी के शब्दों को। इस होड़ का नतीजा होगा दोनों भाषाओं का धीरे धीरे छोटे दायरे में सिकुड़ते जाना। लोग अपने तरीक़े पर हिन्दुस्तानी का मज़े में प्रचार करें, पर यह सोचना ग़लत होगा कि इससे मुसलमान हमारे निकट आते जायेंगे। उनका हृदय-परिवर्तन इस प्रयत्न से नहीं होने का।"

संत जी की स्पष्ट राय की क़द्र सभी करेंगे। हम तो यह सोचते हैं कि यदि हमारी भाषा में ख़ूबी होगी तो वह विश्व-भाषा बन जायगी। ग़ुलामों और दरिद्रों की भाषा होकर भी हिन्दी ने बिना राजकीय संरक्षण के जो गौरव प्राप्त किया है उसका कारण इसकी निजी विशेषता-मात्र है। यदि अँगरेज़ी की तरह हिन्दी को राज-सम्मान मिलता तो आज हम देखते कि चेम्बरलेन और हिटलर हिन्दी में ही अपनी बातचीत आरम्भ करते क्योंकि अँगरेज़ी और जर्मन-भाषा का माध्यम हिन्दी ही रहती, उसी तरह जैसे काबुली और बंगाली आपस में विचार-विनिमय करते समय पश्तो और बंगला के बदले में हिन्दी को ही काम में लाते हैं। संभवतः मेरी आशावादिता सीमोल्लंघन कर गई हो, पर जिस भाषा में सबसे पहले-पहल 'मा' को पुकार कर मातृस्नेह से भरा चुम्बन पाया था उस भाषा के लिए मैं ऊँची से ऊँची बात सोचने, बोलने और लिखने में अपने को ज़रा भी कुंठित नहीं पाता।

हाँ, एक बात यह है कि संत जी भी दबी ज़ुबान से 'रोमन-लिपि' की वकालत करते हैं। उन्होंने कहा—"रोमन उतनी बेढंगी लिपि नहीं है। थोड़ा सा यदि संशोधन कर दिया जाय तो भारत में उसका प्रचार हो सकता है।"

मैंने ज़ोर देकर पूछा—"जी नहीं—मैंने सुना है कि नागरी के स्थान पर रोमन-लिपि का झंडा उड़ाना कुछ लोग पसन्द करते हैं। आप अपनी राय दीजिए। मैं यही सुनने को उत्सुक हूँ।"

संत जी ने कहा—"यदि रोमन-लिपि का प्रचार हो जाय तो जो देवनागरी नहीं पढ़ सकते उनके लिए हिन्दुस्तानी सहज हो जायगी।"

मैं अधिक लिखना नहीं चाहता। संत जी के विचार नागरी के सम्बन्ध में चाहे जैसे हों, पर महात्मा गांधी के एक लेख की कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत कर देना बुरा न होगा।

महात्मा गांधी लिखते हैं:—"हिन्दुस्तान में सर्व-मान्य हो सकनेवाली अगर कोई लिपि है तो वह देवनागरी ही है। ... अगर हम रोमन-लिपि को दाखिल करें तो वह निरी भार-स्वरूप ही साबित होगी और कभी लोकप्रिय नहीं बन सकेगी।"

महात्मा जी रोमन-लिपि के विषय में लिख रहे हैं:—"रोमन-लिपि का मुख्य लाभ इतना ही है कि छापने और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टाइप करने में यह लिपि आसान पड़ती है। किन्तु मनुष्यों को इसे सीखने में जो मेहनत पड़ेगी उसे देखते हुए इस लाभ का हमारे लिए कोई मूल्य नहीं। .....करोड़ों हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए भी देवनागरी का सीखना आसान है, क्योंकि अधिकांश प्रान्तीय लिपियाँ देवनागरी से ही निकली हैं।"

मुसलमान जिस जिस प्रान्त में बसे हैं उस प्रान्त की लिपियों और बोलियों को, जीवन के लिए स्वभावतः अपनाते ही हैं। ऐसी दशा में उन्हें सहज ही देवनागरी सिखलाई जा सकती है। महात्मा जी के विचारों की लम्बी व्याख्या करना उचित नहीं, अतएव मैं अपने प्रधान विषय की ओर ध्यान देना उचित समझता हूँ। पाठक क्षमा करेंगे।

दोपहरी हो गई थी। प्लेटफ़ार्म पर फागुन की धूप चमक रही थी। स्टेशन में प्रायः सन्नाटा था, क्योंकि कोई 'ट्रेन टाइम' नहीं था। अलसाये से स्टेशन के कर्मचारी और कुली इधर-उधर घूम रहे थे। शान्त सैलून की खुली खिड़कियों से मैं देख रहा था—भाग्य-रेखा की तरह लोहे की कठोर लाइनें और उनके बाद छोटे-छोटे मकानों की बेढंगी क़तार जिसमें से धुआँ उठ रहा था और बाहर कुछ बच्चे खेल रहे थे। सड़क पर तीन-चार बैलगाड़ियाँ धीरे धीरे जा रही थीं। सारा दृश्य उदास था।

(८)

मुझे, मेरे एक आदरणीय कृपालु सज्जन ने, संत जी को 'डिनर' के लिए निमन्त्रण देने का आदेश दिया था। उक्त सज्जन लेफ़्टिनेन्ट कर्नल हैं। जब मैंने संत जी से निवेदन किया तब आपने प्रसन्नचित्त से न्योता स्वीकार कर लिया। ठीक ब्राह्मण की तरह हँस कर संत जी बोले—"हाँ, मैं दोपहर के भोजन में अवश्य शरीक होऊँगा। तुम उन्हें सूचना दे दो।" ठीक इसी समय श्रीमती सिंह ने एक बाधा उपस्थित कर दी। उन्होंने कहा—"मैं तो खास तरह का भोजन पसन्द करती हूँ। मेरे लिए अलग व्यवस्था होनी चाहिए।"

मैं अकचकाया। मेरे साथ एक सज्जन थे, जो कई बार विदेश-यात्रा कर चुके हैं और बड़े बड़े 'हिज़हाईनेसों' की सेवा में रह चुके हैं। मैं उनकी बुद्धि पर बड़ा विश्वास करता हूँ—और चाहिए भी। मैंने अपने मित्र को इशारा किया, तब उन्होंने तुरन्त काग़ज़ क़लम लेकर श्रीमती जी से उनके खाद्य-द्रव्यों की तालिका पूछनी आरंभ कर दी। अँगरेज़ी खाद्य द्रव्यों के हज़ारों नाम मेरे उक्त पर्य्यटक मित्र को याद हैं। उन्होंने तत्काल समझ लिया कि श्रीमती सिंह किस तरह का भोजन पसन्द करती हैं। वे मोटर में लेफ़्टिनेन्ट कर्नल को सूचना देने गये और मैं स्टेशन के भोजनालय में उदर-ज्वाला निर्वापित करने घुसा। मैंने समझ लिया कि अब २ बजे भोजन भगवान् से भेंट होगी। न्योता जीमने की आदत होती तो भूखा रहकर 'पराये पर' टूट पड़ने के लिए विशेष रूप से तैयार हो जाता, पर दुःख है कि ब्राह्मण के घर जन्म लेकर भी मुझे न्योता जीमने का कभी अवसर नहीं मिला। विश्वास है, न्योता जीमने के लिए ही मुझे एक बार और धरातल पर पधारना पड़ेगा। ठीक १२॥ बजे लेफ़्टिनेन्ट कर्नल साहब ने मुझे संत जी के साथ आने की सूचना दी। संत जी को मैंने कह दिया था। वे बोले—"अच्छा, इन्हें (श्रीमती जी की ओर इशारा करके) बाज़ार में कुछ सामान खरीदना है। अपने भाई को इनके साथ भेज दो।"

पन्नालाल, श्रीमती जी और एक बंगाली सज्जन गये। रिक्शा पर तीनों रवाना हुए। यदि संत जी की जगह पर मैं होता तो 'मोटर' की खोज करता, पर सादगी इसी का नाम है। मौजी लोग कभी 'रोल्सरायस' पर सफ़र करते हैं तो कभी टूटी बैलगाड़ी पर! उनके लिए दोनों सवारियों में विशेष अन्तर नहीं है। मैंने महात्मा गांधी को 'साइकिल' पर चढ़ते देखा है। कितने आश्चर्य की बात है! बिहार-रत्न राजेन्द्र बाबू 'पटनिया-एक्का' पर जाते नज़र आते हैं।

जब श्रीमती जी बाज़ार से लौटीं तब संत जी ने बंगाली महोदय से साग्रह पूछा—"निश्चय ही आपने दो-चार रुपये का फ़ायदा पहुँचाया होगा।" कुछ लज्जित से बंगाली महोदय बोले—"हें हें, जी नहीं—एक रुपया दूकानदार को कह सुनकर छुड़वाया।"

संत जी खूब ज़ोर से हँस कर बोले—"बस, इतना ही!"

मैं मन ही मन हँसा। यदि मेरी हँसी प्रकट हो जाती तो शायद संत जी उसे व्यंग्य की हँसी समझ बैठते। बड़ी कठिनता से मैंने अपनी उच्छृङ्खल हँसी दबाने में सफलता पाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब हम लेफ़्टिनेन्ट कर्नल साहब की कोठी की ओर रवाना हुए। मैं भोजन का वर्णन नहीं करूँगा, क्योंकि मुझे भय है कि पाठक कहीं अपने राम को पेटू न मान बैठें। लेफ़्टिनेन्ट कर्नल साहब के यहाँ पहुँचते ही मैं मानो अकेला हो गया। संत जी को घेर कर सभी बैठ गये और तत्काल देश-विदेश की वार्ता आरंभ हो गई।

ऐसी-ऐसी पार्टियों में फलाहारी को कभी भी शरीक होने का शौक़ नहीं करना चाहिए जिसका कटु अनुभव अनेक बार मुझे प्राप्त हुआ है, पर फिर भी निमन्त्रण मिलते ही ब्राह्मण-बुद्धि ज़ोर मारने लगती है।

एक बार गया में उड़ीसा के प्रीमियर माननीय विश्वनाथ दास पधारे। उन्हें पार्टी दी गई। हम कई अभागे शाक-भोजी थे। बस, हमारी मेज़ अलग लगा दी गई और गाजर, टमाटर, गोभी, आलू खाकर किसी तरह पेट की भट्ठी को समझाना-बुझाना पड़ा। यही दशा सन्त साहब के साथ लेफ़्टिनेन्ट कर्नल के यहाँ भोजन करने में हुई। अपने राम पापड़, पपीता, ककड़ी, गाजर, सलजम खाकर ही संतोष कर गये जब कि हमारे सामने प्लेट पर प्लेट परोसे जा रहे थे और काँटे-छुरी की खनखनाहट से पूरा भोजन-कक्ष गूंज रहा था।

सूर्यास्त! बनारस जानेवाली गाड़ी में संत जी का सैलून जोड़ दिया गया। हम स्टेशन पर इधर-उधर घूम रहे हैं। पत्रकारों, मित्रों और शहर के सम्भ्रान्त व्यक्तियों से घिरे संत साहब खड़े हैं। संत जी अपने सैलून में घुसे, हम भी पीछे पीछे चले। इसी समय एक सिंहली बौद्ध भी अपना कार्ड भेज कर आया। उसके पीले वस्त्र पर दिवंगत भानु की सुनहरी किरणें पड़कर चमक उठीं—सैलून का भीतरी भाग क्षण भर के लिए पीले प्रकाश से भर गया। मिलते हुए संत जी ने उस बौद्ध का परिचय उपस्थित सज्जनों से कराया और मेरी बारी आई तब उन्होंने कहा—"इनका नाम.....है। आप एक उच्च शिक्षित व्यक्ति हैं..... इत्यादि।" मुझे कितना परिताप हुआ कि संत साहब ने मुझे हिन्दी का लेखक नहीं तो एक तुच्छ सेवक भी नहीं समझा। एक कहानी मुझे याद आती है। उर्दू के एक कवि मीर साहब थे। भारी अक्खड़, पूरे ज़िद्दी! किसी ने आपसे पूछा—'हज़रत उर्दू में इस समय कितने कवि हैं। आपने फ़र्माया—"तीन!"

पूछा—"कौन कौन?" उत्तर मिला—"एक मैं और दूसरे दो और।"

फिर प्रश्न हुआ—"अमुक हज़रत भी तो शायर हैं—" तो मीर जी झल्ला कर बोले—"अच्छा, आधा उनका नम्बर भी रहा। कुल साढ़े तीन।"

मीर साहब ने तो एक अभागे को अपने मुक़ाबिले में आधा नम्बर भी दिया, पर संत जी ने तो इस ग़रीब को ½ नम्बर देना स्वीकार नहीं किया! मैं नहीं कह सकता, यह हिन्दी-लेखक होने का अपराध है या सचमुच मुझमें लेखक कहलाने की योग्यता का ही अभाव है। कभी न कभी इसका फ़ैसला होकर ही रहेगा। वे अपने साथ मेरे लिखे हुए कई संस्मरण ले गये—मैं धन्यधन्य हो गया!

× × ×

संत जी चले गये। उन्होंने मुझसे कहा था कि वे दो मास 'गया' में ही रहकर एक ग्रन्थ लिखना चाहते हैं। उन्होंने भगवान् बुद्ध की कोई जीवनी लिखी है, जिसके सम्बन्ध में उनका कहना है कि किसी भी पुरानी जीवनी-पुस्तक से बिना सहायता लिये ही प्राप्त साधनों का सरे नौ से अध्ययन करके, पुस्तक लिखी गई है। एक बात जो उन्होंने कही वह बहुत ही मज़ेदार थी। उनके विचार से मागधी भाषा सिंहली की मा है। मैं नहीं कह सकता वे किस आधार पर ऐसा कह रहे हैं—किसी भाषा-तत्त्वविद् को इस ओर ध्यान देना चाहिए। मगधवासी होने के कारण मैं आनन्दगद्गद होकर ही रह गया!

संत साहब का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक है और वे सचमुच कठोर परिश्रमी तथा महान् पुरुषों में से एक हैं। वे भले ही मुझे लेखक न स्वीकार करें, पर मैं तो उन्हें दिग्विजयी लेखक कहकर अपनी कृतज्ञताञ्जलि अर्पण करता हूँ। वे संसार के श्रेष्ठ लेखकों में से एक हैं।

पूरब ने पश्चिम को यह 'संत निहालसिंह' दिया है—निश्चय ही भारत को अपने इस लाल पर गुमान है। इन्हीं माई के लालों ने आज संसार के सामने भारत के गौरव का ध्वजोत्तोलन किया है। संसार के सामने हम गुलाम रहते हुए भी जो सिर ऊँचा करके खड़े होने का साहस करते हैं वह इन्हीं बहादुर भारतीय सिपाहियों के बल पर! निश्चय ही योरप को हमारा ऋणी होना चाहिए।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंहावलोकन

लेखक, श्रीयुत भगवानदीन दुबे

'सरस्वती' के पाठक श्रीमान दुबे जी से परिचित होंगे। उन्होंने यह लेख स्वीज़रलैंड के ज्यूरिच से भेजा है। इसमें उन्होंने योरप की वर्तमान परिस्थिति का रोचक ढग से वर्णन किया है।

१९

१४-१९१९ के महायुद्ध के बाद सबकी यह इच्छा हुई कि कोई ऐसी संस्था क़ायम की जाय जिससे संसार को फिर से महायुद्ध की यंत्रणायें न भोगनी पड़ें। फलतः 'लीग आफ़ नेशन्स' नाम की संसार के राष्ट्रों की एक संस्था क़ायम हुई। यद्यपि अमरीका का संयुक्त-राज्य इसका सदस्य न हो सका, तो भी संसार के सभी देश, रूस को छोड़ कर इसके सदस्य बने। कुछ वर्षों तक इसकी खूब धाक रही, यहाँ तक कि रूस भी इसमें आकर शामिल हो गया।

अब कुछ बड़े-बड़े राष्ट्रों ने ऐसा समझा कि लड़ाई के साधनों में पैसा व्यय करना व्यर्थ है, इसलिए निश्शस्त्रीकरण के सम्बन्ध की सभायें हुईं, उनमें ग्रेट ब्रिटेन ने प्रमुख भाग लिया। उस समय ब्रिटेन में मज़दूर-दल की सरकार का बोलबाला होने से उसने निश्शस्त्रीकरण सचाई के साथ किया। यहाँ तक कि सिंगापुर के प्रसिद्ध जहाज़ी अड्डे का काम जो शुरू हो चुका था, रोक दिया गया और कुछ दिनों तक बन्द रहा।

फ्रांस लीग आफ़ नेशन्स का एक प्रमुख संस्थापक था। वह ग्रेट ब्रिटेन से निश्शस्त्रीकरण के बाबत सहमत नहीं था। लड़ाई के बाद भी उसने फ्रांसनिवासियों में अनिवार्य सैनिक शिक्षा जारी रक्खी। यही नहीं, अपने बचाव के लिए जर्मनी की सीमा पर मैगिनाट लाइन नाम की क़िलेबन्दी की रचना की, जो इस समय संसार में अजेय गिनी जाती है। इसकी अजेयता की जाँच यथार्थ में भावी बड़े युद्ध में ही हो सकती है। उसने चेकोस्लोवेकिया, पोलेंड, रूमानिया इत्यादि से अलग संधियाँ भी कीं।

महायुद्ध के समय संसार के कारखाने गोला-बारूद बनाने में लगे थे। फलतः संसार के बाजारों में बने हुए माल की कमी रही। लड़ाई के बंद होने के बाद रोज़गार एकाएक खूब चमका और गिरा भी। पर १९२२ से १९२७ तक सचमुच तरक़्क़ी रही। इतने वर्षों में खपत से ज्यादा माल बनने लगा। साथ-साथ कई देशों में अपने-अपने कारखाने खोले गये। इधर जापान ने भी खूब तरक़्क़ी की। १९२८-२९ की मन्दी १९३१ के अन्त तक रही। इसमें कितने कारखानों में काम कम हो जाने की वजह से मज़दूर कम किये गये। आमदनी के कम हो जाने के कारण लोगों ने अपना खर्च कम कर दिया। परिणाम यह हुआ कि बेकारों की वृद्धि हुई। बेकारी से असन्तोष पैदा हुआ। इसका पहला शिकार जर्मनी हुआ जो एक प्रधान औद्योगिक देश है। हिटलर जैसे लोगों की बन आई। ये लोग कहने लगे कि इस दुरवस्था का कारण सरकार है। सरकार को बदलना चाहिए। खैर, सरकार बदली और हिटलर के हाथ में जर्मनी का शासन-सूत्र आया।

उधर मुसोलिनी की अध्यक्षता में इटली की खूब उन्नति हुई। ऊपर से वह लीग का सदस्य बना रहा और सभी निश्शस्त्रीकरण की सभाओं में शामिल होकर उसका समर्थन करता रहा, पर भीतर-भीतर फ्रांस की तरह वह इन बातों में विश्वास नहीं करता था। फ्रांस से उसकी मित्रता भी थी। फ्रांस के ही समर्थन पर उसने अबीसीनिया पर हमला किया। जापान के मंचूरिया हड़प करने पर लीग की प्रतिष्ठा में कुछ धक्का लगा था, पर चूंकि इसके सभी ज़ोरदार सदस्य योरपीय थे, अतएव उन्होंने समझा कि उस सुदूरस्थ झगड़े को न बढ़ाया जाय। पर अबीसीनिया के हमले ने सब किसी में बेचैनी पैदा कर दी—खास कर अँगरेज़ों में। अँगरेज बहुत छटपटाये और इटली पर प्रतिबन्ध लगाये जाने का उपक्रम किया। पर फ्रांस के गुप्त समझौते के कारण ब्रिटन का विरोध बेकार सिद्ध हुआ। असली पेट्रोल की बंदी के प्रस्ताव का फ्रांस ने समर्थन न किया। उधर मुसोलिनी ने धमकी दी कि पेट्रोल-बंदी की बात कार्य में परिणत होते ही वे युद्ध की घोषणा कर देंगे। जब युद्ध के छेड़ने की बात आई तब अँगरेज़ झिझके क्योंकि भूमध्य सागर में उनके क़िले तथा जंगी जहाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चढ़ाई हमले को रोकने के क़ाबिल न थे। उधर फ़्रांस, यद्यपि इस सम्बन्ध में मज़बूत था, अँगरेज़ों का साथ देने को असहमत था। अकेले अँगरेज़ उस समय इटली से लड़ने के क़ाबिल न थे। तब अँगरेज़ों को अपनी निश्शस्त्रीकरण की नीति की भूल जान पड़ी। क्या करते? ख़ून का घूंट पी कर रह गये। और चुप मार ली। उन्होंने अपनी भूल को सुधारने का प्रयत्न जारी किया।

मसल मशहूर है कि जो दूसरे को गढ़ा खोदता है वह उसमें ख़ुद गिरता है। अँगरेज़ों को इसका बदला लेने में देर न लगी। हिटलर ने कुछ ही समय पहले जर्मनी का शासन-सूत्र अपने हाथ में लिया था, उसने इस फूट से लाभ उठाने में देर न लगाई। उसने जर्मन-जाति का फिर से शस्त्रीकरण किया। फ़्रांसीसी अब अँगरेज़ों का मुंह ताकने को लाचार हुए। अँगरेज़ चुप्पी साध गये। हिटलर ने बलपूर्वक राइनलैंड पर क़ब्ज़ा कर लिया, जो वर्सेलीज़ की सन्धि के खिलाफ़ था। अब फ़्रांस को अकेले जर्मनी से भिड़ने की हिम्मत न पड़ी। अँगरेज़ों को बदला मिल गया।

हिटलर ने जर्मनी की आश्चर्यजनक उन्नति की। यह न समझिए कि रोज़गार बढ़ा और कोई सच्ची माली हालत सुधरी। उसने लोगों को सड़क बनाने, लड़ाई के सामान जुटाने तथा और ऐसे ही अनेक काम करने में लगा दिया। और इस सबको रुपया चाहिए। पर रुपया तो बाहर से कहीं आया नहीं। यहूदियों को उसने चूसने के क़ानून बनाये। अपने भारत में मारवाड़ियों की तरह योरप में यहूदी धनवान् गिने जाते हैं। करोड़पति यहूदियों को भिखारी बना कर उसने देश से निकाल दिया और अभी निकाल रहा है। करोड़ों रुपया इस तरह मिला। जिस रीच-बैंक के नोट जर्मनी में चलते हैं वह नई रीति पर बनाई गई और उससे ख़ूब काम निकाला। इस बैंक के प्रधान डाक्टर शाफ़ट थे वे इस नीति का समर्थन नहीं करते थे अतएव वे निकाल दिये गये। उसके नोटों की गैर मुल्कों में चौथाई भी क़ीमत नहीं है। लोगों को देश-भक्ति के नाम पर खाने-पीने की सामग्रियों की कमी पर शिकायत न करने को कहा गया। बहुत सी खाने-पीने की सामग्रियाँ विदेशों से आती हैं। और रुपया है नहीं तो कहाँ से आयें? हिटलर ने दूसरे देशों से आज-कल के मुद्रा-चलन के विपरीत सामान के बदले सामान का चलन जारी किया। पर यह कहाँ तक चल सकता है? फिर भी यह चाल काफ़ी काम में लाई गई। डींग मारने को हो गया कि जर्मनी में बेकारी नहीं है। यह मानी हुई बात है कि इस नीति का चलन असम्भव है।

हिटलर और मुसोलिनी की मित्रता होनी इस दशा में अनिवार्य थी। दोनों में ख़ूब मेल हुआ। जापान ने चीन के ऊपर हमला कर लीग को ग़ारत कर दिया। जापान की तरह जर्मनी और इटली ने भी लीग को छोड़ दिया। इन तीन सशस्त्र देशों से मुक़ाबिला करने की हिम्मत छोटे छोटे देशों में न थी। उन्होंने देखा कि जब अबीसीनिया और चीन पर हमले हुए तब लीग नियम से बद्ध होते हुए भी फ़्रांस और ब्रिटेन जैसे शक्तिशाली देश आक्रान्तों की मदद न कर सके तब लीग के सदस्य होने से क्या फ़ायदा है। इसलिए बेल्जियम, हालैंड इत्यादि देशों ने नोटिस दे दिया कि वे लीग की प्रतिबन्ध लगाने की नीति पर नहीं चलेंगे।

इससे जर्मनी, जापान और इटली को और ज़ोर मिला। इधर स्पेन में गृह-युद्ध जारी हुआ। जर्मनी और इटली खुल्लम-खुल्ला जनरल फ़्रैंको की मदद करने लगे। फ़्रांस और रूस प्रजातंत्र-सरकार की मदद में थे। फ़्रांस और ब्रिटेन की अनबन का लाभ उठा कर इटली गुर्राता रहा कि अगर फ़्रांस स्पेन की प्रजातंत्र-सरकार की मदद पर जायगा तो वह लड़ाई ठान देगा। अँगरेज़ इस बात से घबड़ा उठे। अँगरेज़ों को फ़्रांस ने अच्छी सीख दी थी। अँगरेज़ अपनी तैयारी में लगे थे जिससे वे अपनी ही शक्ति पर भरोसा रक्खें। इसलिए अहस्तक्षेप कमिटी की रचना की गई। मुसोलिनी और हिटलर उसमें ऊपरी मन से शामिल हुए, जिससे कम से कम फ़्रांस को वे मदद करने से रोकें। बात यह तय थी कि स्पेनवालों को ख़ुद लड़ने दिया जाय, दूसरे राज्य किसी की मदद न करें और जो अन्य देश के सैनिक स्पेन में हैं वे बुला लिये जायँ। फ़्रांस को तो अपने सैनिक बुलाने पड़े, इटली और जर्मनी ने भी कुछ वापस बुलाये, पर नाम-मात्र को। मुसोलिनी और हिटलर गुप्त रीति से अपने आदमी बराबर भेजते रहे। मुसोलिनी को झूठा कहने की हिम्मत किसको थी? आख़िर में जेनरल फ़्रैंको की विजय हुई।

हिटलर ने अपने देश में जो तीन साल में उन्नति की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका प्रभाव आस्ट्रियावालों पर पड़ा। हिटलर के एजेंट वहाँ फूट पैदा करने में लगे। आस्ट्रियानिवासी भी जर्मन-जाति के ही हैं। आस्ट्रिया के निवासियों में एक ऐसा बड़ा समूह उत्पन्न हो गया जो जर्मनी से आस्ट्रिया को मिला देने का आन्दोलन करने लगा। जिस देश में आपस में फूट हो जाती है उसका कुशल नहीं है। हिटलर को आस्ट्रिया के हड़पने का अच्छा मौक़ा मिल गया। आस्ट्रिया की किसी से संधि भी नहीं थी। हिटलर ने धमकाया और आस्ट्रिया जर्मनी से जा मिला।

फिर क्या था? हिटलर के हाथ एक कारगर नुस्ख़ा लग गया। उसने कहा कि ज़ेकोस्लोवेकिया के वे भाग जर्मनी को मिल जाने चाहिए जिनमें जर्मन बसते हैं। इसकी माँग ज़ोरों से गत सितम्बर में पेश की गई और धमकी दी गई कि सीधे से न मिलेंगे तो लड़ कर ले लेंगे। इटली ने जर्मनी का समर्थन किया। अड़ंगा यह था कि ज़ेकोस्लोवेकिया की संधि फ़्रांस से थी। अगर उस पर हमला होता तो फ़्रांस को लड़ाई में उतरना पड़ता। ब्रिटेन की उससे संधि नहीं थी, पर फ़्रांस से इस बात का समझौता था कि अगर फ़्रांस पर कोई हमला करेगा तो ब्रिटेन फ़्रांस की मदद पर जायगा। ऐसा जान पड़ा कि महायुद्ध ठना चाहता है। उस समय नेवाइल चैम्बरलेन ने बीच में पड़ कर म्यूनिख़ का समझौता किया और जर्मनी की माँग पूरी की गई। कोई कहता है कि उक्त समझौता चैम्बरलेन साहब की कायरता के कारण हुआ, कोई इसे उनके शान्ति-प्रेम का परिणाम बताते हैं, कोई समय टालना कहते हैं, सच क्या है, यह भविष्य बतलावेगा। इस समय यदि यह कहा जाय कि तीनों कारण थे तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। कोई-कोई उसे अँगरेज़ों की कूटनीति बतलाते हैं, जो अभी हल नहीं हो सकती। समय पाकर इसका रहस्य खुलेगा। राजनीतिज्ञों की बाहरी बातों का कोई महत्त्व नहीं होता।

इतना ज़रूर हुआ कि म्यूनिख़ के समझौते के बाद अँगरेज़ अपनी जंगी तैयारी के काम में अधिक तत्परता से संलग्न हो गये। और इस समय वे इतने अधिक शक्ति-सम्पन्न हो गये हैं कि किसी से भी लोहा ले सकते हैं। जर्मनी ने इस मार्च में सारे ज़ेकोस्लोवेकिया पर अपना क़ब्ज़ा करके संसार को अपने सच्चे स्वरूप का थोड़ा-बहुत परिचय दे दिया है। इसका जवाब मुसोलिनी ने अल्बेनिया पर क़ब्ज़ा करके दिया है। इस समय आत्म-जागृति का सवाल नहीं है। अब तो सवाल क्षमता और अक्षमता का है। क्षमताशाली राष्ट्र अन्य को गुलामी करने योग्य ही कह देना चाहते हैं। नतीजा यह हुआ है कि संसार इस नीति का प्रतिकार करना अपना धर्म समझता है। कई छोटे-छोटे राज्य तो यह कह कर कि हम निरपेक्ष रह कर अपना बचाव कर लेंगे, मन को समझा रहे हैं। पर जो कुछ मज़बूत हैं और अकेले रहना नहीं चाहते वे दूसरों से संधि कर रहे हैं। इस समय जर्मनी, इटली, स्पेन, हंगरी और जापान एक तरफ़ हैं। दूसरी तरफ़ ब्रिटेन, फ़्रांस, पोलैंड खुल्लम-खुल्ला और ग्रीस और रूमानिया भीतर भीतर एक साथ हैं। पर कोशिश जारी है कि रूस और तुर्की भी किसी न किसी रूप से इसमें मिला लिये जायँ। स्वीज़रलैंड, बेल्जियम, हालैंड, नार्वे, स्वीडन अभी निरपेक्ष हैं।

अब तक जर्मनी और इटली ने वही ज़ोर किया है, जो बिना लड़े काम सिद्ध होने की सम्भावना थी। पर अब क्या होगा, कहना कठिन है। फ़्रांस और ब्रिटेन उसी तरह लड़ने को सुसज्जित हैं, जैसे जर्मनी और इटली। इटली और जर्मनी, खासकर जर्मनी की, माली हालत इतनी खराब है कि लड़ाई को छोड़कर हिटलरशाही के क़ायम रखने का दूसरा ज़रिया नहीं है। रोज़गार न बढ़ा तो अगणित आदमी गोला-बारूद बना कर कब तक जियेंगे। इस फ़िज़ूल-खर्ची के लिए रुपया कहाँ से आयेगा।

अगर योरप में इस तरह आग न लगती तो जापान को चीन के हड़प जाने में ज्यादा कठिनाई न होती, क्योंकि जापान को नाराज़ न करने की खातिर पहले-पहल फ्रांस और ब्रिटेन ने चीन की यथारूप मदद न की। पर अब जापान इटली और जर्मनी की तरफ़ ज्यादा झुका दीख पड़ता है, अतएव चीन की मदद अब ज़ोरों से हो रही है। न केवल रुपया, बल्कि काफ़ी सामान भी दिया जा रहा है, जिससे वह जापान को मोर्चे पर थामे हुए है। अमरीका के संयुक्त-राज्य का भी झुकाव ब्रिटेन और फ्रांस की तरफ़ है और अगर लड़ाई ठनी तो वह उनकी केवल रुपये-पैसे और सामान से ही मदद न करेगा, बल्कि उनके साथ लड़ाई में भी उतर पड़े तो आश्चर्य नहीं। इधर रूस की विश्वव्यापक नीति में फ़र्क़ हो रहा है। उसे भी अब फ़िक्र पड़ी है, क्योंकि जर्मनी और जापान उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुश्मन हैं, इसलिए जिससे जर्मनी का पतन हो उसका वह समर्थन ज़रूर करेगा। फ़्रांस से उसका एक प्रकार का समझौता है ही, ब्रिटेन से भी उसके मेल की कोशिश ज़ोरों से जारी है।

अभी उस दिन प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट ने जो अपील हिटलर और मुसोलिनी से की है उसका साफ़ मतलब इन दोनों को हत्या-क़ानूनी घोषित करने का है। ये लोग उस अपील को नहीं मान सकते। फिर भी उनकी एकाएक लड़ाई ठानने की हिम्मत नहीं जान पड़ती। ऐसा होता तो मुसोलिनी को यह दहाड़ कि फ़्रांस अगर ट्यूनिस, स्वेज़ और जिबूटी के संबंध में उसकी माँग को नहीं स्वीकार करेगा तो वह फ़ौरन लड़ाई ठान कर बलपूर्वक इन्हें ले लेगा, फ़्रांस की हुंकार पर खत्म न हो जाती। फिर अल्बेनिया पर क़ब्ज़ा कर लेने पर, जो एक प्रकार उसके अधीन था, वह अँगरेज़ों को हर प्रकार की दलीलों से समझाने की, कि ऐसा करने से भूमध्य सागर के संबंध में जो समझौता गत वर्ष हुआ है, भंग नहीं हुआ, दिलतोड़ कोशिश न करता। अँगरेज़ों ने दलीलें तो नहीं मानीं, पर उस समझौते को तोड़ना भी मुनासिब नहीं समझा। चैम्बरलेन साहब की समझौते-द्वारा शान्ति क़ायम करने की नीति अब हवा हो गई है। उनका छाता अब लाठी में परिणत-सा हो गया है।

इस समय इटली और जर्मनी तथा फ़्रांस और ब्रिटेन में शतरंज की-सी चालें हो रही हैं। इटली और जर्मनी में अख़बारों का सारा क्रोध चैम्बरलेन और रूज़वेल्ट पर उतारा जा रहा है। इधर फ़्रांस और ब्रिटेन के अख़बार शान्त हैं। हाथी और कुत्तों की-सी हालत है। चैम्बरलेन तथा दलादियर के वक्तव्य युक्तिपूर्ण और गम्भीर होते हैं। हिटलर और मुसोलिनी के वक्तव्य नब्बे फ़ी सदी आत्म-प्रशंसा और बाक़ी गाली-गलौज से भरे होते हैं। एक ही तत्त्व निकलता है कि 'जिसकी लाठी उसकी भैंस।'

वर-याचना

लेखिका, श्रीयुत तारा पाण्डेय

जीवन के पल बीत रहे नित
आज माँगने आई मैं वर!

बँधा हुआ है मानव-प्राणी
बुनता लघु सुख-दुख की जाली,
अपने ही बन्धन में बँध कर
प्राणों में पीड़ा-निधि पाली।
मेरा सुख बँट जाये जग में
दुःख रहें मेरा चिर-सहचर!

इन्द्रधनुष के रंगों-सी यह
आशा नव-नव रूप दिखाती
'क्षणभंगुर है जीवन-सपना'
मुसकाकर मुझसे कह जाती।
जगत हुआ दुख से ही निर्मित
भरती मैं आँसू का सागर!

भिक्षुक बनकर निशि-दिन किससे
माँग रहा जग सुखमय जीवन
मृग-जल से मैं ऊब उठी अब
कहती हूँ दुख प्राणों का धन।
मेरी आँखों में करुणा हो
शाप बनेगा मुझको शुभ वर!

तारे नभ में विचरण करते
फूल खिल रहे वन-उपवन में
फिर फिर निशि-दिन, होते पल छिन
परिवर्तन है तन में मन में
बे-सुध-सी तेरे चरणों में
आज माँगने आई मैं वर!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौन्दर्य्य

लेखक, श्रीयुत 'उदय'

जल-थल अभी ज्योत्स्ना की गोद में सोया था। गोमती के शान्त स्वच्छ गर्भ में बैठकर सुधाकर अभी अपनी प्रेम-कहानी कह रहे थे। नन्हीं-नन्हीं तरंगें छपक-छपक कर दोनों कूलों पर गा आती थीं। जल को निमग्न पा तट के कई पेड़-पौधे उसके गर्भ में चन्द्रमा के पास तक जा बैठे थे।

सुधांशु थिरक-थिरक कर बह रहा था। लहरें जिसे पी-पी कर गा रही थीं। पेड़-पौधे पुलकित-बदन देख-सुन रहे थे। साथ ही समीपस्थ वन-प्रान्त में एक ओर से धीरे-धीरे वेद-ध्वनि उठी और चारों दिशाओं में भरने लगी। पक्षी उठे और प्रेम-गीत दुहराने लगे। पूर्वीय आकाश में उदय के स्वागतार्थ गुलाल बिछाया जाने लगा। बस, उसी समय चार विशाल नावों के 'डिप डिप' ने उस शान्त वातावरण में एक हलचल-सी पैदा कर दी।

एक नाव पर से, जो उनमें भव्यतम थी, एक भद्र पुरुष किनारे पर उतरा। वह दौड़ता हुआ वन-प्रदेश में प्रविष्ट हुआ। उसी नौका में से यह सन्देश चारों ओर पहुँचा दिया गया कि इस तपोभूमि में कोई ऐसा काम न करने पाये जो वहाँ के स्वच्छन्द, शान्त, नैसर्गिक वातावरण को दूषित करनेवाला हो। लगभग आध घंटे तक चारों नावों के यात्री मंत्र-मुग्ध-से निश्चेष्ट बैठे रहे; कहीं होठ तक न हिलने पाया। आखिर जब तपोवन से सन्देश मिला और प्रमुख नाव के यात्री ने सबको सूचित कर दिया कि, जब तक ऋषिराज सन्ध्योपासना में लगे हैं सब शान्ति के साथ अपने नित्य-कर्म से निवृत्त हो जायँ, तभी नाव में हलचल दिखलाई पड़ी।

कुछ समय पश्चात् "श्रीमहाराजाधिराज! श्री महारानी! पधार रहे हैं" की कानों-कानों लहर-सी चली और उसी नौका से वस्त्राभूषणों से पूर्णतया अलङ्कृत एक लावण्यमूर्ति तथा राजसी वस्त्रों से सुसज्जित एक वीर-पुङ्गव ने निकल कर कुछ सेवक-सेविकाओं के साथ वन-प्रान्त में प्रवेश किया। कुछ चल कर वीर-पुङ्गव ने कहा—

"प्रिये! थक तो न जाओगी?"

"महाराज के साथ और फिर उस मंगल आशा को इस निर्द्वन्द्व, निष्कपट तपोभूमि में ऋषिराज को पहुँचाने में?"

करुणार्द्र दीर्घ श्वास फेंकते हुए महाराज ने कहा—

"आशा बलवती है।"

"क्यों, महाराज?"

"सोचता हूँ इस अनुपम सौन्दर्य को मेरी इस विषम-पीड़ा का अनुभव ही न होता तो कैसा अच्छा था।"

"नहीं महाराज, जो आमोद-प्रमोद के सिवाय और कुछ भी नहीं समझती उसी को महाराज ने इसके उपयुक्त चुन कर....."

इसी बीच अनुचर ने आगे बढ़ कर संकेत करते हुए कहा—

"पृथ्वीनाथ! वही पर्णकुटी है।"

"अच्छा, तो आप सब यहीं ठहरिए," कहते हुए राज-दम्पति आगे बढ़े। कुछ चल कर दोनों रुके; महाराज ने महारानी के कान में कुछ कहा और एक विशाल-वृक्ष के पीछे दोनों जा खड़े हुए—जहाँ से ऋषिराज की तपोमय मूर्ति, प्रातःकालीन रश्मियों से अनुरंजित मुख-मण्डल, सात्त्विक रस से प्लावित धवल केशराशि, ब्रह्मचर्य से प्रदीप्त सुन्दर गौरवर्ण, तापस जीवन में रँगे गेरुए वस्त्र में ध्यानस्थ खड़ी देखी जा सकती थी। जाज्वल्यमान मूर्ति को देख महाराज गुनगुनाए—

"कैसी भव्य मूर्ति है!"

और महारानी की ओर देखा। महारानी नतमस्तक हाथ जोड़े खड़ी थीं। महाराज भी सविनय खड़े उस अपार छवि को देखने लगे। कुछ ही समय पश्चात् 'ओ३म्' का मञ्जु घोष ऋषिराज के कण्ठ से उठने लगा। दिशाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगी। अन्य व्यापार रुक गये। रोम रोम में 'ओ३म्' शब्द व्याप्त हो धीरे-धीरे उद्भवस्थान में बैठने लगा। महारानी के होठ काँपने लगे। नेत्र सजल हो आये। श्वास तीव्र-गति से चलने लगी। विचलित महाराज के स्पर्श करने पर धीरे-धीरे करुणार्द्र मुख ऊपर उठा; सजल नयनों से प्राणनाथ की ओर देखा और बोलीं—

"महाराज!"

"क्यों प्रिये, ऋषिराज निपट चुके हैं, चलना चाहिए।"

महारानी दृग्-जल आँचल से पोंछ वस्त्रादि ठीक कर महाराज के पीछे-पीछे चल दीं। कुटी से बीस पग दूर पर ही राजा-रानी करबद्ध नतमस्तक खड़े हो गये।

"आयुष्मान्, चले आइए राजन्!" ऋषिराज ने कहा।

नतमस्तक राजदम्पति ने बढ़कर ऋषिचरणों का स्पर्श किया और संकेत पाकर आसन पर बैठ गये। ऋषि-राज निश्चल खड़े थे। महारानी की दृष्टि उनके चरणों में लगी थी। महामुनि के चरण काँप रहे थे; महारानी को अपने अस्थिर मन, तथा महाराज को अपने हृदय की उथल-पुथल की झलक उनके चरणों में मिल रही थी। एकाएक दोनों भूडोल हुआ। थर-थर कम्पित ऋषिराज की देह में मानों बिजली दौड़ गई। अतुल-प्रयास से झपट कर वे बाहर हुए। भयभीत महाराजाधिराज चौंक कर खड़े हो गये। रानी ने "भगवन्-भगवन्" कह कर मस्तक पृथ्वी पर रख दिया। ऋषिराज तीव्र गति से गोमती के जल में पुनः, सूर्योन्मुख खड़े होकर समाधिस्थ हो गये।

चारों ओर आतंक छा गया।

दौड़ कर बढ़ती हुई सेविकाओं को रानी ने हाथ से दूर रहने का संकेत किया। भयाक्रान्त महाराज किंकर्त्तव्य-विमूढ़ नदी की ओर देखते रहे। फिर कुछ सम्हल कर बोले—

"हमारी कुछ भूल हुई है, प्रिये, हमें चल कर महर्षि से क्षमा-याचना करनी चाहिए।"

व्याकुल महारानी धीरे-धीरे चल दीं।

समस्त तपोवन नदी के तट पर स्तब्ध खड़ा था। ऋषि के प्रधान शिष्य जल में उनके एक ओर हाथ जोड़े खड़े थे। आकुल राज-दम्पति नदी के तट पर पहुँचने ही वाले थे कि ऋषि ने कहा—

"वत्स! अपना कार्य करो। पृथ्वीपति से निवेदन कर दो कि समय अनुपयुक्त है। मुझे इसका भारी सन्ताप है; पर मंगल-कार्य का विधान होगा और मैं ही करूँगा। इस समय वे जायँ; पर कुछ काल के अनन्तर अवश्य लौटें।"

योगिराज यह कह ध्यानस्थ हुए। तट से ऋषिकुल धीरे-धीरे लौटने लगा। शिष्य ने आकर क्षुब्ध राज-रानी को ऋषि-सन्देश सुना दिया।

"पर महाराज" राजा ने निवेदन किया—"क्षमा-याचना के बिना हमारा यहाँ से जाना कैसे संभव होगा। हम आज अवश्य महर्षि की विशेष अन्तर्वेदना के कारण हुए हैं।"

"राजन्, आप व्यर्थ में शोकग्रस्त न हूजिएगा। समाधिस्थ गुरुवर्य्य ने समाधिभंग कर आपके लिए यह सन्देश भेजा है।"

महारानी—"ठीक है मुनिवर! हमारे अपराध करने पर भी जब भगवन् ने यह मंगल-कार्य अपने हाथ में लिया है, तो हम क्षमा कर दिये गये हैं सही; पर....."

"महारानी! ब्रह्मर्षि के लिए इसकी आवश्यकता नहीं और जब मैं आपके अतुल-सन्ताप को गुरुवर्य्य तक पहुँचाऊँगा ही, तब आप चिन्तित क्यों?"

अन्ततः नौकायें लौटने लगीं। उनके यात्री पैदल किनारे-किनारे चलने लगे। कुछ ही क़दम चल कर एक ने धीरे से पूछा,—"यह क्यों, महाजन?"

"पृथ्वीनाथ की आज्ञा है कि जब तक समाधिस्थ मुनिराज ओझल न हो जायँ, नाविकों को छोड़ कर सब पैदल ही चलेंगे।"

"क्यों महाजन, यह सब क्यों?"

"बस यही कि महारानी से कुछ भूल हुई है।"

"महारानी से? और पृथ्वीनाथ सबसे पीछे...."

"यह उनकी इच्छा," कहते हुए महाजन ने फिर कर देखा कि ओझल होते ऋषिराज को राज-दम्पति अन्तिम प्रणाम कर रहे थे। महाजन आदि ने भी उनका अनुकरण किया और सायंकाल के लगभग नौकायें चल दीं। पूर्वीय क्षितिज से काले-काले बादल निकलने लगे थे। समीर कुछ तेज़ी पर था। पर नावें विप्लवकारी तरंगों को चीरती हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ी जा रही थीं। यात्री अपने-अपने काम में व्यस्त थे। नौका-गृह के ऊपर सुशोभित महारानी के लोल-कपोलों में सुधानिधि सौन्दर्य भर रहा था। पर महाराज का ध्यान आज अन्यत्र था।

"कारण यही है, प्रिये," महाराज ने दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा—"ऋषिराज को मेरी काम-लोलुपता देखकर ही संताप हुआ है; पर वे दयामूर्ति हैं, और इस मंगल-कार्य को अपेक्षित समझते हैं, इसलिए उन्होंने क्षमा कर दिया है।"

"महाराज, मुझे बचा कर, यह अपने आप पर मिथ्या ही दोष क्यों लगा रहे हैं?"

"नहीं, वास्तव में ऋषिराज के सन्ताप का कारण हममें से कोई नहीं है।"

"मैं भी कैसे नहीं, महाराज?"

"हाँ प्रिये, नहीं। और तुम्हारी तो बात क्या, मैं भी नहीं। क्योंकि मैं यह समझने लगा हूँ कि यह ऋषिराज का भ्रम है।"

"हैं नाथ, ऋषिराज का भ्रम?"

"हाँ, जिस भ्रम में मैं भी पड़ चुका था। पर जब मैं देखता हूँ कि सुधाकर तुम्हारे सौन्दर्य के रस को पीकर निष्पाप सुस्मित-वदन सब की ओर देखता है, समीरण भी तुम्हारे से लग कर सुगन्धित हो जाता है, तो यह भ्रम दूर हो गया। सौन्दर्य सदा सत्य है। मैं उसी को तुममें पाकर पूजता हूँ, देवी! ऋषि को भ्रम हुआ है।"

"यह क्या प्राणनाथ? इस शोक, इस सन्ताप का स्पष्ट कारण तो मैं हूँ, महाराज! और आप भगवान् योगिराज पर भ्रम का दोषारोपण कर यह क्या अनर्थ कर रहे हैं।"

"ठीक ही कर रहा हूँ, ललने, अब पश्चात्ताप की आवश्यकता नहीं।"

"महाराज! महाराज!—नाथ काम-लोलुप नहीं, न ऋषिराज का सन्ताप ही इसलिए है। मैं हूँ नाथ शोक-सन्ताप की जड़। क्या पृथ्वीनाथ मुझे नहीं जानते?"

"जिस सौन्दर्य के अविरल झरने में मैं अपना ताप मिटाता हूँ, उसे मैं भले प्रकार जानता हूँ। और बस—यही जानना चाहता हूँ, विशेष कुछ नहीं—कुछ नहीं।"

"नाथ! इन सबसे मैं तो परे नहीं। जिस कुल में मैंने जन्म लिया है; जैसे जैसे जघन्य कर्म मैं करती रही हूँ; जिस आमोद-प्रमोद रसोल्लास में मैं अब भी अहर्निश पड़ी रहती हूँ उसको देखते, न मैं महाराज की दासी होने योग्य हूँ न महर्षि के उस मंगलमय आशीर्वाद के लिए सुपात्र। उस गहरी कालिमा को महाराज का अगाध-प्रेम, अथाह उदारता, अप्रतिम-विशुद्धता भी न धो सकी। ऋषिराज ने देख लिया—योगिराज से कुछ न छिपाया जा सका।

"यह क्या, यह उन्माद क्यों?"

"क्षमा, क्षमा महाराज! इस शूद्र वेश्या-पुत्री को अपनाकर महाराज को कितना कष्ट भोगना पड़ रहा है—उसके लिए क्षमा," कहते-कहते महारानी नृपति के चरणों में गिर पड़ीं।

"मालिनी! मालिनी!"

"पृथ्वीनाथ!"

"जलझारी"

"महाराज के श्री चरणों में उसकी आवश्यकता नहीं"—उठते हुए महारानी ने कहा।

"पर प्रिये, यह अकारण शोक क्यों!"

"नहीं नाथ, अब नहीं करूँगी। ऋषिराज ने मुझे क्षमा कर दिया है। अयोग्य होते हुए भी महाराज के पुण्य-बलाश्रय का मुझे सुअवसर मिला है। मेरे पर उज्ज्वल वंश की रक्षा का दायित्व रखा गया है।"

"फिर वही चर्चा।"

"उस पुनीत वातावरण में मुझे रोमाञ्च हुआ। उस दिव्य-ज्योति को मैं देख न सकी। महाराज के संकेत से श्रीचरणों में बैठी; पर मन स्थिर न रह सका। काम-वासनाओं से विदग्ध श्वास-गन्ध भगवन् से कैसे छिप सकती थी? वे उसे कैसे सह सकते थे? यह महाराज का पुण्य-प्रताप कि क्षमा कर दी गई हूँ। क्यों नाथ—महाराज क्लेशित होते हैं? पर नहीं, अब नहीं होंगे—महाराज को मैं विश्वास दिलाती हूँ कि उस अवसर तक मैं अवश्य उस मंगल-योजना के उपयुक्त सौन्दर्य का अर्जन करूँगी—क्यों नाथ? और देखिए यह मालिनी, आपकी विश्वास-पात्री दासी, महाराज, जिसने तपोवन में जाकर को मेरा शृंगार कर हँस दिया था। और देखिए, महाराज, देखिए यह अब भी हँस रही है—महाराज चुप हैं!"

"नहीं, ऐसे ही।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो एक बार आप भी हँस दीजिए, महाराज।"

× × × ×

महाराज हँस दिये।

महारानी—"क्यों महाराज?"

महाराज—"आज वही दिन फिर है।"

"नहीं, वही नहीं है महाराज।"

दिन वह नहीं था। आज महिषी नव-जीवन, नव-ज्योति, नवोल्लास के साथ ऋषिराज को परीक्षा देने आई थीं। आज सौन्दर्य था; पर वस्त्राभूषण के चकाचौंध में वितरित नहीं, वह था भाल पर बैठी एक सुहाग-बिन्दी में संकलित। मानस में तरंगें थीं, पर कोलाहल न था, मधुर संगीत था। जिसके रस से कमल नयन भर भर छलक रहे थे और कपोलों में जिसका रंग छन-छन कर बिखर रहा था। केवल एक ही नौका थी। कुछ चुने हुए ही साथी थे। आज महाराजाधिराज स्वयं ही एक सहचर के साथ ऋषिराज को अपने आगमन की सूचना देने चले। अस्ताचल लालिमा से रंजित महर्षि प्रणाम कर संध्योपासना के लिए बैठने ही वाले थे कि महाराज को अपनी ओर आते देखा।

"आयुष्मान्, आयुष्मान्—शुभागमन महाराज! आपका आना सचमुच बड़े शुभ-मुहूर्त में हुआ।"

महाराज चरण-वन्दन कर खड़े हो गये।

"राजन्, अपनी पिछली भूल के लिए मैं राज-दम्पति से क्षमा-याचना करता हूँ। हाँ—हाँ पर राज्य-लक्ष्मी को लाये हैं?"

"हाँ देव, पर आपका क्षमा-याचन कैसा?"

"इसके लिए यह उपयुक्त समय नहीं है, राजन्! सुभाव! वत्स महाराज के निवासादि की सुव्यवस्था करो।"

"यह सब हो जायगा, देव!"

"नहीं, महाराज के आतिथ्य में पहले भी बड़ी भूल हो चुकी है। जाओ वत्स,—और राजन्! आपको नैत्यिक स्नानादिक से निपट कर बहुत शीघ्र ही अग्नि-होत्र के लिए यहाँ प्रस्तुत होना है।"

"जो आज्ञा भगवन्!"

ऋषिराज आसनारूढ़ हुए। महाराज ने सहचर को नौका की ओर भेजा। और स्वयं श्रीकेशव के साथ निवासादि देखने चले गये।

"मुनिवर, अन्य तपोवन के वासी सब कहाँ चले गये हैं।"

"राजन्, शीतकाल में अन्य महर्षि अपने अपने प्रदेशों को चले जाते हैं। क्योंकि वर्ष के इसी भाग में गुरुवर्य्य एकान्त तपादिक किया करते हैं।"

"पर यहाँ केवल आप ही हैं?"

"हाँ राजन्, और वह भी केवल इसलिए कि मेरा अध्ययन समाप्त न हो सका।"

"ओह! तो हमारे आने से तो योगिराज को बड़ा कष्ट होगा?"

"क्यों राजन्, आपका काम आप करेंगे और उनका वे। कष्ट कैसा? फल-फूलों के स्थान में आपको दिखा ही दूँगा तथा वहाँ से (स्थान की ओर संकेत करते हुए) आपको दुग्धपान के लिए 'माता' मिलेगी।"

"बड़ी कृपा।"

कुछ ही काल में नव-यात्री अपने निवास-स्थानों में स्थापित हुए और पति-पत्नी आदेशानुसार स्नानादिक कार्यों से निवृत्त हो ऋषिराज की कुटी की ओर चलने को पर्णकुटी से निकले।

महाराज ने पूछा—"महर्षि के दर्शन तो तुमने अभी नहीं किये, प्रिये?"

"दर्शन वन्दन हम कर चुके महाराज, जब वे संध्योपासन में तन्मय थे। इस बार भगवन् कुछ दुर्बल से प्रतीत हुए।"

"नहीं, कोई विशेष नहीं।"

"फिर भी कुछ—यों तो विभूति हैं, कहना ही व्यर्थ है।"

इस प्रकार बातें कहते-सुनते वे महाराज की कुटी पर जा पहुँचे। ऋषि आसन पर विराजमान थे। एक ओर पीछे हट कर श्रीकेशव बैठे थे। सम्मुख हवन-स्थान था जिसके इस ओर दो आसन बिछे थे, चारों ओर हवन-सामग्री लगी थी। शुभाशीर्वाद ले पति-पत्नी ने आसन ग्रहण किया। शान्त—गम्भीर स्वर से स्तुति कर ऋषि ने अग्नि प्रज्वलित की। श्रीकेशव आहुति देने लगे। अग्निमय दम्पति की नत-ग्रीवायें ऋषिराज की मधुर वेद-ध्वनि के साथ-साथ धीरे-धीरे उठने लगीं। यज्ञशिखा की आभा से देहें स्वर्णिम हो गईं। गम्भीर वेद-ध्वनि की लहरों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निस्तब्ध दिशायें संगीतमयी हो गईं। धूम्र-सौरभ पान करते-करते चन्द्रिका के नेत्र निमीलित होने लगे। नयन मुँदते-मुँदते रोमाञ्चित केशव ने देखा, अग्नि से काञ्चन लपटें, ऋषिराज से संगीत-तरंगें और महिषी से सौन्दर्य-लपटें निकल कर सबको लपेट रही हैं। चारों तपस्वी निमग्न थे। आहुति न पा अग्नि-शिखायें अन्तर्धान होने लगीं। ऋषिराज ने वीणा बन्द की और नेत्र खोलते ही उन्होंने देखा, उस स्वर्ण-प्रतिम सौन्दर्य को। यह अग्निदेव ने क्या किया!

"सुन्दरि!" ऋषि-मुख से निकला, और अग्नि की लपट लगते ही उन्होंने अपना बढ़ा हुआ हाथ तेज़ी से पीछे खींच लिया! तेजोमय बदन से तेज बहने लगा। सबकी आँखें एक ही साथ खुल गईं। महाराज के नेत्र बन्द हो गये। राजा तथा केशव भय और आश्चर्य से ऋषिराज के मुख की ओर देखने लगे; पर महारानी अभी तक उसी तरह निमग्न थीं। व्यग्र महाराज के मुख से 'भगवन्, भगवन्' शब्द सुनकर महारानी ने नयन खोले और देखा कि श्री केशव महाराज को रोक रहे हैं और स्थान छोड़ने का संकेत कर रहे हैं। अन्ततः चुपचाप सब उठ कर बाहर हुए।

"क्यों क्या हुआ देव!"

"महाराज समाधिस्थ हो गये थे, यह आप क्या कर रहे थे राजन्!"

"क्या आज का काम समाप्त हो चुका है!"

"हाँ राजन्।"

महारानी—"पर देव, महाराज के मुख पर श्रम-चिह्न क्यों थे?"

"हाँ मुनिवर यह क्यों?"

"कुछ नहीं महाराज, शायद ध्यान-भंग से।"

राज-दम्पति सशंक पर्ण-कुटी की ओर चले और अवशेष नित्य-कर्म से निवृत्त हो अपनी अपनी कुश-शय्या पर जा बैठे। दीपक टिमटिमा रहा था जिसके आतप में तापस रंग चढ़ रहा था; आलोक में सौन्दर्य और लौ में मधुराशा नृत्य कर रही थी।

"क्या अभी से शयन करना है?"

"हाँ प्राणनाथ! आपको तो अवश्य ही, क्योंकि यह तपोवन है, प्रातःकाल बहुत तड़के शय्या छोड़ना है, और फिर जब आपको थकान भी है।"

"हाँ यह तो मैं भी सोच रहा हूँ।"

महारानी उठना ही चाहती थीं कि मालिनी ने कुटी में प्रवेश किया।

"मालिनी!"

"हाँ पृथ्वीनाथ।"

"क्यों सब ठीक है न?" "गौ को वहीं छोड़ आई हो?"

वहीं से आ रही हूँ।"

"तो ऋषिराज के स्थान के सामने से निकली होगी न?"

"हाँ ऋषिराज बाहर चाँदनी में विराजमान हैं। दासी के लिए कोई आज्ञा?"

"यहाँ कोई दासी नहीं, मालिनी! न कोई महारानी।"

महाराजा—"तो क्या केवल महाराजा ही महाराज हैं और वह भी बिना महारानी के।"

महारानी—"महाराजा की महारानी; पर मालिनी की महारानी नहीं। अच्छा मालिनी, जाओ शयन करो, प्रातःकाल शीघ्र ही उठना है। यही गोपाल से भी कह देना।"

"जो आज्ञा।"

"महारानी, मालिनी को खूब चुन कर लाई है।"

"हाँ प्राणनाथ, अब शयन कीजिएगा" कहती हुई महारानी उठीं और दीपक की लौ कम करने लगीं। महाराज लेट गये और रानी भी प्राणपति के चरण-वन्दन कर अपनी शय्या पर जा बैठी।

"हाँ, यह बहुत ठीक है न?"

"क्यों प्राणनाथ!"

"अरे, मैं तो तुम्हें एक बार सोने के पूर्व देख भी न सका और तुम चल दीं!"

"लीजिए न प्राणनाथ," कहती हुई महारानी उठीं और अपने पति के पद-चरणों के पास हाथ जोड़ खड़ी हो गईं।

"बस!" सुस्मितवदन महाराज बोले।

"हाँ महाराज! यह तपोवन है। और लिटाती हुई महारानी पुनः अपनी शय्या पर जा बैठीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"प्रिये, अब तुम्हें भी लेट जाना चाहिए।"

"यही तो कर रही हूँ नाथ!"

"कितना समय यहाँ रहना होगा, महाराज?"

"क्या ठिकाना।"

"कैसा शुभ्र वातावरण, विशुद्ध जीवन; सुनने को वेद-संगीत, देखने को महर्षि की विभूति....."।

"हूँ!"

"हूँ!"

"ओह! नींद आने लगी है।"

थोड़ी देर में महारानी के अङ्क में नन्हा-सा प्यारा बालक खेलने लगा। महर्षि ने आशीर्वाद दिया। महारानी ने बालक को प्यार से चूम कर ज्येष्ठ महारानी की गोद में रख दिया—महारानी विहँस दीं।

राज-दम्पति निर्जन-वन में निवास करने लगे—वीर पुत्र ने चक्रवर्ती राज्य चलाया—जिसका सौरभ दिग्-दिगन्त में फैलने लगा; सजल-नयन महारानी हर्ष से गद्गद हो गईं। महारानी का सजीव-स्वप्न उसी समय क्षणिक भंग हुआ। वह ध्यान से कुछ सुनने लगीं।

"ओह! ऋषिराज की खड़ाऊँ का शब्द!" (फिर ध्यान लगा कर) "शायद कुटी के बाहर टहल रहे हैं।" महारानी बैठ गईं और उन्होंने कुटी के बाहर देखा। गहरा कुहरा छाया था। चन्द्रिका को संकट में देख निशापति अत्यन्त म्लानमुख थे और शोकाकुल वनस्पतियाँ झर-झर अश्रुपात कर रही थीं।

"ओह! कैसी विजनता"—महारानी ने धीरे से कहा और उसी काल महर्षि की सजीव मूर्ति आँखों के सम्मुख खड़ी हुई!

"और इसमें यह (मूर्ति) महा-मानवता को प्राप्त करती हुई है"—महारानी ने मन ही मन कहा। कानों में खड़ाऊँ की खट-खट अभी आ रही थीं। अब एक उच्छ्वास के साथ ही—"ओह, आ गई"—कहते हुए महारानी ने भी पाँव फैला दिये।

धीरे-धीरे महारानी के नेत्र मिलने लगे। पादुका का शब्द मन्द होने लगा। दीप-ज्योति मुरझाने लगी। अवयव शिथिल होने लगे। महारानी की चेतना बाह्य-संसार से पूर्ण विदा लेने ही वाली थी कि खट-खट शब्द कर मानो धीरे-धीरे फिर आरोहण होने लगा और बढ़ते-बढ़ते वह द्वार पर ही आ पहुँचा। महारानी चौंक कर उठ बैठीं—और 'ललने!' का सम्बोधन कान में पड़ते ही 'भगवन्; क्या मैं दासी?' कहती हुईं हाथ जोड़, पर्णकुटी के द्वार पर खड़े महाराज के उन्मुख खड़ी हो गईं। दीपक के आलोक में सती के तेजोमय सौन्दर्य की झलक पाते ही 'देवी! देवी!' कहते ऋषिराज पीछे हटे। नत-मस्तक महारानी निश्चल-भाव से बोलीं—

"क्यों, आज्ञा भगवन्!"

"क्षमा—महामाये, क्षमा!"

इसी बीच महाराज चौंककर उठ बैठे। अजीब दृश्य की झलक पड़ते ही उनके मुंह से निकला—

"यह क्या?"

महारानी ने सुस्मितवदन प्राणपति की ओर देखा और बोलीं—"कुछ नहीं, महाराज, मुझ अबला को सौन्दर्य्य दान देकर ऋषिराज स्वयं निर्धन हो गये हैं।" इसी बीच ऋषिराज घुटनों के बल विनय-भाव से खड़े हो गये।

राज-दम्पति ने देखते ही—

"यह क्या भगवन्!"—कहते हुए झपट कर ऋषिराज को उठाया।

ऋषिराज ने उठते हुए कहा—"यह सच्चे सौन्दर्य्य की स्तुति है, राजन्—मैं इसके लिए क्षमा चाहता था, पर अब नहीं।"

"भगवन् नहीं—यह सब आप ही का प्रताप है।" कहते-कहते महारानी ने ऋषिराज के पद-चरणों में मस्तक रख दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय जहाज़ी व्यवसाय और सरकारी उपेक्षानीति

लेखक, श्रीयुत अवनीन्द्र विद्यालंकार

भारत का जहाज़ी व्यवसाय यहाँ ब्रिटिश राज्य स्थापित होने के पूर्व संसार में अग्रणी था, पर उसके बाद से लगातार गिरता ही गया। आज उसकी अवस्था इतनी हीन है कि संसार के जहाज़ों की तालिका में इस देश का कोई स्थान ही नहीं है। भारत-सरकार इस ओर से सदा उदासीनता ही दिखलाती आई है क्योंकि ब्रिटेन के व्यवसायियों का हित इसी में था। इस लेख में लेखक महोदय ने प्रामाणिक आँकड़े देकर इसी विषय का विवेचन किया है और साथ ही यहाँ के जहाज़ी-व्यवसाय को फिर से उन्नत करने के लिए उपाय भी बतलाये हैं।

प्राचीन भारतीय जल-यानों की सुविधाओं और इसकी व्यापारिक महत्ता से भली भाँति परिचित थे। ऋग्वेद में भारत के सामुद्रिक व्यापार का विस्तार से उल्लेख है। भारतीय विभिन्न प्रकार के 'पोत' बनाना जानते थे। नौकानयन में भारतीय लोहे के जहाज़ बनने से पहले तक संसार के अग्रणी थे। अभी पिछले दिनों भी मराठों के जहाज़ ईस्ट इंडिया कम्पनी, पोर्तुगीज़ों और डचों के जहाज़ों की अपेक्षा अधिक मज़बूत और अच्छे थे। डिग्बी ने लिखा है कि १९वीं सदी के आरम्भ में टेम्स नदी में कम्पनी के चलनेवाले जहाज़ों की अपेक्षा भारत में अधिक अच्छे और मज़बूत जहाज़ बनाये जाते थे। १८०० में गवर्नर-जनरल ने अपने स्वामियों को 'लीडन हाल स्ट्रीट,' लन्दन को एक पत्र में लिखा था—"कलकत्ता के बन्दरगाह में इँगलेंड को विभिन्न प्रकार का माल ले जाने-वाले भारत के बने १०,००० टन जहाज़ खड़े हैं। यही नहीं, बम्बई के टीक के बने जहाज़ इँगलेंड के पुराने 'ओक' के बने जहाज़ों की अपेक्षा बहुत ऊँचे दर्जे के होते थे।"

मगर ये पुरानी बातें हैं। आज संसार के ३३ सामुद्रिक देशों में भारत सबसे पीछे है। भारत-सरकार की भारतीय व्यवसायों के प्रति किस प्रकार की उपेक्षा है, उसका सबसे ज्वलन्त उदाहरण भारतीय जहाज़-व्यवसाय है। यह नहीं कि केवल सरकार की उदासीनता और उपेक्षा के कारण ही यह व्यवसाय नष्ट हो गया है। इसके और भी कारण हैं। टीक और ओक की जगह लोहे के जहाज़ बनने लगे और पालों, चप्पुओं और डाँड़ों की जगह वे वाष्प से चलाये जाने लगे। भारत समय की इस गति के साथ आगे नहीं बढ़ सका। इसके अतिरिक्त अँगरेज़ व्यापारियों के स्वार्थ के कारण वह अपने को बदले समय के अनुकूल नहीं कर सका। इसके साथ इँगलेंड का 'इँग्लिश नेवीगेशन एक्ट' भारत के साथ उसी मात्रा में लागू किया जाता रहा जिस-जितना वह ब्रिटिश साम्राज्य की गिरफ्त में आता गया। इस क़ानून के अनुसार इँगलेंड में दूसरे देशों से आनेवाला माल ब्रिटिश जहाज़ों के अलावा और किसी दूसरे जहाज़ से नहीं आ सकता था। फलतः भारतीय वस्त्र-व्यवसाय की राख से जिस प्रकार ब्रिटिश वस्त्र-व्यवसाय बना, उसी प्रकार भारतीय जहाज़ी व्यवसाय की राख पर ब्रिटिश जहाज़ी व्यवसाय का भव्य भवन खड़ा हुआ।

विस्तृत

यद्यपि भारत का सामुद्रिक तट इँगलेंड के समान नहीं है, फिर भी जहाज़ों के आने-जाने और ठहरने की उचित व्यवस्था उसके तट पर की जा सकती है। हमारे देश का समुद्र-तट ४००-४५० मील से अधिक लम्बा है। प्रतिवर्ष ४० करोड़ पौंड का हमारा सामुद्रिक व्यापार है। प्रतिवर्ष ३० लाख टन माल और ३ लाख यात्री यहाँ से जाते हैं। इन सबका केवल ५ प्रतिशत भारतीय जहाजों-द्वारा यातायात होता है। तटवर्ती व्यापार २५० करोड़ रुपये का प्रतिवर्ष होता है। इससे १० करोड़ रुपये की वार्षिक आय होती है। तटवर्ती व्यापार और बढ़ सकता है, यदि बन्दरगाहों की समुचित व्यवस्था हो जाय तथा रेलवे सुविधा प्रदान करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९२८-२९ में भारत का सामुद्रिक व्यापार अनुमानतः ६४६१३ करोड़ रुपये का था। भारत के प्रमुख बन्दरगाह कराची, बम्बई, मदरास, कलकत्ता और रंगून (व्यापारिक दृष्टि से बर्मा अब भी भारत में है) में कुल सामुद्रिक व्यापार का ½ भाग केन्द्रित है, अर्थात् १२० लाख टन प्रतिवर्ष इसके द्वारा होता है। इतने विशाल परिमाण में सामुद्रिक व्यापार के होते हुए भारतीय जहाज़ों का इसमें भाग नगण्य है। तटवर्ती व्यापार में १३ प्रतिशत और सामुद्रिक में ३ प्रतिशत भारतीय जहाज़ों का भाग है। इस सम्बन्ध में उक्त बन्दरगाहों की निम्न तालिका से जहाज़ों की संख्या, माल के वजन, व्यापार में लगे जहाज़ों की राष्ट्रीयता पर अच्छा प्रकाश पड़ेगा—

जहाज़ों की राष्ट्रीयता	युद्ध से पहले का औसत		युद्ध के समय का औसत		१९३०-३१		१९३०-३१ में प्रत्येक राष्ट्र का भाग
किस देश के आये—	संख्या	टन (१,०००)	संख्या	टन (१,०००)	संख्या	टन (१,०००)	
ब्रिटिश ...	२,४७८	६,१४०	२,२७२	४,२४९	१,९९३	५,८५२	६५·०
ब्रिटिश भारत ...	३१२	१७१	३२०	११२	१९९	८२	·९
विदेशी ...	६३६	१,७३८	५९२	१,२६९	८६७	३,०१८	३३·५
देशी नौकायें ...	८९०	६७	१,४७६	११९	६४७	५४	·६
योग	४,३१६	८,११६	४,६६०	५,७४९	३,७०६	९,००६	१००
किस देश के गये—							
ब्रिटिश	२,४५६	६,१८२	२,३०९	४,४३२	१,९०६	५,६५१	६४·३
ब्रिटिश भारत ...	३२२	१८३	२९८	७०	२३४	९५	१·१
विदेशी ...	६१५	१,६७२	५९४	१,२७७	८५९	२,९७६	३३·९
देशी नौकायें ...	८५८	६३	१,७२८	१४६	७५२	६३	७
योग ...	४,२५१	८,१००	४,९२९	५,९२५	३,७५१	८,७८५	१००
सर्व योग	८,५६७	१६,२१६	९,५८९	११,६७४	७,४५९	१७,७९१	—

ऊपर के आँकड़ों से स्पष्ट है कि २ प्रतिशत या इससे भी कम सामुद्रिक व्यापार भारतीय जहाज़ों के हाथ में है और इसका लगभग एक तिहाई देशी छोटी नौकाओं के द्वारा होता है। प्रतिवर्ष उत्तरोत्तर प्रगति हो रही है, इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिल रहा है। जहाज़ों की कुल कमाई ५७ करोड़ रुपया है, जिसमें से ५० करोड़ रुपया विदेशी जहाज़ी कम्पनियाँ ले जाती हैं।

भारत का स्थान

जहाज़ी व्यवसाय में भारत का संसार में क्या स्थान है, यह नीचे की तालिका से मालूम होगा :—

भारत की तुलना में

नाम देश	व्यापार की मात्रा	जहाज़ों की अधिकता
इँगलेंड ...	५॥ गुना से कुछ अधिक	७९ गुना
नार्वे ...	½ से कुछ कम	१८ ,,
ग्रीस ...	½	७ ,,
रूस ...	½ से कुछ कम	५ ,,
डेनमार्क ...	½	५ ,,
यूगोस्लेविया ...	½ से कुछ कम	
पुर्तगाल ...	½ से कुछ कम	
इटली		१३ गुना

इससे स्पष्ट है कि भारत जहाज़ी व्यवसाय में बहुत पीछे है और उसके पास व्यापारिक जहाज़ भी न के बराबर हैं।

एकाधिकार

भारत के तटवर्ती व्यापार पर इँगलैंड की कुछ कम्पनियों का एकाधिकार है। कुछ ब्रिटिश जहाज़ी कम्पनियों ने मिलकर अपना एक गुट्ट बना लिया है। इस गुट्ट का नाम 'कान्फ्रेंस' है। इसका यहाँ एकाधिकार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके कारण भारतीय जहाज़ों के मालिकों और उनके जहाज़ों से माल भेजनेवालों की बुरी हालत है। हमारा सामुद्रिक व्यापार इस गुट्ट का मुहताज है। श्री बोमन जी के कथनानुसार इसने भारत का सूत-व्यापार नष्ट कर दिया है। यह गुट्ट २० प्रतिशत मुनाफ़ा बाँटता है, इससे स्पष्ट है कि भाड़े की दर बहुत ऊँची है। 'फ़िस्कल कमीशन' को भी यह बात खटकी थी। इसलिए उसने लिखा था कि भारत के एक बन्दर से दूसरे बन्दर, और भारत से विदेशों को जानेवाले माल के भाड़े की दरों में असमानता होने से भारतीय व्यवसाय को दिया गया संरक्षण व्यर्थ हो जाता है, जो विदेशी माल बनानेवाले केन्द्रों की दूरी की वजह से इस देश के व्यवसाय को मिलना चाहिए था। मगर इससे भी अधिक बुरी बात यह है कि उक्त गुट्ट के जहाज़ भारतीय जहाज़ों को अपने मुक़ाबिले टिकने देना नहीं चाहते। भारतीय जहाज़ी व्यवसाय को नष्ट करने के लिए वह दो उपाय बरतता है। (१) डेफ़र्ड रिबेट सिस्टम और (२) भाड़ा-युद्ध।

डेफ़र्ड रिबेट

'डेफ़र्ड रिबेट' की व्याख्या इस प्रकार की गई है — जहाज़ी कम्पनियाँ माल भेजनेवालों को एक नोटिस व विज्ञप्ति भेजती हैं कि यदि वे एक निश्चित अवधि तक (साधारणतः चार से छः मास तक) अपना माल 'कान्फ्रेंस' द्वारा भेजे गये जहाज़ों के अलावा और किसी जहाज़ से न भेजेंगे तो इस अरसे के कुल भाड़े का एक भाग (साधारणतः १० प्रतिशत) उन्हें बाद में दिया जायगा, यदि वे इसके बाद भी एक निश्चित अवधि तक (साधारणतः चार से छः मास मास तक) 'कान्फ्रेंस' के मेम्बरों के जहाज़ों से माल भेजना जारी रक्खें। इस तरीक़े से माल भेजनेवालों की निष्ठा प्राप्त की जाती है और उनकी स्वतन्त्रता हर ली जाती है। 'फ़िस्कल कमीशन' ने इसके विरुद्ध अन्य देशों के समान क़ानून बनाने की आवश्यकता प्रकट की थी। इसके पक्ष में कहा जाता है यह पद्धति केवल भारतीय जहाज़ों के ही विरुद्ध नहीं है, अन्य देशों के भी विरुद्ध है। मगर ऐसा कहनेवाले यह भूल जाते हैं, अन्य देशों के जहाज़ों को उनकी गवर्नमेंटें सहायता देती हैं जब कि भारतीय जहाज़ों को वह प्राप्त नहीं है। इसलिए इस तरीक़े से भारतीय जहाज़ों को बहुत नुक़सान पहुँचता है।

भाड़ा-युद्ध

इसके अतिरिक्त ब्रिटिश जहाज़ी कम्पनियों का बन्धेज स्थापित हो चुका है। उनको कोई चुनौती देनेवाला नहीं है। इस पर भी उनमें से कुछ को सरकारी कृपा और संरक्षण प्राप्त हैं। डाक और स्टोर ले जाने का उन्हीं को ठेका दिया जाता है। इसलिए वे भारतीय जहाज़ी कम्पनियों को मैदान से हटाने के लिए एकदम भाड़ा कम कर सकती हैं और कर भी देती हैं और जब भारतीय कम्पनियाँ टूट जाती हैं तब फिर भाड़ा बढ़ा देती हैं। १९३८ में हङ्ग लाइन में हम यह दृश्य देख चुके हैं। स्वर्गीय जमशेद जी ताता और शान ताता ने बम्बई-जापान-लाइन आरम्भ की थी, मगर वह पी० एण्ड ओ० की प्रतिस्पर्धा में टिक न सकी। ताता के जहाज़ों में प्रतिटन १२ रुपया भाड़ा था। इसके मुक़ाबिले में पी० एण्ड० ओ० के जहाज़ों का केवल १॥ रुपया था। यही नहीं, इस कम्पनी की ओर से झूठमूठ यह उड़ा दिया गया और प्रचारित किया गया कि ताता के जहाज़ जापान माल ले जाने के लायक़ नहीं हैं। बाद में उसे इसके लिए माफ़ी माँगनी पड़ी, मगर उसके झूठे प्रचार से जो नुक़सान हुआ उसकी भरपाई नहीं हुई। १९३४ ई० में जब भाड़ा-युद्ध छिड़ा हुआ था उस समय भाड़ा ९० प्रतिशत से ७५ प्रतिशत तक घटा दिया गया था। भावनगर से रंगून का एक टन चावल ले जाने का भाड़ा प्रायः ९ रुपया ८ आने रहता है, मगर कान्फ्रेंस के जहाज़ २ रुपया प्रति टन की रेट से ले जा रहे थे। इससे पहले कभी कोंकण के किनारे मुसाफ़िरों को ये जहाज़ मुफ़्त ही नहीं ले जाते थे, बल्कि यात्रियों को रेशमी रूमाल भी भेंट में देते थे। इसके फलस्वरूप पिछले ३० सालों में, श्री मेहता के कथनानुसार, १० करोड़ रुपये की पूंजी से २०-२५ कम्पनियाँ स्थापित हुईं, मगर एक न एक कारण से सभी टूट गईं। कुछ साल पहले बर्मा के तट को मिला कर हिसाब लगाया गया था कि भारतीय समुद्र-तटवर्ती जहाज़ी व्यापार के भारतीयकरण के लिए १०० जहाज़ों और १२ करोड़ रुपये की आवश्यकता है। मगर दुःख की बात यह है कि विदेशी कम्पनियों की प्रतियोगिता के कारण १३ करोड़ रुपया भारतीय जहाज़ी कम्पनियों में डूब चुका है, ८ करोड़ रुपया सर्वथा नष्ट हो गया है और ४ करोड़ रुपया इस समय जहाज़ी व्यापार में लगा हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाज़ी व्यवसाय पर विदेशियों का एकाधिकार है। इंजन के डेक के मुसाफ़िरों की भी कुछ पूछ नहीं होती। तटवर्ती और समुद्र पार जानेवाले जहाज़ों में मल्लाह और कर्मचारी यद्यपि अधिकांश में भारतीय हैं, तथापि ज़िम्मेदारी और ऊँची जगहें भारतीयों को नहीं दी जातीं। भारत-सरकार के आग्रह और बारबार प्रेरणा करने पर भी इन विदेशी जहाज़ी कम्पनियों ने 'डफ़रिन' के केडेटों को लेने से इनकार कर दिया।

जहाज़ बनाने का व्यवसाय

भारतीय जहाज़रानी की जो अवस्था है, उससे जहाज़ बनाने के व्यवसाय की भी कुछ अधिक अच्छी दशा नहीं है। कहा जाता है कि युद्ध से पहले दस सालों में १०० टन के लगभग १७,००० जहाज़ अर्थात् २,८०,००,००० टन तैयार हुए थे। यह संख्या अब बहुत बढ़ गई होगी। भारत का इसमें युद्ध से पहले और बाद में भाग नगण्य है। केवल ५२ जहाज़ बने। यहाँ बड़े जहाज़ बनाने के उपयुक्त कोई गोदी भी नहीं हैं। जहाज़ों की मरम्मत करने की दूकानें विदेशियों के नियन्त्रण में हैं।

भारतीय व्यापारिक जहाज़ी बेड़े की आवश्यकता

जापान, जर्मनी और संयुक्त-राष्ट्र (अमरीका) के समान भारत में भी जहाज़ बनाने और जहाज़रानी की सब सुविधायें प्राप्त हैं और इसके विकास के लिए यहाँ पूरा अवसर है। जिस प्रकार उन देशों की गवर्नमेंटें अपने देश के जहाज़ी व्यवसाय को संरक्षण देती हैं, उसी प्रकार इस देश की सरकार को भी देना चाहिए। इँगलैंड की मौजूदा प्रधानी स्थिति मुख्य रूप से 'नेवीगेशन एक्ट' का फल है जो दो सदी तक वहाँ क़ायम रहा। तटवर्ती व्यापार के भारतीयकरण के लिए अब तक जो उद्योग किये गये वे सब असफल हुए। इन कारणों से सरकार को भारतीय जहाज़ी व्यवसाय को संरक्षण देना चाहिए।

तट-रक्षा

व्यापारिक जहाज़ी बेड़े की देश की जलीय आक्रमण से रक्षा करने और नौसेना का बल बढ़ाने के लिए भी आवश्यकता है। वर्तमान कमाण्डर इन-चीफ़ ने पिछले शरद राज्य-परिषद् में स्वीकार किया था कि व्यापारिक जहाज़ नौसेना की सहायक और रक्षा की दूसरी लाइन हैं। इसके अतिरिक्त तटवर्ती और समुद्रपार का भारतीय व्यापार इतना अधिक है कि भारतीय व्यापारिक जहाज़ सदा व्यस्त रहेंगे। १९१४-१८ का अनुभव है कि लड़ाई के समय विदेशी जहाज़ी कम्पनियों पर भरोसा नहीं रक्खा जा सकता। इन पर भरोसा करना अपनी आर्थिक निर्बलता को बढ़ाना है। इसके साथ शिक्षित नवयुवकों के लिए रोज़ी का एक नया साधन निकल आयगा। इसके अतिरिक्त नौकानयन, सामुद्रिक इंजीनियरिंग और बीमा बहुत लाभजनक व्यवसाय हैं, मगर आज भारतीयों के लिए इनका द्वार बन्द है।

मर्कैण्टाइल मैरीन कमिटी

१२ जनवरी १९२२ को सर शिवस्वामी अय्यर ने 'मर्कैन्टाइल मैरीन कमिटी' बनाने का प्रस्ताव केन्द्रीय असेम्बली में पेश किया और वह स्वीकार हो गया। उसके साल भर बाद भारत सरकार ने ३ फ़रवरी १९२३ को कैप्पटेन हैडलाम, डाइरेक्टर रायल इंडियन मैरीन, की अध्यक्षता में एक मर्कैन्टाइल मैरीन कमिटी बैठाई। मार्च १९२४ में कमिटी की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इसकी मुख्य सिफ़ारिशें इस प्रकार हैं:—

१—भारतीय व्यापारिक जहाज़ी बेड़ा बनाने के विचार से नौकानयन की शिक्षा देने के लिए एक ट्रेनिंग जहाज़ रक्खा जाय। सरकार ने इसको स्वीकार कर लिया और 'डफ़रिन' जहाज़ केडेटों को शिक्षा देने के काम में इस समय लाया जा रहा है।

२—वर्तमान इंजीनियरिंग कालेजों में सामुद्रिक इंजीनियरिंग की शिक्षा देने और सामुद्रिक अनुभव प्राप्त कराने की उचित व्यवस्था की जाय।

३—तटवर्ती व्यापार उन जहाज़ों के लिए सुरक्षित रक्खा जाय जो जहाज़ों के स्वामित्व और नियन्त्रण का एक निश्चित अंश में भारतीयकरण कर लें। यह आस्ट्रेलिया के समान लाइसेन्स या 'परमिट' देकर शुरू किया जाय। इसके लिए निम्न शर्तें आवश्यक हैं—(क) उसकी रजिस्ट्री भारत में हो; (ख) उसका स्वामित्व और नियन्त्रण भारतीयों या भारतीय कम्पनी के हाथ में हो; (ग) ऐसी कम्पनी का प्रबन्ध भारतीयों के हाथ में हो।

४—अन्य शर्तें उचित समय में पूरी की जायँ—यथा—जहाज़ के अफ़सर और मल्लाह सारे भारतीय हों,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाइसेन्स लेने की इच्छा रखनेवाला जहाज़ भारत में बनाया गया हो।

५—भारत-सरकार तट पर चलाने के लिए लाभदायक एवं ब्रिटिश लाइन को ख़रीद ले और उसके प्रबन्ध के लिए डाइरेक्टर नियुक्त करे, जिनमें अधिक भारतीय हों। कालान्तर में इस लाइन के जहाज़ों का स्वामित्व पूर्णरूपेण भारतीय कम्पनी को दे दिया जाय।

६—समुद्रपार जानेवाले जहाज़ों को बाउण्टी देने के बारे में अनुकूल रीति से विचार किया जाय।

७—कलकत्ता जहाज़ बनाने का केन्द्र बनाया जाय। कमिटी ने जहाज़ बनाने के लिए संरक्षणात्मक बाउण्टी देने की सिफ़ारिश की है।

८—जहाज़ बनाने के लिए भारतीय कम्पनी को शिप यार्ड स्थापित करने में सहायता देनी चाहिए।

९—प्रारम्भ में जहाज़ बनाने के विशेषज्ञ विदेशों से बुलाये जावें।

१०—इँगलेंड के समान भारत में जहाज़ बनाने की शिक्षा देने के लिए स्कूल और कालेज खोले जायँ।

११—भारतीय युवक शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेशों को भेजे जायँ।

हाजी-बिल

देश प्रतीक्षा करता रहा कि सरकार कमिटी की सिफ़ारिशों के अनुसार शीघ्र कार्रवाई करेगी, मगर उसकी आशा निष्फल गई। अन्त में लाचार होकर सितम्बर १९२८ में श्री हाजी ने तटवर्ती व्यापार को भारतीय जहाज़ों के लिए सुरक्षित रखने के लिए एक बिल असेम्बली में पेश किया। इसमें कहा गया कि ७५ प्रतिशत स्टाफ़ ब्रिटिश भारतीयों में रहें। यदि कम्पनी हो तो उसका चेयरमैन भारतीय हो और प्रबन्ध करनेवालों और डाइरेक्टरों में ७५ प्रतिशत ब्रिटिश भारत के हों। हाजी-बिल में यह भी कहा गया था कि कम्पनी के ७५ प्रतिशत वोटर भारतीय हों। समुद्र-तट पर व्यापार करने के लिए सपरिषद् गवर्नर-जनरल-द्वारा जहाज़ को लाइसेन्स दिया जायगा। बिल का सरकार और योरपीय सदस्यों की ओर से तीव्र विरोध किया गया।

नई योजनायें

तटवर्ती व्यापार केवल भारतीय जहाज़ों के लिए सुरक्षित रहे, यह कोई नवीन माँग नहीं। ३३ सामुद्रिक देशों में से २७ देशों ने अपना तटवर्ती व्यापार एकमात्र अपने देश के जहाज़ों के लिए सुरक्षित रखा है। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर 'आपरेशन आफ़ डुमीनियन लेजिसलेचर एण्ड मर्चेण्ट शिपिंग लेजिसलेशन कान्फ़्रेंस (१९२९-३०)' यह सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। आस्ट्रेलिया की सरकार ने 'नेवीगेशन एक्ट' पर रायल कमीशन की रिपोर्ट १९२४ में प्रकाशित की थी। रिपोर्ट में स्वीकार किया गया है कि आस्ट्रेलिया का समुद्र-तट एकमात्र आस्ट्रेलियन जहाज़ों के लिए सुरक्षित रखना चाहिए। जीनीवा कन्वेन्शन १९२३ (इंटर नेशनल कन्वेन्शन आफ़ मैरीटाइम पोर्ट्स आफ़ १९२३) में यह स्वीकार किया गया है कि तटवर्ती व्यापार घरेलू सुरक्षा की चीज़ है, जिसमें विदेशी को अधिकार के नहीं, अपितु कृपा-द्वारा ही प्रवेश पा सकते हैं। इस अवस्था में यदि भारत यह माँग करता है कि तटवर्ती व्यापार एकमात्र भारतीय जहाज़ों के लिए सुरक्षित रक्खा जाय, तो वह कोई नई माँग नहीं करता है बल्कि अपने खोए हुए हक़ को चाहता है। यह न ज़ातीय विभेद और न व्यापारिक भेदाभेद की बात है। यह तो भारत की राष्ट्रीय आकांक्षा को पूरा करने का सवाल है।

डेफ़र्ड रिबेट पद्धति

तटवर्ती व्यापार भारतीय जहाज़ों के लिए सुरक्षित रक्खा जाय, (कोस्टल रिज़रवेशन बिल) इस आशय का बिल पेश करने के साथ ही श्री हाजी ने डेफ़र्ड रिबेट पद्धति को उड़ाने का भी एक बिल पेश किया। इसका उद्देश्य यह था कि तटवर्ती व्यापार पर किसी एक का अधिकार न रहे बल्कि समानरूप से सब कम्पनियों में उसका वितरण हो। सरकार की ओर से इसका भी विरोध किया गया। कहा गया कि 'तटरक्षा-बिल' पास हो जाने के बाद इस पर विचार होना चाहिए। सर जार्ज रैनी ने इसका विरोध करते हुए कहा कि इससे भाड़ा-युद्ध बन्द न होगा और डेफ़र्ड रिबेट पद्धति को नियमित सर्विस, किराये की स्थिरता और छोटे और बड़े जहाज के बीच समानता स्थापित करने के लिए आवश्यक बताया। उन्होंने सुझाया कि सेटेलमेंट के समान यहाँ भी ऐसी व्यवस्था की जाय कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माल बाद जहाज़ से माल भेजनेवाले 'कान्फ्रेंस' छोड़ सकें और उनको रिबेट भी मिल जाय। इस बिल का भी पहले बिल के समान अन्त हो गया।

दिल्ली-कान्फ्रेंस

भारतीय और ब्रिटिश जहाज़ी कम्पनियों में समझौता कराने के विचार से लार्ड इरविन (लार्ड हैलीफ़ाक्स) ने ३ और ४ जनवरी १९३० को एक कान्फ्रेंस बुलाई, मगर वह भी किसी नतीजे पर न पहुँची। लार्ड इरविन के शब्दों में कान्फ्रेंस के सामने प्रश्न यह था कि भारतीयों की आकांक्षा है कि एक शक्तिशाली व्यापारिक जहाज़ी बेड़ा बनाया जाय, जिस पर भारतीयों का स्वामित्व हो और जो भारतीयों-द्वारा संचालित हो, साथ ही मौजूदा विदेशी कम्पनियों से उचित व्यवहार किया जाय। लार्ड इरविन ने साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया था कि सरकार की इस विषय में भारतीय आकांक्षा से पूर्ण सहानुभूति है।

भारतीय प्रतिनिधियों की ओर से कहा गया कि तटवर्ती व्यापार को भारतीयों के लिए सुरक्षित रख कर उनकी मर्यादा बाँधकर लाइसेन्स दिया जाय। जहाज़ी संसार में भारतीयों की आकांक्षा पूरी करना हमारा मुख्य उद्देश्य है। मुख्य कठिनाई इस मार्ग में ब्रिटिश कम्पनियों की भारतीय समुद्र में मौजूदगी है। इनकी स्थिति अभेद्य और अजेय है। इनका मुक़ाबला करना कठिन है। इनकी प्रतिस्पर्द्धा में तटवर्ती व्यापार को भारतीयों के लिए सुरक्षित रखने के अलावा भारतीय जहाज़ी कम्पनियाँ टिक नहीं सकतीं। इस समस्या का व्यावहारिक हल यही है कि क्रमिक रूप से ब्रिटिश टनों का भारतीयकरण किया जाय।

ब्रिटिश प्रतिनिधियों ने इसके जवाब में कहा कि भारतीय जहाज़ी कम्पनियाँ धीरे-धीरे ब्रिटिश टनों को ख़रीद लें और वे जहाज़ों का मूल्य देने के साथ बिके टनों के व्यापार के 'गुडविल' की भी क़ीमत दें। और इसकी जगह ब्रिटिश कम्पनियाँ दूसरे जहाज़ नहीं चलायेंगी।

मगर भारतीय प्रतिनिधि पुराने जहाज़ 'गुडविल' की क़ीमत देकर ख़रीदने को तैयार नहीं थे।

मोतीलाल जी का प्रस्ताव

स्वर्गीय त्यागमूर्ति पंडित मोतीलाल नेहरू को विश्वास था कि यदि भारत का राजनैतिक अधिकार स्वीकार कर लिया जाय तो जहाज़ी समस्या का सन्तोषजनक निर्णय हो सकता है। सर जार्ज रेनी इस बात के लिए उद्यत थे कि तटवर्ती व्यापार उन जहाज़ी कम्पनियों के लिए सुरक्षित रक्खा जाय जिनकी पूंजी रुपये में हो, अधिकांश डाइरेक्टर भारतीय हों, और अधिकांश शेयर-होल्डर भारतीय हों। मगर दुर्भाग्य से दोनों के बीच की खाई को पाटने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया।

गोलमेज़ कान्फ्रेंस

गोलमेज़ कान्फ्रेंस के सामने भी यह विषय आया और उसकी अल्प-संख्यक कमिटी ने १९ जनवरी १९३१ को अपनी रिपोर्ट में लिखा—

"ब्रिटिश व्यावसायिक वर्ग के आग्रह पर यह सिद्धान्त आम तौर पर मान लिया गया है कि ब्रिटिश सामुद्रिक व्यापारी वर्ग और भारत में उत्पन्न प्रजा के बीच कोई भेदाभेद न किया जाय और परस्पर सहयोग के आधार पर इन अधिकारों का नियमन करने के लिए एक उचित कन्वेन्शन बनाया जाय।" इस प्रकार भारतीय हितों की समानता के नाम पर हत्या कर दी गई।

नया विधान

इंडिया एक्ट १९३५ में ऊपर की सिफ़ारिश को हम पाते हैं। व्यावसायिक संरक्षण के अध्याय में भारतीय जहाज़ों के सम्बन्ध में दो धारायें हैं, जो बहुत कठोर हैं। इनका आधार 'पारस्परिक सहयोग' के ऊपर है। चूंकि ब्रिटेन ने भारत के विरोध में कोई क़ानून नहीं बना रक्खा है, इसलिए भारत भी ब्रिटिश जहाज़ी कम्पनियों पर कोई प्रतिबन्ध न लगाये और दोनों को एक समान समझे। मगर महात्मा गांधी के शब्दों में यह राक्षस और बौने का पारस्परिक सहयोग है। जब अन्य देशों में जहाज़ी व्यवसाय देश की समृद्धि का एक साधन समझा जाता है, इस देश में अब तक इसको संरक्षण नहीं दिया गया है और भारतीय जहाज़ी व्यवसाय विदेशी कम्पनियों की कृपा और दया पर जीने के लिए छोड़ दिया गया है और भारत-सरकार चुप-चाप यह तमाशा देख रही है।

साफ़ इन्कार

सिन्धिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी की ओर से भारत और योरप के बीच तेज़ जहाज़ी सर्विस चलाने का इरादा किया गया और कम्पनी की ओर से श्री बालचन्द हीराचन्द ने १९३५ में भारत-सरकार से सहायता माँगी। श्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हीराचन्द के संकल्प को सुनकर सारा भारत जिस प्रकार प्रसन्न हुआ था, उसी प्रकार भारत-सरकार की सहायता करने से इनकारी का कोरा जवाब सुनकर स्तब्ध रह गया। २ आक्टोबर को श्री गोविन्दवल्लभ पन्त ने केन्द्रीय असेम्बली में इस पर काम रोको प्रस्ताव पेश करना चाहा, मगर उन्हें अनुमति नहीं मिली।

समुद्रपार के व्यापार में भारत का स्थान

भारत के समुद्रपार के व्यापार में ब्रिटिश जहाज़ी कम्पनियों का भाग ६४·२ प्रतिशत, विदेशी जहाज़ों का ३४·५५ प्रतिशत और भारत का अत्यन्त नगण्य १·२५ प्रतिशत है। व्यापारिक करारों में राष्ट्रीय जहाज़ के लिए स्थान सुरक्षित रखने का सब देश यत्न करते हैं। अभी ब्रिटेन ने रूस से व्यापारिक संधि करते हुए ऐंग्लो-सोवियट पैक्ट में एक यह धारा रखवाई है कि रूस से ब्रिटेन को भेजा गया टिम्बर ब्रिटिश जहाज़ों द्वारा भेजा जाय। भारत-ब्रिटिश पैक्ट की चर्चा चलने पर यह सुझाया गया था कि यह सिद्धान्त अपनाया जाय और भारत के माल ख़रीदने की शक्ति का उपयोग भारतीय जहाज़ी व्यवसाय को उन्नत बनाने में किया जाय। अजीब बात यह थी कि इसका समर्थन ब्रिटिश जहाज़ी कम्पनियों ने स्वतः किया, मगर अपने स्वार्थ के लिए। उस समय जापान के साथ भारत के व्यापारिक करार के लिए बातचीत चल रही थी और अँगरेज़ी कम्पनियों की यह घातक और हानिकारक माँग थी कि भारत को जापानी माल ख़रीदने की शक्ति के आधार पर भारत-जापान सामुद्रिक व्यापार में ब्रिटिश जहाज़ों का भाग बढ़ा दिया जाय। यह माँग इतनी स्वार्थ-पूर्ण थी कि भारत-सरकार ने भी इसको अस्वीकार कर दिया और स्पष्ट कर दिया कि भारत की माल ख़रीदने की शक्ति का उपयोग भारतीय जहाज़ी व्यवसाय की उन्नति में ही किया जाना चाहिए। इम्पीरियल शिपिंग कमिटी के सामने भी यह माँग रक्खी गई थी। जहाज़ी व्यवसाय को राष्ट्रीय समृद्धि और मितव्ययिता का आन्तरिक भाग स्वीकार करना चाहिए। विदेशी जहाज़ों के द्वारा माल भेजने और मुसाफ़िरों के जाने से भारत का बहुत सा धन अदृश्य रूप से निर्यात हो जाता है और व्यापार के संतुलन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। आज समस्या विदेशी क़र्ज़ की है। विनिमय-दर की सारी समस्या इस क़र्ज़ से सम्बन्धित है। प्रतिकूल व्यापारिक संतुलन को उन देशों के साथ जिनसे भारत माल ख़रीदता है, व्यापारिक करार में भारतीय जहाज़ों के उपयोग की धारा को रख कर किया जा सकता है।

अपने घर में

भारत-सरकार भारतीय जहाज़ी व्यवसाय के विकास में हाथ बँटाने और सहायता देने से इनकार करती है, मगर ब्रिटिश सरकार की यह नीति नहीं है। यद्यपि ब्रिटेन का जहाज़ी व्यवसाय सबसे अधिक बड़ा चढ़ा है, मगर उसको भी सरकारी सहायता की अपेक्षा रहती है। ब्रिटिश सरकार ट्राम्पों की सहायता में २० लाख पौंड प्रति-वर्ष व्यय कर रही है। कुछ दिन पहले ब्रिटिश चेम्बर आफ़ शिपिंग के प्रस्ताव प्रकाशित हुए थे, जिनमें तटवर्ती ट्राम्पों और तटवर्ती जहाज़ों को पाँच साल तक पाँच लाख पौंड वार्षिक सहायता देने का भी उल्लेख था। ट्राम्प जहाज़ों को १९३६ में दो साल सहायता दी गई थी और अब और सहायता पाने के लिए माँग की जा रही है। लार्ड रंसीमैन ने उस समय आश्वासन दिया था कि ट्राम्पों के समान लाइनरों (जहाज़ों) को प्रशान्त, अटलान्टिक व पूर्व में विदेशी प्रतियोगिता के कारण कठिनाई का सामना करना पड़ा तो ब्रिटिश सरकार उनके मामलों पर विचार करेगी और सोचेगी कि वह किस प्रकार सहायता कर सकती है। क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्य के हित में यह आवश्यक है कि हम अपनी जोड़नेवाली शृंखला को कायम रखने के लिए विदेशी जहाज़ों पर आश्रित न रहें।

साम्राज्य सामुद्रिक नीति

ब्रिटेन ने अपने जहाज़रानी को संरक्षण देने के विचार से 'एम्पायरमैरिटाइन पालिसी' साम्राज्य सामुद्रिक व्यापार नीति का अनुसरण आरम्भ किया है। इम्पीरियल प्रिफ़रेंस (साम्राज्य-संरक्षण पद्धति) के सिद्धान्त के आधार पर बताया गया है कि साम्राज्य के जहाज़ों को तरजीह दी जाय। इसका दूसरे शब्दों में अर्थ है कि ब्रिटिश जहाज़ों को अपनाया जाय। भारत में छुट्टी जानेवाले आई० सी० एस० लोगों और म्युनिसिपल कार्पोरेशनों और अन्यों को हिदायत दी गई है कि इँगलैंड जायँ या वहाँ से माल मँगायें तो ब्रिटिश जहाज़ों के द्वारा। मगर भारतीय जहाज़ी व्यवसाय के साथ सौतिया व्यवहार किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी अवस्था

'भारतीय जहाज़ी व्यवसाय की दशा का करुण वर्णन श्री शरीफ़हुसैन ने इस प्रकार किया था—समुद्र-तट पर जब से हमारा जन्म हुआ है, हमको ब्रिटिश जहाज़ी कम्पनियाँ ख़ौफ़ में दख़ल देनेवाला' समझती हैं। १९३४ में ब्रिटिश जहाज़ी कम्पनियों की माँग है कि ब्रिटेन का समुद्र-तटवर्ती व्यापार ब्रिटिश जहाज़ों के लिए सुरक्षित रक्खा जाय। अपने घर के समुद्र में अपने देश के जहाज़ चलें, यह ब्रिटिश जहाज़रानी के लिए स्वदेश-भक्ति है। मगर भारतीय जहाज़रानी के लिए अपने ही समुद्र में अपनी हस्ती के लिए भी लड़ना ब्रिटिश जहाज़ी ब्रिटेन हित के विरुद्ध राजद्रोह है। इस देश की सन्तान, जो वास्तविक हक़दार हैं, अपनी मातृभूमि के समुद्र में ही सदा ब्रिटिश जहाज़ी कम्पनियों की आँखों में शूल हो रही हैं। वास्तविक अपहरणकर्ता हमारे घर पर दख़ल करना चाहते हैं। भारतीय जहाज़ी व्यवसाय का यह दुःखद इतिहास है।"

पाँच साल में

इस समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि भारतीय तटवर्ती व्यापार भारतीय जहाज़ों के वास्ते एकमात्र सुरक्षित रक्खा जाय। यह असम्भव नहीं है। यदि सरकार चाहे तो यह पाँच साल में सम्भव है। यदि जहाज़ों का औसत ६,००० टन मान लिया जाय तो मौजूदा तटवर्ती लाइनों को ख़रीद कर वह यह कार्य कर सकती है। तटवर्ती व्यापार का भारतीयकरण करने के लिए १०० स्टीमर काफ़ी होंगे। इसके लिए प्रारम्भ में १६.५० करोड़ रुपया पर्याप्त होगा। सरकार ने १९२९ में रेलवे की उन्नति के लिए १५० करोड़ रुपया दिया था। उसका यह दसवाँ भाग है। प्रतिवर्ष सरकार २० जहाज़ ख़रीदे और पाँच साल में यह तटवर्ती व्यापार पूर्णरूप से भारतीयों के हाथ में हो जायगा। यह योजना श्री हाजी ने आज से १० साल पहले सरकार के सामने रक्खी थी, मगर इस पर अभी तक ग़ौर नहीं किया गया। भारत की राष्ट्रीय आकांक्षा की पूर्ति के लिए इसको अविलम्ब पूरा करना आवश्यक है।

मेरे गान !

लेखक, श्रीयुत शिवदत्त शर्मा

वेदना की गोद में पलकर बढ़े हैं गान मेरे।

भावना से छू हृदय को व्यर्थ क्यों झंकार करते।
बन ही मेरा मधुर स्वर तुम चलित स्वर सार भरते॥
जग के अभिशाप ही हैं देव चिर वरदान मेरे।
वेदना की गोद में पलकर बढ़े हैं गान मेरे॥

जगत की राका रजनि मेरी कुहू पिक बोलती है।
हर्ष की कल्लोलिनी निस्तब्ध होकर डोलती है॥
बहते मधु ऋतु नहीं पतझर पलित उद्यान मेरे।
वेदना की गोद में पलकर बढ़े हैं गान मेरे॥

सो चुकी सङ्गीतलहरी मंद दीपक हो चुके हैं।
आज हिलमिल खेलते वे जो कभी के रो चुके हैं॥
शून्य शय्या पर तड़पते जागते अरमान मेरे।
वेदना की गोद में पलकर बढ़े हैं गान मेरे॥

जानता यह भाग्य जो हमको कभी मिलने न देता।
तोड़ देता मन सुमन इतना तुम्हें खिलने न देता॥
प्राण! तो पाता कभी का प्राण अन्तर्द्धाम मेरे।
वेदना की गोद में पलकर बढ़े हैं गान मेरे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

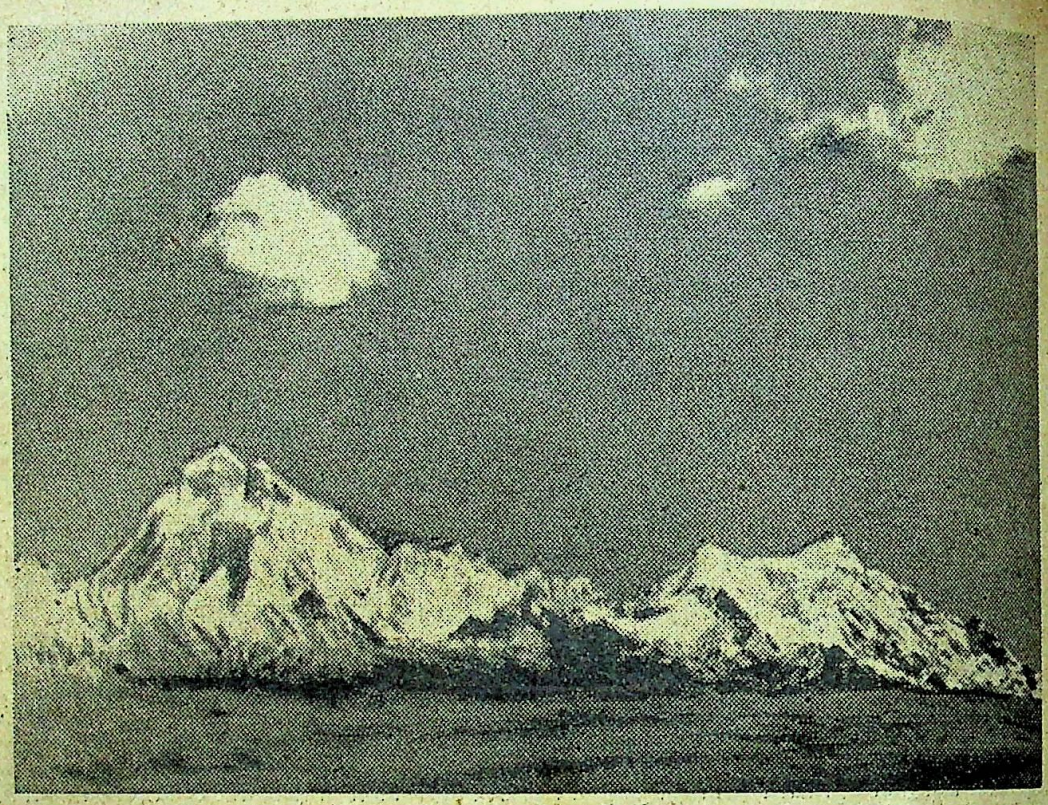

[चोमोलारी रात में मोती की तरह चमकती है।]

मैं तिब्बत कैसे पहुँचा ?

लेखक, श्रीयुत फेनी मुकर्जी, कलाकार ए० सी० ए०; आई० ए० एस०

(४)

तिब्बती स्त्रियों को सङ्गीत का बहुत शौक़ है। रात-दिन गाती रहती हैं। रात में मर्द शराब पीकर मस्त होकर गाते हैं और एक सितारनुमा बाजा बजाते हैं। उस समय स्त्रियाँ भी शराब पीकर नाचती और गाती हैं। फ़ेरीजोंग की स्त्रियाँ अपना एक खास गाना गाती हैं जो इस प्रकार है—

पोमो श्री चेंगा, मितेछेरी ठांगी।
साचूह खाने फिपग्यां, जुंगसाह फारी थाँगा।
फारी मोंगने मान्सीं चुमने, लैला कुहईवे छुम्वे।
लाहसो तोंगना मिडिग,
पोमो श्री चेंगा॥

अर्थात् हम चोमोलारी के पास रहनेवाली भोली-भाली लड़कियाँ हैं। हे राहगीर, तुम हमको मत छेड़ो। हे फारी से होकर जानेवाले यात्री, तुम आओ, खाना पीना करो और अपने काम को चले जाओ। हमें पाप में मत लपेटो।

जो खच्चर हम लोग कलिम्पोङ्ग से लाये थे उनका ठेका खत्म हो चुका था, इसलिए डाक-बँगले की माल सवारी के खच्चर दो रुपये रोज़ पर और सामान लादने के लिए गदहे ५ पैसे रोज़ पर लिये गये। ये खच्चर और गदहे शाम को जिस डाक-बँगले पर पहुँचेंगे उसी जगह बदल लेना होगा। राहुल जी को डाँड़ी में लिटाकर १५ मई सन् १९ की सुबह को ८ बजे के क़रीब रवाना हुए। आज हवा रुकी हुई थी और आसमान भी साफ़ था।

क़रीब ४ मील रेगिस्तान जैसी ऊसर भूमि आसानी पार कर गये। चोमोलारी के क़रीब के कई दृश्यों के लिये। हमें फोटो उतारते देखकर साथ के नौकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[राहुल जी डांडी पर ले जाये जा रहे हैं।]

होकर कहने लगे कि सैकड़ों अँगरेज़ों ने तसवीरें लेने की कोशिश की, लेकिन कोई भी सफल न हुआ। मैंने राहुल जी की तरफ़ उँगली उठा कर कहा कि हमारे साथ हिन्दुस्तान के लामा हैं, इसलिए मैं ज़रूर सफल हो जाऊँगा। मेरी बात सुनकर वे बहुत दुखी हो गये। चलते समय तीन-चार भिक्षुक जो सड़क के किनारे खड़े थे, मुझे देखकर पास आये और हाथ जोड़ने के बदले अँगूठा दिखला-दिखला कर पैसा माँगने लगे।

एक-दो पैसे फेंके ही थे कि पास के झोंपड़े से अनेक आदमी दौड़ पड़े और हमारे ख़च्चर को पकड़ लिया। उनके मन में तो मुझे गिराकर लूट लेने की थी, लेकिन हमारे दोस्त गेशेला और नौकर दौड़ पड़े। उन्होंने डाँट कर मुझसे कहा कि यहाँ कभी इस तरह से घोड़े पर चढ़े हुए पैसा मत फेंकना।

राहुल जी तो कुलियों के कंधों पर डाँड़ी में लेटे हुए आ रहे थे, इसलिए मुझसे काफ़ी पीछे रह गये थे। उनके कुली हर एक क़दम की ताल के साथ एक वाक्य को दोहराते चलते थे, जो आवाज़ में क़रीब-क़रीब कुछ ऐसा था—अग्नी शुग्नी सोलो मानी, अर्थात्—ईश्वर ही सहायक है।

एकाएक मेरा ख़च्चर भाग पड़ा। मैंने उसके रोकने की बड़ी कोशिश की, लेकिन वह नहीं रुका। मैं अपने साथियों को छोड़कर दूर निकल गया। इस जगह रास्ता बहुत ही ख़तरनाक था। एक तरफ़ पानी और निचाई और दूसरी तरफ़ सीधी पहाड़ी। अपनी जान बचाने के लिए मैंने ख़च्चर की लगाम को पूरी ताक़त से खींचा कि वह टूट गई। बचाव की कोई सूरत न देखकर मैंने उसे पहाड़ की तरफ़ मोड़ दिया। वह तुरन्त सीधा पहाड़ी पर चढ़ने लगा। भग-दौड़ की वजह से ख़च्चर का तंग ढीला हो गया था। ख़च्चर पर चमड़े के दो बेग लदे थे और हमारा बिस्तर उसकी पीठ पर बँधा हुआ था। इसलिए पहाड़ पर चढ़ते समय जब ख़च्चर एक तरफ़ मुड़ा तब मैं अपने भार को ठीक न रख सका और मेरा सारा सामान एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

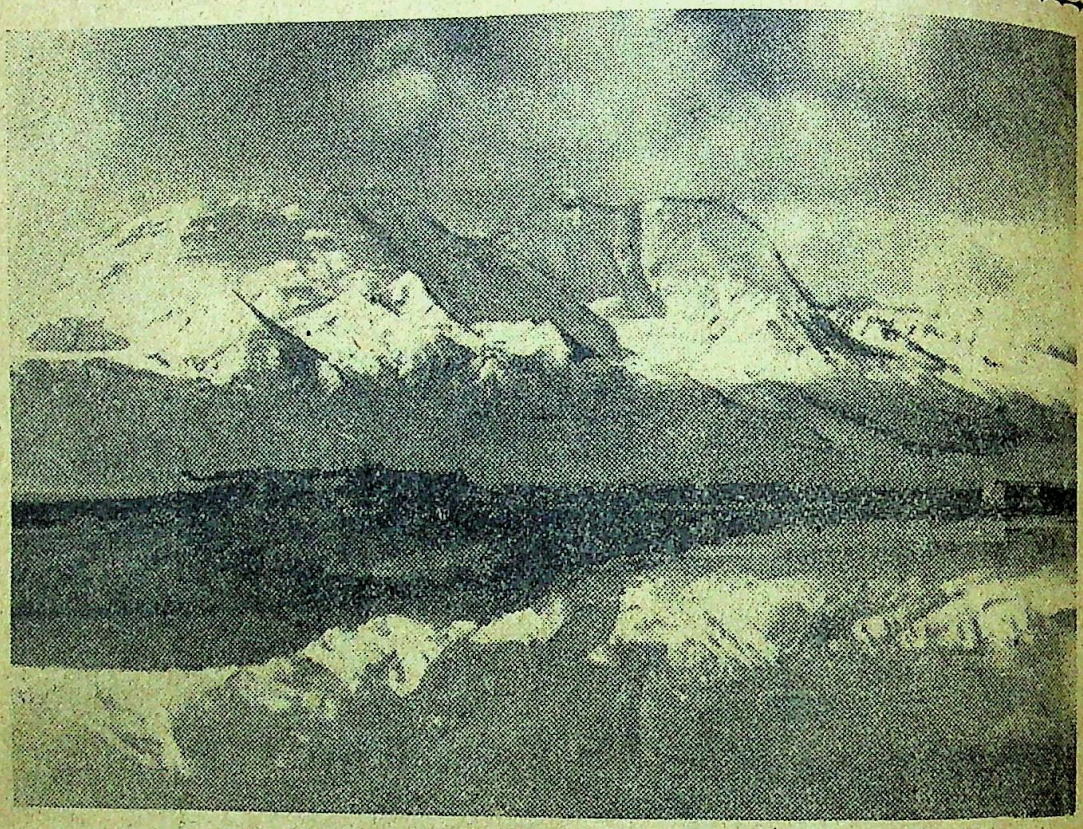

[समादा और काला के बीच की एक सुन्दर झील, जो बर्फ़ीले पहाड़ों से घिरी हुई है।]

तरफ़ खिसक पड़ा। गिरते वक़्त, मुझे आज भी याद है, मैंने जब नीचे देखा कि तमाम पत्थर पड़े हुए हैं तब मैं समझ गया कि चोट गहरी लगेगी। मैंने गले से लटकते हुए कैमेरा को कसकर दोनों हाथों से दबा लिया ताकि वह टूटने से बच जाय। गिर जाने पर क़रीब छः सात मिनट के बाद जब होश आया तब आँखों को खोलते ही देखा कि हमारे दोस्त गेशेला हैरानी से मेरे चेहरे की ओर देख रहे हैं। हमारी आँखों के खुलते ही घबरा कर कहने लगे—आपके लिए मैं क्या करूँ। उनकी घबराहट को देखकर मेरा दिल भर आया। मैंने बोलने की कोशिश की, लेकिन बोल न सका। अभी तक साँस गले के नीचे नहीं उतरी थी। बड़ी कोशिश के बाद हाथ उठाकर इशारा किया कि ठहरो। क़रीब दस मिनट तक वैसे ही पड़े रहने के बाद बड़ी कठिनाई से साँस छाती के अन्दर उतरी। तब किसी तरह गेशेला से कहा कि हमको बिठला दो। उनकी मदद से क़रीब १५ मिनट बैठने के बाद देखा कि सारा सामान इधर-उधर बिखरा पड़ा है, खच्चर का पता नहीं है और दोनों नौकर पास खड़े रो रहे हैं। तिब्बत के लोग असभ्य कहलाते हैं, लेकिन उनका हृदय ममता से भरा हुआ है, जो इन्सान के लिए लाज़िमी है। उनको देखकर मैंने अनुभव किया कि मैं अभी मर गया था और अभी बचने की पूरी आशा नहीं है, लेकिन स्थिति को सँभालने के विचार से हृदय को कड़ा किया और नौकरों से कहा—जाओ, दौड़ कर खच्चरों का पता लगाओ। जब वे चले गये तब दोस्त गेशेला से कहा—मुझको पहाड़ के नीचे उतार ले चलो। खड़े होने पर मालूम हुआ कि कैमेरा बच गया है, लेकिन हाथ में बँधी हुई घड़ी के पुर्ज़े पुर्ज़े निकल कर बिखर गये हैं। गेशेला ने उनमें से दो-चार पुर्ज़े उठाकर मेरी जेब में डाल दिये। मुझमें खड़े रहने की ताक़त नहीं थी, इसलिए उनकी मदद से नीचे उतरने लगा। गिरते-पड़ते आखिर पहाड़ के नीचे उतर आया और पानी की ओर जाने लगा। यह देखकर गेशेला ने मुझको दोनों हाथों से पकड़ लिया और कहा—बर्फ़ का पानी नहीं पीना चाहिए। मर जाओगे। लेकिन मेरा गला इतना सूख गया था कि मैंने उनसे झूठ कहा कि मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[अमदोलामा के प्रायवेट सेक्रेटरी अपने अंगरक्षकों के साथ]

जो पीना नहीं चाहता, बल्कि कुछ ठंडा पानी अपने माथे पर लगाऊँगा और पानी के पास जो हरी घास है उस पर लेटूँगा। वहाँ जाकर दो-चार दफ़े पानी का हाथ फेरने के बाद एक चुल्लू पानी पी लिया। अब जान में जान आई और फिर वहीं लेट गया। इतने में नौकर मेरे खच्चर को पकड़ लाये और मेरे कहने पर फिर ज़ीन कस दी और उस पर सामान लादने लगे। लेकिन वे बराबर कह रहे थे कि आपको अब हम खच्चर पर नहीं चढ़ने देंगे, बरन अपने कंधों पर लिटा कर ले चलेंगे। मैंने उनको दिलासा दिया कि मैं अब बिलकुल ठीक हूँ और कोई डर नहीं है। इतने में फिर दूर से वही आवाज़ सुनाई पड़ी—अग्नी शुग्नी सोलो नानी" राहुल जी को आते देखकर मैं झटपट उठकर खड़ा हो गया और धीरे धीरे इधर-उधर टहलने लगा ताकि उनका कमज़ोर दिल मेरी हालत को देखकर परेशान न हो। मैं अपने चेहरे पर बनावटी मुस्कराहट लाने की कोशिश करने लगा। नौकरों से बार बार कहने लगा कि खच्चर को जल्दी तैयार करो। अभी राहुल जी बहुत क़रीब नहीं आये थे कि नौकरों ने दौड़ कर उनसे सारा हाल कह सुनाया। वे घबरा कर मेरे चेहरे की तरफ़ देखने लगे। लेकिन मैंने मुस्करा कर कहा—आप चिन्ता न करें। मैं ठीक हूँ। उनसे यह पूछने के बाद कि उनकी तबीअत कैसी है, उनको यह बात साबित करने के मतलब से कि मैं बिलकुल ठीक हूँ, झटपट अपने खच्चर को पकड़ कर पहले की तरह उस पर छलाँग मार कर सवार हो गया लेकिन मेरी छाती के दाहने भाग में एक पत्थर के घुस जाने की वजह से बहुत ज्यादा चोट लग गई थी। उस समय इतना दर्द मालूम हुआ कि आँखों के सामने अँधेरा आ गया, बेहोशी-सी आने लगी, लेकिन मैंने अपने को सँभाला और हिम्मत के साथ नौकरों और गेशेला से कहा कि लामा जी को बोतल निकाल कर दूध पिला दो जो मैं फ़ैरीज़ोंग से लाया था। फिर मैंने अपने खच्चर को दो-चार कोड़े लगाये और बहुत शान के साथ आगे चलकर दिखलाया कि मुझमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

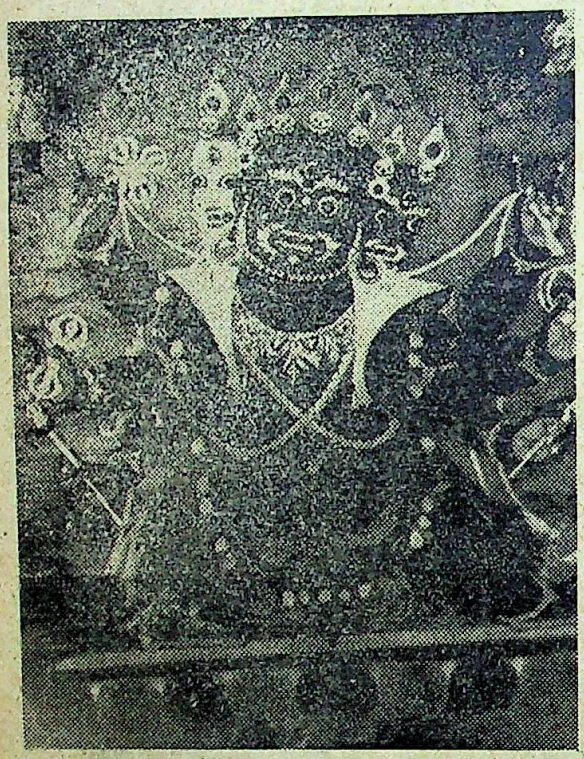

['महाकाल' तिब्बत का एक देवता]

[तिब्बत की देवी श्वेततारा]

अब कोई कमज़ोरी नहीं रही। फिर राहुल जी को पीछे छोड़कर हम गेशेला के साथ आगे चल पड़े। ख़च्चर के क़दम क़दम पर झटके से ऐसा मालूम होता था, मानो मेरे दाहिनी छाती में कोई छुरी चुभो रहा है। उधर दर्द का यह हाल था, इधर ख़च्चर फिर भाग पड़ा। लेकिन अब चारों तरफ़ मैदान था, इसलिए मैंने हिम्मत नहीं छोड़ी और काफ़ी मज़बूती के साथ बैठा रहा। लगाम पूरी ताक़त से खींच नहीं सकता था, इसलिए वह दौड़ता ही चला। मेरे मित्र गेशेला ने अपना ख़च्चर भगाया और मेरे ख़च्चर के सामने आकर घेर लिया। मैंने जब ख़च्चर को रुकता देखा तब छलाँग मार कर नीचे उतर पड़ा और ग़ुस्से में भर कर ख़च्चर के बहुत से कोड़े लगाये और उसे छोड़ दिया। वह भागता हुआ सामने निकल गया। मैं दर्द और कमज़ोरी से खड़ा न रह सका और उस मरुभूमि में लेट गया। क़रीब बीस-पचीस मिनट लेटा रहा। फिर उठकर धीरे-धीरे चल दिया। गेशेला और दोनों नौकर बड़ी ज़िद करने लगे कि मैं उनके ख़च्चर पर सवार हो जाऊँ। लेकिन मैंने पैदल चलना ही अच्छा समझा। कुछ देर के बाद वे लोग भी उतर पड़े और हम सब लोग पैदल ही चलने लगे। उस सैकड़ों मील की लम्बी-चौड़ी मरुभूमि के दाहिनी तरफ़ चोमोलारी खड़ा था और बाईं तरफ़ हिमालय पहाड़ बर्फ़ से ढँका हुआ दिखलाई पड़ता था। हवा फिर तेज़ हो गई और चारों तरफ़ रेत उड़ने लगी। पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े उड़कर चेहरे पर लगते थे, जिससे चलना कठिन हो गया। चारों तरफ़ अँधेरा छा गया। हवा क्या आँधी थी, जिससे अपना भार सँभालना मुश्किल हो गया। गिरते पड़ते चक्कर से बाहर निकले और हवा से लड़ते हुए आगे बढ़े। इतने में बादल आ गये और धूप ग़ायब हो गई। सर्दी बढ़ गई और बारिश होने लगी। सारा सामान-बरसाती और छतरियाँ आगे चली गई थीं, इसलिए सिवा भीगने के और कोई चारा नहीं था। अब मुझे विश्वास हो गया कि बचाव की कोई आशा नहीं है। नौकरों ने अपने कोट उतार कर मेरे ऊपर डाल दिये, लेकिन छाती में दर्द बढ़ता ही जा रहा था। वह रेतीला मैदान जिसमें हरी घास का एक पत्ता भी न था, पार करना मुश्किल हो गया। इस मैदान में मैंने जंगली घोड़ों के एक झुंड को भागते

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

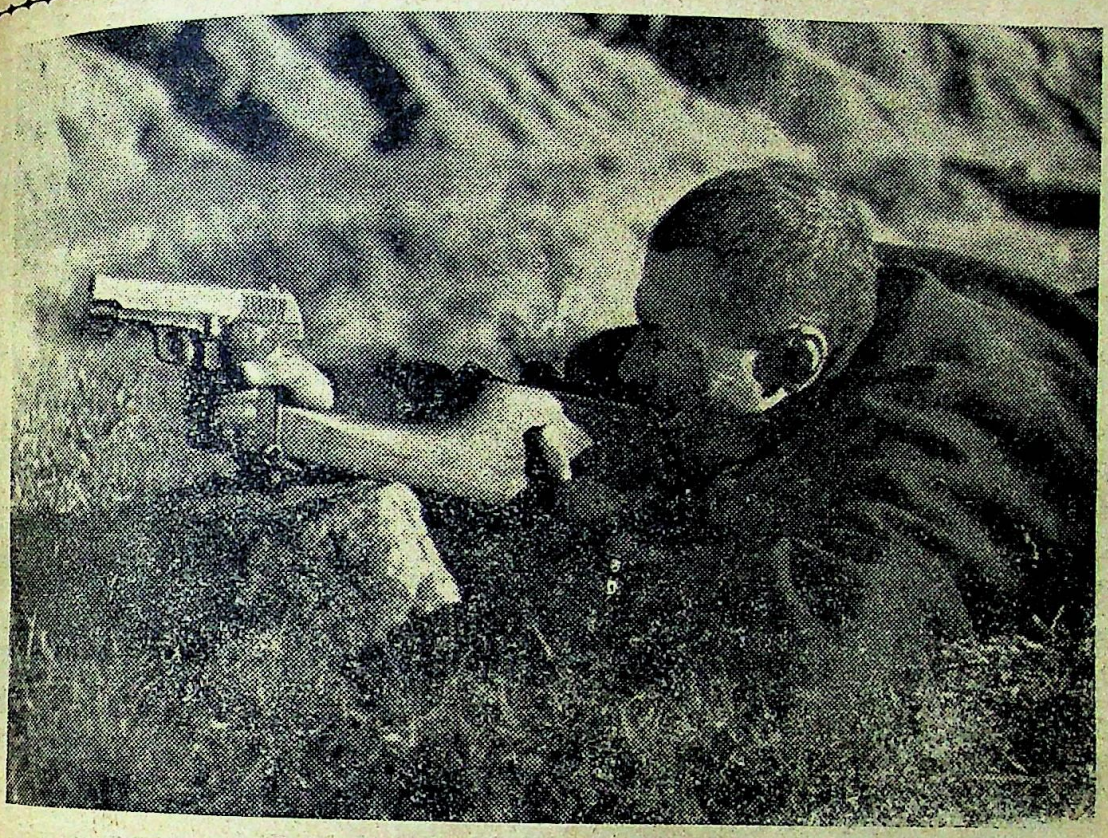

[मिस्टर अभयसिंह परेरा हमारे एक पिस्तौल की परीक्षा कर रहे हैं]

ला, जो हमारे पहाड़ी घोड़ों की शक्ल के थे। उनकी ह पतली और लम्बी थी। रंग हलका भूरा था। पेट के बाल कुछ सफ़ेदी लिये हुए थे। हम लोगों को देखकर वे तुरंत ही चौकड़ी भरते हुए ग़ायब हो गये। आखिर १६ मील का सफ़र तय करके हम शाम को टूना के डाक-बँगले में पहुँच गये, जिस बात की हमको बिलकुल आशा न थी।

यहाँ आकर दयालु चौकीदार की मदद से खूब आग जलाई गई और मैं उस आग के पास एक आरामकुर्सी पर लेट गया। राहुल जी अभी नहीं आये थे, इसलिए एक नौकर को बाहर जाकर देखने को कहा कि अभी कितनी दूर हैं। मालूम हुआ कि उनके आने में क़रीब एक घण्टा लगेगा। थोड़ी देर के बाद दूर से 'अग्नी शुग्नी सोलो मानो' की आवाज़ सुनाई पड़ी तो राहुल जी का स्वागत करने के लिए मैं बाहर निकल आया। उनको अन्दर लाकर पलँग पर लिटा दिया और गरम दूध और अंडे खिलाये। उन्होंने फिर मेरी हालत पूछी। मैंने कहा---मुझे गहरी चोट लगी है। अब तो मेरा हिलना भी कठिन है। उन्होंने फ़ौरन कहा---नहीं, नहीं, चोट कुछ ऐसी ज़्यादा नहीं है। तुम केवल घबरा गये हो। चोट पर टिंचरआयोडिन लगा कर सेंक दो। सब ठीक हो जायगा। मैंने कोई उत्तर नहीं दिया और एक गिलास दूध पीकर लेट रहा। गेशेला ने मेरी चोट पर टिंचरआयोडिन लगा दिया और पत्थर के टुकड़े को गरम कर सेंक दिया। दर्द तो धीरे धीरे जाता रहा, लेकिन जाड़ा बहुत लगने लगा। थर्मामीटर लगाया तब बुखार १०२ डिग्री देखा। मेरी सर्दी को दूर करने के लिए गेशेला ने अपने तमाम कम्बल मेरे ऊपर डाल दिये। मैं सारी रात बेहोशी की हालत में पड़ा रहा।

१६ मई की सुबह को जब उठा तब कमज़ोरी और दर्द इस क़दर था कि पहली बार उठते समय गिर पड़ा, लेकिन फिर दोबारा बहुत कोशिश से उठकर बैठ गया। नौकरों ने मुझे उठाकर खच्चर की पीठ पर बिठा दिया। आज दर्द इतना अधिक था कि खच्चर के क़दम-क़दम के झटके से असह्य कष्ट होता था। सारा दिन धीरे-धीरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

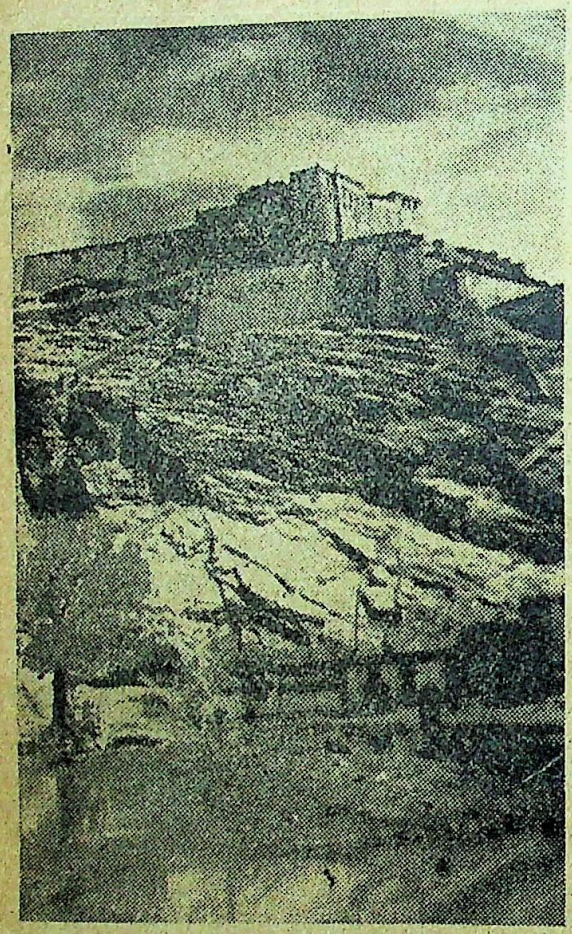

[ग्यानसी का ज़ोंग]

चलकर १२ मील का सफ़र तय किया और डाउचेन के बँगले पर सहीसलामत पहुँच गया।

यह गाँव एक बहुत बड़ी झील के क़रीब था, जिसके चारों तरफ़ बरफ़ से ढँकी हुई पहाड़ियाँ थीं। इस झील में बड़ी बड़ी सैकड़ों चिड़ियाँ थीं। झील का रंग हरा था, सफ़ेद बरफ़ से ढँके हुए पहाड़ के कारण इसका दृश्य और भी सुन्दर हो गया था। लेकिन मैं उसका दिल भर कर आनन्द नहीं ले सका, क्योंकि दर्द से बहुत दुखी था। रास्ते में ग्यानसी के ब्रिटिश-ट्रेड-एजेन्ट से मुलाक़ात हो गई। वे ग्यानसी से भूटान जा रहे थे।

एजेंट साहब बहुत ही खुशमिजाज़ और मिलनसार आदमी निकले। उनसे और उनके प्राइवेट सेक्रेटरी से कई एक हँसी-मज़ाक की बातें हुईं। वहाँ बहुत बड़े-बड़े मच्छड़ थे। और लाखों-करोड़ों की संख्या में वे खच्चर की और हमारी देह पर आ बैठे। लेकिन सौभाग्य से वे बेचारे काटना नहीं जानते थे। १७ मई का सारा दिन उस बड़ी झील के किनारे सफ़र करते हुए दो बड़े-बड़े सूखे मैदानों को पार करने में बीता। आज की पथरीली ज़मीन में १४ मील का सफ़र तय करके हम लोग काला के डाक-बँगले में आ गये। आज राह में कोई ख़ास बात नहीं हुई, या यों कहिए कि चोट का तीसरा दिन होने की वजह से बुखार और दर्द इस क़दर था कि गर्दन उठाकर आस-पास देखना कठिन था। नौकर अपने साथ दूध और उबले हुए अंडे लाये थे। वे बार बार आकर हमको खाने को मजबूर करते थे।

इस पड़ाव पर हम लोग अपने चौथे साथी से मिले, जो लासा से हम लोगों के लिए ३ खच्चर खरीदकर और दो नौकर लेकर स्वागत करने आये थे। इनका नाम अभयसिंह परेरा था। वे सीलोन के रहनेवाले थे। ये सीलोन के एक आदमी हैं जिन्होंने बनारस में ऊँचे दर्जे की संस्कृत की शिक्षा पाई है। वे बौद्ध-भिक्षु हैं और तिब्बत में दो साल से तिब्बती-भाषा सीखने के मतलब से रहते हैं। उन्होंने राहुल जी के पत्रों के अनुसार सारे तिब्बत की सैर की है और हर एक मठ में जाकर हिन्दुस्तानी की पुरानी किताबों और तसवीरों का पता लगाया है। तिब्बत की सरकार के मन्त्रिमण्डल की चिट्ठी भी उन्हें मिली हुई है जिसके द्वारा हम लोग तिब्बत में जहाँ जी चाहें घूम सकते हैं और हर एक लाइब्रेरी के दरवाज़े की सील तोड़कर अन्दर जा सकते हैं। इनको देखकर हम सबकी हिम्मत बढ़ गई और ग्यानसी जल्दी पहुँचने की कोशिश होने लगी।

१८ मई की सुबह को जब हम लोग जा रहे थे, रास्ते में एक बड़े शानदार लामा की पार्टी से मुलाक़ात हो गई। ये कांसू यानी उत्तरी तिब्बत के अवतारी लामा थे, इसलिए हमारे गेशेला से खूब बातचीत करने लगे, क्योंकि दोनों ही आस-पास के मुल्क के राजा हैं। पूछने पर मालूम हुआ कि उनके देश के जो सबसे बड़े लामा हैं वे दक्षिणी तिब्बत की तीर्थ-यात्रा करने आ रहे हैं। और चूँकि तीन महीने तक रेगिस्तान में यात्रा करनी पड़ती है, इसलिए डाकुओं से रक्षित रहने के विचार से ये लामा चीन से होते हुए सड़क की राह से उनके खर्च के लिए रुपया लिये जा रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लासा जा रहे हैं और वे लोग भी लासा आकर इनसे
मिलेंगे। ये उस बड़े लामा के प्राइवेट सेक्रेटरी के तौर पर
काम कर रहे हैं। मैंने जब इनसे फोटो लेने की आज्ञा माँगी
तब फ़ौरन राज़ी हो गये और कहा कि अगले पड़ाव पर ले
लेना। आज बातचीत करते हुए इन लोगों के साथ क़रीब
१४ मील का सफ़र आसानी से तय हो गया। राहुल जी
घोड़े डाँड़ी पर आ रहे थे। शाम को जब हम लोग समादा के
डाक-बँगले पर पहुँच गये तब राहुल जी की प्रतीक्षा होने
लगी। थोड़ी देर के बाद फिर वही आवाज़ सुनाई पड़ी।
राहुलजी के आ जाने पर उनको अन्दर ले गये और पलँग पर
बिठा दिया। उनको दूध वग़ैरः पिलाकर मैं गेशेला के साथ
लामा साहब की पार्टी से मिलने गया। यहाँ पास में ही एक
बहुत ही पुराना गुम्बा यानी मठ है। यह गुम्बा क़रीब ९ सौ
वर्ष का पुराना है। इसके अन्दर क़रीब ३० फ़ुट ऊँची बुद्ध
की एक सुनहरी मूर्ति है, जो हीरे-जवाहरात से सजी हुई
और चार-पाँच फ़ुट ऊँची सैकड़ों मूर्तियाँ यहाँ सजी हुई
हैं। तिब्बत का यह पहला ही गुम्बा मैंने देखा; इसलिए
इस एक बात को देखकर चकित रह गया। दीवारें तमाम
बड़े फ़्रेस्को से पटी पड़ी थीं। अन्दर बहुत अँधेरा
था, इसलिए मैंने लामा साहब के टार्च की मदद से उसको
देखा और वहाँ के चलन के अनुसार हर एक देवता के
आगे पर सिर लगाया। इन तसवीरों में एक तिब्बती देवता
की शक्ल को देखा, जिसका नाम महाकाल है। ये हमारे
हिन्दुस्तान के महादेव जी की तरह शक्तिशाली माने जाते
हैं। ये भूतों और चुड़ैलों को भगाकर अच्छे देवताओं और
मनुष्यों के जीवन को सुखद बनाते हैं। और देखा कि इनके
एक पैर के नीचे हमारे महादेव और दूसरे पैर के नीचे हमारी
काली देवी पड़ी हैं। महाकाल की मूर्ति से ऐसा मालूम
होता है कि वे हर वक़्त ढाल-तलवार और आग लिये
दुश्मन को तैयार रहते हैं। उनकी शक्ल को देखकर भूत
को डरना ही होगा, लेकिन कमज़ोर दिलवाला मनुष्य भी
बेहोश हो जायगा। कहते हैं कि इन मन्दिरों में जितनी
अच्छी मूर्तियाँ और तसवीरें हैं वे हिन्दुस्तान के कारीगरों
की बनाई हैं। इनकी रूप-रेखा से भी यह बात प्रकट
होती है।

तमाम चीज़ों को देखने के बाद मैंने लामा साहब और
उनके दल का फोटो लिया। उन्होंने अपने पास बैठाकर

[तिब्बती नस्ल का बच्चा]

हमको चीन की चाय पिलाई, जिसमें चीनी और दूध कुछ
भी न था। लेकिन वह पीने में बहुत अच्छी लगी। वे
मुझको देखकर बहुत खुश हो रहे थे और बार बार
कहते थे कि तुम मेरे साथ लासा चलो। असल बात यह
थी कि गेशेला ने मेरा परिचय कराने में उन्हें यह बतला
दिया था कि मैं एक बंगाली फोटोग्राफर हूँ। सैकड़ों वर्ष
पहले एक बंगाली चित्रकार तिब्बत गये थे और वहाँ सारी
ज़िन्दगी बुद्ध-भिक्षु के रूप में रहते रहे। उनकी तसवीरें
और किताबें सारे तिब्बत में प्रचलित हैं और बड़े आदर के
साथ उनका नाम लिया जाता है। इसलिए मुझको भी ये
लोग मुहब्बत और इज़्ज़त की नज़र से देखने लगे और अपने
मुल्क कांसू ले जाने की इच्छा प्रकट की। मैंने उन लोगों
को धन्यवाद दिया और जाने की मजबूरी के लिए क्षमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँगी। उन लोगों से मैंने वादा किया कि तसवीरें उन्हें डाक के द्वारा भेज दूँगा।

१९ मई को हम गेशेला और अभयसिंह २ दिन के सफ़र को एक ही दिन में तय करने के लिए चल पड़े। राहुल जी को पीछे नौकरों के साथ डाँड़ी पर छोड़ दिया और हम लोग तेज़ गति से रवाना हो गये। खानगामा और शानगाँग के गाँव में हम लोगों ने अपने गदहे बदले। चढ़ाई के खच्चरों को अभयसिंह लासा से खरीद लाये थे, इसलिए अब इनके बदलने की ज़रूरत नहीं हुई। ये खच्चर बड़े सीधे थे और तेज़ चलते थे। उन तीनों की क़ीमत उन्होंने क़रीब ७ सौ रुपया दी थी। आज भी मेरे दुर्भाग्य का सितारा चमका। चोट का दर्द तो अभी था ही, तिस पर बुखार और कमज़ोरी अलग थी। चाल इतनी तेज़ रही कि शाम को तीन बजे भागते हुए खच्चरों ने ठोकर खाई और मैं भी उसके साथ कलाबाज़ी खा गया। खैर, डर तो बहुत गया, लेकिन चोट मामूली लगी, थोड़ा-बहुत छिल गया। पर कैमरा टूटने से बच गया।

फिर उठकर सवार हुआ और आगे चल पड़ा। राह में थाई नाम का गाँव मिला। गदहे के लिए ज़रा रुके और फिर भागने लगे। हवा और बारिश का एक तूफ़ान आया जो मेरी चोट के लिए ख़तरनाक था, लेकिन सामने पहाड़ी पर ग्यानसी के मकान दिखलाई दे रहे थे, इसलिए दिल में ज़रा शान्ति आई। सड़क के आस-पास कुछ जौ के खेत थे, जो अभी बोये गये थे। जब ग्यानसी से कुछ क़रीब आ गये तब देखा कि मैदान में कुछ पंजाबी लोग हॉकी खेल रहे हैं। अभयसिंह ने कहा—"ये ब्रिटिश रेज़ीमेंट के आदमी हैं।" आज क़रीब ३२ मील का सफ़र तय करके हम लोग चिराग़ जले तिब्बत-सरकार के डाक-बँगले पर आ गये। थकावट, कमज़ोरी और ठंड की वजह से इन लोगों ने मुझको तिब्बती शराब पिलाई, जिसको पीकर मैं कुछ मदहोश हो गया। सारी रात बहुत अजीब तरह से गुज़री, क्योंकि गेशेला साहब को जोश आ गया और वे मनुष्य-स्वभाव पर लेक्चर देने लगे। वे बार बार कहते थे कि मेरा दिमाग़ बिलकुल ठीक है। मद्य का प्रभाव तो केवल शरीर पर पड़ सकता है। इस बात को सिद्ध करने के लिए वे तसवीरें बना कर दिखलाते थे और मैं अपनी हँसी किसी तरह भी नहीं रोक सकता था। अभयसिंह बार-बार सोने की कोशिश कर रहे थे। लेकिन हम लोग उनको ऐसा करने देते; इसलिए तिब्बत में मेरे लिए यह पहली रात थी जिसको हम लोग शैतानों की रात कह सकते हैं।

उर में

लेखक, श्रीयुत हितैषी

इन उज्ज्वल उज्ज्वल तारकों से
जिसने ये अछोर आकाश भरा है।
इस भग्न सुधाकर में जिसने
सुधा की किरणों का विकास भरा है।
जिसने इस शारदा शर्वरी के
अधरों में प्रकाश-सुहास भरा है।
उसने मुझ दीन ही के उर में
क्यों तमी निशा का तम, त्रास भरा है।

दहनोपम में निज वक्र-विदग्धता
व्यग्र विभाकर ने भर दी।
शशि वल्लरी-यौवन के क्षणों में
क्षय-व्याधि क्षपाकर ने भर दी।
लघु मौक्तिक में व्यथा की कथा
रो करके रत्नाकर ने भर दी।
हम आकुलों के उर में जाने
करुणा करुणाकर ने भर दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुंशी बख्तावरलाल

लेखक, हज़रत तस्लीम लखनवी

मुंशी बख्तावरलाल उसी ज़ात के एक रतन हैं जिनके यहाँ उर्दू और फ़ारसी लौंडियों की तरह हर वक्त हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। ऐसा मशहूर है, और वह खुद भी दिन में हज़ार बार कहते हैं कि 'मलिके-ज़मानियाँ नवाब वाजिद-अलीशाह साहब, खुदा उन्हें जन्नत दे, बिना इनसे पूछे पानी तक नहीं पीते थे। बक़ौल आपके, वह आपको अपने उस्ताद की तरह मानते थे; यानी कि बसहद हो गई कि जहाँपनाह ने जो 'इन्दर-सभा' ड्रामा लिखा था, उसकी इस्लाह आप ही से करवाई थी।

मुंशी जी हमारे पड़ोसी हैं। उनका कहना है कि उन्होंने इस खाकसार को बचपन में गोदियों खिलाकर इसकी इज्ज़त-अफ़ज़ाई की है। बहरहाल, हमें तो साहब कुछ याद-वाद नहीं, लेकिन जब आप फ़रमाते हैं तो सही होगा। बस, शक सिर्फ़ इस बात का है (मुंशी जी साहब की रूह इस आधी रात के वक्त 'इन्दर-सभा' की जिस किसी परी के साथ रक्स मना रही हो, मुझे मुआफ़ी अता फ़रमाये) कि अम्मी-जान और वालिद बुजुर्गवार तो हमेशा यही बतलाया करते थे कि मैंने शहर कलकत्ते में पहली बार सूरज की रोशनी देखी थी। और इतना तो मुझे भी अच्छी तरह याद है कि जब मैं बारह बरस का था, तब वालिद साहब मरहूम हम लोगों के साथ कलकत्ता छोड़ अपने वतन लखनऊ वापस आये थे।

इधर जनाब मुंशी जी साहब का कहना है कि जब अँगरेज लोग बादशाह-सलामत को धोखे से गिरफ़्तार कर कलकत्ता ले जाने लगे, उस वक्त बन्दापरवर ने जनाब मुंशी जी साहब को भी अपने साथ ले जाने की इजाज़त माँगी। आप ही का क़लाम, "मेरी आँखों में आँसू आ गये। अब आपसे क्या अर्ज करूँ अपनी उस वक्त की हालत कि धड़ाधड़ गश पर गश चले आ रहे हैं, और बादशाह-सलामत, खुदा उन्हें जन्नत बख्शे, परमेशुर करें वह जहाँ कहीं भी हों, दूधों नहायें, पूतों फलें, खुद मेरी यह हालत देखकर ज़ार-ज़ार रो रहे थे। अब अँगरेज़ लोग भी हैरत में कि आखिर यह कौन शख्स है, जिसकी बीमारी से खुद बादशाह-सलामत तक को इतना सख्त सदमा पहुँच रहा है। खैर साहब, राम-राम करके पूरे चार घंटे में मुझे ज़री-सा होश आया। जो आँखें खोल के देखता हूँ तो बड़े-बड़े लाट और कलक्टर और डिप्टी-कमिश्नर मेरे आस-पास खड़े हुए हैं। मुझे होश में आया देखकर एक अँगरेज़ ने कहा कि जहाँपनाह ने खुद हुजूर के सिरहाने खड़े होकर वज़ीफ़ा पढ़ा था, और इस वक्त आरामगाह में तशरीफ़ रक्खे हुए ज़ार-ज़ार रो रहे हैं।

'आप यक़ीन मानें साहब, कि ऐसा ग़रीब-परवर, दरिया-दिल, और खुश-मिज़ाज बादशाह तो दुनिया के परदे पर और कोई हुआ ही नहीं। खुदा उन्हें जन्नत बख्शे, वल्ला, एक ही दम पाया था हुजूर नवाब साहब ने भी कि बस क्या बयान करूँ कि अहा-हा-हा!

"खैर जनाब, जो मुझे यह पता चलता है तो बस कहाँ की बीमारी और कहाँ का ग़म—भागा हुआ हज़रत की आरामगाह की तरफ़ गया; जाकर तसल्ली दी कि हुजूर, आप यह क्या कर रहे हैं? एक नाचीज़ के लिए हुजूर अपने दिल को रञ्ज न पहुँचायें। बादशाह-सलामत एकदम उछल कर मुझे गले से लगाते हुए बोले कि भाई बख्तावर, मैं तुम्हें छोड़कर रह नहीं सकता।' मैंने उन्हें दिलासा देते हुए अर्ज़ किया कि हुजूर, अब इस गुलाम को आज़ादी बख्शिए। कहाँ तो जहाँपनाह के ज़रे-साये परवरिश पाता रहा, और अब इन फ़रंगियों की सल्तनत में जाकर बसूं? मेरी जान बख्शी जाय, इस खाकसार ने आज तक कभी हुक्म-उदूली करने की गुस्ताखी नहीं की। मुझे जहाँपनाह इजाज़त दें कि मैं यहीं रह कर आलीजाह की तरफ़ से इन फ़रंगियों से बदला लूं। ....तो हज़रत, आप यक़ीन मानें कि यह खाक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार पेशावर से लेकर मदरास तक घूम आया; और यहाँ तक कि जब मदरास जा रहा था, तो कलकत्ता-स्टेशन रास्ते में पड़ा, लेकिन मैं उतरा नहीं।"

ग़र्ज़ कि इन तमाम बातों के कहने का मक़सद महज़ इतना ही है कि मुंशी जी कभी कलकत्ता तशरीफ़ नहीं ले गये, और बारह बरस की ऐसी उम्र नहीं जिसमें कि किसी को आसानी से गोद में उठाकर खिलाया जा सके। बहर-हाल, बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिनको कि बग़ैर सिर उठाये ही तस्लीम करना होता है।

जनाब मुंशी जी साहब ने, सन् ३० के सत्याग्रह-आन्दोलन के ज़माने में एक बार ज़िक्र छिड़ने पर यह भी फ़रमाया था कि आप ही की जूतियों के तुफ़ैल से लखनऊ में ग़दर फैला था। और वह तो कहिए कि महज़ एक ज़री-सी ग़लती से सब किये-कराये पर पानी फिर गया, वरना इस वक्त अवध में क्या, पूरे हिन्दुस्तान में नवाबी-अमल होता। और साहब, सच तो यह है कि नवाबी के भी क्या कहने? आप यक़ीन मानें, हज़रत, कि उस वक्त लोग यह भी नहीं जानते थे कि रञ्जोग़म कहते किस चिड़िया को हैं? बस जनाब, आँखों के सामने ही अंगूरी-शराब खिंचवा रहे हैं, जाम पर जाम उड़ रहे हैं; और अब यह हाल है कि कोई पुर्साहाल नहीं।

ग़दर के नाकामयाब होने का सबब आप यह बतलाते हैं कि ज्यों ही आप घोड़े पर सवार होकर मैदाने-जंग की तरफ़ बढ़े तो शहर की तमाम मशहूर और निहायत हसीन तवायफ़ें आपके पीछे पड़ गईं। रोकर कहा कि आपके साथ हम भी चलेंगी क्योंकि आपके बाद लखनऊ में क़द्र करनेवाला और कौन रह जायगा। और माशाअल्लाह, उस वक्त आप वह कड़ियल जवान-पट्ठे थे कि आप ही के लफ़्ज़ों में कि जिधर से मैं निकल जाता था, हुस्न के बाज़ार में आहें भरी जाने लगती थी। ख़ैर साहब अब यह समझा रहे हैं और वह मानती नहीं हैं कहती हैं हम लोग साथ ही जायँगी। किसी तरह दम-दिलासा देकर जो आपने ऐंड़ लगाई तो बस जाकर हरौनी ही में दम लिया जहाँ कि ग़दर मचा हुआ था। अपने सिपह-सालार को देखकर सिपाहियों का दिल दूना हो गया। अँगरेजी फ़ौजें भागने ही वाली थीं कि एकाएक तक़दीर का तख्ता ही पलट गया। भई, कुछ भी हो मगर हम तो कहेंगे वाह रे इश्क़! मुन्शी जी साहब के वियोग में सबकी-सब तवायफ़ें जोगन बनी हुई आख़िरकार मैदानेजंग में भी पहुँच ही गईं। और रो-रोकर मुन्शी जी को लगीं घोड़े पर से घसीटने। अब मुन्शी जी हैं कि दनादन फ़ैरों पर फ़ैरें कर रहे हैं और उनकी एक-एक गोली से सौ-सौ अँगरेज़ वफ़ात पा रहे हैं। एकाएक एक अँगरेज़ी-सार्जेन्ट की गोली दन-दनाती हुई इनकी तरफ़ आई और यह तय था कि वह इनकी खोपड़ी के ठीक बीचों-बीच एक आर-पार का सूराख़ कर देती कि ऐन मौक़े पर मुन्शी जी के इश्क़ में अधमरी हो जानेवाली इन हसीनों के बदन में खुदा जाने कहाँ से इतनी ताक़त फट पड़ी कि जो सबने मिलकर इनका हाथ पकड़ कर घसीटा तो बस धम से घोड़े के नीचे ही दिखाई पड़े। मुंशी जी फ़रमाते हैं कि उस अँगरेज़ सार्जेन्ट ने ख़ास इन्हीं को ख़त्म करने के लिए ऐसी ज़बरदस्त गोली छोड़ी थी कि आगे जाकर उसने एक पीपल के पेड़ को भून कर रख दिया। मगर इनके गिरने का असर इनकी फ़ौज पर बहुत बुरा पड़ा। उन लोगों के हौसले पस्त हो गये; और उन्होंने यह समझा कि जनाब मुंशी जी साहब उस अँगरेज़ सार्जेन्ट की गोली खाकर इस जहान-फ़ानी से कूच कर गये। फिर क्या था इनकी फ़ौज में इस तरह भगदड़ पड़ी कि बस क्या अर्ज़ किया जाय। सिपाही लोग उस अँगरेज़ सार्जेन्ट को कोसते और जनाब मुंशी जी साहब मरहूम की याद में रोते हुए वापस लौटने लगे। और अब यह हर-एक सिपाही को पकड़-पकड़ कर समझा रहे हैं कि भाई मैं मरा नहीं ज़िन्दा हूँ मगर इन्हें यक़ीन ही नहीं आता।

(२)

रोज़ाना अख़बार में ख़बरें छप रही हैं कि महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू वग़ैरह-वग़ैरह गिरफ़्तार हो रहे हैं। जगह-ब-जगह हड़तालें हो रही हैं, धरने दिये जा रहे हैं। लाठियाँ और बन्दूकें चल रही हैं। जनाब मुंशी जी साहब एक दिन मुहल्ले में रहनेवाले कांग्रेसी वालंटियरों से बोले—'यह क्या तुम लोग ग़लत रास्ते पर जा रहे हो? वल्ला, अगर कहीं मैं महात्मा गांधी की जगह पर होता तो चुटकी बजाते-बजाते यों सौराज दिलाता—यों! नवाब वाजिदअलीशाह साहब के ज़माने में भी लखनऊवालों ने यह चाहा कि उन्हें आम सड़कों पर शराब पीने का सौराज मिल जाय। ख़ैर साहब वह लोग आये हमारे पास। हमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा कि यह कौन बड़ी बात है, अभी चलो। बस पहुँच गये नवाब साहब के दरबार में। बादशाह सलामत ने जो इतने हुजूम के साथ आते देखा तो खड़े हो गये, और मुसकरा कर मेरा इस्तक़बाल करते हुए फ़रमाया कहो भाई बख्तावर यह सब क्या माजरा है? मैंने अर्ज़ किया हुजूर, यह लोग सौराज चाहते हैं। बादशाह सलामत के माथे पर शिकन पड़ गये, तेवर बदल कर फ़रमाते हैं किस बात का सौराज जी? इस ख़ाकसार ने अर्ज़ किया कि हुजूर सौराज चाहते हैं और क्या। बादशाह सलामत ने फ़रमाया कि सौराज लेकर आख़िर यह लोग क्या करेंगे? मैंने अर्ज किया हुजूर को दोआयें देते हुए यह लोग शराब पी-पी कर सड़कों पर जश्न मनायेंगे। मेरी इस बात पर हज़रत कुछ इस तरह खुश हुए कि बस मुसकरा कर सौराज दे दिया। और साहब मैं क्या मेरे वालिद-बुज़ुर्गवार और बाबाजान मरहूम ने भी वक़्तन-फ़-वक़्तन लोगों को इसी तरह सौराज दिलाया है। तो साहब यह हमारा ही काम है कि एक घड़ी के अन्दर जिसको चाहें सौराज दिला दें। अब गांधी जी क्या खाकर सौराज लेंगे? कहीं झण्डा लेकर नमक बनाने से सौराज भी मिलता है? हमको कहिए, देखिए यों सौराज दिला दूं।'

मुहल्लेवालों ने भी कहा—'साहब इससे अच्छी क्या बात है।' बस जनाब मुंशी जी साहब झट से अन्दर जाकर अपनी धराऊ चपकन और टोपी पहन कर बाहर निकले।'

मुहल्लेवालों ने नारा लगाया—'इन्क़लाब-ज़िन्दाबाद', 'भारत माता की जै', 'मुंशी बख्तावरलाल की जै''। मुंशी बख्तावरलाल ने निहायत खुश होकर अपने शाने हिला दिये।

एक ने पूछा, 'मीटिंग कहाँ कीजिएगा?'

आप अकड़ गये, फ़रमाया—'मीटिंग के क्या माने जी? हम तो लाट साहब से मिलने जा रहे हैं।' और आपने निहायत जोश के साथ उनकी तरफ़ देखकर कहा—'इन्क़लाब-ज़िन्दाबाद!'

पूछनेवाले साहब ख़ुफ़िया पुलिस के एक अफ़सर थे। उधर इन्होंने नारा लगाया, उधर उन्होंने इनका हाथ पकड़ा कि आइए, मेहमानख़ाने में तशरीफ़ ले चलिए।

मुंशी जी साहब अकड़ गये, कहा—'तुम कौन हो जी?' फिर पीछे की तरफ़ मुड़कर वालंटियर से कहा—'इन्हें बता दो कि हम कौन हैं?'

पुलिस के इन अफ़सर साहब ने मुसकरा कर इनका हाथ झँझोरते हुए फ़रमाया—'अजी इधर आइए साहब। हमें मालूम है कि आप कौन हैं। वह देखिए हुजूर लाट साहब ने आपकी ख़ातिर के लिए एक मोटर भी भेज दी है।'

लारी पर बैठते वक़्त भी जनाब मुंशी जी को इस बात का गुमान न था कि वह हवालात लिये जा रहे हैं। दूसरे वालंटियरों ने भी आपको यही यक़ीन दिलाया कि लाट साहब ने आपकी बड़ी इज्ज़त की है।

मोटर लॉरी जब कोतवाली में पहुँची और सिपाही इन्हें हवालात की तरफ़ ले जाने लगे तब तो आप बहुत घबराये, लगे रो-रो कर दारोग़ा जी के पैर पकड़ने। रो के फ़रमाते हैं 'ऐ हुजूर मैं तो सरकार का पुराना ख़ैरख्वाह हूँ।'

दारोग़ा साहब मुसकरा कर बोले—'अजी वाह ऐसी बात करते हैं आप? आप तो नवाब वाजिदअलीशाह साहब के ख़ास दाहिने हाथ थे, आपके ज़रा तेवर बदल देने से ही ग़दर मच गया था और साहब आपने तो कई बार सौराज दिलाया है.....।'

मुंशी जी ज़ार ज़ार रोने लगे, कहा—'हुजूर बुढ़ापा बिगड़ जायगा। यह सारी इज्ज़त ख़ाक में मिल जायगी।'

'अजी इज्ज़त की इसमें क्या बात है? आप तो जनाब वाजिदशाह साहब.....।'

'वल्ला, इल्म क़सम हुजूर, किसी दुश्मन ने मेरे ख़िलाफ़ हुज़ूर के मेहरबान दिल में कुछ बदगुमानी पैदा करने की कोशिश की है। अब आप ही ख़याल फ़रमाइए बन्दा-परवर कि कहाँ मैं और कहाँ नवाब वाजिदअलीशाह साहब का ज़माना? ख़ुदा उन्हें जन्नत.....नहीं नहीं हुजूर भला आप ही ख्याल फ़रमाइए कि मैं क्या मेरे बाप-दादे भी उस वक़्त पैदा भी नहीं हुए होंगे हुजूर।'

'अच्छा? तो गोया आप अभी तक कमसिन ही हैं? ख़ैर, सिपाहियो ले जाओ इन्हें। यह लाट साहब से मिलने जा रहे थे न?'

मुंशी बख्तावरलाल ने ज़ार ज़ार रोते हुए कहा—'ऐ हुजूर अब की बार माफ़ कर दीजिए। भला मेरी इतनी जुर्रत कि मैं मलिके ज़मानियाँ हुजूर लाट साहब, ख़ुदा उन्हें ज...नहीं नहीं हुजूर, परमेशुर करे वह दूधों नहायँ पूतों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलें--अब उनसे मिलने की मेरी ताब कहाँ है हुज़ूर? आप सलामत रहें, मुझे अपने बच्चों के सदक़े ही से छोड़ दीजिए। इस वक़्त तो आप ही हमारे लिए लाट साहब हैं, सरकार।'

× × × ×

मुआफ़ी माँग कर छूट आने के बाद ही जनाब मुंशी जी साहब अपने घर लौट आये। मैंने उनसे दरियाफ़्त किया--'कहिए साहब कुछ कामयाबी हासिल हुई?'

मुंशी जी ने अकड़ कर फ़रमाया--'वल्ला आप भी कैसी बातें करते हैं हज़रत?' और फिर मूँछों पर ताव देते हुए बोले--'भला जिस काम में मुंशी बख़्तावरलाल हाथ डालें और वह पूरा न हो? लाट साहब ने फ़ौरन ही हुक्म दिया कि काग़ज़ात तैयार करो। बस अब काग़ज़ तैयार होने भर की देर है, कि सौराज हो गया। अब आप वह ख़्याल फ़रमायें कि नवाब वाजिदअलीशाह साहब, ख़ुदा उन्हें.....' फिर एकाएक घबरा कर बोले--'नहीं-नहीं वह सब कुछ नहीं, आप उन्हें कुछ ख़्याल न कीजिएगा हज़रत! अच्छा इस वक़्त मुझे ज़री एक काम है।'

बात पूरी होते-होते मुंशी बख़्तावरलाल ने अपने मकान के किवाड़े खट से बन्द कर भीतर से कुंडी लगा ली।

भविष्य का गीत

लेखक, श्रीयुत चन्द्रप्रकाश वर्मा 'चन्द्र'

आगे, आगे क्या होता है, देख चला, कल्याणी!
अरे! अभी तो शुरू हुई जीवन की रामकहानी।

भोली हो तुम, अभी न तुमने जीवन देखा-भाला,
भोली हो तुम, अभी न तुमने पिया प्रेम का प्याला;
अभी न जाना है रहस्य तुमने कोकिल के स्वर का,
अभी न गीत सुना है तुमने अपने ही अन्तर का;
अभी अभी पद-चाप तुम्हारी दुनिया ने पहचानी!
अरे! अभी तो शुरू हुई जीवन की रामकहानी॥

धीरे धीरे समझोगी तुम कलियों का मुसकाना,
समझोगी फिर उन तक भौंरों का वह आना-जाना;
जानोगी क्यों झरने बहते रहते गाते गाते,
जानोगी क्यों गाते गाते नदियाँ से मिल जाते;
जानोगी किस तरह उमङ्गें करती हैं मनमानी!
अरे! अभी तो शुरू हुई जीवन की रामकहानी॥

अभी मचलकर फूल तोड़ने जाती हो फुलवारी,
कलियाँ तोड़-मरोड़ रौंद देती हो क्यारी क्यारी;
पर अब वे दिन दूर नहीं जब लताकुंज के भीतर;
प्यारभरी बातें तुम करती होगी सिहर सिहरकर;
बचपन की नादानी होगी, यौवन की हैरानी!
अरे! अभी तो शुरू हुई जीवन की रामकहानी॥

अभी न कंठ तुम्हारा फूटा गीत न तुमने गाया,
रागभरी वीणा के तुमने अभी न तार हिलाये;
उर-वृन्दा में तुम्हें न अब तक कुछ भी पड़ा सुनाई,
अभी वहाँ पर मनमोहन ने वंशी कहाँ बजाई;
किसी श्याम की तुमको बनना होगा राधारानी!
अरे! अभी तो शुरू हुई जीवन की रामकहानी॥

जानोगी तुम, क्या होता है अपना और बिराना,
अभी सुनोगी, समझोगी तुम जीवन का अफ़साना;
भले-बुरे का भेद शीघ्र ही समझोगी तुम भोली!
तरह तरह के गीत सुनोगी, तरह तरह की बोली;
जान रखो पागल कर देती यह दुनिया दीवानी!
अरे! अभी तो शुरू हुई जीवन की रामकहानी॥

यहाँ न अपनापन खो देना, करना मत नादानी,
बिक जाते बेदाम यहाँ पर ज्ञानी और अज्ञानी;
इन्द्रजाल की दुनिया में मन भ्रम में मत भरमाना,
धूप लगे कुम्हलाना मत, पा छाँह न तुम सो जाना;
अपनी अपनी कम कहना पर सुनना अधिक बिरानी,
अरे! अभी तो शुरू हुई जीवन की रामकहानी॥

× ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाह जो रिसालो

लेखक, प्रोफ़ेसर नारायणदास भट्टेजा, एम० ए०, एम० ओ० एल०, शास्त्री

शाहजी रिसालो सिन्धी-साहित्य का एक प्रख्यात काव्य है। प्रोफ़ेसर साहब ने उसी का इस लेख में दिग्दर्शन कराया है।

सिन्ध-प्रान्त भारतवर्ष की पश्चिम दिशा में अन्य भारतीय प्रान्तों से विश्लिष्ट सा प्रतीत होता है। पश्चिम की ओर से मुसलमानों-द्वारा आक्रान्त भी यही प्रान्त सबसे अधिक रहा है। ऐसी स्थिति में यह प्रान्त अपना कुछ निजी साहित्य उत्पन्न कर सका हो, इसकी आशा बहुत ही कम हो सकती है। यदि कुछ थोड़ा बहुत साहित्य है भी तो हिन्दी में उसके प्रकट करने का प्रयत्न शायद ही किया गया हो।

आज-कल सिन्धी-भाषा अरबी-लिपि में लिखी जाती है और शिक्षा-विभाग से भी यही लिपि स्वीकृत है। किन्तु सन् १८७९ में शर्ट साहब ने और सन् १८४९ में कैप्टन जर्ज स्टैक ने सिन्धी के जो शब्द-कोश प्रकाशित किये उनकी लिपि देवनागरी है। सर्वप्रथम सिन्धी के यही शब्द-कोश हैं। किन्तु अब इन शब्द-कोशों का प्रयोग सिन्ध में नहीं होता। आज तक बने हुए शब्द-कोशों में दो हज़ार से अधिक शब्द नहीं दिये गये हैं। उनमें से बारह सौ शब्दों से अधिक संस्कृत-शब्दों के परिणत रूप हैं और शेष आठ सौ से कम अरबी और फ़ारसी के मूल शब्द बहुत अल्प परिवर्तन से फ़ारसी और अरबी से जानकारी रखनेवाले बहुधा प्रयोग में लाते हैं।

सिन्धी-साहित्य के विषय में प्रामाणिक ग्रन्थ दो ही मिलते हैं। एक मुसलमान सन्त शाह अब्दुल लतीफ़ का 'शाह जो रिसालो' और दूसरा हिन्दू सन्त भाई मेघराज का 'सामीअ जो सलोक'।

शाह अब्दुल लतीफ़ का जन्म सन् १६८९ ईसवी में हुआ और देहावसान सन् १७५२ में। शाह जो रिसालो ग्रन्थ का सम्पादन पहले-पहल ट्रम्प साहब ने किया और उनका पहला संस्करण सन् १८६६ में लिपज़िग से भारतीय गवर्नमेंट के खर्च से प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ की बहुत प्राचीन हस्त-लिखित प्रति लंदन के ब्रिटिश म्यूज़ियम में भी है। इसके पश्चात् और दो तीन संस्करण भी निकले हैं, जिन सबकी लिपि अरबी है। कराची-कालेज के वाईस-प्रिंसिपल डाक्टर होतचन्द मूलचन्द गुरुबक्षाणी एम० ए०, पी-एच० डी० ने भी कई हस्तलिखित प्रतियों से संशोधन कर वैज्ञानिक ढंग पर इस ग्रन्थ का सम्पादन किया है। हाई स्कूलों और कालेजों की पाठ्य-पुस्तकों में उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों के कुछ चुने हुए अंश अवश्य दिये जाते हैं। अतः सिन्ध के सभी शिक्षित लोग इन दोनों ग्रन्थों से परिचित हैं। अशिक्षित लोगों में भी इनकी वाणी का वैसा ही प्रचार है, जैसा हिन्दी-भाषी प्रान्तों में तुलसी की रामायण का।

शाह अब्दुल लतीफ़ सिन्ध के एक सूफ़ी साधु थे। उनके समय में जो वीर-गाथायें अथवा उत्कट प्रेम-कथायें प्रचलित थीं उनको ईश्वरपरक लगाकर शाह साहब ने अपनी कृति को अमर कर दिया है। अपनी रचना के विषय में वे लिखते हैं—

"जे तो बेत भाइया, से आयतूं आदीनि।
निओ मनु लाईनि, पिरियां संदे पार दे।"

अर्थात् जिनको तुम साधारण शृङ्गार-रस की कविता मान रहे हो वे ऐसी आयतों (कुरान शरीफ़ के वचनों) के समान हैं, जो हमारे प्रियतम प्रभु की ओर मन को लगाती हैं।

शाह साहब की शैली परिपक्व, विशद और स्पष्ट है। किन्तु उस समय की भाषा की अपेक्षा इस समय की भाषा में—दो सौ वर्ष के अन्तर में—बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। आज-कल के विद्यार्थी के लिए उस समय की भाषा का समझना टेढ़ी खीर है।

इस ग्रन्थ के कथानकों के नायक और नायिकायें प्रायः हिन्दू ही हैं और विचार-धारा पर भी हिन्दू-संस्कृति की छाप लगी हुई है। उसके कथानकों के सम्बन्ध के स्मारक सिन्ध में आज भी मिलते हैं और परिचित लोग उनको विशेष आदर की दृष्टि से देखते हैं। उक्त ग्रन्थ का पहला कथानक इस प्रकार है—

लीला चनेसर

सोलङ्की राजपूतों का वंशज खङ्गार राणा बहुत ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभावशाली था। वह ढट प्रान्त का अधिपति था। कौरू नाम की उसकी एक कन्या थी, जिसकी शोभा की ख्याति यत्र-तत्र छा गई थी। उन दिनों वह अपनी उपमा आप ही थी। उसका वाग्दान उसी के एक सम्बन्धी उत्तमादि से हो चुका था।

उन्हीं दिनों में सूमरों (सोमवंशियों) का वंशज चनेसर (चन्द्रेश्वर) देवलकोट* में राज्य करता था। चनेसर शोभा और वैभव में अप्रतिम था। उसकी भी धाक जमी हुई थी। अनेक सौन्दर्य-सम्पन्न युवतियाँ उसके पाणि-ग्रहण के लिए लालायित रहती थीं। एक दिन कौरू की सहेली जमनी ने उसे टोक कर कहा—"क्या चनेसर को रिझाने जा रही हो, जो इतना साज-शृङ्गार कर रही हो?" इस वाक्य ने कौरू के हृदयपट पर आघात पहुँचाया और उसी दिन से बिना देखे ही वह चनेसर पर आसक्त हो गई और उसने अपने मन में ठान लिया कि "वरौं चनेसर न त रहूँ कुंवारी"।

कौरू की माता मुर्की को जब इस घटना का पता चला तब उसने राणा खंधार को उसकी सूचना दी। खंधार ने सोचा कि यदि चनेसर से सम्बन्ध के विषय में प्रकट रूप से बातचीत चलाई जाय और वह स्वीकार न करे तो व्यर्थ की बदनामी होगी, अतएव उन्होंने एक युक्ति से काम लिया। उन्होंने कौरू और उसकी माता को व्यापारी औरतों के भेष में देवलकोट में रहने को भेज दिया। वहाँ एक मालिन की सहायता से चनेसर के मंत्री जखरे के पास वे गईं और उसे बहुत ही नम्रतापूर्वक अपना वृत्तान्त सुनाया। जखरे को उन पर दया आई और उनकी यथाशक्ति सहायता करने का उसने वचन दिया। एक दिन अवसर देख जखरा चनेसर के हृदय पर कौरू की सुन्दरता का चित्र खींचने लगा और उसे रिझाकर कहने लगा कि ऐसी सुन्दरी यदि आपके अन्तःपुर का शृङ्गार न बनी तो फिर पछताना होगा। चनेसर का मन कुछ चलायमान हुआ, किन्तु अपनी महिषी लीला का ध्यान कर उसने कहा कि लीला के होते हुए मेरी और कोई पत्नी नहीं हो सकती। जखरे ने दो-चार बार फिर भी चनेसर से बात छेड़ी, किन्तु सर्वदा उसे निराशा-पूर्ण उत्तर ही मिलता रहा।

कौरू और उसकी माता ने जब और कोई उपाय न देखा तब दोनों दासियों का भेष बनाकर महारानी लीला के पास गईं और उसे अपनी दयनीय दशा पर आकृष्ट कर कहने लगीं कि "हम मार्ग की यात्रा की मारी हुई हैं। हमारे पास जो कुछ भी था वह सब खर्च हो गया है। हमें अपनी सेवा में रख लीजिए। हम दोनों घर के काम-काज में बहुत ही दक्ष हैं। हमें और कोई स्थान कहीं जाने का नहीं है।" लीला को उन पर विश्वास आ गया और उसने दोनों को अपने यहाँ रख लिया। कौरू को चनेसर की शय्या बिछाने का काम दिया और मुर्की को चनेसर की पान बनाने का।

समय बीतता गया, किन्तु चनेसर के हृदय के पिघलने की कोई आशा नहीं दीखती थी। निराशा में एक दिन कौरू की आँखों से आँसू बहने लगे। लीला ने यह दृश्य देखा और कौरू से रोने का कारण पूछा। कौरू ने उत्तर दिया—"महारानी जी, मैं रो नहीं रही हूँ। दीवे की बत्ती बनाते समय तेल का हाथ आँखों में लग गया, इससे आँखों में पानी आ गया है।" लीला को इस पर विश्वास नहीं आया। उसने सच बात कहने का बहुत आग्रह किया। कौरू विवश होकर कहने लगी—"एक समय था, मैं भी हिंडोलों में आपके समान ही झूलती थी। कई सेविकायें हाथ बाँधे मेरी आज्ञा की बाट जोहती थीं। जब मैं अपना नवरत्न हार पहनती थी, अँधेरे में उजाला हो जाता था और जलते हुए दीवे सब फीके पड़ जाते थे। उन दिनों को याद कर आँखें आँसुओं से भर आईं।" लीला को इस पर भी पूरा विश्वास नहीं हुआ, उसने इस कथन की सत्यता का प्रमाण माँगा। कौरू उसी क्षण अपनी डिबिया में से हार ले आई, जिससे सारा महल चकाचौंध हो उठा। लीला स्वभाव से चञ्चल थी। उसे हीरे-जवाहरों की सदा लालसा बनी रहती थी। कौरू का वह हार देखकर कह उठी—"मुझे यह हार दे दो। बदले में जो कुछ माँगो मैं तुम्हें दूंगी।" कौरू मौका पाकर बोली—"मुझे धन दौलत की कोई कमी नहीं। केवल एक रात चनेसर से प्रेमालाप करने दो तो हार तुम पर न्योछावर कर दूं।

* मेजर रावर्ट ने देवलकोट नामक स्थान को मकली की टेकरी के पास निर्धारित किया है। तुहफ़ह अलकराम के अनुसार चनेसर का देवलकोट पर शासन करने का समय सन् १२८८ से १३०६ तक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जत हार ने लीला की सब सुध-बुध भुला दी थी। उसने उसकी वह शर्त मान ली। लीला ने कहा—"तुम निश्चिन्त रहो। मैं स्वयं चनेसर को आज रात तुम्हारे कमरे में छोड़ आऊँगी।"

चनेसर उस रात को अपने मित्रों के साथ सहभोज में शराब पीकर नशे से आक्रान्त हो बहुत देर में महल में आया। लीला ने समझा, यह अच्छा अवसर है। चनेसर से जो बात कहूँगी उसे वह मान लेगा। लीला ने उससे बहुत अनुरोध के साथ कहा कि "कौरू तुमसे प्रेमालाप करना चाहती है, आज उसकी अभिलाषा पूर्ण कर दो।" यद्यपि चनेसर होश में न था, तो भी उसने उसके प्रस्ताव को घृणा के साथ स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार कर दिया। किन्तु लीला उसका हाथ पकड़ कर उसे कौरू के कमरे में छोड़ आई। कौरू की रात तारों के गिनने में बीत रही थी। उसने अपना मनोरथ पूर्ण होते देखकर बिना विलम्ब के ब्राह्मण को बुलाकर पाणि-ग्रहण की रीति पूरी की। चनेसर नशे में सुध-बुध-हीन था। वह रात भर पलँग पर लेटा रहा। प्रातःकाल उसको होश हुआ तब कौरू के कमरे में अपने को देख-कर वह चकित हो गया और घृणा से वह कमरा छोड़ बाहर निकल रहा था कि कौरू ने हाथ पकड़कर कहा "सविधि पाणि-गृहीत पत्नी का परित्याग कर अब कहाँ जाते? लीला ने आपको एक हार पर बेच डाला है।" कौरू ने सविस्तर सारा वृत्तान्त उसे कह सुनाया, जिसे सुनकर चनेसर कौरू पर मुग्ध हो गया, साथ ही लीला से उसकी विरक्ति हो गई।

जब लीला को इस घटना की सूचना मिली तब उसके होश उड़ गये। उसने चनेसर को रिझाने के बहुत प्रयत्न किये, किन्तु सब निष्फल हुए। अन्ततः वह हार का-सा दुःख हृदय में डालकर अपने मायके इस विचार से चली गई कि शायद वियोग में चनेसर को कभी प्रेम का स्मरण उमड़ आये और अपराध क्षमाकर उसे फिर अपनाये। वर्ष बीत गये, किन्तु चनेसर टस से मस नहीं हुआ। मन्त्री जखरे का वाग्दान लीला के सम्बन्धियों में हो गया था। जब उन्हें लीला के परित्याग का पता चला तब उन्होंने जखरे का विवाह करने से इनकार कर दिया। जखरे को भी प्रेम की चपेट लगी हुई थी। जब उसकी एक भी न चली, विवश होकर लीला की शरण में गया और कार्यसिद्धि के लिए उससे बहुत अनुनय-विनय की। लीला ने कहा—"यदि चनेसर को मेरे पास एक बार ले आओ तो तुम्हारी वाग्दत्ता मैं तुमको दिला दूंगी।" यह सुनकर जखरा देवलकोट लौट गया और उसने चनेसर से नम्र होकर प्रार्थना की—"मेरी लाज अब आपके हाथ है। मेरे विवाहोत्सव में आप साथ देकर मुझे कृतार्थ करिए।" चनेसर ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की और बारात के साथ गया। बारात नगर के पास पहुँची तब लीला और उसकी सहेलियाँ घूंघट से केवल एक आँख निकालकर नाचतीं और गाती हुईं उनके स्वागत के लिए आईं। लीला के हावभाव और नृत्यकला को देखकर चनेसर बिना देखे उसके ऊपर मुग्ध हो गया और अपने को भूल कर उसने कहा—"हे मृग-नयनी, ज़रा घूंघट का पट खोलकर दर्शन तो दो। जैसा तुम्हारा गायन मधुर है, मुझे निश्चय है कि तुम्हारे मुख में उससे कहीं अधिक माधुर्य होगा।" लीला घूंघट खोलकर चनेसर के सामने खड़ी हो गई। चनेसर के अन्तस्तल में पूर्व का प्रेम उमड़ आया। वह अपने को सँभाल न सका और प्रेम के आवेश में उसके प्राण प्रयाण कर गये। यह दृश्य देखकर लीला को मूर्च्छा आ गई और उसके भी प्राण प्रियतम से मिलकर एक हो गये। यही उस कथानक का सारांश है।

'चनेसर' चन्द्रेश्वर का अपभ्रंश है और 'कौरू' कुमारी का। इसी प्रकार और नाम तथा घटनायें सब हिन्दू-संस्कृति के द्योतक हैं।

शाह अब्दुल लतीफ़ ने उपर्युक्त घटना को आध्यात्मिक पक्ष में इस प्रकार लगाया है कि लीला मानों एक जिज्ञासु है, जो सांसारिक वैभव में फँसकर अपने प्रभु चन्द्रेश्वर से विमुख होता है और उसे फलस्वरूप अपने पद से च्युत होकर फिर पछताना पड़ता है। कौरू की तितिक्षा में हमें कुमार-सम्भव में वर्णित पार्वती की तपस्या का आभास मिलता है। अन्ततः पश्चात्ताप करने और फिर सँभल जाने पर प्रियतम से एकता हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीला

लेखक, श्रीयुत विजय वर्मा

ला माया की छोटी बहन है। माया को मरे चार वर्ष हो गये। दो वर्ष——केवल दो वर्ष——नरेन्द्र ने माया से विवाह करके बिताये थे कि एकाएक एक दिन ठीक मध्याह्न-काल में माया के हृदय की गति बन्द हो गई और सदैव के लिए बन्द हो गई। नरेन्द्र ने यह देखा और उसे जान पड़ा कि उसका अन्त भी आ गया है। वह माया से अलग कैसे हो सकता है? वह बेहोश होकर गिर पड़ा। किन्तु वह बेहोशी दूर हो गई और नरेन्द्र ने थोड़े ही महीनों के बाद घर-द्वार छोड़कर अपने आपको राजनैतिक कर्मक्षेत्र में डाल दिया।

उस समय लीला पढ़ रही थी। उसकी सूरत अपनी बड़ी बहन माया से बेतरह मिलती-जुलती थी और उनके स्वभाव में भी ऐसा ही मेल था। उनमें परस्पर प्रेम भी अपार था। पर लीला अपनी बहन के समय से ही गृहस्थ-जीवन से विराग की बातें तेज़ी के साथ करने लगी थी और वह समाजवाद की अनुयायिनी हो रही थी। इस सिद्धान्त के एक व्यावहारिक आचार्य के प्रति, जिनकी अवस्था पचास वर्ष के क़रीब थी, उसकी श्रद्धा एक शिष्या की-सी ही थी और उसने उनसे बहुत कुछ सीखा भी था। उसके माता-पिता कोई न थे। अन्त में बहन के मरने और नरेन्द्र के संन्यासी बन जाने पर वह इन्हीं आचार्य के आश्रम में चली गई।

× × ×

इसके पाँच वर्ष बाद——

"तुम लीला नहीं हो, माया हो——माया हो।" यह सुनते ही वह हँस पड़ी, बोली एक शब्द भी नहीं। वस्तुतः वह हँसी रुदन का ही एक रूप थी।

उस हँसी ने नरेन्द्र को और भी उसी दिशा में प्रभावित कर दिया। वह कह उठा——"सुनो, तुम मेरे पास आई हो। माया भी इसी तरह मेरे पास आई थी। मैं तो जानता न था, सोच भी न सकता था कि वह इस प्रकार छिपी हुई ऐसी जगह होगी। अगर मैं यह जानता.....।"

वह रुक गया। उसकी दृष्टि सन्ध्याकालीन आकाश की ओर गई और वह उधर ही देखता रह गया। सुनहले बादल छाये हुए थे। कितनी जल्दी उनका सुनहरापन दूर हो जायगा! क्या वे भी माया के मोह में फँस गये हैं और उन बादलों में कोई सुन्दरी——ठीक 'माया' की भाँति अनिन्द्य सुन्दरी दिखलाई तो दे रही है। आह!

वह जाग-सा उठा। कुर्सी पर से झट खड़ा हो गया और दो क़दम चला। तब फिर लौट कर कुर्सी पर बैठ गया और लीला की ओर दृष्टि जमाकर कहने लगा——"आज तक कौन जान पाया है कि वह कहाँ किस रूप में दिखलाई देगी! धिक्कार है मनुष्य के ज्ञान को और उसकी शक्ति को! कठपुतली से बढ़कर वह कुछ भी तो नहीं। और आज तुम मेरे सामने कैसी अद्भुत शान्ति के साथ बैठी हो, लीला!

"तब क्या करूँ? नाचने लगूं!" लीला के स्वर न जाने क्यों झुँझलाहट थी।

"तुम्हारे नाचने की ज़रूरत नहीं। नाचना मेरे भाग्य में है।" नरेन्द्र ने मार्मिक ढंग से कहा।

"मैं तो ऐसी भाग्यवादिनी नहीं।" लीला ने सिर उठा कर कहा।

"तुम्हें होना भी नहीं चाहिए। तुम होतीं तो आश्चर्य होता और दुःख भी।"

दोनों की दृष्टियाँ मिलीं।

अब लीला ने पूछा——"आपने मुझे क्यों यहाँ बुलाया है?"

"मैंने? मैं तुम्हें कभी बुला नहीं सकता! तुम यहाँ आई हो——या किसी न दिखाई देनेवाली शक्ति ने अपने आप तुम्हें यहाँ भेजा है!"

नरेन्द्र के इस उत्तर से चिढ़कर लीला ने पूछा "शक्ति दिखाई कौन-सी देती है?"

"कोई नहीं, कोई नहीं।" नरेन्द्र फिर उठ खड़ा हुआ "देखो, बिजली, स्टीम, गैस, वायरलेस——हाँ, बेतार तार!"

लीला भी उठ खड़ी हुई और बोली——"आप अपनी बातें करते हैं और जो आपके मन में है उसे छिपाने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयत्न करने के कारण आपकी बातें और भी बेढब हो जाती हैं। आप क्या कहना चाहते हैं ?"

"तुम्हीं बताओ, तुम क्या कहना चाहती हो !"

"मैं ! मैं कहती हूँ कि आप उस काम को अब कीजिए जो आपके जीवन को सचमुच सफल बना दे।"

"वह कौन-सा काम है ?"

"स्वार्थ-त्याग और सार्वजनिक प्रेम।"

"सार्वजनिक प्रेम क्या ! चाहूँ भी तो क्या मैं सबसे एक-सा प्रेम कर सकता हूँ। मुझसे तुम्हें ऐसी आशा क्यों है ?"

"क्योंकि आप भी मनुष्य हैं—या हो सकते हैं।" लीला ने कह दिया और वह भीतर ही भीतर लज्जित हो गई।

"तुम मुझे वे अप्रिय बातें कहने पर विवश कर रही हो जो मैं कहना नहीं चाहता था। बैठ जाओ।"

नरेन्द्र की मुख-मुद्रा कुछ कठोर हो गई। वह फिर कुर्सी पर बैठ गया।

लीला भी चुपचाप बैठ गई। उसे आशा थी कि नरेन्द्र अपनी 'अप्रिय' बातों को कहने लगेंगे। पर उसने देखा कि वह कुर्सी पर बैठकर एकटक उसकी 'लहराती हुई लटों' की ओर देख रहा है। उसने उन लटों को ढँक लिया और इस प्रकार ढँक लिया कि सिर का एक बाल भी दिखाई न दे।

तुरन्त ही नरेन्द्र ने कहा—"यह क्या ? क्या तुम यह नहीं जानती हो कि एक व्यक्ति अपने किसी काम का जो असर चाहता है अधिकतर वह असर नहीं पड़ता। तुम्हें जिस मनुष्य का इतना घमंड है, जिसकी मनुष्यता को आगे रखकर तुम सबको मनुष्य बनने का उपदेश देने का साहस कर रही हो, उसमें भी वासनायें हैं, इच्छायें हैं, पक्षपात है, ईर्ष्या है, घमंड है, घृणा है—उसमें भी पशुत्व है, अपेक्षाकृत पशुत्व है, और इसी लिए वह मनुष्य है, नहीं तो असम्भव है, वह भी तुम्हारे अनेक निराकार देवताओं में से एक या उन सबसे भी बढ़ कर हो गया होता।"

लीला अब भी चुप रही। उसने समझा कि अभी तो 'अप्रिय' कथा की भूमिका ही हुई है। अभी असल बात कहने की शक्ति का संचय नरेन्द्र नहीं कर पाये।

किन्तु नरेन्द्र लीला का इस प्रकार चुप रहना सहन नहीं कर सकता था। वह चाहता था कि लीला कुछ न कुछ अवश्य कहे, चाहे वह एक शब्द ही हो।

जान पड़ता है, लीला ने भी यह समझ लिया। वह बोली—"और ?"

यह 'और' वैसा ही था जैसा ग्रामोफोन के रिकार्ड के लिए साउन्ड-बाक्स की सुई। सुई के रिकार्ड पर लगते ही आवाज़ होने लगती है। नरेन्द्र ने भी तुरन्त बोलना प्रारम्भ कर दिया—"और ? और जो तुम यह मान बैठी हो कि अब तुम्हीं एक संसार-संघ की सफल स्थापना करके उसकी एक मात्र संचालिका बनने जा रही हो और सारा संसार भिखारी बनकर अपने सुख, अपनी शान्ति और अपनी रोटियों के टुकड़ों के लिए भी तुम्हारी ही ओर देखने जा रहा है, यह तुम्हारा ऐसा महान् भ्रम है जिसमें आज-कल के कार्लमार्क्स, ट्राटस्की, गान्धी आदि या प्राचीन काल के बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, कबीर आदि में से कोई कभी नहीं फँसा, न भविष्य में कोई ऐसा मनुष्य जिसमें सचमुच मनुष्यत्व है, फँस सकता है।

लीला का मन चाहा कि वह उठकर चली जाय, पर उसने अपने को सँभाल लिया और शान्तभाव से कहा—"आप दूसरे लोगों को छोड़ दीजिए और मुझे भी। आप अपनी बात कहिए। आप क्या चाहते हैं ?"

नरेन्द्र को यह स्वर व्यंग्य और तिरस्कार से पूर्ण जान पड़ा। पर इस बार जब वह बोला तब उसके स्वर में वैसी उत्तेजना न थी, न वैसा तीखापन ही था। उसने कहा—"माया से अलग होने से अब तक—या अगर बिलकुल ठीक समय देना हो तो पूरे पाँच साल तक और अब से केवल पाँच मास पहले तक—मैं जिन लोगों में रहा हूँ उनमें से हर एक का दावा वैसे ही मनुष्यत्व का है, जितना कि आज तक कभी कोई कहीं भी कर सका है। पर मैंने अच्छी तरह देखा है कि वे कैसे हैं और उनका यह दावा कैसा है। मैं लौट कर अपने घर आ गया हूँ। मैंने तुम्हें यहाँ फिर देखा। तुम यहाँ दिखाई दोगी, यह आशा मुझे न थी। मैं कहता हूँ, आओ, हम लोग साधारण मनुष्यों के ढंग से रहें ! ऐसे बड़े बनने का ढोंग न रचें। मैंने यहाँ के लोगों के इस बड़प्पन को देख लिया है और मैं उनके पास से चला आया हूँ। तुम अभी तक वैसे बड़प्पन के चक्कर में हो या मैं मान लेता हूँ कि उससे भी बढ़े हुए बड़प्पन के—पर इसका खोखलापन, इसकी निस्सारता तुम आज भी देख सकती हो। हम गृहस्थी में जिनका उत्तरदायित्व लेते हैं उनके प्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम ऐसे ढोंगी न तो होते हैं, न हो सकते हैं। वह क्षेत्र यदि उससे देश की उन्नति और संसार की उन्नति का सामञ्जस्य रहे तो सबसे अच्छा क्षेत्र है। उसमें हम अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर सबकी यथार्थ उन्नति कर सकते हैं। क्या तुम इसे न मानोगी?"

लीला ने सहज भाव से उत्तर दिया—"संभव है, भविष्य में कभी मेरा भी ऐसा अनुभव हो जाय और मैं यह मानने लगूं। अभी तो मैं यह मानने को तैयार नहीं हूँ और इसलिए मैं गृहस्थी के क्षेत्र को अपने लिए ठीक भी नहीं समझती। मेरे विचार आपसे छिपे नहीं हैं। आपके स्वयं भी वैसे ही विचार थे। गृहस्थी का क्षेत्र उन लोगों के लिए नहीं है, जिन्होंने, चाहे जिस कारण से भी हो ऐसा अवसर पाया कि संसार के सभी मुख्य देशों, सभी मुख्य धर्मों, कलाओं और विज्ञानों तथा सभी मुख्य जातियों के उत्थान और पतन का, उन सबके परस्पर सम्बन्ध का, उनकी एकता और विभिन्नता का, उनकी अच्छाइयों और बुराइयों का रहस्य ऐसा समझ लिया जिससे उनका हृदय, उनका मन और उनकी आत्मा एक उच्च सन्देश से पूर्ण हो गई हो—उन्हें जान पड़ने लगा हो कि हमारी इस क्षुद्रता का, पशुत्व का, लूट-मार का, वासना और दम्भ का कारण केवल हमारी अज्ञानता और संयम की कमी है और हममें से हर एक इन पर बहुत कुछ विजय पा सकता है और उसे पाना चाहिए। जब लूटमार मची हो, चोरी हो रही हो या आग लगी हो, उस समय यदि हम कहें, आओ हमें क्या मतलब, हम तो अपने बाल-बच्चों को लेकर या बाल-बच्चों को उत्पन्न करके अपना गृहस्थ-जीवन पालन करेंगे और यही मनुष्य की चरम सफलता होगी तो क्या हमारा यह कथन ही हमारे सबसे अधिक अज्ञान या सबसे बड़े ढोंग या मनुष्यत्व की कमी का द्योतक न होगा? क्या ऐसा गृहस्थ घोर कायर या नीच या अज्ञानी नहीं कहा जा सकता? शायद वह तीनों हो, शायद और अधिक।"

अन्तिम वाक्यों को भी लीला ने बड़ी ही शान्ति के साथ कहा, पर नरेन्द्र के लिए उसकी उत्तेजना को देख लेना असंभव न था।

"तो तुम जाओ लीला! तुम सभी मनुष्यों को भाई समझो। कभी किसी दिन तुम्हें गृहस्थ-जीवन में आने की आकांक्षा न हो, यही मेरी तुम्हारे लिए कामना होनी चाहिए। पर मैं कह देना चाहता हूँ कि मेरी कामना यह है नहीं—इसलिए नहीं कि मैं इसे इस देश की संस्कृति या किसी भी देश की संस्कृति या धर्म आदि का विरोधी समझता हूँ, बल्कि केवल इसलिए कि मैं जानता हूँ कि तुम लीला ही नहीं हो, तुम माया हो और तुम्हें मेरे पास आना पड़ेगा। बीस-बाईस और चौबीस तक की अवस्था में ऐसी विशेष परिस्थिति के कारण जिसमें तुम रही हो और हो ऐसी उच्चातिउच्च बातें और सिद्धान्त तुम्हें कहना चाहिए और मानना भी। किन्तु इसके बाद तुम कह सकती हो पर हृदय से मान न सकोगी, मैं प्रतीक्षा करूँगा। मेरी अवस्था अब अट्ठाईस वर्ष की है और यह निश्चित है कि तुम्हारी अवस्था अभी पच्चीस वर्ष की नहीं है।—वन्दे वन्दे मातरम्।"

(३)

बहुत ही बेचैनी के साथ नरेन्द्र ने दो दिन बिताये। तीसरे दिन उसने अपने मित्र सुरेश को तार दिया—"आ रहा हूँ, स्टेशन पर मिलो।" इससे पहले वह कई बार सुरेश के यहाँ जा चुका था और भाई की भाँति महीनों वहाँ रह चुका था। कभी उसे तार देकर सूचना देने या किसी को स्टेशन पर बुलाने की ज़रूरत नहीं दिखाई दी। पर आज की अवस्था ही अन्य थी।

सुरेश स्टेशन पर ही मिला। नरेन्द्र की थोड़ी ही देर की बातचीत सुनकर वह भयभीत-सा हो गया। बोला—"लीला तुम्हारा साथ नहीं चाहती तो तुम्हीं उसके पीछे क्यों पड़ रहे हो? संसार में सुन्दरी, शीलवती और गुणवती स्त्रियों की तो कमी नहीं है और उनमें से कई एक जो लीला से इन सब बातों में कहीं बढ़कर हैं, तुम्हारे साथ अपना गृहस्थ-जीवन बिताना अपना परम सौभाग्य अवश्य समझ सकती हैं। उन्हीं में से किसी एक के साथ तुम अपना जीवन सुख से क्यों नहीं बिता सकते? लीला की बातों ने तुम्हें संसार से ही निराश और विरागी क्यों बना दिया? बड़ी मुश्किल से तो तुमने उस आश्रम से अपना पिंड छुड़ाया। अब क्या सचमुच फिर उसी में या वैसे ही किसी आश्रम में जाना चाहते हो? नहीं, यह नहीं हो सकता। आप मेरे यहाँ चलिए। शेष बातें वहीं होंगी।"

उत्तर में नरेन्द्र ने अपने मित्र सुरेश का हाथ पकड़ लिया और चुपचाप बैठा रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरेश भी कुछ देर चुप रहा। फिर कह उठा—"तुम्हारा जीवन कैसा विचित्र है? या तो एकदम भावुकता और मोह और या बिलकुल त्याग और संन्यास! अरे भाई, अन्य लोगों की तरह साधारण जीवन तुम क्यों नहीं बिता सकते? मैंने यह माना कि तुम धनवान् होना पाप समझते हो, दूसरों के खून को चूसना समझते हो और जो धन तुम्हारे पास है उसका उपयोग करते हुए भी शायद इसी कारण तुम्हें लज्जा आती है, पर जो समाज तुम स्थापित करना चाहते हो उसमें भी एक के खून और परिश्रम से दूसरे सुख का उपभोग करेंगे, इसमें किसी भी समझदार आदमी को तनिक भी सन्देह नहीं है। समाज की कोई अवस्था ऐसी नहीं हो सकती जिसमें सबको एक-सा सुख मिले या सबको एक-सा परिश्रम करना पड़े या एक के परिश्रम से दूसरे लाभ न उठावें। इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं समाज की वर्तमान अन्धेर अवस्था का समर्थन करना चाहता हूँ या तुमसे यह कहना चाहता हूँ कि तुम भी दूसरों से मनमाना लाभ उठाओ। नहीं, जितना सामंजस्य अपने जीवन में हम ला सकते हैं उतना तो हम लाने का बराबर प्रयत्न करें, पर दूसरों को समझाने या दूसरों पर ज़बर्दस्ती करने में ही उसकी सार्थकता न मान लें।"

नरेन्द्र तब भी चुप बैठा रहा।

इस बार सुरेश ज़ोर से हँस पड़ा और कहने लगा—"शायद तुम सोचते हो कि तुमने भी तो यह सब लीला से कहा था। क्यों न?"

अब नरेन्द्र भी हँसा और बोला—"यह तो ठीक कहते हो, भाई।"

सुरेश—"और बेठीक क्या कहता हूँ?"

नरेन्द्र—"और सब बेठीक कहते हो। मैं गृहस्थ नहीं बन सकता।"

सुरेश—"बिना लीला के?"

नरेन्द्र—"हाँ!"

सुरेश—"और बिना मेरे घर चले यहीं से आश्रम जाना चाहते हो?"

नरेन्द्र—"और क्या?"

सुरेश—"तो तार देकर मुझे यहाँ क्यों बुलाया था?"

नरेन्द्र—"इतनी बातें की हैं और अभी और बातें करनी हैं। क्या यह कम है?"

सुरेश—"जब आश्रम ही जाना है तब जैसे इस समय, वैसे ही दो-चार दिन पीछे। कहना मान जाओ। मेरे साथ घर चलो। नहीं तो मुझे और मेरे घर के लोगों को भी बहुत ही बुरा लगेगा। क्या तुम स्वयं इतना नहीं समझते?"

नरेन्द्र—"समझता हूँ, पर विवश हूँ। मेरी ओर से सबसे क्षमा माँग लेना।"

सुरेश—"पहले मैं तो क्षमा कर सकूँ—नहीं, मैं अपने आपको ही इसके लिए कभी क्षमा करने की शक्ति न पा सकूंगा। तुम्हें मेरे यहाँ चलना ही पड़ेगा।"

नरेन्द्र—"नहीं, भाई। यह ज़िद न करो। अब मेरी ट्रेन आने ही वाली है। मुझे तुमसे कई ज़रूरी बातें करनी हैं। अब मैं कभी घर लौट कर न आऊँगा। मैंने यह प्रबन्ध किया है कि वह सब जायदाद जो मेरी कही जाती है, तुम जिस तरह ठीक समझो उन ग़रीब लोगों को लौटा दो जिनकी वह सचमुच है।"

सुरेश—"सात जन्मों में भी मैं ऐसी शक्ति नहीं पा सकता। तुम ऐसी असम्भव एवं पागलपन की बात क्यों करते हो? तुम्हीं यह काम कर लो और तब मैं सहर्ष कह दूंगा कि जहाँ तुम्हारा मन चाहे, चले जाओ। भला बताओ तो इस जायदाद के या किसी भी जायदाद के ऐसे लोगों का पता कैसे लगाया जा सकता है जिनके खून से वह खड़ी की राई हो और जो तुम्हारे सिद्धान्त के अनुसार उसके वास्तविक हक़दार हैं।"

नरेन्द्र—"उनके भाई-बन्दों को इस समय के दीन-हीन-समूह में से ही कुछ को दे देना।"

सुरेश—"किसको? एक को देना क्या दूसरे पर अन्याय करना न होगा? इस जायदाद को बनाये रखना और उसकी आमदनी से किसी का हित करना भी तुम्हारे सिद्धान्त के विरुद्ध होगा, क्योंकि वह तो एक ओर से अधिक खून चूसकर कुछ लोगों में बुरी तरह बाँटना हो सकता है। इसलिए मैं साफ़ साफ़ कहे देता हूँ कि मैं आपका यह भार किसी तरह नहीं ले सकता, इसे आप ही ठीक कर जाइए। कुछ न हो तो किसी आश्रम को ही दे जाइए।"

नरेन्द्र—"नहीं, इसे ग़रीबों में ही बाँट देना चाहिए। वे इससे कुछ औद्योगिक कार्य कर अपने पैरों पर खड़े हों।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरेश—"इससे तो वे लोग आगे चल कर धनवान् बन जायँगे और दूसरों से अनुचित लाभ उठाने लगेंगे।"

नरेन्द्र—"वाह! क्या ऐसे आदमी हैं ही नहीं जो ऐसा न करें?"

सुरेश—"खूब! तब तो व्यक्तियों की ही विजय हुई। ऐसे आदमी तुम हो और लीला न सही, कोई न कोई स्त्री भी ऐसी ही मिल जायगी। यही तुम्हारा कर्म-क्षेत्र है। तब तुम उससे भागते क्यों हो?"

नरेन्द्र—"मेरा कर्मक्षेत्र यह नहीं है। तुम्हें यह करना होगा। मैं सब प्रबन्ध कर आया हूँ।"

उसी समय ट्रेन आकर खड़ी हो गई।

नरेन्द्र अपने सामने के ही डिब्बे में घुस गया। और तब ठिठुक कर खड़ा रह गया। उसने देखा कि उस डिब्बे में लीला और उसके गुरुदेव दोनों बैठे हुए हैं!

सुरेश ने भी यह देखा। उसने प्रणाम करके पूछा—"आप लोग कहाँ जा रहे हैं?"

गुरुदेव उठ खड़े हुए थे। बोले—"अब तो देखता हूँ, यहीं उतरने की जरूरत है। नरेन्द्र, तुमको भी यहीं रुकना पड़ेगा।"

नरेन्द्र ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उनके साथ साथ नीचे उतर आया। सब लोग प्लेटफ़ार्म पर खड़े हो गये। तब सुरेश ने कहा—"अब आप सब लोग घर पर चलिए। वहीं सब बातचीत होगी"।

गुरुदेव ने कहा—"हाँ, यही तो ठीक है।"

नरेन्द्र चुप रहा।

किन्तु स्टेशन से बाहर आकर गुरुदेव ने कहा—"मैं तो समझता हूँ कि यह ज़्यादा अच्छा होगा कि हम लोग यहीं कहीं धर्मशाला में या स्टेशन के 'वेटिंग-रूम' में ही ठहर जायँ और जो कुछ मुझे कहना-सुनना है वहीं कह-सुना लूं, क्योंकि हमें जल्दी से जल्दी लौट जाने की जरूरत है।"

इस बार नरेन्द्र ने कहा—"चलिए, वेटिंग-रूम में ही चलें।"

और वे सब वेटिंग-रूम में जाकर बैठ गये।

(४)

गुरुदेव ने कहा—"नरेन्द्र, हम दोनों तुम्हारे ही पास जा रहे थे। लीला को एक तार से यह मालूम हुआ कि तुम फिर आश्रम चले गये। उसे यह ठीक नहीं मालूम हुआ, क्योंकि तुम्हारा मन आश्रम के अनुकूल नहीं है। वेशक यह संयोग की बात थी कि जब तुम आश्रम से लौटे तब लीला तुम्हारे घर में रह कर कुछ काम मेरे आश्रम की सहायता के लिए, मेरे आदेशानुसार कर रही थी; मुझे या उसे यह पता न था कि तुम लौट कर घर आ रहे हो। पर इससे यह समझ लेना या किसी अदृश्य कार्य-शक्ति का नाम लेकर यह समझाने का प्रयत्न करना कि लीला को भी आश्रम-जीवन से विदा ले लेनी चाहिए, कैसे ठीक कहा जा सकता है? मैं यही कहने आया हूँ कि तुम अपना दूसरा विवाह कर लो, और लीला आश्रम में ही रहेगी।"

नरेन्द्र—"आप लोगों के इस कष्ट के लिए धन्यवाद। सच तो यह है कि इसके लिए आपके आने की जरूरत ही न रह गई थी।"

गुरुदेव—"मैं यही जानने आया था कि लीला में तुमको ऐसी क्या विशेषता दिखाई देती है जिससे तुम उसे अपने गृहस्थ-जीवन की संगिनी बनाना चाहते हो। मैं समझता हूँ, उसमें ऐसी कोई विशेषता नहीं, उसका जीवन तो आश्रम के ही अनुकूल ढल गया है।"

नरेन्द्र—"आपको उसमें आश्रम-जीवन के अनुकूल और गृहस्थ-जीवन के प्रतिकूल कौन-सी विशेषतायें दिखलाई देती हैं?"

गुरुदेव—"सभी।"

नरेन्द्र—"और मुझे उसकी सब विशेषतायें गृहस्थ-जीवन के अनुकूल मालूम होती हैं।"

गुरुदेव—"अब भी?"

नरेन्द्र—"हाँ, अब भी।"

लीला उठ खड़ी हुई। बोली—"मैं दूसरे कमरे में जा रही हूँ। मुझे आप लोग बातचीत समाप्त करके बुला लीजिएगा।"

और वह चली गई।

तब गुरुदेव ने कहा—"नरेन्द्र और सुरेश, तुम भी सुनो—मैं फिर कहता हूँ कि लीला को मैंने कई वर्षों तक सुन्दर ढाँचे में अपने आपको ढालते देखा है जिसकी मैं कल्पना किया करता था। मैं यह भी कहता हूँ कि इसमें कुछ अंश मेरा भी है। अब मैं दूसरे व्यक्ति को इसी तरह का बना हुए न तो देख सकता हूँ, न स्वयं बना सकता हूँ। मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लीला को मुझसे छीनना वैसा ही समझो, जैसा अन्य कोई बड़ा से बड़ा पाप।"

नरेन्द्र की भौंहें टेढ़ी हो गईं, पर सुरेश हँस पड़ा। सुरेश ने ही कहा—"हम लोग तो आपकी तरह पाप-पुण्य की मीमांसा समझ नहीं सकते। मैंने तो नरेन्द्र से यही कहा कि लीला से सब बातों में कहीं बढ़ी-चढ़ी स्त्री इनकी सहधर्मिणी बनना अपना सौभाग्य समझ सकती है। नरेन्द्र को अजीब मोह है। और क्या कहूँ? अगर मैं उसकी अवस्था में होता—"

नरेन्द्र ने कहा—"जो तुम करते वही मैं करने जा रहा हूँ। मैं साफ़ साफ़ कह रहा हूँ, गुरुदेव जी, आप लीला को जिंदा ले जाइए। आपके इच्छानुसार मैं दूसरा विवाह कर लूंगा।"

यह कहते कहते न जाने क्यों वह खड़ा हो गया और तब तुरन्त गिर पड़ा। सुरेश ने उसको सँभाला और उसे यह समझने में देर न लगी कि नरेन्द्र बेहोश हो गया है।

गुरुदेव ने कहा—"कैसा बेकाम आदमी! यह आश्रम में इतने समय तक रहा है। लीला को देखिए और इसको देखिए।"

यह कहकर गुरुदेव लीला के कमरे में आगये और वहाँ देखा कि लीला बेहोश पड़ी हुई है।

तब बिना एक क्षण का भी विलम्ब किये 'मैं जाता हूँ' कहते हुए वे 'वेटिंग-रूम' से बाहर निकल आये।

सुरेश ने चिल्लाकर कहा—"गुरुदेव, आप कहाँ जाते हैं? नरेन्द्र को होश में तो लाइए।"

दूर से ही आवाज़ आई—"मैं अपने आश्रम को जाऊँगा, मेरे जाते ही ये दोनों होश में आ जायँगे। लीला भी बेहोश है। पर नरेन्द्र से कह देना, लीला हमेशा उसके पास न रह सकेगी।"

गुरुदेव तुरन्त ही टिकट लेकर एक ट्रेन में सवार हो गये।

गीत

लेखक, श्रीयुत श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री

विश्व तुम्हारी माया।
ज्योतिर्मय! यह अन्धकार छाया न, तुम्हारी छाया॥

जलता नभ रवि की पी हाला,
उगल रहे तरु पल्लव-ज्वाला;
युग के सजग ताप में निखरी, कनक तुम्हारी काया।
विश्व तुम्हारी माया॥

तोड़-तोड़ कर प्रस्तर के स्तर,
झरता जीवन-निर्झर झर-झर,
मरण, यहाँ पाने को जीवन, शरण तुम्हारी आया।
विश्व तुम्हारी माया॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे ईसाई भाई

लेखक, पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी

अप्रैल १९३९ की "सरस्वती" में इस लेख का पूर्वार्ध छप चुका है। पाठकों की सुविधा के लिए हम यहाँ उसमें कही गई मूल बातों को दोहरा देना चाहते हैं। जिससे इस लेख की बातें आसानी से समझ में आ जायँ। इस सूबे में ईसाइयों की कुल संख्या, १९३१ की मनुष्य-गणना के अनुसार २ लाख ७ हज़ार है। इन में से २ लाख ५ हज़ार सूबे के ४८ ज़िलों के और शेष सूबे की तीन देशी रियासतों के निवासी थे। पिछले लेख में सिर्फ़ उन्हीं ईसाइयों का उल्लेख है जो सूबे की तीन देशी रियासतों की प्रजा नहीं हैं। हमारा सम्बन्ध सिर्फ़ उन ईसाई भाइयों से है जो युक्तप्रान्त की सरकार के अधीनस्थ भू-भाग में बसे हुए हैं। उन २ लाख ५ हज़ार ईसाइयों में से २४ हज़ार अभारतीय, ११ हज़ार ऐंग्लो इन्डियन और १ लाख ८० हज़ार देशी ईसाई हैं। अभारतीय ईसाई और ऐंग्लो इन्डियन प्रायः नगरनिवासी हैं। १ लाख ८० हज़ार देशी ईसाइयों में से ३५ हज़ार तो शहरों में रहते हैं और बाक़ी १ लाख २५ हज़ार देहातों में बसे हुए हैं। सूबे के अन्य सम्प्रदायवालों की तुलना में ईसाइयों में पढ़े-लिखों की संख्या सबसे ज़्यादा है। १९३१ में सूबे भर में जहाँ हज़ार मर्दों में कुल ९१ साक्षर थे, वहाँ ईसाइयों में पढ़े-लिखे मर्दों की संख्या २८२ थी। इसी प्रकार सूबे में हज़ार पीछे ९ स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी थीं, वहाँ ईसाइयों में हज़ार औरतों में से २०२ साक्षर थीं।

ऊपर जो कुछ हमने संक्षेप में कहा है उससे दोनों बातें स्पष्ट हो जाती हैं। पहली बात यह है कि हमारे सूबे में ईसाई भाइयों की संख्या बहुत थोड़ी है। सूबे की कुल आबादी जहाँ ४ करोड़ ८४ लाख है, वहाँ ईसाइयों की लगभग २ लाख है, अर्थात् सूबे भर में लाख आदमियों में कुल ३५० आदमी ईसाई-धर्म के अनुयायी हैं--या एक हज़ार आदमियों में से कुल साढ़े तीन आदमी ईसाई-धर्मावलम्बी हैं। इनकी संख्या बहुत थोड़ी है, लेकिन साक्षरता की दृष्टि से इस समाज का महत्त्व बहुत अधिक है। साक्षर होने के कारण हमारे ईसाई भाइयों को सूबे के सब सार्वजनिक क्षेत्रों में अग्रसर होना चाहिए था। कम से कम आँकड़ों को देखकर पाठक ऐसा ही अनुमान करने के लिए बाध्य भी हो जायँगे। परन्तु क्या वास्तव में ऐसा अनुमान करना उचित है? हिन्दुस्तान में पारसियों की संख्या एक लाख से अधिक नहीं है। इतने थोड़े होते हुए भी क्या कला में, क्या व्यापार में, क्या सार्वजनिक जीवन में और क्या समाज-सेवा में पारसी हिन्दुस्तान की अन्य जातियों को बहुत पीछे छोड़ गये हैं। फिर क्या कारण है कि ३५ करोड़ में जहाँ १ लाख पारसियों ने अपनी श्रेष्ठता का सिक्का जमा लिया है, वहाँ ४ करोड़ ८५ लाख युक्तप्रान्तवालों पर पारसियों से दूनी संख्या में होने पर भी हमारे ईसाई भाइयों ने कोई विशेष प्रभाव उत्पन्न करने में सफलता नहीं प्राप्त कर पाई? बुद्धि में, सांस्कृतिक संस्कारों में, शारीरिक बल और पुष्टता में हमारे ईसाई भाइयों में और सूबे के अन्य सम्प्रदायवालों में कुछ भी अन्तर नहीं। जातिगत बन्धनों से मुक्त होने के कारण वे प्रत्येक जाति और सम्प्रदाय से नवीन रक्त के आकर्षण करने और उसके द्वारा बलवर्धन में समर्थ हैं। इस सूबे में सुविधा होते हुए भी यदि हमारे देशी ईसाई भाई पिछड़े हुए हैं तो इसकी ज़िम्मेदारी उन्हीं के ऊपर होनी चाहिए। जहाँ तक अभारतीय ईसाइयों की बात है, वहाँ तक ऊपर का इलजाम उनपर लागू नहीं होता। वे विजेता जाति के अंश हैं। शासन और व्यापार के क्षेत्रों में नेतृत्व के लिए ही उनमें से अधिकांश अपने देश को छोड़कर यहाँ आते हैं। अभारतीय ईसाइयों में से लगभग १३ हज़ार ऊँचे सरकारी पदों पर या तो नियुक्त हैं या फ़ौजी हैसियत से। ऐंग्लो इंडियन ईसाई अभारतीय ईसाइयों से विभिन्न हैं। इनमें से ज़्यादातर लोग रेलवे, पोस्टल और टेलीग्राफ़ विभागों में अच्छे वेतन पर मुलाज़िम हैं। इनकी स्त्रियाँ स्कूलों, अस्पतालों और दफ़्तरों में नौकरियाँ करती हैं। औसत हिन्दुस्तानी के मुक़ाबिले में ऐंग्लो इंडियनों की आमदनी कई गुना अधिक है, लेकिन इनका रहन-सहन विलायती है, इनका खर्च भी विलायती पैमाने पर ही होता है। अभारतीय ईसाइयों की तुलना में इनकी आर्थिक दशा हीन है, हिन्दुस्तानी ईसाइयों से यदि ऐंग्लो इंडियन रहें तो अपनी मौजूदा आमदनी में खुशहाल हो सकते हैं। लेकिन अँगरेज़ों के मुक़ाबिले में आमदनी तो कम है, पर रहन-सहन का ढंग उन्हीं से मिलता-जुलता है, इसी कारण इन्हें आर्थिक कठिनाइयों में दिन गुज़ारना पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन जब हम अपने ईसाई भाइयों का ज़िक्र करते हैं तब हमारा ध्यान विशेष रूप से उन ईसाइयों के प्रति केन्द्रित होता है जो हमारे सजातीय हैं और जिनकी संख्या १ लाख ८० हजार है। इनमें से अधिकांश की आर्थिक दशा उतनी खराब है जितनी औसत हिन्दुस्तानियों की है। अमली हालत के लिहाज़ से इनमें और सूबे के अन्य सम्प्रदायवालों में कुछ थोड़ा-बहुत अन्तर है और जो कुछ अन्तर है वह यह है कि इनकी हालत अन्य सम्प्रदायवालों से और भी गिरी हुई है। साथ ही हमें यह भी न भूलना चाहिए कि भारतीय ईसाइयों में इन लोगों की संख्या बहुत काफ़ी है जो ईसाई होने से पहले हिन्दू-समाज के पददलित सदस्य थे। ऐसी दशा में केवल धर्म-परिवर्तन करने से यह आशा करना कि उनकी आर्थिक दशा में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाय, यह निर्मूल है। हिन्दू चमार और ईसाई चमार की आर्थिक दशा बहुत कुछ मिलती-जुलती होती है। ऐसी दशा में साक्षरता में विशेष प्रगति होने पर भी यदि हमारे ईसाई भाइयों ने कोई विशेष उन्नति न कर पाई तो उसका कारण स्पष्ट है। जिस समाज के वे अंग हैं उसकी जो आर्थिक अवस्था है वही अवस्था हमारे इन ईसाई भाइयों की भी है लेकिन इस सबके होते हुए भी यदि ऐतिहासिक कारण न होता तो बहुत सम्भव था कि हमारे ईसाइयों का जीवन सारे क्षेत्रों में सब के देखते हुए बहुत आगे निकल जाता।

अभी हमने जिन ऐतिहासिक कारणों की ओर संकेत किया है, आइए उनका सरसरी तौर से कुछ दिग्दर्शन कर लें। जिन विदेशी पादरियों के प्रयत्न से ईसाई-धर्म का प्रचार यहाँ हुआ और यहाँ के हिन्दुओं या मुसलमानों ने अपने मज़हब को छोड़कर ईसाई-धर्म को स्वीकार किया, वे विदेशी थे। उन्हीं के जातिवालों की इस देश में हुकूमत थी; जिन हज़रत ईसा के अनुयायी थे और इस नीति से जहाँ दीनता का पाठ हमको पढ़ाते थे वहाँ वे यह भी नहीं समझते थे कि उनकी बिरादरी के लोग इस देश में हुकूमत कर रहे हैं। जातिगत प्रभुता का उनमें मद था और इस कारण में वे यह नहीं सहन कर सकते थे कि उनकी शिष्य-मण्डली राजनैतिक क्षेत्रों में अपने प्रभुओं के मुक़ाबिले में बराबरी का दावा करने की हिम्मत करे। जो हिन्दुस्तानी ईसाई हुए उन्हें सिर्फ़ न अपना पुराना धर्म ही छोड़ना पड़ा था, बल्कि भारतीय संस्कृति और देशी रहन-सहन को भी तिलाञ्जलि देनी पड़ी। अँगरेज़ या अमेरिकन पादरियों की जीवनचर्या का अन्धानुकरण करना हमारे ईसाई भाइयों ने अपने धर्म-परिवर्तन का एक अंग समझा और उसे मान लिया। हिन्दुस्तानी होते हुए भी वे ग़ैर बन गये। कोई वजह न थी कि जब रामलाल ईसाई हो जाय तो वह अपने आपको रामलाल के बजाय हेनरीविलियम कहने लगे और न इसकी ही कोई विशेष आवश्यकता थी कि थाली-कटोरे को छोड़कर वह छुरी-काँची अपना लें। सारी-लँहगे को तर्ककर उन्होंने अँगरेज़ी ढङ्ग की लिबास को अपना लिया। ईसाइयों के घर में पगड़ी और टोपी के स्थान को टोप ने हड़प कर लिया।

पारसियों ने अपनी संस्कृति-विभूति को नहीं छोड़ा। उनकी आत्मा बेदाग़, अक्षुण्ण और अखण्डित बनी रही। लेकिन जो हिन्दुस्तानी ईसाई हुए उन्हें हिन्दुस्तानियत से नफ़रत सी पैदा हो गई और हिन्दुस्तानियत के निशान को मिटाने के लिए उन्होंने हर तरह से कोशिश की। अपनी जातीय संस्कृति को वे खो बैठे और हिन्दुस्तानी ईसाई रहने के बजाय वे नक़ली विदेशी बनने में अपना गौरव समझने लगे। यही कारण है कि शिक्षित होते हुए भी हमारे ईसाई भाई किसी दिशा में विशेष उन्नति करने में समर्थ न हो पाये। वे हज़रत मसीह की नसीहत को भूल गये कि चाहे दुनिया की सारी दौलत हमें मिल जाय, लेकिन यदि हमने आत्मा को खो दिया तो हम कंगाल ही बने रहेंगे। हमारे ईसाई भाइयों ने अपने सांस्कृतिक आत्मा को हर तरह से नष्ट-भ्रष्ट करने की चेष्टा की जिसका परिणाम यह हुआ कि उनकी नैसर्गिक बाढ़, शिक्षा का आंशातीत प्रचार होते हुए भी, मारी गई और जब तक हमारे ईसाई भाई इस ग़लत रास्ते से लौट न पड़ेंगे और हिन्दुस्तानियत यानी हिन्दुस्तानी संस्कृति को अपनी बपौती मानकर अपने आध्यात्मिक सुधार में तत्पर न होंगे तब तक इस सम्प्रदाय विशिष्ट का भविष्य उतना ही निराशा-जनक बना रहेगा जितना निराशा-जनक इनका भूत-वर्तमान है। हम हर्ष के साथ इस बात को स्वीकार करते हैं कि आज ईसाई-जाति में अब कुछ ऐसे नेता उत्पन्न होने लगे हैं जिनमें राष्ट्रीय गौरव और जातीय सम्मान के भाव विद्यमान हैं। ऐसे स्वाभिमानी और स्वदेशाभिमानी ईसाइयों की देखा-देखी ईसाई-समाज में जल्द से जल्द क्यों न जागृति फैल जाय, और क्यों न वह दूसरे की नक़ल करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बजाय अपनी भारतीय विशिष्टता के विकास, परिवर्धन और परिष्करण करने में सचेष्ट हो उठें। पराङ्मुखता, परमुखापेक्षिता, पराधीनता——इन तीन पराओं ने ईसाई-समुदाय को अवनति के गर्त में क़ैदी बना रक्खा है। पराओं को छोड़ने से ही अपरिमित विकास और प्रगति के अधिकारी हमारे ईसाई भाई हो सकते हैं। विदेशी पादरियों और मिशनों का अन्धाश्रय उनके लिए विष हो गया है। जिस अंश में ईसाई-समुदाय अपने आपको इस प्रकार की पराधीनता अथवा निःसहायता से मुक्त करने में सफल होगा, उसी अंश में ईसाई-समुदाय अपनी शिक्षा के अनुरूप सूबे के सामाजिक जीवन में दायित्वपूर्ण भाग ले सकेगा।

विदेशी मिशनों ने जहाँ हमारा उपकार किया और कई प्रकार की सहायता पहुँचाई——इसके लिए विदेशों की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है——वहाँ उन्होंने अपने एतद्देशी अनुयायियों को अपाहिज बनाने में कोई कोर-कसर न छोड़ी। जिन्हें स्वावलम्बी होना था वे दूसरों के मौहताज बन गये। अपने जातीय पुरुषत्व को उन्होंने गँवा दिया। ईसाई होना कोई बुरी बात नहीं है। हममें से हर एक को यह जातीय अधिकार है कि वह जिस मत को ठीक समझे उसे ग्रहण कर ले. लेकिन साथ ही साथ ईसाई होने का यह अर्थ न होना चाहिए कि धर्म-परिवर्तन के साथ हम अपने पुरुषत्व को भी त्याग दें। यही कारण है कि सार्वजनिक जीवन के नेतृत्व को अपने हाथ में लेने के बजाय ईसाई छोटी छोटी नौकरियों के लिए विदेशी पादरियों के वर्षों तक मोहताज बने रहते हैं। इस मुल्क में पादरियों ने हमारे ईसाई भाइयों को न तो स्वाधीनचेता होने दिया और न उन्हें अपने पैरों के बल ही खड़ा होने दिया। सबको बनाने की तो नसीहत दी, लेकिन अपने शिष्यों को इसका खतरा न बताया कि नक्क़ाल हो जाने पर वे अपनी रूहानी विरासत को मटियामेट कर देंगे।

ऊपर जो कुछ हमने कहा है, उन हिन्दुस्तानियों पर भी एक-सा लागू होता है जिन्होंने पश्चिम के रहन-सहन की नक़ल करना शुरू कर दी है। इसमें ईसाई और ग़ैर-ईसाई दोनों तरह के हिन्दुस्तानी शामिल हैं। किसी मुल्क की तहजीब या सभ्यता उसके आध्यात्मिक विकास का बाहरी परिणाम है। जैसे चमड़े का रंग नहीं बदल सकता, वैसे ही कोई मुल्क दूसरे मुल्क की संस्कृति और सभ्यता की हू-बहू नक़ल भी नहीं कर सकता है। चमड़े का रंग जैसे भौतिक परिस्थितियों का परिणाम है वैसे ही सभ्यता और संस्कृति के रंग भी भौतिक और आध्यात्मिक अनुभवों की पारस्परिक प्रतिक्रिया पर निर्भर हैं। माइकेल मधुसूदन दत्त या तोरुदत्त दोनों ईसाई थे, दोनों ने विदेशी कवियों की नक़ल करने की चेष्टा की लेकिन यदि उनके नाम अमर हैं तो केवल इसलिए कि उन्होंने थोड़े ही समय में यह अनुभव किया कि यदि उन्हें सफल कवि बनना है तो उन्हें अपने जातीय जीवन से उत्तेजना लेना चाहिए। यह सिखावन श्रीमती सरोजनी नायडू ने सर एडमंड गास को दी थी। रवीन्द्रनाथ टैगोर 'टैगोर' कभी नहीं हो सकते थे और न इक़बाल 'इक़बाल' ही होते, अगर इन दोनों महान् कवियों ने विदेशी कवियों के प्रतिबिम्ब को अपनी प्रतिच्छाया बनाने में ही अपना सौभाग्य समझा होता। रवीन्द्र और इक़बाल के नाम समाज में इसी लिए ज़िन्दा हैं कि इन्होंने अपनी आत्मा के साथ विश्वासघात न करके और अपनी जातीय संस्कृति को न ठुकरा कर हिन्दुस्तानी धारणाओं और भावनाओं को अपनी कविता में व्यक्त करने की सफल चेष्टा की। आत्मगौरव और जात्यभिमान अपढ़ को भी पथभ्रष्ट पढ़े-लिखे से ऊँचा उठा सकता है। छोटा बच्चा भी बैसाखी के ग़ुलाम को दौड़ में आसानी से हरा देगा।

अब आइए उन माँगों पर एक नज़र डालें जिनका कि हमारे ईसाई भाई किया करते हैं। अभारतीय ईसाइयों के लिए सरकारी नौकरियों में स्थान देने का कोई सवाल नहीं है, क्योंकि मौजूदा विधान में उन्हें जितना भी स्थान आज दिन मिल रहा है वह इस देश में उनकी संख्या को देखते हुए अत्यधिक है। ऐंग्लो-इण्डियनों को भी गवर्नमेण्ट आफ़ इण्डिया ने अपने १९३४ के निर्णय के अनुसार उनकी आबादी के हिसाब से कहीं ज़्यादा जगह दे रक्खी है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं——और न हमारी यह मंशा है——कि हम सूबे की नौकरियों में ऐंग्लो इण्डियनों को स्थान न मिलने गवर्नमेंट आफ़ इंडिया के मन्तव्य की ओर इशारा करते मेरा मतलब इतना ही है कि उनके लिए कोई विशेष करने की आवश्यकता नहीं है। हाँ हमारी यह इच्छा है कि हमारे ईसाई भाइयों को उनकी योग्यता अनुसार नौकरियों में भर्ती होने की पूर्ण सुविधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए । मुझे यह देख कर कुछ भी ग़म न होगा कि अगर सारी नौकरियों पर हमारे ईसाई भाई क़ब्ज़ा करलें । उनमें जितनी शिक्षा फैली हुई है उसके कारण यदि वे ऐसा करने में समर्थ हों तो न तो अचम्भे की बात होगी और न दुःखप्रद ही । लेकिन कुछ ईसाई नेता मुसलमान नेताओं की देखा-देखी ईसाइयों के लिए भी विशेष अधिकार और संरक्षणों की आवाज़ उठाया करते हैं । उनकी माँग है कि ईसाइयों के लिए इस सूबे में कम से कम १० फ़ी सदी जगहें सुरक्षित कर दी जायँ । इसका अर्थ यह है कि यद्यपि आबादी में वे ३०१ हैं तथापि ४०० सरकारी पदों में से उनके लिए ३० जगहें सुरक्षित कर दी जायँ । सूबे में अनुमान से लगभग १ लाख सरकारी मुलाज़िम हैं, जिनका दसवाँ हिस्सा अगर ईसाई भाइयों के लिए सुरक्षित कर दिया जाय तो अर्थ यह होगा कि जिस सूबे की आबादी १ लाख ८० हज़ार है उसमें १० हज़ार सरकारी मुलाज़िम होंगे । जहाँ ४ करोड़ ८५ लाख आबादी के लिए कुल एक हज़ार सरकारी नौकरियाँ हैं, वहाँ केवल १ लाख ८० हज़ार के लिए १० हज़ार सरकारी नौकरियों को सुरक्षित कर देने की माँग को पेश करना साम्प्रदायिक स्वार्थपरता और संकीर्णता की डुग्गी पीटना है । न तो गवर्नमेंट ने, न बंगाल और पंजाब की सरकारों ने, ईसाइयों के इस तरह के दावों को ठीक समझा और न बंगाल और पंजाब के किसी ईसाई ही ने वहाँ इस तरह की अत्युक्तिपूर्ण माँग पेश करना अनुचित समझा । इसलिए हमें हैरत होती है जब हम युक्त प्रान्त के कुछ ईसाई नेताओं को इस तरह की अनुचित माँग पेश करते देखते हैं । इस माँग का एक ही अर्थ हो सकता है —साम्प्रदायिक मन-मोटाव का प्रसाद । इसकी सार्थकता केवल इस दृष्टि से स्वीकार की जा सकती है कि जो लोग इस माँग को पेश करना चाहते हैं वे इसको कूटनीतियती से नहीं पेश करना चाहते और न यह समझकर पेश करना चाहते हैं कि आपसी मन-मोटाव खराब है, बल्कि इस उद्देश्य से यह पेश की जा रही है कि ईसाई-समाज कल्पित शिकायतों को लेकर अपने को बे-इंसाफ़ी का शिकार समझने लगे । और इसी भुलावे में पड़ कर अपने को पराधीन समझने लगा है । ईसाइयों के काल्पनिक अत्याचारों की गढ़न्त ईसाई-समाज में आज दिन राष्ट्रीय पराधीनता के मसले के ऊपर उदासीनता फैला रही है ।

उनकी यह धारणा हो गई है कि संयुक्त प्रान्त के बहुसंख्यक सम्प्रदायों के हाथ में जो शक्ति है उसके कारण उनके जायज़ हक़ों की हत्या की जाती है और अगर मुल्क एकदम से आज़ाद हो जायगा तो, वे भयभीत हैं, उनके सारे अधिकार पैरों के नीचे कुचल डाले जायँगे । कुछ दिन हुए चन्द ईसाई दोस्तों से मेरी इस मसले पर बातचीत हुई । उनकी बात सुनकर मैं चकित रह गया । उनकी नौकरियों के सम्बन्ध में जो माँग थी उसको सुनकर मुझे बेहद दुःख हुआ और दुःख यह अनुभव करके हुआ कि वे माँग तो पेश करते हैं, लेकिन वास्तविक परिस्थिति का परिचय प्राप्त करने के लिए उन्होंने कोई कोशिश नहीं की । अपने सम्प्रदाय की हिमायत करना उन्हें मंज़ूर था, उनके नाम पर दावा पेश करने की उन्हें उत्सुकता थी, लेकिन असली बात जानने की न तो चिन्ता थी, और न उन्हें उचित मालूम ही होता है । उदाहरण के लिए उनकी एक माँग को ले लीजिए । मुझसे कहा गया, जिन विभाग-विशेषों में ईसाई महिलाओं की संख्या ६० फ़ी सदी है और यदि इन विभागों में ईसाई महिलाओं की नियुक्ति एकदम कम कर दी जाय तो ईसाई-समाज का आर्थिक जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा । मिसाल के तौर पर 'वीमेन-मेडिकल सर्विस' का ज़िक्र किया गया । इसमें कुल मिला कर १०२ महिलायें हैं, जो सिविल सर्जन, असिस्टेंट सिविल सर्जन और सब असिस्टेंट सिविल सर्जन के पदों पर नियुक्त हैं । इनमें से ६० फ़ी सदी महिलायें देशी ईसाइनें हैं । इन १०२ स्थानों के लिए ४ फ़ी सदी प्रति वर्ष से अधिक भर्ती नहीं होती । चार में से एक ईसाई महिला ली जाय या न ली जाय तो अनुचित न होगा । पर न लेने से ईसाई-समाज के आर्थिक जीवन पर इसके कारण कैसा बुरा असर पड़ सकता है, यह उनकी समझ में नहीं आता ।

जहाँ तक प्रान्तीय सरकार का सम्बन्ध है, वहाँ तक मैं दावे के साथ यह कहने के लिए तैयार हूँ कि मेरी यह नीति नहीं है कि अल्प-संख्यक सम्प्रदाय के साथ सरकारी नौकरियों की नियुक्ति के मसले में अधिक से अधिक उदारता का व्यवहार किया जाय । श्री गोविन्दवल्लभ पन्त और उनके सहकारी मंत्री इस मामले में एक मत हैं । उनमें से किसी में साम्प्रदायिक संकीर्णता नहीं है । कांग्रेस खुद भी सरकारी नौकरियों के प्रश्न पर अल्प-संख्यकों के न केवल समुचित अधिकार की रक्षा के लिए तत्पर है, बल्कि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदार दृष्टि से इस बात के लिए उत्सुक भी है कि अल्पसंख्यकों के इस मामले में किसी तरह की शिकायत का मौक़ा ही न दिया जाय। लेकिन जहाँ कांग्रेस और कांग्रेस-सरकार इस मामले में अपने दायित्व को समझती है, वहाँ हमारे ईसाई नेताओं का भी यह कर्तव्य है कि वे भी ऐसे दावे न पेश करें जो स्वतः साम्प्रदायिक मन-मोटाव के कारण बन जायँ। उनकी दूसरी माँग है कि म्युनिसिपल या अन्य स्थानीय संस्थाओं में भी उनके प्रतिनिधित्व का परिमाण उसी तरह तय हो जाना चाहिए जिस तरह हमारे मुसलमान भाइयों का तय है। सूबे में एक लाख से अधिक गाँव हैं और देहातों में ईसाइयों की आबादी सिर्फ़ सवा लाख है। जिनमें ५० फ़ी सदी बालिग़ हैं, अर्थात् प्रत्येक दो गाँव में एक बालिग़ ईसाई मिलेगा। इस एक बालिग़ ईसाई के लिए प्रत्येक गाँव की पंचायत में किस प्रमाण में प्रतिनिधित्व किया जाय, इस मसले पर आज तक किसी ईसाई भाई ने प्रकाश डालने की चेष्टा न की और न शायद उन्हें अपनी माँग के इस पहलू का ही पता था। जो आँकड़े पहले लेख में दिये गये हैं उनको अगर पाठक एक बार देखने की कृपा करें तो सूबे के विभिन्न ज़िलों में ईसाइयों के वितरण का उन्हें सही अन्दाज़ लग जायगा। उस वितरण का नक़शा सामने रख कर यदि पाठक विचार करें तो ईसाइयों की स्थानीय संस्थाओं में प्रतिनिधित्व-सम्बन्धी माँग की उपयुक्तता का अन्दाज़ हो जायगा। मैंने अपने इन आँकड़ों को जब कुछ ईसाई दोस्तों के सामने रक्खा और उनसे प्रार्थना की कि वे ख़ुद बतावें कि ऐसी दशा में क्या सम्भव है? लेकिन राष्ट्रीय जीवन के स्वास्थ्य के लिए यह बुरी बात है। हम जहाँ तक सम्भव हो, इस बात की चेष्टा करें कि विधान में कोई ऐसा मौक़ा न पैदा हो जिसके कारण हमारी राष्ट्रीय एकता को धक्का पहुँचे।

चीन, जापान, मिस्र के ईसाई इस तरह की माँग को नहीं पेश करते हैं। फिर क्या कारण है कि इस तरह की आवाज़ सिर्फ़ इसी हिन्दुस्तान में सुनाई देती है? हमारे पद-दलित भाइयों ने भी मुसलमानों की देखा-देखी इस तरह की आवाज़ उठानी शुरू कर दी है। राष्ट्रीयता के व्यापक हितों के लिए इस तरह की माँगें पेश करना अहितकर है। हमारे समाज में जो सम्प्रदाय सबसे अधिक शिक्षित है उसे यह न भूलना चाहिए कि उसकी दूसरों के मुक़ाबले में इस ओर सबसे अधिक ज़िम्मेदारी है। यह कोई दलील नहीं कि अगर कोई दूसरा ग़लती करे तो हमारे लिए भी वह ग़लती जायज़ है और न सिर्फ़ जायज़ ही बल्कि लाज़िमी है। जिसको भगवान् ने जितनी ही अधिक रोशनी दी है उसकी उतनी ही बड़ी ज़िम्मेदारी भी है। उत्तरदायित्व के कर्तव्य को धर्म के क्षणिक स्वार्थ के लिए भुला देना क्षण भर के लिए सुखदाई भले हो, लेकिन समय हमारी भूल को कभी क्षमा नहीं करता। जल्दी या देर में अपने पाप का प्रायश्चित्त हमें करना ही पड़ेगा।

ईसा मसीह के उपदेशों को हमें न भुला देना चाहिए। 'दुनिया की हमें चाहे सारी दौलत मिल जाय, लेकिन अगर हमने आत्मा को खो दिया है तो हम सभी खो चुके हैं।' ईसाई चन्द नौकरियों या चन्द जगहों के फेर में पड़ कर सारे समाज के नेता बनने के अपने अधिकार को छोड़ने के लिए तैयार हैं। हज़रत ईसा मसीह का उपदेश, उनकी शिक्षा-सम्बन्धी प्रवृत्ति, उनका जाति-पाँत के बन्धनों से छुटकारा, ये तीन उनकी निधियाँ हैं, जिनकी बदौलत यदि वे चाहें तो आज सारे समाज का नेतृत्व अपने हाथ में ले लें। उनका यह अधिकार है। इस अधिकार में उनका कोई प्रतिस्पर्धी नहीं, कोई दूसरा दावेदार नहीं। इन उच्च पदों को छोड़कर तुच्छ साम्प्रदायिक बँटवारे के टुकड़ों का मुहताज होना उनके लिए शोभा नहीं देता और न हमारे सूबे और देश के लिए ही हितकर है। मोतियों को ठुकरा कर कौड़ियों के लिए ललचाना पागलपन है। लेकिन मैं ईसाई नहीं हूँ। ईसाई न होते हुए भी मैं ईसाइयों का दोस्त हूँ। उनके साथ मेरी हमदर्दी है, उनके गुणों की मेरी हृदय में छाप है, उनकी उन्नति में सूबे की उन्नति समझता हूँ। इसलिए यद्यपि मैं ईसाई नहीं हूँ और इस नीति से ईसाइयों को कुछ कहने का मुझे अधिकार नहीं है, लेकिन वे भी हिन्दुस्तानी हैं और मैं भी हिन्दुस्तानी हूँ। एक ही मिट्टी से हम दोनों बने हैं और एक ही मिट्टी में हम दोनों खेले हैं। हमारा उनका सम्बन्ध अटूट है। गुलामी हो तो, आज़ादी हो तो हम दोनों को साथ मरना और जीना है। ऐसी दशा में निवेदन करने का तो मुझे अधिकार प्राप्त ही है, सलाह देने का न सही और निवेदन मैं अपने इस विश्वास के आधार पर करता हूँ कि वे मेरी बात मानें या न मानें, लेकिन इसे वे सुनी-अनसुनी न कर दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही कारण है जिसके द्वारा हमारे ईसाई भाई समाज की वृद्धि को रोक देते हैं। उनके मानसिक विकास में इसके कारण ऐसा अड़ंगा लग गया कि वे अब तक बौने बने हैं। उनका बौनापन हमारे जातीय जीवन के लिए खतरनाक है। इसलिए हमारा यह परम कर्तव्य है कि हम ईसाइयों के बीच में जाकर उनसे हेल-मेल बढ़ावें और जातीय जीवन की प्रशस्त धारा में स्वच्छन्द गति से तैरने के लिए उन्हें तैयार करें। वे आजकल एक ऐसी खण्डित और अवरुद्ध धार में पड़ गये हैं, जहाँ का पानी बहता नहीं और न बहने के कारण स्वीकार करना पड़ता है कि जहाँ विदेशी ईसाई और मिशनों ने उनकी आध्यात्मिक वृद्धि की ओर ध्यान नहीं दिया, वहाँ दूसरे सम्प्रदाय के माननेवाले हिन्दुओं ने अपने ईसाई भाइयों के साथ उपेक्षा का बर्ताव कर उनका और अपना, दोनों का नुक़सान किया। ईसाई अगर भटक रहे थे, भूल से या जानबूझ कर उन्होंने उस रास्ते को पकड़ा था, जिधर अन्धकार है, आत्मिक मृत्यु है, सर्वांश में सत्यानाश है, तो हमारा यह धर्म था कि हम उन्हें ऐसी राह पर न चलने देते, लेकिन हमने ऐसा नहीं किया। ईसाई कालेजों में बहुत से हिन्दू और मुसलमान लड़के आज दिन भी तालीम पाते हैं, जैसे वे पहले पाते थे, लेकिन बहुत कम ग़ैर-ईसाई लड़कों ने विद्यार्थी-जीवन के बाद इस बात की आवश्यकता महसूस की है कि वे ईसाई समाज से अपने सम्पर्क को बनाये रहें।

हमें प्रसन्नता है कि इधर थोड़े दिनों से कुछ कांग्रेसवालों का भी ध्यान ईसाई-समाज की ओर आकर्षित होने लगा है। ज्यों-ज्यों यह पारस्परिक सम्बन्ध बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों ईसाई-समाज अपनी कूप-मण्डूकता को छोड़ता जाता है। क्योंकि उनकी शिक्षा और उनका धर्म उन्हें इस बात के लिए विवश करता है कि वे सुनी को अनसुनी न करें और जातीय जीवन के उत्थान में जैसे त्याग और बलिदान की ज़रूरत है, वैसे त्याग और वैसे बलिदान से वे मुंह न मोड़ें।

तम

लेखक, कुँवर हरिश्चन्द्रदेव वर्मा 'चातक' कविरत्न

सन्ध्या का समय समीप जान
सुन्दरियाँ करतो हैं शृँगार;
एकान्त देख आओ प्रियतम!
आओ प्रियतम! उठतीं पुकार।
उनका यह सुन आह्वान मधुर
मैं वायु वेग हो से आया,
ऐसे मैं पहले प्रकट हुआ,
पर यह सब थी भ्रम की माया।

वे निज प्रियतम को बुला रहीं—
मैंने भ्रम से निज को जाना;
पर यह भ्रम था कितना सुन्दर—
क्या यह भी होगा बतलाना?
पर अब तो मैं आही पहुँचा—
आगत का अब सत्कार करो।
कुछ अपनी कहो? सुनो मेरी!
कुछ हिलोमिलो? कुछ प्यार करो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

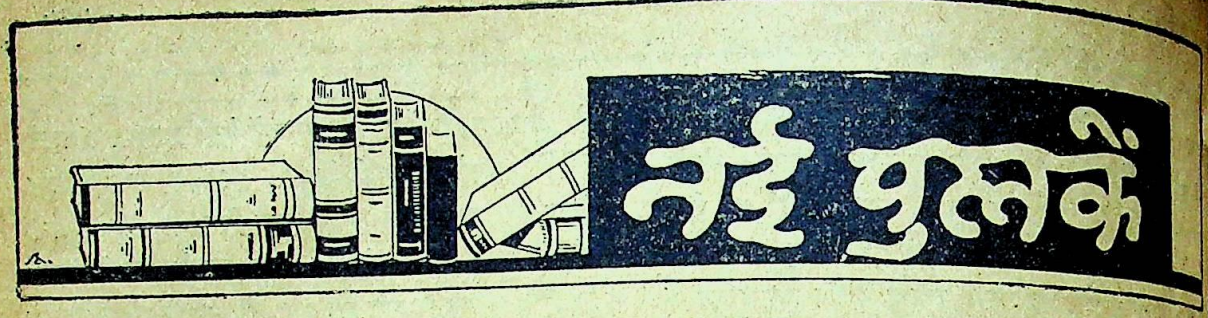

१--**दीपक**--लेखक, श्रीयुत सूर्यनारायण जैन 'प्रेम', प्रकाशक, श्रीयुत देवदत्त शास्त्री, रानीपुर, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या ४०, छपाई-सफ़ाई साधारण और मूल्य ।।) है। पता--सेवा प्रेस, हिवेट रोड, इलाहाबाद।

अपनी प्राणवल्लभा (?) छोटी बहन के वियोग में यह काव्य-स्रोत कवि के हृदय से अचानक उमड़ पड़ा है। बड़ी भाग्यशालिनी होगी वह बहन जिसे उसका भाई विरह से व्याकुल होकर सुना रहा है--

"प्रेम गली थी यह सजनी (?)
अब बस्ती है दीवानों की
प्रणय हेतु यह घूम रहे हैं
देखो कैसे मनमाने ॥
बींध दिया मेरा उर सजनी
नैन बान जब ताने (?)
घायल मन है, घायल तन है,
गति विधि घायल जाने।"
प्रेम पिपासा चातक मैं हूँ
तुम हो स्वाँती बूंद प्रिये।
प्रिया प्रिया (?) की रटन लगाया (?)
प्रणय बूंद के हेतु प्रिये।

कवि जी! इतनी निरंकुशता ठीक नहीं। समाज और संस्कृति भी आख़िर कोई महत्त्व रखती ही हैं। इस तरह दीवाना बनना अच्छा न होगा।

२--**ओ३म् संकीर्त्तन**--लेखक, स्वामी व्रतानन्द जी आचार्य, गुरुकुल, चित्तौरगढ़, प्रकाशक, वैदिक साहित्य-प्रचारिणी सभा, देहली हैं।

यह १६ पृष्ठ का भद्दी छपाई का ट्रैक्ट प्रचारार्थ एक पैसे में बाँटा जा रहा है।

यह संकीर्त्तनवादियों के--"हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे" के वज़न पर "ओम् ओम् माता ओम् माता ओम् जप माता ओम्" रचा गया है। गुरुकुलों में आर्य-सामाजिक विद्वान् शायद यही सब पढ़ा रहे हैं! बलिहारी है! आर्य-समाज सचमुच उन्नति कर रहा है!

३--**महात्मा जी का महाव्रत**--लेखक, श्रीयुत व्योहार राजेन्द्रसिंह, प्रकाशक, महाकोशल हरिजन सेवक-संघ, जबलपुर हैं। पृष्ठ-संख्या १८० है। छपाई गन्दी व काग़ज़ घटिया है। मूल्य नहीं छपा है।

यह पुस्तक महात्मा गांधी के सितम्बर १९३२ के उपवास से संबंध रखती है। उक्त उपवास से संबंध रखनेवाले उनके अन्यान्य वक्तव्यों व लेखों का भी इसमें संकलन कर दिया गया है। सत्य, अहिंसा और अस्पृश्यता-निवारण इन तीन महाव्रतों की, गांधी जी के द्वारा की हुई व्याख्या समझने की इच्छा रखनेवालों के लिए पुस्तक मननीय है।

४--**भारतीय तन्तु-मिल-मज़दूर** (भाग पहला)--लेखक, श्रीयुत का० न० रामन्ना शास्त्री, प्रकाशक, सोशलिस्ट लिटरेचर-पब्लिशिंग-कम्पनी, गोकुलपुरा, आगरा हैं। छपाई साधारण, पृष्ठ-संख्या १२२ और मूल्य ।।) है।

यह पुस्तक लिखी तो कपड़े बुननेवाली मिलों के मज़दूरों के दृष्टि-कोण से गई है, पर इसमें वस्तुतः प्रामाणिक आँकड़ों व खोजपूर्ण विवेचनाओं के साथ भारत में मज़दूर-आन्दोलन का पूरा इतिवृत्त दिया गया है। साथ ही फ़ैक्टरी क़ानून तथा मज़दूरों पर होनेवाले उसके घातक कारवाइयों का भी इसमें प्रामाणिक विवरण दिया गया है। मज़दूर नेताओं के अलावा देश-प्रेमियों के लिए भी पुस्तक पठनीय एवं मननीय है।

५--**हमारे देश में सामाजिक संगठन**--लेखक, डाक्टर अशरफ़, प्रकाशक, श्रीयुत रघुनाथदास पुरुषोत्तमदास अग्रवाल, चूना-कंकड़, मथुरा हैं। छपाई मामूली, पृष्ठ-संख्या २२ और मूल्य -)॥ है।

समाजवादियों की दृष्टि में संसार की समस्त पुरानी व्यवस्थायें आर्थिक आधार पर अवलम्बित हैं। इस पुस्तक में भी इसी दृष्टि-कोण से भारतवर्ष के सामाजिक संगठन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार किया गया है। मार्क्सवाद के प्रचार में यह पुस्तक अच्छी सहायता देगी।

६—**वाणी-निबन्ध-मणिमाला**—लेखक, व प्रकाशक, कर्णवीर पंचभाषा-भाषी, त्रिभाषा-विशेषज्ञ श्रीयुत नागेश्वरराव, संस्कृत-मनीषी, हिन्दीभवन जाण्ट्रपेट, पोस्ट चीराला, ज़िला गंटूर हैं। छपाई भद्दी, काग़ज़ गन्दा और पृष्ठ-संख्या ७६ है। मूल्य छपा नहीं।

इसमें लेखक महोदय के विविध विषयों पर लिखे हुए कुछ निबंध संगृहीत हैं। एक में अष्टम एडवर्ड की प्रशंसा है तो एक में जवाहरलाल की। विद्या-विवेक और 'खादी प्रचार' पर भी एक-एक लेख है। प्रथमा परीक्षा के परीक्षार्थी इस पुस्तक से कुछ लाभ उठा सकते हैं। "संस्कृत-सहायेन हिन्दी भवति, बिना संस्कृत हिन्दी का भाषा वर्तते।"—आदि वाक्य लेखक महोदय के दिमाग़ी दिवालियापन के परिचायक हैं।

७—**मांसाहार-विचार**—लेखक, पंडित ईश्वरलाल जैन, प्रकाशक, श्रीयुत चाँदाराम जैन, श्री आदर्श ग्रन्थमाला, सुलतान सिटी हैं। छपाई साधारण, पृष्ठ-संख्या ९० और मूल्य ⅝) है।

इसमें मांसाहार के विरुद्ध अनेक शास्त्र-वचन, कथायें व प्रमाण संग्रह किये गये हैं। निरामिषता-प्रचार के लिए यह पुस्तक सहायक हो सकती है।

८—**क़ब्ज़ या कोष्ठबद्धता**—लेखक व प्रकाशक, डाक्टर बालेश्वरप्रसादसिंह, प्राकृतिक स्वास्थ्य-गृह, ३०, भाई का बाग, प्रयाग हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या ९० और मूल्य ।) है।

इसमें रोगों की जननी कोष्ठबद्धता को दूर करने के लिए विविध आसनों का प्रयोग समझाया गया है। आवश्यक चित्र दे देने से विषय खूब स्पष्ट हो गया है और पुस्तक की उपादेयता बढ़ गई है। इस विषय के प्रेमियों को इस पुस्तक से लाभ उठाना चाहिए।

९—**वृन्दावन-पथप्रदर्शक**—लेखक, आचार्य अद्वैत-कुमार गोस्वामी, प्रकाशक, श्री गौरांग क्लब, वृन्दावन, हैं। छपाई, साधारण, पृष्ठ-संख्या २६ और मूल्य —)॥ है। इसका विषय नाम से स्पष्ट है। पुस्तक वृन्दावन-आप के यात्रियों के लिए उपयोगी है।

१०—**दृगजल**—लेखक, कुमार सोमेश्वरसिंह बी० ए०, एल-एल० बी०, प्रकाशक, हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग हैं। छपाई-सफ़ाई उत्कृष्ट, पृष्ठ-संख्या ७५ और सजिल्द पुस्तक का मूल्य ।॥) है।

कुमार जी हिन्दी के उदीयमान कवि हैं। प्रस्तुत पुस्तक में आपकी ६० कवितायें संगृहीत हैं, जिनके विषय हैं 'प्रेम' और 'रोमांस'। सुख और ऐश्वर्य की गोद में पले हुए नवयुवक कवि से आशा भी यही की जा सकती थी। कवितायें सब भावपूर्ण व सुन्दर हैं।

११—**त्रिपुरी का इतिहास**—लेखक, श्रीयुत व्योहार राजेन्द्रसिंह और विजयबहादुर श्रीवास्तव, प्रकाशक, मानस-मन्दिर, जबलपुर हैं। पृष्ठ-संख्या २२४ और मूल्य १॥) है।

कांग्रेस का पिछला अधिवेशन त्रिपुरी में हुआ था। फलतः त्रिपुरी का भाग्योदय हो गया। कवियों ने और सुलेखकों ने उसका वर्णन करके अपने को धन्य माना। परन्तु यदि कांग्रेस वहाँ न होती तो? खैर, इस सचित्र पुस्तक में मौर्य-काल से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक का त्रिपुरी के निकटवर्ती राज्यों का प्रामाणिक तथा गवेषणा-पूर्ण इतिहास दिया गया है। ऐतिहासिक सामग्री का संकलन बृहत् तथा पाण्डित्यपूर्ण है! अँगरेज़ी के कई इतिहासों का हवाला दिया गया है। स्थान स्थान पर लेखक महोदयों के परिश्रम का परिचय मिलता है। राजनैतिक, साहित्यिक तथा सामाजिक आदि सभी विषयों की यथास्थान चर्चा की गई है। इसमें कलचुरि-सम्राट् कर्णदेव (१०४१-७३) का इतिहास महत्त्वपूर्ण है! स्वर्गीय डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल तथा डाक्टर राखालदास वन्द्योपाध्याय ने कर्णदेव को संसार के वीरों का अग्रणी कहा है। इस तथ्य की लेखक महोदयों ने भी पुष्टि की है। इस पुस्तक के पढ़ने से त्रिपुरी के प्राचीन इतिहास की पूरी जानकारी होती है। प्राचीन इतिहास के प्रेमियों को इसका संग्रह करना चाहिए।

१२—**सेठ गोविंददास** (जीवनी)—लेखिका, श्रीमती रत्नकुमारी देवी 'काव्यतीर्थ' हैं। प्रकाशक, महाकोशल साहित्य-मन्दिर, जबलपुर हैं। मूल्य १।) और पृष्ठ-संख्या १६४ है।

सेठ गोविन्ददास जी महाकोशल के एक रत्न हैं। आपका अधिकांश समय साहित्य-सेवा में व्यतीत होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप सुप्रसिद्ध राजा गोकुलदास के पौत्र हैं। असहयोग-आन्दोलन के समय आपने अपनी करोड़ों की सम्पत्ति त्याग दी और स्वतंत्ररूप से व्यापार करने लगे। तब से आपने आजीवन देशसेवा करने का कठिन व्रत ग्रहण किया है। सन् १९२६ से आप कौंसिल आफ़ स्टेट के एक प्रमुख और बड़े सजग सदस्य हैं। हाल में आपने विदेशी भारतवासियों से भी सम्पर्क पैदा किया है और उनकी कठिनाइयों को दूर करने का उद्योग कर रहे हैं। यह सब करते हुए भी आप अपनी साहित्य-सेवा में भी पूर्ववत् लगे रहते हैं।

इस पुस्तक में आपकी ही यह सब जीवनी लिखी गई है। और उसे लिखा है आपकी विदुषी पुत्री ने। जिस प्रकार बीटी वालफ़र ने अपने पिता लार्ड लिटन की जीवनी लिखी है, उसी भाँति श्रीमती रत्नकुमारी ने भी सेठ गोविन्ददास की जीवनी लिख कर प्रशंसनीय आदर्श उपस्थित किया है। शैली सरल तथा रोचक है।

१३—**परलोक की कहानियाँ**—लेखक, श्रीयत जगतनारायण बी० एस०-सी०, प्रकाशक, डायमंड जुबिली थियोसाफ़िकल पब्लिशिंग हाउस, पटना हैं। पृष्ठ-संख्या ४०८ और मूल्य २॥) है।

ये कहानियाँ किसी पौराणिक या वैज्ञानिक आधार पर नहीं लिखी गई हैं। अँगरेजी में पारलौकिक कहानी-साहित्य की भरमार है। उन्हीं में से प्रसिद्ध कहानी-लेखक ए० पी० सिनेट तथा बिशप लीडबीटर की कहानियों का अनुवाद इस पुस्तक में संकलित कर दिया गया है। साथ-साथ हिन्दू-धर्मशास्त्रों और दर्शन शास्त्रों के सिद्धान्तों की सहायता भी ली गई है। लेखक का अभिप्राय आधुनिक सुधारवादी साहित्य का निर्माण करना है।

भाषा शिथिल है। जो कहानियाँ स्वतंत्र रूप से लिखी गई हैं उनमें लेखक की कल्पना-शक्ति का आभास मिलता है। पुस्तक पाठकों को कहाँ तक रुचिकर होगी, कहना कठिन है।

१४—**रूस**—लेखक, श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ दुबे बी० ए०, प्रकाशक, रस्तोगी ब्रादर्स बुकसेलर पब्लिशर, जयपुर हैं। पृष्ठ-संख्या १२८ और मूल्य ।॥) है।

इस पुस्तक में बोलशेविक रूस का सर्वजनोपयोगी वर्णन है। प्राकृतिक दशा के परिचय के अलावा प्राचीन रूसी साम्राज्य के विनाश और आधुनिक मार्क्सवादी रूसी प्रजातंत्र का संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। वर्तमान रूसी शासन-पद्धति की रूप-रेखा खींची गई है। वहाँ के जैसे-जीवन की प्रशंसा की गई है। अन्त में रूस की सामाजिक विशेषतायें दी गई हैं, जैसे स्त्री-पुरुष का अस्थायी सम्बन्ध, बच्चों का सामूहिक रहन-सहन, रूस में उद्योग-धन्धों की प्रधानता तथा शिक्षा-प्रचार के अनेक वैज्ञानिक उपाय। रूसी विचार-धारा से भारतवर्ष कितना प्रभावित हुआ है इस सम्बन्ध में श्री बरकतउल्ला तथा कामरेड मानवेन्द्रनाथ राय के उद्योगों का हवाला भी दिया गया है।

पुस्तक सचित्र है। विद्यार्थियों के काम की है। लेखक महोदय ने इस पुस्तक में ट्राटस्की के साथ अन्याय किया है। यह अँगरेज़ लेखकों के प्रभाव का एक बुरा उदाहरण है। इस पुस्तक के लिखने में सिडने वेब और बीयट्रिस वेब की किताब का सहारा लिया गया है। मौलिकता का अभाव होते हुए भी हिन्दी-पाठकों के लिए यह रूस-सम्बन्धी एक उपयोगी पुस्तक है।

१५—**जम्बू स्वामी चरित्र**—टीकाकार, ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद जी, प्रकाशक, श्रीयुत मूलचन्द किशनदास कापड़िया, दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत हैं। पृष्ठ-संख्या २१३ और मूल्य १।) है।

अकबर के समकालीन पंडित राजमल्ल रचित 'जम्बू स्वामी चरित्र' की इस पुस्तक में रोचक टीका है। मूलभाव की सर्वत्र रक्षा की गई है। जम्बू स्वामी मगध नरेश श्रेणिक के समकालीन थे। राजगृह उस समय सभ्यता का केन्द्र था। सारा नगर प्रासादों और शिखरों से सुशोभित था। श्रेणिक और रानी चेतना के चरित्र अद्वितीय थे तथा समाज में स्त्रियाँ बड़ी आदरणीय थीं। ऐतिहासिक दृष्टि से यह पुस्तक उपयोगी है। अकबर के चरित्र की व्याख्या है; आगरा नगर के ऐश्वर्य का वर्णन और अलीगढ़ के धनिक टोडरमल की असाधारण योग्यता, साधु-चरित्र तथा विद्या-प्रेम का परिचय है। राजमल्ल ने यह जीवनी टोडरमल के अनुरोध से लिखी थी। जम्बू स्वामी वैश्यपुत्र थे, वीरों में अग्रणी और सिद्ध वैरागी थे। कठिन तपस्या के बाद उन्हें कैवल्य प्राप्त हुआ और उन्होंने अनेक धार्मिक उपदेश दिये। पुस्तक जैन वैश्यों के मनन योग्य है।

टीका अच्छी है। पर छपाई खराब है। कहीं कहीं पर पृष्ठ के पृष्ठ गायब हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६—**जैन वीरों का इतिहास**—लेखक, श्रीयुत ज्ञानप्रसाद जैन, प्रकाशक, जैन मंत्रि-मण्डल, धर्मपुरा, देहली हैं। पृष्ठ-संख्या ८६ और मूल्य ।) है।

इस पुस्तक में ऋषभदेव, महावीर, सम्राट् अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त मौर्य और कई तत्कालीन व्यक्तियों का संक्षिप्त वर्णन दिया गया है। साथ ही समस्त भारतवर्ष में फैले हुए जैन-धर्म के अनुयायियों का भी सिलसिलेवार उल्लेख किया है। पुस्तक प्रामाणिक नहीं है। ऊल-जलूल बातों की भरमार है। महाबीर को एक प्रजातंत्रवादी राजनीतिज्ञ या सत्याग्रह-आन्दोलन का जन्मदाता कहा है और महात्मा गांधी को महाबीर का अनुयायी ठहराया है। पुस्तक में यह सिद्ध करने का असफल प्रयत्न किया गया है कि सभी जैन मतावलम्बी बड़े वीर और उत्साही शासक थे। अशुद्धियों की भरमार है। चार पृष्ठों में केवल शुद्धि-पत्र दिया गया है।

१७—**जैन-धर्म**—लेखक, मुनिराज श्री विद्याविजय जी हैं। प्रकाशक, श्रीयुत दीपचन्द बाँठिया, श्री विजय-धर्म सूरि-ग्रन्थमाला, उज्जैन (मालवा) हैं। पृष्ठ-संख्या १५९ और मूल्य =) है।

पुस्तककार का अभिप्राय जैन-धर्म-सम्बन्धी अनेक किंवदन्तियों को दूर करना है। जैन-धर्म वास्तव में महा-भारत से प्राचीन है, क्योंकि ऋषभावतार का ज़िक्र महाभारत में है। लोकमान्य तिलक तथा जर्मन जैकोवी का भी यही मत है। इसलिए जैनधर्म की प्राचीनता के विषय में कोई सन्देह नहीं। महावीर स्वामी का चरित्र तथा जैन-धर्म के सिद्धान्तों का इस पुस्तक में विश्लेषण किया गया है। दया, पुण्य, आस्तिक्य तथा तपस्या की विशेष रूप से व्याख्या की गई है। जैन-धर्म-सम्बन्धी तत्वज्ञान के अनन्तर गृहस्थ-जीवन के नियम दिये गये हैं। पुस्तक जैन-धर्म के प्रचारार्थ लिखी गई है। भाषा सरल है। जैनियों के काम की है।

—भवनाथ वाजपेयी, एम० ए०

१८—२१ **लीडरप्रेस, इलाहाबाद की चार पुस्तकें**—

(१) **क्रान्ति-चक्र**—अनुवादक, श्रीयुत राधेश्याम शर्मा एम० ए० हैं। पृष्ठ-संख्या २७४ और मूल्य १।) है। काग़ज मैला और कमज़ोर, पर छपाई साफ़ है।

यह पुस्तक श्रीयुत टी० एफ़० ओडनल के उपन्यास 'पुल्स आफ़ रेव्यूल्युशन' का हिन्दी रूपान्तर है।

यह उपन्यास बहुत कुछ ई० एम० फ़ार्स्टर के 'ए पैसेज टू इंडिया' के ढंग का है, क्योंकि इसमें भी लेखक ने भारत और ब्रिटेन के विद्वेष का मूल कारण यही बताया है कि दोनों में एक-दूसरे को सहानुभूति-पूर्वक समझने का अभाव है। इस विषय में हमारा भारी मतभेद हो सकता है; पर उपन्यास रोचक है। अनुवाद की भाषा अच्छी है।

(२) **समाज के स्तम्भ**—अनुवादक, श्रीयुत लक्ष्मी-नारायण मिश्र बी० ए० हैं। पृष्ठ-संख्या १९६ और मूल्य १) है।

यह हेनरिक इब्सन के 'पिलर्स आफ़ सोसाइटी' नामक नाटक का अनुवाद है।

विचारों को उत्तेजन देनेवाले समस्यामूलक नाटक लिखनेवालों में इब्सन का प्रमुख स्थान है। हिन्दी के नाटककारों को उनसे बहुत कुछ प्रेरणा और शिक्षा मिल सकती है। अनुवादक स्वयं एक नाटककार हैं; अतः उन्होंने अनुवाद करने में काफ़ी सफलता प्राप्त की है। फ़िर भी, भाषा में कहीं कहीं विदेशीपन और अस्वाभाविकता दिखाई देती है। जैसे—

"आज-कल हमारे छोटे रोज़गार का छत्ता ऐसे नैतिक आधार पर स्थित है, ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए—हम सबने इसके लिए उद्योग किया है, अगर मैं कह सकूं और हम लोग अपनी अपनी शक्ति भर यह करते ही रहेंगे।"

शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद के अनिवार्य दुर्गुण इस उद्धरण में स्पष्ट हो जाते हैं।

(३) **गुड़िया का घर**—अनुवादक, श्रीयुत लक्ष्मी-नारायण मिश्र बी० ए० हैं। पृष्ठ-संख्या १९४ और मूल्य १।) है।

यह हेनरिक इब्सन के एक दूसरे नाटक 'डोल्स हाउस' का हिन्दी रूपान्तर है।

इस अनुवाद में भी वे सारे गुण-दोष हैं जो 'समाज के स्तंभ' में। छपाई सफ़ाई अच्छी है।

(४) **तुलसीदास**—लेखक, श्रीयुत सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' हैं। पृष्ठ-संख्या ५३ + ३८ है और मूल्य एक रुपया है। छपाई-सफ़ाई उत्कृष्ट है।

यह पुस्तक निराला जी की शायद अब तक की अंतिम रचना है। पुस्तक दो भागों में विभक्त है। पहले भाग में काव्य है और दूसरे में उसकी स्वयं कवि-कृत व्याख्या।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दन्तकथाओं के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास का जो जीवन-वृत्त प्रचलित है, उसी को निराला जी ने अपनी प्रखर कल्पना की आँच में गला कर कविता के रूप में ढालने का प्रयास किया है। पर इसमें तुलसी का समस्त जीवन-वृत्त नहीं है और न उनके समस्त जीवन-कर्मों को समझने की चेष्टा है। प्रथम दस छंदों में मुस्लिम संस्कृति के घातक प्रभाव का वर्णन करके कवि तरुण, शिक्षित, सुसंस्कृत तुलसीदास को चित्रकूट ले जाता है। वहाँ तुलसी को संभवतः प्रकृति-दर्शन से भारत के सांस्कृतिक विनाश का संदेश तथा उसके उद्धार की प्रेरणा मिलती है। परन्तु सुन्दरी पत्नी का ध्यान उन्हें विलासमय जीवन की ओर से मुड़ने नहीं देता। इसके बाद 'रत्नावली' वाली उस प्रसिद्ध घटना का वर्णन है जिसने तुलसी के जीवन की गति को दूसरी दिशा में मोड़ दिया। संभवतः इस काव्य में निराला जी ने तुलसी की वैराग्य-भावना के आदि-स्रोत का उद्घाटन करने की कोशिश की है। परन्तु निराला जी की तथाकथित ओजगुण-पूर्ण शैली के अतिरिक्त इस वृत्त में प्रियादास की भक्तमाल की टीका से कोई विशषता नहीं दिखाई देती। काव्य का जो कुछ रहस्यपूर्ण सौन्दर्य होगा वह भी संभवतः निराली शैली और भाषा की दुरूहता के आवरण में बुरी तरह छिप गया है।

निराला जी स्वच्छंद और निर्द्वन्द्व कवि हैं—भाषा और व्याकरण के लौकिक बन्धनों से मुक्त! फिर भी ऐसा लगता है कि कदाचित् वे अपनी बातें औरों को भी सुनाना चाहते हैं, इसी लिए प्रत्येक पद्य का भाव स्पष्ट करने के लिए उन्होंने पीछे से ३८ पृष्ठ की व्याख्या भी जोड़ दी है। बीसवीं सदी के हिन्दी-कवि को यह आवश्यक जान पड़ा कि उसे अपने काव्य की व्याख्या स्वयं कर डालनी चाहिए! व्याख्या के अनुरोध से हम थोड़ी देर के लिए मान भी लें कि 'भारत के नभ का प्रभापूर्ण शीतल छाया देनेवाला सांस्कृतिक सूर्य अस्त हो गया' पर 'तमस्तूर्य दिङ्मण्डल' की यह व्याख्या कि—'दिशायें अंधकार की तुरही बजाने लगीं, एकदम निराली है। तम और सूर्य में कौन-सा सादृश्य था जो कवि की कल्पना तम का प्रत्यक्षीकरण कराने के लिए 'तुरही' बजाने लगी? और यदि कवि से यह पूछा जाय कि इस वाक्य की क्रिया वह कहाँ से ले आया तो शायद उसे कवि परम्परा से प्राप्त विशेषाधिकार की दुहाई देनी पड़ेगी। इसी पद्य के आगे की पंक्तियों का अन्वय शायद इस प्रकार होगा—'शिरस्त्राण मुसलमान उर के आसन पर शासन करते हैं', व्याख्याकार कवि कहता है कि इसे यों समझो—'जिन मुसलमानों को शिरस्त्राण की तरह शासन करना चाहिए, वे उर के आसन पर शासन करते हैं।' ठीक है, थोड़ी देर के लिए आपकी ही व्याख्या सही। पर महाशय उर पर शासन करना तो शासकों की लोक-प्रियता का व्यंजक है! हमारे कवि को महावरों की भी उतनी ही परवा है, जितनी व्याकरण की। "है ऊर्मिल जल; निश्चल त्राण पर शतदल" की व्याख्या में कवि बताता है कि जल उपमान का उपमेय है भारतीय जीवन और कमल उसका प्रतीक है। इस प्रकार की रूपकातिशयोक्ति गूढ़ के दृष्टिकूटों से भी अधिक गूढ़ है।

इतना परिश्रम और कल्पना का व्यभिचार सहने के उपरान्त सहसा मन में प्रश्न होता है कि आखिर इतना परिश्रम किसलिए किया जाय? कवि ने किस काव्य-सौन्दर्य का उद्घाटन किया है? किस नवीन रहस्यमय सिद्धान्तों का प्रतिपादन है? भाषा की बात हम ऊपर देख ही चुके हैं। इसकी खड़खड़ाहट में कोमल भावों को ढूंढ़ने की चेष्टा करना कवि के साथ अन्याय होगा। यदि उनके 'खर-शरता' और असंगत दार्शनिक विचारों में भावुकता कहीं झाँकने भी लगती है तो कवि उसे लाक्षणिकता तथा उच्छृङ्खल-सामासिकता के थपेड़ों से धमका कर भगा देता है।

आशा यह थी कि अपने प्रौढ़काल में निराला जी ऐसी रचनायें रचेंगे जो केवल 'कला' के लिए न होकर पाठकों के लिए भी होंगी; परन्तु उनकी इस रचना से हमें निराश होना पड़ रहा है। स्वाभाविक कविता और वस्तु है पांडित्य-प्रकाशन की थोथी भावना दूसरी। दोनों का साथ-साथ निर्वाह कैसे हो सकता है? सब मिला कर पुस्तक लन्दन के अजायबघर में रखने योग्य बन गई जो वहाँ रक्खी-रक्खी बीसवीं सदी के इस "महाकवि" की योग्यता का परिचय आनेवाली पीढ़ी को देती रहेगी। हिन्दी-संसार में तो इसके पढ़ने वाले शायद ही दो-चार निकलें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आतिथ्य

लेखक, श्रीयुत भदन्त आनन्द कौसल्यायन

से जीवन-पथ पर, वैसे ही साधारण सड़क पर, आदमी के लिए अकेले चलना कठिन है। कोई ठहर कर किसी पीछे आनेवाले का साथी हो लेता है, कोई चार क़दम तेज़ चलकर आगे जानेवाले का।

महाकवि ने गाया है--

"यदि तोर डाक शुने केउ न आसे
तबे एक्‌ला चल रे! एक्‌ला चल रे!"

अर्थात् यदि तेरी आवाज़ सुनकर कोई साथ नहीं आता तो अकेला चल! अकेला चल। लेकिन मुझे उस दिन किसी को आवाज़ देने की भी फ़ुर्सत नहीं थी; किसी साथी की आशामयी प्रतीक्षा में मैं ज़रा दम लेने के बहाने भी न ठहर सकता था। कारण? उस दिन मेरे सिर पर भूत सवार था। मैंने निश्चय किया था, अपनी चलने की सामर्थ्य की परीक्षा करने का। चलना तो उन दिनों मेरा रोज़ का काम था; लेकिन मैं जानना चाहता था कि एक दिन में मैं ज़्यादा से ज़्यादा कितना चल सकता हूँ।

कहना न होगा कि अपना सामान मैं ख़ुद उठाये था। कन्धे पर एक हलका कम्बल और हाथ में टीन की एक छोटी बाल्टी। इनके अलावा कोई गज़ डेढ़ गज़ का खद्दर का एक टुकड़ा, जो धूप लगने पर छतरी का काम देता, नहाने के समय धोती का, भिक्षा माँग कर खाने के समय पात्र का और सोने के समय बिस्तरे का। हाँ, कोई चीज़ बाँध कर ले चलने के समय सूट-केस का भी काम वही देता था।

रास्ते चलते प्यास लगती। कुछ देर ठहर कर पानी पीना चाहिए, साधारण नियम है। मैं इस नियम का पालन कहीं नहीं करता। पानी मिलते ही पी लेता और चल देता। एक बार सन् १९२२ के कांग्रेस-आन्दोलन के दिनों में मैं और मेरा एक साथी तीन घंटे में अठारह मील दौड़ कर गिरते-पड़ते कांग्रेस की एक मीटिंग में इस उद्देश्य से पहुँचे थे कि कहीं हमारी अनुपस्थिति के कारण सिविल-नाफ़रमानी का प्रस्ताव पास होने से न रह जाय। उस दिन की याद थी। मैं भागा जा रहा था। अफ़सोस यही था कि दिन सर्दियों के थे, जो सभी धातुओं की तरह सुकड़ कर काफ़ी छोटे हो गये थे। गर्मी में तो चलने की बहार रात में रहती है; और कहीं चाँदनी रात हुई तो ऐसा मज़ा आता है, जैसा चन्द्रिका की छटा में ताजमहल की परिक्रमा करने में। लेकिन सर्दी में सूरज का डूबना और यात्री की शामत आना-दोनों बातें एक साथ होती हैं और ख़ासकर ऐसे यात्री की जिसके पास ओढ़ने को पर्य्याप्त क़पड़े न हों, रात काटने का कहीं ठिकाना न हो, भरोसा हो तो सिर्फ़ 'ईश्वर' का।

रास्ता चलते लोगों से मैं पूछता--"क्यों भाई! आगे कोई ठहरने लायक़ गाँव है?" लोग किसी गाँव का नाम बतलाते। मैं वहाँ न ठहरता। यही लालच था कि दो-चार मील और हो जायँ। आगे एक क़स्बे का पता लगा। सोचा, आज वहाँ तक तो ज़रूर पहुँचेंगे। रात हो चली थी। चलने की गर्मी में सर्दी लग तो नहीं रही थी, लेकिन पड़नी शुरू हो गई थी। और उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। तब भी उस क़सबे तक पहुँचने की धुन थी। इसके सिवा दूसरा चारा भी क्या था? कोई दूसरी बस्ती भी आस-पास हो? वही एक बस्ती थी--वह भी पता लगा कि मुसलमानों की। एक पहाड़-सा टूट पड़ा। क्यों न टूट पड़ता, जब मुझे बचपन से यह शिक्षा मिली थी कि मुसलमानों का न केवल धर्म हमसे भिन्न है, बल्कि समाज भी। पहले तो मैं किसी मुसलमान का दरवाज़ा खटखटाने का साहस ही कैसे करता, और यदि साहस करता तो क्या आतिथ्य पाने की आशा रख सकता था?

किसी ने बताया कि उस क़स्बे में एक हाई स्कूल है, उसके हेड मास्टर हैं एक जैनी। बस क्या था! जान में जान आई। धर्मशालायें बनवाने में किनका अव्वल नम्बर है? जैनियों का। मन्दिरों के बनवाने में कौन पहली पंक्ति में खड़े होंगे? जैनी। इस तरह की बातें रास्ते भर मन में आती रहीं और मैंने सोचा कि यदि मिलेगा तो गरमागरम पानी से पैर धोऊँगा। हो सकता है, गरम तेल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी मलने को मिल जाय। और कहीं गरम दूध मिल गया तो क्या कहना? ३५-३६ मील का सफ़र कर चुकने पर, थक कर चूर हो जाने पर, एक बार बैठकर फिर जल्दी उठने की आशा मन में न रहने पर ऐसी इच्छा क्या अनधिकार चेष्टा समझी जायगी? जो हो। उस रात में ऐसा ही हिसाब लगाता हुआ, उन हेड मास्टर साहब के बँगले पर जा पहुँचा। बँगला क़स्बे से बाहर था--ऐसे ही जैसे किसी भी शहर में सिविल-लाइन के बँगले। अँधेरे में दो-चार घर आस-पास दिखाई दिये। हेड मास्टर साहब के बँगले पर पहुँचकर मैंने वैसे ही दस्तक दी, जैसे कोई अपने घर के दरवाज़े पर देता है। 'हेड मास्टर साहब, हेड मास्टर साहब' कह कर पुकारा। दरवाज़ा खुला। अन्दर से एक सज्जन लालटेन लिये हुए निकले। मुझे उस समय अपनी पड़ी हुई थी। मैं उनकी शक्ल-सूरत, क़द-क़ामत को क्या निरखता। वे ही मेरी शक्ल को अच्छी तरह पहचानने की कोशिश करते हुए बोले--"क्या है?"

"मैं एक विद्यार्थी हूँ, ऐतिहासिक महत्त्व के स्थानों को देखने के विचार से पैदल यात्रा कर रहा हूँ। आज की रात, आज्ञा हो तो, आपके यहाँ काटनी चाहता हूँ।"

आशा के ठीक विपरीत जवाब मिला--"हर्गिज़ नहीं।"

मेरी सब अक़्ल गुम हो गई। अपने को सँभालते हुए--ठीक वैसे ही जैसे कोई गिरी हुई पगड़ी सँभाले, मैंने निवेदन किया--"यहाँ मेरा कोई परिचित नहीं। रात अँधेरी है। पहली बार इस बस्ती में आया हूँ। कहाँ जाऊँ?"

"यहाँ आस-पास कई चोरियाँ हो गई हैं। हम अपने घर किसी को नहीं ठहरने देते।"

"अपने बरामदे में पड़े रहने की आज्ञा दे दीजिए। सुबह होते ही मैं अपना रास्ता लूंगा।"

"न, ऐसा हो नहीं सकता। बस्ती में एक धर्मशाला है। वहाँ चले जाओ।"

"मैं आज बहुत चला हूँ। थक कर चूर हो रहा हूँ। एक क़दम भी और चलने का सामर्थ्य नहीं है। फिर इस अँधेरे में कैसे कहाँ धर्मशाला को खोजता फिरूँ?"

"जा रे, इसे धर्मशाला का रास्ता दिखा आ।" कह कर हेड मास्टर साहब ने एक आदमी को मेरे साथ कर दिया।

हमें लगी हो कड़ी भूख और कोई खिलाना चाहे रोटी का केवल एक टुकड़ा, तो हम धन्यवादपूर्वक उस एक टुकड़े को भी अस्वीकार कर देंगे। कुछ ऐसी ही अवस्था उस समय मेरी हुई। थकावट के दुःख से भी अधिक दर्द था मर्माहत अभिमान का। दो-चार क़दम चलकर मैंने उस आदमी से किञ्चित् रोष भरे लहजे में कहा--

"जाओ, तुम लौट जाओ: जो बीतेगी, सहेंगे। धर्मशाला का रास्ता स्वयं ढूंढ़ लेंगे।"

आदमी शायद यही चाहता भी था; वह लौट गया और मैं अपनी समझ में धर्मशाला की ओर चल दिया, बिना यह जाने कि धर्मशाला किस ओर है। पूरब घूमा, पश्चिम घूमा, उत्तर घूमा, दक्षिण घूमा--कहीं कुछ न पता लगा। चारों तरफ़ सड़कें थीं, लेकिन सब सड़कें पर अन्धकार! काफ़ी देर इधर-उधर भटकते रहने पर एक टिमटिमाता हुआ चिराग़ दिखाई दिया। सोचा वहाँ कोई होगा, चलकर पूछा जाय। मैं उसकी ओर ठीक इस प्रकार बढ़ा चला जा रहा था, जैसे समुद्र में डूबता हुआ कोई तैराक किनारे की ओर। धीरे धीरे पहुँच ही गया। देखा, दीपक का प्रकाश खिड़की में से आ रहा था। दरवाज़े पर फिर दस्तक देनी पड़ी। अन्दर से फिर एक आदमी लैम्प लिये आता दिखाई दिया। दरवाज़ा खुला ही आवाज़ आई--"क्या है?" जब तक मैं उत्तर दूं मुझे सुनाई पड़ा--"अरे, तुम फिर आगये!" मैंने गर्दन उठाई। वही हेड मास्टर साहब थे, जिनके घर से मैं थोड़ी ही देर पहले अपना-सा मुंह लेकर विदा हुआ था। बस यह हुई कि इधर-उधर घूमते मुझे दिशा-भ्रम हो गया और मैं कोल्हू के बैल की तरह जहाँ से चला था, वहीं फिर पहुँचा। पृथ्वी के गोल होने का एक अच्छा प्रमाण मेरे हाथ लगा, और मेरे निश्चित रूप से चोर होने का मास्टर साहब के--

"दौड़ो! दौड़ो! देखो, इसे अभी निकाला था अब यह पिछवाड़े की ओर से आया है।" हेड मास्टर साहब की चिल्लाहट सुनकर दो ही चार मिनट में आस पास के लोगों ने मुझे घेर लिया। कोई कहता, "पुलिस को बुलाओ," कोई कहता, "नहीं, थाने में ही ले चलो।" जो कुछ न कहता वह चार चपत लगाने का प्रस्ताव तो कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही देता। मेरी अक़्ल हैरान थी, क्या करूँ, क्या न करूँ? बुरा फँसा था। कैसे विश्वास दिलाता कि मैं चोर नहीं हूँ. एक ज्ञानार्थी यात्री हूँ। क़िस्मत का मारा हेड मास्टर साहब के चंगुल में फँस गया हूँ। लोग कहते थे—"देखिए न! अन्धेर है! अभी-अभी निकाला था। फिर इतनी जल्दी हिम्मत की है।" उन्हें क्या मालूम जो उनके लिए अन्धेर है, वही मेरे लिए महा-महा अन्धेर है। विपत्ति पड़ने पर कहते हैं अक़्ल मारी जाती है, लेकिन जब आदमी को और कोई सहारा नहीं रहता तब बुद्धि ही उसके काम आती है। मैंने उसी को साहस के सहारे खड़ा करने की कोशिश करते हुए कहा—

"देखिए, मैं दूर से चल कर आया हूँ। थकान से चकनाचूर हूँ। आप मुझे बैठने के लिए जगह दीजिए और फिर ठंडे पानी का एक गिलास। फिर बैठ कर कृपया मेरी बात सुन लीजिए। यदि आप लोगों को विश्वास हो जाय कि मैं चोर नहीं हूँ तो कृपया एक बार फिर अपना आदमी दे दीजिए मुझे धर्मशाला का रास्ता दिखा देने के लिए। और यदि विश्वास न हो तो थाने में भेज दीजिए; या और जो चाहिए कीजिए।" वे लोग बुरे आदमी न थे। और बुरे आदमी में क्या भलाई नहीं होती? मेरी बात सुन ली गई। एक स्टूल बैठने के लिए दिया गया—जैसा ही जैसा गर्मियों में पंखा खींचनेवाले कुलियों को दिया जाता है कि यदि उस पर बैठे बैठे ऊँघें तो धड़ाम से गिर पड़ें। और पानी का एक गिलास भी। मैंने स्थिरता से बैठकर हलके-हलके पानी पिया और अपना थैला खोल-कर उसमें से दो चिट्ठियाँ निकालीं। दोनों परिचय-पत्र थे। एक था ग्वालियर-पुरातत्त्व-विभाग के डायरेक्टर के नाम और दूसरा निज़ाम के हैदराबाद के प्रधान मन्त्री महोदय के नाम। दोनों में मेरा साधारण परिचय था और यदि वे मुझ ज्ञानार्थी यात्री की कुछ सहायता कर सकें तो धन्यवाद के दो शब्द। निज़ाम-हैदराबाद का तो पत्र मैंने खास तौर पर इसलिए ले लिया था क्योंकि मैंने सुना था कि बिना परिचय-पत्र के पकड़ कर जेल में भी डाल दिया जा सकता है। हाँ. तो मैंने अपने दोनों परिचय-पत्र दिखाते हुए कहा—

"यदि ये पत्र किसी चोर के पास हो सकते हैं तो मैं चोर हूँ और यदि इन पत्रों के रखने वाले की चोर न होने की भी कुछ सम्भावना है तो मैं चोर नहीं हूँ।" लोगों की आपस में फुस-फुस हुई और चाहे मैं कोई भी होऊँ, निश्चय हुआ मुझे धर्मशाला ही भेजने का। वही आदमी फिर मेरे साथ कर दिया गया और उसके पीछे-पीछे मैं ऐसे चलने लगा जैसे अखाड़े में हारा हुआ कोई पहलवान। बस्ती दूर न थी। दिशा-भ्रम न हुआ होता तो मैं भी कब का धर्मशाला पहुँच गया होता। लेकिन अब तो रात काफ़ी हो गई थी। शायद दस बज चुके थे। ग्यारह भी बज गये होंगे। सर्दियों में रात के नौ बजे ही गरमियों की आधी रात हो जाती है। दस बजे तक तो कोई चोर उचक्के और दुखिया ही जागते रहते हैं। मैं उस रात चोर भी था, उचक्का भी और शायद दुखिया भी। धर्म-शाला पहुँचा तब पता लगा कि दरवाज़ा बन्द हो चुका है और अब किसी तरह नहीं खुल सकता।

"यही धर्मशाला है" कह कर आदमी मुझे छोड़ कर चलता बना।

अब क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? धर्मशाला में बाहर की ओर एक बरामदा था। मैंने उसी में रात काटने की सोची। पास में कपड़ा काफ़ी नहीं था तो क्या? सर्दी ज़ोर से पड़ रही थी तो क्या? और कोई चारा ही नहीं था। अँधेरे में अन्दाज़ करके मैं एक कोने में बैठ रहना चाहता था कि आवाज़ आई—"कौन है?"

मैंने कहा—"मुसाफ़िर।"

"इतनी रात गये आये हो?"

"हाँ, भाई, आज ऐसी ही बीती।"

"इधर आ जाओ। उधर हवा लगेगी"—कहते हुए उस अपरिचित आवाज़ ने मुझे अपने पास के कोने में बुला लिया।

"तुम कहाँ से?"—मैंने पूछा।

"हम तो भिखमँगे हैं। अंधे हैं, दिखाई नहीं देता।"

अन्धे भिखमंगे के पास लेटने का जीवन में पहला अवसर था। कितने पैसे मिले? क्या खाने को मिला—कुछ ऐसे ही सवाल मैंने पूछे। लेकिन मैं तो व्यग्र था अपनी सुनाने के लिए। उस रात मुझ पर जो बीती थी उसे सुनने-वाला मिला था पहले पहल मुझे वही अन्धा। अथ से इति तक मैंने सब कह सुनाई। उस सहानुभूति के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो एक दुखिया को दूसरे दुखिया से होती है, वह अन्धा मेरी बातें सुनता रहा। राम-कहानी ख़त्म हुई तब अँधेरे में टटोलते हुए उसने पूछा--

"कहाँ है तुम्हारी टाँगें? उन्हें ज़रा दबा दूं।"

मैंने कहा--"न यार! रहने दो।"

"अच्छा, यह बताओ तुम्हारे पास कोई कपड़ा है?"

"है।"

"कहाँ है? मुझे दो।"

मेरे पास वही एक साफ़ा था--गज़-डेढ़ गज़ का टुकड़ा। मैंने दे दिया। अन्धे ने अपने हाथों से मेरी टाँगों को टटोला और नीचे से ऊपर तक कस कर बाँध दिया। उसने कहा।--"अब थोड़ी देर ऐसे ही बैठे रहो।" गहरी सहानुभूति दिखानेवाले की आज्ञा का उल्लङ्घन आसान नहीं होता। मैं मूर्तिवत् बैठा रहा। थोड़ी देर के बाद उसने मेरी टाँगें खोल दीं। रुका हुआ ख़ून तेज़ी से दौड़ने लगा। मालूम हुआ थकावट जाती रही। बातें करते-करते नींद आ गई। सुबह उठा तब देखा मेरा साथी मुझसे पहले ही उठकर चला गया है।

स्पेन में जनरल फ़्रेंको की सफलता का आधार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाग्रत नारियाँ

सह-शिक्षा की समस्या

लेखिका, श्रीमती विद्युत्तमा मिश्र

अब तक जितनी लड़कियाँ उच्च शिक्षा पा चुकी हैं उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि कालिजों में पढ़ाये जानेवाले विषयों में से ऐसा एक भी विषय नहीं है जिसके लिए लड़कियाँ लड़कों से कम उपयुक्त समझी जावें। भारतीय विश्वविद्यालयों के विगत कुछ सालों के कैलेण्डरों के पन्ने उलटने पर हमें पता लगता है कि अच्छे सुयोग लड़कों और लड़कियों को एक से ही प्राप्त हुए हैं, असाधारण प्रतिभा का प्रश्न दूसरा है, पर साधारण रूप से कुछ अपवादों को छोड़कर दोनों की योग्यता में विशेष अन्तर नहीं।

बात यह है कि शरीर-रचना में थोड़ा-बहुत अन्तर रहते हुए भी मस्तिष्क-रचना में स्त्री व पुरुष में कोई अन्तर नहीं है। इसी लिए जिस विषय में लड़के व्युत्पत्ति दिखला सकते हैं, उसी में लड़कियाँ भी चोटी के नंबर पा सकती हैं। फिर भी शिक्षा-विभाग की ओर से उन्हें कुछ विषयों के पढ़ने से रोक दिया जाय या प्रतियोगिता की परीक्षाओं में उन्हें अवसर न दिया जाय। अब यह प्रमाणित हो चुका है कि लड़कियाँ भी उच्च शिक्षा पाने का उतना ही अधिकार रखती हैं जितना कि लड़के; पर लड़कियों का पाठ्यक्रम क्या रहना चाहिए इसके सम्बन्ध में कोई स्पष्ट और सुलझी हुई योजना संसार के सामने भी नहीं है, फिर हमारे देश के सामने तो हो ही कहाँ से सकती है। पाठ्यक्रम के प्रश्न के साथ ही सह-शिक्षा के प्रश्न का जन्म होता है।

[कुमारी ज्योतिर्मयी वसु, आपको कलकत्ता-विश्व-विद्यालय से एम० ए० (प्राचीन भारतीय इतिहास) में प्रथम श्रेणी में प्रथम उत्तीर्ण होने के उपलक्ष्य में यूनीवर्सिटी स्वर्णपदक दिया गया है।]

अभिप्राय यह है कि यदि लड़कियों और लड़कों को एक जैसे विषय ही पढ़ाये जायँ तो उनके लिए पृथक्-पृथक् शिक्षा-संस्थायें खोल कर देश के ऊपर दोगुना व्यय लादने की जरूरत ही क्या है? क्यों न एक ही संस्था में दोनों पढ़ें। साथही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

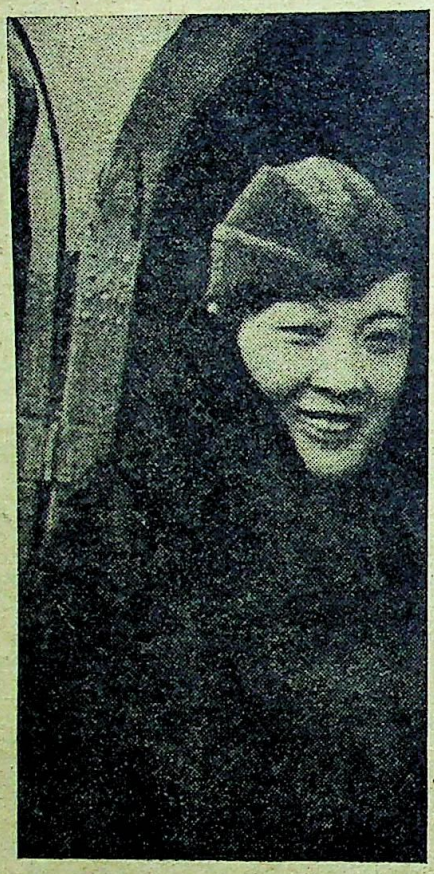

[अमेरिका के विश्व-विद्यालयों में शिक्षित 'मेडम चांगकाई शेक' जो अपने पति जरनल चांगकाई शेक का दाहिना हाथ बनी हुई हैं।]

एक कठिन प्रश्न और सामने आता है। पुरुष शिक्षा में अधिक बढ़े चढ़े हैं। उनमें योग्य से योग्य शिक्षक मौजूद हैं जो उच्च से उच्च शिक्षा का कार्य योग्यतापूर्वक चला सकते हैं; पर उच्च शिक्षित महिलाओं की संख्या न केवल हमारे देश में, बल्कि संसार भर में अभी उँगलियों पर गिनी जाने लायक़ है। भले ही एक देश में एक-दो स्त्री-संस्थायें ऐसी बनाई जा सकें जिनमें लड़कियों को उच्च शिक्षा की सुविधा प्राप्त हो, पर अधिक की आशा हम नहीं कर सकते। पर इधर लड़कियों में उच्च शिक्षा के प्रति जो उत्कट अनुराग उत्पन्न हो रहा है उसे देखते हुए एक दो कन्या-महाविद्यालयों और कन्या-गुरुकुलों से तो यह काम पूरा नहीं होने का। इसके लिए कमोबेश उतने ही गुरुकुलों और विश्वविद्यालयों की ज़रूरत है, या निकट भविष्य में हो जायगी, जितनी कि लड़कों के लिए है। यह योजना किसी भी देश की आर्थिक शक्ति से बाहर है। कौन इतना खर्च उठा सकता है!

यदि लड़कों और लड़कियों की शिक्षा में आमूल पृथक्ता कर दी जाय और उनके शारीरिक विभेद को माइक्रस्कोप से लाख गुणा बढ़ाकर देखते हुए कहा जाय कि लड़कियों को सुगृहिणी बनने की आवश्यकता है, जज मजिस्ट्रेट और पार्लमेंट का मेम्बर बनने की नहीं, तो बात दूसरी है। इसके लिए सचमुच बालक-विद्यालय और बालिका-विद्यालय पृथक्-पृथक् खोलने पड़ेंगे। लड़के अपने विद्यालयों में गणित, विज्ञान आदि की उच्च से उच्च शिक्षा की ओर अग्रसर होंगे; वहाँ लड़कियाँ सिलाई, बुनाई और क़सीदे के कामों में अपनी दृष्टि का व्यायाम करेंगी। या रोटी पकाने के नये-नये तरीक़े सीखेंगी। इस प्रकार सामाजिक जीवन में पूर्णता लाने के उद्देश्य से शिक्षा-फल को दो फाँकों में बाँट दिया जायगा और वे एक वस्तु के दो भाग रहने पर भी शिक्षा-विभेद के कारण रूप-रेखा में पश्चिमी व पूर्वी गोलार्द्ध की भाँति अलग-अलग हो जायँगे। पर आधुनिक युग की लड़की इसे पसन्द करेगी कि नहीं, इसमें सन्देह है। वह किसी बात में अपने को पुरुष से पीछे नहीं देखना चाहती।

[डाक्टर कुमारी पद्मावती बाई सिन्धे—आप बम्बई म्यूनिसपलिटी की उपाध्यक्षा निर्वाचित हुई हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर वह कैसे स्वीकार कर लेगी कि उसे तो शिशु-पालन, कसीदा और चक्की-चूल्हे की शिक्षा में बाँध दिया जाय और लड़के इन विषयों से मुक्त रहकर विज्ञान और साहित्य की उच्च शिक्षा प्राप्त करें।

सह-शिक्षा का प्रश्न इसी कारण अधिक से अधिक जटिल होता जा रहा है। यद्यपि इसके पक्ष-विपक्ष में और भी छोटी मोटी दलीलें पेश की जाती हैं। जिनका उल्लेख मैं आगे चलकर करूँगी।

आधुनिक युग की लड़की अनुचरी और गृहिणी बनने के लिए विशेष उत्सुक नहीं है। वह तो सहचरी और सखी बनना चाहती है। वह चाहती है कि विवाहित जीवन में वह अपने पति के सभी कामों में सहायता दे सके। इस शताब्दी में गृह-प्रबन्ध और व्यवस्था तो साधारण बात हो गई है। इसके लिए किसी लड़की को लम्बे समय तक शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। आज की लड़की चाहती है कि उसे भी यह सिखाया जाय कि हवाई आक्रमण और ज़हरीले गैसों से वह अपने परिवार को किस प्रकार बचा सकती है। उसे जानना चाहिए कि शत्रु के विनाशकारी साधनों का मुक़ाबिला कैसे करना चाहिए। घर की सफ़ाई की अपेक्षा उसे शहर की सफ़ाई के नये-से-नये ढंग सीखने में अधिक रुचि है और वह चाहती है कि उसे भी व्यवस्थापिका सभाओं में जाने, मन्त्रि-पद का उत्तर-दायित्व निबाहने और क़ानून बनाने का अवसर दिया जाय। क्या कोई कन्यागुरुकुल उसकी इस इच्छा की पूर्ति कर सकेंगे? क्या किसी राष्ट्र की आर्थिक दशा इतनी सम्पन्न हो सकती है कि वह लड़कों और लड़कियों की शिक्षा के लिए पृथक्-पृथक् समान संस्थाएँ खोल सके? यदि नहीं हो सकती तो लड़कियाँ भी उन्हीं विश्वविद्यालयों में पढ़ेंगी; और भले ही उनके इस कार्य को कोई महात्मा 'जूलियट' का काम समझें, लड़कों से प्रतिस्पर्धा भी करेंगी। इस प्रश्न का आधार आर्थिक अधिक है। और आर्थिक प्रश्नों का निपटारा सैद्धान्तिक गपोड़ों के द्वारा नहीं हो सकता।

संसार के सब देश यह तो मान गये हैं कि उच्च शिक्षा लड़कों और लड़कियों की एक-सी ही होनी चाहिए। आरंभिक शिक्षा में थोड़ा-बहुत भेद रहना चाहिए। सब लड़के उच्च शिक्षा की ओर नहीं बढ़ते, न सब लड़कियाँ उच्च शिक्षा पाने की इच्छा करती हैं; अतः स्पष्ट है

[कुमारी यंग वेहीमिंग, आप चीन की छात्रा हैं और चीन की ओर से गर्ल गाइड कान्फ्रेंस के न्यूयार्क में होने वाले अधिवेशन में प्रतिनिधि बन कर जा रही हैं।]

कि जो लड़के-लड़कियाँ अपनी पढ़ाई प्राथमिक शिक्षा के बाद ही समाप्त करना चाहें उन्हें गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करने के पूर्व अपने-अपने कर्त्तव्यों का समुचित ज्ञान हो जाना चाहिए। आरंभिक शिक्षा का, जो अनिवार्य की जाने-वाली है, यही उद्देश्य होना भी चाहिए। अर्थात् देश को ऐसे नागरिक मिल सकें जो अपने-अपने कर्त्तव्यों को अच्छी तरह समझते हों। निस्सन्देह यहाँ पर पुरुष और स्त्री के कर्त्तव्यों में विभेद होगा अतः अक्षरों और अंकों के ज्ञान के अतिरिक्त उनकी शिक्षाओं में सादृश्य नहीं रह सकता। पर आगे बढ़कर उनकी शिक्षा में एकरूपता रहनी चाहिए। यह बिना सह-शिक्षा के असम्भव-सा है।

सह-शिक्षा के विरोध में सबसे बड़ी रुकावट यह है कि लोग समझते हैं कि इससे व्यभिचार को सुअवसर प्राप्त होता है। यद्यपि इसके लिए अन्यत्र भी स्पष्ट रुकावट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

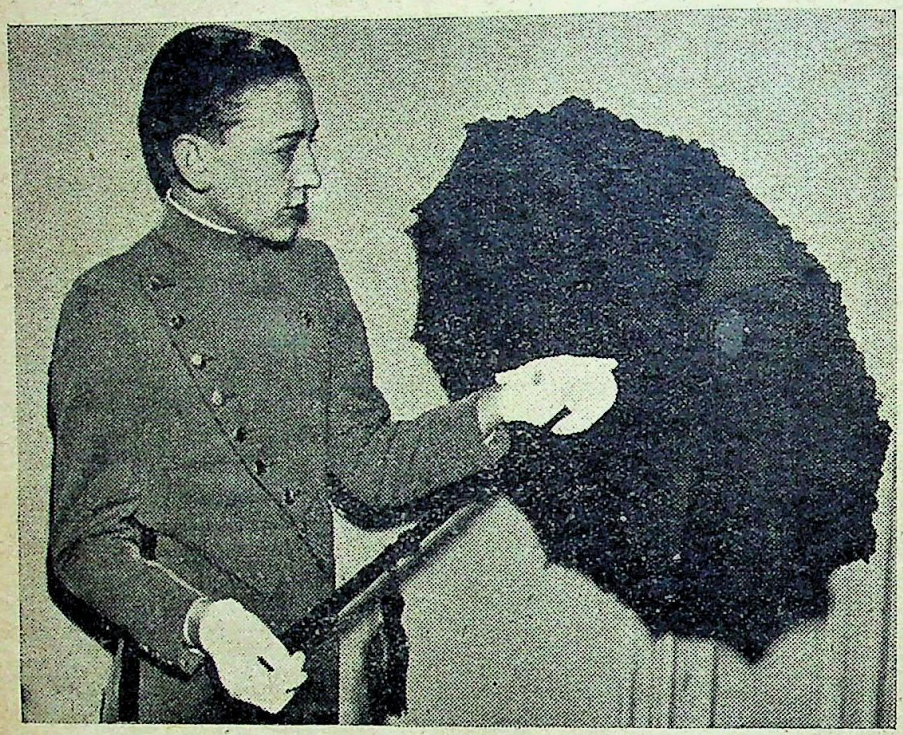

[श्रीमती चेम्बरलेन का वह छाता जो मिस्टर चेम्बरलेन को अन्तर्राष्ट्रीय फ़सादों से बचानेवाला है।]

नहीं है, पर शिक्षा-संस्थाओं को हम उच्च दृष्टि से देखते हैं और उन्हें सर्वथा आदर्श रखना चाहते हैं। जो लड़कियाँ उच्च शिक्षा के पक्ष में हैं, या जो विद्वान् सह-शिक्षा के समर्थक हैं उनका कथन है कि आचरण का व्यविधान गौण है उसके कारण हम शिक्षा जैसे मुख्य विषय की अवहेलना नहीं कर सकते। साथ ही लड़के व लड़कियों के अधिक संपर्क में रहने से उनमें सहयोगिता और सहकारिता आ जाती है और रोमेन्टिक भावनाओं की कमी हो जाती है। एक बार एक अमेरिकन यात्री ने विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर से सह-शिक्षा और उनकी विश्वभारती के अनुभव के सम्बन्ध में प्रश्न किया था। ठाकुर महोदय ने हँस कर पूछा कि "आपके देश में भी तो इसके प्रयोग किये जा रहे हैं। आपके देश की सह-शिक्षा के सम्बन्ध में क्या सम्मति है।" यात्री ने उत्तर दिया कि—"जहाँ तक सदाचार का सम्बन्ध है। हमारे देश में सह-शिक्षा की योजना असफल रही है। पर फिर भी हम लड़कियों को उच्च शिक्षा से वंचित रखना नहीं चाहते; क्योंकि मानव स्वभाव में दुर्बलतायें हैं, और वे रहेंगी। इसके लिए किसी उपयोगी विधान को कैसे रोका जा सकता है! इसी से हमारे देश में सह-शिक्षा को प्रोत्साहन बराबर मिल रहा है।

विश्वकवि ने उत्तर दिया कि "मेरा भी उत्तर यही है। हमारे शान्तिनिकेतन में सौभाग्यवश ऐसी एक भी दुर्घटना नहीं हुई जिसके लिए हमें पश्चात्ताप करना पड़ा हो, और यदि हो भी जायगी तो उसे मानव-स्वभाव की सहज दुर्बलता ही समझा जायगा। महिलाओं को उच्च शिक्षा का प्रकाश पहुँचाने के लिए सह-शिक्षा के अतिरिक्त हमारे पास और कोई साधन भी नहीं है। मैं तो सह-शिक्षा का कट्टर समर्थक हूँ।"

पर विश्व-वन्द्य महात्मा गांधी सह-शिक्षा के बड़े विरोधी हैं। उन्होंने अपने आश्रम में इसे कसौटी पर कसकर देखा और इसे प्रत्येक अवस्था में अनुचित और अहितकर पाया। हमारे सूबये-हिन्द की सरकार ने मार्च १९२ में शिक्षा-पुनःसंगठन-कमिटी स्थापित की थी। इसी महीने में उसकी योजना भी प्रकाशित हो गई है। कमिटी ने केवल दस वर्ष तक की आयु तक लड़के-लड़कियों को साथ-साथ पढ़ाने की सिफ़ारिश की है। स्पष्ट है कि कमिटी के इस निर्णय का आधार कोई मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त नहीं है प्रत्युत महात्मा जी का विचार है, जिससे कांग्रेस की सम्मति गतिविधि संचालित हो रही है। सह-शिक्षा के विषय यह तो हुई हमारे देश के दो महान् पुरुषों व कांग्रेस-सरकार की राय। अब हमें जनसाधारण के विचारों को भी बहुत समझ लेना चाहिए। भारत में सह-शिक्षा का प्रचार न्यूनाधिक अंश में बर्मा, बम्बई, आसाम और बंगाल है। हिन्दू-विश्वविद्यालयों में भी इसका सफलता-पूर्वक प्रयोग हो रहा है। पंजाब-विश्वविद्यालय में सह-शिक्षा के विषय पर ३ वर्ष वाद-विवाद हुआ जिसमें पुरुषों ने,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों तथा अध्यापकों ने, इसे उचित ठहराया था किन्तु छात्राओं ने इसे नितान्त अनुचित ठहराया था और इसका विरोध किया था।

पंजाब की स्त्रियों पर इस्लाम की संस्कृति का काफ़ी प्रभाव है, अतः उनके लिए ऐसा करना स्वाभाविक भी था। मुसलमानों में अधिकांश इसे किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकते, कुछ ऐसे घरानों को छोड़कर कि जिन्हें विलायत की हवा लग चुकी है। महाराष्ट्र स्त्रियाँ अपेक्षाकृत अधिक उच्च शिक्षित हैं पर हर एक प्रान्त में कन्या-पाठशालाओं में लेडी प्रिंसिपल और प्रधान अध्यापिकायें प्रायः ईसाई ही पाई जाती हैं और छोटी अध्यापिकायें हिन्दू आदि अन्य जाति की हैं जो उनके भाग्य पर ईर्ष्या करती हैं और उनके अधीन रहती हैं। सर्किल इन्स्पेक्ट्रसें और चीफ़ इन्स्पेक्ट्रसें तो शायद ही एक दो ऐसी हैं जो ईसाई नहीं हैं। मुसलमान तो हैं ही नहीं। कारण साफ़ है; ईसाई लड़कियाँ सह-शिक्षा पसन्द करती हैं; इसी लिए वे उच्च शिक्षा पा जाती हैं। अब कुछ हिन्दू भी इस ओर ध्यान देने लगे हैं अतः दो एक हिन्दू महिलायें शिक्षा-विभाग में उच्च स्थानों पर नियुक्त दिखाई देती हैं। सबसे पीछे हैं हमारी मुसलमान बहनें, क्योंकि मुस्लिम नेता योग्यता-द्वारा उच्च पद पाने में शायद अपनी जातिवालों को अयोग्य समझते हैं और इसीलिए मुस्लिम सीटों के संरक्षण की माँग पेश किया करते हैं।

संसार में सह-शिक्षा के प्रयोग हो रहे हैं। अनुकूल और प्रतिकूल परिणाम भी निकाले जा रहे हैं। पर अन्तिम निर्णय क्या होगा, यह कोई नहीं जानता। अब तक कोई प्रयोग पूरा हुआ भी नहीं।

डा० स्टीट और प्रो० वर्ट जैसे विशेषज्ञ तथा डा० टागोर सरीखे विद्वान् इसका समर्थन करते हैं तो गांधी जी जैसे नेता विरोध। पर लड़कियाँ निर्णय की प्रतीक्षा नहीं करेंगी। करना भी नहीं चाहिए। उच्च शिक्षा पाने के लिए और मार्ग भी तो नहीं है।

तुम क्या हो ?

लेखक, श्रीयुत श्यामविहारी शुक्ल 'तरल'

तुम नियति की प्रेरणा हो मैं कहूँ कैसे ?

जानता हूँ तुम मधुर पर वेदना-मय हो,
जानता हूँ तुम विरह के गीत को लय हो;
जानता हूँ तुम तरंगित वायु-सी चञ्चल,
आज इसकी, कल किसी के रुद्ध की जय हो;
क्या कहूँ ? कैसे किसी की जीत में देखा,
आज अपनी हार में देखा तुम्हें मैंने;
मैं निकट होकर तुम्हारे स्थिर रहूँ कैसे ?
तुम नियति की प्रेरणा हो मैं कहूँ कैसे ?

मैं अशक्य भला तुम्हारा पथ गहूँ कैसे ?
तुम नियति की प्रेरणा हो मैं कहूँ कैसे ?
अश्रुओं की धार में देखा तुम्हें मैंने,
और मञ्जुल प्यार में देखा तुम्हें मैंने;
तुम किन्हीं भावुक जनों की नीति चञ्चल हो,
तुम किसी प्रेमी हृदय की मूक हलचल हो;
तुम किसी स्वच्छन्द सरिता के तट-स्थल पर,
गूँजनेवाली मधुर ध्वनि मञ्जु कलकल हो;

मैं तुम्हारे साथ लहरों में बहूँ कैसे ?
तुम नियति की प्रेरणा हो मैं कहूँ कैसे ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० गुरुदयाल जी त्रिपाठी के नाम कुछ और पत्र

(१)

दौलतपुर, रायबरेली
१९-८-३४

श्रीमान् त्रिपाठी जी को प्रणाम

१७ ता० का पो० का० मिला। उस काम के विषय में आपका आश्वासन पाकर परम सन्तोष हुआ। मेरा कृतज्ञताज्ञापन स्वीकार किया जाय। पूर्ण आशा है, आपकी सिफ़ारिश शीघ्र ही सफल होगी।

चि० विष्णुनारायण की कामयाबी का समाचार सुन कर बड़ी खुशी हुई। मैं उनसे मिल चुका हूँ। आप उन्हें I. C. S. के लिए तैयार कीजिए। परमात्मा उन्हें चिरंजीव करे।

कान्यकुब्जों में आपका कुटुम्ब आदर्श है। आपने जैसे अपने भाइयों को सुशिक्षित किया उसी तरह लड़कों और दामाद को भी कर रहे हैं। आपकी उदारता और शिक्षा-प्रेम प्रशंसनीय है।

मेरे भानजे की लड़की मनोरमा १२ वर्ष की है। अपर प्राइमरी पास करने के बाद २ साल से वह प्रयाग में पढ़ रही है। मैंने कहा, लड़का नहीं तो लड़की ही को कुछ शिक्षा दिलाऊँ। पन्द्रह बीस रुपये महीना भेजना पड़ता है।

कृपापात्र
म० प्र० द्विवेदी

(२)

दौलतपुर, रायबरेली
५-११-३४

श्रीमान् त्रिपाठी जी को प्रणाम—

दीपावली भवतु ते बहुमोददात्री

कुछ कष्ट उठाकर फिर मुझे लिखने की कृपा कीजिए कि औषधालय के विषय में क्या कार्रवाई हुई। Supplementry Budget गया? गया तो कब गया? कब तक मंजूरी आजाने की उम्मेद है और कब तक वैद्य बाबा यहाँ पधारेंगे? कितने रुपये साल या महीने की मंजूरी माँगी गई है। मैंने श्रीमान् पं० शिवशंकर जी त्रिपाठी को भी लिखा था; पर उन्होंने उत्तर देने की भी कृपा नहीं की। अगर आप उन्हें जानते हों और उनकी श्रद्धा अपने शास्त्रों में हो तो कभी मिलने पर उन्हें चुपचाप वह श्लोक सुना दीजिएगा जिसका आधा यह है—

कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्
अथवा
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

(३)

C/o कमर्शल प्रेस,
बगिया मनीराम
कानपुर १३-१२-३४

श्रीमान् त्रिपाठी जी को सादर प्रणाम,

गाँव पर मेरा उन्निद्रता रोग बहुत बढ़ गया। और भी कुछ शिकायतें नई नई पैदा हो गईं। इससे यहाँ इलाज कराने चला आया। अब कुछ कुछ आराम है। यहाँ आये १ महीना हो गया। २५ तारीख तक घर लौट जाने का विचार है। शर्त यह है कि तबीअत ठीक रहे।

बन्दूक़ रखना मेरे लिए जी का जंजाल हो रहा है। मैं जमा कर देना चाहता था। पर घरवाले रखना चाहते हैं। मेरी तरफ़ चोरियाँ बहुत होती हैं। डाके तक पड़ जाते हैं। पिछली कई दफ़े वहाँ दौरे पर हाकिमों से लाइसेंस नया करा लिया था। इस साल यहाँ पड़ा हूँ। इससे एक दफ़े फिर आपको कष्ट देता हूँ। लायसंस भेजता हूँ। अगले साल के लिए नया करा लीजिए। फ़ीस के ७॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपरी खर्च २॥) इस तरह १०) का मनीआर्डर आज आपके नाम भेज रहा हूँ। लैसंस इसी चिट्ठी के साथ है। वकालतनामे का फ़ार्म भी। एक चिट्ठी भी D. C. के नाम भेजता हूँ। ज़रूरत पड़े तो दे दीजिएगा। वे मुझे जानते हैं; मेरे घर हो आये हैं। जो न जानते हों उनसे कह दीजिएगा—खैरख्वाह हूँ; पंचायत का पंच हूँ इत्यादि। काम हो जाने पर लायसंस रजिस्ट्री करके लौटा दीजिएगा। २३ दिसंबर के बाद पत्र दौलतपुर भेजिएगा। पं० शिवगोविन्द जी कृपा करके मेरे वकील हो जायँ। कष्ट के लिए क्षमाप्रार्थना।

कृपापात्र
महावीरप्रसाद द्विवेदी

(४)

दौलतपुर, रायबरेली
२५-१२-३४

श्रीमान् तिवारी जी को सादर प्रणाम

मेरी तन्दुरुस्ती कानपुर में और भी खराब हो गई। इस कारण मैं घर लौट आया हूँ।

१४ दिसम्बर को मैंने एक रजिस्ट्री चिट्ठी और ३०) का मनी-आर्डर आपको भेजा था। आशा है, दोनों पहुँच गये होंगे। कृपा करके लिखिए बन्दूक़ का लायसंस दिला कराने की क्या काररवाई हुई। यदि ३१ दिसंबर तक लैसंस न मिल जाय तो क्या बन्दूक़ पुलिस स्टेशन को भेज दूं? जो मुनासिब समझिए, आज्ञा दीजिए।

कृपापात्र
महावीर प्र० द्विवेदी

पुनश्च

यह कार्ड लिख चुकने पर आपका २४ दिसंबर का पत्र मिला। कृतज्ञ हुआ। बहुत बहुत धन्यवाद। लायसंस की किताब मिलने पर उसे सावकाश भेजिएगा।

म० प्र० द्विवेदी
२६-१२-३४

(५)

दौलतपुर, रायबरेली
१५-१-३५

श्रीमान् त्रिपाठी जी को प्रणाम,

मेमरी के लाल वीरेन्द्रबहादुरसिंह ने रायबरेली में कोई संघ स्थापित किया है या करनेवाले हैं। उसके सम्बन्ध में मुझसे रायबरेली चलने का इसरार कर रहे हैं। मैं इन बातों से सदा दूर रहा हूँ और रहना चाहता हूँ। मैं प्रसिद्धि नहीं चाहता। मेरी इज़्ज़त आप लोगों के हाथ है। कृपा करके नीचे लिखी हुई बातों का जवाब दीजिए —

इस आयोजन में अग्रणी कौन है। शहर के और ज़िले के कौन कौन संमाननीय सज्जन इसके पृष्ठपोषक हैं। आज तक कितने सज्जन इसके मेंबर हुए हैं। कितना चंदा जमा हुआ है और कितने के वचन मिल चुके हैं। संघ के लिए कौन सा स्थान चुना गया है; वह कैसा है और किसका है। संघ की नियमावली या Articles of Association बन गई है या नहीं। बनी है तो कहाँ है। आपकी निज की राय इसके सम्बन्ध में क्या है। कष्ट तो होगा; पर रायबरेली में आपके सिवा मेरा सहायक और कोई नहीं। मुझे उपहास से बचा लीजिए।

बन्दूक़ के लायसंस की किताब मिल जाने पर भेज दीजिएगा। बंदूक़ मेरे पास १ जनवरी से बिला लायसंस है।

कृपापात्र
म० प्र० द्विवेदी

(६)

दौलतपुर, रायबरेली
१४-५-३५

सादर और सप्रेम प्रणाम,

जबलपुर से भेजा गया आपका ११मई का कृपा-पत्र मिला। मैं उसे पढ़ कर परम प्रसन्न हुआ।

आपने बड़े अच्छे सम्बन्ध किये। कान्यकुब्जीयता के विषय में आपके विचार बड़े ही उदार हैं। मैं आपके विचारों से सहमत हूँ। अपनी जान-पहचान के आदमियों में ऐसे ही विचारों का प्रचार करने की चेष्टा कीजिए। आपकी पहुँच दूर दूर तक है। आशा है, आपकी चेष्टा से कुछ तो सुधार ज़रूर हो जायगा।

पाठक जी निःसन्देह वही हैं जिनसे मैं कानपुर में कई दफ़े मिल चुका हूँ।

मुझसे भूल हुई। मैंने चि० विष्णुनारायण को ही आपका बड़ा लड़का समझा था। परमात्मा करे वह Sandhurst की परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाय।

मेरे भानजे की लड़की भारद्वाज गोत्री सखरेज के तिवारियों के वंश की है। अभी छोटी है। दो तीन वर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद शादी करूँगा। अभी उसे स्कूल ही में रक्खूंगा। जन्म-पत्रों पर मेरा विश्वास नहीं। ज़रूरत ही होगी तो समय पर उसे ढूंढ़ कर भेज दूंगा। आपसे मुझे सहायता की पूरी आशा है। इसी से मैंने आपको पहले ही से प्रार्थना-पत्र भेज दिया है।

मेरी आँखें खराब हैं। मोतियाबिन्द बढ़ रहा है। इसी से लंबी चिट्ठी नहीं लिखी।

कृपापात्र
म० प्र० द्विवेदी

(७)

दौलतपुर, रायबरेली
१७-७-३५

श्रीमान् तिवारी जी को सादर प्रणाम

कालीचरण सुनार के हाथ आपकी १५ मार्च की चिट्ठी मिली।

इंडियन प्रेस के बाबू ने भूल से पारसल रायबरेली भेज दिया। उसकी रसीद मैंने २३ फ़रवरी को आपको भेजी थी। लिफ़ाफ़े के भीतर पारसल का महसूल ६ आना भी था। वह किसी ने भाँप लिया और चिट्ठी उड़ा दी। अब मैंने प्रेस को लिख दिया है कि अपना पारसल वापस मँगा लें।

आपने १॥) नाहक़ लौटाया। जिन महाशय के नाम वकालतनामा था उन्हीं को दे देना था। लायसंस बन्दूक़ पुलिस से अब तक नहीं मिला। शायद ही वे लोग अपने आप भेजें। ख़बर तक न देंगे। मुझमें थाने तक जाने की शक्ति नहीं। ख़ैर आपकी चिट्ठी लायसंस की जगह रख लूंगा। ६ महीने हुए तलवार वग़ैरह ५ हथियार पुलिस में जमा कर दिये थे। अब उनको रखने की मुमानियत नहीं। पुराना नोटिफ़िकेशन cancel हो गया। पुलिस को लिख चुका—हथियार लौटावो, उस दिन अस्थाना साहब को भी लिखा। मगर कोई दाद नहीं देता। मालखाने के मुंतज़िम ने लिखा है—यहाँ आकर ले जाव। ये हैं इंतिज़ाम की ख़ूबियाँ!

पं० शिवशंकर तिवारी ने मुझे औषधालय की बाबत कुछ नहीं लिखा। एक महाशय रायबरेली गये थे। वे कहते थे, पिछली मीटिंग में कुछ नहीं हुआ। रुपये की मंज़ूरी मिल जाने पर भी किसी ने रेज्योल्यूशन नहीं मूव किया कि इस रुपये से दौलतपुर में दवाख़ाना खोला जाय। ये हैं, हमारे स्थानिक स्वराज्य की नियामतें! भगवान् करे यह बोर्ड फिर supersede हो जाय। भला हो हचिसन साहब का। वह यहाँ खुद आया। दो घंटे तक मेरे कमरे में बैठा। शरबत-पानी किया। मेरी प्रार्थना पर मवेशीख़ाना १ हफ्ते के अन्दर खोल दिया। कई हज़ार रुपये की पुख्ता इमारत मदरसे की बनवा दी। मेरी अक्ल पर पत्थर पड़े थे। कहता तो दवाख़ाना भी कब का खुल गया होता। एक ये हज़रत हमारे देशी भाई हैं जो चिट्ठी का जवाब तक नहीं देते। मवेशीख़ाने का बाड़ा लकड़ी-काँटों का है। एक ऊँट उस दिन उसे तोड़कर भाग गया। बोर्ड का ८०) का नुक़सान हुआ। एक भैंस ने कल रात को फाटक ही तोड़ डाला। मरम्मत कराओ तो छः छः महीने तक रुपया ही नहीं मिलता। कहाँ गई आपकी वह Majority इन सब ऐबों को दूर कराइए। २ वर्ष से मवेशीख़ाना है। बोर्ड को मुनाफ़ा है। पिछले ११ महीनों में बोर्ड को कोई ९०) का Net-profit हुआ है। ८० रु० हुए मैंने चेयरमैन साहब को लिखा है कि अगले बजट में ढाई-तीन सौ रुपये की मंज़ूरी माँग कर पुख्ता इमारत बनवादें। मगर शायद ही उनके नक्कारख़ाने में मुझ तूती की आवाज़ कोई सुने। मुझे मालूम हुआ है कि चेयरमैन साहब पं० जानकीशरण के लड़के हैं। आप जानते ही हैं वे मुझसे मिलने आपके स्थान पर आया करते थे। मैं भी उनसे मिलता रहता था। पर उनके साहबज़ादे मुझ पर कम कृपा करते हैं। अबके दफ़े मैंने उन्हें हिन्दी में चिट्ठी लिखी है और शेख़ सादी की इस उक्ति की उन्हें याद दिलाई है—

अय ज़बरदस्त ज़ेरदस्त आज़ार
गर्म ता कै बुमानद ईं बाज़ार
ब चे कार आयदत जहाँदारी
मुर्दनत वेह के मर्दुम आज़ारी

अगर वे आपके मित्र हों तो मेरी यह चिट्ठी उन्हें सुनाइए। शायद मेरे रोने-धोने का कुछ असर उन पर हो। दवाख़ाने की मंज़ूरी कराइए। D. C. की मंज़ूरी बहुत सा रुपया पंचायत का मैं दवा में खरीदने में खर्च चुका। कोई १००) अपने पास से खर्च किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बक्स दवाओं के मेरे कमरे में हैं। देते देते थक गया। उस दिन D. M. C. आये थे। खुद दवायें देख गये हैं।

काँजीहौस की इमारत के बारे में मैंने पं० चन्द्रशेखर मिश्र, accountant, को भी लिखा है कि वही कोशिश करके अपने किसी मित्र से एक रेजोल्यूशन पेश कराकर बजट में provision रुपये की करा दें।

आप धन्य हैं जो रामायण से प्रेम करते हैं। विनय-पत्रिका भी पढ़ा कीजिए। मैं तो कूलद्रुम हो रहा हूँ। संसार में मेरा आत्मीय कोई नहीं रहा। इस कारण निराश दशा में मैं सुबह रोज़ भगवान् से यह प्रार्थना करता हूँ—

क्षुद्र सी हमारी नाव चारों ओर है समुद्र
वायु के झकोरे उग्र रुद्र रूप धारे हैं।
शीघ्र निगल जाने को नौका के चारों ओर
सिंधु की तरंगें सौ सौ जिह्वायें पसारे हैं॥
हारे सभी भाँति हम अब तो तुम्हारे बिना
झूठे ज्ञात होते और सबके सहारे हैं।
और क्या कहें अहो डुबा दो या लगा दो पार
चाहे जो करो शरण्य शरण तुम्हारे हैं॥

लौकिक कार्यों के लिए मैं भी आपकी शरण चाहता हूँ।

शरणार्थी
म० प्र० द्विवेदी

(८)

दौलतपुर
४-९-३५

श्रीमान् तिवारी जी को सादर प्रणाम,

एक शिकायत सुन लीजिए, आप लोगों के प्रयत्न करने और मेरे बहुत रोने-धोने पर बोर्ड ने यहाँ एक दवाखाना खोला। वैद्य जो आये, सज्जन और शिक्षित थे। उनके लिए मकान दिया, दवाखाने के लिए एक अच्छा कमरा दिया, बैठने और मरीज़ों को देखने के लिए बँगला दिया। वे बड़े आराम से यहाँ सस्त्रीक रहने लगे। रोज़ गंगा-स्नान करते थे। वे ४ महीने ही रहे थे कि बिला पूर्व सूचना के यहाँ से हटाकर रोखा भेज दिये गये।

मैंने दूसरा वैद्य माँगा तो उनका तबादिला मुल्तवी कर दिया गया। मगर यह हुक्म आने के पहले ही वे चले गये थे। अब कोई ३ हफ्ते से यहाँ कोई वैद्य नहीं। बेचारे मरीज़ दूर दूर से आते हैं और नाउम्मेद लौट जाते हैं। चेयरमैन साहब को लिखा तो जवाब नदारद। क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। सुनता हूँ, 'खुशामद ज़रूर कामयाब होती है' वह हज़म नहीं होती।—

केश पचै, मक्खी पचै, हालाहल पचि जाय।
जाहि खुशामद पचति है तासों नाहिं उपाय।

मगर इन लोगों को खुशामद भी पच जाती है।

औषधालय के लिए इतनी आराम की जगहें दीं। मगर जब २) माहवार किराया माँगा तो सूखा जवाब। हालाँ कि बोर्ड के पास हज़ारों रुपया बचत में दिखाया गया है। यह मुझे चेयरमैन साहब की रिपोर्ट की उस आलोचना से मालूम हुआ जो लीडर में निकल चुकी है।

कृपा करके आप खुद या भाई साहब की मारफ़त फिर एक बार चेयरमैन साहब से कह-सुन दीजिए। दवाखाना यहाँ का न तोड़ें। जो वैद्य यहाँ थे वे न भेजे जा सकें तो और ही कोई भेज दिया जाय। बोर्ड के मुलाज़िमों को अगर अपने कर्तव्य-पालन की चिन्ता नहीं, तो न सही। दया-दाक्षिण्य को तो वे धता न बतावें।

कृपापात्र
म० प्र० द्विवेदी

(९)

दौलतपुर (रायबरेली)
१५-१०-३५

श्रीमान् तिवारी जी को प्रणाम,

मेरा एक काम और कर दीजिए। आपको छोड़कर किसे कष्ट दूं। पत्र के साथ जो "नोट" भेजता हूँ उसे बोर्ड के किसी मेंबर को दे दीजिए। आपके भाई साहब अगर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मेंबर हों तो उन्हीं को दे दीजिए। ऐसी कोशिश कर दीजिए जिसमें पौंड की इमारत बन जाय और जल्दी ही काम शुरू हो जाय। यह न हो सके तो बजट में खर्च की मंज़ूरी की गुंजायश तो रक्खी जाय। पौंड के बाड़े की बुरी हालत है। जानवरों की तकलीफ़ देखकर मैं तो कभी कभी रो देता हूँ। मैं अपने जानवरों को पुख्ता और साफ़-सुथरी इमारत में बड़े आराम से रखता हूँ। चेयरमैन साहब को मैं अलग लिख रहा हूँ। उन तक भी मेरी प्रार्थना पहुँचा दीजिए। बड़ी दया होगी।

कृपापात्र
महावीरप्रसाद द्विवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोट—

आक्टोबर १९३२ में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अफ़सर इनचार्ज, स्टिफेंसन साहब, दौलतपुर आये। मुझसे मिले। खुश रहे। मेरी दरख्वास्त पर उन्होंने यहाँ एक मवेशीखाना खोल दिया। वह १८ आक्टोबर से खुला। ९ महीने तक वह मेरी देख-भाल में इम्तिहानन रहा।

इस दरमियान में खर्च बाद देकर बोर्ड को १५५ का मुनाफ़ा रहा।

तीन महीने तक वह और भी इम्तिहानन चलाया गया। काम खूब चलता रहा।

आक्टोबर १९३३ में पौंड मुस्तक़िल (Permanent) कर दिया गया और एक मुहर्रिर मुक़र्रर किया गया। १ अप्रैल ३४ से २८-२-३५ तक, याने ११ महीने में, आमदनी और खर्च का हिसाब नीचे दिया जाता है—

आमदनी ...	३१०	९	७
खर्च ...	२२१	२	०
मुनाफ़ा ...	८९	७	७

इधर अप्रैल ३५ से सितंबर ३५ तक (६ महीने) का हिसाब यह है—

आमदनी ...	२१७	३	६
खर्च ...	११८	८	०
मुनाफ़ा ...	९८	११	६—

इससे ज़ाहिर है कि पौंड की आमदनी बढ़ रही है।

पौंड को खुले ३ साल हो गये। लकड़ियों और काँटों का एक घेरा बना दिया गया है। उसके बीच में फूस का एक छप्पर है। जानवर उसी के भीतर रहते हैं। बहुत हो जाते हैं तो कुछ धूप, बारिश और जाड़े की तकलीफ़ें भोगते हैं। कभी कभी कोई जानवर बाड़ा तोड़ कर निकल जाता है और बड़ी मुश्किल से पकड़ मिलता है। परसाल १ ऊँट भाग गया। मिला नहीं। बेचा जाता तो ८०) से कम में न बिकता। यह नुक़सान बोर्ड को व्यर्थ ही उठाना पड़ा।

चेयरमैन साहब को २ दफ़े लिखा कि पौंड की इमारत बनवा दीजिए। हालाँ कि बोर्ड के पास १ लाख से ऊपर बचत है, मगर इमारत अब तक नहीं बनी। हाकिम तहसील मुआइने में लिख गये हैं कि पौंड का बाड़ा बोर्ड के इंतिज़ाम पर काले धब्बे के समान है।

बोर्ड का अगला बजट बन रहा होगा। ज़रूरत है कि एक प्रस्ताव (Resolution) बजटवाली मीटिंग में पेश किया जाय। उसमें सिफ़ारिश की जाय कि दौलतपुर के पौंड की इमारत के खर्च की गुंजायश रक्खी जाय। मुमकिन हो तो बजट मंज़ूर होने के पहले ही बोर्ड अपनी बचत से इमारत बनाना शुरू कर दे।

म० प्र० द्विवेदी

१५-१०-३५

(१०)

दौलतपुर (रायबरेली)

२३-७-३६

नमोऽस्तु सादरं तुभ्यम्

मैं अब बहुत बूढ़ा हुआ। आँखें कम काम देती हैं। उस दिन गिर पड़ा। दाहने हाथ की एक उँगली बेकार हो गई। घुटनों में भी चोट लगी। चलने कम पाता हूँ।

मुझ असमर्थ की कुछ मदद कर दीजिए। बहुत पुण्य होगा। मेरे भानजे की लड़की मनोरमा १४ साल की हुई। अँगरेज़ी मिडिल तक पढ़ी है। जून ही में स्कूल छोड़ा है। सखरेज के तिवारी-वंश की है—कश्यप, गौर वर्ण, रूपवती, तन्दुरुस्त, काम-काज में बड़ी होशियार। उसके लिए कोई लड़का तज़वीज़ कर दीजिए। खाते-पीते सज्जनों के घर का। शिक्षित। रूढ़ियों और कुलीनता के ढकोसलों से दूर रहनेवाला।

कहिए तो कान्यकुब्ज में विज्ञापन दे दूं।

कृपापात्र

म० प्र० द्विवेदी

(११)

दौलतपुर (रायबरेली)

१५-३-३६

श्रीमान् त्रिपाठी जी को सादर प्रणाम,

१३ मार्च की चिट्ठी मिली। यह आपके [illegible] माननीय मित्रों और सज्जनों के आशीर्वाद और शुभचिन्तन का फल है जो विवाह-कार्य्य निर्विघ्न समाप्त हो गया। डाक्टर साहब के सौजन्य की मैं कहाँ तक प्रशंसा करूँ। उन्होंने अपने सद्व्यवहार से हम लोगों को कृतज्ञता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी जंजीर से बाँध डाला है। उन्होंने समधी का जैसा बर्ताव नहीं किया। किन्तु सन्मित्र या सद्बन्धु के सदृश सब कार्य किया। ईश्वर करे उनके बाल-बच्चे सलामत रहें।

भाई साहब, अपने मन की एक बात लिखता हूँ। मैं आपको निमंत्रित करना चाहता था। पर अपनी असमर्थता देखकर सङ्कोच में आ गया। मैं बहुत कमज़ोर हूँ; उठने-बैठने में भी कष्ट होता है। घर में और कोई ऐसा नहीं जो मेहमानों के आराम का ख़्याल रखता। आप आते तो कष्ट पाते, इसी से बुलाने की धृष्टता मैंने नहीं की।

मेरी मानसिक अवस्था अच्छी नहीं। व्यथित-हृदय हूँ। बहुत दुखी होने पर भागवत के विनयपरक श्लोक पढ़ पढ़ कर रोया करता हूँ।

मैंने मंडप के नीचे और भोजन के समय डाक्टर साहब की विनती हिन्दी में की थी। वे विनयपत्रक डाक्टर साहब ने न दिखाये हों तो उनसे माँग कर पढ़ लीजिएगा।

कृपापात्र
म० प्र० द्विवेदी

(१२)

दौलतपुर (रायबरेली)
६-१०-३७

श्रीमान् पं० गुरुदयाल जी को सादर प्रणाम,

कृपादर्शक पोस्टकार्ड मिला। अनेक धन्यवाद। आपकी मुझ पर जो इतनी दयादृष्टि है उसे मैं अपने सौभाग्य की सूचक समझता हूँ।

भाई साहब, मेरी यह अन्तिम अवस्था है। अनेक शारीरिक व्याधियाँ घेरे रहती हैं। आँखें ही क्या सभी इन्द्रियाँ शिथिल हो रही हैं। देखूं, कब तक ये भोग भोगने पड़ते हैं। पं० शिवगोविन्द जी को मेरा नमस्कार।

कृपापात्र
म० प्र० द्विवेदी

(१३)

दौलतपुर (रायबरेली)
२६-११-३७

श्रीमान् पं० गुरुदयाल जी को सादर प्रणाम,

कृपा करके, मेरे लिए, कुछ बेगार फिर कर दीजिए। बंदूक़ का लायसंस दिसम्बर ३७ के अन्त तक ही है। उसे अगले ३ साल के लिए फिर नया करा दीजिए। बुढ़ापे के कारण बंदूक़ लेकर चलने में मुझे कष्ट होने लगा है। हो सके तो लायसंस में एक attendant भी दर्ज करा दीजिए। ऐसा होता है। न हो सके तो न सही।

लायसंस रजिस्टर्ड पैकेट से अलग भेज रहा हूँ। उसी के भीतर वकालतनामा भी है। पं० शिवगोविन्द जी को यह काम सौंप दीजिए। वे न कर सकें तो और ही किसी से करा दीजिए।

१०) का मनीआर्डर भेज रहा हूँ। ७॥) तो तीन साल की फ़ीस नये लैसंस की है। २॥) ऊपरी खर्च के लिए है। और जो आज्ञा हो भेज दूं।

आपको मैं बहुधा कष्ट देता हूँ। मुझ पर आपके अनेक एहसान हैं। कहाँ तक धन्यवाद दूं।

कृपापात्र
महावीर प्र० द्विवेदी

(१४)

दौलतपुर
७-१२-३७

श्रीमान् पं० गुरुदयाल जी को सादर प्रणाम,

२८ नवंबर को मैंने अपना लायसंस बंदूक़ का आप को भेजा है। पहुँचा हो तो लिखने की कृपा कीजिए और नया कराने की काररवाई करा दीजिए। आज तक आपको अनेक बार कष्ट पहुँचा चुका हूँ। मुझ अधम से और क्या हो सकता है? सहस्र बार हाथ जोड़ कर क्षमा-प्रार्थना करता हूँ।

कृपापात्र
म० प्र० द्विवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र संग्रह

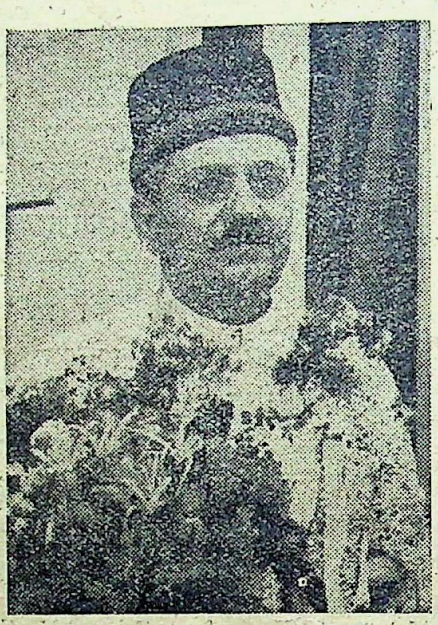

मिस्टर बी० एन० करनिय आप बम्बई के मेयर चुने गये हैं।

अलबानियां के अपदस्थ बादशाह जोग

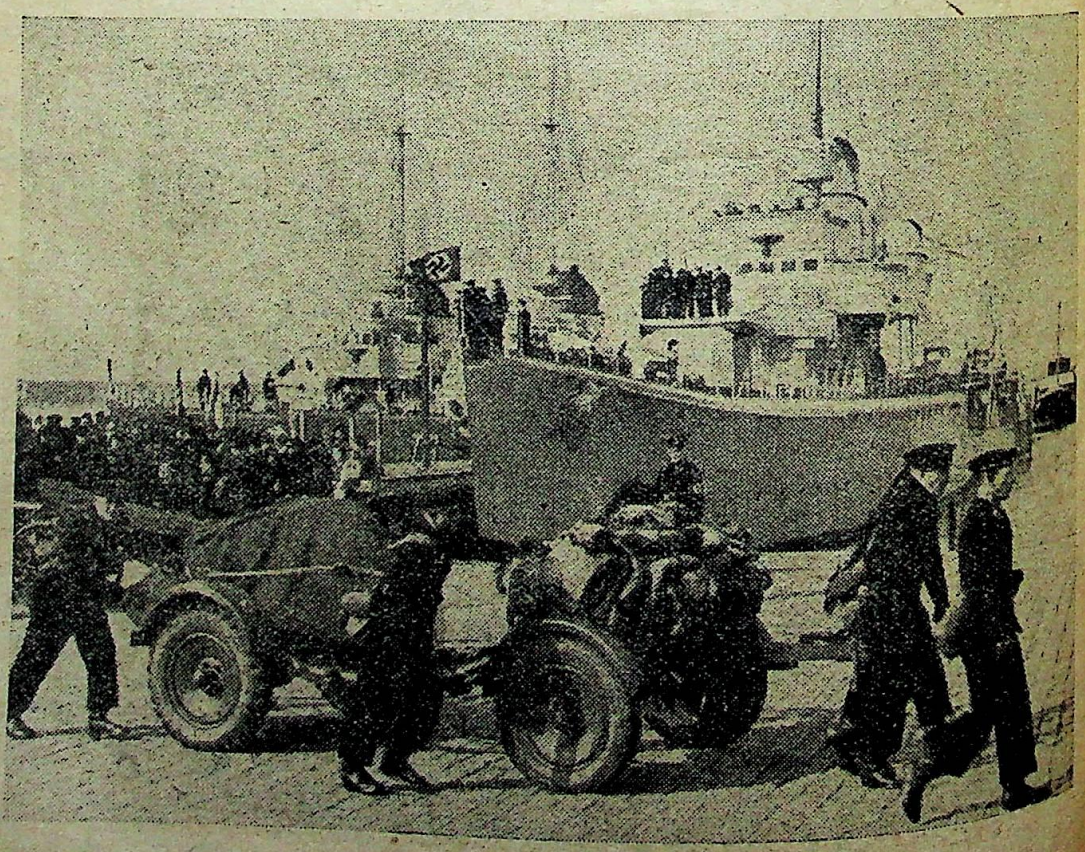

जर्मन सेनाएँ और मेराइनें मेमेल में प्रवेश कर रही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जर्मन सिपाही जेक-जनता के साथ मित्रता पैदा कर रहें हैं।

फ्रान्स की जनता भावी महायुद्ध के लिए तैयारी कर रही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

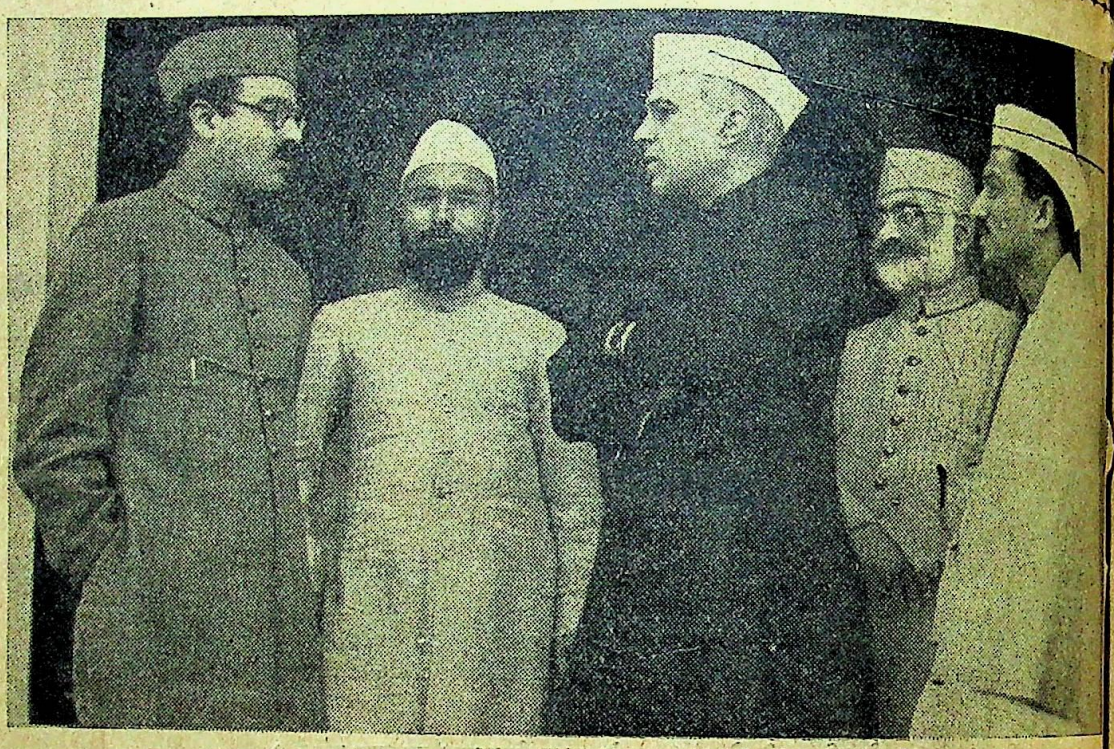

नेहरू जी कांग्रेस के कुछ प्रमुख कार्य कर्त्ताओं से परामर्श कर रहे हैं

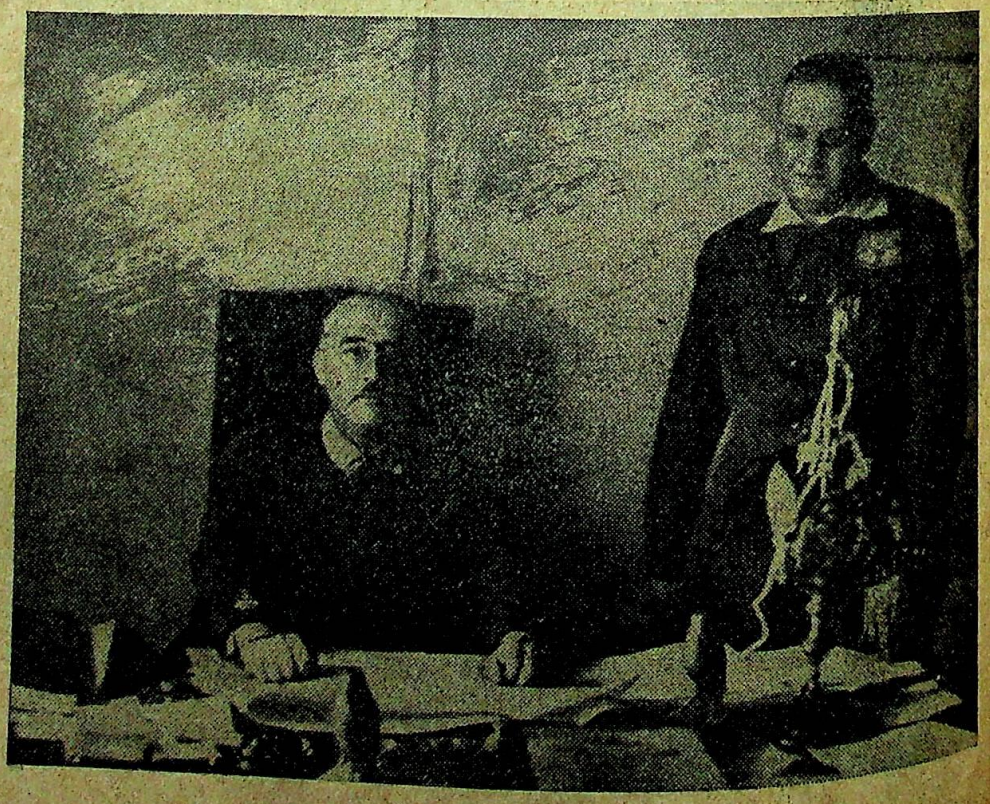

स्पेन के नये डिक्टेटर जनरल फ्रेंको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग नं० ३४ का नतीजा

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ३ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १००) मिला।

(१) नन्दलाल, अमरकोट, राजपूताना।

(२) मिनतिदेवी c/o एस्टीमेटर सुपरिन्टेण्डेण्ट इंजिनियरिंग आफ़िस क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता।

(३) शीतलाप्रसाद महादेवप्रसाद, c/o मैसर्स टेलरी एण्ड संस भदोही, बनारस स्टेट।

द्वितीय पुरस्कार १७६) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ४ व्यक्तियों में बाँटा गया, प्रत्येक को ४४) मिला।

(१) इलादेवी, लक्ष्मीविलास. रंगून।

(२) शकुन्तलादेवी c/o नन्दलाल. अमरकोट, राजपूताना।

(३) असीदेवी c/o एस्टीमेटर सुपरिन्टेण्डेण्ट इंजिनियरिंग आफ़िस, क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता।

(४) हरिदत्त लोहुमी, म्युनिसिपल स्कूल तल्लीताल, नैनीताल।

तृतीय पुरस्कार १५) (दो अशुद्धियों पर)

श्रीमती रामनारायण कक्कड़ १४५, चक, इलाहाबाद।

चतुर्थ पुरस्कार ८) (तीन अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित दो व्यक्तियों में बाँटा गया, प्रत्येक को ४) मिला।

(१) राजमती देवी गोयल ४३, पानदरीबा, इलाहाबाद।

(२) राघवाचार्य भुरबानी ३७ के चेलू बंबागृह, मैसोर।

पंचम पुरस्कार १) (चार अशुद्धियों पर)

आदित्यनारायणसिंह शर्मा धौरानी टोला मोकामा, पटना।

उपर्युक्त सब पुरस्कार ३० जून को भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।

केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सन्तराम बी० ए०-लिखित दो अमूल्य नई पुस्तकें

जान जोखिम की कहानियाँ

बालक कहानियाँ बड़े चाव से पढ़ते हैं अतः उनके पढ़ने के लिए ऐसी कहानियाँ होनी चाहिए जिससे उनका मनोरञ्जन भी हो और साथ ही ज्ञान-वृद्धि भी। इस पुस्तक में ऐसी ही बालोपयोगी १३ कहानियाँ हैं जो बड़ी सरल और रोचक भाषा में लिखी गई हैं। सिंहों, अजगरों तथा समुद्री जानवरों के मुँह से किस प्रकार छुटकारा हुआ; मनुष्य को खानेवाले वृक्ष कहाँ होते हैं आदि अनेक रोचक वृत्तान्तों का इसमें सचित्र संग्रह किया गया है। मूल्य केवल ॥=) है।

विश्व की विभूतियाँ

इस पुस्तक में संसार के १२ महापुरुषों की जीवन-कथा बड़ी सरल व ओजमयी भाषा में लिखी गई है। स्थान-स्थान पर सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं। पुस्तक बालकों के लिए तो उपयोगी है ही, बड़ी आयुवाले भी इससे बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। मोटे काग़ज़ पर छपी सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १॥) है।

मैनेजर, (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यत्यस्त रेखा शब्द पहेली

CROSSWORD PUZZLE IN HINDI

३००) शुद्ध पूर्तियों पर

२००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक पूर्ति-संख्या सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की हुई हो। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस नीचे के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनीआर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या उससे ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने कम के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ३५, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े के दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २४ जून तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २२ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बायें से दाहिने—

१—आगरे का प्रसिद्ध रौज़ा।
४—देहाती आदमी शहर में पहली बार पहुँचने पर . . .— सा दिखाई देता है।
६—इसके आगे बड़े-बड़ों का साहस छूट जाता है।
९—इसका विस्तार आज तक कौन नाप सका है।
११—इसका विश्वास लोग एक बार तो कर लेते हैं पर बार बार नहीं करते।
१३—जो काम .... में किये जाते हैं वे अक्सर बिगड़ जाते हैं।
१५—जिसे इसका बल होता है वह हिम्मत नहीं हारता।
१७—आज-कल इस पेशे में भी अच्छी आमदनी नहीं।
१९—जिसके सँभाल कर लग जाता है, उसे किसी काम का नहीं छोड़ता।
२०—भरद्वाजमुनि यहीं निवास करते थे।
२५—इसे देख कर कौन मोहित नहीं होता।
२६—नगर का सबसे बड़ा महाजन।
२८—इसे खाना कौन पसन्द करेगा।
२९—चतुर स्त्रियाँ इसकी सफ़ाई पर अधिक ध्यान देती हैं।
३०—आज्ञा।
३२—राजा लोग सेना के साथ इसे भी ले जाते हैं।
३४—गाड़ी इसी पर चलती है।
३५—इसके कपड़े महँगे होते ही हैं।
३६—यह चलने के लिए बनी है।

ऊपर से नीचे—

१—मुक़दमेबाज़ इसकी बहुत याद रखते हैं।
२—ज़मींदार इसकी रक्षा में अधिक सतर्क रहते हैं।
३—यह न हो तो नृत्य का मज़ा ही क्या।
५—जाड़े की यह ग़रीबों को बहुत दुःख देती है।
७—हलका मीठा दर्द।
८—इसे सब सताते हैं।
१०—अपने होनहार इसको देख कर कौन प्रसन्न नहीं
१२—पुराने इससे लोग अधिक धन-प्राप्ति की
रखते हैं।
१६—इसे सब चाहते हैं।
१८—यह छूने से मुरझा जाता है।
२१—देवता इससे प्रसन्न होते हैं।
२२—बहुत ऊँचा।
२३—अपने मित्रों से यह फेरना असीलों का काम
२४—सूची या फ़ेहरिस्त।
२७—जनता इसी से वश में आती है।
२९—इसका नाश कोई नहीं चाहता।
३१—बाज़ार में ऐसे सिक्के बहुत चलते हैं।
३३—इसका रोज़ सेवन करना हाज़मे को बिगाड़ देता

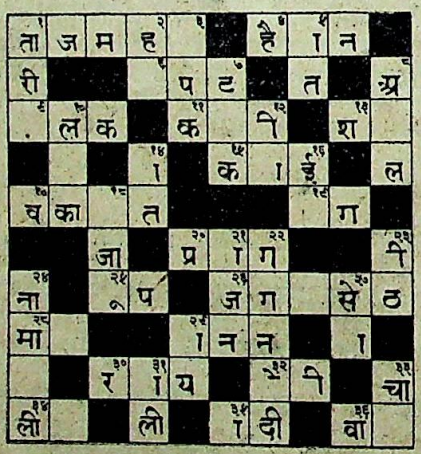

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३५ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

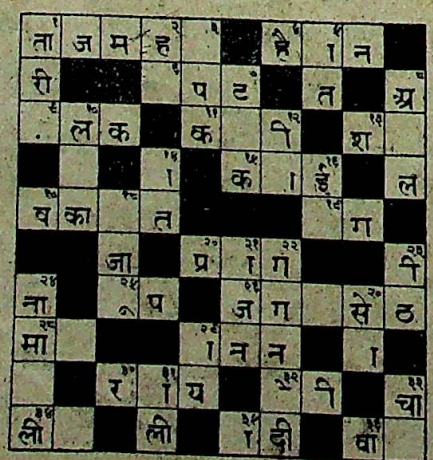

वर्ग नं० ३४ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ३४ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।

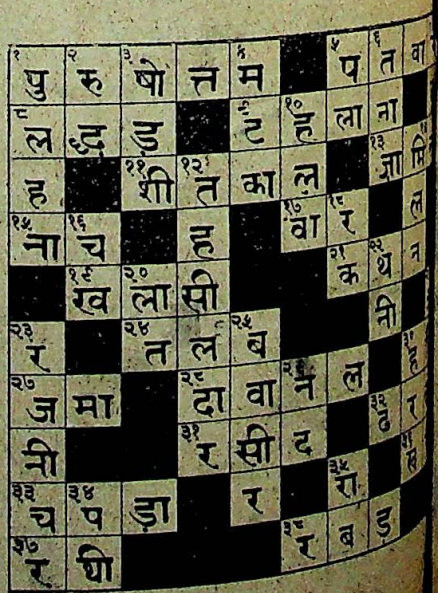

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग नं० ३४ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ३४ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०...में { कोई अशुद्धि नहीं है। १,२,३,४ अशुद्धियाँ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर _____

पता _____

_____

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १५ जून के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० ३५

इंडियन प्रेस, लि०,

इलाहाबाद

मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

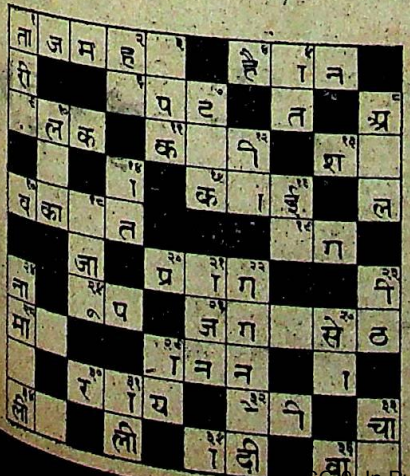

इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० ३५ पूर्ति नं०... फ़ीस ।।)

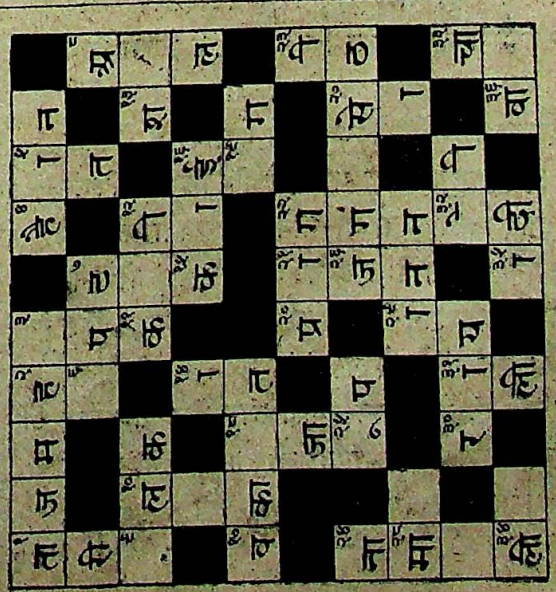

वर्ग नं० ३५ पूर्ति नं०... फ़ीस ।।)

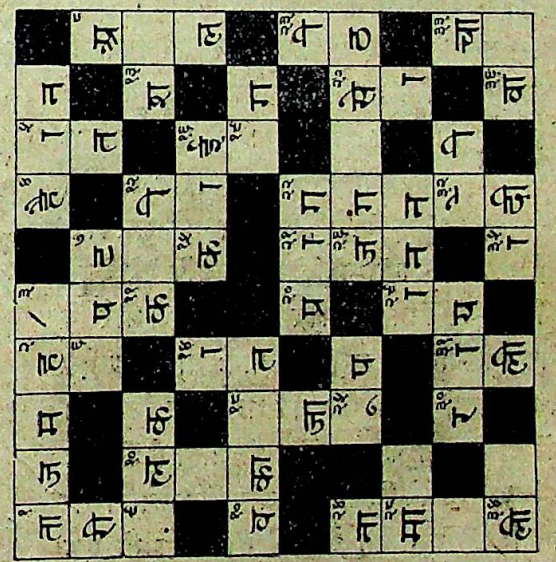

वर्ग नं० ३५ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

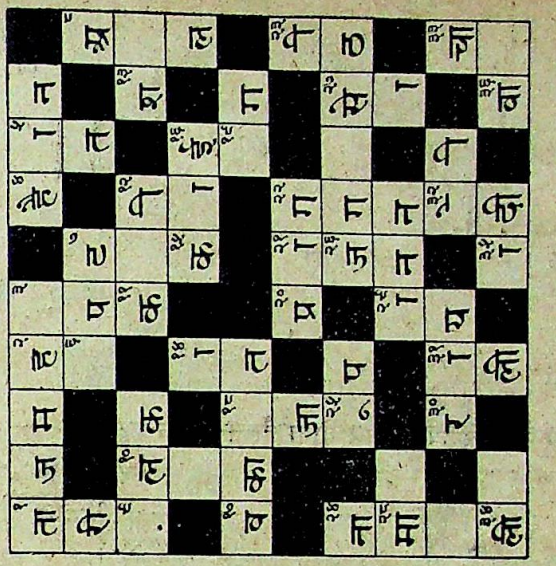

रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा रहित और पूर्ण हैं।

नाम _____ पता _____

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को यों ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ ६२४ पर देखिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग नं० ३३ पर शंकायें

श्रीमान् वर्ग-निर्माता जी व संपादक जी,

आशा है कि आप मेरी दलीलों को न केवल ध्यान से ही पढ़ेंगे वरन् उनका उत्तर भी देंगे, क्योंकि सरस्वती में क़रीब २॥ साल से वर्ग निकल रहे हैं। हर बार कोई-न-कोई प्रथम पुरस्कार पाता है। कई बार तो ऐसा भी होता है कि कई-कई सज्जन प्रथम पुरस्कार पाते हैं। फिर दूसरे, तीसरे और चौथे पुरस्कारों को पानेवालों की संख्या तो दर्जनों तक पहुँचती है। मैं लगभग एक साल से बराबर वर्ग भर कर भेज रहा हूँ। कोश की सहायता लेता हूँ; अपना दिमाग़ भी ख़र्च करता हूँ, अपने इष्ट-मित्रों और पास-पड़ोस के बैठनेवालों से भी सलाह लेता हूँ, पर मेरा नाम पुरस्कार-विजेताओं में आज तक कभी नहीं आया, यद्यपि मेरे देखते देखते मेरे कितने ही मित्र पुरस्कार पा चुके हैं और वे मुझसे अधिक बुद्धिमान् भी नहीं हैं। प्रायः आप कुछ ऐसे शब्द दे देते हैं, जिनमें दो-दो तीन-तीन शब्द फ़िट बैठते हैं। इस दशा में यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि इन शब्दों में से किस शब्द को लिखा जाय और किसे छोड़ दिया जाय। जब मित्रों से सलाह लेता हूँ तो वे या तो एक शब्द पर अड़ जाते हैं, या दूसरे पर। पर इसका कोई खास भेद समझ में नहीं आता कि कौन शब्द लिखा जाय और क्यों; तथा कौन शब्द न लिखा जाय और क्यों? यदि मुझे इसका ठीक-ठीक नियम आप बता दें तो मैं फिर भी प्रयत्न करता रहूँगा और आशा है कि किसी-न-किसी दिन मेरी पूर्ति अवश्य ठीक आ जायेगी। कृपया यह भी बतलायें कि यदि मैं दस पाँच कूपन भर कर भेजूं तो उन्हें किस ढँग से भरूँ जो उनमें से कोई न कोई तो बिलकुल शुद्ध आ ही जाय। वर्ग नं० ३३ के संबंध में मैं अपनी कुछ शंकायें भेज रहा हूँ, यदि आप इनका ठीक-ठीक समाधान कर दें तो मेरी समझ में आ जायगा और फिर मैं भी आपके बताये ढँग से भरने का प्रयत्न करूँगा।

(१) नं० ५ बायें से दाहिने

संकेत—"इसके कौशल की परीक्षा कठिन स्थान पर होती है।" इसमें वाहक, और वाचक ये दो शब्द बनते हैं। इनमें मेरी समझ में तो 'वाहक' अधिक ठीक है। वाहक के अर्थ हैं रथ हाँकनेवाला, सारथी, गाड़ीवान-इत्यादि। जहाँ ऊँची-नीची भूमि होती है वहीं इसकी जाँच होती है कि रथवान कुशल है या नहीं। आपकी 'सरस्वती' के पिछले अंक में ही पढ़ा था कि—सारथी, योगी और कवि की परीक्षा विषम धरातल पर होती है। यह लेख भी और किसी का नहीं, स्वयं संपादक जी का लिखा हुआ था; फिर इसके लिए मैंने भी 'वाहक' लिखा तो वह अशुद्ध कैसे होगया और वाचक से क्या यहाँ मतलब है? वाचक तो कथा कहने-वाले को कहते हैं, उसकी परीक्षा और अपरीक्षा का प्रश्न ही कब उठता है?

(२) चरवाह या हरवाह

इसी में नीचे 'चरवाह' और 'हरवाह' ये दो शब्द बनते हैं। 'चरवाह' न होने से भी काम चल जाता है पर हरवाह बिना किसी गाँव का काम नहीं चल सकता, फिर हरवाह अशुद्ध है और चरवाह क्यों शुद्ध है?

(३) गाछ या माछ?

नं० ९—संकेत—"बिना जल के इसका जीवित रहना कठिन है।" यह गाछ क्यों हुआ? गाछ छोटे पौदे को कहते हैं। पहाड़ों पर छोटे पौदे बिना जल के जीवित रहते हैं। हाँ, माछ अलबत्ता बिना जल के तुरन्त मर जाती है। फिर 'माछ' न देकर आपने 'गाछ' क्यों दिया? कुछ और भी शंकायें हैं। उन्हें फिर लिखूंगा।

आपका उत्तरोत्सुक
शिवदुलारे शर्मा,
गंगापुर, फ़र्रुखाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

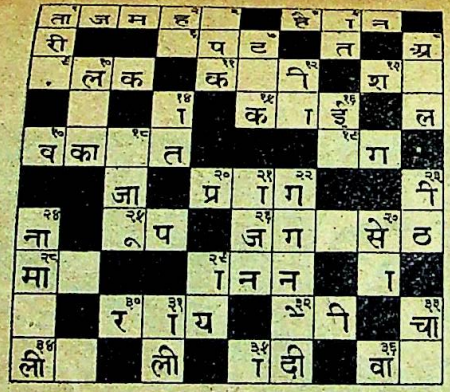

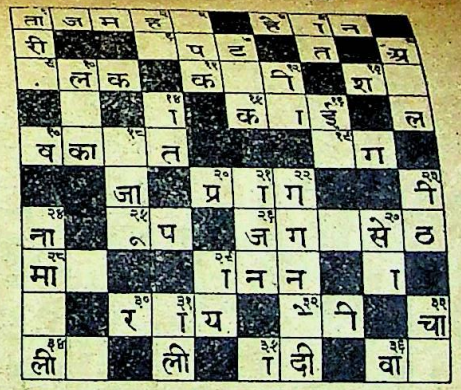

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३५ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० ३५ पूर्ति नं०... फ़ीस ॥)

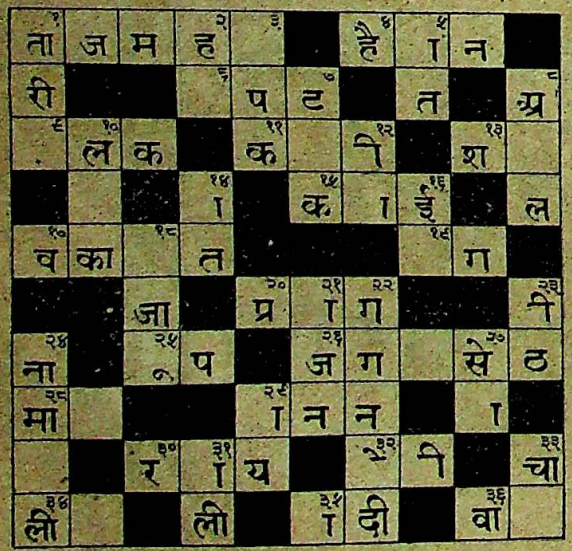

वर्ग नं० ३५ पूर्ति नं०... फ़ीस ॥)

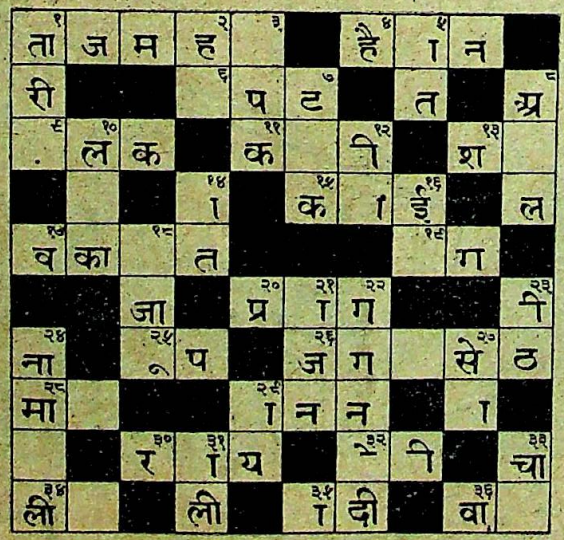

वर्ग नं० ३५ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

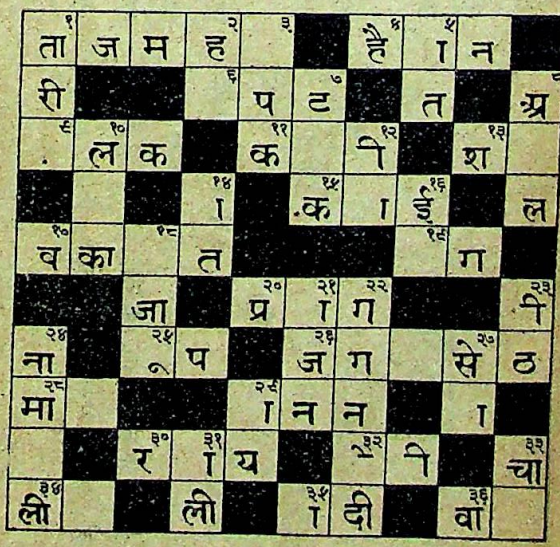

नाम पता

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काटकर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो यों ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ ६२४ पर देखिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक सूचनायें

(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० ३५ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो ख़ाने ख़ाली छोड़ देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर ३५ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २६ जून सन् १९३१ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

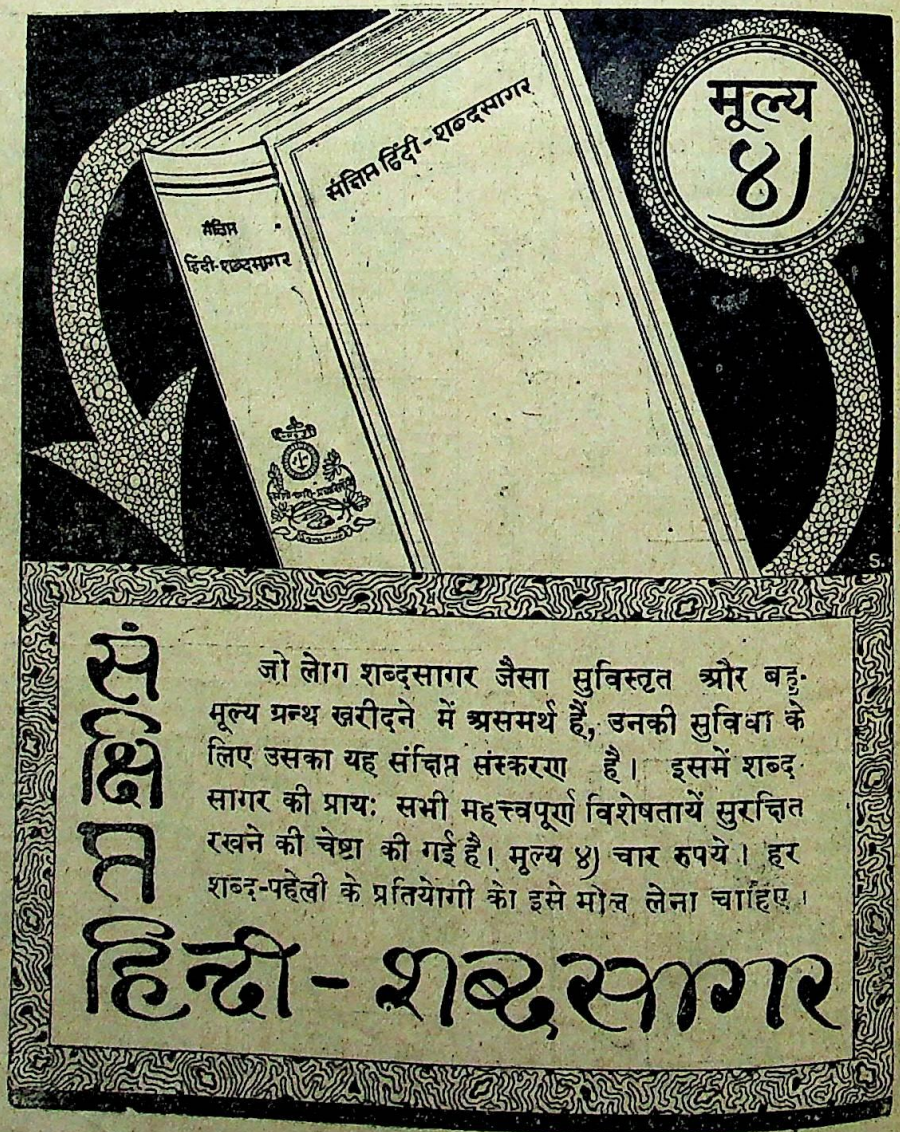

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलों के व्यापार का महत्त्व

लेखक, कुँअर वीरेन्द्रनारायण सिंह, बी० एस-सी०

भारतवर्ष का जलवायु और भूमि इतनी विस्तीर्ण है कि यहाँ सम-शीतोष्ण एवं उष्णकटिबन्ध में उत्पन्न होनेवाले सभी फल और तरकारियाँ अधिकता से उत्पन्न होती हैं। अल्प व्यय और सरलता से मिल जाने के कारण उनका अन्य देशों के अतिरिक्त यहाँ अधिक उपयोग भी होता है। उन प्रान्तों में जहाँ फल-विशेष की बहुतायत होती है, गाँवों के लोग कई दिनों तक फलों पर ही निर्वाह करते हैं। और प्रत्येक व्यक्ति प्रायः प्रतिदिन किसी-न-किसी रूप में उनका सेवन करता है। किन्तु फलों के प्रतिदिन के व्यवहार की अपेक्षा कहीं ज्यादा उनकी व्यापारिक महत्ता है। भारत में फलों की अधिकता होते हुए भी लाखों रुपयों के ताज़े फल और तरकारियाँ प्रतिवर्ष विदेशों से आती हैं जो निम्न-लिखित अंकों से विदित है—

ताज़े फलों एवं शाक-भाजियों का मूल्य

वर्ष	रुपये
१९२९-३०	३३,५९,६१८
१९३०-३१	३३,६६,६६१
१९३१-३२	२६,६३,२४२
१९३२-३३	३२,१७,५४३
१९३३-३४	२८,२५,८८४

सम्भवतः जन-साधारण को इन अंकों को देख कर आश्चर्य होगा। भारत में इस अधिकता से फलों के उत्पन्न होने पर भी उनके विदेशों से आने की क्या आवश्यकता? यही क्यों, कितनी भी और वस्तुएँ हैं जिनकी हमारे यहाँ अधिकता है, फिर भी वे विदेशों से आती हैं। कारण यह है कि फल और तरकारियाँ अपनी ऋतुओं में यहाँ इतनी अधिकता से उत्पन्न होती हैं कि हम लोग उनमें से सबको खर्च नहीं कर सकते। फल-स्वरूप प्रतिवर्ष करोड़ों मन फल सड़कर बरबाद हो जाते हैं। सन् १९३५ में केवल संयुक्त-प्रान्त में १॥ करोड़ मन फल सड़ गये थे। किसी किसी वर्ष फल इस अधिकता से उत्पन्न होते हैं कि मनुष्यों की कौन कहे, पशु तक उन्हें नहीं खाते। ऐसी दशा में बाहर से ताज़े फलों का आना वास्तव में आश्चर्य की बात है। किन्तु विदेशों में यह हाल नहीं है। वहाँ ऋतुफल पूर्ण रूप से वर्द्धन के पहले ही तोड़ लिये जाते हैं और कृमि-रहित काग़ज़ के टुकड़ों में लपेटकर अलग अलग आलमारियों में रख दिये जाते हैं। उस कमरे में एक प्रकार की वायु जिसे कारबोनिक एसिड गैस कहते हैं, भर दी जाती है और उसका ताप-क्रम भी ०। शून्य पर रक्खा जाता है। इस प्रकार अथवा अन्य वैज्ञानिक प्रयोगों से वे फल महीनों तक ताज़े बने रहते हैं, उनके शीघ्र ही खराब हो जाने का भय जाता रहता है और ऐसी ही दशा में वे बाहर भेजे जाते हैं। ताज़े फलों के व्यापार के लिए हमारे देश में कितना बड़ा क्षेत्र खुला हुआ है, यह उक्त आँकड़ों से भली भाँति विदित है। वैज्ञानिक साधनों के द्वारा प्रत्येक ऋतु के फल ताज़े बनाये रखकर भारत के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में भेजने के अतिरिक्त दूसरे देशों को भी भेज सकते हैं। भारतीय ताज़े फलों की विदेशों में अधिक माँग भी है, पर उचित प्रबन्ध न होने के कारण वे बाहर नहीं भेजे जा सकते।

हमारे देश में फलों को मुरब्बे, चटनी, अचार आदि के रूप में सुरक्षित रखने की पद्धति बहुत दिनों से चली आ रही है। उसका छोटे-मोटा व्यापार शहर के 'मुरब्बेवाले' किया करते हैं, जिनके बेचने की विधि बेढंगी और गन्दे प्रकार की होती है। प्रत्येक घर में भी उनके बनाने की व्यवस्था होती है। किन्तु उनकी प्रणाली में दो बातों की न्यूनता है। प्रथम तो इस प्रकार के सुरक्षित फल कुछ दिनों के बाद खराब होने लगते हैं और दूसरी बात यह है कि फलों का वास्तविक स्वाद जाता रहता है। मुख्यतः इन्हीं दो बातों को ध्यान में रख कर आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली का प्रयोग 'फल-संरक्षण' में और विशेष कर डिब्बे और बोतलों में बन्द फलों के सम्बन्ध में होता है। निस्सन्देह फलों को सुरक्षित रखने की विधि हमारे देश में बहुत पुराने समय से है, किन्तु वह अभी तक जैसी की तैसी ही प्रचलित है। उसमें सुधार नहीं हुआ है। सुधार की कौन कहे, जो वैज्ञानिक पद्धति पाश्चात्य देशों में सफलतापूर्वक चल रही है वह तक अपनाई नहीं गई है। यही कारण है कि आज भारत में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाखों रुपयों के सुरक्षित फल केवल डिब्बों और बोतलों में बन्द फल के रूप में प्रतिवर्ष विदेशों से आते हैं। ये सब कितने मूल्य के आते हैं, निम्नलिखित अंकों से विदित होगा--

डिब्बों और बोतलों में बन्द आनेवाले फलों का मूल्य

सन्	रुपये
१९२९-३०	१४.०६,८३४
११३०-३१	१२,०४,६६८
१९३१-३२	६,९०,२०५
१९३२-३३	७,८२,५६४
१९३३-३४	९,९६,४९४
१९३४-३५	१०,९०,८०४
१९३५-३६	११,२३,०२५
१९३६-३७	१०,१६,३९३
१९३७-३८	१२,११,५९८

जुलाई की संख्या में पढ़िए-

सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए० (केन्द्रीय) द्वारा लिखित—

'हमारा प्रसिद्ध उपनिवेश दक्षिण अफ्रीका'

दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों से संबंध रखनेवाली समस्याओं का विचारपूर्ण अध्ययन, अनेक सामयिक और सुन्दर चित्रों से सुसज्जित (धारावाहिक लेख)।

पंडित वेङ्कटेश नारायण तिवारी एम० एल० ए० का

मदहे सहाबा या तबर्रा ?

लखनऊ की सामयिक शिया-सुन्नी समस्या का ऐतिहासिक तथा विचारपूर्ण अध्ययन।

स्वर्गीय लाला हरदयाल द्वारा लिखित--

हिन्दू जाति की सामाजिक विजय

(लाला जी के आकर्षक चित्र सहित)

प्रोफेसर धर्मदेव शास्त्री का—

कलासी का शिला-लेख

अनेक चित्रों से सुसज्जित, ऐतिहासिक खोज की उत्तम सामग्री से पर्यवेष्टित

तथा अन्य अनेक सुन्दर सामयिक व रोचक लेख, कवितायें तथा कहानियाँ, विचार व ओजपूर्ण सम्पादकीय टिप्पणियाँ, संसार की सामयिक घटनाओं के सचित्र विवरण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोट—

	रुपये
ब्रिटिश साम्राज्य से	४,९४,०१९
फ्रांस से	२७,९८३
इटली से	१३,३१९
चीन से	१९,३८६
यू० स० ये०	८,४३,१३३
अन्य देशों से	०८,९९४
कुल	१४,०६,८३४

इनके अतिरिक्त लाखों रुपयों के सुरक्षित फल जैम, जेली, मुरब्बे, शर्बत, चटनी, अचार, सूखे फल एवं तरकारियों के रूप में प्रतिवर्ष विदेशों से भारत में आते हैं। पिछले दो वर्षों में ऐसी आनेवाली वस्तुओं का मूल्य निम्नलिखित है—

	१९३६-३७ में	१९३७-३८ में
जैम, जेली आदि—	७,३१,८८७	६,५४,८४७
चटनी, अचार आदि—	७,१९,८८२	६,२१,६७५

अतः हम देखते हैं कि डिब्बों और बोतलों में बन्द फलों के अतिरिक्त प्रायः १३-१४ लाख रुपये के मूल्य की अन्य वस्तुएँ, सुरक्षित फलों के रूप में, प्रतिवर्ष भारत में आती हैं। और जब हमारे देश में फलों की अधिकता है, फल-संरक्षण के काम में आनेवाली रासायनिक वस्तुएँ अल्प व्यय में सरलता से अधिक मात्रा में मिल सकती हैं, सस्ती मजदूरी भी है, साथ ही शिक्षितों और अशिक्षितों में बेकारी फैली हुई है और देश में ही सुरक्षित फलों की अधिक माँग है जैसा कि उक्त अंकों से विदित है, तब इस व्यापार की सफलता की तो यहाँ पूरी आशा है।

इस समय आवश्यकता है देश में चारों ओर फलों के बड़े बड़े कार्यालय खोलने की और उनके संचालन के लिए एक बड़ी पूंजी लगाने की। ऐसे दो-एक छोटे कार्यालय स्थापित भी हो गये हैं, जो उत्साह के साथ अपना काम कर रहे हैं। किन्तु उपयुक्त साधनों के अभाव के कारण विदेशों की अपेक्षा वे अपनी वस्तुएँ कम मूल्य में नहीं बेच पाते। और वस्तुओं के मूल्य में अंतर होने पर मनुष्य स्वभावतः अल्पमूल्यवाली वस्तु ही खरीदता है! यही कारण है कि वे विदेशों की प्रतियोगिता में ठहर नहीं रहे हैं। ऐसी दशा में फलों के व्यापार को बड़े परिमाण में करने की आवश्यकता है, साथ ही उसकी सफलता के लिए पूंजीपतियों का सहयोग भी ज़रूरी है।

हर्ष की बात है कि भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकार का ध्यान इस व्यापार की ओर गया है। और यहाँ भी शून्य तापक्रम पर वस्तुओं को सुरक्षित रखने की विधि को अपनाकर कम से कम एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को ताज़े फलों एवं तरकारियों को भेजने की व्यवस्था कर दी गई है। भारतीय कृषि-अनुसन्धान-विभाग के अधिकारी भी इस ओर प्रयत्नशील हैं। संयुक्त-प्रान्त के कृषि-विभाग के डाइरेक्टर 'फ़ूट-डेवलपमेंट-बोर्ड' के द्वारा प्रान्त के भीतर फलों को अधिक मात्रा में उत्पन्न करने और उनके सुरक्षित रखने का यथेष्ट प्रचार कर रहे हैं। बम्बई में आमों की डिब्बा-बंदी करने के लिए एक कार्यालय स्थापित किया गया है। इन प्रयत्नों से प्रतीत होता है कि यहाँ भी फलों के व्यापार की उन्नति होगी।

मलाया में अनन्नास अधिकता से पैदा होता है। उसकी अधिक मात्रा में पैदावार हो, इसका वहाँ विशेष रूप से ध्यान भी रक्खा जाता है। उन फलों की डिब्बा-बन्दी करके सुरक्षित रखने के लिए मलाया में १६ कार्यालय हैं और प्रत्येक में फलों को छीलने, काटने आदि के लिए ३०० मनुष्य से ऊपर कार्य करते हैं। हर एक कार्यालय डिब्बा-बन्दी की आधुनिक कलों से पूर्ण है। प्रत्येक कार्यालय अनन्नास भर कर १ लाख डिब्बे प्रतिदिन तैयार करता है। प्रतिवर्ष १ करोड़ और ३०-३५ लाख रुपये का माल इँग्लैंड, अमरीका, फ्रांस, जर्मनी, जापान और दुनिया के अन्य प्रदेशों को भेजा जाता है एवं प्रतिवर्ष उसकी वृद्धि हो रही है। हमारे देश में प्रतिवर्ष १॥ लाख रुपये का सुरक्षित अनन्नास विदेशों से आता है। एक डिब्बे में प्रायः एक अनन्नास के टुकड़े होते हैं। यहाँ एक डिब्बा तीन-चार आने में मिलता है, जिसका कार्यालय में प्रायः एक आने मूल्य पड़ता है। हवाई द्वीपों में तो विराट् रूप में फल सुरक्षित किये जाते हैं। वहाँ अनन्नास के अतिरिक्त अन्य फलों की भी डिब्बा-बन्दी की जाती है और केवल सुरक्षित अनन्नास २० करोड़ रुपयों का प्रतिवर्ष विदेशों को जाता है। वहाँ का एक कार्यालय प्रायः आठ लाख डिब्बे अनन्नास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरकर प्रतिदिन तैयार करता है। वहाँ फलों की इतनी अधिकता होते हुए भी क्या मजाल कि एक भी फल सड़ जाय। और न केवल वहाँ की सरकार फलों को सुरक्षित रखने के कार्यालयों की देख-रेख करती है बल्कि विद्यार्थियों को अधिक संख्या में फलों को उत्पन्न करने और उनको सुरक्षित रखने के भिन्न भिन्न व्यापारिक विधियों की उच्च शिक्षा देती है।

खेद की बात है कि हमारे यहाँ इन सब बातों की ओर किसी का ध्यान नहीं। दूसरे देशों को फलों का करोड़ों रुपयों का व्यापार करते हुए देख कर भी हम नहीं देख रहे हैं। हमारे देश में आम, अमरूद, नाशपाती, अंगूर, संतरा आदि कितने ही फल हैं और हरे चने, मटर, टमाटर, गोभी आदि कितनी ही तरकारियाँ हैं, जिनकी डिब्बा-बन्दी करके, सुखाकर अथवा रसायनों-द्वारा सुरक्षित रख कर विदेशों को भेज सकते हैं। इसके सिवा अपने देश में प्रतिवर्ष औसत में ५५,०८,८४९ रुपये के फलों की खपत है, जो इस प्रकार विदेशों से आते हैं--

	रुपये
ताज़े फल और तरकारियाँ ...	३०,८६,५८९
डिब्बों एवं बोतलों में बन्द फल...	१०,५८,०६५
फलों की बनी हुई अन्य वस्तुएँ ...	१३,६४,१९५
सुरक्षित फल ...	२४,२२,२६०

अतः प्रायः ५५-६० लाख रुपये का व्यापार प्रतिवर्ष तो केवल भारतवर्ष के अन्दर ही हो सकता है और इतने रुपये प्रतिवर्ष विदेशों में जाने से बच सकते हैं। इसके अतिरिक्त फल के कार्यालयों के संचालन से जो करोड़ों मन फल सड़कर बरबाद होते हैं उनकी रक्षा होगी। फलों को अधिक मात्रा में उत्पन्न करने के लिए आधुनिक वैज्ञानिक विधियों का सहारा लिया जा सकता है। फिर इस धन्धे के खड़ा हो जाने से अन्य स्वदेशी वस्तुओं की—चीनी, शीशे के बर्तनों, टीन के डिब्बों, की, मसाले आदि की जिनका कि 'फलसंरक्षण' में प्रयोग होता है अधिक मात्रा में खपत होगी। देश को एक ऐसे कार्यालय से जिसमें प्रायः ५०-६० हजार रुपये की लागत होगी, प्रतिवर्ष २० प्रतिशत का लाभ होगा। और यदि ऐसे १०-१२ कार्यालय भारत के भिन्न भिन्न स्थानों में स्थापित हो जायँ और वे फलों एवं शाक-भाजियों को सुरक्षित करें तो देश के धन को बचाने के अतिरिक्त वे भारतीय सुरक्षित फलों को विदेशों में भेज कर यथेष्ट लाभ उठा सकेंगे। सच तो यह है कि फलों के व्यापार के द्वारा भारतीय व्यापार का एक नया, साथही बहुत बड़ा क्षेत्र खुल जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रिटेन और फ़्रांस की गुटबन्दी

जर्मनी और इटली के गुट के विरुद्ध ग्रेट ब्रिटेन और फ़्रांस भी अपना एक गुट बनाने में लगे हुए हैं। इनकी ओर से प्रयत्न हो रहा है कि रूस उनके गुट में शामिल हो जाय। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि रूस इनके गुट में शायद ही शामिल हो। इस सम्बन्ध में 'आज' अपने सम्पादकीय में लिखता है।

"योरप में केवल रूस ही एक ऐसा राष्ट्र है जो काम पड़ने पर अकेला जर्मनी का मुक़ाबिला कर सकता है। इसका सहयोग यदि ब्रिटेन और फ़्रांस को मिल जाता तो योरप में ब्रिटिश गुट जर्मन गुट की अपेक्षा प्रबल हो जाता। इसके लिए आजकल प्रयत्न भी किया जा रहा है। पर इसमें एक बात है। ब्रिटेन के वर्तमान शासकों की सहानुभूति रूस की अपेक्षा जर्मनी के साथ अधिक है। जर्मनी से आशंका होने पर भी वे उससे हाथ मिलाने को तैयार हैं पर रूस से पूरी सैनिक सन्धि करने को तैयार नहीं हैं। पहले तो इनका प्रस्ताव केवल यह था कि जिन राज्यों को उन्होंने अभयदान दिया है उन्हें रूस भी दे दे। पर रूस ने ऐसा करने से साफ़ इनकार कर दिया। फिर इनकी ओर से कहा गया कि जिनकी सहायता के लिए हम कह रहे हैं उनकी सहायता करते हुए यदि रूस पर जर्मनी आक्रमण करे तो हम रूस की भी सहायता करेंगे। पर इससे भी रूस उतना संतुष्ट नहीं है। उसके और जर्मनी के बीच में पोलैंड और रूमानिया के सिवा और भी छोटे राष्ट्र हैं। रूस चाहता है कि ब्रिटेन और फ़्रांस ने जैसा वचन पोलैंड और रूमानिया को दिया है वैसा ही उन छोटे राष्ट्रों को भी दें, पर इनके लिए ये तैयार नहीं मालूम होते। मतलब यह कि रूस के साथ पूरे सैनिक सहयोग की सन्धि करने को ब्रिटेन तैयार नहीं है यद्यपि वह जानता है कि रूस से उसे कुछ भी भय नहीं है। इसका कारण केवल विचारों का भेद है। रूस पूंजीवाद और साम्राज्यवाद का विरोधी है तथा ब्रिटेन इन दोनों का पूर्ण भक्त है। इस लिए स्वार्थ-संघर्ष होने पर जर्मनी से डर जाने पर भी ब्रिटिश साम्राज्यवादी रूस से मित्रता नहीं कर सकते। आज यदि ब्रिटेन, फ़्रांस और रूस में पूरा साधक-बाधक हो जाय तो योरप के प्रायः सब छोटे राष्ट्र जर्मनी से निर्भय होकर इनका साथ दे दें। पर ऐसा होता दिखाई नहीं देता। रंग-ढंग से मालूम होता है कि कुछ समझौता तो हो जायगा पर उससे धुरे की शक्तियों का कुछ बिगड़ेगा नहीं।"

डैनज़िग का प्रश्न

यह एक प्रकट सत्य है कि जर्मनी अब अपने उन सभी भूभागों पर अधिकार कर लेना चाहता है जो वर्सेई की सन्धि के द्वारा उससे छीन लिये गये थे। उनमें से कुछ पर तो उसका अधिकार बिना रक्तपात हो भी गया है, परन्तु अभी अनेक पर वह अधिकार नहीं कर पाया है। डैनज़िग भी उन्हीं में से एक है और इस समय इसके प्रश्न ने वहाँ विषम रूप धारण कर लिया है। 'स्वराज्य' इस प्रश्न के सम्बन्ध में लिखता है।

"पोलैंड और जर्मनी के बीच डैनज़िग के सम्बन्ध में जो विवाद चल रहा है, उसमें इन्साफ़, जर्मनी के साथ है। डैनज़िग एक स्वतन्त्र शहर है जो पोलैंड की सरकार की संरक्षता में है। पोलैंड के व्यापार-व्यवसाय के लिए आवश्यक सामग्री सहायता इसी शहर से मिलती है। अतएव पोलैंड इस शहर को अपने अधिकार से जाने देना नहीं चाहता परन्तु डैनज़िग की बस्ती ८० फ़ी सदी जर्मनों की है। हिटलर ने जर्मन जनता को एक झण्डे के नीचे एकत्रित करने और जर्मनराष्ट्र को बलवान् बनाने का जो कार्यक्रम १९३५ से शुरू किया है, उसमें डैनज़िग शहर को जर्मन रीश में शामिल करने की योजना भी है। पोलैंड से जर्मनी ने इस सम्बन्ध में बातचीत भी की थी, परन्तु पोलैंड की सरकार डैनज़िग का क़ब्ज़ा छोड़ने के लिए राजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न हुई। जर्मन प्रस्तावों में एक प्रस्ताव जनसम्मति लेने का भी है। हिटलर का कहना है कि डैनज़िग के अवस्था-प्राप्त लोगों के बहुमत से तय कर लिया जाय कि वे किसकी अधीनता में रहना चाहते हैं। सार प्रान्त का फ़ैसला ४ वर्ष के पूर्व इसी तरह किया गया था, अब डैनज़िग का भी इसी तरीक़े से कर लिया जाय। पोलैंड को यह भी मञ्जूर नहीं है। ऐसी अवस्था में शस्त्रबल से पोलैंड पर कब्ज़ा करने की बात ही जर्मनी के लिए शेष रह जाती है। इस आक्रमण की संभावना देखकर इँगलैंड और फ़्रांस पोलैंड की सहायतार्थ दौड़ जाने की घोषणा कर रहे हैं। जर्मनी और इटली, स्लोवाकिया और अलबानिया को अभी-अभी हड़प चुके हैं। उस समय इँगलैंड और फ़्रांस ने सशस्त्र विरोध की तीव्र इच्छा प्रकट नहीं की, परन्तु डैनज़िग के मामले पर जागतिक सत्यानाश की आग सुलगाने के लिए वे तैयार हैं। इसमें युद्ध-व्यूह के रहस्य के अलावा और कोई बात नहीं है। पोलैंड और रशिया एक दूसरे के पड़ोसी हैं। जर्मनी और इटली यदि पोलैंड से झगड़ पड़ते हैं तो इँगलैंड और फ़्रांस को अपनी हद में लड़ाई लड़ने की ज़रूरत नहीं रहती। यह बात सही है कि आधुनिक युद्धीय शस्त्रास्त्रों के कारण कोई भी देश हवाई आक्रमणों से सुरक्षित नहीं है तथापि युद्धयमान राष्ट्रों का यह प्रयत्न तो अवश्य ही रहता है कि यथाशक्ति लड़ाई, मारकाट, विनाश-विध्वंस दूसरों की हद में ही हो। इसी सैनिक नीति के कारण इँगलैंड और फ़्रांस डैनज़िग के लिए झगड़ने की तैयारी दिखा रहे हैं"।

कश्मीर में हिन्दी

'हिन्दी-मिलाप' लिखता है—

मुस्लिम और हिन्दू-रियासतों में यही अन्तर है कि जहाँ मुस्लिम रियासतें धर्म जानकर उर्दू को प्रोत्साहन देती हैं वहाँ हिन्दू-रियासतें हिन्दी-प्रचार की ओर ध्यान ही नहीं देतीं। हैदराबाद में हिन्दुओं की आबादी अत्यधिक होने पर भी निज़ाम उर्दू को बढ़ाये जा रहे हैं, और उनके खज़ाने उर्दू-हित के लिए धन व्यय करने के लिए खुले हैं। हैदराबाद के मुक़ाबले में कश्मीर को देखिए कि वहाँ के हिन्दू हिन्दी के लिए माँग करते हैं तो भी उन्हें हिन्दी नहीं मिल रही है। कितनी खेदजनक स्थिति है ?

जम्मू कश्मीर की प्रजा-सभा में उस दिन प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि हिन्दू लड़के और लड़कियों के लिए सरकारी प्राइमरी स्कूलों में हिन्दी की शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय। हम समझते हैं कि यह प्रस्ताव बहुत मामूली था। प्रस्तावक ने अगर यह कहा होता कि बिना इस भेद के कि लड़के और लड़कियाँ हिन्दू हैं या मुस्लिम अथवा किसी अन्य जाति के, हिन्दी की शिक्षा सबके लिए अनिवार्य चाहिए तो प्रस्ताव का उद्देश्य बिलकुल और होता। परन्तु यहाँ तो सादी माँग यह थी कि हिन्दू लड़कों और लड़कियों को प्रारम्भिक स्कूलों में हिन्दी पढ़ाई जाय। आश्चर्य है कि यह सरल प्रस्ताव भी प्रजा-सभा से पास न हो सका। मुस्लिम कान्फ़्रेंस दल जिसमें १९ सदस्य हैं तटस्थ रहा और उसके जिन थोड़े से सदस्यों ने बहस में भाग लिया उन्होंने अल्पसंख्यक जाति की एक उचित माँग का साथ देने के स्थान में उल्टा इसमें फ़िरकापरस्ती देखना शुरू कर दिया।

कश्मीर के हिन्दू शासक का हिन्दी-प्रेम तो खूब बढ़ा होना चाहिए, पर वास्तव में वह साधारण भी मालूम नहीं होता। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि रियासत के हिन्दुओं की लगभग आठ लाख की आबादी में मुश्किल से चौदह हज़ार व्यक्ति हिन्दी जानते हैं और इनमें अच्छी हिन्दी जाननेवालों की संख्या तो बहुत ही कम है। ऐसी स्थिति क्यों है ? इसका एक और केवल एक उत्तर यही है कि रियासत उर्दू भाषा को तो सरकारी तौर पर स्वीकार करती है पर हिन्दी को नहीं। हिन्दू बच्चों को विवश हो उर्दू पढ़ना पड़ रहा है। काश्मीर में उर्दू जाने बिना काम नहीं चल सकता और सरकारी नौकरियाँ प्राप्त करने के लिए भी उर्दू का ज्ञान नितान्त आवश्यक है।

रियासत के अधिकारियों की ओर से कहा जाता है कि हिन्दी को स्कूलों में अनिवार्य कर देने से अध्यापकों की संख्या बढ़ानी पड़ेगी। हिन्दुओं के दृष्टिकोण से तो अच्छा ही है कि रियासत में हिन्दी के अध्यापकों की संख्या बढ़े। इसके लिए यदि रियासत को कुछ अधिक धन व्यय करना भी पड़ता है तो यह धन का सदुपयोग है। प्रधान मन्त्री ने हमें बताया है कि कश्मीर सरकार हिन्दू

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को एक अतिरिक्त विषय के तौर पर हिन्दी पढ़ाये जाने के पक्ष में हैं। हम कहते हैं कि उर्दू के मुक़ाबले में हिन्दी को अनिवार्य विषय न रख कर केवल अतिरिक्त विषय के तौर पर रखना हिन्दुओं के साथ भयंकर अन्याय है जो किसी अवस्था में सहन नहीं किया जा सकता।

प्रधान मन्त्री ने एक बात स्वीकार की है और वह यह कि जहाँ स्कूल में जानेवाले हिन्दू बच्चों की संख्या औसतन तीस से कम नहीं और जहाँ हिन्दू आबादी एक मत होकर यह माँग करती है कि उनके बच्चों को हिन्दी में शिक्षा दी जाय, वहाँ हिन्दी शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सकता है। यह एक आशापूर्ण आश्वासन तथा हिन्दी-प्रेमियों के लिए बड़ा ठोस काम है कि जो वे कर सकते हैं। प्रथम पग के तौर पर अगर हिन्दीप्रेमी प्रधान मन्त्री की बताई शर्तों को पूरा कर के स्थान स्थान में हिन्दी-शिक्षा का प्रबन्ध करा दें तो यह भी एक भारी कार्य होगा कि जो हमें आशा है कि रियासत जम्मू और कश्मीर के हिन्दी प्रेमी अवश्य करेंगे। यदि हिन्दी के लिए रियासत में पहले मैदान तैयार हो जाये तो फिर रियासत की गवर्नमेंट और अधिकारी हिन्दुओं की हिन्दी की माँग को "नाँह" नहीं कह सकेंगे। हमें भय है कि अभी रियासत में इस सम्बन्ध में बहुत कार्य की ज़रूरत है। एक बार हिन्दी पढ़ने और पढ़ानेवालों की संख्या प्रबल हो जाये तो फिर गवर्नमेंट की शक्ति में न होगा कि वह हिन्दी की शिक्षा के सम्बन्ध में किसी उचित माँग को ठुकराने का साहस कर सके।

प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा पुनः संगठन-कमिटी की सिफ़ारिशें अब सरकार के सामने पेश हैं। संक्षेप में उनका परिचय नीचे देते हैं :—

यू० पी शिक्षा कमेटी की सिफ़ारिश

कमेटी ने सिफ़ारिश की है कि सात साल की आयु से निःशुल्क अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा मुफ़्त दी जानी चाहिए। इस समय में बच्चे को सामाजिक और शारीरिक शिक्षा के साथ साथ तकली से कातना और प्रथमिक कृषि या बाग़बानी की शिक्षा दी जानी चाहिए। इसकी अवधि सात साल रखी गई है।

माध्यमिक शिक्षा का समय १२ वर्ष की आयु से आरम्भ होकर ६ वर्ष तक होगा। प्रायमरी, वर्नाक्यूलर और ऐंग्लो वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूलों के स्थान पर प्रारम्भिक शिक्षा के स्कूल होंगे। माध्यमिक शिक्षण-संस्थाओं को कालेज कहा जायगा। जो वर्तमान इंटरमीजियेट श्रेणी की शिक्षा से ऊँची शिक्षा देंगे। हाई स्कूल और इंटरमीजिएट नाम छोड़ दिये जायँगे।

दोनों प्रकार के स्कूलों में शिक्षा का माध्यम हिन्दुस्तानी होगा। इन स्कूलों में अँगरेज़ी नहीं पढ़ाई जावेगी। कालेजों में अँगरेज़ी अनिवार्य रूप से पढ़ाई जावेगी। कमेटी ने एक गृह-विज्ञान-कालेज तथा औद्योगिक और व्यावसायिक कालेजों की स्थापना करने की सिफ़ारिश की है। कमेटी ने औद्योगिक स्कूलों तथा कालेजों को शिक्षा-मंत्री को सौंप देने के लिए कहा है।

कन्या-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने पर ज़ोर दिया गया है। लड़कियों को स्कूल में ले जाने के लिए ठेलों के स्थान पर मोटर बसों का ही प्रयोग करने की सिफ़ारिश की गई है। लड़के लड़कियों को साथ साथ पढ़ाने की आयु शहरों में अधिक से अधिक ९ और देहातों में १० साल रक्खी गई है।

सरकार को अपनी आवश्यकता के अनुसार शिक्षा-विस्तार का एक कार्यक्रम बनाना चाहिए। तमाम प्रान्त की जनता को प्रारम्भिक शिक्षा देने के लिए बीस साला कार्यक्रम सोचना चाहिए।

प्रारंभिक शिक्षा को निःशुल्क तथा अनिवार्य बना देने की सिफ़ारिश की गई है।

भूतपूर्व डायरेक्टर कर्नल वेर के अनुमान के अनुसार इस योजना पर नौ करोड़ रुपये वार्षिक खर्च होंगे, अतः इसको केवल सीमित क्षेत्रों में लागू किया जाय।

वर्तमान डायरेक्टर श्री पावेल प्राइस ने सात वर्ष की आयु से शिक्षा आरम्भ करने का विरोध किया है और आपने छः वर्ष की आयु को उचित बतलाया है।

स्मरण रहे कि यह कमेटी युक्तप्रान्तीय सरकार द्वारा मार्च १९३८ में नियुक्त की गई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहिंसा का मार्ग

गत १८ मई को गांधी जी ने राजकोट से एक महत्त्वपूर्ण वक्तव्य दिया जिसका आवश्यक अंश निम्न है—

२४ अप्रैल को जब यहाँ से मैं कलकत्ते के लिए रवाना हुआ, तब मैंने यह कहा था कि राजकोट मेरे लिए एक प्रयोगशाला साबित हुआ है। इसका सबसे ताज़ा प्रमाण मेरी इस घोषणा में है, जो मैं कर रहा हूँ। सहयोगियों के साथ बहुत वाद-विवाद के बाद मैं आज शाम को ६ बजे इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि भारत के चीफ़ जस्टिस द्वारा दिये हुए निर्णय का मैं परित्याग कर दूं।

मैं अपनी ग़लती स्वीकार करता हूँ। उपवास के अंत में मैंने कहा था कि मेरा यह उपवास जितना सफल हुआ है उतना इससे पहले का और कोई उपवास सफल नहीं हुआ। मगर अब मैं देखता हूँ कि वह हिंसा से रंजित था। उपवास करके मैंने सार्वभौम सत्ता की दस्तंदाज़ी चाही, ताकि वह ठाकुर साहब को अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए प्रेरित करे। यह "अहिंसा" का हृदय-परिवर्तन का मार्ग नहीं है, यह तो "हिंसा" तथा 'दबाव' डालने का मार्ग है। अगर मेरा उपवास केवल ठाकुर साहब के ही प्रति होता, और मैं उनके तथा उनके सलाहकार दरबार श्री वीरावाला के हृदय को पिघला सकता और ऐसा करते हुए मर जाने में भी संतोष मानता, तो मेरा उपवास शुद्ध होता। मेरे रास्ते में अगर अप्रत्याशित कठिनाइयाँ न आतीं, तो मेरी आँखें न खुलतीं। दरबार श्री वीरावाला ग्वॉयर-निर्णय को दिल से पसन्द नहीं करते थे। इसलिए उन्होंने देरी लगाने में हरेक मौक़े का लाभ उठाया। निर्णय तो मेरा मार्ग प्रशस्त करने के बदले मुसलमानों और भायातों को मेरे विरुद्ध नाराज़ करने में बहुत बड़ा कारण बन गया। निर्णय से पहले हम लोग दोस्तों की तरह मिले थे। अब मुझ पर स्वेच्छा से और बग़ैर किसी विचार के वचन-भंग करने का आरोप किया जाता है। यह मामला चीफ़ जस्टिस के पास जानेवाला था कि वे इस बात का निर्णय कर दें कि मैं आरोपित वचन-भंग का दोषी हूँ या नहीं।

मुस्लिम काउन्सिल और गिरासिया असोसियेशन के वक्तव्य मेरे सामने हैं। अब चूंकि मैंने ग्वॉयर-निर्णय से मिलनेवाले लाभ को छोड़ देने का निश्चय कर लिया है, अतः अब उन दोनों मामलों का जवाब देना मेरे लिए ज़रूरी नहीं रह गया है। जहाँ तक मेरा ताल्लुक़ है, मुसलमान और भायात कोई भी चीज़ ठाकुरसाहब से, जो वे कृपापूर्वक दें, प्राप्त कर सकते हैं। केस तैयार करने के लिए मैंने उनको जो तकलीफ़ दी, इसके लिए मैं उनसे क्षमा चाहता हूँ। अपनी कमज़ोरी की हालत में अनावश्यक ज़ोर डालने के लिए मैं वायसराय से क्षमा माँगता हूँ। चीफ़ जस्टिस को भी मैंने कष्ट पहुँचाया, इसलिए उनसे भी मैं क्षमा-याचना करता हूँ, क्योंकि यदि मैं अच्छी तरह जानता होता तो उन्हें वह कष्ट न उठाना पड़ता, जो उन्होंने उठाया। और सर्वोपरि, मैं ठाकुर साहब और श्री वीरावाला से भी क्षमा चाहता हूँ।

जहाँ तक दरबार श्रीवीरावाला का संबंध है, मुझे यह क़बूल करना चाहिए कि अपने दूसरे सहयोगियों की भाँति मैं भी उनके सम्बन्ध में बुरे विचार रखता था। मैं यहाँ इस बात पर विचार नहीं करना चाहता कि उन पर लगाये गये आरोप सही थे या ग़लत। उन पर बहस करने की यह जगह नहीं है। यह कहना ही काफ़ी होगा कि वह अहिंसा का मार्ग नहीं था, और न अब तक उन पर उसका प्रयोग ही किया गया है। और, मुझे अपने विरुद्ध वह बात भी कहने दी जाये कि मैं दोहरी चाल खेलने का गुनहगार था—याने एक ओर तो ग्वॉयर-निर्णय की तलवार उनके सर पर लटकाये रहता था और दूसरी ओर उनसे प्रार्थना करता और आशा रखता था कि वे स्वेच्छा से ठाकुर साहब को उदार शासनसुधार देने की सलाह देंगे।

मैं यह मानता हूँ कि यह तरीक़ा अहिंसा से बिलकुल मेल नहीं खाता। जब मैंने १९ अप्रैल को यकायक गिब्सन के सामने तजवीज़ रखी, जो कि खिलाड़ी की तजवीज़ कही जाती है, तब मुझे अपनी कमज़ोरी का भान लगा। मगर तब मुझमें यह कहने का साहस नहीं था, कि 'मैं निर्णय से कोई मतलब नहीं रखना चाहता।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

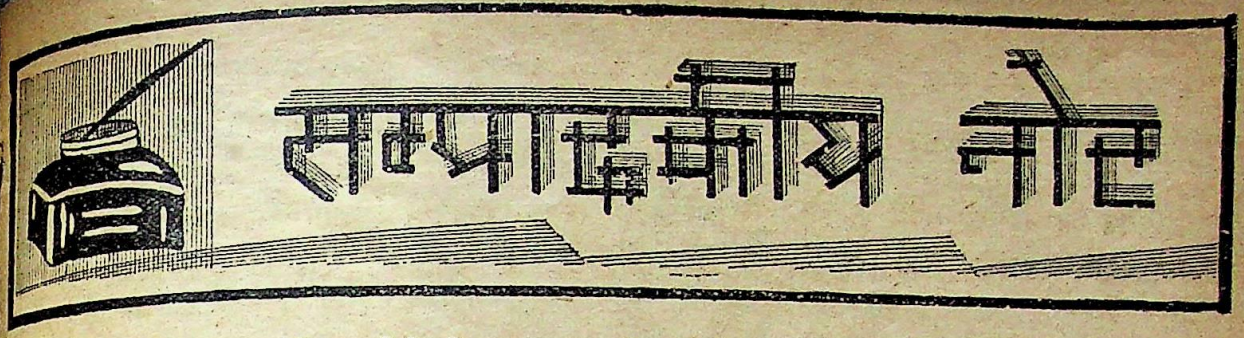

१—योरप की राजनीतिक परिस्थिति

महायुद्ध रोकने के लिए या योरप के छोटे राज्यों की स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए ग्रेट ब्रिटेन और उसके साथ ही फ्रांस भी इस समय जिस कूटनीति से काम ले रहे हैं तथा भिन्न-भिन्न छोटे राज्यों की स्वाधीनता की रक्षा करने की प्रतिज्ञायें करते जा रहे हैं उससे परिस्थिति के सुधरने के बजाय वह और भी बिगड़ती जा रही है। क्योंकि उनकी इन कार्रवाइयों से उनके साथ जर्मनी और इटली के आक्रमण के भय से छोटे छोटे राष्ट्र तो हो ही गये हैं, रूस का बड़ा राष्ट्र भी समुचित वचन लेकर उनके पक्ष में हो जाने को उत्सुक है। इधर हाल में तुर्की की ब्रिटेन से सन्धि हो गई है और फ्रांस से भी उसकी सन्धि हो जायगी। जर्मनी और इटली इन सब बातों को देखकर चिन्तित हुए हैं, यहाँ तक कि हिटलर ने यह स्पष्ट कह दिया है कि सन् १९१४ की तरह उसको घेर लेने का फिर उपक्रम किया जा रहा है। और इस आशंका से ये दोनों राष्ट्र पूर्ववत् युद्ध की तैयारी में ही लगे हुए हैं। यही नहीं, डेन्ज़िग में जिसे जर्मनी अपने अधिकार में कर लेने को लालायित है, पोलों के विरुद्ध ऐसे उपद्रव हो रहे हैं, तथा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की जा रही है कि वहाँ ऐसा गोलमाल हो जाय कि जर्मनी को कुछ कहने का अवसर मिले और बिना युद्ध के ही जैकोस्लोवेकिया की तरह वह भी उसे मिल जाय। लक्षण भी ऐसे ही दिखाई दे रहे हैं। चाहे जो हो, परिस्थिति भयावह होती जा रही है और शान्ति की स्थापना के लिए ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों ने जो मार्ग ग्रहण किया है वह युद्ध का मार्ग है, शान्ति का नहीं। शान्ति का मार्ग तो तब होता जब ये राष्ट्र जर्मनी और इटली की माँगों पर समुचित रूप से विचार करते। हिटलर और मुसोलिनी दोनों ने स्पष्ट शब्दों में बार-बार कहा है कि वे लड़ने को उत्सुक नहीं हैं, परन्तु जो उनका है उसे प्राप्त करने में वे आनाकानी भी नहीं करेंगे। फिर जब वे आज शक्तिमान हैं, यहाँ तक कि उनसे भिड़ने में बड़े-बड़े राष्ट्र तक हिचकते हैं, तब तो नीति की यही माँग है कि उन्हें थोड़ा-बहुत दे-ले कर समझौता कर लेना ही ठीक होता। परन्तु बड़े राष्ट्र यह सब करने को तैयार नहीं हैं। ऐसी दशा में यदि आज नहीं तो एक-न-एक दिन इनमें अवश्य युद्ध छिड़ेगा। और वह युद्ध इतना भीषण होगा कि इस बार दोनों पक्षों का संहार हो जायगा। आश्चर्य है कि यह सब जानते हुए भी राजनीतिज्ञ शान्ति की, समझौते की राह नहीं ग्रहण कर रहे हैं। इटली और जर्मनी की माँगों में कुछ तथ्य भी जान पड़ता है। यदि ऐसा न होता तो उनसे बीच-बीच में समझौता करने की बातचीत न होती रहती। अभी हाल में फ्रांस ने इटली से समझौता करने का प्रस्ताव भी किया था। उधर ग्रेट ब्रिटेन के प्रधान मंत्री ने डेन्ज़िग के मामले को भी समझौते के द्वारा तय कर लेने का संकेत किया है।

परन्तु इस तरह कह-सुनकर भी यह मामला आगे नहीं बढ़ाया जाता है। बात यह है कि जर्मनी और इटली की माँगें अधिक व्यापक हैं, जिनकी पूर्ति कर देने पर ब्रिटेन और फ्रांस का दर्जा आज का नहीं रह सकेगा। कठिनाई इतनी ही है और असाधारण रूप से बड़ी है। भूमध्य-सागर का प्रभुत्व इटली को सौंप कर तथा अफ्रीका के उपनिवेशों में से अधिकांश जर्मनी एवं इटली को देकर ब्रिटेन और फ्रांस अपनी आत्महत्या करने का उपक्रम करने को तैयार नहीं हैं। इसी से कहना पड़ता है कि इन राष्ट्रों में एक-न-एक दिन महायुद्ध का छिड़ जाना सर्वथा अनिवार्य है।

२—कांग्रेस की राजनीति

कांग्रेस की राजनीति का समझना सरल काम नहीं है। कांग्रेस की गणना संसार की तादृश सुसंगठित संस्थाओं में की जाती है। परन्तु उसकी वर्तमान भावधारा चिन्ता करने का विषय है। सुभाष बाबू के दूसरी बार राष्ट्रपति बनाये जाने का जो विरोध पिछले दिनों हुआ था और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुमत -द्वारा उनके पुनर्वार राष्ट्रपति चुन लिये जाने पर भी उन्हें बाद को पिछले अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के अधिवेशन पर जो त्याग-पत्र देना पड़ा, उस सबकी कथा अति करुणाजनक है और उसके सम्बन्ध में हमारे लिए अधिक कुछ लिखना आवश्यक नहीं रहा, क्योंकि कलकत्ते के सर्व भारतीय कांग्रेस-समिति के जलसे से यह भले प्रकार स्पष्ट हो गया है कि कांग्रेस के क्षेत्र में भी नेता-शाही का ज़ोर है और वहाँ अब प्रजातंत्रवाद को उतना महत्त्व नहीं दिया जाता है। चोटी के १०-१२ नेता आपस में जो कुछ तय कर लेते हैं उसी को कांग्रेस का बाध्य होकर समर्थन करना पड़ता है। इसका एक भयानक परिणाम यह हुआ है कि कांग्रेस के बहुतेरे नौजवान नेताओं तथा कार्यकर्ताओं में असन्तोष का भाव धर कर गया है और उनमें से ३० व्यक्तियों ने प्रकट रूप से अपना विरोध ही नहीं प्रकट किया है, किन्तु सुभाष बाबू के नेतृत्व में अपना अलग संगठन करने की घोषणा भी कर दी है। यह अच्छा हुआ या बुरा, यह तो भविष्य ही बतलायेगा। परन्तु वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए यह तो कोई भी कह सकता है कि सुभाष बाबू ने इस विषम अवस्था में अपने मैत्रीपूर्ण रुख में ज़रा भी अन्तर नहीं आने दिया और अपने विरोधियों का सहयोग प्राप्त करने के लिए वे बराबर यत्नवान् रहे, जिसका उल्लेख उन्होंने पद-त्याग करने के समय उक्त समिति के जलसे में स्पष्ट शब्दों में किया है। फिर अब उनका और महात्मा जी का जो पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ है उससे भी सुभाष बाबू के मैत्रीपूर्ण रुख का ही प्रमाण मिलता है। खेद है, सुभाष बाबू लाख प्रयत्न करने पर भी कांग्रेस की नेताशाही को सन्तुष्ट न कर सके और उसने एक बार जो यह घोषित कर दिया था कि सुभाष बाबू को अगले वर्ष राष्ट्रपति नहीं बनाना चाहिए वही करके रही।

कलकत्ते में जब उक्त समिति ने सुभाष बाबू के स्थान में राजेन्द्र बाबू को कांग्रेस का सभापतित्व प्रदान किया तब दर्शकों ने जिस प्रकार अपने पूज्य लोक-नेताओं का अभिनन्दन किया उसकी ज्यादा-से-ज्यादा निन्दा होनी चाहिए। परन्तु उनका वह अशोभन प्रदर्शन एक ऐसी भावना का निदर्शन है जो उपेक्षणीय नहीं है। वह यही भाव व्यक्त करती है कि कांग्रेस की वर्तमान नेताशाही प्रवृत्ति को साधारण लोग घृणा से देखते हैं और उसके प्रति उनमें ज़रा भी श्रद्धा नहीं है, अन्यथा वे अपने उन्हीं नेताओं के प्रति ऐसा दुर्व्यवहार न करते जिनको वे एक युग से देवताओं की तरह पूजते चले आये हैं। सत्याग्रह कहो, चाहे दुराग्रह कहो, उक्त कलह का जिस प्रकार निराकरण किया गया है उससे देश का कितना हित हुआ, इसको सप्रमाण सिद्ध करके बतलाना सब किसी का काम नहीं है। इसी से कहना पड़ता है कि आज की कांग्रेस ने कुटिल राजनीति का आश्रय ग्रहण किया है और उसका सूत्र-सञ्चालन राष्ट्र के प्रतिनिधियों की स्वतन्त्र सम्मति से नहीं, किन्तु कुछ चुने हुए बड़े नेताओं के संकेत मात्र से होता है। ऐसी दशा में आज की कांग्रेस में उन लोगों को कैसे स्थान मिल सकता है जो व्यक्तियों के नहीं, किन्तु विचारों के पूजक हैं। सुभाष बाबू विचारों के उपासक हैं, अतएव उन्हें अपने जैसे अन्य साथियों की तरह नेतापन से नीचे उतर आना पड़ा। बात जो हो, यह सब कुछ परिस्थिति के अनुरूप नहीं हुआ है। आज तो कांग्रेस में कहीं अधिक एकता की ज़रूरत थी। परन्तु जान पड़ता है कि उसके सरदार कुछ और ही सोच रहे हैं। हम भी उनसे सहमत हैं, क्योंकि इस समय कांग्रेस में निर्बलता आ गई है, जिसके कारण वह ब्रिटिश सरकार के सामने अपनी न्यायोचित माँग दृढ़ता के साथ उपस्थित नहीं कर सकती। परन्तु उस निर्बलता का अधिकांश उत्तरदायित्व नेताशाही पर ही है जो साधारण लोगों के लिए एक पहेली-सी हो रही है। इसी से कहना पड़ता है कि कांग्रेस की राजनीति में वक्रता आ गई है। एक ओर वह सरकार से मोर्चा लेने से आनाकानी करती है, दूसरी ओर वह देशी राज्यों में सत्याग्रह संग्राम छेड़े हुए है। इसका क्या मतलब हो सकता है?

३—दक्षिण-अफ़्रीका में सत्याग्रह

महात्मा जी के जिस महान् अस्त्र सत्याग्रह ने भारत की राजनीति में इतना परिवर्तन कर दिया है उसका आविष्कार और राजनीति में प्रथम प्रयोग महात्माजी के द्वारा ही दक्षिण अफ़्रीका में किया गया था। प्रवासी भारतीय अब वहाँ फिर सत्याग्रह करने की आवश्यकता का अनुभव कर रहे हैं, यह चिन्ता की बात है। कारण यह है कि अफ़्रीका की भूमि को उन्नत करने और उसे हराभरा बनाने में भारतीय मज़दूरों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का खून ही पसीना बनकर बहा था; और जब वह जंगल नन्दनवन बन गया तब गोरे उसे अपनी बपौती बनाने को तैयार हो गये। अफ़्रीका के उस भूखंड का शासन यूनियन सरकार के हाथों में है। गोरे इस सरकार पर दबाव डाल-कर प्रवासी भारतीयों के अधिकारों को हड़पने का प्रयत्न सदा से करते आये हैं। रंग-भेद का वहाँ इतना पक्षपात है कि ब्रिटिश सरकार ने भी वहाँ की ऊँची भूमि योरपीयों के लिए सुरक्षित कर दी है। भारतीय न उसमें बस सकते हैं न उसे खरीद सकते हैं। यही नहीं, आज-कल वहाँ की पार्लमेंट में एक काला क़ानून पेश है। इसका नाम है 'ट्रांसवाल एशियाटिक रेजिडेंस और ट्रेडिंग बिल'। यदि यह बिल पास हो गया तो प्रवासी भारतीयों की स्थिति में बड़ा धक्का लगेगा। कहने को तो यह क़ानून अस्थायी है, पर इसे धीरे-धीरे स्थायी रूप भी मिल ही जायगा। इस बिल की मंशा यह है कि इसके द्वारा प्रवासी भारतीय वहाँ के उन क्षेत्रों से निकाल बाहर किये जायँ जहाँ गोरे बसते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह गोरी जाति की स्वार्थपरता का नमूना है। अफ़्रीका के प्रवासी भारतीय इससे क्षुब्ध हो उठे हैं और उन्होंने जोहान्सबर्ग में एक सभा करके इस बिल के विरुद्ध सत्याग्रह करने का निश्चय कर लिया है। सन् १९२७ में भारत-सरकार व यूनियन सरकार में केपटाउन में एक समझौता हुआ था जिसमें भारतीयों को समानता के नागरिक अधिकार देने की बात कही गई थी। पर यह बिल उस समझौते के भी एकदम प्रतिकूल है। दीनबन्धु एण्ड्रचूज़ तथा भाई भवानी-दयाल संन्यासी ने भी इस बिल के विरुद्ध वक्तव्य दिये हैं। इस दशा में दक्षिण-अफ़्रीका प्रवासी भारतीयों के पास एक ही चारा है; वह है अपने उस अनुभूत अस्त्र की फिर से परीक्षा लेना, जिसकी शिक्षा उन्हें महात्मा जी ने दी थी। यह बिल न केवल हमारे प्रवासियों के लिए अपमान-जनक है, बल्कि इससे समूचे भारत का अपमान है। साथ ही भारत-सरकार के लिए भी यह कम कलंक की बात नहीं है कि वह भारतीयों का अपमान निरपेक्ष भाव से देखती रहे। इस बिल के दो वाचन हो चुके हैं, और इधर भी सत्याग्रह की पूरी तैयारी हो चुकी है। यूनियन सरकार को यह कार्य इस समय बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं कहा जा सकता; क्योंकि जर्मनी अपने अफ़्रीकास्थित उपनिवेशों की माँग कर ही रहा है और उधर के कुछ प्रदेशों में नाज़ी-आन्दोलन भी चल ही रहा है। इस दशा में यूनियन सरकार का भी यही कर्त्तव्य है कि वह भारतीयों के साथ सम्मानपूर्ण समझौता कर ले। ब्रिटिश सरकार को भी चाहिए कि वह यूनियन सरकार पर ऐसा करने के लिए दबाव डाले। और यदि यह सब कुछ नहीं होता तो हमारे प्रवासी भाइयों को तो अपने न्यायोचित अधिकारों की रक्षा के लिए तैयार रहना ही चाहिए। समस्त भारत की सहानुभूति उनके साथ है और उन्हें विश्वास रखना चाहिए कि भारत उनकी हर तरह से सहायता करने में पीछे न हटेगा। भारत-सरकार के लिए आवश्यक है कि वह भरसक इस संकट को टालने की कोशिश करे, और इससे पूर्व कि सत्याग्रह छिड़ कर परिस्थिति जटिल हो जाय, इसे सम्मानपूर्ण ढंग से सुलझाने का प्रयत्न करे।

४—युक्त प्रान्तीय शिक्षा पुनः संगठन कमिटी की सिफ़ारिशें

हमारे प्रान्त की कांग्रेस-सरकार ने शिक्षा-प्रणाली में आमूल क्रान्ति करने के लिए एक व्यापक योजना-निर्माण कराने का विचार किया था। यह कार्य एक कमिटी के सुपुर्द किया गया था, जिसकी नियुक्ति गत वर्ष मार्च १९३८ में हुई थी। आचार्य नरेन्द्रदेव इस कमिटी के प्रधान थे। उनके अतिरिक्त इसमें २४ सदस्य और थे, जिनमें ३ महिलायें थीं, और ५ मुस्लिम सज्जन भी थे। इसी महीने में इस कमिटी की सिफ़ारिशी रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। सिफ़ारिशों में से अधिकांश उपयोगी हैं। पर कुछ सिफ़ारिशें ऐसी भी हैं जिनसे स्वयं कमिटी के सब सदस्य तक सहमत नहीं हैं। फिर और लोग भी उन्हें पसन्द न करें तो आश्चर्य ही क्या है। परन्तु सरकारी काम आख़िर सरकारी ही होते हैं, उनके लिए जनता की राय की फ़िक्र उतनी कहाँ की जा सकती है।

कमिटी ने शिक्षारंभ के लिए कम से कम ७ वर्ष की आयु की सिफ़ारिश की है। शिक्षा-विशेषज्ञों की तो सम्मति यह है कि हमारे जैसे गर्म देशों में ५ वर्ष की आयु में अक्षरारंभ कराना ठीक है। यहाँ प्रथा भी ऐसी ही रही है। बालक साधारणतः ५ वर्ष की आयु में 'श्रीगणेशाय नमः' करते हैं, और सात वर्ष तक पहुँचते पहुँचते तीसरी किताब समाप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर देते हैं। शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर मिस्टर जे० सी० पावेल प्राइस ने भी ७ वर्ष में शिक्षारंभ की बात का विरोध किया है। उनका एतराज़ है कि ऐसा करना शिक्षा के स्वर्ण-काल का अपव्यय करना है। उनके मतानुसार इसके लिए अधिक से अधिक ६ साल की आयु ठीक है।

पर साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ५ वर्ष के बालक -बालिकायें तकली पर सूत कातने, खेती तथा बाग़बानी का काम नहीं कर सकते। और वर्धा-शिक्षा-योजना के सुर-ताल में रहने के लिए तकली इत्यादि का काम सिखाना अनिवार्य है। शायद इसी लिए ७ वर्ष की आयु की सिफ़ारिश की गई है।

सहशिक्षा के विषय में कमिटी की राय है कि शहरों में ९ और देहातों में १० वर्ष की आयु तक लड़के-लड़कियों को साथ साथ पढ़ाना चाहिए। इसके बाद लड़कियाँ पढ़ाई जायँ या नहीं, पढ़ाई जायँ तो कहाँ, इस विषय में कोई स्पष्ट बात नहीं बताई गई है? क्या सरकार इनके लिए पृथक् कालेज खोलने का विचार कर रही है? कमिटी ने यह तो घोषित किया है कि 'गृह-विज्ञान' की शिक्षा के लिए एक कालेज खोला जायगा। यह विचार अनुमोदनीय है; क्योंकि ऐसे कालेजों में पढ़ी महिलायें ही निस्सन्देह सच्चे अर्थों में 'सुगृहिणी' बन सकेंगी! पर क्या इससे निकली लड़कियाँ कन्या-पाठशालाओं की इन्स्पेक्ट्रस और असेम्बली की मंत्री भी बन सकेंगी? क्योंकि आज की भारतीय लड़की के दिमाग़ का कम्पास इसी ध्रुव लक्ष्य की ओर संकेत करता है, कल की राम जाने। फिर क्या एक कालेज प्रान्त भर की महिला-शिक्षा की आवश्यकता को पूरा कर देगा! लड़कियों में उच्च शिक्षा के प्रति बढ़ते हुए अनुराग को देख कर तो यही अनुमान होता है कि आज नहीं तो कल हमें कम-से-कम उतने ही कालेज लड़कियों के लिए भी खोलने पड़ेंगे, जितने लड़कों के लिए हैं; यदि हम सह-शिक्षा के विषय में अपनी धारणा महात्मा जी के ठीक अनुरूप ही बनाना चाहते हैं।

'हिन्दुस्तानी' को स्कूलों और कालेजों में माध्यम बनाने की सिफ़ारिश कमिटी ने की है। और हिन्दुस्तानी की परिभाषा यह दी है कि 'वह भाषा जो युक्त प्रान्त में आम तौर से बोली-समझी जाती है। इसके साथ ही हमें दूसरी सरकारी संस्था 'हिन्दुस्तानी-एकेडेमी' की प्रश्नावली भी मिली है, जिसमें हिन्दुस्तानी उसे बतलाया गया है "जो दिल्ली और लखनऊ के शिष्ट-समाज की बोल-चाल की भाषा है।" कहने की आवश्यकता नहीं कि इन दोनों सरकारी संस्थाओं की 'हिन्दुस्तानी' की परिभाषाओं में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। अब स्कूलों और कालेजों में कौन-सी हिन्दुस्तानी माध्यम बनेगी, लखनऊ और दिल्लीवाली या अयोध्या, कानपुर, प्रयाग और बनारस-वाली, यह कहना कठिन है! कमिटी ने यह भी नहीं बतलाया कि वह पारिभाषिक शब्द किस भाषा के लेगी, अरबी-फ़ारसी के या संस्कृत के या इन दोनों को छोड़ कर लेटिन और ग्रीक के; या स्वयं नये शब्द गढ़कर उनके चलाने का प्रयत्न करेगी, और अब तक जो पारिभाषिक शब्द प्रचलित हो चुके हैं उन्हें एकदम 'मतरूक' कर देगी! बिना पारिभाषिक शब्दों के विज्ञान-सम्बन्धी विषय पढ़ाये कैसे जा सकते हैं? हाँ, यदि इनका न पढ़ाना ही अभीष्ट हो तो बात दूसरी है। यह भी साफ़ है कि संस्कृत की परिभाषायें मुसलमानों के लिए और अरबी-फ़ारसी की परिभाषायें हिन्दुओं के लिए लोहे के चने ही हैं।

कमिटी ने शिक्षकों की भर्ती में मुसलमानों को यथेष्ट प्रतिनिधित्व देने की भी सिफ़ारिश की है। हम मुसलमानों को अधिक-से-अधिक नौकरियाँ दिलाने के पक्षपाती हैं, पर शिक्षा-विभाग में अध्यापकों का नाप 'चोटी-दाढ़ी' के पैमाने से न होकर योग्यता के पैमाने से ही होता तो बड़ी कृपा होती।

शिक्षा-विभाग में साम्प्रदायिकता के विष का समावेश करना बड़ा भयानक है। यह आगामी सन्तति के दिमाग़ को भी दूषित करना है। हम हृदय से इस सिफ़ारिश का जहाँ तक शिक्षा-विभाग का सम्बन्ध है, विरोध करते हैं।

शेष योजनायें लाभदायक व महत्त्वपूर्ण हैं और उनकी सार्वजनीन उपयोगिता में सन्देह करने की रत्ती भर भी गुंजायश नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५-फिलस्तीन का शिवाजी 'फ़ौजी कौकजी'

'फ़ौजी कौकजी' फिलस्तीन का नेता है। उसके कारण ब्रिटिश अधिकारी बड़े चिन्तित रहते हैं और ब्रिटिश सेनाओं की तो उसने नींद तक हराम कर दी है। अख़बार बेंचनेवाले हाकरों से लेकर ब्रिटिश राजदूत सर हेरल्ड मैकमिचेल तक उसके नाम से घबराते हैं। वह योरप और फिलस्तीन के लिए भूत की तरह भयानक और रहस्यमय है। उसका नाम और उसके भयंकर कारनामे सब जानते हैं, पर उसका ठीक ठीक परिचय किसी को नहीं है। ब्रिटिश सैनिकों को तो पद पद पर 'फ़ौजी कौकजी' की विभीषिका दिखाई देती है। यद्यपि ब्रिटिश अधिकारी, सऊदी सरकार तथा पड़ोस की अन्य सरकारें सभी उसके पकड़ने की चिन्ता में रात-दिन रहती हैं और इसके लिए उन सरकारों ने हज़ारों गुप्तचर नियुक्त कर रक्खे हैं, पर वह किसी के हाथ में नहीं आता। गुप्तचरों की आँखों में धूल झोंकना इसे खूब आता है। इस काम के लिए वह अपने भेष बदला करता है। यदि कभी अरब सरदार की शक्ल में अरबी घोड़े पर सवार झिलम-डोम पहने घोड़े को चौकड़ी भगाता हुआ चला जाता है, तो कभी ठीक हिटलर के ढंग की योरपीय पोशाक पहने हुए बग़दाद में टहल रहा है। यही नहीं, यरूसलम के स्टूडियो में उसने विलक्षण भाव-भंगियों में अपने अनेक प्रकार के फ़ोटो भी खिचवाये हैं। किसी में वह घोड़े पर सवार है, किसी में पड़ा आराम कर रहा है, किसी में ताश खेल रहा है, इत्यादि। ये फ़ोटो लाखों की संख्या में वितरण भी किये गये हैं, मानो वह नित्य गुप्तचरों की बुद्धि को खुली चुनौती दिया करता है। वह इतना सतर्क रहता है कि औरों की तो बात ही क्या, स्वयं उसके अन्तरङ्ग मित्र भी नहीं जानते कि वह कब कहाँ होगा। धावा करने में वह इतना तेज़ है कि आज शाम को यदि सूचना मिले कि 'फ़ौजी कौकजी' अमुक ओसिस में है तो दूसरे ही सवेरे वह उक्त स्थान से सौ-डेढ़ सौ मील की दूरी पर सीमान्त के समीप देखा जायगा। उसके कारण ख़ुफ़िया-पुलिस का नाक में दम है। कभी-कभी तो ऐसी भूलें हो जाती हैं कि दो सुदूरवर्ती स्थानों से एक ही समय में, 'फ़ौजी कौकजी' के होने की सूचनायें आती हैं।

ब्रिटिश अधिकारियों का अनुमान है कि उस के साथ लगभग चार सहस्र कुशल सैनिक हैं, जो उस पर अपारश्रद्धा तथा भक्ति रखते हैं। इनमें अनुशासन भी ग़ज़ब का है। कारण यह है कि 'फ़ौजी कौकजी' न केवल एक डिक्टेटर है, वह कुशल योद्धा तथा पक्का धर्मगुरु भी है। इन सैनिकों के अलावा बग़दाद से लेकर समूचे अरब और फिलस्तीन में उसके हज़ारों मित्र हैं, जो सदैव उसकी रक्षा करने, आज्ञा मानने तथा सहायता करने में अपने प्राणों तक की बाज़ी लगा देते हैं। इन्हीं की सहायता से वह अनेक बार पकड़े जाने से बाल-बाल बच गया है। एक बार तो वह फ्रेंच सिपाहियों-द्वारा पकड़ा भी गया था और उसे मृत्यु-दण्ड की आज्ञा भी दी गई थी, पर फाँसी चढ़ाये जाने के कुछ ही घंटे पूर्व वह साफ़ बचकर निकल गया। उसके बाद फिर किसी के हाथ न आया।

कहते हैं कि उसके सैनिक अनेक बार अनुरोध कर चुके हैं कि जमकर लड़ाई की जाय और फिलस्तीन के भाग्य का वारा-न्यारा एक बार में ही हो जाय, पर वह इससे सहमत नहीं होता। उसे तो छापा मारकर शत्रुओं को परेशान करने की नीति ही पसन्द है। उसका विश्वास है कि शत्रु इसी नीति के द्वारा थोड़े ही दिनों में हैरान होकर भाग जायँगे। बीसवीं शताब्दी में शिवाजी की इस नीति को सफलतापूर्वक काम में लाना सचमुच बड़ी चतुरता का परिचायक है। आधी रात के घने अंधकार में सन्तरियों और पहरेदारों को काटते-छाँटते सौ दो सौ बदूनी सैनिक न जाने कहाँ से आ फटते हैं और दो-चार सौ को मार-काट कर फिर न जाने कहाँ जा छिपते हैं। इन हमलों से न हवाई जहाज़ों की पेश जाती है, न टैंकों की, न मशीनगनों की। और तो और, ज़हरीले गैसों के प्रयोग करने तक का अवसर नहीं मिलता। 'फ़ौजी कौकजी' किस राह से होकर निकला है, इसका पता उजड़े व जले खेतों, लूटे मकानों और अङ्ग-भङ्ग लाशों से ही लगता है।

इस विचित्र योद्धा का जीवन-वृत्त भी अधिकांश रहस्यमय है। कहते हैं कि वह सीरिया का रहनेवाला है और गत महायुद्ध में तुर्की की सेना में एक उच्च पद पर सफलता-पूर्वक काम कर चुका है। जब से फिलस्तीन में विदेशियों की हड़पनीति ने पैर पसारे हैं, वह आकर अचानक प्रकट हो गया है। उसमें संगठन-शक्ति भी ग़ज़ब की है वह कहा करता है कि ख़ुदा और पैग़म्बर के बाद अरबों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शासन करने का अधिकार केवल मुझे है। उसका विश्वास है कि वह निकट भविष्य में अरब-साम्राज्य का निर्माण करने में समर्थ होगा। उसके साथी उसे हिटलर से भी बढ़कर कुशल राजनीतिज्ञ समझते हैं और कहते हैं कि 'फ़ौजी कौकजी' में तीनों मुसलमान राजनीतिज्ञों—'सूडन के महदी', 'शुमाली लैंड के पागल मुल्ला' और 'इपी के फ़क़ीर' के गुण एकत्र हो गये हैं।

अब देखना है कि यह अनोखा योद्धा अपने स्वप्नों को साकार रूप देने में कहाँ तक समर्थ होता है।

६—माननीय पंत जी और मुसलमान भाई

गत जनवरी में युक्त प्रान्त की कांग्रेसी सरकार के प्रीमियर माननीय पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त ने प्रेस-प्रतिनिधियों की एक सभा में एक वक्तव्य दिया था, जो मुसलमानों में उर्दू में छपवाकर बँटवाया गया था। चार-पाँच महीने के बाद अब यह वक्तव्य हिन्दी पत्रों की टीका-टिप्पणी का विषय बना है, इतने दिन बाद इसलिए कि अब तक वह उनकी जानकारी में नहीं आया था।

इस वक्तव्य को हिन्दुओं से क्यों छिपाया गया था, इसका कारण ठीक समझ में नहीं आया। हमारे प्रान्त की सरकार ने मुसलमानों को किसी भी मूल्य पर राज़ी रखने के लिए जो जा और बेजा रियायतें दी हैं, उन्हीं का इस वक्तव्य में विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है, और इसके द्वारा मुसलमान भाइयों को यह समझाने की कोशिश की गई है कि हम तो आप लोगों को खुश करने के लिए हक़-नाहक़ उचित-अनुचित सभी कुछ कर रहे हैं, और करने को तैयार हैं, फिर आप और आपके नेता हमारे मंत्रि-मण्डल को हिन्दुओं का पक्षपाती क्यों कहते हैं? वक्तव्य में कान में यह कहने की कोशिश भी की गई है कि यदि हिन्दुओं को इन बातों की कानो-कान खबर हो जाय तो वे आबादी के औसत से जगहें माँगने को झगड़ा करने लगेंगे। फिर जो विशेष रियायतें इस समय हम आपको दे रहे हैं, या देने जा रहे हैं, उनमें बाधा पड़ेगी।

हम नहीं कह सकते कि इस वक्तव्य में पंतजी की सरकार की जिस पक्षपातपूर्ण नीति का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख हुआ है वह जिम्मेदार क्षेत्रों में किस दृष्टि से देखी जायगी; पर इसमें सन्देह नहीं कि अल्पमत को केवल खुश रखने के लिए जो अनुचित रियायतें दी गई हैं वे न्याय और उदारता से कोसों दूर हैं। उदारता अपनी सीमा पार कर जाने पर अन्याय बन जाती है। ये सब प्रयत्न किये गये थे अल्पमत को प्रसन्न करने और साम्प्रदायिक दंगे रोकने के लिए, पर इनसे जितनी सफलता मिली वह दोपहर की तरह स्पष्ट है। लाभ और लोभ में घनिष्ट सम्बन्ध है। फिर जिसे अनुचित लाभ उठाने का चस्का लग जाता है वह किसी तरह मनाया नहीं जा सकता। चुराकर मिठाई खानेवाले लड़के और उनको खिलानेवाले बड़े-बूढ़े, दोनों समाज के निन्दनीय माने जाते हैं। हमारे प्रान्त में मुसलमानों की संख्या १४ प्रतिशत है। उन्हें २०-२५ प्रतिशत तक नौकरियाँ देना उदारता की सीमा में आ सकता था; पर ७४.४ प्रतिशत तक दे देना न केवल अनुचित है, प्रत्युत बहुसंख्यक के साथ सरासर अन्याय है। उदाहरणार्थ पुलिस के कर्मचारियों में हिन्दू हेड कॉस्टेबल ८९८ हैं और मुसलमान १६३। यह उदारता है या दब्बूपन! शायद इसी उदारता का परिणाम इस सीमा तक पहुँच गया है, जो अलीगढ़, कानपुर, बनारस और असेम्बली प्रदर्शन जैसी दुर्घटनाओं का कलंक लग गया है। माननीय किदवई साहब आदि पर घातक हमला किया गया, पर अपराधियों को पकड़ कर भी सिर्फ दंड दिये छोड़ दिया गया। उक्त वक्तव्य में छापा गया है कि विवाह-शादियों में हिन्दू औरतों को गाने औरतों बजाने तक से मना कर दिया गया था। पूजा के अवसर पर भी शंख-घड़ियाल और आरती का निषेध किया दिया गया था; कहीं कहीं होली खेलने तक की कड़ी मनाही कर दी गई थी। हिन्दुओं के नागरिक अधिकारों का अन्याय के साथ अपहरण किया गया, और यह सब किया गया दंगे रोकने के नाम पर! या मुस्लिम लीग को खुश करने के लिए! शिक्षा-विभाग में भी, जब कि मुसलमान हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक साक्षर हैं—मुस्लिम संस्थाओं को अपेक्षाकृत अधिक सहायता दी गई है। क्या ८५ प्रतिशत आबादीवाले प्रधान मंत्री से यह पूछने का हक़ भी नहीं रखते कि आख़िर जहाँ उनका अल्पमत है—जैसे बंगाल, पंजाब, सिन्ध—वहाँ तो उनके साथ जो व्यवहार हो रहा है वह हो ही रहा है—पर जो प्रान्त उन्हीं के टैक्सों पर चल रहा है उसमें भी उनके अधिकारों पर यह कुठाराघात किया जा रहा है? क्या सरकार इतनी दब्बू और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वह रात-दिन न्याय और समदर्शिता की दुहाई भर सकती है, व्यवहार में उसका पालन नहीं कर सकती ! या हमारी प्रान्तीय सरकारें प्रजातन्त्र की यही परिभाषा समझती हैं कि जो झगड़ा करे उसे अधिक से अधिक दे दिया जाय और जो चुप रहे उसे ही दबाया जाय ? यदि 'स्वराज्य' का यही नमूना है तो ऐसा स्वराज्य हमें नहीं चाहिए।

७—राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बसु का इस्तीफ़ा

आख़िर में सुभाष बाबू को अपने पद का लाचार होकर त्याग कर देना ही पड़ा। कांग्रेस के इतिहास में यह पहली घटना है और अपने ढंग की निराली भी है। निराली इसलिए है कि सुभाष बाबू पहले सभापति थे, जो कांग्रेस के सभापति के चुनाव को लड़कर सभापति हुए थे, यद्यपि कांग्रेस की कार्य-समिति के सदस्यों ने उनका खुल्लम-खुल्ला विरोध किया था। परन्तु बाद को जब महात्मा गांधी ने भी सुभाष बाबू के सभापति चुने जाने का विरोध किया और उनका सभापति चुना जाना देश के लिए अहितकर बताया तब त्रिपुरी के कांग्रेस के अधिवेशन पर इन्हीं लोगों ने सुभाष बाबू का साथ देने से इनकार कर दिया जिनके वोटों ने उन्हें सभापति की गद्दी साल भर के लिए दिलाई थी। यही नहीं, उन्होंने फिर ऐसा रुख ग्रहण किया कि अन्त में सुभाष बाबू को इस्तीफ़ा देकर अलग हो जाना पड़ा। इसी से हम इसे अपने ढंग की निराली घटना कहते हैं। पर, और चाहे जो हो, इस घटना से इतना तो स्पष्ट ही है कि कांग्रेस के भीतर एक ऐसे समूह का अस्तित्व है जो सत्य-पूजा का प्रेमी नहीं है और उसने इस ऐतिहासिक घटना के अवसर पर जो गति-विधि प्रकट की वह उसके चरित्र की सूचक यद्यपि नहीं है, तथापि उसके विद्रोही रूप के अस्तित्व का पता तो देती ही है। इस बार वह जिस निश्चय से जिस प्रकार डिग गया उससे यही प्रकट होता है कि वह निर्बल है और उसमें आत्म-विश्वास का अभाव है। ऐसा न होता तो वह त्रिपुरी की कनवासिंग के प्रभाव में आ तथापि न आता। तथापि इस घटना का पूर्ण विश्लेषण करने पर यह मानना ही पड़ेगा कि आज की कांग्रेस महात्मा गांधी की कांग्रेस है और उनके शिष्य सरदार, राजा जी और जवाहर बाबू की त्रिमूर्ति ही महात्मा जी हैं। इनके साथ के नेताओं का जो दल है वह इस त्रिमूर्ति की कृपा पर निर्भर करता है।

८—प्रान्तीय सरकार की दरबारी भाषा

युक्तप्रान्तीय सरकार बहुत पहले से अपने को हिन्दुस्तानी भाषा के पक्ष में कहती आई है। असेम्बली में मंत्रि-मण्डल के सदस्य हिन्दुस्तानी की हिमायत करने के मौक़े कभी हाथ से नहीं जाने देते। परन्तु कदाचित् उसका ध्यान अपने दफ्तरों की 'हिन्दुस्तानी' की ओर अभी तक नहीं गया है। सरकार के दरबार में कैसी सुन्दर भाषा का चलन है, इसका परिचय उस दिन काशी के प्रसिद्ध दैनिक 'आज' ने दिया था और पुलिस के एक सर्क्यूलर के अवतरण देकर उसकी कुटिलता के सम्बन्ध में एतराज़ भी किया था। परन्तु जान पड़ता है कि सरकार का ध्यान आकृष्ट करने में 'आज' समर्थ नहीं हुआ, अन्यथा अब तक सरकार ने कोई न कोई सर्क्यूलर निकालकर अपने घर की अस्वाभाविक भाषा के संस्कार का कोई न कोई उपक्रम अवश्य किया होता। वास्तव में यह काम सबसे पहले करने का है। क्योंकि सरकार के दरबार में जिस भाषा का उपयोग होता है उसे साधारण मुसलमान भी नहीं समझ पाते, हिन्दू तो समझ ही नहीं पाते हैं। फलतः सरकार को इस दुरवस्था की ओर जल्दी से जल्दी ध्यान देना चाहिए और उसे ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि उसके दरबार में उसी भाषा का प्रयोग हो जो सर्व-साधारण के लिए बोध-गम्य हो।

९—युक्तप्रान्तीय सरकार के सत्कार्य

प्रसन्नता की बात है कि संयुक्त-प्रान्त की सरकार भी लोकोपयोगी क़ानूनों के बनाने एवं व्यवस्थायें जारी करने में किसी प्रान्त की सरकार से पीछे नहीं है। अभी तक वह पट्टेदार किसानों के लिए एक उपयोगी क़ानून बनाने में लगी थी जो अब पास हो गया है। उससे अवकाश पाते ही उसका ध्यान दूसरी बातों की ओर गया है। दहेज के विरुद्ध एक महत्त्व का प्रस्ताव उसकी असेम्बली में पास हो चुका है। उसी तरह उसने प्रत्येक ज़िले में चमड़े के विशेषज्ञों को नियुक्तकर चमड़े के व्यवसाय के सुधार करने का उपक्रम किया है। उसके ये काम सर्वथा प्रशंसनीय हुए हैं और हमें विश्वास है कि प्रान्तीय सरकार चमड़े की तरह लोहारी के धन्धे को भी बढ़ाने के लिए ऐसी ही योजना शीघ्र ही कार्य में परिणत करेगी। चमड़ा और लोहा—इन दोनों के धन्धे भी खद्दर के धन्धे की ही तरह सर्वथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रोत्साहन देने के योग्य हैं। इनको प्रोत्साहन देने से लाखों अशिक्षितों की बेकारी दूर हो जायगी, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है। स्वदेशी सरकार से सर्व-साधारण को ऐसे ही लोकोपयोगी कार्य किये जाने की आशा है।

१०—हिन्दी की उन्नति या ह्रास!

रंगढंग से ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी के लिए बुरे दिन आ गये हैं। कहाँ वह भारत की राष्ट्र-भाषा बन जाने की उमंग में थी और कहाँ अब उसकी रूप-रेखा में भी फेर-फार किये जाने की व्यवस्था हो रही है। चौबे जी छब्बे बनने चले थे, पर परिणाम यह निकला कि वे दुबे भी न रह गये। ऐसी दशा में हिन्दी-भाषियों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वे उसकी रक्षा के लिए सन्नद्ध हो जायँ और उसके राष्ट्रभाषा बनाये जाने के चकमे से उसे बचावें। उन्हें जान लेना चाहिए कि यमुना के पार पश्चिम ओर के प्रान्तों में उसका प्रवेश वर्जित है। अभी तक पंजाब और सीमा-प्रान्त में ही हिन्दी में लिखे पतेवाले पत्र लोगों को नहीं मिल पाते, पर अब दिल्ली में भी उनकी क़द्र नहीं रही, क्योंकि उस प्रान्त की राज-भाषा उर्दू है। रहा उसका केन्द्र-स्थान संयुक्त प्रान्त सो यहाँ भी राज-भाषा का स्थान उर्दू के ही अधिकार में है, और अब तो कांग्रेसीराज के ज़माने में 'हिन्दुस्तानी' को आगे लाने का सरकार की ओर से जो प्रयत्न हो रहा है उसे देख कर हिन्दी के प्रेमियों का भयभीत होना सर्वथा स्वाभाविक है। पचास वर्ष पहले अँगरेज़ी सरकार ने भी 'हिन्दुस्तानी' के प्रचार का प्रयत्न किया था। परन्तु हिन्दी के सौभाग्य से काशी के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के विरोध करने पर सरकार को अपनी उस योजना को उठा लेना पड़ा था और हिन्दी को स्वाभाविक ढंग से विकसित होने का अवसर मिल गया था। और आज जब हिन्दी फल-फूल रही है तब उसकी बाढ़ रोकने की योजना स्वदेशी सरकारें खुद करने को तत्पर दिखाई दे रही हैं। यह निस्सन्देह बड़े परिताप की बात है।

परन्तु इस आसन्न विपत्ति को देखकर हिन्दी-भाषी भयभीत नहीं होंगे। जो हिन्दी मुसलमानी शासन की छ सदियों तक साधु-सन्तों और चारणों का आश्रय ग्रहण कर अपने अस्तित्व की रक्षा करने में समर्थ हुई उसे आज बीसवीं सदी के प्रकाश में कौन हतप्रभ कर सकता है? और फिर आज तो हिन्दी उन्नत से उन्नत प्रान्तीय भाषा के समकक्ष हो गई है। आवश्यकता सिर्फ़ इसी बात की है कि हिन्दी-भाषी समय के रहते ही सावधान हो जायँ और आन्दोलन या विरोध या प्रतीकार करने की भावना से अलग रहकर हिन्दी की उत्तरोत्तर उन्नति करने में अधिक तत्परता के साथ संलग्न रहें। यह उनकी परीक्षा का समय है। आशा है, हिन्दी के भक्त इस अवसर पर अपने कर्तव्य का पालन करने से कभी विमुख नहीं होंगे।

हर हिटलर की जगत्प्रसिद्ध पुस्तक

'मेन कैम्फ़' हर हिटलर की रचना है, जो आज संसार में विक्री की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जर्मनी में तो उसका सम्मान बाइबिल जैसा है। स्कूल की पढ़ाई पूरी करने का सार्टीफ़िकेट पा जाने पर यह पुस्तक प्रत्येक लड़के को दी जाती है। विवाह के अवसर पर वर-को यह पुस्तक उपहार के रूप में देना आवश्यक हो गया है। साधारण एडीशन की एक प्रति का मूल्य जर्मनी में साढ़े बा मार्क है। इस पुस्तक की विक्री से हर हिटलर को समय एक लाख साठ हज़ार पौंड वार्षिक की आय है। १९३६ में नब्बे हज़ार पौंड के लगभग, १९३७ में एक ल बीस हज़ार पौंड और १९३८ में एक लाख पचास ह पौंड की आय हुई थी। कहा जाता है कि इस पुस्त हिटलर साहब को जो आय होती है वह सब वे नात्सी-क कोष में जमा कर देते हैं। यह भी कहा जाता है कि हिटलर के निजी सेक्रेटरी ने फ़्रांस, बेल्जियम, पोलैंड, हॉ स्वीज़लैंड आदि देशों की बैंकों में बहुत रुपया जमा कि खैर, अपनी आय का वे चाहे जो करते हों, परन्तु उन्हें पुस्तक की विक्री से जो आय होती है वह आश्चर्यजन है। हिन्दी का दुर्भाग्य कि इस संसार-प्रसिद्ध पुस्तक हिन्दी में अभी तक भाषान्तर नहीं हुआ है।

Printed and published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., ALLAHABAD
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

भाग ४०, खण्ड १

जनवरी से जून

१९३९

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल

उमेशचन्द्रदेव

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

वार्षिक मूल्य साढ़े चार रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	अनुरोध (कविता)	श्रीयुत ईशदत्त शास्त्री 'श्रीश' ...	७१
२	अपने प्रश्नदाता से (कविता) ...	श्रीयुत शाखाल एम० ए० ...	३८१
३	अभिज्ञा (कविता)	प्रोफ़ेसर विश्वनाथप्रसाद, एम० ए० साहित्यरत्न	४७४
४	अमरलोकवासी श्री महावीरप्रसाद जी द्विवेदी	साहित्य-शिरोमणि श्री गिरधर शर्मा नवरत्न	१५६
५	अल्पता की समस्या	श्रीयुत पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी ...	९९
६	अव्यक्त वेदना (कविता) ...	श्रीयुत ब्रजेश्वर	२११
७	आँखों का दोष (कहानी) ...	श्रीयुत योगेन्द्रनाथ शर्मा	२३८
८	आचार्य के चरणों में (कविता) ...	श्रीयुत 'चातक' कविरत्न	१३०
९	आचार्य द्विवेदी के पत्र		३८१, ५१९, ६१०
१०	आचार्य द्विवेदी जी	पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़कर ...	१६१
११	आचार्य द्विवेदी जी	श्रीयुत कृष्णप्रसाद गौड़, एम० ए० एल० टी० ...	१७०
१२	आचार्य देव	श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त	१९३
१३	आचार्य महावीरप्रसाद जी द्विवेदी के चरणों में श्रद्धाञ्जलि	श्रीयुत बाबू शिवप्रसाद गुप्त	२१८
१४	आतिथ्य (कहानी)	भदन्त आनन्द कौशल्यायन	६०१
१५	आपेक्षिकतावाद	श्रीयुत नलिनी मोहन सान्याल एम० ए० भाषातत्त्वरत्न	
१६	आश्वासन (कविता)	श्रीयुत नरेन्द्र	१००
१७	आस्ट्रेलिया का वैभव	श्रीमती रामेश्वरी नेहरू	२६१
१८	उठ उठ री ! मानस की उमंग (कविता) ...	श्रीयुत सोहनलाल द्विवेदी, एम० ए० ...	३७५
१९	उद्भावन	कुमारी कुमुद	६३
२०	उनकी महत्ता	श्रीयुत उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०, साहित्यरत्न	१६३
२१	उर में (कविता)	श्रीयुत 'हितैषी'	५७६
२२	एक महान् संपादक	श्रीयुत हरिकेशव घोष	१८६
२३	एक रिकार्ड (कहानी)	श्रीयुत पहाड़ी	४७१
२४	ओले गिरे (कहानी)	श्रीयुत लक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी "चन्द्र" ...	२५१
२५	करेंसी की लोच और उसका रुपये की विनिमय दर पर प्रभाव	प्रोफ़ेसर प्रेमचन्द मलहोत्रा	२५९
२६	कवि और चित्रकार (कविता) ...	श्रीयुत मित्तल	३१८
२७	कवि से (कविता)	श्रीयुत निरंकारदेव "सेवक" ...	२५९
२८	कुछ इधर-उधर की		९१, ३००, ५४९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्रदेव

सितम्बर १९३९ } भाग ४०, खंड २ संख्या ३, पूर्ण संख्या ४७७ { द्वितीय श्रावण १९९६

कलिका से; कलिका की ओर से

लेखक, श्रीयुत 'एक भारतीय आत्मा'

क्यों मुसका दीं बोलो आली !
जाड़ा है, रात अँधेरी है, सन्नाटा है, जग सोया है,
फिर यह काँटों की टहनी है, कैसे मुसका उट्ठीं आली ?

क्यों तुम्हें रात में दीख रहा ?
तुम योगी हो ? अथवा उलूक ?
क्यों हास्य बिखरता है, बोलो
कर कर मृदु सम्पुट टूक टूक ?

क्यों आँख खोल दी ? क्या अपना जग,
फूला फूला-सा दीखा ?
क्या मुँदी आँख में, यह सपना जग
भूला भूला-सा दीखा

क्या इन पत्तों ने जगा दिया,
फर फर कर करके सूने में ?
क्या फर फर में पुकार सुन ली
जागना छू लिया छूने में ?

क्या कहूँ साँसवाले जग को ?
जो निशिदिन सो सो जगता है ?
क्यों मेरा जगना एक बार भी,
इसे अनोखा लगता है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा जगना, मेरा हँसना
जग-जीवन का उल्लास कहाँ ?
मैं हँसूँ मुँदूँ मनचाही-सी
विधि का मुझ पर विश्वास कहाँ !

तुम हँसते हो चुप हो होकर
चुप होकर मुसका जाते हो ?
मैं हँसी, कि कैसे पाप हुआ ?
क्यों प्रश्न पूछने आते हो ?

कोमल रवि-किरणें आती हैं
वे मुझे ढूँढ़ती घूम घूम।
अपने बिजली से ओठों से,
मेरा मुँह लेती चूम चूम !

क्या कहूँ हवा से, यह सौतिन,
चुप धीमे धीमे आती है--
फिर मुझे हिलाती हौले से,
मेरी आँखें खुल जाती हैं।

पत्रों का, इन मदमत्तों का
वह झूम झूम कर गा देना,
कुछ कभी ताल-सी दे देना,
कुछ यों चुटकियाँ बजा देना !

पंखों से हवा में जग न उठे
यों ठण्डी मेरी आग कहाँ ?
मेरा मीठापन बह न उठे
वह क़ाबू का अनुराग कहाँ ?

डूबते हुए इन तारों से
बोलूँ तो क्या बोलूँ आली !
इनकी समाधियों पर मेरी मुसकान ?--
--कौन थाती पालो ?

तेरा हँसना वह हँसना है,
जिससे मेरा उद्धार नहीं,
मेरा हँसना वह हँसना है,
जिस पर टिक पाया प्यार नहीं।

मेरा हँसना वह हँसना है,
जीने का जो एतबार नहीं !
मेरे हँसने में मानव-सा,
पापी विधि हुआ उदार नहीं।

जग आँख मूँद कर मरता है
मैं आँख खोल कर मरती हूँ !
मेरी सुन्दरता तो देखो,
मरने के लिए उभरती हूँ !!

रवि की किरनों को तो देखो,
वे जगा विश्व-व्यापार, चलीं !
मेरी क़िस्मत !--
वे ही मुझको यों हँसा हँसा कर मार चलीं !

मैं जगी कि जैसे मीठा-सा,
प्रिय का कोई सन्देह जगा !
मधु बहा कि जैसे सन्तों का,
धीमे धीमे सन्देश जगा !

मैंने हाँ वर भी पाया,
--मैं जिसकी गोदी में बड़ी हुई,
जिसका रस पी, मधु-गन्धमयी,
खिल-खिल कर ऊँची खड़ी हुई।

आई बहार, मैं उसके ही चरणों पर नत हो,
झुकी सखी !
फिर जी की एक एक पंखुड़ि, उस पर बलि
मैं कर चुकी सखी !

मैं बलि का गान सुनाती हूँ,
प्रभु के पथ की बन कर फ़क़ीर
माँ पर हँस-हँस बलि होने में,
खिच,------हरी रहे मेरी लकीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मीराबाई'—नाम

लेखक, श्रीयुत डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल,
एम० ए०, डी० लिट्

इस लेख में डाक्टर बड़थ्वाल ने बड़ी छानबीन के साथ यह सिद्ध किया है कि मीराबाई नाम नहीं किन्तु उपनाम है, साथ ही मीरा एक विदेशी शब्द है।

मीराबाई के व्यक्तित्व के कारण उसका नाम हमारे लिए इतना प्रिय हो गया है कि साधारणतया हमें यह ध्यान भी नहीं आता कि उसमें कोई असाधारणता है और उसके सम्बन्ध में सोच-विचार की भी आवश्यकता है। परन्तु यदि इस नाम पर थोड़ा भी विचार किया जाय तो पता चलेगा कि यह नाम है बहुत असाधारण।

इस नाम पर विचार करने के पहले यह उल्लेख करना आवश्यक है कि राजस्थान में जहाँ की रहनेवाली मीराबाई थी, नाम का उच्चारण मीराँबाई है। 'रा' का यह आनुनासिक उच्चारण व्याकरण की किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए आया है अथवा केवल राजस्थानी की उच्चारण-मात्र की एक विशेषता है, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। राजस्थानी में विभक्तियों के पहले बहुवचन में विकारीरूप बहुधा आँ-कारवाले होते हैं, जैसे "धण संभालै कंचुवौ प्री मूछां रा बालि" में मूछाँ है। मुझे यह भी बतलाया गया है कि जैसे मीरां का मीरां होता है, वैसे हीरा का हीरां। इस 'आँ'-कार का चाहे जो कारण हो, 'मीरा' और 'मीरां' हैं मूलतः एक ही चीज़। हिन्दी में मीराबाई चलता है, फिर से मीराँबाई चलाने का प्रयत्न करना उचित नहीं। विभिन्न भाषाओं में एक ही नाम के अलग अलग उच्चारण देखे जाते ही हैं। मीरां से मीरा में जो परिवर्तन हुआ है, वह अपने आप हुआ है, किसी के सज्ञान प्रयत्न से नहीं।

ऊपर मैंने इस नाम की असाधारणता का उल्लेख किया है। यह बात नहीं कि हिन्दी में इस शब्द का प्रयोग ही न हो। है तो, किन्तु बहुत विरल। अभी तक मुझे बाबू श्यामसुन्दरदास जी के द्वारा सम्पादित 'कबीर-ग्रंथावली' में आई हुई निम्नलिखित तीन साखियों में 'मीराँ' शब्द का प्रयोग मिला है—

चौहट्टै चिन्तामणि चढ़ी, हाड़ी मारत हाथि।
मीरां मुझ सूं मिहर करिइब मिलौं ना काहू साथि॥

चिन्तामणि (आत्मा मायाविष्ट होकर जीव के रूप में) खुले बाज़ार (जगत् में) बिकने आई है। इसी से डाकू (यम) उस पर हाथ मार रहा है। हे प्रभु! मुझ पर दया कर। मैं किसी के साथ मिलना नहीं चाहता (मायोपाधिक जगत् में नहीं आना चाहता, निर्लेप रहना चाहता हूँ जिससे जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाऊँ।)

कबीर चाला जाइ था आगैं मिल्या खुदाइ।
मीरां मुझ सूं यूं कह्या, किन फुरमाई गाइ॥

कबीर परम्परागत मार्ग पर चला जा रहा था कि आगे खुदा मिल गया। प्रभु ने मुझसे इस प्रकार कहा—'गो (-वध) की आज्ञा किसने दी है?'

हज काबै ह्वै ह्वै गया केती बार कबीर।
मीरां मुझमें क्या खता मुखां न बोलै पीर॥

(कबीर कभी हज्ज करने तो गये नहीं थे। भीतरी भाव को ही वे असली हज्ज मानते थे। इसी लिए उनका कथन है कि) मैं न जाने कितनी बार काबे की हज्ज को हो आया हूँ। फिर भी यदि (दुनियावी) पीर मुझसे बोलता नहीं, (मुझे भक्त नहीं मानता) तो हे प्रभु! इसमें मेरा क्या दोष? (दोष पीर की बहिर्मुख वृत्ति का है। साखी का उद्देश्य बहिर्मुख कर्मों की व्यर्थता सिद्ध करना है।)

इन साखियों में, जैसा उनके साथ दिये हुए अर्थों से स्पष्ट है, 'मीराँ' का अर्थ प्रभु या ईश्वर जान पड़ता है। इस शब्द के माने मीर भी हो सकते हैं (मीर के सम्बन्ध में आगे चलकर कुछ कहने की आवश्यकता पड़ेगी)। परन्तु वह इनमें खपता नहीं है। दूसरी साखी 'मीराँ' का अर्थ 'हे मीरो!' मानने में बाधक नहीं, परन्तु उसका अर्थ ईश्वर मानने में भी वह अड़चन नहीं डालती। तीसरी में उसका अर्थ ईश्वर लगाना ही अधिक संगत है क्योंकि अन्यथा 'पीर' के विरुद्ध अपील सामान्य मीर के पास ले जाने के कोई माने नहीं। पहली साखी में तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मीराँ' के माने स्पष्ट ही ईश्वर हैं। बिना उसके यह माने लगाये उक्त साखी का अर्थ ही नहीं बैठ सकता। इसलिए 'मीरां' के माने हुए 'प्रभु' और 'मीरां-बाई' के 'प्रभु-पत्नी', 'परमात्मा की स्त्री'। और जो

मेरे तो गिरिधर गुपाल, दूसरा न कोई।
जा के सिर पै मोर मुकुट मेरो पति सोई॥

की तान से परिचित है वह जानता है कि यह कितना सच है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यह मीराँ शब्द है कैसा? वह किसी अन्य भाषा का तत्सम या तद्भव है या देशज? राजस्थान के एक प्रमुख विद्वान् से मैंने जब मीराबाई नाम के सम्बन्ध में पूछा तब उन्होंने कहा कि यह ख़ास राजस्थानी का शब्द है। परन्तु उस दशा में उसका व्युत्पत्ति-सम्मत अर्थ क्या होगा, यह उन्होंने कुछ नहीं बताया। कबीर-बानी के कबीर-ग्रन्थावली के ढंग के अधिकांश हस्तलेख या तो राजस्थान में, या किसी राजस्थानी के लिए या किसी राजस्थानी के द्वारा लिखे मिलते हैं इसलिए यदि मीराँ राजस्थानी का अपना शब्द है तो उसका मूल चाहे जो हो, यही अधिक संभव है कि जिस अर्थ में उसका प्रयोग कबीर-ग्रन्थावली में हुआ है, राजस्थानी में भी उसका वही अर्थ होगा। राजस्थानी शब्द मानने पर भी उसका मूल कहीं से ढूंढ़ना ही पड़ेगा। क्योंकि स्वयं राजस्थानी बोली में इस नाम के अतिरिक्त कहीं उसका प्रयोग नहीं मिलता जिससे हम उसे राजस्थानी का मूलतः अपना अथवा देशज शब्द मान सकते। किसी शब्द को देशज मानने का भी अर्थ कभी कभी यही होता है कि हम उसका मूल नहीं जानते।

हिन्दू नारी का नाम होने के कारण पहली आशा यही होती है कि इसका मूल भारतीय होगा। परन्तु मीरा या मीराँ को संस्कृत से निकालना बहुत खींचतान से ही सम्भव हो सकता है। संस्कृत-कोशों में एक शब्द 'मीर' आता है, जिससे इसकी व्युत्पत्ति सम्भव हो सकती है। मेदिनी-कोश में फेंकने के अर्थ में (प्रक्षेपणे) डुमिग् धातु से क्त्र प्रत्यय लगा कर इसकी सिद्धि की गई है। थियोडोर और बेन्फ़ी ने इसे 'मी' धातु से निकाला है। मोनियर विलियम्स के और सेंट पीटर्सबर्गवाले तथा अन्य कोशों में सब जगह अर्थ सागर दिया गया है। (प्रभु, ईश्वर) नारायण का निवास सागर है। अतएव सम्भवतः बड़ी तोड़-मरोड़ के बाद मीरा के माने नारायण या ईश्वर लग सके। फिर भी संस्कृत में मीर शब्द का कहीं साहित्य में वास्तविक प्रयोग न मिलने से यही कहना पड़ता है कि इससे शायद ही मीरा बना हो। कोशों में सिद्धान्त-कौमुदी से यह शब्द लिया गया जान पड़ता है। वहाँ उणादिप्रकरण में उसका उल्लेख हुआ है। यह तो कहा नहीं जा सकता कि यदि कहीं साहित्य में उसका प्रयोग नहीं मिलता तो वह कभी बोल-चाल में भी प्रयुक्त न होता रहा होगा, अन्यथा वह व्याकरण में ही कैसे आता। किन्तु यह शब्द अब इतना अपरिचित हो गया है कि उसे सहसा सुनते ही संस्कृत के विद्वान् भी संस्कृत का मानने को तैयार नहीं होते*। ऐसे शब्द से निकले हुए शब्द का प्रयोग हिन्दी में भी केवल कबीर में मिले, इसकी कम सम्भावना है।

---

* इस सम्बन्ध में एक बहुत रोचक तथ्य प्रकाश में आया है। लखनऊ-विश्वविद्यालय में संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष तथा फ्रेञ्च-भाषा के अध्यापक श्रीयुक्त के० ए० एस० आयर ने बताया है कि फ़रासीसी भाषा में मीर (mer) सागर के अर्थ में अब भी प्रयुक्त होता है। भूमध्य सागर के लिए फ़रासीसी पर्याय है Law mer meditterannee (the sea mediterranian)। इटालियन भाषा में भी इससे मिलते-जुलते शब्द का सागर के अर्थ में प्रयुक्त होना कहा जाता है। इससे भी यही पता चलता है कि व्याकरण में निराधार ही इस शब्द का उल्लेख नहीं हुआ है। संस्कृत तथा योरपीय भाषाओं के बहुत-से शब्द एक ही मूल से निकले हुए हैं। संस्कृत के 'मीर' और फ़रासीसी 'मैर' का भी एक ही मूल जान पड़ता है। हो सकता है कि संस्कृत के क्षेत्र में वह बोलचाल ही तक सीमित रह गया हो, साहित्य में न आ पाया हो। आयर महोदय तो यह सम्भव समझते हैं कि इस शब्द का मूल विदेशी है और सम्भवतः यवनों (ग्रीकों) के संसर्ग से यह संस्कृत में गृहीत हुआ है। संस्कृतकोशों का यह 'मीर' चाहे भारतीय हो अथवा विदेशी, उससे 'मीरा' का कोई सम्बन्ध नहीं जान पड़ता। —लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो क्या यह शब्द विदेशी है ? फ़ारसी में एक शब्द 'मीर' है, जिससे इसकी व्युत्पत्ति सम्भव हो सकती है। डरहूंस अनंदराज में मीर अमीर या मीरह का संकुचित रूप माना गया है। तेहरान से प्रकाशित एस० हैम के फ़ारसी-अँगरेज़ी-कोष में इसकी निरुक्ति अमीर से की गई है। माने दोनों कोषों में एक-से हैं। मीर शुद्ध वंश के सैयदों के नामों के पहले आदर प्रदर्शन के लिए जोड़ा जाता है और उसके माने सरदार या मालिक के होते हैं। यही अर्थ हिन्दी-शब्दसागर में भी दिया गया है। डाक्टर ताराचन्द के एक लेख में शाह मीरां जी शम्सुल उश्शाक का ज़िक्र आया है। मैंने उनसे पूछा कि इस नाम में आया हुआ 'मीरां' क्या है। उन्होंने उत्तर में लिखा कि यह मीर का बहुवचन है। यह व्युत्पत्ति कबीर-ग्रंथावली में मिलनेवाले प्रयोगों के विरुद्ध भी नहीं जाती। यद्यपि इस्लाम में अल्लाह के सम्बन्ध में 'मीर' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता, फिर भी लाक्षणिक प्रयोग से परमात्मा को मालिक कह सकते हैं, विशेषकर वे जो इस्लाम के अन्तर्गत नहीं हैं, जैसे कबीर। जान पड़ता है कि हिन्दी में आदर-प्रदर्शन के उद्देश्य से इस अर्थ में इस शब्द का सीधा बहुवचन रूप ही लिया गया है।

परन्तु सोलहवीं सदी के मध्य की किसी हिन्दू नारी के नाम में किसी फ़ारसी-मूलवाले शब्द का प्रयोग है विचित्र बात। आज भी जब कहीं कहीं पुरुषों में रामदत्त-सिंह रामबरूशसिंह में बदल गये हैं, हिन्दू स्त्रियों के नामों में विदेशीपन नहीं आया है। अतएव यह कम सम्भव जान पड़ता है कि मीराँबाई मा-बाप का रक्खा हुआ नाम हो। मीराबाई के पीछे तो मीरा नाम का सर्वप्रिय होना स्वाभाविक है। परिणामतः आजकल कई स्त्रियों के नाम मीरा मिलते हैं। किन्तु सम्भवतः मीराबाई पहली मीरा थी और सम्भवतः मीराबाई उसका नाम न हो कर उसकी व्यक्तिगत विशेषता की द्योतक उपाधि (या उपनाम) मात्र थी, जो सम्भवतः साधु-सन्तों के द्वारा उसे मिली हो और जिसके आगे उसका असली नाम विस्मृति के गह्वर में चला गया हो। मीरा की प्रेम-लक्षणा भक्ति प्रसिद्ध है। वह परमात्मा को अपना पति समझती थी और परमात्मा के अतिरिक्त किसी को पुरुष नहीं मानती थी। यह नाम उसकी इसी विशेषता का द्योतक है और सम्भवतः इस बात का भी कि इस विशेषता का मूल कबीरी विचार-धारा है। जैसा देख चुके हैं, कबीर में ही पहले-पहल हमें यह शब्द मिलता है। और सम्भवतः उन्हीं की-सी विचारधारावाले साधु-सन्तों से मीरा को यह नाम या उपाधि मिली हो। कबीर के द्वारा, जिसे मैं जात-मुसलमान मानता हूँ और जिसका मुसलमान कुल में पालापोसा जाना सब मानते हैं, फ़ारसी मूल से निकले हुए इस शब्द का प्रयोग अस्वाभाविक भी नहीं है। यह प्रसिद्ध है कि रैदास मीराबाई के गुरु थे। मीरा के नाम से मिलनेवाली 'बानी' में तीन स्थलों पर इस बात का उल्लेख है। यह भी प्रसिद्ध है कि रैदास रामानन्द के शिष्य और कबीर के गुरु भाई थे। नाभा जी ने स्वामी रामानन्द के शिष्यों को प्रेम लक्षणा भक्ति का जिसको उन्होंने 'दशधा' कहा है, आगर ('दशधा के आगर') बताया है, यही मीरा की भी विशेषता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[खालू का नया मंदिर]

मैं तिब्बत कैसे गया ?

लेखक, श्रीयुत फेनो मुकर्जी, कलाकार ए० सी० ए०; आई० ए० एस०

२६

मई को सबेरे साढ़े पाँच बजे फिर चल पड़े। कल की तरह हर एक गाँव में रुकते और खच्चर बदलते हुए हम लोगों ने क़रीब १२ मील का सफ़र तय कर नुरबू चंग ज़े के गाँव में पहुँचकर दोपहर का भोजन किया। आराम किये बिना ही हम लोग फिर आगे बढ़े। क़रीब ३ बजे शाम को एक भयानक आँधी का सामना करना पड़ा। दुर्भाग्य से मेरा खच्चर बिगड़ने और आगे चलने से इनकार करने लगा असबाब से लदे खच्चर और नौकर इतनी दूर थे कि तूफ़ान के धुन्ध में ग़ायब हो गये थे। उनकी देख-भाल के लिए गेशीला जी और अभयसिंह जी आगे झपटे। राहुल जी को मेरे साथ आने को छोड़ गये थे।

उनके चले जाने के बाद राहुल जी भी उस आँधी में घबरा कर आगे बढ़ गये। मैं अपने बिगड़ैल खच्चर की बदौलत उस तूफ़ान में अकेला तिब्बत के मैदान में भटकने लगा। रेत आँखों में भर गई थी, पत्थर के छोटे छोटे टुकड़े उड़ उड़कर चेहरे पर लग रहे थे। साथ साथ बारिश की बौछार और बर्फ़ भी गिरने लगी। उस समय मैं बड़े संकट में पड़ गया था। न तो मुझे कोई राह बतानेवाला था, न मैं तिब्बती भाषा ही जानता था। और सन्ध्या हो रही थी। आत्म-रक्षा के लिए मेरे पास सिवाय एक चाक़ू के और कोई अस्त्र भी न था। तिस पर खच्चर आगे चलने से साफ़ इनकार कर रहा था। उतर कर उसकी एक लगाम निकाली और जी भर कर उसको पीटा। बेचारा बेज़बान जानवर दुःख से दुःखी होकर बुरी तरह रेंकने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

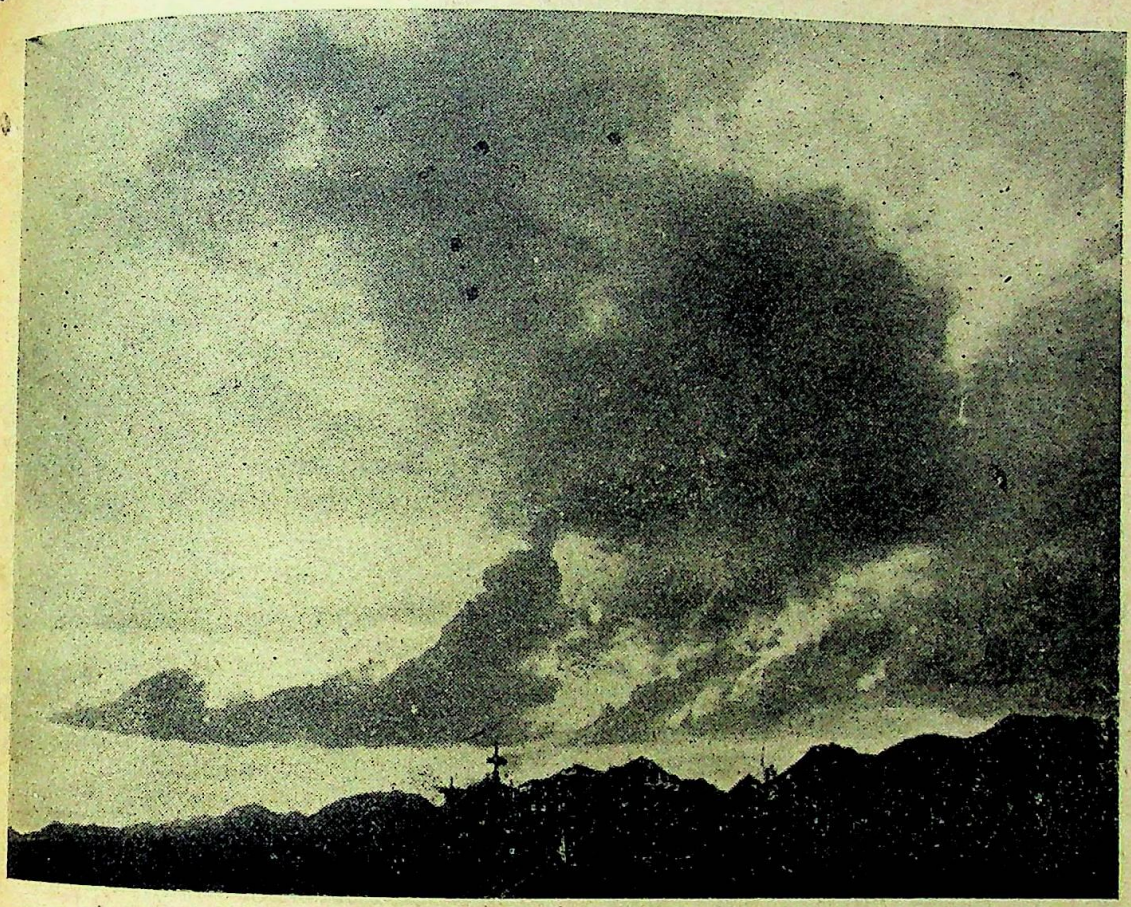

[रेत का भयंकर तूफ़ान]

पहले तो उस मैदान में रास्ता कहाँ है, इसी का पता लगाना कठिन था, दूसरे गर्द में कुछ सूझता भी नहीं था। लाचार होकर मैं फिर सवार हुआ और लगातार मारते हुए खच्चर को आगे बढ़ाया। वह बेतहाशा भागता भागता जाकर पानी के एक गढ़े में गिर पड़ा और उसके पैर कीचड़ में फँस गये। परन्तु सौभाग्य से चोट हम दोनों में से किसी को न लगी। मेरी छाती में पहली चोट का असर अभी तक था। इस भग-दौड़ और इस अचानक झटके से वह फिर दुखने लगी। भूख, प्यास, डर और दर्द की कमज़ोरी से मैं पागल-सा हो गया। उस कीचड़ में उतर पड़ा, खच्चर को पूरी ताक़त से बाहर निकाला, ढीले ज़ीन को कसा और फिर सवार होकर चल पड़ा। थोड़ी दूर चलकर एक छोटी-सी बस्ती में पहुँचा। वहाँ के काले रँगे हुए आदमियों को देखकर मैं डर गया। बड़ी हिम्मत से उनके समीप गया और बात-चीत करने की कोशिश करने लगा। मैंने यह अच्छा नहीं समझा कि मैं उन पर यह प्रकट होने दूँ कि मेरी हालत बहुत बुरी है और मैं बड़े संकट में हूँ। खच्चर को पूरी तेज़ी से भगाते हुए बड़ी शान से उनके पास गया। वे मुझको देख कर सहम गये और जीभ निकाल कर सिर खुजलाते हुए चुपचाप खड़े हो गये। तिब्बती-भाषा के जो दो-चार शब्द सीखे थे उनको कुछ हिन्दी और कुछ पंजाबी-बंगाली के शब्दों के साथ मिलाकर इस्तेमाल किया। उनके जवाब के ढंग से और हाथ के इशारे से मैं समझ गया कि हमारे साथी लोग आगे के गाँव में ठहरे हैं। मैंने उनको धन्यवाद दिया और आगे बढ़ा।

सूरज डूब चुका था। केवल काली क्षितिज सामने दिखाई दे रही थी। आगे निकलकर मैं जी में सोचने लगा कि अब क्या किया जाय। आगे बढ़ने की न हिम्मत थी, न शक्ति ही थी। फिर विचार किया कि आज की रात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

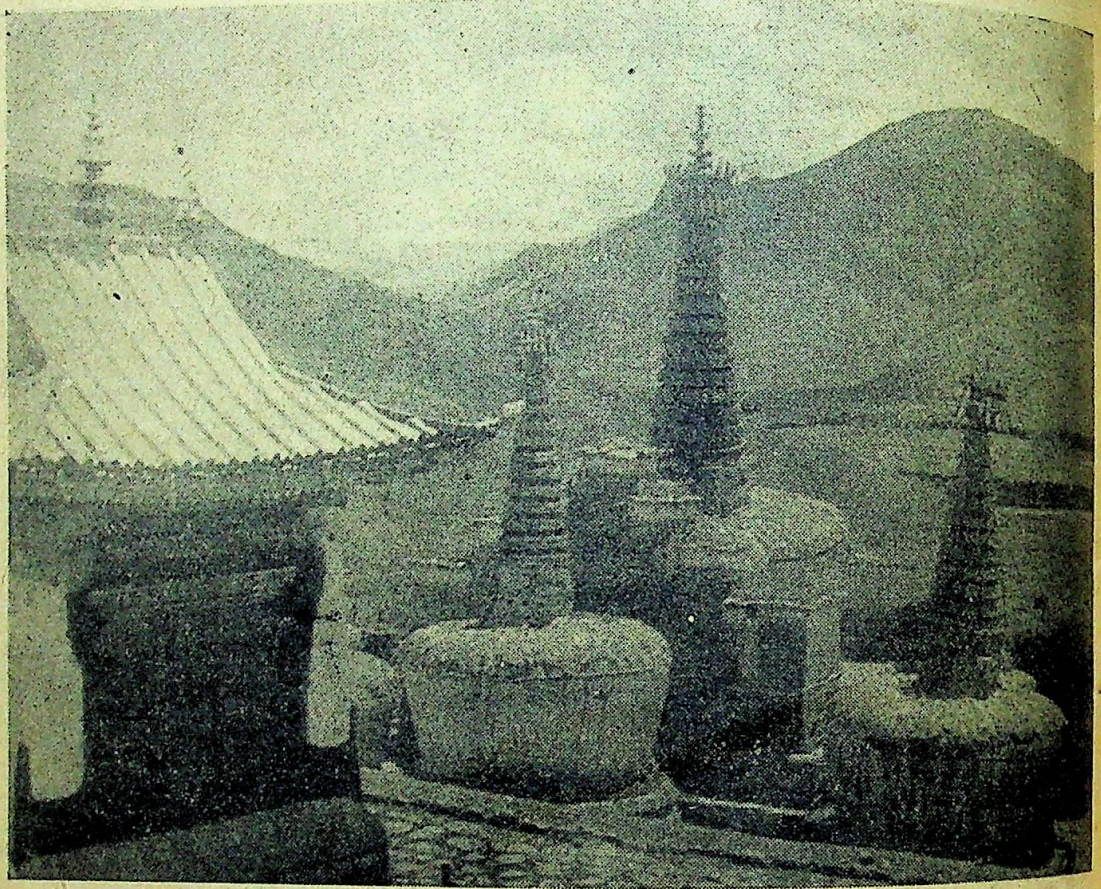

[शेलू के मंदिर की सोने की छत। पास में मंदिर सस्थापकों के तीन स्मारक हैं]

मैदान में ही क्यों न गुज़ार दूँ। इतने में दूर से किसी सवार के आने की आवाज़ कान में आई। मारे डर के खून सूख गया। सोचा, सिवाय डाकू के और कौन इस समय आ रहा होगा। थोड़ी देर बाद ही कान में आवाज़ आई—"फेनी!"

इस शब्द में कितनी मधुरता, कितना ढाढ़स और कितना आकर्षण था! तुरन्त समझ गया, मेरे दयालु भाई गेशेला आ गये हैं। उनके साथ साथ बात-चीत करते हुए २० मिनट चलने के बाद वे मुझे उस झोपड़ी में ले गये, जहाँ आज का डेरा पड़ा हुआ था। राह में कहने लगे कि राहुल जी को अकेले आते देखकर मैं घबरा गया और तुम्हें ले आने के लिए दौड़ा आया।

अन्दर जाकर मैं ज़मीन पर गिर पड़ा। भूख, प्यास, कमज़ोरी और दर्द से मैं बहोश हो गया। राहुल जी से मैं बोल न सका। रात में सबों ने जब खाना खा लिया तब गेशेला ने मुझको गरम दूध पिलाया और नौकरों ने मुझको खींचकर बिस्तरे पर डाल दिया। तमाम रात थकावट और सीने में दर्द बढ़ जाने से मैं सो नहीं सका।

कल के अपने कटु अनुभव से मैं अधिक सावधान हो गया था। दूसरे दिन एक पिस्तौल अपने कन्धे पर लटकाई। कुछ खाने पीने का सामान और ज़रूरी चीजें चमड़े के दो बेगों में रखकर अपने खच्चर पर लाद लीं और तिब्बती-भाषा की ज़रूरी बातें अपने पाकेट-बुक में लिख लीं। इस तरह संकट के समय अपने बचाव की मैंने यथासाध्य तैयारी कर ली।

यह रात हमने तोये गाँव में बिताई थी। हिसाब लगाने पर मालूम हुआ कि कल हम लोगों ने २० मील से ज्यादा ही सफ़र किया। २७ मई को हम खालू की बस्ती में पहुँच गये। दूर से चारों ओर का दृश्य बहुत ही सुहावना था। चारों तरफ़ पीले और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

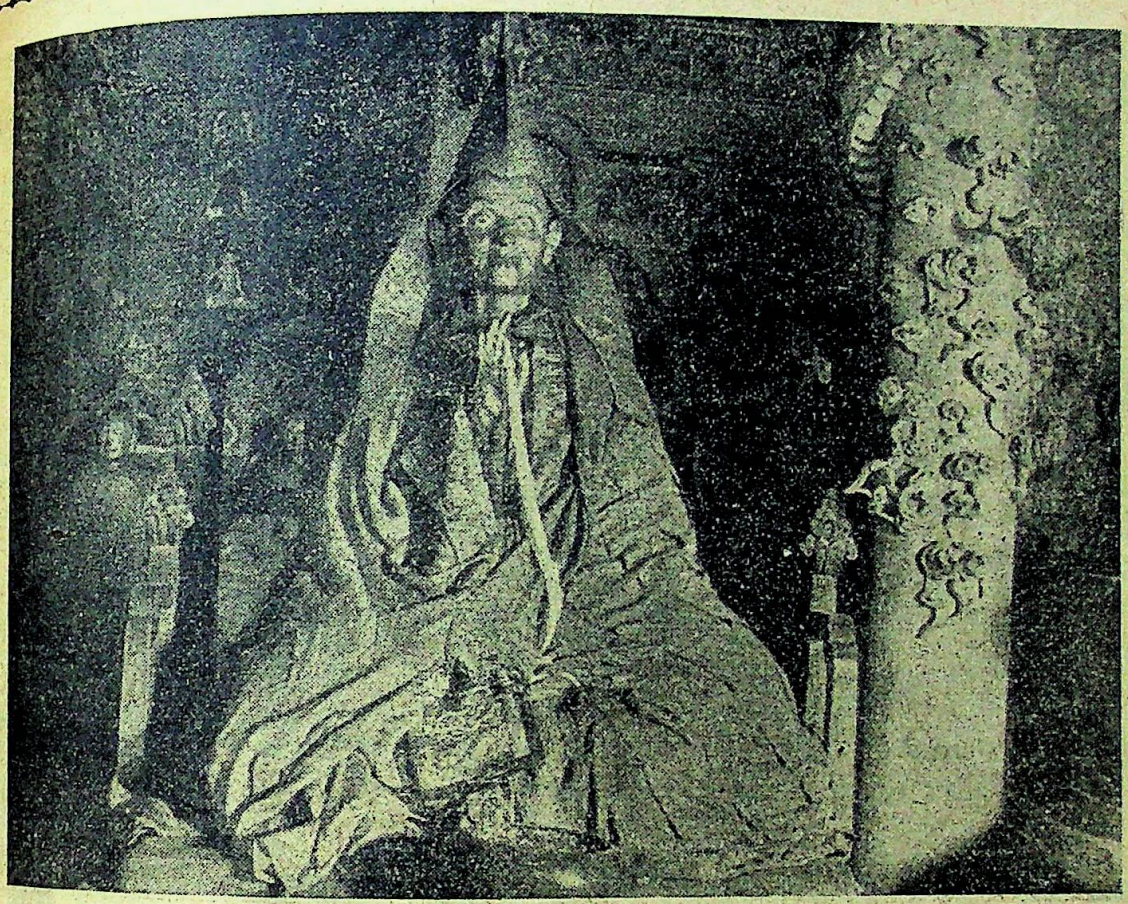

[खालू-मंदिर में महान् बौद्ध पंडित भट्टन की मूर्ति]

रंग के सूखे पहाड़ों की एक क़तार बनी हुई थी। खालू की पुरानी बस्ती पहाड़ की तराई में बसी है और उसके इर्द-गिर्द हरे-भरे पेड़ लगे हैं। पास की पहाड़ी पर खालू की नई बस्ती बसी हुई है। नया गुम्बा वहीं बना है। लामा भी वहीं रहते हैं। इसलिए पुरानी बस्ती बिलकुल उजाड़ मालूम होती है। सब दरवाज़ों में ताले पड़े हुए हैं और जगह जगह भयानक तिब्बती कुत्ते सोये हुए हैं। अन्दर घुसते ही सारे कुत्ते जाग पड़े और एकाएक दौड़ पड़े। नौकरों की मदद से बड़ी कठिनाई से पत्थर चलाकर उन्हें रोका। सारी बस्ती घूम डाली पर एक भी आदमी नहीं दिखाई दिया। आखिर ऊब कर खच्चरों को उन तालों से बाँध दिया और सारे सामान ज़मीन पर डालकर खुद भी उसी सड़क पर बैठ गये। सूखा सत्तू और सूखा कच्चा मांस चाभने पर जब कुछ शान्ति आई तब हमारे अभयसिंह जी एक खच्चर लेकर झपटे और पहाड़ी पर चढ़ कर नई बस्ती में दाखिल हुए। वे पहले भी वहाँ गये थे और वहाँ के लामा से काफ़ी परिचित थे। वे लामा जी के मकान की चाबी और दो नौकर साथ लेकर वापस आये।

इस जगह का मन्दिर बहुत ही पुराना है। इसकी छत लकड़ी और ताँबे के पत्र से बनी हुई है। यह मन्दिर बहुत ही सुन्दर ढंग का है। हमारे गेशेला तिब्बती कला के पूर्ण ज्ञाता थे। पूछने पर मुस्कराकर कहा—"फेनी जी, आज आप तिब्बत के सबसे पुराने शहरों में से एक शहर में घूम रहे हैं। जो कारीगरी आप देख रहे हैं, ग्यारहवीं सदी की है।

राहुल जी ने अभयसिंह को सारे तिब्बत में तालपत्र की किताबें खोजने के लिए नियुक्त किया था। उस यात्रा में वे इस गुम्बा में भी आये थे। उस समय वे यहाँ के लामा से काफ़ी मेल-जोल बढ़ा गये थे। अभयसिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

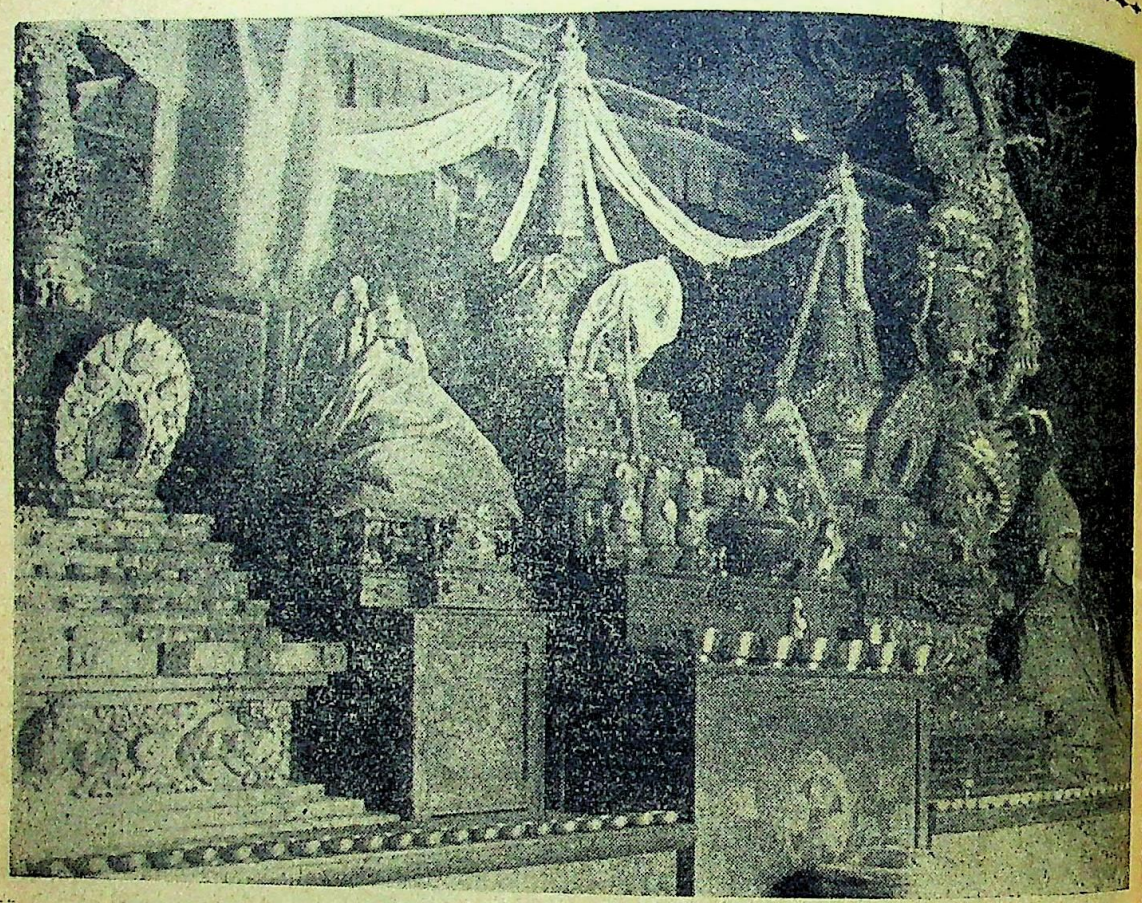

[खालू के प्राचीन मंदिर का भीतरी दृश्य]

इन दो वर्षों में तिब्बती-भाषा लिखने और बोलने में काफ़ी अभ्यस्त हो गये थे। बात-चीत, पहनावे, रहन-सहन और खाने-पीने में बिलकुल तिब्बती मालूम पड़ते थे और उसी प्रकार बहादुरी और हिम्मत में भी कुछ कम नहीं थे। पहले जब वे यहाँ आये थे तब लामा से हम लोगों के बारे में बहुत कुछ कहा था कि बड़े बड़े धार्मिक भिक्षुक हिन्दुस्तान से इस मन्दिर में किताबें पढ़ने को आ रहे हैं। वे लोग काफ़ी मालदार हैं और यहाँ काम सफल होने पर काफ़ी दान भी देंगे।

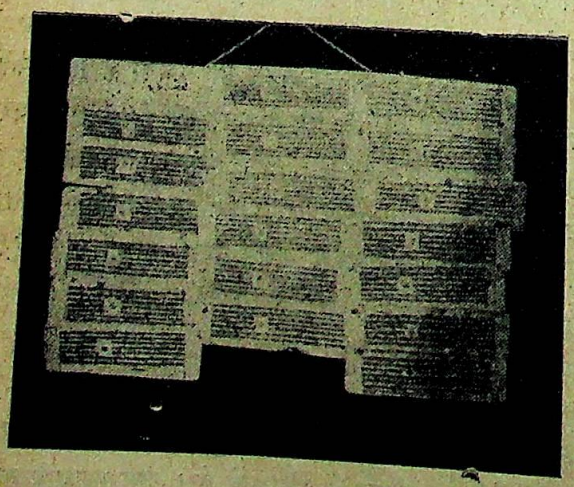

[ताड़पत्रों की पुस्तक का एक चित्र]

यहाँ के लामा का धार्मिक नाम "रिसुरआमूची" है। दूसरे दिन राहुल जी ने अभयसिंह से कहा कि जाकर किताबों के बारे में लामा से बातचीत कर आओ। हम सबकी यही धारणा थी कि किताबें मकान पर लाने की आज्ञा नहीं मिलेगी और रोज़ वहीं जाकर उनके फ़ोटोग्राफ़ लेने होंगे। वह जगह एक पहाड़ की चढ़ाई के ऊपर थी और क़रीब ६ मील का बहुत ही खराब रास्ता था। इसलिए रोज़ वहाँ का आना-जाना एक समस्या थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

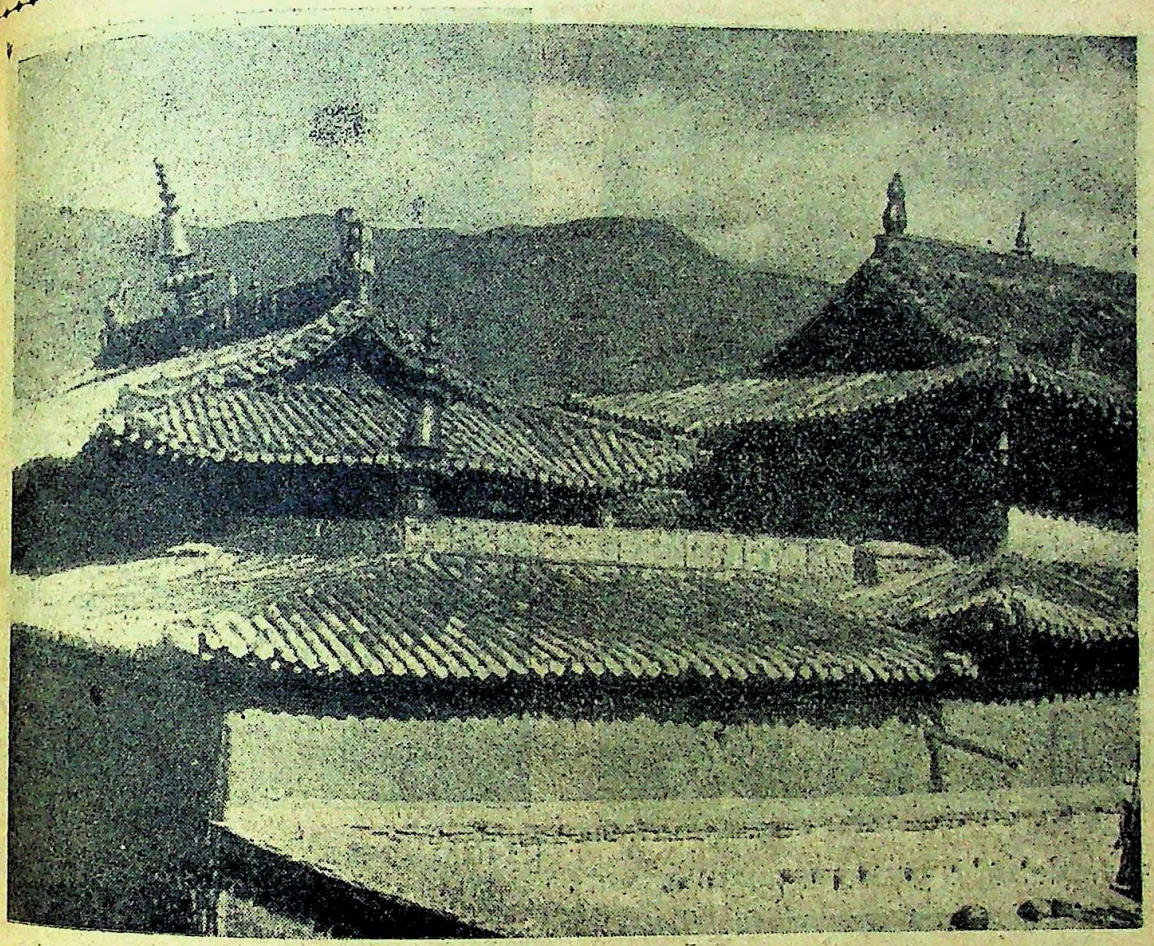

[खालू के पुराने मंदिर की छत]

अभयसिंह यह कहकर चले गये कि आप लोग घबरायें नहीं, सब काम ठीक हो जायगा। शाम को जब लौट कर आये तब देखा कि लामा के नौकरों पर लादकर सारी किताबें उठा लाये हैं। उनको देखकर हम लोगों की खुशी का ठिकाना न रहा। हमारी यात्रा का पहला मुकाम यही था, जहाँ इस प्रकार सफलता मिलती देख कर हम लोगों का साहस बढ़ गया। पर मुझे बड़ी चिन्ता हुई। सारा भार मेरे ऊपर ही था। इस देश की हवा, पानी, ऊँचाई, तापमान और सारी विभिन्न रुकावटों को हल करते हुए मुझको चित्र उतारने का काम करना पड़ेगा। शाम का खाना मुझसे नहीं खाया गया। सारी रात सोचते सोचते गुजर गई। दूसरे दिन सवेरे उठकर फ़ोटोग्राफ़ी की दवाइयाँ घोलीं। फ़ोटो बनाने का अँधेरा कमरा तैयार किया। काफ़ी तादाद में पानी मँगवा कर जमा किया। फिर कैमरा लगा कर मुनासिब रोशनी का प्रबन्ध किया। २९ मई की सुबह को साढ़े १० बजे दो फ़ोटो लिये। उनको फ़ौरन अँधेरी कोठरी में ले जाकर बनाया। बाहर आकर उजाले में देखा। मारे खुशी के दीवाना हो गया। अभयसिंह और गेशेला भी इस सफलता से बहुत खुश हुए और मुझे उत्साह देने लगे।

आज सारा दिन मैं फोटोग्राफ़ी के विषय की पुस्तकें पढ़ता रहा। जो कुछ भी त्रुटि आज के काम में देख रहा था उसको पूरा करने की चिन्ता में लगा रहा। उधर उन सब किताबों की सूची बनाने और पन्ने लगाने का काम होता रहा।

दूसरे दिन ३० मई को सवेरे ८ बजे काम आरम्भ कर दिया और शाम को ४ बजे तक काम करता रहा। हर एक बात नई थी और भिन्न भिन्न असुविधाओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१२ वीं शताब्दी के एक मंदिर के पलस्तर पर बना हुआ भट्टिन नामक विद्वान् का चित्र।]

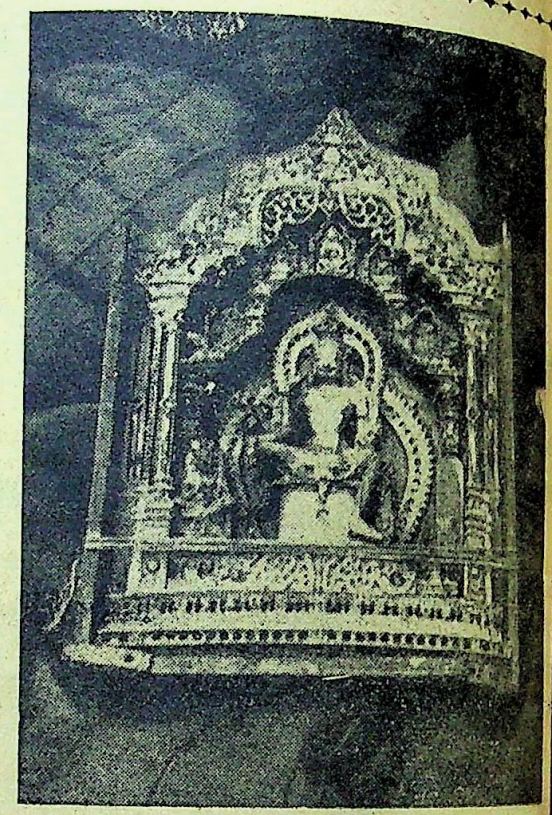

[हाथीदाँत की नक्क़ाशी का एक नमूना। यह भूटान की मुख्य कला है]

कारण काम बहुत नहीं हो सका। कुल २२ फोटो ग्राफ़ ले सका। शाम होते ही क़रीब ७ बजे अँधेरी कोठरी में गया और ११ बजे रात तक काम करता रहा। वहाँ भी सैकड़ों तरह की कठिनाइयाँ आईं, जिनके कारण इतनी देर लगी। बाहर जब निकला, लालटेन की रोशनी में देखा कि सारे 'निगेटिव'. बहुत ही ठीक बने हैं। उस समय सब सो रहे थे—चारों ओर सन्नाटा था।

लगभग एक बजे तक सादे पानी में उनको धोकर साफ़ किया और तागे में क्लिप लगा कर सूखने के लिए लटका दिया, भूख बहुत लगी थी। आज खाना नहीं खाया था लेकिन सारे नौकर सो रहे थे। मालूम नहीं था कि सत्तू की थैली और सूखे मांस के टुकड़े कहाँ पड़े हैं। फोटोग्राफ़ी के लिए जो पानी जमा कर रक्खा था वह बर्फ़ के जैसा ठंडा था। उसी को पेट भर कर पिया और एक कोने में सिकुड़ कर लेट रहा। पर मेरा हृदय आज एक विजयी सैनिक से किसी मात्रा में भी कम प्रफुल्ल नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेकारी का पिशाच

लेखक, श्रीयुत योगेन्द्रनाथ शर्मा

पात्र-परिचय--

आलोक--एम० ए० पास युवक, पिछले विद्यार्थी-जीवन के घोर परिश्रम से घुना हुआ क्षीण, दुहरा शरीर; मुख-प्रदेश पर नैराश्य की स्पष्ट छाप; चपल, विनोदमयी प्रवृत्ति गांभीर्य और चिन्ता से दबी हुई।

प्रभा--आलोक की नवागता पत्नी, शिक्षा और रंग में अर्द्ध-ग्रामीण, तप्त स्वर्ण की तरह दग् दग् करता हुआ सौंदर्य, यौवन के प्रथम चरण का चाञ्चल्य और तरल हास्य पति की खिन्न मुद्राओं के अनुकरण में अपना उत्सर्ग-सा कर रहे हैं।

श्रीश--आलोक का चिर-मित्र और एम० ए० का पुराना सहपाठी, सुगठित, सुन्दर शरीर, आचार और भूषा में पश्चिम की गहरी नक़ल।

लता--हिन्दुस्तानी क्रिश्चियन बैरिस्टर की पुत्री, श्रीश की प्रेयसी और भावी पत्नी, स्फटिक की तरह गोरी, पाश्चात्य संस्कृति से सराबोर, सोलहो आना मेम।

अन्य गौण पात्र--पड़ोसी बालक, और ज़नाने पब्लिक अस्पताल की स्त्री-डाक्टर।

प्रथम दृश्य

समय--पौष का उग्र शीत, रात्रि के दस बजे।

स्थान--घर की बाहरी दालान।

(आलोक का जीर्ण गृह, दालान में पृथिवी पर एक पुराना कम्बल बिछा है। एक मटमैला दीपक दीवट पर मन्द मन्द जल रहा है; दीवार में गड़ी खूँटी पर कते हुए सूत का एक बंडल टँगा है; एक कोने में रुई का गड्ड लगा हुआ है; दीवार से लटकते हुए विशाल चित्र में महात्मा गांधी चरखा चला रहे हैं; एक ओर खद्दर की फटी धोती और मोटे ऊन का ओढ़नेवाले कम्बल टँगे हैं। बाँस की दो कुर्सियाँ और बेंत के दो नाटे मोढ़े एक ओर पड़े हैं। बाहर का द्वार बन्द है; दालान से गृह में प्रवेश करने का मार्ग खुला है।

प्रभा सस्ते खद्दर की धवल साड़ी पहने है, अंचल फटा हुआ है, एक हाथ में लाख की एक चूड़ी है, दूसरा हाथ सूना है; कम्बल पर बैठी देहाती चरखा कात रही है। चरखे के हरहर-भनभन में अपना कोकिला-स्वर मिलाकर गीत की एक लड़ी को बार बार गा रही है।)

हमारे चरखे के नव-गान,
वायु में घुल करके चुपचाप,
जगा दो निर्जीवों में जान।

(चलाते चलाते जब हाथ थक जाते हैं तब चरखे के साथ गान भी थोड़े समय के लिए रुक जाता है, बीच बीच में उलझे हुए सूत को दीपक के क्षीण प्रकाश में आँखें गड़ाकर सुलझाती है; फिर वही चरखे की हरहराहट और उसका मधुर संगीत।)

हमारे चरखे के नव-गान!

.....

(बाहरी द्वार से खट-खट की ध्वनि होती है। प्रभा अपने गान को पंचम में खींचती जाती है।)

खट खट ..... खट खट

(चपला की तरह बल खाकर प्रभा पीछे मुड़ती हुई उठती है, द्वार की संकल खोलती है, आलोक भीतर आता है, प्रभा संकोच में गड़-सी जाती है।)

आलोक--(खद्दर की टोपी उतारकर हाथ में लेता हुआ) तुम्हें बार बार मना किया कि रात में इतनी देर तक चरखा न काता करो।

प्रभा--(मिश्रित गाम्भीर्य में) सोचा था कि तुम्हारे आने के साथ ही चरखा चलाना बन्द करूँगी; तुम देर से आये, इसलिए चरखा भी देर तक चलता रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोक--(कुर्सी पर बैठता हुआ) वाह! मेरे आने और चरखे में कौन-सी समानता! तुम्हें ये अनोखी दलीलें कहाँ से मिल जाती हैं? गाना तो आपका .....।

प्रभा--(बात को बीच में काट कर संकुचित होती हुई) रुक क्यों गये? कह दो, नन्दन के कोयल-स्वर को भी मात करता है।

आलोक --(मुस्कराता हुआ) नन्दन न सही, इस संसार की अमराई ही मान लो। अरे! तुमने कड़ाही में आग क्यों नहीं रख ली? ठंडक इतनी कड़ी, और आप साड़ी का अंचल ओढ़ कर बैठी हैं तपस्या करने।

प्रभा--(फटे अंचल को सँभालती हुई) रोज़ तो आग रहती ही है, आज नहीं सही; चरखे के साथ रहने में सरदी कम लगती है।

आलोक--(हँसता हुआ) आपको गर्मी देने के लिए अच्छा साथी मिला है। और यह कम्बल किस दिन के लिए है? उतार कर ओढ़ क्यों नहीं लिया? तुम तो जान ही देने पर तुल गई हो; इसमें भी कोई बहाना गढ़ लो।

प्रभा--(बिछे कम्बल पर बैठती हुई) बहाना नहीं जी (हँसती जाती है) ... सच मानो, अपनी क़सम, सोच ही रही थी कि कम्बल उतारूँ। तब तक तो तुम आ ही गये।

आलोक--अच्छा अब ओढ़ लो; आग भी लेती आओ।

प्रभा--तुमको तो हर घड़ी मेरी ही चिन्ता सवार रहती है--देर तक चरखा न चलाओ....ठंडक से बचो....यह न करो....वह न करो। अपनी बात भी तो कुछ बताओ; जिस काम के लिए गये थे उसका क्या हुआ?

आलोक--(निकलते उच्छ्वास को भीतर ही दबाकर) सब अच्छा हुआ।

प्रभा--तुम्हें तो गोल माल उत्तर देने की लत-सी पड़ गई है। कोई बात पूछो--'सब ठीक है'...'कोई चिन्ता नहीं' यही कह कर टाल देते हो। आज तुम्हें बताना ही पड़ेगा--सचसच--कि क्या हुआ।

आलोक--हुआ क्या! श्रीश के यहाँ गया था--एम० ए० के पुराने साथी हैं, वे भी दो बरस से घर बैठे हैं; फिर भी उनकी बात क्या चलानी! लक्ष्मी ने उन्हें पहचान लिया है, घर के सम्पन्न हैं, नौकरी के लिए कोई विशेष व्यग्रता नहीं है। दो साल से डिप्टी-कलेक्टरी की परीक्षा में बैठ रहे हैं, इस साल भी विचार है। मेरे लिए उन्होंने भरसक प्रयत्न करने को कहा है; ग्राम-सुधार-समिति के दफ़्तर में मेरा कोई काम अवश्य लग जायगा। तब तुम्हें भी वहीं ले चलूँगा।

प्रभा--(टूटे दिल से) मैं वहाँ चलने की भूखी नहीं। यह बताओ, क्या तुम डिप्टी-कलेक्टर नहीं बन सकते हो?

आलोक--(उँगली से आँखों को रगड़ता हुआ) मेरी अवस्था बहुत अधिक हो गई है। मुझे सरकारी काम नहीं मिल सकता।

प्रभा--(आश्चर्य से अँगूठे को चिबुक पर लगाती हुई) अरे, दुनिया कैसे देखती है? अभी तो तुम पूरे जवान भी नहीं हुए और सरकार तुम्हें अधिक उम्र का बताने लगी। कह क्यों नहीं देते कि तुम्हारी अवस्था उतनी नहीं जितनी सरकार सोचती है।

आलोक--(गर्दन को कुर्सी की पीठ पर लटकाता हुआ) तुमको भला कैसे समझाऊँ? जवानी और बुढ़ापे का सवाल नहीं है; दो बरस तो मुझे नौकरी खोजने में लग गये। उम्र तो बैठी नहीं रहेगी। बात यह है कि मैं अब हो गया छब्बीस का, और चौबीस वर्ष के बाद सरकारी नौकरी में ठिकाना ही नहीं लगता।

प्रभा--(कपोल को दाहिनी मूठी पर दबाती हुई) ईश्वर की आँख में भी ऐसे ही लोग खटकते रहते हैं! (साँस भरती है) जीवन के सरस और रंगीन भाग को तो किताबों के पन्ने चूस जाते हैं और बदले में हाथ लगते हैं--शीशे के नेत्र, टूटी हुई रीढ़, (हाँफती हुई)...और भयानक निराशा। सुवर्ण जैसी प्यारी देह पढ़ते-पढ़ते घिस जाती है, तब भी मरी नौकरी की छाती नहीं पसीजती। (कहते कहते आँखें बन्द कर लेती है)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोक--(कुर्सी को प्रभा के सन्निकट खींचता हुआ विनोद से उसके गिरे मन को हँसाने का प्रयत्न करता है) नौकरी आपकी तरह उदार नहीं है कि प्रत्येक प्रार्थी पर द्रवित हुआ करे। दोष मेरा कि मैं उसे पा नहीं सकता और आप क्रोध उतार रही हैं नौकरी पर!

प्रभा--(आलोक की ओर कटाक्ष फेंकती हुई) आजकल के शिक्षित बेकारों का तो हृदय भी पत्थर होता जा रहा है। सिर पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ता है, और दिल हिलता तक नहीं, भीतर निराशा की आँधी रहती है, बाहर चेहरा इतना ताजा और सतर्क कि जैसे अभी स्नान किया हो।

आलोक--(प्रभा की आँखों से अपनी आँखें जोड़ते हुए) इस घोर ठंडक में स्नान का नाम न लो... (हँसता है, प्रभा की भी हँसी नहीं रुकती; प्रभा की शून्य कलाई पर हाथ फेरता हुआ) अरे! इसमें की लहरी क्या हो गई?

प्रभा--(हाथ को धीरे धीरे खींचती है) चरखे के चक्र से लगकर मुरक गई (अंचल को सँभालती है।)

आलोक--(प्रभा का अंचल अपने हाथ में लेकर) अरे! यह भी फट गई! (उँगलियों से दबाता है, अंचल फसफसा कर फटता है, और प्रभा हँस पड़ती है।)

प्रभा--इस फटने से क्या? इसे तो आँचल की ओर करके पहन लिया है, शेष वस्त्र अभी पोढ़ा है। तुम आँचल का फटना क्या देखने चले, एक छोटी-सी झील को बढ़ाकर समुद्र बना दिया। (रुक रुक कर हँसती है, परन्तु पति की उदास मुद्रा को देखकर गम्भीर होने का बल बाँधती है।)

आलोक--(खद्दर के कते सूत की राशि को देखता हुआ) अरे! तुमने तो बहुत कात डाला, बस थोड़ी-सी कसर है, इतना ही सूत और तैयार हो जाय तो बदल कर तुम्हें साड़ी और जम्पर ला दूँ।

प्रभा--(कुछ सोचती हुई) अभी तो उस दिन तुमने कहा था कि कहीं आने-जाने के लिए तुम्हारे पास धोती नहीं है, सूत को बदल कर धोती और जवाहिर-जाकिट लावेंगे।

आलोक--नहीं, नहीं; मुझे इधर कहीं जाना नहीं है; इस बार तुम्हारे लिए साड़ी और जम्पर लाऊँगा; मेरी बारी आते आते कौन जाने नौकरी ही मिल जाय।

प्रभा--(चेहरा खिल उठता है) अब की सफ़ेद और बे-किनारे की साड़ी मैं न लूँगी। सफ़ेद खद्दर आज पहनो, कल मैला--धोबी पटक पटक कर उसका सत्त निकाल लेता है, रंगीन रहेगी तो कई दिनों में मैली होगी, इसलिए उसे धोबी के घर का मुँह भी कम देखना पड़ेगा।

(नेपथ्य में घंटे का रव; बारह बजते हैं, आलोक एक एक करके बारहों टन टन को गिनता है।)

आलोक--(चौंक कर) अरे, बारह बज गये! प्रभा, मैंने तो श्रीश के यहाँ खा लिया है। तुम अब तक यहाँ बैठी ही रहीं? जाओ भोजन करके चौके से आग लेती आओ। बाहर बड़ी सर्दी थी; हाथ-पैर ठिठुर गये हैं।

प्रभा--(ईंधन के घट जाने के कारण भोजन के लिए चूल्हा नहीं जलाया था, इस बात को छिपाती हुई) तुम भी अजीब बातें करते हो! क्या हम लोग रात भर बैठे जगा करें तो आग भी जगी रहेगी? वह तो कभी की बुझ गई।

आलोक--अच्छा, आग रहने दो; जाओ खाना खाओ। एक बड़ी सुन्दर बात सुनाऊँगा। (प्रभा का कन्धा पकड़कर उठाता है।)

प्रभा--(चिबुक को संकोच से छाती में गड़ाती हुई) आज तो लकड़ी घट गई थी और पैसे भी न थे कि मँगाऊँ; तुमसे संकोच के मारे कहा भी नहीं, क्योंकि तुम्हारे पास जो थोड़े से पैसे थे वे धोबी माँग ले गया था। (हँसती है) रोज़ तो खाया ही जाता है एक दिन नहीं सही। तुम तो बात बात में मन गिरा लेते हो; अच्छा वह अपनी सुन्दर बात तो सुनाओ।

(आलोक आँखों में छाई हुई अश्रु-बूँदों को बरौनियों में समेट लेता है, अपनी कंगाली की अन्तर्वेदना को प्रभा पर प्रकट नहीं होने देता; हँसते हुए प्रभा के कंधे पर हाथ रख कर कहता है)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोक--तुम्हारी एक मेम से भेंट कराऊँगा।

प्रभा--मेम क्या? (आश्चर्य से)

आलोक--साड़ी के स्थान पर पाँवों तक लटकता हुआ घाँघरा, ऊची एड़ी का जूता, हाथ में चमड़े का थैला, सिर पर पगड़ी की तरह नीली टोपी .... बात बात में खिल-खिलानेवाली, विलायती ठाठ की स्त्री; डरना मत; जब वह अपना हाथ बढ़ाये, तब तुम भी अपना हाथ बढ़ा देना।

प्रभा--(मुस्कराती हुई) आखिर ये हैं कौन? कहाँ से आवेंगी और किस लिए? क्या वे इसी तरह घूमा करती हैं?

आलोक--वाह! तुम क्यों नहीं घूमती हो; अरे, ये मिस लताकुमारी हैं, मेरे मित्र श्रीश की शादी उन्हीं से ठहरी है। वे हम लोगों के विवाह पर तुम्हें बधाई देने को श्रीश के साथ यहाँ आवेंगी (कुछ सोचता हुआ आह भरता है) उन लोगों का स्वागत कैसे किया जायगा?

प्रभा--इसकी चिन्ता न करो; अभी मेरे विवाहवाली सोने की नथुनी बची है। वह कभी प्रयोग में नहीं आती। उसे गिरवीं रख कर उन लोगों के स्वागत का प्रबन्ध कर लेना।

आलोक--(ऊपर देख कर निश्वास भरता हुआ) केवल नथुनी बच रही है! .... वह भी विवाह का शुभ स्मृति-चिह्न है। हा! नौकरी की खोज में पचासों बार की दूर की यात्रा में मैंने तुम्हारे कंगन, चन्द्रहार, टीका, कर्णफूल, किंकिणी और पायल सब बंधक में रख दिये, अब तक वे मुक्त न हो सके, भविष्य में भी उनके छूटने की कोई आशा नहीं।

प्रभा--(पति के विकल चित्त को अपने विनोद से बहलाने का प्रयत्न करती है) वाह! तुम तो इतनी ऊँची शिक्षा पाकर भी गहनों की कुरीति का समर्थन करते हो। आजकल बड़े घराने की स्त्रियाँ आभूषण पहनने में अपनी हेठी समझती हैं; मैं कौन उनसे कम हूँ? मैंने माना कि इस नथुनी को वधू आजन्म अपने पास सुरक्षित रखती है--यह धर्म है। परन्तु प्रिय अतिथि का सत्कार करना किस धर्म से कम है? फिर कभी रुपया होगा तो नथुनी लौट आवेगी।

आलोक--अच्छा, तुम्हारे पहनने के लिए कोई बेंफटी साड़ी तो है ही नहीं। इसका क्या होगा?

प्रभा--तब तक तो सूत ही पूरा हो जायगा। अरे! कब वे लोग आ रहे हैं?

आलोक--रात-दिन लगातार परिश्रम करो तो भी सूत के तैयार होने में एक सप्ताह से कम नहीं लगेगा; वे लोग कल ही आवेंगे, ठीक समय नहीं बताया है, जभी आ जायँ?

प्रभा--मेरी एक साड़ी है--रेशमी नीला कपड़ा और चाँदी की तरह चमचमाती हुई गोट। ऐसे अवसर के लिए वही ठीक है; लाल साटनवाला जम्पर तो उसी का साथी है। जब लोग आवें तो मुझे बताना, झट काम-काज छोड़ कर वही साड़ी सजाकर आ जाऊँगी। क्या राय है?

आलोक--तुम्हारी सोची हुई बात और ठीक न हो! इधर तीन-चार दिन तक लाग से सूत कात दो नित्य के प्रयोग के लिए साड़ी और जम्पर आ जाय। देखो, इस साड़ी का अंचल मैंने छुआ भी नहीं कि फसफसा कर निकल गया।

प्रभा--(मुस्कराती है) जब मैं थक जाऊँगी तब तुम कातना और जब तुम थक जाओगे तब मैं--इससे जल्दी हो जायगी--क्यों?

आलोक--बस, बस; पक्की बात।

(बाँह में बाँह उलझाये दोनों अन्तर्द्वार से गृह में प्रवेश करते हैं)

पटाक्षेप

दूसरा दृश्य

(जनाने पब्लिक अस्पताल का एक प्रकोष्ठ; पीली पत्ती की तरह मुरझाई हुई प्रभा ज्वर में धुल गई है, आँखों में धुन्ध छा गई है, कानों से ऊँचा सुनाई देता है, भरी हुई देह राँगे की तरह गल गई है। चारपाई पर लेटी हुई हरी चादर ओढ़े है; सिरहाने से सटकर आलोक कुर्सी पर बैठा है, आलों में दवा की शीशियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बोतलें रक्खी हैं; रोगी के और भी आवश्यकीय सामान इधर-उधर यथास्थान पड़े हैं।)

आलोक—(प्रभा के ऊपर झुकता हुआ, कुछ ऊँचे स्वर में) आज कैसी तबीअत है?

प्रभा—सारी देह में, उँगली के पोर-पोर में झुनझुनी की तरह पीड़ा हो रही है, दिन में जगते समय भी बुरे बुरे स्वप्न आते हैं, उठने भर को भी जोर नहीं बचा है, हा! (कराहती है)

(लेडी डाक्टर का प्रवेश; छींट का गाउन, ऊँची एड़ी का जूता, अवस्था अनुमानतः पच्चीस; रंग उजला; चेहरे पर गम्भीरता की छाप; आते ही प्रभा के मुँह में थर्मा-मीटर लगाती है, और मुड़कर आलोक से बात करती है।)

लेडी डाक्टर—मिस्टर आलोक, बीमारी का बढ़ाव तो बड़े वेग से हुआ है; क्या आप इनके रोग का पूरा इतिहास, जैसे मैं पूछती हूँ, बता सकते हैं?

आलोक—हाँ, अवश्य, पूछिए।

ले० डा०—क्या गत एक महीने के भीतर कभी छः-सात दिन तक इन्होंने कड़े शारीरिक परिश्रम का कोई लगातार कार्य किया था?

आलोक—(दाँतों से ओठों को पकड़ता हुआ) हाँ, छः दिन तक, और कामों से अवसर पाने पर, रात-दिन चरखा काता करती थीं।

ले० डा०—बस, बस, यही बात है; क्या इन्हें कुछ शीत भी लगी थी?

आलोक—वैसे तो कहीं बाहर सर्दी में नहीं निकली थीं; हाँ ठंडी रात में कभी-कभी एक-दो बजे तक चरखा चलाया करती थीं।

ले० डा०—आखिर सूत कातने की इन्हें कौन-सी तेज़ी पड़ी थी; ओह! जाड़े की रात और वह भी एक-एक बजे तक; पूरी नींद के भयानक अभाव से ही इस रोग ने शरीर को जीत लिया है। आप तो शिक्षित हैं, इन सब बातों का ध्यान रखना चाहिए था।

आलोक—(भाल को हथेली में रखता हुआ) डाक्टर साहबा, कहने से कहानी बढ़ जायगी, संक्षेप में यही समझ लीजिए कि इन्हें अपने हाथ से काते सूत के साड़ी-जम्पर पहनने की साध थी, इसी झक में सूत की कमी को भरने के लिए इन्होंने न रात देखा न दिन, नित्य चरखे से जुती रहीं, मैं रात में मना करके सो जाता था, ये चोरी चोरी देर तक चरखा चलाती रहती थीं।

ले० डा०—इनका कण्ठ भी बढ़कर शुष्क हो गया है, क्या बोलती बहुत थीं, या कभी अधिक रोना या चिल्लाना पड़ा था?

आलोक—(नेत्र मूँद कर साँस खींचते हुए) हाँ, ठीक; चरखा चलाने के साथ नित्य गीत गाया करती थीं; कहती थीं कि गाने की धुन में चरखे का परिश्रम अखरता नहीं।

ले० डा०—देखिए इनकी आँखों में धुन्ध छा गई है; क्षीण प्रकाश में आँखों का कोई महीन काम तो इन्होंने नहीं किया था?

आलोक—(आह खींचकर) जब कभी रात को खद्दर का धागा उलझ जाता था तो उसे टूटने के डर से दीप के मन्द प्रकाश में सुलझाया करती थीं।

ले० डा०—इन्हें कुछ दिनों से कोई भयानक चिन्ता तो नहीं घेरे थी?

आलोक—(कुछ रुक कर) चिन्ता तो दूसरी न थी; केवल यही कि मैं नौकरी के बिना बेकार बैठा था; और साधारण जीवन-निर्वाह में कुछ कठिनता होती थी।

ले० डा०—बस, बस, सारा पता मिल गया। (प्रभा के मुँह से थर्मामीटर निकाल कर) मिस्टर आलोक आप भी पढ़िए; कुछ दिनों से तापक्रम में रोज़ दो-दो अंश की वृद्धि हो रही है, इस समय १०५ है। 'टायफ़ाइड' की अन्तिम श्रेणी है; अवस्था बड़ी ही दयनीय है; आप इन्हें लखनऊ में मिस फॉक्स को दिखाइए, उनका अनुभव तीव्र और पुराना है। असाध्य रोगों को तो वे बहुत अधिक लेती हैं, परन्तु मेरा पत्र दे दीजिएगा, आपका काम केवल सौ-डेढ़ सौ रुपये में हो जायगा। यह कार्य जितना ही शीघ्र हो उतना ही अच्छा है।

(लेडी डाक्टर जाती है; आलोक प्रभा के सिरहाने-वाली कुर्सी पर बैठता है)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभा--(क्षीण ध्वनि में) क्या कह रही थीं ?

आलोक--यही कि अब घबराने की बात नहीं, दो-तीन दिन में अच्छी हो जाओगी; कल तुम्हें लखनऊ ले चलूँगा, वहाँ जाते ही बीमारी छूमन्तर हो जायगी (प्रभा के ललाट पर हाथ फेरता है)।

प्रभा--मुझे ले चलने के लिए किराये को रुपये कहाँ मिलेंगे ? दवा का व्यय कैसे चलेगा ? (कराहती हुई) हा ! सूत में एक ही दिन की कसर थी कि मैंने चारपाई पकड़ ली; अब तक तो साड़ी-जम्पर आगया होता। यह विवाह की साड़ी भी कहीं कहीं मसकने लगी है। विअहुती साड़ी और नथुनी को सुरक्षित न रखने का ही फल मुझे मिल रहा है।

आलोक--(आँखें डबडबा कर) तुम रुपये की चिन्ता न करो, घर को गिरवीं रखने से दो-तीन सौ रुपये सरलता से मिल जायँगे; उसी में तुम्हारी दवा का खर्च, किराया और दूसरे व्यय होंगे।

प्रभा--(पति के हाथ को अपने वक्षःस्थल से चपकाती हुई) अब मेरे ऊपर रुपये लगाना व्यर्थ ही होगा; घर भी बन्धक हो जायगा, मैं भी न रहूँगी, दोनों ओर से हाथ धोना पड़ेगा। आखिर घर गिरौं रख दोगे तो रहोगे कहाँ ? अब मेरी आशा छोड़ो, अकेले रहोगे, कम खर्च में जीवन निबह जायगा; अब तक नौकरी नहीं मिली तो आगे का कौन ठिकाना ? (हाँफती है)

आलोक--(शोक-विह्वल होकर विकृत स्वर में) प्यारी प्रभा, दिल मत छोटा करो; अच्छी हो जाओगी; मैंने सूत तैयार कर लिया है, तुम्हें कल किनारीदार रंगीन साड़ी और सुन्दर जम्पर ला दूँगा।

प्रभा--साड़ी-जम्पर लाना बेकार होगा, अपने लिए धोती और जवाहर-जाकिट ले लेना (कहती हुई पति की हथेली से अपने नेत्र ढक कर सुसकती है)।

आलोक--हा ! मेरी बेकारी के पिशाच ने तुम्हें भी खा लिया ! अब यह अकेला जीवन तुम्हारी शेष आयु से जुड़ कर और भी लम्बा हुआ ! (आँखों से दो बड़ी बड़ी बूँदें प्रभा के कपोलों पर टपकती हैं।)

(परदा गिरता है)

पुकार

लेखक, श्रीयुत अंचल

तुमने कहीं पुकारा !
रोम रोम जैसे ध्वनि पीता गूँज उठा तन सारा
यह आवाज़ पिघलते शीसे-सी कानों में आती
चीख गगन मंडल में बिजली बेपरदा हो जाती
किन्तु अँधेरी निशि सी प्राणों में जगती व्याकुलता
अणु-अणु बन चीत्कार अमावस के प्रदीप सा जलता
दूर खड़ी सन्ध्या सी होकर तुमने कहीं पुकारा
तुमने कहीं पुकारा !

किसके जीवन के तट की तुम निस्संगिनि रँगरेली
इस अभाव-पूजक की पलकें भरने चलीं अकेली
और अवश अंगों में कैसी गहन-व्यथा भर आती
जग में अर्थहीन अनियम मैं केवल-प्यास न जाती
एक, सृष्टि की भूल तुम्हारे मुखर कंठ की धारा
तुमने कहीं पुकारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शासकों की कमज़ोरी

लेखक, श्रीयुत पंडित मोहनलाल नेहरू

कांग्रेस का पिछला चुनाव जीतने के बाद आम लोगों को ही नहीं, बरन कांग्रेसी नेताओं और अर्द्ध नेताओं तक को कांग्रेस का ज़ोर मालूम हो गया। फिर क्या था? उसके झंडे के नीचे ऐसे ऐसे सज्जन आ उपस्थित हुए जो पहले उसके नाम से भी भड़क जाते और नाक-भौं सिकोड़ते थे। ऐसे लोग जो उससे बहुत कुछ आशा रखते थे और अब भी रखते हैं उसकी जीत पर बहुत ही ख़ुश थे। मगर उसके अर्द्ध नेताओं और वालंटियरों के हृदय तो गर्व से फूल उठे और जब पद-ग्रहण का मसला हल हो गया तब फिर तो उनका पूछना ही क्या! उनमें से प्रत्येक अपने को सरकार का एक भारी अंग समझने लगा। कहा तो यहाँ तक जाता है कि उन्होंने कचहरी-दरबार तक के मामलों और पुलिस के इंतज़ाम में भी हाथ डालना शुरू किया। एक साहब ने तो एक दफ़ा एक शहर के कोतवाल को टेलीफोन किया कि उनको रिपोर्ट मिली है कि अमुक इक्केवाले पर अमुक कांस्टबिल ने डंडा चलाया है, अतएव इसकी जाँच करके उनको रिपोर्ट दें कि क्या कार्रवाई की गई। अन्त में हाईकोर्ट को कुछ ऐसे सज्जनों को सीधा रास्ता दिखाना पड़ा। ख़ैर, ये भूलें तो हो सकती थीं। जब अपने हाथ कोई इन्तज़ाम आता है तब शुरू में ग़लती करना कोई आश्चर्य की बात नहीं। ग़लती करने से ही ठीक इन्तज़ाम करना आता है और आ भी अवश्य जाय अगर ऐसा मौक़ा कुछ दिनों तक मिला रहे।

चुनाव आदि के वास्ते यह ज़रूरी है कि वोटर उस दल के भक्त बने रहें जो उनका वोट लेना चाहता है। कांग्रेस ने अपनी सेवाओं और अपने त्यागों के द्वारा हिन्दू-जनता को तो पूरी तौर से और कुछ मुसलमानों और ईसाइयों को भी अपनी तरफ़ कर लिया है। कांग्रेसी नेताओं की बात पर अधिकतर जनता विश्वास करती थी और जब उन्होंने पद-ग्रहण के बाद यह घोषणा की कि वे सबके साथ न्याय करेंगे तब जहाँ तक मेरा ख़याल है, बड़े से बड़े विरोधी ने भी उनका स्वागत किया।

मैं स्वयं न्याय करने का यह मतलब नहीं समझता कि पुरानी सभी बातें क़ायम रक्खी जायँ। अगर आदमियों का एक जत्था धन-दौलत दबाये बैठा है तो उससे कुछ लेकर दूसरों को देना या उनकी उन्नति के वास्ते खर्च करना बेशक न्याय है। अगर ज़मींदार काश्तकार के साथ ज़्यादती करता है तो उसके अधिकार कम कर देने में न केवल काश्तकार के साथ न्याय होगा, बरन उस ज़मींदार के साथ भी होगा, क्योंकि उसका झूठा अभिमान कुछ चूर हो जायगा। मगर वहीं पर रुक कर और शिकमी काश्तकार की दयनीय दशा की अवहेलना कर जाना अन्याय है। शिकमी के साथ काश्तकार का वही रिश्ता है जो काश्तकार का ज़मींदार के साथ है तब वह क्यों भुलाया जाय? शायद आगे चलकर उसका भी ख़याल आ जाय। मगर यह न भूलना चाहिए कि जब तक ज़मींदारी की प्रथा क़ायम है, ज़मींदार के साथ अन्याय इस मानी में न हो कि जितना वह काश्तकार से पावे उससे अधिक उसे देना पड़े। जो हो, ये बातें ऐसी हैं जिनसे थोड़े लोग तो नाराज़ होंगे, मगर बहुत लोग राज़ी भी होंगे, और शायद अधिक संख्या का राज़ी रखना बहुत ज़रूरी बात है।

हमारे दुर्भाग्य से हमारी गवर्नमेंट ने न मालूम क्यों इसका ख़याल नहीं रक्खा। बड़े ज़मींदार तो अधिकतर कांग्रेस के विरोधी रहे थे ही, उनको छोड़ दीजिए; दुःख की बात तो यह है कि उसने अपने मित्रों को ही सबसे पहले नाराज़ करना शुरू किया। सम्भव है, उसने यह सोचा हो कि अपने असली विरोधियों को यानी मुस्लिम-लीग को ख़ुश कर लो, पूरी ताक़त अपनी हो जायगी। इसमें उसकी नेकनियती अवश्य थी, मगर वह ज़रूरत से इतनी ज़्यादा बढ़ गई कि मित्र असन्तुष्ट होते जा रहे हैं।

सबसे पहले तो हिन्दू-जनता को यह खटकता है कि हमारे नेता मुस्लिम लीग की अकारण ख़ुशामद कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं। महात्मा गांधी और पंडित जवाहरलाल नेहरू ने तो ऐसी बातें तक कीं जिनसे यह कहना कि उन्होंने जिन्ना साहब की चौखट पर माथा टेका, ग़लत न होगा। जनता यह जानती थी, और शायद वे स्वयं भी जानते होंगे कि इसका नतीजा यह होगा कि लीग की माँगें और बढ़ जायँगी और वही हुआ। अगर लीग को राज़ी करना ही था तो पद-ग्रहण करने के समय ही कैबिनेट में एक-दो जगहें लीगवालों को दे क्यों न दीं? जिन्ना महोदय के दरवाज़े पर हमारे महान् नेताओं को धक्का खाने की अपेक्षा वह ज़्यादा अच्छा होता। कम से कम उससे यह फ़ायदा होता कि रोज़मर्रा के बलवे बन्द हो जाते और सैकड़ों जानें न गई होतीं। हरदम यह झूठी बात न सुननी पड़ती कि कांग्रेस-गवर्नमेंट मुसलमानों पर अत्याचार कर रही है। परन्तु जो अत्याचार कांग्रेस-गवर्नमेंट ने मुसलमानों पर किया है, अगर मुस्लिम लीग की गवर्नमेंट बंगाल में हिन्दुओं पर वही करती तो वहाँ वे उसका तो गुण गाते। हमारे प्रधान मंत्री को और बिहार के प्रधान मंत्री को एक से अधिक दफ़ा यह सफ़ाई देने की आवश्यकता पड़ी है कि नौकरी-चाकरी के मामले में मुसलमानों को इतना बढ़ा दिया गया है कि उसके वे मुश्तहक़ नहीं। यह तो उन्होंने मुसलमानों को राज़ी करने के लिए किया। मगर क्या ८० प्रतिशत से ऊँची संख्यावाले हिन्दू यह पूछने के मुश्तहक़ नहीं कि जब मुसलमानों की संख्या केवल १४ प्रतिशत या उससे भी कम है तब वे ५० या उससे भी अधिक फ़ी सदी किसी भी महकमें में क्यों भर्ती किये गये। बंगाल के शेर-चीतों ने तो उसका बिलकुल ही उलटा किया और बड़े गर्व से उसका बखान किया है। जिसे हमारी गवर्नमेंट ने खुश करने और पास लाने के वास्ते कोई उपाय उठा न रक्खा वह उससे और भी नाराज़ होकर और भी दूर भागा; जिसके वास्ते उसने अपने सगे-सम्बन्धियों और दोस्तों को नाराज़ किया वह उसका और अधिक शत्रु बन गया; यहाँ तक कि रोज़ ही झूठे इलज़ाम "मुसलमानों पर अत्याचार के" लगाने लगा। अपना किया गवर्नमेंट के सिर झोंकने लगा और वह जवाब में खरे के खरे बयान निकालने लगी और एक एक बात की सफ़ाई देने लगी। किसको! जो न सुनता है, न मानता है। वहाँ तो मुर्ग़ी की एक टाँगवाला मसला है। रोज़ ही नई धमकी तैयार है और नई माँगें गढ़ी जाती हैं। और हमारी गवर्नमेंट दबती ही चली जाती है।

हम रोज़ ही देखते हैं कि मुसलमान, अल्प-संख्या में होते हुए भी, तरह तरह की धमकी देते रहते हैं और कांग्रेस-गवर्नमेंट रोक-थाम करना तो दूर, उन्हें राज़ी ही करने की चेष्टा करती रहती है। उदाहरण के वास्ते नई धमकी हैदराबादवाली निकली है। उसी को ले लीजिए, तुरन्त ही मदरास और बम्बई की गवर्नमेंटों ने हिन्दुओं पर रोक-थाम लगा दी। देहरादून में भी कुछ वैसी ही कार्रवाई हुई है। कितना ही भड़काने के यत्न कोई क्यों न करे, उसकी संयुक्त-प्रान्त में कुछ भी रोक-थाम नहीं है। अगर इसका चौथाई भी बंगाल या पंजाब में कोई आदमी करे तो वहाँ तो उसे फाड़ खाने को शेर-चीते मौजूद ही हैं। ऐसी कमज़ोरी पर मित्रों का नाराज़ होना क्या कोई बेजा बात है?

राजनैतिक क्षेत्र में समझौते से भी बहुधा काम चलता है। अगर लीग की ख़ुशामद ही करनी है तो अब भी उसे दो-एक जगहें देकर कैबिनेट में क्यों नहीं ले लिया जाता या फिर उसका डर छोड़कर मुसलमान जनता के पास क्यों सीधे नहीं पहुँचा जाता?

यह तो हुई हिन्दुओं की बात जो आसानी से नाराज़ नहीं होते। शिया मुसलमान बहुत कुछ कांग्रेस के साथ थे। कम से कम उन्हें हिन्दुओं की हर बात मुसलमानों के विरोध में नहीं दिखाई देती थी। वे तबर्रा बहुत ख़ज़ाने नहीं पढ़ते थे, क्योंकि वे जानते थे कि उससे एक जत्था नाराज़ हो जाता है। उनके लीडर ख़ुद उन्हें रोकते थे। मगर ग़लत या सही 'मदहे सहाबा' को अपने मत के ख़िलाफ़ समझते थे। हमारी गवर्नमेंट को ऐसी हालत में क्या लाज़िम था? यही कि दोनों की रोक-थाम करती। मगर मार्च के महीने में एक जत्थे को तो मदहे सहाबा पढ़ने की इजाज़त मिल गई और दूसरे पर पाबन्दी लगा दी गई। यह कहना कि मदहे सहाबा में किसी की बुराई नहीं की जाती, उसका पढ़ना कोई हर्ज नहीं करता, ग़लत बात है। अगर कोई जत्था जनरल डायर की तारीफ़ खुले खज़ाने पढ़ने लगे तो क्या उसे इजाज़त दी जायगी? हमारे सुन्नी मित्र समझे थे कि जैसे उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुओं के जलूसों या धार्मिक कामों में रोक-थाम कर रक्खी है, वैसे ही शियाओं के मज़हबी मामलों में भी आसानी से कर लेंगे। मगर शिया भी तो आख़िर उसी ज़मीर के बने हैं। बड़े बड़े वक्तव्य ख़िताबयाफ़्ता लोग निकाल रहे हैं और सब ही शियाओं को दब जाने की सलाह दे रहे हैं और मुझे तो दुःख यह है कि हमारी सरकार भी उन्हीं लोगों की सहायता कर रही है जो धींगा-धींगी करने पर तुले हैं।

हज़ार बरस से मुसलमान नमाज़ पढ़ते आये हैं। न तो किसी बाजे ने नमाज़ में उनका हर्ज किया, न शंख और घड़ियाल ने। और शिया मुसलमानों का तो हर्ज अब भी उससे नहीं होता। आज भी सिनेमा के इश्तहार की बारातें रोज़ सड़कों पर घूमती हैं। वे भी हर्ज नहीं करतीं, न उन सैकड़ों मोटरों के हार्नों से जो मसजिद के नीचे शंखों से ज़्यादा गला फाड़ा करते हैं। तो क्या केवल हिन्दू की शादी की बारातों में या हिन्दू-जलूसों में ही कोई ऐसे तत्व हैं जो नमाज़ियों के निमाज़ को भंग करने लगे हैं और वह भी गत १८ बरस से ही। इन बारातों या जलूसों पर क्यों रोक-थाम लगाई जाती है ? इसी वास्ते न कि एक जत्था पैदा हो गया है जो उसे ग़लत या सही कहता है। क्या हम यह नहीं जानते कि ये बातें केवल झगड़ा शुरू करने के वास्ते की जाती हैं और वही लोग करते हैं जो शायद नमाज़ कभी ध्यान लगाकर पढ़ते भी नहीं ? असल नमाज़ी को इससे क्या वास्ता कि उसके चारों तरफ़ क्या हो रहा है ? यह जानकर भी कांग्रेसी गवर्नमेंट समझा-बुझाकर फ़साद रोका-थामा चाहती हैं। जनता को इससे मतलब नहीं कि फ़साद कैसे रोका जाय। वह तो कांग्रेस-सरकारों से इन्साफ़ की आशा रखती है। हिन्दू-जनता यही चाहती है कि उसे भी अपने जलूसों के निकालने में पूरी सुविधायें दी जायँ और उसके साथ न्याय हो। वह अपने हिस्से में मुसलमान या ईसाई को भाग देने को तैयार है, मगर सबका सब देने को तैयार नहीं, शायद वह सब भी ख़ुशी से दे देती। मगर बंगाल के 'शेर मुसलमानों' की गवर्नमेंट ने जिसका असर दूसरे प्रान्त के मुसलमानों पर पड़ा है, उसकी आँखें खोल दी हैं। यही क्या कम है कि वह पंजाब या बंगाल की तरह आबादी के हिसाब से अपना हिस्सा नहीं माँगती ? फिर भी वह इन्साफ़ चाहती है और मुझे तो आशा है कि अब भी हमारी गवर्नमेंट उसके साथ इन्साफ़ करेगी, देर में ही सही। देर आयद दुरुस्त आयद।

विशेष भूल यह भी है कि कांग्रेस को सदा से ही कल-कारख़ानेवाले मदद करते आये थे। जब भी पैसे की ज़रूरत होती, यही लोग देते। कोई काम भी पैसे के बग़ैर नहीं चल सकता। इनमें से कुछ तो खुले बन्द देते, कुछ चोरी-छिपे। १९२१ की बात है जब मैं सूबा-कांग्रेस-कमिटी का सेक्रेटरी था। एक शाम को दो-तीन आदमी मेरे घर पर आये और कहने लगे, कुछ चन्दा देना है। मैंने पूछा—आप कहाँ से आये हैं ? बोले—हमें बताने का हुक्म नहीं। रुपया ले लीजिए। यह कहकर उन्होंने दस हज़ार के नोट मेरे सामने रख दिये। ज़माना नाज़ुक था। मैंने कहा रुपया ज़्यादा है। आप बैंक में ख़ुद ही जमा करा दें। इस पर वे राज़ी हो गये और दूसरे दिन मेरे साथ जाकर बैंक में कांग्रेस-कमिटी के हिसाब में जमा करा दिया। यह मैंने मिसाल के तौर पर लिखा है। यों तो यह सभी जानते हैं कि तिलक-स्वराज्य-फ़ंड के करोड़ रुपये इन्हीं लोगों ने जमा करा दिये थे। जब कांग्रेस ने कुछ ताक़त पकड़ी तब इन दोस्तों पर भी नज़ला उतरा। कांग्रेस के ही कुछ लोग कारख़ानों में रोज़ हड़तालें कराने लगे। नई नई माँगें और ऐसी ऐसी जो आज-कल की हालत में पूरी करना असम्भव है, पेश होने लगीं। उन लोगों के वास्ते जो चार दिन पहले हमारे सहायक समझे जाते थे, बुरे से बुरे शब्दों का प्रयोग होने लगा। उनके कल-कारख़ाने मज़दूरों के ख़ून से सने गारे से बने दिखने लगे और वे ख़ून चूसनेवाले हो गये ! कहनेवाले यह भूल गये कि यही और दूसरे ऐसे ही छोटे-बड़े कारख़ाने जो आगे जन्म लेंगे, मुल्क का उद्धार करेंगे। किसी देश का उद्धार दौलत के इधर से उधर करने में नहीं होता, बरन दौलत पैदा करने से होता है। यों ही हमारे यहाँ कल-कारख़ानों की कमी है और बेकारों की भरमार है। मगर नासमझी में ये लोग उन्हें भी बन्द करा बैठे और बेकारी और मुसीबत ही नहीं बढ़ाई, बरन दो करोड़ रुपये का हमारे प्रान्त की क़ौमी दौलत का ख़ाली कानपुर में नुक़सान करा दिया। मज़दूर को काम देना बुरा है, मगर उससे ज़्यादा बुरा है इतना देना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे कारख़ाना ही बैठ जाय और काम भी हाथ से जाय। सोवियट सरकार तक ने ऐसा नहीं किया। ज्यों ज्यों क़ौमी दौलत मज़दूर-द्वारा बढ़ती गई, त्यों त्यों वेतन में वृद्धि की गई। पक्के साम्यवादी श्री राहुल सांकृत्यायन जो हाल में ही रूस से लौटे हैं, हमें बताते हैं कि क्रान्ति के पहले रूस में मज़दूर का औसत वेतन २५ रूबल था। मगर १९२८ से १९३२ तक की पंचवर्षीय योजना के ज़माने में वह तिगुना तक हो गया और अगली पंचवर्षीय योजना में वह उसका दुगना हो गया। ऐसा तो तभी हुआ जब रूसियों ने देश का कच्चा माल पूरी मेहनत लगाकर अपने घर में खपा लिया। उन लोगों ने इन दस वर्षों में मज़दूर से इतनी मेहनत ली कि साम्राज्यवादी देश उसकी मेहनत को 'स्लेब-लेबर' कहने लगे थे। उसी स्लेव-लेबर ने आज रूस को ऊँचे स्थान पर पहुँचा दिया है और अब जिस्मानी या दिमाग़ी मज़दूर ही उसका लाभ लूट रहे हैं। हमारे प्रचारक भाई बिना जाने या बिना सोचे पहले ही दिन से अधिक पैसे और अधिक छुट्टी की माँग पेश कर बैठे। हमारी कांग्रेस-गवर्नमेंट उन्हें रोक न सकी, जो दुःख की बात है। आन्दोलन को ठीक रास्ते पर लगाने के वास्ते हुल्लड़बाज़ी काफ़ी नहीं है।

हमारी गवर्नमेंट ने बहुत से सुधारों के वादे किये थे। अपने भरसक वह उनके पूरे करने में तत्पर है। मगर भूल इतनी कर रही है कि सारे सुधार एकदम करना चाहती है। कोई भी सुधार हो, कुछ लोग उससे अवश्य नाराज़ होंगे। एक एक सुधार करके उसे पूरा करा दो तब आगे चलो तो दूसरे के जारी करने में सुविधा हो जायगी। फिर पैसा भी चाहिए। शराबबंदी, लगान में कमी, देहातों में सफ़ाई, पढ़ाई का इन्तज़ाम, कम वेतन पानेवालों के वेतन में वृद्धि आदि सुधारों के वास्ते पैसे की ज़रूरत है, और यह पैसा उसी हालत में मिल सकता है जब राष्ट्र की सम्पत्ति में काफ़ी वृद्धि हो। और इसका अभी कोई इन्तज़ाम नहीं। ये सब सुधार ज़रूरी हैं, मगर एकदम जारी होना ज़रा मुश्किल बात है। थोड़ी-सी मौजूदा दौलत का उलट-फेर काफ़ी नहीं। शराब और निरक्षरता के ख़िलाफ़ गवर्नमेंट ने ज़ेहाद बोल रक्खा है, मगर उसके ख़र्च के वास्ते जो टैक्स लगाया उसका ताक़तवर लोग बेजा विरोध कर रहे हैं जैसा मैं पहले देख भी चुका हूँ और उसके शुरू करने में विलम्ब हो रहा है। काश्तकार भी टेनेन्सी ऐक्ट के पास होने की मुँह फाड़े प्रतीक्षा ही कर रहे हैं। उसमें भी तरह तरह की बाधायें डाली जा रही हैं और कौन जानता है कि कब उसके बरते जाने की नौबत आवे। जब तक इन सुधारों का असर दिखने न लगे तब तक देहाती कैसे जानें कि उसकी सरकार ने वादे पूरे किये। ग्राम-सुधार भी इतना नहीं फैला है कि आँखों से दिखाई दे सके। यह तो देर में दिखने की चीज़ है। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि जो लोग इस सुधार के वास्ते रक्खे गये हैं वे कुछ काम ही नहीं करते। ग़लत हो या सही, मगर शिकायत है अपने तरफ़दारों तक को। मैं तो यह कहूँगा कि ऐसी शिकायत को यह कह कर टालना ठीक नहीं कि विरोधियों ने की है। कुछ ख़ुफ़िया जाँच होती रहनी चाहिए कि कहाँ क्या हो रहा है। क़ानून पास कर देना सहल है, उसके बरतने का इन्तज़ाम काफ़ी अच्छा होना चाहिए। यों तो शारदा-ऐक्ट भी प्रचलित है, मगर कितनी ही बच्चियों के विवाह रोज़ होते जाते हैं।

मेरा यह मतलब नहीं है कि मैं कांग्रेस-गवर्नमेंट की नुक्ताचीनी करूँ या उसकी भूलों पर ज़ोर दूँ। मुझे यह देख कर दुःख होता है कि कांग्रेस के बहुत से हिमायती उसके विरोधी होते जाते हैं और केवल इस वास्ते कि वह पुराने विरोधियों को राज़ी करने में उन्हें भूल गई है। मुट्ठी भर उपद्रवियों को जो कभी कभी खुले खज़ाने हिंसा की धमकी देते हैं, वह दबाने के पूरे यत्न नहीं करती। अगर सुधारों का मज़ा चखने में आगया होता तो शायद उपद्रवियों को एक धक्का पहुँच जाता, मगर उसमें बाधा डालनेवाले भी पैदा हो गये हैं, यह न भूलना चाहिए। विरोधियों को समझा-बुझाकर और पुचकार कर अपनी तरफ़ करना बहुत ही अच्छी बात है, मगर जब वह विरोधी ईमानदारी का विरोध रखता हो तब। अगर मैं एक बात समझने को ही तैयार नहीं तो आप समझावेंगे कैसे? समझनेवाला तो मैं हूँ।

इतना होने पर भी हमें यह न भूलना चाहिए कि कांग्रेस हमारी संस्था है और उसके द्वारा हम आज इस दर्जे पर पहुँचे हैं और अगर हम उसे पूरी सहायता देते रहें तो बावजूद विरोधियों के अगले १० वर्ष में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असली स्वराज्य नहीं तो उसके पास तक वह हमें पहुँचा देगी।

आज कांग्रेस-गवर्नमेंट में ज़रूर कुछ कमज़ोरी दिखाई दे रही है, मगर जनता के लाभ और उन्नति के वास्ते उसने कोई कसर उठा नहीं रक्खी है। ग्राम-सुधार की तरफ़ पूरा ध्यान दिया जा रहा है और अगर ठीक आदमी मिल गये तो थोड़े ही दिनों में उसका असर दिखने लगेगा। भारी वेतन उसने कम कर दिये हैं और मंत्रि-मंडल तो पिछले मंत्रियों के मुक़ाबले चौथाई खर्च पर काम कर रहा है। किसानों या मज़दूरों के हक़ की तरफ़ किसी गवर्नमेंट ने आज तक ध्यान तक न दिया था। उनकी दुर्दशा को दूर करने का बीड़ा इसी गवर्नमेंट ने उठाया है। कल-कारखाने खोलने की भी तजवीज़ है और छोटे छोटे देहाती व्यवसायों को तरक़्क़ी भी यह दे रही है। ग्रामवासियों और उनके बाल-बच्चों की दुर्दशा की तरफ़ इसने विशेष ध्यान दिया है और जहाँ कहीं भी उसे सफलता मिली है, वहाँ से ख़बरें आई हैं कि कितने ही लोगशराब बन्दी से अपने क़र्ज़ तक अदा कर सके। इन बातों को ध्यान में रखते हुए हमें उसकी सहायता पूरी तरह करनी चाहिए।

आज-कल चारों तरफ़ से हिन्दू-मुस्लिम-मेल की पुकार उठ रही है। और यह तो मानी हुई बात है कि बिना इसके स्वराज्य का पता भी न होगा। मगर यह मेल एक तरफ़ के दबने से न होगा। हमारी गवर्नमेंट को हिम्मत से काम लेना होगा। इस झगड़े की जड़ को काटना होगा; वह है अलग अलग जातियों के अलग अलग प्रतिनिधि चुने जाना। हिम्मत करके सम्मिलित चुनाव कर दो, उपद्रव अगर हो तो सख़्ती से रोको; थोड़े दिनों में सब अपने आप ठीक हो जायगा। उपद्रव तो यों भी हो रहे हैं और कम हिम्मती रही तो और भी होंगे। आख़िर सिंध जो एक मुसलमान सूबा है, सम्मिलित चुनाव की बात सोच ही रहा है।

घन-सुन्दरी

लेखक, श्रीयुत शम्भूनाथसिंह 'रसिक' बी० ए०

री गगन-बाले! अरी घन-सुन्दरी!

बाँधकर जीवन-सुधा को
स्नात निज धूमिल अलक में
एक विद्युत्-द्युति समेटे
सो रही अपने पलक में
विहँस चिर स्मिति-सी सतत स्नाता परी!
कामरूपा मोहिनी जग
की दुलारी नयन-प्यारी
धूप छाया के करों से
नापती जग की व्यथा री!
तार, तर नभ-साँस-धारा की तरी!

साँस में झंझा छिपाये
नयन में बरसात आली
अधर में कुछ गुनगुनाती
सी प्रलय की बात आली
अग्नि-रेखा तव अरुण-मुस्क्यान री!
जाग री अब जाग, अपना
पालना तज प्रिय-पवन का
देख विद्युत् के नयन से
सघन दुख-तम जग-भवन का
रो रहा है करुण जग-जीवन अरी!

काँप जाये आज अग-जग
बन्द कर निज मुग्ध लोचन
सृष्टि यह नूतन बने चिर
सजनि, विस्मृत हो पुरातन
तान वह छेड़ो प्रलय की किन्नरी!
री गगन-बाले! अरी घन-सुन्दरी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुलतान

लेखक, श्रीयुत सी० बी० कपूर, एम० ए०, एल-एल० बी०

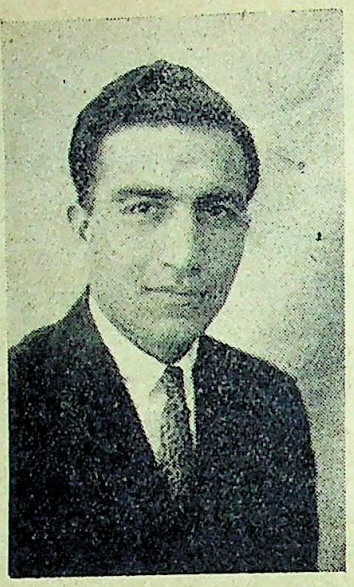

[श्रीयुत सी० बी० कपूर]

मैंने हाल में ही मोटर-साइकल पर कुल भारतवर्ष का भ्रमण किया है, परन्तु मुलतान जैसा पुराना और असल हिन्दू-शहर मुझे कहीं देखने में नहीं आया। मुलतान न सिर्फ़ पूर्व-इतिहास-कालीन पुराना शहर है, बल्कि इसको हिन्दुओं का एक तीर्थस्थान होने का भी सौभाग्य प्राप्त है। हिन्दुओं का कहना है कि सत्ययुग में अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा के लिए भगवान् विष्णु को नृसिंह-रूप में इसी नगर में प्रकट होना पड़ा था। मुसलमानों के भी कई औलिये यहाँ हो गये हैं। वे भी इसे 'मुलतान शरीफ़' कहकर आदर देते हैं।

मुलतान पंजाब-प्रान्त का एक प्रसिद्ध नगर है। यहाँ की छावनी तो नये ढंग की बनी हुई है, परन्तु शहर अभी पुराने ढंग का ही है। इसके पुराने हिन्दू-मन्दिरों, मकानों और पुराने हिन्दू-ढंगों को देखकर सचमुच महाभारत के समय की याद आ जाती है। पुराने ढंग के स्त्री-पुरुषों का पहनावा भी बहुत विचित्र और पुराने ढंग का है। यहाँ के लोगों की बोली भी निराली है, परन्तु सुनने में बहुत मीठी और प्यारी मालूम होती है। न तो वह सिन्धी है, न पंजाबी। यहाँ के हिन्दुओं का धर्म-भाव भी कुछ निराला है। उसको हम पुराना सनातन-धर्म कह सकते हैं। बहुत-से देवी-देवताओं के मानने के कारण उनके यहाँ सप्ताह में ८ से भी अधिक त्योहार मनाये जाते हैं।

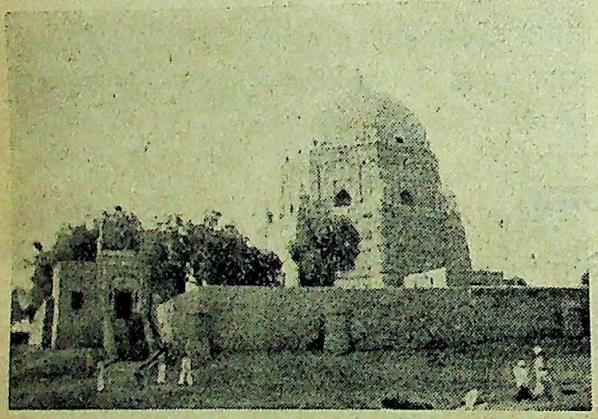

[रुकन आलम क़िले की सबसे ऊँची इमारत]

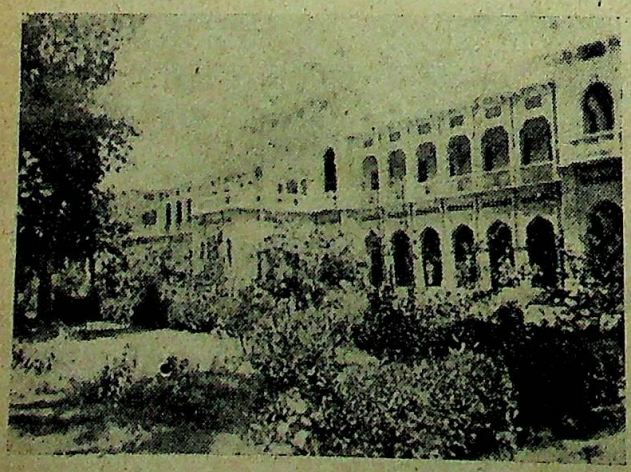

[मुलतान का सिविल-अस्पताल]

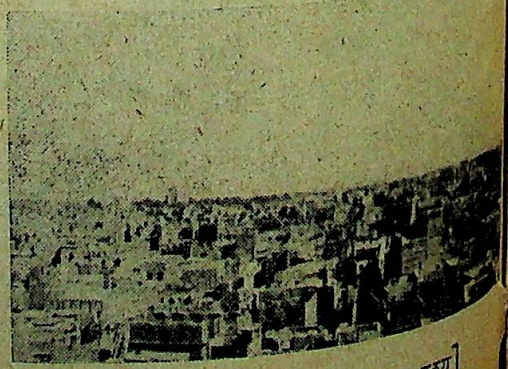

[शहर मुलतान का विहंगम दृश्य]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुलतानी लोगों ने सफ़ाई को हद से भी ज़्यादा ऊँचा दर्जा दे दिया है, इसलिए यहाँ अभी तक छूत-छात का बहुत अधिक दौरदौरा है। महात्मा गांधी के अछूतोद्धार का यहाँ कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा है। इन बातों को देखकर यात्री बड़ी आसानी से कह सकता है कि मुलतानियों की सभ्यता पंजाब भर में ही नहीं, कुल भारतवर्ष में निराली है।

यहाँ के लोग बड़े अन्ध-विश्वासी हैं। आज भी यहाँ कई एक बीमारियों का इलाज़ मंत्र-तंत्र से या किसी विशेष स्थान पर एक-दो कोके चोबने से या गले में कोई यंत्र-तावीज़ बाँधने से या देवी-देवता की कई दिनों तक पूजा करने आदि से किया जाता है।

प्रायः हर एक घर में एक 'पवित्र स्थान' होता है, जहाँ कोई पत्थर या मूर्ति या कोई और ऐसी ही वस्तु रक्खी हुई होती है, जहाँ घर के सब स्त्री-पुरुष बैठकर पूजा-पाठ करते हैं।

पुराणों में इस शहर का नाम कश्यपपुरी दिया गया है। जब सिकन्दर ने इस शहर को जीता था तब इसका नाम कश्यपपुरी था। यहाँ एक 'महील'-जाति निवास करती है, जो आज-कल 'मुहाल ब्राहमन' के नाम से विख्यात है। कुछ समय तक इस जाति के लोगों का यहाँ राज्य रहा। उस समय इस शहर का नाम 'महील-स्थान' हो गया था। यही महील-स्थान बाद में मुलतान हो गया।

हिन्दू राजाओं के बाद इस नगर पर मुसलमानों का अधिकार क़ायम हुआ। महमूद ग़ज़नवी ने यहाँ के निवासियों के साथ निर्दयता का व्यवहार किया था। अन्त में सिक्खों ने पठानों को परास्त कर इस पर अपना

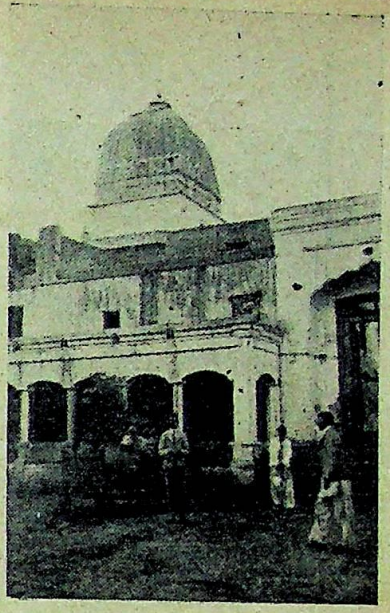

[मुलतान के क़िले में प्रह्लादपुरी-मंदिर]

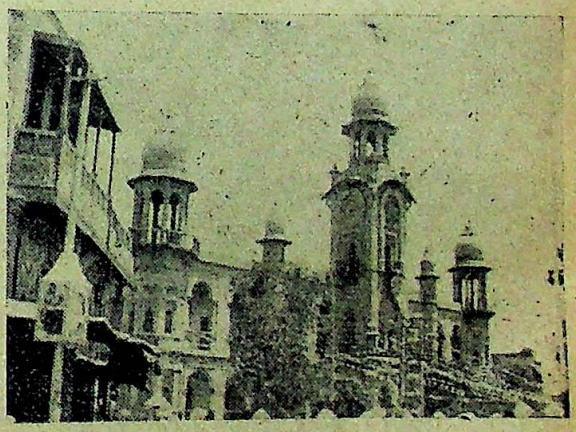

[मुलतान का टाउन हाल]

[मुलतान की एक गधा-गाड़ी। यह पतली सड़कों के लिए होती है]

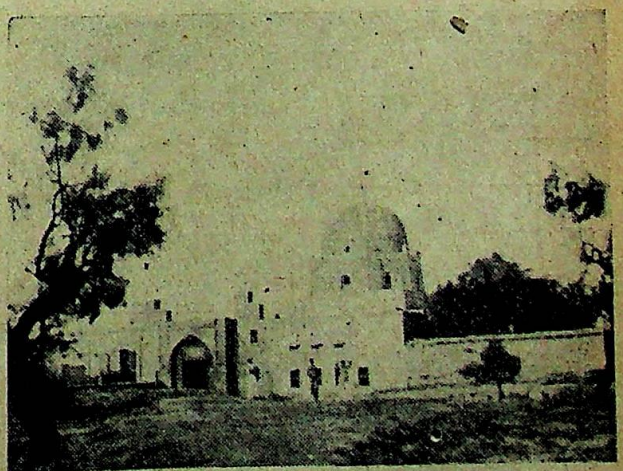

[मुलतान का क़िला और उसमें खानगाह बहाबल हक़ की इमारत]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

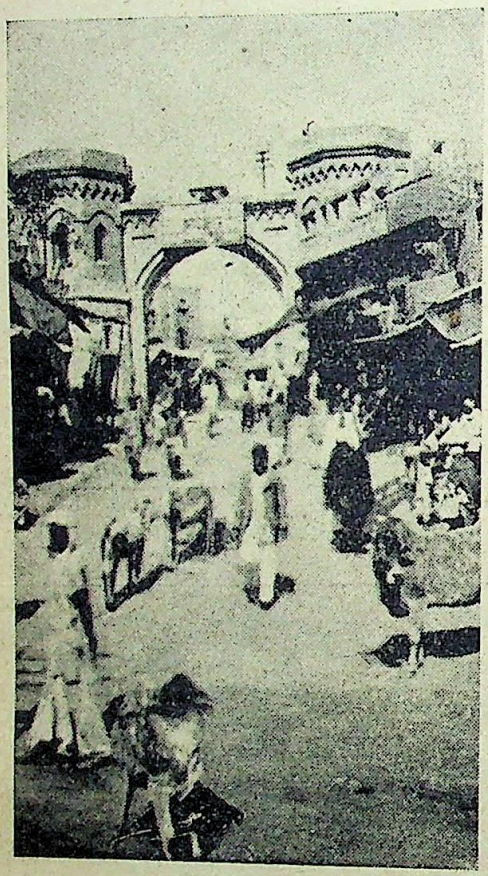

[मुलतान-शहर का एक द्वार]

अधिकार जमाया। इसके लिए महाराज रणजीतसिंह को मुसलमानों से आठ बार युद्ध करना पड़ा था। अन्तिम युद्ध में अहमदशाह दुर्रानीवाली भंगी-तोप से यहाँ के क़िले पर गोलाबारी की गई थी।

सिक्खों के राज्य में यहाँ तीन सूबेदार रहे—दीवान सुखदयाल, दीवान सावनमल और दीवान मूलराज। दीवान मूलराज से मुलतान अँगरेज़ों के क़ब्ज़े में आया। इन तीनों दीवानों में से सावनमल का नाम अब तक लोग याद करते हैं। इनके इन्साफ़ की कथायें भी दूर दूर तक कही जाती हैं। अपराध करने पर इन्होंने अपने दो लड़कों को भी दण्ड दिया था। उस समय न स्टाम्प-तलबाना था, न मिस्लें बनती थीं, न वकील और मुख़्तार थे। सब काम ज़बानी होता था, तो भी दूर दूर तक अमन और अमान क़ायम रहता था।

मुलतान शहर क़िले की तरह एक ऊँचे टीले पर बसा हुआ है। इसके चारों ओर ५० फ़ुट ऊँची दीवार है, जिसे 'फ़सील' कहते हैं। शहर से बाहर जाने को उसमें ६ बड़े बड़े फाटक हैं। शहर के अन्दर सिवा कुछ मुसलमानों के सबके सब हिन्दू ही बसते हैं। मूलराज ने शहर से मुसलमानों को निकाल दिया था। और जो कुछ मुसलमान शहर में रहते हैं, हिन्दू बनकर रहते हैं। फ़सील के बाहर सबके सब मुसलमान बसे हुए हैं। दंगों के दिनों में हिन्दू तो शहर से बाहर निकलते नहीं, और मुसलमान लोग बाहर से उनका जितना भी नुक़सान कर सकते हैं, करते हैं। जिन दिनों मैं वहाँ था, उसके कुछ ही समय पहले एक भीषण दंगा हो चुका था। मैंने शहर के चारों ओर घूम-फिर कर देखा। बहुत-से जले हुए मकानों और दूकानों को देखकर बहुत दुःख हुआ। समझ में नहीं आता कि ये दंगे क्यों हो जाते हैं।

मुलतान शहर की आबादी क़रीब १ लाख के है। शहर के अन्दर कई मकान तो पाँच सौ वर्ष से भी ऊपर के बने हुए हैं, बाज़ार, गली-कूचे बहुत ही तंग तंग हैं। कई गलियाँ तो इतनी तंग हैं कि उनसे होकर मोर लिए निकलना कठिन हो गया था। आमने-सामने मकान-वाले तीसरी मंज़िल की खिड़कियों से खड़े होकर अच्छी तरह हाथ मिला सकते हैं। गर्मी अधिक पड़ने

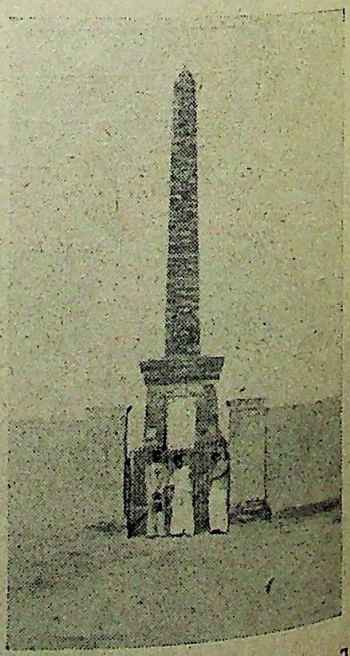

[मुलतान के क़िले में स्मारक स्तूप]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारण यहाँ के कई एक बाज़ार ऊपर से भी पटे हुए हैं। ज़मीन की तंगी के कारण मकान तीन मंज़िल से कोई भी कम नहीं है। थोड़ी थोड़ी ज़मीन पर वहाँ के लोग मकान बना लेते हैं। एक मकान की ज़मीन की लम्बाई कोई ८ फ़ुट और चौड़ाई ६ फ़ुट के क़रीब थी। मैंने छोटे छोटे परन्तु आसमान से बातें करनेवाले मकानों को देखकर हैरान रह गया था। कई गली-कूचे और मकान ऐसे हैं जिनमें सैकड़ों वर्षों से कभी सूर्य्य का प्रवेश ही नहीं हुआ है। और मकानों में तो कई कमरे ऐसे होंगे जिनमें कहीं रोशनी के प्रवेश करने का भी रास्ता नहीं है और दिन में भी दीवे जलाकर उनके भीतर जाना पड़ता है।

तमाम शहर पक्का बना हुआ है, और उसके अन्दर कोई बाग़ आदि नहीं है। उसमें वृक्ष भी कोई एक दर्जन से अधिक न होंगे। प्रत्येक गली-कूचे में पानी के बहुत गहरे गहरे कुएँ हैं। इन्हीं में तमाम गली की स्त्रियाँ पानी भरती हैं। मुलतान में कोई भी ऐसा मकान न होगा जिसकी आख़िर की मंज़िल में कबूतरों के रहने के लिए कई-एक घर न बने हुए हों और न कोई ऐसी गली मिलेगी जहाँ कोई देवी या देवता की मूर्ति या पूजने योग्य कोई पवित्र पत्थर आदि न पड़ा हो। इतने पर भी तमाम शहर मन्दिरों, मस्जिदों, और क़ब्रों से भरा हुआ है।

मुलतान की चार चीज़ें मशहूर हैं—गर्द, गर्मी,

[भंगी-तोप, अहमदशाह दुर्रानीवाली, जो मुलतान को फ़तह करने के लिए सिक्ख लाहौर से साथ लाये थे]

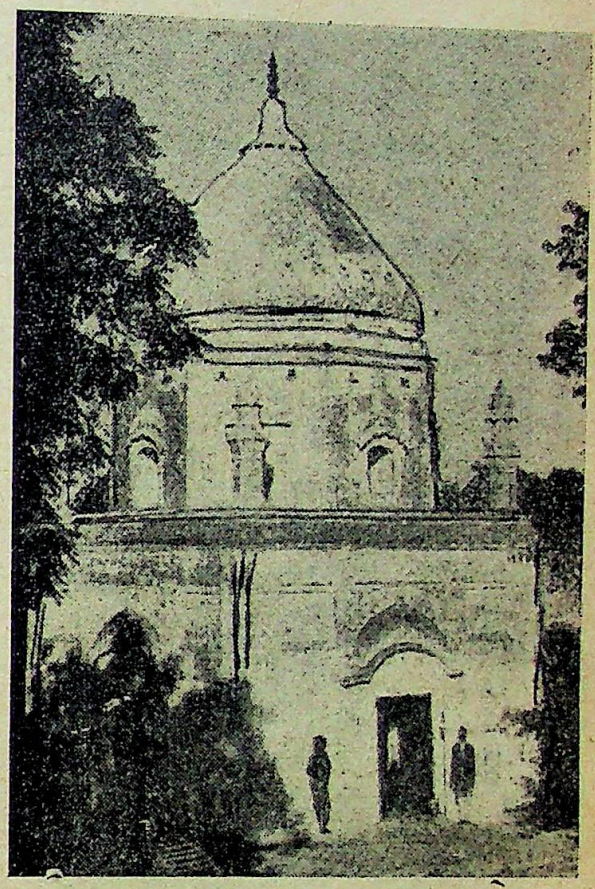

[श्री योगमाया का मन्दिर]

क़ब्रें और फ़क़ीरी। यहाँ के लोग वास्तव में बहुत ग़रीब हैं। यहाँ बाज़ार में अभी तक कौड़ियों का चलन है। खाना पकाने में यहाँ के हिन्दू पंजाब भर में मशहूर हैं। यहाँ जैसी स्वादिष्ठ और सस्ती वस्तुएँ कहीं भी नहीं मिलतीं। ग़रीबी, गर्मी, और शहर की ज़िंदगी के कारण यहाँ के सुन्दर लोगों के मुख पर ख़ून नहीं दिखाई देता। गर्मी और ख़ुश्की के कारण यहाँ के लोग तेल का अधिक व्यवहार करते हैं। यहाँ के लोगों के मुख कभी कभी ऐसे लगते हैं, जैसे अभी तेल से निकाले गये हों। स्नान करने से पहले लोग तेल से कोई आधा घंटा तक मालिश करते हैं।

यहाँ जात-पाँत का अभी तक बहुत ज़ोर है। विवाह आदि की तो बात ही क्या, दूसरी जाति के आदमी के साथ खाना-पीना तक नहीं करते। अछूत के छू जाने पर स्नान करना और वस्त्रों का बदलना ज़रूरी समझा जाता है। बाल-विवाह के कारण बाल-विधवाओं की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

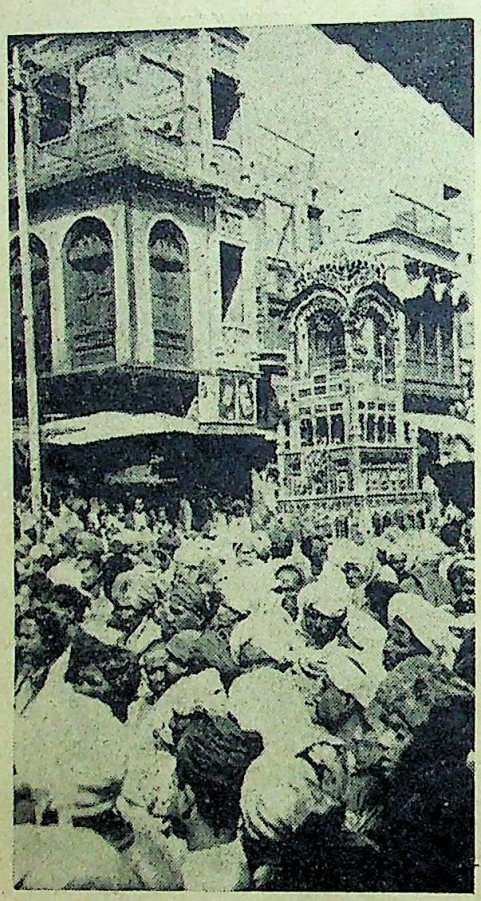

[मुलतान का ताज़िया-जुलूस]

संख्या अधिक है। मेरे समझाने पर भी मुझे यही उत्तर मिलता—"लेकिन जनाब, विधवा-विवाह हिन्दू-धर्म के तो विरुद्ध है, चाहे इसमें कितना पाप क्यों न हो।" यहाँ के लोगों पर किसी तरह के प्रचार का भी असर नहीं होता। वे ऐसी पुरानी दुनिया में बसते हैं जिसकी कोई हद ही नहीं! वे पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के बिलकुल ही विरुद्ध हैं।

मुलतान में कई देवताओं के पुराने सुन्दर मन्दिर बने हुए हैं। ऐसे प्रसिद्ध मन्दिर संख्या में १२ हैं, जिनमें से कुछ का वर्णन यहाँ किया जाता है।

प्रह्लाद-पुरी—यह मन्दिर मुलतान के प्रसिद्ध क़िले पर बना हुआ है। इसमें भगवान् नरसिंह की और भक्त प्रह्लाद की मूर्तियाँ हैं। इनके पीछे महल का स्तम्भ भी बना हुआ है। इसको बहुत दूर दूर के लोग देखने आते हैं। हर साल जेठ के महीने में यहाँ बड़ा मेला लगता है। मुसलमानों के राज्य में जब क़िले में जाने के लिए इजाज़त लेनी पड़ती थी तब हिन्दुओं ने इसकी नक़ल का एक दूसरा मन्दिर शहर के अन्दर बना लिया था। यह मन्दिर भी देखने के योग्य है।

तोतला माई का मन्दिर—यह मन्दिर शहर में है। पहले यह स्टेशन के समीप था। जब औरङ्गज़ेब ने पुराने मन्दिर को गिरवा दिया था तब कहा जाता है कि उसकी मूर्ति एक कुएँ में जा छिपी थी, साथ ही बादशाह का लड़का बीमार पड़ गया था। मन्दिर के महन्त ने शाहज़ादा को आराम कर दिया। इस पर खुश होकर बादशाह ने मन्दिर के ख़र्च के लिए सौ रुपया साल लगा दिया था।

स्टेशन के बाहर योगमाया का मन्दिर है। इसमें हर समय 'जोत' जगती रहती है। यह भी बहुत पुराना मन्दिर है और देखने के योग्य है। शहर से थोड़ी थोड़ी दूर पर बहुत-से मन्दिर और समाधियाँ बनी हुई हैं, जहाँ साल में कई बार मेले लगते हैं।

मुलतान के हिन्दू त्योहारों को दिल खोल कर मनाते हैं। ऊँटों को सजाकर उन पर सवार होकर गाते हुए जाते हैं।

मुसलमानों की भी कई एक मशहूर और पुरानी मस्जिदें और ख़ानगाहें यहाँ हैं। क़िले में बहावल-हक़ की ख़ानगाह बहुत बड़ी और सुन्दर है। बहावल-हक़ हज़रत मुहम्मद की जाति के थे। इनके मुरीदों की यहाँ बहुत बड़ी संख्या है। यह ख़ानगाह बहावल-हक़ साहब ने ख़ुद ही बनवाई थी। मुलतान में कई एक फ़क़ीर आये, जिनकी याद में कई एक सुन्दर ख़ानगाहें और क़ब्रें यहाँ हैं। मुहर्रम के दिनों में इन ख़ानगाहों से बहुत बड़े सुन्दर ताज़िये निकलते हैं। रुकन आलम की ख़ानगाह भी क़िले में एक सुन्दर इमारत है। रुकन आलम बहावल-हक़ के पौत्र थे। सिक्खों के राज्य में इन ख़ानगाहों में फ़ौज रहती थी।

क़िले में मेमोरियल टावर भी देखने योग्य है। यह टावर उन दो जवान अँगरेज़ों की स्मृति में बनाया गया है जो दीवान मूलराज से क़िले का अधिकार लेने गये थे और जिन्हें उसने मरवा डाला था। यह कोई ६० फुट ऊँचा है और लाल रंग के पत्थर का बना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुलतान का क़िला जब अपनी अच्छी दशा में था तब इसका रक़बा १¼ मील था और इसके चारों ओर रावी बहती थी, जिसको पार करने के लिए एक पुल बना हुआ था। इसके अन्दर एक सर्दखाना था, जिसका उपयोग दीवान सावनमल और मूलराज गर्मी की ऋतु में किया करते थे। क़िले का दमदमा बहुत ऊँचा है, जहाँ से सारा शहर दिखाई देता है। मुलतान छावनी के बनने के पहले अँगरेज़ी फ़ौज इस क़िले में रहती थी। परन्तु आज-कल यह बिलकुल उजाड़ पड़ा हुआ है।

मुलतान शहर के म्युनिसिपल बोर्ड ने शहर को सुन्दर और साफ़-सुथरा बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है, अतएव यहाँ की तङ्ग गलियों और बाज़ारों की हालत आगे से बहुत अच्छी हो गई है। तंग रास्तों के कारण शहर की गंदगी गधों की छोटी छोटी गाड़ियों के द्वारा दूर की जाती है। ये छोटी अनोखी गाड़ियाँ देखने में बड़ी अजीब-सी मालूम होती हैं। इससे पहले शहर की गन्दगी बैलों पर लाद कर उठाई जाती थी। इन सब प्रयत्नों के होते रहने पर भी मुलतान अभी तक गन्दा, तंग और अस्वास्थ्यकर है। शहर की फ़सील के बाहर कई-एक सुन्दर बाग़ और इमारतें हैं। परन्तु मुलतानी लोग शहर से बाहर बहुत कम निकलते हैं। यहाँ के नये टाउन हाल, सिविल हास्पिटल, कालेजों आदि की भी इमारतें सुन्दर हैं।

इन नये परिवर्तनों के साथ साथ मुलतान के लोगों के विचारों में कोई उन्नति नहीं हुई है। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, सभी के विचार तंग और पुराने के पुराने ही हैं। और यही कारण है कि मुलतान में हिन्दू-मुसलमानों में प्रायः दङ्गे होते रहते हैं।

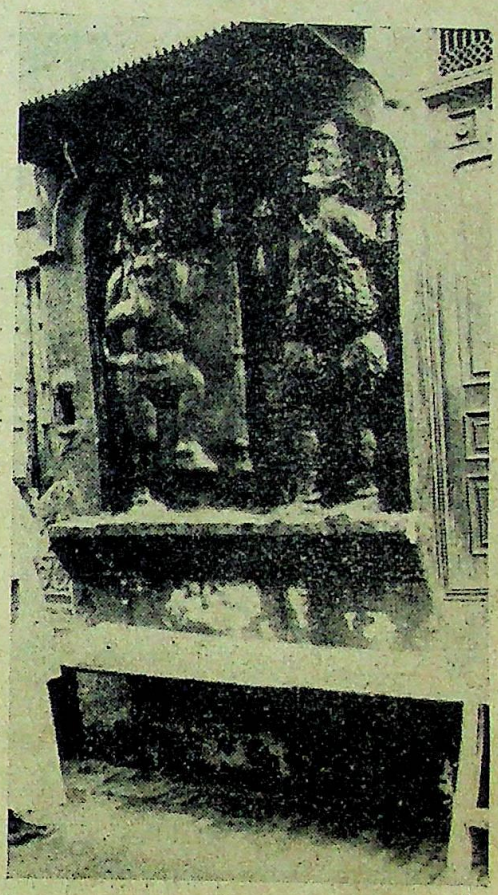

[एक गली में मंगल और शनिश्चर की मूर्तियाँ]

साधना

लेखक, प्रोफ़ेसर विश्वनाथप्रसाद, एम० ए०

जीर्ण विपञ्ची के तारों को जोड़-जोड़ तैयार किया।
विजन विश्व की नीरवता में शान्त अशान्त विचार किया॥
मींड़ खींचने लगा, छिदी उँगली, न रुदन बेकार किया।
गाया गान सँभाल ताल-लय-सुर में लय संसार किया॥
फिर भी क्यों स्वर में मच जाता हाय! स्वार्थ का हाहाकार?
रह-रहकर क्यों बज उठती है हन्त! कामना की झनकार?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूक माली

लेखक, श्रीयुत उदय

ह देखो नीचे भगवान् का सच्चा प्रतिरूप। समय-चक्र को चलाते-चलाते अब बड़े पिता भी ऐसे ही वृद्ध होंगे—ऐसी ही लम्बी-लम्बी स्वच्छ दाढ़ी, श्रान्त-कृश देह और लोचनों में स्फूर्ति की निशानी वही लालिमा होगी। उस पिता के सभी प्रतिनिधि एक लँगोटी बाँधे इस भूमि से लगे रहे। वैसे ही सरल-स्नेह का देखो। यह साक्षात् पुतला अपनी छोटी-सी सृष्टि को बिगाड़ने-बनाने में जुटा है। सुखद नींद में जहाँ सोना है, और सुखद श्रम में जहाँ जगना! कैसी सुडौल, मनोहर सृष्टि! इसका प्रत्येक प्राणी छोटा या बड़ा, पुष्पयुक्त अथवा रहित, सुगन्ध वा निर्गन्ध, इसका है। देखो, न ज़रा उस ओर, कैसे क्यारी के उस पौधे के अचानक चले जाने से, सबकी बेचैन दृष्टि उस रिक्त स्थान की ओर लगी है। लगी ही रहेगी, जब तक वह उजड़ा स्थान फिर लहलहाने न लगेगा। उनका जीवन साम्य का जीवन है। वे विकल देखने लगते हैं—उसी ओर, जिधर कोई मुरझाता, गिरता नज़र आता है। क्यों न हो, जिनका ऐसा चतुर सृजनहार।

इसी सृष्टि के बाँयीं और एक छोटी-सी कुटी देखने में आती है। उसी में बैठे-बैठे वह अपने बच्चों का खिलवाड़ देखता है; हुक्के की गुड़गुड़ में उनकी भविष्य चिन्ता करता है और चक्कियों की गड़गड़ाहट में उनके साथ हिलोर लेता है; सुबह उठकर एक सिरे से दूसरे सिरे तक जो स्नेह की बौछार करता है, तो सब उससे तरबतर हो जाते हैं—क्या गुलाब और क्या बेरी। उसकी हलकी-सी मुस्कान में वह आनन्द-कम्पन छिपी रहती है, जिससे उस वाटिका के प्राणी हरे-भरे हो जाते हैं; क्या छोटा और क्या बड़ा। और जिसकी एक-ही दुःखद निश्वास के साथ उनका सारा रंग फ़क हो जाता है। तब क्यों न भूल बैठें वह भी भूख-प्यास, शीत-दाह, हानि-लाभ ऐसे सहृदय बच्चों के पीछे!

और दुलारे बच्चों का लालन-पालन करनेवाले वे कोमल-कोमल हाथ उन्हें दुरुस्त करने को कठोर भी हो जाते हैं; वह साम्य के द्रोही को वहाँ से विदा भी सहज-भाव से कर देता है। यदि तीनों लोकों में न्याय-दया और प्रेम एक ही जगह आकर मिले हैं, तो वह यहाँ। और कहीं नहीं। जिसकी सृष्टि में न अन्याय है, न अराजकता। जहाँ गुलाब सस्नेह देखता है बेरी की ओर, और बेरी गुलाब की ओर। जहाँ सब ही हिल-मिल कर जीते हैं और हिल-मिल कर मरते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में बड़े बाबा ने बड़ी-बड़ी भूलें कीं। पैग़म्बर पर पैग़म्बर आते हैं उन्हें सुधारने; पर अब वे उसकी प्रकृति-सी हो गई हैं। उन्हीं के लिए इस छोटे पिता ने मानों यह आदर्श तैयार किया है।

दिवस का अवसान समीप ही आ गया। अब भी देख लो वह परमात्मा का प्यारा किस मुस्तैदी से उस बीथिका में निनान कर रहा है।

"कल नया वर्ष लगेगा। टन-टन कर इस जीवन की साठ घड़ियाँ बीत गई होंगी; और न जाने कितना सफ़र और बाक़ी बचा है।" बस, कुछ ऐसे ही गुनगुनाता बढ़ा जा रहा है। हर पौधे के पास ठहरता है। कुछ कहता है, कुछ सुनता है; पसीने का मोती ललाट से ढुलक पड़ता है और चट दोनों की रूह मिलकर एक हो जाती है। उस क़तार में थोड़े ही पौधे बाक़ी बचे थे और शायद आज इतना ही काम करना हो; उनकी तेज़ी धीरे-धीरे मन्द होने लगी थी। जब ललू बेटे ने धीरे से कान में आकर कहा, "मानू बाबा, अपनी जमनी दादी है, न? वह बाबू जी कहते थे शहर के अस्पताल में मर गई।" उस समय तीन-चार पौधे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही बाक़ी थे। सूर्य्य देवता अपने दूसरे लोक को प्रस्थान कर चुके थे।

मानू बाबा ने कहा—"हैं भैया जी!"

और ज्यों ही, "हाँ, अस्पताल से मोहन आया... लल्लू भैया ने कहा कि त्यों ही पीछे से बड़े भैया ने पुकार कर कहा—"क्यों लल्लू, बाबू जी को कहूँ क्या? क्या कह रहे हो बाबा को।" बस, हो चुका। बड़े भैया ने रोक कर लल्लू भैया के कथन की पुष्टि कर दी।

काम समाप्त हो चुका था। वह उठा। उसका कुत्ता झाड़ी पर था, खुरपा वहीं पौधे की जड़ में, हुक्का मेंड़ पर। वीथिका के बीच से सिर नीचा किये चला। उस समय फलों में न रंग था, न सुगन्ध। पक्षियों का रव भी एकाएक बन्द हो गया था। कोठी के कुटने-पिटने की आवाज़ भी न थी और सामने टेनिस कोर्ट की वाह-वाह और क़हक़हे कण्ठों में ही रुक गये थे। केवल कुटिया ही झलकती थी जहाँ तक वह पहुँच गया। लगभग तीन घंटे तक वह कुटिया के दरवाज़े पर सिर नीचा किये बैठा रहा। सबने देखा झोपड़े में आज चिराग़ न था। न क्यों, किसी ने पूछा; न यों, किसी ने कहा। उस समय वाटिका के अनाथ जीव रो रहे थे, कोठी में गाना-बजाना हो रहा था। गाना एक बजे ख़त्म हुआ। रोना सुबह आठ बजे कुछ रुका; पर ख़त्म कभी न हुआ।

दूसरे दिन सुबह मैंने कोठी के मालिक से जाकर कहा—"मैं उस जगह एक समाधि बनाना चाहता हूँ?

उन्होंने पूछा, "क्यों?"

"आपको क्या कुछ एतराज़ है?"

—मैंने कहा।

"इसमें मेरा क्या जाता है!"

अब वहाँ एक समाधि खड़ी है। मैं अपने बाल-बच्चों-सहित अक्सर वहाँ दर्शन को जाया करता हूँ।

क्षण-भंगुरता

लेखक, श्रीयुत जगमोहननाथ अवस्थी 'मोहन'

आदि में अन्त व्यथा में छिपा सुख,
भूत भविष्य बना करता है।
राग-विराग में आह में गान,
कहीं तम तेज छना करता है॥
पाप में पुण्य विकास में ह्रास का,
नित्य वितान तना करता है।
मानव योंहीं बना बिगड़ा,
जग-पंक-कलंक सना करता है॥

क्यों अभिमान-विमान चढ़े हम,
स्वप्न के विश्व में घूमते जाते।
नित्य ही आशा-घनावली के,
कलकल्पित बुन्द को चूमते जाते॥

मोह के कोमल तन्तु बँधे,
परतंत्र बने पर झूमते जाते।
काल कराल के चक्कर में पड़,
चाक कुम्हार-से घूमते जाते॥

शान्ति न पा सका कोई यहाँ,
सब रोते-रुलाते अकेले चले गये।
धूप औ छाँह में दीन धनी,
जग आँगन में सँग खेले, चले गये॥
ज्ञान न मुक्ति विधान बता सके,
सैकड़ों ही गुरु चेले चले गये
केवल नेकी बदी के निशान ही,
अन्त हिसाब में दे-ले चले गये॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवधी और बघेली बोली की भिन्नता

लेखक, श्रीयुत लाल भानुसिंह बाघेल

हिन्दी-भाषा के क्षेत्र में व्रजभाषा एवं अवधी बोलियों का विशेष स्थान है। व्रजभाषा के भीतर बुन्देली और अवधी के अन्दर कनौजी, बैसवाड़ी, बघेली एवं छत्तीसगढ़ी बोलियाँ हैं। आचार्य्य रामचन्द्र शुक्ल अवधी और बघेली में कोई अन्तर नहीं मानते हैं पर व्रजभाषा में जो स्थान बुन्देली बोली का है वही अवधी में बघेली का है। साधारण दृष्टि से बहुत कम अन्तर प्रतीत होता है अवश्य; पर जब अवधी के अत्यन्त निकट बैसवाड़ी और अवधी में ही कुछ अन्तर है तब अवध से सुदूर बघेलखण्ड-प्रान्त की बोली में क्यों न अन्तर हो? यह सत्य है कि बुन्देलखण्ड के अत्यन्त निकट होते हुए भी बघेली बोली पर बुन्देली बोली का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा और सैकड़ों कोस दूर अवधी का उस पर इतना प्रभाव पड़ा कि दोनों एक मानी जाने लगीं। विचारने की बात है कि यद्यपि बुन्देली के द्वारा पश्चिमी अवधी से बघेली का नित्य का सम्बन्ध होना चाहिए, पर ऐसा न होकर यह अपने से सुदूर पूर्वी अवधी को ही अधिक अपनाती है। जैसे पश्चिमी अवधी के साधारण क्रिया 'आवन' 'जान' आदि रूपों का बघेली में व्यवहार न होकर पूर्वी अवधी के 'आउब' 'जाब' आदि रूपों का पूर्ण रूप से व्यवहार होता है।

सर्वनाम शब्दों के बहुवचन में बघेली में 'पाँच' शब्द जोड़ने की प्रवृत्ति है, यह अवधी में कहीं नहीं पाई जाती।

अवधी		बघेली	
एकवचन	बहुवचन	एक व०	ब० व०
आप	आप	अपना	अपना पाँच
ई	इन, ए	इया	ई पाँच
ऊ	उइ	उआ	ऊँ पाँच
मइ	हम	मैं	हम पाँच
तुइ	तुम, तूँ	तुम, तूं	तुम पाँच

प्रायः सब भाषाओं में शब्दों का एकवचन से बहुवचन बनने में रूपान्तर हो जाता है, पर बघेली में तब तक रूपान्तर नहीं होता जब तक बहुवचन शब्द के पीछे किसी कारक-चिह्न (विभक्ति) की आवश्यकता नहीं पड़ती। केवल क्रिया में अन्तर पड़ जाता है जैसे 'घोड़ आया है' और 'घोड़े आये हैं' का बघेली अनुवाद 'घोड़ आबा है' और 'घोड़ आये हैं' होगा।

अवधी		बघेली	
एक० व०	बहु० व०	एक व०	बहु व०
घोड़वा	घोड़वे	घोड़	घोड़ (घोड़न को)
आव	आँव	आमा	आमा (आमन को)
रोटी	रोटी	रोटी	रोटी (रोटिन को)
गोरू (पशु)	गोरू	गोरू	गोरू (गोरुअन को)

क्रियाओं में भी अन्तर है। जहाँ अवधी के वर्तमान काल में 'है', 'अहै', 'बाटै', तीनों होते हैं वहाँ बघेली में खड़ी बोली की भाँति केवल 'है' होता है। इसी प्रकार जहाँ अवधी के भूत काल के एकवचन क्रिया में 'रहा', 'रहै', 'रहै' और बहुवचन में 'रहन', 'रहौ', 'रहैं' होता है वहाँ बघेली में केवल 'रहा' (एकवचन में) और 'रहे' (बहुवचन में) होता है। यही स्त्रीलिंग में 'रही' और 'रहीं' हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा प्रधान उपनिवेश

लेखक, श्रीयुत सेठ गोविन्ददास, एम० एल० ए०

(३)

ज़ंजीबार

मुम्बासा से ज़ंजीबार जाने में जहाज़ को सिर्फ़ एक रात लगती है। शाम को हम मुम्बासा से रवाना हुए और दूसरे दिन सुबह ज़ंजीबार पहुँच गये।

ज़ंजीबार की ज़मीन भी उषाकाल से ही दिखाई देने लगी थी। ज़ंजीबार एक टापू है और मुम्बासा से भी ज्यादा हरा-भरा। जहाज़ ने लंगर डाला क़रीब ७ बजे और ज़ंजीबार के इंडियन नेशनल एसोसिएशन के स्थानापन्न सभापति आनरेबिल मिस्टर ग़ुलामअली, मन्त्री मिस्टर पटेल, 'ज़ंजीबारवायस' के सम्पादक मिस्टर इब्राहीम तथा वहाँ के अनेक प्रतिष्ठित सज्जन हमें लेने के लिए जहाज़ पर पहुँच गये।

ज़ंजीबार के डाक पर इतना पानी न था कि जहाज वार्फ़ तक पहुँच सकता, अतः हम लोग एक छोटे मोटर-बोट में बैठकर वार्फ़ के लिए रवाना हुए। समुद्र में किनारे के कारण लहरें उठ रही थीं और वह छोटा-सा मोटर-बोट खूब डगमगा रहा था। जहाज की झूमती हुई चाल और इस नाव की डगमगाहट में कितना अन्तर था।

वार्फ़ पर मेरे लेने के लिए एक बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी थी। वन्दे मातरम् और महात्मा गान्धी के जय-घोष द्वारा मेरा स्वागत किया गया। भीड़ में मुसलमान अधिक थे। इन सबका इस प्रकार का कांग्रेस-प्रेम देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ, पर यह हर्ष बहुत देर तक न ठहरा। इसका कारण था। मैंने भीड़ में से एक व्यक्ति से पूछा—"यहाँ तो कांग्रेस के प्रति बड़ा प्रेम है।"

"जब से लोगों के व्यापार का झगड़ा उठा है तभी से यह प्रेम हो गया है।" उसने उत्तर दिया।

यद्यपि इस उत्तर को सुनकर मेरा हर्ष बहुत कम हो गया तथापि एकाएक मेरे मन में उठा—आपत्ति में ही भगवान् याद आते हैं, आफ़त में ही कांग्रेस याद आती है। यदि हम लोगों के दुःख और बढ़ जायँ तो शायद हम जल्दी आज़ाद हो सकें। क्रान्ति कष्ट का परिणाम है। क्रान्ति के लिए हमें अभी और कष्टों की ज़रूरत है।

मिस्टर ग़ुलामअली ने मेरे स्वागत में एक छोटा-सा भाषण वार्फ़ पर ही दे डाला। मुझे उसका जवाब देना पड़ा। भाषणों के बाद ही हम लोग मिस्टर ग़ुलाम-अली के मकान की तरफ़ रवाना हुए।

ज़ंजीबार टापू तो नित्य नये वृक्षों और पौधों के द्वारा नये प्रकार से हरा-भरा होता रहता है, परन्तु शहर में कोई नवीनता नहीं है—वह बहुत पुराना है। शहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[ज़ंजीबार में लौंगों का वृन्तों से पृथक् करना]

में एक भी सड़क नहीं है, सब छोटी-छोटी गलियाँ हैं। मकान भी नये ढंग के न होकर सब पुराने फ़ैशन के हैं। बड़े ऊँचे ऊँचे मकान हैं, जिनके कारण गलियों में कुछ क्षणों के लिए ही सूर्य्य की किरणें प्रवेश कर पाती हैं। गलियाँ पत्थर की चौड़ी चौड़ी पटियों से पटी हुई हैं। मकानों के दरवाज़ों की चौखटें और पल्ले ज़्यादातर खुदाबदार हैं। सारा नगर देखकर भारत की काशी-पुरी का स्मरण आये बिना नहीं रहता।

थोड़ी देर तक मिस्टर गुलामअली के मकान में ठहर कर हम लोग लौंगों की उपज और शहर के बाहर भारतीयों के निवासस्थलों को देखने के लिए रवाना हुए।

जिस तरह आम के बगीचों में आम के वृक्ष कतार में लगाये जाते हैं, उसी प्रकार लौंग के वृक्ष लगे थे, पर लौंग के वृक्ष आम के वृक्षों के समान घेरदार नहीं होते। इसके सिवा वे एक दूसरे से इतनी दूर भी नहीं लगाये जाते जितने आम के। वे थे पतले और सीधे और उनकी लम्बाई थी क़रीब २२ फ़ुट। लौंग न फल है, न फूल है। जो पेड़ फूल जाता है उसमें तो फिर लौंग होती ही नहीं। लौंग निकलती है छोटी-छोटी टहनियों के सिरे पर। तीन तरह की लौंग होती है—हरी, लाल और मोटी लाल जिसे लौंग की मा कहते हैं। हरी लौंग प्रथम श्रेणी की समझी जाती है। भारत में यही आती है। लाल द्वितीय श्रेणी की मानी जाती है। यह योरप के कुछ देशों को जाती है। वहाँ उससे तेल निकाला जाता है। यही लाल लौंग जब ठीक समय पर नहीं तोड़ी जाती तब मोटी होकर लौंग की मा बन जाती है। यही इसका बीज है। हर चौथे वर्ष लौंग की एक बड़ी फ़सल होती है। यह साल बड़ी फ़सल का साल होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

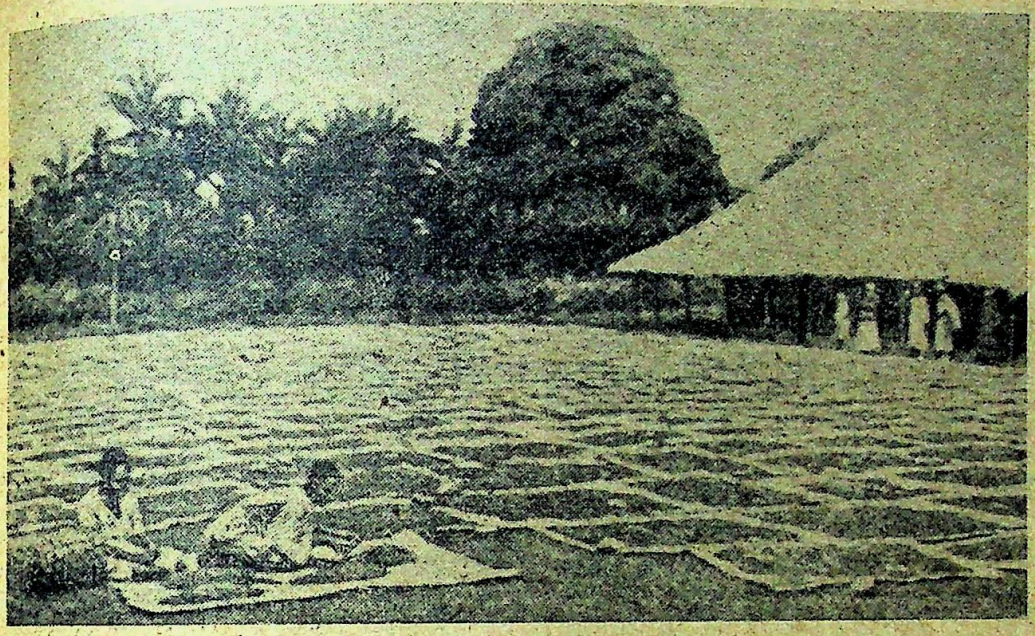

[ज़ंजीबार के एक मैदान में लौंगें सुखाई जा रही हैं]

लौंग का हर एक वृक्ष लौंग के गुच्छों से लदा हुआ था। वृक्ष चलती हुई वायु में लहरा कर लौंग की सुगन्ध से सारे ज़ंज़ीबार टापू को सुगन्धित कर रहे थे।

क्लव डिक्री क़ानून के सबब हिन्दुस्तानियों ने लौंग के व्यापार का बायकाट कर दिया था। इससे लौंग तोड़ने के लिए हमें बहुत कम मज़दूर दिखाई दिये। लौंग वृक्षों से झड़ झड़ कर धूल में मिल रही थी। जब मैंने यह पूछा कि जिस तरह अभी लौंग तोड़ी जा रही है, उस तरह तो शायद आधी से ज़्यादा फ़सल बरबाद हो जायगी, तब मुझे कहा गया कि क्लव ग्रोअर्स एसोसियेशन ने जान बूझ कर तुड़ाई का ठीक इन्तज़ाम नहीं किया है। वह चाहता है कि ज़्यादातर फ़सल बरबाद हो जाय, जिससे निर्यात का प्रश्न बहुत जटिल न होने पाये। मालूम नहीं, इस बात में कितनी सत्यता थी, पर इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि यह बात असम्भव नहीं हो सकती।

ज़ंजीबार में लौंग की ख़रीद और निर्यात वहाँ के भारतीय व्यापारी करते थे। उपज का आधा हिस्सा भारत को आता था। जब क्लव डिक्री के इस क़ानून के सब ज़ंजीबार के भारतीय व्यापारियों ने ज़ंजीबार में लौंग की ख़रीद और निर्यात तथा भारत में भारतीय व्यापारियों ने लौंग के आयात के व्यापार का बायकाट कर रक्खा था और यह साल बड़ी फ़सल का साल था तब क्लव ग्रोअर्स एसोसियेशन की यह चाल असम्भव नहीं हो सकती।

लौंग के सहस्रों वृक्षों के इन उपवनों को देख और लौंग की सुगन्धि से मस्तिष्क को परिपूर्ण कर हम लोग भारतीयों की शहर के बाहर की बस्ती में पहुँचे। इन बस्तियों में भारतीयों के साथ अरब भी रहते थे और दूर दूर पर सुहेलियों के भी झोंपड़े थे। मुंबासा में शहर के बाहर की इस तरह की बस्तियाँ हमें देखने को न मिली थीं। ज़ंजीबार में पहले पहल हमने इन्हें देखा। ये बस्तियाँ नारियल, लौंग और केले के दरख़्तों से भरी हुई थीं। भारतीयों तथा अरबों के मकान ईंट और मिट्टी के बने थे, जिन पर टीन छाया हुआ था—ज़्यादातर कनस्टरों का टीन। मकान एक-दूसरे के बहुत नज़दीक थे। दोनों जातियाँ साथ साथ बन्धुओं के समान प्रेम से रहती थीं। सुहेली दूर-दूर पर पृथक्-पृथक् झोंपड़ों में रहते थे। झोंपड़े गोल घास के बने हुए थे। घास से ही छाये गये थे। हर एक झोंपड़े में सिर्फ़ एक छोटा-सा दरवाज़ा था। हर झोंपड़े के चारों तरफ़ ज़्यादातर केले के दरख़्त थे। मालूम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

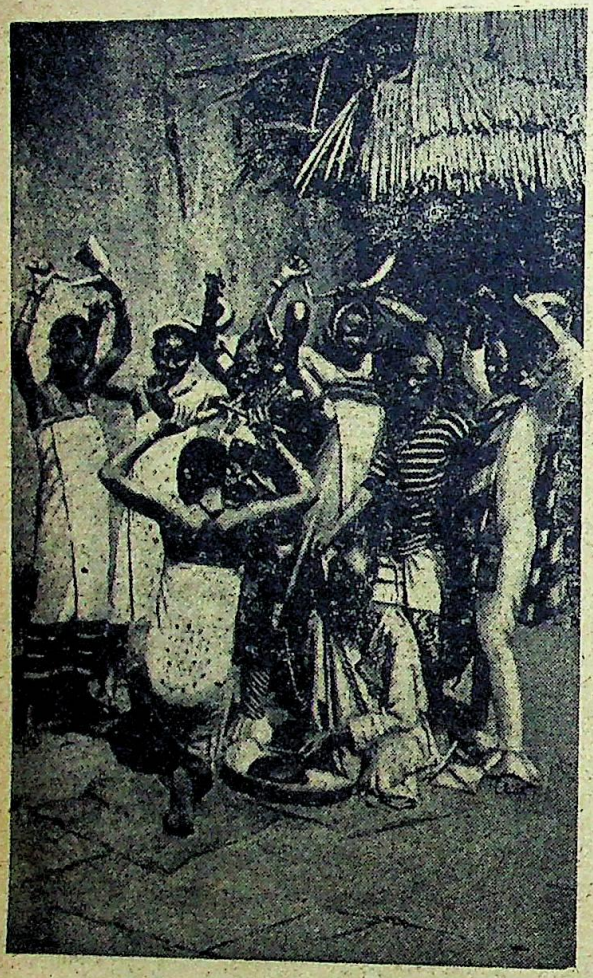

[सुहेलियों का एक उत्सव-नृत्य]

हुआ कि केला ही सुहेलियों का प्रधान भोजन है। यह भी सुना कि कुछ वर्ष पहले सुहेली कपड़े नहीं पहनते थे। पत्ते की तीन अंगुल चौड़ी लँगोटी ही स्त्री और पुरुष दोनों के लिए काफ़ी थी, अतः घास का झोंपड़ा, पत्ते की लँगोटी और झोंपड़े के आस-पास पैदा हुए केले इन तीनों चीज़ों के सिवा सुहेलियों को किसी दूसरी चीज़ की ज़रूरत न थी। आवश्यकता ही उत्पत्ति की जननी होती है। जब सुहेलियों को किसी चीज़ की ज़रूरत ही न थी तब सभ्यता की इस दौड़ में उनका पीछे रह जाना शायद स्वाभाविक था। मैंने इन बस्तियों में लौंग के उत्पादक कई अरबों और सुहेलियों से क्लव डिक्री और भारतीयों-द्वारा इस व्यापार के बायकाट के विषय में बात की। वे मेरी भाषा नहीं समझे। बीच में ऐसे आदमी की ज़रूरत हुई, जो हिन्दुस्तानी और सुहेली दोनों भाषायें जानता हो। यहीं एक ऐसा आदमी मिल गया। उसने मेरी बात उन्हें और उनकी मुझे समझा दी। कुछ बातें इशारों में भी हुईं। मुझ पर तो इस सबका यही प्रभाव पड़ा कि अरबों और सुहेलियों को भी व्यापार में ये क़ानूनी बन्धन पसन्द नहीं हैं और उन्हें डर है कि इन बन्धनों के सबब शायद सारा रोज़गार नष्ट न हो जाय।

हमारा लञ्च था ज़ंजीबार के सबसे पुराने व्यापारी सेठ पोपट वीर जी के यहाँ। पोपट वीर जी ज़ंजीबार के सबसे पुराने और सबसे बड़े व्यापारियों में एक थे। यद्यपि सेठ जी की अवस्था ७२ वर्ष की थी, तथापि हृदय तरुणों जैसा था। वे इस बात को बड़े गर्व से कहते थे कि जब महात्मा गांधी दो बार ज़ंजीबार आये थे तब उन्हीं के यहाँ ठहरे थे। ऐसे सज्जन के यहाँ लञ्च खाने को जाने में हमें भी आनन्द हुआ। लञ्च खाकर हम सब इस बात पर विचार करने के लिए बैठे कि मुझे आज की सार्वजनिक सभा में क्या कहना चाहिए। चूँकि इस समय लौंग के व्यापार के सम्बन्ध में ज़ंजीबार और भारत दोनों जगह ही एक बड़ा बड़ा आन्दोलन चल रहा था, इसलिए बिना सारी बातों को अच्छी तरह समझे और वहाँ के ज़िम्मेदार व्यक्तियों से सलाह लिये मैंने कोई बात कह डालना मुनासिब न समझा।

लौंग के व्यापार के सम्बन्ध में जितना साहित्य प्रकाशित हुआ था वह मैं बम्बई से रवाना होने के बाद जहाज़ पर ही पढ़ चुका था। इस अध्ययन के बाद मेरी राय हो गई थी कि यहाँ के भारतीय और अरब आदि सभी व्यापारियों के साथ ज़ंजीबार की सरकार ने घोर अन्याय किया है। मेरा यह मत भी बन गया था कि सुहेलियों के हितों की रक्षा के नाम पर इस रोज़गार पर एकाधिकार स्थापित किया जा रहा है, जो एक-न-एक दिन किसी योरपीय कम्पनी या हिंदी केट के हाथ में दे दिया जायगा। मैं इस सब कार्यवाही को ब्रिटिश गवर्नमेंट की भारतीयों को अफ़्रीका से बाहर निकाल देने की नीति का एक हिस्सा मानता था। ज़ंजीबार में मैंने जो कुछ देखा और वहाँ के लोगों से जो बातचीत की उससे मेरी यह राय और भी दृढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गई। मैंने अपने भाषण के प्रत्येक प्वाइन्ट को नोट कर लिया। फिर ज़ंजीबार के सभी कार्यकर्ताओं से हर प्वाइन्ट पर सलाह की। जब मेरे भाषण के प्रत्येक हिस्से को वहाँ के लोगों ने ठीक समझ लिया तब मैंने भाषण देने का निश्चय किया। मेरे भाषण में एक प्वाइन्ट मिस्टर गुलामअली ने जुड़वाया वह था——उपनिवेशों के सम्बन्ध में भारतीयों के प्रति ब्रिटिश गवर्नमेंट का जो रुख़ है उसे देखते हुए ब्रिटिश गवर्नमेंट को इस बात की चेतावनी कि यदि उसका यह रुख ऐसा ही रहा तो उपनिवेशों में बसे हुए भारतीयों को भी ब्रिटिश साम्राज्य से पृथक् होने की घोषणा करनी होगी।

संध्या को ५ बजे रायल सिनेमा में सार्वजनिक सभा थी। भीड़ इतनी हुई कि एक-एक कुर्सी पर दो-दो आदमियों के बैठने और अनेक के खड़े रहने पर भी सिनेमा-हाउस में सब लोग न समा सके और बहुतों को बाहर रहना पड़ा। मिस्टर गुलामअली सभा के अध्यक्ष थे। मैं क़रीब सवा घंटे के बोला। मेरे भाषण का अधिकांश हिस्सा लौंग के व्यापार और उसके प्रति-बन्ध के विषय में जो क़ानून बने थे उनसे सम्बन्ध रखता था। जब मैंने ज़ंजीबार के सम्बन्ध में असेम्बली के गठित करने के प्रस्ताव की चर्चा की और जनता को बलाया कि मिस्टर जिन्ना के कारण किस प्रकार वह प्रस्ताव पास न हो सका तब सभा ने मिस्टर जिन्ना पर शेम शेम के नारे लगा कर अपना घोर असन्तोष प्रकट किया। सभा में ज़्यादातर मुसलमान थे। मिस्टर जिन्ना पर ज़ंजीबार के मुसलमान कितने नाराज़ हुए यह बात उस सभा में साफ़ साफ़ मालूम हो गई। उन्होंने वहाँ के व्यापारियों का एक सिद्धान्त पर अड़े रह कर सब कुछ त्याग करने की तैयारी पर बधाई दी और उन्हें आश्वासन दिलाया कि हिन्दुस्तान में एक छोटी सी लीग न बिके इसे कांग्रेस करके दिखा देगी। मेरा भाषण अधिक ही हुआ, पर जिन प्वाइन्टों पर चर्चा हो चुकी थी उनके बाहर मैं ज़रा भी न गया। ब्रिटिश गवर्नमेंट को चेतावनी की बात मैंने अन्त के लिए रक्खी थी। मिस्टर गुलामअली इस बात के लिए बड़े चिन्तित थे कि कहीं वह बात रह न जाय। इसी लिए जब सभा समाप्त हुई तब उन्होंने मुझसे कहा कि मैं तो आपको

[शृङ्गार किये हुए एक सुहेली महिला]

उस बात की याद दिलाने के लिए एक चिट देने-वाला था।

रात को ७॥ बजे मुझे हिज़ एक्सलैंसी ब्रिटिश रेज़ीडेंट ने मिलने के लिए बुलाया। मैं मिस्टर गुलाम-अली के साथ ठीक समय उनसे मिलने पहुँचा। अँगरेज़ों को जब कोई गम्भीर बात कहनी होती है तब मौसम की चर्चा से शुरू होती है, यह मैं जानता था। रेज़ीडेंट ने पहले तो ज़ंजीबार आने पर मेरा हार्दिक स्वागत किया और फिर ज़ंजीबार की उस समय के मौसम पर चर्चा हुई। आख़िर लौंग के व्यापार की बात आई। रेज़ीडेंट बोले——"मैं चाहता हूँ कि यह झगड़ा किसी तरह निपट जाय। भारतीयों और उनकी पूँजी की पूर्व-अफ़्रीका में बड़ी ज़रूरत है, यह मैं मानता हूँ।"

मैंने रेज़ीडेंट को भारतीयों के सम्बन्ध में उनके विचारों पर धन्यवाद दिया और कहा——"हर्ष की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि आपके विचार अन्य अँगरेज़ों के समान नहीं हैं, जो भारतीयों का इस देश में रहना यहाँ के मूल-निवासियों के हितों के प्रतिकूल समझते हैं।"

मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जब रेज़ीडेंट ने मेरे इस कथन पर प्रमाण चाहे। मैं पूर्व-अफ़्रीका के गोरों और हिन्दुस्तानियों के संघर्ष का काफ़ी अध्ययन कर चुका था, अतः मैंने कीनिया में सन् १९१८ में नियुक्त हुए 'इकनामिक कमीशन' और योरपीयन एसोसियेशन के कन्वेशन की सिफ़ारिशों की तरफ़ उनका ध्यान आकर्षित किया, जिनमें हिन्दुस्तानियों को हज़ारों गालियाँ देकर यह कहा गया था कि उनका पूर्व-अफ़्रीका में रहना अफ़्रीकनों के हितों के विरुद्ध है। मैंने कीनिया के हाईलैंड्स के सारे झगड़े का उन्हें स्मरण दिलाया और ज़ंजीबार में भी हिन्दुस्तानियों की व्यापार-पद्धति आदि के सम्बन्ध में जो कुछ अँगरेज़ों और ज़ंजीबार-गवर्नमेंट द्वारा नियुक्त कमेटियों ने कहा था उस सबकी भी उन्हें याद दिलाई।

शायद रेज़ीडेंट को यह उम्मीद न थी कि मैंने वहाँ के मसलों पर थोड़ा-बहुत अध्ययन किया है। अतः और कोई उपाय न देख उन्होंने उस चर्चा को ही उड़ा दिया।

कालोनीज़ के अण्डर सेक्रेटरी आफ़ स्टेट लार्ड डफ़रिन जनवरी की ९ तारीख़ को ज़ंजीबार आनेवाले थे। आख़िर रेज़ीडेंट ने यह इच्छा प्रकट की कि दक्षिण-अफ़्रीका से लौटते हुए मैं लार्ड डफ़रिन से अवश्य मिलूँ, यह मुलाक़ात समाप्त की।

टायरिया उसी रात को ज़ंजीबार से जा रहा था। मैंने टायरिया से ही दारुस्सलाम जाने का निश्चय कर लिया। ज़ंजीबारवालों में मेरे वहाँ एक ही दिन रहने से असन्तोष था। वे मुझे ज़ंजीबार-राज्य के अन्तर्गत वहीं के निकट एक अन्य टापू पैम्बा में जहाँ ज़ंजीबार की ८० प्रतिशत लौंग पैदा होती है, ले जाना चाहते थे। पैम्बा-निवासी भी बड़ी उत्कण्ठा से मेरा रास्ता देख रहे थे। मैंने ज़ंजीबार-निवासियों को वचन दिया कि ६ दिसम्बर को दक्षिण के लिए मैं ज़ंजीबार से ही रवाना होऊँगा और ४ को फिर ज़ंजीबार आकर ५ दिसम्बर को पैम्बा चलूँगा।

अर्द्ध रात्रि के समय जहाज़ चलता था। छोटी-सी मोटर-बोट में बैठ कर हम लोग जहाज़ की ओर रवाना हुए। चन्द्रमा निकल आया था। उसकी किरणों में समुद्र की लहरें चमक रही थीं। उन्हीं चमकती हुई लहरों पर डगमगाता हुआ वह डोंगा जहाज़ की ओर बढ़ रहा था।

अर्द्धरात्रि होते हुए भी ज़ंजीबार के सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्ति जहाज़ पर मुझे पहुँचाने आये। उन्होंने जब मुझसे यह कहा कि जो थोड़े से व्यापारी लौंग के रोज़गार के बायकाट में डगमगा रहे थे वे मेरे भाषण के सबब से फिर दृढ़ हो गये हैं तब मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। मैंने समझा, मेरा ज़ंजीबार आना सफल होगया।

ठीक बारह बजे रात को टायरिया मन्द-गति से दारुस्सलाम की ओर चल पड़ा।

[क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक धारा में

लेखक, श्रीयुत 'विष्णु'

ठाकुर की पत्नी ने सतृष्ण नेत्रों से सब कुछ देखा। माँगनेवालों की लम्बी कतार धीरे धीरे घटने लगी। अनाज से भरी बोरियाँ खाली हो गईं। पुराने और नये कपड़ों की जो गठरियाँ फूली पड़ी थीं वे अब रीती थीं। ठाकुर अकेले ही हिसाब लिखने लगे। एक लम्बी साँस खींचकर वह किवाड़ों के पास से हट गई। हृदय का भारीपन उसे असह्य हो रहा था। विचारों ने उसे पूरी तरह जकड़ लिया था। वह सोचने लगी——हम ठाकुर हैं। दान नहीं ले सकते। वह पाप होगा। लेकिन खाने के लिए जब घर में दाना न हो और तन ढँकने के लिए कपड़ा भी न मिल सके तब दान लेना पाप कैसे हो सकता है? आख़िर ये लोग ऐसे ही असहायों की तो मदद करना चाहते हैं। ये आलसी भी नहीं हैं। तब मैं आज उनसे कहूँगी कि प्राण-रक्षा के लिए, पेट भर खाने के लिए, योग्य दान लेने में कोई पाप नहीं होगा.....।

लेकिन वे कहेंगे——छी! छी! क्या कहा तुमने? ठाकुर होकर हाथ फैलाऊँ तो उससे मरना कहीं आसान है। तुम्हारा गला घोट सकता हूँ, बच्चे को जीता गाड़ सकता हूँ, पर किसी के आगे हाथ नहीं फैलाऊँगा.....

और उसके सामने ठाकुर मानो सचमुच आ खड़े हुए। उनकी आँखें लाल हो रही थीं, चेहरे से लहू टपक रहा था, कह रहे थे——तुम.....तुम मुझे दान लेने को कहती हो, पापिन इत्यादि.....।

पत्नी बड़े भयंकर वेग से काँप उठी। जाड़े में मानो उसने महसूस किया कि वह पसीने से तर हो गई है——छी! छी! अरे! मैं क्या सोच गई? यह भी होने वाली बात है। ज़रा सी विपत्ति में इतना घबरा गई। और वह फिर स्वस्थ हो चली——ऊपर परमात्मा सभी तो देखता है। वह क्या नहीं जानता होगा। अवश्य मदद करेगा। यह तो दुनिया है। कष्ट न हो तो इसके सुख को जाने कौन?

वह सोच रही थी कि उसका सात वर्ष का लड़का भीम वहाँ आगया है। बोला——अम्मा! बताओ मैं क्या लाया हूँ?

वह चौंक पड़ी। बोली——क्या लाया है तू? मिट्टी की गोलियाँ होंगी? भीम हँस पड़ा——तुम नहीं बता सकती। देखो.....।

और उसने एक टोपी और एक कोट अम्मा की गोद में पटक दिया। बोला——बापू के पास बहुत से पड़े थे। एक उठा लाया हूँ। उन्होंने देखा नहीं.....वह एक-टक भीम को देखती रही——बोली नहीं।

भीम कहता रहा——तू भी उनसे मत कहना, नहीं तो मारेंगे। क्यों न अम्मा? देख तो आज सारे गाँव-वाले नये नये कपड़े पहने फिर रहे हैं।

अम्मा उसी तरह स्थिर....।

भीम अम्मा को ऐसा चुप देखकर घबरा गया। पास आकर बोला——अम्मा आ, आ....

लेकिन अम्मा पत्थर की मूर्ति की तरह जड़वत् थी। आँखें स्थिर पर भीग आई थीं, जिनसे क्षण बीतते बीतते गरम गरम पानी की बूँदें पृथ्वी पर टपक पड़ीं।

भीम को कुछ और और सा लगा। उसने कपड़ों को उठाया और कहा——मैं इन्हें वहीं रख आता हूँ अम्मा!

पत्थर में प्राण लौटे। अम्मा जाग कर बोली——अपने बापू से कहकर आना!

भीम ठिठका——बापू मारेंगे अम्मा!

वह बोली——नहीं मारेंगे। तू कहना, बापू भूल हो गई, फिर न करूँगा।

डरता, काँपता भीम जैसे आया था, वैसे ही लौट गया। उसके आँखों से ओझल होते ही ठाकुर की पत्नी जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवलम्ब खोकर पिघल पड़ी। उसकी आँखों से पानी बह पड़ा। वह फूट फूटकर रोने लगी!

कुछ देर के बाद ठाकुर रिपुदमनसिंह बाहर से लौटे। वे बड़े अन्यमनस्क-से हो रहे थे। भीम उनके साथ था। वह चुपके से अम्मा के पास आकर बोला--अम्मा! बापू ने मुझे मारा नहीं!

"तूने क्या कहा था?"

"मैंने कहा--बापू! मैं ग़लती से कपड़े ले गया था। फिर कभी न लूँगा। बापू कुछ भी नहीं बोले। कपड़े लेकर गठरी में बाँध दिये, पर अम्मा....."

भीम जैसे झिझका।

"पर क्या रे?"

भीम अधिक पास आगया--अम्मा वह कोट बड़ा अच्छा लगता है। तुम एक हमें भी बनवा देना! अच्छा!

अम्मा क्या कहे? पर बच्चे को तो ढाढ़स देना ही था। बोली--अब की फ़सल कटते ही तुझे एक कोट ज़रूर बनवा देंगे!

भीम खुश हो गया। उसे इस बात का ध्यान तो था नहीं कि खेत सूखे पड़े हैं, उनमें कुछ भी पैदा न होगा। अम्मा की इस बात से उसे जान पड़ा कि कोट उसने पहन लिया है।

(२)

और ठाकुर रिपुदमनसिंह!

वे खाना खा रहे थे और उनके जी में अनेक विचार उठ रहे थे। बार बार चाहते थे कि कहूँ--भीम की अम्मा! इस प्रकार नहीं चलेगा.....

इतने में पत्नी बोल उठी--कितने रुपये हैं उन लोगों के पास?

"यही बीस हज़ार।"

"हाँ आँ....." जैसे उसे विश्वास न आया!

ठाकुर बोले--अरे! २० हज़ार से क्या होता है? सारा ज़िला अकाल से पीड़ित है। हज़ारों आदमी अन्न-वस्त्र बिना मरे जा रहे हैं। और बेचारे जानवर! उनकी दशा कौन जाने? गाँव के गाँव सूने पड़े हैं। हाँ अपने ही गाँव में देखो न। एक तिहाई भी गायें नहीं रहीं।

और यह कहते कहते ठाकुर के दिल में अपनी बात भी उठी--हम भी ग़रीब हैं। अन्न नहीं, वस्त्र नहीं। तीन गायें थीं; एक मर गई। दो न जाने, कहाँ चली गईं। कौन ढूँढ़े.....?

ठाकुर भी काँप उठे--गायें न होकर लड़की होती तो सारा देश छान डालता। उनके लिए बाहर भी गया।

पत्नी भी यही सोचती कि यदि ढूँढ़ भी लाते तो खिलाते क्या। वे भूख से मरतीं! अच्छा है, हम उन्हें मरते न देखेंगे। वह कहने लगी--सुना है, लोग अपनी गायें शहर ले जाते हैं। दो-दो तीन-तीन रुपये में बेच देते हैं या यों ही छोड़ आते हैं।

ठाकुर बोले--हाँ। मुफ़्त भी तो लोग नहीं ले रहे हैं। सब गायें कसाइयों के हाथ पड़ती हैं।

बोलते बोलते ठाकुर काँप उठे--हमारी गायें भी.....।

पत्नी भी काँपी--हमारी गायें भी.....।

तब ग्लानि, लज्जा और करुणा से दोनों के हृदय भर आये। पत्नी बोली--रोटी लाऊँ?

"नहीं।"

और तब दोनों चुप, पर हृदय दोनों के न जाने क्या उमड़-घुमड़कर प्रश्न पर प्रश्न करते चले गये। ठाकुर एकदम बोल उठे--भीम की बात सुनी तुमने?

"क्या?" जैसे वह जानती ही न हो!

"पहले उसका जी ललचा होगा। एक कोट ख़रीद लाये। फिर जाकर बोले--बापू! ग़लती से एक कोट ले गया था। आख़िर ठाकुर-बच्चा है।" कहते कहते ठाकुर गर्व से भरकर पिघल चले। आँखों में पानी भर आये। पत्नी ने यह सब देखा। आत्माभिमान उसकी छाती भी फूल उठी पर.....।

वह बोली--कल के लिए अनाज नहीं है।

ठाकुर जैसे चौंक पड़े। बोले--यह मेरे सोचने की बात नहीं है।

पत्नी जैसे हँस पड़ी--और कौन सोचेगा, सुनूँ तो?

"भगवान् सोचेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भगवान् तो सभी के हैं। कितना अकाल पड़ा है? उन सबके लिए क्यों नहीं सोचते?"

"सोचते क्यों नहीं? देश भर उनके लिए पागल है वह भगवान् की ही तो आज्ञा है।'

पत्नी के दिल में कहने को बहुत कुछ था पर जानती थी कि वह तर्क में ठाकुर से जीतेगी नहीं। इससे चुप हो गई। मन में उसने कहा--भगवान् सोचे, यही तो मैं भी चाहती हूँ।

(३)

उसी रात को।

ठाकुर सोते सोते चौंक पड़े--कल के लिए घर में अनाज है ही नहीं नहीं है। तो मैं क्या करूँ? और उन्होंने आँखें मींचकर करवट बदली, पर नींद बुलाने पर भी नहीं आई। फिर न जाने किसने कहा--तुम भूखे मर सकते हो, पर भीम है, उसकी मा है।

ठाकुर उठकर बैठ गये। उस निपट अँधेरी कोठरी में उन्हें न जाने क्या दिखाई देने लगा। उस काले अँधेरे में ही अनाज की अनेक बोरियाँ आकर बिखर गईं। किसी ने कहा--लो ठाकुर! तुम भी लो। तुम भूखे हो।

"नहीं, नहीं! मैं दान नहीं लूँगा! मैं ठाकुर हूँ।" ठाकुर जैसे आप ही आप फुस फुस कर उठे!

यह दृश्य बदला और पत्नी की छाया-मूर्ति पास आती नज़र आई। उसने कहा--कल से फिर उपवास की बारी है। अपनी तो चिन्ता नहीं, पर भीम क्या करेगा?

"मैं नहीं जानता"--ठाकुर फिर फुस फुस कर उठे।

"मैं नहीं जानता"--न जाने किसने कहा और फिर चारों तरफ़ से "मैं नहीं जानता।" "मैं नहीं जानता" गुन पड़ने लगा। ठाकुर काँप उठे। उन्होंने कानों में उँगलियाँ दे लीं। तभी देखा, सामने कोई है।

कौन? उन्होंने पहचाना और दूसरे ही क्षण पहचान कर वे घबरा उठे। उन्होंने कहा--अरे! यह तो भीम है--संज्ञाहीन स्थिर!

"यह भूख से मरनेवाला है"--न जाने कौन बोल उठा!

"नहीं, नहीं!"--ठाकुर घिघिया कर बोले। वाणी उनकी पूरी खुली नहीं, पर हृदय रो उठा--"भीम नहीं मर सकता, कभी नहीं मर सकता।"

और जैसे वह दृश्य भी ग़ायब हो गया। ठाकुर ने आँखें फाड़ फाड़कर देखा--कुछ भी नहीं, केवल अन्धकार, निपट काला अन्धकार था, मानो उसी की साकार मूर्ति से वे बोल रहे थे। मन उनका बहुत भारी होगया--पास की कोठरी में अनाज की बोरियाँ भरी हैं और मैं भूख की बात सोचता हूँ। न जाने कितनों को मैंने अन्न दिया। उन्होंने मुझे झुक झुक कर जुहार की, आशीर्वाद दिये। और मैं ऐसा हतभाग्य कि बेटे को भूख से मरते देखूँ!

"उस लम्बी सूची में एक नाम और जोड़कर तुम भी अन्न ले सकते हो। कौन देखता है?" यह सोचते सोचते ठाकुर काँप उठे। उन्होंने कहा--नहीं, नहीं।

तभी जान पड़ा कि पास की कोठरी में कोई है। ठाकुर चौंक पड़े--अवश्य कोई चोर है। अनाज चुराने आया है। मन उनका घृणा से भर गया। माँगने पर मिलता है, फिर भी चोरी करते हैं।

बस ठाकुर के सब विचार नष्ट होगये और उन्होंने लालटेन जला ली। चाँदनी में उन्होंने देखा--यहाँ कोई नहीं है। अवश्य ही अनाजवाली कोठरी में है। वे लाठी लेकर उधर ही बढ़े कि देहली पर पहुँचते पहुँचते उनका शरीर थर थर काँप उठा। आँखें फाड़ कर उन्होंने देखा--सामने एक पलिया में अनाज भरे पत्नी खड़ी है। उन्होंने कहा--तुम! क्रोध से जैसे वे फट पड़े!

पत्नी भय से जड़वत् हो गई, मानो लज्जा और ग्लानि उस पर फटी पड़ने लगी, जैसे ज़मीन फटे तो वह समा जाय। वह नीची दृष्टि किये खड़ी की खड़ी रह गई। लेकिन आश्चर्य! क्षण बीतते बीतते ठाकुर का क्रोध न जाने कहाँ उड़ गया! वे मन को हलका कर हिल उठे। बोले--आओ!

पत्नी भी हिली। आँखों से जलधारा बहने लगी। इतना ही बोली--केवल भीम के लिए.....।

"जानता हूँ"--ठाकुर बहुत ही नम्र हो रहे थे।

इस नम्रता ने पत्नी को और भी हिला दिया। चकित-सी वह उन्हें देखती ही रह गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठाकुर लालटेन रखकर बोले--तुम्हें अचरज होगा, मैं भी सोच रहा था कि सूची में एक नाम बढ़ा कर अनाज क्यों न ले लूँ? और कहते कहते ठाकुर बड़े ज़ोर से हँस पड़े, लेकिन हँसी ऐसी कि रुदन से पूर्ण थी।

पत्नी बिना बोले एक टक उन्हें देखती रही!

वे फिर बोले--सुनो भीम की अम्मा! यह क्या हुआ इस पर अब विचार न करके हमें कुछ करना होगा! नहीं तो न जाने कब क्या पाप हमसे हो जाय? पास के गाँव में जो कताई होती है वहाँ तुम जा सकती हो। मैं भी सड़क बनाने का काम देखूँगा।

पत्नी ने ठाकुर की आँखों में झाँक कर देखा। उनमें विवशता नहीं थी, दृढ़ता थी। वह बोली--मैं जाऊँगी!

और वह अपनी खाट पर न जाकर वहीं ठाकुर के पैरों के पास बैठ गई।

कवि का असन्तोष!

लेखिका, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा

जीवन के पहले ही क्षण से रो रोकर हँसना सीखा।
नन्हें से उर के बदले जीवन भर मर मिटना सीखा।
अरमानों की डगमग गति से अनुदिन बस चलना सीखा।
मदिर-सुरिभ से सने प्यार के सपनों से छलना सीखा।
उर-घावों की पीड़ा में ढो ढो भर पाहन-भार लिये।
जीवन में लांछना-भरे अपमानों का उपहार लिये।
चिर दिन मन में प्यास नयन में अविरल जल की धार लिये।
चलते जाना, मुरझाते अरमानों का संसार लिये।
पाया क्या, जग से क्षण भर को हँसने का वरदान कभी!
पाया क्या, अपने दुख के सपनों का भी अभिमान कभी।
पाया क्या, मर मिट कर भी समवेदन या सम्मान कभी।
पाया क्या, सरिता की लहरों-सा मृदु कल-कल गान कभी।
कौन सका लख, कैसी कंटक-राजि खड़ी किसके मग में?
कौन सका लख, रोते, कितने छाले फूट किसी पग में?
कौन सका लख, आग लगी कैसी किसके उजड़े जग में?
कौन सका लख, रत्नाकर हैं खेल रहे कितने दृग में?
कब मुरझा कर गिर पड़ने को किसी चरण की धूल मिली?
कब किस उर के प्यार-भरे संकेतों की मृदु भूल मिली?
कब डगमग नैया को जग-सागर में दिशि अनुकूल मिली?
कब आशा-परियों की सुरधनु-रंजित चारु दुकूल मिली?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

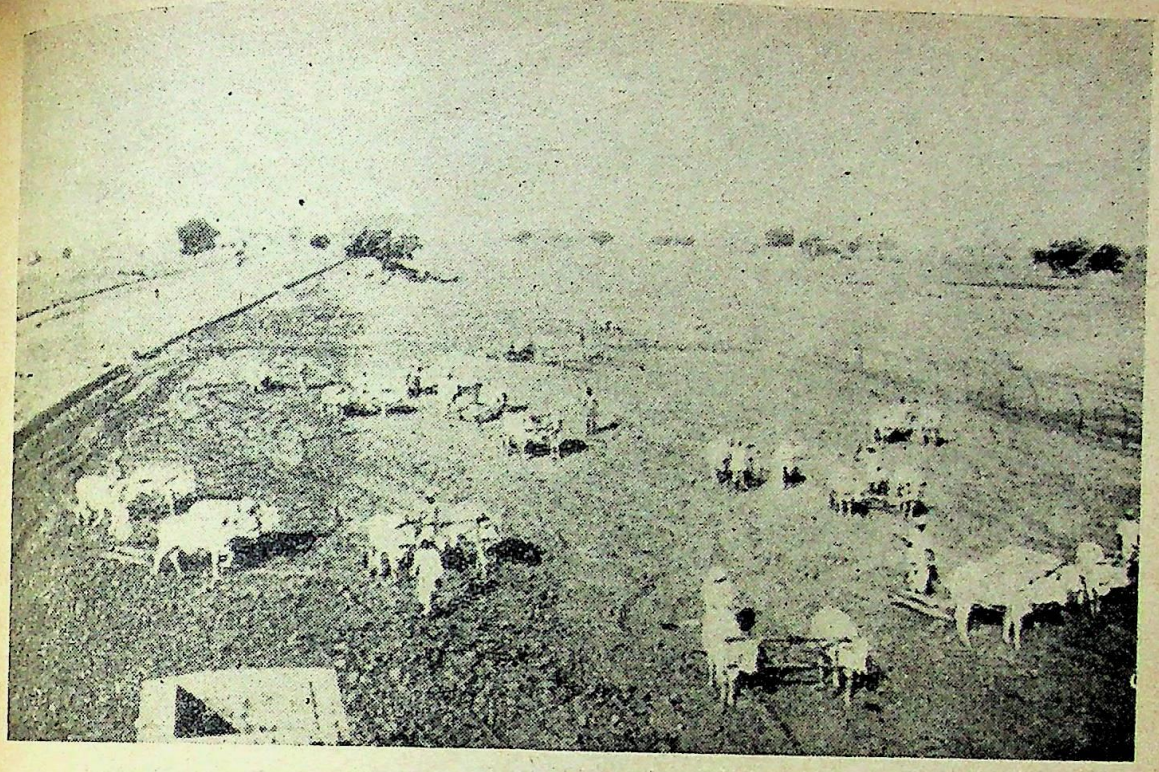

[इन्स्टीटचूट के एक खेत का दृश्य--सिरावन चल रहा है।]

भारत-सरकार का कृषि-अनुसंधानालय

लेखक, श्रीयुत आत्मानन्द मिश्र, एम० ए०, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहाँ के लगभग सत्तर प्रतिशत लोग गाँव में रहते हैं। अतएव यहाँ कृषि-सम्बन्धी अनुसन्धान की व्यवस्था करना परमावश्यक है। भारत-सरकार ने एक कृषि-अनुसन्धानालय खोल रक्खा है, जो इम्पीरियल एग्रीकलचरल इन्स्टीटचूट के नाम से प्रसिद्ध है। गत तेंतीस वर्ष से इस संस्था ने अपनी उपयोगी खोजों-द्वारा देश की खेती में बहुत कुछ सुधार किया है, जिसमें पैदावार में उन्नति, खेती करने के खर्च में कमी, अनाज की व्यावसायिक तथा स्वास्थ्य-वर्द्धक गुणों में वृद्धि तथा दुधारू पशुओं की नस्ल में बहुत कुछ उन्नति हुई है।

भारत-सरकार ने सन् १९०५ में बिहार-प्रान्त के पूसा नगर में यह इन्स्टीटचूट खोला था। इसके संस्थापन का श्रेय उस समय के भारतवर्ष के वाइसराय लार्ड कर्ज़न तथा शिकागो के दानी श्री हेनरी फ़िप्स को है। इस परोपकारी वृत्तिवाले अमेरिकन ने इन्स्टीटचूट को लगभग साढ़े चार लाख रुपया दिया था। अतएव इसी के नाम पर इन्स्टीटचूट की प्रयोगशाला 'फ़िप्स लेबरेटरी' कहलाई। उस समय भारतवर्ष में यह संस्था अपने ढंग की एक ही थी। इसने तीस वर्ष तक कृषि में क्रान्तिकारी अनुसन्धान किये, किन्तु गत बिहार-भूकम्प में १५ जनवरी सन् १९३५ को इन्स्टीटचूट की इमारत के आरपार दो बड़ी गहरी और भयानक दराज़ें हो गईं, जिससे उसके दो विभागों की इमारत की नींव ऐसी फट गई कि उसने इमारत को बेकाम कर दिया। बहुत सोच-विचार के पश्चात् इन्स्टीटचूट को दिल्ली में बनवाने की राय हुई। केन्द्र होने के कारण सभी स्थानों के लिए दिल्ली सुगम थी तथा वहाँ की भूमि और मिट्टी बहुत ही उपयुक्त दिखाई दी। आब-हवा सूखी और तर दोनों प्रकार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

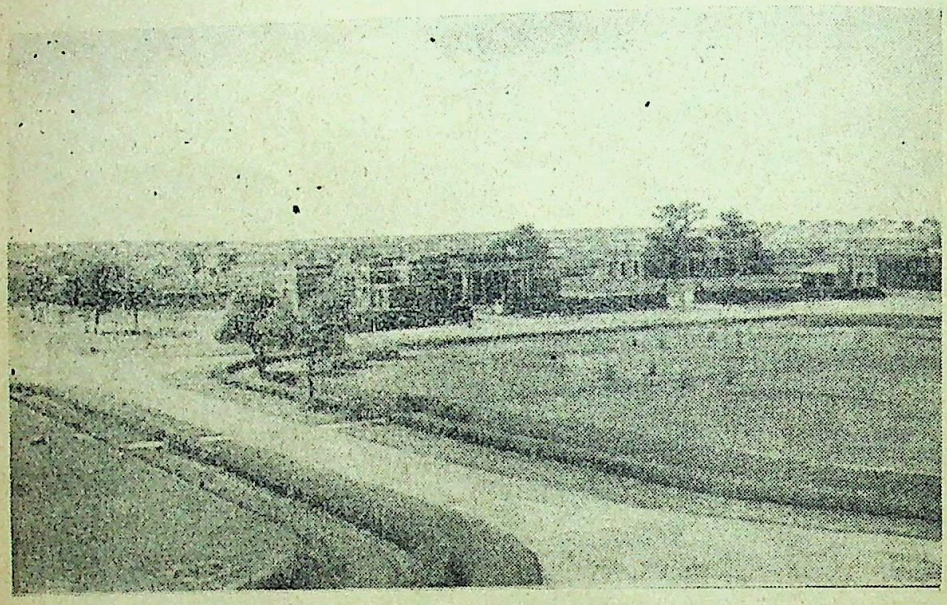

[दिल्ली के इन्स्टीट्यूट का एक दृश्य]

होने के कारण पूसा से कहीं अधिक उत्तम थी, जिससे अन्यान्य प्रकार के अनाजों पर प्रयोग करने की पर्याप्त सहायता मिलने की सम्भावना जान पड़ी। अतएव फ़रवरी सन् १९३५ में लार्ड विलिङ्गडन ने नये भवन का दिल्ली में शिलान्यास किया तथा उसके दो वर्ष पश्चात् ७ नवम्बर सन् १९३७ को इन्स्टीट्यूट को मारक्वीज़ आफ़ लिनलिथगो ने खोला।

इन्स्टीट्यूट को पूसा से दिल्ली ले जाना १३०० की आबादी के एक गाँव को चल-अचल सामग्रीयुक्त एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर बसाना था। मनुष्यों, पशुओं तथा पौधों के खाने-पीने, स्वास्थ्य, देख-रेख आदि का प्रबन्ध एक साथ ही तीन स्थानों पर—पूसा में, मार्ग में रेल पर तथा दिल्ली में—करना पड़ा था। तब कहीं यह दुष्कर कार्य चार-पाँच महीने में समाप्त हो सका था। व्यय के लिए रुपये का प्रबन्ध पूसा की समस्त भूमि में गन्ने बुवा और बेच कर किया गया था।

दिल्ली का नया इन्स्टीट्यूट—नया इन्स्टीट्यूट नई दिल्ली के करनाल स्टेशन के आस-पास आठ सौ एकड़ भूमि में बसा हुआ है। इसमें लगभग २७५ एकड़ भूमि में इमारतें और चरागाह हैं और शेष भूमि कृषि-अनुसन्धान के लिए छोटे छोटे खेतों में बाँट दी गई है। इन खेतों में जाने के लिए सुन्दर सड़कें और फाटक बने हैं तथा सींचने के लिए यमुना नदी का पानी भोली भटियारी घाट से पाइप, नालियों और झरनों के द्वारा खेतों तक पहुँचाया जाता है।

अनुसन्धानालय एक मंज़िले बने हैं और पूसा की भाँति सब एक ही इमारत में नहीं रक्खे गये हैं। प्रत्येक विभाग का भवन अलग अलग बना है। इनमें अनुसन्धान के लिए बहुमूल्य आधुनिक यंत्र तथा वैज्ञानिक सामग्री एकत्र की गई है। कार्यकर्ताओं के निवास-स्थान बहुत ही उत्तम और सुविधाजनक बनाये गये हैं।

इन्स्टीट्यूट का पुस्तकालय केन्द्र में स्थित एक सुन्दर विशाल भवन में है, जिसमें लगभग दो लाख पुस्तकों के रखने की व्यवस्था की गई है। इन्स्टीट्यूट के द्वारा प्रकाशित ५०० से ऊपर पुस्तकों के अतिरिक्त इसमें अन्यान्य देशों की अमूल्य कृषि-सम्बन्धी पोथियाँ, पत्र-पत्रिकायें, वैज्ञानिक सभाओं की रिपोर्टें तथा बुलेटिन आदि रक्खी जाती हैं, जिनकी संख्या ७०,००० से अधिक ही होगी। उच्च अध्ययन के लिए यह पुस्तकालय कृषि साहित्य की दृष्टि से पूर्वी देशों में सर्वोत्तम समझा जाता है। इसमें एक विशाल वाचनालय भी है, जो बराबर बजे सवेरे से आठ बजे रात तक पढ़ने के लिए खुला रहता है।

विभिन्न विभाग

कृषि-विभाग—दक्षिणी चहारदीवारी के निकट बना इसकी इमारत दो भागों में विभाजित है। एक में आधुनिक सुविधाओं से युक्त गोशाला, पशु-चिकित्सालय, रोगी गृह, पशु-व्यायामशाला, बछड़ों को रखने के सन्दूक तथा साँड़-दौड़ का स्थान है। इसमें केवल साहीवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही रक्खे जाते हैं। दूसरे भाग में बीजों के रखने का स्थान, गोदाम, औजार रखने का कमरा तथा टूटी-टूटी वस्तुओं की मरम्मत करने का कारखाना है। इसके साथ ही खेती और प्रयोग के लिए ४७५ एकड़ भूमि है, जहाँ की मिट्टी इतनी उत्तम है कि उसमें सभी प्रकार के अन्न बोये जा सकते हैं।

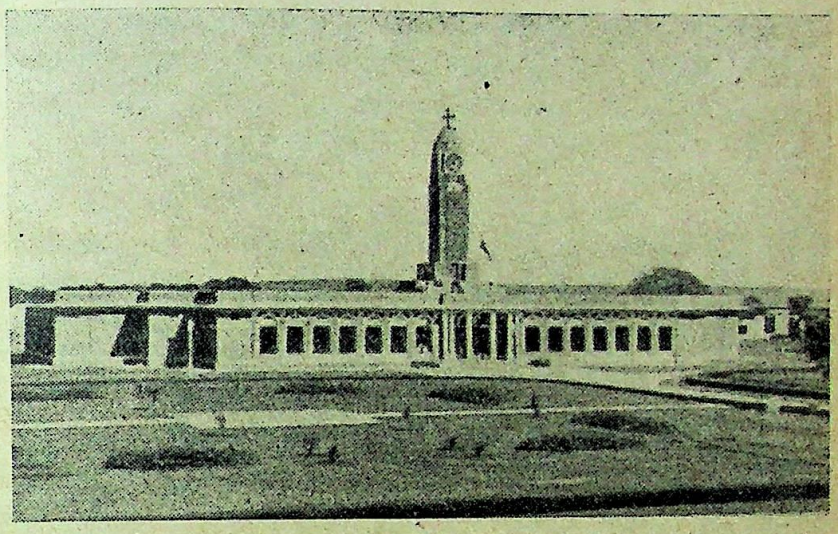

[इन्स्टीटचूट का लिनलिथगो-पुस्तकालय]

वनस्पति-विभाग——इसकी प्रयोगशालायें उत्तम वैज्ञानिक यंत्रों से सुसज्जित हैं, जिनमें पौधों की उत्पत्ति-सम्बन्धी अनुसन्धान हुआ करता है तथा अधिकाधिक लाभदायक नये अनाजों की खोज की जाती है। गेहूँ, जौ, मक्का, आलू, दाल, तेलहन तथा तम्बाकू के पालन-पोषण की सबसे अधिक उपयुक्त रीतियों पर प्रयोग करने के लिए पचास एकड़ भूमि इस विभाग के पास है, जो अन्नों को अधिक से अधिक गुणकारी बनाने का प्रयत्न कर रहा है।

रसायन-विभाग——यह विभाग बहुत बड़ा है। इसके अन्तर्गत रासायनिक विश्लेषण, सूक्ष्म जीव-विद्या, भूमि-विज्ञान, पदार्थ-विज्ञान तथा जीवधारी और पौधों की रासायनिक खोज के लिए अलग अलग प्रयोगशालायें बनाकर उत्तम व्यवस्था की गई है। इसमें समतापक्रम रखने के लिए एक भुईंधरा, ठंडा कमरा, फोटोग्राफी का अँधेरा कमरा तथा मरम्मत करने के लिए कारखाना है। इस विभाग की दो विशेषतायें हैं——इसमें खेती से नष्ट-भ्रष्ट होनेवाले पदार्थों का उचित उपयोग करने तथा खाद्य अन्नों के स्वास्थ्य-वर्द्धक गुणों को बढ़ाने का प्रयत्न करने के लिए पर्याप्त व्यवस्था है। इसमें उपजाऊ मिट्टी और कीटाणु पर भी खोज होती है।

कृषि-अध्ययन-विभाग——इसमें फ़सल को हानि पहुँचानेवाले कीड़े-मकोड़ों का अध्ययन होता है। विभिन्न प्रकार के कीड़ों की खोज करने के लिए एक कमरा अलग बना दिया गया है, जिनमें अनेक प्रकार के कीड़े पाले जाते हैं। अनुमान किया जाता है कि लगभग १०,००० प्रकार के विभिन्न कीड़े फ़सलों को नष्ट करते हैं। इसी में एक और विभाग है, जो इन कीड़ों के भक्षक कीड़ों की खोज करता है, जिससे फ़सल नष्टकर्ता दूसरे पराश्रयी कीड़ों-द्वारा नष्ट कर दिये जा सकें।

वृक्ष-रोग-विभाग——इसमें फंगी, बैक्टीरिया तथा अन्य विषैले पदार्थों की जिनके द्वारा नाज तथा फल के पौधों में नाना प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं, खोज होती है। वे समस्त दशायें जो ऐसे हानिप्रद पदार्थों को बढ़ाने में सहायक होती हैं, ढूँढ़ी जा रही हैं, जिससे फ़सलें उनसे बचाई जा सकें। कई ऐसे गृह भी बनाये गये हैं, जिनके भीतर पौधों के बोने से किसी प्रकार के कीटाणु का भय नहीं रहता। यहाँ अनुसन्धान-कार्य बड़े वेग से चल रहा है।

अन्य योजनायें——कृषि-सम्बन्धी अनुसन्धानों के अतिरिक्त यह इन्स्टीटचूट निम्नांकित योजनाओं को भी आर्थिक सहायता देता है, जिसके द्वारा पर्याप्त लाभ होने की सम्भावना है।

पूसा में एक छोटा वनस्पति-अनुसन्धानालय है, जहाँ विलम्ब से तैयार होनेवाले अथवा नहरों के द्वारा सींचे जानेवाले अनाजों की पैदावार पर खोज होती है।

शिमला में सन् १९३५ में एक नई प्रयोगशाला खोली गई है, जो उत्तरी भारत में उत्तम आलू की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

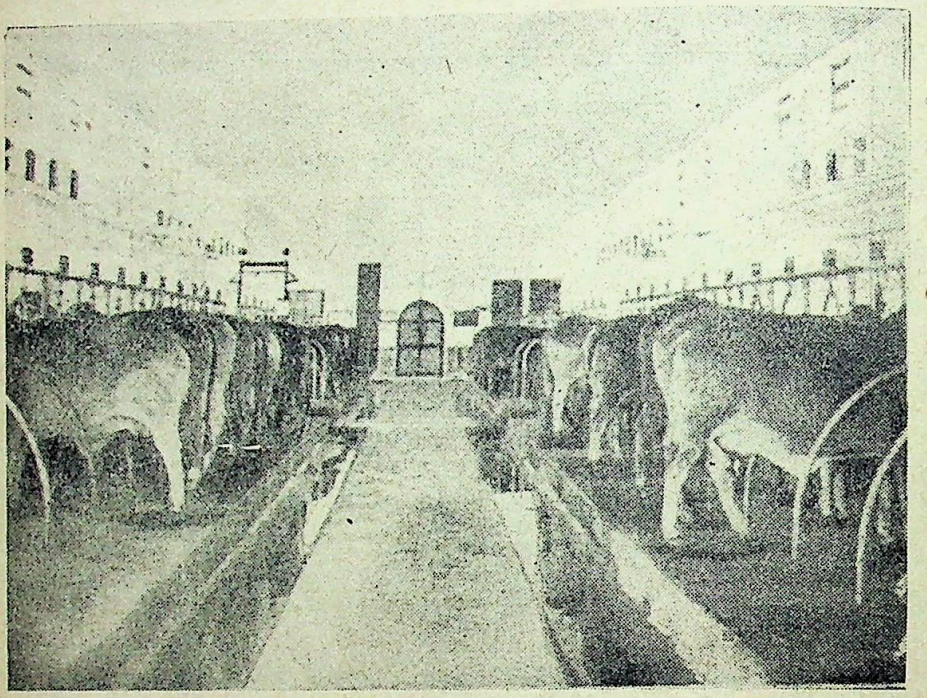

[साहीवाल गौओं की गोशाला]

खेती कराने के प्रयोग करती है। ऐसे आलू पैदा करने का प्रयत्न किया जा रहा है जिनमें जल्दी कीड़े लगने तथा सड़ने का भय नहीं होगा और वे बहुत दिनों तक टिक सकेंगे।

गन्टूर में सिगरेट बनाने की तम्बाकू तथा उसे नष्ट करनेवाले कीड़ों पर खोज हो रही है।

गन्ने की खेती में वृद्धि तथा दो प्रकार के गन्ने मिला कर गन्ने की एक नई बलिष्ठ नस्ल पैदा करने के प्रयोग कोयम्बटूर में हो रहे हैं। उत्तरी भारत की जलवायु में गन्ने पर खोज करने के लिए इस विभाग में भी एक अस्थायी प्रयोगशाला खोली गई है।

गन्ने के रोगों तथा कीड़ों का पता लगाने और फ़सल को उनसे बचाने के लिए कई अनुसन्धानालय खोले गये हैं, जो मुख्यतः पूसा, करनाल तथा कोयम्बटूर में स्थित हैं। गन्ने की रासायनिक खोज भी हो रही है।

कृषि-सम्बन्धी उच्च शिक्षा—यद्यपि इन्स्टीटचूट का मुख्य ध्येय अखिल भारतीय कृषि-समस्याओं को सुलझाना अथवा ऐसी कृषि-सम्बन्धी अनुसन्धान की व्यवस्था करना है जिनमें प्रान्तीय सरकारें असमर्थ हों, तथापि इन्स्टीटचूट ने कृषि की उच्च शिक्षा का भी प्रबन्ध किया है। विद्यार्थियों के लिए एक कालेज तथा छात्रावास भी है, जो अनेक आधुनिक वैज्ञानिक सुविधाओं से सुसज्जित बनाया गया है। इसमें एम० एस-सी० अथवा उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण बी० एस-सी० (कृषि) पास विद्यार्थी भर्ती किये जाते हैं। पौधों की उपज और उत्पत्ति, पशु के सम्बन्ध में समग्र ज्ञान, कृषि-अध्ययन, पौधों के रोग उनका निदान और निवारण, तथा खेत-निर्माण और उसकी व्यवस्था आदि विषयों पर उच्च शिक्षा दी जाती है। यह प्रतिवर्ष आक्टोबर से आरम्भ होती है और दो वर्ष के अध्ययन के बाद परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर विद्यार्थी इन्स्टीटचूट एसोशियेट बना लिया जाता है। इसके अतिरिक्त उन अन्य विषयों पर भी शिक्षा दी जाती है जिनकी व्यवस्था भारतवर्ष में और कहीं नहीं हो सकती। विभिन्न प्रान्तीय सरकारों के द्वारा भेजे गये उच्च अन्वेषण करनेवाले विद्यार्थियों को यहाँ काम की सुविधायें दी जाती हैं।

पशु-उन्नति—इन्स्टीटचूट ने दुधारू पशुओं की उन्नति की ओर बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया है। पुरानी साहीवाल तथा सिंधी गायें दूध देने की दृष्टि से भारतवर्ष में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती हैं। सन् १९०४ में बड़ी खोज करने पर पंजाब के माण्टगोमरी ज़िले में चौदह गायें और एक साँड़ मिला था। धीरे धीरे उन्हीं की संख्या बढ़ाकर इन्स्टीटचूट में चार सौ से अधिक साहीवाल गायें और साँड़ देश के विभिन्न भागों में भिजवाये हैं। उनके दूध देने की मात्रा में भी भारी वृद्धि हुई है। सन् १९१४ में जो गायें ढाई सेर दूध देती थीं वे आज पन्द्रह सेर से पच्चीस सेर तक देती हैं। गायों और साँड़ों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभिन्न अवस्थाओं में रखकर इस बात की खोज की जा रही है कि अधिकाधिक दूध तथा बलिष्ठ नस्ल पैदा करने के लिए किन बातों की आवश्यकता है। बछड़ों के पोषण की अनेक रीतियाँ निकाली गई हैं, जिससे बड़े होने पर वे बलवान् गायें तथा साँड़ हो सकें।

देहाती उद्योगों की उन्नति—किसी अन्न की पैदावार में उत्पन्न होनेवाले प्रत्येक अंश का सदुपयोग करने तथा उसका बाज़ारू मूल्य बढ़ाने के लिए बड़े परिश्रम से काम हो रहा है। खेती की पैदा होनेवाली वस्तुओं को खाद्य में परिणत करने के नये ढंग निकाले गये हैं। गाँवों में अच्छे आलू और तरकारियाँ तथा उत्तम मक्खन और नेनू पैदा करने के सरल उपाय भी ढूँढ़े गये हैं।

गाँवों के कृषि-सम्बन्धी धन्धों को प्रोत्साहन देने के ध्यान से गुड़ तथा गुड़ से शक्कर बनाने की रीति में पर्याप्त उपयोगी परिवर्तन किये गये हैं। अब बिना किसी यंत्र-विशेष की सहायता के देहाती रीतियों के द्वारा ही अच्छा गुड़ और सफ़ेद शक्कर बनाई जा सकती है।

रेशम के कीड़ों की वृद्धि, शहतूत के वृक्षों का कीड़ों के बचाव, तथा थोड़े खर्च में अधिक उपज कराने का उपाय किया जा रहा है, जिससे किसान को अधिक लाभ हो सके। इसी प्रकार लाख और शहद की मक्खी के सम्बन्ध में भी खोजें हुई हैं, जिनकी सूचना ग्रामीणों को छपी की पुस्तकें बाँट कर दी गई है।

अनेक प्रकार के अन्न, मिर्चे, गन्ने आदि की दो विभिन्न जातियों को मिला कर बोने से नये प्रकार के उत्तम अन्न तथा मोटे गन्ने पैदा किये गये हैं। इस प्रकार अन्न और फल की नस्ल में वृद्धि करने की उपयोगी खोज हो रही है, जिससे बड़ा और अधिक उपयोगी अन्न तथा फल पैदा हुआ करे। कोयम्बटूर में गन्ने की ऐसी नस्ल पैदा की गई है जो अधिक रसदार तथा गुणकारी प्रमाणित हुई है।

इन्स्टीट्यूट का उपयोगी कार्य—गत तीस वर्षों में सन् १९०६-१९३७ तक भारत-सरकार ने इन्स्टीटचूट पर २,८१,९१,९४८) व्यय किया है और १९३४-३५ में इन्स्टीटचूट के कार्यों से देश की कृषि से आय में ४,२३,३६,५१७) की बढ़ती हुई है। इस प्रकार इन्स्टीटचूट ने भारत को अपने ऊपर व्यय हुए तीस वर्ष के रुपये से कहीं अधिक एक वर्ष में ही चुका दिया है। कोयम्बटूर के उत्तम गन्ने के होने से पचास प्रतिशत का लाभ हुआ है। सन् १९२४ में प्रति एकड़ भूमि में ११.०५ टन गन्ना निकलता था, किन्तु इसके दस वर्ष पश्चात् यह १५.९ टन प्रति एकड़ हो गया। सन् १९३१-१९३५ में भारतवर्ष में लगभग ४,७८,००० टन शक्कर पैदा हुई और आवश्यकता पूरी करने के लिए ५,१४,००० टन शक्कर विदेश से मँगाई गई। किन्तु सन् १९३४-३५ में स्वदेश में ७,९५,००० टन उपजी और केवल २,२०,००० टन बाहर से आई। इसका श्रेय कोयम्बटूरी गन्ने के अनुसन्धान को है। इसके अतिरिक्त अन्य दिशाओं में भी इन्स्टीटचूट ने लाभप्रद कार्य किया है।

CC-0. In Public Domain: Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिक्ता

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

मेनका की कामना थी कि जिस तरह चन्द्रमा का टुकड़ा सा लड़का है, उसी तरह की बहू भी परी की तरह सुन्दरी हो। परन्तु मालिक के मुँह से कोई बात न सुनने पर भी दूसरों के मुँह से उन्होंने यह सुन रक्खा था कि उनकी यह कामना पूर्ण होने की सम्भावना नहीं है। तो भी मालिक से कुछ कहने का साहस वे नहीं कर सकीं। कहतीं तो उसका कोई फल भी न होता। इतने दिनों से साथ साथ जीवन व्यतीत करती आने के कारण मेनका को इतना ज्ञान तो अवश्य हो उठा था। इसके सिवा वे यह भी जानती थीं कि बिना सोचे-समझे मालिक कोई भी काम नहीं करते। इस सम्बन्ध में भी उन्होंने कोई अच्छाई ही समझी होगी।

भाग्य को दोष देकर ही मेनका को अपने आपको सँभालना पड़ा। परन्तु मन भी कहीं किसी के वश में होता है! मनुष्य यह जानता है कि चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं होता। फिर भी चिन्ता किये बिना वह रह नहीं सकता। वे अपने आपको समझाने लगीं। उनके मन में आया कि रूप यदि उसके नहीं है तो न सही, कुछ गुण हो तो भी अच्छा है। लड़के को किसी तरह खुश कर ले, इतना ही बहुत है। बहू तो केवल देखने की ही सामग्री नहीं है कि उसके लिए सुन्दरी होना ही सबसे अधिक आवश्यक हो। किन्तु तो भी इस बात की कल्पना तक करना अच्छा नहीं मालूम पड़ता कि ऐसे सुन्दर लड़के की बहू सुन्दरी नहीं है।

मेनका को इस सौन्दर्य का ही इतना आग्रह था। बहू अत्यधिक रूपवती हो, यही उनकी एकमात्र कामना थी। तो क्या इसी लिए भगवान् ने उनकी यह कामना नहीं पूर्ण होने दी। जो अरुण शौक़ीनों का सिरताज है वही क्या रूपहीना स्त्री पसन्द करेगा?

(५)

अरुण का विवाह हो गया। किसी प्रकार का बाधा-विघ्न उपस्थित नहीं हुआ। कोई वैसी धूम-धाम हुई नहीं, इससे कुछ झंझट भी नहीं हुआ। फिर भी जो लोग बारात में गये थे वे तृप्त होकर ही लौटे।

विवाह के दूसरे दिन वही दरिद्र गृहस्थ के घर की कन्या अरुण के साथ आकर ऐश्वर्य्य के स्वर्ग में खड़ी हुई। लड़की कोई वैसी छोटी नहीं थी, इससे अपनी अवस्था का अनुभव कर लेना उसके लिए अधिक कठिन नहीं हुआ। भय और संकोच से वह मानो काठ हो उठी थी।

विवाह के समय केवल एक बार अरुण की अवहेलना पूर्ण दृष्टि स्त्री के ऊपर पड़ी थी। उस समय उसका मुख घूँघट से ढँका हुआ था। उसके दोनों हाथ [illegible] दिखाई पड़ रहे थे, जो गोरे नहीं थे, साँवले रंग के थे। अरुण के गोरे गोरे सुन्दर हाथों पर वे हाथ नितान्त श्रीहीन, नितान्त ही असुन्दर जान पड़ रहे थे। उसने दाँतों से होंठ दबा कर एक कठोर हँसी हँसी। बिजली के प्रकाश में जिस प्रकार आग रहा करती है उसी प्रकार उसकी इस हँसी में भी अपरिमित उत्ताप था।

विदाई से कुछ समय पहले कन्या की माता को अरुण को बुलवा भेजा था। परन्तु अरुण ने आकर बैठे ही बैठे मस्तक हिलाकर वह बुलावा सुन भर लिया। उठकर गया नहीं।

कन्या की माता को दामाद से मिलने की बड़ी उत्कण्ठा थी। उसने सोचा कि जो कन्या इतने दिनों तक मेरे हृदय का धन थी उसे आज मैं दूसरे के हाथ में सौंप रही हूँ। परन्तु अपनी गोद से अलग करने से पहले उसके सम्बन्ध में समझाकर दो-चार बातें तो कह दूँ। इसी आशा से उसने अरुण को बुलवाया था। अन्त में उसकी यह आशा मन की मन में ही रह गई। दामाद से उसकी मुलाक़ात ऐसे समय में हुई कि विदाई की रस्म अदा करने का अवसर आ गया। उस समय वहाँ बहुत से लोग एकत्र थे, इसलिए किसी से कोई बातचीत नहीं हो सकी। आँखों में आँसू भरे हुए उसने कन्या को गाड़ी पर बिठा दिया।

पण्डिताई की वृत्ति पर निर्वाह करनेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण के घर की कन्या को ऐसा सुन्दर और गुणी वर मिल सका है, इसके लिए पास पड़ोस के सभी लोग उसके सौभाग्य की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। जितने आत्मीय स्वजन थे, जितने पड़ोसी थे, सभी वर की प्रशंसा के द्वारा कन्या की माता के तत्काल की उत्पन्न हुई विरह-व्यथा से पीड़ित हृदय को शान्त करने का उद्योग करके चले गये। उनकी बातों का प्रभाव भी अच्छा ही पड़ा। दुर्गापूजा के अवसर पर बङ्गाली लोग पूजा के लिए जो मूर्ति स्थापित करते हैं, विजयादशमी को उसका विसर्जन कर देने पर पूजा का गृह शून्य हो जाता है। उस समय उस शून्य चण्डी-मण्डप में प्रवेश करने पर केवल इस बात की कल्पना ही मन को सान्त्वना प्रदान करती है कि आगामी वर्ष फिर मण्डप देवी की मूर्ति से सुशोभित होगा। इसी प्रकार केवल कन्या के भावी सुख का चित्र ही माता के हृदय पर सान्त्वना के रूप में दिखाई पड़ा।

सोहाग-रात का दिन था। मेनका स्वयं मज़दूरिनों और नौकरानियों को लिये हुए अरुण का कमरा सजाने में जुटी हुई थी। पढ़ने के कमरे को शयनागार का रूप देने के लिए जिस समय दुनिया भर की उथल-पुथल वह मचाये हुए थी, उसी समय अरुण एक बार आया और माता का यह उद्योग देखकर हँस पड़ा। उसने कहा—यह क्या हो रहा है मा?

अरुण की हँसी के शब्द के साथ ही साथ मेनका ने चौंक कर देखा और बोली—तू है! तेरी इस तरह की अचानक की हँसी से मैं तो चौंक पड़ी।

अरुण ने कहा—शायद आज तुम्हें कोई काम-काज नहीं है मा? बैठे बैठे यह सब क्या झंझट खड़ा किये हो? जाओ, आराम से बैठो।

मेनका ने स्नेहपूर्ण हँसी हँसकर कहा—नहीं, आज मुझे और कोई काम-काज नहीं है। तू जा और इन लोगों को बतला दे कि तेरा वह पुराने कैटलागों का गट्ठर कहाँ रख दिया जाय। तेरा जो नीचे का पढ़ने का कमरा है उसी में मैंने वह सब भेज दिया है।

"बड़ा अच्छा तो किया है! भला हमारे कमरे में इस तरह की उलट-फेर करने की क्या आवश्यकता थी मा? कितनी ज़रूरी ज़रूरी चीज़ें रक्खी थीं इसमें!"

"ज़रूरी चीज़ें थीं तो क्या मैंने उन सबको खा डाला है रे? बाहर रखवा दिया है। तू छाँट छाँट कर ले न ले।" यह कह कर मेनका मेज़ पर बहू के लिए क़लम-दावात सजाने लगी।

अरुण नौकरों के सामने मुँह से कोई बात निकाल नहीं सका। परन्तु उसके मन में यह बात आई कि इस क़लम-दावात की अपेक्षा इस नई बहू को तो ग्वाले के घर का ही काम अधिक शोभा देता।

मा के पास से हट कर अरुण दालान में चला गया। वहाँ खड़े खड़े वह एक पपीते के वृक्ष की ओर ताकने लगा। एक कौवा निर्विघ्न भाव से पपीते के एक पक्के फल पर चोंच मार मार कर खा रहा था।

कनक ने आकर कहा—यहाँ क्या कर रहे हो अरुण? छोटी बुआ तुम्हारा कमरा सजा रही हैं। देखा है न तुमने? बिलकुल नये नये सामान—

अरुण ने त्योरी बदल कर कनक की ओर देखा। परन्तु उसके इस प्रकार के रोष-प्रदर्शन से कनक दबा नहीं। उसने हँसते हुए कहा—क्यों, इसमें तुम्हारे अप्रसन्न होने की कौन-सी बात है जो इस तरह घूर घूर कर मेरी ओर ताक रहे हो?

"तो क्या आँखें बन्द कर रक्खूँ? चकाचौंध तो लगी नहीं है।"

कनक ने आश्चर्य में आकर कहा—चकाचौंध क्यों लगे?

अरुण और कुछ नहीं बोला। क्षोभमय आक्षेप से उसका मुँह काला हो उठा।

"छिः छिः, तमाशा करने के लिए क्या तुम्हें कोई और बात नहीं मिलती?"

सोहाग-रात के लिए सजाये गये कमरे में जो पलँग बिछा था वह पायताने से लेकर सिरहाने तक फूलों से सजाया गया था। उसके ऊपर बहुत ही कोमल बिस्तर लगा था। उस बिस्तरे के कोने में लेटी हुई तरुणी सविता निस्तब्धभाव से अपने हृदय की धुकधुकाहट सुनते सुनते किसी समय अपने घूँघट के भीतर ही सो गई।

गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करने के लिए दो तरुण प्राणी पहले-पहल मार्ग में पैर रखने जा रहे थे। इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नव-दम्पति के प्रथम मिलन के लिए जो कमरा निर्दिष्ट किया गया था उसमें हज़ारों प्रकार की ऐसी विलासिता की सामग्रियाँ एकत्र की गई थीं जो उनके हृदय की सुप्त आकांक्षा को जाग्रत् करने में समर्थ हो सकें। कमरे की सजावट इतनी सावधानी से की गई थी कि वह स्वर्ग के ही समान अविराम सुख का आगार बन सके। लज्जा से पीड़ित सविता जब तक जाग रही थी तब तक अपनी पतली साड़ी के घूँघट के भीतर से विस्मय-विमूढ़ नेत्रों से कमरे की सजावट ही देखती रही।

सविता जितनी बार भी पैर हटाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखती उतनी ही बार उसे शायद यह अनुभव होता कि फूलों को पैरों से रौंदकर कहीं मैं अक्षम्य अपराध न कर बैठूँ। साथ ही साथ उसे अपने पिता के यहाँ के जीवन की भी याद आती थी। कहाँ यहाँ का इस तरह का ठाट-बाट, इस तरह की सजावट, और कहाँ उसके पिता के यहाँ का सीधा-सादा, शान्तिमय जीवन। यह बिजली की बत्तियों से जगमगाता हुआ, चारों ओर सजाकर लगाये गये फूलों से सुगन्धित, राजप्रासाद के ऐश्वर्य्य को भी मात करनेवाला स्थान सुखकर है या घनी छाया में बसे हुए उस छोटे से गाँव का बहुत दिन का बना हुआ छप्पर का घर, यह उसकी समझ में न आ सका।

सविता को अभी निद्रा आई थी कि एकाएक घड़घड़ के शब्द से वह जाग पड़ी। उसने दृष्टि बढ़ाकर देखा तो उसके स्वामी कमरे के बीच में खड़े हुए पैरों से धक्का दे देकर एक कोच को ठेलते ठेलते खिड़की के पास कर रहे हैं। कमरे के बीच में रक्खे हुए टेबिल पर उस समय भी बहुत बड़ा-सा ज्वेल लैम्प लप लप जल रहा था, किन्तु उनके नेत्रों की उदास दृष्टि किसी ओर भी नहीं पड़ी।

कोच को ठेलते ठेलते खिड़की के पास ले जाकर अरुण ने खट से खिड़की खोल दी। जब खिड़की खुल गई तब उसके पास उसने स्लीपर उतार दिये और कोच के ऊपर ही लेट गया। उसके श्वेत कमल के समान शोभायमान सुन्दर सुन्दर खुले हुए दोनों चरणों के ऊपर सविता की दृष्टि पड़ी। किन्तु तुरन्त ही उसने आँखें फेर लीं।

बाहर उस दिन चन्द्रमा का प्रकाश फैला हुआ था। आकाश पर लहराते हुए मेघरूपी समुद्र के भीतर से चन्द्रमा का धुँधला प्रकाश मूर्च्छाग्रस्त सुन्दरी के समान चारों ओर लोट-पोट हो रहा था। अरुण ने एक बार भी घूम कर यह नहीं देखा कि इसी कमरे में एक आग्रहपूर्ण व्याकुल दृष्टि उसी की ओर लगी हुई है।

सविता आश्चर्य्य में आकर सोच रही थी कि कैसे अद्भुत स्वभाव के आदमी हैं ये।

टन टन करके रात के दो बज गये। सविता का हृदय उस समय अत्यन्त ही संकुचित हो उठा। उसने यह भली भाँति समझ लिया कि एक बार भी इस ओर ताके बिना ही स्वामी ने मेरे यहाँ होने की बात जान ली है। इसी लिए कोच पर पड़े पड़े रात काट रहे हैं। क्या आवश्यकता थी ऐसा करने की।

अरुण ने भी इस प्रकार रात्रि व्यतीत करने का निश्चय इसलिए किया कि उतावली में आकर किसी प्रकार का बतबढ़ाव करने से कहीं घर भर में व्यर्थ शोर न मच जाय।

हाथ-पैर सिकोड़ कर बिस्तरे पर पड़े-पड़े सविता ने बची हुई रात भी काट दी।

चौथे पहर की रात में खिड़की से होकर तालाब के जल के संसर्ग से स्निग्ध शीतल वायु आई और उन दोनों के ही संतप्त मस्तक का चुम्बन करके चली गई।

प्रातःकाल होने पर पूर्व का आकाश जब भली भाँति साफ़ नहीं हो पाया था तभी सविता उठकर खड़ी हुई। टेबिल पर जो लैम्प रक्खा हुआ था वह सारी रात पूरी ताक़त से जलते जलते बुझता जा रहा था। प्रभात के मस्तक पर दीप्तिमय टीके के समान चमचमा रहा था केवल शुक्रतारा।

प्रातःकाल के प्रकाश में स्वामी की ओर सविता ने एक बार दृष्टि बढ़ाकर फिर देखा। अरुण उस समय भी उस कोच के ही ऊपर हाथ पर माथा रक्खे सो रहा था। उसकी आस्तीन मुड़ी हुई थी। कमल के फूल की पँखुरी के-से रंग के बलिष्ठ और मोटे दोनों हाथों की ओर सविता ने ध्यान से देखा। उनसे अपनी सौन्दर्य्य-सम्बन्धी दीनता की तुलना करके लज्जावनत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उतावली के साथ वह द्वार के पास गई और किवाड़े को ठेला।

किवाड़ में साँकड़ नहीं लगी थी, इससे ठेलते ही वह खुल गया। सविता भी निकल कर बाहर खड़ी हुई। इतने बड़े मकान में उस समय बिलकुल सन्नाटा था। घर भर में एक भी आदमी जाग नहीं रहा था। सविता दालान की रेलिंग पकड़े हुए खड़ी रही। रेलिंग के अगल-बग़ल टबों में जो फूलों के वृक्ष लगे थे उनमें दो-एक विदेशी फूल खिले थे।

ज़रा देर के बाद मेनका उठ कर दालान में आई और कहने लगी---अभी उठ गई हो बहू? इतने सवेरे?

सविता मुँह नीचा किये हुए खड़ी रही। मेनका पूछने ही जा रही थी कि अरुण उठा या नहीं, ठीक उसी समय वह कमरे से निकला और सीधा बाहर चला गया।

मेनका पुत्र की ओर देखकर सोचने लगी---ऐं, अरुण का मुख वैसा प्रसन्न कहाँ है? कल जिसका विवाह हुआ है, आज उसके मुख पर आनन्द की ज़रा-सी रेखा तक क्यों नहीं झलकती हुई दिखाई पड़ रही है? क्या लज्जा के कारण? न, लज्जा इसे तो कहते नहीं।

मेनका का मुस्कराहट से खिला हुआ प्रसन्न मुख चिन्ता के मारे काला हो उठा। इधर सविता के भाग्य-रूपी आकाश पर जो उमड़-घुमड़ मची थी, उसने ज़ोर पकड़ कर उसे और भी भयभीत कर दिया।

(६)

सविता बहुत सुन्दरी नहीं थी। परन्तु उसे कुरूप भी नहीं कह सकते थे। उसका मुख ज़रा अधिक साफ़ था। बड़ी बड़ी आँखें उसकी शरद्-ऋतु के प्रातः-काल के नीले नीले कमल के समान, सुन्दर-स्वच्छ बड़ी बड़ी, और बुद्धि की आभा से उज्ज्वल थीं।

सविता इस समृद्धिशाली परिवार में दरिद्र के घर से आई थी। परन्तु सदा की दरिद्र वह नहीं थी। उसके मातामह गाँव के पण्डित थे। आध्यात्मिक उन्नति की ओर वे जितना आग्रह प्रदर्शित किया करते थे, उतना ध्यान वे घर-गृहस्थी की ओर नहीं दे पाते थे। परन्तु अपनी एकमात्र कन्या का विवाह उन्होंने उत्तम घर-वर देख कर किया था।

सविता के पिता जिस वर्ष डिप्टी मैजिस्ट्रेट होकर राँची गये थे, उसी वर्ष उसने जन्म ग्रहण किया था, उस समय सभी लोग उसका आदर करते थे, कहते थे कि इस बालिका में बड़े उत्तम लक्षण हैं। परन्तु उसका यह आदर, यह लाड़-प्यार, अधिक दिनों तक न रह सका। सात वर्ष की ही अवस्था में पितृ-हीन होकर माता के साथ वह नाना के यहाँ लौट आई।

सविता के पिता के यहाँ की अवस्था उस समय भी अच्छी थी। पितामह की मृत्यु हो चुकी थी। चाचा लोग थे, परन्तु कन्या के विवाह के झंझट से बचने के विचार से उन लोगों ने विधवा भौजाई की आज तक कोई खोज-खबर नहीं ली। परन्तु यह विवाह पक्का हो जाने की ख़बर जब उन्हें मिली तब उनके स्नेह का समुद्र एकाएक लहरा उठा। उन्होंने आदमी और चिट्ठी भेजकर सूचित किया कि सविता के पिता नहीं हैं, यह हमारे लिए बड़े दुर्भाग्य की बात है। परन्तु वह कन्या तो हमारी ही है। उसका विवाह पिता-पितामह के घर पर न हो सकेगा, इसका हमें दुःख है।

सविता की माता ने बड़े तेजस्वितापूर्ण शब्दों में उत्तर दिया---आप लोगों को चाहे कितना ही दुःख क्यों न हो, किन्तु इस ग़रीब और अनाथिनी की कन्या का विवाह उसी तरह होगा, जिस तरह एक ग़रीब की कन्या का विवाह होता है।

भौजाई का इस तरह का उत्तर मिल जाने पर देवरों ने लोक-लज्जा से छुटकारा ले लिया। इतने दिनों तक तो कन्या के विवाह के खर्च से बचने के लिए वे रास्ता ही बचाते आये थे। आज यह पत्र मिल जाने पर उन लोगों ने दस आदमियों को दिखलाया और कहा कि विधवा भौजाई जब इस तरह का रूखा व्यवहार कर रही है तब इसमें हमारी क्या जिम्मेदारी है। यह कारण दिखला कर देवर लोगों ने सिद्ध कर दिया कि उदासीन रहने के लिए हम बाध्य हैं।

देवरों का उदासीन रहना भी एक प्रकार से ठीक ही था, कुछ ग़लत नहीं था। एक अनाथिनी विधवा की इतनी लम्बी लम्बी बातों का खींचा कौन सह सकता था? परन्तु सविता की मा को इसका ध्यान नहीं था। उसमें ऐसा एक तेज था। उत्तराधिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रूप में सविता ने भी माता का यह तेज कुछ कुछ प्राप्त किया था।

माता का-सा तेज प्राप्त करके सविता अहङ्कारिणी हो गई थी, यह बात नहीं थी। उसमें जो कुछ तेज था, वह और प्रकार का था। अहङ्कार नहीं था, कोई और ही चीज़ थी। रूपहीन होने के कारण स्वामी के हृदय में वह ज़रा भी स्थान नहीं प्राप्त कर सकी। तब उसकी अवस्था उस पथश्रान्त पथिक की-सी हो गई जो अपने स्थान से खदेड़ भगाये जाने पर एक देश की माया आजन्म के लिए छोड़कर दूसरे देश में जाता है, परन्तु वहाँ भी वह देखता है कि मेरे लिए सभी द्वार बन्द हैं।

उस समय भी अरुण के समस्त हृदय पर अधिकार किये वही एक दिन का देखा हुआ, सुन्दर, हँसता हुआ मुख लोट-पोट किया करता था। काले भौंरे की तरह के लीला से चञ्चल उसके दोनों नेत्रों के सामने सविता की शान्त नम्र दृष्टि को निमेष भर में ही पराभव स्वीकार कर लेना पड़ता। इसके सिवा उसकी जो दृष्टि थी उसे ही आँख उठाकर देखनेवाला कौन था?

विवाह हुए एक मास व्यतीत हो चुका था। अरुण अपने कलकत्तेवाले स्थान को चला गया था। उस सोहागरात के दिन के बाद उसने स्त्री को फिर कभी देखा तक नहीं।

मेनका यह बात जानती थी। परन्तु लोगों से उसने इसे और तरह से बतलाया। उसने कहा—मालिक की यह इच्छा नहीं है कि पढ़ने के समय लड़का और बहू एक-दूसरे से अधिक मिलें-जुलें। उसकी इस बात से सविता के दुर्भाग्य की लज्जा बहुत कुछ ढँकी तो रहती, किन्तु सभी लोग इस बात पर विश्वास नहीं कर पाते थे।

परीक्षा समीप ही थी। अरुण यह कहकर कि घर में रहने से पढ़ने-लिखने में व्याघात होगा, कलकत्ते चला गया। उसकी यात्रा के समय सविता दोमंज़िलेवाले कमरे की खिड़की के सींखचे पकड़ कर खड़ी हुई। नीचेवाली सीढ़ी के सामने आकर गाड़ी खड़ी हुई।

माता-पिता को प्रणाम करके मुस्कराता हुआ अरुण जाकर गाड़ी पर बैठा। सोने के चश्मे से ढँकी हुई उसकी आँखों की हँसती हुई दृष्टि यदि एक बार ऊपर की ओर उठती तो वह देख पाती कि वहाँ जो व्यग्रता-पूर्ण, व्याकुल मुख है उसका समस्त रक्त उतर गया है—किस तरह पीला होगया है वह मुँह।

मेनका के ऊपर पहुँचने से पहले ही सविता ने अञ्चल से अपनी डबडबाई हुई आँखों को पोंछ डाला और उतावली के साथ दौड़ती हुई वह छोटे बच्चे को प्यार करने को बैठ गई। इस घर में वह नन्हा-सा बच्चा ही उसका एकमात्र मित्र हो गया था। जब कभी भी वह अवसर पाती, उस बच्चे को ही लेकर बैठती।

मेनका ने सीढ़ी से होकर ऊपर जाते जाते कहा—ओ सविता, बच्चे को दूध पिलाने का समय बीत गया है। शीशी में ज़रा सा दूध तो भर दो। ज़रा जल्दी करना।

सविता उस समय शीशी में दूध भर कर बच्चे को दूध ही पिला रही थी। उसे ऐसा करते देख कर भी मेनका सन्तुष्ट नहीं हुई। उसने मुँह को गम्भीर बनाकर कहा—ओह तुम दूध पिला रही हो?

मेनका के मुख की ओर देखकर सविता अवाक् हो गई। वह सोचने लगी कि दूध पिलाने के समय में दूध पिला रही हूँ, यह भी क्या मेरा कोई अपराध है। तुरन्त ही उसके मन में यह भाव आया कि अभी लड़के को परदेश के लिए विदा किये आ रही हैं, इसी लिए मालकिन का मुँह गम्भीर हो गया है।

बच्चे को दूध पिलाने के बाद उसे गोद में लिए सविता अपने कमरे में गई। सविता जब यहाँ आई थी उससे पहले उस कमरे में अकेले अरुण का ही अधिकार था। उस समय भी कमरे की दीवारों पर उसका कुछ कुछ चिह्न अङ्कित था।

कमरे की एक ओर की दीवार पर तीन भाई बहनों का फ़ोटो टँगा हुआ था। वह चित्र इन सबके छुटपन का था। एक बगल में अरुण था, दूसरी बग़ल में शुभेन्दु। बीच में फ़राक़ पहने हुए, मस्तक के बालों को जूड़े रिबन से बाँधे हुए बालिका कमला थी।

सविता ने कमला को देखा नहीं था। गोद में जो उसी के बच्चे को लिये हुए थी। फ़ोटो में कमला को देखने पर वह उससे उसका मिलान करने लगी। एक बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोद के सुन्दर, हृष्ट पुष्ट बालक की ओर देख लेती, उसके बाद ही वह फ़ोटो में उसकी दिवंगत माता का रूप देखती। इस प्रकार माता पुत्र के रूप की तुलना करने में उसे बड़ा आनन्द आ रहा था।

ज़रा देर के बाद बच्चे की दाई आई। वह बच्चे को टहलाने के लिए ले जानेवाली थी। फूल के एक गुच्छे की तरह के बच्चे को छाती से लगाकर सविता ने उसका मुँह चूमा और उसे दाई की गोद में दे दिया। उसके बाद खाली हाथ वह चुपचाप खाट पर बैठी रही। कमरे में दूसरी ओर अरुण का साल भर पहले का एक फ़ोटो था। उसे देख कर वह स्वामी को ज़रा-ज़रा पहचानने की कोशिश करने लगी।

फ़ोटो की छाया अलमारी के आइने पर पड़ रही थी। वह मुख तो इस तरह अकाल में ही गम्भीर होकर आभाहीन नहीं हो उठा था। सविता ने इस घर की एक पुरानी मज़दूरिन से सुना था कि यह फ़ोटो अरुण ने कमला के विवाह के दूसरे दिन खिचवाया था। उस समय उसने हँसते हँसते यह भी कहा था कि एक फ़ोटो मैं खिचवाऊँगा अपने विवाह के दूसरे दिन।

और भी कुछ दिन बीत गये। बाहर की कोई बात बहुधा सविता के कानों तक नहीं आ पाती थी। वह यह नहीं समझ पाती थी कि मेरे नाना ने आज तक मुझे ले जाने का नाम तक क्यों नहीं लिया।

मानव से

लेखक, श्रीयुत त्रिलोचन

नर रे!
तम में द्युति में आया बस कर
बीता, जीता सुधि-साहस कर
स्वर पर निर्भर; स्वर-जीव अपर
जग देख रहा तुझको आया,
भर मुखर-तृषा की लहर अधर रे!

जीवन की बाधायें तरते
अपने अधिकारों पर मरते
सबने परखा जय-तप करते
भरते धृति जागे भव-निधि में
पहुँचे पहले उस पार उतर रे!

प्रतिघात अशेष हुआ सारा
तुमने बदली अपनी धारा
दिखलाया रंग नया न्यारा
निज लाल रुधिर से सींच चले भू
कह जग-जीवन अमर समर रे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाग्रत नारियाँ

जापान में नारी-जीवन

लेखक, श्रीयुत श्यामसुन्दरलाल गुप्ता

आधुनिक जापान की स्थापना १८६८ के लगभग हुई थी, जब जागीरदारी प्रथा का अन्त कर जापान एक संयुक्त राष्ट्र बनाया गया था। आधुनिक सभ्यता का भी आगमन उसी समय से आरम्भ हुआ। युवक सम्राट् ने जहाँ सारे जापान को एक सुदृढ़ राष्ट्र बनाने के स्वप्न देखे वहाँ उनको पूरा करने में भी बड़ी ही बुद्धिमत्ता से कार्य्य किया। जापान की महिलाओं की हीन दशा देखकर भी उनसे नहीं रहा गया। सम्राट् ने उन्हें भी राष्ट्र के लिए उन्नतिशील बनाने की योजना रक्खी। उन्होंने कहा—"यदि स्त्रियों को शिक्षा दी जाय और वे बुद्धिमती हों तो हमको उनका भी आदर करना होगा।" और देश के लिए योग्य महिलाओं को उत्पन्न करने के विचार से उन्होंने सन् १८७१ में एक राजाज्ञा जारी की जिसके अनुसार ५ महिलाओं का एक दल अमेरिका भेजा गया। अमेरिका भेजने का उद्देश्य था कि 'स्त्रियाँ स्वयं जाकर स्त्रियों की शिक्षा—माताओं, बहनों और लड़कियों के कर्त्तव्यों का अध्ययन करें और उनकी अच्छी बातों को अपने राष्ट्र में प्रचलित करें।' इनका सारा व्यय राज्य ने देना स्वीकार किया। जापान छोड़ने से पहले वे 'ईदो' (वर्त्तमान तोक्यो) में बुलाई गईं और प्राचीन रीति के अनुसार उन्हें राजसभा के प्रत्येक सदस्य ने लाल रंग का एक एक खूबसूरत फ़ीता भेंट किया।

[कुमारी शारदा बी० ए०। बिहारशरीफ़ के प्रसिद्ध राष्ट्र सेवी नागरिक श्रीयुत महेशलाल की सुपुत्री हैं। इन्होंने पंजाब-विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा योग्यतापूर्वक पास की है।]

इन पाँचों में सबसे छोटी 'उमेत्सुदा' केवल सात वर्ष की थी। लौटकर उसने तोक्यो में 'त्सुदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालेज स्थापित किया। यह कालेज कन्याओं के लिए उत्तमोत्तम विद्यालयों में से समझा जाता है और जापानी स्त्री-जीवन की जागृति में इसका बहुत बड़ा हाथ है। १९२८ में जब कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर जापान आये थे तब वे इस कालेज में निमन्त्रित किये गये थे। वे इस कालेज को देखकर बहुत प्रसन्न हुए थे।

प्राचीन काल की रूढ़ियों को नष्टकर स्त्रियों को सामाजिक स्थान ठीक करने में जापान को बहुत काफ़ी परिश्रम लगा है। लगभग २० वर्ष के पश्चात् राष्ट्र में स्त्रियों के व्यक्तिगत अधिकारों को स्थान प्राप्त हुआ। १८९८ के सिविल नियमों के अनुसार उनके अधिकार ठीक तरह निश्चित किये जा सके। बहु-विवाह अनियमित ठहराया गया, स्त्री की इच्छा के बिना शादी करना रोका गया, २० वर्ष से ऊपर की स्त्री को अपने आप वर ढूंढ़ने तक का अधिकार दिया गया और वर ढूंढ़ने में परिवार के स्वामी का अधिकार नहीं रक्खा गया; स्त्रियों को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने का अधिकार भी दिया गया और विवाहित स्त्रियों को अपने पति की आज्ञा से व्यवसाय करने का अधिकार भी दिया।

इन नियमों, अधिकारों और सुविधाओं के कारण जापान की महिलाओं की बड़ी उन्नति हुई। लड़कों के समान ही लड़कियों की भी प्राइमरी शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। इससे महिलाओं ने केवल अपने घर तथा अपने परिवार को अधिक उन्नतिशील नहीं बनाया, बरन राष्ट्रीय जागृति में बहुत अधिक हाथ बँटाया। इन अधिकारों से परिवारों में से गृहयुद्ध को मिटा दिया और उनको अधिक उन्नत बना दिया। लड़कियों की शादियाँ अब भी उनके माता-पिता ही करते हैं। पर शादियाँ २० वर्ष से ऊपर की ही अवस्था में होती हैं। इसके अतिरिक्त पढ़ी-लिखी होने के कारण स्त्रियाँ घर का प्रबन्ध इस कुशलता से करती हैं कि पति को घर के झंझटों से बिलकुल फ़ुर्सत रहती है और वस्त्र, साग-भाजी, सामान इत्यादि की फ़िक्र में उसे अपना सिर खपाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यही नहीं। खाली समय में स्त्रियाँ राष्ट्रीय कार्य्यों में भी पूरा सहयोग देती हैं—जैसे, हवाई हमले के समय सारे महल्ले की

[श्रीमती ज्ञानवतीदेवी। आपने इस वर्ष हिन्दू-विश्वविद्यालय काशी से बी० ए० की परीक्षा प्राइवेट दी थी। उसमें आप सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुई हैं।]

रक्षा का प्रबन्ध, सैनिकों की सहायता, घायलों की सेवा-शुश्रूषा इत्यादि।

इस प्रकार जापानी स्त्रियों ने समाज में अपना स्थान उतना ही महत्त्वपूर्ण बना लिया है जितना कि पुरुषों का है। दोनों के क्षेत्र चाहे अलग अलग हों, पर महत्त्व कम नहीं होता। महिलाओं का क्षेत्र केवल घर ही नहीं, किन्तु सारे ऐसे काम हैं कि जिन्हें वे कर सकने में समर्थ हैं। मास्टर, डाक्टर, इंजीनियर, नर्स, फ़ैक्टरी-वर्कर, टेलीफ़ोन-एक्सचेंजर, रेल, ट्राम, बस के गाइड और गार्ड इत्यादि सारे क्षेत्रों में आपको लड़कियाँ पुरुषों की ही तरह काम करती मिलेंगी। हाँ, ऐसे काम जैसे स्टील-फ़ैक्टरी, इंजिन-ड्राइवरी इत्यादि जो कठिन हैं और जिन्हें केवल पुरुष ही कर सकते हैं, वे नहीं करती हैं। इनके अतिरिक्त महिलायें राष्ट्रीय अधिकारों के लिए भी लड़ रही हैं और नित्य उनकी माँगें बढ़ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[सूदवरी के लायन्स क्लब में होनेवाली सौन्दर्य-प्रतियोगिता में ये लड़कियाँ क्रमशः १९३९ की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियाँ घोषित की गई हैं--(१) मिस डी कूपर (बीच में) (२) मिस डब्लू प्रेस्टन (बाईं ओर) (३) मिस नैस (दाहिनी ओर)]

ही जाती है। तु
तरह हर क्षेत्र
उन्होंने क़दम बढ़ा
है और अपनी
उन्नति के लिए उन्हों
इतना कम समय
किया है कि
अँगरेज़ के शब्दों
"जितनी उन्नति
में ५०० वर्षों में
थी उतनी
की स्त्रियों ने
वर्षों में की है
एक दूसरे अँगरेज़
२५ वर्ष बाद
तोक्यो आने पर
विचारों का
निम्नप्रकार किया
"सबसे आ
परिवर्तन स्कूल
वाली लड़कियों
युवतियों में
था। ढीले
और गिरे हुए
के स्थान पर
वदन और
लाल कपोल
देते थे। सुस्त
के स्थान पर
क़दम थे। स्कूल
अपनी नित्य
व्यायाम-शिक्षा
जापानी औसत
को दो इंच बढ़ा
था और उसी
से उनके शरीर
में भी वृद्धि हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

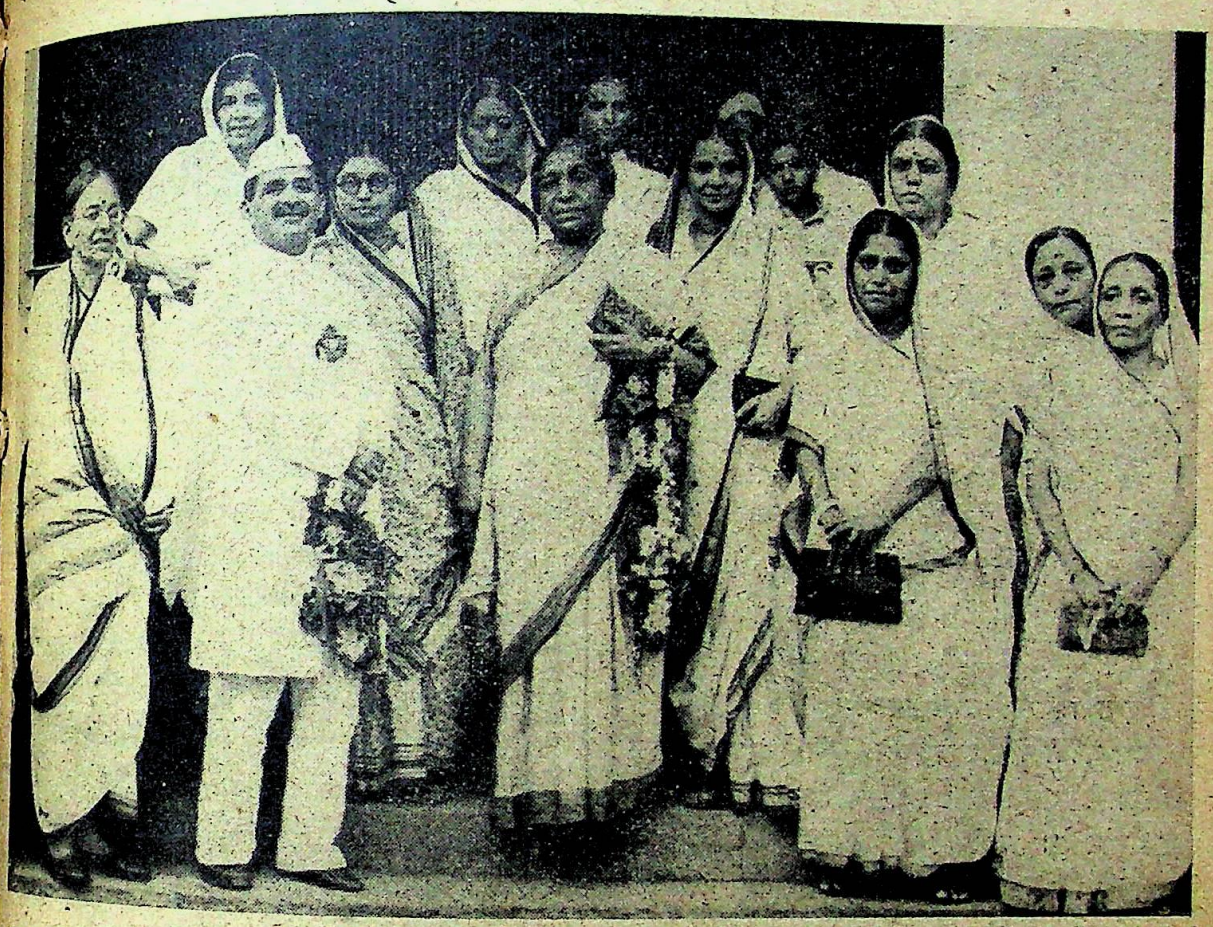

[श्रीमती सरोजिनी नायडू। इसी महीने में बम्बई में मद्य-निषेध के सम्बन्ध में होनेवाली महिलाओं की एक सभा में आप सभानेत्री बनी थीं।]

जापान जानता है कि यदि उसे मज़बूत बच्चे पैदा करने हैं तो मज़बूत मातायें होनी चाहिए। जापान उन्हें मज़बूत बना रहा है। जाड़ों में पहाड़ों पर बर्फ़ में 'स्की' खेलने के लिए जहाँ आपको युवक जाते मिलेंगे, वहाँ युवतियाँ भी अपनी कमर पर सामान कसे हुए जाती मिलेंगी। लड़कियाँ मोटर, हवाई रेस और दौड़ सभी में भाग लेती हैं।

इस तरह, जापान ने अपनी लड़कियों को 'माडर्न गर्ल' बनाया है। जापानी में इसे 'मोगा' कहते हैं (माडर्न का 'मो' गर्ल का 'गा' 'मोगा')। परन्तु जापान की अपनी पुरानी खूबी इसमें भी है। जहाँ जापानियों में समय के अनुसार बदलने की अपूर्व शक्ति है, वहाँ उनकी अपनी बातें भी उनमें मिली रहती हैं। जापानी आँखें मूँदकर नक़ल करनेवालों में नहीं हैं। वे बदलते हैं, पर अपने आवश्यकतानुसार और केवल उन्हीं बातों में जिनमें वे अपना लाभ देखते हैं। एक 'मोगा' के बारे में ऐसा विचार कर लेना जैसा कि भारत में साधारणतया होता है, सर्वथा अनुपयुक्त ही होगा। 'माडर्न गर्ल' का कर्त्तव्य तथा परिवार के साथ उसका सम्बन्ध वही रहता है जो पहले उसकी सादी अवस्था में था। घुँघराले बाल, योरपीय जाकेट और जम्पर, पाऊडर और लिपस्टिक, टोप और ऊँची एँड़ी-वाले जूते प्रयोग करने पर भी घर में उसका काम—और परिवार में उसका स्थान वही रहता है। माता-पिता की दृष्टि में वह साधारण और माता-पिता उसकी दृष्टि में साधारण, वे ही पहलेवाले रहते हैं। श्री उऐनोदा नामक एक जापानी ने अपनी एक पुस्तक में 'मोगा' का वर्णन अग्रलिखित प्रकार किया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पहले की जापानी लड़की कम खाती थी, शर्माकर बात करती थी और 'दूसरों के सामने स्त्रियों को हँसना शोभा नहीं देता' ऐसा समझकर बहुत कम हँसती थी। उन दिनों स्त्री-सौन्दर्य्य की सर्वोत्तम प्रतिमा वह लड़की गिनी जाती थी जिसका मुँह छोटा और चेहरा लम्बा होता था। इसे जापानी में 'उरीज़ानेगाओं' कहते हैं, जिसका अर्थ है 'खरबूज़े के बीज के समान'। परन्तु ऐसे सौन्दर्य्य के लिए अब कोई स्थान नहीं है। आज की लड़की दिल खोल कर बातें करती है, खूब खाती है और अच्छी तरह हँसती है।"

ऊपर के वर्णन से हमें जापानी 'माडर्न गर्ल' को समझने में सहायता मिलेगी। उसे स्वाधीनता है, परन्तु उसका दुरुपयोग नहीं होता। केवल नये फ़ैशन में रहने से ही उसे माता-पिता सन्देह की दृष्टि से नहीं देखते। कार्य्यशक्ति बढ़ाने के लिए शरीर को सुसंगठित करने के लिए तथा आधुनिक संसार में सभ्य कहलाने के लिए यदि उसे अपनी पोशाक बदलनी पड़ती है तो क्या हर्ज है?

हमारी आधुनिक लड़की और जापानी मोगा में बड़ा ही भेद है। उसी योरपीय सभ्यता को जो भारतीयों के जी का जंजाल हो रही है, जापान ग्रहण करके उन्नतिशील हो रहा है। उसी अँगरेज़ी-भाषा को जिसे भारतीय संन्तानें घृणा करने लगी हैं, जापानी विद्यार्थी रात-दिन मेहनत करके पढ़ते हैं और एक स्त्री को आधुनिक विद्या और सभ्यता के प्रकाश में लाना जो भारत की स्त्रियों को पथभ्रष्ट करनेवाला कहा जाता है, जापान के लिए उन्नति का एक मूल-कारण बना हुआ है।

जापान की औद्योगिक उन्नति में मोगा लड़कियों और स्त्रियों का बहुत बड़ा हाथ है। प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना लिया है। सारे जापान की २७,९०,००,००० औरतों में से श्रम करके पेट पालने-वालियों की संख्या ९९,३०,००० है। यह संख्या सारे जापान के श्रमजीवियों (पुरुष और स्त्रियों) में आधे से अधिक है। इससे यह स्पष्ट है कि सारे जापान का आधे से अधिक श्रम स्त्रियों के हाथ में है।

कताई और बुनाई में सबसे अधिक काम करनेवाली स्त्रियाँ ही हैं जब कि पुरुषों की संख्या १,५८,२८१ है, लड़कियों की १,४०,५११ है, अर्थात् पुरुषों की अपेक्षा ८२·४ प्रतिशत! दूसरे औद्योगिक धन्धों में जैसे बिजली, गैस, मशीन, धातु, खाद्यपदार्थ, छपाई, जिल्दसाज़ी और लकड़ी-कटाई इत्यादि में पुरुषों की अपेक्षा उनकी संख्या इतनी अधिक नहीं है, लेकिन है अधिक ही। इन अन्य धन्धों में वे ५३·४ प्रतिशत हैं। यह नहीं है कि वे केवल मज़दूरी ही करती हैं, परन्तु बड़े बड़े कार्य्यों में भी योग्यतापूर्वक सहयोग दे रही हैं। १९३१ में ३,९८६ स्त्रियाँ फ़िज़िशियन और फ़ार्मिस्ट और १,५४,१५३ के लगभग नर्सें और दाइयाँ थीं। १९२८ में स्त्री-अध्यापकों की संख्या ९६,०८१ और संवाद भेजने (टेलीफ़ोन इत्यादि) में ४६,७३७ थीं। ९,४५२ स्त्रियाँ रेलवे में गार्ड, गाइड तथा अन्य कार्य्यों में सहायता कर रही थीं। इन क्षेत्रों में हर जगह वे सारा कार्य्य सुन्दरता, स्वच्छतापूर्वक और साथ ही योग्यतापूर्वक निबाहती हुई मिलेंगी और इनमें अधिकतर आपको वही 'माडर्न गर्ल' कही जानेवाली लड़कियाँ मिलेंगी। इस तरह कताई-बुनाई के अलावा इन दूसरे कामों में सबका जोड़ लगाकर देखा जाय तो जहाँ पुरुषों की संख्या ७,७४,०९८ है, वहाँ स्त्रियों की ८,८६,२३४। अर्थात् ६३·४ प्रतिशत। तोक्यो की सत्रह हज़ार श्रमजीवी स्त्रियों में ७७ प्रतिशत के लगभग अपने परिवारों का भरणपोषण करती हैं और इनमें भी अधिक संख्या 'माडर्न गर्ल' जिनकी आयु १६ और २५ के बीच के लगभग होती है, काम करती हैं। इनको औसतन ३० येन (लगभग ३० रुपये) के लगभग वेतन मिलता है।

इस तरह हम यह भली भाँति समझ सकते हैं कि जापान में स्त्रियों की जितनी सहायता मिल रही है वह केवल उनके उन्नतिपूर्ण ढंगों और आधुनिक सभ्यता को ठीक तरह अपनाने के कारण ही। प्रत्येक क्षेत्र में वे उन्नति कर रही हैं। राजनीति में भी इसी तरह उन्होंने अब क़दम बढ़ाना आरम्भ किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

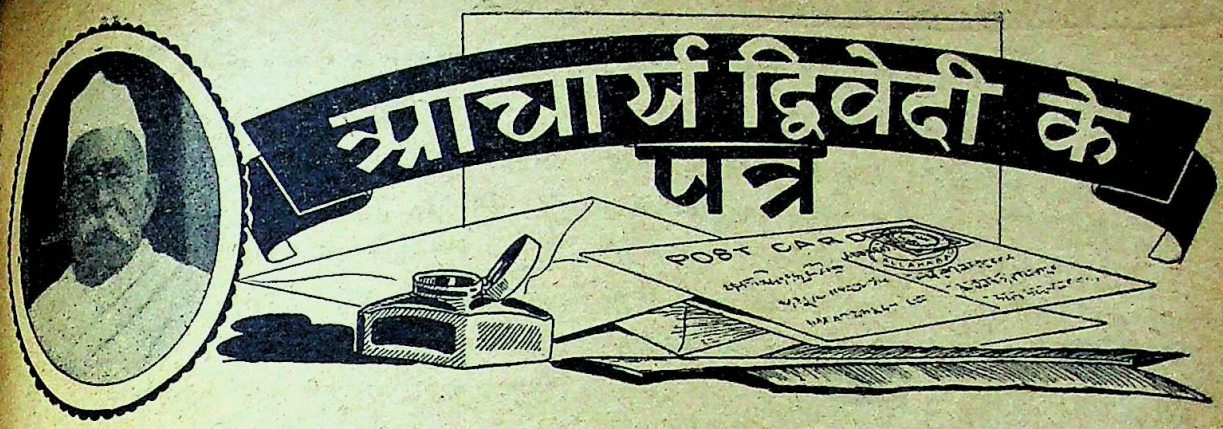

स्वर्गीय पंडित पद्मसिंह शर्मा के नाम

(१६)

दौलतपुर, डाकघर—भोजपुर
रायबरेली
१४-११-०६

प्रिय मित्र !

८ ता० का कार्ड मिला। हमारी वृद्ध माता सख़्त बीमार हैं। इससे उनकी आज्ञा पाकर हम यहाँ आये हैं। उनका हाल देखकर कानपुर जायँगे।

"प्रणथिनः" पर आपने जो भाष्य रचा सो हमारी मोटी बुद्धि में ठीक ठीक नहीं आया। हमें क्या करना है। हम आपका प्रेमी "प्रणयिता" ही रहने देंगे।

योगदर्शन की आलोचना लिखी रक्खी है, किसी संख्या में अवश्य निकलेगी। कवितावियक पद्य बहुत करके इसी महीने में निकल जायँगे। आपके भी दो एक पद्य उसमें रहेंगे। "शीत" वाला पद्य नोट कर रक्खा है। देने का वादा नहीं करते।

"निद्राकोपकषायितेव दयिता संत्यज्य दूरं गता.....
नो क्षीयते शर्वरी" भी देने लायक़ है। हमारे ख़ास मतलब की जो बात हमारे पत्र में थी उसका उत्तर आपने नहीं दिया। हम भी आपके कादियानी-वाले पत्रांश का उत्तर नहीं देंगे। यहाँ एक देहाती ने हमें एक यह श्लोक कल सुनाया—

"माषपेषण मिषेण मृगाक्ष्या दोलितो बहुरतीव—
नितम्बः।
प्रोषिते प्रियतमे चिरकालं विस्मृतं—
सुरतमभ्यसतीव" ॥१॥

विनीत महावीरप्रसाद

(१७)

जुही, कानपुर
७-१२-०६

प्रणाम !

कल रात को यहाँ आये। ख़तरनाक प्लेग है। कल फिर प्रस्थान है।

शायद फ़ैज़ाबाद, गोरखपुर वग़ैरह जाकर कुछ दिन रहें। पत्र-व्यवहार कानपुर के ही पते से रहे। श्रीकण्ठचरित इस उजलत में नहीं भेज सकते।

स्थितिस्थापकता हो जाने पर कानपुर लौटकर भेजेंगे।

कोई अपना चरित (जन्मभूमि आदि का विवरण) बतलावे ही नहीं तो क्या, किया जाय।

हम तो वही चाहते हैं जो आप पर लाचारी है। आप अपना फ़ोटो भेजकर, कृपा कर हमारी इस इच्छा को पूर्ण कीजिएगा। आपने नवम्बर की सरस्वती पसन्द की। चलो हमारा परिश्रम सफल हो गया।

"शुष्कस्तनी" विषयक आपका आशय हमारे से अच्छा है।

कृपा करके जब कभी श्लोक भेजा कीजिए तब उनका भाव भी लिख दिया कीजिए। "कन्थाखण्ड" को फिर लिखकर भावार्थ-सहित भेजने की दया दिखाइए। आपने जो समानार्थक संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी के पद्य भेजे हैं, सब रक्खे हैं। सब प्रकाशित होंगे।

"माषशिमिवत्" का मतलब हमारे ध्यान में नहीं आता।

मुमकिन है कुछ अर्थ होता हो। स्पेन्सर का चित्र मिल सका तो ज़रूर "शिक्षा" के साथ निकाला जायगा।

विनीत महावीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१८)

कानपुर
२१-१-०७

प्रणाम !

कृपा-पत्र मिला। कानपुर में कहीं कहीं अभी तक प्लेग बना हुआ है। हमारे पास के एक गाँव में खूब है। उससे हम लोग अलग रहते हैं।

अब की बार अर्थशास्त्र पर एक छोटी-सी पुस्तक लिखने का विचार है। शिक्षा अभी तक हमारे ही पास है।

कविता के लिए धन्यवाद।

गवर्नमेंट की किताबें बहुधा दुबारा कम छपती हैं। Govt Central Book Depotलिखते हैं।

प्रणत
म० प्र०

(१९)

दौलतपुर
डाकघर भोजपुर (रायबरेली)
२९-४-०७

प्रियवर !

आपका कृपा-पत्र बहुत दिनों में मिला। आजकल हम अपने गाँव में हैं। १० मार्च तक कानपुर जायँगे।

यदि विक्रमांक आपको इतना पसन्द है तो हमारी कापी आप अपने ही पास रहने दीजिए। खेद है, आपने सतसई अभी तक न देखी थी। उत्कृष्ट कविता है। ध्वनि का आकर है। लालचन्द्रिका न मालूम कहाँ मिलती है। कृष्ण कवि ने दोहों की टीका सवैयों में लिखी है। वह भी अच्छी है। एक सतसई वंगवासी-वालों ने निकाली थी, पर हमने नहीं देखी। अम्बिका-दत्त का "बिहारी बिहार" आपने देखा ही होगा। जो दो दोहे आपने भेजे, उनको अकेले क्या छापें, आप और दोहों के साथ भेजिएगा। सतसई की beates आप समझाइए। आजकल हम हाली के दीवान में जो मुक़द्दमा है पढ़ रहे हैं। खूब लिखा है। हम हाली का चित्र सरस्वती में छापना चाहते हैं।

विनीत महावीर

(२०)

चरखारी
हमीरपुर
२९-९-०७

प्रिय पण्डित जी !

बहुत दिनों में आपने हमारी खबर ली। सुनकर रंज हुआ कि आप इतने दिनों तक बीमार रहे। आशा है अब आप बिलकुल अच्छे होंगे।

बाबू साहब ने "पुनन्तु"—इत्यादि तो नहीं कहा। पर क्षमा माँगी। इसी से हमने और कुछ लिखने का विचार छोड़ दिया है। "वक्तव्य" अब न छपेगा। प्रेस से वापस मँगा लिया।

कोई साहित्य-संसार में विशेष बात नहीं हुई। हाँ, "भारतमित्र" के गुप्त जी मरे, यह सुनकर दुःख हुआ। "सूनृतवादिनी" कई महीने से नहीं निकली। ५-७ दिन में कानपुर जायँगे, वहाँ से "देवनागर" ढूंढकर भेजेंगे। उसके आजतक शायद दो ही अङ्क निकले हैं।

दुर्भिक्ष यहाँ भी पड़ना चाहता है। प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही है।

विनीत
महावीरप्रसाद

(२१)

जुही—कानपुर
२२-४-०८

प्रिय मित्र, प्रणाम,

कार्ड मिला। पं० रामदयालु की खबर सुनकर दुःख हुआ। उनसे हमारी समवेदना सूचित कीजिएगा। ईश्वर उन्हें शीघ्र अच्छा करे।

हमारा वह श्लोक दे दिया था? दो एक दिन में हमारा इरादा घर जाने का है। कोई एक हफ़्ते बाद लौटेंगे। बाणभट्ट भेजते हैं। पहुँच लिखिएगा। देखकर लौटा दीजिएगा, कोई जल्दी नहीं है। विद्यावारिधि का वेद २ जिल्दों में है। बड़ा है। दाम कोई १० रु० है।

हमें दुनिया के किसी पत्र और किसी भाषा से लेख उद्धृत करने से इनकार नहीं। पर चीज उद्धृत करने योग्य होनी चाहिए। "वैरागी" यदि इस लायक़ हो तो भेजिए। आपने जन्मभर में एक लेख भेजा सो भी पूरा नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने में भी आप झंझट बतलाते हैं। वाह साहब! ...ना कैसे देंगे। आपको पूरा लेख भेजना पड़ेगा। ...पसन्द आवेगा तो आप अपने "उपकारी" में छाप ...लिएगा।

भवदीय—
म० प्र०

(२२)

दौलतपुर
डाकघर—भोजपुर
रायबरेली
१६-७-०८

...णाम,

...आजकल हम अपने जन्म-ग्राम में हैं। ४ अगस्त ...कानपुर जाने का विचार है। आपका कृपा-पत्र ...ला। समीचीनार्थक पद्यों के लिए धन्यवाद।

...वे National गीत हम सरस्वती में न छापेंगे। ...आजकल की राजनैतिक स्थिति आपसे छिपी नहीं है। ...लेक को सूचना दे दीजिएगा।

...और सब कुशल है। पानी थोड़ा यहाँ भी बरसा ...कृपा पूर्ववत् बनी रहे, यही प्रार्थना है।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

(२३)

जुही—कानपुर
६-८-०८

...णाम,

...के डाला शर्मा जी को।

...अच्छा किया। सरस्वती को गालियाँ दे देकर ...र हो गये थे। सो, आपने उन्हें गीदड़ बनाने का ...क्रम किया है।

...आषाढ़ के "परोपकारी" में आपके लेख को पढ़कर ...जी पर हमें बड़ी दया आई है।

...कृपा करके राजवैद्य पं० रामदयालु जी से कोई ...रामबाण दवा शर्म्मा जी को भिजवाइए। ...आपका लेख पढ़कर शर्म्मा जी को ज्वर आये बिना ...रहेगा।

विनीत महावीरप्रसाद

(२४)

जुही—कानपुर
१६-८-०८

प्रणाम,

१४ का कृपा-पत्र मिला, जवाब मुख्तसिर देंगे। पं० गिरिधर शर्मा (झालरापाटन) आज हमारे यहाँ पधारे हैं। उनके साथ अभी शहर जाते हैं। यही कारण है।

चित्र के लिए प्रेस को लिख दिया। तैयार होने पर आप "शङ्कर" के करकमलों से कविता लिखा दीजिएगा। उन्होंने "हिजड़े की मजलिस" नाम की कविता भेजी है। उसके छापने में हमें पस व पेश है। इससे शायद वे कुछ नाराज़ हो जायँ। एक बात सुनकर आश्चर्य हुआ। भक्त-राम बी० ए० को क्यों उभार रहे हैं?

वे तो आपके पास के बैठनेवाले हैं। किसी का कुछ किया न होगा। आप डरिएगा नहीं। वहाँ की नौकरी कौन लाख टके की है। जहाँ तक सम्भव होगा आपके पद्य सितम्बर में निकाल देंगे। हमें आपके श्लोक देने में उज्र नहीं। पर याद रखिए संस्कृत-श्लोकों के ज्ञाता एक ही दो हैं। आप अपना-सा हाल स.का न जानें। आपका इस बार का पद्य अशुद्ध छप गया इसका खेद है।

शङ्कर जी की कविता के संग्रह के बारे में फिर लिखेंगे।

उनकी कविता हमारे सचित्र "कविताकलाप" में निकल जाने दीजिए, फिर देखा जायगा।

सतसई की आलोचना आपको पहले सब भेजनी होगी। हम आपके सब प्रणयानुरोधों की रक्षा करते आये हैं। आपको भी हमारे इस अनुरोध की रक्षा करनी होगी।

"भू भ्रमण खण्डन" नहीं देखा।

बाणभट्ट का काम हो गया हो तो लौटाइएगा।

विनीत म० प्र०

(२५)

जुही—कानपुर
२१-८-०८

प्रणाम,

कृपा-कार्ड १-८ का मिला।

शङ्कर जी के पास कई चित्र कोई एक वर्ष से पड़े हैं। एक पर भी कविता नहीं लिखी। उर्म्मिला पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुरन्त लिख देंगे, यह कैसे आशा की जा सकती है ? हमने उन्हें लिख दिया है कि चित्र में वही भाव रक्खा जायगा जो आपकी कविता में होगा। आप पहिले कविता लिखिए।

"सतसईसंहार" थोड़े में पूरा करके भेजिए। हम उसे यथासम्भव शीघ्र छापना शुरू करेंगे। "परोपकारी" के बदले "सरस्वती" मिलती है या नहीं ?

भवदीय—
महावीर

(२६)

जुही—कानपुर
२४-९-०८

विनयपूर्वक निवेदनमिदम्।

ला० हरिश्चन्द्र जी आज मिले। कुछ पुड़ियाँ दीं। ४-५ दिन से हमने जल-चिकित्सा फिर शुरू की है। उसका परिणाम देखकर यह दवा खायँगे। "बाणभट्ट" मिल गया। "शङ्कर" जी को हमारी तरफ़ से धन्यवाद दीजिएगा। गौरीशङ्कर जी को सरस्वती भेजने के लिए लिख देंगे। "प्रचारक" में यदि कोई सप्रमाण, साधार, और तर्क-संगत बात हो तो कृपा करके अपनी कापी का कटिङ्ग आप ही भेज दीजिए। यदि प्रलाप मात्र हो तो जाने दीजिए।

तबीअत हमारी अभी तक वैसी ही है। घंटे आध घंटे रात को मुश्किल से नींद आती है। लाला हरिश्चन्द्र से आपकी बहुत बातें होती रहीं।

न मालूम आपके अब कब दर्शन हों।

विनीत
महावीर

(२७)

जुही—कानपुर
११-१०-०८

प्रिय पंडित जी महोदय,

जिस समय हमारे पत्र के विस्तृत उत्तर की ज़रूरत थी उस समय आपकी आँख उठ आई। सुनकर दुःख हुआ। हमारा दुर्भाग्य !

खूब किया जो आपने नोट दिया। क्षमा माँगने की क्या ज़रूरत। आप जिस समाज में हैं उसकी सी भी तो कुछ करना चाहिए।

जब वह लेख "आर्य्यमित्र" न छापेगा तब देखा जायगा। हमारे पूर्व पत्र का विस्तृत उत्तर, जो कोई आपके सामाजिक हानि न हो तो, शीघ्र भेजिएगा। हम अपने अभियोक्ताओं को सहज में नहीं छोड़ना चाहते। अतएव ८ आक्टोबर के आर्य्यमित्र से लेकर आगे जो कुछ हमारे विरुद्ध उसमें निकले कृपा करके पूरा पत्र भेजते जाइए। इतनी चीज़ें और भी हमें भेजिए। (१) फाल्गुन का परोपकारी (२) शिक्षामञ्जरी (३) बी० एन० शर्मा की और किताबें जो आपके पास हों (४) १६ जून का आर्यमित्र जिसमें बी० एन० ने आपकी आलोचना का जवाब दिया है। (५) बी० एन० की अपील (६) पं० बाबूराम शर्म्मा की किताब (रामायण की भूमिका या और जो नाम हो)।

इस कष्ट को क्षमा कीजिएगा।

विनीत—
महावीरप्रसाद

(२८)

जुही, कानपुर
१८-१०-०८

प्रणाम !

१६ का कार्ड मिला। फाल्गुन का परोपकारी मिला। थैंक्स।

कल आपको हम पत्र भेज चुके हैं। ये महापुरुष दयालु चौबे कौन हैं ? हम नहीं जानते। याद पड़ता कभी देखा हो। साथ रहना तो दूर रहा।

आपने खूब जवाब दिया, शान्ति तो खड्ग होती क्षमा भी होती है :—

"क्षमाखड्ग करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति"।

धर शर्मा जी का पत्र दो महीने बाद आया है।

देरी के लिए हमने उलाहना दिया है।

महावीर

(२९)

जुही, कानपुर
३०-११-०८

प्रणाम !

३ हफ़्ते के बाद परसों कानपुर लौटकर २० नवम्बर का आपका पत्र मिला। अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है अच्छी है। पर नींद न आने की शिकायत बनी हुई है।

२२ नवम्बर को आगरे के बा० श्रीराम एक वहीं के वकील साहब के साथ हमसे लखनऊ में मिले थे। दूसरे दिन पं० भगवानदीन मिश्र से भी हमारी मुलाक़ात हुई। समाज के जलसे में हमारे कई एक आर्य्य-मित्र भी आये थे। वे भी मिले। सबने बी० एन० शर्म्मा और "आर्य्यमित्र" पत्र के लेखों और पालिसी को धिक्कारा। मिश्र जी ने हमसे क्षमा का मसविदा लिया, और कहा कि ७ नवम्बर को हम आपको खबर देंगे कि यह क्षमापत्र आर्य्यमित्र में छपेगा या नहीं। परन्तु आज तक उनका उत्तर नहीं आया। एक हफ़्ता ठहरने के बाद अब हम नालिश दायर किये बिना नहीं रह सकते। विवश हैं। मिश्र जी कहने लगे कि यदि हम बाबूराम को बरखास्त कर दें और आर्य्यप्रतिनिधिसभा की ओर से क्षमा-पत्र छाप दें तो आप संतुष्ट हो जायँगे या नहीं? हमने कहा प्रतिनिधिसभा से हमारा कोई झगड़ा नहीं। इससे उसकी क्षमा-प्रार्थना से हमारे चरित की निष्कलङ्कता साबित न होगी। जिन्होंने हमें गालियाँ दी हैं और हम पर मिथ्या दोष लगाये हैं, उन्हें क्षमा माँगनी चाहिए। हाँ, यदि सभा समझती हो कि बाबूराम ने अन्याय किया है तो वह उन्हें बरखास्त कर सकती है।

पं० दामोदरप्रसाद का कार्ड पढ़ा। १६ नवम्बर का आर्य्यमित्र भी पढ़ा। अब तक हमारी आर्य-समाज से बड़ी सहानुभूति थी, पर नरदेव शास्त्री ऐसे पंडितों के इस तरह के लेख पढ़कर अब इस समाज से हमें घृणा हो रही है। क्षमा कीजिए। हम न जानते थे कि पढ़े जन भी इतने सङ्कीर्ण-हृदय होते हैं। और त-अस्सुब की आग में इतने जल-भुन सकते हैं।

यदि कोई विशेष कारण न हो तो आप आर्य्यमित्र की सम्पादकता स्वीकार कर लीजिए। आपके कारण उसकी कायापलट हो जायगी। पढ़नेवालों का वह आदर-पात्र हो जायगा। आपके आगरे आने से हम भी शायद कभी कभी आपके दर्शनों का लाभ उठा सकेंगे।

लाला हरिश्चन्द्र कहते थे कि आप और आपके मित्र नरदेव शास्त्री जी आदि मिलकर एक प्रेस करना चाहते हैं।

यदि ऐसा हो तो बहुत ही अच्छी बात है। इस दशा में इंडियन प्रेस या आर्यभास्कर प्रेस की नौकरी करना अभीष्ट नहीं।

तज़करे हज़ारदास्ताँ वाला नोट हमने "ज़माने" में उसका रिव्यू पढ़कर ही लिखा है।

पुस्तक हमने नहीं देखी।

विनीत—
महावीरप्रसाद

क्यों?

लेखक, श्रीयुत सागरसिंह नागर

क्या-क्या जीवन में देख चुका,
जीवन-रहस्य बतला दूँ क्यों?
स्वप्नों में किससे प्यार किया,
वह चित्र तुम्हें दिखला दूँ क्यों?

दो रजत करों में देखी थी,
चंचल गति औ' चंचल रेखा,
कैसे बतला दूँ ज्ञात नहीं—
मैंने जीवन में क्या देखा?

दो करुण पुकारों में देखी,
जीवन-वियोग की रात एक।
मधु प्रेम या कि मधु मृत्यु यही,
थी जीवन में बस बात एक।

कैसे-कैसे हो गया अन्त,
मधु-सर्ग बताऊँ वह क्योंकर!
तुम जान न पाओगे, अजान!
मैं सिसक न पाई क्यों पल भर!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

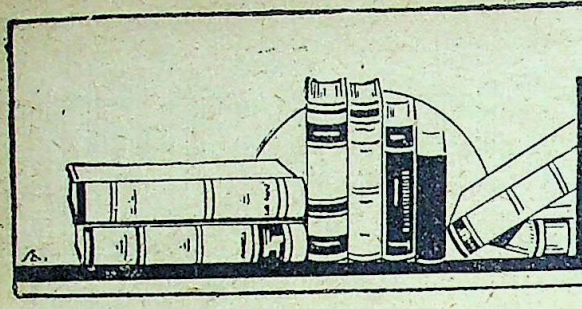

नई पुस्तकें

१--**कांग्रेस का इतिहास**--लेखक, श्रीयुत सीताराम गुंठे और प्रकाशक, पापुलर पब्लिशर्स, इलाहाबाद हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या १२४ और मूल्य ॥) है।

इस पुस्तक का विषय नाम से स्पष्ट है। इससे पूर्व कांग्रेस के और भी कई इतिहास निकल चुके हैं जिनमें डाक्टर पट्टाभि सीतारामैया का इतिहास सर्व-प्रसिद्ध है। पर मूल्य अधिक होने के कारण सर्व-साधारण उसका संग्रह नहीं कर सकते। यह पुस्तक इस दृष्टिकोण से अच्छी है। भाषा सरल तथा रोचक है। पढ़ने में उपन्यास का-सा मज़ा आता है। हमें आशा है कि यह पुस्तक स्वाधीनता-प्रेमियों और साहित्य-प्रेमियों के निकट समान आदर पायेगी। तीन-चार चित्रों के संकलन और नेहरू जी द्वारा लिखित प्रस्तावना ने पुस्तक की उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है।

२--**सत्य हरिश्चन्द्र नाटक**--संपादक, अध्यापक श्रीयुत विश्वनाथप्रसाद मिश्र, एम० ए०, प्रकाशक, सरस्वती-मंदिर, काशी हैं। पृष्ठ-संख्या, ४२ + ८२ + ३८, छपाई-सफ़ाई अच्छी और मूल्य ।=) है।

भारतेन्दु जी लिखित नाटकों में सत्य हरिश्चन्द्र का स्थान प्रमुख है। यह नाटक हिन्दी की अनेक परीक्षाओं में पाठ्य-पुस्तक है। इस संस्करण में विद्वान् सम्पादक ने मूल नाटक के साथ ४२ पृष्ठों की टिप्पणियाँ जोड़ दी हैं जिनमें नाट्यशास्त्र के मूल सिद्धान्तों के साथ-साथ सत्य हरिश्चन्द्र के ऐतिहासिक आधार व साहित्यिक उत्कर्ष की विवेचना भी की गई है। अंत में ३८ पृष्ठों में शब्दार्थ व भावार्थ भी दिये गये हैं। इस प्रकार यह पुस्तक विद्यार्थियों व साहित्य-रसिकों के लिए उपयोगी बन गई है।

३--**हिन्दी-पद्य-पीयूष**--संग्रह-कर्त्ता, पंडित चारुदेव शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०, प्रकाशक, श्री मेहरचन्द-लक्ष्मणदास, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या २१६ और मूल्य १॥) है।

इसमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर इधर के कुछ कवियों के संक्षिप्त जीवन-चरित देते हुए उनकी कविताओं के उदाहरण संकलित किये गये हैं। यह संग्रह पाठ्य-पुस्तक बनने के उद्देश्य से किया गया जान पड़ता है। अन्त में शब्दार्थ-कोष भी दे दिया गया है।

जहाँ इस संग्रह में कुछ नितान्त अप्रसिद्ध कवियों को भी स्थान मिल गया है, वहाँ हिन्दी के तीन परिवर्तनकारी कवियों को स्थान न मिलना आश्चर्यजनक है। 'प्रसाद' जी हिन्दी-कविता की नई धारा के प्रवर्तक माने जाते हैं। उन्होंने हिन्दी-साहित्य को जो कुछ दिया है और सम्भवतः उन सभी कवियों से अधिक दिया है जिनका उल्लेख इस संग्रह में हुआ है। आधुनिक हिन्दी-युग में बाबू मैथिलीशरण गुप्त का जो स्थान है उसे कौन नहीं जानता? उनकी सुन्दर रचनाओं को निकाल देने से इधर के हिन्दी के काव्य में शेष क्या रह जाता है? 'निराला' जी भी 'इस नये वसंत के अग्रदूत' माने जाते हैं।

इन तीनों नेता कवियों की उपेक्षा करके शास्त्री एम० ओ० एल० महोदय ने न केवल हिन्दी-साहित्य के प्रति अपनी अनभिज्ञता का परिचय दिया है, बल्कि इस संग्रह को भी व्यर्थ, अनुपयोगी व अनावश्यक बना दिया है। लाहौर के उत्साही प्रकाशक श्री मेहरचन्द-लक्ष्मणदास जी को चाहिए कि वे केवल विज्ञापनों या संग्रहकारों के पुछल्लों को देखकर ही उन्हें पाठ्य-पुस्तकों के उपयुक्त संकलनकर्ता न मान लिया करें, कभी-कभी भी देखा करें कि उक्त विषय के प्रति उनकी जानकारी कितनी है। संग्रह के अन्त में 'पँखुरियाँ' शीर्षक कुछ नये और अप्रसिद्ध कवियों की रचनाओं को [illegible] किया गया है। इसका अभिप्राय समझ में न आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या तो ये लोग सम्पादक जी की मित्र-गोष्ठी के होंगे या कुछ और कारण होगा; अन्यथा इन्हें और इनकी अही तुकबन्दियों को इस संग्रह में ठूँसने का प्रयत्न क्यों किया गया, और वह भी 'प्रसाद', 'गुप्त' और 'निराला' जैसे महाकवियों की उपेक्षा करके!

यह संग्रह हिन्दी के पाठकों और छात्रों को गुमराह कर सकता है।

४-८—**'प्रगतिशील पुस्तकालय' बाँकीपुर—पटना की ५ पुस्तकें—**

(१) जमींदारी क्यों उठा दी जाय?

(२) कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलों ने किसानों के लिए क्या किया?

(३) बकाश्त की लड़ाई—

तीनों के लेखक स्वामी सहजानन्द सरस्वती हैं। प्रत्येक मूल्य =) है। विषय नाम से ही स्पष्ट हैं। देश के प्रान्तों में जागृति लाने के लिए यह साहित्य उपयोगी है।

(४) हुंकार—लेखक, श्रीयुत 'दिनकर' हैं। पृष्ठ-संख्या १०६ और मूल्य ।।।) हैं। छपाई-सफ़ाई उत्तम है।

इसका 'हुंकार' नाम सर्वथा सार्थक है। वस्तुतः इसमें सर्वत्र हुंकार ही हुंकार है। 'दिनकर' जी का स्थान राष्ट्रीय कवियों में उच्च है। एक आदर्श नवयुवक की भाँति आपकी 'अँगड़ाई में भूचाल श्वास में लंका के पचास पवन' वास किया करते हैं। इसमें लेखक की ३१ कवितायें संगृहीत हैं, जिनमें कुछ के शीर्षक ये हैं—

असमय-आह्वान, हाहाकार, अनन्त-किरीट, नई-दिल्ली के प्रति, तक़दीर का बँटवारा, पराजितों की पूजा एवं विजय-यात्रा आदि।

काव्य के कुछ नमूने देखिए—

भूमिका में कवि कहता है—

"दो बच्चों का घोष, विकट सङ्घात धरा पर जारी है,
चक्रवात-रेणु चुन स्वप्न सजा लो, छिटक रही चिनगारी है।
हनुमान की जय, अभीत हो, खुलकर, दिल की पीर बजे,
एक राग मेरा भी रण में, बन्दी की जञ्जीर बजे।
चाहे उठीं दीन कृषकों की, मजदूरों की तड़प पुकारें,
अरी! ग़रीबों के लोहू पर, खड़ी हुई तेरी दीवारें।"

आगे कवि कहता है—

"यही शान्ति गरदन कटती हो; पर हम अपनी जीभ न खोलें?
यही शान्ति वे मौन रहें, जब आग लगे, उनकी काया में।
वे भी यहाँ दूध से जो, अपने कुत्तों को नहलाते हैं,
ये बच्चे भी यहीं क़ब्र में, दूध-दूध जो चिल्लाते हैं।"
पिलाने को कहाँ से, रक्त लायें दानवों को?
नहीं क्या स्वत्व है, प्रतिशोध का हम मानवों को?
ज़रा तू बोल तो, सारी धरा हम फूँक देंगे,
पड़ा जो पन्थ में गिरि, कर उसे दो टूक देंगे।"

और सुनिए—

"हाय! छिनी भूखों की रोटी, छिना नग्न का अर्द्ध वसन है,
मजदूरों के कौर छिने हैं, जिन पर उनका लगा दसन है"।

(५) लालतारा—लेखक, श्रीयुत रामवृक्ष 'बेनीपुरी' हैं। पृष्ठ-संख्या १२० और मूल्य ।।।) हैं।

इसमें श्रीयुत बेनीपुरी की १८ कहानियाँ संगृहीत हैं। लेखक को सरल भाषा के भीतर भारी भाव भरने में अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। सभी कहानियाँ प्रगतिशील मनोभावना से सम्बन्ध रखनेवाली हैं। कला की दृष्टि से भले ही इन कहानियों का कुछ मूल्य न हो पर साम्यवादी विचारों के प्रचार में इनसे अवश्य सहायता मिलेगी। यही इस पुस्तक की उपयोगिता है।

—दयावान्

९-११—पटना-पब्लिशर्स, पटना, की ३ पुस्तकें—

(१) रानी भवानी (ऐतिहासिक नाटक) लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा हैं। छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या ८५ और मूल्य ।।=) हैं।

यह एक अभिनेय नाटक है। इसका अभिनय ३ घंटे में समाप्त हो सकता है। कथानक का आधार ऐतिहासिक है।

इसमें मुर्शिदाबाद के नवाब अलीवर्दी खाँ के द्वारा नाटोर के राजा रमाकान्त का राज्यच्युत किया जाना तथा राजा की रानी भवानी का प्रबल प्रयत्न से पुनः गद्दी को हथियाना और अपने अस्तव्यस्त राज्य एवं अपने विलास-विह्वल राजा का सुधार करना आदि का उल्लेख किया गया है। उस समय की रहन-सहन का इसमें अच्छा चित्रण हुआ है। नाट करोचक भी है और अभिनेय भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) सुदामा—(पौराणिक नाटक)—लेखक, पण्डित किशोरीदास वाजपेयी हैं। पृष्ठ-संख्या ९६ और मूल्य ।।) है।

सुदामा का भी स्टेज में अभिनय हो सकता है। ये एक पौराणिक पात्र हैं। भारतीय साहित्य में कृष्ण के सखा सुदामा पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है; परन्तु सुदामा को राजनैतिक नेता बना देना लेखक की सुन्दर सूझ है। सुदामा को चरित-नायक बनाकर राजनैतिक पुट दे दी गई है, इस प्रकार यह पुराना विषय इस राजनैतिक युग के उपयुक्त हो गया है।

(३) विकास—यह एक सामाजिक उपन्यास है। इसके लेखक २-३ उपन्यास और लिख चुके हैं। उनका 'विदा' उपन्यास हिन्दू-विश्वविद्यालय के बी० ए०, एम० ए० के कोर्स में पाठ्य पुस्तक है। 'विकास' में भी उनकी सफलता सुलभ हुई है। भाषा शुद्ध हिन्दी एवं शैली सुन्दर है। हाँ, वर्णन विशेष विस्तृत होने से कहीं-कहीं अरुचिकर-सा हो जाता है। उपन्यास अच्छा है और उपन्यास-प्रेमियों के लिए पठनीय है। इसके लेखक श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव हैं। दोनों भागों की पृष्ठ-संख्या कुल ६२९ और मूल्य ४) है।

—'चन्द्र'

१२-१४—गङ्गा-ग्रन्थागार लखनऊ की ३ पुस्तकें—

(१) जागरण (राष्ट्रीय उपन्यास)—लेखक, ठाकुर श्रीनाथसिंह पृष्ठ-संख्या ४१५ और मूल्य २) है।

(२) दाम्पत्य जीवन—(विवाहित युवकोपयोगी) लेखक, श्रीयुत रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०, एल-एल० बी०, छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या १३५ और मूल्य १) है।

(३) मन्दार (कविता-संग्रह)—लेखक, श्री गिरिजाशंकर मिश्र 'गिरीश', छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या १२६ और मूल्य १) है।

'जागरण' का नाम सर्वथा सार्थक है। प्रायः प्रत्येक पात्र एवं घटनाक्रम में जागरण ही जागरण जगमगा रहा है। इस उपन्यास-युग में अनेकानेक उपन्यासों का उद्भव हो रहा है; पर ऐसे राष्ट्रीय उपन्यासों की आज भी अधिकता नहीं प्रत्युत अभाव ही-सा है।

ठाकुर साहब की लब्धप्रतिष्ठ लेखनी इस अभाव का अभाव दूर करने में सर्वथा सफल हुई है। विविध विषयों का वर्णन बहुत ही वास्तविक बन पड़ा है, पर कहीं-कहीं घटना-क्रमों को प्रभावोत्पादक बनाने की धुन में अत्युक्ति अतिरञ्जना हो गई है अतः स्वाभाविकता में शैथिल्य आ गया है। रूढ़ियों को तो ठाकुर साहब की कलम कुठार की ही तरह काटती है। राष्ट्रीय दृष्टि-कोण को आद्यन्त निर्वाह करते हुए राष्ट्र की वर्तमान प्रमुख समस्या ग्राम-सङ्गठन की ओर अधिक झुकाव रक्खा है।

दाम्पत्य-जीवन—इसमें पति-पत्नी सम्बन्ध की शिक्षायें हैं। विवाहित युवकों के लिए यह उपयोगी है पर भूमिका में जैसा दावा किया गया है कि—'इतने अधिक पुस्तकें पढ़ कर लिखी गई है, वैसी जँचती नहीं। जहाँ आचरण गिनाये जाने लगे हैं, वहाँ अरुचि चिल्ला उठी है। फिर भी केवल-गुण-ग्राहक व संयमशील युवक प्रस्तुत पुस्तक से पर्याप्त लाभ उठा सकते हैं।

मन्दार—इसमें 'गिरीश' जी की छोटी-बड़ी ३५ कविताओं का संग्रह है। गाथा के इस आधुनिक युग में भी पद्य-गद्य-पुस्तकें पर्याप्त प्रकाशित हो रही हैं, जिससे राष्ट्र-भाषा के भाण्डार को लाभ ही है।

'गिरीश' जी अपनी शैली में सफल हुए हैं और उनकी उत्प्रेक्षा-अलङ्कार पर अधिकार-सा है।

पद्य-प्रेमी आशा है, इस पुस्तक का आदर करेंगे।

—चन्द्रकीर्तिसिंह

१५—रंजीतसिंह—लेखक, श्रीयुत सीताराम कोहली और अनुवादक, श्रीयुत रामचन्द्र टंडन हैं। प्रकाशक हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या ३१० और मूल्य १) है।

प्रोफ़ेसर सीताराम कोहली, एम० ए०, सिक्ख इतिहास के विशेषज्ञ माने जाते हैं। उन्होंने उर्दू में महाराज रणजीतसिंह की एक जीवनी लिखी थी; प्रस्तुत पुस्तक उसी पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद है। इसमें पंजाब-केसरी महाराज रणजीतसिंह की विस्तृत जीवनी दी गई है। छात्रों व इतिहास-प्रेमियों के लिए पुस्तक उपयोगी है।

१६—पुरुषोत्तम—लेखक, श्री तुलसीराम 'दिनेश' और प्रकाशक, मीरा-मन्दिर, बम्बई हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या २७२ और मूल्य २) है।

यह पुस्तक महाकाव्यों की शैली पर लिखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। नायक कृष्ण हैं। उन्हीं का चरित 'पुरुषोत्तम' के रूप में इसमें अंकित किया गया है। कथा का आरम्भ कृष्ण के मथुरा जाने और वहाँ कंस आदि को मारने से होता है और अन्त दूत-कृष्ण के हस्तिनापुर से लौट कर पाण्डवों के पास पहुँच जाने पर। इसके पश्चात् महाभारत के नेता और पाण्डवों के पल-पल पर सहायक कृष्ण के रूप का चित्रण इसमें नहीं किया गया है; सम्भवतः पाञ्चजन्यधारी, अनेक अस्त्रों को निगल जाने-वाले और महाभारत-काल में अनोखे शौर्य के प्रदर्शन करनेवाले कृष्ण कवि के 'पुरुषोत्तम' शब्द की सीमा में नहीं आते थे। भाषा कुछ तत्समता प्रधान है, पर कविता सुन्दर और भावमयी है। पात्रों का चरित्र-चित्रण भी कुछ नवीनता लिये हुए है। दो-तीन सुन्दर कलापूर्ण चित्र भी दिये गये हैं। सब मिलाकर पुस्तक पठनीय है। बम्बई का मीरा-मन्दिर कविताओं के संग्रह-पुस्तकों के इस युग में 'निबन्ध-काव्य' को प्रकाशित करने का साहस करने के लिए प्रोत्साहन का पात्र है।

१७—**किरण**—रचयिता, श्री गोपेश और प्रकाश हैं। मुद्रक व प्रकाशक, प्रेम-प्रेस, प्रयाग है। छपाई-सफ़ाई मामूली, पृष्ठ-संख्या ११६ और डायरी साइज की पुस्तिका का मूल्य ।।।) है, जो बहुत अधिक है।

इसमें दो नवयुवक कवियों की रचनायें संगृहीत हैं। भाषा, भाव व शैली सभी में 'नवयुवकता' है। अभी सुधार की काफ़ी गुंजायश है—छन्दों में भी और भाषा में भी। आशा है कि ये ही कवि आगे चलकर वाग्देवी को कुछ सुन्दर मालायें भी भेंट करेंगे।

१८—**धधकती ज्वाला**—लेखक, श्रीयुत उमाशंकर लाल श्रीवास्तव प्रकाशक, भारत-पुस्तक-भवन, सैदपुर, गाजीपुर हैं। छपाई मामूली, पृष्ठ-संख्या ११२ और मूल्य ।।।) है।

यह एक साधारण कोटि का सामाजिक उपन्यास है। कथानक रोचक है, पर ढंग पुराना है।

१९—**पिंगल-प्रवेशिका**—लेखक, बाबू प्यारेलाल कृष्ण। प्रकाशक, सीताराम बुकसेलर अलीगढ़ हैं। छपाई-सफ़ाई मामूली, पृष्ठ-संख्या १६७ और मूल्य ।।।) है।

इसमें हिन्दी व उर्दू के प्रसिद्ध छन्दों के लक्षण व उदाहरण दिये गये हैं। भाषा सरल व सुबोध है। आरम्भिक विद्यार्थी इस पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं।

२०—**धर्मवीर-सुदर्शन**—लेखक, श्री मुनि अमर, प्रकाशक श्री वीर पुस्तकालय, लोहामंडी, आगरा हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या १०४ और मूल्य ।-) है।

इसमें जैनियों के एक धर्मात्मा सुदर्शन जी का पद्य-बद्ध चरित लिखा गया है। कविता की दृष्टि से पुस्तक साधारण होते हुए भी जैन-समाज के निकट अवश्य आदर की वस्तु होगी।

२१—**श्रीमद्राजचन्द्र**—अनुवादक और सम्पादक, पंडित जगदीशचन्द्र शास्त्री, एम० ए० हैं। प्रकाशक, श्रीयुत सेठ मणीलाल, रेवाशंकर जौहरी, श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, बम्बई हैं। छपाई-सफ़ाई उत्कृष्ट, पृष्ठ-संख्या ८७४ और मूल्य ६) है।

गुजरात के मौर्वी राज्य में श्री राजचन्द्रनामक एक प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं। जैन-धर्मावलंबियों में इनकी अच्छी प्रख्याति है। सम्पादक इन्हें पच्चीसवें तीर्थंकर बतलाते हैं। इन्हीं के विविध लेखों, पत्रों व प्राइवेट डायरी आदि का संग्रह इस बृहदाकार ग्रन्थ में किया गया है। पुस्तक जैनियों व मुमुक्षुओं के लिए संग्रहणीय है। साधारण गृहस्थ भी इसके उपदेशामृत से कुछ ज्ञान व शान्ति का लाभ कर सकते हैं।

२२—**सिद्धान्त-रहस्य**—लेखक, श्री स्वामी जी महाराज हैं। प्रकाशक, श्री लोकेन्दु-साहित्य-मंडल, दतिया है। छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या ९४ और मूल्य ।।।) है।

वादी और प्रतिवादी शास्त्रार्थ के अनन्तर जिस निर्णय पर पहुँचते हैं उसे 'सिद्धान्त' कहते हैं। हिन्दू-धर्म-शास्त्र ऐसे ही सिद्धान्तों का समन्वय है। इस पुस्तक में 'सिद्धान्तों' की विवेचना की गई है और बहुत से लोको-पयोगी सिद्धान्त संग्रह भी किये गये हैं। पुस्तक का विषय प्रधानतः आध्यात्मिक है, और यह उसी प्रकार के साहित्य-पाठकों के काम की भी है।

२३-२४—**सुख-संचारक कम्पनी मथुरा की दो पुस्तकें**—

(१) **चच्चा-बच्चा**—लेखिका, श्री ज्ञानकुमारी शर्मा हैं। पृष्ठ-संख्या ७४ और मूल्य ।) है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें जनन-विज्ञान और शिशु-पालन पर थोड़ा-सा प्रकाश डाला गया है। गृहस्थों के लिए यह सस्ती व उपयोगी पुस्तक है। बाल-रोगों की चिकित्सा-सम्बन्धी प्रकरण विशेष उपयोगी नहीं बन पड़ा; शायद इसका कारण लेखिका की एतद्विषयक अनभिज्ञता है।

(२) याद रक्खो--संग्रहकर्त्ता पंडित मदनमोहन शर्मा हैं। पृष्ठ-संख्या १३४ और मूल्य ।) है।

इस पुस्तक में ऐसी शिक्षायें संकलित की गई हैं जिन्हें याद रखने से बड़ा लाभ हो सकता है। साथ ही बीच बीच में कम्पनी की दवाओं का विज्ञापन भी किया गया है। विज्ञापन करने का यह भी एक सफल ढंग है।

२५--Bhawani Dayal Sanyasi--लेखक, श्रीयुत प्रेमनारायण अग्रवाल एम० ए० और प्रकाशक, दि इंडियन कलोनियल एसोशिएशन, अजीतमल, इटावा, यू० पी० हैं। मूल पुस्तक की पृष्ठ-संख्या १८० और परिशिष्ट की ४२ है। मूल्य १।।।) है।

श्रीयुत भवानीदयाल संन्यासी ने दक्षिण-अफ़्रीका के प्रवासी भारतीयों की सेवा में अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्हीं की जीवन की घटनाओं, उनकी प्रवासी भारतीयों की सेवाओं तथा बृहत्तर भारत की समस्याओं का विशद वर्णन है। श्रीयुत अग्रवाल जी स्वयं इंडियन कलोनियल एसोसिएशन के मंत्री हैं और उन्होंने प्रवासी-समस्या का काफ़ी अध्ययन किया है। अतः इस विषय पर लिखने के वे अधिकारी हैं। पुस्तक की भाषा सरल, तथा काग़ज़ और छपाई सुन्दर है।

२६--भूषण-विमर्श--लेखक, श्री भगीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न और प्रकाशक सरस्वती-प्रकाशन-मन्दिर, इलाहाबाद हैं। परिशिष्ट को मिलाकर पृष्ठ-संख्या ३०४ और मूल्य १।) है।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में जिन कवियों के विषय में भ्रान्तियाँ और मतभेद प्रचलित हैं उनमें कविवर भूषण भी एक हैं। श्रीयुत दीक्षित जी ने भूषण-विषयक प्रचलित धारणा को भंग करते हुए नागरी-प्रचारिणी पत्रिका आदि सामयिक पत्रों में कुछ काल पहले एक आन्दोलन खड़ा किया था। पुस्तक को पढ़ने से मालूम होता है कि लेखक ने अपने मत की पुष्टि करने के लिए काफ़ी परिश्रम किया है। हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थियों तथा इतिहास-लेखकों को दीक्षित जी के द्वारा उपस्थित की गई समस्याओं पर निष्पक्ष भाव से विचार करना चाहिए। भाषा और शैली में कुछ और वैज्ञानिकता विषय के अधिक अनुकूल रहती।

२७--साहित्यिकी--लेखक, श्रीयुत शान्तिप्रिय द्विवेदी, प्रकाशक, ग्रन्थमाला कार्यालय, बाँकीपुर हैं। पृष्ठ-संख्या २५६ और मूल्य १।।) है।

इस पुस्तक में २६ साहित्यिक निबन्ध संगृहीत हैं। प्रायः सभी निबन्ध आलोचनात्मक हैं। निबन्धों की शैली रोचक, एवं विचारपूर्ण है। निबन्धों को पढ़कर पाठक को न केवल मस्तिष्क का भोजन मिलता है वरन उसे हृदय को स्पर्श करनेवाली भावुकता भी। द्विवेदी जी के निबन्धों की यही विशेषता है।

२८--जीवन-यात्रा--लेखक और प्रकाशक उपर्युक्त, पृष्ठ-संख्या १४८ और मूल्य ।।।=) है।

मानव-जीवन की विविध समस्याओं पर विचार-पूर्ण एवं भावुक शैली में लिखे गये १७ निबन्धों का यह संग्रह है। लेखक का दृष्टिकोण तथाकथित भारतीय है। वह सरल, त्यागमय और सेवामय जीवन का हिमायती जान पड़ता है। पुस्तक रोचक और पठनीय है।

२९--क्रांतिकारी कार्ल मार्क्स--लेखक, स्वर्गीय श्रीयुत लाला हरदयाल एम० ए०, अनुवादक स्वर्गीय श्रीयुत वृजमोहन वर्मा और प्रकाशक 'विशाल भारत' पुस्तकालय, १२०।२, अपर सरक्यूलर रोड, कलकत्ता हैं। पृष्ठ-संख्या ७० और मूल्य ।।) है।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों ने मनुष्य के सामाजिक जीवन में एक भीषण क्रान्ति का सूत्रपात किया था। आज उसके सिद्धान्त विश्व-व्यापी हो रहे हैं। प्रसिद्ध भारतीय क्रान्तिकारी स्वर्गीय लाला हरदयाल जी ने बड़े सुन्दर ढंग से संक्षेप में ऋषि मार्क्स के त्यागमय जीवन का विवरण किया है। अनुवाद की भाषा भी रोचक है। मार्क्स के बाद शीर्षक भाग में मार्क्सवाद और वर्गवाद के विकास का संक्षिप्त इतिहास देकर अनुवादक ने पुस्तक की उपादेयता बढ़ा दी है। पुस्तक पठनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३०—शेफाली—लेखक, श्रीयुत राजेश्वर गुरु, प्रकाशक, सरस्वती-प्रकाशन-मन्दिर, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या ६० और मूल्य १।) है।

प्रस्तुत कविता-संग्रह से जान पड़ता है कि श्रीयुत राजेश्वर गुरु के सामने कविता का एक सुनहरा भविष्य है। श्री राजेश्वर गुरु शायद हिन्दी की 'रहस्यवादी छायावादी' कविता से अत्यधिक प्रभावित होकर, या शायद कैशोर विस्मय से मुग्ध होकर अभी अपने प्रेम-काव्य का आलम्बन किसी 'कौन?' या 'अनजान' को ही बनाये हुए हैं। पर जिन कविताओं के विषय अधिक हृदयग्राही हैं उनके आधार पर हम कह सकते हैं कि सम्भव है, आगे चलकर ये हिन्दी को कुछ आधुनिक काव्य भी प्रदान करें। भाषा में जहाँ-तहाँ शैथिल्य है। अधिकांश कविताओं का छंद 'मुक्त' है।

३१—कलापी—लेखक, श्रीयुत आरसीप्रसादसिंह और प्रकाशक, श्रीयुत देवकुमार मिश्र, ग्रंथमाला-कार्यालय, बाँकीपुर हैं। पृष्ठ-संख्या २०८ और मूल्य २) है। छपाई और गेट-अप अच्छा है।

प्रेयसी मेरी जो अज्ञात—

विमल ज्योत्स्ना-सी मृदु-मृदु गात;
कल्पना-सी अवदात!

× × ×

उसी के मानस-वन में मुग्ध

× × ×

करे यह बाल-कलापी नृत्य!

विश्व के प्रकृत-सौन्दर्य को काव्य-भावना से अनुप्राणित करके कवि ने उसे कल्पना-प्रेयसी का रूप दिया है। इस अज्ञात कल्पना-लोक की सुन्दरी को समर्पित कवि-भावों में अधिकांश ऐसी हैं, जिनमें कल्पना में सौन्दर्य के छाया-पट पर विविध रंगों के चित्र बनाये हैं, जो कवि की कल्पना के प्रेरक हैं—

सान्द्र, सजल घन!
अम्बर में करते गर्जन;

वह स्वयं कहता है —

निरख व्योम में बादल,
मेरी काव्य-प्रिया ने भी है
किया दृगों में काजल;

अपनी काव्य-प्रिया का रूप-वर्णन भी उसने कर दिया है—

अलकों में मणि-बंधन;
आनन पर अवगुंठन!
कुसुमों में भूषित तन;
चरणों में बजता मृदु नूपुर,
कर-मृणाल में कंकन!

सचमुच उसकी काव्य-सुन्दरी मुख पर झीना-सा अवगुंठन डाले, वासंतिक कुसुमों से विभूषित होकर तथा कोमल कलाइयों में कंकन और पगों में नूपुर बाँधे हुए कल्पना के इन्द्र-धनुषी-गगन में बिहार कर रही है। 'कलापी' का कवि "मेघ-दूत" के चिर-नवीन सौन्दर्य से काफ़ी प्रभावित हुआ है।

छा रहे मेरे गगन में भी
सजीले श्याम जलधर;

× × ×

नाच रे मेरे शिखी तू,
प्रेम का संकेत आया!
स्पर्श यह शीतल किसी का
बादलों की स्निग्ध छाया!

× × ×

हाय मेरे प्राण-वन में
यक्षिणी यह कौन रोती?
खोजती आश्रय दृगों में
कौन यह कातर कपोती?

× × ×

विरहिणी-सी मधुर-स्मृति
किसकी सिसकती, विकल होती?

अन्तर यह है कि जहाँ कालिदास ने विरह की अभिव्यक्ति के लिए अलकापुरी के यक्ष और यक्षिणी की कल्पना की थी, वहाँ 'कलापी' के कवि ने विरह-भावना और उसके आलंबन तथा आश्रय को एक रहस्यमयी कल्पना से जाग्रत् कर दिया है। परन्तु इस कथन का यह अर्थ नहीं कि हम कलापी और मेघदूत की तुलना कर रहे हैं। दोनों में महान् अन्तर है। तात्पर्य केवल यह है कि 'कलापी' का कवि कालि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दास, और उनके काव्य से बहुत प्रभावित है। 'कवि की मृत्यु' में वह कहता है--

बाँध दिया अपने गीतों से अखिल विश्व का अन्तर
एक सूत्र में तुमने, उपमाओं के हे जादूगर!
प्रथम-प्रथम भेजा था तुमने मेघ-दूत को लेकर
प्रणय-मिलन-सन्देश यक्ष का अलका में चिर सुन्दर
दूर प्रिया के पास।

× × × ×
× × × सुधी के चकित
हृदय में जलती अब भी उसी रूप की ज्वाला।
--आदि।

संसार वही है। अब भी मेघ गरजते हैं, और गरज-गरजकर उन्हीं भावनाओं को आन्दोलित करते हैं। पर उनका प्रकाशन कौन करे? प्रकृति के चिर-नवीन सौन्दर्य को कवि-कल्पना से विभूषित करके कौन उसे प्रेयसी का साकार रूप प्रदान करे?

प्रथम वारि-कण नव-वारिद के पड़ते ही पृथिवी पर
जब होकर उच्छ्वसित धरातल के समस्त विरही नर
अश्रु-अर्घ्य लेकर खोजेंगे तुमको उत्सुक लोचन,
कौन सदय तब हाय, करेगा उनका दुःख-विमोचन?
कहाँ गया वह स्वर्ण-काल उज्जयिनी का बल-वैभव
अतुलनीय? × × ×
× × × ×
किस अतीत के अंधकार में लुप्त हुआ वह जीवन?

जिस कवि ने वाल्मीकि और कालिदास के रूप में अवतार लिया था उसे 'कलापी' का कवि आज न पाकर या भविष्य में न पाने की आशंका ही नहीं, विश्वास करके वेदना-व्यथा से कराह उठा है। 'कवि की मृत्यु', की कल्पना अनूठी है!

ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट हो गया होगा कि 'कलापी' का 'कवि' कल्पना-प्रधान है। संसार के शुष्क जीवन में वह काव्य और सौन्दर्य की पावन-सरिता बहा-कर उसे क्षण-भर के लिए लहलहाता देखना चाहता है। इसी के लिए वह 'विश्व के कोलाहल से दूर' किसी छाया-वन के एकान्त कुंज में 'निश्चल मौन प्रशान्त' बैठकर काव्य-प्रेयसी की आराधना में निमग्न है। कभी कलापी के साथ उसका मन नाच उठता है, कभी 'अमृत-लता' को देखकर वह भाँति भाँति की भावनाओं से सजाने लगता है। कभी वसन्त-विलास में तल्लीन होकर वह गाने लगता है। कभी 'जुंही की कली' को देखकर करके वह मानव की प्रेम-वासना की आलोचना कर उठता है; यहाँ तक कि मरण को भी वह श्याम-रूप में कल्पित करके राधा और गोपियों की समस्त प्रकार भावनाओं को उस पर समर्पित कर देता है। सौन्दर्य कल्पना के 'उल्लास' में वह इतना मस्त है--

जला करे नन्दन-वन, कोकिल का
ऋतु-पति-स्वर याद रहे;
आठों पहर चहकती मेरी
मस्ती यह आबाद रहे!

हाँ, कभी-कभी वह आँख उठाकर उधर भी देख लेता है, जहाँ--

कितने देश, कितने प्रान्त, नगर-विजन!
रोती हैं वहीं पर दीन जातियाँ;
भूख प्यास से व्याकुल सिसकतीं;
और मचतीं उसके आस-पास में
आनन्द-रँगरेलियाँ, बजतीं बधाइयाँ!

इस विषमता को दूर करने के लिए वह 'रुद्र पर्व' का आह्वान करता है और उस स्रष्टा को जो उच्चता का शत्रु और दीनता का मित्र है, नाश करने को आमंत्रित करता है। कवि होने के नाते उसकी साम्य-कल्पना निस्सन्देह आदर्शवादी है। सौन्दर्य वन में सहसा आग लगाकर प्रलयंकर डमरू की ताल पर ताण्डव-नृत्य करनेवाले 'नटराज' से वह कहता है--

घूमो चंडीश्वर घूमो
निर्भय निर्धूम चिता में
भर दो निज मादकता कुछ
इस कवि की भी कविता में!

यद्यपि 'मदिरालय में मधुबाला का आह्वान' करने वाले 'मधु-सेवी' कवि को घृणा से दुत्कार कर वह 'विष-पायी' बनने का गर्व कर रहा है; फिर भी मधु-सेवन की वह भावना उसमें भी मौजूद है। 'कल' के विनाश की आशंका में 'आज' जीवन का समस्त आनन्द उठा लेने को प्रेरित करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आओ जब तक नयन खुले हैं,
हो लें एकाकार प्रिये !
यह दुनिया है हम दोनों हैं;
और वासना-ज्वार, प्रिये !
रोके कौन, जगी अन्तर में
जब इच्छा दुर्वार, प्रिये !

यह बात अवश्य है कि उसके--'उल्लास' में एक मस्ती की भावना है, जिसका निराशावाद से उतना सम्बन्ध नहीं। परन्तु क्षणिक में तो वह यहाँ तक कह जाता है--

दो दिनों का अचिर यौवन;
विश्व की मधु-वीथिका में।
भ्रमर कर ले प्रणय-गुंजन ?
आज की मुस्कान, कल के
अश्रु की अनुगामिनी !

'अनाश्रित विहंगम' में संसार के ठुकराये हुए, प्रेम से निराश व्यक्ति के हृदय का चित्रण है--

मत कहो मैं भी कभी
वेसुध किसी के प्यार में था;
थे सभी आराम में भी
प्रेम के संसार में था।
पैर में थीं बेड़ियाँ; कड़ियाँ
करों में थीं मनोहर !
आज समझा--मैं प्रणय के
लौह-कारागार में था !
पार कर वह द्वार आया
आज मैं स्वाधीन होकर !
उड़ चला तो; पर कहाँ
जाऊँ कहो, उड्डीन होकर ?

अतः 'कलापी' के कवि की आत्मा में किसी एक सामाजिक विचार-धारा का आन्दोलन नहीं है। उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति रोमांटिक है। काव्य के सौन्दर्य-लोक में विहार करना और स्वयं अपनी मस्ती तथा संगीत पर मस्त होकर गाते जाना उसका स्वभाव-सा है। इसी लिए कविताओं का कलेवर प्रायः आवश्यकता से अधिक बढ़ जाता है, तथा भावों की पुनरावृत्ति हो जाती है। गीति-काव्य के लिए यह बात बहुत घातक है। कभी कभी तो परस्परविरोधी भाव एक ही कविता में आगये जान पड़ने लगते हैं। कवि की रोमांटिक-प्रवृत्ति ने एकाध जगह औचित्य की सीमा का भी उल्लंघन कर दिया है। 'जुही की कली' पर अन्योक्ति करते हुए वह उपदेश देकर कहता है कि अभी तेरे तुतले बोल भी नहीं छूटे, अभी तो तेरे बाल-जीवन का बिहान भी नहीं हुआ, देखना, कहीं अपना कोष न लुटा देना, क्योंकि संसार बड़ा छली और वंचक है। कोषों में प्रियतम-नाथ का अर्थ मत ढूँढ़ और रात-दिन पर्दे में बैठकर अपना मूल्य आँकती रह--आदि--आदि। परन्तु कवि के उपदेश का ढंग प्रेमोन्मत्त नायक का है, जो 'सखि', और 'सजनि' के संबोधन से स्पष्ट है। 'छिन्न माल' की कल्पना भी कुछ बहुत अच्छी नहीं लगती।

भाषा के विषय में भी दो शब्द कहने की आवश्यकता है। कवि का शब्द-भाण्डार अत्यन्त सम्पन्न तथा पद-विन्यास सुष्ठु और प्राञ्जल होते हुए भी कहीं कहीं क्लिष्टता तथा लम्बी सामासिकता ने औचित्य की सीमा का अतिक्रमण कर दिया है। जैसे--

लुप्त-अग्नि हो सुप्त पीवरी-निद्रासक्त अशक्त ?
कहाँ दर्प जीवन का यौवन-प्रभा-प्रज्वलित तिग्म ?

व्याकरण की भूलें कम और उपेक्षणीय हैं।

कवि ने बड़े नम्र-भाव से निवेदन किया है--

प्रिय कहाँ तेरे लिए मैं मधुर पिक का कण्ठ पाऊँ ?
विश्व का उपहास सहकर मेंहदी कैसे लगाऊँ ?
आज तो इस कर्कशा पर ही लुटेगी विश्व-वाणी !
कर्ण-कटु ध्वनि आज तेरी ही बनेगी राज-रानी !

हम भी उसका समर्थन करके कहते हैं--

नाच तू मेरे शिखी गिरि मल्लिका-मुरली बजाती !
काकली सुन कामिनी की किंकिणी-कलना लजाती।
भूमि नाचे, व्योम नाचे, नाच लें नक्षत्र तारे !
आज तेरे संग नाचें चर-अचर द्रुम-पत्र सारे !

हमारा विश्वास है कि इस चराचर सृष्टि के साथ पाठक का हृदय भी एक बार नाच उठेगा और वह, 'कलापी' के संगीत की लय में तल्लीन हो जायगा।

--ब्रजेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामायनी—एक अध्ययन

लेखक, उमेशचन्द्र देव, विद्या-वाचस्पति

अग्रसर हो रही यहाँ फूट
सीमायें कृत्रिम रहीं टूट
श्रम भाग वर्ग बन गया जिन्हें
अपने बल का है गर्व उन्हें
नियमों की करनी सृष्टि उन्हें
विप्लव की करनी वृष्टि उन्हें
सब पिये मत्त लालसा घूँट।

बुद्धि मानव के लिए प्रकृति की अनोखी देन थी। मानव ने उसका दुरुपयोग करके उसे अधिकार-प्रसार का साधन बनाया और एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी जिससे छुटकारा पाने के लिए वह अनादिकाल से छट-पटा रहा है। अपनी अभिव्यक्ति के लिए उसने जिन विधानों और नियमों का निर्माण किया था वे ही उसके लिए जाल बन गये। उसने अपने लिए स्वयं बन्धन निर्माण किया! अब यह बन्धन टूटे किस प्रकार? अधिकार-लिप्सा से निर्मित संसार की यह घोर विषमता कैसे दूर हो? मानवता के ये कृत्रिम खंड किस प्रकार मिल कर एक मानवता की—पूर्ण और सुश्रृंखलित मानवता की—रचना करें? इसी का उपाय वह चिरन्तन से सोचता आ रहा है। हज़ारों वर्ष पूर्व वैदिक ऋषियों ने एक स्वप्न देखा था—

यस्मित्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्व मनुपश्यतः॥

यदि मन की ऐसी अवस्था हो सके कि वह सर्वविश्व को अपना ही रूप समझने लगे, उसकी आत्मीयता का ऐसा विस्तार हो जाय कि वह संसार के कण-कण को आवृत कर ले तो उसके मोह और शोक नष्ट हो जायँगे। कामायनी के कवि ने भी बीसवीं सदी के शुष्क और जनपद-विध्वंसकारी बुद्धिवाद से तंग आकर मानव की समस्याओं का यही हल खोज निकाला है—

..... देखे कि यहाँ पर
कोई भी नहीं पराया
हम अन्य, न अन्य कुटुंबी
हम, केवल एक हमी हैं
ये सब मेरे अवयव हैं
जिसमें कुछ कमी नहीं है
शापित न यहाँ पर कोई
तापित पापी न यहाँ है
जीवन-वसुधा समतल है
समरस है जो कि जहाँ है।
सबकी सेवा न पराई
वह अपनी सुख-संसृति है
अपना ही अणु-अणु, कण-कण
द्वयता ही तो विस्मृति है।

सम्भव है, हमारे कवि को इसकी प्रेरणा वैदिक मंत्र से न मिली हो, फिर भी दोनों में विचार-साम्य आश्चर्यजनक है। सत्य तो यह है कि यह भारतीय साहित्य में सदा से ओत-प्रोत चली आ रही वेदान्त का तो भवन ही इसी आधार पर खड़ा है यही है भगवान् बुद्ध के निर्वाण का स्वरूप। यह सुख-स्वप्न कब चरितार्थ होगा, यह स्थिति कब प्राप्त होगी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो हो, प्रसाद जी ने हमारा ध्यान एक बार फिर भूले हुए अतीत की ओर मोड़कर हमें उसकी याद दिला दी है। न केवल काव्य का उद्देश्य, कामायनी का भी

कथासूत्र

अत्यन्त पुरातन है। सम्भवतः इतना पुरातन जितनी कि वर्तमान मानव-सृष्टि। इसका मूल-रूप प्रकीर्ण रूप से ऋग्वेद में और कुछ विस्तारयुक्त व सुशृंखलित रूप से शतपथ ब्राह्मण, महाभारत, मत्स्य-पुराण व श्री मद्भागवत में पाया जाता है। यद्यपि इन ग्रन्थों के कथानकों में कुछ विभेद है, पर कामायनी के कवि ने अपनी प्रखर प्रतिभा की अग्नि से गलाकर उनको एकसूत्रता और सामञ्जस्य के सुन्दर साँचे में ढाल दिया है। ऋग्वेद के ८वें मंडल के २७ से ३१ सूक्त तक की ऋचाओं का ऋषि वैवस्वत मनु है। इसके अतिरिक्त बालखिल्य सूक्त की ऋचाओं में भी वैवस्वत मनु का अनेक बार उल्लेख हुआ है। श्रद्धा-कामायनी भी ऋग्वेद के प्रसिद्ध श्रद्धासूक्त का ऋषि है। इडा का नाम तो ऋग्वेद में भरा पड़ा है। यह मनु की पुत्री, देवताओं की बहन और मनुष्यों पर शासन करनेवाली कही गई है। जलप्लावन का उल्लेख ऋग्वेद में स्पष्ट रूप में नहीं मिलता है, यद्यपि——

'ततः समुद्रो अर्णवः समुद्रादर्णवादधि
संवत्सरोऽजायत——

आदि मंत्रों से इसका कुछ आभास हमें अवश्य मिल जाता है। इस जलोप्लावन का उल्लेख सबसे पूर्व शतपथब्राह्मण में प्रथम काण्ड के अष्टम अध्याय के प्रथम ब्राह्मण में हुआ है। वहीं से लेकर समस्त पुराणों, बायबिल के 'जेनिसिस' (७ से ९ तक) में, जेहिड्यावालों के 'डैल्यूज टैबलेट' तथा यूनानियों के धर्म-ग्रन्थों में इसका वर्णन किया गया है। ये उद्धरण बतलाते हैं कि उक्त जलप्लावन विश्व-इतिहास की कोई अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना अवश्य थी और यह भी कि पुरातन काल की मानवता में आश्चर्य-जनक एक-सूत्रता थी। हमारे पुराणकारों ने तो इसी जलप्लावन से सप्तम मन्वंतर का आरम्भ माना है। इस प्रकार सृष्टि के आरम्भ की एक प्रधान घटना से अपने काव्य का आरम्भ करके प्रसाद ने मानवता के सूत्र-द्वारा हमारा सम्बन्ध प्रागैतिहासिक काल की सभ्यता के उस प्रथम प्रभात से जोड़ दिया है जिसको देखकर वैदिक ऋषि आनन्द-विभोर होकर नाच उठे थे, और जिस पर आधुनिक इतिहास कोई प्रकाश डाल सकने में असमर्थ है।

कामायनी का कथानक

सर्वथा शृंखलाबद्ध है। उसका विकास भी मनोवैज्ञानिक हुआ है। इसके नायक मनु जो अमर सृष्टि के जीव हैं, एक मत्स्य की कृपा से जलप्लावन से जीवित बच रहे हैं; शेष समस्त जनपद नष्ट हो गया है। वे हिमालय की एक ऊँची चोटी पर बैठे चिन्ता और भयाकुल दृष्टि से इस आकस्मिक प्रलय-काण्ड को देख रहे हैं। भूत की समृद्धि और वर्तमान का रोमांचकारी भय ही उनके विचार का विषय है। भविष्य की मीमांसा करने की न उन्हें आवश्यकता है, न क्षमता। वे सोचते ही जाते हैं। अपने एकाकीपन से उनका मन बहुत दुःखी है। वे एक ऐसे सहयोगी की आवश्यकता का बुरी तरह अनुभव कर रहे हैं जिससे वे अपने हृदय का यह भारी भार कुछ बँटाकर हलका कर सकें। धीरे-धीरे जलप्लावन कुछ घटता है। मनु उठते हैं। अपने लिए पहाड़ के पास ही समुद्रतट पर एक गुहा बनाते हैं और देवयज्ञ का क्रम आरम्भ करते हैं। यज्ञ के शेषान्न को किसी सम्भावित अतिथि के लिए वे प्रतिदिन दूर जंगल में रख आते हैं। इसी अन्न के सूत्र से खोज लगाती हुई श्रद्धा नाम की एक सुन्दरी उनके पास आती है। दोनों में परिचय का आदान-प्रदान होता है। श्रद्धा को मनु के अकेलेपन पर दया आती है और वह सहयोगी के रूप में उन्हीं के साथ रहने का निश्चय कर लेती है। वह मनु को उत्साह दिलाती रहती है। धीरे-धीरे मनु की पूर्व-संस्कारजन्य अधिकार-प्रवृत्ति जाग्रत होती है। वे श्रद्धा को एक मृगशावक को दुलराते देखकर कुछ खिन्न होते हैं। कारण, उनके मन में श्रद्धा के प्रति कुछ अनुराग उत्पन्न हो चुका है, जिसका रूप 'रोमांटिक' है। रोमांस प्रणयपात्र पर एकाधिकार चाहता है, बँटवारा नहीं। पर श्रद्धा भी चतुर है। वह मनु की दृष्टि से ही उनके मन का अध्ययन कर लेती है और मनु पर बहुत अधिक प्रेम प्रदर्शित करती है। जल का वेग आगे बाधा पाकर रुक जाता है, पर वह एकत्र होकर शक्ति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संचय करने लगता है। ज्यों ही वह बाधा हटी कि प्रवाह द्विगुणित वेग धारण कर लेता है। यही दशा मनु की होती है। उनका मन प्रेम-मद-विभोर हो जाता है। वे समस्त प्रकृति को प्रेमस्नात देखने लगते हैं--

पशु कि हो पाषाण सबमें प्रेम का नव छन्द
एक आलिंगन बुलाता सभी को सानन्द
राशि-राशि बिखर पड़ा है शान्त-संचित-प्यार
रख रहा है उसे ढोकर दीन विश्व उधार!

मनु का हृदय इस रोमांस का सहारा नहीं पाता--धैर्य किनारा कर जाता है:--

छूटतीं चिनगारियाँ उत्तेजना उद्भ्रान्त
धधकती ज्वाला मधुर, था वक्ष विकल अशान्त
वात-चक्र समान कुछ, था बाँधता आवेश
धैर्य का कुछ भी न मनु के हृदय में था लेश।

मन की इसी उत्तेजना में वे श्रद्धा को हृदय समर्पण कर देते हैं--

आह वैसा ही हृदय का बन रहा परिणाम
पा रहा हूँ आज देकर तुम्हीं से निज काम
आज ले लो चेतना का यह समर्पण दान
विश्वरानी! सुन्दरी नारी! जगत की मान!

यह प्रेमोन्माद का आत्म-समर्पण है एक सुन्दरी नारी के लिए, जिसे वह अपने हृदय की रानी मान रहा है और जिसमें वह अपनी वासना की पूर्ति का स्वप्न देख रहा है। इसमें रूप और भोग की लालसा है, विश्व-कल्याण का प्रतिनिधि दाम्पत्य-भावना नहीं। इसी लिए तो कवि ने इसे 'वासना'-सर्ग में रक्खा है।

कामायनी ने अब तक मनु को सहयोगी और सहचर के रूप में देखा था, पुरुष या प्रेमी के रूप में नहीं। अब वासना का संचार होते ही उसमें लज्जा का प्रवेश होता है, जो अनिवार्य है। वासना और लज्जा परस्पर-पोषित भावनायें हैं। वह अपने मन में एक अपूर्व उथल-पुथल का अनुभव करती है। जिन मनु के साथ दैनिक व्यवहार चलाने में उसे कभी संकोच नहीं हुआ था उनके सामने आते ही--

छूने में हिचक देखने में
पलकें आँखों पर झुकती हैं
कलरव परिहास भरी गूँजें
अधरों तक सहसा रुकती हैं।

यह प्रथम प्रेम का आवेग है, जिसके प्रकाश ने वस्तुओं का रंग ही बदल दिया है। बात वही है, पर उसके अर्थ दूसरे होगये हैं। भाव वही है, पर व्याख्या में भेद हो गया है। इस वस्तुस्थिति में वह क्या करे? वह मनु की परीक्षा लेने का प्रयत्न करती है, पर अब इतनी दूर आकर वह भी कठिन होगया है--

मैं जभी तोलने का करती
उपचार स्वयं तुल जाती हूँ
भुज-लता फँसाकर नर-तरु से
झूले-सी झोंके खाती हूँ।

यह 'रोमांस' का आवेग है। इसमें सदसद्विवेक की गुंजायश नहीं। श्रद्धा भी मनु को आत्म-समर्पण करना चाहती है और वह समर्पण भी कैसा--

इस अर्पण में कुछ और नहीं
केवल उत्सर्ग छलकता है
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ
इतना ही सरल झलकता है।

पर स्त्री-सुलभ लज्जा उसे रोकती है और उसे उसके मूल-धर्म की याद दिलाती है--

'क्या कहती हो, ठहरो नारी
संकल्प अश्रुजल से अपने
तुम दान कर चुकीं पहले ही
जीवन के सोने से सपने
× × ×
आँसू से भीगे अञ्चल पर
मन का सब कुछ रखना होगा
तुमको अपनी स्मित रेखा से
यह सन्धि-पत्र लिखना होगा।

यह है नारी-जीवन की वास्तविकता! त्याग और अनुराग की प्रतिमा का रहस्य! जो आँखों में आँसू भर कर, पर होठों पर हँसी रखकर प्रेम का सन्धि-पत्र लिखती है और उसी में अपने हृदय का सब कुछ समर्पण कर देती है--बिना प्रतिदान या मूल्य की भावना के। इसी केन्द्र-विन्दु के चारों ओर कामायनी के चरित्र का विकास हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष का रोमांस अभिशाप होता है। यही मनु के विषय में भी सत्य है। वे किलाताकुलि की सहायता से यज्ञ करते हैं और उसमें श्रद्धा के स्नेह-पालित मृगशावक का बलिदान कर देते हैं। जिसे सब कुछ दिया उसके मन की अन्यासक्ति श्रद्धा को दुखी कर देती है। वह एकान्त कुटी में जा लेटती है और सोचती है--

कितना दुःख जिसे मैं चाहूँ
वह कुछ और बना हो
मेरा मानस चित्र खींचना
सुन्दर-सा सपना हो,

पुरोडाश और सोम मनु को भौतिक भोगों की प्रेरणा देते हैं। वे श्रद्धा की कुटी में पहुँचते हैं और उससे बुलाकर प्रार्थना करते हैं--

स्वर्ग बनाया है जो मैंने
उसे न विकल बनाओ।
इस निर्जन में ज्योत्स्ना पुलकित
विधु युत नभ के नीचे
केवल हम तुम और कौन है
रहो न आँखें मीचे।

आकर्षण से भरा विश्व यह केवल भोग्य हमारा। जब समस्त प्रकृति प्रेमालिंगन-विभोर है, काम अंगरूपता-द्वारा अपनी अभिव्यक्ति कर रहा है, युग्म की भावना कण-कण में व्याप्त है, तब हमीं पृथक् क्यों रहें--

बन लता पड़ी सरिताओं की शैलों के गले सनाथ हुए
जलनिधि का अंचल व्यजन बना धरणी का, दो-दो साथ हुए।

श्रद्धा भी मनु का आकर्षण अपनी ओर देखकर प्रसन्न हो जाती है और एक छोटी-सी शर्त के साथ--

औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सबको सुखी बनाओ।

निश्चय कर लेती है। पर कुछ समय बाद गर्भालसा श्रद्धा में वह आकर्षण, वे रोमैंटिक-व्यञ्जनायें नहीं रहतीं। मनु सोचते हैं कि श्रद्धा को क्या हो गया, इसके चुहल-विनोद कहाँ गये, क्यों यह मुझसे कुछ अलग-अलग रहना चाहती है।

आती है वाणी में न कभी
वह चावभरी लीलाहिलोर
जिसमें नूतनता नृत्यमयी
इठलाती हो चंचल मरोर
× × जब देखो बैठी हुई वहीं,
शालियाँ बीनती अविश्रान्त,

आकर्षण का अभाव मन में उदासीनता को जन्म देता है।

मनु अब भी रोज़ शिकार खेलने जाते हैं, पर घर की ओर लौटने की उन्हें पूर्ववत् उत्सुकता नहीं होती। इधर से मनोविनोद के साधन बन्द देख वे अन्यत्र उन्हें ढूँढ़ने की सोचते हैं। एक दिन संध्या को मनु घर न जाकर आहत पशु व धनुर्बाण फेंक कर मार्ग में ही बैठ जाते हैं। श्रद्धा शाम को उन्हें खोजने जाती है। उसका गर्भालस शरीर मनु के हृदय में विरक्ति उत्पन्न करता है। श्रद्धा उनके मन का भाव ताड़ जाती है और मुसकाकर आग्रहपूर्वक उन्हें कुटी पर ले आती है। मनु खिन्न होकर उससे उसकी वर्तमान मनोऽवस्था का कारण पूछते हैं। वे कहते हैं कि तुम मेरे प्रति इतनी उदासीन क्यों हो रही हो? मैं शिकार खेल कर मांस और मृग-चर्म लाता हूँ, फिर तुम्हें शाली-संग्रह और सूत कातने में परिश्रम करने की क्या ज़रूरत? मैं तो चाहता हूँ कि तुम्हारा ध्यान मुझी में केन्द्रीभूत रहे और तुम उसे इधर-उधर बखेर रही हो। श्रद्धा अब 'माता' बनने जा रही है। उसमें गृहिणीत्व और मातृत्व की भावनाओं का साथ-साथ विकास हो रहा है। वह मनु को समझाती है कि जब वस्त्रों से शरीर ढँका जा सकता है, शाली से उदरपूर्ति हो सकती है, दुग्ध-पान से बल बढ़ सकता है, तब हिंसा क्यों की जाय, क्यों न हम सृष्टि को सुख से बढ़ने दें और स्वयं भी उसमें योग दें।

वह मनु को अपनी बनाई हुई कुटी दिखाकर कहती है कि देखो! मैंने यह एक छोटा सा नीड़ बनाया है। चिड़ियों के बच्चे अपने घोंसलों में चहक रहे हैं, पक्षी-दम्पति उनको चूमकर आनन्द-विभोर हो रहे हैं, पर हमारा यह नीड़ अभी सूना है। इसमें जब अतिथि (भावी-सन्तति) आये तब उसे अभाव न रहे और वह जंगली जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य न हो, इसी लिए मैं यह संग्रह कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही हूँ। अब, जब तुम बाहर जाया करोगे, मेरा समय एकाकीपन में न बीतेगा। मैं भी चहल-पहल में अपनी सन्तति के साथ समय काटूँगी।

पर गृहिणी की यह भूतदया और संग्रह-भावना मनु को पसन्द नहीं। वे चाहते हैं रोमांस! श्रद्धा की बातों से मनु को धारणा होती है कि श्रद्धा समस्त सुख-संभार को संचितकर स्वायत्त करना चाहती है। फिर मेरी स्थिति एक भिक्षुक की हो जायगी। वह दयापूर्वक जितना प्रेम मुझे दान कर देगी वही मुझे प्राप्त होगा। इस विचार से उनकी अधिकार-प्रवृत्ति भड़क उठती है--

यह द्वैत! अरे यह द्विविधा तो
है प्रेम बाँटने का प्रकार
भिक्षुक मैं? ना यह कभी नहीं
मैं लौटा लूँगा निज विचार!

अन्त में--

तुम अपने सुख में सुखी रहो
मुझको दुख पाने दो स्वतंत्र
मन की परवशता महादुःख
मैं यही जपूँगा महामंत्र!

कहकर वे घर से चल देते हैं।

मनु चारों ओर भटकते भटकते सारस्वत-प्रदेश में पहुँचते हैं। मार्ग में उन्हें 'काम के अभिशाप' के रूप में एक भविष्यवाणी सुनाई पड़ती है। काम के अभिशाप में मानवता की चिरन्तन कमज़ोरियों का सुन्दर प्रतिबिम्ब है। मनु को सारस्वत-प्रदेश की रानी इडा के दर्शन होते हैं। इडा अपने राज्य की व्यवस्था के लिए एक चतुर सहायक चाहती है। मनु उसकी बात मानकर व्यवस्था करने लगते हैं। देश आबाद और धन-धान्य-पूर्ण हो जाता है। प्रजा सुखी हो जाती है। पर मनु की उत्सर्पिणी अधिकार-भावना आगे बढ़कर इडा को भी--जो उसी की पुत्री और देवताओं की बहन है--स्ववश करना चाहती है और इस प्रकार सारस्वत-प्रदेश पर पूर्ण अधिकार चाहती है। इडा के प्रति मनु की यह दुर्भावना देवताओं को क्षुब्ध करती है। प्रजा में विद्रोह होता है। युद्ध होता है, मनु घायल होते हैं। प्रजा भी हज़ारों की संख्या में हताहत होती है। श्रद्धा यह दृश्य स्वप्न में देखती है। वह अपने पुत्र के साथ सारस्वत-प्रदेश पहुँचती है। उसकी शुश्रूषा से मनु स्वास्थ्य-लाभ करते हैं, पर उनका मन क्षोभ और ग्लानि से भरा है, अतः वे रात को उन लोगों के पास से भाग खड़े होते हैं। श्रद्धा दुखी होती है। इड़ा को भी ग्लानि होती है। वह श्रद्धा से अपनी भूल का समाधान और क्षमा चाहती है। श्रद्धा उसकी मनोभावना को ताड़ जाती है और अपने पुत्र मानव को उसे दे देती है। फिर वह अपने पति को खोजती है। मनु मिल जाते हैं, पर वे श्रद्धा से किसी ऐसे स्थान पर ले चलने को कहते हैं जहाँ उनके मन को शान्ति मिले। श्रद्धा उन्हें हिमवान् की उँचाई पर ले जाती है। मनु थक जाते हैं, पर श्रद्धा उन्हें लिये ही जाती है। अन्त में वे मानसरोवर व कैलाश में पहुँचते हैं, जहाँ सत्व-रज व तम लोक एकाकार हो जाते हैं। वहाँ मनु को शिव का विराट् नृत्य दिखाई देता है, जिसमें सब भेद लय हो जाते हैं तथा समत्व के अपार आनन्द की दिव्य चेतना जाग्रत् होती है।

कुछ दिनों के बाद इडा भी अपने पति के साथ मनु के दर्शन को जाती है। वहाँ मनु उन लोगों को विश्व-प्रेम का उपदेश करते हैं और संसार की विषमावस्था को मिटाने का उपाय बतलाते हैं।

चरित्र-चित्रण

की दृष्टि से भी कामायनी एक सफल रचना है। इसके चरित्रों का विकास नितान्त मनोवैज्ञानिक आधार पर हुआ है। इसमें ३ प्रधान पात्र हैं--(१) मनु, (२) श्रद्धा और (३) इडा। मनु महाप्रलय के बाद संत्रस्त और आतंकित हैं। प्रलय से पूर्व की सृष्टि के अहंभाव और संस्कार उनके हृदय में मौजूद हैं। वे स्वयं को अधिकारी मानते हैं। इस अधिकारिता का विनाश उन्हें ऊहा-पोह में डाल देता है। मनु मानवता के प्रतीक हैं। मानव का स्थान देवत्व और आसुर्य के बीच में है। उसकी एक सीमा देवत्व से और दूसरी आसुर्य्य से संस्पृष्ट रहती है। यही कारण है कि उसमें कभी देवत्व का प्राबल्य हो जाता है, कभी आसुर्य का। मनन इसे मध्यविन्दु मानवत्व पर संतुलित रखता है। पर इस मनन को बाह्य आधार चाहिए। यह अघटित घटना-प्रक्षेप या संघर्ष-द्वारा मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की समस्त दुर्बलतायें मनु में हैं। वे भूत-सुखों के विनाश से सन्तप्त हैं--

गया सभी कुछ गया, मधुरतम
सुरबालाओं का शृंगार
उषा ज्योत्स्ना का यौवन स्मित
मधुप सदृश निश्चिन्त विहार!
कंकण क्वणित रणित नूपुर के
हिलते थे छाती पर हार
मुखरित था कलरव, गीतों में
स्वर लय का होता अभिसार।
सौरभ से दिगन्त पूरित था
अन्तरिक्ष आलोक अधीर
सबमें एक अचेतन गति थी,
जिससे पिछड़ा रहे समीर।

पर ये देव-सृष्टि के सुख-विलास नष्ट होगये। मनु को यही चिन्ता है। परन्तु मस्तिष्क इसका भी समाधान ढूँढ़ निकालता है। यही मानव-स्वभाव का गुण है। अंधकार का कारण और उसमें भी प्रकाश की एक किरण पा लेने की उसमें अद्भुत क्षमता है। मननशीलता कभी पराजय स्वीकार नहीं करती, क्योंकि उसका जीवन विजय के ऊपर निर्मित है। मनु इस आकस्मिक प्रलय का कारण भी खोज लेते हैं--

स्वयं देव थे हम सब, तो फिर
क्यों न विश्रृंखल होती सृष्टि
अरे अचानक हुई इसी से
कड़ी आपदाओं की वृष्टि

देवसृष्टि की यह धारणा मिथ्या थी कि प्रकृति पर उसे पूर्ण शासन प्राप्त होगया है--

शक्ति रही हाँ शक्ति, प्रकृति थी
पद-तल में विनम्र विश्रान्त
काँपती धरणी उन चरणों से
होकर प्रतिदिन ही आक्रान्त।

क्योंकि--

प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित
हम सब थे भूले मद में
भोले थे, हाँ तिरते केवल
हम विलासिता के मद में।

यह विलासिता का अतियोग ही सृष्टि-विनाश का कारण बना। यह पराजित मन की विजय-घोषणा है। इसमें आत्म-समाधान की प्रवृत्ति-मात्र है; भविष्य की अवधारणा नहीं। मनुष्य को अपनी भूलें परमप्रिय होती हैं। मनु भी यह जानते हुए भी कि विलासिता ही प्रलय का कारण थी, फिर उसी से लिप्त होना चाहते हैं। भूत-वैभव की स्मृतियाँ उनके चित्त को चैन नहीं लेने देतीं; सोचना समाप्त नहीं होता; गरम वाष्प से बना बुलबुला जब अधिक से अधिक फैल जाता है तब फूटने में ही शान्ति का अनुभव करता है। मनु भी इस परिणामहीन मनन से त्राण चाहते हैं, भले ही वह चेतना के मूल्य में मिले--

विस्मृति का अवसाद घेर ले
नीरवते! बस चुप कर दे
चेतनते! चल जा, जड़ता से
आज शून्य मेरा भर दे।

पर मनन तो इस जड़ता की आराधना में भी है। वह तो मन के साथ लगा है! जब हमें और कोई चारा नहीं रहता और बाहर से पराजय ही पराजय दिखाई देती है तब हम आत्मालोचन या स्वभर्त्सना-द्वारा ही मन को समाधान करने का प्रयत्न करते हैं। इस मनन का आश्रय आशा होती है। मनु भी इसी पतले धागे के सहारे कुछ अन्न दूर रख आया करते हैं! सम्भव है, कोई भूला-भटका उधर से आ निकले! यहीं श्रद्धा का आगमन होता है। उसके प्रवेश में ही नारी का ओज और प्राणदायिनी शक्ति है। वह मनु को उत्तेजना देकर आत्मरूप की स्मृति फिर से कराती है--

अरे तुम इतने हुए अधीर!
हार बैठे जीवन का दाँव
जीतते मरकर जिसको वीर!

यह प्रलय देखकर क्यों दुखी होगये। इससे तो तुम्हारा हित हुआ है। इसने देव-सृष्टि का आतंक मिटा दिया, अब तुम्हें मानवता के प्रचार-प्रसार का अवकाश मिलेगा--प्रकृति तो सदैव नवीनता चाहती है--

प्रकृति के यौवन का शृंगार
करेंगे कभी न बासी फूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरातनता का यह निर्मोक
सहन करती न प्रकृति पल एक--
नित्य नूतनता का आनन्द
किये है परिवर्तन में टेक ।

मनु का श्रद्धा के प्रति आकर्षण होता है, जिसका प्रस्फुटीकरण मृगशावकवाली घटना से होता है। अब वे फिर उसी विलासिता में फँस जाते हैं, मानो श्रद्धा के रूप में उन्हें सब कुछ मिल जाता है। वे श्रद्धा के सौन्दर्य-रस से एक बार में ही तृप्ति चाहते हैं, क्योंकि भविष्य के प्रति उनका मन आश्वस्त नहीं है। वासना अतृप्ति को जन्म देती है और अतृप्ति से क्रोध या वैराग्य का जन्म होता है। श्रद्धा का गर्भालस रूप मनु के उद्वेग का कारण बन जाता है, और वे उसे छोड़कर चल देते हैं। पर घर उन्हें बार-बार अपनी ओर खींचता है और अधिकार-वासना बाहर को ढकेलती है। इसी समय इडा की अवतारणा होती है। इडा में मनु को घर और रमणी सब कुछ मिल जाता है। वे अपने को सुखी और पूर्ण अनुभव करने लगते हैं। पर इडा उन्हें पति-रूप में स्वीकार नहीं करती। यहीं पुरुष की अधिकार-भावना फिर ज़ोर मारती है। मनु उसे बलात्कारपूर्वक अपने वश में करना चाहते हैं। देवगण कुपित होते हैं। मनु घायल हो जाते हैं। यहीं श्रद्धा का मातृ-रूप प्रकाश में आता है, जिसे देखकर मनु कह उठते हैं--

रमणी तुम नहीं आह
जिसके मन में हो भरी चाह
तुमने अपना सब कुछ खोकर
वंचिते जिसे पाया रोकर
मैं भगा प्राण जिनसे लेकर,
उसको भी, उन सबको देकर।

मातृमूर्ति में स्नेह और त्याग का कितना मधुर संमिश्रण है! उसी की ओर इस उद्धरण में संकेत किया गया है। श्रद्धा के रमणीरूप की झलक हम ऊपर देख ही चुके हैं।

इडा बुद्धि का साकार प्रतीक है। श्रद्धा उसकी विवेचना इस रूप में करती है--

सिर चढ़ी रही पाया न हृदय
तू विकल कर रही है अभिनय
सब निज पथ पर चल रहे शान्त
प्रत्येक विभाजन बना भ्रान्त
चेतनता का भौतिक विभाग
कर जग को बाँट दिया विराग!

इधर इडा अपनी भूलों का सुधार तो चाहती है, पर विरक्ति का उपदेश नहीं चाहती--

दो क्षमा न दो अपना विराग
सोई चेतनता उठे जाग!

इडा के हृदय की एक झाँकी वहाँ भी मिलती है जहाँ वह घायल मनु को रखाती हुई अँधेरी रात में कहती है--

इसे दंड देने में बैठी
या करती रखवाली मैं
यह कैसी है विकट पहेली
कितनी उलझनवाली मैं

मनु के पराभव के कारण का वह कैसा ठीक अनुमान करती है--

अपना हो या औरों का सुख
बढ़ा कि बस दुख बना वही।

पर सुख की चरम सीमा क्या? कहाँ पहुँच कर उसे रुक जाना चाहिए, यह भी तो निर्धारण नहीं हो सकता।

उपर्युक्त उद्धरण यद्यपि इस रचना के--

काव्यगत-सौन्दर्य

को बताने के लिए पर्याप्त हैं, फिर भी इसके अनेक स्थल और भी बड़े सुन्दर हैं। लज्जा का वर्णन देखिए--

कोमल किसलय के अंचल में
नन्ही कलिका ज्यों छिपती सी
गोधूली के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती सी
मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में
मन का उन्माद निखरता ज्यों
सुरभित लहरों की छाया में
बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों
नीरव निशीथ की लतिका में
तुम कौन आ रही हो बढ़ती
कोमल बाहें फैलाये सी
आलिंगन का जादू पढ़ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ,
मैं शालीनता सिखाती हूँ
मतवाली सुन्दरता पग में
नूपुर सी लिपट मनाती हूँ
लाली बन सरल कपोलों में
आँखों में अंजन सी लगती
कुंचित अलकों सी घुँघराली
मन की मरोर बनकर जगती
चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली
मैं वह हलकी-सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली।

गर्भालस सौन्दर्य का चित्र जितना सुन्दर व सुरुचि-पूर्ण प्रसाद जी ने खींचा है, उतना कालिदास के अतिरिक्त और किसी से भी खींचते नहीं बना--

श्रद्धा कुछ कुछ अनमनी चली,
अलकें लेती थीं गुल्फ चूम
केतकी गर्भ-सा पीला मुख
आँखों में आलस भरा स्नेह
कुछ कृशता नई लजीली थी
कंपित लतिका-सी लिये देह,
मातृत्व बोझ से झुके हुए
बँध रहे पयोधर पीन आज
× × सोने की सिकता में मानो
कालिन्दी बहती कर उसास
× × श्रम-विन्दु बना-सा झलक रहा
भावी जननी का सरस गर्व
वन-कुसुम बिखरतेथे भू पर
आया समीप था महापर्व

यही क्यों, प्रकृति के एक से एक सुन्दर चित्र कामायनी में मिलते हैं। इनकी टक्कर के चित्र हिन्दी-साहित्य में अन्यत्र कम मिलते हैं। इसमें प्रकृति के दोनों प्रकार के सुन्दर वर्णन हैं--मानव भावानुरूपी या सापेक्ष्य एवं स्वतंत्र या निरपेक्ष्य। इस विषय में प्रसाद की टक्कर का कवि हिन्दी के पुराने कवियों में कोई भी नहीं है। इतना जानने के बाद यह निर्णय करना सरल है कि कामायनी

एक महाकाव्य

है इसमें मानव-जीवन की सम्पूर्ण और मौलिक व्याख्या है। इसमें चिरन्तन जिज्ञासा है और उसकी शान्ति है। इस महल का निर्माण दार्शनिक पृष्टिभूमि पर हुआ है, जिसमें अखिल मानवता का समावेश हो सकता है। रामचरितमानस के बाद हिन्दी में यही एक रचना है, जिसे हम सच्चे अर्थों में महाकाव्य कह सकते हैं। इसकी कल्पना में समुद्र की विशालता, भूमि का प्रस्तार और हिमालय की उच्चता है। इसमें सृष्टि के प्रथम प्रभात का सौन्दर्य है और मानव-संस्कृति की स्थापना का इतिहास है। जो वस्तु इसमें नहीं है वह है--सस्ती भावुकता, जिसके पीछे आज का पाठक दीवाना बन गया है। इसमें मानवता के शुद्ध और मौलिक रूप का चित्रण है और उसकी पूर्णता के लिए मार्ग-निर्देश भी किया गया है। यही सब एक महाकाव्य के अपेक्षित गुण हैं। इसका कथानक, निर्वाह, उठान, वर्णन, चित्रण और दृष्टिकोण सब कुछ इतना महान् है कि पाठक को पद-पद पर आश्चर्यचकित होना पड़ता है। इसकी एक-एक पंक्ति एक-एक ग्रन्थ है। सृष्टि के लिए बीज का गलना, अंकुरित होना, पल्लवित होना, फूलना और फलना सब कामायनी में एकत्र मिलते हैं। इसका मर्त्यलोक स्वर्ग से स्पृष्ट है पर अपनी सत्ता के प्रति सतर्क है; उसमें लालसा है, यत्न है, अधिकार-वासना है, पर गौरव और महत्ता के साथ। इसके यौवन में अधम कामुकता नहीं है। यदि उसके कहीं दर्शन भी हो जाते हैं तो संस्कार-दोष से मिथ्या-धारणा के कारण। 'कामायनी' के रूप में प्रसाद ने हिन्दी को सब कुछ दे दिया है। शताब्दियों के बाद मातृभाषा के अभाव की यह सुन्दर पूर्ति देखकर साहित्य-रसिकों को अपार आह्लाद होगा। हिन्दी की यही एक ऐसी आधुनिक रचना है, जिसे हम विश्व-साहित्य के चुने हुए ग्रन्थरत्नों के मुकाबिले में सगर्व उपस्थित कर सकते हैं। इस छोटे से लेख में कामायनी का पूरा परिचय दे सकना भी असम्भव है। इसके लिए पूरी पुस्तक लिखनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

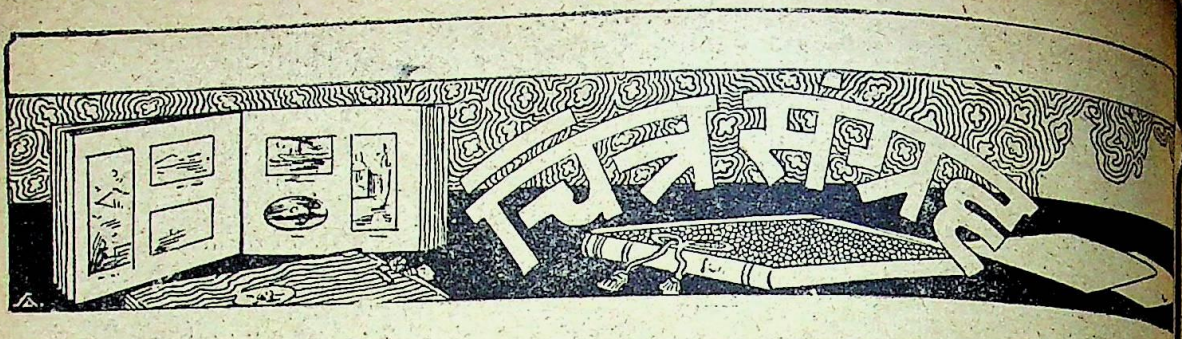

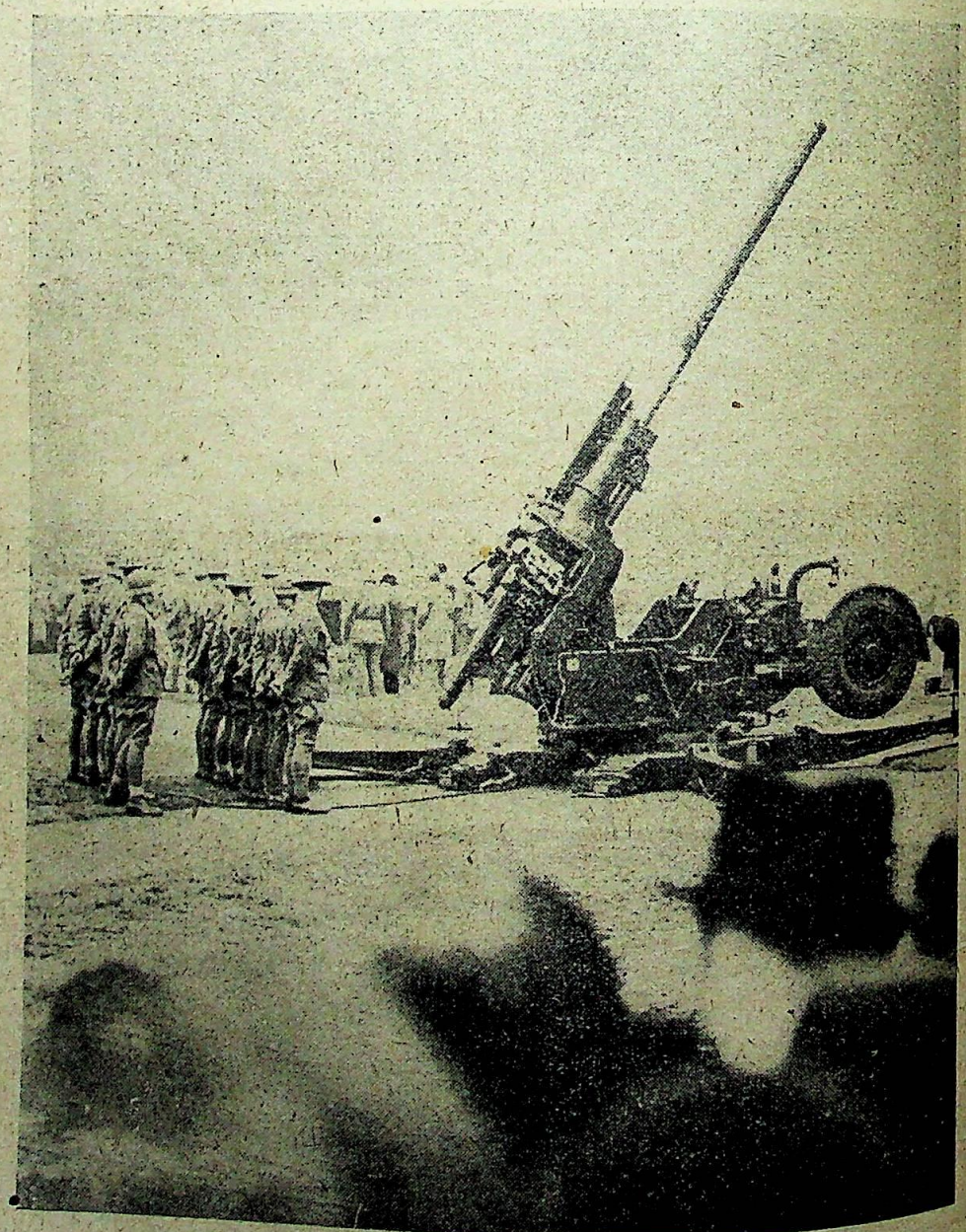

ब्रिटेन की एक आधुनिकतम हवाई तोप, जिसका प्रदर्शन हाइडपार्क में किया गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विन्डसर के ड्यूक अपनी पत्नी के साथ पेरिस के प्रेसस-नाइट-भोज में।

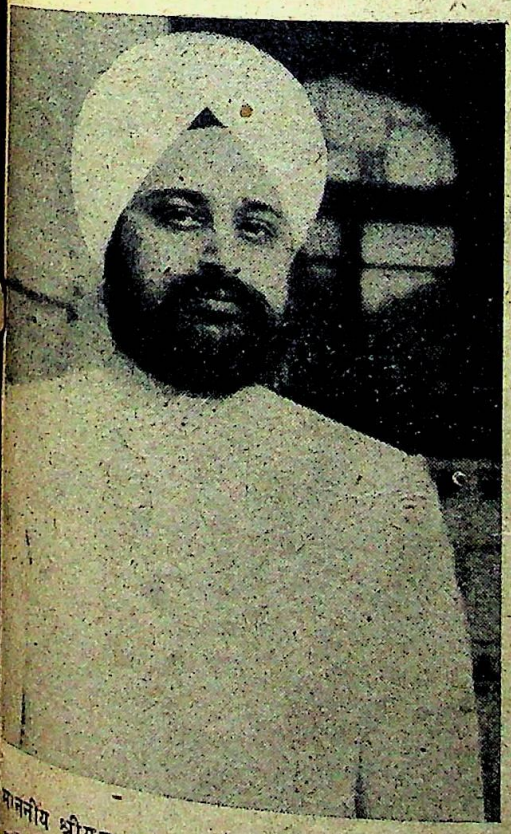

माननीय श्रीयुत बूटासिंह, जो हाल में खालसा-कॉलेज, अमृतसर, के डाइरेक्टर नियुक्त हुए हैं।

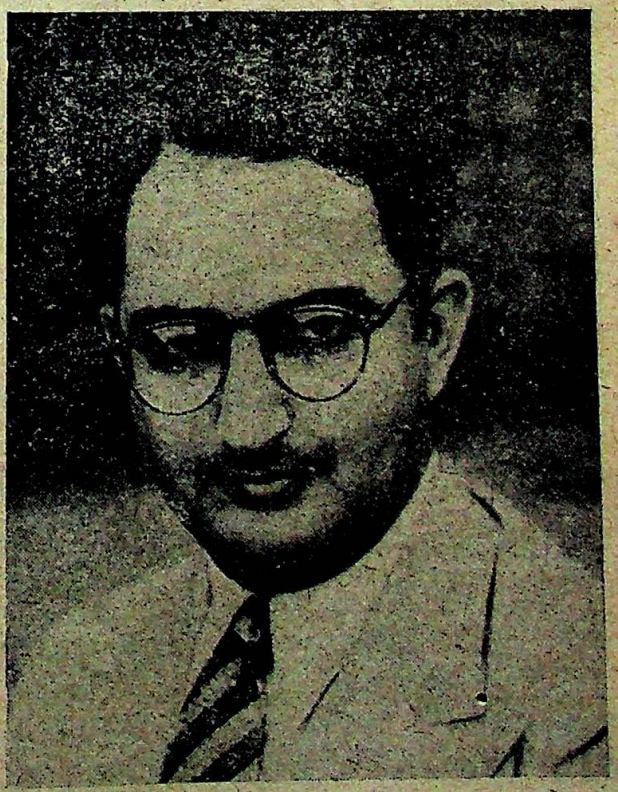

मिस्टर अब्बास खलील, आई० सी० एस०—आप भारत-सरकार के आडर-सेक्रटरी नियुक्त हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

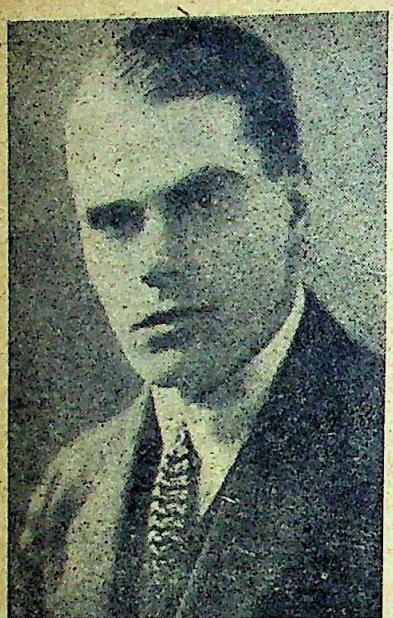

मिस्टर ए० के० विलकिंसन, जो कानपुर के उत्तरी भारत इम्प्लायर्स-एसोसिएशन के चेयरमैन नियुक्त हुए हैं।

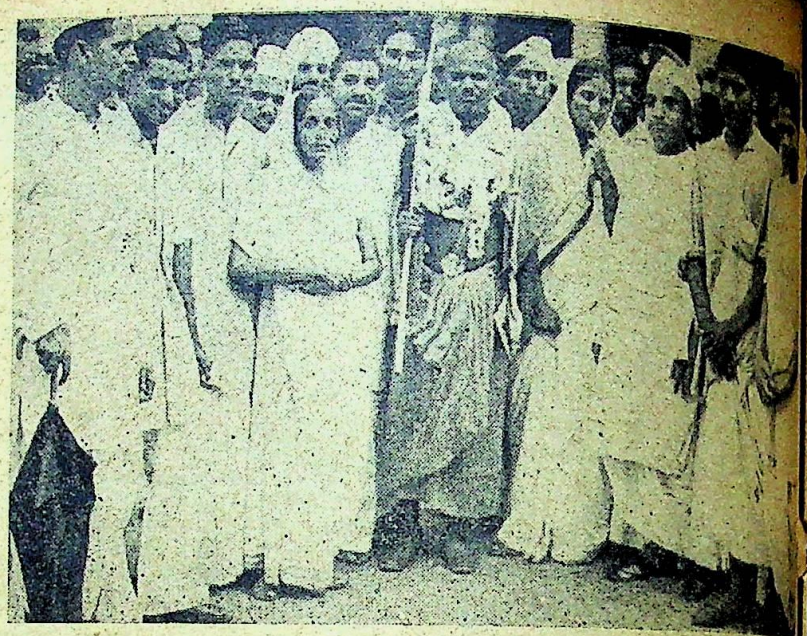

दिल्ली में रेलवे-स्टेशन पर किसान-नेता स्वामी सहजानन्द जी का स्वागत।

तक्षशिला-स्कूल के छात्र महात्मा जी को उनकी पिछली सीमाप्रान्त-यात्रा के अवसर पर 'गार्ड-आफ़ आनर' दे रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीन जाते हुए नेहरू जी को श्रीमान् हाथीसिंह व माननीया श्रीमती पंडित विदाई दे रही हैं।

चीन जाते हुए बमरौली-एरोड्रम पर नेहरू जी।

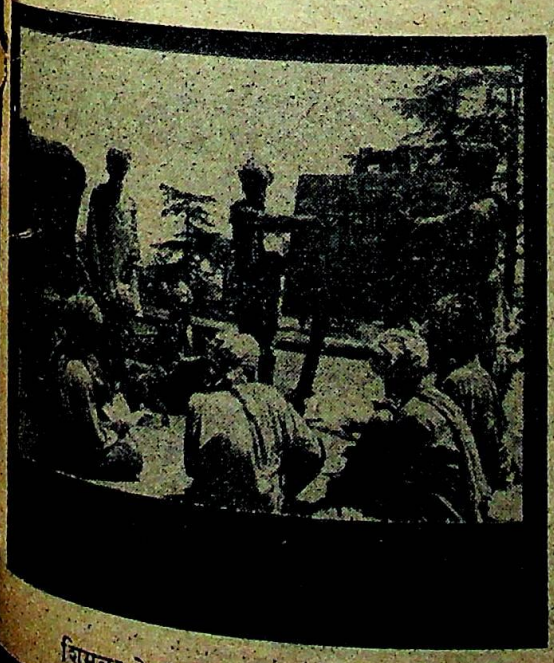

शिमला के रिक्शा-कुलियों में साक्षरता

मैसूर के युवराज। आप स्वास्थ्य-सुधार के लिए हाल ही में बाहर गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोलेंड और डैंज़िग

श्री एम० यू० जेन बनासिस्की महोदय पोलेंड के बम्बई-स्थित राजदूत हैं। हाल में एक सभा में जो बम्बई में हुई थी, पोलेंड और डैंज़िग की समस्या पर उन्होंने अपने विचार प्रकट किये थे। उस भाषण का सारांश 'लोकमान्य' में छपा है, जिसका एक अंश यह है—

डैंज़िग की समस्या पर केवल पोलेंड का ही भाग्या-भाग्य निर्भर नहीं है, बल्कि उसका प्रभाव संसार की राजनीति पर भी पड़ेगा। पोलेंड डैंज़िग की समस्या को भली भाँति समझता है तथा वह उसका मुक़ाबिला करने के लिए भी कटिबद्ध है। पोलेंड डैंज़िग के विषय में ज़रा भी झुकने को तैयार नहीं है और वह सुई की नोक के बराबर भूमि भी दूसरे राज्य को नहीं दे सकता। जर्मनी से किसी भी दशा में वह दबने को तैयार नहीं है।

डैंज़िग की भौगोलिक परिस्थिति ही ऐसी है कि वह पोलेंड का एक अंग कहा जाय, क्योंकि वह विस्चुला नदी के मुहाने पर बसा हुआ एक शहर है। यह नदी पोलेंड से होकर बहती है और इस प्रकार डैंज़िग पोलेंड के लिए स्वाभाविक बन्दरगाह है। डैंज़िग की वृद्धि-संवृद्धि और खपत पोलेंड के कारण हुई है। पोलेंड की भीतरी उपज तथा चीज़ों की खपत के कारण ही डैंज़िग संसार का एक प्रसिद्ध बन्दरगाह बना हुआ है; डैंज़िग पोलेंड की उन्नति और संवृद्धि में सहायक है।

पुराने ज़माने में डैंज़िग पोलेंड का बन्दरगाह था। उस समय वह बाल्टिक सागर के सभी बन्दरगाहों में समृद्धिशाली और भव्य नगर था। परन्तु जब पुराने पोलेंड की स्वतन्त्रता का अपहरण हो गया तब डैंज़िग का महत्त्व जाता रहा। वह जर्मनी के प्रान्त की राजधानी मात्र रह गया। यहाँ पर जर्मन-सेना का अड्डा बनाया गया। योरपीय महायुद्ध के बाद पोलेंड को पुनः डैंज़िग का बन्दरगाह मिल गया। इस प्रकार डैंज़िग के भी दिन फिरे। धीरे धीरे उन्नति करते करते अब उसने बाल्टिक समुद्र के बन्दरगाहों में तृतीय स्थान प्राप्त कर लिया है।

यह अभाग्य की बात है कि डैंज़िग के निवासी जर्मन हैं। परन्तु सुडेटन के जर्मनों की भाँति उन्हें यह शिकायत नहीं है कि उनका प्रान्त दूसरे राज्य में मिला हुआ है। उन्हें हर एक प्रकार की नागरिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। यदि वे चाहें तो नाज़ी-संस्कृति के अनुसार भी जीवन व्यतीत कर सकते हैं। केवल अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण ही डैंज़िग पोलेंड का एक भाग बना हुआ है। इसके अतिरिक्त डैंज़िग-सीनेट में और पोलेंड में इस आशय की संधि भी हो चुकी है। इसलिए पोलेंड के निवासियों को पूर्ण अधिकार है कि वे डैंज़िग को अपना बन्दरगाह बनावें।

इन सब बातों के होते हुए भी क्या कारण है कि जर्मनी डैंज़िग पर अधिकार जमाना चाहता है। इसका उत्तर आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व प्रशिया के फ़ेड्रिक ने उस समय दिया था जब उसने डैंज़िग पर अधिकार जमाया था। उसने कहा था कि वास्तव में पोलेंड का राजा वही है जिसके अधिकार में विस्चुला का मुहाना और डैंज़िग शहर हो, इससे कोई मतलब नहीं कि पोलेंड किसके अधिकार में है। डैंज़िग को हथियाने के लिए जर्मनी ने स्वतन्त्रता और स्वत्व की जो दलील पेश की है वह तो केवल बहानामात्र है। क्या ये दलीलें उनके मुख से शोभा देती हैं जिन्होंने अभी हाल में ही ८० लाख जेकों की स्वतन्त्रता का अपहरण किया है? क्या यह उचित है कि ४०० हज़ार व्यक्तियों को स्वतन्त्रता प्रदान करने के लिए ३५० लाख व्यक्तियों की स्वतन्त्रता का अपहरण किया जाय?

परन्तु नाज़ियों को भली भाँति यह विदित है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि वे डैंज़िग पर अधिकार जमा लेंगे तो वे पोलेंड को समुद्र से अलग कर देंगे। आर्थिक तथा सैनिक दबाव के कारण वे या तो डैंज़िग को अपने पक्ष का एक राष्ट्र बना लेंगे। आप यह पूछ सकते हैं कि जब पोलेंड के पास अपना बन्दरगाह गायना मौजूद है तब वह डैंज़िग के लिए इतना व्यग्र क्यों हो रहा है? यह सम्भव है कि पोलेंड अपना कार्य डैंज़िग के बिना चला ले तथा अपना आयात-निर्यात गायना से करे। परन्तु क्या जर्मन डैंज़िग का इस प्रकार उजड़ना देख सकते हैं? वे यह कभी सहन नहीं कर सकते। इसके विपरीत जर्मनी की सैनिक तैयारियों के कारण पोलेंड का अस्तित्व सर्वदा खतरे में रहेगा तथा उसकी स्वतन्त्रता दिखावटी होगी।

ऐसी क्या ज़रूरत पड़ी है जो पोलेंड डैंज़िग पर जर्मनी का अधिकार न होने देने के लिए युद्ध करे। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि डैंज़िग को जीतने के बाद ही जर्मन पोलेंड की ३५० लाख जनता को अपने रंग-ढङ्ग में ढालेंगे। इसके बाद वे संसार में सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र होने का दावा करेंगे। मेमेल, कियोन्सबर्ग, डैंज़िग, तथा स्टेटिन पर अधिकार हो जाने से बाल्टिक सागर पर जर्मनी की प्रधानता हो जायगी। स्कैन्डेनैविया और बल्कान प्रायद्वीप के सभी राष्ट्र जर्मनी की अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किये जायँगे। जैसा कि हर हिट्लर ने नाज़ी बाईबिल में लिखा है कि रूमानिया की तेल की खानें और अकेरनी के मैदान तत्काल ही जर्मनी में मिला लिये जायँगे। उस समय संसार के प्रजातन्त्र राष्ट्रों के लिए अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करना कठिन कार्य होगा। यह सौभाग्य की बात है कि संसार के प्रजातन्त्र राष्ट्रों ने इस महत्त्व को समझ लिया है तथा अब डैंज़िग के विषय में कोई समझौता असम्भव हो गया है।

सीलोन के भारतीय

सीलोन से भारत का सदैव घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। पर आज वहाँ भी भारतीयों के साथ अन्याय किया जा रहा है। इस विषय पर 'प्रताप' में श्री नरोत्तमसहाय, बी० ए०, ने अच्छा प्रकाश डाला है। उनके लेख का कुछ अंश इस प्रकार है--

सीलोन के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक 'सीलोन, सीलोनवासियों के लिए', 'भारतीयों को निकाल बाहर करो' आदि अशुभ नारों से परिपूर्ण हो रहा है। कई हज़ार आदमी जो बरसों से सरकारी नौकरी करते आ रहे हैं--चाहे वे मुस्तक़िल हों या दूसरी तरह के, बर्ख़ास्त किये जा रहे हैं। खानगी फ़र्मों से भी कहा गया है कि वे सरकार की नीति के समर्थन में अपने यहाँ काम करनेवाले भारतीयों को निकाल बाहर करें। सीलोन की सरकार ने खेतों में काम करनेवाले मज़दूरों को वोट देने का अधिकार देने से इनकार कर दिया है। मध्यस्थिति-वाले भारतीय ज़मीन नहीं ख़रीद सकते। खानगी फ़र्मों में काम करनेवाले नौकरों की संख्या का पता लगाया जा रहा, ताकि उन पर भी ज़ुल्म ढाये जा सकें।

कुछ वर्षों पहले भारतीयों और लङ्का-निवासियों में किसी प्रकार का कोई मतभेद न था, पर सन् १९३१ में जब डोनोगमोर-विधान लागू हुआ तभी से आशङ्का और पारस्परिक विरोध का वातावरण क्रमशः तीव्र होने लगा। उक्त शासन-विधान के अनुसार देश का शासन लोकप्रिय मन्त्रिगणों के हाथ में चला गया और जो भारतीय लङ्का में ५ वर्ष से अधिक रह चुके थे, उन्हें अन्य सिंहली लोगों के समान वोट देने का अधिकार मिल गया। इस पर सिंहली लोग घबड़ाये। उन्हें भय हुआ कि कहीं भारत के लोकप्रिय नेता वहाँ आकर अपनी प्रभुता स्थापित न कर लें। उन्हें यह भी भय हुआ कि अगर भारतीय मज़दूरों का आना बदस्तूर जारी रहा तो एक दिन उनकी संख्या इतनी बढ़ जायगी कि वे अपना आधिपत्य स्थापित कर लेंगे। परन्तु खेतों के मालिक यह न चाहते थे कि भारतीयों के आगमन पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध लगे, अतः मन्त्रिमंडल भी ख़ामोश रहा। सन् १९३४ में सीलोन की स्टेट-कौंसिल ने यह प्रस्ताव पास किया कि सीलोनवासियों के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति को सरकारी नौकरियों में जगह न दी जाय। इस आज्ञा के होते हुए भी विभागों के अध्यक्ष भारतीयों को सरकारी नौकरियों में स्थान देते ही रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी हाल में ही स्टेट-कौंसिल ने एक बिल पास किया है। इस बिल का असर लगभग ९,००० नित्य वेतन पानेवाले कर्मचारियों पर पड़ेगा। इतना ही नहीं, इस बिल के अनुसार उन सभी नित्य वेतन पानेवाले कर्मचारियों को देश से निकालकर भारत भेज दिया जायगा जो पहली अप्रैल सन् १९३४ के बाद सरकारी नौकरियों में प्रविष्ट हुए थे। इन मज़दूरों को सन् १९३९ की पहली जुलाई को नोटिस दे दिया जायगा और जब वे गाँव पहुँच जायँगे तब उनको एक माह की अतिरिक्त तनख्वाह भी दे दी जायगी। शेष ८००० भारतीय कर्मचारियों से यह कहा है कि यदि वे ३१ दिसम्बर सन् १९३९ तक स्वेच्छा से अपनी नौकरी छोड़कर भारत चले जायँ तो उनको थोड़ी सी रक़म मुआवज़े के रूप में दे दी जायगी, अन्यथा किसी भी समय उनको निकाल बाहर किया जा सकता है।

कोलम्बो के विभिन्न भागों में सुप्रतिष्ठित भारतीयों की खुले आम बेईज़्ज़ती की जाती है। ग़ैर ज़िम्मेदार सिंहली कविताओं तथा लेखों-द्वारा भारतीय विरोधी भावना का प्रचार करते हैं। कई बार भारतीयों की सभा में सरे आम पत्थर और ईंटें फेंक कर उसे भंग कर दिया गया। कई बार तो स्थिति इतनी बेकाबू हो गई कि पुलिस की सहायता लेना अनिवार्य हो गया। कोशिश यह की जा रही है कि बर्मा की भाँति सीलोन में दंगा हो जाय। सीलोननिवासी भारतीय आज अत्यन्त भयभीत हैं। शिक्षा-सचिव सैकड़ों भारतीय शिक्षकों को निकालने की फ़िक्र में हैं। कोलम्बो-म्युनिसिपल कौंसिल में मज़दूर-नेता मिस्टर ए० ई० गुनेसिंह ने एक बिल इस आशय का पेश किया था कि सभी रोज़ तनख्वाह पानेवाले ग़ैर-सिंहली मज़दूरों को निकाल दिया जाय। उक्त बिल को एक कमिटी के सिपुर्द कर दिया गया है। अगर वह पास हो गया तो ३००० भारतीय और बेकार हो जायँगे। इतना ही नहीं, अभी चन्द दिन पहले सिंहली लोगों से यह अपील की गई कि भारतीय दूकानदारों का बहिष्कार कर दिया जाय।

मन्त्रिगण इस भारत-विरोधी भावना पर बिलकुल खामोशी धारण किये हुए हैं। इसका कारण यह है कि जनता के इस बढ़ते हुए असन्तोष में वे अपने शासन-सम्बन्धी कमज़ोरियों को छिपाना चाहते हैं।

मंगोलिया

आज जापान ने चीन का अधिकांश महत्त्वपूर्ण भाग अपने अधिकार में कर लिया है। इसके फलस्वरूप अब वह रूस के आमने-सामने आ गया है। यही नहीं, मंगोलिया की सीमा पर उसकी सेनाओं से रूसी सेनाओं का संघर्ष भी होने लगा है। ऐसी दशा में मंगोलिया का परिचय प्राप्त करना समाचार-पत्रों के पाठकों के लिए अधिक रुचिकर होगा। साप्ताहिक 'प्रताप' में मंगोलिया के सम्बन्ध में एक लेख छपा है, जिसका अधिकांश यह है—

मंगोलिया में गत वर्षों से सोवियट रूस, चीन और जापान का एक त्रिभुजाकार संघर्ष जारी है। इन तीनों में से प्रत्येक राष्ट्र लगभग १० लाख वर्ग मील के वृहत् प्रदेश—आन्तरिक और बाह्य मङ्गोलिया पर अधिकार जमाकर उससे लाभ उठाना चाहता है। युद्ध की आशङ्का दिन-ब-दिन गम्भीर होती जा रही है। समाचार हैं कि वहाँ पर छुटपुट हमले काफ़ी तादाद में किये जा रहे हैं। यदि युद्ध प्रारम्भ हो गया तो समस्त प्रदेश रक्त से लाल हो जायगा।

मङ्गोलिया का सुविस्तृत प्रदेश चारों ओर पहाड़ियों से घिरा हुआ है। यहाँ के निवासियों में खानाबदोशों की संख्या अधिक है और देश का एक बहुत बड़ा हिस्सा रेगिस्तान से तथा घास के मैदानों से आवृत है। बाह्य मङ्गोलिया २,६०,००० वर्ग मील का एक पहाड़ी प्रदेश है। गोबी के २,६०,००० वर्ग मील लम्बे-चौड़े मैदान में जापानी और रूसी सेनाओं में मुठभेड़ हो रही है। जापानी लोगों का कथन है कि इसका कारण रूस-निवासी हैं। वहाँ के निवासी आम तौर पर सभ्यता के प्रारम्भिक युग में ही हैं। वे जानवर पालते हैं और उन्हीं को अपना सर्वस्व समझते हैं। जुए की खेती करना तो आज भी नहीं जान सके हैं। फिर भी देश में उर्वरा शक्ति की कमी नहीं है और इस बात की सख्त ज़रूरत है कि भूमि को जोतकर उसमें अन्न उठाया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतने बड़े देश में केवल ४० या ५० लाख मङ्गोल ही निवास करते हैं। ये लोग अपने को चंगेज़ख़ाँ का वंशज कहते हैं और बड़े गर्व से उसका नाम लेते हैं। लगभग एक हज़ार वर्ष पूर्व इतिहास में इनका नाम भी न था। पारस्परिक कलह और आपसी संघर्ष में इन्होंने युद्ध-कला की शिक्षा ग्रहण की। एकाएक तेरहवीं शताब्दी में कुशल नायकों के नेतृत्व में इन लोगों ने एशिया ही नहीं, किन्तु योरप के भी बड़े बड़े भू-प्रदेशों पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। इन्होंने अनेक राष्ट्रों का मूलोच्छेदन कर डाला और इसी प्रकार एक के बाद एक देश को जीतते हुए ये हंगरी तक पहुँच गये। अन्त में 'मङ्गोल' शब्द एक बेहद भयानक चीज़ हो गया। पर उन्नति की चरमसीमा पर पहुँचने के बाद ये उसी प्रदेश में, जहाँ पर बड़ी आनबान से शासन कर चुके थे, एक नगण्य जाति की भाँति जीवन-यापन करने लगे।

बाह्य मङ्गोलिया की आबादी लगभग १० लाख है। सन् १९१५ में वह चीन से अलग हो गया और स्वशासनप्राप्त राष्ट्र मान लिया गया। फिर भी राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से इस पर रूस का आधिपत्य है। आन्तरिक मङ्गोलिया की आबादी भी लगभग इतनी ही होगी। इस पर कुछ वर्ष पहले चीनी अधिकार था, पर आजकल जापानी शासन का बोलबाला है। आज के मङ्गोल प्राचीन मङ्गोलों से बहुत भिन्न हैं। उनके अन्दर भावना-सम्बन्धी महान् परिवर्तन हुआ है। वे अत्याचारी बहादुर लड़ाके जिनसे किसी समय दुनिया काँपती थी, आज दयापूर्ण दिखाई देते हैं। बुद्ध-धर्म ने अहिंसा परमो धर्मः की वाणी से उनके हृदय की कठोरता को पिघलाकर उनको कोमल बना दिया है। सम्भवतः अपनी इसी कोमल वृत्ति के कारण वे चीन, रूस और जापान के शासन को स्वीकार करते आये हैं, पर इधर कुछ दिनों से उनके अन्दर की चिर सुषुप्त तन्द्रा भंग हो गई है और वे चाहते हैं कि आपस में मिलकर एक महान् राष्ट्र की स्थापना करें। कहते सम्भव है कि पुनः एक बार मङ्गोल-जाति का भविष्य उज्ज्वल हो उठे। मङ्गोल-जाति में सैनिक गुणों का प्राधान्य है।

बाह्य और आन्तरिक दोनों ही मङ्गोलिया नाममात्र को स्वशासनप्राप्त प्रदेश हैं। आन्तरिक मङ्गोलिया को चीन की सरकार ने सन् १९३३ में आज़ादी दी थी। जापानियों ने उनकी नाममात्र की आज़ादी पर आघात करना उचित न समझकर उसे क़ायम रहने दिया है, पर वहाँ का शासन जापानी शस्त्रों की छाया में होता है। जापानियों ने वहाँ की रेल का प्रबन्ध भी अपने हाथों में ले लिया है।

मङ्गोलिया की राजनीति का सिंहावलोकन करने से मालूम होता है कि यहाँ के निवासी किसी बड़ी मशीन के पुर्ज़ों की तरह हैं। इनकी वर्तमान अवस्था पर तरस आता है। मंगोल आज सुदूरपूर्व की राजनीति-रूपी शतरंज की शक्तिहीन मुहरों की तरह है।

आँवले की उपयोगिता

आँवले के गुणों से भारतीय बहुत कुछ परिचित हैं और वे प्रायः कहा भी करते हैं कि 'धात्री-फलं सदा पथ्यम्'। प्रसन्नता की बात है कि उसी आँवले को विज्ञान-विशारदों ने भी अपने परीक्षणों से उपयोगी बताया है, जैसा कि 'दैनिक हिन्दी-मिलाप' के निम्न विवरण से प्रकट होता है—

वैसे तो सभी ताज़े फलों और तरकारियों में विटामिन (पौष्टिक तत्त्व) 'सी' की कुछ न कुछ मात्रा मौजूद रहती ही है, लेकिन आँवले में यह जितना पाया जाता है, उतना शायद और किसी खाद्य वस्तु में नहीं। इसी लिए कहा गया कि जितने खाद्य पदार्थों के सम्बन्ध में अब तक छानबीन की गई है, उन सबमें आँवला ही ऐसा पाया गया है, जिसमें विटामिन 'सी' सबसे अधिक है।

विटामिन 'सी' लवणरक्त नामक चर्मरोग को होने से रोकता और उसे दूर भी करता है। भिन्न भिन्न फलों में विटामिन भी भिन्न भिन्न मात्रा में पाया जाता है, जैसे कि सन्तरे में, जो बहुधा बच्चों को सबसे अधिक दिया जाता है, लगभग ४० मिलीग्राम 'सी' विटामिन होता है जब कि केले में इसका लगभग दसवाँ भाग ही होता है। इसी प्रकार एक छोटे से ताज़े आँवले में सन्तरे की अपेक्षा बीसगुना 'सी' विटामिन अधिक होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सब अन्वेषण मदरास की वायकैमिकल लैबरेटरी और बङ्गलोर के इंडियन-इंस्टीट्यूट आफ़ साइंस में हुए हैं।

आँवले को बारहों महीना सुरक्षित रख सकते हैं। वैसे तो जब आँवलों की ताज़गी निकल जाती है तब उनका विटामिन 'सी' नष्ट हो जाता है, लेकिन आँवले को सुरक्षित रखने की जिन प्रणालियों का पता लगाया गया है उनसे आँवले का 'सी' विटामिन बहुत कम नष्ट होता है।

आँवले को सुरक्षित रखने की प्रणालियों में से सबसे सरल प्रणाली आँवलों को कुचलकर उन्हें छाया में (धूप में नहीं) सुखा लेना है। सूखने पर चूर्ण में 'सी' विटामिन काफ़ी मौजूद रहता है, जो कई महीने तक ज्यों का त्यों बना रहता है।

दूसरी प्रणाली में आँवलों को पहले गरम पानी में दो-चार मिनट भिगोना चाहिए और फिर निकाल कर नमकीन पानी में डाल देना चाहिए। इस प्रणाली से भी बहुत कम विटामिन नष्ट होता है। स्मरण रखना चाहिए कि आँवलों का मुरब्बा या अचार बनाने में उन्हें उबालने से उनका बहुत पौष्टिक गुण चला जाता है।

बहुत-सी आयुर्वेदीय ओषधियों में भी आँवले का उपयोग होता है, फिर भी भारत में अभी इसका जितना उपयोग होता है वह बहुत ही कम है। बच्चों के शरीर में विटामिन 'सी' पहुँचाने के लिए आँवले से बढ़कर और कोई चीज़ नहीं हो सकती, क्योंकि यह रुचिकर भी होता है और पचता भी जल्दी है। आँवले का एक चम्मच रस दैनिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त है।

प्रान्तीय घूस-निवारक कमिटी की सिफ़ारिशें

हमारे प्रान्त की सरकार घूसखोरी का मूलोच्छेद कर देने के लिए आरम्भ से ही प्रयत्नशील है। मंत्रित्व स्वीकार करने के कुछ ही समय बाद उसने इस सम्बन्ध में सब सरकारी हाकिमों के पास गश्ती चिट्ठियाँ भेजी थीं और इसी काम के लिए एक विशेष अफ़सर भी रख दिया था जिसे घूस के केस पकड़ने तथा उनके सम्बन्ध में उचित कारवाई करने का अधिकार दिया गया था। पिछले दिनों में उसने घूस-निवारक कमिटी नाम की एक कमिटी नियुक्त की थी। इस कमिटी ने सरकार के सामने २९ सिफ़ारिशें रक्खी हैं जिनमें से अधिकांश को सरकार ने स्वीकार कर लिया है, वे सिफ़ारिशें निम्न हैं:—

१—जो मनुष्य सरकारी नौकरी में भर्ती हो वह उस अचल सम्पत्ति की एक नामावली बनाकर दे जो उसकी हो या जो उस पर निर्भर कुटुम्बी की हो। ३—सरकारी नौकर जो सामान ख़रीदें, चाहे दौरे पर हों या न हों उसकी पूरी क़ीमत दे। अपने से नीचे अफ़सरों की मार्फ़त कोई सामान न ख़रीदें। ५—किराये की गाड़ियों में बिना किराया दिये सफ़र न करें। ६—सरकारी अफ़सरों के लिए जो नियम बने हुए हैं उनका तथा रुपया उधार लेने और ख़रीदने और बेचने के नियमों का पूरी तरह से पालन किया जाय। ७—जिन सरकारी नौकरों को ३०) मासिक या इससे अधिक वेतन मिलता है उन सबकी हर साल उनका आला अफ़सर ईमानदारी की सनद दे। १२—जितने नये नौकर भर्ती किये जायँ उन सबको दफ़्तरों में केवल सबसे बड़े अफ़सर नियुक्त करें। कचहरी में सबसे ऊँचा अफ़सर ही मुकदमों के सुनने की तारीख़ मुक़र्रर करे। १३—आला अफ़सरों को ऐसी योजना बनानी चाहिए कि मातहत अफ़सरों में घूसखोरी रोकी जा सके।

बार एसोसिएशन कमिटियाँ बनावें कि वकीलों के क्लर्कों द्वारा होनेवाली घूसखोरी रोकी जाय। १७—सब सरकारी अफ़सरों के चाल-चलन-सम्बन्धी काग़ज़ों की जाँच की जाय और जिन अफ़सरों की चाल-चलन घूसखोरी के सम्बन्ध में असंतोषजनक पाई जाय उन्हें चेतावनी दी जाय। २०—दफ़्तरों के स्थानीय आला अफ़सर इस आशय की सालाना रिपोर्ट पेश करें कि दफ़्तरों में किस हद तक घूसखोरी प्रचलित है और उसे मिटाने के लिए क्या क्या प्रयत्न किये गये। २१—जब किसी विभाग का सबसे ऊँचा अफ़सर यह देखे कि उसी दर्जे का कोई अफ़सर घूसखोरी पकड़ने के सम्बन्ध में लापरवाह रहा है तो वह उस अफ़सर के चाल-चलन-सम्बन्धी काग़ज़ों में यह बात दर्ज कर दे।

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग नं० ३७ का नतीजा

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ९ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ३३।-) मिले।

(१) श्रीमती सविता देवी, पूर्णिया, बिहार।
(२) राधेश्याम अग्रवाल, ४३, पानदरीबा, इलाहाबाद।
(३) मिसेज़ ओंकारनाथ गुप्त, ७९, पानदरीबा, इलाहाबाद।
(४) श्री गोपाल माहेश्वरी c/o ठाकुरदास लछमनदास, चौक, मथुरा।
(५) बी० जी० माहेश्वरी, c/o ठाकुरदास लछमनदास, चौक, मथुरा।
(६) रमावती पांडेय, c/o सब पोस्टमास्टर, लखना, इटावा।
(७) नीलमणि बनर्जी, ट्रेसर, इक्ज़ेक्यूटिव इंजीनियर्स आफ़िस, हुगली।
(८) स्नेहलता c/o टी० डी० भट्टाचार्य, Balmer Lawrie Office Accts Deptt, Clive Street Calcutta.
(९) चिरंजीलाल, गुरुकुल वि० वि० वृन्दावन, मथुरा।

द्वितीय पुरस्कार १२७॥) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ३० व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ४।) मिले।

(१) दशरूलाल तेली, कक्षा ७ सबर्टसन नार्मल स्कूल, सिवनी (सी० पी०) B. N. R.। (२) खड़ानन्द सुनार, कायस्थपारा, पुरानी बस्ती, ज़िला रायपुर सी० पी०। (३) रवीन्द्रनाथ सलेमपुरी, बैजूप्रसाद, सरजूप्रसाद, चौक बलिया। (४) कृष्णकुमार कक्षा ९, पं० रघुवीर-शरण कृष्णकुमार ज्योतिषी, बुलन्दशहर। (५) मिसेज़ माधोलाल माथुर, हेड मास्टर बी० एम० एस०, पो० सिंधाना (जयपुर स्टेट)। (६) वंशीधर वाजपेयी, मु० धर्मपुर, पो० इटौंजा, जि० लखनऊ। (७) दलीपसिंह, आसौदा (रोहतक)। (८) चंडीप्रसाद झुझनूवाला १८७ चितरंजन एवन्यू, कलकत्ता। (९) यशोदा रानी c/o बरकत राम टीचर, बिरला कालेज पिलानी (जयपुर स्टेट)। (१०) सीताराम टेलरमास्टर c/o विजयनरायन, श्रीवास्तव चौक बलिया। (११) रघुनाथराव अ० मा० हिन्दी मिडिल स्कूल, धरमपुरी राज्य धार (सी० आई०) (१२) रामभरोसे विश्नोई ए० वी० हाई स्कूल, मु० औरैया, जि० इटावा। (१३) दाऊदयाल गुप्त c/o सीताराम सालिगराम, कमीशन एजेन्ट, हाथरस। (१४) के० जी० नाटू c/o डी० के० नाटू, नायब तहसीलदार, गुना, ग्वालियर स्टेट। (१५) मायारानी नायक c/o राधिकाप्रसाद नायक, सिविल सर्जन आफ़िस, छिन्दवाड़ा (सी० पी०)। (१६) कैलाशपति पाठक, मु० पो० डुमरी, जि० शाहाबाद (आरा)। (१७) कृष्णगोपाल माहेश्वरी, ठाकुरदास लछमनदास सौदागर, चौक बाज़ार मथुरा। (१८) प्यारेलाल गुप्त, मैनेजर सेंट्रल कोआपरेटिव बैंक, बिलासपुर। (१९) यमुनाप्रसाद c/o द्वारकाप्रसाद, हेड नेदिल इ० इन्स्टीट्यूट गोरखपुर। (२०) विश्वनाथप्रसाद c/o फतहचन्द, मंत्री मु० पो० गुमला, राँची, बिहार (२१) एल० डी० वी० एस० अध्यापक, मुआनी, पोस्ट थल, अल्मोड़ा। (२२) सुन्दरलाल लास्टमैन, अम्बिकापुर (सुरगुजा) स्टेट। (२३) भगवानदास, पोस्टल पेंशनर, गाज़ियाबाद, मेरठ। (२४) सुशीलकुमारी मिश्र 'हर निवास' १४ मोहनी रोड, देहरादून। (२५) सुनीलकुमार मिश्र, 'हर निवास' १४ मोहनी रोड, देहरादून। (२६) ज्वालाप्रसाद श्रीवास्तव, c/o रामप्रसाद नारायन, स्टेशन-मास्टर रक्सौल, चम्पारन। (२७) अमला रानी c/o पं० कृष्णदत्त भारद्वाज, मार्डन हाई स्कूल, नई दिल्ली। (२८) ब्रजकिशोर विद्यार्थी, मु० सरेंधी, पो० जगनेर, ज़िला आगरा। (२९) प्रकाश मिश्र c/o राजेन्द्र मिश्र, विसौली बदाऊँ। (३०) अभिनय बनर्जी, tracer इक्जीक्यूटिव इंजीनियर्स आफ़िस, हुगली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय पुरस्कार ७३) (दो अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ७३ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १) मिला।

(१) रविप्रताप वर्मा, लक्ष्मीभवन, नरसिंहपुर (सी० पी०) (२) मिसेज़ मदनमोहन टंडन, c/o टंडन ब्रादर्स, सिविल लाईन, मुरादाबाद। (३) विद्यावती कृष्णचन्द्र अग्रवाल, श्री सदन लैन्ड्स ऐंड रोड, मलाबार हिल, बम्बई। (४) सुलभा गुप्ता, श्रीमदन Lands End Road, Bombay (५) रेखा श्रीवास्तव, c/o फ़तहबहादुर सिंह, छोटी बस्की, दारागंज, इलाहाबाद। (६) बलवीर प्रसाद, क्लास XII A गवर्नमेंट इंटर कालेज़, इलाहाबाद (७) ननकाई लाल, c/o टेनी, ४२३, कीटगंज, इलाहाबाद। (८) पुष्पा श्रीवास्तव c/o ब्रजविहारी लाल श्रीवास्तव, मेडिकल आफ़िसर, दारागंज, प्रयाग। (९) गोपीनाथ गुप्त c/o बाबू रामलाल मुनीम, दारागंज, प्रयाग। (१०) राधाविनोद वाजपेयी, चौखंडी, कीटगंज, प्रयाग। (११) सुन्दरलाल जैन, सेंट्रल बैंक आफ़ इंडिया लि०, साँभर झील, राजपूताना। (१२) लक्ष्मी-नारायण शर्म्मा, पो० रूपधनी, ज़ि० एटा। (१३) श्रीमती गङ्गाधर व्यास, गौरीशंकरभवन, इन्द्रगढ़ (राजपूताना)। (१४) राजा रानी देवी सक्सेना, तमोली पाड़ा, अलीगढ़। (१५) धरनीधर नारायण, कोर्ट इंस्पेक्टर, सीतामढ़ी कोर्ट, ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर। (१६) कुमुदिनी देवी, c/o धरनीधर नारायण कोर्ट इंस्पेक्टर, सीतामढ़ी कोर्ट, ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर। (१७) राजेन्द्र मिश्र, मदनलाल हाई स्कूल, बिसौली, बदायूँ। (१८) रघुनाथप्रसाद, पीतल की दूकान, साक्षीविनायक कटरा, बनारस। (१९) शङ्करलाल, स्टेट स्कूल संगरीय, (बीकानेर राज्य)। (२०) रघुनाथसिंह ओवरसियर, नामनेर, आगरा। (२१) सत्यपाल मित्तल, c/o बा० भगवानदास पेंशनर, ग़ाज़ियाबाद। (२२) छोटेलाल, मैनेजर खादी कार्यालय गढ़ा कोटा, सागर, सी० पी०। (२३) लालसिंह नौरावत, डग, झालावाड़ (राजपूताना) चौमहला स्टेशन। (२४) जयालाल लक्ष्मी याज्ञिक c/o माधवलाल याज्ञिक S. R. K. इंटर कालेज, फिरोज़ाबाद, आगरा। (२५) शालिग्राम, अपर स्कूल, जरगाँव, ज़ि० मुरादाबाद। (२६) जी० एल० शृङ्गी, c/o राठौर ब्रादर्स, रामपुरा बाजार, कोटा (राजपूताना)। (२७) राजकिशोरी, देवी, साहनपुर स्टेट ज़ि० बिजनौर। (२८) अम्बादत्त बंदोणी, सतीशचन्द्र कटियार कक्षा १२ बी०, एन० एस० डी० कालेज़, कानपुर। (३०) गोविन्दराव भट्ट c/o विनायकराव भट्ट सब पोस्टमास्टर ललितपुर। (३१) कुँवरसिंह रावत, पो० बैजनाथ, अलमोड़ा। (३२) मार्कण्डेय शुक्ल, ३५ सर्कुलर रोड, न्यू कटरा, इलाहाबाद। (३३) श्यामलाल शर्मा, ब्रांच टैक्स इन्सपेक्टर, मारू गली, आगरा। (३४) रामसजीवन लाल जड़िया, c/o बलदेवप्रसाद जड़िया, स्टेट अजयगढ़, सी० आई०। (३५) लक्ष्मीदास यादव, कोबिल, पटना। (३६) कुमार रघुनाथ वर्मा, नामली (रतलाम)। (३७) जगदम्बाप्रसाद तिवारी, ४९४ दारागंज, इलाहाबाद। (३८) श्रीमती मुरारीलाल c/o अरुण कार्य्यालय, जिलाह स्ट्रीट, मुरादाबाद। (३९) विजयपाल अग्निहोत्री, अकबरपुर, कानपुर। (४०) कमलारानी c/o मिस्टर शेरसिंह जज, श्रीगंगानगर, बीकानेर स्टेट। (४१) श्यामसुन्दरलाल पाण्डेय, क्योंटरा, इटावा। (४२) हरीशङ्करलाल खत्री, ७।५० गोलागली, बनारस सिटी। (४३) अमरनाथ c/o बाबू रामसिंहासनलाल, मालगोदाम बलिया। (४४) बी० एस० कार्की, मुआनी, पो० धन ज़िला अलमोड़ा। (४५) शान्तिदेवी c/o छोटेलाल वेंडर, कोटा जंक्शन (राजपूताना)। (४६) शिवप्रसाद गुप्त, हेडमास्टर स्टेट स्कूल, पो० रेनी (बीकानेर स्टेट)। (४७) नारायणस्वरूप क्लर्क, पो० आ० खंतड़ी (राजपूताना)। (४८) कुमारी शीला यादव c/o चौ० सूरजसिंह, S.o.S. खुसाब, ज़ि० शापुर (पंजाब)। (४९) शारदा देवी बाहरी, c/o विद्याधर, सारदा फार्मेसी सोलन, शिमला हिल्स। (५०) हरीदत्त पाठक, बेरीनाग, अलमोड़ा। (५१) बृजलाल d.o मेताबजी, स्टेट सुपरिंटेंडेंट, रियासत पिपलोदा वाया जावरा, मालवा। (५२) जयदेवी c/o डा० रामचरणलाल गुप्त, हुसेनगंज, लखनऊ। (५३) कृष्णादेवी c/o डा० राम चरणलाल गुप्त, हुसेनगंज, लखनऊ। (५४) माधवप्रसाद शुक्ल, अजगैन, उन्नाव। (५५) रघुवीरसिंह, रामपुरहंस, डाक फ़रीदपुर, ज़ि० बरेली। (५६) मोतीलाल c/o धारी भगत सत्यनारायण राम, पो० बलिया। (५७) जगन्नाथप्रसादसिंह मुख्तार, सीतामढ़ी कोर्ट, मुज़फ़्फ़रपुर। (५८) जगदीशनारायण

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar
Sandaman LibraryQuetta

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहादुरगंज, शाहजहाँपुर। (५९) आदित्यनारायण-सिंह, धौरानी टोला, मुकामा, ज़ि० पटना। (६०) शिवप्रसाद, कोठी, बलिया। (६१) त्रेतानाथ ओझा, रामपुर (सी० पी०)। (६२) रामचन्द्रसिंह (भाई), राजापुर पो० पटना। (६३) लाला चन्द्रसेन रस्तोगी, मनौता, पो० फलावदा, मेरठ। (६४) एम० ए० नप्पो, बी० ए० स्कूल, राँची। (६५) पहलवानसिंह, प्राइमरी स्कूल, गरौठा, (झाँसी)। (६६) बरकतराम बिड़ला कालेज, पिलानी। (६७) जीतेन्द्रसिंह, बिलाईगढ़, वाया, सारंगगढ़, रामपुर। (६८) मोतीलाल मोहन भाई पटेल, खलघाट, धार। (६९) सरोजकुमारी, पुखराया, कानपुर। (७०) महावीरप्रसाद, रामनगर, बनारस। (७१) विद्यावती देवी, चारबाग, लखनऊ। (७२) हरिप्रिया देवी, हलद्वानी, नैनीताल। (७३) पुष्पलता, काशीपुर, नैनीताल।

उपर्युक्त सब पुरस्कार सितम्बर के अन्त तक भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।

केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

जिनको १) का पुरस्कार मिला है उन्हें १) के दो प्रवेश-शुल्क-पत्र भेज दिये जायँगे, जो नियम के अनुसार तीन महीने के भीतर इसके साथ दो पूर्तियाँ भेज सकेंगे।

राजदुलारी

(लेखक, श्रीयुत चन्द्रभूषण वैश्य)

इस बहुत ही रोचक और भावपूर्ण घटनाओं से भरे हुए उपन्यास में हिन्दू-समाज विशेषतः कलकत्ते के व्यापारिक क्षेत्र से सम्बन्ध रखनेवाले उत्तर भारतीय हिन्दुओं की सामाजिक अवस्था पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। अनुभवी लेखक ने अपनी अनुपम कल्पना-शक्ति के बल पर जिन पात्रों की सृष्टि की है वे केवल कल्पना-लोक के ही जीव नहीं हैं बल्कि हमारे समाज के जीवित अङ्ग हैं। इसमें दहेज-प्रथा के दुष्परिणामों पर बहुत ही करुण भाव से प्रकाश डाला गया है। पुस्तक इतनी रोचक है कि एक बार पढ़ना आरम्भ कर देने पर फिर छोड़ने को जी नहीं चाहता। मूल्य केवल १)।

मैनेजर, बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा-विज्ञान

लेखक—रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०

वास्तव में यह कोई नई पुस्तक नहीं है। यह तो उक्त नाम की प्रसिद्ध पुस्तक का संशोधित और परिवर्धित संस्करण है। इसका परिचय नये सिरे से देने की ज़रूरत नहीं। इस विषय पर हिन्दी में पीछे से जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनसे इसमें बहुतसी विशेषतायें हैं।

इसमें सात प्रकरण हैं जिनमें क्रमशः शास्त्र की महत्ता, उसका विस्तार अन्य शास्त्रों से सम्बन्ध, भाषा-विज्ञान का संक्षिप्त इतिहास, भाषा और भाषण पर विचार, भाषा की उत्पत्ति, भाषाओं के वर्गीकरण की रीति और भारोपीय वर्ग की भाषाओं का विवरण है। इसमें ध्वनिविचार, रूपविचार और अर्थविचार पर विवेचन किया गया है जो बड़े महत्त्व का है। यह ग्रन्थ प्रत्येक भाषाप्रेमी के देखने लायक है। विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से इसकी प्रशंसा की है।

इसमें रायल साइज़ के कोई पौने तीन सौ के लगभग पृष्ठ हैं। अच्छे ऐन्टिक काग़ज़ पर; पाइका टाइप में; छपी सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) तीन रुपये।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड
इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

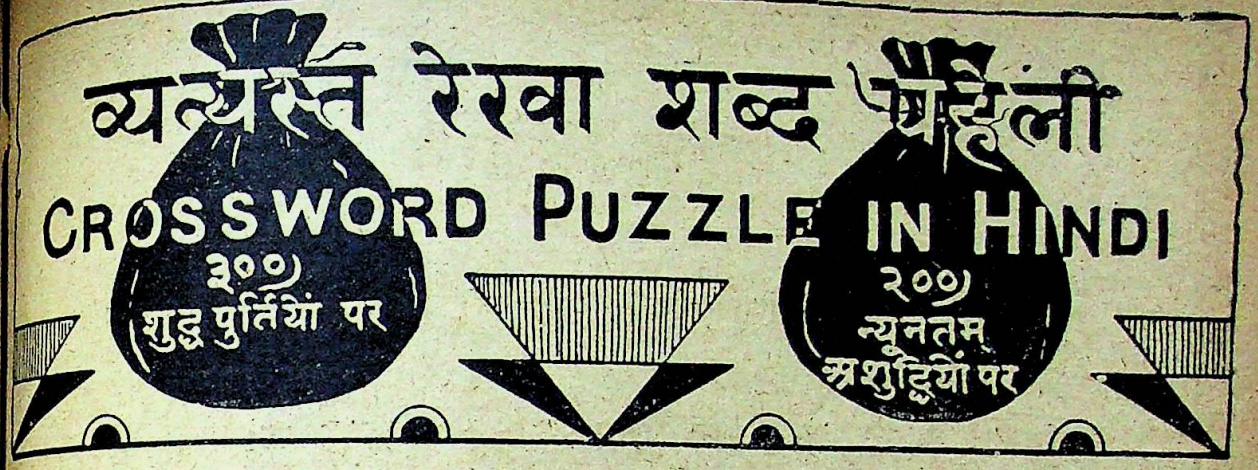

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पात्रका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनी आर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ३८, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े के दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २७ सितम्बर तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २५ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद की डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्क-परिचय

बाँयें से दाहिने

१–व्रज-भाषा का एक प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ।
५–रोज़ न हो पर पितृपक्ष में इसकी बड़ी ख़ातिर होती है।
७–चंचलता भी इसके सौन्दर्य का एक लक्षण माना जाता है।
८–यदि यह नहीं तो दुनिया में होना न होना एक-सा।
१०–पंजाब की एक प्रसिद्ध सिक्ख-रियासत।
११–मूर्ख ही इसका अविश्वास कर सकता है।
१५–यह कुलीन वंश का है।
१६–नदी का जल इसके स्थान पर अधिक गहरा होगा।
१७– ... करे सो मेवा खाय।
१९–इस पर नींद बड़े सुख की आती है।
२०–हिन्दू लोग इसे भी देवी कहते हैं।
२२–मान का पान इसी के समान होता है। २३–गृहिणी।
२४–स्त्रियाँ इसे आँखों का शृङ्गार समझती हैं।
२५–ज़ान चली जाय पर इसका छूटना मुश्किल है।
२८–यह हाथ उलटा पड़ा है।
२९–कहते हैं कि राम-राज्य में ये भी माँगने पर जल देते थे। ३०–एक प्रकार के साधु।
३१–जिसे यह कला सिद्ध हो गई वह अमर हो जाता है।

ऊपर से नीचे

१–न चाहने पर भी मन को कभी-कभी इसमें फँसना ही पड़ता है।
२–जिसको इसमें हानि-लाभ का भय नहीं होता उसकी लोग इज़्ज़त नहीं करते।
३–मीराबाई की भक्ति इसी प्रकार की कही जाती है।
४–इसके न होने से समाज में लोग नीची निगाह से देखते हैं।
६–विज्ञापन को व्यापारी लोग अपने माल के—का साधन समझते हैं।
९–हवाई जहाज़ों की लड़ाई देखने की साध शौक़ीन इसकी लड़ाई देखकर पूरी करते हैं।
१२–हिन्दुस्तान के लोग ही इससे रोटी खाते हैं।
१३–पुत्र परिवार का ऐसा ही धन है।
१४–हमारे इन भाइयों की समस्या दिन-दिन उलझती जा रही है। १७–रेशमी चादर।
१८–इससे ही साधु सिद्ध बन जाता है।
१९–गामा को लोग संसार का सर्वश्रेष्ठ यह समझते हैं।
२१–गालियाँ सुनकर भी जिसे यह नहीं आता वह या तो कायर है या साधु।
२२–शरीर का यह निकल गया फिर मिट्टी है।
२४–जनता एक बार इसका विरोध बड़े ज़ोर से करती है।
२६–गश्त देनेवाले सिपाही।
२७–इसमें मोती की चमक लाने के लिए स्त्रियाँ हज़ार रुपये फूँक देती हैं।

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३८ की पूर्तियों को नक़ल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

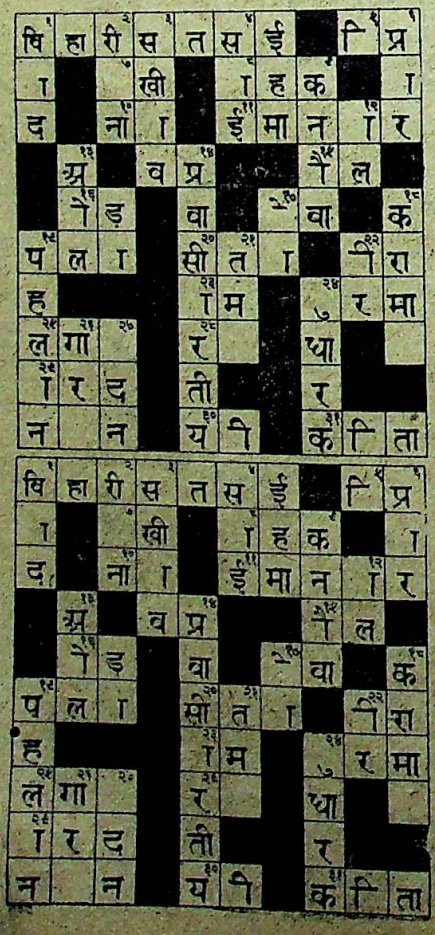

वर्ग नं० ३७ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ३७ की शुद्ध पूर्ति जो बद लिफ़ाफ़े में बन्द लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।

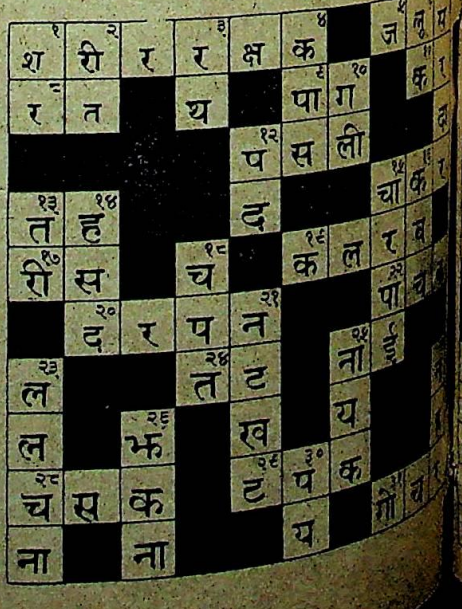

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग नं० ३७ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ३७ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०...में { कोई अशुद्धि नहीं है। / १,२ अशुद्धियाँ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर

पता

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १५ सितम्बर के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० ३८

इंडियन प्रेस, लि०,

इलाहाबाद

भुक्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

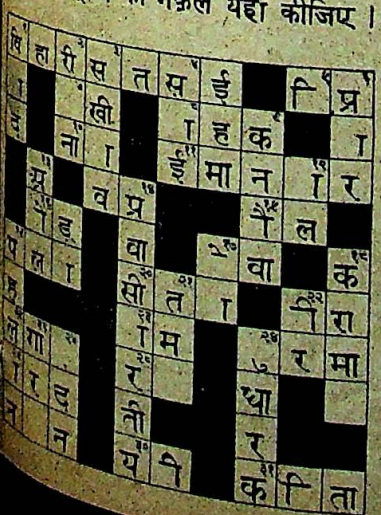

इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० ३८ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

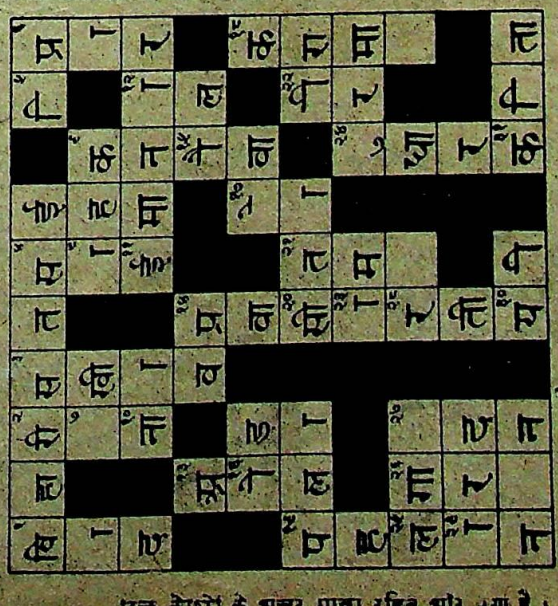

वर्ग नं० ३८ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

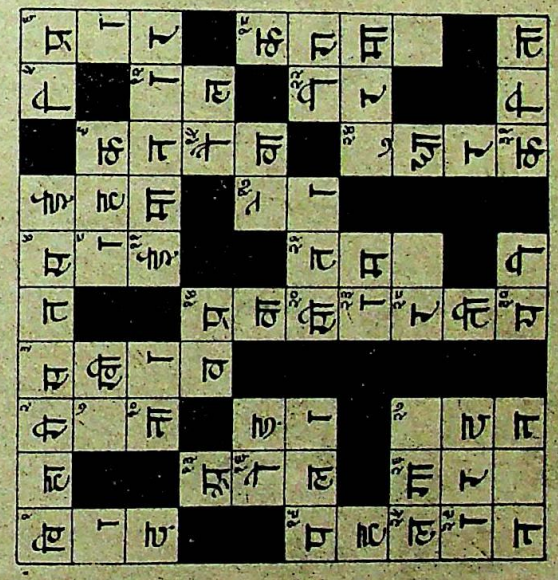

वर्ग नं० ३८ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

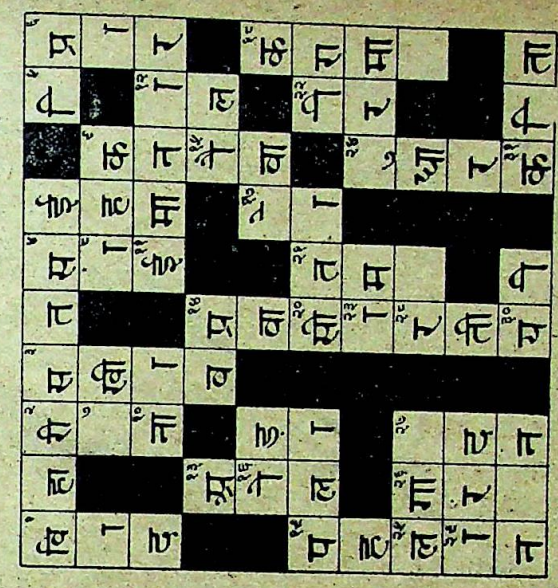

नाम

पता

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को यों ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। 'विशेष ब्योरा' पृष्ठ ३०२ पर देखिए।

[रङ्ग कोष्ठों के अक्षर मात्रा रहित और पूर्ण हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई शंकायें

मलेपुर
(मुंगेर
२३-७-३९

प्रिय वर्गनिर्माता जी,

मैंने भी ३५ वें वर्ग की पूर्ति की थी पर खेद है कि पुरस्कार पाने में असमर्थ रहा। मैं कुछ शंकायें आपके पास भेज रहा हूँ। आप इनका उचित समाधान कर दें। यों ही सिर्फ़ बात बनाने की कोशिश मत करें। मुझे पूरी आशा है कि पत्र और आपका उत्तर आगामी महीने की सरस्वती में मैं देख सकूँगा—

संकेत :—"जनता इसी से वश में आती है"। आपका उत्तर—'सेना"। हमारे हृदय-सम्राट् गांधी जी ने यह सिद्ध कर दिया है कि "जनता सेवा से वश में आती है," सेना से विद्रोही वश में आते हैं। पर यहाँ आपके जनता शब्द से यह अर्थ—"विद्रोही जनता"—नहीं निकलता— फिर अनुपयुक्त शब्द "सेना" क्यों?

संकेत :—"ज़मींदार इसके लिए बहुत लड़ते हैं"। उत्तर है "हल"। अगर मेरी समझ भूल नहीं कर रही हो तो मैं कहूँगा कि इस ज़माने में ज़मींदार "हक़" के लिए लड़ते हैं और "हल" के लिए जनता लड़ती है। ज़मींदारों को "हल" से क्या मतलब? उन्हें तो गाने चुम्बी अट्टालिकाओं से मतलब है।

भवदीय—
मिश्र व्रजवल्लभ चतुर्वेदी

C/o Pandit Jagannath Pd. Chaturvedi
Sahitya Bhusan
P.O. Mallehpur
(Monghyr

हमारी कुछ नव प्रकाशित पुस्तकें

चिन्तामणि—आचार्य्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों का संग्रह ।।।)
द्विवेदी-मीमांसा—श्री प्रेमनारायण टंडन १।।)
पुष्करिणी—श्रीयुत भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कहानियों का संग्रह १।।)
कपाल-कुण्डला—अनुवादक, श्री सूर्य्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ।।।)
देवी-चौधरानी—,, ,, ,, ,, ,, १)
अज्ञात-दिशा की ओर—अनुवादक, श्रीयुत ठाकुरदत्त मिश्र ।।।)
स्वामी—अनुवादक, श्री रूपनारायण पाण्डेय ।।)
मोपासाँ की चुनी हुई कहानियाँ—अनुवादक, गोपीनाथ क़ानूनगो ।।।)
स्काटलैंड यार्ड की जासूसी स्त्री— ।।=)
वेणी-संहार—अनुवादक, श्रीयुत हरदयालसिंह १)
मेवाड़-उद्धार—लेखक, श्रीयुत चन्दशेखर पाण्डेय ।)
विन्ध्य-विरुदावली—लेखक, श्रीयुत रामशङ्कर द्विवेदी काव्यतीर्थ ।)
कालिदास की कहानी—श्रीयुत ठाकुरदत्त मिश्र ।)
पौराणिक कहानियाँ— ।)
लाल बौना—लेखक, देवीदत्त शुक्ल ।)
दो मित्र— ,, ,, ,, ।)
दो अवतार— ,, ,, ,, ।)
बाल द्विवेदी— ,, ,, ,, ।)
एक आत्मकथा— ,, ,, ,, ।)
बाघ सिंह के मुँह में— ।)
बाघ और भालू की कहानी— ।)
अद्भुत कहानियाँ—

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

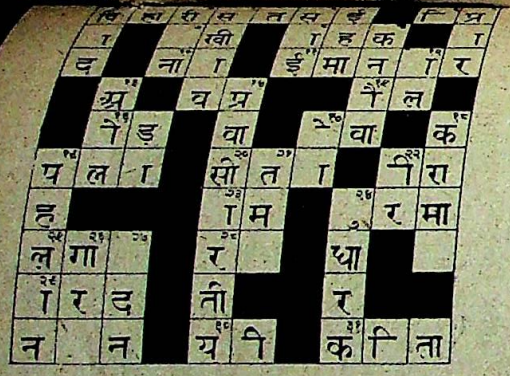

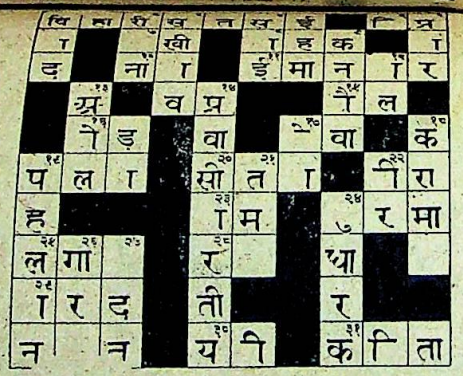

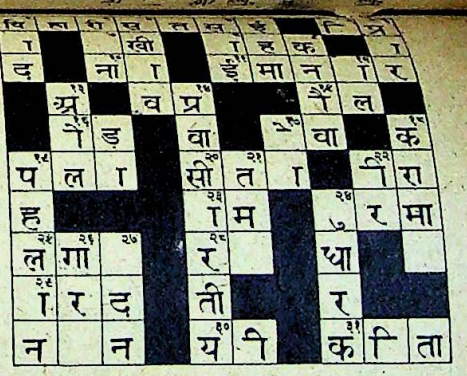

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३८ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० ३८ पूर्ति नं०... फ़ीस ॥)

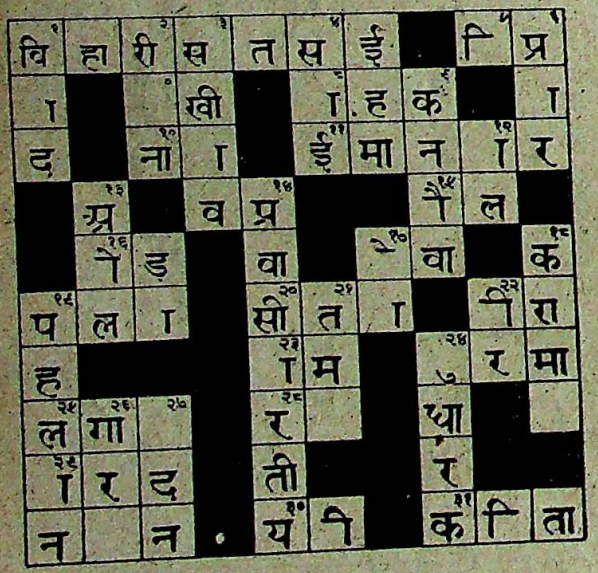

वर्ग नं० ३८ पूर्ति नं०... फ़ीस ॥)

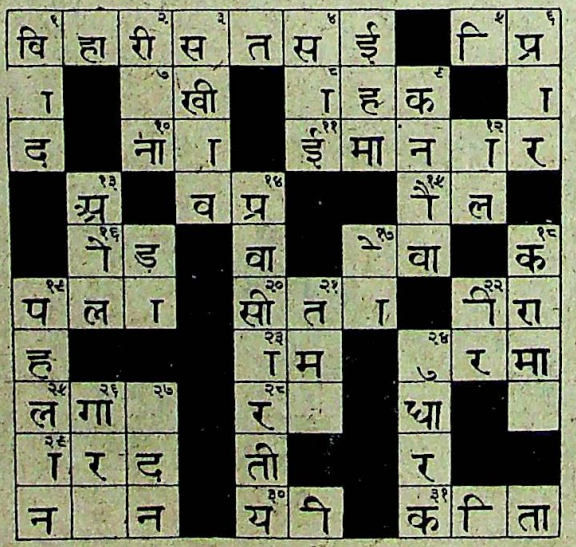

वर्ग नं० ३८ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

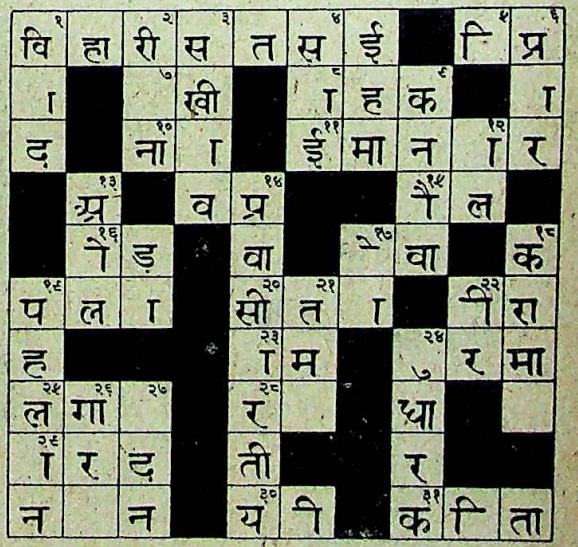

नाम पता

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काटकर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो वों ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ ३०२ पर देखिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक सूचनायें

(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० ३८ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो खाने खाली छोड़ देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर ३८ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २८ सितम्बर सन् १९३१ ई० सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

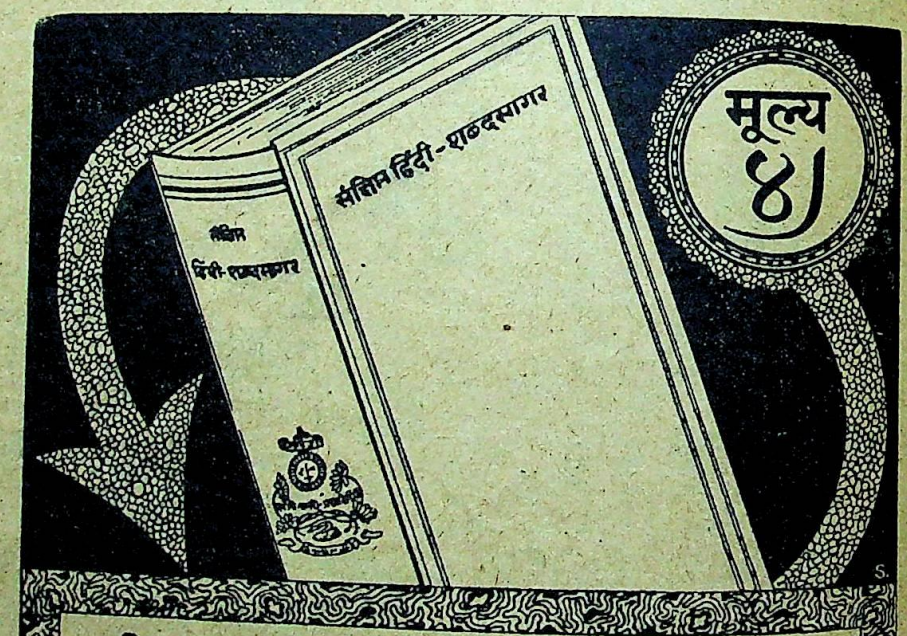

संक्षिप्त हिन्दी-शब्दसागर

जो लोग शब्दसागर जैसा सुविस्तृत और बहु मूल्य ग्रन्थ ख़रीदने में असमर्थ हैं, उनकी सुविधा के लिए उसका यह संक्षिप्त संस्करण है। इसमें शब्द सागर की प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण विशेषतायें सुरक्षित रखने की चेष्टा की गई है। मूल्य ४) चार रुपये। हर शब्द-पहेली के प्रतियोगी को इसे मोल लेना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

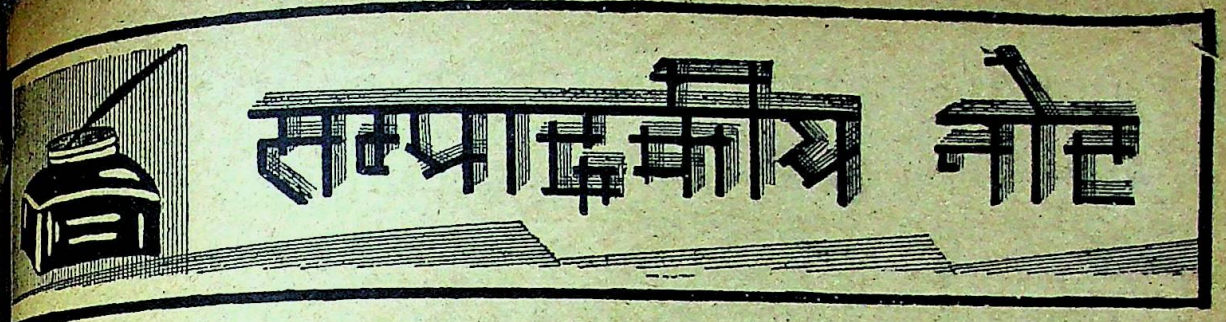

योरप की कूटनीति

हम देख रहे हैं कि संसार की साम्राज्यवादी महा-शक्तियाँ इस समय संसारव्यापी महायुद्ध छेड़ने का साहस नहीं कर रही हैं, यहाँ तक कि बार बार अवसर आने पर भी उसे टाल जाती हैं, परन्तु वे उसके लिए अपनी तैयारी में किसी तरह की कोर-कसर नहीं कर रही हैं, साथ ही वे अपने अपने साम्राज्य के विस्तार के काम में एवं अपना प्रभाव बढ़ाने के काम में भी पहले की ही तरह लगी हुई हैं। जापान, इटली और जर्मनी ने इस सम्बन्ध में जो कुछ किया है वह सर्वविदित है और इस सबके लिए वे आज शान्तिप्रिय तथा नीतिमान् लोगों की नज़रों में गिर गये हैं। परन्तु दूसरी शक्तियाँ भी चुप नहीं हैं। उदाहरण के लिए रूस को लीजिए, जो प्रतिज्ञा कर चुका है कि वह अब किसी दूसरे देश की स्वतंत्रता का अपहरण नहीं करेगा। परन्तु इस समय चीन के दो प्रदेश—बाह्य मङ्गोलिया और सिन्कियांग—उसी के प्रभाव-क्षेत्र में क्या, अधिकार में ही गये हैं।

ब्रिटेन और फ्रांस ने निस्सन्देह किसी देश को या किसी देश के भूभाग को प्रकट रूप से अपने अधिकार में नहीं किया है, तो भी कतिपय देश उनके अधिकार में चले गये हैं, जो उनके न होकर भी उनके-से हो गये हैं। ब्रिटेन के हाथ में इराक़, ट्रान्सजोरडोनिया, पैलेस्टाइन और मिस्र एवं अफ़्रीका के कुछ जर्मन-उपनिवेश थे। यद्यपि इनमें मिस्र और इराक़ एवं ट्रान्सजोरडोनिया को उसने स्वाधीन देश मान लिया है, तथापि उनकी स्वाधीनता एकमात्र उसकी कृपा पर निर्भर है। अब रहा पेलेस्टाइन जो उसे दस वर्ष बाद स्वाधीनता दी जायगी और जर्मन-उपनिवेश तो बिना युद्ध के जर्मनी कदापि नहीं पा सकेगा। फ्रांस भी सीरिया पर पूर्ववत् अपना अधिकार जमाये हुए है और अफ़्रीका के जो जर्मन-उपनिवेश उसे मिले गये थे उन्हें तो अपने साम्राज्य में मिला लेने की भी उसने घोषणा कर दी है। इस प्रकार राजनैतिक चालों से इन दोनों महान् साम्राज्यों के सूत्रधार अपने पौ बारह करने के काम में पूर्ववत् संलग्न हैं।

यही क्यों ? मुसलमान राज्यों में योरप की महा-शक्तियों की कूटनीति की जो कार्रवाइयाँ हो रही हैं उनसे उनकी महत्त्वाकांक्षाओं का भेद प्रकट हो जाता है, साथ ही यह भी कि वे विश्व-शान्ति की कहाँ तक हिमायत करती हैं। अभी अभी तुर्की से ब्रिटेन और फ्रांस का जो मेल हुआ है उसमें जर्मनी और इटली के कूटनीतिज्ञ एकदम मुँह की खा गये। तुर्की ने ७५ लाख पौंड ब्रिटेन से और सीरिया का एक प्रान्त फ्रांस से प्राप्त किया है। इटली उसे सिर्फ़ डोडेकेनीज़ के टापू देकर ही फुसलाना चाहता था। परन्तु तुर्की ने ब्रिटेन और फ्रांस से मेल-जोल करना अपने लिए अधिक हितकर समझा।

तुर्की की बाज़ी में मात खाकर अब जर्मनी और इटली ने अरब देशों पर अपना दाँव लगाया है और नेज्द के सुलतान इब्नसाऊद की आवभगत की जा रही है। कुछ ही दिन हुए इब्नसाऊद का एक राजदूत हिटलर के पास जर्मनी गया था। अब पत्रों में छपा है कि जर्मनी ने सुल्तान को इस बात का आश्वासन दिया है कि उनकी स्वाधीनता का अपहरण नहीं किया जायगा। यही नहीं, इब्नसाऊद के पास हिटलर ने २५ अफ़सरों का एक फ़ौजी मिशन भेजा है। मरुभूमि के युद्ध के उपयुक्त कई सौ हलकी तोपें, बहुत-सी मेशीनगनें, नई चाल की राइफ़लें, गोली-बारूद, १२५ हवाई जहाज़ भी भेजे हैं, साथ ही कई सौ शिक्षक और विशेषज्ञ भी भेजे हैं। जर्मनी वहाँ दो हवाई स्टेशन और हवाई जहाज़ सुधारने के तीन केन्द्र भी खोलने की व्यवस्था कर रहा है।

इब्नसाऊद का भी जर्मनी की ओर ही झुकाव है। वे खुद भी एक कुशल राजनीतिज्ञ हैं। अँगरेज़ों ने पेलेस्टाइन में मिस्र के प्रिंस अब्बास हिमली पाशा को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गद्दी पर बिठाकर वहाँ का मामला शान्त कर देने का उपक्रम किया था, परन्तु इब्नसाऊद और इराक़ के विरोध के कारण वे अपनी योजना को कार्य का रूप न दे सके। इसके बाद ट्रांसजोर्डन के अमीर अब्दुल्ला को पेलेस्टाइन की गद्दी देने का विचार किया गया। परन्तु इस बार भी अरबों का विरोध आड़े आया।

इस समय अरब देश पर योरप की महाशक्तियों की बाज़ी लगी हुई है। देखना है कि किसकी जीत होती है।

चाहे जो हो, साम्राज्यवादी महाशक्तियाँ अपनी अपनी कार्रवाई में पूर्ववत् लगी हुई हैं। विश्वशान्ति और विश्वबन्धुत्व की बातें तो उनके शिकार खेलने की धोखे की टट्टियाँ हैं।

जापान का डण्डा-वाद

आज जापान का बोलबाला है। उसका चीन के अधिकांश पर अधिकार हो गया है—उस अधिकांश पर जो समृद्ध और उपजाऊ है। परन्तु इतने पर भी चीन की राष्ट्रीय सरकार उसके आगे नत नहीं हुई है। उसके सञ्चालक तथा अध्यक्ष च्याँग-कै-शेक सुदूर देश के भीतरी भाग में चले गये हैं और वहाँ से जापान का सामना करने के काम में पूर्ववत् डटे हुए हैं। जापान जानता है कि चीन की राष्ट्रीय सरकार को बाहर से काफ़ी मदद मिल रही है, अतएव वह खीझ उठा है, यहाँ तक कि उसने विदेशियों को तंग करना शुरू कर दिया है। इस समय उसका संघर्ष अँगरेज़ों से हो रहा है। चीन में अँगरेज़ आदि पाश्चात्य लोगों को व्यापार-सम्बन्धी अनेक सुविधायें नहीं प्राप्त हैं, किन्तु चीन के प्रायः सभी बन्दरगाह विदेशियों के अधिकार में हैं। इन विदेशी शक्तियों की चीन के व्यापार में लाखों की पूँजी लगी हुई है। ऐसा ही एक बन्दरगाह तिनत्सिन है, जहाँ अँगरेज़ों की प्रतिपत्ति है। इस समय जापान ने इस बन्दरगाह का घेरा डाल दिया है। इस सिलसिले में वहाँ अँगरेज़ों को इस समय पद पद पर लांछित और अपमानित होना पड़ रहा है। परिस्थिति ने इतना भीषण रूप धारण कर लिया है कि जापान और ब्रिटेन में राजनैतिक बातचीत शुरू हो गई है, और यद्यपि अभी समझौता नहीं हुआ, तथापि लक्षणों से प्रतीत होता है कि ब्रिटेन को म्यूनिख के समझौते की तरह यहाँ भी दब कर जापान से समझौता करना पड़ेगा।

परन्तु इतना ही तो नहीं है। प्रतीत तो यह हो रहा है कि चीन में पाश्चात्य शक्तियाँ अब पहले की तरह शान के साथ व्यापार आदि नहीं कर सकेंगी। उन्हें जापान का मुँह देखकर वहाँ अपना रोज़ी-रोज़गार करना पड़ेगा। एक प्रकार से जापान ने उन्हें व्यापार के क्षेत्र में भी दबा लिया है। सन् १९१० में चीन के निर्यात में १७ फ़ी सदी जापान को जाता था। परन्तु गत वर्ष ५० फ़ी सदी निर्यात अकेला जापान को गया है। चीन में अँगरेज़ों की इस समय कुल चार काटन मिलें हैं, परन्तु जापानियों की ४४ मिलें हैं। गत वर्ष चीन में इन मिलों में १,००,००,००,००० गज़ कपड़ा तैयार हुआ था। इसमें जापानी मिलों ने ६०,००,००,००० गज़ कपड़ा तैयार किया था। चीन में इस समय ७०,००,००,००० पौंड की पूँजी विदेशियों की लगी हुई है। इसमें २५,००,००,००० पौंड की पूँजी अँगरेज़ों की है। इस प्रकार चीन की वर्तमान परिस्थिति में विदेशी पूँजी का कम झमेला नहीं है। इसी की सफ़ाई करने के लिए जापान ने अब विदेशियों की ओर ध्यान दिया है और दिया है उस अवसर पर जब उसने देख लिया है कि योरप की समस्या दिन पर दिन विषम होती जा रही है।

कांग्रेस की नई स्फूर्ति

आख़िर कांग्रेस के सूत्रधारों की रगों का खून गर्म ही हो उठा। वर्धा में पिछले दिनों उनकी कार्य-समिति की जो बैठक हुई उसमें उन्होंने यह प्रस्ताव पास ही कर दिया कि केन्द्रीय असेम्बली के कांग्रेस सदस्य असेम्बली का बायकाट करें, क्योंकि भारत-सरकार ने बिना असेम्बली की अनुमति के भारत की कुछ सेनाएँ भारत के बाहर भेज दी हैं। इस प्रकार कांग्रेस के सूत्रधारों ने सुभाष बाबू को बता दिया कि उनमें भी 'क्रान्ति-मूलक प्रेरणा' है और वे सरकार से लड़ने को तैयार हैं, और यह तो बात नहीं है कि पिछले दिनों उन्होंने लड़ाई की भावना छोड़ दी थी। यही नहीं, उन्होंने अनुशासन-भंग करने के अपराध में स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्रदेव

अक्टोबर १९३९ | भाग ४०, खंड २ संख्या ४, पूर्ण संख्या ४७८ | भाद्रपद १९९६

विभ्रम

लेखक, श्रीयुत आरसीप्रसादसिंह

सपने में तुमको देखा है !
पुतलियाँ सजग हो पाई हैं;
मैंने बाँहें फैलाई हैं !
आहट पाते ही, देखो, ये
आँखें मेरी भर आई हैं !
उर के शतदल पर चरणों की
अब भी अंकित-सी रेखा है !

निःश्वास मिलन से सुरभित है;
वह स्पर्श अधर पर सस्मित है !
संचित है तृषा कपोलों में,
सारा शरीर रोमांचित है !
कबरी के कुसुम दलित अब भी,
स्वर में सुहाग की लेखा है !
सपने में तुमको देखा है !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

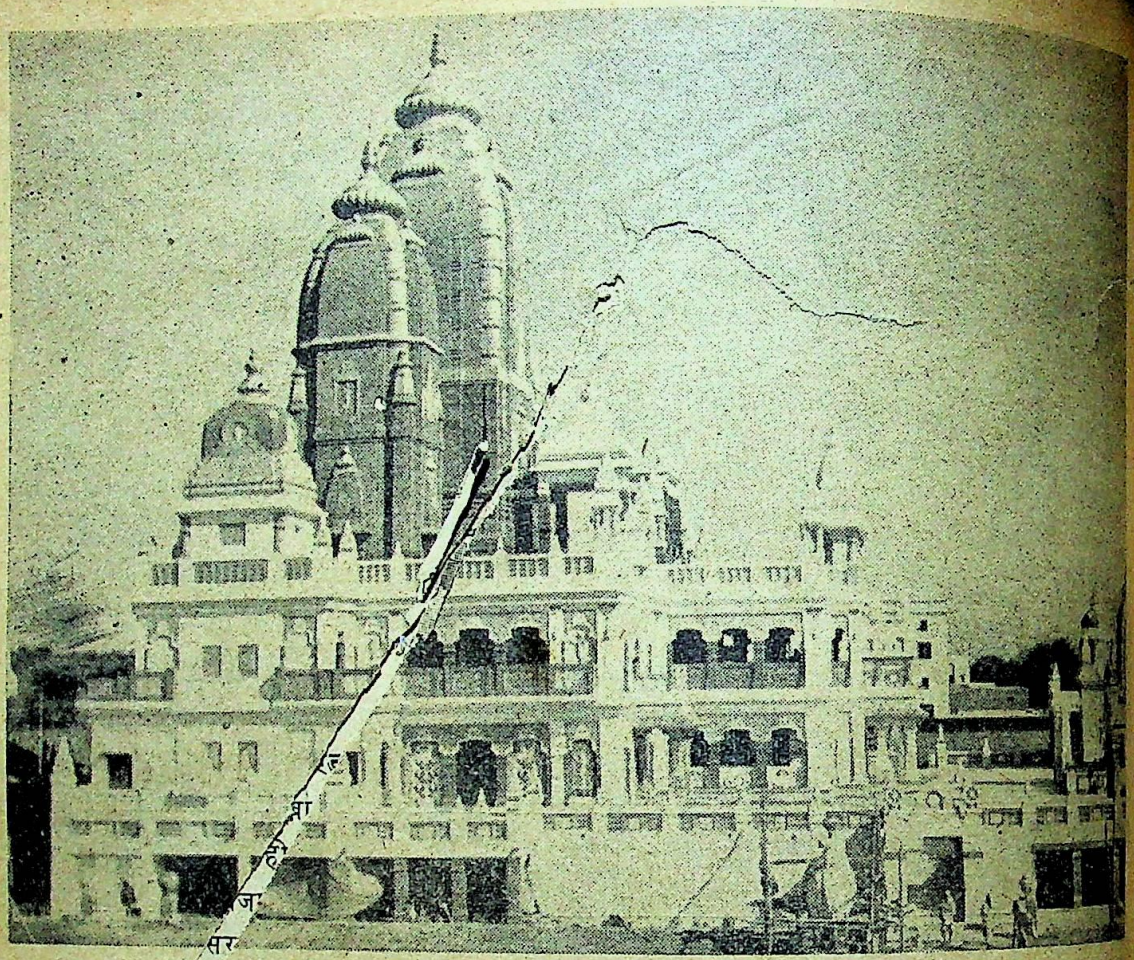

[श्री लक्ष्मीनारायण जी का मन्दिर, नई दिल्ली]

सेठ युगुलकिशोर बिड़ला का नया आदर्श

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

हिन्दू लोग मुक्ति पाने की इच्छा से तीर्थ-स्थानों पर धर्मशालायें बनवाते हैं, पण्डे-पुरोहितों को दान देते हैं, अनाथालय बनवाते हैं, अन्न-क्षेत्र खुलवाते हैं, औषध-वस्त्र बाँटते हैं, परन्तु ऐसे कार्यों की ओर उनकी रुचि बहुत कम देखी जाती है जिनसे समूचे राष्ट्र को लाभ पहुँचता हो। राष्ट्रोद्धार की अपेक्षा उनको आत्मोद्धार की ही चिन्ता अधिक रहती है। परन्तु इस सम्बन्ध में सेठ युगुलकिशोर बिड़ला ने बिलकुल नया आदर्श उपस्थित किया है और उन्होंने जो किया है उससे प्रकट होता है कि उनके मन में अखिल हिन्दू प्रजा के कल्याण का भाव ही कार्य कर रहा है। उन्होंने श्री लक्ष्मीनारायण का मन्दिर और बौद्ध-विहार भारत की राजधानी, दिल्ली, के रीडिङ्ग-रोड पर बनवाकर ,अपने उदात्तभाव का विशेष रूप से परिचय दिया है। इन मन्दिरों का उद्घाटन गत १८ मार्च को शनिवार के दिन वर्तमान युग के महापुरुष महात्मा गांधी के द्वारा हुआ था। उस समय भारत की बहुसंख्यक हिन्दू जनता के अतिरिक्त चीन, जापान, बर्मा, तिब्बत, नेपाल और लङ्का आदि कई बौद्ध देशों के भिक्षुओं और उपासकों ने भी आकर संघ की भावना का दिग्दर्शन कराया था।

लोग कह सकते हैं कि श्री लक्ष्मीनारायण-मन्दिर और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

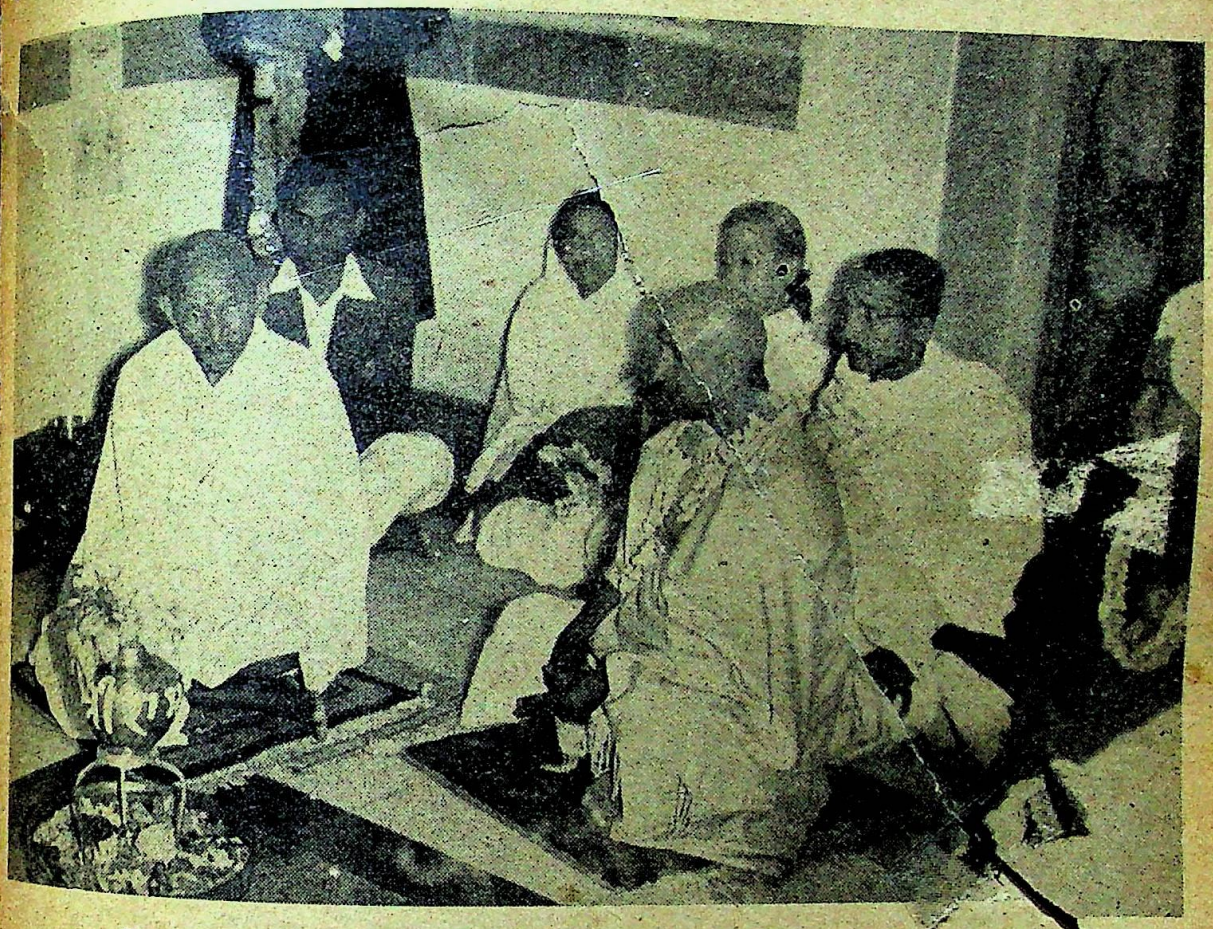

[श्री लक्ष्मीनारायण-मन्दिर का उद्घाटन करने के पूर्व महात्मा गान्धी पूजा कर रहे हैं।]

बौद्ध-विहार का यह संयोग कैसा? ऐसा सोचनेवालों को समझना चाहिए कि—

भगवान् बुद्ध हिन्दुओं के भी वैसे ही पूज्य हैं, जैसे हमारे बौद्ध भाइयों के।

भगवान् बुद्ध सबसे बड़े हिन्दू और भारत के महान् गौरव-स्वरूप तथा संसार के भी सबसे बड़े महापुरुष थे। बौद्ध और हिन्दू दोनों ही आर्य-धर्म के अंग हैं। इसलिए चीन, जापान, ब्रह्मा आदि दूर देशों के जो यात्री भारत में तीर्थ-यात्रा के निमित्त आते हैं उनकी यथायोग्य अतिथि-सेवा करना हिन्दूमात्र का कर्तव्य है तथा उनको किसी प्रकार का कष्ट न हो, वे यहाँ से सद्भाव लेकर ही अपने देश को जायँ और हिन्दुओं के साथ परस्पर में उनका भ्रातृ-भाव बढ़ता रहे। यही तात्पर्य इन बौद्ध-मन्दिरों और विहारों के बनाने का है।

नई दिल्ली के उक्त बुद्ध-विहार की आधार-शिला कुछ वर्ष हुए जापान के कौंसल-जनरल के हाथ से रखवाई गई थी। एक सहस्र से भी अधिक वर्ष के [illegible] यह पहला बुद्ध-विहार है, जो भारत की पुरातन रा[illegible]ती में बनाया गया है। इसके उद्घाटन के समय जाप[illegible] चीन आदि बौद्ध देशों के राजदूतों ने शुभ संदेश भेज[illegible] थे। उस समय दिल्ली के सनातनी, सिक्ख, जैन और आर्य-समाजी सभी प्रकार के हिन्दुओं में एक अपूर्व उत्साह देख पड़ता था। संसार के बौद्ध बन्धुओं के साथ भ्रातृ-भाव और सरल भाव का अनुभव करके हिन्दुओं को परम आह्लाद हो रहा था। जिस प्रकार भारत के मुसलमानों को अरब और अफ़ग़ानिस्तान पर गर्व होता है, जिस प्रकार वे ईरान और मिस्र में मुस्लिम राज्य देखकर फूले नहीं समाते, उसी प्रकार भारत के हिन्दू भी जीन, जापान, श्याम, अनाम आदि बौद्ध-देशों के साथ के अपने धर्म-सम्बन्ध का अनुभव करके प्रसन्न हो रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

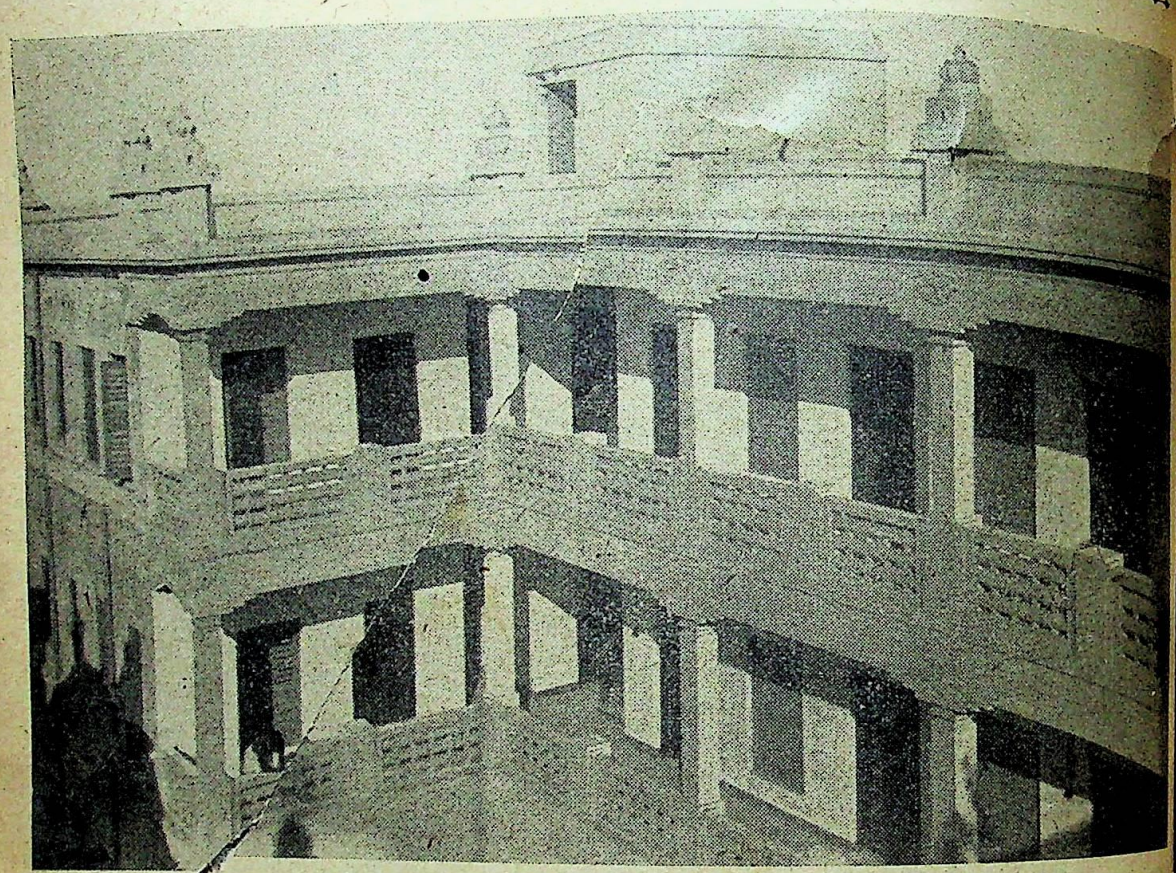

[बंगाली बौद्धों के लिए कलकत्ते में आर्य-विहार]

थे। उनका व्यक्तित्व भारत की संकीर्ण चहारदीवारी से निकलकर संसार के दूसरे देशों के साथ बन्धुत्व का अनुभव कर रहा था। भारत से प्रेम रखनेवाले केवल भारत के हिन्दू ही नहीं, बरन दूसरे देशों में भी हमारे अनेक धर्म-बन्धु बसते हैं जो इस आर्य-देश को पुण्यभूमि समझते हैं, यह अनुभव करके किस हिन्दू का हृदय प्रसन्नता से नहीं फूल उठेगा?

हिन्दू-महासभा के प्रधान श्रीयुत विनायक दामोदर सावरकर ने हिन्दू-शब्द की परिभाषा इस प्रकार की है—

आसिधु-सिन्धुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका,
पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरितिस्मृतः।

अर्थात् सिन्धु-नद से लेकर सागर-पर्यन्त फैली हुई भारत-भूमि जिनके पूर्वजों की भूमि और पुण्यभूमि है वे सब हिन्दू हैं।

इस परिभाषा के अनुसार संसार के सभी बौद्ध हिन्दू हैं, चाहे वे चीन में बसते हों, चाहे जापान में और चाहे जावा में। कारण यह कि जैसे संसार भर के मुसलमान हज़रत मुहम्मद की जन्मभूमि अरब को अपनी पुण्यभूमि समझते हैं, वैसे ही संसार भर के बौद्ध इस आर्यावर्त को अपनी पुण्यभूमि मानते हैं। उन धर्म-बन्धुओं को अहिन्दू कहकर उनसे पृथक् रहना भारतीय हिन्दुओं के लिए कभी हितकर नहीं हो सकता। यह संघ-शक्ति का युग है। भगवान् बुद्ध ने भी 'संघं शरणं गच्छामि' के महामंत्र में इसी शक्ति को बढ़ाने का उपदेश दिया है। संसार के विभिन्न देश एक दूसरे के साथ संधियाँ करके अपनी शक्ति को बढ़ाने और शत्रुओं को डराने का यत्न करते हैं। परन्तु हिन्दुओं को फूट और अमेल में कुछ ऐसा प्रेम हो गया है कि बेगानों को अपना बनाना तो दूर, अपनों को भी बेगाना बनाने में संकोच नहीं करते। पिछले दिनों एक बौद्ध गृहस्थ लङ्का से भारत आये थे। वे जहाँ भी जाते, हिन्दू उनसे 'जाति पूछते कि तुम ब्राह्मण हो या क्षत्रिय। बौद्धों में जाति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

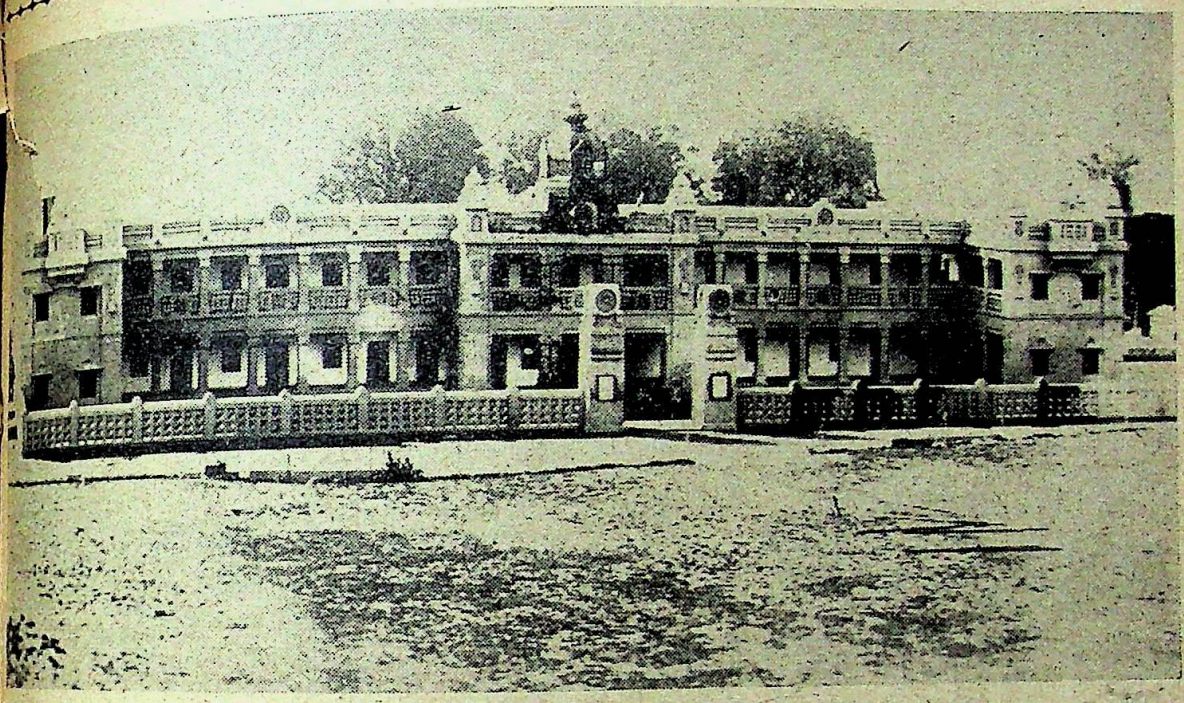

[सारनाथ की धर्मशाला]

न होने से वे सज्जन "कौन जाति ?" का कुछ उत्तर न दे सकते थे। इसका परिणाम यह होता कि कोई हिन्दू अपने यहाँ धर्मशाला में उन्हें ठहरने न देता। बौद्ध महाशय हिन्दुओं को अपना धर्म-बन्धु समझकर उनसे प्रेम करना चाहते, परन्तु हिन्दू उन्हें अपने बर्तनों में जल तक लेने को तैयार न होते। हिन्दुओं का अपने प्रति ऐसा दुर्व्यवहार देख उन महाशय के हृदय पर बड़ी चोट लगी और उन्हें एक प्रकार से हिन्दुओं से घृणा-सी हो गई। यह कितने खेद का विषय है! मदरास का मुसलमान यदि मक्का या मिस्र को जाय तो उसे वहाँ रोटी की तो बात ही कुछ नहीं, बेटी-व्यवहार करने में भी कोई विशेष कठिनाई न होगी—उस विदेश में भी उसे अपनी बिरादरी मिल जायगी। परन्तु हिन्दुओं की कूपमण्डूकता इतनी बढ़ चुकी है कि चीन-जापान के बौद्धों को अपना धर्म-बन्धु समझकर उनके साथ खान-पान करना तो दूर, काशी का ब्राह्मण काश्मीर के ब्राह्मण के साथ भी रोटी-बेटी का व्यवहार नहीं करता। वे एक-दूसरे को पराया समझते हैं।

सेठ युगुलकिशोर जी बिड़ला ने भारतीय हिन्दुओं के दृष्टि-कोण को विस्तृत करने और बौद्ध-जगत् के साथ उनका बन्धुत्व स्थापित करने के शुभ भाव से नई दिल्ली के उपर्युक्त बुद्ध-विहार के अतिरिक्त भारत के निम्नलिखित स्थानों में भी विहार और धर्मशालायें बनवाई हैं—

(१) काशी के निकट बौद्धों का प्रधान तीर्थ सारनाथ है। यहाँ प्रतिवर्ष चीन, जापान, बर्मा, श्याम आदि दूर-देशों से सहस्रों बौद्ध यात्री आते हैं। महाबोधि सोसायटी ने यहाँ भगवान् बुद्ध का एक बहुत बड़ा मन्दिर बनवाया है। किसी समय यहाँ बौद्धों का एक बड़ा विद्यापीठ था। सेठ जी ने यहाँ ५०,००० रुपया लगाकर यात्रियों के विश्राम के लिए एक बड़ी धर्मशाला बनवा दी है। इस धर्मशाला का उद्घाटन चीन के कौंसल-जनरल अर्थात् राजदूत ने किया था। इसके अतिरिक्त २०,००० रुपये से दो एकड़ भूमि पर एक महाबोधि हाई स्कूल भी बनाया जा रहा है।

(२) संयुक्त-प्रान्त के अन्तर्गत कुशिनगर में भगवान् बुद्ध का निर्वाण हुआ था, इसलिए वह स्थान भी बौद्धों का एक तीर्थ हो गया है। यहाँ प्रतिवर्ष एक बड़ा मेला होता है। बौद्धों के अतिरिक्त सहस्रों हिन्दू भी इस मेले में जाते हैं। यहाँ भी सेठ जी ने कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

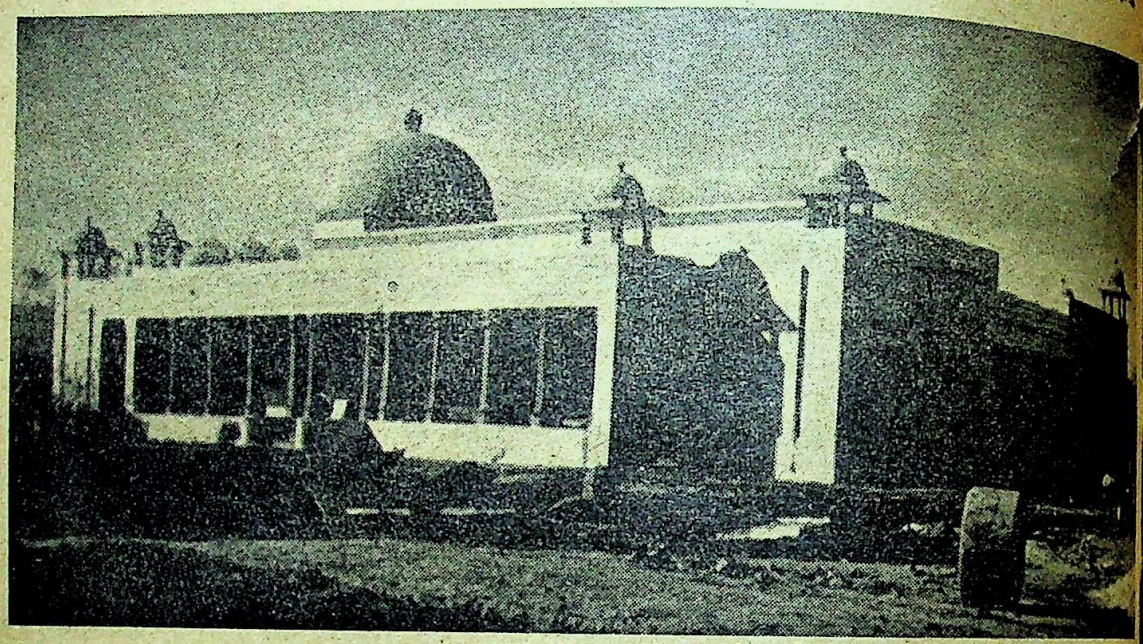

[कुशीनगर का बौद्ध-विहार जिसका उद्घाटन स्वायत्तशासन-मंत्री श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित ने किया है]

३०,००० रुपया लगाकर एक बुद्ध-मन्दिर और धर्मशाला बनवाई है। इसका उद्घाटन माननीय श्रीमती विजय-लक्ष्मी पण्डित ने किया था। यहाँ भी धम्मपद की शिक्षा के लिए एक बुद्धदेव-स्कूल बनवा दिया गया है।

(३) कलकत्ता में 'बंगाल बुद्धिस्ट एसोसिएशन' का एक पुराना मन्दिर है। वहाँ दूर दूर के बौद्ध-देशों से यात्री लोग आया करते हैं। परन्तु उनके ठहरने के लिए कलकत्ता में कोई उचित स्थान नहीं था। इसलिए सेठ जी ने उसी मन्दिर के निकट २५,००० रुपये की लागत से 'आर्य-विहार' नाम की एक बड़ी धर्मशाला बनवा दी है। इसके अतिरिक्त उन्होंने जापानी बौद्धों के लिए लेक-रोड पर एक अलग मन्दिर भी बनवाया है। इस पर कोई ४०,००० रुपया खर्च आया है। इसमें जापानी भिक्षु रहते हैं और जापानी गृहस्थ और बहुतेरे भारतीय हिन्दू भी प्रतिदिन दर्शनार्थ जाते हैं।

(४) राँची में गौतमधारा पर्वत पर १५,००० रुपये की लागत से एक बौद्ध-मन्दिर बनवाया है। यहाँ प्रति-वर्ष मेला लगता है।

(५) दारजिलिङ्ग में २०,००० रुपया लगाकर एक बुद्ध-मन्दिर और पाठशाला बनवाई है। इसके अध्यक्ष भिक्षु जिनोरासा हैं।

(६) महात्मा गांधी के आग्रह पर परेल (बम्बई) के मिल-एरिया में प्रोफ़ेसर धर्मानन्द कौशाम्बी नाम के एक भारतीय बौद्ध भिक्षु की अध्यक्षता में एक बुद्ध-मन्दिर, एक विहार और एक पुस्तकालय बनवाया है।

हिन्दुओं की मोह-निद्रा को भङ्ग करके किसी प्रकार हिन्दू और बौद्ध-जगत् के बीच बन्धुत्व-भाव स्थापित किया जाय, यह बात बौद्ध-देशों के राजदूतों के उन सन्देशों से भी प्रकट होती है जो उन्होंने दिल्ली में उपर्युक्त बुद्ध-विहार के उद्घाटन के समय सेठ घनश्याम किशोर जी को भेजे थे। जापान के कौंसल-जनरल डाक्टर योशिदा ने तार-द्वारा सन्देश भेजा था—

"भगवान् बुद्ध और लक्ष्मीनारायण-मन्दिर के उद्घाटन -समारोह के अवसर पर चार करोड़ जापानी बौद्धों की ओर से मैं आपको सच्चे हृदय से धन्यवाद देता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि दोनों आर्य-धर्मावलम्बियों में भ्रातृ-भाव एवं प्रेम का प्रसार हो। मुझे आशा है कि इस पुनीत विहार में जो ज्ञानाग्नि प्रज्वलित की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

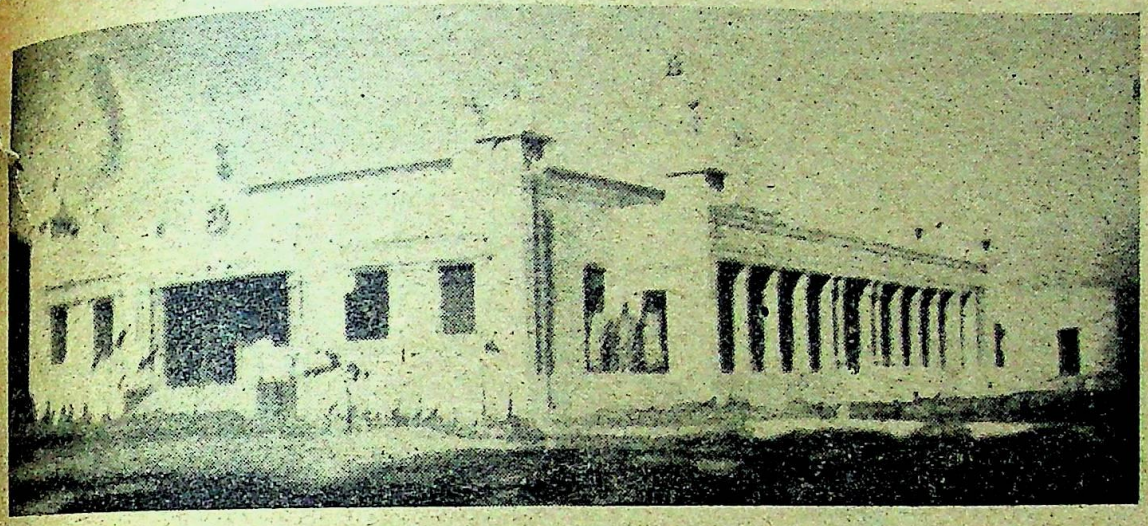

[महापरिनिर्वाण आर्य-विहार, कुशीनगर]

उससे करोड़ों आत्माओं को प्रेरणा मिलेगी। भगवान् करे कि पूर्व के राष्ट्रों—हिन्दू और बौद्ध—में परस्पर प्रेम और भ्रातृ-भाव बढ़े, क्योंकि दोनों सहोदर भाई हैं।"

इसी प्रकार चीन के राजदूत श्री सी० टी० फेंग का सन्देश इस प्रकार था—

"मैं चीन के पचास करोड़ बौद्धों की ओर से भगवान् बुद्ध के मन्दिर के उद्घाटन-समारोह के अवसर पर आपको बधाई देता हूँ, क्योंकि आपने संसार में बन्धुत्व, प्रेम और शान्ति का सन्देश फैलाने की चेष्टा कर बौद्ध-धर्म की भावना और महत्ता की भली भाँति रक्षा की है।"

इसके अतिरिक्त भारत की प्रायः सभी जापानी फ़र्मों ने तार भेजकर यह आशा प्रकट की थी कि इन मन्दिरों से हिन्दुओं और बौद्धों में प्रेम, शान्ति, मैत्री और करुणा का प्रसार होगा।

मुस्लिम जगत् की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए मुसोलिनी काबुल के भूतपूर्व अमीर अमानुल्ला को और अँगरेज़ सर आगाख़ाँ को आगे बढ़ा रहे हैं। जापान

[कुशीनगर की धर्मशाला]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[श्रीमान् सेठ युगुलकिशोर बिड़ला]

मध्य-एशिया और चीन के मुसलमानों को साथ रखने के लिए मुसलमान विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दे रहा है। परन्तु हम हिन्दू लोग अपने धर्म-बन्धुओं को भी अपनाने को तैयार नहीं।

हम हिन्दू लोग भगवान् बुद्ध की पावन शिक्षा को भूल गये हैं। बुद्ध-वाणी के प्रचार ने हिन्दू-समाज में कुछ काल के लिए जाति-भेद और उससे उत्पन्न होने-वाले ईर्ष्या-द्वेष को दबा दिया था और भारत में एक ऐसे राष्ट्र को जन्म दिया था जिसकी सत्ता लगभग १,२०० वर्ष तक अक्षुण्ण बनी रही थी। सन् ६०० ईसा-पूर्व से लेकर ईसा के ८०० वर्ष तक का इतिहास जब राजा हर्ष का देहान्त हुआ, एक स्वर्णीय काल है। इस काल में कला-कौशल की उन्नति हुई और भारत जगद्गुरु कहलाया। जब परम कारुणिक बुद्ध-देव की वाणी हमसे ओझल हो गई तब फिर वर्ण-भेदरूपी राक्षस ने हमें आ दबाया और हम विदेशियों को पचाना तो दूर, अपनों को भी अपने भीतर रखने में असमर्थ हो गये। हमने किसी को शूद्र, किसी को अछूत, किसी को पतित और किसी को नीच ठहराकर अपने से बाहर ढकेल दिया। १८ मार्च को दिल्ली में बुद्ध-विहार का उद्घाटन करते समय महात्मा गांधी ने भी अपने उपदेश में कहा था—

"मैं हिन्दू-धर्म में छूत-छात और ऊँच-नीच को नहीं मानता। वर्ण हैं, परन्तु एक वर्ण दूसरे वर्ण से ऊँचा या नीचा नहीं। ये तो विभिन्न कार्यों एवं विभिन्न कर्तव्यों को दिखलाते हैं। जिसके पास आध्यात्मिक या भौतिक सम्पत्ति जितनी अधिक है, उसे मनुष्य-समाज की उतनी ही अधिक सेवा करनी चाहिए, उतना ही अधिक नम्र होना चाहिए। जिस समय हिन्दू-धर्म में छूत-छात और ऊँच-

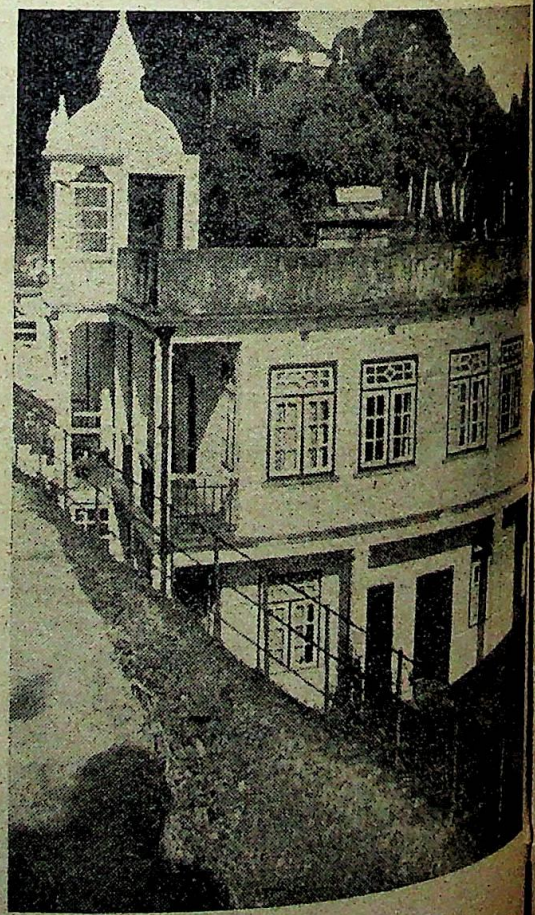

[बुद्ध-विहार, दार्जिलिंग]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीच का भाव घुसा उसी समय से इसका ह्रास आरम्भ हो गया।"

महात्मा जी का यह उपदेश बुद्ध-वाणी के एकान्त अनुकूल है। सेठ युगुलकिशोर जी बिड़ला ने जितने भी मन्दिर और विहार बनवाये हैं उन सबमें ब्राह्मण से लेकर अछूत तक सभी हिन्दुओं और बौद्धों को जाने की आज्ञा है। दिल्ली के बुद्ध-मन्दिर के निकट जो लक्ष्मी-नारायण का मन्दिर बनवाया गया है, उसके तो द्वार पर यह बात स्पष्ट रूप से लिख भी दी गई है। सेठ जी के इस उद्योग से यदि हिन्दू-जाति में से ऊँच-नीचमूलक जाति-भेद का रोग कुछ भी कम हो सका तो भारत का, विशेषतः हिन्दू-जाति का, बड़ा भारी कल्याण होगा। कारण यह कि सहस्रों जातियों, उपजातियों और सम्प्रदायों में बँटा हुआ राष्ट्र जीवन-संग्राम में कभी विजयी नहीं हो सकता। इसकी शक्ति घरेलू झगड़ों में बिखर जाती है। प्रत्येक छोटी जाति या उपजाति दूसरी जाति या उपजाति पर आक्रमण करने या उससे अपनी रक्षा करने में ही लगी रहती है। परस्पर प्रतिद्वन्द्विता,

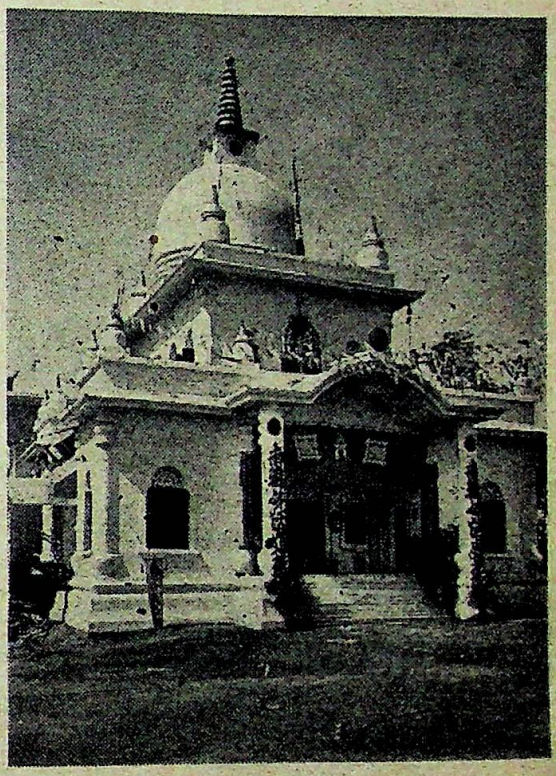

[जापानी बौद्ध-मन्दिर, कलकत्ता]

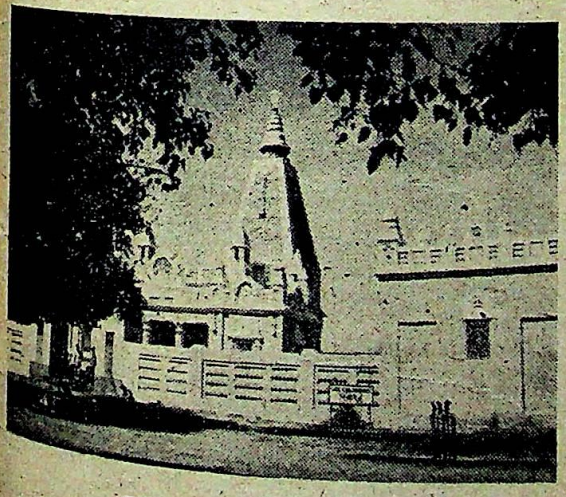

[बुद्ध-विहार, नई दिल्ली]

परस्पर डाह, परस्पर सन्देह, परस्पर घृणा समाज के संगठन को सर्वथा नष्ट-भ्रष्ट कर डालती है। हिन्दुओं को चाहिए कि वे इस सम्बन्ध में भगवान् बुद्ध की शिक्षा के अनुसार अपना आचरण ठीक करें। बुद्ध की शिक्षा का सारांश यह है कि एक तो मनुष्य को अपने पुत्र-कलत्र, अड़ोसी-पड़ोसी और अन्य सम्बन्धियों के साथ स्वार्थरहित होकर व्यवहार करना चाहिए और दूसरे, जात-पाँत और छूत-छात का घृणित भाव छोड़कर सबमें प्रेम और सबकी सेवा करनी चाहिए। अपने उपर्युक्त बौद्ध-विहारों का निर्माण करके सेठ जी ने हिन्दुओं के समक्ष यही आदर्श उपस्थित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोमन-लिपि का मोह

लेखक, श्रीयुत अध्यापक धर्मदेव शास्त्री

लिपि का प्रश्न राष्ट्र के लिए विशेष महत्त्व का है; विशेषतः हमारे जैसे देश के लिए जहाँ दर्जनों लिपियाँ प्रचलित होते हुए भी साक्षरों की संख्या उँगलियों पर गिनी जाने योग्य है। जब से कांग्रेस-सरकार ने साक्षरता-प्रसार की ओर क़दम बढ़ाया है, यह प्रश्न और भी महत्त्व पा गया है। महात्मा गांधी देवनागरी-लिपि को भारत के लिए विशेष उपयुक्त मानते हैं और कांग्रेस सरकारें इसके साथ-साथ अरबी लिपि का प्रचार भी चाहती हैं। इधर अन्तर्राष्ट्रीय संपर्कों के दृष्टिकोण से कुछ नेता रोमन-लिपि के प्रचार पर ज़ोर दे रहे हैं। प्रस्तुत लेख में लेखक महोदय ने रोमन-लिपि को इस देश के लिए अवाञ्छनीय सिद्ध करते हुए देवनागरी-लिपि के पक्ष की तर्कयुक्त प्रमाणों-द्वारा पुष्टि की है।

"मैं अपनी यह राय तो ज़ाहिर कर ही चुका हूँ कि हिन्दुस्तान में सर्वमान्य हो सकनेवाली अगर कोई लिपि है तो वह देवनागरी है। . . . . . करोड़ों हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए भी देवनागरी का सीखना आसान है, क्योंकि अधिकांश प्रांतीय लिपियाँ देवनागरी से ही निकली हैं। मैंने मुसलमानों का समावेश जान-बूझ कर किया है। मसलन बंगाल के मुसलमानों की मादरी ज़बान बंगाली है, और तामिल नाड के मुसलमानों की तामिल। . . . . . करोड़ों हिन्दूओं मुसलमानों के लिए रोमन-लिपि का प्रयोजन तो अँगरेज़ी सीखने के सिवा दूसरा कुछ भी नहीं। . . . . . अगर हम रोमन-लिपि को दाखिल करें तो वह निरी भार-रूप ही साबित होगी, और कभी लोक-प्रिय नहीं बनेगी। सच्ची लोक-जागृति जब हो जायगी, तब इस प्रकार के भार-रूप दबाव रह ही नहीं सकते।"

महात्मा गांधी (हरिजन-सेवक १८ फ़रवरी १९३९)

गत वर्ष हरिपुरा-कांग्रेस के सभापति-पद से जो अभिभाषण राष्ट्रपति सुभाष बाबू ने दिया था। उसमें तुर्की के निर्माता स्वर्गीय कमाल पाशा की मिसाल देकर भारत में रोमन-लिपि को राष्ट्र-लिपि बनाने का भी सयुक्तिक निर्देश था। अपने अभिभाषण में सुभाष बाबू ने यह स्पष्ट कर दिया था कि यह विचार उनका निजी है, 'राष्ट्रीय महासभा' तो 'हिन्दुस्तानी' को राष्ट्र-भाषा और 'देवनागरी तथा अरबी-लिपि' को राष्ट्र-लिपि मानती है और ऐसा घोषित भी कर चुकी है। इसके पूर्व पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने भी रोमन-लिपि के पक्ष में कहा है और उनके इस विचार की समालोचना भी हुई है। सुनने में आया है कि नेहरू जी के रोमन-लिपि-सम्बन्धी विचारों में अब परिवर्तन हो गया है—सम्भवतः भारत को समीप से देखने के कारण ही ऐसा हुआ होगा। इतना तो स्पष्ट ही है कि इस विचार को न तो उनका निजी विचार है—कांग्रेस का नहीं है—नेहरू जी ने कांग्रेस के सभापति-पदवाले अभिभाषण में कभी नहीं व्यक्त किया। जहाँ तक मुझे स्मरण है, बाद में भी किसी सार्वजनिक भाषण में उन्होंने ऐसा नहीं कहा। पर सुभाष बाबू ने ऐसा नहीं किया।

हरिपुरा-कांग्रेस के अवसर पर राष्ट्र के सम्मुख अनेक विवादास्पद महत्त्व-पूर्ण प्रश्न थे, इसलिए कांग्रेस सभापति के उक्त विचार के पक्ष अथवा विपक्ष में विचार करने की बारी नहीं आई। अध्यक्ष के निजी विचार कहकर उसके सम्बन्ध में तटस्थ वृत्ति धारण की गई। अन्य प्रांतीय भाषाओं के सम्बन्ध में तो हम कुछ नहीं कह सकते, हिन्दी में भी इस महत्त्व-पूर्ण विषय पर जैसा चाहिए था, वैसा ध्यान नहीं दिया गया। काशी के बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने 'आज' में अपना लेख प्रकाशित करके इस महत्त्व-पूर्ण विषय की ओर हिन्दी-भाषियों का सर्व-प्रथम ध्यान खींचा था। इसके बाद हिन्दी के पत्र-पत्रिकाओं में इसके विरुद्ध लेख प्रकाशित हुए हैं परन्तु उसको हम आन्दोलन करना नहीं कह सकते, आज ज़माना आन्दोलन का ही है। इसी का फल है कि श्री सुभाषबाबू का निजी विचार अब संस्था का विचार बनने लगा है। आसाम में इधर कांग्रेसी संयुक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंडल कायम हुआ है। इस मंत्रि-मंडल ने रोमन-लिपि को प्रचारित करने का कार्य प्रारम्भ कर दिया है। आसाम की कुछ जातियों में साक्षरता-प्रचार के लिए रोमन-लिपि का परीक्षण किया जाने लगा है, और यह सब हो रहा है कांग्रेस के नाम पर!—उस कांग्रेस के नाम पर जो 'देवनागरी' अथवा 'अरबी-लिपि' को ही राष्ट्र-लिपि मानती है। महात्मा गांधी से जब इसकी चर्चा की गई तब उन्होंने १८ फ़रवरी १९३९ के 'हरिजन' में 'रोमन-लिपि बनाम देवनागरी'—शीर्षक टिप्पणी में आसाम-सरकार के उक्त कार्य का विरोध किया है।

भाषा विचारों का और लिपि भाषा का वाहन समझे जाते हैं। इस प्रकार लिपि का संस्कृति के साथ सम्बन्ध है। हम जगत् की और संस्कृतियों का अपमान नहीं करते, परन्तु विशाल हृदयता के नाम पर हृदय को ही निकाल देने का भी पोषण नहीं कर सकते जब कि विशालहृदयता भी भारतीय संस्कृति की ही विश्व को देन है। भारतवर्ष पराधीन है। विश्व में परधीनता से बढ़कर कोई अभिशाप और नहीं। पराधीनता तब स्थायी बेड़ियाँ बन जाती है जब वह बुद्धि पर अपना प्रभाव कर लेती है। इसी बौद्धिक परतन्त्रता के कारण पराधीन जाति आत्म-विश्वास खो बैठती है, जिसका परिणाम यह होता है कि वह आत्म-ग्लानि करने लगती है—इसी का दूसरा नाम मृत्यु है। दुःख है कि विश्व को सर्व-प्रथम देवताओं की भाषा और दिव्य लिपि देने-वाली संस्कृति का उत्पत्ति-क्षेत्र आज अशिक्षित है, पराधीन है। इससे भी बढ़कर दुःख की बात यह है कि उसे साक्षर बनाने के लिए उसके नेता लिपियों की रानी देवनागरी को छोड़कर चेरी (रोमन-लिपि) से प्रणय करने लगे हैं। शारीरिक परतन्त्रता की अपेक्षा बौद्धिक पराधीनता का प्रभाव गहरा होता है। इसका उदाहरण भारतीयों की इस मनोवृत्ति से बढ़कर और कहाँ मिलेगा? नहीं तो सर्वथा वैज्ञानिक—वैदिक साहित्य से लेकर तुलसीदास तक और अब तक के साहित्य की जननी सर्वगुणसम्पन्न देवनागरी के स्थान पर रोमन-लिपि को प्रतिष्ठापित करने का और क्या अर्थ हो सकता है?

× × × ×

कुछ सरकारी संस्थायें रिसर्च-सम्बन्धी संस्कृत-वाक्यों आदि को रोमन-लिपि में प्रकाशित करती हैं। इसके लिए उन्होंने रोमन-लिपि में कुछ नये चिह्न भी बनाये हैं, परन्तु इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। 'पाली टेक्स्ट सोसायटी' ने भी कुछ पाली-ग्रन्थ रोमन-लिपि में प्रकाशित किये हैं, परन्तु इसी लिए ही उनका भारतीयों में प्रचार नहीं हुआ। कलकत्ता-यूनिवर्सिटी के प्राच्य रिसर्च-विभाग के द्वारा सायण-भाष्य-समेत ऋग्वेद संस्कृत, हिन्दी और अँगरेज़ी तीन भाषाओं में प्रकाशित हो रहा है। कुछ समय पूर्व मैंने उसके कुछ खण्ड देखे थे। उसमें अँगरेज़ी अनुवादवाले भाग में मूल ऋग्वेद के मंत्र रोमन-लिपि में छपे हैं। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ, यदि कोई भारतीय वेदज्ञ भी रोमन-लिपि में छपे मन्त्रों का शुद्ध शुद्ध उच्चारण कर दे। लिपि का उद्देश्य यही है कि जैसा हम बोलते हैं, वैसे ही शब्दों को वह व्यक्त करे। इस दृष्टि से रोमन-लिपि भारतीय भाषाओं के लिए निकम्मी है। इसी लिपि ने 'मथुरा' को 'मुटुरा' और 'मेरठ' को 'मीरुट' और 'देहली' को 'डेल्ही' बना दिया है। इसी लिपि ने पुंलिङ्ग को स्त्री-लिङ्ग बना दिया है—'शुक्ल' का 'शुकला' और 'गुप्त' का 'गुप्ता' इसी के कृपा-कटाक्ष का फल है। जिस देश की अपनी लिपि न हो वह यदि रोमन-लिपि को अपना ले तो यह किसी हद तक ठीक भी है। भारतवर्ष को रोमन-लिपि अपनाने का उपदेश देनेवाले यह भूल जाते हैं कि भारत की लिपि ही विश्व में एक-मात्र वैज्ञानिक लिपि है। यदि देवनागरी में थोड़े-बहुत आवश्यक सुधार कर दिये जायँ तो यही लिपि विश्व की अन्तर्राष्ट्रीय लिपि हो सकती है। स्वतन्त्रता का यह अर्थ है कि जो हमें प्राप्त नहीं वह मिल जाय, न कि जो प्राप्त है वह भी गँवा दिया जाय।

× × × ×

कहा जाता है, भारतवर्ष की गुलामी का कारण हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य है और उसका मुख्य कारण हिन्दी-उर्दू की समस्या है। इसको दूर करने का उपाय एक है, और वह यह कि हिन्दी और उर्दू दोनों समाप्त कर दी जायँ और दोनों के स्थान पर 'हिन्दोस्तानी' भाषा बनाई जाय। तथा लिपि का सवाल हल करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए दोनों को अन्तिम नमस्कार करके रोमन-लिपि राष्ट्र-लिपि बना दी जाय।

हमारा तो स्पष्ट मत है कि भाषा का विकास प्राकृतिक नियमों से होता है, बनाने से बननेवाली यह चीज़ नहीं। 'हिन्दोस्तानी' का अर्थ यदि कोई नई भाषा है तो यह असम्भव है। यदि भाषा का निर्माण भी 'साम्प्रदायिक निर्णय' की भाँति अरबी-फ़ारसी और संस्कृत की प्रतिशत संख्या से होगा तो यह भाषा भी हिन्दू-मुसलमानों के सिरफुटौवल का एक स्थायी हेतु बन जायगी। तब 'लेकिन' और 'किन्तु' पर, 'शुक्रवार' और 'जुम्मा' पर, 'ईश्वर' और 'ख़ुदा' पर, 'मजलिस' और 'सभा' पर, 'आत्मा' और 'रूह' पर, 'प्रकृति' और 'मादा' पर, 'धर्म' और 'मज़हब' पर लड़ाइयाँ होंगी, जिस तरह आज मसजिद के आगे बाजे पर तथा गोकुशी पर लड़ाइयाँ होती हैं। तात्पर्य यह है कि भाषा का निर्माण प्राकृतिक ढङ्ग पर होना चाहिए, राजनैतिक लेन-देन का रूप इसे न मिलना चाहिए। हम तो 'हिन्दी' और 'हिन्दुस्तानी' दोनों का अर्थ एक ही समझते हैं। 'हिन्दी' अर्थात् 'हिन्द की भाषा', 'हिन्दुस्तानी' अर्थात् 'हिन्दुस्तान की भाषा'। 'हिन्द' अथवा 'हिन्दुस्तान' की भाषा वही हो सकती है जिसकी आत्मा संस्कृत-भाषा हो। शरीर में भी जिस प्रकार हाथ, पाँव, आँख, नाक आदि का निश्चित अनुपात रहता है, उससे न्यूनाधिक होने पर शरीर बेडौल हो जाता है, इसी प्रकार हिन्द की भाषा के शरीर में भी संस्कृत के तत्सम, तद्भव, ग्रामीण शब्द प्रान्तीय भाषाओं के शब्द, विदेशी (फ़ारसी, अरबी, अँगरेज़ी, फ़्रेंच आदि) भाषाओं के शब्द इन सबका भी अनुपात स्वाभाविक रूप से रहेगा अन्यथा भाषा के बेडौल और अव्यवहार्य होने का भय है। मैं जब हिन्दुस्तानी-भाषा की आत्मा संस्कृत को कहता हूँ तब इसका अर्थ यह है कि भारतीय भाषा में समास, व्याकरण, परिभाषा आदि के मुख्य आधार संस्कृत के ही होंगे। यदि ऐसा नहीं होता तो उस भाषा को 'हिन्दी' अथवा 'हिन्दुस्तानी' न कहकर कुछ और नाम देना पड़ेगा। जो लोग यह समझते हैं कि नये नये नाम दे देने से ही सब समस्या हल हो जाती है वे वस्तु-स्थिति से अपरिचित हैं। जिस रोगी को राज-यक्ष्मा रोग हो उसको 'सुदर्शन-चूर्ण' खिलाकर आप कहाँ तक स्वस्थ करेंगे? भारतीयों को भी बौद्धिक परतन्त्रता का रोग है। यदि एक के शरीर में यह कीटाणु अरब से आया है तो दूसरे के इँग्लैंड से, दोनों ही रोगी हैं, परन्तु समझते हैं एक दूसरे को रोगी और अपने को स्वस्थ। यह रोग है ही ऐसा।

जो लोग यह समझते हैं कि रोमन-लिपि से लिपि-सम्बन्धी समस्या का अन्तिम निपटारा हो जायगा वे ग़लती करते हैं। रोमन-लिपि के प्रचार से कुछ होगा तो यही कि भारतीय लिपियों में एक संख्या की वृद्धि हो जायगी। बस। आर्य-समाज के प्रवर्तक प्रसिद्ध समाज-सुधारक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन की एक घटना से पाठक रोमन-लिपि की अपूर्णता का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकेंगे। घटना इस प्रकार है—

एक प्रसिद्ध मौलवी और एक प्रसिद्ध पादरी तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती में अपनी अपनी लिपियों की श्रेष्ठता पर एक बार विवाद हुआ। ऋषि दयानन्द ने कहा कि जो लिपि तीनों में श्रेष्ठ हो वही स्वीकार की जाय, शेष दो का त्याग किया जाय। श्रेष्ठता का ज्ञान कैसे हो, इसके लिए यह निश्चय हुआ कि अपनी अपनी भाषा के कठिन से कठिन वाक्य सब बोलें और जिस लिपि में वे ठीक ठीक लिखे जा सकें वही लिपि श्रेष्ठ होगी। स्वामी दयानन्द सरस्वती को जो भी वाक्य अरबी अथवा अँगरेज़ी के सुनाये गये उन्होंने सबको देवनागरी में वैसे ही लिख दिया। परन्तु स्वामी जी ने जो शब्द कहे वे अरबी और रोमन-लिपि में नहीं लिखे जा सके। स्वामी जी ने जो शब्द कहे वे पाणिनि के प्रत्याहार-सूत्रों में से एक 'ञम ङण नम्' था। इसके लिए देवनागरी को छोड़कर और किस लिपि में वर्ण हैं?

कहा जाता है कि रोमन-लिपि के द्वारा हम अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के और विश्वजनीन भाषाओं के निकट सम्पर्क में आ सकेंगे। पर हमारा तो विश्वास है कि अन्तर्राष्ट्रीय लिपि के नाम पर अपनी वैज्ञानिक भाषा को छोड़ना वैसा ही उपहासास्पद है, जैसे कोई अपने घर को इसलिए जला दे कि इसके बाद 'अनन्त' के नीचे बैठूँगा।

रोमन-लिपि के पक्ष में कहा जाता है कि टाइप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णमाला छोटी है तथा टाइप और प्रेस के लिए वह सुगम है। इस पर हमें यह कहना है कि यह ठीक है कि रोमन की अक्षर-संख्या २६ है और देवनागरी की अक्षर-संख्या ४९। परन्तु आवश्यक ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए अक्षर न होने से अक्षरों की न्यूनता गुण नहीं, दोष है। और फिर रोमन का प्रत्येक अक्षर चार प्रकार से लिखा जाता है, इस प्रकार रोमन-लिपि सीखने-वाले को १०४ अक्षर सीखने पड़ेंगे। कुछ लोग कहते हैं कि रोमन-लिपि के अक्षरों का हम सुधार कर देंगे और आवश्यक परिवर्तन-परिवर्धन से वह भारतीय भाषाओं की ध्वनियों को भी व्यक्त कर सकेगी। यदि इस प्रकार अक्षर-संख्या बढ़ाई गई तो वह संख्या बहुत अधिक हो जायगी, क्योंकि उस सबका चतुर्धा भेद करना पड़ेगा। 'खानचन्द' रोमन-लिपि में Khanchand लिखा जायगा। परन्तु यह 'क्हान चनड' क्यों न पढ़ा जाय? 'छ' को 'च्ह' क्यों न पढ़ा जाय? इसका विनिग-मक उस लिपि में नहीं हो सकता, जहाँ वर्ग के प्रथम और तृतीय अक्षर को 'ह' के संयोग से द्वितीय और चतुर्थ अक्षर व्यक्त किया जाता है, क्योंकि कम्प भेद से उनका द्विविधा उच्चारण हो सकता है।

यह ठीक है कि वर्तमान नागरी-लिपि प्रेस और टाइप की दृष्टि से अधिक सुगम नहीं। परन्तु यन्त्र और विज्ञान लिपि के लिए होने चाहिए, लिपि यन्त्र के लिए न होनी चाहिए। यदि नागरी-लिपि में सुधार कर दिये जायँ तो वह निर्दोष सर्वमान्य लिपि हो सकती है। 'रूपाभ' में श्री राहुल सांकृत्यायन जी का एक लेख टाइप राइटर को ध्यान में रखकर नागरी-लिपि में सुधार करने के सम्बन्ध में प्रकाशित हुआ है। वह प्रस्ताव भी विचारणीय है। अच्छा तो यह है कि सभी विचारक मिलकर आवश्यक सुधार का प्रस्ताव सर्व-सम्मति से रखें और उसे कार्य में परिणत करें।

थोड़े दिन हुए 'विशाल भारत' में एक लेख रोमन-लिपि के पक्ष में प्रकाशित हुआ था, जिसमें लेखक ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि रोमन-लिपि की वर्ण-माला देवनागरी के समान बनाई जा सकती है। लेखक का कहना था कि उस हालत में रोमन-लिपि को अपनाने में कोई हानि नहीं। हमें तो इसमें सन्देह है कि उस हालत में भी रोमन-लिपि भारतीय भाषा की सभी ध्वनियों को व्यक्त कर सकेगी। यदि ऐसा सम्भव हो भी तो भी नागरी-लिपि की विशेषता रोमन-लिपि के पक्षपातियों को भी माननी पड़ी, क्योंकि देवनागरी वर्णमाला को आदर्श मानकर ही उन्हें रोमन-लिपि में सुधार करना आवश्यक प्रतीत हुआ। जिस लिपि में स्वर और व्यञ्जनों का भी पृथक् विभाग नहीं है वह व्यञ्जनों के क्रम में भी वैज्ञानिक लिपि (नागरी) का स्थान लेना चाहती है! इसका एक ही कारण है कि हम गुलाम हैं।

जिस लिपि में 'त', 'द' जैसी मुख्य ध्वनियों के लिए वर्ण नहीं है वह अन्तर्राष्ट्रीय लिपि बना दी जाय, इसी को कहते हैं अविवेक! हमारे विचार से अन्तर्राष्ट्रीय लिपि भी वही हो सकती है जो राष्ट्रीय हो। यदि यही बात है तो हमारी राष्ट्रीय लिपि ही अन्तर्राष्ट्रीय क्यों नहीं हो सकती? और फिर अन्तर्राष्ट्र का विचार तो हमें तब करने का अधिकार है जब अपना राष्ट्र तो हमारा हो। हमारा राष्ट्र भी तो बहुत बड़ा है। इसमें ही जीवित १३-१४ बड़ी बड़ी भाषायें और क़रीब इतनी ही लिपियाँ भी हैं। इस दृष्टि से भारतवर्ष स्वयं एक राष्ट्र-समूह है। प्रान्तीय लिपियाँ प्रायः सभी देवनागरी-कुल की हैं। यदि इन प्रान्तीय भाषाओं की एक ही लिपि (नागरी) हो जाय तो यही नागरी अन्तर्राष्ट्रीय लिपि हो गई, ऐसा समझना चाहिए। हमारी देवनागरी राष्ट्रीय लिपि मानी जाय या नहीं, 'महाराष्ट्रीय' लिपि तो वह है ही।

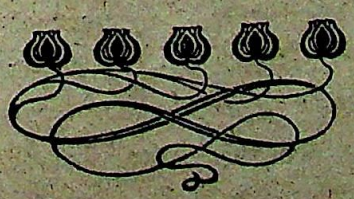

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष-कन्या

लेखक, श्रीयुत कृष्णमनोहरसिंह साँडल

'विष-कन्या' आज के सभ्य-युग में एक काल्पनिक वस्तु रह गई है पर पूर्वकाल में इसका प्रयोग सामान्य बात थी। शत्रु की चारित्रिक दुर्बलता से लाभ उठाकर उसे मारने के लिए इसका प्रयोग करने की सलाह कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में दी है। संस्कृत के प्रसिद्ध नाटक 'मुद्राराक्षस' में भी एक विष-कन्या-प्रयोग का उल्लेख हुआ है। उन दिनों हमारे देश से बाहर के राजा लोग भी सम्भवतः इसके प्रयोग से परिचित थे जिसका पता पाठकों को 'रिचर्ड गार्नेट' की इस कहानी से मिलेगा।

शैशव से ही महामाया मातृस्नेह से वंचित हो गई। उसका लालन-पालन बड़े विचित्र ढँग से हुआ। वह विषैले सर्पों में पलकर बड़ी हुई। साँप उसके पलने में क्रीड़ा करते, उसका कोमल मुंह अपनी खरदरी जिह्वा से चाटते और उसके नन्हें-नन्हें हाथों-पैरों में लिपटे रहते। वह बिच्छुओं से खेलती और विषैले सर्पों की पूंछ मरोड़ा करती। उसका पिता जादूगर लुकस्त उसको काले भुजंगों का विष खिलाता और बड़े स्नेह व यत्न से उसको रखता। धीरे-धीरे वह बड़ी होने लगी, और उसको अफ़ीम, धतूरा, कुचला और संखिया खाने को मिलने लगा। उसकी अवस्था के साथ-साथ विषों की मात्रा में भी वृद्धि होने लगी। लुकस्त ने उसकी शिक्षा-दीक्षा का पूरा ध्यान रक्खा और उसे सब विषयों में पारंगत कर दिया। केवल विष-विज्ञान से वह अनभिज्ञ थी।

हाथ में एक पुस्तक लिये हुए एक दिन महामाया ने पिता की प्रयोग-शाला में प्रवेश किया। उसका सुन्दर चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था। उसने कहा—"देखिए पिता जी, विद्वान् लोग भी कभी-कभी कैसी मूर्खतापूर्ण बातें लिख जाते हैं। झूठ की भी कोई सीमा होनी चाहिए। मेरे प्यारे साथी सर्पों को और मेरे प्रिय भोजनों को इस पुस्तक ने हानिकारक, विषैला और प्राणघातक बताया है। यही खाकर मैं इतनी बड़ी हुई हूँ और इसी ने मुझे स्वास्थ्य, स्फूर्ति और सौन्दर्य प्रदान किया है। यह भूल से ऐसा लिखा है अथवा कल्पना और प्रलाप है?"

जादूगर ने कहा—"अब समय आ गया है कि जो बात मैंने अभी तक गुप्त रक्खी थी वह तुझ पर प्रकट कर दूं। इसी लिए मैंने तुझे इस पुस्तक के पढ़ने का अवसर दिया है। इसमें जो लिखा है वह सत्य है। बचपन से ही मैंने तुझको घातक वस्तुएँ खिलाई हैं, जिनको साधारणतः विष कहते हैं। तेरा सम्पूर्ण शरीर—रक्त, मांस और हड्डी—विष से बना है। मेरी रक्षा विष के प्रभाव को नष्ट करनेवाली ओषधियाँ करती हैं। मेरे अतिरिक्त और जो व्यक्ति तेरे सम्पर्क में आयेगा उसकी मृत्यु हो जायगी।"

महामाया पिता की ओर देखती रही, अवाक्, निश्चल, निस्पन्द।

लुकस्त ने पुनः कहना आरम्भ किया—"अब इसका कारण सुनो। इस देश के राजा से मेरी पुरानी शत्रुता है। उसने तो मुझको कभी हानि नहीं पहुँचाई, किन्तु उसके पिता ने मेरे पिता की हत्या की थी। अतः मैं अपने पिता के शत्रु के पुत्र के पुत्र का नाश करूंगा। तू विष की जीती-जागती पिटारी है। राजकुमार उसको खोलने की चेष्टा करेगा। उससे तेरा बड़ा लाभ होगा और उसका नाश हो जायगा। तू अपूर्व सुन्दरी है और राजकुमार नवयुवक और अविवाहित है। तेरे स्पर्श से उसकी मृत्यु हो जायगी और तू उसके प्रेम के चुम्बन-द्वारा विष के घातक प्रभाव से मुक्त हो जायगी।

महामाया ने कहा—"यदि मुझको राजकुमार पसन्द न आया तो मैं उसके प्रणय का प्रत्याख्यान कर दूंगी और यदि वह मुझको पसन्द आ गया तो मैं उसकी छाया से भी दूर भागूंगी और उसकी मृत्यु का कारण नहीं बनूंगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जादूगर—"क्या तू कुछ लाभ भी नहीं उठाना चाहती ?"

महामाया—"नहीं।"

जादूगर ने हताश होकर कहा—"ओह ! लड़की की जाति ! कितने प्यार से हम तुझको पालते हैं, कितने यत्न से तुझको शिक्षा देते हैं, तुझसे हमें कितनी सुखद आशायें होती हैं, किन्तु तू हमारे लिए एक तुच्छ दया भी नहीं करती। अच्छा तू अपनी कृतघ्नता और विद्रोह का उचित फल पा।"

महामाया—"पिता जी, मुझको मेंढक तो बना-ओगे नहीं।"

जादूगर—"अच्छा मैं तुझे अपने घर से निकाल दूंगा।"

पिता के घर से निकल कर महामाया सोचने लगी—"अब मैं क्या करूँ ? संन्यासिनी बन जाऊँ ? किन्तु तब तो मैं पारिवारिक सुखों से सदा के लिए वंचित हो जाऊँगी। सम्भव है, पिता जी को ग्लानि हो और वे मुझे क्षमा कर दें।"

महामाया अपने पिता की प्रयोग-शाला में से पारस-पत्थर का एक टुकड़ा ले आई थी। उसकी सहायता से उसने बस्ती से दूर एक निर्जन स्थान में अपने रहने के लिए एक मकान बना लिया। वह सबसे अलग रहती थी और किसी व्यक्ति की मृत्यु का कारण नहीं बनना चाहती थी। उसने कुरूप, कुत्सित और विकृत अंग के स्त्री-पुरुषों को नौकर रक्खा था। वे हर समय उसके घर पर पहरा दिया करते थे। किसी का भी उसके पास पहुँचना असाध्य था। उसने विष का व्यवहार भी बिलकुल त्याग दिया और साधारण भोजन पर ही निर्वाह करने लगी। निर्जनता उसको काट खाने को दौड़ती, संसार से अलग रहते रहते वह तड़प उठती, किन्तु निरुपाय थी। उसका व्यवहार दास-दासियों से भी शुष्क और कठोर था। वे महामाया को गर्वीली, अभिमानिनी और पाषणहृदया समझते थे। उनके हृदय उनकी बाह्य-आकृति की भाँति कुत्सित, कठोर और कलुषित थे। स्वामिनी से प्रचुर मात्रा में धन पाने पर भी वे उससे सन्तुष्ट नहीं थे।

अनेक यत्न करने पर भी महामाया अपने को संसार की दृष्टि से छिपा न सकी। नगर की स्त्रियाँ उसको घृणा और ईर्ष्या की दृष्टि से देखतीं; नगर के नवयुवक उस पर पागल थे। वे अनेक प्रकार से उसके पास पहुँचने की चेष्टा करते। दीप-शिखा पर लोलुप शलभ के समान प्राण देने के लिए प्रस्तुत रहते थे। उसको प्रेम-पत्र लिखते और उसके यहाँ नौकरी करने के लिए आवेदन-पत्र भेजते। वह जब रथ पर बैठ कर वायु-सेवन को निकलती तब वे चारों ओर से उसके ऊपर टूट पड़ते।

एक दिन हताश होकर एक दुस्साहसी युवक ने बलात् महामाया को पकड़कर ले जाने की चेष्टा की। इसी समय एक और युवक आ पहुँचा और उसने प्रथम युवक पर आक्रमण किया। तलवारें खिंच गईं। प्रथम युवक धराशायी हुआ। महामाया बेहोश हो गई।

जब महामाया को होश आया तब उसने अपने को अपने रक्षक के अंक में पाया। वह उसके अधरों से विष-पान कर रहा था। वह उछल कर अलग हो गई और उसको बुरा-भला कहने लगी। युवक को महामाया के इस व्यवहार से बड़ी निराशा हुई। वह चला गया—दुःखित, क्षुब्ध और निराश।

महामाया व्यथा-वेदना और अनुताप से तड़प उठी। जिस युवक ने अपने प्राण संकट में डालकर उसकी रक्षा की, उसके साथ उसने ऐसा कटु, कठोर और हृदयहीन व्यवहार किया। किन्तु वह निरुपाय—असहाय और विवश थी। अपने रक्षक की मृत्यु का कारण बनने की कल्पना से वह सिहर उठती थी।

महामाया ने किताबें मँगाईं और पढ़कर अनुमान किया कि उसका रक्षक विषपान के कारण क्या क्या कष्ट भोग रहा होगा, उसको कैसी यन्त्रणा हो रही होगी। उसके पास संवाद आया कि एक युवक मृत्यु-शय्या पर पड़ा है और केवल उसके दर्शन से ही उसके प्राण बचने की आशा है। किन्तु उसने जाने से इनकार कर दिया। उससे आग्रह किया गया, उससे प्रार्थना की गई, किन्तु वह अटल रही।

महामाया के पास राजा की आज्ञा पहुँची। राजा की आज्ञा को टालना असम्भव था। अवगुण्ठन में अपना मुंह छुपाकर वह राजा के सामने उपस्थित हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृद्ध राजा ने कठोर स्वर में कहा--" कुमारी, तूने मेरे पुत्र के साथ बड़ा कटु. . . . . "

महामाया चकित हो गई। उसने कहा--"महाराज, आपके पुत्र !"

राजा ने कहा--"हाँ, तूने मेरे पुत्र के साथ बड़ा निष्ठुर व्यवहार किया है। उसने तेरी सम्मान-रक्षा के लिए, तेरे प्राण बचाने के लिए, अपने जीवन को संकट में डाला और तुझको बचाया, किन्तु तू ऐसी कृतघ्न है कि अपने रक्षक की प्राण-रक्षा के लिए एक मधुर मुस्कान भी प्रदान करने को प्रस्तुत नहीं।"

महामाया ने दुखित होकर कहा--"महाराज ! आप मेरा विश्वास करें, मुझे देखकर कुमार का कष्ट दूर नहीं होगा।"

राजा ने कहा--"यदि तू अपना अवगुण्ठन हटा दे तो मैं इस बात का विश्वास कर सकूंगा।"

महामाया ने अनिच्छापूर्वक अवगुण्ठन हटा दिया।

राजा ने विस्मित होकर कहा--"अपूर्व रूप-राशि ! अनुपम सौन्दर्य सुषमा ! अवश्य तू मेरे पुत्र का प्राण बचाने में सफल होगी। जाओ, अभी कुमार के पास जाओ।"

महामाया ने कहा--"मुझसे कुमार का क्या भला होगा ? उसके शरीर में तो बृहत्तर विष प्रवेश कर चुका है।"

राजा ने कहा--"मुझको तो विष की बात नहीं मालूम है।"

महामाया ने प्रश्न किया--"क्या उसका कलेजा नहीं जल गया है ? क्या उसका मांस नहीं गल गया है ? क्या खाल सिकुड़ कर शरीर से अलग नहीं हो गई है ? क्या वह वमन नहीं कर रहा है ?"

राजा ने कहा--"नहीं तो। जैसी उसकी दशा है, वैसी कभी-कभी मेरी भी हो जाती थी। वह शय्या पर पड़ा है; न खाता है न पीता है, बारम्बार तुझको पुकार रहा है।"

महामाया ने कहा--"समझ में नहीं आता। मेरे पिता की प्रयोगशाला की किसी भी ओषधि का ऐसा गुण नहीं लिखा है।"

राजा ने अधीर होकर कहा--"विवाद की आवश्यकता नहीं है। या तो कुमार के कमरे में जाओ और फिर विवाह-वेदी पर, नहीं तो फाँसी प्रस्तुत है।"

महामाया ने कहा--"यदि यही आपकी अन्तिम आज्ञा है तो मैं फाँसी पर चढ़ना अधिक पसन्द करूँगी, किन्तु आप मेरा विश्वास करें। मैं यदि कुमार के निकट गई तो उसके जीवन की रही-सही आशा भी नष्ट हो जायगी। मैं कुमार से प्रेम करती हूँ, अपनी आत्मा को उसके रक्त से रंजित करना नहीं चाहती।"

विकल, विवश और विह्वल महामाया राजा के सामने पृथ्वी पर लोट गई, और उसने राजा को आदि से अन्त तक सम्पूर्ण कथा सुना दी।

वृद्ध राजा की श्वेत दाढ़ी को चीरकर हँसी फूट पड़ी। उसने कहा--"अच्छा तो तुम मेरे पुराने मित्र जादूगर लुकस्त की कन्या हो। मुझको उसकी योग्यता का पहले से ही पता चल गया था। उसने अपनी कन्या को विष दिया और मैंने अपने पुत्र को विष का प्रभाव नष्ट करनेवाली ओषधियाँ। उसको विष से बिलकुल हानि नहीं हो सकती। तुम दोनों एक-दूसरे के उपयुक्त हो। उसके कमरे में जाओ और अपने विषैले प्रभाव को उसके आलिंगन से नष्ट कर दो। तुम्हारे पिता को भी मैं विवाह में निमंत्रित करूँगा, क्योंकि उसने हमको बताया है कि प्रेम का चुम्बन प्रत्येक रोग की अमोघ ओषधि है।*

---

* रिचर्ड गार्नेट की 'ट्वायजन मेड' नाम कहानी के आधार पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा प्रधान उपनिवेश

लेखक, श्रीयुत सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए०

(४)

टेंगानीका की राजधानी दारसलाम

टायरिया दारसलाम २२ को प्रातःकाल पहुँच गया। परन्तु जहाज़ बन्दरगाह तक न जाता था। जहाज़ पर इंडियन एसोसियेशन के सभापति बैरिस्टर चितले, सेक्रेटरी मिस्टर अंजारिया, टेंगानीका लेजिस्लेटिव कौंसिल के मेम्बर आनरेबिल मिस्टर आदम जी और आनरेबिल मिस्टर बैजबा, भूतपूर्व मेम्बर डाक्टर मलिक, 'टेंगानीका-हेरल्ड' के सम्पादक मिस्टर बोस, कंपाला जनरल एजेंसी कम्पनी लिमिटेड के, जिसके बोर्ड आफ़ डायरेक्टर्स के सभापति अहमदाबाद के सेठ अम्बालाल साराभाई हैं, डायरेक्टर मिस्टर पटेल तथा दारसलाम के अनेक प्रतिष्ठित सज्जन मुझे लेने के लिए जहाज़ पर आ पहुँचे। हम लोग टायरिया को नमस्कारकर अपने सामान के सहित जहाज़ से उतर पड़े; क्योंकि आगे अब इस जहाज़ से न जाना था। एक छोटे से मोटर-बोट में बैठकर हम लोगों ने दारसलाम के बन्दरगाह पर पैर रक्खा। दारसलाम का बन्दरगाह मुम्बासा के बन्दरगाह से कहीं बड़ा सुन्दर था। दारसलाम नगर भी मुंबासा से बड़ा था। मुंबासा के समान ही हरियाली थी। मकान मुंबासा से बड़े तथा सड़कें मुंबासा से चौड़ी थीं। ख़ूब साफ़-सुथरा नगर था। मुंबासा के समान यहाँ भी भारतीय, अरब और सुहेदी तीन ही वर्णों के लोग देख पड़े। योरपीय यहाँ दाल में नमक के बराबर भी न थे।

हमारे ठहरने का इन्तज़ाम इंडियन एसोसियेशन के सभापति मि० चितले के यहाँ किया गया था। मिसेज़ चितले और उनकी दोनों लड़कियों ने अपने मकान में हम लोगों का स्वागत किया और कुछ ही क्षणों में हम लोग मि० चितले के यहाँ उनके कुटुम्बियों के साथ इस तरह हिलमिल गये, जैसे अपने घर में ही आगये हों। इसम हमारी कोई विशेषता न होकर मिसेज़ चितले और उनकी पुत्रियों की विशेषता थी।

दारसलाम में हम लोग चार दिन रहे। अब तक इतने अधिक समय तक पूर्व-आफ़्रिका में हम कहीं न ठहरे थे। इन चार दिनों में वहाँ सभी कुछ हुआ। सबसे पहले तो इंडियन एसोसियेशन ने मुझे टेंगानीका की समस्याओं पर एक मेमोरेंडम दिया। फिर मैंने वहाँ की प्रधान प्रधान संस्थाओं को देखा। ता० २३ को सार्वजनिक सभा हुई और ता० २५ को टी-पार्टी। वहाँ के राजनैतिक कार्यकर्त्ता और व्यापारियों में मुख्य मुख्य व्यापारी मुझसे मिले। राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं में इंडियन एसोसियेशन के पदाधिकारियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[टेंगानीका के सुहेलियों का शृंगार]

के अतिरिक्त टेंगानीका ओपीनियन के संपादक मि० आचार्य का नाम उल्लेखनीय है। मि० आचार्य पूर्व-आफ़्रिका के बहुत पुराने कार्यकर्त्ता हैं। किसी ज़माने में वहाँ के राजनैतिक क्षेत्र में उनका बड़ा ऊँचा स्थान था। कीनिया की लेजिस्लेटिव कौंसिल के वे मेंबर रह चुके हैं। अब तो वे रिटायर-से हो चुके हैं। उनसे मुझे पूर्व-आफ़्रिका के सम्बन्ध में अनेक बातें मालूम हुईं। व्यापारियों में सेठ मथुरादास ने तो मिलते ही ऐसी मित्रता कर ली जैसे हम लोग युगों से एक-दूसरे को जानते हों। वे रोज़ रात को मि० चितले के यहाँ आकर हम लोगों को अपने चन्द्रविला में ले जाते थे और रात का भोजन वहीं करा रात भर वहीं रखते थे। चन्द्रविला समुद्र-किनारे बड़े रमणीय स्थान पर बना हुआ था; बड़ा सुन्दर बँगला था। चारों ओर साइसिल की खेती थी और बहुत दूर तक कोई दूसरा मकान या बस्ती न थी। पूर्व आफ़्रिका में यह मौसम गरमी का होने पर भी चन्द्रविला में इस गरमी का कोई असर न था। वहाँ तो समुद्र की हवा के चारों ओर से आने के कारण वसन्त का निवास-स्थान था। चन्द्रविला के चारों तरफ़ की साइसिल की खेती सेठ मथुरादास ही की थी। चन्द्रविला से कुछ दूर पर उन्हीं की एक साइसिल-फ़ैक्टरी थी। मैंने इस खेती और फ़ैक्टरी को भी देखा तथा ज्ञातव्य बातों को जानने का प्रयत्न किया। साइसिल की खेती और फ़ैक्टरी पूर्व आफ़्रिका के मुख्य व्यापार में से एक है।

ता० २३ की सार्वजनिक सभा में कोई खास बात नहीं हुई। इंडियन एसोसियेशन के सभापति मि० चितले के बीमार होने के सबब आनरेबिल मि० आदमजी सभापति थे। सभा में बड़ी भीड़ थी। आफ़्रिका और भारतवर्ष के सम्बन्ध में अन्य बातें कहते कहते मैं नरमदल की राजनीति की बड़ी कड़ी आलोचना कर गया। पीछे से मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि उस दिन की सभा के सभापति मि० आदमजी नरम राजनीति के अनुयायी हैं। मि० आदमजी इतने भले और सभ्य सज्जन थे कि मेरी इतनी कड़ी आलोचना पर भी उन्होंने अपने अन्तिम भाषण में कुछ न कहा।

ता० २५ की चाय-पार्टी बड़ी मज़ेदार हुई। मि० चितले ता० २५ तक अच्छे हो गये थे। चाय के बाद वे बोलने खड़े हुए। अपने भाषण में उन्होंने दारसलाम की राजनैतिक दलबन्दी का ज़िक्र किया और जो इंडियन एसोसियेशन का आलोचक था उसे बड़े कड़े शब्दों में झिड़की दी। मि० चितले शायद इच्छा के रहते हुए भी बोलने के जोश में यह भी कह गये कि जहाँ तक आफ़्रिका के सवालों का सम्बन्ध है तब तक आफ़्रिका के भारतीयों को भारत की इंडियन नेशनल कांग्रेस से भी कोई मदद नहीं मिली, किन्तु विपरीत आफ़्रिका के भारतीयों ने भारत की स्वतन्त्रता के संग्राम में कांग्रेस को सदा ही सहायता दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मि० चितले के भाषण के बाद आनरेबिल मि० बैजवा बड़े हुए। उन्होंने मि० चितले का समर्थन ही न किया, वरन और आगे बढ़कर कह बैठे—"यहाँ सब कुछ ठीक है। हम सब बड़े सुखी हैं। हमें भारतीय कांग्रेस की मदद की कोई ज़रूरत नहीं है। यहीं विचार लेकर हमारे मेहमान भारत को लौटें।" पार्टी में मि० चितले और आनरेबिल मि० बैजवा की राय से विरुद्ध राय रखनेवालों की संख्या अधिक थी। टेंगानीका लेजिस्लेटिव कौंसिल के भूतपूर्व मेम्बर डाक्टर मलिक टेंगानीका हेरल्ड के सम्पादक मि० बोस और कंपाला जनरलएजेंसी के डाइरेक्टर मि० पटेल ने इसके विरुद्ध राय को ज़ाहिर किया। मि० बोस तो बहुत आगे बढ़ गये और बोल बैठे—"यहाँ का इंडियन एसोसियेशन निकम्मा है और कुछ काम नहीं करता।" मि० बोस ने अपना भाषण पूरा करते-करते इंडियन एसोसियेशन के पदाधिकारियों को बहुत-सी चुनौतियाँ भी दे डालीं। टी-पार्टी का वायुमंडल बहुत गरम हो उठा और उस वायुमंडल में इंडियन एसोसियेशन के सभापति ने मुझे बोलने के लिए कहा। मैं वहाँ मेहमान की हैसियत रखता था। एक बार तो मेरे मन में आया कि मैं पाँच गिनती के शब्दों में धन्यवाद देकर बैठ जाऊँ, पर फिर मैंने यह विचार छोड़ उस समय की परिस्थिति पर कुछ कह देना ही ठीक समझा। जब मैंने अपना भाषण पूरा किया और अपनी घड़ी को देखा तब मुझे मालूम हुआ कि मैं पूरे ४० मिनट बोल चुका था। मैंने आरम्भ इस प्रकार किया—'यदि भारत के किसी यात्री को आफ़्रिका आकर यह मालूम हो कि आफ़्रिका के भारतीय हर तरह सुखी हैं और उन्हें कांग्रेस की सहायता की ज़रूरत नहीं तो इससे ज़्यादा खुशी की कोई बात उसके लिए नहीं हो सकती है।' मुझसे यह सुनते ही तो उस पार्टी में आवाज़ें आना शुरू हुई हैं। एक तरफ़ से आवाज़ आई, 'हम सुखी नहीं हैं।' दूसरी तरफ़ से सुन पड़ा, 'बड़े दुःखी हैं।' तीसरी तरफ़ से सुनाई पड़ा, 'हमें कांग्रेस की मदद हर बात में चाहिए।' चौथी तरफ़ शब्द हुए, 'यदि ऐसा न होता तो आपको बुलाया ही क्यों जाता?' मैं आगे बढ़ा और मैंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि किसी भी पराधीन देश के लोग चाहे वे अपने देश

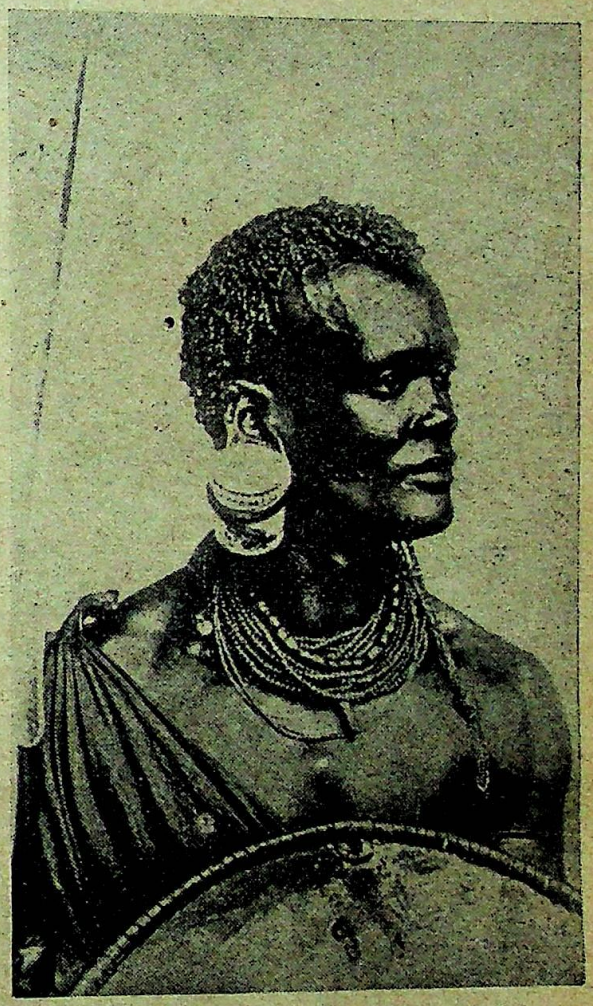

[टेंगानीका के सुहेलियों की भेषभूषा]

में रहें या बाहर, सुखी नहीं रह सकते। मेरे इन विचारों का बार बार तालियों से समर्थन हुआ। मेरा तीसरा पाइन्ट था उस दलील का उत्तर जिसमें कहा गया था कि कांग्रेस ने आफ़्रिकन भारतीयों के लिए कुछ नहीं किया और आफ़्रिकन भारतीयों ने कांग्रेस को भारत की स्वतन्त्रता के संग्रामों में सदा सहायता दी। मैंने कीनिया के हाइलेंड्स से लेकर जंज़ीबार के लौंग के व्यापार-सम्बन्धी आन्दोलन के इतिहास का वर्णन कर लोगों से पूछा कि वे क्या समझते हैं कि कांग्रेस ने उन्हें सहायता दी या नहीं। चारों ओर से 'दी है, दी है' शब्दों ने सारे हाल को गुँजा दिया। फिर मैंने कहा—'और आपने यदि भारत की स्वतन्त्रता के संग्रामों में सहायता की है तो भारत पर कोई अहसान नहीं किया। भारत की स्वतन्त्रता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जितनी आवश्यकता भारत के भारतीयों को है उतनी ही है आपको ; स्वतन्त्र हुए बिना न तो भारत में हम सुख और सम्मान से रह सकते हैं और न बाहर। फिर आपने भारत की स्वतन्त्रता के संग्रामों में सहायता कर कोई नई बात भी नहीं की है। आपने भारत से यहाँ आकर धन कमाया है। आयर्लैंड-निवासियों ने अमेरिका जाकर धन कमाया था। आपने यदि भारत की स्वतन्त्रता के संग्रामों में सहायता की है तो आयर्लैंडवालों का अनुसरण-मात्र किया है। जितनी सहायता अमेरिका की आयरिश ने आयर्लैंड की स्वतन्त्रता के संग्रामों में की थी उसकी तो शतांश भी आपने नहीं की। आपको तो अभी और ऊपर उठना है। मैंने अपना भाषण पूर्ण किया यह कहकर कि यदि इंडियन एसोसियेशन काम नहीं करता तो उसकी मेम्बर-शिप सबके लिए खुली है। जो आलोचना करते हैं वे मेम्बर हों। उनका बहुमत होगा तो वे पदाधिकारी हो जायँगे। ग़ैर ज़िम्मेदारी की आलोचना सच्ची आलोचना नहीं है। मुझे पीछे से मालूम हुआ कि मेरे अन्तिम पाइन्ट के कारण मेरा यह भाषण दोनो दलों को पसन्द आया। बहुत दिनों तक टेंगानीका के पत्रों में इस टी-पार्टी की आलोचना चलती रही। मैं भी बहुत दिन तक इस टी-पार्टी को याद रक्खूँगा।

टी-पार्टी के बाद जब रात को मैं चन्द्रविला गया तब वहाँ कई व्यापारी मिले। एक व्यापारी मुझसे बोले—"आप जानते हैं, टी-पार्टी में यह सब क्यों कहा गया कि 'हम सुखी हैं, हमें कांग्रेस की आवश्यकता नहीं।'

"'नहीं'। मैंने कहा।

वे बोले—टेंगानीका की लेजिस्लेटिव कौंसिल में नेटिव प्राड्यूस बिल नामक एक क़ानून पेश हुआ था। यह क़ानून यदि पास हो जाता तो यहाँ के भारतीयों के व्यापार का वही हाल होता जो इस समय भारतीय व्यापारियों का ज़ंजीबार में हो रहा है। जब यह क़ानून पेश हुआ था उस समय आपको वहाँ आने के लिए निमन्त्रण भेजा गया था, पर फिर टेंगानीका की सरकार ने उसे वापस ले लिया। उस क़ानून के वापस ले लिये जाने के कारण ही आज टेंगानीका के कुछ लोग अपने को सुखी मानते हैं और उन्हें कांग्रेस की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है।

इन व्यापारी महाशय की बात सुनकर मुझे गोस्वामी तुलसीदास जी का एक दोहा याद आ गया—

गरज परे कुछ और है गरज सरे कुछ और।
तुलसी भाँवर के परे नदी सिरावत मौर॥

दारसलाम की संस्थाओं में वहाँ का आर्य-समाज-मन्दिर, सनातनधर्म-मन्दिर और आर्य-कन्या-विद्यालय ने मुझे अधिक प्रभावित किया। वहाँ के आर्य-समाजियों और सनातनधर्मियों का प्रेम और एक-दूसरे के सहयोग से अपनी संस्थाओं का संचालन देखने योग्य था। आर्य-कन्या-विद्यालय में क़रीब २५० कन्यायें शिक्षा पाती हैं। मानसिक और शारीरिक दोनों ही प्रकार की शिक्षाओं पर ध्यान दिया जाता है। गुजराती, हिन्दी, अँगरेज़ी और संस्कृत चारों भाषायें वहाँ हर लड़की को सिखाई जाती हैं। व्यायाम भारत में बड़ौदा के आर्य-कन्या-विद्यालय की पद्धति पर कराया जाता है। इस विद्यालय के संचालन का भार प्रधान रूप से सेठ मथुरादास कालीदास पर है और ऐसी सुन्दर संस्था के चलाने के लिए मैंने उन्हें बधाई दी।

आगे की यात्रा मैंने एरोप्लेन से करने का निश्चय किया, क्योंकि जितनी दूर दूर हमें जाना था और जितना थोड़ा समय हमारे पास था उसे देखते हुए यह यात्रा और किसी सवारी से पूरी न हो सकती थी। बिलसन एयरवेज़ कम्पनी से ता० २६ नवम्बर से ता० ५ दिसम्बर तक के दिनों के लिए मैंने दो सीट का एक स्पेशल एरोप्लेन किराये पर लिया। सारी यात्रा का कार्यक्रम प्रोग्राम वार तैयार किया गया और ता० २६ के प्रातःकाल लक्ष्मीचन्द के साथ दारसलाम से उड़ने की बात तय पाई। नौकर और हमारा कुल असबाब एरोप्लेन से न जा सकता था, अतः तय किया गया कि नौकर और असबाब दारसलाम में छोड़ दक्षिण को कुछ मुख्तसिर सामान के साथ उड़ा जाय। नौकर और बाक़ी सामान को दक्षिण आफ्रिका जाते हुए दारसलाम से साथ ले जाने का निश्चय हुआ।

[क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़लतफ़हमी

लेखक, श्रीयुत पंडित मोहनलाल महतो

(१)

"अब नहीं सहा जाता!"

"क्यों?"

"क्या बतलाऊँ! बस, मुझे आज्ञा दें। मैं जाऊँ।"

"आखिर इस विराग का कारण?"

"कह तो दिया, अब नहीं सहा जाता!"

"क्या कारण है, किसने तुम्हें सताया, तकलीफ़ दी?"

"मेरे दुर्भाग्य ने, दुर्दिन ने। और किसने?"

"गोलमटोल बातें समझ नहीं पाता--साफ़ साफ़ कहो।"

"कहना चाहती हूँ, पर कह नहीं पाती--शब्द नहीं मिलते।"

"अच्छा--सोचने दो, क्या कर्त्तव्य है।"

"सोचिए--जब तक जी चाहे, सोचा कीजिए, पर मुझे तो जाने की आज्ञा प्रदान कीजिए--हाय! दुर्भाग्य ने यहाँ तक पीछा किया।"

कमरे में लैम्प की रोशनी फैल रही थी। दीवारें पुस्तकों से भरी थीं और टेबिल पर काग़ज़ों का ढेर लगा हुआ था। शान्त वातावरण में दो हृदय--एक दूसरे के सामने धड़क रहे थे। मनोहर और दिवा--दिवा विषाद की मूर्ति नवयुवती दिवा अर्थशून्य दृष्टि से लैम्प की ओर अधमुंदी आँखों से देख रही थी और मनोहर--मनोहर क़लम से किसी अखबार के किनारे पर अकारण कुछ लिख रहा था, पर उसका मन कभी आकाश में दौड़ता और कभी पाताल में प्रवेश करता। दोनों चुप थे, दोनों अनमने-से थे, दोनों अपने-अपने मन में कुछ खोज रहे थे, दोनों चुपचाप बैठकर समय काट रहे थे, दोनों पर प्रकाश का आँचल फैला हुआ था, हवा बारी बारी से दोनों को चूम जाती थी। दिवा की ठंडी साँस ने सन्नाटे को थोड़ा-सा ठेल ढकेल कर दूर किया--मनोहर ने क़लम रखकर छिपी हुई नज़रों से दिवा के उस चेहरे को देखा जिस पर नाना प्रकार की भावनाओं की लहरों की छाया नाच रही थी। दिवा ने भी मनोहर की ओर देखा--चारों आँखें टकराकर नीचे झुक गईं। किसी पुस्तक का पृष्ठ उलटता हुआ मनोहर बोला--"दिवा, समझ में नहीं आता, तुम इतनी जल्दी ऊब क्यों गईं। कोई असुविधा तो नहीं है? मैं तो सदा तुम्हारे आराम का ख़याल रखता हूँ।" दिवा ने धीमे स्वर में उत्तर दिया--"असुविधा? मैं देहात की रहनेवाली। कच्चा घर, कच्चा आँगन और यहाँ हैं सुख के सभी साधन। पर मनोहर बाबू, शरीर के सुख को लेकर ही कोई जीना पसन्द नहीं करता, मन का सुख भी तो चाहिए।"

दिवा अचानक चुप हो गई। मनोहर ने तनिक-सा चौंककर देखा, दिवा सिर झुकाकर, अपनी दाहनी हथेली को गोद में फैलाये देख रही है, उसकी पलकें कुछ कुछ भीगीं-सी जान पड़ती हैं, मानो उसके अनजानते उसकी आँखें रो रही हैं। कराह कर मनोहर ने कहा--"क्यों दिवा, तुम्हारे मन को आराम यहाँ भी नहीं मिलता? मैं तुम्हारे सुख के लिए--तुम्हीं बोलो--क्या करूँ?"

"यही कि"--दिवा बोली--"मुझे घर लौट जाने की आज्ञा दें।"

"अच्छा"--मनोहर ने कहा--"दो-चार दिन और सब्र करो। मैं अच्छी तरह सोच लूं कि क्या करना चाहिए।" मनोहर मन का भार लेकर थका-सा उठकर कमरे में टहलने लगा। दिवा स्वप्न की तरह चुपचाप चली गई। लैम्प का तेल चुकने लगा। प्रकाश अपनी विभा समेटकर अन्धकार के आँचल से मुंह छिपाने के लिए व्यग्र-सा हो उठा। मनोहर चिंता की उत्ताल तरंगों में कभी ऊपर उठता और कभी पछाड़ खाकर गिरता, पर गिरता अतल सागर के वक्षःस्थल पर ही। वह मन ही मन थक-सा गया, पर तरंगों को विराम कहाँ--एक मिटी तो विद्रोही की तरह दूसरी ने सिर उठाया। देखते देखते चुपचाप रात खिसकती हुई आगे बढ़ी। मनोहर दिमाग़ के चरखे पर विचारों का सूत निकालता हुआ कमरे के इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोर से उस छोर तक लगातार टहलता रहा। समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता--वह स्वतन्त्र है।

एक लम्बी साँस छोड़कर उसने अपनी ओर देखा और फिर देखा आँखें मलकर सुदूर भविष्य की ओर; उसे दिखलाई पड़ी मिटती हुई धुंधली चन्द्ररेखा की तरह प्रकाश और अन्धकार की सन्धि के बीच में शान्त, गम्भीर, उदास दिवा की भोली-भाली मुखश्री। मनोहर मन ही मन मुस्करा उठा।

(२)

दिवा कौन थी?

इस प्रश्न का उत्तर मनोहर यदि देता तो वह केवल इतना ही कह कर चुप हो जाता कि--मेरी नादानी।

मनोहर कौन था?

इस प्रश्न का उत्तर यदि दिवा देती तो वह मुंह से कुछ न बोलकर छलकती हुई आँखों से एक बार महाशून्य की ओर देख लेती। बस, इतना ही। हम कहानी-लेखक हैं--हृदय की भाषा कवि समझते हैं, हमारे कान तो कवि की भाषा समझ कर, सुनकर ही धन्य हो जाते हैं। हम कवि नहीं, कथाकार हैं--यह नोट कर लें।

× × ×

दिवा--अभागिनी दिवा एक ऐसी लता की तरह थी जो हवा में अपने शतशत कर फैलाकर व्याकुलभाव से आश्रय खोज रही हो। वनिता और लता के सामञ्जस्य में समझदारों ने जो बातें कही हैं उनका खंडन करना हमारा उद्देश्य नहीं है, पर दिवा के प्रति निष्ठुर होना भी हम नहीं चाहते।

नवयुवती दिवा देहात के आडम्बरहीन वातावरण में अपनी लुनाई के साथ आई। जिस लुनाई को उसके लिए विधाता ने उदारभाव से निर्माण किया था वह देखते देखते विडम्बना के रूप में परिणत होने लगी। दिवा ने इस भयानक परिवर्तन को सहम कर देखा और वह मन ही मन चीख उठी, पर दुर्भाग्य के निष्ठुर हाथ अपना काम करते ही गये। इसी का नाम है विश्व-प्रपंच! वह चाहती थी कि रोकर, पैरों पड़कर दुर्दैव को समझावे-बुझावे, उसे अपने मन की करने से रोके, पर उसका--दिवा का--क्षीण कंठ-स्वर उसके अन्तर में ही गूंज कर समाप्त हो गया। समय की गति में पड़ कर दिवा न जाने कैसे मनोहर की छाया चुपके से आकर खड़ी होगई। यदि किसी ने उसे तो वह थी मनोहर की स्त्री 'कला'। 'कला' ने चौंककर दिवा की ओर देखा और ठंडी साँस खींचकर सिर झुका लिया, पर अपनी जगह पर अच्छी तरह पैर जमाकर खड़ी हो गई--महामहिमामयी रानी की तरह। अपने आपको उसने तड़पती हुई बिजली समझा, सावन-भादों की नदी समझा और समझा गम्भीर घोष करती हुई आषाढ़ के प्रथम दिवस की--पहाड़ से टकरानेवाली--महाघटा! ग़रीब दिवा ने इस चुनौती को सहज स्नेह के रूप में ग्रहण किया--वह दानी नहीं भिखारिनी बन कर संसार में आई थी। उसकी कजरारी पलकों पर करुणा का भार था, अधिकार का मद नहीं। कला ने दिवा की विनम्रता को ऐसे नागपाश के रूप में देखा जो धीरे-धीरे अपने शिकार को नीचे से ऊपर तक लपेटकर बेक़ाबू कर डालती है; उसकी सकरुण भावना को प्रदीप के उस घातक पर चटकदार प्रकाश समझा, जिस पर रीझ कर पतिंगे स्वयं जल मरते हैं। कला के हृदय के किसी अन्धकारपूर्ण कोने से झाँक कर ईर्ष्या ने दिवा को देखा और दिवा के हृदय के प्रकाशपूर्ण कोने से मुस्कराती कृतज्ञता ने कला को देखा। मनोहर, दिवा और कला के बीच में छाया-प्रकाश बनकर मानो बिखर गया। दिवा से अपने हृदयधन की रक्षा करने का प्रण कला ने किया।

एक दिन भोजन कर लेने के उपरान्त कला ने मनोहर से कहा--"न जाने क्यों मेरा जी घबराता है?" मनोहर ने सहज स्वभाव से उत्तर दिया--"बहुत दिनों से घर में रहते रहते जी का घबराना सम्भव है।" मनोहर के सरल उत्तर ने कला को चौंका दिया। क्या मनोहर कला को कहीं दूर जाने की सम्मति दे रहा है--मायके! ऐसा क्यों? कला अपने पिछले जीवन के इतिहास के पृष्ठ पर पृष्ठ तेज़ी से उलटने लगी। कई बार ऐसी घटनायें हो चुकी हैं कि कई-कई दिनों तक अनशन करने पर भी मनोहर ने कला को मायके जाने का हुक्म नहीं दिया। वही मनोहर--हाँ, वही मनोहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज कला को इशारे से मायके जाने की राय दे रहा है। इस परिवर्तन के चक्र का कारणरूप कौन है, —निश्चय ही अभागी दिवा ! कला का जी जल उठा। उसे ऐसा लगा कि सहसा उसने अपना गौरवमय आसन खो दिया है। वह न जाने कैसे—सिंहासन से उतरकर नीचे पायदान पर बैठ गई। कला मन ही मन कुछ झल्लाकर बोली—"तो आज ही मुझे मायके क्यों नहीं भेज देते?" "तो आज ही"—शब्द पर अनावश्यक ज़ोर देकर कला ने अपने भीतर एक प्रकार की तृप्ति का अनुभव किया—ऐसी तृप्ति ठीक निशाने पर तीर मार लेने के बाद प्रायः शिकारी के उछलते हुए हृदय को प्राप्त होती है। मनोहर इस अनावश्यक उत्तेजना का मर्म नहीं समझ सका। वह अकचकाया-सा कला की ओर देखने लगा। कला मेज़ पर सुपारी की तश्तरी रखकर चुपचाप कमरे से बाहर हो गई। कला की यह हरकत मनोहर को नई जान पड़ी। वह मन ही मन कुछ कुलबुला उठा। सुपारी को स्पर्श किये बिना ही भारी मन लिये वह नीचे उतर आया, यह पहली बार ही उसने इस तरह की मानसिक उथल-पुथल का अनुभव किया था। चिर-विनीता कला के भावों में इतनी गर्मी ! अपने पिछले जीवन की कला-सम्बन्धी प्रत्येक स्मृति की धूल झाड़ झाड़ कर उसने अच्छी तरह देखा, पर उसे एक भी ऐसी बात नज़र नहीं आई जिससे उसकी जीवन-सहचरी की मुखरता का या उसके मिज़ाज की तेज़ी का सन्देह भी होता हो, पर हठात् उसने उस दिन—दिन के प्रकाश में—जो कुछ देखा वह एक अभूतपूर्व सपना था !

(३)

दिवा सन्तानहीना थी। चिर-पिपासु मातृ-हृदय को उसने उस दिन तृप्त किया जिस दिन मनोहर की छोटी बच्ची ने अपनी नीली भोली-भाली आँखों से चकित होकर सबसे पहली बार दिवा को देखकर अपने पिता से तुतली-भाषा में पूछा था—"कौन बाबू जी ?" मनोहर इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं ढूंढ़ सका। वह क्या कहकर बच्ची को दिवा से परिचित करायें। चाची, दीदी, अम्मा आदि एक भी नाम मनोहर को नहीं रुचा। दिवा ने ज़रा-सा लजाकर सिर झुका लिया। यौवन से भरे हुए उसके गोरे गोरे गालों पर क्षण भर के लिए लाली दौड़ आई। बच्ची दिवा के चारों ओर घूमने लगी। वह मानो चाहती थी कि दिवा खुशामद करके उसे गोद में बैठा ले, प्यार करे, चूमे। मनोहर कमरे से बाहर चला गया तब बच्ची को लपककर दिवा ने गोद में उठा लिया—बच्ची ने विरोध किया, पर उसका विरोध निर्बल था, मानो विरोध करने की रस्म अदा की जा रही है। ऊपरी मन का विरोध स्वीकृति से भी अधिक आकर्षक होता है। कुछ दिनों में बच्ची दिवा की गोद पर अधिकार जमा बैठी। बिना बच्ची के दिवा का दिन सूना था और बिना दिवा के बच्ची का खेल उदास था। सन्तानहीना दिवा ने सहमते हुए बच्ची को प्यार किया। वह मन ही मन डर रही थी—उसे भय था कि जब विधाता ने उसे सन्तान-सुख से पूरी तरह वंचित कर दिया है तब उनकी आज्ञा की अवहेलना करके अपने मन से भाग्य-निर्माण या सुख-अनुसन्धान करने का परिणाम शायद अच्छा न हो। दिवा के चिर हाहाकार-पूर्ण हृदय में बच्ची एक कोमल-मधुर रागिनी की तरह गूंजने लगी। दिवा अपने इस सुख के प्रति शंकित हो उठी—उसे भय था कि कहीं उसका यह सुख-स्वप्न विभावरी के समाप्त होते ही अचानक लुप्त न हो जाय। सदा के दरिद्र को यदि थोड़ी-सी सम्पत्ति मिल जाय तो अपनी इस निधि के प्रति सशंक रहता हुआ वह एक अनिर्वचनीय पीड़ा का अनुभव करता है। बच्ची नित्य दिवा के पास जाती और अपने ऊधम से उसके उजड़े हुए मानस को गुलज़ार कर आती। कुछ दिनों तक यही क्रम चला, पर एक दिन कला ने दिवा के जले हुए कपाल में एक और मेख ठोंक दी, जिसे उसने अत्यन्त मर्मान्तिक पीड़ा के साथ सहन कर लिया। नित्य की तरह बच्ची खेलती हुई दिवा के डेरे में चली गई। कला ने दाई भेजकर तत्काल खेलती हुई बच्ची को मँगवा लिया। रोती-चीखती हुई जब वह कला के पास लाई गई तब उसने उसके आँसुओं से भीगे हुए गाल पर एक चाँटा मार कर कहा—"कलमुंही फिर जो उस डायन के डेरे में गई तो उठा कर पटक दूंगी।" प्रपंचहीन बच्ची के कोमल हृदय ने इस मातृ-आज्ञा को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया। आँख बचा कर वह फिर अपनी दिवा अम्मा की गोद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में खेलने चली गई। दिवा ने बच्ची के गाल पर उँगलियों के निष्ठुर निशान को देखकर पूछा—"रानी बिटिया, किसने मारा?" बच्ची की आँखें फिर भर आईं। उसने रोनी आवाज़ में मा की बातों को भोलेपन के साथ दुहरा दिया। दिवा का हृदय उमड़ आया। उसने बच्ची को, धीरे से, गोद से उतारकर कहा—"बिटिया रानी, अम्मा के पास चली जा, नहीं तो वे फिर मारेंगी।" हक्की-बक्की-सी बच्ची दिवा के मुंह की ओर देखने लगी, जो आँचल से अपना मुंह छिपा कर दीवार के सहारे बैठी हुई थी। दिवा के हृदय को बच्ची की चोट से बड़ी पीड़ा पहुँची। वह नहीं चाहती थी कि उसके कारण उसकी प्यारी बिटिया रानी को कोई पीड़ा पहुँचावे, भले ही उसके निकट वह कभी न आवे। उस दिन दिवा ने तकिये में मुंह छिपा कर रोने के अतिरिक्त दूसरा कोई काम नहीं किया। असफल मानसिक क्षोभ पानी बनकर आँखों से जब निकल पड़ता है तब हृदय का भार कुछ हलका हो ही जाता है। धीरे-धीरे परिस्थिति उसके सामने स्पष्ट होने लगी, पर वह क्या कर सकती थी। जैसे एक मज़बूत अदृश्य पंजा किसी को पकड़कर धीरे धीरे, पर दृढ़तापूर्वक खींचता हुआ किसी ऐसी खाई की ओर ले जा रहा हो जिसमें साँप-बिच्छू कुलबुला रहे हों पर उस अभागे में अपनी रक्षा करने का दम न हो तो उसकी जो मनोदशा होगी वही हालत दिवा की थी। वह समझ रही थी कि उसके भाग्य का दूध धीरे-धीरे फटकर जम रहा है, पर एक मूक और निरुपाय दर्शक की तरह केवल आँखें पसार कर सब कुछ देखने के अतिरिक्त बेचारी के पास कोई सहारा ही न था। मनोहर—वह मनोहर जिसने दिवा के लिए अपनी सबसे क़ीमती निधि को एकबारगी ही दाँव पर रख दिया था, कुछ कुछ थका-सा उपाय की खोज में व्यस्त रहनेवाले अनन्योपाय व्यक्ति की तरह एकमात्र दिवा की आशा का, आकांक्षा का केन्द्र-विन्दु था। उसने यह भी अनुभव किया कि उसका यह केन्द्र-विन्दु यद्यपि ध्रुवतारा की तरह अनवरत एक ही स्थान पर चमक रहा है, तथापि क्षितिज के एक छोर से काली काली घटायें भी उठती आ रही हैं। दिवा का हृदय आसन्न अन्धकार की कल्पना करके एक बार सिहर उठा।

(४)

कला का जीवन—उसकी समझ से जो केवल भ्रम-मात्र था—काफ़ी विरस हो गया। अपनी कल्पना की धींगा-धींगी से थककर कला ने अपने विषय में जो कुछ सोचा वह उत्साहमय नहीं कहा जा सकता। मनोहर की तेज़ नज़रों ने भी सब कुछ देखना आरम्भ किया। वह चाहता तो यह था कि ऐसी चीज़ों को वह देखकर भी न देखे, ऐसी बातों को सुनकर भी न सुने, जो उसकी मानसिक शान्ति की नींव को खोखली करने का कारण-रूप हों, पर अनिवार्य रूप में जो कुछ सामने आ जाता है उससे बचकर आगे निकल जाना असम्भव है। कला के भावों में तेज़ी से जिस प्रकार परिवर्तन हो रहा था, उस पर तीखी नज़र डालकर एक बार तो मनोहर मन ही मन झल्ला उठा पर दिवा ने अपनी मानसिक शीतलता की छाया डालकर उसे उभड़ने से बचाया। कला अपने विचारों के उस मार्ग पर लगातार चलती ही रही जो आगे चल कर विनाश के अन्धकार में समाप्त हो जाता था। उसे अपनी समझ पर हठ था।

मनोहर को एक दिन एकान्त में पाकर कला बोली—"मैं—कह नहीं सकती—मैं ऊब उठी हूँ। मुझे कहीं दूर-देश भेज दो, नहीं तो मैं नहीं बचूंगी।"

मनोहर ने कला की बातों की गहराई का तत्काल अन्दाज़ लगा लिया, पर ज़रा-सा चौंक कर पूछा—"आख़िर बात क्या है? मैं तो नहीं समझता कि यहाँ तुम्हें कोई तकलीफ़ है—इस विराग का कोई कारण भी है या मन की तरंग है।"

खिन्न स्वर में कला बोली—"संसार में मेरा अपना कोई नहीं है। भगवान् की शरण में रहना चाहती हूँ—यही बात तुमसे कहना चाहती थी।"

मनोहर का हृदय विकल हो उठा। कला कितना नीचे उतर आई है, यह देखकर उसे बड़ा कष्ट हुआ। क्या कला पति-सन्तान-हीना है, जो वह कहती है कि—संसार में मेरा अपना कोई नहीं है। यह कितने परिताप की बात है। मनोहर का दिल भी छोटा हो गया, पर उसने अपने भावों को ज़ोर देकर छिपाया और कहा—"कला, संसार तुम्हारा है। सच पूछो तो मेरा अपना कोई नहीं है। सही बात तो यह है कि तुम्हारी बाहों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे संसार से विरक्त कर दिया है--मोह का पाश अभी एकदम टूटा तो नहीं, पर कुछ ढीला अवश्य पड़ गया है।"

कला ने अपने मन की अनावश्यक निष्ठुरता को ज़रा-सा और उत्तेजित करके उत्तर दिया--"मेरा क्या है? घर-द्वार सभी तो तुम्हारे हैं। मैं कल भी पथ की भिखारिनी थी और आज भी हूँ।"

खिन्नहृदय मनोहर "तथास्तु" कहकर कमरे से बाहर हो आया। उसके हृदय में असफल क्षोभ चिता की तरह धू धू करके जलने लगा। अब वह क्या करे? एक बार जी में आया कि सदा के लिए इस वातावरण से अपने आपको बचा ले, पर उसे चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार नज़र आया। कला जो उसके जीवन की आनन्द-मयी मुस्कराहट थी, अनिवार्य पीड़ा-सी बनती जा रही थी, जिसे मनोहर बर्दाश्त नहीं कर सकता था। वह चाहता था कि कला अपने विचारों को बदले, पर उसने जो रुख ग्रहण किया था उसमें संशोधन करने को वह क़तई तैयार न थी। मनोहर अपने और कला के बीच के फैले हुए अन्धकार को जितना मिटाना चाहता, वह उतना ही घनीभूत होता जाता--कला अपने प्रयत्नों से अन्धकार के रूप को अधिकाधिक डरावना बनाती जाती थी और दिवा!--

दिवा धूल से भरी हुई एक ऐसी मूर्ति की तरह एक कोने में पड़ी हुई थी जो कमरे की सजावट से अलग कर दी गई हो। इतना होते हुए भी वह सब कुछ देखती और समझती, पर केवल मनोहर की ओर अपने मन को केन्द्रित करके समय व्यतीत करना ही उसे मंजूर था। न जाने वह किस आशामय भविष्य की प्रतीक्षा में अपने उथल-पुथलमय वर्तमान की उत्तेजनात्मक घड़ियों से मन बहलाया करती थी। जब कभी बच्ची के लिए उसका रहस्यपूर्ण हृदय मचलने लगता था, जब मनोहर उससे पूछता कि --"कोई तकलीफ़ तो नहीं है", तब वह बहुत ही धीरे से --अपने मनोद्वेगों को दबाकर-- उत्तर देती--"मुझे मालूम नहीं है।" मनोहर इस उत्तर से अजब पशोपेश में पड़ जाता। क्या दिवा की असुविधाओं को जानना भी उसी के मन की बात है? इस पूर्ण त्यागमय समर्पण की भी कोई हद है? मनोहर के दायित्व का रूप इस प्रकार अधिकाधिक गम्भीर होता जाता था। मनोहर दिवा की सुविधाओं के विषय में जितनी बातें सोचता, दिवा के लिए--दिवा की तरफ़ से--उतनी ही यथेष्ट समझी जातीं। अपनी ओर से अपने आराम और कष्ट के विषय में, सोचना भी दिवा ने छोड़ दिया है, जब यह पता मनोहर को लगा तब वह एक बार सन्नाटे में आ गया और कला के द्वारा होने-वाले उत्पीड़नों ने तो उसे और भी थका दिया।

(५)

एक दिन बच्ची चुपके-चुपके दिवा के कमरे में घुसी। वह चुपचाप बैठी अपने अतीत का गठबन्धन वर्तमान से कर रही थी। बच्ची के आने की आहट ने उसे चौंका दिया, वह इधर-उधर झाँकने लगी कि कहीं कोई उस भोली-भाली बच्ची का इधर आना न देख ले। बच्ची चुपचाप दिवा की गोद में जाकर बैठ गई। बहुत दिनों से दिवा ने इतनी प्रिय वस्तु का स्पर्श नहीं किया था। उसने धीरे धीरे बच्ची को चूम लिया। कुछ देर ठहर कर बच्ची बोली--"दिवा चाची, अम्मा तुम्हें बुलाती हैं--चलो न।" इधर कई महीनों से दिवा कला के पास नहीं गई थी--मनोहर ने मना कर दिया था। अचानक अपनी बुलाहट का संवाद सुनकर दिवा असमञ्जस में पड़ गई। कुछ क्षण सोच-विचार कर वह बच्ची को गोद में उठाकर कला के पास पहुँची। कला चुपचाप बैठी कुछ सोच रही थी। दिवा सिर झुकाकर एक ओर बैठ गई--अपने धड़कते हुए हृदय को सँभालती हुई। बच्ची ने अपनी मा से सोत्साह कहा--"अम्मा, दिवा चाची को बुला लाई।" कला बोली--"तुझे वहाँ जाने को कहा किसने? मैंने तो रामचरण की मा को भेजा था। तू क्यों गई?" बच्ची का चेहरा पीला पड़ गया। सचमुच कला ने रामचरण की मा को, जो महराजिन थी, दिवा को बुलाने के लिए कहा था। बच्ची वहीं पर खड़ी थी--सुनते ही दौड़ पड़ी। उसने यह नहीं सोचा कि माता की इच्छा का प्रतिपालन करना इस समय एक अपराध हो जायगा। कला की रूखी आवाज़ ने बच्ची को दहला दिया, वह सकपका कर दिवा की ओर देखने लगी। कला ने फिर खींच कर पूछा--"क्यों री, तू बड़ी शैतान हो गई है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार साल की नन्हीं-सी मुनिया ने रुआसी होकर कहा—"नहीं जाऊँगी।"

"गई क्यों", चिल्लाकर कला बोली। बच्ची काँप कर रो उठी। कला ने उसका कन्धा पकड़ कर ज़ोर से झकझोरते हुए कहा—"बोल, गई क्यों?" दिवा के लिए यह अपमानजनक दृश्य देखना कठिन हो गया। वह फिर भी पत्थर की मूर्ति-सी अचल रही। कला का क्षोभ बढ़ता गया। उसने तड़ातड़ दो-तीन तमाचे बच्ची के गाल पर जड़ दिये। वह विकल होकर चीख़ उठी। इसी समय मनोहर वहाँ आ गया। वह क्रोध में काँपता हुआ आकर चुपचाप खड़ा हो गया। बच्ची फ़र्श पर लोट रही थी। कुछ क्षण ठहर कर मनोहर बोला—"इसे क्यों मारा?" कला चुप! मनोहर ने फिर ग़ुर्राकर अपना प्रश्न दोहराया, पर कोई उत्तर नहीं। अब मनोहर से न रहा गया। उसने दाँत पीसते हुए पूछा—"आख़िर तुम्हारी इच्छा क्या है? मैं देख रहा हूँ कि तुम अपना नाश उपस्थित करने के लिए उतारू हो चुकी हो। मैं समझाता-समझाता थक गया। जी चाहता है कि . . ।"

कला उठकर कमरे में चली गई और बच्ची को गोद में उठाकर दिवा चुमकारने लगी, पर धीमे स्वर में। इस तरह दुःखान्त नाटक का एक दृश्य बुरी तरह समाप्त हुआ।

मनोहर ने ख़ूब सोच-समझ कर जब अपनी ओर देखा तब वह कुछ चिन्ताकुल-सा हो उठा। कला के रुख ने उसे झल्ला दिया था। वह जितनी ही कोशिश करता कि कला का दिल साफ़ हो, परिणाम उलटा होता। दिवा को लेकर कला ने जिस अवांछनीय वातावरण की सृष्टि की थी उसमें मनोहर का श्वासावरोध होने लगा, पर कहीं दूर हट कर आत्मरक्षा करना भी उसके लिए असंभव था। जब कभी मनोहर दिवा से पूछता कि तुम्हें मेरे कारण बड़ा कष्ट उठाना पड़ रहा है तब वह अचंचल भाव से उत्तर देती, 'मैं नहीं जानती।'

कला ने मनोहर का अध्ययन बहुत ही ग़लत तरीक़े से किया था, पर दिवा की तेज़ नज़रों ने उसे ठीक रूप में देखा—मनोहर, कला और दिवा के बीच में घड़ी के 'पन्डुलम' की तरह था, जो कभी इधर जाता और कभी उधर। ऐसी ही दशा थी उस नवयुवक की। कला ने दिवा को अपने सौभाग्य का एक घृणित हिस्सेदार मान लिया था और उसने मान लिया था कि दिवा इस घर में मालकिन का आसन ग्रहण करती जा रही है। उसकी उपस्थिति कला के लिए पीड़ा का कारण थी। परन्तु न तो दिवा ने और न मनोहर ने ही इस तुच्छ विषय की ओर ध्यान दिया। दिवा मनोहर को अपने हृदय की समस्त श्रद्धा से पूजती और मनोहर अपने जीवन की सम्पूर्ण करुणा से दिवा के दग्ध हृदय को शीतल करने का प्रयत्न करता। दोनों के बीच में न तो 'प्रेम' की गन्ध थी और न 'लगन' की झलक, पर कला की आत्मा ने इस सत्य को रौंद कर जिस भावना को जन्म दिया था वह नितान्त गर्हित थी। घर के नौकरों तक को कला ने इस तत्त्व से परिचित करा दिया था। एक दिन वृद्ध दरबान हरनन्दन पाँड़े जब किसी प्रयोजन से अन्तःपुर में गया तब कला ने बड़े उत्साह से कहा—"बाबा, नई मालकिन की सेवा करते हो या नहीं?"

चौंक कर हरनन्दन पाँड़े ने पूछा—"बिटिया, एक तो तू घर की रानी है। दूसरी कौन है—मैं तो नहीं जानता।"

दरबान के मुख से अपनी महिमा की बात सुनकर कला को कुछ आत्मगौरव का भान हुआ, क्योंकि उसने मन ही मन यह मान लिया था कि अब वह "कौड़ी के तीन" हो चुकी है और समस्त महिमा दिवा के उज्ज्वल ललाट पर बिन्दी के रूप में चमक रही है। कला ने फिर पूछा—"नहीं बाबा, अब मैं रानी नहीं, चेरी रह गई हूँ। तुम तो सब कुछ जानते हो, फिर जानकर अनजान क्यों बनते हो—मेरे भाग्य में आग लग गई बाबा!"

वृद्ध दरबान ने कहा—"हरे! हरे! यह क्या बोलती हो सरकार! तुम घर की रानी हो। हम सब तुम्हारे ग़ुलाम हैं—मैंने तुम्हारी ददिया सास की सेवा की है। हाय, वे दिन कहाँ चले गये रानी बेटी! अब तो जी चाहता है कि कहीं एकान्त में बैठकर राम-नाम . . . . ।"

भावोद्वेग से व्याकुल होकर हरनन्दन पाँड़े रो पड़ा। उसके झुर्रियों से भरे हुए गाल पर दो-चार आँसू टपक पड़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला ने भी पुरखिन की तरह कराह कर कहा—"बाबा, अब सहा नहीं जाता। जी चाहता है कि कुछ खाकर सो रहूँ, पर इस अभागी बच्ची का मुंह देख कर जीना पड़ रहा है।"

पास में खड़ी हक्की-बक्की बच्ची को अपनी ओर खींच कर कला भी रो पड़ी। हरनन्दन पाँडे बोला—"नहीं रानी बिटिया, तुम कोई चिन्ता मत करो। मालिक को गोद में खेलाकर मैंने इतना बड़ा किया है। वे सब समझते हैं। उनसे अन्याय नहीं हो सकता। यह तुमसे किसने कहा? छिः छिः! ऐसी बातें तुम मन से निकाल दो।"

कला मन ही मन झल्ला उठी और वृद्ध को दो-चार गालियाँ मूक भाषा में देकर बोली—"तुम भोले-भाले हो बाबा! जान कर भी अनजान बनते हो। मैं कल की बच्ची हूँ, जो मुझे मिठाई देकर फुसलाना चाहते हो।"

वृद्ध ने बात बिगड़ती देखकर अपने आपको सँभाल लिया और चापलूसी के साथ कहा—"मैं जान दे दूंगा सरकार, मुझे किसी का डर-भय नहीं है। आप निश्चिन्त रहें। जब तक हरनन्दन इस घर में मौजूद है, एक भी अनर्थ नहीं हो सकता।"

यह कहते कहते अपनी गत जवानी को याद कर हरनन्दन हाथ की छड़ी के सहारे तनिक-सा तन कर खड़ा हो गया और कोटरगत आँखों से कला के उदास और पीले मुख की ओर देखने लगा।

उत्साहित होकर सकरुण स्वर में कला ने दिवा की गाथा को एक साँस में दोहरा दिया, जिसे वृद्ध ने बड़े ध्यान से सुना और दीर्घ निश्वास त्याग कर कहा—"सरकार, अब इस घर में नहीं रहूँगा। हाय, ऐसा जुल्म, ऐसी बेइज्जती! मैं मनोहर बाबू से साफ़ साफ़ कह दूंगा, चाहे जान रहे या जाय।"

कला की नज़रों में हरनन्दन पाँडे का मूल्य बढ़ गया। रखवानों और दूसरे नौकरों में जो कानाफूसी चल रही थी उसमें बाढ़-सी आ गई। यहाँ तक कि मनोहर के निकट सम्बन्धियों तक ने दिवा के विषय में अवांछनीय बातें सोचनी आरम्भ कीं। यह कला की ही नादानी थी।

(६)

धीरे-धीरे मनोहर ने यह अनुभव किया मानों वह चारों ओर से घिर-सा गया है। उसकी चिरशान्त प्रकृति में चिड़चिड़ापन आ गया। बात-बात में झल्ला उठना और झल्लाहट की स्थिति में हाथ में आये हुए काम को नष्ट कर देना उस अभागे नवयुवक के लिए मामूली-सी बात हो गई। उसे लगा कि रात-दिन सभी उसी की चर्चा करते हैं, उसी की निन्दा करते हैं और उसकी सचाई और ईमानदारी के विरुद्ध सोचते हैं। मनोहर अपनी सचाई, सच्चरित्रता और ईमानदारी को प्रमाणित करने के लिए विकल हो उठा। वह अस्वाभाविक रूप से अपने इन गुणों को प्रमाणित करने की भूल भी कभी कभी कर बैठता। कला के लिए दिवा की ही एक चर्चा रह गई थी। प्रत्येक व्यक्ति से वह एक ही बात कहती और वह यह कि "यदि बच्ची का मोह न होता तो वह निश्चय ही विष खाकर सो रहती।" दिवा की तरह तरह की घृणित निन्दा अपने मन से गढ़कर करना कला को प्रिय था। इस तरह कला ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि स्वयं दिवा के हृदय में अपने प्रति घृणा के भाव उत्पन्न हो गये। मनोहर भी अपने आपसे घिना उठा।

दिवा ने मनोहर से पूछा—"आख़िर, मैं अब क्या करूँ?" मनोहर ने चौंक कर कहा—"क्या कहा तुमने?" दिवा बोली—"मैं अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, यही पूछती हूँ। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि सभी लोग मुझे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। प्रकाश में मुंह दिखलाना मेरे लिए असम्भव हो गया है। संसार में जितने आश्रय-स्थल थे सभी के द्वार मेरे लिए बन्द कर दिये गये हैं। या तो मैं ईश्वर के घर जाऊँ या आपके यहाँ .....।"

मनोहर सिहर उठा— ऐं! यह कैसी बात। क्या दिवा—उफ़ कितनी बुरी बात है। ऐसा सोचना भी .....। दिवा ने मनोहर से फिर कहना आरम्भ किया—"मैं कहाँ जाऊँ? मुझे तो ऐसा लगता है कि संसार से ही नाता तोड़ लूं...।" इतना कहते कहते दिवा व्यग्र होकर रो पड़ी।

मनोहर विकल हो उठा। सारी परिस्थिति का उसे ज्ञान तो था, पर उसने जान-बूझ कर अपने को भ्रम में रक्खा था, जान कर भी अपने को भुलावे में रखने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोहर के हृदय को कुछ सुख मिलता था, पर सत्य अपना रूप छिपा नहीं सका--एक दिन वह वज्रनिनाद के साथ प्रकट ही हो गया। मनोहर के सामने एक बेबूझ पहेली उपस्थित हो गई। उसने धीरे से पूछा--"क्या विचार है दिवा? मैं तो सोचता हूँ कि इतनी चिन्ता का कोई कारण नहीं है।"

"वाह, मनोहर बाबू, मैं बच्ची नहीं हूँ"--दिवा ने खिन्न स्वर में कहा--"क्या मैं यह नहीं जानती कि मैं कितनी बदनाम की गई हूँ। आपके यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति मुझे ओछी नज़रों से देखता है। मेरे सम्बन्ध में जो कानाफूसी होती रहती है वह मैं सुन चुकी हूँ। अब संसार में मेरे लिए कहीं भी ठौर नहीं रहने दिया गया है। मैं दिल से कहती हूँ, मनोहर बाबू, एक दिन आपके घर से ही मेरी लाश निकलेगी।"

क्रोध और मानसिक उत्तेजना से दिवा का चेहरा लाल हो उठा। वह सिर झुका कर खड़ी हो गई। मनोहर घबरा गया। उसने कहा--"दिवा, घबराने से काम नहीं चलेगा। सत्य तो अन्त में विजयी होगा ही। मैं तो निश्चिन्त हूँ। कहने दो दुनिया को अपने मन की बातें। परमात्मा सब कुछ जानता है, देखता है, सुनता है।" दिवा को उपदेश देते हुए मनोहर ने अनुभव किया कि वह बहुत ज़ोर लगा बोल रहा है और ख़ुद भी सत्य से दूर हटता जा रहा है।

दिवा बोली--"हाँ, मनोहर बाबू, मैं जानती हूँ कि सत्य विजयी होगा, पर संसार में केवल सत्य को लेकर ही चलना भूल है। मिथ्या की भी अपनी स्थिति है, जो सत्य है। यदि यही सत्य विजयी हुआ तो क्या होगा? आप पुरुष हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, निर्भय रह सकते हैं, संसार के मूक धिक्कारों की आँधी की उपेक्षा करके आगे बढ़ सकते हैं, पर मैं हूँ स्त्री! मेरी स्थिति बहुत ही तुनुक है, काग़ज़ की नाव-जैसी हूँ, प्रवाह के थपेड़ों को सहना मेरे लिए असम्भव है। मुझे यही चिन्ता है कि मैं अब क्या करूँ। माना कि आपने मुझे सत्य को सौंप दिया है, परमात्मा के भरोसे रहने दिया है, पर इस सत्य से, इस परमात्मा से मैं अपने को रक्षित नहीं पाती। मेरे ख़िलाफ़ जो एक घृणित वातावरण प्रस्तुत किया गया है उसने मुझे समाप्त कर दिया। सोचते-सोचते मेरा दिमाग़ पक गया है, हृदय झुलस गया है। अब नहीं सहा जाता।"

दिवा आँचल से मुँह छिपाकर रो पड़ी और मनोहर गम्भीर चिन्ता की आँधी में सूखे हुए पत्तों की तरह उड़ने लगा। दिवा चुपचाप कमरे से बाहर हो गई। मनोहर हारा हुआ-सा फ़र्श पर बैठ गया। वह मन-ही-मन अपने आप पर अत्यन्त झल्ला उठा। कला की करनी ने मनोहर के जीवन को कंटकाकीर्ण बना डाला था, वह अनन्योपाय था। किस तरह कला को वह समझाता, कैसे उसे विश्वास दिलाता कि वह जिस आग को लगा रही है वह सर्वस्वान्त करके ही शान्त होगी। कला हठी--मूढ़ हठी प्रकृति की स्त्री थी। जिस विषाद-पूर्ण स्थिति को उसने प्रयत्न करके उत्पन्न करने की भूल की थी उसका अन्त कैसे होगा, यह समझना मनोहर के लिए कठिन था। यह बात सही थी कि वह दिवा का त्याग करना नहीं चाहता था--उसका हृदय इस भयानक कर्म का समर्थन करना नहीं चाहता था। साथ ही स्वयं मनोहर ज़िद्दी प्रकृति का भी था। उसे इस बात की ज़िद्द थी कि दबाव के सामने झुक जाना आत्म-हत्या से भी गर्हित बात है। यदि वह चारों ओर से दबाया जाता तो निश्चय ही दिवा के लिए कोई दूसरी व्यवस्था करता, पर जैसे जैसे दिवा के ख़िलाफ़ जाल बुना जाने लगा, मनोहर का हठी हृदय सभी कुछ सुनने सहने के लिए कठोरता ग्रहण करता गया। कानाफूसी की देवी के सामने बलि प्रदान हो जाना उसे कभी स्वीकार न था। उसने कला को कई बार समझाया पर परिणाम उलटा हुआ। उसने अपना रवैया नहीं बदला। मनोहर का मन कला के ख़िलाफ़ धीरे-धीरे खट्टा होने लगा, यद्यपि वह उसकी पाणिगृहीता जीवन-सहचरी थी।

(७)

ऊबा हुआ-सा मनोहर बेमन से कला के निकट जाता और फिर तत्काल चला आता। कला जब मनोहर के निकट आती तब ऐसी बातें कहती जिसे मनोहर के हृदय को आघात पहुँचता। यही कारण था कि वह जीवन-सहचरी के निकट जाता हुआ अपने को प्रकृतिस्थ नहीं पाता, बल्कि इसके विपरीत उदासी और अन्यमनस्कता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अनुभव करता। इतना होते हुए भी वह किसी आशा से बार बार कला के निकट जाता और जिस तरह पटके जाने पर गेंद फिर उछलकर लौट आती है उसी तरह लौट आता। हर बार मनोहर अपने हृदय को अधिकाधिक कातर बनाकर ही कला के निकट से लौटता।

दिवा भी निरन्तर उदास और मर्माहत-सी रहती। इस प्रकार मनोहर को किसी ओर भी शान्ति और हँसी नहीं मिलती। वह अभागा विचित्र परिस्थिति में जीवन के दिन समाप्त करता-करता जैसे थक गया, पर इस झुंझलाहट-पूर्ण वातावरण से अपनी रक्षा करना उसके लिए असम्भव हो गया। वह अपने लिए एक योजना बनाता और उसे नष्ट करता। कभी गृह-त्याग की बात सोचता तो कभी इससे भी खराब कोई दूसरी बात। महीनों इसी स्थिति में रहते रहते मनोहर का स्वभाव भी कुछ हल्का-सा हो गया। शंकालु प्रवृत्ति बढ़ जाने के कारण न तो दूसरों से सुखी रहता और न दूसरे उससे। परिणाम यह हुआ कि मनोहर ने अपने आपको अकेला और किसी अज्ञात षड्यन्त्र से घिरा हुआ पाया। इस तरह का जीवन भी जीवन होता है। यद्यपि दिवा के प्रति मनोहर का कोई रागात्मक आकर्षण न था, तथापि उसके प्रतिकूल होनेवाली कानाफूसी ने उसे दिवा के निकट पहुँचा दिया। दिवा से दूर हटने का तो अब कोई प्रश्न ही नहीं रह गया था। हाँ, यह बात ज़रूर रह गई थी कि दिवा का चिर-सानिध्य मनोहर के लिए कैसे सम्भव हो, इसी पर वह ग़ौर करता।

दिवा ने मनोहर से कहा—"आख़िर मेरे भाग्य का क्या फ़ैसला हुआ!"

मनोहर ने धीरे से उत्तर दिया—"मेरे भाग्य के साथ ही तुम्हारे भाग्य का फ़ैसला हो जायगा।"

दिवा बोली—"मनोहर बाबू, आप बहुत बड़ी बात कह रहे हैं?"

"सोच-समझ कर ही कह रहा हूँ दिवा"—मनोहर ने ज़रा-सा सहम कर उत्तर दिया, मानो वह एक बड़े ही भयानक कर्म का श्रीगणेश करने जा रहा हो।

दिवा मन ही मन मुस्करा उठी, पर अपने भावों को बलपूर्वक दबाकर बोली—"यह कैसे सम्भव हो सकता है, भला बतलाइए तो।"

"यह बतलाने की बात नहीं है"—मनोहर बहुत ही गम्भीरता से बोला—"दिवा, मैं हृदय से कहता हूँ—क्या कहूँ—?" मनोहर एकाएक चुप हो गया। दिवा अपने धड़कते हुए हृदय को थाम कर सुनने के लिए प्रस्तुत हो गई। यह उसके भाग्य का निवटारा था।

मनोहर ने फिर कहा—"सुनो दिवा, मैं नहीं चाहता था कि तुम्हारे भविष्य को अपनी जेब में रखकर आराम से गृहकर्म में मन लगाऊँ, पर अपने मन का काम होता ही कहाँ है? तुम जानती हो—मैं भी जानता हूँ—हमारे साथ अन्याय किया गया है! ख़ैर, देखा जायगा। बात तो बहुत बुरी है पर इस बुरी बात से बचकर निकल जाना तो और भी बुरी बात होगी। मेरे सामने दो बुरी बातें हैं, जिनमें से एक को चुन लेने के लिए मैं बाध्य किया गया हूँ। मैं तो चाहता था कि एक भी बुरी बात का सामना न करना पड़ता, पर देखता हूँ कि मेरा ख़ात्मा उसी व्यक्ति के हाथों से हो रहा है जो इस संसार में मेरा सबसे प्यारा कहा जा सकता है। यही है विधि-विडम्बना।

दिवा सिर झुका कर चुपचाप खड़ी रही, मनोहर एक ठंडी साँस खींच कर कुर्सी पर बैठ गया।

कला के रूखे व्यवहारों ने मनोहर के हृदय को उसकी ओर से हटाना आरम्भ कर दिया था। मानव-हृदय को कहीं न कहीं विश्राम-स्थल तो चाहिए ही। दिवा के कोमल व्यवहारों ने, शान्त-गम्भीर स्वभाव ने और सबसे अधिक उसकी सहनशीलता ने मनोहर को अपनी ओर आकर्षित करना आरम्भ किया था। इस आकर्षण का अनुभव उसी तरह मनोहर ने नहीं किया, जिस तरह हम पृथिवी के आकर्षण का अनुभव नहीं करते या हवा के दबाव का अनुभव नहीं करते। सूर्य से अलग होकर घूमती हुई पृथिवी अब लाखों मीलों की दूरी पर आगई है और मनोहर के हृदय से विलग होकर कला कितनी दूर चली गई, इसका कोई हिसाब अपने पास नहीं है। मनोहर और कला के बीच में जहाँ पहले स्नेह और श्रद्धा की बयार डोला करती थी, वहाँ अब झुंझलाहट की उमस भर गई थी। न केवल मनोहर ही कला से ऊब उठा था, बल्कि कला भी मनोहर से ऊब उठी थी। कला यदि कभी हँसी की बात भी कहती तो मनोहर झल्ला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठता, उसे तुरन्त सन्देह हो जाता कि दिवा को लक्ष्य करके आवाज़ाकशी की जा रही है। मनोहर के लिए यह बात कड़वी घूंट थी। यही हाल कला का भी था। ग़लतफ़हमी मुंह फैला रही थी।

हँसी हँसी में एक दिन कला बोली—"संसार भर का भार उठाकर तुम शेषनाग-से हो गये हो।"

मनोहर ने इस सीधी-सी बात को व्यंग्य समझा। दिवा का भार मनोहर के कन्धों पर था। तत्काल उसने कला की इस साफ़ बात को बुरे भावों से ग्रहण किया और रूखी हँसी हँस कर वह चलता बना। कला कुछ घबराई-सी ताकती रह गई। जब कभी कला भी मनोहर की सीधी-सी बात को लेकर बड़ा उधेड़-बुन करती। दोनों दोनों की इस मनोवृत्ति से परिचित हो गये थे और यह बात बहुत ही बुरी हुई कि दोनों से दोनों ने बोलना बहुत ही कम कर दिया, दोनों एक दूसरे से बोलते हुए झिझकने लगे। बोलते भी तो ऊबे ऊबे-से। दिवा की मनोवृत्ति में भी घोर परिवर्तन उपस्थित होने लगा। उसने भी मन ही मन मुस्कराकर मनोहर और कला के इन व्यवहारों और मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों से मनोरंजन करना आरम्भ किया। कभी वह अपने ऊपर झल्लाती और एक परिवार के अमृत की प्याली में विष की बूंद बन कर टपक पड़ने का जवाबदेह अपने आपको समझती, पर अब ऐसी भावना का उसके हृदय में कोई स्थान न था। दिवा पत्थर की ठोस चट्टान काट कर अपने लिए स्थान बनाने लगी—उसने धैर्यपूर्वक, पर लगन से, अपने इस काम को शुरू किया, जिसका पता न तो कला को चला और न मनोहर को। दुर्भाग्य जब आता है तब उसके पैरों से आवाज़ थोड़े ही निकलती है—वह छाया की तरह चुपचाप न जाने भविष्य के किस मनहूस कोने से प्रकट हो जाता है। मनोहर ने कल्पना के प्रकाश से दूर-दूर की सभी छोटी-बड़ी वस्तुओं को तो देख लिया, समझ लिया, पर ठेठ उसके पैरों के पास जो एक आहत हृदय पड़ा दम तोड़ रहा था उसे उसने नहीं देखा।

(८)

मनोहर ने अपनी जीवन-नैया को जब लक्ष्य के विरुद्ध देखा तब उसका हृदय उमड़ आया, पर प्रवाह के खिलाफ़ विद्रोह का झंडा उड़ाना उसकी क्षमता के परे की बात थी। कला ने अपनी झल्लाहट की प्रकृति के कारण मनोहर के मन को इतना अस्थिर कर दिया था कि उसका सहनशील हृदय रह रह कर कराह उठता था। अनन्योपाय होकर उसने चुप रहने की आदत को मज़बूत करने की ओर ध्यान दिया, पर उसे पद पद पर असफल होना पड़ा। एक दिन कला ने पूछा—"आजकल तुम उदास क्यों रहते हो?" मनोहर चुप! कला ने अपने प्रश्न को फिर दोहराया। मनोहर बोला—"बड़ी अच्छी हवा आ रही है। जी चाहता है कि ...।" कला बोली—"सो जाना चाहते हो? मैं जानती हूँ कि मैं तुम्हें फूटी आँखों भी नहीं सुहाती। हाय, मुझे यह दिन ....।" मनोहर चुपचाप खाट से उठा और धीरे धीरे बैठकखाने में आकर बैठ गया। उसका मन आहत हो चुका था। बात टालने की नीयत से मनोहर ने हवा की चर्चा छेड़ दी थी, पर कला ने इस टाल-टूल का जो अर्थ लगाया वह मनोहर के लिए एक भयानक प्रहार था। जब कभी वह कला को समझाता, पर हठी कला अपनी ही बात पर अड़ी रहती—उलटे बात का रुख गरम हो जाता और मनोहर को अपना मनस्ताप मिटाने के लिए उत्तेजित हृदय को समझाने-बुझाने के लिए तत्काल अन्तःपुर का त्याग कर देना पड़ता। मनोहर अन्धकार-पथ का पथिक बन चुका है।

दिवा ने मनोहर से कहा—"मैं क्या करूँ? आपके दर्शन नहीं होते तो ऐसा लगता है कि कुछ खो गया है।"

मनोहर धीरे से बोला—"दिवा, सोच रहा हूँ कल परिस्थिति ठीक हो जायगी, पर वह 'कल' जिस दिन मैं मरूँगा, उसके एक दिन बादवाला 'कल' होगा। हाय! मैं क्या करूँ? पता नहीं चलता। मेरी सारी आकांक्षायें, सारा सुख, सारा विनोद...!" मनोहर की आँखें भर आईं। दिवा के लिए यह दृश्य हृदय-विदारक था। धीरे-धीरे वह समझने लग गई कि वही सुखी कुटुम्ब के बीज में आपदा के रूप में आई है। पहले तो वह ऐसी बात सोचते ही आत्मग्लानि से अधमरी हो जाती, पर परिस्थिति ने उसके हृदय को भी दिया—कोमल भावों का क्रम क्रम से लोप होने लगा और उसने एक निष्ठुर—खिलाड़ी का-सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने इस अवांछनीय रहस्य में प्राप्त करना आरम्भ किया।

समय तो व्यतीत होता गया, पर अत्यन्त निरानन्द-पूर्ण। गर्मी, वर्षा, जाड़ा, एक एक करके सभी समाप्त होने लगे, पर मनोहर, कला और दिवा ने इन भिन्न भिन्न रूप और गुणवाली ऋतुओं में कोई पार्थक्य नहीं देखा। अनादृत अतिथि की तरह एक के बाद दूसरा भी मौसम आया और चुपचाप खिसक गया। कुछ दिनों पर मनोहर कलकत्ते से लौटा और अपने साथ तेज़ बुख़ार अपने प्राणों की सौगात के रूप में लेकर। मित्रों ने डाक्टरी सहायता लेने के लिए आग्रह किया, पर मनोहर की वृत्ति अन्यमनस्कतापूर्ण हो गई थी। वह हर घड़ी अपने प्रति उदासीन-सा रहता था। इस वृत्ति ने उसका बुख़ार की अवस्था में भी साथ नहीं छोड़ा। उसने न संयम किया और न दवा ही खाई। ज्वर ने उग्र रूप धारण किया। वह पछाड़ खाकर खाट पर गिरा। दिवा का हृदय अपने घर में उमड़ उमड़ कर रह जाता। वह चुपचाप खिड़की के पीछे खड़ी आने-जानेवालों के चिन्ताग्रस्त, उतरे चेहरे देखा करती और सुना करती बेमन के उदास उनके पद-शब्द। उसके पास कोई उपाय नहीं था कि वह अपने प्रिय मनोहर को निकट से देखे। देखना तो दूर की बात रही, उस घर का कोई उसके निकट तक नहीं जाता जिससे कुछ संवाद भी मिलता। वह जब घबरा उठती तब तकिया में मुंह छिपा कर—फफक फफक कर—रोती और फिर आकर खिड़की के सामने खड़ी होकर शून्य दृष्टि से मनोहर के अन्तःपुर का द्वार देखा करती। एक-एक दिन करके एक मास समाप्त हो गया। स्पष्ट शब्दों में नौकरों ने दिवा का नाम लेना आरम्भ कर दिया। चन्दन पाँड़े विशेष उत्साह से इस रुचिकर वार्तालाप में भाग लेता और कहता कि "ऐसी कुलच्छनी का सिर कटकर घर से निकाल दे। जब से आई है, लक्ष्मी चली गई। अब तो हमें अन्धकार ही अन्धकार दिखता है। डेढ़ मास से मालिक खाट पर पड़े हैं।" और बड़े ज़ोर से अपने कानों में अँगुली डालकर वहीं पर लेट जाती। एक दिन मनोहर के साले ने नौकरों के बीच में खड़े होकर गम्भीर स्वर में घोषणा की—"मैं सब जानता हूँ। अगर जीजा जी का बाल भी बाँका हुआ तो हरामज़ादी का ...इत्यादि इत्यादि!"

दिवा के लिए अब धैर्य असम्भव हो गया, पर वह जाय तो कहाँ। उसके भाग्य ने सर्वत्र खाई खोद कर उसके लिए जो थोड़ा-सा स्थान छोड़ दिया था वह था मनोहर का अनुग्रह! आज उसका मनोहर भी चुपके से विदा ग्रहण करने की तैयारी कर रहा है। अब तो दिवा के लिए एक ही द्वार खुला था। वह था अशरण-शरण के दरबार का। पर वहाँ का रास्ता कठिन है, दुर्गम है, कठोर है। दिवा को जान पड़ा कि संसार में जितनी आँखें हैं, सभी उसकी ओर तिरछी होकर देख रही हैं, जिनसे क्षोभ और घृणा टपकती है तथा संसार में जितनी तर्जनियाँ हैं वे सभी उसकी ओर उठी हुई हैं। वह कभी अपनी ओर देखती और कभी मनोहर की ओर। यह समझना उसके लिए कठिन हो गया कि वह अपनी बात अधिक गहराई के साथ सोचे या मनोहर की। इधर अपमानजनक काना-फूसी से वह और भी व्यग्र हो उठी।

अभागी दिवा—दिवा जिसके मानी प्रकाश हैं स्वयं अन्धकार में निमग्न हो गई।

(६)

एक दिन—आधी रात को—दिवा ने सुना एक साथ ही कई स्त्रियाँ मनोहर के अन्तःपुर में रो रही हैं। बहुत-से लोग लालटेन लिये जल्दी जल्दी आ जा रहे हैं तथा चमड़े के बड़े बड़े बेग लिये हुए ताबड़तोड़ कई डाक्टर भी आये और गये—एक-दो तो वहीं रह भी गये। दिवा के हाथ के तोते उड़ गये। वह चुपचाप मनोहर के अन्तःपुर में पहुँची। देखा, चारों ओर उदासी है। आँसूभरी आँखों से नौकर एक-दूसरे को देख रहे हैं। मनोहर के साले नारायण बाबू कुछ विशेष उत्साहित से नज़र आते हैं और स्वामीभाव से सबको समझा रहे हैं—"खबरदार, शान्ति रक्खो। भैया की तबीअत अभी ठीक होती है। हाँ, रमदेवा साला, पानी नहीं लाया! अजी शिवप्रसाद बाबू, ज़रा बड़े साहब से पूछिए तो और बर्फ़ चाहिए। यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नौकर साले कितने शोख हैं। हाँ, हाँ, इतने ज़ोर से पैर पटक कर--धीरे-धीरे चलो।" दिवा चुपचाप सीधे मनोहर के निकट चली गई तो एकदम दोनों हाथ पसारकर नारायण बाबू चिल्ला उठे--"इधर-इधर, कौन है। हाँ, हाँ, अरे बहरी है क्या? सुनती भी नहीं।" दिवा ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह पत्थर की तरह अटल-सी मनोहर के पैताने के पास जाकर खड़ी हो गई। हक्के-बक्के-से नारायण बाबू बैठे रह गये। मनोहर चुपचाप पड़ा था। आँखें अधमुंदी थीं, ज़ोर-ज़ोर से साँस चल रही थी, मुंह खुला हुआ था। दो डाक्टर सिर झुकाकर एकटक मनोहर के पीले चेहरे की ओर देख रहे थे। दिवा ने बड़े ग़ौर से मनोहर के मुंह की ओर देखा पर मुस्कराकर--वह मुस्कराहट ऐसी थी जिसे देखकर कोई भी सहृदय रो सकता है। इतने में कला कमरे के द्वार पर आई और बोली--"तुम्हें यहाँ किसने बुलाया? मेरा सोहाग लुट रहा है, यही देखने आई हो।" इतना कहकर वह चिल्ला कर बोली--"डायन, जब से तू हमारे घर में आई...तेरा बुरा हो!"

दिवा चौंक कर बोली--"बहन, मैं सचमुच डायन हूँ। जिस घर में जाती हूँ वहीं का मंगल-प्रदीप बुझाती हूँ--अब क्षमा करो दीदी! मैं ख़ुद जा रही हूँ--कहा-सुना माफ़ करो।"

मनोहर ने एक बार कराह कर आँखें खोलीं और कुछ बोलने की चेष्टा भी की, पर होठ हिलकर रह गये। दिवा ने झुककर मनोहर के दोनों हिम-शीतल पैरों को छू लिया और धीरे-धीरे प्रस्थान किया। अपने कमरे में आकर वह रोशनी के सामने बैठकर कुछ लिखने लगी--इसी बीच में फिर मनोहर के अन्तःपुर से रोने की दहला देनेवाली आवाज़ आई। रोदन-ध्वनि के बीच में नारायण बाबू की कर्कश आवाज़ गूंज रही थी। वे कह रहे थे--"हाँ, हाँ, घबराने की बात नहीं है।" एक बार क़लम रख कर दिवा ने कुछ सोचा और जल्दी जल्दी लिखने लगी।

× × ×

एक मास के बाद!

वर्षा की नदी पगली की तरह चीत्कार करती हुई बह रही थी। तरंगें कगारों पर सिर पटकती हुई अपना अस्तित्व मिटाती हुई संसार की अनित्यता की घोषणा-सी कर रही थीं। आकाश में कलियाँ इठला रही थीं। वातावरण धुंधला-सा था। शीर्षकाल मनोहर स्मशानभूमि में खड़ा था--कई बुझी और अधजली चितायें इधर-उधर बिखरी हुई थीं। हरनन्दन पाँड़े ने अच्छी तरह तजवीज़ कर कहा--"सरकार, यहीं पर उनकी चिता बनी थी। मालिक, दवा, डाक्टर सब हुआ, पर ज़हर असर कर गया था।"

मनोहर धीरे से बोला--"हरनन्दन बाबा, बस इसी जगह मेरी चिता भी बनवाना। जगह को अच्छी तरह पहचान लो।"

हरनन्दन पाँड़े ने दाँतों से जीभ काट कर कहा--"हरे! हरे! सरकार ऐसी बात.....क्यों....कहते हैं।"

ठंडी हवा के एक हलके झोंके के साथ जल के चार छोटे कण शून्य से आये--मानो दिवा की अतृप्त आत्मा शून्य में रो उठी। कौन कह सकता है कि वह सुख से रोई या दुःख से!

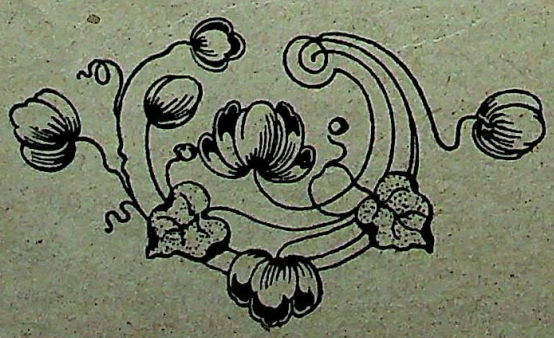

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुवाली से रानीखेत

लेखक,
पंडित चण्डिकाप्रसाद
मिश्र

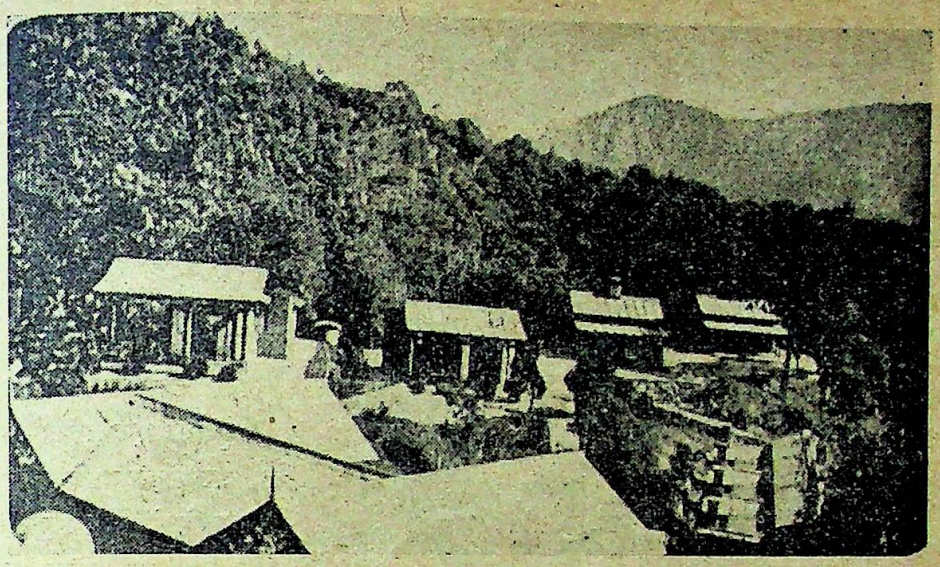

[भुवाली सैनेटोरियम का एक दृश्य]

भुवाली का नाम लेते ही तपेदिक़ के मरीज़ों की कालोनी का ख़याल दौड़ जाता है, और बात भी ऐसी ही है। दूसरे पहाड़ों पर लोग हवाख़ोरी के लिए पहुँचते हैं, मगर भुवाली जानेवाले सौ फ़ी सदी मरीज़ या उनके परिचारक ही होते हैं। भला-चंगा मनुष्य कभी भुवाली जाने की इच्छा भी नहीं करता। दूसरे पहाड़ों पर छूत की बीमारियों के मरीज़ों के रहने में अनेक प्रतिबन्ध हैं जब कि तीस-पैंतीस वर्षों से भुवाली राजयक्ष्मा (तपेदिक़) के मरीज़ों के लिए एक छोटा-सा पहाड़ी उप-निवेश मान लिया गया है। दूसरे, यहाँ 'एडवर्ड सेविन्थ टुबरकुलिसेस सैनेटोरियम' की स्थापना के बाद से, क्षय-रोगियों के लिए, यह स्थान प्राण-रक्षा का एक बड़ा आकर्षक केन्द्र बन गया है। और, यह बात निर्विवाद रूप से माननी ही पड़ेगी कि उत्तरी भारत में यह सैनेटोरियम एक बहुत ही उपयोगी संस्था है। इसमें १४६ मरीज़ रह सकते हैं। एक सीनियर डाक्टर तथा दो सहायक डाक्टर इन मरीज़ों की देख-भाल करते हैं। एक्स-रे, ए० पी० तथा अन्यान्य नवीन उपचारों की यहाँ पूरी सुविधा है। ग़रज़, सैनेटोरियम में पहुँचने पर, मरीज़ को बहुत बड़ा ढाढ़स मिलता है और यथासाध्य इलाज के सब साधन भी प्राप्त होते हैं। जल-वायु और उचित प्रणाली से रहने-सहने के कारण भी मरीज़ की हालत सुधर जाती है और जिस घबराहट को लेकर मरीज़ ऊपर जाता है, वह दूर हो जाती है।

सैनेटोरियम के अलावा भुवाली स्वयं एक स्वास्थ्य-प्रद स्थान है, और जो मरीज़ सैनेटोरियम में किसी वजह से रहना नहीं चाहते या अधिक भीड़-भाड़ के कारण स्थान नहीं पा सकते वे स्वतन्त्र रूप से, भुवाली के आस-पास, भूमियाधार, टीकापुर, रेहड़ तथा हरसौली आदि स्थानों में बने हुए बँगलों और काटेजों में रहते हैं, जहाँ फ़ीस देने पर हर प्रकार की डाक्टरी मदद सैनेटोरियम के डाक्टरों तथा भुवाली के प्राइवेट डाक्टरों से प्राप्त होती रहती है। डाक्टर कक्कड़ ने जो सैनेटोरियम के रिटायर्ड सुपरिंटेंडेंट हैं, गेठिया की पहाड़ी पर अपना निजी सैनेटोरियम क़ायम कर रक्खा है, जिसके द्वारा तपेदिक़ के मरीज़ों का अच्छा इलाज होता है। इस प्रकार यह तो एक प्रकट सत्य ही है कि भुवाली पहुँचकर तपेदिक़ के मरीज़ को प्राणरक्षा का हर एक नये से नया साधन प्राप्त हो जाता है, और उसकी हालत में सुधार होने लगता है। वैसे मृत्यु का इलाज तो कहीं न हुआ है और न हो ही सकता है।

फिर भी यह सब लिखने का मुख्य उद्देश्य यही है कि जो साधारण हैसियत के व्यक्ति सीज़न भर (९ महीने) के लिए १०० रुपया का मकान तथा तीस-पैंतीस रुपये मासिक भोजन इत्यादि का प्रबन्ध कर सकते हैं वे अपने मरीज़ को भली भाँति भुवाली में रख सकते हैं। हाँ, सेकण्ड स्टेज या थर्ड स्टेज के मरीज़ों का खर्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

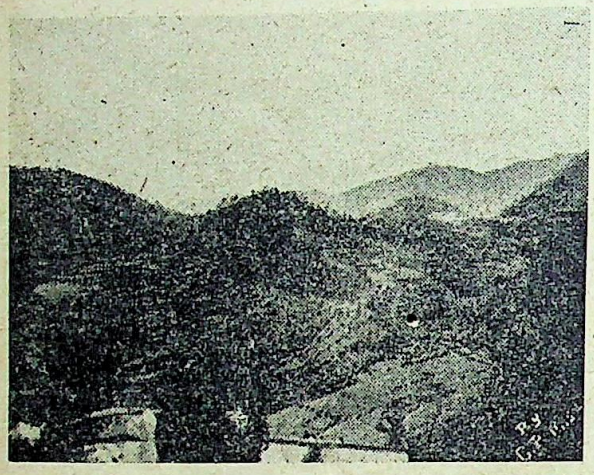

[हरसौली भुवाली का एक भाग]

गोल्ड के इंजेक्शनों तथा ए० पी० के ट्रीटमेंट के कारण कुछ अधिक पड़ सकता है। लेकिन यह निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि भुवाली पहुँचते ही मरीज़ को बहुत बड़ा ढाढ़स मिलता है और ९० फ़ी सदी मरीज़ों की हालत सुधरने लग जाती है। हमने भुवाली में ऐसे चलते-फिरते मरीज़ों को देखा है जिन्होंने दो वर्षों के भीतर तीस पौंड तक वज़न बढ़ाया है और जिनके दोनों फेफड़ों में थोड़े-बहुत ज़ख़म थे। जिनको कभी कभी कफ़ के साथ ख़ून भी आता था, जिनका भुवाली पहुँचने के पहले १०२ या १०३ टेम्परेचर रहा करता था, अब उनकी हालत ऊपर से बिलकुल चंगी नज़र आती है, मील दो मील चल लेते हैं, पूरी खूराक़ खाते हैं,

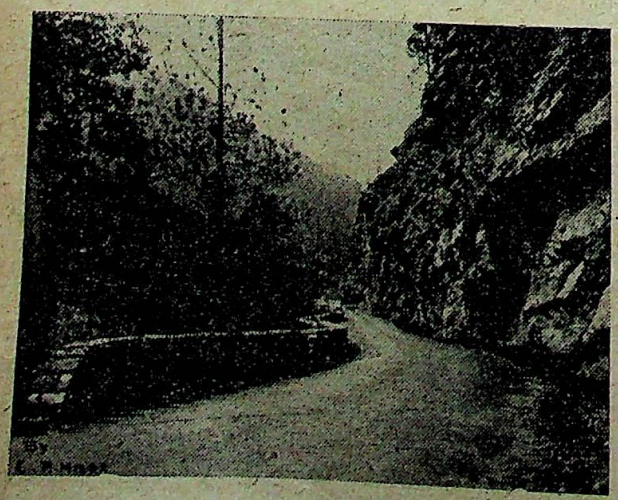

[भुवाली से रानीखेत का मार्ग]

ए० पी० का ट्रीटमेंट चल रहा है या गोल्ड के इंजेक्शन ले लेते हैं और साल में ८ महीने भुवाली रहा करते हैं। तीन वर्ष के इस इलाज के बाद, डाक्टरों का कहना है, ये लोग बिलकुल सुरक्षित हो जायँगे, बशर्ते आप थोड़ी सतर्कता से जीवन-चर्या चलाते रहें, पुष्टिकर भोजन खाते रहें, वाजिब शारीरिक श्रम करें और विश्राम नियमित रूप से करते रहें।

भुवाली एक छोटा-सा पहाड़ी क़स्बा है, और रानीखेत, अलमोड़ा आदि जानेवालों के मार्ग में पड़ता है। पैदल यात्रियों के लिए यहाँ से नैनीताल सिर्फ़ ७ मील पड़ता है। भीमताल ३॥ मील और सातताल ५ मील की दूरी पर है। रामगढ़ जहाँ फलों के सुन्दर बग़ीचे हैं, यहाँ से ८ मील की दूरी पर है। अँगरेज़ लोग

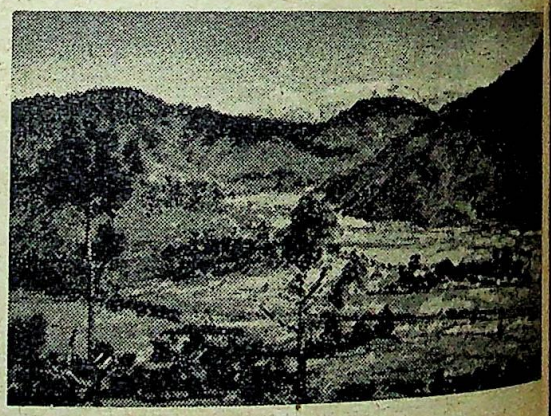

[रानीखेत से हिमदर्शन]

इन्हीं छोटे-छोटे हरे-भरे स्थानों में रहते हैं, क्योंकि भुवाली में टी० बी० के मरीज़ों की बहुतायत के कारण जब देशी आदमी ही नहीं रहते तब अँगरेज़ तो और दूर बसने की कोशिश करता है। मगर भुवाली का बाज़ार सबके लिए एक आवश्यक साधन बना हुआ है। दवा-दर्पन, साग-सब्ज़ी, बिसातखाने की चीज़ें, कपड़ा इत्यादि आस-पास के सभी क़स्बों में बसनेवाले यहीं से ख़रीदकर ले जाते हैं। भुवाली में रेलवे माल-गुदाम, पोस्ट-आफ़िस तथा मोटर-बस-सर्विस-स्टेशन है। डाक्टर प्रेमलाल शाह का जिन्होंने स्वर्गीय कमला नेहरू का इलाज़ किया था, एक बहुत बड़ा मेडिकल स्टोर है। एक छोटा-सा होटल भी है। इस बस्ती की देख-भाल के लिए नोटीफ़ाइड एरिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमिटी क़ायम है, जिसके चेयरमैन कांग्रेस-प्रेमी श्रीयुत हीरालाल शाह हैं, जो स्वयं ही दौड़-धूप करके क़स्बे की सफ़ाई और अभ्यागतों की सहायता किया करते हैं। भूमियाधार में भी मरीज़ों के लिए मकान हैं, और वह एक अच्छी खुलासा जगह है। भुवाली का दूसरा मुहल्ला रेहड़ है, जिसमें काफ़ी मरीज़ रहते हैं। यह तीन तरफ़ से चीड़ के वृक्षों से घिरा हुआ है। लेकिन दो फ़र्लांग की दूरी पर हरसौली ग्राम और कैलाशव्यू, ये स्थान बहुत खुलासा हैं। इन स्थानों का पानी दूसरे स्थानों की अपेक्षा अधिक अच्छा माना जाता है।

भुवाली से क़रीब २९ मील पर रानीखेत है। गोरी पलटन की यह छावनी है। गर्मियों में ढाई-तीन

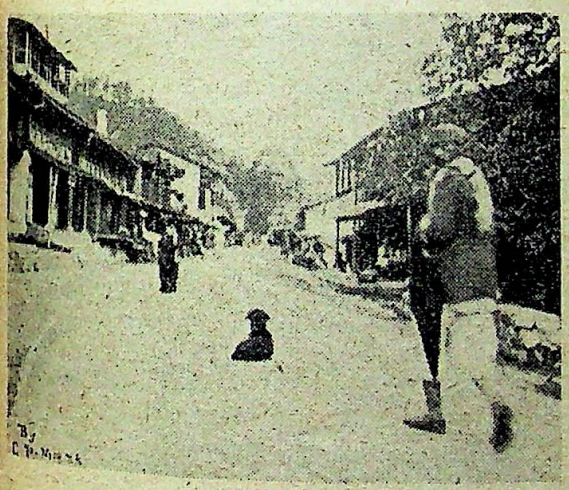

[भुवाली का बाज़ार]

हज़ार सोलजर यहाँ रहते हैं। इस नगर की तैयारी में सरकार ने फ़ैयाज़ी से काम लिया है। चीड़ के वृक्ष तो लाखों की ही संख्या में हैं, जिनसे यहाँ भी आबहवा बहुत ही अच्छी बन गई है। और यहाँ सड़कों की भरमार है। ग़ल्ले और कपड़े की थोक दूकानें भी हैं। लेकिन फ़ौजी केन्द्र होने के कारण यहाँ छूतछात के मरीज़ नहीं टिकने पाते।

रानीखेत के पास ही कई नदियाँ और पहाड़ी नाले बहते हैं, जिनके दोनों तरफ़ चीड़ के वृक्ष लगे हुए हैं। भुवाली और रानीखेत के बीच में का मोटर-मार्ग भी बहुत ही सुहावना है। कई नदियाँ और दो-तीन पुल भी पड़ते हैं। अलमोड़ा गर्मियों में अधिक ठंडा

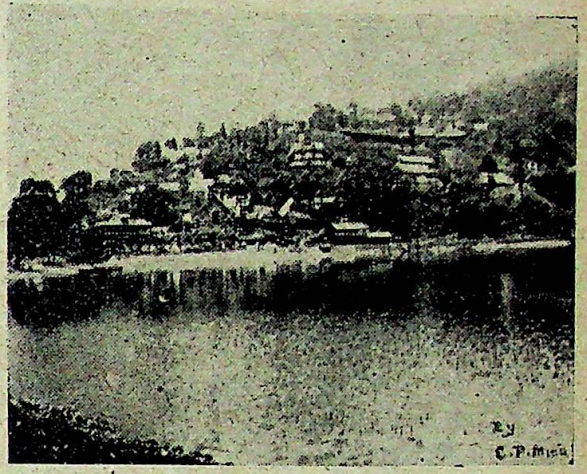

[नैनीताल (तल्लीताल का दृश्य)]

नहीं रहता, इसलिए लोग रानीखेत या नैनीताल ही अधिक पसन्द करते हैं। यद्यपि नैनीताल की आबहवा झील के कारण कुछ नम और भारी मानी जाती है, तथापि गवर्नमेंट की राजधानी और प्रकृति की सुन्दरता के कारण नैनीताल के आकर्षण को कोई दूसरा पहाड़ पा नहीं सकता।

नैनीताल तथा रानीखेत अमीर आदमियों के रहने योग्य ही पहाड़ हैं, क्योंकि यहाँ मकान महँगे हैं और होटलों का भाड़ा भी अधिक है। स्वास्थ्य-सुधार के लिए जानेवाले लोग भीमताल, रामगढ़, कुशानी या अलमोड़ा जाते हैं।

व्यापारिक दृष्टि से भुवाली और रानीखेत, ये स्थान अच्छे हैं।

[नैनीताल (तल्लीताल पर बादल)]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेती की उन्नति की समस्या

लेखक, श्रीयुत अवनीन्द्र विद्यालंकार

सदियों के बाद उपेक्षित किसानों और उनके रहने के स्थानों—गाँवों—की ओर हमारा ध्यान गया है। हम किसान और उसके खेत की समस्या को राष्ट्रीय महत्त्व की बात समझने लगे हैं। परन्तु यह खेद और आश्चर्य की बात है कि ७,००,००० गाँवों और ७७ प्रतिशत देशवासियों के जीवन का आधार खेती की समस्या को पहले हल करने का यत्न न कर हम औद्योगिक योजना बनाने में व्यस्त हैं। औद्योगिक योजना का निर्माण आवश्यक और आर्थिक तथा राष्ट्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यही नहीं, इससे ज़मीन पर भार कम हो जाने से किसानों की स्थिति उन्नत होगी। मगर इसका यह अर्थ नहीं है कि खेती की योजना का निर्माण अनावश्यक है। अपितु खेती की योजना का बनाना औद्योगिक योजना की अपेक्षा अधिक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। यदि यह कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी कि कृषि-योजना के अभाव में औद्योगिक योजना उतनी फलप्रद नहीं हो सकेगी।

जन-संख्या की वृद्धि

खेती की समस्या की ओर और किसी कारण से नहीं, तो केवल इसी कारण हमें ध्यान देना चाहिए कि हमारी आबादी बढ़ रही है। १९४१ की मनुष्य-गणना में हमारी जन-संख्या सम्भवतः ४० करोड़ हो जायगी। इस बढ़ती हुई जन-संख्या के लिए पर्याप्त खाद्य-सामग्री की आवश्यकता ही हमें बाध्य करती है कि इस समस्या को हम अपने हाथ में लें।

राष्ट्र की शक्ति को बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक अन्न और वस्त्र अवश्य मिलना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्यप्रद घर और उचित चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता भी उसे मिलनी चाहिए। यदि हम अपने राष्ट्र को दुर्बल और क्षीण नहीं देखना चाहते तो हमें इसकी व्यवस्था करनी ही होगी।

क्या इतना अन्न पैदा होता है?

आबादी और भोजन की समस्या के दो हल हैं। एक है खेती की पैदावार को बढ़ाना और दूसरा है आबादी को घटाना। कृत्रिम उपायों से और आधिदैविक आपत्तियों से जन-संख्या में कमी संभव है। जहाँ तक आधिदैविक आपत्तियों का सम्बन्ध है, वे मनुष्य के नियन्त्रण के बहुत कुछ परे हैं। रहे कृत्रिम उपाय, उनके बारे में यह विचारणीय है कि भारत की वर्तमान स्थिति में वे कहाँ तक व्यावहारिक और उपयोगी हैं। इसलिए हमारे सामने यही एक मार्ग रह जाता है कि भूख की समस्या को हल करने के लिए हम खेती की पैदावार को बढ़ायें।

वर्तमान स्थिति में भारत खाद्य-सामग्री की दृष्टि से आत्म-निर्भर है। सन् १८९८ में अकाल-कमीशन ने हिसाब लगाकर बताया था कि प्रतिवर्ष यहाँ ९५,००,००० टन अनाज बच रहता है। परन्तु यह बचत कम है क्योंकि अकाल में या फ़सल के बिगड़ जाने की अवस्था में इस बचत से काम नहीं चलता और हमें बाहर से अन्न मँगाना पड़ता है। उदाहरणार्थ सन् १९२१-२२ में, ४,३९,९८५ टन गेहूँ बाहर से आया था जिसमें से ४,००,००० टन आस्ट्रेलिया से आया था।

आबादी की ज़रूरत को पूरा करने के बाद कितना अनाज बच रहता है, यह बताना कठिन है। मगर यदि निर्यात की सम्भावना का त्याग करने के बाद ५०,००,०००—७०,००,००० टन की बचत भी आबादी की वृद्धि की वर्तमान प्रगति को देखते दस या बीस साल में खत्म हो जायगी। खाद्य-सामग्री की कमी के साथ उसकी पूर्ति करने की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसलिए ज़मीन की पैदावार बढ़ाने की समस्या हमारे सामने एक बहुत बड़ी समस्या है। और सो भी केवल इसलिए कि हम अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त भोजन-सामग्री कैसे प्राप्त करें।

१८९५-९६ से १९१५-१६ तक भोजन-सामग्री के पदार्थों की खेती में काफ़ी वृद्धि हुई है। मगर १९१५-१६ से खेती का परिमाण और उसकी पैदावार प्रायः एक समान है। आगे के दो मान-चित्रों से मालूम होगा कि मुख्य मुख्य खाद्य-पदार्थों की कितने परिमाण में खेती की गई और कुल पैदावार कितनी हुई—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन के मुख्य पदार्थों की खेती का विस्तार

(दस लाख एकड़ में)

	१९१३-१४	१९१५-१६ से १९१९-२० का औसत	१९२०-२१ से १९२४-२५ का औसत	१९२३-२४	१९२४-२५	१९२५-२६	१९२६-२७	१९२७-२८
चावल	७५·४३	७९·५२	८०·७२	७९·११	८१·४४	८२·३८	७९·७०	७८·११
गेहूँ	२८·४८	३०·५०	२९·५७	३१·१८	३१·७८	३०·४७	३१·रू०	३२·२२
जौ	७·१४	७·६ २	६·९८	७·१३	६·९०	६·५७	६·३१	६·७७
ज्वार	२१·३७	२१·७७	३०·७४	३०·४६	३१·४६	२९·५९	२९·२६	२९·९२
बाजरा	१४·७६	१३· २१	१३·४९	१३·६७	११·९६	१२·२६	१३·९९	१४·४२
मकई	६·१५	६·४६	५·९०	५·८२	५·३१	५·४४	५·५२	५·९२
चना	८·९५	१३·००	१४· २४	१४·४०	१६·४७	१४·३०	१४·५८	१३·९२

(पैदावार दस लाख टनों में)

	१९१३-१४	१९१५-१६ से १९१९-२० का औसत	१९२०-२१ से १९२४-२५ का औसत	१९२३-२४	१९२४-२५	१९२५-२६	१९२६-२७	१९२७-२८
चावल	२८.७९	३२·०२	३०·७५	२८·२०	३१·०७	३०·७४	२९·६८	२८·१८
गेहूँ	८.३६	९·२९	९·०१	९·६६	८·८७	८·७०	८·९७	७·७९
जौ	२.६९	३·१७	२·८७	२·९४	२·६४	२·५८	२·५५	२·०९
ज्वार	४.०४	४·९४	५·५०	५·३१	५·८२	५·३२	५·३६	६·४१
बाजरा	१.९८	२·३३	२·२९	२·२०	२·२२	१·९८	२·४६	२·४२
मकई	२.०८	२·३३	२·०६	२·१८	१·६९	१·८७	१·९२	२·२५
चना	१.९४	३·५५	४·१२	४·४६	४·१४	३·८७	३·९८	३·२३

यद्यपि ये आँकड़े काफ़ी पीछे के और पुराने हैं, मगर मुख्य खाद्य-पदार्थों की खेती और उनकी उत्पत्ति पर प्रकाश डालने में समर्थ हैं। फ़सलों की पैदावार में हर साल थोड़ा-बहुत फ़र्क पड़ा है, मगर १९१५-१६ से १९१९-२० तक पैदावार का जो औसत है वह अब में भी कायम है।

इन आँकड़ों का अध्ययन करते हुए इन दो बातों को और स्मरण रखना चाहिए कि बर्मा भारत से अलग हो गया है, अतः उसके चावल की पैदावार को हम अब भारतीय पैदावार में शामिल नहीं कर सकते। दूसरी बात यह कि सक्खर बैरेज के कारण बहुत-सी ज़मीन खेती में आगई है और आ रही है, इसके अलावा पंजाब में एक दो नई नहरों के खुल जाने और उत्तरीय युक्त-प्रान्त में ट्यूब वेलों के बन जाने से फ़सल के नष्ट होने का भय बहुत कुछ जाता रहा है। मगर इसके साथ हमें यह न भूलना चाहिए कि जिन ज़मीनों में खाद्य-पदार्थों की फ़सलें बोई जाती थीं उनके एक बड़े भाग में गन्ना बोया जाने लगा है। अतः इन आँकड़ों को हम भूख-समस्या को हल करने का आधार निस्संकोच रूप से बना सकते हैं।

हलों के नीचे और ज़मीन लाई जा सकती है, इसकी सम्भावना नहीं है। संयुक्त-प्रान्त में खेती के योग्य ज़मीन नहीं के बराबर बची है। इस प्रान्त का कुल रक़बा १,०६,२४० वर्गमील है, जिसमें ५,४१२ जंगल मैदानी, ११,९७० जंगल बेकार पहाड़ी, ३३,३२३ अन्य ज़मीनें और ५५,५३५ वर्गमील खेती की ज़मीन है। श्री एम० डी० चतुर्वेदी के कथनानुसार "पैदावार की कमी के साथ आबादी बढ़ती जाती है; यहाँ तक कि लोगों ने गाड़ियों व मवेशियों के रास्ते तक जोत डाले हैं। मवेशियों के लिए कोई चरागाह नहीं छोड़े जाते और वे बिचारे मारे-मारे फिरते हैं।"

इस समय जितनी खाद्य-सामग्री उत्पन्न होती है, वह हमारे देश की आबादी को स्वस्थ, पुष्ट और कार्य-क्षम बनाये रखने के लिए अपर्याप्त है। हम आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहार-प्रान्त की जिसकी आबादी ३ करोड़ २० लाख है; पैदावार के बारे में एक तालिका दे रहे हैं, इससे पता चलेगा कि बिहार की ज़मीनें इतना अन्न नहीं उपजा रही हैं, जो उस प्रान्त की आबादी को समर्थ बनावे।

तालिका १ बिहार (जुलाई १९३४ जून १९३५)

	एकड़
जंगल	६०,७८,३०१
ऊसर	६४,१३,३४५
बंजर-पड़ती	५६,००,०४७
चालू साल खेती नहीं की गई	५९,८१,३५५
खेती की ज़मीन	२,०२,५५,९००

तालिका २ बिहार की खेती की पैदावार १९३६ में

		(एकड़)	(मात्रा मनों में)
खाद्य	शारदीय फ़सल	७२,४२,०००	७,२०,००,०००
	भदई	२३,१०,५००	२,३०,००,०००
	रबी	२८,२००	२,००,०००
		९५,९२,७००	९,५२,००,०००
गेहूँ		१,४१,३००	१,२०,००,०००
जौ		१२,७५,१००	१,००,००,०००
मकई		१६,४६,२००	१,००,००,०००
चना		१२,४४,२००	१,००,००,०००
अन्य धान्य	भदई	१८,३९,१००	१,५०,००,०००
	रबी	२८,३६,४००	२,३०,००,०००
शाक-सब्ज़ी फल	भदई	२,२२,३००	१,००,००,०००
	रबी	५,४८,१००	२,२०,००,०००
			३,२०,००,०००
कुल भोजन की फ़सल			२०,७१,००,०००मन
गन्ना		४,४७,०००	१७,००,००,०००
तिल		५,४०,०००	२०,००,०००
तीसी और अलसी		५,४६,०००	३०,००,०००
अन्य तिलहन		३,९१,६२०	१६,००,०००

ये अंक क्या बताते हैं? दूसरी तालिका को देखने से मालूम होगा कि ९५,००,००० एकड़ में धान बोया जाता है और ९,५०,००,००० मन धान पैदा होता है। ३ करोड़ २० लाख प्रान्त की कुल आबादी है। अतः प्रति-व्यक्ति ३ मन धान पड़ेगा। गेहूँ, जौ, चना, मकई को भी शामिल कर लें, तो इनकी कुल पैदावार १३,७०,००,००० मन होती है। इसके साथ हमें ५०,००,००० एकड़ में होनेवाली छोटी फ़सलों की खेती को भी जोड़ लेना चाहिए। इन सबको जोड़ने के बाद बिहार-प्रान्त में खाद्य-पदार्थों की कुल पैदावार १५,७०,००,००० मन होती है; अर्थात् प्रतिव्यक्ति ५१ मन अन्न पड़ता है। इनके अतिरिक्त आलू, आम, खरबूजा आदि शाक-सब्ज़ी और फलों की पैदावार ३,२०,००,००० मन होती है। इसको मिला कर प्रतिव्यक्ति ६२ मन अन्न पड़ता है।

इससे स्पष्ट है कि भोज्य पदार्थों की पैदावार प्रजा के पोषण के लिए अपर्याप्त है। इसमें बचत की गुंजाइश ही नहीं है, अतः भोज्य-पदार्थों की फ़सल की जगह व्यावसायिक फ़सल बोने का सवाल ही नहीं उठता। जब भरपेट भोजन ही नहीं मिल रहा है तब जीवन में अन्य सुख-सुविधा जुटाने का सवाल कैसे उठ सकता है?

भूमि की उत्पादन-शक्ति

भारत अनाज के साथ साथ खाद का भी निर्यात करता है, इस कारण समस्या विकट और पेंचीदा हो गई है। शाही कृषि-कमीशन का कहना है कि फ़सल कटने व अन्य प्रकार से हुई भूमि की क्षति स्वाभाविक प्रक्रिया से पूरी हो जाती है और संतुलन हो जाता है। खेती के वर्तमान तरीक़े में ज़मीन की उत्पादन-शक्ति कम होने का कोई भय नहीं है।

तेलहन, रुई, धान्य और हड्डियों के निर्यात से भूमि की जो अपार हानि होती है, उसको कमीशन ने ठीक तरह नहीं आँका है या उसकी उसने उपेक्षा की है।

खेती की पैदावार के निर्यात से यदि भारत को तात्त्विक हानि नहीं पहुँचती तो यह भी सच है कि इससे भारत समृद्ध भी नहीं होता। यदि खेती के वर्तमान तरीक़े में संतुलन हो जाता है तो वह संतुलन ज़मीन के अनुकूल होना चाहिए, जिससे उसकी उर्वरा-शक्ति बढ़े। यदि हड्डियों और तेलहनों का उपयोग करने के साथ यहाँ जुटाये जायँ और इनका उपयोग भूमि की उत्पादन-शक्ति बढ़ाने में किया जाय तो यह अधिक लाभदायक होगा।

खाद का निर्यात

खाद का निर्यात किस तेज़ी से हो रहा है, इस पर निम्नतालिका अच्छा प्रकाश डालेगी—

	१८९०-९१	१९२८-२९	वृद्धि प्रतिशत
खाद	६२,६९८ टन	१,१४,९६७	८०
तेलहन	७,३९,९५० टन	१३,२८,४१०	८०

इस पर शाही कृषि-कमीशन ने राय दी है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़सल हटाने व अन्य प्रकार से हुई हानि स्वाभाविक प्राप्ति से संतुलित हो जाती है। कमीशन ने अपने इस मत के समर्थन में कोई प्रमाण नहीं दिया है। न हमारे पास की ज़मीनों की पिछले ७०-८० साल की उत्पादन-शक्ति का हमें विवरण प्राप्त है, जिससे हम जान सकें कि भूमि की उत्पादन-शक्ति कितनी मात्रा में घट गई है।

डाक्टर वोयलेकर का इसके विरुद्ध कहना है कि धीरे-धीरे ज़मीन की उत्पादन-शक्ति घटती जाती है। अपने राथमस्टेड के परीक्षण का उल्लेख किया है, जहाँ गेहूँ की फ़सल होती थी और ४० साल तक उसको खाद नहीं दी गई थी। उसका परिणाम इस प्रकार है—

उत्पादन का औसत प्रतिएकड़ बुशल

८साल १८४४-५१ (परीक्षण आरम्भ होने से पहले) १७
२०साल १८५२-७१ (परीक्षण के समय) १३·९
२०साल १८७२-९१ (परीक्षण के समय) ११·१

इसलिए डाक्टर वोयलेकर का कहना है कि भारत में भूमि की उत्पादन-शक्ति घटने का ठोस प्रमाण अभी नहीं मिल रहा है, यह इस बात का सबूत नहीं है कि भूमि की सृजन-शक्ति धीरे धीरे कम नहीं हो रही है।

तेलहन के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाने पर शाही कृषि-कमीशन ने विचार किया था, और वह इस नतीजे पर पहुँचा कि तेलहन की प्रचुर मात्रा की फ़सल में निहित नाइट्रोजन (नत्रजन) से भारतीय किसान बहुत लाभ न उठा सकेंगे। इससे लाभ उठाने का स्वभाविक उपाय एकमात्र यह है कि तेल निकालने का व्यवसाय इस देश में बढ़ाया जाय और पशुओं और ईंधन के उपयोग की व्यवस्था में महान् परिवर्तन किया जाय। यह असली समस्या को टालने के सिवा और कुछ नहीं है।

गोबर

भारतीय एकमात्र गोबर की खाद का उपयोग करते हैं। वे इसके महत्त्व से परिचित हैं। मगर ईंधन की ज़रूरत होने पर वे इसे जलाते भी हैं।

गोबर के जलाने से हर साल करोड़ों रुपयों का ही नुक़सान नहीं होता, बल्कि धीरे-धीरे खाद न पड़ने के कारण ज़मीनें कमज़ोर होती जा रही हैं। गोबर की खाद एक क़ुदरती खाद है।

गोबर का महत्त्व नई वैज्ञानिक खोजों ने भी सिद्ध कर दिया है। 'इम्पीरियल एग्रीकलचर रिसर्च इन्स्टीट्यूट की खोजों के द्वारा भी सिद्ध हो गया है कि खनिज द्रव्यों की खाद की अपेक्षा गोबर की खाद डालने से न केवल अनाज में पौष्टिक तत्त्व अधिक आता है, बल्कि वह अधिक सुपच भी होता है। उसकी खोज का परिणाम निम्नतालिका से अधिक अच्छी तरह स्पष्ट हो जायगा—

गेहूँ का दानों जिनसे पैदा किया गया	दाने में निहित प्रोटीन	सुपचता (प्रतिशत)	प्राणिशास्त्र की दृष्टि से मूल्य	विशुद्ध प्रोटीन
पशुओं की खाद	१७.७६	९४.५४	८५,०९	१४.२९
खनिक उत्पादक	१६.९८	९०.३५	८१.४८	१२.५६
कोई खाद नहीं	१७.४४	९१.३२	८४.०४	१३.३९

भारतीय खेती की उन्नति के लिए जल और खाद सबसे अधिक आवश्यक चीज़ें हैं। जल की व्यवस्था गवर्नमट प्रशंसनीय रीति से कर रही है। मगर दूसरी ओर अभी सरकार का ध्यान नहीं गया है। यदि ईंधन का इन्तज़ाम हो जाय तो गोबर खाद के लिए बचाया जा सकता है। 'ईंधन और चारा' को सुरक्षित रखने की व्यवस्था परमावश्यक है।

जङ्गल लगाये जायँ

स्वभावतः प्रश्न उठता है कि चूल्हों से बचाकर गोबर खेतों तक कैसे पहुँचाया जाय। इसका यही एकमात्र उपाय है कि किसान गोबर न जलाकर लकड़ी जलाया करे। लकड़ी के लिए जंगल चाहिए। आज उनका अभाव है। अतः जंगल लगाये बिना यह सम्भव नहीं है। युक्त-प्रान्त में इसके लिए ज़मीन का अभाव नहीं है। ३३½ हज़ार मुरब्बा मील पर इस समय खेती नहीं होती। इसमें से वे ज़मीनें निकाल देने पर भी जिन पर या तो शहर, बस्तियाँ, नदियाँ, नाले, रेलें, नहरें, सड़कें इत्यादि हैं या खेती किसी न किसी कारण से नहीं हो सकती, निकाल दी जाय तो भी २०-२५ हज़ार मुरब्बा मील रक़बा ऐसा बचेगा जिस पर मवेशियों के लिए चरागाह और छोटे-मोटे सैकड़ों जंगल तैयार किये जा सकते हैं।

जंगल लगाने का काम गाँववाले स्वतः अपने हाथ में ले सकते हैं। ऐसी बहुत-सी ज़मीनें मिलेंगी जो लगान पर नहीं उठतीं और जिनकी पैदावार बहुत कम होती है। उनको मुफ़्त जोतनेवाले बहुत लोग मिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जावेंगे। यदि इस प्रकार की सब ज़मीनें काश्तकारों को मुफ़्त दे दी जायँ और बदले में बीस बीस हाथ के फ़ासले पर लाइनों पर जंगली पेड़ों के बीज बो दिये जायँ तो जंगली पौदों की रखवाली व निराई फ़सलों के साथ साथ होती रहेगी। पेड़ों की बीच की पटरी पर खेती करने के बाद अपने आप घास उग आयेगी और नहीं तो लगाई भी जा सकती है। ४-५ वर्ष में इस प्रकार जंगल व चरागाह साथ-साथ पैदा किये जा सकते हैं।

ऊसर ज़मीनों की चौहद्दी पर बबूल, घेघवार और कोई काँटेदार पेड़ लगाकर घेर दिया जाय और २-३ साल मवेशियों से उसको बचाकर रखा जाय तो अपने आप घास हो सकती है। यदि इन घिरी ज़मीनों पर हल चला दिया जाय तो फिर कहना ही क्या है।

सड़कों के किनारे, तालाबों और कुओं के इर्द-गिर्द और छोटी मोटी ख़ाली जगहों में बड़ी आसानी से पेड़ लगाये जा सकते हैं। इसमें सब लोग हाथ बँटा सकते हैं।

ग्राम-पंचायतें व ज़िला-बोर्ड इस काम में बहुत मदद कर सकते हैं।

टुकड़ों में

खेती की उन्नति में दूसरी बाधा यह है कि खेत बहुत छोटे छोटे टुकड़ों में बँटे हुए हैं। हिन्दू-मुस्लिम उत्तराधिकार के क़ानून के कारण इन टुकड़ों के भी और टुकड़े होते जाते हैं। शाही कृषि-कमीशन के अनुसार सबसे बड़े टुकड़े बम्बई (१२.२ एकड़) में और सबसे छोटे संयुक्त-प्रान्त (२.५) में हैं।

पंजाब में २,००० गाँवों की जाँच की गई थी। इसके फलस्वरूप मालूम हुआ कि १७.९ प्रतिशत के पास १ एकड़, २५.५ प्रतिशत के पास १ से २ एकड़, १४.९ प्रतिशत के पास ३ से ५ एकड़, और १८ प्रतिशत के पास ५ से १० एकड़, ज़मीन है। दूसरे शब्दों में ४३½ प्रतिशत के पास ३ एकड़ से कम और ५८ प्रतिशत के पास ५ एकड़ से कम जोत की ज़मीन है। पंजाब में किसान भू-स्वामी हैं। वे ज़मींदार कहलाते हैं। मगर उनकी जोत की ज़मीनें बहुत थोड़ी हैं, और उनमें नवीन साधनों से खेती नहीं की जा सकती। २२.५ प्रतिशत लोग एक एकड़ या इससे कम, १५ प्रतिशत १ से लेकर २½ एकड़ के बीच, १७.९ प्रतिशत २ एकड़ से ५ एकड़ और २०.५ प्रतिशत ५ एकड़ से १० एकड़ तक ज़मीन जोतते हैं। पंजाब का केस अपवाद नहीं समझना चाहिए। सारे भारत में यही अवस्था है।

जोत के टुकड़े ही छोटे छोटे नहीं हैं, बल्कि दूर भी हैं। एक ही काश्तकार गाँव में अनेक जगह ज़मीन जोतता है और यह ज़रूरी नहीं कि उनका वह मालिक ही हो।

चकबन्दी की कोशिश की जा रही है और पंजाब में कुछ सफलता भी मिली है। संयुक्त-प्रान्त के असेम्बली में क़ानून पेश है। खेतों को छोटे छोटे टुकड़ों में बाँटने से रोकने का यही एकमात्र उपाय है।

पंजाब में नहरों की बस्ती में ज़मीन के टुकड़े में बँटने से रोकने के वास्ते क़ानून बनाया गया है। ज़मीन केवल बड़े लड़के को मिले। मगर इनके मालिक धनी हैं और वे छोटे लड़कों को ज़मीन के बदले धन दे सकते हैं। मगर यदि साधारण काश्तकार के साथ यह क़ानून लागू किया जाय तो छोटे लड़के भूखों मर जायँगे।

मानव और पशु-श्रम का नाश

वर्तमान अवस्था में खेती की उन्नति सम्भव नहीं है। किसान के पास खेती और उसकी पैदावार बढ़ाने के साधन नहीं हैं और न वह इस अवस्था में बैलों द्वारा खेती करना छोड़कर कम खर्चीली मशीनों के द्वारा खेती कर सकेगा। कहा जाता है कि भारत में मानव श्रम बहुत सस्ता है। इसका कारण यह है कि खेती पर जीनेवालों की संख्या ज़्यादा है। मगर प्रश्न तो यह है कि जिस ज़मीन के लिए दस आदमी ज़रूरी हैं, यदि उस खेत पर दो या तीन व्यक्ति मशीन की सहायता से काम करें तो कौन कम खर्चीला होगा।

किसान के जीवन की एकमात्र आशा खेती के राष्ट्रीय-करण में है और खेती की पैदावार की वृद्धि में ही किसान की आमदनी बढ़ाने का एक मात्र साधन तथा भारत को बलवान् और कार्यक्षम बनाने की कुंजी निहित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षकों की परीक्षा

लेखक, श्रीयुत पंडित वेङ्कटेश नारायण तिवारी

हर साल हमारे सूबे में तरह तरह की परीक्षायें होती हैं। उनमें हज़ारों ही परीक्षार्थी भाग लेते और अपने भाग्य को परखते हैं। गज़ट में या समाचार-पत्रों में परीक्षा-फल के निकलने की बाट हफ़्तों पहले से लोग जोहने लगते हैं। फल प्रकाशित हुआ, कहीं हँसी और कहीं रोने का नज़ारा दिखाई दिया, और दो-तीन दिन के बाद, क्षणिक अचम्भे की तरह लोग परीक्षा-फलों को भूलकर जीवन के दूसरे काम-धन्धों में लग जाते हैं। जहाँ तक मुझे मालूम है, वहाँ तक आज तक किसी ने इस बात का प्रयत्न नहीं किया कि इन परीक्षा-फलों पर परीक्षकों को कसे और उनकी विचित्रताओं का विश्लेषण इन फलों के आधार पर करे। इतना ही नहीं, मेरी समझ में स्कूलों, पाठशालाओं, कालेजों और मकतबों में जिस ढंग से पढ़ाई होती है उसके सम्बन्ध में भी परीक्षा-फलों के निरीक्षण से हमें अनेक प्रकार की आवश्यक बातों का सहज ही पता लग सकता है। उदाहरण के लिए किस विषय की ओर विद्यार्थियों की प्रवृत्ति हो रही है; किन किन विषयों की पढ़ाई सन्तोषजनक या असन्तोषजनक है; रुचि-परिवर्तन का क्या सम्बन्ध स्थान-विशेष से है या सम्प्रदाय-विशेष से, अथवा देश की बढ़ती हुई आवश्यकताओं से? ऐसे ही और अनेक प्रश्न हैं जिनके ऊपर परीक्षा-फलों की जाँच से प्रकाश पड़ सकता है। लेकिन दुःख की बात है कि न तो हमारे विश्वविद्यालय और न हमारे वे बोर्ड जिनके तत्त्वावधान में यें परीक्षायें ली जाती हैं, परीक्षा-फलों के विश्लेषण के महत्त्व को अभी तक समझ पाये हैं। इसी कारण वे इस अन्वेषण से उदासीन रहे हैं।

यह उदासीनता जितनी अकारण है, उतनी ही अनुपयोगी भी है, इसी बात को सिद्ध करने के लिए मैंने सन् १९३९ के मार्च में जो हमारे प्रान्त में हाई-स्कूल की परीक्षा हुई थी, उसके फल के आँकड़ों की जाँच की। मैं यह देखना चाहता था कि ऐसी जाँच से कुछ लाभ हो सकता है या नहीं। इन आँकड़ों की जाँच करने में हमें हमारे सूबे के सम्मानित शिक्षा-मंत्री, श्री सम्पूर्णानन्द जी, की कृपा से काफ़ी सहायता मिली, एतदर्थ हम उनके हृदय से कृतज्ञ हैं। बोर्ड आफ़ हाई स्कूल ऐंड इंटरमीजियेट ऐजूकेशन के मंत्री महोदय के प्रति भी मुझे अपनी कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए, क्योंकि उन्हीं को आवश्यक आँकड़ों के संग्रह करने का कष्ट उठाना पड़ा।

मार्च सन् १९३९ में युक्तप्रान्त में जो हाई स्कूल की परीक्षा हुई, आइए उसका कुछ हाल हम आपको सुनावें और उन विशेष बातों की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करें जो इस परीक्षा-फल की विश्लेषणा से सिद्ध होती हैं। पहले मुख्य मुख्य आँकड़ों को सुन लीजिए। इस परीक्षा में भाग लेनेवाले कुल परीक्षार्थियों की संख्या लगभग साढ़े पन्द्रह हज़ार थी, जिनमें से १२ हज़ार हिन्दू, ३,१०० मुसलमान और कुछ कम तीन सौ ईसाई थे। गवर्नमेंट स्कूलों से २,९००; अन्य स्कूलों से ९,५०० और ३,००० 'प्राइवेट' परीक्षार्थियों ने इम्तहान दिया। १५,५०० परीक्षार्थियों में कुछ कम ९०० लड़कियाँ थीं। सफल परीक्षार्थियों की कुल संख्या लगभग ९,७०० थी, जिनमें से गवर्नमेंट स्कूलों में से २,००० से कुछ अधिक, इम्दादी स्कूलों से ६,६०० और प्राइवेट उम्मीदवारों में से ९०० से कुछ अधिक सफल हुए। परीक्षा में सफलता प्राप्त लड़कियों की संख्या ४५८ थी। जो विद्यार्थी उत्तीर्ण हुए उनमें से ७,८०० हिन्दू, १,८०० मुसलमान और १३७ ईसाई थे।

अब आइए, ऊपर दिये हुए आँकड़ों को प्रतिशत नक़शे के रूप में ढालें ताकि उनके अर्थ को हम सरलता के साथ हृदयङ्गम कर सकें।

(अ)

संस्था	परीक्षा में कितने बैठे	१०० परीक्षार्थियों में कितने उत्तीर्ण या पास हुए	कितने सफल हुए
१—गवर्नमेंट स्कूलों से	२,९१७	२,११७	७३
२—इम्दादी स्कूलों से	९,५४५	६,६१६	६३
३—प्राइवेट ...	२,९८३	९३३	३२
कुल जोड़ ...	१५,४४५	९,७२६	६०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपरी तौर से देखने से मालूम होता है कि सरकारी स्कूलों की पढ़ाई इम्दादी स्कूलों की पढ़ाई से अच्छी होती है, क्योंकि जहाँ नये उत्तीर्ण विद्यार्थियों की संख्या ७३ प्रतिशत है वहाँ दूसरे में ऐसे सफल परीक्षार्थियों की संख्या केवल ६३ फ़ी सदी है।

यदि साम्प्रदायिक दृष्टि से परीक्षा-फल पर हम दृष्टि डालना चाहें तो नीचे का नक़शा सहायक सिद्ध होगा--

(इ)

सम्प्रदाय का नाम	कितने परीक्षार्थी बैठे	कितने परीक्षार्थी उत्तीर्ण या पास हुए	प्रतिशत परीक्षा देनेवालों में सफल विद्यार्थियों की संख्या
हिन्दू ...	१२,०५१	७,७७७	६५
मुसलमान ...	३,१३५	१,८१२	६०
ईसाई ...	२५९	१३७	५५
कुल ...	१५,४४५	९,७२६	६०

ऊपर के नक़शा (इ) को देखने से पता चलता है कि जहाँ सफल विद्यार्थियों का प्रान्तिक औसत ६० प्रतिशत है, वहाँ हिन्दुओं का ६५ प्रतिशत, मुसलमानों का ६० प्रतिशत और ईसाइयों का ५५ प्रतिशत है, अथवा मुसलमानों की प्रतिशत संख्या प्रान्तिक औसत के बराबर है, लेकिन प्रान्तिक औसत की तुलना में हिन्दुओं की संख्या ६० प्रतिशत के स्थान में ६५ प्रतिशत और ईसाइयों की ५५ प्रतिशत है। इससे क्या मालूम होता है? इससे यह पता चलता है कि एक हिन्दू विद्यार्थी मुसलमान या ईसाई विद्यार्थी की तुलना में अधिक कुशाग्र-बुद्धि या घोटू होता है। इससे यह भी साफ़ है कि मुसलमानों के इस कथन में कुछ भी सार नहीं कि वे पढ़ाई में अन्य जातियों का मुक़ाबिला नहीं कर सकते और न यही उनका कहना ठीक जँचता है कि अन्य सम्प्रदायों के मुक़ाबिले में वे आबादी के लिहाज़ से तालीम में पिछड़े हुए हैं। इस सूबे में मुसलमानों की आबादी १५ प्रतिशत से कम है। लेकिन हाई स्कूल में परीक्षा देनेवाले मुसलमान विद्यार्थियों की संख्या प्रतिशत परीक्षार्थियों में २० है। आबादी के लिहाज़ से १५, लेकिन हाई स्कूल में इम्तहान देनेवाले परीक्षार्थियों में २० प्रतिशत मुस्लिम हैं। इसी तरह इस सूबे में हिन्दुओं की आबादी ८५ प्रतिशत है। लेकिन परीक्षार्थियों में हिन्दू विद्यार्थियों की संख्या केवल ७९ प्रतिशत है। इससे यह स्पष्ट है कि तालीम में हिन्दू, न कि मुसलमान पिछड़े हैं। लेकिन वास्तविक बातों के आधार पर राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता की दलीलों को कसना उनके साथ अन्याय करना है। उनपर तो यही उक्ति लागू है--

"सबसे भले जे मूढ़ जिनहिं न व्यापहि जगत गति।"

इसी लिए कहते हैं कि वे कहते हैं। क्या कहते हैं? कहने भी दो उन्हें।

अब आइए एक क़दम आगे बढ़ें और देखें कि जो विद्यार्थी पास हुए उनमें से कितने प्रतिशत प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी में पास हुए। आँकड़े नीचे के दो नक़शों में दिये जाते हैं--

(उ)

सफल विद्यार्थियों में निम्नलिखित विद्यार्थी प्रतिशत पास हुए--

संस्था	प्रथम श्रेणी प्रतिशत	द्वितीय श्रेणी प्रतिशत	तृतीय श्रेणी प्रतिशत
सरकारी स्कूल ...	१८	६०	३२
इम्दादी स्कूल ...	६	५०	४४
प्राइवेट ...	१	२२	६७
कुल ...	६	५०	३४

(ऋ)

	प्रथम श्रेणी प्रतिशत	द्वितीय श्रेणी प्रतिशत	तृतीय श्रेणी प्रतिशत
हिन्दू ...	६	५०	४४
मुसलमान ...	५·५	५०	४४·५
ईसाई ...	२·१	५०	४७·९
कुल ...	६	५०	४४

ऊपर की दोनों तालिकाओं को कृपया ध्यानपूर्वक देखिए। इससे भी वही बात सिद्ध होती है जो गवर्नमेंट और इम्दादी स्कूलों के सम्बन्ध में नक़शा (अ) से प्रतिपादित होती है; अर्थात् गवर्नमेंट स्कूलों की पढ़ाई इम्दादी स्कूलों के मुक़ाबिले में अधिकतर अच्छी है, क्योंकि सरकारी स्कूलों से जितने लड़के पास हुए उनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिशत प्रथम श्रेणी में और ७ प्रतिशत द्वितीय श्रेणी में आये; जब कि इम्दादी स्कूलों के सफल विद्यार्थियों में केवल ६ फ़ी सदी प्रथम श्रेणी में और ५० फ़ी सदी द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। सरकारी मदरसों से अधिक संख्या में लड़के पास भी हुए और उनमें से अधिक को प्रथम या द्वितीय श्रेणी में स्थान भी मिला। हाँ, एक बात में इम्दादी स्कूल सरकारी स्कूलों से बाज़ी मार ले जाते हैं। तीसरे दर्जे में पास होनेवालों की प्रतिशत संख्या ही अकेली ध्यान में ली जाय तो यह सिद्ध हो जायगा कि इम्दादी स्कूल सरकारी मदरसों से बढ़े-चढ़े हैं। पास होनेवालों में से सरकारी स्कूलवाले ३८ प्रतिशत हैं, लेकिन उनकी प्रतिशत संख्या ४४ है। जहाँ तक साम्प्रदायिक पहलू का सम्बन्ध है, वहाँ इन दोनों तालिकाओं से भी वही परिणाम निकलता है जो नक़शा (इ) से प्रतिपादित होता है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सम्प्रदायों के सफल विद्यार्थियों को समान ही संख्या में प्रथम और द्वितीय श्रेणी मिली। जो सूबे का औसत है वही हिन्दू या मुस्लिम विद्यार्थियों के विषय में भी सिद्ध होता है। न हिन्दू मुसलमानों से बढ़े-चढ़े हैं और न मुसलमान हिन्दुओं से पिछड़े हैं।

विशेष योग्यता में भी सरकारी स्कूल इम्दादी स्कूलों से पीछे नहीं हैं, जैसा नीचे की तालिका से सिद्ध होगा। एक या एक से अधिक विषय में जितने विद्यार्थियों को विशेष योग्यता मिली उनकी सारे सूबे की प्रतिशत औसत संख्या ८ फ़ी सदी है। सरकारी और इम्दादी स्कूलों का भी यही प्रतिशत औसत निकलता है। आँकड़े हम नीचे नक़शे में दे रहे हैं——

(ऋ)

संस्था	एक विषय में	दो विषयों में	तीन विषयों में	विशेष योग्यता पानेवाले कुल विद्यार्थियों की संख्या
	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत
सरकारी स्कूल	७	१	.००५	८
इम्दादी स्कूल	७	१	.१	८
ग़ैर सरकारी स्कूल	२	०	०	२
कुल ...	६·७	·९	·८	८

(ए)

निम्न सम्प्रदायों के प्रत्येक सौ सफल विद्यार्थियों में से विशेष योग्यता पानेवाले परीक्षार्थियों की संख्या——

	एक विषय में	दो विषयों में	तीन विषयों में
	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत
हिन्दू ...	८	१	·१
मुसलमान ...	४·४	·४	०
ईसाई ...	२·१	०	०
सूबे का औसत ...	६·७	·९	·०८

ऊपर के आँकड़ों से यह सिद्ध है कि विशेष योग्यता के मामले में सरकारी और इम्दादी मदरसों में कोई अन्तर नहीं है। प्रान्तिक औसत से हिन्दुओं को हिन्दू परीक्षार्थियों में से अधिक को; और मुसलमान और ईसाई विद्यार्थियों में से कम को सूबे में औसत के लिहाज़ से विशेष योग्यता प्राप्त करने में सफलता मिली है। लेकिन ऊपर के दो नक़शों को देखते हुए यह परिणाम निकालना ग़लत होगा कि मुसलमान विद्यार्थी हिन्दू विद्यार्थी का मुक़ाबिला नहीं कर सकता।

इस परीक्षा में, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, परीक्षा देनेवालों की कुल संख्या १५,४४५ थी, जिनमें से लगभग ९,८०० उम्मीदवार कामयाब हुए। इनमें लड़के और लड़कियाँ दोनों शामिल हैं। स्त्री-शिक्षा के प्रचार की दृष्टि से यह अनुचित न होगा यदि लड़कियों के आँकड़े अलग से मैं दे दूँ। इस परीक्षा में भाग लेनेवाली ८७३ लड़कियाँ थीं, जिनमें से ४५८ उत्तीर्ण हुईं। सफल लड़कियों में से ३६ लड़कियाँ प्रथम श्रेणी में, २१२ लड़कियाँ द्वितीय श्रेणी म और शेष अर्थात् २२० लड़कियाँ तृतीय श्रेणी में पास हुईं। सफल लड़कियों में २९ लड़कियों को एक विषय में और दो लड़कियों को दो विषयों में विशेष योग्यता मिली।

अब इन आँकड़ों की, आइए, प्रान्तिक औसत से तुलना करें। सूबे भर में जितने विद्यार्थियों ने परीक्षा दी थी उनमें से ६३ प्रतिशत सफल हुए। इस ६३ प्रतिशत की तुलना में लड़कियों के आँकड़े ५६ प्रतिशत हैं। इसी तरह से जितने परीक्षार्थी सूबे भर में कामयाब हुए उनमें से ६ प्रतिशत को प्रथम श्रेणी मिली। लड़कियाँ भी ६ प्रतिशत प्रथम श्रेणी में आईं। द्वितीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेणी में उत्तीर्ण होनेवाले विद्यार्थियों का प्रान्तिक प्रतिशत औसत है ५०, लेकिन लड़कियों का प्रतिशत केवल ४६ है। इसी तरह से एक विषय में विशेष योग्यता पानेवाले विद्यार्थियों का प्रान्तिक प्रतिशत ६·७ है। लेकिन लड़कियों के सम्बन्ध में वह केवल ६ है। दो विषयों में लड़कों के मुक़ाबिले में कम लड़कियों ने विशेष योग्यता दिखलाई। तीन विषयों में विशेष योग्यता जहाँ ८ लड़कों ने दिखाई, वहाँ सूबे भर में एक भी ऐसी लड़की न निकली जिसने तीन विषयों में विशेष योग्यता प्राप्त की हो। इस तुलना को देखकर हठात् हमारा ध्यान अपने सामाजिक जीवन की त्रुटियों की ओर खिंच जाता है। साढ़े पन्द्रह हज़ार के लगभग विद्यार्थियों में ९०० से कम लड़कियाँ निकलें, यह दुःख की बात है। इससे यह बात स्पष्ट है कि समाज ने अभी तक स्त्री-शिक्षा को उतना महत्त्व नहीं दिया है जितना अपने बालकों की शिक्षा को। बावजूद इसके भी पत्र-पत्रिकाओं में, और प्लेटफ़ार्मों से स्त्री-शिक्षा का मौक़े-बे-मौक़े प्रायः राग अलापा जाता है। दूसरी बात जो इससे स्पष्ट होती है वह यह है कि जिन परिस्थितियों में हमारी लड़कियों को पढ़ना पड़ता है उन्हीं परिस्थितियों में यदि हमारे बाबू लोगों को भी पढ़ना पड़े तो ये उनका मुक़ाबिला नहीं कर सकते। इन आँकड़ों को देखने से मैंने जो नतीजा निकाला वह यह है कि मनस्विता में लड़कियाँ लड़कों से आगे हैं। साधन और अनुकूल परिस्थिति होने पर लड़कियाँ लड़कों को आसानी से हरा सकती हैं।

अब आइए, इस परीक्षा के उस पहलू की ओर हम आपका ध्यान आकर्षित करें जो वास्तव में सबसे अधिक मनोरंजक और परीक्षकों की धाँधलेबाजी का भंडाफोड़ करनेवाला है। कृपया ध्यान से नीचे के नक़शे को देखिए—

(ओ)

विषय	इस विषय में परीक्षा देनेवालों में से कितने प्रतिशत सफल हुए	इस विषय में सफल हुए कितने विद्यार्थियों में से एक विद्यार्थी को इस विषयविशेष में विशेष योग्यता मिली।
अरबी ...	९३	८·४
संस्कृत ...	९२	१८
मैनुएल ट्रेनिंग ...	९४	१८
गणित ...	५३	१९
ड्राइंग ...	८५	५१
विज्ञान ...	८०	६९
व्यापार ...	८५	१२८
उर्दू ...	९१	१४०
फ़ारसी ...	८४	१८६
हिन्दी ...	८७	६९३
अँगरेज़ी ...	५३	८८४
भूगोल ...	७७	२,७५०
इतिहास ...	७३	२,७५०

'सरस्वती' के पाठकों को—लेखक की ऐसी धारणा है—अन्य विषयों की तुलना में हिन्दी से अधिक ममता होगी। इसलिए हिन्दी ही की चर्चा को पहले उठाना उचित होगा। ऊपर के नक़शे को देखने से मालूम होता है कि हिन्दी के मुक़ाबिले में फ़ारसी चारगुनी, पाँच गुनी, संस्कृत उन्तालिस गुनी और अरबी ५४ गुनी अधिक सरल है। यह बात नहीं है कि हिन्दी में काफ़ी लड़के पास नहीं होते। जहाँ फ़ारसी में ८४ फ़ी सदी लड़के पास हुए, वहाँ हिन्दी में ८७ फ़ी सदी पास हुए; लेकिन सफल विद्यार्थियों में जहाँ फ़ारसी लेनेवाले १८६ विद्यार्थियों में से १ को विशेष योग्यता फ़ारसी में मिली, वहाँ हिन्दी में ६९३ सफल विद्यार्थियों में से सिर्फ़ १ ने विशेष योग्यता पाई! हिन्दी उर्दू का मुक़ाबिला ही नहीं कर सकती, क्योंकि उसमें तो पास होनेवालों में से प्रत्येक १४० विद्यार्थियों में से १ को विशेष योग्यता मिली। राजा भोज के प्रान्त में हिन्दी की संस्कृत से तुलना करना प्रान्त का उपहास करना होगा, क्योंकि इस सूबे में उस राजा के ज़माने में तो नर-नारि की कौन कहे तोता-मैना भी संस्कृत में गूढ़ शास्त्रीय विषयों पर वादविवाद किया करते थे। अतएव इसमें कौन-सी अचरज की बात है, यदि हमारे बालक और हमारी बालिकायें संस्कृत में हिन्दी के मुक़ाबिले में उन्तालीस गुनी अधिक योग्य सिद्ध हों। हमें यह भी न भूलना चाहिए कि हमारे सूबे में हज़ार साल तक मुसलिम राज्य रहा, ऐसी दशा में यह स्वाभाविक है कि उसकी मातृभाषा अरबी हो जाय। इसी लिए अरबी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मकल विद्यार्थियों में यदि एक को अरबी में विशेष योग्यता मिलती है तो हिन्दी के समान परदेशी भाषा में उत्तीर्ण होनेवाले प्रत्येक ७०० विद्यार्थियों में से केवल एक ही को इस भाषा का इतना ज्ञान हो कि वह विशेष योग्यता के पद को प्राप्त कर सके! कितने वे हैं मूर्ख जो यह चिल्लाते फिरते हैं कि हिन्दी सबसे सरल भाषा है! इन आँकड़ों के देखने के बाद कौन इस तरह की भ्रान्ति-मूलक बात कहने का दुस्साहस कर सकेगा? धन्य है हिन्दी के परीक्षको, धन्य हैं वे भी जो हमारे स्कूलों में बालक-बलिकाओं को हिन्दी की-सी दूरूह, दुर्गम, दुर्धर्ष भाषा को पढ़ाने का असम्भव भार उठाकर रात-दिन उसको सिखाने के अथक परिश्रम में निरत रहते हैं! हिन्दी के शिक्षकों को यदि सौ बार प्रणाम तो उस भाषा के परीक्षकों को शत सहस्र बार प्रणाम! परीक्षकों के आचार्य महोदय—"माडरेटर" पद को विभूषित करने-वाले महाशय को—कोटिशः बार प्रणाम! यह आप ही का अगाध हिन्दी-प्रेम है जिसकी बदौलत हिन्दी-भाषा की अगम्य, अदृश्य जटिलता का हमें बोध हो गया। इन आँकड़ों को देखने के बाद कौन ऐसा संरक्षक होगा जो अपने बालक या बालिका को नवीं और दसवीं कक्षाओं में हिन्दी लेने की सलाह दे? यदि अपनी सन्तान के भविष्य को आप नष्ट नहीं करना चाहते हैं तो भूलकर भी उसे हिन्दी के पास न फ़टकने दीजिए। इस सूबे के हिन्दी-प्रेमियों के लिए "महा माडरेटर" महोदय का यही शुभ सन्देश है। अतएव इस सूबे के हिन्दी-प्रेमियों से मेरा भी यही साग्रह अनुरोध है कि भूलकर भी इस निगोड़ी भाषा को आप न अपनायें। तुलसी के चार दल अपने हाथ में लेकर आप यह संकल्प करें कि आगे चलकर हम इस तरह की अक्षम्य भूल न करेंगे!

हिन्दी कठिन है, बहुत कठिन है, लेकिन उससे कहीं अधिक कठिन चार सौ प्रतिशत गुने अधिक कठिन है भूगोल और इतिहास के विषय। इन दोनों विषयों में परीक्षा देनेवाले विद्यार्थियों की संख्या क्रमशः ७१ सौ और ७५ सौ थी और उनमें से उत्तीर्ण होनेवाले विद्यार्थियों की संख्या क्रमशः ५५ सौ और ५५ सौ थी। लेकिन भूगोल में केवल दो विद्यार्थियों को परीक्षकों ने विशेष योग्यता के योग्य पाया। यही हाल इतिहास का भी है। विज्ञान, गणित और अँगरेज़ी के विषयों से इन दोनों विषयों की ऊपर के नक़शे में तुलना कीजिए। आपको पता चलेगा कि गणित और अँगरेज़ी में पास होनेवाले विद्यार्थियों की संख्या ५३ प्रतिशत है। इसके मुक़ाबिले में भूगोल में ७७ फ़ी सदी बालक पास हुए हैं और इतिहास में ७३ फ़ी सदी। यह सही है कि प्रतिशत पास होनेवाले विद्यार्थियों की संख्या गणित और अँगरेज़ी में कम थी, लेकिन उनमें जो उत्तीर्ण हुए उनमें से गणित में ५०३ थे, और अँगरेज़ी में ११ को विशेष योग्यता का पद प्राप्त हुआ। भूगोल और इतिहास में यद्यपि पास होनेवालों की प्रतिशत संख्या अँगरेज़ी और गणित के मुक़ाबिले में अधिक है, लेकिन विशेष योग्यता पानेवाले विद्यार्थी दो ही दो निकले। मालूम होता है कि हमारे विद्यार्थी गणित और अँगरेज़ी को पढ़ने में कठिनता का अनुभव करते हैं, इतिहास और भूगोल को आसानी से समझ लेते हैं, लेकिन बिरले ही ऐसे बालक निकलते हैं जो इन दो विषयों में इतना कमाल हासिल कर सकें जितना कमाल अँगरेज़ी या गणित में वे कर सकते हैं। परीक्षकों और "माडरेटर" महोदयों के सम्बन्ध में कुछ कहना तो ऐसा अपराध होगा जिसकी मुआफ़ी असम्भव है, अतएव उन्हें भी कोटिशः प्रणाम करके मैं इस लेख को समाप्त कर देना ही उचित समझता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूर्माञ्चल

लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र शर्मा

जिसकी शोभा को देख अचल हो गये अचल,
वह कूर्माञ्चल !
जिसके गौरव से गर्वोन्नत ये गिरि-पर्वत,
वह कूर्माञ्चल !
करते हैं जिसका कीर्तिगान नदि-नद महान्
वह कूर्माञ्चल !
निश्छल निर्झर-से नारी-नर जिसके सुंदर,
वह कूर्माञ्चल !
है कूर्म आदि आधार धरा का, आभूषण
पर कूर्माञ्चल !
है जिस पर स्थित नभ कूर्म-सदृश शाश्वत श्यामल,
वह कूर्माञ्चल !
मरकत-पर्वत, मोती की लड़ियों से निर्झर
रल-मल, झल-मल,
मणि-जटित मुकुट संयुक्तप्रान्त का ज्योतिकांत
वह कूर्माञ्चल !
नीले नभ की चञ्चल छाया जिसकी निर्मल
नदियों का जल,
जिसके पर्वत प्रतिबिम्बित ज्यों नभ के बादल
वह कूर्माञ्चल !
वह वसुन्धरा औ' स्वर्गलोक का लाल लाड़ला
कूर्माञ्चल !
भूस्वर्ग मुझे, तपसी को बना स्वर्ग-सीढ़ी
वह कूर्माञ्चल !
पर्वत पर तरु, तरु पर तरु, पर्वत पर पर्वत,
फिर नभ निर्मल !
ज्यों माँ के घुटनों पर चढ़ता जाता शिशुवत्,
वह कूर्माञ्चल !
लो, स्वयम् अब बना सिद्धराज स्थिर, शांत, अचल,
वह कूर्माञ्चल !
उन्नत ललाट तप-तेजस्वी, शिर हिम-किरीट,
नभ छत्र अटल !
देवाधिदेव, सुर, मुनि, किन्नर, मानव, बानर !
का कूर्माचल !
मानवी मधुरिमा की पूनों की सकल कलायें
जिसमें पल,
पार्वती, किन्नरी, परी, अप्सरा सहोदरा
खिलतीं उज्ज्वल !
साहित्य-कला का उद्गम वह सरिताओं का,
वह कूर्माञ्चल !

आतप के कुलिश-शरों से जब हो जाता है
वसंत घायल,
वह जिसके अञ्चल में आश्रय पा जी उठता,
वह कूर्माञ्चल !
जिसकी छाती पर सिर धर कर सुख-दुख की कह
रोते बादल,
आ जिसके वन में आहें नित भरती समीर,
वह कूर्माञ्चल !
जिसके सुन्दर विश्वासों से दृढ़ सरल चीड़
वह कूर्माञ्चल !
जिस देवभूमि में देवालय-से देवदारु
सुरभित शीतल,
औ' बुद्ध बाँज जिनमें जीवन की धूप-छाँह,
वह कूर्माञ्चल !
सुन्दर शुभ भावों से जिसके फल-फूल-विहग,
वह कूर्माञ्चल !
छिछली नदियों के तीर जहाँ छिड़ती मछुओं की
तान तरल,
अब भी जिसके देहातों में बजती वंशी
वह कूर्माञ्चल !
यों तो चिर-सुन्दर निखिल सृष्टि, पर सबसे सुन्दर
कूर्माञ्चल !
वह सुन्दर से सुन्दरतर है, सुन्दरतम है
वह कूर्माञ्चल !
हे कूर्माञ्चल ! तेरी सेवा को लालायित
हैं अचल अचल !
पक्षीकुल कलरव में गाते, सरितायें गुण गातीं
कल कल !
नित रजत-स्फार का हार बना निर्झर झरते
झल मल, झल मल !
घाटी बन गई क्षीर-सागर जब पूजा को
आये बादल !
आता वसन्त लाता पूजन को रुचिर फूल,
अति मधुमय फल !
बहती समीर, बहती तरु तरु के पत्रों से
वन्दना विकल !
ऋषि-मुनि अर्पित करते अपने पावन जीवन के
दुर्लभ पल !
अत्यन्त अकिञ्चन कवि क्या दे ? मैं प्रणतभाल,
हे कूर्माञ्चल !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन हिन्दी-गद्य का दृष्टान्त

लेखक, श्रीयुत कालिदास मुकर्जी बी० ए०, एम० आर० ए० एस० (लन्दन)

इस लेख के लेखक श्रीयुत मुकर्जी महोदय ने हिन्दी के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण खोज की है। उनका एक लेख हम 'सरस्वती' में छाप चुके हैं। यह दूसरा लेख अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें उन्होंने सन् १७७२ की हिन्दी के गद्य का रूप प्रकट किया है।

प्राचीन हिन्दी-पुस्तकों की खोज में एक अति प्राचीन हिन्दी-गद्य देखने को मिला है। उसका परिचय यहाँ दिया गया है। आरम्भ में मैं यह कह देना प्रासंगिक समझता हूँ कि आलोच्य पुस्तक की लिपि अति प्राञ्जल एवं जटिल है। उसके पढ़ने में बड़ी कठिनाई हुई है। प्रायेणतः अक्षरों के ऊपर मात्रा की प्रणाली से रचयिता द्वारा लिखित सूचित नहीं होते हैं। शब्द आपस में इस प्रकार मिला मिले हैं कि उनको अलग अलग करके पढ़ना बहुत कठिन है। शब्दों के ऊपर मात्रा या शीर्षक-रेखा इस प्रकार से दी गई है कि दो शब्दों को अलग अलग करना भी कठिन है। इसके सिवा कोई अक्षर बड़े और कोई बहुत छोटे हैं तथा कीड़ों की कृपा से वे ऐसी बिगड़ी हुई अवस्था में हैं कि एक एक शब्द के पीछे भी मुझे कुछ समय देना पड़ा है। इसके सिवा लिखते समय कुछ अक्षर छूट गये थे, जिन्हें रचयिता ने दूसरी बार कोष्ठकीय चिन्ह-द्वारा बीच में या ऊपर ला घुसेड़ा है यथा—मोहल्ला के स्थान पर उन्होंने मोल्ला लिखा था फिर "मोहल्ला" लिखा है (पृष्ठ ३)।

पुस्तक के टाइटिल पेज को जिस प्रकार से लिखा है नकल यह है—

"खुलासात हकीकात असलीयत का
यस्थान ॥१॥

॥ कत ॥

लाला सालिगराम चितगुप्त बंस श्री बा
मल दूसरे पुत्र हकीम सामलाल पौत्र ह
कीम मकखनलाल

॥ वो ॥

रजिशटरार यहतिमाम मंदिर श्री महारा
ज चितगुप्त जी ॥ वो ॥

किलरक अैट मिसनर बार नर साहेब बहा
दुर बारसटर के कौंसिली अदालत आ-
लिये हाईकोरट इलाहाबाद ब यह तिमा
म हकीम जवाहिर लाल मोहतम्मि मताबे ब मतबै
मसदर उल बरकात इलाहाबाद

॥ छापी गई ॥

प्रथम पृष्ठ से ३रे पृष्ठ तक रचयिता ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

श्री गणेशाय नमः

धन्य है वह ईश्वर जिसकी लीला अपरंपार है कि जसने अपनी शक्ति से संसार को सोभा दे रचना किया धन्य है ईश्वर जसने मनुष्यों को पांच तत्व से स्रिष्टि करके अंधकारि दूर करने के वास्ते ग्यान तत्व निर्वाण किया परंतु ईश्वर के गुणानुवाद अनंत है तिससे वहाँ तक हम नहीं प्राप्त हो सकते हैं क्योंकि बावन जो पुरुष हे बड़े ब्रिक्ष कें फल को कैसे तौड़ सके अब असल मतलब का बयान करता हे कि मेरे मित्रों ने कहा कि अपने वर्ण की उत्पन्य लिखिये कि कायस्थों का कोन वर्ण कोन आस्रम कोन गोत्र है परंतु गृहिस्तास्रम को पैस्रम से फुरसत कम रहती है तिसमें मित्रों का कहना अहोभाग्य मान कर बहुतसी पुस्तकें और दृष्टांत जानकर बुध्यमान पंडितों की संगति करके उनकी कृपा से मुख्य ततत्व जान कर जो जथार्थ है सो लिखा जैसा कि जो ग्यानवान पुरुष है सो शासत्र का सारांस ढुंढ़ते हैं जैसा कि अंगरेज बहादुर हरऐक पुराने वस्तु के मालूम करने की चाह करते हैं अब ईश्वर के चर्णरविंद अनुरागी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शालिग्राम अपना हाल अरज़ करता है कि मेरे बड़े बूढ़े दीवान राजा कन्नौज देश के रहे और जिस वक्त लड़ाई मुहम्मद ग़ोरी की हुई राजा जैचंद दीवान समेत क़तल हुये तिसमें दीवान का एक लड़का परमांनद नाम बंच गया वादशाह देहली इनको हकदार दीवानी जानकर राय का खिताब और जागीर दे करके कोडा जहनावाद में वसाया और छह पुश्त तक आराम से रहे और जिस समें नवाबशुजाउलदौला अवध वाले ने जागीर ज्वत कर लिया उस वक्तऔलाद राय परमांनंद के जुदा जुदा नवाब अमीर के हम राह हुये जैसा कि लाला माताप्रसाद और भाई उनके लाला अंवाप्रसाद लाठी मुहाल कानपूर वा दीवान राज वहादुर वग़ैरह नौवसता लखनउ वा मुनशी विहारी लाल पियरी वनारस पर मेरे पुरखा राय मोंहनलाल हमराह नवाव इसमाईल वेग खां वहादुर का रवखशीगरी में इलाहावाद में आये इस वंस में मेरे दादा हकीम मखनलाल हुये कि जिनका नाम जग्त में प्रकाशित है और जन्होंने कायस्थों के वर्ण के बावत पुसतक बनाई है तिनके बेटे हकीम श्यामलाल तिनका बेटा मैं शालिग्राम और जन्म भुववा वासना मेरा मोहल्ला वहादुरगंज सुभ अस्थान प्रयाग जी में है और मैं कायस्थ श्रीवासतवहूँ ईश्वर वा श्री महाराज चितगुप्त दवार माधवराम पंडित वेटे गंगाराम के साकिन मोहल्ला कीटगंज के प्रसाद से उरदू से हिंदी में उलथा किया"

रचयिता ने अपने ग्रंथका परिचय इस प्रकार से दिया है :—

".....दीवान देवानंद साहव राय कान्हजी सहाय साहव गौड़ लाला गिरधारी लाल साहव गौड़ लाला प्राग दत्त साहव मुनशी विंद्राबन साहव नायब नाज़िर मुंनशी रतनलाल साहव भटनागर मुनसरिम मत बै हकीम जवाहिरलाल साहव और दूसरे साहबान कि जिनकी अब गुंजाइश इस पोथी में बसब्ब तूलानी के नहीं हो सकती आयंदा असहाब बिरादरी उरदू और नागरी में इसकी रोनक़ देते रहेंगे और लाला मिटठूलाल जिमीदार हर रायपूर ने मसौदा साफ़ किया और लाला मिसरीलाल श्री सगसेना के इआनत से यह पुसतक छपी और कापी इस पुसतक की कुन्दनलाल ने कि जिसका तखल्लुस सैयार है और मुतवत्तिन बुलदेशाह जहाना बाद साकिन इलाहावाद है लिखा है अब कापी नवीस लिखे में असहाब बिरादरी के दस्त बसता अरज़ करता है परमेश्वर के कृपा से यह पोथी ऐसी बनी है कि गो कायस्थों के हिर्दे के नेत्र के वास्ते अंजन है च कि इस किताब कि सैर करके अपने धर्म कर्म के नेत्र को रोशन करैं और मोआफ़िक अमल करैं कियौंकि कोई बात ऐसी नहीं है कि इसमें न लिखी गई हो और अगर इनसाफ़ कीजिये इसके सैर से कानछा दोनों जगह का प्राप्त होता है दुन्यां व अक़बत और परमेस्वर के जनाव में आशीर्वा किताब बनाने वाले को दें कि जिसने इस तरह की पु हरऐक पोथियों से तलाश कर के बड़े मेहनत व मशक़ से बनाया है परमेस्वर के कृपा से यह पुसतक हो लोगों के सैर में रहै और मुस्तफीद हों मिती माघ अमावस को यह पुस्तक समाप्त हुई सुभमस्तु सं: १८ (पृष्ठ ५०-५२)

आलोच्य पुस्तक में एक ही शीर्षक में प्रयुक्त शब्दों को अलग अलग करके मैंने ऊपर दिखलाया कुछ शब्दों को अलग करने में त्रुटियाँ भी रह गई क्योंकि छोटे-बड़े विभिन्न प्रकार के विषम अक्षर साथ ही कीड़ों की असीम कृपा ने बहुत-सी कठिन ला उपस्थित की हैं, एवं पुस्तकरचयिता की हिन्दे अपरिसीम अनुभूति ने सचमुच ही लोहे के चने चबाने को दिये हैं। अब नीचे आलोच्य पुस्तक परिचय दिया जा रहा है—

पुस्तक की लम्बाई ८·७॥ तथा चौड़ाई ५·२॥ के लगभग है। पुस्तक में कुल ५२ पृष्ठ हैं। पृष्ठ चार रचयिता ने लिखा है—

"यह पुसतक तीन प्रकर्ण पर है प्रथम मूरखों संवाद दुतीयो दृशटांत त्रितीयो श्री महाराज जिन्ह जी की पूजा विधि"

आलोच्य पुस्तक में विरामादि चिह्नों का नाम-नि नहीं है, पर कहीं कहीं दो खड़ी लकीरें (॥) मिलती

मूर्खों का संवाद पृष्ठ ४ से १९ तक है। पृष्ठ बीचोंबीच बड़े बड़े अक्षरों में लिखा है—"मूर्खो संवाद" ॥ तीनों प्रकरण कई प्रश्न (प्रश्न) उत्तर तथा दृष्टान्तों में विभक्त हैं। 'प्रथम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मूर्खों का संवाद) में कुल १८ प्रशन (प्रश्न), १८ विवेक (उनमें कहीं कहीं "विवक" भी लिखा है) १८ उत्तर (उत्तर) हैं। द्वितीय प्रकरण १९वें पृष्ठ के नीचे से आरम्भ होता है। १९वें पृष्ठ के नीचे बड़े बड़े अक्षरों में—"दूसराप्रकर्ण ।। द्रिषटान्त"। लिखा हुआ है।

इस दूसरे प्रकरण के आरम्भ में (१९वें पृष्ठ में) संस्कृत का यह श्लोक लिखा हुआ है,

"शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्जातपो नागेन्द्रो विशिताङ्कुशेव समदो दण्डेन गोगर्दभो ।। व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम ।।

दूसरा प्रकरण ४२ वें पृष्ठ तक है। इसमें ३७ दृष्टांत हैं। ये "दृष्टांत शब्द" भी विभिन्न प्रकार से लिखे गये हैं, यथा—"द्रिष्टांत", दृष्टांत" आदि। इस प्रकरण में दो दोहे हैं। उसमें एक दोहा" "द्रिोहा.' लिखा हुआ है, वह यह है: —

"द्रिष्टांत / गोसाईं तुलसीदास ने रामायंण में लिखा है / द्रिोहा / ढोल गंवार सूद्र पसु नारी ।। / इन्है ताड़ना की अधिकारी ।। और अैसी कायस्थों की इज्जत नहीं है इस्से साफ़ ज़ाहिर है कि कायस्थ सूद्र नहीं हैं" (पृष्ठ ३०)

इसी प्रकरण में ४१वें पृष्ठ में "इस्त्रीयों के वावत द्रिष्टांत ।।" / है, वह यह है—

"पोथियों से सावित है कि पेशतर इसत्रियां पढतीं लिखतीं थीं और सीनें परोहने का हुनर सीखतीं थीं जैसा कि श्री सीताजी व द्रोपदी जी व दूसरी रानियां महारानियां व ग्रिहिस्त पढ़ें लिखें थीं तो अब हम क्यों अपने इसत्रियों को जो हमारा अर्धंगी है और आधे पाप पुन्य की साथी हैं उनको हुनर और इलम से विमुख रक्खें इस्से हम अपने लड़कीयों को तालीम नागरी लिखने व पढ़ने की देवैं कि जब उनके खाविंद दूर रहैं तो वै अपने दिल का हाल लिख भेजैं और पढ़ लेवैं और जिस वक्त उनके खाविंद खर्च न भेज सकें तो अपने दस्तकारी से तकलीफ़ न उठावें बुध्यमान इसै अंगरीजी मता से न समझें।"

उपर्युक्त 'अंगरीजी' शब्द पहिले 'अंगरेजी' लिखा गया था फिर 'रे' के 'ए' की मात्रा को 'री' बनाया है अथवा "अंगरीजी"।

तीसरा प्रकरण (पूजा-विधि) पृष्ठ ४२ से ४९ तक है, पृष्ठ ५० से ५२ तक ग्रंथपरिचय है, जो पहले उद्धृत किया जा चुका है। पृष्ठ ५२ के बीचोंबीच "कवित्त बसंत" इस प्रकार से दिया गया है—

"कवित्त बसंत

आयो रितु बसंत द्रुम डार सब हरे भये
तामें नौ पललौ मानों माड़ो छवायो री ।।
आमन के बृक्षन पर कोकिला जो कुहुक रही
अबछरान मानो गीत मंगल को गायो री ।।
टेसू के फूलन के जोड़े बसंती बने
मौरन की सोभा सिरमौर होहायो री ।
कुन्दन लाल फूल सब बराती अलबेले बने
रितु बसंत दुलही मदन दूलह बन आयो री ।।
आयो रितु बसंत हरे पल्लौ भये
द्रुमन बीच उड़त पराग रितु आगम जनायो री ।।
आमन के मौरन की सुगंध चहूं ओर छाई
कोकिला कलापो कुहुक काम को जगायो री ।।
फूल रहे गेंदा गुलाब बेला बागन में
चंचरीक गुंजत टेसू कान्ह दरसायो री ।।
कुन्दनलाल राधे प्यारी सखिनन से सकुच कहत
आयो बसंत रितु मोहन न आयो री ।।

ये पद्य भी किसी रीति के अनुसार नहीं लिखे गये हैं। एक ही लकीर में पाँच सात शब्द जुड़े हुए हैं, एवं विरामादि कोई चिह्न नहीं है। जहाँ दो चरण मिलते हैं, वहाँ दो खड़ी लकीरें पड़ी हुई हैं। अक्षर एक-दूसरे से जुड़े हुए एवं छोटे-बड़े हैं। 'कुन्दनलाल' शब्द को सिर्फ़ 'कुन्दनला' लिखकर छोड़ दिया गया था। 'ल' बाद में सांकेतिक चिह्न सूचित करके बैठाला गया है। कबित्तों को पढ़ने की सहूलियत के विचार से मैंने उन्हें उपर्युक्त ढंग से लिखा है।

उपर्युक्त दृष्टान्तों से सम्भवतः पाठक पुस्तक की भाषा का कुछ कुछ आभास पा जायँगे। प्रथम प्रकरण से दो उदाहरण और लीजिए—

"प्रशन

मूरुख कहते हैं कि वेद में चार वर्ण हैं पाँचवां नहीं इसलिए पांचवें वर्ण कायस्थ नहीं हो सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेक

वेद में सेवाय ब्रह्मग्यान के और कुछ ज़िकिर नहीं है

उत्तर

चारों वर्ण का ज़िकिर पुराणों में है और पांचवें वर्ण कायस्थ का शिवजी महाराज के तंत्रों में है" (पृष्ठ १२)

"प्रशन

और कभी मूर्ख कहते हैं कि कायस्थ सूद्र के राजा हैं

विवेक

जब किसी वर्ण में राजा प्रजा नहीं है तो सूद्र में क्योंकर हो सकते हैं

उत्तर

पंडित और बुधिमान सिवाय शासत्र के वचन के अैसी वाहियात बनाई बातों पर द्रिश्ट नही करते" (पृष्ठ १४)

आलोच्य पुस्तक में हिज्जे का तो गला दबाया ही गया है, साथ ही पृष्ठों की संख्याओं की भी वही दुर्दशा हुई है। एक से आठ पृष्ठ तो क्रमवार हैं, परन्तु आठवें पृष्ठ के बाद सहसा ग्यारहवाँ पृष्ठ टपक पड़ता है, बारहवें पृष्ठ के बाद क्रमशः नवाँ और दसवाँ पृष्ठ है, तदुपरान्त तेरहवें पृष्ठ से अन्त तक ठीक है। सम्भवतः भूल से ऐसा हो गया हो। पुस्तक के अन्त में उर्दू में है, जो हिन्दी अक्षरों में यह है--

खुलासा तहक़ीक़ात कायस्थान
मोअल्लिफ़
लाला सालिगराम कायस्त सिरी बास्तव दूसरे
खुल्फ़

हकीम श्यामलाल साहब बिन हकीम मख्खनलाल व रजिस्टरार एहतेमाम मन्दिर सिरी महाराज चित्त गुप्त जी सदा सहाय व क्लर्क एट मिस्तर वारनर साहब बहादुर बारिस्टर व कौन्सिली अदालत आलिया हाईकोर्ट

शमल बर शस फ़स्ल

फ़स्ल अव्वल सवालात मय जवाबात फ़स्ल दोम दर नज़ायर फ़स्ल सोम दर ज़िक्र रोज़गार कायस्थान बअहेद राजगान व पादशाहान फ़स्ल चहारुम बाबत तखफ़ीफ़ खर्च शादी फ़स्ल पंजुम बाबत लड़कियाँ फ़स्ल शिशुम दायरी कायस्त बर्न की मय ध्यान निबार व मंत्र वग़ैरह मय तरीक़ा पूजा सिरीमहाराज चित्तगुप्त पोथी हज़ा बएहतेमाम हकीम जवाहरलाल मोहतमिम मुताबे बमतबा मसदिरा बरकात इलाहाबाद छापी गई।

आलोच्य पुस्तक की भाषा बोल-चाल की खड़ी बोली है, जिसका शुद्ध प्रयोग रचयिता ने अपने वंश-परिचय में किया है। साथ ही फ़ारसी-तुर्की शब्दों से भरी हुई उर्दू भाषा में रचयिता ने अपना पुस्तक-परिचय दिया है। इससे हम संवत् १८२८ (सन् १७७१) के आस-पास की बोलचाल की भाषा का आभास पा सकते हैं, और यह भी कह सकते हैं कि उस समय सम्भवतः दो प्रकार की भाषा प्रयाग के आस-पास प्रचलित थी।—एक संस्कृत-गर्भित खड़ी बोली और दूसरी फ़ारसी-तुर्की-युक्त उर्दू। शुद्ध खड़ी बोली के लिए यह उदाहरण हो सकता है—

"..... धन्य है ईश्वर जसने मनुष्यों को पंच तत्व से स्रिष्टि करके अंधकारि दूर करने के वास्ते एक तत्व निर्वाण किया परन्तु ईश्वर के गुणनुवाद अनन्त है तिससे वहां तक हम नहीं प्राप्त हो सकते हैं....

परन्तु इस उदाहरण में हम साधारण बोलचाल में प्रयुक्त विदेशी शब्द भी पाते हैं, यथा--वास्ते, अन्त, मतलब आदि। उर्दू-भाषा के उदाहरण के लिए पाठक पूर्वोक्त पुस्तक-परिचय देखिए।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में हमें प्राचीन गद्य का दृष्टांत बहुत ही थोड़ा मिलता है, उसमें गोकुलनाथ जी कृत संकलित "वैष्णवों की वार्ता" उल्लेखनीय है, परन्तु वह व्रजभाषा-गद्य का दृष्टान्त है। खड़ी बोली में हमें जो कुछ गद्य प्राप्त है वह विशेषतः भारतेन्दु जी के समय से एवं उनके पूर्व गद्य-साहित्य बहुत ही परिमित क्षेत्र में है, अतएव कुछ नहीं तो प्राचीन हिन्दी-गद्य-साहित्य में अपनी अपरिमार्जित भाषा में आलोच्य पुस्तक कुछ नई सामग्री ला जुटाती है। इसी लिए प्राचीन हिन्दी गद्य-साहित्य में नई सामग्री ला उपस्थित कर प्राचीन हिन्दी-गद्य-साहित्य का इतिहास अल्पतः परिपुष्ट करने के हेतु मेरी धारणा तो यह है कि आलोच्य पुस्तक कुछ महत्त्व अवश्य रखती है। यदि इस पुस्तक की भाषा परिमार्जित हुई होती तो सदल मिश्र एवं इंशाअल्ला खाँ के अतिरिक्त हम शालिग्राम को ही आधुनिक हिन्दी भाषा (खड़ी-बोली-गद्य) का जन्मदाता कह सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्मरण और प्रस्ताव

लेखक, श्रीयुत गोपालराम गहमरी

इस वर्ष अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन सारे भारत में घूमकर ठीक उन्तीस वर्ष के बाद उसी काशी पुरी में होने जा रहा है——होने जा रहा है उसी माननीया नागरी-प्रचारिणी सभा के मैदान में, जहाँ सन् १९१० के दशहरे पर उसका जन्म हुआ था। इस तरह हिन्दी-साहित्य-जगत् भी साबित कर रहा है कि पृथ्वी गोल है। यहीं के माननीय राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की बनाई पाठ्य-पुस्तक में पढ़ा था कि बिना दाहने-बायें मुड़े आदमी सीधा चला जाय तो चलते चलते वहाँ पहुँच जायगा जहाँ से चला था। राजा शिवप्रसाद एक समय इस प्रान्त के शिक्षा-विभाग में एक अधिकार-प्राप्त कर्मचारी थे। मैं उनके समय में ही गहमर-स्कूल में पढ़ता था। एक बार आप गहमर-स्कूल देखने गये थे तभी मैंने उनका दर्शन भी किया था। आपकी लिखी सब विषयों की पुस्तकें एक दिन इस प्रान्त के स्कूलों में पढ़ाई जाती थीं। हम लोगों ने स्कूलों में उनकी बनाई हुई वर्णमाला, बालबोध, विद्यांकुर आदि पुस्तकें पढ़ी थीं। एक जगह उन्होंने हिन्दुओं की रीति-रवाज पर ताने से लिखा था—— "शकरकन्द खाय स्वर्ग में जाय। शलजम चखै नरक में पड़े।" यह उस समय की बात है जब इस देश में हिन्दू शलजम, गोभी, आलू आदि की तरकारी अपवित्र समझते थे। उन दिनों ये चीजें इस देश में नई नई आई थीं। एक दिन वह था, एक दिन आज है कि——इन तरकारियों का अब घर-घर रवाज हो गया है। यहाँ मैं कुछ बातें प्रसङ्ग के बाहर कह गया। संस्मरण लिखने बैठा था हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का। पाठक क्षमा करेंगे।

साहित्य-सम्मेलन जब पहले-पहल इस नगर में होनेवाला था तब दशहरे में उसका अधिवेशन करने के कारण कलकत्ते के हिन्दी-साहित्यसेवी बहुत नाराज़ हो गये थे। उनमें स्वर्गीय बाबू अमृतलाल चक्रवर्ती ने 'भारत-मित्र' में बड़ा विरोध किया था। और उनके सुर में सुर मिलाकर और भी कई माननीय हिन्दी-प्रेमियों ने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन दशहरे पर होना अविधेय कहकर बड़ा आन्दोलन खड़ा कर दिया था। उन विरोधियों का कहना था कि दशहरा सरस्वती-शयन का समय है। उस अवसर पर साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन बिलकुल अनुचित है। कितने ही विरोधी उस अधिवेशन के निर्वाचित सभापति पूज्य पंडित मदनमोहन मालवीय के द्वार पर भी फ़रियाद लेकर गये थे कि अधिवेशन की तिथि दिसम्बर में कर दी जाय, ताकि सम्मेलन और प्रयाग की प्रदर्शनी दोनों ही देखने का सुभीता लोगों को मिले। विरोधपक्ष का मूल आधार यही था कि सरस्वती-शयन के अवसर पर सम्मेलन करके माता सरस्वती के विश्राम में विघ्न डालना अनुचित है। लेकिन सभापति ने अपने मौखिक भाषण में इन लोगों का एक ही वाक्य में समाधान कर दिया था कि जब संकट का समय आता है तब शयन के समय माता को जगाना उसकी सन्तान के लिए अविधेय या अनुचित हर्गिज़ नहीं है।

सुनते हैं, उन्हीं माननीय सभापति महोदय की प्रेरणा से इस बार सम्मेलन को काशी के लिए निमंत्रण दिया गया था। भगवान् कृपाकर मालवीय जी महाराज को शीघ्र आरोग्य करके सम्मेलन के अवसर से पहले ही पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ करा दें, साथ ही माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन जी को नीरोग करें, जिनके सदुद्योग से हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का प्रधान कार्य्यालय प्रयाग निश्चित हुआ था। दोनों महोदय अधिवेशन में पधारकर हिन्दी-प्रेमियों का उद्देश्य पूर्ण करने में सहायक हों।

इस अवसर पर यह कहते हर्ष होता है कि बहुत वर्षों के बाद हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का गत वर्ष का अधिवेशन सफल और सार्थक अधिवेशन हुआ है। कई वर्षों के बाद हिन्दी-प्रेमियों ने हिन्दी के एक पराक्रमी पुरुष को साहित्य-सम्मेलन का सभापति निर्वाचित करके परमोचित कार्य किया है। कुछ वर्षों से राजनैतिक और धनशाली सज्जनों को किसी अन्य लालसा से सभापति के सिंहासन पर बिठाकर जो वस्तुतः साहित्य-सम्मेलन अपने निश्चित मार्ग से विचलित-सा हो रहा था, गत वर्ष उसने मानो अपना कार्य सुचारु रूप से सञ्चालन करके यथानाम सराहनीय कार्य-सम्पादन किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ ही मैं सभापति महाशय की निर्भीक गर्जना से निष्पक्ष सम्मति देने के कारण सराहना करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने बेलाग बात कहकर अनेक ऐसे लोगों की करनी पर पानी फेर दिया है जो हिन्दी को राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर बिठाने का प्रलोभन देकर उसका गला घोंटने में कसर नहीं करते थे। इस समय सुधारकों और आविष्कारकों की तूती बोलती है और दुःख की बात तो यह है कि हिन्दी-भाषा और लिपि पर ही इन सुधारकों और इन्वेंटरों की अधिक कृपा हुआ करती है। जैसे हिन्दी-भाषा में लोग सुधार करने को उतावले हो रहे हैं, वैसे ही हिन्दी-लिपि के सुधार पर भी कुछ सज्जन कमर कसकर तैयार हो गये हैं। कुछ प्रेस के टाइप बनानेवालों की सुविधा बताकर, कुछ लोग हिन्दी-लिपि सीखनेवालों के सुभीते की गाथा गाकर हिन्दी-लिपि का संशोधन करने के लिए जी-जान से कोशिश कर रहे हैं। कुछ लोगों पर इनका जादू चल भी गया है, कुछ हिन्दी-समाचार-पत्र भी प्रयोग को 'पयोग' 'ईरान' को अीरान', चतुर्थ 'चतुरथ' आदि लिखने का व्यर्थ परिश्रम और विफल प्रयास करते दिखाई देने लगे हैं। लेकिन अन्य लिपियों, जैसे बँगला, गुजराती आदि के लिए किसी सुधारक को हिम्मत नहीं होती, न कोई क्रान्ति क्षुधा आदि लिपियों के सुधार में हाथ लगाता है। बेचारी हिन्दी ही पर हाथ साफ़ करने को सबका मन दौड़ पड़ता है।

जैसे गत अधिवेशन में सभापति जी ने हिन्दी-भाषा के सुधारकों की आँखों में सलाई फेर दी है, वैसे ही इन लिपि-बिगाड़कों के लिए भी अब की सम्मेलन में कुछ इलाज कर देना उचित जान पड़ता है।

उसके प्रति--

लेखक, श्रीयुत चन्द्रप्रकाश वर्मा 'चन्द्र'

वह काली चूनरवाली थी!

था सहज सजीला गोरा तन,
गति में था एक निरालापन;
थी नई चलन, थी नई फबन,
हर नाज़ नया, अन्दाज़ नया—
उसकी हर अदा निराली थी!

यह माना वह अनजानी थी,
परिचय लेना नादानी थी;
इतना जाना दीवानी थी,
क्या जाने, कौन कन्हैया की—
वह मीरा थी, मतवाली थी!

उसको आदर की चाह न थी,
अपमानों की परवाह न थी;
उसके गौरव की थाह न थी,
वह अमा-आवरण से लिपटी—
प्रिय पूनों की उजियाली थी।

सब दौड़े उसके पास विवश,
पा सका न कोई सरस परस;
बँट सका न उसके उर का रस,
रह गये झुके के झुके ओंठ—
प्याली खाली की खाली थी।

नीचे थी पर थी ऊपर की,
तृण हो महिमा थी भूधर की;
वह प्रतिध्वनि थी अक्षय स्वर की,
वह लीन हुई फिर अम्बर में—
ऊषा उसकी पद-लाली थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोलैंड और महायुद्ध

लेखक, उमेशचन्द्र देव, विद्या-वाचस्पति

इस बार अभागा पोलैंड योरपीय महायुद्ध का कारण बना है। समस्त संसार व्याकुलता और भय से इस युद्ध के परिणाम की प्रतीक्षा कर रहा है। कोई नहीं जानता कि पोलैंड अपने कुछ अंग खोकर इस युद्धरूपी राहु के मुख से निकल आयेगा या इस बार उसकी सत्ता ही संसार के नक़्शे से मिट जायगी। दोनों ही बातें सम्भव हैं और अपनी अनुकूल परिस्थितियों की बाट जोह रही हैं।

पोलैंड का इस प्रकार मौत के मुँह में जाना उसके इतिहास के लिए कोई अनोखी या नई घटना नहीं है। उसका तो जन्म और लालेन-पालन ही संघर्षपूर्ण वातावरण में हुआ है। आरम्भ से ही उसे योरप के महा-शक्तिशाली राष्ट्रों का बलि का बकरा बनकर रहना पड़ा है और न जाने कितनी बार वह काटा-छाँटा और कुचला-मसला गया है। एक-दो बार तो परिस्थिति ऐसी भी हो गई थी कि राजनीतिज्ञों को विश्वास हो गया था कि अब पोलैंड केवल योरप के इतिहास के पत्रों में ही रह जायगा, भूगोलों या नक़्शों में नहीं? पर पोल लोगों के अटल देश-प्रेम और स्वतन्त्रतानुराग ने उसे बार बार मर जाने पर भी जिला लिया। सम्भवतः पृथ्वी का कोई देश ऐसा न होगा जिसने जीवन और मृत्यु का स्वप्न इतनी बार देखा हो!

योरप के अन्य देशों की भाँति पोलैंड की सभ्यता का इतिहास भी ईसवी सन् से पीछे नहीं जाता। दसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में कुछ जातियाँ विश्चुला, वार्टा और ओडर नदियों की तराई में आकर बस गई थीं। इन नदियों की तराई उपजाऊ थी, अतएव वह खेती के लिए बहुत ही उपयुक्त थी। प्रथम मीज़स्को ने इन जातियों का, जो स्लोवन के नाम से प्रसिद्ध थीं, संगठन किया और स्वयं उनका राजा बन गया। इसी के समय में ईसाई-धर्म का प्रचार पोलैंड में पहले-पहल हुआ था, जिसकी राजा-प्रजा ने साथ-साथ दीक्षा ली थी। इसके बाद 'बोले सलास' वहाँ का राजा हुआ। इसी के उत्तराधिकारियों के समय में सिली-शिया और पोमेरेनिया प्रदेश भी पोलैंड के साथ जुड़ गये। इसके बाद से ही पोलैंड पर पड़ोसी राज्यों ने आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। ये आक्रमण ११३८ से १३०५ तक बराबर होते रहे और इनसे पोलैंड की शक्ति का बहुत ह्रास हुआ। सन् १३०६ में प्रथम ल्वेडिस-वस यहाँ के सिंहासन पर बैठा और सन् १३३३ तक राज्य करता रहा। इसके बाद १३३३ से १३७० तक कासिमिर (तृतीय) का राज्य रहा। इन दोनों राजाओं के समय में पोलैंड ने बड़ी उन्नति की और उसकी योरप में धाक जम गई। पर कासिमिर (चतुर्थ) के राज्यकाल (१४४७–९२) में पोलैंड का तुर्कों के साथ संघर्ष चल पड़ा। इससे पोलैंड की उन्नति कुछ समय के लिए रुक गई। १५०६ से १५४८ तक वहाँ सिगिसमंड का राज्य रहा। इस राजा ने पोलैंड को फिर उन्नत कर दिया और वहाँ के ख़ज़ाने व सेना की अवस्था बहुत अच्छी हो गई। इस प्रकार १३८६ से १५७२ तक का समय

पोलैंड के इतिहास का स्वर्ण-युग

कहा जाता है। इन दिनों पोलैंड उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया था। पोलैंड की सब जातियों और फ़िरक़ों ने संगठित होकर उसे एक मज़बूत राष्ट्र बना दिया था। राजा को बहुमत के आधार पर वे लोग इसी समय से चुनने लगे थे और इस प्रकार पोलैंड ने ही सबसे प्रथम संसार को 'पार्लियामेंटरी हुकूमत' का तरीक़ा सिखलाया था। इस राज्य-व्यवस्था-प्रणाली से पोलैंड की बड़ी उन्नति हुई, यहाँ तक कि सिग्स-मंड (तृतीय) के राज्यकाल (सन् १५८७) तक पहुँचते-पहुँचते उसकी गणना मध्य-योरप के अत्यन्त शक्तिशाली देशों में होने लगी थी और उससे लोहा लेने का साहस कोई देश न कर सकता था। इसी समय के बाद से पोलैंड के

पतन का आरम्भ

हुआ। रूस और स्वीडन ने १६४८ से इस पर हमले करने आरम्भ किये, जो लगातार १६६७ तक होते रहे। इन हमलों ने पोलैंड को बहुत कमज़ोर कर दिया। सन् १६९७ में अगस्टस (तृतीय) पोलैंड की गद्दी पर बैठा और उसने डेनमार्क तथा रूस की सलाह से स्वीडन पर हमला कर दिया। इस युद्ध में पोलैंड की बड़ी हानि हुई, क्योंकि रूसियों, स्वीडन-निवासियों व सेक्सनों ने उसे जी भर कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

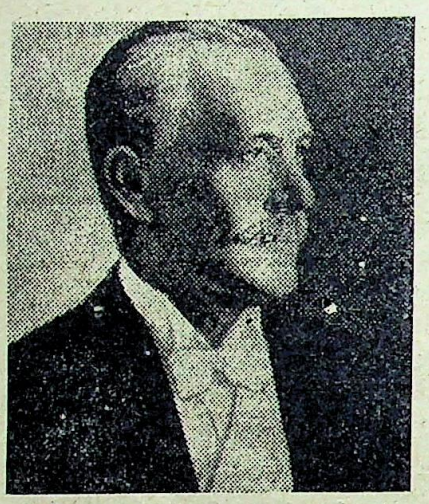

[पोलैंड के राष्ट्रपति एम० मास्की]

लूटा और तबाह कर दिया। इसके बाद आगस्टस (तृतीय) (१७३३-६३) और स्टेनिसलास (द्वितीय) के समय में इसकी और भी अवनति हुई, जिसका कारण यह था कि पोलैंड-वासियों में एक जाति ग़ैर-ईसाई भी थी, इस जाति ने समय पाकर रूस के वारसा-स्थित मन्त्री की प्रेरणा से एक बड़ा भयानक आन्दोलन स्टेनिसलास को अपदस्थ करने के लिए चलाया। इसी जाति के कुछ विद्रोही एक डेपूटेशन बनाकर सेंटपीटर्सबर्ग पहुँचे और उन्होंने रूस की तत्कालीन सम्राज्ञी ज़ारीना कैथेरिन से प्रार्थना की कि वह अपने वारसा-स्थित प्रतिनिधि को पोलैंड की शासन-व्यवस्था निर्धारित करने की आज्ञा प्रदान कर दे। महारानी तो यह चाहती ही थीं, अतः उन्होंने तुरन्त इसका प्रबन्ध करने का निश्चय कर लिया। इधर रूस के प्रतिद्वन्द्वियों ने, जिनमें जर्मनी और आस्ट्रिया मुख्य थे, जब यह देखा कि रूस पोलैंड के योग से अधिक शक्तिशाली बनने जा रहा है तब उन्होंने स्वयं भी पोलैंड में हिस्सा लेने का निश्चय किया। फल यह हुआ कि इन तीनों शक्तिशाली राष्ट्रों ने मिलकर पोलैंड का बहुत-सा भाग हड़पकर उसे ३ भागों में बाँट लिया। फ़रवरी १७७२ में पीटर्सबर्ग में प्रथम सन्धिपत्र इसी सम्बन्ध का लिखा गया, जिस पर रूस और जर्मनी ने हस्ताक्षर किये। उसी वर्ष अगस्त में एक दूसरा सन्धि-पत्र भी लिखा गया, जिसमें आस्ट्रिया भी हिस्सेदार मान लिया गया। इस बाँट-चूँट में पोलैंड को अपने क्षेत्रफल के $\frac{1}{3}$ भाग और आबादी के $\frac{1}{4}$ भाग से हाथ धोना पड़ा।

इतने पर भी पोलैंड-निवासी हतोत्साह नहीं हुए। वे अपने देश को संगठित और स्वतन्त्र करने का बराबर प्रयत्न करते रहे। रूस आदि ने पोलैंड में शासन के लिए जो व्यवस्था जारी की थी उससे पोलैंड का काफ़ी लाभ हुआ; उसमें आर्थिक मज़बूती आ गई और उसे अपने साधनों के प्रयोग व विस्तार का अच्छा अवसर मिल गया। कला और साहित्य की भी अच्छी वृद्धि हुई। कुछ संगठित हो जाने पर पोल-निवासियों ने फिर विद्रोह का सहारा लिया। कोसियास्को इनका नेता बना, पर इस विद्रोह से विशेष लाभ न हुआ। जर्मनी, रूस और आस्ट्रिया ने हज़ार प्रयत्न करने पर भी पोलैंड को फूलने-फलने न दिया। इस विद्रोह के बाद उन्होंने फिर से पोलैंड का अंग-भंग किया और अपने अपने मन के अनुसार उसके भाग करके उसे आपस में बाँट लिया। जर्मनी से मिलकर पोलैंड ने फिर कुछ शक्ति का संचय किया और कुछ ही काल पश्चात् एक बार फिर विद्रोह किया। इस विद्रोह की शक्ति बहुत अल्प थी, और यह ३ मई १७९१ को हुआ था। इस विद्रोह का पोलैंड की व्यवस्था पर कुछ असर पड़ा और वहाँ पार्लियामेंटरी शासन के स्थान पर परम्परागत राज्य-प्रणाली की एक बार फिर स्थापना हो गई। पर ज़ारीना इससे कुछ चौंकी, क्योंकि वे नहीं चाहती थीं कि पोलैंड में इस प्रकार की शासन-प्रणाली स्थापित हो। फलतः उनके इशारे से पोलैंड के कुछ विद्रोही भागकर फिर सेंटपीटर्सबर्ग पहुँचे और उन्होंने ज़ारीना के साथ एक गुप्त समझौता किया। इसी समझौते के आधार पर ज़ारीना ने एक विशाल सेना पोलैंड की नई व्यवस्था को पलटने के लिए भेजी। वहाँ राज्य-परिषद् तोड़ दी गई और रूसी लोग पोलैंड के पूर्वी भाग में आकर भर गये। रूस की इस कार्यवाही से जर्मनी को फिर भय हुआ कि कहीं ज़ारीना समूचे पोलैंड को अपने अधिकार में न कर ले, अतः उसने सन् १७९३ में एक सन्धि रूस के साथ और की। इस सन्धि में पोलैंड का बँटवारा हुआ और उसका विस्तार पहले का $\frac{1}{3}$ मात्र रह गया।

इस प्रकार कटने-छँटने और टूटने-फटने पर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासियों ने साहस न छोड़ा और कोसियास्को के नेतृत्व में पुनः अपना संगठन करने लगे। फिर विद्रोह हुआ और रूसी सेनाओं ने फिर उन्हें बुरी तरह कुचल दिया। दूसरी बार आक्टोबर १७९६ में पोलैंड का फिर विभाजन किया गया; इस बँटवारे में पश्चिमी गेलेशिया और दक्षिणी मेसोविया आस्ट्रिया को मिले; पोडलेचिया व मोसोविया जर्मनी के भाग में आया, शेष सब भाग पर रूस ने अधिकार कर लिया।

इसके बाद पोलैंड-वासियों ने दो बार सन् १८३० और १८६३ में अपने देश को स्वाधीन करने का फिर प्रयत्न किया, पर वे असफल रहे। सन् १८६३ से तो पोलैंड के राष्ट्रीय इतिहास का पृष्ठ सदा के लिए बन्द-सा हो गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् १७९६ के अन्तिम बँटवारे के बाद से **नक़्शे** में से **पोलैंड** का नाम-निशान तक मिट गया था; फिर भी पोलों के हृदयों में देश-प्रेम और स्वातन्त्र्य-भावना जीवित थी और वे अपने देश को स्वतन्त्र करने का स्वप्न सदैव देखते रहे। गत महायुद्ध में जर्मनी और रूस के एक-दूसरे के विरुद्ध लड़ने के कारण उनके युद्ध का क्षेत्र प्रधानतः पोलैंड ही रहा। यहाँ लगभग २०,००,००० भवन जलाये गये, १,१०,००,००० एकड़ भूमि बेकार हो गई, ६,००,००० एकड़ जंगल नष्ट हो गये। महासमर के अन्त में आस्ट्रो-जर्मन सेनाओं ने ७,५०० पुल और ९५० रेलवे-स्टेशन नष्ट कर दिये; धन और जन की जो हानि हुई उसका तो हिसाब लगाना ही कठिन है।

पोलैंड का स्वतन्त्रता का स्वप्न सन् १९१९ में वार्साई की सन्धि के बाद सफल हुआ। फिर स्वतन्त्र राष्ट्र की भाँति उसके दर्शन योरप के नक़्शे में हुए।

पोलैंड का आधुनिक रूप

वार्साई की सन्धि से निश्चित हुआ। इसमें उसकी पश्चिमी सीमा समुद्र से अपर सिलेसिया तक निर्धारित की गई थी, पर इसी पूर्वी सीमा का निर्धारण सन् १९२१ की रीगा की सन्धि के बाद हुआ था। वस्तुतः इसी सन्धि और सीमा-निर्धारण ने पोलैंड की भावी विपत्ति के बीज बो दिये थे, जो अब आकर प्रस्फुटित हो रहे हैं। बात यह थी कि अपने गत कटु अनुभव के कारण

[पोलैंड के प्रधान सेनापति मार्शल स्मिगली रिट्ज़]

पोलैंड यह चाहता था कि रूस की पश्चिमी सीमा लिथुआनिया से मिली न रहे, क्योंकि ऐसा होने में उसे रूस से सदैव खतरा बना रह सकता था। पर इस सीमा-निर्धारण में कुछ ऐसी अल्प-संख्यक जातियाँ पोलैंड के अधिकार में आ गईं, जिनके प्रश्न को लेकर लिथुआनिया, ज़ेकोस्लोवेकिया और जर्मनी के साथ उसका रोज़ झगड़ा होता रहा।

आधुनिक पोलैंड की शासन-व्यवस्था

का निर्माण भी गत महायुद्ध के बाद हुआ था। उस समय वहाँ एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की गई थी, जिसके प्रथम प्रेसीडेंट पिलसुदस्की थे। १९२२ में इस सभा का निर्वाचन दुबारा हुआ और पिलसुदस्की उससे पृथक् हो गये। पर सन् १९२६ में वे फिर राजनीति में आ गये और उन्होंने सरकारी दफ़्तरों पर अधिकार कर लिया। पार्लियामेंट ने उन्हें फिर से प्रेसीडेंट बनाना चाहा, पर उन्होंने स्वयं प्रेसीडेंट-पद अस्वीकार करते हुए अपने सहायक मासिकी को प्रेसीडेण्ट चुनवा दिया। वे स्वयं युद्ध-मन्त्री बने। सन् १९३२ में उनका देहान्त हो गया और उनके स्थान पर रेदज़ स्मिगली युद्ध-सचिव नियुक्त हुए। इस प्रकार पोलैंड का नया विकास कुल २० साल का है। पर इस समय में ही पोलैंड ने काफ़ी उन्नति कर ली। वहाँ आरम्भिक शिक्षा अनिवार्य और उच्च शिक्षा मुफ़्त दी जाने लगी। सन् १९३६ की गणना के अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

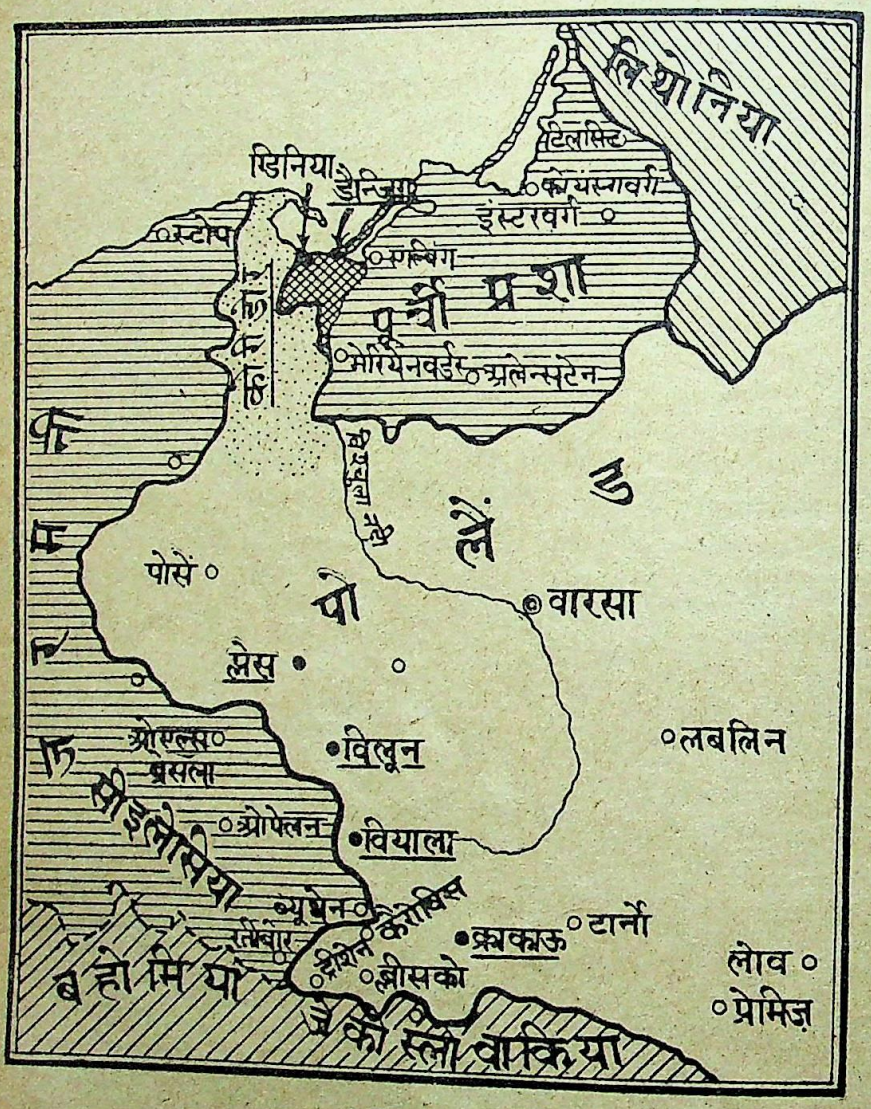

उसकी जनसंख्या ३,३८,२३,००० और क्षेत्रफल १,५०,०५२ वर्गमील था। इसका प्रधान उद्यम कृषि है। कोयले की खानें खोदने, कपड़ा बुनने, धातुओं को साफ़ करने तथा नेफ़्थलीन बनाने और तेल साफ़ करने के काम भी वहाँ होते हैं। उसका प्रधान व्यापार जर्मनी के साथ था। पोलैंड अपने बुद्धिबल के लिए संसार में सदा प्रसिद्ध रहा है। कोपर्नीकस जैसे ज्योतिषियों, पुलास्की जैसे क्रान्ति-संचालकों, चोपिन जैसे संगीताचार्यों तथा अन्यान्य अनेक अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वानों को जन्म देने का श्रेय इसी देश को प्राप्त है। इस देश की आर्थिक अवस्था सदैव खराब रही। इस २० वर्ष के अवसर में उसे सुधारने का भी काफ़ी अवकाश नहीं मिल सका। पोल
की समस्या के साथ

डैंज़िग और कोरिडर

का भी सम्बन्ध है। हम ऊपर
चुके हैं कि रूस जर्मनी से
कर किस प्रकार पोलैंड को
अपने अधिकार में करता
है। इस बार भी यही हुआ।
हिटलर को निश्चय था कि
रूस से सन्धि किये पोलैंड पर
चलाना सम्भव और उचित
है, इसी लिए उसने रूस के
सन्धि करने के बाद ही
सितम्बर को डैंज़िग पर
कर दिया। डैंज़िग बाल्टिक
का एक प्रमुख बन्दरगाह है
पोलैंड की मुख्य नदी विस्चुला
मुहाने पर है। पोलैंड के
का यही मुख्य द्वार है। हम
देख चुके हैं कि गत् महायुद्ध
पूर्व जब कि पोलैंड का
स्पष्ट अस्तित्व न था, यह बन्दरग
जर्मनी के अधिकार में था।
इतिहास ने भी कई करवटें ली
सन् १९२० में वार्साई की सन्धि
अनुसार राष्ट्रसंघ की देख-रेख में यह नगर स्वतन्त्र कर
गया था और इसका शासन एक सिनेट के द्वारा होता था।
इसकी वैदेशिक नीति, चुंगी तथा रेलवे के विषय में पोल
को विशेष अधिकार प्राप्त थे, क्योंकि वही इस बन्दरग
का प्रधानतया उपयोग भी करता था। जब वार्साई
सन्धि में पोलैंड एक स्वतन्त्र राष्ट्र मान लिया
तब उसे समुद्री व्यापार की सुविधा देने के लिए डैंज़ि
के उपयोग का भी अधिकार देना अनिवार्य हो
इसके अलावा समुद्र तक आने-जाने के लिए
के पश्चिम का भूभाग जो ३० मील चौड़े एक
के रूप में है, जिसे कोरिडर कहते हैं,
के अधिकार में कर दिया गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डैंज़िग की अवस्था और महत्त्व

को समझ लेना भी आवश्यक है। योरप के नक़्शे से ज्ञात होगा कि कोरिडर की भूमि और डैंज़िग के पोलैंड के अधिकार में रहने से जर्मनी को बड़ी असुविधा है। जर्मनी का पूर्वी प्रदेश जो पूर्वी प्रशा कहलाता है, इस कोरिडर के बीच में आजाने से जर्मनी के मुख्य भाग से पृथक् हो गया है। पर पोलैंड के लिए तो डैंज़िग और कोरिडर का प्रश्न जीवन-मरण का प्रश्न है यदि कोरिडर उसके हाथ से चला जाय तो समुद्र-तट पर पहुँचने के लिए उसके पास कोई मार्ग नहीं रहता है। इधर डैंज़िग पोलैंड का द्वार ही है। इस पर अधिकार कर लेने का अर्थ है पोलैंड पर अधिकार कर लेना। डैंज़िग-सिनेट के नाज़ी प्रधान ने कहा ही था कि डैंज़िग के जर्मनी में शामिल होने का अर्थ है पोलैंड के $\frac{1}{8}$ पर जर्मनी का अधिकार! जर्मनी को डैंज़िग पर अधिकार करने में बड़ी आसानी हुई। कारण, व्यवस्था के हिसाब से डैंज़िग एक स्वतन्त्र नगर था, अतः पोलैंड उस पर अपने अधिकार का खुला दावा भी न कर सकता था; दूसरे डैंज़िग के सिनेट में नाज़ीदल का बहुमत था, क्योंकि उसकी ४ लाख जन-संख्या में से पोल केवल २९,००० हैं। शेष सब जर्मनवासी हैं, जो कुल आबादी के ९३ प्रतिशत होते हैं। नाज़ी लोग स्वयं हिटलर का शासन चाहते थे, इसी कारण हिटलर को डैंज़िग में क़िलेबन्दी करने व उसे पोलैंड पर आक्रमण करने का केन्द्र बनाने में आसानी हुई। डैंज़िग पर आक्रमण

महायुद्ध का सूत्र-पात

कहा जाता है। कारण यह है कि हिटलर की इस बढ़ती हुई महात्वाकांक्षा से संसार के सब राष्ट्र भयभीत हो गये हैं। वह जर्मन-साम्राज्य को सुविस्तृत करने की धुन में किसी भी सन्धि या वचन को तोड़ने को तैयार है। वार्साई की सन्धि को तो उसने तोड़ ही डाला, अब डैंज़िग के ऊपर आक्रमण करके उसने उस १९३४ की सन्धि को भी तोड़ दिया है जो उसने पोलैंड के साथ की थी और जिसके अनुसार उसने डैंज़िग को १०वर्ष तक स्वतन्त्र नगर मानने की प्रतिज्ञा की थी। फलतः डैंज़िग और कोरिडर की समस्या को लेकर योरप में पिछले महाभारत के ठीक २० साल बाद फिर महाभारत छिड़ गया है। अब देखना यह है कि ऊँट किस करवट बैठता है।

प्रकृति-प्रेरणा

लेखिका, कुमारी प्रतिभा त्रिपाठी

सुनते ही तेरी चरण-चाप, बजते वीणा के तार-तार,
स्वप्नों के बंधन तोड़-तोड़, बढ़ चलता जीवन निर्विकार।

कलियाँ वृक्षों पर अलसायी
सोती रहतीं दृग बन्द किये,
अलि मिस आ विकसित कर उनको
चल देती तू मकरन्द पिये।

सेना शशांक की विजय-हेतु
सज कर प्रमुदित होती अजान,
रवि-रश्मि-रूप में निसृत हो
हनने लगते तव तीक्ष्ण बाण।

सौरभ से झोली भर-भर कर, बहने लगती शीतल बयार। अंबर में लखकर अरुण-ज्योति, हँसते सर में पंकज-कुमार

नभ के उर पर घन-मालायें
विचरण करतीं कैसी स्व-छन्द,
दामिन बन उनको चमका कर
तू मुसका देती मन्द-मन्द।

तन्द्रा में यह जग भूला-सा
बैठा रहता होकर विमूढ़,
कानों में उसके जागृति का
जब पढ़ देती तू मन्त्र गूढ़।

दूबों के मोती की लड़ियाँ, बन गिरतीं नभ से धवल धार। कस कटि कर्मों की वेदी पर, बढ़ते सपूत होने निसार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिक्ता

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

बहू की ओर लड़के का कितना आकर्षण है, यह समझने में मेनका को अवश्य ही अधिक विलम्ब नहीं हुआ। इसलिए पहले उन्होंने सविता के प्रति जो आदर प्रदर्शित किया था वह बहुत थोड़े दिन भी न बीत पाये कि वर्षा के बाद के कीचड़ के समान ही सूखकर कड़ा हो गया। जिसे पाकर लड़का सुखी न हो सका उस बहू की आवश्यकता ही क्या है? इस लड़की के न तो रूप है, न गुण है और न बराबरी के घराने की लड़की ही है कि घर-गृहस्थी का काम-काज समझकर ही उसके सँभालने में सहायता करेगी। इसलिए इस स्थान पर जहाँ कि अपनी कोई सखी-सहेली या स्नेह का पात्र नहीं है, रातदिन जो स्नेह और शासन की एकमात्र अधिकारिणी हैं, उनसे भी किसी प्रकार का स्नेह प्राप्त करने की आशा सविता को नहीं रह गई। वे भी उसकी ओर से विमुख हो गईं।

सविता को समय काटने के लिए रह गया एकमात्र आधार वही नन्हा-सा बच्चा भान्जा। सात-आठ महीने के इस बच्चे के साथ बातचीत करने में वह जहाँ तक हो सकता, अपने आपको भुला रखने का प्रयत्न किया करती। इसका परिणाम यह हुआ कि बच्चे का सारा भार मेनका के ऊपर से हटकर एकदम सविता पर ही आ पड़ा।

रात्रि में बच्चे की दाई सविता के कमरे में सोया करती। वह थोड़ा-बहुत बातचीत भी किया करती। एक दिन तारा ने कहा—क्यों जी भाई रानी, क्या मायके के लिए तुम्हारा मन नहीं तड़फड़ाता?

सविता के नेत्रों में आँसू आ गये थे, वे गालों पर गिर गिर कर उन्हें भिगोने को ही थे, किन्तु उन्हें बड़ी कठिनाई से रोकती हुई सूखे हुए कण्ठ से उसने कहा—नहीं। मन क्यों तड़फड़ायेगा?

"ओ मा, क्या कहती हो तुम? मन क्यों तड़फड़ायेगा? मायके नहीं जाओगी?"

खिन्न स्वर से सविता ने कहा—जब जाना होगा तब जाऊँगी?

तारा ने कहा—तुम्हारे जाने के सम्बन्ध में क्या कहूँ! तुम्हारे नाना ने तुम्हें ले जाने के लिए इच्छा प्रकट की थी। किन्तु मालकिन भेजने पर सहमत नहीं हुईं। शायद ये लोग तुम्हें भेजनेवाले नहीं हैं।

सविता चुपचाप रह गई। बहुत दिनों तक मा या नाना का कोई समाचार उसे नहीं मिला। दाई के मुँह से इतनी बात सुनकर आज वह तृप्त हो गई। ये लोग न भेजें, यह बात अलग है, किन्तु नाना जी ने तो चिट्ठी लिखी ही, उनका अब क्या दोष?

बच्चे के कारण सविता के कमरे में रात भर लालटेन जला करती थी। परन्तु नौकरानियाँ उस लालटेन की चिमनी साफ़ करना भूल जाया करती थीं। बात यह थी कि सविता किसी बड़े घर की लड़की तो थी नहीं।

किसी नौकरानी के साथ व्यर्थ की बकझक न करके सविता उस दिन स्वयं राख से मलकर चिमनी साफ़ कर रही थी। इतने में एकाएक धीरे धीरे गम्भीर भाव से चलते हुए किसी व्यक्ति के जूतों की आहट पाकर उसने आँख उठाकर देखा और सहमी हुई आदरपूर्वक उठकर वह खड़ी हो गई। श्वशुर जी थे!

ऐसे समय में उस ओर से श्वशुर को आते-जाते उसने और कभी नहीं देखा था। जगत् बाबू ने एक बार स्नेहमयी दृष्टि से सविता की ओर देखा। शायद गोद से बिछुड़ी हुई कन्या की स्मृति उनके हृदय में जागृत हो आई। वे चुपचाप वहाँ से चले गये।

नौकरानियाँ तुरन्त ही दौड़ पड़ीं। उनमें से एक ने पहुँचकर सविता के हाथ से चिमनी ले ली और उसे साफ़ करने लगी। उनमें से किसी का भी मन प्रसन्न नहीं था। वही पहला दिन था जब मेनका के तीव्र श्लेष वाक्य सविता पर बरसने शुरू हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेनका ने कर्कश स्वर में कहा—श्वशुर को दिखलाकर घर की व्यवस्था को त्रुटिपूर्ण सिद्ध करने की तुम्हें क्या आवश्यकता थी? जैसा छोटा हृदय है, वैसा ही काम करके उसका परिचय भी तो देना चाहिए।

सविता का मुँह लाल हो गया। वह कुछ बोलने का साहस न कर सकी। यदि वह समझती कि यह हाल होगा तो क्या वह चिमनी साफ़ करने बैठती? मेनका की डाँट-फटकार चुपचाप सुनते सुनते वह दूसरे कमरे में चली गई और बैठकर बच्चे को प्यार करने लगी। अबोध बालक को खुशी से भरी हुई किलोलों ने ही मानो उसकी समस्त दुश्चिन्ताओं के भार को गङ्गाजल से धोकर निर्मल कर दिया।

साँझ को मेनका जब नित्यक्रिया के लिए गई तब सास के रोषपूर्ण हृदय को प्रसन्न करने के लिए सविता उनके चरणों के समीप जाकर मस्तक नीचा करके बैठ गई। वह इस प्रतीक्षा में बैठी थी कि देखें, कितनी देर के बाद अपनी गम्भीरता का परित्याग करके प्रसन्नभाव से बोलती हुई मुझे कार्य का आदेश करती हैं।

(७)

दिन ढलने का समय था। अस्ताचल-गामी सूर्य की रंगीन किरणें दिगन्त के पश्चिमी छोर से आरम्भ करके समस्त पेड़-पौधों की श्यामवर्ण की चूड़ाओं पर सोने का किरीट पहनाकर खेल रही थीं। सविता स्नान करके आई और बच्चे पुलक को कपड़े पहनाने लगी। उसकी वेणी के बाल रूखे हो गये थे। शरीर पर उसके एक अध-मैल साड़ी थी। परन्तु इस वेश में भी उसका यौवन से पुष्ट लावण्य पत्ते से ढँके हुए फूल के समान दिखाई पड़ रहा था।

बालक पुलक ने अब तक चलना सीख लिया था। वह दूध पीते समय और कपड़े पहनते समय इस प्रकार इधर-उधर भागता या मचलता कि सविता तंग आ जाती।

पुलक को एक स्टूल पर बैठालकर सविता उसे जूता-मोजा पहना रही थी। इतने में एकाएक शुभेन्दु आया और उसने उसे गोद में उठा लिया। शुभेन्दु की गोद में जाकर पुलक अवाक् होकर उसके मुख की ओर ताकने लगा। सविता को प्रणाम करने के बाद पुलक को गोद में लिये हुए शुभेन्दु माता के कमरे में चला गया।

मस्तक पर की साड़ी खींचे हुए सविता इतनी देर तक खड़ी थी। अब वह भी बरामदे से चली आई और कमरे में प्रविष्ट हुई।

शुभेन्दु अभी ही कलकत्ते से आया था। न जाने कैसा एक ज़ोर का तूफ़ान उठकर सविता के हृदय के रक्त को उद्वेलित करने लगा। किसी एक मूर्खतापूर्ण आशा से उसने बाहर की ओरवाली खिड़की की राह से अकारण ही व्यग्र दृष्टि से केवल बग़ीचे को ही एक बार देखा। शुभेन्दु क्या अकेला ही आया है?

शुभेन्दु को देखते ही मेनका ने कहा—क्यों रे शुभेन्दु, क्या तू अकेला ही आया है? वह कहाँ रह गया?

शुभेन्दु ने हँसते हुए कहा—घूमना तो मुझे भी पसन्द है मा। केवल पिता जी के भय से कहीं जाता नहीं हूँ। सोचता हूँ कि शायद वे रुष्ट न हो जायँ।

मेनका ने कहा—किन्तु वे रुष्ट कहाँ होते हैं? यदि रुष्ट होते, ज़रा-सी डाँट-डपट करते तो भी अच्छा ही था। यह जो अरुण इस तरह घूमता-फिरता रहता है, उसको भला वे कभी कुछ कहते-सुनते हैं?

शुभेन्दु ने कहा—क्यों? तो क्या हम लोग डाँट खायँ तभी तुम्हें प्रसन्नता होगी मा? अच्छी बात है, यही सही।

मेनका ने भी ज़रा-सा हँस दिया। हँसकर वे कहने लगीं—जो डाँट खाने का काम करे उसे डाँट तो खानी ही चाहिए, बिना इसके काम नहीं बनता। कोई कुछ कहने सुननेवाला नहीं है तभी न तुम लोग इस तरह के घुमक्कड़ हो गये हो।

"मैं तो कहीं वैसा आता-जाता नहीं हूँ मा। भैया चारों ओर घूमते फिरते रहते हैं। उनको जितना चाहो, उतना डाँटो। वे सीधे दारजिलिंग चले गये। उन्होंने कहा है कि बाद को घर आऊँगा।"

मेनका ने कुछ क्षुब्ध होकर कहा—क्यों? घर से होकर भी तो वह दारजिलिंग जा सकता था। दारजिलिंग कहीं भगा तो जा नहीं रहा था। कितने दिन हो गये उसको घर आये? मैं उसका रास्ता ही देखती रहती हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुभेन्दु ने कहा--परन्तु इसके लिए मैं क्या करूँ ? मैंने तो कहा था, किन्तु उन्होंने मेरी बात सुनी ही नहीं। उनके दो मित्र दारजिलिंग जा रहे थे। उन्हीं के साथ साथ वे भी चले गये। मैंने भी जाने को कहा था, परन्तु उन्होंने मुझे ले जाना अस्वीकार कर दिया, कहा कि तुम घर जाओ, नहीं तो मा अप्रसन्न होंगी।

"हूँ! मा के अप्रसन्न होने की उसे कितनी चिन्ता है। यदि यही चिन्ता होती तो वह स्वयं न आता। अब बड़ा हो गया है, इससे उसका स्वभाव भी बदल गया है। इसी से बाहर बाहर घूमना वह अधिक पसन्द करता है। मा की चिन्ता अब उसको वैसी नहीं रहती।

सविता शुभेन्दु के लिए जलपान की सामग्री ले आई और मेनका के पास रखकर चली गई। खाने की इन चीज़ों के लोभ से और मेनका के पुकारने से पुलक प्रसन्न होकर आ बैठा और शुभेन्दु के साथ खाने लगा। खा-पी चुकने के बाद शुभेन्दु उस दिन पुलक को गोद में लेकर टहलाने ले गया।

साँझ का समय बीत गया था। सविता बैठी हुई प्रतिदिन की तरह मेनका के पैरों के तलवे में तेल मल रही थी। सविता जब इस घर में आई है, उससे पहले यह काम नौकरानियाँ ही किया करती थीं, परन्तु अब यह सविता करने लगी थी। अपने दुर्भाग्य के कारण सास को वह किसी प्रकार भी प्रसन्न न कर सकी। आज भी वे दिन दिन उसके प्रति बराबर अधिकता के ही साथ निष्ठुर होती जा रही थीं।

अरुण के न आने के कारण मेनका का मन आज प्रसन्न नहीं था। जो अरुण उनकी आज्ञा के बिना पहले कहीं भी नहीं जाया करता था वही आज अवकाश के समय भी घर नहीं आया, इसका कारण सविता के सिवा और कोई नहीं था। मेनका ने मुँह से कुछ कहा तो नहीं, लेकिन भीतर ही भीतर वे भरी थीं। सविता भी मस्तक झुकाये हुए उनके पैरों पर हाथ फेर रही थी। एक लम्बी साँस लेकर मेनका ने कहा--रहने दो, आज अब ज़रूरत नहीं है, बहुत हो गया।

सविता ने हाथ हटा लिया।

मेनका ने कहा--आह! तुम्हारे हाथ में इतने गड्ढे किस चीज के पड़े हैं ? झाड़ू के हैं शायद ? हाय रे भाग्य!

सविता ने एक बार मेनका की आँख बचाकर अपने हाथ की ओर देखा और चुपचाप बैठी रह गई। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

मेनका ने कहा--इतनी बड़ी बड़ी कन्याओं को कुमारी रखकर क्या लोग गली गली कंडे बिनवाया करते हैं ? इस तरह की बात तो कहीं सुनने में नहीं आई।

सविता चुपचाप ही बैठी रही। उसने यह नहीं कहा कि यह अभियोग मिथ्या है। माता-पिता या नाना के घर में मैं लाडिली कन्या होकर ही रही हूँ। दासी का-सा काम मुझे कभी नहीं करना पड़ा। वहाँ बहुधा झाड़ू उठाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ा करती थी, जिसके कारण हाथ में गड्ढे पड़ सकें।

सास के पैर दाबकर लौटने पर सविता ने सिलिंडर का लैंप जलाया और पुलक के लिए दूध गरम करने बैठी। उसे इतना समय नहीं था कि अपने विक्षुब्ध मन को वह ज़रा भी विराम दे सके। अभी कई काम करने को थे। दूध गरम कर चुकने के बाद उसने पुलक की खोज की। यह मालूम होने पर कि अभी वह शुभेन्दु के ही पास है, उसे लाने के लिए उसने आदमी भेजा और स्वयं फ़ीडिंग बोतल में दूध भरने लगी।

सोते हुए पुलक को गोद में लिये हुए शुभेन्दु आया और भाभी भाभी कहकर पुकारने लगा। हाथ में उसके एक बड़ा-सा फलों का गुलदस्ता था।

सविता झटपट उठी। उसने पुलक का बिस्तर ठीक कर दिया। शुभेन्दु ने उसे उस पर सुला दिया, और कहने लगा--कमरे में क्या कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसमें इसे रख सकूँ ? भैया के पास तो कई एक फूलदानियाँ थीं ? क्या हो गईं वे सब ?

सविता के जी में आया, कह दे कि फूलों के इस तोड़े की मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु बाद को ही उसने फिर सोचा कि ऐसा कहने से सास जी को कहीं क्रोध न आ जाय। इस भय से वह कुछ कह नहीं सकी। एक फूलदानी निकालकर उसने टेबिल पर रख दी।

फूलदानी में गुलदस्ता रखते रखते ज़रा-सा लज्जित भाव से हँसते हुए शुभेन्दु ने कहा--क्या मुझसे भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातचीत न करोगी भाभी ? मुझसे बातें करने में जी कोई दोष है नहीं ?

इतने पर भी सविता का कण्ठ नहीं खुला। उसे इस बात का भय बना ही रहा कि कुछ कहने-सुनने पर सास जी अप्रसन्न न हो जायँ।

मेनका ने जब देखा कि शुभेन्दु सविता के कमरे में बोल रहा है तब बाहर से ही वे बोल उठीं—कौन ? पटला है क्या रे ? यह कहती हुई वे कमरे में प्रविष्ट हो आईं। क्रोध का भाव व्यक्त करते हुए शुभेन्दु ने कहा—देखो मा, मेरा यह बढ़िया-सा नाम तुम ज़रा सबको मत बतला दिया करो।

सविता विस्मय से अवाक् हो उठी। वह सोचने लगी—पता नहीं, आज किसका मुँह देखकर उठी हूँ मैं। मेरे कमरे में सास जी के चरण और तो कभी पड़ते नहीं थे।

वही एक ऐसा अशुभ मुहूर्त्त था जिसमें मेनका इस कमरे को सजाने के लिए आई थीं। उस दिन से फिर उसमें पैर रखना उन्होंने बन्द ही कर दिया था। इतने दिन के बाद सास जी के चरण सविता के कमरे में फिर पड़े। एक कुर्सी खींच कर वे बैठ गईं। शुभेन्दु ने कहा—मा, तुम भाभी से कह दो कि वे मुझसे बातें किया करें। तभी वे बोलेंगी।

मेनका ने कहा—बोलती क्यों नहीं हो बहू ? इन लोगों से बातचीत करने से भी बहुत कुछ सभ्यता सीख सकोगी।

सविता का मुख लाल हो उठा। खौलते हुए खून की आँच से उसके कान तक आग हो उठे। क्या इसी का नाम सभ्यता या सुजनता है ? मस्तक झुकाये हुए वह दूध की बोतल की ओर ताकती रही ?

फूल के तोड़े की ओर दृष्टि दौड़ा कर मेनका ने उसे देखा और कहने लगीं—यह कौन ले आया ? तू ले आया क्या पटला ?

"हाँ, मैं ही ले आया हूँ। परन्तु भाभी को चाहिए कि इसके लिए वे मुझे कम से कम एक बार धन्यवाद तो दे दें।"

मेनका ने कहा—परन्तु इस कमरे में यह सब फूल क्यों ले आया ? यह सब ले जाकर अपने कमरे में रख आ। यहाँ पड़े पड़े सूख ही तो जायँगे

"किन्तु अपने कमरे में रख आऊँगा तो शायद यह बिलकुल ताज़ा ही बना रहेगा !"

सविता के मुख से एक भी बात नहीं निकली। इस किशोर बालक के व्यवहार की उदारता के कारण उसके हृदय में भी ज़रा-सा आनन्द जागृत हो रहा था, किन्तु उस आनन्द को आधे रास्ते से ही खदेड़कर उसने आगे बढ़ने से रोक दिया। मन ही मन वह सोचने लगी—झूठ है, झूठ है, इन लोगों का सभी कुछ झूठ है, मिथ्या है। ये सब हृदयहीन हैं। पत्थर हैं ! यदि यह बात न होती तो मेरे स्वामी के मुख में भी तो प्रातःकाल के उज्ज्वल प्रभात के समान हँसी थी ! उस सुन्दर हँसी के सुखोपभोग से मैं क्यों वंचित हो गई ? वह हँसी मेरे लिए क्यों सूख गई ? मुझसे जन्मान्तर में कोई ऐसे खोटे काम बन पड़े हैं, जिनके कारण विधाता मुझसे इस तरह रूठ गये हैं। अपने भाग्य के सिवा और मैं दोष ही किसे दूँ ?

कमरे की खिड़कियाँ आदि बन्द करके सविता दक्षिण ओरवाले बरामदे में चटाई बिछाये हुए लेटी थी। वहाँ से समीप ही देवी जी का एक मन्दिर था। उस मन्दिर में हाल में ही सफ़ेदी की गई थी। इससे अन्धकार में भी मन्दिर की दीवारें दिखाई पड़ रहीं थीं। पूजा के दिन समीप थे।

सविता को गत वर्ष के पूजा के दिनों की याद आ गई। उस समय उसका विवाह नहीं हुआ था। तरह तरह की माँगें पेश करके वह नाना को परेशान कर रही थी। परन्तु आज ? आज यदि वह नाना के यहाँ होती तो उनसे कोई चीज़ माँगने में वह संकोच का अनुभव न करती। नाना कितने आग्रह के साथ प्यार करते हुए पूछते—कहो नातिन, क्या क्या लावें तुम्हारे लिए ?

एक नौकरानी ने आकर कहा—क्यों भाभी, बच्चे के दूध के लिए क्या होगा ?

सविता ने कुछ आश्चर्य के भाव से पूछा—क्यों ? दूध तो था। क्या हुआ ?

"था तो, लेकिन उसे बिल्ली जूठा कर गई। अब वह दूध तो बच्चे को दिया नहीं जा सकता।"

नौकरानी की बात पर सविता को विश्वास नहीं हुआ। उसने कहा—दूध तो ढँका हुआ था। उसे बिल्ली कैसे जूठा कर सकी ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौकरानी चुप रह गई। किन्तु क्षण भर सोचने के बाद किसी तरह साहस करके उसने कहा—ढँकना भूल गई थी भाभी?

सविता क्रुद्ध हो उठी। उसने कहा—तो जाओ, माँ से कहो।

"माँ से? वे तो बहुत अधिक रुष्ट होंगी।"

"परन्तु और किया ही क्या जा सकता है? बच्चा क्या भूखा रहेगा? रुष्ट होंगी तो होने दो।"

नौकरानी चली गई।

मालिक उस समय भोजन करने बैठे थे। घर के भीतर क्या हो रहा है, इसका ध्यान उन्हें बहुत ही कम रहा करता था। जिस समय कोई त्रुटि या अभाव उन्हें दृष्टि-गोचर होता उसे वे तत्काल दूर कर दिया करते थे।

इस सताई जानेवाली तथा तरह तरह के लाञ्छन सहन करनेवाली निर्धन परिवार की कन्या को उदारता प्रदर्शित करके वे घर में ले आये थे, इससे वे स्नेह भी किया करते थे, किन्तु स्नेह, ममता प्रदर्शित करने का जो भार गृहिणी पर था उसको वे किस प्रकार सँभाले हुए हैं, इसका ज़रा भी ज्ञान उन्हें नहीं था।

दूध बच्चे के पीने के लायक़ नहीं रह गया, यह बात मेनका के कान तक पहुँची। सुनते ही क्रोध के मारे जल कर वे आग हो गईं। मालिक ने शान्त भाव से कहा—जब बिल्ली ही पी गई तब इस बकझक से लाभ क्या होगा?

मेनका ने कड़ककर कहा—हाँ, बिल्ली तो ज़रूर पी गई! दूध का कटोरा होंठ से लगाकर चहक जाने पर भी तो कह दिया जा सकता है कि बिल्ली पी गई। अच्छा ब्याह कर लाये हो लड़के का!

मालिक ने रोषपूर्ण दृष्टि से मेनका की ओर देखा। इससे वे शान्त हो गईं। बाद को उन्होंने अपने पास का दूध का कटोरा खिसकाकर कहा—यह दूध ले जाओ, मुझे दूध की आवश्यकता नहीं है।

महराजिन खड़ी थी। मालिक की थाली के पास से दूध का कटोरा हटाने के लिए उसका हाथ नहीं बढ़ सका था। उस बेचारी ने विपन्नभाव से मेनका की ओर देखा। उन्होंने कहा—रहने दो! यह दूध देने की ज़रूरत नहीं है, घर में और भी दूध है।

मालिक ने कठोरता के साथ अपनी आज्ञा को दोहराते हुए कहा—नहीं, यही दूध ले जाओ। मैं दूध नहीं खाना चाहता।

इसके बाद मालकिन के अनुनयविनय तथा मालिक के गर्जन-तर्जन से घबराये हुए नौकर-नौकरानियों को भी एक प्रकार की व्यग्रता का-सा भाव पैदा हो आया। सविता के आने से पहले इस परिवार में इस प्रकार की अशान्ति का तूफ़ान बहुत कम आया करता था। इसलिए लोगों ने यह धारणा बना ली कि सारी अशान्ति का कारण सविता ही है।

सविता अपने कमरे में बैठी थी। टपटप करके उसके नेत्रों से आँसू गिर पड़े। वह सोचने लगी—रोज़ रोज़ छोटी से छोटी घटनाओं के कारण भी नौकरानियों तक के क्लेश का कारण मैं होती जा रही हूँ। यह क्या मेरे ग्रह का फेर है!

सविता बड़ी चिन्ता में पड़ गई थी। वह सोच रही थी—हाय, कौन-सा ऐसा उपाय है, जिसका अवलम्बन करके प्रतिकूल भाग्य-देवता को प्रसन्न करूँ, जिससे जीवन-यात्रा का यह दुर्गम पथ सुगम हो सके? कौन-सी पूजा उन्हें प्रिय है?

सोचते सोचते चिन्ता का भार उठाकर फेंक देने के विचार से सविता ज़रा-सा हँसी और उठकर खड़ी हो गई। उसने स्थिर किया—व्यर्थ में चिन्ता करने से लाभ तो है नहीं, भाग्य में जब जो कुछ बदा है, उसके लिए निरर्थक दुःखी न होकर प्रसन्नभाव से सहन कर लेना कहीं अधिक अच्छा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाग्रत नारियाँ

भारतीय नारी की पराधीनता और उसका तात्कालिक हल

लेखिका, श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिनहा

आज भारतीय विशेषतः हिन्दू-नारी की सामाजिक पराधीनता, तज्जनित असन्तोष और अशान्ति के क्षुब्ध वातावरण को देखकर उनकी स्वाधीनता का प्रश्न उठाते ही हमारे बहुत-से भाई गर्व के साथ मस्तक ऊँचा करके भारत के प्राचीन काल के सिद्धान्तों और आदर्शों का हवाला देकर कहते हैं कि 'हमारे यहाँ स्त्रियों को बड़ी स्वाधीनता प्राप्त थी। स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी जिसके फल-स्वरूप उन्हें मनोनीत वर-निर्वाचन की सुविधा प्राप्त थी। बीच में विदेशियों के, खासकर मुसलमानों के आने से हमारे रीति-रवाजों में परिवर्तन हो गये। लेकिन आज देश में कुछ लोगों-द्वारा रूस की नारियों का उदाहरण देकर स्त्री-स्वातन्त्र्य तथा उनकी सामाजिक स्थिति में परिवर्तन करने की आवाज़ बुलन्द की जा रही है यह हमारे देश के लिए किसी हालत म हितकर नहीं सिद्ध होगी। यह तो उन्हीं लोगों के अपरिपक्व मस्तिष्क का प्रोपेगैन्डा है जिन्हें न अपने देश के साहित्य, समाज तथा धर्म का ज्ञान है न जिन्होंने कभी इसका अध्ययन करने की फ़िक्र ही की है। उनको तो सिर्फ़ विदेशी चीज़ें ही पसन्द आती हैं और वे वहाँ की हर सड़ी-गली, तथ्यहीन चीज़ों को अपने सामाजिक ढाँचे में फ़िट करने का स्वप्न देखते हैं।'

यह सुनकर मैं सोचने लगती हूँ कि क्या ऐसी दलील पेश करनेवाले लोगों का सामाजिक दृष्टिकोण ही ऐसा हो गया कि वे वास्तविक स्थिति से दूर ही दूर रहते हैं, और यह सोचना ही छोड़ देते हैं कि उन सब उत्तम और ऊँचे उद्देश्य की प्रणालियों के होते हुए भी नारी के 'स्व' की कहाँ तक रक्षा हुई है? तभी मेरी आँखों के सामने दो सुप्रसिद्ध स्वयंवरों की तसवीरें खिंच जाती हैं। पहला सीता जी का है। जिसमें महाराज जनक ने पहले से यह निश्चित कर लिया था कि अपनी कन्या उसी को दूँगा जो शिव-धनुष चला सके। भले ही बचपन में सीता जी ने उस धनुष को एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटा कर रख दिया हो और इसी से उनके पिता जी ने उनके बल का अन्दाज़ा लगा कर उन्हीं के समान बलशाली पुरुष को अपनी कन्या इस शर्त के अनुसार देना चाहा हो। किन्तु इसमें सीता जी की अनुमति कब ली गई थी? उनकी निर्णय-शक्ति की कब जाँच हुई अथवा उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा]

निश्चय की कब अपेक्षा की गई? उनकी स्वाधीन इच्छा को तो इससे प्रश्रय मिला नहीं। इसमें सीता जी का तो कोई अलग व्यक्तित्व जान नहीं पड़ता? तो यह तो कोई दलील नहीं हुई। वही अभिभावकों पर ही निर्भर रहनेवाली बात समझ में आती है। और आज भी यही होता है। माता-पिता कन्या के अनुसार जैसा वर चाहते हैं ढूँढ कर उसको जीवन भर के लिए सौंप देते हैं।

दूसरा स्वयंवर द्रौपदी का है जिसमें राजा द्रुपद ने यह शर्त रखी थी कि जो ऊपर घूमती हुई मछली का, नीचे तेल के कड़ाह में प्रतिबिम्ब देखकर अपने तीर से बेधेगा उसी को मैं अपनी कन्या दूँगा। जहाँ तक मुझे मालूम हुआ द्रौपदी से पूँछ कर यह शर्त नहीं रक्खी गई थी। किन्तु कुछ लोग कहते हैं कि द्रौपदी ने अर्जुन की बहुत प्रशंसा सुनी थी और अर्जुन को ही वररूप में स्वीकार करना चाहती थी। उसे विश्वास था कि वह इस को पूरा कर सकेगा क्योंकि कर्ण और अर्जुन दो महान् धनुर्धारी थे। और इसी लिए जब कर्ण भेद को उठे तो उन्हें सूतपुत्र कहकर रोक दिया इस तरह अर्जुन के रूप में द्रौपदी ने अपना मनोनीत पाया। लेकिन इसके आगे की कथा से तो नारी का उपहास-मात्र ही मिलता है जब कि वे पाँचों पांडव अन्य चल या अचल सम्पत्ति को परस्पर बाँट लेते थे, प्रकार माता कुन्ती के कहने पर पाँचों पांडवों ने को भी परस्पर बाँट लिया। क्या यही नारीत्व सम्मान था?

अब मैं बहुत दूर की बात न कहकर केवल मुसल काल के पूर्व की बात कहूँगी। जिस लड़की ने अभिभावकों की इच्छा पर अपने को सौंप देने की न कर अपने इच्छानुकूल वर को चुना; मेरा संयोगिता से है। जिसने हज़ार कठिनाइयों के हुए भी चूँकि वह पृथ्वीराज को चाहती थी, ही प्रतिमा को वर-माला पहिनाई और पृथ्वी ने भी वीरतापूर्वक तमाम विघ्न-बाधाओं की भी परवाह न करते हुए उसके प्रेम की रक्षा की उसे अपनाया।

लेकिन यही स्वयंवर हमारे भारत में मुसलम के आने का और हिन्दू-राज्य के समाप्त होने का बना। क्योंकि वह एक हिन्दू-कन्या का अपनी से वर-निर्वाचन था। लोग कहेंगे कि पृथ्वीराज और का दिल्ली की गद्दी की बाबत पहले से ही झगड़ा चला रहा था और वही मूल कारण था। मैं इसको मानती फिर भी अग्नि में आहुति का काम अवश्य इसी ने किया। पिता की हैसियत से जयचन्द को अपनी के प्रेम और भलाई का ज़रा भी ख़याल न हुआ।

इससे इतना तो सिद्ध होता ही है कि लड़कियों इच्छाओं की, उनके व्यक्तित्व की कभी परवाह की गई। अभिभावकों की इच्छा पर ही उनका बलिदान चढ़ता रहा। उन्होंने जैसा चाहा

यह तो हुई इतिहास की बात। आधुनिक विवाह-संस्कार को ही मानने को तैयार नहीं हैं। तो कहना है कि विवाह भी एक तरह का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[कुमारी टी० मनोरमा]

(मदरास-विश्व-विद्यालय की बी० ए० (आनर्स) की परीक्षा में अँगरेज़ी-विषय में सर्वप्रथम आने के लिए आपको स्वर्ण-पदक मिला है।)

[कुमारी टी० सुशीला]

(आपको उक्त विश्वविद्यालय ने बी० ए० (आनर्स) में वनस्पतिशास्त्र में सर्वप्रथम आने के लिए स्वर्ण-पदक दिया है।)

...ो उसके अन्य तरीकों में सबसे सस्ता होते हुए भी ...कृष्ट है। क्योंकि इसमें ज़बरदस्ती एक दूसरे को कभी ...ी बग़ैर देखे सुने, समझे बूझे विवाह-आडम्बर के साथ ...न्दगी भर रहना पड़ता है। सवाल सीधा और स्पष्ट ...। आये दिन इसके उदाहरण हमें अपने ही घरों में ...लते हैं। कितने हैं जो सुखी हैं, सफल हैं अथवा मिथ्या ...ा के पर्दे में अपने को छिपाये नहीं हैं? माता-पिता ...ड़की का भरण-पोषण करते हैं, और जिस तरह चाहते ...उसको घर से विदा कर देते हैं। हर रोज़ घर में देखिए ...का जो चार पैसे कमाता है, बहुत-से ऐसे काम करता ...जो माता-पिताओं को अच्छे नहीं लगते फिर भी वे ...वर्दाश्त करते हैं। लेकिन लड़कियों के मामले में ऐसी ...नहीं है। हर रोज़ उनकी इच्छाओं पर उन्हें बलिदान ...पड़ता है। जो लड़कियाँ कुछ समझदार हैं, अपने ...त्व का अनुभव करती हैं बहुधा अपनी मनोवृत्तियों ...दबा देने के लिए बाधित रहती हैं। उनका

भविष्य भी उन पर निर्भर रहता है। और यदि वे स्वयं अपने को अपने अभिभावकों के विचारों के मुताबिक़ बना न लेकर अपने आपको उन्हें सौंप नहीं देतीं, स्वेच्छा से काम लेती हैं तो वे दुश्चरित्रा, कुलटा, पतिता आदि उपाधियों से विभूषित की जाती हैं। रही पति-वर्ग की बात—वह जब स्त्री के रोटी कपड़े का भार लेता है, यदि उसे अपने से नीचा समझता है तो क्या बुरा करता है। वास्तव में नारी की यही वास्तविक स्थिति है। उसका अपना अस्तित्व तो कोई है ही नहीं। हमारे धर्मप्राण भाई 'स्त्री मातृशक्ति है' की दुहाई देकर नाक-भौं सिकोड़ते हुए भले ही कहें कि —इस आदर्श हिन्दू-समाज के धार्मिक विवाहों में सार है, हमारी संस्कृति उच्च है, हमारे यहाँ के विवाह दुनिया भर से सन्तोषजनक हैं, जहाँ कोर्टशिप करने की स्वतन्त्रता है, वहाँ नित्य तलाक़ होते हैं, और तिस पर भी वहाँ का सामाजिक जीवन सुखी नहीं है, उसको देखते हुए हमारे यहाँ के गार्हस्थिक और सामाजिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[कुमारी पद्माबाई]

(आपको 'संस्कृत'-विषय में सर्वप्रथम होने के लिए स्वर्ण-पदक मिला है।)

जीवन बहुत शान्तिमय और सफल होते हैं--पर मैं समझती हूँ इस शान्ति और साफल्य के मूल में क्या है? क्या पुरुषों ने स्त्रियों के अनुभव करने की जगह, जो मन ही होता है, वह शेष रक्खी है? सदियों से नहीं, हज़ारों वर्षों से लगातार उन्हें शिकंजे में दबा दबा कर बिलकुल निचोड़ लिया गया है। उनके मन की शक्ति, सोचने-समझने का ज्ञान, अपने अस्तित्व को क़ायम रखने की क्षमता नष्ट हो गई है, वे अपने उत्पीड़नमय जीवन से ज़्यादा और कुछ चाहने को, और कुछ सोचने को भी अनुचित स्पर्धा समझती हैं। परम्परा की दासता के पशुतामय जीवन का क्रान्तिमय सामूहिक विरोध कर सकना तो बहुत दूर की बात है। हमारे बहुत-से भाई जब कहते हैं--'आप इन विचारों को गाँवों में प्रकट कीजिए तो गाँव की स्त्रियाँ आपको मारने दौड़ेंगी'--तब मुझे हँसी आती है कि इसमें आश्चर्य ही क्या है? जब कि वे करोड़ों की तादाद में अशिक्षिता हैं, जब कि उन्हें अपने अस्तित्व का ज्ञान ही नहीं है, वे अपने को धूल समझती हैं, तब वे प्रतिवाद किसी क़िस्म का कर ही क्या सकती हैं? रोगी को दवा पिलाने के लिए पहले उँगलियों को दाँतों से कटवाना ही पड़ता है। उनकी स्थिति तो ऐसी है जैसी उस जानवर या परिन्दे की होती है जो जंगल से पकड़ लाने पर कुछ दिन हाथ-पाँव पटकता है किन्तु फिर वह क़ैद में रहने का अभ्यस्त हो जाता है और अपने को परिस्थिति के अनुकूल बना लेकर शान्त हो बैठ रहता है। जिन्होंने सर्कस में शेर का तमाशा देखा है वे भली भाँति जान सकते हैं कि इतना शक्तिमान् जानवर एलेक्ट्रिक हंटर के भय से किस प्रकार अपने ट्रेनर के आज्ञानुसार चलता है। इसी मनोवृत्ति का पता हमारे यहाँ के बड़े बड़े महात्माओं के कथन से प्रमाणित होता है--"ढोल गँवार शूद्र पशु नारी--ये सब ताड़न के अधिकारी।" और ठीक उनको शूद्र की श्रेणी में रक्खा है। शूद्र भी ग़ुलाम हैं, नारी भी ग़ुलाम! बिलकुल सही है पुरुषों की धारणा, कि ज़रा भी उनकी इच्छा के विरुद्ध स्त्रियों ने सिर उठाया कि डंडा तैयार रक्खा। कुछ लोग भले ही अपने पूर्वजों की ग़लती का समर्थन कर अपने को भ्रम में छिपाये रहें किन्तु यह तो एक चिर सनातन सत्य है! अप्रिय कठोर और भीषण सत्य!

दूसरी बात हमारे यहाँ इसी ग़ुलामी मनोवृत्ति का पता 'पति परमेश्वर की पूजा करो' के वाक्य से मिलता है। पूजा हमेशा अपने से बड़े की होती है। उसमें प्रेम नहीं होता, आदर, भक्ति होती है। जहाँ समत्व का भाव नहीं वहाँ तो खुल कर बात भी नहीं होती, फिर दम्पति में प्रेम कैसा? सुख-दुख के समान साहचर्य का भाव कहाँ? दासत्व की भावना से जकड़ी हुई नारी के रूप से आदर्श मनुष्य-जीवन की उपयुक्त कल्पना ही कैसी? आजीवन पति के आश्रय की छाया में, अपने हृदय की सच्ची भावना को दबा कर पूजते रहने का स्वाँग करने में भी वास्तविक सुख और प्रेम पनप सकता है? वहाँ तो सदैव एक हीनता से दबा रहेगा और दूसरा महत्ता के गर्व से ओत-प्रोत रहेगा। क्योंकि पुरुष अपने को स्त्री का रक्षक और पालक समझता है, स्त्री अपने को पुरुष की आश्रिता दासी। अगर किसी असन्तोष के विद्रोह वातावरण में तनिक भी उसके अन्दर विद्रोह भावनायें जगीं कि वे नेस्तनाबूद हुईं। इसी लिए वह अपने बन्धनों प्रेम से लपेटे रहती है कि पुरुष के अतिरिक्त कहीं स्थान नहीं और वह भी समझता है कि वह शरण छोड़ जा ही कहाँ सकती है। यही का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उसके व्यक्तित्व की परवा न कर उसे केवल मनोरंजन अथवा भोग की वस्तु समझता है।

इन सभी खामियों का हल, तलाक़ या थोड़े-बहुत सुधार हमारी विवाह-पद्धति में नहीं हैं। इससे तो फिर पुरुषों का ही अधिक लाभ है। वे अपने रहे-सहे दायित्व से भी बरी हो जायँगे। कोई भी कारण खोज निकाल कर तो वे बिलकुल स्वतन्त्र हो जायँगे। स्त्रियों की स्थिति उस समय कैसी शोचनीय हो उठेगी। इसका वास्तविक हल तो हमारी आर्थिक स्वतन्त्रता ही है; क्योंकि जब दोनों एक दूसरे के मुखापेक्षी तथा निर्भर न रहेंगे तब किसी को कष्टों का सामना न करना पड़ेगा। इस दशा में दोनों व्यक्तियों में जो प्रेम होगा वह वास्तव में सफल और स्थायी होगा। इस वर्तमान अवस्था में जो तलाक़ का बिल पेश किया गया है वह कहाँ तक सही और समयानुकूल है? समाज की इस सामूहिक माँग की उपेक्षा तो नहीं की जा सकती किन्तु हमें तो इस समय वर्तमान समाज की व्यवस्था और वर्तमान काल की परिस्थिति को सम्मुख रखकर इस प्रश्न पर विचार करना है। हमारे देश की आर्थिक स्थिति कैसी है?

[श्रीमती प्रमिला गुप्त बी० ए०]

(आप लन्दन-विश्वविद्यालय में समाज-शास्त्र की उच्च परीक्षा में उत्तीर्ण होकर स्वदेश लौट आई हैं।)

[श्रीमती प्रतिभा रस्तोगी]

(आप काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय की एम० ए० परीक्षा में इँग्लिश लेकर प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई हैं।)

और उसमें मध्यश्रेणी की स्त्रियों की जीविका के कितने साधन हैं?

यह सब देखते हुए मनुष्यता का तक़ाज़ा तो कम से कम यही है कि यदि पुरुष-वर्ग वस्तुतः स्त्री-वर्ग के लिए कुछ करना चाहता है तो, इस हज़ारों वर्षों के अत्याचारपीड़ित, समाज के गिरे हुए अपने आधे अंग को—जो अपने आप उठ नहीं सकता, सहारा देकर उठाने की कोशिश करे। उन्हें प्रोत्साहन देने के लिए तलाक़-बिल पेश करके नहीं बल्कि पिता की हैसियत से लड़कियों के लिए अपनी सम्पत्ति से एक हिस्सा देकर। ताकि यदि उनका दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं है, तो वे उचित शिक्षा के अभाव से किसी जीविका के सुलभ न होने पर, उसी के आधार पर अपना जीवन-निर्वाह कर सकें। अथवा शिक्षा ग्रहण कर किसी उद्योग-धन्धे के लिए समर्थ हो सकें। जब तक वे स्वतन्त्र नहीं हैं, उन्हें आगे बढ़ाने के लिए यदि पिता की सम्पत्ति का बँटवारा इस तरह कर दिया जाय तो वे बहुत जल्द अवनति के गढ़े से निकल सकती हैं।

आज अपनी करोड़ों असहाया बहिनों की ओर से मैं पुरुष-वर्ग से अपील करती हूँ कि बजाय तलाक़-बिल पेश करने के वह यदि स्त्रियों के लिए कुछ करना चाहता है तो कोई ऐसा बिल पेश करे जिससे पिता की सम्पत्ति में किसी अंश की पुत्री भी भागीदार हो! और यही अपील मेरी कांग्रेस गवर्नमेंटों से और कांग्रेस प्रतिनिधियों से है कि वे अपना पूरा दबाव डाल कर ऐसा क़ानून पास करवायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

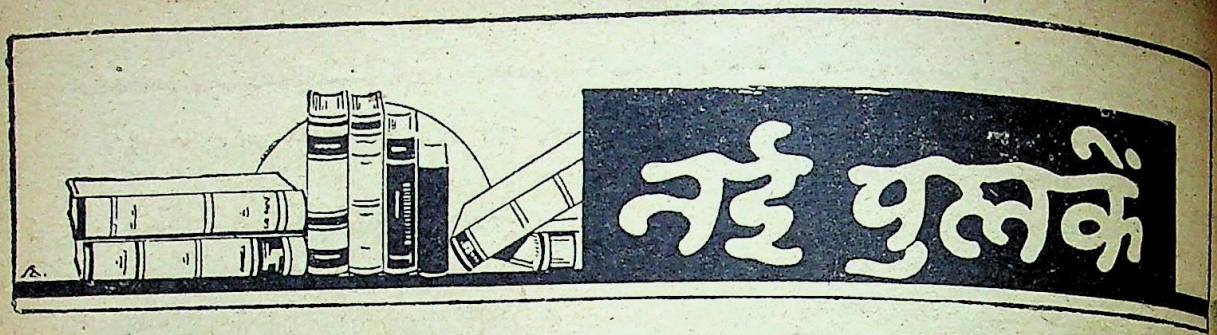

१--**निसर्ग**--लेखिका, श्रीमती होमवती और प्रकाशक, साहित्य-रत्नभंडार, आगरा हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या २१६ और मूल्य १) है।

श्रीमती होमवती हिन्दी की प्रख्यात लेखिका हैं। इस पुस्तक में उनकी ११ कहानियाँ संगृहीत हैं। सभी कहानियाँ पठनीय व सफल हैं। स्त्रियों के मनोभावों के स्वाभाविक चित्रण में बहुत अधिक सफलता मिली है। 'प्रायश्चित्त' कहानी तो विशेष रूप से सुन्दर है।

२--**शक्ति-दर्शन**--लेखक, श्रीयुत शंकरलाल तिवारी हैं। प्रकाशक, डाक्टर बालेश्वरप्रसादसिंह, प्राकृतिक-स्वास्थ्य-गृह, इलाहाबाद हैं। छपाई-सफ़ाई मामूली, पृष्ठ-संख्या १५६ और मूल्य ॥) है।

शक्ति क्या है और उसे किस प्रकार प्राप्त किया जाता है, इसी विषय का आध्यात्मिक दृष्टिकोण से इस पुस्तक में विवेचन किया गया है। प्राणायाम, ब्रह्मचर्य, भावना-शक्ति, प्रेमशक्ति आदि पर इसमें विचारपूर्ण छोटे-छोटे निबन्ध हैं, जो नवयुवकों व अध्यात्म-प्रेमियों के काम के हैं।

३--**कृष्णगीता**--लेखक, श्रीयुत दरबारीलाल सत्यभक्त हैं। प्रकाशक, सत्याश्रम, वर्धा (सी० पी०) है। पृष्ठ-संख्या १३५ और मूल्य ।॥) हैं। छपाई मामूली है।

भगवद्गीता की भाँति कृष्णगीता भी भक्तों में अधिक प्रसिद्ध है। प्रस्तुत पुस्तक इसी का पद्यानुवाद है। भाषा सरल व मुहाविरेदार है और अनुवाद भी अच्छा हुआ है।

४-६--प्राकृतिक स्वास्थ्य-गृह, ३०, बाई का बाग़, प्रयाग की ३ पुस्तकें--

(१) **क्या और कैसे खायें?**--लेखक, डाक्टर बालेश्वरप्रसादसिंह हैं। पृष्ठ-संख्या ४१ और मूल्य ।) है।

इसमें खाद्य-पदार्थों का विवेचन किया गया है। सर्व-साधारण के लिए इसका पढ़ना लाभदायक है।

(२) **आनन्दमय-जीवन का ह्रास और उसके कारण**--लेखक, श्रीयुत शंकरलाल तिवारी, सागर हैं। पृष्ठ-संख्या १०४ और मूल्य ।=) है।

स्वास्थ्य के लिए आध्यात्मिक और प्राकृतिक साधनों का विवेचन इस पुस्तक में सरल भाषा में किया गया है।

(३) **स्वास्थ्य के नुस्ख़े**--मूल्य =)॥ और पृष्ठ-संख्या ४८ हैं।

रोग दूर करने के लिए प्राकृतिक साधनों का उपयोग इसमें बतलाया गया है। पुस्तक सभी गृहस्थों और नैरुज्य की कामना रखनेवालों के काम की है।

७-८--स्टूडेण्ट ब्रदर्स बुकसेलर, भरतपुर की २ पुस्तकें--

(१) **व्याकरण-प्रवेश**--लेखक, साहित्याचार्य पंडित चतुर्भुजदास चतुर्वेदी हैं। मूल्य ।) है।

यह व्याकरण प्रायमरी स्कूल के विद्यार्थियों के लिए लिखा गया है। अपने प्रयोजन के लिए उपयुक्त है।

(२) **ब्रज-पद्यावली**--पृष्ठ-संख्या ३० और मूल्य =) है।

यह भी उपर्युक्त उद्देश्य के लिए संग्रह की गई है पर इसकी संगृहीत रचनायें ब्रज-भाषा की नहीं हैं खड़ी बोली की हैं। क्या संग्रहकार को जो हिन्दी प्रभाकर और हिन्दी आनर्स हैं--ब्रज-भाषा और खड़ी बोली की पहचान भी नहीं है?

९--**सनातनधर्म और हिन्दू-संस्कृति के उद्धार की योजना**--लेखक, श्रीयुत नारायण जी पुरुषोत्तम सांगाणी हैं। प्रकाशक, अखिल भारत-वर्णाश्रम स्वराज्य संघ, बुलानाला, काशी हैं। पृष्ठ-संख्या १३२ है। मूल्य लिखा नहीं।

पुस्तक का विषय नाम से ही स्पष्ट है। यह उसी के विद्वानों की सृष्टि है जो आज-कल भी सभी वस्तु पुराने चश्मे से देखना चाहते हैं और सभी नई चौंकते हैं, फिर वे बातें सामाजिक हों चाहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०—**राखी**—लेखक, श्रीयुत मंगलदेव शर्मा हैं। प्रकाशक, श्रीयुत मदनमोहन गुप्त, विद्यामंदिर, आगरा हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या १९८ और सजिल्द पुस्तक का मूल्य १।) है।

इस पुस्तक में शर्मा जी की दस कहानियाँ संगृहीत हैं। सब सुन्दर व पठनीय हैं। भाषा मुहाविरेदार व सरल है। चरित्र-चित्रण सुन्दर व स्वाभाविक है। पठित समाज में इस पुस्तक का अच्छा आदर होगा, इसकी हमें पूर्ण आशा है।

११—**साधन-पथ**—लेखक, श्रीयुत सत्यर्षि स्वामी योगजीवनानन्द जी महाराज और अनुवादक अखौरी श्री जगन्नाथप्रसाद, बी० ए० और श्री चन्द्रदीपनारायण श्रीवास्तव, बी० ए० हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या २५२ और मूल्य १।।) है। सत्यायतन-महामंदिर, मनोहर-गढ़, पोस्ट छातना, ज़िला बाँकुड़ा से मिल सकती है।

स्वामी योगजीवनानन्द जी सत्यायतन-महामंदिर के संस्थापक और सत्याश्रयी-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक हैं। प्रस्तुत पुस्तक उनकी लिखी बँगला-पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। इस पुस्तक में विस्तृत रूप से यह समझाया गया है कि किस प्रकार के आचरण करता हुआ मनुष्य साधन-पथ में अग्रसर होता है और अन्त में सफलता पाकर मुक्ति का अधिकारी बनता है। इसमें दिया हुआ सदाचार मनु-सम्मत है, जिस पर हिन्दू-मात्र की समान आस्था है। साधन-पथ के लिए निर्दिष्ट योग 'शब्द-योग' है, जिसका प्रचार कबीर-पंथ व राधास्वामी-सम्प्रदाय में भी है। इसी योग को हिन्दू-दर्शनों व उपनिषदों के साथ समन्वित करते हुए स्वामी जी ने एक सुन्दर, सरल व बोधगम्य रूप में उपस्थित किया है। पुस्तक गृहस्थों व मुमुक्षुओं के पथ में सहायक हो सकती है। साधना-सम्बन्धी नक़शे व चित्र दे देने से विषय और भी स्पष्ट हो गया है।

१२—**निर्झर**—संग्रहकर्त्ता व प्रकाशक, श्रीयुत पंडित सहाय शास्त्री, कृष्णनगर, लाहौर हैं। छपाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या १६० और मूल्य १=) है।

इसमें हिन्दी के प्रमुख प्राचीन कवियों की कुछ [illegible] का संकलन पाठ्य-पुस्तक के दृष्टिकोण से किया [illegible] ग्रंथ में संक्षिप्त जीवनियाँ और अन्त में शब्दार्थ-कोष भी दे दिया है। पुस्तक हाई स्कूलों के छात्रों के काम की है।

१३—**भारतीय कला-कौशल**—लेखक, श्रीयुत डी० बी० बरवे, बी० ए० हैं। प्रकाशक, हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली है। पृष्ठ-संख्या ५०, छपाई अच्छी और मूल्य ।।) है।

बरवे महोदय यू० पी० सरकार के 'आर्ट्स एण्ड क्रेफ़्ट्स एम्पोरियम लखनऊ' के विज़िनेस मैनेजर हैं। उन्होंने इस पुस्तक में भारतवर्ष की समस्त कारीगरी का उल्लेख किया है। कौन वस्तु किस स्थान पर उत्तम बनती है, यह जानना व्यापारी व साधारण जनता के लिए बहुत उपयोगी है। स्वदेशी कला-कौशल के विज्ञापन व प्रोत्साहन के लिए भी ऐसी पुस्तकें महत्त्व की होती हैं।

१४—**ढोरों का इलाज**—लेखक, श्रीयुत रमेश वर्मा और प्रकाशक भारत पब्लिशिंग हाउस, आगरा हैं। छपाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या ७४ और मूल्य ।=) है।

विषय नाम से स्पष्ट है। पुस्तक अच्छी है।

१५—**संस्कृत-प्राचीन-स्तवन-सन्दोह**—लेखक, श्रीयुत मुनि विशाल विजय हैं। प्रकाशक, श्री विजयधर्म-सूरि-ग्रन्थमाला, छोटा सराफ़ा, उज्जैन हैं। पृष्ठ-संख्या ४८, छपाई अच्छी और मूल्य =) है।

इसमें कुछ जैन स्तोत्रों का संग्रह है। संस्कृत-भाष्य भी दे दिया गया है। पुस्तक जैनियों के काम की है।

१६—**सीता-राम**—लेखक, श्रीयुत चतुरसेन शास्त्री हैं। प्रकाशक, श्रीयुत मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या ६६ और मूल्य ।।=) है।

यह एक छाया नाटक है, जिसके कथानक का आधार संस्कृत का उत्तर-रामचरित नाटक है। कहीं-कहीं अपनी कल्पना से लेखक ने कुछ नवीनता उत्पन्न करने का भी प्रयत्न किया है। नाटक है तो रोचक और अभिनेय, पर इसमें कहीं भी गेय वस्तु का समावेश न होना एक बड़ी कमी है।

१७—**भारतवर्ष की पशु-सम्पत्ति**—लेखक, श्री ई० वी० एस० मनियम और अनुवादक, श्री कृष्णचन्द्र गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। प्रकाशक, पैट एण्ड कम्पनी, कानपुर हैं। छपाई साधारण और पृष्ठ-संख्या ९५ है। मूल्य दिया नहीं।

इस पुस्तक में ग्रामों की अर्थशास्त्र-सम्बन्धी अनेक समस्याओं पर विचार किया गया है, जैसे--दूध, मवेशियों का पालन व डेरी फ़ार्मों का चलाना इत्यादि। लेखक महोदय ने इन विषयों के सम्बन्ध में डेनमार्क से तुलना करते हुए इस देश की दशा की चर्चा की है। ग्राम-समस्याओं से दिलचस्पी रखनेवालों के लिए पुस्तक बड़े काम की है।

१८--**अचल सुहाग**--लेखिका, श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिनहा हैं, प्रकाशक, चौधरी राजेन्द्र शंकर, युग-मन्दिर, उन्नाव हैं। पृष्ठ-संख्या १२० और मूल्य १) है। छपाई-सफ़ाई अच्छी है।

कवर पर अचल-सुहाग की वन्दिनी का एक चित्र है। उसका सुहाग-सिंदूर अग्नि-शिखा की भाँति दहक रहा है तथा उसके हाथ हथकड़ियों से जकड़े हुए हैं। कोई कलात्मक सौन्दर्य न होते हुए भी चित्र उस भाव का समुचित प्रतीक है जो पुस्तक में आदि से अन्त तक ओत-प्रोत है।

"पति जब प्यार से उसकी आँखों में आँखें डालकर पूछते--'रानी, तुम मुझे प्यार करती हो?' कल्पना उत्तर में दृष्टि नत कर केवल मुस्करा भर देती। और उसी क्षण एक दृढ़ निश्चय उसका कलेजा बेधकर निकल जाता--कि क्षणिक भावुकता के वश में होकर अब वह अपने अवशेष दिनों की निश्चिन्तता नहीं कुचलेगी। एक संतोष को हृदय में जगाकर एक तृप्ति को बसावेगी। जीवन यों दुखी और पतित रहने के लिए नहीं है।

"लेकिन ऐं! यह क्यों? 'जीवन' जब चलने लगा। एक दीर्घ निश्वास फेंकते हुए उसके अभिवादन के बदले में, उसके दोनों हाथ शिष्टतावश जुड़ गये, तो यह कल्पना का हृदय इस तरह ..... ज़रा-सा ऐंठ कर क्यों रह गया?

× × ×

"सारा वातावरण एक उपहास, व्यंग्य, धिक्कार और घृणा से भरा प्रतीत होता है। मानों एक गहरी तीव्र ध्वनि चारों ओर से उठने लगती है--क्या तुम्हीं ने प्रेम करने का ठेका लिया है? सिर्फ़ तुम्हारे ही पास एक हृदय है? तो वह इस दुनिया से बिलकुल हारी हुई कल्पना के रूप में अपनी उलझन में पड़ी हुई दुर्बल नारी खड़ी रह जाती है, एकाकी निर्जन पथ में।"

--विवाहित

यह है अचल सुहाग की मर्मभेदी पुकार। मनु जिसे सौभाग्य और सतीत्व के नाम से पुकारता है उसके अन्तराल में कितनी भावुक आत्मायें, कितने स्नेह-सिक्त हृदय इसी तरह ऐंठ कर रह जाते हैं? ये जो आँखें देखने का स्वाभाविक कर्म करती हैं और देखकर कहीं लग जाती हैं, ये जो कान सुनने का व्यापार करते हैं और सुनकर कहीं ठिठक जाते हैं--यह जो अभागा मन नाना रूपवाले जगत् में विचरण करता हुआ कहीं लग जाने के लिए मचल उठता है, समाज की अनेक नियमावली, विवाह के निष्ठुर अस्वाभाविक बन्धन और संयम का पाठ पढ़ाकर उनके मार्ग में बाधक बनकर आ खड़े होते हैं। तो फिर यह नियमों की दीवार किसने और क्यों खड़ी की? सदियों से उत्पीड़ित दुखिया नारी उत्तर देती है, पुरुष ने अपने स्वार्थ के लिए। क्योंकि वह जानता है कि 'नारी है केवल भोग की चीज़। और हो? उसकी एक खास प्रकृति होती है कि उससे कुछ भी सहानुभूति प्रकट कर दो, बस वह अपने को समर्पण करने को तैयार हो जाती है। लेकिन पुरुष तो कहीं बँधकर बैठ नहीं सकता। उसकी तो डाल डाल पर मँडराने वाली भ्रमर-वृत्ति होती है 'न?' तो विवाह के नियम की रचना केवल स्त्री का भोग करने के लिए की गई है।

स्त्री को समानाधिकार देनेवाले पुरुष इस नियम को एक लाञ्छन से कम नहीं समझेंगे, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु हमारे समाज की वर्तमान अवस्था में यह नियम अत्युक्तिपूर्ण नहीं समझा जा सकता। भले ही विवाह की कठोर शृंखलायें पुरुषों के जीवन को भी जकड़ रही हों, उसे अभिशापपूर्ण बना रही हों, फिर भी पुरुष के पास जितने मार्ग हैं, स्त्री उनसे सर्वथा वंचित है।

पुरुष बेखटके प्रेम के एक नहीं अनेक स्वाँग सकता है, एक नहीं अनेक विवाह कर सकता है। इतना नहीं तो कम से कम उसे स्वच्छन्द विचरने बोलने, स्नेह देने और पाने की पूरी स्वतंत्रता अभागी नारी प्रेम करके कहाँ रहे? वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनी, पर उसके बाद क्या होगा ? जिसके उन्माद में पागल होकर वह अपने को खो बैठी वही कायर पुरुष उसे यह कहकर सांत्वना देता है, "निस्सन्देह तुम्हारे जीवन को नष्ट करने में किन्हीं अंशों में मैं भागी रहा, परन्तु..... इसके लिए कर ही क्या सकता हूँ ? जहाँ तक हो सकेगा तुम्हारी आर्थिक सहायता करने से इनकार नहीं कर सकता।" कितना घोर अपमान है नारी-जाति का ? और यदि 'शीला' विनोद की तरफ़ आकृष्ट होती है——वासना से नहीं, केवल हृदय के स्वाभाविक स्नेह-व्यापार से प्रेरित होकर भी विनोद न जाने क्या समझकर उसे लिखता है, "पर आज तो इस दीवानगी में तुम्हें जैसे होगा वैसे सम्बोधन करूँगा। क्योंकि मैं जानता हूँ कि सम्बोधन में उस शक्ति का अभाव है जो तुम्हें बरबस खींचकर मेरे हृदय के पास ला कर दे और तुम्हारे गरम-गरम ज़ोर-ज़ोर से चलते साँसों से मेरे हृदय को शान्ति मिले। अगर तुम——?" "क्या दुनिया में किसी भाव से किया हुआ प्रेम इसी वासना का रूपक है ? क्या दो हृदयों का सामीप्य बढ़ाना, मैत्रीभाव या दो हृदयों का एक दूसरे को सुख-दुःख की गाथा सुनाकर अपने को हलका कर लेना स्वस्थता नहीं है ?" परन्तु पुरुष इस स्वस्थता की कल्पना नहीं कर सकता। स्त्री को वह अपने भोग की वस्तु समझता आया है और उस समय तक समझता जायगा जब तक वह पति अथवा माता-पिता आदि की आश्रित रहेगी और अपने पैरों पर खड़ी हो जायगी।

नारी जब तक अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्माण नहीं करती तब तक न जाने कितनी 'शुभाएँ' लुटती रहेंगी, न जाने कितनी 'शीलायें' इसी 'शाश्वत बंधन में पड़ी तड़फती रहेंगी, न जाने कितनी 'कोइलियाँ' कुम्हलाती रहेंगी कि 'सूली ऊपर सेज पिया की किस विध मिलना होय।' उस समय कदाचित् भाभी को किसी क्रूर-उग्र साथी के साथ दो घड़ी रसभरी अठखेलियों के लिए चिन्तित नहीं होना पड़ेगा, 'निशा' को 'आलोक' पर हृदय लुटाकर निराश नहीं होना पड़ेगा और 'सरला' को मोहिनी नहीं बनना पड़ेगा। परन्तु जब तक माता-पिता अपने आर्थिक भार को किसी 'होनहार युवक' पर डालते रहेंगे, तब तक पुरुष स्त्री के लिए इस सत्य को स्वीकार नहीं कर सकता कि——"प्रेम भी परिवर्तनशील है और दाम्पत्य-जीवन में तो कुछ दिनों के बाद प्रेम पाखंड और निर्जीव हो जाता है," वह तो नारी को एक ही रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित नहीं, मजबूर करता रहेगा।

भावुकता प्रधान न होते हुए भी इन कहानियों में इस प्रश्न की ओर संकेत किया गया है। एक नारी के द्वारा इतने स्पष्ट स्वर में घोषित की हुई इस विद्रोह-दुन्दुभी का हम स्वागत करते हैं। परन्तु श्रीमती सिनहा का भावुक हृदय विद्रोही होते हुए भी क्रन्दन-द्वारा पुरुषों से अपील करता हुआ जान पड़ता है। आशा है, वे इस वेदना-विह्वलता के प्रकाशन के बाद कठोर शक्ति-संचय का भी उपक्रम करेंगी, क्योंकि इस पशु-बल-प्रधान संसार में जब तक न्यायपूर्ण माँगों के पीछे प्रखर बल का आधार नहीं होता तब तक करुण-कलाप, अरण्य-रुदित-मात्र रह जाता है।

श्रीमती सिनहा ने कहानियाँ लिखने के लिए कहानियाँ नहीं लिखीं, इसी लिए हमने उन्हें कहानी-कला की कसौटी पर न कस कर उनकी विचार-धारा की समीक्षा की है। उनके अन्तस्तल में जो एक दर्द है, एक टीस है, उसे उन्होंने अनेक बार, अनेक ढंगों से, पुनरुक्ति-दोष स्वीकार करके व्यक्त करने की कोशिश की है। समस्त कहानियों में विहाग का ही स्वर-ताल है, उनका वातावरण आवश्यकता से अधिक टेन्स है, और उनकी भावुकता-पूर्ण शैली ने इस खिंचावट को और भी बढ़ा दिया है। यदि कहानियों में कथानक की नवीनता, व्यक्तिगत चरित्र-चित्रण, कथोपकथन का बाँकपन प्रचुर मात्रा में न मिले तो हम निराश नहीं हो सकते, क्योंकि लेखिका ने जिस उद्देश्य से अपनी क़लम चलाई है उसमें उसे काफ़ी सफलता मिली है। ये कहानियाँ किसी नारी-विशेष की व्यक्तिगत कहानियाँ नहीं हैं, वरन समस्त नारी-जाति की सदियों की संचित वेदना को व्यक्त करनेवाली करुण आत्म-कथायें हैं—— इनमें व्यक्ति के नहीं, श्रेणी के भावों का प्रकाशन है। विचारशील पाठकों से हम उन भावों को सोचने-समझने का साग्रह अनुरोध करते हैं।

——व्रजेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या-सम्पन्न

बार्हस्पत्य जी का स्वर्गारोहण

दिल्ली के सुप्रसिद्ध विद्वान् बाबू छोटेलाल जी एक्ज़ीक्यूटिव इंजीनियर (रिटायर्ड) की २१ अगस्त को अपने स्थान (रौशनपुरा–दिल्ली) में मृत्यु होगई। बाबू जी गणित-विद्या के प्रकाण्ड पण्डित थे, ऊँचे उत्तरदायित्वपूर्ण सरकारी पद पर पहुँचने पर भी उनकी विद्याभिरुचि बढ़ती ही गई थी। ४० वर्ष की आयु के ऊपर पहुँचकर उन्होंने संस्कृत-भाषा का अध्ययन किया था और उसमें उनकी बहुत अच्छी गति होगई थी। सिद्धान्तकौमुदी का इतनी आयु में रट कर अभ्यास करना और साथ ही अपने पद का भी काम अंजाम देना भारतीय लोगों के लिए अवश्य अनोखी बात है। आपका संस्कृतज्ञान किसी विशेष अभिप्राय से था, वैदिक ज्योतिष के सम्बन्ध में आपने योरपीय विद्वानों के जो लेख पढ़े थे उनसे आपकी सन्तुष्टि नहीं हुई थी, इसलिए आपने संस्कृत-भाषा का अच्छा अभ्यास करके फिर लगध मुनि के ज्योतिषशास्त्र की बहुत परिश्रम से छान-बीन की और उसके अनेक स्थलों पर जहाँ भारतीय और योरप के विद्वानों की बुद्धि चकरा गई थी और वे किसी प्रकार उन स्थलों का सामञ्जस्य नहीं कर पाये थे उन पर एक बहुत सुन्दर लेख-माला अँगरेज़ी में लिखी थी, उस समय तक के प्रायः सब विद्वानों के मतों का उसमें खण्डन आपने अपनी नवीन युक्तियों से किया था, कुछ दिनों तक उस पर बहुत वाद-विवाद चला था किन्तु बार्हस्पत्य जी के युक्तियुक्त लेखों का कोई खण्डन नहीं कर सका और इस प्रकार बहुत दिनों से संदिग्धरूप में चले आनेवाले एक बहुत बड़े महत्त्व के विषय का इस विद्वान् ने अपनी लम्बी खोज और सतत परिश्रम से निर्णय कर डाला। उन्हीं लेखों पर मुग्ध होकर द्विवेदी जी महाराज ने बार्हस्पत्य जी का पता लगाया, वे अपना नाम किसी को बताना नहीं चाहते थे किन्तु द्विवेदी जी ने हिन्दुस्तान रिव्यू के सम्पादक सच्चिदानन्द जी सिनहा पर अपना वैयक्तिक ज़ोर डाल कर उनका [illegible] मालूम कर ही लिया और फिर उन्हें पत्र लिखकर [illegible] विद्वत्तापूर्ण लेखों की दाद दी, द्विवेदी जी पर [illegible] बार्हस्पत्य जी की इतनी श्रद्धा हो गई थी कि उनके [illegible] को स्वीकार करके उन्होंने कई लेख हिन्दी में [illegible] के लिए लिखे थे। वे लेख हिन्दी में, अपने ढंग के बिल्कुल नये थे किन्तु एक्ज़ीक्यूटिव इंजीनियरी के पद का सरकारी काम इतना अधिक उन्हें रहता था और वे अपने [illegible] को बहुत ही परिश्रम और योग्यता से करने के [illegible] थे इसलिए उन्हें हिन्दी के दुर्भाग्य से उस समय तो सरकारी काम के कारण अवकाश नहीं मिला और जब वे [illegible] पद से अवसर ग्रहण करके घर पर आये और उस [illegible] कुछ साहित्यिक काम करना चाहते थे कि बीमारी ने उन्हें ऐसा पकड़ लिया कि कोई काम करने के योग्य न [illegible] कई बार पक्षाघात का आक्रमण होने के कारण [illegible] मस्तिष्क बिलकुल असमर्थ होगया था। पिछले शीतकाल में जब इन पंक्तियों का लेखक उनका दर्शन करने [illegible] शय्या के पास गया तब उनका मस्तिष्क कुछ सम्भलता [illegible] लगा था फिर भी उन्हें पुरानी बातें याद न आती थीं। उस समय आपने अपने बालकों जैसे सरल स्वभाव से पूछा था—"पण्डित जी, इतना सब हो गया पर [illegible] ज़िन्दा हूँ समझ में नहीं आता क्या मामला है।" उस [illegible] मैंने उन्हें द्विवेदी जी का एक श्लोक* सुनाकर कहा "आपने सच्चे तपस्वी ब्राह्मण ने दीर्घायुष्य का आशीर्वाद दे दिया था।" उस श्लोक को कई बार सुनकर [illegible] अर्थ समझने लगे और फिर हँसकर बोले "यह [illegible] द्विवेदी जी की कृपा थी, सचमुच उनका आशीर्वाद ही [illegible] जिलाये हुए है।" यद्यपि उस समय द्विवेदी जी

* दुर्ज्ञेयार्थे लागधेज्यौतिषेऽस्मिन् सुज्ञेयार्थायेन टीका [illegible]
सोऽयं विद्वद्वृन्दलब्धप्रतिष्ठो बार्हस्पत्यो [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गवास हो चुका था किन्तु मानसिक उत्तेजना से उन्हें कोई फिट न आजाय इसलिए उनसे वह बात नहीं कही गई। मस्तिष्क से अत्यधिक काम लेने के कारण ही उनके स्वास्थ्य की यह दुर्दशा हो गई थी। भारतवर्ष में सरस्वती और लक्ष्मी के कल्पित विरोध की तरह काम और विश्राम का भी बिलकुल मेल नहीं है, काम करते करते शरीर निकम्मा हो जाता है दूसरी ओर काम न मिलने से शरीर निकम्मे हो रहे हैं। डाक्टर भगवानदास जी की तरह दोनों का विचार रखकर चलनेवाले भारतवर्ष में कम विद्वान् हैं, जिन्हें काम के साथ विश्राम का भी ध्यान रहता हो। बाबू जी की लम्बी बीमारी और उसके कारण उत्पन्न हुई असमर्थता ने देश और जाति को बहुत हानि पहुँचाई वरना वे जो कुछ लिख जाते उस पर भारतवासियों को गौरव होता।

हक़ मग़फ़रत करे अजब आज़ाद मर्द था।

——ज्वालादत्त शर्मा

वर्षा क्यों नहीं होती ?

इसके एक नहीं अनेक कारण हैं

(१) धर्मप्राण हिन्दुओं की धारणा है कि प्राचीन भारत में घी-मेवे और मेह बरसानेवाले पदार्थों से अश्वमेधादि बड़े-बड़े यज्ञ हमेशा होते थे जिनके सुस्निग्ध और व्यापक धुएँ से गर्मी के दिनों में समुद्र के जल को खींचनेवाली सूर्य-किरणों को सहारा मिलता था और उससे सानुकूल वर्षा होती रहती थी। अब यज्ञ होना बन्द होगया इस कारण वर्षा नहीं होती।

(२) विज्ञान से विदित होता है कि जलप्लावित जमीन के जो हिस्से सघन वृक्षों से सदैव आच्छादित रहते हैं उनके अन्दर एक ऐसी ऊष्मा होती है जो जलपूर्ण सूर्य-किरणों को अपनी ओर आकर्षित करती है—और उसी आकर्षण से वृक्षाच्छादित भूखण्डों में भरपूर वर्षा हो जाती है। लेकिन जब से इस देश में रेलवे लाइनों का फैलाव हुआ है तब से एक एक करके सैकड़ों मील के भूभाग—वन-जंगल वृक्षच्छाया से बिलकुल शून्य हो गये—और हर जगह पक्के मकान बनने की भरमार बढ़ जाने से घर, गाँव, मुहल्ले या सद्गृहस्थों के वासस्थानों में भी वृक्ष नहीं रहे, इस कारण वर्षा नहीं होती।

(३) युद्धाभिलाषियों का मत है कि जिन दिनों खट्गयुद्धादि के रक्तपात से भारत की भूमि भीगती रहती थी उन दिनों यहाँ वर्षा भी यथेच्छ होती थी। अब अव्वल तो युद्ध ही नहीं होते और कहीं होते भी हैं तो विषैली गैस के धूएँ से हज़ारों लाखों मनुष्यों की 'एकदम घोटने की हत्या' की जाती है। इस कारण वर्षा की हीनता या न्यूनता होती है।

(४) ज्योतिष के मत से यह प्रकट किया जाता है कि भारत में अतिवृष्टि, अनावृष्टि, उपलवृष्टि और भूकम्पादि करनेवाले ग्रहों के कुयोग बन रहे हैं और ये अभी ३-४ वर्ष और रहेंगे इस कारण इनके आधिपत्य में वर्षा का अभाव रहेगा।

(५) ग़रीबों का कहना है कि वर्षा के कम होने पर भी बाजरा जैसे बहुत-से अन्न अधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाते हैं और उनसे ग़रीबों के भूखे परिवार भरपेट रोटी खा लेते हैं परन्तु हज़ारी-बज़ारी लखपती होने को और लखपती-करोड़ीधज बनने को बीस बीस हज़ार बोरियों का बाजरा एक एक गाँव से बाहर भेज कर हमारे लिए वही एक बार खाने का बाइस सेर के बदले बारह सेर का महँगा बाजरा छोड़ते हैं ऐसी कुनीति के लिए वर्षा नहीं होती।

(६) सनातनी समझते हैं कि जिस देश में सुपूजनीय गोद्विजदेवादि के बदले अपूजनीय पूजे जायँ उस देश में महार्घता, महामारी और अनावृष्टि अवश्य होती है। भारत में इन दिनों अपूजनीय देवों और आदमियों का पूजन ही अधिक होता है इस कारण वर्षा नहीं होती।

(७) वास्तव में भारतवर्ष के प्राकृतिक परिवर्तन से यहाँ की ग्रीष्म, वर्षा और शरद् ऋतुएँ यथासमय नहीं होतीं और उनके लोम-विलोम होने से अवर्षणादि अनेकों उत्पात होते हैं इनको सानुकूल बनाने में हमारे यम-नियम और उपायों की अपेक्षा ईश्वर की इच्छा प्रबल है। उसी से अवर्षण भी अलग हो जाता है और अनुकूल वृष्टि भी हो सकती है।

एवमस्तु

—हनूमान शर्मा चौमूँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यिक की उलझन

काली घटा बढ़ती चली आती है गगन पर।
झुक झूम झूम पेड़ हैं अलमस्त मगन, पर--
साहित्य का सेवक किसी मसले में है उलझा,
सुलझाया चाहता है पै पाता नहीं सुलझा।
ऐसे ही समय आके कोई डाकिया हरिहर,
'पंडित जी' कह पुकार उठा रूम के बाहर।
बुक पोस्ट के बंडल हैं कई पाँच, सात, दस!
इन पोथों में शायद ही हो रस का दरस-परस!
ले कर के एक-एक को सेवक है खोलता,
कुंचित ललाट उसका और होंठ डोलता!
उहँ, मारिए गोली, वही अनुरोध लेख का,
कुछ देख-रेख का तथा कुछ मीन-मेख का।
फिर खोलता है एक सुविख्यात-सा परचा,
जिसकी मची है धूम यत्र-तत्र है चरचा।
पहला ही पेज देख के कुछ उनमना हुआ,
दो चार और देखे तो दिल चुनमुना हुआ।
फिर एक पृष्ठ; और हाथ माथे पै गया,
आँखें गईं पथरा जो पृष्ठ खोलता नया।
पढ़-पढ़ के ले रहा है उसासें हज़ारहा,
आकाश मगर शान से बरसे ही जा रहा।
पारे का-सा दरियाव चहूँ ओर उछलता,
बच्चों का दल उसे है लूटने को मचलता।
टुप टाप टूप टाप टूप टाप टूप टाप,
बच्चे क्या मचल जायँ जो बच्चों के बड़े बाप!
सारी उमर सेवक ने की ज्योतिष की पढ़ाई,
पर बम्बईवाले ने फतह कर ली लड़ाई।
वृष-मेख, मिथुन-कर्क सुफल सबका हाँकता।
साहित्य का सेवक है मगर धूल फाँकता।
बंगाल के इस बोलपूर में कटी उमर।
खजाना मगर तिलस्म का पहुँचा है अमृतसर;
वह छप गई किताब, बिक गई भी बीसहा!
ये टापते ही रह गये लिक्खाड़ जी महा!!
मेस्मर से ले के फ़ायड और युंग के पोथे,
चाटे हैं मगर सब हुए बेकार औ' थोथे!
वह मेस्मरिज्म का जो करामाती है दर्पण!
अल्लीगढ़ी जादूगरी को हो गया 'अर्पण!
दिन तीन ही में काले हो जायें सफ़ेद केश,
ऐसा गया में एक करामाती है दरवेश--
वह भी न मिला हाय अभागे लिखाड़ को,
वह झोंकता ही रह गया किस्मत के भाड़ को।
मस्तानी दवा जो है इटावे से चल पड़ी,
क्या वह भी न मिल सकती थी सेवक को उस घड़ी!
चटकीले बहुत-से बड़े विज्ञापनों के ठाट,
मैनेजरों ने हैं दिये पन्ने सभी ही पाट।
चूरन कहीं कहीं पै है मोदक बहारदार।
गंजे की खोपड़ी पै कहीं आता वहंभार!
देख इश्तिहार षष्ठ सप्त मदनास्त्र का,
दिलखुश का, सेंट-सोप का, औ' कोकशास्त्र का,
उस झीन-सीन गोल्ड का, आश्चर्य मलम का,
सब चूर चूर हो गया अभिमान क़लम का!!

--'अभिनव तुकाराम'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय कला-आदर्श

लेखक, श्रीयुत मुकन्दीलाल बी० ए०, (आक्सन) बार-एट-लॉ

हमारी राष्ट्रीय भाषा, हिन्दी में चित्रकला के विषय में पुस्तकों का अभाव है। श्री ठाकुर राम-बहादुरसिंह ने मिस्टर मुल्कराज आनन्द जी की 'हिन्दू व्यू आफ़् आर्ट' नाम की अँगरेज़ी पुस्तक का 'भारतीय कला-आदर्श' के नाम से हिन्दी में अनुवाद करके इस कमी को दूर करने की जो चेष्टा की है वह सराहने के योग्य है।

संसार में ऐसी कोई जाति या देश नहीं जिसमें चित्रकला अथवा चित्र व मूर्ति किसी न किसी शक्ल में न पाई जाय। इससे सिद्ध होता है कि चित्रांकण मानव-जाति की एक स्वाभाविक चेष्टा है। हिन्दू-जाति की संस्कृति नियमबद्ध है। इसी कारण हिन्दू-जाति का चित्रकला-आदर्श और चित्रांकण-विधि भी नियमबद्ध है। हिन्दू-चित्रकला और स्थापत्य को समझने के लिए इस जाति के चित्रांकण के नियमों का जानना अत्यावश्यक है।

हिन्दू-चित्रकला के नियम निम्नलिखित पुस्तकों में दिये गये हैं:—

१—विष्णुधर्मोत्तर-पुराण में 'चित्रसूत्र', २—अभिलषितार्थचिन्तामणि, ३—मानसोल्लास, ४—शिल्परत्न, ५—शिल्पशास्त्र, ६—शुक्रनीति, इत्यादि।

इनके अतिरिक्त नीति तथा साहित्य के अन्य ग्रन्थों व अन्य पुराणों में भी चित्रांकण-विधि व चित्रादर्श पर विस्तारपूर्वक लिखा गया है। किन्तु खेद का विषय है कि अब तक हिन्दी में न तो इनमें से किसी पुस्तक का अनुवाद ही छपा है, न किसी ने अब तक इनके आधार पर कोई स्वतन्त्र पुस्तक ही भारतीय चित्रांकण-विधि पर लिखी है।

हिन्दू चित्रकार योगी पुरुष होते थे। वे चित्रांकण योग-साधना-द्वारा करते थे। शुक्राचार्य ने शुक्रनीति में चित्रकार के लिए लिखा है—"उसे चाहिए कि उन देव-मूर्तियों का ध्यान करके मंदिरों में मूर्ति स्थापित करे [illegible] वह उपासक है।"

[illegible] हिन्दू चित्रकार स्वेच्छापूर्वक चित्रांकण करने को [illegible] नहीं, उसके लिए देवताओं के अतिरिक्त औरों के चित्र बनाना निषिद्ध है। इसी लिए शुक्राचार्य ने कहा है—"यदि देव-मूर्ति देखने में भद्दी भी हो तो भी वह मनुष्य की सुन्दर तसवीर से अच्छी है।"

चित्रकार के लक्षण शिल्पशास्त्र में दिये हैं और उसमें बताया गया है कि कौन व्यक्ति चित्रांकण करने का अधिकारी हो सकता है—"शिल्पी को अथर्ववेद और ३२ शिल्प-शास्त्रों का ज्ञान होना चाहिए। जिन वैदिक मन्त्रों-द्वारा देवताओं की आराधना होती है उन मन्त्रों का ज्ञान उसे होना चाहिए। वह यज्ञोपवीतधारी हो, गले में रुद्राक्ष की माला व अँगुली में कुश की अँगूठी पहनता हो देवोपासक व स्त्रीव्रती हो, परदारगामी न हो। कई विद्याओं का जाननेवाला हो।" अन्यत्र बौद्ध-ग्रन्थों में भी लिखा है—"शिल्पकार बहुत अच्छा आदमी हो; वह आलसी न हो, क्रोधी न हो, पवित्र आत्मा हो, विद्वान् हो, आत्मसंयमी हो, दानी और धार्मिक हो।"

हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार चित्रकला व धर्म में भेद नहीं। जैसे कि धार्मिक पुरुष के लिए सदाचारी, दयावान् व सात्त्विक होना आवश्यक है, उसी तरह चित्रकार को भी इन गुणों से सम्पन्न होना चाहिए। तभी वह विधिपूर्वक उपयुक्त चित्र-मूर्ति बना सकता है।

पाश्चात्य विद्वानों में मिस्टर हैवेन एक ऐसे चित्र-विद्या-विशारद और चित्रकार हुए हैं जो चित्रकला के असली आदर्श को भली भाँति समझते थे। उन्होंने अपने एक लेख में लिखा है—"प्रकृति में चित्र, सौंदर्य-सृष्टि के रचयिता की दक्षता दर्शाता है। चित्रकार उसी दैवी सौंदर्य के अंश को दिखाता है। अस्तु, चित्रकला भी एक प्रकार की ईश्वरोपासना है। इसी लिए सारे संसार में सबसे उच्च-कोटि की चित्रकला धार्मिक चित्र व देवताओं की मूर्तियों में ही देखने में आई है।"

यही कारण है कि हिंदू-चित्रकला के अच्छे उदाहरण देवी-देवताओं की मूर्तियों व उनके चित्रों में ही पाये जाते हैं।

भारतीय चित्रकला के सबसे पुराने दृष्टान्त बौद्ध-धर्म व हिंदू-धर्म-सम्बन्धी मूर्तियों व मन्दिरों में व गुफा-मन्दिरों की मूर्तियों पर अंकित पाये गये हैं।

धर्म-प्रचारक महापुरुषों की मूर्तियों के अलावा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं प्राचीन हिंदू-चित्रकला के नमूने देखने में नहीं आते। ज्यों ज्यों इस देश में धर्म का पतन होने लगा, देवताओं की मूर्तियाँ भी भद्दी व दैवी भाव-रहित बनने लगीं।

अजन्ता व बाग इत्यादि के गुफा-मन्दिरों की दीवारों पर अलौकिक चित्र बने हुए हैं। इनका समय ईसा से दो सौ वर्ष पहले से आठवीं सदी तक अनुमान किया जाता है। इसके बाद प्रायः पाँच सौ वर्ष तक के भारतीय चित्र अब तक देखने में नहीं आये। हाँ, मध्य-एशिया और तिब्बत में अवश्य ९ वीं, १० वीं, और ११ वीं सदी तक के भारतीय चित्रों के उदाहरण पाये गये हैं।

इसके बाद जैन-ग्रन्थों के पृष्ठों पर जैन-धर्म-सम्बन्धी चित्र १३ वीं, १४ वीं व १५ वीं सदी के पाये गये हैं। किन्तु वे चित्र अच्छे भाव-पूर्ण देवी-देवताओं व सन्तों के होने पर भी वैसे उच्च कोटि के नहीं हैं जैसे अजन्ता व बाग के भित्ति चित्र हैं, और न वे पीछे के १६ वीं और १७ वीं सदी के मुग़ल-चित्रों की और १८ वीं और १९ वीं सदी के राजपूत व पहाड़ी चित्रों के समा नही सर्वांग-सुन्दर व भाव-पूर्ण और ललित हैं।

अजन्ता आदि के गुफा-मन्दिरों की दीवारों पर बौद्ध-धर्मावलम्बी भिक्षुक चित्रकारों ने उपासना के हेतु तथा समकालीन शासकों के आदेश से बुद्ध भगवान् के जीवन-सम्बन्धी घटनाओं के आधार पर अद्भुत चित्र बनाये हैं। उन भित्ति-चित्रों में कुछ सामयिक ऐतिहासिक घटनाओं के चित्र भी हैं। किन्तु उन सब चित्रों में वे ही धार्मिक, दैवी व आध्यात्मिक भाव विद्यमान हैं। यहाँ तक कि साधारण पुरुषों के चित्रों में भी दैवी भाव दर्शाया है।

जैन-धर्म-सम्बन्धी १२ वीं, १३ वीं व १४ वीं सदी के चित्रों में भी वही धार्मिक दृश्य व भाव हैं। इसी तरह मुग़ल-समय के चित्रों में भी हिन्दू चित्रकार भारतीय (हिंदू) चित्रादर्श ले आये हैं। और जब राजपूत व पहाड़ी चित्र-कला लावण्य, सौन्दर्य व शिल्पीय दक्षता के साथ मुग़ल-चित्रकला से आगे बढ़ी तब उसमें भी वैसे ही दैवी भाव-युक्त धार्मिक विषयों के चित्र बने।

स्थापत्य व मूर्ति-निर्माण के बदले जब रंगीन चित्र-लेखन की प्रथा बढ़ने लगी तब भी हिन्दू-चित्रकला का आदर्श चित्रकारों के सामने धार्मिक व आध्यात्मिक ही रहा। अर्थात् हिन्दू चित्रकार अपने मनोरंजन के लिए स्वेच्छापूर्वक चित्र नहीं बनाते थे। वे रामायण, महाभारत, पुराण और कवियों की कविताओं के आधार पर व उन विषयों पर चित्र बनाने लगे जो उक्त ग्रन्थों व कविताओं में उल्लिखित थे। जब तक (यानी १७ वीं सदी के अन्त तक) भारतीय चित्रकला का पतन शुरू नहीं हुआ, उच्च चित्रादर्श ही चित्रकारों के सम्मुख रहा। हम ऊपर कह चुके हैं, भारतीय चित्रकार बड़े भक्त, धार्मिक व योगी पुरुष होते थे। जब तक हिन्दुओं में वे धार्मिक भाव बने रहे तभी तक भारतीय चित्र-कला अपने आदर्श पर आरूढ़ रही। ज्यों-ज्यों धार्मिक भावों में न्यूनता होने लगी, त्यों-त्यों भारतीय चित्रकला का भी ह्रास होने लगा।

इसका एक अच्छा उदाहरण कवि चित्रकार मोलाराम के जीवन व चित्र-कला में पाया जाता है। मोलाराम का जन्म १७५० ईसवी में श्रीनगर 'गढ़वाल' में दिल्ली से आये हुए मुसव्वरों के ख़ानदान में ४थी पुश्त में हुआ था। उसकी मृत्यु सन् १८३३ में हुई। वह एक बहुत ही उत्कृष्ट राजपूत पहाड़ी (गढ़वाली) चित्रकार हुआ है। वह बड़ा धार्मिक तथा देवी का उपासक था। मोलाराम के चित्र भारतीय (हिन्दू-पहाड़ी-राजपूत) चित्रकला के अच्छे उदाहरण हैं। मोलाराम के चित्रों का भली भाँति निरीक्षण करने से व उसके समय को जो उसने अपने कई चित्रों पर लिखा है, देखते हुए हमारी धारणा है कि मोलाराम की मृत्यु के साथ हिन्दू-"राजपूत" चित्रकला का पतन आरम्भ हुआ।

१९ वीं सदी में भक्ति व धार्मिक भाव व योग-साधना के लोप होने पर आदर्शपूर्ण धार्मिक चित्रकला की भी समाप्ति हो गई।

अब हम आदर्श चित्रकला का निरीक्षण दूसरी दृष्टि से करेंगे। उपासना, भक्ति, साधना, योग, ईश्वराराधना सब एक आदर्श है, जिसको मनुष्य अपने सामने रखकर उसमें लवलीन हो जाता है। पुराने चित्रकार समय के आदर्श व विचारों के अनुसार तथा अपने धार्मिक भाव के अनुसार पौराणिक चित्र अंकित करते थे। उनका ध्येय देवी-देवताओं, ईश्वरीय अवतारों और महात्मा सन्तों के चित्र भक्तिभावपूर्वक अंकित करना था।

मुग़ल बादशाहों के समय में चित्रकार लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले चित्र उसी उच्च भाव के साथ बनाते थे जिसके अनुसार वे हिन्दू-धर्म-सम्बन्धी चित्र बनाते थे। मुग़ल-चित्रों में लौकिक व माननीय आदर्श था। उनमें जीवन की सत्यता थी, उनमें अध्यात्म-भाव भरा हुआ था।

१७ वीं सदी के अन्त में जब न तो वे मुग़ल बादशाह रहे, न हिन्दू-धर्म पर ही लोगों की वह श्रद्धा रही, तब चित्रकला का आदर्श लोप हो गया; इसलिए १७ वीं सदी के पूर्वार्द्ध से नवीन शासक अँगरेज़ों के मनोरंजन के लिए हाथी, ऊँट, मुर्ग़, बटेर इत्यादि की लड़ाई व शिकार इत्यादि के व अँगरेज़ों के आवागमन-सम्बन्धी चित्र बनने लगे। अर्थात् अब चित्र रुपया पैदा करने व बाज़ार में आजीविका कमाने के लिए बनने लगे। पहले चित्रकार रुपया कमाने के लिए चित्रकला नहीं करते थे। वे अपने आश्रयदाताओं, गुण-ग्राहक राजाओं व बादशाहों के दरबारों में रहते थे, उनकी आजीविका के लिए बन्धान बँधे हुए थे, उनके वेतन नियत थे।

मोलाराम ने सन् १७७६ ईसवी के बनाये हुए अपने एक (पद्मिनी) चित्र में लिखा है—

कहँ हज़ार कहँ लक्ष हैं, अर्ब-खर्ब धन-ग्राम।
समझे मोलाराम तो, सुख सुदेह इनाम॥

संवत् १८३३

अर्थात् मोलाराम के अनुसार चित्रकार असंख्य धन-दौलत के बदले अपने चित्र की सराहना की अधिक परवा करता है; अर्थात् चित्रकार रुपये-पैसे के लिए चित्र नहीं बनाता, बरन किसी आदर्श की उपासना में बनाता है और अपने चित्रों की प्रशंसा सुनकर सन्तुष्ट हो जाता है।

आधुनिक काल में लोगों का विश्वास देवी-देवताओं व ईश्वर से क्रमशः लोप होता जा रहा है। यही कारण है कि अब देवी-देवताओं के भाव-पूर्ण, आदर्श चित्र कोई भी चित्रकार नहीं बना रहा है। बाज़ार की दूकानों में या आजकल के मासिक पत्रों में जो हिन्दू-देवी-देवताओं के चित्र दिखाई देते हैं उनको देखकर भारतीय चित्रकला के [illegible]णियों को सिर नीचा करना पड़ता है। ये बाज़ारू चित्र [illegible]तीय चित्रकला को कलंकित कर रहे हैं।

[illegible]र बेराने धार्मिक भावों के न होते हुए भी चित्रकार [illegible]ने भारतीय चित्रादर्श को अपने सामने रख सकते हैं। ऐतिहासिक घटनाओं के व ग्रामीण दृश्यों के चित्र उतनी ही ख़ूबी व उसी आदर्शपूर्ण भाव के साथ वे बना सकते हैं, जिसके साथ हमारे पुराने चित्रकार बनाते थे।

किन्तु चित्रांकण-विधि वही होनी चाहिए जो पहले थी। चित्रकार ध्यानी बुद्ध अथवा योगी की तरह पहले अपने चित्रपात्र का ध्यान करे। तब किसी आदर्श-पूर्ण व्यक्ति व घटना का भाव-पूर्ण चित्र बनावे।

बंगाल के जगद्विख्यात चित्रकार डाक्टर अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने संसार को बता दिया है कि भारतवर्ष से यद्यपि पौराणिक या वैदिक धर्म का लोप हो गया है, भक्ति-मार्ग मिट गया है, तथापि चित्रकार नवीन आदर्श को सामने रखकर आदर्श व भाव-पूर्ण दैवी चित्र आज भी बना सकते हैं। और वे अपने विख्यात शिष्य श्री नन्दलाल वसु, श्री असितकुमार हाल्दार, श्री मुकुलदेव और श्री देव वर्मन इत्यादि को सिखा गये हैं कि इस धर्माभाव के ज़माने में भी नवीन आदर्श अपने सामने रखकर संसार को फिर से भारतीय आदर्श चित्र-कला के आदर्श का दिग्दर्शन करा सकते हैं। श्री असितकुमार हाल्दार के एक शिष्य लखनऊ के श्री जिज्जा ने योग-साधना का अवलम्बन भी कर लिया है वे योगी अथवा एक साधु की तरह रहते हैं। वे ग्रामीण जीवन के बहुत अच्छे भावपूर्ण चित्र बनाते हैं, जो भारतीय चित्र-कला के आदर्श के अनुसार ठीक हैं।

केवल रंगीन तसवीरें बना देना काफ़ी नहीं, यह तो चित्रकला को कलंकित करना है। जब हम सीता और पार्वती व राधा के चित्र को किसी बाज़ारू स्त्री के चित्र के समान पाते हैं और राम व कृष्ण के चित्र को एक पहलवान या गुंडे की तसवीर के सदृश देखते हैं तब हमें बड़ा दुःख होता है।

चित्रकला के आदर्श के विषय में जो अज्ञान फैला हुआ है उसी के कारण आज गन्दे और भद्दे चित्र गली-गली बिक रहे हैं।

इसमें दोष वर्तमान शिक्षा-पद्धति का है, क्योंकि उसमें चित्रादर्श की शिक्षा को स्थान ही नहीं दिया गया है। बी० ए० और एम० ए० पास करने पर भी हमारे शिक्षित युवकों को यह ज्ञान नहीं होता कि आदर्शपूर्ण चित्र क्या चीज़ है। चित्रावलोकन व चित्रनिरीक्षण करना उन्हें आता ही नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में शेयरों का बाज़ार

द्रव्य-विनिमय अर्थात् स्टाक-एक्सचेंज

लेखक, प्रोफेसर प्रेमचन्द्र मलहोत्रा

द्योग और व्यवसाय के लिए पूँजी की अनवरत आवश्यकता है। पूँजी से ही व्यवसाय सींचे जाते हैं। यदि पर्याप्त पूँजी न मिले तो उद्योग और व्यवसाय सब सूख जायँ, जैसे बिना पानी के वनस्पति सूख जाती है।

पूँजी के बाज़ार दो नमूने के होते हैं। एक तो नई पूँजी के लगाने का बाज़ार, जिससे लोग नये नये व्यवसायों मे रुपया लगाते हैं, दूसरा 'स्टाक-एक्सचेंज' तथा व्यवसाय में लगाई हुई पूँजी का बाज़ार।

स्टाक-एक्सचेंज क्या है और इसका देश के आर्थिक जीवन में क्या स्थान है, इसका कार्यक्रम कैसे चलता है, भारत में स्टाक-एक्सचेंज की क्या दशा है, इन सब प्रश्नों का मोटे तौर पर हम इस लेख में ब्योरा देंगे।

आज-कल व्यवसाय और अन्य उद्योग-मिश्रित पूँजी कम्पनियों के द्वारा चलते हैं। किसी कम्पनी की पूँजी एकत्र करने के लिए उसकी कुल पूँजी थोड़े मूल्य के हिस्सों में बाँट दी जाती है और इससे आम लोग व्यवसायों में रुपया लगा सकते हैं और बड़ी से बड़ी पूँजी भी शीघ्र ही इकट्ठी हो जाती है। हिस्से कई भाँति के होते हैं, जैसे साधारण (Ordinary shares), रियायती हिस्से (Preference shares), विलम्बित हिस्से (Deferred shares), डिबेंचर (Debenture) इत्यादि। इन हिस्सों का श्रेणी-विभाग जोखिम के आधार पर किया जाता है। विलम्बित हिस्से सबसे अधिक जोखिमवाले होते हैं। इस कारण इन पर सब हिस्सों से अधिक डिविडेन्ड (Dividend) की आशा होती है।

लोग सरकारी ऋण में भी रुपया लगाते हैं। ये ऋण नियत वर्षों के बाद चुकाये जाते हैं।

स्टाक-एक्सचेंज एक ऐसा बाज़ार है, जहाँ हिस्से, डिबेंचर बौंड, स्टाक (ऋण पत्र), सिक्युरिटी (सरकारी ऋण) इत्यादि खरीदे और बेचे जाते हैं। यदि किसी व्यक्ति ने अपना रुपया किसी व्यवसाय में या सरकार को ऋण में लगाया है और वह नक़द रुपया चाहता है तो वह बाज़ार में हिस्से तथा अन्य हुण्डी-काग़ज़ों को सुविधा से बेच सकता है। यह विश्वास कि लगाया हुआ रुपया ज़रूरत पर नक़द रुपये में तबदील हो सकता है, रुपया लगानेवालों को रुपया लगाने में प्रोत्साहन देता है और नई पूँजी का प्रवाह नये व्यवसाय और धंधों की ओर बहता रहता है। यदि ऐसी सुविधा न हो तो एक दफ़ा रुपया लगाया हुआ गड़-सा जायगा और रुपया लगाने में लोग संकोच में पड़ लेंगे। इस दशा में पूँजी का प्रवाह रुक जायगा और औद्योगिक उन्नति में पूँजी के अपर्याप्त होने से बाधा पड़ेगी। स्टाक-एक्सचेंज से एक और अभिप्राय सिद्ध होता है। हिस्सों की ज़मानत पर लोग ऋण ले सकते हैं। यदि हिस्सों के बिकने की कोई मण्डी न हो तो उधार लेना असम्भव-सा हो जाय। यहाँ यह बतला देना अप्रासंगिक न होगा कि आज-कल बहुत-सी व्यवहार-क्रिया उधार पर ही निर्भर है।

व्यवसाय का उतार-चढ़ाव, उद्योग की उन्नति, अवनति, पूँजी के बाज़ार में तंगी तथा विषमता, इन सब बातों का स्टाक-एक्सचेंज के सौदे के भावों से पता चलता है। जैसे खाँड के व्यवसाय की उन्नति की भविष्य में अधिक आशा है तो खाँड़ के हिस्से तेज़ी पर बिकेंगे। यदि कपड़े का भविष्य ढीला नज़र पड़ता है तो कपड़े के हिस्सों की क़ीमत घट जायगी। इसी तरह जब लोगों का सरकार में विश्वास हो तब सरकारी ऋण की क़ीमत चढ़ जाती है। परन्तु यदि किसी युद्ध की संभावना हो तो सरकारी ऋण की क़ीमत गिर जाती है। जब १९२० की लाहौर-कांग्रेस में यह प्रस्ताव पास हुआ था कि भारत के विदेशी ऋण की पड़ताल की जाय और जो ऋण अन्याय तौर पर अँगरेज़ी सरकार ने भारत के कंधे पर लाद दिये हैं उनसे भारत को मुक्त किया जाय तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक्सचेंज में एक भूकम्प आ गया था। सरकारी काग़ज़ों (Government securities) की क़ीमत बहुत घट गई और सरकार को नया ऋण लेने के लिए ऊँचे दर से ब्याज देना पड़ा।

स्टाक-एक्सचेंज से पूँजी का अन्तर्राष्ट्रीय आकार हो जाता है और पूँजी लगाने का क्षेत्र अपने देश तक ही सीमित नहीं रहता।

स्टाक-एक्सचेंज में लेन-देन केवल उस संस्था के सदस्य ही कर सकते हैं और बाहर के दलाल उन सदस्यों की मार्फ़त ही काम करते हैं। सदस्य बनने का शुल्क काफ़ी भारी रक़म होता है। सदस्य या तो दलाल (Broker) या जाबर (Jobber) होता है। दलाल जाबर जन-साधारण में दलाली पर लेन-देन करवाता है। लोग जाबर से सीधा व्यवहार नहीं कर सकते। उन्हें ब्रोकरों की मार्फ़त काम करना पड़ता है। ब्रोकर निजी तौर पर हिस्से ख़रीदते या बेचते नहीं। यह काम जाबर का है। ब्रोकर तो दलाली से मतलब रखते हैं। जो सट्टेबाज़ भाव के चढ़ने की उम्मीद से ख़रीदते हैं उन्हें व्यापारी बोली में बुल (Bull) और जो सट्टेबाज़ भाव के घटने की उम्मीद में बेचते हैं उन्हें बेएर (Bear) कहते हैं।

जिस दिन सौदों का भुगतान होता है उसको सेटलमेंट दिन कहते हैं। इस दिन हिसाब साफ़ हो जाना चाहिए। हिस्से बेचनेवाला हिस्से अर्पण कर दे और रक़म देनेवाला रुपये का भुगतान कर दे।

लंडन, पेरिस, न्यूयार्क, एमस्टरडम के स्टाक-एक्सचेंज-बाज़ार तो श्रेष्ठ रूप से संगठित हैं। इसका कारण इन देशों का आर्थिक, औद्योगिक और व्यावसायिक प्रसार है। हमारा देश तो आर्थिक क्षेत्र में बहुत पिछड़ा हुआ है और इसी कारण स्टाक-एक्सचेंज-व्यवसाय बहुत दूर तक पनप नहीं पाया। आर्थिक वृद्धि के साथ साथ स्टाक-एक्सचेंज-व्यवसाय भी बढ़ता जा रहा है। आज भारत में कलकत्ता, बम्बई, मदरास और लाहौर—इन चार प्रसिद्ध शहरों में स्टाक-एक्सचेंज स्थापित हैं।

कलकत्ते का स्टाक-एक्सचेंज—यहाँ स्टाक-एक्सचेंज के बीज १८८५ में बोये गये। स्टाक-एक्सचेंज का कोई मकान नहीं था। कुछ दलाल जे-डेब-एण्ड कम्पनी के बरामदे में हिस्से बेचने और ख़रीदने के लिए प्रति-दिन जमा हो जाते थे। उस समय केवल ५० हिन्दुस्तानी और ४ या ५ यूरोपीय दलाल थे। केवल कोयले, चाय और कुछ सन के हिस्सों के सौदे होते थे। सन् १९०४ में दलालों के संघ का निर्माण हुआ और इसका कारण था एक हिन्दुस्तानी दलाल के प्रति दुर्व्यवहार। १९०८ में कलकत्ता-स्टाक-एक्सचेंज-संघ ने ठीक रूप धारण किया। शुरू में इस संघ के १५७ सदस्य थे, परन्तु अब २१७ कम्पनियाँ तथा ४७० व्यक्ति हैं। दाख़िले का चंदा पहले ५०० रुपये था, पर अब ५,००० रुपये है। एक्सचेंज का प्रबन्ध १४ आदमियों की एक कमिटी के हाथ में है, जिस में ४ अँगरेज़, ४ बंगाली, ४ मारवाड़ी और दो हिन्दुस्तानी हैं। स्टाक-एक्सचेंज-संघ अगस्त १९२३ में ३,००,००० रुपये की निर्धारित पूँजी से रजिस्टर करवाया गया। यह पूँजी एक हज़ार रुपये के मूल्य के तीन सौ हिस्सों में बाँटी गई। आज एक हज़ार रुपये के हिस्सों की क़ीमत १७,००० रुपये है। इसी से इसे संघ की समृद्धि का स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

कलकत्ता-स्टाक-एक्सचेंज में सरकारी क़ागज़ (Government scrip), खाँड़, जूट, चाय के हिस्सों के सौदे होते हैं। इसके अतिरिक्त कई और उद्योग और कम्पनियों के हिस्से भी मिलते हैं—जैसे पब्लिक लाभ की २४ कम्पनियाँ (Public Utility Concerns), १८ इंजिनियरिंग कम्पनियाँ, २४ रेल की कम्पनियाँ, ५७ रबड़ की कम्पनियाँ, ७ जहाज़ की कम्पनियाँ, ६ बीमा-कम्पनियाँ इत्यादि।

१९३७ में बंगाल शेयर एण्ड स्टाक-एक्सचेंज-संघ लिमिटेड स्थापित हुआ। कलकत्ता-स्टाक-एक्सचेंज इस नये संघ को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझता है।

बम्बई-स्टाक-एक्सचेंज—स्टाक-एक्सचेंज-व्यवसाय का अगुआ होने का श्रेय बम्बई को है। बम्बई में स्टाक-एक्सचेंज की डायमंड जुबली १९३७ में मनाई गई थी। वैसे तो हिस्सों का व्यवसाय बम्बई में लगभग एक शताब्दी से होता आया है, परन्तु ९ जुलाई, सन् १८७५ में स्टाक-एक्सचेंज का संगठित तौर पर निर्माण हुआ। स्टाक-एक्सचेंज की वृद्धि का अनुमान तो इन बातों से चलता है कि १८७७ में एक्सचेंज की निजी पूँजी केवल २,५०० रुपया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी, परन्तु आज २५,००,००० रुपया से अधिक है। सदस्य-शुल्क शुरू में ५१ रुपया था, परन्तु अब २०,००० रुपया है। बम्बई-स्टाक-एक्सचेंज के प्रधान हिन्दुस्तानी ही होते आये हैं। पहले प्रधान श्री चूनीलाल मोतीलाल थे। अन्य प्रधान श्री प्रेमचन्द रायचन्द, सर शराप जी श्री काका भाई प्रेमचन्द थे।

१९३७ में एक दूसरी स्टाक-एक्सचेंज-मारकेट इंडियन स्टाक एक्सचेंज लिमिटेड के नाम से स्थापित की गई। इस नये स्टाक-एक्सचेंज-बाज़ार में बम्बई के अतिरिक्त अन्य जगह के शेयरों के सौदे होते हैं और इससे यह प्रचलित हो गया है। इस नये एक्सचेंज में अधिकतर तात्कालिक सुपुर्दगी (Ready delivery) के सौदे होते हैं।

जैसे कलकत्ते के बाज़ार में जूट के शेयर प्रधान हैं, वैसे ही बम्बई के बाज़ार में कपड़े के शेयर प्रधान हैं। कपड़े के व्यवसाय में ४० करोड़ रुपये की पूँजी लगी हुई है। कपड़े की ३७० मिलों में से लगभग २१० मिलें बम्बई में हैं। बम्बई के बाज़ार में टाटा-कम्पनी के लोहे के शेयर, सीमेन्ट के शेयर, पानी से निकाली हुई बिजलीवाली कम्पनियों (Hydro-electric) के शेयर अच्छे प्रचलित हैं।

मदरास-स्टाक-एक्सचेंज—मदरास का स्टाक-एक्सचेंज १९२३ में बन्द हो गया था, पर अगस्त १९३७ में इसका फिर उद्घाटन हुआ। स्टाक-एक्सचेंज के न होने पर भी मदरास में अनेक दलाल निजी तौर पर स्टाक और शेयर का धंधा करते थे। आर्थिक प्रसार के कारण मदरास में रुपया लगानेवालों की संख्या बहुत बढ़ गई और मदरास के लोगों का कलकत्ते और बम्बई के बाज़ारों में लेन-देन बढ़ता गया। इस कारण मदरास ने भी स्टाक-एक्सचेंज की आवश्यकता का अनुभव किया। १९३७ में मदरास-स्टाक-एक्सचेंज-एसोसिएशन लिमिटेड का प्रारम्भ हुआ। सदस्य-शुल्क ५,००० रुपया है और ५,००० रुपये की जमानत रखनी पड़ती है।

सरकारी सिक्युरिटियों के अलावा मदरास के बाज़ार में ९० लिमिटेड कम्पनियों के हिस्से मिलते हैं—बैंकों के हिस्से, कपड़े की मिलों के हिस्से, सीमेंट, चाय और शक्कर की कम्पनियों के हिस्से, रबड़ की कम्पनियों के हिस्से, पब्लिक युटिलिटीज़ (जैसे पानी, बिजली, ट्राम कम्पनियाँ) के हिस्से इत्यादि।

लाहौर-स्टाक-एक्सचेंज—शुरू में लाला हरिकृष्ण लाल ने लाहौर में स्टाक-एक्सचेंज स्थापित करने की चेष्टा की, परन्तु उनके प्रयत्न विफल रहे, क्योंकि स्वर्गीय लाला लाजपतराय ने स्टाक-एक्सचेंज का विरोध किया। उनके मत में स्टाक-एक्सचेंज में सट्टे का दौर चलता है और यह देश के हित के लिए नहीं है। १९३६ में कुछ ब्रोकरों ने "लाहौर-स्टाक-एक्सचेंज" का संचालन किया। जनवरी १९३६ में "दी पंजाब स्टाक लिमिटेड" की स्थापना हुई। एक्सचेंज की निर्धारित पूँजी १,००,००० रुपया है। यह १,००० रुपये के १०० हिस्सों में बाँटा गया है। एक्सचेंज के हिस्सों की क़ीमत एकदम १,००० रुपया प्रतिहिस्से से ४०० रुपया प्रतिहिस्सा हो गई। यह स्टाक-एक्सचेंज की आवश्यकता का स्पष्ट प्रमाण था।

सदस्य-शुल्क ५०० रुपया है। इस प्रवेश-शुल्क के अतिरिक्त प्रत्येक सदस्य को १५ रुपया प्रतिमास देना पड़ता है।

कलकत्ते और बम्बई के बाज़ारों के मुक़ाबिले में पंजाब का बाज़ार थोड़े क़िस्म के हिस्सों में काम करता है। इसकी फ़ेहरिस्त पर कुल ६० कम्पनियाँ हैं—४ बैंक, ६ बीमा, १३ बिजली, १३ खाँड़ और १६ पंचमेली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१)

दौलतपुर (रायबरेली)
१५ मई, १९३२

श्रीयुत वाजपेयी जी महाराज,

इधर आपके कई लेख मुझे देखने को मिले। कुछ मैंने खुद पढ़े; कुछ पढ़ाकर सुने। आपके पाण्डित्य ने मुझे मोह लिया। आप बड़े सरसहृदय, काव्य-मर्मज्ञ और सत्समालोचक हैं: कुछ कुछ कालिदास के शब्दों में परमात्मा से मेरी प्रार्थना है——

उदन्वदाकाशमहीतलेषु
नरोधमाप्नोतु यशस्त्वदीयम्

प्रणत
महावीरप्रसाद द्विवेदी

(२)

दौलतपुर (राबयरेली)
६-४-३३

नमोनमः,

३ अप्रेल का पो० का० मिल गया। आप तो संस्कृतज्ञ ही नहीं, शास्त्रज्ञ भी हैं। फिर भी न मालूम आपने क्या क्या लिख मारा। नमस्कार ही नहीं, आप मिलें तो मैं आपके पैरों पर अपना सिर रख दूँ——

मैं सेवक सचराचर रूपराशि भगवन्त——

मेरे मनोभावों पर किसी का क्या ज़ोर? साथ की चिट्ठी यथास्थान भेज दीजिए, और उस लेख का जो कुछ उपयोग कीजिए।

प्रणत
म० प्र० द्विवेदी

(३)

दौलतपुर (रायबरेली)
१२-८-३३

शुभाशिषः सन्तु

८ अगस्त का पो० का० मिला। आपकी कौटुम्बिक व्यवस्था ज्ञात हुई। मेरा भी हाल कुछ कुछ वैसा ही है। अपना निज का कोई नहीं। दूर दूर की चिड़ियाँ जमा हुई हैं। खूब चुगती हैं। पुरस्कार-स्वरूप दिन-रात पीड़ित किये रहती हैं।

प्रयाग में वहीं कहीं के राजा साहब या उनके प्राइवेट सेक्रेटरी एक ग्रेजुएट भी थे। नाम——भगवतीचरण या कुछ ऐसा ही था। सारे पुराणों का हिन्दी अनुवाद निकालने-वाले हैं। मुझसे किसी योग्य सहायक का नाम पूछते थे, जो उनके यहाँ रहकर काम करे। इसी से मैंने आपसे आमदनी पूछी। मगर आप जहाँ हैं वहीं रहें। वहीं सब तरह का सुभीता है। ये राजे देहात में रहते हैं। इनकी बातों का कुछ ठिकाना भी नहीं। पं० देवीदत्त के नाम चिट्ठी भेजता हूँ। जी चाहे भेज दीजिएगा। नहीं तो फाड़ डालिएगा। मेरी राय तो है——

नरत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्

स्तुतिकुसुमाञ्जलि में एक स्तुति है——कवि कवि काव्य प्रशंसा स्तोत्र। आपको भी पसन्द हो तो उसके चुने हुए श्लोकों को सानुवाद कहीं प्रकाशित करा दीजिए। जिनमें शिवजी का जिक्र है उनको छोड़ दीजिएगा। लोग देखें, अच्छे कवि और अच्छी कविता किसे कहते हैं। कल्याणवाले स्तुति कु० का अनुवाद मुझसे कराना चाहते हैं। एक लेखक भी देने को तैयार हैं। पर मुझमें इतनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति नहीं। किसी ने अनुवाद उन्हें भेजा भी है, पर वह उन्हें पसन्द नहीं।

मैं ज्वालापुर में महीनों सपत्नीक रह चुका हूँ; वहाँ के गुरुकुल में। कनखल, हरिद्वार सब देखे हुए हैं। अब कहीं जाने लायक़ नहीं। शरीर शिथिल और जर्जर है।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

(४)

(दौलतपुर रायबरेली)
२२-२-३४

शुभाशिषः सन्तु

आपका भेजा हुआ ब्राह्मी तैल एक हफ़्ते से लगा रहा हूँ। फल कुछ समय बाद शायद मालूम हो।

मेरी आँखों में मोतियाबिन्द का प्रारम्भ हो गया है। एक अमेरिकन दवा आँखों में अब तक डालता रहा हूँ। लाभ नदारद। अब एक देशी दवा शुरू की है। पंडित श्रीराम शर्मा ने कमलमधु भेजा है। यह नुस्खा पंडित शालग्राम शास्त्री का है। बड़ी तारीफ़ सुनी है। इसे भी आँखों में डालूँगा।

आजकल मेरा घर सूना-सा है। भानजे साहब और उनकी पत्नी कानपुर में हैं। दोनों को कुछ शिकायत थी। दवा कराने गये हैं।

हिन्दी के पत्रों और पत्रिकाओं को कुछ समय से एक संक्रामक रोग हो गया है। इनके सम्पादक उर्दू की नई-पुरानी दूषित कवितायें छाप रहे हैं। कुछ हिन्दी के कवि भी उर्दू की बहरों में कातकूत करने लगे हैं। उधर उर्दूवाले हिन्दी के दोहों और चौपाइयों तक को दाद नहीं देते। वही अरबी-फ़ारसी की बहरें और एक ही छन्द में वही बेतुकी कई तरह की बातें। बिस्मिल जी भी खूब ज़ोर बाँध रहे हैं। पुराने उर्दू-कवि तो हिन्दी में कोई कोई, कुछ लिख भी गये हैं। पर आजकल के शायर हिन्दी को अछूत समझ रहे हैं। आपको भी ये बातें खटकें तो कभी कभी हिन्दी के गुमराह लिक्खाड़ों की खबर तो ले लिया कीजिए। आशा है, आप सकुटुम्ब अच्छी तरह हैं।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

(५)

दौलतपुर
१९-४-३४

आशिषां राशयो विलसन्तु

१४ तारीख के पो० का० का उत्तर है कि आप खुशी से आइए। आपसे बातें करने से स्वास्थ्य सुधरेगा, बिगड़ेगा नहीं। यह पहले से—बहुत पहले से—लिख भेजिएगा कि किस तारीख को किस वक़्त आप बिंदकी-रोड पहुँचेंगे और वहाँ से रवाना होंगे। मेरे भानजे साहब की लड़की इलाहाबाद में पढ़ती है! उसे घर लाने के लिए वे १३, १४ मई तक वहाँ जायँगे। सुभीता हुआ तो लौटते वक़्त वे बिंदकी-रोड से आपके साथ ही आवेंगे। नहीं तो गंगा के इस पार बकसर में मेरा आदमी आपको मिलेगा। वह आपको ले आवेगा। वहाँ कुली या सवारी कभी नहीं मिलती। घर पर भोजन के लिए पक्वान्न तैयार रहेगा।

शुभेच्छु
म० प्र० द्विवेदी

(६)

दौलतपुर
७-५-३४

शुभाशिषः सन्तु

२१ अप्रैल का पो० का० यथासमय मिल गया था।

मेरे भानजे की लड़की का स्कूल कल ६ ता० [illegible] बन्द हो गया। भानजे साहब कल ८ ता० को उसे [illegible] इलाहाबाद जायँगे। इस दशा में वे आपको लौटते [illegible] स्टेशन पर न मिल सकेंगे। ११ ही तारीख को [illegible] लौट आवेंगे।

आप १६ मई को सुबह चार-पाँच बजे बिंदकी-[illegible] से चल दीजिएगा। बकसर-घाट जानेवाली बैलगा[illegible] किराये पर कर लीजिएगा। पूरी गाड़ी का किराया [illegible] दस आने होगा। और सवारियाँ बैठें तो किराया [illegible] जायगा। नौ बजे के क़रीब गंगा के इस पार आप [illegible] उतरते ही आपको मेरा आदमी मिलेगा। उसी के [illegible] आइएगा।

बकसर में इस पार गंगातट पर चण्डिका [illegible] प्रसिद्ध मन्दिर है। सुनते हैं, सप्तशती को [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वैश्य ने वहीं देवाराधन किया था। आप मूर्त्तिपूजक हों तो देवी के दर्शन कर आइएगा। दर्शनोत्तर मेरी तरफ़ से हाथ जोड़कर कहिएगा--

देव्या यया ततमिदं--इत्यादि सप्तशती का श्लोक।

शुभैषी

म० प्र० द्विवेदी

पवित्रोपायनं प्राप्य श्रद्धाभक्तिसमर्पितम्
प्रीतेन कृतकृत्येन मयाऽद्य मुमुदे भृशम्--

म० प्र० द्विवेदी

१८-५-३४

(७)

दौलतपुर (रायबरेली)

७-६-३४

शुभाशिषो विलसन्तु

मैंने आपसे कह दिया था कि मथुरा पहुँचकर चिट्ठी भेजना। जब से आप गये मैं चिट्ठी की राह देखता रहा। नहीं आई। चिन्ता हुई कि कहीं प्रवास में आप बीमार तो नहीं हो गये। यह चिन्ता कल शाम को दूर हुई। ३ जून का पो० का० मिला।

पं० क्षेत्रपाल जी शर्मा बहुत बड़े व्यवसायी ही नहीं, बहुत बड़े विद्वान् भी हैं। उनमें सगुण को निर्गुण और निर्गुण को सगुण बना डालने की शक्ति हो सकती है। मैं तो उनका पुराना ग्राहक हूँ। १-६-१९३१ का अपना (॥=) का बीजक नं० ५७११ देखें। मैंने उनके विज्ञापनों में द्राक्षासव के गुण पढ़े हैं। पर उन्हें महत्त्व नहीं दिया। अब चूँकि वे विश्वास दिलाते हैं इसलिए उसका सेवन परीक्षार्थ करूँगा। १) वाली छोटी शीशी उनसे वी० पी० द्वारा भिजवा दीजिए। यह कार्ड शर्मा जी को दिखा कर मेरा प्रणाम उनसे कहिएगा।

मथुरा में कब तक रहने का विचार है? पोद्दार जी से मेरी तरफ़ से कहिए—

हरिस्ते वितनोतु शम्

शुभेच्छु

म० प्र० द्विवेदी

(८)

दौलतपुर

३०-६-३४

शुभाशिषो विलसन्तु

भारत में प्रकाशित आपके लेख राधा ने पढ़कर सुनाये। आपने खूब लिखा।

बहुत छोटी उम्र में मैं बम्बई गया था। वहीं महाराष्ट्र मित्रों के सम्पर्क में आकर चाय पीना सीखा। उससे कभी निद्रा की कमी नहीं हुई। जब से दिमाग़ कमज़ोर हुआ तभी से यह शिकायत पैदा हुई है। बहुत कम मात्रा में पीता हूँ। ३ छटाँक पानी, तीन ही छटाँक दूध सिर्फ़ सुबह। चाय यों ही नाममात्र को रहती है। उससे मेरा पेट साफ़ हो जाता है—वह दवा का काम देती है। अब यह आदत छूट नहीं सकती--वही दशा है—

प्रताडितोऽपि मार्जारस्तमाखुं नैव मुञ्चति।
बहुधा बोधितो मूर्खस्तं चायं नैव मुञ्चति॥

शुभेच्छु

म० प्र० द्वि०

(९)

दौलतपुर, (रायबरेली)

२६-७-३४

शुभाशिषो विलसन्तु

आपका पिछला कार्ड पढ़ने पर मुझे आपका अनुरोध मानना पड़ा। सुबह चाय पीना छोड़ दिया। सिर्फ़ पाव-डेढ़ पाव दूध पी लेता हूँ। अखबार देखने में भी कमी कर दी। इससे कुछ लाभ होता मालूम होता है। उचित परामर्श के लिए आपको धन्यवाद।

अजी वह भूमिका नहीं, प्रस्तावना है जिसकी आपने ख़बर ली है। बाबू श्यामसुन्दरदास की लिखी प्रस्तावना में और किस बात की आशा की जा सकती थी? अफ़सोस है रायकृष्णदास ने भी उस पर दस्तखत कर दिये। बाबू साहब के कोश में नन्द धातु और अभिनन्दन शब्द का अर्थ है--

भली-बुरी आलोचना करना।

शुभैषी

म० प्र० द्विवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१०)

दौलतपुर (रायबरेली)
१-९-३४

शुभाशिषः सन्तु

भारत में वीरभद्र के दर्शन हुए। ये लोग सर्वथा उपेक्षा के पात्र हैं। मेरी एक पुस्तक है--वाग्विलास। उसमें एक लेख है--आर्यसमाज का कोप। उसमें इन लोगों की चित्तवृत्ति का निदर्शन है और अन्त में लिखा है--

येषां चेतसि मोहमत्सरमदभ्रान्तिः समुज्जृम्भते।
तेऽप्येते दयया दयाधन विभो संन्तारणीयास्त्वया॥

न देखी हो तो लहरिया सराय से एक कापी भिजवाऊँ। आशा है, आप अच्छी तरह हैं। मेरा हाल वही यथापूर्व।

शुभैषी--म० प्र० द्वि०

(११)

दौलतपुर (रायबरेली)
७-९-३४

शुभाशीष,

आपने खूब कविता की। पढ़कर बेहद मनो-विनोद हुआ। आप तो अच्छे कवि भी हैं। कभी कभी लिखा कीजिए।

भारत में किसने मेरे खिलाफ़ क्या लिखा, यह मेरी निगाह में नहीं पड़ा। पढ़ता बहुत कम हूँ।

पुरुषार्थवालों ने मुझे बहुत तंग किया। तब आपका नाम देकर अपना बचाव किया। वे शंकर के भक्त हैं। स्तुतिकुसुमाञ्जलि उन्हें खूब याद है। मेरा शरीर किसी तरह चला जाता है। मेरी बहन अब अच्छी है। बहुत बूढ़ी होगई। उस पर मेरा वैसा ही प्रेम है, जैसा माँ पर होता है।

शुभेच्छु
म० प्र० द्विवेदी

(१२)

दौलतपुर (रायबरेली)
२३-९-३४

शुभाशीर्वाद

आपने तो पद्यबद्ध पत्रों का ताँता बाँध दिया। १७ ता० का भी पत्र मिला। आप भावमयी कविता कर सकते हैं। आजकल के कितने ही तुक्कड़ आपके सामने कोई चीज नहीं। कविता का प्रकाशन अब शुरू कर दीजिए, मगर मुझे जब कभी अब लिखना गद्य ही में लिखना। गद्य में बिना प्रयास जी खोलकर लिखने को मिलता है। वाग्विलास में आपको मेरे झगड़ालूपन के नमूने मिले होंगे। मेरी पूर्वाचर्य्या विलक्षण थी। विवाद कर बैठता था। सहनशीलता का अभाव-सा मुझमें था। वह पुस्तक पढ़ने पर कहीं आप मुझसे विरक्त या उदासीन न हो जायँ, यह डर मुझे था। वह अब दूर हो गया।

शुभैषी--म० प्र० द्विवेदी

(१३)

दौलतपुर (रायबरेली)
१५-८-३५

शुभाशिषां राशयो विलसन्तु

११ अगस्त का पो० का० मिला। खुशी हुई। आँखों का वही हाल है। कमल मधु ने कुछ फ़ायदा नहीं किया। जान पड़ता है, जैसे और इन्द्रियाँ शिथिल हो रही हैं, वैसे ही दृष्टि भी। दवा-दारू व्यर्थ है।

शीतकाल में इधर आना तो मुझसे जरूर मिलना।

गंगा पहले तो दर्शन देती थी। अब कई महीने से नहीं। जरूरत भी नहीं। पढ़ नहीं सकता।

उस कहानी में लछिमनपुर के एक महाशय का जिक्र है। वे शायद प० शिवपाल अग्निहोत्री थे। डाकखाने के सुपरिंटेंडेंट थे। झाँसी में हम दोनों अक्सर मिलते थे। एक बार उनके घर भी मैं हो आया हूँ। आलमारी के पिछले अङ्क में सम्पादक महाशय ने कुछ पत्र-पत्रिकाओं को फटकार बताई है। एक फटकार मुझ पर भी पड़ी है। मैंने लिखा है। मैं बदले में आये हुए पत्र--Refused--लिखकर लौटा देता था। पर बात ऐसी नहीं--

किसी आर्यसमाजी ने एक पुस्तक समालोचना के लिए भेजी। उसमें लिखा था--स्वामी दयानन्द के भट्टो जी के चित्र या नाम पर जूते लगवाते थे। इस मैंने कड़ी टिप्पणी की। आर्यसमाजी बिगड़े। सरकुलर निकाला कि कोई समाजी मुझे पुस्तक भेजा करें। जवाब मैंने सरस्वती में दिया "आर्यस का कोप"। उसमें शायद मैंने लिखा कि अगर भेजेगा भी तो मैं न लूँगा--लौटा दूँगा। इसी की पूर्ति में मैंने शायद कुछ पुस्तकें लौटाई बदले के पत्र-पत्रिकायें नहीं लौटाईं। सम्पादक जी महाशय आपही के शहर में हैं। इससे कैफ़ियत दे दी।

शुभैषी--म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग नं० ३८ का नतीजा

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित १५ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को २०) मिले।

(१) दुर्गाप्रसन्न c/o मेसर्स भट्टाचार्य एण्ड को०, स्ट्रान्ड रोड, कलकत्ता। (२) सुधा देवी c/o मेसर्स भट्टाचार्य एण्ड को०, स्ट्रान्ड रोड, कलकत्ता। (३) एस० पी० शर्मा, १०९६ बाग़ मुज़फ़्फ़रखाँ, आगरा। (४) कैलाश c/o पं० हरिदत्त लोहुमी, म्यु० स्कूल, तल्लीताल, नैनीताल। (५) कुन्तीदेवी c/o पं० सत्यनारायण मिश्र क़ानूनगो, पो० क़ैसरगंज, (बहराइच)। (६) श्री रतनलाल, १ बन्द रोड, इलाहाबाद। (७) अमरनाथ, क्लास ५ बी० एल० जे० मिडिल स्कूल, मिर्ज़ापुर। (८) रामनारायण कक्कड़, १४५ चक, इलाहाबाद। (९) पं० राजेन्द्रप्रसाद मिश्र, विल्सड़ पुवायाँ, पो० राजा का रामपुर, ज़िला एटा। (१०) कुमारी रामरती त्रिपाठी, पश्चिमी टोला, पुरवा, उन्नाव। (११) पूरनचन्द्र अग्रवाल, रायगढ़, ग्वालियर। (१२) दिवाकर मिश्र, सिविल लाइन्स, गोरखपुर। (१३) रामप्रसाद खन्ना, फ़तेपुरी बाज़ार, दिल्ली। (१४) कोकिलेश्वर झा, नया बाज़ार, दरभंगा। (१५) सुन्दरलाल माथुर, ६ लाटुस रोड, लुधियाना।

द्वितीय पुरस्कार ८२॥) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ३३ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को २॥) मिले।

(१) अवधबिहारीलाल, ६० कोठा पार्चा, इलाहाबाद। (२) माधवलाल माथुर, सिगहाना, जयपुर। (३) मंगला मिश्र, ७ सुखलाल जौहरी लेन, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता। (४) सूर्यमुखी देवी c/o ताराप्रसादसिंह, उदयप्रताप कालेज, बनारस। (५) एल० डी० बी० एस० कारकी, मुआनी, थल, अलमोड़ा। (६) शिवनारायण क्षिगन, लक्ष्मी प्रेस, बनारस। (७) भोजराज शुक्ल, एतमादपुर, आगरा। (८) कुंजीलाल वार्ष्णेय, बड़ा बाज़ार, अलीगढ़। (९) रघुनाथप्रसाद, ज्ञानपुर (बनारस स्टेट)। (१०) राजकुमार मीतल, हनूमान टोला, खुर्जा। (११) कल्याणबख्श गुप्त, इन्द्रगढ़, राजपूताना। (१२) भालचन्द्र चौधरी, पो० बा० ६९, कानपुर। (१३) हरिश्चन्द्र, ७२० साहुकारा, बरेली। (१४) रामनारायण शर्मा, ३७३ कटरा नील, नईबस्ती देहली। (१५) मिसेज़ ओंकारनाथ गुप्त, ७९ पानदरीबा, इलाहाबाद। (१६) सावनमल, ब्लाक नं० १७, सरगोधा, पंजाब। (१७) हरीदत्त पाठक, बेनीनाग, अलमोड़ा। (१८) माया-ब्लाक नं० १७, सरगोधा, पंजाब। (१९) चम्पादेवी थ्वीरप्रसाद, रामनगर, बनारस। (२०) भागवती पुरवा, उन्नाव। (२१) हरिनारायण अग्रवाल, अस्पताल, लखनऊ कैम्प (२२) [illegible] अरोड़ा, रायगढ़, ग्वालियर। (२३) सतीशचन्द्र मेहरा, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता। (२४) मिस सरोजिनी श्रीवास्तव, सदर बाज़ार, इन्दौर। (२५) जे० भी० जोशी, वालेस स्ट्रीट, बम्बई। (२६) शंकर राव, चौक बाज़ार, भागलपुर। (२७) मुरलीधर पाँडे, लाटुस रोड, लखनऊ। (२८) राधारमनदास, रसड़ा, बलिया। (२९) रामप्रताप सिनहा, लाल बाज़ार, बेतिया। (३०) जगतनारायन लाल, कासगंज, इटावा। (३१) उत्तमलाल जौहरी, रामपुरा, बनारस। (३२) गोपालदास वर्मा, खुरजा, बुलन्दशहर। (३३) ठा० नन्दलालसिंह, सदर बाज़ार, चरखारी, सी० आई०।

तृतीय पुरस्कार ६ १॥) (दो अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ४१ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १॥) मिला।

(१) हरिदत्त लोहुमी, म्यु० स्कूल, तल्लीताल, नैनीताल। (२) विनायकराव भट्ट, सब पोस्टमास्टर, ललितपुर। (३) रघुवीरसिंह भट्ट, गुरुकुल महाविद्यालय, वैद्यनाथधाम। (४) सुशीलादेवी c/o भैरोप्रसाद हेड मास्टर, मिडिल पाठशाला, बड़वाहा। (५) राधाकिशुन गुलाबचन्द्र अग्रवाल, औरंगाबाद की छावनी, ३०७ दानाबाज़ार। (६) रामदास चौबे, डूमरी, शाहाबाद। (७) रामावतार पाठक, क्लास ७ए ज़िला स्कूल, पो० चाईबासा, बिहार। (८) इन्दुकुमारी घोघो, c/o पुलिस-कप्तान गाज़ीपुर। (९) विमलचन्द्र अग्रवाल c/o रामकरणदास अग्रवाल, पुरानी बस्ती, रायपुर (सी०पी०)। (१०) सकलारानी c/o पं० कृष्णदत्त भारद्वाज, माडल हाई स्कूल, नई दिल्ली। (११) पं० जगदीशनारायण, शंखधार वैद्य, क़स्बा फ़रीदपुर, बरेली (यू० पी०)। (१२) जैचन्दलाल गोटी, c/o गिरधारीमल अभयचन्द गोटी, २ पुर्तगीज़ चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता। (१३) हेतराम शर्मा टीचर; स्कूल बडौला, ज़िला एटा। (१४) कृष्ण-कुमार गुप्त, प्राइमरी स्कूल पचमढ़ी, (सी० पी०)। (१५) कुशानन्द शर्मा, म्यु० स्कूल रायपुर (सी० पी०)। (१६) आशावती व्यास, गोकुलपुरा, आगरा। (१७) मिट्ठनलाल दूधवाला, केसरगंज, अजमेर। (१८) अशरफ़ीलाल, अमृतपुर, फ़र्रुखाबाद। (१९) शालिग्राम दुबे, बलौदा बाज़ार, (रायपुर)। (२०) आज्ञादेवी c/o शंकरलाल, हेड मास्टर, जालंधर। (२१) दाऊदयाल गुप्ता, c/o लाला सीताराम, हाथरस। (२२) बिहारीलाल, नरसिंहपुर (सी० पी०)। (२३) विष्णुसिंह कारकी, मुआनी, थल, अलमोड़ा। (२४) रामशंकर, भूसाटोली, कानपुर। (२५) जीवनलाल पाँडे, मुक़ाम दुरेहा, पो० जसो (सतना)। (२६) सुन्दरलाल वाजपेयी, चौखण्डी, कीटगंज, इलाहाबाद। (२७) कोमलसिंह, नगरी (रायपुर)। (२८) मिसेज़ माधोलाल माथुर, सिन्धाना, (जैपुर)। (२९) त्रिलोकसिंहप्रसाद, थाल, अलमोड़ा। (३०) [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौक, मथुरा। (३१) किशोरीदेवी, बरेली बैंक, (फ़र्रुखाबाद)। (३२) वृजगोपाल माहेश्वरी, चौक, मथुरा। (३३) रामऔतार, १२०८ इमली गली, दिल्ली। (३४) विशेसरसिंह, कुटार (शाहजहाँपुर)। (३५) सत्यनारायण मिश्र, कैसरगंज, बहराइच। (३६) नरेशचन्द्र दत्त, बौंसी, भागलपुर, (बिहार)। (३७) शशिकुमार सक्सेना, नार्मल स्कूल, मीरशाहजी, अजमेर। (३८) रमाशंकर त्रिपाठी c/o मानूलाल हीरालाल, जनरलगंज, कानपुर। (३९) राधाबाई c/o बलदेवसिंह, जशपुर स्टेट। (४०) रामगोविन्दप्रसाद, कलाथ मर्चेंट, सहतवार (बलिया)। (४१) मुरारीलाल c/o अरुण-कार्यालय, मुरादाबाद।

चतुर्थ पुरस्कार ७२) (तीन अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखत ७२ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १) मिला।

(१) उदयराजसिंह, खुटाका, (शाहजहाँपुर)। (२) जितेन्द्रसिंह, पो० बिलाईगढ़ Via रामपुर सी० पी०। (३) शैलेन्द्रकुमार c/o रमावती पाडेय, ११७ चोथियाना, मैनपुरी। (४) पुरुषोत्तम, मुकानी, धरमपुरी। (५) कृष्णकुमार शास्त्री, बुलन्दशहर। (६) विद्यावतीदेवी, लखनऊ। (७) बालगोविन्द मिस्त्री, कानपुर। (८) मिसेज एल० पी० सक्सेना, आगरा। (९) उमेशकिशोर सक्सेना, अलीगढ़। (१०) सावित्रीदेवी अग्रवाल, बनारस। (११) सुशीलकुमारी मिश्र, देहरादून। (१२) देवी सत्यवतीसिंह, बैतूल। (१३) लज्जाराम नागर, प्रयाग। (१४) आनन्दप्रकाश, वैद्यनाथ। (१५) मार्कण्डेय शुक्ल, प्रयाग। (१६) लाखनसिंह, मुज़फ़्फ़रनगर। (१७) वेदपाल गुप्त, प्रयाग। (१८) राम भरोसे बिशनोई, इटावा। (१९) चन्द्रमणि, शास्त्री क्वेटा। (२०) पुष्पादेवी, हमीरपुर (२१) बिहारीलाल मेहरोत्रा, हमीरपुर। (२२) भैरवप्रसाद शर्मा, नवलगढ़। (२३) हरस्वरूप आर्य्य, मेरठ। (२४) कमलादेवी, मैनपुरी। (२५) राधाकृष्ण गुलाबचन्द्र अग्रवाल औरंगाबाद। (२६) भगवानदास, गाजियाबाद। (२७) नरोत्तमदास अग्रवाल, १० मीरगंज, इलाहाबाद। (२८) बद्रीनारायण गुप्ता, देवघर। (२९) शंभूसिंह चन्द्रावत, पिपलोदा (मध्य भारत)। (३०) मिसज शंभूसिंह, पिपलोदा, (मध्य भारत)। (३१) सुशीलादेवी, वणबाहा। (३२) प्रयागशंकर वाजपेयी, कीटगंज, इलाहाबाद। (३३) बनमाली जोशी, बन्द रोड, इलाहाबाद। (३४) जगदम्बाप्रसाद तिवारी, दारागंज, इलाहाबाद। (३५) प्रेमचन्द शर्मा, क्लब रोड, इलाहाबाद। (३६) हरिहरप्रसाद पाठक, दारागंज, इलाहाबाद। (३७) टी० एन० शर्मा, नया कटरा, इलाहाबाद। (३८) मदनमोहन टंडन, मुरादाबाद। (३९) प्रमीला, हिन्दी-सेवा-सदन, धौलपुर। (४०) बालाराम राय, श्रीनगर, नरसिंहपुर। (४१) सुन्दरलाल जैन, साँभर झील, राजपूताना। (४२) कलावती देवी, मारकूना, (अजमेर)। (४३) श्यामादेवी अग्रवाल, ७९ पानदरीबा, इलाहाबाद। (४४) रामनाथ मेहरोत्रा, लहरपुर, सीतापुर। (४५) डी० एल० जगानी, बागेश्वर, अलमोड़ा। (४६) कैलाशनारायण मेहरोत्रा, बरेली। (४७) माधुरीदेवी, बाराबंकी। (४८) सुन्दरलाल, अम्बिकापुर। (४९) शिवदत्तप्रसाद, अजगैन। (५०) मोतीलाल मोहन भाई पटेल, खलघाट, (धार स्टेट)। (५१) शिवनारायण कुठौदा, जालौन। (५२) गंगाप्रसाद गुजरानवाला, पंजाब। (५३) कपिलदेव नारायण, महुआ, मुज़फ़्फ़रपुर। (५४) के० एन० पारदकर, बनारस। (५५) ब्रजकिशोर, महोबा। (५६) सूरजसहाय सक्सेना, उरई। (५७) श्रीमती मायादेवी, अलीगढ़। (५८) कुमारी कांतिदेवी, उरई। (५९) केदारनाथ मास्टर, अलीगढ़। (६०) कुमुदनीदेवी, सीतामढ़ी। (६१) माधवप्रसाद शुक्ल, उज्जैन। (६२) ब्रजलाल शर्मा, कीटगंज, इलाहाबाद। (६३) सीताराम टेलर मास्टर, बलिया। (६४) जगन्नाथप्रसाद, बनारस। (६५) एम० देवी कमतोल, दरभंगा। (६६) मदनलाल मेहता, छोटी सादड़ी (मेवाड़)। (६७) उदयचंद लक्ष्मीचन्द, जालौर, (मारवाड़)। (६८) सरोजनीदेवी, बरेली बैंक, फ़र्रुखाबाद। (७०) परसराम जी, डूंगरगढ़ (सी० पी०)। (७१) प्रकाशचन्द, मोंगामंडी, पंजाब। (७२) श्रीमती डा० रामचरनलाल, हुसेनगंज, लखनऊ।

उपर्युक्त सब पुरस्कार आक्टोबर के अन्त तक भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।

केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

जिनको १) का पुरस्कार मिला है उन्हें १) के दो प्रवेश शुल्क-पत्र भेज दिये जायँगे, जो नियम अनुसार तीन महीने के भीतर इसके साथ दो पूर्तियाँ भेज सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३००) शुद्धिपूर्ति पर **व्यत्यस्त-रेखा-शब्द-पहेली** २००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

अङ्क-परिचय नं० ३६

बायें से दाहिने

१-तुर्की का एक डिक्टेटर जिसने अपने देश की काया पलट दी। ५-एक तरह की धुन।
७-इसके बिना कभी कभी अच्छी नींद नहीं आती।
८-लुटेरे अपने काम के लिए प्रायः इसका सहारा लेते हैं।
९-कौन जान सकता है कि यह "क्या" है?
१०-युद्ध के लिए इसका बल आवश्यक है।
११-यह न छोटा हो सकता है न बड़ा।
१२-प्रान्तीय सरकारें इसका मटियामेट करने पर तुल पड़ी हैं।
१४-किसी वस्तु का ऐसा होना उसके शीघ्र विनाश की सूचना देता है।
१५-जब यह संहार पर तुलता है तब बड़ा भयङ्कर हो जाता है।
१६-एक आश्रम जहां तीर्थयात्रा को सैकड़ों आदमी प्रतिवर्ष जाते हैं। १७-बौद्ध धर्म का मूल सिद्धान्त।
१८-एक मानसिक अग्नि।
२०-इसमें किये हुए काम अच्छे और सुन्दर होते हैं।
२२-यदि यह न हो तो मुनीमों को खाता मिलाना असम्भव हो जाय। २४-हनुमान् जी।
२७-यात्री ऐसे स्थान पर सोना नहीं चाहता।
२९-वर्तमान अधिकारी की माँ।
३०-यह जब उठता है तब चैन नहीं पड़ता।
३१-बिना इसके मछली कहाँ रहे?

ऊपर से नीचे

१-दो राजा एक देश में नहीं समाते पर दो साधू एक इसमें निर्वाह कर लेते हैं।
२-यह नल उलटा लग गया है।
३-यदि यह न हो तो बदमाशों की अक्ल कैसे ठिकाने आये।
४-आधुनिक हवाई जहाज़ों की तेज़ी ने सब सवारियों को इसको मात कर दिया है।
५-साफ़ और चमकीला।
६-तेज़ गर्मी पड़ने पर शरीर का यह अनिवार्य हो जाता है।
१०-बुढ़ापे में सब घटता है पर यह बढ़ती है।
११-इसकी साधना में सफल होनेवालों के सब दुख दूर हो जाते हैं। १२-हंसों का घर। १३-बन का बैरी।
१४-नाव पर बैठकर इसी की जय बोलनी पड़ती है।
१५-सम्पत्ति पाकर भी ऐसा न होना अचम्भे की बात है।
१६-बातचीत का रस। १९-भ्रमर।
२०-आज-कल के जवान ऐसा बनने की चेष्टा करते हैं।
२३-सन्तान से प्रेम करनेवाली विरली ही होती है।
के लिए जल में मिलेगी या फल में।
पर वे पर सबके मन भाये, बड़े भये कछु काम न करते थे। २५-हिन्दी की एक प्रसिद्ध कवयित्री।
। इसी का बल रहता है। २८-हठ।

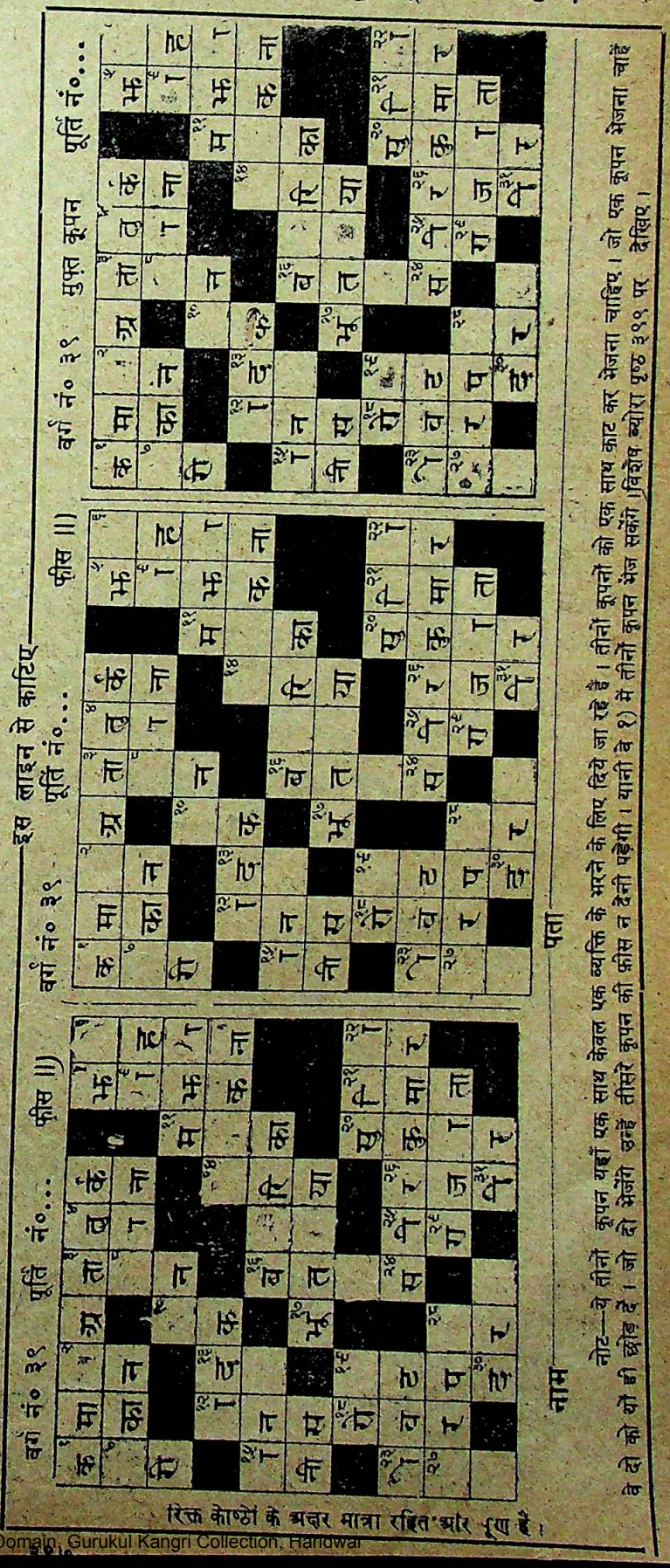

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को यों ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ ३९९ पर देखिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग नं० ३८ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ३८ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।

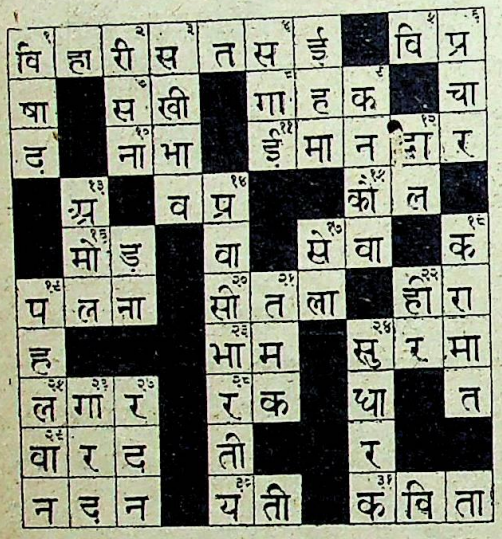

छप गई ! छप गई !!

साहित्य-जगत् में क्रान्ति मचानेवाली

अभिराम-कृत

विजया

यदि आपको मादक साहित्य का रसास्वादन करना है तो आज ही आर्डर बुक कराइए, सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ।।।) बारह आने मात्र।

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारी कुछ नव प्रकाशित पुस्तकें

चिन्तामणि—आचार्य्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों का संग्रह १।।।)
द्विवेदी-मीमांसा—श्री प्रेमनारायण टंडन १।।)
पुष्करिणी—श्रीयुत भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कहानियों का संग्रह १।।)
कपाल-कुण्डला—अनुवादक, श्री सूर्य्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ।।।)
देवी-चौधरानी—,, ,, ,, ,, ,, १)
अज्ञात-दिशा की ओर—अनुवादक, श्रीयुत ठाकुरदत्त मिश्र ।।।)
स्वामी—अनुवादक, श्री रूपनारायण पाण्डेय ।।)
मोपासाँ की चुनी हुई कहानियाँ—अनुवादक, गोपीनाथ क़ानूनगो ।।।)
स्काटलैंड यार्ड की जासूसी स्त्री— ।।=)
वेणी-संहार—अनुवादक, श्रीयुत हरदयालसिंह १)
मेवाड़-उद्धार—लेखक, श्रीयुत चन्द्रशेखर पाण्डेय ।।)
विन्ध्य-विरुदावली—लेखक, श्रीयुत रामशङ्कर द्विवेदी काव्यतीर्थ १)
कालिदास की कहानी—श्रीयुत ठाकुरदत्त मिश्र १)
पौराणिक कहानियाँ— १)
लाल बौना—लेखक, देवीदत्त शुक्ल १)
दो मित्र— ,, ,, ,, १)
दो अवतार— ,, ,, ,, १)
बाल द्विवेदी— ,, ,, ,, ।।)
एक आत्मकथा—,, ,, ,, १)
बाघ सिंह के मुँह में— १)
बाघ और भालू की कहानी— १)
अद्भुत कहानियाँ— १)

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक सूचनायें व नियम

(१) वर्ग प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए एक कूपन की फ़ीस ।।) है। पर जो प्रतियोगी १) देंगे उन्हें ३ कूपन भरने का अधिकार होगा। पूर्तियाँ वे ही स्वीकृत की जायँगी जो सरस्वती के छपे फ़ार्म पर होंगी और जिनके साथ फ़ीस की मनीआर्डर रसीद या प्रवेश शुल्क-पत्र जो कि इंडियन प्रेस से ।।) और १) की क़ीमत के छपे मिलते हैं, नत्थी होंगे।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर ३९ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २६ आक्टोबर सन् १९३९ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में शाम को चार और पाँच बजे के बीच सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २५ आक्टोबर तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २३ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा।

वर्ग नं० ३८ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ३८ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति नं०...में { कोई अशुद्धि नहीं है। / १,२,३ अशुद्धियाँ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर _____

पता _____

_____

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १५ आक्टोबर के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए।

मैनेजर वर्ग नं० ३६

ईंडियन प्रेस, लि०,

इलाहाबाद

कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

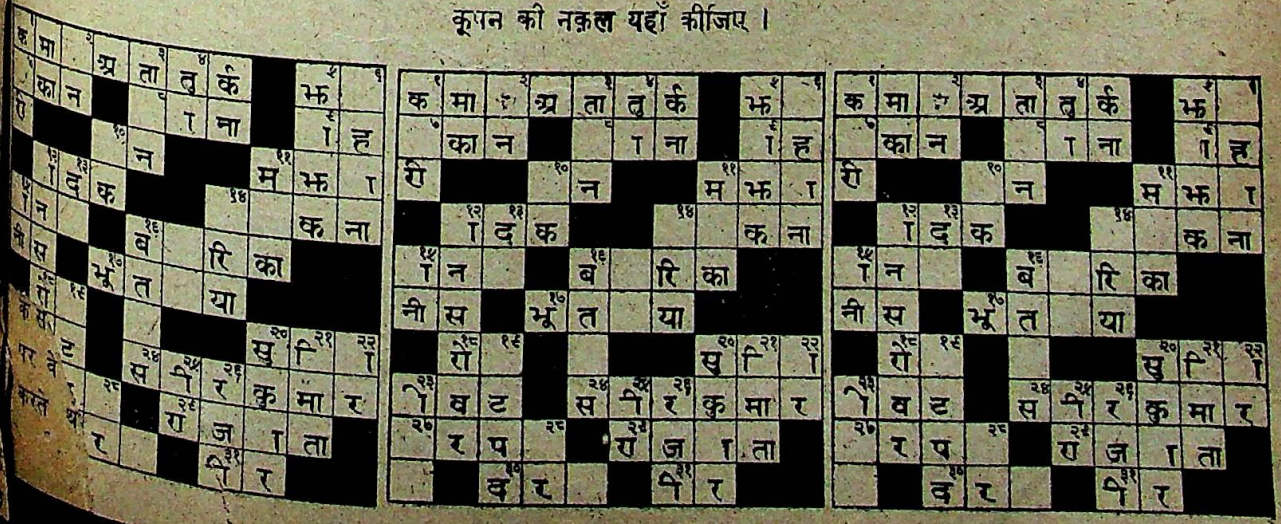

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

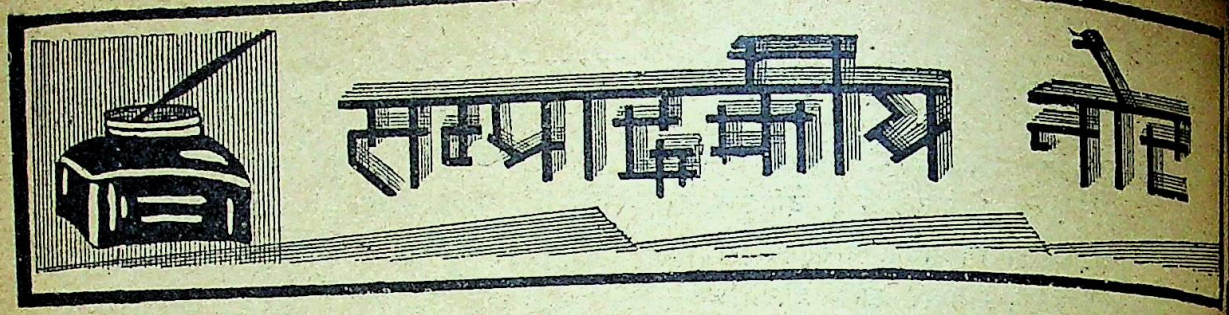

योरप में युद्ध का सूत्रपात

योरप में रणचण्डी का नृत्य शुरू हो गया। ब्रिटेन और फ़्रांस के राजनीतिज्ञों के सा प्रयत्न व्यर्थ हो गये, उनकी सरकारों के सूत्रधारों का अपमानित और लाञ्छित होना सारा का सारा बेकार हो गया, और युद्ध किसी भी उपाय से न रुक सका। जर्मनी के भाग्य-विधाता हर हिटलर ने आखिर निर्बल पोलेंड पर आक्रमण कर ही दिया। उन्होंने समझा होगा कि जब आस्ट्रिया और जेचोस्लोवेकिया के मामलों के अवसर पर फ़्रांस और ब्रिटेन कुछ नही बोले और तरह दे गये तब इस बार तो एक--केवल एक शहर का प्रश्न है, ब्रिटेन और फ़्रांस फिर चुप हो जायँगे। परन्तु नहीं। ब्रिटेन ने देख लिया कि यह शान्ति की नीति आत्मघात की नीति है। जो व्यक्ति अनीति और अनाचार को ही नीति मान चुका है और जो न्याय की बात सुनने को तैयार नहीं है उसके साथ शठं प्रति शाठ्यम् की नीति का ही व्यवहार होना चाहिए। फलतः जब जर्मन-सेनाओं ने बिना युद्ध की घोषणा किये ही अपने मित्र-राज्य पोलेंड पर आक्रमण कर दिया तब ब्रिटेन और फ़्रांस को न्याय की रक्षा करने के लिए जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देनी पड़ी। मदोन्मत्त हिटलर को अब आटा-दाल का भाव मालूम पड़ जायगा। संसार की इन दो महान् शक्तिशाली महाराष्ट्रों के आगे जर्मनी युद्ध-भूमि में कितने दिन टिक सकता है? उसके साथी जापान, इटली और स्पेन भी तो साथ देते दिखाई नहीं देते। रूस से सन्धि कर लेने के कारण जापान जर्मनी से नाराज़ हो गया है और अब वह इस युद्ध में जर्मनी का साथ नहीं देगा। रह गये इटली और स्पेन। सो स्पेन ने तो निरपेक्ष रहने की घोषणा कर दी है और इटली भी चुप हो बैठा है। इधर ब्रिटेन और फ़्रांस के पास उनके विशाल साम्राज्यों का अपार बल है ही, साथ ही तुर्की और अरब के राज्यों ने भी सहायता का आश्वासन दिया है। ऐसे बल-सञ्चय की चपेट में पड़कर जर्मनी का सारा दर्प और अभिमान इस बार धूल में ही नहीं मिल जायगा, किन्तु उसकी वह गति होगी कि भविष्य में शायद ही कभी अपना सिर उठा सके।

परन्तु यह युद्ध कदापि न छिड़ता, यदि रूस का जर्मनी से मेल न हो जाता। ब्रिटेन और फ़्रांस ने इस बात का काफ़ी प्रयत्न किया था कि रूस उनके साथ हो जाय, परन्तु ठीक मौक़े पर रूस मुकर ही नहीं गया, उलटा उसने जर्मनी से एक-दूसरे पर आक्रमण न करने की सन्धि भी कर ली। इस सन्धि से जर्मनी को रूस के आक्रमण का भय जाता रहा। इस अवसर पर रूस के सर्वेसर्वा स्टेलिन ने अपनी कूटनीति का विलक्षण परिचय दिया है। यदि वह ब्रिटेन आदि से सन्धि करता तो उसे युद्ध होने पर लड़ना पड़ता। परन्तु जर्मनी से सन्धि कर लेने से उसे युद्ध में शामिल नहीं होना पड़ा।

उधर हिटलर रूस को तोड़कर यह समझ बैठा कि लोग उसका लोहा मान गये हैं, अतएव अभिमान से फूलकर उसने एकाएक पोलेंड पर चढ़ाई कर दी। इस प्रकार युद्ध छेड़कर उसने जर्मनी के विनाश का तो बीज बो ही दिया है, साथ ही वह अपने साथ दूसरों को भी ले डूबना चाहता है। उसके राजनीतिज्ञ इस प्रयत्न में लगे हुए हैं कि रूस की जापान से वैसी ही सन्धि हो जाय, जैसी जर्मनी के साथ हुई है, ताकि वह जापान को अपने पक्ष में ला सके। यदि यह असम्भव बात सम्भव हो गई और रूस तथा जापान जर्मनी की ओर हो गये तो यह युद्ध संसार-व्यापी रूप धारण कर जायगा और उसका परिणाम संसार के लिए अति भयावह होगा। जर्मनी को शायद विश्वास है कि वह रूस और जापान को भी इटली और स्पेन के साथ साथ अपनी मदद ला सकेगा। परन्तु इन राज्यों के सूत्रधार हिटलर की तरह पागल नहीं हैं, और वे ऐसी भयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने को तैयार नहीं होंगे। लक्षणों से भी यही प्रतीत हो रहा है कि जापान और रूस क्या, उसका सच्चा मित्र इटली भी शायद ही अवसर पर साथ दे। तथापि युद्ध के छिड़ जाने से वस्तुतः महान् संकट का समय उपस्थित हो गया है। और जब ग्रेट ब्रिटेन ने न्याय के पक्ष में तलवार हाथ में ली है तब उसकी विजय निश्चित है। उसके इस संकट के अवसर पर उसका सम्पूर्ण साम्राज्य उसके साथ है, जिसमें भारत पहले की तरह इस बार भी समुचित रूप से अपने कर्तव्य का पालन करेगा।

पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी का स्वर्गवास

हिन्दी के अनन्य प्रेमी तथा उसके प्रवीण लेखक पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी का २ सितम्बर को उनके गाँव मलेपुर में स्वर्गवास हो गया। चतुर्वेदी जी इधर कई महीने से अस्वस्थ थे, तथापि ऐसा नहीं समझा जाता था कि वे स्वास्थ्य-लाभ नहीं कर सकेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि चतुर्वेदी जी के निधन से हिन्दी का एक सच्चा भक्त उठ गया है।

चतुर्वेदी जी 'भारतमित्र' के प्रख्यात सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त के मित्रों में थे और उनके बाद 'सरस्वती' के सम्पादक पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी से 'कालिदास की निरंकुशता' के सम्बन्ध में वाद-विवाद कर पहले-पहल प्रकाश में आये थे। वे हास्यरस के लेख तथा चुटकुले लिखने में सिद्धहस्त थे। 'मौजी' के नाम से 'भारतमित्र' में उनके हास और विनोद-सम्बन्धी नोट कुछ दिनों तक खूब निकले थे। उन्होंने 'संसार-चक्र' और 'वसन्तमालती' नाम के दो उपन्यास भी लिखे थे तथा बंकिम बाबू के 'कृष्णचरित्र' का हिन्दी में अनुवाद भी किया था। साहित्य-सम्मेलन आदि हिन्दी की संस्थाओं के कार्यों से वे काफ़ी अधिक अनुराग रखते थे। सम्मेलन के लाहौर के १२ वें अधिवेशन के वे सभापति बनाये गये थे और उस अवसर पर महत्त्व का सरस साहित्यिक भाषण किया था। इधर उन्होंने लेख आदि लिखना छोड़ दिया था, तथापि हिन्दी के समारोहों में बराबर भाग लेते रहते थे। ऐसे अवसरों पर वे अपनी व्रजभाषा की कवितायें ही प्रायः सुनाया करते थे। वे व्रज-भाषा के समर्थक ही नहीं, उसमें सुन्दर कविता भी लिखते थे। वे वास्तव में हिन्दी के गद्य और पद्य दोनों के कुशल लेखक थे और उनके स्वर्ग-प्रयाण से हिन्दी का एक ऐसा विद्वान् उठ गया है जो हिन्दी के अभ्युदय का हामी ही नहीं था, किन्तु जो उसका अहित करनेवालों को फटकार बतलाने में कभी नहीं चूकता था।

संसार का संकट

लड़ाई की सम्भावना के फल-स्वरूप पिछले दिनों योरप में कूटनीति के जो मार्के के दाँव-पेंच देखने में आये हैं उनको देखकर बड़े बड़े राजनीतिज्ञों को दाँतों तले अँगुली देनी पड़ी है। यह कोई भी राजनीतिज्ञ नहीं जान सकता था कि रूस की ज़र्मनी से इस तरह एकाएक मित्रता हो जायगी। मित्रता करने की ही नहीं, जर्मनी के विरुद्ध शान्तिवादियों का एक गुट क़ायम करने की बातचीत ब्रिटेन और फ़्रांस से उसकी महीनों पहले से हो रही थी। परन्तु हिटलर और स्टेलिन ने वह पेंच खेला कि संसार के सभी कूट-नीतिज्ञ अवाक् रह गये। राजनीति के इतिहास में यह घटना एक प्रकार का चमत्कार समझी जायगी। इसने तो ब्रिटेन और फ़्रांस के राजनीतिज्ञों के सारे किये-कराये पर पानी ही नहीं फेर दिया है, किन्तु यह आशंका भी उत्पन्न कर दी है कि कूटनीति की चालों से कौन राष्ट्र कब किसका साथ छोड़कर किससे जाकर मिल सकता है। रूस को अपनी 'शान्ति की दलबन्दी' में ब्रिटेन और फ़्रांस इसलिए लाने का प्रयत्न कर रहे थे कि उन तीनों के सम्मिलन को देखकर जर्मनी भयभीत हो जाय और वह पोलेंड पर आक्रमण न करे। परन्तु ऐन मौक़े पर हिटलर ने वह पेंच लगाया कि उसकी रूस से सन्धि होगई और वह निर्भय होकर पोलेंड पर टूट पड़ा।

लोगों का अनुमान ही नहीं है, घटनाओं से भी जान पड़ता है कि जापान को हिटलर का रूस से इस तरह मेल कर लेना ठीक नहीं जँचा और जर्मनी से वह यहाँ तक असन्तुष्ट हो गया है कि जापान की जर्मनी के पक्ष की सरकार को पद-त्याग कर देना पड़ा है और उसके स्थान पर जो नई सरकार बनी है, कहा जाता है, वह ब्रिटेन के पक्ष की है। इतने पर भी जर्मनी के राजनीतिज्ञ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर ही भीतर इस प्रयत्न में लगे हुए हैं कि जापान और रूस में मेल हो जाय, ताकि जर्मनी का पक्ष और भी अधिक शक्तिशाली हो जाय। यदि ऐसा हो गया तो राजनीति के क्षेत्र में यह घटना दूसरा चमत्कार कही जायगी।

चाहे जो हो, इस समय योरप में कूटनीति के हथकण्डे धड़ल्ले से चल रहे हैं। और कोई यह बात दावे से नहीं कह सकता कि कब क्या होगा।

पहले से ही समझा जाता था कि युद्ध के छिड़ते ही जर्मनी के पक्ष में इटली भी युद्ध में तत्काल कूद पड़ेगा। परन्तु वह चुप बैठा है और युद्ध एक सीमित रूप में ही हो रहा है। इस समय अकेला जर्मनी पोलेंड के साथ साथ ब्रिटेन और फ्रांस से लड़ रहा है। ऐसी दशा में यदि जर्मनी को दूसरे राष्ट्रों से अर्थात् इटली या रूस या जापान से सहायता न मिली तो अकेला जर्मनी युद्ध-क्षेत्र में कैसे ठहर सकेगा?

यह तो प्रकट ही है कि इटली और जापान से ब्रिटेन तथा फ्रांस की घनिष्ठता नहीं थी। इधर रूस से भी इनका मनोमालिन्य हो गया है। इसके सिवा ये तीनों राष्ट्र कम महत्त्वाकांक्षी नहीं हैं। कौन कह सकता है कि ये तीनों या इनमें से कोई एक या दो जर्मनी को संकट में देखकर युद्ध में नहीं आ कूदेंगे? आखिर जर्मनी भी तो कुछ सोच-समझकर ही इस आग में कूदा होगा। चाहे जो हो, अवस्था अतिभीषण है। योरप की क्या, सारे संसार की शान्ति इस युद्ध के कारण जोखिम में पड़ गई है और इसका एकमात्र दायित्व जर्मनी के हर हिटलर पर है।

चीन की दृढ़ता

चीन और जापान का संहार-कार्य गत तीन वर्ष से ज्यों का त्यों जारी है और अब योरप में लड़ाई के छिड़ जाने से तो जापान को चीन को पददलित करने की एक प्रकार से छुट्टी-सी मिल गई है। परन्तु क्या वह चीन को परास्त कर सकेगा? यह सच है कि उसका दो तिहाई भाग जापान के अधिकार में हो गया है, परन्तु इसके साथ यह भी सच है कि चीन इतने पर भी जापान से उत्साह और दृढ़ता के साथ लड़ रहा है। यही नहीं, उसकी राष्ट्रीय सरकार पूर्ववत् सुव्यवस्थित है और उसकी शासन-व्यवस्था भी सुशृङ्खलित है। उदाहरण के लिए हम उसके शिक्षा-विभाग के सुप्रबन्ध का यहाँ कुछ दिग्दर्शन कराते हैं।

लड़ाई के कारण चीन में ५५,११० विद्यार्थी और १५,७६७ अध्यापक बेकार हो गये थे। इनकी सहायता में राष्ट्रीय सरकार ने अब तक ५०,०९,२६० डालर खर्च किया है। इस रक़म में से २०,७८,००० डालर केवल शिक्षा की मद में, २३,२८,८०० डालर माध्यमिक शिक्षा में तथा ६,०२,४६० डालर सामाजिक शिक्षा की व्यवस्था करने में खर्च किया गया है। जापान-द्वारा अधिकृत भू-भागों की उच्च शिक्षा की संस्थाओं के २,९८० छात्रों को, माध्यमिक और प्रारम्भिक स्कूलों के २५,६८० छात्रों को तथा विदेशों में पढ़नेवाले २४५ छात्रों को राष्ट्रीय सरकार बराबर आर्थिक सहायता कर रही है। वह ३९० उच्च शिक्षा-संस्थाओं, १३,९३४ मिडिल और प्रायमरी स्कूलों तथा ४३४ सामाजिक संस्थाओं की आर्थिक सहायता कर रही है। इनके सिवा वह बेकार विद्वानों को भी सहायता दे रही है।

यही नहीं, राष्ट्रीय सरकार जापान-द्वारा अधिकृत प्रदेशों से ५३ विद्यापीठों को सुरक्षित स्थानों में ले जाकर स्थापित कर दिया है और जो अध्यापक या विद्वान् बेकार हो गये हैं उन सबको उसने किसी न किसी काम में लगा दिया है। इसके लिए उसने नये युवकों के लिए पुस्तकें लिखने तथा अनुवाद का काम करने के लिए एक अलग विभाग ही स्थापित कर दिया है और जो लोग उस विभाग में काम करते हैं उनको योग्यता के अनुसार मासिक वेतन दिया जाता है।

उपर्युक्त विवरण से यद्यपि राष्ट्रीय सरकार के एक ही विभाग की कार्य-प्रणाली का पता मिलता है, तथापि इससे यह तो प्रकट ही होता है कि चीन की राष्ट्रीय सरकार सुसंगठित है और गत तीन वर्ष के भीतर युद्ध में बार बार हार खाने पर भी वह अपना उत्साह ही नहीं बनाये हुए है, किन्तु युद्ध को जारी रखते हुए अपना राज-काज भी व्यवस्थापूर्वक करती जा रही है। जिससे जान पड़ता है कि नव जाग्रत् चीन विजय-लक्ष्मी की आशा को नहीं छोड़ बैठा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्प्रदायिक निर्णय का विरोध

२७ अगस्त को कलकत्ते में साम्प्रदायिक निर्णय-विरोधी सभा का चौथा जलसा बड़ी धूमधाम से हो गया। इस अधिवेशन का उद्घाटन आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने किया था और सभापतित्व किया था महाराष्ट्र के प्रधान नेता श्रीमान् एम० एस० अणे ने। उक्त सभा के इस अधिवेशन में बंगाल के सभी हिन्दू-नेता उपस्थित हुए थे और सभी ने एक स्वर से साम्प्रदायिक निर्णय की निन्दा की और उसे राष्ट्रीयतावाद का विघातक

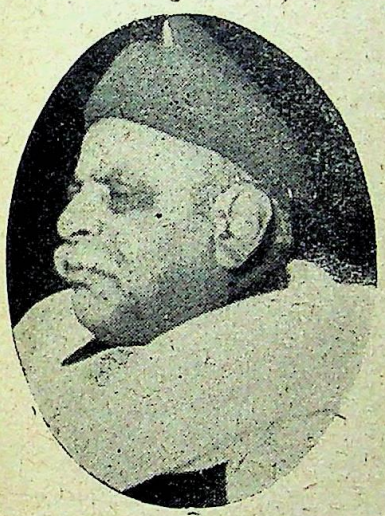

[लोकनायक श्रीयुत अणे]

बताया। सभापति श्रीमान् अणे महोदय का भाषण बहुत ही सारगर्भित हुआ और उन्होंने प्रबल दलीलें देकर 'निर्णय' को सर्वथा अन्यायमूलक सिद्ध किया। इसमें सन्देह नहीं है कि ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान मंत्री स्वर्गीय श्री रामसे मैकडानल महोदय के द्वारा किया हुआ यह साम्प्रदायिक निर्णय भारत के लिए अभिशाप ही सिद्ध हुआ है। इस निर्णय का ही यह परिणाम है कि आज देश में अराजकता का बाज़ार गर्म है और बड़े से बड़े नेता तक उसको दूर नहीं कर पा रहे हैं। प्रसन्नता की बात है कि इसका विरोध ही नहीं, इसको रद करवाने के लिए हिन्दुओं के एक विशिष्ट दल ने कमर कस ली है और यदि वह व्यवस्थित रूप से उत्साह के साथ अपने आन्दोलन को देशव्यापी बनाने में समर्थ हो गया तो हिन्दुओं की तरह मुसलमान आदि भी इसका एक स्वर से विरोध करने को तैयार हो जायँगे और तब सरकार भी इस निर्णय को खुशी से रद कर देगी। परन्तु इस स्थिति के ले आने के लिए निर्णय-विरोधी हिन्दुओं के समूह को पर्याप्त रूप से आत्मबलिदान करना पड़ेगा। और कलकत्ते की उक्त सभा की कार्यवाही से प्रकट होता है कि हिन्दू—विशेषकर बंगाल के हिन्दू—उसके लिए तैयार भी हैं। और अगर वे तैयार न होंगे और इस निर्णय को रद कराने का समुचित प्रयत्न न किया जायगा तो इस निर्णय के रहते भारत में राष्ट्रीयतावाद महत्त्व को न प्राप्त कर सकेगा, न अपने सच्चे अर्थों में यहाँ उत्तरदायी शासन की ही स्थापना हो सकेगी, इसके विपरीत भारत साम्प्रदायिक गृह-कलह का अखाड़ा ही बनता जायगा। अतएव इसका ज़ोरों के साथ विरोध करना परमावश्यक है, यदि भारत में शान्ति और व्यवस्था का राज्य स्थापित करना अभीष्ट है।

योरपीय युद्ध और भारत

योरप में युद्ध के छिड़ जाने का असर संसार के व्यापार पर पड़ना अभी से शुरू हो गया है। हमारा भारत भी उससे नहीं बच सका है। और जब वह खुद युद्ध में शामिल हो गया है तब तो युद्ध का प्रभाव भारत पर अवश्य ही पड़ेगा। चीज़ों के दाम जैसा कि समाचार-पत्रों से प्रकट होता है, अभी से सारे देश में एकाएक बढ़ा दिये गये हैं, यद्यपि उनके बढ़ने का अभी समय नहीं आया था। प्रसन्नता की बात है कि प्रान्तीय सरकारों ने इस परिस्थिति की ओर तत्काल ध्यान दिया और बेजा लाभ लूटनेवालों की रोक-थाम करनी शुरू कर दी है। अच्छा ही हुआ कि केन्द्रीय सरकार ने अन्यान्य बातों के साथ इसके लिए पहले से ही अपने आर्डीनेंसों में व्यवस्था कर दी है कि लोग इस संकट-काल में बेजा लाभ न उठाने पावें।

परन्तु युद्ध के कारण चीज़ों के दाम तो बढ़ेंगे ही, क्योंकि युद्ध-काल में सदा ऐसा हुआ है। अतएव भारत को महार्घता आदि कठिनाइयों का सामना करना ही पड़ेगा। इस संकट से वह कदापि नहीं बच सकेगा। हाँ, युद्ध के फल-स्वरूप अनेक दिशाओं में उसे लाभ भी होगा। देश के अनेक उद्योग-धन्धों का काम बढ़ जायगा, साथ ही नये धन्धे भी अस्तित्व में आ सकेंगे। सबसे अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाभ किसानों को होगा, क्योंकि उपज की माँग बढ़ जायगी और उन्हें उसका मूल्य भी अधिक मिलेगा। बेकारों की संख्या में भी, व्यापार-व्यवसाय की वृद्धि से, बड़ी कमी आ जायगी। यह सब होगा, तथापि तरह तरह के संकटों का भी सामना करना पड़ेगा। लोगों को पिछले महायुद्ध की कठिनाइयों का काफ़ी अनुभव हो चुका है और वह अभी भूला न होगा। अतएव सर्व-साधारण को पहले से सावधान हो जाना चाहिए और उन्हें ऐसा ढंग ग्रहण करना चाहिए कि वे संकटों का धैर्य के साथ सामना करते हुए अपने कर्तव्यों के पालन में सजग बने रहें। साथ ही सरकार का भी यह कर्तव्य है कि युद्ध की कार्यवाहियों के साथ साथ वह लोगों के अभावों की पूर्ति की व्यवस्था करने की ओर भी दत्तचित्त रहे। इस महान् संकट का सामना करने के लिए उसे अपने दाहने-बायें और आगे-पीछे चारों ओर बराबर देखते रहना होगा। सफलता प्राप्त करन के लिए उसके लिए ऐसा ही क्रियाशील होना आवश्यक है।

मुज़फ़्फ़रपुर का सुहृद्-संघ

हिन्दी भारत के एक बड़े भू-भाग की लोक-भाषा है, परन्तु तदनुसार न तो उसका प्रचार हो रहा है, न उसके साहित्य का उन्नयन ही किया जा रहा है। चाहिए तो यह था कि बिहार, मध्यप्रान्त, संयुक्तप्रदेश और राजपूताना आदि प्रदेशों के प्रत्येक नगर में हिन्दी-साहित्य-परिषदें आज अच्छे ढंग से चलती हुई दिखाई देतीं तथा प्रत्येक प्रदेश के अपने प्रान्तिक साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन भी प्रतिवर्ष धूमधाम से होते रहते, परन्तु हिन्दीभाषियों की अकर्मण्यता के कारण यह सब कुछ जैसा चाहिए वैसा नहीं हो रहा है। तथापि हिन्दी-भाषी नवयुवक इस अवस्था से निरुत्साहित नहीं हैं और वे साधनों से रहित होते हुए भी यथाशक्ति हिन्दी की सेवा में संलग्न हैं। इस सम्बन्ध में मुजफ़्फ़रपुर का 'सुहृद्-संघ' अच्छा काम कर रहा है। इस संघ की स्थापना सन् १९३५ के मई में हुई थी। अपने जीवन के चार वर्षों के भीतर ही इसने काफ़ी उन्नति कर ली है। इसका अपना एक पुस्तकालय हो गया है और इसने सम्मेलन की परीक्षाओं के लिए अपने यहाँ एक केन्द्र ही नहीं

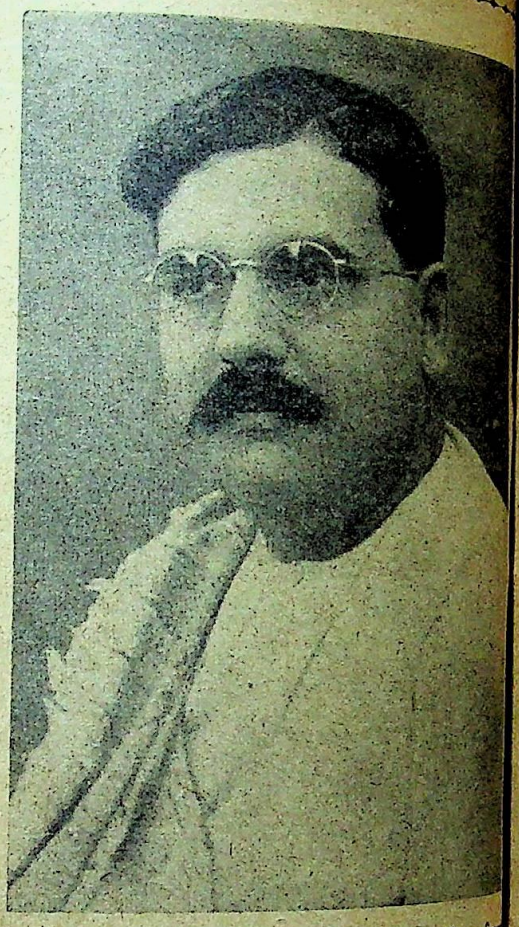

[मुज़फ़्फ़रपुर सुहृद्-संघ के प्राण दानवीर श्री उमाशंकरप्रसाद बी० एस-सी०।]

खोल दिया है, किन्तु परीक्षार्थियों को पढ़ने को मुफ़्त पुस्तकें भी देता है। यही नहीं, यह संघ हिन्दी को अदालतों की भाषा बनाने का आन्दोलन भी कर रहा है। इनके सिवा हिन्दी-साहित्य की प्रगति के लिए साल में दो-तीन समारोह भी करता रहता है। और यह सारा कुछ नगर के कुछ नवयुवकों की लगन का सुफल है। इन कार्यकर्ताओं का परिश्रम देखकर वहाँ के चार साहित्य-प्रेमी और धनी-मानी नवयुवकों—श्री उमाशंकरप्रसाद बी० एस-सी०, श्री कृष्णनन्दन सहाय, श्री केदारनाथ महथा तथा श्री रणवीरजीत सोंधी—ने संघ को आवश्यक आर्थिक सहायता की है। हम इस संघ की सफलता चाहते हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि यह संघ देश के प्रत्येक नगर तथा क़स्बे में खुल जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताकत

आरोग्य और वास्तविक यौवन

ओकासा

द्वारा पुनः प्राप्त कीजिये

दुनिया के विख्यात डाक्टरों ने वर्षों के अन्वेषण के उपरान्त मालूम किया है कि मनुष्य के शरीर में कुछ ग्रंथियाँ होती हैं जैसा कि तसवीर में दिखाया गया है। इन ग्रंथियों पर मनुष्य की ताक़त, आरोग्य और यौवन आदि निर्भर हैं। इन ग्रंथियों के निर्बल हो जाने पर पुरुष शक्तिहीन हो जाता है और स्त्री बदसूरत और बाँझ हो जाती है।

अगर ग्रंथियों को निर्बल होने से रोका जाय तो मनुष्य चिरकाल तक बलवान्, स्वस्थ और युवा रहेगा। पुरुष अपनी ताक़त और पुरुषत्व को निभा रक्खेगा और स्त्री अपने यौवन और सुन्दरता को क़ायम रख सकेगी।

हाल ग्रंथियों के लिए आपको बहुत सी दवायें मिलेंगी और २४ घंटे में अपना चमत्कार बताने का दावा भी करेंगी। किन्तु यह दवा कभी ओकासा का मुक़ाबिला भी नहीं कर सकती। सिर्फ़ ओकासा ही ऐसी वस्तु है जो आपकी ग्रंथियों को उत्तम खाद दे सकती है और आप अपनी ताक़त और आरोग्य को पुनः प्राप्त कर सकते हैं। नक़ली दवा ख़रीद करके अपने पैसे और जीवन का नाश न कीजिए।

आज ही से ओकासा का सेवन कीजिये

ओकासा (सिल्वर) पुरुषों के लिए, ओकासा (गोल्ड) स्त्रियों के लिए सर्व प्रमुख केमिस्ट से खरीदिये। ओकासा छोटी साइज़ की० ३–१२ बड़ी साइज़ की० १०–०–

ताज़े माल और पत्र-व्यवहार के लिए लिखिये, ओकासा कम्पनी लि०, पोस्ट बक्स ३९६, बम्बई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इलाहाबाद की पब्लिक लायब्रेरी

इलाहाबाद की 'पब्लिक लायब्रेरी' संयुक्त-प्रान्त का एक महत्त्व का पुस्तकालय है। सन् १९३८-३९ की उसकी जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है उससे प्रकट होता है कि इस पुस्तकालय में ४४,३७१ पुस्तकें हैं। रिपोर्ट के साल १,२३४ नई पुस्तकें संग्रह की गई हैं। इस पुस्तकालय का उपयोग भी लोग खूब करते हैं। १४,४२६ पुस्तकें लोगों ने निकाल कर पढ़ीं और १३,१३६ निकलवाकर लोग घर पढ़ने को ले गये। इसके ओरियन्टल सेक्शन में संस्कृत, अरबी और फ़ारसी के सिवा हिन्दी, बँगला और उर्दू की पुस्तकें भी पिछले कई वर्षों से रक्खी गई हैं, जिनमें से २,६०२ हिन्दी की, १,७८६ बँगला की और ८०० उर्दू की पुस्तकें पढ़ने को लोगों ने लीं। इस पुस्तकालय की रिपोर्ट के साल ७३ नये लोगों ने रुपया जमा किया, परन्तु ७६ ने निकाल भी लिया। यह ठीक नहीं है। रुपया जमा करनेवालों की संख्या में वृद्धि होनी चाहिए। इस पुस्तकालय से वही व्यक्ति पुस्तकें पढ़ने को ले जा सकता है जो १६) पेशगी जमा कर देता है। प्रबन्ध-कमिटी को अपने इस पुराने नियम में अब परिवर्तन कर देना चाहिए और यूनिवर्सिटी के पुस्तकालय की तरह उसे भी केवल १०) ही पेशगी जमा करवाना चाहिए। यही नहीं, अपने ओरियण्टल विभाग के लिए तो 'भारती-भवन' की तरह ५) ही जमा करवाना चाहिए। ऐसी व्यवस्था कर देने से इस पुस्तकालय का लोग और भी अधिक संख्या में उपयोग कर सकेंगे और यह और भी अधिक लोक-प्रिय हो जायगा।

सम्मेलन के सभापति

इस बार सम्मेलन का अधिवेशन हिन्दी के प्रमुख पीठ काशी जी में होगा। सभापति भी हिन्दी के यशस्वी सम्पादक वयोवृद्ध पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी चुने गये हैं, जो हिन्दी के प्रवीण लेखक ही नहीं, किन्तु स्वतन्त्र विचार के देशभक्त भी हैं। वाजपेयी जी हिन्दी के क्षेत्र में प्रारम्भ से ही आगे आगे रहे हैं। स्वदेशी-आन्दोलन के ज़माने में 'नृसिंह' नाम का पत्र निकाल कर आपने नाम पाया था। आपका पत्र गरम विचार का पत्र था और कदाचित् हिन्दी में वह पहला ही राजनैतिक मासिक था। तब से आपने अच्छे से अच्छे पत्रों का सम्पादन करने में ही अपने जीवन का अधिकांश समय लगाया है, यहाँ तक कि साहित्य-रचना की ओर उतना ध्यान कभी नहीं दे सके हैं। आपने इनी-गिनी तीन-चार पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें हिन्दी का व्याकरण अधिक प्रसिद्ध है। हिन्दी के ऐसे कुशल और विद्वान् पत्रकार को सम्मेलन का सभापति मनोनीत करके सम्मेलन की स्थायी समिति ने सर्वथा उपयुक्त कार्य किया है। हमें विश्वास है कि सम्मेलन के गत वर्ष के सभापति पण्डित बाबूराव विष्णु पराडकर जी की तरह वाजपेयी जी भी हिन्दी के स्वत्वों की रक्षा करने में कभी विमुख न होंगे और उनके कार्य-काल में उसका गौरव-वृद्धि ही होगी।

आवश्यक निवेदन

योरप में युद्ध छिड़ जाने के कारण अख़बारों के लिए सबसे अधिक कठिन समस्या उपस्थित हो गई है। वह यह कि बाहर से काग़ज़ आदि का आना बन्द हो गया है, जिससे यहाँ काग़ज़ आदि का मूल्य बढ़ ही नहीं गया है, किन्तु दुना तक हो गया है। अतएव हम 'सरस्वती' की पृष्ठ-संख्या में आठ पृष्ठ घटाने को लाचार हुए हैं। आशा है, हमारे कृपालु पाठक, परिस्थिति को देखते हुए, हमारी कठिनाई का अनुभव करेंगे। बाद को जब परिस्थिति में सुधार हो जायगा तब 'सरस्वती' की पृष्ठ-संख्या बढ़ा दी जायगी और वह पूर्ववत् सज-धज के साथ निकलने लगेगी। आशा है, तब तक पाठक धैर्य धारण करेंगे।

भूल-सुधार

पाठकों से निवेदन है कि सितम्बर की 'सरस्वती' में 'मीराबाई'—नाम शीर्षक लेख में नीचे लिखी भूल सुधारने की कृपा करें—

पृष्ठ	कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१२	१	३३	मेदिनीकोश	सिद्धान्तकौमुदी
,,	,,	,,	डुमिग्	डुमिङ्
,,	२	२१	Law	La

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मई १९४०

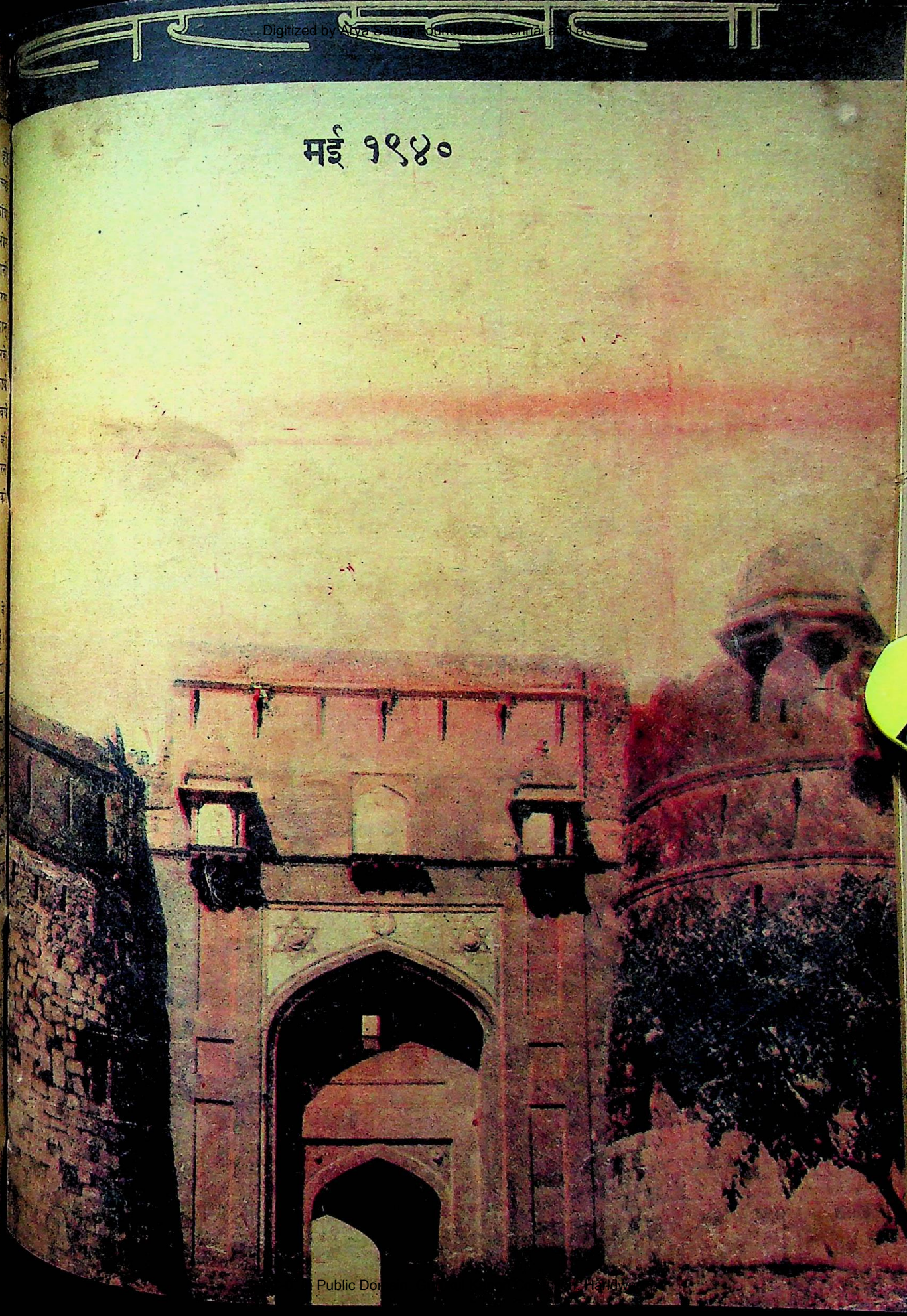

Public Domain, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कामिनिया' स्वास्थ्यवर्द्धक और पूर्ण सुन्दरता का देनेवाला है।

अपने रुपयों का ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा उठाइये।

कामिनिया आइल (रजिस्टर्ड)

मुलायम और चमकीले बालों के लिए कामिनिया आयल इस्तेमाल कीजिये। यह दिमाग़ को हमेशा ठंडा रखता है और बालों में आकर्षक चमक पैदा करता है। दाम एक बोतल का १), तीन बोतलों का २॥=); वी० पी० का ख़र्च अलग।

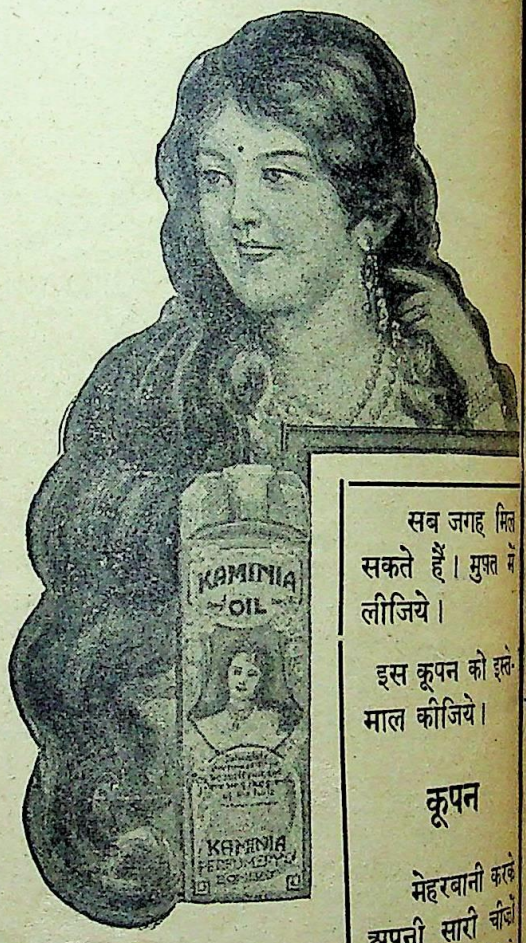

ख़ुशबू का राजा ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)

यह रूमाल पर लगाने के लिए एक बहुत ही प्यारा इत्र है। इस बढ़िया इत्र की दो-चार बूँदें ही आपके इर्द-गिर्द स्वर्ग पैदा करने में काफ़ी होंगी। ½ औंस की शीशी की क़ीमत १।) १ ड्राम की शीशी ।॥), वी० पी० ख़र्च अलग।

कामिनिया स्नो (रजिस्टर्ड)

ख़ूबसूरती चेहरे के रंग के लिए बहुत ज़रूरी है इससे मुँहासे और चेहरे की दूसरी ख़राबियाँ दूर हो जाती है और चेहरे पर एक बहुत ही अजीब आकर्षण आ जाता है। एक बोतल की क़ीमत ।॥), वी० पी० ख़र्च अलग।

सब जगह मिल सकते हैं। मुफ़्त में लीजिये।

इस कूपन को इस्तेमाल कीजिये।

कूपन

मेहरबानी करके अपनी सारी चीज़ों के मुफ़्त नमूने भेजिये डाकख़र्च के लिए ।) के टिकट भेज रहा हूँ।

नाम .....

पता .....

कामिनिया ह्वाइट रोज़ सोप (रजिस्टर्ड)

बाज़ार में बिकनेवाले रोज़ाना नहाने के सभी साबुनों से अच्छा है। दूसरे क़िस्म के साबुन को भी आज़मा कर देखिये। जैसे सन्दल, दिलबहार, लवैन्डर वग़ैरह। एक बक्स का दाम ।॥=), वी पी ख़र्च अलग।

सोल एजेंट—दी ऐंग्लो इंडियन ड्रग ऐंड केमिकल कंपनी, २८५, जुमा मसजिद, बंबई नं० २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत का गौरव

कोकोला साबुन

तथा

केश तैल

जुवेल आफ़ इण्डिया

कलकत्ता

COCOLA

JEWEL OF INDIA CALCUTTA

पज़ल नं० ३

२१००) इनाम जीतिये

संकेत ऊपर से नीचे

१ शरीर। २–समुद्र। ३ ब्रह्मचारी को इसके चक्कर से बचना चाहिये। ४ इस पर सैकड़ों मर मिटते हैं। ६–यह युद्ध में काम आती है। ९ बच्चों को यह शोभा देती है। १०–इसका आदर होता है। १३ महेन्द्र जैसी ऐसी ही बनाई जाती है। १४–इससे झगड़ा करना मूर्खता है। १५–इस पर सैकड़ों मर मिटें तो क्या ताज्जुब। १६–इसका प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ता है। १८–स्त्रियाँ इसका आदर करती हैं।

१	२ सा	३ ा	×	४ ा	५ ू	६ क
७ न	×	र	×	८ ज	९	र
×	र	×	१० ा	×	ट	ा
×	×	११ ा	य	ल	×	ल
१२	१३ स	×	क	×	१४ ा	×
१५ ता	र	×	×	१६ ो	१७ ता	१८
१९	×	त	रं	ग	×	ती

नियम अगले पृष्ठ पर देखिए

संकेत बायें से दायें

५–यह सैकड़ों की मृत्यु का कारण हो सकती है। ७–शहर। ८–कभी कभी यह भी मृत्यु का कारण हो जाता है।

११–जख़्मी। १२–आठ व ग्यारह के बीच की एक संख्या।

१५–उद्धार। १७–गर्मी। १९–एक मधुर ध्वनि से बजनेवाला बाजा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महेन्द्र पहेली की नियमावली

१—मात्रा रहित अक्षरों द्वारा केवल रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये। २—प्रत्येक शब्द किसी अङ्क से शुरू होता है व × पर ख़त्म होता है। ३—पूर्ति व अपना नाम कोरे काग़ज़ पर लिखकर भेजिए। ४—चाहे जितने उत्तर भेजिये, एक उत्तर की फीस ।।) व तीन की १) है। ५—हमारे मुहरबन्द हल (उत्तर) से मिल जाने-वाला हल ही सही माना जायगा। ६–१२००) शुद्ध पूर्तियों पर व ८००) न्यूनतम अशुद्धियों पर व १००) सबसे अधिक उत्तर भेजनेवाले को इनाम है। ७—मैनेजर का निर्णय अंतिम, अकाट्य व प्रत्येक दशा में मान्य होगा। ८—उत्तर २० जून १९४० तक भेज दीजिए। ९—सही हल ३० जून १९४० को सर्वसाधारण के सामने आफ़िस में खुलेगा। फल जानने के लिए फ़ीस के साथ एक आना अधिक भेजिये। १०—उर्दू में नुक़ते की ग़लती न मानी जायगी। ११—उत्तर व फीस आदि निम्न पते से भेजिये—

मैनेजर—महेन्द्र पहेली,

पोस्ट—रानीपुर, ज़िला झाँसी (यू० पी०)

बहिरापन

विज्ञान की नई आश्चर्यजनक खोज!

कान का बहना, जलन भयानक दर्द, खुजली, फोड़ा-फुंसी, मवाद आना, नासूर, सूजन, पर्दा ख़राब होना, कान में भन-भन, साँय-साँय, सी-सी, सीटी की तरह आवाज़ें आना, कम सुनना या एकदम न सुनना अथवा ज्वर के बाद सर्दी से या कुनैन के दुर्व्यवहार से पैदा हुआ कैसा ही नया, पुराने से पुराना बहिरापन क्यों न हो चमत्कारी 'बधिरता-हरन' के इस्तेमाल से शर्तिया आराम होता है। लाखों बहिरे इससे ठीक ठीक और साफ़ साफ़ सुनने लगे। आराम न हो तो दाम वापस। क़ीमत २) रु०।

बवासीर

महात्मा से प्राप्त आश्चर्यजनक दवा

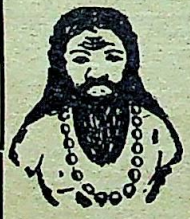

खूनी या बादी, नई या पुरानी तथा अन्दरूनी, बाहरी चाहे जैसी बवासीर क्यों न हो, महात्मा से प्राप्त जादू-असर 'अर्श-मारा' के एक बार के इस्तेमाल से दर्द, खुजली, टीस, सूजन, जलन, मवाद आना, ख़ून का गिरना फ़ौरन आराम होता है। ३ दिन में ख़राब से ख़राब बवासीर, नासूर, भगंदर, बिना आपरेशन जड़ से शर्तिया आराम होता है। लाखों निराश रोगी अच्छे होकर अन्य रोगियों से इसके इस्तेमाल की सिफ़ारिश करते हैं। आराम न हो तो दाम वापस। क़ीमत २) रु०।

दमा-श्वास की रामबाण दवा

चाहे जैसा नया या पुराना से पुराना दमा यानी श्वास क्यों न हो 'दमा-हारी' के व्यवहार से चाहे जितने ज़ोर का दम उभड़ा हो सिर्फ़ एक खुराक लेने से छाती की खींचन, श्वास की तकलीफ़, खांसी, पीठ का भारीपन दूर करके सुखमय नींद लाती है। पुराना से पुराना दमा चाहे तन सूखकर काँटा हो गया हो और कोई बीच खाने से हज़म नहीं होती हो; तकिये के सहारे रात भर जागा करते हों वे रोगी पूरी शीशी पीने से भले चंगे हो गये हैं और जीवन सुखमय बिताते हैं तथा गद्गद हृदय से आशीर्वाद देते हैं, हज़ारों प्रशंसा-पत्र मौजूद हैं। क़ीमत २), तीन शीशी ५) रु०।

पता—आरोग्य सदन, दुर्गादेवी स्ट्रीट, (कुंभारवाड़ा) बम्बई ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जूड़ी ज्वर) मलेरिया का महान शत्रु

झंडु

मलेरिया मिक्श्चर

सेवन करके मलेरिया की जड़ को
नाबूद कर दीजिए

विशेषकर स्त्रियों के लिए
तन्दुरुस्ती और ताक़त से भरपूर

प्रदरादि रोगों की
अक्सीर दवा

झंडु अशोकारिष्ट

स्त्रियों की निबलता में स्थायी प्रभाव डालनेवाली
——हर एक घर में रहना चाहिए——

सबके लिए—
शक्ति और स्फूर्ति से भरपूर

स्वादिष्ट

झंडु द्राक्षासव

बिना विलम्ब सेवन कीजिए

झंडु फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स लि०, पो० बा० नं० ५५१३—बम्बई नं० १४

इलाहाबाद के चीफ़ एजेन्ट—एल० एम० धोलकिया एण्ड ब्रादर्स, ४६ जान्स्टनगंज।
बिलासपुर के एजेन्ट—कविराज रवीन्द्रनाथ वैद्य शास्त्री।
दिल्ली और यू० पी० के सोल एजेन्ट—कान्तिलाल आर० परीख, चाँदनी चौक, देहली।
कानपुर के एजेन्ट—मोहनलाल आर० परीख ३९।३५ मेस्टन रोड।
पंजाब के एजेन्ट—परशोतम ब्रादर्स, हॉल बाज़ार, अमृतसर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चँदलापन

इतना बुरा रोग है कि सुन्दर से सुन्दर चेहरा ख़राब कर देता है। यह चँदलापन चाहे बीच खोपड़ी में हो या माथे पर हो, दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं होता।

केशवर्द्धिनी का सेवन करके आप दोनों जगह का चँदलापन अच्छा कर सकते हैं। केशवर्द्धिनी झड़े हुए बालों को उगा कर स्त्रियों के सौन्दर्य को बढ़ाती है।

केशवर्द्धिनी क्रीम पुरुष के बाल नहीं गिरने देता। बालों को धोकर सुगन्धित, काले और टिकाऊ बनाने के लिए केशवर्द्धिनी शैम्पू का प्रयोग करना चाहिए।

आज ही आरोग्यकारी **केशवर्धिनी** का उपयोग आरम्भ कर दीजिए

केशवर्द्धिनी ।।।) केशवर्द्धिनी शैम्पू ।।।) केशवर्द्धिनी क्रीम १)

साउथ इंडिया केमिकल्स, मैलापुर, (Mylapur) मद्रास

एजन्ट्स—सै० मंसूरहसन इलाहाबाद। टन्डन स्टोर्स, लश्कर (ग्वालियर)। चिदामीलाल एण्ड कं० किनारी बाज़ार आगरा। कलाधरप्रसाद एण्ड सन्स, बनारस। गाँधी ब्रजलाल, मनिलाल बाँकीपुर पटना। एस० एस० वरदराज एण्ड कं० विस्टोपुर बाज़ार, जमशेदपुर। एस० अब्दुल्ला भाई एण्ड सन्स, जबलपुर। एस० राव १० महारानी रोड, इन्दौर।

दुबले, पतले बच्चों को डोंगरे का बालामृत देना चाहिये। इस बालामृत में क़ीमती व आवश्यक दवाइयाँ पड़ी होती हैं, इसलिए इसका प्रभाव बच्चों के शरीर पर जल्द ही दिखाई देने लगता है, बच्चे तगड़े और तेजस्वी बनते हैं, स्वाद मीठा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

च्यवनप्राश-३)सेर अध्यक्ष मधुरा बाबू का मकरध्वज-४)मरी

शक्ति औषधालय-टाका

सन् १९०१ ई० में स्थापित होकर आयुर्वेद-जगत् में युगान्तर ले आया

आयुर्वेद का श्रेष्ठतम लुप्त रत्न, अनेक प्रकार के असाध्य रोगों की आश्चर्यजनक महौषधि

"मृतसंजीवनी सुरा" नाम, वर्ण और गुण में ठीक ठीक आयुर्वेदोक्त।

याद रखिए आयुर्वेद में इस अमृतोपम महौषधि का नाम "मृतसंजीवनी सुरा" है। आयुर्वेद में इसका और कोई नाम नहीं है। दूसरे नाम की पेटेण्ट ओषधियों के साथ हमारी आयुर्वेदीय 'मृतसंजीवनी सुरा' का कोई सादृश्य नहीं है। गवर्नमेण्ट से लाइसेन्स लेकर कई शताब्दियों के बाद हमने ही सर्वप्रथम इस आयुर्वेदोक्त लुप्त रत्न "मृतसंजीवनी सुरा" को फिर प्रचलित करके अपने ग्राहकों और अनुग्राहकों को इस आयुर्वेदोक्त दुर्लभ महौषधि एवम् आयुर्वेदीय नाना प्रकार की अकृत्रिम ओषधियाँ उचित मूल्य पर सेवन करने की सुविधा देते हैं और जिससे सब लोग इन्हें अनायास थोड़े ख़र्च में सब जगह पा सकें इसके लिए अनेक स्थानों में अपनी ब्राञ्चें खोली हैं।

मृतसंजीवनी सुरा

अम्ल, अजीर्ण, नाना प्रकार के वात, सूतिका, दुःसाध्य कठिन रोगों के बाद दुर्बलतानाशक महौषधि।

सारिवाधारिष्ट

बलकारक, रक्तशोधक, नाना प्रकार के रोगों को नष्ट करने और रोकनेवाला सालसा ।।।) शीशी।

वसन्तकुसुमाकर रस

सब प्रकार के बहुमूत्र की अद्वितीय महौषधि ३) सप्ताह।

सिद्ध मकरध्वज

सब प्रकार के क्षय रोगों और स्नायविक दुर्बलता का नाश करनेवाला। सिद्ध महापुरुषद्वारा प्रदत्त शक्तिशाली महौषधि। महाभृङ्गराज तेल ६) सेर। सब लोगों द्वारा प्रशंसित आयुर्वेदोक्त महोपकारी केशतैल।

दशनसंस्कार चूर्ण ≡) प्रति-डिब्बी। सब प्रकार के दाँत के रोगों के लिए दन्तमंजन। थोक का मूल्य अलग है।

"I was very interested to see this remarkable factory which owes its success to the energy and enthusiasm of its proprietor Babu Mathura Mohan Chakravarty B. A The preparation of indigenous drugs on so large a scale is **a very great achievement.** The factory appeared to me to be exceedingly well managed and well equipped &c. &c.

भारतवर्ष के भूतपूर्व अस्थायी गवर्नर-जनरल और वाइसराय तथा बंगाल के भूतपूर्व गवर्नर लार्ड लिटन बहादुर ने लिखा है—

Marquess of Zetland, Secretary of State for India, graciously remarked while Governor of Bengal :-

"I was astonished to find a Factory at which the production of medicines was carried out on so great a scale. Large number of Kavirajes was employed &c. &c.

Mathur Babu seems to have brought the production of medicine in accordance with the prescriptions of the ancient Shastras to a high pitch of efficiency.

देशबन्धु सी० आर० दास—"शक्ति औषधालय के कारख़ाना की ओषधि तैयार करने की व्यवस्था की अपेक्षा और अच्छी व्यवस्था की आशा नहीं की जाती है। इत्यादि-इत्यादि—"

ब्राञ्चें

भारत और बर्मा के प्रायः सभी प्रधान प्रधान स्थानों में स्थापित की गई हैं।

हमारी नक़ल करनेवाले अनेक औषधालय 'शक्ति औषधालय' के नाम से अपना परिचय देकर अनेक भोले-भाले ग्राहकों को धोखा देते हैं। इसलिए अध्यक्ष मथुरा बाबू का नाम और चित्र देखकर लीजिए।

शास्त्रविधि से बनाई गई मृतसंजीवनी सुरा का रंग पानी की तरह सादा होता है। इस ओषधि को ख़रीदते समय सादा रंग और अध्यक्ष मथुरा बाबू के चित्र के सहित लेबिल देखकर लीजिएगा। मूल्य पाइण्ट २॥), क्वार्ट ४॥)

मैनेजिंग प्रोप्राइटर—**श्री मथुरा मोहन मुखोपाध्याय, बी० ए० हिन्दू केमिस्ट व फीजीशियन**

मालिकगण—श्री मथुरामोहन, लालमोहन और फणीन्द्रमोहन मुखोपाध्याय, चक्रवर्ती

चिकित्सकों को ऊँचा कमीशन देने की व्यवस्था है। आयुर्वेदीय चिकित्सा-प्रणालीवाला सूचीपत्र मँगाने से भेजा जाता है।

चारंगी ब्राञ्च—१२ नं० चारंगी, कलकत्ता। कलकत्ता हेडआफिस—५२।१ बाडन स्ट्रीट, कटक ब्रांच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोल्डेन आमला

हेयर आयल

आमला सीधे प्राकृतिक तत्त्वों से ही तैयार किया गया है। यहाँ तक कि इसका रंग भी उन्हीं आरोग्यकारी जड़ी-बूटियों का है जिनसे कि यह तैयार किया गया है। यह तैल खोपड़ी के चर्म को चिकना करता है, बालों की जड़ों को मज़बूत बनाता है तथा बालों को बढ़ाकर उनमें विशेष कालापन तथा चमक पैदा करता है।

बङ्गाल केमिकल एन्ड फ़र्मासिउटिकल वर्क्स लि०

कलकत्ता :: :: बम्बई

छप गया छप गया

डाक्टर गोरखप्रसाद-लिखित

फोटो ग्राफ़ी

का

परिवर्तित और परिवर्द्धित संस्करण

इस पुस्तक में फोटो ग्राफ़ी के नये से नये सिद्धान्त का समावेश किया गया है और इस सम्बन्ध के हर एक प्रयोग इसमें चित्र दे देकर क्रियात्मक रूप से समझाये गये हैं। यदि घर बैठे फोटो ग्राफ़र बनना है तो आज ही इसकी एक प्रति मँगा लीजिए। मूल्य केवल ७) सात रुपये।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साप्ताहिक साहित्य में नई लहर

देशदूत- साप्ताहिक पत्र

के नमूने की एक प्रति शीघ्र मँगाइए। यह हिन्दी का एक उच्च कोटि का साप्ताहिक पत्र है और अपनी विशेषताओं के कारण साप्ताहिक साहित्य में—

एक नवीन युग

उपस्थित कर रहा है। इस समय हिन्दी में जितने भी साप्ताहिक प्रकाशित हो रहे हैं यह उन सबसे भिन्न है। इसमें सप्ताह भर के चुने गये समाचार, सामयिक विषयों पर विद्वानों-द्वारा लिखे गये उत्तमोत्तम लेख, कहानियाँ, कवितायें आदि रहती हैं। साथ ही चित्रों की भरमार रहती है। यह साप्ताहिक राष्ट्रीय है। और कांग्रेस की नीति का समथक है। वार्षिक मूल्य ३॥), एजेन्टों की सर्वत्र आवश्यकता है। सब प्रकार के पत्र-व्यवहार का पता—

मैनेजर "देशदूत", इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी सन् १९३९-४० की नई पुस्तकें

वैकुण्ठ का बिल—यह बँगला के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार स्वर्गीय शरद बाबू की कृति का हिन्दीरूपान्तर है। शरदग्रन्थावली के अन्य उपन्यासों के ही समान यह उपन्यास भी बहुत ही रोचक और कलापूर्ण है। मूल्य केवल ।।) आठ आने।

कपाल-कुण्डला—यह बंकिम बाबू के इसी नाम के बँगला-उपन्यास का हिन्दीरूपान्तर है और रूपान्तरकर्ता हैं हिन्दीसंसार के यशस्वी लेखक और कवि पं० सूर्य्यकान्त त्रिपाठी निराला। मूल्य ।।।) बारह आने।

लेखक, श्रीयुत चन्द्रभूषण वैश्य

राजदुलारी—यह एक मौलिक सामाजिक उपन्यास है। इसमें समाज, विशेषतः मारवाड़ीसमाज की कुरीतियों का भली भाँति दिग्दर्शन कराया गया है। मूल्य १) एक रुपया।

धोखा-धड़ी—श्री चारुचन्द्र बन्द्योपाध्याय के बँगला-उपन्यास का यह पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र-द्वारा किया गया रूपान्तर है। धूर्त और कपटी आदमी भोले भाले और निरीह आदमियों को किस प्रकार अपने मायाजाल में फँसा लेते हैं, यह बात इस उपन्यास के द्वारा भली भाँति ज्ञात की जा सकती है। मूल्य १) सवा रुपया।

लेखक, श्रीयुत वासुदेव उपाध्याय, एम० ए०
भूमिकालेखक, आचार्य नरेन्द्रदेव जी,
एम० ए०, एम० एल० ए०

गुप्तसाम्राज्य का इतिहास (दो भागों में)—यह इतिहासग्रन्थ कितनी ही बहुमूल्य और दुष्प्राप्य सामग्रियों के आधार पर बहुत ही खोज के साथ लिखा गया है। गुप्तकाल के इतिहास के अध्ययन के लिए हिन्दी का यही सर्वोत्कृष्ट और प्रामाणिक ग्रन्थ है। मूल्य प्रथम खण्ड ३) तीन रुपये। द्वितीय खण्ड ४) चार रुपये।

अनुवादक, सरस्वती-सम्पादक पण्डित देवीदत्त शुक्ल

एक आत्मकथा—यह उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मु० जल्फ़त राय की आत्मकथा का अनुवाद है। इसमें उस काल की राजनीति पर बहुत ही उत्तम ढंग से प्रकाश डाला गया है। मूल्य १।।) डेढ़ रुपया।

विन्ध्यविरुदावली—इस पुस्तक में विन्ध्याचल का माहात्म्य विस्तारपूर्वक वर्णित किया गया है। मूल्य ।) चार आने।

संचिता—श्रीयुत ठाकुर गोपालशरणसिंह की सरसपूर्ण कविताओं का संग्रह। मूल्य २।) सवा दो रुपये।

वेणुकी—श्रीमती तारा पाण्डेय की सुन्दर रचनाओं का अपूर्व संग्रह। मूल्य ।।।) बारह आने।

लेखक, महापंडित श्री राहुल सांकृत्यायन

मेरी लद्दाख़-यात्रा—यह महापंडित श्री राहुल सांकृत्यायन का बहुत ही रोचक और कितनी ही मूल्यवान् एवं ज्ञातव्य बातों से भरा हुआ भ्रमण-वृत्तान्त है। मेरठ, पंजाब, मुलतान, देरा ग़ाज़ीख़ाँ, सीमान्त की सैर, पुछ राज्य, कश्मीर, ज़ोजीला पार, लद्दाख, लाहुल तथा कुल्लू आदि इसके सभी अध्याय बहुत ही रोचक हैं। इस सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल ।।।) बारह आने।

लेखक, पं० रामनरेश त्रिपाठी

लक्ष्मी—यह उपन्यास स्त्रियों के मनोरंजन और ज्ञान-वृद्धि के लिए लिखा गया है और इसकी एक एक पंक्ति बहुत ही ओजपूर्ण तथा शिक्षाप्रद है। यही कारण है कि इसका एक संस्करण हाथों हाथ बिक गया और दूसरा संस्करण छपाना पड़ा। मूल्य ।।=) दस आने।

पता—मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोतियाबिन्द

कौन कहता है कि बग़ैर चीर-फाड़ के अच्छा नहीं होता? डिजन्स "आइ-क्योर" Degon's "Eye-Cure" के कुछ ही दिनों के लगाने से नया या पुराना मोतियाबिन्द तथा कैसाहू आँख की बीमारियाँ शर्तिया आरोग्य होती हैं।

मूल्य २) डा०-खर्च ।।=)।

कमला वर्क्स (S/2) पांचपोटा, बङ्गाल

एजेन्ट—ग्रे एन्ड कं०, इलाहाबाद

स्थापना १९२६ | जुक़ाम, सर्दी के लिए बिलकुल संग्रह योग्य ।। | स्वदेशी १० नं० १८६९

आरोंदा

सूर्य छाप निलगिरी तेल

१ आ० शीशी ।। दर्जन २ ।।। डा० ख० अलग।

[कैलिप न बाम] सूचीपत्र मुफ़्त [युवलिप दाद का मरहम]

खाण्डालेकर बंधु, बम्बई, ४

(REGISTERED)

हृदय की सर्दी

(सर्दी और कफ़)—लापरवाही करने से मामूली हृदय की सर्दी फेफड़े की सूजन (ब्रोंकैटिस) हो जायगी। इससे बचे रहने का रास्ता बड़ा आसान है। थोड़ासा अमृतांजन लेकर छाती पर मलिये। बस, उसकी गरमी सीधे हृदय तक पहुँचती है और कफ़ को पिघला देती और तुरंत आराम मिलता है।

अमृतांजन—हमेशा जल्दी से जल्दी आराम पहुँचाता है।

अमृताञ्जन लिमिटेड, बम्बई और मद्रास

शाखाः—कलकत्ता, कराची, दिल्ली

१५०) महीना कमाइये

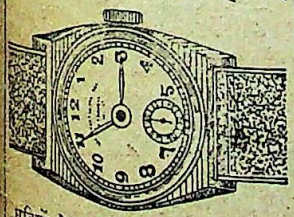

आधुनिक सुन्दर साइज़ ३।।) रुपया।

हम लोग घड़ियाँ सीधी स्वीटज़रलैंड से बड़ी तादाद में मँगाते हैं। आप हमारी घड़ियों को बेचकर आसानी से रु० पैदा कर सकते हैं। दूसरे प्रति घड़ी १०) में बेचते हैं और हम लोग सिर्फ़ ३।।) में। ४ साल की गारन्टी। एक बार ३ घड़ी लेने से डाक-व्यय देना नहीं पड़ेगा।

रोलेण्ड वाच कम्पनी

पोस्ट बक्स नम्बर १००,०७ कलकत्ता १३

सफ़ेद बाल काला

विवलिन केश तेल उन्हें सदा के लिए जड़ से प्राकृतिक रंग में ला देगा। ख़िज़ाबों को दूर कीजिये। ७ वर्ष से प्रसिद्ध विवलिन का व्यवहार कीजिये। छोटी शीशी १।।।=), बड़ी शीशी ३); तीन शीशियाँ (पूरे कोर्स के लिए) बिना डाक ख़र्च के भेजी जाती हैं।

एजन्ट्सः—किंग्स एण्ड कं०, २९ कैनिङ्ग रोड, इलाहाबाद

"OPACITINE" जर्मनी में टेस्ट की हुई और गोवर्नमिन्ट से रजिस्टर्ड "OPACITINE"

चिट्टा (फोला)

"अपेसीटीन" ("OPACITINE") के कुछ ही दिनों के सेवन करने से छोटा, बड़ा, पतला सरदार, तथा देर का फोला, कुकरे जड़ से ही मिटे जाते हैं और खोई हुई नज़र तथा ख़ुशबाली फिर से पुनः ठीक होकर आँखें कमल के समान खिल जाती हैं अनेक महानुभावों वैद्यों, हकीमों तथा डाक्टरों ने इस आश्चर्यमय आविष्कृत दवाई की प्रशंसा की है।

मूल्य १०) रुपये, ५) रुपये, नमूना २।।) रुपये, डाक खर्च अलग।

श्रीकृष्ण लैबोरेटरीज़ (रजिस्टर्ड) पसरूर (पंजाब)

सुख दायिनी

सब तरह के शिर दर्द, जुकाम; मूर्छा, बेहोशी को "सुख दायिनी" आराम करती है। दिल और दिमाग़ में चैतन्यता पैदा करती है। शरीर के सब दर्दों को मिटाती है। "सुख दायिनी" हृत्कम्प (Pal Putation of Heart) में बहुत उपयोगी है।

श्रीकृष्ण औषधालय पो० डीग, भरतपुर स्टेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीयुत सन्तराम बी० ए० की उत्तमोत्तम पुस्तकें

सुन्दरी-सुबोध—स्त्रियों को कर्तव्यपालन में सहायता देनेवाली अपने ढङ्ग की यह पहली पुस्तक है। इसमें पति-पत्नी, सास-बहू, देवरानी-जेठानी आदि के सम्बन्धों का रोचक और उपदेश-पूर्ण वर्णन है। शिक्षित बहनों के मनबहलाव और गृहस्थी-सम्बन्धी आवश्यक बातों का इसमें सुन्दर वर्णन है। पुस्तक नवविवाहिताओं को उपहार में देने योग्य है। मूल्य १।) मात्र है।

नीरोग कन्या—इस पुस्तक में जो जो बातें लिखी हैं, उनका अनुसरण करके लड़कियाँ तो अपना स्वास्थ्य सुधार ही सकती हैं, साथ ही परिपक्व अवस्था की स्त्रियाँ तथा पुरुष भी स्वास्थ्य-सम्बन्धी बहुत-सी नवीन और उपयोगी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। पुस्तक कन्या-पाठशालाओं में पाठ्य-पुस्तक के रूप में पढ़ाई जाने के योग्य है। **सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य १)**

सुशील कन्या—किसी भी आदर्श परिवार की कन्या के लिए जिन जिन बातों की जानकारी आवश्यक है, उन सभी का इसमें समावेश किया गया है। इसे पढ़कर बालिकायें स्वास्थ्य, सदाचार तथा नीति आदि सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें हर एक विषय कहानी के रूप में लिखे हैं। मूल्य केवल ।।) आठ आने।

विश्व की विभूतियाँ—इस पुस्तक में बारह ऐसे जगद्विख्यात व्यक्तियों के चरितों का संग्रह किया गया है, जिन्होंने अपने अपरिमित अध्यवसाय तथा अनुपम आत्मत्याग से संसार की ज्ञान-राशि में अत्यधिक वृद्धि की है और अपने यशःकाय को अमर बना दिया है। मूल्य १।।।)

जान जोखिम की कहानियाँ—संसार के अध्यवसायशील पुरुषों ने जन साधारण को विधाता की सृष्टि से भली भाँति परिचित कराने के लिए अपने प्राणों को किस प्रकार संकट में डाला और सिंहों, अजगरों तथा समुद्री जानवरों के मुँह से किस प्रकार अपने आपको बचाया, यह बात इन कहानियों में बड़ी रोचक भाषा में लिखी गई है। मूल्य ।।=)

दयानन्द—इसमें स्वामी जी के जीवन की घटनायें बहुत ही सरल भाषा में बड़े मनोहर ढङ्ग से लिखी गई हैं, साथ ही संक्षेप में आर्य्य-समाज के सिद्धान्तों का भी वर्णन कर दिया गया है। पुस्तक में आठ चित्र हैं; पुस्तक सजिल्द है। मूल्य ।।) बारह आने।

बाल-सद्बोध—इस पुस्तक के द्वारा बालकों को तरह तरह की मनोरञ्जक पौराणिक कहानियों की सहायता से धर्म और सदाचार की गूढ़ से गूढ़ बातें सिखलाने का प्रयत्न किया गया है। मूल्य ।।)

रसीली कहानियाँ—इस पुस्तक में बच्चों को हँसानेवाली साथ ही शिक्षाप्रद कहानियाँ संग्रहीत की गई हैं। तसवीरों को देख देखकर और कहानियाँ पढ़-पढ़ कर बच्चे बहुत ही खुश होते हैं। प्रत्येक मनुष्य को अपने प्यारे बच्चों के लिए ऐसी पुस्तकें अवश्य मँगा लेनी चाहिए। मूल्य ।।।)

मानसिक आकर्षण-द्वारा व्यापारिक सफलता—आकर्षण या सम्मोहन की शक्ति प्रत्येक मनुष्य में होती है। इसका प्रयोग करने से सफलता अवश्य होती है। श्रीमती ओ० हाण्डुहारा ने इस विषय में विशेष सफलता प्राप्त की है। अपनी एक पुस्तक में इन्होंने व्यापारिक सफलता के लिए मानसिक आकर्षण करने की विधि बतलाई है। उसी पुस्तक का यह हिन्दी-अनुवाद है। पुस्तक सभी के काम की है। मूल्य ।) चार आने।

इ-त्सिङ्ग की भारत-यात्रा—यह अपने देश का एक महत्त्वपूर्ण इतिहास है। इसमें संस्कृत के सबसे अधिक ज्ञाता इ-त्सिङ्ग नामक एक चीनी पर्यटक का महत्त्वपूर्ण यात्रा वर्णन है, जो कि बड़े काम का है। श्री सन्तराम, बी० ए० ने इसका बढ़िया अनुवाद किया है; साथ ही बहुत-सी टिप्पणियाँ लिखकर विषय को सुस्पष्ट कर दिया है। मूल्य २।।)

पता—मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी सन् १९३९-४० की नव प्रकाशित पुस्तकें

चिन्तामणि—आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों का संग्रह। इस पुस्तक पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने १२००) का मंगलाप्रसाद पुरस्कार दिया है। मूल्य १॥)

अनुवादक, श्रीयुत हरदयालसिंह

वेणी-संहार—यह पुस्तक संस्कृत के सुप्रसिद्ध नाटक वेणी-संहार का हिन्दी-अनुवाद है। अनुवाद गद्य और पद्य दोनों में किया गया है। आरम्भ में एक विस्तृत भूमिका है, जिसमें नाटक की ख़ूबी पर बहुत ही विद्वत्तापूर्वक विचार किया गया है। मूल्य १)

लेखक, श्रीयुत भगवतीप्रसाद वाजपेयी

पुष्करिणी—यह वाजपेयी जी की चौदह कहानियों का संग्रह है। इस संग्रह की एक एक कहानी अनमोल है और इस मनोहर ढंग से लिखी गई है कि उसे आदि से अंत तक पढ़े बिना मन नहीं मानता। मूल्य केवल १॥)

लेखक, श्रीयुत प्रेमनारायण टण्डन

द्विवेदी-मीमांसा—इस पुस्तक में स्वर्गीय आचार्य्य द्विवेदी जी की जीवनी तथा उनकी कृतियों पर आलोचनात्मक ढंग से प्रकाश डाला गया है। मूल्य १॥)

लेखक, पण्डित देवीदत्त शुक्ल, सरस्वती-सम्पादक

बाल-द्विवेदी—यह आचार्य्य द्विवेदी जी का संक्षिप्त जीवनचरित केवल बालकों के ही लिए नहीं बल्कि सर्वसाधारण के लिए उपयोगी है। मूल्य ॥)

लेखक, श्री नत्थाप्रसाद दीक्षित 'मिलिन्द'

एकादशी—इस पुस्तक में मनोहर पद्यों में लिखी गई पौराणिक काल की ग्यारह आख्यायिकाओं का संग्रह किया गया है। स्थान स्थान पर कई रंगीन और सादे चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य १)

अनुवादक, पण्डित रूपनारायण पाण्डेय

स्वामी—यह उपन्यास-सम्राट् डाक्टर शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय की कृति का हिन्दीरूपान्तर है। मूल्य ॥)

अनुवादक, पण्डित सूर्य्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

देवी चौधरानी—यह बँगला के सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक बंकिमबाबू के अत्यन्त ही लोकप्रिय उपन्यास का हिन्दीरूपान्तर है। मूल्य १)

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

अज्ञात दिशा की ओर—यह बँगला के सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक श्रीयुत सौरीन्द्रमोहन मुखोपाध्याय के 'निरुद्देशेर यात्री' नामक उपन्यास का हिन्दीरूपान्तर है। इसमें हिन्दू-समाज की एक बहुत ही गहन समस्या पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। मूल्य ॥)

अनुवादक, श्रीयुत गोपीनाथ क़ानूनगो

मोपाँसा की चुनी हुई कहानियाँ—इस पुस्तक में फ्रांस के जगद्विख्यात कलाकार मोपाँसा की ग्यारह चुनी हुई कहानियाँ दी गई हैं। मूल्य ॥)

लेखक, श्रीयुत शमशेरबहादुरसिंह, बी० ए०

संसार की प्रसिद्ध कहानियाँ—इस पुस्तक में संसार के अत्यन्त प्रतिष्ठित कहानी-लेखकों की रचनाओं से छाँट कर दस कहानियाँ दी गई हैं। मूल्य ॥)

लेखक, श्रीयुत चन्द्रशेखर पाण्डेय

मेवाड़-उद्धार—यह हिन्दू-सूर्य्य महाराणा प्रताप के सम्बन्ध में लिखा गया एक वीररस का नाटक है। मूल्य ॥)

लेखक, हास्यरसावतार स्वर्गीय पण्डित जगन्नाथ-प्रसाद चतुर्वेदी

पद्यमाला—इस पुस्तक में चतुर्वेदी जी की फुटकर कविताओं का इस प्रकार संग्रह किया गया है कि इस एक ही संग्रह में सभी विषयों और रसों की रचनायें आ गई हैं। मूल्य ॥।) बारह आने।

पता—मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस वर्ष के देव-पुरस्कार-विजेता

श्रीश्यामनारायण पाण्डेय

का

नव प्रकाशित महाकाव्य

हल्दीघाटी

इसी काव्य-ग्रंथ पर रचयिता को इस वर्ष २०००) रु० देव पुरस्कार प्राप्त हुआ है)

वीर-शिरोमणि महाराणा प्रताप की कीर्ति जिस महायुद्ध से संसार के कोने २ में फैल कर स्वतन्त्रता-संग्राम में रत राष्ट्र का माथा ऊँचा कर रहा है उसी युद्ध की पवित्र कहानी का वर्णन बड़े ही अनूठेपन से फड़कती हुई कविता में किया गया है। पुस्तक पढ़ते समय हल्दीघाटी के मैदान में महाराणा की वीरता, चेतक घोड़े का हवा से बातें करना, चण्डिका की जीभ की तरह लपलपाती हुई तलवार का बिजली की तरह गिरना, झाला मान्ना का सर्वस्व त्याग, वीर सिपाहियों का आज़ादी के लिए खेलते २ प्राण न्योछावर करना और महाराणा का प्राणों के दीपक के उजियाले में वन वन पलायिता स्वतन्त्रता का टोह लगाना, भूख और प्यास के मारे तड़पते हुए महाराणा के बच्चों का करुण-क्रन्दन आदि आदि सभी बातें आँखों के सामने सिनेमा-फ़िल्म की तरह खिंच जायँगी। आप इस युग में एक नवीन ढंग की कविता पढ़कर चकित रह जायँगे। स्थान-स्थान पर कविता के महत्त्व के बढ़ानेवाले वीररस से सराबोर दर्जनों रंगीन और सादे चित्रों से पुस्तक और भी चित्ताकर्षक हो गई है। इस महाकाव्य के लेखक ने दो-तीन वर्षों से कवि-सम्मेलनों में धूम मचा रखी थी। यदि आपको अपने पूर्वजों के लिए कुछ भी आदर है, राष्ट्र के प्रति कुछ भी प्रेम है तो इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य ख़रीदिये। मूल्य २)

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

बालक-बालिकाओं के लिए

सन् १९३९-४० की उत्तमोत्तम पुस्तकें

अद्भुत कहानियाँ—यह पुस्तक बालक-बालिकाओं के लिए लिखी गई नौ रोचक कहानियों का संग्रह है। इन अद्भुत कहानियों की प्रत्येक कहानी में ऐसी ऐसी अद्भुत बातें पढ़ने को मिलेंगी कि बच्चे जहाँ आश्चर्य्य-चकित होंगे, वहीं हँसते-हँसते लोट-पोट हो जायेंगे। मूल्य ॥)

बाघ-सिंह के मुँह में—इस पुस्तक में अफ्रीका महाद्वीप के घने जंगलों तथा अन्य भयङ्कर स्थानों की यात्रा का विवरण दिया गया है। यात्रियों ने बाघ-सिंह के मुँह में जाते जाते बच कर किस तरह आत्म-रक्षा की, यह पढ़कर दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। मूल्य ॥)

बाघ और भालू की कहानी—इस पुस्तक में दो सचित्र कहानियाँ दी गई हैं। एक बाघ की और दूसरी भालू की, जो बहुत ही रोचक हैं। मूल्य ।)

शङ्कर का दिग्विजय इस पुस्तक में शङ्कर नामक एक साधनहीन किन्तु साहसी और अध्यवसायी बालक की सफलता की कहानी लिखी गई है, जिसे पढ़कर बच्चे जहाँ ख़ुश होंगे वहीं वे भी सफलता के मार्ग में बढ़ने के लिए उत्साहित होंगे। मूल्य ।)

लेखक, पण्डित देवीदत्त शुक्ल

लाल बौना—इस पुस्तक में 'सरस्वती'-सम्पादक पण्डित देवीदत्त शुक्ल ने कई रोचक कहानियाँ संगृहीत की हैं, जिन्हें बच्चे बड़े चाव से पढ़ेंगे। मूल्य ।)

दो मित्र—यह भी 'सरस्वती'-सम्पादक पण्डित देवीदत्त शुक्ल की कृति है। इसमें सात ऐसी कहानियों का संग्रह किया गया है जो बच्चों की रुचि को ध्यान में रख कर रोचक शैली में लिखी गई हैं। मूल्य ।)

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची

(१) दो गीत (कविता)—श्रीयुत मोहनलाल महतो ४०९

(२) हिन्दू-संस्कृति की रक्षा—श्रीयुत इन्द्र विद्या-वाचस्पति... ... ... ४१०

(३) अभिनय—श्रीयुत हरवंश वर्मा, बी० ए० ४१४

(४) बड़ी भूल (कविता)—श्रीमती तारा पांडेय ४१९

(५) वह भूली कौशाम्बी—श्रीयुत सतीशचन्द्र काला ४२०

(६) भारतीय सुगन्धित तेल—अनुवादक, श्रीयुत जगतनारायण तायल, एम० एस० सी०... ४२५

(७) हिन्दी की उदारता—श्रीयुत पंडित अमरनाथ झा, एम० ए० ... ... ४३०

(८) भूली हुई कहानी !—श्रीयुत सरयू पंडा, गौड़ ४३२

(९) सम्बोधन (कविता)—श्रीयुत विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक' विद्यावाचस्पति ... ४३६

(१०) पाकिस्तान की पार्श्वभूमि—श्रीयुत डाक्टर एस० सी० लेले, बी० ए०, एम० बी० ... ४३७

(११) कलाकार—श्रीयुत विजय वर्मा ... ४४३

(१२) पाँच गीत (कविता)—श्रीयुत गोपाल-शरणसिंह ४४६

(१३) हमारा प्रधान उपनिवेश—श्रीयुत सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए०... ... ४४७

सिर की तरावट केशों का शृंगार

केश-राज (Regd) (केशतेलों का राजा)

इसकी सुगन्ध मनोहर, सुमधुर और टिकाऊ है। इसके व्यवहार से चित्त प्रसन्न, मस्तिष्क तरोताज़ा और बाल काले, लम्बे व चमकीले होते हैं। यह ओषधियुक्त है और ह्वाइट आयल रहित है। इसके गुणों की प्रशंसा देश के बड़े बड़े लीडरों ने की है और प्रदर्शनियों द्वारा पदक प्राप्त हुए हैं।

२½ आउन्स और आधा आउन्स की शीशियों में बिकता है।

स्थानीय हमारे एजेंट से खरीदिए।

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०

विभाग नं० १८ पोस्टबक्स ५५४, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१४) मिट्टी का क्षय--श्रीयुत प्रोफ़ेसर प्रेम-
चन्द्र मलहोत्र ४५१
(१५) पंछी (कविता)--श्रीयुत शिवदत्त शर्मा ४५३
(१६) रिक्ता--अनुवादक, पंडित ठाकुरदत्त मिश्र ४५४
(१७) जाग्रत नारियाँ--श्रीयुत महेशप्रसाद
मौलवी, आलिम फ़ाज़िल ४६१
(१८) भारत में अनाज की भयंकर कमी--श्रीयुत
पंडित दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल-
एल० बी० ... ... ४६५
(१९) मैं आहत का क्रंदन स्वर हूँ (कविता)--
श्रीयुत मित्तल ४७५
(२०) पंजाब में हिन्दी का विरोध--श्रीयुत पंडित
वेंकटेश नारायण तिवारी ४७६
(२१) नई पुस्तकें ४८१
(२२) आचार्य द्विवेदी के पत्र ४८५
(२३) कुछ इधर-उधर की ४८८
(२४) सामयिक साहित्य ४९१
(२५) सम्पादकीय नोट ४९९
(२६) युद्ध की डायरी ५०१

चित्र-सूची

१--सिद्धार्थ-विदा (रंगीन) ... ... मुखपृष्ठ
२--वह भूली कौशाम्बी-सम्बन्धी ५ चित्र ४२१-४२४
३--हमारा प्रधान उपनिवेश-सम्बन्धी ३ चित्र ४४८-४५०
४--जाग्रत नारियाँ-सम्बन्धी ५ चित्र ... ४६१-४६४
५--कुतुबमीनार (रंगीन) ४८०
६--सम्पादकीय नोट-सम्बन्धी २ चित्र ... ४९६-५०२

स्त्रियों से डरनेवाले वही होते हैं
जो दुर्बल और पुरुषार्थहीन होते हैं
पुरुषार्थ ही पुरुषों का भूषण है
इसलिए आपको चाहिए कि 'सुखसंचारक कम्पनी मथुरा' की बनाई सोना मिली
'यौवनशक्ति की गोलियाँ'
सेवन करके उनका चमत्कार देखें। क़ीमत २५ गोली २॥)
स्पेशल तिला--नसों की कमज़ोरी के लिए अपूर्व दवा, मूल्य १) रु०,
डाक-खर्च ॥=)।
मँगाने का पता--सुखसंचारक कम्पनी, मथुरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सकता है आपके भोजनके बरतनों पर किसी किसमकी बिमारीके कीड़े हों!

खाना खानेवाले बरतन रेत या राखसे पूरी तरह सफा नहीं हो सकते—इन तरीकोंसे साफ किये हुए बरतनोंकी चमक खराब हो जाती है। और लकीरों पड़ जाती हैं जिनमें भोजनके छोटे टुकड़े रह जाते हैं यह खतरनाक और रोगदायक है। क्योंके यही छोटे टुकड़े जल्दी सड़ने लग जाते हैं और उस भोजनको जो के इन बरतनोंमें खानेके लिये होता है ज़हरीला बना देते हैं।

इसलिये अपने परिवारको सड़े हुए भोजनके रोगदायक असरसे बरतनोंको विमसे सफा करके बचाओ। विम छोटेसे छोटे भोजनके टुकडोंको भी बरतनमें से सफा कर देती है और इनको नया जैसा बना देती है—लकड़ीकी चिज़ों, रंगीन चिज़ों चिलमची, नहानेके टब और फरशकी टाइलों और इत्यादि चिज़ोंको निहायत सफाईसे सफा कर देती है बग़ैर किसी किसमके खरचनेके।

विम

बरतनोंको सेहतके लिये निरोगी बनाती है।

LEVER BROTHERS (INDIA) LIMITED X-V 375-172—HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती के नियम

१—सरस्वती प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्यय-सहित इसका वार्षिक मूल्य ४॥) है। इसका वर्ष जनवरी से दिसम्बर तक वा जुलाई से जून तक समझा जाता है। बीच में ग्राहक होनेवालों को पूरे वर्ष की संख्यायें दी जाती हैं। प्रतिसंख्या का मूल्य ।=) है। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ६॥।), और प्रतिसंख्या का ॥-) है। ब्रह्मा के लिए वार्षिक मूल्य ६) है। प्रतिअंक ॥) है। बिना अग्रिम मूल्य के पत्रिका नहीं भेजी जाती। पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं। जो मिलती भी हैं उनका मूल्य १) प्रति से कम नहीं लिया जाता।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ़ साफ़ लिखकर भेजना चाहिए, जिसमें पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—जिन सज्जनों को किसी मास की सरस्वती न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछना चाहिए। अगर पता न लगे तो डाकघर से जो उत्तर आवे उसे हमारे पास—जिस महीने की संख्या न मिली हो उसके—अगले महीने की १५ तारीख तक भेजें। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर ध्यान न दिया जायगा; चाहे वे अगले महीने की १५ ता० के भीतर ही आवें। उन्हें संख्या मूल्य ही पर मिलेगी। सरस्वती यहाँ से दो बार अच्छी तरह जाँच कर रवाना की जाती है। अतएव इस विषय में पहले डाकघर से ही पूछताछ करना अच्छा होगा।

५—यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकखाने से उसका प्रबन्ध करा लेना चाहिए और यदि सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो तो उसकी सूचना मय ग्राहक नम्बर के हमें अवश्य देनी चाहिए।

६—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें और बदले के पत्र "सम्पादक सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग," के पते से भेजने चाहिए। मूल्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र "मैनेजर सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद," के पते से आने चाहिए।

७—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने वा न करने का तथा उसे लौटाने वा न लौटाने का भी अधिकार सम्पादक को है। लेखों के घटाने-बढ़ाने का भी अधिकार सम्पादक को है। जो लेख सम्पादक लौटाना मंजूर करें उनका डाक और रजिस्टरी ख़र्च लेखक के ज़िम्मे होगा। बिना उसे भेजे लेख न लौटाया जायगा।

८—अधूरे लेख नहीं छापे जाते। स्थान के अनुसार लेख एक वा अधिक संख्याओं में प्रकाशित होते हैं।

९—जिन लेखों में चित्र रहेंगे, उन चित्रों के मिलने का जब तक लेखक प्रबन्ध न कर देंगे, तब तक वे लेख न छापे जायँगे। यदि चित्रों के प्राप्त करने में व्यय आवश्यक होगा तो दिया जायगा।

१०—पुरस्कार के योग्य लेखों पर लेखकों को यदि वे स्वीकार करेंगे, तो नियमानुसार पुरस्कार भी दिया जायगा।

सरस्वती के विज्ञापन-छपाई के रेट

कवर का दूसरा पृष्ठ	.. ..	४५) प्रतिमास
,, ,, तीसरा पृष्ठ	.. ..	४५) ,,
,, ,, चौथा पृष्ठ	.. ..	८०) ,,
पाठ्य विषय की समाप्ति के सामनेवाला पृष्ठ		३५) ,,
,, ,, ,, ,, ,,	एक कालम	१८) ,,
कवर के द्वितीय पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ		३५) ,,
,, ,, ,, ,, ,,	एक कालम	१८) ,,
कवर के तीसरे पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ		३५) प्रतिमास
,, ,, ,, ,, ,,	एक कालम	१८) ,,
रंगीन चित्र से पहलेवाला पृष्ठ		३५) ,,
,, ,, ,, ,, ,,	एक कालम	१८) ,,

साधारण नियम ये हैं :—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	..	३०) प्रतिमास
१/२ ,, या १ ,, ,,	..	१६) ,,
१/४ ,, या १/२ ,, ,,	..	९) ,,
१/८ ,, या १/४ ,, ,,	..	५) ,,

१—"सरस्वती" में अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते, अतः कुरुचि-पूर्ण विज्ञापन न भेजिए।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छपानेवालों को सरस्वती बिना मूल्य भेजी जाती है, औरों को नहीं।

३—छपाई का रेट जो ऊपर दिया है वह अकाट्य (Final) है। इसके लिए लिखा-पढ़ी करना व्यर्थ है।

४—जितने समय तक के लिए कन्ट्रैक्ट किया गया है उतने समय तक विज्ञापन छपाना होगा। विज्ञापन न छपाने पर भी उसका चार्ज विज्ञापक को देना होगा।

पत्र-व्यवहार करने का पता—

मैनेजर विज्ञापन-विभाग
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धार्थ-विदा

[श्रीयुत रेणुरञ्जन मल्लिक, ४ भुवन सरकार लेन, कलकत्ता के सौजन्य से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्र मिश्र

मई १९४० } भाग ४१, खंड १ संख्या ५, पूर्ण संख्या ४८५ { वैशाख १९९७

दो गीत

लेखक, श्रीयुत मोहनलाल महतो

(१)

क्या गाऊँ माँ, कौन सुनेगा ?
कौन हार सरबस फिर दुःख पर सुख के जाल बुनेगा ?
पी जीवनमद बन मतवाला,
थिरक रहा ले खाली प्याला,
यह गति जग की, कौन करुण तानों पर सीस धुनेगा ?
अपनी मीठी नींद सँजोये,
निशा शेष है, पंछी सोये,
मेरे स्वर के ताल-ताल पर तिनके कौन चुनेगा ?
क्या गाऊँ माँ, कौन सुनेगा ?

(२)

स्वर अपने न रहे, क्या गाऊँ ?
निकल रहे हैं गीत 'आह' बन, कैसे इन्हें मनाऊँ ?
अन्धकार है, पथ अनजाना,
मुझे तुम्हारे तक है जाना,
वीणा बनी हाथ की लकुटी कैसे तार मिलाऊँ ?
वर देकर वरदान बनो तुम,
जो गाऊँ वह गान बनो तुम,
फिर बोलो मुझमें कवि बनकर, कैसे तुम्हें रिझाऊँ ?
स्वर अपने न रहे क्या गाऊँ ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू-संस्कृति की रक्षा

लेखक, श्रीयुत इन्द्र विद्या-वाचस्पति

'हिन्दू-संस्कृति' क्या है? उसकी रक्षा होनी चाहिए या उसका नाश करके एक नई 'हिन्दुस्तानी-संस्कृति' का निर्माण करना चाहिए? जैसा कि अनेक आधुनिकतावादियों की सम्मति है। इन दोनों में से कौन-सा मार्ग इस देश के लिए लाभदायक तथा व्यावहारिक है? इन्हीं प्रश्नों की विवेचना व तर्कपूर्ण उत्तर लेखक महोदय ने इस लेख में दिया है।

'संस्कृति' का अभिप्राय

किसी जाति के धर्म, साहित्य, रीति-रवाज और आदर्शों के समुच्चय का नाम आजकल की भाषा में 'संस्कृति' है? संस्कृति-शब्द का प्रयोग अँगरेज़ी-शब्द 'कल्चर' के स्थान पर होने लगा है। अनुवाद शाब्दिक तो नहीं है, परन्तु अभिप्राय दोनों शब्दों का एक ही है। आलंकारिक भाषा में हम कह सकते हैं कि जाति शरीर है तो संस्कृति उसकी आत्मा है। जीवित शरीर में आत्मा रहेगी ही। जीवित जाति की भी संस्कृति होनी ही चाहिए। यदि उसकी कोई विशेष संस्कृति न हो, तो समझ लो कि या तो वह जाति केवल एक भ्रान्ति है अथवा लाश है।

हिन्दू संस्कृति का अस्तित्व

क्या हिन्दू संस्कृति नाम की कोई वस्तु है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए एक और प्रश्न का उत्तर आवश्यक है। क्या हिन्दू नाम की कोई जाति है? यदि इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में है तो संस्कृति सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर भी 'हाँ' में ही होगा, परन्तु यदि हिन्दू-जाति नाम की कोई वस्तु नहीं तो हिन्दू-संस्कृति को भी आकाश कुसुम की तरह अर्थ से शून्य केवल एक समस्त शब्द ही समझना चाहिए।

क्या हिन्दू नाम की कोई जाति है? इस प्रश्न का उत्तर असन्दिग्ध रूप से 'हाँ', है। आप उसे पसन्द करें या न करें। आप हिन्दूकुल में पैदा होकर लज्जित हों या अभिमान करें। आपको यह तो मानना ही पड़ेगा कि हिन्दू नाम की एक जाति का अस्तित्व है और उसके निवासस्थान का नाम ही हिन्दूस्थान है, हिन्दू-जाति कोई आज की कल्पना नहीं है। इसका बीजारोप कई युग पहले हुआ था। वैदिक समय से लेकर आज तक इसके नाम और रूप बदलते रहे हैं, परन्तु इसका अस्तित्व क़ायम रहा है; सम्पत्ति में और विपत्ति में, स्वाधीनता में और पराधीनता में—किसी दशा में यह रही हो, परन्तु संसार की सब जातियों से पृथक् इसकी सत्ता आज तक बनी रही है। भारत में अनेक जातियों के आक्रमण हुए, यूनानी, हूण, शक, सीथियन, मुसलमान और अँगरेज़—एक के पीछे दूसरी जाति ने आकर भारत पर राजनैतिक प्रभुत्व जमाया, परन्तु जैसे सदियों के भयंकर विदेशी आक्रमण अँगरेज़-जाति की हस्ती को न मिटा सके, उसी प्रकार उपर्युक्त सब राजनैतिक आक्रमण भी हिन्दूजाति की सत्ता को नहीं मिटा सके।

जिन आक्रमणों के सामने कई जातियों ने पूरा आत्म-समर्पण कर दिया उनके आगे सिर झुकाने पर मजबूर होकर भी हिन्दू-जाति ने अपनी सत्ता को क़ायम रक्खा। इसका कोई विशेष कारण अवश्य होना चाहिए। वह कारण यह है कि जिस नींव पर हिन्दू-जाति की दीवार खड़ी है वह बहुत मज़बूत मसाले से बनी है, और बहुत गहरी है। हिन्दू-संस्कृति ही वह नींव है।

संस्कृति के चार अंग हैं—(१) धर्म, (२) साहित्य, (३) रीति-रवाज और (४) भाषा। हिन्दू-संस्कृति के मूलाधार धर्म और साहित्य इतने पुराने हैं जितना पुराना मानवीय ज्ञान। वर्तमान हिन्दू-धर्म और साहित्य कितना ही विकृत हो, परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि उसका मूल बहुत गहरा है, वह ऐतिहासिक काल से भी बहुत प्राचीन वैदिक काल में गड़ा हुआ है। हिन्दू-जाति का साहित्य इस समय अनेक शाखा-प्रशाखाओं में बँटा हुआ होने पर भी एक ही तने से फूटा है और एक ही मूल पर आश्रित है। वह मूल भी आपको वैदिक काल में गड़ा हुआ मिलेगा, और क्योंकि रीति-रवाज का उद्भव-स्थान धर्म और भाषा का उद्भव स्थान साहित्य है, इस कारण ऐतिहासिक दृष्टि से परीक्षा करने पर मालूम होगा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू-जाति की वर्तमान संस्कृति अधिकांश में प्राचीनतम वैदिक संस्कृति पर आश्रित है, और उसी का रूपान्तर है।

हिन्दू-संस्कृति पर बाहर के असर

आर्य-हिन्दू-संस्कृति का उद्भवस्थान वैदिक समय की कन्दराओं में है, परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि बीती हुई सैकड़ों शताब्दियों में वह प्रवाह अछूता ही चलता रहा है। आर्य-जाति पृथ्वी के अनेक भागों पर फैली हुई दिखाई देती है। उसकी जो धारा आज के हिन्दुस्तान कहलानेवाले देश में बह रही है उसे हम आर्य-जाति का हिन्दू-विभाग और उस जाति की संस्कृति को आर्य-हिन्दू-संस्कृति या केवल हिन्दू-संस्कृति के नाम से पुकारते हैं। वह संस्कृति अपने जन्म-काल से आज तक बहुत से नदी-नालों से प्रभावित होती रही है। उनमें से कुछ एक का निर्देश हम नीचे करते हैं—

(१) अति प्राचीन भारत में विद्यमान अनार्य जातियों की संस्कृति।

(२) यूनानी यवनों के आचार-व्यवहार और विचार।

(३) शक, हूण, सीथियन आदि आगन्तुक जातियों के प्रभाव।

(४) भारत से बाहर धर्म-प्रचार, राजनैतिक नीति या व्यापार के लिए गये हुए भारतवासियों-द्वारा लाये गये विदेशी प्रभाव।

(५) इस्लाम की संस्कृति।

(६) योरपीय संस्कृति।

आर्य-हिन्दू-संस्कृति इन सभी प्रकार के प्रभावों को न केवल लेती रही है, अपितु लेकर जज़्ब भी करती रही है। दृष्टान्त के लिए पुराने अनार्य विचारों का ही असर लीजिए। पौराणिक देवमाला पर ब्राह्मणकालीन आर्य-संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। यह मानी हुई बात है कि पुराणग्रन्थों में देवमाला का जो विशाल विस्तार हुआ है उसमें अनार्य-जातियों की देवमालाओं का काफ़ी मिश्रण है। शक, हूण आदि जातियों का भारतीय आर्यों के धर्म पर तो बहुत गहरा प्रभाव नहीं हुआ, परन्तु भाषा, शिल्प आदि पर काफ़ी प्रत्यक्ष प्रभाव हुआ, और यह निश्चय से कहा जा सकता है कि उस प्रभाव को आर्य-संस्कृति ने सर्वथा अपना लिया। इसी प्रकार इस्लाम की संस्कृति ने भी हिन्दू-संस्कृति पर अपने गहरे असर छोड़े हैं। आज जो हिन्दू-संस्कृति हमें दीख रही है वह आर्य-संस्कृति पर सब बाह्य संस्कृतियों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं का परिणाम है।

यह एक बड़ा मनोरंजक प्रश्न है कि वर्तमान हिन्दू-संस्कृति में कितना भाग असली पौदे का और कितना क़लम का है; वर्तमान हिन्दू-संस्कृति में कितना फ़ी सदी हिस्सा प्राचीन आर्य-सभ्यता का और कितना फ़ी सदी बाह्य और आगन्तुक है।

इस प्रश्न का उत्तर देना बहुत कठिन है, तो भी इतनी बात भरोसे से कही जा सकती है कि सदियों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं के बाद भी जहाँ वर्तमान हिन्दू-संस्कृति की अन्तरात्मा अक्षुण्ण है और उसका मुख्य भाग प्राचीन भारतीय आर्य-संस्कृति पर अवलम्बित है, वहाँ साथ ही उसका शरीर बदल चुका है, और उसके मन पर भी बाहर के गहरे असर विद्यमान हैं।

क्या हिन्दू-संस्कृति को जीवित रहना चाहिए?

जिसे हम हिन्दू-संस्कृति कहते हैं वही वस्तुतः हिन्दुस्तान की प्रधान संस्कृति है। जो जातियाँ बाहर से भारत में आती रही हैं उन सभी ने वर्तमान हिन्दू-संस्कृति में अपना-अपना हिस्सा डाला है। उस संस्कृति को हम केवल हिन्दुओं की संस्कृति नहीं कह सकते, क्योंकि उसमें ऐतिहासिक काल से भी पहले से लेकर आज तक भारत पर जो जो प्रभाव पड़ते रहे हैं, उन सभी का मिश्रण है। हिन्दुस्तान की मुख्य संस्कृति वही समझी जा सकती है जो हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण इतिहास की उपज है। हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण इतिहास की उपज वही संस्कृति समझी जा सकती है जो वैदिक काल से लेकर आज तक जय-पराजय के उतार-चढ़ाव में से गुज़र कर भी जीवित है और जिसके शरीर पर सैकड़ों सदियों के संघर्ष के निशान विद्यमान हैं।

हिन्दू-संस्कृति में हिन्दुस्तानीपन है। उसकी जड़ें हिन्दुस्तान की भूमि में गड़ी हुई हैं और उसका वर्तमान कलेवर हिन्दुस्तान की जल-वायु से तैयार हुआ है। यही कारण है कि उसका राष्ट्रीयता से गहरा सम्बन्ध है।

इतना ही नहीं, हिन्दू-संस्कृति में अपनी कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो उसे न केवल भारतवर्ष के लिए अपितु सारे संसार के लिए उपयोगी बनाती हैं। हिन्दू-अध्यात्म-शास्त्र,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू-साहित्य और हिन्दू-दर्शन अपनी पृथक् सत्ता रखते हैं। उनके बिना संसार के प्राचीन और अर्वाचीन वाङ्मय का पूरा समन्वय नहीं हो सकता। इस पाश्चात्य सभ्यता के मध्याह्न काल में भी दुनिया की विचार-धारा को भारतवर्ष की विचार-धारा से कुछ न कुछ मिल ही सकता है। केवल भारतवासी ही की दृष्टि से ही नहीं, अपितु विद्या की दृष्टि से भी आर्य-हिन्दू-संस्कृति का जीवित रहना आवश्यक है।

कहा जा सकता है कि इस नवयुग में भारत की नई संस्कृति का ही निर्माण क्यों न किया जाय? हिन्दू-संस्कृति पुरानी बोसीदा हो गई, क्यों न उसकी जगह एक नई हिन्दुस्तानी संस्कृति पैदा की जाय?

विचार अच्छा है, परन्तु प्रश्न यह है कि वह नई संस्कृति भारत के पुराने इतिहास से सम्बद्ध होगी या कोई बिलकुल नई चीज़ होगी? उसकी जड़ें भारत की भूमि में होंगी या भारत के बाहर से लाकर गमले में लगाई जायँगी? उसमें भारतीयपन रहेगा या उसके स्थान पर ब्रिटिशपन, अरबीपन या जापानीपन रहेगा? यदि उत्तर यह है कि वह नई हिन्दुस्तानी संस्कृति भारत की ऐतिहासिक भूमि के अलग, केवल विदेश से आगन्तुक चीज़ न होगी तो उसका नाम आर्य-हिन्दुस्तानी या और जो भी नाम चाहें रख लें, हम उसे हिन्दू-संस्कृति के नाम से ही पुकारेंगे। समयानुसार उसमें परिवर्तन हो सकते हैं, और होने ही चाहिए परन्तु उसकी मूल धारा अविच्छिन्न रहनी चाहिए। परन्तु यदि आप उसे कहीं बाहर से लाकर भूमि से ऊपर जमाना चाहते हैं, तो समझ लीजिए कि आप आकाश-कुसुम की माला बनाना चाहते हैं और खरगोश के सींग से मकान को सजाना चाहते हैं।

हिन्दू और हिन्दुस्तानी में भेद

कुछ लोगों का प्रस्ताव है कि अब हिन्दू-संस्कृति की रक्षा की आवश्यकता नहीं, क्योंकि समय आगया है कि उसके स्थान पर एक नई 'हिन्दुस्तानी संस्कृति' का आविष्कार किया जाय। हिन्दू-संस्कृति के विरुद्ध जो युक्तियाँ दी जाती हैं, उनमें से मुख्य ये हैं—हिन्दू-संस्कृति पुरानी होने के कारण बूढ़ी हो गई है, उसमें जीवन नहीं रहा। हिन्दू-संस्कृति में साम्प्रदायिकता की बू आती है और राष्ट्रीयता के युग में साम्प्रदायिकता का जीवित रहना अच्छा नहीं। भारत की स्वाधीनता के लिए आवश्यक है कि एकता क़ायम की जाय, और एकता तभी क़ायम हो सकती है जब हिन्दुत्व को दबा कर हिन्दुस्तानीपन को जाग्रत किया जाय। हमें देखना चाहिए कि क्या इन तीनों युक्तियों में कुछ सार है।

पहली युक्ति यह है कि हिन्दू-संस्कृति अब बहुत बूढ़ी हो गई है, वह देर तक जीवित नहीं रह सकती। जो लोग इस युक्ति का प्रयोग करते हैं, कहना पड़ेगा कि वे जातियों के जीवन-मरण के उसूलों को बिलकुल नहीं जानते। मनुष्य पुराना होकर मृत्यु के समीप पहुँच जाता है, परन्तु संसार का इतिहास बतलाता है कि जातियाँ पुरानी होकर मृत्यु के समीप नहीं पहुँचतीं, क्योंकि जाति की जड़ें जितनी ही गहरी होंगी, उसका जीवन उतना ही मज़बूत होता जायगा। पुरानी जातियों का कायापलट हो सकता है, वे मर नहीं सकतीं। जो समय व्यक्तियों को बूढ़ा करके मार देता है—वही समय जातियों की जड़ों को मज़बूत कर देता है। समय के साथ जो चीज़ें मज़बूत होकर जाति के जीवन को मज़बूत बनाती हैं, उन्हीं के समुच्चय का नाम संस्कृति है। पुरानी संस्कृति का नाश हो जाने पर जातियाँ उतनी ही फल-फूल सकती हैं, जितनी जड़ से अलग हो जाने पर लतायें। इसलिए यह मौलिक कल्पना ही निर्मूल है कि जाति की जीवन-रक्षा के लिए पुरानी संस्कृति का नाश करना आवश्यक है। संस्कृति के नाश का अभिप्राय है जाति का नाश। जैसे बुनियाद के टूट जाने पर दीवार और दीवार के गिर जाने पर मकान की छत नहीं रह सकती, इसी प्रकार संस्कृति का नाश हो जाने पर जाति और जाति का नाश हो जाने पर राष्ट्र भी जीवित नहीं रह सकते।

दूसरी युक्ति यह है कि हिन्दू-संस्कृति में साम्प्रदायिकता की बू आती है। हिन्दू-शब्द में साम्प्रदायिकता का अंश है, और हिन्दुस्तानी शब्द में नहीं। इसका कारण समझ में नहीं आता। सिन्धु नदी के कारण इस देश का नाम हिन्द पड़ा, और हिन्द के निवासी हिन्दू कहलाये। हिन्दुस्तान हिन्दुओं के निवास-स्थान को कहते हैं। हिन्द और हिन्दुस्तान—इन दोनों शब्दों के शब्दार्थ और भावार्थ दोनों एक हैं। हिन्दू-शब्द का उद्भव देश की भावना से है—साम्प्रदायिकता की भावना से नहीं। हिन्दवासी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू कहते हैं, और उसी को हिन्दुस्तानी कहते हैं। याद रखना चाहिए कि हिन्दूपन, हिन्दुत्व या हिन्दू-संस्कृति आदि शब्द पीछे बने हैं, और हिन्दू शब्द पहले। ऐसी दशा में हिन्दू शब्द की बीजभूत देशभावना का तज्जन्य भावनाओं पर प्रभाव होना चाहिए, न कि तज्जन्य भावों के कारण मूल-भावना को ही अनुदार मान लेना चाहिए।

तीसरी युक्ति यह है कि आज-कल राष्ट्रीयता का युग है। राष्ट्रीयता के युग में हिन्दू-संस्कृति जैसी व्यर्थ वस्तु को जीवित नहीं रखना चाहिए। यह युक्ति, प्रयोग करने-वालों की ओर अनभिज्ञता का प्रबल प्रमाण है। उन्हें मालूम नहीं कि संस्कृति के आधार पर ही राष्ट्रीयता का निर्माण होता है। मान लीजिए कि आपने राष्ट्रीयता का मार्ग साफ़ करने के लिए हिन्दू शब्द पर हड़ताल फेरकर हिन्दुस्तानी शब्द का निर्माण किया तो क्या उससे समस्या हल हो गई? क्या जो लोग हिन्दू-संस्कृति का केवल इसलिए विरोध करते हैं कि वह इस्लामी तमद्दुन (संस्कृति) से अलग है वे हिन्दुस्तानी-संस्कृति को सहर्ष स्वीकार कर लेंगे? जो लोग हिन्द के निवासी हैं उनकी संस्कृति हिन्दू-संस्कृति कहलाती है, और हिन्द के प्रत्येक निवासी का कर्तव्य है कि वह अपने देश की संस्कृति की रक्षा करे। यदि इस सचाई की उपेक्षा करके हिन्दुस्तान के कुछ निवासी अपने देश की संस्कृति को अपनाने को तैयार नहीं तो कौन कह सकता है कि 'हिन्दुस्तानी' नाम का प्रयोग ही जादू का असर रक्खेगा। हिन्दी-भाषा के स्थान पर हिन्दुस्तानी-भाषा का प्रयोग उर्दू के प्रेमियों को हिन्दी-भक्त नहीं बना सका तो कैसे विश्वास किया जा सकता है कि जिन लोगों को हिन्दू-संस्कृति-नाम से चिढ़ है वे हिन्दुस्तानी संस्कृति का लेबल लगते ही उसे अपना लेंगे, और एकता का रास्ता खुल जायगा?

परिणाम

उपर्युक्त विचार-परम्परा से प्रतीत होगा कि हिन्दू-संस्कृति भारतीय राष्ट्र की आत्मा है। जैसे शरीर आत्मा के बिना जीवित नहीं कहला सकता, इसी प्रकार कोई जाति भी संस्कृति के बिना जीवित नहीं कहला सकती। हिन्दू-संस्कृति हम उसे कहते हैं जो हिन्द-देश (भारतवर्ष) के निवासियों की संस्कृति है। वह संस्कृति अगणित सदियों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं का परिणाम है। आर्य, अनार्य, हूण, शक, यवन, मुसलमान और पाश्चात्य संस्कृतियों के परम्परागत मिश्रण से जो वस्तु पैदा हुई है वही आज हिन्दू-संस्कृति के नाम से पुकारी जाती है। भारत की सीमाओं के अन्दर आज तक जो कुछ हुआ उसके प्रभावों का समुच्चय हिन्दू-संस्कृति के अतिरिक्त और किसी वस्तु में नहीं मिल सकता। उसी संस्कृति को हम भारतीय राष्ट्र की आत्मा कहते हैं।

जो लोग संस्कृति को मारकर राष्ट्र को ज़िन्दा रखना चाहते हैं वे असम्भव को सम्भव बनाना चाहते हैं। प्रत्येक मानवीय संस्था परिवर्तनशील है। समय और परिस्थितियों के अनुसार वह बदलती रहती है, और उसे बदलना ही चाहिए। यदि वह समय और परिस्थिति के अनुसार न बदले तो मर जायगी। हिन्दू-संस्कृति इन सहस्रों वर्षों तक इसी लिए जीवित रही है कि वह परिस्थितियों के अनुसार बदलती रही है, बाहर के प्रभावों को अपनाती रही है, और उनका सामना करने के योग्य नये जीवन के कीटाणुओं को पैदा करती रही है। जिस प्रक्रिया ने उसे अब तक बचाया है वह प्रक्रिया आगे भी जारी रहनी चाहिए, परन्तु परिवर्तन का अर्थ नाश नहीं। हिन्दू-संस्कृति भारतीय राष्ट्र का प्राण है, उसके सुरक्षित रहने में ही भारतीय राष्ट्र का कल्याण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिनय

लेखक, श्रीयुत हरवंश वर्मा, बी० ए०

"पान बीड़ी, सिगरेट", "गरम चाय"।

इस आवाज़ ने मेरे स्वप्न-संसार में खलबली मचा दी। मैंने तुरन्त ही बिजली जलाई और घड़ी में वक्त देखा। दो बजने में तीन मिनट बाक़ी थे। खिड़की को ऊपर उठाकर एक पास से ही गुज़रते हुए क़ुली से पूछा—

"कौन-सा स्टेशन है ?"

"भुसावल जंकशन। पंजाब मेल अभी खड़ा है।"

मुझे कुछ सान्त्वना हुई। घड़ी देखकर तो समझा था कि बस आगे निकल गये, लेकिन अब मालूम हुआ कि गाड़ी ही लेट पहुँची है।

"चलो, जल्दी से सामान निकालो।" मैंने क़ुली से कहा और खुद निजी चीज़ों को ठीक करने लगा।

सामान को इकट्ठा करके हम पुल को तेज़ी से फाँदते हुए प्लेटफ़ार्म नं० २ पर पहुँचे। गाड़ी के छूटने में केवल पाँच मिनट बाक़ी थे; रेल-कर्मचारी अति व्यग्रभाव से इधर-उधर चक्कर काट रहे थे। मैंने सामान एक सेकेंड क्लास के डिब्बे में लगवाया। क़ुली को मज़दूरी देकर विदा कर ही रहा था कि एक वृद्ध सज्जन मेरे समीप आ पहुँचे और पूछने लगे—

"बेटा कहाँ तक जा रहे हो ?"

मैं उनके मुँह की ओर देखने लगा। सोचने लगा, भला इस प्रदेश में मेरा कौन आत्मीय।

"दिल्ली तक।" मैंने कुछ लापरवाही से उत्तर दिया।

वृद्ध महाशय खिल उठे और सन्तोषभरे धीमे स्वर में बोले—

"राम जी की कृपा। मुझे कितनी खुशी हुई की साथ सफ़र करनेवाला कोई संगी तो मिल गया। मैं यही सोच रहा था कि अपनी रत्ना को अकेले गाड़ी में सफ़र करने दूँ या न करने दूँ कि तुम आ गये।" इतना कहते कहते वे मुड़े और नौकर को संकेत किया कि वह सामान उसी डिब्बे में रख दे, और फिर मेरी ओर बढ़कर बोले—

"जानते ही हो बेटा, आजकल समय कितना नाज़ुक है। हाल में ही कितनी दुर्घटनायें सुनने में आई हैं। यह आज किसी ज़रूरी काम से भाई के पास.....।"

इसी बीच में गार्ड ने सीटी बजा दी। अब गाड़ी हिल पड़ी। मैं उचक कर पायदान पर खड़ा हो गया। वृद्ध बोलते गये—"मुझे आशा है कि तुम इसे इच्छित स्टेशन पर सावधानी से उतार दोगे और.....।"

"ज़रूर। अपनी शक्ति के अनुसार सब ठीक-ठाक कर दूँगा।" मैं ने बात काटते हुए उसके लम्बे व्याख्यान का उत्तर दे दिया। गाड़ी तेज़ हो चुकी थी। वृद्ध महाशय खड़े हो गये और मैं भी दरवाज़ा बन्दकर अपनी सीट पर आ बैठा।

रत्ना अपनी चीज़ों को ठीक कर रही थी। उसकी वसन्ती रंग की साड़ी, एक हाथ में सुनहरी रिस्टवाच और दूसरे में काली चूड़ियाँ, माथे पर गुलाल-बिन्दी और जूड़े में मोतियों की दो कलियाँ अजब शोभी दे रही थीं। उसके मुख पर थी एक हलकी-सी मुसकान, पर थी विषाद-भरी।

मन में आया कि रत्ना से कुछ बात-चीत करूँ, मगर किस विषय पर यह समझ में न आया। प्रश्न यह था कि आरंभ किस ओर से हो। इसी असमञ्जस में पड़े पड़े मैंने अपना बिस्तर लगा लिया और लेटकर एक समाचारपत्र देखने लगा। रत्ना भी अपनी जगह पर बैठ गई। इसी प्रकार समय बीतने लगा।

थोड़ी देर के बाद गाड़ी एक छोटे से स्टेशन पर रुकी। मैं मन बहलाने के लिए खिड़की से बाहर झाँकने लगा। चारों ओर अन्धकार का साम्राज्य था; केवल स्टेशन पर दो-एक गैस-लैम्प अपनी अन्तिम घड़ियाँ पास देखकर भी व्यर्थ में धुँधली रोशनी फैलाने की चेष्टा कर रहे थे। टटीरों के मधुर अन्तर्भेदी आलाप को चीरते हुए कभी कभी रेलवे-कर्मचारियों के शब्द—'शंकर, इधर आओ', 'इसको ब्रेक में रक्खो,' 'जल्दी करो', 'गाड़ी लेट हो रही है'—भी कर्णगोचर हो जाते थे। इतने में हाथ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लालटेन लिये गार्ड हमारे डिब्बे की ओर बढ़ आया और बोला—

"आप भुसावल पर ही इस डिब्बे में बैठे थे न ?"

"जी हाँ।"

"कृपया टिकट तो दिखा दीजिए।" इतना कहकर उसने दरवाज़े को खोलकर अन्दर प्रवेश किया।

इस समय रत्ना की अवस्था अजब थी। वह बार बार अपनी जेबें तथा बटुआ टटोल रही थी, परन्तु हाथ हरेक बार ख़ाली ही बाहर आता। उसके इस हाव-भाव से मैं समझ गया कि टिकट उसके पास नहीं है; शायद उसके बाप के हाथ में ही रह गया है। मैं असमञ्जस में पड़ गया, मगर मन ने जल्द ही फ़ैसला दे दिया।

"यह तो इनका टिकट है।" मैंने टिकट को गार्ड की ओर बढ़ाते हुए कहा। "अपना टिकट मैं भुसावल पर नहीं ले सका, क्योंकि गाड़ी लेट पहुँची थी। किराया वग़ैरह वसूल कर लीजिए।"

"१० रुपये ७ आने निकालिए।"

मैंने किराया चुका दिया। गार्ड शान्तिपूर्वक नीचे उतर गया। गाड़ी फिर चलने लगी।

"धन्यवाद! मैं आपकी जीवन भर कृतज्ञ रहूँगी। मेरे कारण मुफ़्त में आपको ज़िल्लत सहनी पड़ी।" सहसा गाड़ी की खट-खटाहट के शब्द को चीरते हुए आवाज़ आई।

"इसमें ज़िल्लत की आख़िर बात ही कौन है! जल्दी में ऐसी भूल प्रायः हो जाती है। बेचारे टिकट देना भूल गये; अब सोचते होंगे, मेरी बिटिया रत्ना....।"

मेरे मुख से अभी रत्ना का शब्द भी पूरा न निकला था कि मैंने देखा उसका पीला मुख न जाने क्यों एकदम धुँधला पड़ गया। मैं कुछ भी न समझ सका और उसको सांत्वना देने के लिए बोला—

"क्या हुआ अगर वृद्ध बाप की जगह विनोद ने ही गाड़ी का किराया दे दिया, रत्ना।"

इस वाक्य का उस पर जादू-सा असर हुआ। उसका स्याह चेहरा तमतमा उठा; और भूखी सिंहिनी की तरह गरज कर बोली—"कौन वृद्ध बाप? वह मेरा कोई नहीं है, विनोद बाबू!"

"तो ये वृद्ध महाशय कौन थे?" मैंने उत्सुकता-पूर्वक पूछा।

"ये सब रँगे स्यार हैं, विनोद बाबू। ऐसे ऐसे सान चढ़ाये महाशय दुनिया में आपको कितने ही मिलेंगे; केवल खोज करनेवाली आत्मा चाहिए। हमारी सभ्यता तथा जाति को पतन के मार्ग पर ढकेलने के लिए ये लोग अपनी वृद्धता आदि की आड़ में क्या क्या नहीं कर रहे हैं!" सहसा वह रुक गई। उस स्वर-लहरी में उन्मत्त वेदना थी, कलेजे में कचोटनेवाली करुणा थी।

यह गोरखधंधा मेरी समझ में कुछ भी न आया। मेरी उत्सुकता शान्त होने के बजाय और बढ़ गई। मैंने फिर पूछा—

"तो यह रँगा स्यार आख़िर था कौन? और तुम्हारा इससे कैसे वास्ता पड़ गया, रत्ना?"

वह फिर भभक उठी—"यह रँगा स्यार उन पापिष्ठ आत्माओं में से है जो अपने रुपये-पैसे के ज़ोर पर हज़ारों दरिद्र अथवा सभ्यता की सीढ़ी पर चढ़ी अबलाओं को नरक के मार्ग की ओर अग्रसर करती हैं। जो जाति-उत्थान के धुरन्धर होते हुए भी उसी जाति को विष से सींचकर उसकी जड़ों को जला-जला कर ढीला कर रही हैं। जाति के पास इनकी कृतियों के लिए कोई क़ानून नहीं है; क़ानून तो ग़रीबों को ही विरासत में मिली हुई वस्तु है। क़ानून और क़ानून के उपासक तो इन पूँजीपतियों की जेब में घूमते हैं।..... और मेरा इससे कैसे वास्ता पड़ा! इसकी गाथा कुछ लम्बी और टेढ़ी है। मुफ़्त में समय नष्ट करोगे, फल कुछ न होगा।"

मेरी उत्सुकता और भी बढ़ गई। आख़िर मेरे बहुत आग्रह करने पर रत्ना बोली—

"पिता की मृत्यु के बाद घर में हम केवल तीन आदमी रह गये थे—मैं, रवीन्द्र और हमारी माता। यों तो पिता जी भी काफ़ी धन छोड़ गये थे, परन्तु रवीन्द्र के एक इन्शोरेंस कम्पनी से माहवारी २००) पाने के कारण हमारा हाथ खुला ही रहा। मैं उन दिनों लेडी हार्डिञ्ज कालेज, दिल्ली में पढ़ती थी।

"कोई आठ मास हुए हमारे कालेज में 'विफल-विनोद' नामी एक नाटक हुआ और उसमें मुझे नायिका का पार्ट मिला। नाटक में सफलता मिली। अखबारों ने मेरे अभिनय पर खूब प्रशंसनीय टिप्पणियाँ कीं, और आये दिन मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र अख़बारों में छपने लगे। मुझे अपनी सफलता पर पूर्ण अभिमान था।

"एक दिन 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के विज्ञापन-पृष्ठ पर यह विज्ञापन निकला—'एक हिन्दुस्तानी बोलपट में नायिका का अभिनय करने के लिए एक अभिनेत्री की आवश्यकता है। एक उच्च समाज की अथवा अनुभवी अभिनेत्री को तरजीह दी जायगी। वेतन योग्यतानुसार। समक्ष बातचीत आवश्यक है। पता—६ कारोनेशन होटल, दिल्ली।'

"इस विज्ञापन को पढ़कर मेरे मस्तिष्क में कुछ खुजली होने लगी। प्रिय सखियों ने भी मुझे प्रोत्साहन दिया। रवीन्द्र उन दिनों कम्पनी के काम पर मदरास था; अतः मैं उससे सलाह न ले सकी। सिर पर भूत तो सवार था ही; अन्त में मा के रोकने पर भी मैं न रुकी और एक दिन सायंकाल समक्ष बातचीत के लिए कारोनेशन होटल में पहुँच गई।

"वहाँ मैंने देखा, एक मेज़ के गिर्द भली-सी सूरतें बनाये दो आदमी बैठे हैं। पूर्व-शिष्टाचार के बाद उन्होंने मुझसे अभिनय की बाबत दो-एक प्रश्न पूछे; और अन्त में मेरी बातचीत से सन्तुष्ट होकर उन्होंने ३५०) प्रतिमास पर मुझे नौकर रखना स्वीकार कर लिया।

"बातचीत के बाद मैं अभी दरवाज़े से बाहर भी न हुई थी कि उनमें से एक बोला—
'चन्दन, अब तो चाँदी ही समझो—

हजूमे बुलबुल हुआ चमन में,
किया जो गुल ने जमाल पैदा।
कमी नहीं क़द्रदाँ की 'अकबर'
करे तो कोई कमाल पैदा।

देखना बेटा, अब हमारी कम्पनी का नाम कैसे चलता है! कैसा हुस्न, कैसा जमाल है और वह टपकता अल्हड़-पन! मा की क़सम देखने में एक चीज़ है, एक! उसकी आँखों में चमक है, मादकता है और है एक नृत्य। चमक आकर्षित करेगी, मादकता मदहोश कर देगी और नृत्य फँसा लेगा अपने मायाजाल में सब चित्र-दर्शकों को। चित्रपट तो बनने दो, सिनेमा-घरों के दरवाज़े न टूट गये तो देखना!'

"विनोद बाबू, अब मुझे स्पष्ट मालूम हो रहा है कि यह सब मुझे फुसलाने के लिए कहा गया था; और सच कहती हूँ, मैं बुरी तरह से फिसल भी गई। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे मुझे स्वर्ग-साम्राज्य ही मिल गया हो। उस रात मैं फूली न समाती थी। आह, कैसी भयङ्कर रात थी वह!" इतना कहते कहते उसकी आँखों में आँसू झलक पड़े। परन्तु अपनी बात को समाप्त करने की चेष्टा करती हुई फिर बोली—

"उस दिन मुझे बहुत ग़लतफ़हमी हुई, विनोद। आप जानते ही हैं कि ऐसे समय पर हम क्या कुछ नहीं कर गुज़रतीं। जिस बात या वस्तु का शौक़ हम पर चढ़ आता है उसको हद तक ही नहीं बल्कि उसके परे तक घसीट ले जाती हैं। किसी की बात कान में भले ही घुस जाय, मगर करेंगी वही जो जी में आवेगा। बस, मैंने भी चित्रपट में नायिका का अभिनय करने के जोश में घर-बार को लात मारी और कुल-मर्यादा की बिना परवा किये चार महीने हुए ठीक इसी दिन मैं अपने घर से निकल पड़ी।

"गाड़ी हमको ले उड़ी। दूसरे दिन हम बम्बई में जा पहुँचीं। मेरे ठहरने का प्रबन्ध मैजस्टिक होटल में हुआ। इस व्यवहार से मुझे कुछ आशंका हुई, और मैं पूछ ही तो बैठी—

"मोहन बाबू, मेरे ठहरने का प्रबन्ध यहाँ क्यों हुआ है? क्या आपका कोई स्टूडियो नहीं है?"

"है क्यों नहीं" उसने गम्भीरता से उत्तर दिया—"लेकिन तुम्हारा अभी वहाँ जाकर ठहरना अच्छा न होगा। यहाँ पहुँचते ही ख़बर मिली है कि सेठ खुद चित्रपट के बाहरी दृश्यों के निरीक्षण के लिए पूना की ओर गया है। उसके आ जाने पर तुम्हारा ठीक ठीक प्रबन्ध कर दिया जायगा। और जानती ही हो कि स्टूडियो में वातावरण कैसा रहता है; कई तरह के आदमी होते हैं। मेरा तो विचार है कि कुछ दिन तुम यहीं ठहरो। क्यों, यहाँ ठहरने में कोई विशेष आपत्ति है?"

"नहीं तो। मैंने तो यों ही पूछ लिया।" मैं चुप हो गई; और कुछ लजाई भी अपनी सशंक प्रकृति पर। मेरे मन की भावी सुनहरी आशाओं ने मेरी शंका को और भी कोसों दूर भगा दिया। प्रतिदिन मैं उस दिन की प्रतीक्षा करने लगी जब कि मेरे अभिनय से विमोहित होकर सिनेमा-घरों के दरवाज़े तक तोड़ देंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं अकेली ही एक सुसज्जित कमरे में रहने लगी। दिन बीतने लगे। कभी कभी मोहन अपने साथ एक-दो साथी कलाकारों को ले आता। घंटों गप्पें हाँकते। कई बार परिचय कराते समय मोहन कहता—

'कुमार, ये हैं मिस रत्ना, जिनके अद्वितीय अभिनय ने दिल्ली में तहलक़ा मचा दिया था। और मिस रत्ना ये हैं मिस्टर कुमार, जो संगीत-परिषदों में जीते हुए पदकों से लदे पड़े हैं। हाँ, मिस्टर कुमार, सुनाओ न ज़रा मिस रत्ना को कोई अपनी नवीन कृति; अभिनय में ये भी तो तुम्हारा साथ देंगी।'

"और फिर क्या था, तानों से तानें मिलने लगतीं। गाना प्रारम्भ हो जाता।

"इसी चहल-पहल में एक मास व्यतीत हो गया। मुझे भी सिनेमा-जीवन की दीक्षा मिल गई; और इससे मुझे कुछ रुचि भी हो चली।"

* * *

"एक दिन सायंकाल के समय मैं जँगले पर खड़ी नीचे सर्पाकार में गुज़रती हुई गाड़ियों की शोभा देख रही थी। एकाएक एक बिलकुल नई-सी गाड़ी होटल के दरवाज़े पर आकर ठहर गई। मोहन आज प्रतिदिन से अधिक सुथरे कपड़ों में सुसज्जित था। वह कमरे में पैर रखते ही टोपी को तिपाई पर फेंकता हुआ बोला—

"रत्ना, आज एक ख़ुशख़बरी सुनाने आया हूँ।"

"कहो न।" मैंने उत्सुकता से कहा।

"सेठ आज लौट आया है और चित्रपट का पूरा प्रबन्ध हो गया है। शूटिंग जल्दी ही आरम्भ होने-वाली है।"

"सच!"

"सच ही तो कहता हूँ। चलो सेठ से न मिलोगी। वह तुम्हारे ठहरने का भी ठीक ठीक प्रबन्ध कर देगा।"

"ज़रूर चलूँगी!" इतना कहकर मैंने कपड़ों को ठीक किया और मोहन के साथ गाड़ी में जा बैठी। सारे शहर को चक्कर काटती हुई मोटर मातुश्री पहुँची और एक विशाल भवन के सामने ठहर गई।

"यही है हमारे सेठ का भवन।" मोहन बोला।

दरवाज़े पर खड़े नौकर-द्वारा मोहन ने अपना कार्ड अन्दर भेजवा दिया। थोड़ी ही देर में एक बृहत्काय सेठ दरवाज़े में आ गया और मोहन से हाथ से हाथ मिलाते हुए बोला—

"मोहन, तुम आ गये। कुछ सफलता भी हुई।"

"क्यों नहीं, सोलहों आने।" फिर मेरा परिचय सेठ से कराता हुआ बोला—"यही अनुपम रत्न है जो हमारे आगामी बोलपट में आपके साथ नायिका का अभिनय करेंगी।"

"इसी तरह बातें करते हुए हम अन्दर पहुँचीं और एक सुसज्जित कमरे में जा बैठीं। यहाँ बैठे बैठे जो कुछ बात-चीत हुई उसका सारांश यह है कि मेरे ठहरने का प्रबन्ध सेठ के घर में ही कर दिया गया और बोलपट के शूटिंग का दिन निश्चित होने के साथ ही साथ मुझे भी ढाढ़स दिया गया कि अभिनय ठीक होने पर मेरा वेतन बढ़ा दिया जायगा।"

× × ×

"कुछ दिन बीतने पर एक रोज़ मोहन ने मेरे कमरे में प्रवेश किया और बोला—

"रत्ना हमारी इनर शूटिंग का पहला चित्र इसी भवन के हाल में होगा। उसमें जितना तुम्हारा पार्ट है वह यह है।" इतना कह कर उसने चार-पाँच काग़ज़ मेरे हाथ पर रख दिये और चला गया। यह तीन दिन हुए तब की बात है।

"मैंने एक सरसरी नज़र से सारे 'मैनिस्क्रिप्ट' को पढ़ डाला। इसे पढ़ते ही मेरे कल्पित संसार के सब स्वर्ण-मन्दिर हवा में उड़ गये। सोचा था कि 'न्यू थियेटर' अथवा 'प्रभात' के चित्रपटों में हुए अभिनय की तरह कोई शुद्ध पार्ट करना होगा। मगर इस अभिनय में तो अश्लीलता की पुट मिली हुई थी। सोचने लगी, क्या इसी वेश्यावृत्ति के अभिनय के लिए अपने घर से आई थी। मुझे बहुत आत्म-ग्लानि हुई।" इतना कहते कहते वह सिसकियाँ भरने लगी।

यह शोचनीय कथा सुनकर मुझे उससे कुछ सहानुभूति हो चली थी; परन्तु इस कथानक का अन्त सुनने की भी मन में तीव्र लालसा थी। प्रोत्साहन देने के लिए मैंने पूछ ही तो लिया—

"लेकिन तुमने उसी समय जाकर सेठ से अपना असहयोग क्यों न प्रकट कर दिया।"

"किया तो मैंने ऐसा ही।" इतना कहकर वह चुप हो गई। फिर एकदम बोल उठी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"विनोद बाबू, मैं चाहती तो न थी कि इन ढोंगियों की पोल खोलूँ। चूँकि आप आग्रह कर रहे हैं इसलिए बताये देती हूँ।

"मैं दूसरे दिन सेठ साहब से मिली और सारी बात कह सुनाई। बातचीत में उसके कुछ और ही रंग नज़र आये। उसके अन्तिम वाक्यों ने तो मुझे घुमा दिया। वह बोला—

"रत्ना, यह बोलपट का तो केवल ढोंग था। यह तो तुम जैसी सरला को फँसाने का जाल था। जब तेरी तसवीर मैंने पत्रों में देखी, मेरे हृदय में एक टीस उठी। मैं लाखों खर्च करके भी तुमको अपनाना चाहता था। .... यह मोहन और कोई नहीं, मेरा निजी नौकर है जिसने दिल्ली में हज़ारों रुपये खर्च करके तुम्हें फाँसा ..... छोड़ो इस बालकपन को। मेरी होकर रहो और लाखों क्या, करोड़ों की स्वामिनी बनो।..... एक दिन मैं तुम्हें और विचार करने के लिए देता हूँ। सोचो और समझो; नहीं तो .....।"

"इतना कहकर वह बाहर निकल गया। मुझे चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार नज़र आने लगा। उठकर अपने कमरे में चली आई। तरह तरह के विचार मेरे मस्तिष्क में चक्कर काटने लगे। स्मरण-साहित्य मेरी आँखों के सामने खुल गया। ज्यों-ज्यों मैं बीती बातों पर सोचती थी, उतना ही मुझे इन पापात्माओं से घृणा होती जाती थी। मगर बचाव का भी कोई उपाय नज़र न आता था।

"सायंकाल को मैं माधोबाग़ में सैर को गई। अब मुझे एक उपाय सूझ गया। मैं सैर करती हुई ड्राइवर की नज़र बचा कर एक ओर को बढ़ गई और जल्दी जल्दी पाँव बढ़ाती हुई चौपाटी 'टैक्सी-स्टैंड' पर आ पहुँची। एक टैक्सीवाले से किराया तय कर गाड़ी में चढ़ बैठी।

"आठ बज चुके थे। चारों ओर रोशनी हो चुकी थी; मगर मेरे दिल में अन्धकार का राज्य था। आकाश में बादल भी मँडरा रहे थे; मगर मैं बिना किसी डर के पश्चिमी घाटों को पार कर रही थी। ड्राइवर को उत्साह देने के लिए मैंने कहा—

"अगर भुसावल तक भी तुम पंजाब-मेल से पहले पहुँचा दो तो तुम्हें मालामाल कर दूँगी।"

"उसने मोटर और भी तेज़ कर दी। परन्तु हमारे भाग्य! रास्ते में मोटर का पिस्टन ज़्यादा गर्मी से बिगड़ बैठा। खूब देर हुई और मैं आज दोपहर भुसावल आ पहुँची। अब आगे मोटर पर जाना व्यर्थ जानकर मैंने किराया चुका कर मोटर को विदा किया, और पंजाब-मेल की प्रतीक्षा में एक होटल में ठहर गई। रवीन्द्र को इटारसी में अपने इस ट्रेन-द्वारा पहुँचने का तार दे दिया।

"शाम को जब मैं सोकर उठी तब क्या देखती हूँ कि सेठ प्रभुदयाल फिर वहाँ मौजूद हैं। मेरा सारा शरीर मारे क्रोध के काँपने लगा। चाहा कि अभी इसको इस दुनिया से कूच करने का परवाना दे दूँ; लेकिन अबलाओं के पास सिवा अश्रुधारा के और हथियार ही कौन है। यदि उस धारा में कोई बह जाय तो बह जाय! परन्तु उस जड़ आत्मा पर कोई असर न हुआ। मुझे अपनाने के लिए उसने फिर व्याख्यान देने प्रारम्भ कर दिये, और थोड़ी ही देर में क्रूर शक्ल धारण करके डराने और धमकाने लगा। परन्तु मैं उसके सब अपशब्दों को सहती हुई चुप रही। इसी बीच उसने मुझसे सब रुपया-पैसा छीन लिया।

"जब तक मैं स्टेशन पर न आ पहुँची उसका यही व्यवहार रहा। यहाँ आकर लोक-निन्दा के डर से उसने अपने तौर बदले; और इसका अनुभव शायद आपको उसके अन्तिम शब्दों से भी हो गया होगा।"

फिर अपने नन्हें से रूमाल-द्वारा आँखों को पोछती हुई वह कहने लगी—"विनोद बाबू, अब आपसे मेरी यही एक अन्तिम याचना है कि आप इटारसी में मुझे रवीन्द्र को सौंप दें। वह स्टेशन पर मेरी राह देखता होगा।"

इतना कहते-कहते वह बिलख-बिलख कर रोने लगी। मैंने उसे सान्त्वना दी और कहा कि उसे उसके भाई के पास पहुँचा दूँगा।

घड़ी की ओर नज़र फेंकी तो मालूम हुआ ६½ बज चुके थे। मैंने उसके सामान को जल्दी जल्दी तैयार करवा दिया।

सायँ-सायँ करती हुई गाड़ी खड़ी हो गई। मैं दरवाज़ा खोलकर नीचे कूद पड़ा और एक कुली को रत्ना का सामान सँभालने का आदेश करके खुद रवीन्द्र की खोज में चल पड़ा। "रवीन्द्र!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रवीन्द्र।" पुकारते हुए मैंने समूचे प्लेटफ़ार्म के दो चक्कर काट डाले। मगर उस भीड़ में कोई रवीन्द्र नज़र न आया। अब मन में विचार हुआ—'शायद अपनी बहन के आचरण से खीझ कर वह बाहर ही गाड़ी में बैठा उसकी प्रतीक्षा कर रहा हो। सोचता होगा, आख़िर बाहर ही तो आयेगी; जिसे बम्बई न अपना सकी उसे प्लेट-फ़ार्म थोड़े ही निगल जायगा। भला मैं ही उसकी क्यों आवभगत करने चला!'

यह सोच कर मैं प्लेट-फ़ार्म से बाहर निकल गया। वहाँ तो गाड़ियों का ताँता लगा हुआ था। इधर-उधर रवीन्द्र को टटोला, मगर वह न मिला। आख़िर एक मोटर में एक नव-युवक नज़र आया। सोचा यही रवीन्द्र होगा और झट से उसके पास जा पहुँचा।

"क्या आप ही रवीन्द्र बाबू हैं?"

"जी नहीं, मेरा नाम नरेन्द्र है।"

आशा का फूल फिर मुरझा गया। मैं हताश हो उधर से चला ही था कि इंजन ने सीटी दे दी। मैं दौड़ता हुआ अपने डिब्बे की ओर बढ़ा। सोचा था, रत्ना उत्सुकता से मेरी राह देख रही होगी, मगर वहाँ कोई भी न था। मैं जल्दी से अन्दर घुसा। देखा तो रत्ना अन्दर न थी, और मेरा काला सूटकेस भी न था। पाँव तले से ज़मीन खिसक चली; सिर घूमने लगा।

मैं भागा भागा स्टेशनमास्टर के पास पहुँचा। रोते-धोते सारी कहानी उससे कह सुनाई। उसने मुझे ढाढ़स देते हुए पूछा—

"उसमें आपका क्या माल है?"

"पाँच-साँत सौ रुपये की क़ीमती चीज़ें।"

"कुछ बचा भी।"

"हाँ, एक क़ीमती बक्स बच गया है।"

"तो जितना नहाये उतना ही पुण्य जानिए। उस पर तीन और ऐसे ही केस हैं। तुम्हारा चौथा है। ख़ैर, जानो तुम बच गये; पहले मामलों में तो वह सारे सामान पर ही दफ़ा १४४ लगा जाती थी। पुलिस ने उसके पकड़ने-वाले को ५००) रु० का इनाम घोषित किया है। अगर आपको कोई ज़रूरी काम हो तो आप जा सकते हैं। उसकी अच्छी तरह खोज-बीन करके आपको पूरा पूरा पता दे दिया जायगा।"

मैं एक लम्बी-सी रिपोर्ट लिखा कर गाड़ी में आ बैठा और लगा उस अभिनय पर विचार करने।

गाड़ी धक-धक करती हुई चल पड़ी।

बड़ी भूल

लेखिका, श्रीमती तारा पाण्डेय

सखि, बता दे कौन-सा नूतन सँदेशा आज लाई?
शुष्क पतझड़ के दिवस ये
ला रहे हैं नित उदासी
बीच सागर में खड़ी हो
रह गई हूँ हाय! प्यासी!

सो गये अरमान मन के, तू जगाने आज आई?
भूल अपना पथ गई
उद्भ्रांत-सी हूँ फिर रही
कोई सुझा दे सहज-सा पथ
प्रार्थना मैं कर रही!

भूला हुआ वह मार्ग क्या मुझको बताने आज आई?
पा सकूँ यदि मुक्ति मैं
यह सोच की थी साधना
प्यास थी अमरत्व की
करने लगी आराधना।

थी बड़ी वह भूल मेरी, यह सुझाने आज आई?
मुक्ति बन्धन में मिलेगी
है यही विश्वास मेरा
किन्तु बन्धन प्रेम का हो
डाल दे चहुँ ओर घेरा!

सखि, नहीं तू भिन्न मुझसे आज उर में है समाई!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह भूली कौशाम्बी

लेखक, श्रीयुत सतीशचन्द्र काला

निष्प्राण—सैकड़ों पगों की ठोकर खाकर भी जीवित रह सकनेवाली अनेक ईंटें पड़ी थीं एक ऊँचे टीले पर, और उनके बीच बीच पड़े थे मिट्टी के बर्त्तनों के कुछ टूटे-फूटे टुकड़े। इन ईंटों की भित्तियों ने लोगों को आश्रय दिया होगा—इन बर्त्तनों ने किसी की क्षुधा व प्यास बुझाई होगी। आज—आज तो कीड़े-मकोड़े ही इनके बीच घूमते नज़र आते हैं, तनिक-सी आहट पाकर वे चौंकने लगते हैं। क्या वे भी अपने पुरखों से सुनते आये हैं कि इस टीले पर स्थित वैभवशाली नगरी को क्रूर तथा निर्दयी जातियों ने नष्ट किया था ? कौशाम्बी वास्तव में करुण-राग का एक बुझा हुआ दीपक है, जिसकी ओर देखकर आँखों में आँसू आते हैं, दिलों में हूक उठती है।

वे यश व गौरव के दिन थे भारत के जब कौशाम्बी एक विशाल नगरी थी। इसका वैभव, यश, समृद्धि व संस्कृति उच्च पराकाष्ठा को पहुँच चुकी रही होगी। उस समय के विषय में हमारी जानकारी बहुत थोड़ी है। पाण्डुवंशी परीक्षित के बाद उसके वंशज महाराज निक्ष्वाकु के समय में एक बार गंगा में भयंकर बाढ़ आई थी, जिसके कारण हस्तिनापुर (कुरुराज्य की राजधानी) बह गया था। इस कारण राजा निक्ष्वाकु ने हस्तिनापुर छोड़कर कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया। पौराणिक सूचियों से ज्ञात होता है कि कौशाम्बी का सर्वप्रथम नरेश शतानीक (द्वितीय) था। शतानीक ने विदेह की राजकुमारी से विवाह किया था। शतानीक का उत्तराधिकारी उदयन हुआ। ब्राह्मणों तथा उपनिषदों से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में कौशाम्बी विद्वानों की एक नगरी थी। इस नगर में ज्ञानोपार्जन के लिए लोग प्रायः देश-देशान्तरों से आया करते थे। रामायण में कौशाम्बी की स्थापना की एक विचित्र कहानी दी गई है। उसके अनुसार कौशाम्बी को कुश के पुत्र कुशभ ने बसाया था।

पाली की पुस्तकें कौशाम्बी पर सुन्दर प्रकाश डालती हैं। कालिदास के 'मेघदूत' व 'कथा-सरित-सागर' में भी यत्र-तत्र कौशाम्बी का वर्णन आता है। बौद्ध-जातकों से ज्ञात होता है कि कौशाम्बी एक व्यापारिक स्थान था, जहाँ जल तथा स्थल की राह से व्यापार होता था। 'दीघ निकाय' के 'महापरिनिर्वाण सूत्र' में महात्मा बुद्ध व आनन्द का जो वार्त्तालाप दिया है उससे कौशाम्बी के एक समृद्ध नगर मानने में कुछ भी संदेह नहीं रह जाता। बौद्ध-काल में कौशाम्बी भारत की ६ प्रमुख नगरियों में गिनी जाती थी।

महात्मा बुद्ध परमज्ञान प्राप्त करने के ठीक ९ वर्ष के बाद कौशाम्बी आये थे। इससे पहले वे राजगृह व वैशाली में भी ठहरे थे। तिब्बती लेखक कहते हैं कि जिस समय बुद्ध कौशाम्बी पहुँचे, वहाँ का राजा उदयन कनक-वती पर धावा करने जा रहा था। उदयन की दृष्टि महात्मा बुद्ध पर पड़ी। उसे यह अपशकुन जान पड़ा। क्रोधाग्नि के आवेश में आकर उदयन ने बुद्ध भगवान् की ओर एक तीर छोड़ा। जैसे ही उसने तीर छोड़ा, आकाशवाणी हुई-"हत्या करनेवाला जीव नरक को जाता है... ...।" उदयन इसे सुनकर अवाक् हो गया। उसे ज्ञान हुआ अपनी भूल का। उदयन चुपके से बुद्ध भगवान् के सम्मुख झुक गया। शान्ति के अवतार भगवान् ने उदयन को क्षमा किया और उसे अनेक प्रकार की अमूल्य शिक्षायें दीं। इसके बाद कौशाम्बी एक प्रसिद्ध बौद्ध-केन्द्र हो जाती है।

कौशाम्बी के दक्षिण-पूर्वी भाग में एक धनी व्यक्ति ने घोसिताराम नामक एक विहार बनवाया था। यह नगर का सबसे बड़ा विहार था। फाह्यान ने ५वीं सदी में उसे उन्नत दशा में देखा था, किन्तु ७वीं सदी में जब हुयेनसाँग यहाँ आया तब वह विहार खँडहर हो चुका था। कनिंघम की धारणा है कि हूणों ने उस विहार का भी विनाश किया होगा। मथुरा व सारनाथ की समस्त वस्तुओं का विनाश उन्हींने किया था। भगवान् बुद्ध कौशाम्बी में संभवतः दो बार आये थे।

उदयन के बाद फिर कौशाम्बी का इतिहास अन्धकार में डूब जाता है। पुराणों में लिखा है कि उदयन के बाद वहीनर, दंडपाणि, निरमित्र व क्षेमक चार राजे हुए। किन्तु पाली-ग्रंथों में उदयन का उत्तराधिकारी कुमारबोधि है। कुमारबोधि को बुद्ध भगवान् ने स्वयं दीक्षा दी थी। हमें यह ज्ञात नहीं कि वास्तव में कुमारबोधि सिंहा-सनारूढ़ हुआ था या नहीं। पाली-ग्रंथों में तो प्रत्येक स्थान पर कुमारबोधि ही लिखा मिलता है।

इसके बाद कौशाम्बी चन्द्रगुप्त मौर्य्य के अधीन हुई। मौर्य्य-काल में पाटलिपुत्र, तक्षशिला व कौशाम्बी प्रमुख नगर थे।

अशोक के काल में कौशाम्बी मौर्य्य-साम्राज्य का उसके प्रदेश का नाम था, जिसका अधिकारी एक 'महामात्य'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। इलाहाबाद में अशोक की जो लाट है उस पर कौशाम्बी के महामात्य के लिए आदेश है कि "जो संघ में फूट डालने की चेष्टा करे वह संघ से तुरन्त अलग किया जाय।" वह लाट पहले कौशाम्बी में ही स्थापित थी। अकबर के समय में वह प्रयाग में लाई गई।

शुंग-काल में संभवतः कौशाम्बी स्वतंत्र थी। शुंग-काल के अनेक खिलौने कौशाम्बी में पाये गये हैं। इनसे हम समझ सकते हैं कि कौशाम्बी से शुंग राजाओं का अवश्य कुछ संबन्ध था। यहाँ यह लिखना भी उचित होगा कि भारहुत-स्तूप की वेदिका पर ई० पू० दूसरी शताब्दी का जो लेख है उसमें लिखा है कि वत्स की राज-कुमारी के पुत्र धनभूति वाशिपुत्र ने बनाया (मजूमदार—इंडियन म्यूज़ियम. कैटलाग, भाग १, पृष्ठ २३)। धनभूति नाम मथुरा के एक शिलालेख में भी आया है। डाक्टर जायसवाल कहते हैं कि पवोसा का लेख ओद्रक (५वाँ शुंग-नरेश) के काल में खोदा गया था। विद्वानों ने कहा है कि दूसरी शताब्दी में पाञ्चाल, मथुरा तथा कौशाम्बी शुंग-राज्य के सामन्त राज्य थे। कुषाणकालीन सम्राटों के अधीन भी कौशाम्बी रही। कनिष्क ने गान्धार व काश्मीर से लेकर काशी तक का हिस्सा अपने साम्राज्य में मिलाया था।

कौशाम्बी कालान्तर में गुप्तवंशीय राजाओं के शासन में आई। इलाहाबाद की लाट में समुद्रगुप्त का लेख है। वहाँ के खँडहरों में, चुनार पत्थर में अंकित, गुप्तकालीन बुद्ध भगवान् की कई मूर्तियाँ मिली हैं। ७वीं शताब्दी में उस पर कन्नौज के राजाओं ने अपना आधिपत्य स्थापित किया। उस समय भी संभवतः कौशाम्बी अच्छी दशा में थी।

खेद है कि अभी तक कौशाम्बी का शृंखलाबद्ध इतिहास नहीं लिखा गया है। ऊपर वर्णित बिखरे प्रमाणों से ही फ़िलहाल हमें कौशाम्बी के इतिहास की नींव डालनी है। यद्यपि यह वर्णन भिन्न भिन्न काल की राजनैतिक परिस्थितियों पर विशेष प्रकाश नहीं डालता है, फिर भी हम मान सकते हैं कि कौशाम्बी की प्रसिद्धि ११वीं शताब्दी तक अनवरत रूप से रही है। बीती हुई शताब्दियों में न जाने कौशाम्बी ने कितनों का उत्थान और पतन देखा। अब तो इस देवनगर की कहानियाँ स्वप्नवत्-सी जान पड़ती हैं। वर्तमान 'कौसम' में न तो वह समृद्धि है और न वह चहल-पहल है।

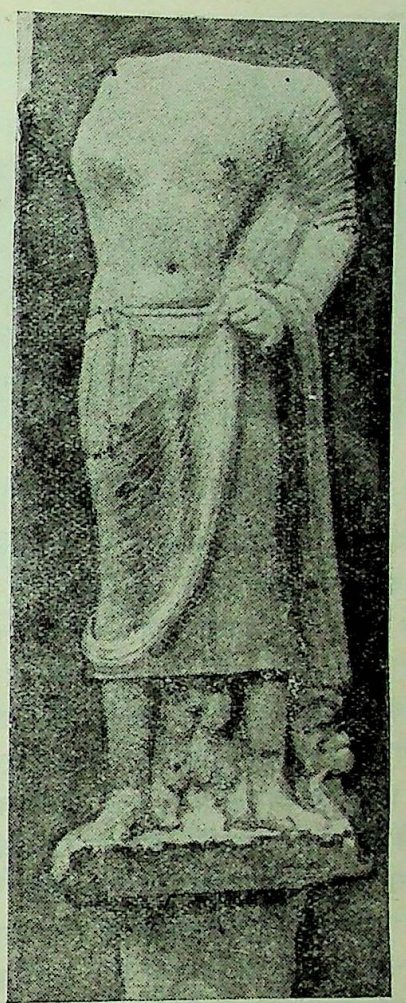

कौशाम्बी में प्राप्त एक कनिष्ककालीन बुद्ध-मूर्त्ति

इधर की शताब्दियों में तो कौशाम्बी का नाम तक लुप्त रहा। पुरातत्त्व के पंडितों ने इसकी स्थिति को ढूँढ़ने की बड़ी चेष्टा की। वास्तव में यह समस्या हुयेनसाँग के प्रयाग व कौशाम्बी के बीच की ग़लत दूरी लिखने के कारण हुई थी। हुयेनसाँग अपने भ्रमण-ग्रंथ में इस दूरी को ५०० ली बतलाता है और कहता है कि उसे कौशाम्बी जाने में पूरे सात दिन लगे। कदाचित् हुयेनसाँग ने किसी घुमावदार रास्ते को पकड़ा था। जनरल कनिंघम ने सन् १८६१ में कौशाम्बी को वर्त्तमान कौसम से मिलाया। कुछ दिनों तक इस धारणा पर वाद-विवाद चलता रहा और डाक्टर स्मिथ तो एक प्रकार से विरोधियों के नेता-से बन गये थे। अब तो अनेक प्रमाण ऐसे मिल गये हैं जिनसे कौशाम्बी को कोसम से मिलाने में कुछ भी संदेह नहीं रह जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

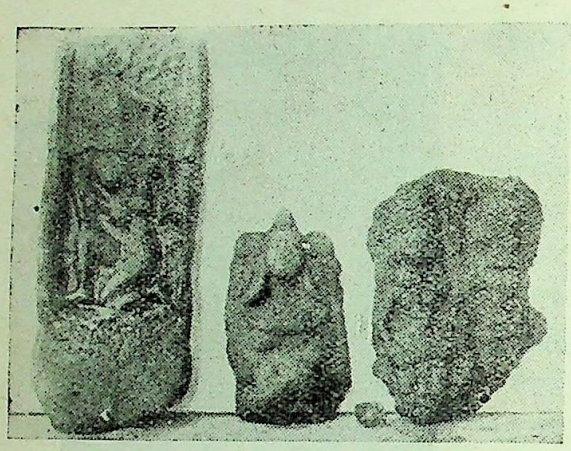

कौशाम्बी में प्राप्त गुप्त-कालीन मूर्त्तियाँ

रायबहादुर दयाराम साहनी ने ४ शिलालेखों का, जिनसे कौशाम्बी की स्थिति ज्ञात होती है, ध्यानपूर्वक सम्पादन किया है (जनरल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी अक्टूबर १९२७)। इनमें एक लेख जो संवत् १६२१ का है, कौसम की अशोक की लाट पर है। इस लेख की प्रतिलिपि सन् १९१७ में आर्किलौजिकल सर्वे रिपोर्ट में छप चुकी है। इसमें कौशाम्बी के ५ धनी सुनारों व उनके १३ नौकरों के द्वारा गणेश, शिव व भैरव की कौशाम्बी के सुनारों के लिए सुन्दर-दान की प्रार्थना की गई है। दूसरा लेख पवोसा की जैन पार्श्वनाथ की मूर्ति-संबन्धी है। पवोसा कौशाम्बी से ३ मील उत्तर-पश्चिम दिशा में है। इस लेख में लिखा है कि प्रयागनिवासी साधु श्री हीरालाल ने मंगसीर संवत् १८८९ में इस जैनमूर्त्ति की स्थापना कौशाम्बीनगर के बाहर पवोसा की चोटी पर की। तीसरा लेख इलाहाबाद-ज़िले के कड़ा के क़िले के दरवाज़े पर मिला है। इस लेख को पढ़ने में विद्वानों को बड़ी झंझटें उठानी पड़ी हैं। यह लेख संवत् १०८३ का है और इसमें महाराज यशपाल (प्रिन्सेप व कोलब्रुक के मतानुसार) कौशाम्बीमंडल में स्थित पयालास गाँव के सेनापति को कोई आदेश दे रहे हैं। साहनी ने पयालास को पयाहद पढ़ा है, क्योंकि कड़ा से ५ मील उत्तर-पश्चिम में 'परास' नाम का कोई गाँव है। चौथा लेख साहनी को कौसम से ३ मील की दूरी पर स्थित मेओदर गाँव में मिला था। इस लेख में लिखा है कि संवत् १२४५ में राजा जयचन्द्र के राज्य में श्री वास्त्य ठाकुर ने कौशाम्बी-ज़िले में स्थित गाँव मेओदर में सिद्धेश्वर महादेव के मंदिर की स्थापना की।

इन प्रमाणों से ज्ञात होता है कि कनिंघम-द्वारा बतलाया हुआ कौसम ही प्राचीन कौशाम्बी है, और यह नाम अकबर के काल तक लोगों को ज्ञात था। भीटा की खुदाई से भी हमें कौशाम्बी की स्थिति के विषय में मालूम हुआ है। पाली की पुस्तकों में लिखा है कि कौशाम्बी जाने के लिए सहजाती नामक स्थान गंगा की राह में अन्तिम स्थान है। एक मिट्टी की मुद्रा पर जो भीटा में मिली है, 'सहजाती' लिखा है। इससे भी विदित होता है कि कौशाम्बी यमुना तट पर भीटा से ऊपर थी।

वर्त्तमान कौशाम्बी के खँडहर कई मीलों तक फैले हुए हैं। कहीं भूमि नीची है, कहीं टीले ३०-३५ फ़ुट की ऊँचाई तक के हैं। इन खँडहरों के बीच 'छोटा गढ़वा' व 'बड़ा गढ़वा' नामक गाँव बसे हैं। गत कुछ वर्षों से पुरातत्व की ओर भारतवासियों का ध्यान आकर्षित हुआ है और इस कारण भी लोग प्रायः कौशाम्बी की यात्रा करने जाते हैं। ऐसी ही यात्राओं में एक यात्री इलाहाबाद के ख्यातनामा नागरिक पंडित ब्रजमोहन व्यास हैं। उन्होंने कौशाम्बी में प्राप्त वस्तुओं का इलाहाबाद म्यूज़ियम में अच्छा संग्रह किया है।

कनिंघम साहब को बड़े गढ़वा में बौद्ध वेदिकायुक्त दो स्तंभ प्राप्त हुए थे। एक मूर्त्ति चौकी भी उन्हें मिली थी, जिस पर श्री धम्म हेतु प्रभवां। लिखा था छोटे गढ़वा में केवल ४ स्तम्भ मिले, जिन पर स्तूपों का चित्रण था। कदाचित् ये स्तूप उस स्तूप की नक़ल थे जिसमें बुद्ध भगवान् के नाखून व बाल स्थापित थे। अशोक की लाट उस समय कुछ दबी-सी थी। कनिंघम साहब ने उसे कुछ खुदवाया किन्तु उसे सीधा खड़ा किया साहनी साहब ने और मरम्मत की। यह आश्चर्य्य-सा है कि हुयेनसाँग न तो इस स्तंभ का ज़िक्र करता है और न

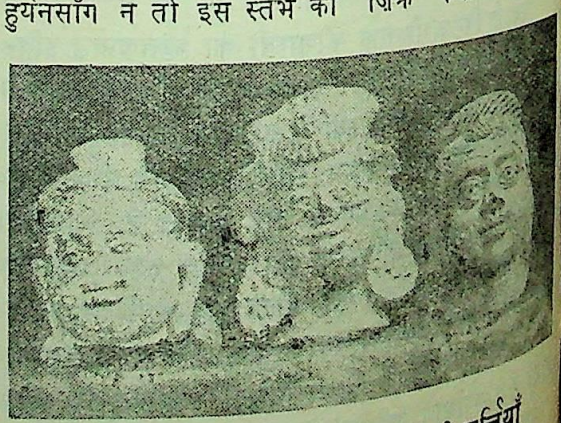

कौशाम्बी में प्राप्त जैन तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

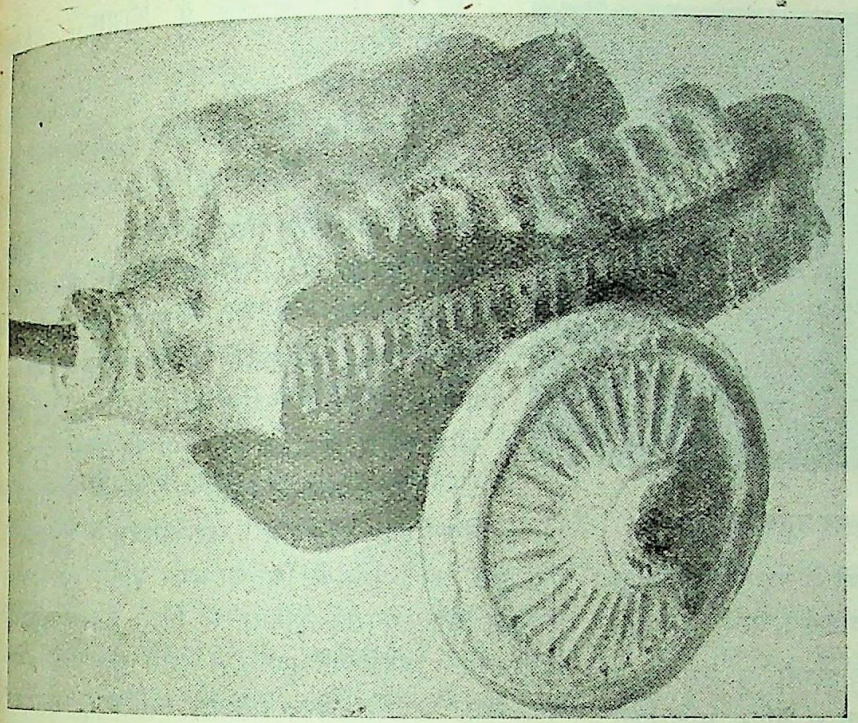

तीसरी सदी के रथ का एक चक्र। यह कौशाम्बी में मिला था

प्रयाग के स्तंभ का। कौसम के स्तंभ पर अशोक-काल की-सी पालिश नहीं है, यद्यपि उसकी शैली अशोक-स्तंभों जैसी ही है।

कौशाम्बी में मिट्टी के असंख्य खिलौने मिले हैं। संभवतः भारत के अन्य किसी स्थान में बिना खुदाई के इतने अधिक खिलौने नहीं मिले हैं। इनमें अनेक खिलौने इस बात में रक्खे जा सकते हैं, जिन्हें पुरातत्त्व-पंडित ऐतिहासिक युग का मानते हैं। मिट्टी के खिलौनों को बनाने की प्रथा संसार के सभी प्राचीन देशों में एक समय प्रचलित थी। मोहेंजोदड़ो, चहूदड़ो तथा हड़प्पा की खुदाइयों से भी यही प्रमाणित हुआ है।

कौशाम्बी के कुछ खिलौनों को विद्वान् लोग प्राक् मौर्य्य-युग की मातृदेवी की मूर्त्तियाँ मानते हैं। इनका रूप बहुत सुन्दर नहीं। प्राचीन जातियों में भी आदि जननी के रूप में एक सबसे बड़ी देवी की कल्पना मान्य थी। क्रीट, फारस, मेसोपोटेमिया, लघु एशिया आदि देशों में कई ऐसी मूर्त्तियाँ पूजी जाती थीं। ऋग्वेद में वर्णित मातृशक्ति, प्रकृति, महानग्नि, अदिति देवी माता इन्हीं मूर्त्तियों की ओर संकेत करती हैं। मौर्य्य-काल तथा शुंग-काल में खिलौने में सुन्दरता आ गई थी। इनके विषय तथा दृश्य बड़े ही मनोरंजक तथा कौतूहलप्रद हैं। कुछ पट्टों पर दम्पति प्रेम-क्रीड़ा में संलग्न हैं, कुछ में स्त्रियाँ भारहुत के तौरणों की स्त्रियों की तरह हँसती दीख पड़ती हैं। एक पट्टे पर विचित्र दृश्य है। एक पुरुष व स्त्री सोफ़ा के बग़ल में खड़े हैं। उनके निकट एक दासी एक हाथ में शीशा व दूसरे में पक्षियों के पकड़े है। एक पट्ट में यूनानी भावों के दर्शन होते हैं। इसमें एक स्त्री व पुरुष क्रमशः हाथ में मधु-घट व मधु-पात्र लिये हुए हैं कुषाण-कालीन एक दृश्य में आसव-पान से छकी हुई एक स्त्री उन्मत्त हो रही है, और उसे एक पुरुष थाम रहा है। ऐसा ही दृश्य मथुरा में प्राप्त एक पत्थर पर भी है, जिसमें आसव-पायी उन्मत्त भगवान् कुबेर को उनकी स्त्री हारिती थाम रही है।

कौशाम्बी में पुष्पास्तरणों से सुसज्जित कई मृच्छकटियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमें सुन्दर पुष्प बने हैं, प्रेमी व प्रेमिकाओं के दृश्य भी प्रायः इन पर अंकित किये गये हैं। एक में एक पुरुष स्त्री की जाँघ पर बैठा स्त्री के स्तन को छू रहा है।* उस काल की स्त्रियाँ आभूषणों से विशेष प्रेम रखती थीं। एक नर्त्तकी का-सा खिलौना है, जिसमें नर्त्तकी पूरे बाहों तक खिलौने पहने विविध प्रकार की सुन्दर शिरोभूषा व वस्त्रों से अलंकृत है। शुंगकालीन स्त्रियों को देखकर तो कभी कभी दंग रह जाना पड़ता है।

इन खिलौनों का महत्त्व तब मालूम होता है जब हम देखते हैं कि इनमें बहुत-से तो प्राचीन पत्थर की मूर्त्तियों की प्रतिलिपियाँ हैं। भीर (तक्षशिला) से प्राप्त एक खिलौने की तुलना पटना के यक्ष से की जा सकती है।

---

* ये दोनों खिलौने लेखक के निजी संग्रह में हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनकाल की कुछ मूर्त्तियाँ

भीटा में भी भारहुत की एक यक्षिणी के सदृश एक खिलौना मिला था। (इंडियन हिस्टारिकल क्वाटरली, मार्च १९३६)।

हुयेनसाँग लिखता है कि कौशाम्बी में उसने बुद्ध की एक पूरे आकार की लाल चन्दन में अंकित मूर्त्ति देखी थी। इसका निर्माण भगवान् बुद्ध जब जीवित थे तभी हो गया था। शुंग-काल के शिल्पियों ने तो बुद्ध को केवल लाक्षणिक चित्रों में अंकित किया है। बौद्ध तथा जैन-धर्म ने प्रतिमा-पूजन का आदेश कभी नहीं दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि महायान के प्रचार के साथ बुद्ध-प्रतिमा की आवश्यकता जनता को जान पड़ी और तभी से मूर्त्तियाँ बनने लगीं। डाक्टर कुमारस्वामी के मतानुसार पहली शताब्दी में मथुरा में बुद्ध-प्रतिमा का निर्माण हुआ (आर्ट बुलेटिन जिल्द ९, नं० ४)। फिर भी न जाने कैसे हुयेन-साँग लिखता है कि कौशाम्बी में उसने एक बुद्ध-प्रतिमा देखी!

सिकरी के लाल पत्थर की बोधिसत्व की एक मूर्त्ति भी कौशाम्बी में पाई गई है। इस पर खुदे शिलालेख से मालूम होता है कि यह मूर्त्ति सम्राट् कनिष्क के राज्य के दूसरे वर्ष में बनी थी और इसका स्थापन भिक्षुणी बुद्धिमित्र ने किया था। यहाँ यह भी बतला देना ठीक होगा कि कनिष्क-काल की बोधिसत्व की यह सर्वप्रथम मूर्त्ति है। यह मूर्त्ति भी मथुरा से यहाँ आई होगी। कुशाण-काल में तो मथुरा में मूर्ति-कला बहुत बढ़-चढ़ चुकी थी और मथुरा से बुद्ध की मूर्त्तियाँ काशी, प्रयाग, पाटलिपुत्र, गया आदि स्थानों तक भेजी जाती थीं।

जैन-तीर्थंकरों के अनेक सिर तथा मूर्त्तियाँ कौशाम्बी में मिली हैं। यह संभव है कि मथुरा के कंकाली-टीले पर स्थित जैन-केन्द्र से कौशाम्बी का कुछ संबन्ध रहा हो।

चुनार के पत्थर के बुद्ध भगवान् के गुप्तकालीन सिर भी यहाँ मिलते हैं। प्रायः सभी सिरों में बुद्ध भगवान् स्मित-मुद्रा में दिखलाये गये हैं।*

आभूषणों के लिए स्त्रियाँ प्रायः मालायें पसन्द करती थीं। इसका प्रमाण कौशाम्बी में प्राप्त असंख्य गुरियों (माला के दानों) से मिलता है। मोहेंजोदडो में विचित्र प्रकार की गुरियायें प्राप्त हुई हैं। इनके रंग, कारीगरी, वर्णच्छटा, और वर्णना को देखकर मुग्ध रह जाना पड़ता है।

पंडित व्रजमोहन व्यास ने कौशाम्बी में प्राप्त अनेक सिक्के इकट्ठे किये हैं। सर कनिंघम ने भी १८६१ में यहाँ कुछ सिक्के पाये थे, जिनका वर्णन उन्होंने अपनी पुस्तक 'कोयन्स ऑफ़ ऐनशेंट् इंडिया' में किया है। कौशाम्बी के प्राचीनतम सिक्के पटे हुए हैं। इनमें कुवड़ा बैल, बोधि, मेरु, वृक्ष, वेष्टनी, चक्र, पहिया, स्वस्तिका, लक्ष्मी आदि के चिह्न बने हुए हैं। बहिसमित्र, अश्वघोष, जेठमित्र आदि राजाओं ने अपने नाम के सिक्के चलाये थे। बहिसमित्र के विषय में भी कुछ वाद-विवाद हुआ है। पवोसा के शिला-लेख से ज्ञात होता है कि इस गुफा को बनानेवाला आशधसेन था, जो बहिसमित्र का मामा था। आशधसेन पांचाल के राजा से किसी रूप में सम्बन्धित था। उधर मथुरा के मोरा नामक स्थान से जो शिलालेख मिला है उससे मालूम होता है कि बहिसमित्र की पुत्री यशमाता की शादी मथुरा के किसी राजा से हुई थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि बहिसमित्र कोई प्रसिद्ध राजा था।

कौशाम्बी में प्राप्त वस्तुओं से भी वही अलंकार तथा आडम्बर का प्रेम झलकता है जिसके लिए भारत युगों से प्रख्यात रहा है। इनमें अनेक बाहरी प्रभाव दीख पड़ते हैं। किन्तु इन प्रभावों को भारतीय शिल्पियों ने अपने व्यक्तित्व में खूब पचाया है। फलतः इन वस्तुओं से उस काल के घरेलू जीवन व सौंदर्य-प्रेम का सुन्दर परिचय मिलता है।

गत वर्ष भारत-सरकार के पुरातत्त्व-विभाग ने कौशाम्बी में खुदाई की थी। निकट भविष्य में फिर यहाँ खुदाई होगी, जिससे कौशाम्बी के इतिहास पर अधिक प्रकाश पड़ने की सम्भावना है।

* ऐसे दो सिर लेखक के संग्रह में हैं, जिनमें एक आधा बना कर छोड़ दिया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय सुगन्धित तेल

अनुवादक, श्रीयुत जगतनारायण तायल, एम० एस-सी०

[इलाहाबाद-विश्वविद्यालय के डाक्टर एस० दत्त, एम० ए, पी० आर० एस० (कलकत्ता), डी० एस० सी० डी० आई० सी० (लन्दन) एफ० एन० आई० नामी रसायन-शास्त्री हैं। यह महत्त्व-पूर्ण लेख आपके एक हाल के लेख का अनुवाद है।]

भारतवर्ष सदा से जड़ी-बूटियों और अनेक प्रकार के सुगन्धित तेल प्रदान करनेवाले पौधों का घर रहा है। गुलाब, अगरु, चन्दन, खस, केवड़ा, चमेली आदि का मूलस्थान होने के कारण संसार में सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में सर्वप्रथम स्थान हमारे देश ने प्राप्त किया है। यद्यपि भारतवर्ष सारे संसार के उच्च कोटि के सुगन्धित द्रव्यों और अर्कों तथा इत्रों आदि की माँग को उचित रूप से पूरा कर सकता है, तथापि दुर्भाग्यवश हमारे यहाँ कोई ऐसी संस्था नहीं है जो इस माँग को विस्तृत रूप से पूरा कर सके। सुगन्धित तेलों को अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न करनेवाले साधनों के अतिरिक्त यहाँ अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्पोद्यानों की खेती भी की जा सकती है, जिससे हम खाद्यपदार्थों की उपज की अपेक्षा दस गुने अधिक लाभवाले अर्क-तेल प्राप्त कर सकते हैं। वस्तुतः फ़्रांस में राष्ट्रीय सम्पत्ति का प्रधान साधन अर्क-तेल की खेती ही है, जो रोम की घाटी में विशिष्ट रूप में होती है। फ़्रांस क्षेत्रफल में युक्तप्रान्त से कहीं अधिक छोटा होते हुए भी अपने सुव्यवस्थित और सुविधापूर्ण प्रबन्धों के कारण प्रायः समस्त संसार को उच्च कोटि के सुगन्धित द्रव्य प्रदान करता है। अतएव इस लेख में मैं केवल नवीन प्रकार के इत्र-तेलों के साधनों तथा उनकी उपयोगिताओं का संक्षेप में वर्णन करूँगा और विशेषतया उन पदार्थों का उल्लेख करूँगा जिनके सम्बन्ध में हम लोगों ने अपनी प्रयोग-शाला में अनुसंधान किया है।

तुलसी का अर्क वा तेल

तुलसी के पौधे में बड़ी तीव्र सुगन्धि रहती है। इसकी शाखायें सीधी रहती हैं। भली भाँति देख-रेख कर उत्पन्न किये जाने पर इसकी उँचाई प्रायः पाँच फ़ुट तक हो सकती है। ऐसी दशा में पौधे के नीचे की शाखायें कड़ी लकड़ी की भाँति हो जाती हैं। समस्त भारत के हिन्दू इस पौधे को बहुत पवित्र मानते हैं। धार्मिक कृत्यों तथा पूजाओं में तुलसी-पत्र बहुत आवश्यक होते हैं और ये देवताओं पर चढ़ाये जाते हैं। प्रायः प्रत्येक हिन्दू के घर में तुलसी के पौधे लगाये जाते हैं और देवता के समान उनकी पूजा होती है।

तुलसी-पत्र में औषधिक गुण होते हैं। इस कारण भी प्रत्येक घर में इसका होना प्रायः अनिवार्य माना जाता है। तुलसी-पत्र के रस में कुछ ऐसे विशेष गुण हैं जो श्वास अवयवों को साफ़ रखने में समर्थ होते हैं और इसी कारण श्वास-संबन्धी अनेक रोगों तथा कफ, नाक से पानी बहने और दमा इत्यादि में यह लाभदायक होता है। जल-द्वारा बनाये गये तुलसी की पत्ती के लेप का प्रयोग अनेक चर्म-रोगों—खुजली, दाद, छाजन और पित्ती इत्यादि के निराकरण के लिए भी होता है। बच्चों के यकृत और पाचन-सम्बन्धी रोगों में भी इसका प्रयोग किया जाता है। इसकी पत्तियाँ कमल-रोग और तिल्ली-सम्बन्धी अनेक रोगों के निराकरण में सफल सिद्ध हुई हैं तथा इनमें अनेक कीटाणु-नाशक गुण पाये गये हैं। घाव, व्रण तथा छालों पर इसके लेप से बहुत शीघ्र फ़ायदा पहुँचता है तथा यह उन्हें विषाक्त होने से बचाता है। तुलसी-पत्र के रस-द्वारा कान की पीड़ा को समुचित लाभ पहुँचता है। इसकी पत्ती के उबाले हुए रस के प्रयोग से जननेन्द्रिय-सम्बन्धी अव्यवस्थायें दूर हो जाती हैं। ऊनी और रेशमी वस्त्रों के साथ इसकी सूखी पत्तियों को रखने से गर्मी के दिनों में कपड़ों में किसी भी प्रकार के कीड़े नहीं लगने पाते। तुलसी की पत्तियों के सम्बन्ध में यह तो प्रसिद्ध ही है कि इसके पास मच्छड़ नहीं फटकते।

तुलसी का आवश्यक तत्त्व अथवा सुगन्धित अर्क आसानी से पत्तियों में से भाफ के द्वारा निकाला जाता है और उस अर्क में का सुगन्धित तेल बेंज़ीन अथवा पेट्रोल ईथर के मिलाने पर अलग हो जाता है। पत्तियों में सुगन्धित द्रव्य का अंश उनके उत्पन्न होने के ढंग पर निर्भर रहता है, परन्तु रासायनिक प्रयोग-द्वारा यह देखा गया है कि पत्तियों में अर्कतेल का अंश लगभग १०० में ७ होता है। हलके रंग की अपेक्षा काले रंग की तुलसी में अधिक अंश में सुगन्धित तेल पाया जाता है, परन्तु इन दोनों के रासायनिक तत्त्वों में कोई भी भेद नहीं पाया जाता। तेल को हलके दबाव पर स्रवण करके साफ़ कर सकते हैं। साफ़ किये गये तुलसी के तेल का रंग हलका पीला होता है और उसमें तुलसी की अपनी विशेष महक तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ हलकी लौंग की कड़ी महक भी पाई जाती है।

साफ़ किये हुए तुलसी के तेल में निम्नलिखित वस्तुएँ यथालिखित अनुपात में निकली हैं—

युजी नोल	...	७१·३ प्रतिशत
कारवाक्रोल	...	३·२ ,,
मेथाइल यूजिनाल	...	२०·४ ,,
कैरयो फीलीन	...	१·७ ,,
कोई विशेष पदार्थ जिसका पता नहीं पाया जा सका	...	४·४ ,,
जोड़		१००

तुलसी बहुत ही सरलता से बीज-द्वारा उत्पन्न की जा सकती है। एक एकड़ ज़मीन में साधारण कृषि से तुलसी के कम से कम १,००० पौधे उत्पन्न किये जा सकते हैं, जिनके प्रौढ़ होने के लिए ४-५ महीने के समय की आवश्यकता होती है और हर एक पौधे में लगभग ३ पौंड पत्ती होती है और ३०० पौंड पत्तियों-द्वारा प्रायः २० पौंड तेल भाफ के द्वारा निकाला जा सकता है, जिससे १४ पौंड यूजीनोल जिसका मूल्य लगभग २००) होता है, प्राप्त किया जा सकता है। २० पौंड परिष्कृत तुलसी के तेल का मूल्य भी लगभग १०) पौंड के हिसाब से २००) होता है। तुलसी के तेल से यूजीनोल निकाल दिये जाने के पश्चात् बचा हुआ द्रव आसानी के साथ अच्छे साबुन में सुगन्ध देने के लिए काम में लाया जा सकता है।

ममरी का अर्क व तेल

ममरी जिसे बंबई, वनतुलसी या रामतुलसी भी कहते हैं, एक बहुत ही सुगन्धित पौधा होता है। यह नदियों के किनारे पर और नम स्थानों में झाड़ियों के रूप में पाई जाती है। वर्षा के दिनों में सारे संयुक्त-प्रान्त में और कुमायूँ-नैपाल की तराई में यह बहुतायत से मिलती है। पूरा पौधा दो या तीन फ़ुट ऊँचा होता है और इसकी शाखायें बहुत घनी होती हैं। देखने में ममरी के पौधे तुलसी के पौधे से बहुत मिलते-जुलते होते हैं—केवल इतना भेद होता है कि ममरी की पत्तियाँ कुछ छोटी और अधिक हरी होती हैं। अक्टूबर या नवम्बर में पौधा पूरा बढ़ जाता है और इसके बाद या तो धीरे धीरे सूख जाता है या इसे जानवर खा डालते हैं।

ममरी में बहुत-से औषधिक गुण होते हैं। पत्ती का काढ़ा पाचन-क्रिया में विशेषकर आमाशय की गड़बड़ी में बहुत लाभदायक होता है। ज्वर में पत्तियों की पुल्टिस हाथ व पैर पर लगाने से अंगों के सिरे गरम रहते हैं। यह बहुत-से चर्म-रोगों में जैसे दाद, स्केबीज़, खाज, छंजन इत्यादि के लिए बहुत लाभप्रद होता है। कोमल शाखाओं और पत्तियों में अर्क व तेल की मात्रा लगभग ६ व ७ प्रतिहज़ार होती है। ऐसा मालूम होता है कि अर्क व तेल ही इसका आवश्यक अंग है और इसके औषधिक गुण भी इसी पर निर्भर हैं। इसलिए इसका पूर्णतया रासायनिक अनुसन्धान किया गया, जिसके फलस्वरूप अर्क व तेल में ६८ प्रतिशत सिट्रल पाया गया। इस दृष्टि से यह बहुत-सी योरपीय निबूवाली घासों से अच्छा है और इसके व्यावसायिक गुण भी उच्चकोटि के हैं।

ममरी का अर्क व तेल पत्तियों से स्रवण-विधि-द्वारा बड़ी सलरता से निकाला जा सकता है। ऐसा करने से पानी के ऊपर तेल की एक तह जम जाती है और शुद्ध अर्क व तेल पीले रंग का होता है, जिसमें नींबू की तीव्र गंध के साथ साथ लैवेंडर की गंध का भी आभास होता है। इस सुगन्धित तेल में लिनालुआल और जिरा निऔल तथा इस श्रेणी के दूसरे रासायनिक पदार्थों के होने के कारण इसकी महक नींबू व घास के तेल से कहीं अधिक कोमल तथा रुचिकर होती है। यह तेल बाल में लगाने के तेल, साबुन, क्रीम और स्नो, लौजेन्जेज और सोडा-पानी इत्यादि के लिए उच्चकोटि के सुगन्धित ऐसेन्स का काम दे सकता है। इसके पूर्ण विश्लेषण का फल जो प्रयोगशाला में मैंने अपने छात्रों के साथ किया है, निम्नलिखित है—

ममरी के तेल का तत्व

लिना लुआल	...	१०·९ प्रतिशत
एस्टर्स (प्रधान लिनालाइल और जिरानाइल एसीटेट	...	४·८ ,,
जिरानिऔल और सिट्रोनेललौल	...	७·३ ,,
मिथाइल हैपिटीनोन	...	२·४ ,,
सिट्राल	...	६०·० ,,
सिट्रोलनेलाल	...	७·३ ,,
अनिर्धारित	...	४·८ ,,
शेष	...	२·४ ,,
कुल	...	१००·०

ममरी की खेती करने से इसकी उपज अधिक अच्छी होती है और एक एकड़ ज़मीन में बड़ी आसानी से इसके १,२०० पौधे उग सकते हैं, जिनमें कम से कम ४०० पौंड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्तियाँ और हरी शाखायें होंगी। इसमें से कम से कम २५ पौंड सुगन्धित तेल निकाला जा सकता है। इस तेल का मूल्य बाज़ार में कम से कम २००) होगा।

पुदीने का सुगन्धित अर्क व तेल

संयुक्त-प्रान्त में या यों कहिए कि सारे उत्तरी भारतवर्ष में पुदीना सूखी ऋतु में अत्यधिक मात्रा में उगता है और उस समय बहुत बड़ी मात्रा में इसका प्रयोग होता है। बरसात और जाड़े में पौधा कुछ कम उगता है और छोटा भी होता है, परन्तु बाज़ारों में बराबर बारहो महीने यह बिकता रहता है। इसका विशेष प्रयोग खाद्य-पदार्थों में विशेषकर चटनी, अचार इत्यादि को सुगन्धित करने में होता है। इसके औषधिक गुण भी महत्त्वपूर्ण हैं और यह आमाशय तथा अँतड़ियों के सम्बन्ध की सब गड़बड़ियों को दूर करने में उपयुक्त है। सूखी पत्तियों के पीसे हुए चूर्ण को ज़ुकाम और कैटरा में सूँघते हैं और ताज़ी पत्तियों की पुल्टिस घाव में लगाते हैं। हकीम और वैद्य लोग पुदीने की हरी पत्तियों को भाफ के द्वारा स्रवित करके उसका अर्क निकालते हैं और यह अर्क पित्त-सम्बन्धी तथा पेट के और दूसरे रोगों के दूर करने में बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है।

पुदीने का अर्क व तेल हरी पत्तियों से स्रवण-विधि-द्वारा बड़ी सरलता से निकाला जा सकता है। अर्क व तेल की मात्रा लगभग २ प्रतिहज़ार होती है। अर्क व तेल का रंग पीलापन लिये हुए हरा होता है और इसका आपेक्षिक घनत्व ०·९५ होता है। इसमें पुदीने की तीव्र गंध होती है, जो बड़ी भली लगती है। तेल को कई दिनों तक रिफ़्रीजेरेटर में रखने पर भी कोई ठोस पदार्थ जमा होता हुआ नहीं दिखलाई देता। यह बड़ी आश्चर्यजनक बात है, क्योंकि जापान में जो पुदीना होता है उसका अर्क व तेल ठंडक पाकर जम जाता है और उसमें से एक रवेदार पदार्थ जिसे मैंथोन कहते हैं, बहुत बड़ी मात्रा में निकलता है। शुद्ध तेल मामूली तेल के १० सें० मी० दबाव पर स्रवित करके निकाला जाता है। इस अर्क व तेल में उच्च कोटि के कीटाणु-नाशक गुण मौजूद हैं। यदि यह तेल अधिक मात्रा में बनाया और शुद्ध किया जाय तो भारतीय आयुर्वेदशास्त्र का मुख्य स्तम्भ होगा। पुदीने के शुद्ध अर्क का आपेक्षिक घनत्व ०·९५८० है। प्रयोगशाला में इसका पूर्ण विश्लेषण करने से इसका वास्तविक संगठन अग्रलिखित निकला है—

डी कारवोन	...	८०·८ प्रतिशत
सिन्ट्रोनेलल	...	६·२ ,,
डी सिलवैस्ट्रीन	...	३·८ ,,
कैरीन	...	४·४ ,,
अनिर्धारित	...	५·८ ,,

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुदीने के अर्क व तेल में विशेष अंग डी कारबोन का है और इसी कारण पुदीने में इतने महत्त्वपूर्ण गुण पाये जाते हैं। यदि अर्क व तेल बहुत अधिक मात्रा में निकाला जाय तो साबुन तथा सुगन्धित पदार्थों के व्यवसाय के लिए बहुत बड़ा साधन होगा। अगर एक एकड़ ज़मीन में पुदीने की खेती की जाय तो कम से कम ५०० पौंड ताज़ी पत्तियाँ मिल सकेंगी और इनमें से लगभग १० पौंड शुद्ध अर्क व तेल निकाला जा सकेगा, जिसका बाज़ार में मूल्य लगभग १५०) होगा।

नागपुरी संतरे के छिलके का अर्क व तेल

भारतीय बाज़ारों में पाँच प्रकार के मीठे सन्तरे पाये जाते हैं—(१) सिलहट या खसिया सन्तरे जो आसाम में उगते हैं; (२) नागपुरी सन्तरे जो मध्य-प्रदेश में उगते हैं; (३) दिल्लीवाले सन्तरे जो पंजाब तथा संयुक्त-प्रदेश के पश्चिमी भाग में उगते हैं; (४) पूना का सन्तरा जो पूना के आस-पास दक्षिण के पठार में होता है; और (५) दक्षिण-भारतीय सन्तरे जो कुर्ग, मैसूर और नीलगिरि की पहाड़ियों में होते हैं। सर जार्ज वाटसन का कथन है कि सिलहटी और नागपुरी सन्तरे भारतवर्ष की विशेषता है और बाक़ी तीन प्रकार के सन्तरे मोज़म्बिक, मैंडरीन और माल्टा सन्तरों के रूपान्तर-मात्र हैं। नागपुरी सन्तरा विशेष प्रकार का भारतीय फल है और रासायनिक दृष्टि से इसका अनुसन्धान कभी नहीं किया गया, इसलिए मैंने यह उचित समझा कि मैं प्रयोग-शाला में इसकी पूर्णरूप से रासायनिक परीक्षा करूँ। यहाँ मैं यह बतला देना आवश्यक समझता हूँ कि दुर्भाग्यवश हमारे देश में नागपुरी सन्तरे के छिलके का अर्क व तेल कभी नहीं निकाला गया, यद्यपि यह बात यथार्थ है कि छिलकों में अर्क व तेल बहुत बड़ी मात्रा में होता है, जो औषधि तथा व्यावसायिक दोनों दृष्टियों से अति उपयोगी है। नागपुरी सन्तरे नवम्बर से मई तक उगते हैं और इस समय उनकी उपज इतनी अधिक होती है कि वे बड़े सस्ते हो जाते हैं। सन्तरे का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छिलका जो काफ़ी मोटा होता है, सदैव फेंक दिया जाता है। व्यावसायिक दृष्टि से लोग समझते हैं कि सन्तरे का व्यापार बहुत लाभदायक नहीं है, क्योंकि फ़सल के समय यह फल बहुत अधिक मात्रा में होता है और शीघ्र सड़ने के कारण इसका तुरन्त बेचना बहुत आवश्यक हो जाता है, जिसके फल-स्वरूप इसका मूल्य बहुत घट जाता है। परन्तु यदि फ़सल के समय फल को छीलकर गूदा जाम व जेली के बनाने में प्रयुक्त किया जाय और छिलके का अर्क व तेल निकाला जाय तो सन्तरे का व्यापार बहुत लाभदायक सिद्ध होगा।

संतरे का अर्क व तेल सुगन्धित पादर्थों के बनाने तथा शर्बत, जाम, जेली और सोडा-पानी इत्यादि में सुगन्धि प्रदान करने के लिए बहुत ही उपयुक्त है। डायमार्क साहब का कथन है कि इसका अर्क व तेल बड़ा स्फूर्तिदायक होता है और यह पित्त को मारता ह तथा पाचन-शक्ति को बढ़ाता है।

संतरे के छिलकों को स्रवण करके अर्क व तेल बड़ी आसानी से निकाला जा सकता है और छिलके में तेल की मात्रा लगभग १ प्रति होती है। सन्तरे का मैला रंग हलका पीला होता है, जिसका आपेक्षिक घनत्व ०·८५ है और इसमें ताज़े सन्तरे की-सी मनमोहनी सुगन्धि होती है। शुद्ध अर्क व तेल बिलकुल साफ़ बिना रंग का होता है। प्रयोगशाला में तेल का पूर्ण विश्लेषण करने पर निम्न-लिखित फल निकला है—

नागपुरी सन्तरे के छिलके के अर्क व तेल का रसायनिक विश्लेषण

डी लिमोनिन	...	९०·८ प्रतिशत
लीना लुआल	...	१·८ ,,
कैरीन	...	२·६ ,,
टरपीनीन	...	नाममात्र
मिथाइल एन्थरानिलेट	...	०·८ ,,
अनिर्धारित	...	४·० ,,
कुल		१,०००

एक एकड़ ज़मीन में लगभग १२० सन्तरे के पेड़ लगाये जा सकते हैं। पाँच वर्ष के पश्चात् इनमें से हर एक में लगभग २५० सन्तरे उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार एक एकड़ भूमि से लगभग १२००—१५०० पौंड तक छिलका मिलेगा, जिससे १२-१५ पौंड तक उत्तम प्रकार का तेल निकाला जा सकता है। गूदे की बड़ी स्वादिष्ट जेली बनाई जा सकती है। इसका बाज़ार में मूल्य लगभग डेढ़ दो सौ रुपये होगा।

कपूरकचरी का अर्क व तेल

यह एक छोटी-सी जड़ी है, जो भारतवर्ष के अधिकांश स्थानों में पाई जाती है—उन स्थानों में जहाँ वर्षा ऋतु में ५० इंच से ज़्यादा वृष्टि होती है, जैसे बंगाल, आसाम, कमायूँ की पहाड़ियाँ, नैपाल और दक्षिणी भारत के कुछ सूबों में यह बहुतायत से पाई जाती है। इसकी जड़, तो प्रायः नैपाल से ही आती है। व्यावसायिक दृष्टि से यह एक बहुमूल्य चीज़ समझी जाती है और क़रीब क़रीब १३) मन के हिसाब से बिकती है। स्वाद में यह कड़वी होती है। इसकी गन्ध तीव्र और मनोमोहक होती है।

हम लोग जो अबीर प्रायः एक-दूसरे के माथे पर लगाते हैं उसको सुगन्धित बनाने के लिए लोग कचरी का व्यवहार करते हैं। धार्मिक कृत्यों में देवताओं को प्रसन्न करने के हेतु मन्दिर और मसजिद दोनों में इसको धूप के साथ जलाते हैं। बंगाल में इसे मछलियाँ पकड़ने के लिए भी बहुधा काम में लाते हैं। जिस बनारसी तम्बाकू को लोग बहुत चाव से खाते हैं उसको सुगन्धित करने के लिए यह जड़ी काम में लाई जाती है।

कीर्तिकर और वसु का—जिन्होंने भारत की आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों के ऊपर एक बड़ा-सा ग्रन्थ लिखा है—कथन है—यह बूटी पेट के समस्त विकारों के लिए और शरीर को शक्ति-प्रदान करने के लिए अति उत्तम औषधि है। इसका अर्क व तेल बड़ी सरलता से निकाला जा सकता है। जड़ी को कूट कर पानी के साथ भर कर भट्ठे में चढ़ा देते हैं। तेल और पानी दोनों आ-आकर एक बड़ी बोतल में एकट्ठा होते हैं। तेल को अलग करने के लिए पेट्रोल इथर अथवा बेन्जीन जो कोलतार से निकाली जाती है, व्यवहार करते हैं। १०० सेर कपूर-कचरी से ४ सेर तक बढ़िया तेल निकाला जा सकता है। शुद्ध तेल में जड़ी के समान तीव्र गन्ध होती है। शुद्ध अर्क व तेल को एक बोतल में रखने पर एक रवेदार पदार्थ जमा हो जाता है, जिसका विश्लेषण करने पर पता चला है कि यह इथाइल पैरा मिथाक्सी सिनेमेट है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध तेल का रासायनिक संगठन निम्नलिखित है--

ईथाइल पैरामिथाक्सी सिनामेट	...	६७·८ प्रतिशत
ईथाइल सिनामेट	...	१०·२७ ,,
डी सैबनिनि	...	४·० ,,
सीनियोल	...	६ ,,
सेस्की टरपीन्स	...	५·५ ,,
सेस्की टरपीन अलकोहल	...	४·७ ,,
अनिर्धारित	...	१·८ ,,
कुल जोड़	...	१०००.

कपूरकचरी का तेल बनाने के लिए व्यवसाय की दृष्टि से एक कारख़ाना खोलना बहुत ही उत्तम होगा। इसके सुगन्धित तेल को साबुनों, लगाने के तेलों, पाउडरों और समस्त शृंगार की वस्तुओं में काम में लाया जा सकता है। यदि इसका भाव १५) मन हो तो एक पौंड तेल बनाने के लिए लगभग ७) ख़र्च होंगे। इस तेल में जो रासायनिक पदार्थ निकलेंगे उनका मूल्य इससे कहीं अधिक होगा।

नरकचूर का अर्क व तेल

यह एक जड़ी है जो बंगाल में बहुतायत से पाई जाती है। बंगाल में इसको काली हल्दी कहते हैं। यह बारह से पन्द्रह रुपये मन के हिसाब से बिकती है और इसका व्यवहार अधिकतर तम्बाकू और उत्तम प्रकार के तेलों को सुगन्धित बनाने में किया जाता है।

आयुर्वेदानुसार इस दवा में विशेष गुण हैं। यह मूत्र-दोष-नाशक मानी गई है। सफ़ेद कुष्ठ में और प्रमेह में यह बहुत ही लाभदायक पाई गई है। ख़ून को साफ़ करने में यह अपने जोड़ की एक ही दवा है। शक्ति प्रदान करने के लिए और पेट के रोगों को दूर करने में भी यह काम में लाई जाती है। स्त्रियों के प्रसव के बाद शक्ति-प्रदान करने के लिए इसे कई प्रकार के नुसखों में इसका व्यवहार किया जाता है। तुर्क लोग इसको मालिश के लिए भी काम में लाते हैं।

कचूर से शुद्ध तेल निकालने के लिए उसे कूट कर पानी के साथ भर कर भट्ठे पर चढ़ाते हैं और पानी के साथ मिले हुए उसके अर्क को इकट्ठा करते हैं। फिर ऊपर दी हुई रासायनिक विधि के अनुसार उसमें से तेल को अलग करते हैं। एक मन जड़ी से क़रीब क़रीब तीन पाव से कुछ ज़्यादा ही तेल निकलता है। रक्खे रहने पर तेल की तह में कपूर जमा हो जाता है।

कचरी के शुद्ध अर्क व तेल का संगठन निम्नलिखित है--

कपूर	...	७६·६ प्रतिशत
केम्फीन और बोरानाइलीन	...	८·२ ,,
सेस्क्वई टरपीन्स	...	१०·५ ,,
अनिर्धारित	...	४·७ ,,
कुल जोड़		१,०००

भारतवर्ष में प्रत्येक वर्ष लाखों रुपये का कपूर चीन और जापान से आता है। चीन और जापान में यह एक प्रकार की लकड़ी से जिसे वनस्पति-शास्त्र में सिनामोनस कैम्फोरा कहते हैं, निकाला जाता है। सौ मन लकड़ी से प्रायः डेढ़ मन कपूर निकलता है। यह पेड़ बड़ी मुश्किल से उगाया जा सकता है। कचूर भारतवर्ष में बहुत ही आसानी से पैदा किया जा सकता है। एक एकड़ ज़मीन में ५० मन तक सूखा कचूर निकल सकता है, जिससे २५ सेर कपूर निकाला जा सकता है, जिसका बाज़ार-भाव से औसतन मूल्य क़रीब क़रीब १५०) आँका जा सकता है। इस जड़ी को उत्पन्न करने से यहाँ कपूर इतना पर्याप्त मात्रा में तैयार किया जा सकता है कि वह न केवल यहाँ की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त होगा, बल्कि दूसरे देशों को भी भेजा जा सकेगा। व्यावसायियों के लिए यह सवाल विचारणीय है।

मैंने रासायनिक दृष्टि से ऊपर लिखी हुई जड़ी-बूटियों का अनुसन्धान किया है। यदि मेरा लेख व्यावसायिक भाइयों तथा देश के हकीमों और वैद्यों का ध्यान आकर्षित करने में समर्थ होगा तो मैं अपने प्रयास को धन्य मानूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी की उदारता

लेखक, पण्डित अमरनाथ झा, एम० ए०

भारतवर्ष की सभ्यता की और जो कुछ विलक्षणतायें हों, एक विशेषता यह अवश्य है कि यहाँ का सिद्धान्त रहा है "वसुधैव कुटुम्बकम्", और यह सिद्धान्त काव्य और साहित्य में तो बहुत ही स्पष्ट है। जीवित और प्रचलित भाषा का स्वभाव है कि वह नये शब्दों को सदा ग्रहण करती है। यदि शब्द उपयोगी हो तो फिर वह, चाहे कहीं का भी हो, अपनाया जाता है। इसी प्रकार से अँगरेज़ी में बहुत-से शब्द प्रचलित हैं जो हमारे देश के हैं—यथा 'अवतार', 'पंडित', 'पक्का', 'बन्दोबस्त', 'बाज़ार', 'बक' ('वाक्य' से, अथवा 'बकने' से), 'छोकड़ा', 'घाट', 'ख़बर', 'पूजा', 'कोई है', 'सवार' इत्यादि। हमारे यहाँ हिन्दी ने फ़ारसी और अँगरेज़ी के बहुत शब्दों को अपनाया है और इसमें उदारता दिखाई है। यदि ऐसी ही उदारता उर्दू के कवियों ने दिखाई होती तो सम्भव है कि हिन्दी और उर्दू में जितना अन्तर है उतना न होता। परन्तु उर्दू के कुछ कवियों ने तो हिन्दी के 'लाज' शब्द के व्यवहार करने पर क्षमा-याचना की है। अस्तु, आज इस लेख में मैं पाठकों का ध्यान "बिहारीसतसई" में फ़ारसी और अरबी शब्दों की ओर दिलाना चाहता हूँ। सम्भव है, यह किसी और लेखक ने भी पहले लिखा हो, मुझे इसका पता नहीं है।

(१) "मनु ससि सेखर की **अकस**"—عکس

(यदि इसमें किसी को आपत्ति हो कि عکس का अपभ्रंशरूप यहाँ प्रयोग किया गया है तो स्मरण रखना चाहिए कि 'शशि' और 'शेखर' का भी शुद्ध संस्कृत रूप इस दोहे में नहीं है। प्रचलित भाषा शब्दों को श्रवण-मधुर रूप में ही प्रयोग करती है।)

(२) "पारचौ **सोर** सुहाग कौ"—شور

(३) "स्तन मन नितम्ब कौं बड़ी **इजाफ़ा** कीन"—
اضافہ

(४) "नवनागरितन **मुलक** लहि जोबन **आमिल जोर**।
घटि बढ़ि दें बढ़ि घटि **रकम** करी और की ओर!"
ملک – عامل – زور – رقم

(५) "वाही तन ठहराति यह, **किबलिनुमालों** दीठि"
قبلہ نما

(६) "हलकी **फौज** हरौल ज्यौं परति **गोल** पर भीर"
فوج , غول

(७) "गिरह कबूतर लेत" کبوتر ; گرہ

(८) "नटन सीस **साबित** भई" ثابت

(९) "गनी घनी **सिरताज**" سرتاج

(१०) "यह बसन्त न खरी **गरम**" گرم

(११) "**हद** रद छद छवि देखियत" حد

(१२) "ज्यौं ज्यौं **रुख** रूखौ करति"—رخ

(१३) "लखि बेनी के **दाग**" داغ

(१४) "छतौं नेह **कागद** हिये" کاغذ

(१५) "लसी **तमासे** के दृगन" تماشا

(१६) "पैंरौ कोस **हजार**" ہزار

(१७) "चित के हित **चुगलये**" چغل

(१८) "रसिक सुरसल **खियाल**" خیال

(१९) "राख्यौ हियौ **हमाम**" حمام

(२०) "परचौ **जोर** विपरीत रति" زور

(२१) "**प्याले** ओठ प्रिया वदन" پیالہ

(२२) "परे लाल **बेहाल**" بیحال

(२३) "बचै न बड़ी **सबील** हू" سبیل

(२४) "मनौ मदन छितिपाल कौ छाँह **गीर** छवि देत"
گیر

(२५) "करै गँवारि **सुमार**" شمار

(२६) "सीस **सिलसिलेबार**" سلسلہ

(२७) "उपजी बड़ी बलाय" بلا

(२८) "लोयन बड़ी बलाय" بلا

(२९) "लाज **लगाम** न मान हीं" لگام

(३०) "ये मुख जोर तुरंग लौं" زور

(३१) "लगा लगी लोयन करैं **नाहक** मन बँध जाहिं"
ناحق

(३२) "कौन **गरीब निवाजिबौ**" غریب نواز

(३३) "क्यों न होय **बेहाल**" بیحال

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३४) "नै कोउ हिन **जुदी** करी" جدا
(३५) "अपनी **गरज** निबोलियत" غرض
(३६) "**खूनी** फिरत **खुश्याल**" خوني - هوشحال
(३७) "खरे **अदब** इठलाहटी" ادب
(३८) "औंधाई **सीसी** सुलखि" شيشي
(३९) "ये बदरा **बदराह**" بدراه
(४०) "कीने बदन **नमूद**" نمود
(४१) "**कागद** पर लिखत न बने" كاغذ
(४२) "दीने हू **चशमा** चखन" چشمه
(४३) "नागर नरनि **सिकार**" شكار
(४४) "ये कजरारे कौन पर करत **कजाकी** नैन" قزاقي
(४५) "पायक धाय **हजार**" هزار
(४६) "बिन जिह भौंह **कमान**" كمان
(४७) "मनमथ **नेजा नोक** ही" نيزه - نوك
(४८) "**जरी** कोर गोरे बदन" زري
(४९) "मनौ **गुलूबँद** लाल की" گلوبند
(५०) "उठत घटत दृग **दाग**" داغ
(५१) "किये मनौ वाही **कसरि**" كسر
(५२) "किय **हायल** चित चाय लगि" حائل
(५३) "भूखन **पायंजाद**" پايه اندار
(५४) "अरगट ही **फानूस** सी" فانوس
(५५) "दर्पन के से **मोरचा**" مورچه
(५६) "कीने जतन **हजार**" هزار
(५७) "गहि गहि गरब **गरूर**" غرور
(५८) "**नाजुक** कमला बाल" نازك
(५९) "परी **परी** सी टूटि" پري
(६०) "खेलत फागु **खियाल**" خيال
(६१) "चली चहूँदिसि **राह**" راه
(६२) "जगत **जुराफा** कीन" زرافه
(६३) "**नरम** विभौ की हानि" نرم
(६४) "दिये लोभ **चसमा** चखनि" چشمه
(६५) "**सोरा** जानि कपूर" شوره
(६६) "चढ़ि कत करति **गुमान**" گمان
(६७) "आगे कौन **हवाल**" حوال
(६८) "गई सुबीत **बहार**" بهار
(६९) "**सफर** परेई संग" سفر
(७०) "**बाज** पराये पानि पर" باز
(७१) "**अतर** दिखावत काहि" عطر
(७२) "बहुधन लै **अहसान** कै" احسان
(७३) "फसी **फौज** में बन्द बिच" فوج
(७४) "लखि सब ब्रज **बेहाल**" بيحال
(७५) "यौं दल काढ़े **बलख** तें" بلخ
(७६) "**बाद** मचावत **सोर**" باد ; شور
(७७) "चाहै जाहि **बलाय**" بلا
(७८) "दई दई सु **कबूल**" قبول
(७९) "मोहि तुम्हैं बाढ़ी **बहस**" بحث
(८०) "बिनती बार **हजार**" هزار
(८१) "परचौ रहौं **दरबार**" دربار
(८२) "लखि लाखन की **फौज**" فوج
(८३) "लै लाखन की **मौज**" موج
(८४) "**फते** तिहारे हाथ" فتح
(८५) "हुकुम पाय जय साहि कौ" حكم
(८६) "बाम **तमासे** कर रही" تماشا
(८७) "**रुख** रूखे मिस रोख मुख" رخ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूली हुई कहानी !

लेखक, श्रीयुत सरयू पण्डा, गौड़

"हलो !"

"हाँ, आप कौन साहब हैं? कहाँ से बोल रहे हैं?"

"सेन्ट्रल जेल बक्सर से। मैं हूँ जेलर। साहब हैं?"

"हाँ !"

"कृपाकर फोन पर उन्हें बुलाइए।"

"हाँ, मिस्टर मिश्रा, मैं आ गया। क्या बात है?"

"गुड मार्निङ्ग सर!"

"गुड मार्निङ्ग। हाँ, फ़र्माइए।"

"वह खूनवाली पगली-सी औरत है न, जिस पर अपने बच्चे को मार डालने का केस मैजिस्ट्रेट के यहाँ देखा जा रहा है।"

"हाँ, हाँ, है तो। तब !"

"तब, हुजूर वह बहुत तंग करती है। वह हवालात की असामी है। मैं करूँ तो क्या? आज जब वह सेल से खाने को निकाली गई तब एक क़ैदी का पत्थर चलाकर उसने सिर तोड़ दिया। जमादारिन डाँटने-धमकाने दौड़ी तब इस बेरहमी से उसे दाँत से काट लिया कि बेचारी के खून आ गया। वह बाप-बाप चिल्लाती बेहोश तक हो गई!"

"अच्छा, तो उसे होशियारी से खिलाकर डंडा-बेड़ी दे दीजिए। मैं दूसरे वक़्त ड्यूटी-टाइम पर आ जाऊँगा। समझे? घबराने की बात नहीं! अच्छा, गुडबाई।"

× × ×

जेल के क़ैदी से लेकर वार्डर, जेलर, नायब, हवलदार सबके वार्ड में इस विचित्र खूनी पगली की चर्चा थी। कोई कहता, विलक्षण है भैया! विलक्षण! कोई कहता, अरे! पक्की उस्ताद है मियाँ! खून करके कैसी पागल बन गई है।

"ओफ़! बोलती भी बहुत है ससुरी। कल की रात से हमारी ही ड्यूटी उसके वार्ड में थी। सारी रात न जाने क्या बड़वड़ बेसिर-पैर की बकती रही।

एक रसिक सज्जन बोले—पर है बड़ी सुन्दर। आँख देखो, नाक देखो, बदन देखो, रंग देखो, मुँह देखो, अरे चाल तक देखो, सब एक से एक लूटनेवाली! है यह कोई बड़े घर की परी!

दूसरे बोले—इसमें क्या शक! परी तो है ही। और परी होती कैसी है? मगर, यार है बड़ी ज़ालिम हरामज़ादी। दया का तो इसमें जैसे लवलेश तक नहीं है। आँख नहीं देखते, रक्त की तरह लाल-लाल, हत्यारे की नाईं चढ़ी-चढ़ी!

"अरे, हत्यारिन तो है ही भाई। तिस पर सारी रात का जगना—बड़बड़ाना, आँखें लाल होगईं, चढ़ गईं तो कौन-सा बड़ा अचरज हो गया। साहब आते हैं। न जाने कौन रंग दिखावें।"

"हमें तो शक है, कहीं उन्हें भी—!"

"नहीं, नहीं, डंडा-बेड़ी भरी है।"

"तो बस, इसे ही ख़ैरियत समझो। नहीं तो बाबा, मरता क्या न करता! सोचती होगी, मैं तो दुनिया से जा ही रही हूँ, और दो-चार जनों को संगी बनाये चलूँ।"

× × ×

"सरकार सलाम!" के कुहराम से जेल का कोना-कोना गूँज उठा। "साहब आ गये!" जेल के शून्य, शान्त, नीरस वातावरण में एक व्यग्रता, एक हलचल की लहर-सी दौड़ गई। कहीं चक्कियाँ घरघराने लगीं, कहीं दनादन फावड़े चलने लगे, कहीं सड़कें पीटी जाने लगीं, सारा काम मशीन की भाँति चलने लगा, मानो इस जेल-रूपी फ़ैक्टरी के साहब बहादुर 'फ़ोरमैन' हों। आते ही सारी मशीनें 'स्टार्ट' हो गईं।

वह खूनवाली पगली जेल के ईश्वर—साहब—के सम्मुख पेश की गई। उसे देखते ही साहब बहादुर जो 'बहादुर' कहला कर भी बन्दूक़-किरचों से लैस दर्जनों वार्डरों से घिरे थे, घुड़ककर बोले—क्यों री! तू बदमाशी करती है! वह वह हंटर पड़ेंगे कि ठंडी पड़ जायगी। बदमाश! यह जेल है, बाबा का घर नहीं। मिरचाई घर में डलवा दूँगा। समझी! तू लोगों को मारती क्यों है रे!

पगली अपने ढँग में बोली—मारती न तो क्या करती? उसी ने तो कहा, "मार दे, मार दे, जल्दी मार दे, नहीं तो अनर्थ हो जायगा।" मारती न तो क्या करती? उसका पाप मैं क्यों पोसती? हाँ, हाँ, हमारे इस सीने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले पहले उसी ने आग धधकाई । हाँ जी, उसी ने। क्या भला-सा उसका नाम था ? याद नहीं आता। ठीक तुम्हारी शकल का तो था। वह छोटा था, और मैं भी छोटी। हाँ, तुम ज़रा मोटे हो, वह पतला था। बड़ा तेज़ । बहुत बोलता था; बड़ा चालाक । हमारे बापू उसे बैरिस्टर साहब कहा करते थे। ओह, बड़ा लुभावना था वह। हाँ, हाँ, वह तुम्हारी ही तरह था । उससे छुटपन में हमारी कई बार शादी भी हुई। वह दूल्हा बना, मैं दूल्हन । डंडे के घोड़े पर चढ़कर, केले के पत्ते का मौर पहनकर वह मुझे ब्याहने आया था । पर मैं जवान हो गई, वह मुझे लेने न आया। लेने आया एक मरा-मरा-सा बुड्ढा, जिसका मूंड़ ताजिये की तरह झूल रहा था, जिसके गाल गड्ढे बन चुके थे और खाल बीता बीता भर लटक आई थी। हा! हा! हा! तब जानते हो क्या हुआ? हो! हो! बड़ी मज़ेदार बात । वह कलमुँहा कुल चार दिन में मर गया—दाँत बाकर! उस रोज़ मैं तालियाँ पीट पीट कर खूब हँसी । खूब—खूब—खूब—भरपेट! तब मैंने उसे ढूंढवाया। कह गया था, जल्दी आने को, पर अब तक न आया। तुम उसे जानते हो? नहीं। अरे! ठीक तुम्हारी ही तरह तो था। बहुत हँसता था—बात बात पर! मिनट मिनट पर! हाँ जी, मोती जैसे उसके दाँत थे, पान जैसा होंठ—

पगली कहती गई, साहब न जाने क्यों चुप आँखें फाड़ फाड़ कर उसे देखते उसकी बातें सुनते गये।

"तब! तब जानते हो क्या हुआ? नहीं। बड़ा तमाशा। कितने लोग मेरे निकट—! हाँ ! समझे ? नहीं। मेरा प्रेम पाने को आने लगे। पर मुझे एक जँचा । जानते हो क्यों? वह ठीक उसी की तरह था । पर हाँ जी, उस दाढ़ीजार का दिल उसके जैसा न था। उसी ने कहा, मार दे इसे । तब मैंने उसे मार दिया । तुम उसको—अरे उसको, मेरे पहलेवाले दूल्हे को नहीं जानते । वह तुम्हारी ही तरह था जी! बड़ा अच्छा । बड़ा सुन्दर। तुम साहब होकर भी अपराधी को नहीं जानते! बड़ा अचरज !! ही ! ही ! ही !

साहब बहादुर एकदम सुस्त व ढीले-से पड़ गये । वे गिरते हुए स्वर में जेलर की ओर देखते बोले—अफ़सोस! बड़ी अभागी औरत है यह ! अभी इसका दिमाग़ उतना तो खराब नहीं हुआ है, मगर हाँ ख़राबी के रास्ते पर चल चुका है। हाँ, इस पर क्या चार्ज है? अपने बच्चे को मार डालने का न ?

जेलर सविनय बोला—जी हाँ।

साहब—अच्छा, यह अपना अपराध कोर्ट में स्वीकार कर चुकी है ?

जेलर—पता नहीं, शायद अभी कोर्ट में हाज़िर हुई या नहीं अथवा इसकी पेशी हुई या नहीं । कुछ बताती भी तो नहीं । इतनी बात बकबक बोल गई। हुज़ूर ने कुछ समझा? मुझे तो खाक-पत्थर कुछ भी समझ में न आया। कहाँ डंडे के घोड़े पर चढ़ा दूल्हा, फिर बूढ़ा, फिर वह—!!! जानें वह कौन इसका 'वह' है । हमसे भी बार बार यह यही पूछती है कि उसे तुम जानते हो, नहीं जानते, तुम्हारी ही तरह तो है वह ।

साहब ज़रा विषादभरी स्मित मुस्की होठों पर लाकर बोले—हाँ, पागल ही तो है । इसकी बातों का क्या ठौर-ठिकाना ? वे फिर ज़रा गम्भीर होकर बोले—'इसकी डंडा-बेड़ी आप खुलवा दें । यह हवालाती असामी है। इस पर ज़ोर-ज़ुल्म न होना चाहिए। जहाँ तक हो सके इसे आराम से रखिए ।'

"जो हुक्म हुज़ूर" कहकर जेलर चुप हो रहे।

पर साहब बड़े खिन्न से, चिन्तित-से, गम्भीर-से होकर वहीं से आफ़िस रूम को लौट गये। अन्य वार्डों का उन्होंने उस दिन निरीक्षण नहीं किया।

× × ×

आफ़िस का घंटा एक बजा चुका है। जाड़े की लम्बी डरावनी रात भाँय भाँय कर रही थी। बाहर उपवन में कभी-कभी शृगाल-शृगाली फेंकर उठती थी । शयन-गृह के प्रवेशद्वार पर कम्बल पर अगले दोनों पैर फैलाये, उस पर मूंड़ धरे टामी ऊँघ रहा था। कभी कभी "उँ-उँ ऊँ" कर तथा कभी भूँक कर वह अपनी जागरूकता तथा चौकसी का पता दे रहा था। साहब शाम से ही पलँग पर पड़े बड़ी बेचैनी से करवटें बदल रहे थे। आज उन्होंने खाना भी नहीं खाया था। आज वे बहुत अशान्त, बहुत व्यग्र थे । कभी कभी उनकी आँखें भर आतीं तो कभी धीरे और कभी शीघ्र शीघ्र उनके होंठ हिलने लगते—हा ! हतभागिनी शारदा! पागल ! खूनी! सन्तान की जान लेनेवाली चाण्डालिनी माँ! ओफ़ !! पिनल कोड की सबसे भयानक दफ़ा—३०२ की भावी अपराधिनी! फाँसी—फाँसी—कहाँ ? कहाँ? हमारे ही जेल में—हमारी ही उपस्थिति में—! हा रे—समय । ओफ़—हम कुछ नहीं कर सकते। काली लिबास से आपाद-मस्तक ढँकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शारदा फाँसी के फंदे में गला डालेगी। एक—दो—तीन—! शारदा समाप्त— उफ़ !

विक्षिप्त की भाँति साहब उठ बैठे। माघ-पूस की बर्फ़वाली रात में भी साहब पलँग के पास रक्खी झारी से लेकर दो गिलास पानी गट्गट् खींच गये—ऐसा ही भयानक अग्निकाण्ड उनके हृदय में मचा हुआ था ।

उफ़! बड़ी गरमी है !—गिलास रखते हुए साहब बोले। कुछ क्षण चुप रहे, फिर अपने सामने दीवार से टँगे मार्कण्डेय को अभय देते हुए भगवान् शंकर के चित्र की ओर एकटक ताकते हुए बोले—शारदा का क्या होगा भगवान् भूतेश ? क्या वह क्षमा की पात्री नहीं? ओफ़! फिर उनकी आँखों से आँसुओं की लड़ी टूट चली।

साहब बोले—आह ! नारी के निर्मल स्नेह, पुनीत हृदय-दान की यह महान् तन्मयता है, जो वह अपने डंडे के घोड़े पर चढ़ने दूल्हेवाले को अब तक नहीं भूल सकी है। हर एक की सूरत में यह अभागिनी अपने 'उसी' की मूर्ति आज भी—इस विक्षिप्त दशा में भी—देख रही है। यह है नारी का पावन प्रेम ! और उसका 'वह' अभागा—नहीं, नहीं, निठुर, नहीं, चाण्डाल, नारकी, कृतघ्न उसे स्वप्न की बात-सा भूल कर उसके कोमल हाथ-पैरों में जिसे वह लक्षातिलक्ष बार चूम-चाट कर परम आनन्द प्राप्त कर चुका है, डंडा-बेड़ी भरवा रहा है—बदमाश बता रहा है; मिर्चधर में ठुँसवाने की धमकी दे रहा है। हद हो गई कृतघ्नता की। राक्षसी-वृत्ति की पराकाष्ठा हो गई! ओह!

हाँ, मैंने उससे ज़रूर कहा था, "मैं जल्द आऊँगा ।" यह युगों की बात उसे कल की बात-सी याद है! ओह। कितना अगाध प्रेम है। शुरू शुरू में मैंने इस निर्दोष, नारी-हृदय में प्रणय-चित्र अंकित किया था। वह सच कहती है। "तुम साहब होकर भी अपराधी को नहीं जानते?" जानता हूँ शारदा! हाय! तुम्हारा वह अपराधी, तुम्हें फाँसी के तख़्तों तक पहुँचानेवाला पतित अपराधी, इस जेल का यही अभागा साहब है, जो पलँग पर आप सोया हुआ तुम्हें 'सेल' में डंडा-बेड़ी डलवा कर ताँत पर झुलाने को तैयार है। ओह! मानवता के संग ऐसी घृणित प्रवंचना! शिव-शिव !!

साहब कहते गये—हाँ, आज से १०-१५ बरस पहले की बात है। वह सात-आठ साल की रही होगी और मैं दस-ग्यारह का। उन दिनों मेरे नगर में प्लेग का बड़ा प्रचंड प्रकोप था। मैं मामा जी के ग्राम में देहात भेज दिया गया था। वहीं इससे भेंट हुई थी। ग्राम की धूल भरी गलियों में वह बालू का महल बनाये खेल रही थी। मेरा डंडे का पागल घोड़ा बहका और उस महल को तोड़ता-फोड़ता रौंदता निकल गया। वह चिल्ला कर रो पड़ी—ऊँ-ऊँ-ऊँ, हमारा घर तोड़ दिया। जाती हूँ तुम्हारे मामा जी के पास! अपराध की गुरुता और भयंकरता तब मेरी समझ में आई। घोड़े को वहीं पटक एक डग में उसके पास पहुँचा, और उसे पुचकारता, पीठ सहलाता बोला—भाई, भूल हो गई। जाने दो। लो इसे चखो, बरफ़ी है। आओ तुम्हारा घर बना दूँ।

उस 'भूली हुई कहानी' के सम्बन्ध में साहब कहते गये—हाँ, तब मैंने उसका घर उससे भी सुन्दर बना दिया। वह बहुत खुश हुई, तालियाँ पीट-पीट कर नाचने लगी। फिर वह बड़े प्रेम से मेरे कन्धे को पकड़ कर बोली—सुनो, ना, तुम दूल्हा बनोगे। बन जाओ, बन जाओ। जाओ अपने उसी घोड़े पर चढ़कर आओ। तब तक मैं अपनी सखियों को बुला लाती हूँ। जाओ ना, खड़े क्या हो ?—मैं उसकी यह प्रेमभरी आज्ञा न टाल सका। दूल्हा बन गया।

ओफ़ । उस अभागी गली में मेरा, उसका रोज़ ब्याह रचता रहा। रोज़ फूल-पत्तों का ज्योनार हुआ किया। छुटपन की यह बाल-क्रीड़ा उस हतभागिनी बालिका के निर्मल हृत्-पट्ट पर अनजाने में लिखकर शिला-लेख हो गई। पूरे सात-आठ साल पर मामा के गाँव फिर आया। अब मैं एक प्रकार से युवा था। और वह—वह थी लज्जा-शीला, कुल-कन्या। शरीर भर चुका था। सौंदर्य निखर आया था। इधर-उधर देख, बोली—बहुत दिन पर आये! किधर रास्ता भूल गये?

मैं उस ग्रामीण बालिका के तरल स्नेह-सागर में डुबकियाँ खाने लगा, डूबता डूबता जैसे बोला—हाँ, इस बार लौटने में देर हो गई है। छः सात साल पर लौटा हूँ। क्या करता, पढ़ाई का झंझट है। हाँ, तुम तो अच्छी हो। वह मुँह फेरकर अनमनी-सी होकर बोली—हूँ! अच्छी ही हूँ। तुम सात पर नहीं, आठ साल पर लौटे हो, मैंने बराबर दिन गिना किया है।

हाँ, तुम दिन गिनती रही !—साश्चर्य भौंवें सिकोड़ कर मैं बोला। यह कहकर मैं अपने काम से चला गया। उसी दिन रात में मेरे पेट में बड़ी भयंकर पीड़ा उत्पन्न हो गई। मामी-नानी, सभी हाय हाय करने लगीं। पड़ोस में ही उसका भी घर था। अपनी मा के साथ वह भी दौड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आई। मैं उस समय बहुत बेचैन था। अँतड़ियाँ ताँत की तरह ऐंठ रही थीं। कराहते कराहते होंठ काले पड़ गये थे। आँखों के डोरे निकल आये थे। ज़रा भी चैन नहीं, तनिक भी शान्ति नहीं। मेरी दशा देखकर सभी घबरा गये। किसी ने कहा—अगर जामुन का सिरका मिलता तो क्षणों में सब कष्ट भाग जाता।

कहाँ मिलेगा?—मामी बोल पड़ी।

"मिलेगा गाँव के मालिक के घर। पर रात का समय है, सो भी, बारह एक का, और जाड़े की रात। मालिक लोगों को जगाना ज़रा कठिन है।"

"मैं अभी लाती हूँ।" वह झट उठकर खड़ी हो गई।

उस सन्-सन् बोलती हुई निस्तब्ध रजनी में वह दौड़ती दौड़ती ग्राम-अधिपति के घर पर गई और उन्हें जगा कर सिरका माँग लाई। मामी ने मुझे सिरका पिलाया और मैं मूकवत् उसे देखता सिरका पी गया। सुबह जब आँख खुली, देखा मामी से वह मेरा हाल पूछ रही है। यह है नारी का स्तुत्य स्नेह और पूजनीय सहानुभूति। जी में आया इस तपोमूर्ति के चरणों पर लोट जाऊँ। मुझे प्रसन्न देखकर चली गई। दिन में जब उसके यहाँ गया उसने पूछा—कैसे हो?

अच्छा हूँ!—कहकर मैं ज़रा मुस्कराता हुआ उसकी ओर बढ़ा। वह मुझे समझ चुकी थी। कपड़े समेट कर वह दीवार से ही लगी खड़ी रही। मैं उसके कंधे पर हाथ रख कर धीरे से बोला—यह ऋण मुझसे कैसे किस जन्म में चुकेगा?

वह निर्वाक् खड़ी रही। मैं और बढ़ा, उसकी ठुड्डी को छूकर कहा—न बताओगी? इस छोटे-से सीने में किस देवता का दिल छिपा बैठा है। मुझे दिखलाओ, मैं उसकी पूजा करूँ। वह हँसती हुई घर के भीतर चली गई। मैं भी मामी के घर लौट आया।

सातवें दिन मैं पिता जी का तार लिये इसके पास पहुँचा, कहा—मैं तो जा रहा हूँ, देखो, पिता जी ने खीझ कर 'तार' तक दे डाला है। मेरा कालेज खुल गया है। विषादभरे कातर-नेत्रों से उसने मेरे 'तार' की ओर देखा और चुप होकर रह गई, मानो वह आघात उसके मर्म-मर्म के हेतु ऐसा असह्य था कि वह उफ़ तक न कर सकी, एक दीवार में मुर्दे की तरह पड़ गई। कुछ क्षण मैं भी मौन रहा, फिर साहस कर बोला—फिर आऊँगा!

परन्तु अब वह आघात उसका कोमल कलेजा तोड़ कर आँखों की राह खून उलीच रहा था। मोती के दानों जैसी बड़ी बड़ी अश्रुबूँद उसके नेत्रों से निकल कर कपोलों को भिगोती हुई टपटप गिरने लगीं; मैं काँप गया।

हरे, ईश्वर!! निकट जाकर उन अबाध्य अश्रु-बूँदों को अपने रूमाल के तुच्छ वस्त्र-खण्ड से विमोचन का विफल-प्रयास करता हुआ मैं बोला—रोती हो? रोओ मत! मैं बहुत घबरा रहा हूँ। तुम्हें मेरी सौगन्ध! मैं जल्द ही आऊँगा।

चट-पट आँसू पोंछती हुई वह बोली—तुम क्यों घबरा रहे हो? शहर में मुझसे ज़्यादा चटकीली, चमकीली चीज़ तुम्हें मिलेगी। रोना-घबराना तो मुझे है! मैं कहाँ तुम-सा पाऊँगी?

ओफ़! साहब व्याकुल होकर पलँग पर उठ बैठे; उसकी वह भविष्य-वाणी अक्षरशः सत्य हुई। मैं शहर की चमकीली चीज़ों में सचमुच भूल गया—भूल गया। हरे भगवान्!

उसे किस तरह फाँसी के फन्दे से बचाऊँ। उसने अपने बच्चे को मार डाला है! क्यों? वह हिन्दू-समाज का पाप, ब्राह्मणी-विधवा का बच्चा था। ठीक ही तो वह कहती है, पराया पाप मैं क्यों पोसती। समाज के पाप को समाज के मत्थे उसने डाल दिया। उसमें उसका क्या दोष? उसने समाज-मर्यादा की रक्षा के लिए ही तो अपने बच्चे का वध किया। और उसके 'उस' हत्यारे ने भी तो जिसने उसके उदर में यह पाप संचय किया था, कहा था—मार दे, इसे जल्द मार दे, नहीं तो अनर्थ हो जायगा! फिर भी हत्यारी यह बताई गई। हाय रे, समाज! हाय रे क़ानून! मगर अब यह इस जालिम क़ानून के शिकंजे से छूटे कैसे?

पाँच! पाँच बज गया—सुबह! और मैं बैठा सोचता ही रहा। सारी रात इसी तरह बिता दी! अँगड़ाइयाँ लेते हुए साहब उठे। नौकर ने कपड़े उतारे। साहब पाखाने गये। अभी वे निपट कर दाँतून भी न कर पाये थे कि फोन की घंटी टन्टना उठी, वे टूथ-ब्रुश लिये ही फोन पर गये।

"हाँ, कहिए, कौन हैं, आप?"

"हुज़ूर मैं मिश्रा, जेलर।"

"हाँ, कहिए मिस्टर मिश्रा! ख़ैरियत तो है?

"हुज़ूर, ख़ैरियत नहीं है। बहुत बड़ी दुर्घटना हो गई। वह खूनवाली पगली—"

"हाँ, हाँ, क्या पगली—!" साहब घबराये से बीच में ही बोल उठे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ, वही पगली। हुज़ूर के कहे मुताबिक़ मैंने उसकी डंडा-बेड़ी उतरवा दी थी। कुछ ख़ास सुविधा भी उसे दे दी थी। खाने-पीने की, रहने-वहने की। आज सुबह जब वह शौच के लिए 'सेल' से बाहर निकाली गई तब शौचालय की ओर जाने के बदले दूसरी ओर मुड़ी। वार्डर ने रोका तब तन गई। हुज़ूर की हिदायत के ख़याल से उस पर वह कुछ ज़ोर न कर सका, पगली के संग हो लिया। फिर वह जेल-बग़ान के कुएँ की ओर बड़े वेग से दौड़ी। चिल्लाते हुए वार्डर ने उसका पीछा किया, मगर पगली ने ईंट का एक टुकड़ा उठाकर साध कर वार्डर की ओर ऐसा फेंका कि वार्डर बेचारे की ठीक नाक पर जा बैठा और वह वहीं आह करता बेहोश हो गया। और जब तक कि और लोग जुटें, पगली दौड़ती हुई कुएँ में कूद पड़ी। "पगली" (घंटी) हो गई है। कलक्टर साहब को 'फोन' करने के बाद हुज़ूर को कर रहा हूँ। पगली कुएँ से निकाल ली गई है, पर उसके बचने की आशा नहीं। काफ़ी अधिक पानी पी गई है। वार्डर की भी हालत नाज़ुक है। नाक बुरी तरह फट गई है।

ब्रुश-पाउडर वहीं पटक कर साहब 'ड्रेसिंग-रूम' को दौड़े। जल्दी जल्दी कपड़े पहन कार पर सवार हो ज़ेल-ख़ाने को भागे।

जेल-बग़ान के कुएँ की पक्की जगत पर पगली का मरणासन्न, चेतनाहीन शरीर पड़ा था। पेट मसक की तरह फूल गया था, और बड़ी ही मन्द गति से वह उठ-दब रहा था। पगली धीरे धीरे इस असार और स्वार्थी संसार से रिश्ता तोड़ रही थी, जहाँ इस अभागिन को केवल प्रवंचना और प्रतारणा ही मिली थी। साहब उसके पास जाकर हतज्ञान-से हो अपनी भूली हुई कहानी का सजीव स्वरूप देख रहे थे।

साहब की आँखें झरने की तरह बरस पड़ीं। वे थकित-से, विजित-से, हो उठे और अपना टोप उतारकर काँख में रखते हुए आँसू पोंछते हुए मिस्टर मिश्रा से बोले—फ़िनिश!

सम्बोधन

लेखक, श्रीयुत विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक' विद्यावाचस्पति

निष्ठुर जग के निर्मम मन रे!
उर-उपवन है कुसुमित पुलकित,
वरदान मिला, अभिमत अभिमित;
प्रिय चातक में, प्रिय में चातक लय होगा घिर आये घन रे!
निष्ठुर जग के निर्मम मन रे!!

ले देख, प्रणय की मृदु-वेला,
मृदु-मृदु हृदयों का मधु-मेला;
प्रिय प्रियतम के जो बीच रहा उठता है वह अवगुण्ठन रे!
निष्ठुर जग के निर्मम मन रे!

अभिशाप न एक फला तेरा,
जीवन-प्रभात है यह मेरा;
प्राणों में प्रियतम मुसकाता, तू देख इसे पाहन बन रे!
निष्ठुर जग के निर्मम मन रे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाकिस्तान की पार्श्वभूमि

लेखक, डाक्टर एस० सी० लेले, बी० ए०, एम० बी०

[मुस्लिम लीग की पाकिस्तान-योजना की इस समय देश में काफ़ी चर्चा है। हम सरस्वती के पिछले अंकों में इस विषय पर दो लेख छाप चुके हैं। इस लेख में विद्वान् लेखक ने यह बताया है कि देश के मुसलमान नेताओं में यह अराष्ट्रीय भावना क्यों और कैसे ज़ोर पकड़ रही है]

जगत् का राजकीय नक़्शा यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो यह ज्ञात होगा कि आज की अखिल ज्ञात दुनिया का अधिकांश श्वेतवर्ण की जातियों के हाथ में है। संसार का छोटा-सा भाग——केवल साठ लाख वर्ग मील का प्रदेश—उन लोगों की अधीनता में नहीं है। इस स्वतन्त्र भाग का दो तिहाई भाग जापानियों तथा चीनियों के अधिकार में है, शेष बीस लाख वर्ग मील के विभाग में अधिकतर मुसलमानों के स्वतन्त्र देश हैं। तुर्की और ईरान ये दो इस्लामी देश पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। ईराक, सीरिया इत्यादि अन्य मुस्लिम देश स्वतन्त्रता के लिए लड़ ही नहीं रहे हैं, किन्तु स्वतन्त्रता का अधिकांश उनके हाथ में आ चुका है। सूडान, अलजीरिया, ट्रिपोली इन देशों में ग़ैरों का अधिराज्य है; परन्तु इस अधिराज्य के विरुद्ध खुला प्रचार, सशस्त्र प्रतिकार एवं विद्रोह जारी था, और वह आज-कल बन्द हो सो बात नहीं है। पैलेस्टाइन में आज-कल भी विद्रोह की ज्वाला धधक रही है। ब्रिटिश साम्राज्य के फन्दे में फँसा हुआ ईजिप्ट पूर्ण स्वतन्त्रता के समीप जा पहुँचा है। स्पेन और फ़्रांस से लड़ते-लड़ते थका हुआ हतोत्साह मोरक्को फिर एक बार विप्लव की तैयारी कर रहा है। इस प्रकार इस्लामी देश भविष्य के विद्रोह की तैयारी सावधानी एवं चतुरता से कर रहे हैं। उत्तर, मध्य तथा दक्षिण अफ़्रीका, पैलेस्टाइन, सीरिया, ईराक, अरब, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, भारत, चीन, जापान व समीपस्थ द्वीप-समूह में फैला हुआ मुस्लिम-समाज भविष्य के 'जिहाद' की तैयारी तत्परता एवं दृढ़ता से कर रहा है। इस प्रचंड तैयारी का ध्येय है विश्व-विजय। इस भविष्य के भीषण जिहाद का निश्चल प्रमाण निम्नलिखित घोषणा में मिलता है। यह घोषणा एक कट्टर तथा शिक्षा-विहीन मुसलमान ने नहीं की है, बल्कि अँगरेज़ी के एक विद्वान् व्यक्ति ने की है। इस व्यक्ति का नाम है इस्मत अब्दुल्ला। अब्दुल्ला साहब कहते हैं——

"हम एक जिहाद के लिए सामान एकत्र कर रहे हैं। यह जिहाद, यह पैन-इस्लाम, यह पवित्र युद्ध तैमूर के आक्रमणवाले दिनों की याद दिलाता है। पर इस बार का तैमूरलंग बर्छियों और भालों का इस्तेमाल न करके बन्दूकों और कारतूसों से काम लेगा।" (सीन थ्रू मोहम्मडन आइज़ से।)

जिहाद की यह तैयारी स्वर्ग तथा ईश्वर की प्राप्ति के लिए नहीं, वरन् विश्व-विजय के लिए, इस्लामी अधिराज्य के लिए, इस्लामीधर्म दुनिया में फैलाने के लिए है। इस ध्येय की सिद्धि के लिए सारा मुस्लिमसमाज संगठित हो रहा है। इस्लाम-जगत् के कोने-कोने में इस्लाम-संगठन का, पैन-इस्लाम का प्रचार ज़ोर पकड़ रहा है। इस संगठन-द्वारा मिस्र से लेकर मैनिला (फ़िलीपाइन्स का एक प्रमुख नगर) तक एक मज़बूत भित्ति तैयार करने के प्रचंड कार्य में मुस्लिम जनता निमग्न है। लंडन जैसे दुनिया के बड़े शहर से लेकर छोटे-से-छोटे गाँव तक इस्लाम के संगठन के बीज बोये गये हैं। अफ़्रीका में तो इस्लाम के संगठन का कार्य परिपूर्ण हो चुका है। ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और भारत में भी बहुत-सा कार्य हो चुका है। शेष संगठन-कार्य के पूर्ण होते ही या किसी सुवर्ण-अवसर के प्राप्त होते ही कट्टर मुस्लिम समाज 'जिहाद' का झंडा लेकर मैदान में कूद पड़ेगा और फिर सर्वत्र तैमूर का सत्यानाशी राज्य तथा भूतकालीन हत्या तथा अग्नि के काण्ड फिर आरम्भ हो जायँगे।

इस भीषण काण्ड की तैयारी अफ़्रीका में बहुत समय से हो रही है। अफ़्रीका में विशेषतः उत्तर व मध्य अफ़्रीका में ऐसा एक भी गाँव क़स्बा, शहर तथा छावनी नहीं है जहाँ इस संगठन का सावधान सैनिक न पहुँचा हो। फ़क़ीर, फेरीवाले, व्यापारी और किसान आदि के रूप में इस्लाम का कार्य-तत्पर सिपाही जगह-जगह नज़र आता है। यह इस्लाम का सैनिक किसी स्थान पर कभी अकेला नहीं जाता। वह अपने साथ अपना धर्म, कदापि न बदलनेवाली रेगिस्तानी कट्टर संस्कृति तथा आक्रमक संगठन——ये तीन मशहूर चीज़ें ले जाता है, और जहाँ जाता है वहाँ इनका बीजारोपण भी उत्साह के साथ करता रहता है। प्रत्येक मुस्लिम चाहे ग़रीब हो या अमीर, किसी भी श्रेणी का हो, जमन्तः धर्म-प्रचारक होता है। उसकी इस जन्मजात प्रचारक मनोवृत्ति का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

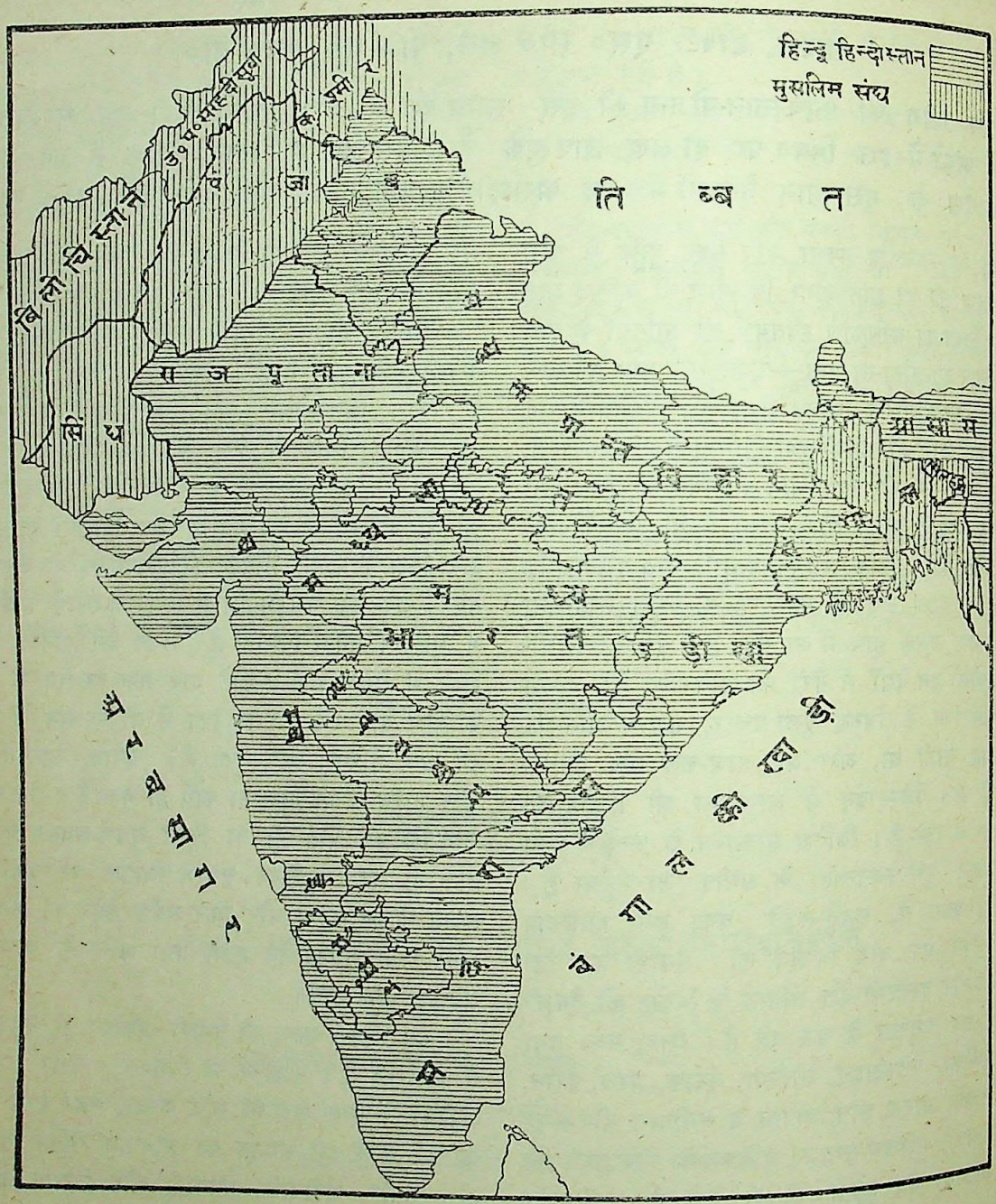

[इस मानचित्र को समझने के लिए मार्च १९४० की सरस्वती में प्रकाशित पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी का 'हिन्दूसंघ और मुस्लिमसंघ' शीर्षक लेख देखिए]

वर्णन एक जगन्मान्य लेखक इस प्रकार करता है—"प्रत्येक मुसलमान जन्मतः धर्म-प्रचारक होता है और वह स्वभावतः अपने मुस्लिम पड़ोसियों में अपने धर्म का प्रचार करता रहता है। इस्लाम-धर्म को अंगीकार कर लेनेवाला चाहे पहले हब्शी रहा हो या चीनी, वह चाहे हिन्दुस्तानी रहा हो या योरप का निवासी, पर मुसलमान होते ही उसके साथ पुत्र का-सा व्यवहार किया जाने लगता है। यहाँ तक कि उसके साथ अपने बेटे-बेटियों के सम्बन्ध करने में भी किसी को हिचक नहीं होती।" (टाउन्सेंड की 'एशिया एण्ड योरप' से)

यह इस्लामियों का एक पूर्ण तथा सत्य शब्द-चित्र है। इसका प्रत्येक अक्षर सत्यान्वित है। इस्लामियों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

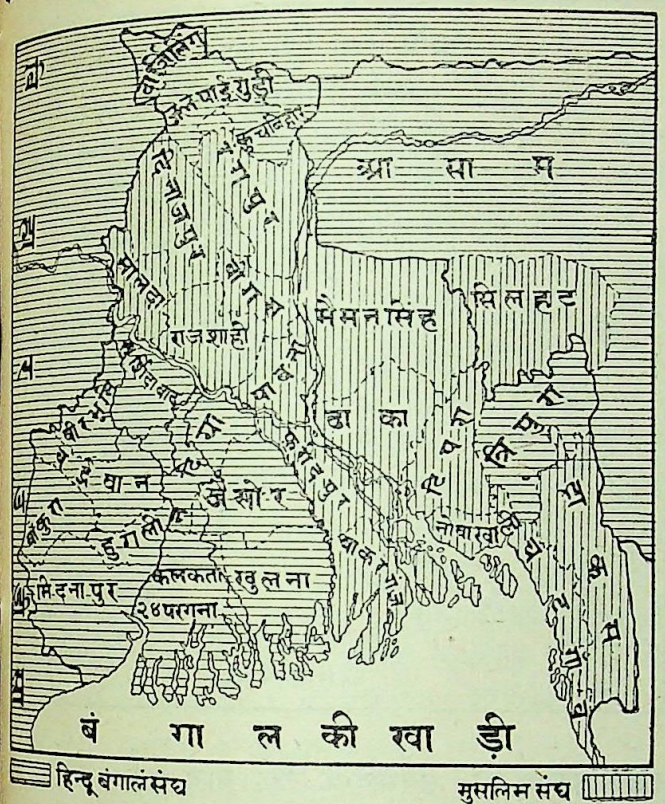

[इस मानचित्र को समझने के लिए मार्च १९४० की सरस्वती में प्रकाशित पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी का 'हिन्दूसंघ और मुस्लिमसंघ' लेख पढ़िए]

हर एक संगठन इस खुले सत्य की पूर्ति करने में समर्थ है। संकरता (वर्णसंकरता) नाम की चीज़ इस्लाम को मंजूर है। इस्लाम के शब्द-कोष में वह है ही नहीं। अर्थात् वर्णसंकर घातक है, यह बात मुसलमान-समाज नहीं मानता। अतः मुसलमान किसी भी स्त्री के साथ विवाह कर सकता है और इसी कारण इस्लाम का प्रचार अधिक हुआ है। अन्य धर्मीय या पन्थीय, सुसंस्कृत या असंस्कृत, नागरिक या जंगली कोई भी हो, उसे ग्रहण करने का इस्लाम का कौशल अद्वितीय तथा प्रभावशाली है। सर्वसाधारण मुसलमान-समाज में सांस्कृतिक भेदाभेद का मूलतः अभाव है, अतः उसका सामाजिक संगठन द्रुत गति से होता है और उसका मध्ययुगीन कट्टर धर्म उस संगठन को आक्रमणकारी बनाता है। इस्लाम के संख्याबल के प्रति-दिन वृद्धिगत होने का मुख्य कारण यही उसका आक्रमण-शीलत्व है। अपना संख्याबल बढ़ाकर उसके द्वारा अर्थ-जगत् का स्वामित्व प्राप्त करने के उद्योग में इस्लामी जगत् बहुत क्रमशः से संलग्न है।

आवश्यक संख्या-बल बढ़ाने के लिए इस्लाम ने अनेक मार्गों तथा युक्तियों का अवलम्बन किया है तथा आज भी करता है। अन्य धर्मियों को इस्लाम की दीक्षा देना ही संख्या-बल बढ़ाने का उसका सर्वसुलभ उपाय है। धर्म-प्रसार के बारे में आर्टिन पाशा महोदय ने निम्नलिखित स्वीकृति दी है—"बहाल-उल-गज़ल सूबे के वान ज़िले में दासता के बजाय विवाह-सम्बन्ध के द्वारा यह प्रचार अधिक सफलता के साथ हो रहा है। सूडान के इलाक़े में मुस्लिम प्रचार फ़ौजों के रूप में किया जाता है, काली बटेलियन में जो मूर्तिपूजक हब्शी अपना नाम लिखाता है उसका पहले खतना किया जाता है और फिर उसे इस्लाम की दीक्षा दी जाती है। (मार गोलिथ कृत 'मोहम्मदनिज़्म' से)

इस प्रकार तथा अनेक प्रकार से अफ़्रीका में व अन्यत्र इस्लाम का प्रसार हो रहा है। इन सब आक्रमक उद्योगों को स्फूर्ति मिलती है 'हज' से। हज शक्ति तथा स्फूर्ति का केन्द्र है। हज अर्थात् मक्का की यात्रा की अत्यधिक लालसा प्रत्येक मुसलमान के हृदय में सदैव जाग्रत रहती है। जगत् के कोने-कोने से नैष्ठिक तथा कट्टर मुसलमान प्रतिवर्ष हज़ारों की संख्या में मक्का जाते हैं। अकेले जावा-द्वीप से आज-कल पचास हज़ार यात्री मक्का जाते हैं। सन् १९२० में यह संख्या केवल पाँच हज़ार थी। सन् १९२५ में यह संख्या पचीस हज़ार के ऊपर जा पहुँची और सन् १९३९ में यात्री-संख्या चालीस हज़ार हो गई थी। आज-कल पचास हज़ार के ऊपर जा पहुँची है। प्रतिवर्ष शुक्लेन्दुवत् वृद्धिगत होनेवाली केवल जावा-निवासियों की यात्री-संख्या से पता चल जाता है कि कितना प्रचंड समाज प्रतिवर्ष इस्लाम के जन्म-स्थान में एकत्र होता होगा।

'हज' एक प्रकार की पैन-इस्लामिक कांग्रेस है। वह उसका सत्य-स्वरूप है। यह कांग्रेस मुस्लिम समाज को धर्म-कार्य की स्फूर्ति देती है, स्फूर्ति के साथ-साथ इसके द्वारा इस्लाम-संगठन का महत्त्व प्रत्येक नैष्ठिक व कट्टर मुस्लिम के हृदय पर प्रभावित करने की चेष्टा भी की जाती है। इस चेष्टा-द्वारा इस्लाम के आक्रमक का ताज़ा खून इस्लाम-जगत् की नस-नस में भरा जाता है। 'हज' में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं पैन-इस्लामिक कांग्रेस में इस्लाम-संगठन-कार्य-प्रणाली की चर्चा होती है; कार्य-पद्धति का परीक्षण किया जाता है। संगठन-कार्य-कर्ताओं का एक विशेष सम्मेलन मक्का में होता है। इस सम्मेलन में सम्भवनीय विरोध तथा कार्य में आनेवाली कठिनाइयों का परीक्षण किया जाता है तथा विरोध व कठिनाइयों को दूर करने के लिए भगीरथ-प्रयत्न किये जाते हैं; नये कार्य व नये कार्य-क्षेत्र की रूपरेखा कार्य-कर्ताओं के इस सम्मेलन-द्वारा निश्चित की जाती है। पैन-इस्लाम के अन्तस्थ-हेतु इस्लामी अधिराज्य की खुली चर्चा की जाती है और उसकी स्पष्ट एवं सम्पूर्ण कल्पना मक्का की पवित्र भूमि पर एकत्र हुए निष्ठावान् तथा कट्टर यात्रियों को, इस्लाम के एकनिष्ठ सेवकों को दी जाती है। अधिराज्य प्रलोभन से काफ़िरों को क़त्ल कर ऐहिक तथा पारलौकिक मोक्षप्राप्त्यर्थ प्रत्येक महमदीय अपने नियुक्त कार्य पर चौगुने उत्साह से डट जाता है और कार्यसिद्धि के लिए अविश्रान्त परिश्रम करता है। इस्लाम का जाग्रत् विराट् पुरुष बद्धपरिकर होकर आगामी धर्म-युद्ध के लिए, जिहाद के लिए, खड़ा हुआ है।

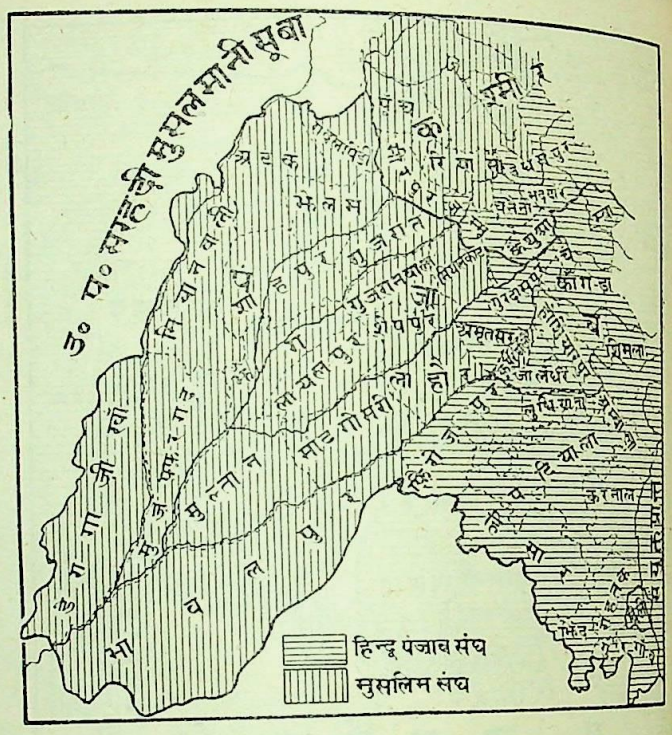

[इस मानचित्र को समझने के लिए मार्च १९४० की सरस्वती में प्रकाशित पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी का 'हिन्दूसंघ और मुस्लिमसंघ' लेख पढ़िए]

अफ़्रीका तथा एशिया में इस्लाम-प्रसार का कार्य करनेवाली सबसे पुरानी संस्था 'कदारिया' है। अलजीरिया में महत्त्वपूर्ण कार्य करनेवाली संस्था का नाम 'शेखिया' है। अलजीरिया में इस संस्था की शाखायें सर्वत्र स्थापित हो चुकी हैं। इस्लाम-प्रचार तथा इस्लामी अधि-राज्य की पार्श्वभूमि बनानेवाली तीसरी संस्था का नाम 'वाकादिया' है। मोरक्को, लैंगास, टिंबकटू, सेनिगाल आदि देशों में इस संस्था का जाल फैला हुआ है। सेनिगाल-लैंगास के दो हज़ार मील लम्बे समुद्री किनारे तथा उसके समीप के प्रदेश में ऐसा कोई भी गाँव तथा शहर नहीं होगा, जिसमें मौलवी तथा मस्जिद का अभाव हो।

'रहमानिया,' 'फुल्ला,' 'मदानिया' तथा 'तिजानिया' नाम की संस्थाओं के द्वारा मध्य, दक्षिण व पूर्व अफ़्रीका में इस्लाम-प्रसार तथा इस्लाम-संगठन का कार्य हो रहा है। इन चारों संस्थाओं में रहमानिया का कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अलजीरिया तथा उसके समीपस्थ प्रदेश में इस संस्था के ७७ आश्रम—इस्लाम-प्रचारक तैयार करने की पाठशालायें—हैं। इन पाठशालाओं के द्वारा उपयुक्त शिक्षा देकर प्रचारक तैयार किये जाते हैं तथा चीन जैसे सुदूर देशों तक में नित्य भेजे जाते हैं। इन प्रचारकों के परिश्रम के कारण पैन-इस्लाम का प्रचार व संगठन चीन, जापान व पूर्वस्थ द्वीप-समूह में प्रभावशाली रूप से हो रहा है। चीन में पैन-इस्लाम का बीज प्रथमतः रहमानिया के प्रचारकों, कैरों के नव-युवकों तथा रूस से भागकर चीन में गये हुए मुसल-मानों के द्वारा बोया गया। आजकल केवल पेकिंग शहर में ४०–५० मस्जिदें हैं, जिनमें अरबी-भाषा, कुरान, इस्लामी संस्कृति तथा जिहाद के महत्त्व आदि की शिक्षा दी जाती है। शिक्षा-प्रदान-कार्य रहमानिया के अलजीरियन प्रचारक तथा कैरो के स्नातक करते हैं। इनका कार्य सावधानी से चल रहा है। इन लोगों ने चीन के सन् १९२४ के अकाल में दस हज़ार बालक ख़रीदे और उन्हें इस्लाम की दीक्षा दी।

जापान में पैन-इस्लाम के प्रचार व संगठन के लिए जापानी मुसलमानों ने एक करोड़ येन का चन्दा जमा किया है। जापान की आज की इस्लाम-हितैषी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परराष्ट्र-नीति इस प्रचार का एक परिणाम है। जापान की अनुकूलता प्राप्त करने के लिए इस्लाम-जगत् ने बहुत यत्न किये। मांचुको का राज्य-स्थापन करने में अधिक-से-अधिक सहायता जापान को पैन-इस्लाम प्रचारकों-द्वारा मिली है। आजकल भी चीन में पैन-इस्लाम का प्रचार करनेवाले जापान को सहायता दे रहे हैं। अतः जापान मुस्लिम-हितैषी बन गया है। आज-कल जापान में इस्लाम संस्कृति, धर्म, साहित्य इत्यादि का अध्ययन किया जा रहा है। मुस्लिम-जन-समूह से सम्पर्क बढ़ाने का प्रयत्न जापान ने जारी किया है। व्यापार तथा अन्य सम्बन्धों के द्वारा पूर्वी-द्वीप-पुञ्ज के साढ़े पाँच करोड़ मुसलमानों के समाज का जापान से सम्पर्क बढ़ता जा रहा है। ईरान, अरब आदि इस्लामी देशों को जापान हर प्रकार की सहायता देता है और मुस्लिम देश भी जापान के सहकार्य में हाथ उठाते हैं तथा जापान की सहायता भी करते हैं। जापान को हर प्रकार की सहायता देने में मुस्लिम जगत् का प्रधान हेतु यह है कि इस्लाम के शत्रुओं के विरुद्ध अवसर पर जापान से सहायता मिले। इन आशाओं का चित्र निम्नलिखित शब्दों में दिखाई देता है। मुस्लिम जगत् की ओर से जापान से यह प्रार्थना की गई है—

"अगर जापान बहुत बड़ी शक्ति बन जाना चाहता है और यह चाहता है कि एशिया तथा और महाद्वीपों पर राज्य करे तो उसे पवित्र इस्लाम-धर्म को स्वीकार कर लेना चाहिए। ('रेन्यूडे मोन्डे के 'मुसलमान' से) और आजकल जापान इस्लाम-धर्म व संस्कृति की ओर आत्मीयता से देख रहा है। यह सब विशेष भविष्य का ही सूचक है। चीन में जिस प्रकार इस्लाम के संगठन का कार्य जारी है, उसी प्रकार फ़िलिपाइन-द्वीपों में भी जारी है। साढ़े तीन लाख मुसलमान फिलिप्न मयंकांकित हरे झंडे के नीचे संगठित हो गये हैं। मलेनेशिया में से प्रतिवर्ष हजारों को इस्लाम की दीक्षा दी जाती है। इस द्वीप-समूह की कुल आबादी छः करोड़ के ऊपर पहुँच जायगी। एक तो इस्लाम की प्रबल आक्रमणशक्ति, दूसरे मलेनेशिया में खुद अपने धर्म का मूलतः अभाव है, अतएव, इस्लाम के प्रसार की वहाँ पूरी सम्भावना है।

विदेशों में प्रचार के इस प्रचण्ड कार्य का अधिकांश श्रेय 'रहमानिया' को दिया जाता है। इस संस्था के बारे में सेल साहब ने लिखा है—"यह अफ़्रीकन जाति की संस्थाओं में सबसे अधिक लड़ाकू और कर्त्तव्य-शील संस्था है।" परन्तु प्रसार, सामर्थ्य, संगठन, कौशल इत्यादि सब बातों में अग्रसर संस्था है "सेनूसी"। इस शक्ति-शाली संस्था की शाखायें और उप-शाखायें सर्वत्र स्थापित हो चुकी हैं। इस्लाम के प्रसार तथा संगठन का कार्य उसकी शाखाओं-उपशाखाओं-द्वारा कुशलता से चलाया जाता है। इस शक्तिशाली प्रबल संस्था की संस्थापना मुहम्मद सेनूसी नामक एक व्यक्ति ने की थी। वे एक उच्चकुल के अरब थे। प्रारम्भ में कदारिया संस्था के एक सदस्य-मात्र थे और तन-मन-धन से इस्लाम के प्रचार का कार्य किया करते थे। प्रचार-कार्य के लिए वे एक बार मक्का भेजे गये। वहाँ उनको नया प्रकाश प्राप्त हुआ। वहाँ से लौटकर उन्होंने नूतन संस्था स्थापित की। वही 'सेनूसी' के नाम से प्रसिद्ध हुई। आज सेनूसी का संचालन उनका पौत्र कर रहा है। सेनूसी की शाखायें 'झबिया' के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'झबिया' का मुख्य कार्य है पैन-इस्लाम का प्रचार। झबिया का कारोबार योग्यता से चलाने के लिए दो अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं—एक मुक़द्दम तथा दूसरा क़ाज़ी। झबिया के सदस्यों तथा स्थानिक मुस्लिम जनता पर इन दोनों का अधिकार रहता है। इनकी आज्ञा राजाज्ञा की तरह मानी जाती है। जिहाद की पूर्व तैयारी की शिक्षा खुल्लम-खुल्ला झबिया-द्वारा दी जाती है। अफ़्रीका में होनेवाले प्रत्येक षड्यन्त्र तथा विद्रोह के पीछे सेनूसी का शक्तिशाली हाथ सदैव होता है। यह बात योरपीय राज्य-कर्त्ताओं से छिपी नहीं है। इन सब बातों से वे पूर्ण परिचित हैं। अतः उनका सारा काम-काज दक्षता एवं चतुरता से चलाया जाता है। उसके महत्त्वपूर्ण सदस्य सामान्यतः पचासी लाख के ऊपर होंगे। तीन साल के पहले यह संख्या साठ लाख थी। इस संस्था का प्रधान केन्द्र चाड झील के समीप 'अस इस्टेट' नामक एक दुर्गम स्थान है। इस दुर्गम स्थान में बैठकर शेखमहादी सेनूसी अपना संगठन-कार्य संचालित करता रहता है। झबिया-स्थापित प्रदेश पर अप्रत्यक्ष रीति से शेखमहादी का शासन चलता है, मानों वह उस प्रदेश का अनभिषिक्त राजा है। उसकी आज्ञा राजाज्ञा के सदृश मानी जाती है। उसके आज्ञापत्र दूतों के द्वारा सर्वत्र पहुँचाये जाते हैं। दुनिया की हर प्रकार की खबरें मुक़द्दमों, वकीलों, फ़क़ीरों तथा खास जासूसों के द्वारा शेखमहादी के पास नित्य पहुँचाई जाती हैं। वृत्तपत्र, मासिक पत्र,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीफ़लेट, पैंफ़लेट इत्यादि-इत्यादि सब साहित्य अलइस्टेट में नित्य भेजा जाता है। और इन सबके अनुसार शेख-महादी उचित कार्यवाही करते हैं।

भ्रबियाओं के द्वारा पाठशालायें भी चलाई जाती हैं। इन पाठशालाओं में प्रायः फ़ौजी शिक्षा दी जाती है तथा धर्म के लिए मरना तथा मारना—इस महान् तत्त्व की भी शिक्षा बालकों को दी जाती है। जिहाद के लिए हुशियार रहो, ऐसा संदेश समय-समय पर दिया जाता है। जिहाद की पूर्व-तैयारी इन पाठशालाओं में की जाती है। इन सब भगीरथप्रयत्नों को देखकर टी० आर० थ्रेलफोस साहब ने लिखा है—"अफ़्रीका के देशों में इस्लाम की आश्चर्यजनक उन्नति हो रही है। इसके मुक़ाबिले में ईसाईधर्म का प्रचार तो कहानी-मात्र रह गया है। जंगली जातियों में युद्ध-प्रिय इस्लामी धर्म को शीघ्र फैलता जाना उसके महत्त्व का प्रमाण है।" भ्रबिया की कार्य-पद्धति के बीज भारत में भी बोये गये हैं। ब्रह्म देश तथा मलाबार आदि प्रदेशों में भ्रबिया के अनेक दूत छद्म-वेश से प्रचार करते रहे हैं तथा अब भी करते हैं। यह प्रचार तथा संगठन का कार्य आज-कल अधिक तत्परता व सावधानी से हो रहा है। इस पैन-इस्लाम के प्रचार-कार्य को भारतीय मुस्लिम नेताओं के द्वारा उचित सहायता दी जाती है। भारतीय मुस्लिम नेता भारत को विभाजन करने के लिए सदा से उत्सुक हैं तथा उसके लिए प्रयत्न भी कर रहे हैं। इन प्रयत्नों का केन्द्र काबुल है। "व" नाम से एक नवाब साहब ने अपनी 'इण्डियन मुस्लिम' नामक अँगरेज़ी पुस्तक में लिखा है—"हिन्दुस्तान में पैदा होनेवाले मनसूबों के अण्डे सेये जाने का काम काबुल में होता है।" इस केन्द्र से सन् १९१६ में मुस्लिम विद्रोह का एक यत्न किया गया था। यह षड्यन्त्र 'रेशमी चिट्ठी' के नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि वह विद्रोह विफल हो गया तो भी भारतीय मुस्लिम-संगठन का कार्य बन्द नहीं हुआ। भ्रबिया के प्रचारक भारत में बुलाये गये और उनके द्वारा भारत की तथा हिन्दू-समाज की राजकीय व सामाजिक स्थिति की जाँच कर इस्लाम संगठन की नींव डाली गई। सर मोहम्मद इक़बाल साहब ने पाकिस्तान की रूप-रेखा प्रकट की। सर इकबाल ने सन् १९२२ में मैंचेस्टर गार्जियन के संवाददाता से कहा कि "राजनैतिक मामलों में पंजाब को मध्य-एशिया का एक भाग समझना चाहिए, हिन्दुस्तान का नहीं।" पाकिस्तान बनाने की योजना मुस्लिम समाज के सामने रक्खी गई है। इस योजना की पूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों में संस्थायें स्थापित हो चुकी हैं। पंजाब तथा सरहद-प्रान्त में 'मुस्लिम ब्रादरहुड' नामक संस्था पाकिस्तान की पूर्व-तैयारी कर रही है। दक्षिण-भारत के निज़ाम-राज्य में 'मुस्लिम कल्चर सोसाइटी' पाकिस्तान का प्रचार-कार्य तथा इस्लाम के संगठन का कार्य धड़ल्ले से कर रही है। मलाबार में 'माऊ माथुल इस्लाम असोसियेशन' (वह भ्रबिया की शाखा है) पैन-इस्लाम का कार्य कर रही है। कुछ समय पूर्व यह मुस्लिम संस्था राष्ट्रीय कही जाती थी, परन्तु अब इसने अपना वह छद्मवेश हटा दिया है और यह संस्था इस्लाम-प्रसार का काम सावधानी से कर रही है। सन् १९३२ में इस संस्था के द्वारा १,२०० हिन्दू इस्लामी सेना में शामिल किये गये, और सन् १९३८ तक इस संस्था के द्वारा कुल १७,१४५ हिन्दुओं को इस्लाम की दीक्षा दी गई।

बंगाल व ब्रह्मदेश के लिए खास प्रचारक नियुक्त हो चुके हैं। खाकसार-संगठन भारत में जारी ही है। भारत के मुस्लिम राजाओं, ताल्लुक़दारों तथा अन्य धनवान् व्यक्तियों के द्वारा धर्मप्रसार के लिए द्रव्य की सहायता दी ही जाती है। मक्का, मदीना तथा अन्य स्थानों में भारतीय धन से मुस्लिम मंदिर बनाये ही जाते हैं। तथा अन्य प्रकार की सहायता भी दी जाती है। हिन्दू-संगठन, शुद्धि-संगठन के विरुद्ध उनका प्रचार जारी है। हसन निज़ामी की, 'दाइये इस्लाम' नामक पुस्तक इस प्रचार का एक उदाहरण है। ख़िलाफ़त पद प्राप्त करने के लिए भी भारत के मुस्लिम राजाओं की ओर से प्रयत्न हो रहा है।

योरपीय महायुद्ध का पर्व अब आ उपस्थित हुआ है। जिस स्वर्ण-अवसर की प्रतीक्षा मुस्लिम जगत् कर रहा था, कदाचित् वह आ गया है। हिन्दुस्तान की मुस्लिम सेना परदेशस्थ मुसलमानों के साथ होनेवाली लड़ाई के काम में न लानी चाहिए, ऐसी सूचना क़ायदे आज़म जनाब जिन्ना महोदय दे चुके हैं तथा वज़ीरिस्तानवासी पठानों को हिन्दुस्तान की फ़ौज में भर्ती करना चाहिए, ऐसी भी सूचना राष्ट्रीय मुस्लिम पक्ष के सदस्य जनाब अब्दुल क़यूम दे चुके हैं। इन सब बातों से भविष्य का स्वरूप सुस्पष्ट हो जाता है। ऐसी दशा में अन्त में क्या होगा, यह कहने के लिए क्या किसी भविष्यवादी की आवश्यकता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलाकार

लेखक, श्रीयुत विजय वर्मा

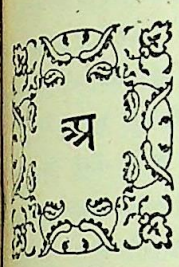

अरुण ने समझा था कि उसके नाम के समान उसका काम ही संसार में अरुण-काल का लानेवाला होगा, किन्तु जिस दिन उसकी भेंट मधुबाला से हुई उसी दिन उसे इसमें सन्देह होने लगा। उसने यह सोचा था कि उसकी जीवन-संगिनी वही होगी जिसने उसके समान आधुनिक विज्ञान की सभी प्रमुख शाखाओं का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया हो तथा जिसकी मुख्य कलाओं में भी प्रचुर प्रवीणता हो, इसी लिए तीस-इकतीस वर्ष की अवस्था हो जाने पर भी वह अब तक ज्ञान-क्षेत्र की ओर ही बढ़ता चला जा रहा था, किन्तु मधुबाला ने उससे पहले ही दिन स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि उसे न तो विज्ञान से विशेष प्रेम है, न कला से। फिर भी आश्चर्य की बात यह है कि जब मधुबाला की माता ने उससे 'मधु' के बारे में पूछा तब उसने कहा कि 'आपको मुझसे कुछ भी पूछने की ज़रूरत नहीं है' और उसके साथ ही ऐसी मधुमयी हँसी उसके होठों पर दिखलाई दी, जिसका अर्थ यही हो सकता था कि मधुबाला को कौन न चाहेगा।

घर आने पर अपने मित्र नवीन को वहाँ बैठे देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—हलो! नवीन, मैं रास्ते भर यही इच्छा करता आया था कि तुमसे जल्द से जल्द भेंट हो।

नवीन ने ज़ोर से हँस कर कहा—प्रसन्नता की मधु-मिठास बाँटने से वैसे ही अधिक बढ़ जाती है जैसे ज्ञान-गरिमा।

अरुण नवीन के पास एक कुर्सी पर बैठ गया और नवीन का दाहना हाथ अपने दाहने हाथ में लेकर बोला—मेरे जीवन का स्वप्न भंग हो गया है। मैंने सोचा था, मैं ऐसा कलाकार हूँगा जैसा अब तक कोई नहीं हो सका। लोग विज्ञान और कला को एक-दूसरे का विरोधी मान बैठे हैं। मैं अपनी कला-कृतियों से यह साबित कर देता कि ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। मैं कला में प्राणि-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र आदि के नये से नये अनुसन्धानों का उपयोग अपनी रचनाओं में ऐसी सुन्दरता के साथ करता कि सभी मुग्ध रह जाते, किन्तु जिसको मैंने अपनी जीवन-संगिनी बनाने का निश्चय कर लिया है वह मुझे एक नये ही क्षेत्र की ओर ले जायगी।

नवीन गम्भीरता-पूर्वक ये बातें सुन रहा था। अब वह अपनी हँसी न रोक सका। हँसते हुए कहने लगा—तुम्हारी इस बात में कुछ भी नवीनता नहीं है। यह तो होता ही आया है।

अरुण उठकर खड़ा हो गया। बोला—तुम कुछ नहीं समझे। मैं आज तक कला और विज्ञान को अपना संगी बनाये हुए था। आज मैंने देख लिया कि भविष्य में मुझे इनसे बढ़कर एक ऐसी वस्तु का सामना करना पड़ेगा जिससे मैं डरता हूँ और जिसका अब तक मैंने कभी ठीक तरह से सामना नहीं किया।

नवीन ने उत्सुकता से पूछा—वह वस्तु क्या है—स्त्री?

अरुण ने कहा—नहीं। उसका नाम है जीवन।

नवीन रुष्ट-सा होकर बोला—तो क्या अब तक तुमने कभी कहीं जीवन के वेग का अनुभव ही न किया था? कलाकार और वैज्ञानिक—

बात काटकर अरुण कह उठा—वे जीवन क्या जानें? मधुबाला ने जो व्रत ले रक्खा है वही जीवन का मूल है।

"कैसा है वह व्रत?"

"यह मैं अभी पूरी तरह समझ नहीं सका।"

× × ×

(२)

दूसरे दिन नवीन मधुबाला के यहाँ दिखाई दिया। वह ज़ोर-शोर के साथ यह प्रतिपादित करना चाहता था कि अरुण पूरा सनकी है। किन्तु मधुबाला के पिता ने अन्त में कह दिया—सभी प्राणी कुछ न कुछ सनकी होते हैं। जो लोग उच्चतर बातों की ओर जाना चाहते हैं उन्हें मैं अच्छे सनकी समझता हूँ और जो रुपये-पैसे या विलासिता को ही सब कुछ समझकर निम्नतर वृत्तियों की ओर जाते हैं उन्हें मैं गये-बीते सनकी समझता हूँ। अरुण ऐसे व्यक्ति से सम्बन्ध जोड़ना मैं अपने लिए सौभाग्यप्रद समझता हूँ।

नवीन ने सिर हिलाकर कहा—मेरा भी तो यही मतलब है। और इसके बाद थोड़ी ही देर में वह उठ कर चल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड़ा हुआ। उसने यह जान लिया था कि मधुबाला का व्रत क्या है।

उसी सप्ताह नवीन ने एक कहानी स्थानीय दैनिक पत्र में प्रकाशित करवाई, जिसका शीर्षक था "कलाकार का पतन'।

न जाने कैसे इस अंक की तीन प्रतियाँ अरुण के पास आ पहुँचीं और दो प्रतियाँ मधुबाला के यहाँ भी पहुँच गईं।

अरुण ने उस कहानी को पढ़कर उस पत्र की तीनों प्रतियों को अपने एक बक्स में बन्द कर दिया, किन्तु मधुबाला ने कहानी पढ़ने के बाद पत्र की दोनों प्रतियाँ चूल्हे में डाल दीं।

उसी दिन मधुबाला के पिता को एक पत्र मिला जिसमें लिखा था—

महोदय,

मैं आपका सच्चा शुभचिन्तक हूँ, इसलिए मैं आपसे यह कहना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि अरुण की आर्थिक स्थिति आप जैसी समझ रहे हैं वास्तव में वह वैसी नहीं है। लोगों का यह विचार ठीक नहीं है कि इस समय के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकों और कलाकारों में से एक होने के कारण अरुण ने काफ़ी धन कमा लिया है। कदाचित् आप नहीं जानते कि वह ज्ञान का ऐसा प्रयोग एक प्रकार का वेश्यापन समझता है। इसके सिवा हिन्दी के कलाकारों और अँगरेज़ी आदि दूसरी भाषाओं के कलाकारों में बड़ा अन्तर है। हिन्दी में अभी तक यह वर्ग ठीक तरह से खड़ा भी नहीं हो सका है और न हो सकता है। आप अपनी हैसियत के योग्य किसी दूसरे युवक को आसानी से खोज सकते हैं। अरुण के मित्रों में ही ऐसे प्रतिष्ठित युवक आपको मिल सकते हैं। अदूरदर्शिता और भावावेश के कारण ऐसा सम्बन्ध जोड़ लेना जिसमें आगे चलकर अपमान और कष्ट हो, अच्छा नहीं कहा जा सकता। विशेष क्या लिखूँ? आप तो स्वयं ही दूरदर्शी और बुद्धिमान् पिता हैं।

आपका—
एक शुभचिन्तक

इस पत्र को पढ़कर मधुबाला के पिता चिन्ता में पड़ गये। किन्तु उसी रात्रि को उन्होंने उस कहानी के एक पत्र में प्रकाशित होने और मधुबाला के द्वारा उन अंकों के जलाये जाने के बारे में अपनी स्त्री से सुना तब उन्हें जान पड़ा कि उनका मन चिन्ता से सर्वथा मुक्त हो गया है।

× × ×

(३)

संसारप्रसिद्ध रूसी उपन्यासलेखक डास्टॉवस्की ने अपना 'जुआड़ी' उपन्यास, रुपयों की ज़रूरत होने के कारण, केवल सत्ताईस दिन में लिख डाला था। अरुण ने भी अपना नया उपन्यास 'क्रान्तिकाल' सिर्फ़ बीस दिनों में समाप्त कर दिया। रुपयों की आवश्यकता के ही कारण उसने ऐसा किया था या उससे भी बढ़कर प्रेरक कोई भाव था, यह कहना कठिन है, किन्तु 'क्रान्तिकाल' के प्रकाशित होने के दूसरे ही महीने एक पत्रिका में उसकी बहुत ही कड़ी आलोचना प्रकाशित हुई। इसमें यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया था कि इस उपन्यास के लेखक को न तो भाषा का ज्ञान है, न भाव का। साहित्य की स्थायी सम्पत्ति, इस लेखक के अनुसार वे ही रचनायें हैं जिनमें वर्तमान युग की बातों को लेकर नहीं, बरन केवल उन बातों को लेकर चित्र खींचा जाय जो सभी कालों के लिए एक-सी होती हैं जैसा कि हमारे बिहारी, मतिराम आदि कवियों ने किया है और इस समय के अनेक कवि दूसरे दूसरे ढंगों से कर रहे हैं। भौतिकशास्त्र और प्राणिशास्त्र आदि की बातों का उपयोग उपन्यास में करना इस समालोचक को वैसा ही हास्यप्रद मालूम हुआ, जैसा नाविकाभेद के ग्रन्थों में ब्रह्मवाद।

अरुण ने आलोचना पढ़ ली। वह पूरे आठ पृष्ठों में थी। उसने उसका प्रतिवाद भी लिख डाला, किन्तु न जाने क्या सोचकर उस आलोचना और अपनी प्रत्यालोचना को उसी बक्स में बन्द करके धर दिया, जिसमें उसने 'कलाकार का पतन' शीर्षक लेख रक्खा था।

'क्रान्तिकाल' बिका और खूब बिका, किन्तु उसकी अधिक बिक्री से लेखक के लाभ का कोई सम्बन्ध न था। उसको प्रकाशक ने कृपा करके एक रुपया प्रति पृष्ठ के हिसाब से एक मुश्त दो सौ इकतालीस रुपये आठ आने दे दिये थे और कह दिया था कि उसका विवाह निकट होने के कारण ऐसा किया गया है, नहीं तो नियमानुसार आधी रक़म उसको अभी मिलनी चाहिए थी और आधी प्रकाशन के साल भर बाद।

× ×

(४)

"जो लोग यह समझते हैं कि साहित्य-सेवी होने से अच्छा तो यह है कि आलू या गोभी की खेती की जाय, जैसा कि प्रसिद्ध फ़्रांसीसी लेखक अनातोले फ़्रांस ने सलाह दी थी—वे साहित्य-सेवा के क्षेत्र से बहुत ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहें तो श्रेष्ठ हों, किन्तु जिनके हृदय में दलित, पीड़ित, बुभुक्षित या पराधीन और अपमानित लोगों के दुःखों और कष्टों की आग लग चुकी है उनके लिए यह असम्भव है कि वे और किसी क्षेत्र में जाने का स्वप्न देखें।" इस प्रकार एक प्रत्यालोचना का प्रारम्भ हुआ था और वह प्रत्यालोचना स्वयं मधुबाला ने 'सत्य' के नाम से उसी पत्रिका में लिखी थी जिसमें अरुण की पुस्तक 'क्रान्तिकाल' की आलोचना निकली थी। आगे चलकर उसने लिखा था--व्याकरणाचार्य लोग जिनकी कृतियों में तरह तरह की व्याकरण की भूलें निकालते हैं और साहित्याचार्य भावों और कल्पनाओं की, उन्हीं में से कुछ लेखक ऐसे निकलते हैं जो समाज में और देश में ऐसा नवजीवन लाते हैं जिसकी सदियों से राह देखी जाती है पर जिसे कोई व्याकरणाचार्य या साहित्याचार्य किसी तरह भी नहीं ला पाता। अरुण भी ऐसे ही लेखक जान पड़ते हैं--उनकी रचना में ऐसी ही नई ज़िन्दगी के बीज स्पष्ट दिखलाई देते हैं...

नवीन और अरुण दोनों ने यह सब पढ़ा। अन्त में एक दिन नवीन अपने को रोक न सका। उसने अरुण के पास आकर कहा--चलो, तुम्हें एक तमाशा दिखाऊँ। एक अनाथालय के कुछ लोग भिक्षा माँगने आये हैं, और उनकी नेत्री है तुम्हारी भावी स्त्री मधुबाला। निःसन्देह तुम यह दृश्य देखकर बहुत प्रसन्न होगे। तुमने सोचा होगा कि तुम्हारे ससुर बड़े धनवान् हैं। उन्हीं के धन से अनाथालय के बच्चों की शिक्षा-दीक्षा आदि का भी प्रबन्ध होगा। पर मैंने तो जब सुना कि उन्हें अपनी पुत्री मधुबाला को वहाँ शिक्षिका बनाने में संकोच नहीं हुआ, यही नहीं, बल्कि उसी अनाथालय की सेवा को मधुबाला ने यह कह कर अपना जीवन-व्रत बना लिया है कि मेरे पचास छोटे छोटे भाई हैं और तीस छोटी छोटी बहनें हैं तभी मैंने समझ लिया था कि अन्य ऐसे धूर्तों की भाँति ये महाशय भी बड़े-बड़े करिश्मे दिखलावेंगे। तभी तुम्हारे भावी जीवन के लिए मुझे बड़ा दुःख हुआ था, जो अब भी ज्यों-का-त्यों है।

वह और जाने क्या क्या कहता, पर अरुण उसका हाथ पकड़कर उठ खड़ा हुआ और बोला--चलो, जल्दी चलो। यह कहकर एक तरह उसे घसीटता हुआ वह वहाँ पहुँच गया जहाँ अनेक अनाथ बच्चे एक 'जीवन-गीत' गा रहे थे। उस गीत के स्वर में ऐसा जादू था कि वे चुपचाप खड़े रह गये। गीत के समाप्त होने पर लोगों ने कुछ देना चाहा, पर उनमें से एक लड़के ने कहा--हमें आपसे यही भिक्षा माँगनी है कि आप उस संगीत की बातों पर ध्यान दें जिसे अभी हमने गाया है। इस देश में करोड़ों अनाथ हैं--असल में तो पूरा देश ही अनाथ हो गया है। हमें ऐसी भिक्षा देकर जैसी हम चाहते हैं आप सभी का दुःख दूर कर सकेंगे। और वे सब आगे चल खड़े हुए। अरुण ने तब देखा कि मधुबाला के नेत्रों में आँसू भरे हुए हैं और वह अपने शरीर की सुध-बुध भूले, आगे बढ़ती जा रही है।

अरुण ने नवीन का हाथ झकझोर कर कहा--अरे! यही तो वास्तविक नवजीवन है। उसी को तो मुझे सम्पूर्ण हृदय से ग्रहण करना है।

नवीन हाथ छुड़ाकर चला गया।

उसी सप्ताह अरुण ने मधुबाला के पिता के पास जाकर विवाह की तिथि निश्चित कर लेने के लिए कहा और दूसरे सप्ताह ही उन दोनों का विवाह हो गया।

यह कहना कठिन है कि अरुण ने मधुबाला से 'सत्य' नाम के लेखक के बारे में कभी कुछ पूछा या नहीं।

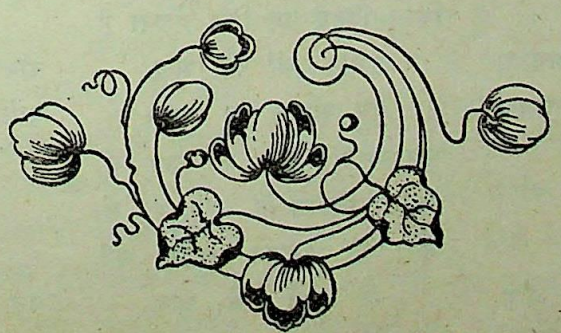

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच गीत

लेखक, श्रीयुत गोपालशरणसिंह

(१)

क्यों मैं भला करूँ अभिमान?
नभ के आभूषण तारागण,
करुणामय के हैं करुणा-कण,
करते हैं भूतल को शीतल
करके नित्य नयन-जल-दान। क्यों मैं भला करूँ अभिमान?
जो पथिकों को छाया देकर,
श्रान्ति-क्लान्ति हरते हैं सत्वर,
जो फल-फूल सदा देते हैं
उन तरुवर के कौन समान? क्यों मैं भला करूँ अभिमान?
सौरभ जग को सुरभित करता,
पवन उसे है प्रमुदित करता,
मिटते हैं जलधर जल देकर,
मैं क्या करता हूँ बलिदान? क्यों मैं भला करूँ अभिमान?
यदि मैं कुत्सित क्रूर नहीं हूँ,
तो भी उससे दूर नहीं हूँ,
मैं भी एक विश्व का दुर्बल
प्राणी हूँ मुझको है ज्ञान। क्यों मैं भला करूँ अभिमान?

(२)

यह खारा आँखों का पानी।
पुष्पों के उर का आभूषण,
शरद-सर्वरी का शोभा-कण,
प्रात-भूमि-लुंठित तारागण,
युग-युग की है एक निशानी, यह खारा आँखों का पानी।
मञ्जुल-मुक्ता-मणि-सा उज्ज्वल,
तरु-पल्लव से ढल-ढल प्रतिपल,
भरता है वसुधा का अञ्चल।
है जीवन की करुण-कहानी, यह खारा आँखों का पानी।
ढुलक-ढुलक नयनों से अविरल,
करता है कठोर को कोमल,
सन्तापित प्राणों को शीतल,
प्रेम-पयोधि, दया का दानी, यह खारा आँखों का पानी।
जग की दुःख-पीड़ा का आगर,
लहराता है उर का सागर।
भरता है जीवन का गागर,
मन की मर्म व्यथा का ज्ञानी, यह खारा आँखों का पानी।

(३)

मेरे जीवन की मधुर साध!
सिंचित विलोचनों के जल से,
सुरभित उर-शतदल-परिमल से,
जीवित केवल आशा-बल से,
अपराध बनी है निरपराध,
मेरे जीवन की मधुर साध।
मन के विश्वासों से पालित,
उर के उच्छ्वासों से लालित,
शुभ अभिलाषों से संचालित,
है प्रेम-सिन्धु लहरी अगाध,
मेरे जीवन की मधुर साध।
कुछ लीन हुई हृदयस्थल में,
कुछ डूब गई दृग के जल में,
कुछ फैल गई जगतीतल में,
रह गई शेष है एक आध,
मेरे जीवन की मधुर साध।

(४)

यह कोमल लघु फूल।
कितनी बार खिला, मुरझाया?
मधुपों को मकरन्द चखाया?
किन्तु पा सका है जीवन में
केवल उर का शूल,
यह कोमल लघु फूल।
कितनी बार गिरा भूतल पर?
कितनी चोट सही मृदु दल पर?
किन्तु विटप पर फिर हँसता है
सभी दुखों को भूल,
यह कोमल लघु फूल।
रस-समूह संचित कर उर में,
छिपा विपिन के अन्तःपुर में,
देता है सौरभ समीर को,
ले बदले में धूल,
यह कोमल लघु फूल।

(५)

क्यों इतना उन्मन है तू मन?
विश्व सुखी है, विश्व दुखी है,
यह जग-जीवन उभय-मुखी है,
कितना त्याग-विराग-भावमय
है जग में अभावमय जीवन?
क्यों इतना उन्मन है तू मन?
मत डर जग की विपदाओं से,
जीवन की चिर-चिन्ताओं से,
मत अपने को समझ अकिञ्चन,
पाकर भी मानवता का धन।
क्यों इतना उन्मन है तू मन?
सुख हँसता है, दुख रोता है,
जो है धनी वही खोता है,
यह तो खेल चलेगा हर दम,
मत तू कभी भूल अपनापन।
क्यों इतना उन्मन है तू मन?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा प्रधान उपनिवेश

लेखक, श्रीयुत सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए०

(१०)

दूसरे दिन संध्या को यूनियन-सरकार की राजधानी प्रीटोरिया में मुझे यूनियन सरकार के एक मन्त्री मिस्टर हाफ़मेयर से मिलने का निमंत्रण था। 'ट्रांसवाल इंडियन कांग्रेस' के मन्त्री श्री नाना तथा अन्य कुछ सज्जनों के साथ मैं प्रीटोरिया गया। मिस्टर हाफ़मेयर का दफ़्तर स्टैंडर्ड बैंक की इमारत में था। मैं इस बिल्डिंग में पहुँच, ज्यों ही लिफ़्ट में घुसने लगा, त्यों ही एक गोरे डच ब्वाय ने मुझे लिफ़्ट के अन्दर घुसने से रोक दिया। मेरे इस अपमान से मुझे एकदम ऐसा हर्ष हुआ, मानो मुझे कोई बड़ी भारी निधि मिल गई हो। मन बार बार कहने लगा, 'अपने देशवासियों के रोज़मर्रा के अपमानों में कम से कम एक बार तो मुझे हिस्सा लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।' मेरे इस अपमान से मेरे साथियों में बड़ी खलबली मच गई। श्री नाना तत्काल मिस्टर हाफ़मेयर के पास पहुँचे। उन्हें ज्यों ही यह हाल मालूम हुआ, त्यों ही उन्होंने अपने सेक्रेटरी को मुझे लिफ़्ट-द्वारा लाने के लिए भेजा। पर लिफ़्ट-ब्वाय तो बड़ा दृढ़प्रतिज्ञ था। उसने मिस्टर हाफ़मेयर के सेक्रेटरी की आज्ञा न मानी, कह दिया, किसी हिंदुस्तानी को लिफ़्ट से ले जाना उसकी आत्मा (कांशन्स) के विरुद्ध है। लिफ़्ट ब्वाय की यह दृढ़ता मेरी दृष्टि से अत्यन्त प्रशंसनीय थी। कितने भारतीयों में इस प्रकार की दृढ़ता देखने को मिलती है? आख़िर मिस्टर हाफ़मेयर के सेक्रेटरी को लिफ़्ट-ब्वाय का काम करना पड़ा। मिस्टर हाफ़मेयर ने मेरा हार्दिक स्वागत किया और क़रीब ४५ मिनट तक मुझसे बातें कीं। दूसरे दिन ट्रान्सवाल के पत्रों ने प्रीटोरिया की इस घटना को बड़े बड़े शीर्षकों में छापा। आख़िर स्टैंडर्ड बैंक के मैनेजर ने इस सम्बन्ध में लिखित माफ़ी माँग ली।

मिस्टर हाफ़मेयर की मुलाक़ात के बाद हम लोगों ने यूनियन-सरकार भवन देखा, जो नई दिल्ली के भारतीय सेक्रेटेरिएट से मिलता-जुलता था, परन्तु उससे बहुत छोटा था। उसके बाद हम लोग प्रीटोरिया में घूम-घाम कर सूर्यास्त तक जोहान्सबर्ग लौट आये। आज रात को जोहान्सबर्ग के उसी पटीदार-हाल में फिर एक सार्वजनिक सभा हुई जिसमें अनेक वक्ताओं ने ट्रान्सवाल में भारतीयों के विरुद्ध जो क़ानून हैं उनका ब्योरेवार वर्णन मुझे सुनाया। लगातार भाषण करते रहने के कारण मेरा गला एकदम ख़राब हो गया था, फिर मिलने-वालों की इतनी संख्या थी कि प्रातःकाल से अर्द्धरात्रि तक बात करते करते समय बीतता था। विवश होकर मुझे एक दिन मौन रखने का निश्चय करना पड़ा। जिस दिन मेरा मौन था उसी दिन सर रज़ाअली मेरी रिटर्न विज़िट को मेरे निवासस्थान पर पहुँचे। उनसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

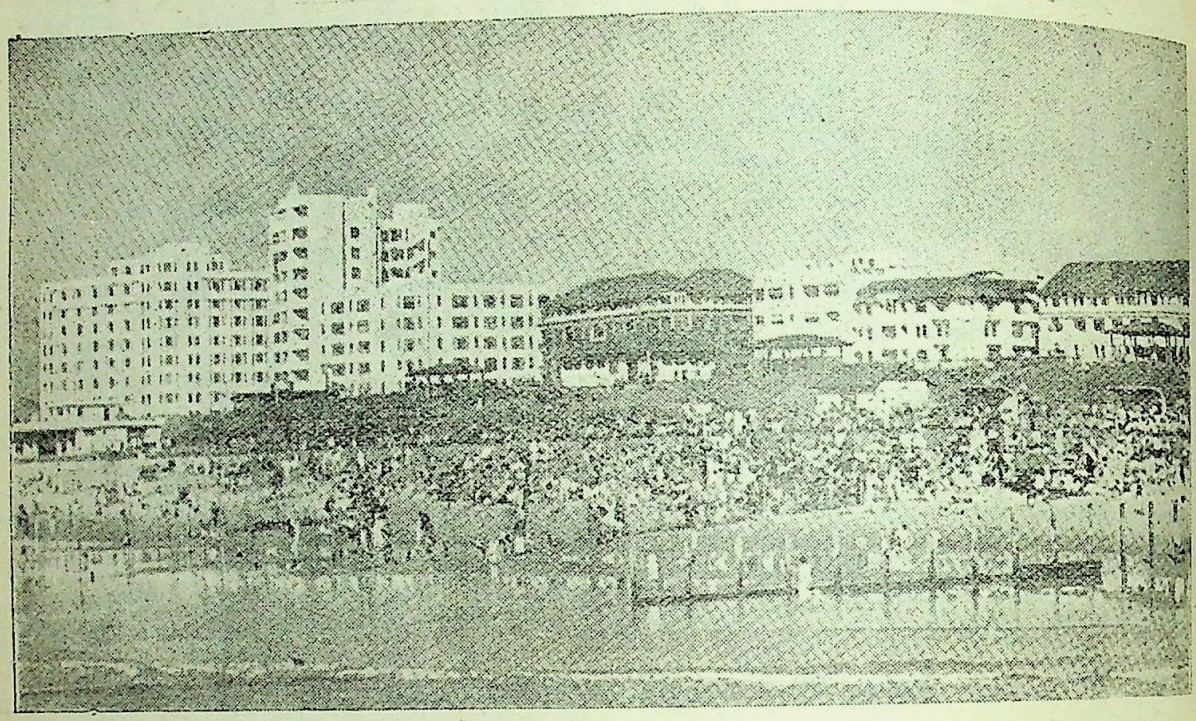

[डरबन-नगर के केन्द्र का एक दृश्य]

भी मुझे लिखकर ही बातें करनी पड़ीं। २४ घंटे के उस मौन ने गले को जितना लाभ पहुँचाया, उतना शायद २४ दिन की दवा न पहुँचाती। आज मुझे मौन का महत्त्व मालूम हुआ।

अब मुझे जोहान्सबर्ग के चारों ओर के छोटे-छोटे नगरों में घुमाकर वहाँ भारतीयों के रहने के स्थान दिखाये गये।

ट्रान्सवाल में पूरा सेग्रेगेशन था। वहाँ के योरपीय मुहल्लों में न भारतीय रह सकते थे और न रोज़गार कर सकते थे। भारतीय ट्रान्सवाल में जायदाद भी नहीं ख़रीद सकते थे। ट्रान्सवाल में यही प्रश्न भारतीयों का सबसे बड़ा प्रश्न था। जिन स्थानों में भारतीय रहते थे वे बड़े गन्दे थे।

जहाँ जहाँ हम लोग गये, हमारा बड़ा आतिथ्य-सत्कार हुआ। यह तो असम्भव था कि हम बिना कुछ खाये-पिये कहीं से आ सकें। जोहान्सबर्ग में भी कोई दिन ऐसा न गया जब किसी न किसी ने मुझे लञ्च, टी-पार्टी या डिनर न दिया हो। अफ़्रीका के भारतीय आतिथ्य-सत्कार में बहुत बढ़े-चढ़े मिले।

एक हफ़्ते रहने पर भी हमें इतना अवकाश न मिला कि हम जोहान्सबर्ग नगर को अच्छी तरह देखते और संसार में सबसे बड़ी वहाँ की सुवर्ण की खानों का अवलोकन करते। फिर भी इधर-उधर घूमने के कारण नगर कैसा है, इसका अनुमान हो गया। जोहान्सबर्ग में पूर्वी अफ़्रीका के नगरों के सदृश मुझे कोई खास बात न दिखी। वह एक बहुत बड़ा शहर है, बड़ा धनवान् नगर है। जब वह संसार भर में सबसे बड़ा सोने का केन्द्र है तब धनवान् क्यों न हो। फिर पड़ोस के किंबरली नगर में हीरे की भी खानें हैं। बड़े बड़े मकान, भारी भारी दूकानें, बड़ी बड़ी सड़कें, उनपर चलनेवाले सहस्रों मोटरें, बसें, ट्राम तथा जनसंख्या उसकी महत्ता सिद्ध करती हैं। जनता में हब्शी सबसे अधिक हैं फिर हैं योरपीय, फिर हैं कलर्ड और सबसे कम हैं हिन्दुस्तानी।

२२ दिसम्बर को हम लोग डरबन के लिए रवाना होनेवाले थे। अब मैंने भारतीयों के रिज़र्व्ड क्लास में एक साधारण भारतीय की भाँति यात्रा करने का निश्चय कर लिया था। स्टेशन पर मेरी बिदाई के लिए एक भीड़ जमा थी। सभी वर्गों और समुदायों के लोग आये थे। सर रज़ाअली के सेक्रेटरी मिस्टर रिडली भी मौजूद थे। मेरे साथ श्री प्रागजीभाई और श्री रामदास गांधी भी जा रहे थे। ठीक समय ट्रेन रवाना हो गई। डाक्टर दादू के नेत्रों में जल भरा हुआ था और उनसे बिदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

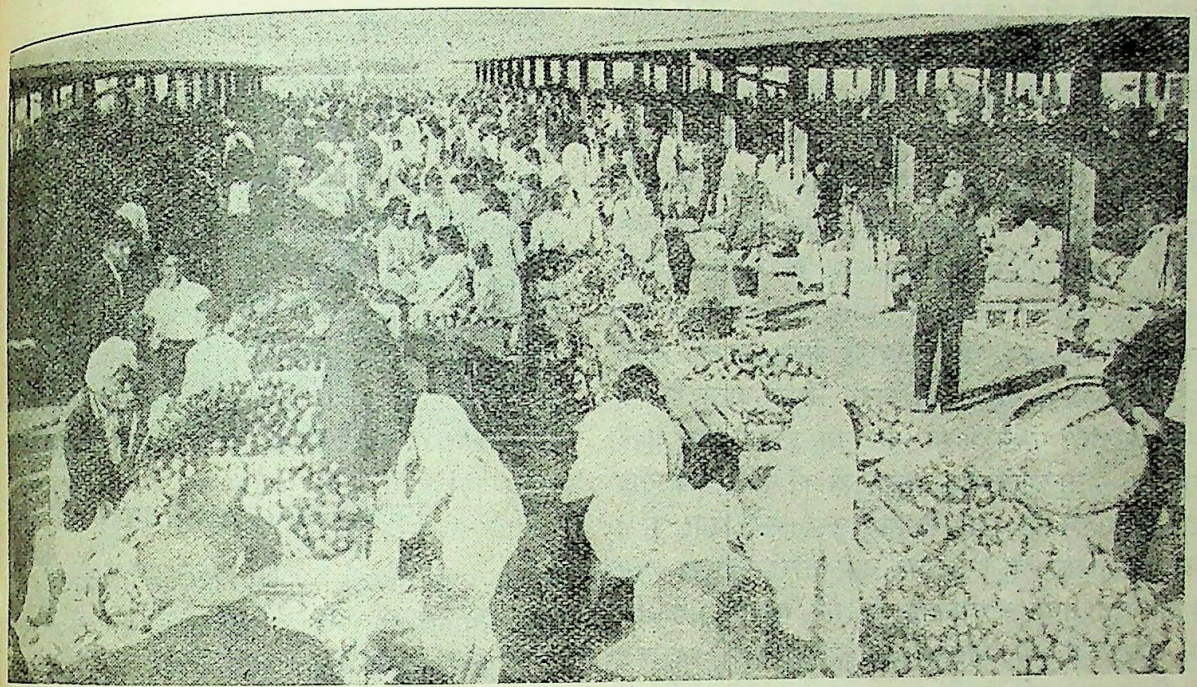

[डरबन में इंडियन-मारकेट का एक दृश्य]

होते होते मेरी आँखें भी भर आईं। इस युवक ने कैसे सौजन्य और कैसे प्रेम का परिचय दिया था! जिस डिब्बे से हम लोगों ने यात्रा की उसमें शारीरिक सुख चाहे योरपीय डिब्बे के फ़र्स्ट क्लास-सदृश न हो, पर हृदय अत्यन्त सन्तुष्ट था। मैं अपने देशवासियों के संग उन्हीं के सदृश यात्रा कर रहा था। हृदय एकदम हलका था। किसी बोझ के हट जाने से जिस क़िस्म की राहत का अनुभव होता है, उसी प्रकार की एक अजीब क़िस्म की राहत का अनुभव आज हो रहा था।

नेटाल में दस दिन

रात को ट्रेन में कोई ख़ास बात न हुई। ट्रेन में बैठने के समय से बहुत रात गये तक प्रागजी देसाई, रामदास जी, लक्ष्मीचन्द और मैं गपशप करते रहे।

जब प्रातःकाल हम लोग उठे उस समय ट्रेन पीटर मैरिट्सबर्ग स्टेशन के समीप थी, जहाँ से डरबन पहुँचने में क़रीब दो घंटे लगते थे। मैरिट्सबर्ग स्टेशन पर गाड़ी के ठहरते ही महात्मा गांधी के द्वितीय पुत्र इंडियन ओपीनियन के सम्पादक श्री मणिलाल गांधी मुझसे मिलने आ पहुँचे। फिनिक्स जहाँ महात्मा गांधी का आश्रम था और जहाँ मणिलाल जी रहते थे, यहाँ से क़रीब ५० मील था। मणिलाल जी ने फिनिक्स से क़रीब ३ बजे रात को मोटर से रवाना होने का कष्ट इसी लिए उठाया था कि वे ट्रेन के समय यहाँ पहुँच जायँ और मुझसे मिलकर यहीं से मेरे साथ डरबन जायँ। मणिलाल जी से मैं सन् १९३० में महात्मा गांधी के ऐतिहासिक डाँडी-कूच के अवसर पर अहमदाबाद में होनेवाली अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी की बैठक में मिला था। उसे काफ़ी समय बीत गया था। इतने समय में उनमें और मुझमें, दोनों में ही बहुत परिवर्तन हो गया था, अतः हम एक-दूसरे को न पहचान सके। श्री रामदास गांधी ने हम लोगों का परिचय कराया। अतीत की विस्मृति अनेक बार ऐसे प्रसंग उपस्थित कर देती है।

'इंडियन ओपीनियन' ने मेरे स्वागत में अग्रलेख लिखने की कृपा की थी। उसी लेख में नेटाल के कार्यकर्ताओं के आपसी मतभेद की चर्चा भी थी। डरबन पहुँचने तक मणिलाल जी से इस मतभेद के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें होती रहीं और मैंने अपने मन में निश्चय किया कि मैं अपने नेटाल में रहते हुए इस मतभेद को मिटाने का अवश्य यत्न करूँगा।

ठीक ९ बजे ट्रेन डरबन-स्टेशन पर पहुँच गई। 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' ने मेरे स्वागत का धूम-धाम से आयोजन किया था। स्टेशन पर सभी वर्गों और सभी समुदायों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की एक भारी भीड़ इकट्ठा थी। इस भीड़ में सबसे पहले जिन्होंने मेरा ध्यान आकर्षित किया वे थे नेटाल के कहे जानेवाले नाहर श्री सोराब जी रुस्तम जी पारसी। विद्यार्थी-अवस्था में मैंने जब दक्षिण-अफ़्रीका के सत्याग्रह का नाम सुना था उसी समय सोराब जी के पिता सेठ रुस्तम जी का भी नाम सुना था। रुस्तम जी की महात्मा गांधी के प्रति श्रद्धा और देश के प्रति भक्ति का वृत्तान्त मैं भली भाँति जानता था। मुझे मालूम था कि उस वीर पुरुष ने केवल अपने शरीर रहते ही देश-सेवा नहीं की है, बरन अपनी मृत्यु के पूर्व अपनी सम्पत्ति में से केवल दस दस हज़ार पौंड अपने दोनों पुत्रों—जालभाई और सोराब जी को देकर शेष साठ हज़ार पौंड का देश-सेवा के लिए ट्रस्ट कर दिया है। उस वीर पिता के इस वीर पुत्र सोराब जी का नाम भी मैं बहुत समय से जानता था और जानता था कि श्री सोराब जी भी अपने पिता के पद-चिह्नों पर चल कर पिता-द्वारा दिये गये उन दस हज़ार पौंड को भी देश-सेवा में स्वाहा करके फ़क़ीर हो गये हैं। 'दक्षिण-आफ़्रिकन इंडियन कांग्रेस' और 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' ने सर रज़ाअली की शादी का विरोध न किया था, इसलिए श्री सोराब जी कांग्रेस की सदस्यता से इस्तीफ़ा देकर घर बैठ गये थे, पर भारत से आये हुए किसी अतिथि का सोराब जी स्वागत न करें, यह कैसे सम्भव था? अतः वे स्टेशन पर सबसे पहले आ गये थे। उन्होंने सबसे पहले मेरे गले में पुष्पहार डाला और उस समय से लेकर जब तक मैं जहाज़ में न बैठ गया वे ही सबसे अधिक मेरे साथ रहे तथा बिदा होते समय सबसे अन्त में पुष्प-माला भी उन्हीं ने पहनाई। सोराब जी का परिचय किसी को कराने की आवश्यकता न थी। यद्यपि मैं उनसे इसके पहले कभी न मिला था, पर इसकी परवा करना उनके स्वभाव के विरुद्ध बात थी। सबसे आगे आकर वे इस प्रकार मुझसे मिले जैसे बचपन से मुझे जानते हों और इसके बाद स्टेशन पर उपस्थित अन्य सज्जनों से उन्हीं ने मेरा परिचय कराया।

सबसे मिल-भेंटकर हम लोग स्वामी भवानीदयाल जी संन्यासी के डरबन के नज़दीक जैकब्स नामक स्थान पर लाये गये, जहाँ हमारे ठहरने की व्यवस्था की गई थी। कितना सुन्दर था वह स्थान और कितना सुन्दर था वह बँगला! फिर बँगले में रहनेवाले स्वामी जी के परिवार के लोगों का सौजन्य भी अपूर्व था। स्वामी

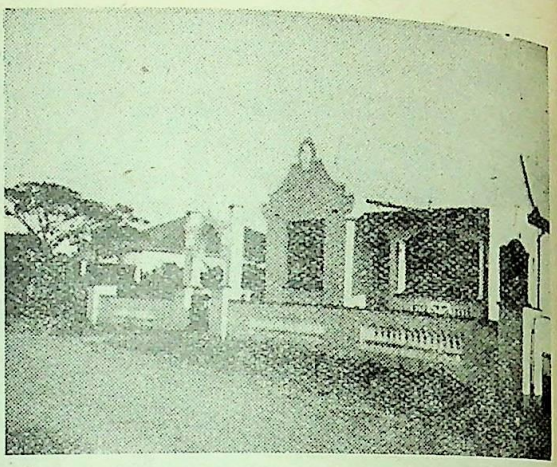

[भवानी-भवन का एक दृश्य]

जी की पुत्री गायत्री, उनकी पुत्र-वधू प्रकाशवती, उनके दामाद मगनलाल, उनके पुत्र आदि सभी ने हम लोगों का जैसा स्वागत किया और हमारे वहाँ रहते हमारी जैसी मेहमानदारी की वह तो हम कभी न भूलेंगे। स्वामी जी तो मेरे पहुँचने के क्षण से मेरे बिदा होने के क्षण तक एक पैर से हम लोगों के आतिथ्य-सत्कार में लगे रहे। दस दिन तक न उन्होंने अन्य कोई काम किया, न पेट भर भोजन किया और न निद्रा ली।

आज ही सन्ध्या को 'एम० के० गांधी लाइब्रेरी एण्ड रूस्तम जी पारसी हाल' में मेरे स्वागत में सार्वजनिक सभा थी। अतः आज की सभा तथा नेटाल के मेरे दस दिनों के कार्य-क्रम के सम्बन्ध में सब बातें उसी समय तय करने का हमने निश्चयकर क़रीब दो घंटे के भीतर सारी बातें तय कर लीं। यद्यपि सारा कार्यक्रम श्री सोराब जी की राय से निश्चित हुआ, तथापि आज की सभा 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' की ओर से थी, इसलिए सभा में सोराब जी ने आने से इनकार कर दिया।

हम लोगों ने निश्चय किया कि सार्वजनिक सभा के पहले वहाँ के सभी दलों के सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं से मिल लिया जाय तथा इन दलों में समझौता कराने का प्रयत्न आज से ही आरम्भ कर दिया जाय। भोजन कर प्राग जी, मणिलाल जी, रामदास जी और लक्ष्मीचन्द को साथ ले मैं इन मुलाकातों के लिए मोटर में बैठ रवाना हुआ।

क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिट्टी का क्षय

लेखक, प्रोफ़ेसर प्रेमचन्द्र मलहोत्र

हमारे देश की कृषि के सामने अनेक जटिल समस्यायें उपस्थित हैं। मुख्य प्रश्न तो ज़मीन को उपजाऊ बनाने का है। कृषि-भूमि सदियों से जोती जा रही है। परन्तु उसकी उपज-शक्ति स्थिर रखने के लिए यह अनिवार्य है कि उसमें खाद डाली जाय। यह सच है कि भारत में गंगा की घाटी बहुत उपजाऊ है, किन्तु उसको निरन्तर उपजाऊ रखने के लिए उसको खाद देनी अत्यावश्यक है। पृथ्वी की उपज उसकी मिट्टी पर निर्भर है। इस लेख में हम उपजाऊ मिट्टी के क्षय के सम्बन्ध में कुछ विचार प्रकट करेंगे।

मिट्टी का क्षय कृषि के लिए एक भयंकर रोग है, जिसका परिहार भली भाँति होना चाहिए। कृषि-सुधार की आधार-शिला तो भूमि ही है। यदि उसी का नाश बढ़ता गया तो शेष सब प्रयत्न व्यर्थ हो जायँगे।

मिट्टी का क्षय तीन प्रकार का होता है। पृथ्वी की ऊपरी उपजाऊ मिट्टी का क्षय, वर्षा के वेग से उपजाऊ भूमि का बह जाना और पवन-क्षय।

पृथ्वी के ऊपरी भाग का क्षय अधिक व्यापक तथा भयंकर है। इससे अज्ञात रूप में हानि होती रहती है और किसान को तब पता चलता है, जब क्षय भयानक रूप धारण कर लेता है। सतह का क्षय सब ढालू ज़मीनों पर होता है, जहाँ ज़मीन की मिट्टी पर प्रचंड वायु पड़ती है।

प्रारम्भ में तो मिट्टी के सूक्ष्म कण बह जाते हैं और मोटे मोटे कण रह जाते हैं। यह क्रिया प्रायः अदृश्य रूप में होती रहती है। मिट्टी के सूक्ष्म कण पृथ्वी के लिए बहुमूल्य हैं, क्योंकि ये ज़मीन को इकट्ठा बाँधे रखते हैं। पृथ्वी की नमी धारण करने तथा पौधों की खुराक ग्रहण करने की शक्ति पृथ्वी की गुँधी हुई बनावट पर निर्भर है। सूक्ष्म कणों का नाश होने पर पृथ्वी की उपजाऊ शक्ति क्षीण पड़ जाती है। कभी-कभी तो जब ऊपर की सतह की सब मिट्टी बह जाती है तब नीचे की भूमि की कम उपजाऊ मिट्टी ही रह जाती है। सतह का क्षय अखिल भारत में व्यापक रूप से हो रहा है। केवल नहरों तथा नलकूपों से सींची जानेवाली पृथ्वी इस रोग से बची हुई है।

जल-प्रपात-क्षय—सतह के क्षय के बाद की दशा यह होती है कि पृथ्वी में जल-प्रपात के निरन्तर प्रवाह से एक गहरा मार्ग-सा बन जाता है। जब पानी के प्रवाह को रोकने के लिए ज़मीन पर घास, फूस तथा अन्य प्रकार की कोई वनस्पति नहीं होती तब ज़मीन वर्षा का पानी बहुत कम चूसती है और शेष पानी छोटे-छोटे नालों के द्वारा ढलवान की ओर बह जाता है। इस प्रकार एक अनिष्ट-चक्र स्थापित हो जाता है। जैसे पीछे से पानी का प्रवाह बढ़ता जाता है, वैसे पानी की धारा वेगवती होती जाती है और ज़मीन को बीच में से फाड़ देती है।

भूमि के ऊपरी भाग का क्षय अर्थात् सतह का क्षय और जल-प्रपात-क्षय तो पानी के कारण होते हैं, परन्तु तीसरे प्रकार का क्षय प्रचंड वायु के द्वारा होता है। जिन मैदानों पर वृक्ष इत्यादि न हों और घास इत्यादि भी हल चलाने अथवा चरने के कारण उखड़ चुकी हो, वहाँ पवन-क्षय होता है और तेज़ हवा अपने संग भूमि की मिट्टी को उड़ा ले जाती है। ऐसी भूमि पर रेत के छोटे-छोटे टीले जमा हो जाते हैं और झाड़ियाँ उगने लगती हैं। पवन-क्षय आस्ट्रेलिया के चरागाहों में बहुत होता है। भारत में पवन-क्षय का उदाहरण अटक के ज़िले (पंजाब) में कैम्बलपुर के उत्तरी भाग की पृथ्वी है।

उपाय—अब प्रश्न यह है कि भूमि के क्षय का कैसे परिहार हो सकता है। वर्षा के पानी को नदी में सीधा बहने से रोकने के लिए जहाँ ऊपर से वर्षा का पानी आता है वहाँ छोटे छोटे नालों को नियन्त्रण में करना चाहिए। यदि ज़मीन बोई हुई है तो प्रत्येक खेत से पानी के बहने को रोकना आवश्यक है।

अनेक लोगों का यह भ्रमात्मक विचार है कि जंगल के तले की भूमि क्षय का शिकार नहीं होती। एक घना जंगल तो पानी के लिए एक उत्तम स्पंज है, जो बहुत-सा पानी चूस लेता है, परन्तु यदि जंगल में जानवर बहुत चरें और ज़मीन जानवरों के खुरों से रौंदी जाय तो जंगल के तले की ज़मीन में से भी पानी बह निकलता है। इसलिए हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि जानवरों को खुला चराने की अपेक्षा उन्हें घास कटवा कर दी जाय और पशुओं को उनके बाँधने के स्थान पर ही उनका खाना दिया जाय।

ऐसा करने के लिए हमें पुरानी प्रथा को तो बदलना पड़ेगा और प्रारम्भ में कई अड़चनें सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवेंगी। परन्तु हमारे देश के गूजर अच्छे पशुओं की अपेक्षा संख्या में उनके अधिक होने को ही अधिक अच्छा समझते हैं। उनको यह समझना चाहिए कि एक हृष्ट-पुष्ट पशु जिसको पेट भर कर चारा मिलता हो, दुर्बल पशु से बीस गुना दूध देगा।

पंजाब के हुशियारपुर-ज़िले में ८०,००० एकड़ घास-वाली ज़मीन की चराई चार साल के लिए बंद कर दी गई थी। यह काम जंगल-विभाग के एक अफ़सर ने किया था और उसने गाँव गाँव में जाकर खुला चराने की प्रथा के बन्द कर देने के लाभ समझाये और लोगों ने ऐसा करने के लिए स्वयं ही प्रार्थना की।

स्थानीय भूमिसंरक्षक क़ानून के अनुसार सरकार को अधिकार है कि किसी भी इलाक़े को चरने के लिए बन्द कर दे। हुशियारपुर के ज़िले में १९०५ के चोस क़ानून के अनुसार कुछ एक इलाक़े चरने के लिए बन्द किये गये थे और अब उन्हीं इलाक़ों से कटी हुई घास से पर्याप्त आय होती है।

गाँववालों के मन में भ्रम होता है कि सरकार ज़मीनों पर चराई की रोक क्यों करती है। जब तक ज़मीन के दो-तिहाई मालिक किसी ज़मीन की चराई के बन्द करने की प्रार्थना न करें तब तक जंगल-विभाग का अफ़सर ऐसा नहीं कर सकता और भिन्न-भिन्न दलों के परस्पर झगड़ों के कारण दो-तिहाई बहुमत का होना कठिन हो जाता है।

गत वर्षों में यह काम सहकारी विभाग ने अपने हाथ में लिया था। उसने रेतीली भूमि को फिर से उपजाऊ बनाने के लिए 'पुनः भूमि प्राप्ति' सभायें स्थापित कीं। रेतीली भूमि की पुनः प्राप्ति के लिए प्रथम पद ज़मीनों का चरने के लिए बन्द करना है। उदाहरणार्थ भटराना गाँव हुशियारपुर में एक छोटी-सी सभा है, जिसने चो (नदी के रेतीले तल) पर झाड़ियाँ इत्यादि बोई हैं। इससे न केवल भूमि में आगे को क्षय बन्द हो जायगा, किन्तु भूमि की कृषि-कर्म के लिए पुनः प्राप्ति हो जायगी।

भयंकर 'चो' भी नियन्त्रण में रक्खी जा सकती है। इसका उपाय यह है कि उसके दोनों किनारों पर वृक्ष तथा अन्य पौधे उगाये जायँ, जो रेत को बँधा रखने तथा पानी के वेग को थामने में सहायता दें।

क्षय से हानि—भूमि के ऊपर की अमूल्य मिट्टी जिससे पौधे अपना पोषण ग्रहण करते हैं, बह जाती है। इससे फ़सलों की उपज घटती जाती है और इस क्षति की पूर्ति खाद डालने तथा अच्छे बीजों के प्रयोग से भी नहीं हो सकती। चरागाहों की पशु-पालन-शक्ति घटती जाती है, क्योंकि यदि एक अच्छे चरागाह की दो एकड़ भूमि एक गाय का पेट पालन कर सकती है तो क्षयग्रस्त १० एकड़ भूमि भी एक गाय के पालन के लिए पर्याप्त नहीं है।

क्षय से एक हानि यह है कि नदी के तल पर बहुत-सी रेत जमा होने के कारण नदी का तल ऊँचा हो जाता है और इससे नदी में बाढ़ भी अधिक आने लगती है।

एक और दुष्परिणाम यह होता है कि अनावृष्टि की अवधि बढ़ती जाती है। पहाड़ी नाले अपने पानी का ८० प्रतिशत प्रवाह एक घंटे में समाप्त कर देते हैं और पृथ्वी में बहुत कम पानी सोखता है। क्योंकि धरती बहुत कम पानी चूसती है, इससे पानी के नीचे की तह में पानी कम पड़ जाता है। झरनों और कुँओं के लिए ज़मीन के नीचे ही पानी जमा होता है, परन्तु यह पानी का ख़ज़ाना ज़मीन के क्षय होने के कारण घटता जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि कुएँ और झरने सूखते जाते हैं और नदियाँ जो बारहों महीने बहती रहती थीं सूखे मौसम में बहुत सिकुड़ जाती हैं।

यह काम व्यक्तिगत रूप में नहीं किया जा सकता और न इस काम के लिए कोई गाँववाला अपनी भूमि का अधिकांश देने को तैयार होगा। ठीक उपाय तो यही है कि जितनी भी भूमि इस काम में लाई जाय वह सामान्य भूमि हो और जंगल के किसी शिक्षित संरक्षक के हाथ में उसका प्रबन्ध हो और यह जंगल का संरक्षक सहकारी सभा के अधीन हो।

पंजाब में भूमि-क्षय के थामने तथा परिहार के लिए एक छोटा-सा किन्तु व्यवस्थित विभाग है। जंगल-विभाग के अधीन एक क्षय-विरोध-विभाग काम कर रहा है। अम्बाला, हुशियारपुर, गुरदासपुर, गुजरात, जहलम, काँगड़ा और रावलपिंडी के गाँवों के जंगलों का प्रबन्ध इस विभाग के अधीन रक्खा गया है। इन सब इलाक़ों में क्षय-विरोधक उपाय किये जा रहे हैं। भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न उपायों की आवश्यकता पड़ती है।

कई जगह तो चरने के नियन्त्रण से काम चल जाता है और जो ज़मीन कृषि के काम में नहीं आती उस पर घास इत्यादि उग जाती है। कई जगह जहाँ गहरे जल-मार्ग बन गये हैं वहाँ नालों के तल पर झाड़ियाँ इत्यादि उगाई जाती हैं जो बन्ध का काम देती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि भूमि के ऊपरी भाग का क्षय है तो उसका उपाय यह है कि जितना पानी किसी खेत में पड़े उसको दूसरे खेत में बहने से रोका जाय। प्रयाग के कृषि-कालेज में क्षय के रोकने के प्रयोग किये जा रहे हैं।

कई इलाक़ों में जंगलों के कटने से भूमि का क्षय शुरू हो गया है। वहाँ जंगल दुबारा लगवाना ही क्षय रोकने का उपाय है। इसके लिए खुला चरना बन्द करना पड़ेगा और नये पौधे तथा वृक्ष उगवाने पड़ेंगे।

जहाँ चारे की न्यूनता हो, वहाँ पत्तोंवाले वृक्ष उगवाने की आवश्यकता है, ताकि उनके पत्ते पशुओं के खाने के काम आजायँ।

इन सब उपायों को प्रयोग में लाने के लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता है। क्षय से हानि अधिक हो रही है। प्रान्तीय सरकार यह सब काम नहीं कर सकती। हाँ, गाँव के निवासियों को थोड़े से पैमाने पर काम करके मार्ग अवश्य दिखा सकती है। इसलिए जहाँ जहाँ भूमि-क्षय का रोग है उसके परिशोध के लिए गाँवों में सहकारी संस्थायें बननी चाहिए, जो गाँवों के हित तथा कृषि की उन्नति के लिए क्षय-विरोधक कार्यक्रम में लगने को सब प्रकार प्रस्तुत हो जायँ।

पंछी

लेखक, श्रीयुत शिवदत्त शर्मा

तरु शिखा मत छोड़, पंछी !

जब उषा ने गान गाया,
जागरण ने प्राण पाया,
पवन के कोमल करों से—
प्राण में उत्थान आया,

धन्य थी पाकर तुझे ही,
विटप की यह क्रोड़, पंछी !
तरु-शिखा मत छोड़, पंछी !

तू यहीं का मुक्त प्राणी,
भावना का भुक्त प्राणी,
जा रहा किस देश को तू—
प्रेम का अभियुक्त प्राणी !

जाल में किसके फँसेगा,
प्रेम बन्धन तोड़, पंछी ?
तरु-शिखा मत छोड़, पंछी।

यह मुकुल है, यह कली है,
यह बुरा है, यह भली है,
पान कर रस को सभी के,
जगत् दो क्षण की गली है !

भ्रम भ्रमित उस भ्रमर की रे !
अब न कर तू होड़, पंछी !
तरु-शिखा मत छोड़, पंछी !

देख पतझर क्यों विकल है ?
प्रेम क्या इतना निबल है ?
देख मा, श्यामल धरा का,
अश्रु से अंचल सजल है !

जगत् दो क्षण, दो क्षणों को
नेह नाता जोड़ पंछी !
तरु-शिखा मत छोड़, पंछी !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिक्ता

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

वह बड़े ही धैर्य्य और तत्परता के साथ घर के सारे काम-काज चलाती रही। किन्तु एकाएक काशी से एक पत्र आया कि सविता के नाना जी की तबीअत ख़राब है और सम्भव है कि वे जीवित न रहें, इससे वे सविता तथा अरुण को एक बार देखना चाहते हैं। इससे जगत बाबू ने अरुण को, सविता को लेकर काशी जाने का आदेश किया। किन्तु अरुण को इस आदेश के पालन करने में आपत्ति थी। इधर सविता भी यह नहीं चाहती थी कि अनिच्छा होने पर भी वह उसके साथ जाने के लिए बाध्य किया जाय। इससे उसने श्वशुर से कह दिया कि आपकी तबीअत ख़राब है इसलिए मैं अभी नहीं जाना चाहती। परन्तु जगत बाबू सविता के नाना की इस इच्छा को अपूर्ण नहीं रहने देना चाहते थे, और वे उसे भेजने की ही चिन्ता में थे। इतने में एकाएक कटक में अरुण की माता का देहान्त हो गया, इससे इस ओर ध्यान देने का किसी को अवसर ही नहीं रह गया। श्राद्ध आदि से निवृत्त होने के बाद नियमित रूप से परिवार का काम काज चलने लगा। परन्तु जगत बाबू का स्वास्थ्य उत्तरोत्तर ख़राब होता जा रहा था। इससे स्वास्थ्य सुधारने के लिए उन्होंने दार्जिलिङ्ग जाने का निश्चय किया।

(१५)

एक छोटा-सा झरना था, जिसमें से कल-कल निनाद करती हुई जल की मन्द मन्द धार गिर रही थी। उस झरने के समीप लाल मिट्टी के ऊपर फूल का एक बग़ीचा था। उस बग़ीचे के चारों ओर रंगीन साड़ी के किनारे के रूप में पोस्ते के फूल लगे हुए थे। बग़ीचे के बीच में एक रंग-बिरंगा बँगला था। देखने में जान पड़ता, मानो वह किसी कुशल चित्रकार के द्वारा अङ्कित किया हुआ कलापूर्ण चित्र है। समीप ही क़तार के क़तार पहाड़ी झाऊ के वृक्ष थे, जिनकी चोटियाँ मन्दिरों की चूड़ाओं के समान शोभायमान हो रही थीं।

झरना के समीप कुछ विलायती फूलों का वन-सा था। उस वन में फैली हुई घनी हरियालीरूपी अन्धकार की प्रगाढ़ता से वृक्षों को प्रकाशित करने के लिए बीच बीच में गहरे लाल और सफ़ेद रंग के फूल खिले हुए थे। विदेशी फूलों में से अधिकांश ही गन्धहीन होते हैं। रंग के भड़कीलेपन के कारण वे लोगों की दृष्टि आकर्षित किया करते हैं। पुलक अपनी पुलक की उमङ्ग में आ आकर फूलों के उस वन में एक सजीव फूल के ही समान उछलता-कूदता था।

जगत बाबू को दार्जिलिंग आये एक सप्ताह हो गया था। साथ में वे अरुण को लाये थे, सविता को लाये थे, आशा को लाये थे और पुलक को लाये थे। सविता को उस समय भी काशी से माता तथा नाना का कोई समाचार नहीं मिला था, इससे मन ही मन वह बहुत चञ्चल हो उठी थी। ऐसे अवसर पर मनुष्य के हृदय में अशुभ की आशङ्का ही विशेष रूप से उदय हुआ करती है। सविता का हृदय भी इस नियम का अपवाद नहीं था।

दार्जिलिंग आने पर पहले तीन-चार दिन तक सविता को कार्य्य की अधिकता के कारण कोई बात सोचने का अवसर ही नहीं मिल सका। परन्तु इस बीच में घर की सारी व्यवस्था करने के बाद जब उसे शान्ति की साँस लेने का अवसर मिला तब माता और नाना की चिन्ता ने उसे आ घेरा। अब वह बार बार यही सोचती कि इतना समय किस प्रकार कट सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई जगह में पहुँचकर मनुष्य प्रायः आनन्द का अनुभव किया करता है। परन्तु सविता में वैसा उत्साह नहीं दिखाई पड़ा। आशा भी जितने उत्साह के साथ यहाँ आई थी, उतना उत्साह यहाँ आने पर उसे नहीं रह गया था। उसी मास में आशा की बहन का विवाह होनेवाला था, जिसके कारण वह बहुत चञ्चल हो उठी थी। बहन के विवाह का समाचार उसे यहाँ आने पर मिला था।

सविता आशा के लिए एक लेस बुन रही थी। आशा बैठी बैठी एकाग्र मन से वही देख रही थी। कुछ क्षण के बाद उसने कहा—कुछ चिट्ठियाँ आई हैं, जाऊँ उनका जवाब लिख आऊँ।

सविता ने कहा—अच्छी बात है, जाओ लिख आओ।

"तो क्या तुम यहीं बैठी बैठी बुनती रहोगी?"

"तो और काम ही क्या है?" यह कह कर सविता हँसी।

"अच्छा, तो यही सही। तुम अपनी तपस्या करो, मैं चलूँ।"

"क्या कहा?"

आशा ने हँस कर कहा—शायद सुन नहीं पाई हो? शायद आजकल तुम्हारा मन अच्छा नहीं है दीदी?

सविता यह बात सुनकर चौंक पड़ी। क्षण भर के बाद ही हँसकर उसने कहा—यह कैसी बात है? मन अच्छा क्यों न रहेगा? कौन-सी ऐसी बात है?

"सचमुच, कितने दिन हो गये तुम्हें पिता के घर से आये! मुझे यदि लगातार इतने दिनों तक रुकना पड़ता तो मैं मर ही जाती। बाप रे!"

"हूँ! यदि मरने का समय होता तो मैं भी मर जाती, तब न पाती। तुम कोई काम करने जा रही थी न, जाओ अपना काम करो। मेरे सम्बन्ध की इन सब व्यर्थ की बातों पर विचार करने की तुम्हें क्या आवश्यकता है; ज़रा बताओ तो सही।

"अच्छी बात है। अब जाती हूँ, तुम्हारे सम्बन्ध की बातों पर विचार न करूँगी। मैं देवता तो हूँ नहीं, इसमें ध्यान चला ही जाता है।"

आशा उठ गई। सविता हाथ में जो काम लिये हुए थी उसी में दत्तचित्त होने का उसने प्रयत्न किया। इन सब बातों के कारण उसके हृदय में मानो तूफ़ान के बादल उमड़ आते। इसलिए वह उन्हें यथासाध्य दबा रखने का ही प्रयत्न किया करती। परन्तु प्रकृति की सन्तान प्रकृति के ही विरुद्ध कितने समय तक युद्ध कर सकती है?

स्वामी के साथ एक ही गृह में वह निवास किया करती थी। किन्तु इतने दिन बीत गय, किसी दिन एक बार आँख से उन्हें देखने का भी सुयोग उसे नहीं हुआ अथवा यदि वह सुयोग हुआ भी तो उसने स्वयं ही उसकी उपेक्षा कर दी है। जो आशा पूरी नहीं हो सकती उसके लिए निरर्थक प्रयत्न करने का उसका स्वभाव नहीं था।

दूर दूर रहने पर भी सविता को स्वामी के शरीर की हवा तो लगा ही करती थी। उनकी पद-ध्वनि, उनकी हँसी का अट्टहास कानों में पड़ा करता। इन सबके कारण सविता के नारी-हृदय का सुधापात्र क्या एक अनिर्वचनीय गुप्त आनन्द के उज्ज्वल वर्ण से परिपूर्ण नहीं हो उठता था? न्याय की दृष्टि से स्वामी से स्त्री को जो कुछ प्राप्त करने का अधिकार है वह कुछ भी उसे प्राप्त नहीं हो सका। उसे प्राप्त करने की उसने कभी चेष्टा भी नहीं की। स्वामी से कृपा के लिए प्रार्थना करते समय भी उसके मुख पर लालिमा दौड़ जाती, किन्तु तो भी जिस अज्ञात ऐश्वर्य्य से हृदय परिपूर्ण हो उठा करता था वह क्या उसके लिए कुछ था ही नहीं? सविता यह समझ नहीं पाती थी कि मेरी जीवन-रूपी नदी के सूखे हुए कछार में इस जल की तरङ्ग का कलकल निनाद कब से आरम्भ हुआ है? जीवन में जो वेदना पुञ्जीभूत हुई है उसमें भी ममता का जन्म कब से हुआ है।

हाथ का काम हाथ में ही लिये हुए सविता बैठी थी। एकाएक पुलक की आहट पाकर जब उसने मस्तक उठाया तब देखा कि सामने स्वामी खड़े हैं।

पुलक का हाथ पकड़े हुए अरुण वहाँ आया था। हाथ में उसके तुरन्त की आई हुई कई चिट्ठियाँ और कुछ समाचार-पत्र थे।

अस्ताचलगामी सूर्य की ताम्रवर्ण की किरणें सविता के आभामय मुख पर मानो दीपक जलाये हुए थीं। अपने बड़े बड़े रूखे बालों को धोकर उसने पीठ पर लटका दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। कमरे की फ़र्श पर लोट लोट कर वे मानो सब प्रकार के मान-अपमान को प्रसन्नता-पूर्वक सहन कर लेने-वाली भगवती वसुन्धरा को अपने दुःख की कहानी सुना रहे थे। अरुण को देखते ही लज्जितभाव से उसने मस्तक पर का वस्त्र खींच लिया और उठ कर खड़ी हो गई। अरुण के हाथ में जो चिट्ठियाँ थीं उनकी ओर केवल एक बार देखकर उसने फिर अपनी दृष्टि फेर ली, मुँह से उसने कोई बात निकाली नहीं।

अरुण ने कहा—शायद तुम चिट्ठी के लिए बहुत चिन्तित हो उठी थीं। यह लो, तुम्हारी एक चिट्ठी आई है।

सविता के मुर्झाये हुए मुख पर प्रसन्नता की रेखा उदित हो आई। परन्तु स्वामी के हाथ से चिट्ठी लेने के लिए वह बढ़ी नहीं, व्यग्रभाव से ताकती ही रह गई।

अरुण ने कहा—चिट्ठी के लिए इस प्रकार चिन्तित थीं। अब लेती क्यों नहीं हो चिट्ठी?

"यह किसने कहा कि मैं बहुत चिन्तित हो उठी थी?"

"किसी ने भी कहा हो। किन्तु इसमें दोष ही क्या है?"

"दोष? नहीं, नहीं, इस चिन्ता या व्यग्रता का भी हिसाब-किताब रखना मेरे लिए सम्भव न होगा।"

अरुण ने स्वाभाविक भाव से ही ज़रा-सा हँस दिया। उसकी उस दिन की हँसी में अवज्ञा का तीव्र विष नहीं था। पता नहीं, क्या सोचकर हाथ में चिट्ठी लिये हुए वह स्वयं सविता की ओर बढ़ा।

सविता कुछ बोलने ही को थी कि पुलक ने चिट्ठी लेकर एक छलाँग में ही उसके हाथ पर रख दी। अरुण का सुन्दर मुख ज़रा-सा लाल हो उठा।

सविता ने वह चिट्ठी अपनी मुट्ठी में दाब ली। कितने दिनों की अधीरतामय चिन्ता के बाद उसे यह चिट्ठी मिली थी। चिट्ठी पर माता के हाथ का लिखा हुआ शिरोनामा देख कर ही उसने बहुत कुछ सान्त्वना प्राप्त की। परन्तु अरुण के सामने उसने चिट्ठी खोली नहीं।

कमरे में जो जो चीज़ें रक्खी हुई थीं उन्हें उठा-उठाकर अरुण देख रहा था। बिस्तरे पर एक पुस्तक रक्खी हुई थी। उसके बीच के एक पृष्ठ में एक काँटा खोंसा हुआ था, जिससे मालूम किया जा सके कि पुस्तक का कितना अंश पढ़ा जा चुका है। पुस्तक को हाथ में लेकर देखते देखते अरुण ने कहा—इसे क्या तुम पढ़ रही थीं?

सविता ने कहा—नहीं! मैं नहीं पढ़ रही थी। आशा पढ़ रही थी।

"तुम तो पुस्तकें खूब पढ़ा करती हो। पढ़ा करती हो न?"

"यों ही एक-आध?"

"तो क्या छुटपन से ही पढ़ती आई हो?"

सविता चिट्ठी पढ़ने के लिए मन ही मन व्याकुल हो उठी थी, तो भी नम्र-स्वर से उसने कहा—नहीं, उस समय तो जो पढ़ने की पुस्तक थी वह पढ़ा करती थी।

"तुम्हारी उस पुस्तक का क्या नाम था? प्राइमरी रीडर?"

सविता का मुख काला पड़ गया। वह मन ही मन सोचने लगी—तो क्या ये कभी-कभी मेरी खिल्लियाँ उड़ाने के ही लिए आ जाया करते हैं?

मस्तक झुकाये हुए सविता चिट्ठी का कोना फाड़ने का प्रयत्न करने लगी। उसने देखा कि चिट्ठी एक नहीं दो हैं। एक तो स्वयं उसकी है और दूसरी अरुण की। अरुण के नाम से कार्ड आया था। उसे टेबिल पर रखकर सविता ने कहा—यह कार्ड मेरा नहीं है।

"तुम्हारा यह नहीं है? तो शायद मैंने भूल से तुम्हें दे दिया है।" यह कहकर अरुण ने कार्ड ले लिया और कहने लगा—यह तो कनक का पत्र है। उसने भी घूमने के लिए यहाँ आने को लिखा है। परसों-नरसों तक वह यहाँ आ पहुँचेगा।

इस बार भी सविता का ध्यान अरुण की बातों की ओर नहीं था। वह लिफ़ाफ़े का किनारा फाड़ रही थी, कुछ बोली नहीं। अरुण ने फिर कहा—शायद तुम कनक को पहचानती नहीं हो।

"पहचानती हूँ। वे कटक के हैं न?"

"हाँ, वह कटक से ही आवेगा। वह—"

उस समय आशा उस कमरे में प्रवेश करने जा रही थी। एकाएक बहुत ही लज्जित होकर वह लौट गई।

ऐसे समय में, विशेषतः सविता के कमरे में आशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने जेठ को किसी दिन भी नहीं देखा था। इसलिए वह निश्चित होकर आ रही थी। अरुण भी आशा को देखते ही बड़ी ही उतावली के साथ कमरे से निकल गया। उतावली के कारण उसकी कनकवाली चिट्ठी सविता के ही कमरे में रह गई।

सविता बाहर की ओर ताकती हुई कुछ सोच रही थी। उसके दोनों ही नेत्र जल रहे थे और उनमें जल आ रहा था। उसके मन पर एक ऊँचे से भीटे के समान अवसादों का जो भार लदा हुआ था उसके कारण वह बहुत ही क्लेश का अनुभव करने लगी।

सविता के मुख और नेत्रों से मानो आग निकल रही थी। अपने आपको धिक्कार देती हुई वह सोचने लगी—मैं भी किस प्रकार के लोभ से आतुर हूँ। परन्तु यह जो निष्ठुर अभिनय किया गया है वह किसके लिए किया गया है? अमृत समझकर मैं कैसे सहन कर लेती हूँ इस प्रकार के आचरण को? इसके बाद ही क्या मैं अपनी दुर्बलता के कारण पराजित होकर क्षणिक मनोविनोद का साधन बन कर रहूँगी? नेत्रों का जल पोंछते पोंछते उसे स्मरण आया कि हाथ में माता जी का पत्र है, जो अभी तक खोला तक नहीं जा सका।

वह पत्र खोल कर सविता ने शीघ्रतापूर्वक पढ़ लिया। माता ने लिखा था कि हम पिता-पुत्री दोनों ही रुग्ण हो गये थे, इससे समय पर पत्र नहीं लिख सके। अब हम दोनों ही निरोग हो गये हैं, किन्तु पिता जी का शरीर इस समय भी बहुत ही निर्बल है, वे चल फिर नहीं सकते।

माता ने सविता को बहुत दिनों से देखा नहीं था। इससे बहुत-सी बातें लिखी थीं। उन्होंने यह भी लिखा था कि यदि हम तुम्हें बुलाना चाहें तो तुम्हारे श्वशुर भेजेंगे या नहीं।

एकाएक पुलक के चिल्ला पड़ने के कारण सविता का चिट्ठी पढ़ना बन्द हो गया। सविता का अञ्चल खींचकर उसने कहा—बहू, ओ बहू।

पुलक का माथा चूमकर सविता ने कहा—क्यों भैया, क्या हुआ है?

मारे अभिमान के मुँह फुलाये हुए पुलक ने कहा—छोटी मामी मुझे लिखने नहीं देती। तुम चलो, उसे डाँट आओ।

"अच्छी बात है मैं चलती हूँ। परन्तु तुमने यह क्या किया? हाथ में इतनी स्याही कहाँ लगा ली? तुम तो न जाने कैसे पागल लड़के हो?"

पुलक के दोनों ही छोटे छोटे हाथों में स्याही लगी हुई थी। उन हाथों को आँख और मुँह पर फेर फेर कर उन पर और भी स्याही लगाते हुए उसने कहा—कहाँ? स्याही तो मैंने लगाई नहीं है बहू, पोंछ डाली है।

सविता ने कहा—बहुत अच्छी तरह से पोंछ डाला है। चलो, धुला दें।

आशा आई और हँसते हँसते कहने लगी—शायद नालिश हो रही है। सुनो दीदी, इन्होंने सारे कमरे में स्याही लपेट दी, सारे शरीर में लपेट ली, परन्तु अभी तक इन्हें सन्तोष नहीं हुआ। दावात नहीं टूट पाई है, इसी लिए मेरे ऊपर इतना क्रोध आया है।

पुलक ने मस्तक हिला कर कहा—तुम अच्छे लड़के नहीं हो। तुम पाजी लड़के हो? दुष्ट लड़के हो।

"अच्छा, अच्छा, तुम तो बड़े अच्छे लड़के हो।" यह कहकर आशा ने पुलक का माथा हिला दिया।

अपना कोमल मुख भारी करके पुलक ने तैश के साथ आशा का हाथ ठेल दिया। तब आशा ने हँसकर कहा—देखो दीदी, देखो। बाबू साहब को बड़ा क्रोध हो आया है मेरे ऊपर। अच्छा, अब चलो, पहले तुम्हारा मुँह तो धुला दें!

पुलक ने कहा—नहीं, जाओ, मैं तुमसे मुँह न धुलाऊँगा।

सविता ने पुलक को गोद में ले लिया। उसके हाथों में और मुँह में साबुन लगाकर उसने स्याही के सारे दाग़ साफ़ कर दिये।

आशा ने कहा—क्या समाचार है दीदी? नाना जी की तबीअत अच्छी हो गई न?

सविता ने चिट्ठी आशा के हाथ पर रख दी। उसने कहा—पढ़ कर देख लो।

आशा चिट्ठी पढ़ने लगी। सविता पुलक को खिलाने लगी। पुलक को जैसे ही वह खिला चुकी, वैसे ही श्वशुर को ओषधि आदि देने का समय हो आया। आजकल उन्हें बड़ी ही सावधानी के साथ रखना पड़ता था। उनमें जहाँ बहुत-से गुण थे, वहाँ एक दोष भी था। अपने शरीर की ओर उन्हें ज़रा भी ध्यान नहीं रहा करता था। कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी वे कह उठते कि तुम लोगों ने तो मुझे एकदम से छः महीने का बच्चा ही बना रक्खा है। बाद को शायद मैं चलने-फिरने भी न पाऊँगा।

जगत बाबू ने अपने आपको बिलकुल इन्हीं लोगों की इच्छा पर छोड़ दिया था। प्रायः किसी भी बात का वे विरोध नहीं किया करते थे। वे सदा से ही एक गम्भीर स्वभाव के आदमी थे, किसी भी कारण वे अधिक बातें नहीं किया करते थे। सविता भी उन्हीं के समान मित-भाषिणी थी। वह शान्तिपूर्वक सब प्रकार के दुःख-क्लेश सहन करती और परिवार के सभी लोगों की सेवा में लगी रहती, इस कारण जगत बाबू का स्नेह उसके प्रति दिन दिन बढ़ता ही गया, अन्त में उस स्नेह का कुछ अंश श्रद्धा के रूप में भी परिवर्तित हो गया।

सविता के अगणित गुणों की प्रशंसा सुनकर ही जगत बाबू ने उसके साथ अपने पुत्र का विवाह किया था। उन्होंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि मेरे समान विभवशाली व्यक्ति के लिए एक निर्धन परिवार में पुत्र का विवाह करना अप्रतिष्ठाजनक है। किसी धनी परिवार में विवाह करने पर दहेज़ के रूप में वे जो अतुलित धन-राशि प्राप्त कर सकते थे उसकी ओर भी उन्होंने ध्यान नहीं दिया था। परन्तु सविता में यदि वास्तव में उन गुणों का अभाव होता, सविता यदि तुच्छ स्वभाव की होती, तो जगत बाबू ने अपनी कुल-मर्यादा के प्रतिकूल जो यह विवाह किया था उसके कारण उनके क्षोभ की सीमा न रहती। इस विवाह की ज़िम्मेदारी पूर्ण रूप से उन्हीं पर तो थी।

जगत बाबू सविता के अगाध शील-गुण के कारण अब उसे गर्व की एक वस्तु समझने लगे थे। पुलक के आरोग्य और सुन्दर शरीर की ओर जब उनकी दृष्टि जाती तब उनके मन में यह बात आती कि कमला का यही एक मात्र चिह्न है। परन्तु मेरे घर में सात राजाओं की सम्मिलित निधि की तुलना में भी श्रेष्ठ सविता के स्नेह का अञ्चल वर्तमान रह कर उसे ढँक न रखता तो क्या यह सम्भव था कि पुलक इस तरह पुलकता फिरता। माता की गोद से बिछुड़े हुए इस बालक को सविता ने ही जीवित रक्खा है।

अरुण झरना के समीप खड़ा था। उसके खूब पास ही झाऊ का जो पेड़ था उसकी डाली तोड़ते हुए वह कनक से बातें कर रहा था। कनक पत्थर के एक बड़े से टुकड़े पर बैठा था।

आकाश निर्मेघ था। ग्रीष्म-ऋतु के कारण सूखकर थोड़ी मात्रा में बचे हुए झरने के जल की धारा बाल-सूर्य की स्वच्छ किरणों के पड़ने से गलाई हुई चाँदी के समान मालूम पड़ रही थी। कनक ने कहा—चार मास का भैया समझकर आज मैं इतना अदब न मानूँगा।

अरुण ने हँस कर कहा—क्यों? ओ हो! तुम्हारे बच्चे की अवस्था शायद चार मास की हो गई है।

"मतलब भी आपने खूब निकाला है!"

"ऐसा नहीं है तो तुम आगे और किस बात में हुए हो? विवाह में? पहले पहल जब तुम्हारा विवाह हुआ था तब मैंने सोचा था, वाह, वाह रे—"

"ऐसा क्यों? ऐसा मैं किस तरह हो गया, यह कैसे बतलाऊँ? परन्तु तुम बड़ी चालाकी कर रहे हो अरुण! बात छेड़ने का तुम अवसर ही नहीं दे रहे हो मुझे?"

"तो छेड़ते क्यों नहीं? किस तरह छेड़ोगे? क्या मैं तुम्हें रोक रहा हूँ?"

"अच्छा भैया, भाभी जी तो इतनी सीधी-सादी, इतनी गुणवती हैं, फिर भी वे तुम्हें पसन्द क्यों नहीं आतीं, ज़रा बताओ तो। परन्तु बताना सच सच।"

"कौन कहता है कि वे मुझे पसन्द नहीं हैं या यही बात किसने किससे कही है कि वे टेढ़ी हैं, उनमें गुण नहीं हैं; वे सदोष हैं?"

अरुण के हास्य में करुणा की पुट थी, उसका कण्ठ-स्वर भारी था।

कनक ने कहा—किसी ने कहा नहीं। मुझसे कहेगा ही कौन? मैं स्वयं ही तुम्हें आरम्भ से जानता हूँ। परन्तु विवाह हो जाने के बाद भी कर्त्तव्य को ताख़ पर रक्खे बैठे रहोगे, यह हम लोगों ने नहीं सोचा था। ऐसी अवस्था तुमने क्यों कर रक्खी है भैया? तुम तो अच्छे लड़के हो?

ज़रा देर तक चुपचाप रहने के बाद अरुण ने कहा—कैसी परेशानी है! शायद आज तुम सचमुच मुझे परेशान करने पर तुले हो। लो, और भी जो जो कहना हो, जल्दी से कह डालो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ज़रूर ! पहले से ही तो कह रक्खा है कि छका-ऊँगा। सुनो तुम। अच्छा, उस ज्योति को ही ले लो, जिसके साथ तुलना करते करते–"

दाँतों से होंठ दबाकर रोषमय स्वर में अरुण ने कहा–फिर ? 'रैस्केल', बन्दर कहीं के ! वही बात तुमने कार्ड में भी लिख दी थी ! रहने दे, रहने दे !

"कभी नहीं, कभी नहीं, मैं कभी नहीं रुकूँगा। पहले तुम मुझे यह बतला दो कि कौन-सी ऐसी बात है जिसके कारण तुम आज इतने वर्ष से इस परिवार को इस तरह अशान्तिमय किये हुए हो।"

"परिवार को शान्तिहीन कर रक्खा है मैंने ? और मैं स्वयं खूब शान्ति-पूर्वक हूँ ?"

"तुम जैसे भी हो, स्वेच्छा से हो, वैसा ही होने का तुम्हें शौक़ है। कर्त्तव्य-ज्ञान खोकर तुम इस तरह का आचरण क्यों करते हो, जो मनुष्य का-सा न हो ? तुम मनुष्य की तरह क्यों नहीं रहते हो, ज़रा मुझे इसका कारण तो बतलाओ। मुझे तुम्हारा रत्ती रत्ती हाल मालूम है। तुम्हारे इस प्रकार के आचरण के कारण––बुआ जी भी कितना दुःख लिये हुए चली गई हैं। तुम फिर भी मुझसे छिपाना चाहते हो।"

इस बार भी स्वाभाविक रूप से ही हँसकर अरुण ने कहा– समाप्त हुई तुम्हारी बातें ? अच्छा, किसी प्रकार का प्रतिवाद किये बिना ही मैं स्वीकार किये ले रहा हूँ तुम्हारी सारी बातें। परन्तु मैं जिस तरह कोई उत्तर नहीं दे रहा हूँ, उसी तरह तुम भी चुप हो जाओ कनक ! तुम्हारी ये बातें मुझे ज़रा भी अच्छी नहीं मालूम पड़ रही हैं। यह क्या तुम नहीं समझ पा रहे हो ?

"मैं खूब समझ पा रहा हूँ। परन्तु इन बातों को मैंने यह समझकर ही छेड़ा है कि ये तुम्हें प्रिय न होंगी। आज इस अप्रिय प्रसङ्ग को उठाकर मैं इसका अन्त कर देना चाहता हूँ। यह प्रसङ्ग मैं न भी उठाऊँ तो तुम्हारा चित्त प्रसन्न तो किसी प्रकार होगा नहीं। तुम तो मेरी किसी बात का उत्तर ही नहीं दे रहे हो, बोलो। मेरी बातों का उत्तर दो।"

अरुण अन्यमनस्क भाव से झाऊ की पत्तियाँ तोड़ता रहा। जो डाली वह पकड़े हुए था उसमें एक भी पत्ती नहीं रह पाई थी। डाली में जितनी भी पत्तियाँ थीं उन सभी को तोड़कर अरुण उसे साफ़ किये दे रहा था। वह कुछ बोला नहीं। उत्तर के लिए ज़रा देर तक प्रतीक्षा करने के बाद कनक ने कहा––किन्तु यदि तुलना ही करना चाहते हो तो सुनो। कहता हूँ कि ज्योति भी यहीं है, अधिक दूरी पर भी नहीं है। यह जो ऊपरवाली सड़क के पास ही सफ़ेद मकान दिखाई पड़ रहा है उसी में वे लोग रहते हैं। सुनते हो ?

अरुण गरज उठा। उसने कहा––कौन तुम्हारी ज्योति की चिन्ता में पड़ा है कनक ? मैं तो उसके संबन्ध की कोई बात जानना भी नहीं चाहता ! इसके सिवा उसका हाल जानकर मैं लाभ ही क्या उठाऊँगा ? तुम्हीं लोग तो कहा करते हो कि मैं केवल स्वार्थ की ही बात किया करता हूँ। तो फिर ?

"नहीं, तुमने मुझे पराजित कर दिया भाई। आख़िर तुम बड़े भाई ही ठहरे। मेरी समझ में नहीं आ सका कि मामला क्या है। बतलाओगे नहीं भाई ?"

पत्तियों से शून्य डाली को तोड़कर फेंकते हुए अरुण ने कहा––कहो, क्या बतलाऊँ ? बतलाने की कोई बात तो है नहीं। तुम्हारी वह चिट्ठी मैंने क्या की है, जानते हो ?

"नहीं। क्या की आपने वह चिट्ठी ?"

"जिसका पक्ष लेकर तुम भिड़े हो उसी के कमरे में मैं फेंककर चला आया हूँ।"

"जान-बूझकर वह चिट्ठी वहाँ छोड़ आये हो या भूलकर ? तो शायद अब संधि हो गई है ?"

"किसी प्रकार का संग्राम ही नहीं है तो फिर संधि का क्या प्रश्न है ? चिट्ठी मैं उस कमरे में भूल आया हूँ। अभी मुझे उसकी याद आई है। खैर, जो हुआ वह तो हो गया। क्या कहते हो तुम ?"

मस्तक हिलाते हुए कनक ने कहा––मुझे और कुछ नहीं कहना है भाई !

जिस बँगले में वे लोग ठहरे थे, यह झरना उसके पिछवाड़े था। वह स्थान एक प्रकार से प्रायः पूर्ण रूप से निर्जन ही था। पहाड़ के ऊपर कई प्रकार के फूल खिलकर उस स्थान को और भी मनोरम किये हुए थे।

पास ही एक रास्ता था अवश्य, किन्तु उस रास्ते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से रिक्सा या डाँडी नहीं चलती थी। रास्ता बहुत ऊबड़-खाबड़, बहुत टेढ़ा-मेढ़ा था। दो-चार शौक़ीन आदमी पैदल ही आ आकर उस पर चहलक़दमी किया करते थे।

सविता जिस कमरे में रहा करती थी उसके समीप ही थी यह जगह। सविता भी बीच बीच में कमरे का इस ओर का द्वार खोलकर यहीं आकर बैठा करती। पुलक आस-पास घूम घूमकर खेला करता। इसी लिए पुलक को यह विश्वास हो गया था कि इस स्थान पर पूर्ण अधिकार हमीं लोगों का है। उछलते उछलते जाकर उसने कहा--देखो बहू, हम लोगों के बैठने के जो दो पत्थर हैं उन्हें बड़े मामा ने दखल कर रक्खा है। ज़रा देखो तो?

सविता काम में लगी थी। मुँह उठाये बिना ही उसने कहा--कैसे?

"तुम उठो, चलकर देखो न। वे लोग जाकर वहीं बैठे हैं!"

"अच्छी बात तो है पुलक! अब हम लोग वहाँ न बैठा करेंगे। उन लोगों को बैठने दो।"

क्रोध में आकर पुलक ने कहा--नहीं। तब तो मैं जाकर नाना जी से कह दूँगा।

"क्या कह देगा रे तू जाकर नाना जी से?" यह कहता हुआ कनक आया और पुलक को उसने गोद में उठा लिया। एक अपरिचित आदमी की गोद में होने के कारण पुलक के मुँह से उस तरह चट से बात नहीं निकल सकी। वह हक्का-बक्का-सा होकर ताकता रह गया।

कुछ क्षण की बातचीत के बाद ही पुलक का भय दूर हो गया। उसने कहा--तुम्हारे तो चश्मा नहीं है। टूट गया है शायद?

"नहीं, मैं चश्मा नहीं लगाता हूँ। इससे मेरे पास चश्मा नहीं है।"

मस्तक हिलाकर गर्व के साथ पुलक ने कहा--बड़े मामा जी के पास बड़ा अच्छा चश्मा है।

कनक ने हँसकर कहा--तुम्हारे मामा जी अन्धे हैं। आँख से देख नहीं सकते, इसलिए वे चश्मा लगाते हैं।

"दुर, अन्धे क्यों हैं? बड़े होने पर मैं भी चश्मा लगाऊँगा। पैसा देकर खूब बढ़िया चश्मा ख़रीदूँगा, अन्धा नहीं होऊँगा।"

कनक हँस पड़ा। उसने कहा--यह क्यों? तुम्हें तो अन्धा होना पड़ेगा। शास्त्र में लिखा है--'नराणां मातुलक्रमः'। तब क्यों तुम अन्धे न होओगे?

"नहीं, मैं कभी अन्धा न होऊँगा।" यह कहकर पुलक ने अपना हाथ छुड़ा लिया और कनक की गोद से वह उतर पड़ा। आँख मुँह टेढ़ा करके उसने कहा--"दुर, मानो मैं भिखारियों के समान अन्धा होऊँगा। ये आये हैं कहाँ के। मुझे अन्धा होने को कहेंगे।" मानो वह कनक के कहने के अनुसार अन्धा होने ही जा रहा था।

आशा का भाई आकर उसे ले गया था। वह भी बहन के विवाह में जाने के लिए व्यग्र थी। इससे सविता फिर अकेली की अकेली रह गई।

सविता किसी समय भी ख़ाली हाथ नहीं रहा करती थी। घर के छोटे छोटे कार्य्यों को भी बढ़ाकर वह उन्हीं में सदा लगी रहती। उसका शरीर क्या था, मानो एक यन्त्र था, जो सदा एक प्रकार की गति से काम में लगा रहता। उसकी गति का न तो कभी विराम होता और न कभी उसमें उच्छ्वास आता।

सविता को किसी प्रकार की आशा नहीं थी, आकांक्षा नहीं थी, दुःख नहीं था, क्षोभ नहीं था। वह अचञ्चल थी, स्थिर थी।

ब्रह्मचर्य्य-व्रत का पालन करनेवाले ब्राह्मण और विधवा के साथ रहकर सविता इतनी बड़ी हुई थी। वह प्राणों की बाज़ी लगाकर इस बात के लिए प्रयत्न किया करती कि वासना उत्पन्न होकर उसके चित्त को उद्विग्न न कर सके। वासना से उसे बड़ी घृणा थी।

चाहे प्रिय हो या अप्रिय हो, सविता को कठोर सत्य पसन्द था। स्वामी यदि उससे प्रेम नहीं ही करते तो वह इस बात की आवश्यकता नहीं समझती थी कि संसार को दिखलाने के लिए प्रेम का अभिनय किया जाय। उसे सुख की कामना नहीं थी, उसे कामना थी केवल सत्य की। यही कारण था कि कामना और वासना के तार से हीन उसके स्नेह-शीतल हृदय को जो देखता वही सम्मान और श्रद्धा की दृष्टि से देखता। इस दो ही दिन की मुलाक़ात के बाद कनक भी उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगा था।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाग्रत नारियाँ

हाथरस का कन्या-गुरुकुल

लेखक, श्रीयुत महेशप्रसाद मौलवी, आलिम फ़ाज़िल

श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित आप गोरखपुर में होनेवाले गोरखपुर कमिश्नरी-महिला-सम्मेलन की अध्यक्षा मनोनीत हुई हैं।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में आर्य-समाज की ओर से कई गुरुकुल लड़कों के लिए स्थापित हुए, किन्तु लड़कियों के निमित्त कोई गुरुकुल न था।

सन् १९०९ ईसवी की बात है कि हाथरस के सेठ लाला मुरलीधर जी ने एक 'कन्या-गुरुकुल' स्थापित करने का विचार किया। सन् १९१० में उन्होंने सोलह सौ रुपयों में सौ बीघा ज़मीन खरीद की जो हाथरस नगर से लगभग ६ मील की दूरी पर उस पक्की सड़क के समीप है जो हाथरस से अलीगढ़ को जाती है। उसी भूमि पर लगभग साठ हज़ार रुपये लगाकर एक विशाल भवन बनाया गया, जिसका घेरा लगभग २८ बीघा है। इसी भवन में सेठ जी ने गुरुकुल की स्थापना की। जितनी लड़कियाँ भर्ती की गईं सबके भोजन-वस्त्र आदि का भी प्रबन्ध सेठ जी ने अपने पास से ही किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[भारतीय नृत्यकला में प्रवीण कुमारी हीरा बोस]

कई वर्षों तक गुरुकुल चला, किन्तु कुछ कारणों से बन्द हो गया। सन् १९३० ईसवी से कुछ पहले श्रीमती लक्ष्मीदेवी के मन में एक 'कन्या-गुरुकुल' खोलने का विचार उठा। उपर्युक्त स्थान की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया गया। देवी जी के पास धन न था, किन्तु साहस था, उत्साह था। किसी ने उनसे कहा कि इतना धन हो तो काम चलेगा अथवा इतना हो तो गुरुकुल स्थायी होकर रहेगा। किन्तु उन्होंने किसी बात की भी परवा न करके केवल नाममात्र के धन से काम करने का दृढ़ निश्चय किया और श्री नारायण स्वामी की संरक्षता में २८ जुलाई सन् १९३१ ईसवी को उक्त गुरुकुल को पुनः खोल दिया।

हाथरस का यह गुरुकुल एक निर्जन स्थान में है। ३ कन्यायें पहले-पहल भर्ती हुई थीं। आर्थिक अवस्था अच्छी न थी। एक बार यह संस्था टूट चुकी थी। निदान आरम्भ में जिन कठिनाइयों का सामना श्री लक्ष्मीदेवी जी को करना पड़ा था उनका उल्लेख क्या किया जाय, तथापि उन्होंने अपने धैर्य्य और साहस को अपने हाथ से न जाने दिया। फल यह हुआ कि जुलाई सन् १९३२ ईसवी में ४० कन्यायें हो गईं। सन् १९३९ ईसवी के अन्तिम सप्ताह में कन्याओं की संख्या १२५ से भी अधिक हो गई।

गुरुकुल में प्रायः ८ वर्ष की कन्या भर्ती की जाती है। यदि उसे हिन्दी-अक्षर का बोध भी न हो तो उसे अधिक से अधिक १२ वर्ष में वहाँ की पढ़ाई समाप्त करनी पड़ती है। वहाँ की पाठ-विधि सरकारी स्कूलों की पाठ-विधियों से बिलकुल भिन्न है—स्वतंत्र रूप की अपने ढंग पर है। देहरादून (राजपुरा) में जो कन्या-गुरुकुल है उसी से मिलता-जुलता पाठ्यक्रम है। भाषाओं में से संस्कृत व हिन्दी पर विशेष रूप से ज़ोर दिया जाता है। अँगरेज़ी का ज्ञान बहुत ही थोड़ा कराया जाता है। उक्त भाषाओं के ज्ञान के साथ ही साथ धार्मिक ज्ञान तथा धर्मोपदेश भी किया जाता है। दोनों काल संध्या होती है और हवन भी हुआ करता है। प्रति-सप्ताह में छुट्टी के दिन लड़कियाँ अपनी सभा करती हैं। इस सभा में वादविवाद भी हुआ करता है और निबन्ध भी पढ़े जाते हैं। गुरुकुल में एक पुस्तकालय भी है, किन्तु अभी बहुत छोटा है। उसका बड़ा होना आवश्यक है और जो समाचार-पत्र व पत्रिकायें वहाँ आती हैं उनमें भी वृद्धि की परमावश्यकता है।

पाक-शास्त्र स्त्री-शिक्षा का मुख्य अंग है। इसी कारण वहाँ भोजन बनाने की भी शिक्षा दी जाती है। गायन, चित्रकला, शिल्प व सिलाई की भी शिक्षा होती है। चर्खा का भी अभ्यास कराया जाता है। यहाँ के बुने व कढ़े हुए सूती व ऊनी वस्त्र बेच भी दिये जाते हैं। हाँ, इस अवसर पर मेरे विचार में इन बातों का भी उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता कि लड़कियों को आटा पीसने की चक्की का भी अभ्यास कराया जाय और उनको चिकित्सा-सम्बन्धी शिक्षा भी दी जाय। परन्तु वास्तविक बात यह है कि गुरुकुल की आर्थिक दशा अच्छी नहीं है और बड़ी कठिनाइयों के साथ गुरुकुल का सञ्चालन हो रहा है। स कारण यथोचित रूप से कुछ बातों का वहाँ होना असम्भव अथवा कठिन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[त्योहारों के अवसर पर चौक पूरने में भी भारतीय स्त्रियाँ कलाप्रेम का पूरा परिचय देती हैं]

सन् १८५७ के ग़दर में स्त्रियों की रक्षा का प्रश्न भारतीयों के लिए बड़ा विकट था। गत १५-२० वर्षों में जहाँ कहीं हिन्दू-मुस्लिम दंगे जोरों से हुए हैं वहाँ भी इनकी रक्षा की समस्या एक विकट रूप में उपस्थित हुई है, क्योंकि हमारी स्त्रियाँ अपनी शक्ति तथा बाहुबल से अपनी रक्षा नहीं कर सकती हैं। परन्तु यह बात बड़े मारके की है कि यहाँ लड़कियों के शारीरिक व्यायाम की ओर भी अच्छा ध्यान रक्खा जाता है। मुग्दर, लाठी, कटार, लेजम और धनुष-बाण की भी शिक्षा दी जाती है।

मैंने पिछले दिनों किसी समाचार-पत्र में पढ़ा था कि कुछ लोगों का ध्यान अब इस ओर गया है कि सरकारी शिक्षालयों में लड़कियों के शारीरिक व्यायाम की ओर भी क़दम बढ़ाया जाय, किन्तु बड़े संतोष की बात है कि आर्य-समाज के गुरुकुलों ने ही पहले-पहल हिन्दी-द्वारा शिक्षण-कार्य अपनाया था और आर्य-समाज के कन्या-गुरुकुलों ने ही पहले-पहल लड़कियों के शारीरिक व्यायाम को आवश्यक समझा, क्योंकि हाथरस के सिवा जो अन्य गुरुकुल अथवा गुरुकुलरूपी शिक्षालय आर्य-समाजियों की ओर से लड़कियों के निमित्त हैं उनमें भी शारीरिक व्यायाम की शिक्षा दी जाती है।

एक बार की बात है कि रात के समय उपर्युक्त गुरुकुल में ईंट-पत्थर आये। बदमाशों से मुक़ाबिला करने की शक्ति न थी। एक निर्जन स्थान में होने के कारण यह प्रश्न बड़ा टेढ़ा था, किन्तु कुछ शुभचिन्तकों की कृपा से ऐसे संकट के निमित्त यथोचित प्रबन्ध किया गया। इसी समय में ही कुछ लोगों ने आवश्यकता समझी कि लड़कियों का शारीरिक व्यायाम ऐसा हो कि वे अपनी शक्ति व बाहुबल के भरोसे पर रह सकें। इसी बात का यह फल हुआ कि शारीरिक व्यायाम में यहाँ लड़कियों ने अच्छी उन्नति की है। उक्त घटना के पश्चात् फिर कभी ईंट-पत्थर गुरुकुल में न आये और अन्य लोगों पर भी उनके व्यायाम का अच्छा प्रभाव पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[प्रसिद्ध सुधारप्रिय नेत्री श्रीमती रामेश्वरी नेहरू]

जितनी लड़कियाँ वहाँ हैं उनमें से प्रत्येक छोटी लड़की के संरक्षक से ८) मासिक व बड़ी लड़की के लिए १०) मासिक लिया जाता है। यह रक़म केवल भोजन व वस्त्र के निमित्त ली जाती है। किन्तु कुछ लड़कियाँ ऐसी भी हैं जिनसे मासिक शुल्क बहुत ही कम लिया जाता है। यद्यपि प्रान्त के विचार से गुरुकुल संयुक्त-प्रान्त में है, तथापि इस प्रान्त से बाहर की लड़कियाँ काफ़ी संख्या में यहाँ हैं। हैदराबाद (निज़ाम)-राज्य की १८ लड़कियाँ यहाँ हैं। एक लड़की अफ़्रीका की है। कुछ लड़कियाँ गुरुकुल के सिवा बाहर की अन्य परीक्षाओं में भी सम्मिलित होती हैं। छोटी छोटी लड़कियों को ही धार्मिक व राष्ट्रीय भजन तथा गाने सिखा दिये जाते हैं। वस्त्र के निमित्त शुद्ध खादी प्रयोग में लाई जाती है।

छोटी या बड़ी अर्थात् दोनों प्रकार की लड़कियों की देख-रेख का प्रश्न वास्तव में साधारण नहीं है। भवन में १२५ या इससे भी कुछ कम संख्या के निमित्त काफ़ी स्थान नहीं है और साथ ही साथ आर्थिक कठिनाइयों के कारण जितना दुःख वहाँ की लड़कियाँ सहन करती हैं वह अति प्रशंसनीय है। हर्ष की बात है कि दिसम्बर सन् १९३९ ईसवी में दो लड़कियाँ वहाँ से स्नातिका बनकर निकली हैं। इसके सिवा दूसरी बात मार्के की यह हुई है कि शिक्षालय के निमित्त एक पृथक् भवन की नींव श्री नारायण स्वामी जी महाराज के ही कर-कमलों से पड़ी है, जिनकी संरक्षता में इस गुरुकुल का पुनर्जन्म हुआ था और जो आर्य-सत्याग्रह हैदराबाद के प्रथम अधिनायक अथवा सब कुछ थे। और यह कहना भी आवश्यक है कि हाथरस व उसके आस-पास के कुछ लोगों ने इस अवसर पर विशेष रूप से अपनी उदारता का परिचय दिया है और उनकी यह उदारता और भी बढ़ी तो आशा है कि यह गुरुकुल सुन्दर दशा में बहुत ही शीघ्र हो जायगा।

बात यह है कि अभी तक रहने के स्थान के सामवाले बरामदों में ही ज्यों-त्यों पढ़ाई होती रही है और प्रत्येक ऋतु में बहुत कष्ट हुआ है, हानि हुई है। किन्तु अब शिक्षालय के पृथक् बन जाने पर यह कष्ट दूर हो जायगा, क्योंकि शिक्षालय के बनने का काम शीघ्र आरम्भ होनेवाला है। इसमें संदेह नहीं कि गुरुकुल सन् १९३९ से सरकारी तौर पर एक रजिस्टर्ड संस्था है और बहुत पहले से ही एक प्रबन्ध-कारिणी सभा के अधीन है। यद्यपि इसके संचालन में कई सज्जनों का हाथ है, तथापि इसकी सफलता का श्रेय श्रीमती माता लक्ष्मीदेवी जी को है, जो वास्तव में इस संस्था की आत्मा हैं और जो अथक परिश्रम तथा त्यागभाव से सका संचालन कर रही हैं।

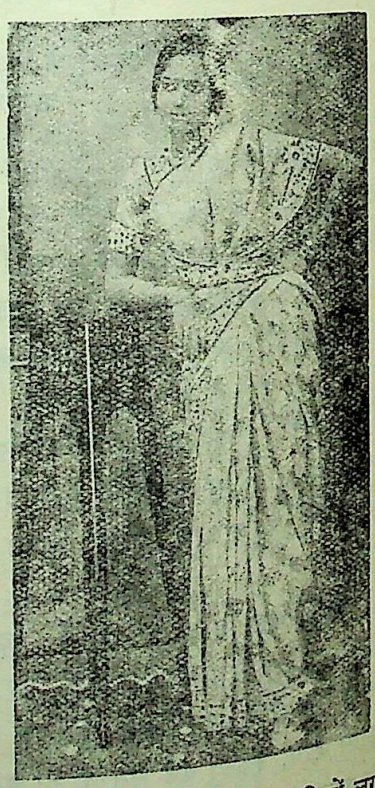

[कुमारी आशा ओझा। आपने गत दिनों लखनऊ के नृत्य-सम्मेलन में अपनी कला का प्रशंसनीय प्रदर्शन किया था]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में अनाज की भयंकर कमी

लेखक, पण्डित दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी०

सी भक्त ने सच ही कहा है 'भूखे भजन न होहिं गोपाला'। जब भूख ज़ोर से लगती है तब भजन में भी मन नहीं लगता। भोजन का प्रतिदिन काफ़ी परिमाण में मिलना प्रत्येक जीवधारी के लिए आवश्यक है। जीवन का मुख्य आधार अन्न है। यदि किसी व्यक्ति को कुछ दिनों तक अन्न न मिले तो उसे मृत्यु का सामना करना पड़ता है। अकाल के समय में अन्न के अभाव से हज़ारों व्यक्ति अपने प्राण का बलिदान दे देते हैं। साधारण समय में भी यदि किसी व्यक्ति को कुछ दिनों तक आधा पेट खाने को मिले तो धीरे-धीरे उसकी शक्तियों का ह्रास होने लगता है और एक न एक रोग का शिकार बनकर अन्त में उसे इस जीवन की लीला समाप्त कर देनी पड़ती है। 'सरस्वती' फ़रवरी सन् १९२० के अंक में मैंने सन् १९११-१२ से १९१७-१८ तक के सात वर्षों में भारत में आधापेट भोजन पानेवालों की संख्या का अनुमान लगाने का प्रयत्न किया था। उस लेख को कुछ मित्रों ने बहुत पसन्द किया और मुझसे अनुरोध किया कि मैं आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या का अनुपात २०–२५ वर्षों के लिए उसी आधार पर लगाने का प्रयत्न करूँ। उनकी सम्मति में केवल ७ वर्षों का समय इस प्रकार की जाँच के लिए पर्याप्त नहीं है। 'भारत में आधा पेट भोजन पाने वालों की संख्या' शीर्षक लेख को प्रकाशित हुए अब २० वर्ष हो गये। अपने मित्रों का अनुरोध मानकर अब मैं इस लेख में गत २५ वर्षों के (अर्थात् सन् १९११–१२ से १९३५-३६ तक के) ब्रिटिश भारत में आधापेट भोजन पानेवालों की संख्या का अनुमान लगाने का प्रयत्न करता हूँ।

देश में अनाज की वार्षिक माँग और उसकी वार्षिक पूर्ति का अन्दाज़ा लगाये बिना आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या का हिसाब लगाना सम्भव नहीं है। इसलिए अब हम इन्हीं दो बातों के अन्दाज़ा लगाने का प्रयत्न करते हैं।

अनाज की उपज वर्षा पर बहुत कुछ निर्भर रहती है और प्रतिवर्ष वर्षा सब जगह एक-सी नहीं होती। वर्षा की वार्षिक रिपोर्टों का अध्ययन करने से मालूम हुआ है कि उन २५ वर्षों में कृषि की दृष्टि से सन् १९११–१२, १२-१३, १४–१५, १५–१६, १७–१८, २१–२२, २३–२४ २४–२५, २५–२६, २६–२७, २८–२९, २९–३०, ३०–३१, ३३–३४ और ३४–३५ अर्थात् १५ वर्ष साधारण वर्ष थे। १९१६–१७, १९–२० २२–२३, ३१–३२ और ३२–३३ अर्थात् ५ वर्ष अच्छे वर्ष थे। १९१३–१४, १८–१९, २०–२१, २७–२८ और ३५–३६ अर्थात् ५ वर्ष ख़राब वर्ष थे। इस प्रकार उन २५ वर्षों में जिनके सम्बन्ध में हम जाँच कर रहे हैं, ५ वर्ष कृषि की दृष्टि से अच्छे थे, ५ वर्ष ख़राब थे और १५ वर्ष साधारण थे।

प्रतिवर्ष अनाज की माँग जानने के लिए यह आवश्यक है कि हम पहले यह जानने का प्रयत्न करें कि प्रतिवर्ष ब्रिटिश भारत में मनुष्यों के लिए, जानवरों के लिए और बीज के लिए कितने अनाज की आवश्यकता पड़ती है।

ब्रिटिश भारत की संपूर्ण जनता के लिए अमुक वर्ष में कुल कितने अन्न की आवश्यकता थी, यह जानने के लिए हमको यह भी मालूम करना चाहिए कि प्रतिव्यक्ति पीछे कितने अनाज की आवश्यकता होती है। हम जानते हैं कि जेलों और अस्पतालों में व्यक्तियों को उतना ही अन्न दिया जाता है, जितना कि उनके साधारण जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक समझा जाता है। अर्थात् वह खाना उतना ही होता है जिससे वह अपना जीवन ही केवल निर्वाह कर सकते हैं। यह मात्रा उनके जीवित रहने तक के लिए ही आवश्यक है। इसी प्रकार अकाल के समय सरकार की ओर से जो काम खोले जाते हैं वहाँ काम करनेवालों को उतना ही वेतन दिया जाता है जिससे वे केवल अपने जीवन की रक्षा कर सकें। संयुक्त-प्रदेश, पंजाब, बंगाल, बम्बई और मदरास के अकाल-नियमों में यह मेहनताना इस प्रकार लिखा हुआ है —

उन मनुष्यों के लिए जो मज़दूरी करते हैं :—

मिट्टी खोदनेवाले	...	१८ छटाँक अनाज
सामान ढोनेवाले	...	१४ छटाँक अनाज
मेहनत करनेवाले बालक	...	१० छटाँक अनाज

काम न कर सकनेवाले योग्य मनुष्यों के लिए:—

युवा पुरुष	...	१२ छटाँक अनाज
युवती स्त्रियाँ	...	१० छटाँक अनाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालक १०–१४ वर्ष ... ८ छटाँक अनाज
बालक ७–१० " ... ६ छटाँक अनाज
बालक ७ से नीचे ... ४ छटाँक अनाज
गोद के बच्चों के लिए :—
बालक की माँ को ... ३ छटाँक अनाज

संयुक्त-प्रदेश, पंजाब और बम्बई के अकाल-नियमों में यह भी लिखा है कि यदि पका-पकाया अन्न मनुष्यों को दिया जाय तो नमक, मसाला, तेल, लकड़ी इत्यादि के एवज़ में कुछ अन्न कम भी कर लेना चाहिए। बंगाल के फ़ेमिन-कोड में लिखा है कि काम करनेवाले और काम न करनेवाले युवा मनुष्यों के हिस्से में से २ छटाँक और १४ से ७ वर्ष तक के बालकों के हिस्से में से १ छटाँक अन्न पूर्वोक्त वस्तुओं के एवज़ में कम कर लेना चाहिए। इसलिए यदि पका-पकाया भोजन दिया गया तो उम्र के लिहाज़ से वह इस परिमाण में दिया जायगा—

उम्र (वर्ष)	अन्न का परिमाण (छटाँकों में)
० से १	... —
१ से २	३ (बालक की माँ को)
२ से ५	... ४
५ से १०	... ५
१० से १५	... ७ से ८ तक
१५ से ५० (मर्द)	... १० से १६ तक
१५ से ५० (औरत)	... ८ से १२ तक
५० से ऊपर	... —

मध्य-प्रदेश की सन् १८९६ की अकाल नियमावली में अन्न का परिमाण इस प्रकार निर्दिष्ट है—

उम्र (वर्ष)	भोजन का परिमाण
१ से २	... —छटाँक
२ से ५	... ३॥ छटाँक
५ से १०	... ७ छटाँक
१० से १५	... १०॥ छटाँक
१५ से ५० (मर्द)	... १४ छटाँक
१५ से ५० (औरत)	... १२ छटाँक
५० से ऊपर	... —

संयुक्त-प्रान्त की सन् १९२७ की जेल-मैन्युअल में भी इसी प्रकार अन्न के परिमाण का उल्लेख है। यहाँ के जेल-मैन्युअल में रोगी क़ैदियों को अन्न किस मात्रा में दिया जाता है उसका भी लेखा है। यह सब नीचे लिखे अनुसार है—

(१) काम करनेवाले प्रौढ़ पुरुषों को ... १४ छटाँक
(२) काम करनेवाली प्रौढ़ स्त्रियों को ... १२ छटाँक
(३) काम न करनेवालों के लिए... १० छटाँक
(४) ३ साल के ऊपर के बच्चों को ... ६ छटाँक

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित चीज़ें सभी को और भी मिलती हैं—

दाल	१ छटाँक
साग	४ छटाँक
तेल	४।२५ छटाँक
मिर्चा	१।५० छटाँक
हल्दी	१।५० छटाँक
नमक	१।६

परन्तु स्त्रियाँ जिनको अपने बच्चों का पालन करना पड़ता है, इतना और पायेंगी—

गेहूँ का आटा	२ छटाँक
घी	१।२ छटाँक

ऊपर दिये हुए परिमाण तो काम करनेवालों के लिए है परन्तु जो बीमार होते हैं उनके लिए परिमाण कुछ भिन्न है। बीमार मनुष्यों में से किसी को केवल दूध दिया जाता, किसी को साबूदाना तथा दूध और किसी को दूध और चावल। लेकिन जिन मनुष्यों को दाल और चावल मिलता है उनको ६ छटाँक चावल और २ छटाँक दाल—जिन्हें रोटी दी जाती है उन्हें १० छटाँक गेहूँ का आटा और १ छटाँक दाल के अलावा नीचे लिखी वस्तुएँ और भी मिलती हैं—

घी	१।१२ छटाँक
साग	४ छटाँक
तेल	४।२५ छटाँक
मिर्चा	१।५० छटाँक
हल्दी	१।५० छटाँक
नमक	१।६ छटाँक

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न स्थानों में विभिन्न परिमाण बतलाये गये हैं। अतः हम उन सबका मिलान करके ही अपने प्रयोजन के निमित्त परिमाण निर्धारित कर सकते हैं। मिलान के लिए उन सब परिमाणों को हम नीचे के कोष्ठक में देते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(छटाँकों में)

उम्र (वर्षों में)	मज़दूरी फ़ेमिन-कोडों से	पकेपकाये भोजन का परिमाण	मध्य प्रदेश के फ़ेमिन कोडों से भोजन का परिमाण	संयुक्तप्रान्त के जेल मैन्युअल में भोजन का परिमाण	रोगियों को दिया जानेवाला भोजन का परिमाण
१ से २	३	३	—	२	—
२ से ५	४	४	३॥	२ से ७	—
५ से १०	६	५	७	७	—
१० से १५	८ से १०	७ से ८	१०॥	११	८ से ११
१५ से ५० (मर्द)	१२ से १८	१० से १६	१४	१५	८ से ११
१५ से ५० (औरत)	१० से १४	८ से १२	१२	१३	—

इस कोष्ठक में भोजन देने के जो विभिन्न परिमाण बताये गये हैं उनका आपस में मिलान करके हमने अपने हिसाब के लिए अवस्था के अनुसार भोजन का परिमाण नीचे लिखे अनुसार लेना ठीक समझा है—

उम्र (वर्षों में)	प्रतिदिन भोजन का परिमाण छटाँकों में
१ से २	२½
२ से ५	४
५ से २०	६
१० से १५	८
१५ से ५० (मर्द)	१४
१५ से ५० (औरत)	१२
५० से ऊपर	१०

भारत जैसे ग़रीब देश में लोगों को मुख्य कर सूखा-सूखा ही अन्न खाने को मिलता है, अतएव यह सम्भव हो सकता है कि उनके लिए १४ छटाँक की मात्रा कम हो और उससे वे अपना स्वास्थ्य ठीक-ठीक सुरक्षित न रख सकें। हमारे किसानों को कठिन-से-कठिन परिश्रम करना पड़ता है—दिन भर के अविरल परिश्रम के बाद वे क्षुधातुर हो जाते हैं और ऐसी दशा में वे एक सेर तक खा लेते हैं। परन्तु इसके साथ ही साथ हमको एक बात और भी ध्यान में रखनी चाहिए और वह यह है कि जो व्यक्ति रोगी रहते हैं वे कदापि १४ छटाँक नहीं खा सकते।

इसी प्रकार मांसाहारियों के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है कि वे भी अन्न कुछ कमही खाते होंगे। इसलिए १४ छटाँक का परिमाण जो हमने लिया है बहुत समझ-बूझकर लिया है। इस हिसाब में अगर कोई भूल भी हो तो अन्तिम परिमाण लगभग वही रहेगा, उसमें कोई विशेष परिवर्त्तन न होगा।

अब हमें यह जनाना चाहिए कि अवस्था के लिहाज़ से ब्रिटिश भारत की मनुष्य संख्या कितनी है। सन् १९११ की जन-संख्या की गणना की रिपोर्ट के अनुसार यह संख्या इस प्रकार थी—

उम्र (वर्षों में)	मनुष्यसंख्या
० से १	८० लाख
१ से २	४० लाख
२ से ५	२१२ लाख
५ से १०	३४५ लाख
१० से १५	२७० लाख
१५ से ५० (मर्द)	६१० लाख
१५ से ५० (औरतें)	६०६ लाख
५० से ऊपर	२८० लाख

अवस्था के अनुसार मनुष्य-संख्या और अनाज की आवश्यकता का परिमाण जान लेने पर समूचे ब्रिटिश भारत के अनाज की वार्षिक आवश्यकता के परिमाण का अन्दाज़ा लगाना बहुत सरल है। यह हिसाब सन् १९११–१२ के लिए नीचे के कोष्ठक में लगाया गया है।

उम्र (वर्षों में)	मनुष्य-संख्या (लाख)	अन्न का परि- माण छटाँकों में	प्रतिदिन के लिए अन्न की आवश्यकता		
० से १	८०	—	—	—	
१ से २	४०	२	१५,६२५	मन	
२ से ५	२१२	४	१,३२,५००	,,	
५ से १०	३४५	६	३,२३,४३७	,,	
१० से १५	२७०	८	३३,७५०	,,	
१५ से ५० (मर्द)	६१०	१४	१३,३४,३७५	,,	
१५ से ५० (औरत)	६०६	१२	११,३६,२५०	,,	
५० से ऊपर	२८०	१०	४,३७,५००	,,	
प्रतिदिन का कुल परिमाण ...			३७,१७,१८७	,,	
प्रतिवर्ष का कुल परिमाण ...			१३५.७	करोड़ मन	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कोष्ठक से हमको यह मालूम हो जाता है कि अगर जनता को भर पेट भोजन मिल जाय तो सन् १९११-१२ में कुल भारतवासियों को १३५·७ करोड़ मन अनाज की आवश्यकता थी।

हमारे देश में मनुष्य-गणना प्रति १० वर्ष के बाद होती है। अतएव हमारे इस २५ वर्ष के समय में हमको तीन मनुष्य-गणनाओं का लेखा मिलता है—अर्थात् सन् १९११, २१ और ३१ का।

यद्यपि हमारे देश में मनुष्य-गणना प्रतिवर्ष नहीं की जाती, तथापि हमको अनाज की माँग प्रतिवर्ष ही निकालनी है। और हम जानते हैं कि जन-संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती है। परन्तु एक ही अनुपात में नहीं—कभी अधिक और कभी कम। इसी प्रकार किन्हीं १० वर्षों में अधिक और किन्हीं १० वर्षों में कम बढ़ती है। अतः हम दोनों ही कालों का, अर्थात् १९११ से १९२१ तक और १९२१ से १९३१ तक, प्रतिवर्ष जन-संख्या के बढ़ने का औसत अलग-अलग निकालेंगे। हम प्रथम १० वर्ष अर्थात् १९११-२१ का काल लेते हैं। सन् १९२१ की संख्या लगभग २४,७१,३८,३९६ मनुष्य थी। सन् १९११ में यही संख्या २४,३९,३३,१७८ थी। इस प्रकार दस वर्षों में ३२,०५,२१८ व्यक्तियों की वृद्धि हुई। इसका औसत १·३ प्रति हज़ार प्रतिवर्ष हुआ। इसी रीति से हम अगले दस वर्षों का तथा उसके बाद के वर्षों का भी औसत निकाल सकते हैं। भिन्न भिन्न वर्षों के लिए मनुष्यों के लिए देश की कुल अनाज की आवश्यकता के निकालने के लिए हम यह मान लेंगे कि अनाज की आवश्यकता या माँग प्रतिवर्ष उसी अनुपात में बढ़ी जिस अनुपात में जन-संख्या बढ़ी। इसके बाद सन् १९११–१२ की तथा उसके बाद के वर्षों की माँग को उसी अनुपात से बढ़ाकर हम प्रत्येक वर्ष की माँग निकाल सकते हैं। वह इस प्रकार है—

वर्ष	मनुष्य के लिए अनाज की आवश्यकता (करोड़ मन)
१९११–१२	१३५·७
१९१२–१३	१३५·९
१९१३–१४	१३६·१
१९१४–१५	१३६·३
१९१५–१६	१३६·५
१९१६–१७	१३६·७
१९१७–१८	१३६·९
१९१८–१९	१३७·१
१९१९–२०	१३७·३
१९२०–२१	१३७·५
१९२१–२२	१३८·१
१९२२–२३	१३८·७
१९२३–२४	१३९·३
१९२४–२५	१३९·९
१९२५–२६	१४०·५
१९२६–२७	१४१·१
१९२७–२८	१४१·७
१९२८–२९	१४२·३
१९२९–३०	१४२·९
१९३०–३१	१४३·५
१९३१–३२	१४४·१
१९३२–३३	१४४·७
१९३३–३४	१४५·३
१९३४–३५	१४५·९
१९३५–३६	१४६·५

यह तो हुआ मनुष्यों के लिए अनाज की आवश्यकता का हिसाब। जानवरों के लिए कितना अनाज दिया जाता है, अब हम यह जानने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु इसके पूर्व हमको दो बातों का जानना अति आवश्यक है। प्रथम तो यह कि अमुक वर्ष में जानवरों की क्या संख्या थी और भिन्न-भिन्न जानवरों को कितना अनाज दिया जाता है। प्रत्येक प्रकार के जानवर को दाना समान रूप से नहीं दिया जाता—बैलों को किसी अन्य परिमाण में तो गायों को और भैंसों को किसी अन्य ही परिमाण में। इतना ही नहीं बल्कि दूध देनेवाली गायों तथा भैंसों को कुछ और परिमाण में दाना दिया जाता है और दूध न देनेवाली गायों तथा भैंसों को किसी अन्य ही परिमाण में। यही हाल छोटे तथा बड़े बैलों के सम्बन्ध में है। जब बैलों को दाना दिया जाता है तब उसकी मात्रा अवश्य ही आध सेर से अधिक रहती है। परन्तु यह मान लेना ठीक न होगा कि सभी बैलों को बराबर दाना दिया जाता है। ऐसे बैलों की ही संख्या बहुत होगी जिन्हें दाना बिलकुल दिया ही नहीं जाता। इसलिए उनके सम्बन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिदिन आध सेर अनाज दिये जाने का औसत मान ना ठीक होगा। गायों और भैंसों को जब वे दूध नहीं ती तब प्रायः अनाज नहीं दिया जाता। जब वे दूध देने ती हैं तभी उन्हें खली-बिनौले आदि भी दिये जाते ं। इसलिए उन गायों के सम्बन्ध में जो दूध देती हैं और नकी संख्या उनकी कुल संख्या की आधी से अधिक होगी, प्रतिदिन आध सेर अनाज दिये जाने का औसत ना अधिक न होगा। दुधार भैंसों को गायों की अपेक्षा धिक परिमाण में दाना दिया जाता है। इसलिए उनके म्बन्ध में एक सेर अनाज प्रतिदिन दिये जाने का औसत ल लिया गया है। घोड़ों को दाना ज़रूर दिया जाता है। उसका परिमाण १।। सेर प्रतिदिन के हिसाब से कम हीं हो सकता, इसलिए हमने अपने हिसाब में वही ौसत मान लेना ठीक समझा है।

अब हमको जानवरों की संख्या जाननी चाहिए। ैलों, गायों, भैंसों तथा घोड़ों की संख्या सरकारी रिपोर्ट (Agricultural statistics of India) सन् १९११—१२ के लिए इस प्रकार दी है—

जानवर	संख्या (लाखों में)
बैल	... ४६६
गाय	... ३६७
भैंस	... १३६
घोड़े	... १९

ऊपर अनुमान किये हुए परिमाणों के अनुसार इन जानवरों के लिए सन् १९११—१२ में प्रतिदिन अन्न की आवश्यकता इस प्रकार थी—

	लाख सेर
बैलों के लिए (आधा सेर प्रतिदिन के हिसाब से)	२३३
गायों के लिए (आधी गायों को आधा सेर के हिसाब से)	९२
भैंसों के लिए (आधी भैंसों को एक सेर के हिसाब से)	६८
घोड़ों के लिए (डेढ़ सेर प्रतिदिन के हिसाब से) ...	२९
मीज़ान ...	४२२ लाख सेर

यह माँग पूरे साल के लिए $\frac{४२\times३६५}{४०}$ लाख मन या ३८·४ करोड़ मन। इसी प्रकार हम अन्य जानवरों के लिए भी जानवरों के लिए अनाज की आवश्यकता का परिमाण निकाल सकते हैं। वह इस प्रकार था—

जानवरों के लिए अनाज की आवश्यकता

	करोड़ मन
१९११–१२ ...	३८·४
१९१२–१३ ...	३७·५
१९१३–१४ ...	३८·२
१९१४–१५ ...	३९·५
१९१५–१६ ...	३९·८
१९१६–१७ ...	३९·९
१९१७–१८ ...	३९·६
१९१८–१९ ...	३९·६
१९१९–२० ...	३९·३
१९२०–२१ ...	३९·४
१९२१–२२ ...	३९·४
१९२२–२३ ...	३९·४
१९२३–२४ ...	३९·४
१९२४–२५ ...	४०·९
१९२५–२६ ...	४०·९
१९२६–२७ ...	४०·९
१९२७–२८ ...	४०·९
१९२८–२९ ...	४०·९
१९२९–३० ...	४१·६
१९३०–३१ ...	४१·६
१९३१–३२ ...	४१·६
१९३२–३३ ...	४१·६
१९३३–३४ ...	४१·६
१९३४–३५ ...	४१·६
१९३५–३६ ...	४१·६

यहाँ तक हमको यह मालूम हो गया कि मनुष्यों और जानवरों के लिए अनाज की कितनी आवश्यकता प्रतिवर्ष होती है। अब हम यह जानने का प्रयत्न करते हैं कि बीज में कितना अनाज प्रतिवर्ष खर्च होता है। यह बात जानने के लिए हमें फिर दो बातों का जानना आवश्यक है।

(१) प्रतिवर्ष हर एक प्रकार की फ़सल में कितनी भूमि बोई जाती है।

(२) प्रत्येक प्रकार की फ़सल के लिए किस हिसाब से बीज की आवश्यकता होती है। वह नीचे लिखे अनुसार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़सल	प्रति एकड़ बीज की मात्रा
धान ...	... १२ सेर
गेहूँ ...	... २४ ,,
जौ ...	... २० ,,
ज्वार ...	... ६ ,,
बाजरा ...	... २ ,,
मकई ...	... १० ,,
चना ...	... १६ ,,
रगी ...	... १२ ,,
अन्य प्रकार के अनाज	... ८ ,,

इसके बाद हमको यह जानना चाहिए कि कितनी भूमि में हर साल खेती होती है। और किस प्रकार की फ़सल कितनी भूमि में थी। सरकारी रिपोर्ट (Agricultural Statistics of India) में इसका ब्यौरा १९११–१२ के लिए इस प्रकार है—

फ़सल	ज़मीन (लाख एकड़ में)
धान ...	... ७६६
गेहूँ ...	... २५०
जौ ...	... ८४
ज्वार ...	... १८४
बाजरा ...	... १३१
मकई ...	... ५६
चना ...	... १४१
रगी ...	... ४३
अन्य प्रकार के अनाज	... २९५

इस हिसाब से कुल बीज की आवश्यकता सन् १९११-१२ के लिए इस प्रकार थी—

फ़सल	सन् १९११-१२ के लिए बीज की आवश्यकता (लाख सेरों में)
धान ...	... ९,१९२
गेहूँ ...	... ६,०००
जौ ...	... १,६८०
ज्वार ...	... १,१०४
बाजरा ...	... २६२
मकई ...	... ५६०
चना ...	... २,२५६
रगी ...	... ५१६
अन्य प्रकार के अनाज	... २,३६०
मीज़ान ...	... २३,९३०

या $\frac{३२९३०}{५६०}$ लाख मन = ५.८ करोड़ मन। इसी प्रकार अन्य वर्षों का हिसाब लगाने से हमको परिणाम इस प्रकार मिलता है—

वर्ष	बीज की आवश्यकता करोड़ मन
१९११–१२	... ५·८
१९१२–१३	... ५·७
१९१३–१४	... ५·४
१९१४–१५	... ६·१
१९१५–१६	... ६·०
१९१६–१७	... ६·२
१९१७–१८	... ६·२
१९१८–१९	... ५·३
१९१९–२०	... ६·०
१९२०–२१	... ५·५
१९२१–२२	... ४·९
१९२२–२३	... ६·१
१९२३–२४	... ५·९
१९२४–२५	... ६·१
१९२५–२६	... ६·४
१९२६–२७	... ६·०
१९२७–२८	... ५·९
१९२८–२९	... ६·४
१९२९–३०	... ५·९
१९३०–३१	... ६·१
१९३१–३२	... ६·२
१९३२–३३	... ६·१
१९३३–३४	... ६·३
१९३४–३५	... ६·१
१९३५–३६	... ६·१

इस प्रकार हमें अब निम्नलिखित तीन बातें मालूम हो गईं—

(१) भारतवासियों को अपना स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए कितना अनाज चाहिए।

(२) गाय-बैल आदि जानवरों को कितना अनाज दाना रूप में दिया गया और;

(३) बीज में कितना खर्च किया गया।

इन तीनों को जोड़ देने से आनाज की वार्षिक माँग का परिमाण मालूम हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह नीचे लिखे अनुसार है—

(करोड़ मन)

सन्	मनुष्यों के लिए	जानवरों के लिए	बीज के लिए	मीज़ान
१९११-१२	१३५·७	३८·४	५·८	१७९·९
१९१२-१३	१३५·९	३७·५	५·७	१७९·१
१९१३-१४	१३६·१	३८·२	५·४	१७९·७
१९१४-१५	१३६·३	३९·५	६·१	१८१·९
१९१५-१६	१३६·५	३९·८	६·०	१८२·३
१९१६-१७	१३६·७	३९·९	६·२	१८२·८
१९१७-१८	१३६·९	३९·६	६·२	१८२·७
१९१८-१९	१३७·१	३९·६	५·३	१८२·२
१९१९-२०	१३७·३	३९·३	६.०	१८२·६
१९२०-२१	१३७·५	३९·४	५·५	१८२·४
१९२१-२२	१३८·१	३९·४	४·९	१८२·५
१९२२-२३	१३८·७	३९·४	६·१	१८४.२
१९२३-२४	१३९·३	३९·४	५·९	१८४·६
१९२४-२५	१३९·९	४०·९	६·१	१८६·९
१९२५-२६	१४०·५	४०·९	६·४	१८७·८
१९२६-२७	१४१·१	४०·९	६·०	१८८·०
१९२७-२८	१४१·७	४०·९	५·९	१८८·५
१९२८-२९	१४२·३	४०·९	६·४	१८९·६
१९२९-३०	१४२·९	४१·६	५·९	१९०·४
१९३०-३१	१४३·५	४१·६	६·१	१९१·२
१९३१-३२	१४४·१	४१·६	६·२	१९१·९
१९३२-३३	१४४·७	४१·६	६·१	१९२·४
१९३३-३४	१४५·३	४१·६	६·३	१९३·२
१९३४-३५	१४५·९	४१·६	६.१	१९३·६
१९३५-३६	१४६·५	४१·६	६·१	१९४·२

अब पूर्ति का अन्दाज़ा लगाने के लिए हमको यह मालूम करना चाहिए कि—

(१) भारत में भिन्न-भिन्न अनाजों की प्रतिवर्ष उपज कितनी हुई।

(२) उस उपज का कितना भाग नष्ट हो जाता और कितना बचा।

(३) अन्य देशों को भारत से प्रतिवर्ष कितना अन्न निर्यात किया गया।

उपज मालूम करने के लिए हमको एक और सरकारी रिपोर्ट (Area and yield of Principle crops in India) की सहायता लेनी पड़ती है। इस रिपोर्ट में मुख्य-मुख्य फ़सलों का रक़बा तथा उपज दी रहती है—परन्तु यह बिलकुल सही नहीं कही जा सकती क्योंकि इसमें कहीं कहीं तो देशी राज्यों का ब्यौरा दिया होता है और कहीं-कहीं नहीं। साथ ही कहीं-कहीं रिपोर्ट अपूर्ण भी रहती है। इसके अतिरिक्त जैसा अभी लिखा जा चुका है इस रिपोर्ट में केवल थोड़ी ही फ़सलों का जैसे चावल, गेहूँ, जव, ज्वार, बाजरा, मकई तथा चना आदि का ही ब्योरा रहता है। लेकिन फिर भी हमको इससे बहुत कुछ सहायता मिलती है। इस रिपोर्ट में जो रक़बा दिया रहता है वह (Agricultural Statistics) में दिये हुए रक़बे से भिन्न रहता है। जैसे १९२०-२१ में पहली रिपोर्ट के अनुसार जैसा हम पहले लिख चुके हैं चावल की फ़सल में ७८१ लाख एकड़ भूमि थी परन्तु इस रिपोर्ट के अनुसार रक़बा ७९० लाख एकड़ होता है। पिछली रिपोर्ट (Agricultural Statistics) में उपज नहीं दी रहती परन्तु दूसरी रिपोर्ट में दी रहती है। अतः हम त्रैराशिक लगाकर पिछली रिपोर्ट में दिये हुए रक़बा के अनुसार उपज निकालते हैं। दूसरी रिपोर्ट में चावल की उपज सन् १९२०-२१ के लिए २७७ लाख टन दी हुई है (१ टन = २७·२ मन)। अतः त्रैराशिक नियम के अनुसार ७८१ लाख एकड़ की उपज $\frac{७८१ \times २७७}{७९०}$ लाख टन या ७५·१ करोड़ मन हुई। इस रीति से हम अन्य फ़सलों की उपज भी मालूम कर सकते हैं तथा जोड़ कर कुल उपज निकाल सकते हैं। परन्तु इतना जान लेने पर भी हमें कुछ और अनाजों की उपज इस रिपोर्ट से मालूम नहीं हो सकती। पीछे हम देख चुके हैं कि प्रतिवर्ष अन्य प्रकार का अन्न कितने एकड़ में बोया जाता है—अतः अब अगर यह मालूम हो जाय कि प्रतिएकड़ इनकी कितनी उपज साधारणतः होती है तो काम बन सकता है। उक्त रिपोर्ट से हमको यह पता चलता है कि एक एकड़ भूमि में ५७४ सेर रगी पैदा होती है। अतः हम भी यही आधार मानेंगे। इसी प्रकार अन्य प्रकार के अनाजों के लिए हमने २५० सेर प्रतिएकड़ उपज ही मानना उपयुक्त समझा है क्योंकि श्रीयुत एन० जी० मुकर्जी ने भी अपनी पुस्तक (Hand book of agriculture) में इसी प्रकार हिसाब लगाया है। इस प्रकार गत २५ वर्षों में कुल उपज ऊपर कही हुई विधि से निकालने पर आगे लिखे अनुसार आती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साल	सब फ़सलों की उपज (करोड़ मन)
१९११–१२	... १८५·४
१९१२–१३	... १७२·५
१९१३–१४	... १६१·७
१९१४–१५	... १७१·५
१९१५–१६	... १८३·०
१९१६–१७	... १८९·२
१९१७–१८	... १८५·२
१९१८–१९	... १३५·२
१९१९–२०	... १८५·६
१९२०–२१	... १४४·७
१९२१–२२	... १८३·३
१९२२–२३	... १८३·२
१९२३–२४	... १६२·१
१९२४–२५	... १५६·४
१९२५–२६	... १६०·७
१९२६–२७	... १६२·७
१९२७–२८	... १५१·४
१९२८–२९	... १६२·६
१९२९–३०	... १७०·३
१९३०–३१	... १७२·३
१९३१–३२	... १७५·५
१९३२–३३	... १६८·५
१९३३–३४	... १६६·७
१९३४–३५	... १६५·३
१९३५–३६	... १५७·८
१९३६–३७	... १७२·०

जब से फ़सल पकने लगती है और अनाज खाया जाने लगता है उसके बीच के समय में कई तरह से अनाज व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है। कभी कभी तो फ़सल कुसमय पानी पड़ने से, खेत में या खलिहान में ही सड़ जाती है। कभी कभी खलिहान में बहुत-सा अनाज खराब हो जाता है। पशु-पक्षी बहुत-सा अनाज खा जाते हैं। कीड़े भी बहुत-सा अनाज नष्ट कर देते हैं—जब अनाज भर कर या बोरा-बन्दी करके रख लिया जाता है तब चूहे, फूस इत्यादि के भण्डारे का तो पूछना ही क्या है—मनमाना अनाज खाते हैं। अनाज खाने योग्य बनने में छिलका, भूसी वग़ैरह निकालने में भी कुछ भाग नष्ट जाता है—और उसे साफ़ करने या फटकने में तथा छानने में भी यही हाल होता है। खाने-पकाने में भी कभी कभी नुक़सान हो जाता है और विवाह आदि अन्य उत्सवों में पका-पकाया बहुत-सा अन्न व्यर्थ नष्ट हो जाता है। कभी बाढ़ आने पर—कभी अग्निप्रकोप से या नावों इत्यादि के डूबने से भी बहुत-सा अनाज नष्ट हो जाता है। कुछ अन्न तोता आदि पक्षियों के खिलाने में भी ख़र्च होता है। यह सब सोचकर, हमने ऊपर के दसवें भाग को इस प्रकार नष्ट होने की मद में डाल देना उचित समझा है। असल में इससे अधिक ही नष्ट होता होगा। पिछले कोष्टक में दी हुई उपज से १० सैकड़ा भाग निकाल लेने पर इस तरह उपज रह जाती है—

	करोड़ मन
१९११–१२	... १६६·९
१९१२–१३	... १५५·३
१९१३–१४	... १४५·५
१९१४–१५	... १५४·५
१९१५–१६	... १६४·७
१९१६–१७	... १७०·३
१९१७–१८	... १६६·७
१९१८–१९	... १२१·७
१९१९–२०	... १६७·१
१९२०–२१	... १३०·२
१९२१–२२	... १६५·०
१९२२–२३	... १६४·९
१९२३–२४	... १४५·९
१९२४–२५	... १४८·९
१९२५–२६	... १४४·६
१९२६–२७	... १४६·५
१९२७–२८	... १३६·३
१९२८–२९	... १४६·३
१९२९–३०	... १५३·३
१९३०–३१	... १५५·१
१९३१–३२	... १५८·०
१९३२–३३	... १५१·७
१९३३–३४	... १५०·०
१९३४–३५	... १४८·८
१९३५–३६	... १४२·०

कुल उपज मालूम करने के उपरान्त हम भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य देशों को भेजे हुए अन्न का हिसाब लगाते हैं। यह हमको सरकारी रिपोर्ट (Trade Review) में इस प्रकार मिलता है--

वर्ष	अनाज का निर्यात (करोड़ मन)
१९११–१२	१३·९
१९१२–१३	१५·०
१९१३–१४	११·३
१९१४–१५	६·९
१९१५–१६	६·५
१९१६–१७	७·९
१९१७–१८	१२·३
१९१८–१९	८·७
१९१९–२०	१·९
१९२०–२१	४·१
१९२१–२२	४·५
१९२२–२३	७·१
१९२३–२४	९·३
१९२४–२५	८·९
१९२५–२६	८·४
१९२६–२७	६·६
१९२७–२८	७·६
१९२८–२९	६·३
१९२९–३०	६·८
१९३०–३१	७·१
१९३१–३२	७·१
१९३२–३३	५.६
१९३३–३४	५·१
१९३४–३५	४·८
१९३५–३६	४·१

ये संख्यायें भारत की वार्षिक उपज में से घटा देने पर भारत के अनाज की वार्षिक-पूर्ति मालूम हो जाती है। वह नीचे लिखे अनुसार है—

(करोड़ मन में)

सन्	उपज	अन्य देशों को निर्यात	पूर्ति
१९११–१२	१६६·९	१३·९	१५३·०
१९१२–१३	१५५·३	१५·०	१४०·३
१९१३–१४	१४५·५	११·३	१३४·२
१९१४–१५	१५४·४	६·९	१४७·५
१९१५–१६	१६४·७	६·५	१५८·२
१९१६–१७	१७०·३	७·९	१६२·४
१९१७–१८	१६६·७	१२·३	१५४·४
१९१८–१९	१२१·७	८·७	११३·०
१९१९–२०	१६७·१	१·९	१६५·२
१९२०–२१	१३०·२	४·१	१२६·१
१९२१–२२	१६५·०	४·५	१६०·५
१९२२–२३	१६४·९	७·१	१५७·८
१९२३–२४	१४५·९	९·३	१३६·६
१९२४–२५	१४८·९	८·९	१४०·०
१९२५–२६	१४४·६	८·४	१३६·२
१९२६–२७	१४६·५	६·६	१३९·९
१९२७–२८	१३६·३	७·६	१२८·७
१९२८–२९	१४६·३	६·३	१४०·०
१९२९–३०	१५३·३	६·८	१४६·५
१९३०–३१	१५५·१	६·१	१४८·०
१९३१–३२	१५८·०	७·१	१५०·९
१९३२–३३	१५१·७	५·६	१४६·१
१९३३–३४	१५०·०	५·१	१४४·९
१९३४–३५	१४८.८	४·८	१४४·०
१९३५–३६	१४२.०	४·१	१३७·८

भारत में अनाज की माँग और पूर्ति के अंक एक ही कोष्ठक में दिखाने पर यह आसानी से मालूम हो जाता है कि प्रतिवर्ष भारत में अनाज की कमी रही और वह नीचे अनुसार है।

(करोड़ मन में)

सन्	अनाज की माँग	अनाज की पूर्ति	अनाज की कमी
१९११-१२	१७९·९	१५३·०	२६·९
१९१२-१३	१७९·१	१४०·३	३८·८
१९१३-१४	१७९·७	१३४·२	४·५५
१९१४-१५	१८१·९	१४७.५	३४·४
१९१५-१६	१८२·३	१५८·२	२४·१
१९१६-१७	१८२·८	१६२·४	२०·४
१९१७-१८	१८२·७	१५४·४	२८·३
१९१८-१९	१८२·०	११३·०	६९·०
१९१९-२०	१८२·६	१६५·२	१७·४
१९२०-२१	१८२·४	१२६·१	५६·३
१९२१-२२	१८२·४	१६०·५	२१·९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(करोड़ मन में)

सन्	अनाज की माँग	अनाज की पूर्ति	अनाज की कमी
१९२२-२३	१८४·२	१५७·८	१६·४
१९२३-२४	१८४·६	१३६·६	४८·०
१९२४-२५	१८६·९	१४०·०	४६·९
१९२५-२६	१८७·८	१३६·२	५१·६
१९२६-२७	१८८·०	१३९·९	४८·१
१९२७-२८	१८८·५	१२८·७	५९·८
१९२८-२९	१८९·६	१४०·०	४९·६
१९२९-३०	१९०·४	१४६·५	४३·९
१९३०-३१	१९१·२	१४८·०	४३·२
१९३१-३२	१९१·९	१५०·९	४१·०
१९३२-३३	१९२·४	१४६·१	४६·३
१९३३-३४	१९३·२	१४४·९	४८·३
१९३४-३५	१९३·६	१४४·०	४९·६
१९३५-३६	१९४·२	१३७·८	५६·४

हमें मालूम है कि एक जवान पुरुषों को कमसे कम १४ छटाँक अन्न अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए आवश्यक है। इसलिए वह वर्ष भर में $\frac{१४\times३६५}{१६\times४०}=\frac{७३\times७}{१६\times४}$ मन अनाज खायगा। यदि प्रतिवर्ष की न्यूनता की संख्या में इस $\frac{७३\times७}{१६\times४}$ संख्या का भाग दें तो यह मालूम होगा कि उस न्यूनता के कारण कितने युवा मनुष्यों को, वर्षभर, किसी प्रकार का अन्न प्राप्त किये बिना ही रहना पड़ा होगा। इस हिसाब से सन् १९११–१२ में वर्षभर जिन मनुष्यों को अन्न प्राप्त नहीं हुआ उनकी संख्या ३२८ लाख होगी। परन्तु लगातार वर्षभर भूखे रहकर जीवित रहनेवाले बहुत ही कम मनुष्य पाये जा सकते हैं। प्रायः ऐसे ही मनुष्य बहुतायत से पाये जाते हैं जो हमेशा आधा पेट ही खाकर जीवन धारण किये रहते हैं। इसलिए यदि हम सन् १९११–१२ के अन्न न प्राप्त करनेवाले युवा मनुष्यों की संख्या (३२८ लाख) को दो से गुणा कर दें तो हमें उस वर्ष के आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या ज्ञात हो जायगी। वह ६५६ लाख है। इसी तरह अन्य वर्षों के लिए भी आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या मालूम की जा सकती है। नीचे के कोष्ठक में इन आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या बतलाई गई है, और यह भी दिखाया गया है कि जवान स्त्री-पुरुषों में से फ़ी सैकड़ा कितने मनुष्य इस प्रकार आधा पेट अन्न खाकर अपना जीवन व्यतीत करते थे—

सन्	आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या	प्रतिसैकड़ा (ऐसे युवा मनुष्य)
१९११–१२	६५६ लाख	५४
१९१२–१३	९५२ "	७८
१९१३–१४	११२२ "	९२
१९१४–१५	८५२ "	७०
१९१५–१६	५८८ "	४८
१९१६–१७	४८६ "	४०
१९१७–१८	६८९ "	५७
१९१८–१९	१७१२ "	९४
१९१९–२०	४२१ "	३६
१९२०–२१	६८१ "	४०
१९२१–२२	२७४ "	१६
१९२२–२३	२०५ "	१२
१९२३–२४	६०० "	३५
१९२४–२५	५८९ "	३५
१९२५–२६	६५० "	३९
१९२६–२७	६०० "	३५
१९२७–२८	७४९ "	४५
१९२८–२९	६२१ "	३५
१९२९–३०	५४९ "	३३
१९३०–३१	५४७ "	३३
१९३१–३२	५१३ "	३०
१९३२–३३	५१९ "	३०
१९३३–३४	६०१ "	३५
१९३४–३५	६२१ "	३६
१९३५–३६	६८१ "	४०

२५ वर्षों का औसत ६६७

इस कोष्ठक के देखने से विदित होता है कि सन् १९१९–२० और सन् १९२२–२३ में, जो कृषि की दृष्टि से अच्छे वर्ष थे, आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या क्रमशः ४ करोड़ के और २ करोड़ के लगभग थी। यह संख्या १३–१४ में ११ करोड़ और १९१८–१९ में तो १७ करोड़ तक पहुँच गई थी। यह संख्या २ करोड़ से कभी कम नहीं हुई। २५ वर्षों में से एक भी किसी वर्ष में अनाज की पूर्ति अनाज के माँग के बराबर नहीं हुई। २५ वर्षों का औसत लगाने से मालूम होता है कि ४० प्रतिशत युवा मनुष्यों को अर्थात् क़रीब ७ करोड़ युवा व्यक्तियों को हमेशा आधा पेट भोजन पाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही अपना सारा जीवन व्यतीत करना पड़ता है। पाठक इससे अनुमान कर सकते हैं कि भारत में इस समय रोटी का प्रश्न कितने महत्त्व का है और देश की आर्थिक दशा सुधारने की इस समय कितनी आवश्यकता है।

हम प्रायः यह कह दिया करते हैं कि भारत की दशा अत्यन्त ही खराब है, लोग बहुत ही शक्तिहीन हैं, उनकी हालत दिन पर दिन गिरती जा रही है, कार्य करनेवालों की कार्य-क्षमता दूसरे देशवालों की अपेक्षा बहुत ही कम है। परन्तु क्या हमने कभी गम्भीरतापूर्वक यह भी सोचा है कि यह सब त्राहि त्राहि जो हमारे देश के कोने कोने में मची हुई है क्यों है? इसका एकमात्र उत्तर यही हो सकता है कि परिश्रम करने पर भी पेट भर खाने को ही नहीं मिलता।

सात करोड़ युवा व्यक्तियों को निरन्तर भूखा रहते देखकर ऐसा कौन सच्चा देश-हितैषी मनुष्य होगा जिसको दुःख के कारण आँसू न आ जाते हों?

परन्तु केवल आँसू गिराने से ही काम न चलेगा। प्रारब्ध को दोष देकर हाथ पर हाथ धरे अकर्मण्य बैठे रहने से ही क्या कोई मनुष्य या समाज अपनी उन्नति कर सकता है? इस समय हमारा प्रथम कर्त्तव्य यही है कि हम भारत की करोड़ों मन अनाज की वार्षिक कमी की पूर्ति करने का तन, मन, धन से प्रयत्न करें।

मैं आहत का क्रन्दन स्वर हूँ

लेखक, श्रीयुत मित्तल

मैं आहत का क्रन्दन स्वर हूँ !
सुखी, मुझे वैभव दिखलाता, दुखी, कसक, तड़पन बतलाता,
सुख से कुछ सम्बन्ध नहीं है, मुझे दुखी युगयुग से भाता!
मैं विलास का केन्द्र नहीं, मैं गाँवों की बस्ती सुन्दर हूँ!
मैं आहत का क्रन्दन स्वर हूँ !

मैं वह युवक नहीं, वैभव में--
सुख में, मधु में घुल जाऊँ जो;
मैं तो उस दुख का प्यासा हूँ--
रहता पीड़ित के उर में जो
सुख की दुनिया नित्य बुलाती, मैं तो दुखियों का दिलवर हूँ!
मैं आहत का क्रन्दन स्वर हूँ !

मुझे याद है--उस बचपन की,
जब थोड़ा सुख, प्यार मिला था;
फिर यौवन के आते आते,
दुख का हाहाकार मिला था
दुख से तब से ही परिचित मैं, रहता दुख-तड़पन के घर हूँ!
मैं आहत का क्रन्दन स्वर हूँ!

मैंने देखी सुख की दुनिया,
निर्मम निर्दय-सार रहित है;
देखी मैंने दुख की दुनिया,
निर्मल-सजल दुलार सहित है
दुख की दुनिया बहुत बड़ी है, मैं तो उसका एक नगर हूँ।
मैं आहत का क्रन्दन स्वर हूँ !

सुखी जगत में-धनवानों को,
सुख है-मधु है-मधुर प्यार है;
औ, कंगालों की दुनिया में,
हँसता रहता दुख-प्रसार है
जो पल पल आहें भरते हैं, उन आहों का गान अमर हूँ !
मैं आहत का क्रन्दन स्वर हूँ !

दुखियों की बस्ती मेरा घर,
महलों से नफ़रत करता हूँ;
सरोकार क्या सुखी जगत् से?
जब दुख के जग में रहता हूँ!
मैं सुख का मधु मास नहीं मैं, अविरत दुख का ही पतझर हूँ!
मैं आहत का क्रन्दन स्वर हूँ!

निर्धन के दिल में कोमलता,
कोमलता में 'अपनापन' है,
धनवानों का दिल कठोर है,
उसमें क्या रहता जीवन है?
मुझे सुखी जग से लेना क्या? मैं तो दुखियों का अनुचर हूँ!
मैं आहत का क्रन्दन स्वर हूँ !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब में हिन्दी का विरोध

लेखक, पण्डित वेङ्कटेश नारायण तिवारी

काश्मीर की रियासत और पंजाब की सरकार अपनी अपनी अमलदारी से हिन्दुओं को निकाल फेंकने पर कटिबद्ध दीखती है। काश्मीर में, कुछ दिन हुए, शिक्षा-सुधार-समिति वहाँ की सरकार के द्वारा नियुक्त हुई थी। उसके सभापति थे मौलाना सैयदैन और सदस्यों में से एक थे जामिआ-मिल्लिया के प्रधानाचार्य डाक्टर ज़ाक़िर हुसेन। ये वही बुज़ुर्ग हैं जिनका नाम बुनियादी तालीम-योजना के सम्बन्ध में अक्सर सुनाई देता है। आपकी यह भी राय है कि युक्तप्रान्त और बिहार में उर्दू-लिपि और नागरी-लिपि प्रारम्भिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य कर दी जायँ। आप उर्दू-भाषा के हिमायती नहीं हैं, क्योंकि आप 'हिन्दुस्तानी'-भाषा के हमदर्द हैं, यद्यपि आपकी राय में जिस ज़बान को वे बोलते और लिखते हैं उर्दू कहें तो आपको कोई आपत्ति नहीं होगी, क्योंकि उर्दू और हिन्दुस्तानी में डाक्टर साहब को फ़र्क़ नहीं दिखाई देता है। आप चाहते हैं कि बिहार और युक्तप्रान्त में विद्यार्थियों के लिए उर्दू और देवनागरी लिपियों का सीखना लाज़िमी हो जाय। लेकिन इसके विपरीत काश्मीर में आप केवल उर्दू-लिपि के प्रचार के हामी हैं। आपकी और काश्मीरी शिक्षा-समिति के अन्य मेम्बरों की यह निश्चित धारणा है कि राष्ट्रीयता की दृष्टि से काश्मीर-रियासत में स्कूली लड़कों को केवल उर्दू-लिपि के द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए। डाक्टर ज़ाक़िर हुसेन और उनके साथियों की इन दो विभिन्न रायों और सम्मतियों के पीछे क्या रहस्य छिपा हुआ है, इसका उत्तर आप जानना चाहते हैं तो नीचे के आँकड़ों पर कृपया ध्यान दीजिए—

आँकड़े लाख में

प्रान्त	हिन्दू	मुसलमान
युक्तप्रान्त	४१०	७२
बिहार	२५९	४१
काश्मीर और जम्मू	७	२८

हिन्दू-प्रधान प्रान्तों में डाक्टर ज़ाक़िर हुसेन देवनागरी-लिपि के साथ-साथ उर्दू-लिपि का प्रचार करना चाहते हैं, लेकिन मुस्लिम-प्रधान काश्मीर में केवल उर्दू लिपि के प्रचार के वे पक्षपाती हैं। हिन्दू-प्रधान प्रान्तों में वे अल्प-संख्यकों की भाषा और लिपि की दोहाई देकर उर्दू-लिपि और भाषा का प्रचार बहुसंख्यकों में करना चाहते हैं। लेकिन काश्मीर में उन्होंने अल्प-संख्यकों के हितों की कुछ भी चिन्ता नहीं की। वहाँ के विशुद्ध राष्ट्रवादी की हैसियत से अल्प-संख्यकों की माँग को ठुकराकर उनके बच्चों को उर्दू-भाषा और उर्दू-लिपि की शिक्षा पाने के लिए विवश करने में अपना गौरव समझते हैं। इस प्रपंच और पाखण्ड की न कोई हद है और न इन्तहा। डाक्टर ज़ाक़िर हुसेन लिपि सम्बन्धी मामले में कलियुग के मुनियों का जामा पहनकर अवतरित हुए हैं। किसी समय वे शैव और किसी समय वैष्णव का रूप धरकर अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। उनका न कोई उसूल मालूम होता है और न राजनीतिक ईमानदारी की उन्हें कुछ परवा है। उर्दू का येनकेन प्रकारेण सर्वत्र प्रचार हो, यह उनकी आन्तरिक अभिलाषा है। किन साधनों से हो, इसकी उन्हें चिन्ता नहीं, और देश आज दिन इतना बावला है कि राष्ट्रीयता के नाम पर डाक्टर ज़ाक़िर हुसेन और उनके साथियों के पाखण्ड का विरोध करना तो दूर रहा, उलटा स्वागत करता है। कांग्रेसी सरकारों ने इन्हीं ज़ाक़िर हुसेन और इनके दूसरे सहायकों को अपना गुरु मान रक्खा था। ये सरकारें बिला उनकी आज्ञा के शिक्षा के सम्बन्ध में एक भी क़दम न आगे बढ़ने और न पीछे हटने को तैयार थीं। ये कठपुतली का नाच इन्हीं बने हुए राष्ट्रवादियों के इशारे पर नाचा करती थीं। डाक्टर ज़ाक़िर हुसेन राष्ट्रवादी नहीं और न वे हिन्दुस्तानी-भाषा के उस रूप के समर्थक हैं जिस रूप का समर्थन महात्मा गांधी और श्री जवाहरलाल नेहरू करते हैं। इन दोनों नेताओं का आदर्श राष्ट्रीय है, लेकिन डाक्टर ज़ाक़िर हुसेन के से साहित्यिक बकुला भक्तों का दृष्टिकोण एकदम साम्प्रदायिक है। उर्दू को सर सैयद अहमद की तरह वे भी हिन्दुस्तान के मुसलमानों की 'निशानी' समझते हैं। इस्लामी जज़बात और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलगाव को इस मुल्क में बनाये रखने का सबसे बड़ा और सबसे सरल साधन इन साम्प्रदायिक गुरु घण्टालों की दृष्टि में उर्दू-लिपि और भाषा का प्रचार ही है। इसलिए जहाँ हिन्दुओं का बहुमत है, वहाँ वे हिन्दुओं को भी उर्दू-लिपि और भाषा पढ़ाने के लिए मजबूर करने पर उतारू हैं। लेकिन जिन प्रान्तों या रियासतों में हिन्दुओं का बहुमत नहीं है, वहाँ वे मुस्लिम बहुमत के ज़ोर से अल्प-संख्यकों की भाषा और लिपि को निहायत बेरहमी के साथ पैरों तले कुचलने को तैयार हैं। यही हाल पंजाब में भी है। वहाँ की लीगी गवर्नमेंट आजकल इस उधेड़-बुन में लगी हुई नज़र आती है कि कैसे पंजाब में हिन्दी का अन्त कर दिया जाय। यद्यपि पंजाब में मुसलमानों की आबादी जहाँ ५७ सैकड़ा है वहाँ हिन्दू और सिक्खों की आबादी ४० प्रतिशत है। पंजाब और काश्मीर में खालिश उर्दू के द्वारा शिक्षा दी जाती है। युक्तप्रान्त, बिहार और मध्य-प्रान्त में यदि ज़ाक़िर हुसेन और उनके साथियों की चालें चल गईं तो देवनागरी-लिपि के साथ-साथ उर्दू-लिपि का भी प्रचलन हो जायगा। इस तरह, भारत के एक बहुत बड़े भाग में उर्दू-लिपि जन-साधारण की लिपि हो जायगी और हिन्दी को इस प्रदेश के कुछ हिस्सों की एक वैकल्पिक लिपि का पद प्राप्त हो जायगा। इस पर भी काका कालेलकर हमें यह मंत्र पढ़ाते हैं कि हिन्दुस्तान की राष्ट्र-लिपि देवनागरी-लिपि होगी। यदि डाक्टर ज़ाक़िर हुसेन और उनके साथी अपने प्रयत्न में सफल हो गये तो काका कालेलकर और उनके साथियों की वही हालत होगी जो राजा बलि की हुई थी—

"बलि चाह्यो आकाश को, हरि पठयो पाताल।"

काका कालेलकर और उनकी राष्ट्र-भाषा-समिति चली थी हिन्दी-भाषा और देवनागरी-लिपि को राष्ट्र-पद देने के लिए, लेकिन डाक्टर ज़ाक़िर हुसेन वामन के रूप में प्रकट होकर हिन्दी-भाषा और लिपि के स्थान में उर्दू-भाषा और लिपि को राष्ट्र-भाषा बना डालेंगे। हैदराबाद का उदाहरण भी हमारे सामने है। वहाँ की ८५ प्रतिशत हिन्दू-रियाया को स्कूल और कालिजों में उर्दू के द्वारा शिक्षा दी जाती है, क्योंकि वहाँ की मुस्लिम सरकार ने उर्दू-भाषा और लिपि को सरकारी भाषा और लिपि स्वीकार कर लिया है। दक्षिण में उर्दू-भाषा और लिपि का सबसे बड़ा केन्द्र इस समय हैदराबाद है। जैसे हैदराबाद में वैसे पंजाब और काश्मीर में अधिकांश जनता की भाषा उर्दू नहीं है। वहाँ के मुसलमान निवासियों के लिए भी उर्दू एक परदेशी ज़बान है। इस पर भी वर्षों से इन दोनों सरकारों ने उर्दू-भाषा और लिपि को सरकारी भाषा और लिपि का पद दे रक्खा है और इस प्रकार जनता के गले के नीचे परदेशी ज़बान और लिपि उतारने की कोशिश बहुत दिनों से जारी है।

× × × ×

अब आप पंजाब को लें। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, पंजाब की कुल आबादी २३६ लाख है। वहाँ हिन्दुओं की संख्या ६३ लाख, सिक्खों की संख्या ३१ लाख, मुसलमानों की १३३ लाख और ईसाइयों की तीन लाख है। इस प्रान्त में विभिन्न भाषा-भाषियों की संख्या निम्नलिखित है—

भारतीय आर्य-भाषायें ९९० प्रति हज़ार की मातृ-भाषा हैं। पूर्वी और पश्चिमी बंगाल में बोलनेवालों की संख्या हज़ार में ७६८ है। इसकी तुलना में पंजाब में हिन्दी-भाषा बोलनेवालों की संख्या हज़ार में केवल १४० है। पूर्वी पंजाब में बोलनेवालों की तादाद १४५ लाख और पश्चिमी पंजाब में बोलनेवालों की संख्या ४० लाख है—अर्थात् पंजाब-प्रान्त में जिन लोगों की मातृ-भाषा पंजाबी है उनकी संख्या ९७५ लाख सन् १९३१ की मनुष्य-गणना के हिसाब से थी। इसका अर्थ यह है कि पंजाब के २३६ लाख स्त्री-पुरुषों में १७५ लाख की मातृ-भाषा न हिन्दी, न उर्दू, न हिन्दुस्तानी, किन्तु पंजाबी है। यानी पंजाब में ७७७ आदमी पंजाबी बोलते हैं। वहाँ केवल १४ आदमी हिन्दुस्तानी अर्थात् हिन्दी या उर्दू बोलते हैं। छः फ़ी सदी आदमी पश्चिमी पहाड़ी भाषा के और दो फ़ी सदी राजस्थानी के बोलनेवाले हैं। जिनकी मातृ-भाषा पंजाबी है, लेकिन जो 'हिन्दुस्तानी'-भाषा को भी बोलते हैं उनकी संख्या १२१ हज़ार है। लेकिन हिन्दुस्तानी-भाषा-भाषियों में से केवल ६९ हज़ार ऐसे आदमी थे जिन्हें पंजाबी का भी ज्ञान था। ये आँकड़े मैंने पंजाब-प्रान्त की १९३१ वाली मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट से लिये हैं। रिपोर्ट के लेखक का नाम है खान अहमद हसन ख़ाँ, एम० ए० क़ैसरे हिन्द। एक मुस्लिम सज्जन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की लिखी हुई रिपोर्ट से ही हमें यह पता चलता है कि पंजाब में हिन्दी या उर्दू या हिन्दुस्तानी बोलनेवालों की संख्या १४ सैकड़ा है और पंजाबी बोलनेवालों की संख्या ७७ प्रतिशत है। तब किसी पाठक को इसमें सन्देह करने की कोई भी गुंजाइश नहीं कि पंजाब-प्रान्त की भाषा आज भी पंजाबी है। वहाँ की भाषा न तो हिन्दी है और न उर्दू। लेकिन इस पंजाबी-भाषी पंजाब में पंजाबी भाषा का वहाँ की सरकार की नज़र में कुछ भी मान नहीं। वहाँ की सरकारी लिपि फ़ारसी-लिपि है और वहाँ की सरकारी भाषा पंजाबी नहीं किन्तु उर्दू-भाषा है। पंजाब में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख और ईसाई प्रायः सभी घर-बाहर पंजाबी-भाषा ही का प्रयोग करते हैं। साधारण जलसों में भी सभी सम्प्रदाय के वक्ता पंजाबी-भाषा में भाषण करते हैं। रात दिन जो कुछ वहाँ पर काम किया जाता है, निस्सन्देह वह इसी पंजाबी-भाषा के सहारे होता है। पंजाब में पंजाबी का वही स्थान है जो स्थान बंगाल में बँगला-भाषा को, गुजरात में गुजराती-भाषा को, महाराष्ट्र में मरहठी-भाषा को या तामिल नाड में तामिल-भाषा को प्राप्त है। लेकिन बंगाल की सरकारी भाषा बँगला है, मदरास के तामिल-प्रदेश की सरकारी भाषा तामिल है, गुजरात-प्रान्त की सरकारी भाषा गुजराती मानी गई है और महाराष्ट्र में मरहठी सरकारी भाषा है, किन्तु पंजाब में पंजाबी को वह स्थान नहीं प्राप्त है। ७७ फ़ी सदी की मातृ-भाषा को सरकारी भाषा न मान कर शासकों ने फ़ारसी-लिपि और उर्दू-भाषा को सरकारी भाषा का पद पंजाब में दिया था और यद्यपि १९२१ में और उसके बाद १९३७ में शासन में सुधार हुआ, तथापि मुस्लिम बहुमत ने भाषा के सम्बन्ध में वही नीति जारी रक्खी जिसका सूत्रपात अँगरेज़ी अमलदारी के ज़माने में विदेशी शासकों ने पंजाब में अँगरेज़ी सत्ता के स्थापित होने के बाद राजनीतिक कारणों से किया था। समय समय पर पंजाबी-भाषा के हिमायतियों और पंजाब के अन्य पढ़े-लिखे लोगों ने पंजाबी-भाषा को पंजाब की सरकारी भाषा का पद दिलाने की चेष्टायें कीं, लेकिन न तो ब्रिटिश हाकिमों ने और न मुस्लिम बहुमत ने उसका समर्थन किया। पंजाब के पढ़े-लिखे मुसलमान बोलेंगे पंजाबी, लेकिन उर्दू-भाषा को मुसलमानों की 'निशानी' मानकर उसको अपदस्थ करने के लिए कदापि तैयार नहीं होंगे। क्या ढोंग और प्रपंच है, जब हमसे यह कहा जाता है कि हिन्दुस्तान भर के मुसलमानों की मादरी ज़बान उर्दू है। पंजाब के मुसलमानों ही को ले लीजिए। वहाँ उनकी संख्या १ करोड़ १३ लाख है और यदि हम यह मान भी लें--यद्यपि ऐसा मानना प्रत्यक्ष रूप से ग़लत होगा--कि पंजाब के ४० लाख 'हिन्दुस्तानी'-भाषियों में भी हिन्दू या सिक्ख नहीं मिलते हैं और ये सबके सब मुसलमान हैं, तो भी इस बात को स्वीकार करने से कोई नहीं भाग सकता कि पंजाब में भी एक करोड़ ३३ लाख मुसलमानों में से केवल ४० लाख ऐसे हैं जिनकी मातृ-भाषा हिन्दुस्तानी-भाषा है, पंजाबी-भाषा नहीं। अर्थात् पंजाब के १३ मुसलमानों में से कम से कम ९ ऐसे हैं जिनकी मातृ-भाषा पंजाबी है, उर्दू नहीं।

इस सम्बन्ध में हम पाठकों को सन् १८३७ ईसवी में प्रचारित उस घोषणा की याद दिलाना चाहते हैं जिसे ईस्ट इंडिया कम्पनी के बोर्ड आफ़ डाइरेक्टर्स ने निकाली थी। इस घोषणा के अनुसार पंजाब में अँगरेज़ी-भाषा और लिपि तथा पंजाबी-भाषा और गुरमुखी-लिपि को तो सरकारी पद मिलना चाहिए था, लेकिन ग़दर के कुछ साल पहले पंजाब पर जब अँगरेज़ों का क़ब्ज़ा हो गया तब वहाँ सरकारी भाषाओं और लिपिओं का पद दिया गया अँगरेज़ी और फ़ारसी को। वहाँ भी वही हुआ जो बिहार, युक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त और उड़ीसा में हुआ था। वहाँ की प्रान्तिक भाषाओं के स्थान में सरकारी अहलकारों ने उर्दू का चलन कर दिया। वर्षों की नीति के बाद बिहार, उड़ीसा और मध्यप्रान्त को अहलकारों की इस भाषा-सम्बन्धी अहमन्यता से छुटकारा मिल गया, लेकिन युक्तप्रान्त और पंजाब आज दिन भी इसी साम्प्रदायिक हठधर्मी और पक्षपात के शिकार बने हुए हैं।

पंजाबी-भाषा के साथ यह अन्याय क्यों किया जाता है? इस अनर्थ और अत्याचार की क्या ज़रूरत है? क्या पंजाबी-भाषा कोई अनुन्नत बोली है, जिसके द्वारा सभ्य और उन्नत व्यापारों का सम्पादन सम्भव नहीं? सर जार्ज ग्रियर्सन ने भारतवर्ष की भाषाओं सम्बन्धी जाँच में पंजाबी-भाषा के गुणों का मुक्त कण्ठ से गान किया है। उनकी रिपोर्ट के भाग ९, खण्ड ए०, पृष्ठ ६०७-८०६ को वे पाठक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महोदय पढ़ने की कृपा करें जिन्हें इस विषय से दिलचस्पी है। यहाँ पर तो हम उनके मुख्य कथनों का सार मात्र ही देकर सन्तोष करेंगे। सर जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार पंजाबी एक भारतीय आदि-भाषा है, जिसमें सिन्धी की तरह तद्भव शब्दों का एकमात्र साम्राज्य है। इस भाषा में तत्सम शब्दों का एक तरह से अभाव है। मिस्टर बीम्स के कथन को सर जार्ज ग्रियर्सन ने उद्धृत किया है और मिस्टर बीम्स का कहना है कि पंजाबी और सिन्धी में गेहूँ के आटे की सुगन्ध है और किसानों की कुटीरों का सौरभ। इस पर सर जार्ज ग्रियर्सन ने यह लिखा है कि यद्यपि भाषा का रूप घरेलू है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अपरिष्कृति है या उसमें साहित्य का सृजन नहीं हो सकता। पंजाबी में हर प्रकार के भाव और विचार सुगमता से व्यक्त किये जा सकते हैं और गद्य तथा पद्य के लिए यह भाषा एक-सी उपयुक्त है। इतनी समृद्धशालिनी भाषा का उसी के घर में इतना अनादर हो, इस बात को देख कर किसका हृदय विदीर्ण नहीं होगा। यदि आज दिन पंजाबी-भाषा में साहित्य का अभाव है तो इसका यह कारण नहीं है कि भाषा सदोष और अपूर्ण है, किन्तु इसका कारण है उन लोगों की उपेक्षा जिनके हाथ में शासन की बागडोर वर्षों से चली आई है। यदि पंजाबी को भी मरहठी, गुजराती या बँगला के समान प्रश्रय मिला होता तो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि आज दिन इस भाषा में भी उसी तरह का साहित्य हमारे लिए सुलभ होता जिस तरह का साहित्य बँगला, गुजराती और महाराष्ट्री में हमें प्राप्त है।

अब प्रश्न के दूसरे पहलू पर विचार कीजिए। मान लीजिए पंजाब में पंजाबी-भाषा का उसी तरह से चलन और समादर है, उसे अपने घर और सरकार और जनता के द्वारा वही पद और मान प्राप्त है जो बंगाल में बँगला, गुजरात में गुजराती का रुतबा है। यह भी मान लीजिए कि पंजाब के मुसलमान राष्ट्र-भाषा की दृष्टि से उर्दू-भाषा और लिपि को भी सीखना चाहते हैं तो यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि जो अधिकार पंजाब के बहुसंख्यक मुसलमान अपने लिए चाहते हैं वही अधिकार वहाँ के अल्प-संख्यक हिन्दुओं और सिक्खों को क्यों न दिया जाय? यदि पंजाब में मुसलमानों की आबादी ५७ प्रतिशत है तो हिन्दुओं की भी आबादी वहाँ २७ प्रतिशत से ज़्यादा और सिक्खों की संख्या १३ सैकड़ा है। आज अकथ परिश्रम से पंजाब-प्रान्त में हिन्दी का प्रचार बहुत काफ़ी बढ़ रहा है। एक समय था जब वहाँ उसका बहुत कम प्रचार था। लेकिन अब वहाँ की दशा वैसी नहीं रह गई है। युक्तप्रान्त में जितनी उर्दू की पुस्तकें सन् १९३८ में प्रकाशित हुईं उनकी संख्या ९ फ़ी सदी से कम थी, यद्यपि यह प्रान्त मुस्लिम संस्कृति का केन्द्र समझा जाता है। पंजाब में १९२२, १९२७, और १९३२ तक में हिन्दी, उर्दू और पंजाबी में जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुईं उनकी संख्या हम नीचे देते हैं—

सन्	उर्दू	पंजाबी	हिन्दी
१९२२	६७९	९६६	१०१
१९२७	१,२०२	६०६	१९५
१९३२	६१४	५९६	१२६

१९३१ में तीनों लिपियों में प्रकाशित होनेवाले पत्रों की तुलना पर भी कृपया दृष्टिपात कीजिए—

पत्र	दैनिक	साप्ताहिक	मासिक	दूसरे	कुल जोड़
उर्दू	२२	१०९	१०७	२०	२५८
गुरमुखी	२	१६	१६	३	३७
हिन्दी	१	२	१३	२	१८

इनमें से प्रत्येक पत्र की नियमित औसत ग्राहक-संख्या १२०० थी। इस तरह से हिन्दी-अख़बारों के ख़रीदनेवालों की तादाद १९३१ में लगभग २२,००० थी। १९३१-४० की अवधि में हिन्दी ने और भी कहीं अधिक उन्नति की है।

पंजाब में सन् १९२२-३१ के बीच में उर्दू की प्रायः ९२ किताबों की तुलना में पंजाबी में ७३ और हिन्दी में २२ पुस्तकें प्रकाशित हुईं, अर्थात् इस एक ही वर्ष की अवधि के बीच में पंजाबी और हिन्दी में मिला कर यदि ९५ पुस्तकें प्रकाशित हुईं तो उर्दू में केवल ९२ किताबें निकलीं। इसकी युक्तप्रान्त से तुलना कीजिए। इस प्रान्त में १९३६ में ८९ प्रतिशत किताबें यदि हिन्दी की निकलीं तो ११ प्रतिशत किताबें उर्दू की प्रकाशित हुईं। जिस प्रान्त में उर्दू का इतना कम चलन है उस प्रान्त में सरकारी भाषा तो उर्दू मानी जाय, लेकिन जहाँ पर पंजाबी और हिन्दी की पुस्तकों की सम्मिलित संख्या उर्दू की प्रतिशत पुस्तकों की तुलना में अधिक हैं वहाँ पर न तो पंजाबी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और न हिन्दी की वहाँ की सरकार की नज़र में कोई इज़्ज़त है। डाक्टर ज़ाकिर हुसेन युक्तप्रान्त में आकर हमें यह सलाह देने को तैयार हैं कि हिन्दी-भाषा और देवनागरी-लिपि के साथ-साथ उस भाषा और उस लिपि की पढ़ाई अनिवार्य कर दी जाय जिस भाषा और जिस लिपि की इस सूबे में केवल ११ प्रतिशत किताबें सन् १९३६ में प्रकाशित हुई थीं और सन् १९३८ में ऐसी पुस्तकों की संख्या ११ प्रतिशत से घट कर सिर्फ़ ९ प्रतिशत रह गई थी। लेकिन डाक्टर ज़ाकिर हुसेन पंजाब जाने का कष्ट नहीं उठाना पसन्द करते। यदि वे वहाँ तशरीफ़ ले जायँ तो हमें आशा है कि वे सर सिकन्दर हयात ख़ाँ और उनके साथियों को यह सलाह दें कि उर्दू के साथ ही साथ पंजाबी और हिन्दी को भी समान पद मिलना चाहिए। डाक्टर ज़ाकिर हुसेन और उनके दूसरे दोस्त युक्तप्रान्त में उर्दू के संरक्षण के लिए क्यों इतने बेताब दीखते हैं जब वे पंजाब में ख़ुद पंजाबी और हिन्दी-भाषाओं के साथ न्याय भी करने के लिए तैयार नहीं? मिस्टर ब्लन्ट के अनुसार युक्तप्रान्त में ऐसे लोगों की संख्या जिनकी मातृ-भाषा उर्दू है, केवल आठ फ़ी सदी है। आठ फ़ी सदी को प्रसन्न रखने के लिए युक्तप्रान्त में तो उर्दू को सर्वाराध्य बनाने की रात-दिन कोशिश होती है, लेकिन पंजाब के प्रान्त में ७७ फ़ी सदी की जिनकी मातृ-भाषा पंजाबी है, कुछ भी परवा नहीं की जाती। इतना ही यदि होता तो भी शिकायत का काफ़ी मौक़ा था, लेकिन पंजाब की हयाती हुकूमत साम्प्रदायिक संकीर्णता की नीति के कारण और भी आगे बढ़ने जा रही है। वहाँ पर इस बात की कोशिश की जा रही है कि जिन स्कूलों में हिन्दी या गुरमुखी की शिक्षा दी जाती है उन स्कूलों को सरकारी मदद न मिलने पाये। पाठकों को याद होगा कि सर अब्दुल क़यूम ने इसी तरह की आज्ञा सीमाप्रान्त में दी थी। वही करने पर अब पंजाब की सरकार तुली हुई है। हमें अब भी आशा है कि पंजाब में ऐसी कोई बात न होने पायेगी। वहाँ के हिन्दी-हितैषी सजीव हैं और हमें बेहद ख़ुशी होगी कि सर सिकन्दर हयात और उनके दूसरे साथी हिन्दी और पंजाबी-भाषाओं को अनतिदूर भविष्य में उसी तरह का समान पद देने के लिए तैयार हो जायँगे जिस तरह का पद इस समय केवल उर्दू-भाषा और उर्दू-लिपि को वहाँ प्राप्त है। लेकिन जब तक ऐसा नहीं होता तब तक उन कांग्रेसी और ग़ैर-कांग्रेसी मुस्लिम दोस्तों से हम यह कहेंगे कि वे युक्त-प्रान्त में उर्दू की रक्षा की कोशिश को बन्द कर दें, क्योंकि हमारे सूबे में उर्दू के बहिष्कार की ग़लत नीति का समर्थन करते हुए हमने आज तक किसी ज़िम्मेदार आदमी को नहीं देखा। हमें एक भी कोई ऐसा ज़िम्मेदार नेता नहीं मिला जो युक्तप्रान्त में उर्दू-विरोधी हो। इसलिए हम कहते हैं कि उर्दू के संरक्षण की कोशिश युक्तप्रान्त में व्यर्थ और निरर्थक है। ज़रूरत है कि हमारे कांग्रेसी और ग़ैर-कांग्रेसी मुस्लिम दोस्त पंजाब में अपने मतावलम्बियों से पंजाबी और हिन्दी के प्रति कुटिल अन्याय और अत्याचार को बन्द कर देने के लिए मजबूर करें। यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो उनकी निष्पक्षता में, उनकी राष्ट्रीयता में और उनकी अल्प-संख्यकों के प्रति सहानुभूति में लोगों को सन्देह होने लगेगा। लेकिन कहा जायगा कि यहाँवाले न्याय के साथ नहीं हैं? ये तो उर्दू की रक्षा की आवाज़ केवल इसलिए उठाते हैं कि कहीं हिन्दू-प्रधान प्रान्त से मुस्लिम 'निशानी' उखड़ न जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

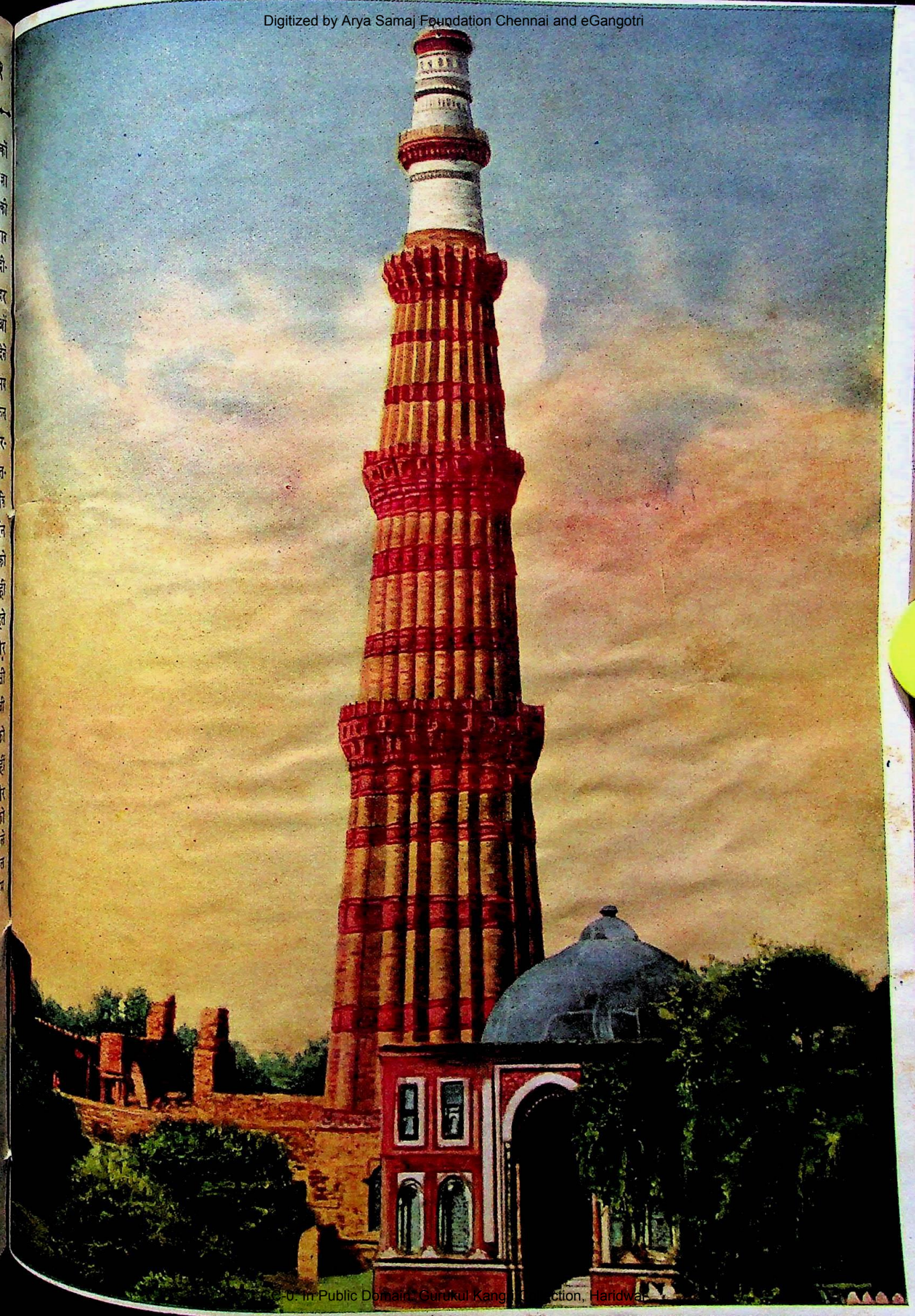

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

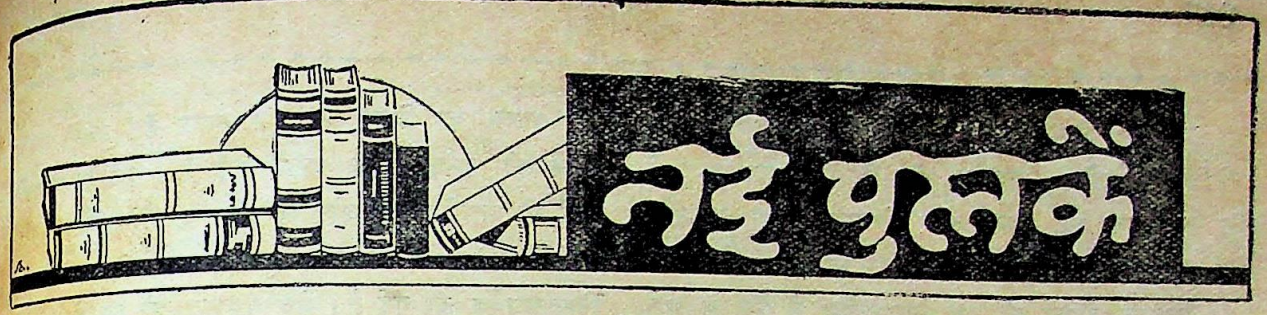

१-३ भारतीभवन, लीडर प्रेस, इलाहाबाद की ३ पुस्तकें—

१—**ईरान के सूफ़ी कवि**—सम्पादक, सर्वश्री बाँकेविहारी व कन्हैयालाल हैं। छपाई उत्तम, पृष्ठ-संख्या ४११ और सजिल्द पुस्तक का मूल्य ४॥) है।

इस पुस्तक में ईरान के ९ सूफ़ी कवियों—सनाई, उमर खैयाम, निज़ामी, फ़रीदुद्दीन अत्तार, रूमी, शेख़सादी, अब्दुलतरी, हाफ़िज़ और जामी का संक्षिप्त परिचय उनकी कविताओं के नमूनों के साथ दिया गया है। कविताओं का हिन्दी-भाषा में अनुवाद भी कर दिया गया है।

फ़ारसी के सूफ़ी-साहित्य का प्रभाव हमारे देश की उर्दू-कविता पर पूरा पूरा पड़ा है। लैला और शीरीं, खिज्र, आबेवक़ा और मूसा आदि की कहानियाँ व गुल-बुलबुल आदि शब्द सीधे फ़ारसी से उर्दू में आये हैं। यही नहीं, यहाँ का सन्त-साहित्य भी सूफ़ीवाद से बहुत कुछ प्रभावित है। हिन्दीवालों के लिए फ़ारसी की इस प्रकार की कविता की थोड़ी-बहुत जानकारी इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि उसकी मूल-प्रकृति के जाने बिना हिन्दी के सन्त-साहित्य की प्रवृत्तियों का पूरा पूरा समझ सकना कठिन है। पर अभी तक हिन्दी में इस कार्य में सहायता देनेवाली कोई पुस्तक न छपी थी। इस अभाव की पूर्ति प्रस्तुत पुस्तक से बहुत कुछ हुई है। हमें विश्वास है कि साहित्य के विद्यार्थियों के निकट यह पुस्तक सम्मान प्राप्त करेगी। पर पुस्तक का भूमिका-भाग छोटा और शिथिल है। इसमें कुछ अधिक खोजपूर्ण व विवेचनात्मक सामग्री देकर पुस्तक की उपयोगिता बढ़ाई जा सकती थी। आशा है, अगले संस्करण में यह कमी दूर कर दी जायगी।

२—**दो बहनें**—(उपन्यास) लेखक, श्रीयुत भगवती-प्रसाद वाजपेयी हैं। पृष्ठ-संख्या २८८ और सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) है।

वाजपेयी जी हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ कहानी-लेखक हैं। उनकी इस रचना में कला और सरसता का समान सम्मिश्रण हुआ है।

उपन्यास का प्रधान पात्र ज्ञानप्रकाश है; दिवाकर उसका प्रतिद्वन्द्वी है। आशा और लता दो सगी बहनें हैं, जो ज्ञानप्रकाश को प्रेम करती हैं। दिवाकर ज्ञानप्रकाश का मामा है। वह लता पर आसक्त है। लता ज्ञानप्रकाश को चाहती है, पर ज्ञानप्रकाश आशा को हृदय दे चुका है। यह एक प्रकार का प्रेम-चक्र है। इस गोरखधन्धे को अच्छे ढंग से सुलझाने के लिए ही लेखक महोदय ने अपनी प्रतिभा का सदुपयोग किया है। कथानक रोचक है और उसका विकास स्वाभाविक ढंग से हुआ है। चरित्र-चित्रण भी सफल है। व्यर्थ के पात्रों की भरमार न होने से कथा में एक सरलतापूर्ण रोचकता आ गई है और पाठक उलझन में न पड़ कर कथाकार के साथ साथ चलता रहता है। यह इसकी दूसरी विशेषता है। कथोपकथन के कुछ अंशों को एकदम अँगरेज़ी में देकर और फ़ुटनोट में भी उनका अनुवाद न देकर केवल हिन्दी जाननेवाले पाठकों के साथ न्याय नहीं किया गया है। पात्रों में 'आशा' का अन्त तो ठीक हुआ है, पर 'लीला' का भविष्य 'ज्ञानप्रकाश' के एकाएक चले जाने से लटका ही रह जाता है। उसके साथ पाठक के दिमाग़ में भी कुछ जिज्ञासा रह जाती है। आखिर उसका अपराध इतना गुरु नहीं था, जितना उसे दंड मिला है। 'मन्दा' का चरित्र भी कुछ अपूर्ण-सा रह गया है। ज्ञानप्रकाश, आशा, दिवाकर और राय साहब के चरित्र-चित्रण पूर्ण सफल हुए हैं। डाक्टर गंगोली को लेखक महोदय ने एक स्थान पर 'हँसी का सामान' बनाने का प्रयत्न किया, पर उधर सफलता मिलती न देखकर उन्होंने ग़ज़ब का संयम भी दिखला दिया है, जो अच्छा ही हुआ। सब मिलाकर पुस्तक रोचक है और इसके लिए हम वाजपेयी जी को बधाई देते हैं।

३—**एक घूँट**—लेखक, स्वर्गीय श्री जयशंकरप्रसाद हैं। मूल्य ॥) है। गेट-अप सुन्दर, पृष्ठ-संख्या ५९ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'असंख्य जीवनों की भूल-भुलैया में अपने चिर-परिचित को खोज निकालना और किसी शीतल छाया में बैठ कर एक घूँट पीना और पिलाना--क्या समझे! प्रेम का एक घूँट! बस इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।'

सचमुच जीवन की इस भूल-भुलैया में प्रेम के भूखे हृदय भ्रान्त होकर भटकते रहते हैं, परन्तु जब दो चिर-परिचित प्रेमी हृदय परस्पर मिल जाते हैं तब उनके लिए यह संसार ही स्वर्ग के समान सुखदायक तथा अमृत के समान जीवनदाता हो जाता है।

'एक घूँट' एक छोटा सा भावपूर्ण नाटक है। कथानक अत्यन्त सरल है। अरुणाचल पहाड़ी के समीप एक हरे-भरे प्राकृतिक वन में कुछ लोगों ने एक स्वास्थ्य-निवास बसा लिया है। वहाँ के जीवन का निराला ढंग है, जो नागरिक और ग्रामीण जीवन की सन्धि है। उनका आदर्श है सरलता, स्वास्थ्य और सौंदर्य। उसी आश्रम में आकर स्वतंत्र प्रेम का प्रचारक सुन्दर युवक आनन्द कुछ दिनों तक ठहरता है, परन्तु उसे यहाँ ज्ञात होता है कि स्वतंत्र प्रेम की 'शब्दावली की मधुर प्रवंचना से वह आप ही छला जा रहा है।' और तब उसका भी हृदय प्रेम की 'एक घूँट' पीने के लिए व्याकुल हो उठता है। जब कुमारी प्रेमलता उससे 'एक घूँट' पीने का अनुरोध करती है तब वह उसे पीकर तृप्त हो जाता है और 'उसी दिन से अरुणाचल आश्रम का नियम हो जाता है उच्छृंखल प्रेम को बाँधने का।'

'प्रसाद' जी ने अपनी सुन्दर भाषा, आकर्षक शैली और दार्शनिक विचारों से नाटक को पूर्ण कर दिया है। 'चंदुला' के विज्ञापन पर पाठक को हँसी आ जाती है, परन्तु वह भी हमारे जीवन का एक कठोर सत्य है। नाटक के पात्रों का विकास सुन्दर रीति से हुआ है। वनलता और उसके पति कवि रसाल दोनों भूले रहते हैं, परन्तु जब रसाल को अपनी भूल का अनुभव होता है तब दोनों प्राण सदा के लिए एक हो जाते हैं।

'प्रसाद' जी ने इस छोटे से नाटक में बहुत कुछ भर दिया है जो साहित्य-रसिकों को अपार आह्लाद प्रदान कर सकेगा।

४--संध्यायोग--लेखक, श्रीयुत प्रतापनारायण चतुर्वेदी हैं। मिलने का पता--भारतवासी प्रेस, दारागंज, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या २४८ और मूल्य १॥) है।

पुस्तक का विषय नाम से स्पष्ट है। इसमें सन्ध्या करने की समंत्र विधि बताई गई है। हठयोग-सम्बन्धी बातें भी बताई गई हैं और आसनों का भी सविस्तर तथा सचित्र विवेचन दिया गया है। गायत्री की व्याख्या भी विस्तारपूर्वक की गई है। शेष पंचमहायज्ञों का भी उल्लेख है। प्रामाणिक पुस्तकों के अवतरण भी यथावश्यक दिये गये हैं। धार्मिक हिन्दुओं के लिए पुस्तक काम की है।

५--हिन्दी के सामाजिक उपन्यास--लेखक, श्रीयुत ताराशंकर पाठक, एम० ए०, एल-एल० बी० साहित्य-रत्न, प्रकाशक, मध्य-भारत, हिन्दी-साहित्य-समिति, इन्दौर है। मूल्य १) है।

हिन्दी-साहित्य के सामाजिक उपन्यासों की सृष्टि अभी थोड़े दिन की ही वस्तु है, अतएव एतद्विषयक समीक्षा-ग्रन्थों का हिन्दी में एक प्रकार से अभाव है। प्रस्तुत पुस्तक इसी अभाव को दृष्टि में रखते हुए लिखी गई है, जिसका उद्देश्य सम्भवतः विद्यार्थियों की कठिनाइयों को सुलझाना अधिक है। लेखक ने अपनी समीक्षा की कसौटी का आधार लक्षण ग्रन्थों को ही बनाया है। उपन्यास के तत्त्वों का पुस्तक के आरम्भ में ही विस्तृत विवेचन किया गया है। उसके उपरान्त उन्हीं तत्त्वों के आधार पर प्रमुख उपन्यास-लेखकों की समालोचना की गई है। समालोचना करने का भी लेखक का एक अलग ढंग है; वह प्रत्येक लेखक की रचनाओं को अपनी कसौटी पर कसता है।-- न किसी की प्रशंसा करना और न किसी की कटु आलोचना करना ही उसका ध्येय है। अपनी कसौटी को उसने वस्तुविन्यास, कथोपकथन, चरित्रचित्रण शैली आदि भागों में विभाजित किया है। आद्योपान्त भाषा सरल, साहित्यिक और शैली संयम-पूर्ण है। विचार-प्रदर्शन में एक नियमन है। लेखक ने हिन्दी में चार प्रमुख सामाजिक उपन्यासकार माने हैं। चारों उपन्यासकारों की प्रतिभा के विषय में किसी को विवाद नहीं हो सकता। उपसंहार में लेखक ने संक्षिप्त रूप से अन्य उपन्यासकारों की भी समीक्षा की है। दूसरे श्रेणी के उपन्यासकारों में लेखक ने कई ऐसे उपन्यासकारों की भी समीक्षा की है जिनसे कहीं अधिक श्रेष्ठ कलाकारों का पुस्तक में ज़िक्र भी नहीं मिलता। उदाहरण के लिए लेखक ने श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा और श्री बेचन शर्मा 'उग्र'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का जहाँ ज़िक्र किया है, वहाँ श्री भगवतीचरण वर्मा, श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी, आदि कई ऐसे उपन्यासकारों का ज़िक्र न होना पाठक को अखरता है। आशा है, लेखक महोदय पुस्तक के दूसरे संस्करण में इस प्रभाव की पूर्ति कर देंगे।

फिर भी पुस्तक सुन्दर बन पड़ी है। और पाठकों के--विशेष कर विद्यार्थियों के सामने हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों की एक स्पष्ट रूप-रेखा प्रस्तुत करती है।

६--रजकण--लेखिका, श्रीमती शकुन्तला श्रीवास्तव हैं, प्रकाशक, पटना-पब्लिशर्स, पटना है। मूल्य ॥) है, सजिल्द का १) है। पृष्ठ-संख्या ८८ है।

प्रस्तुत कविता संग्रह को देखकर जान पड़ता है कि कवयित्री का भविष्य आशापूर्ण है। उनकी हिन्दी-साहित्य को यह प्रथम देन है। ऐसा जान पड़ता है कि कवयित्री महोदया छायावाद के अज्ञात तथा अस्पष्ट संसार की ओर न अग्रसर होकर जीवन के अनुभवों से अधिक प्रभावित हैं। उन पर श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान और श्रीमती ललीं जी का प्रभाव अधिक पड़ा है फिर भी अनेक स्थलों पर वे छायावादी कवियों से भी प्रभावित हुई प्रतीत होती हैं। कुछ कवितायें तो काफ़ी अच्छी बन पड़ी हैं। 'शिशु', सान्त्वना', 'उलाहना' आदि कवितायें सुन्दर हैं, जिनके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि आगे चलकर कवयित्री हिन्दी को और भी सुन्दर साहित्य प्रदान करेंगी। भाषा सरल, किंतु प्राञ्जल है सही कवयित्री की एक विशेषता है जिससे वह जनता की कवयित्री हो सकती है।

७--गांधी जी--अनुवादक श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी, प्रकाशक छात्र हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज प्रयाग हैं। मूल्य ॥) है, पृष्ठ-संख्या ९२ है।

प्रस्तुत पुस्तक गुजराती की मूल-पुस्तक का अनुवाद है। इसके लेखक हैं श्री जुगतराम दवे। महात्मा जी कठोर व्रती तथा एक क्रान्तिकारी सुधारक हैं। उनके जीवन के अनेक पहलुओं में से सत्याग्रह, अहिंसा, सत्य और ईश्वर-भक्ति प्रमुख है, जिन पर उन्होंने बहुत कुछ लिखा है। उनके जीवन के सिद्धान्त सरल हैं और प्रत्येक मनुष्य उन्हें सरलता से प्राप्त कर सकता है, पर इसके लिए धुन की आवश्यकता है। प्रस्तुत पुस्तक महात्मा जी की जीवनकथा को संक्षिप्त रूप देकर राष्ट्र की भावी संतानों के लिए उक्त चीज़ों की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। लेखनशैली बालमनोविज्ञान के सिद्धान्त-समन्वित और रोचक है। आद्योपान्त पुस्तक इतनी सरल व आकर्षक है कि बालकों का एक बार उठा लेने पर छोड़ने को जी न चाहेगा। अनुवाद की भाषा सरल तथा मुहावरेदार है। बालकों के लिए यह पुस्तक विशेष उपयोगी है।

८--मौलाना अबुलकलाम आज़ाद--लेखक, श्री रमेशचन्द्र आर्य, प्रकाशक, विजयपुस्तक-भंडार, श्रद्धानन्द बाज़ार, देहली हैं। मूल्य ।=) है, पृष्ठ-संख्या ७६ है।

राष्ट्रपति आज़ाद उन मुसलमानों में से हैं जिनके हृदय-सिन्धु में राष्ट्रीयता की उमंगें लहरें लेती हैं, जिनकी सम्पूर्ण शक्ति भारत की परतन्त्रता की बेड़ियों को काटने में लगी हुई है। मौलाना साहब महात्मा गान्धी के परम भक्त हैं। उनका जीवन क्रान्ति की घटनाओं से पूर्ण है। इस पुस्तक में उनका जीवन-चरित सरल भाषा में लिखा गया है। लेखन-शैली यद्यपि ओजपूर्ण नहीं है, फिर भी पुस्तक को रोचक बनाने के लिए काफ़ी प्रयत्न किया गया है। भाषा सरल तथा सुबोध है। पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् हमें आज़ादी के इस दीवाने के जीवन की एक झाँकी प्राप्त हो जाती है।

९--आत्मतेज या स्वामी समन्तभद्र--लेखक, श्री भगवतस्वरूप जैन 'भगवत्', प्रकाशक, श्री भगवतभवन पुस्तकालय, एत्मादपुर आगरा हैं। मूल्य ।॥) है, पृष्ठ-संख्या ३० है।

यह छोटी सी पुस्तिका, जैसा कि नाम से ही प्रकट है स्वामी समन्तभद्र की जीवन-कथा है। स्वामी जी का जैन-समाज में बहुत अधिक मान है। पुस्तक जैनियों के अधिक काम की है, परन्तु साधारण पाठक भी इस जीवन-कथा से कुछ लाभ उठा सकता है। तर्ज राधेश्याम रामायण का है।

१०--बुलबुल लेखक, श्री जोतिनप्रसाद और प्रकाशक, ग्रन्थमाला-कार्यालय, बाँकीपुर है। मूल्य ॥) है, पृष्ठ-संख्या १२० है।

बुलबुल में लेखक, की १६ कहानियाँ संगृहीत हैं। प्रत्येक कहानी-द्वारा बालकों को किसी न किसी आदर्श की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा दी गई है। बच्चों के लिए जो कहानियाँ बहुधा लिखी या कही जाती हैं उनका उद्देश्य केवल बालकों का मनोरंजन करना ही होता है, परन्तु बुलबुल की कहानियाँ मनोरंजन करने के साथ ही साथ उनके मस्तिष्क के लिए कुछ भोजन भी प्रदान करती हैं। इस पुस्तक की प्रायः सभी कहानियाँ प्रकृति की सुखदायिनी गोद में ही खेलती हैं। भाषा सरल किन्तु कवित्वपूर्ण है। 'एकतारा', 'वह चित्र', 'भाई-बहन', पतझड़' आदि कहानियाँ अच्छी बन पड़ी हैं।

—अनन्तप्रसाद विद्यार्थी बी० ए०

११—हमारा ग्राम साहित्य—लेखक, पंडित रामनेरश त्रिपाठी, प्रकाशक, हिन्दी-मंदिर, प्रयाग हैं। पृष्ट-संख्या ५६–३३०, मूल्य १।) है। पुस्तक सजिल्द है।

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने ग्राम-गीतों का बड़े परिश्रम और लगन के साथ संग्रह किया है। उन्होंने ग्राम-गीतों का संग्रह भी पुस्तक-रूप में प्रकाशित किया है, और उनके उस संग्रह की भूरि भूरि प्रशंसा भी हुई है। उन्हें ग्राम-साहित्य के विशेषज्ञ समझकर ही प्रान्तीय सरकार के शिक्षा-विभाग ने उपर्युक्त पुस्तक लिखवाई है। इस पुस्तक के प्रणयन में त्रिपाठी जी ने विशेष सावधानी से काम लिया है। उन्होंने गीतों का विषयों के अनुसार संग्रह किया है, २५ विषयों के गीत तथा खेती की कहावतें आदि अर्थसहित इसमें संग्रह की गई हैं। साथ ही यह भी अधिकांश में निर्देश किया है कि कौन गीत किस ज़िले का है। त्रिपाठी जी इस बात के क़ायल नहीं हैं कि गीतों के साथ उनके स्थान का निर्देश किया जाय, यद्यपि भाषा-विज्ञान के विचार से यह बात अतीव आवश्यक है। त्रिपाठी जी का यह भी मत है कि भाषा की दृष्टि से संयुक्त-प्रान्त के गीतों को केवल दो भागों में—पूर्वी और पश्चिमी भागों में बाँटना चाहिए। उनका यह मत ठीक नहीं है, क्योंकि भाषा या बोलियों की दृष्टि से संयुक्त-प्रान्त कुरु, पांचाल, सूरसेन, वत्स, काशी, अवध आदि भागों में बहुत पहले से विभक्त है। परन्तु यह विषयान्तर की बात है। यह पुस्तक उन्होंने जिस दृष्टि-कोण से लिखी है उसमें उन्हें पूरी सफलता मिली है। उन्होंने बताया है कि गाँवों का समाज एक प्रकार का 'मौखिक विश्वविद्यालय' है और अपनी इस सूक्ति को उन्होंने इस सुन्दर पुस्तक-द्वारा भले प्रकार सिद्ध भी कर दिया है। इस पुस्तक का एक बार आकलन कर जाने से पाठक को यह बात हृदयङ्गम हो जाती है कि हमारे ग्रामवासी भी ज्ञानवान् हैं, और वे भी अपने ढंग से जीवन के रहस्य को समझते हैं। इसके सिवा इसके पढ़ने से पाठक के मन में ग्रामीणों के प्रति सहानुभूति जाग्रत हो जाती है और वह उनकी 'मौखिक यूनीवर्सिटी' का छात्र बनने को उत्सुक हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है कि इस पुस्तक के प्रणयन में त्रिपाठी जी को काफ़ी अधिक सफलता मिली है। आशा है, वे एक ऐसा भी संग्रह तैयार करने को अग्रसर होंगे जो भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी उपयोगी हो। उनके पास ग्रामगीतों का काफ़ी अधिक संग्रह है भी। अन्त में हम त्रिपाठी जी को इस सफल रचना के लिए बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि हिन्दी के प्रेमी इस उपयोगी पुस्तक का संग्रह करके उससे लाभ उठाने का प्रयत्न करेंगे।

१२—दर्शन-तत्व-रत्नाकर—ज्ञानलोक, दारागंज, प्रयाग से प्राप्य। (प्रथम तथा द्वितीय भाग), लेखक, श्री सूरजमल मीमाणी हैं। दोनों भागों की पृष्ठ-संख्या क्रमशः १६० व ६०६ है।

प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान् लेखक ने दर्शनों तथा दर्शन-साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाले विशिष्ठ-शब्दों, वाक्यों, सिद्धान्तों आदि का बहुत ही सुबोध ढंग से विवेचन किया है। दर्शन ऐसा गूढ़ विषय बहुत ही सरल और सुबोध कर के प्रतिपादित किया गया है। भारत के जनसमूह में दार्शनिक भाव आधार रूप से व्याप्त हैं। हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में जो भी प्राचीन, अर्वाचीन साहित्य है उसमें दार्शनिक तत्व ओत-प्रोत है। उन्हें ठीक से समझने के लिए पाठकों को दर्शन-शास्त्र के ज्ञान की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। प्रस्तुत पुस्तक से साधारण पढ़े-लिखे पाठकों को थोड़े में, बड़ी सरलता से सम्पूर्ण दर्शनों (६ नास्तिक तथा ६ आस्तिक दर्शनों) का तथा उन दर्शनों में प्रयुक्त होनेवाले विशिष्ट शब्दों का ज्ञान हो जाता है। सरल भाषा में दर्शन ऐसे गूढ़ विषय को इतनी अच्छी तरह से समझा सकने और साधारण पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुषों के निमित्त बोधगम्य बना सकने में लेखक सफल हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीयुत बदरीनाथ गीता-वाचस्पति के नाम

(१)

जुही, कानपुर, ता० २१ नवंबर १४

भगवन्,

नमोनमः! आपका सौजन्यसूचक पत्र मिला। दो ले पढ़ा। परमानन्द हुआ। मैं किसी योग्य नहीं। ह आपकी कृपा और उदारता है जो आप मुझे वैसा समझते हैं। आपका प्रेम मुझ पर है; इसी से आपको रे दोष नहीं देख पड़ते——

वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि

मेरी लोग निन्दा करते हैं या स्तुति, इस र में कभी हर्ष-विषाद नहीं करता। आप भी न किया ीजिए। मार्गभ्रष्ट कभी न कभी मार्ग पर आ ही ाते हैं। मेरा किसी से द्वेष नहीं, न लखनऊ के ही किसी सज्जन से, न और ही किसी से। उम्र थोड़ी है। वह द्वेष और शत्रुभाव-प्रदर्शन के लिए नहीं। मैं ई इतना करता हूँ कि जो मेरे हृद्गतभावों को नहीं समझते उनसे दूर रहता हूँ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का फोटो मेरे सिरहाने वार पर टँगा है। मैं रोज़ उनके दर्शन करता हूँ। हीं शेषशायी विष्णु का भी चित्र है।

मेरी तन्दुरुस्ती खराब है। बाहर जाने में कष्ट होता है। मैं शहर कम जाता हूँ, शहर से दूर जंगल में एक टीर में रहता हूँ। इसी से सम्मेलन की सेवा नहीं कर सका। और कोई कारण नहीं।

आप बड़ी अच्छी हिन्दी लिखते हैं। कभी कभी कुछ लिख डाला कीजिए।

ईश्वर करे, कभी किसी दिन आपके दर्शनों का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो।

विनीत

महावीरप्रसाद द्विवेदी

(२)

दौलतपुर—रायबरेली

१३-१२-१४

श्रीमन्,

१० दिसम्बर का पोस्ट कार्ड मिला। मैं आपके दूसरे पत्र का उत्तर दे चुका हूँ। तीन चार रोज़ हुए। आशा है, मिल गया होगा।

निवेदक

महावीरप्रसाद द्विवेदी

(३)

दौलतपुर—रायबरेली

२५-१२-१४

श्रीमन्,

२२ दिसम्बर का कृपाकार्ड मिला। मैं आपके पूर्व पत्र का उत्तर इलाहाबाद बैंक, मुरादाबाद के पते पर भेज चुका हूँ। वहाँ से मँगा लीजिएगा। मैंने समझा था कि आप बैंक में मुलाज़िम हैं।

मैं १०-१५ दिन बाद कानपुर लौट जाऊँगा। वहीं दर्शन दीजिएगा।

निवेदक

महावीरप्रसाद द्विवेदी

(४)

जुही, कानपुर,

ता० ३-२-१५.

प्रिय बाबू बदरीनाथ जी

बदायूँ से भेजा गया पत्र मिला। पहला पत्र भी मिल गया था।

आपके इस पत्र को पढ़कर खेद, आश्चर्य और कौतूहल—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी हुए। दुःख की बात है, आप लोग अपने ही समाज के लोगों पर अत्याचार कर रहे हैं।

बहादुरसिंह की बहादुरी पूर्ववत् अखण्डित रहने दीजिए। उन पर मुक़दमा तो क्या चलाऊँगा, परमेश्वर से प्रार्थना अवश्य करूँगा कि वह उन्हें विवेक, सहिष्णुता और उदारता दें।

वी० पी० लौट जाने का कुछ भी हर्ष-विषाद नहीं। हर साल सैकड़ों वी० पी० लौटते हैं और सैकड़ों नये ग्राहक होते हैं।

कानपुर में समाज का भूकम्पकारी जलसा होनेवाला है। बड़े बड़े महारथी आनेवाले हैं। शायद आप भी आवें।

मेरी तबीयत कोई १५ दिन ख़राब रही। अब अच्छा हूँ।

आशा है, आप प्रसन्न और कुशलपूर्वक हैं।

भवदीय

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

(५)

दौलतपुर—रायबरेली,

११—५—१५

प्रियवर बदरीनाथ जी

९ मई का पत्र मिला। आपके पहले पत्र का उत्तर मैं कोंच के पते पर भेज चुका हूँ।

आप कानपुर में मेरे कुटीर पर गये और मैं न हुआ। इसे मैं अपना दुर्भाग्य समझता हूँ। मेरे साथ इस दफ़े लखनऊ के पं० रुद्रदत्त वाजपेयी आये थे। एक हफ़्ता रहे। आपको जानते हैं। मन से आपके विषय में बहुत बातें हुईं।

कोंच की दुर्घटना का हाल मैंने Leader में पढ़ा था। आपके पत्र से और भी कितनी ही बातें मालूम हुईं। सुनकर रंज हुआ। ईश्वर सिंह जी को शीघ्र ही आरोग्य करे। दूसरों के धर्म्म पर आक्रमण न हुआ करे तो अच्छा हो, इससे अनेक बुराइयाँ पैदा होती हैं। ये बातें झगड़े की जड़ हैं।

आज-कल यहाँ आने में और भी तकलीफ़ मिलती है। गंगा का रेत भड़भूजे का भाड़ हो जाता है। मैं स्वयं ही किसी मौक़े पर लखनऊ जाकर आपसे मिलूँगा।

मैं दो-ढाई महीने यहाँ रहूँगा।

—भवदीय

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

(६)

जुही—कानपुर,

१६—९—१५

श्रीमन्,

नमो नमस्ते। कृपा-कार्ड मिला। मैं ४ महीने गाँव पर था। कल आया हूँ। मेरा हाल कुछ न पूछिए। वहाँ मकान के भीतर पानी भर गया। वहाँ गाँव पर आधा बाग़ तालाब में बह गया। कुछ पेड़ भी कट कर चले गये। बहुत नुक़सान हुआ। तबीयत ठीक नहीं। चित्त खिन्न रहता है। आशा है, आप प्रसन्न हैं। सौहार्द में कमी न होने पावे, यही "सेवा" मैं आपसे चाहता हूँ।

—भवदीय

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

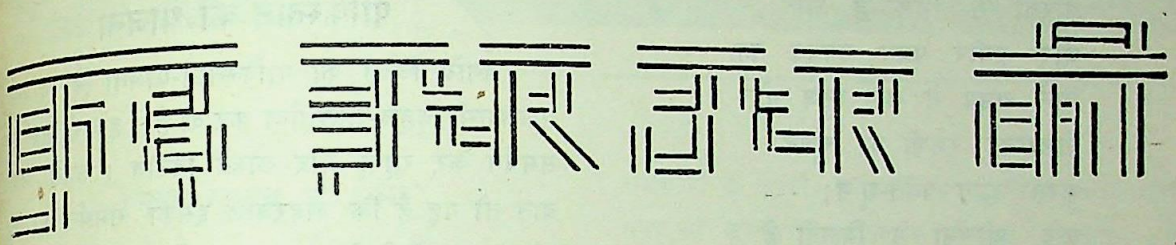

दो नये अन्वेषण

हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् प्रोफ़ेसर सद्गुरुशरण अवस्थी ने दो बड़ी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक खोजें की हैं। पहली तो यह है कि पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति का पता भगवान् रामचन्द्र को था और उन्होंने पम्पासर के तट पर श्री लक्ष्मण जी को इस का सोदाहरण उपदेश किया था, और दूसरी यह कि रामायण के पात्र भी उसी छायावादी भाषा में वार्तालाप करते थे जिसमें 'प्रसाद' जी के नाटकीय पात्र। विद्वान् अवस्थी जी ने 'माधुरी' की अप्रैलवाली संख्या में इनका उल्लेख इस प्रकार किया है—

(१) "रामचन्द्र—भाई लक्ष्मण ! पृथ्वी की अन्तर्निहित शक्ति 'आकर्षण' को भ्रम से प्रेमपूर्ण बुलावा समझकर जब कन्दुक दौड़कर उससे चिपट जाता है तो संघर्ष की ठेस से क्यों ऊपर को भागता है ? इस नैसर्गिक क्रीड़ापूर्ण उड़ान में 'स्व' का 'अर्थ' केवल इतना ही रहता है कि वह अनमिल वातावरण से छूट जाय। मैं इसे कन्दुक की उदारभावना का जागरण समझूँगा !

(२) "लक्ष्मण—मुलाहिज़े-वाला मुलायम स्वभाव, चितवन की सौजन्यपूर्ण झेंप, हृदय की सब स्वीकार-वाली कोमलवृत्ति, 'नकार' और 'हँकार' से उलझी हुई संशयात्मक समस्या एक पंक्ति में खड़ी होकर दूसरे के सुखकर आग्रह का जब स्वागत करेगी, तो वह प्रतिनिधि बनकर स्वागत क्यों न करे।"

माननीय टण्डन जी और चिकित्सक

झाँसी में आयुर्वेदिक यूनीवर्सिटी का शिलान्यास करते समय माननीय बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन ने कहा कि "जनता को बीमार पड़ने पर किसी भी वैद्य, हकीम, डाक्टर या होमियोपैथ की दवा न खानी चाहिए। पहले ही सावधानी रखनी चाहिए जिससे रोग पैदा ही न हों, और जब रोग पैदा हो जायँ तब दवा न खाकर प्राकृतिक साधनों से उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रकृति ही सब रोगों के लिए सबसे बड़ी चिकित्सक है, अतः किसी वैद्य, डाक्टर, हकीम की कोई ज़रूरत नहीं है।"

माननीय टंडन जी के इन नपे-तुले शब्दों में अनुभव और दूरदर्शिता की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। और हमें विश्वास है कि जनता उनके इस अनुभव-जन्य ज्ञान से पूरा-पूरा लाभ उठाकर न केवल बीमारियों के पचड़े से ही, डाक्टरों-वैद्यों के लम्बे-लम्बे बिलों से भी आसानी से छुटकारा पा जायगी।

अच्छा होता यदि माननीय टंडन जी उक्त 'आयुर्वेदिक यूनीवर्सिटी' का शिलान्यास करने से ही इनकार कर देते। आख़िर इन यूनीवर्सिटियों से भी तो वे ही जीव पैदा किये जायँगे जो जनता को कृत्रिम उपायों से रोग दूर करने को बाध्य करेंगे।

हिन्दी के मौलिक कवि

लोग झूठ ही कहते हैं कि हिन्दी में शेली की टक्कर का कोई कवि नहीं है। सच बात तो यह है कि हिन्दी के अनेक कवि भाव व भाषा में शेली से कहीं आगे निकल जाते हैं। 'विशाल भारत' के गत जनवरी १९४० के अंक में पृष्ठ ७४ पर श्रीकृष्णचन्द्र शर्मा 'चन्द्र' का एक सुन्दर गीत छपा है। इसे शेली के यहाँ दिये गये गीत से मिलाकर पढ़िए। आपको ज्ञात हो जायगा कि 'चन्द्र' जी ने शेली के शब्दों में कुछ जोड़ ही दिया है, कम नहीं किया है। हमें विश्वास है कि इन 'मौलिक कवियों' की रचनायें शीघ्र ही विश्व-साहित्य में स्थान पा जायँगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री कृष्णचन्द्र शर्मा 'चन्द्र' का गीत

सरित समुद्रों से मिलती हैं,
सरितों से मिलते हैं स्रोत;
धीर समीर पवन उपवन का,
मिले समय से लख निज गोत ।
नीलाम्बर रमणी का चुंबन
करते उद्धत पर्वत-शृंग;
चन्द्र ज्योत्स्ना से मिलती हैं
उछल-उछल उत्ताल तरंग ।
सृष्टि-संयोग नियम यह मुझको
करता है पर अधिक अधीर;
हम तुम ही न मिलें तो किसका
मिलना अरी वीर, वे पीर ?

शेली की कविता

Love's Philosophy

The fountains mingle with the river.
And the rivers with the Ocean.
The wind of heaven mix for ever
With a sweet emotion.
Nothing in the world is single.
All things by a law divine.
In one anothers being mingle—
Why not I with thine ?
See the mountains kiss high heaven
And the waves clasp one another
* * * And the moonbeam kiss the sea—
What are all these kissings worth,
If thou kiss not me ?

पाकिस्तान की योजना

जनाब जिन्ना की पाकिस्तान-योजना ने दुनिया में एक खासी चहल-पहल पैदा कर दी है। हज़ारों सर उसका समर्थन कर रहे हैं और लाखों विरोध। सबसे मज़ेदार बात तो यह है कि बाहरवाले इसका समर्थन कर रहे हैं और घरवाले विरोध। लन्दन के अखबार इस योजना को हिन्दुस्तान के लिए बहुत ही फ़ायदेमन्द बतलाते हैं तो हिन्दुस्तानी अखबार, कांग्रेस, हिन्दू-महासभा, सिक्ख और जाट इसे घातक समझते हैं। पर मिस्टर जिन्ना अच्छी तरह जानते-समझते हैं कि विदेशी समर्थन के मुक़ाबिले में इस देशी विरोध का कोई मूल्य नहीं है। और इसी लिए वे अपनी माँग से टस से मस होने को तैयार नहीं हैं।

पर पाकिस्तान के बीच अब एक बड़ी बाधा आपड़ी है। बेगम हामिदअली कहती हैं कि 'मुसलमान-महिलायें भेड़ें और बकरियाँ नहीं हैं कि जिन्ना साहब जहाँ चाहें उन्हें हाँक ले जायँ।'

खेद है कि जनाब जिन्ना को यह बात पहले से किसी ने न सुझाई ! और सुझाता कौन ? घर में तो कोई सुझानेवाली थी नहीं। अब देखना यह है कि पाकिस्तान को आबाद करने के लिए जनाब जिन्ना जैसे जीव ही जाते हैं या बाल-बच्चोंवाले। यदि कहीं सब मुस्लिम औरतें बेगम साहबा के बहकाने में आगईं तो आदम की पसली से हव्वा को बनानेवाला अनुक्रम अल्लामियाँ को एक बार फिर दोहराना पड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

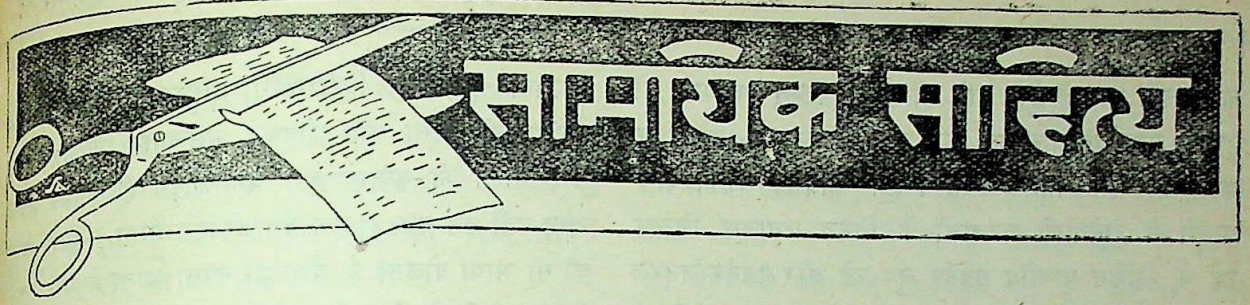

जिन्ना साहब की माँग

मार्च के तीसरे सप्ताह के अन्त में लाहौर में मुस्लिम लीग का जो अधिवेशन हुआ है उसमें जिन्ना साहब ने भारत के बँटवारे की माँग पेश की है। सभापति के पद से इस अवसर पर उन्होंने जो भाषण किया है उसमें उन्होंने अपनी उक्त माँग का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है। उक्त भाषण का सारांश हम यहाँ 'भारत' से उद्धृत करते हैं--

यदि ब्रिटिश सरकार ने बिना मुस्लिमलीग की स्वीकृति तथा उसके साथ कान्फ्रेंस किये कोई घोषणा की तो मुस्लिम-भारत उसका विरोध करेगा। २॥ साल के प्रान्तीय सरकारों के कार्य ने यह साबित कर दिया है कि मुसलमानों को दिये संरक्षण कुछ भी महत्त्व नहीं रखते। यह ईश्वरीय सहायता थी जो कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के बीच हुआ समझौता युद्ध की घोषणा के साथ-साथ भंग हो गया।

मुसलमान अपने आत्म-बल पर ही निर्भर करें, किसी दूसरी शक्ति पर नहीं। यही उनके लिए सर्वोत्तम संरक्षण है। सरकार वस्तुतः इस उप-महाद्वीप की जनता में अमन-चैन क़ायम करने की हार्दिक इच्छा रखती है तो उसके लिए एक मात्र उपाय यही है कि भारत की बड़ी-बड़ी जातियों को अलग-अलग अपना "स्वाधीन राष्ट्र" क़ायम करने दिया जाय।

मुस्लिम-भारत ऐसा कोई भी विधान स्वीकार नहीं कर सकता जिसके फलस्वरूप बहुसंख्यक हिंदुओं की सरकार क़ायम हों। जनसत्तात्मक प्रणाली के अन्दर हिन्दुओं और मुसलमानों को ज़बर्दस्ती एक साथ रखने का अर्थ केवल हिन्दूराज क़ायम करना होगा। जिस तरह की जनसत्ता कांग्रेस चाहती है उसका अर्थ उस वस्तु का सम्पूर्ण विनाश होगा जो इस्लाम-धर्म के अन्दर सबसे अधिक मूल्यवान् है। हमें २॥ साल तक प्रान्तीय सरकारों के कार्यों का अनुभव हो चुका और यदि इस तरह की सरकारें फिर क़ायम की गईं तो उसका अर्थ गृह-युद्ध तथा निजी सेनायें तैयार करना होगा।

यह जानना बहुत ही कठिन है कि हमारे हिंदू भाई क्यों नहीं इस्लाम-धर्म तथा हिन्दू-धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझते हैं। वास्तव में इस्लामधर्म तथा हिन्दूधर्म दोनों विभिन्न तथा स्पष्ट सामाजिक व्यवस्थायें हैं और यह ख़याल करना स्वप्न ही होगा कि हिन्दू और मुसलमान कभी राष्ट्रीय एकता स्थापित कर सकते हैं। एक भारतीय राष्ट्र की भ्रान्त धारणा आगे बढ़ गई है और यही हमारी अधिकांश कठिनाइयों का कारण है और यदि हमने समय के भीतर ही अपनी भावनाओं का परिष्कार नहीं कर लिया तो उसके फलस्वरूप भारत का विनाश हो जायगा। हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के अलग-अलग दर्शन, सामाजिक प्रथायें तथा साहित्य हैं। न तो वे एक दूसरे के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं और न खान-पान रख सकते हैं। उनकी अलग-अलग सभ्यतायें हैं, जो स्वतः परस्पर विरोधी भावनाओं और विचारों पर अवलम्बित हैं।

भारत की वर्तमान कृत्रिम एकता केवल ब्रिटिश राज्य के बाद से चलती है और जो ब्रिटिश संगीन के द्वारा क़ायम है। लेकिन ब्रिटिश शासन के भंग होने के बाद वह नष्ट हो जायगी और उसके स्थान में इतना भयानक विध्वंस का दृश्य उपस्थित होगा जैसा विगत मुस्लिम शासन के १००० वर्षों में कभी नहीं हुआ था, लेकिन फिर भी यह निश्चय है कि ब्रिटिश सरकार १५० साल तक भारत का शासन करने के बाद ऐसा न होने देगी और न हिन्दू या मुसलिम-भारत ही उस विनाश का खतरा उठायेगा। हम लोग निश्चित रूप से भारत की आज़ादी के पक्ष में हैं, लेकिन वह स्वतन्त्रता वैसी नहीं है जैसी कि कांग्रेस चाहती है। हमें पिछले दो वर्षों से काफ़ी अनुभव हो चुके हैं और हम अब किसी का विश्वास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने नहीं जा रहे हैं। चाहे जो भी हो किन्तु एक बार जो हमारे साथ विश्वासघात कर चुका है उसका हम फिर कभी विश्वास नहीं करते। हम कांग्रेस सरकारवाले प्रान्तों में होनेवाली घटनाओं के विरुद्ध लगातार चिल्ला रहे थे, लेकिन प्रान्तीय गवर्नर चुप रहे और गवर्नर जनरल ने भी कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के बीच "मैत्रीपूर्ण समझौते" के कारण अपनी असमर्थता प्रकट की। हमने उन्हें अल्पसंख्यकों के लिए दिये गये संरक्षणों का स्मरण दिलाया, लेकिन उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ईश्वर की दया से कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार में समझौता भंग हो गया और कांग्रेस ने मन्त्रिपद का त्याग कर दिया है। अब वह उसके लिए पश्चात्ताप कर रही है। अब वह फिर शासन-भार ग्रहण करना चाहती है। लेकिन अब वह कैसे कर सकती है? अब हम दूसरों के बल अथवा विश्वास पर नहीं रह सकते। मैं आप लोगों से हार्दिक अपील करता हूँ कि आप अपने ही बल पर निर्भर करें। यही सबसे बढ़कर संरक्षण है।

महात्मा गांधी का उत्तर

महात्मा गांधी ने एक प्रश्न के उत्तर में प्रकारान्तर से जिन्ना साहब के बँटवारे की माँग का उत्तर अपने 'हरिजन' में दिया है। उनका वह उत्तर 'विकट परिस्थिति' शीर्षक में छपा है। उसका आवश्यक अंश इस प्रकार है–

मैं मानता हूँ कि मुस्लिमलीग ने लाहौर में जो क़दम उठाया है उससे एक विकट परिस्थिति पैदा हो गई है।

मुसलमानों को आत्म-निर्णय का वैसा ही अधिकार होना चाहिए जैसा शेष भारत को। आज हमारा सम्मिलित कुटुम्ब है। उसका कोई भी आदमी बँटवारे का दावा कर सकता है।

मैं विश्वास नहीं कर सकता कि जब सचमुच फ़ैसला करने की नौबत आयेगी तब मुसलमान देश के कभी टुकड़े करना चाहेंगे। उनकी समझदारी उन्हें रोकेगी, उनका स्वार्थ उनका हाथ पकड़ेगा, उनका धर्म उन्हें यह स्पष्ट आत्महत्या करने से मना करेगा। देश के इस अंग-भंग का और अर्थ हो भी क्या सकता है? "दो राष्ट्रोंवाला" सिद्धान्त झूठा है। हिन्दुस्तानी मुसलमानों में से ज़्यादातर या तो अपना धर्म छोड़कर मुसलमान बने हैं या धर्म छोड़नेवालों की सन्तान हैं। धर्म छोड़ते ही उनका अलग राष्ट्र नहीं बन गया। एक बंगाली मुसलमान बंगाली हिन्दू की सी भाषा बोलता है, वैसा ही खाना खाता है और अपने हिन्दू पड़ोसी के जैसे ही मनोरंजन करता है। उनका पहनावा भी मिलता-जुलता है। मैंने अकसर देखा है कि किसी बाहरी चिह्न से बंगाली हिन्दू और मुसलमान को पहचानना कठिन होता है। यही बात थोड़ी या बहुत दक्षिण भारत के भी ग़रीबों में दिखाई देती है।

भारत के हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र नहीं हैं। जिन्हें ईश्वर ने एक बनाया है उनके मनुष्य कभी टुकड़े नहीं कर सकेगा।

और क्या जैसा क़ायदे आज़म कहते हैं, इस्लाम इतना ही एकांगी धर्म है? क्या इस्लाम में और हिन्दुत्व या और किसी धर्म में कुछ भी समान बातें नहीं हैं? या इस्लाम सिर्फ़ हिन्दुत्व का शत्रु ही है? जब अली भाइयों और उनके साथियों ने हिन्दुओं को सगे भाई समझकर छाती से लगाया और दोनों में इतनी समान बातें देखी थीं तो क्या उन्होंने भूल की थी? इस समय मैं हिन्दू व्यक्तियों का विचार नहीं कर रहा हूँ। सम्भव है, मुसलमान मित्र उनको जैसा समझते थे वैसे न निकले हों।

जिन्ना साहब का कहना यह नहीं है कि कुछ हिन्दू बुरे हैं, वे तो यह कहते हैं कि हिन्दूमात्र में मुसलमानों से मिलती-जुलती कोई बात नहीं है। मैं साहस के साथ कहता हूँ कि वे और उनके से विचारवाले इस्लाम की सेवा नहीं कर रहे हैं, वे उस सन्देश का अनर्थ कर रहे हैं जो 'इस्लाम' शब्द में ही निहित है। मैं यह इसलिए कहता हूँ कि आज जो कुछ मुस्लिम लीग के नाम से हो रहा है उससे मेरे दिल को गहरी चोट पहुँचती है। मुसलमानों में आज जिस असत्य का प्रचार किया जा रहा है उससे उन्हें सचेत न करूँ तो मैं अपने धर्म से चूकता हूँ। यह चेतावनी देना मेरा फ़र्ज़ इसलिए है कि मैंने संकट के समय उनकी सच्ची सेवा की है और हिन्दू-मुस्लिम-एकता मेरे जीवन का एक विशेष कार्य रहा है और है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बम्बई के भूतपूर्व शेरिफ़ का विरोध

जिन्ना साहब की बँटवारे की माँग का अनेक विचारवान् मुसलमानों ने विरोध किया है। उनमें से बम्बई के भूतपूर्व शेरिफ़ श्री मोहम्मद भाई आई० एम० राव जी का मत इस प्रकार है—

जबकि अखिल विश्व का उद्देश्य और योजनायें विविध सरकारों और राष्ट्रों में महान् एकता स्थापित करना है, यह कितनी अजीब बात है कि श्री जिन्ना बाल्कन देशों की भाँति भारतवर्ष के स्पष्ट खतरों के बावजूद टुकड़े-टुकड़े करना चाहते हैं।

श्री जिन्ना के "दो खुदमुख्तार राष्ट्रों" के प्रस्ताव के पीछे कोई लोकमत नहीं है। यदि इस योजना पर अमल किया जाय तो बहुत से उपाधिधारी नवाब तथा बड़े-बड़े ज़मींदार बहुत मुश्किल मे फँस जायेंगे, क्योंकि हिन्दू बहुमतवाले प्रान्तों में उनके निहित स्वार्थों पर कितना भारी कुठाराघात होगा।

श्री जिन्ना का यह नया प्रस्ताव ज़्यादा से ज़्यादा यही कर सकता है और यही शायद इसका उद्देश्य भी हो कि कुछ हिन्दू डर जायँगे, बहुत से मुसलमानों की आँखों में धूल झोंक दी जायगी और तीसरी पार्टी को, शायद अनजानपन से ही, इससे लाभ पहुँचेगा।

जब श्री जिन्ना भारतवर्ष को हिन्दू और मुस्लिम दो भागों में बाँटना चाहते हैं, वे जान बूझकर भारतीय मुसलमानों के विभिन्न सम्प्रदायों के पारस्परिक झगड़ों और मतभेदों के बारे में खामोशी अख्तियार किये हुए हैं। क्या जिन्ना साहब मुस्लिम भारत को भी शिया और सुन्नी मुस्लिम भारतों में बाँटने के लिए तैयार होंगे ताकि सुन्नी बहुमतवाले मुस्लिम भारत में शियाओं के हित खतरे में न पड़ें। इसके अलावा जिन्ना साहब भावी भारत में पारसी, सिक्ख, ईसाई और यहूदियों को कोई स्थान नहीं देते जिनके कि हिन्दू और मुसलमानों के साथ रस्म-रवाज तथा आचार-विचार में उसी प्रकार के मतभेद हैं। श्री जिन्ना की व्याख्या के अनुसार वे सबके सब पृथक राष्ट्र हैं। क्या उनकी व्याख्या केवल उन्हीं की जाति तक सीमित है? क्यों नहीं भारत को दो के बजाय छः हिस्सों में तक़सीम कर दिया जाय?

———

भारत-मन्त्री का भाषण

मुस्लिम लीग की माँग का समर्थन ब्रिटेन के 'टाइम्स' पत्र ने भी किया है। यही नहीं, अभी अभी भारत-मंत्री लार्ड जेटलैंड ने रेडियो पर जो भाषण किया है उसमें भी लीग की माँग का महत्त्वपूर्ण ढंग से उल्लेख हुआ है, जो इस तरह है—

गवर्नमेंट आफ़ इंडिया ऐक्ट के अनुसार भारत के प्रान्तों का शासन भारतीय मन्त्रियों के हाथ में दिया गया, जो भारतीय पार्लिमेंटों के ज़िम्मेदार रक्खे गये। ऐक्ट में प्रान्तों तथा देशी राज्यों को एक संघ-साशन में लाने की भी व्यवस्था की गई, लेकिन इस जगह पर कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गई हैं, संघ-शासन के स्थापित करने के लिए तीन मुख्य राजनीतिक शक्तियों के सहयोग की आवश्यकता है। वे तीन राजनीतिक शक्तियाँ हैं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, देशी नरेश और अ० भा० मुस्लिम लीग। इन तीनों संस्थाओं ने अलग-अलग कारणों से ऐक्ट के संघ-शासन सम्बन्धी धाराओं पर आपत्ति की है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि एक तरफ़ तो कांग्रेस केवल डोमीनियन स्टेट्स नहीं बल्कि पूर्ण स्वराज्य और विधान सम्मेलन-द्वारा बनाया गया विधान माँग रही है और दूसरी ओर मुस्लिम सम्प्रदाय एक पृथक् मुस्लिम राज्य माँग रहा है।

मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच वास्तविक सुलह हुए बिना भारतवर्ष में कोई स्थायी व्यवस्था सम्भव नहीं हो सकती। मैं यह भी कहूँगा कि भारत में चाहे जो कुछ भी कठिनाइयाँ हों हम पूरे दिल से हिन्दू-मुसलमानों में सुलह करवाने का भरसक प्रयत्न करते रहेंगे।

———

प्रवासी भारतीयों की दशा

इस सम्बन्ध में 'हिन्दुस्तान' लिखता है—

विदेशों में भारतीयों की दुर्दशा की शिकायत कोई नई चीज़ नहीं है। जिस ब्रिटिश साम्राज्य में भारत को भागीदार बतलाया जाता है और जिसकी भागीदारी के लिए उसे गर्वानुभव करने के लिए कहा जाता है, उसी के विविध भागों—उपनिवेशों और साम्राज्यान्तर्गत देशों—में भारतीयों की स्थिति बुरी ही नहीं है बल्कि और बुरी होती जा रही है। श्री ग़ुलामभीख नारंग के प्रस्ताव पर इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुधवार को केन्द्रीय असेम्बली में इस सम्बन्ध में जो बहस हुई, उसने इस स्थिति को एक बार फिर सामने ला दिया है।

इस बहस के दौरान में ये बातें सामने आई हैं—

(१) ब्रिटिश साम्राज्य के प्रायः सभी भागों में प्रवासी भारतीयों को हिक़ारत की नज़र से देखा जाता है; उनका अपमान किया जाता है और उन पर तरह-तरह के प्रतिबंध लगाये जाते हैं।

(२) बर्मावाले न केवल और भारतीयों को वहाँ आने देने के ख़िलाफ़ हैं, बल्कि पिछले दिनों वहाँ बर्मियों और भारतीयों में जो संघर्ष हुआ था उसके पीड़ित भारतीयों की क्षतिपूर्ति में भी आनाकानी कर रहे हैं।

(३) सीलोन में भारतीयों को नौकरी मिलने में ही कठिनाई नहीं होती, बल्कि ज़मीन-सम्बन्धी और इन्कमटैक्स के क़ानून भी अपमानजनक और असह्य हैं। इसके अलावा, शनाख़्त के कार्डों तथा भारतीयों को ज़बर्दस्ती भारत भेजने जैसे और सख़्त क़ानून भी वहाँ की सरकार बनाने जा रही है।

(४) दक्षिणअफ़्रिका में भारतीयों के साथ विविध भेद-भाव के, यहाँ तक कि उन्हें अछूतों की तरह अलग बसाने के, क़ानून बन रहे हैं और "आज भी स्थिति बदली नहीं है, बल्कि भारतीयों के ख़िलाफ़ तास्सुब बढ़ ही रहा है।"

(५) नेटाल में भारतीयों को यह वचन दे देना पड़ा है कि ऐसे इलाक़ों में वे ज़मीन नहीं खरीदेंगे जिनमें कि अँगरेज़ों की प्रधानता होगी।

(६) साम्राज्य के विविध भागों में जातिगत भेद-भाव का जो बुरा रूप है उसके चिह्न ब्रिटेन में भी दिखलाई पड़ने लगे हैं। इँगलैंड के होटलों में भी भारतीयों के साथ भेद-भाव किया जाता है।

यह स्थिति खेदजनक और शर्मनाक तो है ही, इससे यह भी साफ़ मालूम पड़ जाता है कि ब्रिटिश साम्राज्य में हमारी क्या स्थिति है। सरकार की ओर से सर गिरिजा-शंकर वाजपेयी ने इस बात का आश्वासन दिया है कि वह इस स्थिति को सुधारने के लिए यथासम्भव पूरी कोशिश कर रही है, और यह भी हम जानते हैं कि इस मामले में सरकार ने हमेशा अपना रुख़ जनता को सन्तुष्ट करनेवाला ही बतलाया है; लेकिन, जैसा कि सर हेनरी गिडनी ने बहस के दौरान में कहा, "इस स्थिति को सुधारने में इस देश की जनता और सरकार शक्तिहीन ही रहे हैं।" और, जैसा कि हमारे एक सहयोगी ने लिखा है, "इस सम्बन्ध में भारत-सरकार की सारी सहानुभूति अमली तौर पर व्यर्थ ही रही है।"

ऐसा क्यों है? इस पर विचार करते ही 'सारे रोगों की जड़ दासता' का स्मरण हो आता है। मौ० जफरअली का यह कहना ठीक ही है कि "हमें अपने मुल्क में आज़ाद होना चाहिए। जब तक हिन्दुस्तान में हम आज़ाद नहीं होंगे, तब तक जैसे का तैसा जवाब देने के लिए हमारे पास फ़ौज और ताक़त नहीं होगी, तब तक हमारे लिए कोई उम्मीद नहीं है।"

श्री अणे की योजना

कांग्रेस और भारत-सरकार के बीच जो राजनैतिक मतभेद उठ खड़ा हुआ है उसको दूर करने के लिए लोकनायक अणे प्रयत्नशील हुए हैं। इस सम्बन्ध में उनका जो वक्तव्य निकला है उसका सारांश इस प्रकार है—

भारत के सभी दलों के प्रमुख राजनीतिज्ञों की ५० से १०० सदस्यों तक की एक कमेटी बना ली जाय, और भारतीय विधान तैयार करने का कार्य उसी के सुपुर्द कर दिया जाय। कांग्रेस, उदार-दल, हिन्दू-सभा, सनातनी, मुस्लिम लीग, अछूतवर्ग, सिख आदि सभी दलों के नेता इस कमेटी में सम्मिलित किये जायँ। कमेटी को अधिकार दिया जाय कि वह विभिन्न सम्प्रदायों के धार्मिक एवं सांस्कृतिक हितों की रक्षा के लिए नियम निश्चित करे, किन्तु ऐसा करने में भारत की एक-राष्ट्रीयता को क्षति न पहुँचे।

ब्रिटिश सरकार स्पष्ट रूप से यह घोषित कर दे कि वह भारत के आत्मनिर्णय के अधिकार को पूर्ण रूप से न्याय संगत मानती है।

उक्त कमेटी अपनी तजवीज़ों को भारत सरकार के सिपुर्द कर दे, और ब्रिटिश सरकार से राय लेने के बाद उन्हें कार्य रूप में परिणत किया जाय।

यदि आवश्यक हो तो कमेटी की तजवीज़ों में ब्रिटिश सरकार कुछ संशोधन भी कर सकती है, किन्तु वे संशोधन ऐसे न हों कि कमेटी की मौलिक तजवीज़ों के विरुद्ध हों। जो भी ऐसी तजवीज़ें होंगी, युद्ध समाप्त होने के बाद उन पर अमल किया जायगा और कमेटी की तजवीज़ों के आधार पर भारत का नया विधान निर्धारित होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

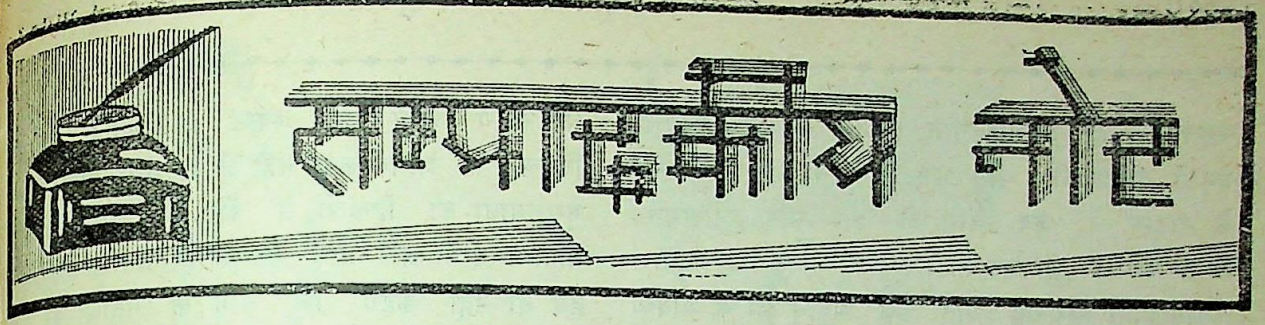

जर्मनी--विनाश की ओर

हिटलर की बदौलत योरप में जो लड़ाई छिड़ी हुई है उसने ९ मार्च से भयानक रुख़ ले लिया है। इस बहाने कि अँगरेज़ों ने नार्वे और डेन्मार्क की निरपेक्षता भंग कर दी है, उसने एकाएक ९ मार्च को डेन्मार्क और नार्वे पर धावा बोल दिया। डेन्मार्क ने तो डरकर आत्म-समर्पण कर दिया, पर नार्वे ने जर्मन सेनाओं का विरोध किया। इस समय सारे डेन्मार्क पर और नार्वे के अधिकांश पर जर्मनी का अधिकार स्थापित है। इस प्रकार उसने इस बार फिर दो निर्बल राष्ट्रों को अपना शिकार बनाया है। परन्तु यह दुस्साहस का कार्य करके हिटलर ने अपने हाथ से अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार ली है। अभी तक जर्मनी पड़ोस के निरपेक्ष देशों की आड़ में होने से अँगरेज़ों की मार से रक्षित था। परन्तु इस अकल्पित अन्यायमूलक कार्य से वह ब्रिटेन के सामने खुले में आ गया है और अब उसको अँगरेज़ी सेना से भीषण संघर्ष का सामना करना ही पड़ेगा। अख़बारों के पढ़ने से प्रकट होता है कि अँगरेज़ी जंगी बेड़े से जर्मनी का युद्ध शुरू हो गया है और यह महाभीषण युद्ध नार्वे के तटवर्ती समुद्र में छिड़ा हुआ है। यह भी प्रकाशित हुआ है कि जर्मनी ने लगभग सौ जंगी जहाज़ों और एक हज़ार वायुयानों से नार्वे पर चढ़ाई की थी। इन्हीं से ब्रिटिश जंगी जहाज़ों का भयानक संग्राम हो रहा है। देखना है कि इस युद्ध में हिटलर कब तक ठहरता है।

अभी तक हिटलर चुप बैठा था, क्योंकि चारों ओर निरपेक्ष राज्यों से घिरा होने के कारण उसका देश सुरक्षित था। परन्तु इधर जब उसने देखा कि ब्रिटेन उसे अब चारों ओर से घेर ही नहीं लेना चाहता है, किन्तु नार्वे के तटवर्ती समुद्र में बारूद की सुरंगें बिछाकर वहाँ से जर्मनी में लोहा नहीं आने देना चाहता तब उसने लाचार होकर यह अनीति का मार्ग ग्रहण किया है और आख़िर मरता क्या न करता की नीति को उसने चरितार्थ कर दिखाया है। चाहे जो हो, हिटलर के इस निन्द्य कार्य से ब्रिटेन को बिना प्रयत्न के ही वह अवसर अपने आप प्राप्त हो गया है जिसकी खोज में वह अब तक था। अब ब्रिटेन का जंगी बेड़ा अपना पुरुषार्थ प्रकट कर सकेगा और वह जर्मनी को समुचित दण्ड भी दे सकेगा।

परन्तु हिटलर की इस आकस्मिक कार्रवाई से अन्य निरपेक्ष राज्य विचलित हो उठे हैं और उनमें अब कोई भी अपना कुशल नहीं समझ रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि हिटलर के इस कार्य से यह युद्ध अधिक व्यापक रूप धारण कर जायगा और निरपेक्ष देशों को भी लाचार होकर इसमें अपना बलिदान करना पड़ेगा। चाहे जो हो, इस युद्ध के ऐसी भीषण गति पकड़ जाने से योरप का भविष्य अन्धकारमय हो गया है।

भारतीय मुसलमानों की नई परम्परा

लाहौर में मार्च के अन्तिम सप्ताह में मुस्लिम लीग का वार्षिक अधिवेशन जिन्ना साहब के सभापतित्व में धूमधाम से हो गया। इस बार लीग का अधिवेशन विशेष समारोह से होता, यदि उसके कुछ पहले लाहौर में पुलिस से ख़ाकसारों का संघर्ष न हो जाता और उनको क़ाबू में रखने के लिए सरकार को कड़ी कार्रवाई न करनी पड़ती। लाहौर में इस विशेष परिस्थिति के उत्पन्न हो जाने से सभापति का जुलूस नहीं निकाला जा सका, तथापि अधिवेशन में लगभग ५० हज़ार व्यक्तियों का जमाव था। परन्तु इस अधिवेशन की विशेषता तो इस बात में है कि जिन्ना साहब ने अपनी पिछली माँगों को भुलाकर देश के बँटवारे की एक नई ही माँग की है। वे चाहते हैं कि पाकिस्तान आदि की योजनाओं के अनुसार मुसलमान-बसित भूभागों के भारत में दो स्वतंत्र मुस्लिम राज्य-अलग कर दिये जायँ। जिन्ना साहब की यह माँग इतनी विकट है कि इसके आधार पर उनसे न कांग्रेस का, न हिन्दू-महासभा का ही समझौता हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है। हाँ, सर्वशक्तिमान ब्रिटिश सरकार अलबत्ता उनकी इच्छा की पूर्ति कर सकती है। लन्दन के 'टाइम्स' ने जब लीग की इस माँग का समर्थन किया है तब आशंका होती है कि भारत का बँटवारा अवश्य होगा और यह बात इस महान् देश के भविष्य के लिए कदापि मंगलप्रद न होगी। परन्तु उपाय ही क्या है? जब इस देश के मुसलमानों के नेता अपनी जाति के लोगों की भलाई बँटवारे में ही मानते हैं तब उनसे कोई कुछ कहे भी तो वे क्यों मानने लगे।

परन्तु इस बँटवारे की छूत, जान पड़ता है, व्यापक रूप धारण कर जायगी। दक्षिण की जस्टिस-पार्टी के नेता भी 'द्रविड़-भारत' की माँग उपस्थित कर रहे हैं। उधर सिक्ख भी अपना हिस्सा अलग चाहते हैं। परन्तु इन नये हिस्सा माँगनेवालों की ओर 'टाइम्स' आदि पत्र ध्यान नहीं दे रहे हैं। ऐसी दशा में शायद ही इनकी सुनवाई हो। परन्तु इस समय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की जो अवस्था है उसको देखते हुए यह बात स्पष्ट है कि मुसलमानों की माँग की उपेक्षा नहीं की जा सकेगी। इसका कारण है। मुसलमान नेता केवल इस बँटवारे से ही सन्तुष्ट न होंगे। उनकी इस माँग के पीछे कुछ और भी रहस्य है जैसा कि पाकिस्तान-सम्बन्धी आन्दोलन के प्रवर्तक मौलाना सी० रहमतअली के वक्तव्य से प्रकट होता है। वे कहते हैं—'आल इंडिया मुस्लिम लीग' के नाम में 'भारतीयता' की गन्ध आती है, इसलिए इस संस्था को तोड़ देना चाहिए और इसके स्थान में 'लीग आफ़ दी एशियाटिक नेशंस आफ़ पाकिस्तान, बंगाल और उस्मानिस्तान' की स्थापना करनी चाहिए, क्योंकि ऐसे महान् संघ की स्थापना से ही उनके महान् उद्देश की सिद्धि हो सकेगी, मुसलमानों में वास्तविक 'मिल्लत' तभी सम्भव हो सकेगी। मुसलमानों को न तो गांधीवाद के विधान से, न अँगरेज़ी साम्राज्यवाद के विधान से और न दोनों के सम्मिलित विधान से ही सन्तोष होगा। वे तो तभी राज़ी होंगे जब उनके सारे हक़ मान लिये जायँगे। फलतः यदि मुसलमान चाहते हैं कि उनका भिन्न राष्ट्र अलग स्थापित हो और हमारे राष्ट्रीय राज्यों में एक-दूसरे से 'मिल्लत' हो तो उन्हें उपर्युक्त नया संघ क़ायम करना पड़ेगा।

उक्त वक्तव्य से मुसलमानों के बँटवारे की माँग का रहस्य अपने आप स्पष्ट हो जाता है। उसके विवेचन की आवश्यकता नहीं है। ऐसी परिस्थिति में मुसलमानों का हिन्दुओं से कैसे मेल हो सकेगा, इसे महात्मा गांधी और लार्ड ज़ेटलेंड ही बतला सकते हैं। हम तो यही कहेंगे कि लीग के नेताओं की बुद्धि मारी गई है, अन्यथा वे इस महान् संकट-काल में ऐसा झमेला कभी न उठाते।

वास्तव में उनके मन में ऐसी विचित्र बातें घर किये हैं। उनका एक यह भी दावा है कि उन्हें मुसलमानों का बहुमत प्राप्त है। लीग के जनरल सेक्रेटरी श्री नवाबज़ादा लियाक़त अली ने तो गांधी जी को आह्वान तक किया है कि वे उनके बँटवारे के प्रस्ताव के सम्बन्ध में मुसलमानों का मत संग्रह करके देख लें कि उनके साथ कितना बहुमत है। इस प्रकार लीगी नेता लोगों की आँखों में धूल झोंककर लोगों से काले को सफ़ेद कहला लेना चाहते हैं। कौन नहीं जानता कि लीग के उक्त प्रस्ताव का स्वयम् मुसलमान ही कितना विरोध कर रहे हैं। जब लीग को ही पिछले चुनाव में ही बहुमत नहीं प्राप्त हुआ तब उसको आज बहुमत प्राप्त होने की बात कहना कोरी डींग है। सीमाप्रान्त, काश्मीर और सिन्ध के मुसलमानों का बहुमत इस प्रस्ताव के द्वारा भी वह नहीं प्राप्त कर सकी है। फिर अहरार, मोमिन, खोजा, शिया आदि तो प्रकट रूप से उसकी माँग का विरोध कर रहे हैं। परन्तु लीगी नेता यही कहेंगे कि मुसलमानों का बहुमत उन्हीं के साथ है। बहुमत उनके साथ तो नहीं है, किन्तु एक बात ज़रूर है और वह है कुछ अँगरेज़ों तथा कुछ कांग्रेसियों के द्वारा उनको विशेष महत्त्व दे दिया गया है। और सारे फ़िसाद की जड़ यही मान्यता है। रही राजनीति की बात सो यहाँ के मुसलमान तो उससे सम्राट् अकबर की मृत्यु के साथ ही नमस्कार कर चुके हैं। इस सम्बन्ध में उनमें जो जोश-खरोश आज दिखाई दे रहा है वह लघुता-बोध की झेंप भर है और यदि यह उनमें दुराग्रह के साथ जड़ पकड़ती गई तो इससे मुसलमानों की तो हित-हानि होगी ही साथ ही वे अपने साथ देश को भी ले डूबेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

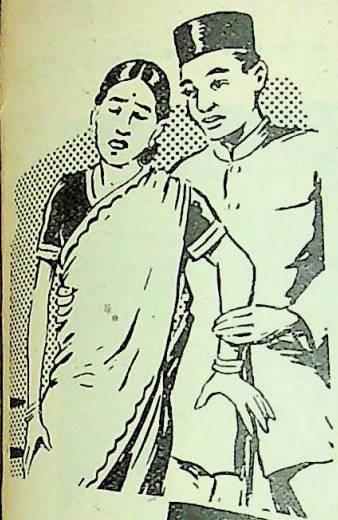

तब
उफ़, उफ़----

"गठिया से छुटकारा पाने की प्राय: सारी आशाओं से मैं निराश हो चुकी थी। इसका प्रकोप एकाएक हुआ करता था और मुझे लोग उठाकर बिछौने तक ले जाते थे। मैंने अनेकों औषधों का सेवन किया किन्तु कोई फ़ायदा न हुआ।"

अब
हा हा, हा!

"एक दिन संयोग से मैं दवाखाने में गई थी। वहाँ पर दूसरे ग्राहक को गठिये के लिए क्रुशेन साल्ट ख़रीदते देखा और मैंने भी उसी का सेवन करना निश्चित कर लिया। उस दिन से फिर मैंने ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं की। मेरी पीड़ा कम होती गई और अब मुझे बिलकुल आराम है।" क्रुशेन में ख़ासतौर के नमक होते हैं जिनका कि मूत्रकणों पर जो कि गठिया के कारण हैं, बहुत शीघ्र असर होता है। तेज़ कोरवाले कण गल कर निर्दोष मूत्र के रूप में बदल जाते हैं जो कि शीघ्र ही बाहर निकल जाता है। क्रुशेन साल्ट गठिया को दूर करता है और शरीर को सदा चुस्त रखता है।

आपको क्रुशेन साल्ट हर जगह के दवाख़ानों में मिलेगा

क्रुशेन साल्ट को धन्यवाद

KRUSCHEN SALTS

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीनबन्धु एण्ड्रूज़ का परलोकवास

दीनबंधु एण्ड्रूज़ का पाञ्चभौतिक शरीर अब इस संसार में नहीं है, पर वे अपने यशःशरीर से सदैव अजर-अमर रहेंगे। भारत की स्वतंत्रता के इतिहास में उनका विशेष स्थान है। विदेशी होते हुए भी उन्होंने इस देश के लिए जो कुछ किया है वह उनके सिवा और दूसरा नहीं कर सकता था। वे जन्म से अँगरेज़ होते हुए भी मनसा-वाचा,कर्मणा भारतीय थे। उनके हृदय में अपार दया थी। जहाँ किसी दीन की पुकार सुनते, वहाँ दौड़े जाते और उसका दुःख बँटाने में कोई उपाय शेष न रखते। वे सच्चे ईसाई थे। उनकी दीन-बन्धुता ही सन् १९०४ में उनको इँगलैंड से भारत ले आई थी। १९०४ से लेकर आज तक ऐसा एक भी राजनैतिक संकट नहीं हुआ जिसमें दीनबंधु भारतीयों के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाए खड़े न दिखाई दिए हों। १९१३ में महात्मा गांधी ने प्रवासी भारतीयों की ओर से दक्षिण अफ़्रिका में सत्याग्रह-आन्दोलन छेड़ा। एण्ड्रूज़ साहब अपनी १॥ हज़ार रुपये की पूँजी लेकर भारत के तत्कालीन नेता गोखले जी के पास पहुँचे और प्रार्थना की कि यह धन सत्याग्रह की सहायता के लिए दक्षिण-अफ़्रिका भेज दिया जाय। श्री गोखले ने उन्हें स्वयं महात्मा जी की सहायता करने की सम्मति दी। एण्ड्रूज़ साहब तुरन्त वहाँ जा पहुँचे। प्रवासी भारतीयों के प्रति उनके हृदय में ऐसा ही स्नेह था। सन् १९२३ से लेकर १९२७ तक का उनके जीवन का भाग फीजी, गायना और दक्षिण अफ़्रिका के भारतीय प्रवासियों के कष्ट-निवारण में ही व्यतीत हुआ था। वे पहले व्यक्ति थे जो मार्शल-लॉ से क्षत-विक्षत पंजाब की मलहम पट्टी करने के लिए विघ्न-बाधाओं को ठुकरा कर सबसे पहले पहुँचे थे। महात्मा गांधी के प्रति उनके हृदय में अपार श्रद्धा और भक्ति थी। इसी प्रकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति दिलाने में भी एण्ड्रूज़ साहब का बड़ा हाथ था। शान्ति निकेतन और विश्व-भारती के प्रति उनकी सेवायें भुला देने की वस्तु नहीं है। वहाँ के हिन्दी-भवन की चिन्ता तो वे कलकत्ते के अस्पताल में पड़े हुए जीवन के अन्तिम क्षण तक करते रहे थे। भारत की दो विश्व-विभूतियों

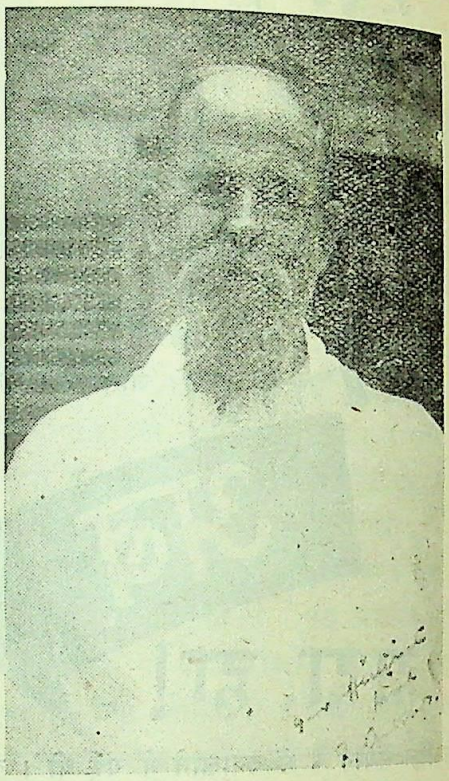

महात्मा गांधी व विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को—एक ही स्नेहसूत्र में बाँधनेवाले सी० एफ़० एण्ड्रूज़ ही थे। महात्मा गांधी के सन् १९२४ व १९३२ वाले ऐतिहासिक अनशनों में श्री एण्ड्रूज़ ने उनकी सेवा-शुश्रूषा करके भारत को अपना चिर ऋणी बना लिया। पाठकों को याद होगा कि यरवदा-जेल में हरिजन-कार्य की सुविधा न मिलने पर महात्मा जी ने अनशन किया था और उनका जीवन संकट में पड़ गया था। उस समय उन्हीं के प्रयत्नों से महात्मा जी जेल से पर्ण-कुटी लाये जा सके थे। राजनैतिक संकटों के समय न जाने कितनी बार उन्होंने सरकार और जनता में समझौता कराया था।

एण्डचूज़ जी का जीवन एक सन्त का सच्चा जीवन था। उनके स्वभाव में बच्चों की सरलता थी। सत्य का प्रकाश उनकी चमकीली आँखों से प्रकट होता था।

श्री एण्ड्रूज़ के रूप में भारत ने अपना एक सच्चा हितैषी खो दिया है। उसकी पूर्ति अब कैसे और कब हो सकेगी? उनके वियोग में आज देश का हृदय रो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिकित्सा चन्द्रोदय के लेखक की

चालीस साल की खूब आज़माई हुई

स्त्री-रोगों की अक्सीर दवाइयाँ

प्रदरान्तक चूर्ण

इस चूर्ण के सेवन से चारों तरह के प्रदर, मासिक-धर्म के समय से अधिक दिनों तक खून बहना, खूनी बवासीर, खून के दस्त वग़ैरह: निस्संदेह आराम होते हैं। मूल्य २), आधा १) ।

कामधेनु घृत

इस घी के सेवन से रक्तपित्त, रक्तगुल्म, पीलिया, पित्तज कामला, पुराना बुख़ार, अन्न की इच्छा न होना, पुष्प की कमी से गर्भ न रहना वग़ैरह रोग नाश होकर गर्भ रहता है । सुन्दर लाल पैदा होता है। मूल्य १ पाव का ८) पर अभी आधा दाम ४), महसूल १) ।

पुष्पानुग चूर्ण

इससे स्त्रियों के समस्त प्रदर, रजोदोष, योनिदोष, रक्तातिसार, मासिक-धर्म का समय पर न होना, कम-ज़्यादा गिरना, योनि की ख़राबियाँ सभी रोग आराम हो जाते हैं । मूल्य ३), आधा १॥) ।

योनिरोगनाशक तेल

इस तेल से योनिरोग, योनिकन्द रोग, योनि के घाव, योनि की सूजन, योनि से पीप बहना, योनि में बड़हल जैसी गाँठ हो जाना, योनि के अन्दर दर्द होना वग़ैरह शिकायतें अवश्य आराम हो जाती हैं । मूल्य आधा पाव का २॥) रुपया ।

पुत्रदा घृत

इस घी के पीने से पुरुष की संभोगशक्ति बढ़ जाती है, उसके ख़ूबसूरत, बलवान् और बुद्धिमान् पुत्र होता है। जिन स्त्रियों की सन्तान मरी हुई होती है अथवा गर्भ रहकर गिर जाता है, अथवा लड़की ही लड़कियाँ होती हैं उनके बड़ी उम्रवाला, गुणवान्, रूपवान् और बलवान् पुत्र होता है । इसके अलावा योनि से मवाद गिरना, रजोधर्म ठीक और शुद्ध न होना वग़ैरह अनेक स्त्री-रोग आराम होते हैं । मूल्य ३२) रु० सेर । आधा दाम १६) सेर ।

शीघ्रप्रसवा लेप

यह एक अद्भुत दवा है । इसके इस्तेमाल से बच्चा आनन-फ़ानन में हो जाता है । उस समय की घोर वेदना को गर्भवती ही जानती है । हर गृहस्थ को एक शीशी समय से पहले मँगाकर पास रखनी चाहिए । मिनिटों में बच्चा हो जावेगा । अगर इसका मूल्य १००) भी रखा जावे तो कम है । पर अमीर-ग़रीब सबके सुभीते के लिए एक शीशी का १) एक रुपया; डाकख़र्च ॥)

नारायण तेल

हमारे यहाँ का यह तेल सारे भारत में मशहूर है । ऐसा तेल और कहीं नहीं बनता । इसकी मालिश कराने से गर्भवती सुख से बच्चा जनती और सुखी रहती है । प्रसूत-रोग पास नहीं आते । बच्चा हो जाने के बाद मालिस कराने से प्रसूत-रोग इस प्रकार भाग जाते हैं जैसे सूरज से अन्धकार । गठिया, लकवा, फ़ालिज, अर्द्धाङ्ग वात, गृधसी, इरकुन्निसा आदि पर रामवाण है। हर घर में हर समय रखने लायक़ अमृत है । मूल्य एक पाव का १॥) रुपया, यह आधी क़ीमत है । डाकख़र्च ।॥) आना ।

सूचना ।

हमारे यहाँ योनि-रोगों की अनेक तरह की दवायें मिलती हैं । आप तकलीफ़ का पूरा हाल लिख भेजें । रोगानुसार दवा भेज दी जावेगी ।

चमेली देवी, मैनेजिंग प्रोप्राइट्रेस—

हरिदास एण्ड कम्पनी, गली रावलिया-मथुरा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है और न जाने कब तक रोता रहेगा! उनके जैसे व्यक्ति संसार में सदैव नहीं आते। वे विशेष अवसरों पर विशेष उद्देश्य से आया करते हैं और वह उद्देश्य होता है जनता को पाशविक अत्याचारों से बचाना और संसार में ईश्वरीय राज्य की स्थापना करना। भारत का दुर्भाग्य कि एक सच्चा मसीहा उसे छोड़कर उस समय चला गया जब कि उसकी बड़ी आवश्यकता थी। गत ६ अप्रैल को कलकत्ता के एक अस्पताल में एक भयानक आप्रेशन के परिणाम-स्वरूप उनका देहान्त हो गया। महात्मा गांधी और देश के लाखों हृदयों से निकली हुई प्रार्थनायें निष्फल हुईं! ईश्वर की ऐसी ही इच्छा!

भारत का संकट

रामगढ़ के निर्णय से कांग्रेस ने अपना जो दृष्टि-कोण स्पष्ट किया है उससे इस बात की अब वैसी आशा नहीं रह गई है कि ब्रिटिश सरकार से कांग्रेस का जल्दी ही समझौता हो जायगा। तो भी आशावादी निराश नहीं हैं। उन्हें महात्मा गांधी पर पूर्ण विश्वास है और वे समझते हैं कि महात्मा जी यों ही सरकार से संघर्ष न कर बैठेंगे और वे अपने उपाय भर सरकार को उसके वर्तमान संकट के समय कठिनाई में नहीं डालेंगे। परन्तु इस अवस्था के होते हुए भी सरकार की ओर से वैसा रुख मिलता नहीं दिखता है। इसके विपरीत यह समझ पड़ता है कि ब्रिटिश सरकार प्रान्तीय आत्मशासन को ही स्थगित करने की तैयारी कर रही है। पार्लियामेंट ने हाल में जो श्वेत पत्र प्रकाशित किया है उसमें भारत के वर्तमान राजनैतिक संकट-सम्बन्धी सारी बातों का उल्लेख किया गया है—वायसराय महोदय की विज्ञप्ति, रामगढ़ का प्रस्ताव, मुस्लिम लीग का प्रस्ताव, नरेन्द्र मण्डल का प्रस्ताव आदि छाप कर उसकी भूमिका में यह उल्लेख किया गया है कि अब सरकार के लिए एक यही उपाय शेष रह गया है कि वह गवर्नरों की सरकारों को जारी रखने के लिए पार्लियामेंट से मंजूरी लेवे। सरकार को वह मंजूरी सुगमता से मिल जायगी, इसमें सन्देह नहीं है, परन्तु गवर्नरों की सरकारों के जारी हो जाने से कांग्रेस कदापि शान्त नहीं बैठी रहेगी और यही बात देश के लिए भारी संकट की होगी। कदाचित् यही सोच-समझकर प्रसिद्ध नेता श्रीयुत अणे क्रियाशील हुए हैं और अपनी मध्यस्थता से इस संकट को दूर कर देना चाहते हैं। अणे महोदय का यह प्रयत्न सर्वथा सामयिक और साधु है और उनके प्रयत्न की सफलता सभी चाहेंगे। अणे साहब की यह योजना है कि कांग्रेस अपने विधान-सम्मेलन का आग्रह छोड़कर नेता-सम्मेलन को मान ले और वही देश का शासन-विधान तैयार करे जिसे ब्रिटिश सरकार स्वीकार करके देश में शान्ति और व्यवस्था स्थापित करके अपने कर्तव्य का पालन करे। अणे साहब पिछले दिनों वायसराय महोदय से भी मिल चुके हैं और अब वे महात्मा गांधी से मिलने वर्धा जा रहे हैं। देखना है कि इस प्रयत्न में उन्हें कहाँ तक सफलता मिलती है। वास्तव में यह समय किसी भी प्रकार के संघर्ष के लिए उपयुक्त नहीं है और इस बात को सभी विचारवान् व्यक्ति जानते हैं। अभी उस दिन स्वयं भारत-मंत्री लार्ड जेटलैंड ने भी अपने भाषण में हिन्दू-मुस्लिम-एकता की अपील की है। और अणे जी के नेता-सम्मेलन से इस उद्देश्य की भी सिद्धि हो सकेगी। आशा है, वर्तमान समय की कठिनाई का अनुभव करके देश के नेता श्री अणेजी के इस महत्प्रयत्न को सफलता प्रदान करने में अपने भरसक अवश्य उपाय करेंगे, क्योंकि इसी में देश का और शासकों का दोनों का कल्याण है।

दो महत्त्व के भाषण

मार्च के पिछले सप्ताह के अन्त में दो महत्त्वपूर्ण भाषण हुए हैं, जिनसे योरप की वर्तमान टेढ़ी समस्या पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इनमें पहला भाषण रूस के विदेश-मंत्री मोलोटोव साहब का है। इनके भाषण से प्रकट होता है कि रूस की ज़रा भी इच्छा नहीं है कि वह वहाँ की महाशक्तियों के युद्ध में शामिल हो। कुछ लोगों का अनुमान था कि फ़िनलैंड के बाद रूस जर्मनी का सहयोग प्राप्त करके रूमानिया पर अवश्य आक्रमण करेगा और उससे बलपूर्वक अपना बेसेबेरिया प्रान्त छीन लेगा। इस सम्बन्ध में मोलोटोव ने कहा है कि बेसेबेरिया रूस का है, जिसे पिछले महायुद्ध के अन्त में रूमानिया ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

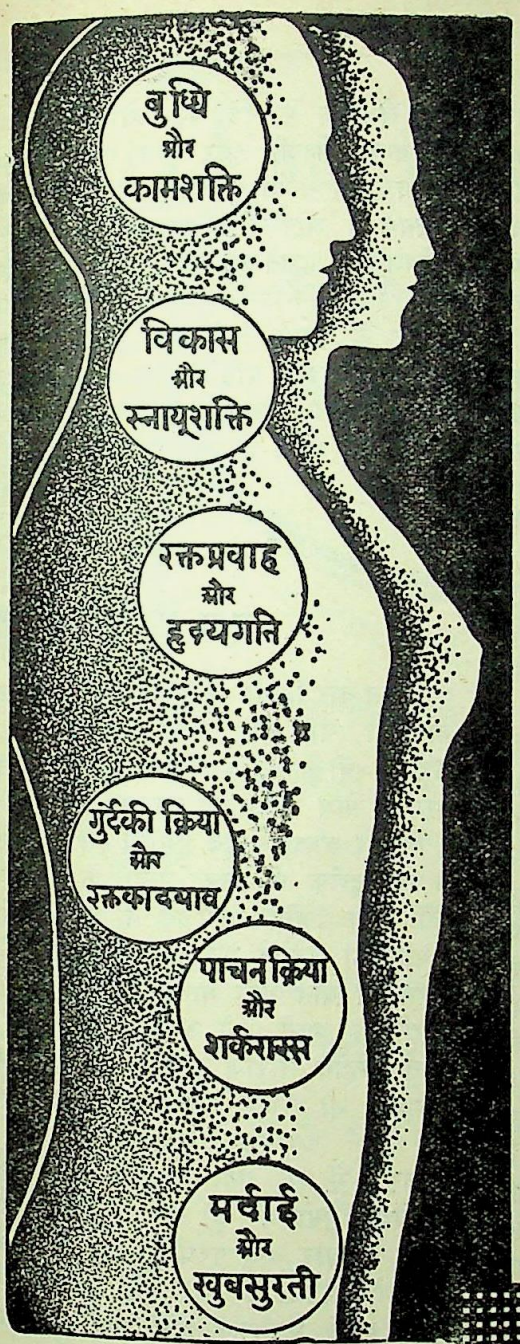

मर्दाई जवानी और शक्ति प्राप्त करनेके लिये

ओकासा

तुरंत व्यव्हार कीजिये

मनुष्य के शरीर में ऐसी ग्रंथियाँ हैं जिन पर मनुष्य की जवानी, आरोग्य और शक्ति निर्भर है। ओकासा इन ग्रंथियों की क्रिया को क़ाबू में रखता है और मनुष्य को स्वस्थ, जवान और शक्तिमान् रखता है।

३ सप्ताह ओकासा का व्यवहार कीजिए

जंग के कारण ओकासा की क़ीमतों में परिवर्तन नहीं हुआ। क़ीमत छोटी साइज़ ३।।।), बड़ी साइज़ १०); हर दवावाले से ख़रीदिये।

ओकासा डिपो, पार्क मेनशन, देहली गेट, देहली से मँगाइए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलपूर्वक अपने अधिकार में कर लिया था। परन्तु उस अन्याय के प्रतीकार के लिए रूस अस्त्र नहीं ग्रहण करेगा। इसी प्रकार उन्होंने तुर्की तथा भारत पर आक्रमण करने की बातों को भी निराधार बताया है और स्पष्ट शब्दों में कहा है कि रूस योरप के महायुद्ध में नहीं शामिल होगा और वह अपने पड़ोसियों के साथ शान्तिपूर्वक ही रहना चाहता है।

मोलोटोव साहब के उपर्युक्त भाषण से इस बात की भी आशंका नहीं रही कि जर्मनी, इटली और रूस का त्रिदल स्थापित होगा, जिससे वर्तमान युद्ध और अधिक व्यापक रूप धारण कर जायगा। इसके साथ ही यह बात भले प्रकार स्पष्ट हो गई है कि जर्मनी अकेला पड़ गया है और इस युद्ध में उसे न इटली से सहायता मिलेगी, न रूस से मिलेगी। वास्तव में योरप का कोई भी देश इस युद्ध में किसी की भी ओर लड़ने को तैयार नहीं है। और अकेले जर्मनी को ही ब्रिटेन तथा फ्रांस से लड़ना पड़ेगा, जिसमें उसकी हार पूर्णतया निश्चित है।

दूसरा भाषण सर रावर्ट क्रेगी का है जो उन्होंने टोकियो में २२ मार्च को किया है। क्रेगी साहब जापान में ब्रिटेन के राजदूत हैं। चीन में अँगरेज़ों के हितों की जो उपेक्षा जापान ने पिछले दिनों की थी उस सिलसिले में जापान की सरकार से सारी बातचीत क्रेगी साहब करते रहे हैं। ऐसी दशा में उनका यह २८ मार्च का भाषण अधिक महत्त्व का माना गया है। अमरीका के संयुक्त राज्यों में उनके उक्त भाषण का यह अर्थ लगाया गया है कि ब्रिटिश सरकार जापान को चीन में अपनी मनमानी कार्यवाही करने देगी। यदि ऐसा है तो समझना चाहिए कि एशिया के उस अंचल की समस्या जटिल से जटिलतर हो गई है, क्योंकि संयुक्त राज्य इसके लिए तैयार नहीं है कि चीन जापान का एक संरक्षित राज्य हो जाय और उसके हितों की हानि हो। इसी तरह रूस भी नहीं चाहता कि चीन का राज्य भंग हो जाय और जापान की वहाँ प्रतिपत्ति बढ़ जाय। परन्तु जापान को इन दोनों की परवा न होगी, यदि ब्रिटेन चीन के मामले में उदासीन हो जाय। उसके सौभाग्य से क्रेगी साहब से उसे आवश्यक आश्वासन मिल गया है। सो अब जापान एशिया के उस अञ्चल में खुल खेलेगा।

सेठ श्रीनिवास जी का वैकुण्ठ लाभ

गत १९ मार्च को श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई के मालिक रायसाहब श्री रंगनाथ जी के छोटे भ्राता तथा स्वर्गीय सेठ खेमराज के पुत्र सेठ श्रीनिवासदास जी का देहान्त हो गया। सेठजी इधर कुछ समय से कुछ अस्वस्थ थे। ५ मार्च की संध्या को कालबादेवी रोड के एक विशुचिकित्सक ने आपको संखिया का इंजेक्शन दिया था। इस इंजेक्शन के लगते ही आप एकाएक शय्याशायी हो गये। फिर दिन-प्रति-दिन अवस्था बिगड़ती ही गई। अनेक प्रकार के उपाय किये गये, पर कोई कारगर न हुआ। सेठ जी बम्बई के प्रतिष्ठित व जन-प्रिय व्यक्तियों में से थे। हम ईश्वर से उनकी दिवंगत आत्मा के लिए शान्ति की प्रार्थना करते हैं।

पूना में सम्मेलन

इस बार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन पूना में होने को था और आशा थी कि राष्ट्र-भाषा के प्रमुख कर्णधार श्री काका कालेलकर के तत्त्वावधान में वह धूम-धाम के साथ सम्पन्न हो जायगा। परन्तु आश्चर्य की बात है कि जो काका साहब हमारी इस अखिल भारतीय संस्था के पथ-प्रदर्शक थे उनका उन्हीं के प्रान्त-वासियों ने साथ नहीं दिया और सम्मेलन के स्वागतार्थ जिस स्वागत-समिति का उन्होंने संगठन करना चाहा था उसने काका साहब की बात नहीं मानी, जिससे काका साहब ने उस समिति से अपने को अलग ही नहीं कर लिया, किन्तु उन्होंने नाराज़ होकर सम्मेलन-सम्बन्धी अपना निमन्त्रण भी लौटा लेने की घोषणा कर दी। काका जी के इस तरह रूठ जाने से सम्मेलन बड़े चक्कर में पड़ गया है और अब शायद ही उसका अधिवेशन पूना में हो सके। परन्तु हमें सम्मेलन के प्रधान सूत्रधार बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन की गम्भीर बुद्धि पर पूर्ण विश्वास है और वे इस संकट से सम्मेलन का उद्धार करने में सफल होंगे और सम्मेलन का अधिवेशन पूना में ही किया जायगा, क्योंकि वहाँ बाक़ायदा स्वागत-समिति का संगठन हो चुका है और पूना के हिन्दी-प्रेमी सम्मेलन का अधिवेशन अपने यहाँ करने को उत्सुक भी हैं। हम भी चाहते हैं कि पूना का आपसी झगड़ा आपस में ही तय हो जाय और वहाँ सम्मेलन का अधिवेशन धूम-धाम से सम्पन्न हो। हमें विश्वास है, सम्मेलन के कर्णधार परिस्थिति पर ठंडे दिल से विचार कर सम्मेलन के गौरव की रक्षा करने को कटिबद्ध होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

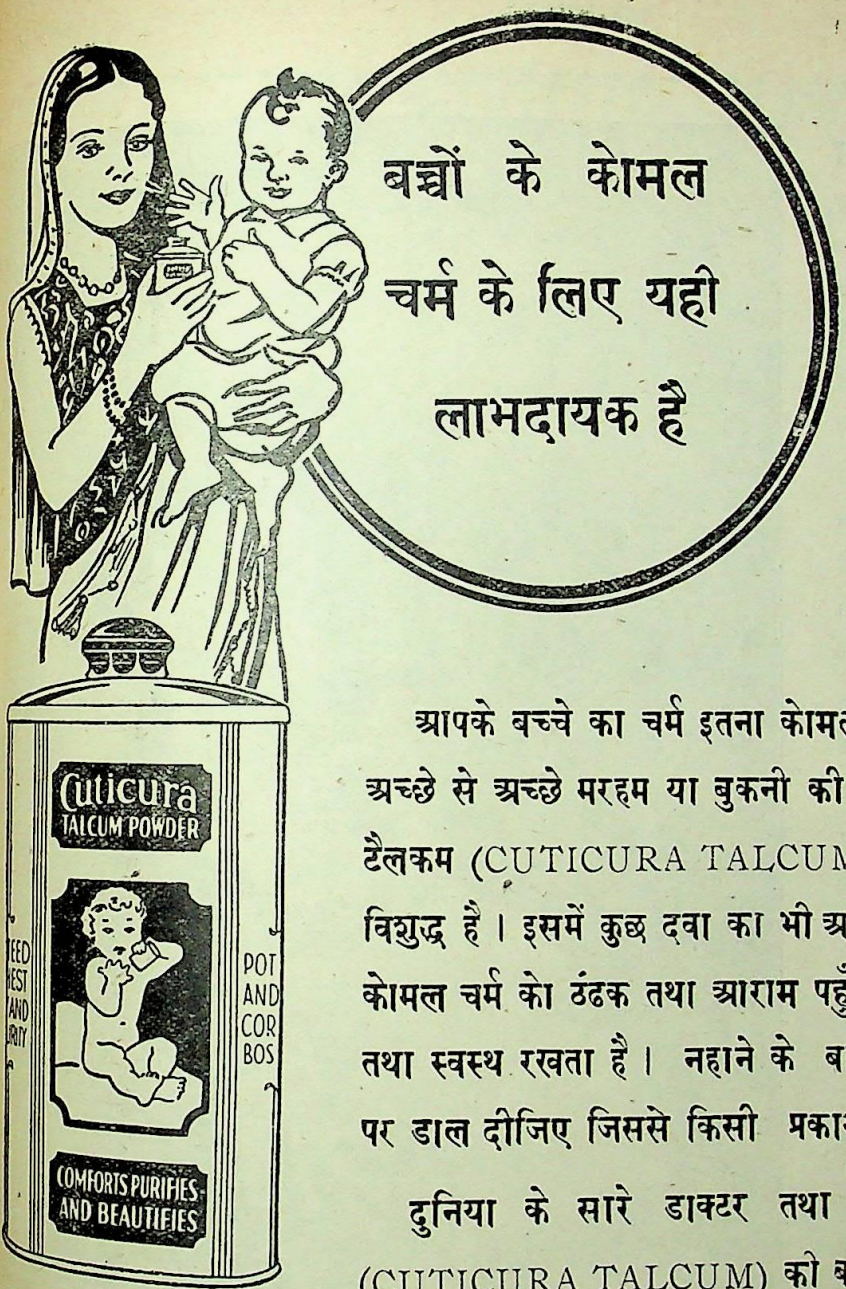

आपके बच्चे का चर्म इतना कोमल है कि इसके लिए केवल अच्छे से अच्छे मरहम या बुकनी की आवश्यकता है। क्यूटीकूरा टैलकम (CUTICURA TALCUM) बहुत ही बारीक तथा विशुद्ध है। इसमें कुछ दवा का भी असर रहता है। यह बच्चों के कोमल चर्म को ठंढक तथा आराम पहुँचाता है और उसे सुगन्धित तथा स्वस्थ रखता है। नहाने के बाद थोड़ा-सा अपने बदन पर डाल दीजिए जिससे किसी प्रकार की रगड़ न लग सके।

दुनिया के सारे डाक्टर तथा नर्सें क्यूटीकूरा टैलकम (CUTICURA TALCUM) को बच्चों के कोमल चर्म के लिए शिफ़ारिश करती हैं। स्त्रियों को भी नहाने के बाद या बदन में पीड़ा होने पर इसे लगाने से बड़ी प्रसन्नता होती है। पसीने को जल्दी दूर करता है तथा चर्म को नरम तथा सुगन्धित बनाता है। अपने यहाँ के दवाफ़रोश से आज ही ख़रीदिए।

बच्चों के लिए

क्यूटीकूरा टैलकम बुकनी

CUTICURA TALCUM POWDER

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमती पद्मा घोष का स्वर्गवास

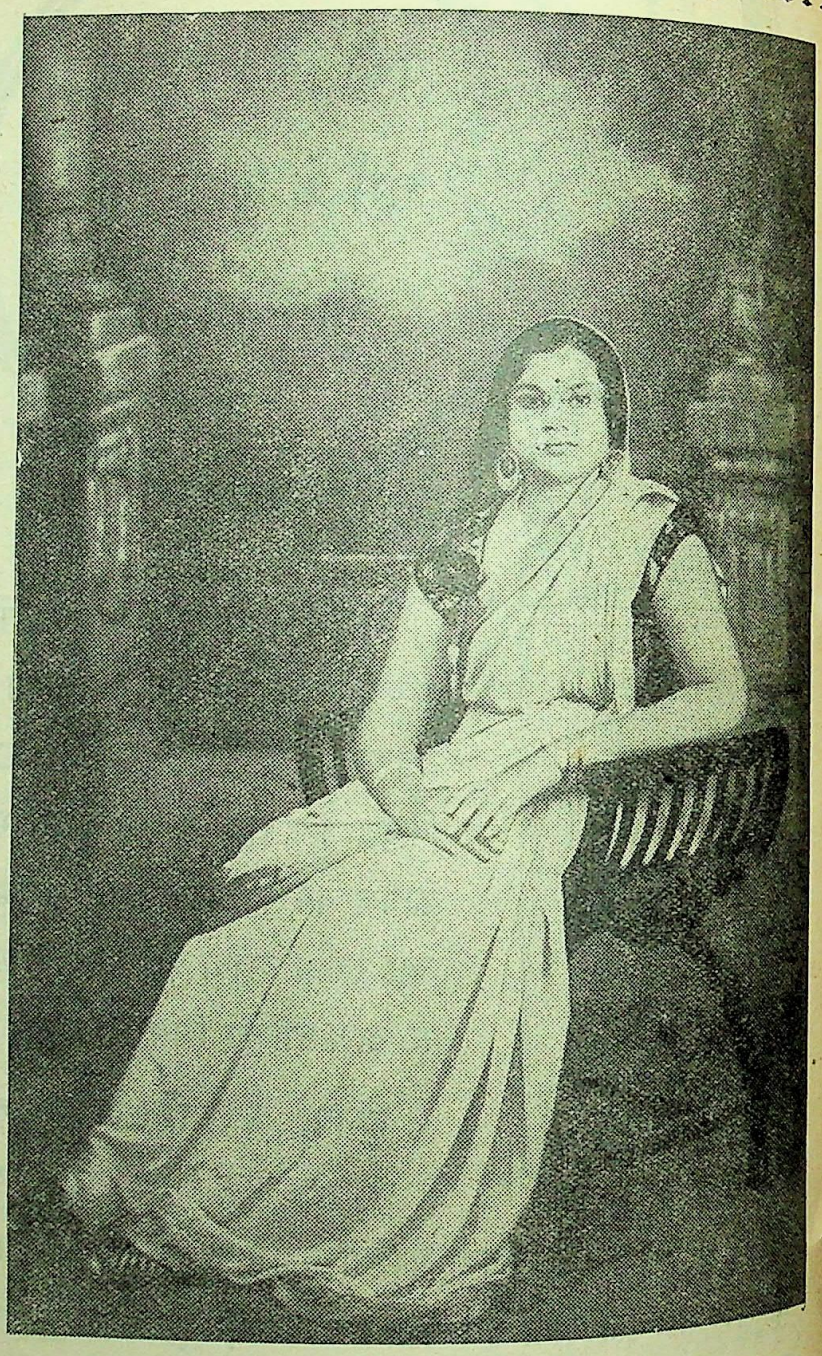

इण्डियन प्रेस के संस्थापक स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष के चतुर्थ पुत्र श्रीमान् हरिसाधन घोष की धर्म-पत्नी श्रीमती पद्मा घोष का गत ९ अप्रैल की रात्रि को ११॥ बजे देवलोकवास हो गया । श्रीमती घोष कितनी बुद्धिमती और प्रतिभाशाली थीं, इसका पता इसी से लग सकता है कि अपने पाणिग्रहण के चतुर्थ-वर्ष—सन् १९२८—में ही आपने कलकत्ते में इण्डियन प्रेस की एक ब्रांच स्थापित करने के लिए अपने पति को प्रेरणा दी थी और जब वह ब्रांच स्थापित हो गई तब उसकी व्यवस्था व संचालन में योग देने के लिए आप स्वयं अपने पति के साथ कलकत्ते में रहने लगी थीं। आपके ही अध्यवसाय व प्रोत्साहन के फल-स्वरूप ब्रांच दिन-दूनी और रात चौगुनी उन्नति करती गई। अँगरेज़ी में एक सुसज्जित व सचित्र साप्ताहिक निकालने की आपकी बहुत दिनों से इच्छा थी। आपकी प्रेरणा से ही 'ओरियण्ट' नामक अँगरेज़ी साप्ताहिक निकाला गया था । आप उसके प्रत्येक अंक के लेखों व चित्रों को मनोयोगपूर्वक देखती थीं और उसके विषय में बहुमूल्य सम्मति भी देती थीं।

आपके आकस्मिक निधन से घोष-परिवार तथा इण्डियन प्रेस के कर्मचारियों को असहनीय शोक हुआ है। इधर आप गत २ महीने से आन्त्रिक ज्वर से पीड़ित थीं। कलकत्ते के सभी नामी नामी चिकित्सकों के अत्यन्त मनोयोग-पूर्वक चिकित्सा करने पर भी कोई विशेष लाभ न हुआ और आप अपने ६ बच्चों, पति व परिवार को शोक-सन्तप्त छोड़कर स्वर्ग-वासिनी हो गईं। हम ईश्वर से आपकी वियुक्त आत्मा की सद्गति के लिए प्रार्थना करने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकते हैं? मनुष्य की शक्ति कितनी अल्प है, इसका पता ऐसी ही घटनाओं से लगता है । अन्ततः यही कह कर दिल को समझाना पड़ता है कि जो योग्य व होनहार होते हैं उन्हें ईश्वर शीघ्र ही अपने पास बुला लेता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पचास रुपये का

श्री काशीराम-पुरस्कार

इसका प्रथम पुरस्कार इस बार—कविता—पर दिया जायगा। नियम निम्नांकित है —

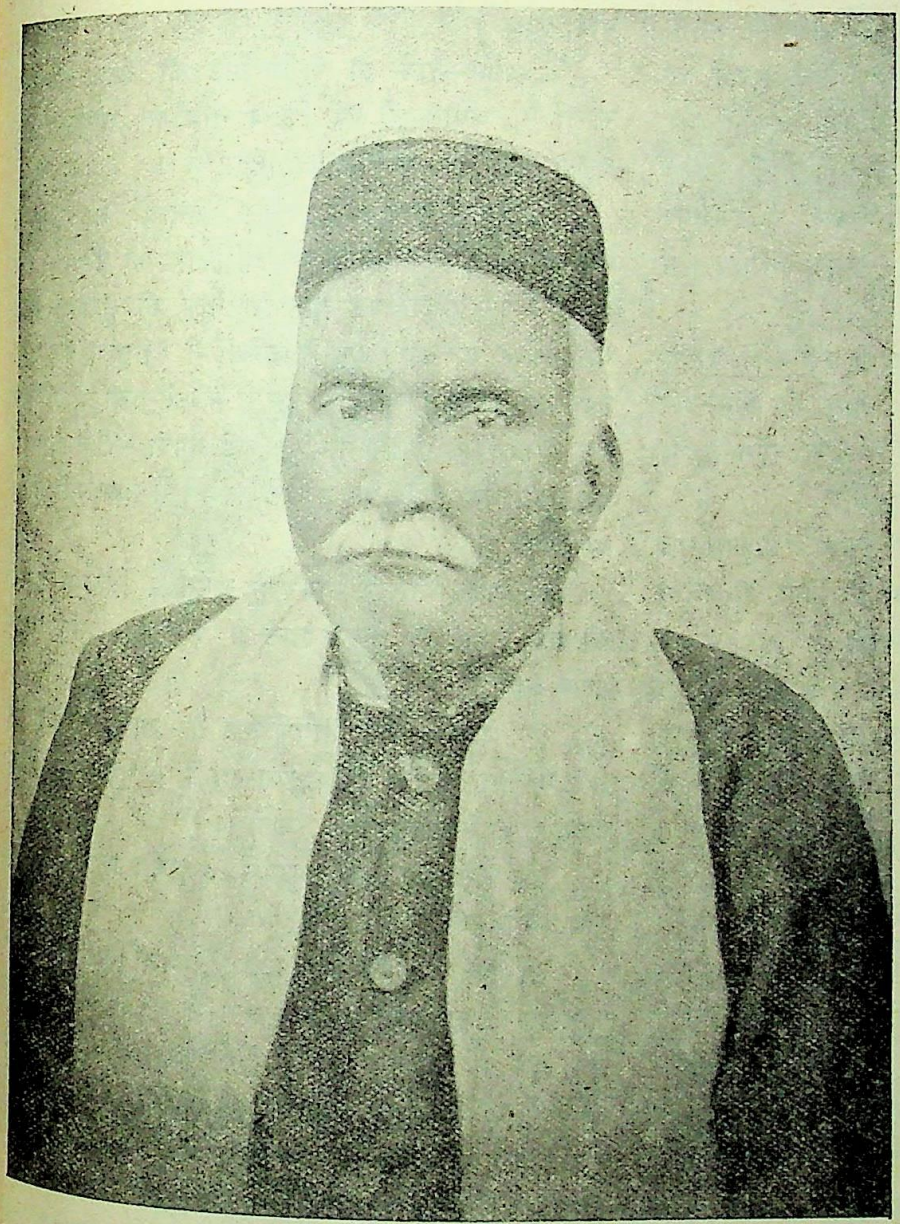

(१) हिन्दी का कोई भी कवि या कवयित्री इस पुरस्कार की प्रतियोगिता में भाग ले सकेगी।

(२) रचनायें भेजने की अन्तिम तारीख़ ३१ मई है।

(३) रचनायें खड़ी बोली में होनी चाहिए। छन्द-संख्या लगभग ५० के हो। केवल नई और मौलिक रचनाओं पर विचार किया जायगा।

(४) सर्वश्रेष्ठ रचना पर ५०) का पुरस्कार ३० जून को भेज दिया जायगा, और रचना 'सरस्वती' में छापी जायगी। पुरस्कार का रुपया निर्णायक भेजेंगे।

(५) रचनाओं का निर्णय 'सरस्वती'-सम्पादक पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल करेंगे। प्रतियोगियों को अपनी रचनायें उन्हीं के नाम 'इण्डियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद,' के पते से भेजनी चाहिए।

(६) रचना पर 'श्री काशीराम पुरस्कार के लिए'—यह वाक्य अवश्य लिखा रहना चाहिए। रचना के साथ आवश्यक टिकट अवश्य होना चाहिए, अन्यथा अस्वीकृत होने पर कोई रचना वापस न की जायगी।

निवेदक

चन्द्रभूषण वैश्य, नारायणगंज (ढाका)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध की डायरी

२२ मार्च–डेनमार्क के तट के क़रीब 'हेड्डर्नहीम' नामक जर्मन जहाज़ डुबा दिया गया। दो दिन में डेनमार्क के ६ जहाज़ नष्ट हुए।

२६ मार्च–२ जर्मनी के व १ डेनमार्क के जहाज़ डूब गये। ब्रिटेन के २ विध्वंसकों ने नार्वे के समुद्र में जर्मनी के ३ जहाज़ों को परेशान किया और उन्हें डुबाने का प्रयत्न किया। पश्चिमी मोर्चे के विभिन्न स्थानों पर कुछ गोलाबारी हुई।

२७ मार्च–फ़िनलैंड के मंत्रि-मण्डल ने इस्तीफ़ा दे दिया और मिस्टर रेडी के प्रधान मंत्रित्व में नया मंत्रि-मण्डल स्थापित हुआ।

२८ मार्च–हाँगकाँग में मित्रराष्ट्रों ने एक रूसी जहाज़ को रोककर उसकी तलाशी ली। फ़्रांस की सीमा पर हल्का वायुयुद्ध हुआ। उत्तरी सागर में एक जर्मन जहाज़ जिस पर पेट्रोल था, डुबा दिया गया।

२८ मार्च–फ़्रांस की सीमा पर हलका आकाश-युद्ध हुआ। ब्रिटिश हवाई जहाज़ों ने उत्तरी सागर में जर्मनी के एक पेटरौल-जहाज़ को डुबा दिया।

जर्मनी के एक यू-बोट को नार्वे के अधिकारियों ने तटस्थ देशों के समुद्र में चलने के अपराध में पकड़ लिया।

३१ मार्च–जर्मन-सेना की एक टुकड़ी ने नीड के निकटवाले फ़्रांस के इलाक़े में हमला किया, पर वह व्यर्थ कर दिया गया।

१ अप्रैल–एक जर्मन पनडुब्बी नष्ट कर दी गई।

३ अप्रैल–जर्मनी के ३ और फ़्रांस के १ वायुयान नष्ट हुए। पश्चिमी मोर्चे पर वोसगे के पश्चिम में काफ़ी गोलाबारी हुई।

४ अप्रैल–जर्मनी की एक आक्रमणकारी पार्टी ने नीड के इलाक़े में एक फ़्रांसीसी चौकी को पूरी तरह घेर लिया। सात जर्मन क़ैद किये गये। नार्वे के पास जर्मन जंगी हवाई जहाज़ों ने ब्रिटेन के ट्रालरों पर हमला किया। ओसलो के पास से दिन भर तोपों की आवाज़ आती रही, जिससे वहाँ भीषण लड़ाई होने का जनता ने अनुमान किया। डच-सीमा के कई स्थानों पर जर्मन व ब्रिटिश हवाई जहाज़ों में गहरी मुठभेड़ हुई। पश्चिमी मोर्चे पर ३ जर्मन व १ फ़्रेंच वायुयान नष्ट हुए।

५ अप्रैल–पश्चिमी युद्ध-क्षेत्र में एक जर्मन टुकड़ी ने एक ब्रिटिश चौकी पर हमला करके १५ सैनिकों को मार डाला।

८ अप्रैल–नार्वे की पार्लियामेंट की बैठक में मित्र-राष्ट्रों से अपील की गई कि वे नार्वे के समुद्री तट से अपनी सुरंगें व जंगी जहाज़ हटा लें।

९ अप्रैल–सुबह को जर्मन सेनाओं ने डेनमार्क की राजधानी कोपनहैगन पर अधिकार कर लिया, साथ ही नार्वे पर हमला कर दिया। नार्वे की सरकार राजधानी छोड़ कर भाग गई। जर्मनों ने 'ओसलो' पर अधिकार कर लिया। नार्वे व जर्मनी की सेनाओं में भयानक युद्ध आरम्भ हो गया। नार्वे के कई नगरों पर बम गिराये गये। पश्चिमी मोर्चे पर मोसले के पूर्व में तोपों की गोलाबारी हुई।

१० अप्रैल–उत्तरी सागर में जर्मन व ब्रिटिश जहाज़ों की घोर लड़ाई हुई। २४ घन्टे में १ दर्जन जर्मन जहाज़ काम आये।

१२ अप्रैल–लड़ाई भीषण रूप से जारी रही। कुछ ब्रिटिश जंगी जहाज़ों ने ट्रेण्डहीम खाड़ी में घुसने का प्रयत्न किया, पर सफलता नहीं मिली।

१५ अप्रैल–नार्वे के समुद्र में ७ जर्मन विध्वंसक डुबा दिये गये।

१६ अप्रैल–कांगस्विगर और स्काजरिक के बीच सामुद्रिक लड़ाई बड़े भयानक रूप में हुई। ब्रिटिश सेना कैरो द्वीप में उतर गई।

१७ अप्रैल–जर्मन फ़ौजें स्वीडन की सीमा के स्टोरलीन स्टेशन तक पहुँच गईं। वेयरनफ़ोल्स पर जर्मनों का क़ब्ज़ा हो गया। ब्रिटिश फ़ौज़ें नार्वे की फ़ौजों से मिल गईं।

१८ अप्रैल–नार्विक पर ब्रिटिश फ़ौज़ों का अधिकार होगया। स्टेवेञ्ज़र के हवाई अड्डे पर भयानक बम वर्षा की गई। एक ब्रिटिश जंगी जहाज़ डूब गया और २ को हानि पहुँची।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd. ALLAHABAD.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बेशक मेरे कपड़ोंके रेशे नहीं उड़ते माँ लक्स व्यवहार करती है!"

आपको बस ठंडा पानी और एक पैकेट लक्सकी जरूरत है।

ठंडे पानीमें लक्ससे प्रचुर फेन निकालिये और साबुनके जलमें कपड़ोंको कोमलतासे इसमेंसे फेन दबाकर निकाल दीजिये। फिर तीन बार साफ पानीमें कपड़ेको धोइये। कपड़ोंको बिना ऐंठे दबाकर पानी निकालिये। छायामें सुखाइये।

बच्चेके कपड़ोंको मुलायम रखना जरूरी है, क्योंकि कड़े और बुरी तरह धुले हुऐ कपड़े उसके कोमल चमड़ेको तकलीफ देते है और इसीलिये तथा अपने कपड़ोंके लिये भी केवल लक्स व्यवहार कीजिये। रंगोंकी चमक ज्योंकी त्यों बनी रहती है और बारीकसे बारीक कपड़ेको भी नुकसान नहीं पहुँचता क्योंकि लक्स बिल्कुल विशुद्ध है।

लक्स

तेज! आसान! निरापद!

भारतवर्षमें केवल विशुद्ध वनस्पति तैलोंसे प्रस्तुत।

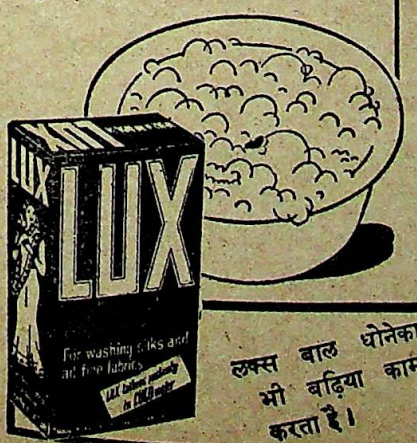

लक्स बाल धोनेका भी बढ़िया काम करता है।

गुनगुने पानीमें थोड़ा लक्स घोलकर मामूली रीतिसे बालोंपर लगातेसे बाल बिल्कुल साफ और रेशम जैसे हो जाते हैं।

LX. 3-97—HI

LEVER BROTHERS (INDIA) LIMITED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभात बाबू के उपन्यास और कहानियाँ

यदि आप ग्राम्य और नागरिक दोनों ही प्रकार के जीवन के सजीव चित्र देखना चाहते हैं तो बँगला के सुप्रसिद्ध कहानी और उपन्यास-लेखक प्रभातकुमार मुखोपाध्याय की रचनायें अवश्य पढ़िए।

(कहानियाँ) २॥)

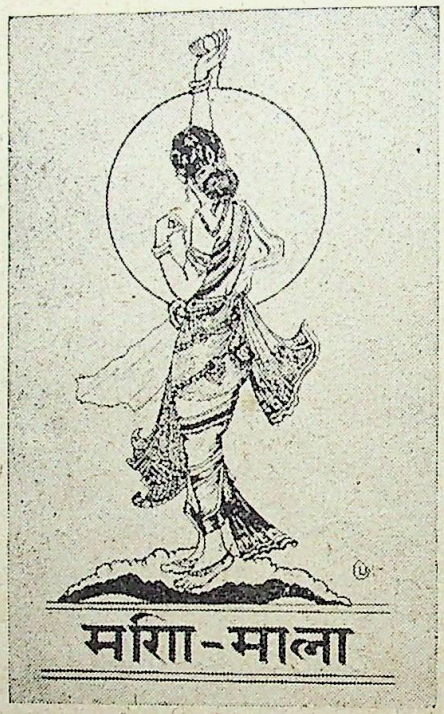

(कहानियाँ) २॥)

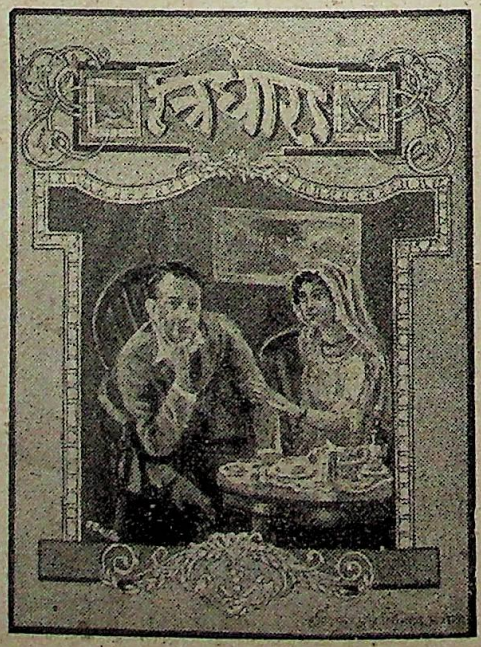

(कहानियाँ) १)

नव-कथा
(कहानियाँ) १॥)

❀

नवीन संन्यासी
(उपन्यास) ३॥)

❀

पञ्चपल्लव
(कहानियाँ) १॥)

❀

पत्रपुष्प
(कहानियाँ) १॥)

❀

रत्नदीप
(उपन्यास) २)

❀

षोडशी
(कहानियाँ) १।)

❀

इप्रे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५५०) रुपए नक़द इनाम

सिद्ध वशीकरण यन्त्र

इस अद्भुत शक्तिशाली यन्त्र के धारण करने से मुश्किल से मुश्किल कार्य भी फौरन सिद्ध हो जाते हैं। जिस व्यक्ति स्त्री या पुरुष से—आपकी मिलने की अभिलाषा हो, वह चाहे पत्थर हृदय क्यों न हो, इस शक्तिशाली यन्त्र द्वारा आपके पास चला आएगा, और आपके साथ शादी की इच्छा प्रकट करेगा। क़ीमत ताँबा १॥॥=) रु०, तीन यंत्र एक साथ लेने से केवल ५) रु०, चाँदी २॥॥) रु०, सोना ६॥) रुपये।

लक्ष्मी यन्त्रः—यह व्यवसाय में उन्नति, मुक़द्दमा, कुश्ती, सट्टा, लाटरी में जीत, परीक्षा में पास, नवग्रहों की शान्ति, नौकरी में तरक़्क़ी, सन्तान सम्पन्न और सौभाग्यवान बनाता है। मूल्य ताँबे का १॥॥=), तीन यन्त्र एक साथ लेने से केवल ५) रु०, चाँदी का २॥॥), सोने का ६॥) रु०। महसूल-डाक प्रति यन्त्र अलग; सन्तान के लिए दो यन्त्र मंगवाने आवश्यक हैं, स्त्री पुरुष दोनों के लिए पृथक पृथक, चार काम पूरे करने के लिए स्पेशल प्रभावशाली नं० ४ मँगावें, मूल्य ५॥) रु० और पाँच काम से ज़्यादा के लिए स्पेशल नं० ५ मँगावें मूल्य ७॥) रु०। यह बहुत शीघ्र प्रभावकारी तथा अचूक है। यन्त्र के लिए किसी प्रकार का पूजा पाठ या कठिन कार्य नहीं है, यह बहुत परिश्रम से सिद्ध करके भेजे जाते हैं, यदि सिद्धिप्राप्त न हो तो दाम वापिस बल्कि इसको झूठ साबित करने वाले को ५५०) नक़द इनाम दिया जावेगा।

ज़रूरी प्रार्थनाः—विश्वासी पुरुष लाभ उठावें, शंका करने वाला समय पर हीरे को पत्थर समझ कर खो बैठता है।

मँगाने का असली पताः—आनन्द स्वामी,

आनन्द भवन, पोस्ट बक्स नं० २७, (S.R.A) अमृतसर, Amritsar, (India)

---

१००) रुपए नक़द इनाम

बाल काला तेल नं० १

जिन मनुष्यों ने इस बाल काला तेल का इस्तेमाल किया है, वह हैरान हो गये हैं कि ठीक एक लाजवाब तोहफा है। इसके इस्तेमाल से सफेद बाल हमेशा के लिए काले हो जाते हैं और फिर तमाम उमर काले ही पैदा होते हैं। यह एक संन्यासी महाराज का बताया हुआ तोहफा है। दिमाग़ को विशेष ताक़त देकर आँखों की रोशनी को तेज़ करता है। बड़ी सुन्दर चीज़ है। यह कोई ख़िज़ाब नहीं है औषधियों द्वारा सिद्ध आयुर्वैदिक चमत्कार है। मूल्य फी शीशी केवल एक रुपया चार आने १।), तीन शीशी ३), यदि फायदा न हो तो मूल्य वापिस होगा।

नोटः—ऊपर लिखी औषधियों को झूठा साबित करनेवाले को १००) रुपया नक़द इनाम दिया जायगा।

मिलने का पता—**संन्यासी रोशन फार्मेसी**

पोस्ट बक्स नं० २७, **अमृतसर** Amritsar, (India)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितने साबुन में जानती हूं उन में से सनलाइट् साबुन

निःसन्देह कपड़े अधिक साफ धोता है ॥

मेरे कपड़े सदा ही धुलाई के पीछे कुछ मैले से और धूसर दिखाई पड़ते थे। तब मेरी एक सहेली ने मुझे सनलाइट् साबुन का समाचार दिया। उसने बताया की कच्चे साबुन उड़ाऊ होते हैं क्योंकि उन में से मैल काटने वाली फेन बहुत कम निकलती है और कपड़े साबुन की फेन ही से साफ होते हैं ॥

सनलाइट् साबुन से बहुत ज्यादा फेन निकलती है और सनलाइट् से धुले हुए कपड़े वास्तव में साफ़ होते हैं ॥

सनलाइट साबुन

भारतवर्ष में केवल शुद्ध वनस्पति तैलों से तय्यार होता है ॥

असली सनलाइट् साबुन केवल इन गत्ते के डिब्बों में बिकता है ॥

S. 16-95 HI

LEVER BROTHERS (INDIA) LIMITED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वस्थ तथा प्रसन्न बच्चे

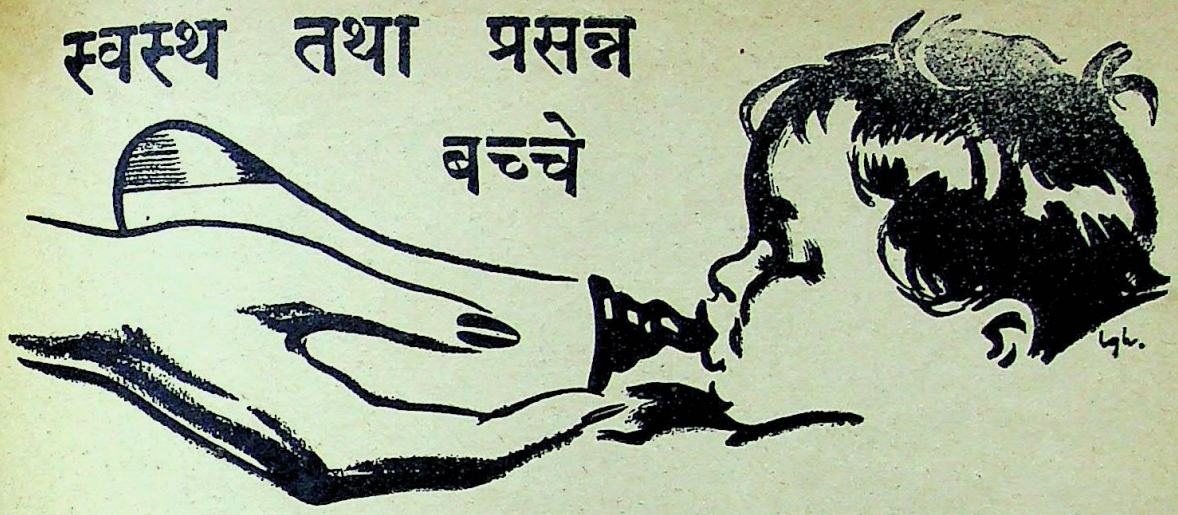

ग्लैक्सो पर ही पले होते हैं

यही दुग्धाहार है जिसमें आप विश्वास कर सकती हैं

आपके छोटे बच्चों की स्वास्थ्यपूर्ण बाढ़ केवल दूध पर ही निर्भर है। अतः इसके लिए केवल सर्वोत्तम दूध की आवश्यकता है और वह बच्चों का सर्वोत्तम दुग्धाहार **ग्लैक्सो** है। संसार भर की बुद्धिमती मातायें अपने बच्चों का पालन सिर्फ़ **ग्लैक्सो** से करती हैं यह क्यों? क्योंकि **ग्लैक्सो** बहुत पुष्ट तथा स्वच्छ दूध है जो कि ख़ास तौर पर बच्चों के ही लिए सुविधाजनक तथा सस्ते चूर्ण के रूप में अपनी तमाम ख़ूबियों के साथ तैयार किया जाता है। **ग्लैक्सो** से बच्चे पुष्ट तथा स्वस्थ होते हैं तथा कोमल से कोमल उदर को भी किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचती आप **ग्लैक्सो** से अपने बच्चे का पोषण बहुत अच्छा करेंगे साथ ही साथ दूध-सम्बन्धी अन्य झंझटों से अपने आपको बरी रक्खेंगे।

ग्लैक्सो ख़रीदते समय आप विश्वास रक्खें कि यह बिलकुल स्वच्छ है। **ग्लैक्सो** शिशुओं के लिए आदर्श वस्तु है। यह बहुत दिन तक चलता है क्योंकि कोई छीजन नहीं जाती। आप अपनी आवश्यकतानुसार काम में ला सकते हैं। आगे जब आप बच्चे के दूध के लिए आर्डर दें तो ज़िद करके ख़रीदें।

ग्लैक्सो

पुराना तरीक़ा

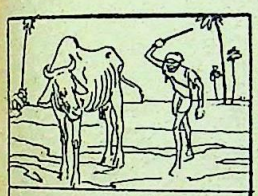

निर्बल और रोगी गाय का दूध आपके बच्चे को हानि पहुँचाता है।

दूध दुहनेवालों के हाथ प्रायः गन्दे होते हैं इससे दूध में रोग के कीटाणु आ जाते हैं।

साधारण दूध ठंढे तथा गंदे पात्रों में रक्खे जाते हैं अतः बच्चों के लिए हानिकर है।

ग्लैक्सो का तरीक़ा

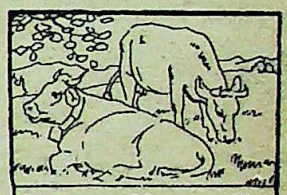

ग्लैक्सो सर्वोत्तम गायों के दूध से विशेषज्ञों के संरक्षण में बनता है।

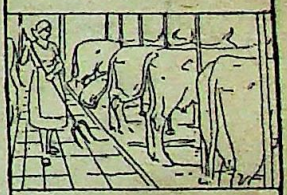

ग्लैक्सो की गायें वैज्ञानिक मशीन द्वारा दुही जाती हैं। यह दोष रहित है।

ग्लैक्सो बनाते समय हाथ नहीं लगता, मुहर-बन्द डिब्बों में निर्दोष मिलेगा।

भारतवर्ष में बहुत बड़ा स्टाक है। साधारण मूल्य से दाम बढ़ा नहीं है।

Glaxo

बच्चों का आदर्श दुग्धाहार

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अनिवार्य नित्य-कर्म

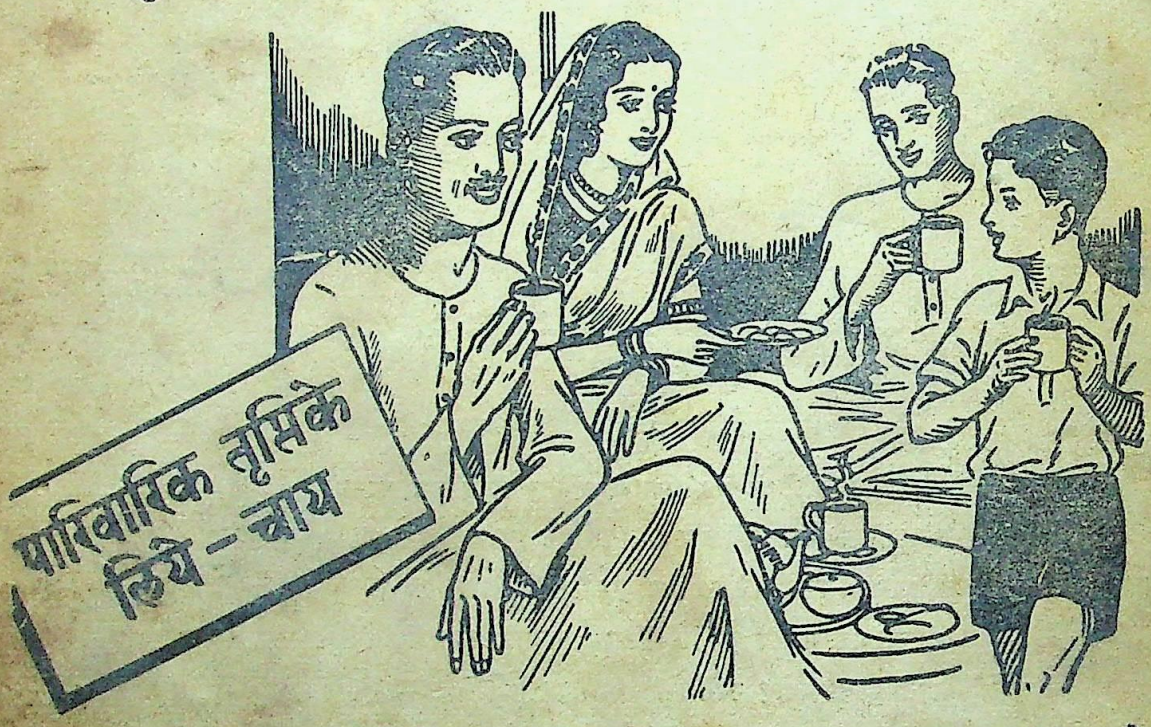

ज्योंही आपके पति कामसे घर वापस आयें तथा आपके बच्चे पाठशालासे लौटें आपको तुरन्त उनकी चाय बनानी चाहिये। और इस प्रकार आप प्रति दिन, अपने घर पर अपनी निजी चाय मंडलीका आयोजन करें, यही गार्हस्थ्य-जीवनके आनन्दकी पराकाष्ठा है। आप ही के घर ऐसी आनन्ददायक मंडली इस समय और भी बहुतसे घरोंमें जुड़ी होगी।

आइये,

हम सब भारतीय चाय पियें

चाय तैयार करनेका तरीका : ताजा पानी खौलाइये। साफ बर्तन जरा गर्म कर लीजिये। उसमें प्रत्येकके लिये एक और एक चम्मच अधिक, बढ़िया भारतीय चाय रखिये। पानी खौल जाते ही चाय पर डाल दीजिये। पांच मिनिटों तक चायको पीझने दीजिये। इसके बाद प्यालोंमें ढाल कर दूध और चीनी मिलाइये।

इण्डियन टी मार्केट एक्सपैंशन बोर्ड द्वारा प्रचारित

1K115

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कामिनिया' स्वास्थ्यवर्द्धक और पूर्ण सुन्दरता का देनेवाला है।

अपने रुपयों का ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा उठाइये।

कामिनिया आइल (रजिस्टर्ड)

मुलायम और चमकीले बालों के लिए कामिनिया आयल इस्तेमाल कीजिये। यह दिमाग़ को हमेशा ठंडा रखता है और बालों में आकर्षक चमक पैदा करता है। दाम एक बोतल का १), तीन बोतलों का २॥=); वी० पी० का ख़र्च अलग।

ख़ुशबू का राजा ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)

यह रूमाल पर लगाने के लिए एक बहुत ही प्यारा इत्र है। इस बढ़िया इत्र की दो-चार बूँदें ही आपके इर्द-गिर्द स्वर्ग पैदा करने में काफ़ी होंगी। ¼ औंस की शीशी की क़ीमत १।), १ ड्राम की शीशी ।॥), वी० पी० ख़र्च अलग।

कामिनिया स्नो (रजिस्टर्ड)

ख़ूबसूरती चेहरे के रंग के लिए बहुत ज़रूरी है। इससे मुहासे और चेहरे की दूसरी ख़राबियाँ दूर हो जाती हैं और चेहरे पर एक बहुत ही अजीब आकर्षण आ जाता है। एक बोतल की क़ीमत ।॥), वी० पी० ख़र्च अलग।

कामिनिया ह्वाइट रोज़ सोप (रजिस्टर्ड)

बाज़ार में बिकनेवाले रोज़ाना नहाने के सभी साबुनों से अच्छा है। दूसरे क़िस्म के साबुन को भी आज़मा कर देखिये। जैसे सन्दल, दिलबहार, लवैन्डर वग़ैरह। एक बक्स का दाम ।॥=), वी० पी० ख़र्च अलग।

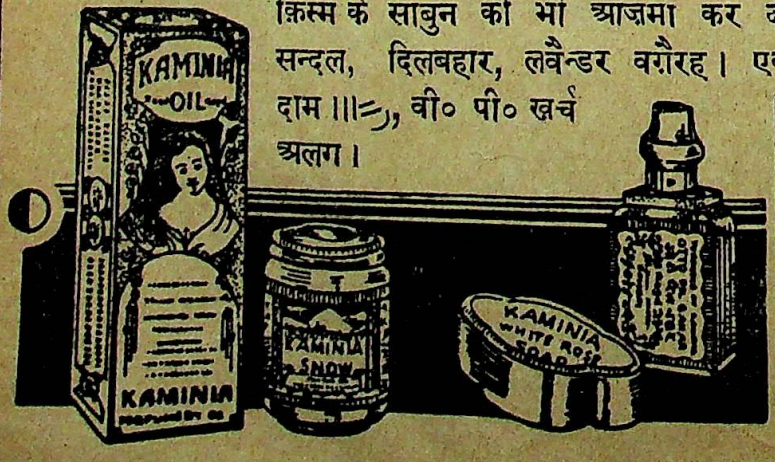

सब जगह मिल सकते हैं। मुफ़्त में लीजिये।

इस कूपन को इस्तेमाल कीजिये।

कूपन

मेहरबानी करके अपनी सारी चीज़ों के मुफ़्त नमूने भेजिये डाकख़र्च के लिए ।) के टिकट भेज रहा हूँ।

नाम .....

पता .....

सोल एजेंट—दी ऐंग्लो इंडियन ड्रग ऐंड केमिकल कंपनी, २८५, जुमा मसजिद, बंबई नं० २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत का गौरव

कोकोला साबुन

तथा

केश तैल

जुवेल आफ़ इण्डिया
कलकत्ता

COCOLA

JEWEL OF INDIA CALCUTTA

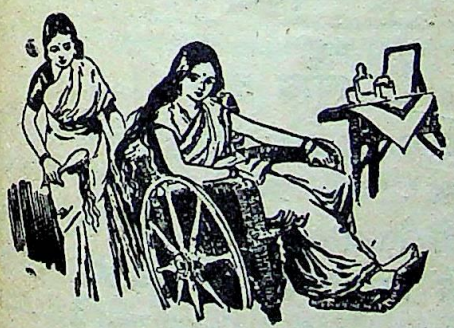

मियादी बुख़ार के बाद

बाल बहुत बड़ी तादाद में गिर जाते हैं। मियादी बुखार ही नहीं और भी बहुत-सी बीमारियाँ हैं जिनमें बाल झड़ जाना स्वाभाविक है। ऐसी दशा

में केशवर्धिनी का

व्यवहार करना चाहिए। इससे बाल का झड़ना बन्द हो जाता है तथा नये बाल निकलने लगते हैं।
केशवर्धिनी क्रीम—का उपयोग कर पुरुष अपने बाल सुरक्षित रक्खें।
केशवर्धिनी शैम्पू—लगाकर बालों में चमक लावें, इन स्वास्थ्यवर्द्धक वस्तुओं का उपयोग करें।

केशवर्धिनी (आधुनिक बालवर्धक)

केशवर्धिनी ... ... १२ आना। केशवर्धिनी शैम्पू ... ... १२ आना।
केशवधिनी क्रीम... १ रुपया। डाक-व्यय अलग।

साउथ इण्डिया केमिकल्स मैलापुर : : मद्रास

एजन्ट्स—मै० मसूरहसन इलाहाबाद। ए० हाफ़िज एण्ड सन्स झाँसी सिटी। टन्डन स्टोर्स, लश्कर (ग्वालियर)। चिदामीलाल एण्ड कं० किनारी बाज़ार आगरा। कलाधरप्रसाद एण्ड सन्स, बनारस। गांधी ब्रजलाल, मनिलाल बांकीपुर पटना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(REGISTERED)

हृदय की सर्दी (सर्दी और कफ़)—लापरवाही करने से मामूली हृदय की सर्दी फेफड़े की सूजन (ब्रोंकैटिस) हो जायगी। इससे बचे रहने का रास्ता बड़ा आसान है। थोड़ासा अमृतांजन लेकर छाती पर मलिये। बस, उसकी गरमी सीधे हृदय तक पहुँचती है और कफ़ को पिघला देती और तुरंत आराम मिलता है।

अमृतांजन—हमेशा जल्दी से जल्दी आराम पहुँचाता है।

अमृताञ्जन लिमिटेड, बम्बई और मद्रास

शाखा:—कलकत्ता, कराची, दिल्ली

१५०) महीना कमाइये

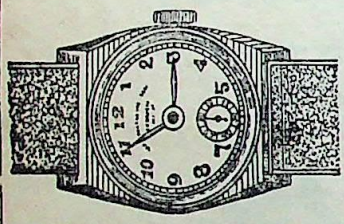

आधुनिक सुन्दर साइज़ ३॥) रुपया।

हम लोग घड़ियाँ सीधी स्वीटज़रलैंड से बड़ी तादाद में मँगाते हैं। आप हमारी घड़ियों को बेचकर आसानी से रु० पैदा कर सकते हैं। दूसरे प्रति घड़ी १०) में बेचते हैं और हम लोग सिर्फ़ ३॥) में। ४ साल की गारन्टी। एक बार ३ घड़ी लेने से डाक-व्यय देना नहीं पड़ेगा।

रोलेण्ड वाच कम्पनी

पोस्ट बक्स नम्बर १००,०७ कलकत्ता १३

सफ़ेद बाल काला

विवलिन केश तेल उन्हें सदा के लिए जड़ से प्राकृतिक रंग में ला देगा। ख़िजाबों को दूर कीजिये। ७ वर्ष से प्रसिद्ध विवलिन का व्यवहार कीजिये। छोटी शीशी १॥।≡), बड़ी शीशी ३); तीन शीशियाँ (पूरे कोर्स के लिए) बिना डाक ख़र्च के भेजी जाती हैं।

एजन्ट्स:—किंग्स एण्ड कं०, २९ कैनिङ्ग रोड, इलाहाबाद

"OPACITINE" जर्मनी में टेस्ट की हुई और गॉवर्नमिन्ट से रजिस्टर्ड "OPACITINE"

चिह्न (फोला)

"ऑपेसीटीन" ("OPACITINE") के कुछ ही दिनों के सेवन करने से छोटा, बड़ा, पतला गहरा, तथा देर का फोला, कुकरे जड़ से ही मिट जाते हैं और खोई हुई नज़र तथा स्वस्थता फिर से पुनः लौट होकर आंखें कमल के समान खिल जाती हैं अनेक महानुभावों वैद्यों, हकीमों तथा डाक्टरों ने इस आश्चर्यमय आविष्कृत दवाई की प्रशंसा की है।

मूल्य १०) रुपये, ५) रुपये, नमूना ३॥) रुपये, डाक खर्च अलग।

श्रीकृष्ण लैबोरेटरीज़ (रजिस्टर्ड) पसरूर (पंजाब)

सुख दायिनी

सब तरह के शिर दर्द, जुकाम, मूर्छा, बेहोशी को "सुख दायिनी" आराम करती है। दिल और दिमाग़ में चैतन्यता पैदा करती है। शरीर के सब दर्दों को मिटाती है। "सुख दायिनी" हृत्कम्प (Pal Putation of Heart) में बहुत उपयोगी है।

श्रीकृष्ण औषधालय पो० डीग, भरतपुर स्टेट

THE RUBBER STAMP Co. UDAIPUR.

हरजगह एजेन्ट चाहिए

हज़ारों तरह की बढ़िया २ 'रबड़ की मोहरें' अत्यन्त सस्ती कीमत पर "रबर स्टाम्प को० उदयपुर" से मंगवाइए, सूची मुफ्त।

बेरोज़गारवालों के लिये

सुखमय जीवन

विशेष विवरण पृष्ठ १४ पर पढ़ें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मासिक धर्म की ख़राबियाँ और पदर

"शक्ति" ने हज़ारों बहिनों को नरक की यातना से बचाया

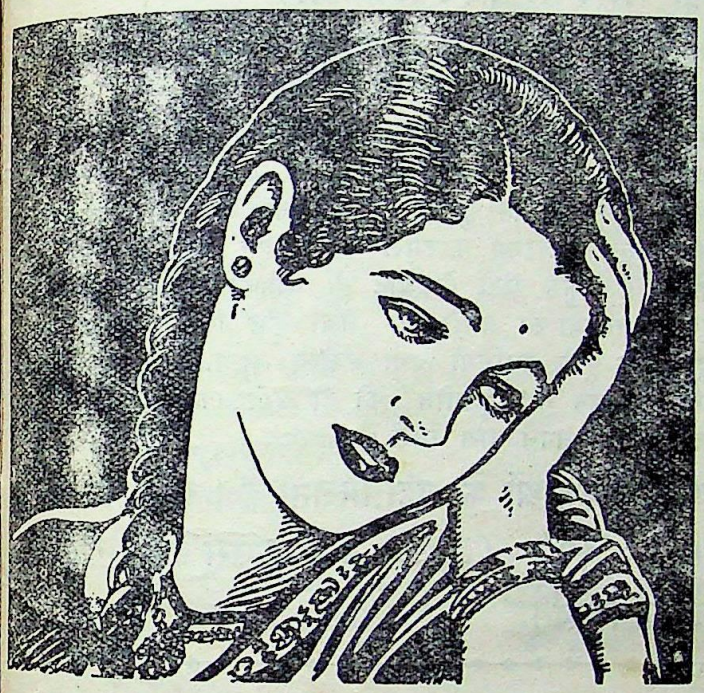

मासिक-धर्म की ख़राबियाँ—लिकोरिया (सफ़ेदी) और स्त्रियों के अन्य रोग जैसे हिस्टीरिया, हर प्रकार की कमज़ोरी, रक्त का पतला होना, शरीर का ढीलापन इत्यादि के लिए 'शक्ति' रामबाण है। हज़ारों बहनें जो इन रोगों के कारण नरक की अग्नि में जल रही थीं और पेटेन्ट तथा अन्य दवाइयों व आपरेशन पर सैकड़ों रुपये बर्बाद कर चुकी थीं उन्हें 'शक्ति' ने बचा कर तन्दुरुस्ती और सुखी जीवन प्रदान किया। हिन्दुस्तान भर में डाक्टर और नर्स शक्ति की सिफ़ारिश करती हैं।

मासिक-धर्म की ख़राबियाँ लिकोरिया ऐसे रोगों से कदाचित् लापरवाही न करनी चाहिए। ये शिकायत स्त्री को भयानक रोगों का शिकार बना देती हैं और तपेदिक, मिरगी, पागलपन वग़ैरह तक की गति ले आती हैं। हिन्दुस्तान में हज़ारों बहनें इन रोगों के कारण बाँझ हैं। ये रोग सन्तान-शत्रु हैं और स्त्री के जीवन को सदा ख़तरे में रखते हैं।

जब यह मालूम हो कि कोई बहन स्त्री-रोगों में ग्रस्त है तो उसे फौरन शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। शक्ति मासिक-धर्म की ख़राबियों को इस प्रकार दूर कर देती है कि आश्चर्य होता है। माहवारी का समय पर न आना, कम या अधिक आना, दर्द के साथ आना, बदबूदार आना, समय असमय आना, तबीयत बेचैन रहना ये तमाम ख़राबियाँ शक्ति के प्रयोग से सदा के लिए दूर हो जाती हैं और मासिक धर्म प्राकृतिक नियमानुसार आना शुरू हो जाता है।

शक्ति लिकोरिया का खातमा कर देती है, कमज़ोरी दूर करती है और नया रुधिर पैदा करके स्वस्थ सन्तान पैदा करने की शक्ति प्रदान करती है। यह अनुभव किया जा चुका है कि शक्ति के प्रयोग के बाद बाँझ स्त्रियाँ भी गर्भवती हो गई हैं और वे बहिनें जो सन्तान से बिलकुल निराश हो चुकी थीं उनकी गोदें हरी हो गईं। स्त्रियों के रोगों के लिए शक्ति के बराबर कोई अन्य औषधि नहीं है। शक्ति का मूल्य प्रति शीशी २) डाक-महसूल अलग।

गर्भवती हो गई 'शक्ति' से मेरी स्त्री गर्भवती हो गई। भाई की भेंट १०) भेज रहा हूँ। लाला दीवानचन्द पक्कीढकी, जम्मू।

पूर्ण काया-कल्प आपकी 'शक्ति' से मेरी स्त्री के माहवारी की ख़राबियाँ, हिस्टीरिया, जोड़ों का दर्द, ख़ून की कमी, शरीर का ढीलापन इत्यादि दूर हो गये यानी पूरा काया-कल्प हो गया। मैं सदा आपका उपकार मानूँगा। माताप्रसाद तरङ्गी, परसनल असिस्टेन्ट, ग्वालियर स्टेट।

सोने में तौलने के योग्य 'शक्ति' की एक शीशी ने मेरी स्त्री की काया पलट दी। अब उसे कोई कष्ट नहीं है। आपकी दवा सोने में तौलने के योग्य है। एक शीशी मेरे एक रिश्तेदार के लिए भेज दें। रामजसलाल आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ल्युनेगोन"

(पहले इनसानिल के नाम से विख्यात था)

पागलपन, मस्तिष्क की शिथिलता, नींद का न आना, नसों की कमज़ोरी, मृगी, दौड़ा, भयङ्कर पागलपन, रिक्त चाम तथा सब प्रकार की दिमाग़ी तथा नसों की कमज़ोरी के लिए।

"ल्युनेगोन" ओषधियों मे एक विचित्र चीज़ है। यह भारतवर्ष में प्रथम बार लाई गई है। पिछले ६० वर्षों से दुनिया के लाखों रोगियों ने इसे मस्तिष्क तथा नसों की कमज़ोरी की अकाट्य ओषधि माना है। संसार भर के डाक्टरों, अस्पतालों तथा पागलखानों में बड़ी सफलता-पूर्वक इस्तेमाल किया जाता है। पागलपन की यह एक विचित्र दवा है जो कि कठिन से कठिन रोग को भी दूर करता है। इसमें कोई हानिकारक या सुस्ती लानेवाली चीज़ जैसे लूमिनल, क्लोरल हाइड्रेट, पोटाश ब्रोमाइड, अफ़ीम, मरफ़िया, हेनबेन इत्यादि नहीं मिली होती। जादू की तरह असर करनेवाली ये टिकियाँ दिमाग़ की कमज़ोरी को तुरन्त दूर कर नींद लाती हैं। "ल्युनेगोन" एक साधारण फ़ारमूले की बहुत बड़ी वैज्ञानिक वस्तु है। कुछ घंटों के बाद ही आपको शान्ति तथा समुचित अवस्था का बना देगा तथा कुछ दिन तक सेवन करने से पूरी मर्दानगी तथा स्त्रीत्व लाता है। आजकल के जीवन में "ल्युनेगोन" की ही आवश्यकता है। एक बोतल सदा अपने पास रक्खें।

५० टिकिया के बोतल का दाम ४) सभी ओषधि-विक्रेताओं के यहाँ मिलता है। सीधे कम्पनी से मँगाने के लिए हेरिंग एन्ड केन्ट, पोस्टबक्स नं० ३२३ (S. A.) रेडी हाउस हार्नबीरोड, बम्बई को लिखें।

दुबले, पतले बच्चों को डोंगरे का बालामृत देना चाहिये। इस बालामृत में क़ीमती व आवश्यक दवाइयाँ पड़ी होती हैं, इसलिए इसका प्रभाव बच्चों के शरीर पर जल्द ही दिखाई देने लगता है, बच्चे तगड़े और तेजस्वी बनते हैं, स्वाद मीठा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जूड़ी ज्वर) मलेरिया का महान शत्रु

झंडु

मलेरिया मिक्श्चर

सेवन करके मलेरिया की जड़ को
नाबूद कर दीजिए

विशेषकर स्त्रियों के लिए
तन्दुरुस्ती और ताक़त से भरपूर

प्रदरादि रोगों की
अक्सीर दवा

झंडु अशोकारिष्ट

स्त्रियों की निर्बलता में स्थायी प्रभाव डालनेवाली
——हर एक घर में रहना चाहिए——

सबके लिए—
शक्ति और स्फूर्ति से भरपूर

स्वादिष्ठ

झंडु द्राक्षासव

बिना विलम्ब सेवन कीजिए

झंडु फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स लि०, पो० बा० नं० ५५१३—बम्बई नं० १४

इलाहाबाद के चीफ़ एजेन्ट—एल० एम० धोलकिया एण्ड ब्रादर्स, ४६ जान्स्टनगंज।
बिलासपुर के एजेन्ट—कविराज रवीन्द्रनाथ वैद्य शास्त्री।
दिल्ली और यू० पी० के सोल एजेन्ट—कान्तिलाल आर० परीख, चाँदनी चौक, देहली।
कानपुर के एजेन्ट—मोहनलाल आर० परीख ३९।३५ मेस्टन रोड।
पंजाब के एजेन्ट—परशोतम ब्रादर्स, हॉल बाज़ार, अमृतसर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोल्डेन

सन्दालउड

शृङ्गार के लिए सर्वोत्तम साबुन

विशेष ढंग से ख़ास सामग्रियाँ तथा सफ़ेद चन्दन के
सर्वोत्तम तेल से तैयार किया हुआ

एक विचित्र आकार तथा गन्ध-
वाला बिलकुल नया साबुन

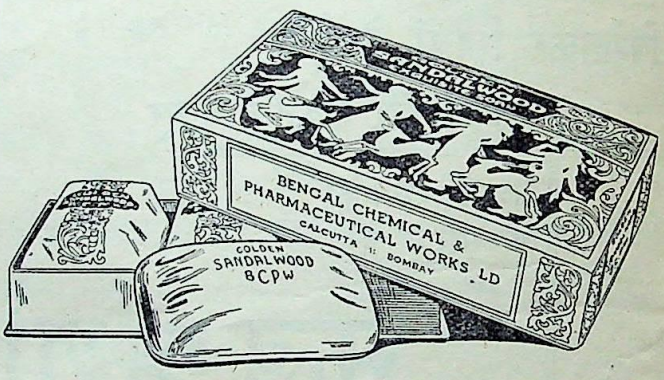

बेंगल केमिकल

कलकत्ता :: :: बम्बई

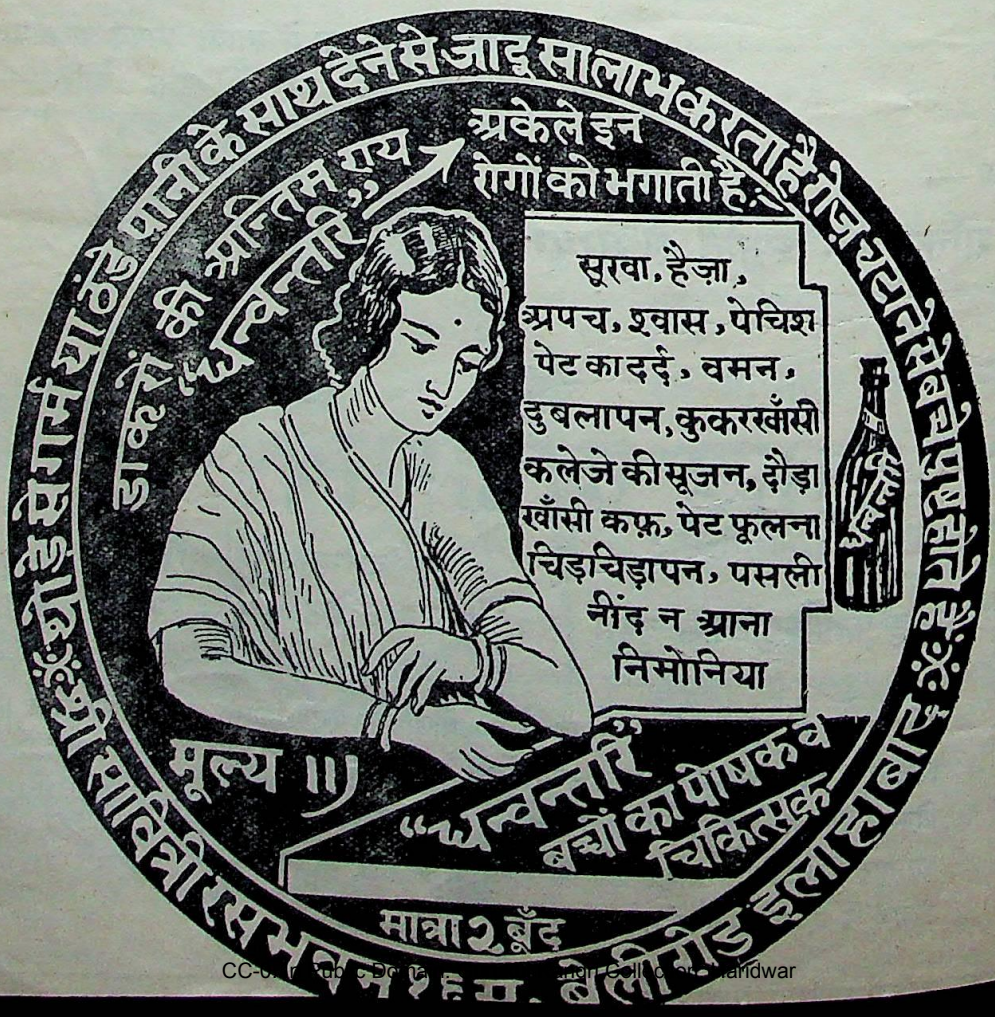

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

च्यवनप्राश-३)सेर अध्यक्ष मधुरा बाबू का मकरध्वज-४)भरी

शक्ति औषधालय-टाका

सन् १९०१ ई० में स्थापित होकर आयुर्वेद-जगत् में युगान्तर ले आया

आयुर्वेद का श्रेष्ठतम लुप्त रत्न, अनेक प्रकार के असाध्य रोगों की आश्चर्यजनक महौषधि

"मृतसंजीवनी सुरा" नाम, वर्ण और गुण में ठीक ठीक आयुर्वेदोक्त।

याद रखिए आयुर्वेद में इस अमृतोपम महौषधि का नाम "मृतसंजीवनी सुरा" है। आयुर्वेद में इसका और कोई नाम नहीं है। दूसरे नाम की पेटेण्ट ओषधियों के साथ हमारी आयुर्वेदीय 'मृतसंजीवनी सुरा' का कोई सादृश्य नहीं है। गवर्नमेण्ट से लाइसेन्स लेकर कई शताब्दियों के बाद हमने ही सर्वप्रथम इस आयुर्वेदोक्त लुप्त रत्न "मृतसंजीवनी सुरा" को फिर प्रचलित करके अपने ग्राहकों और अनुग्राहकों को इस आयुर्वेदोक्त दुर्लभ महौषधि एवम् आयुर्वेदीय नाना प्रकार की अकृत्रिम ओषधियाँ उचित मूल्य पर सेवन करने की सुविधा देते हैं और जिससे सब लोग इन्हें अनायास थोड़े ख़र्च में सब जगह पा सकें इसके लिए अनेक स्थानों में अपनी ब्राञ्चें खोली हैं।

मृतसंजीवनी सुरा

अम्ल, अजीर्ण, नाना प्रकार के वात, सूतिका, दुःसाध्य कठिन रोगों के बाद दुर्बलतानाशक महौषधि।

सारिवाधारिष्ट

बलकारक, रक्तशोधक, नाना प्रकार के रोगों को नष्ट करने और रोकनेवाला सालसा ।।।) शीशी।

वसन्तकुसुमाकर रस

सब प्रकार के बहुमूत्र की अद्वितीय महौषधि ३) सप्ताह।

सिद्ध मकरध्वज

सब प्रकार के क्षय रोगों और स्नायविक दुर्बलता का नाश करनेवाला। सिद्ध महापुरुषद्वारा प्रदत्त शक्तिशाली महौषधि। महाभृङ्गराज तेल ६) सेर। सब लोगों द्वारा प्रशंसित आयुर्वेदोक्त महोपकारी केशतैल।

दशनसंस्कार चूर्ण ≡)- प्रति-डिब्बी। सब प्रकार के दाँत के रोगों के लिए दन्तमंजन। थोक का मूल्य अलग है।

"I was very interested to see this remarkable factory which owes its success to the energy and enthusiasm of its proprietor Babu Mathura Mohan Chakravarty B. A The preparation of indigenous drugs on so large a scale is **a very great achievement.** The factory appeared to me to be exceedingly well managed and well equipped &c. &c.

भारतवर्ष के भूतपूर्व अस्थायी गवर्नर-जनरल और वाइसराय तथा बंगाल के भूतपूर्व गवर्नर लार्ड लिटन बहादुर ने लिखा है—

Marquess of Zetland, Ex-Secretary of State for India, graciously remarked while Governor of Bengal :-

"I was astonished to find a Factory at which the production of medicines was carried out on so great a scale. Large number of Kavirajes was employed &c. &c.

Mathur Babu seems to have brought the production of medicine in accordance with the prescriptions of the ancient Shastras to a high pitch of efficiency.

देशबन्धु सी० आर० दास—"शक्ति औषधालय के कारख़ाना की ओषधि तैयार करने की व्यवस्था की अपेक्षा और अच्छी व्यवस्था की आशा नहीं की जाती है। इत्यादि-इत्यादि—"

ब्राञ्चें

भारत और बर्मा के प्रायः सभी प्रधान प्रधान स्थानों में स्थापित की गई हैं।

हमारी नक़ल करनेवाले अनेक औषधालय 'शक्ति औषधालय' के नाम से अपना परिचय देकर अनेक भोले-भाले ग्राहकों को धोखा देते हैं। इसलिए अध्यक्ष मथुरा बाबू का नाम और चित्र देखकर लीजिए।

शास्त्रविधि से बनाई गई मृतसंजीवनी सुरा का रंग पानी की तरह सादा होता है। इस ओषधि को ख़रीदते समय सादा रंग और अध्यक्ष मथुरा बाबू के चित्र के सहित लेबिल देखकर लीजिएगा। मूल्य पाइण्ट २॥), क्वार्ट ४॥)

मैनिजिंग प्रोप्राइटर—**श्री मथुरा मोहन मुखोपाध्याय, बी० ए० हिन्दू केमिस्ट व फीजीशियन**

मालिकगण—श्री मथुरामोहन, लालमोहन और फणीन्द्रमोहन मुखोपाध्याय, चक्रवर्ती

चिकित्सकों को ऊँचा कमीशन देने की व्यवस्था है। आयुर्वेदीय चिकित्सा-प्रणालीवाला सूचीपत्र मँगाने से भेजा जाता है।

चौरंगी ब्राञ्च—१२ नं० चौरंगी, कलकत्ता। कलकत्ता केमिकल—५२।१ बाडन स्ट्रीट, कटक ब्रांच

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापना १९२६ } जुक़ाम, सर्दी के लिए बिलकुल संग्रह योग्य !! { स्वदेशी र० नं० १८६९

आरोंदा

सूर्य छाप निलगिरी तेल

१आ० शीशी ।). दर्जन २।।). डा० ख़० अलग

युकॅलिप पेन बाम] सूचीपत्र मुफ़्त [युकॅलिप दाद का मरहम

खाण्डालेकर बंधु, बम्बई, ४

मोतियाबिन्द

कौन कहता है कि बग़ैर चीर-फाड़ के अच्छा नहीं होता ? डिजन्स "आइ-क्योर" Degon's "Eye-Cure" के कुछ हो दिनों के लगाने से नया या पुराना मोतियाबिन्द तथा कैसाहू आँख की बीमारियाँ शर्तिया आरोग्य होती हैं।

मूल्य २) डा०-ख़र्च ।।=) ।

कमला वर्क्स (S/2) पांचपोटा, बङ्गाल

एजेन्ट—ग्रे एन्ड कं०, इलाहाबाद

कपास की खेती (सचित्र, सजिल्द)

पढ़िये कि भारतीय कृषक किस प्रकार कपास की उपज चौगुनी कर विलायती कृषकों की भाँति सुखी हो सकता है। भूमि, खाद, बीज, सिंचाई रोग और उनके उपाय आदि विषयों का विस्तारपूर्वक वर्णन है। लंकाशायर, मेनचेस्टर आदि जो इस समय संसार भर में रुई की मिलों और व्यापार के केन्द्र हैं क्योंकर धनवान हुए इसका भी बड़ा ही चित्ताकर्षक वर्णन है। मूल्य ३) डाक-व्यय अलग।

—कृषि संबन्धी पुस्तकों के विख्यात लेखक

बाबू रामप्रसाद रिटायर्ड सूबा व डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट ग्वालियर से मिल सकती है।

टिकाऊ कैमरा

शुरू करनेवालों के लिये तो बहुत ही उपयोगी हैं। बेकार आदमी भी ५) रोज़ कमा सकता है। बहुत तेज़ लेन्स तथा व्यू प्वाइन्ट। बाक्स कैमरा २।।) बाक्स कैमरा नं० २, ३।।) बाक्स कैमरा फोल्डिंग ४।) सुपीरियर ५।) डाकव्यय ।।=) अलग

कलकत्ता क्लाक कं० (सेक० २०)

पोस्ट बाक्स नं० १२२०३ कलकत्ता

बहिरापन

विज्ञान की नई आश्चर्यजनक खोज !

कान का बहना, जलन भयानक दर्द, खुजली, फोड़ा-फुंसी, मवाद आना, नासूर सूजन, पर्दा ख़राब होना, कान में भन-भन, साँय-साँय, सी-सी, सीटी की तरह आवाज़ें आना, कम सुनना या एकदम न सुनना अथवा ज्वर के बाद सर्दी से या कुनैन के दुर्व्यवहार से पैदा हुआ कैसा ही नया, पुराने से पुराना बहिरापन क्यों न हो चमत्कारी 'बधिरता-हरन' के इस्तेमाल से शर्तिया आराम होता है। लाखों बहिरे इससे ठीक ठीक और साफ़ साफ़ सुनने लगे। आराम न हो तो दाम वापस। क़ीमत २) रु०।

बवासीर

महात्मा से प्राप्त आश्चर्यजनक दवा

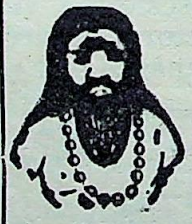

ख़ूनी या बादी, नई या पुरानी तथा अन्दरूनी, बाहरी चाहे जैसी बवासीर क्यों न हो, महात्मा से प्राप्त जादू-असर 'अर्श-मारा' के एक बार के इस्तेमाल से दर्द, खुजली, टीस, सूजन, जलन, मवाद आना, ख़ून का गिरना फ़ौरन आराम होता है। ३ दिन में ख़राब से ख़राब बवासीर, नासूर, भगंदर, बिना आपरेशन जड़ से शर्तिया आराम होता है। लाखों निराश रोगी अच्छे होकर अन्य रोगियों से इसके इस्तेमाल की सिफ़ारिश करते हैं। आराम न हो तो दाम वापस। क़ीमत २) रु०।

दमा-श्वास की रामबाण दवा

चाहे जैसा नया या पुराना से पुराना दमा यानी श्वास क्यों न हो 'दमा-हारी' के व्यवहार से चाहे जितने ज़ोर का दम उभड़ा हो सिर्फ़ एक ख़ुराक लेने से छाती की खींचन, श्वास की तकलीफ़, खांसी, पीठ का भारीपन दूर करके सुखमय नींद लाती है। पुराना से पुराना दमा चाहे तन सूखकर काँटा हो गया हो और कोई चीज़ खाने से हज़म नहीं होती हो; तकिये के सहारे रात भर जागा करते हों वे रोगी पूरी शीशी पीने से भले चंगे हो गये हैं और जीवन सुखमय बिताते हैं तथा गद्गद् हृदय से आशीर्वाद देते हैं, हज़ारों प्रशंसा पत्र मौजूद हैं। क़ीमत २), तीन शीशी ५) रु०।

पता—आरोग्य सदन, दुर्गादेवी स्ट्रीट, (कंभारबाड़ा) बम्बई ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस वर्ष के देव-पुरस्कार-विजेता श्री श्यामनारायण पाण्डेय
का
नव प्रकाशित महाकाव्य
हल्दीघाटी

[इसी वीररस प्रधान महाकाव्य पर इस वर्ष दो हज़ार रुपया देव-पुरस्कार दिया गया है]

वीर-शिरोमणि महाराणा प्रताप की कीर्ति जिस महायुद्ध से संसार के कोने-कोने में फैल कर स्वतन्त्रता-संग्राम में रत राष्ट्र का माथा ऊँचा कर रही है उसी युद्ध की पवित्र कहानी का वर्णन बड़े ही अनूठेपन से फड़कती हुई कविता में किया गया है। पुस्तक पढ़ते समय हल्दीघाटी के मैदान में महाराणा की वीरता, चेतक घोड़े की बहादुरी, बहादुर सिपाहियों का जी खोलकर लड़ना आदि कितनी ही बातें आँखों के सामने सिनेमा-फ़िल्म की तरह खिंच जायँगी। आप इस युग में एक नवीन ढङ्ग की कविता पढ़कर चकित रह जायँगे। स्थान-स्थान पर कविता के महत्त्व के बढ़ानेवाले वीररस से सराबोर दर्जनों रङ्गीन और सादे चित्रों से पुस्तक और भी चित्ताकर्षक हो गई है। यदि आपको अपने पूर्वजों के अनुकरणीय कार्यों के लिए कुछ भी आदर है तो इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य ख़रीदिये। मूल्य २) दो रुपये।

'हल्दीघाटी' पर कुछ सम्मतियाँ

"हल्दीघाटी की कविता बड़ी सुन्दर है। भाषा की सरलता पर अच्छा ध्यान रक्खा गया है। वर्णन-शैली चुस्त और विषयोपयोगी है। छन्द भी कई तरह के इस्तेमाल किये गये हैं। कितने ही स्थल तो बड़े ही अच्छे बन पड़े हैं। इस काव्य के पाठ से पाठक पर जितना प्रभाव पड़ता है श्रोता पर उससे भी अधिक असर होता है। ..... सातवाँ और आठवाँ सर्ग और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनके पढ़ने से हीन हृदयों में भी वीरत्व-भावना की ज्वाला जाग्रत होने लगती है।....."

"आशा है कि श्रीश्यामनारायण पाण्डेय का यह समयोचित वीर काव्य अपनी उपयोगिता के कारण बहुत लोकप्रिय सिद्ध होगा। हम तो चाहते हैं कि जगह-जगह उसकी कथाएँ की जायँ, जिससे जनता में वीर-भावना का उदय हो।....."

—"विशाल भारत"

× × ×

"पुस्तक वीर-रस से ओत-प्रोत है। हल्दीघाटी का दृश्य आँखों के सामने आ जाता है। निस्संदेह कवि को इस पुस्तक की रचना में सम्पूर्ण सफलता मिली है और इसके लिए वे बधाई के पात्र हैं ..... ।"

—"माधुरी"

× × ×

"यह महाकाव्य हिन्दी में अपने ढंग की नई वस्तु है। महाराणा प्रताप के जीवन की चमत्कारपूर्ण घटनाओं ने कवि के हृदय में जो स्फूर्ति पैदा की है "हल्दीघाटी" उसी का परिणाम है। भाषा, भाव और रचना की सुन्दरता में "हल्दीघाटी" का स्थान हिन्दी साहित्य में बहुत ऊँचा समझा जायगा ..."

—"वीर अर्जुन"

× × ×

"..... National enthusiasm and heroic sentiment vibrate in every part of it. Self-sacrifice and love of country are the two characteristic notes struck here. There is a charming flow in it, and the vigour of language is maintained from beginning to end. The book is nicely illustrated and handsomely bound. It is satisfactory to know that the "Deva-Puraskar" offered by the Maharaja of Jhalawar has been awarded to it, as it has been considered to be best book of Hindi poetry published in 1939. It fully deserved the award."

—दी हिन्दुस्तान रिव्यू

× × ×

पता—मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन सुधारनेवाली एक नई पुस्तक

लोक-व्यवहार

अर्थात्

मित्र बनाने और जनता को प्रभावित करने की विधियाँ

अनुवादक, श्री सन्तराम बी० ए०

यह पुस्तक प्रसिद्ध अमेरिकन लेखक श्री डेल कारनेगी की 'हाऊ टू विन फ्रेंण्डज़ एण्ड इंफ्लूएन्स पीपुल' नामक पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद है। पुस्तक की उपयोगिता का पता नीचे लिखे हुए उन १२ कामों से लगाया जा सकता है जो यह पुस्तक आपके लिए करेगी—

१—यह आपको मानसिक लीक में से निकाल कर नवीन विचार, नवीन कल्पनायें और नवीन आकांक्षाएँ देगी।

२—यह आपको शीघ्र और सहज में मित्र बनाने में समर्थ करेगी।

३—यह आपकी लोकप्रियता को बढ़ायेगी।

४—यह लोगों को अपने विचारों का बनाने में आपको सहायता देगी।

५—यह आपके प्रभाव को, आपके अधिकार को, काम कराने की आपकी योग्यता को बढ़ायेगी।

६—इसकी सहायता से आप नवीन ग्राहक और नवीन ग्राहक बना सकेंगे।

७—यह आपकी कमाने की शक्ति बढ़ायेगी।

८—यह आपको अच्छा विक्रेता एवं अच्छा कार्य-निर्वाहक बना देगी।

९—यह शिकायतों को निपटाने, विवाद से बचने, दूसरे मनुष्यों के साथ अपने संपर्क को स्निग्ध एवं मधुर रखने में आपको सहायता देगी।

१०—यह आपको अच्छा वक्ता, और वार्तालाप में अधिक निपुण बना देगी।

११—यह आपके लिए प्रतिदिन के संपर्कों में मनोविज्ञान के नियमों का प्रयोग करना सहज कर देगी।

१२—यह आपको अपने संगी-साथियों में उत्साह भरने में सहायता देगी।

साढ़े चार सौ पृष्ठ की ऐसी सुन्दर पुस्तक का मूल्य केवल २॥) ढाई रुपया है।

चार बिल्कुल नई पुस्तकें

शासक

अनुवादक, पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी, एम० ए०, एल० टी०

यह पुस्तक सुप्रसिद्ध राजनीति-विशारद निकोलो मेकियावली की 'प्रिंस' नामक पुस्तक का हिन्दी-रूपान्तर है। इसमें कर्त्तव्यों तथा राज्य-शासन की प्रणाली का बहुत ही सुन्दर ढंग से वर्णन हुआ है। पुस्तक की उत्तमता का पता इसी बात से लगाया जा सकता है कि योरप में इस पुस्तक के मूल लेखक निकोलो मेकियावली का राजनीति के क्षेत्र में वही स्थान है जो भारत में चाणक्य का है। मूल्य १॥) डेढ़ रुपया।

पुरातत्त्व-निबन्धावली

लेखक, महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन

राहुल जी ने देश-विदेश के कितने ही दुष्प्राप्य ग्रन्थों के अध्ययन और दुर्गम स्थानों के भ्रमण से जो अगाध ज्ञान-राशि प्राप्त की है उसका इन निबन्धों में उपयोग किया है। मूल्य २।) सवा दो रुपये।

उत्सर्ग

लेखक, ठाकुर लक्ष्मणसिंह जी चौहान, बी० ए०, एल-एल० बी०

इस नाटक में छत्रपति शिवाजी की सहनशीलता और कमला थोरात का अपूर्व देश-प्रेम तथा त्याग दिखलाया गया है। इस नाटक की भाषा इतनी मँजी हुई और घटनाओं का क्रम इतना सुन्दर है कि यह नाटक रंग-मंच पर सफलतापूर्वक खेला भी जा सकता है। मूल्य १) एक रुपया।

स्काटलेण्ड-यार्ड की जासूस-स्त्री

यह पुस्तक इँग्लैण्ड की सुप्रसिद्ध कहानी-लेखिका लेडी मॉली की ९ जासूसी कहानियों का संग्रह है। ये कहानियाँ इतनी कौतूहलपूर्ण और मनोरंजक हैं कि पाठक इन्हें बिना पूरा पढ़े हुए नहीं छोड़ सकते। मूल्य ॥=) दस आने।

पता—मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेल सफर का मूल उपाय

९ नियमित गोल यात्रायें

अब आप साधारण किराये के एक अंश पर ही अपना व्यवसाय तथा दिलबहलाव सम्बन्धी सफर अथवा तीर्थयात्रा कर सकते हैं। जी० आई० पी० के राउन्ड टूर टिकट प्रायः ३ मास तक चलते हैं और इनसे आप रास्ते में जिस जगह चाहें रुक सकते हैं। पूर्ण विवरण के लिये इनफारमेशन ब्यूरो, विक्टोरिया टरमिनस बाम्बे से हिन्दी में सचित्र सूचीपत्र मँगायें।

जी० आई० पी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी सन् १९३९-४० की नई पुस्तकें

वैकुण्ठ का बिल—यह बँगला के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार स्वर्गीय शरद बाबू की कृति का हिन्दीरूपान्तर है। शरदग्रन्थावली के अन्य उपन्यासों के ही समान यह उपन्यास भी बहुत ही रोचक और कलापूर्ण है। मूल्य केवल ।।) आठ आने।

कपाल-कुण्डला—यह बंकिम बाबू के इसी नाम के बँगला-उपन्यास का हिन्दीरूपान्तर है और रूपान्तरकर्ता हैं हिन्दीसंसार के यशस्वी लेखक और कवि पं० सूर्य्यकान्त त्रिपाठी निराला। मूल्य ।।।) बारह आने।

लेखक, श्रीयुत चन्द्रभूषण वैश्य

राजदुलारी—यह एक मौलिक सामाजिक उपन्यास है। इसमें समाज, विशेषतः मारवाड़ीसमाज की कुरीतियों का भली भाँति दिग्दर्शन कराया गया है। मूल्य १) एक रुपया।

धोखा-धड़ी—श्री चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय के बँगला-उपन्यास का यह पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र-द्वारा किया गया रूपान्तर है। धूर्त और कपटी आदमी भोले-भाले और निरीह आदमियों को किस प्रकार अपने मायाजाल में फँसा लेते हैं, यह बात इस उपन्यास के द्वारा भली भाँति ज्ञात की जा सकती है। मूल्य १।) सवा रुपया।

लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद

फोटो ग्राफ़ी—(परिवर्तित और परिवर्द्धित संस्करण) इस पुस्तक में फोटो ग्राफ़ी के नये से नये सिद्धान्त का समावेश किया गया है और इस सम्बन्ध के हर एक प्रयोग इसमें चित्र दे देकर क्रियात्मक रूप से समझाये गये हैं। यदि घर बैठे फोटो ग्राफ़र बनना है तो आज ही इसकी एक प्रति मँगा लीजिए। मूल्य केवल ७) सात रुपये।

अनुवादक, सरस्वती-सम्पादक पण्डित देवीदत्त शुक्ल

एक आत्मकथा—यह उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मु० उल्फ़त-राय की आत्मकथा का अनुवाद है। इसमें उस काल की राजनीति पर बहुत ही उत्तम ढंग से प्रकाश डाला गया है। मूल्य १।।) डेढ़ रुपया।

विन्ध्यविरुदावली—इस पुस्तक में विन्ध्याचल का माहात्म्य विस्तारपूर्वक वर्णित किया गया है। मूल्य ।) चार आने।

संचिता—श्रीयुत ठाकुर गोपालशरणसिंह की सरसपूर्ण कविताओं का संग्रह। मूल्य २।) सवा दो रुपये।

वेणुकी—श्रीमती तारा पाण्डेय की सुन्दर रचनाओं का अपूर्व संग्रह। मूल्य ।।।) बारह आने।

लेखक, महापंडित श्री राहुल सांकृत्यायन

मेरी लद्दाख़-यात्रा—यह महापंडित श्री राहुल सांकृत्यायन का बहुत ही रोचक और कितनी ही मूल्यवान् एवं ज्ञातव्य बातों से भरा हुआ भ्रमण-वृत्तान्त है। मेरठ, पंजाब, मुलतान, देरा ग़ाज़ीखाँ, सीमान्त की सैर, पुछ राज्य, कश्मीर, ज़ोजीला पार, लद्दाख, लाहुल तथा कुल्लू आदि इसके सभी अध्याय बहुत ही रोचक हैं। इस सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल ।।।) बारह आने।

लेखक, पं० रामनरेश त्रिपाठी

लक्ष्मी—यह उपन्यास स्त्रियों के मनोरंजन और ज्ञान-वृद्धि के लिए लिखा गया है और इसकी एक एक पंक्ति बहुत ही ओजपूर्ण तथा शिक्षाप्रद है। यही कारण है कि इसका एक संस्करण हाथों हाथ बिक गया और दूसरा संस्करण छपाना पड़ा। मूल्य ।।=) दस आने।

पता—मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची

(१) मेरी याद (कविता)--[श्रीयुत नरेन्द्र शर्मा एम० ए० ... ... १

(२) स्वर्गीय आचार्य रामदेवजी--[श्रीयुत धर्मदेव शास्त्री २

(३) हिन्दुओं के लिए जीवन और मृत्यु का प्रश्न--[श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०... ... ६

(४) विपथगा (कविता)--[श्रीयुत देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' १३

(५) भगवान् महावीर की निर्वाण-भूमि पावापुरी--[श्रीयुत व्योहार राजेन्द्रसिंह, एम० एल० ए० १४

(६) निष्ठुर नियम (कविता)—[कुँवर सोमेश्वर-सिंह, बी० ए०, एल-एल० बी० ... १७

(७) मैं बेक़सूर था, बाबू--[श्रीयुत बी० एन० श्रीवास्तव, बी० ए० ... ... १८

(८) ग्रीनविच की वेधशाला—[पंडित सूर्यनारायण व्यास २४

(९) गीत (कविता)--[श्रीमती रूपकुमारी वाजपेयी, बी० ए० ... ... २७

(१०) भारत की आत्म-रक्षा का प्रश्न—[श्रीयुत उमाशङ्कर २८

(११) श्रीगोस्वामी तुलसीदासचरितामृत—[श्रीयुत लक्ष्मीसागर, वार्ष्णेय एम० ए० ... ३१

(१२) नवश्री (कविता)--[श्रीयुत सोहनलाल द्विवेदी ३६

(१३) सोशलिस्ट—[श्रीयुत रहबर, बी० ए० ... ३७

(१४) नीति-संकट--[श्रीयुत महेन्द्रचन्द्रराय, बी० ए०, एल-टी० ... ... ३९

(१५) बाबू घनानन्द—[पं० ज्वालादत्त शर्मा ... ४३

(१६) गीत (कविता)—[श्रीमती सत्यवती शर्मा ... ४५

(१७) हालैण्ड और बेल्जियम--[पं० उमेशचन्द्र मिश्र, विद्यावाचस्पति ४६

(१८) पुष्पोद्गार (कविता)--[श्रीयुत "पागल" ... ५२

(१९) रिक्ता—[पं० ठाकुरदत्त मिश्र ... ५३

प्रसव के बाद की कमज़ोरी तथा अधिक दिनों तक रोग भोगने के बाद की दुर्बलता दूर करने की एक अपूर्व दवा।

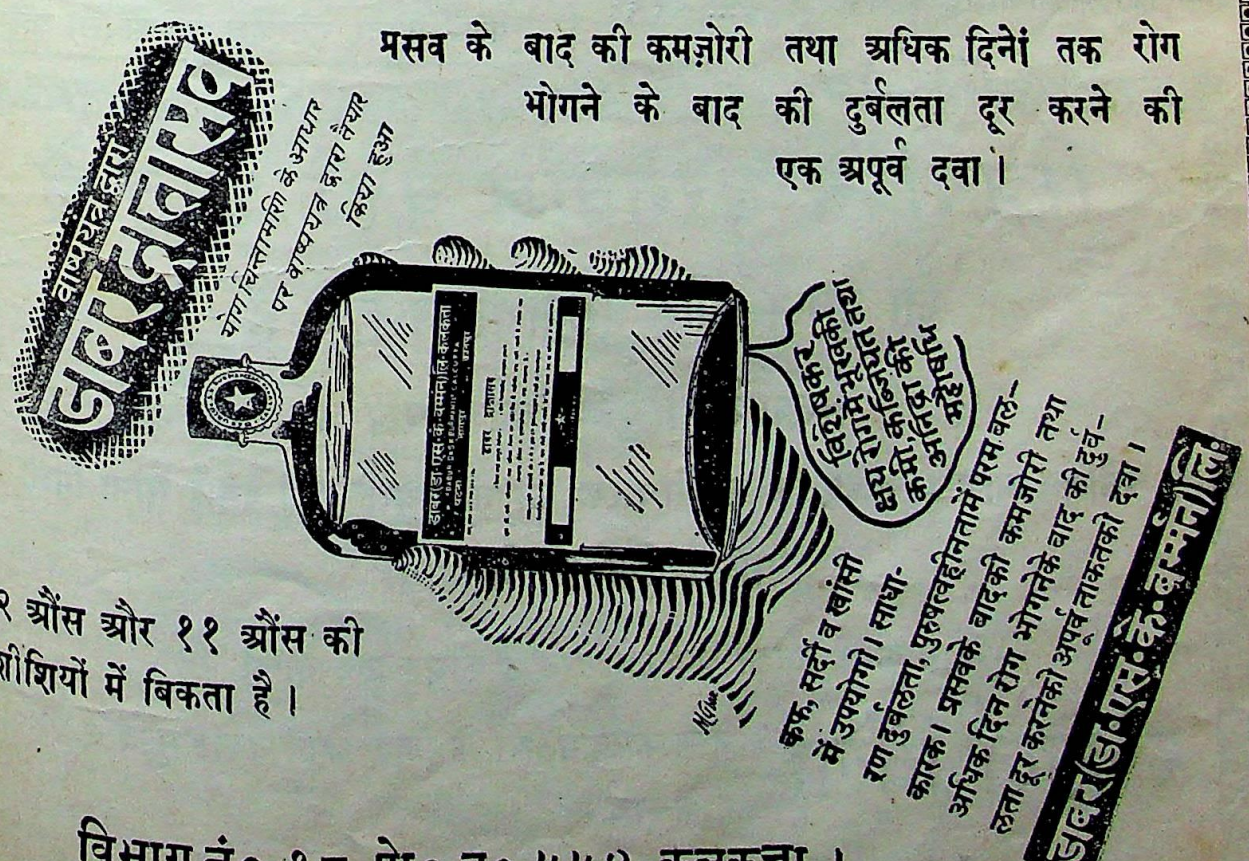
डाक्टर डी० एस० के० बनर्जी एण्ड कम्पनी लि० कलकत्ता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२०) जाग्रत नारियाँ—[श्रीयुत सन्त निहालसिंह ... ६०
(२१) मुस्लिम लीग का गप्पाष्टक—[पं० वेंकटेश-नारायण तिवारी ६३
(२२) नई पुस्तकें ६९
(२३) आचार्य द्विवेदी जी के पत्र ७४
(२४) सामयिक साहित्य ७८
(२५) मुझको भी लय होने दो ! (कविता)—[श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिनहा ... ८३
(२६) सम्पादकीय नोट ८५
(२७) युद्ध की डायरी ९६

चित्र-सूची

१— (रङ्गीन)—किसान मुख पृष्ठ
२—स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी ... ३
३—भगवान् महावीर की निर्वाण-भूमि पावापुरी-सम्बन्धी ४ चित्र १४-१६
४—ग्रीनविच की वेधशाला-सम्बन्धी १ चित्र ... २५
५—हालैण्ड और बेल्जियम-सम्बन्धी ७ चित्र ... ४६-५१
६—जाग्रत नारियाँ-सम्बन्धी ३ चित्र ... ६१-६२

बेरोज़गारवालों के लिए

सुखमय जीवन

यदि आप बेरोज़गार हैं, पढ़े-लिखे होने पर भी धन-प्राप्ति का कोई साधन नहीं मिलता अथवा नौकरी में ग़ुलामी की ज़िन्दगी से पीड़ित हैं या आमदनी कम होने के कारण परिवार-पालन करने में चिन्तित हैं तो पुस्तक सुखमय जीवन मँगाकर पढ़ें। इस पुस्तक में निम्नलिखित १० अध्याय हैं जिनमें भिन्न भिन्न प्रकार से धन कमाने के अनेकों उपाय बतलाये गये हैं:—

(१) धनवान् कैसे हों—धनी बनने की सुगम विधियाँ। (२) आवश्यक सम्पत्ति—धनोपार्जन के लिए आवश्यकीय बातों का वर्णन। (३) डाक-व्यापार—घर बैठे डाक द्वारा धन कमाने के नियम। (४) चालू चीज़ें—६५ ऐसे फार्मूले जिनसे ८-१० रु० रोज़ाना कमा सको। (५) बिना पूँजी के उद्योग—बिना पूँजी लगाये धन कमाने के अनेकों उपाय। (६) देहाती धन्धे—देहात में रह कर किये जानेवाले कई रोज़गार। (७) कूड़े से कञ्चन—कूड़े में फेंकी हुई वस्तुओं से रुपया पैदा करने के कई फार्मूले। (८) मुतफर्रिक कार—मशीनों-द्वारा सहस्रों रुपया माहवार कमाने के अनेकों धन्धे। (९) स्वास्थ्य सुख—स्वस्थ व पुष्ट बनने की विधियाँ, स्वास्थ्य के नियम, ब्रह्मचर्य, आसन, इच्छानुसार संतान पैदा करना, ओषधि-रहित चिकित्सा। (१०) शक्ति-संचय—योग, मेस्मिरेजम, हिप्नोटिज्म; छाया पुरुष, आदि अनेकों सिद्धियों-द्वारा WILL POWER बढ़ाना।

मूल्य सजिल्द ग्रन्थ का २) रु०, डाक-व्यय ॥); शीघ्र मँगावें।

पता—मैनेजर, गंगेरवाल आफिस (स) अलीगढ़

स्त्रियों से डरनेवाले वही होते हैं

जो दुर्बल और पुरुषार्थहीन होते हैं

पुरुषार्थ ही पुरुषों का भूषण है

इसलिए आपको चाहिए कि 'सुखसंचारक कम्पनी मथुरा' की बनाई सोना मिली

'यौवनशक्ति की गोलियाँ'

सेवन करके उनका चमत्कार देखें। क़ीमत २५ गोली २॥)

स्पेशल तिला—नसों की कमज़ोरी के लिए अपूर्व दवा, मूल्य १) रु०, डाक-खर्च ॥=)।

मँगाने का पता—सुखसंचारक कम्पनी, मथुरा

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजनको बरतनोंमें सड़ने ना दो!

अपने खाना पकानेके बरतनोंको विम से सफा करो

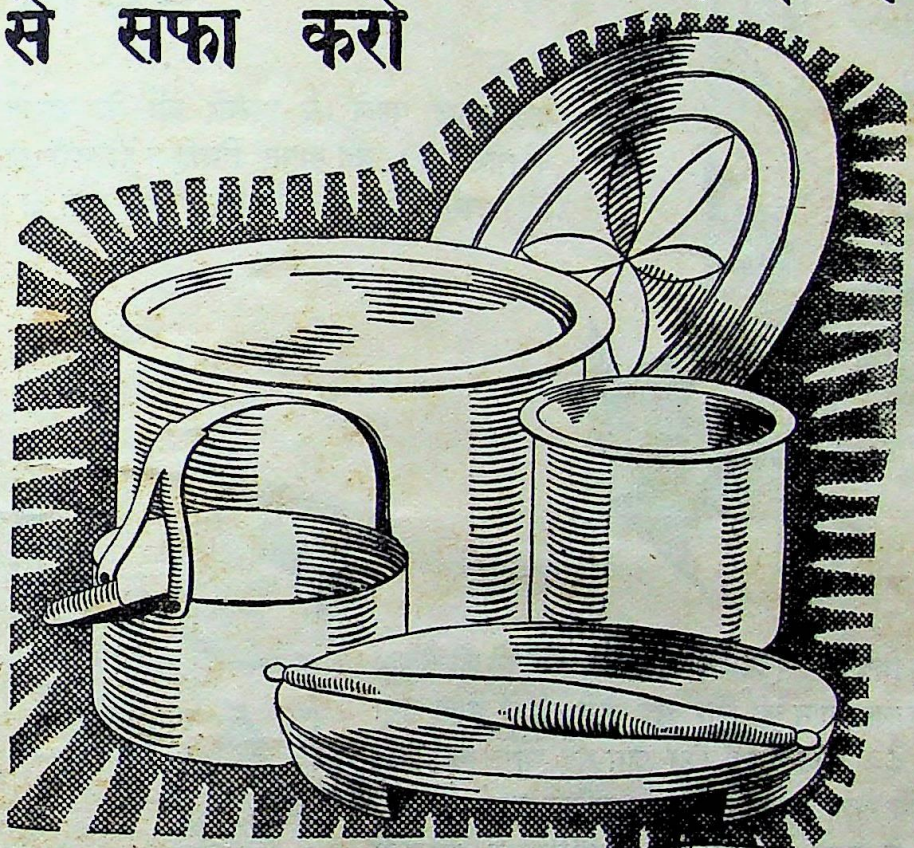

जब रेत या राख बरतन साफ करनेके लिये इस्तेमालको जाती है तो यह बरतनोंमें लकीरें डाल कर इनको खुदरा बना देती हैं जिनमें कि भोजनके टुकड़े सफा करते वक्त रह जाते हैं। और भोजनके छोटे टुकड़े जल्दी सड़ने लग जाते हैं और सब भोजनको ज़हरीला बना देते हैं। अपने परिवारकी सेहतके लिये बरतनोंको विमसे साफ करके हिफाज़त करो—विम बरतनोंको निहायत अच्छी तरहसे साफ कर देती है और इनको नया जैसा चमका देती है। इसमें एक और खुबी यह है के विम लकड़ीकी चीज़ों, रंगीन चिज़ें, चिलमची, नहाने के टब, टाईलों और इत्यादि चीज़ोंको बहुत अच्छी तरहसे साफ कर देती है।

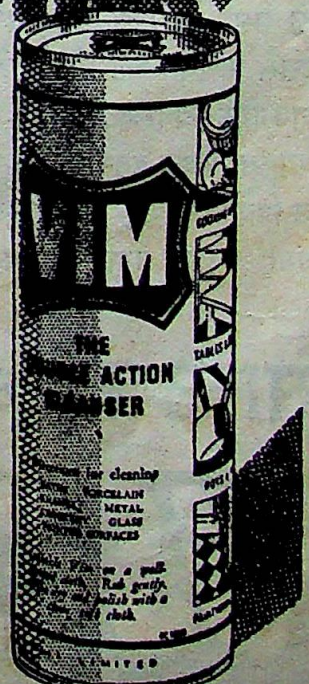

विम

बरतनोंको सेहतके लिये निरोगी बनाती है।

X-V 377-172—HI

LEVER BROTHERS (INDIA) LIMITED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब

उफ़, उफ़....

कुछ सप्ताह पहले मैं अपनी स्त्री के कारण बहुत परेशान था। वह खाना बिलकुल ही नहीं खाती थी और मिज़ाज चिड़चिड़ा हो गया था।

अब

हा हा, हा!

फिर मेरे एक मित्र ने उसे क्रुशेन साल्ट सेवन कराने की सलाह दी। मैंने उसकी सलाह मान ली और अब मेरी स्त्री में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। उसकी भूख फिर जग गई और अब वह सदा बच्चों के साथ खेला करती है तथा प्रसन्नचित्त रहती है।

क्रुशेन साल्ट के असर से सुस्ती तथा चिड़चिड़ापन शीघ्र ही दूर हो जाता है। इससे पाचन क्रिया धीरे धीरे ठीक हो जाती है। क्रुशेन से आपकी शारीरिक व्यवस्था नुक़सान देने के बजाय लाभ पहुँचाती है। आवश्यकता केवल इतनी है कि आप प्रतिदिन सवेरे १ मात्रा क्रुशेन साल्ट पियें फिर आप सदा स्वस्थ तथा प्रसन्न रहेंगे।

क्रुशेन साल्ट सभी बाज़ारों तथा औषधि-विक्रेताओं के यहाँ मिलता है।

क्रूशेन साल्ट को धन्यवाद

KRUSCHEN SALTS

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

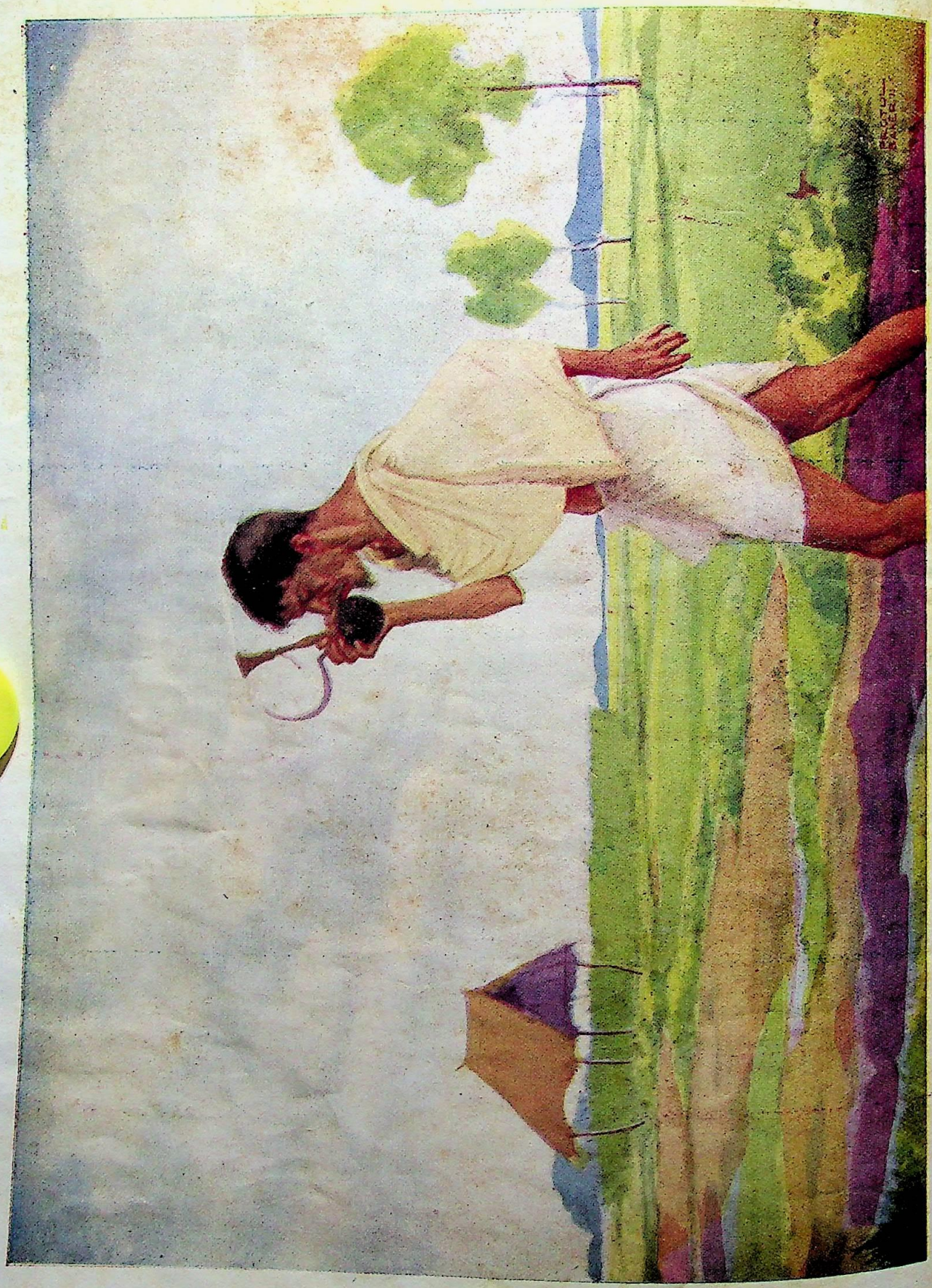

किसान

[श्रीयुत प्रफुल्ल बनर्जी, ४० सी० बेलिंगटन स्ट्रीट, कलकत्ता के सौजन्य से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[श्रीयुत प्रफुल्ल बनर्जी, ४० सी० बेलेंडन स्ट्रीट, कलकत्ता के सौजन्य से

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्र मिश्र

जुलाई १९४० | भाग ४१, खंड २ संख्या १, पूर्ण संख्या ४८७ | आषाढ़ १९९७

मेरी याद

लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र शर्मा, एम० ए०

अब तो तुम्हें और भी मेरी याद न आती होगी!

हरे-भरे होंगे वन-उपवन
बीत चुके हैं दिन पतझर के,
कहाँ याद आते होंगे अब
मेरे अश्रु-हास पल भर के!
आज तुम्हारे स्वर में स्वर भर कोयल गाती होगी!

गंध-रूप-रँग की यह दुनिया
जो अग-जग फल-फूल रही है,
झूल झकोरों में माधव के
सब पिछले दुख भूल गई है;
आज लगे बैसाख नई अमिया गदराती होगी!

कटहल, बेल, नीम महके हैं,
खिली कामिनी फूलोंवाली;
रँगी खड़ी सेंमल, पलाश औ'
अमलताश की डाली डाली;
सोने की गुलमोर लोचनों में छा जाती होगी!

कौन देश से आवेंगे पिय
हँस-हँस कहती होंगी सखियाँ,
घेर तुम्हें आँगन में बैठीं
आमी चीर उछाल बिजलियाँ;—
तुम्हें खीझ, फिर कभी हँसी बरबस आ जाती होगी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी

लेखक, श्रीयुत धर्मदेव शास्त्री

आचार्य रामदेव जी के नाम के साथ स्वर्गीय शब्द लगाते हुए लेखनी रुक जाती है। आचार्य जी की आयु अभी ५८ वर्ष ही थी। इतनी थोड़ी आयु में उनका हमें सदा के लिए छोड़ जाना निर्ममता ही कही जा सकती है। परन्तु निर्ममता का शिकार उनका अपना शरीर ही अधिक था। वस्तुतः शरीर के साथ उन्होंने अत्याचार किया। कार्य करते हुए उन्होंने दिन-रात का भेद भुला दिया। पाठकों को आश्चर्य होगा कि वे मृत्यु से पूर्व १२ बरस से भी अधिक समय से नींद आने के लिए दवा का सेवन कर रहे थे। उन्हें कार्य अधिक करने और तिस पर भी अधिक स्वाध्याय और प्रवचन करने के कारण उन्निद्रता का रोग हो गया था। आश्चर्य तो यह है कि जिस व्यक्ति के दिमाग़ में बड़ी बड़ी लाइब्रेरियाँ समा जाती थीं, उसके अपने शरीर की सुधि के लिए उसमें तनिक भी स्थान नहीं था। मैंने यह इसलिए लिखा है कि यदि आचार्य जी शरीर-यन्त्र से उतना ही कार्य लेते जितना कि वह दे सकता था तो वे अभी हमारे बीच कुछ वर्ष और रहते। परन्तु वे बिना काम किये रह ही नहीं सकते थे। जब कभी उनके स्वास्थ्य के लिए वे पढ़ने और बातचीत करने से रोके गये तब उसका उनके शरीर पर उलटा ही प्रभाव पड़ा।

शरीर इतना काम नहीं दे सकता था जितना कि आचार्य जी उससे लेते थे। वे शरीर-रूपी घोड़े को दवाइयों का चाबुक मार मारकर ही चलाये जाते थे। परन्तु यह अवस्था परिवर्तित हुई। शरीर ने जवाब दे दिया। १९३६ के दिसम्बर में जब वे लाहौर से काँगड़ी गुरुकुल (हरिद्वार) आये, रात्रि में लघुशंका के लिए कमरे से बाहर गये। हरिद्वार की तथाकथित सुतीक्ष्ण वायु (हरिद्वार में इस वायु को ढाढू कहते हैं। रात के नौ बजे से प्रातः नौ बजे तक यह प्रायः चलती है) के लगते ही उन्हें लकवा हो गया—मुँह टेढ़ा हो गया और वाणी अस्पष्ट हो गई तथा आधा शरीर बेकार-सा हो गया। दूसरे रोज़ ही वे हरिद्वार से देहरादून आये। आते ही उन्होंने सबसे कहा कि डरने की बात नहीं, आठ रोज़ के भीतर ही ठीक हो जायगा। हम लोगों में से कोई यदि चिन्ता प्रकट करता तो वे उसे समझाते। देहरादून आने के दो रोज़ बाद से ही वे प्रतिदिन प्रातःकाल जब मैं पहले पहल उन्हें मिलता था, वे सबसे पूर्व यही प्रश्न करते कि मेरी आवाज़ कल से अच्छी है। मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वे कह देते थे कि अब रुपये में चौदह आने ठीक हो गया है। लकवे के कारण उनके मुँह की स्नायु इतनी कमज़ोर हो गई थी और मानसिक दशा इतनी अस्थिर हो गई थी कि हर्ष अथवा विषाद की छोटी-सी घटना को सुनकर अथवा पढ़कर वे सशब्द रोने लगते थे, आँखों से आँसुओं की झड़ी-सी लग जाती थी। यदि कोई पास बैठा हुआ व्यक्ति यह दशा देखकर चिन्तित होता अथवा समवेदनात्मक शब्द कहता तो आचार्य जी उसे यह कहकर सान्त्वना देते कि "मेरा रोग ही ऐसा है। आप चिन्ता न करें।" उनको यह विश्वास था कि वे एक बार फिर पूर्ववत् खड़े होंगे और अपना शेष कार्य पूरा करेंगे। यदि कोई मित्र अपनी लड़की अथवा लड़के की शादी के लिए चिन्ता प्रकट करता था तो वे कहते कि 'मैं अधिक से अधिक छः मास तक अवश्य स्वस्थ हो जाऊँगा तब मैं ही सब कर दूँगा, चिन्ता न करें'। वस्तुतः इसी आशा के बल पर केवल मानसिक शक्ति के कारण ही वे लकवे जैसे रोग के साथ लगातार तीन वर्ष तक लड़ते रहे। परन्तु इस लड़ाई में उनको हारना पड़ा और रोग विजयी हुआ, क्योंकि दवा के चाबुक खा-खाकर उनका शरीर इतना ढीठ हो गया था कि उसने अन्त में बिलकुल जवाब दे दिया। लकवे की हालत में भी वे उससे काम लेते रहे, लेख लिखवाना, कन्या-गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता-पद को सँभालना आदि कार्य तो मृत्यु से दो-चार दिन पूर्व तक वे करते रहे। आख़िरकार जब शरीर ने अपनी स्थिति के लिए भी आवश्यक कार्यों को करने से इनकार कर दिया तब यह सोचकर कि जीर्ण-शीर्ण शरीर को छोड़ कर नये शरीर से नव उत्साह के साथ कार्य होगा, आचार्य जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९ दिसम्बर १९३९ को प्रातः ५½ बजे रूढ़ितः नहीं योगतः 'स्वर्गीय' बने। यद्यपि वे थोड़ी ही आयु में स्वर्गारूढ़ हुए, तथापि उन्होंने शरीर से इतना काम लिया जितना पूरी आयु प्राप्त करके भी कोई विरला ही ले सकता था।

× × ×

यद्यपि आचार्य रामदेव जी* का कार्यक्षेत्र मुख्यतया आर्य-समाज तक ही था, तो भी वे देश के माने हुए शिक्षा-शास्त्री और सामाजिक नेता थे। स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी के बाद आर्य-समाज के क्षेत्र में ख्यातनामा देश-प्रसिद्ध आर्यनेता आचार्य रामदेव जी ही थे। स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी की प्रवृत्तियों में से गुरुकुल-काँगड़ी, कन्या-गुरुकुल, वेद-प्रचार, आर्य-प्रतिनिधि सभा (पंजाब) और सार्वदेशिक सभा (दिल्ली) आदि को उतनी ही लगन और योग्यता से सँभालनेवाले व्यक्ति स्वर्गीय आचार्य जी ही थे।

आचार्य जी की मृत्यु से आर्यसमाज को और राष्ट्र को उल्लेखनीय हानि हुई है। आर्यसमाज में तो उनका स्थान लेनेवाला कोई भी व्यक्ति नहीं दिखाई देता।

आचार्य जी आर्य-समाज में अपने ढंग के बेमिसाल व्यक्ति थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती के बाद आर्य-समाज में दो प्रकार के नेता हुए। एक तो स्वर्गीय गुरुदत्त विद्यार्थी टाइप के जो विद्या और स्वाध्याय के कारण सर्वमान्य हुए, दूसरे स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी के टाइप के जो देश और जाति तथा धर्म की विविध प्रवृत्तियों में अग्रणी बनकर अपने आचार्य दयानन्द के पद-चिह्नों पर चले। आचार्य रामदेव जी में दोनों शैलियों का सम्मिश्रण था। उनके समान पढ़नेवाला व्यक्ति तो शायद लाखों में से एक ही मिलेगा। उनके सम्बन्ध में यह कहा जाता था कि वे चलती-फिरती लाइब्रेरी हैं। देश-विदेश में जब जो नई पुस्तक प्रकाशित होती थी, वे उसे मँगवाते अवश्य थे और आद्योपान्त पढ़ जाते थे। पढ़ ही नहीं जाते थे, दिमाग़ में रख लेते थे। इसलिए उनके व्याख्यान सुनने तथा उनसे बातचीत करने से पचासों पुस्तकों का सार अनायास मिल जाता था।

*आचार्य रामदेव जी का जन्म बिजगड़ा ग्राम होशियारपुर-ज़िले में ३१ जुलाई १८८१ में हुआ था।

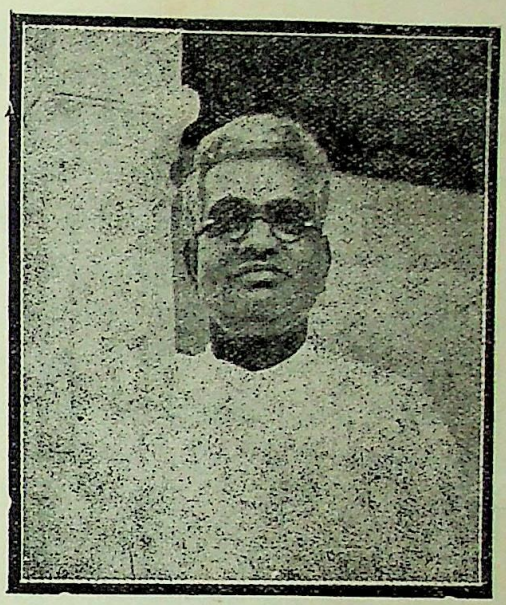

स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी

पढ़ने का तो उन्हें इतना शौक़ था कि यदि कभी पढ़ने के लिए कोई पुस्तक न मिलती तो जो कुछ भी मिल जाता उसे ही आद्योपान्त पढ़ने लगते थे। इन पंक्तियों के लेखक ने एक बार आचार्य जी को अन्य पुस्तक के अभाव में रेलवे-टाइम-टेबुल का ही स्वाध्याय करते हुए देखा है।

बात बहुत बरसों की है। मेरी आयु तब १० या ११ वर्ष की रही होगी। स्वर्गीय आचार्य जी आर्य-समाज के झगड़े को निपटाने के लिए लेखक की जन्म-भूमि अलीपुर ग्राम पधारे। चार-पाँच रोज़ तक वे वहाँ ठहरे। लेखक को उन दिनों की एक घटना अब तक याद है। ग्राम की दो अच्छी लाइब्रेरियों की सब पुस्तकें जिनमें स्वामी दयानन्द का वेद-भाष्य भी शामिल है, आचार्य जी ने तीन दिनों में समाप्त कर दीं। उनके पढ़ने के लिए आख़िरकार एक अच्छे वकील के निजी पुस्तकालय से क़ानून की पुस्तकें प्रस्तुत की गईं। २० साल पुरानी यात्रा में अलीपुर के जिन सज्जनों से आचार्य जी का साधारण परिचय हुआ था उनका नाम लेकर लेखक के ग्राम अलीपुर की चर्चा उन्होंने देहरादून में अनेक बार की, जिससे उनकी स्मरण-शक्ति का परिचय मिलता है।

साधारण-सी घटना का भी दिन, तारीख़, समय और कैफ़ियत उन्हें भूलती न थी। भूलने की आदत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी न थी सिवा एक अपवाद के और वह अपना शरीर। जूता पहना है कि नहीं, हजामत बनवाई है अथवा नहीं, रोटी खाई है कि नहीं, कमीज़ फट तो नहीं रही है, टोपी उलटी तो नहीं धर ली, यह सब उन्हें कभी याद नहीं आया।

शास्त्रों में सर्वमेध-यज्ञ का ज़िक्र है, जिसमें सर्वस्व की आहुति देनी पड़ती है। शास्त्रों में ही यह भी लिखा है कि पुत्रैषणा-वित्तैषणा-लोकैषणा इन तीन एषणाओं से उठ कर मनुष्य ब्रह्म-निर्वाण प्राप्त करता है। ब्रह्म-निर्वाण का यहाँ अर्थ है--जनता जनार्दन के लिए निर्वाण।

आचार्य रामदेव जी ने शास्त्र की उक्त दोनों बातों को प्रत्यक्ष कर दिखाया है। मृत्यु के समय उनके पास अपनी कहलाने के लिए एक इंच भी ज़मीन न थी और न किसी बैंक में उनका एक पैसा जमा था। यह ठीक है कि आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें कभी चिन्ता नहीं करनी पड़ी, तो भी धन के लिए लोलुप होकर उन्होंने जीवन का एक भी क्षण व्यर्थ नहीं गँवाया। एक निःस्पृह ब्राह्मण का आदर्श उनकी जीवनी में स्पष्ट दीखता है। यदि वे चाहते तो अपने साथियों की तरह लौकिक दृष्टि के उच्च पद प्राप्त कर सकते थे। परन्तु वे इतना ही करने के लिए नहीं आये थे।

× × ×

सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करने की प्रवृत्ति तो उनमें बहुत छोटी आयु से ही थी। १५ वर्ष की ही आयु में मैट्रिक पास करके वे डी० ए० वी० कालेज (लाहौर) में प्रविष्ट हुए। कालेज में पढ़ते हुए भी वे सार्वजनिक कामों में भाग लेते थे। वेद-प्रचार के लिए चन्दा करने के कारण ही उनको डी० ए० वी० कालेज से पृथक् होना पड़ा, क्योंकि कालेज के तात्कालिक प्रिंसिपल स्वर्गीय महात्मा हंसराज को यह कार्य पसन्द न था, और विद्यार्थी रामदेव प्रचार के लिए चन्दा करने के कार्य को छोड़ने को तैयार न था। रामदेव विद्यार्थी कालेज छोड़ते ही अपनी योग्यता के कारण एफ़० ए० भर पास करने पर भी जालन्धर हाई स्कूल का हेडमास्टर बना दिया गया और यह कार्य करते करते उसने बी० ए० भी पास किया, और इन्सपेक्टर ने योग्यता से प्रसन्न होकर हेडमास्टर रामदेव जी को ट्रेनिंग के लिए छात्रवृत्ति देकर लाहौर भिजवाया। हाई-स्कूल की हेडमास्टरी करते हुए भी मास्टर रामदेव जी (तब आचार्य जी इसी नाम से पुकारे जाते थे) सार्वजनिक जीवन से विशेष दिलचस्पी लेते थे। इन्हीं दिनों उन्होंने 'एक आर्य-भातृ-सभा' नामक संस्था बनाई थी। संस्था के नियमों में एक नियम यह भी था कि सदस्यगण साप्ताहिक सत्संग में सपरिवार आया करें और सदस्यों की स्त्रियाँ पर्दा न करें। पर्दा न करना उन दिनों बहुत बड़ी सामाजिक क्रांति समझी जाती थी। पर्दे से स्वर्गीय आचार्य जी को विशेष घृणा थी। उन्होंने यह प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि "किसी ऐसे विवाह में वर-वधू को आशीर्वाद न दूँगा जिसमें विवाह-संस्कार के समय पर्दा किया गया हो।" वे अपने कई मित्रों के सम्बन्ध में कहा करते थे कि 'उनकी घरवालियों का घूँघट उन्होंने अपने हाथों उतारा है।' मित्रता के नाते इतना वे अपना अधिकार समझते थे।

× × ×

आचार्य रामदेव जी के काम इतने व्यापक और सुदृढ़ हैं, जिनके जीवित रहते उनको भी जीवित कहा जायगा। गुरुकुल (काँगड़ी) को स्वामी श्रद्धानन्द जी के बाद मज़बूत बनाने का श्रेय उन्हीं को ही है।

दक्षिण-अफ़्रीका से वे गुरुकुल के लिए एक लाख रुपया संग्रह करके लाये थे। उसके लिए प्रतिवर्ष हज़ारों रुपये एकत्र करना उनका ही काम था।

गुरुकुल (काँगड़ी) को सुदृढ़ बनाकर और अपने सुयोग्य शिष्यों को सौंपकर वे कन्या-गुरुकुल (देहरादून) के लिए जुट पड़े। कन्या-गुरुकुल आज से १६ वर्ष पूर्व दिल्ली में खोला गया था। सेठ रघुमल जी की १ लाख रुपये की प्रतिज्ञा के प्राप्त होते ही दिल्ली में यह संस्था सन् १९२३ में खोली गई। दुर्भाग्यवश सेठ रघुमल जी का अचानक देहान्त हो गया और उक्त धन नहीं मिल सका। शास्त्रों में कहा है--'सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चिज्जगतीतले।' भूतल पर जो भी धन है वह ब्राह्मण की ही सम्पत्ति है। उन्होंने ब्राह्मण-वृत्ति से शास्त्र के इस वाक्य को चरितार्थ कर दिखाया। स्वयं ग़रीब बनकर आचार्य जी ने अमीरों की सम्पत्ति को अपनी ओर आकर्षित किया। उन्हीं की तपस्या और परिश्रम का ही फल है कि गुरुकुल (काँगड़ी) और कन्या-गुरुकुल की लाखों रुपये की सम्पत्ति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद में कन्या-गुरुकुल दिल्ली से देहरादून लाया गया। बीमारी की हालत में भी उनको कन्या-गुरुकुल की चिन्ता रहती थी। पिछले दिनों जब शिमला से लौटते हुए महात्मा गांधी दिल्ली में रुके थे तब आचार्य जी उस हालत में भी महात्मा जी से मिले और मिलते ही उन्होंने कन्या-गुरुकुल के सम्बन्ध में चिन्ता प्रकट की। वस्तुतः उनमें यह विशेषता थी कि किसी कार्य को स्वावलम्बी बनाये बिना वे उसकी चिन्ता से किसी क्षण भी मुक्त नहीं होते थे। कन्या-गुरुकुल को बनाने में उन्हें कुमारी विद्यावती सेठ बी० ए० का अनुपम सहयोग मिला। श्री विद्यावती जी संस्था की जन्म से ही आचार्या हैं। यदि विद्यावती जी कन्या-गुरुकुल की जननी हैं तो वे संस्था के कुल-पिता थे। कन्या-गुरुकुल में सब उन्हें 'पिता जी' ही सम्बोधित करते थे। कन्या-गुरुकुल को वे जिस प्रकार का बनाना चाहते थे वैसा उसके बनने से पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गई। महात्मा गांधी जी के शब्दों में आचार्य जी की वास्तविक स्मृति कन्या-गुरुकुल देहरादून ही है। यदि देश की जनता कन्या-गुरुकुल (देहरादून) की आचार्या विद्यावती सेठ को आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्त कर दे तो यह संस्था अमर बनकर उनको अमर रख सकती है।

× × ×

लिखने और बोलने की शक्ति समान रूप से बहुत कम व्यक्तियों में मिलती है। स्वर्गीय आचार्य जी में इन दोनों का समन्वय था। तीन भागों में विभक्त भारत का जो इतिहास उन्होंने लिखा है वह ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी में मौलिक और सर्वोत्कृष्ट रचना है। आर्य-समाज के नेता होते हुए भी 'पुराणमत पर्यालोचन, नामक बृहत् ग्रन्थ के द्वारा पुराणों के उत्कृष्ट अंशों को उन्होंने जनता के समक्ष रखकर सनातन-धर्मी जनता का महान् उपकार किया है।

इन पंक्तियों के लेखक को उनके साथ रहते हुए बातचीत में उनकी विशाल हृदयता का जिसमें हिन्दू-मुसलमान का कोई भेद नहीं, परिचय मिला है। वस्तुतः वे बहुत उदार महामना व्यक्ति थे। २० वर्षों तक अँगरेजी में 'वैदिक मैगजीन' पत्रिका का सम्पादन करके उन्होंने अँगरेजी-भाषा-भाषियों तक वैदिक धर्म का जो सन्देश सुनाया है वह आदर्श है। 'वैदिक मैगजीन' अपने समय की उत्कृष्ट पत्रिका थी। महात्मा गांधी, दीनबन्धु ऐंड्रूज, कवीन्द्र रवीन्द्र, योगी अरविन्द तथा अनेक योरपीय विद्वान् उसके लेखकों में थे। बेल्जियम की राजकुमारी कारावा और महात्मा टालस्टाय जैसे व्यक्तियों के साथ व्यक्तिगत परिचय इसी पत्रिका के द्वारा ही उनका हुआ। विकासवाद पर एक आलोचनात्मक बृहत् अप्रकाशित ग्रन्थ वे छोड़ गये हैं, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा। अपने ढंग का वह अँगरेजी में एक नया ही ग्रन्थ होगा।

बचपन में हमें व्याख्यान सुनने का बहुत शौक़ था और 'जो व्याख्यान अच्छा दे सकता है वही बड़ा आदमी है' ऐसी हमारी धारणा थी। व्याख्यान देनेवालों को नम्बर देना ही हमारा काम था। जिसके व्याख्यान में सबसे अधिक तालियाँ पिटें वही सबसे अच्छा व्याख्याता माना जाता। इस प्रकार हमने तो आचार्य जी को शत-प्रतिशत नम्बर बचपन में दिये थे। वस्तुतः व्याख्यान देने की उनकी अपनी शैली थी, जिसका अनुसरण मेरे जैसे सैकड़ों व्यक्तियों ने किया है।

आचार्य जी में एक विशेषता यह भी थी कि वे जो कुछ कहते थे, उसे स्वयम् करते थे। उन्होंने अपने दोनों लड़कों को गुरुकुल का स्नातक बनाया है। लड़कियों में से उनकी तीन लड़कियाँ स्नातिका हैं। बड़ी दो लड़कियाँ जब पढ़ने के योग्य थीं तब कन्या-गुरुकुल की स्थापना ही नहीं हुई थी। पक्के आर्यसमाजी होने के साथ वे पक्के राष्ट्रवादी भी थे। सन् ३० में सत्याग्रह के दिनों में वे पंजाब प्रान्तीय राजनैतिक कान्फ्रेंस के अध्यक्ष बनाये गये थे। फलतः २½ वर्ष के लिए वे जेल भेजे गये थे। उनका विचार था कि समस्त आर्यसमाजियों को कांग्रेस में भाग लेना चाहिए। गुरुकुल (काँगड़ी) को राष्ट्रीय संस्था बनाये रखने के लिए उन्होंने स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी का अनुसरण करते हुए सरकारी सहायता लेने से इनकार कर दिया।

आचार्य जी के निकट सम्पर्क में जो भी आया उसने उनको महान् पुरुष पाया। सहृदयता, दाक्षिण्य और आकर्षण उनके सहज गुण थे। वे अपने पीछे विधवा पत्नी, दो पुत्र (श्री यशपाल सिद्धान्तालङ्कार और श्री सत्य-भूषण योगी वेदालङ्कार) ५ पुत्रियाँ (जिनमें से ४ विवाहिता और एक कुमारी स्नातिका है) छोड़ गये हैं। उनकी सेवाओं को राष्ट्र भूल नहीं सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुओं के लिए जीवन और मृत्यु का प्रश्न

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

ज्ञानिकों ने सजीव प्राणी के जो लक्षण माने हैं उनमें प्रधान लक्षण यह है कि सजीव जन्तु भोजन को पचाकर अपने शरीर का अंग बना लेता और बाह्य सुख-दुःख का अनुभव करता है। जब किसी जन्तु में भोजन को पचाकर हाड़-मांस में परिणत करने की शक्ति नहीं रह जाती और वह बाह्य सुख-दुःख का अनुभव करने में असमर्थ हो जाता है तब हम उसे मृत कहते हैं। जो बात व्यक्ति की है वही समाज की है। जो समाज दूसरे लोगों को अपने में पचा नहीं सकता, जो अपने दुःख-सुख के प्रति उदासीन है, वह अधिक काल तक संसार में जीता नहीं रह सकता। उसका दिन पर दिन क्षीण होकर नष्ट हो जाना अवश्यम्भावी है। इस लक्षण की कसौटी पर जब हम हिन्दू-समाज को परख कर देखते हैं तब हमें घोर निराशा होती है। हिन्दुओं की संख्या दिन पर दिन कम होती जा रही है। उनके इस भीषण ह्रास को रोकने का यत्न आर्यसमाज एवं सिक्ख-पंथ ने किया था, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। उनकी विफलता का कारण क्या है, इस पर विचार करने की आवश्यकता है।

सिक्खों और आर्यसमाजियों ने 'शुद्धि'-द्वारा ईसाई और मुसलमानों को पुनः हिन्दू-समाज में लाने की प्रथा चलाई थी। उनके प्रयत्न से कुछ विधर्मी हिन्दू बने भी थे। परन्तु हिन्दू-समाज की सदोष रचना के कारण वे बहुत दिन तक उसमें न रह सके। धीरे धीरे वे, लगभग सबके सब, जहाँ से आये थे, पुनः वहीं लौट गये। आज हम उनमें से सौ पीछे दो को भी अपने में नहीं पाते। आगे मैं कतिपय सत्य घटनायें देता हूँ जिनसे हिन्दुओं के इस ह्रास के मूल-कारण पर कुछ प्रकाश पड़ेगा।

(१)

कुछ वर्ष की बात है डसका (पंजाब) के निकटवर्ती एक गाँव का निवासी परशुराम नामक एक ब्राह्मण मुसलमान हो गया। कुछ काल के उपरान्त लाहौर की (बच्छोवाली) आर्यसमाज ने उसका मुण्डन करके उसे पुनः आर्य बना लिया। उसकी दो कन्यायें थीं। वे कन्या-महाविद्यालय, जालन्धर, में भरती करा दी गईं। परशुराम भी वैदिक पाठशाला, गुजराँवाला, में शिक्षा पाने लगा। परन्तु उसकी स्त्री के सँभालने का कोई प्रबन्ध न हो सका। उसके लिए किसी हिन्दू मुहल्ले में जगह न मिल सकी, जहाँ आर्य-समाजी अथवा हिन्दू स्त्रियाँ उसका स्वागत करनेवाली हों। उसको आर्य-समाज-मन्दिर के निकट एक मुस्लिम मुहल्ले में मकान लेकर दिया गया। परशुराम पाठशाला में पाँच-छः घंटे पढ़कर रात्रि को घर आता था। परन्तु उसकी स्त्री की शिक्षा-दीक्षा का कोई प्रबन्ध न था। एक दिन उसकी स्त्री गुरुकुल, गुजराँवाला, में गई। वहाँ उसे काँसे के बर्तन में पानी न दिया गया। उससे दुराव किया गया। इस बीच में उसका लड़का मर गया। उसके साथ समवेदना प्रकट करने के लिए मुहल्ले की मुसलमान स्त्रियाँ तो आईं, परन्तु कोई आर्यसमाजी अथवा हिन्दू स्त्री उसके पास तक न फटकी। इससे उसे बहुत रंज हुआ। उन्हीं दिनों उसके बच्चा होनेवाला था। आर्यसमाजी और हिन्दू स्त्रियों का ऐसा दुर्व्यवहार देखकर वह पति से बोली—"तुम यदि हिन्दू रहना चाहते हो तो बेशक रहो, परन्तु मैं तो हिन्दू रहकर अपनी मिट्टी खराब नहीं कराना चाहती।" परशुराम ने विवश होकर अपनी दोनों लड़कियों को कन्या-महाविद्यालय, जालन्धर, से बुला लिया और अपने गाँव में जाकर पुनः मुसलमान हो गया।

इसमें सन्देह नहीं कि अब छूत-छात और जात-पाँत का उतना ज़ोर नहीं, परन्तु यह बात बड़े नगरों और ऊँची श्रेणी के लोगों तक ही सीमित है। गाँवों में तो अब तक भी वैसी ही छूत-छात और जात-पाँत है।

(२)

शेखूपुरा-ज़िले के अन्तर्गत शाहकोट नामक स्थान के निकट चक नम्बर १८२ नाम का एक छोटा-सा गाँव है। वहाँ मुहम्मद लक्खा नाम का एक सम्पन्न मुसलमान रहता था। वह अपने मित्र आत्मासिंह के उपदेश और संगति से सिक्ख बन गया। उसके दो लड़कियाँ और एक लड़का था। जब विवाह का समय आया तब उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इलाक़े का कोई हिन्दू उसकी लड़कियों को लेने के लिए तैयार न हुआ। परन्तु आत्मासिंह ने दौड़-धूप करके किसी दूसरे इलाक़े के दो हिन्दुओं के साथ उनका विवाह करा दिया। कुछ काल के बाद उसका लड़का भी विवाह-योग्य हुआ। अब उसने आत्मासिंह से उसके विवाह के लिए कहा। परन्तु लाख यत्न करने पर भी उसके लड़के के लिए हिन्दू अथवा सिक्ख लड़की न मिल सकी। आत्मासिंह के अपने परिवार में विवाह-योग्य लड़कियाँ थीं। मुहम्मद लक्खा ने उससे कहा कि उनमें से एक मेरे लड़के के लिए दे दो। परन्तु आत्मासिंह को साहस न हो सका। वह घबरा गया। इससे मुहम्मद लक्खा के हृदय पर बड़ी चोट लगी। उसने अपनी दोनों लड़कियाँ ससुराल से बुला लीं और सारे का सारा परिवार पुनः मुसलमान हो गया। मुहम्मद लक्खा का वह पुत्र जिसका मुसलमानी नाम शाह मुहम्मद है, आज-कल कहीं तहसीलदार है।

(३)

कुछ वर्ष की बात है, पेशावर में मुहम्मद असलम नाम का एक सभ्य पठान रहता था। एक आर्यसमाजी की संगति से उसे 'सत्यार्थ-प्रकाश' और 'कुलियाते आर्य मुसाफ़िर' प्रभृति पुस्तकें पढ़ने का शौक़ पैदा हो गया। उनके पाठ से उसका इस्लाम के बहुत-से सिद्धान्तों पर से विश्वास उठ गया। वह 'पुनर्जन्म' का विश्वासी हो गया और स्वर्ग में पहुँचने के लिए हज़रत मुहम्मद साहब की सिफ़ारिश आवश्यक है, इसे मानने से उसने इनकार कर दिया। उसकी स्त्री और साली भी सुपठिता थीं। वह उनके साथ भी इन विषयों पर बात-चीत किया करता था। इसलिए वे उसके बदलते हुए विचारों से अनभिज्ञ न थीं। धीरे धीरे उसके मस्तिष्क पर वैदिक विचारों ने पूर्ण रूप से अधिकार जमा लिया। पहले तो वह अपने विचारों को चिरकाल तक छिपाये रहा, परन्तु जब उसके लिए उनको गुप्त रखना असह्य जान पड़ा तब उसने पेशावर-आर्यसमाज के मंत्री महाशय से नियमपूर्वक 'शुद्धि' की प्रार्थना कर दी। मंत्री महाशय उसका 'शुद्ध' होने का विचार सुनकर तो प्रसन्न हुए, परन्तु पेशावर में रहकर उसको 'शुद्ध' करने का साहस न कर सके। उन्होंने उसे लाहौर जाकर 'शुद्धि' कराने को कहा। मुहम्मद असलम ने कहा, आप डरिए नहीं, यहाँ के पठानों के विरोध को मैं स्वयं सँभाल लूँगा, अन्त को मैं भी पठान हूँ; लाहौर में 'शुद्धि' कराने के बाद भी तो मुझे पेशावर में ही आकर रहना है। इस प्रकार डर-कर कैसे काम चलेगा? परन्तु मंत्री जी पेशावर में उसकी शुद्धि करने को तैयार न हो सके। विवश होकर मुहम्मद असलम लाहौर आने को सहमत हो गया।

अब उसने घर आकर अपनी स्त्री और साली से पूछा—यदि मैं इस मकान को रद्दी और अनुपयुक्त समझकर किसी दूसरे अच्छे मकान में चला जाऊँ तो क्या आप मेरे साथ वहाँ चलेंगी या इसे अपने बापा-दादा की सम्पत्ति समझकर यहीं रहना पसन्द करेंगी? स्त्रियों ने उत्तर दिया—जहाँ आप जायँगे, हम भी वहीं आपके साथ चलेंगी। तब उसने उनसे स्पष्ट कह दिया कि मेरा विश्वास इस्लाम पर से उठ चुका है और मैं आर्यसमाज में शुद्ध होने के लिए लाहौर जा रहा हूँ। यदि आप मेरे साथ रहना चाहती हैं तो लाहौर चलने की तैयारी कीजिए।

अब मुहम्मद असलम दोनों स्त्रियों-सहित लाहौर आ गया। आर्यसमाज-मन्दिर (कदाचित् अनारकली) में वे ठहराये गये और वहीं उन तीनों की 'शुद्धि' की गई। पेशावर-आर्यसमाज के मंत्री ने उससे कह रक्खा था कि शुद्धि के अनन्तर तुम कुछ महीने लाहौर में ही रहना, क्योंकि पेशावर में तुम्हारे आने से मुसलमानों के गड़बड़ करने की आशंका है। इसलिए मुहम्मद असलम ने लाहौर के आर्य-समाजियों से कहा कि आप मुझे यहाँ कोई काम ढूँढ़ दीजिए, जिससे मेरा निर्वाह हो सके। आर्य-समाजियों ने कहा, बहुत अच्छा। परन्तु आठ दिन बीत गये, दस दिन बीत गये, पन्द्रह दिन बीत गये, किसी ने उसकी कुछ सहायता न की। इस बीच में वे दोनों स्त्रियाँ समाज-मन्दिर की एक छोटी-सी कोठरी में बैठी रहतीं, आर्यसमाजी स्त्रियाँ आतीं, दूर से उनको देखतीं, और आपस में इशारों से बातें करतीं कि ये दो पठानियाँ हैं जो 'शुद्ध' हुई हैं। परन्तु कोई भी स्त्री उनके पास जाकर उनसे उनका दुःख-सुख न पूछती कि बहन, तुम्हें किसी वस्तु की आवश्यकता तो नहीं। किसी ने उनको एक जून के भोजन तक के लिए भी अपने यहाँ निमंत्रण न दिया। इस नवीन धर्म में आते ही अपना इतना कड़ा सामाजिक बहिष्कार देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उस छोटी-सी कोठरी में अकेली बैठे बैठे वे तंग आ गईं। उन्होंने मुहम्मद असलम से साफ़ कह दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि तुम्हारी इच्छा हो तो बेशक रहो, परन्तु हम तो ऐसे धर्म में अब एक दिन भी नहीं रह सकतीं। बस, उन तीनों ने बोरिया-बँधना उठाया और रेल का टिकट लेकर सीधे पेशावर आ पहुँचे। उनके सम्बन्धियों ने पूछा कि इतने दिन कहाँ रहे? तब मुहम्मद असलम ने उत्तर दिया—मेरी साली बीमार थी, चिकित्सा के लिए उसे लाहौर ले गया था। इस प्रकार वह परिवार पुनः मुसलमानों में लौट गया।

इसके विपरीत नव-मुस्लिमों के साथ मुसलमानों का व्यवहार देखिए। अभी तीन-चार वर्ष की बात है। लाहौर के निकटवर्ती देहात में बहुत-से बाज़ीगर मुसलमान हो गये थे। उन लोगों को हिन्दू रहते हुए सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि घूमते-फिरते जब भी ये किसी गाँव में जाते थे तब वहाँ के हिन्दू और मुसलमान उनको कुएँ से पानी न भरने देते थे। कुछ हिन्दुओं ने रावी के तट पर उनकी एक छोटी-सी बस्ती बसाकर उनके लिए वहाँ कुआँ खुदवा दिया था। परन्तु बाज़ीगरों का काम ऐसा है कि उन्हें महीनों एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते फिरना पड़ता है। ऐसी दशा में जब तक सब कहीं उनके लिए हिन्दुओं के कुएँ खुले न हों, वे अपने पेट का पालन नहीं कर सकते। जब वे लोग हिन्दू-समाज के इस अत्याचार से तंग आकर मुसलमान हो गये तब उनके लिए सब कहीं कुएँ खुल गये। देहाती मुसलमानों ने उनका खुले हृदय से स्वागत किया। प्रत्येक मुस्लिम परिवार ने उनको काँसे का एक एक बर्तन, एक एक वस्त्र और यथाशक्ति अन्न दिया। कई दिन तक उनको भोजन के लिए निमन्त्रण आते रहे। मुसलमान स्त्रियाँ बाज़ीगर स्त्रियों से आ आकर कहती थीं—बहनो, अल्लाह ने तुमको ईमान का नूर बख्शा है; तुम अब दोज़ख की आग से बच गई हो; अब तुम सीधी बिहिश्त में जाओगी।

(४)

उज्जैन में एक महाशय हैं। कदाचित् किसी मिल के मैनेजर हैं। जन्म से मुसलमान होने और इस्लामी नाम रखने पर भी वे विश्वास से आर्य-समाजी हैं। गत बीस-पच्चीस वर्ष से वे अपने खर्च पर आर्य-समाज का वार्षिकोत्सव कराते हैं। अपनी लड़की शान्ता उन्होंने कन्या-महाविद्यालय, जालन्धर, में और लड़के काशी-विश्व-विद्यालय में पढ़ाये हैं। इतने पक्के आर्य-समाजी को जब सन्तान की ब्याह-शादी का अवसर आया तब हिन्दुओं में न लड़कियाँ मिल सकीं और न लड़का। सुना है, विवश होकर उन्हें लड़कों का विवाह मुसलमानों में करना पड़ा है। लड़की ने डाक्टर बन जाने पर भी अभी तक विवाह नहीं किया है।

(५)

ज्वालापुर (हरिद्वार) में, कुछ वर्ष की बात है, एक मौलवी साहब और आर्य-समाज के उपदेशक श्री मुरारीलाल जी का वाद-विवाद हुआ था। मौलवी महाशय इस्लाम को सर्वोत्तम धर्म बताते थे और मुरारीलाल जी वैदिक धर्म को। मौलवी साहब उपदेशक महाशय की युक्तियों की ताब न ला सके। जनता में उन पर ताली पिट गई। तब मौलवी साहब ने अपना अमोघ अस्त्र निकाला। उन्होंने कहा, पण्डित महाशय, आप कहते हैं, वैदिक धर्म सच्चा है और मैं कहता हूँ इस्लाम। लीजिए इसका निर्णय अभी हो जाता है। मैं वैदिक धर्म को अच्छा समझकर इस्लाम को छोड़ता हूँ। मेरे लड़कियाँ हैं और लड़का भी। मेरे लड़के को आप अपनी लड़की दीजिए और मेरी लड़कियों के लिए योग्य हिन्दू वर ढूँढ़ दीजिए। मैं विवाह करने को तैयार हूँ। बोलिए आप तैयार हैं? उपदेशक महाशय पर मौलवी साहब का अस्त्र काम कर गया। वे सन्न-से रह गये। पाँच मिनट तक उनसे कुछ भी उत्तर न बन पड़ा। तब मौलवी साहब ने ललकार कर कहा—पण्डित महाशय, क्या इसी बिरते पर वैदिक धर्म को सच्चा और सर्वोत्तम कह रहे थे? आप आइए इस्लाम में। आप अपनी लड़की भी न दीजिए, मेरी लड़की आपके लड़के के लिए हाज़िर है।

बस, उपदेशक महाशय की सारी विजय एक क्षण में पराजय में परिणत हो गई।

(६)

जिस वर्ष मौलाना शौकतअली और मुहम्मदअली की माता का देहान्त हुआ उसी वर्ष की बात है। श्री भाई परमानन्द जी मौलाना के पास समवेदना प्रकट करने गये थे। उस समय बात-चीत में मौलाना मुहम्मदअली ने श्री भाई जी से कहा था कि आप लोग व्यर्थ ही शुद्धि और अछूतोद्धार का रोड़ा अटकाकर इस्लाम की प्रगति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को रोकना चाहते हैं। इसमें आपको कभी सफलता नहीं हो सकती। भाई जी ने पूछा, क्यों। मौलाना ने उत्तर दिया—देखिए, यह भंगिन जा रही है। मैं इसे मुसलमान बनाकर आज ही बेगम मुहम्मदअली बना सकता हूँ। क्या आपमें या मालवीय जी में यह साहस है? मैं किसी हिन्दू को मुसलमान बनाकर आज ही अपनी लड़की दे सकता हूँ। क्या कोई हिन्दू-नेता ऐसा कर सकता है? यदि नहीं कर सकता तो फिर आप शुद्धि और अछूतोद्धार का ढोंग रचकर इस्लाम के मार्ग में रोड़ा क्यों अटका रहे हैं?

(७)

कुछ वर्ष की बात है, दरियाख़ाँ (सीमा-प्रान्त) में एक व्यक्ति मिला। लोगों ने उसकी ओर संकेत करके कहा कि यह पहले हिन्दू था, कुछ ही वर्ष से मुसलमान हुआ है। मेरे मित्र श्री भूमानन्दजी ने उससे पूछा, क्यों भाई, तुम मुसलमान क्यों हो गये हो? वह हंसने लगा। दुबारा पूछने पर उसने अपनी आत्म-कथा इस प्रकार सुनाई—

मेरा नाम परमानन्द था। हम दो भाई थे। एक छोटे-से गाँव में हमारी दूकान थी। मैंने बहुत यत्न किया कि किसी प्रकार मेरा विवाह हो जाय। परन्तु हो न सका। कारण यह कि इस प्रदेश में हिन्दुओं की जन-संख्या बहुत कम है। यहाँ लड़कीवाले बहुत-सा धन लेकर लड़की देते हैं। मेरे पास इतना धन नहीं था। यदि धन न हो तो फिर बट्टा देकर विवाह होता है। अर्थात् मेरे ताऊ, चचा या मौसी, फूफी की कोई लड़की हो, मैं वह किसी दूसरे को दूँ तो वह अपने किसी सम्बन्धी की लड़की मुझे दिलायेगा। मेरे पास ऐसी कोई लड़की भी न थी। प्रतीक्षा करते करते मैं ३५–३६ वर्ष का हो गया। उस गाँव के मुसलमान मुझे बार-बार ताने से कहते—ओ परमे, तू बिनब्याहा ही इस संसार से चल देगा; इस जन्म में तेरा विवाह न हो सकेगा। अरे छोड़ इस हिन्दू-धर्म को जो तेरा घर भी नहीं बसा सकता। आ, क़लमा पढ़कर मुसलमान बन। कल ही तेरा विवाह हो जायगा। मैं मन में कहता, स्त्री के लिए धर्म जैसी अमोल वस्तु का छोड़ना ठीक नहीं। इसलिए मैंने कभी उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया।

जब मेरा यौवन ढलने लगा तब मैंने अपने विवाह का विचार छोड़कर अपने छोटे भाई के विवाह के लिए यत्न करना आरम्भ किया। मैंने सोचा, यदि छोटे भाई का विवाह हो जायगा तो दोनों भाइयों को दोनों समय पकी-पकाई रोटी तो मिलने लगेगी, रोटी के लिए हाथ तो नहीं जलाने पड़ा करेंगे। परन्तु भाई का विवाह भी न हो सका। तब मुझे बड़ी निराशा और दुःख हुआ। अब मैं अपनी उस दुरवस्था को और न सहन कर सका। हम दोनों भाई मसजिद में जाकर मुसलमान हो गये। दूसरे ही दिन हम दोनों का विवाह हो गया। हमें साले, सालियाँ, सास-ससुर मिल गये। पहले हम अकेले थे, अब हम बन्धु-बान्धओंवाले हो गये। दुर्भाग्य से एक ही वर्ष के भीतर मेरी स्त्री का देहान्त हो गया। इससे मुझे बहुत शोक और चिन्ता हुई। मुझे उदास और चिन्तातुर देख मेरे ससुर ने कहा, तुम चिन्ता क्यों करते हो। मैं पुनः तुम्हारा विवाह कर दूंगा। उसने कुछ ही दिन में अपने एक सम्बन्धी की युवती कन्या मुझे ला दी। अब हम सब बड़े आनन्द से रहते हैं। हिन्दू रहने से शायद मरने के बाद मुझे स्वर्ग मिल जाता, परन्तु जीते जी तो मैं नरक भोग रहा था। इस्लाम में आकर मैं जीवन का आनन्द ले रहा हूँ, मरने के बाद जो कुछ होगा, देख लिया जायगा।

× × ×

उपरिलिखित घटनाओं को पढ़कर किस हिन्दू के हृदय पर चोट न लगेगी, कौन हिन्दू न चाहेगा कि हमारे समाज में भी विधर्मियों को पचाने की शक्ति हो? परन्तु विचारपूर्वक देखने से पता लगेगा कि हिन्दू चाहें भी तो भी वे विधर्मियों को आत्मसात नहीं कर सकते। इसका कारण उनकी सदोष समाज-रचना है। ऊँच-नीच-मूलक वर्ण-व्यवस्था को मानते हुए हम किसी भी अहिन्दू को हिन्दू नहीं बना सकते। जाति-भेद के कारण प्रत्येक हिन्दू अपनी ही जाति के संकीर्ण क्षेत्र के भीतर ब्याह-शादी करता है। जो पठान, मुग़ल, अँगरेज़, यहूदी हिन्दू बनना चाहेगा, हिन्दुओं की कोई भी जाति उसे अपने में लेने को तैयार न होगी। इसलिए वह हिन्दू-समाज में न रह सकेगा। भीलों, गोंडों और कोलों को भारत में रहते सहस्रों वर्ष हो गये। परन्तु हिन्दू उन्हें अपने समाज का अंग न बना सके। वे आज तक भी जंगली अवस्था में ही हैं। जब तक ईसाई और मुसलमान इस देश में नहीं आये थे तब तक इन भील-गोंडों की ओर से हिन्दुओं को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई भय नहीं था। परन्तु जब से इस्लाम और ईसाई मत ने अपना जाल इन लोगों में फैलाना आरम्भ किया है तब से वही भील-गोंड हिन्दुओं के लिए भय का कारण बनने लगे हैं। जो इस्लाम सब मोमिनों को भाई समझता है उसका सामना जन्ममूलक ऊँच-नीचवाला हिन्दू कैसे कर सकता है ? किसी दूसरे व्यक्ति को अपने समाज का अंग बनाने के लिए उसके साथ रोटी-बेटी-व्यवहार का होना आवश्यक है। जिसके साथ आप खान-पान और ब्याह-शादी नहीं कर सकते वह कभी भी आपका हाड़-मांस नहीं बन सकता। महात्मा गांधी को भी आज स्वीकार करना पड़ा है कि हिन्दू बहुसंख्यक दीखने पर भी अगणित अल्प-संख्याओं का असंगठित समूह है; इसी लिए मुसलमान अल्पसंख्यक होने पर भी संगठित होने से उनसे मजबूत हैं। हिन्दू-समाज नारङ्गी की भाँति ऊपर से एक दीखने पर भी भीतर से उसकी फाँकों के सदृश पृथक्-पृथक् जातियाँ हैं। इन बहुसंख्यक जातियों और उपजातियों का, रोटी-बेटी-व्यवहार की दृष्टि से, आपस में उतना ही सम्बन्ध है, जितना चिड़िया-घर के पशु-पक्षियों का आपस में होता है।

इतना ही नहीं, इन जातियों और उपजातियों का आपस में ईर्ष्या-द्वेष भी बहुत है। इन्होंने एक-दूसरे के प्रति बड़ी बड़ी अपमान-सूचक कहावतें बना रक्खी हैं। यथा—

१. अकाल बाँगर से होत और बुरा ब्राह्मण से होत।

२. क्षत्रिय पुत्रम् कभी न मित्रम्, जब मित्रम् तब दगी-दगा।

३. जिसका बनिया यार, उसे दुश्मन क्या दरकार ?

४. सूत, सुनार, कुत्ते का, विश्वास न कीजे सोये का।

सदोष समाज-रचना के कारण ही आज हिन्दुओं में फूट का एकच्छत्र राज्य है, इसी के कारण आज अकेली दिल्ली की जामामसजिद में ही औसतन १६ हिन्दू प्रतिदिन मुसलमान और सारे भारत में प्रायः ३०० हिन्दू प्रतिदिन ईसाई होते हैं। जो जन्माभिमानी हिन्दू-संस्कृति और रक्त की पवित्रता के नाम पर वर्ण-भेद को बनाये रखना चाहते हैं उन्हें सोचना चाहिए कि यदि कोई हिन्दू ही नहीं रह जायगा तो फिर हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-धर्म की रक्षा कौन करेगा।

जब तक हिन्दू जाति-भेद को नहीं छोड़ते तब तक न केवल यही कि उनका आपस में संगठन होगा, बरन हिन्दू-मुस्लिम-फ़िसाद भी कभी बन्द न होंगे। इसका एक विशेष कारण है। समाज-शास्त्र का एक नियम है कि एक देश में रहनेवाले दो मनुष्य-समूह यदि आपस में खान-पान और ब्याह-शादी नहीं करते तो उनमें एक-दूसरे को ऊँच-नीच समझने का दूषित भाव अवश्य उत्पन्न हो जाता है, जिसका अनिवार्य परिणाम परस्पर का विद्वेष, ईर्ष्या और वैमनस्य होता है। जिन लोगों में आपस में खान-पान और ब्याह शादी होती है उनमें यदि लड़ाई-झगड़ा होता है तो वह कुछ काल के उपरान्त शान्त हो जाता है। भाई-भाई, स्त्री-पुरुष, हिन्दू-सिक्ख, अँगरेज़-जर्मन के झगड़े और फ़िसाद बरस, दो बरस, दस बरस रहकर अन्त को शान्त हो जाते हैं। कारण यह कि उनमें परस्पर खान-पान और ब्याह-शादी होता है। परन्तु ब्राह्मण के पूर्वजों ने जो कहार के पूर्वजों का अपमान किया था, हिन्दू राजपूतों ने मुसलमान राजपूतों के पूर्वजों को पुनः अपने में मिलाने से इनकार करके उनका जो तिरस्कार किया था, उसे वे आज तक नहीं भूल सके और न भूलेंगे ही। इसी लिए हिन्दू-मुसलमान का फ़िसाद अनन्तकाल तक नहीं बन्द हो सकता। जो हिन्दू भय, लालच या धोखे से पतित होकर मुसलमान बने थे उन्होंने उस समय बहुतेरा यत्न किया कि वे फिर हिन्दू बना लिये जायँ, परन्तु न तो हिन्दुओं ने उनको रोटी-बेटी-सम्बन्ध-द्वारा आत्मसात् करना स्वीकार किया और न उनका तिरस्कार करना ही छोड़ा। ऐसी दशा में मुसलमान देखते हैं कि यदि हमें भारत में स्वाभिमानपूर्वक जीना है तो उसके लिए एक ही उपाय है। वह यह कि जैसे भी हो, हम अपनी संख्या को उतना बढ़ा लें कि फिर ये बहुसंख्यावाले हिन्दू हमें कुचल न सकें, हमारे साथ अछूतों जैसा दुर्व्यवहार न कर सकें। उन्हें हर वक्त भय रहता है कि यदि हम अल्प-संख्या में रहे तो जो ब्राह्मण हिन्दू शूद्र के साथ भी समता और बन्धुता करने को तैयार नहीं वह हमारे विधर्मियों के साथ समता और बंधुता का व्यवहार कैसे कर सकता है। इसी लिए प्रत्येक मुसलमान—स्त्री-पुरुष, बच्चा-बूढ़ा—के हृदय में इस्लाम को बढ़ाने—हिन्दुओं को मुसलमान बनाने की चिन्ता सदा बनी रहती है। किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ैर-मुस्लिम को मुस्लिम बनाना प्रत्येक मुसलमान एक पुण्य कर्म समझता है। इसी लिए वह लड़की देकर और लड़की लेकर, दोनों तरह से, इस्लाम का प्रचार करने में संकोच नहीं करता। कारण यह कि इसमें उसकी आत्म-रक्षा है। मसजिद के सामने बाजा न बजाने, हिन्दी एवं वन्दे मातरम् का विरोध करने और बकराईद पर गौ का जुलूस निकालने का जो वह हठ करता है वह तो अपने भीतरी रोष को प्रकट करने का उसका केवल एक बहाना है। यदि हिन्दू और मुसलमानों के सामाजिक सम्बन्ध अच्छे हो जायँ तो मुसलमान कभी भी इस प्रकार हिन्दुओं को चिढ़ाने की कुचेष्टा न करें।

हिन्दू आपस में ही एक दूसरे को ऊँच-नीच समझकर एक-दूसरे का तिरस्कार करते हैं। एक ब्राह्मण अनुभव ही नहीं करता कि मैं शूद्र के हाथ का बना भोजन खाने से इनकार करके उसका बड़ा भारी अपमान करता हूँ। इसलिए मुसलमान की मनोवृत्ति और रोष का कारण उसकी समझ में ही नहीं आता। वह फ़िसादों का सारा दोष मुसलमानों को देता है। उधर इस्लाम "सब मोमिन भाई हैं" का उपदेश करता है। उसमें इस प्रकार की छूत-छात और ऊँच-नीच को कोई स्थान नहीं। इसलिए वह हिन्दुओं-द्वारा तिरस्कृत होना सहन नहीं कर सकता।

कांग्रेसवादी हिन्दू-मुसलमानों के दंगों का कारण रोटी का प्रश्न समझते हैं—इसलिए जिन प्रान्तों में उनकी संख्या ९–१० प्रतिशत से अधिक नहीं, वहाँ भी वे उनको ६०–७० प्रतिशत सरकारी नौकरियाँ देकर और हिन्दुओं के सामाजिक एवं धार्मिक स्वत्वों पर अनुचित प्रतिबन्ध लगाकर मुसलमानों को सन्तुष्ट करने का यत्न करते हैं। परन्तु रोग का निदान ग़लत होने से उसकी चिकित्सा भी ग़लत है। फलतः कांग्रेस की चेष्टा से हिन्दू-मुस्लिम-फ़िसाद घटने के बजाय सब कहीं बढ़े ही हैं। कांग्रेस को देखना चाहिए कि फ़िसाद करनेवाले मुसलमान किस श्रेणी के लोग होते हैं। हमने कभी किसी मुसलमान डाक्टर, जज, वकील, अध्यापक और व्यापारी को फ़िसाद करते नहीं देखा। दंगा करनेवाले लोग तो प्रायः कुँजड़े, तबेगर, लोहार, बढ़ई और मज़दूर आदि ही होते हैं, जिनको न सरकारी नौकरियों की और न असेम्बली की सीटों की कुछ खबर रहती है। उनके विषय में यह कभी नहीं कहा जा सकता कि वे रोटी के लिए लड़ते हैं। "इस्लाम खतरे में है" से उनका तात्पर्य यही होता है कि इस्लाम के फैलने में बाधा न पड़ने पाये।

जो लोग कहते हैं कि हिन्दुओं को संगठित करके उन्हें इसलिए मज़बूत करना चाहिए ताकि फिर मुसलमान उपद्रव न कर सकें। उन्हें सोचना चाहिए कि शिवाजी, प्रताप और गोविन्दसिंह से बढ़कर मुसलमानों का बहिष्कार करना उनके लिए इस समय सम्भव नहीं। सर विलियम हण्टर लिखते हैं कि अँगरेज़ों ने भारत का राज्य मुग़लों से नहीं, वरन दो हिन्दू-संघों—सिक्खों एवं मराठों—से लिया है। पंजाब सिक्खों के पास था और हिन्दुस्थान मराठों के पास। इस प्रकार यद्यपि हिन्दुओं ने राजनैतिक तौर पर इस्लाम को परास्त कर दिया था, तो भी सामाजिक तौर पर इस्लाम बराबर बढ़ता रहा। वह सिक्खों के राज्य में भी बढ़ा और मराठों के राज्य में भी। इस समय भी हैदराबाद-राज्य में मुसलमान शासक के अधीन इस्लाम बढ़ रहा है और नैपाल में हिन्दू राजा के अधीन भी। कारण यह कि इस्लाम की समाज-रचना समता और बन्धुता-मूलक होने से ऊँच-नीच-मूलक हिन्दू-समाज-रचना से श्रेष्ठ और सुदृढ़ है। हिन्दुओं को मज़बूत और संगठित बनाने के इच्छुक सज्जन अपने समाज के इस दोष को दूर करने का यत्न नहीं करते। वे यह नहीं सोचते कि जिस हिन्दूत्व की रक्षा की वे दुहाई देते हैं उसके साथ द्विज को तो प्रेम हो सकता है, पर शूद्र और अछूत उसकी रक्षा के लिए प्राण देने को क्यों उद्यत हों। वे तो समझते हैं कि चाहे किसी का राज्य हो, हम तो सदा भंगी और चमार ही बने रहेंगे, हम तो कभी द्विज नहीं बन सकेंगे। यदि हिन्दू वर्ण-भेद को मिटा दें तो जहाँ उनका परस्पर संगठन दृढ़ हो जाय, वहाँ मुसलमानों का वैर-विरोध भी शान्त हो जाय। लङ्का में बहुत-से बौद्ध ईसाई हो गये थे। परन्तु बौद्धों ने उनका सामाजिक बहिष्कार नहीं किया। वे उनके साथ पूर्ववत् खान-पान करते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ ही वर्षों में वे सब पुनः बौद्ध हो गये। यदि हिन्दू भी मुसलमानों से भेदभाव छोड़ दें और उनसे घनिष्ठता बढ़ायें तो दोनों दलों का परस्पर प्रेम बढ़ सकता है। परन्तु जाति-भेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को रखते हुए हिन्दुओं का न तो मुसलमानों से खान-पान करना सम्भव है और न हितकर ही। कारण यह कि हिन्दुओं को डर लगता है कि कहीं हम मुसलमान न हो जायँ, कहीं मुसलमान हमारी लड़कियाँ न ले जायँ। यदि जाति-भेद न हो तो जहाँ मुसलमान हिन्दुओं को पचा जाते हैं, वहाँ हिन्दू भी मुसलमानों को आत्मसात् कर सकते हैं। इससे दोनों जातियों का परस्पर भय और संदेह दूर हो जाय। मुसलमान यदि एक हिन्दू लड़की को ले जायँगे तो हिन्दू दस मुस्लिम लड़कियों को पचा लेंगे। आपस में विवाह-शादी भी होने लगे। जाति-भेद को रखते हुए मुसलमानों के साथ सामाजिक सम्बन्ध बढ़ाने में हिन्दुओं को भारी हानि होने का डर है। परन्तु जाति-भेद न रहने से फिर कुछ भी डर नहीं। दोनों जातियाँ भाई भाई की तरह मिल जायँगी। यदि हिन्दू-धर्म में कोई अच्छी और सुन्दर बात होगी तो मुसलमानों को उसे ग्रहण करने में कोई संकोच न होगा। इसी तरह मुसलमानों की समता और बन्धुता हिन्दुओं को लेने में लाभ ही रहेगा। मेरा विश्वास है कि यदि जाति-भेद का कोढ़ दूर हो जाय तो हिन्दू-धर्म इतना उत्तम और शान्तिदायक हो जाय कि संसार का कोई भी दूसरा धर्म इसके सामने नहीं ठहर सकता। इसे सभी लोग सहर्ष स्वीकार करने के लिए उद्यत हो जायँगे। इस समय हिन्दुओं का अपना सामाजिक दुर्व्यवहार ही मुसलमानों को उनसे मिलने नहीं देता। और इस दुर्व्यवहार का कारण उनका जाति-भेद है।

यदि हिन्दू मुसलमानों का सामाजिक बहिष्कार छोड़ दें तो जिस तरह आज मूर्तिपूजक, ईश्वरवादी, निरीश्वरवादी, पुर्नजन्म को माननेवाला और न माननेवाला सभी लोग हिन्दू हैं, वैसे ही रोज़ा, नमाज़ और क़ुरान को मानते हुए भी वे, धार्मिक अर्थों में न सही तो सामाजिक एवं राजनैतिक अर्थों में तो अवश्य हिन्दू ही कहलायेंगे। इँग्लेंड में लार्ड हेडले चाहे मुसलमान हो जाय और चाहे बौद्ध, वह ब्याह-शादी अँगरेज़ों के साथ ही करेगा; उसके बौद्ध या मुसलमान हो जाने से अँगरेज़ उसका सामाजिक बहिष्कार नहीं कर देते। मुसलमानों में यदि कुछ लोग गोमांस खाते हैं तो हिन्दुओं में भी बहुतेरे सूअर का मांस चट कर जाते हैं। मुझे तो विश्वास है कि यदि मुसलमानों का सामाजिक बहिष्कार हटा दिया जाय और जो बिछुड़ा भाई दुबारा हिन्दू-समाज में आना चाहे उसके साथ रोटी-बेटी के व्यवहार में कोई संकोच न हो तो मुसलमान गोहत्या अपने आप बन्द कर देंगे; नमाज़, रोज़ा और क़ुरान को मानते हुए भी वे भारत की सभ्यता, भाषा और संस्कृति को अपनायेंगे। इस समय वे हिन्दुओं के दुर्व्यवहार से चिढ़कर प्रत्येक राष्ट्रीय बात का विरोध करते हैं। विरोध के प्रकोप में वे क़ुरान की बात को भी नहीं सुनते। हिन्दुओं में यदि "हम एक दूसरे को मित्र की आँख से देखें" का प्रबल प्रवाह बहने लगे तो कोई शक्ति नहीं जो किसी विदेशी धर्म को भारत में खड़ा रख सके। कारण यह कि स्वयं क़ुरान इस बात की प्रतिज्ञा नहीं करता कि वह सारे संसार के लिए है। क़ुरान का अरबी रीति-रवाज और काबा की पूजा केवल अरब-निवासियों के लिए है। क़ुरान स्पष्ट शब्दों में कहता है कि अरबी रसूल और अरबी क़ुरान अरब के लिए आया है। प्रत्येक देश और जाति का अधिकार है कि उसको उपदेश और पुस्तक उसकी अपनी भाषा में आये।

"कोई जाति नहीं, कोई देश नहीं, जहाँ कि हमने नबी उस देश या जाति की बोली के साथ नहीं भेजा—" क़ुरान।

क़ुरान किसी देश या जाति में फूट नहीं डालना चाहता। रसूले अरबी हज़रत मुहम्मद साहब अरब को एकता के सूत्र में पिरोने आये थे। उन्होंने अपने देश को संगठित करने के लिए योरुशलम के काबे को छोड़कर मक्का को काबा बनाया था। वे कैसे पसन्द कर सकते हैं कि भारत के अधिवासी भारत के काबे का परित्याग और अरब के काबे का स्वीकार करके आपस में सिर-फुटौवल करें? हिन्दुओं के जाति-भेद ने मुसलमानों को भारत की संस्कृति और भाषा को अपनाने से रोक दिया है। आर्य-समाज का "शुद्धि" का ढोंग सफल नहीं हो सका। किसी मुसलमान को शुद्ध करके उसके हाथ से पानी पी लेने या लड्डू खा लेने से ही वह हिन्दू नहीं रह सकता, और न अछूत जातियाँ ईसाई और मुसलमान होने से बचाई जा सकती हैं। कितने 'धर्मपाल' और 'परशुराम' आर्य-समाज में आये और उनके आने पर तालियाँ बजीं। परन्तु अब वे ढूँढ़ने से भी कहीं नहीं मिलते। सुना है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छतारी के नवाब ने एक बार इच्छा प्रकट की थी कि मैं हिन्दू बनना चाहता हूँ; परन्तु शर्त यह है कि मेरी सामाजिक स्थिति का कोई ताल्लुक़दार अपनी लड़की मेरे लड़के को दे और मेरी लड़की के लिए भी वैसा ही कोई उचित वर दिया जाय। तब भी हिन्दू उनकी इच्छा को पूर्ण न कर सके।

जाति-भेद एक क्रमिक अछूतपन है, जिसके कारण सारा हिन्दू-समाज एक दूसरे के लिए अछूत है; अन्तर केवल अंश का है; कोई कम अछूत है और कोई ज़्यादा। इस जाति-भेद के कारण हिन्दू-समाज बालू की कणिकाओं का एक ढेर बन रहा है। इन कणिकाओं को एकता के सुदृढ़ सूत्र में बाँधनेवाला कोई सीमेन्ट नहीं। डाक्टर अम्बेदकर ने कुछ वर्ष हुए हिन्दू-महासभा से कहा था कि यदि आप अछूतों को अपने साथ रखना चाहते हैं तो कम-से-कम एक प्रस्ताव के रूप में यह स्पष्ट घोषणा कर दीजिए कि यह सभा वर्ण-भेद को स्वीकार नहीं करती; वर्ण-भेद को मिटाने का काम फिर सुविधा के अनुसार धीरे-धीरे होता रहेगा। परन्तु उस सभा को आज तक भी ऐसी घोषणा करने का साहस नहीं हुआ। वह महासभा चाहे घोषणा करे चाहे न करे, परन्तु एक बात निश्चित है कि यदि हिन्दुओं ने जाति-भेद को न मिटाया तो जाति-भेद हिन्दुओं को अवश्य मिटा देगा।

विपथगा

लेखक, श्रीयुत देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

चली विपथगा विप्लव करती, महानाश का बिगुल बजाती;
मानव का यह रक्त बहाकर, रणचण्डी का साज सजाती।
राजमहल के सपने टूटे, शाही शान बनी है रानी;
युद्ध-भूमि में महाप्रलय की चण्डी कहती आज कहानी।
मानव मानव को ही खाता, मूक बनी अब उसकी वाणी;
तोप बमों की अग्नि-शिखा में, जलती उसकी आज जवानी।
रण-चण्डी निज खप्पर भरकर आज नाचती है मुस्काती;
चली विपथगा विप्लव करती, महानाश का बिगुल बजाती॥
रूप-राशि का वैभव जलता, जलती पाप-पुण्य की धारा;
रण-दीवाने चले सजाते, काल-नदी का आज किनारा!
आज विकट विस्फोट बमों का, महानाश की आग जलाता;
देख धधकती मानवता यों, मृत्युञ्जय भी अब अकुलाता।
ज़हर उगलती रण-चण्डी पर, कहाँ तनिक भी अब सकुचाती;
चली विपथगा विप्लव करती, महानाश का बिगुल बजाती॥
निर्धनता के अभिशापों से, मानव भूख-भूख चिल्लाता;
श्वानों के तब आज उदर में, मानव-शोणित चला समाता।
बचपन, यौवन, जर्जरता सब, आज बने मरघट के वासी;
छाया जगती में सन्नाटा, दिग्दिगन्त में भरी उदासी।
मानव-शोणित-चन्दन से यह, आज विपथगा भाल सजाती;
चली विपथगा विप्लव करती, महानाश का बिगुल बजाती॥
शिव का ताण्डव नृत्य जगा फिर, आज हिमालय भी थर्राता;
महानाश की ज्वाला में जल, सागर रह रहकर हहराता।
ज़हरीले गैसों से भरकर, नील क्षितिज भी अब घुँधआता;
तिल-तिलकर यों काल-गाल में, जलता-बलता सभी समाता।
आज अयाचित अग्नि-शिखा यों, हँसती जगती को झुलसाती;
चली विपथगा विप्लव करती, महानाश का बिगुल बजाती॥
माया-ममता की बस्ती में, जलती मस्ती अब अकुलाती;
पाप-पुण्य की स्वर्ग नरक की, मानव-निधि भी जलती जाती।
अन्धकार की अविदित छाया, बनी दिवस में भी अधिवासी;
जीवन आज मरण से खेला, किन्तु विपथगा अब भी प्यासी।
काँप-काँपकर आज धरा भी, डगमग-डगमग हिल हिल जाती;
चली विपथगा विप्लव करती, महानाश का बिगुल बजाती॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

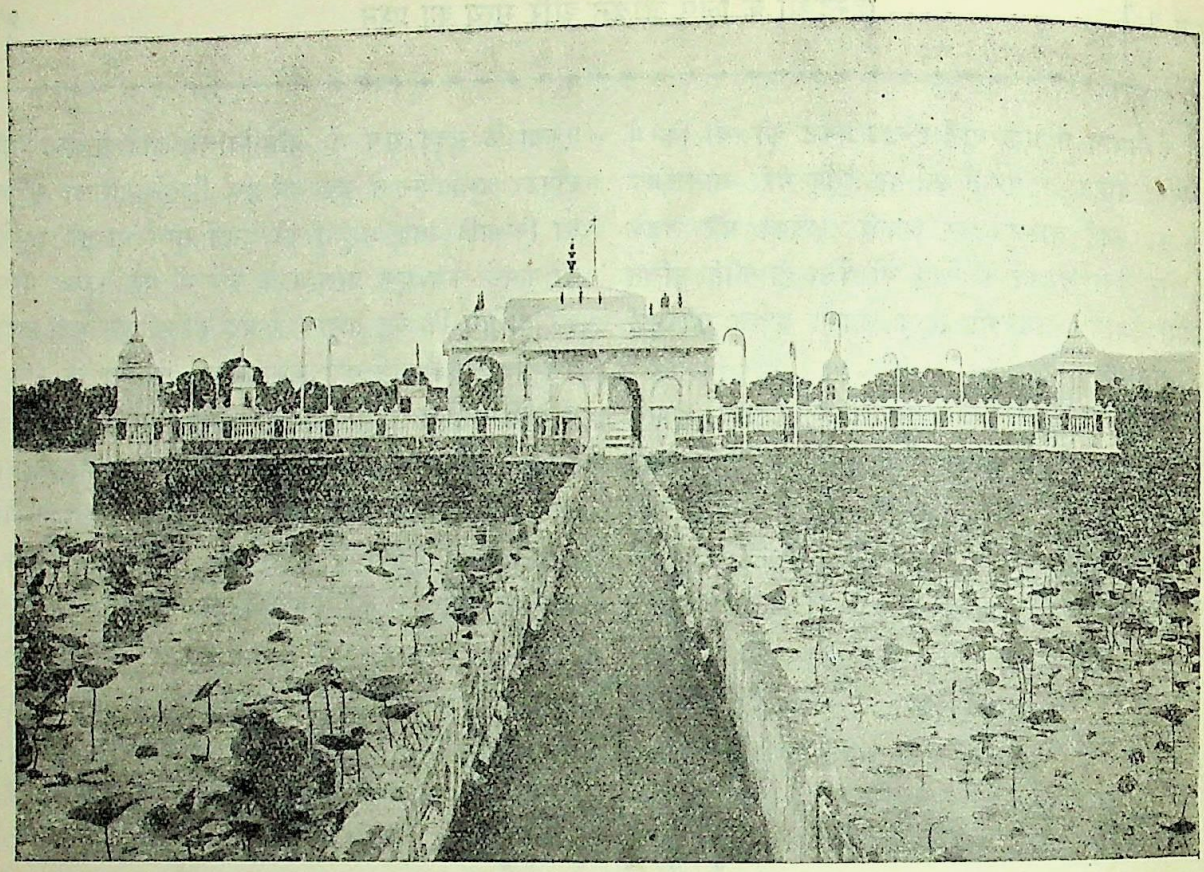

जल-मन्दिर के सामने का दृश्य

भगवान् महावीर की निर्वाण-भूमि पावापुरी

लेखक, श्रीयुत ब्योहार राजेन्द्रसिंह, एम० एल० ए०

"क्या तेरह वर्ष की प्रतीक्षा और बिहार-दर्शन का वादा अब भी पूरा न कीजिएगा?" रामगढ़-कांग्रेस को समीप देखकर मित्रवर बेनीमाधव अग्रवाल ने लिखा। अग्रवाल जी जबलपुर के ही निवासी हैं और गत १५ वर्ष से बिहार शरीफ़ के नालन्दा कालेज में इतिहास के अध्यापक हैं। इस आग्रह से रामगढ़ में कांग्रेस का निश्चय होते ही बिहार-दर्शन की मेरी छिपी हुई लालसा और भी तीव्र हो उठी। जनक, बुद्ध तथा महावीर के चरणों से अंकित बिहार की पवित्र भूमि के प्रति मेरा आकर्षण रामगढ़ से भी अधिक था। सच पूछिए तो रामगढ़ के प्रति भी इसी लिए था कि इससे बिहार के पवित्र स्थलों के दर्शन का अवसर मिलेगा। इन्द्रदेव की कृपा से कांग्रेस का कार्य एक दिन पहले ही समाप्त हो गया और हम लोगों को स्वागत के साथ ही साथ बिदाई भी दे दी गई। इसलिए कांग्रेस का कार्य समाप्त होते ही राजेन्द्र बाबू की आज्ञा का अक्षरशः पालन करते हुए जल्दी से जल्दी रामगढ़ से निकल भागा।

बिहार शरीफ़ पटना का एक सब-डिवीज़नल है और २६ हज़ार जन-संख्या का एक छोटा-सा सुन्दर नगर है। बख्तियारपुर राजगिरि-लाइट रेलवे पर पटना से ५८ मील की दूरी पर स्थित है। गया से मोटर-द्वारा ६० मील की यात्रा है, जो शायद अधिक सुविधा-जनक होती, किन्तु मैं पटना होकर गया था, अतः बख्तियारपुर में गाड़ी बदल कर छोटी लाइन की छोटी गाड़ी पर सवार होकर मालगाड़ी का आनन्द लेते हुए रात को १०॥ बजे बिहार शरीफ़ पहुँच गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रायबहादुर लक्ष्मीचन्द सुचान्ती

स्टेशन पर प्रोफ़ेसर अग्रवाल अपने विद्यार्थियों के सहित उपस्थित थे, अतः स्थान खोजने में कठिनाई नहीं हुई। रात को ही बिहार के आस-पास के ऐतिहासिक स्थल—पावापुरी, नालन्दा तथा राजगृह—देखने का कार्य-क्रम बन गया। तीनों स्थान अच्छी तरह से तीन दिन से पहले नहीं देखे जा सकते थे और मैं एक ही दिन में सबको देख लेना चाहता था। हम लोगों की कठिनाई पावापुरी क्षेत्र के सुयोग्य और उत्साही प्रबन्धक राय बहादुर लक्ष्मीचन्द सुचान्ती ने हल कर दी। वे अपने मेहमान को लेकर प्रोफ़ेसर अग्रवाल के मेहमान को (मुझे) लेने सवेरे ही मोटर लेकर आ गये। इस हर्ष के साथ आश्चर्य तब सम्मिलित हुआ जब ये दोनों मेहमान आपस में सुपरिचित निकले। सुचान्ती जी के मेहमान और कोई नहीं, रायपुर के ही हमारे मित्र श्री जसकरन जी डागा थे।

सबसे पहले हम लोग पावापुरी की ही ओर रवाना हुए। यह स्थान राँची-पटना-रोड पर बिहार से केवल आठ मील पर स्थित है। आध घंटा में हम लोग भगवान् महावीर की स्मृति से पावन उस प्राचीन पुरी में पहुँच गये। सुचान्ती जी ने प्रेमपूर्वक सब स्थान एक एक कर दिखाना प्रारम्भ किया। सबसे पहले एक मील के घेरे के विशाल तड़ाग के बीच में भगवान् महावीर की निर्वाण-भूमि के दर्शन किये। कुछ लोगों के मत से इसी स्थान पर भगवान् का निर्वाण हुआ था और अन्य लोगों के मत से उनका अग्नि-संस्कार। कहते हैं कि उस समय उनकी भस्म को ग्रहण करने के लिए इतना अधिक जनसमुदाय जमा हुआ था कि भूमि खुद गई और यह विशाल तड़ाग बन गया। जो कुछ हो इस पद्म-पूरित तड़ाग के मध्य में संगमर्मर-निर्मित जल-मन्दिर बहुत ही सुन्दर दिखता है। मन्दिर तक पहुँचने के लिए लाल पत्थर का एक ६०० फ़ुट लम्बा मार्ग बना हुआ है, जो हाल में प्रशस्त कराया गया है और जिसके दोनों ओर श्री भगवानलाल पन्नालाल जी के खर्च से सुन्दर रेलिंग तथा बिजली के लिए स्तम्भ भी लगाये गये हैं।

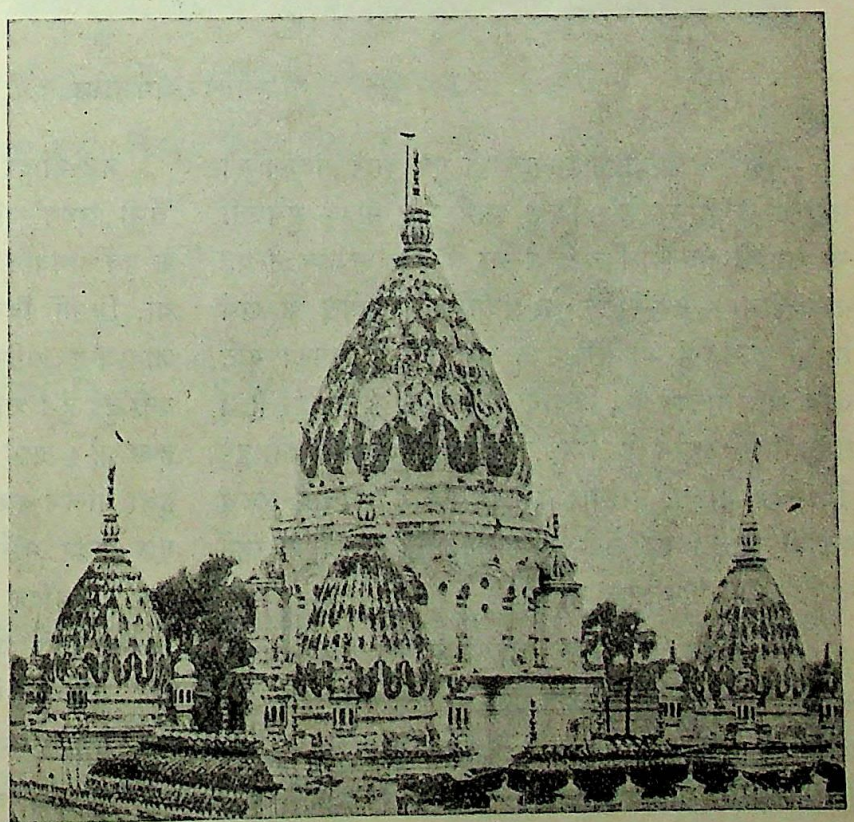

गाँव-मन्दिर का एक भव्य दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

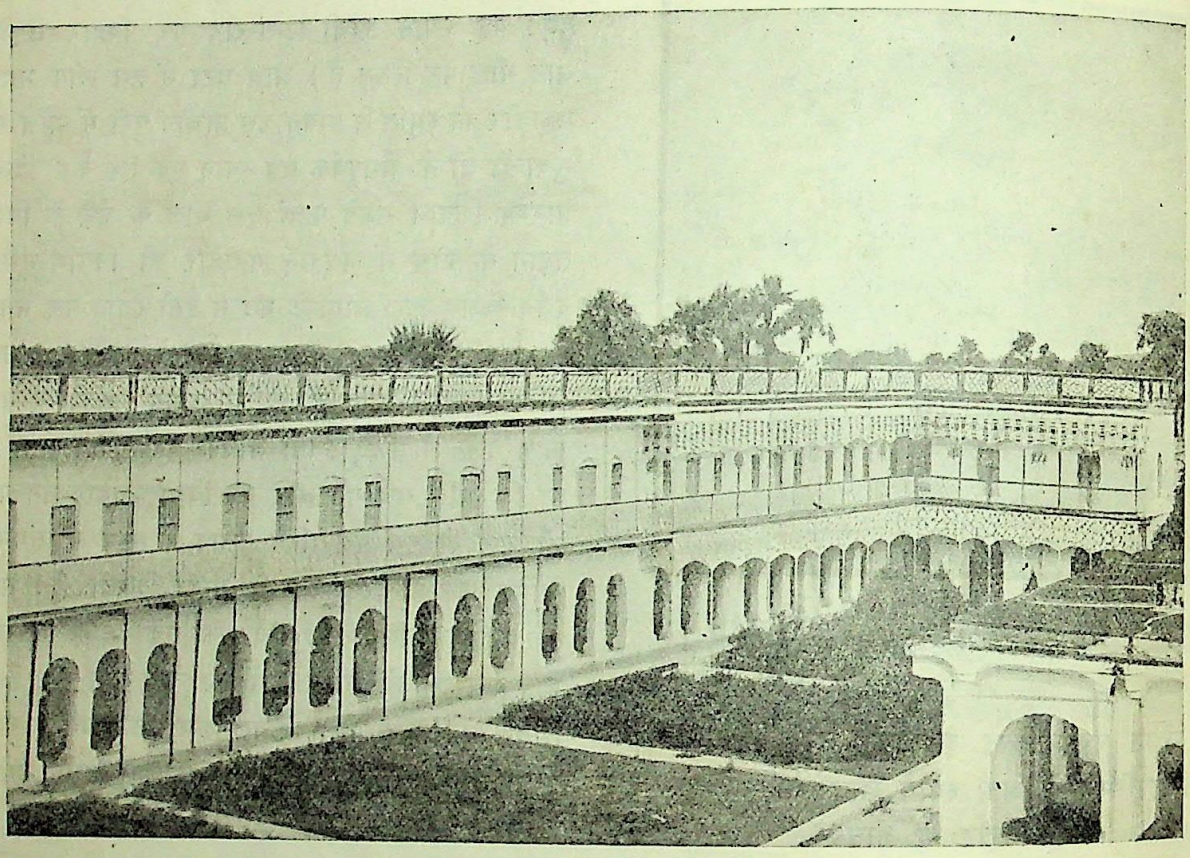

गाँव-मन्दिर-धर्मशाला

मन्दिर के चाँदी के किवाड़ भी एक दूसरे सज्जन की उदारता के द्योतक हैं। किन्तु इसमें राय साहब सुचान्ती जी का भी श्रेय है, जिनकी प्रेरणा से उक्त सज्जन ने यह कार्य किया। जल-मन्दिर का निर्माण १॥ लाख के ख़र्च से श्री पूनमचन्द जी सेठिया ने कराया था, जिनकी मूर्ति आज भी तालाब के किनारे उद्यान में बनी हुई है। यात्रियों के ठहरने के लिए यहाँ कई धर्मशालायें बनी हुई हैं, जिनमें भोजन, वस्त्रादि की सब प्रकार सुविधायें सुलभ कर दी गई हैं। यहाँ तक कि अलग अलग कुटुम्बों के रहने के लिए कुछ निवासगृह भी हैं।

जल-मन्दिर के भीतर कोई मूर्त्ति नहीं है। केवल भगवान् के चरण-चिह्न बने हुए हैं, जिसकी पूजा और स्तुति की जाती है। स्नानादि के लिए घाट भी बने हुए हैं। जैन भाइयों की अहिंसा के चिह्न-स्वरूप बड़ी बड़ी मछलियों की जलक्रीड़ा देखने को मिलती है।

जल-मन्दिर के सामने एक गोल मन्दिर है, जिसे 'सभो शरण'-मन्दिर कहते हैं। इस स्थान पर निर्वाण के पूर्व भगवान् का प्रसिद्ध उपदेश तथा समवशरण हुआ था, जिसमें विरोध-भाव छोड़कर सब देव, मनुष्य तथा जीव-जन्तु सम्मिलित हुए थे। यहाँ भी चरण-पादुका बनी हुई है। यह मन्दिर सुचान्ती जी के पिता का बनवाया हुआ है। आगे चलकर दिगम्बर भाइयों का बनवाया हुआ मन्दिर तथा धर्मशाला है, जहाँ भगवान् की खड़ी हुई एक सुन्दर मूर्त्ति हाल में स्थापित की गई है। पास ही एक आयुर्वेदिक औषधालय भी है, जहाँ धर्मार्थ ओषधियाँ वितरण की जाती हैं। आस-पास के ग्राम-निवासियों की सुविधा के लिए एक पोस्ट-आफ़िस भी खोला गया है।

अन्त में श्वेताम्बर भाइयों का मन्दिर मिलता है, जो "गाँव-मन्दिर" के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान प्राचीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जान पड़ता है। यहाँ जो मूर्त्ति है उस पर विक्रम-संवत् ४४४ और बीच में बनी हुई चरण-पादुका पर वीर-संवत् एक पड़ा हुआ है, जिससे इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है। "गाँव-मन्दिर" के सामने के भाग के जीर्णोद्धार में श्री निर्मल-कुमार नौलखा ने बहुत भाग लिया है। श्री पूरनचन्द जी नाहर ने "दीनशाला" का निर्माण कराया है।

भगवान् के निर्वाण का यही स्थान जान पड़ता है। चारों ओर बड़ी विशाल धर्मशाला बनी हुई है, जहाँ मेले के समय हज़ारों यात्री बड़े सुख से रहते हैं। कार्त्तिक कृष्ण अमावास्या (निर्वाण-तिथि) को तीन दिन तक मुफ़्त भोजनादि दिया जाता है।

सबसे बड़े हर्ष की बात तो यह है कि इस तीर्थ का प्रबन्ध एक संस्था के अधीन है, जो प्रतिवर्ष निर्वाण-तिथि पर अपनी वार्षिक रिपोर्ट और हिसाब पेश करती है। श्री सुचान्ती जी अवैतनिक रूप से इसके प्रबन्ध का कार्य बड़े उत्साह से करते हैं। आपको इस बात का शौक़ है कि जो भी जैन या अजैन यात्री इधर से आवे, पावापुरी के दर्शन अवश्य करे। अभी कल ही पंडित जवाहरलाल नेहरू नालन्दा देखने आये हुए थे। आपने आग्रहकर उन्हें पावापुरी के दर्शन कराये। आप स्वयं अपना समय और पैसा खर्चकर यात्रियों के साथ जाते और यह सब स्थान प्रेमपूर्वक दिखाते हुए नहीं थकते। सबसे पहले सन् १६४१ ईसवी में शाहजहाँ के राजत्वकाल में श्वेताम्बर-संघ के आचार्य जिनराज सूरि ने इस तीर्थ का पुनरुद्धार किया था। उसके बाद प्रसिद्ध लेखक और संग्राहक श्री पूरनचन्द नाहर ने इसके शिला-लेखों आदि का जीर्णोद्धार किया। सुचान्ती जी नाहर जी के पौत्र हैं और अपनी वंश-परम्परा का पूरी तरह से पालन कर रहे हैं। चित्रों के ब्लाक भी आपकी ही कृपा से प्रकाशनार्थ मिले। समाप्त करने से पहले मैं अधिकारियों का ध्यान संस्था की एक आवश्यकता की ओर दिलाना चाहता हूँ। वह है एक उत्तम पुस्तकालय की जो इस एकान्त प्रशान्त स्थान पर अत्यन्त आवश्यक है।

निष्ठुर नियम

लेखक, श्रीयुत कुँवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए० एल-एल० बी०

बदला न बदलेगा कभी, निष्ठुर नियम संसार का।

हैं शान्ति जो जन चाहते
जग को नहीं पहचानते।
संघर्ष जीवन का नियम
हैं दूर रह सकते न हम।
बदला न बदलेगा कभी, निष्ठुर नियम संसार का।

कैसी दया, कैसी व्यथा?
है कल्पना की सब कथा।
जग स्वार्थ पर चलता रहा,
चाहे जिसे खलता रहा।
बदला न बदलेगा कभी, निष्ठुर नियम संसार का।

पत्थर नहीं पिघला कभी,
हैं जानते इसको सभी।
आँसू बहाते व्यथित-मन,
फिर भी यहाँ हैं दीन जन।
बदला न बदलेगा कभी, निष्ठुर नियम संसार का।

है शक्ति जिसके हाथ में
दुनिया उसी के साथ में।
वह जो करे सब न्याय है
बाक़ी सभी अन्याय है।
बदला न बदलेगा कभी निष्ठुर नियम संसार का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं बेक़सूर था, बाबू

लेखक, श्रीयुत बी० एन० श्रीवास्तव, बी० ए०

उस दिन एक क़ैदी को फाँसी दी गई थी। फाँसी मेरे जीवन के लिए कोई अनोखी घटना न थी। जेलर-जीवन में मैंने न जाने कितनी फाँसियाँ देखी थीं। इस शुष्क, निर्मम और कठोर जीवन ने जिसमें दिन-रात चोर, ठग, डाकू, उठाईगीरे, लुच्चे, बदमाश, ख़ूनियों का ही संसर्ग रहता है, मुझे एक तरह से मनुष्य से एक प्रभावहीन हाड़-मांस के बने पत्थर के पुतले में परिवर्तित कर दिया था। मैंने कर्त्तव्यवश मनुष्य को जानवर समझना, उससे जानवरों के कठोर काम लेना और उसके साथ समय समय पर जानवरों का-सा ही बर्ताव भी करना तक सीखा था। यह न था कि मेरे स्वभाव में मानव-स्वभाव-सुलभ कोमल वृत्तियाँ नहीं थीं, पर उनका स्थान जेल की चार पुरसा ऊँची दीवारों की परिधि के बाहर ही था। उसके अन्दर मैं काठ-पत्थर-सा हो जाता। न तो किसी के आँसू मुझे पिघलाते, न किसी की सिसकियाँ मुझे आकर्षित करतीं, न किसी की वेदना-भरी आहें दिल में तूफ़ान उठातीं। न आये की फ़िक्र रखता, न गये की। घड़ी के काँटों की तरह मैंने अपना कर्म करना सीखा था। जिस तरह घड़ी अंधड़-तूफ़ान, धूप-वर्षा, जाड़ा-गर्मी का ख़याल न कर अपनी अनवरत टिक् टिक् से समय की घड़ियों के गिनने का कार्य करती है, उसी तरह मैं भी क़ैदियों को गिनने, उन्हें छोड़ने, उन्हें बन्द करने, उन्हें खिलाने, उन्हें भूखों मारने, उन्हें दवा दिलाने और उन्हें कोड़े लगाने का काम किया करता था।

तो उस दिन एक फाँसी हुई थी। फाँसी क्या है? एक सज़ा। सज़ा क्यों दी जाती है? अपराध के लिए। अपराध कोई क्यों करता है? अपने किसी व्यक्तिगत लाभ के लिए अथवा अनावश्यक उत्तेजनावश। किस बात का लाभ, किस बात की उत्तेजना? ज़न का, ज़मीन का अथवा ज़र का। सच पूछिए तो ज़न, ज़मीन और ज़र ही संसार की स्थिति रखनेवाली तीन विभूतियाँ हैं। संसार का विकास इन्हीं तीनों की उपलब्धि को लेकर हुआ है और जहाँ तक अन्दाज़ किया जाता है, शायद इसका अन्त भी इन्हीं के पीछे होगा। मनुष्य ने आदि-काल से अपने पेट को भरने के लिए--अन्न पैदा करने के लिए--भूमि पर अधिकार किया। ज़र उसी भूमि की रक्षा के साधनों को जुटाने के लिए इकट्ठा किया। इन दोनों कामों में जो मेहनत उसे करनी पड़ी, जो कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं, उनका दुख दूर करने के लिए उसने ज़न--नारी--पर अधिकार जमाया। इस वस्तु ने उसके कर्मशील, नीरस, शुष्क, अपूर्ण जीवन में कोमलता की सृष्टि कर उसे पूर्ण किया और तपते हुए मरुस्थल में शीतल जल की निर्झरणी प्रवाहित की। अतः ये तीनों वस्तुएँ मनुष्य के लिए उसके प्राणों के बाद सबसे प्यारी हो गईं। सभी ने इसके अधिक से अधिक और उत्तम से उत्तम अंश को अपनाना चाहा। एक ने दूसरे की जमा पर आँख गड़ाई और मौक़ा पाते ही बिना डकार के उसे हड़पकर लेने का मनसूबा बाँधने लगा। पर दूसरे को अपनी जान देकर भी उन चीज़ों से हाथ धोना गवारा न हुआ। फलतः ज़र, ज़मीन और ज़न को लेकर संसार के सारे संघर्ष, क्रान्ति, विद्रोह, युद्ध, ख़ून, ख़राबे की सृष्टि हुई।

हाँ, तो उस रोज़ फाँसी हुई थी। वही मामूली बात लेकर। एक औरत के लिए दो की जान चली गई थी--वह बीस-इक्कीस का पट्ठा था। उसकी उठती जवानी थी--मदमाती, मस्तानी, दिमाग़ में ख़ुमार पैदा करनेवाली। अपनी स्त्री पर न्यौछावर था। सोता तो उसी के सपने देखता, जागता तो उसकी छाया-सा बना रहता। पर वह वैसी न थी। किसी और के गले का हार बन चुकी थी। उसने देखा, सुना, जाना, पहचाना। उसने आँखों पर विश्वास नहीं किया, पर जब आँखों को मलकर फिर देखा तब पाया कि उसके अरमानों के नन्दन-कानन में विश्वासघात का दावानल धधक रहा है, उसके अमृत के प्याले में जिसे वह मुँह से लगाये हुए था, हलाहल छलक रहा है। तब तो उसका हवाई क़िला बवंडर में पड़े पत्ते की तरह न जाने कहाँ जा पड़ा, हृदय में भट्ठी सुलग उठी। वह विक्षिप्त-सा हो गया--मर्माहत,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संज्ञा-शून्य, विवेचना-रहित। फिर तो जिन दोनों ने उसके दिल पर खंजर फेरा था उनको खंजर के घाट उतार दिया, और अन्त में फाँसी के तख़्ते पर झूल गया।

अपने डेरे में बैठा उस दिन जेठ की अलस दोपहरी में मैं इन्हीं बातों को उलट-पलट कर सोच रहा था। बाहर बिलकुल सन्नाटा था। लू भी आज नहीं चल रही थी, इससे नीरवता और घनीभूत हो गई थी। और सोचते सोचते मेरे ख़याल में आया--"क्या वह क़ैदी अपराधी था?"

भीतर के मनुष्य ने कहा-"नहीं।"

बाहर की न्यायबुद्धि ने कहा-"हाँ।"

मनुष्य ने कहा-"उसने वास्तव में सच्चा मनुष्योचित कर्म्म किया, इससे वांछनीय है।"

न्यायबुद्धि ने कहा-"क़ानून के अनुसार उसने भयानक अपराध किया। ख़ून करना कौन-सी न्याय की बात है। यदि ऐसा ही था तो उसे उचित कार्रवाई कर क़ानून से उस जुर्म का फ़ैसला करवाना चाहिए था।"

मनुष्य ने उत्तर दिया-"वैसा कभी युक्ति-संगत न था। क़ानून साक्षी खोजता और उसके कान, आँख और दिल शायद गवाही न दे सकते।"

मन ने भी इसमें हामी भरी। तब तो न्यायबुद्धि पीछे पड़ गई। मैं फिर सोचने लगा-"तब हमारे क़ानून ने एक बेक़सूर को फाँसी क्यों दी? अच्छा, एक बेक़सूर को सज़ा दिये जाने का यही एक उदाहरण है अथवा और भी हैं?"

दरवाज़े के पास से मानो किसी ने कहा--और भी हैं।

मैं चौंक पड़ा। कुर्सी से सिर फेर कर देखा तो एक मामूली क़द का नौजवान खड़ा था। उम्र क़रीब बीस बरस, पर चेहरा सूखा और पीला, मानो क़ब्र से उठकर आया हो। आँखें गड्ढे में धँसी हुई थीं, लाचारी और बेबसी उनसे टपकती थी। बदन पर एक मामूली कुर्ता और पायजामा-दोनों पैवन्ददार, सिर पर मैली 'फ़ेज़' टोपी, पैर नंगे। मैंने उसे ग़ौर से ऊपर से नीचे तक देखा और प्रश्न किया-"तुम कौन हो?"

"वही जो आप देख रहे हैं।"

"क्या चाहते हो?"

"और कुछ नहीं सिर्फ़ इतना कहना कि बेक़सूर भी कभी कभी सज़ा पा जाते हैं।"

"कैसे?"

"सुनिए"।

वह दरवाज़े पर खड़ा था, चौखट पर बैठ गया और अपनी रामकहानी सुनाने लगा-

"...शहर में ख़ाँ बहादुर सग़ीरहुसेन एक अच्छे रईस थे। ख़ानदान पुराना था, बाप-दादों की जमा की हुई दौलत थी, इसलिए पुराने रईसी ठाट-बाट का ही दौर-दौरा था। आप ख़ुद भी बड़े दियानतदार और रिआया-परवर व्यक्ति थे। अपनी तबियतदारी, मिलनसारी और भलमनसाहत से वे शहर में एक आदर्श व्यक्ति समझे जाते थे। और तो नहीं मगर मुझे इतना याद है कि एक बार बृहस्पति के दिन किसी फ़क़ीर ने उनसे जब यह माँग की कि 'तुम अपनी सारी दौलत छोड़ फ़क़ीर बन जाओ' तब वे तुरन्त घर-द्वार छोड़कर उसके साथ जाने को तैयार हो गये। लोगों ने उन्हें हज़ार समझाया, पर किसी की नहीं सुनी। कफ़नी पहनकर जब बाहर आये और उस फ़क़ीर को बुलवाया तब उसका कहीं पता न लगा। उसी रात को स्वप्न में उन्हें दैवी आशीर्वाद मिला। ऐसे थे ख़ाँ बहादुर। यों तो लोग उनकी धाक मानते ही थे, पर जब सरकार ने उन्हें 'ख़ाँबहादुर' बना दिया तब शहर का बच्चा बच्चा उनका अदब करने लगा-उनकी पूजा करने लगा। पर जहाँ गुलाब होता है, वहीं काँटों का भी ढेर होता है। उनकी सब अच्छाई के अन्दर एक बहुत ही बड़ी बुराई छिपी थी, जो टट्टी की ओट में भरपूर शिकार खेला करती। वह थी उनका भोगविलासी स्वभाव। उन्होंने पाँच शादियाँ की थीं। और इतने से भी उन्हें सन्तोष न था। उनकी बीबियों में से तीन को तो कोई बाल-बच्चा न था, मगर चौथी और पाचवीं के एक एक लड़का था। मैं यूसुफ़ चौथी से था और मेरा सौतेला भाई यूनुस मुझसे दो साल बड़ा था।

जब तक ख़ाँबहादुर रहे, मैंने स्वर्ग में दिन काटे। मेरी मा मेरे पिता की सबसे प्यारी बीबी थी और मैं उनका प्यारा बेटा था। अब आप ख़ुद अन्दाज कर सकते हैं कि मेरी क्या क़द्र होती होगी। जनाब, सात साल की उम्र तक पैर ज़मीन पर नहीं रक्खा था। पर दिन सदा एक-से नहीं जाते। मेरा पन्द्रहवाँ साल लगते-लगते मा मर गई और एक दिन पिता जी भी दिल की बीमारी से स्नान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते-करते एकाएक स्वर्गवासी हो गये। उन्होंने जायदाद का कुछ बन्दोबस्त नहीं किया था, अतएव मुसलमानी क़ानून के अनुसार वह हमारे बड़े भाई के हाथ लगी। मैं नाबालिग़ था, इसलिए वही मेरे हिस्से का मुख़्तार बनाया गया।

मेरे दुर्भाग्य का सिलसिला वहीं से शुरू होता है। यूनुस ने दौलत पाकर ऐश में उड़ाना शुरू किया। दो-चार लुच्चे-लफंगे जुटे ही रहते और शराब-क़बाब और रंडी-मुंडी का बाज़ार गर्म रहता। रियासत का काम मुलाज़िमों के हाथ में था, जो जिस तरह से चाहते लूटते। मेरी निगरानी करनेवाला कोई न था, यहाँ तक कि मुझे पढ़ाने के लिए जो एक मौलवी साहब थे वे भी समय पर वेतन न मिलने से चल दिये। मुझे निठल्ले की ज़िन्दगी अच्छी न लगती। तिस पर घर में बराबर "तू तू-मैं मैं" लगी रहती। मुझसे कोई खुलकर कुछ न कहता, पर एक-आध दफ़ा जेवरों की चोरी का इलज़ाम लगाया गया जिससे यूनुस की झिड़कियाँ सुननी पड़ीं। न तो किसी को मेरे खाने की फ़िक्र रहती, न सोने की। कपड़े फट जाते तब कई बार कहने पर दूसरे मिलते। इन सब बातों से दिल ही दिल में तकलीफ़ होती। कभी-कभी अकेले में बैठकर रो भी लिया करता। अपने ही घर में मैं दुश्मन था। जो पिता के मित्र या सम्बन्धी थे वे सब यूनुस का दम भरते थे। मैं सबका दुश्मन बना हुआ था।

एक दिन मैंने बहुत सोच-विचार कर यूनुस से अपना सच्चा हाल कहने का इरादा किया। उस रोज़ वह ज़रा होश में था, मगर न जाने क्यों उससे एक अजीब डर-सा लगता था। इससे जितनी बातें कहने के लिए सोच कर गया था, सब भूल गईं और सिर्फ़ इतना कह सका कि मुझे पढ़ाने को एक मास्टर रख दो। यूनुस ने मंज़ूर कर लिया, बल्कि मुझे पढ़ने-लिखने की तरफ़ ध्यान रखने की ताक़ीद की, साथ खिलाकर बिदा किया। उसके आज के बर्ताव से मेरे दिल का बोझ उतर गया, मानो मुर्दे में जान आगई और जब मास्टर पढ़ाने आने लगा तब सारा दुख भूल कर पढ़ने में मन लगाया।

मास्टर साहब बड़े अच्छे स्वभाव के जान पड़ते थे। उनकी बातें मोटी होती थीं। हमदर्दी के साथ वे मुझे पढ़ाते थे। उनकी हर एक बात पर मेरी जान में जान आ जाती थी। मैं उनकी तरफ़ बरबस खिंच-सा गया और अपने दिल की सारी बातें, रियासत से लेकर अपने हक़ों तक की बात, धीरे धीरे दुहरा गया। उन्होंने मेरी दशा पर दुःख प्रकट किया और मुझे मदद देने का वादा किया। मैं उनके रंग में रँग गया और यह न देख सका कि मैं साँप को आस्तीन में घुसने का मौक़ा दे रहा हूँ।

ख़ैर, मास्टर साहब ने मुझे मदद देने का वादा किया क़सम खाकर। शाम को जब आये तब एक टुकड़ा काग़ज़ लेते आये और बोले इस पर दस्तख़त कर दो। मैंने पूछा, किसलिए। मास्टर साहब ने कहा, कलकत्ते के एक बैरिस्टर ने तुम्हारी दरख़्वास्त लिखने के लिए दस्तख़त किया हुआ काग़ज़ माँगा है। मैंने कहा, मैं सादे काग़ज़ पर दस्तख़त न करूँगा। उन्होंने कहा, क्यों। मैंने कहा, इसलिए कि उससे जाली वसीयतनामा बनाया जा सकता है। उन्होंने हँसकर कहा, अजीब बेवक़ूफ़ हो। वसीयतनामे पर दस्तख़त कचहरी में हाकिम के सामने किया जाता है न कि पहले ही दस्तख़त करके उस पर वसीयतनामा लिखा जाता है। मैंने कहा, जो भी हो, मैं सादे काग़ज़ पर दस्तख़त न बनाऊँगा। मैंने यह बात अपने पहले उस्ताद से सीखी थी। मास्टर साहब के हज़ार समझाने पर भी दस्तख़त नहीं किया।

दो दिन के बाद मास्टर साहब एक लिखी हुई अर्ज़ी लाये, जिस पर टिकट लगा था। मैंने उसे पढ़ा और मज़मून पर इतना ख़ुश हुआ कि बिला कुछ समझे-बूझे नीचे अपना दस्तख़त बना दिया। मास्टर साहब ने सिर का पसीना पोंछ कर कहा, ओफ़, आज एक बहुत बड़ा काम हो गया। मैंने यह अर्ज़ी जज साहब से ख़ुद मिलकर उनकी राय से तैयार कराई थी। तुम अगर इसमें हुज्जत करते तो मामला ही बिगड़ जाता, क्योंकि कल के सिवा साल भर में और किसी दिन ऐसी अर्ज़ियों की सुनवाई नहीं होती। मैं मुस्कुराने लगा। मास्टर ने अर्ज़ी डाक में डालने के लिए एक ख़िदमतगार को दे दी।

पाँच-सात दिन के बाद सुना कि मास्टर की तबीअत ख़राब है, वे नहीं आ सकेंगे। मैं अकेला ही घर में बैठे कुछ पढ़ रहा था कि एक नौकर ने आकर कहा, आपको बड़े बाबू बुलाते हैं। यूनुस ने मुझे क्यों बुलवाया, मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं सोच सका। जब उसके सामने पहुँचा तब देखा कि दो-चार और लोगों के साथ मास्टर साहब भी वहाँ बैठे हुए हैं। मेरा माथा ठनका। मास्टर को बहाना कर न आने का क्या कारण ? मुझे देखते ही यूनुस ने डपट कर पूछा--क्यों यूसुफ़, मैं तुम्हें तकलीफ़ देता हूँ ?

"नहीं तो।" मैंने सकपकाकर जवाब दिया।

यूनुस (एक काग़ज़ बढ़ाकर) तब यह क्या लिखा है ?

यह वही काग़ज़ था जिस पर मास्टर ने मुझसे दस्तख़त कराया था। मैं लाल हो गया। इतनी धोखेबाज़ी ? दोस्त बन कर दुश्मन का काम किया। मास्टर की तरफ़ जलती आँखों से देखा। उसने मुँह फेर लिया। यूनुस ने टोका--उधर क्या देखते हो ? जवाब दो।

मैंने कड़क कर कहा--ठीक ही तो लिखा है। तुम मुझे कौन-सा आराम देते हो ?

यूनुस--आधी जायदाद तेरी है ?

"बेशक"।

"कैसे ?"

"ख़ाँबहादुर सग़ीरहुसेन की एक औलाद होने की हैसियत से।"

"अबे कहाँ का बाप कहाँ का बेटा ? रखनी का लड़का न होता तो और क्या करता ?"

मैं बिगड़ उठा, कहा--ख़बरदार, जो मेरी मा की शान में कुछ कहा। अगर मैं रखनी का लड़का हूँ तो तुम्हारी मा भी वैसी ही होगी।

यूनुस क्रुद्ध होकर बोला--देखते हैं आप लोग इस हरामज़ादे को। हमारे ही टुकड़े पर पलता है और हमीं पर शान बघारता है।

"अजी, शान बघारना और टुकड़ों पर पलना कैसा। टुकड़ा किसी और को देते होंगे। यहाँ तो इस घर और दौलत में अपना आधा हिस्सा है। मुझे भी तुम्हारी तरह क़लिया-पुलाव खाने का पूरा हक़ है।"

"अबे, बड़ा आया है हिस्सा लेनेवाला। जाता है या कुछ और.....।"

मैं तन कर खड़ा हो गया। बोला--जानेवाले की ऐसी-तैसी। जाऊँगा क्यों ? मैं तो यहीं रहूँगा और वैसे ही मालिक बन कर रहूँगा जैसे तुम रहते हो।

यूनुस ने तब तो बिगड़ कर कहा--अच्छा तो अब मैं मालिक की पूरी ख़ातिर किये देता हूँ। इतना कहकर वह उठा और मेरी गर्दन में हाथ लगाकर ऊपर सहन से नीचे ढकेल दिया। ज़रा-सा न सँभलता तो मेरी हड्डी-पसली उतने ऊँचे से गिर कर चूर चूर हो जाती। मैं बिलकुल अन्धा हो गया। दौड़ कर चाहा कि यूनुस को दो-चार हाथ जड़कर दिल का बुख़ार उतार दूँ, मगर यूनुस के ललकारने पर नौकरों ने मुझे पकड़ लिया और ठोकना शुरू किया। जितने लोग वहाँ मौजूद थे, वे मेरे अनजाने न थे। एक ज़माने में वे पिता जी के तलवे सुहलाया करते और मेरी किसी शाहज़ादे से कम इज़्ज़त न करते थे। मगर वे भी यूनुस को समझाने के बजाय मेरे ही ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने लगे। नतीजा यह हुआ कि ठुक, पिटकर मैंने किसी तरह अपना पल्ला छुड़ाया और रोता, गालियाँ देता और धमकाता घर से बाहर निकल गया।

बाबू, कमज़ोर आदमी को ग़ुस्सा कभी न करना चाहिए। नहीं तो उसका नतीजा सिवा बुरे के भला नहीं होता। उस दिन की मेरी बकवास और धमकी पीछे जान का घातक हो गई।

मैंने पूछा--कैसे ?

सुनिए। मार खाकर निकल जाने के बाद मैंने एक ओर का रास्ता लिया और उस वक़्त तक चलता चला गया, जब तक ग़ुस्सा ठंढा नहीं पड़ गया और पैर पूरी तरह थक नहीं गये। जब शाम का अँधेरा धीरे-धीरे बढ़ने लगा तब मैंने अपने को शहर के एक ऐसे हिस्से में पाया जहाँ कभी न आया था और जहाँ दूकानें बहुत कम थीं, ग़रीबों की बस्तियाँ ही ज़्यादातर थीं। भूख के मारे अँतड़ी जवाब दे रही थी। थकान से पैर उठते न थे, आँखें निकली पड़ती थीं। सुबह से एक दाना भी मुँह में नहीं गया था, जेब में एक पैसा न था। पोशाक भी अधूरी ही थी। अब सिवा भीख माँगने के और कोई चारा न था। पर सबके दरवाज़े पर घूम घूम अलख जगाने का हौसला ही नहीं होता था। हो तो कैसे ? कभी किसी के आगे हाथ ही नहीं फैलाये थे। घूमते घूमते यह हालत हो गई कि अब गिरूँ या तब। इतने में एक नानबाई की दूकान के सामने जाकर पहुँचा। चारों तरफ़ मक्खियाँ भिनक रही थीं। मगर शीशे के पर्दे लगे गन्दे बक्सों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काली काली रोटियाँ आज मुझे दुनिया की सबसे बड़ी नियामत-सी नज़र आ रही थीं। मैं जाकर दूकान के पास खड़ा हो गया। नानबाई ने एक दफ़ा मुझे डाँटकर हटा देना चाहा, मगर जब देखा कि मैं टलता नहीं हूँ तब न जाने उसे क्या सूझी और एक बड़ी-सी डबल रोटी निकाल कर फेंक दी। मैंने उसे उठा लिया और जल्दी जल्दी खाता हुआ एक ओर भागा। एक नल के पास पहुँचकर सारी रोटी खा डाली और भरपेट पानी पीकर आगे बढ़ना चाहा। मगर पैरों ने आगे बढ़ने से इनकार किया। लाचार वहीं एक बरगद के पेड़ के नीचे पड़ रहा। आँखें तुरन्त झिप गईं और जब खुलीं तब देखा कि सूरज ख़ूब ऊँचा उठ आया है।

जब नींद टूटी तब बैठकर सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। दिल में आया, कहीं नौकरी ढूँढ़ूँ। बाज़ार में चक्कर लगाने लगा। किसी को नौकर की ज़रूरत न थी, मगर एक परचूनवाले ने जब मैं तिबारा उसकी दूकान के पास से निकला तब पुकारा—तुम नौकरी खोजते हो ?

"जी हाँ।"

"क्या क्या काम कर सकते हो ?"

"मैंने पहले कभी नौकरी नहीं की है, मगर आप जो कहिएगा करूँगा।"

"चीज़ों की फेरी कर सकोगे ?"

"लाइए, कोशिश करूँगा।"

"दो आने पैसे रोज़ और एक वक़्त खाना मिलेगा।"

"बहुत है।"

"मगर ज़मानत क्या देते हो ?"

मैं सहमा। ज़मानत किसकी दूँ। घर से निकाला हुआ दुनिया में अकेला आदमी किसकी ज़मानत दे सकेगा। सोच में पड़ गया। मेरी चुप्पी देखकर दूकानदार ने पूछा—क्यों क्या हुआ ? क्या तुम्हारे मा-बाप नहीं ?

"जी नहीं।"

"तब तो मुश्किल है।" एक ग्राहक आ गया। दूकानदार उसमें लगा।

मैं लौटने की सोचने लगा। इतने में दूकानदार की आवाज़ ने मुझे चौंकाया। उसने कहा—मुझे विश्वास है, तुम बेईमानी न करोगे।

नहीं कह सकता, क्यों मेरी आँखों में आँसू आगये।

तब से मैं फेरी करने लगा। रोज़ सुबह एक छोटे-से टोकरे में सूई-तागे, आईना-कंघी, तरह तरह के सस्ते खिलौने, कुछ नक़ली घड़ियाँ, दियासलाई वग़ैरह लेकर मैं जहाँ तक जा सकता वहाँ का चक्कर लगा आया करता। अपनी चीज़ों की तारीफ़ में तरह तरह के लटके गढ़ा करता। सड़क की पटरियों पर, चौकों पर, गलियों में 'ले जा लाला एक पैसा' 'हर एक नमूना एक पैसा,' "जर्मनवाला एक पैसा', 'जापानवाला एक पैसा', 'सस्ता-बढ़िया एक पैसा' वग़ैरह कहते कहते गला सूख जाता तब कहीं चार पैसे की आमदनी होती। दूकानदार को मुझे रखने में कोई घाटा न था। जो सड़ी-गली बेकार चीज़ें दूकान में न बिकतीं उनके कुछ न कुछ पैसे आजाते थे। मुझे भी खाने भर को मिल जाता। ज़िन्दगी एक गति पर चल पड़ी। एक साल के बाद मैंने अपनी थोड़ी पूँजी कर ली और दूकानदार से अलग ही फेरी करने लगा।

कहा गया है, विपत्ति कभी अकेले नहीं आती। जब क़िस्मत खोटी होती है तब सीधी राह चलते भी ठोकर लगती है और सूखी जगह भी फिसलकर आदमी अपना सिर-पैर तोड़ लेता है। दैव को इतना भी सह्य न हुआ कि मैं ज़रा चैन से बैठकर कम से कम साग-सत्तू भी ज़्यादा दिन इस दुनिया में खा सकूँ। एक छोटी-सी घटना से ज़िन्दगी का रुख़ ही बदल गया। शहर में एक पार्क था। मैं कभी कभी उसकी पटरियों पर बैठकर चीज़ें बेचा करता। एक रोज़ शाम को अपनी चीज़ें गा-गा कर नित्य की तरह बेच रहा था कि एक गाड़ी आकर रुकी और उससे एक मर्द और एक औरत उतरकर अन्दर जाने लगे। मैंने उन्हें देखकर कहा—बाबू जी, कुछ बच्चों के लिए बड़ी अच्छी चीज़ें हैं। उन दोनों ने मेरी तरफ़ दृष्टि डाली। मैंने देखा कि मर्द तो यूनुस हैं, जो शराब के नशे में चूर है। औरत न जाने कौन है। उसने एक आइना उठा कर अपना मुँह देखा और कहा—क़ीमत ?, "सिर्फ़ चार पैसे"। यूनुस चौंका—चार पैसे ! इस सड़े आइने का दाम! बेईमान कहीं का। मैं उसे देखकर ही जल उठा था—और ग़ुस्से में आकर बोला—मैं तुम्हारी तरह बेईमान नहीं यूनुस। अब तो उसने भी मुझे पहचाना—आँखें लाल कर बोला—चुप हरामख़ोर। मैं तैश में आ गया। डपट कर कहा—बस, ख़बरदार गालियाँ ज़बान से निकालीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उसे पकड़ कर खींच लूँगा। यह तुम्हारा घर नहीं है। चले जाओ सीधे। वह बहुत बिगड़ा और गालियाँ देता हुआ मेरी ओर छड़ी उठा कर झपटा। मैंने छड़ी थाम ली। तब तो उसने ठोकर मार कर मेरी दूकान उलट दी, जिससे सब चीजें बिखर गईं और बहुत-सी टूट-फूट भी गईं। अब तो मैं उससे गुथ गया। उठाकर दे मारा। औरत चिल्लाने लगी। आस-पास के लोग जुट गये और मुश्किल से हमको अलग किया।

यूनुस रईस की तरह था, इससे सब लोग उसकी तरफ़ हो गये। उसने लोगों के पूछने पर कहा कि यह उसके बाप की रखेली का लड़का है। उसने इसे घर में रखने की कोशिश की थी, मगर यह भारी शैतान था, इसलिए घर से निकाल दिया। अब, उसी का बदला लेने के लिए उससे लड़ पड़ा है। मैंने लोगों को बहुतेरा समझाने की कोशिश की, मगर दौलत और कपड़ों का रोब दुनिया मानती है। सभी मुझी को डाँटने-डपटने लगे। पुलिस में देने की धमकी दी जाने लगी। मैं तो यह उलटपंथी देख भौंचक्का-सा रह गया। यूनुस गाड़ी पर सवार होकर चला गया, भीड़ छँट गई। माथा ठोककर मैं अपने सामान को सहेजने लगा। आधी से ज्यादा चीजें बरबाद हो गई थीं। आठ आँसू रो पड़ा दुनिया की हालत देखकर।

तब से पार्क कभी नहीं गया। मगर फेरी करता ही रहा। इस घटना के बाद तीसरे ही रोज घूमता-घूमता एक गली होकर जा रहा था कि किसी के कराहने की आवाज़ कानों में आई। आवाज़ दर्दनाक थी--ध्यान एक परनाले की ओर खिंच गया। देखा तो उसमें एक आदमी पड़ा है। पास जाकर उठाया तो देखा कि यूनुस है, कलेजे में खंजर घुसा है और ख़ून की धार बह रही है। लाख बुरा हो, यूनुस था तो भाई ही। उसे उस हालत में छोड़कर भागना मुनासिब न था। परनाले से निकाला, गोद में लेकर बैठ गया और चिल्लाने लगा--ख़ून! ख़ून! दौड़ो! दौड़ो! आस-पास से लोग जुटे। पुलिस भी आई। लाश की सिनाख़्त हुई। मैं भी पकड़ कर थाने में लाया गया। जाँच होने लगी और फिर तो पुलिस ने एक ख़ूनी पकड़ लिया।

मैंने बहुत उत्सुकता से कुर्सी पर सीधा होते हुए पूछा--कौन ?

"मैं।"

"तुम!"

जी हाँ। पुलिस ने जुर्म मेरे ही गले मढ़ा। तीन पक्के सबूतों पर—'घर को छोड़ते समय की धमकी' पार्क की मार-पीट और उस खंजर पर मेरे अँगूठे का निशान।'

"वह निशान कहाँ से आया।"

मैंने कटार उसके कलेजे से इसलिए निकालनी चाही थी कि शायद यूनुस की जान बच जाय। मगर उसी के साथ उसका भी दम निकल गया, साथ ही मेरे हाथ ख़ून में रँग गये, जिससे उसकी मूठ पर मेरी उँगलियों का निशान बन गया, जो हो, उसके साथ पुरानी अदावत साबित हुई और मुझे मौत की सज़ा मिली। आख़िरी दम तक मैं कहता गया कि मैंने जुर्म नहीं किया है, मगर उन लोगों को विश्वास न हुआ और फाँसी पर लटका कर ही छोड़ा। क्या करूँ, कोई माने या न माने मैं तो दुनिया को यही कहता रहूँगा कि न्याय नहीं हुआ है। मेरी जान ले ली गई, हालाँ कि मैं बेक़सूर था, बाबू।

मैं चौंक कर कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। देखा तो न आदमी, न आदमज़ाद। तब यह कौन बोल रहा था? उस समय पास के पीपल की टहनियाँ पीली पीली नज़र आ रही थीं। घड़ी ने साढ़े छः बजा दिये थे। "इवनिंग इन्स्पेक्शन" का समय हो गया था। हड़बड़ाकर उठा और दफ़्तर चला गया। फाँसी के रजिस्टरों को उलटते-पुलटते १५ वर्ष पहले की एक नत्थी देखकर मैं उछल पड़ा--एक जगह यह साफ़ लिखा था कि आज ही की तारीख़ को पन्द्रह वर्ष पहले एक यूसुफ़अली--उम्र बीस वर्ष--को यूनुसअली की हत्या के अपराध में फाँसी का दण्ड मिला था।

मैं अवाक् रह गया। क्या इसी तरह बेक़सूर आत्मायें अपनी बेक़सूरी साबित करने का मौक़ा ढूँढ़ती फिरती हैं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रीनविच की वेधशाला

लेखक, पण्डित सूर्यनारायण व्यास

पिछले वर्ष जब मैं योरप गया था, यद्यपि मैं केवल विदेश का एक दर्शक पथिक ही बनकर रहा था, अपने 'ज्योतिषी' होने की बात प्रकट नहीं होने दी थी। क्योंकि थोड़े समय में मैं बहुत कुछ देख लेना—जान लेना चाहता था। तथापि इतना आकर्षण तो स्पष्ट ही था कि मैं इँग्लेंड की ग्रीनविच और हालैंड की प्रसिद्ध वेधशाला देखे बिना नहीं लौटना चाहता था। 'ज्योतिषी' होने का विज्ञापन न करता, तो भी मेरी वेधशाला-सम्बन्धी जिज्ञासा तो मेरे ज्योतिषी-रूप को कहीं न कहीं प्रकट कर देनेवाली ही थी।

ग्रीनविच और हालैंड की महती वेधशालाओं के दर्शन-कर उनके परिदर्शक से जब मैं कुछ प्रश्न कर बैठता तब तुरन्त पहचान लिया जाता था कि मेरा भी इस विज्ञान से थोड़ा-बहुत सम्बन्ध है। ग्रीनविच की एक घटना है। वहाँ के एक वेध-ज्ञानवेत्ता के साथ भ्रमण करता मैं उस स्थान पर पहुँचा जहाँ 'सूर्य' की गति-विधि और उस ज्योतिष्पिण्ड के तत्त्वों की खोज करनेवाला भीमकाय यन्त्र लगा था। वहाँ सूर्य के विशेष प्रकार के अनेक अभिनव फोटो रक्खे हुए थे। मैंने उस संग्रह में से दो विशाल चित्रों पर से जिज्ञासा की—

"इन चित्रों को लेकर आप अन्ततः किस नतीजे पर पहुँचे हैं?"

मेरे इस प्रश्न पर दर्शक महाशय बड़े चौकन्ने हुए। बात यह थी कि १९३७ के ८ जून को दिन में 'सूर्य-मण्डल' पर 'अरोरा बेरेलिस' के कारण विचित्र प्रकार का वातावरण आ गया था। लगभग लाखों मील तक आकस्मिक धूमिल अभ्र-पटल-सा छा गया था कि सूर्य भी ठीक नहीं दिखाई पड़ता था, न तीक्ष्ण प्रकाश ही। इसके परिणाम-स्वरूप वायरलेस, टेलिग्राफ़, रेडियो आदि बहुत देर तक व्यर्थ हो गये थे, गगनमण्डल एक विचित्र स्थिति में आ गया था। उपर्युक्त फोटोग्राफ उसी हाल में इस वेध-शाला में लिये गये थे। मैं अक्टूबर में लन्दन से ग्रीनविच गया था, अतएव ये फोटोग्राफ मुझे वहाँ अध्ययनार्थ रक्खे हुए दिखाई दिये। मेरे प्रश्न से चौंककर प्रदर्शक कुछ ऐसी बातें करने लगा जो टाल-टूल की थीं। मैंने उस भलेमानुस से कहा—

"खेद है, मुझे आपके उत्तर से समाधान नहीं हुआ। आप यदि किसी योग्य वेधज्ञ से मेरी भेंट करवा दें तो उत्तम होगा।"

वह अपनी स्थिति को तुरन्त समझ गया और अपनी कमज़ोरी को स्वीकार करता हुआ एक प्रौढ़ सज्जन के निकट उसी विशालकाय भवन के अन्य कमरे में—आफ़िस में मुझे लिवा ले गया। वे सज्जन बड़े तपाक से, हाथ मिलाकर जिज्ञासा-प्रदर्शक दृष्टि से देखते हुए बोले—

"आपने इस प्रदर्शक से क्या जानना चाहा था?"

मैंने अपना वही उपर्युक्त प्रश्न दुहरा दिया। वे महाशय उसी विषय का अध्ययन कर रहे थे और दूसरे बड़े बड़े आकाश-द्रष्टा विद्वानों से पत्र-व्यवहार कर उसकी चर्चा चला रहे थे। उन्हें यह अपनी रुचि का विषय मिला था। वे सावधान हो गये और मेरी तरफ़ गम्भीर दृष्टि से देखकर कहने लगे,—"हमने अभी कोई निर्णय तो नहीं किया है। और भला ऐसे ख़ास मामले पर शीघ्र निर्णय भी कैसे किया जाय? यह तो अनुसन्धान का विषय है। प्रथम बार ही आकाश में ऐसी घटना घटी है।" (बाद में पुनः ऐसा ही एक आक्रमण सूर्य पर हो चुका है)।

"परन्तु"—मैंने उनकी बात रोकते हुए कहा—"आपके अन्य वैज्ञानिकों का इस पर क्या मत है? वे इस घटना को किस रूप में देखते हैं?"

उन सज्जन ने पेपरों में मुद्रित अनेक विद्वानों के मतों के कटिंग मेरे सामने रख दिये। मैंने उन्हें बड़े ध्यान से देखा। उनमें विश्व के माने हुए विज्ञानाचार्य आइन्स्टीन का भी मतोल्लेखन था। उनके कथन का आशय भी यही था कि यह घटना विचित्र है, सूर्य-मण्डल में कोई परिवर्तन हो रहा है, और इस घटना की खोज होनी आवश्यक है इत्यादि। इसी प्रकार के खगोल-शास्त्रियों के और भी मत थे। मैंने इन सम्मतियों को पढ़ा और साधारण स्मित-मुद्रा से टेबल पर उन सज्जन के सामने फ़ाइल को धीरे से सरका दिया। वे ताड़ गये कि मैंने सम्भवतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

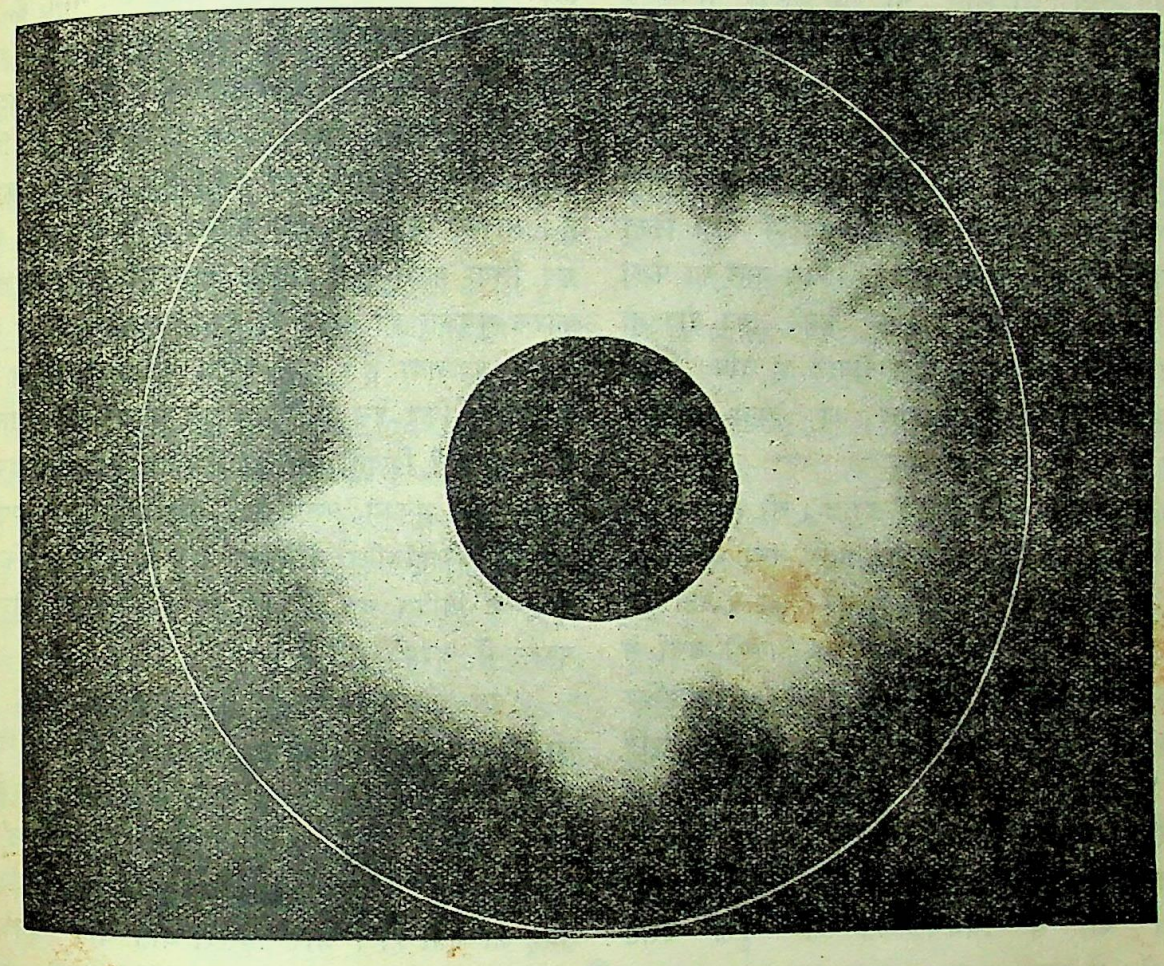

८ जून १९३७ का खग्रास सूर्य-ग्रहण
जिस पर विद्वानों में एक समस्या उत्पन्न हो गई है ।

उपेक्षा-दृष्टि की है। आखिर वे अपने भाव को दबा न सके और बोल ही पड़े--"देखा न आपने ? कैसी गहन समस्या उपस्थित है ? मैं इसी में उलझा हुआ हूँ। सूर्य के चित्रों से गति-विधि की सूक्ष्म जानकारी प्राप्त कर रहा हूँ।"

मैंने पुनः पूर्ववत् साधारण स्मित करते हुए कहा--"क्षमा करें, मुझ पर इन सम्मतियों का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है ।"

उनकी आँखों में मैंने एक तेज़ी आती हुई देखी। वे मेरे चेहरे पर आँखें तीक्ष्णता से गड़ाकर चश्मा नाक पर ठीक जमाते हुए गहरी-चिन्तनशीलता से बोले--

"तो फिर आपके भारतीय शास्त्रज्ञों का इस पर क्या कोई भिन्न मत है ?"

"मैं जुलाई से योरप में हूँ। पता नहीं, भारतीय विद्वानों में से पाश्चात्य नवानुसन्धान दृष्टि के सर सुलेमान ने भी कोई बात प्रकट की है या नहीं ? परन्तु मैंने इधर योरप के पत्रों में दो-चार बार इस चर्चा को पढ़ा अवश्य है, और मेरा तो यह खयाल है कि वराह-मिहिर आदि महान् खगोल-द्रष्टा पुरातन आचार्यों ने इस तरह की बातों पर भी काफ़ी प्रकाश डाला है। चाहे उनके समय इस तरह सूर्य में कोई वातावरण उत्पन्न हुआ हो या न हुआ हो, उन्हें 'सूर्य' की इस अवस्था की भी कल्पना अवश्य है। उन्होंने इसके कारणों में से जो बातें सोची हैं वे सर्वथा मौलिक हैं और विचारणीय हैं। उन्होंने 'रिसर्च करने' की बात कहकर अपने पाठकों को अँधेरे में भटकता नहीं छोड़ा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आप लोग तो आज भी इस एक ही मामले में एकमत से विचार नहीं कर रहे हैं। देखिए 'पेरु' नामक जगह से जिन लोगों ने ८ मील ऊपर जाकर फोटो लिये हैं वे कहते हैं कि सूर्य-पृष्ठ पर १० लाख मील से अधिक गहरा धूमिल वातावरण था, और सूर्य-बिम्ब के किनारों पर किरणों का जाल भी अजीब हालत में था। किन्तु अमरीका के विद्वानों ने सूर्य-पृष्ठ पर किरण-जाल का फैला देखना 'पेरु' के फोटो लेनेवालों के केमरे का दोष ही बतलाया है, और आपके भी ये फोटोग्राफ तो दूषित वातावरण और धूमिल किरण-जाल का होना प्रदर्शित कर रहे हैं।

"रहा भारतीय विद्वानों का सवाल। सो बात यह है कि पहले योरप में जिस समय यह ग्रहण तथा घटना हुई है उस समय भारत में सूर्य दिखाई नहीं दे रहा था, रात्रि का निबिडान्धकार था। भारतीय आपकी चर्चा से विस्मित अवश्य हुए, और अपने गर्ग, पराशर, वराहमिहिर को देखकर उन्हें मानों ऐसे प्रसंग पहले भी आये ही हैं, ऐसा ही मालूम हुआ है, अधिक विस्मय का तो कोई कारण नहीं हुआ है।"

उन महाशय के चेहरे पर विस्मय के भावों का उदय हो रहा था, वे चित्र-लिखित से मुझे देखते जा रहे थे। मैं ऊपर का वाक्य खत्म कर चुप हुआ तब मानो उनकी विचार-तन्द्रा भी भङ्ग हुई। ज़रा सावधान होकर फिर उन्होंने कहा—"लेकिन यह तो बतलाइए कि उनकी या आपकी सम्मति में यह घटना है क्या? इसमें कौन-सा प्रकृति का रहस्य निहित है?"

मैंने अपना क्रम जारी रखते हुए बतलाया—"हाँ, मैं वही तो कह रहा था। भारतीय ग्रन्थों में सूर्य-चन्द्र के ग्रहण का स्थान सूर्य-चन्द्र के भ्रमण-वृत्तों के सम्पात-स्थान के पास माना है। सूर्य का भ्रमण क्रान्ति-वृत्त में होता है और चन्द्र का विक्षेप-वृत्त में। इन दोनों वृत्तों के परस्पर दो स्थानों में सम्पात होते हैं। एक सम्पात का नाम 'राहु' है, और दूसरे का नाम 'केतु' है। कभी ग्रहण 'केतु' की समीपता में होता है और कभी राहु की। पिछला सूर्य-ग्रहण 'केतु' की निकटता में हुआ है। राहु और केतु ये दो अदृश्य किन्तु उपग्रह माने हुए हैं। 'केतु-पर्व' के समय 'सूर्य' धूम-केतु की कक्षा को निकट रखकर ही 'विवर्ण' होता है। और धूमकेतु पुच्छल-तारे का नाम है, यह बतलाने की ज़रूरत नहीं है। धूम-केतु की हज़ार शकलें मानी गई हैं। यह कभी दृश्य होता है और कभी अदृश्य। अदृश्य में—उल्का वग़ैरह इसी का स्वरूप है, विद्युत् इसकी शक्ति है, बाष्प, रज, तम, धूम इत्यादि विकृतियाँ हैं। आकाश और भूमण्डल पर्यन्त इसी के कारण दृश्य-रूप लिया करते हैं। प्राचीन शास्त्रज्ञों ने इस महोत्पात-कारक धूमकेतु की कक्षा का ज्ञान रखना ग्रहण के समय ज़रूरी बतलाया है। स्वयं ग्रहण को एक उत्पात कहा है। उसमें फिर इस महोत्पात का प्रवेश, सूर्य-मण्डल तो ठीक, न जाने कितनी भयावह स्थितियों का उत्पादक हो सकता है। भूकम्प, प्रलय आदि भी इसी के उग्र-रूप कहे गये हैं। वराहमिहिर ने स्पष्ट रूप में कहा है कि सूर्य में इसके विविध रूप विकृति उत्पन्न करते हैं, और सूर्य-मण्डल में 'दृश्य' होते हैं।

"गर्ग और वराहमिहिर ने सूर्य-चन्द्र के ग्रस्त होने का परिणाम पवन, उल्कापात, रज, क्षिति-कम्प, दिग्दाह आदि बतलाया है। इस दृष्टि से मैं तो समझता हूँ कि इस ८ जून के सूर्य-ग्रहण के अवसर पर 'सूर्य-पृष्ठ' पर रज-राशि का ही (धूलि-पटल का ही) शायद विशाल संग्रह आ गया हो। और दूसरी बात यदि धूमकेतु के अतिरिक्त हो सकती है तो वह 'परिवेष' है। परिवेष वायु, अभ्र तथा रश्मि-संघर्ष से बन जाता है। इसी प्रकार इन दो कारणों की तरह एक बात और भी है। वह सूर्य-पृष्ठ में कम्प का हो जाना है। 'रवि-कम्प' से रवि-किरण-जाल चंचल हो जाते हैं, रविमण्डल का ताप-मान शीत-प्रभाव से, अंगारे पर शीतल छीटों के गिरने से जिस प्रकार धूमिल वातावरण बना देते हैं, उसी प्रकार यह भी हो सकता है। रवि-मण्डल रजो-राशि से या कम्प से आवृत हो धूमिल हो सकता है।"

इस तरह मैं अपना विवरण कहता गया, और अन्त में मैंने बतलाया—"मेरी यह निजी कल्पना नहीं है। यह वराहमिहिर एवं ऐसे ही अन्य प्राचीन आचार्यों का सूर्य-नुसन्धान है। यहाँ मेरे पास साधन नहीं हैं। मैं एक दर्शक बनकर आया हूँ, स्मृति के आधार पर ही बतला रहा हूँ।"

वे सज्जन तो बहुत ही आकर्षित हुए और कहने लगे—"चाहे हम कितने ही साधनसमन्वित हों, पर आपके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस घरू ज्ञान की समता अध्ययन-मात्र के बल पर हम नहीं कर सकते। हमारा अनुसन्धान कल्पना-आश्रित है, अन्धकार में प्रकाश की खोज है। आप किसी निश्चित मत पर दृढ़ होकर आगे बढ़ते हैं। अतएव आप जिस तथ्य पर शीघ्र पहुँच सकते हैं, अनुसन्धान का पथ निकालकर निश्चित दिशा पर जा सकते हैं; हमारा मार्ग उतनी ही सरलता से दूर है। मैं आज ऐसा समझ रहा हूँ कि सूर्य-मण्डल में बैठकर वहीं किसी वस्तु की खोज कर रहा हूँ।"

फिर तो उन सज्जन ने मुझे आग्रहपूर्वक चाय पिलाई और अपने फोटोग्राफर को तुरन्त बुलवाकर फोटो लिवाया। इसके बाद मुझे उन्होंने बड़े स्नेह से अपना मित्र मानने का आग्रह किया। मैंने इसे अपना सौभाग्य समझा और उस समय मेरा हृदय इसलिए आनन्द से भर गया कि अपने देश के विज्ञान पर इन्हें मैं कुछ प्रभावित कर सका। बातें बहुत-सी हुईं। परस्पर प्रेम हो जाने से स्पष्ट चर्चायें हुईं। अन्त में मुझे ज्ञात हुआ कि वे सज्जन उस महान् वेधशाला के उप-प्रधान हैं। उन्होंने साथ घूमकर उस वेधशाला के विविध रूप की विशालता के दर्शन करवाये। अब मैंने उनसे बिदा लेकर चलते समय इसी प्रकार ज्योतिष के फलादेश के अंग पर भी संक्षिप्त मधुर चर्चा छेड़ दी। वे इस पर भी मुझसे सहमत हो रहे थे। उन्होंने मुझे वहीं रोकने का बहुत आग्रह किया, परन्तु समय थोड़ा था और अभी मुझे बहुत देखना था। शीघ्र ही फ्रांस भी जाना था, अतएव स्नेह-पूर्वक क्षमा चाही। दो रोज़ के बाद मैंने लन्दन के दो-तीन प्रमुख पत्रों में देखा, मेरी इस भेंट का विवरण वेधशाला से प्रकाशित किया गया है और उसमें अन्यान्य प्रशंसाओं के साथ यह खासतौर पर बतलाया गया था कि "...आश्चर्य तो यह है कि भारतीय पंडित बड़ी से बड़ी समस्या को इतनी सरलता से हल करते हैं कि विस्मित हो जाना पड़ता है। और इसका कारण यही है कि उनके ज्ञान का आधार दृढ़ एवं महत्त्वपूर्ण है। उनके पुराने आचार्यों ने उनके लिए पथ-प्रदर्शक का काम बहुत उत्तम रीति से कर रक्खा है। उनका किसी निश्चित मत पर पहुँचना उनके निष्कण्टक पथ का ही श्रेय है। इत्यादि।"

गीत

लेखिका, श्रीमती रूपकुमारी वाजपेयी, बी० ए०

झिलमिल कैसे दीप रहे जल !
जब कि गगन में सम्भ्रम छाया,
धरती पर चिर तम की माया,
कौन दूर तृष्णा लौ-सी चमका चुपके से दिया अरी ! चल।
विवश पलों का बन्दी कोई,
विस्मृति-वन में अब तक खोई,
इस प्रकाश के बिखरे कण सुधि एक खोजता होगा अविकल।
कौन स्नेह में खिल मदमाते ?
जल-जल सखि ! ये जीवन पाते !
क्या न शलभ आते होंगे इन तक लेकर अपनापन निश्छल ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की आत्म-रक्षा का प्रश्न

लेखक, श्रीयुत उमाशंकर

आज सारे विश्व में उथल-पुथल मची हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर मानवता के भक्षक दौड़ते नज़र आ रहे हैं। निर्बलों की चीख़-पुकार से आसमान की छाती फट रही है। विश्व त्राहि-त्राहि कर रहा है। बम और गोलों की गड़गड़ाहट से विश्व काँप रहा है। हिटलर साम्राज्य-प्रसार की राक्षसी बुभुक्षा का शिकार हो रहा है। इसलिए आये दिन अपने समीपवर्ती भू-भागों को उदरस्थ करने के लिए बहाने खोज रहा है। पोलैंड पर निर्दयता के साथ बम-वर्षा कर उसने पोलैंड की जनसत्ता का विनाश कर दिया। डेनमार्क, नार्वे और हालैंड को डकार गया है। लाखों को मौत के घाट उतार-कर उसे शान्ति नहीं हुई है। अभी भी उसकी प्यास नहीं बुझी है। प्यास बुझाने के लिए ख़ून चाहिए और वह ख़ून की खोज में है।

युद्ध तो योरप में हो रहा है, पर समस्त विश्व-शान्ति ख़तरे में है। दुनिया की इस हालत में हम अपने को ख़तरे से बाहर नहीं समझते। हमारे हर नेता आज यह कह रहे हैं कि इस विश्व-संकट का प्रभाव भारत पर भी पड़ सकता है। अतः हमें अपने को समझने के पहले अन्त-र्राष्ट्रीय परिस्थिति को भी समझना चाहिए।

भारत की स्वतन्त्रता की माँग के सम्बन्ध में सहानु-भूति-पूर्ण विचार प्रकट करते हुए एक अमेरिकन सज्जन ने यह प्रश्न किया है कि 'यदि ब्रिटेन भारत को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दे तो क्या वह बाहरी आक्रमणों से अपनी रक्षा कर सकेगा?' पिछली बार जब जवाहरलाल जी इँग्लैंड गये थे तब भारत की आत्म-रक्षा के प्रश्न को दृष्टि में रखकर इँग्लैंड के राजनीतिज्ञों ने पूछा था कि आप स्वतन्त्रता की माँग तो करते हैं, पर अगर कोई दूसरा राष्ट्र हिन्दुस्तान पर चढ़ाई कर दे तो क्या आप अपने देश की रक्षा करने में समर्थ होंगे। यह तो दुनिया जानती है कि पण्डित जवाहरलाल जी ज़रा मस्त आदमी हैं, इसलिए उस पुरुषसिंह ने हँसते हुए कहा था कि 'आप हिन्दुस्तान की चिन्ता न करें। यह हमारा काम है। हम इसे देख लेंगे। यह बात निश्चित है कि हम अँग-रेज़ों से अथवा किसी अन्य राष्ट्र से सहायता की प्रार्थना न करेंगे।'

पण्डित जी का उत्तर तो एक स्वतन्त्र राष्ट्र का उत्तर था! आज अगर १६वीं शताब्दी का भारत होता तो पण्डित जी का यही उत्तर सारे भारत का उत्तर होता। पर आज का भारत कायरों का भारत हो रहा है। १५० वर्षों की अँगरेज़ी हुकूमत में हमारी वीरभावना सुषु-प्तावस्था को प्राप्त हो गई है। उसकी शान्ति ने हमें अपा-हिज और निकम्मा बना दिया है। वीर मराठे और सिक्ख, राजपूत और जाट अपना वीरत्व सर्वथा भूल गये हैं और अब उनके हाड़-मांस के सूखे पुतलों की रगों में अपने वीर पूर्वजों के रक्त का ज़रा भी असर नहीं देख पड़ता है।

सीमान्त का ख़तरा

भारत एक बड़ा देश है। उसका ७,००० मील लम्बा उपकूल और हज़ारों मील सीमान्त भूमि है। सीमा-प्रान्त तो पहले से ही भारत के लिए ख़तरनाक रहा है। आज रूस और जर्मनी में अनाक्रमण सन्धि हो जाने के बाद वह और भी ख़तरे में पड़ गया है। एक ऐंग्लो-मुस्लिम पत्र ने यहाँ तक लिख दिया है कि भारत के उग्रवादी सोवियट रूस के एजेन्ट हैं। ये देश में दौलत ख़ाँ लोदी और इब्राहीम लोदी के चाचा अलाउद्दीन का पार्ट अदा करना चाहते हैं! पर समाजवाद क्या है? जो जानते हैं वे इन बातों पर विश्वास नहीं रखते। किन्तु उनकी दिमाग़ी नज़ाकत पर हँसी ज़रूर आ जाती है। दूसरे वर्गों की सामू-हिक शक्ति को तहस-नहस कर बाज़ार की खोज में उप-निवेश प्राप्त करना समाजवाद का उद्देश्य नहीं है। सोवियट रूस साम्राज्य-प्रसार की राक्षसी बुभुक्षा का शिकार नहीं है। अगर वह भारत पर आक्रमण करना ही चाहता तो जर्मनी के साथ इस काम के लिए उसे संधि करने की कोई ज़रूरत न पड़ती। वह बग़ैर जर्मनी के सहयोग के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आक्रमण कर सकता है। काश्मीर के सीमान्त तक उसका राज्य है। वहाँ की सुन्दर भूमि में ख़ून की नदियाँ बह सकती हैं। पर सोवियट रूस ऐसा चाहता नहीं है। हाँ, जर्मनी से हमें अवश्य डर है !

तुर्की एवं जर्मनी की आर्थिक सन्धि होने के समय 'न्यूयार्क हेरल्ड ट्रिब्यून' में एक ख़बर छपी थी कि हिटलर भारत की ओर आँखें गड़ा रहा है। एक विश्वस्त ब्रिटिश राजनीतिज्ञ एवं मास्को के एक प्रमुख पत्र का कहना था कि जर्मनी बर्लिन से बग़दाद, ईरान और काबुल होकर भारत का मार्ग साफ़ कर रहा है। पर पोलैंड का युद्ध आरम्भ होते ही तख़्ता उलट गया है। तुर्की एवं जर्मनी की आर्थिक सन्धि ख़त्म हो गई है। एक तरफ़ तुर्की जर्मनी के शत्रु इँग्लैंड और फ़्रांस से सन्धि करता है, दूसरी तरफ़ जर्मनी सोवियट रूस को तुर्की पर आक्रमण करने के लिए उत्तेजित करता है और सहयोग देने के लिए तैयार है।

हिटलर छल-कपट और मेल-मिलाप से अपना उद्देश्य सिद्ध करना चाहता है। अतः पश्चिमी सीमान्त ख़तरे से बाहर नहीं समझा जा सकता। पश्चिम के समुद्री उपकूल का भी यही हाल है। अगर इटली युद्ध में भाग लेता है तो यह सम्भावना है कि ब्रिटिश जहाज़ों के लिए भूमध्यसागर के दरवाज़े बन्द कर दिये जायँ। पराधीन भारत की रक्षा और उसका अस्तित्व भूमध्यसागर पर निर्भर करता है। यह रास्ता बन्द हो जाने से अन्न-जल का कष्ट तो हमें उठाना न पड़ेगा, पर ग्रेट ब्रिटेन से सैनिक मदद नहीं मिल सकेगी ! पश्चिम के समुद्री उपकूल पर इटली बम-वर्षा कर सकता है।

आज से १५ महीने पहले सर जान हेमिल्टन ने चीन और जापान की लड़ाई का वर्णन करते हुए कहा था कि जापानी सेना सिंगापुर की सड़क पकड़े हुए है। जापान के सम्राट् का रास्ता साफ़ है। वह हाँग-काँग, सिंगापुर, बर्मा और आसाम होते हुए बंगाल को जाता है। सर जान हेमिल्टन कोरे राजनीतिज्ञ ही नहीं हैं, वे ख्याति प्राप्त सैनिक अफ़सर रह चुके हैं। पर पोलैंड-युद्ध के आरम्भ होने के बाद से जापान ने अपने को तटस्थ घोषित किया है। पर जापान ब्रिटेन के प्रति हृदय-परिवर्तन का सबूत नहीं दे रहा है। जापान में ब्रिटेन के विरुद्ध बड़े ज़ोर-शोर से विद्वेषपूर्ण भावों का प्रसार इसलिए किया जा रहा है कि शीघ्र ही पूर्व भी युद्ध का मोर्चा बन जाय। अभी पेकिंग के समाचार से पता चला है कि जापान-नियंत्रित चीन में ब्रिटेन का विरोध पहले ही ऐसा है। उसमें कोई कमी नहीं आई है। इस तरह ब्रिटेन के प्रति जापान का रुख़ देखकर यह स्पष्ट प्रकट होता है कि जापान एशिया में भी बमों और गोलों के महानाशकारी धायँ-धायँ और सायँ-सायँ शब्द सुनाने के लिए तैयारी कर रहा है।

आज-कल पूर्वी सीमान्त की रक्षा का समुचित प्रबन्ध केवल सिंगापुर में है। ब्रिटेन के प्रति जापान का रुख़ देखकर तथा पूर्वी देशों में होनेवाली हलचल के कारण भारत के उत्तरी-पूर्वी सीमान्त के बचाव का प्रश्न विशेष महत्त्व रखता है। रक्षा का जो बजट भारत-सरकार ने हाल में तैयार किया है उसका भी अधिक ध्यान उत्तरी पश्चिमी सीमान्त की ओर गया है। सिंगापुर में ब्रिटिश फ़ौजी अड्डा रहते हुए भी हमारी उत्तरी-पूर्वी सीमा ख़तरे से बाहर नहीं समझी जा सकती। उत्तरी-पूर्वी भारत के बहुत-से नगर ख़तरे में हैं। ऐसी बात नहीं कि ब्रिटिश सरकार यह अनुभव नहीं करती। वह ख़तरे का अनुभव करती है। यही कारण है कि कलकत्ता आदि नगरों में हवाई हमले से बचने के उपाय लोगों को बताये जाते हैं। हवाई हमला-रक्षा-समिति हवाई हमलों के सम्बन्ध में विशेष सतर्क दिखाई देती है।

चेटफ़ील्ड-कमिटी ने इन्हीं बातों को दृष्टि में रखकर भारत-रक्षा के लिए विशेष सिफ़ारिशें की हैं। चेटफ़ील्ड-कमिटी की सिफ़ारिशों में सबसे महत्त्वपूर्ण चीज़ तो यह है कि चेटफ़ील्ड-कमिटी ने भारतीय सेना के भारतीयकरण पर ज़ोर दिया है, जिसके लिए ४६ करोड़ रुपये के व्यय की स्वीकृति भी की है। उसकी सिफ़ारिशों को कार्य का रूप देने के लिए ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटिश पलटनें भारत से हटा लेने का निश्चय किया है, जिसके फलस्वरूप भारत को २०१ लाख रुपये की बचत होगी। ये ब्रिटिश सैनिक भारत में बेकार ही हैं। अँगरेज़ों के स्वभाव के अनुकूल यहाँ का जलवायु भी नहीं है और वे इस असुविधा के कारण कुछ नहीं कर सकते। कैप्टेन गीवीमोस्क ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन डिफ़ेन्स प्राब्लेम' में इस विषय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर विचार किया है कि ब्रिटिश सैनिकों पर जो ख़र्च होता है, बेकार ही होता है, क्योंकि बिना ब्रिटिश सेना के भी भारतीय सैनिक अपने देश की रक्षा कर लेंगे, और वह भी पूर्ण योग्यता और अपेक्षाकृत कम ख़र्च में । अभी कुछ दिन हुए मदरास के ब्रिटिश फ़ोर्स के प्रधान मेडिकल अफ़सर सर्जन जेनरल गर्डन ने कहा था कि 'इँग्लिस्तान से हिन्दुस्तान में एक बहुत बड़ी संख्या में ऐसे नौ-जवान लड़के आते हैं जो उस परिश्रम को वहन करने में असमर्थ होते हैं जो युद्ध-काल में करना पड़ता है।'

भारतीय जलसेना का नाम है रायल इण्डियन मेरीन । युद्ध के छिड़ने के पहले इसमें ५ स्लूपस, १ पेट्रोल बेसिस, १ सर्वेशिप, १ डिपोशिप और छोटे छोटे जहाज़ थे । और हमारा समुद्री किनारा प्रायः ७,००० मील लम्बा है । इतने बड़े समुद्री किनारे पर भी केवल ७ बड़े बड़े बन्दरगाह हैं और २६ साधारण बन्दरगाह हैं । अफ़्रीका की ओर से हिन्दुस्तान पर आक्रमण हो तो हमारी उपर्युक्त जलसेना कुछ भी काम न दे सकेगी । भूमध्य-सागर भी ख़तरे में है, वह कुछ भी मदद नहीं कर सकता है ।

पर आज की लड़ाई तो पैदल फ़ौज तथा जलसेना से नहीं लड़ी जा रही है । आज की लड़ाई तो हवाई जहाज़ों की लड़ाई है । इटली के सेनापति जेनरल डोकटे ने कहा भी था कि हवाई शक्ति ही राष्ट्रों का भाग्य-निर्णय करेगी । इसलिए सभी देशों में काफ़ी ज़ोर-शोर से हवाई जहाज़ बनाये जा रहे हैं । जहाँ ग्रेट ब्रिटेन के शत्रु राष्ट्रों के हवाई जहाज़ों की संख्या हज़ारों में है, वहाँ भारत में युद्ध आरम्भ होने के पहले वे कुल १०० थे और एक आधा दर्जन इधर तैयार हुए हैं । युद्ध आरम्भ होने के पहले जो १०० जहाज़ यहाँ थे, वे भी ऐसे नहीं हैं कि शत्रुओं के वायुयानों का तेज़ चाल से पीछा कर सकें । वे पीछा करने के लिए रक्खे भी नहीं गये हैं । उनका कार्य तो केवल सीमान्त-प्रदेश पर बम बरसा कर सीमान्त के लोगों को भयभीत कर देना है । ब्रिटेन के शत्रु बहुत दूर नहीं हैं । उनकी दूरी भी एक चार्ट में यहाँ हम नीचे देते हैं –

मासावा	(इटली)	कराँची	से	१८०० मील
मोगड़िशु	,,	,,	,,	१९०० ,,
..	,,	बम्बई	,,	२००० ,,
एडिसा अबाबा	,,	,,	,,	२२५० ,,
..	,,	कराँची	,,	२००० ,,
शंघाई	,,	कलकत्ता	,,	२००० ,,
चानकिंग	,,	कलकत्ता	,,	१२०० ,,

इस दूरी के चार्ट से पता लगता है कि ग्रेट ब्रिटेन के शत्रु हमारे पास हैं । कराँची, कलकत्ता और बम्बई आदि नगर ख़तरे में हैं । जिस ब्रिटिश साम्राज्य में कुत्तों तक के बचाने के लिए लन्दन की भूमि में लौह-भूमि के हरम (Steel Cabin) बनाये जा रहे हैं, विषैली गैस से बचने के लिए गैस मास्क और हवाई जहाज़ों को मार गिरानेवाली तोपें तैयार की जा रही हैं, उसी ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारत में क्या हो रहा है ? इसका जवाब ब्रिटिश सरकार ही दे सकती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गोस्वामी तुलसीदासचरितामृत

लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, एम० ए०

स्वामी तुलसीदास के सम्बन्ध में अब तक जितने भी अनुसन्धान हुए हैं उनसे कितने ही ऐसे ग्रन्थ मिले हैं जिनसे गोस्वामी जी की जीवनी के विषय में ऐसी ऐसी बातों का पता चला है जिनका हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थी को अब तक कुछ ज्ञान भी नहीं था। इस खोज के कारण हिन्दी-साहित्य के इस महान् कवि के जीवन पर यथेष्ट प्रकाश पड़ा है। परन्तु मेरे विचार में हस्त-लिखित ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ ऐसे प्रकाशित ग्रन्थ भी हैं जिनके अस्तित्व का हिन्दी-संसार को अब तक पता नहीं है। 'श्री गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत' एक ऐसा ही ग्रन्थ है। इसमें गोस्वामी जी की यात्राओं का वर्णन है। यह ग्रन्थ गद्य में है और इसके निर्माण की कहानी इस प्रकार है। आरम्भ में लिखा है—

"गुरुवन्दना"

श्री अयोध्या जी में नये घाट के पास नेवास करने-वाले महात्माओं के पूज्य रामचन्द्र गुरुमंत्र शभाशद करने-वाले अैसे उत्तम पदवी रखने वाले को ज्ञान ध्यान भक्ति विद्या के सदाव्रत बाँटनेवाले श्री महाराज पण्डितराज उमापति जी शाहेब तेवारी गुरुदेव स्वामी के चरण कमलों को नमस्कार करता हूँ जिस्से अर्थ धर्म मोक्ष चारों पदार्थ और कोई मनोरथ दुर्लभ नहीं गोशाईं तुलसीदास जी ने कहा है।

श्री गुरु पद नख मणिगण जोती
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती
दलन मोह तम शोष प्रकाशू
बड़े भाग्य उर आवहिं जासू

यह महात्म्य श्री गुरु जी के चरणारबिन्द का श्री महाराज के ज्ञान ध्यान भक्ति विद्या में सुयस पाया इस वाइस से सबने महाराज के उपासक अपार तेज प्रताप ज्ञान वान दया आदिक सम्पूर्ण गुणों को संसार से अनूपम कहा है भुवनेश कवि असनी गोपालपुर वाले ने शिवरूप कहि कर अस्तुति की है

कवित्त

दोऊ प्रबल यस गावत सकल जग
दोऊ को शील कहि गुणगण बखानी हैं॥
दोऊ नाम धाम पूरण करत आस दोऊ
दास दारिद हरण बरदानी हैं॥
भनि भुवनेश यश बिलसात देश देश
सेवत नरेश दोऊ पद जौन ज्ञानी हैं॥
उमापति जू सो उमापति सों फरक एतो
उत बाम है भवानी इत दाहिनी भवानी हैं॥

बार्ता इस तरह है उमापति की स्तुति बनाये हुए ग्रन्थों में अच्छे अच्छे पण्डितों और महात्मावों ने बहुत स्तुति करी है वह मैं नहीं लिख सकता हूँ पुस्तक की शुद्धता और पवित्रता के हेत इतना लिखकर अब इस पुस्तक का हाल लिखा जाता है इसका नाम गोशाईं चरित्रामृत है भवानीदास शाहव दाशों के दास ने बरज़बान भाखा छपे वो लिखे ग्रन्थों में भक्तमाल श्री नाभा जी की बड़े प्रेम और भक्ति से लिखा है इसमें पहिले बन्दना श्री गणेशजी की, श्री शिवजी, श्री पारबती जी, श्री गुरुदेव स्वामी, श्री रामजी, श्री हनूमान जी और सन्त महात्मावों का है और इसके बाद सन्तों के गुण गाने का महात्म्य और महाराज रामप्रशाद जी महन्त की दया से वेा आज्ञा से इसका तसनीफ़ करना लिखा है और इस पुस्तक का नाम गोशाईं चरित्रा-मृत जो रक्खा है बिना आश्चर्य यह कथा अमृत है लेकिन अमृत से ज़्यादा सुख देने वाली कथा है क्योंकि अमृत पीने वाले को अमर कर देता है परंतु भवसागर पार उतारने की सामर्थ्य नहीं रखता और इस कथा का पढ़ना सुनना भवसागर पार उतार देता है श्री नाभा जी ने यह दोहा कहा है

दो० अग्रदास आज्ञादई, हरि भक्तन गुण गाव
भव सागर के तरन को, नाहिन आन उपाव

इस पर गोशाईं तुलसीदास जी ने कहा है

दो० सबै कहावत राम के सबै राम की आस
राम करहिं जे आपनो तेहिं भजु तुलसीदास

जिसका अर्थ यह है रामदास का भजन सब भजनों से अधिक है जिसकी इच्छा गोशाईं जी करते हैं और गोशाईं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसीदास जी का महात्म्य और रामभक्ति शिरोमणि होना संसार में बिदित है उनके महात्म्य को सब महात्मावों ने कहा है उसमें से स्वामी रामानंद जी महाराज जी का एक दोहा और तीन कबित्त श्री महंतप्रसाद जी के लिखे जाते हैं

दो० श्री समुद्र श्री ब्रह्मरत, जगत गुरू जगबंद
श्री गोसाइ रम राममय, श्रीमत रामानंद

कबित्त पहला

जिनको सति भाव प्रभाव सदा शुभ
रामहिं को पद पंकज नीको ॥
मानो बिराग उपासना प्रेम को
नेम को है इनही शिर ठीको ॥
रति रामहिं सों मति रामहिं
राम सों बान धरे सिय पिय को ॥
दक्ष मनोगह पूरण अक्ष प्रतक्ष स्वरूप गोसाइहिं
जी को ॥१॥

कबित्त दूसरा

चात्रिकबृत्त सों सात्विक रूप मनो नभ निर्मल कातिक ही को।

पातक पुञ्ज शिराँहि बिलोकत दीनदयाल विषय रस फीको ॥

पूजा मों अंग प्रशंग मो कान सो ध्यान धरै रघुनन्दन सी को ॥

चक्षु में रूप धरे हरिपक्ष प्रत्यक्ष स्वरूप गोसाईंहि जी को ॥२॥

कबित्त तीसरा

बेद को बिधान लय पूरण पुराण मत
मानत प्रमाण साध सिद्धु सब ठांईं के ॥
प्रेम रस भीने पद परम प्रबीने काहि
दीने हैं अखेट कबि भेद जहाँ तांई के ॥ दया पर
सावै बरसावै प्रेम पूरो जल
हियो हुलसावै जो पाहन के नांई के ॥ स्वामी
जी के चरित्र और बापुरो बखानै कौन
बृत्त यह बांटे परी तुलसी गोशांई के ॥३॥

प्रस्तावना

और उल्था इसका इस ज़बान में इस तरह हुआ कि यह पोथी लाला रामगुलाम जी तिनके पुत्र बेंचूलाल जी खत्री शाकिन् फतेपूर के पास वहाँ देवनागरी में थी उन्होंने मेरे ऊपर दया की निगाह देखकर मुझको दिया मैंने उसको श्री महाराज पण्डित माधोराम जी शाकिन् पलिया परगने शुबेहाल जाकर बाबू जीराम जी वकील मुकाम नवाबगंज से सुन कर यह इरादा किया कि उर्दू में लिखी जावै जिसमें सुनने को कौन कहै देखने से सुख मिलै और लिखना शुरू किया था इतने में मुन्शी हरचरनदास जी मुख्त्यार रियासत रामनगर जिला बारहबंकी ने अपनी पोथी को जो फारशी की थी मुझको दिया कि इसको हरफ के लिखने पढ़ने की महाबरा है निहायत खुशी और आसानी होगई और देखने से जो मतलब समुझ में आय श्री रामजी की दया से लिखकर पूरा किया फिरस्त चरित्रों की पहिले आदि में मिलाया है और सन् सम्बत् उसके प्रारम्भ और समाप्त का और नाम लिखने वाला का पुस्तक समाप्त में लिखा है देखने सुनने वाले शाधुवों महात्मावों से यही अर्ज है कि जहाँ पर शुद्ध अशुद्ध हो मेरे खता को माफ करैं और महात्मावों के चरित्र पढ़ सुनकर सुख लेवैं.

ग्रंथ के अन्त में इस प्रकार लिखा है—

श्री परमेश्वर जी की दया से महीना बैसाख, सम्बत १९४३ बिक्रमानुसार मई सन् १८८६ ईसवी में गोसाईं तुलसीदास जी महाराज के अपार चरित्रों से उल्था इस पोथी गोसाईं चरित्रामृत. पूरा हुआ. कलि का नाम लाल जी पिता का नाम नौनिधराय कानूनगो काकोरी, जिले लखनऊ है और तरतीब इसकी मुकाम नवाबगंज जिले बाराबंकी में हुई है.

फिर इस पुस्तक को श्री अयोध्याजी में श्री कनकभवन के समीप श्री महाराज परम उदार सुजस विस्तार श्री स्वामी श्री १०८ परमहंस सीता सरणजी के आज्ञानुकूल तुलसीराम ने उरदू से नागरी में किया इस पुस्तक को छोटे-लाल लक्ष्मीचन्दजी ने श्री स्वामी श्री महाराज परमहंस जी से विनयपूर्वक इस पुस्तक को लेकर शहर बम्बई हरि-प्रसाद भागीरथजी का छापने का दिया.

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस ग्रंथ का मूलतः निर्माण भवानीदास ने किया था। लाल जी कवि ने उर्दू में इसका उल्था किया। फिर उसको अयोध्या के तुलसीराम ने नागरी में किया। मालूम होता है कि उर्दू से नागरी में करते समय तुलसीराम ने अधिक सावधानी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम नहीं लिया प्रस्तुत ग्रंथ खड़ी बोली गद्य में है। परन्तु गद्य शिथिल है और कहीं-कहीं व्रजभाषा का पुट भी मिल जाता है। नाभादास और स्थान-स्थान पर रची गई स्वयं गोस्वामी जी की कविताओं के उद्धरण के अतिरिक्त बीच-बीच में इस प्रकार भी लिखा मिलता है--

श्री हनुमन्त प्रसंग शुभ, प्रथम चरित विस्तार
लह्यो गोशांई दरस रस, विदित सकल संसार
--पृ० ३

....हिन्दी में लिखा है.

।। छंद ।।

कहुँ दीनन को प्रतिपाल करैं।।
कहुँ साधुन को मनमोद भरैं।।
कहुँ लषनलाल के चरित बँचै।।
कहुँ प्रेम मगन ह्वै आपु नचै।।
कहुँ रामायण सुभगान सचै।।
कहुँ उत्साह कुलाहल भौर मचै।।
कहुँ आरत जनको दुःख हरै।।
कहुँ अज्ञान पर ज्ञान धरै।।१।। --पृ० ४०-४१.

.....हिन्दी में लिखा है.

लागिये नाथ गोहार और बल कुछ न बिसाता।।
राखैं हरि के दास कि सिरजनहार बिधाता।।
--पृ० ५२.

...हिन्दी की पोथी में लिखा है उसका मतलब यह है. महात्मा के साथें जो बुराई करता है वही बुराई उसको मार डालती है ..... --पृ० ५६.

.....सोरठा लिखा है.

।। सोरठा ।।

तुमहिं न ब्यापै काम, अति कराल कारण कवन।।
कहिय तात सुख धाम, योग प्रभाव कि भक्ति बल।।
--पृ० ५९.

इससे ज्ञात होता है कि मूल-ग्रन्थ व्रजभाषा-पद्य में है। उपर्युक्त उद्धृत अंश मूल कवि की कविता के नमूने समझने होंगे।

कवि भवानीदास[1] के परिचय के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। उनके गुरु पण्डितराज उमापति[2] जी तिवारी के विषय में भी निश्चय-पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। अयोध्या के तुलसीराम के विषय में भी कुछ ज्ञात नहीं है। केवल लाल जी कवि के विषय में इतना पता चलता है कि वे काकोरी, लखनऊ, ज़िला के निवासी थे। उन्होंने 'लक्ष्मीनारायण कवि का जीवन-चरित' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इनका कविता-काल संवत् १९४५ माना जाता[3] है। प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुसार लाल जी के पिता का नाम नौनिधिराय था। श्री गोस्वामी तुलसीदासचरितामृत का उल्था सन् १८८६ ईसवी में नवाबगंज, बाराबंकी-ज़िला में हुआ।

यह ग्रन्थ गोस्वामी जी के हनूमान-दर्शन से आरम्भ होता है। मूल के कवि ने इस विषय को विस्तार से नहीं लिखा, क्योंकि उनके विचार में यह 'चरित्र' संसार में विदित है। गोस्वामी जी के जन्म, जन्म-स्थान आदि के विषय मे भी उन्होंने कुछ नहीं लिखा। इसकी पूर्ति उल्थाकार ने कर दी है। उन्होंने 'सरोज' और महेशदत्तकृत 'काव्य-संग्रह' (१९३० सं०) के आधार पर गोस्वामी जी को सरवरिया ब्राह्मण, उनका मुक़ाम राजापुर (प्रयाग-ज़िला), जन्म-संवत् १५८३ और काशी में संवत् १६८० में देह-त्याग होना लिखा है। यह भी कहा है कि वे षट्शास्त्री पंडित थे और 'उमर भर संसार के उपकार के वास्ते राम-चरित्र-वर्णन करते रहे'। गोस्वामी जी के स्त्री-प्रेम का भी संकेत कर दिया है। मूल के कवि ने केवल गोस्वामी जी की यात्राओं, भक्तजनों से भेंटों और उनके चमत्कारों का ही वर्णन किया है।

१--'विनोद' (भाग ३, पृ० १०९१) में एक भवानीदास नामक साधारण श्रेणी के कवि का उल्लेख है। उनका जन्मकाल संवत् १८७५ और कविता-काल संवत् १९०२ बताया गया है।

२--'विनोद' (भाग ३, पृ० १०८२) में एक उमापति त्रिपाठी उपनाम 'कोविद' का उल्लेख है। उनके विवरण के विषय में कहा गया है कि वे अयोध्या में रहते थे और संस्कृत में कविता अच्छी करते थे। 'विनोद' में उनके ग्रन्थों का भी निर्देश है। वे महात्मा ऋषियों की तरह माने जाते थे और १९२५ संवत् तक जीवित रहे। उनका कविता-काल संवत् १९०० माना गया है।

३--दे० 'विनोद' (भाग ४), पृ० २६४.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस ग्रन्थ में गोस्वामी जी की यात्राओं आदि का वर्णन संक्षेप में इस प्रकार है—

गोस्वामी तुलसीदास हनूमान का दर्शनकर अयोध्या में आ बसे और रामचरित्र का वर्णन करने लगे। एक दिन नाभा उनसे मिलने के लिए आये। परन्तु सेवकों की भूल के कारण वे गोस्वामी जी से न मिल सके और थोड़ी देर बाहर ठहर कर वृन्दावन चले गये। जब गोस्वामी जी को इसका पता चला तब वे बहुत पछताये और उसी दिन नाभा जी से मिलने के लिए वृन्दावन को चल दिये। वहाँ उनकी स्तुति में नाभा जी ने 'त्रेता काव्य निबन्ध' वाला छप्पय कहा।

उसको सुनकर गोस्वामी जी ने कहा कि कृपाकर इसको गुप्त ही रखिएगा। वहाँ उनके इच्छानुसार श्रीकृष्ण ने वृन्दावन में धनुष-बाण धारण किया। उसी समय दक्षिण देश से अयोध्या जाती हुई रामजी की एक मूर्ति को एक ब्राह्मण के इच्छानुसार गोस्वामी जी ने वृन्दावन में स्थापित कराया। कृष्ण जी के धनुष-बाण धारण करने से कृष्णोपासकों को गोस्वामी जी से ईर्ष्या हुई। परन्तु गोस्वामी जी ने उनको शान्त कर दिया। वहीं कन्नौज के कनौजिया और गोस्वामी जी के गुरुभाई नन्ददास आये और कुछ दिन गोस्वामी जी के पास ठहरकर वापस चले गये। वृन्दावन के महन्त को अयोध्या का माहात्म्य सुनाकर गोस्वामी जी अयोध्या को लौट गये। वहाँ उन्होंने अपनी गीतावली राम जी के सामने नृत्य करनेवालों को दे दी, जिसके कारण वे गन्धर्वों से भी बढ़ गये। परन्तु जब उस नगरी में 'कलियुग की कुचाली हिंसा और भक्तबाधा' देखी तब वे उसे छोड़कर काशी चले गये। वहाँ उन्होंने रामचन्द्र जी का मन्दिर बनवाया और रामायण का प्रचार किया। भाषा में रचना करने के कारण काशी के पण्डित गोस्वामी जी से बहुत बिगड़े और उनका मान भंग करने के विचार से वे सब दंडिराज श्री मधुसूदन स्वामी के पास पहुँचे और उनकी सहायता माँगी। परन्तु उन्होंने काशी के पंडितों को गोस्वामी जी का माहात्म्य बतलाया और यह श्लोक पढ़ा—

परमानन्दपत्रोऽयं जंगमस्तुलसीतरुः।
कविता मंजरी यस्य रामभ्रमरभूषितः॥

वह सब सुनकर पंडितों ने जाकर गोस्वामी जी से क्षमा माँगी। काशी में रामभक्ति का प्रचार होते देखकर भैरव ने गोस्वामी जी को डराकर काशी से भगा देना चाहा। परन्तु हनूमान् जी के कारण उनका कुछ बस न चला। एक दिन कुछ चोरों ने उनके यहाँ चोरी करनी चाही, पर वे जब जिधर से घुसने का प्रयत्न करते, उधर ही राम-लक्ष्मण के दर्शन होते, जिससे वे मुक्त हो गये। गोस्वामी जी को जब इसका सारा भेद मालूम हुआ तब उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लुटा दी। इसी प्रकार गोस्वामी जी ने गणिका, ज़मींदार, अनेक पंडितों और योगियों, नीच जाति के चौहड़े आदि का अपने प्रताप और उपदेशों से उद्धार किया।

गोस्वामी जी काशी से जनकपुर गये। वहाँ हनूमान् जी की दया से कुछ ब्राह्मणों का गाँव माफ़ करा दिया।

जनकपुर से वे फिर काशी लौट आये। वहाँ उन्होंने बरखण्डी नामक एक प्रेत को मुक्त किया। वह प्रेत गोस्वामी जी को लेकर नैमिषारण्य गया और उनकी सहायता से ख़ज़ाना निकालकर तीर्थों के शुद्ध और पवित्र करने में लगा दिया।

काशी से गोस्वामी जी 'चन्नारगढ़' और विंध्याचल की तराई से होते हुए तीर्थराज प्रयाग में आये। यहाँ उन्होंने मुरारिदास और उनके भक्त बाबा मलूकदास जो प्रयाग से बीस कोस पर कड़ा-मानिकपुर में रहते थे, भेंट की। * वहाँ से बिदा होकर गोस्वामी जी चित्रकूट पहुँचे,

* 'भाषा-काव्य-संग्रह' (सं० १९३०) के संग्रहकर्त्ता महेशदत्त ने लिखा है—"ये ब्राह्मण कड़ा-मानिकपुर जो कि गङ्गा जी के तट पर है वहाँ के रहनेवाले बड़े सिद्ध थे। इनके मित्र एक मुरारिदास वैष्णव जो कि कड़ा नगर से बीस कोस पूर्व दिशा में कहीं गंगा जी के निकट रहते थे माघ मास में उन्होंने एक बड़ा भारी भण्डारा किया पर मनुष्य बहुत थे इससे सामग्री न पहुँच सकी तब ईश्वरानुग्रह से यह वृत्त मलूकदास को विदित हुआ एक तोड़ा पर अपनी ओर से लिखा कि मुरारिदास के पास पहुँचे उसे ले गङ्गाजी से कहा कि हे गङ्गे इसको अभी वहाँ पहुँचा दीजिये क्योंकि मनुष्य इसको ले जाकर समय पर नहीं पहुँच सकता यह कह गङ्गा जी में छोड़ दिया उसी समय मुरारिदास अपने घाट पर स्नान करने गये थे कि तोड़ा रुपयों से भरा हुआ पाय में लगा उसे देख जाना कि मलूकदास का भेजा हुआ है सबको भोजन कराया ये मलूकदास तुलसीदास जी के समय में थे क्योंकि जब तुलसीदास अयोध्या जी से चित्रकूट जाते थे तो इनसे भेंट हुई थी ये संवत् १६९५ में वहीं मृत्युवश हुये॥"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ उन्होंने रघुनाथ जी की लीला और मृगया-विहार देखकर आनन्द प्राप्त किया। हनूमान् जी की आज्ञा से राम-घाट में पहुँचकर उन्होंने स्वामी दरियानन्द से भेंट की और रामचन्द्र जी के दर्शन किये। चित्रकूट के पास ही एक गाँव में गोस्वामी जी ने एक ब्राह्मण का दारिद्र्य दूर किया और बादशाह के बुलाये जाने पर चित्रकूट से दिल्ली को चल दिये।

वहाँ बादशाह ने उनको 'करामात' न दिखाने के अपराध में जेल में बन्द कर दिया, परन्तु हनूमान् जी की कृपा से मुक्त हो गये। पुरानी दिल्ली उजड़ गई। बादशाह ने गोस्वामी जी की आज्ञा से यमुना की उत्तर-दिशा में बाँधोगढ़ में बादशाही महल बनवाये और अपने लड़के के नाम से शाहजहाँनाबाद बसाया। वहाँ से वे एक ख्याल को माया से मुक्त करते हुए वृन्दावन चले गये। वृन्दावन से वे चित्रकूट वापस लौट गये।

सन्दीला में नन्दलाल नामक एक भक्त राम के अनन्य उपासक रहते थे। एक समय अयोध्या जी के दर्शन करने के लिए वे सन्दीला से चलकर मलिहाबाद खोटे शहर के पास पहुँचे। वहाँ पठानों ने उनको और उनके भक्तों को बहुत तंग किया। परन्तु राम जी की कृपा और अपने प्रताप से सबको परास्त कर वे अयोध्या गये और वहाँ से लौटकर रास्ते में कड़ा-मानिकपुर में मलूकदास से मिलकर चित्रकूट में गोस्वामी जी के पास पहुँचे और उनके साथ छः महीने तक रहे। चित्रकूट में गोस्वामी जी ने बहुत-से भक्तों का भला किया।

चित्रकूट में बहुत दिन तक रहने के बाद गोस्वामी जी फिर अयोध्या पहुँचे। वहाँ अनेक व्यक्तियों का कल्याण कर वे नीमखार के लिए रवाना हो गये। पहले रवाना में जहाँ राजा मानधाता ने रावण को पराजित किया था, ठहरे। रवाना से सूकरखेत, सूकरखेत से पसका और वहाँ से सियाबार नामक गाँव में पहुँचे। सियाबार में कुछ दिन ठहरकर वे लखनऊ के पास हनूमान् जी के स्थान के दर्शनकर लखनऊ पहुँचे। वहाँ वासकर रामभक्तों का सत्संग किया और भक्तों पर कृपाकर लखनऊ के पास मंडियाव में लाला भीखमसिंह नामक एक अनन्य भक्त से मिलने गये। चनहट पहुँचकर उन्होंने जब यह सुना कि भीखमसिंह कानूनगो हैं और ब्राह्मण चौधरियों से उसका झगड़ा हो रहा है तब वे मलिहाबाद चले गये, जहाँ रामोपासक एक वैष्णव भाट रहता था। उसने गोस्वामी जी की बहुत भक्ति की। राम में उसका प्रेम देखकर गोस्वामी जी ने उसे अपने हाथ की लिखी रामायण दी, जिसको पाकर वह कृतार्थ हो गया। यह पुस्तक अब तक मलिहाबाद में मौजूद है। मलिहाबाद से चलकर गोस्वामी जी रसूलाबाद में कोटरा नामक गाँव में अनन्य माधव भक्त से मिले। वहाँ से बिदा होकर वे श्रीगंगा जी के ब्रह्मावर्त घाट पहुँचे और वाल्मीकि जी का स्थान देखकर प्रेम से पुलकित हो उठे। ब्रह्मावर्त की प्रदक्षिणाकर वे सन्दीला पहुँचे। वहाँ भक्तों को कृतार्थकर वे पिहानी चले गये और सुकुल नामक अनन्य भक्त का सत्संग किया। पिहानी से गोस्वामी जी नीमखार होते हुए मिसरिख पहुँचे। मिसरिख से रामपुर (मथुरा) पहुँचकर वहाँ के राजा का आतिथ्य स्वीकार किया। रामपुर से वे सिद्धा हलवाई से मिलकर अयोध्या लौट गये।

अयोध्या में कुछ दिन ठहरकर उन्होंने भक्ती का सत्संग किया और राम-भक्ति का प्रचार किया। वहाँ से वे काशी चले गये।

काशी में रहकर गोस्वामी जी आनन्द से राम-भजन करने लगे। लाला भीखमसिंह वहाँ जाकर उनसे मिले और अपने अवगुणों के लिए क्षमा माँगी। गोस्वामी जी के आशीर्वाद से उनको सच्चा वैराग्य प्राप्त हुआ। एक बार काशी में हैज़े का प्रकोप हुआ। काशी-निवासी गोस्वामी जी की शरण में आये। उन्होंने नगर की दुर्दशा को देखकर हनूमान् जी की स्तुति-द्वारा बीमारी दूर कर दी, जिससे सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। वहीं मीराँबाई का पत्र उनको प्राप्त हुआ और कुछ दिन बाद स्वयम् मीराँ जी गोस्वामी जी से मिलने के लिए काशी पधारीं। उनकी भक्ति से गोस्वामी जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और मीराँ जी ने काशी में रहकर जन्म का फल पाया। काशी में रह कर गोस्वामी जी बहुत-से पापियों के पातक दूरकर उन्हें भक्ति का मार्ग दिखाया। एक समय कवि गंग ने गोस्वामी जी को माला जपते देखकर एक कवित्त पढ़ा, जिसका अर्थ यह था कि हाथी कौन माला रखता है, जिससे पेट भरता है। गोस्वामी जी ने कहा कि हम तो इसी माला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अपना उद्धार जानते हैं। हाथी की बात तुम जानो और यह चौपाई पढ़ी—

उमा बचन जो समुझि न बोलहिं।
सुधा होई विष कर्म ते डोलहिं॥

इसके बाद कवि गंग दिल्ली गये और वहाँ कवित्त बनाकर बादशाह के सामने पढ़ा। उसमें बादशाह की बेगम का उल्लेख था, जिससे बादशाह बहुत नाराज़ हुए और गंग को हाथी के पाँव से कुचलवा डाला। महात्मा के साथ बुराई करने का फल उन्हें मिल गया। वहीं काशी में एक समय जहाँगीर बादशाह आकर गोस्वामी जी से मिला। उसने बनारस के इलाक़े का सारा रुपया गोस्वामी जी को देना चाहा। परन्तु उन्होंने स्वीकार न किया। जहाँगीर ने कहा, हमारे दरबार में चौदह रत्न थे (टोडरमल, वीरबल, खानखाना, नरहर, अहमद आदि), उनमें एक सूरदास भी थे। गोस्वामी जी ने कहा कि चौदहों में सूरदास जी को रत्न मानो। जहाँगीर ने कहा, सूरदास तो हमारा दिया हुआ धन स्वीकार कर लेते थे, आप भी कीजिए। गोस्वामी जी ने कहा, वे तो चन्द्रवंश के उपासक थे, और चन्द्रमा से जो कोई आँख मिलाता है उसकी रोशनी बढ़ती है, जिससे वह और भी चीज़ें देख सकता है। मैं तो सूर्य-वंश का उपासक हूँ। और जो सूर्य से आँखें मिलाता है उसको सूर्य के सिवा और कुछ नहीं दीख पड़ता। उसी अर्से में गोस्वामी जी के बदन में फोड़े हो गये थे। बादशाह ने कहा कि मेरे साथ 'हकीम डाक्टर अँगरेज़' बहुत हैं। उनकी तजवीज़ से कुछ दवा कर लीजिए। गोस्वामी जी ने एक कवित्त पढ़ा, जिसका अर्थ यह था कि मैंने नमकहरामी में राम जी का भजन छोड़ दिया, इसलिए वही नमक फूट-फूट कर निकल रहा है, रोग कुछ नहीं है। जहाँगीर बादशाह गोस्वामी जी के दर्शनों से तृप्त होकर वापस चला गया। एक व्यक्ति ने कहा कि महाराज इनके पिता अकबर के दरबार में वीरबल बड़े बुद्धिमान् थे। गोस्वामी जी ने कहा कि अफ़सोस, उन्होंने इतनी बुद्धि पाकर राम-भजन में न लगाई।

'श्री गोस्वामी तुलसीदासचरितामृत' में वर्णित वृत्तान्त का यही संक्षेप है। समस्त वृत्तान्त साठ 'चरित्रों' में कहा गया है। कहना न होगा कि वेणीमाधवदास-कृत 'मूल गोसाईंचरित' से इसकी अनेक बातें मिलती-जुलती हैं, जैसे, नाभादास, सूरदास, मीराँबाई, नंददास, मलूकदास, गंग, गोस्वामीजी का दिल्ली जाना, जहाँगीर का बनारस आना आदि विषय। मैं यहाँ इन विषयों की ऐतिहासिकता या प्रामाणिकता पर विचार करना नहीं चाहता, क्योंकि 'मूलगोसाईंचरित' के प्रकाश में आने के बाद इन बातों पर काफ़ी विवाद हो चुका है। मेरा कर्त्तव्य 'गोस्वामी तुलसिदासचरितामृत' से पाठकों का परिचय भर कराना है। इसमें गोस्वामी जी का भक्त की हैसियत से ही वर्णन किया गया है। उसमें अत्युक्तियाँ हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। किंवदंतियों का भी यथेष्ट मात्रा में सहारा लिया गया है।

नवश्री

लेखक, श्रीयुत सोहनलाल द्विवेदी

क्यों ढल आये करुणा बनकर ?

अपने उर की वेदना स्वयं
क्या तुम्हें मनाने को आई ?
चल पड़े इधर चुपचाप
न तुमने भी निज पगध्वनि सुन पाई ?
यह संभ्रम, मति विभ्रम क्यों कर ?
क्यों ढल आये करुणा बनकर ?

अनुताप हुआ, तुम सजल हुए
खिल उठे दग्ध हो करुणकांत,
पहले से तुम हो आज अधिक
लावण्य भरे सुंदर नितांत;
मनमुग्ध हुआ नवश्री लखकर;
क्यों ढल आये करुणा बनकर ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोशलिस्ट

लेखक, श्रीयुत रहबर, बी० ए०

रेल के तीसरे दर्जे में यों तो बहुत-सी बातें देखने-सुनने की होती हैं, परन्तु मेरी यात्रा आम तौर पर पढ़ने में ही बीतती है। इस बार जब मैं लुधियाना से लाहौर को लौट रहा था, मेरे पास पढ़ने के लिए कोई पुस्तक अथवा मासिक पत्र आदि न था। पूस का महीना था। सब मुसाफ़िर अपनी अपनी सीट पर सिमटे-से बैठे थे। एक नवयुवक के पास जो ओवर-कोट और दस्तानें पहने हुए था, एक पुस्तक रक्खी थी।

"क्षमा करना। क्या मैं यह पुस्तक देख सकता हूँ?" मैंने झिझकते झिझकते कहा और पुस्तक की तरफ़ हाथ बढ़ा दिया।

"बड़े शौक़ से।" नवयुवक ने जवाब दिया।

मैंने पुस्तक उठा ली। कवर पर लिखा था—भ्रम (और दूसरी कहानियाँ), लेखक श्रीमान्... । बड़े हर्ष से कवर उलटा और विषय-सूची पर दृष्टि डाली। नियमानुसार पहला नम्बर भूमिका थी। दूसरे में "भ्रम" और तीसरे में "ग़रीबी का सुख".....

"ख़ुराफ़ात!" मेरे मुँह से अनायास निकल गया। मन की उमंग और हर्ष पर घड़ों पानी पड़ गया। तबीअत ने आगे पढ़ना पसन्द न किया। मैंने नवयुवक को धन्यवाद किया और पुस्तक लौटा दी। फिर सोचना शुरू किया। संसार कितनी तेज़ी से बदल रहा है। लोग सत्य को समझने लगे हैं और अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं। मगर हमारे साहित्य की 'वही रफ़्तार बेढंगी जो पहले थी वह अब भी है।' इस समय हमारे कवियों और साहित्यकारों का कर्त्तव्य लोगों को इन परिस्थितियों से सन्तुष्ट रहने का उपदेश करना नहीं, बल्कि इनका विरोध करने की ज़रूरत है।

ग़रीबी में सुख ढूँढ़ना आग में शीतलता ढूँढ़ने के बराबर है। अगर ईसामसीह ने ग़रीबी के गुण गाये हैं और लिखा है कि केवल ग़रीब ही स्वर्ग के अधिकारी हैं तो इसका कारण यह हो सकता है कि वे ग़रीब थे और उन्हें अमीरों से चिढ़ थी, वर्ना ईसाई-मत की पुजारी हुकूमतें अपने देशों से निर्धनता को निकाल फेंकने के लिए इतनी तत्परता से काम न लेतीं, बल्कि उसके गौरव और स्वर्ग के मधुर स्वप्न देखने-मात्र में ही सन्तुष्ट रहतीं। फिर हमीं क्यों सुन्दर भ्रमों पर मन बहलाते रहें और सोचते रहें कि निर्धनता वह आत्मीय वस्तु है जिसका बदल प्रकृति ने उत्पन्न ही नहीं किया। इस प्रकाश-युग में भी ग़रीबी के सुख का वर्णन करना उतना ही बेईमानी है जितना कि ग़ुलामी के लाभ बताना।

ग़रीबों के प्रति सहानुभूति पैदा करना अच्छी बात है, लेकिन ग़रीबी को अमीरी से अच्छा बताना बिलकुल ग़लत है, मनुष्य-जाति को धोखा देना है—कहानी को सत्य से कोसों दूर ले जाना है।

(२)

गाड़ी पूरे वेग से जा रही थी। मैं अपने इन्हीं विचारों में डूबा हुआ था कि कान में गाने की भनक पड़ी। हमारी गाड़ी दो डिब्बों में विभक्त थी। संयुक्त डिब्बे में कोई गा रहा था। आवाज़ मीठी थी। सब मुसाफ़िरों का ध्यान उधर खिंच गया। मैं भी सुनने लगा। लेकिन गाना अकस्मात् बन्द हो गया, लोग फिर बे-ख़बर-से होकर बैठ गये। उसी समय एक नौ-दस बरस का लड़का पास के दरवाज़े से हमारे डिब्बे में घुस आया। वह एक मैला— बहुत मैला कुर्ता पहने हुए था। पायजामा पाएंचों पर से फटा जाता था। सिर और पैर नंगे थे। हाथों और पैरों पर मिट्टी की मोटी मोटी तहें चढ़ी हुई थीं। मैंने विचार किया कि यही लड़का गा-गाकर पैसे माँग रहा होगा। परन्तु वह लड़का चुपचाप मेरे सामने खाली सीट पर आकर बैठ गया। उसने मुसाफ़िरों की तरफ़ देखा तक नहीं। यदि वह भीखमँगा होता तो मुसाफ़िरों पर अवश्य दृष्टि डालता, उनकी संख्या और क्षमता का अनुमान लगाता। मगर वह तो अपने आपमें ही डूबा हुआ और बे-ग़रज़ मालूम पड़ता था। उसकी बेग़रज़ी में आत्म-विलीनता की झलक थी। उसे इस प्रकार बैठा देखकर गुमान भी नहीं हो सकता था कि वह गा भी सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न जाने बैठे-बिठाये उसे क्या विचार आया कि उसने अपना कुर्ता उतार लिया। उसके गोरे शरीर पर खुश्की और सफ़ेदी-सी देख पड़ती थी, जिससे सिद्ध होता था कि उसने बहुत दिनों से नहाया तक नहीं था। उसने कुर्ते को उलट-पलटकर दो मिनट तक देखा, फिर उसे गले में डाल लिया। बटन कोई न था, इसलिए गले के दोनों सिरों को हाथ से पकड़कर मिलाया और एक झुरझुरी ली, जिसके कारण उसके रूखे-सूखे बाल हिले और एक नये ढंग से बिखर कर रह गये।

उसका हिलना-डुलना विलक्षणतापूर्ण था। कभी मुट्ठियाँ मींचता, कभी उँगलियाँ मटकाता और कभी दाँत कटकटाता था। इन सब कृतियों से वह आनन्दित होता हुआ मालूम पड़ता था। इसी बीच में उसे एक और विलक्षणता सूझी। मुँह ऊपर उठाकर भाफ छोड़ने लगा। भाफ चक्कर काटती हुई ऊपर जाती थी और विभिन्न घेरे बनाकर वायु में गुम हो जाती थी। वह भाफ की इस लीला को तल्लीन होकर देख रहा था और उसके होंठों पर हलकी हलकी मुस्कराहट खेल रही थी।

अब वह नीचे की ओर देखने लगा। रेल के फ़र्श पर 'नेवीकट' सिगरट की एक खाली डिबिया पड़ी थी। लड़के ने उसे लपककर उठा लिया और उसकी बनावट को ध्यानपूर्वक देखने लगा। खोल कर अन्दर से पन्नी निकाली। अपने कुर्ते पर लगा कर हाथ से दबाया और आश्चर्य से देखने लगा। फिर अकस्मात् मसलकर उसे कोने में फेंक दिया। उसने एक और झुरझुरी ली और बन्दर की तरह दाँतों से डिब्बी को काटने लगा।

(३)

गाड़ी बराबर चली जा रही थी। इस बीच में वह दो-तीन स्टेशनों पर ठहर भी चुकी थी। पाँच-सात मुसाफ़िर भी उतर चुके थे और इतने ही नये मुसाफ़िर और चढ़े भी थे। लेकिन न तो उस लड़के ने ही इस बात पर ध्यान दिया और न मुझे पता चला कि गाड़ी कब ठहरी और कब चल दी। वह अपने खेल में लीन था और मैं उसे देखने में।

अब हम जालन्धर के क़रीब आ पहुँचे थे। इसी बीच टिकट देखनेवाला बाबू हमारे डिब्बे में घुस आया। उसकी नज़र सबसे पहले लड़के पर पड़ी और वह उस बेचारे पर बरस ही तो पड़ा—"सूअर, बदमाश, हरामखोर! तू बाज़ नहीं आता। वहाँ उतारा और फिर चढ़ गया।"

लड़का चुपचाप बैठा रहा, मानो वह किसी और को कह रहा हो। उसकी इस लापरवाही से टिकट-बाबू और भी चिढ़ गया। कड़क कर बोला—"अबे! सुनता है कि नहीं। अब चढ़ेगा तो सिपाही के हवाले कर दूँगा।"

लड़का खड़ा हो गया और सिर खुजलाने लगा।

बाबू ने उसका बाज़ू पकड़कर ज़ोर से हिलाया और पूछा—"बता, फिर तो नहीं चढ़ेगा?"

लड़के ने सिर हिलाकर हामी भर ली। परन्तु बाबू को विश्वास न हुआ। उसने लड़के का कान पकड़कर मरोड़ा और एक थप्पड़ लगाकर कहा—"सिर हिलता है। ज़बान क्यों नहीं हिलती? बेशर्म कहीं का।" सब लोग इस प्रकार देख रहे थे, मानो उन्होंने बाबू के इस बर्ताव को बहुत नापसन्द किया है। परन्तु बोलने का साहस न पड़ता था, क्योंकि तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरों से रेल-बाबू वैसे भी ऐसा सलूक करते हैं। और उसके पास तो टिकट भी नहीं था। मुझसे न रहा गया, इसलिए कह ही दिया—"बाबू जी, आपको यह बर्ताव शोभा नहीं देता। आप तो पुलिस से भी बढ़ गये।"

"और आप ही बतायें क्या किया जाय? दस जगह उतारा। फिर भी बाज़ नहीं आता। परेशान कर दिया है इसने।"

"सीधी बात है। इसके पास टिकट नहीं है। आप मेमू काट दें।"

"लेकिन मेमू काटकर इससे लेंगे क्या? ऐसा आवारा और बेशर्म लड़का है कि हमारे तो नाक में दम कर दिया है।"

"बाबू जी, माफ़ करना अगर मैं आपसे यह पूछूँ कि क्या यह पैदा ही आवारा हुआ था या इसको आवारा बनाने में किसी का हाथ है। हिन्दुस्तान में ऐसे आवारा लड़कों की संख्या क्या होगी?"

इन प्रश्नों को सुनकर बाबू हतबुद्धि-सा रह गया। वह मुझे ऊपर से नीचे तक देखकर बोला—"तो आप सोशलिस्ट हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीति-संकट

लेखक, श्रीयुत महेन्द्रचन्द्रराय, बी० ए०, एल-टी०

हिन्दू-पुराण के दस अवतारों का मूलतत्त्व क्या है, इस विषय की चर्चा करते हुए एक लेखक ने यह इंगित किया था कि पुराणकारों ने अवतारों की कथा में जीव-जगत् में जो क्रमविकास होता आया है उसी का वर्णन किया है। मत्स्य, कूर्म आदि स्तरों को अतिक्रम करते हुए प्राण धीरे-धीरे राम, कृष्ण, बुद्ध के स्तर पर पहुँचकर और भी आगे बढ़ने की चेष्टा कर रहा है। सम्भवतः लेखक की यह कल्पना कुछ अंशों में सत्य भी है। प्राण-प्रवाह में मनुष्य का आविर्भाव आकस्मिक नहीं है। धीरे-धीरे कल्प-कल्पान्त की तपस्या के पश्चात् प्राण मनुष्य का रूप लेकर इसी पृथ्वी के प्राङ्गण पर आविर्भूत हुआ है, यह स्वीकार करना पड़ता है। प्राण की विकास-यात्रा की इस लम्बी कहानी के बारे में जब हम सोचते हैं, विस्मय से हमारा हृदय अभिभूत हो जाता है।

एकदम पशु के स्तर से प्राण जब मनुष्य के स्तर पर उपनीत हुआ था, सम्भवतः उसी युग को हम नृसिंहावतार का युग कह सकते हैं। पशुत्व और देवत्व के संगम पर ही सबसे पहले मनुष्य का दर्शन मिला था। सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मनुष्य वही है जिसमें पशुत्व की मलिनता है, फिर भी जिसके नयनों में देवत्व की पुण्य-ज्योति आ पड़ी है, चरण जिसके कीचड़ में फँसे हैं, पर गति जिसकी द्युलोक की ओर है।

तामस-लोक और द्युलोक के बीच में हमारा यह भूर्लोक है, जहाँ मनुष्यों का चलने का पथ है। यह पथ कभी तो पाताल के घनान्धकार में प्रयाण करता है और फिर कभी ज्योतिर्मय आकाश को भेदकर देवलोक की ओर यात्रा करता है। इसी लिए मनुष्य का यात्रा-पथ द्विधाग्रस्त है; कभी तो अतीत के पशु-जगत् की दुर्निवार पुकार उसे चंचल कर देती है और कभी भविष्य के स्वप्नमय, ज्योतिर्मय आनन्दलोक का निमंत्रण उसे व्याकुल कर देता है।

सुनते हैं कि मनुष्य का जीवन नृसिंह-युग को पार कर राम-कृष्ण-बुद्ध के पास आ गया है, अर्थात् मनुष्य देव-लोक में अवतीर्ण हुआ है या शीघ्र ही होनेवाला है। मनुष्य की संज्ञा क्या है, पहले उसका आभास दिया गया है। मनुष्य देवता भी नहीं है, पशु भी नहीं; वह है पशु और देवता का द्वन्द्व-समास।

परन्तु मानवप्राण की अग्रगति पशुलोक की ओर नहीं है, देवलोक की ओर है। इसलिए मनुष्यत्व का अर्थ कभी कभी देवत्व भी किया जाता है, अर्थात् मनुष्य पशुओं का भी उत्तराधिकारी है; इस सत्य को छिपाने की निरन्तर चेष्टा हम कर रहे हैं। एक ओर जैसा हम पशुत्व के उत्तराधिकारी को अस्वीकार कर रहे हैं, वैसा ही दूसरी ओर देवत्व के ऊपर हमारा पूर्ण अधिकार है, इस बात का प्रचार करने में भी हम विमुख नहीं हैं। असल में मनुष्य ने आज अपने एक नवीन स्वरूप का परिचय, मनुष्य नाम की एक नवीन संज्ञा का आविष्कार किया है अथवा करने की चेष्टा कर रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, चैतन्य आदि महान् पुरुषों में उसी चेष्टा का प्रमाण मिलता है।

(२)

इस नवीन परिचय का पता लगाने के पहले हमारा पुराना परिचय क्या है, उसी की खोज करनी चाहिए। जिस पशुजगत् के साथ हमारा घनिष्ठ रक्त-सम्पर्क सर्व-जन स्वीकृत है उसकी ओर ताकने से हम क्या देखते हैं? पशुजगत् में व्यक्ति का अस्तित्व और उसका विकास संग्रामात्मक है; वहाँ एक व्यक्ति का अस्तित्व दूसरे व्यक्ति के विनाश के साथ अनिवार्य कार्य-कारण-सम्बन्ध से बँधा हुआ है। वहाँ विश्वप्रकृति रक्त-लोलुपा, निष्ठुरा है।

पतंगों के विनाश पर ही कुछ पक्षियों का जीवन निर्भर है; फिर उन पक्षियों के विनाश से ही बाज़ पक्षी जीवित रह सकता है। तृणों को नष्टकर भेड़ का जीवन चलता है और भेड़ को ध्वंस करने के लिए ही हिंस्र श्वापदों की सृष्टि हुई है। पशुजगत् में व्यक्ति निर्ममरूप से आत्म-सर्वस्व है; उसके सामने अपने ही सुख-सम्भोग के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

कोई कोई यह कहेंगे कि पशु-पक्षियों के जगत् में भी सामयिक स्नेह-ममता का विकास देखा जाता है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि पशुजगत् में स्नेह-ममता आदि निःस्वार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्तियाँ स्थायी नहीं हैं; सृष्टिक्रम को अव्याहत रखने के लिए इन वृत्तियों का सामयिक प्रयोग होता है। आत्म-सर्वस्वता अर्थात् अपने भोग के लिए एकाग्र चेष्टा ही पशुओं की स्थायी वृत्ति है। इसी लिए पशुजगत् में हम जो विकट संग्राम देखते हैं उसमें स्नेह-ममता-दया का लेश भी नहीं है। पशुजगत् में आत्मरक्षा का उपाय हिंस्रता ही है और आत्म-रक्षा के अतिरिक्त और कोई धर्म वहाँ है भी नहीं।

मनुष्य पशुत्व पर अपना उत्तराधिकार कितना भी अस्वीकार करे, उस पशुत्व से वह अपने को किसी प्रकार से विच्छिन्न नहीं कर सकता। प्रत्येक शोणित-कण ने उसे पशुजीवन के साथ अच्छेद्य बन्धन से बाँध रक्खा है और उस शोणित के प्रत्येक कण में पशुजीवन की हिंस्र और निर्मम वृत्तियाँ सञ्चित रहती हैं। देवत्व की कामना करते हुए काम-क्रोध आदि को रिपु कह-कर हम कितनी भी घृणा क्यों न प्रकट करें, परन्तु मनुष्य-जीवन के साथ इनका जो घनिष्ठ सम्बन्ध है उसे हम किसी प्रकार अस्वीकार नहीं कर सकते। और सच कहें तो हम इन्हें रिपु समझ कर उतनी घृणा भी नहीं करते। काम शब्द को किसी भी अर्थ में हम क्यों न समझें, निश्वास-प्रश्वास की तरह वह हमारे जीवन के साथ अविच्छेद्य है। जीवन के सब प्रकार के प्रयत्नों के मूल में काम या कामना के प्रभाव को आज मनोविज्ञान भी स्वीकार कर रहा है। और काम के साथ साथ अन्य रिपु भी हमारे अन्दर जाग्रत होते हैं, यह तो कहना ही अना-वश्यक है।

हम जितना ही अपने जीवन का विश्लेषण करते हैं, उतना ही हमारे रक्त के साथ मिश्रित पशुवृत्तियाँ कितनी व्यापक और प्रबलरूप में विराजमान हैं, हमें उसकी उपलब्धि होती है। ऐसा मनुष्य कहाँ है जिसके हृदय में असन्तोष नहीं, ज्वाला नहीं, क्रोध नहीं? क्या पग-पग पर हम अधीर और असहिष्णु नहीं होते हैं? मन में इन अनुभूतियों का स्वरूप क्या है? जब कभी हम किसी इच्छा या प्रयत्न में बाधा प्राप्त करते हैं तभी हम असहिष्णु और क्रुद्ध हो उठते हैं; हमारे अन्दर कौन हिंस्र जन्तु उन्मत्त-सा होकर सब बाधाओं को चूर्ण-विचूर्ण करने को उद्यत हो उठता है? यह जो ध्वंस करने का, प्रतिहनन करने का संकल्प है, वह जब जैसी विशेष अवस्था या परिस्थिति के विरुद्ध प्रयोजित हो सकता है, उसी प्रकार व्यक्ति विशेष के विरुद्ध भी। वास्तव में इस प्रकार के हनन-संकल्प की जड़ तो हमारे अनादि काल से परिपुष्ट पशु-प्रकृति के ही अन्दर है। हम जिसे बड़े आदर के साथ साहस, दृढ़ता इत्यादि कहते हैं, उसकी जो अन्तर्निहित शक्ति है उसकी भी जड़ हमारे आदिम हिंस्र अहंभाव के ही भीतर है।

हमारे अन्दर यह जो आत्म-प्राधान्य-प्रिय, हिंस्र जन्तु जाग्रत और जीवन विराजमान है उसके सम्बन्ध में हम सदा सचेत भी नहीं रहते, क्योंकि वह नाना प्रकार के सम्मानित छद्मरूप में अपने को छिपा रखना जानता है।

हम सभी गृही हैं, गृहस्थ लोग प्रायः शिशु शासन नामक एक कल्याण-कार्य में नियुक्त रहते हैं। दण्ड-प्रयोग के बिना शिशु का कल्याण नहीं हो सकता, इस विषय में प्रमाण की आवश्यकता नहीं समझी जाती है, बरन दण्ड के बिना भी शिशु-जीवन का सम्यक् विकास हो सकता है, यही प्रमाण की अपेक्षा रखता है। परन्तु हम शिशु को दण्ड देते हैं, सम्भवतः इस पर अधिक विचार भी नहीं करते। हमारे दीर्घ जीवन के अभ्यास के कारण कुछ बातों को हम सच और कल्याणकर समझते हैं। अगर कोई आज हमें उनके विपरीत मार्ग पर चलने को कहता है तो हम कभी चलने को राज़ी नहीं होते। अपनी शिशु-अवस्था में नियम के विरुद्ध चलने को ही हम कर्तव्य समझते हैं और अशक्त होकर दूसरों की इच्छाओं के पास आत्म-समर्पण करने में अपनी मर्यादा की हानि समझते हैं और उसे अत्यन्त कापुरुषता का काम समझते हैं। फिर वही हम जब अपने कृत्रिम नियमों के साँचे में शिशु की स्वाभाविक वृत्तियों को ढालने के लिए ज़बर्दस्ती करते हैं, जब शारीरिक यातना का भय दिखलाकर हम उसे कापुरुष की भाँति अपने पास आत्मसमर्पण करना सिखलाते हैं, तब हम भी जो हिंस्र पशु-सा बन जाते हैं उसका ज़रा भी ध्यान हमें नहीं होता! अनादि-काल से रक्त के कण कण में जो आत्मसर्वस्वता, जो प्रभुत्व-प्रियता संचारित होती आई है, क्या वही प्रवृत्ति शिशु-शासन में निर्मम रूप लेकर प्रकट नहीं होती? लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबल होकर दुर्बल शिशु के इस ताड़न को हम कभी अन्याय नहीं समझते !

थोड़ा विचार करने पर जीवन के सभी क्षेत्रों में इस आदिम अहंभाव का परिचय मिल सकता है। और यही हमारा आदिम और पुराना परिचय है; यही हमें स्पष्टरूप में बतलाता है कि पशु-जगत् के साथ हमारा सम्बन्ध कितना घनिष्ठ है।

(३)

मानव-समाज में एक दिन वह था जब मनुष्य हिंस्रता को अनुचित नहीं समझते थे और सम्भवतः अभी तक अधिकांश मनुष्य पशुजगत् की उस नीति को ही अच्छा समझते हैं। किन्तु फिर भी स्वीकार करना पड़ेगा कि मानव-समाज में एक दूसरी अभिनव नीति का भी आविर्भाव हो रहा है। बुद्ध, ईसा, चैतन्य, गांधी जीवन पर जो प्रकाश डाल रहे हैं उस प्रकाश में जीवन की एक नवीन व्यंजना, एक नूतन अर्थ हमारी दृष्टि के सामने उद्घाटित हो रहा है, यह भी स्वीकार करना पड़ेगा। यह सच है कि समग्र मानव-जाति का मन इससे आलोकित नहीं हुआ है, तो भी इन महान् पुरुषों के जीवन में जो सत्य सम्भव हुआ है, एक दिन वह मानव-जाति के सामूहिक जीवन में भी सम्भव हो सकता है, इसमें सन्देह का अवकाश कहाँ ?

इन महान् पुरुषों की ओर देखते हुए जीवन-सम्बन्धी जो नवीन मीमांसा, जो नवीन अर्थ हमारे सामने प्रकट होता है उसके साथ इतने दिनों से प्रचलित मीमांसा और अर्थ का विकट विरोध दिखाई देता है। दण्ड-नीति और प्रेम-नीति के बीच कोई सेतु नहीं है। अथ च इन महात्माओं के आविर्भाव के कारण हमारे जीवन में एक ऐसी अवस्था की सृष्टि हुई है जिसमें उन दोनों प्रकार की नीतियों का अनुसरण करने का प्रयोजन मालूम हो रहा है। दण्ड-नीति की ओर से हम पुलिस, जेल और सेना को रखना चाहते हैं और प्रेमनीति की ओर से हम उसी जेल के क़ैदी को धर्मग्रन्थ भी पढ़ाना चाहते हैं और लड़ाई में घायल हुए शत्रु को अस्पताल में पहुँचाते हैं। इससे बढ़कर उत्कट असंगति और क्या हो सकती है ?

वर्तमान काल में जिनके हृदय में प्रेमधर्म की ओर आकर्षण उत्पन्न हो रहा है उनके लिए आज द्विधामुक्त होना भी सहल बात नहीं है। एक ओर इस प्रेम-धर्म के प्रकाश में एक अपूर्व आध्यात्मिक साम्यवाद हमारे विचारों को अहंभाव से मुक्त करने का प्रयास कर रहा है और दूसरी ओर युगयुगान्त की संचित भेद-बुद्धि प्रतिपद पर उस चेष्टा को व्यर्थ कर रही है। एक ओर हृदय तो मनुष्य से यह कह रहा है कि आत्मा को स्वाभाविक और सहज विकास प्राप्त करने का अधिकार दो और दूसरी ओर वही हृदय अपनी प्रवृत्ति और रिपुओं की ताड़ना से मनुष्य की स्वतंत्रता को नष्ट करने में भी संकुचित नहीं हो रहा है। केवल प्रवृत्ति की ताड़ना से विवश होकर हृदय प्रेमधर्म के पालन करने में असमर्थ हो रहा है या हम अपनी श्रेष्ठता के अभिमान के कारण दूसरों की स्वतंत्रता पर आघात कर रहे हैं, यह भी सच नहीं है। बहुधा किस रास्ते से चलना वर्तमान काल में हमारे लिए श्रेय है, यह समझने में हमारी विचार-बुद्धि द्विधाग्रस्त हो रही है।

पुराने समय का धर्म—अर्थात् अधिकांश में जिस धर्म का अनुसरण हम कर रहे हैं—वह भय पर आश्रित है। यातना के भय से, दैहिक पीड़न के द्वारा हम पशुओं का शासन करते हैं। वही एक ही नीति हमारे राष्ट्र, समाज और धर्म में भी प्रकटित है। पुलिस और जेल के भय, नाना प्रकार के दैहिक दुख और प्राण-दण्ड के भय से राष्ट्र मनुष्य को शासन करता आ रहा है। यह प्रबल के पराक्रम के द्वारा दुर्बल का शासन है। इसी प्रकार समाज में भी नाना प्रकार के निपीड़न और निग्रह का भय दिखलाकर प्रबल दुर्बल को अपने मत और पथ में चला रहे हैं। धर्म में भी वही बात है। मनुष्य को धर्माचरण क्यों करना पड़ता है ? दुस्सह नरक के भय के बिना मनुष्य धर्म-पथ पर चल सकता है या चलता है, यह बात प्राचीन धर्मशास्त्रों में स्वीकृत नहीं है।

परन्तु यह नवीन धर्मनीति जो उपर्युक्त महान् पुरुषों के जीवन के द्वारा घोषित हुई है, प्राचीन नीति के विपरीत दृष्टिकोण से जीवन की आलोचना करना चाहती है। नवीन धर्मनीति की भीति भीति नहीं है, प्रीति है। भय पशुजगत् का नियामक है, परन्तु देवलोक की नियंत्रण करनेवाली प्रीति है। महात्माओं ने अपने जीवन में इसी सत्य की प्रतिष्ठा करने की चेष्टा की है कि मनुष्य पशुलोक को अतिक्रमकर देवलोक में पधारेगा और मनुष्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के जीवन की सब भावना और कर्म प्रीति की नीति से ही नियंत्रित होंगे। महात्माओं की यही आशा, आदर्श और स्वप्न हैं।

मैं कह रहा था कि वर्त्तमान जगत् में मनुष्य को बड़ी दुविधा में पड़ना पड़ा है।

प्रत्येक युग का एक विशेष धर्म होता है, जो उसी युग के वातावरण में सम्भव है। उस युग की कल्पना की जाय जब हमारे आदिमतम प्रपितामह भयानक अरण्य के विशाल वृक्षों की शाखाओं पर अथवा भयंकर गुफाओं के अन्दर रहा करते थे और जब उनके चारों ओर अतिकाय भीषण प्राणी हिंस्रलीला में प्रमत्त रहते थे। उस समय ईसा का आविर्भाव सम्भव भी नहीं था और उस समय उनके आने की कुछ सार्थकता भी नहीं थी। उस समय के चतुष्पार्श्विक क्रूरता के बीच में रहकर मनुष्य को भी उसी नीति का आश्रय करना पड़ा था, वही नीति उसके लिए ग्रहणीय थी। उस दिन अगर वह अहिंसा की नीति को ग्रहण करता तो आज पृथ्वी पर उसका कोई चिह्न भी न रहता। इसी लिए मानना पड़ता है कि प्रत्येक युग के उपयुक्त एक विशेष धर्म हुआ करता है, जो अन्य युग के लिए निरर्थक हो सकता है।

एक युग से निष्क्रान्त होकर दूसरे युग की ओर यात्रा करने का क्षण जब आसन्न होता है, उस समय किस नीति से चलना चाहिए, यह निश्चय करने की समस्या बहुत ही कठिन है। और वह युग-सन्धि-क्षण कब आसन्न होता है, कब मानवात्मा एक युग के सीमान्त को पार कर दूसरे युग की प्रारम्भ-सीमा पर पदार्पण करती है, उसका पता भी निश्चित-रूप से मिलता नहीं। ऐसा सन्धिक्षण सदा अनिश्चयता के अन्धकार से ढँका रहता है।

ऐसा मालूम हो रहा है कि हम लोग आज एक वैसी ही युगसन्धि पर उपनीत हुए हैं अथवा हो रहे हैं। इसी-लिए आज प्राचीन या नवीन किसी नीति या धर्म पर एकान्त निर्भर करना असम्भव मालूम हो रहा है। जब क्षमा-धर्म की बात सुनते हैं, अक्रोध से क्रोध को, प्रेम से हिंसा को जीतने का उपदेश सुनते हैं, उसे हम पागल का प्रलाप कहकर तुच्छ नहीं कर सकते। जीवन के किसी किसी मुहूर्त में जब हृदय में प्रेम और क्षमा की उपलब्धि होती है, उस समय हमारे हृदय में जिस ऐश्वर्य की अनुभूति होती है उसके सामने अन्य सब प्रकार का सांसारिक लाभ और सार्थकता बिलकुल निरर्थक-सा हो जाता है। परन्तु फिर भी जब देखते हैं कि हमारी निरीहता और शान्तिप्रियता का अवसर पाकर डाकू हमारे मकानों में आग लगाकर, हमारा सर्वस्व लूटकर, हँसता हुआ चला जाता है, जब देखते हैं कि क्रूरता और ज़बर्दस्ती के द्वारा दस्यु हमारा ही धन लेकर आराम से जीवन व्यतीत करने का उपाय कर लेता है और निरीह शान्ति-प्रियता हमको जीवित रहने के अधिकार से वञ्चित करती है, तब हृदय में प्रचण्ड संशय जाग्रत होता है। अन्तस्तल में से कौन बोल उठता है कि प्रेम और क्षमाधर्म कितना ही महान् और श्रेष्ठ क्यों न हो, उसका भी प्रयोग करने का विशेष युग होना चाहिए।

तथापि प्रेम और मैत्री का धर्म मानव-हृदय का श्रेष्ठ धर्म है, मनुष्य की अग्रगति भी उसी की ओर है, इस संग्राम और हिंसा के बीच में रहते हुए भी हम व्याकुल होकर उस अनागत साम्य और मैत्री के युग की राह देख रहे हैं, यह भी स्वीकार करना पड़ेगा। सम्भव है कि भावी काल के सागर-गर्भ में भावी मानव का उस आदर्श समाज की सृष्टि हो रही है। परन्तु हे वर्तमान काल के मानव, तुम्हें तो केवल उसकी प्रत्याशा में दीर्घनिःश्वास ही लेना पड़ रहा है! मानव-चित्त में अभी तक पशुभाव का प्राबल्य इतना अधिक है कि पृथ्वी पर प्रेमराज्य की कल्पना कुहक-सी प्रतीत होती है।

तथापि आज जो कुहक-सी है, कल वह सत्य होगा, आज जो असम्भव है, आगामी कल वही सम्भव होगा, इतिहास इसी बात का साक्ष्य देता है। सम्भव के राज्य में असम्भव का यात्रापथ कौन निर्माण करेगा? इस युग-सन्धि की दुविधा में पड़कर जो व्यथित हृदय से प्राचीन और नवीन की असंलग्न सेवा करते हुए अपने को निःशेष कर रहे हैं उन्हीं के श्मशानों के ऊपर से एक दिन असम्भव अपना विजयरथ चलाकर सम्भव के राज्य में उपनीत होगा। आज की दुविधा में पड़कर जो मनुष्य प्रेम-देवता के पास अपनी अक्षमता और साथ ही साथ व्यग्रता को निवेदन कर हिंसा की बलिवेदी पर अपने देवत्व का बलिदान दे रहे हैं, भावीकाल के मनुष्य सम्भवतः इस करुण दृश्य की कल्पना भी नहीं कर सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबू घनानन्द

लेखक, पण्डित ज्वालादत्त शर्मा

बाबू घनानन्द अच्छे आदमी होने पर भी उससे अधिक कंजूस थे, इस दोष के कारण उनके सद्गुणों में जैसा चाहिए निखार नहीं आ सकता था। बहुत-से आदमियों का स्वभाव होता है कि वे अपना व्यवहार उससे विलक्षण दिखाया करते हैं जो वास्तव में होता है। लोभी का उदार बनना असम्भव है किन्तु प्रायः कंजूसों को अपनी उदारता का जाल बिछाते देखा जाता है। यह बात बहुत बुरी लगती है और देखनेवाले कुढ़ा करते हैं।

उनका व्रत था किसी के ख़र्च में १ पैसा न उठने पाये, दूसरे की चाहे चमड़ी उधड़ जाय। एक ज़मींदार महाशय दो प्रकार के बाँट रखते थे, कोई चीज़ ख़रीदना हो तो १७ छटाँक का सेर निकालते थे, अपना अनाज बेचना हो तो १५ छटाँक का। बाबू घनानन्द भी कुछ इसी तरह के जीव थे। धोखा देने से धोखा खाना अच्छा समझा जाता है किन्तु वे धोखा खाना ही पाप समझते थे, देने में उतना बारीक विचार करने का प्रयोजन नहीं समझते थे। ग़रीब घर में पैदा होकर मेहनत और बुद्धि के प्रताप से लाखों रुपये जमा कर लिये थे किन्तु घरवालों की भूल या उदारता से १ पैसा भी इधर-उधर ख़र्च हो जाता तो प्राण छोड़ने को तैयार हो जाते थे। उन्होंने धन-संग्रह की वेदी पर माया, मोह, ममता आदि समस्त पशुओं की खुटले छुरे से बलि दे डाली थी। घर में सबको उनसे असन्तोष था किन्तु सोने का अण्डा देनेवाली मुर्ग़ी को काटा नहीं जा सकता इसलिए अपना-अपना भविष्य विचार कर सब चुप थे और किसी प्रकार सहन करते थे।

घर में उनका भोजन कूनं डाक्टर के मत का अलोना बिना तला-भुंजा बनता था, वही स्वास्थ्य के लिए उत्तम है इसलिए। किन्तु उनका चित्त जब किसी ऐसी वस्तु को चाहता जिसे कूने ने निषिद्ध करार दिया है तब वे सोच-विचार कर कोई अच्छा बहाना बनाकर किसी ऐसे विनाशोन्मुख घर में पहुँच जाते थे जहाँ वैसी कुपथ्य की चीज़ें खाने-खिलाने के लिए प्रायः बना करती हैं और इस प्रकार अपने दुष्ट मन की कुप्रवृत्ति को एक मूर्ख के धन से तृप्त कर लिया करते थे। उन्हें परमार्थ की चिन्ता का भी बहुत भारी व्यसन था, उनका 'पास टाइम' वेदान्त और थियासफ़ी के ग्रन्थ थे। घर के आदमियों को ग़रीबी से रहने के गुण और दूसरों को संसार के मिथ्यात्व का उपदेश देने में उनका बहुत कुछ उपयोग किया करते थे। घर में क्लेश हो जाने पर भी उनका दवा के तौर पर सेवन चलता था।

उन्होंने अपने जीवन में कभी किसी को दावत न दी और किसी की दावत न छोड़ी यह उनका बिना अपवाद का नियम था, धर्म्मान्ध लोगों की संध्या-नमाज़ की तरह इसका पालन होता था। उन्हें अपने व्यवसाय के कारण जब कभी बाहर जाना पड़ता था और उस बीच किसी दावत की क़ज़ा हो जाती थी तब उसके पैसे भी वे अपनी फ़ीस में जोड़ कर मुवक्किल से वसूल कर लिया करते थे, २५) का ३०) लेते थे। मुक़दमा और बीमारी ऐसी बुरी बलायें हैं कि जिन पर पड़ती हैं वे २)-४) के लिए अपने विश्वासपात्र वकील डाक्टर को छोड़ा नहीं करते—इसलिए उनका यह अत्याचार असह्य होने पर ग़रीब लोगों पर सह्य हो जाता था। वे मूर्ख पैसे से प्राणों का मूल्य अधिक समझते हैं। किसी किसी को आश्चर्य होता था कि २० के २५ क्यों हैं और १५ के १७॥) क्यों हैं, किन्तु उसके समाधान में बाबू साहब ३०) के २५) और २०) के १७॥) बता देते थे तो वे अपनी जान बची लाखों पाये समझ कर चुप हो जाते थे। इतना ज़रूर था कि वे दावत की योग्यता का तारतम्य विचार कर ही उसका मूल्य निरूपण करते थे, उसमें वे प्रायः ईमानदारी और उदारता से काम लेते थे। किसी बड़े घर की दावत के दाम ५) साधारण की २॥) ऐसा ही कुछ नियम उन्होंने बना रक्खा था। ऐसा कभी न करते थे कि साधारण दावत की क़ज़ा पर बड़ी दावत के दाम चार्ज कर लें, उन्हें रुपये की ज़रूरत न थी। ईश्वर का दिया बहुत था। यह तो नियम का पालन और मूर्खों का शासन था जो उनसे ऐसा कराता था!

एक बार किसी सज्जन ने उनके यहाँ दावत का कार्ड भेजा, उस दिन वह कार्ड देर से आया या जानकर देर से ही भेजा गया इस ख्याति का निर्णय तो कठिन है किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस दिन दावत ७ बजे शाम को थी उसी दिन ५ बजे शाम वह कार्ड उनके पास आया। यह निर्विवाद है। ख़ैरियत यह हुई कि वे उस समय मकान पर नहीं थे वर्ना कार्ड लानेवाले से १ घंटा जिरह करते और उसके प्राणों पर आ बनती। जब लौट कर आये और कार्ड मिला तो 'मार्जिन' और कम हो गया था, कोई ½ घंटा ही बाक़ी था, दावत के लिए कोई विशेष तैयारी का उपक्रम नहीं हो सकता था, कम से कम १२ घंटे का समय तो मिलना चाहिए। बाबू साहब बहुत झल्लाये। छिः-छिः यह क्या तरीक़ा है? जिस दिन दावत उसी दिन न्योता! इन लोगों को कब अक्ल आयेगी इत्यादि इत्यादि। वास्तव में उनकी झुँझलाहट का कारण यही था कि वे पहले से कुछ तैयारी नहीं कर सके थे। फिर आज दोपहर के भोजन में रविवार के कारण कुछ देर भी हो गई थी और बाजरे की मोटी रोटी का संयोग नये गुड़ के साथ करने से पेट में कुछ अच्छा फल नहीं निकल रहा था। बाबू साहब घर पर कभी शक्कर नहीं खाते थे। विटामिन गुड़ के साथ सस्ते दर में मिल जाता है इसलिए उसी का सदा प्रयोग करते थे। एक दिन पहले सूचना मिल जाने से तो काम ठीक चल जाता था, एक दिन पहले हविष्य भोजन, दूसरे दिन दिन में गुड़ का शर्बत या भुँजी हुई मकई आदि का नाश्ता, फिर शाम को विजय-यात्रा-आनन्द और उत्साह से हो जाया करती थी। किन्तु आज के कार्ड भेजनेवाले ने इन सब योजनाओं पर पानी फेर दिया। जेब में से घड़ी निकाल कर फिर देखी तो १५ मिनट बाक़ी रह गये थे। थोड़ा घर में से सोडा मँगाकर खाया, पानी पिया, चहलक़दमी की, किन्तु गुड़ के विटामिन बाजरे की रोटी में कुछ ऐसे बेतर्तीब उलझ गये थे कि इन साधारण उपचारों से नहीं सुलझे। २ घंटे तक बराबर चिन्तामग्न टहलते रहे क्योंकि दावत का 'ग्रेसटाइम' समाप्त हो रहा था और १-१ मिनट भारी गुज़र रहा था। रेचन तो हुआ किन्तु वह कुछ न हुआ जिसके लिए यह सब उपयोग हो रहा था, भीतर की गाँठ ज्यों की त्यों बनी रही। उन्हें बहुत परेशान और उदास देखकर भेदी नौकर ने कहा—एक बोतल ख़ारी ले आऊँ? उसमें गैस भी होता है, शायद कुछ असर कर जाय और काम बन जाय। उस पर बहुत नाराज़ हुए और बोले—३ पैसे में १ पाव पानी बेचते हैं, ३ पैसे के साग से सारा घर रोटी खाता है तो भी सुबह के लिए बच जाता है; उल्लू कहीं का। मेरा दीवाला निकालने की फ़िक्र में है क्या? वास्तव में नौकर का भी विशेष अपराध नहीं था। वह जब मालिक के साथ बाहर जाता था और मालिक पेशे की बिना पर बाहर जाते थे तब दिन में १ दर्जन से कम खारी बोतल नहीं पीते थे और वह भी बढ़िया ब्रांड की, उसी प्रसङ्ग में उसने उनके श्रीमुख से इस देव-दुर्लभ द्रव्य की और उसके मुख्य अङ्गभूत गैस की वैज्ञानिक आलोचना सुनी थी। कुछ उसी संस्कार के वश उसने इस समय यह भूल की थी। फटकार सुनकर उसे अपनी भूल मालूम हुई।

यद्यपि कुछ सुभीता नहीं हुआ था किन्तु ग्रेसटाइम बीता जा रहा था। अन्ततोगत्वा मजबूर होकर कोई ९॥ बजे मिस्टर वाइज़ मिस्टर फ़ूल के स्थान पर जा धमके। उस समय वहाँ घर के आदमियों की पंगत होनेवाली थी, बाहरवाले सब खा-पीकर चले गये थे। मिस्टर फ़ूल उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उनके लिए आसन लगाने को ऊँचे स्वर में अपने नौकर को नहीं बड़े लड़के को आवाज़ दी। उस पर मिस्टर वाइज़ ने कहा कि भाई मैं भोजन नहीं करूँगा, अधिक दिमाग़ी काम करने और पर्याप्त विश्राम न मिलने से मेरा स्वास्थ्य एकदम निकम्मा हो गया है, आज दिन में थोड़ा फलों का रस और अपनी अङ्गुष्ठकनिष्ठका के चक्र के ऊपर तीन उँगलियों की त्रिजटा मुद्रा को दिखाते हुए—१ टुकड़ा डबल रोटी का दूध में भिगोकर लिया था, फिर भी भूख नहीं है, आपके प्रेम से विवश होकर आ भर गया हूँ। यह सुन कर मिस्टर फ़ूल बोले—तो आप थोड़ा-सा पापड़ और सोंठ रायता खा लीजिए और ऊपर से १ गिलास ज़ीरे का पानी पी लीजिए, देखिए कैसी तबीअत खुश होती है। सस्ते में छूटता देखकर मिस्टर वाइज़ ने बीच में ही बात काट कर कहा—ना भाई, मैं 'एपिटाइज़र' का व्यवहार करना उचित नहीं समझता हूँ, जैसे मेरे किसी काम का समय नहीं है वैसे ही भूख का भी हाल है। सम्भव है रात को २ बजे लग आये। मेरा नौकर आता होगा। उसके हाथ सब चीज़ें भेजना, मैं खा लूँगा। अब तुम्हारे दूसरे लड़के की शादी तक तो मैं क्या ज़िन्दा रहूँगा, मौत सिर पर नाच रही है, इसलिए इस खुशी में तो शरीक़ हो लूँ—अच्छा अब मैं जाता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबू जी के जाते ही उनका नौकर जैसे नाटक में एक पर्दा उठते ही दूसरा पहले से ही पड़ा तैयार मिलता है, रङ्गभूमि में प्रकट हो गया। उसके १ हाथ में टिफ़न कैरियर, दूसरे में मिठाई आदि के लिए बेंत की बुनी मुर्गीहट्टे की कंडी, कन्धे पर धुले हुए कई अँगोछे और गले में ज़ीरे के पानी के लिए जस्ते की सुराही लटक रही थी। उसके इस विचित्र वेश-भूषा को देखकर सब दंग रह गये। पहले उसने सब सामान माँग-माँग कर वर्त्तनों में भरा, फिर स्वयम् भोजन किया और एक आदमी को बेगार में पकड़ा। इस प्रकार मय सामान के कोई ११॥ बजे वह ट्रेन्ड नौकर बाबू जी के पास आ धमका।

अब तक सोडे ने गुड़ के विटामिनों को बटोर कर क़रीने से लगा दिया था और बाबू जी को भूख लग आई थी। नौकर के आने में कुछ देर हुई तो १-१ मिनट काटना मुश्किल हो गया। मकान के बाहर ही चुंगी की बिजली बत्ती थी, उसके पास कुर्सी डालकर समय काटने के लिए बाबू जी स्वामी विवेकानन्द का 'माया' पर दिया भाषण पढ़ने लगे जिससे कि भूख के साथ जिन पदार्थों का आँखों से दर्शन और नाक से खुशबू सूँघ आये थे उनका संस्कार मन को विचलित न करे और यह समय कट जाय और समाधिरूप नौकर का आगमन इस कष्ट से मुक्त कर दे।

गीत

लेखिका, श्रीमती सत्यवती शर्मा

रे क्यों हुए निष्पन्द तरुवर ?

देखा जब तुमको प्रथम बार, पुलकित थी तेरी डार डार।
पत्ती पत्ती से झर पराग, भर देता उर में मधुर राग।

लघु लघु हिमकण का लिये भार,
प्राणों में भर कर अमित प्यार।
गिरि की गरिमा का जल बन बन,
धोता जो तेरे मृदुल चरण।
क्यों क्षीणतम वह आज निर्झर ?
रे क्यों हुए निष्पन्द तरुवर ?

पल्लव दल में जो लाल लाल,
इठलाता रहता विहग बाल।
मेरे सपनों के बना गीत,
मानस में भरता स्वर पुनीत।
वह खो गया खग आज सुन्दर।
रे क्यों हुए निष्पन्द तरुवर ?

क्यों आज सारे अंग जर्जर ?
रे क्यों हुए निष्पंन्द तरुवर ?

छिपता-सा जाता तारकदल,
नभ में छाये काले बादल।
इस सूने स्थल में अहो आज,
किससे खेलूँ हे विटपराज।
तुम क्यों खड़े हो मौन सहचर ?
रे क्यों हुए निष्पन्द तरुवर ?

तम पूर्ण हुए अवनी अम्बर,
भय-त्रस्त हुआ मेरा अन्तर।
छेड़ा किसने यह प्रलय-गान,
करुण कितना जीवन अवसान।
हैं काँपते क्यों आज भूधर ?
रे क्यों हुए निष्पन्द तरुवर ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

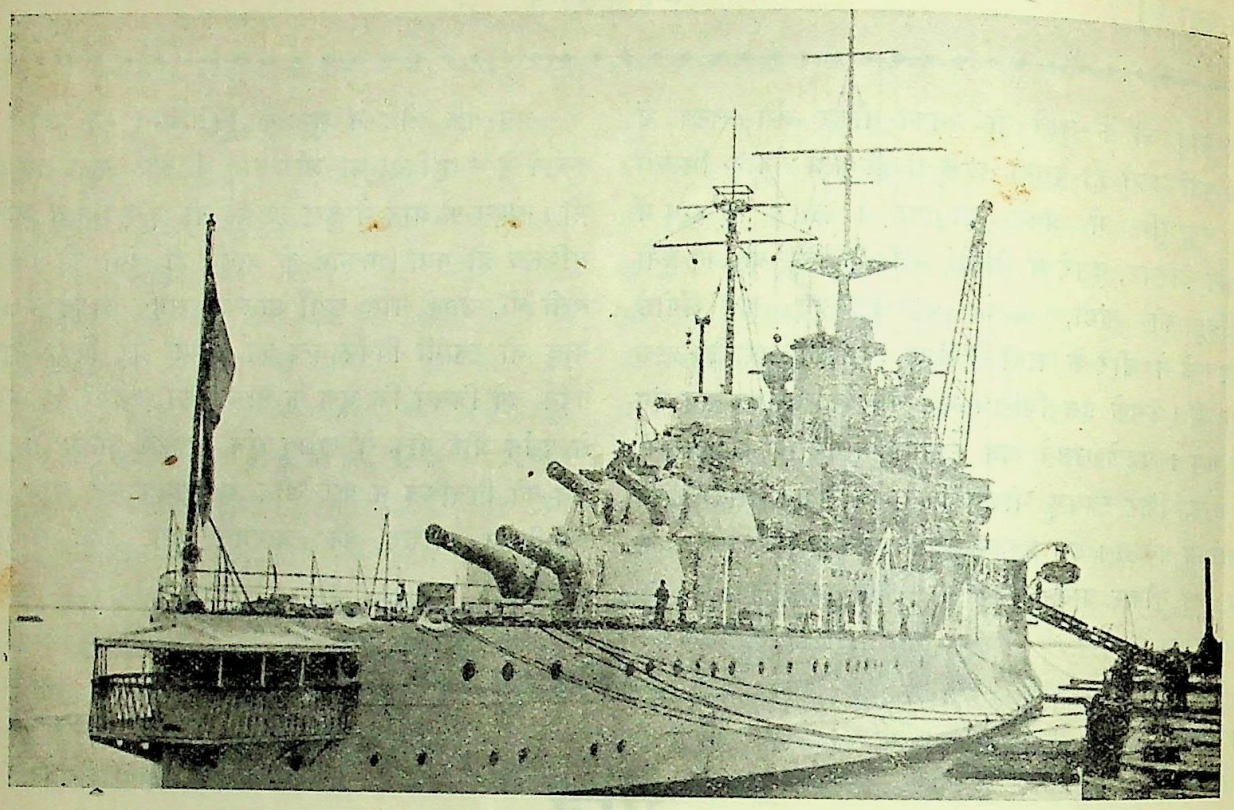

एक भयानक युद्ध पोत

हालैण्ड और बेल्जियम

लेखक, उमेशचन्द्र मिश्र, विद्यावाचस्पति

नार्वे पर गिरे हुए नाज़ियों के बम अभी तक आग उगल रहे थे; नार्विक धू-धू करके जल रहा था; मित्र-राष्ट्रों द्वारा फेंके गये जल के छींटे उस दावानल को अंशतः बुझाने में भी असमर्थ प्रमाणित हो रहे थे और इसी प्रश्न को लेकर ब्रिटेन की पार्लियामेंट में ख़ासी चख़चख़ हो रही थी कि डच व बेल्जियम सरकारों को हिटलर की ओर से मेमोरेंडम दे दिया गया, जिसमें लिखा था--

"जर्मन-सरकार को बहुत दिनों से इँग्लैंड और फ़्रांस की युद्ध-सम्बन्धी नीति स्पष्ट रूप से मालूम थी। उनकी यह नीति है कि युद्ध को अन्य देशों में फैलाना, और अपनी जनता तथा सेना का दुरुपयोग करना। उनका अन्तिम प्रयत्न यह था कि नार्वे की सहायता से वे स्कैंडिनेविया पर क़ब्ज़ा कर लें और इस तरह वहाँ जर्मनों के विरुद्ध एक नया मोर्चा तैयार करें। अन्तिम घड़ी में केवल जर्मनी की कार्रवाई के कारण ही उनका प्रयत्न निष्फल हुआ।

"इसी बीच में अँगरेज़ प्रधान मंत्री ने यह घोषणा की कि इँग्लैंड अब बदली हुई परिस्थितियों के कारण इस स्थिति में है कि वह अपने जंगी जहाज़ी बेड़े का मुख्य भाग भूमध्यसागर में भेज सके फलतः ब्रिटिश तथा फ़्रेंच जंगी बेड़े एलकज़ेण्ड्रिया की ओर जा रहे हैं। अँगरेज़ों और फ़्रेंचों ने अपने आन्दोलन का केन्द्र अब भूमध्यसागर को बनाया है।

"यह इसके सिवा और कुछ नहीं है कि एक बहुत बड़े पैमाने पर तैयारी करके जर्मनी को यह धोखा दिया जाय कि आगे वे (इँग्लैंड,फ़्रांस) क्या करेंगे। फ़्रेंच और ब्रिटिश के सच्चे इरादे ये हैं कि पश्चिम की ओर से जर्मनी पर हमला किया जाय।

"जर्मनी ने हालैंड और बेल्जियम की तटस्थता को माना था और उसकी इज़्ज़त की थी, पर इस शर्त पर कि यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

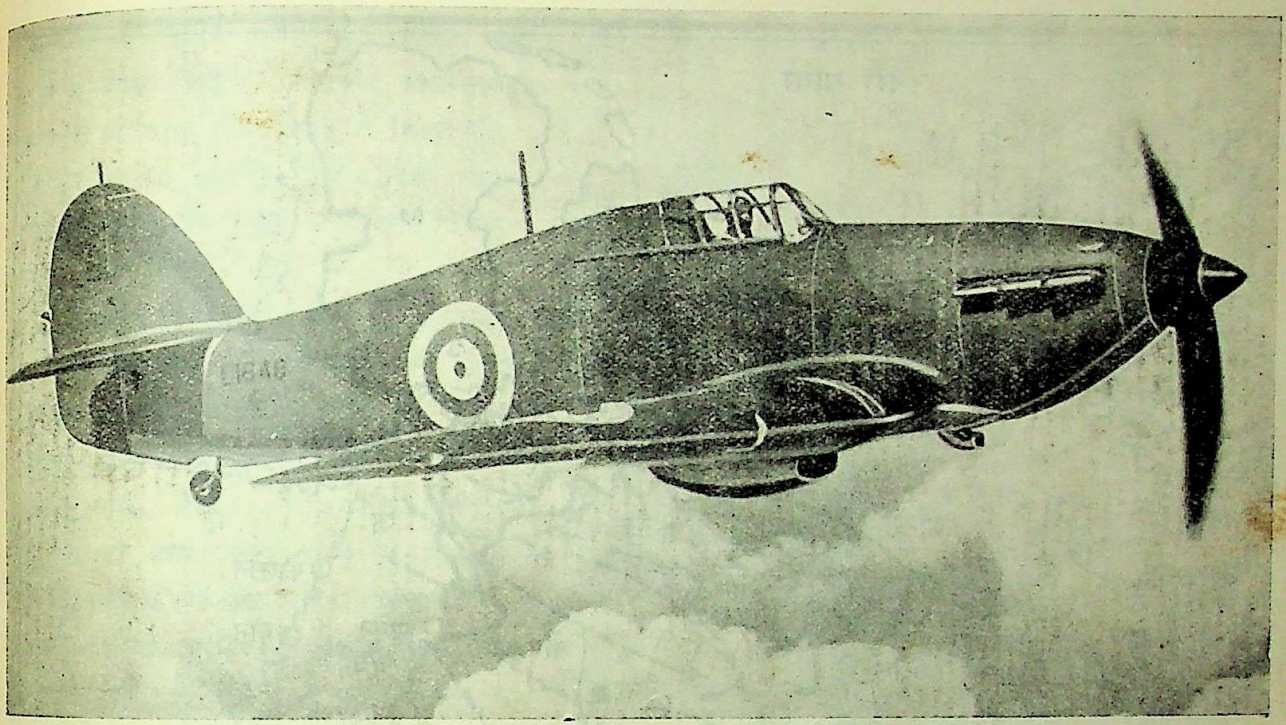

एक बमवर्षक वायुयान

जर्मनी और मित्रराष्ट्रों में कोई लड़ाई हो तो वे दोनों देश कठोरता के साथ तटस्थ बने रहें। पर बेल्जियम और हालैंड ने यह शर्त पूरी नहीं की, यद्यपि वे ऊपर से तटस्थ रहने का ढोंग कर रहे थे।"

उक्त मेमोरेंडम के भेजे जाने के दिन ही जर्मनी के ४० बम-वर्षक हालैंड की राजधानी पर मँडराते हुए दिखाई दिये। यह घटना गत १० मई के प्रातःकाल ६ बजे की है। इससे ठीक एक महीने पहले, इसी तारीख़ को और इसी समय डेन्मार्क तथा नार्वे पर नाज़ी-सेना का अचानक हमला हुआ था। राजनीतिज्ञों का अनुमान अवश्य था कि नार्वे के बाद हालैंड और बेल्जियम हिटलर की दाढ़ों के नीचे आयेंगे, पर यह सब इतनी शीघ्रता से--ऐसे नाटकीय ढंग से--होगा, इसका विश्वास किसी को न था।

हालैण्ड

जर्मनी के सीमावर्ती प्रान्त क्लीव्ज़ से हालैंड के दो प्रमुख नगरों--राटर्डम और एमस्टर्डम--की दूरी केवल ७५ मील है। हालैंड और जर्मनी की सीमा दो सौ मील है।

गत सितम्बर तक युद्ध और रक्षा-सम्बन्धी तैयारियों में हालैंड अपने पड़ोसी राष्ट्रों की अपेक्षा बहुत पिछड़ा था। पर म्यूनिख के बाद वह इस काम में दिलोजान से जुट गया था, और नवम्बर से तो उसने इस ओर पूरा ध्यान लगा दिया था। उसकी पूर्वी सीमा पर ऐसे कोई प्राकृतिक साधन नहीं हैं जो उसकी रक्षा के लिए सहायक हो सकें। पिछले कई महीनों से जर्मन-सेनायें हालैंड की सीमा पर जमा हो रही थीं। और उन्हें शीघ्रता के साथ मोटरों-द्वारा देश को पार करने की ट्रेनिङ्ग दी जा रही थी। ग्रोनो के निकट जर्मनों ने इसका बड़ा अड्डा बनाया था। हवाई जहाज़ों के अड्डे भी सीमा भर में सैकड़ों बना लिये गये थे। हालैंड की ओर से भी इस आक्रमण से बचने की तैयारी हो रही थी। टैंकों के आक्रमणों को रोकने के लिए छोटे छोटे भूगर्भ दुर्ग बनाये गये थे। पर दो सौ तीस मील लम्बे सीमान्त में इतने अल्प काल में इतने दुर्ग नहीं बनाये जा सकते थे जो टैंकों के आक्रमण को पूरी तरह से रोक सकते--हाँ, वे उन्हें अटका अवश्य सकते थे। उत्तरी-पूर्वी ज़िलों की रेतीली, कंकरीली ज़मीन, जंगलों के टुकड़े और चरागाहें शत्रु के आक्रमणों को रोकने में सहायता नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हालैण्ड और बेल्जियम

दे सकती थीं। इनसे कुछ आगे बढ़ने पर यसिल और मास नदियाँ हैं। यही पहली रक्षा-लाइन बनाई जा सकती थी और बनाई भी गई थी। मास नदी और जुलियाना नहर के बीच का भूभाग तथा जूडरजी और मेन्स-टिख्ट्स के बीच का भूभाग जलमग्न करके भी रक्षा की जा सकती थी। ऐसे मौक़ों पर हालैंड ने अपने समुद्री बाँध तोड़ कर और देश को जलमग्न करके कई बार अपनी रक्षा भी की है। परन्तु इस बार जर्मनों का आक्रमण पैराशूटों-द्वारा हुआ और प्रत्येक सिपाही के साथ एक रबर की नाव थी, अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षा के ये दोनों साधन भी हालैंड के हक़ में व्यर्थ सिद्ध हुए। इसके अतिरिक्त तटवर्ती तोपसेना जो डेहेल्डर में नियत थी, ज़ूडरज़ी और दूसरी क़िलेबन्दियों तथा राटर्डम और एमस्टर्डम के बन्दरगाहों का मार्ग रोके थी।

नवम्बर के महीने में जब तनातनी अधिक बढ़ गई थी, पूर्वी सीमा की रक्षा की ओर हालैंड का बहुत कम ध्यान था, परन्तु उसके बाद उसने इस ओर बहुत ध्यान दिया था। नाज़ियों के पाँचवें कालम को व्यर्थ करने के लिए डच-सरकार ने बहुत-से ऐसे लोगों को गिरफ़्तार कर लिया था जो नाज़ियों के साथ सहानुभूति रखते थे, जिससे नार्वेवाली चाल सफल न हो सके। नवम्बर की बिभीषिकाओं से बचने के लिए उन्होंने अपने सब लाइट-हाउसों को बुझा दिया था और लाइटशिपों को लौटा लिया था, जिससे रात्रि के समय सम्पूर्ण हालैंड में घोर अन्धकार रह सके। डच नदियों और नहरों में भी आवागमन रोक दिया गया था। तट की रक्षा के लिए हालैंड के पास चार क्रूज़र और तीन तटरक्षक, कुछ सुरंगें बिछानेवाले और निकालनेवाले, आठ विध्वंसक, आठ तारपीडो बोट और इकतीस सबमेरिन थे। इनमें से कुछ डच इस्टइंडीज़ में थे। छः सौ वायुयान थे और सात लाख सैनिक।

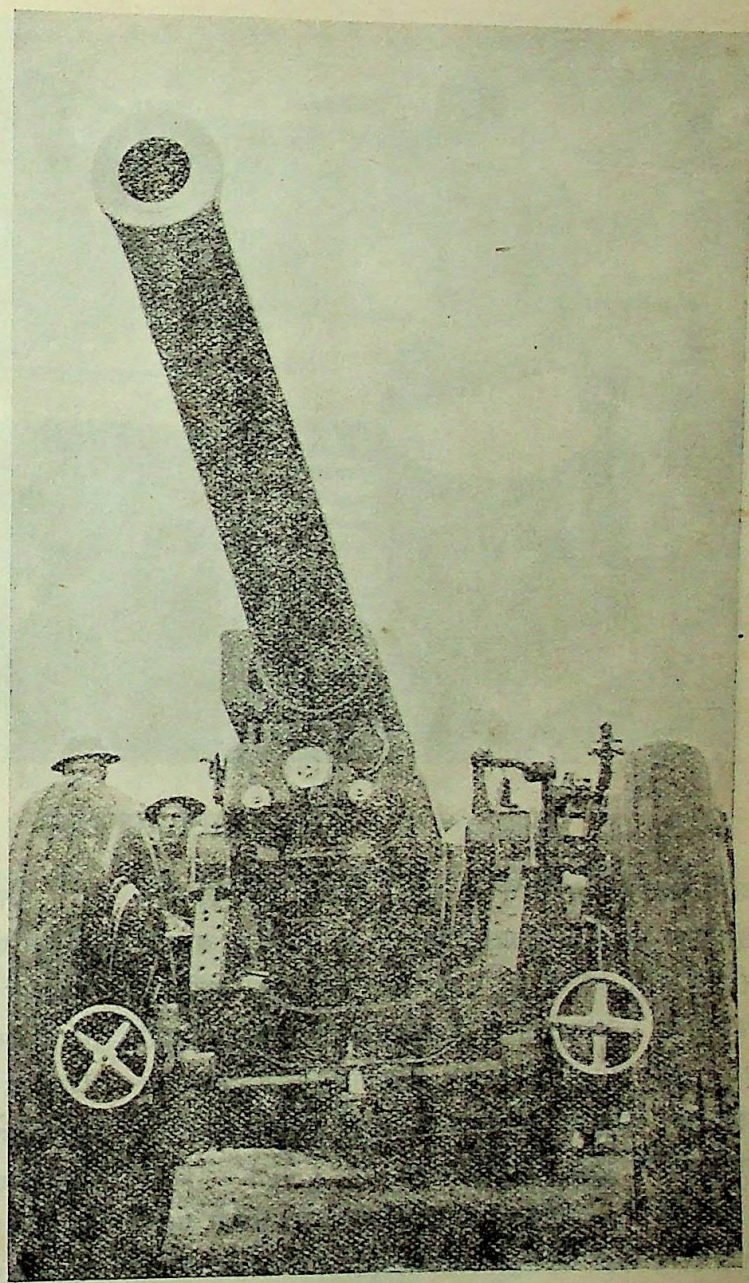

वायुयानविध्वंसिनी तोप

हालैंड की कुल जनसंख्या अस्सी लाख थी। पश्चिमी भाग बहुत घना बसा हुआ है और वहीं प्रसिद्ध व्यापारिक और उद्योगी नगर हैं। अटरेख्ट और एन्टवर्प के प्रसिद्ध शहर समुद्र के धरातल से नीचे हैं और इनकी रक्षा समुद्री बाँधों द्वारा होती है। देश का ढाल दक्षिण पूर्व की ओर से उत्तर-पश्चिम की ओर है और इसी दिशा में नदियाँ बहती हैं। नहरें भी वहाँ बहुत-सी हैं और यदि ठीक समय पर पुल उड़ाये जा सकते तो इससे भी रक्षा में बहुत सहायता मिल सकती थी। राइन मास और इसचेल्डिट यहाँ की प्रधान नदियाँ हैं, जो उत्तरी सागर में गिरती हैं। ४,८१७ मील की लम्बाई में नदियों और नहरों में जहाज़ चल सकते हैं। १६,००० मील लम्बी सड़कें हैं। जर्मनी, हालैंड और बेल्जियम के बीच में रेलवे लाइनों का जाल बिछा हुआ है। हालैंड की अधिक से अधिक लम्बाई १६४ मील और चौड़ाई १२० मील है। दक्षिणी भाग पहाड़ी है; शेष भाग चौरस। खेती वहाँ ख़ूब होती है और १८७० से अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

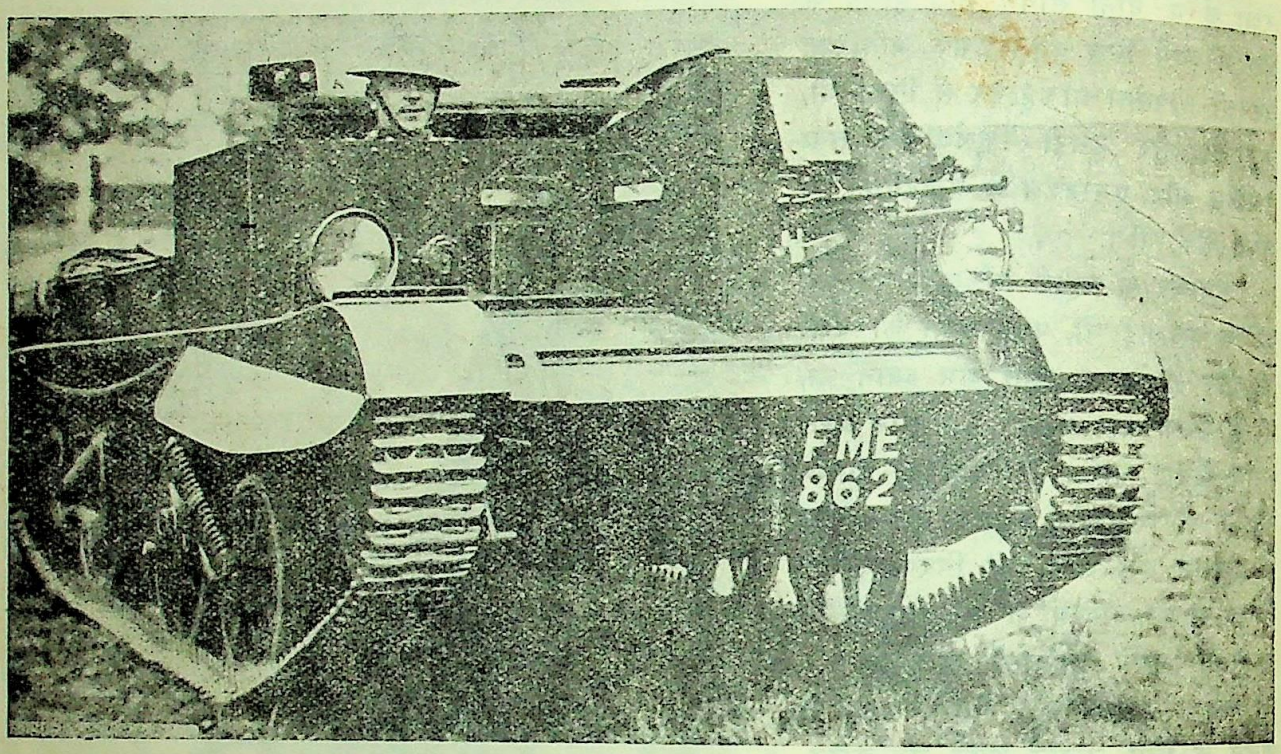

एक भयानक टैंक

और मक्खन पैदा करने में काफ़ी उन्नति की गई थी। संसार में जहाज़ों की संख्या के हिसाब से हालैंड का आठवाँ नम्बर था। हालैंड की उपज का सबसे बड़ा ख़रीदार ब्रिटेन था। राटरडम से निकटतम इँगलिश तट की दूरी १२० मील है। सन् १९१४ में बेल्जियम के साथ ही हालैंड पर आक्रमण करने का इरादा भी जर्मनी का था। पर उस बार ऐसा नहीं हो सका।

बेल्जियम का सिर गत महायुद्ध में भी सबसे पहले ओखली में पड़ा था। और पड़ता क्यों न? योरप की ३ प्रधान शक्तियों—इँग्लैंड, जर्मनी और फ़्रांस—के बीच में उसे भगवान् ने बसाया भी तो है। और इन तीनों के जो पारस्परिक सम्बन्ध गत कई शताब्दियों से रहे हैं, वे इतिहास के पाठकों को ज्ञात हैं। बेचारे बेल्जियम को इन लोह और पाहनों के बीच की रुई बनने का सौभाग्य अपने इतिहास में कई बार प्राप्त हो चुका था। फलतः इन देशों की प्रजा का इस सम्बन्ध में अनुभव भी काफ़ी था और जहाँ इस शक्ति-त्रयी में से किसी की भवों पर बल पड़े कि बेल्जियम का दिल पहले धड़कने लगता था।

गत महायुद्ध में कैसर की महत्त्वाकांक्षाओं के बीच में कूद पड़ने के कारण बेल्जियम बुरी तरह कुचला गया था और उसकी भूमि पर होनेवाले युद्ध-बिस्फोट का धुवाँ सारे संसार में फैल गया था। पर इस बार बेल्जियम किसी के मार्ग के बीच में नहीं पड़ा। उसकी अपनी भौगोलिक परिस्थिति ही उसके युद्ध में फँसने का कारण बनी। परस्पर आक्रमणशील जर्मनी और फ़्रांस के बीच में बनी हुई भूगर्भ दुर्गों की दो प्रबल श्रेणियाँ एक को दूसरे पर चढ़ दौड़ने का सीधा मार्ग नहीं दे रही थीं। रास्ता था तो बेल्जियम होकर ही। और जर्मनी को इसी लिए फ़्रांस और इँग्लैंड पर आक्रमण करने के मार्ग में हालैंड व बेल्जियम को तबाह कर डालना आवश्यक हो गया।

बेल्जियम अपनी तटस्थता की रक्षा जी-जान से कर रहा था। फिर भी वह समझता था कि युद्ध से बच सकना उसके लिए असम्भव है। इसी लिए वह अपनी रक्षा की तैयारी भी कर रहा था, यद्यपि उसकी तैयारी जर्मनी की शक्ति के सामने कुछ हस्ती नहीं रखती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलतः उसे अपनी रक्षा के लिए मित्रराष्ट्रों की सहायता की अपेक्षा थी। यह सहायता जितनी ही प्रचुर और शीघ्रता से प्राप्त हो जाती, उतना ही इसके हक़ में अच्छा था। न तो उसके पास जर्मनी का मुक़ाबिला करने योग्य सेनायें ही थीं और न उसकी भौगोलिक स्थिति ही उसकी रक्षा में सहायता दे सकती थी। बेल्जियम की कुल आबादी ८० लाख थी। सशस्त्र सेनाओं में बेल्जियम की राष्ट्रीय सेना और सरकारी सेना तथा रुआंडा-उरडी के शासनादिष्ट क्षेत्र की सेनायें सब मिलाकर लगभग ७ लाख सैनिक थे और ६०० वायुयान थे। सेना का संगठन वहाँ 'मिलिशिया' के ढंग का था, और रिज़र्व सैनिक देश भर में भरे हुए थे। १७ से लेकर ५० वर्ष तक की आयुवाले सभी पुरुषों के लिए सैनिक सेवा अनिवार्य थी।

ख़र्च में बचत करने के उद्देश्य से १९२८ में बेल्जियम ने अपना जंगी बेड़ा तोड़ दिया था। केवल एक जहाज़ 'जिनिया' जो १२०० टन का था, शेष था और वह भी अब मछली-क्षेत्रों की रक्षा का काम करता था। अपने गत महायुद्ध के अनुभव से लाभ उठाकर उसने सैनिक तैयारी इस बार कुछ पहले से आरम्भ कर दी थी। उसकी ४.७ इंच मुँहवाली 'एन्टी टैंक गनों' की फ़्रांस के विशेषज्ञों ने बड़ी तारीफ़ की थी।

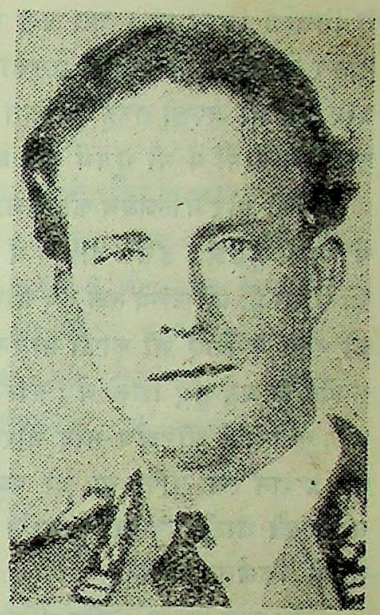

बेल्जियम के नरेश लीपोल्ड

गत १९१४ के युद्ध में जर्मनी का रण-कौशल 'लीज' के प्रसिद्ध क़िले के घेरे पर तुल गया था। लीज का क़िला बेल्जियम का 'हृदय' समझा जाता था। इसी क़िले से चक्राकार चलकर जर्मनों की सेनायें फ़्रांस में घुसी थीं। १९१९ में बेल्जियम ने इस दुर्ग का दुबारा नये ढंग

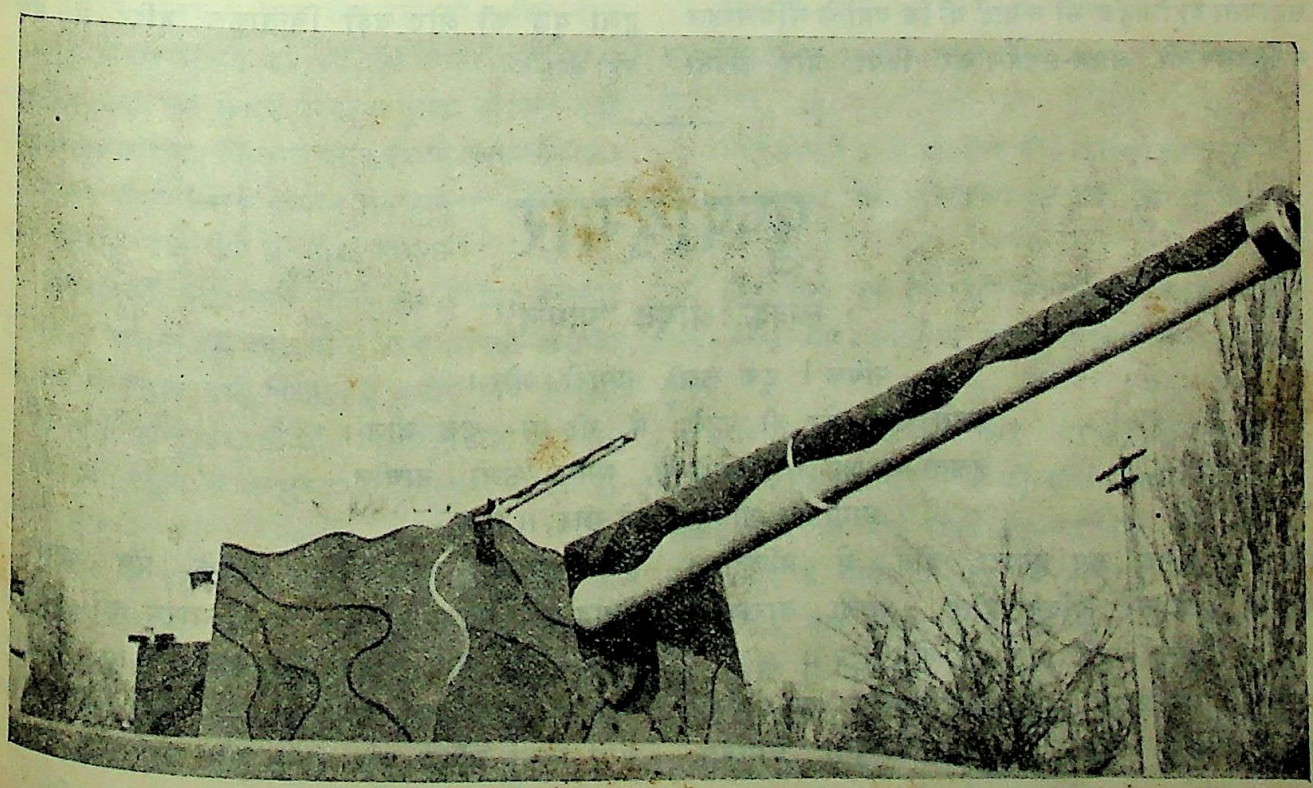

तटरक्षक तोप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से निर्माण किया था। गत युद्ध में जर्मन जिस द्वार से होकर बेल्जियम में घुसे थे, उसका नाम लिज्ज़े था। इस बार उसे भी अच्छी तरह सुरक्षित कर लिया गया था। शहरों के मार्गों में भी भूगर्भ दुर्ग बनाये गये थे।

जर्मनी और बेल्जियम की सीमा ३० मील की लम्बाई में मिली हुई है। इसके दक्षिण में बेल्जियम--लग़्जमबर्ग की सीमा है, जो लांग्वे तक ४५ मील लम्बी है। इस सीमा की रक्षा के लिए भी काफ़ी साधन जुटाये गये थे। यहाँ कंक्रीट के बने हुए क़िले थे। बेल्जियम का दक्षिणी-पूर्वी भाग पठारी है और शेष भाग चौरस। लीज ही बेल्जियम की प्रधान रक्षा-पंक्ति था जो म्यूज़ नदी और अलबर्ट नहर की घाटी पर निर्भर था। एण्टवर्प और नेमर में भी क़िलेबन्दी थी।

इस बार हालैंड और बेल्जियम पर जर्मनों का आक्रमण एक ही समय में हुआ। दोनों देशों ने--जैसा कि वे पूर्व से ही निश्चय कर चुके थे--नाज़ियों के विरुद्ध ख़ूब डट कर लोहा लिया। परन्तु चार दिन के ही युद्ध में हालैंड के कई लाख सैनिक मारे गये और सब हवाई जहाज़ नष्ट हो गये। मित्रराष्ट्रों की भेजी हुई सहायता वहाँ पहुँच भी न पाई थी कि वहाँ के मंत्रिमण्डल ने हिटलर को आत्म-समर्पण कर दिया और अपनी सेनाओं को अस्त्र रख देने की आज्ञा निकाल दी। वहाँ की रानी विलहेल्मिना अपनी राजकुमारी को साथ लेकर एक दिन पूर्व ही इँगलैंड को चली गई थीं। इस प्रकार चार दिन के पश्चात् ही हालैंड का देश जर्मनों के अधिकार में आ गया।

बेल्जियम फिर भी लड़ता रहा, उसे मित्रराष्ट्रों से कुछ सहायता मिल रही थी। परन्तु जर्मन-सेनाओं के दो ओर से हमला करने और बेल्जियम की सेनाओं के घिर जाने से वहाँ के बादशाह को भी अन्त में आत्म-समर्पण करना पड़ा। बेल्जियम के एक स्थान फ़्लैण्डर्स में जर्मन व मित्रराष्ट्रों के बीच जो भयानक लड़ाई हुई, कहते हैं कि इस समय होनेवाली लड़ाइयों में सबसे बड़ी थी।

फ़्लैंडर्स के पतन के साथ साथ बेल्जियम की लड़ाई का भी अन्त हो गया और नाज़ियों को फ़्रांस की ज़मीन में घुस कर युद्ध करने का रास्ता मिल गया। अब फ़्रांस महायुद्ध का क्षेत्र बना हुआ है। दोनों ओर की सेनायें वीरतापूर्वक लड़ रही हैं और समस्त संसार इसके परिणाम के विषय में तरह-तरह की कल्पनायें करता हुआ युद्ध की ओर बड़ी चिन्ताकुल दृष्टि से देख रहा है।

पुष्पोद्गार

लेखक, श्रीयुत "पागल"

पथिक! टुक लखो हमारी ओर।
इससे ज़रा देर ही पहले, मैं भी था कुछ चीज़।
हँसता था जब था अपनों में, समझ सभी नाचीज,
भाग्य का था न हमारे छोर ॥ १ ॥

देख देख सब रूप हमारा होते थे बलिहार।
मैं भी लखकर गर्वित होता, इठला बारम्बार,
बाँधता उन्हें प्रेम की डोर ॥ २ ॥

इतने में एक प्राणी आया धर सज्जन का भेष।
मुझे मनाया, ख़ूब रिझाया, दिखला प्रेमावेश,
झपट कर खींचा अपनी ओर ॥ ३ ॥

हृदय लगाया, ख़ूब सराहा, करके प्रेम अपार।
बिगड़ गया सौन्दर्य जभी मम, स्वारथ का संसार,
फेंक तब मुझे दिया दिल-तोर ॥ ४ ॥

पदाघात अब सहता सबके, पड़ा यहाँ असहाय।
जैसा किया उचित फल पाया, मोह-पाश पड़ हाय;
भुला कर प्रभु की करुणा-कोर ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिक्ता

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

पुलक की बीमारी ने सविता को दार्जिलिंग से न जाने दिया। इधर ज़मींदारी के आवश्यक कार्यों के कारण जगत बाबू को कुछ समय के लिए अपने विश्वस्त नौकर के साथ घर चला जाना पड़ा। लगभग एक सप्ताह बाद पुलक का ज्वर धीरे-धीरे कम हुआ। अरुण की इच्छा भी घर जाने की थी पर जगत बाबू के आदेश के कारण पूरी न हुई और उसे मन मार कर वहीं ठहर जाना पड़ा। इधर एक सुखी दम्पति के पारस्परिक आमोद-प्रमोद को देखकर अरुण के मन में एक अभाव का अनुभव हुआ और उसका हृदय कुछ-कुछ सविता की ओर झुका। सविता विवाह से ही पति-प्रेम से वंचित रही थी। अरुण के इस मानसिक परिवर्तन पर सविता को कुछ आश्चर्य अवश्य हुआ पर उसे अपने भाग्य पर सहसा विश्वास न हुआ।

(१८)

खुली हुई खिड़की के पास बैठी सविता कुछ कपड़ों में बटन लगा रही थी। उसके बटन लगा चुकने से पहले ही संध्या का अन्धकार प्रगाढ़ हो गया और नीली साड़ी के ऊपर सलमा-सितारों के समान श्यामवर्ण के आकाश में नक्षत्र उदित हो आये। इससे सविता को सुई-तागा रख ही देना पड़ा।

पुलक का ज्वर छूट गया था। वह दूसरे कमरे में अपने छोकड़ा नौकर के साथ खेल रहा था। बीच बीच में उमङ्ग में आ आकर जब वह हँस पड़ता तब उसका कण्ठ-स्वर यहाँ तक सुनाई पड़ता। पुलक की इस हँसी के अतिरिक्त और सब निस्तब्ध था, सर्वत्र घोर अन्धकार था।

नौकर दीपक जलाने आया। तब सविता ने कहा—अभी ठहरो, ज़रा देर के बाद जलाना।

सविता को उस समय मानो वह प्रगाढ़ अन्धकार ही अच्छा मालूम पड़ रहा था। अपने आपको छद्मवेश की आड़ में मनुष्य चाहे कितना ही कठोर भाव से क्यों न दाब रक्खे, परन्तु ज़रा-सी साँस मिलते ही घोर अन्धकार के ऊपर भी मनुष्य के अन्तस्थल का स्वरूप विकसित हो उठता है।

दीवार के सहारे बैठ कर सविता अपने हृदय की वास्तविक अवस्था पर विचार करने लगी। अरुण चुपचाप आकर उसके कमरे के द्वार पर खड़ा हो गया। वह भीतर जा नहीं सका। ज़रा-सा इधर-उधर करके उसने कहा—ओह, इतना अँधेरा क्यों है?

सविता चौंक पड़ी। वह सीधी होकर बैठ गई और बोली—किसी वस्तु की आवश्यकता है क्या? बरामदे में आऊँ?

अरुण ने कहा—नहीं, नहीं, मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। तुम्हें बाहर भी न आना होगा। परन्तु कमरे में उजाला क्यों नहीं है? नौकर सब कहाँ गये?

सविता ने कहा—नौकरों का कोई दोष नहीं है। मैंने स्वयम् ही उन्हें दीपक जलाने से रोक दिया था।

"क्यों?"

"यों ही, मुझे अँधेरे में ही अच्छा लग रहा था, इसी लिए लैम्प जलाने को रोक दिया था। क्या जलवा दूँ?"

"मेरे लिए? नहीं, मेरे लिए कोई आवश्यकता नहीं।"

"घूम-लेक देखकर रात को दस बजे तक जो लौटने-वाले थे!"

"मैं उतनी दूर तक नहीं जा सका। रास्ते से ही लौट आना पड़ा। इसी लिए इतनी शीघ्रता से आ सका हूँ।"

सविता कमरे से निकलकर बरामदे में आ गई। अरुण के दोनों ही प्रसन्न नेत्रों की दृष्टि दगदगा कर जल उठी। दाँतों तले ओंठ दबाये हुए वह खड़ी रही।

नौकर ने आकर सविता के कमरे में रोशनी कर दी। उसके बाद तुरन्त ही अरुण कमरे में घुस गया और कुर्सी पर बैठ गया। ज़रा देर तक रुककर उसने कहा—क्यों जी, तुमने यह तो मुझसे पूछा ही नहीं कि आधे ही रास्ते से क्यों लौट आये हो?

ज़रा-सा हँसकर सविता ने मुँह नीचा कर लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बाद उसने कहा—क्यों ? परन्तु उसके कण्ठ-स्वर से किसी प्रकार के आग्रह का भाव नहीं प्रकट हुआ।

अरुण ने कहा—इसका एक कारण तो यही है कि बाबू जी घर पर नहीं हैं। तुम लोगों को बिलकुल सूने घर में छोड़ जाना—

"इससे क्या ? केवल कुछ घंटों की तो बात थी।"

"यह तो ठीक है। परन्तु इतनी ही ज़रा देर की अनुपस्थिति के लिए सम्भव है कि आने पर बाबू जी रुष्ट होते। व्यर्थ में डाँट खानी पड़ती। ठीक है न ? क्या लौट आकर मैंने अच्छा काम नहीं किया है ?"

"हाँ, बहुत अच्छा काम किया है।" यह कह कर सविता वहाँ से चलने लगी। पैर के ऊपर पैर रखकर जूते का फीता खोलते खोलते अरुण ने कहा—यह क्या ? जाती कहाँ हो ? ठहरो, एक बात सुन लो। सविता खड़ी रह गई। उसने कहा—कहो, क्या कहते हो ?

"इतनी दूरी पर रहने से काम न चलेगा। ज़रा और बढ़ आओ।"

सविता मस्तक उठाये खड़ी रही। उसके हृदय में इतने दिनों से जो व्यथा सञ्चित थी वह एकाएक जाग्रत हो आई और उसके आघात के कारण कुछ तीव्र हो गये स्वर से उसने कहा—कहो न ? क्या कह रहे हो ?

ज़रा-सा संकुचित होकर अरुण ने कहा—मैं केवल अपना हाल तुम्हें दिखलाऊँगा। यह देखो।

सविता ने देखा तो अरुण के पैर के एक नाखून के पास कट गया था और मोजा खून से भीग गया था। यह देखकर वह काँप उठी और बोली—बाप रे, यह क्या हुआ है ?

"हुआ क्या है ? एक बहुत बड़ा-सा पत्थर उठाकर मैं वीरता दिखलाने जा रहा था, वही छूट कर पैर पर गिर पड़ा।"

"कपड़ा भिगोकर इसी समय इस पर पट्टी बाँध देनी चाहिए। अन्यथा पक आवेगा।"

सविता की यह बात सुनकर अरुण ने मुस्करा दिया। इतने में ही सविता ने एक साफ़ कपड़ा और जल ले आकर अरुण के सामने टेबिल पर रख दिया। अरुण ने कहा—जब इस लँगड़े पैर से इतनी दूर तक चला आया तब अब गीला कपड़ा बाँधने से क्या लाभ होगा ?

"गीले कपड़े की पट्टी बाँधने से पीड़ा शायद कुछ कम हो जायगी ?'

अरुण ने कहा—पीड़ा अपने आप ही दूर हो जायगी।

सविता और कुछ नहीं बोली। उसने सोचा कि इसके बाद भी यदि मैं कुछ कहूँगी तो बात कुछ देर तक जारी रहेगी। इससे वह चुपचाप सिलाई की चीज़ें उठा उठा कर देखने लगी।

इस प्रकार की असह्य निस्तब्धता अरुण को किसी प्रकार भी सह्य नहीं थी। इससे कुछ अप्रसन्न होकर अरुण उठकर खड़ा हो गया। उसने कहा—नहीं, घर पर चुपचाप बैठे नहीं रहा जाता। मैं ज़रा-सा टहल आऊँ।

सविता की ज़बान के सिरे तक आया—तब आये क्यों हो ? परन्तु यह उसने कहा नहीं। ज़रा-सा हँस कर उसने कहा—पैर में चोट जो आ गई है, चल सकोगे ?

"हाँ, यह तो कठिन बात है।" यह कहकर अरुण फिर कुर्सी पर बैठ गया। इतने में पुलक का रोना सुनकर सविता दौड़ पड़ी। चौखट में पैर अटक जाने के कारण वह गिर पड़ा था, इससे वह रो रहा था।

सविता ने उसे गोद में उठा लिया। परन्तु स्वामी के सामने अगड़म-बगड़म बातें बककर उसे वह तुरन्त ही नहीं शान्त कर सकी। इससे पुलक का रोना भी बन्द नहीं हुआ। क्रोध में आकर उसे डाँटते हुए अरुण बोल उठा—चुप. इतना चिल्लाता क्यों है रे ? ख़बरदार साँस लिया तो !

डर के मारे सविता की गोद में मुँह छिपाकर पुलक चुप हो गया। अरुण ने कहा—तुमने इसे इस तरह लाड़-प्यार में डाल रक्खा है ! बाद को क्या दशा होगी इसकी।

"दशा क्या होगी ? बाद को पिता के पास जाने पर सौतेली माँ का प्यार प्राप्त करना क्या सम्भव न होगा इसके लिए ?"

अरुण ने कहा—पिता के पास क्या जा सकेगा यह ! तुम इसे छोड़कर भला रह सकोगी ? काशी तक तो तुम जा नहीं सकी हो इसके कारण !

"मेरी बात जाने दो। बात तो उसके सम्बन्ध की हो रही थी !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम्हारी ही बात क्यों जाने दी जाय ?"

"मेरी कोई भी ऐसी बात नहीं है जिसकी चर्चा करनी हो, या जिसके सम्बन्ध में सोच-विचार करना हो। कोई आवश्यकता भी नहीं है ऐसा करने की।"

सविता ने तेज़ दिखलाकर अभिमानपूर्वक यह बात कहने का प्रयत्न किया। किन्तु फिर भी उसके हृदय पर जो आघात लगा हुआ था उसके कारण कण्ठ-स्वर में करुणा की पुट आ ही गई। लज्जा से मुख लाल किये हुए दूसरा प्रसङ्ग छेड़ने के विचार से उसने बहुत ही सरलतापूर्वक कहा—कनक बाबू कब आवेंगे ?

"दस बजे रात को !" यह कहकर अरुण उठ गया। उसके भी प्रसन्न और मुस्कराते हुए मुख पर चिन्ता या वेदना की म्लान छाया पड़ गई थी।

जिस दिन जगत बाबू फिर दार्जिलिंग लौट आये उसी दिन कनक भी कटक चला गया। जाते समय ट्रेन में बैठ-कर उसने कहा—ये भी कई दिन बड़े आनन्द से कट गये। ठीक है न अरुण ?

अरुण हँस पड़ा। उसने कहा—तुम्हारे दिन बिना आनन्द के कब बीतते हैं ?

"किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारे भी दिन अब बुरी तरह से नहीं कट रहे हैं। कुछ-कुछ परिवर्तन किया है तुमने अपने मनोभावों में।"

अरुण ज़रा-सा चकित हुआ। उसके क्षण भर बाद ही उसने हँसकर कहा—पागल कहीं के ! मुझमें तुझे कौन-सा ऐसा परिवर्तन दिखाई पड़ गया ?

"नहीं भाई, सच सच बतलाओ। क्या ऐसी जगह आने पर भी तुम्हें कुछ स्फूर्ति नहीं आती ?"

"भाड़ में जाय तुम्हारी स्फूर्ति। अब क्या स्फूर्ति आवेगी ? तुम लोगों की इस स्फूर्ति के ही फेर में तो मेरा यह जीवन गया।"

"परन्तु यह तो पूर्णरूप से तुम्हारी स्वतंत्र इच्छा का ही फल है"

"बस, बस, रहने दो भाई, रहने दो। यह प्रसङ्ग अब समाप्त करो। तुम्हारी गाड़ी के चक्के अब डोल चले हैं।" यह कह कर अरुण गाड़ी का सीकचा छोड़कर हट गया। अन्त में उसने कहा—शायद अब बहुत दिनों के बाद हम लोगों की मलाक़ात होगी।

कनक उस समय भी खिड़की के पास खड़ा था। उसने कहा सम्भवतः—

ट्रेन चल पड़ी। अरुण रेलवे लाइन के पास पास ज़रा दूर तक चलने के बाद घर की ओर चला।

× × ×

घर से लौटकर आने पर जगत बाबू ने देखा कि सविता पुलक की सेवा-शुश्रूषा में जितना मन लगाती है, उससे भी अधिक मन लगाती है वह घर-गृहस्थी के काम-काज में। हाथ में वह सदा ही कोई न कोई काम लिये ही रहती थी।

वेश-भूषा के सम्बन्ध में कभी वह कुछ वैसा ध्यान नहीं देती थी, परन्तु असावधानी करके स्वेच्छा से कभी वह गन्दी भी नहीं रहती थी। परन्तु अब उसने शरीर की सफ़ाई करना भी छोड़ दिया। देखने से जान पड़ता, मानों इस विश्व-ब्रह्माण्ड की दरिद्रता पुञ्जीभूत होकर सविता पर ही आकर केन्द्रित हो गई है, इस संसार में मानो जीवन का कोई उपयोग ही नहीं है।

आज-कल सविता जब कभी साफ़ कपड़ा पहन लेती तब सचमुच उसे बड़ी लज्जा आती। कारण यह था कि सावधानी के साथ प्रयत्न करने पर भी स्वामी की दृष्टि के सामने किसी न किसी समय वह नित्य ही पड़ जाती थी। स्वामी से छिपकर रहना उसके लिए सर्वथा असाध्य हो गया था।

सविता जो वस्त्र आदि ठिकाने से नहीं पहनती थी उसका एक कारण था। वह सोचती थी कि यदि मैं ज़रा अच्छे ढंग से कपड़े आदि पहनूँ तो स्वामी कहीं कोई और बात न सोच बैठें। तब तो वह लज्जा मेरे लिए असह्य ही हो जायगी। स्वामी की बातों से व्यङ्ग्य की जो बौछार आया करती थी वह तो सविता को भली भाँति मालूम थी। वह उस वस्तु से भय भी बहुत अधिक करती थी। परन्तु श्वशुर की बात वह टाल न सकी।

सविता की दृष्टि में श्वशुर की बात का मूल्य भी बहुत अधिक था। वे एक गम्भीर प्रकृति के पुरुष थे। बहुत आवश्यक होने पर ही वे कोई बात मुँह से निकालते थे। यही कारण था कि उनकी एक एक बात को वह अलंघ्य आदेश के रूप में ग्रहण किया करती थी। इससे श्वशुर ने जब कहा कि बहू, तुम्हारे कपड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत मैले हो गये हैं, उन्हें बदल दो, इतने मैले कपड़े न पहनना चाहिए, तब बाध्य होकर उसने धुले हुए कपड़े पहन लिये।

सविता का यह परिवर्तित रूप अरुण की दृष्टि में पड़े बिना न रह सका। हाथ में एक पुस्तक लिये हुए घर के भीतर से निकलते समय सविता को देखकर ज़रा-सा खड़े खड़े अरुण मुग्ध भाव से मुस्कराने लगा। मुस्कराते मुस्कराते उसने कहा—जान पड़ता है कि इस घर में अब धोबी का आना-जाना आरम्भ हो गया है।

मस्तक नीचा करके सविता ने मुँह फेर लिया। उसकी गोद में पुलक था। उसने कहा—नहीं बहू, तुम अच्छी मालूम पड़ रही हो, खूब अच्छी मालूम पड़ रही हो।

उसी प्रकार मुस्कराते हुए अरुण ने कहा—मुझे भी तो ऐसी ही मालूम पड़ी हैं।

सविता ने पुलक को गोद से उतार दिया। एकाएक मुँह फेर कर उसने कहा—क्यों कैसी मालूम पड़ रही हूँ आपको!

"यह क्या? रुष्ट हो गई हो? इतनी ही साधारण-सी बात पर?"

लज्जा और क्षोभ के मारे सविता का मुँह लाल हो गया था। उसने कहा—नहीं, रुष्ट क्यों होऊँगी? मुझे यह मालूम है कि मुझे रुष्ट न होना चाहिए। इसके सिवा मैं रुष्ट होऊँगी ही किसके ऊपर?

"यह क्यों? इस समय भी तो रुष्ट ही हो। समझती नहीं हो कि किसके ऊपर रुष्ट हूँ?"

"कहती तो हूँ कि किसी के ऊपर नहीं। मैं रुष्ट नहीं हूँ।"

"कुछ न कुछ तो अवश्य हो। अच्छा, अब मैं जाता हूँ।"

साथ में पुलक को लिये हुए अरुण सीधे फाटक की ओर चला गया। ज़रा देर तक खड़ी रहने के बाद सविता भीतर चली गई।

(१९)

चार-पाँच मास दार्जिलिंग में व्यतीत करने के बाद जगत बाबू के साथ सब लोग घर लौट आये। यहाँ वे थोड़े दिनों तक रहे। बाद को पुलक के पिता प्रभात अपनी माता के सहित पुलक को लेने आये।

नानी के अभाव में सविता पुलक की इतनी सेवा करेगी और उसे इस तरह प्यार से रक्खेगी, इस बात का विश्वास प्रभात या उनकी माता को था नहीं। इसके सिवा अभी अभी वह बीमारी से उठा था, इस कारण उसका शरीर काफ़ी दुर्बल हो गया था। परन्तु उन लोगों ने यही समझा कि सेवा-यत्न के अभाव के ही कारण पुलक इस प्रकार दुर्बल हो गया है।

पुलक जिस समय बहुत नन्हा-सा था, उसके बचने तक की आशा नहीं थी, उस समय किसी ने उसकी खोज-खबर लेना तक आवश्यक नहीं समझा। अब वह बड़ा हो गया था, इसी लिए उन सबकी कर्त्तव्य-बुद्धि भी जाग्रत हो उठी थी। अब उन्हें इस बात का ध्यान आया कि यह अनुपम कान्तिमान् बालक हमारा अपना ही धन है। क्या वह आगे चल कर दूसरे के ही घर को अपना समझेगा?

प्रभात ने पुलक को प्यार करते हुए पुकारा—बच्चा, ओ बच्चा।

अपना अप्रसन्न मुख टेढा करके पुलक ने कहा—आहा, मानो मेरा नाम बच्चा है!

प्रभात की माता ने प्यार के साथ पुलक को गोद में लेने का प्रयत्न किया। परन्तु पुलक बाक़ायदा चिल्ला उठा। उसने कहा—ओ बहू! बहू, जल्द आओ।

मलिन मुख से सविता ने कहा—क्या हुआ भैया? गम्भीर मुख से पुलक ने कहा—ये मुझे पकड़ ले जायँगी।

पुलक की मातामही ने कहा—पकड़ तो ले ही जाऊँगी। तुम मेरे कुल के दीपक हो, मेरे लाल हो, आँखों के तारा हो। तुम अपने घर न चलोगे?

इसमें सन्देह नहीं कि उस समय इन लोगों के कुल का दीपक पुलक के अतिरिक्त और कोई था नहीं। प्रभात को इस विवाह से दो कन्यायें हुई थीं। पुत्र हो भी सकता था, किन्तु तब तक हुआ नहीं था। घर में कोई लड़का न होने के कारण पुलक के लिए इन लोगों को इतना आग्रह था।

एक बार मस्तक हिलाकर पुलक ने कहा—नहीं, मैं न जाऊँगा तुम लोगों के यहाँ?

यह कहकर पुलक चुपचाप उनका प्यार करने का ढंग देखने लगा। इन सब माता-पुत्र के आगत-स्वागत के आयोजन के लिए सविता को जब एक क्षण के लिए भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठना पड़ता तब पुलक चिल्लाकर कहता—बहू ! मेरी बहू कहाँ गई ?

पुलक की पितामही कहतीं—वे तुम्हारी बहू हैं ? तुम्हें मैं तुम्हारी माँ के पास ले चलूँगी।

चारों ओर ताककर पुलक ने कहा—माँ ? माँ कहा है ? माँ तो कटक गई हैं। माँ नहीं हैं।

सब लोगों के सुनते सुनते पुलक मेनका को ही माँ कहने लगा था। इसी प्रकार वह सविता को भी मामी न कह कर बहू कहा करता था। 'माँ' सुनकर उसने यही समझा कि इन लोगों का मतलब मेनका से ही है। इसी लिए अविश्वास के साथ उसने कहा—माँ नहीं है।

लौट कर आने पर सविता ने देखा तो पुलक के दोनों हाथ बाज़ार से खरीद कर लाई हुई मिठाइयों से भरे हैं। यह देखकर सविता ने व्यग्र भाव से कहा—इसकी तबीअत ठीक नहीं है। यह तो ये सब चीज़ें खाता नहीं।

पुलक भी अभी तक अवाक् होकर उन मिठाइयों की ओर ताक रहा था। सविता को देखते ही डर के मारे उसने सारी मिठाइयाँ फेंक दीं। यह देखकर पुलक की पितामही का मुँह काला पड़ गया।

प्रभात की माता और प्रभात अरुण को साथ में लेकर जगत बाबू से आज्ञा लेने गये पुलक को ले जाने के लिए। सविता उस समय वहीं बैठी हुई श्वशुर के लिए सेनाटोज़ेन तैयार कर रही थी।

प्रभात की माता के उत्तर में जगत बाबू ने कहा—मुझे कुछ कहना नहीं है, परन्तु बहू शायद कुछ कहे।

कृतज्ञ भाव से सविता ने मस्तक झुका लिया। यही तो उसकी परीक्षा का समय था। पुलक को एकदम छोड़ देना उसके लिए कितना बड़ा त्याग स्वीकार करना था, यह केवल उसके अन्तर्यामी ही जान सकते थे। परन्तु यदि पुलक सचमुच ही अपने पिता के समीप, पितामही के समीप, आदर-यत्न प्राप्त कर सकता था तो सविता उसे किस अधिकार से रोकना चाहती थी। तो भी प्रभात की अनर्गल वाक्य-धारा के उत्तर में उसके दबे हुए ओंठ से केवल 'न' शब्द ही निकला।

रोष में आकर प्रभात की माँ ने अरुण की ओर ताका। उस क्षण तक सविता का समस्त मन सचेत हो उठा था। यहाँ तो उसका पराजय होना पूर्ण-रूप से ही निश्चित था। वह समझती थी कि सब जानबूझ कर भी मेरे स्वामी मेरे पक्ष में कोई बात न कहेंगे, बल्कि विपक्ष में ही कहेंगे। इन इतने आदमियों के बीच में मेरे अपमान की, मेरी लज्जा की, सीमा न रहेगी। इस संकट से, इस अपमानजनक अवस्था से परित्राण पाने के लिए हृदय-विदारक हाहाकार को, रुदन के आवेग को, रोक कर आर्तस्वर से वह चिल्ला उठी—अच्छा, अच्छा, ले जाइए आप लोग उसे। मुझे कोई आपत्ति नहीं है !

सविता के कण्ठ-स्वर और उसकी बात से आश्चर्य में आकर अरुण ने उसकी ओर ताक कर देखा। भीतर ही भीतर रुके हुए रुदन के उच्छ्वास से वह फूल रही थी, उसका मुख नहीं देखा जा सका। दोनों घुटनों के बीच में मुँह छिपाये हुए वह बैठी रही। जब तक वे लोग पुलक को लेकर चले नहीं गये तब तक सविता ने मस्तक नहीं उठाया।

बड़ी देर के बाद भी उसे ऐसा जान पड़ता, मानो पुलक के रोने का शब्द आ-आकर उसके कानों को बेध रहा है। सविता एकान्त कमरे में बैठी थी। एकाएक छूटते समय की गाड़ी की सीटी सुनाई पड़ी, जिसके कान में पड़ते ही वह भूमि पर लोट गई।

हेमन्त-ऋतु का अन्त हो रहा था। इससे जो थोड़ी-सी धूप आई थी, वह भी देखते देखते चली गई। तो भी सविता को चेतनता नहीं आई। उसे ऐसा जान पड़ रहा था, मानो सारा काम-काज ही समाप्त हो गया है ! अब उस नन्हें से बालक का मचल-मचल कर झंकृत किया गया कण्ठ-स्वर गृहस्थी के कार्यों में दबाव डालकर उसे न प्रवृत्त करेगा।

एकाएक नौकरानी का कण्ठ-स्वर सुनकर वह जाग उठी और मुँह ऊपर करके बोली—कहो, क्या चाहिए।

नौकरानी ने कहा—ज़रा देर के लिए भाण्डार-गृह की कुंजी दे दीजिए।

अञ्चल के छोर से कुंजी खोलती खोलती सविता उठ-कर खड़ी हो गई। इतनी देर के बाद उसके मन में आया कि नाना जी ने कितनी बार यह उपदेश किया था कि हर्ष या विषाद के कारण मोह में पड़ जाना उचित नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने नौकरानी से पूछा—कुंजी का इस समय क्या होगा ?

"बड़े बाबू चाय माँग रहे हैं। चाय का डिब्बा तथा चीनी आदि सब निकालना पड़ेगा। इसी लिए कुंजी की आवश्यकता पड़ी है।"

नौकरानी कुंजी लेकर चली गई। उसी समय आकर नौकर ने सूचना दी कि धोबिन कपड़े देकर चली गई, परन्तु सरकार के बिस्तरे के ऊपर का चद्दर नहीं मिल रहा है।

"चलो, खोज दे रही हूँ।" यह कह कर सविता आँखें पोंछ कर निकल पड़ी। वह जिस समय श्वशुर के कमरे की अलमारी खोल कर चद्दर खोज रही थी, उस समय उन्होंने कहा—अब छोटी बहू को बुला लूँ न बहू ? नहीं तो तुम्हें बड़ा कष्ट होगा।

सविता ने कहा—अभी उस दिन तो वह गई ही है। अभी ही उसे बुलवाओगे बाबू जी ?

"इससे क्या ? वे तो फिर भी आती-जाती रहती हैं। तुम तो एकदम से गई ही नहीं हो।"

"अब मैं भी जाऊँगी बाबू जी !"

सविता अपने हृदय की बात कह गई। परन्तु बाद को उसका मुख लाल हो उठा। उसके उत्तर में जगत बाबू ने कहा—अच्छी बात है बहू। इस बार तुम अवश्य हो आओ। परन्तु अरुण से यह आशा तो है नहीं कि वह तुम्हें पहुँचा आवे। यदि पंडित जी आकर ले जाते तो अच्छा था।

सविता के नाना अध्यापक थे और उन्हें लोग पंडित जी कहा करते थे। इससे जगत बाबू भी उन्हें पंडित जी ही कहा करते थे। सविता ने श्वशुर की इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उसी दिन उसके पास माता की चिट्ठी आई थी। श्वशुर से बातचीत करने के बाद उसने माता के पत्र का उत्तर लिख दिया। उसने लिख दिया कि बाबू जी ने अनुमति दे दी है। अब मेरे आने में कोई भी बाधा नहीं है। तुम लोगों में से कोई आकर मुझे ले जा सके तभी मैं जा सकूँगी। परन्तु क्या नाना जी आ सकेंगे ? यदि वे आ सकें तो उन्हीं को भेज देना, वे आकर मुझे ले जायँगे। बाबू जी आपत्ति न करेंगे।

तीन-चार दिन के बाद ही सविता के नाना का पत्र आ गया। उन्होंने लिखा था कि तीन-चार दिन के भीतर ही मैं सविता को देखने के लिए आऊँगा। बुलाने के लिए आऊँगा, यह लिखने का साहस वे नहीं कर सके।

नाना की चिट्ठी पाकर भी सविता प्रसन्न नहीं हो सकी। उस समय उसका हृदय पुलक की चिन्ता से व्याकुल था। उस समय वह यही सोच रही थी कि पता नहीं, पुलक वहाँ कैसा है। उसका अभी तक कोई समाचार क्यों नहीं आया ?

इस घर में सविता विवाह के दिन जब आई थी तब से लेकर आज तक वह एक ही भाव से अपना जीवन व्यतीत करती आई है। उसकी रहन-सहन और मनोभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। केवल सास के अभाव में नौकर-नौकरानियों की देख-रेख करना भर वह अपना कर्त्तव्य समझने लगी थी। उन लोगों को बात बात के लिए सरकार के पास तक पहुँचना उचित नहीं मालूम पड़ता था, इससे उन सबकी प्रार्थनायें और शिकायतें सविता को ही सुननी पड़ती थीं। एक नौकरानी को ज्वर हुआ था। इससे वह चार-पाँच दिनों से आती नहीं थी। उसका काम सविता ने एक दूसरी नौकरानी के ज़िम्मे कर रक्खा था।

एक सात-आठ वर्ष की बालिका को साथ में लिये हुए वही नौकरानी शायद सविता के ही पास जा रही थी। किसी ने उसे पुकार कर पूछा—क्यों रे काद्दू, सूरी को कहाँ लिये जा रही है ?

स्वर धीमा करके काद्दू ने कहा—ऊपर बहू जी के पास।

"क्यों रे ?"

"इसकी माँ बहुत ही बीमार है। थोड़े से रुपये चाहिए।"

"दुर अभागी ! तो बहू जी के पास क्या रक्खा है ?" यह कह कर उसने गले का स्वर धीमा कर लिया।

तब उसने कहा—जब से वे आई हैं तब से आज तक एक पोस्टकार्ड तक तो कभी उन्हें खरीद देखा नहीं मैंने। भला वे क्या दान करेंगी ?

गले का सतर्क स्वर और भी धीमा करके दो-एक बात करने के बाद काद्दू लड़की को लिये हुए ऊपर सविता के पास चली गई। लड़की का मुँह एकदम सूख गया था। कपड़े भी वह बहुत ही फटे और मैले पहने हुई थी। उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःखमय अवस्था को देखकर सविता को बड़ी दया आई। परन्तु उसे वह कुछ दे तो सकती नहीं थी। सचमुच उसके पास कुछ नहीं था।

यह दुरवस्था सविता को मन ही मन चाहे कितना ही दुखी क्यों न करती, किन्तु एक पैसा देकर भी उसका दुख दूर करने की शक्ति उसमें नहीं थी। अपनी इस असमर्थता के कारण सविता के स्वयं अपने ही नेत्रों में जल आ रहा था।

लड़की ने पहले हाथ फैला कर रुपया माँगा। बाद को एक रुपया मिलने की आशा न देखकर कादू की शिक्षा के अनुसार उसने कहा—अच्छा, आठ ही आने दीजिए। अन्त में जब आठ आने मिलने की भी आशा न रही तब उसने कहा—अच्छा, आपकी जो इच्छा हो वही दे दीजिए।

सविता ने मलिन मुख से कहा—मैं तो कुछ दे नहीं सकती हूँ। तुम बाबू जी के पास जाओ, वे तुम्हें देंगे।

सूखे हुए मुँह से लड़की ने कहा—मुझे जो कुछ देना हो, आप ही दे दीजिए।

सविता बड़े संकट में पड़ गई। उसके यह कहने पर भी कि मेरे पास कुछ नहीं है, ये लोग विश्वास नहीं करना चाहते थे। बहुत अनुनय-विनय करने और रोने-धोने के बाद भी लड़की जब कुछ नहीं पा सकी तब उसे लेकर लौटते लौटते कादू ने अस्पष्ट स्वर में कहा—बाप रे! कितने कड़े दिल की है यह स्त्री!

क्षण भर के बाद ही कादू सविता के पास फिर लौट कर आई। उसने कहा—क्यों बहू जी, यदि कहें तो यह आपकी फटी धोती उसे दे दूँ।

सविता ने कहा—नहीं, नहीं, उसे मत दो। उसे लेकर वह क्या करेगी?

"आपके किसी काम की तो है नहीं यह?"

"न सही। परन्तु वह बहुत फटी जो है।"

जो वस्तु किसी काम की नहीं रह गई थी, उसी को देकर अपनी असमर्थता पर पर्दा डालने और अपने आपको दानी कहलाने की इच्छा उसे नहीं हुई।

कादू ने कहा—तो क्या उसे भैया साहब के पास भेज दूँ? सम्भव है कि वे कुछ दया कर सकें। इसकी माँ की दुर्गति मैं देख आई हूँ। उजाड़ घर में पड़ी है वह। चारों ओर से ठंढी हवा आती है। ऊपर से ओस भी पड़ती है। घर में मुट्ठी भर भूसी-चोकर भी नहीं है कि वही मुँह में डालकर पानी पी ले। तिस पर भी वह ज्वर के मारे अचेत है। आप लोग बड़े आदमी हैं बहूरानी। ऐसी अवस्था कभी आँख से देखी नहीं है। देखने पर दया आये बिना नहीं रह सकती। तो क्या कहती हो? भेज दूँ उसे भैया साहब के पास?

सविता ने सोचा, वे कुछ दें या न दें, उनसे यदि वह भिक्षा माँगने के लिए जाना चाहती है तो उसे मैं रोकूँ क्यों? इससे उसने कहा—तो तुम ले जा सकती हो। किन्तु कादू उस लड़की को लेकर जैसे ही सविता के सामने से हटी, वैसे ही वह मन ही मन शङ्कित होकर खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गई। उसने सोचा, मैंने भेजा है, यह सोच कर कहीं वे बुरा न मान जायँ।

भय और लज्जा के मारे सविता का मुँह सूख गया। क्षण भर में उसे भय होता कि कहीं वे कादू को डाँट-कर लौटाल न दें।

बाहर बरामदे में बैठा हुआ अरुण अखबार पढ़ रहा था। कादू को देखकर उसने सोने के चश्मे के भीतर से हँसी से उज्ज्वल दोनों नेत्रों को उठाकर कहा—क्या है?

लड़की ने अरुण को दण्डवत् प्रणाम किया। कादू ने उसकी विपत्ति का हाल बतलाया। उसने कहा—यह कुछ भिक्षा चाहती है?

अरुण ने कहा—भिक्षा आदि मैं तो कुछ देता नहीं हूँ, मेरे पास क्यों ले आई हो इसे। इसे तुम भीतर ले जाओ।

"बहू जी ने आपके ही पास भेजा है। उन्होंने कुछ नहीं दिया। इसकी माँ ने आपके यहाँ बहुत दिनों तक काम किया है, बाबू जी! अब वह बेचारी मृत्यु के मुख में जा रही है।"

अखबार रखकर अरुण भीतर से एक रुपया ले आया और लड़की के हाथ पर रख कर उसे बिदा कर दिया। बाद को वह फिर अखबार पढ़ने लगा।

कादू से यह बात सुनकर सविता ने शान्ति की साँस ली। उस लड़की की दुरवस्था के कारण उसके हृदय को जो पीड़ा हो रही थी उससे भी वह मुक्त हो गई। इसके लिए मन ही मन उसने अरुण के प्रति कृतज्ञता भी प्रकट की। (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाग्रत नारियाँ

कन्याओं की एक आदर्श संस्था

लेखक, श्रीयुत सन्त निहालसिंह

जाड़े का मौसम था। सूर्य भगवान् निर्मल नील गगन में चमक रहे थे। बादल का नाम न था। सुहावनी कोमल धूप हिमालय के चरणों पर सोना बखेर रही थी। दिन ढलने जा रहा था। टीन से छाये हुए छोटे-छोटे बँगलों के सामनेवाले खुले मैदान में छायायें अपने पैर फैलाने लगी थीं। ये बँगले एक ऊँचे टीले पर बने थे, जो अधिक ऊँचा होता हुआ आगे जाकर हिमालय की उँचाई से मिल गया था। इसी उँचाई पर मसूरी के सुधा-धवल सौध आकाश में जड़े हुए गुड़ियों के महलों की तरह दिखाई देते थे।

बँगलों के आँगन में कुछ कन्यायें टहल रही थीं। इन कन्याओं की संख्या २०० से कुछ ऊपर ही रही होगी। उनमें से कुछ तो मा की गोद को कुछ ही समय पहले छोड़कर आई थीं; कुछ सयानी थीं और कुछ उस अवस्था तक पहुँच रही थीं, जब माता प्रकृति अपने चिन्ताशील बच्चों में अदम्य दाम्पत्य भावना का उद्रेक करके उन्हें गृहस्थ की कठिन ज़िम्मेदारियों को प्रसन्नतापूर्वक वहन करने के लिए तैयार कर देती है।

इन सब कन्याओं में एक विशेषता थी। सब-की-सब प्रसन्न दिखाई देती थीं। जीवन में प्रसन्नता—अपनी उस वयोवृद्धा शिक्षिका के चरणों में बैठकर पढ़ने में प्रसन्नता, जो अपने अनुभवजन्य ज्ञान-द्वारा कन्याओं के शरीरों, मनों और मस्तिष्कों को एकरूपता के साँचे में ढाल देने का प्रयत्न कर रही हैं। जिससे वे संसार की ज़िम्मेदारियों का बोझ योग्यतापूर्वक और सम्मिलित रूप से उठाने में समर्थ हो सकें।

(२)

यह एक विद्यालय था जो हिमालय की घाटी-देहरादून में छिपा हुआ था। भारतीय ऋषियों का प्रतिष्ठापात्र हिमालय इसकी उत्तरी सीमा बनाता था और दन्दानदार पर्वतमालाओंवाला शिव का प्रिय शिवालक दक्षिणी; यह विद्यालय आश्रम के रूप में था। इसका नमूना किसी अभारतीय के मस्तिष्क की कल्पना न थी। इसके संस्थापकों को इसके निर्माण की प्रेरणा उस पांडित्य से मिली थी जो हिमालय की भाँति ही धवल व पुरातन है।

इस आश्रम से केवल दो घंटे की दूरी पर रिस्पाना नामक एक बरसाती धारा के किनारे वह गढ़ा दिखाई देता है जो महाभारतकाल के सबसे बड़े गुरु द्रोणाचार्य के चरणों से बना कहा जाता है।

मानव की तृष्णा ने दून के उस वन में; जो उक्त महागुरु के नाम से अब भी पुकारा जाता है। कुछ भी शेष नहीं छोड़ा है। उन दिनों यहाँ गुरु द्रोण के चरणों में बैठकर शिक्षा पाने के लिए संसार के कोने-कोने से शिक्षार्थी आया करते थे। उनमें चक्रवर्ती के राजकुमार भी होते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[कुमारी सरला बियाणी । आप भी माननीय बियाणी जी की द्वितीय कन्या हैं। आप इसी वर्ष मैट्रिक परीक्षा में द्वितीय श्रणी में उत्तीर्ण हुई हैं।]

थे, मांडलिकों के पुत्र भी और साधारण भिखारियों की सन्तानें भी। प्रवेश-शुल्क के लिए वे लोग अपने हाथ से चुनी हुई समिधाओं का एक एक गट्ठा अपने-अपने कंधों पर रख कर लाया करते थे। इसका उद्देश्य यही था कि शिक्षा-प्राप्ति के दिनों में छात्रों के हृदयों में समाज या वर्ग-सम्बन्धी उत्कर्षापकर्ष न रह सके। यही गुरु-कुल का प्रवेश-शुल्क था, यही शिक्षण-शुल्क। २५ वर्ष की अवस्था प्राप्त करने तक सब शिष्यगण गुरुदेव के पुत्र के रूप में रहा करते थे और उन्हें ब्रह्मचर्यपूर्वक समस्त शास्त्रों की शिक्षा देकर गृहस्थाश्रम के लिए तैयार किया जाता था।

(३)

जब कन्यायें उस बरामदे से उठकर, जहाँ वे अपने दोपहर के भोजन के पश्चात् बैठकर बातचीत कर रही थीं, खेलने के मैदान की ओर चलीं तब उनमें फ़ौजी अनुशासन का कोई लक्षण मुझे दिखाई न दिया। वे किसी ड्रिल-मास्टर के आदेश पर पंक्ति बना कर नहीं चलती थीं। वे छोटे-छोटे झुंडों में चल रही थीं। उनके हँसने-बोलने की संगीत-ध्वनि में पदचाप का शब्द छिप जाता था। उनके लिए न कोई बाधा थी, न अधिकार का मिथ्या प्रदर्शन; फिर भी किसी प्रकार की उच्छृंखलता देखने में न आती थी।

सभी कन्यायें शुद्ध खद्दर की गेरुए रंग की साड़ियाँ पहने थीं जो उनके ब्रह्मचर्य व्रत की परिचायक थीं। साड़ियाँ स्वच्छ थीं और उनसे कषाय की सुगंध आ रही थी। इन्हें देखकर मुझे गुरु द्रोण के समय की याद आगई जब कि, शायद इसी स्थान पर, सम्राटों और भिक्षुकों के पुत्र वल्कल वस्त्र पहन कर एक साथ चलते होंगे। सभी लड़कियाँ--चाहे वे सम्पन्न से सम्पन्न घरों से आई हों या कंगालघरों से--एक जैसे वस्त्र पहने थीं। कोई लड़की धनिक की है, इसलिए वह अधिक क़ीमती व सुन्दर कपड़े पहनती है और कोई लड़की ग़रीब घर की है इसलिए उसके कपड़े सस्ते हैं, इस प्रकार का कोई विभेद यहाँ नहीं था। न यहाँ कोई लड़की अपव्यय ही कर सकती थी। क्योंकि वस्त्र-भोजन आदि सभी वस्तुएँ उन्हें आश्रम की ओर से, और एक-सी ही, दी जाती थीं।

[कुमारी कमला बियाणी । आप विदर्भ प्रांतीय कांग्रेस के प्रधान श्री ब्रजलाल बियाणी की ज्येष्ठ कन्या हैं। इस वर्ष आपने मैट्रिक की परीक्षा पास की है।]

(४)

लड़कियों के भोजन की सादगी का भी मुझ पर काफ़ी प्रभाव पड़ा। शुद्ध शाकाहारी भोजन था। न वहाँ पकवानों की विचित्रता थी, न खाद्य-वस्तुओं की संख्या का बाहुल्य; चटनी आदि की तो बात ही क्या, नमक का प्रयोग भी यथासंभव अधिक नहीं किया जाता था। फिर भी, जैसा कि मुझे चखने से ज्ञात हुआ, भोजन स्वादिष्ट था। भोजन का मूल उद्देश्य यह था कि लड़कियों को ऐसा भोजन मिले जिससे उनके शरीर और मन का पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास हो, पर वासनाओं को उत्तेजन या भोजन न मिले।

भोजन एक महिला की देख-रेख में बनता था। यह महिला दुःख की भट्ठी में तपकर पवित्र हो चुकी है। कुछ स्वयंसेविकाएँ इस कार्य में उनकी सहायता करती हैं। परोसने का काम कन्यायें बारी-बारी से करती हैं। भोजन की थालें प्रायः पीतल या काँसी की हैं। न चीनी मिट्टी के प्याले हैं न काँच के गिलास। न छूरी-काँटे की ही कोई ज़रूरत है। रसद की विभिन्नता भी नहीं दिखाई दी। पकौड़ीवाले की भी कोई दूकान पास में नहीं है।

स्वर्गीया श्रीमती मंगलादेवी बालूपुरी—श्रीयुत अन्नपूर्णानन्द की पुत्री थीं। आप हिन्दी की सुलेखिका थीं।

(५)

लड़कियों के खेल एक हरे-भरे मैदान में हो रहे थे। कुछ लड़कियाँ तख्ते की ढेंकली पर झूल रही थीं; कुछ झूले पर पेंगे भर रही थीं; कुछ रस्सियाँ कूद रही थीं; कुछ फरी-गदका का अभ्यास कर रही थीं। सबसे अधिक आकर्षक छुरे का खेल था। एक लड़की दूसरी पर छुरे से वार करती थी और दूसरी हस्तलाघव दिखाकर उसकी कलाई पकड़ लेती थी। निस्संदेह यह अभ्यास आत्मरक्षा के लिए बड़ा आवश्यक था।

अगले दिन मैंने कन्या-गुरुकुल का शिक्षणालय देखा। आचार्य जी से मुझे ज्ञात हुआ कि शिक्षा यहाँ बिलकुल मुफ़्त दी जाती है। न दाख़िले की फ़ीस ली जाती है और न शिक्षा की। किताबों, कापियों, ड्राइंग की कापियों और औज़ारों के लिए भी कुछ नहीं लिया जाता। लड़की का अभिभावक प्रतिमास १५) भेजता है। इसी में छोटी बच्चियों से लेकर कालिज तक की लड़कियों का खर्च चलता है। शिक्षा का माध्यम हिन्दी है। सभी प्रान्तों की लड़कियाँ यहाँ तक कि दक्षिण की लड़कियाँ भी, हिन्दी ही बोलती हैं। मैंने एक तामिल लड़की को देखा जो केवल ३ महीने के अभ्यास से ही हिन्दी को ऐसी उत्तमता से बोलने लगी थी मानों वह उसकी मातृ भाषा हो।

७-८ वर्ष की लड़कियाँ इस गुरुकुल में भर्ती की जाती हैं। १६ वर्ष की आयु तक उनका स्कूल का कोर्स समाप्त हो जाता है। स्कूल का कोर्स 'अधिकारी' कोर्स कहलाता है। इसे समाप्त करने से पहले कोई लड़की अपने घर नहीं जाने पाती। उसके अभिभावक आकर उसे गुरुकुल में ही देख जाते हैं। अभिभावकों के ठहरने की यहाँ व्यवस्था कर दी गई है। क्लास प्रायः खुले मैदान में लगते हैं। अध्यापिकायें भारत के विभिन्न प्रान्तों की हैं। उनमें गुजराती, पंजाबी, युक्त-प्रान्तीय, महाराष्ट्र, दक्षिणी सभी हैं। उनको अपना विषय हिन्दी-द्वारा पढ़ाना होता है।

अन्य विषयों की आवश्यक शिक्षा के साथ-साथ संस्कृत की सभी शाखोपशाखाओं की शिक्षा यहाँ दी जाती है। काम लायक़ अँगरेज़ी भी पढ़ा दी जाती है। संसार की परिस्थितियों के विषय में यहाँ की लड़कियों की जानकारी देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। एक कन्या से मैंने फ़िलिपाइन्स के स्वतन्त्रता के प्रयत्नों के विषय में प्रश्न किया तो उसने ऐसा अच्छा उत्तर दिया जैसी की आशा हम विश्वविद्यालयों के छात्रों से भी नहीं कर सकते थे।

भारत के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी का उद्देश्य इस संस्था के स्थापन में यह था कि कन्या को भारतीय प्रणाली-द्वारा शिक्षा देकर योग्य माता और गृहिणी बनाया जा सके।

इसी अभिप्राय से पाठ्य-क्रम में जहाँ राजनीति आदि है वहाँ सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, भोजन और शिशुपालन भी है। आचार्य जी के निधन के पश्चात् इस संस्था का सारा भार श्रीमती विद्यावती सेठ बी० ए० पर आ पड़ा है। आप आचार्य जी के सामने से ही, लगभग संस्था के आरम्भकाल से ही, इसकी प्रिंसिपल हैं। आप अवैतनिक रूप से ही संस्था की सेवा कर रही हैं। हमें आशा है कि आपके हाथों में यह संस्था दिन-प्रति-दिन उन्नति ही करती जायेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुस्लिम लीग का गप्पाष्टक

लेखक, पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी

कांग्रेस के जन्म ही से कुछ हिन्दू और मुसलमान सज्जन तत्कालीन कुछ सरकारी अफ़सरों के इशारे पर उसका विरोध करने लगे। इन विरोधियों में सर सैयद अहमद खाँ और राजा शिवप्रसाद के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सर सैयद ने अपने कांग्रेस-विरोधी आन्दोलन के संचालन में बहुत बड़ी सफलता प्राप्त की। कांग्रेस से मुसलमानों को अलग रखने के लिए सर सैयद अहमद और उनके अनुयायियों ने कई कपोलकल्पित बातों का प्रचार किया। और दुख के साथ हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि यद्यपि इन मनगढंत किंवदन्तियों का मुसलमान-समाज में बड़ी तत्परता के साथ "प्रचार हुआ है, लेकिन राष्ट्रवादियों ने उनके खण्डन या निराकरण का कोई संगठित रूप से प्रयत्न नहीं किया। इसका नतीजा यह हुआ कि मुसलमान जनता और मुसलमान नेता सर अहमद खाँ की गप्पों को आज दिन सत्य मान कर दोहराते हैं। इन्हीं निःसार और अनर्गल गप्पों को लेकर मुस्लिम लीग ने पिछले तीन साल में सारे देश में तूफ़ान वर्पा कर दिया और राष्ट्रीय एकीकरण की प्रवृत्तियों को इतना धक्का पहुँचाया कि साम्प्रदायिक मनोमालिन्य मिटना बहुत ही कठिन और दुस्साध्य प्रतीत होने लगा।

× × ×

मुसलमान समाज में बहुत-से असत्य, सत्य के रूप में, हमें आज दिन मिलते हैं। लीग के हर जलसे में और उर्दू के हर अखबार में इन्हीं गप्पों का प्रायः ज़िक्र आप पायँगे। सब गप्पों की तालिका बनाना एक दुस्साध्य काम था—इसलिए मैंने उनमें से आठ गप्पों को चुन लिया है। वे ये हैं :—

१—हिन्दुस्तान में दो क़ौमें हैं—एक हिन्दू और दूसरी मुसलमान। हिन्दुस्तान में न कभी एक क़ौम थी और न कभी एक क़ौम हो सकती है।

२—मुसलमानों का इस देश में राजनीतिक महत्त्व है, क्योंकि उन्होंने हिन्दुओं पर एक हज़ार साल तक शासन किया है। शासक शासित की अधीनता को कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। इसलिए अल्पसंख्यक होते हुए भी मुसलमानों को बहुसंख्यक हिन्दुओं के बराबर अधिकार मिलना चाहिए।

३—मुसलमानों की संस्कृति हिन्दुओं की संस्कृति से भिन्न है। उसके संरक्षण के लिए यह ज़रूरी है कि मुसलमानों को राजनीतिक क्षेत्र में विशेष अधिकार प्राप्त हों, ताकि उनकी संस्कृति पर किसी प्रकार का हमला न हो सके।

४—सब मुसलमान एक हैं। अभी हाल ही में कांग्रेस के वर्त्तमान सभापति, मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद, ने लखनऊ में होनेवाले शिया-सुन्नियों के झगड़े को शान्त करने की ग़रज़ से एक वक्तव्य प्रकाशित किया था। उसमें आदरणीय मौलाना ने शिया-सुन्नियों को मेल करने का आदेश दिया था, यह कह कर कि मेल न करने से हिन्दुस्तान के मुसलमानों की एकता खतरे में आ जायगी। मुस्लिम लीगवाले भी सब मुसलमानों को लीग के झंडे के नीचे जमा होने के लिए यह कह कर उत्तेजित करते हैं कि हिन्दुओं के इस देश में सब मुसलमानों का यह फर्ज़ है कि वे अपने हम मज़हब का साथ दें। मुसलमानों की एक ही प्रतिनिधि संस्था है, और लीग ही एक ऐसी संस्था है जो हिन्दुस्तान के मुसलमानों की ओर से और उनके नाम पर इस मुल्क में रहनेवाले दूसरी क़ौम के साथ समझौता कर सकती है।

५—इस्लाम, प्रजासत्तात्मक है। जम्हूरियत या बहुमत, कहा जाता है, इस्लाम के नस नस में भरा हुआ है।

६—हिन्दुस्तान के प्रान्तों में कांग्रेसी हुकूमतों ने मुसलमानों पर तरह-तरह के अत्याचर किये।

७—हिन्दुओं की तुलना में मुसलमान ग़रीब हैं, इसलिए उनको आगे बढ़ाने के लिए हिन्दुओं को और प्रान्तीय सरकारों को उनके साथ विशेष उदारता का व्यवहार करना चाहिए। जितना दूसरी क़ौमों को दिया जाय उससे अधिक मुसलमानों को मिलना चाहिए क्योंकि मुसलमान दूसरों को देखते हुए ग़रीब हैं।

८—मुसलमान शिक्षा में पिछड़े हुए हैं; अतएव इनमें शिक्षा के फैलाने के लिए यह परमावश्यक है कि सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें विशेष रूप से सुविधायें दे। शिक्षा में पिछड़े हुओं की कसौटी क्या है ? क्या कसौटी यह है कि आबादी के लिहाज़ से शिक्षालयों में मुसलमान विद्यार्थियों की संख्या कम है ? मुसलमान नेता इस बात को स्वीकार नहीं करते, उनकी कसौटी न्यारी है। उदाहरण के लिए, करामत हुसेन कमेटी की रिपोर्ट को देखिए। इस सूबे की तत्कालीन हुकूमत ने मुसलमानों में शिक्षा के प्रचार के साधनों पर विचार करने के लिए सन् १९०९ में इस कमेटी को नियुक्त किया था। इसके सभापति थे स्वर्गीय करामतहुसेन साहब। इस कमेटी ने मुसलमानों की शिक्षा-सम्बन्धी दीनावस्था की व्याख्या करते हुए यह कहा कि जब तक शिक्षालयों के सौ विद्यार्थियों में से मुसलमान विद्यार्थियों की संख्या ४० न हो तब तक यह समझना चाहिए कि सूबे के मुसलमान तालीम के मामले में हिन्दुओं की अपेक्षा पिछड़े हैं।

× × ×

आइए, हम इन निस्सार प्रलापों पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करें और देखें कि इनमें कहाँ तक सत्य का अंश है। पहली गप्प को ले लीजिए कि इस मुल्क में दो क़ौमें हैं। इस लेख का भारतवर्ष से सम्बन्ध नहीं है। इसका विषय है युक्त-प्रान्त में अल्पता की समस्या। अतएव हम अपने सूबे के बाहर इस मसले की विवेचना जाने नहीं देना चाहते। केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी ने 'भारतर्ष का इतिहास' नामक ग्रन्थ कई बड़ी-बड़ी जिल्दों में प्रकाशित किया है। कई लेखकों ने मिलकर इसे लिखा है। जो जिस विषय का अधिकारी है उसी ने उस विषय पर इस इतिहास में लेख लिखा है। यह ग्रन्थ अँगरेज़ी में प्रकाशित भारतीय इतिहासों में बहुत ही प्रामाणिक माना जाता है। इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में एक अध्याय है। उसका शीर्षक है, 'भारतवर्ष की जातियाँ'। इस अध्याय के अन्तर्गत यह स्पष्ट शब्दों में लिखा गया है कि युक्त-प्रान्त के निवासी एक दूसरे में इतना घुलमिल गये हैं कि जातीयता की दृष्टि से इस प्रान्त को एक जातीय कहना ठीक होगा। यहाँ पर आदि में आष्ट्रोल्वायड जाति के लोग रहते थे। यह तब की बात है जब इतिहास का भी जन्म नहीं हुआ था। ये लोग कहाँ से आये, कैसे आये हैं, इसका अभी तक निर्णय नहीं हुआ। इसके बाद भारत में द्रविड़ों का प्रवेश हुआ, तत्पश्चात् आल्पन नामक एक जाति के लोग काश्मीर की ओर से हिन्दुस्तान में आये। इसके पश्चात् आर्यों का इस देश में आगमन हुआ। बाद में यवन आये, हूण आये, कुश आये, अफ़ग़ान आये, मुग़ल आये। उपर्युक्त सब जातियों के सम्मिश्रण से युक्त-प्रान्त के वर्तमान निवासियों का सृजन हुआ। पूर्वगामिनी जातियों का रक्त निरन्तर सम्मिश्रण से अपनी विभिन्नता को खो चुका है।

यह तो हुई केम्ब्रिज विश्वविद्यालय-द्वारा प्रकाशित भारतीय इतिहास के महामान्य लेखकों की सम्मति। अब दूसरी बात सुनिए। वह यह है कि मनुष्य-विज्ञान के विशेषज्ञ इस बात में पूर्णरूप से सहमत हैं कि पश्चिमी पंजाब के मुसलमान, पूर्वी पंजाब के जाट और युक्त-प्रान्त के ब्राह्मणों के कौमी अथवा जातीय लक्षण पूर्णरूप से समान हैं। जब पश्चिमी पंजाब के मुसलमान और युक्त-प्रान्त के ब्राह्मणों में कोई क़ौमी भेद नहीं तो युक्त-प्रान्त के मुसलमान और ब्राह्मणों में विभिन्नता की भावना करना, भेद का स्वप्न देखना, पल्ले दर्जे की बेवकूफ़ी होगी। यह सही है कि इस सूबे में अफ़गान, मुग़ल और ईरानी मुसलमान काफ़ी संख्या में मध्यकालीन युग में आये। लेकिन उनके साथ औरतें कितनी आईं ? पिछले हज़ार वर्ष ने उनकी औलादों में वह काया-पलट, उलट-फेर, कर दी कि वे खून के एतवार से विशुद्ध युक्त-प्रान्तीय हो गये। हमने देखा है कि मुस्लिम लीग के नेता भी इस सच को अब दबी ज़बान से स्वीकार करने लगे हैं कि हिन्दुस्तान के ९० प्रतिशत मुसलमान उन हिन्दुओं की औलाद हैं जो अपने धर्म को छोड़ कर किसी समय मुसलमान हो गये थे। वे यह भी अब स्वीकार करते हैं कि मि० जिन्ना के पूर्वज भाटिया थे और पञ्जाब के प्रधान मन्त्री, सर सिकन्दर हयातखाँ के पूर्वज आदि में खत्री थे। बंगाल के प्रधान मंत्री भी किसी विदेशी माता-पिता की संतान नहीं। मुस्लिम लीग के नेताओं के इस कथन की तुलना कीजिए सर अहमद खाँ के उस कथन से कि हिन्दुस्तान के मुसलमान इस मुल्क के बासिन्दे नहीं। "यह तो अपने मुल्क से आकर इस मुल्क में आबाद हुए।" साठ सत्तर साल तक सर अहमद की इस गप्प का मुसलमानों में इतने ज़ोर से प्रचार होता आया कि रास्ता चलते हुए मुसलमान भी अपने को परदेशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझने लगे। क्या हम आशा करें कि राष्ट्रीयता के पुजारी इस गप्प नम्बर एक की निस्सारता को हिन्दू और मुसलमानों को समझाने में कोई कोरकसर न रक्खेंगे? पिछले साल साठ साल तक हम चुप रहे। इस झूठ के प्रतिकार की कुछ भी चेष्टा नहीं की। क्या हम इस निस्सारता को स्वीकार करेंगे या अधिक सतर्क होकर इस तरह के झूठे प्रलापों के ज़हरीले परिणामों को अनुभव करते हुए इसके खण्डन की आवश्यकता को स्वीकार करेंगे?

× × ×

अब दूसरी गप्प लीजिए। यह अकसर कहा जाता है कि हिन्दुस्तान में एक हज़ार साल तक मुसलमानों ने हिन्दुओं पर हुकूमत की। सच बात तो यह है कि हिन्दुस्तान में हुकूमत जिन लोगों ने की थी, वे वास्तव में परदेशी मुसलमान थे। आज तक हिन्दुस्तान में किसी हिन्दुस्तानी मुसलमान ने अपने देश पर कभी शासन नहीं किया। यह कहना कि हिन्दुस्तान में एक हज़ार साल तक मुसलमानों का राज्य रहा और हिन्दू उनके शासित थे, उतने ही अंश में ठीक है जितने अंश में यह कहना ठीक होगा कि हिन्दुस्तान में ईसाई पिछले २०० वर्ष से राज्य करते चले आये हैं। पिछले २०० बरस से भारत में अँगरेज़ों का राज्य है। वे ईसाई अवश्य हैं। इस नाते क्या किसी हिन्दुस्तानी ईसाई को यह कहने का अधिकार प्राप्त हो सकता है कि वह दो सौ वर्ष से हिन्दुस्तान के रहनेवाले हिन्दुओं और मुसलमानों पर शासन कर रहा है? अफ़गानों और मुग़लों के ज़माने में इस देश के हिन्दू और मुसलमान जैसे पराधीन थे वैसे ही आज अँगरेज़ों के शासन-काल में हिन्दुस्तान के हिन्दू, मुसलमान और ईसाई परदेशी के ग़ुलाम हैं। मज़हब चाहे जिसका जो हो, लेकिन हिन्दुस्तानी आज भी ग़ुलाम हैं और उस युग में भी ग़ुलाम थे जब हिन्दुस्तान में परदेशी मुसलमानों की हुकूमत थी। उन दिनों हिन्दुस्तानी मुसलमान उतने ही पराधीन थे जितने हिन्दुस्तान के हिन्दू पराधीन थे। देश के शासक के हम-मज़हबी, सहधर्मी, होने के नाते किसी भी हिन्दुस्तानी को यह हक़ नहीं हो सकता कि वह शासित होते हुए भी शासक की ऊँची गद्दी पर बैठ कर यह कहे कि अन्य मतावलम्बी हिन्दुओं पर वह शासन करता है। हिन्दुस्तान के मुसलमानों ने हिन्दुस्तान के हिन्दुओं पर कभी हुकूमत नहीं की और न आज दिन हमारे हिन्दुस्तानी ईसाई भाई हमारे ऊपर शासन कर रहे हैं। दिल्ली—शिमला से प्रकाशित होनेवाले साप्ताहिक "रायज़ वीकली" में एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें इसी विषय की बड़ी विशद विवेचना की गई थी। उस लेख में कहा गया था कि दो क़ौमों की आवाज़ जितनी ग़लत है उतनी ही वह खतरनाक भी है। आज के मुसलमान कल के हिन्दू हैं। हमारा भी यही कहना है कि मत-परिवर्तन से किसी की जाति नहीं बदलती। कोई भी हिन्दू महज़ मुसलमान या ईसाई हो जाने के कारण इस देश में परदेशी नहीं हो सकता। वह स्वदेशी ही बना रहेगा।

× × ×

क्या मुसलमानों की संस्कृति हिन्दुओं की संस्कृति से भिन्न है? क्या इस देश के हिन्दुओं में भी कोई ऐसी संस्कृति हमें मिलती है जो हिमालय से लेकर कन्या कुमारी तक और पूर्वी बंगाल से लेकर पश्चिमी सीमान्त तक समान रूप से देशव्यापी है? क्या हिन्दुओं में विभिन्न आचार-विचार प्रचलित नहीं? इसी तरह, क्या सब मुसलमानों की संस्कृति एक-सी है? शिया-सुन्नियों को ले लीजिए। दोनों में जितना गहरा धार्मिक भेद है उतना ही व्यापक भेद उनके रहन-सहन के मामले में भी आपको मिलेगा। ऐसी दशा में यदि हिन्दू और मुसलमानों की संस्कृति भिन्न है तो हमें यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि देश में रहनेवाले शिया और सुन्नियों की संस्कृतियाँ भी भिन्न हैं। श्री जवाहरलाल नेहरू ने अपने एक निबन्ध में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों की विवेचना की है और वे इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि भारतवर्ष में मुसलमान या हिन्दू संस्कृति नाम की कोई वस्तु नहीं मौजूद है। हमें यह न भूलना चाहिए कि देश के हिन्दू और मुसलमानों में केवल धर्म का भेद है और धार्मिक संस्कारों का यद्यपि मानव-समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा करता है परन्तु यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि धर्म ही एकमात्र संस्कृति और संस्कारों का निरूपक है। हिन्दुस्तान के अन्दर ही सिंध के मुसलमानों की तुलना बंगाल के मुसलमानों से कीजिए या मालाबार के रहनेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसलमानों की तुलना पश्चिमोत्तर में रहनेवाले मुसलमानों से कीजिए, आपको प्रत्यक्ष मालूम होगा कि यद्यपि ये चारों मुसलमान सुन्नी हैं, एक ही ख़ुदा की उपासना करते हैं, एक ही पैग़म्बर के अनुयायी हैं और एक ही धर्म-ग्रन्थ को ईश्वर का कलाम मानते हैं; लेकिन इन बातों में एकता होते हुए भी उनके दृष्टिकोणों में, उनकी मानसिक क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं में, उनकी विचार-शैली में, उनके राग-विरागों में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। हिन्दुस्तान के बाहर मुसलमान की स्वाधीन देशों में बसनेवाली अनेक जातियाँ भी यह दावा नहीं पेश कर सकतीं कि उन सबकी संस्कृति, बनावट एक हैं। ईरान, अरब, तुर्की, मंगोल, फिलिस्तीन, ईराक़, मिस्र, चीन और जापान के मुसलमानों का सांस्कृतिक ढाँचा एक-दूसरे से बिलकुल नहीं मिलता-जुलता। इस सूबे की संस्कृति में उतना ही मौलिक अन्तर है जितना मौलिक अन्तर हमको मिलता है योरोप और अमरीका में बसनेवाली ईसाई-जातियों की संस्कृति के ढाँचों के आकार-प्रकार में। वास्तविक बात यह है कि संस्कृति के अर्थ ही को हमने अभी तक ठीक-ठीक समझने की चेष्टा नहीं की है। संस्कृति का सही अर्थ है किसी जातिविशेष का दृष्टिकोण-सम्बन्धी अनोखापन। इस अनूठेपन के सृजन में जहाँ तक धर्म का काफ़ी हाथ है वहाँ उस जातिविशेष के निवास-स्थान, उसके ऐतिहासिक विकासक्रम, उसके महापुरुषों और दार्शनिकों के आदेश-आचार। अँगरेज़ नेलसन फ़्रांस के नेपोलियन से भिन्न है। नेलसन का फ़्रांस में उत्पन्न होना असम्भव था, वैसे ही इँगलेंड में नेपोलियन का जन्म लेना असम्भव था। हिन्दुस्तान के मुसलमान तो हिन्दुस्तान ही की उपज हैं। यहीं की मिट्टी के वे पुतले हैं, इस देश के जल-वायु से उनका भरण-पोषण हुआ है। काल की गति से समान रूप से इस देश में रहनेवाले हैं। चाहे वे हिन्दू, ईसाई या मुसलमान हों एक रूप से प्रभावित परिमार्जित, परिष्कृत और विकसित होते चले आये हैं। जाति के संघर्ष और भौतिक भेद ने हम सबको समान रूप से पीड़ित और जर्जरित किया है। ऐसी दशा में यह कहना कि युक्तप्रान्त के मुसलमानों का मानसिक दृष्टिकोण युक्तप्रान्त के रहनेवाले हिन्दुओं के मानसिक दृष्टिकोण से भिन्न है, सरासर अनर्गल बात का प्रचार करना है। बंगाल के हिन्दू और मुसलमानों में इतनी व्यापक समानता है कि दोनों बंगाल से हज़ारों मील दूर क्यों न चले जायँ किन्तु वास्तव में दोनों को देख कर बरबस यह कहना पड़ता है कि दोनों एक ही देश के रहनेवाले हैं और दोनों की संस्कृति भी समान है।

इस सम्बन्ध में हम अपना खेद प्रकट किये बिना नहीं रह सकते कि रामगढ़ में होनेवाले कांग्रेस के अधिवेशन में कांग्रेस के सभापति, सम्मानास्पद मौलाना अब्दुल क़लाम आज़ाद, ने मुस्लिम संस्कृति की महत्ता के विषय में जो कुछ कहा, उसको पढ़ने से मुसलमान संस्कृति की विभिन्नता की भावना को प्रोत्साहन मिलने की अधिक सम्भावना है। हमको अचरज है कि राष्ट्रवादी मौलाना ने इस तरह की अनैतिहासिक बातें कैसे कहीं। मौलाना बहुश्रुत हैं, बड़े विचारशील हैं और उनका दृष्टिकोण दार्शनिक है। यदि मौलाना साहब भी इस तरह की निर्मूल बातों को सही मानकर उनका प्रचार कर सकते हैं तो यह कौन अचरज की बात है कि हमारे अनपढ़ मुसलमान भाई इन मौलाना साहब की बात को लेकर देश में साम्प्रदायिक मनमुटाव के फैलाने का प्रयत्न करते फिरें। मुस्लिम संस्कृति के विषय में मौलाना साहब ने जो कुछ कहा, वह मि० जिन्ना के एतद्विषयक कथनों से किसी प्रकार भिन्न नहीं है। मौलाना साहब कांग्रेस के सभापति हैं। श्री पं० जवाहरलाल नेहरू भी तीन वर्ष तक कांग्रेस के सभापति रह चुके हैं। मुस्लिम संस्कृति के सम्बन्ध में इन दोनों ही आदरणीय सज्जनों की सम्मतियों को आमने-सामने रख लीजिए और आपको तुरन्त मालूम हो जायगा कि राष्ट्रीय और साम्प्रदायिक दृष्टिकोणों में कितना व्यापक अन्तर है। दोनों की प्रेरणायें भिन्न, दोनों की दिशायें भिन्न।

× × ×

मुस्लिम लीग की चौथी ग़प यह है कि सब मुसलमान एक हैं। यह भी एक राजनीतिक कपोलकल्पना है। जैसे हिन्दुओं में वैसे ही मुसलमानों में भी अनेक जातियाँ हैं। जैसे हिन्दुओं में वैसे ही मुसलमानों में अनेक सम्प्रदाय हैं। जैसे हिन्दुओं में वैसे ही मुसलमानों में भी स्थानभेद के साथ-साथ सामाजिक रहन-सहन में अन्तर है। ऐसी दशा में सब मुसलमानों की एकता का दावा पेश करना जानकारों की आँखों में धूल झोंकना है। लखनऊ के शिया-सुन्नियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झगड़े ने इस बात को अच्छी तरह से प्रकट कर दिया है कि जिस निन्दनीय निष्ठुरता का अनुभव हमें हिन्दू-मुस्लिम दंगे के दिनों में हुआ करता है उसी निन्दनीय निष्ठुरता के साथ शिया और सुन्नी भी हमें एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे लखनऊ की गलियों में फिरते हुए दिखाई देते हैं। ऐसी दशा शोचनीय है। वह सचमुच अभागा देश होगा जो इस तरह के फ़साद को देखकर प्रसन्न हो सकता है। लेकिन इन झगड़ों से मुसलमानों की एकता का दावा एकदम से निर्मूल सिद्ध हो जाता है, और इससे यह प्रकट हो जाता है कि हिन्दू-मुसलमानों के झगड़ों से यह नतीजा निकालनेवाले ग़लती करते हैं कि हिन्दू और मुसलमान जुदा-जुदा हैं और सब मुसलमान एक हैं।

× × ×

यह भी कहा जाता है कि इस्लाम प्रजासत्तात्मक है और मुसलमान जम्हूरियत के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं। इस्लाम के इतिहास को ले लीजिए। ख़िलाफ़त की तवारीख़ के पन्ने उलट जाइए, इस्लामिक देशों की कहानियों का अध्ययन कीजिए। हिन्दुस्तान ही में परदेशी मुसलमानों के शासनों को देखिए या इस मुल्क में जो मुस्लिम रियासतें क़ायम हैं उनके शासन-विधान की आलोचना कर डालिए और आपको मुस्लिम लीग के इन दावों की असत्यता का पता आसानी से लग जायगा। इस्लाम, ईसाई-धर्म और हिन्दू-धर्म के आदि प्रवर्तनों की प्रेरणायें कुछ रही हों और उन्होंने उपदेश कितने ही पावन क्यों न किये हों लेकिन मानव हिंसा और स्वार्थ, उनके उपदेशों को अपने मार्ग का रोड़ा समझ कर, उनकी अवहेलना करता और अनियंत्रित सत्ता का षड्यंत्र रच कर अपने सहवासियों को अपनी स्वेच्छाचारिता का दास बनाने से कदापि नहीं हिचकता। मुस्लिम लीग भी तो यह कहती है कि हिन्दुस्तान का जलवायु प्रजासत्ता के लिए प्रतिकूल है। यदि इस्लाम की बुनियाद जम्हूरियत के उसूल पर रक्खी गई है तो इस देश में प्रजासत्तात्मक शासन-विधान के सबसे प्रबल समर्थक हिन्दुस्तान के मुसलमानों को होना चाहिए था। लेकिन मि० जिन्ना और उनके साथी पुकार पुकार कर कहते फिरते हैं कि हिन्दुस्तान में प्रजासत्तात्मक राज्य की स्थापना सर्वथा असम्भव है। इन दोनों ही प्रकार के कथनों में कितना गहरा विरोध है! दौड़ते हुए भी कोई आदमी इस विरोध को देख लेगा—

मन्दिर मसजिद सबके अन्दर,
राज ग़ुलामी करती है।
दौलत घर का नाम ख़ुदा का,
घर-घर धरना धरती है।

क्या इस्लाम और क्या हिन्दू-धर्म, क्या ईसाई-धर्म और क्या पारसी-धर्म—सब धर्म समाज के साम्पत्तिक विकास के लक्षण-मात्र हैं। साम्पत्तिक परिवर्तनों-द्वारा ही जैसे राजनीति के वैसे ही धर्म के तात्कालिक स्वरूप का निरूपण हुआ करता है। इसी लिए मध्य कालीन युग में जब जागीर-वादियों का बोलबाला था, धर्म भी मनसबदारों और जागीरदारों का पिछलगुआ बना हुआ समरथों का सेवक बना फिरता था। ज़ार के रूस में ईसाई-धर्म ज़ार की अन्तर्गत सत्ता का सबसे बड़ा समर्थक और रक्षक था। अष्टम हेनरी के इँगलेंड का धार्मिक विप्लव हमारे ऊपर के कथन के पक्ष में एक प्रमाण है। हिन्दुस्तान के मुसलमान उतने ही प्रजासत्तात्मक हैं जितनी हिन्दुस्तान की अन्य मतावलम्बिनी जातियाँ हैं।

× × ×

कांग्रेस-हुकूमत के अत्याचारों की भी पिछले ढाई साल से काफ़ी धूम रही। मुस्लिम लीग के भक्त, जिनमें बंगाल के प्रधान मंत्री मि० फ़ज़लुलहक़ का सबसे ज़्यादा स्थान है, सोते-जागते यह रट लगाये रहते हैं कि कांग्रेसी प्रान्तों में हिन्दुओं और हुकूमतों ने अपने प्रान्तों में रहनेवाले अल्पसंख्यक मुसलमानों के साथ तरह तरह के अत्याचार करने में कोई कोर-कसर नहीं उठा रक्खी। दिसम्बर सन् १९३९ में मि० हक़ ने मुसलमानों पर किये गये अत्याचारों की एक फ़िहरिस्त अखबारों में प्रकाशित कराई थी। उनकी इस फ़िहरिस्त में युक्त-प्रान्त का भी ज़िक्र है। मि० हक़ ने उन ३३ स्थानों का ज़िक्र किया है जिनमें उनके अनुसार कांग्रेसी हुकूमत के ज़माने में मुसलमानों के साथ अन्याय, अत्याचार और दुर्व्यवहार किये गये थे। इन ३३सों इलज़ामों की युक्त-प्रान्त की लेजिस्लेटिव पार्टी ने दफ़्तर में जाँच की और इस जाँच के आधार पर मैं दावे के साथ यह कहने के लिए तैयार हूँ कि युक्त-प्रान्त के विषय में मि० हक़ ने जो कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा है वह एकदम ऊलजलूल, असत्य और भ्रान्तिमूलक है। जिसका जी चाहे कांग्रेस-कमेटी के दफ़्तर में जाकर इन सब तमाम काग़ज़ों को देख ले। उदाहरण के लिए टाँडा के मामले को ले लीजिए। टाँडा फ़ैज़ाबाद के ज़िले में एक क़स्बा है। यहाँ के मुसलमानों ने हिन्दुओं के साथ बलप्रयोग किया और उनके क़ानूनी स्वार्थों पर नाजायज़ तरीक़े से हमला करने पर वे उतारू हो गये। ज़्यादती मुसलमानों की थी। हाकिमों ने उनको रोकने की भरसक चेष्टा की। लेकिन जब बलवाइयों ने उनकी एक न सुनी बल्कि उलटे पुलिस पर ढेले फेंकने शुरू किये तब आत्मरक्षा और शान्तिस्थापना की दृष्टि से पुलिस ने उन साधनों का प्रयोग किया, जिनके द्वारा ऐसे अवसरों पर दंगा शान्त किया जाता है। टाँडा के दोषी मुसलमानों के बचाने के लिए मुस्लिम अख़बारों ने एक स्वर से यह आवाज़ उठाई कि टाँडा के मुसलमानों के साथ अकथ अत्याचार का व्यवहार किया गया और जो लोग निरीह और निरपराधी थे उनको पुलिस ने बड़ी बेरहमी और बेदर्दी के साथ सताया। तीन अदालतों के सामने यह टाँडा का मामला गया। सफ़ाई के वकीलों ने तीनों ही अदालतों के सामने बड़ी ही योग्यता और निर्भीकता के साथ टाँडा के मुसलमानों के इस दावे को रक्खा कि वे वास्तव में निरपराधी हैं और सारा दोष सरकारी कर्मचारियों का था। लेकिन तीनों ही अदालतों ने उनके इस दावे को असत्य माना और अपने फ़ैसले में तीनों ही अदालतें यह लिखने के लिए मजबूर हुईं कि ज़्यादती टाँडा के मुसलमानों की थी जो क़स्बे के हिन्दुओं के सार्वजनिक रास्तों पर अपने धार्मिक जुलूस निकालने के सारे अधिकारों को बलात्कारपूर्वक रोकना चाहते थे। इस तरह के और कई स्थानों के साम्प्रदायिक झगड़ों के विषय में अदालतों के फ़ैसलों से मुसलमानों की ज़्यादतियों का उल्लेख मिलता है। यदि विस्तारपूर्वक इन तमाम घटनाओं का उल्लेख किया जाय तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ रचने की आवश्यकता होगी। लेकिन इसकी यहाँ पर कोई ज़रूरत नहीं। ज़रूरत तो सिर्फ़ इस बात पर ज़ोर देने की है कि मुस्लिम लीग ने और खास कर मि० फ़ज़लुल-हक़ ने जान-बूझकर सत्य का ख़ून करना अपना परम कर्त्तव्य समझ लिया है, जिसमें कांग्रेसी सरकारें बदनाम हो जायँ और भयभीत होकर मुसलमानों के साथियों को ख़ुश करने की गरज़ से उनकी नाजायज़ माँगों को मानने के लिए अपने को मजबूर समझें। बदनामी करके अपना काम निकालने की प्रथा का आज-कल योरप में काफ़ी मान बढ़ गया है। जिस देश पर जर्मनी ने हमला किया उसके शासकों और निवासियों को अमानुषिक अत्याचारी घोषित किया और तरह-तरह की रोमांचकारी और कपोलकल्पित घटनाओं का अख़बारों और रेडियो-द्वारा प्रकाशन शुरू कर दिया, ताकि लोकमत उत्तेजित हो जाय और नाज़ी-अत्याचार से पीड़ित देश के प्रति किसी के हृदय में नैतिक सहानुभूति का एक बूँद भी न मिले। इन्हीं उसूलों का अनुसरण मि० हक़ और दूसरे लीगी नेता कांग्रेसी सरकारों के सम्बन्ध में पिछले तीन सालों से करते चले आये हैं।

× × ×

सात और आठ के विषय में हमें कुछ विशेष कहने की ज़रूरत नहीं प्रतीत होती, क्योंकि इसके सम्बन्ध में हम दो स्वतंत्र लेखों में विस्तार के साथ लिख चुके हैं। यहाँ पर इतना ही कह देना काफ़ी होगा कि हिन्दुओं की तुलना में मुसलमानों की माली हालत ज़्यादा अच्छी है, और तालीम में भी मुसलमान हिन्दुओं से आगे बढ़े हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि हमारे सूबे के औसत मुसलमानों की आर्थिक दशा, हमारी दृष्टि में, संतोषजनक है या उसमें सुधार की ज़रूरत नहीं है। लेकिन जैसे अमीरों में वैसे ही ग़रीबों में भी विभिन्न श्रेणियाँ हुआ करती हैं। कोई कम ग़रीब होते हैं, कोई ज़्यादा। किसी की दशा कुछ कम खराब होती है और किसी की कुछ अधिक। हमारे प्रान्त के औसत निवासियों की दशा योरोप के समृद्धशाली देशों और अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र के निवासियों की तुलना में बहुत ही हेय है। इसी तरह से शिक्षा के मामले में भी कमी है और मुसलमान अन्य देशों के निवासियों की तुलना में अभी बहुत पिछड़े हुए हैं। लेकिन इस अनुन्नत दशा में भी इस बात की तुलना करना सम्भव है कि दो सम्प्रदायों में से किसके अनुयायी दूसरों की तुलना में कम शिक्षित हैं। यह बात स्पष्ट है कि मुसलमानों में शिक्षा का प्रचार अधिक है और हिन्दुओं में कम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

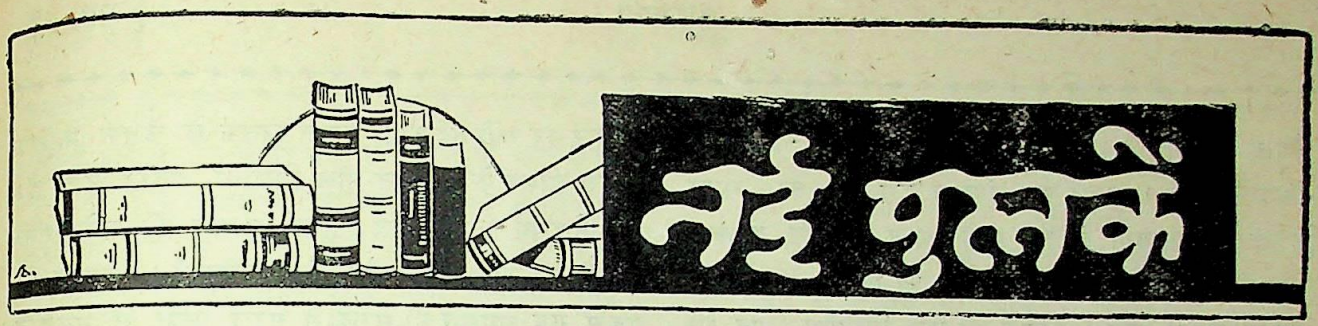

१—**झूठ-सच**—लेखक, श्रीयुत सियारामशरण गुप्त, आकार डबल क्राउन १६ पेजी, पृष्ठ-संख्या २७५, मूल्य २)। पता—साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी।

श्री सियारामशरण गुप्त ने कविता लिखने में हिन्दी में अच्छी ख्याति प्राप्त की है। कविता के अलावा उन्होंने सफलता के साथ उपन्यास और कहानियाँ भी लिखी हैं। प्रस्तुत पुस्तक उनके २८ निबन्धों का संग्रह है, जो 'झूठ-सच' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

निबन्धों का ध्येय पाठक में स्वतन्त्रता-पूर्वक सोचने की प्रवृत्ति जागृत करना है। इमर्सन के निबन्ध आज भी अमर हैं, क्योंकि उसने ऐसे विषयों को चुना है जो सब कालों और सब स्थानों के मनुष्यों को प्रिय हैं। प्रेम, कविता, इतिहास आदि विषयों पर इमर्सन ने निबन्ध लिखकर अपनी लेखनी को अमर किया है। बाबू सियारामशरण गुप्त के इन निबन्धों की इमर्सन से तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि इनके विषय बहुत कुछ इन्हीं के निजी अनुभवों पर अवलम्बित हैं। इस तरह के निबन्ध हालडेन ने लिखे हैं। लेकिन हालडेन के निबन्धों में भी एक प्रकार की व्यापकता है। उसने ऐसे साधारण विषय चुने हैं जिनका अनुभव किसी न किसी रूप में सब आदमियों को होता है। जैसे रोग, भूख, विज्ञान वग़ैरह।

यद्यपि बाबू सियारामशरण जी भी अन्य निबन्धकारों की भाँति यह स्वीकार करते हैं कि हमारे चारों ओर लोहे की जो गड़गड़ाहट हो रही है उसके बीच में गद्य का पौरुष ही खड़ा रह सकता है, तथापि वे अपने निबन्धों में इस सिद्धान्त का निर्वाह नहीं कर सके हैं। उनके कोई कोई निबन्ध जीवन-चरित और संस्मरण के चक्रव्यूह में फँस गये हैं। जैसे मुंशी जी जिसमें उन्होंने स्वर्गीय मुंशी अजमेरी का जीवन-चरित अंकित किया है। कोई कोई निबन्ध कहानी-मात्र रह गये हैं; जैसे झूठ-सच। यह एक मिस्त्री और मज़दूर युवती की कहानी है, जो निबन्धकार की दृष्टि में युगल प्रेमी जान पड़ते हैं, लेकिन बाद को भाई-बहन साबित होते हैं। कहना चाहिए कि यह कहानी ही इस निबन्ध-संग्रह की जान है, क्योंकि इसी के नाम पर पुस्तक का नाम 'झूठ-सच' रक्खा गया है।

बाबू साहब ने निबन्धों के विषयों का चुनाव गम्भीरतापूर्वक नहीं किया। जब और जिस किसी बात का उनके ऊपर प्रभाव पड़ा उसी घड़ी उस पर क्षणिक उत्तेजना में वे एक निबन्ध लिख गये। अगर किसी कविता का शीर्षक उन्हें पसन्द नहीं आया तो एक निबन्ध उसी पर लिख दिया। अगर किसी अख़बार में विज्ञापन छपा देखा कि मनुष्य दो सौ वर्ष तक ज़िन्दा रह सकता है तो उसे भी अपने निबन्ध का विषय बना डाला। अगर कोई अर्द्धशिक्षित ग़लत हिन्दी बोला तो उसको डाँटने के लिए भी आपने एक निबन्ध तैयार किया। अगर किसी कवि की पोशाक पर किसी कवि-सम्मेलन में किसी ने टिप्पणी कर दी तो वह भी आपके निबन्ध का विषय बना। कुछ औरतों को घूँघट निकाले चलते हुए आपने देखा तो एक निबन्ध में उनका भी पीछा किया। इस तरह इस पुस्तक में जितने भी निबन्ध संगृहीत हैं वे सब लेखक की क्षणिक उत्तेजना पर आश्रित हैं और पाठक के सामने बजाय गम्भीर चिन्तन के उथली सामाजिक समालोचना की सामग्री प्रस्तुत करते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि ये निबन्ध व्यर्थ हैं। इन पर उनके कवि-जीवन की छाप है। प्रायः सभी निबन्ध सुपाठ्य हैं, रोचक हैं, और लेखक के व्यक्तिगत जीवन पर प्रकाश डालते हैं। इसलिए मैं इस निबन्ध-संग्रह की प्रशंसा करता हूँ।

—श्रीनाथसिंह।

२—**आनन्द-शब्दावली**—संकलनकर्ता, श्री रामचन्द्र वर्मा और प्रकाशक, शिक्षा-विभाग, विलासपुरराज्य, शिमला हैं। मूल्य लिखा नहीं है। पृष्ठ-संख्या ८३ है।

प्रस्तुत पुस्तक विलासपुर-नरेश श्रीमान् महाराज आनन्दचन्द जी की आज्ञा तथा सूचनाओं के अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैयार की गई है। इसमें कुल ७५०० शब्दों का संग्रह किया गया है। शब्दों का संकलन इस बात का ध्यान रखकर किया गया है कि सभी शब्द प्रचलित हों तथा जिनकी क्रमशः जानकारी से बालक का हिन्दी-ज्ञान क्रमशः उन्नति करता जाय। पुस्तक की एक विशेषता यह भी है कि इसमें सभी विभागों के प्रायः ख़ास-ख़ास शब्द ले लिये गये हैं। पुस्तक का उद्देश्य प्रारम्भिक शिक्षा की रीडरें लिखनेवाले लेखकों की सहायता करना है। बहुधा ऐसा देखा गया है कि जहाँ प्रारम्भिक पुस्तकों में कुछ कठिन शब्द आ जाते हैं, वहाँ ऊँचे दर्जों में एक प्रकार से नये शब्दों का अभाव-सा ही रहता है। परिणाम यह होता है कि बालकों को पढ़ने में तो कठिनाई पड़ती ही है, साथ ही उनके शब्दज्ञान का विकास यथेष्ट नहीं हो पाता है। हिन्दी में इस प्रकार की यह पहली पुस्तक है। आशा है, हिन्दी-रीडरों के लेखक इस पुस्तक का उपयोग करके अपनी लिखी रीडरों को अधिक क्रमविकसित व उपयोगी बना सकेंगे।

३—**संतवाणी**—संग्रहकर्त्ता, श्री वियोगी हरि हैं। प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मंडल, दिल्ली है। मूल्य ।।) है। पृष्ठसंख्या १६५ है।

संतों की रचनाओं का हिन्दी-साहित्य में प्रमुख स्थान है। तुलसी, कबीर, दादू व मीरा की रचनायें हिन्दी-भाषियों की ज़बान पर रहा करती हैं। इस पुस्तक में ऐसे ही संतों की चुनी हुई वाणियों का संग्रह कर दिया गया है। इसे पढ़ने से सन्त-साहित्य का रसास्वादन हो जाता है। साहित्य के प्रेमियों के लिए पुस्तक पठनीय है।

४—**हमारा समाज**—लेखक, श्री गोरखनाथ चौबे, एम० ए० हैं, प्रकाशक, चाँद कार्यालय, प्रयाग हैं। मूल्य १।) व पृष्ठसंख्या १२८ है।

भारतीय समाज समस्याओं का समाज है। हमारे सामने इस समय न जाने कितनी समस्यायें हैं, जिनको हमें सुलझाना है। परन्तु हमारी सबसे बड़ी कमज़ोरी यह है कि हम उन पर प्रकाश डालना नहीं चाहते। ख़ासकर शिक्षित समाज का इस ओर से उदासीन होना चिन्ता की बात है। यही कारण है कि इस सम्बन्ध की पुस्तकों का एक प्रकार से हिन्दी में अभाव ही है जो समाज-शास्त्र के नियमों के आधार पर रची गई हों। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक महोदय समाज-शास्त्र के अध्ययन-शील विद्यार्थी प्रतीत होते हैं। उन्होंने इसमें संवाद के रूप में हमारे समाज की अनेक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। शैली रोचक है। समाज की गूढ़ से गूढ़ समस्या को सरल से सरल भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है।

५—**ढाई हज़ार अनमोल बोल**—सम्पादक, श्री हनुमान-प्रसाद पोद्दार, प्रकाशक, गीताप्रेस, गोरखपुर हैं। मूल्य ।।=) और पृष्ठ-संख्या ३४५ है।

जैसा कि पुस्तक के नाम से स्पष्ट है, इसमें सभी जातियों, संप्रदायों और धर्मों के सन्तों के वचनों का संग्रह है। ये वचन दुःख में धैर्य बँधानेवाले, अन्धकार में मार्ग दिखानेवाले और जीवन-लक्ष्य तक पहुँचने का उपाय बतानेवाले हैं। नवयुवकों और युवतियों को ऐसे साहित्य का अध्ययन विशेष लाभकारी हो सकता है।

६—**सत्यामृत**—प्रणेता, श्री दरबारीलाल सत्यभक्त संस्थापक 'सत्य-समाज', प्रकाशक, श्री सूरजचन्द सत्यप्रेमी (डांगी), सत्याश्रम, वर्धा (सी० पी०) हैं। मूल्य १।) व पृष्ठसंख्या २८१ है।

प्रस्तुत पुस्तक सत्य-समाज का धर्म-शास्त्र है। इस समाज का उद्देश्य साम्प्रदायिकता से दूर रहकर सत्य और प्रेम का प्रचार करना है। इस पुस्तक में मानव-जीवन की प्रायः सभी जटिल समस्यायों को सुलझाने का प्रयत्न किया गया है। गम्भीर से गम्भीर विषय को सरस तथा सुगम्य बनाने का प्रयत्न किया गया है। पुस्तक की भाषा साधारण बोल-चाल की है। सत्य, ध्येय, मार्ग, योग और लक्षण आदि की विचार-पूर्ण व्याख्या की गई है। पारिभाषिक शब्दों को भी सरल बनाया गया है। इस प्रकार 'सत्यामृत' केवल सत्य-समाजियों के ही काम की पुस्तक न होकर सभी धर्मवालों के अध्ययन करने योग्य है।

७—**आत्मविलास**—लेखक, स्वामी आत्मानन्द मुनि हैं। मिलने का पता द्वारकाप्रसाद लक्ष्मणदास, सराई रोड, कराची शहर है। पृष्ठसंख्या ३५० है।

प्रस्तुत पुस्तक में प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों मार्गों का भले प्रकार विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। हिन्दू दर्शन-शास्त्र के अनुसार मोक्षप्राप्ति के संसार में केवल ये ही दो मार्ग हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी रुचि तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति के अनुसार किसी भी मार्ग का अनुसरण कर सकता है। लेखक ने 'पुण्य पाप की व्याख्या' में प्रवृत्ति-मार्ग और 'साधारण धर्म' में निवृत्ति-मार्ग की पूरी व्याख्या की है। इसके अतिरिक्त 'पामर पुरुष वर्णन', 'विषयी पुरुष', 'निष्काम जिज्ञासु', 'उपासक जिज्ञासु', 'तत्त्वविचार' आदि शीर्षकों के अध्याय पठनीय तथा विचारणीय हैं। पुस्तक का मूल्य कुछ भी नहीं, केवल ।≡) का टिकट डाक-व्यय के लिए भेजकर प्राप्त की जा सकती है। भाषा सरल तथा मनोरंजक है। ऐसे शुष्क विषय को मनोरंजक बनाने का लेखक महोदय ने पूरा प्रयत्न किया है।

८--मन की मनुहार--लेखक, श्री श्यामसुन्दरलाल याज्ञिक प्रकाशक, मन्त्री, साहित्य-परिषद्, मथुरा हैं। मूल्य =) व पृष्ठसंख्या २९ है।

प्रस्तुत पुस्तक में मन के प्रति कवि की उक्तियाँ हैं। मन बड़ा सैलानी है। वह प्रत्येक पल संसार में घूमता ही रहता है; इच्छाओं का दास होकर वह सदैव न जाने कितने अच्छे बुरे कार्य करता है। कितने योगियों ने इस मन को वश में करना चाहा, पर न कर सके। इसी लिए कवि महोदय केवल मन की मनुहार करके उससे प्रार्थना करते हैं कि--

मन तो पै जेती कृपा, करी जानकीनाथ।
ताकी तोको बूझ नहिं, वृथा नचावत हाथ ।।

पुस्तक अत्यन्त साधारण है और विशष कर जब हम यह देखते हैं कि वह एक साहित्य-परिषद्-द्वारा प्रकाशित हुई है तब हमें और भी आश्चर्य होता है। हम हिन्दी-हितैषिणी परिषदों से अधिक उपयोगी साहित्य के प्रकाशन की आशा करते हैं।

--अनन्तप्रसाद विद्यार्थी, बी० ए०

× × × ×

९--अपराजिता--लेखक, श्रीयुत अंचल और प्रकाशक, छात्र-हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या १७४ तथा मूल्य २) है। छपाई और गेटअप अच्छा है।

'अंचल' की कविता की एक 'झलक' पाते ही उनकी इन पंक्तियों की सार्थकता विदित हो जाती है--

मैं नवयुग की हलचल लाया
मस्ती लाया, यौवन लाया
मेरा ज्वाला-सा वक्षस्थल
उन्माद भरा उर उच्छृंखल
किसकी मृदु पग-ध्वनि का पागल
मैं दुर्दिन का गायक आया।

छायावाद की निराकारता में छिपी हुई भोग-लालसाओं को अंचल ने मुक्त-हृदय से स्वीकार करके स्पष्ट वाणी में व्यक्त किया है। उनकी प्रेयसी कोई नक्षत्र-लोक की छायामय अपरूप सुन्दरी नहीं है, बरन इसी संसार की हाड़-मांस की बनी हुई 'सोलह साल' की नारी है, जिसे कवि ने अपनी 'जीवनसंगिनी बहिन' कहना उचित समझा है। इसी के आधार पर हम अंचल की कविता में नवयुग की 'हलचल' मान सकते हैं। कितनी स्पष्टता से कवि कहता है--

पास बैठी थीं लिये चिर शून्य आँधी-सी पिपासा
उड़ प्रखर परिमल रहा था कुन्तलों से लालसा-सा
मुक्त केशों में शमा-सी जल रही थीं रूप खोले
आज जीवन ज्वार में कितने निविड़ तूफ़ान बोले
आह ! वासंती सजल संध्या सदृश घुल-घुल
तुम्हारा प्राण कहना !
भूलना मुझको न प्रियतम।

यौवन के उन्माद, प्रेम की मस्ती तथा तृष्णा की आग से धधकता हुआ हृदय इनकी लगभग प्रत्येक कविता में बोल रहा है--

वासना के गान गाते कवि चला सूनी डगर में
तम घिरे, पर एक ज्वाला दीप्त थी प्रिय के नगर में
आज दुर्दिन में सनम का उड़ रहा सावन-सलोना
आज कैसी तृप्ति, कितना है अभी उन्मत्त होना

इस वासना के गान की प्रेरक-शक्ति है प्रेयसी का विरह और दिल में मरोड़ पैदा करनेवाली उसकी-स्मृति--वह 'जलती हुई निशानी, जो आज भी धू धू क के हृदय को चिता बनाये हुए है।

'अपराजिता' प्रधानतया विरह का काव्य है। जवानी की उमंगों से भरे हुए भोग-लिप्सु प्रेमी मन की अतृप्त लालसाओं को रौंदता हुआ विरह असमय ही आ धमका और उसने बरबस दो जुड़ते हुए हृदयों को विलग कर दिया। दोनों में आग थी, उद्दाम विलास की प्रबल आकांक्षा थी। हमें भय है कि यदि 'अंचल' के प्रेम की परिणति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलन में होती तो उनकी कविता का स्रोत सूख जाता—भोग के कर्दम में उसका रूप कलुषित हो जाता। इसलिए काव्य के लिए कवि का विरह अभिनंदनीय है। क्या मिलन में प्रेयसी के मुँह से यह 'अन्तर्गान' निकल सकता था ?—

प्यास से जगती प्रभाती-सी लिये जब पोष-जीवन
जन्म-जन्मों की निरति अतृप्ति क्यों चुकता न क्रन्दन
आज-सी विश्राम-हीना लालसा उमड़ी न तब से
शान्त अंधड़ में चले ले शून्य आधी रात जब से
और आँखों में नमी ले रह गई एकाकिनी मैं
कौन हो तुम आज अंतर में प्रलय-सी सुधि जगाती

परन्तु 'अंचल' के विरह-गान की विशेषता यह है कि उनमें 'आँखों की नमी' ने आर्द्रता का संचार नहीं कर पाया। इसलिए जहाँ एक ओर उनमें तरलता का अभाव है, वहाँ वे एक भारी खतरे से बच भी गये हैं। उनका विरह निराशा के मेघों से आच्छन्न नहीं है, उनका रुदन न तो स्वयं आँसू बहाता है, न सुननेवालों की आँखों में आर्द्रता पैदा करता है। वास्तव में कवि रोता नहीं, चीत्कार करता है। उसका चीत्कार कभी कभी चोट खाये हुए दिल की बड़बड़ाहट-सा भले ही लगने लगे, हृदय को द्रवित करनेवाली करुणा का उसमें एकान्त अभाव-सा जान पड़ता है। विरह ने कवि की जवानी की उमंगों को खत्म नहीं कर पाया है, न उसकी वाणी का ओज ही कम हुआ है। उसकी ऐंद्रियकता इतनी प्रबल है कि उसने विरह-जन्य अपनी तृप्ति के साधनाभाव में भी हार नहीं मानी है। चाहे उसे अपनी लालसाओं को शान्त करने–अपने अरमानों को बुझाने—का कभी अवसर न भी मिले, वह मन मार कर उनसे संन्यास लेने का ढोंग नहीं रचना चाहता। वासना की ज्वाला में उसके होंठ सूख गये हैं, तालू चटख रहा है और वह अपनी चिर-तृषा से छटपटाता हुआ चिल्ला रहा है—

चुप बैठूँ भी तो मैं कब तक, गाऊँ भी तो कितना गाऊँ
सूखे होंठो में घिर आनेवाली मन की बात बताऊँ।

अपने मन की बात को कवि ने बार-बार कई ढंग से व्यक्त करने का यत्न किया है। हृदय की जिस उच्छृंखलता को उसने स्वयं स्वीकार किया है, उसने उसकी वाणी के संयम को भी भुला दिया है। इस संयम की यत्किंचित् आवश्यकता और महत्त्व स्वयं उसे महसूस हुआ है—

काश! मैं भी मूक रहता सोख तृष्णा की अमावस
हो न पाता यह मुखर आराधना का सिंधु पावस
और खामोशी न पूछो बीत जाता मौन जीवन
शेष गीतों में कहाँ यों भी हुआ जाता निवेदन
तो कदाचित् कुछ जलन में तृप्ति का आभास होता
मूक रह पाता वियोगिन! मूक भी मैं रह न पाता।

कवि की वाणी इतनी मुखर है कि जान पड़ता है कि अपनी छन्दोमय मुखरता पर वह स्वयं आसक्त हो गया है; कदाचित् इसी मुग्धता के कारण उसे अपनी वाणी की एकरसता का ज्ञान नहीं हो पाता। कवि से विविधता के लिए विविधता (variety) की फ़रमाइश करने के हम समर्थक नहीं हैं—हम उसे विभिन्न विषयों को चुन-चुन कर कविता लिखने को मजबूर नहीं कर सकते। परन्तु साथ ही हम उससे यह आशा तो कर ही सकते हैं कि अपने सीमित क्षेत्र में ही वह विषयों की नहीं, तो भावों की विविधता अवश्य दिखाये। मानव का भाव-क्षेत्र इतना संकुचित नहीं है कि हम केवल उसी के सहारे काव्य की एक रसता को, जो बढ़कर नीरसता में परिणत हो जाती है, भंग न कर सकें। प्राचीनों ने भी रस के पूर्ण परिपाक के लिए अधिक से अधिक संख्या में संचारी भावों के वर्णन का विधान किया है। कृष्ण के विरह को लेकर अनेक कवियों ने काव्य का शृंगार किया है, परन्तु सूरदास की श्रेष्ठता को जो उनमें से कोई नहीं पा सका उसका मुख्य कारण यही है कि सूरदास की भाव-भूमि अत्यन्त विस्तृत है। भावों की यह रंकता केवल 'अंचल' की ही नहीं लगभग समस्त आधुनिक हिंदी-काव्य की विशेषता है।

काव्य के इस अभाव की पूर्ति आधुनिक कवि शब्द-बहुलता तथा शैली की लाक्षणिकता से करते हैं। अंचल में भी शब्द-बाहुल्य है। कहीं कहीं तो संयम और नियमन का अभाव जान पड़ने लगता है। उदाहरण के लिए हम अनायास इन पंक्तियों को ले सकते हैं—

फिर विरह-गाथा बजी नीला पड़ा अम्बर पिपासित
दीप्त चंचल छन्द किसके कर रहे ये अंग अवसित
आज झंझानल चले जल जल निकल वंशी भरी-सी
फिर पवन प्रतिकूल आया योग रे! लेकर विनाशी।

'श्रोत,' 'नर्क,' 'कवियाँ, 'हविश', 'वख्त' आदि कुछ चिंत्य प्रयोग भी आ गये हैं। पर इनकी संख्या नगण्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द-प्रयोग में कवि को पक्षपात नहीं मालूम पड़ता, परन्तु संस्कृत के तत्सम शब्दों की बग़ल में ही बोलते हुए फ़ारसी-अरबी के शब्द सुनने में हमारे कान कुछ अनभ्यस्त-से हैं। 'विश्व के शत दल पर अम्लान', 'निर्झर से झरते सजल नयन, 'यह संध्या श्याम परी' जैसे वाक्यांश अति-प्रचलित से लगते हैं।

ऊपर हमने अंचल जी के काव्य की एकरसता का ज़िक्र किया है। यह एकरसता केवल भावों तक ही सीमित नहीं है, छन्द और शैली में भी हमें इसका आभास मिलता है। परन्तु कवि में विरह-वेदना की इतनी अत्यन्ता-भिभूति नहीं है कि वह अन्य बातों के लिए अपनी संवेदना खो बैठा हो। प्राकृतिक वस्तुओं और दृश्यों पर लिखे हुए उसके गीतों में काफ़ी विविधता और अनुभूति की विस्तृति है। इन गीतों में वेदना के लम्बे चीत्कार के स्थान पर सरल भावुकतापूर्ण, क्षिप्रता और गति की मंथरता के स्थान पर चंचलता है।

'अपराजिता' का कवि सचमुच उदीयमान है। वह अपनी प्रेमानुभूति को भाव की पराकाष्ठा नहीं समझ बैठा है, उसने अपनी मस्ती और जवानी के उन्माद को ही सब कुछ नहीं मान लिया है। न केवल उसे अपने प्रेम में अतृप्ति-जन्य असंतोष है, बल्कि वह अपने काव्य से भी असन्तुष्ट है। उसका यह असंतोष हमारे हर्ष का विषय है। पुस्तक के समर्पण में उसने लिखा है कि उस जीवन-संगिनी बहन का हहराती जमुना-सा मुख न जाने कैसी मीठी मीठी आँच फूँक देता है जिसमें सारा विकार, सारा कल्मष, सारी लिप्सा स्वाहा हो जाती है।' आशा है कि अंचल जी का काव्य प्रेम की इस उच्चता (Sulclima tion) का वहन कर सकेगा जिसमें उसकी ऐंद्रियक अनुभूति गहनतर होकर आत्मा में प्रवेश कर जायगी।

इस संग्रह के लिए हम अंचल जी को बधाई देते हुए पाठकों से 'अपराजिता' को पढ़ने की सिफ़ारिश करते हैं।

—ब्रजेश्वर

१०—चारण (त्रयमासिक पत्र)—संपादक, ठाकुर ईश्वरदान आशिया व भँवर शुभकर्ण कविया, एम० ए०, एल-एल० बी० हैं। मैनेजर, चारण, कलोल, उत्तर गुजरात से २॥) वार्षिक मूल्य पर प्राप्त होता है।

चारणों का राजपूतों और राजपूताने की कहानियों के साथ अटूट सम्बन्ध है। न जाने कितनी बार इन जातीय कवियों ने अपने तीखे दोहों-द्वारा जात्यभिमान को उत्तेजन देकर देशों और संस्कृतियों की रक्षा में सहायता पहुँचाई है। इसी चारण-जाति का यह मुखपत्र है, जो आधा हिन्दी में और आधा गुजराती में प्रकाशित होता है। संख्या २ वर्ष की ३ री है। इसमें 'हिन्दी का चारण-ऐतिहासिक साहित्य' और 'चारण-वाणी'—ये दो लेख हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थियों के काम के हैं। शेष लेख भी अच्छे हैं। सम्पादन सुन्दर हुआ है।

११—डाबर पञ्चाङ्ग—प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी संवत् १९९७ का डाबर डाक्टर एस० के० बर्मन, कलकत्ता का सर्वाङ्ग सुन्दर पञ्चाङ्ग प्रकाशित हुआ है। यह सचित्र है और बिना मूल्य वितरित होता है। पञ्चाङ्ग के मुख पृष्ठ पर श्रीकृष्ण का एक नयनाभिराम रंगीन चित्र छपा है जो सुन्दर है। इस वर्ष के पञ्चाङ्ग में महाभारत की कथा और उससे सम्बन्ध रखनेवाले तीन सादे चित्र भी छपे हैं। इसमें ग्रह, उपग्रह, फल, वर्ष-फल, योगिनी-विचार, चरण-विचार आदि ज्योतिषीय बातों के अतिरिक्त प्रान्तीय विभाग से प्रधान प्रधान तीर्थ स्थानों के नाम, नीरोग रहने के सहज उपाय, स्वास्थ्य किस प्रकार खराब होता है आदि ऐसी बातों का संग्रह किया गया है, साथ ही विविध और अत्युपयोगी ओषधियों का भी वर्णन है। इन सबके होते हुए इस वर्ष के पञ्चाङ्ग में एक विशेषता और है वह यह कि प्रतिमास में होनेवाले पर्व्वों, त्यौहारों तथा महात्माओं और देश के गण्यमान्य नेताओं के जन्म-दिवस एवं स्मृति-दिवसों को उनके चित्रों-सहित अङ्कित किया है। यह पञ्चाङ्ग सभी के काम का है और प्रचार के योग्य है।

—सुरेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

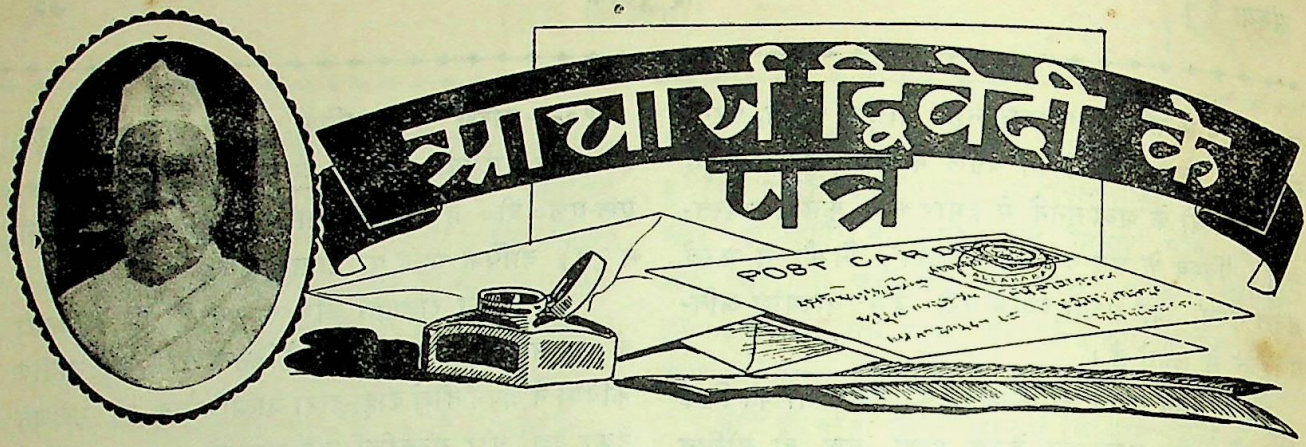

पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी के नाम

(१)

दौलतपुर-रायबरेली,
३०-१-१५

श्रीमन्,

२६ का पोस्टकार्ड मिला। धन्यवाद।

दिसम्बर १५ में, ४०) महीने के हिसाब से, मैं २००) दे चुकूँगा। तब मेरा देना सिर्फ़ १,१२०) रह जायगा। यदि जनवरी १६ में किसी तरह ६००) देने से छुटकारा हो जाय तो मैं खींच-खाँच कर इतने रुपये का प्रबन्ध करने की चेष्टा करूँगा। अगले साल मुझे अपनी उपवर भानजी की शादी करना है। इस कारण मैं चाहता हूँ कि यदि बैंक का देना चुकता कर दिया जाय तो उस काम की फ़िक्र में लगूँ। मैं रिश्वत देना नहीं चाहता। बीस-पच्चीस रुपये मैं आपको खुशी से भेज दूँगा। मैं इसी को पुण्यखाते देना समझूँगा। इतने से यदि काम न चल सकेगा तो दस-पाँच और दे दूँगा। इस रुपये को आप चाहे जिसे दें और चाहे जिस तरह खर्च करें। आप अपने मित्रों से मिलकर मुझे लिखिए कि यह हो सकेगा या नहीं। यदि हाँ, तो क्या कार्रवाई करनी पड़ेगी। ड्राफ़्ट जैसा वे बतावें लिख भेजिए, या जो वजूहात लिखने की वे राय दें वही बता दीजिए। बड़ी कृपा होगी। मैं झूठ बोलने से डरता हूँ। यह मुझे न करना पड़े तो बहुत अच्छा हो। मैं लाहौर चला आता। मगर मेरी तन्दुरुस्ती इतनी दूर सफ़र करने योग्य नहीं। अतएव इस उपकार का भार आप ही पर छोड़ता हूँ।

सिपुर्दम ब तो मायये खेशरा
तु दानी हिसाबे कमो बेशरा

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

(२)

दौलतपुर, रायबरेली
४-१०-२९

नमोनमः,

मुझे अपने भानजे की बहू के गर्भाशय की परीक्षा कराना है। आप जानते हों तो आप, या पं० जगन्नाथ-प्रसाद जी शुक्ल से पूछकर, किसी चतुर और सुशिक्षित लेडी डाक्टर का नाम और पता मुझे लिख भेजने की कृपा कीजिए। बहू दस-पन्द्रह रोज़ बाद अपने पिता पं० कलिकाप्रसाद दुबे (पेंशनर) के घर प्रयाग जानेवाली है। वहीं परीक्षा कराना है। क्या आप कृपा करके उस लेडी को चौक तक ले जाने का कष्ट उठा सकेंगे? यह इसलिए पूछता हूँ, क्योंकि पं० कालिकाप्रसाद बहुत वृद्ध हैं। शायद वे इतनी खटपट न कर सकें। इन लेडी डाक्टरों की क्या फ़ीस वहाँ है?

कृपाप्रार्थी
महावीरप्रसाद द्विवेदी

(३)

दौलतपुर, रायबरेली
३१-१०-२९

नमोनमः,

२८ का पोस्टकार्ड मिला। धन्यवाद। भाई, बहू के प्रयाग जाने का अभी तक कुछ भी प्रबन्ध नहीं हुआ। घर में वही अकेली—मुझे दाना-पानी देनेवाली है। किसी आदमी या स्त्री की तलाश में हूँ। मिलने पर ही वह प्रयाग जा सकेगी तब तक आप भ्रमण कर आइए। आपकी इस निर्व्याज कृपा ने मुझे बहुत कृतज्ञ किया।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४)

दौलतपुर, रायबरेली
१०-२-३०

नमस्कार,

मेरे फुटकर लेखों के बीस-पच्चीस संग्रह छप चुके। कुछ छप भी रहे हैं। अन्तिम संग्रह का नाम है—साहित्य-संलाप। उसमें साहित्यविषयक २० लेख हैं। इलाहाबाद में कई प्रकाशक हैं। मेरी इस पुस्तक का कापी-राइट वहाँ कोई लेना चाहे तो कृपा करके सूचना दीजिएगा। आप प्रकाशकों से परिचित होंगे, इस कारण आपको कष्ट दे रहा हूँ। इंडियन प्रेस ने ८, १० पुस्तकें निकालीं। मगर वहाँ बड़ी देर से पुस्तकें निकलती हैं। हिन्दी-प्रेस और नेशनल प्रेस ने भी कुछ पुस्तकें ली हैं। पुस्तक में २० × ३०/१६ साइज़ के कोई २०० पृष्ठ होंगे।

आपका
महावीरप्रसाद द्विवेदी

(५)

वाजपेयी जी !

चिट्ठी मिली। कई प्रकाशकों ने यह पुस्तक माँगी है। पर उसे पाने के मुश्तहक़ आपही हैं। लीजिए। खुशी से छापिए। पर जल्दी। पहुँच लिखिए। मेरी आँखें खराब हैं, अधिक नहीं लिख सकता।

म० प्र० द्विवेदी,
२१-२-३०

(६)

दौलतपुर, रायबरेली
१-३-३०

नमस्कार,

२४ की चिट्ठी कल शाम को मिली। मेरी दाहनी आँख खराब हो रही है। ठीक ठीक लिख नहीं सकता। माफ़ कीजिएगा।

पुस्तक का नाम साहित्य-सीकर कुछ क्लिष्ट था। इससे बदलकर साहित्य-संलाप कर दिया है। जो पसन्द हो रखिए।

कमलाकिशोर की दुलहिन को ६-७ वर्ष से गर्भ नहीं रहा। इससे आपकी सिफ़ारिश से डाक्टर पन्त को दिखाने भेजा। उन्होंने बायें अण्डाशय (Leftovary) में Congestion (सूजन) बताई। दवा एक पेटेंट—"Bynin" amara—दी। एक महीने बाद फिर देखकर उन्होंने कहा, वह शिकायत दूर हो गई। मगर एक शीशी वही दवा और पीने को कहा। कहा, इससे तन्दुरुस्ती अच्छी हो जायगी। सो वह पी रही है। इस दवा में Malted Phosphates with Quinine and Nux Vomica है। श्रीमती वृद्धा डाक्टरनी से यह सब कह दीजिएगा। डा० पन्त ने बहू के पित्ताशय (लिवर) में कोई खराबी नहीं बताई।

डाक्टरनी साहबा की तशखीस से चिन्ता हो गई है। बहू को पहले तो साल में दो एक दफ़े खाँसी-जुक़ाम हो जाता था। मगर इधर १½ वर्ष से वह भी नहीं हुआ। आक्टोबर, १९२८ में अपने साथ उसे मैं कानपुर ले गया था। तब एक डाक्टर ने उसके फेफड़ों में कोई ऐब नहीं पाया। खाने को भी वह यथासमय काफ़ी खाना खा लेती है। हाँ, कभी कभी अरुचि की शिकायत उसे ज़रूर हो जाती है। मगर चिन्ता का कारण यह है कि उसकी बड़ी बहन क्षयरोग से मर चुकी है। उसकी माँ को दमा था। उसका भाई भी दमे से पीड़ित है। कृपा करके डाक्टरनी जी को यह चिट्ठी सुनाकर उनकी सलाह लीजिए। जो पथ्य वे बतावें दिया जाय। जिस तरह रहने को कहें रक्खूँ। दवा यदि वे कोई तजवीज़ करें तो नुसखा लिखा कर भेज दीजिए। मैं मँगा लूँगा। या आपही वहाँ से लेकर कृपा-पूर्वक वी० पी०. पी० से भेज दीजिए। मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँगा।

कमला की लड़की के लिवर की शिकायत थी। ठीक काम न करता था। मगर शक्ति-औषधालय के शारिवादि अरिष्ट से वह शिकायत जाती रही।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

(७)

दौलतपुर, रायबरेली
७-४-३०

प्रियवर वाजपेयी जी,

पोस्टकार्ड मिला। मुझे खेद है। मेरे पास एक भी फोटो फालतू नहीं। कमरे में जो लगे हैं वही हैं। आप फोटो के झंझट में क्यों पड़ें। इधर छपी हुई किसी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक में मेरा चित्र नहीं। मैंने एक दफ़े छोड़कर कभी अपना फोटो नहीं तैयार कराया। जो फोटो आपको पसन्द है वह Rajputanaait Studio Jaipw के मालिक ताज़ीमी सरदार पं० रामप्रताप पुरोहित का लिया हुआ है। मैं जब जयपुर गया था तब उन्होंने पकड़ कर मेरा फोटो ले लिया था। उनके पास निगेटिव होगा। ज़रूरत ही समझिए तो उनसे माँगिए। नहीं तो जो चित्र अब तक निकले हैं उन्हीं में से कोई दे दीजिए।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

(८)

दौलतपुर, रायबरेली।
६-५-३०

नमोनमः,

मेरी पुस्तक छप गई हो तो दस कापियाँ भेजने की कृपा कीजिए। पूरी न छपी हो तो जितने फार्म छप चुके हों उतने ही की एक एक कापी भेज दीजिए। देखूँ, छपाई कैसी है।

आशा है आप स्वस्थ और सानन्द हैं।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

(९)

दौलतपुर, रायबरेली।
१०-५-३०

नमोनमः,

८ मई के लीडर में बाबू कर्तारनरायन अग्रवाल, वकील, ३३ जार्जटौन, इलाहाबाद की एक चिट्ठी छपी है। लिखा है—हरियाने में चारे का अकाल है। गायें-भैंसें मर रही हैं। उनकी वंशरक्षा के लिए वकील साहब, लाला साँवलदास अग्रवाल, लाला रामदयाल अग्रवाल वग़ैरह, जो कि गोशाला-कमिटी के मेम्बर हैं, बहुत सी कम उम्र की गायें-भैंसें इलाहाबाद मँगवा रहे हैं। वे चाहते हैं कि लोग इन पशुओं को मोल लेकर इनकी रक्षा करें। मोल गाय का ५०) से ७५) तक और भैंस का १००) से २००) तक होगा। आप कृपा करके—ब्रह्मचारी, गोशाला, बख़्शी दारागंज से या और किसी मेम्बर से मिलकर नीचे लिखी बातें दरियाफ़्त करके मुझे लिखिए—

(१) गायें आ गईं या नहीं ?
(२) आ गईं तो कितनी हैं ?
(३) उनकी उम्र क्या है ?
(४) तीन से चार वर्ष तक की भी हैं या नहीं ?
(५) कोई ऐसी भी हैं जो पहला ही हों और जल्द बच्चा देनेवाली हों ?
(६) नहीं आईं तो कब तक आवेंगी और किस किस उम्र की होंगी ?

मैं एक कलोर या जल्द ब्यानेवाली नई गाय लेना चाहता हूँ। जो बातें वकील साहब ने अपनी चिट्ठी में लिखी हैं वे सच हों तो एक कलोर का बयाना, जो देखने में अच्छी ऊँची पूरी हो और दो दाँत से कम न हो, २') या जो वे माँगें दे दीजिए। लिखा है, जिसे लेना हो वह ७५) लाला साँवलदास के पास जमा कर दे। अगर आप लिखेंगे कि पीछे से कोई झंझट न होगा तो आपकी पसन्द की हुई कलोर का दाम, जो निश्चित होगा, मैं आपको या लाला साँवलदास को पेशगी भेज दूँगा।

यह भी पूछ कर लिखिए कि एक गाय का रेलवे किराया बिंदकी रोड या कंसपुर गुगौली तक का क्या पड़ेगा ? उसे लाने के लिए क्या मुझे कोई आदमी भेजना पड़ेगा या गोशालेवाले किसी के साथ उसे स्टेशन तक भेज देंगे ?

आपका
महावीरप्रसाद द्विवेदी

(१०)

दौलतपुर, रायबरेली।
२९-५-३०

नमोनमः,

साहित्य-सीकर के फ़ार्मों की कापी और आपका २६ ता० का पत्र दानों चीज़ें मिल गईं। कवर या जिल्द लग जाने पर १० कापियाँ मुझे भेज दीजिएगा। कहीं कहीं अशुद्धियाँ रह गई हैं। पुस्तकान्त में जनवरी १९२८ की जगह ११२८ छप गया है।

खूब काम कीजिए। कृष्णनिकेतन जाने की जबरन चेष्टा न कीजिएगा।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(११)

दौलतपुर, रायबरेली
नमस्कार, १५-६-३०

वादे के मुताबिक़ अपने "सुदामा के तण्डुलों" के दो एक कण मुझ कृष्ण को नहीं, "चौरचक्रवर्ती" को, भेज देने की उदारता दिखाइए, ज़रूरत आ पड़ी है !

मेरी आँखों में मोतियाबिन्द हो रहा है । अधिक नहीं लिख सकता । आपका
म० प्र० द्विवेदी

सीकर की कापियाँ कब तक तैयार हो जायँगी ।

(१२)

दौलतपुर, रायबरेली ।
नमोनमः, ७ सितम्बर १९३०

आपका भेजा हुआ ५०) का मनीआर्डर आये ढाई तीन महीने हो चुके । आपने लिखा था कि आप फिर कुछ भेजेंगे । पर इसकी याद शायद आपको भूल गई ।

मैं अब सिर्फ़ दूध और कुछ तरकारी वग़ैरह पर ही जीवन-निर्वाह कर रहा हूँ । कई गायें-भैंसे पालनी पड़ी हैं । उनको आराम से रखने के लिए एक पक्की दीवारों का बाड़ा ऊपर टीन डालकर, बनवा रहा हूँ । उसकी पूर्ति के लिए कुछ रुपया और दरकार है । तदर्थ कृपा करके जहाँ तक हो सके, इस समय आप मेरी सहायता कीजिए ।

आप पर मेरा स्नेह ही नहीं, भक्ति भी है । इसी से, मैंने और प्रकाशकों की तरह आपसे कोई शर्त नहीं की । अतएव मुझे विश्वास है, आप भी मुझे अपने कृपौदार्य्य से वञ्चित न करेंगे और मेरी पुस्तक के उपलक्ष्य में जो कुछ देने का निश्चय आपने अपने मन में किया हो उसका शेषांश यह पत्र पाते ही भेज देंगे जिसमें मुझे इस विषय में फिर कभी आपको कुछ भी न लिखना पड़े । आपका
महावीरप्रसाद द्विवेदी

(१३)

दौलतपुर, रायबरेली ।
नमोनमः, ३-३-३१

आप तपोभूमि से लौट आये, यह जानकर खुशी हुई, तबीयत कैसी है ।

४ फ़रवरी को मेरा भानजा कमलाकिशोर भी उसी इलज़ाम में ६ महीने के लिए तपस्या करने चला गया ।

आपका
म० प्र० द्विवेदी ।

पण्डित गौरीशंकर भट्ट के नाम पत्र

मान्यवर श्री पंडित जी,

प्रणाम ।

आपके आदेशानुसार मैंने स्व० श्री द्विवेदी जी के पत्रों की तलाश की, तो केवल एक पत्र मिला जिसकी नक़ल नीचे देता हूँ और असली पत्र भी साथ भेजता हूँ । पूज्य द्विवेदी जी मुझ पर बहुत दया करते थे । सन् १९१४ ई० में सरस्वती में मेरी अक्षर रचना के ६ प्लेट छपवाये थे और साथ ही मेरा फोटो भी दिया था । मैंने जब कोई पुस्तक छपवाकर उनकी सेवा में समालोचनार्थ भेजी, तब उन्होंने उसके सम्बन्ध में कतिपय पंक्तियों में उसका मर्म सरस्वती में प्रकाशित किया था । सरस्वती का सम्पादन छोड़ने के बाद भी पत्र-द्वारा सम्मति प्रदान करते रहे । एक पत्र की नक़ल यह है—

(१)

दौलतपुर (रायबरेली)
२५—९—३०

सम्मति

पंडित गौरीशंकर भट्ट की पुस्तक लिपिसमीक्षा में की गई समीक्षा यथार्थ है ।

भट्ट जी की अक्षरतत्त्व आदि पुस्तकें कलम की वैज्ञानिक करामात के उत्कृष्ट नमूने हैं ।

उन्हीं की लिपिविषयक कापियाँ स्कूलों में जारी होने की सर्वतोधिक पात्र हैं क्योंकि वे शुद्ध और सर्वश्रेष्ठ हैं ।

म० प्र० द्विवेदी

शोक है कि सन् १९३६ में जब मैंने 'लिपिकला' नामक पुस्तक भेजकर उनसे सम्मति माँगी तो आपने कृपा कर करुणापूर्ण शब्दों में इतना लिखा:—

(२)

दौलतपुर (रायबरेली)
नमस्कार, ८—१२—३६

पत्र मिला । पुस्तकें भी । मैं दो ढाई महीने से पड़ा खाट सेवन कर रहा हूँ । विशेष लिखने पढ़ने में असमर्थ हूँ । क्षमा चाहता हूँ । निवेदक
म० प्र० द्विवेदी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

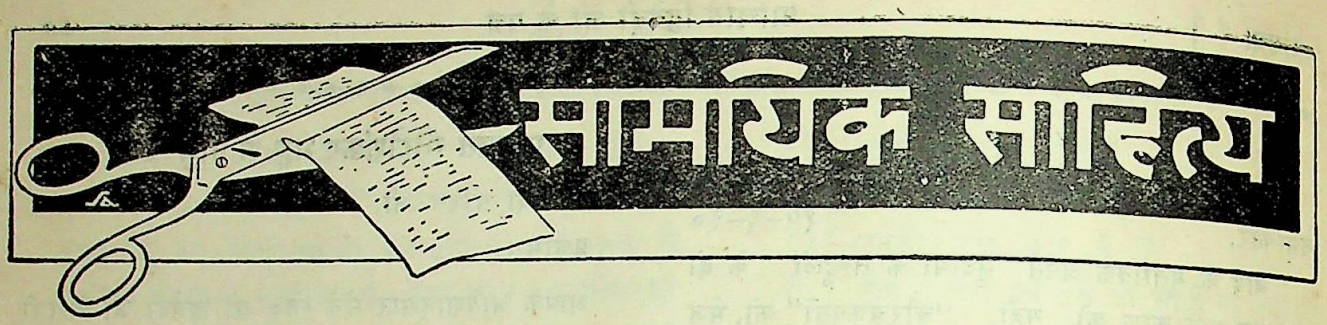

सम्मेलन का एक नया रूप

आखिर पूना में सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन निर्धारित समय में नहीं हो सका। यह अधिवेशन क्यों नहीं हो सका, इसका स्पष्टीकरण श्री काका कालेलकर के वक्तव्य और स्थायी समिति के एक सदस्य पण्डित सत्यनारायण पाण्डेय की उस पर की गई टिप्पणी से हो जाता है। यहाँ हम उन दोनों लेखों का संकलित अंश देते हैं।

श्री काका कालेलकर के वक्तव्य का सारांश यह है—

दिया हुआ आमन्त्रण वापस ले लेने के लिए कई हिन्दी-अखबारों ने मेरी कड़ी से कड़ी आलोचना की है।

जब हम बनारस गये थे तब किसी ने कल्पना तक नहीं की थी कि महाराष्ट्र की ओर से हम आमन्त्रण दे दें। वहाँ पर एक श्रद्धेय व्यक्ति की ओर से हमें प्रेरणा मिली कि हम महाराष्ट्र की ओर से सम्मेलन को अगला आमन्त्रण क्यों न दें।

पूना में जाकर जब मैंने महाराष्ट्र-प्रचार-समिति के अध्यक्ष श्री शंकरराव देव और संचालक धर्माधिकारी से बातें कीं, तब उन्होंने उत्साहपूर्वक मुझसे कहा कि आप स्वागत के भार से मुक्त हूजिए और पूरा भार हम पर छोड़ दीजिए। मैंने उनके इस निर्णय का तुरन्त अभिनन्दन किया।

अब सम्मेलन के सामने मैं ज़िम्मेवार हूँ और महाराष्ट्र-समिति के सामने भारशून्य यह मेरी स्थिति अस्वभाविक-सी थी। इसलिए मैंने श्री टंडन जी को लिखा कि स्वागत का भार देव-समिति ने लेकर मुझे मुक्त कर दिया है। इसलिए देव-समिति ही सम्मेलन के प्रति उत्तरदायी है।

इसके जवाब में श्री टंडन जी ने लिखा--महाराष्ट्र राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति को आप जो काम सौंपना चाहते हैं, उसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु आप बिलकुल 'अलिप्त' नहीं हो सकेंगे। सम्मेलन के सामने आप ही मुख्य हैं। इस तरह मैं उत्तरदायी माना गया। महाराष्ट्र रा० भा० प्र० समिति को ही स्वागत-समिति समझकर कार्य प्रारम्भ करने की सलाह मैंने दी थी।

यदि शंकरराव देव मेरी सलाह मानते और अखिल महाराष्ट्र राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति को ही स्वागत-समिति बनाते तो कोई झगड़ा ही पैदा न होता। किन्तु उन्होंने एक नई स्वागत-समिति बनाना पसन्द किया, और महाराष्ट्र भर से स्वागत-सदस्य बनाये। जब उन्होंने सर्व-पक्ष के लोगों का सहयोग माँगा तब उनको खयाल भी नहीं था कि पूना के चन्द लोग उसी दिन सदस्य बनकर बहुमत बनाकर उनको और उनके साथियों को हटा देंगे।

सभा में जो होनेवाला था सो हो गया। शंकरराव देव और उनकी समिति स्वागत-कार्य से हट गई।

जो नई समिति बनी, वह न तो मेरी बनाई हुई थी, न वह मेरी प्रतिनिधि थी, न मैं उसका प्रतिनिधि था, और श्री टंडन जी का कहना था कि सम्मेलन के सामने मैं ही मुख्य हूँ।

ऐसी हालत में मैंने सम्मेलन का ठीक हित सोचकर अपनी ओर से दिया हुआ आमन्त्रण वापस ले लिया।

आमन्त्रण वापस लेकर मुझे थोड़े ही सन्तोष होनेवाला था? मैंने तुरन्त कोशिश करके सम्मेलन को दूसरा आमन्त्रण दे दिया।

बम्बई में महाराष्ट्री, गुजराती, मारवाड़ी, हिन्दी, तामिल, कन्नड, तेलगू आदि सभी भाषाओं के प्रतिनिधि रहते हैं, यह देखकर मैंने बम्बई की ओर से आमन्त्रण दिया और वहाँ के चन्द प्रतिष्ठित सज्जनों से सब प्रकार की सहायता का वचन भी ले लिया। यह अखबारों में इसलिए प्रकट नहीं किया कि समझौते का रास्ता बन्द भी न हो और सम्मेलन का अभिप्राय भी जान लूँ। यह आमन्त्रण तार-द्वारा स्थायी समिति को पहुँचा कर मैं खामोश रहा।

समझौता हो या न हो, और हो तो कैसा भी हो; मुझे तो हिन्दी-अखबारों में जिस ढंग से इसकी चर्चा हो रही है, वह देखकर अत्यन्त ग्लानि होती है। हिन्दी की सेवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने से तो हमें कोई रोक नहीं सकता। हिन्दीवालों की संस्थाओं की बात तो अलग है। उनकी अनिच्छा होते हुए उनकी संस्था-द्वारा काम करना ठीक नहीं होगा। अभी तक सम्मेलन ने ऐसी अनिच्छा व्यक्त नहीं की है। इसलिए अपनी अयोग्यता का ख़याल होते हुए भी संस्था की ओर से कार्य करने में हम अपना गौरव मानते हैं।

इस वक्तव्य पर पाण्डेय जी ने जो टिप्पणी की है उसका मुख्यांश इस प्रकार है--

श्रीयुत काका कालेलकर ने अन्त में "अपनी सफ़ाई" दे दी। उसके पढ़ने से उनकी स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

प्रश्न यह है कि नियमानुसार स्वागत-समिति का चुनाव हो जाने के बाद वह कौन-सा नियम है जिसके आधार पर काका कालेलकर सम्मेलन को बम्बई बुला रहे हैं, और सम्मेलन भी 'समझौते' की बातें कर रहा है? वह कौन-सी दलील है जिसके द्वारा एक नियमित चुनाव को अनियमित क़रार दिया जा रहा है और एक उपसमिति बनाकर एक प्रान्त का अपमान करने और एक व्यक्ति के आँसू पोंछने की तदबीर की जा रही है?

इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि जो कुछ किया जा रहा है, सम्मेलन की स्थायी समिति की ओर से किया जा रहा है जिसे इस सम्बन्ध में पूरे अधिकार हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि स्वागत-समिति की ओर से जब कोई भी अनियमित कार्रवाई नहीं हुई तो स्थायी समिति के सामने 'पुनर्विचार' या 'समझौते' का प्रश्न आ ही कैसे सकता है? क्या स्थायी समिति को यह भी अधिकार है कि वह विधान-संमत कार्य को अवैध क़रार दे सके? इसका निर्णय तो एक निष्पक्ष विधान-विशेषज्ञ अदालत ही कर सकती है।

जो कुछ हो, इस सफ़ाई से एक बात और भी साफ़ हो गई--श्री टंडन जी ही सम्मेलन हैं। वह जो कुछ लिख दें, कह दें वही सम्मेलन का मत है। स्थायी समिति टंडन जी की कठपुतली का तमाशा है। यद्यपि उसमें कुछ थोड़े से स्वाधीनचेता व्यक्ति भी हैं, पर उनकी अल्प संख्या है। बहुमत ऐसे लोगों का है जो राजनीतिक क्षेत्र के एक दलविशेष से सम्बद्ध हैं और उस दल के नेताओं के नियन्त्रण में रहते हैं। उनकी हाँ में हाँ मिलाना ही उनका कर्त्तव्य होता है। फलतः सम्मेलन के अधिवेशन का यह तमाशा श्री टंडन-कालेलकर कम्पनी का निज का तमाशा बन गया है, जिसमें हम स्थायी समिति के अल्पमतवाले सदस्य भार वहन करने, पर्दा उठाने और मूक अभिनय करने के लिए हैं। बाहर सबको यह जनाया जाता है कि सारी कार्रवाई नियमित रूप से स्थायी समिति करती है। पर स्थायी समिति का निर्माण किस ढंग से किया गया है, यह बाहरवालों को मालूम नहीं।

दो ही प्रश्न इस विषय का सारा निर्णय कर देने के लिए पर्याप्त हैं। पहला यह कि श्री कालेलकर को एक बार हार खाने के बाद दूसरी बार सम्मेलन को दूसरी जगह बुलाने का क्या अधिकार है? दूसरा यह कि प्रान्त भर की ओर से नियमानुकूल बनी हुई स्वागत-समिति की अवहेलना करके श्री टंडन जी 'समझौते' की बातचीत किस आधार पर कर रहे हैं? क्या इन दोनों कार्रवाइयों में काका कालेलकर जी की अहंमन्यता, हार खाकर बदला लेने की प्रवृत्ति, लोकतन्त्र के तिरस्कार की भावना और श्री टंडन जी का पक्षपात ज़ाहिर नहीं होता? अवश्य श्री टंडन जी के ऊपर सम्मेलन की ज़िम्मेदारी है, पर वे ऐसा क्यों मान बैठे हैं कि एक व्यक्तिविशेष ही सम्मेलन का सच्चा हितैषी है और एक प्रान्तविशेष सम्मेलन का अहित करना चाहता है? इस शंकालु प्रवृत्ति का कोई आधार हमें नहीं दीखता।

हिन्दी-प्रेमियों के सामने मार्ग स्पष्ट है। कोई कारण नहीं कि पूना में नियमानुकूल संगठित स्वागत-समिति के आयोजन में अगला अधिवेशन न किया जाय और यदि सम्मेलन के कर्णधार अनियमित कार्रवाई करने पर उतारू ही हो जायँ, तो पूना में स्वागत-समिति हिन्दी-साहित्य का सम्मेलन करे और उसमें सब हिन्दी-प्रेमी भाग लें। श्री टंडन जी और काका साहब अपना निज का सम्मेलन चाहे बम्बई और चाहे वर्धा (जहाँ काका साहब को कोई भय नहीं है) में करें।

"अपनी सफ़ाई" के अन्त में काका साहब ने एक छिपी हुई धमकी भी दी है। यदि उनका कहना न माना जायगा तो वे अलग हो जायँगे और स्वतन्त्र रूप से हिन्दी की सेवा करने से उन्हें कोई रोक नहीं सकता। उनकी यह धमकी हम सम्मेलन के प्रायः प्रत्येक अधिवेशन में सुनते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये हैं। हिन्दी के अधिकांश साहित्यिक उनके सहयोग को कितना महत्त्व देते हैं यह बात, यदि काका साहब में वह अहंमन्यता न होती जो विनय का नाट्य किया करती है, बहुत पहले ही मालूम हो गई होती। हिन्दी-क्षेत्र में काका साहब के अवतरित होने के बहुत पहले से हिन्दी का काम हो रहा है और वे उसके साथ रहें या न रहें, हिन्दी का आन्दोलन चलता रहेगा क्योंकि वह किसी व्यक्तिविशेष की ज्योति से ज्योतित न होकर हिन्दी-भाषी जनता का आन्तरिक आन्दोलन है।

भारत की आत्मरक्षा

योरपीय युद्ध में भारत यथासम्भव सहयोग कर ही रहा है, परन्तु जैसा कि उस युद्ध ने भीषण रूप धारण किया है, इसको देखते हुए इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि भारत समुचित रूप से सहयोग करने के सिवा, आत्मरक्षा के लिए भी भले प्रकार तैयार रहे। यह बात भारत-सरकार के भी ध्यान में आगई है। हाल में भारत के प्रधान सेनापति सर राबर्ट कैसेल्स ने अपने रेडियो-भाषण में इसका स्पष्टी-करण किया है। वह भाषण इस प्रकार है—

लोगों ने पिछले सप्ताह की घटनाओं पर दृष्टि रक्खी होगी, उन सबने यह समझा होगा कि इस समय जर्मनी का क्या इरादा है। उसने पश्चिमी रणक्षेत्र की लड़ाई का फ़ैसला कर देने के प्रयत्न का निश्चय किया है। बड़ी तेज़ी से उसने हमला करना शुरू कर दिया है।

फ़्रांस की वर्तमान परिस्थिति से यह नहीं मालूम होता कि लड़ाई बहुत दिनों तक चलेगी और उसके बढ़ने का भी स्पष्ट खतरा है, जिसका मतलब यह हो सकता है कि संभव है कि भारत जो अभी तक जर्मनकार्रवाई से मुक्त रहा, न रह जाय।

पिछले नौ महीनों में हम लोगों ने अपनी तैयारियाँ पूरी करने के लिए लगातार प्रयत्न किये हैं कि आवश्यकता पड़ने पर अपनी शक्तियाँ बढ़ाने को तैयार रहें। जहाँ तक भारत की जन-शक्ति का सम्बन्ध है, उसके लिए मुझ कोई चिन्ता नहीं है, पर मैं आप लोगों को यह अवश्य याद दिलाना चाहता हूँ कि युद्ध की नई दशाओं को देखते हुए केवल जन-बल काफ़ी नहीं है। लोग शत्रुओं का सामना करने के लिए उपयुक्त रूप से सुसज्जित रहें। आवश्यक अस्त्र-शस्त्रों का तैयार करना और उसका मुहैया करना नये प्रकार की तैयारियों की आवश्यक चीज़ है।

इसलिए लड़ाई छिड़ने के समय से ही हम इसकी तरफ़ अधिक से अधिक ध्यान देते रहे हैं। हर प्रकार के युद्ध के सामानों के तैयार करने में जो भारत में मिल सकते हैं, हमने बहुत सफलता प्राप्त की है।

इस समय आम स्थिति यह है कि हम अब अपनी सशस्त्र शक्ति बढ़ाने के योग्य हैं और उसके बढ़ाने का समय आ गया है। भारत की नियमित सेना पहले ही बढ़ाई गई है। जब से लड़ाई शुरू हुई है तब से अब तक ५३,००० लोग सब प्रकार की सेनाओं में भर्ती हो चुके हैं।

अब यह निश्चय किया गया है कि इस सेना को और अधिक बढ़ाया जाय। इनमें यांत्रिक मोटरवाले आदि दल, घुड़-सवार, पैदल तथा विशेष प्रकार के सभी सैनिक शामिल हैं और इसके लिए भरती बढ़ाने की ज़रूरत पड़ेगी। लगभग ७५,००० सैनिकों को रखना होगा, जिसके लिए एक लाख या इससे अधिक आदमी भरती किये जायँगे। टेरीटोरियल (देश में रहनेवाली) सेना पहले ही बढ़ा दी गई है। इसके अनेक दलों को सैनिक शिक्षा भी मिल चुकी है और वे नियमित सेना के साथ अपना काम कर सकते हैं।

शाही नौसेना भी लड़ाई शुरू होने के समय से बहुत बढ़ गई है। पहरा देनेवाले जहाज़ों के अतिरिक्त पनडुब्बों पर हमला करनेवाले, सुरंग हटानेवाले, गश्त लगानेवाले आदि जहाज़ बढ़ाये गये हैं और आदमी भी अब ढाईगुने बढ़ाये गये हैं।

भारतीय हवाई सेना का बढ़ाना अधिक कठिन रहा है। चालक और निरीक्षक तो काफ़ी संख्या में मिलते हैं और वे सिखाये भी जा सकते हैं, पर मैकैनिकों की कमी है। जिन लोगों के पास ये लोग नौकर हैं उनसे मेरा अनुरोध है कि वे जहाँ तक संभव हो वे उन्हें भारतीय हवाई सेना के लिए दें।

हवाई जहाज़ों का प्राप्त करना योरोप की लड़ाई की भारी माँग के कारण आसान नहीं है। पर इसके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयत्न हो रहा है और बढ़ाने की स्कीम तैयार की गई है। यदि सब काम ठीक ठीक चला तो भारतीय हवाई सेना चौगुनी हो जायगी।

अफ़सर का काम सिखाने के दल बेलगाम और देहरादून में स्थापित किये गये हैं। इस शिक्षा में भारतीय काफ़ी संख्या में लिये जायँगे ।

भारत की रक्षा के इन सब उपायों में बहुत भारी रक़म ख़र्च करने की ज़रूरत पड़ेगी। फलतः भारत के भार को और बढ़ाना पड़ेगा। पर मेरा विश्वास है कि हर कोई इसकी आवश्यकता महसूस करेगा और बिना किसी शिकायत के उसे स्वीकार करेगा । भारत के प्रधान सेनापति की हैसियत से मेरी सब लोगों से अपील है कि युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए जितनी अधिक सहायता दे सकें, दें ।

आतङ्क

योरपीय महायुद्ध की ख़बरों से यहाँ शहरों में बे-मतलब का आतंक फैलाया गया है। इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी ने 'हरिजन' में जो महत्त्वपूर्ण लेख लिखा है उसे हम यहाँ 'हरिजन-सेवक' से उद्धृत करते हैं--

आजकल अख़बारों में आतंक के बारे में कई समाचार पढ़ने को मिलते हैं और इससे भी ज़्यादा बातें सुनाई पड़ती हैं । एक मित्र लिखते हैं--"एकान्त सेवाग्राम में बैठे हुए आप उन बातों और फुसफुसाहटों-अफ़वाहों की कल्पना भी नहीं कर सकते जो व्यस्त नगरों में फैल रही हैं। लोगों पर आतंक या भय छा गया है।"

आतंक सबसे ज़्यादा निःसत्त्व करनेवाली अवस्था है जिसमें कोई हो सकता है। आतंक की तो यहाँ कोई वजह ही नहीं है। चाहे जो कुछ गुज़रे, आदमी को अपना दिल मज़बूत रखना चाहिए। लड़ाई एक निरी बुराई है। लेकिन उससे एक अच्छी बात ज़रूर होती है; यह भय को दूर कर देती है और बहादुरी को ऊपर लाती है। मित्र-राष्ट्रों और जर्मनों दोनों के बीच अब तक लाखों की जानें गई होंगी। ये लोग पानी की तरह ख़ून बहा रहे हैं। फ़्रांस और ब्रिटेन में बूढ़े आदमी, बूढ़ी और जवान स्त्रियाँ और बच्चे मौत के बीचोबीच रह रहे हैं। फिर भी वहाँ कोई आतंक नहीं है। अगर वे आतंक या भय से अभिभूत हो जायें, तो यह उनके लिए जर्मन-गोलियों, गोलों और ज़हरीली गैसों से कहीं भयंकर शत्रु बन जायेगा । हमें इन कष्ट सहनेवाले पश्चिमी देशों से शिक्षा लेनी चाहिए और अपने बीच से आतंक को निकाल बाहर कर देना चाहिए। फिर हिन्दुस्तान में तो आतंक के लिए कोई वजह ही नहीं है। अगर ब्रिटेन को मरना भी पड़ा तो वह कठिनाई से और बहादुरी के साथ मरेगा । हम पराभव के समाचार सुन सकते हैं, पर हमें पस्तहिम्मती की बात कभी सुनाई न पड़ेगी। जो कुछ घटित होगा, व्यवस्था-पूर्वक घटित होगा ।

इसलिए जो लोग मेरी बात पर कान देते हैं उनसे मैं कहूँगा कि सदा की तरह अपना रोज़गार या काम करते जाओ। जमा की हुई रक़मों को मत निकालो, न नोटों को नक़दी में बदलने की जल्दबाज़ी करो। अगर तुम सावधान हो तो तुम्हें कोई नया ख़तरा न उठाना पड़ेगा। अगर हममें विप्लव उठ खड़ा हो तो ज़मीन में गड़े हुए या तिजोरियों में रखे हुए धन को बैंक या काग़ज़ की बनिस्बत ज़्यादा सुरक्षित नहीं समझना चाहिए। वैसे तो इस वक्त हर चीज़ में ख़तरा है । ऐसी हालत में तुम जैसे हो वैसे बने रहना ही सबसे अच्छा है। तुम्हारा धीरज, अगर ज़्यादा लोग उसका अनुसरण करें, बाज़ार में स्थिरता लायेगा। अराजकता के ख़िलाफ़ वह सबसे बड़ा प्रतिबन्ध होगा। इसमें शक नहीं कि ऐसे वक्त में गुण्डई का डर रहता है। पर इसका मुक़ाबिला करने के लिए तुम्हें ख़ुद तैयार रहना चाहिए। गुण्डे सिर्फ़ बुज़दिल लोगों के बीच पनप सकते हैं। पर जो लोग हिंसात्मक या अहिंसात्मक रूप से अपनी रक्षा करने के लायक़ हैं उनसे उनको कोई रियायत नहीं मिल सकती। अहिंसात्मक आत्म-रक्षण में अपने जान-माल के बारे में साहसिकता की वृत्ति होती है। अगर उस पर दृढ़ रहा जाये तो अन्त में वह गुण्डई का निश्चित इलाज साबित होगा। लेकिन अहिंसा एक दिन में तो सीखी नहीं जा सकती। इसके लिए अभ्यास और आचरण की ज़रूरत होती है। आप अभी से इसे सीखना शुरू कर सकते हैं। आपको अपनी जान या माल या दोनों को क़ुर्बान करने को तैयार होना चाहिए। अगर हिंसात्मक या अहिंसात्मक किसी तरह से अपनी रक्षा करना आप नहीं जानते तो अपनी सारी कोशिशों के बावजूद सरकार आपको बचाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में समर्थ न होगी। चाहे कोई सरकार कितनी ही ताक़तवर हो, जनता की मदद के बिना इसे नहीं कर सकती। अगर ईश्वर भी सिर्फ़ उन्हीं की मदद करता है जो ख़ुद अपनी मदद करते हैं, तो नाशमान सरकारों के सम्बन्ध में यह बात कितनी सत्य होगी। हिम्मत मत हारो और यह मत सोचो कि कल कोई सरकार न होगी और अराजकता ही अराजकता रह जायेगी। आप ख़ुद अभी सरकार बन सकते हैं और जिस आफ़त की आप कल्पना करते हैं उसमें तो आपको सरकार बनना ही पड़ेगा, नहीं तो आप नष्ट हो जायेंगे।

प्रान्तों में जनता की सरकारें

भारत पर भी आक्रमण हो सकता है, इस बात को यहाँ के उच्चाधिकारियों ने बार बार कहा है। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि भारत अपने अनुरूप युद्ध में सहायता करने एवं आक्रमण होने पर शत्रु को मार भगाने के लिए पूर्णरूप से तैयार रहे। परन्तु यह उसके लिए दुर्भाग्य की बात है कि इस अवसर पर कांग्रेस का भारत-सरकार से मतभेद है, जिससे उसके सात प्रान्तों के मन्त्रि-मण्डलों ने त्यागपत्र दे दिया है। इस समय यह अवस्था वाञ्छनीय नहीं है। यही समझकर कांग्रेस क प्रधान नेता मदरास के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री चक्रवर्ती राज गोपालाचारी ने तिनावल्ली की राजनैतिक सभा के अध्यक्ष-पद से जो महत्त्व-पूर्ण भाषण किया है वह कांग्रेस और सरकार दोनों के लिए विचार करने के योग्य है। उक्त भाषण का सारांश 'भारत' में इस प्रकार दिया गया है–

इस समय जब कि भविष्य ख़तरे से भरा हुआ है यदि ब्रिटिश सरकार भारतीय जनता का हित चाहती है, तो उसे शीघ्र ही समस्त प्रान्तों में मज़बूत सरकारें स्थापित करना चाहिए, जिसे जनता का समर्थन प्राप्त हो। यदि ब्रिटिश सरकार भारत की स्वतन्त्रता और आत्म-शासन के अधिकार की घोषणा कर दे तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि सभी सम्प्रदाय संसार की वर्त्तमान गम्भीर परिस्थिति को देखते हुए उदारतापूर्वक परस्पर समझौता कर लेंगे। झूठ और अर्द्ध सत्य के द्वारा तथा शान्ति और व्यवस्था के दुश्मनों के द्वारा फैलाये गये सभी सन्देह दूर हो जायँगे और सब लोगों के सन्तोष योग्य बातें तय हो जायँगी।

इसे मैं असम्भव समझता हूँ कि इँग्लैंड लड़ाई से ध्यान हटा कर हमारी समस्याओं की तरफ़ ध्यान दे। फिर भी प्रत्येक राष्ट्र को अपने जीवन की देख-भाल करनी है और भारत योरप की लड़ाई में अपनी निजी समस्याओं को नहीं भूल सकता। हम अपने अधिकारों की बातें भूल कर सभ्यता की सेवा नहीं कर सकते। हम अपने को शासित राष्ट्र स्वीकार कर मित्र राष्ट्रों की सहायता नहीं कर सकते। इसके विपरीत इस प्रकार से आत्म-समर्पण करने से तो जर्मनों को और सहायता पहुँचेगी। इसलिए हम अपना यह कर्त्तव्य समझते हैं कि अपने इस दावे को पूरे बल के साथ पेश करें कि ब्रिटेन अपने इस संकट के समय भारत को सदा के लिए स्वतन्त्र घोषित कर दे और तब भारत भी नये मित्र के समान इँग्लैंड और फ़्रांस का पूरे बल से साथ दे।

मैं पहले भी कई बार कह चुका हूँ और अब फिर कहता हूँ कि ब्रिटिश सरकार यह समझती मालूम होती है कि निरंकुश शासन को क़ायम रखा जाय और जब तक लड़ाई चलती रहे तब तक प्रतिनिधिक सरकार न स्थापित की जाय, ताकि वर्तमान शासन-तन्त्र में कोई हस्तक्षेप न हो सके। परन्तु सरकार का यह रुख़ हर दृष्टि से अत्यन्त खेदजनक है। लड़ाई जीतने का तरीक़ा यह नहीं है, न्याय का यह तरीक़ा नहीं है, शान्ति और भारत की उन्नति का यह तरीक़ा नहीं है। ऐसे समय में जब कि भविष्य इतना ख़तरे से भरा हुआ है, यदि ब्रिटिश सरकार भारत की जनता का हित चाहती है, तो वह समस्त प्रान्तों में ऐसी और २७ (?) सरकार स्थापित करे, जिसको जनता का समर्थन प्राप्त हो। इसके लिए यह अत्यन्त उपयुक्त समय है। मुझे दल-गत सरकारों के स्थान पर राष्ट्रीय सरकारें स्थापित करने में कोई आपत्ति नहीं है, पर राष्ट्रीय सरकार के लिए जनता के अत्यधिक बहुमत का समर्थन प्राप्त होना आवश्यक है और उसके स्थायित्व को नष्ट करने की कोई धमकी को सहन नहीं किया जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझको भी लय होने दो !

लेखिका, श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिनहा

इस कविता पर प्रथम श्रीकाशीराम-पुरस्कार दिया गया है।

उत्सव है प्रकृति-वधू-घर वैभव ले ऋतुपति आया !
मदिरा से भीना पुलकित उल्लास-हास है छाया !
धीरे इठलाता मलयज आया ले अमृत-सिंचन !
नव-कनक-कुसुम-रज-रंजित-वल्लरियाँ-निरता-नर्त्तन !
मदमाती गूँजों में है अलि की उठती नूपुर-ध्वनि !
अग-जग को मुखरित करता मलयज का मुरली-निस्वन !
सुरधनु-काया ले आई तितली डाली पर चंचल
गाती मदमाती कोयल, झरने हँसते-से कल कल !
सरिता की लहर लहर में उठ गया पुलक का कम्पन !
अलसाई किरनें जागीं, हँस पड़ा विश्व का कण कण !
मतवाली माधव-यामिनि का फूटा यौवन अलसित !
उमड़ी दिशिदिशि-रस-धारा मकरन्द मधुर-मधु विलसित !
कोकिल-काकली मधुर सुन कलियों ने घूँघट खोला !
किरणों के स्वर्णिम-कर ने कमलों में परिमल घोला !
लतिका-चितवन से फूटी उन्मद फूलों की धारा !
अलि के लालस-सालस-मन की बनती मोहक-कारा !
ले मीठी-श्वास-सुरभि की मलयज मन्थर-गति आता !
तृण-तृण के उर में जीवन की लहर अबाध उठाता !
शत शत रंगों के चुम्बन-अंकित नव-फूल खिले हैं !
माधवी-लता की डालों से मधुकर गले मिले हैं !
झोली भर निधि ले भागा कुंजों से चोर समीरण !
खिलती कलियों पर उन्मन, डोला मधुपों का गुंजन !
जागा नीलम की शय्या पर मधु-पूनम का नर्त्तन !
जागा जलनिधि की लहरों में फेनिल-बुदबुद शिंजन !
ले ऊषा केसर धीरे अम्बर के मुख पर मलती !
संध्या-स्मित रंग विरंगी नभ-फूल लुटाती चलती !

तरु-तरु में हास जगा है फूटी पल्लव में लाली !
दिशि दिशि में लहर उठी है छाई छवि की हरियाली !
मेरी भी संज्ञा जागी तन्द्रा जा अलग पड़ी है !
उल्लास सचेतन होता चंचल मनुहार खड़ी है !
निस्पन्द-हृदय के पट से टकराती कोई प्रतिध्वनि !
युग युग का संयम पिघला है जाग पड़ा उर-कम्पन !
कलरव कर जाग पड़ी हैं मन-पंछी नवल-उमंगें !
तिमिरावृत-उर में हँसती फैली आलोक-तरंगें !
फूलों में खुल खुल खेलो संकेत चेतना करती,
मधुभार न यह सँभलेगा प्रेरणा नई है भरती !
हैं रहीं खोल मंजूषा उन्मद-स्वर्णिम संस्मृतियाँ !
हँस पुलकाकुल रंग रलियाँ निखरीं प्रसुप्त संसृतियाँ !
मन-धनु की चढ़ा प्रत्यञ्चा इच्छायें खींची जातीं !
सौन्दर्य सुधा से पतझर की क्यारी सींची जातीं !
नयनों में छवि की मदिरा है घोल रही बेसुधपन !
हिय में है ज्वार उठाती मृदु प्यार-धार पागलपन !
जाने किन जादू-फूलों से गूँथ गई मन-डाली !
जिससे ढुलकी पड़ती है सौरभ-मदिरा मतवाली !
अभिलाषा जीवन-मन की चुपके चुपके मुसकातीं !
ये लुकी छिपी-सी साधें घूँघट धीरे खिसकातीं !
मृदु प्यार चिरन्तन पागल नस नस में आज मचलता !
मन बार बार इस चिकने अंचल पर आह ! फिसलता !
प्रतिपल बढ़ती ही जाती लू-लपटों-सी अभिलाषा !
प्राणों में आकुल-व्याकुल-सी दुर्दमनीय पिपासा !
सिमटेंगी नहीं समेटे यह मदिर प्यार की निधियाँ !
अनजाने बिखरीं पड़तीं अल्हड़ माती गति विधियाँ !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुराका-छाया-नीचे मधु-गन्ध-अन्ध-मदिरालस !
बेसुध-विषाद-पंछी यह तज नीड़ उड़ा है सालस !

कामना किरन फूटी है तममय वन में जीवन के !
दुख-नीरद में सुख इच्छा चित्रित है सुरधनु बन के !

इंगित करती अभिलाषा मानस का कुसुम खिला ले !
जीवन कहता यौवन से पीले आसव के प्याले !

मलयानिल-सी उल्लासों की लहरें उठतीं मन में !
कुसुमों-सी साधें खिलतीं स्वर्णिम-सुहाग भर मन में !

अतृप्ति डूबना चाहे परितोष-सिन्धु में गहरे !
कोने से मन के उठकर लालसा-विहग नभ-छहरे !

अविराम-साधना के ये मुखरित होते पल हलके !
निर्वाण विकल पाने को उर बहा जा रहा गल के !

टूटो, तुम आज हृदय के बन्धन की निर्दय-कड़ियाँ !
रुक जाओ, आह ! नयन-घन की आकुल अविरल लड़ियाँ !

ओ जीवन की सीमाओ, पल भर को तो ढह जाओ !
ओ अन्तर की ज्वालाओ, ले ज्वलन अलग बह जाओ !

पल भर को तो जीवन से नियमों की संसृति, छूटो !
तर्कों के जाल सघनतम निर्मम नीरस, अब टूटो !

पग पग पर कसनेवाले जग के कठोर तम-बन्धन !
पल पल पर चुभनेवाली आँखों के निष्ठुर दंशन !

पद पद पर अड़नेवाले ओ शैल शृंग, झुक जाओ !
क्षण क्षण पर मत धधको अब, ओ दावानल, बुझ जाओ ।

जाने दो प्रिय की नगरी कोलाहल करतीं आहें !
ओ आँखों के धुँधलेपन छोड़ो तुम प्रिय की राहें !

जग का विषमय यह जीवन पी ले पल भर आसव-कण !
शीतलता से सिंचित हो पल भर इसका तपता तन !

युग युग की सृष्टि-विनाशों में खेली हूँ जीवन-भर !
अब मधु-मंगल-वरदानों की वृष्टि भला हो पल भर !

दुख का निदाघ मरु जीवन सुख-छाँह शान्त आने दो !
सब पाप ताप जल जावें निर्मल जल लहराने दो !

अभिशापों से उर जलते पाने दो शीतल चुम्बन !
शुभ रजत-पुंज-सा उज्ज्वल पावे जीवन-आलिंगन !

जीवन की चिर मावस में फूटे मधु-किरन उजाला !
शत-कल्पों से बन्दी मन ले मुक्त-श्वास मतवाला !

पल भर विषाद की जगती को अब विराम पाने दो !
जीवन-प्रवाह की धारा से जीवन सरसाने दो !

युग युग की असफलताओं को आज तृप्त होने दो !
वासन्ती-निशि-किरणों से, यह पीड़ायें धोने दो !

मेरे तमिस्र में झलकी पदचिह्न-ज्योति-प्रिय झिलमिल ।
ठहरो, अर्पण करने दो जीवन-शतदल को खिल खिल !

ओ जीवन के क्षण रुक जा प्रियतम से आज मिलूँगी ।
प्राणों से प्राणों का अब मैं शुभ अभिषेक करूँगी !

इस मधुऋतु के उत्सव में प्राणों को दो ना रोने !
व्याकुल-अधीर-गीतों को चिर शान्त आज दो सोने !

अज्ञात-चरण-चिह्नों में प्रिय के अव्यक्त अगोचर !
युग युग के विरही-जीवन को मिल जाने दो पल भर !

जब अणु अणु प्यार लुटाते मुझको प्रिय में खोने दो !
जब जड़ चेतन सब मिलते मुझको भी लय होने दो !

एक सुप्रसिद्ध अमेरिकन मनोवैज्ञानिक डा० हेनरी नाइट मिलर ने जो हालही में इँगलैंड गये थे, मैनचेस्टर की एक सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए कहा कि "ब्रिटेन के लोग विश्राम के महत्त्व को समझते हैं और मैं ब्रिटिश जीवन की गति पर मुग्ध हूँ ।" डा० नाइट ने कहा कि "मैं ख़ास तौर से जिस विश्राम के लिए राय देता हूँ, वह यह है कि दोपहर के बाद ४ बजे चाय पीने के लिए १५ मिनट की छुट्टी दी जाय। यह प्रथा लाभदायक है क्योंकि इससे थकावट दूर होती है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

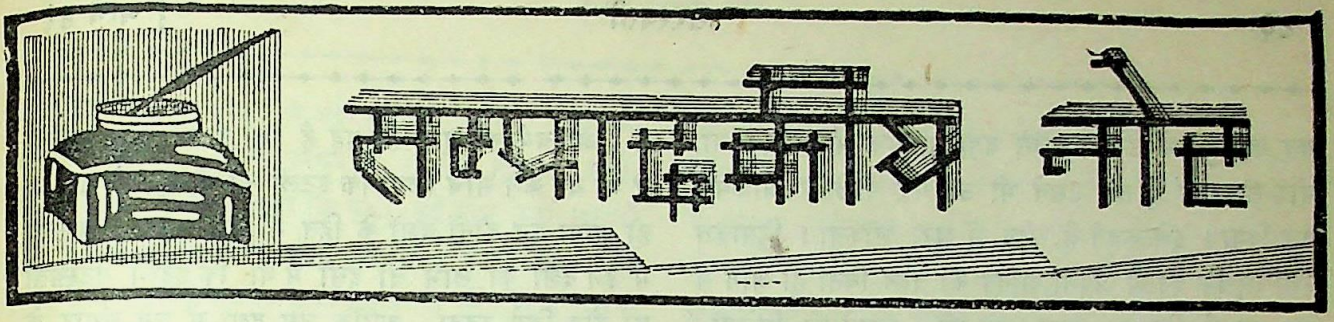

फ़्लैंडर्स का युद्ध

मई के अन्तिम दिनों में बेल्जियम में जो भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ था वह संसार के इतिहास में एक अभूतपूर्व महान् युद्ध के रूप में गिना जायगा। बेल्जियम की युद्ध-भूमि में जर्मन-सेनाओं का मानमर्दन करने के लिए मित्र-दल के युद्ध-विशारदों ने जो महत्त्वपूर्ण व्यवस्था की थी, दुःख की बात है, बेल्जियम के युवा नरेश महाराज ल्योपाल्ड की मन-मानी से सबका सब चौपट हो गया। पाठकों को ज्ञात होगा कि जब जर्मनी ने निरपेक्ष बेल्जियम पर पिछले दिनों एकाएक चढ़ाई कर दी तब वहाँ के इन्हीं बादशाह ल्योपाल्ड की माँग पर मित्र-दल ने सहायता के लिए अपनी सेनायें तत्काल भेजकर जर्मनों से बढ़कर मोर्चा लिया था। परन्तु १८ दिन के लोक-संहारक युद्ध के बाद एकाएक बादशाह ल्योपाल्ड ने अपनी पाँच लाख सेना के साथ आत्म-समर्पण कर दिया और सो भी अपने मित्रों को अपने इस कायरतापूर्ण कार्य की पहले से सूचना दिये बिना ही। उनकी इस अक्षन्तव्य भूल का बड़ा भयानक परिणाम हुआ। विशाल जर्मन-सेना ने मित्र-दल की सेनाओं को अचानक आकर घेर लिया। अपनी इस संकटपूर्ण अवस्था को देखकर मित्र-दल की सेनाओं को पीछे हटना ही नहीं पड़ा, किन्तु उन्हें उस युद्ध-क्षेत्र को ही छोड़ देने को लाचार होना पड़ा। फ़्रेंच सेनायें तो अपने देश के भीतरी भाग को लौट गईं, उधर अँगरेज़ी सेनाओं को ब्रिटेन चला जाना पड़ा। उक्त परिस्थिति के सम्बन्ध में ब्रिटेन के प्रधान मंत्री श्री चर्चिल का जो वक्तव्य अख़बारों में छपा है उससे इसकी भीषणता का पता लगता है।

ख़ैर, मित्र-दल की सारी सेना जिसे जर्मन-सेनाओं ने चारों ओर से घेर कर एकदम दल-मल डालने का सफल प्रयत्न किया था, एक मात्र अपनी अप्रतिम वीरता और अनुपम धैर्य से बिलकुल साफ़ बच निकली—और सुरक्षित स्थानों में पहुँच गई। इस प्रकार मित्र-दल की सेनाओं के चले आने पर बेल्जियम तथा फ़्रांस के उस ओर का सारा भूभाग जर्मन-सेनाओं के अधिकार में हो गया, यही नहीं, वहाँ के सब बन्दरगाह भी उनके क़ब्ज़े में हो गये, जहाँ से जर्मनी के बम-वर्षक वायुयान सरलता से ब्रिटेन जाकर बम-वर्षा कर सकते हैं। बेल्जियम के इस पराभव से सबसे अधिक भयानक बात यह हुई है कि ब्रिटेन और फ़्रांस की सेनाओं में पहले की तरह का सहयोग भी नहीं रह गया। यह अवस्था देखकर हिटलर ने अपनी सेनाओं को फ़्रांस पर चढ़ दौड़ने का आदेश कर दिया है। फ़्रांस की सेनायें सोमे नदी के तट पर मोर्चा बाँधे पहले से ही जर्मनों की प्रतीक्षा कर रही थीं। फलतः इस क्षेत्र में फ़्रांस और जर्मनी के बीच भयानक लड़ाई छिड़ गई। फ़्रांस के प्रधान मंत्री रेनो ने कहा है कि सोमे के तट का यह युद्ध सदियों के लिए योरप के भाग्य का निर्णय कर देगा। इसमें सन्देह नहीं कि इस क्षेत्र का यह युद्ध भी ऐतिहासिक युद्ध हुआ है, परन्तु यही अन्तिम युद्ध नहीं है। कहना तो यह चाहिए कि वास्तविक युद्ध अब प्रारम्भ हुआ है, जिसमें ब्रिटेन अपने उग्र रूप का समुचित परिचय देगा। निर्णायक युद्ध तो तब होगा जब ब्रिटेन अपने सारे दलबल से जर्मन-सेनाओं के आगे समवेत होगा। और वह दिन दूर नहीं है जब जर्मनी ब्रिटेन के इस त्रासजनक रूप का दर्शन करेगा, क्योंकि वह अपनी भर सक सब कुछ कर चुका है, और अब ब्रिटेन की बारी आ रही है।

विश्वासघात और हिमाक़त

इटली भी आख़िर युद्ध में कूद पड़ा। इसे उसका विश्वासघात भी कह सकते हैं और हिमाक़त भी। विश्वास-घात इसलिए कि कल तक मुसोलिनी साहब जोरों से चीख़-चीख़ कर कह रहे थे कि संसार के अधिक भाग में युद्ध को न फैलने देने का श्रेय हमें है। और अब जब उन्होंने देख लिया कि फ़्रांस जो पड़ोसी होने के अलावा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गत महायुद्ध में उसका सबसे बड़ा सहायक और रक्षक था, घोर संकट में है तब उसने भी उस पर पीछे से आक्रमण कर दिया। इसे कहते हैं, पीठ में छुरा भोंकना। हिमाक़त इसलिए कि इटली अपनी शक्ति को तौले बिना ही आग में कूद पड़ा है, जिसका फल उसे भी चखने को मिलेगा। महीनों से तटस्थता की आड़ में फ़्रांस, इँग्लेंड और जर्मनी से व्यापार करके इटली लाभ उठा रहा था। अब युद्ध में उतर आने से वह लाभ उठाने का अवसर भी चला गया और शान्ति-रक्षा का ढोंग भी।

इटली इस समय अचानक युद्ध में क्यों कूद पड़ा? इस प्रश्न के उत्तर कई हो सकते हैं। यह तो सबको मालूम था कि वह एक न एक दिन लड़ाई में उतरेगा, पर कब यही अनिश्चित था। अब आख़िर उसे इसके लिए कौन-सा उपयुक्त अवसर मिल गया? हम यह तो जानते ही हैं कि इटली के इस समय युद्ध में आ जाने का कोई कारण न तो उदारता है, न राष्ट्र की रक्षा की भावना। मुसोलिनी साहब जो कुछ कहते हैं—अपना स्वार्थ देखकर! उन्होंने शायद सोचा होगा कि इस समय फ़्रांस पर हमला कर देने से ब्रिटेन या फ़्रांस से कुछ न कुछ अवश्य हाथ लग जायगा। या शायद यह सोचा होगा कि इस समय यदि हम युद्ध में उतरेंगे तो संसार की ज़बान पर हमारा भी नाम आ जायगा—जो कि पिछले कुछ दिनों से लोगों को भूल-सा गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इटली को युद्ध में घसीटने का उत्तरदायित्व मुसोलिनी साहब के शरारती और महत्वाकांक्षी दिमाग़ को ही है। इटली की जनता स्वभावतः शान्तिप्रिय है, उसे युद्ध से घृणा है। वह अपने ड्यूस और फ़ैसिज़्म के लिए बहुत कुछ कर चुकी है और अब शान्ति के साथ अपने देश की ख़ुशहाली के लिए प्रयत्न करना चाहती थी। वहाँ के बादशाह भी जिनके नाम से युद्ध की घोषणा की गई है, अपनी युद्ध-विरोधिनी मनोवृत्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। पोप भी शान्ति के लिए भर सक प्रयत्न कर चुके हैं। इससे सिद्ध होता है कि निर्दोष इटली को युद्ध की लपटों में घसीटने की ज़िम्मेदारी केवल एक व्यक्ति—सीन्योर मुसोलिनी पर है।

इटली की इस शरारत का अनुमान ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को बहुत पहले से था और वे इसके लिए काफ़ी तैयार भी थे। आश्चर्य की बात तो यह है कि इटली और जर्मनी ने भी यह कैसे सोच लिया कि इटली का भी युद्ध में शामिल हो जाना इन दोनों देशों के हित में ठीक रहेगा। वास्तव में इन देशों का लाभ तो इसी में था कि इटली तटस्थता का ढोंग किये रहता, क्योंकि उस दशा में उसे संसार के सभी देशों से व्यापार करने की आज़ादी थी। इस तरह वह अपने लिए भी माल ला सकता था और थोड़ा-बहुत जर्मनी को भी दे सकता था। अब युद्ध में शामिल हो जाने से उसका समुद्र में चलना रोक दिया जायगा। इस दशा में उसे अपने लिए ही सामान जुटाना मुश्किल पड़ जायगा। जर्मनी को कुछ दे सकने की बात ही दूर है। आजकल वह जर्मनी से कोयला ले रहा है। पर समुद्री मार्ग बन्द हो जाने पर उतने कोयले के लिए ६५ गाड़ियों को रोज़ चलाना पड़ेगा। क्या इटली इस व्यय को बर्दाश्त कर लेगा? उसकी सेना भी अच्छी नहीं है। अस्त्र-शस्त्रों का संग्रह भी अपर्याप्त है। उसके समुद्री बेड़े में बड़े-बड़े जहाज़ों का अभाव है, हाँ, सबमेरीन अवश्य काफ़ी हैं। वायुयान कुल मिला कर १,८०० उसके पास हैं। उसकी सेनायें लड़ने में अच्छी नहीं हैं, इसका प्रमाण गत १९१४-१८ के महायुद्ध, स्पेन के गृहयुद्ध और इटली-अबीसीनिया के युद्ध में मिल चुका है। फिर उसकी शक्ति का अधिक भाग अबीसीनिया, अलबानिया और लीबिया में फँसा हुआ है। इस दशा में युद्ध में शामिल हो जाना हिमाक़त के सिवा और क्या है?

फ़्रांस का युद्ध

४ जून को फ़्लैन्डर्स का युद्ध समाप्त हुआ था। उसके बाद ही जर्मनी ने पेरिस की ओर बढ़ना शुरू किया। फ़्लैंडर्स के युद्ध की हार से फ़्रांस के सैनिक अपना उत्साह खो चुके थे, तथापि उन्होंने जर्मनों का पद-पद पर सामना किया। अन्त में हटती हुई फ़्रेंच सेना ने जर्मनों का सोम नदी के तट पर डट कर सामना किया। यहाँ उनके प्रधान सेनापति फ़ील्ड मार्शल जनरल वेगाँ ने पहले से ही एक सुदृढ मोर्चेबन्दी बना ली थी। मोर्चों की इसी पंक्ति में जमकर फ़्रेंच सेना जर्मनों के आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगी। परन्तु जर्मन इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार बहुसंख्या में और सो भी अधिक और आधुनिक ढंग के अनूठे ढंग के युद्धोपकरणों से लैस होकर आये, जिसका परिणाम यह हुआ कि थकी हुई फ्रेंच सेना जर्मनों का सामना न कर सकी और उसे अपने मोर्चों की पंक्ति को छोड़कर पीछे हटना पड़ा। सोमतट के भीषण युद्ध ने फ्रेंच-सेनाओं के रहे-सहे उत्साह को भी काफ़ूर कर दिया। फ्रेंच-सरकार ने इस बात का बहुत प्रयत्न किया कि उसकी सेना की पंक्ति टूटने न पावे। परन्तु जर्मनी की सेनाओं के आगे वह ठहर न सकी और उसे बार-बार हटना पड़ा। अन्त में जब जर्मन-सेना ने पेरिस पर १७ जून को जा चढ़ी तब फ्रेंच-सरकार ने निराश होकर पदत्याग कर दिया और उसके स्थान पर मार्शल पेताँ के प्रधान मंत्रित्व में जो नई सरकार संगठित हुई है उसने लड़ाई बन्द कर देने की जर्मनी से प्रार्थना की। १२ दिन के भीषण युद्ध के बाद फ्रांस का जर्मनी के आगे इस तरह नतमस्तक हो जाना—उस फ्रांस का जिसकी अनूठी वीरता की परम्परा योरप में सदियों से क़ायम है, एक प्रकार की दैवी दुर्घटना ही कही जायगी। फ्रांस के इस प्रकार हथियार रख देने से अब आगे क्या होगा, यह तो नहीं कहा जा सकता है। परन्तु इतना स्पष्ट है कि अब अकेले ब्रिटेन को ही जर्मनी और इटली से लड़ना पड़ेगा और ब्रिटेन इस भीषण संघर्ष के लिए पूर्ण-रूप से तैयार भी है। भगवान् उसे शत्रु को पद-दलित करने का बल दे, यह हम सबकी मनोकामना है।

भारत की आत्म-रक्षा

योरपीय युद्ध की बिभीषिका का प्रभाव सारे संसार में व्यापक रूप से पड़ा है। फलतः सभी देश कम-से-कम अपनी अपनी आत्म-रक्षा के लिए कोई भी प्रयत्न बाक़ी नहीं रखना चाहते। पर भारत तो ब्रिटिश साम्राज्य का एक प्रमुख भाग होने से युद्ध में शामिल भी है। ऐसी दशा में उस पर दोहरी ज़िम्मेदारी है। एक तो उसे साम्राज्य सरकार की युद्ध में पूरे बल के साथ सहायता करना है, दूसरे बाहरी आक्रमण से अपनी रक्षा के लिए पूरी तरह तैयार रहना भी है। सहायता तो वह युद्ध के छिड़ने के समय से ही कर रहा है। आवश्यक धन और जन वह बराबर ही देता जा रहा है। अभी अभी बेल्जियम में जो ऐतिहासिक युद्ध हुआ है उसमें भारतीय सेना की टुकड़ी ने अपने असीम पुरुषार्थ का परिचय देकर अपने देश को गौरवान्वित किया है। परन्तु इस समय भारत की अपनी रक्षा का प्रश्न अधिक महत्त्व पकड़ गया है, यहाँ तक कि स्वयं भारत-सरकार का भी ध्यान उस ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है। भारत की सेनाओं के प्रधान सेनापति कैसल साहब ने अपने रेडियो के भाषण में घोषित किया है कि सरकार ने पैदल-सेना, मोटर-सेना और तोपख़ाने के बढ़ाने का निश्चय किया है। उस सम्बन्ध में उन्होंने वृद्धि-सम्बन्धी जो आँकड़े दिये हैं उन्हें देश के ग़ैर सरकारी लोग अपर्याप्त बताते हैं। लोगों का कहना है कि अधिक से अधिक भारतीयों को सेना में भी ऊँचे ऊँचे पद दिये जाने चाहिए, साथ ही 'असैनिक-जातियों' का भेद दूर कर सभी प्रान्तों के सभी जातियों के लोगों को सेना में भर्ती करके उन्हें स्वदेश की रक्षा के काम में हाथ बँटाने का अवसर देना चाहिए। सरकार जिस गति से तथा जिस व्यवस्था से भारत की रक्षा का कार्य करने जा रही है उससे यहाँ के ऐंग्लो-इंडियन भी सन्तुष्ट नहीं हैं और उनके प्रतिनिधि वायसराय महोदय से मिलकर अपने विचारों से उन्हें परिचित करा चुके हैं। इधर भारतीय नेता भी वक्तव्य पर वक्तव्य निकालकर इस बात का आग्रह कर रहे हैं कि देश की रक्षा की उपयुक्त व्यवस्था की जाय। यह प्रसन्नता की बात है कि इस महत्त्व की बात पर इस समय सारे देश का ध्यान आकृष्ट हो गया है, अतएव विश्वास है कि भारत सहायता करने के साथ साथ आत्मरक्षा की व्यवस्था करने में भी पीछे न रहेगा।

पाकिस्तान और कांग्रेस

पाकिस्तान की माँग के सम्बन्ध में महात्मा जी ने कहा था कि यदि मुसलमान हठ ही पकड़ जायँगे तो उनके इच्छानुसार भारत को बाँट देना पड़ेगा। वही बात कांग्रेस के प्रेसीडेंट मौलाना अबुल क़लाम आज़ाद ने भी अपने एक वक्तव्य में कही है। यह सब देख सुनकर और तो कोई नहीं, पर सिक्ख लोग चौकन्ने हुए हैं। उनके नेता सरदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तारासिंह ने महात्मा गांधी को लिखा है कि पाकिस्तान के सम्बन्ध में मौलाना साहब ने ऐसा वक्तव्य क्यों दिया है। उनके पत्र का जो उत्तर महात्मा गांधी ने दिया है उससे सिक्खों की आशंका दूर हो गई है। महात्मा जी ने लिखा है कि आप चिन्तित न हों। जो साम्प्रदायिक मीमांसा पंजाब के सिक्खों-द्वारा स्वीकृत न होगी वह कांग्रेस-द्वारा भी स्वीकार न की जायगी। यदि ऐसी बात है तो फिर मौलाना साहब का इस आशय का वक्तव्य न निकलना चाहिए था कि 'यदि समस्त मुसलमान मिलजुल कर पाकस्तानी योजना को पसन्द करेंगे तो वह स्वीकार कर ली जायगी।' परन्तु बड़ों की बातें बड़ी होती हैं। उन पर टीका-टिप्पणी करने का अधिकार किसे प्राप्त है ?

शान्ति-रक्षा की योजना

कहा गया है कि कई प्रान्तीय सरकारें युद्ध-काल के लिए ऐसी पुलिस-सेना तैयार कराना चाहती हैं जो प्रान्तों में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के काम आये। इसमें सन्देह नहीं है कि यह योजना आवश्यक तथा उपयोगी सिद्ध होगी। जर्मनी से 'हिन्दुस्तान' में जो बेरोक 'ब्राडकास्ट' अभी तक होता जा रहा है उसका प्रभाव स्थानीय गुंडों पर बुरा ही पड़ा होगा और वे अधिकारियों को असावधान पाकर शान्त और निःशस्त्र नागरिकों को सता सकते हैं। ऐसे अवसरों पर उक्त पुलिस-सेना बड़ा काम दे सकेगी। परन्तु हमारा तो कहना यह है कि उक्त पुलिस-दलों का संगठन करने की अपेक्षा यह बात कहीं अधिक सुविधाजनक होगी कि सरकार ग्रामों तथा नगरों में उन सभी लोगों को सशस्त्र कर दे जिन्हें वह हथियार रखने का अधिकारी समझे। ऐसी व्यवस्था करने से गुंडों के अनाचार की सारी सम्भावना ही दूर हो जायगी, साथ ही वह उन शस्त्रधारियों का अवसर आने पर समुचित उपयोग भी कर सकेगी। परन्तु हमारी सरकार तो नौकरशाही की पद्धति के आगे टस से मस होने को शायद ही तैयार हो।

सम्मेलन का एक नया प्रयत्न

सम्मेलन अभी तक अपनी परीक्षाओं के सम्बन्ध की ही पुस्तकें प्रकाशित करता रहा है। प्रसन्नता की बात है कि उसने अपने को अपनी उस स्थिति से ऊपर उठाया है। और वह अच्छे से अच्छे ग्रन्थ प्रकाशित करने को उत्सुक है। सुना है, उसने स्वर्गीय पण्डित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की रचनायें प्रकाशित की हैं। यहाँ हम उसकी जो विज्ञप्ति छाप रहे हैं उससे प्रकट होता है कि वह दो पुराणों के अनुवाद भी प्रकाशित करना चाहता है। खेद है, सहायक मंत्री श्री नारायणदत्त पांडे एम० ए०, एल-एल० बी० ने इस विज्ञप्ति में लिखा है कि 'बहुतेरे महत्त्वपूर्ण पुराणों के . . . . . अनुवाद नहीं हुए हैं, साथ ही पुराणों के प्रचलित अनुवादों पर आक्षेप भी किया है। उक्त विज्ञप्ति इस प्रकार है--

बहुतेरे महत्त्वपूर्ण पुराणों तथा अन्य संस्कृत-ग्रन्थों का अभी तक हिन्दी में अनुवाद नहीं हुआ है। और जिनका अनुवाद हुआ भी है उनमें से कई एकों का शुद्ध और मुहाविरेदार भाषा में अनुवाद नहीं हो पाया है। जहाँ तक हमारी जानकारी है अभी तक अग्निपुराण तथा वायुपुराण का कोई भी हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित नहीं हुआ है। सभी संस्कृत तथा हिन्दी के विद्वानों का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करते हुए हम यह सूचित करते हैं कि यदि इन दो पुराणों का हिन्दी-अनुवाद किसी सज्जन के पास हो या कोई सज्जन यह कार्य करने को उद्यत हों, तो वे हमसे लिखा-पढ़ी करें। अन्य संस्कृत ग्रन्थों का भी (जिनका अभी तक अनुवाद न हुआ हो) अच्छा अनुवाद होने पर प्रकाशित किया जा सकता है। सम्मेलन अनुवादकों को १५ प्रतिशत रायलटी देता है। विशेष दशा में अनुवाद के लिए इकट्ठा पारिश्रमिक देने पर भी विचार हो सकेगा।

एक अपील

कुछ लोगों का कहना है कि हिन्दी में वही लोग आते हैं जिनको और कहीं ठौर-ठिकाना नहीं मिलता। यह सच हो चाहे न हो, यह ज़रूर सच है कि जो जो इसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हँसी का राजकुमार

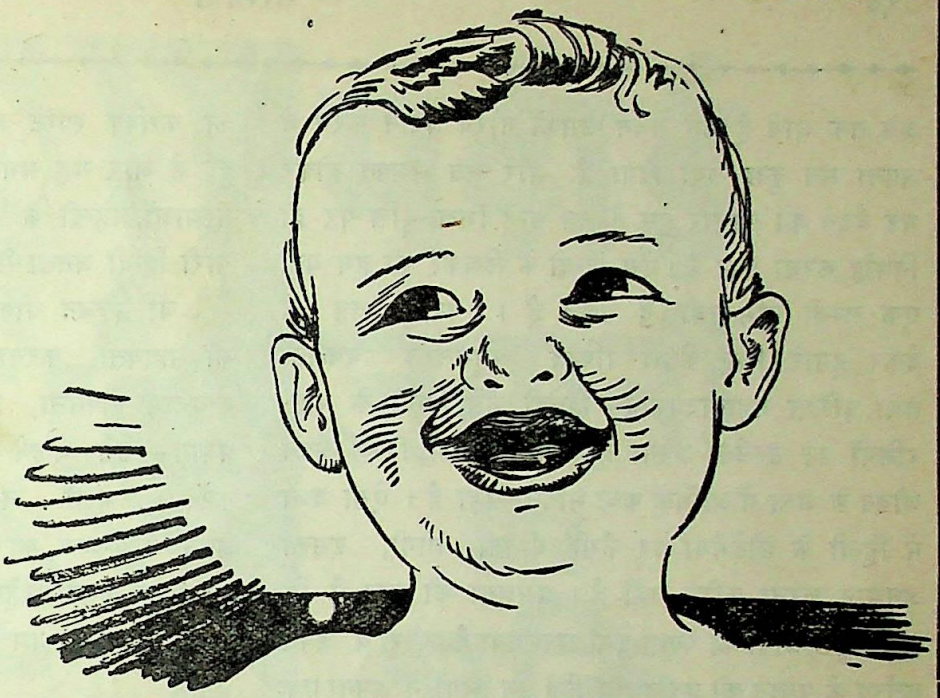

माताओ, हँसी के राजकुमार से मिलो ! जो बच्चे **बिटा-मिल्क** पर पलते हैं वे ऐसे ही हँसते हैं—

अच्छे स्वास्थ्य का यह एक चिह्न है।

बिटा-मिल्क खासकर भारतीय बच्चों के लिए, स्वास्थ्यकर वैज्ञानिक पद्धति से गाय के शुद्ध दूध से बनता है। यह माता के ही दूध के समान है। इसमें वही उपादान हैं जिनसे बच्चों की बाढ़ उचित रूप से होती है। जब माता का दूध नहीं उतरता तो डाक्टर **बिटा-मिल्क** बताते हैं।

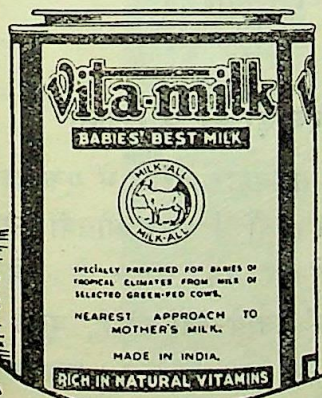

बिटा-मिल्क

खासकर भारतीय बच्चों के लिये बना है

यदि आप दूध खरीद सकते हैं तो बिटा-मिल्क खरीद सकते हैं

नैशनल न्युट्रिमेण्ट्स लिमिटेड, दमदम

बच्चों के खाने-पीने में किसी तरह की जोखिम उठाना ठीक नहीं। चिकित्सक, धायें और नर्सें जो करती हैं वही आप भी कीजिये— अपने बच्चे को बिटा-मिल्क पिलाइये।

बिहार, युक्तप्रान्त तथा दिल्ली के एकमात्र व्यापारी

चक्रवर्ती फ़ार्मेसी, गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तक आये हैं उन सबने उसको गौरव प्रदान करने में अपना सब कुछ लगा दिया है और जब अशक्त होकर घर बैठने को लाचार हुए हैं तब उन्हें भिक्षा-वृत्ति पर ही निर्वाह करना पड़ा है। ऐसे हिन्दी के लेखकों की हम यहाँ एक लम्बी नाम-सूची दे सकते हैं। परन्तु वह न देकर हमारे लिए केवल पण्डित अमृतलाल चक्रवर्ती तथा पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे हिन्दी के महारथियों का उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा, जिन्हें अपने जीवन के अन्त में आर्थिक कष्ट भोगना पड़ा है। ऐसी दशा में हिन्दी के छोटेभैयों पर कैसी बीतती होगी, इसका अनुमान करना कठिन नहीं है। प्रसन्नता की बात है कि हमारे कुछ लोगों का ध्यान इस ओर गया है और वे अपने कर्तव्य के पालन को प्रवृत्त हुए हैं। उन लोगों ने अपना एक छोटा-सा संगठन किया है और वे हिन्दी के प्रसिद्ध पत्रकार स्वर्गीय बाबू नवजादिकलाल श्रीवास्तव के विपद्ग्रस्त परिवार की आर्थिक सहायता करने को कटिबद्ध हुए हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में एक अपील निकाली है, जिसका अधिकांश इस प्रकार है—

स्वर्गीय मुंशी नवजादिकलाल हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी और पत्रकार थे। उनकी सेवाओं से हिन्दी-संसार भली भाँति परिचित है।

× × ×

अपनी अनेक विशेषताओं के कारण मुंशी जी हिन्दी-पत्रकार-जगत् के लिए एक अमूल्य विभूति हो गये। वे जिस पत्र में पहुँचते उसे ही उन्नति के शिखर पर पहुँचा देते। 'मतवाला' में उन्हींने वह काम किया जो हिन्दी-पत्रकारिता के विकास में ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

× × ×

ऐसे गुणी और प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति के असमय देहावसान के जिस पहलू पर हम यहाँ आपका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं वह है उनके निराश्रित परिवार की आर्थिक दशा। मुंशी जी ने अपना समस्त जीवन हिन्दी की सेवा में उत्सर्ग कर दिया था। किन्तु आज उनकी विधवा पत्नी और पाँच छोटे-छोटे बच्चे निरवलम्ब हो गये हैं। उनके पास भोजन-वस्त्र और शिक्षा के लिए पैसे नहीं हैं और कन्याओं के विवाह का भार असहनीय है। इस विषय में हिन्दी के प्रेमियों का कर्त्तव्य स्पष्ट है। इसी लिए यह समिति स्थापित हुई है और यह सभी धनी-मानी, उदार, समर्थ, सज्जनों, संस्थाओं, हिन्दी के समस्त साहित्यसेवियों, पत्रकारों और सारी हिन्दी जनता से सहायता की अपील करती है।

जो सज्जन थोक या मासिक या अन्य किसी प्रकार की सहायता करना चाहें वे इस पते से—डा० बाबूराम सक्सेना, प्रधान मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग—उसे भेजने या पत्र-व्यवहार करने की कृपा करें। मुंशी नवजादिकलाल-परिवार-सहायक-समिति अपने आय-व्यय का ब्यौरा नियमित रूप से प्रतिमास प्रकाशित करती रहेगी। यह एक सार्वजनिक योजना है अतएव इसका काम सार्वजनिक ढंग से होगा।

निवेदक—

बाबूराम सक्सेना, रामनरेश त्रिपाठी,
सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', रामचन्द्र टंडन,
सत्यजीवन वर्मा, नन्ददुलारेलाल वाजपेयी,
शंकरदयालु श्रीवास्तव।

समर्थ हिन्दी-प्रेमियों को उपयुक्त सहायता देकर इस पुण्य-कार्य में हाथ बँटाना चाहिए।

———

भारत में पैरगाड़ी का कारख़ाना

आख़िर पटना के पास बिहार शरीफ़ में एक कारख़ाने में पैरगाड़ियाँ बनने ही लगीं! इस बीसवीं सदी के लगभग आधा बीत जाने पर जब संसार के छोटे-मोटे सभी देशों में 'बम-वर्षक' बनाये जा रहे हैं, बुड्ढे भारत ने सचमुच ही यह कमाल का काम किया है। कदाचित् इसी से उस कारख़ाने में जो पहली पैरगाड़ी बनी है उसे कारख़ाने के स्वामी ने स्मारक-रूप में रख छोड़ा है। यह कारख़ाना इसी पिछले मार्च में खोला गया है और उसकी पहली पैरगाड़ी जून के महीने में बनाकर प्रदर्शित की गई है। इस कारख़ाने में पैरगाड़ी के सभी पुर्ज़े तैयार होते हैं। हाँ, रबर की जो चीज़ें उसमें लगती हैं वह सब बाहर का ही लगाना पड़ता है। पर चिन्ता की बात नहीं है। कालान्तर में वे सब भी यहाँ बनने लगेंगी। इस कारख़ाने को सफल भर हो जाने दीजिए। उसके बाद तो फिर यहाँ पैरगाड़ियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

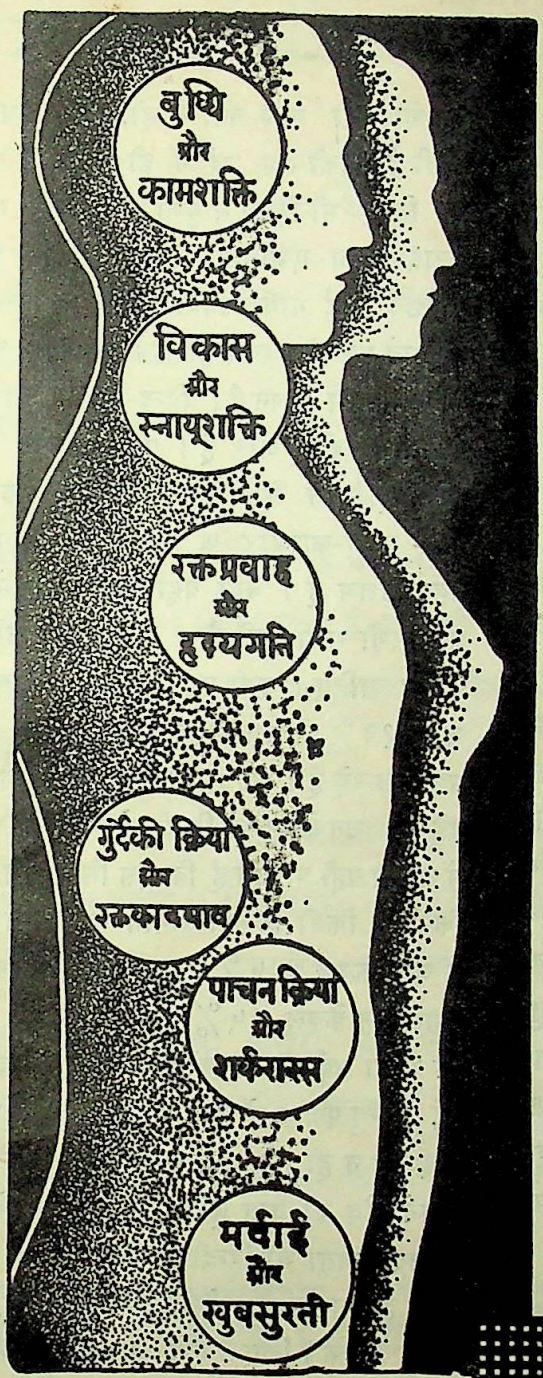

मर्दाई जवानी और शक्ति

प्राप्त करनेके लिये

ओकासा

तुरंत व्यवहार कीजिये

मनुष्य के शरीर में ऐसी ग्रंथियाँ हैं जिन पर मनुष्य की जवानी, आरोग्य और शक्ति निर्भर है। ओकासा इन ग्रंथियों की क्रिया को क़ाबू में रखता है और मनुष्य को स्वस्थ, जवान और शक्तिमान् रखता है।

३ सप्ताह ओकासा का व्यवहार कीजिए

जंग के कारण ओकासा की क़ीमतों में परिवर्तन नहीं हुआ। क़ीमत छोटी साइज़ ३।।।), बड़ी साइज़ १०); हर दवावाले से खरीदिये।

ओकासा डिपो, पार्क मेनशन, देहली गेट, देहली से मँगाइए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के भी सैकड़ों कारख़ाने खुल जायँगे, जैसे शक्कर के खोले गये हैं। कहा गया है, इस कारख़ाने में ५० पैरगाड़ियाँ प्रतिदिन तैयार होंगी। आशा है, इस कारख़ाने या ऐसे कारख़ानों की बदौलत देश में स्वदेशी पैरगाड़ियों का व्यापक रूप से प्रचार होगा। हम इस प्रयत्न की सफलता चाहते हैं।

हिन्दी की हक़तलफ़ी

पिछले दिनों पण्डित वेंकटेशनारायण तिवारी ने हिन्दी के पक्ष का ज़ोरों के साथ समर्थन किया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने जो महत्त्वपूर्ण लेख लिखे हैं उनका हिन्दी-प्रेमियों ने स्वागत किया है और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। खेद की बात है कि तिवारी जी के इस प्रयत्न से हमारी हिन्दी-संस्थाओं ने कुछ भी लाभ नहीं उठाया और उनके सूत्रधार पूर्णरूप से उदासीन मनोवृत्ति धारण किये रहे। इसे हम हिन्दी का दुर्भाग्य ही कहेंगे, परन्तु सन्तोष इतना ही है कि हमारे बीच हिन्दी के प्रेमियों का अभाव नहीं हो गया है और वे तिवारी जी जैसे हिन्दी के हितचिन्तकों का प्रोत्साहन करने को सदा प्रस्तुत रहते हैं। इस सम्बन्ध में हमें जो पत्र मिलते रहे हैं उनसे हमें प्रकट हुआ है कि हिन्दी-प्रेमी हिन्दी की हक़तलफ़ी होती देखकर कितना दुखी हैं। उदाहरण के लिए हम एक पत्र यहाँ छापते हैं जो तिवारी जी के नाम हमारे पते से आया है। वह पत्र ज्यों का त्यों इस प्रकार है--

श्रीमान् मान्यवर तिवारी जी,

आपके हिन्दी-सम्बन्धी लेख 'सुधा' तथा 'सरस्वती' आदि प्रसिद्ध हिन्दी-पत्रिकाओं में पढ़कर असीम प्रसन्नता हुई और यह देखकर और भी प्रसन्नता हुई कि पंजाब में हिन्दी के पक्ष को आप जैसे विद्वानों ने अपने हाथ में लिया है। आशा है, आप इसे पूरा करके ही छोड़ेंगे। पंजाब में हिन्दी की दशा दिन प्रतिदिन बिड़गती जा रही है। समय रहते इसको सँभाल लेना चाहिए। अन्यथा रोग असाध्य हुआ चाहता है। पंजाब में प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू में होने के कारण यहाँ अब व्यापारी-वर्ग में भी उर्दू का प्रचार होता चला जा रहा है। लोग छोटे-छोटे नगरों में उर्दू को ही निज की भाषा मानने लग गये हैं। हिन्दुओं का कोई भी कार्य क्यों न हो, उसमें जितनी लिखा-पढ़ी होती है सबकी सब उर्दू में ही होती है। फलतः बहुत-से हिन्दू भी हिन्दी से घृणा करने लग गये हैं। इन सब बुराइयों का एकमात्र उपाय है कि पंजाब में हिन्दी ऐच्छिक कोर्ट भाषा बनवाई जावे। हिन्दी के ऐच्छिक हो जाने पर लोग स्वयं ही इसे स्वीकार कर लेंगे। भाषा ही जाति का जीवन है। हिन्दू-जाति भाषा के बारे में बहुत उदासीन रही है और है। पर अब आप जैसे विद्वानों के सजग हो जाने से जनता भी कुछ कुछ सचेष्ट हो गई है। जम्मू-काश्मीर के विषय में आपका लिखा लेख बहुत उत्तम है। क्या वहाँ (काश्मीर में) कोई नागरी-प्रचारिणी सभा नहीं है। यदि है तो उसे भी उद्बोधन करना चाहिए। इसी प्रकार पंजाब में यत्न होना चाहिए। जहाँ १३% प्रतिशत सिक्खों के २-३ पंजाबी के दैनिक पत्र चल रहे हैं। कई साप्ताहिक और मासिक पत्र निकल रहे हैं। उनके सामने हिन्दी के नहीं के समान हैं। अन्त में आपसे यही प्रार्थना है कि इस विषय को अधूरा न छोड़ें। किसी न किसी ठिकाने लगाने का यत्न करेंगे। बिहार में जहाँ केवल ४, ५% मुसलमान हैं और यू० पी० जहाँ मुसलमान केवल १५% के लगभग हैं वहाँ मुसलमानों की भाषा उर्दू को तो कोर्ट भाषा का वैकल्पिक पद प्राप्त हो, परन्तु पंजाब में जहाँ ३२% हिन्दू हों वहाँ हिन्दी की कोई पूछ न हो, कोर्ट और आफ़िसों में कोई स्थान न हो। कितने खेद की बात है! मेरे विचार में हमारे नेताओं की उदासीनता भी हिन्दी के लिए द्योतक सिद्ध हो रही है। आशा है, आप पंजाब के हिन्दू-नेताओं को भी प्रेरित करेंगे कि वे इसके लिए एक सुसंगठित आन्दोलन चलावें, जिसमें राष्ट्र-भाषा हिन्दी को पंजाब में भी सम्मानित स्थान प्राप्त हो। "अंगीकृतं तु सुकृतिनः परिपालयन्ति

—भवदीय

ब्रह्मदत्त महाजन

जफरवाल, स्यालकोट

(पंजाब)

क्या इतने पर भी हमारे हिन्दी के महारथी अपना कर्तव्य-पालन करने को तैयार नहीं होंगे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्म सम्बन्धी अनेक रोग जादू की तरह दूर हो जाते हैं

क्यूटीकूरा मरहम (Cuticura Ointment) की चर्म सम्बन्धी रोग दूर करने के विषय में कितनी भी कठिन परीक्षा क्यों न ली जाय किन्तु सदैव सफल होगा। पैर का कितना भी भयंकर फोड़ा क्यों न हो यानी आदमी लँगड़ा ही क्यों न हो गया हो किन्तु इससे अच्छा हो जाता है। क्यूटीकूरा (Cuticura) फोड़े के कृमि तथा ज़हर को जिससे फोड़ा बढ़ता रहता है नष्ट कर देता है। सड़ी हुई माँस को दूर कर देता है तथा घाव पर नया माँस तथा चमड़ा ले आकर अच्छा कर देता है।

जिनको चर्म सम्बन्धी कोई भी बीमारी हो उनको स्नान करते समय क्यूटीकूरा साबुन (Cuticura Soap) इस्तेमाल करना चाहिए क्योंकि यह बहुत ही आरोग्यकारी तथा सुखदायक है।

खुजली, पपड़ी, फोड़ा, नासूर, अपरस, फोड़ा फुंसी, घाव अथवा बदन या शिर का कोई रोग क्यों न हो क्यूटीकूरा मरहम (Cuticura Ointment) लगाने से अच्छा हो जाता है।

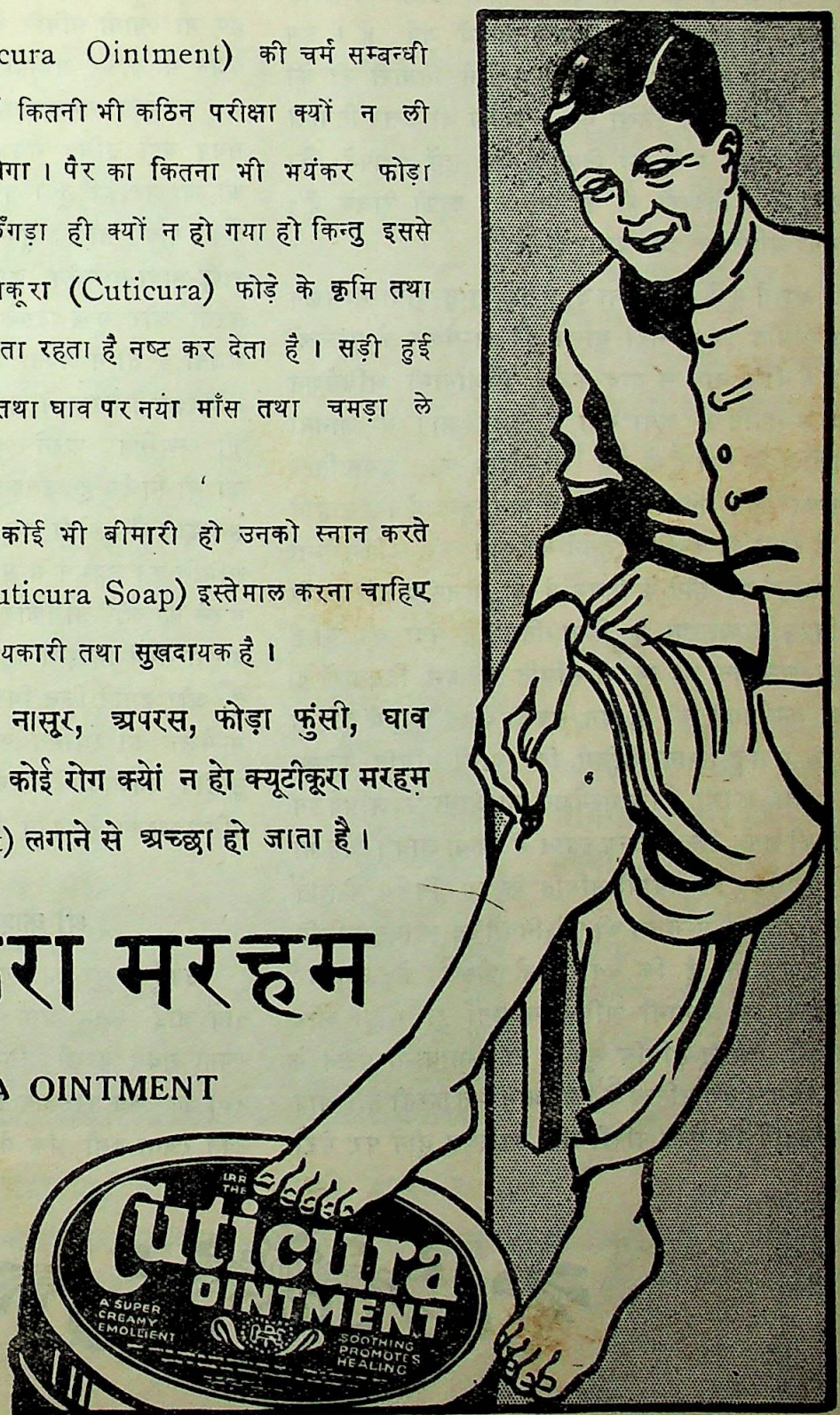

क्यूटीकूरा मरहम

CUTICURA OINTMENT

सब दवाख़ानों और बाज़ारों में मिलता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिवारी जी का एक पत्र

सम्मेलन के आगामी अधिवेशन के साथ राष्ट्र-भाषा-प्रचार-सम्मेलन की जो बैठक होगी उसके सभापति पण्डित वेंकटेशनारायण तिवारी बनाये गये हैं। इस सम्बन्ध में सम्मेलन के प्रधान मंत्री ने तिवारी जी को सूचनार्थ एक पत्र लिखा था। उसका जो उत्तर तिवारी जी ने प्रधान मंत्री को दिया है वह हमें छापने को मिला है। तिवारी जी का यह पत्र काफ़ी रोचक है। उसका अधिकांश इस प्रकार है—

आपने मुझे यह सूचना दी है कि राष्ट्र-भाषा-सम्मेलन या समिति (मुझे नहीं मालूम कि सम्मेलन के पुछल्लों को मैं किस नाम से याद करूँ) के आगामी अधिवेशन का सभापति मैं चुना गया हूँ, और आप यह जानना चाहते हैं कि क्या मुझे इस अधिवेशन का सभापतित्व स्वीकार है? निर्वाचकों का मैं अनुगृहीत हूँ कि उन्होंने मुझे इस सेवा के लिए चुनने की कृपा की, लेकिन पूना में अधिवेशन होने के विषय में जो शोचनीय परिस्थिति कतिपय राष्ट्रभाषा के हिमायतियों ने पैदा कर दी है तथा सम्मेलन की स्थायी समिति ने इस विषय में जो कुछ कार्यवाही की है, इन सबको देखते हुए मैं दुविधा में पड़ गया हूँ। मान लीजिए, कि स्थायी समिति बहुमत से यह तय करती है कि सम्मेलन का आगामी अधिवेशन पूना की जगह किसी अन्य स्थान में किया जाय। यह भी मान लीजिए कि स्थायी समिति के इस निर्णय के होते हुए भी पूना में सम्मेलन की पूर्व-निर्वाचित स्वागत-समिति यह तय करती है कि बनारस के फ़ैसले के अनुसार सम्मेलन का आगामी अधिवेशन पूना ही में हो और पूना की स्वागत-समिति मुझे राष्ट्र-भाषा-सम्मेलन के अधिवेशन में सभापतित्व के लिए आमंत्रित करती है। आप मुझे बतायें कि ऐसी परिस्थिति उपस्थित होने पर मेरी स्वीकृत का क्या अर्थ होगा? स्थायी समिति की बग़ावत का साथ देना और पूना की स्वागत-समिति के निमन्त्रण को अस्वीकार करना, या स्थायी समिति का सदस्य होते हुए भी स्थायी समिति के फ़ैसले के विरुद्ध पूना के अधिवेशन में जाकर सभापति का पद ग्रहण करना?

उपर्युक्त सम्भावनाओं को सामने रख कर मैं इस समय यही उचित समझता हूँ कि मैं अपने निर्वाचन को स्वीकार कर लूँ। पर साथ ही, यह भी मैं स्पष्ट कर दूँ कि यदि पूना की पूर्व-निर्वाचित स्वागत-समिति पूना में राष्ट्र-भाषा-सम्मेलन का अधिवेशन करने की योजना करती और मुझे उसके सभापतित्व के लिए आमन्त्रण भेजती है तो मैं अपना यह कर्त्तव्य समझूँगा कि पूनावाले अधिवेशन के साथ मैं पूर्णरूप से सहयोग दूँ। अधिवेशन को स्थगित करने के सम्बन्ध में स्थायी समिति का जो निर्णय है उसको मैं सम्मेलन के हित में घातक समझता हूँ। मेरी यह निश्चित धारणा है कि स्थायी समिति को बहुमत से सम्मेलन के अधिवेशन को स्थगित करने का कोई अधिकार नहीं है। व्यक्तियों की ख़ुशामद करना सम्मेलन ऐसी महती संस्था के लिए अपमान-जनक है, और हमारे जिन मित्रों ने सद्भावना से प्रेरित होकर सम्मेलन को स्थगित करने के पक्ष में सम्मति दी है, उन्होंने अनजान में सम्मेलन, हिन्दी और राष्ट्रभाषा के प्रति स्पष्टरूप से अपने कर्तव्य की अवहेलना की है।

———

श्री काशीराम पुरस्कार

उपर्युक्त पुरस्कार की प्रतियोगिता में जितनी कविताएँ आईं उनमें श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिनहा की रचना सबसे अच्छी सिद्ध हुई; अतएव उस कविता पर ५०) का उक्त पुरस्कार दिया गया। श्रीमती जी की उक्त रचना इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित की गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पचास रुपये का
श्री काशीराम-पुरस्कार

इसका द्वितीय पुरस्कार इस बार—**कहानी**—पर दिया जायगा। नियम निम्नांकित है —

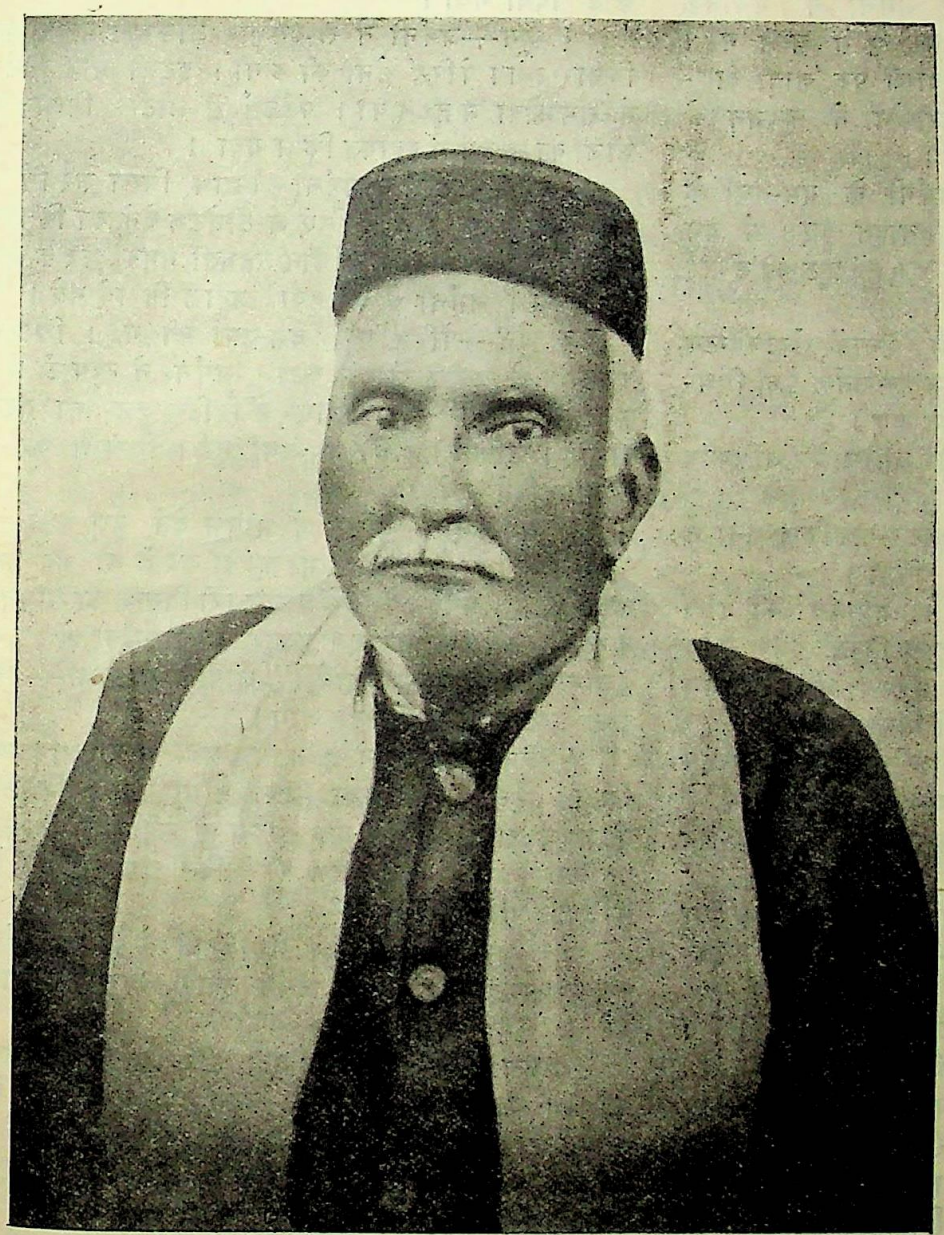

(१) हिन्दी का कोई भी लेखक या लेखिका इस पुरस्कार की प्रतियोगिता में भाग ले सकेगी।

(२) कहानी भेजने की अन्तिम तारीख़ ३१ अगस्त है।

(३) कहानी 'सरस्वती' के कम से कम आठ पृष्ठ की हो। केवल नई और मौलिक कहानियों पर विचार किया जायगा।

(४) सर्वश्रेष्ठ कहानी पर ५०) का पुरस्कार ३० सितम्बर को भेज दिया जायगा और कहानी 'सरस्वती' में छापी जायगी। पुरस्कार का रुपया निर्णायक भेजेंगे।

(५) कहानियों का निर्णय 'सरस्वती'-सम्पादक पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल करेंगे। प्रतियोगियों को अपनी कहानियाँ उन्हीं के नाम 'इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद,' के पते से भेजनी चाहिए।

(६) कहानी पर 'श्री काशीराम-पुरस्कार के लिए'—यह वाक्य अवश्य लिखा रहना चाहिए। कहानी के साथ आवश्यक टिकट अवश्य होना चाहिए, अन्यथा अस्वीकृत होने पर कोई कहानी वापस न की जायगी।

निवेदक

चन्द्रभूषण वैश्य, नारायणगंज (ढाका)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध की डायरी

१७ मई——बेल्जियम और फ़्रांस के देशों में जर्मन-सेनायें ३ ओर से बढ़ीं लोवेन (ब्रूसेल्स से १७ मील उत्तर), सेम्बर नदी और रेथल नगर के बीच के भाग व सेडन भूभाग में। जर्मन की बख्तरबन्द सेनायें ३० मील तक फ़्रांस में घुस गईं। लाडवेन पर जर्मनों ने भयानक बमवर्षा की। बेल्जियम-सरकार ब्रूसेल्स से चली गई।

१८ मई——बर्जन के तेल-गोदामों पर 'शाही वायु-सेना' ने आक्रमण किया। ९ हरीकेनों ने दुश्मन के दस बम-वर्षकों को मार गिराया।

१९ मई——राटरडम पर जर्मनों के बम-वर्षा के परिणाम-स्वरूप १ लाख मनुष्य हताहत हुए। ये बम प्रत्येक दो हज़ार पौंड भारी थे और ४,५०० फ़ुट की उँचाई से छोड़े गये थे।

२० मई—— जर्मनी की कुछ सेनायें सेन्टक्वेन्टन पहुँच गईं। जर्नल गेमेलिन के स्थान पर जर्नल वेगाँ मित्र-सेनाओं के प्रधान सेनापति नियुक्त हुए।

२१ मई——जर्मनों ने एरास और अमीन्स पर अधिकार कर लिया।

२२ मई——जर्मनों की एक मोटर-साइकिल सेना ने अवेवील के स्टेशन पर आक्रमण किया।

२३ मई——फ्रेंच बन्दरगाहों पर बम-वर्षा की गई। जर्मनों की मोटर सेना भी बन्दरगाहों के निकट पहुँच गई। बोलोन के निकट युद्ध हुआ। एलास और बेपाउम के बीच के एक मार्ग से जर्मन-सेनायें निकल गईं।

२४ मई——ब्रिटिश सेनायें बोलोन से चली आईं। जर्मन सेनाओं ने बोलोन में प्रवेश किया। फ़्लैंडर्स में भयानक जंग जारी रही। स्ट्रेसवर्ग और मेत्स पर शत्रुओं ने बम गिराये।

२५ मई——फ़्लैंडर्स की लड़ाई ने और भी भीषणता धारण की। लगभग ४० जर्मन-वायुयानों को मित्र-विमानों ने गिरा दिया।

२७ मई——मेनिन के निकट भारी लड़ाई हुई। केले पर भी आक्रमण हुआ। फ़्लीशिंग के एरोड्रोम पर अँगरेज़ों के वायुयानों ने आक्रमण किया। जिब्राल्टर और माल्टा में करफ़्यू आर्डर जारी किये गये।

२८ मई——बेल्जियम के बादशाह लियोपोल्ड ने आत्म-समर्पण कर दिया। ब्रिटिश और फ़्रेंच सेनायें लड़ती रहीं।

२९ मई—— ब्रिटिश सेनायें आज्ञा पाकर पीछे हटीं। फ़्लैंडर्स में भयानक लड़ाई जारी रही।

३० मई——फ़्लैंडर्स में अँगरेज़ी फ़ौजें बिखर गईं। तीन जंगी और कई दूसरे जहाज़ डुबोय गये। मि० रेनो ने मि० चर्चिल से भेंट की। बेल्जियम में मित्रराष्ट्रों की बहुत-सी युद्ध-सामग्री जर्मनों के हाथ आ गई।

३१ मई—— फ़्लैंडर्स के मोर्चे पर मित्रराष्ट्रों की हार हुई और अँगरेज़ी फ़ौजों को वापिस इँगलैंड लौटना पड़ा। डन्कर्क के आसपास घमासान युद्ध हुआ। बढ़ते जर्मनों का सामना करने के लिए बेल्जियम के एक भाग में पानी छोड़ दिया गया।

१ जून——जर्मनी ने लण्डन पर आक्रमण करने का विचार त्याग पेरिस लेनी की ठानी। इटली और ब्रिटेन में समझौता न हो सका। फ़्लैंडर्स से लौटी विलायती फ़ौजों का लण्डन में स्वागत किया गया।

२ जून——इटली ने जर्मनी को साथ मिला कर मित्र-राष्ट्रों को सुलह करने के लिए अल्टीमेटम देने का विचार किया। जर्मनी ने फ़्रांस के तीन तटवर्ती नगरों पर क़ब्ज़ा कर लिया। जर्मनी के ३५ हवाई जहाज़ गिराये गये।

३ जून——पेरिस पर बम-वर्षा की गई। मिस्टर डफ़कूपर के समीप ही बम फटा। जर्मनों ने न्यूपोर्ट पर क़ब्ज़ा कर लिया। भूमध्यसागर में ब्रिटिश जल-सेना बढ़ा दी गई। डन्कर्क पर भी बम-वर्षा हुई। मिस्र से जर्मन निकाल दिये गये।

४ जून——मि० चर्चिल ने भाषण देते हुए कहा——"यदि शत्रु सारे इँगलैंड पर भी क़ब्ज़ा कर ले तो भी हम लड़ते रहेंगे। फ़्लैंडर पर हमें प्रलयकारी विनाश का सामना करना पड़ा है। हमारे ३५ हज़ार और जर्मनी के ६० हज़ार सिपाही काम आये।" जापान ने कहा——डच ईस्ट इण्डीज़ को न छोड़ा जाय।

५ जून——जर्मनी ने फ़्रांस पर बड़ा भारी आक्रमण किया। १६० मील लम्बा मोर्चा बाँधा गया। हिटलर ने जर्मन राष्ट्र के नाम एक सन्देश में कहा कि विजय-पताका फहराई जाये और तीन दिन तक गिरजों के घड़ियाल बजते रहें।

६ जून——समुद्र और शेमादेराहे के बीच सर्वत्र लड़ाई जारी रही। १० जर्मन हवाई जहाज़ गिराये गये।

८ जून जर्मन-सेनायें ब्रेल नदी और एलेट नहर तक पहुँची। इनके कुछ दस्ते आगे बढ़ते हुए एन नदी के दाहिने किनारे की ऊँची ज़मीन तक घुस आये। भयानक नर-संहार हुआ। यह युद्ध भी टैंकों सुदृढ़ पैदल सेनाओं तथा तोपखानों की सहायता से लड़ा गया।

अँगरेज़ी शाही हवाई बेड़े ने नार्मण्डी और मध्य देश में मिल कर १० जर्मन हवाई जहाज़ गिरा लिये और सम्भवतः ४०० जर्मन-वायुयानों को नष्ट-प्राय कर दिया।

पेरिस के स्कूलों पर बम-वर्षा होने के कारण फ़्रेंच-सरकार ने पेरिस के सभी प्रारम्भिक स्कूलों को बन्द कर देने का निश्चय किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकाव्य कलाकार देशभक्त "हितैषी जी" की

कल्लोलिनी

पर

हिन्दी-साहित्य के प्रमुख विद्वानों की सम्मतियाँ

...कल्लोलिनी देखकर ही मैं मुग्ध हो गया था। पढ़ने पर जो आनन्द मिला उसे मेरा मन ही जानता है।.....पृष्ठ ३४ पढ़ कर तो आँखें साश्रु हो उठीं। हृदय भक्तिसागर में गोते खाने लगा। आप प्रकृति सहृदय कवि हैं। आपकी प्रायः सभी रचनाएँ हृदय पर पूरा असर करती हैं।

दौलतपुर (रायबरेली) स्वर्गीय महावीरप्रसाद द्विवेदी

..."हितैषी जी" उन इने-गिने कवियों में हैं जो पुराने को नया करते हैं और नये को अत्यन्त अनोखापन रखकर भी अजनबीपन से बचाते चले आ रहे हैं। उनकी कल्लोलिनी की तरंगें एक निश्चित दिशा की ओर जाती हैं। विक्षेप द्वारा अलग अलग उठती गिरती हुई नहीं। आपकी दृष्टि जीवन की अनेक दशाओं पर पड़ी है और ठहर कर उनका रहस्योद्घाटन किया है। हमारे परम्परागत छन्दों में खड़ी बोली किस सुन्दरता के साथ ढल सकती है तथा अभिव्यञ्जना की प्रणाली का नूतन प्रसार कैसे स्वाभाविक ढङ्ग पर हो सकता है, इसका पूर्ण विकास 'हितैषी जी' की रचनाओं में वर्तमान है। ऐसे खुले हृदय के कवि दूसरों का हृदय खोल सकते हैं।

दुर्गाकुण्ड (काशी) रामचन्द्र शुक्ल

.. कल्लोलिनी की रचना से "हितैषी जी" ने बड़ा उपकार किया है। उनके सभी रस बड़े उच्चकोटि के हैं। हाँ, पितु, मातु, पय शब्द काव्याचार्यों की स्वतन्त्रता के द्योतक हैं। इसमें विविध कविताओं में विविध रस हैं। एक को पढ़कर दूसरे को पढ़ने की इच्छा होती है। कोई भी सहृदय कविता प्रेमी इसे पढ़कर 'हितैषी जी' को बड़ा से बड़ा कवि माने बिना नहीं रह सकता। वर्तमान कवियों में उनका स्थान बहुत ही ऊँचा और आदरास्पद है।

लेक्चरर-कलत्ता यूनिवर्सिटी (महामहोपाध्याय) सकलनारायण शर्मा

.. कल्लोलिनी रचयिता 'हितैषी जी' उन प्रसिद्ध कवियों में हैं जिनकी वाणी में ग़ज़ब का बल है। सुन्दर कल्पना, भाव गाम्भीर्य एवं स्वसाहित्य की संस्कृति के संरक्षण का यह सफल प्रयत्न सर्वथा अनुपम है। भाषा अत्यन्त ज़ोरदार, बामुहाविरा एवं विशुद्ध है। यह ग्रन्थ खड़ी बोली के काव्यों में अत्युच्च स्थान का अधिकारी है, यह मेरी दृढ़ धारणा है।

शान्तिनिकेतन (बोलपुर, बङ्गाल) लोचनप्रसाद पाण्डेय

..."हितैषी जी" श्रेष्ठ कवि हैं। वे सहज ही प्राणों के पास पहुँचते हैं। उनकी रचनाएँ सुनने का मुझे प्रायः सुयोग मिला है। कुछ गुणों में तो उनकी कृतियाँ बेजोड़ हैं। मैं बहुत ऊँची निगाह से उन्हें देखता हूँ। कल्लोलिनी में उन्हीं का संग्रह है। पुस्तक बहिरङ्ग से भी अधिक सुन्दरी है।

शिवरात्रि, मक़बूलगञ्ज, लखनऊ सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

ऐसो सुन्दर पुस्तक का मूल्य केवल २) दो रुपया

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना-साहित्य की उत्तमोत्तम पुस्तकें

भाषा-रहस्य (पहला भाग)

लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०
तथा
श्रीयुत पद्मनारायण आचार्य्य, एम० ए०

इस ग्रन्थ-रत्न में भाषा-शास्त्र के प्रधान-प्रधान सभी सामान्य प्रकरणों का इस प्रकार विवेचन किया गया है, कि विद्यार्थी शास्त्र में दीक्षित होकर इस विषय के अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का अध्ययन कर सकें। योरपीय भाषाओं के सम्बन्ध में भी इसमें विवेचना की गई है किन्तु उदाहरण यथासम्भव संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओं से दिये गये हैं। पुस्तक भारतीय विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के दृष्टिकोण से लिखी गई है। मूल्य ४) चार रुपये।

कवि और काव्य

लेखक, श्रीयुत शान्तिप्रिय द्विवेदी

इस पुस्तक में काव्य-सम्बन्धी गम्भीर से गम्भीर विचार भी भावपूर्ण भाषा में बड़ी रोचकता और कोमलता से व्यक्त किये गये हैं। इसमें काव्य-सम्बन्धी १४ उपयोगी विषयों पर बड़े ही सुन्दर-सुन्दर लेख हैं। साहित्य-प्रेमियों के लिए ये विषय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। पुस्तक इतनी मर्म्मस्पर्शिनी है कि एक बार पढ़ना शुरू करने पर छोड़ने का जी नहीं चाहता। मूल्य १) एक रुपया।

संचारिणी

यह शान्तिप्रिय जी की एक दूसरी पुस्तक है। इसमें भक्तिकाल से लेकर आज के संक्रान्ति काल तक की साहित्यिक चेतनाओं का ममस्पर्श है। इसमें सब मिलाकर ११ साहित्यिक विषयों के सुन्दर निबन्ध हैं।

यह पुस्तक क्या है? एक स्वच्छ साहित्यिक दर्पण, जिसमें आप अपने को भी देख सकेंगे। पृष्ठ-संख्या २५० से अधिक, मूल्य केवल १) सजिल्द।

हमारी बिलकुल नई पुस्तकें

जर्मनी का आक्रमण नार्वे पर

लेखक, पण्डित उमेशचन्द्र मिश्र, विद्यावाचस्पति

वर्तमान योरपीय युद्ध पर हिन्दी में यह पहली पुस्तक है। इसमें नार्वे, स्वेडन व डेनमार्क का पूरा परिचय देते हुए जर्मनी के इन देशों पर आक्रमण करने का वर्णन बड़े रोचक ढङ्ग से किया गया है। समय-समय पर दिये गये प्रधान व्यक्तियों के वक्तव्य भी संगृहीत हैं। एक नक़शा व ८ उपयोगी चित्रों सहित पुस्तक का मूल्य केवल ।=) छः आना।

पुरु और एलेक्ज़ेंडर

लेखक, श्री हरिश्चन्द्र सेठ, एम० ए०, पी० एच०-डी० (लण्डन) और श्री कैलाशचन्द्र सेठ, साहित्यरत्न

इस नाटक में सम्राट् पुरु का साहस और देश-प्रेम दिखलाया गया है। एलेक्ज़ेंडर की वीर-पूजा तथा यूनानी सेना से मोर्चा लेनेवाली राजकुमारी उर्वशी की वीरता आदि बातें ऐसी हैं जिनका पाठकों पर बहुत अधिक असर पड़ता है। इस नाटक की एक यह भी विशेषता है कि यह रङ्ग-मंच पर सफलता पूर्वक खेला जा सकता है। मूल्य १) एक रुपया।

स्वदेश-विदेश-यात्रा

लेखक श्री संतराम, बी० ए० और
श्रीमती रामेश्वरी नेहरू

इस पुस्तक में काश्मीर, कुल्लू और आस्ट्रेलिया की यात्रा का वृत्तान्त दिया गया है। इसके सभी अध्याय बहुत ही रोचक हैं। पुस्तक की उत्तमता का पता इसी बात से लगाया जा सकता है कि सभी बातें भारतीय दृष्टिकोण से लिखी गई हैं। पुस्तक में चित्रों की भरमार है। मूल्य १।) सवा रुपया।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५५०) रुपए नक़द इनाम

सिद्ध वशीकरण यन्त्र

इस अद्भुत शक्तिशाली यन्त्र के धारण करने से मुश्किल से मुश्किल कार्य भी फौरन सिद्ध हो जाते हैं। जिस व्यक्ति स्त्री या पुरुष से—आपकी मिलने की अभिलाषा हो, वह चाहे पत्थर हृदय क्यों न हो, इस शक्तिशाली यन्त्र द्वारा आपके पास चला आएगा, और आपके साथ शादी की इच्छा प्रकट करेगा। क़ीमत ताँबा १॥।≡) रु०, तीन यंत्र एक साथ लेने से केवल ५) रु०, चाँदी २॥।) रु०, सोना ६॥) रुपये।

लक्ष्मी यन्त्रः—यह व्यवसाय में उन्नति, मुक़दमा, कुर्सी, सट्टा, लाटरी में जीत, परीक्षा में पास, नवग्रहों की शान्ति, नौकरी में तरक़्क़ी, सन्तान सम्पन्न और सौभाग्यवान बनाता है। मूल्य ताँबे का १॥।≡), तीन यन्त्र एक साथ लेने से केवल ५) रु०, चाँदी का २॥।), सोने का ६॥) रु०। महसूल-डाक प्रति यन्त्र अलग; सन्तान के लिए दो यन्त्र मँगवाने आवश्यक हैं, स्त्री पुरुष दानों के लिए पृथक पृथक, चार काम पूरे करने के लिए स्पेशल प्रभावशाली नं० ४ मँगावें, मूल्य ५।) रु० और पाँच काम से ज़्यादा के लिए स्पेशल नं० ५ मँगावें मूल्य ७॥) रु०। यह बहुत शीघ्र प्रभावकारी तथा अचूक है। यन्त्र के लिए किसी प्रकार का पूजापाठ या कठिन कार्य नहीं है, यह बहुत परिश्रम से सिद्ध करके भेजे जाते है, यदि सिद्धिप्राप्त न हो तो दाम वापिस बल्कि इसको झूठ साबित करने वाले को ५५०) नक़द इनाम दिया जावेगा।

ज़रूरी प्रार्थनाः—विश्वासी पुरुष लाभ उठावें, शंका करने वाला समय पर हीरे को पत्थर समझ कर खो बैठता है।

मँगाने का असली पताः—आनन्द स्वामी,

आनन्द भवन, पोस्ट बक्स नं० २७, (S.R.A) अमृतसर, Amritsar, (India)

---

१००) रुपए नक़द इनाम

बाल काला तेल नं० १

जिन मनुष्यों ने इस बाल काला तेल का इस्तेमाल किया है, वह हैरान हो गये हैं कि ठीक एक लाजवाब तोहफा है। इसके इस्तेमाल से सफेद बाल हमेशा के लिए काले हो जाते हैं और फिर तमाम उमर काले ही पैदा होते हैं। यह एक संन्यासी महाराज का बताया हुआ तोहफा है। दिमाग़ को विशेष ताक़त देकर आँखों की रोशनी को तेज़ करता है। बड़ी सुन्दर चीज़ है। यह कोई ख़िज़ाब नहीं है औषधियों द्वारा सिद्ध आयुर्वेदिक चमत्कार है। मूल्य फी शीशी केवल एक रुपया चार आने १।), तीन शीशी ३), यदि फायदा न हो तो मूल्य वापिस होगा।

नोटः—ऊपर लिखी औषधियों को झूठा साबित करनेवाले को १००) रुपया नक़द इनाम दिया जायगा।

मिलने का पता—सन्यासी रोशन फार्मेसी

पोस्ट बक्स नं० २७, अमृतसर Amritsar, (India)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे कच्चे साबुन नहीं चाहिये— मैं सनलाइट ही इस्तेमाल करती हूँ ?

पहले मैं सस्ते साबुन लगाती थी, पर एक दिन मैंने अपनी सहेली से पुछा, कि तुम अपने सुफेद कपडों को इतने सुफेद और चमकीले कैसे रखती हो ? तो वह बोली सनलाइट साबुन से ! यह सनलाइट साबुन की अधिक झाग का ही गुण है उसके कपडे इतने अदभुत और साफ लगते हैं।

बस तभी से मैंने सस्ते साबुन छोड दिये हैं। मैं सनलाइट ही लगाती हूं, अब सभी हमारे बेदाग और साफ कपडों की तारीफ करते हैं।

सनलाइट साबुन

हिन्दुस्तान में ही विशुद्ध वनस्पति तेलो से बनता है।

S. 18-95 HI

LEVER BROTHERS (INDIA) LIMITED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल सर्वोत्तम दूध आपके बच्चे के लिए लाभदायक है

ग्लैक्सो की तरह अच्छा कोई दुग्धाहार नहीं है

आपके बच्चे की स्वास्थ्य-पूर्ण बाढ़ केवल दूध पर निर्भर है अतः बच्चों के लिये केवल सर्वोत्तम दुध की आवश्यकता है...और बच्चों का वह सर्वोत्तम दुग्धाहार ग्लैक्सो है। संसार भर की बुद्धिमती मातायें अपने बच्चों का पोषण केवल ग्लैक्सो से करती हैं। क्यों? इसलिए कि ग्लैक्सो बलवर्द्धक तथा स्वच्छ दूध है जो कि ख़ास तौर पर बच्चों के लिए सस्ते तथा सुविधाजनक चूर्ण के रूप में अपनी सभी विशेषताओं के साथ तैयार किया गया है। ग्लैक्सो बच्चों को मज़बूत तथा तन्दुरुस्त बनाता है तथा कोमल से कोमल उदर को भी किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाता। आपके लिए सर्वोत्तम बात यही होगी कि अब आप अपने बच्चे को ग्लैक्सो के आधार पर रख कर भविष्य के दूध-सम्बन्धी सभी झंझटों से दूर रहें। आप जब भी ग्लैक्सो ख़रीदें आप विश्वास रक्खें कि यह बहुत ही शुद्ध है। ग्लैक्सो बच्चों के लिए आदर्श वस्तु है। यह बहुत दिन चलता है क्योंकि इसमें किसी भी प्रकार की छीजन नहीं जाती आप अपनी आवश्यकतानुसार इसका इस्तेमाल कर सकती हैं। अब जब आप अपने बच्चे के लिए दूध मँगावें तो जिद करके ग्लैक्सो लें।

पुराना तरीक़ा

निर्बल और रोगी गाय का दूध आपके बच्चे को हानि पहुँचाता है।

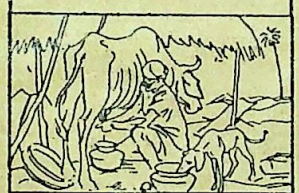

दूध दुहनेवालों के हाथ प्रायः गन्दे होते हैं इससे दूध में रोग के कीटाणु आ जाते हैं।

साधारण दूध ठंढे तथा गंदे पात्रों में रक्खे जाते हैं अतः बच्चों के लिए हानिकर है।

ग्लैक्सो की रीति

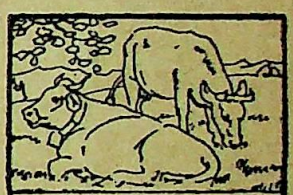

ग्लैक्सो सर्वोत्तम गायों के दूध से विशेषज्ञों के संरक्षण में बनता है।

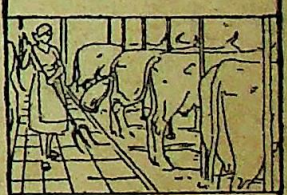

ग्लैक्सो की गायें वैज्ञानिक मशीन द्वारा दुही जाती हैं। यह दोष रहित है।

ग्लैक्सो बनाते समय हाथ नहीं लगता, मुहर-बन्द डिब्बों में निर्दोष मिलेगा।

ग्लैक्सो

Glaxo

बच्चों का आदर्श दुग्धाहार

भारतवर्ष में बहुत बड़ा स्टाक है। रेट बिलकुल नहीं बढ़ाया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IR 841

उड़ते सितारे

भारतीय चित्रपट की उज्ज्वल तारिका **विमला कुमारी** कहती हैं—"मैंने चाय को सर्वदा आश्चर्यजनक तरो ताजा करने वाली पाया है।" चित्र-तारिका का जीवन एकाग्रता तथा खिंचाव का जीवन है और स्वभावतः वे सर्वदा चाय का ही भरोसा करती हैं। यह बहुत ही तरो ताजा करने वाला पेय है। यह चित्तको प्रसन्न भी करता है। चाय को अपना पहला प्रियपात्र बनाइये।

सब 'सितारों' की प्रिय-भारतीय चाय

इण्डियन टी मार्केट एक्सपैन्शन बोर्ड द्वारा प्रचारित

IK 129 P

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar